SARASWATI JAN-DEC 1963 G.K.U.

112838

112878

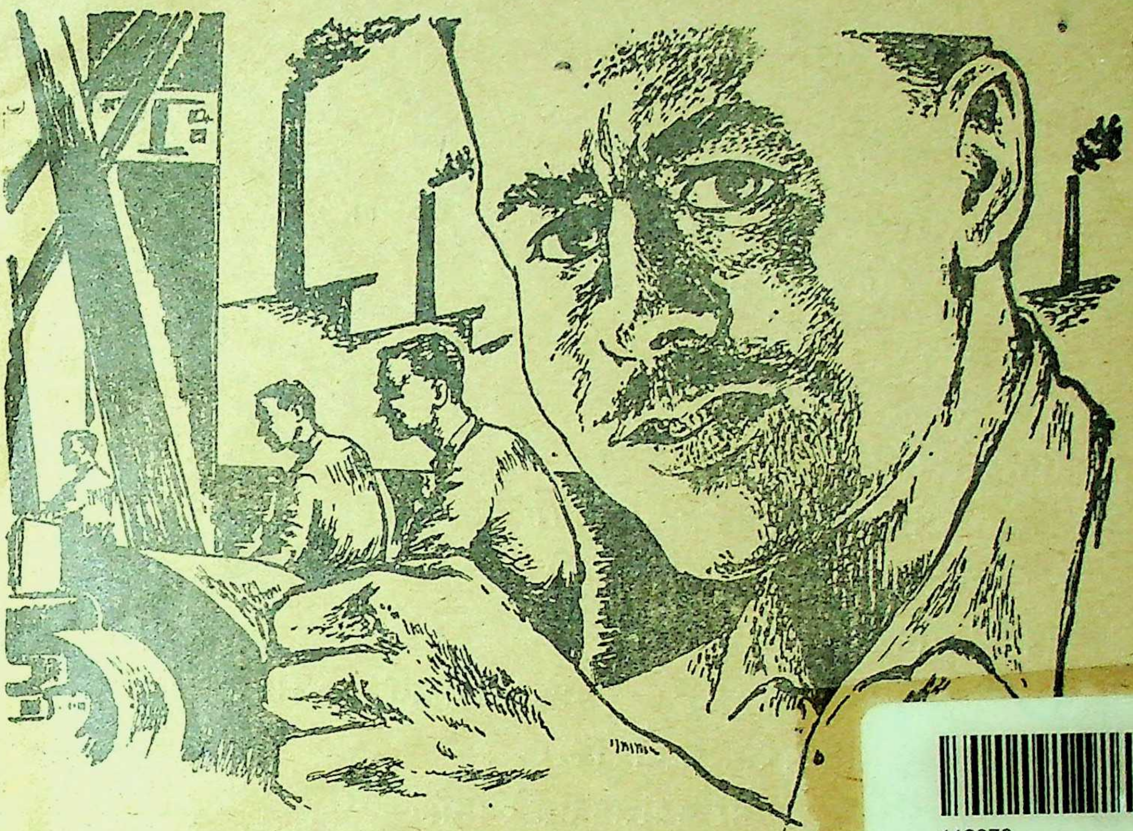

112878

जीत के लिए जी-तोड़ मेहनत

विजय के लिए आपका काम भी बहुत जरूरी है । मातृभूमि की रक्षा के लिए हमारी सीमा पर लड़ रही सेनाओं को सुदृढ़ करने, राष्ट्र को अधिक साधन सम्पन्न बनाने और सभी मोर्चों पर प्रहार-शक्ति सबल करने के लिए प्रत्येक को उत्पादन बढ़ाने के वास्ते जी-तोड़ मेहनत करना आवश्यक है ।

चाहे विशाल औद्योगिक–कारखाना हो या मशीन शॉप, चाहे फाउन्ड्री हो अथवा खराद, सभी प्रकार का काम करने वाले लोगों को उत्पादकता बढ़ाने और अधिक उत्पादन के लिए अधिकाधिक परिश्रम करने का समय आ पहुंचा है । हमें इस बात का पक्का इंतजाम करना है कि सैनिक मोर्चों तक और देश की अन्दरूनी जरूरतों के लिए आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई का प्रवाह निरन्तर और निर्विघ्न चलता रहे ।

हर नागरिक एक सैनिक है

खूब उत्पादन बढ़ा कर रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०.००
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६.००
हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२.००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६.००
ज्ञानेश्वरी गीता	६.००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३.००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२.००
रामचरितमानस (मूल)	३.००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६.००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१.००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३.५०
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४.००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२.७५
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४.००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१.५०
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३.००
द्वितीय भाग	२.७५
भक्तचरितावली	३.५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०.७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५.००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८.७५
दुर्गापाठ—अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२.००
श्री भगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३.००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

गुरुकुल कांगड़ी

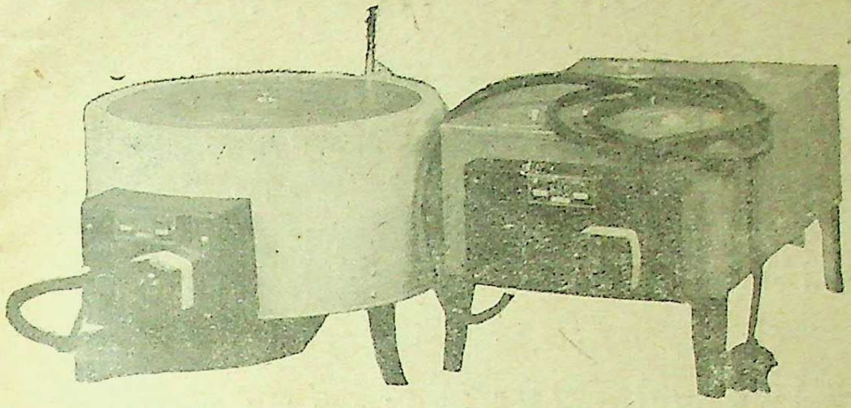

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएँसेज) के लिए कृपया हमें लिखें।

सीको इलेक्ट्रिक वाटर बाथ

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ **॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥**

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

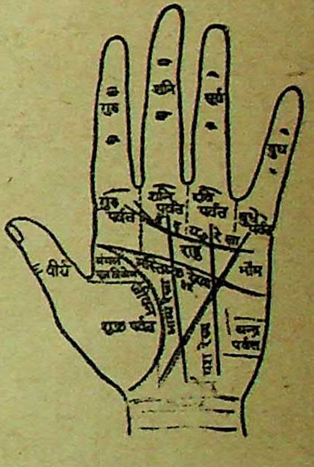

गुरु
शनि
सूर्य
बुध
गुरु पर्वत
शनि पर्वत
सूर्य पर्वत
बुध पर्वत
हृदय रेखा
राहु
मंगल
मस्तिष्क रेखा
भौम
वीर्य
जीवन रेखा
भाग्य रेखा
शुक्र पर्वत
चन्द्र पर्वत

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:---श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:---

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ले : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

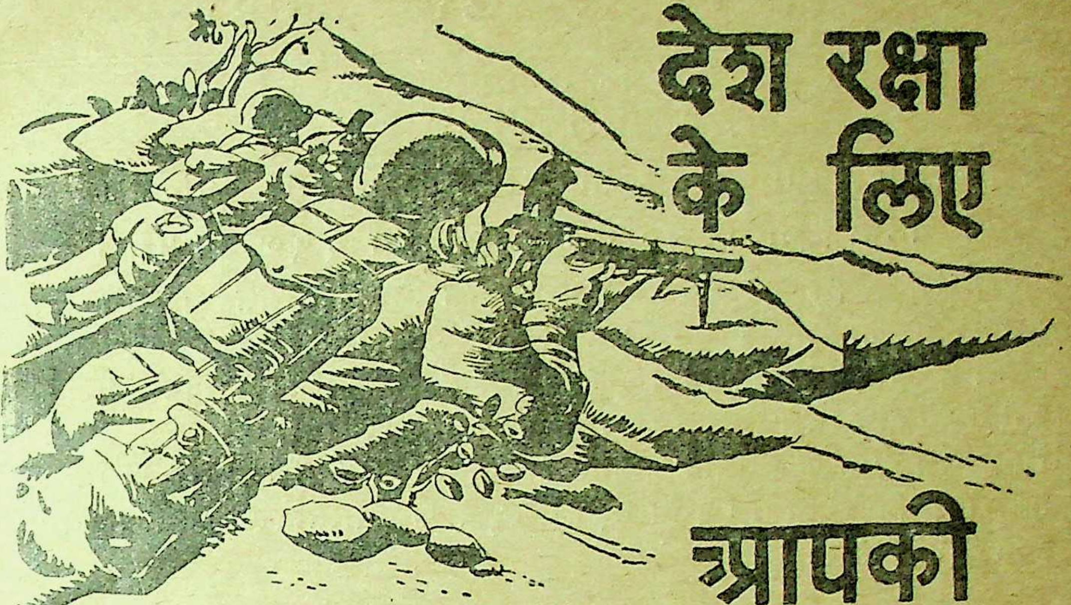

देश रक्षा के लिए आपकी बचत की जरूरत है

इन नयी मदों में रुपया लगाइये :

१० वर्षीय रक्षा जमा पत्र

४½% प्रतिशत कर-मुक्त ब्याज प्रति वर्ष दिया जाता है।

ये जमा पत्र ५० रु० या इसके गुणकों में मिलते हैं।

ये भारतीय रिजर्व बैंक के सभी कार्यालयों, भारतीय स्टेट बैंक तथा इसके सहायक बैंकों की शाखाओं और ट्रेजरियों व सब-ट्रेजरियों से मिल सकते हैं।

१२ वर्षीय राष्ट्रीय रक्षा पत्र

६¼ प्रतिशत प्रति वर्ष साधारण ब्याज या ४¾ प्रतिशत प्रति वर्ष चक्रवृद्धि ब्याज मिलता है।

ये ५ रु०, १० रु०, ५० रु०, १०० रु०, ५०० रु०, १,००० रु०, ५,००० रु० और २५,००० रुपयों के मिलते हैं। इनमें लगाई रकम १२ वर्ष पूरे होने पर ७५ प्रतिशत लाभ सहित वापस मिल जाएगी।

ये बचत बैंक का काम करने वाले सभी डाकघरों से मिल सकते हैं।

अधिकतम सीमाएं- एक व्यक्ति के लिए ३५,००० रु०
और संयुक्त रूप से ७०,००० रु०

भारत की रक्षा शक्ति को और सुदृढ़ कीजिए

राष्ट्रीय बचत संगठन

DA-62/600

3

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह---प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका---सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सुगंधित
ब्राह्मी
केश तैल

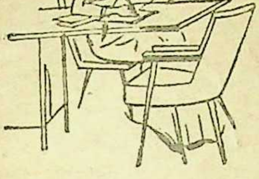

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वेदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

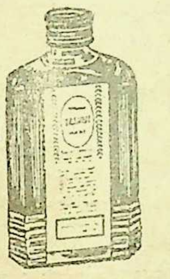

बेंगाल
केमिकल

कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

गैस-वायु पेट दर्द के लिए

गैसहर पिल्स गैस, वायु, गोला, बादी, मंदाग्नि, कब्ज, पेट का दर्द, शूल, पेट का भारीपन, और गैस-वायु विकृति के कारण पैदा होने वाली शिकायतों के लिए उपयोगी, खुराक हजम करके दस्त साफ लाकर भूख बढ़ाती है। ११ वर्षों से गैस-वायु--पेटदर्द के लिये उपयोगी होने वाली आयुर्वेदिक औषधि; वैद्य, डाक्टर तथा अस्पताल में इस्तेमाल की जाती है। ५० गोलियों की छोटी शीशी रु० १·५० व १५० गोलियों की बड़ी शीशी रु० ४) वी. पी. और से० टे० खर्च अलावा।

बल-वर्धक, रक्त-वर्धक, स्फूर्ति-वर्धक

दुग्धानुपान गोलियाँ--पाचनक्रिया सुधार कर दस्त साफ लाती है, रस, रक्त-रुधिर इत्यादि सप्त धातुओं को पोषण देकर, यौवन-शक्ति, दिमागी ताकत, जीवन-शक्ति और वजन बढ़ाने वाली ३४ वर्ष की प्रसिद्ध आयुर्वेदिक औषधि, ३२ गोलियाँ छोटी शीशी रु० १·५० और ९६ गोलियाँ बड़ी शीशी रु० ४) वी. पी. खर्च अलावा। वी० पी० के लिये जामनगर लिखें।

हर जगह दवा वाले बेचते हैं। वी.पी. के लिये जामनगर लिखें।

स्त्रियों के लिए शक्तिवर्धक
'दोना पिल्स'

खाने-पीने अहार-विहार की अनियमितता की शिकायतें, पाचन की मंदता, हाथ, पैर, कमर में दर्द, शारीरिक कमजोरी, प्रसूति के बाद की निर्बलता, खून की कमी, सगर्भावस्था की शिकायतें इत्यादि के लिए उपयोगी; शरीर में रक्त की वृद्धि, शक्ति, स्फूर्ति, चैतन्य, और तंदुरुस्ती बढ़ानेवाला स्त्रियों का आयुर्वेदिक टानिक। ४० गोली छोटी शीशी रु० १·५० और १२० गोली बड़ी शीशी रु० ४) वी० पी० अलावा।

बनानेवाले–दुग्धानुपान फार्मेसी, गांधी चौक, 'दुग्धानुपान भवन', जामनगर (सौराष्ट्र)

होलसेल स्टाकिस्ट : बम्बई–बीछीं ब्रदर्स, ७९ प्रिंसेस स्ट्रीट। देहली–जमनादास कं० चांदनी चौक। देहली–कांतिलाल आर० परीख, चांदनी चौक। वाराणसी–राधेलाल संस बैटरीवाला, चौक। कलकत्ता–सौराष्ट्र स्टोर्स, १८ मल्लिक स्ट्रीट। नागपुर–अनन्तराय ब्रदर्स कीराना ओली। कानपुर–प्रवीणचन्द जयन्तीलाल ५८-७७ बिरहाना रोड। इलाहाबाद–चंपकलाल कं०, ४६ जोनस्टनगंज। जबलपुर—खुन्नेलाल छिंगेलाल। लखनऊ–इन्द्रचन्द कं०, चौक।

अपने रोग की सम्पूर्ण हकीकत लिख भेजें। वैद्यराज की सुचनानुसार सलाह मुफ्त लिखकर भेजी जायेगी।

लिखें–वैद्यराज पो० बो० ३२ जामनगर (सौराष्ट्र)

रजनीगंधा
देवेन्द्रदत्त तिवारी

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

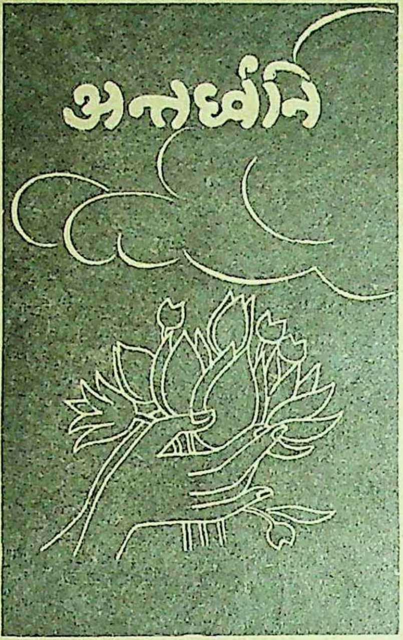

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूँज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

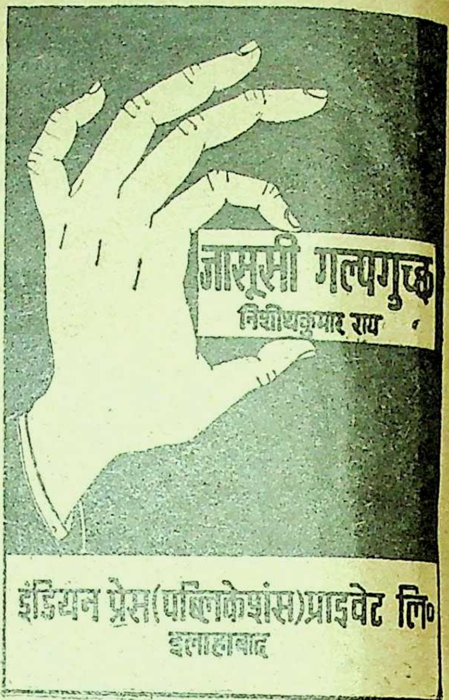

प्रस्तुत हो गया **निकल गया**

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपबिलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूँदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपबिलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे बी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आने, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपये चार आने डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दाँत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आने डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खाँसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आने डाकखर्च अलग।

रूपबिलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियाँ वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ होकर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपये डाकखर्च अलग।

रिंगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आने डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आने डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज बटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७।।) सात रुपये आठ आने और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपये दो आने डाकखर्च अलग।

रूपबिलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आने डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।।) दो रुपये आठ आने, बड़ी शीशी ४।।) चार रुपये आठ आने डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर कर रंग में मिला देती है। मूल्य प्रति शीशी ३।।) साढ़े तीन रुपये, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपबिलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

बापू का अनमोल स्मारक

जय गान्धी

इसे प्रत्येक परिवार, और प्रत्येक घर में पहुँचना चाहिए

क्यों ?

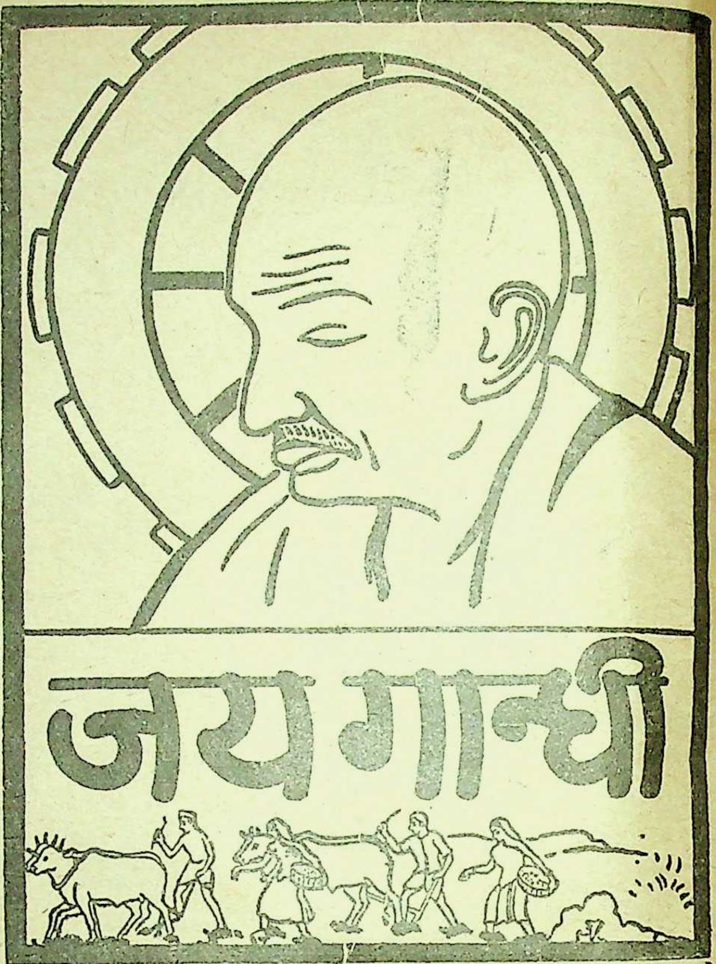

नैनी जेल में बंद सन् १९४२ के राष्ट्रीय सैनिकों को श्री सोहनलाल द्विवेदी की युगावतार कविता ने कितना बल प्रदान किया था, यह तो वे ही लोग जानते हैं जो वहाँ मौजूद थे। आज के अनेक मंत्री, मुख्य मंत्री भी, उस समय कारा-जीवन व्यतीत कर रहे थे। बापू ने प्राणों की बाजी लगा दी थी। आश्वासन का आधार मिलना आवश्यक था, क्योंकि हम मानसिक और नैतिक रूप से रह रहे थे। प्रोफेसर राधेश्याम ने उसी समय गाया था—चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग, उसी ओर। इस गीत से हममें कितनी दृढ़ता, कितनी शक्ति, कितना आत्मविश्वास आ गया था, कि हम सभी ने शर्माजी के स्वर में स्वर मिलाकर नैनी जेल को गुँजा दिया था।

श्री सोहनलाल द्विवेदी की अनेक कविताएँ हमें प्रोत्साहित करती रही हैं, कठिनाइयों एवं अत्याचार से डटकर मुकाबला करने के लिए शक्ति और प्रेरणा देती रही हैं, **आज भी वे गीत हमें गर्व से सिर उठाने योग्य बनाते हैं, द्विवेदीजी की ये राष्ट्रीय रचनाएँ राष्ट्रीय निधि के रूप में सुरक्षित रहें यह आवश्यक है।**

जय गांधी उन्हीं युगान्तरकारी गीतों का नयनाभिराम प्रकाशन है। ज्वलंत राष्ट्रीयता और चुनौतीपूर्ण देशभक्ति के कारण इन गीतों को राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्घोष और जयगान बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जय गांधी की कविताओं की विशेषता यह है कि इसमें इस प्रकार की कविताओं का बाहुल्य है, जिससे पुण्यश्लोक महात्माजी का आलोक हममें जाग्रत रहे। इस दृष्टि से ये रचनाएँ उस देश के नरनारियों के लिए बहुत मूल्यवान् हैं, जो बापू को भूल नहीं पाते। ये रचनाएँ गांधीजी के पुण्यपथ पर चलने की प्रेरणा देती रहेंगी इसमें सन्देह नहीं।

जय गांधी—सत्यमेव अत्यधिक सुरुचिपूर्ण संस्करण है। इसे प्रत्येक परिवार में, प्रत्येक घर में पहुँचना चाहिए।

—अमृतबाजार पत्रिका

मूल्य केवल १५) रुपये

प्राप्तिस्थान—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद

आवश्यकता

(१) हिन्दी-संस्कृत, (२) आयुर्वेद में टीका टिप्पण, अनुवाद, मौलिक आलोचना आदि के लिये दो लेखकों की। घर बैठे स्थायी काम। वेतन क्रम १५०–१०–२५०) मासिक। आवेदन हिन्दी-संस्कृत दोनों में भेजें।

डायरैक्टर—

श्री कुशल पुस्तक भवन नाभा (पंजाब)

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८७

कर्मयोग ..	१·४०	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान ..	१·६२	शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५	मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग ..	१·१२	चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा ..	०·६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·५०	ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत ..	०·५०	मन की शक्तियाँ	०·४०

विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५
शक्तिदायी विचार (,,) ..	०·६२
मेरी समर नीति (,,) ..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००

श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।......'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष विश्वविद्यालय प्रयाग—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।......'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

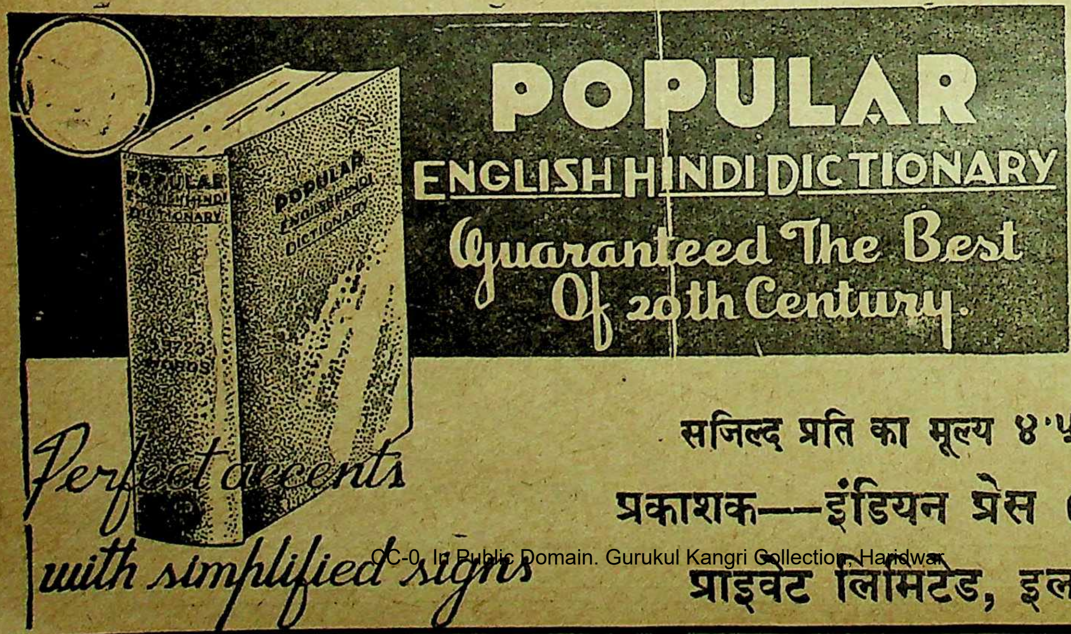
POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs

पापुलर
इंग्लिश-
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

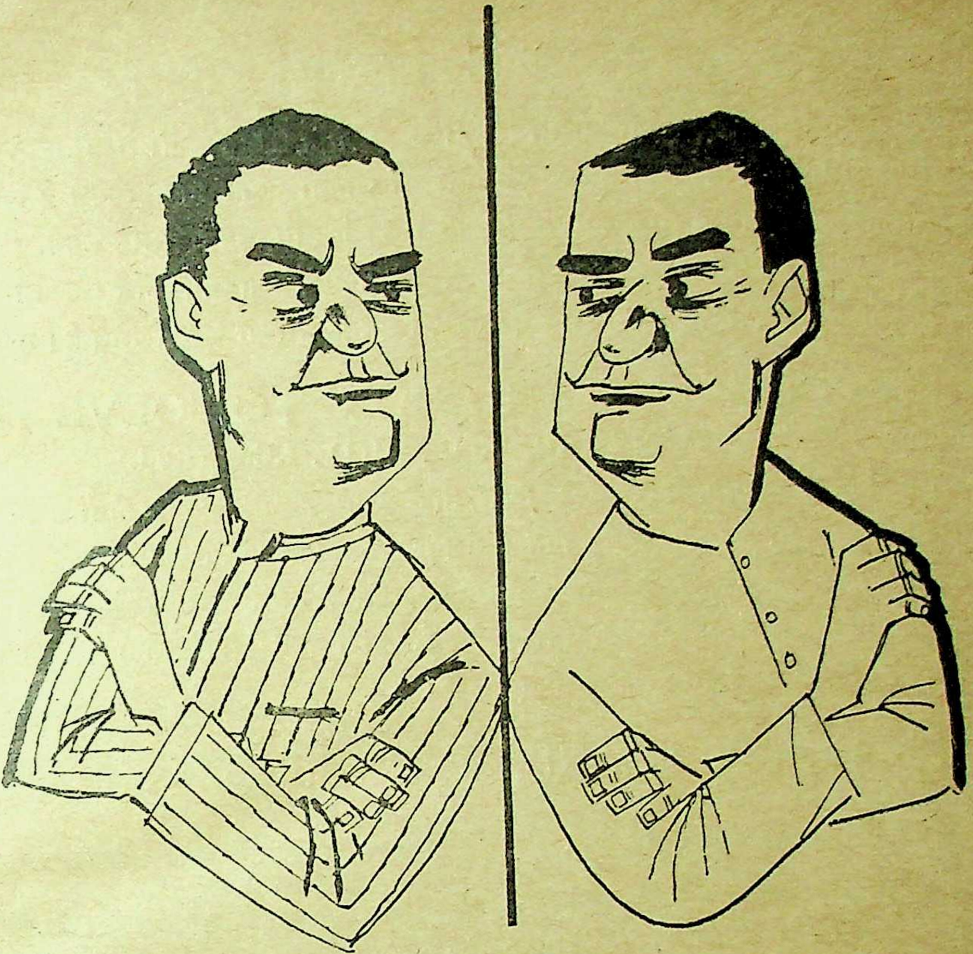

तुलना न कीजिए !

बहुत से लोग यह पसन्द नहीं करते कि उनकी पड़ोसियों से तुलना की जाए । यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है ।

मेट्रिक प्रणाली से ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त करने के लिए मेट्रिक बाटों का उपयोग ज्यों का त्यों किया जाना चाहिये ।

मेट्रिक तौलों का जोड़-तोड़ करके मन-सेर का हिसाब न लगाइये ।

इससे आपका समय बेकार नष्ट होगा और लेन-देन में अवसर नुकसान रहेगा ।

सही और सुविधाजनक लेन देन के लिए पूर्ण अंकों में

मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

डी.ए. ६२/ ५४६

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है। विशेषत: उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०,

---

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.) **अँगरेजी में**

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

"सोना दो, लोहा लेंगे"

आज हमारे लिए लोहा सोने से भी कीमती है

इसलिए कि

भारतीय जवान सरहद पर लोहा ले रहा है
उसे लोहे की कमी न पड़ने पाये

नहीं तो

मुल्क का सारा सोना खतरे में पड़ जायगा
बाहर से लोहा मँगाने के लिए सोना चाहिए

आइये

गहने देकर हथियार जुटाएँ
रक्षा कोष को और बढ़ाएँ

विज्ञापन सं० ९—सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश,
द्वारा प्रसारित

"....प्राण जाहिं पर बचन न जाई"

भारतमाता के ४४ करोड़ पुत्र-पुत्रियों
का दृढ़ संकल्प

है कि

खून की आखिरी बूँद तक मां की रक्षा करेंगे

कैसे ?

खेतों-कारखानों में उत्पादन बढ़ाकर

तथा

अधिकाधिक धन बचाकर

क्योंकि

"आज हमारी पहली जरूरत खतरे का मुकाबला करना और चीनी हमलावरों को देश से निकाल भगाना है, दूसरे काम इसके बाद हैं।"

—जवाहरलाल नेहरू

घरेलू जेबी मुद्रण यंत्र

नाम, पते, चिट्ठियाँ, लेबल (नामपत्र) आदि इस यंत्र से उत्तमता से घर पर मुद्रित की जा सकती हैं। मूल्य नं. १, २ रु० ८ आ०, नं. २, ३ रु० ८ आ०, उत्कृष्ट, ५ रु० ४ आ०, सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्तम, ७ रु० ८ आ०; डाकव्यय और पैकिंग १ रु० १२ आ०।

सिगरेट लाइटर :—धूम्रपान करनेवालों के लिए अत्यंत उपयोगी और आवश्यक। दियासलाइयों के भारी खर्च की बचत करता है। स्टोन (पत्थर) के साथ मूल्य नं. १, ३ रु०, नं. २, ४ रु०, उत्कृष्ट ६ रु० १२ आ०, सर्वोत्कृष्ट, ८ रु० १२ आ०; डाक व्यय और पैकिंग, १ रु० ८ आ०।

अमेरिकन स्टोर (एस०) २६५-१२-१-सी०
गोपाल लाल ठाकुर रोड कलकत्ता-३६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

सरस्वती में

विज्ञापन

देकर लाभ उठाइए

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ॥) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट
लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय १७
२—स्वामी विवेकानन्द के शिकागो के धर्म संसद के भाषण २५
३—भारती-कण्ठाभरण (२)—पण्डित व्रजमोहन व्यास ३४
४—स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन —डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या .. ३५
५—तेजपुंज विवेकानन्द—श्री व्रजमोहन तिवारी ४३
६—एक आत्मविज्ञप्ति (कविता)—श्री विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश' ४७
७—युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द—श्री मार्कण्डेय सिंह ४८
८—संन्यासी का गीत (कविता)—अनु० श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ५१
९—समुद्रगुप्त का वास्तविक उत्तराधिकारी—रामगुप्त—श्री सत्यव्रत 'तृषित' .. ५३
१०—दावा (कविता)—प्रो० शिवाधार पाण्डेय ५६
११—इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (३)—पंडित व्रजमोहन व्यास ५७
१२—आँख की साख—डा० श्यामसुन्दर व्यास ६४
१३—राष्ट्र के सूत्रधार—लोकमान्य तिलक—श्री जी० एस० पथिक .. ६५
१४—आज मेरे द्वार? (कविता)—श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी ७३
१५—असम का परिचय (१) ७४
१६—आँगनों के बीच—एक दिन की बात—शीला शर्मा ८२
घर-गृहस्थी—मोटे अनाज और व्यंजन ८४
१७—खिड़की खुली है!—मूल ले० एच० एच० गनरो 'साकी' अनु० प्रो० आनन्द नारायण शर्मा ८५
१८—एक तस्वीर: दो रूप—श्री रवीन्द्रमोहन एम० ए० .. .. ८७
१९—'रामचरित-मानस' का 'काशिराज-संस्करण'—श्री किशोरीदास वाजपेयी ८९
२०—नवीन प्रकाशन ९३
२१—मनोरंजक संस्मरण ९६

वीर जवानों के लिए बचाओ।
राष्ट्रीय रक्षा पत्रों में धन लगाओ।

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। **मूल्य—एक रुपया आठ आना।**

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम २६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स' २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
पूर्ण संख्या ७५७
इलाहाबाद : जनवरी १९६३ : पौष २०१९ वि०
खण्ड १
संख्या १

सम्पादकीय

राष्ट्रीय दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता——राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने अभी हाल में कहा है कि उत्तर-पूर्वी सीमान्त में हमारी जो पराजय हुई है वह हमारे लिए खेद, लज्जा और अपमान की बात है। हमारे हृदयों की भावना और वेदना राष्ट्रपति की वाणी में मुखर हो उठी है। इस लज्जा और अपमान ने इस सद्यः स्वतन्त्रता-प्राप्त प्राचीन गौरवशाली देश की आत्मा को इतना झकझोर दिया है कि हम आत्म-चिन्तन के लिए विवश हो गये हैं। प्रधान मंत्री ने भी चीनी आक्रमण के बाद कहा था कि भारत अभी तक अपने ही बनाये कल्पित लोक में पड़ा हुआ था। इस आक्रमण ने हमें वास्तविकता का साक्षात्कार करा दिया है। वह कल्पित जगत् कौन-सा है? हम सैनिक दृष्टि से क्यों इतने निर्बल हो गये? हमारे राष्ट्रीय जीवन में ऐसा कौन-सा सिद्धान्त या आदर्श आ गया है जो हमें सैनिक दृष्टि से बलवान् होने से रोकता है? हमारे सिपाही वीर हैं। हमारे पास धन-जन की कमी नहीं है। हमारे यहाँ प्रतिभाशाली और तीव्र बुद्धि के व्यक्तियों की भी प्रचुरता है। इन सबके बावजूद हम युगों से अपनी सैनिक शक्ति ऐसी न कर सके कि जिसके कारण आक्रमण करने की इच्छा करनेवालों का हम पर आक्रमण करने का साहस न होता। यह एक ऐसा मौलिक प्रश्न है जिस पर आज निर्मम तटस्थता से विचार करने की बड़ी आवश्यकता है।

एक बात जो सहसा हमारे सामने आ जाती है वह यह है कि हम युद्ध को बर्बरता का चिह्न समझते रहे हैं। शायद यह ठीक भी है, किंतु सारा संसार उस बर्बरता से आक्रान्त है। हम अपने को इतना सभ्य और सुसंस्कृत समझने लगे कि हमने युद्ध को बर्बर समझकर वास्तविकता से आँख मूँद ली। हम सात्विक, विचारशील और स्वप्नदर्शी लोगों के चरम आदर्श शान्ति के पुजारी ही नहीं, उसके श्रीमहन्त बन बैठे। हम प्रत्येक संभव और असंभव अवसर पर 'शान्ति'-पाठ करते हैं। "द्यौः शान्तिः, पृथ्वी शान्तिः आपः शान्तिः" इस शान्ति के अतिरेक को इसकी बहिन 'अहिंसा' ने अपूर्व बल और सहारा दिया। वैष्णव, जैन, बौद्ध——प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण धर्म जो भारत में उत्पन्न हुए——अहिंसा के मामले में प्रायः एक-मत मालूम होते हैं। बौद्ध-अहिंसा भारत के बाहर जाकर वहाँके वातावरण में अपंगु और निर्बल हो गयी, किंतु भारत के शान्तिमय वातावरण में वह हास्यास्पद और भयंकर सीमा तक पहुँच गयी। व्यक्तिगत जीवन

में अहिंसा एक सीमा तक बड़ी वांछनीय है। आध्यात्मिक जीवन के लिए तो वह परमावश्यक है। किंतु हमने उसे राष्ट्रीय जीवन का आदर्श और अंग बना डाला, और यह न सोचा कि अपनी भौतिक उन्नति के बावजूद संसार अभी तक अपनी पशुता पर विजय नहीं पा सका है। हमने इस बात का विचार नहीं किया कि जब संसार के सारे राष्ट्र पशुबल में विश्वास करते हैं, तब केवल एक देश के अहिंसा के ऊँचे आध्यात्मिक सिद्धान्त पर चलने से उसकी क्या दशा होगी। व्यक्तिगत जीवन में भी हम अहिंसा को नहीं उतार सके। अहिंसा का अर्थ केवल 'रक्त न बहाना' ही नहीं है, आध्यात्मिक दृष्टि से उसका अर्थ 'दूसरों से घृणा न करना' और अपने विरोधियों से भी बंधुत्व का भाव बनाये रखना है। हम सभी जानते हैं कि हम इसमें कितने विफल रहे हैं। किंतु जिस आदर्श सिद्धान्त को व्यक्तिगत जीवन में भी नहीं उतारा जा सका, उसे हमारे देश ने राष्ट्रीय जीवन में लागू करने का मन्तव्य किया। यह दशा आज से नहीं, युगों से चली आ रही है।

यह कहा जा सकता है कि रामायण और महाभारत काल में हमारी सैनिक शक्ति का जो वर्णन है, वह कोरी कविकल्पना है। रघु की दिग्विजय को भी लोग उसी प्रकार मनगढ़न्त कहकर टाल सकते हैं। किंतु जब इस देश के प्रामाणिक इतिहास का पर्दा उठता है तब हम देखते हैं कि उस समय की संसार की सबसे बड़ी सैनिक शक्ति से हमारी टक्कर हुई। संसार-विजेता सिकन्दर महान् की विजयवाहिनी के दाँत एक मांडलिक राजा पुरु ने ऐसे खट्टे कर दिये कि उसका आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। उसके बाद उसीके एक विजयी सेनापति सेल्यूकस को चन्द्रगुप्त ने ऐसी करारी हार दी कि उसने अपनी पराजय की स्वीकारोक्ति अपनी राजकुमारी का उससे विवाह करके की। यह निर्विवाद है कि उस समय ग्रीक सेना संसार की सर्वश्रेष्ठ सेना थी। उसने सारे पश्चिमी एशिया को ही नहीं, ईरान की महान् और शक्तिशाली सेना को भी हराया था। और उस समय हमारी सैनिक शक्ति इतनी प्रबल थी कि हमने उससे बराबर की टक्कर ही नहीं ली, उसे परास्त भी कर दिखाया।

चन्द्रगुप्त मौर्य की वही प्रथम श्रेणी की सेना अशोक को उत्तराधिकार में मिली। उसकी मुठभेड़ कलिंग की शक्तिशाली सेना से हुई। वहाँ भी उसकी विजय हुई। इस प्रकार उस सेना की रणकुशलता फिर प्रमाणित हुई। किन्तु अन्त में अशोक "अहिंसा" के "मुरीद" हो गये। उन्होंने अहिंसा के धर्मचक्र-प्रवर्तन करनेवाले चक्र को अपने स्तम्भ-शिखर पर स्थान दिया। वे "देवानांप्रिय" बन गये। धर्म की विजय करने लगे। उस विजय के लिए योद्धाओं की जगह भिक्खुओं की सेना की आवश्यकता थी। मौर्यों की अनुपम सैनिक शक्ति को अहिंसा-जनित उपेक्षा के कारण जंग लग गयी। तत्कालीन राष्ट्र-नायकों का ध्यान लौकिक वास्तविकता से हटकर एक कल्पित आदर्श में लग गया। अहिंसा की अंधभक्ति ने हमारी सैनिक शक्ति का ह्रास कर दिया।

तब से किसी न किसी रूप में अहिंसा हमारे चेतन और अवचेतन में गहरी पैठ गयी है। बीच-बीच में कई बार इसकी प्रतिक्रिया हुई। शकारि विक्रमादित्य ने अहिंसा को ताख पर रखकर शकों से देश की रक्षा की। मंदसौर का कीर्तिस्तंभ आज भी विदेशियों पर यशोधर्मन की विजय का साक्षी है। गुप्त सम्राटों ने भी अहिंसा को तिलांजलि देकर अपनी सैनिक शक्ति बढ़ायी। वे वैष्णव थे जिनका विश्वास अहिंसा में स्वाभाविक है, किंतु उन्होंने "हरे मुरारे मधुकैटभारे" कहकर भगवान् विष्णु के आततायी-नाशक और अत्याचारी-संहारक रूप की आराधना करके अपनी वैष्णवी-हिंसा को उचित ठहराया, और सैनिक बल को राष्ट्रीय जीवन में पुनःप्रतिष्ठित किया। किंतु देश में हर्ष के युग से अहिंसा का फिर बोलबाला हुआ। और मुसलमानों के आगमन के समय तक तो सारे देश में, विशेषकर मध्य और पूर्वी भारत में, अहिंसा का ऐसा जोर हो गया था कि राजाओं ने सेना तक रखना छोड़ दिया था। कहते हैं कि बख्तियार खिलजी केवल मुट्ठी भर सवारों को लेकर बंगाल तक नरसंहार करता चला गया। उसने नालंदा का विश्वविद्यालय ध्वस्त करके जला दिया। अहिंसा की बलिवेदी पर राष्ट्र ने अपनी शक्ति का बलिदान करके, स्वयं अपने को दूसरों की हिंसा का सहज शिकार बना डाला।

लम्बी पराधीनता ने, और हमारी असहाय अवस्था ने, हमें अपने शक्तिशाली अँगरेज प्रभुओं से लड़ने के लिए, "अहिंसा" का अस्त्र ग्रहण करने को विवश किया। किंतु जिस सिद्धान्त को हमने पराधीनता की असहायावस्था में स्वीकार किया था, उसका राग हम स्वतंत्र होने के बाद की उस परिवर्तित स्थिति में भी अलापते रहे जब हमें शक्ति संचय की, और राष्ट्र के तेज, बल और शक्ति बढ़ाने की बड़ी आवश्यकता थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद "अहिंसा" में हमारा विश्वास इतना दृढ़ हो गया था कि हमने अपने राष्ट्रीय ध्वज पर उस अशोक के धर्मचक्र को रखकर अपने को गौरवशाली समझा जिसने उत्तराधिकार में पायी हुई तत्कालीन संसार की सर्वोत्तम सेना को अपनी उपेक्षा से पंगु और निकम्मा कर दिया था। आज भी, जब हम चीन से लड़ रहे हैं, हमारे कितने ही नेता बीच-बीच में अहिंसा का बेसुरा राग अलापने और शांति सेना बनाने की बात करने लगते हैं।

यदि हम कल्पनालोक में अब और अधिक विचरण नहीं करना चाहते, यदि हम देश को सचमुच ऐसा शक्तिशाली बनाना चाहते हैं कि विस्तार और लूट की कामना करनेवाले दुराचारी हमारी ओर आँख उठाने का साहस न करें, तो हमें अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता पर गंभीरता से विचार करना पड़ेगा। आध्यात्मिक जगत् में अहिंसा रहे। वह उसका

उचित स्थान है। किंतु सोचने की बात है कि क्या उस क्षेत्र में, जिसमें राष्ट्र के जीवित रहने की शक्ति उत्पन्न होती है, अहिंसा का घुसना उसका अनधिकार प्रवेश नहीं है? हमने इस बात पर कभी विचार नहीं किया कि युद्ध की भावना जीवित रखने से राष्ट्र को कुछ लाभ भी होता है। हम सृजनात्मक बातों की चर्चा करते समय यह भूल जाते हैं कि इतिहास में राष्ट्रों ने युद्धकाल ही में सबसे अधिक भौतिक विकास और सृजन भी किया। पेरिक्लीज़ के समय का ग्रीस अपने इतिहास में सबसे अधिक युद्धशील और युद्धरत रहा। किंतु उसी समय वह सबसे अधिक सृजनशील भी था। गुप्तकाल युद्धों का युग था, किंतु वह हमारी कला और साहित्य का ऐसा सृजनशील युग था कि वह 'स्वर्णयुग' कहलाता है। नैपोलियन के समय के फ्रांस, एलिज़ाबेथ के समय के इँगलैंड, अकबर के समय के भारत, शाह अब्बास के समय के ईरान, या इतिहास के अन्य उदाहरण ले लीजिए। स्पष्ट दीख पड़ता है कि जब कोई राष्ट्र युद्धशील रहा, तब वह सृजनशील भी रहा। दूर क्यों जायें, हमारे ही समय में युद्धशील योरप और अमरीका ने आश्चर्यजनक सृजनशीलता और भौतिक उन्नति कर दिखायी है, और जीवन के उच्च आदर्शों में भी वे पीछे नहीं हैं। अतएव हमें इस आपत-काल में विशेष रूप से गंभीरतापूर्वक सोचना होगा कि क्या हम शक्ति और स्वतंत्रता को कमज़ोर करनेवाली अहिंसा को वरीयता दें। हम चंद्रगुप्त मौर्य को आदर्श मानें या अशोक को? हम धर्म-निरपेक्ष रहते हुए एक धर्म-राज्य चलानेवाले राजा अशोक के धर्म-चक्र को अपना मार्ग-दर्शक मानें या एक दार्शनिक, तत्त्वज्ञानी और राजनीतिज्ञ के सुदर्शन-चक्र को? क्या इस पशुबल-प्रधान संसार में हम अहिंसा का पाठ पढ़कर अपनी स्वतंत्रता बनाये रख सकते हैं? क्या 'अहिंसा' सैनिक उपायों का अवलम्बन करने में सदैव सशय उत्पन्न नहीं करती? क्या संशय उत्पन्न होने पर राष्ट्र के सैनिक-प्रयत्न, सैनिक मनोबल और विजय का संकल्प कमजोर नहीं हो जाते? हमें यह महान् वाक्य न भूल जाना चाहिए कि 'संशयात्मा विनश्यति।'

हम जानते हैं कि इस देश में अहिंसा के प्रति कोमल भावना इतनी गहरी पैठी हुई है कि उसके विरुद्ध कुछ भी कहना, अपने लिए मुसीबत मोल लेना है। किंतु फिर भी हम अपने पाठकों के सामने अपने विचार इस आशा के साथ रखते हैं कि हमसे असहमत होते हुए भी कृपाकर के उन पर निर्लिप्त और तटस्थ भाव से गंभीरतापूर्वक विचार करें, क्योंकि हमारी दृष्टि में हम इस समय अपने राष्ट्रीय जीवन के ऐसे मोड़ पर आ गये हैं जहाँ हम इस गंभीर प्रश्न की ओर से आँख नहीं मूँद सकते।

दीवानी बनाम फौजदारी——सामाजिक जीवन में जब नागरिकों में मतभेद हो जाता है तो वे दो तरह से निबटारा कर सकते हैं; दीवानी मुकदमा करके या फौजदारी करके। भले आदमी दीवानी में जाते हैं और वहाँ निष्पक्ष अदालत के सामने प्रमाण देकर अपने पक्ष की सच्चाई प्रमाणित करते हैं। जब अपना मामला कमजोर होता है तब भले आदमी तो चुप होकर बैठ जाते हैं, किंतु गंडे या उद्दण्ड लोग फौजदारी पर उतर आते हैं। जिस वस्तु को वे न्याय से नहीं पा सकते उसे लाठी के जोर से लेने का प्रयत्न करते हैं। भारत और चीन में यही अंतर है। भारत राष्ट्रसंघ का सम्मानित नागरिक है। उसने अंतर्राष्ट्रीय मतभेदों को आपसी समझौते या पंचायत से तै करने का संकल्प कर रखा है। उसके पास अपने पक्ष के समर्थन में लिखित प्रमाण हैं, नक्शे हैं, लिखित स्वीकारोक्तियाँ हैं, संधिपत्र हैं, पुरानी पुस्तकों के हवाले हैं। उसका पक्ष इतना न्यायसंगत है कि उसे विश्वास है कि कोई भी पक्षपातहीन व्यक्ति या संस्था उसीके पक्ष में निर्णय करेगी। वह सज्जन और 'शरीफ' होने के कारण फौजदारी को अनुचित समझता है। इसके विपरीत चीन है। राष्ट्रसंघ ने अंतर्राष्ट्रीय नियमों और आदेशों के विरुद्ध काम करने के कारण अभी तक उसे इस योग्य नहीं समझा कि उसे अपना सदस्य बना ले। वह राष्ट्रों की 'बिरादरी' से बहिष्कृत है। वह युद्ध के द्वारा अपनी बात मनवाने में विश्वास करता है। हमारे प्रधान मंत्री ने तो यहाँ तक कह दिया है कि हम उपयुक्त स्थिति उत्पन्न होने पर इस विवाद को निर्णय करने के लिए हेग की अन्तर्राष्ट्रीय अदालत में देने को तयार हैं। किंतु चीन इस पर मौन है। उसका पक्ष इतना कमजोर है कि वह न्यायालय में जाने का साहस नहीं कर सकता। वह अंतर्राष्ट्रीय फौजदारी अर्थात् युद्ध के द्वारा भारत का भूभाग हड़पना चाहता है। कहा जाता है कि कानून में कब्जा सबसे बड़ा तर्क है। वह दस निर्कों में से नौ तर्कों के बराबर है। चीन ने फौजदारी करके लद्दाख के अधिकांश भाग पर कब्जा कर लिया है। इस अंतर्राष्ट्रीय फौजदारी या गुंडागर्दी का क्या उपाय है? समाज में गुंडों से बचने के लिए एक ही उपाय है; वह यह कि उनको ठीक कर दिया जाय। जिस प्रकार समाज में गुंडे होते हैं, उसी प्रकार वे अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी होते हैं। उन पर भी वही उपाय सफल होता है। समाज में तो पुलिस और अदालत की भी सहायता ली जा सकती है, किंतु अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने ही बाहुबल का एकमात्र भरोसा रहता है। हमारी सरकार अभी तक दीवानी मुकद्दमा लड़ना चाहती थी। वह उसीकी तयारी कर रही थी। किंतु चीन ने फौजदारी का मार्ग अपनाया है। अतएव अब हमारे लिए सिवाय इसके कि हम अपनी शक्ति बढ़ाकर उससे एक बार निबट लें, और कोई मार्ग नहीं है। जिस प्रकार गुंडों के सामने झुक जाना कायरता, अनैतिकता और बुद्धिहीनता है, उसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय जगत् के गुंडों से भी दब जाना अनुचित है। वे केवल शक्ति और बाहुबल की भाषा समझते हैं। यदि हम सम्मान के साथ जीवित रहना और अपने देश की अखंडता बनाये रखना चाहते हैं तो हम देश की शक्ति बढ़ाने में प्राणपण से लग जाना

चाहिए। इस युग में केवल वर्दीधारी ही सैनिक नहीं हैं। आज के समग्र युद्ध में प्रत्येक नागरिक सिपाही है। सेना का मूलाधार अनुशासन है। अतएव देश में अनुशासन की आज बड़ी आवश्यकता है। देश को अनुशासित सेना के रूप में राष्ट्र की शक्ति बढ़ाने में लग जाना चाहिए, और हमें कठोर परिश्रम, व्यक्तिगत त्याग तथा सहयोग के द्वारा राष्ट्र को इतना शक्तिशाली बना देना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय डाकुओं को हम पर आक्रमण करने का साहस न हो। हमें इस वास्तविकता को समझ लेना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अभी भी फौजदारी-उपाय आवश्यक हैं। अभी केवल दीवानी उपायों से काम नहीं चल सकता।

मिग लड़ाकू वायुयान—दो वर्ष हुए, अमरीका ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता के रूप में अत्यंत वेगगामी और आधुनिक ध्वनिवेधी लड़ाकू वायुयानों के दो स्क्वाड्रन दिये थे। एक स्क्वाड्रन (दस्ते) में १२ वायुयान होते हैं। उनसे प्रक्षेप्य (रॉकेट) भी चलाये जा सकते हैं। अपनी तीव्र गति, मारक शक्ति और प्रक्षेपों से लैस होने के कारण ये लड़ाकू वायुयान अत्यंत शक्तिशाली हैं। पाकिस्तान और भारत में जो मनोमालिन्य है उसके कारण पाकिस्तान के पास इन आधुनिकतम वायुयानों के आ जाने से भारत की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया। इसलिए भारत ने भी उतने ही शक्तिशाली लड़ाकू वायुयानों को लेने का निश्चय किया। ऐसे लड़ाकू वायुयान अमरीका, इँगलैण्ड, फ्रांस और रूस के पास हैं। ऐसे प्रत्येक अमरीकन लड़ाकू वायुयान का मूल्य ८० लाख रुपया है। इँगलैण्ड और फ्रांस के लड़ाकू वायुयान भी बहुत महँगे हैं, और उनके मिलने में भी समय लगता क्योंकि वे तयार नहीं थे। रूस के लड़ाकू वायुयान (जिनका संक्षिप्त नाम मिग है) उपलब्ध थे, और उनका मूल्य ३० लाख रुपये था। अमरीका अपने वायुयान देने को तयार था किंतु वह हमें बहुत महँगे पड़ते थे। इसलिए हमने रूस से इन वायुयानों का एक स्क्वाड्रन लेने का निश्चय किया। चीन के पास भी ये लड़ाकू वायुयान हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि उसके पास १८०० मिग हैं। पाकिस्तान के पास २४ अमरीकन वायुयान हैं। हमारे पास इतना रुपया नहीं कि हम इन्हें खरीदते चले जायें। इसलिए हमने रूस से यह समझौता किया कि वह हमें १२ मिग दे, और उन्हें भारत में बनाने का कारखाना खोलने में सहायता दे।

इस निर्णय की बातचीत में प्रायः एक वर्ष लग गया। इस बीच चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। चीन कम्यूनिस्ट देश है। रूस भी कम्यूनिस्ट है। रूस और भारत में मित्रता है, किंतु चीन से कम्यूनिस्ट होने के कारण उसका भाईचारा है। इससे यह शंका होने लगी कि इस युद्ध-काल में रूस भारत को मिग लड़ाकू वायुयान देगा भी या नहीं। रूस ने भी चुप्पी साध ली और उन्हें देने में देर करने लगा। इसी बीच चीन ने युद्ध बंद कर दिया। अब रूस ने उन्हें देने की घोषणा कर दी है। किंतु ये १२ मिग भी भार को एक साथ न मिलेंगे। वे प्रायः दो वर्षों में धीरे-धी प्राप्त होंगे। एक या दो मिग शायद जनवरी ही में जायें। मिग बनाने का कारखाना खुलने में तीन-चा वर्ष लग जायँगे।

मोटरों की तरह वायुयानों में भी प्रतिवर्ष कुछ कुछ सुधार और उन्नति होती रहती है। चीन के पास 'मिग' हैं, वे कई वर्ष पहिले के बने हैं। जो 'मिग' हमें मि रहे हैं वे उनसे अधिक उन्नत और शक्तिशाली हैं। ह चार-पाँच वर्ष बाद इन 'मिगों' को बनाने लग जायँगे, किंतु बहुत सम्भव है कि तब तक रूस, अमरीका, इँगलैण्ड और फ्रांस इनसे और अधिक उन्नत और शक्तिशाली लड़ाकू वायुयान बनाने लगें।

रूस से हमें जो 'मिग' मिल रहे हैं उनका चलाना सीखने के लिए भारतीय वायुसेना के चालक रूस भेजे गये हैं, किंतु इन ध्वनिवेधी वायुयानों को काम में लाने के लिए हवाई अड्डों पर रडार आदि का बड़ा जटिल प्रबंध करना पड़ता है। उस प्रबंध के हो जाने के बाद ही हम इन 'मिग' लड़ाकू वायुयानों का ठीक-ठीक उपयो कर सकेंगे।

अतएव तत्कालीन सैनिक आवश्यकता की दृष्टि से इन १२ 'मिग' लड़ाकू वायुयानों का बहुत महत्त्व नहीं है। चीन ने इस आक्रमण में अपनी वायुसेना का बिल्कुल ही उपयोगी नहीं किया। विशेषज्ञों का मत है कि इसका मुख्य कारण चीन में पैट्रोल की कमी, और उस कम पैट्रोल को भी तिब्बत तक लाने की कठिनाई है। वहाँ वे इतना पैट्रोल का भंडार नहीं बना सके हैं कि वायु-युद्ध में जितने पैट्रोल की आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति कर सकें। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि उत्तर पूर्वी सीमान्त और लदाख का युद्ध-क्षेत्र इतना सीमित है तथा वहाँकी भूमि इतनी ऊबड़-खाबड़ है कि वायुयानों के उपयोग की अधिक गुंजाइश ही नहीं थी। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि चीन के कूटनीतिज्ञों ने संसार से अपने आक्रमण की भीषणता को छिपाने के लिए, और इस युद्ध के महत्त्व को कम करके बतलाने के लिए, वायुयानों का उपयोग नहीं किया। ज भी कारण हो, अभी तक हमें चीन से युद्ध करने के लि वायुसेना की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसलिए इन थो से 'मिगों' के मिलने या न मिलने से हमारे युद्ध-प्रया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। और अभी कई वर्ष तक हमा पास इतने 'मिग' होंगे भी नहीं कि हम उनका प्रभावशाल उपयोग कर सकें।

किंतु राजनीतिक दृष्टि से इन 'मिगों' का बड़ा मह है। रूस का हमें 'मिग' देने का अंतिम निर्णय हमारी तट नीति की सफलता का प्रमाण है। उससे स्पष्ट हो जाता कि चीन से भाईचारा होने पर भी रूस हमें अपना मि समझता है, और चीन से युद्ध करते समय भी वह ह प्रतीक रूप में इन्हें दे रहा है। इससे यह भी स्पष्ट

जाता है कि चीन के कम्यूनिस्ट होते हुए भी उसे चीन का इतना लिहाज नहीं है कि वह उसके विरोधी (भारत) से एकदम असहयोग कर दे। रूस के इस साहसपूर्ण काम का प्रभाव चीन के प्रभुओं पर अवश्य पड़ेगा। रूस नहीं चाहता कि भारत और चीन का युद्ध बढ़े। इसलिए इस युद्ध को बढ़ा कर रूस को अप्रसन्न करने का खतरा चीन नहीं ले सकता। चीन पैट्रोल के लिए रूस पर नितान्त निर्भर है। अतएव भारत के प्रति रूस की मैत्री का रुख चीन को भारत से विवाद बढ़ाने में रोक लगा सकता है। इसके साथ ही, यदि भारत पर रूस का प्रभाव बना रहे, या बढ़ता रहे, तो चीन रूस के द्वारा भारत पर दबाव डालकर उससे अपनी कुछ बातें मनवा भी सकेगा। इसलिए चीन को भी इस बात से कोई आपत्ति न होगी कि रूस भारत को 'मिग' दे रहा है। अमरीका और इंगलैण्ड को भी रूसी मिगों के मिलने पर कोई आपत्ति न होनी चाहिए। वे भी तो भारत की सैनिक शक्ति बढ़ाने के इच्छुक हैं क्योंकि यदि भारत निर्बल रहा और उस पर चीन का अधिकार या प्रभाव हो गया तो उनके विरोधी कम्यूनिस्टों की शक्ति बढ़ जायगी। ये सब राजनीतिक अटकलें हैं। किंतु इतनी वास्तविकता तो प्रत्यक्ष है कि चीनी आक्रमण के पहिले चीन के 'भाई' रूस ने हमसे जो समझौता किया था उसे उसने इस आक्रमण के बावजूद पूरा किया। इसके राजनीतिक परिणामों पर अनुमान करने की काफी गुंजाइश है।

बाबू अन्नपूर्णानन्दजी का स्वर्गवास——हमें इस समाचार से बड़ा दुःख हुआ कि गत मास काशी के प्रसिद्ध लेखक बाबू अन्नपूर्णानन्दजी का स्वर्गवास हो गया। इधर कई वर्षों से बाबू अन्नपूर्णानन्दजी ने साहित्य से संन्यास ले लिया था और वे एकान्तवास किया करते थे। वे कुछ दिनों से अस्वस्थ थे और अपने बड़े भाई, राजस्थान के राज्यपाल, डा० सम्पूर्णानन्दजी के पास चले गये थे। वहाँ उनकी दशा बिगड़ गयी और वे वहाँके अस्पताल में भर्ती हो गये। उनकी चिकित्सा बड़े मनोयोग से की गयी, किंतु मृत्यु का कोई इलाज नहीं है। वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। वे तीन साहित्यिक भाइयों में मध्यमणि के समान थे। बड़े भाई दार्शनिक और गंभीर साहित्य में रुचि लेते हैं। दर्शन और साहित्य के प्रकाण्ड पंडित हैं। छोटे भाई श्री परिपूर्णानन्दजी आँकड़ों, तथ्यों, अपराध, समाज और आर्थिक जगत् की समस्याओं में उलझे रहते हैं। किंतु बाबू अन्नपूर्णानन्दजी पर काशी का चोखा रंग चढ़ा था। उन्होंने हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र में यश उपार्जन किया। हिंदी में काशी ही को हास्य और व्यंग्य के लेखक उत्पन्न करने का सबसे अधिक श्रेय है। आज भी बेढब, चोंच, बेधड़क, भैयाजी बनारसी आदि के जोड़ के लेखक अन्य स्थानों में न मिलेंगे। किंतु हास्य रस के लेखक के रूप में हास्य और व्यग्य को उस नगरी में भी बाबू अन्नपूर्णानन्द का स्थान विशिष्ट और ऊँचा था। उनकी हास्यरस की कहानियाँ सामयिक विषयों को लेकर नहीं चलतीं, किंतु उन विषयों को लेकर लिखी गयी हैं जिनमें पाठकों की रुचि सदैव बनी रहेगी। उन्होंने हास्यरस की कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला,' 'मंगलमोद,' 'महाकवि चच्चा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी कोई कोई कहानी तो उनके जीवन-काल ही में 'क्लासिक' हो गयी थी, जैसे 'अकबरी लोटा।' उनकी भाषा बड़ी प्रवाहशील, सरल और चुटीली होती थी। यद्यपि वे कवि होने का दावा नहीं करते थे, तथापि जब कभी छंद भी बना लेते थे। उनकी कहानियों में इन छंदों से विशेष निखार आ जाता था। जो लोग स्वयं कुछ नहीं हैं, किंतु अपने पूर्वपुरुषों की महत्ता का बखान करके अपने निरुद्यम और अयोग्यता पर पर्दा डालना चाहते हैं, उनपर इस छंद में उन्होंने कैसा चुटीला व्यंग्य किया है :

बीर रहे, रणधीर रहे, बलवान रहे, बहु संगर मारे,
पूरन पुण्य प्रताप रहे, सदग्रंथ रचे, बहु पंथ सँवारे।
धाक रही अवनीतल में, नर-पुंगव हे पुरुषारथ धारे——
बाप के बाप के बाप के बाप के बाप के बाप के बाप हमारे!

हमें उनके परिचय का सौभाग्य प्राप्त था। वे काशी के कर्ण स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी के निजी सचिव थे। गुप्तजी हम पर मित्र भाव रखते थे, और काशी में यदि हम कहीं अन्यत्र ठहरते तो जाकर हमें जबर्दस्ती पकड़ लाते थे। गुप्तजी के यहाँ श्री अन्नपूर्णानन्दजी से हमारा परिचय बढ़कर मित्रता के रूप में आ गया। वे बड़े ही हँसमुख और शालीन सज्जन थे। बहुत-से साहित्यिकों में कार्यकुशलता की कमी होती है। किंतु वे बड़े दक्ष और कुशल कार्यकर्त्ता थे। उनकी सुरुचि भी प्रशंसनीय थी। उनसे मिलकर काशी की संस्कृति और सुरुचि का अच्छा परिचय मिलता था। उनकी कहानियाँ और कृतियाँ भावी पीढ़ी के पाठकों का भी मनोरंजन करती और उन्हें आनन्द देती रहेंगी। हमें उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी विनम्र और हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

112878

शुक्र ग्रह का अन्वेषण——अमरीकनों ने पिछले अगस्त में 'द्वितीय मेरीनेर' नामक एक अंतरिक्ष यान शुक्र ग्रह की ओर उसकी वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने को भेजा था। यह अंतरिक्ष यान प्रायः साढ़े पाँच मन भारी है और इसके चलने की गति पंद्रह हजार मील प्रति घंटे है। ११० दिन की यात्रा में ३ करोड़ ६० लाख मील तय करने के बाद गत १४ दिसम्बर को वह शुक्र ग्रह से २१,५०० मील दूर होकर सूर्य की कक्षा की ओर चला गया। उसमें कितने ही जटिल और संचेत्य वैज्ञानिक यंत्र लगे हुए हैं। ये यंत्र इस उद्देश्य से तयार किये गये थे कि बीस हजार मील की दूरी से वे इस बात का पता लगावें कि शुक्र ग्रह में समुद्र ही समुद्र है, या धूल ही धूल है, क्योंकि बड़ी शक्तिशाली दूरबीनों से देखने से भी यहाँसे उस ग्रह पर इतना गहरा बादलों का आवरण दिखायी पड़ता है कि ग्रह का

वास्तविक रूप छिप जाता है। बादलों का यह आवरण भाप का भी हो सकता है, और धूल का भी। इसके अतिरिक्त उस यान म शुक्र ग्रह की चुम्बकीय शक्ति, ब्रह्मांड-किरणों की स्थिति, उसका तापमान आदि का पता लगाने के लिए भी यंत्र लगे हुए हैं। उसमें इतना शक्तिशाली रेडियो भी लगा है कि जो इन यंत्रों में अंकित फलों को पृथ्वी पर भेज सके। यह रेडियो तभी 'काम करता है जब उस यान को भेजनेवाले वैज्ञानिक उसे रेडियो तरंगों द्वारा खोल देते हैं। यह अद्भुत वैज्ञानिक चमत्कार है। इन अमरीकन वैज्ञानिकों ने पृथ्वी से शुक्र ग्रह की दूरी, यान की गति आदि का इतना ठीक अनुमान लगाया कि उनके हिसाब से जिस दिन द्वितीय मेरीनर को शुक्र ग्रह से २१ हजार मील दूर पहुँचना चाहिए था, वह उसी दिन वहाँ पहुँचा। उन्होने जब उसके रेडियो को यहाँसे खुलने का संकेत दिया, तब वह काम करने लगा। उसने जो महत्त्वपूर्ण जानकारी भेजी है उसका अध्ययन किया जा रहा है। इतना तो स्पष्ट हो गया है कि शुक्र ग्रह में चुम्बकीय शक्ति या तो है ही नहीं; और यदि है, तो बहुत क्षीण। उसका तापमान भी अनुमानित तापमान से बहुत कम है। अन्य निष्कर्ष उपलब्ध जानकारी का अध्ययन करने के बाद प्रकाशित किये जायेंगे। शुक्र ग्रह से आगे बढ़कर 'द्वितीय मेरीनर'.सूर्य की कक्षा में चला गया जहाँ वह अनन्त काल तक उसकी परिक्रमा करता रहेगा। अमरीका की यह अद्भुत वैज्ञानिक उपलब्धि है !

रोमन लिपि का मोह——लखनऊ में गत मास अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन हुआ था। यह सम्मेलन किसी समय विशुद्ध शिक्षा सम्मेलन था, किंतु अब यह राजनीतिज्ञ-शिक्षाशास्त्रियों का एक उत्सव हो गया है। शायद शिक्षकों में अब आत्मविश्वास नहीं रह गया। इसलिए उनमें 'मिनिस्टर-परस्ती' की प्रवृत्ति हो गयी है। संयोग से कोई 'मिनिस्टर' शिक्षाशास्त्री और शिक्षा-विशेषज्ञ भी हो सकता है, किंतु यदि शिक्षक यह समझने लगें कि 'मिनिस्टर' होते ही कोई भी राजनीतिज्ञ शिक्षा की समस्याओं पर व्यवस्था दे सकता है, और उन्हें (शिक्षकों को) उपदेश देने का अधिकारी हो जाता है तो इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जाय? इससे स्पष्ट है कि यह सम्मेलन राजनीति या राजनीतिक अधिकार-प्राप्त लोगों से कितना प्रभावित है! इसमें मुख्य मंत्रियों से लेकर उपमंत्रियों तक के दर्शन हुए। इस सम्मेलन में शिक्षकों ने अपने ज्ञान और अनुभव से स्वयं मार्गदर्शन करने की जगह सरकार से कई जाँच समितियों या आयोगों (कमीशनों) की नियुक्ति की प्रार्थना की। शायद वे स्वयं परीक्षा प्रणाली पर अंतिम मत या निर्णय देने में अपने को असमर्थ या अयोग्य समझते हैं। सरकार ही जब इस प्रश्न पर मत दे तभी वह इन्हें मान्य होगा। शायद इसीलिए उन्होंने सरकार से परीक्षा प्रणाली की जाँच के लिए एक समिति बनाने का अनुरोध किया। प्राथमिक शिक्षा से तो वे इतने अनभिज्ञ मालूम होते हैं कि उसके लिए तो सरकार से उन्होंने एक पूरे आयोग को नियुक्त करने का अनुरोध कर डाला। शिक्षा-विषयक प्रश्नों पर तो उनमें आत्म-विश्वास की इतनी कमी दीख पड़ी, किंतु लिपि के प्रश्न पर (जो अर्द्ध-राजनीतिक है) उन्होंने अपना निर्णय तुरन्त दे डाला। सम्मेलन ने इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया कि रोमन लिपि को सब भारतीय भाषाओं के लिए व्यवहार में लाया जाय! जहाँ फरिश्ते भी जाने से घबड़ाते हैं वहाँ एक विशेष प्रकार के लोग दौड़ पड़ते हैं। जो लोग अपने ही विषय से सम्बन्धित प्रश्नों का निर्णय करने में संकोच करते हैं, उन्हें ऐसे विषय पर मत देने का दुःसाहस न करना चाहिए जिसका संबंध साहित्यकारों, भाषाविज्ञानियों और लिपि-विशेषज्ञों से है। शिक्षकों का 'अखिल भारतीय' सम्मेलन यह भी भूल गया कि दिल्ली ने इस सम्बन्ध में क्या निर्णय किया है। मालूम पड़ता है कि यह सम्मेलन अब अंग्रजी-परस्त शिक्षक-राजनीतिज्ञों के हाथों में आ गया है, और इसके निर्णय वैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ न होकर राजनीतिक सुविधा को सामने रखकर किये जाते हैं। ऐसे शिक्षा सम्मेलन को 'भारतीय' न कहकर 'रोमन' या 'अंग्रेजी' सम्मेलन कहना अधिक उचित होगा।

ब्रह्मपुत्र का पुल——इस विशाल देश में ब्रह्मपुत्र ही एक ऐसी नदी थी जिस पर अभी तक पुल नहीं बना था। ब्रह्मपुत्र देश की सबसे विशाल नदी है, और उस पर पुल बनाना अत्यन्त व्ययसाध्य था। जब तक पाकिस्तान नहीं बना था तब तक देश से ब्रह्मपुत्र के उस पार के क्षेत्रों तक कलकत्ते से पूर्वी-बंगाल होकर रेल द्वारा यातायात होता था। इस प्रकार असम का सीधा सम्पर्क कलकत्ते से था। किन्तु पाकिस्तान बन जाने के बाद पूर्वी बंगाल की यह रेलवे लाइन पूर्वी पाकिस्तान में चली गयी, और कलकत्ते से असम का सम्पर्क टूट गया। ब्रह्मपुत्र जब दक्षिण की ओर मुड़ती है तब असम के बाएँ किनारे के क्षेत्र में जाने के लिए उसे पार करना पड़ता है। ब्रह्मपुत्र के इस (पश्चिमी) किनारे पर अमीनगाँव है जहाँ तक रेल गयी है। उसके सामने, नदी के उस पार, पांडू नामक नगर है। पांडू से फिर रेल मिलती है जो सदिया के पास तिनसुखिया तक चली गयी है। अमीनगाँव और पांडू के बीच पुल न होने के कारण नदी को स्टीमर से पार करना पड़ता था। इस कारण असम का देश के अन्य भागों से सीधा और अबाध सम्पर्क नहीं रह गया था। इसीसे असम की औद्योगिक उन्नति रुकी हुई थी और व्यापार नहीं बढ़ पाता था। सैनिक दृष्टि से भी पूर्वी सीमान्त के लिए इस पुल की बड़ी आवश्यकता थी। द्वितीय महायुद्ध में जब जापानियों ने ब्रह्मदेश पर अधिकार कर लिया था, और जब अँगरेजो और अमरीकनों ने जापानियों को निकालने के लिए अभियान का आयोजन किया, तब उन्होंने इस काम के लिए असम को अपना केंद्र बनाया। उस समय वहाँ पुल बनाने का निश्चय किया गया और

अमीनगाँव की ओर से उसका काम आरंभ भी कर दिया गया था। किन्तु पुल का काम हाथ में लेते ही ब्रह्मदेश की लड़ाई आरंभ हो गयी और वहाँसे जापानी सेनाएँ निकाल दी गयीं। अतएव इस व्ययसाध्य पुल का काम भी रोक दिया गया। विभाजन के बाद इसकी आवश्यकता का फिर अनुभव हुआ, और असम के लोगों ने इसकी तीव्र माँग की। अतएव इसके बनाने का निश्चय किया गया और यह काम उत्तर-पूर्वी सीमान्त रेल को सौंपा गया। प्रसन्नता और संतोष की बात है कि हाल ही में यह पुल तैयार हो गया है और रेल तथा अन्य यातायात के लिए खोल दिया गया है। यह विशाल पुल दो खंड का है। ऊपर के खंड पर सड़क, और नीचे के खंड पर दोहरी रेल लाइन है। इस पर दोनों ओर से रेलें एक साथ चल सकती हैं। इसके तैयार हो जाने से सेना को बड़ी सहायता मिलेगी। वैसे भी असम के औद्योगिक विकास में यह पुल बहुत सहायक सिद्ध होगा।

प्रश्न-दान——इस देश में 'दान' देना भी 'वीरता' समझा जाता है। शायद इसीलिए दानियों को 'दानवीर' की उपाधि दी जाती है, जैसे 'दानवीर कर्ण'। इस आपतकाल में दान और वीरता, दोनों की, बड़ी आवश्यकता है। देश में इस समय इन दोनों के समन्वय से दान-वीरता की बाढ़ आ गयी है। स्वर्णदान, धनदान, रक्तदान आदि दानों ने वीरता को विरुदावली बहुत लंबी कर दी है। ये सब दान इस समय आवश्यक और उपयोगी हैं। किंतु दानवीरता की सबसे मौलिक कल्पना संसद के एक सदस्य ने संसार के सामने रखी है। वह है 'प्रश्नदान'। संसद के सदस्यों को सरकार से प्रश्नों द्वारा सार्वजनिक हित की जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है। जनतंत्र की सफलता और उसके ठीक ढंग से चलाने के लिए प्रश्न करने का यह अधिकार अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन संसद-सदस्य ने यह घोषणा की है कि इस आपतकाल में वे सरकार से कोई प्रश्न न करेंगे। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर को तैयार करने में कई सौ रुपये लग जाते हैं और मंत्रियों तथा अधिकारियों का समय भी लग जाता है। यदि संसद के सब सदस्य 'प्रश्नदान' कर दें तो संसद-सत्र के समय सरकार को प्रतिदिन हजारों रुपयों की बचत हो जाय। देखना है कि इन दानवीर संसद-सदस्य का अनुकरण और कितने संसद-सदस्य करते हैं। इस 'प्रश्नदान' के बाद हम बड़ी उत्सुकता से किसी मंत्री या बोलनेवाले संसद-सदस्य के "भाषणदान" की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस देश में हमारे नेता, मंत्री, विधायक आदि इतना बोलते हैं कि यदि वे 'भाषणदान' कर दें तो देश का बड़ा कल्याण हो। यदि वे अपनी 'बुलास' को एकदम न रोक सकें तो अधिक से अधिक दस मिनिट बोलने की प्रतिज्ञा करके 'आंशिक भाषणदान' ही कर दें क्योंकि "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।"

किंतु सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि जनतंत्र में सदस्य का प्रश्न करने का अधिकार, स्वेच्छा ही से सही, निलंबित कर देना क्या वांछनीय और जनतंत्र के हित में है? उससे बहुत लोकहित होता है और सरकार तथा उसके अधिकारियों पर अंकुश रहता है। यदि केवल धन की बचत इतनी वांछनीय है कि संसद का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लोकतंत्रात्मक कार्य निलंबित करने से कोई हानि नहीं है, तो आपतकाल में संसद के निलंबन से तो लाखों रुपये की बचत हो सकती है। किंतु क्या यह उचित होगा? ऐसा करने से लोकहित और जनतंत्र को कितना धक्का लगेगा? हमारी सम्मति में उसी प्रकार सदस्यों का अपने प्रश्न करने के अधिकार को छोड़ देना भी लोकहित में वांछनीय नहीं है।

रूस में भी भ्रष्टाचार——कुछ लोगों का कहना है कि जो सामाजिक व्यवस्था धन पर आधारित होती है उसमें भ्रष्टाचार अवश्यम्भावी है। वे भ्रष्टाचार (गबन आदि) को पूँजीवादी व्यवस्था की आवश्यक बुराई बतलाते हैं। किंतु वास्तव में मनुष्य की प्रकृति सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक व्यवस्था के कारण मौलिक रूप से नहीं बदल जाती। प्रत्येक समाज में कुछ प्रतिशत अत्यंत ईमानदार, और कुछ प्रतिशत बेईमान व्यक्ति होते हैं। अधिकांश लोग सीधी राह चलते हैं——यदि उनके सामने असाधारण प्रलोभन न आवें या उनकी परिस्थिति ही उन्हें सीधा मार्ग छोड़ने को विवश न कर दे। सीधी राह चलनेवाले ऐसे सामान्य लोगों का अनुपात जितना अधिक होगा, वह समाज उतना ही अधिक ईमानदार कहलायेगा। कुछ न कुछ अपराधी प्रवृत्ति के लोग सभी समाजों में पाये जाते हैं। इसलिए हमें इस समाचार से कोई आश्चर्य नहीं हुआ कि श्री ख्रुश्चेव ने रूस के कम्युनिस्ट दल की केंद्रीय समिति को यह बतलाया कि दल के कितने ही अधिकारी लाखों रुपये की चोरी करते हैं। उन्होंने बतलाया कि १९६२ के पूर्वार्द्ध में सोवियत अदालतों में सरकारी रुपये के गबन के कितने ही मुकदमे चलाये गये जिनमें सब मिलाकर ३१ करोड़ रुपयों (५६० लाख रूबल) का गबन किया गया है। ये तो वे मामले हैं जो पकड़ लिये गये हैं। अनुमान किया जाता है इससे कई गुने रुपयों का गबन पकड़ में नहीं आता। अतएव स्पष्ट है कि रूस के सरकारी अधिकारियों में भी (जो सामान्यतः कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य होते हैं) बेईमान लोगों का अनुपात दूसरे देशों के बेईमान अधिकारियों से कम नहीं है। यदि ठीक-ठीक अध्ययन करने की सुविधा हो तो यह जानना बड़ा उपयोगी होगा कि जिस देश में निजी सम्पत्ति रखने या उसे व्यापार में लगाकर बढ़ाने का वैसा अधिकार नहीं है जैसा कि पूँजीवादी देशों में है, और जहाँ रोटी-कपड़े की समस्या सबके लिए हल की जा चुकी है, वहाँ इन अपराधों के कारण

क्या हैं, और वे कैसे दूर किये जा सकते हैं। यह भी जानना उपयोगी होगा कि पूँजीवादी देशों और कम्युनिस्ट देशों में से किन देशों में इन अपराधों का अनुपात अधिक है। शिक्षा, धर्म (या धर्म का अभाव), सामाजिक वातावरण, सांस्कृतिक स्तर आदि का इन अपराधों के अनुपात पर क्या प्रभाव पड़ता है? मनुष्य चाहे जिस व्यवस्था में रहे, उसके मानवीय गुण और उसकी मानवीय दुर्बलताएँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं। उसके आचरण और व्यवहार के स्रोत उसके बहुत गहरे अतीत में हैं, और वे उन निसर्गों पर आधारित हैं जो संस्कारों से बहुत कम बदलते हैं। इसलिए मनुष्य की मौलिक समस्याएँ सब देशों और सब सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं में एक ही हैं। वह कहीं भी रहे, प्रेम, घृणा, हिंसा, दया आदि मौलिक भावनाओं से मुक्त नहीं हो सकता। इनमें से शिव भावनाओं का विकास, और अशिव भावनाओं का दमन अनादि काल से शिक्षाविदों की समस्या रहा है। आज की विषम परिस्थिति में यह समस्या और भी जटिल और महत्त्वपूर्ण हो गयी है।

विदेशी भाषाओं के अध्ययन की ओर से उदासीनता——हम केवल एक विदेशी भाषा पढ़ते हैं। वह है अँगरेजी। भारत आज स्वतंत्र है, और उसे संसार के सभी देशों से राजनयिक संबंध बनाये रखने हैं। यही नहीं, उसे उन देशों के वास्तविक विचारों और दशा का भी ज्ञान रखना है। यह ज्ञान तब तक ठीक तरह से प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि हमारे यहाँ संसार की विभिन्न भाषाओं के अच्छे ज्ञाता न हों। प्रायः सारे दक्षिणी अमरीका और उत्तरी अमरीका के कुछ देशों की भी भाषा स्पेनी है। फ्रेंच भाषा फ्रांस के अतिरिक्त अफ्रीका के कितने ही देशों और सीरिया आदि में चलती है। जर्मन, इटालियन, पोर्चुगीज भाषाओं का भी महत्त्व है। रूसी भाषा का महत्त्व सर्वविदित है। एशिया की भाषाओं में आधुनिक अरबी, आधुनिक ईरानी, चीनी, जापानी, मलाया, थाई, बर्मा, इंडोनेशिया आदि की भाषाओं का ज्ञान आज हमारे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अफ्रीका के नये राष्ट्रों से स्वाहिली, बाँटू आदि भाषाओं के ज्ञान के बिना ठीक तरह से सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता। आज चीन की समस्या हमारे सामने है। किंतु वास्तव में यदि देखा जाय तो हम चीन के बारे में क्या जानते हैं? उसके समाचारपत्र क्या लिखते हैं, उसके नेता क्या कहते हैं, उसकी जनता क्या सोचती है——यह सब उसकी भाषा जाने बिना हम कैसे जान सकते हैं। आज हम इन सब बातों के लिए अँगरेजी पर आश्रित हैं। चीनी, अमरीकन या अँगरेज जितना अनुवाद करके हमें बतला दें, हम उतना ही जान सकते हैं। वे जो कुछ बतावेंगे, वह अपने दृष्टिकोण से बतावेंगे। वह अनुवाद होगा। इस विशाल देश में प्रत्येक विदेशी भाषा के जाननेवाले, उसके महत्त्व के अनुसार, सैकड़ों और हजारों की संख्या में होने चाहिए। इस ओर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है। किंतु हमारे विद्यार्थी विवश होकर अँगरेजी पढ़ते हैं। सामान्य रूप स उनसे कई विदेशी भाषाएँ पढ़ने को अपेक्षा करना व्यर्थ है। जब तक विदेशी भाषाओं में अँगरेजी के अध्ययन को अनिवार्य रखा जाता है तब तक हमारे देश में बड़ी संख्या में दूसरी भाषाओं के जाननेवाले न हो सकेंगे। विश्वविद्यालयों में कहीं-कहीं कुछ विदेशी भाषाओं के पढ़ाने का प्रबंध किया गया है, किंतु वहाँ सामान्यतः विदेशी भाषाओं का परिचय मात्र दिया जाता है। उनमें पढ़नेवाले बहुत कम लोग किसी भाषा में निष्णात हो पाते हैं। वे डिप्लोमा अवश्य प्राप्त कर लेते हैं, किंतु उनमें से बहुत कम उन भाषाओं में धारा-प्रवाह वार्तालाप कर सकते हैं या उनकी गंभीर पुस्तकें समझ सकते हैं। कई देशों में सरकार की ओर से विदेशी भाषाओं को पढ़ाने के लिए विद्यालय खुले हुए हैं जहाँ उन भाषाओं का सम्यक् ज्ञान कराया जाता है। यदि हम दूसरे देशों के ज्ञान के लिए अँगरेजों और अमरीकनों की अनूदित अँगरेजी सामग्री पर निर्भर रहे तो यह परमुखापेक्षिता हमें बड़ी महँगी पड़ेगी। विदेशी भाषाओं के विद्यालय स्थापित करके उनमें उनकी अच्छी व्यावहारिक शिक्षा देने की आज बड़ी आवश्यकता है। साथ ही, इन भाषाओं के पढ़नेवालों का उपयोग भी होना चाहिए जिससे लोगों को इन भाषाओं के पढ़ने का प्रोत्साहन मिले। विदेश विभाग में इनकी खपत हो सकती है। उसमें तो आज कितने ही ऐसे लोग हैं जो सिदाय अँगरेजी के और कोई भाषा नहीं जानते। उसमें हिंदी जाननेवाले ही बहुत कम मिलेंगे——विदेशी भाषाओं के जानकारों की बात ही क्या की जाय! इसके अतिरिक्त अब हमारा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी बढ़ रहा है। व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाय कि जिन लोगों को वे विदेशों की अपनी शाखाओं में भेजें उनमें कम से कम पचास प्रतिशत ऐसे लोग हों जो उन देशों की भाषाओं को जानते हों जहाँ उनकी नियुक्ति हो। सरकार को द्विभाषियों का दल भी तैयार करना चाहिए जिसकी आवश्यकता आगत अतिथियों के आगमन पर पड़ती है। इसके अतिरिक्त तटकर-कार्यालयों, टूरिस्ट कार्यालयों, बंदरगाहों आदि में भी वे उपयोगी होंगे। किंतु यह सब तभी हो सकता है जब सरकार इसकी आवश्यकता अनुभव करे और इस ओर ध्यान दे।

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो के धर्म संसद के भाषण

[स्वामी विवेकानन्द की जन्मशती के अवसर पर हम उनका वह भाषण प्रकाशित कर रहे हैं जो उन्होंने १८९३ ई० में शिकागो में आयोजित सर्वधर्म संसद में दिया था। भगिनी निवेदिता के शब्दों में इसी भाषण के द्वारा "हिंदू धर्म ने पाश्चात्य देशों को अपना सर्वप्रथम परिचय दिया था।" अतएव इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। पाश्चात्य विचार के लोगों को इससे संक्षिप्त रूप में, या इससे अच्छे ढंग से हिंदू धर्म के स्वरूप को नहीं समझाया जा सकता। दुर्भाग्य से आज अपने देश में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। उन्हें भी इसे पढ़ना चाहिए। उक्त संसद में हिंदू धर्म के प्रतिनिधि नहीं बुलाये गये थे। स्वामीजी को उनके शिष्यों ने आग्रह करके अमरीका भेजा था। उनके वहाँ जाने का व्यय खेतड़ी-नरेश ने दिया था। पहिले तो संसद के आयोजकों ने उन्हें संसद में भाग लेने की अनुमति ही नहीं दी। किंतु हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइट के प्रयत्न से उन्हें संसद में भाग लेने की अनुमति मिल गयी। फिर भी वे वहाँ अज्ञात, अपरिचित और सहायकहीन थे। पहिले दिन स्वागत भाषण हुआ और आगत प्रतिनिधियों ने उस स्वागत-अभिवादन का औपचारिक उत्तर दिया। स्वामीजी को तीसरे पहर, प्रायः अंत में जब श्रोतागण ऊब और थक चुके थे, अभिवादन के लिए धन्यवाद देने का अवसर दिया गया। किंतु उनके व्यक्तित्व और वाणी में ऐसा जादू था कि ज्यों ही भगवा वस्त्रों से सुशोभित वे मंच पर आये, और उन्होंने अपनी ओजस्वी और मधुर वाणी में सम्बोधन के ये शब्द कहे--'अमरीकानिवासी भगिनी और भ्रातृगण' त्यों ही मानों उस विशाल जनसमूह में बिजली दौड़ गयी। लोगों की थकावट और ऊब काफूर हो गयी। उनके उस छोटे से आभार-प्रदर्शक भाषण ने अमरीका का हृदय जीत लिया, और सहसा वे उस सम्मेलन के सबसे लोकप्रिय वक्ता ही नहीं हो गये, प्रत्युत सारे अमरीका में विख्यात हो गये। बायरन के संबंध में कहा गया है कि वह एक दिन जाग कर उठा और उसने अपने को विख्यात पाया, किंतु स्वामीजी मंच पर आकर खड़े हुए, और खड़े होते ही प्रसिद्ध हो गये! उनका मुख्य भाषण कई दिन बाद हुआ जिसमें उन्होंने अमरीका के लोगों को--और उस सम्मेलन के श्रोताओं को विशेष रूप से--हिन्दू धर्म का परिचय दिया था। वह महत्त्वपूर्ण भाषण पढ़िए। ये दोनों भाषण रामकृष्ण मिशन, नागपुर द्वारा प्रकाशित उनके अधिकृत अनुवाद से साभार लिये गये हैं। --सम्पादक]

(१)

अभिवादन के उत्तर में

अमरीकानिवासी भगिनी तथा भ्रातृगण !

जिस सौहार्द और स्नेह के साथ आपने हम लोगों का स्वागत किया है, उसके फलस्वरूप मेरा हृदय अकथनीय हर्ष से प्रफुल्लित हो रहा है। संसार के प्राचीन महर्षियों के नाम पर मैं आपको धन्यवाद देता हूँ तथा सब धर्मों की मातास्वरूप हिन्दूधर्म एवं भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के लाखों-करोड़ों हिन्दुओं की ओर से भी धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

मैं उन सज्जनों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इस सभामंच पर से प्राच्य-प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में आपको यह बतलाया है कि ये दूर देशवाले पुरुष सर्वत्र सहिष्णुता का भाव प्रसारित करने के कारण यश और गौरव के अधिकारी हो सकते हैं। मुझको ऐसे धर्मावलम्बी होने का गौरव है, जिसने संसार को 'सहिष्णुता' तथा 'सब धर्मों को सम्मान प्रदान' करने की शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर ग्रहण करते हैं। मुझे आपसे यह निवेदन करते गर्व होता है कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ, जिसकी पवित्र भाषा संस्कृत में अँगरेजी शब्द exclusicn का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी की समस्त पीड़ित और शरणागत जातियों तथा विभिन्न धर्मों के बहिष्कृत मतावलम्बियों को आश्रय दिया है। मुझे यह बतलाते गर्व होता है कि जिस वर्ष यहूदियों का पवित्र मन्दिर रोमन-जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया, उसी वर्ष कुछ अभिजात यहूदी आश्रय लेने दक्षिण भारत में आये और हमारी जाति ने उन्हें छाती से लगाकर शरण दी। ऐसे धर्म में जन्म लेने का मुझे अभिमान है, जिसने पारसी जाति की रक्षा की और उसका पालन अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की दो पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसे मैं अपने बचपन से गाता रहा हूँ और जिसे प्रतिदिन लाखों मनुष्य गाया करते हैं:

> **रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।**
> **नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।**

--"जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।"

यह सभा, जो संसार की अब तक की सर्वश्रेष्ठ सभाओं में से एक है, जगत् के लिए गीता के उस अद्भुत उपदेश की घोषणा एवं विज्ञापन है, जो हमें बतलाता है--

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

--"जो कोई मेरी ओर आता है--चाहे किसी प्रकार से हो--मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।"

साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और इनसे उत्पन्न भयंकर धर्म-विषयक उन्मत्तता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुके हैं। इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गयी, इन्होंने अनेक बार मानव-रक्त से धरणी को सींचा, सभ्यता नष्ट कर डाली तथा समस्त जातियों को हताश कर डाला। यदि यह सब न होता, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका भी समय आ गया है, और मैं पूर्ण आशा करता हूँ कि जो घण्टे आज सुबह इस सभा के सम्मान के लिए बजाये गये हैं, वे समस्त कट्टरताओं, तलवार या लेखनी के बल पर किये जानेवाले समस्त अत्याचारों तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं के लिए मृत्यु-नाद ही सिद्ध होंगे।

(२)

मुख्य भाषण (हिन्दू-धर्म पर)

हिन्दू-धर्म की आभ्यन्तरिक शक्ति--ऐतिहासिक युग के पूर्व के केवल तीन ही धर्म आज संसार में विद्यमान हैं--हिन्दू-धर्म, पारसी-धर्म और यहूदी-धर्म। ये तीन धर्म अनेकानेक प्रचण्ड आघातों के पश्चात् भी लुप्त न होकर आज भी जीवित हैं--यह उनकी आन्तरिक शक्ति का प्रमाण है। पर जहाँ हम यह देखते हैं कि यहूदी-धर्म ईसाई-धर्म को नहीं पचा सका, वरन् अपनी सर्वविजयी सन्तान--ईसाई धर्म--द्वारा अपने जन्म-स्थान से निर्वासित कर दिया गया, और यह कि केवल मुट्ठी-भर पारसी ही अपने महान् धर्म की गाथा गाने के लिए अब अवशेष हैं,--वहाँ भारत में एक के बाद एक अनेकों धर्म-पन्थों का उद्भव हुआ और वे पन्थ वेद-प्रणीत धर्म को जड़ से हिलाते-से प्रतीत हुए; पर भयंकर भूकम्प के समय समुद्री किनारे की जलतरंगों के समान यह धर्म कुछ समय के लिए इसीलिए पीछे हट गया कि वह तत्पश्चात् हजारगुना अधिक बलशाली होकर सम्मुखस्थ सबको डुबानेवाली बाढ़ के रूप में लौट आये; और जब यह सारा कोलाहल शान्त हो गया, तब सारे धर्म-सम्प्रदाय अपनी जन्मदात्री मूल हिन्दू-धर्म की विराट् काया द्वारा आत्मसात् कर लिये गये, पचा लिये गये।

आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी केवल प्रतिध्वनि मात्र हैं, ऐसे वेदान्त के अत्युच्च आध्यात्मिक भाव से लेकर सामान्य मूर्तिपूजा एवं तदानुषंगिक अनेकानेक पौराणिक दन्तकथाओं, और इतना ही नहीं बल्कि बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनों के निरीश्वरवाद--इनमें से प्रत्येक के लिए हिन्दू-धर्म में स्थान है।

वेदों की नित्यता--तब, प्रश्न यह उठता है कि वह कौन सा एक साधारण बिन्दु है, जहाँपर इतनी विभिन्न दिशाओं में जानेवाली त्रिज्या-रेखाएँ केन्द्रस्थ होती हैं? वह कौनसा एक सामान्य आधार है, जिसपर इतने परस्पर विरोधी भासनेवाले ये सब भाव आश्रित हैं? इसी प्रश्न का उत्तर देने का अब मैं प्रयत्न करूँगा।

हिन्दू-जाति ने अपना धर्म अपौरुषेय वेदों से प्राप्त किया है। उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त हैं। श्रोताओं को, सम्भव है, यह हास्यास्पद मालूम हो और वे सोचें कि कोई पुस्तक अनादि और अनन्त कैसे हो सकती है। परन्तु वेद का अर्थ है भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक तत्त्वों का संचित कोष। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मनुष्यों के पता लगने के पूर्व से ही अपना काम करता चला आया था और आज यदि मनुष्य-जाति उसे भूल भी जाय, तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा, ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत् को चलानेवाले नियमों के सम्बन्ध में भी है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ और प्रत्येक आत्मा का परम पिता परमात्मा के साथ जो नैतिक तथा दिव्य आध्यात्मिक सम्बन्ध हैं, वे हमारे पता लगाने के पूर्व भी थे, और हम यदि उन्हें भूल भी जायँ, तो भी बने रहेंगे।

ऋषि--इन नियमों या सत्यों का आविष्कार करनेवाले 'ऋषि' कहलाते हैं और हम उनको पूर्णत्व को पहुँची हुई विभूति जानकर सम्मान देते हैं। श्रोताओं को यह बतलाते हुए मुझे हर्ष होता है कि इन अतिशय उन्नत ऋषियों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं।

सृष्टि अनादि तथा अनन्त है--यहाँपर कोई यह तर्क कर सकता है कि ये आध्यात्मिक नियम, नियम के रूप में अनन्त भले ही हों, पर इनका आदि तो अवश्य ही होना चाहिए। वेद हमें यह सिखाते हैं कि सृष्टि का (अतएव सृष्टि के इन नियमों का भी) न आदि है, न अन्त। विज्ञान ने हमें सिद्ध कर दिखाया है कि समस्त विश्व की सारी शक्ति-समष्टि का परिमाण सदा एक-सा रहता है। तो फिर, यदि ऐसा कोई समय था जब कि किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं था, उस समय यह सम्पूर्ण व्यक्त शक्ति कहाँ थी? कोई-कोई कहते हैं कि ईश्वर में ही वह सब अक्रिय रूप से निहित थी। तब तो ईश्वर कभी निष्क्रिय और कभी सक्रिय है; इससे तो

वह विकारशील हो जायगा। प्रत्येक विकारशील पदार्थ मिश्रित होता है और हर एक मिश्रित पदार्थ में वह परिवर्तन अवश्यम्भावी है, जिसे हम विनाश कहते हैं। इस तरह तो ईश्वर की मृत्यु हो जायगी, जो कि सर्वथा असम्भव एवं हास्यास्पद कल्पना है। अतः ऐसा समय कभी नहीं था, जब यह सृष्टि नहीं थी। अतएव यह सृष्टि अनादि है।

मैं एक उपमा दूँ, स्रष्टा और सृष्टि मानों दो रेखाएँ हैं, जिनका न आदि है, न अन्त, और जो समानान्तर हैं। ईश्वर नित्यक्रियाशील महा-शक्तिस्वरूप है, सर्व-विधाता है, जिसकी प्रेरणा से प्रलय-पयोधि में से नित्यशः एक के बाद एक ब्रह्माण्ड का सृजन होता है, उनका कुछ काल तक पालन होता है और तत्पश्चात् वे पुनः विनष्ट कर दिये जाते हैं। 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' अर्थात् इस सूर्य और इस चन्द्रमा को विधाता ने पूर्व कल्पों के सूर्य और चन्द्रमा के समान निर्मित किया है—इस वाक्य का नित्य पाठ प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन अपने गुरु के साथ किया करता है। और यह सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान के साथ मेल खाता है।

आत्मा—यहाँ पर मैं खड़ा हूँ। अपनी आँखें बन्द करके यदि मैं अपने अस्तित्व को समझने का प्रयत्न करूँ कि मैं क्या हूँ—'मैं', 'मैं', 'मैं', तो मुझमें किस भाव का उदय होता है? यह कि मैं शरीर हूँ। तो क्या मैं भौतिक पदार्थों के समूह के सिवाय और कुछ नहीं हूँ? वेदों की घोषणा है—नहीं, मैं शरीर में रहनेवाली आत्मा हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर मर जायगा, पर मैं नहीं मरूँगा। मैं इस शरीर में विद्यमान हूँ और जब इस शरीर का पतन होगा, तब भी मैं विद्यमान रहूँगा ही। इस शरीर-ग्रहण के पूर्व भी मैं विद्यमान था। आत्मा किसी पदार्थ से सृष्ट नहीं हुई है, क्योंकि सृष्टि का अर्थ है भिन्न-भिन्न द्रव्यों का संयोग, और इस संयोग का अर्थ होता है भविष्य में अवश्यम्भावी वियोग। अतएव यदि आत्मा का सृजन हुआ, तो उसकी मृत्यु भी होनी चाहिए। इससे सिद्ध हो गया कि आत्मा का सृजन नहीं हुआ था, वह कोई सृष्ट पदार्थ नहीं है। पुनश्च, कुछ लोग जन्म से ही सुखी होते हैं, पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द भोगते हैं, उन्हें सुन्दर शरीर, उत्साहपूर्ण मन और सभी आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त रहती हैं। दूसरे कुछ लोग जन्म से ही दुःखी होते हैं, किसीके हाथ या पाँव नहीं होते, तो कोई मूर्ख होते हैं, और येन-केन-प्रकारेण अपने दुःखमय जीवन के दिन काटते हैं।

जन्मान्तरवाद—ऐसा क्यों? यदि ये सभी एक ही न्यायी और दयालु ईश्वर ने उत्पन्न किये हों, तो फिर उसने एक को सुखी और दूसरे को दुःखी क्यों बनाया? भगवान् ऐसा पक्षपाती क्यों है? फिर ऐसा मानने से भी बात नहीं सुधर सकती कि जो इस वर्तमान जीवन में दुःखी हैं, वे भावी जीवन में पूर्ण सुखी रहेंगे। न्यायी और दयालु भगवान् के राज्य में मनुष्य इस जीवन में भी दुःखी क्यों रहे? दूसरी बात यह है कि सृष्टि-उत्पादक ईश्वर को मान्यता देनेवाला यह सिद्धान्त सृष्टि में इस वैषम्य के लिए कोई कारण बताने का प्रयत्न तक नहीं करता, बल्कि वह तो केवल एक सर्व-शक्तिमान् स्वेच्छाचारी पुरुष का निष्ठुर व्यवहार ही प्रकट करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि यह कल्पना युक्ति-विरुद्ध है। अतएव यह स्वीकार करना ही होगा कि इस जन्म के पूर्व ऐसे कारण होने ही चाहिए, जिनके फलस्वरूप मनुष्य इस जन्म में सुखी या दुःखी हुआ करता है। और ये कारण हैं उसके ही पूर्वानुष्ठित कर्म। अच्छा, मनुष्य के शरीर और मन की गठन उसके पिता-पितामह आदि के शरीर-मन के अनुरूप होती है ऐसा आनुवंशिकता का सिद्धान्त क्या उपर्युक्त समस्या का समुचित उत्तर न होगा? यह स्पष्ट है कि जीवनस्रोत जड़ और चैतन्य इन दो धाराओं में प्रवाहित हो रहा है। यदि जड़ और जड़ के विकार ही आत्मा, मन, बुद्धि आदि हम जो कुछ हैं उन सबके उपर्युक्त कारण सिद्ध हो सकते, तो फिर और स्वतंत्र आत्मा के अस्तित्व को मानने की कोई आवश्यकता ही न रह जाती। पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि चैतन्य का विकास जड़ से हुआ है। अतएव यह स्वीकार कर लेने पर कि एक जड़-पदार्थ से सब कुछ सृष्ट हुआ है, यह भी स्वीकार करना निःसंशय युक्तियुक्त होगा कि एक मूल चैतन्य से ही समस्त सृष्टि-कार्य का निर्वाह हो रहा है। और यह केवल युक्तियुक्त ही नहीं वरन् वांछनीय भी है। पर यहाँ उसकी आलोचना करने की कोई आवश्यकता नहीं।

आनुवंशिकता तथा पुनर्जन्मवाद—अवश्य, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कुछ शारीरिक प्रवृत्तियाँ माता-पिता से प्राप्त होती हैं, पर इसका सम्बन्ध केवल शारीरिक गठन से है, जिसके द्वारा जीवात्मा की कोई विशेष प्रवृत्ति प्रकट हुआ करती है। उसकी इस प्रवृत्ति-विशेष का कारण उसी के पूर्वकृत कर्म हुआ करते हैं। एक विशेष प्रवृत्तिवाला जीवात्मा 'योग्यं योग्येन युज्यते' इस नियमानुसार उसी शरीर में जन्म ग्रहण करता है, जो उस प्रवृत्ति के प्रकट करने के लिए सबसे उपयुक्त आधार हो। यह पूर्णतया विज्ञान-संगत है, क्योंकि विज्ञान कहता है कि प्रवृत्ति या स्वभाव अभ्यास से बनता है, और अभ्यास बारम्बार अनुष्ठान का फल है। इस प्रकार एक नवजात बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का कारण बताने के लिए पुनः-पुनः अनुष्ठित पूर्वकर्मों को मानना आवश्यक हो जाता है। और चूँकि वर्तमान जीवन में इस स्वभाव की प्राप्ति नहीं की गयी, इसलिए वह पूर्व जीवन से ही उसे प्राप्त हुआ है।

इस पर एक शंका की जा सकती है। अच्छा, ये सभी बातें तो मान ली गयीं, पर यह कैसी बात है कि मेरे पूर्व जन्म की कोई बात मुझे स्मरण नहीं है? इसका

समाधान सरल है। मैं अभी अँगरेजी बोल रहा हूँ। वह मेरी मातृभाषा नहीं है। सच पूछो तो इस समय मेरी मातृभाषा का कोई भी शब्द मेरे चित्त में उपस्थित नहीं है; पर उन शब्दों को सामने लाने का थोड़ा प्रयत्न करते ही वे मेरे मन में उमड़ आते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि मानस-समुद्र की सतह पर जो कुछ रहता है, वही हमें बोधगम्य हुआ करता है। और भीतर, उसकी गहराई में, हमारी समस्त अनुभवराशि निहित रहती है; केवल प्रयत्न तथा उद्यमपूर्वक मन्थन करने की आवश्यकता है। वे सारे अनुभव ऊपर सतह पर उठ आएँगे और पूर्व जन्मों की स्मृति जाग उठेगी।

पूर्व-जन्म के सम्बन्ध में यही साक्षात् प्रमाण है। परीक्षा द्वारा ही किसी मतवाद की सचाई पूर्णतः प्रमाणित होती है। ऋषिगण समस्त संसार को ललकार कर कह रहे हैं कि हमने उस रहस्य का पता लगा लिया है, जिससे स्मृति-सागर की गंभीरतम गहराई तक का मन्थन किया जा सकता है——उसका प्रयोग करो और तुम अपने पूर्व-जन्मों की सम्पूर्ण स्मृति प्राप्त कर लोगे।

आत्मा देहबद्ध क्यों है——अतएव देखा गया कि हिन्दू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। "इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि दग्ध नहीं कर सकती, पानी आर्द्र नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती।" हिन्दुओं का यह धारणा है कि आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसका परिधि कहीं नहीं है, यद्यपि उसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है; और मृत्यु का अर्थ केवल इतना ही है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में इस केन्द्र का स्थानान्तर हो जाना। यह आत्मा भौतिक नियमों के वशीभूत नहीं है, वह स्वरूपतः नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव है। परन्तु किसी अचिन्त्य कारण से वह अपने को जड़ से बँधी हुई पाती है और अपने को जड़ ही समझने लगती है।

अब प्रश्न यह है कि यह विशुद्ध, पूर्ण और विमुक्त आत्मा इस प्रकार जड़ का दासत्व क्यों करती है? स्वयं पूर्ण होते हुए भी इस आत्मा को अपूर्णत्व की यह भ्रमात्मक धारणा कैसे हो सकती है? हमें यह बताया जाता है, हिन्दू लोग इस प्रश्न से किनारा कस लेते हैं और कह देते हैं कि ऐसा प्रश्न पूछा ही नहीं जा सकता। कुछ पण्डित लोग आत्मा और जीव दोनों के बीच में कुछ पूर्णप्राय सत्ताओं के अस्तित्व की कल्पना कर लेते हैं और उन्हें अनेक विध बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक संज्ञाएँ दे देते हैं। परन्तु केवल नाम दे देने से ही मीमांसा नहीं हो जाती। प्रश्न ज्यों का त्यों ही बना रहता है। जो पूर्ण है, उसकी पूर्णता किसी भी तरह या किसी भी अंश में कैसे कम हो सकती है? जो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव है, उसके उस 'स्वभाव' का अणुमात्र भी व्यतिक्रम कैसे हो सकता है? पर हिन्दू सत्य का निष्कपट पुजारी है। वह मिथ्या तर्क-युक्ति का सहारा नहीं लेना चाहता। वह सच्चे निर्भीक की तरह इस प्रश्न का सामना करने का साहस रखता है, और इस प्रश्न का उत्तर देता है, "मैं नहीं जानता। मैं नहीं जानता कि पूर्ण आत्मा अपने को अपूर्ण कैसे समझने लगी, जड़-पदार्थों के संयोग से अपने को जड़-नियमाधीन कैसे मानने लगी।" पर वस्तुस्थिति जो है, वही रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने को शरीर मानता है। हिन्दू यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि ऐसा क्यों होता है, मनुष्य अपने को शरीर क्यों समझता है। 'यह ईश्वर की इच्छा है' यह उत्तर इस शंका का कोई समाधान नहीं कर सकता। यह उत्तर तो हिन्दू के 'मैं नहीं जानता' उत्तर से किसी प्रकार अधिक यथार्थ नहीं है।

कर्मवाद——अतएव हमने देखा कि मनुष्य की आत्मा अनादि और अमर है, पूर्ण और अनन्त है, और मृत्यु का अर्थ है——एक शरीर से दूसरे शरीर में केवल केन्द्र-परिवर्तन। वर्तमान अवस्था हमारे पूर्वानुष्ठित कर्मों द्वारा निश्चित होती है और भविष्य, वर्तमान कर्मों द्वारा। आत्मा जन्म और मृत्यु के चक्र में लगातार घूमती हुई कभी ऊपर उठती है, कभी नीचे जाती है। पर यहां एक दूसरा प्रश्न उठता है——क्या मनुष्य उस छोटी सी नौका के समान है, जो प्रचण्ड तूफान में पड़कर एक क्षण किसी वेगवान् तरंग के फेनिल शिखर पर चढ़ जाती है और दूसरे क्षण भयानक गड्ढे में नीचे ढकेल दी जाती है; मनुष्य क्या इस प्रकार अपने अच्छे और बुरे कर्मों के नितान्त परवश हो केवल इधर-उधर भटकता फिरता है; क्या वह कार्य-कारण के सतत-प्रवाही, सर्वंकष, भीषण तथा गर्जनशील प्रवाह में पड़ा हुआ शक्तिहीन, निस्सहाय, नगण्य जीव मात्र है; क्या वह उस कर्म-चक्र के नीचे पड़ा हुआ एक क्षुद्र कीटाणु है, जो पतिशोक से व्याकुल विधवा के आँसुओं तथा अनाथ बालक की आहों की तनिक भी परवाह न करते हुए अपने मार्ग में आने वाली सभी वस्तुओं को कुचल डालता है? इस प्रकार के विचार से अन्तःकरण काँप उठता है, पर प्रकृति का नियम तो यही है। तो फिर क्या कोई आशा ही नहीं है? ——इससे बचने का कोई मार्ग नहीं है?——यही करुण पुकार निराशा-विह्वल हृदय के अन्तस्तल से ऊपर उठी और उस करुणानिधान विश्वपिता के सिंहासन तक जा पहुँची। वहाँ से आशा तथा सान्त्वना की वाणी निकली और एक वैदिक ऋषि के अन्तःकरण में प्रेरणा-रूप में आविर्भूत हुई। ईश्वरी शक्ति द्वारा अनुप्राणित इस महर्षि ने संसार के सामने खड़े होकर घन-गम्भीर स्वर से इस आनन्द-सन्देश की घोषणा की——

शृण्वन्तु विश्वे ऽमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।

× × ×

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

--"हे अमृत के पुत्रगण ! हे दिव्यधामवासी देवगण ! सुनो, मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष को पहचान लिया है, जो समस्त अज्ञान-अन्धकार और माया के परे है। केवल उस पुरुष को जानकर ही तुम मृत्यु के चक्कर से छूट सकते हो। दूसरा कोई पथ नहीं है।"

"हे अमृत के पुत्रगण !" कैसा मधुर और आशाजनक सम्बोधन है यह ! बन्धुओ ! इसी मधुर नाम से मुझे तुम्हें पुकारने दो। "हे अमृत के अधिकारीगण !" सचमुच हिन्दू तुम्हें पापी कहना अस्वीकार करता है। तुम तो ईश्वर की सन्तान हो, अमर आनन्द के भागीदार हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। तुम इस मर्त्यभूमि पर देवता हो। तुम भला पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है; वह मानव-स्वभाव पर घोर लांछन है। उठो ! आओ ! ए सिंहो ! इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दो कि तुम भेंड़ हो। तुम तो जरा-मरण-रहित, नित्यानन्दमय आत्मा हो ! तुम जड़-पदार्थ नहीं हो। तुम शरीर नहीं हो। जड़-पदार्थ तो तुम्हारा गुलाम है, तुम उसके गुलाम नहीं।

अतः वेद ऐसी घोषणा नहीं करते कि यह सृष्टि-व्यापार कतिपय भयावह, निर्दय अथवा निर्मम विधानों का प्रवाह है, और न यही कि वह कार्य-कारण का एक अच्छेद्य बन्धन है; वरन् वे यह घोषित करते हैं कि इन सब प्राकृतिक नियमों के मूल में, प्रत्येक अणु-परमाणु में तथा शक्ति के प्रत्येक स्पन्दन में ओत-प्रोत वही एक पुराणपुरुष विराजमान है, 'जिसके आदेश से वायु चलती है, अग्नि दहकती है, बादल बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर इतस्ततः नाचती है।'

और उस पुरुष का स्वरूप क्या है ? वह सर्वव्यापी, शुद्ध, निराकार, सर्वशक्तिमान् है, सब पर उसकी पूर्ण दया है। "तू हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तू हमारा परम प्रेमास्पद सखा है, तू ही सभी शक्तियों का मूल है; हमें शक्ति दे। तू ही इन अखिल भुवनों का भार वहन करनेवाला है; तू मुझे इस जीवन के क्षुद्र भार को वहन करने में सहायता दे।" वैदिक ऋषियों ने यही गाया है। हम उसकी पूजा किस प्रकार करें ? प्रेम द्वारा ही उसकी पूजा की जा सकती है। "ऐहिक तथा पारत्रिक समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अधिक प्रिय जानकर उस परम प्रेमास्पद की पूजा करनी चाहिए।"

वेद हमें शुद्ध प्रेम के सम्बन्ध में इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं। अब यह देखा जाय कि भगवान् श्रीकृष्ण ने, जिन्हें हिन्दू लोग पृथ्वी पर ईश्वर का पूर्णावतार मानते हैं, इस प्रेम के पूर्ण विकास की साधना के सम्बन्ध में हमें क्या उपदेश दिया है।

उन्होंने कहा है कि मनुष्य को इस संसार में पद्मपत्र की तरह रहना चाहिए। पद्मपत्र जैसे पानी में रहकर भी उससे नहीं भीगता, उसी प्रकार मनुष्य को भी संसार में रहना चाहिए--उसका हृदय ईश्वर की ओर लगा रहे और उसके हाथ निर्लिप्त भाव से कर्म करने में लगे रहें।

अहैतुकी भक्ति--इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्रत्याशा से ईश्वर से प्रेम करना बुरी बात नहीं, पर केवल प्रेम के लिए ही ईश्वर से प्रेम करना सबसे अच्छा है, और उसके निकट यही प्रार्थना करना उचित है--

न धनं न जनं न च सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये,
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

--"हे भगवन्, मुझे न तो सम्पत्ति चाहिए, न सन्तति, न विद्या। यदि तेरी इच्छा है, तो सहस्रों बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ूँगा; पर हे प्रभो, केवल इतना ही दे कि मैं फल की आशा छोड़कर तेरी भक्ति करूँ, केवल प्रेम के लिए ही तुझ पर मेरा निःस्वार्थ प्रेम हो।" भगवान् श्रीकृष्ण के शिष्य धर्मराज युधिष्ठिर उस समय भारत के सम्राट् थे। उनके शत्रुओं ने उन्हें राजसिंहासन से च्युत कर दिया था और उन्हें अपनी सम्राज्ञी के साथ हिमालय के जंगल में आश्रय लेना पड़ा था। वहाँ एक दिन सम्राज्ञी ने उनसे प्रश्न किया, "नाथ, आप इतने धार्मिक हैं कि लोग आपको धर्मराज कहते हैं। परन्तु ऐसा होते हुए भी आपको इतना दुःख क्यों सहना पड़ता है ?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महारानी, देखो यह हिमालय कैसा भव्य और सुन्दर है। मैं इस पर प्रेम करता हूँ। यह मुझे कुछ नहीं देता; पर मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं भव्य और सुन्दर वस्तु पर प्रेम करता हूँ और इसीकारण मैं उस पर प्रेम करता हूँ। उसी प्रकार मैं ईश्वर पर प्रेम करता हूँ। वह अखिल सौन्दर्य, समस्त सुषमा का मूल है। वही एक ऐसा पात्र है, जिस पर प्रेम करना चाहिए। उस पर प्रेम करना मेरा स्वभाव है और इसी लिए मैं उस पर प्रेम करता हूँ। मैं किसी बात के लिए उससे प्रार्थना नहीं करता, मैं उससे कोई वस्तु नहीं माँगता। उसकी जहाँ इच्छा हो, मुझे रखे। मैं तो सब अवस्थाओं में केवल प्रेम के लिए ही उसपर प्रेम करना चाहता हूँ, मैं प्रेम में सौदा नहीं कर सकता।"

वेद कहते हैं कि आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, वह केवल पंचभूतों के बन्धनों में बँध गयी है और उन बन्धनों के टूटने पर वह अपने पूर्व पूर्णत्व को प्राप्त हो जायगी। इस अवस्था का नाम मुक्ति है, जिसका अर्थ है स्वाधीनता --अपूर्णता, जन्म-मृत्यु, आधि-व्याधि से छुटकारा।

हिन्दू धर्म का मूल मंत्र--अपरोक्षानुभूति--आत्मा का यह बन्धन केवल ईश्वर की दया से ही टूट सकता है और उसकी दया शुद्ध, पवित्र स्वभाववाले लोगों को ही प्राप्त होती है। अतएव पवित्रता ही उसके अनुग्रह की प्राप्ति का उपाय है। जब उसकी कृपा होती है, तब शुद्ध और पवित्र हृदय में वह आविर्भूत होता है। विशुद्ध और निर्मल मनुष्य इसी जीवन में ईश्वरदर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है। तब उसकी समस्त कुटिलता नष्ट

हो जाती है, सारे सन्देह दूर हो जाते हैं।" तब वह कार्य-कारण के भयानक नियम के हाथ का खिलौना नहीं रह जाता। यही हिन्दू-धर्म का मूलभूत सिद्धान्त है—यही उसका असल भाव है। हिन्दू, शब्दों और सिद्धान्तों के जाल में समय बिताना नहीं चाहता। यदि इस साधारण वैषयिक जीवन के परे और भी कोई अवस्था है, कोई अतीन्द्रिय जीवन है, तो वह उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता है। यदि उसमें कोई आत्मा है, जो जड़-वस्तु नहीं है, यदि कोई दयामय सर्वव्यापी परमात्मा है, तो वह उसका साक्षात्कार कर लेना चाहता है; कारण, ईश्वर के केवल प्रत्यक्ष दर्शन से ही उसकी समस्त शंकाएँ दूर होंगी। अतः हिन्दू ऋषि आत्मा के विषय में, ईश्वर के विषय में यही सर्वोत्तम प्रमाण देता है कि "मैंने आत्मा का दर्शन किया है, मैंने ईश्वर का दर्शन किया है।" और यही पूर्णत्व की एकमात्र शर्त है। भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों या सिद्धान्तों पर विश्वास करने के प्रयत्न हिन्दू-धर्म नहीं हैं, वरन हिन्दू-धर्म तो प्रत्यक्ष अनुभूति या साक्षात्कार का धर्म है। केवल विश्वास का नाम हिन्दू-धर्म नहीं है। हिन्दू-धर्म का मूलमंत्र है, 'मैं आत्मा हूँ यह विश्वास होना और तद्रूप बन जाना।'

अतः हिन्दुओं की सारी साधना-प्रणाली का लक्ष्य है—सतत अध्यवसाय द्वारा पूर्ण बन जाना, देवता बन जाना, ईश्वर के निकट जाकर उसके दर्शन कर लेना। और इस प्रकार ईश्वरसान्निध्य को प्राप्त होकर उनके दर्शन कर लेना, उन सर्वलोक-पिता ईश्वर के समान पूर्ण हो जाना—यही असल में हिन्दू-धर्म है।

और जब मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है, तब उसका क्या होता है? तब तो वह असीम आनन्द का जीवन व्यतीत करता है। वह अन्य समस्त लाभों की अपेक्षा उत्कृष्ट लाभ-स्वरूप परमानन्दधाम ईश्वर को प्राप्त करके परम आनन्द का अधिकारी हो जाता है।

'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'—इस विषय में सभी हिन्दू एकमत हैं। भारत के भिन्न-भिन्न पन्थों का इस विषय में एकही मत है। परन्तु अब बात यह है कि तुरीय अथवा निर्विकल्प अवस्था का ही नाम पूर्णावस्था है और यह निर्विकल्प अवस्था तो एकमेव, अद्वितीय और गुणातीत है, जिसमें व्यक्तित्व कदापि नहीं रह सकता। अतः जब आत्मा पूर्णत्व को, इस निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त कर लेती है, तब वह ब्रह्म के साथ एकता को प्राप्त हो जाती है तथा द्वैतज्ञान से रहित हो जाने के कारण वह स्वयं ही सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप हो जाती है। हम इस अवस्था के विषय में किन्हीं-किन्हीं पाश्चात्य दार्शनिकों के ग्रन्थों में बारम्बार पढ़ा करते हैं कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व को खोकर जड़ता प्राप्त करता है या पत्थर के समान बन जाता है। इससे उन पण्डितों की अनभिज्ञता ही दीख पड़ती है, क्योंकि "जिन्हें चोट कभी नहीं लगी है, वे ही चोट के दाग को और हँसी की दृष्टि से देखते हैं!"

मैं आपको बताता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं होती। यदि इस एक क्षुद्र शरीर में आत्मबोध होने से इतना आनन्द होता है, तो दो शरीरों में आत्मबोध का आनन्द अधिक उत्कट होना चाहिए और उसी तरह क्रमशः अनेक शरीरों में आत्मबोध के साथ-साथ आनन्द की मात्रा भी अधिकाधिक बढ़नी चाहिए, और जब विश्व-आत्मा का बोध हो जायगा, तो आनन्द की परम-अवस्था प्राप्त हो जायगी।

अतः उस असीम विश्वात्मक व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिए इस दुःखमय क्षुद्र व्यक्तित्व के बन्धन का अन्त होना चाहिए। जब मैं प्राणस्वरूप हो जाऊँगा, तभी मृत्यु के हाथ से मेरा छुटकारा हो सकता है। जब मैं आनन्दस्वरूप हो जाऊँगा, तभी दुःख का अन्त हो सकता है। जब मैं ज्ञानस्वरूप हो जाऊँगा, तभी सब अज्ञान का अन्त हो सकता है। विज्ञान भी अन्त में इसी सिद्धान्त पर आ पहुँचा है। विज्ञानशास्त्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि हम जो इस देह को प्रत्यक्ष और सदा एक-सा मानते हैं वह भ्रम है; हमारा यह भौतिक व्यक्तित्व भ्रम मात्र है। वास्तव में इस निरवच्छिन्न जड़सागर में यह क्षुद्र शरीर तरंगवत् सदा परिवर्तित होता रहता है, प्रतिक्षण नवीन होता रहता है। पर हमारा चैतन्यांश कभी परिवर्तनशील या भ्रमात्मक नहीं है, इसीलिए वह पूर्णतया सत्य है, और इसी कारण केवल यह अद्वैत ज्ञान ही कि 'मैं एकमेव अद्वितीय आत्मा हूँ' एकमात्र युक्तियुक्त सिद्धान्त है।

धर्म विज्ञान का चरम सिद्धान्त—अद्वैत—विज्ञान एकत्व की खोज के सिवाय और कुछ नहीं है। ज्योंही कोई विज्ञानशास्त्र पूर्ण एकता तक पहुँच जायगा, त्योंही उसका और आगे बढ़ना रुक जायगा; क्योंकि तब तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुकेगा। उदाहरणार्थ, रसायनशास्त्र यदि एक बार उस एक मूल द्रव्य का पता लगा ले, जिससे और सब द्रव्य बन सकते हैं, तो फिर वह और आगे नहीं बढ़ सकेगा। पदार्थविज्ञानशास्त्र जब उस एक मूल शक्ति का पता लगा लेगा, जिससे अन्य शक्तियाँ बाहर निकली हैं, तब वह पूर्णता पर पहुँच जायगा। वैसे ही, धर्म-शास्त्र भी उस समय पूर्णता को प्राप्त हो जायगा, जब वह उस मूल कारण को जान लेगा, जो इस मर्त्यलोक में एकमात्र अमृतस्वरूप है, जो इस नित्य परिवर्तनशील जगत् का एकमात्र अचल-अटल आधार है, जो एकमात्र परमात्मा है और अन्य सब आत्माएँ जिसके प्रतिबिम्बस्वरूप हैं। इस प्रकार अनेकेश्वरवाद, द्वैतवाद आदि में से होते हुए इस अद्वैतवाद की प्राप्ति होती है। धर्मशास्त्र इससे आगे नहीं जा सकता। यही सारे विज्ञानों का चरम लक्ष्य है।

हिन्दू-धर्म तथा विज्ञान का सामंजस्य—सभी शास्त्र अन्त में इसी सिद्धान्त को पहुँचनेवाले हैं। आज विज्ञान-

शास्त्र इस दृश्यमान् जगत् को 'सृष्टि' नाम देना नहीं चाहता, वह उसे 'विकास' मात्र कहता है। और हिन्दू को बड़ी प्रसन्नता इस बात की है कि जिस सिद्धान्त को वह अपने अन्तःकरण में इतने दिनों से धारण किये हुए था, वही सिद्धान्त आज बड़ी प्रबल भाषा में, विज्ञान के अत्यन्त आधुनिक प्रयोगों द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से सिद्ध करके, सिखाया जा रहा है।

मूर्ति-पूजा--अब हम वेदान्त-दर्शन के उत्तुंग शिखर से नीचे उतरकर साधारण अशिक्षित लोगों के धर्म की ओर आते हैं। प्रारम्भ में मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि भारतवर्ष में अनेकेश्वरवाद नहीं है। प्रत्येक मन्दिर में यदि कोई खड़ा होकर सुने, तो वह यही पाएगा कि भक्तगण सर्वव्यापित्व से लेकर ईश्वर के सभी गुणों का आरोप उन मूर्तियों में करते हैं। यह अनेकेश्वरवाद नहीं है, और न इसका नाम 'कोई देवता-विशेष का प्राधान्यवाद' ही हो सकता है। गुलाब को चाहे दूसरा कोई भी नाम क्यों न दे दिया जाय, पर वह सुगन्ध तो वैसी ही मधुर देता रहेगा। केवल नाम ही से तो किसी वस्तु का पूरा स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

बचपन की एक बात मुझे यहाँ याद आती है। एक ईसाई पादरी कुछ मनुष्यों को भीड़ जमा करके धर्मोपदेश कर रहा था। बहुतेरी मजेदार बातों के साथ वह पादरी यह भी कह गया कि "अगर मैं तुम्हारी देवमूर्ति को एक डंडा लगाऊँ, तो वह मेरा क्या कर सकती है?" एक श्रोता ने चट चुभता-सा जवाब दे डाला कि "अगर मैं तुम्हारे ईश्वर को गाली दे दूँ, तो वह मेरा क्या कर सकता है?" पादरी बोला, "मरने के बाद वह तुम्हें सजा देगा।" हिन्दू भी तानकर बोल उठा, "तुम मरोगे, तब ठीक उसी तरह हमारी देवमूर्ति भी तुम्हें योग्य पुरस्कार देगी!" वृक्ष अपने फलों से जाना जाता है। जब मूर्तिपूजकों में मैं ऐसे मनुष्यों को पाता हूँ, जिनके चारित्र्य, आध्यात्मिक भाव और प्रेम अपना सानी नहीं रखते, तब तो मैं रुककर यही सोचता हूँ--"क्या पाप से भी पवित्रता की उत्पत्ति हो सकती है?"

मूर्ति के बिना चिन्तन असम्भव--अन्धविश्वास मनुष्य का महान् शत्रु है, पर हठधर्मी तो उससे भी बढ़कर है। अच्छा, ईश्वर यदि सर्वव्यापी है, तो फिर ईसाई गिरजाघर नामक एक स्वतंत्र स्थान में उसकी आराधना के लिए क्यों जाते हैं? क्यों वे 'क्रॉस' को इतना पवित्र मानते हैं? प्रार्थना के समय आकाश की ओर मुँह क्यों करते हैं? कैथोलिक ईसाइयों के गिरजाघरों में इतनी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? और प्रोटेस्टेंट ईसाइयों के हृदय में प्रार्थना के समय इतनी भावमयी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? मेरे भाइयो! मन में किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना कि श्वास लिये बिना जीवित रहना। स्मृति की उद्दीपक भाव-परम्परा के अनुसार जड़ मूर्ति के दर्शन से मानसिक भाव-विशेष का उद्दीपन हो जाता है, अथवा मन में भाव-विशेष का उद्दीपन होने से तदनुरूप मूर्ति-विशेष का भी आविर्भाव होता है। इसीलिए तो हिन्दू आराधना के समय बाह्य प्रतीक का उपयोग करता है। वह आपको बतलाएगा कि यह बाह्य प्रतीक उसके मन को अपने ध्यान के विषय परमेश्वर में एकाग्रता से स्थिर रहने में सहायता देता है। वह भी यह बात उतनी ही अच्छी तरह से जानता है, जितना कि आप जानते हैं, कि वह मूर्ति न तो ईश्वर ही है और न सर्वव्यापी ही। और सच पूछिए तो दुनिया के लोग 'सर्वव्यापित्व' का क्या अर्थ समझते हैं? वह तो केवल एक शब्द या प्रतीक मात्र है। क्या परमेश्वर का भी कोई क्षेत्रफल है? नहीं है न? तो भी जिस समय हम सर्वव्यापी शब्द का उच्चारण करते हैं, उस समय विस्तृत आकाश या विशाल भूमि-खण्ड की ही कल्पना अपने मन में लाने के सिवाय हम और क्या करते हैं?

तात्पर्य यह कि अपनी मानसिक प्रकृति के नियमानुसार हमें अपनी अनन्तत्व की भावना को नील आकाश या अपार समुद्र की कल्पना से सम्बद्ध करना पड़ता है; उसी तरह हम पवित्रता के भाव को अपने स्वभावानुसार गिरजाघर, मसजिद या क्रॉस से जोड़ लेते हैं। हिन्दू लोग पवित्रता, नित्यत्व, सर्वव्यापित्व आदि-आदि भावों का सम्बन्ध विभिन्न देवमूर्तियों से जोड़ते अवश्य हैं, पर अन्तर यह है कि जहाँ अन्य लोग अपना सारा जीवन किसी गिरजाघर की मूर्ति की भक्ति में ही बिता देते हैं और उससे आगे नहीं बढ़ते, क्योंकि उनके लिए तो धर्म का अर्थ यही है कि कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों को वे अपनी बुद्धि द्वारा स्वीकृत कर लें और अपने मानव-भाइयों की भलाई करते रहें--वहाँ एक हिन्दू की सारी धर्मभावना प्रत्यक्ष अनुभूति या साक्षात्कार में केन्द्रीभूत हुआ करती है। मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके स्वयं ईश्वर बनना है। मूर्तियाँ, मन्दिर, गिरजाघर या शास्त्र-ग्रन्थ तो धर्मजीवन की बाल्यावस्था में केवल आधार या सहायक मात्र हैं; पर उसे तो उत्तरोत्तर उन्नति ही करनी चाहिए।

साधक को कहीं पर रुकना नहीं चाहिए। वेदों का वाक्य है कि "बाह्यपूजा या मूर्ति-पूजा सबसे नीचे की अवस्था है; आगे बढ़ने का प्रयास करते समय मानसिक प्रार्थना साधना की दूसरी अवस्था है, और सबसे उच्च अवस्था तो वह है, जब परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाय।" देखो, वही अनुरागी साधक जो पहले मूर्ति के सामने झुककर पूजा-प्रणामादि में मग्न रहता था, अब ज्ञान-लाभ के पश्चात् क्या कह रहा है--"सूर्य उस परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकता, न चन्द्रमा या तारागण ही; वह विद्युत्प्रभा भी परमेश्वर को उद्भासित नहीं कर सकती, तब इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या! ये सभी उसी परमेश्वर के कारण प्रकाशित होते हैं।" वह साधक बाह्य मूर्ति-पूजा से अतीत हो चुका है,

पर अन्य धर्मावलम्बियों की तरह वह मूर्ति-पूजा को गाली नहीं देता और न उसे पाप का मूल ही बताता है। वह तो उसे जीवन की एक आवश्यक अवस्था जानकर उसको स्वीकार करता है। "बाल्य ही यौवनादि का जन्मदाता है।" तो क्या किसी वृद्ध पुरुष का अपने बचपन या युवावस्था को पाप या बुरा कहना उचित होगा ?

यदि कोई मनुष्य अपने ब्रह्मभाव को मूर्ति के सहारे अधिक सरलता से अनुभव कर सकता है, तो क्या उसे पाप कहना ठीक होगा ? और जब वह उस अवस्था के परे पहुँच गया है, तब भी उसके लिए मूर्ति-पूजा को भ्रमात्मक कहना उचित नहीं है। हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य असत्य से सत्य को नहीं जा रहा है, वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्न श्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर हो रहा है। हिन्दू के मतानुसार क्षुद्र अज्ञानी के धर्म से लेकर वेदान्त के अद्वैतवाद तक जितने धर्म हैं, वे सभी अपने-अपने जन्म तथा अवस्था-भेद के अनुसार उस अनन्त ब्रह्म के ज्ञान तथा उपलब्धि के उपाय हैं और ये उपाय उन्नति की सीढ़ियाँ हैं। प्रत्येक जीव उस युवा गरुड़ पक्षी के समान है, जो धीरे-धीरे ऊँचा उड़ता हुआ तथा अधिकाधिक शक्ति सम्पादन करता हुआ अन्त में उस प्रकाशमय सूर्य तक पहुँच जाता है।

विभिन्नता में एकता--यही तो प्रकृति की रचना है और हिन्दुओं ने इसे भली भाँति पहचाना है। अन्य धर्मों में कुछ निर्दिष्ट मतवाद विधिबद्ध कर दिये गये हैं और सारे समाज को उन्हें मानना अनिवार्य कर दिया जाता है। वे तो समाज के सामने केवल एक ही नाप की कमीज रख देते हैं, जो राम, श्याम, हरि सबके शरीर में जबरदस्ती ठीक होनी चाहिए। और यदि वह कमीज राम या श्याम के शरीर में ठीक नहीं बैठती, तो उसे बिना कमीज के ही नंगे बदन रहना होगा। हिन्दुओं ने यह जान लिया है कि निरपेक्ष ब्रह्मतत्त्व की उपलब्धि, धारणा या प्रकाश केवल सापेक्ष के सहारे ही हो सकता है, और मूर्तियाँ, क्रॉस या चाँद तो केवल आध्यात्मिक उन्नति के सहायक-रूप हैं। वे मानों बहुत सी खूँटियाँ हैं, जिनमें धार्मिक भावनाएँ अटकायी जाती हैं। ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक के लिए इन साधनों की आवश्यकता हो, पर बहुतों के लिए तो ये आवश्यक हुआ ही करते हैं; और जिनको अपने लिए इन साधनों की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती, उन्हें यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि इन साधनों का आश्रय लेना अनुचित है।

यहाँ एक बात बतला देना आवश्यक है कि भारतवर्ष में मूर्ति-पूजा कोई भयावह या जघन्य बात नहीं है, वह व्यभिचार की जननी नहीं है, वरन वह तो अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है। अवश्य, हिन्दुओं के बहुतेरे दोष हैं; पर यह ध्यान रखिए कि उनके वे दोष अपने शरीर को दण्ड देने तक ही सीमित हैं, वे कभी भी अन्य धर्मावलम्बियों का गला काटने नहीं जाते। एक धर्मान्ध हिन्दू भले ही चित पर अपने आपको जला डाले, पर वह विधर्मियों को जला के लिए अग्नि कभी भी प्रज्वलित नहीं करेगा, जैसा यूरोप में 'इन्क्विजिशन' (Inquisition) के जमा में ईसाइयों ने किया था ! फिर भी इस बात के लि उसका धर्म इससे अधिक दोषी नहीं समझा जा सकता जितना की डाइनों को जलाने का दोष ईसाई-धर्म प मढ़ा जा सकता है।

हिन्दू-धर्म की उदारता--अतः, हिन्दुओं की दृ में समस्त धर्म-जगत् भिन्न-भिन्न रुचिवाले स्त्री-पुरु का, विभिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में से हो हुए ईश्वर-लाभ के उस एक ही लक्ष्य की ओर यात्र करना है, अग्रसर होना है। प्रत्येक धर्म जड़भावाप मानव को ब्रह्म में परिणत करने में प्रयत्नशील और वही ईश्वर इन समस्त धर्मों का प्रेरक है। तो फि ये सब धर्म इतने परस्पर-विरोधी क्यों हैं ? हिन्दुओं क कहना है कि ये विरोध केवल आभास मात्र हैं, वास्तवि नहीं; विभिन्न अवस्थापन्न भिन्न-भिन्न प्रकृतिवा मनुष्यों को उपयोगी होने के लिए उस एक ही सत्य ने इ प्रकार परस्पर विरुद्ध भाव धारण किये हैं।

एक ही ज्योति भिन्न-भिन्न रंग के काँच में से भिन्न भिन्न रूप से प्रकट होती है। विभिन्न स्वभाववाले लोग के लिए उपयुक्त होने की दृष्टि से यह वैचित्र्य आवश्य भी है। परन्तु प्रत्येक के अन्तस्तल में--प्रत्येक धर्म उसी एक सत्य का राजत्व है। कृष्णावतार में भगवा ने हिन्दुओं को यह उपदेश दिया है, "प्रत्येक धर्म में मैं मौक्तिकमाल में सूत्र की तरह, पिरोया हुआ हूँ।" "जह भी तुम्हें मानवसृष्टि को उन्नत बनानेवाली और पाव करनेवाली अतिशय पवित्रता और असाधारण शक्ति दिखाई दे, तो जान लो कि वह मेरे तेज के अंश से उत्पन्न हुआ है।" और इस शिक्षा का परिणाम क्य हुआ है ? सारे संसार को मेरी यह चुनौती है कि व समग्र संस्कृत दर्शनशास्त्र में मुझे एक ऐसी उक्ति दिखा दे, जिसमें यह बताया गया हो कि केवल हिन्दु का ही उद्धार होगा और दूसरों का नहीं ! भगवा कृष्णद्वैपायन व्यास का वचन है, "हमारी जाति औ सम्प्रदाय की सीमा के बाहर भी पूर्णत्व को पहुँचे हु मनुष्य हैं।"

एक बात और। ऐसा प्रश्न उठ सकता है ईश्वर में ही अपने सभी भावों को केन्द्रित करनेवा हिन्दू अज्ञेयवादी बौद्ध-धर्म और निरीश्वरवादी जै धर्म पर कैसे श्रद्धा रख सकता है ? यद्यपि बौद्ध त जैनी ईश्वर पर निर्भर नहीं रहते तथापि उनके धर्म "मनुष्य में देवत्व या ईश्वरत्व का विकास" इस मह सत्य पर ही पूरा जोर दिया गया है और यही प्रत्य धर्म का भी केन्द्रस्थ सत्य है। उन्होंने जगत्पि जगदीश्वर को भले न देखा हो, पर उसके पुत्र-स्वरू

आदर्श-मनुष्य बुद्धदेव या 'जिन' को तो देखा है। और जिसने पुत्र को देख लिया, उसने पिता को भी देख लिया !

सार्वभौमिक धर्म--भाइयो ! हिन्दुओं के धार्मिक विचारों का यही संक्षिप्त विवरण है। हो सकता है कि हिन्दू अपनी सम्पूर्ण योजना के अनुसार कार्य न कर सका हो, पर यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म हो सकता है, तो वह ऐसा ही होगा, जो देश या काल से मर्यादित न हो; जो उस अनन्त भगवान् के समान ही अनन्त हो, जिस भगवान् के सम्बन्ध में वह उपदेश देता है; जिसकी ज्योति श्रीकृष्ण के भक्तों पर और ईसा के प्रेमियों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाशित होती हो; जो न तो ब्राह्मणों का हो, न बौद्धों का, न ईसाइयों का और न मुसलमानों का, वरन् इन सभी धर्मों का समष्टि-स्वरूप होते हुए भी जिसमें उन्नति का अनन्त पथ खुला रहे; जो इतना व्यापक हो कि अपनी असंख्य प्रसारित बाहुओं द्वारा सृष्टि के प्रत्येक मनुष्य का आलिंगन करे और उसे अपने हृदय में स्थान दे, चाहे वह मनुष्य हिंसक पशु से किंचित् ही उठा हुआ, अति नीच, बर्बर और जंगली ही क्यों न हो, अथवा अपने मस्तिष्क और हृदय के सद्गुणों के कारण मानव-समाज से इतना ऊँचा क्यों न उठ गया हो कि लोग उसकी मानवी प्रकृति में शंका करते हुए देवता के समान उसकी पूजा करते हों। वह विश्वधर्म ऐसा होगा कि उसमें अविश्वासियों पर अत्याचार करने या उनके प्रति असहिष्णुता प्रकट करने की नीति नहीं रहेगी; वह धर्म प्रत्येक स्त्री और पुरुष के ईश्वरीय स्वरूप को स्वीकार करेगा और उसका सम्पूर्ण बल मनुष्य-मात्र को अपनी सच्ची, ईश्वरीय प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केन्द्रित रहेगा।

आप ऐसा सार्वभौमिक उदार धर्म सामने रखिए, और सारे राष्ट्र आपके अनुयायी बन जाएँगे ! सम्राट् अशोक की धर्मसभा केवल बौद्ध धर्मियों की ही थी। अकबर बादशाह की धर्म-परिषद् अधिक उपयुक्त होती हुई भी, केवल दरबार की शोभा की ही वस्तु थी। पर 'प्रत्येक धर्म में ईश्वर है' इस बात की घोषणा दुनिया के सभी प्रदेशों में करने का भार नियति ने अमेरिका के लिए ही रख छोड़ा था।

वही परमेश्वर जो हिन्दुओं का ब्रह्म, पारसियों का अहुरमज्द, बौद्धों का बुद्ध, मुसलमानों का अल्ला, यहूदियों का जिहोवा और ईसाइयों का स्वर्गस्थ पिता है, आपको अपने उदार उद्देश्य को कार्यान्वित करने की शक्ति प्रदान करे। पूर्व-गगन में नक्षत्र उदित हुआ; कभी धुँधला और कभी देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे पश्चिम की ओर यात्रा करते-करते उसने समस्त जगत् की परिक्रमा कर डाली और अब वह पुनः पूर्व क्षितिज में सहस्रगुनी अधिक उज्ज्वलता के साथ उदित हो रहा है !

ऐ स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया,* तू धन्य है ! तूने अपने पड़ोसियों के रक्त से अपना हाथ कभी कलंकित नहीं किया, तूने अपने प्रतिवेशियों का सर्वस्व अपहरण कर सहज में ही धनी और सम्पन्न होने की चेष्टा नहीं की। अतएव तू ही सभ्य जातियों में अग्रणी होकर शान्ति-पताका फहराने की अधिकारिणी है।

---

* अमेरिका का दूसरा नाम। कोलम्बस ने इसका आविष्कार किया था, इसलिए इसका नाम कोलम्बिया पड़ा।

भारती-कण्ठाभरण (२)

संस्कृत साहित्य के अनमोल रत्न

पण्डित व्रजमोहन व्यास

भारती-वन्दना

पुष्पैरभ्यर्च्य गन्धादिभिरपि
सुभगैश्चारुहंसेन मां चे-
न्नियन्तीं मन्त्रमूर्तिं जपति मयि मतिं
न्यस्य मय्येव भक्तः।
तत्प्राप्ते वत्सरान्ते शिरसि करमसौ
यस्य कस्यापि धत्ते
सोऽपि श्लोकानकाण्डे रचयति रुचिरा-
न्कौतुकं दृश्यमस्याः॥

श्रीहर्ष-नैषधीयचरित। १४-९०

जो पुरुष मुझ हंस-वाहना की पुष्प, गन्ध, धूप आदि से पूजा करके, मेरी अनन्य भक्ति के साथ, मेरा ध्यान करते हुए, मुझ मंत्र-रूपा का जप करता है, वह एक वर्ष के बाद जिस किसीके सिर पर हाथ रख दे तो वह भी अकस्मात् सुन्दर श्लोकों की रचना करने लगता है। इसका चमत्कार देखने योग्य है।

प्रभातवर्णन

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेर्कः॥

माघ--११-४४

सूर्योदय होने ही वाला है। उसकी किरणें समुद्र के ऊपर दूर तक फैली हुई हैं। चंचल पक्षि-गण चारों ओर चहचहा रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे दिगंगनायें किरण रूपी मोटी रस्सियों के द्वारा, कोलाहल करती हुई, विशाल घट के समान सूर्य को मानों समुद्र के जल के भीतर से बाहर निकाल रही हैं।

उदयशिखरिशृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥

माघ-शिशुपालवध।११-४७

यह उदय काल का बालसूर्य उदयाचल के विस्तृत शिखरों के आँगन में रेंगता हुआ, पद्मिनियों द्वारा, कमल रूपी मुख के हास्य के साथ निरीक्षण किया हुआ, मानों पक्षियों के कलरव के द्वारा बुलाती हुई अपनी माता (आकाश) की गोद में, अपने कोमल करों (श्लेष-हाथ) के अग्र भाग को बढ़ाता हुआ, लीलापूर्वक खिलखिलाता हुआ गिर पड़ता है। रूपक अलंकार का सुन्दर उदाहरण।

क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतिमह्लाय लोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः
क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः॥

माघ--११-४८

जिस प्रकार कोई महाराज क्षण भर के लिए सिहासन पर बैठकर धरती पर अपने पैरों को रखता है और फिर अपने नतमस्तक प्रजावर्ग को आह्लादित कर अपने सम्पूर्ण राज्य का निरीक्षण करने के लिए चल पड़ता है उसी प्रकार सूर्य ने भी थोड़ी देर उदयाचलरूपी सिहासन पर बैठकर, किरणरूपी पैर धरती पर फैला दिये; उसने नमस्कार करते हुए लोगों को आह्लादित किया, फिर सम्पूर्ण धरातल को देखने की इच्छा से सिहासन से उठ खड़ा हुआ।

क्षणमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्ता-
दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा--
उपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः॥

माघ--११-६५

जिस प्रकार नायिका के पति के सामने के द्वार से आ जाने पर उसके घर से जारपति (यार) पीछे की खिड़की से निहुरकर अपने लथरते हुए वस्त्र को सम्हालता हुआ तुरन्त ही भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार दिगंगनाओं के पति, सूर्य के, जो कुछ काल के लिए प्रवास में थे, उनके सामने के द्वार से (पूर्व दिशा से) चले आने पर वह देखो चन्द्रमा जार की भाँति क्षीण-किरण (वस्त्रों को गिराता हुआ) झुककर पश्चिम दिशा के द्वार से हड़बड़ाकर भाग रहा है।

संन्यासी का गीत

(स्वामी विवेकानन्द की अंग्रेजी कविता Song of the Sannyasin का अनुवाद।)

अनु: श्रीनारायण चतुर्वेदी

(१)

जगे मन्त्र,––वह गीत कि जिसने जन्म वहाँ पर पाया है,
दूर––जहाँ जग की असारता ने न पैर फैलाया है।
शैल गफा में, सघन वनों की या छायाओं के अन्दर
जिसकी शान्ति न भंग कर सकें, धन जन विषय आदि मिलकर।
जहाँ बहा वह स्रोत ज्ञान का, सत्य और आनन्द समेत।
गाओ वही मन्त्र संन्यासिन् वीर ! धीर, आनन्द-निकेत ! ॥
ओम् तत्सत् ओम् !

(२)

तोड़ो उन जंजीरों को कि जिन्होंने तुमको बाँधा है,
चमकीला सुवर्ण ही है उनका पदार्थ या लोहा है।
छोड़ो द्वित्त सभी चीजों को, प्रेम-घृणा या बुरा-भला।
समझो दास दास है आखिर प्यार किया या कान मला।
क्योंकि बेड़ियाँ सोने की भी नहीं बाँधने में बलहीन।
उन्हें तोड़कर उच्च स्वर से संन्यासिन् तुम कहो प्रवीन––
ओम् सत्सत् ओम !

(३)

करो तिमिर को छिन्न––कपट की ज्योति जोकि ले जाती है
और अधिक अँधियारे में। जो जीवन प्यास बुझाती है
नहीं––बुझाओ उसे सदा को, वह घसीटती है तुमको
जन्म मृत्यु के चक्कर में है रही डाल वह आत्मन् को।
जिसने आत्मा अपनी की है वश में, जीता है संसार
उसने, इसे समझ संन्यासिन् वीर ! करो फिर यही पुकार––
ओम् तत्सत् ओम् !

(४)

"जिसने बोया उसे काटना पड़ता" यह कहते सब लोग,
"कारण से परिणाम, भले से भला, बुरे से बुरा कुयोग।
कोई भी न नियम से बचता, जिसने पाया है आकार
उसे शृंखला में बँधना है"––सच यह कहता है संसार।
किन्तु परे आकार नाम से है आत्मन् जो सदा स्वतंत्र,
तुम हो वही वस्तु संन्यासिन् ! गाओ अतः पुरातन मंत्र––
ओम् तत्सत् ओम् !

(५)

'माता', 'पिता', 'पुत्र', 'वनिता' या 'मित्र' आदि जग के प्रानी,
जो ये मिथ्या स्वप्न देखता उसने सच न बात जानी।
लिंग-हीन तो है आत्मन्–वह किसका पिता ? पुत्र किसका ?
किसका शत्रु, मित्र किसका ?–जब जग सारा ही है उसका ?
आत्मा सर्वे-सर्वा है––है जग में और न दूजी वस्तु।
तुम हो वही वस्तु संन्यासिन् वीर ! कहो सहर्ष तुम अस्तु––
ओम् तत्सत् ओम !

(६)

बस केवल है एक विज्ञ, स्वाधीन आत्मा जग जाया
नाम-हीन, आकार-हीन, रंगरूपहीन––जिसमें माया
देखा करती है सब सपने––वही साक्षी, प्रकृति वही।
तुम भी वही आत्मन् हो, है संन्यासिन् ! यह बात सही––
ओम् तत्सत् ओम् !

(७)

कहाँ ढूँढ़ते वह स्वतंत्रता ? मित्र ! न वह है इस जग में,
उस जग में नहिं, व्यर्थ न ढूँढ़ो मन्दिर में या पुस्तक में।
तुम्हीं स्वयं वह पकड़े रस्सी जो कि खींचती है तुमको।
सो, छोड़ो दुख तथा उसे, संन्यासिन् वीर ! कहो इसको--
ओम् तत्सत् ओम् !

(८)

"होवे सबको शान्ति" कहो यह "मुझसे हो अपकार नहीं
किसी वस्तु जीवित का। मैं हूँ उनमें रहते जो कि यहीं।
उनमें भी मैं वही आत्मा जो कि रेंगते धीरे हैं।
मैंने त्याग किए सब जीवन जोकि दूर या नीरे हैं।
स्वर्ग, नर्क, पृथ्वी, आशाएँ, भय भी मैंने हैं त्यागे।"
यों काटो शृंखला वीर संन्यासिन् ! कहो कि बढ़ आगे--
ओम् तत्सत् ओम् !

(९)

अतः न कुछ परवाह करो, यह देह किस तरह रहती है।
इसका काम हो चुका जग में, कर्म-फलाफल चखती है।
पद-प्रहार क्यों करै न इस पर कोई, क्यों न चढ़ावै फूल
कोई, कहो न कुछ तुम उससे क्योंकि अनादर है निर्मूल
वहाँ--जहाँ अपमानित औ अपमानक है इक व्यक्ति वही।
शान्त अतः तुम रहो वीर संन्यासिन् ! फिर से कहो यही--
ओम् तत्सत् ओम् !

(१०)

वहाँ कदापि हो नहीं सकता, सत्य ज्योति का विमल प्रकाश
जहाँ लोभ, यश, विषय, कामना, हानि, लाभ का रहै निवास।
वह न कभी ज्ञानी हो सकता पत्नी समझे जो नारी,
या वह जो बनता है जग में छोटा भी सम्पतिधारी।
माया से वह छूट न सकता बँधा क्रोध से नर बिन धीर।
अतः छोड़ दो इन सबको, तुम कहो यही संन्यासिन् वीर !
ओम् तत्सत् ओम् !

(११)

तुम मत घर में रहो ! कौनसा घर उपयुक्त तुम्हारा है ?
छत अकाश, है घास बिछौना, मिले जु सो आहारा है--
ठीक या कि बेठीक बना। वह क्या प्रभाव कर सकता है
उस आत्मा पर कुछ भी भोजन जो निज रूप समझता है ?
बहते नद के सदृश रहो तुम, सदा मत्त बहते जाओ।
संन्यासिन् वरवीर ! और उच्चस्वर से यह स्वर गाओ--
ओम् तत्सत् ओम् !

(१२)

सत्य जानते थोड़े नर हैं। शेष घृणा से देखेंगे
तुमको महापुरुष ! हँस तुम पर जी छोटा कर देवेंगे।
किन्तु ध्यान मत देना उन पर। घूमो जगह-जगह स्वच्छन्द;
और शीघ्र ही नष्ट करो तम, काटो उनका माया फन्द।
करो न सुख की कभी कामना और न दुख से घबराओ।
परे रहो दोनों से तुम, संन्यासिन् वीर ! यही गाओ--
ओम् तत्सत् ओम् !

(१३)

योंही जब तक कर्म न मिटकर आत्मा को कर देय स्वतन्त्र।
तब न जन्म है, "मैं" या "तू" है, न तो ईश या नर परतन्त्र॥
"मैं" सर्व-सर्वा हो जावे, "सब" होवै "मैं" मयआनंद।
समझो तुम हो संन्यासिन् वह वीर ! कहो फिर से सानंद--
ओम् तत्सत् ओम् !

समुद्रगुप्त का वास्तविक उत्तराधिकारी—रामगुप्त

श्री सत्यव्रत 'तृषित'

प्राचीन भारतीय इतिहास के कतिपय युग एवं घटनाएँ आज भी अनिश्चितता के गहन तिमिर से आवृत हैं। विगत एवं वर्तमान शतियों में पाश्चात्य तथा भारतीय पुरातत्त्वज्ञों एवं इतिहासवेत्ताओं के अथक उद्योग एवं अनवरत शोधों से जो नूतन सामग्री आलोक में आई है, सौभाग्यवश, उससे प्राचीन भारत की राजनीतिक गतिविधियों और बहुमुखी प्रगति का भव्य एवं यथातथ्य ज्ञान हुआ, अनेक भ्रान्तियों का निरसन हुआ तथा वर्त्तमान शोधकों को अभिनव दृष्टि मिली। गुप्तकाल हिन्दू साम्राज्य का उत्कर्ष था, इतिहास की स्वर्णवेला। गुप्तवंश के ऊर्जस्वी सम्राटों ने 'धरणीबन्ध' का स्तुत्य कार्य किया। इन रसिक एवं उदार नरेशों का प्रश्रय पाकर साहित्य, कला एवं धार्मिक सहिष्णुता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। तत्कालीन कलात्मक रचनाओं ने यशस्वी गुप्त सम्राटों के गौरव को अमरत्व प्रदान कर दिया है। गुप्तयुग में वास्तु, चित्र, मूर्तिकला आदि कला की विभिन्न विधाओं ने अपूर्व प्रौढ़ता प्राप्त की। स्वयं महाराजाधिराज समुद्रगुप्त विचक्षण मेधावी, विदग्ध कवि तथा उत्कृष्ट वीणावादक थे*। किन्तु समुद्रगुप्त के पश्चात् उनका उत्तराधिकारी कौन हुआ, यह प्रश्न आज भी इतिहास के शोधकों से आँखमिचौनी खेल रहा है।

सामान्यतः विद्वज्जन चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को समुद्रगुप्त का प्रथम उत्तराधिकारी मानते चले आ रहे हैं। डॉ० हेमचन्द्र राय चौधुरी के शब्दों में "समुद्रगुप्त का अन्तिम महत्त्वपूर्ण कार्य अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करना था। इस भार को वहन करने के लिए उन्होंने दत्तदेवी से प्रसूत अपने पुत्र चन्द्रगुप्त को नियुक्त किया।" चन्द्रगुप्त के नाम के साथ प्रयुक्त 'तत्पादानुध्यात'† विशेषण से, आपाततः यह धारणा पुष्ट भी होती है। किन्तु विशाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्त' के उपलब्ध खण्डित अंश तथा चन्द्रगुप्त का मथुरा-स्तम्भलेख, इस समस्या पर अभिनव दृष्टि से विचार करने को विवश कर देते हैं।

दुर्भाग्यवश समुद्रगुप्त के एकमात्र प्रामाणिक अभिलेख——प्रयाग प्रशस्ति——में किसी तिथि का निर्देश नहीं हुआ, जिससे उनके शासनकाल की अवधि आदि का अनुमान किया जा सकता। डॉ० विन्सेंट स्मिथ तथा राय चौधुरी ने समुद्रगुप्त के राज्य का अवसान ३७५ ई० में माना है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन का प्रारम्भ ६१ गुप्त संवत् अर्थात् ३८० ई० से हुआ प्रतीत होता है।* इस प्रकार समुद्रगुप्त की मृत्यु एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्ध प्रथम तिथि के बीच पाँच वर्ष की निश्चित अवधि है। अवश्य ही इस अवधि में किसी शासक की सत्ता रही होगी क्योंकि पाँच वर्ष तक सिंहासन खाली रहने की कल्पना करना ही सर्वथा वृथा होगा। अब ऐसा प्रतीत होता है कि वह शासक रामगुप्त था। अद्यतनीय शोधों से प्रमाणित होता है कि समुद्रगुप्त का प्रथम उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य नहीं, प्रत्युत उनका अग्रज रामगुप्त था! 'देवीचन्द्रगुप्त' के साक्ष्य के अनुसार रामगुप्त को सिंहासनासीन होते ही शक्तिशाली शकाधिपति से जूझना पड़ा था। रामगुप्त ऐसा परास्त हुआ कि उससे त्राण पाने के लिए अपनी पत्नी को शत्रु को समर्पित करने तक को तैयार हो गया। प्रतीत होता है कि शकाधिपति ने रामगुप्त की विधिवत् परिणीता पत्नी को हथियाना चाहा, और कायर रामगुप्त जब शत्रु को स्त्री देने पर उद्यत हो गया तब उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त आगे आये। उसने स्वयं कामिनी के

---

* निशितविदग्धमतिगान्धर्व्वललितैर्व्रीडितत्रिदशतिगुरुतुम्बरुनारदादेर्व्विद्वज्जनोपजीव्यानेककाव्यक्रियाभितिष्ठितक विराजशब्दस्य।........(समुद्रगुप्त की याग प्रशस्ति)

† खिए——प्रभावती गुप्ता का ऋद्धपुर दानपत्र ख।

* द्रष्टव्य——चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरास्तम्भ अभिलेख——महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य विजयराज्ये संवत्सरे गुप्तकालानुवर्त्तमान-संवत्सरे एकषष्ठे ६०+१.. डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार का पाठ——संवत्सरे पंचमे कालानुवर्त्तमानसंवत्सरे—भ्रष्ट होने से त्याज्य है।

कपटवेष में शत्रु का वध करके कुल की लाज बचायी। रामगुप्त की पराजय एवं कायरता की परिणति प्रजाव्यापी क्षोभ एवं पत्नी ध्रुवदेवी से सम्बन्ध-विच्छेद में हुई प्रतीत होती है। ध्रुवदेवी अपने पति की कायरता से ऊब चुकी थी। आश्चर्य नहीं कि यदि इस स्थिति में उसके हृदय में अपने देवर युवा चन्द्रगुप्त के प्रति, जिसने प्राणपण से उसके सतीत्व की रक्षा की थी, प्रेम भावना का उद्रेक हो गया हो। इसके पश्चात् अन्तःपुर में षड्यंत्र तक चले होंगे, और अन्त में चन्द्रगुप्त ने ऊबकर अपने अग्रज का भी अन्त कर दिया और उसकी पत्नी से स्वयं विवाह कर लिया। इस प्रकार भ्रातृजाया अब उसकी जाया बन गयी। नाटक के नायक चन्द्रगुप्त एवं गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की अभिन्नता इसीसे प्रमाणित हो जाती है कि 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक में ध्रुवदेवी का रामगुप्त की पत्नी के रूप में उल्लेख हुआ है जब कि गुप्तकालीन अभिलेखों में ध्रुवदेवी अथवा ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त द्वितीय की महादेवी है। यह कोई कपोलकल्पित बात नहीं, बल्कि विशुद्ध इतिहास की यथार्थ घटना है, जिसकी पुष्टि परवर्ती साहित्य, इतिहास एवं शिलालेखों से होती है।

महाराज हर्ष के सभापण्डित बाण ने पहिले पहल इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत किया है। उनका कथन है—अरिपुरे च परकलत्र कामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपतिमसातयत्*। बाण शकपति के आक्रमण तथा कामिनी वेष में शूरवीर चन्द्रगुप्त के हाथों उसके वध की ऐतिहासिक घटना से सर्वथा परिचित थे। हर्षचरित के टीकाकार शंकरार्य ने इस सूत्रात्मक वाक्य की जो विशद व्याख्या की है, वह 'देवीचन्द्रगुप्त' के कथानक से पूर्णतः संगत बैठती है—"शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानश्चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन व्यापादितः।" (चन्द्रगुप्त ने भ्रातृजाया की कामना करनेवाले शकाधिपति को, स्त्रीवेषधारी अन्य जनों के सहयोग से, स्वयं ध्रुवदेवी का छद्मवेश धारण करके मार दिया था।)

लगभग यही विवरण फारसी के एक ऐतिहासिक ग्रन्थ 'मजमल-उत्-तवारीख' में उपलब्ध होता है- "रासल कफन्द का पौत्र और अयन्द का पुत्र था। रव्वा के सिंहासन पर बैठने से पहले वह खदेड़ दिया गया था उसके पुत्र ने रव्वाल पर चढ़ाई की, रव्वाल ने भाग अपने भाई तथा सामन्तों के साथ ऊँची पहाड़ी पर शर ली जहाँ पहले से ही एक दृढ़ दुर्ग बना था। वहाँ लोगों ने अपने को सुरक्षित समझ लिया था, पर कि प्रकार शत्रु वहाँ भी पहुँच गया और अधिकार जमा ही चाहता था कि रव्वाल की ओर से सन्धि का प्रस्ता हुआ। उसने रव्वाल की पत्नी तथा सामन्त पुत्रियाँ माँगी रव्वाल व्यथित हो ऐसा करने को तत्पर हो ही रहा कि उसका भाई 'बरकामरिस' आ पहुँचा और प्रणा कर प्रार्थना की कि एक ही पिता के पुत्र होने के ना यदि उसकी कुछ सुनी जाय तो ठीक है। युवा समझ उसकी उपेक्षा न की जाये। जब बात सामने आई प्रस्ताव हुआ कि उसे स्त्रीवेष में अन्य सामन्त कुमारों साथ शत्रु-स्कन्धावार में जाने दिया जाय। वह आक्रम करके शत्रु को मार देगा। रव्वाल प्रसन्नतापूर्वक उसकी सम्मति में आ गया। परिणाम यह हुआ कि शत्रु एक भी सवार जीता न बचा। वह वहीं मार डाल गया और उसे पहाड़ से नीचे फेंक दिया गया। सभी नष्ट हो गये और रव्वाल की शक्ति बढ़ गयी। तदनन्त रव्वाल ने 'बरकामरिस' को जो पागल होने का बहान करने लगा था, मारने का प्रयास किया। एक दि रव्वाल अपनी पत्नी के साथ बैठा था। बरकामरिस भिखारी के रूप में उनसे गन्ना तथा उसे छीलने के लि चाकू माँगा। चाकू मिलते ही वह रव्वाल पर टूट प और उसका वध करके ही विश्राम लिया*।"

यहाँ 'बरकामरिस' स्पष्टतः विक्रमादित्य (च गुप्त द्वितीय) है, और 'रव्वाल' 'रामगुप्त' का फार रूपान्तर। 'मजमल-उत्-तवारीख' के इस प्रसंग प्राचीन भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण किन्तु विस्म घटना को केवल सँजो कर ही नहीं रखा है, प्रत्युत 'देवी

---

* हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास।

* द्रष्टव्य Sir H. M. Eliot : Th History of India प्रथम भाग पृष्ठ ११ पण्डि चन्द्रबली पाण्डे कृत 'कालिदास' के पृष्ठ ५६४-६ से उद्धृत।

चन्द्रगुप्त' के खण्डित इतिवृत्त को स्पष्ट करने में भी सहायता दी है।

रामगुप्त पर शत्रु के आक्रमण तथा युवा चन्द्रगुप्त द्वारा उस शत्रु एवं अपने 'क्लीव' अग्रज के वध एवं उसकी विधवा से विवाह करने की घटना का प्राचीन भारत में इतना व्यापक प्रचार था कि इसकी प्रतिध्वनि परवर्ती शिलालेखों तक में गूँजती सुनाई देती है। इसीको लक्ष्य कर उसकी कीर्त्ति पर पानी फेरते हुए अमोघवर्ष के चारण ने कहा है––

हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो
लक्षं कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।
येनात्याजि तनुः स्वराज्यमसकृद् बाह्यार्थकैः का कथा
ह्रीस्तयोन्नतिराष्ट्रकूटतिलको दातेत कीर्त्यामपि॥

(सञ्जन दानपत्र लेख)

भ्रातृवध करके अपनी भ्रातृजाया को जाया बनानेवाला एकमात्र व्यक्ति 'गुप्तान्वय' में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था। उसकी उदारता एवं दानशीलता के साखी भारतीय साहित्य एवं गुप्तकालीन अभिलेख हैं।

राष्ट्रकूटनरेश गोविन्द चतुर्थ के दानपत्रों में भी इस परम्परागत ऐतिहासिक तथ्य का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, जो 'देवीचन्द्रगुप्त', मजमल-उत्-तवारीख तथा सञ्जन-दानपत्र के वृत्त को और भी दृढ़ता प्रदान करता है। गोविन्द के चारण का दावा है कि उसका स्वामी केवल मात्र उदारता एवं वदान्यता की दृष्टि से ही 'साहसांक' के समान है, 'बन्धुस्त्रीगमनादि' कुचरितों से उसकी कोई समानता नहीं––

सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजे क्रूरता
बन्धुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं ना यशः।
शौचाशौचपराङ्मुखं न च भिया पैशाच्यमंगीकृतं
त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसांकोऽभवत्॥

'साहसांक' का सम्बन्ध 'विक्रमादित्य' से ही प्रतीत होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का 'विक्रमादित्य' विरुद तो उनकी स्वर्ण-मुद्राओं पर उपलब्ध होता ही है, 'साहसांक' उनका दूसरा बिरुद रहा होगा। राजशेखर ने 'साहसांक' का विद्वानों के आश्रयदाता के रूप में उल्लेख किया है। चन्द्रगुप्त का विद्या एवं विद्वत्प्रेम प्रख्यात है।

इस प्रकार रामगुप्त की ऐतिहासिक सत्ता में रंचमात्र सन्देह नहीं रह जाता। समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते रामगुप्त सिंहासन पर बैठा, किन्तु उसकी कायरता से क्षुब्ध होकर उसके प्रतापी अनुज युवा चन्द्रगुप्त ने उसका वध करना ही साम्राज्य एवं देश के लिए हितकर समझा। तदनन्तर उसने शासनसूत्र स्वयं अपने हाथों में लिया तथा राज्य का संचालन बड़ी पटुता से किया।

निस्सन्देह रामगुप्त का उल्लेख गुप्तकालीन शिलालेखों में नहीं हुआ। उसकी राजमुद्राओं का भी नितान्त अभाव है। किन्तु स्मरणीय है कि सिंहासनासीन होते ही रामगुप्त को नृशंस आक्रान्ता से लोहा लेना पड़ा था जो उसके जीवन एवं शासन के नाटक का अन्तिम पटाक्षेप सिद्ध हुआ। इस संक्षुब्ध राजनीतिक वातावरण तथा पाँच वर्ष की स्वल्प अवधि में उसे मुद्रा-निर्माण एवं शिलालेख उत्कीर्ण कराने का अवसर ही कहाँ मिला होगा? ऐसे अयोग्य शासक को यदि परवर्ती गौरवशाली गुप्तसम्राटों ने अपने अभिलेखों से बहिष्कृत किया है, तो आश्चर्य क्या? वस्तुतः रामगुप्त की कायरता ने सुगठित साम्राज्य की सुदृढ़ जड़ें हिला दी थीं। समुद्रगुप्त ने अपनी राजनीतिक प्रतिभा एवं भुजबल से जिन उद्धत शत्रुओं का सायास दमन किया था, उन्होंने अवसर पाते ही विद्रोह कर दिया। विघटनकारी प्रवृत्तियाँ भारत के लिए सदैव अभिशाप रही ही हैं। परिणाम यह हुआ कि चन्द्रगुप्त को गाढ़े समय से गुजरना पड़ा और पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सभी दिशाओं में सुगठित प्रतिद्वन्द्वियों से लोहा लेना पड़ा,* तब कहीं गुप्त साम्राज्य की लड़खड़ाती नींव दृढ़ बन सकी। यह 'स्वभुजार्जितं राज्यम्'† नहीं तो क्या था?

अन्त में रामगुप्त के बर्बर शत्रु के विषय में भी जान लेना अप्रासंगिक न होगा, जिसने 'पृथिव्यामप्रतिरथः'

---

*देखिए––चन्द्रगुप्त द्वितीय का मेहरौली स्तम्भ लेख––

यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्
वंगेष्वाहववर्त्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता बाह्लीकाः
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्यानिलैर्द्दक्षिणः।

† वही-तृतीय पद्य।

(भूतल के अनुपम योद्धा) के उत्तराधिकारी आत्मज की धर्मदारा को पत्नीरूप में पाने तक की दुश्चेष्टा की थी। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि समुद्रगुप्त की देशव्यापी विजयों के उपरान्त भी उसके ही शासन की सन्ध्या में गुप्त श्री का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया था, और शत्रु अवसर की ताक में थे। बाण भोज, मजमल-उत्-तवारीख के अनुसार वह शत्रु शकाधिपति था। राजशेखर ने, जो रामगुप्त के प्रसंग से पूर्णतः अभिज्ञ हैं, उसे खसाधिपति* कहा है। खसाधिपति शकाधिपति का ही भ्रष्ट प्रतीत होता है। मजमल-उत्-तवारीख में 'रव्वाल' शत्रु रासल को (फन्द 'केडेफसिस) का पौत्र तथा अय (वीमा) का पुत्र कहा गया है। सम्भवतः वह कनि का कोई वंशज रहा होगा। कदाचित् वह दैवपुत्र शाह नुशाही से, जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रश में हुआ है, भिन्न नहीं। रामगुप्त की दुर्बलता से उत्स हित होकर उसने अपने विक्षत वैभव को पुनः प्राप्त क की ठानी होगी, किन्तु राज्य के साथ प्राणों से भी हा धो बैठा।

---

*दत्त्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीं
यस्मात् खण्डितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः।
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणत्क्वणात्किन्नरे
गीयन्ते तव कार्त्तिकेयनगरस्त्रीणां गणैः कीर्त्तयः॥
(काव्यमीमांसा)

डॉक्टर देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर के अनुसा रामगुप्त के स्थान पर शर्मगुप्त लिपिकार के प्रमाद कारण है।

* * *

दावा

प्रो० शिवाधार पाण्डेय

दावा है सागर को नदी, नद, नारन पर,
दावा है जनता को जैसे गणराज पर;
दावा है लच्छमी को अग जग भँडारन पै,
दावा ज्यों पाइलट को उड़न जहाज पर;
दावा गरुड़ध्वज को चौदहों भुवन पर,
दावा त्रिपुरारी को जैसे जमराज पर;
दावा अधिकारी को जैसे अधिकार पै है
दावा है भारत को तैसे हिमराज पर!

* * *

इलाहाबाद म्युंनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (३)

पण्डित व्रजमोहन व्यास

लड़की-लड़कों के विवाह एवं शिक्षा की समस्या

इलाहाबाद में पचास वर्ष पहिले यह ऐसी जटिल समस्या न थी जैसी आज कल है। साधारण श्रेणी के माता-पिता लड़के को मोहल्ले की किसी पाठशाला में बिठा देते थे या किसी स्कूल में भरती करा देते थे और सोलह वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते उसका विवाह कर देते थे, चाहे वह किसी भी दर्जे में पढ़ रहा हो। इसके आगे उसके भाग्य की बात थी। इतना वे अवश्य ख्याल रखते थे कि अपने लड़के के लिए बिरादरी में, जहाँ तक हो सके, किसी भले घर की लड़की लाना। भला घर उनकी समझ में वही है जहाँ की लड़कियाँ चुर जायँ पर उफ़ न करें। सवाल-जवाब न करें। उनके ख्याल से——

क्या गनीमत नहीं ये आज़ादी।
साँस लेते हैं, बात करते हैं।।

लड़की के माता-पिता का एक सिद्धान्त था। लड़की का बाल-विवाह करना और उसे न पढ़ाना और यदि पढ़ाने का शौक चर्राया और उसकी माता यदि थोड़ा-बहुत पढ़ी-लिखी हुई तो वह अपनी लड़की को केवल इतना पढ़ा देती थीं कि वह भले-बुरे हनुमानचालीसा पढ़ सके और ससुराल में गाढ़े के समय मायके खबर भेज सके। परन्तु इसकी, आवश्यकता नहीं पड़ती थी क्योंकि प्रायः शहर ही में विवाह होता था। लड़की के माता-पिता इस बात का बहुत ख्याल रखते थे कि लड़की की अभिलाषाओं की परिधि बहुत सीमित रहे। न जाने कैसा घर मिले, न जाने कैसा बर मिले। वर को ढूँढ़ने में लड़की के माता-पिता इस बात पर अधिक जोर देते थे कि लड़की के भावी श्वशुर का घराना ऐसा है कि नहीं कि उनकी लड़की के मुँह में रूखा-सूखा चारा पड़ जाय। लड़के की योग्यता का स्थान सदा गौण ही रहता था। और यदि वह एंट्रेंस पास हुआ तो उनको बड़ा सन्तोष होता था, चाहे नौकरी तलाश करने के लिए दफ्तरों की देहरी पर नाक रगड़ते-रगड़ते उसकी उम्र खत्म हो जाय। उनका यह ख्याल था कि एंट्रेंस पास कर लेना ही बहुत बड़ी चीज है, भगवान् ने चाहा तो उनकी लड़की सुखी रहेगी। और सुख की परिभाषा में वे युधिष्ठिर से सहमत थे——

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो नरः।
अऋणी चाप्रवासी च स पृथिव्यां सुखी नरः।।

महाभारत।

(दिन के आठवें पहर भी यदि मनुष्य को साक-पात खाने को मिल जाय, ऋण न हो और परदेस में न रहना पड़े तो वह सुखी है।) ससुराल जाने के समय लड़की को दो-चार ऐसे नुसखे बता दिये जाते थे कि सनद रहें और वक्त-जरूरत काम आवें। एक तो उपर्युक्त युधिष्ठिर वाला। दूसरे कवि कुमारदास वाला——

स्त्रियो न पुंसामुदयस्य साधनं
त एव तद्धामविभूतिहेतवः।
तडिद्वियुक्तोपि घनः प्रजृम्भते
विना न मेघं विलसन्ति विद्युतः।।

जानकीहरण। ९-५

(स्त्रियाँ, पुरुषों के अभ्युदय की साधन नहीं होतीं, बल्कि पुरुष ही उनके तेज एवं वैभव के कारण होते हैं। उदाहरणार्थ, बिना बिजली के भी बादल गरजता है, परन्तु बिना बादल के बिजली नहीं चमकती।)

और सब के ऊपर कालिदास वाला——

भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

(कण्व शकुन्तला से कहते हैं कि बेटी! पति तुम्हारा तिरस्कार भी करे तो उनपर क्रोध न करना)

पति चाहे दुश्चरित्र हो अथवा मदिरा पिये, पर पत्नी उसे देवता समझे और यदि भैरव समझे तो क्या कहना है! इससे उसे बहुत रात बीते घर लौटने में कोई चिन्ता नहीं रहती थी। क्योंकि पत्नी बेचारी उसके उग्र स्वभाव के कारण इतनी सहमी रहती थी कि चुप रहने ही में वह अपनी खैरियत समझती थी। परन्तु यदि पतिदेव किसी 'शरीफ़ बदमाश' घराने का हुआ तो और जो चाहे हो, उसे नित्य नियम से सन्ध्योपासन करना, मस्तक में चन्दन लगाना, दिन में अपने व्यवसाय में लिप्त रहना और कभी को पत्नी के लिए बिना माँगे एक आध साड़ी ला देना। और रात को १० बजे के भीतर-भीतर घर चले आना। यह कार्यक्रम इतना बड़ा दुर्भेद्य 'Smoke Screen' धूम्रपट था जिसके पार, पतिदेव के

कुकृत्यों की परछाईं भी देख पाना, चूल्हा फूंकते-फूंकते जिसकी आँखों की ज्योति मन्द हो गयी है ऐसी एक भले घर की मरी-चुरी लड़की के लिए नितान्त असम्भव था। और यदि कभी पतिदेव की किसी भूल के कारण तनिक सी परछाईं देख भी पड़ गयी तो उन्हें इतना तो इतमीनान रहता था कि वे पतिदेव हैं और उनकी पत्नी एक भले घर की लड़की है। मैं यह मानता हूँ कि ये गये-बीते घरों की बातें हैं, परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो एक सम्भ्रान्त परिवार का भी वातावरण, दुश्चरित्रता को छोड़कर, इसीसे कुछ मिलता-जुलता था। पति के विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त के आगे पत्नी का स्थान गौण ही रहता था। और वह उसीमें निहाल रहती थी।

ऐसे वातावरण में किसी भी 'भले घर' की लड़की को मानसिक दुःख हो ही कैसे सकता है। अब रही शारीरिक दुःख की बात। वह एक गौण चीज है। वह क्या बिगाड़ लेगी? यही न कि घुल-घुलकर मर जाना होगा? फिर भी यह तो सन्तोष रहेगा कि सोहागिन मरने पर स्वर्ग में जाती है, सतीजी उसका दर्शन करने आती हैं। चलिये किस्सा खत्म हुआ।

मैं यह नहीं कहता कि इलाहाबाद का उन दिनों का यह वातावरण अच्छा था या बुरा। पर दिक्कत तो यह आ पड़ी है कि अब वातावरण बिलकुल बदल रहा है। चारों ओर स्वतंत्रता और 'स्त्री पुंवच्च' (स्त्री और पुरुष समान हैं) के नारे लग रहे हैं। लड़कियाँ 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति' की अन्त्येष्टि क्रिया करने पर तुली हुई हैं। 'एक तो तितलौकी दूसरे चढ़ी नीम'। इसी अवसर पर स्वदेशी प्रदर्शिनी, सिनेमा आदि आ धमके। आँख के सामने से परदा हट गया। मेरे पैत्रिक मकान से संलग्न गेंगुवा तेली की दूकान थी। वह जब कोल्हू पेरने लगता था तो बैल की आँखों में पट्टी बाँध देता था। कारण पूछने पर बोलता "भैया, जेमे अवैया-जवैया का देख के भड़कै न"। बात पते की कही। परदे की उपयोगिता का रहस्य समझ में आ गया। इलाहाबाद की स्त्रियों की सभ्यता में इतना घोर परिवर्तन देखकर, पुरानी सभ्यता में पला हुआ घर का बुड्ढा मालिक, घर के एक कोने में बैठकर कुढ़ता रहता है। इससे अधिक वह कर ही क्या सकता है? उसको पता ही नहीं कि

समय एव करोति बलाबलं
प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।
शरदि हंसरवाः परुषीकृत-
स्वरमयूरमयूरमणीयताम् ॥

माघ—शिशुपालवध :—६-४

भावार्थ :—समय निर्बल को बलवान् कर दे है। देखो, शरद ऋतु में हंस की बोली के आगे मयू की बोली फीकी लगती है।

अगर वह दकियानूसी बुड्ढा, 'आतिश' के इस शे को जानता होता तो शायद उसे कुछ तसकीन होती—

न फेरो उससे मुँह 'आतिश' जो कुछ दरपेश आ जाये।
दिखाता है जो आँखों को मुकद्दर, देखते जाओ॥

एक बार ग्रामोफोन के निर्माता 'एडिसन' से, ए व्यक्ति ने जो हक़ीक़त से बहुत दूर थे, कहा कि क्या आ कोई ऐसी मशीन बना सकते हैं जिससे दूसरे के दि की बात का पता चल जाया करे? उन्होंने कहा कि बन तो सकता हूँ पर बनाऊँगा नहीं, क्योंकि संसार विषम हो जायगा। ईश्वर, दूरदर्शी 'एडिसन' की आत्मा क शान्ति दें, यदि लोगों के कहने में आकर वे मशीन बन डालते तो शायद ही आज कल के नवयुवकों और यु तियों का सम्बन्ध जुड़ पाता। यह कहो कि मशीन नहीं बनी इसलिए गृहस्थी की गाड़ी जैसे-तैसे चली जाती है। क्योंकि इस बदले हुए जमाने में

खुदा के फ़ज़्ल से बीबी मियाँ दोनों मुहज्ज़ब हैं।
हिजाब इनको नहीं आता, उन्हें ग़ुस्सा नहीं आता॥

अकब

संस्कृति और लोकव्यवहार

इन पचास वर्षों में इलाहाबाद की संस्कृति औ लोगों के आपस के व्यवहार में जो उलट फेर हुआ उसे थोड़े में कहूँगा।

सन् ५७ के गदर के कारण अँगरेज शासकों की दम नीति ने जनता के स्वाभिमान की रीढ़ तोड़ दी। लो ने अँगरेजों की खुशामद और उनके अनुकरण कर ही में अपनी खैरियत समझी। और फिर क्रमशः उ में गौरव का अनुभव करने लगे। आत्मविस्मृति पर काष्ठा पर पहुँच गयी। फिर तो भूतपूर्व आघातों जर्जरित इलाहाबाद की जीवन-नौका जो मन्दाकिनी

तट पर एक पुराने लंगर के सहारे बँधी हुई आनन्द के हलकोरे ले रही थी, वह उच्छृंखल होकर, बलहीन लंगर को लिये हुए, नदी के बीचो-बीच, उत्तुंग लहरों के थपेड़ों की उपेक्षा करती हुई अनन्त की ओर बह चली। और

यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते ।
एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषन्न रक्षति ॥

(जिस प्रकार मलिन वस्त्र पहिनने से मनुष्य जहाँ-तहाँ बिना झाड़े-पोंछे बैठ जाता है, उसी प्रकार जब मनुष्य के चरित्र में धब्बा लग जाता तो वह अपनी बची-खुची संस्कृति की रक्षा नहीं करता और खुलकर खेलता है।) महाकवि अकबर चौक के पास मोहल्ला 'नखास कोहना' में रहते थे। जब उन्होंने अपने ही शहर में इस इनक़िलाब के करिश्मे को देखा तो कुढ़कर तीन जोरदार शेर लिख डाले--

मुरीदे-दहर हुए वज़ा मग़रबी कर ली।
नये जनम की तमन्ना में ख़ुदकुशी कर ली ॥
नयी-नयी लग रहीं हैं आँचें, ये क़ौम बेकस पिघल रही है।
न मशरिक़ी है, न मग़रिबी है, अजीब साँचे में ढल रही है ॥
अज़ीज़ाने-वतन को देता हूँ पहिले ही से नोटिस।
चुरट और चाय की आमद है, हुक्का पान जाता है ॥

यह मैं नहीं कहता कि अपनी संस्कृति का इस तरह कुलाँच खाना अच्छा है अथवा बुरा, इसे तो भविष्य ही बतलावेगा। एक लड़के की माँ से किसी ने आकर शिकायत की कि "तोर पूत डँड़वार डाँकत है" माँ बोली "ओका डँड़वारै सिखायी।" मैं यह मानता हूँ कि ज़माना हमारे साथ नहीं चलेगा। हमीं को ज़माने के साथ चलना पड़ेगा। मैं यह भी नहीं कहता कि जो कुछ पुराना है वह सब अच्छा और जो नया है वह सब बुरा है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

कालिदास—मालविकाग्निमित्र

(पुराना होने से ही न तो सब अच्छे हो जाते हैं और नये होने से सब बुरे हो जाते हैं। समझदार लोग दोनों ही को परखकर उनमें से जो अच्छा होता है से अपना लेते हैं। परन्तु जिनमें स्वयं का विवेक नहीं होता, उन्हें जैसा लोग समझा देते हैं, उसे ही वे ठीक समझ बैठते हैं।)

लोक-व्यवहार

इसकी चर्चा के पूर्व कि इलाहाबाद के निवासियों में आपस के व्यवहार में इन पचास वर्षों में क्या परिवर्तन हुआ, मैं इस सम्बन्ध में भारतीय संस्कृति की एक झाँकी देना उचित समझता हूँ। भारतीय संस्कृति का मूलस्रोत है वेद। अब देखिये वेद क्या कहते हैं--

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा नः सुसहासति ॥

ऋग्वेद

आपके भाव समान हों, आपके हृदय समान हों, आपके मन समान हों और आप परस्पर सद्भाव से रहें।

शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः ।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥

यजुर्वेद

हमारे लिए शान्तिपूर्ण वायु बहें, हमारे लिए सूर्य का ताप शान्तिमय हो और हमारे लिए मेघ शान्तिपूर्ण वर्षा करें।

दानेनादानम् । अक्रोधेन क्रोधम् । श्रद्धयाऽश्रद्धाम् । सत्येनानृतम् । एषा गतिः । एतदमृतम् । स्वर्गच्छ । ज्योतिर्गच्छ ।

सामवेद।

दान द्वारा कृपणता पर विजय प्राप्त करो। शान्ति द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करो। श्रद्धा से अश्रद्धा पर विजय प्राप्त करो। सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करो। यही सन्मार्ग है। यही स्वर्ग है। स्वर्ग की ओर जाओ। प्रकाश की ओर जाओ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
जायापत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥

अथर्ववेद

भाई, भाई से द्वेष न करे। भगिनी, भगिनी से द्वेष न करे। पत्नी, पति से मधुर वचन बोले और सभी को शान्ति प्राप्त हो।

यह हमारी भारतीय संस्कृति थी। अब उसमें बहुत अन्तर पड़ गया है। मैं इसका विस्तार से विवेचन न करूँगा। आप खुद इलाहाबाद के गृहस्थों पर एक सर-

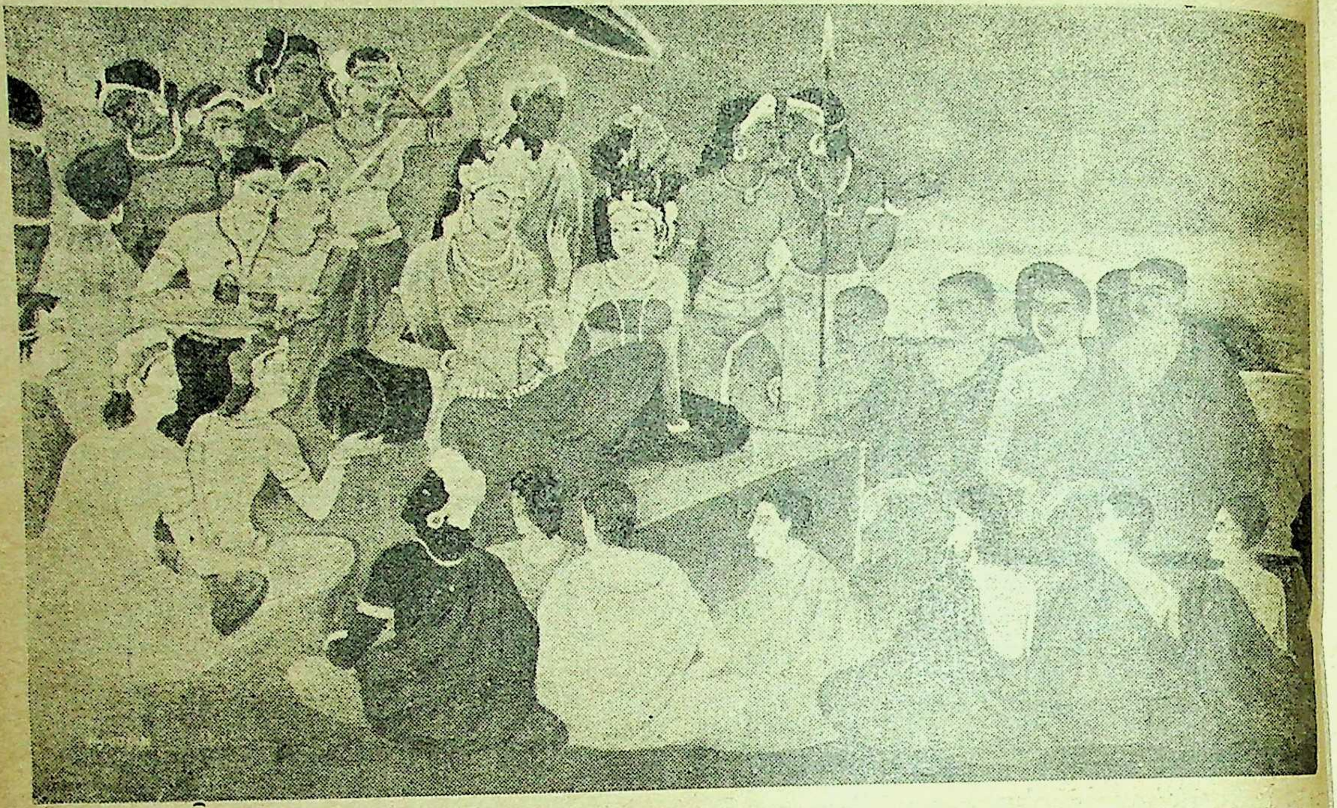

माघमेले में महाराज हर्षवर्धन और उनकी बहिन राज्यश्री—सामने चीनी यात्री हुएनसांग इत्यादि

सरी निगाह डाल लें। यदि थोड़े में कहा जाय तो वह कुछ ऐसा होगा--

इन्क़ेलाब आया तो यूँ आया निगाहे यार में।
कुछ मुरौवत में इज़ाफ़ा, कुछ मोहब्बत में कमी।।

माघमेला

बिना माघमेला के वर्णन के इलाहाबाद का चित्र अधूरा रह जायगा। अतः संक्षेप में उसे कहता हूँ। प्रथम मैं प्रयाग की धार्मिक महत्ता की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूँगा। प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है। 'स तीर्थराजो जयति प्रयागः।' ऐसी कथा है कि ब्रह्माजी ने एक बार सब तीर्थों को तराज़ू पर तौला। उन्होंने भारत के सब तीर्थों को एक पलड़े पर रखा और केवल प्रयाग को दूसरे पर। प्रयाग वाला पलड़ा बहुत भारी निकला। इस नगर का 'प्रयाग' नाम इस कारण पड़ा कि ब्रह्माजी ने सबसे अधिक संख्या में यज्ञ इसी स्थान पर किये थे। पुण्य-सलिला गंगा और यमुना एवं अदृश्या सरस्वती का संगम इसी नगर में है। बहुत प्राचीन समय से माघ के महीने में संगम पर बहुत बड़ा मेला लगता है। परन्तु प्रत्येक बारह वर्ष पर पूर्ण कुम्भ और प्रत्ये छठें वर्ष अर्ध-कुम्भ पर इस मेले का आकार-प्रका बहुत बड़ा हो जाता है। भारतवर्ष के कोने-कोने लाखों की संख्या में आबाल-वृद्ध यात्री संगम में स्ना करने के हेतु आते हैं। उन दिनों प्रयाग, महर्षि अगस्त के मुख का रूप धारण कर लेता है--

व्यपावृतद्वारमुखेन सन्ततं
बलेन भूम्ना विशता कृतध्वनिम्।
पुरीमुदन्वन्तमुदग्रनिस्वनं
तनुं पिबन्तीमिव कुम्भजन्मनः।।

कुमारदास--जानकीह

भावार्थ--लंका-विजय करके भगवान् रामच की सेना सम्पूर्ण मित्रमंडल की सेनाओं के साथ हर्षना करते हुए अयोध्या में ऐसी समा गयी जैसे कुम्भ-जन्म महर्षि अगस्त्य के मुख में विस्तीर्ण समुद्र।

यों तो यह मेला बहुत प्राचीन काल से होता चल आया है परन्तु संवत् ६०६ से महाराज हर्षवर्धन ने इ मेले की बहुत उन्नति की। वह अपनी बहिन जय-श्र के साथ बड़े समारोहपूर्वक इस मेले में आता था औ

गंगातट पर अपना सर्वस्व दान कर देता था। एक साल उनके साथ चीन का प्रसिद्ध यात्री 'हुएनसाँग' भी आया था और उसने अपने यात्रा-वृत्तान्त में इस मेले का विशद वर्णन किया है। भारतीय धर्मग्रंथों और कई पुराणों में प्रयाग का विस्तार से उल्लेख मिलता है। अब कुछ ऐतिहासिक सामग्री आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ। बौद्धकाल से लेकर मुसलमानों के आगमन काल तक प्रयाग का इतिहास कुछ-कुछ शृंखलाबद्ध मिलता है। फिर भी उसकी बहुत कुछ कड़ियाँ लुप्त-प्राय हो चुकी हैं। यह बड़ी उथल-पुथल का समय था। आये दिन राज्यों की सीमायें बनती और बिगड़ती थीं।

बौद्धकाल में यह प्रदेश जिसमें इलाहाबाद था, वत्स देश कहलाता था जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी जो इलाहाबाद से ४० मील की दूरी पर है। महाराज उदयन के किले के ध्वंसावशेष चार मील के घेरे में ५६२ एकड़ जमीन पर अब भी बिखरे पड़े हैं। १२ वर्ष से प्रयाग विश्वविद्यालय उस ध्वंसावशेष की खुदाई कर रहा है। इस खुदाई के डाइरेक्टर हैं, विश्व-विद्यालय के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर गोवर्धन राय शर्मा।

कौशाम्बी का इतिहास एक प्रकार से इलाहाबाद के इतिहास से सम्बद्ध है, क्योंकि इस प्रदेश की शृंखला कौशाम्बी से लेकर संलग्न पबोसा से झूंसी और इलाहाबाद तक अविच्छिन्न चली गयी है। इस ५६२ एकड़ भूमि पर इस समय जैन तीर्थंकर पद्मप्रभु के एक मन्दिर और धर्मशाला के, जिसका निर्माण सन् १८३४ में हुआ था, और एक अशोक की लाट के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस लाट पर कोई प्राचीन लेख नहीं है। इनके अतिरिक्त इस सम्पूर्ण विस्तृत भूमि पर ईंट के असंख्य टुकड़े बिखरे पड़े हैं और बहुत से छोटे-बड़े टीले हैं जिनके भीतर कौशाम्बी के ध्वंसावशेष दबे हुए खुदाई की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी तो उनपर खेती हो रही है। इधर १२ वर्षों में जो खुदाई हुई है उसमें जो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री मिली है उनमें दो-तीन ही का यहाँ पर संक्षेप में वर्णन करूँगा।

१——घोषिताराम जहाँ बुद्ध भगवान् आकर ठहरे थे।

२——नरमेध वेदिका——सम्पूर्ण भारत में यह एक ही उदाहरण अभी तक मिला है।

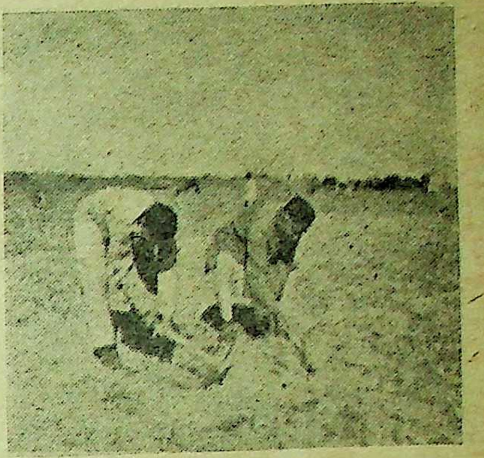

उदयन के किले की भूमि पर शर्म्माजी और व्यासजी कुदाल चला रहे हैं

'शतपथ ब्राह्मण' में नरमेध की प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख है। कौशाम्बी में जो नरमेध का उदाहरण मिला है वह शतपथ ब्राह्मण के अनुसार है। बाज के शक्ल की वेदिका, उसका आकार-प्रकार, उस वेदिका पर किन-किन जानवरों की हड्डियाँ होनी चाहिए, कोने-कोने पर प्यालों में नरमुंड और बीचो-बीच, सात ईंटों से घिरी हुई एक ईंट, जिसे असाढ़ा कहते हैं, रहती थी। इस ईंट को महाराज्ञी पकाती थी और इसीपर 'नरमेध' किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित उपर्युक्त चीजें इस वेदिका पर पायी गयी हैं। यह नरमेध किले के एक प्रवेश द्वार से संलग्न भूमि पर हुआ था जिसके प्राचीर की चौड़ाई २०० फुट है।

उदयन का किला

भगवान् जिसे देना चाहता है, छप्पड़ फाड़कर देता है। मैंने प्रोफेसर गोवर्धन राय शर्मा का उपनाम 'कठफोड़वा' (wood-pecker) रखा है। जिस प्रकार 'कठफोड़वा' अपनी टोंट से वृक्ष के मोटे तने को ठोंक-ठोंककर जान जाता है कि उसके भीतर छिपा हुआ कीड़ा है या नहीं, उसी प्रकार शर्माजी ठोंक-बजाकर जान लेते हैं कि कहाँ खुदाई करने से महत्त्व की सामग्री प्राप्त होगी। आपस में परामर्श कर शर्माजी ने और मैंने पहिली कुदाल साथ-साथ इस स्थान पर चलायी। दो वर्षों के अथक परिश्रम से इस किले के नीचे का हिस्सा निकल आया। एक ओर ४०० फुट लम्बी और अट्ठा-

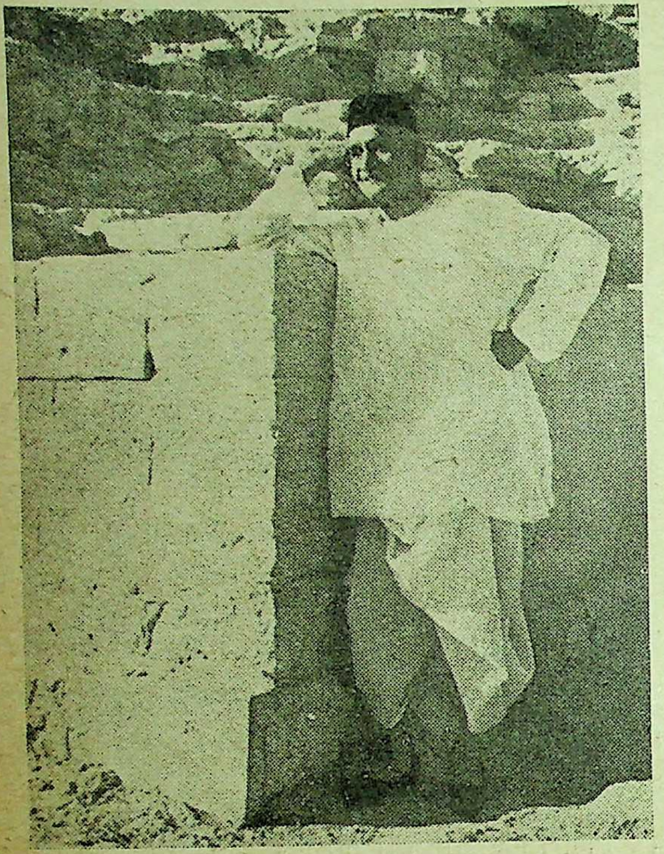

उदयन के किले की दीवार

रह फुट चौड़ी, सफाई से गढ़े हुए पत्थर की दीवार निकल आयी। चारों क़ोनों पर गुम्बज के धरातल, बीच में १८ फुट चौड़ा प्रवेश-द्वार के स्पष्ट चिह्न निकल आये हैं। इस किले ने भारतीय-प्रस्तर-स्थापत्य की मान्यताओं को बिलकुल उलट-पलट दिया।

तब और अब

ऐसी विशाल कौशाम्बी अपने समय में थी। उसपर इलाहाबाद को नाज़ था। तभी तो अशोक की एक लाट वहाँसे लाकर इलाहाबाद के किले में स्थापित की गयी। थाली का घी, जैसे कौशाम्बी में रही वैसे इलाहाबाद में। काल-चक्र ने तब और अब में महदन्तर कर दिया

हुस्ने-रोज़ अफ़ज़ूँ ने कितना फ़र्क पैदा कर दिया।
देखिये ये आप हैं, यह आपकी तसवीर है॥

इसी स्थान पर २५०० वर्ष पूर्व क्षत्रिय योद्धाओं के घोड़े थिरकते रहते थे। और अपनी वीरता के आगे शत्रुओं के सैनिकों को हेच समझते थे। आज दिन उस स्थान पर खेती होती है और खेतिहर

क्षेत्रं कृष्टं हलेन प्रथममकठिनं बीजरोहस्य यो
कृत्वा प्रक्षिप्य धान्यं प्रकृतिवशभवांस्तत्र चोत्पाट्य घासान्
रक्षित्वाहर्निशं तच्छ्रमसुकृतफलं शस्यमाप्त्वा प्रका
क्षेत्राजीवो मघोनः सुखमपि तृणवन्मन्यते साम्प्रतं सः।

भास—यज्ञफलकम्

(खेत को हल से अच्छी तरह जोत कर उसे बी बोने के लायक मुलायम करते हैं। फिर उसमें बीज छींट कर खेत से अच्छी तरह घास उखाड़कर फेंक दें हैं। तदनन्तर उस खेत की दिन-रात रखवाली कर से वे खेत लहलहा उठते हैं, उनमें भरपूर अन्न प्राप्त होत है। इस प्रकार खेतिहर लोग जिनकी जीविका केव उनके खेत हैं, इन्द्र के भी सुख को तिनके के समान समझते हैं।)

मैं कौशाम्बी सैकड़ों बार गया हूँ पर जब मैं उदयन के इस किले को देखता हूँ तो "बाइरन" की ये पंक्तियां सहसा याद आ जाती हैं—

Here Ehrenbzeitstein, with her shattered wall
Black with the miner's blast, upon her height,
Yet shows of what she was, when shell and ball
Rebounding idly on her strength did light
A tower of victory! from whence the fligh
Of baffled foes was watched along the plain
But Peace destroyed what War could neve blight
And laid those proud roofs bare to Summer's rain-
On which the iron showers for years had poured in vain

———

Stop—for thy tread is on an Empire's dust
An Earthquake's spoil is sepulchered below!
Is the spot marked with no colossal bust
No column trophied for triumphal show

None; but the moral's truth tells simpler so
As the ground was before, thus let it be—
How that red rain hath made the harvest grow!
And is this all the world has gained by thee,
Those first and last of fields! King-making Victory?

नष्ट भ्रष्ट दीवारों वाला
'एहरेनजीस्तीं' खड़ा यहाँ पर,
जिसके ऊँचे प्राचीरों को
काला किया सुरंग लगाकर
अरि के बारूदी हमलों ने;
फिर भी जो अपने अतीत की परछाईं है
वह अतीत जब गोले उसकी दृढ़ दीवारों से टक्कर खा
वापिस गिरे लुढ़क कर नीचे,
वह जय की मीनार !
जहाँ से गिरते-पड़ते भगते दुश्मन
मैदानों में देखे जाते !
हाय ! शान्ति ने उसे मिटाया
जिसको युद्ध न मिटा सका था--
जिस पर बरसों लोहे के गोलों की वर्षा
व्यर्थ हुआ की--
उसकी गर्वीली छत ग्रीषम की वर्षा को
नग्न सह रही !

रुको, कि राही पाँव तुम्हारे
साम्राज्य की मिट्टी पर हैं--
वह कि ज़लज़ले का शिकार बन
ध्वस्त पड़ा जो भू-गह्वर में--
अरे कि इस थल पर कोई भी
नहीं खड़ी है
दीर्घकाय प्रतिमा स्मारक की ?
कोई विजयस्तम्भ नहीं है जय-उद्घोषक ?
कोई नहीं; मगर हम सबको
नीति-वाक्य यह सुन पड़ता है--
'यह तो माटी था पहिले भी,
इसको वैसा ही होने दो,
देखो उस लोहित वर्षा से
फसल लहलहा उठी वहाँ पर !'
तू ही प्रथम और अन्तिम है
क्षेत्र युद्ध की,
अरी नृपति-निर्माता जयश्री !
बोल कि तुझसे इस दुनिया को
यही लाभ होनेवाला था ?

अनुवादक—श्री श्रीकृष्णदास

क्रमशः

आँख की साख

डा० श्यामसुन्दर व्यास

आँख, सौन्दर्य की साख है। जो आँखों पर चढ़ जाता है, वह सुन्दर कहलाता है; जो आँखों से उतर गया, वह असुन्दर हो जाता है। अतः सुन्दर असुन्दर की निर्णायक कसौटी आँख है।

सौन्दर्य आँख पर टिका है और आँख सौन्दर्य पर टिकती है। जिसे आँखों ने सराहा, वही सौन्दर्य है। सौन्दर्य की आँखें नहीं होतीं; पर आँखों का सौन्दर्य होता है। इसीलिए आँख, सौन्दर्य का सौन्दर्य है।

आँख में कमल है, मृग है, मीन और खंजन है। आँख में तीर है, बर्छी है, खंजर और कटारी है। आँख में मय है, मीना है; साकी है, सागर है। आँख में आब है, अब्र है, आबरू है। जगत् में जो कुछ है आँख में है, आँख से है, आँखों का है।

आँख उठती है, गिरती है; झुकती है, तनती है। आँख उठती है तो झुके सिर उठ जाते हैं, उठे सिर झुक जाते हैं। आँख गिरती है तो गिरतों को उठा लेती है; उठे हुओं को गिरा देती है। आँख झुकती है तो पाषाण भी पिघल जाता है और आँख तनती है तो तलवार की धार का तेवर भी धरा रह जाता है। यों कहने को स्वयं नाचती है मगर सारी दुनिया को नचा डालती है। आँख नर्तकी है और जगत् उसके नृत्य का विन्यास है।

आँखों से अनुराग छलकता है, अविश्वास झलकता है। आँसू टपकते हैं, अँगारे बरसते हैं। आसक्ति के साथ विरक्ति, भोग के साथ योग, मोह के साथ घृणा और ममता के साथ ईर्ष्या जैसे विपरीत भावों का भी आँखों में प्रश्रय होता है। शेर बकरी को एक घाट पानी पिलाने का सामर्थ्य केवल आँखों में ही है।

समर्थता में भी आँखों की अपनी असमर्थता है। यह असमर्थता कायर की अहिंसा नहीं, समर्थ की नम्रता है। आँख जब अपने वाली पर उतर आती है और तीर-खंजर-कटारी के 'जौहर' दिखाती है तो उसकी सामर्थ्य के सामने अचल भूधर का धैर्य भी धराशायी हो जाता है। मगर दीन-दुखी को देखकर वही सूरमा आँख, भर-भर आती है; विरहाग्नि में प्रज्ज्वलित होकर, जल-मग्न रहते भी जलती रहती है और सामने वाले की लाचारी के सामने स्वयं बेचारी हो जाती है।

आँख कन्हैया भी है, कैकयी भी। जब उसमें बच्चों-सी सरलता खेलती है तो कन्हैया नजर आता है; जब उसमें बल खाती नागिन सी कुटिलता जागती है तो कैकयी दृष्टिगोचर होती है। ममता के जागने पर आँखों में यशोदा माता आ बैठती है और दूधिया-दृष्टि में कौशल्या का मातृत्व झलक जाता है। अनुराग के रतनारे डोरे उभरते हैं तो रसिक शिरोमणि की राधिका रमण कर उठती है। आँखों में सावित्री का विश्वास, सीता की अचल भक्ति और श्रद्धा की समर्पणमयी भावना जागृत होती है। अपनी सहमी-सहमी-सी सीमा में गरल-पान करती आँखें, प्रेम-वियोगिन मीरा के विष-पान की याद दिलाती हैं।

आँख, हृदय की कला एवं भावना की भाषा है। अंतर का चितेरा, अनुराग की रतनारी रेखाओं से नेत्र-पटल पर जिस कला को अंकित करता है, वह कला, कजरारी चौखट में व्यक्त होकर अमर-काव्य की प्रेरणा बन जाती है और हृदय के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन होने लगता है। भावना 'कहत नटत रीझत-खिजत' की भंगिमा द्वारा भरे-भौन में अपनी अबोली भाषा में बहुत कुछ कह जाती है। प्रत्येक भावुक, आँखों के भाषा-विज्ञान से परिचित होता है और इस पाठशाला में उसे छुट्टी नहीं मिलती जिसे पाठ याद रहता है। आँखों की प्रधान भाषा का साहित्य 'ढाई अक्षरों' की उस बोली में लिखा जाता है जिसे पढ़कर ही आदमी वास्तव में पांडित्य का पात्र समझा जाता है।

आँखों में मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास का इतिहास परिलक्षित होता रहता है। मानव की आदिम सभ्यता एवं संस्कृति के दर्शन आँखों में क्रोध के क्षणों में परिलक्षित होते हैं। बर्बर युग की हिंसक प्रवृत्ति घृणा के क्षणों में चिनगारी बनकर पूर्व-युग के इतिहास का बोध कराती है। अनुराग के क्षणों में सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, शालीनता के स्वर्णाक्षरों से दीप्त हो उठता है और नयन-कोरों में ललक के साथ लुकती-छिपती लज्जा, अपने सर्वमंगला स्वरूप में व्यक्त होते हुए सभ्यता एवं संस्कृति के समुज्ज्वल भाल पर कुंकुम का टीका लगा लेती है। किसी भी जाति-विशेष का इतिहास, उसकी सभ्यता-संस्कृति का माप-दंड आँखों में होता है। चंचला की तरह नाचती आँख में उच्छृंखलता निवास करती है। यह जाति-विशेष की अस्थिर, भोगवादी, मनोविनोदी सभ्यता की परिचायक है। दुग्ध-धवल शालीन नेत्र-दृष्टि में उस सभ्यता की झलक मिलती है जो संयमित, सुस्थिर एवं सात्विक है। कज्जलाभा संयुक्त अंगारों-सी दहकती आँखों में तामसी प्रवृत्ति के साथ-साथ शौर्याश्रित पैशाचिक पिपासा पछाड़ मारती है और मार्जार जैसी मंजरी आँखों में अवसरवादी, अविश्वसनीय मनोवृत्तिवाली मानवीय संस्कृति अपना इतिहास स्वयं बोल जाती है। आँख वाले, आँखों ही आँखों में चाहें तो सब कुछ तौल और परख सकते हैं।

आँख की साख अपार है। यह सारा जगत् आँखों का ही खेल है। संसार का सारा राग-खटराग आँखों पर ही टिका है। आँख नहीं तो कुछ नहीं। अतः आँख रखिये और मन की इस प्रमुदित पाँख को कुटिलत एवं कुचाल के कृमियों से बचाइए!

राष्ट्र के सूत्रधार—लोकमान्य तिलक

श्री जी० एस० पथिक

एक मराठी रियासत का निवासी होने, मराठी भाषा जानने और किसी कदर राजनीतिक चेतना रखने के कारण लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से मेरा सान्निध्य होने में विलम्ब न लगा। यह मेरा परम सौभाग्य रहा कि मैंने राष्ट्र की उस महान् विभूति का वात्सल्य, स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त किया। अपने जीवन के उभार में मैंने उस महापुरुष से राजनीतिक ज्ञान अर्जन किया और पत्रकारिता की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। उनसे सम्पर्क होना मेरे लिए वरदान था। मैं उनके इतने निकट आया कि परिवार का अंग बन गया।

लोकमान्य तिलक महाराष्ट्र-केसरी ही नहीं थे, अपितु भारत केसरी थे। वे पुरुष सिंह थे, शत्रु के लिए नरसिंह थे। वे अपने काल के शंकराचार्य थे। महाराष्ट्र ने उन्हें 'भगवान्' सम्बोधित किया। वस्तुतः वे देव-पुरुष थे। पुण्यभूमि भारत के लिए एक अवतार थे। उनमें अदम्य शौर्य एवं साहस था तथा निर्भीकता थी। वे नहीं जानते थे कि भय क्या चीज है। मुँह-तोड़ स्पष्ट बात कहने में उन्हें कभी संकोच नहीं हुआ। इन सब गुणों के आगार होने के सिवा वे परम विद्वान् थे। भारत में कोई नेता उनके जैसा विद्वान् नहीं हुआ। वे धर्म-शास्त्रज्ञ थे; वेद, दर्शन और शास्त्रों का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था। राजनीति और कूटनीति के प्रकाण्ड पंडित थे। यह आभास होता है कि भारत-भूमि में जन्म लेने के समय जब वे स्वर्ग से चले, तब उन्हें सुख और चैन के द्वार बंद मिले। उन फाटकों पर भारी ताला लटका दिखा। किन्तु उनके लिए विद्या, ज्ञान और शौर्य के द्वार खुले मिले, जहाँ उन्हें सब कुछ बटोरने का अवसर मिला। अपने साथ ज्ञान इतना बटोर कर लाये थे कि उस भार में केवल राजनीतिक ज्ञान ही नहीं था। यही कारण है कि वे महान् तत्ववेत्ता थे, गणितज्ञ थे, ज्योतिष विद्या के पण्डित थे, और इतिहासवेत्ता थे। केवल छूट गया था, आज का विज्ञान। यही एक अभाव था। पर इस भौतिक विज्ञान से परे उनमें वह विज्ञान था जिसे हम आध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं जो मानव के लिए मंगलकारी है और जिससे मनुष्य को मनुष्यत्व की पहचान होती है। हम यह नहीं कहते कि लोकमान्य से श्रेष्ठ गणितज्ञ नहीं थे, ज्योतिष के पण्डित नहीं थे, धर्मशास्त्र-वेत्ता नहीं थे, दार्शनिक नहीं थे, और पुरातत्त्व-वेत्ता नहीं थे। अवश्य थे, संभव है कि उनकी परिधि तक लोकमान्य न पहुँच पाये हों। किन्तु यह प्रकट है कि किसी एक में ये सब गुण नहीं थे, जो लोकमान्य में समग्र रूप में विद्यमान थे।

यह कहा जायेगा कि राष्ट्रीय जागरण और स्वराज्य आन्दोलन सरकार के योगदान से हुआ। कर भला, होगा भला; और—कर बुरा, होगा बुरा। ब्रिटिश शासकों ने सोचा कुछ, और हुआ कुछ और। लार्ड मेकाले ने देश में अँगरेजी शिक्षा का प्रचार इस लक्ष्य से किया कि ब्रिटिश शासन को चलाने के लिए मुहर्रिरों की जमात तैयार हो। उन्हें तो बाबू क्लास के लोग चाहिए थे। सरकारी नौकरियाँ पाने के लिए हजारों और लाखों लोग अँगरेजी शिक्षा पढ़ने के लिए बढ़े। फिर भी लोग स्वेच्छा से अँगरेजी नहीं पढ़ना चाहते थे, उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था। अँगरेजी में जो युवक मिडिल पास कर लेता, उसका सम्मान किया जाता था, प्रोत्साहन दिया जाता था और उसे तुरन्त नौकरी मिलती थी। अपने देश की भाषा छोड़कर विदेशी भाषा सीखना देश के अस्तित्व को मिटाना है। इतना ही नहीं, शासनाधिकार मिलने पर भी देश गुलाम बना रहता है। पोलैण्ड जब युद्ध में हार गया, और उसपर जब विजेताओं का कब्जा हुआ, तब पोलैण्ड-वासियों ने कहा कि उनके देश को दस वर्ष की अपेक्षा बीस वर्षों तक गुलाम बनाकर रखा जाए, तो उन्हें मंजूर है; किन्तु उनकी एक माँग है कि पोलिश भाषा का अस्तित्व न समाप्त किया जाए। पोलिश भाषा न रही तो वे सदा के लिए मिट जायँगे। अँगरेजी भाषा सीखकर जहाँ हजारों गुलाम तैयार हुए, वहाँ यह विधाता का योग समझिए, जिसे लोकमान्य ने बताया, कि अँगरेजी भाषा ने हमें अँगरेजों से लड़ने का मार्ग दिखाया। उन्होंने कहा कि उन्होंने मेजिनी, गैरीबाल्डी के चरित्र पढ़े और उनके संघर्ष से वे अवगत हुए। पर लोकमान्य ने यह भी कहा कि इसका यह तात्पर्य नहीं कि हमारे लिए अँगरेज़ी अभीष्ट है। परकीय भाषा हमारे लिए अपघातक है, वह चाहे जितनी भी श्रेष्ठ हो, गुणवती हो और सुन्दर हो। हमारे लिए अपनी भाषा इष्ट है। हमारी अपनी भाषा दूषित हो, गुणहीन हो, निर्बल हो किन्तु वह हमारे लिए श्रेयस्कर है। अपनी भाषा की गोद में मृत्यु होने पर ही हमारी मुक्ति है, अन्यथा नहीं। उन्होंने देश के लिए एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता अनुभव की। इस संबंध में उन्होंने केसरी में कई लेख लिखे। और, भारत के वे प्रथम राजनीतिक नेता थे, जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा की मान्यता प्रदान की थी। उनकी वाणी से सर्वप्रथम घोषणा हुई कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। तिलक महाराज ने कहा कि भारत में एक महाराष्ट्र ऐसा प्रदेश है, जिसने मराठी भाषा की लिपि में देवनागरी को स्थान दिया। यदि सभी भारतीय भाषाओं की एक लिपि हो जाये, तो सभी भाषाएँ एक कड़ी में जुड़ सकती हैं। यदि अँगरेजों को यह भान होता कि अँगरेजी भाषा के सीखने पर यहाँ के लोगों को बाहर की ऐसी हवा लगेगी कि जिससे वे उनके शासन के विरोध में खड़े होंगे, तो जिस प्रकार कम्यू-

निस्ट देशों में इतनी नाकेबंदी है कि वहाँ बाहर की हवा प्रवेश नहीं कर पाती, उसी प्रकार यहाँ भी प्रबंध कर दिया जाता और चेतना के अभाव में इस देश के लोग भी सुषुप्तावस्था में पड़े रहते। पर अँगरेजों की इच्छा दास मनोवृत्ति पैदा करने की थी। उसमें वे सफल हुए। अँगरेजी से हम इतने चिपक गये कि अँगरेजी भाषा और अँगरेजी वेशभूषा को सब कुछ मान बैठे। वे हमें ऐसी भावनाओं में जकड़ गये कि जो शायद कालान्तर में ही मिट सकें। फिर भी बाहर की हवा पाने का जो सुयोग मिला, उससे गोखले, तिलक जैसे नररत्नों की सृष्टि हुई। पर ऐसे व्यक्तियों की इनी-गिनी संख्या रही। लार्ड कर्जन ने बंगभंग किया, उसका जो फल हुआ, वह यह है कि मूक भारतवासी जाग उठे। लोकमान्य तिलक, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल को राजनीतिक आन्दोलन के लिए तैयार क्षेत्र मिला। बंगभंग के आन्दोलन ने स्वराज्य आन्दोलन का बीज वपन किया। बंगभंग खत्म होने पर हो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो आग सुलगी थी, वह न बुझी। उसमें सरकार ही होता बनी और अपने नित नये कारनामों से घी डालने को माध्यम बनी। भगवान् जिसको मिटाना चाहते हैं, उसकी बुद्धि पहले से हर लेते हैं, पहले महायुद्ध के उपरांत शासन सुधार देने की जो बात थी, उसे सरकार पूरा न कर सकी। भारत ने युद्ध में सरकार की जो सेवा की, पुरस्कार में उसे रौलट कानून जैसा काला कानून मिला। वर्षाकाल में जिस प्रकार मरनेवाले कीड़ों के पर उग आते हैं, जनरल डायर और सर माइकेल ओडायर ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने में साधक बने।

जिस काल में लोकमान्य तिलक राजनीतिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, भारत का क्षितिज काले घनघोर मेघों से आच्छन्न था, सर्वत्र घोर अंधकार छाया हुआ था। लोग ब्रिटिश राज को देश के लिए वरदान समझते थे। ब्रिटिश राजभक्ति से सारा देश ओत-प्रोत था। स्कूल, कालिज और सभा-सोसाइटी में 'गाड सेव दि किंग' की ध्वनि गूँजा करती थी। धार्मिक समारोहों तक में ब्रिटिश सम्राट् और सम्राज्ञी के प्रति अत्यंत श्रद्धापूर्वक निष्ठा के प्रस्ताव स्वीकृत होते थे। लोग सोचते थे कि अँगरेजी राज उनके लिए वरदान है। यह भी वे कहते थे कि ब्रिटिश राज में गाय और सिंह एक घाट पर पानी पीते हैं, कोई किसीका अपघात नहीं कर सकता। वे यह गौरव अनुभव करते थे कि यह अँगरेजी राज है, जिसमें कभी सूरज नहीं डूबता। यदि रास्ते चलते हुए किसी काले हिन्दुस्तानी ने अँगरेज को सलाम नहीं किया, तो बजाय इसके कि उनमें प्रतिहिंसा पैदा होती, वे मार खाकर अफसोस करते, अपने को धिक्कारते कि उनसे कैसी गलती हुई। इन बातों से यह प्रकट है कि अँगरेजों ने हमें किस कदर गुलाम बनाया था। अँगरेज तो यह सोचते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य का हीरा--भारत तब तक उनके शासन में रहेगा, जब तक सूरज और चाँद प्रकाश देते रहेंगे। देशवासी जो ब्रिटिश राज पर आसक्त हुए वे यह खयाल करते थे कि ब्रिटिश राज सदा-सर्वदा कायम रहेगा। पर संसार में किसके साम्राज्य सदा कायम रहे हैं!

दो ऐसे मोड़ आये जिन्होंने राष्ट्र में नव-जागरण उत्पन्न किया, स्वतंत्रता की आवाज पैदा की और देश उसके पाने के लिए बढ़ा। बंग-भंग और रौलट कानून। ये दो चीजें जो अँगरेजों ने पैदा कीं, वे उनके ही साम्राज्य के कफन के लिए कीलें बनीं। उनके हाथों से ही उनका साम्राज्य रसातल में गया। जिस ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता था, वह सूर्य अस्त हो गया। फिर शक्ति, सूझ-बूझ और कूटनीति के दाँव-पेंच कारगर न हुए। होतव्यता को कौन मिटा सकता है? अँगरेजों से ये गलतियाँ न होतीं, तो संभव था कि भारतवासी कुछ और काल तक अचेत रहते, सोये रहते। पर विधाता को मंजूर था कि भारत स्वतंत्र हो, और उसकी स्वतंत्रता के साथ ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य सभी उपनिवेश स्वतंत्र हों। वही हुआ। जहाँ भारत में स्वतंत्रता का सूर्य चमका, एक के बाद दूसरे देश ब्रिटिश पाश से मुक्त होते गये। साम्राज्य ताश के किले की तरह धराशायी हो गया। अतः जहाँ गाँधीजी के आगे बढ़ने के लिए रौलट कानून ईश्वरीय देन बना, वहाँ बंगभंग ने लोकमान्य तिलक को स्वराज्य का पथ प्रशस्त करने का मैदान दिया।

लोकमान्य तिलक का जब राजनीतिक प्रांगण में पदार्पण हुआ, तब देश में घोर अंधकार छाया हुआ था, दमन और अत्याचारों के काले मेघों से आकाश आच्छन्न था। जन साधारण में इतना दासत्व पैदा हो गया था कि स्वराज्य और स्वतंत्रता का खयाल तक उनके दिमाग में नहीं था। राजभक्ति का प्रवाह था, सो भी एक विदेशी सत्ता के प्रति। किसीको इतना साहस न होता था कि वह अपने मुँह से 'स्वराज्य' का नाम निकाले। किसीके घर में गरम दल के नेताओं के चित्र दिखाई पड़ते, तो वह गिरफ्तार हो जाता था। लोग दिल और दिमाग से गुलाम बन गये थे। अन्य योजनाओं की तरह कांग्रेस की स्थापना भी एक अँगरेज ने इस इरादे से की थी कि वह एक ऐसा मंच हो, जिसमें पढ़े लिखे लोग प्रवेश करें, जिससे उनका ध्यान दूसरी ओर न बँटे। वे सरकार से आरजू व मिन्नतें करते रहें। पर शासन के कारनामों ने ही कांग्रेस का रूप बदल दिया। अतः हम देखते हैं कि स्वतंत्रता के युद्ध के सूत्रपात के समय देश में जो काले मेघ छाये हुए थे, आज जब हम प्रातःस्मरणीय लोकनायक महापुरुष का यह संस्मरण लिख रहे हैं, तब अर्जित स्वतंत्रता के काल में चीन के आक्रमण के कारण आकाश उन्हीं काले मेघों से आच्छन्न है। धन कमाना आसान है, पर उसका खर्च करना कठिन है। जो सही तरीके से खर्च करना जानते हैं, वे ही उसे अपने पास जमा कर सकते हैं, दूसरे नहीं। अन्यथा, वह इधर आया और उधर गया। देश की स्वतंत्रता का भी यही हाल है। हमने स्वतंत्रता प्राप्त

की, किन्तु हम उसकी रक्षा तभी कर सकेंगे जब उसके पात्र बनें; अन्यथा हम उसे खो बैठेंगे! चीन का आक्रमण तो एक निमित्त मात्र है। किन्तु वह हमें संकेत देता है कि हम स्वतंत्रता के उपभोग की शक्ति प्राप्त करें। अन्यथा वह आयी और गयी। चीन की चुनौती केवल युद्ध की नहीं है, वह सामाजिक क्रान्ति की भी चुनौती देती है। स्वराज्य प्राप्ति के लिए लाखों और करोड़ों लोगों ने यातनाएँ सहीं, वे जेलों में गये, उन्होंने मार सही, गोलियाँ खायीं और फाँसी पर चढ़े——उन सबके सामने समाज का एक नक्शा था। और वह यह था कि स्वराज्य शासन में ऐसा समाज बनेगा, जिसमें धनी और गरीब का कोई भेद न रहेगा, सब की एक समान जिंदगी होगी, जो धनी हैं, वे भी गरीबी में हिस्सा लेंगे। यह न कहा जायेगा कि जब और पैसा आयेगा, तब तुम्हें भी कुछ मिलेगा। पर हुआ यह कि जो अभावग्रस्त थे, वे वैसे ही बने रहे और जिनके पास पहले कुछ स्वल्प धन था, उनके पास वैभव के पहाड़ खड़े हो गये। इस प्रकार देश अधिक निर्जीव बन गया। कोटि-कोटि देशवासियों में शक्ति न आ सकी। देश की रक्षा के लिए चीन जैसे शत्रु से लड़ने के लिए केवल सैनिक शक्ति की सबलता पर्याप्त नहीं है, समाज का भी शक्तिशाली होना अभीष्ट है। आज हमारा समाज असहनीय रूप में असमान अवस्था में है। समाज बलवान् हो सकता है, यदि सत्ताधीश, धनी वर्ग और ऊँचे स्तर के लोग अपने जीवन को बदल दें, अपने को वे सर्वसाधारण में मिला दें। हमारी सुरक्षा के प्रयत्नों में शस्त्र और गोला-बारूद की शक्ति जितनी प्रयोजनीय है, समाज को आर्थिक और सामाजिक रूप में बराबर बनाने की शक्ति भी उतनी ही प्रयोजनीय है। इन दोनों शक्तियों की सुदृढ़ता से देश स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ होगा और तब फिर कोई आक्रमणकारी हो, हम उसके दाँत खट्टे कर सकते हैं। तब हम स्वतंत्रता की निर्भय रक्षा कर सकते हैं।

मैं लोकमान्य के संसर्ग में कैसे आया। अब इसका मैं उल्लेख करूँ। ग्वालियर में एक महाराष्ट्रीय युवक यदाकदा आते थे। संभवतः काशी से पूना जाते समय इस मराठी रियासत की राजधानी में उनका पड़ाव होता था। उनका मेरी ओर आकर्षण होता और मैं भी उन्हें देखता, किन्तु साक्षात्कार होने का कोई सुयोग नहीं मिलता। एक बार एक मित्र के घर पर वे मुझे बैठे हुए मिले। किसी के द्वारा परिचय कराने की अपेक्षा वे स्वयं ही मेरे पास आ बैठे और मुझसे बातें करने लगे। उसके बाद वे मेरे घर पर आये। फिर यह हुआ कि वे जब ग्वालियर आते, तो मेरे यहाँ ठहरते। क्रान्तिकारियों के लिए ग्वालियर सुरक्षा का कैम्प था और सामग्री जुटाने का केन्द्र था। ये काशी के युवक मुझसे घुल-मिल गये। उनका घर काशी और पूना——दोनों जगह था। मेरा खयाल है कि घर के लोग उनके कामों से परिचित नहीं थे। लोकमान्य से उनका निकटतम संबंध था। उनके वे बड़े विश्वासभाजन थे। यह प्रकट है कि लोकमान्य की राजनीति में हिंसा-अहिंसा का कोई भेद नहीं था। उनकी राजनीति भगवान् कृष्ण और छत्रपति शिवाजी की रणनीति की पृष्ठभूमि पर निर्मित हुई थी। इस युवक ने लोकमान्य की ओर मेरा ध्यान खींचा और यह बताया कि वे जब तब बम्बई से दिल्ली जाते हैं। जी० आई० पी० रेलवे द्वारा बम्बई से दिल्ली जाने पर ग्वालियर स्टेशन का पड़ना स्वाभाविक है। उन्होंने ही पूना में मेरे संबंध में लोकमान्य से कहा, मेरा और मेरे कार्यक्षेत्र का परिचय दिया। लोकमान्य के मेरे पास पत्र आने लगे। मैं भी उन्हें लिखने लगा। यह संबंध मैंने अपने लिए बड़ा सुयोग समझा। अभी साक्षात्कार नहीं हुआ था, पर जब दर्शन और अभिवादन करने का अवसर आया तब मेरे शरीर पर पुलिस की मार पड़ी। यह क्रम जारी रहा, किंतु अपनी पीठ पर पुलिस के तड़ातड़ बेंत और मुँह पर चपतें खाने पर भी मैं ग्वालियर स्टेशन पर लोकमान्य का श्रद्धापूर्वक अभिवादन करने में पीछे नहीं हटता था। यौवन था, बदन में लाल खून का प्रवाह था। उस समय पीठ, कंधे और हाथ लाल पड़ने, घायल होने और गिरने की कोई चिंता नहीं थी। हँसते-हँसते मैं सब कुछ सहता। पर लोकमान्य को वेदना होती कि उनके कारण मुझ पर प्रहार होता है। उन्होंने मुझे अपना यह तरीका बदलने को लिखा। लोकमान्य के काम करने का यह तरीका था कि हम जो भी काम करें, उसे इस तरह करें कि पुलिस और अधिकारियों के पंजे में न फँसें और यदि फँस जायें तो अदालतों में लड़ें। इसलिए नहीं लड़ें कि हमें कोई न्याय मिले, निर्दोष करार दिये जायें, बल्कि संघर्ष का प्रचार हो। संघर्ष के प्रचार के लिए लोकमान्य ने स्वयं मुकदमें लड़े, और दूसरों से लड़वाये। आत्मसमर्पण को वे क्लीवता मानते थे। बम्बई में वीर सावरकर के अनुज के संसर्ग में मैंने गोपनीय पत्र-व्यवहार की बातें जानीं। वीर सावरकर रत्नागिरी में नजरबंद थे। उनके नाम और उनके अग्रज बाबा साहब सावरकर के नाम जो पत्र आते, वे दूसरों के नाम आते। पुलिस को गंध भी नहीं लगती। व्यापारिक प्रतिष्ठानों के नाम आने वाले पत्रों पर पुलिस क्या सन्देह करती! मेरे लिए लोकमान्य के आने वाले पत्रों के लिए उसी स्ट्रेटेजी——तरकीब का सहारा लिया जाता था। जिनके नाम पत्र आते उनसे मैं कहाँ और कब मिलता, इसका पता लगना पुलिस के लिए कठिन था। मैं पत्र पढ़ आता, उन्हें साथ में नहीं लाता। रियासत के अपने डाकखाने थे, इसलिए मैं लोकमान्य को अपने पत्र ग्वालियर स्टेशन के अँगरेजी डाकखाने में छुड़वाता।

बीच-बीच में कभी अवसर मिलने पर पूना पहुँचता। मैंने लोकमान्य से रियासतों में काम करने के संबंध में परामर्श किया। मैंने पूछा कि किस प्रकार कार्य किया

जाये। अपने साथ काम करनेवाले साथियों का भी उल्लेख किया। ये युवक मेरी फौज थे। रियासतों की समस्याएँ मैंने उनके सामने रखीं। मैंने कहा कि देशी रियासतों की प्रजा को दुहरी गुलामी सहनी पड़ती है। अँगरेजों की गुलामी तो है ही, रियासतों के राजे महाराजे और उनके हुक्कामों की गुलामी और भी बदतर है। पर लोकमान्य ने मुझसे कहा कि वे जिस स्वराज्य की माँग करते हैं, वह देशी रियासतों में मौजूद है। देशी नरेश विदेशी नहीं हैं। अतः वहाँ राजनीतिक आन्दोलन एकबारगी न छेड़ा जाये। उन्होंने कहा कि अनेक देशी नरेशों की अँगरेजों से खटकती है। जहाँ वह खटके, वहाँ हमें नरेशों का पक्ष लेना चाहिए। उससे दो लाभ होंगे। हमारे पक्ष लेने पर अँगरेज सोचेंगे कि यह राजा ब्रिटिश भारत के राजनीतिक आंदोलन से संबंध रखता है। यदि सरकार ने उसे हटा दिया, तो हमें रियासतों के मिटाने में सफलता मिलती है, अन्यथा रियासतें हमसे प्रभावित होंगी और हमारे कार्य में अधिक रोड़े न डालेंगी। ग्वालियर में जो युवा मेरे साथ हैं, वे अपना काम करते रहें, अन्यथा वे बेकार हो जायेंगे, किसी काम-धंधे में न देखकर अधिकारी उन्हें बेतरह सताएँगे। फिर इतना पैसा कहाँ है कि तुम सब का खर्च उठाऊँगा? इसलिए उन्होंने कहा कि रियासतों में मैं जो भी काम उठाऊँगा उससे जन-जागरण उत्पन्न होगा। उसके अभाव में हम कैसे आगे बढ़ सकते हैं? उनके निर्देश को मूर्तिमंत रूप देने के लिए मैंने ग्वालियर में 'सरस्वती पुस्तकालय' की स्थापना की। इसका सीधा-सादा लक्ष्य था, शिक्षा व हिन्दी का प्रचार। जाहिरा तौर पर मैंने इस संगठन में अधिकारियों का भी सहयोग लिया। पर संगठन की कुंजी अपने हाथ में रखी। शिक्षा विभाग के अधिकारी रायबहादुर पण्डित प्राणनाथ सभाभूषण स्त्रीशिक्षा के प्रेमी थे, उनके साथ मैंने अपने ढंग से स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन बढ़ाया। इससे हकीकत में जागरण उत्पन्न हुआ। पर बीच-बीच में मैं उत्पात कर बैठता, जिसमें मेरे साथी भी होते और तब अधिकारियों से टक्कर हो जाती। इस संस्था ने एक व्यक्तित्व का रूप ग्रहण किया और उसके इतने कार्य-कलाप हैं कि महापुरुषों के संस्मरणों की तरह उसका भी अपना संस्मरण है।

मैं जब बम्बई में शिक्षा के लिए पहुँचा, तो सप्ताह में एक दिन पूना में बीतता और एक दिन ट्रेन में लगता। कभी महीनों तक जाना न होता। लोकमान्य का गृह, उनका परिवार और केसरी कार्यालय मेरे पूना के आवास बन गये। लोकमान्य को हिन्दी से प्रेम था। उन्होंने आदेश दिया कि मैं केसरी के कालम-दो कालम हिन्दी में लिखूँ। मैं हिन्दी में तो लिखता, पर मेरी कलम मराठी में लिखने के लिए भी दौड़ती। मैं चाहता था कि मराठी में लिखकर मैं मराठी जनता को रियासतों के प्रतारणा-पूर्ण जीवन से अवगत करूँ। कलकत्ते में मैं अँगरेजी पत्रों की कुर्सियों पर बैठा, पर मेरा लक्ष्य बँगला पत्रों में लिखने का रहा। लोकमान्य का केसरी मराठी का प्रभावशाली पत्र था। उसकी सर्वाधिक खपत थी। जनता उसे पढ़ने के लिए लालायित रहती थी। लोकमान्य बेताज के सम्राट् थे और पूना राजधानी थी। इस दृष्टि से केसरी गैर सरकारी गजट था। उसमें क्या छपता है, जनता की आँखें पढ़ने के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा करतीं। केसरी कार्यालय में उस महापुरुष के चरणों में बैठकर मैंने पत्र-सम्पादन का ज्ञान प्राप्त किया। लोकमान्य ने वकालत पास की थी। तात्या साहब केलकर भी एल-एल० बी० पास थे। पर तिलक महाराज ने केलकरजी से कहा कि जब वे केसरी के लिए लेख लिखें, तब वे अपने कानूनी ज्ञान को भूल जायें। यदि वे कानून का खयाल करेंगे, तो उनके लेख दो कौड़ी के होंगे। पत्रकार के संबंध में मेरे एक दो प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि वह निकम्मा और निर्जीव पत्रकार है जिसका कार्यक्षेत्र कुर्सी-टेबल तक सीमित है, पत्र के कार्यालय तक जो अपने कार्य की इतिश्री मानता है। उन्होंने कहा कि पत्रकार को एंटरप्राइजिंग--क्रियाशील होना चाहिए। अन्य नेताओं के पत्र लोप हो गये, पर लोकमान्य का स्मरण दिलानेवाला केसरी आज भी जीवित है। उसका ट्रस्ट है, वह किसीकी व्यक्तिगत सम्पदा नहीं है। केसरी समाज का अवयव है। भारत में यही अकेला पत्र अपनी वार्षिक आय से एक लाख रुपये प्रतिवर्ष जनकल्याण कार्यों में देते हुए भी बढ़ा।

लोकमान्य की राजनीति और उनके कार्य तथा योजनाएँ ठोस आधार पर थीं। यहाँ ही मेरा केलकरजी से सम्पर्क बढ़ा। वे केसरी के प्राण थे। लोकमान्य की नीति और कार्यों को वे सही रूप में मूर्तिमंत रूप देते थे। उनकी लेखनी बड़ी ओजपूर्ण थी। महाराष्ट्रीय जन जन्म से तार्किक होते हैं। उनका यह वैशिष्ट्य है। लोकमान्य और केलकर दोनों की विचारधाराएँ परम तार्किक थीं। सार्वजनिक जीवन में पड़ने पर लोकमान्य को इतना अवसर कब मिलने वाला था कि वे साहित्य शृंगार में योग देते? उन्होंने जो कुछ लिखा, वह राजनीतिक क्षेत्र में आने के पहले ही लिखा। जब वे अध्यापक थे, तब उन्होंने अँगरेजी में एरिथमेटिक की रचना की! पुरातत्व का सबसे महत्त्वपूर्ण और अधिकृत ग्रंथ उनकी कलम से लिखा गया वह है, "आर्कटिकहोम इन दि वेदाज़" अर्थात् "आर्यों का उत्तरी ध्रुव में निवास।" पर केलकरजी ने मराठी की शैली का नया निर्माण किया। मराठी साहित्य को साजा-सँवारा और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे।

केसरी के जिन तीन लेखों पर लोकमान्य पर मुकदमा चला, वे केलकरजी के लिखे हुए थे। उस समय दमनकारी प्रेस कानून था, पर वह आजकल की तरह बेढंगा नहीं था। तिलक महाराज चाहते, तो केलकर को आगे कर देते। केसरी के सम्पादक के रूप में उन्होंने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। उन्हें बड़ी प्रसन्नता थी कि केलकर ने श्लाघनीय कार्य किया। एक बार उनके मुख से मैंने सुना कि 'टाइम्स आफ इंडिया' बोरीबंदर का गोरा अखबार जब उनके किसी काम की प्रशंसा करता है, तब वे यह

सोचते हैं कि उनसे कहाँ गलती हुई। पर जब वह उनके किसी लेख, काम और योजना को गलत बताता है, तो वे सोचते हैं कि उन्होंने सही काम किया। केलकर के मुख से इस केस का सारा वृत्तांत सुना। पर जिन महानुभाव से मैंने और सुना उसका मुझ पर बड़ा असर पड़ा। बम्बई में मेरे कानून के क्लास में सप्ताह में दो दिन बम्बई हाईकोर्ट के बैरिस्टर सोराबजी दावर पढ़ाने आते थे। उनका बड़ा व्यस्त जीवन था। पारसी और गुजराती तथा मराठी छात्रों में मैं एक अकेला हिन्दी-भाषी छात्र था। बैरिस्टर सोराबजी मेरी गति-विधियों से परिचित नहीं थे, किन्तु फिर भी उनका मेरे प्रति आकर्षण था। जब तब मैं अनेक जिज्ञासापूर्ण प्रश्न पूँछ बैठता था। पर ग्वालियर की घटनाओं के कारण मैं क्लास में कुछ निराश सा नजर आता था। इस हालत में मुझे देखकर एक दिन क्लास में ही सब छात्रों के समक्ष उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उनसे चेम्बर में मिलूँ। मैं सोच-विचार में पड़ गया कि वे मुझसे क्या पूछेंगे। खैर, मैं उनकी चेम्बर में हाजिर हुआ। मुझे देखते ही वे बोले कि 'बैठो।' फिर मुझसे पूछा कि क्या हो गया है कि जो मैं इतना ढीला-ढाला नजर आता हूँ। उनके अनेक प्रश्नों का उत्तर देने पर मुझे अपनी कहानी सुनानी पड़ी। वे बोले, इतनी बात है। तब उन्होंने मुझे हर प्रकार से आश्वासन दिया और कहा कि मुझे कोई कष्ट न होगा। मेरी बातें सुनकर उन्हें भी अतीत का स्मरण हो आया। उन्हें अपने पिता का ख्याल हुआ, जो बम्बई हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे और जिनके इजलास में लोकमान्य का मुकदमा चला था। सोराबजी ने कहा कि लोकमान्य को सजा देते हुए उनके पिता को अत्यंत दुःख हुआ था। सारे परिवार को संताप हुआ। वे भारतमाता के वरद पुत्र थे।

लोकमान्य जानते थे कि उन्हें सजा होगी। पर वे बिना लड़े चुपचाप सजा सहनेवाले प्राणी नहीं थे। हर मोर्चे पर पर्दाफाश करना उनका लक्ष्य रहता था। वकालत पास करने पर भी, उन्होंने वकालत नहीं की थी। यदि वे करते तो लाखों रुपयों से अपना घर भरते। भारत के अग्रगण्य वकीलों में उनकी गणना होती। अतः जब उनपर मुकदमा चला, तब उन्होंने अपना कोई वकील नहीं खड़ा किया। तिलक ने कहा कि जिस ढंग से मैं यह मामला लड़ना चाहता हूँ, उसे कोई दूसरा वकील न लड़ सकेगा। उन्होंने कानून की पुस्तकें प्राप्त कीं, जहाँ-तहाँ चिटें रखीं। इस तेजी से वे बहस करते कि सरकारी वकील बगलें झाँकने लगते। चीफ जस्टिस भी दंग रह जाते। कभी-कभी अदालत में सनसनी छा जाती। कहना न होगा कि भारत के किसी नेता ने सात दिनों तक इस प्रकार मुकदमा नहीं लड़ा। तिलक महाराज ने जो दलीलें दीं, उससे मुकदमा खारिज हो जाना चाहिए था। पर सरकार के लिए वे सिर-दर्द थे। वह उन्हें बंद कर ठंढी साँस लेना चाहती थी। अदालत में वह भीष्म पितामह इस प्रकार गर्जना करता, मानों वह सार्वजनिक मंच पर खड़ा हुआ बोल रहा है। तिलक महाराज की झपेटों से अदालत में गरमी आ जाती। जब चीफ जस्टिस ने अपने अधिकार और सम्राट् के सम्मान की बात कही, तो तिलक महाराज ने मुँह-तोड़ उत्तर दिया। लोकमान्य ने कहा——You represent the king in this court, who is appointed by the British people, while I am self-appointed king. अर्थात् आप 'इस अदालतमें उस राजा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो ब्रिटिश प्रजा द्वारा नियुक्त हुआ है जब कि मैं स्वनिर्मित राजा हूँ।' केसरी के सम्पादक की हैसियत से एक पत्रकार का क्या दर्जा है, लोकमान्य तिलक के मुख से ये अमर वाक्य निकले।

जिस दिन फैसला सुनाया जानेवाला था हाईकोर्ट का क्षेत्र जन-समूह से भर गया था। यद्यपि अनेक लोग उनके दर्शन करना चाहते थे, तथापि उस भीड़ में बिना लाठी चार्ज और गोलियाँ चलाये, पुलिस की गाड़ी का निकलना संभव नहीं था। अनेक युवक चिल्लाते थे कि मरेंगे, पर गाड़ी न जाने देंगे। तोड़ देंगे ताले और लोकमान्य को निकाल लेंगे। तिलक गरम दल के नेता थे, और सरगर्मी उन्हें पसंद थी। पर बम्बई की सरकार ने नाजुक परिस्थिति का पहले से अनुमान लगा लिया था। इसलिए उसने दूसरी ही व्यवस्था की। अदालत के अतिरिक्त समय में चीफ जस्टिस ने अपना फैसला दिया। लोगों को सजा होने का समाचार मिला। पर हाईकोर्ट से तिलक की गाड़ी नहीं निकली। कोर्ट बंद हो गया। बाद में पता लगा कि तिलक को जहाज पर फैसला दिया गया। और जब उनका जहाज बर्मा के लिए छूट गया, तब चीफ जस्टिस ने अदालत में फैसला पढ़ा। इतने पर भी एक सप्ताह तक उत्पात हुए।

मंडाले में छः वर्ष के कारावास में लोकमान्य ने गीता पर भाष्य लिखा। पर जब वे मंडाले से वापस आये, तब उन्हें गीता की पाण्डुलिपि नहीं दी गयी। बाहर आकर लोकमान्य ने कहा कि वे कुछ काल में यथावत् विराम और बिंदु सहित पुनः वैसा ही भाष्य लिख सकते हैं। सर चंदावरकर नरम दल के नेता थे, और सरकार पर बड़ा प्रभाव रखते थे। उन्होंने गवर्नर पर जोर दिया कि वह ग्रंथ धार्मिक है, राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सरकार ने जब गीता की पाण्डुलिपि दी, तब पहले मराठी भाष्य छपा। उसके उपरांत हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हुआ। उन दिनों सनातन धर्म सभाओं का अधिक जोर था। काशी में भारत धर्म महामण्डल एक संस्था थी, जिसके कार्यकर्ता स्वामी ज्ञानानन्द महाराज थे। उन्होंने लोकमान्य के भाष्य की कड़ी आलोचना की। काशी के अनेक पण्डितों के सिवा दक्षिण भारत के भी अनेक पण्डित उछल पड़े। कारण यह था

कि लोकमान्य ने अपने भाष्य द्वारा अन्य आचार्यगण और विद्वानों के भाष्यों की अपेक्षा एक नया मार्ग-दर्शन दिया था। पूना में एक विद्वान् शास्त्री रहते थे। मानव शरीर में जो सबसे बहुमूल्य रत्न है, वे उसे खो बैठे थे। उनके नेत्र चले गये थे। अँगरेजी में एम० ए० होने के सिवा संस्कृत के महामहोपाध्याय थे। बड़े विद्वान् थे। धर्मशास्त्र का उनका गहरा अध्ययन था। लोकमान्य के भाष्य के वे अधिकारी प्रवचनकार थे। गीता पर उनसे मेरी जब तब चर्चा होती। उन्होंने मुझसे कहा कि शंकर ने जो भाष्य लिखा, उसके उपोद्घात में उन्होंने जनक का उल्लेख किया है, जिनका जीवन संसार के कर्म से परे नहीं था। इसलिए उन्हें राजर्षि कहा। उन्होंने संसार के कर्मों को नहीं छोड़ा। मनुष्य बिना कर्म किये जीवित नहीं रह सकता है। लोकमान्य के भाष्य पर उनके प्रवचन सुनकर मुझे यह लगा कि मानों उनमें लोकमान्य की आत्मा बोल रही है।

उत्तर भारत में कथावाचक व्यासपीठ पर बैठकर कथा कहते हैं, पर महाराष्ट्र में उसका निराला रूप है। कथा को वहाँ हरिकथा कहते हैं। कथाकार पण्डित को मराठी में 'बुआ' कहते हैं। 'बुआ' शब्द सम्मानसूचक है। जागीरदार सरदार और बड़े आदमियों को भी बुआ साहब के नाम से सम्बोधित करते हैं। मंदिर में भगवान् के सामने कथाकार खड़ा होता है। बीच में स्थान खाली रहता है और दोनों ओर श्रोतागण बैठते हैं। दूसरे ओर के छोर पर ऊँची चौकी पर तबला और हारमोनियम रखा होता है, कथाकार खड़े होकर पहले पद का गायन करता है, और फिर घूमते हुए प्रवचन करता है। यदि धर्मशास्त्र के गंभीर विषय पर प्रवचन हों, तो तबला व हारमोनियम नहीं होते हैं। कथा का यह बड़ा सुन्दर ढंग है। एक दिन लोकमान्य एक हरिकथा में पधारे। साथ में मैं भी था। कथा समाप्त होने पर उनके मुँह से वैसे ही शब्द निकले, जैसे गांधीजी ने एक वर्ष में स्वराज्य मिलने के सम्बन्ध में कहे थे। उन्होंने कहा कि ये हरिकथा कहनेवाले सब के सब मेरे हाथ में आ जायें, तो स्वराज्य मिलने में देर न लगे। लोगों ने पूछा कि महाराज तब कितना समय लगेगा, तो कहा एक वर्ष। वे यह समझते थे कि ये कथाकार जनता की चाबी हैं, ये सहज में विद्रोह खड़ा कर सकते हैं। लोकमान्य स्वराज्य पाने के लिए कितने व्याकुल रहते थे कि एक ओर वे हिंसा तथा विद्रोह को प्रश्रय देते, तो दूसरी ओर जनता को सजग करने के लिए कथाकार और कवियों का योगदान चाहते थे। इसी व्याकुलता में उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ को लिखा। अपने पत्र के साथ एक कोरा चैक भी भेजा था कि शांतिनिकेतन की व्यवस्था के लिए जितना धन अपेक्षित हो, वे उसमें लिख दें। बम्बई का वह बैंक जिसमें उनका हिसाब है, उसे चुका देगा, और वे शांतिनिकेतन से बाहर आकर स्वराज्य के युद्ध में अपना संपूर्ण समय देकर योगदान दें। रवीन्द्रनाथ लोकमान्य का पत्र और चेक पाकर हतप्रभ हो उठे। उन्होंने साभ एवं श्रद्धापूर्वक लोकमान्य को उत्तर दिया—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः

महाराज, मैं राजनीति के लिए उपयुक्त न होऊँग उसके लिए आप ही समर्थ हैं।

गांधीजी के आन्दोलन के स्तंभों में जैसे सरद पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और राजगोपालाचारी प्रभृ रहे, वैसे ही लोकमान्य के भी स्तंभों में बाबा साहब खाप केलकर, जोसफ वैपतिस्ता, खाडिलकर और कोल्हटक प्रभृति थे। यद्यपि तिलक की राजनीति हिन्दू धर्म पर आध रित थी, फिर भी मुसलमान और ईसाई उनसे प्रभावि थे। मौलाना मुहम्मदअली और हसरत मोहानी उ अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। पूना और बम्बई क सभाओं में मैंने उनके जो भाषण सुने, उनमें उन्हों कहा कि हमें पुजारियों की जरूरत नहीं है, हम देवता क स्वयं पूजा कर लेंगे। पुजारी चले जायें। इसका अथ यही था कि वे औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए प्रयत्नशी थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए पूना में उन्होंने होमरू लीग स्थापित की थी, कांग्रेस नरम दल के हाथ में थी वे चाहते थे कि मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन में यो दें। इसलिए वे कांग्रेस के लखनऊ के अधिवेशन में गये लखनऊ स्टेशन पर इलाहाबाद की सेवा समिति क स्वयंसेवक उपस्थित थे, जिसके कैप्टन पण्डित मदन मोहन मालवीय थे। ट्रेन से उतर कर लोकमान्य मालवीयजी से पूछा कि वे कौन हैं? मालवीयजी अत्यंत विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि वे स्वयंसेवक के सेवक के रूप में खड़े हैं। लोकमान्य अत्यंत प्रस हुए। लोकमान्य की प्रेरणा से मुसलमानों के सा समझौता हुआ और प्रदेशों में उन्हें विशेषाधिकार मिले लखनऊ से काशी आने पर लोकमान्य ने समझौते क खिलाफ लोगों का प्रभावशाली विरोध देखा। वह लोकमान्य ने कहा कि अगर इससे मुसलमान राष्ट्रीय दल में आ जायँ तो मैं इसे अपनी भूल नहीं समझूँगा। हमें तो सरकार के कल-पुर्जे तोड़ने हैं। स्वराज्य क लिए वैधानिक और अवैधानिक सभी युद्धपटों से वे आगे बढ़े। एक ओर लंदन में इंडिया लीग उनकी योजना से चलती थी, दूसरी ओर अँगरेजों के कत्ल होने पर वे विचलित नहीं होते थे। उनकी योजना से कई भारतीय युवक लंदन और पेरिस जाते और अँगरेजों के खिलाफ विद्रोह खड़ा करते। लोकमान्य की योजना से जिस दिन पूना में अँगरेज का कत्ल होता है, उसी दिन लंदन में भी होता है। लोकमान्य पूना में ही थे, मैंने सोचा कि वे कहीं गिरफ्तार न हो जायें। पर पूना में मैंने आकर देखा कि वे निर्द्वन्द्व अपने कार्यालय में बैठे हैं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। लोकमान्य के विशिष्ट साथी बाबा साहब खापर्डे थे। वैपतिस्ता ईसाई थे, जिन्होंने मजदूर आन्दोलन का श्रीगणेश किया था।

कोल्हटकर बड़े विद्वान् थे, बम्बई के दैनिक संदेश के सम्पादक थे। वे हास्यरस के सिद्धहस्त लेखक थे; अँगरेजों को आड़े हाथ लेने में उनकी लेखनी की कोई समता करनेवाला नहीं था। यही कारण था कि उनके पत्र का सर्वाधिक प्रचार हुआ। वह महाराष्ट्रीय जनता का लोकप्रिय पत्र था। खाडिलकर राजनीतिज्ञ थे। लोकमान्य के परम श्रद्धाभाजन साथियों में उनकी गणना थी। लोकमान्य के निधन के उपरांत खाडिलकर ने मराठी में 'नवा काळ' दैनिक पत्र को जन्म दिया। जहाँ लोकमान्य के निधन के पश्चात् केसरी कांग्रेस और गांधीजी का कट्टर आलोचक बना, वहाँ नवा काळ कांग्रेस का समर्थक था। खाडिलकर गांधीवादी थे और मराठी रंगमंच का अभ्युदय करनेवालों में थे। महाराष्ट्र की मनोरंजक नाटक मण्डली उनके नाटकों का महाराष्ट्र और मराठी रियासतों में अभिनय करती थी। लोकमान्य के निकट में आने के कारण इन सब व्यक्तियों से मेरा परिचय हुआ। मैंने उन सबसे सम्मान प्राप्त किया किन्तु खाडिलकरजी की मुझ पर विशेष कृपा थी। भैंस के आगे बीन बजे, वैसे ही मेरे लिए उनके नाटकों का विषय था। किन्तु उनके राजनीतिक ज्ञान और पत्रकारिता की चर्चा में मैं बड़ा रस लेता। उनकी सीधी-सादी वेश-भूषा थी और अत्यंत सरल जीवन था। लोकमान्य की प्रवृत्तियाँ उनमें मैंने देखीं। मैंने लोकमान्य को दिन-रात सार्वजनिक कार्यों में संलग्न पाया। एक दिन की बात है कि वे बाहर से आये। वे मुझसे कुछ कहने जा रहे थे कि इतने में एक शास्त्रीजी आ पहुँचे। शास्त्रीजी ने उनसे कहा कि आप सनातनधर्मी हैं, धर्मशास्त्र के ज्ञाता हैं और कर्मकाण्ड जानते हैं। पर मैं देखता हूँ कि आप बाहर से आये, पगड़ी और अँगरखा उतारकर खूँटी पर टाँगा। स्नान कर दो-चार गायत्री मंत्र पढ़े न पढ़े, और भोजन कर फिर बाहर निकल गये। आप जैसे सनातनधर्मी को भले प्रकार ईश्वर-आराधन और पूजा-पा करना चाहिए। मैं सोचता रहा कि लोकमान्य क्या उत्तर देंगे। पर मैंने देखा कि शास्त्रीजी ने अपनी बात ज्योंही समाप्त की कि उन्होंने तुरन्त कहा कि मैं ईश्वर की आराधना नहीं करता, यह आपने कैसे जान लिया। दिन-रात जो जनता की सेवा करता हूँ वह क्या ईश्वर की पूजा व आराधना नहीं है? इसका शास्त्रीजी क्या जवाब देते? वे निरुत्तर हो गये। मैंने हर घड़ी उन्हें काम करते हुए पाया। कभी वे केसरी के लिए लेख लिख रहे हैं, कभी योजना बनाने में लगे हैं और कभी बाहर गये हुए हैं। वे इतने व्यस्त रहते थे कि परिवार तक का खयाल नहीं करते थे। सबसे छोटा पुत्र मर गया, और लोकमान्य केसरी के लिए लेख लिख रहे हैं। जब उनसे कहा कि पुत्र की मृत्यु हो गयी, तो उन्होंने कहा कि उसे ले चलने की तैयारी करो, मेरा लेख खत्म हुआ जाता है। ऐसा उनका कर्ममय जीवन था। सचमुच वे कर्मयोगी थे। वे भारतीय राष्ट्र के सूत्रधार थे, भारतीय राजनीति के जन्मदाता थे, कूटनीति के आचार्य थे। हार मानना, पीछे हटना और गलती स्वीकार करना उनके जीवन में नहीं था। शत्रु से युद्ध मोल लेना उनके जीवन का परम लक्ष्य था। वे स्वराज्य चाहते थे। देश के कोटि-कोटि व्यक्तियों के लिए राज्य सुख का भी उपभोग चाहते थे। इसके लिए वे विदेशी शासन से हर घड़ी और हर पग पर मोर्चा लेते थे। भगवान् कृष्ण के शब्दों में उनकी वाणी से सदा निकलता था——

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्

जब वे बाहर निकलते, तो यह लगता था कि माँद में से सिंह निकला है। एक बार वे बम्बई शेयर बाजार में पधारे। शेयर बाजार में हलचल मच गयी। व्यापारिक अंचल उनके दर्शन के लिए दौड़ पड़ा। वे जिस कार्म से गये थे उसे पूरा करने में लोगों को विलम्ब न लगा। सर वेलेन्टाइन शिरोल ने अपनी रचना में लोकमान्य को राजद्रोही और विद्रोही लिखा था। अपने प्रति इस आरोप का खंडन करने के लिए वे विलायत में मुकदमा लड़ने गये। सनातनियों ने कहा कि उन जैसे सनातनी को विदेश-यात्रा नहीं करना चाहिए। इस मुकदमे में बहस कर उन्होंने लंदन में अपना राजनीतिक प्रचार किया। जब वे लंदन से लौटकर आये, तब मैं अपनी श्रद्धा और सम्मान प्रकट करने के लिए उनसे मिलने गया। लोगों का समूह जमा था। वे बड़े स्नेह से मिले। उसी दिन संध्या में बम्बई के मिल-क्षेत्र——परेल के मैदान में——उन्होंने मजदूरों की सभा में भाषण दिया। मजदूर संगठन की दृष्टि से उनका यह पहला भाषण था। उन्होंने विलायत के मजदूरों की स्थिति का वर्णन किया कि वहाँ ट्रेड यूनियन संगठनों द्वारा मजदूरों ने कितने अधिकार प्राप्त किये हैं। वहाँ वे अपने अधिकारों के लिए हड़तालें करते हैं। मिल मजदूरों की ट्रेड यूनियनों के अभाव में औद्योगिक क्षेत्र में तो कोई हड़ताल नहीं हो पायी, किन्तु वैपतिस्ता के नेतृत्व में तार और डाक-विभाग की जबर्दस्त हड़ताल हुई, जो करीब एक मास तक चली। उनमें जनता का विश्वास-भाजन बनने की महान् शक्ति थी। देश के नेतृत्व के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि "यदि तुममें शक्ति है, और तुम्हारे नेतृत्व में जनता का विश्वास है, तो तुम अपने विचारों के अनुरूप जनता को बदल सकते हो। पर यदि वह शक्ति नहीं है, तो जनता के विचारों के साथ चलो, अन्यथा तुम अपना नेतृत्व खो बैठोगे। शक्तिहीन होकर तुम अपना नेतृत्व जनता पर नहीं लाद सकते।" अनेक विषयों पर उनसे मेरी जो चर्चाएँ होतीं, खेद है कि मैं उन्हें इस संस्मरण में स्थान नहीं दे सका।

जब लाला लाजपतराय अमरीका से भारत लौटे तब बम्बई में उनके स्वागत में सभा हुई। उस समय 'बाल लाल पाल' का जो नारा लगता था, उस समारोह में उसमें से दो विभूतियाँ उपस्थित थीं। बाल गंगाधर तिलक लाजपत राय की स्वागत सभा में

स्वयं पधारे थे। दोनों समीप समीप ही बैठे थे। लाजपतराय ने अपने गुरु के रूप में शिर नमन कर लोकमान्य को प्रणाम किया। लोकमान्य ने लाजपतराय की पीठ पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा––"लाजपत, तुमने जो गौरव प्राप्त किया, राष्ट्र का जो सम्मान प्राप्त किया, उससे मेरा सम्मान बढ़ा। तुम्हारे-जैसे पुत्र से भारत को गर्व है।" लाला लाजपतराय ने भी लोकमान्य के ज्वलंत राजनीतिक नेतृत्व का विशद उल्लेख किया। मेरे लिए यह आखिरी सभा थी जिसमें लोकमान्य ने भाषण दिया। उसके उपरांत वे किसी सभा में उपस्थित नहीं हो सके।

१९२० में जब लोकमान्य अमृतसर कांग्रेस से लौटकर आये, तब बम्बई में मैंने उनसे तेजी से कई प्रश्न किये। मैंने कहा कि जीवन के संध्याकाल में क्या आप नरम दल की पट्टी में अपना नाम लिखाना चाहते हैं? मैंने कुछ आवेश में कहा कि अमृतसर में आपने शासन-सुधारों को स्वीकार करने की जो बात प्रकट की, उससे शत्रु के आगे हम दबते हैं, हमारी पराजय होती है। मुझे तेजी में देखकर वे बोले––'तुम अभी तरुण हो, राजनीति और युद्ध-संचालन किस युद्ध-पट पर किया जाता है, उसे हमें समझना चाहिए। हमने सरकार से पूरे खेत का अधिकार माँगा, किन्तु उसने हमें एक कोने पर बैठने का हक दिया। हम वह हक क्यों छोड़ें? हमारे उस कोने को हथियाने पर शत्रु के लिए खतरा ही है और हमारे लिए विजय का मार्ग प्रशस्त होता है।' उन्होंने कहा कि 'राजनीति में हाथ में आये हुए शत्रु को खाली छोड़ देना नीति नहीं है।' उन्होंने कहा कि "राजनीति साधुता, आदर्श और दार्शनिकता की चीज नहीं है।" वे बोले, "युद्ध जीतने के लिए हमें झूठ बोलना पड़े तो हमें उसका भी आश्रय लेना पड़ेगा। हमारा लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना है और उसे हम किसी भी उपाय से प्राप्त करेंगे। सुधारों के स्वीकार करने में हमारी क्लीवता प्रकट नहीं होती है, अपितु हम कुछ और बल प्राप्त करते हैं, जिसके द्वारा हम स्वराज्य का युद्ध अधिक तेजी से लड़ेंगे।" अंत में उन्होंने कहा कि "अँगरेज हमसे जितना सहयोग करेंगे, जिस हद तक हाथ बढ़ायेंगे, उतना हमारा उनसे सहयोग होगा और उस हद तक हमारा हाथ बढ़ेगा। हमारी राजनीति का आधार असहयोग नहीं, प्रति सहकार (Responsive Cooperation) है।" वे बोले कि "श्रीकृष्ण का संदेश राजनीति में सदा ध्यान में रखने के लिए है:–––

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थात् तुम्हारे बढ़ने पर मेरा बढ़ना निर्भर है। जितना तुम्हारा सहयोग होगा उतना ही मेरा होगा।" बम्बई में लोकमान्य के बीमार पड़ने पर जब गांधीजी आशीर्वाद लेने आये, तब भी उन्होंने यही तत्त्व कहा था। वे नरम दल के लिए कालनेमि थे, किन्तु कोई जरूरत पड़ने पर उस दल के नेताओं से मिलने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था। गोखले नरम दल के अग्रणी नेत थे, किन्तु उनकी राजनीतिक पटुता, कुशल व्यवहार औ सेवाओं से लोकमान्य प्रभावित थे। यही कारण थ कि जब पूना में गोखले का स्वर्गवास हुआ, तब लोक मान्य उनकी शव-यात्रा में गये थे, और जब उनके दाह संस्कार के समय लोग रो पड़े तब लोकमान्य ने कहा– 'गोखले के लिए क्यों रोते हो? गोखले के प्रति श्रद्धा तो गोखले बनने का प्रयत्न करो।' इस प्रकार लोकमान ने देश को आगे बढ़ाया, घोर अंधकार मिटाकर देश नव-जागरण उत्पन्न किया। स्वराज्य के युद्ध का मा प्रशस्त किया। अब भारत की भूमि ऊबड़-खाबड़ नह रही थी। लोकमान्य ने उसे समतल कर हरा-भर क्षेत्र तैयार किया था।

१९२० की जुलाई में वे रुग्ण हो गये। उन्हें बुखा आया। उसी हालत में वे बम्बई आये और ताई महाराज के मुकदमे में उन्होंने कार्य किया। वह उनका ६४व वर्ष था। बम्बई के प्रसिद्ध विश्रांति गृह–'सरदार गृह में वे ठहरे थे। पर यहाँ भी बुखार ने उनका साथ न छोड़ा। २३ जुलाई को उनका जन्म-दिवस था औ २६ को वे सख्त निमोनिया से आक्रान्त हो गये। फिर भी किसीको यह आभास न था कि उनका अंत सन्निकट है मगर २७ तारीख को उनकी अवस्था खतरनाक हो गयी पूना से पुत्र, पुत्रियाँ और परिवार के लोग बम्बई अ गये। देश में तार द्वारा उनकी बीमारी का समाचा फैल गया। लाला लाजपतराय को भी समाचा दिया गया। बम्बई में सर्वत्र बीमारी का समाचार फै गया और लोग चिंतित थे। दो-दो घण्टे के बीच से लो उनकी हालत जानने के लिए दौड़े आते थे। मैं स्व दिन और रात में कई बार पहुँचता था। जब सन्निपा में वे बेहोश हो गये, तब उनके मुँह से यदाकदा अस्फु शब्द निकलते। पर जब तक उन्हें होश रहा, उन्हों यही कहा कि स्वराज्य प्राप्त किये बिना देश का अभ्युत्थान नहीं होगा। जिन्होंने उन्हें राजद्रोही और विद्रोह कहा था, वे उनकी कीर्ति के प्रतीक बने। हृदय की गति कमजोर पड़ गयी। शनिवार ३० तारीख का दि जैसे-तैसे बीता। यात्रियों और दर्शकों से सरदार-गृ भरा हुआ था। अपनी बेचैनी के कारण मैं और मेर एक साथी दोनों हर समय समाचार जानने के लिए समीप में ही ठहर गये थे। जो सिंह अब तक शय्या प लोगों को आशा दे रहा था, वह रविवार की रात्रि मे बारह बजे देह बंधन से मुक्त हो देशवासियों को रोते विलपते छोड़ स्वर्ग सिधार गया। प्रातःकाल लाखों नर नारी व्याकुल हृदय से अंतिम दर्शन के लिए दौड़ पड़े मृत्यु के पश्चात् उन्हें तुरन्त ही बिठा दिया गया था प्रातःकाल लोगों को उनके बैठे हुए दर्शन हुए, मानों वे जीवित अवस्था में हों। उनकी वेश-भूषा उन्हें पहना दी गयी थी। लोग देखते और यह सोचते रह जाते कि आज इस नरकेसरी की वाणी से दो शब्द क्यों नह

निकलते हैं? इधर नर-नारी विलखते थे, उधर आकाश से मेघ वर्षा कर रहे थे।

लोकमान्य का जीवन संस्मरणीय था, परतंत्र भारत में उनकी अंतिम यात्रा भी संस्मरणीय थी। गुलाम भारत में लोकमान्य की शव-यात्रा सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेगी। लोकमान्य विमान में बैठे हुए थे। रोते, विलाप करते करीब आठ लाख नर-नारी शव-यात्रा में थे। इस विशाल भीड़ को देखकर बम्बई सरकार विचलित हो गयी। अधिकारियों ने सोचा कि इस भीड़ से मार्ग में पड़नेवाले ईसाइयों के कब्रिस्तान जमींदोज हो जायेंगे। अतः तुरन्त ही सरकार ने निर्णय किया। लोकमान्य का शव चौपाटी की ओर मुड़ा। पर जब शव बम्बई के व्यापारिक अंचल मोती बाजार में पहुँचा, तो जौहरियों ने मोतियों की वर्षा कर दी। संध्या में शव चौपाटी पहुँचा। आजकल हवाई जहाज से कुछ घण्टों में लोग कहीं से कहीं पहुँच सकते हैं। पर उस समय रेलगाड़ी ही यात्रा का एकमात्र साधन थी। लाला लाजपतराय लाहौर से चल पड़े, किन्तु बम्बई तब पहुँचे, जब लोकमान्य का पार्थिव शरीर दाह-संस्कार के लिए चिता पर रखा जा चुका था। वे सीधे स्टेशन से दाह-संस्कार के स्थान पर पहुँचे। लालाजी के नेत्र भर आये, मुँह से कुछ नहीं निकला। कुछ क्षणों तक मस्तक झुकाए खड़े रहे। केवल इतना कहा—'भारत में दहाड़नेवाला शेर चला गया।' अग्नि-संस्कार होने पर उनसे न रुका गया। लोकमान्य स्वर्ग सिधार गये, पर उन्होंने जो पौधा खड़ा किया, वह मुर्झाया नहीं, भावी पीढ़ी ने उसे पल्लवित किया। उन्होंने अपने जीवन की जो आहुति दी, उसीका परिणाम है कि आज देश स्वतंत्र है, और हम स्वराज्य सुख का उपभोग कर रहे हैं। यह स्वतंत्रता हमारे लिए विरासत है। थाती है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने प्राण देकर इसकी रक्षा करें।

आज मेरे द्वार ?

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी

लाज से यों लाल होकर कह रही है साँझ,
क्या न आओगे अरे शशि! आज मेरे द्वार?

मैं धरा को कुंतलों से ढाँक दूँगी,
तारकों के दीप शत शत बार दूँगी,

सुला दूँगी जगत को दे थपकियाँ मैं,
खोल तेरे लिए पूरब द्वार दूँगी,
फिर रचेंगे हम मधुर अभिसार
क्या न आओगे अरे शशि! आज मेरे द्वार?

एक दिन जब कुंतलों से नभ ढँका था,
भीत होकर अमा कह कर तुम न आए,

और आए भी, लगे उखड़े हुए से,
एक दिन भी तुम न खुल कर मुस्कुराए,
आज पूनम की बनूँगी रात,
क्या न आओगे अरे शशि! आज मेरे द्वार?

याद रखना रात भर जाने न दूँगी,
पश्चिमा में आज छिप जाने न दूँगी,

प्रात आवेगी उषा जब अरुण के संग,
गर्विता-प्रिय आज मुस्काने न दूँगी,
फिर चलेंगे आज हम क्षिति पार!
क्या न आओगे अरे शशि! आज मेरे द्वार?

असम का परिचय (१)

असम का नाम लेते ही कामरूप-कामाख्या की याद आ जाती है,—उस कामरूप की जहाँ की सुंदरियों के लिए यह जनश्रुति फैली हुई थी कि वे बाहर से जानेवाले पुरुषों को भेड़ा बना लेती हैं! असम तंत्र-मंत्र का घर समझा जाता रहा है। उसके सम्बन्ध में इतनी भ्रमात्मक बातें फैलने का कारण यही मालूम होता है कि वह एक कोने में पड़ गया था, वहाँ पहुँचना बड़ा कठिन था और वह भारतीय समाज की मुख्य जीवनधारा से दूर जा पड़ा था। आज रेल, मोटर, वायुयानों का युग है, फिर भी साधारण भारतवासी को इस सुंदर और मनोरम प्रदेश की बहुत कम जानकारी है। वह उसे दुर्गम पर्वतों का जंगली देश समझता है जिसमें बहुधा भयंकर भूकम्प आया करते हैं, जो बाढ़ों से आक्रान्त रहता है, जिसमें गैंडे, बाघ, हाथी आदि हिंस्र जंतुओं की बहुतायत है, जहाँ चाय बागान हैं, जहाँ भाषा सम्बन्धी झगड़े होते रहते हैं और जहाँ नागा आदि आदिवासी रहते हैं जो लड़ाकू हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सब धारणाएँ अर्द्धसत्य हैं और इसलिए भ्रामक हैं। आज चीनी आक्रमण के कारण हमारा यह सुदूर प्रदेश सहसा अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो उठा है। सरस्वती के पाठकों की जानकारी के लिए हम उसका सामान्य परिचय देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

वर्तमान असम राज्य भारत का उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश है। इसके उत्तर में भूटान, उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश, पूर्व में बर्मा और मनीपुर, दक्षिण में बर्मा और पूर्वी पाकिस्तान तथा पश्चिम में कुछ दूर तक पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल है। इसका क्षेत्रफल ४७,०९८ वर्गमील, और १९६१ की गणना के अनुसार जनसंख्या १,१८,६०,०५९ (एक करोड़ अठारह लाख साठ हजार उनसठ) है। इसमें नागालैण्ड को मिलाकर १२ जिले हैं। वे ये हैं: ग्वालपाड़ा, कामरूप, डरांग (तेजपुर), लखीमपुर, शिवसागर, नौगाँव, गारो, खसी जयन्तिया, मिकिर और उत्तरी कछार, कछार, मीज़ो या लूशाई, नागालैण्ड जिसमें त्वेनसांग सम्मिलित है। कछार और मीज़ो के पश्चिम में त्रिपुरा और इनके पूर्व में मनीपुर के जिले हैं जो केन्द्रीय शासन में हैं। नागालैण्ड हाल ही में एक स्वायत्तशासी प्रदेश बन दिया गया है।

इस लेख के पूर्वार्द्ध में हम असम का संक्षिप्त इतिहा और उत्तरार्द्ध में यहाँका भौगोलिक, आर्थिक और सामा जिक वर्णन देंगे।

१—असम का इतिहास

महाभारत काल में असम को प्राग्ज्योतिषपुर कह थे। वहाँका राजा भगदत्त कौरवों की ओर से महाभार के युद्ध में लड़ा था। भीष्म ने उसका परिचय देते हु कहा था:

> **प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान्**
> **गजांकुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः।**

प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त बड़े वीर और प्रताप हैं, हाथ में अंकुश लेकर हाथियों को काबू रखनेवा वीरों में इनका सबसे ऊँचा स्थान है। ये रथ युद्ध में भ कुशल हैं।

कालिदास ने भी रघुवंश में रघु की दिग्विजय का वर्ण करते हुए इस प्रदेश की चर्चा इस प्रकार की है:

> **चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः**
> **तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः।**
> **न प्रसेहे स रुद्धार्कमधारावर्षदुर्दिनम्**
> **रथवर्त्मरजोप्यस्य कुत एव पताकिनीम्।**
> **तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्**
> **भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः।**
> **कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम्**
> **रत्नपुष्पोपहारेणच्छायामानर्च पादयोः।**

(लौहित्य नदी को पार करके रघु प्राग्ज्योति पहुँचे। वहाँ हाथियों के बँधने से जैसे कालागुरु के पे काँपते थे वैसे ही वहाँके राजा रघु के भय से काँपने लग वहाँके राजा ने देखा कि बादलों के बिना ही केवल र की सेना की धूल से सूर्य छिप गया? जब इस धूल से वह घबड़ा गया तब लड़ता क्या। तब कामरूप के रा ने जिन हाथियों को लेकर बड़े-बड़े शत्रुओं को हरा दि

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

था उन्हीं हाथियों को उसने इंद्र से भी अधिक पराक्रमी रघु को भेंट में दे दिया। जैसे कोई भक्त फूल-माला आदि से भक्तिपूर्वक देवता की पूजा करता है वैसे ही कामरूप नरेश ने सोने के पाँव-पीढ़े पर पड़ी हुई रघु के चरणों की छाया को रत्नों से पूजा।)

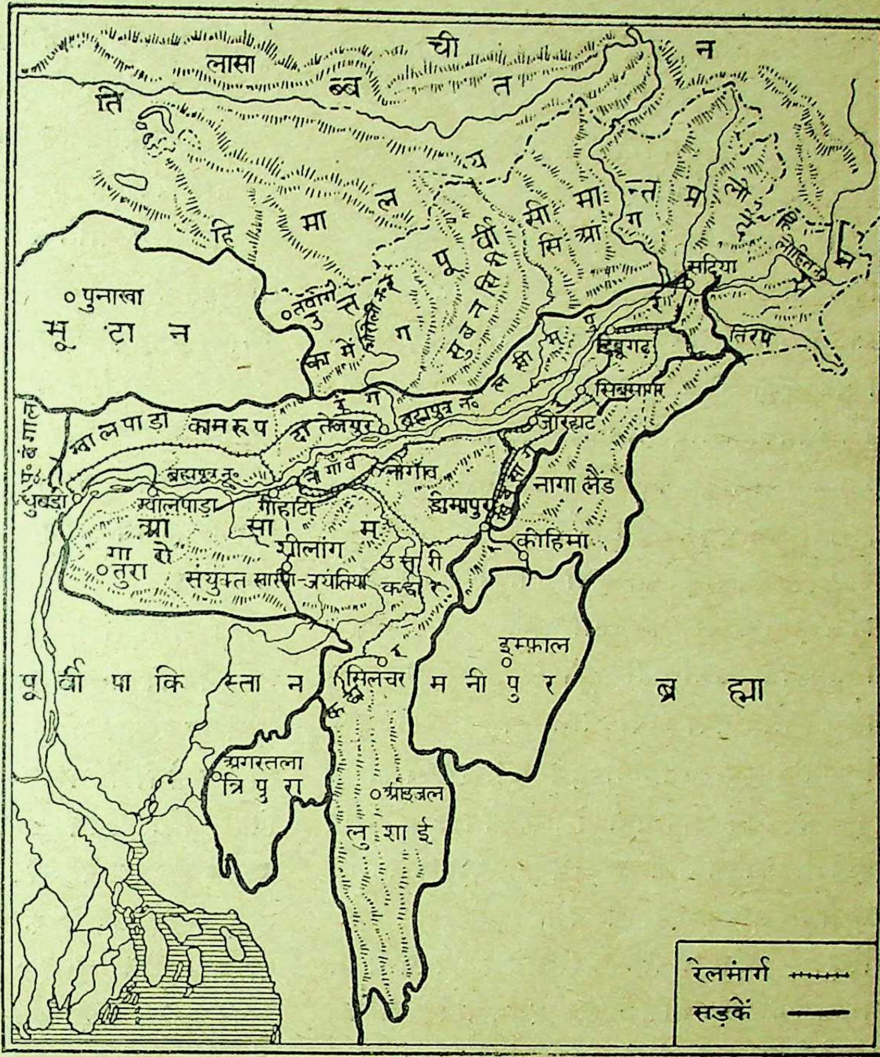
ति ब्ब त
ची न
लासा
हि मा ल य
पू र्वी सी मा न्त प्र दे श
सि आ ग
सदिया
लोहित
तिरप
पुनाखा
भू टा न
तवांग
कामेंग
सुबनसिरी
ब्रह्मपुत्र न०
डिब्रूगढ़
शिवसागर
जोरहाट
तेजपुर
ग्वालपाड़ा
कामरूप
दरंग
नौगांव
धुबड़ी
गौहाटी
आ सा म
नागा लैंड
डीमापुर
कोहिमा
गा रो
तुरा
शीलांग
संयुक्त खासी-जयंतिया
उत्तरी कछार
इम्फाल
म नी पु र
ब्र ह्मा
पू र्वी पा कि स्ता न
सिलचर
अगरतला
त्रि पु रा
आइजल
लु शा ई
रेलमार्ग
सड़कें

लौहित्य उस नद का नाम है जिसे अब ब्रह्मपुत्र कहते हैं। इसका यह पुराना नाम अब भी चलता है। बरसात में आस-पास के मैदानों की लाल रंग की मिट्टी के मिलने के कारण उसका जल लाल रंग का (लोहित) हो जाता है। इसीसे इस नद का नाम 'लौहित्य' पड़ गया था। इसे पारकर रघु ने प्राग्ज्योतिष में प्रवेश किया। महाभारत में इस प्रदेश की चर्चा कई जगह हुई है, किंतु वहाँ 'प्राग्ज्योतिष' नाम ही का प्रयोग किया गया है। कालिदास ने प्राग्ज्योतिष के अतिरिक्त इसके लिए 'कामरूप' शब्द का भी प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत-निर्माण काल और कालिदास के समय के बीच कामरूप-कामाख्या के मन्दिर की स्थापना ही नहीं हो गयी थी, प्रत्युत उसकी ख्याति भी इतनी बढ़ गयी थी कि वह प्रदेश उसके नाम से प्रसिद्धि पा गया था। 'योगिनीतंत्र' 'कालिका पुराण' आदि ग्रंथों में भी इसका नाम 'कामरूप' ही दिया हुआ है। तंत्र चूणामणि में इस प्रदेश का परिचय इस प्रकार दिया है:

योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या तत्र देवता।
सर्वत्र विरला चाहं कामरूपे गृहे गृहे।

तंत्र में कहा है:

कालेश्वरं श्वेतगिरिम् त्रैपुरं नीलपर्वतम्
कामरूपाभिधो देशो गणेशगिरिमूर्द्धनि।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि वर्तमान असम का पुराना नाम प्राग्ज्योतिष था और बाद में वह कामरूप देश के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इलाहाबाद के समुद्रगुप्त के शिलालेख (३५० ई०) में भी इस प्रदेश को 'कामरूप' ही कहा गया है। ह्वेनसांग और अलबरूनी ने इस शब्द को विकृत करके इसका प्रयोग कामरू या कामरित करके लिखा है। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण उसकी भूमि गंगा के मैदान की तरह समतल नहीं थी—'असम' थी। इस-

लिए वह बाद में किसी समय 'असम' कहा जाने लगा। अँगरेजों ने 'असम' शब्द का अँगरेजी उच्चारण 'आसाम' कर दिया, और उनकी कृपा से आज वह संसार में इसी नाम से विख्यात है। कुछ लोगों का मत है आहम (आहोम) जाति का यहाँ बहुत दिनों राज्य रहा और इस कारण इस प्रदेश को 'आहम' या 'आहोम' कहा जाने लगा। बाद में 'ह' का उच्चारण 'स' हो गया। असम महाभारत काल ही में उत्तर भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का अंग बन चुका था। नरकासुर और वाणासुर इसी प्रदेश के थे जिनकी कथाएँ श्रीमद्भागवत और महाभारत में मिलती हैं। वाणासुर की राजधानी शोणितपुर आज तेजपुर, और नरकासुर का कुंडलपुर आज सदिया के नाम से विख्यात हैं। वाणासुर की पुत्री उषा और अनुरुद्ध के प्रणय की कहानी से मालूम होता है कि उस समय इस प्रदेश में सांस्कृतिक उन्नति हो चुकी थी। उषा की सखी ने अनुरुद्ध का चित्र बना दिया था। वाण और नरक के नामों के आगे 'असुर' शब्द लगा हुआ है। इसका कारण यह है कि ये लोग आर्य नहीं थे। ये मंगोल थे, और अनार्य होने के कारण आर्य इन्हें असुर कहते थे क्योंकि ये शक्तिशाली और समुन्नत भी थे।

वास्तव में अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण असम में कई मानव वंशों का संगम हुआ है। इसमें प्रागैतिहासिक युग ही से विभिन्न मानववंशों ने आना आरम्भ कर दिया था। हिमालय और पटकोई आदि की पहाड़ियाँ और घने जंगल उस पार के मंगोलों को इधर आने से रोके हुए थे। किंतु फिर भी चीन, तिब्बत या बर्मा से भूल-भटककर अथवा अपने शत्रुओं से त्रस्त होकर सौ-दो सौ के समूह कभी-कभी पहाड़ों और जंगलों में आ जाते और संयोग से किसी निचली घाटी में पड़कर ब्रह्मपुत्र के मैदान में, या पहाड़ियों के भारतीय ढालों में आ पहुँचते और बस जाते। इस प्रकार यहाँ उस ऑस्ट्रिक वंश के कुछ लोग आ गये जो मलाया से आस्ट्रेलिया तक फैले हुए थे। इनके अतिरिक्त मंगोल वंश के तिब्बती मंगोल, चीनी मंगोल और बर्मी मंगोल भी आये जिनकी अनेक जातियाँ असम, उत्तर-पूर्वी सीमा-प्रान्त और नागालैण्ड, त्रिपुरा और मणिपुर में बसी हुई हैं। प्राचीन काल में इन मंगोलवंशीय लोगों के लिए सामूहिक रूप से 'किरात' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इनमें से कुछ बर्मी मंगोल तो उन्नीसवीं शती तक आये हैं। इनके अतिरिक्त द्रविड़ और आर्य भी यहाँ अति प्राचीन काल में दक्षिण और पश्चिम से पहुँच गये थे यह कहना कठिन है कि इनमें कौन सी जाति पहिले आयी किंतु यह निश्चित है कि महाभारत काल तक यहाँ भारत की आर्य संस्कृति फैल चुकी थी और कितने ही 'असुर कहलानेवाली जातियों ने आर्य संस्कृति स्वीकार कर ली थी। यह प्रक्रिया असम में बराबर जारी रही। सत्रहवं शती में बर्मा से अहोम जाति के लोग आये। कालान्त में उन्होंने आर्य सभ्यता ही स्वीकार नहीं की, प्रत्यु उन्होंने हिंदू आचार-विचार और विश्वास अपना लिये और वे अपने को हिंदू कहने लगे। इनके अतिरिक्त कितनी ही मंगोलवंशीय जातियों ने वैष्णव धर्म स्वीका कर लिया। तिब्बत से लगी हुई जातियाँ बौद्ध ह गयीं। अँगरेजों ने इन जातियों को (जिन्हें उन्होंने आदिमवासियों--ट्राइबल्स--की संज्ञा दी) असमवासिय से अलग रखना चाहा, और इसके लिए इनके कितने ह निवास क्षेत्रों में भारतवासियों का प्रवेश वर्जित क दिया, किंतु उनमें ईसाई मिशनरियों को शिक्षा दे अस्पताल खोलने और ईसाई धर्म का प्रचार कर उन्हें ईसाई बनाने की छूट दे दी। बहुत लोगों की य धारणा है कि अँगरेज चाहते थे कि यदि भारत उन हाथों से निकल भी जाय तो इन जातियों का क्षेत्र भार से अलग होकर अँगरेजों के अधीन क्राउन कलोन (अँगरेज शासित उपनिवेश) के रूप में बना रहे मिशनरियों ने इन लोगों में यह भावना भरने क प्रयत्न किया कि वे भारतवासियों से भिन्न हैं औ अलग रहने ही में उनका कल्याण है।

असम और उसके आस-पास के अंचल में दर्जन जातियाँ रहती हैं। इन सबकी सूची देना निरर्थक है किंतु उनमें नागालैण्ड, त्वेनसांग के नागा, उत्तर-पूर्व सीमा-प्रान्त के डल्फा, मिशमी, अबोर, आका, दक्षिण पहाड़ियों के मिशमी, खसी, कचारी आदि मुख्य हैं।

महाभारत में भगदत्त के साथ किरातों और ची सैनिकों का वर्णन है जो स्वर्ण के समान रंग के थे 'किरात' शब्द मंगोलवंशीय जातियों (तिब्बती मंगोल बर्मी मंगोल, चीनी मंगोल) के लिए प्रयुक्त हो रहा है। मंगोल जाति की त्वचा का रंग पीत होता है इससे किरातों का मंगोलवंशीय होना स्पष्ट है।

प्राचीन हिंदू इतिहासों और पुराणों में इस प्रदेश में परशुराम के आने का भी वर्णन मिलता है। यहाँ परशुराम को मातृ-हत्या के पाप से मुक्ति मिली थी। जिस सरोवर में उनका पापमोचन हुआ था वह परशुराम कुंड के नाम से विख्यात था। कहते हैं कि पिछले भूचाल के बाद वह नष्ट हो गया। पुराणों में रामायण काल के बाद ही यहाँ कुश के पुत्र का राज्य बतलाया गया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक तो अवश्य ही यहाँ आर्यों का प्रवेश भली भाँति हो गया था।

ऐतिहासिक काल में सबसे पहिला नाम जो हमें मालूम होता है वह पुष्यवर्मा का है जो गुप्तकाल के आरंभ में कामरूप में राज्य करता था। कहा जाता है कि इस राजवंश का संस्थापक प्रलम्ब नामक एक पुरुष था। समुद्रगुप्त की प्रयाग की प्रशस्ति में प्राग्ज्योतिष राज्य की चर्चा की गयी है। कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है कि इस वंश की अमृतप्रभा नाम की एक राजकुमारी का विवाह कश्मीर के राजकुमार मेघवाहन से हुआ था। भारत की प्राचीन एकता का यह प्रमाण है कि उस युग में भी कश्मीर और असम ऐसे एक दूसरे से अत्यंत दूर प्रदेशों में विवाह-संबंध होते थे। किंतु इस वंश का प्रसिद्ध राजा भास्कर वर्मा हुआ जो हर्षवर्द्धन का समकालीन था। उससे और गौड़ (बंगाल) के शशांक से युद्ध हुआ जिसमें उसने शशांक को परास्त किया था। उसके समय की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें निधानपुरा और दूबी के ताम्रपत्रों, वाण के हर्षचरित तथा ह्वेनसांग के यात्रा-वर्णन से मालूम होती हैं। समुद्र तक उसका राज्य था। उसने अपने साम्राज्य का एक मानचित्र चीन के सम्राट् को भेजा था। इससे मालूम पड़ता है कि उस समय तक असम ने विद्या-सम्बन्धी कितनी उन्नति कर ली थी। ६४४ ई० में उसने हर्षवर्द्धन की राजधानी कन्नौज की यात्रा की। वहाँ उसकी भेंट ह्वेनसांग से हुई और उसने चीनी यात्री को अपने राज्य में निमंत्रित किया। ह्वेनसांग ने भास्कर वर्मा को 'पूर्वी भारत का सम्राट्' लिखा है। असम के संबंध में वह लिखता है:

"कामरूप देश की परिधि १०,००० ली है। राजधानी का विस्तार ३० ली है। यहाँ की धरती में नीचा मैदान है किंतु बड़ी उपजाऊ है और उसमें अच्छी खेती होती है। बाँध बनाकर तालाब बनाये जाते हैं। उनसे और नदियों से नहरें निकाली जाती हैं जो नगरों के चारों ओर बहती हैं। यहाँ के निवासी सरल, भोले और ईमानदार हैं। उनका कद छोटा होता है और उनका रंग साँवला-पीला है। यहाँ की भाषा मध्य देश (वर्तमान उत्तर प्रदेश बिहार आदि) से कुछ ही भिन्न है। लोग हिंदू धर्म को मानते हैं। वे देवताओं का पूजन करते हैं और उन्हें बलि चढ़ाते हैं। यहाँ मंदिरों की प्रचुरता है।"

भास्कर वर्मा की मृत्यु के बाद प्रलम्ब वंश समाप्त हो गया। शालस्तंभ नामक एक व्यक्ति ने ६५५ ई० के लगभग राज्य पर अधिकार कर लिया। इस वंश में हर्षवर्मा नाम का राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसने अपनी राजकुमारी का विवाह नैपाल-नरेश से किया था। नैपाल के पशुपतिनाथ के शिलालेख में हर्षवर्मा को गौड़, कलिंग आदि का भी अधिपति बताया गया है।

शालस्तंभ वंश का अंत दसवीं शती के अंत में हो गया और ब्रह्मपाल ने पालवंश की स्थापना की। ये पाल बंगाल के इसी नाम के वंश के राजाओं से भिन्न थे। ये अपने को नरकासुर का वंशज बतलाते थे। कुछ विद्वानों की सम्मति में ये लोग वास्तव में 'बोडो' (मंगोल) वंशीय थे जिन्होंने हिंदूधर्म स्वीकार कर लिया था। बारहवीं शती के अंत में इस वंश में पृथु नामक एक राजा हुआ। उसने जलपाईगोड़ी में एक विशाल शिव-मंदिर बनवाया जो जलेश्वरनाथ के नाम से प्रसिद्ध था। इसीके राज्यकाल में असम पर पहिला मुसलमान-आक्रमण हुआ। १२०५ ई० में बंगाल की विजय से प्रोत्साहित होकर बख्तियार खिलजी ने असम पर चढ़ाई कर दी। किंतु पृथु ने उसे बुरी तरह से हरा कर भगा दिया। सुलतान गयासुद्दीन ने १२२७ में असम पर दूसरा आक्रमण किया। किंतु पृथु ने उसे भी परास्त कर दिया।

जिस समय पालवंश का सूर्य तमतमा रहा था, उस समय पश्चिमी असम में एक दूसरे राज्य की शक्ति बढ़ रही थी। इसकी राजधानी कामतापुर में थी और इस राज्य को 'कामता' राज्य कहते थे। इसने असम के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था। पश्चिम बंगाल का वह भाग भी जो आज कूचबिहार और जलपाईगोड़ी कहलाता है, उसी राज्य में था। इस वंश के सबसे प्रसिद्ध

राजा का नाम दुर्लभनारायण था। यह बड़ा विद्याप्रेमी था। उसके समय में असम के कई प्रसिद्ध वैष्णव कवि हुए जिनका वह बड़ा सम्मान करता था। हेम सरस्वती का 'प्रह्लादचरित' उसीके राज्यकाल में लिखा गया था।

पंद्रहवीं शती के आरंभ में कामतापुर का राज्य समाप्त हो गया और उसका स्थान खेनवंश ने ले लिया। इसे नीलध्वज नाम के एक सैनिक ने स्थापित किया था। यह वंश थोड़े ही दिनों राज्य कर सका। इसका अंतिम राजा नीलाम्बर था। इसने कितनी ही सड़कें बनायीं, अपने राज्य का विस्तार किया और मुसलमान शासकों से बंगाल का कुछ भाग छीन लिया। किंतु १४९८ में बंगाल के सुलतान हुसेनशाह ने उसपर चढ़ाई कर दी और राजधानी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार कामतापुर के राज्य का अंत हुआ। इस राज्य के कुछ भागों पर भुइयाँ वंश के कुछ मांडलिक राजा राज करते रहे।

सोलहवीं शती के आरंभ में पश्चिमी असम में एक नयी शक्ति ने जन्म लिया। कामतापुर के राज्य की समाप्ति के बाद उस क्षेत्र में भुइयाँ लोगों के छोटे-छोटे राज्य बन गये थे। पश्चिमी बोडो जाति के कोच वंश के विश्वसिंह नामक एक पराक्रमी व्यक्ति ने इन छोटे-छोटे भुइयाँ राजाओं को जीतकर सन् १५१५ में कोच राज्य की स्थापना की। उसने अपनी राजधानी पुराने नगर कामतापुर में नहीं रखी। उसने एक नया नगर बसाया जिसका नाम कोच-विहार या कूचबिहार रखा। यह शिव और दुर्गा का भक्त था। इसने कामाख्या के पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार किया। १५३३ में इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र नरनारायण गद्दी पर बैठा और उसने पचास वर्ष राज्य किया। यह राजा अकबर का समकालीन था। असम के इतिहास में नरनारायण का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इस युग में वैष्णव धर्म का बोलबाला था और नरनारायण की सुसंस्कृत रुचि के कारण विद्वानों तथा कलाकारों को आश्रय और प्रोत्साहन मिला जिससे उस युग में असम में कला, संस्कृति और साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। नरनारायण के छोटे भाई का नाम सकलध्वज था। वास्तव में नरनारायण के समय में जो युद्ध हुए उनका नायक यही सकलध्वज था। यह इतना साहसी और वीर था कि उसको जनता चीलराय के नाम से पुकारने लगी, और असम में आज भी उसकी वीरता की कथाएँ लोकप्रिय हैं। नरनारायण ने कितने ही छोटे-मोटे राजाओं को हराकर पूर्वी असम के अहोम राजा पर चढ़ाई कर दी। उसे हराकर उससे संधि कर ली। उसने कछारियों को भी परास्त किया। किंतु उसने बंगाल के सुलतान पर चढ़ाई करने की भूल की, और उसे हारना पड़ा। सकलध्वज सुलतान का बंदी हो गया। सुलतान का सेनापति काला पहाड़ नामक एक नौमुस्लिम था जो ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ था किंतु बाद में मुसलमान हो गया था। उसके अत्याचारों की कथाएँ आज भी बंगाल और असम में प्रचलित हैं। उसने कई बार नरनारायण के राज्य पर चढ़ाई की और उसे बड़ी हानि पहुँचाया, किंतु किसी तरह वह अपने राज्य को बचाये रहा। अंत में उसने अकबर से मित्रता कर ली। पूर्वी असम को छोड़कर उसका राज्य सारे असम में ही नहीं, प्रत्युत बंगाल के मैमनसिंह और रंगपुर तक फैला हुआ था।

नरनारायण की मृत्यु के तीन वर्ष पहिले सकलध्वज के लड़के रघु ने राज्य में अपने हिस्से की माँग की। नरनारायण ने उसे अपने राज्य का कुछ पूर्वी भाग दे दिया। नरनारायण की मृत्यु के बाद उसका लड़का लक्खी (लक्ष्मी) नारायण गद्दी पर बैठा। किंतु इन दोनों में इतना वैमनस्य हो गया था कि ये लड़ पड़े। एक ने अपनी सहायता के लिए मुसलमानों को, और दूसरे ने अहोम राजा को निमंत्रित किया। अधिकांश कोच पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया। अहोम राजा की सहायता से एक कोच शाखा ने पुराने कोच राज्य का एक भाग बचा तो लिया किंतु अहोम राजाओं का अनुवर्ती होना पड़ा। इस प्रकार गौरवशाली कोच राज्य का अंत हुआ।

पश्चिमी असम के राजनीतिक इतिहास की सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक की रूपरेखा ऊपर दी जा चुकी है। पूर्वी असम में तेरहवीं शती में एक नयी शक्ति का आगमन हुआ। उत्तरी बर्मा में इरावदी नदी के किनारे 'शान' नामक एक जाति रहती है। उसकी एक शाखा का नाम 'अहोम' है। इस वंश के एक राजकुमार का नाम सुकफा था। वह शान राज्य का उत्तराधिकारी था, किंतु उसके भाई ने उसका राज्य हड़प लिया और वह अपने देश से भागने के लिए विवश हो गया। वह अपने नौ-दस हजार

अनुयायियों को लेकर पटकोई की दुर्गम पर्वतमाला को पार कर किसी तरह असम में आ पहुँचा, और वहाँ उसने अपने बाहुबल से एक राज्य स्थापित कर लिया। उसके वंश के नाम पर यह राज्य 'अहोम' राज्य के नाम से इतिहास में विख्यात है।

आरंभ में छोटे-मोटे राज्यों को जीतकर सुकफा ने असम की पूर्वी छोर में, पटकोई के अंचल में, अपने पैर जमा लिये। उसकी देखादेखी बर्मा से आनेवाले शान लोगों का ताँता बँध गया। उस समय तक उत्तरी बर्मा में बौद्ध धर्म नहीं फैला था, और ये लोग भी बौद्ध नहीं हुए थे। सुकफा जिस भाग में बस गया था उसमें मोरन और बरोही नामक जातियाँ रहती थीं। वह इनके साथ घुल-मिल गया और अहोमों में और इनमें विवाह सम्बन्ध भी होने लगे।

किंतु उस समय असम में कामतापुर के राज्य क अतिरिक्त दो और बड़ी शक्तियाँ थीं—चुटिया और कछारी। चुटिया लोगों का राज्य ब्रह्मपुत्र के पूर्वी छोर से मिले हुए वर्तमान सदिया क्षेत्र के बहुत से भाग में फैला हुआ था। इनके पश्चिम और दक्षिण में कछारी लोगों का राज्य था। कछारी राज्य का पुराना नाम हिडिम्बापुर था। यह उस हिडिम्ब के नाम पर रखा गया था जिसकी कथा महाभारत में है और जिसे भीमसेन ने मारा था। इसकी राजधानी डीमापुर में थी। अहोम लोगों को इन दोनों शक्तियों को परास्त करने में तीन सौ वर्ष लग गये। उन्होंने १५२३ ई० में चुटिया के राज्य पर, और १५३६ में कछारी राज्य पर अधिकार किया। पंद्रहवीं शती में अहोमों ने कामतापुर के राजा को पहिले ही हरा दिया था। सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में अहोम वंश का राज्य वर्तमान उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रान्त से लेकर प्रायः सारे असम में फैल गया था। मुसलमानों ने दो बार उस राज्य पर आक्रमण किया; किंतु उन्हें दोनों बार मार भगाया गया। जिस अहोम राजा ने अहोम राज्य का इतना विस्तार किया उसका नाम सुहुनमुंग था, किंतु वह 'डिहिंगिया राजा' के नाम से प्रसिद्ध था। उसने १४९७ ई० से १५३९ ई० तक राज्य किया। इसकी राजधानी गरगाँव नामक नगर में थी।

यद्यपि अहोम लोग बर्मा से आये थे, तथापि असम में बस जाने के कारण उन्होंने धीरे-धीरे भारतीय सभ्यता ही नहीं, हिंदू धर्म को भी अपना लिया। 'योगिनी तन्त्र' में अहोमों के राज्य का वर्णन मिलता है। कुछ दिनों तक इन राजाओं के दो नाम होते थे—एक बर्मी भाषा का, और दूसरा भारतीय भाषा का। बाद में उनके नाम केवल भारतीय होने लगे। विदेश से आनेवाले लोग किस प्रकार धीरे-धीरे, अपने आप, भारतीय संस्कृति में घुल-मिलकर एक हो जाते थे, इसका यह आधुनिकतम उदाहरण है। अहोम राजा रुद्रसिंह (१६९१ से १७१४ ई० तक) के शासनकाल में यह भारतीयकरण की क्रिया पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी। रुद्रसिंह के समय में हिंदूधर्म उसके राज्य का राज्य-धर्म हो गया था। उसने कितने ही सुंदर भवन और मंदिर बनवाये और उसने भारत के अन्य भागों से संपर्क स्थापित करके सारे भारत में असम की ख्याति बढ़ायी।

अहोम राजाओं ने असम में विशाल साम्राज्य स्थापित किया और वे वहाँ छः सौ वर्ष तक राज्य करते रहे। जब वे बर्मा से आये थे तब वे बहुत सुसंस्कृत न थे किंतु भारत में आकर उन्होंने भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त किया और धीरे-धीरे उन्होंने भारतीय संस्कृति को आत्मसात् कर लिया। उनके भारतीयकरण का उदाहरण उनकी मुद्राओं से मिलता है। पहिली मुद्राएँ सुकलेन-मुंग (१५३९-१५५२ ई०) के राज्यकाल में ढाली गयीं। ये अठपहलू थीं और इन पर शब्द अहोम भाषा और बर्मी-लिपि में अंकित थे। किंतु बाद में इनपर संस्कृत में शब्द अंकित किये जाने लगे। अहोमों का राजतंत्र सरल था। राजा सर्वेसर्वा होता था और लोग उसे आदर से 'स्वर्ग-देव' कहते थे। किंतु सर्वेसर्वा होने पर भी उसे तीन मंत्रियों की परिषद् की सलाह से ही सब काम करना पड़ता था। ये ही तीन मंत्री राज्य के मुख्य स्तंभ थे और वास्तव में कुल शासन-सूत्र इन्हींके हाथों में था। ये मंत्री कुछ विशेष परिवारों से ही चुने जाते थे। ये परिवार गोहाईं, बड़-गोहाईं, बूढ़ागोहाईं और बड़पात्र गोहाईं कहलाते थे। अहोम लोग योद्धा थे और उनकी शासन-व्यवस्था भी सैनिक ढंग की थी। किंतु न्याय और शासन दोनों ही कुशल और लोकहितकारी था। वे बड़े अच्छे सैनिक होते थे। उन्होंने मुसलमानों से बंदूक और बारूद का उपयोग सीखा, और शीघ्र ही वे उनके उपयोग में दक्ष ही नहीं हो गये, प्रत्युत उन्हें बनाने भी लगे। उनके समय

में असम में उस समय की अच्छी बंदूकें बनायी जाती थीं। असम में असंख्य नदियाँ हैं। ब्रह्मपुत्र विशाल नद है। बंगाल से उसीके द्वारा मुख्य यातायात होता है। उसीके द्वारा बंगाल से मुसलमान सेनाएँ आक्रमण करने के लिए आती थीं। इसलिए अहोमों ने शक्तिशाली नौसेना रख छोड़ी थी। इसके प्रधान को पानीफूकन या नौसलिया-फूकन कहते थे। फूकन शब्द 'अधिकारी' के लिए प्रयुक्त होता था। जैसे, न्यायाधीश न्यायाशोध फूकन, मंदिरों की व्यवस्था का अधिकारी देउलिया (देवालय) फूकन, दीवान बड़फूकन आदि कहलाते थे। उनके समय में असम ने काफी भौतिक उन्नति की। कृषि के लाभ के लिए बाँध बनवाकर असंख्य तालाब बनवाये गये। सड़कों की ओर ध्यान दिया जाता था, और कारीगरों का विशेष संरक्षण था। इतने लम्बे शासन में जो शान्ति रही, उसमें कला, साहित्य और संस्कृति को भी प्रोत्साहन मिला। अहोमों की इतिहास में बड़ी रुचि थी और वे अपने समय की घटनाओं को बराबर लिपिबद्ध कराया करते थे। इन ऐतिहासिक अभिलेखों को 'बुरंजी' कहते हैं। भारत में और किसी प्रदेश में ऐसा लिपिबद्ध विवरण पूर्ण, प्रामाणिक एवम् नियमित इतिवृत्त नहीं मिलेगा जैसा कि असम की इन 'बुरंजियों' में मिलता है। ये 'बुरंजियाँ' गद्य में लिखी जाती थीं। इससे असमी गद्य के विकास में भी इनसे बड़ी सहायता मिली। देश में धार्मिक जागृति हुई। वैष्णव, शाक्त और शैव मतों का असमियों ही में नहीं, आदिम जातियों में भी प्रसार हुआ। किरातों आदि के भारतीयकरण की गति तीव्र हो गयी। कितने ही मंगोल-वंशीय लोग हिंदू समाज में आकर क्षत्रिय कहलाने लगे।

असम के इतिहास की एक विशेषता यह है कि मुसलमान आक्रमणकारी कभी इस पर अधिकार नहीं कर पाये। उन्होंने न मालूम कितने आक्रमण किये और एक-दो बार प्रान्त में घुस भी गये। कभी थोड़े दिनों के लिए कुछ भाग पर अधिकार भी कर लिया और एक बार तो वे अहोमों की राजधानी तक पहुँच गये। पर वीर असमवासियों ने उन्हें बार-बार परास्त करके भागने को विवश कर दिया। इन युद्धों में कितने ही असमी वीर प्रकाश में आये और आज भी असम में आदर और कृतज्ञता के साथ उनका स्मरण किया जाता है। यह खेद की बात है कि असम के बाहर इन वीरों के कृतित्व से लोग बहुत कम परिचित हैं।

मुसलमानों का असम पर प्रथम आक्रमण तेरहवीं शती में हुआ। बंगाल पर अधिकार करके १२०५ ई० में उन्होंने असम पर चढ़ाई की, किंतु उन्हें हारकर लौटन पड़ा। बख्तियार खिलजी की पराजय का हाल पहिले ही लिखा जा चुका है। मुसलमानों का नवाँ आक्रमण उल्लेखनीय है। यह १६१४ ई० में हुआ। इस बा पिछली पराजयों की याद कर उन्होंने बड़ी तैयारी करके दस हजार सेना लेकर असम पर चढ़ाई की। किंतु अहोमों ने उन्हें हराकर भगा दिया। सुसेनफा या बुद्धिस्वर्गनारायण के राज्यकाल में उन्होंने फिर आक्रमण किया। वे नौगाँव के अंचल तक बढ़ गये। यहाँ कालियाबर नामक स्थान में अहोम राजा ने उन्हें बुरी तरह हराकर भागने को विवश किया। औरंगजेब भारत का एकछत्र सम्राट् होना चाहता था। असम कभी दिल्ली साम्राज्य में नहीं आया था। इसलिए १६६१ ई० में उसने अपने प्रसिद्ध सेनापति मीर जुमला को असम-विजय करने को भेजा। उसके साथ ३०,००० पैदल और १२,००० सवारों की विशाल सेना थी। वह बढ़ता हुआ अहोमों की राजधानी गरगाँव तक चला गया, किंतु अंत में अहोमों ने उसे हरा दिया। उसकी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। मुगलों ने १६७० ई० में असम पर फिर चढ़ाई की। असम पर मुसलमानों का यह बारहवाँ आक्रमण था। यह चढ़ाई और भी अधिक तैयारी के साथ की गयी थी और यह युद्ध काफी दिनों चला। किंतु अंत में लछित बारफूकन नामक अहोमी सेनापति ने सराइघाट के युद्ध में इस सेना को ऐसी करारी हार दी कि उसके हौसले पस्त हो गये और उसे भागना पड़ा। लछित बारफूकन की वीरता, और अदम्य साहस की कहानियाँ असम में आज भी प्रचलित हैं। इसके कुछ दिनों बाद मुगलों ने फिर तैयार होकर आक्रमण किया। इस बार राजा रत्नध्वज ने उन्हें रंगमती की लड़ाई में फिर बुरी तरह हरा दिया। किंतु मुसलमानों की अंतिम और सबसे बड़ी पराजय इताखुली की लड़ाई में हुई। नवाब मंसूर खाँ ने असम पर बड़े वेग से आक्रमण किया। कहते हैं कि इस सेना में एक लाख सैनिक थे। इताखुली नामक स्थान में असमियों और मुसलमानों का युद्ध हुआ। यहाँ मुसलमानों की ऐसी

बुरी हार हुई कि सारी सेना नष्ट हो गयी। जो युद्ध में बचे वे असम की भीषण बरसात और रोगों से नष्ट हो गये। इसके बाद मुसलमानों ने असम की ओर आँख नहीं उठायी।

अहोमों ने बड़ी शान और दृढ़ता से असम में तेरहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक राज्य किया। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि छः सौ वर्षों में उनमें काफी शिथिलता आ गयी और उनका ह्रास हो गया। देश में शैव, शाक्त और वैष्णवों के झगड़े इतने बढ़ गये कि उन्होंने गृहयुद्ध और विद्रोह का रूप ले लिया। एक के बाद दूसरे, लगातार, कई अयोग्य राजा गद्दी पर बैठते गये। एक बार तो एक राजा के विरुद्ध विद्रोह ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि वह उसे दबा न सका, और उसने अँगरेजों (ईस्ट इंडिया कम्पनी) से सैनिक सहायता माँगी। किंतु अँगरेज विद्रोह दबा कर लौट गये। बाद में एक राजा से परेशान होकर उसके मंत्री ने (जिसका नाम बदन बड़फूकन था) बर्मा के राजा से सहायता माँगी। मंत्री की सहायता के लिए बर्मा के राजा ने १८१६ में आठ हजार सैनिकों की सेना भेज दी। इस सेना ने अहोम राजा को शक्तिहीन कर दिया। मंत्री शक्तिशाली हो गया और राज चलाने लगा। बर्मी सेना राजा से बहुत-सा धन लेकर चली गयी। कुछ दिनों शांति रही, किंतु झगड़े फिर आरंभ हो गये। राजा अपदस्थ कर दिया गया और बंगाल भाग गया। बदन बड़फूकन की हत्या कर दी गयी। इसीने १८१६ में बर्मियों को बुलाया था। जब बर्मा के राजा ने इसकी हत्या का समाचार सुना, तब उसने तुरंत (१८१९ में) एक बड़ी सेना फिर असम भेज दी। इसने असम में असंख्य अत्याचार किये और भीषण मार-काट की। वे असम में राज्य करने लगे। उन्होंने असम में प्रायः पाँच वर्ष राज्य किया और उनके अत्याचारों से त्राहि-त्राहि मच गयी। उन्होंने असम की प्रायः आधी जनसंख्या मार डाली। किंतु इसी बीच अँगरेज और बर्मा के राजा में युद्ध ठन गया। बर्मा परास्त हुआ। १८२६ में यंदाबू में दोनों की संधि हुई, और उस संधि के अनुसार असम अँगरेजों को मिल गया। इस प्रकार अहोम वंश का छः सौ वर्षों का राज्य समाप्त हुआ और असम अँगरेजी राज्य में आ गया।

असम आरंभ में शासन के लिए बंगाल सूबे में रखा गया। बाद में उसे एक अलग छोटा--चीफ कमिश्नर का--प्रान्त बनाया गया। बंग-भंग में उसे पूर्वी बंगाल से मिला दिया गया। बंग-भंग समाप्त होने पर वह फिर अलग प्रान्त बन गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उसे प्रथम श्रेणी का राज्य बना दिया गया। इस समय तक यहाँ के मुकद्दमों की अपील कलकत्ता हाईकोर्ट में होती थीं। सन् १९४८ में यहाँ स्वतंत्र हाईकोर्ट स्थापित किया गया और गौहाटी में एक विश्वविद्यालय खोल दिया गया।

जैसा कि हम देख चुके हैं, असम में अनेक आदिम जातियाँ रहती हैं। इनमें से अधिकांश इतनी उन्नत नहीं हैं जितने असमी या बंगाली हैं। अतएव आदिम जातियों की समस्याओं को हल करने तथा उन्हें शीघ्रता से उन्नत करने के लिए विशेष प्रबंध की आवश्यकता समझी गयी। इसके लिए संविधान में इन आदिम जातियों के क्षेत्रों को दो अनुसूचियों में रखा गया। वे अनुसूचियाँ ये हैं:--

प्रथम भाग (पार्ट ए)

१. संयुक्त खसी-जयन्तिया पर्वतीय जिले।
२. गारो पर्वतीय जिला।
३. लुशाई पर्वतीय जिला।
४. नागा पर्वतीय जिला।
५. उत्तरी कछार पर्वतीय क्षेत्र।
६. मिकिर पर्वतीय क्षेत्र।

द्वितीय भाग (पार्ट बी)

१. उत्तर-पूर्वी सीमान्त क्षेत्र जिसमें बलीपाड़ा सीमान्त क्षेत्र, तिरप सीमान्त क्षेत्र और अबोर पर्वतीय जिला सम्मिलित हैं।
२. नागा आदिम जातीय क्षेत्र।

अभी हाल में नागा आदिम क्षेत्र और त्वेनसांग का क्षेत्र मिलाकर 'नागालेण्ड' के नाम से असम के राज्यपाल के अधीन एक अलग स्वायत्तशासी प्रदेश बना दिया गया है।

स्वतंत्रता संग्राम में असम ने अपने पूर्व गौरवशाली इतिहास के अनुरूप ही भाग लिया। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में वहाँ भी कुछ उथल-पुथल हुई और मनीराम दीवान को फाँसी दी गयी। असहयोग आंदोलन में असम ने पूरा सहयोग दिया। पिछले महायुद्ध में जब बर्मा पर जापानियों ने अधिकार कर लिया था, बर्मा पर आक्रमण करने के लिए अँगरेजों और अमरीकनों ने असम को ही तैयारी का अड्डा बनाया था। यहीं (लीडो) से उत्तरी बर्मा होकर चियाङ्काई शेक की सेनाओं को कुमक पहुँचाने के लिए प्रसिद्ध लीडो-बर्मा-चीन सड़क बनायी गयी थी। महायुद्ध का इतना प्रत्यक्ष प्रभाव भारत के किसी प्रदेश पर नहीं पड़ा था जितना असम पर पड़ा था। किंतु फिर भी १९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में असम ने उल्लेखनीय भाग लिया। असम का देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना और कर्मठता उस समय के इतिहास के गौरवपूर्ण अंग हैं। [अगले अंक में समाप्त]

आँगनों के बीच —

एक दिन की बात

मेरी एक मित्र हैं जिनका बेटा सेना में भर्ती है। वे
प्रति गंगास्नान के लिए जाया करती हैं। एक
स्नान करने गयी थीं। घाट पर बैठी पंडिताइन ने
'अरे! का बहू! बिटवा का उठाय के पलटन माँ
कै दिओ!––एहसन तोहका कौन कमी रही खाँएँ
अब देखो कैसन लड़ाई हुइ रही है?'

मेरी ये ठकुराइन सहेली अपने बलिष्ठ हाथों से
निचोड़ते हुए बोलीं "अब का कही पंडताइन!
आइ गवा है। हम ठाकुर हुइ के तुमही का वेद-
पढ़ायी? का राजा मोरध्वज की कथा भुलाय
आपन आन जात देख कै आपन इकलौते बेटवा का
उनका नाहीं व्यापा। आन न टूटे, बेटा बलि चढ़
सो अच्छा; जिहसे यह तो नाहीं सुनै का पड़ै कि ई
मोरध्वज़ केर कायर बेटा है जौन मोह में आय के
आन भुलाय गवा रहा। मुँह माँ कारिख पोत कै
तें तौ मर जाब नीक है। जब राजा मोरध्वज़ का
पाटौ का मोह नहीं ब्यापा तो हमरे का धरा है
मोह करी?"

जो पंडाइन बड़े-बड़ों की बोलती बंद कर देती
उनको कोई उत्तर न सूझा।

पंडिताइन रामायण रोज पढ़ती थीं। प्रायः
रामायण कंठस्थ थी, परन्तु वे यह भूल गयी
विश्वामित्र मुनि राजा दशरथ के वृद्धावस्था के
राक्षसों का वध कराने के लिए माँगकर ले गये थे।

देहु भूप मन हर्षित तजहु मोह अज्ञान
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कहँ, इन्ह कहँ अति कल्याण

पुत्र पर माता-पिता का इतना नहीं, जितना
का अधिकार है। नहीं तो भला क्या राजा दशरथ

भोजन की कमी थी जो उन्होंने अपनी वृद्धा अवस्था की लाड़-प्यार से पली सन्तान राक्षसों को मारने के लिए मुनि के साथ कर दी ? राजा का अधिकार सारी प्रजा पर था--परन्तु अपने पुत्रों पर न था। उनसे अधिक उनके पुत्र पर उस भूमि का अधिकार था जिसमें उनका जन्म हुआ था। इसी कारण जब राक्षसों से त्रसित मातृभूमि की रक्षा के लिए मुनि ने राजा दशरथ से अपने पुत्र माँगे तो वे नराधिपति होते हुए भी अपने बुढ़ापे की सन्तान तक पर अपना अधिकार न दिखा सके। आज जब वैसी ही परिस्थिति पैदा हो गयी है और राक्षसों के विनाश के लिए मातृभूमि अपनी सन्तान को पुकार रही है तो--रोज की रामायण पढ़नेवाली पंडिताइन चाहती है कि हम बच्चों को अपने आँचल में छिपाकर बैठ जायँ !

गंगा के तीर तो दोनों ही का बास था 'केवट' का भी और पंडाइन का भी। पर बुद्धि केवट की ही जागी थी ! उसकी समझ में आ गया था कि

'समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा,
राम काजु छनभंगु सरीरा',
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी,
जस धवलिहउँ भुवन दस चारी।
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें,
दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।

परन्तु हमारी पंडाइन की समझ में यह न आया था। नित्य रामायण पढ़कर भी उनकी बुद्धि जड़ ही बनी रह गयी, वह स्वार्थ की शृंखलाओं से जकड़ी थी।

हम अपने धर्म-ग्रन्थों के श्लोकों में से, अर्थों का अनर्थ व विशेष अर्थ निकालते समय यह एक साधारण सी बात भूल जाते हैं कि हमारे धर्मग्रन्थों के नायकों को हमारे आराध्यदेव होने का पद उनको विजयी रणयोद्धा होने के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ है। राम यदि रावण से युद्ध में हार जाते तो क्या वे आराध्यदेव के रूप में हमको स्वीकार होते ? कृष्ण जिस महारथी के सारथी थे वह यदि युद्ध में पराजित हो जाता तो क्या हम कृष्ण को आराध्यदेव मानकर अपने जीवन की बागडोर उनके हाथ में थमा देते ? हमारे आराध्यदेव हमें जीवन-संग्राम लड़ना सिखाते हैं। दुबककर पूँछ हिलाना नहीं।

पुत्र का अर्थ है 'जो नरक से हमारी रक्षा करे।' वृद्धा अवस्था का अन्तिम चरण घोर नरक ही होता है। उसी नरक से रक्षा करने के लिए पुत्र की कामना की जाती है कि अपनी सेवा से पुत्र हमें उस नरक से पार लगा दे। दासता वृद्धा अवस्था के अन्तिम चरण से भी अधिक कठिन है। जो भारत के वास्तविक पुत्र हैं और समर्थ हैं, वे इस नरक से रक्षा करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में या तो चले ही गये हैं या जाने के लिए तत्पर हैं। जो बातें बनाकर बचते हैं उनकी प्रशंसा केवल इन शब्दों में की जा सकती है।

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु॥

यदि आप भारत का स्वर्ण युग चाहते हैं तो स्वर्ण दीजिए।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्।

संचय क्यों करते हैं ? सोना सदैव से आपत्तिकाल का रक्षक रहा है। अपने देश की महाआपत्ति भी उससे काटिये।

घर-गृहस्थी

मोटे अनाज और व्यंजन

(पाठिकाओं से अनुरोध है कि वे गृहस्थी में बचत के साथ सुचारु रूप से काम करने के कामों का सुझाव अन्य बहनों के हित के लिए 'सरस्वती' में भेजें--पता--सह सम्पादिका, सरस्वती, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।)

(१) **बाजरे के पुये**--आटा पीस कर, गुड़ के पानी से सान लें। टिकिया बनाकर सेंक लें (गुड़ आटे का डेढ़ गुना या बराबर का हो) यदि टिकिया फटने का डर हो तो थोड़ा आटा मिला लें।

(२) **बाजरे के लड्डू**--बाजरे की रोटी खूब अच्छी तरह सेंक लो। फिर उसका चूरा करके घी बूरा मिलाकर लड्डू बना लो। मेवा डालने से वे और स्वादिष्ट बन जाते हैं।

(३) **बाजरे के पराठे**--बाजरे के आटे को खट्टे मट्ठे में सान लो। नमक, धनिया, मिर्च, प्याज काट कर मिला लो और पराठे सेंक लो। गर्म-गर्म बड़े स्वादिष्ट लगते हैं।

(४) **बाजरे की खिचड़ी**--बाजरे को खड़ल में कूट लो। जब भूसी निकल जाय तो चाहे थोड़ी मूँग की दाल मिलाकर--या बिना दाल मिलाये केवल बाजरा खौलते हुए पानी में डाल दो और उसको चलाते रहो। जितना घोटा जाता है खिचड़ी उतनी ही स्वादिष्ट बनती है। नमक डालकर खूब अच्छी तरह घुट व गल जाने पर उतार लो। गर्म-गर्म ही घी डालकर खाने से उसके स्वाद का पूरा आनंद मिलता है।

(५) **बाजरे का नमकीन**--बाजरे को भड़भूँजे के यहाँ भुनवा लो। फिर यह देखकर कि उसमें बालू के कण नहीं हैं, उसको घी में मिर्च-नमक डालकर छौंक दो और जरा सा चलाकर उतार लो। इसकी बड़ी स्वादिष्ट नमकीन तैयार होती है।

--जयन्ती तिवारी

(६) **बाजरे व मक्का की कचौड़ी**--बाजरे या मक के आटे में थोड़ा नमक डाल लीजिए। लोई में पिट्ठ भर लीजिए। चकले पर सूखा बाजरे व मक्के क आटा डालकर गोल-गोल थपक लीजिए और कचौड़ की तरह तेज आँच में तल लीजिये। पिट्ठी में धनिया लाल मिर्चा, सौंफ, अदरख, हींग आदि डाल लें। पिट्ठ की जगह आलू भी भरा जा सकता है।

(७) **मक्का की मूली की पराठी**--मक्के के आट में नमक-मिर्च, घिसी हुई मूली मिलाकर पराठे की तरह सेंक लीजिए।

(८) **बाजरे की खीर**--बाजरे को खड़ल में पानी का छींटा देकर कूट लें कि भूसी निकल जाय। फि उसको पछोड़कर दूध में (सेर दूध में डेढ़ छटाँक) डालकर धीमा-धीमा पकने दें। गलने पर चीनी डालकर उतार लें। मेवा डाल कर खा लें।

--सौभाग्यवती अरोड़ा, कानपुर

खिड़की खुली है!

मूल ले० एच० एच० मनरो 'साकी'

अनु० प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

"मेरी चाची अभी आती ही होगी, मि० नटेल!" --वह खूबसूरत और हँसमुख लड़की, जिसकी उम्र ऐसी थी कि चौदह कह दो तो कम हो जाये और पंद्रह कह दो तो ज्यादा, बोली--"लेकिन, कोई बात नहीं। तब तक आप यहाँ मेरे साथ आराम से ठहर सकते हैं।"

फ्रैमटन नटेल ने भी, हाँ, यही नाम था उसका, चाहा कि वह अपरिचिता चाची के आने की चिंता छोड़, उस लड़की से ही दो-चार मीठी बातें करने में वक्त गुजार दे, गरचे मन में उसके पूरा संदेह था कि वह ऐसे अजनबी लोगों के बीच रहकर शायद ही अपनी कमजोरी और घबराहट की बीमारी से छुटकारा पा सके। जब वह शहरों की कोलाहल-भरी जिंदगी छोड़कर गाँव के मनोरम और प्रशांत वातावरण में कुछ दिनों के लिए जा बसने की तैयारी कर रहा था तो उसकी बहन ने भी कहा था--"मैं जानती हूँ, वहाँ क्या होगा? तुम वहाँ और भी अपनी ऐकांतिक सीमा में सिमट जाओगे। किसी जीवित प्राणी से बातें करने का मौका तुम्हें मुश्किल से मिलेगा। तुम्हारी उदासी बढ़ जायगी। और यह सब, मैं कहती हूँ फ्रैमटन, तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए बुरा होगा। फिर भी तुम देहातों में जाकर रहना ही चाहते हो तो जिनको मैं जानती हूँ, उनके नाम परिचय-पत्र दिये देती हूँ। जहाँ तक मुझे याद है, उनमें से कुछ तो सचमुच बड़े अच्छे लोग हैं।"

मगर फ्रैमटन को यह भी पता नहीं था कि श्रीमती सैप्लटन, जिनके लिए वह परिचय पत्र लाया था और अभी जिनके कमरे में बैठा प्रतीक्षा कर रहा था, उन तथाकथित अच्छे लोगों की परिधि में आती हैं अथवा नहीं।

"आप तो अवश्य ही यहाँके बहुत सारे लोगों को जानते होंगे?"--उस खूबसूरत मेजबान लड़की ने पूछा, जब उसने पाया कि उनके बीच मौन की दीवार असह्य होती जा रही है।

"शायद ही किसी को!"--फ्रैमटन ने कहा--"बात यों है कि आज से चार साल पहले मेरी एक बहन यहाँके एक पादरी के घर में कुछ दिनों तक ठहरी थी। उसीने यहाँ के कुछेक व्यक्तियों के नाम मुझे परिचय-पत्र दिये हैं, नहीं तो यहाँ आने का मेरा हौसला ही नहीं होता।" --कहते-कहते फ्रैमटन के स्वरों में उसके अंतर की खिन्नता उभर आयी।

"ओह-हो, तब तो आप शायद मेरी चाची के बारे में भी कुछ नहीं जानते होंगे?"--उस बालिका ने आँखों में कौतूहल झलकाकर प्रश्न किया।

"हाँ, उनके नाम और पते के अलावा कुछ भी नहीं।"--आगंतुक ने स्वीकार किया, क्योंकि उसे यह भी जानकारी नहीं थी कि श्रीमती सैप्लटन के पति जीवित हैं या नहीं। यों, उस कमरे को देखने से वहाँ कुछ पुरुष-उपस्थिति का आभास अवश्य मिलता था।

"आह! आपको नहीं मालूम कि आज से ठीक तीन वर्ष पूर्व उनके जीवन में कितनी बड़ी दुर्घटना घट चुकी है। मेरा अनुमान है, उस समय तक आपकी बहन भी यहाँसे जा चुकी होंगी।"--बालिका ने कहा।

"दुर्घटना......! कैसी दुर्घटना.....?"--फ्रैमटन को थोड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि गाँव के ऐसे शांत, सुखद वातावरण में कोई दुर्घटना भी हो सकती है, इसकी उसे कल्पना न थी।

"हाँ, आपको आश्चर्य होगा कि अक्तूबर के महीने में भी क्यों हम लोग यह बड़ी खिड़की साँझ तक खुली छोड़ देते हैं।"--सामने के बड़े घास के मैदान की ओर खुलनेवाली एक दरवाजानुमा खिड़की की ओर इशारा करती हुई वह बालिका बोली।

"नहीं, अभी तक तो थोड़ी गर्मी पड़ रही है और खिड़की का खुला रहना वाजिब ही है। लेकिन श्रीमती सैप्लटन की दुर्घटना से इस खिड़की का भी कोई संबंध है क्या?"--फ्रैमटन ने पूछा।

"मामूली नही बहुत बड़ा संबंध है। इस खिड़की की राह से होकर ही आज से तीन वर्ष पूर्व एक दिन मेरे चाचा यानी श्रीमती सैप्लटन के पति और उनके दो छोटे भाई शिकार को गये थे। फिर वे कभी वापस न लौट सके। झाड़ियों को पार कर अपने प्रिय पक्षी चाहा के शिकार के सिलसिले में वे खुद एक खतरनाक झाड़ी के शिकार हो गये। उस साल अचानक जोरों की वर्षा हो गयी थी और गर्मी में सदा सूखी रहनेवाली बहुत सारी जमीन बिना किसी पूर्व सूचना के दलदल में बदल गयी थी। इस दुर्घटना का सबसे दुःखद अंश यह है कि आज तक उन लोगों की लाश भी नहीं पायी जा सकी।"--कहते-कहते उस स्वस्थचित्त बालिका का चेहरा पीला पड़ गया और उसकी आवाज लड़खड़ाने लगी। फिर उसने थोड़ा रुककर कहना शुरू किया--"तब से बिचारी चाची बराबर यह उम्मीद लगाये रहती हैं कि एक-न-एक दिन अवश्य वे इसी रास्ते लौटेंगे और उनके साथ उनका वह प्यारा झबरा कुत्ता भी होगा जो बराबर छाया की तरह साथ लगा रहता था। इसीलिए यह खिड़की प्रतिदिन गोधूलि तक खुली छोड़ दी जाती है। चाची ने यह भी मुझसे बहुत बार बतलाया है कि किस प्रकार वे गये। किस तरह उनके पति उजला बरसाती ओवरकोट बाजू पर लिये हुए थे और कैसे उनका छोटा भाई रोमी गा रहा था--'बर्टी, तुम इतनी बँधी हुई क्यों हो?' जैसा कि वह उन्हें अक्सर चिढ़ाया करता था। और क्या आप जानते हैं, कभी-कभी आज भी ऐसी ही उदास और बोझिल साँझों में मेरे भीतर भी एक भावना जग पड़ती है कि संभव है, वे इसी खिड़की की राह वापस लौट आयें.....।"

और सचमुच उस लड़की की आवाज थर्राहट में डूबती-सी जान पड़ रही थी। फ्रैमटन को जाने कैसा लगने लगा था। तभी अचानक श्रीमती सैप्लटन ने

कमरे में प्रवेश किया और आते ही अपने विलंब के लिए क्षमा-याचनाओं की झड़ी लगा दी। श्रीमती सैप्लटन की उपस्थिति से फ्रैमटन को थोड़ी राहत मिली।

"मैं समझती हूँ, मेरी अनुपस्थिति में वीरा ने आपका मन बहलाने में जरूर ही कंजूसी नहीं दिखलायी होगी।"--श्रीमती सैप्लटन ने नम्रतापूर्वक कहा।

"हाँ, बेशक उनकी बातें बड़ी दिलचस्प रहीं।"--फ्रैमटन ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

"मुझे आशा है, आपको इस खुली खिड़की से कोई असुविधा न होगी।"--श्रीमती सैप्लटन शीघ्रता से बोलीं--"असल में, बात यह है कि मेरे पति और भाई शिकार से जल्द ही लौटेंगे। वे अक्सर इसी रास्ते आया करते हैं। वे आज खास तौर पर चाहा के शिकार के लिए गये हैं। मेरा ख्याल है, रात के खाने के लिए चाहा का शोरबा काफी अच्छा रहेगा। क्यों, आप तो गाँव की जिंदगी को जरूर ही पसंद करते होंगे.....?"

इसी तरह श्रीमती सैप्लटन अपने पति, भाइयों, पंछियों के शिकार, जाड़े में बत्तखों की कमी, चाहा का शोरबा और इसी तरह की बहुत-सारी बे-मतलब बातों के बारे में लगातार बोलती जा रही थीं, जिनको सुन-सुन कर फ्रैमटन की परेशानी उसी अनुपात में बढ़ती जा रही थी। फ्रैमटन के लिए यह सब अतीव रोमांचक था। फ्रैमटन ने एक बार कोशिश की कि बात-चीत का धरातल बदले और कुछ हल्की-फुल्की और कम भयानक बातें हों, पर निराशा ही उसके हाथ रही। उसने यह भी लक्षित किया कि उसकी मेजबान महिला उसकी ओर केवल आंशिक रूप से ध्यान दे पा रही थी और बार-बार उसकी विस्फारित आँखें खिड़की से बाहर शून्य में टँग जाया करती थीं। यह सचमुच कैसा विलक्षण संयोग था कि वह इस घर में गृहस्वामी के रहस्यमय ढंग से गायब हो जाने की वर्षी के दिन ही पहुँचा था।

उसने बात बदलने के लिए कहना शुरू किया--"मेरे डॉक्टरों ने बतलाया है कि मुझे पूरी तरह आराम करना चाहिए और हर प्रकार की मानसिक उत्तेजना या शारीरिक थकावट से भरसक दूर रहना चाहिए।"--जो कि वह जानता था कि जिन अपरिचित मनुष्यों और परिस्थितियों के बीच वह दुर्भाग्य से आ गया है, उनमें उसकी बीमारी या कमजोरी के प्रति कम-से-कम जिज्ञासा और दिलचस्पी है, फिर भी वह बोलता रहा--"लेकिन जहाँ तक खाने-पीने का सवाल है, इस संबंध में मेरे डॉक्टर एकमत नहीं हैं।"

"क्यों नहीं?"--श्रीमती सैप्लटन ने जमुहाई लेती-सी आवाज में अन्यमनस्कता से पूछा। किन्तु दूसरे ही क्षण वह अचानक पूरी तरह सावधान हो गयीं। उनकी आँखों कि चमक बढ़ गयी। लेकिन उनका ध्यान फ्रैमटन की बातों की ओर नहीं था। वे लगभग चिल्ला पड़ीं--"वे रहे। ठीक चाय के समय वे लौट आये। और देखिए तो, क्या सिर से पाँव तक वे धूल से लथपथ नहीं जान पड़ते?"

श्रीमती सैप्लटन की बात सुनकर फ्रैमटन थोड़ा काँप उठा और उसने सहानुभूति पाने की अभिलाषा मे उनकी भतीजी वीरा की ओर देखा। वीरा भी खिड़की के पार आँखें गड़ाये थी, और उसकी आँखों में भय का भाव अच्छी तरह उभर आया था।

एक अज्ञात आशंका की हिमानी सिहरन फ्रैमटन के शरीर में और उसके इर्द-गिर्द भरती जा रही थी औ उसकी दृष्टि भी आप-से-आप उसी दिशा में मुड़ गयी थी

सच ही, गोधूलि के जमते हुए कोहरिल अँधियाले में तीन मानव आकृतियाँ खेतों के पार से आती हुई दिखलाई दे रही थीं। उन सभी के कंधों पर बंदूकें थीं औ उनमें से एक के कंधे पर एक मटियाला उजला को भी दिखलाय दे रहा था। एक थका हुआ भूरे रंग का झबरा कुत्ता उनके पैरों से लगकर पीछे-पीछे चल रहा था। निःशब्द भाव से वे क्रमशः निकट आते जा र थे। पलों का बोझ बढ़ गया था।....

तभी उस जादुई झिलमिल में एक कर्कश पुकार गूं उठी--'मैंने कहा, बर्टी, तुम इतनी अनभवी क्यों हो?

फ्रैमटन ने झपटकर अपनी छड़ी और टोप उठाय और पलक मारते वह कमरे का दरवाजा, कंकड़ील रौस और बाहरी फाटक पार कर गया। सड़क प निकलते ही वह एक साइकिल से टकराते-टकराते बचा फिर भी वह बेतहाश भागा जा रहा था।

"लो प्रिये, हम आ गये।"--कंधे पर बरसात लिये अधेड़ व्यक्ति ने खिड़की की राह प्रवेश कर हुए कहा--"यह बिल्कुल धूल से भर गया है। फि भी गनीमत है कि सूखा है। लेकिन वह अनजान आदम कौन था, जो हमें देखते ही इस कदर सिर पर पाँव रख कर निकल भागा!"

"अरे, वह भी एक अजीब पागल आदमी था नाम शायद नटेल है उसका।"--श्रीमती सैप्लट बोलीं--"वह जितनी देर भी रहा सिर्फ अपनी बीमा के बारे में बातें करता रहा। डॉक्टर ने यह कहा है, व कहा है और देखा न, किस तरह असभ्यतापूर्वक बि किसी नमस्कार-प्रणाम या क्षमा-याचना के तुम्हारे आ ही भाग निकला, जैसे उसने कोई प्रेत देख लिया हो!

"मेरा अंदाज है, प्रेत नहीं, उसके भागने की वज यह कुत्ता है।"--उस खूबसूरत, मासूम मुस्कराह वाली लड़की ने निहायत संजीदगी से कहा--"अ थोड़ी देर पहले वह कह रहा था कि कुत्तों से उसे बे डर लगता है। एक बार वह एक क़ब्रगाह में, नदी क़िनारे या और कहीं, कुछ आवारा और ख़ूँखार कु से घिर गया था और उसे एक ताजी खुदी हुई कब्र छिपकर कुत्तों की लगातार गुर्राहट, छीन-झपट अ वहशत के बीच रात गुजारनी पड़ी थी। ऐसी ख़ौफना हालत में भला किसका दिमाग दुरुस्त रह सकता है

...हाँ, बात-की-बात में ऐसी ही रोमांचक क नियाँ गढ़ लेना वीरा की विशेषता थी!

एक तसवीर : दो रूप

श्री रवीन्द्रमोहन एम० ए०

कुछ आदमी, सफर में, ऐसे इत्मीनान से चादर तान लेते हैं, जैसे घोड़े बेचकर या फिर लड़की की शादी कर, सोये हों। वैसे हम जैसे कुछ भी हैं, जिन्हें घर से बाहर (नाते-रिश्तेदारी में भी) चैन नहीं पड़ता, रेल के लम्बे सफर की बात तो रही दूसरी। .... लेकिन औरतें, और रेल का लम्बा सफर ?

पी-एच० डी० के अपने अनुसंधान-कार्य के सम्बन्ध में, उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी मुख्य नगरों को जाना था। आगरे से लखनऊ के लिए विशेष-डब्बे में सवार हुआ। रात भर का सफर और सवारी-गाड़ी (पैसेंजर-ट्रेन) यानी अड़ियल टट्टू, जो प्रायः प्रत्येक मंजिल पर पहुँचने से पूर्व जंगल में ही मिनटों खड़ी सीटी देती रहती। ऊपर की पौन बर्थ पर विस्तरा खोल, घोंटू सकोड़, अर्द्ध-लेटे, पलकें मुंदी रखने का निरंतर प्रयास कर रहा था कि बगल की निचली सीट से आवाज आने लगी——

"जरा, पैर समेट लीजिये, तो किनारे पर बैठने की जगह हो जाये।"——एक युवक का मीठा अनुरोध था।

"दीखता नहीं है, हम औरत हैं, नींद खराब कर दी बेकार को....।"——कहकर शायद अधेड़, श्रीमतीजी ने करवट बदली और कम्बल में मुँह ढँककर गहरी साँस भरी।

"आपसे सोने को मना नहीं किया। आप जब से सोती आ रही हैं, हम लोग खड़े हुए हैं, जरा बैठने की जगह दे दीजिये, बस !"

"एक बार बोल तो दिया ... मेरे से बात मत कर... औरतों से बोलते शरम नहीं खाता ! कैसा . . .आदमी है ?"

"इसमें शरम की क्या बात है, यह चार आदमियों के बैठने की जगह है, आप अकेली जब से सो रही हैं और हम लोग खड़े हैं, जरा पैर समेट लीजिये, हम बैठें....।"

"ऐ ! तू हाथ लगा जरा, हम तेरे जूता लगायेंगी....।"

डब्बे में सन्नाटा, शिक्षित-सुसंस्कृत युवक के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। "मैं कहता हूँ तमीज से बात कीजिये, आप ... आप पैर समेट लीजिये, जिससे....।" ...युवक का स्वर घबराया सा, कुछ ऊँचा हो गया था।

"तू हाथ लगा, हम तेरे अभी जूता लगायेंगी।"

"देखिये आप जरा सभ्यता से बात कीजियेगा ! आप औरत हैं, इसलिए कुछ नहीं कहता, नहीं तो . . ।"

आश्चर्य ! पूरा डब्बा खचाखच भरा था, लेकिन किसी के मुँह में उत्तर न रहा, मेरे भी होश गायब। किसी कोने से वृद्ध बोले——"अरे छोड़ो भी बाबू काहे मुँह लगत हो ?"

युवक पलटे——"आप देख रहे हैं, जब से हम खड़े चले आ रहे हैं, कुछ नहीं कहा। जरा पैर समेटने के लिए कहा तो कैसी बद्तमीजी से पेश आती है ." और गुस्से को पीते हुए, धीरे से बुदबुदाये——"नोन-सेन्स, ईडियट. .।"

गाड़ी के चक्के फिसलते रहे, रात्रि के वक्ष को चीरते, मैं कल्पना-लोक में जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया। कि . . .

पिछले स्टेशन पर चढ़े युवक, इन नये सज्जन को नवयुवक कहना उपयुक्त होगा, सम्भवतः इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने के बाद, उन्हीं श्रीमतीजी से कह रहे थे——"बहन जी, जरा पैर सिकोड़िये, बैठने की जगह दीजिये . ।"

"अरे कैसे बेवकूफ आदमी होते हैं, बेशरम . . ., हम औरत से नहीं बोलो, कहीं और बैठ जाओ।"

"जरा, जबान सँभालकर बोलिये, गाड़ी आपकी घर की नहीं है, हमने भी पैसा दिया है, सरकाइये पैर, बैठने दीजिये . . .।"

पहले युवक, जो सम्भवतः कोई अफसर थे, अँगरेजी में नवयुवक से बोले——यह बड़े नीच खानदान की मालूम होती है।"

नवयुवक ने कुछ अधिक दृढ़ता से पुनः कहा——"मैं कहता हूँ, बहनजी सरकिये, बैठने दीजिये जरा..... नहीं तो बुलाऊँ टी० टी० . . .।"

"हाँ ! बुला ले भले ही, हम नहीं हटेंगी....., हमको छुआ तो जूता लगायेंगी . . . .।"

"क्या कहा, फिर तो कहो, अभी चोटी खींचकर डब्बे के नीचे फेंक दूंगा....हटाइये पैर, नहीं सुना !"

शायद श्रीमतीजी ने पैर ही नहीं सिकोड़े, उँकड़ूँ बनकर बैठ भी गयी थीं ! हाँ, बड़बड़ाती रहीं..."हम औरत हैं, परेशान कर ले, यहाँ कोई नहीं देखता तो (गला रुँधा आ रहा था) भगवान् तो देखेगा....।"

कैसी विचित्र बात ?

आपने भी देखी होगी यह तसवीर, रेल, ट्राम, बस, सड़क-हाट में लेकिन यह तो तसवीर का एक रूप है।

लखनऊ से गोरखपुर चल दिया। रास्ते में पड़ा नवनिर्मित स्टेशन—रफीनगर। उत्सुकता बढ़ी—एक ओर लिखा था—रफी अहमद किदवई की मजार, २ मील. . । यह दिन था। रातवाली तसवीर के उस रूप को भुला देने का सतत प्रयास कर रहा था, कि . . . पिछले किसी स्टेशन पर तीन देवियाँ, मेरे ही डब्बे में, सवार हुई थीं। दो नव-विवाहिता थीं, तीसरी उन दोनों में से एक की छोटी बहन—विवाह योग्य युवती। उनके पास दो गृहस्थियों का पूरा सामान था, चौदह अदद। पुरुष कोई साथ नहीं था। वह एक दूसरे से सामान के ऊपर ही बैठ जाने का आग्रह करने लगीं। आमने-सामने चार-चार सवारियों का बैठने का स्थान था। दाईं ओर दो पुरुष बैठे थे, बाईं ओर कोने में एक पुरुष, बीच में दो स्त्रियाँ। इस बचे हुए स्थान पर स्त्री की बगल में बैठने को किसी ने उन तीन युवतियों से कहा, जो बहुत देर से खड़ी थीं। सहमते झेंपते, कोई पुरुष साथ न होने के कारण, वह सकपकाती रहीं। . . खैर, बाँईं ओर बैठे दोनों पुरुष दाईं ओर आ गये और बोले—"आप औरतों के पास आकर बैठ जाइये।" उस सीट पर अब दो औरतें रह गयी थीं, इन तीन देवियों में से दो तो वहाँ बैठ सकती थीं, लेकिन . . . फिर तीनों आपस में बातें करती हक्की-बक्की सी रह गयीं। खैर दाईं ओर जो अब तीन पुरुष हो गये थे, एक ओर सरक गये और कोने में एक युवती को स्थान दे दिया। दया की पात्री, निरीह, बेचारी तीनों युवतियों के सामने विकट समस्या खड़ी हो गयी कि-पुरुषों की बगल में कौन बैठे। दो विवाहित देवियाँ तो स्त्री वाली सीट पर बैठ गयीं और छोटी बहिन को सामने बैठने की आज्ञा दे दी। वह बेचारी आँखें तरेरती, बड़ी मुसीबत का अनुभव करती हुई, उधर मुड़ी और घोंटुओं को मोड़, सैन्डिलों को बगल में बैठे पुरुषों की ओर, सीट पर ही टिकाती, बैठ गयी। जैसे कहीं उसके वस्त्रों का मुसाफिर पुरुषों से स्पर्श न हो जाये। इस प्रकार इन बहनजी ने दो सीटों का स्थान घेर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकते-सरकते कोने पर बैठे सज्जन को सीट छोड़कर खड़े यात्रा करनी पड़ी।

तसवीर वही थी, लेकिन रूप दूसरा था। आप सोचें! यह तीनों गाँव की भोली-भाली स्त्रियाँ हों, सो बात नह थी। बबुआइन थीं, यानी उनके पतिदेव किसी आफिस बड़े-बाबू थे, बदली हो जाने के कारण बाद में ये मा सामान के जा रही थीं। थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी भी थीं तीनों की परस्पर बातचीत का एक अंश देखिये :—

"—लखनऊ बहुत अच्छा शहर है। मैं तो तीन दि रही, कोना-कोना छान मारा। होटल और सिनेमाघर त कोई बचा नहीं, जहाँ हम नहीं गये।"

"अरे जिज्जी तो पूरे तीन साल वहाँ रही हैं, तुम तीन दिन में ही पूरा लखनऊ देख लिया।

"ओह! माई गाड!"—कुमारी जी ने विस्मय कहा।

"और सरला (कुमारी) तो दो साल वहीं रहक पढ़ी है, जब ही तो देहरादून के प्रोफेसर साहब के सा शादी . . . ।"

"दीदी! तुम हर समय उनकी ही बात क्यों किय करती हो, अच्छा चलो आज जीजाजी से . . . ।"

एक ओर तो स्त्री समाज नारीत्व की आड़ में पुरुषों पर हावी होना चाहता है। अपने लिए अधिकारों का इतना पिटारा जोड़ लेना चाहता है कि भले ही उसमें दबकर पुरुषों के कर्त्तव्य की चटनी बन जाये। दूसरी ओर शिक्षित सुसंस्कृत होने पर भी वह छुई-मुई बनी रहना चाहती है। जैसे उसके बाप-भाई, निकट के सम्बन्धी तो पुरुष हैं, शेष सब भूत, जो बरबस उनसे चिपट जायेंगे!

बहनों को सोचना है कि यह दोनों रूप ही अवांछित हैं, सामाजिक-विकास के लिए घातक। आवश्यकता है सामंजस्य की। स्त्रियों को पुरुषों से कतराने की जरूरत नहीं, उनकी कमजोरी तो मानसिक दुर्बलता में निहित है। अपने को परवस और असहाय न समझकर कर्त्तव्य और अधिकार की परिधि में स्थिर रहना चाहिए। . . . न तो पुरुषों की परछायीं से परहेज करने से काम चलेगा, न अपने अस्तित्व को भूल कर, पुरुषों के हाथ की कठपुतली बन जाने से।

आत्म-विश्वास' और सह-अस्तित्व की भावना ही एक सुदृढ़ स्थायी और कल्याणकारी समाज की स्थापना कर सकती है।

'रामचरित-मानस' का 'काशिराज-संस्करण'

पण्डित किशोरीदास वाजपेयी

(गताङ्क से आगे)

एकवचन में भी 'उ' सर्वत्र नहीं

ऊपर बताया गया कि अकारान्त पुंवर्गीय शब्दों के बहुवचन में 'उ' लगाना गलती है। आदरार्थक बहुवचन में हिन्दी कर्ता को तदवस्थ रखती है; उसमें बहुवचन-द्योतक कोई परिवर्तन नहीं करती है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रभाषा प्रायः 'जी' अव्यय का प्रयोग करती है––'राम जी आये हैं' 'दादी जी आयी हैं'। 'जी' के बिना भी 'दादी आयी हैं'। यहाँ 'दादी' का बहुवचन 'दादियाँ' न होगा। यदि बहुवचन में परिवर्तन हो, 'दादियाँ आयी हैं' कहा जाये, तो संख्या विवक्षित समझी जायेगी; यानी समझा जायेगा कि कई दादियाँ आयी हैं। अवधी और ब्रजभाषा में ऐसी जगह भी 'दादियाँ' नहीं होता। क्रिया से ही बहुत्व की प्रतीति होती है––'दादी चारौं आ गयी हैं।' 'रानी आईं'––'रानियाँ आईं' नहीं। राष्ट्रभाषा में व्यक्ति-बहुत्व सूचनार्थ 'दादियाँ', 'रानियाँ आदि प्रयोग; परन्तु किसी एक में ही उसकी क्रिया या व्यवहार आदि का गौरव हो, तो फ़िर कर्त्ता ज्यों का त्यों रहता है; क्रिया में गौरव प्रकट किया ज़ाता है; क्रिया बहुवचन होती है। ऐसी स्थिति में उसमें हलकापन प्रकट करनेवाली एकवचन की विभक्ति लगाना गलती है। क्रिया बहुवचन और कर्त्ता 'उ' लगाकर एकवचन!

यदि साधारण एकवचन हो, तो 'उ' का लगाना, या न लगाना, अपने विवेक पर है––"घरु तौ हमार दीख है।' 'घर आँगन सब हमार दीख है'। परन्तु यदि भावना-विशेष हो, तो फिर 'उ' के प्रयोग पर विचार करना होगा। रावण के प्रति दूसरी तरह की भावना होने के कारण :––

'तब रावनु आवा'

कहना ठीक; परन्तु इसी पद्धति पर सर्वत्र न चलना होगा––

'बिभीषनु आवा'

अच्छा न लगेगा और 'अच्छा न लगना' ही प्रयोग की गलती है। 'उ' से हल्क़ापन प्रकट होता है। व्यक्ति का एकत्व तो 'आवा' क्रिया से ही प्रकट है। यानी आदर प्रकट करने के लिए क्रिया बहुवचन रूप में और हलकापन प्रकट करने के लिए कर्त्ता में एकवचन की विभक्ति। साधारण अवस्था में यथेच्छता; जहाँ जैसा अच्छा लगे। ––'जल पियत पंछी करत केलि' और 'जलु पियत' में कौन सा प्रयोग अच्छा लगता है? यहाँ 'जलु' व्याकरण से गलत नहीं; न 'जल' ही गलत है; क्योंकि 'उ' की स्थिति अनिवार्य नहीं है। जायसी ने अपने अवधी-काव्यों में प्रायः सर्वत्र अकारान्त ही रूप रखे हैं।

परन्तु किसी वाक्य में पास ही पास अनेक 'उ' आ जायें, तो अच्छा न लगेगा। 'आस्रमु एकु दीख मग माहीं। में 'एकु' विशेषण गलत नहीं है। संख्यावाचक यह 'एकु' चलता है; पर अन्य विशेषण 'उ' नहीं लगाते। 'मीठु, पानी' न होगा; न 'चतुरु बालकु' चलेगा। 'चतुर बालकु' गलत नहीं है। परन्तु 'आस्रमु एकु' की जगह 'आस्रम एकु' अधिक अच्छा लगता है; उतना 'आस्रमु एक' भी भला नहीं मालूम देता। विशेष्य से विशेषण पृथक् नहीं रहता। एकत्व आश्रमगत ही है। 'सुन्दर वाटिकाएँ देखीं' में 'सुन्दर' विशेषण न तो किसी स्त्री-प्रत्यय से युक्त है और न बहुवचन-विभक्ति ही उसमें लगी है; परन्तु वह ('सुन्दर') यहाँ है स्त्रीवर्गीय बहुवचन; क्योंकि 'वाटिकाएँ' का विशेषण है। सुन्दरता और बहुत्व वाटिकागत ही है; पृथक् नहीं; इसलिए पृथक् वैसे कोई प्रत्यय आदि वहाँ स्वतंत्र रूप से उसमें लगाना अनिवार्य नहीं। 'एक' में एकवचन 'उ' लगाना कोई गलती नहीं है। संस्कृत में भी 'एकः' चलता है और 'बहु' में बहुवचन-विभक्ति भी लगती है––'बहवः'। वहाँ यह सब अनिवार्य है; हिन्दी में नहीं। पंजाबी में जरूर 'चंगियाँ चंगियाँ धोतियाँ' चलता है; हिन्दी में 'अच्छी अच्छी धोतियाँ'। 'अच्छियाँ-अच्छियाँ धोतियाँ' यहाँ नहीं चलता। अच्छी-अच्छी धोतियाँ होता है। यानी अपने पुंप्रत्यय 'आ' को स्त्रीवर्ग में 'ई' करना जरूरी; पर बहुवचन-विभक्ति का पृथक् प्रयोग नहीं। पुंवर्ग में अवश्य––'अच्छे अच्छे कपड़े' होता है; 'अच्छा अच्छा कपड़े' अच्छा न लगता। एक कद के और एक जैसे गणवेश के सैनिक कदम मिलाकर चलते हैं, तो अच्छा

लगता है। भाषा में यह 'अच्छा लगना' भी बड़ी चीज है। 'लड़कियाँ गईं' में अनुनासिकता बहुवचन प्रकट करती है। 'लड़कियाँ आईं' में भी वही बात है। 'लड़कियाँ थीं।' में भी वही; परन्तु––

लड़कियाँ **गईं** थीं
लड़कियाँ **आईं** थीं

कोई बोलता-लिखता है? इसलिए कि दो जगह अनुनासिकता भाषा को भद्दारूप दे देती––भाषा मिन-मिनाने लगती। यदि भद्दापन न आये तो फिर––

लड़के गये थे अच्छे लड़के पढ़ते थे
लड़के आए थे बुरे लड़के लड़ते थे

प्रयोग ठीक। 'गये'––'आये' भी उसी तरह हैं, जैसे 'थे'। परन्तु 'घर आईं हुईं लड़कियाँ खेलतीं थीं', कैसा रहेगा?

तुलसी की 'उ' प्रियता !

मिश्रजी कहते हैं कि तुलसीदास का लिखा हुआ जो 'पंचनामा' उपलब्ध है, उसमें उन्होंने 'राम' के लिए 'रामु' प्रयोग किया है; इसलिए जान पड़ता है कि वे 'उ' के पक्ष में थे। उस 'पंचनामा' के शीर्ष पर लिखा है––

'तुलसी जान्यो दसरथहिं धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लागि, बिनु––राम परिहरे प्रान।

यहाँ 'रामु तजे' प्रयोग है। हो सकता है तुलसी ने वात्सल्यातिशय प्रकट करने के लिए यहाँ 'रामु' लिख दिया हो। अपने प्यारे 'रामू' को भी छोड़ दिया! मा-बाप प्यार में ऐसे प्रयोग करते हैं। यानी 'रामु' यहाँ दशरथ की दृष्टि से है। परन्तु यहीं एक शंका उठती है कि 'रामु' के साथ 'तजे' क्रिया बहुवचन कैसे? कर्मवाच्य क्रिया है। 'सब भोग तजे' 'राज तजेउ' 'तजी सती असि नारी' जैसे प्रयोग होते हैं। 'रामू आवा है' प्रयोग होता है; 'रामू आये हैं' नहीं। यदि किसीका नाम ही 'रामू' हो, तब 'रामू आये हैं' हो सकता है। इस भ्रम को दूर रखने के लिए ही जायसी ने––

'जायस नगर मोर अस्थानू'

लिखा है। 'जायसु' करने से भ्रम हो सकता था कि नगर का नाम 'जायसु' है। हाँ, 'जायस नगरु' कर सकते थे; पर वह भी न किया––'जायस नगर' रखा। आज भी 'फैजाबाद हमार जिला है' बोलते हैं––"फैजाबादु" नहीं। ऐसे उकारान्त प्रातिपदिक अवधी में बहुत हैं; जिनके अन्त में 'उ' लगा हुआ है––

पितु, मातु, आयसु, घिउ, जिउ आदि

इनमें वह पुंवर्गीय 'उ' नहीं है, जिस पर यह कथा चल रही है। 'मातु' में वह कैसे लग सकता था? 'ऋ' का संस्कृत में कहीं 'अ' और कहीं 'उ' हो जाता है। (यह अलग बात है कि 'रपर' की व्यवस्था है) अवधी में भी 'ऋ' का 'उ' हो गया है। ये 'पितृ'–'मातृ' से उद्भूत अवधी के 'प्रातिपदिक' हैं। 'भाई' में 'त् र्' का लोप है और 'तृ' में जो 'इ' जैसा उच्चारण है, वही शेष है, दीर्घ होकर। यही स्थिति 'माई' की है। 'धातृ' का 'धाई' होकर 'धाय' एक रूप और 'दाई' दूसरा। यानी यह 'ई' स्त्री-प्रत्यय लगाया हुआ नहीं है; प्रातिपदिक ही वैसा है।

हम कह रहे थे कि 'रामु' में (प्यार सूचनार्थ) 'उ' पुंप्रत्यय दशरथ की ओर से हो सकता है; परन्तु तुलसी ने तब क्रिया 'तजे' कैसे कर दी? 'तजेउ' क्रिया (एकवचन) चाहिए थी न? क्या तुलसीदास को इतना भी भाषा ज्ञान न था? शंका होती है इस प्रयोग से कि वे क्या ऐसे थे! परन्तु जिन लोगों ने तुलसी की रचनाएँ पढ़ी है उनके मन में यह शंका न उठकर दूसरी ही उठेगी कि वह 'पंचनामा' तुलसीदास का लिखा है भी कि नहीं! 'मानस' और 'विनयपत्रिका' के रचयिता भाषा के पूर्ण मर्मज्ञ थे।

यह भी संभव है, उधर ध्यान न दिया हो। 'पंच-नामा' कोई काव्य-कृति नहीं कि भाषा पर वैसा ध्यान देना जरूरी हो। आज भी अर्जी-पुर्जे जिस तरह की भाषा में चलते हैं, उसे देख सकते हैं। मतलब से मतलब रहता है। हम लोग चिट्ठी-पत्री लिखते समय भाषा का क उतना ध्यान रखते हैं, जितना पुस्तक लिखते समय? त हमारी किसी चिट्ठी का कोई प्रयोग लेकर बाद में य सिद्ध करे कि 'वे ऐसी भाषा पसन्द करते थे', तो कै रहेगा? और उस चिट्ठी के उस प्रामादिक प्रयोग बल पर वह फिर हमारी पुस्तकों के सब प्रयोग उसी ढ से 'शुद्ध' करके चलाने लगे, तो? 'पंचनामा' और चिट्ठ पत्री की बात जाने दें; भाषा-सम्बन्धी स्खलन कहीं उत्त कृतियों में भी, महाकवियों से भी संभव है। कालिदा ने 'त्र्यम्बक' की जगह 'त्रियम्बक' कहीं कर दिया,

कर दिया ! उसे 'स्खलन' न कहकर आप 'निरंकुशता' कह दें; बात वही है। बहुत बड़े और पूज्य जनों के वैसे प्रयोग 'आर्ष' कहे जाते हैं। परन्तु उनका अनुगमन हम नहीं करते। कालिदास के 'त्रियम्बक' प्रयोग को लेकर सर्वत्र 'यण्' की जगह 'इयङ' उनकी कृतियों में कोई कर दे और 'अध्यापपयामास' आदि को 'अधियापयामास' करने का बीड़ा उठा ले, तो कैसा रहेगा ?

संभव है 'पंचनामा' में 'राम' देखकर किसी 'उ'-प्रेमी ने ही नीचे मात्रा लगाकर 'राम' को 'रामु' बना दिया हो।

इसी तरह तुलसी की अन्य कृतियों में भी 'अवधी' बनायी गयी है--'भरत भये ठाढ़े' को 'भरतु भये ठाढ़े' कर दिया गया है ! 'भरतु' का 'ठाढ़े' से बना मेल ? 'प्रेम-रामायण' नाम से जो संस्कृत में 'मानस' का सुन्दर अनुवाद हुआ है, उसमें भी--

'भरत् भे ठाढ़ेति गाढं स्वरं गायन्तम्'

प्रयोग हुआ है। यहाँ 'भए' की जगह 'भे' है; परन्तु 'भरतु' और 'भे' की स्थिति तो वही है न ! श्री रामू द्विवेदी ने 'प्रेमरामायण' लिखकर भाषा को महत्त्व दिया है; पर भाषा के वे मर्मज्ञ हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। संस्कृत के सभी पण्डित 'भाषा' की नस-नाड़ी भी पहचानते हों, ऐसी बात नहीं है। द्विवेदीजी ने अपने आपको तुलसी का शिष्य-सेवक बतलाया है; सो हम सभी उनके शिष्य-सेवक हैं और प्रलय-पर्यन्त उनके शिष्य-सेवक बने ही रहेंगे। परन्तु 'भरतु भे ठाढ़े' चिन्त्य है। संभव है, बाद में किसी ने 'भरत' का 'भरतु' कर दिया हो; क्योंकि जो प्रति 'प्रेम-रामायण' की प्राप्त है, वह उनकी लिखी नहीं, उनकी लिखी कृति की अनुलिपि है। और 'उ' का झमेला है पुराना। पटना के एक गाँव में 'मानस' की प्राचीन प्रतियाँ सुरक्षित रखी गयी हैं; परन्तु वह क्षेत्र 'उ' के व्यवहार का नहीं है। अवध में बोलते हैं--'कागजु' और पटना में बोलते हैं--'कगजवा'। 'उ' के समझने में गलती हो सकती है। 'अवधी' में 'उ' चलता है, यह सुना और बस ! आज भी तो 'ओ' के बारे में वही सब है ! 'ब्रज में' 'ओ' चलता है, इतना सुना और 'भाषाविज्ञान' में लिख दिया कि ब्रजभाषा में 'घोड़ा' का रूप 'घोड़ो' चलता है ! तब उस समय दूर-दूर के 'मानस' प्रेमियों ने वैसा समझ लिया, तो आश्चर्य क्या ?

ऐसा जान पड़ता है कि रामू द्विवेदी प्रेमी पंडित थे और भाषा को व्याकरण पर अधिक न कसते थे--'भरत भे ठाढ़ेति गाढं स्वरं गायन्तम्' आदि से यह स्पष्ट है। 'ठाढ़ेति' का सन्धि-विच्छेद 'ठाढ़ इति' होगा; 'ठाढ़े इति" नहीं। हो सकता है श्री रामू द्विवेदी ने गीता के 'हे सखेति' का अनुसरण किया हो। वे गीता का पाठ तो करते ही होंगे। पर 'हे सखेति' आर्ष प्रयोग है। 'गाढ-स्वरम्' का भी प्रतिलिपिक ने शायद 'गाढं स्वरम्' किया हो ! क्रिया-विशेषण 'गाढस्वरम्' ठीक है। प्रतिलिपिक लोग अपनी भी बुद्धि लगाया करते थे। परन्तु श्री रामू द्विवेदी ने 'चक्रे रामू द्विवेदः युवन्धम्' यों अपने उद्देश्य से 'चक्रे' परोक्षभूत क्रिया का भी प्रयोग किया है ! हो सकता है, 'पंचनामा' में 'राम' के नीचे 'उ' लगा लेना किसी 'उ'-प्रेमी का काम हो और यही बात 'भरत' को 'भरतु' कर देने में हो। सूरदास के 'गयो', 'मीठो' आदि पदों को भी तो 'औ'-प्रेमियों ने 'गयौ' 'मीठौ' जैसा करके (अपनी समझ से) 'टकसाली ब्रजभाषा' का रूप दिया है। समझा होगा, भूल हो गयी है; ठीक कर दो। जो भी हो, 'रामु तजे' और 'भरतु भे ठाढ़े' जैसे प्रयोग सही नहीं हैं; चाहे जिसके हों। उन प्रयोगों के आधार पर 'रामु' 'बसिष्ठु' सिद्ध नहीं किये जा सकते।

अनुस्वार और अनुनासिकत्व

अनुस्वार स्वर-व्यंजनों से पृथक् एक स्वतंत्र ध्वनि है; पर स्वरों के पश्चात् ही इसका उच्चारण होता है; इसीलिए 'अनुस्वार' कहते हैं। 'स्वरादनु'--'अनुस्वर' और 'अनुस्वर' ही फिर 'अनुस्वार'। 'अंगूर', 'कंगाल' आदि में सब स्पष्ट है। 'अं' में पहले 'अ' उच्चरित होता है, उसके अनन्तर अनुस्वार। 'अङ' जैसा उच्चारण है। दोनों ध्वनियाँ स्पष्ट और पृथक् हैं। अन्तर यह कि अनुस्वार 'अ' का पल्ला पकड़े है और 'अ' स्वतंत्र है। इसी तरह 'कं' समझिए--'क्-अ-ङ' उच्चारण है। यानी तीन ध्वनियाँ हैं। अनुस्वार कभी भी 'अनुव्यंज़न' नहीं होता। संस्कृत व्याकरण में 'य् व् ल्' इन तीन व्यंजनों को अनुनासिक भी होना लिखा है और होते भी हैं; पर 'सानुस्वार' नहीं। अनुस्वार तो स्वर के अनन्तर ही आएगा। ये तीनों 'अन्तःस्थित' हैं; स्वरों और व्यंजनों के मध्यवर्ती हैं। बीच की स्थिति है। इसीलिए य, व को इ, उ हो जाता है और इ, उ, को य, व। 'ल' को 'ऌ' होने का अवसर ही नहीं। कोई 'पद' ही वैसा नहीं, जिसमें 'ऌ' व्यंजन मिले। 'ॠ' को संस्कृत-व्याकरण में सब स्वरों की तरह 'अनुनासिक' होना भी बतलाया गया है; पर प्रयोग में कहीं 'ॠ' मिलता नहीं। अति प्राचीन संस्कृत में कदाचित् कोई वैसा प्रयोग मिल जाये। शेष सब स्वर अनुनासिक रूप भी रखते हैं--

साधारण या निरनुनासिक स्वर--

अटारी, आटा, खाट, टाटा, चीनी, कीट, खोल

अनुनासिक स्वर--

अँगूठो, आँख, काँख, साँटो, चींटो, छींट, सोंटा

अनुस्वार के लिए ऊपर एक बिन्दु लगाते हैं और अनुनासिकत्व प्रकट करने के लिए अर्द्धचन्द्र पर बिन्दु। परन्तु हिन्दी में दीर्घ स्वरों पर प्रायः अनुस्वार नहीं रहता; वैसे स्वर अनुनासिक होते हैं। इसलिए 'चींटी, छींट' सोंटा' आदि में अनुनासिक ही उच्चारण होगा; सानुस्वार

नहीं। जब यों स्थिति है, तब ऊपर लगी मात्रा के साथ उलटा छप्पर रखना बेकार समझ कर मकुट में मणिमात्र जड़ देते हैं——छींट, सोंटा आदि। कोई यहाँ भी छप्पर रखे, तो मनाही नहीं; पर छापे के टाइप में बिन्दु मात्र सुविधा की चीज है।

‘अनुनासिक’ विशेषण है और ‘अनुस्वार’ संज्ञा है। ‘कंघा’ में ‘अ’ सानुस्वार है; अनुस्वार के सहित है; पर ‘कंगारू’ में ‘अ’ का अनुनासिक रूप है——‘कँ’। यहाँ ‘अ’ के अनन्तर कोई नासिक्य उच्चारण नहीं है; ‘अ’ का ही नासिक्य उच्चारण ‘अँ’ है। यानी ‘अ’ से भिन्न ‘अनुनासिक’ नाम की कोई चीज नहीं; उसी का एक रूप है; जैसे चीनी में मिठास। घी चीनी से पृथक् चीज है; इसलिए ‘घी सहित चीनी’ का प्रयोग होता है——‘सघृता शर्करा’। परन्तु ‘मीठी सहित चीनी’ या ‘मीठे सहित चीनी’, या ‘मिठास सहित चीनी’ कोई नहीं कहता। ‘समधुरा शर्करा’ प्रयोग नहीं होता। यह सब ‘हिन्दी शब्दानुशासन’ में समझाया गया है। अनुस्वार ‘नासिक्य’ ध्वनि है; पर ‘अनुनासिक’ कोई वैसी चीज नहीं है। पृथक् ध्वनि नहीं है; स्वर या व्यंजन का एक ‘धर्म’ है, जिसकी स्थिति ‘धर्मी’ से पृथक् नहीं। ‘अँगूठी’ में ‘अँ’ का उच्चारण कंठ से है; पर नासिका अनुगत है; सहायक है। नासिका के सहयोग बिना ‘अँ’ बोल नहीं सकते। परन्तु इस ध्वनि का उच्चारण केवल नासिका से नहीं कर सकते। किसी भी स्वर या व्यंजन का उच्चारण केवल नासिका से संभव नहीं है। अनुस्वार के उच्चारण में वह समर्थ है, जिसे न स्वर कहते हैं, न व्यंजन। वह (अनुस्वार) ‘अयोगवाह’ है। स्वर स्वतंत्र हैं; पर अनुस्वार स्वरों के आश्रित है। व्यंजन स्वरों के पूर्व भी आते हैं और पश्चात् भी। ‘पश्चात्’ में ‘त्’ ‘आ’ के पश्चात् है और श् च् उसके पूर्व। आगे न हो, तो पीछे सही, व्यंजन को स्वर का सहारा (उच्चारण के लिए) चाहिए। परन्तु अनुस्वार सदा स्वर के बाद ही आता है; पहले नहीं।

कहा गया है कि ‘अनुनासिक’ नाम की कोई पृथक् सत्ता रखनेवाली चीज नहीं है; स्वर या व्यंजन का एक प्रकार है।

अनुनासिक व्यंजन

संस्कृत में पाँच अनुनासिक व्यंजन हैं——ङ ञ् ण् न् म्। अवधी-ब्रजभाषा आदि में और राष्ट्रभाषा में भी अनुनासिक व्यंजन केवल ‘न्’ और ‘म्’ हैं। ङ ञ् ण् का प्रयोग राष्ट्रभाषा संस्कृत के तद्रूप (तत्सम) शब्दों में ही करती है; पर उनकी जगह तद्भव रूप (अनुस्वार देकर) भी रखती है। अवधी-ब्रजभाषा आदि में ङ ञ् ण् गृहीत ही नहीं हैं। हिन्दी में सभी पद स्वरान्त होते हैं; इसलिए ‘भायँ भायँ’ और ‘गवँ’ में व्यंजन (य् व्) अनुनासिक नहीं; उनके स्वर (‘अ’) अनुनासिक हैं।

अनुनासिक स्वर

स्वर सभी साधारण (निरनुनासिक) और अनुनासिक भेद से दो-दो तरह के हैं। ‘ऋ’ तो संस्कृत में भी अनुनासिक दुर्लभ है और ‘लृ’ स्वर केवल गिनती भर को है; संस्कृत में भी। लोक-भाषाओं में यह है नहीं। प्राचीन संस्कृत में कोई ध्वनि भाषा में वैसी होगी, जिसके लिए लिपि में यह (‘लृ’) सुरक्षित है।

‘माटी’ में व्यंजन (म्) अनुनासिक है और स्वर (‘आ’) साधारण, या निरनुनासिक। ‘साँटी’ में व्यंजन (‘स्’) साधारण; या निरनुनासिक है; पर उसका आश्रय स्वर अनुनासिक है——‘आँ’। ‘माता’ में व्यंजन (‘म्’) अनुनासिक है; पर स्वर (‘आ’) साधारण है; परन्तु ‘माँ’ में व्यंजन और स्वर दोनों अनुनासिक हैं। परन्तु——

काशिराज-संस्करण में

‘मागत’ और ‘माँगत’ के उच्चारण में अभेद बतलाया गया है और इसीलिए ‘माँगु’ की जगह ‘मागु’ और ‘माँगत’ की जगह ‘मागत’ कर दिया गया है। व्यर्थ खर्च जो अनुनासिक ध्वनि का ‘कृपाँ’ ‘भायँ कुभायँ’ आदि में किया गया, उसकी पूर्ति यहाँ बचत करके की गयी है——माँगत माँगु आदि को ‘मागत’ ‘मागु’ आदि करके! परन्तु कहा यह गया है कि ‘मागत’ को पढ़ो ‘माँगत’ ही! इसी तरह ‘अँचवाइ’ आदि को ‘अचवाइ’ आदि रूप दिया गय है। ‘आचम्’ (आचमन) से सम्बन्ध है——‘अँचवाइ’ का परन्तु कर दिया गया है——‘अचवाइ’! तब तो ‘दाँत’ को भी ‘दात’ किया जा सकता है न! पढ़ेंगे सब ‘दाँत’ ही; क्योंकि सब जानते हैं कि ‘दन्त’ का रूप ‘दाँत’ है ‘दात’ कर देने से बिगड़ेगा क्या? कुदरती ब्राह्मण जने न पहनेगा, तो भी लोग उसे ब्राह्मण ही समझेंगे; ‘पंडितजी’ ही कहेंगे——‘पं० जवाहरलाल नेहरू’। नेहरूजी को समर्पि ‘काशिराज-संस्करण’ में ‘अचवाइ’ जैसे प्रयोग हैं औ ‘रामहिं’ आदि को ‘रामहि’ आदि कर दिया गया है ‘हिं’ संज्ञा-विभक्ति दीर्घ स्वर से परे कभी निरनुनासि हो जाती है——ताहि, तेहि, तोहि आदि। परन्तु ह्र स्वर से परे रामहिं, हरिहिं, प्रभुहिं जैसे रूप होते हैं ‘काशिराज-संस्करण’ में ‘रामहि’ आदि प्रयोग हैं। हि अव्यय ह्रस्व होकर वैसा हो सकता है——‘रामहि’——रा ही। परन्तु ‘हिं’ विभक्ति वैसी जगह ‘हि’ कैसे?

अनुनासिक-प्रयोगाप्रयोग के उदाहरण-उद्धरण दे व्यर्थ है! पूरा ग्रन्थ उदाहरण है।

नवीन प्रकाशन

कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार——लेखक श्री सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक, ज्ञानमंडल वाराणसी। मूल्य ६) रुपये।

हिन्दी में रेखाचित्र, जीवनचरित्र, आत्मचरित्र तथा संस्मरण-सम्बन्धी ग्रन्थों की बहुत कमी है और जो हैं भी उनमें से अधिकांश साधारण कोटि के ही हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ एक असाधारण चीज है और वह एक ऐसे असाधारण व्यक्ति की रचना है जो सार्वजनिक जीवन में तथा साहित्य क्षेत्र में भी ४०-४५ वर्ष से निरन्तर कार्य्यशील रहे हैं।

लेखक महोदय से हमारा परिचय सन् १९१५ से है और पिछले सैंतालीस वर्षों में हमने उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में देखा है, फिर भी यह ग्रन्थ हमारे लिए उपन्यास की तरह मनोरंजक प्रतीत हुआ, साथ ही शिक्षाप्रद भी।

लेखक ने विनम्रतापूर्वक अपने को 'छोटा सेनानायक' कहा है। इसमें इतना और जोड़ देना चाहिए कि वे इस प्रकार के सेनानायकों में प्रधान रहे हैं। उन्हें अनेक बार अहिंसात्मक युद्ध में नेतृत्व करना पड़ा और उस समय उन्होंने अपनी जिम्मेवारी को बड़ी निर्भयतापूर्वक तथा ईमानदारी के साथ निबाहा। स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद उन्हें शासन करने का भी अवसर मिला और वहाँ भी वे अपने कर्तव्यों का विधवत् पालन करते रहे। उनके साथी-संगी और विरोधी भी उनकी परिश्रमशीलता की सदैव प्रशंसा ही करते रहे। कठोर से कठोर परिस्थितियों में भी——गार्हस्थिक दुर्घटनाओं तथा वज्रपातों में भी——अपना फर्ज अदा करते रहने का उनका स्वभाव पुराना है।

इस ग्रन्थ में अनेक ऐसी बातें हैं जिनका हमें इतने लम्बे परिचय के बाद भी कुछ भी पता न था। शिक्षा तथा शासन के क्षेत्रों में उनका दान कितना रहा, इसका अनुमान तो उन क्षेत्रों के विशेषज्ञ ही लगा सकते हैं। चूँकि उन विषयों के प्रति न हमारी रुचि है और न उनमें कुछ गति, इस कारण उन पर कुछ भी लिखना हमारे लिए अनधिकार-चेष्टा होगी।

बुनियादी तालीम की वर्धा स्कीम में श्री सम्पूर्णानन्दजी की कमेटी ने जो दो-तीन महत्त्वपूर्ण संशोधन किये थे उनका पता हमें इसी पुस्तक से लगा। चित्रकारी का समावेश तथा इतिहास की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था उनमें मुख्य है।

एक स्थान पर उन्होंने लिखा है :——

"एक और कहानी याद आती है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कुछ स्कूलों में लड़के लकड़ी की बन्दूकों को लेकर कवायद करते थे। सरकार ने इस चीज को इतना भयानक समझा कि बन्द कर दिया। शिक्षामंत्री बनने पर मैंने इस आज्ञा को रद कर दिया। फिर वैसी शिक्षा होने लगी। हमारे इस्तीफे के बाद हमारी आज्ञा रद हो गयी और लकड़ी की बन्दूकें हटा दी गयीं। १९४७ में फिर अधिकारारूढ़ होने पर हमने उस शिक्षा की अनुमति दी।' लकड़ी की बन्दूकों से भी ब्रिटिश सरकार कितनी डरती थी, यह बात आज हास्योत्पादक प्रतीत होती है।

इस ग्रन्थ में अपने पूज्य माता-पिता, तथा श्रद्धेय नाना जी के जीवन की जो झलक दिखलाई है वह श्रद्धा से परिपूर्ण है। अपने मौलवी साहब, मौलवी मुईनुद्दीन को भी प्रेमपूर्वक याद कर लिया गया है। इस सिलसिले में श्री सम्पूर्णानन्दजी ने अपने नटखटपन की दो मिसालें दी हैं ; एक तो नमाज पढ़ते हुए मौलवी साहब की बगल में उठना-बैठना शुरू करना और दूसरा मौलवी साहब के हुक्के में मिट्टी का तेल डाल देना। पहली शरारत पर मौलवी साहब ने उन्हें कान पकड़कर हटाया और दूसरी पर सम्पूर्णानन्दजी के मामा साहब ने उन पर एक कविता ही बना दी !

हुआ जाता है 'बुन्दा' क्या तेरा हाल
ढेबरी में से तेल चुराके हुक्के में तुम देते हो डाल

सम्पूर्णानन्दजी का पुकारने का नाम बाबूनन्दन था, वही कविता में 'बुन्दा' हो गया ! यदि धृष्टता क्षन्तव्य हो तो इन्हीं वयोवृद्ध 'बुन्दा' महोदय के दो कृत्यों का वृत्तान्त हम भी सुना दें। काशी में आपने हमें एक खुले हुए 'गहरेबाज' इक्के पर बिठलाकर सारनाथ की सड़क पर उसे ऐसा तेज दौड़वाया कि हमारा हार्ट फेल होते-होते बचा। तब तक आप शिक्षामंत्री रह चुके थे और यह 'शिक्षा' हमें इसलिए दी गयी थी कि भोजन के समय हम सिर्फ दो घंटे लेट पहुँचे थे। दूसरी बार क्षिप्रा नदी में नाव पर बैठते हुए हमारे पाँव में कुछ कीचड़ लग गयी थी तो उस 'बेशऊरपने' की सजा हमें यह दी गयी कि पबलिक मीटिंग में कह दिया गया "चौबेजी क्षिप्रा नदी में डूबते-डूबते बचे ! ईश्वर को धन्यवाद है नहीं तो आज यह मीटिंग शोक-सूचक सभा में परिवर्तित हो गयी होती !" पत्रों में यह समाचार तार द्वारा भेज दिया गया और उसका दुष्परिणाम हमें भुगतना पड़ा। उस समय 'बुन्दा' महोदय उत्तर प्रदेश सरकार के गृहमंत्री थे ! और अभी थोड़े दिन की बात है कि राज्यपाल महोदय ने ट्रंक कॉल द्वारा जयपुर से हमें

सूचना दी "अभी-अभी ऊँटों की दौड़ देखकर आ रहा हूँ। वहाँ आपकी याद मुझे आ गयी!" खैर।

डेली कालेज के दिनों का जो संक्षिप्त-सा वर्णन लेखक महोदय ने किया है, वह हमें मनोरंजक प्रतीत हुआ––खास तौर पर इसलिए कि उन दिनों ढाई वर्ष तक हमारा उनका साथ रहा था। हमें आश्चर्य्य केवल एक बात पर है, वह यह कि हमारी ४६ वर्ष पहले की एक भाषा-सम्बन्धी भूल को ('यस्टर डे' के बजाय 'टुमारो' कह देने को) आप भूले नहीं और उसे चिरस्थायी बनाने का हास्योत्पादक प्रयत्न आपने किया है!

जेल-जीवन की मधुर झाँकियाँ भी इस ग्रन्थ में दिखलायी गयी हैं। स्वर्गीय बैजनाथसिंहजी की नोटबुक में आपने चोरी से अपनी कुछ कविताएँ नोट कर दी थीं, जिनसे पहले तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ था, पीछे वे ताड़ गये कि यह किनकी भलमनसाहत है! डेली कालेज इन्दौर में हमारी एक नोटबुक में अपनी एक संस्कृत कविता (भविष्यत् पुराण से उद्धृत बतलाते हुए) हमारी अनुपस्थिति में लिख दी थी, जिसमें चतुर्वेदी समाज के विषय में बड़ी अशुभ कल्पना की गयी थी!

जीवन-दर्शन का अभाव श्री सम्पूर्णानन्दजी की इस पुस्तक का सर्वोत्तम अध्याय हमें जँचा, जिसे वे ही लिख सकते थे। जिस भावी समाज की कल्पना उन्होंने की है उसमें जीवन का आधार संघर्ष नहीं सहयोग होगा और एक के सुख में सब का सुख। वह (Anarchism) अराजकवाद के सिवाय और क्या हो सकता है? जब स्वयं मार्क्स और लैनिन राज्य के सूखी पत्तियों की तरह झड़ जाने की कल्पना करते हैं और महात्मा गांधीजी भी शासनविहीन समाज के समर्थक थे और ऋषि क्रोपाटकिन ने तो वैज्ञानिक आधार पर उसकी उपयोगिता सिद्ध कर दी थी, तो फिर श्री सम्पूर्णानन्दजी उस शब्द के प्रयोग से इतने डरते क्यों हैं? संघर्ष के बजाय पारस्परिक सहयोग पर तो क्रोपाटकिन से बढ़कर किसीने नहीं लिखा और उनकी (Mntual Aid) नामक पुस्तक विश्व-विख्यात है। महाभारत में उसे "वैराज्य" कहा गया है, जिसमें न कुछ दण्ड होगा, न दाण्डिक और परस्पर सहयोग से लोग एक दूसरे का शासन करेंगे!

चूँकि सम्पूर्णानन्दजी शासक रह चुके हैं––कुछ अंशों में अब भी उसके प्रतीक हैं––इसलिए शासनविहीन समाज का खुल्लम-खुल्ला समर्थन करने में उनका संकोच स्वाभाविक ही है।

इस अध्याय का एक वाक्य बहुत महत्त्वपूर्ण है:––

"कोई ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करे या न करे, परन्तु यह तो मानना ही होगा कि जगत् का आधार कोई चेतन तत्व है, जो सत्यं शिवं सुन्दरं है, जो सब में अनुस्यूत है, जिसमें सब कुछ स्थित है। वह हमारे श्रद्धा, विश्वास और आदर का आस्पद है ... हमारे ... अग्रणी नेताओं को कोई इस प्रकार का जीवन-दर्शन, इस प्रकार का आदर्श सामने लाना चाहिए। यदि विराट् और धर्म जैसे पु शब्द कर्ण-कटु लगते हों तो उनका परित्याग करके शब्द गढ़ लिये जायँ। किसी दार्शनिक आधार के बि जीवन सुना निरुद्देश्य, अकृत्स्न रहेगा। उसमें ओज अ उत्साह की कमी रहेगी"

जिस दिन जनता को यह विश्वास हो जायगा 'शासन' मात्र ही सारे पापों की जड़ है उसी दिन वह "विराट्" कल्पना के अनुरूप अपना जीवन-दर्शन स्वयं तैयार कर लेगी––अग्रणी नेताओं का वह इन्तजार न करेगी। हाँ, वह दिन अभी दूर है। अभी तो हमें मा जैसे तानाशाही शासकों से युद्ध करना है।

पुस्तक का अन्त बड़े प्रभावशाली शब्दों से हु है:––"हमारे चारों ओर सौन्दर्य्य का सरोवर छलक र है। आकाश के तारों में, चटकती हुई कलियों में, भ्र के गुंजार में, पक्षियों के कलरव में, बच्चे के हँसने में सौन्द ही सौन्दर्य्य है। आँख खोलने की, उस रस के प्रवाह निश्चेष्ट होकर अपने को डाल देने की आवश्यकता बचपन से ही और बातों के साथ-साथ सौन्दर्य्यानुभूति अ कला, विशेषत: कलाओं के सम्राट् संगीत की शिक्षा मिल चाहिए। श्रुति कहती है "रसौ वै सः" परमात्मा स्वरूप है, प्रकृति उसका आभूषण है। सौन्दर्य्यानुभ शिव शक्ति की अभिन्न युगलमूर्ति का दर्शन है।" कह न होगा कि यह संस्मरण ग्रन्थ एक आस्तिक अध्यापक जीवन का सार है––शिक्षाप्रद और स्फूर्तिमय।

––बनारसीदास चतु

गंगोजमन––नजीर बनारसी। प्रकाशक; भार ज्ञानपीठ, काशी। मूल्य, तीन रुपये।

नजीर का नाम उर्दू साहित्य के लिए कोई नया न है। नजीर "अकबराबादी" तो उर्दू अदब में अपनी सरल और लोकप्रियता के लिए विशिष्ट स्थान रखते हैं। एक अद्भुत सादृश्य है कि उनके हमनाम नजीर 'बनार ने भी उसी परम्परा का पालन किया है। उनके का का मुख्य गुण एक चमत्कारिक साधारणता और साधा विषयों में चमत्कार है। नजीर बनारसी ने दीवाली, हो इत्यादि पर भी लिखा है––और आत्मीयता के सा लिखा है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती नजीर की तरह हि समारोहों को भेदभाव से नहीं देखा है––उन्हें अपना सम है, और इसी प्रकार उनका वर्णन किया है। विषय ही नहीं उनकी शैली में भी भारतीयता है, जैसे "क खिलने नहीं पाती है कि भौंरा टूट पड़ता है।" शैली ही नहीं, जगह-जगह शब्दों में भी हिन्दी का प्रयोग "संकट में लिया है छुप के जनम संकट के बचानेवाले ने नजीर साहब ने ऐतिहासिक विषयों पर भी लिखा है जि सन् सत्तावन पर उनकी नज्म नसों में खून दौड़ा देनेवा है। देवनागरी में उनकी कृतियों का प्रकाशन हो बहुत अच्छा है। पुस्तक की छपाई संतोषजनक है। के मुश्किल शब्दों के अर्थ भी दिये गये हैं।

सत्संग-साधन और फल——स्वामी अखंडानन्द सरस्वती, साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट २५५ ए/१६ रिजरोड, मालाबार हिल बम्बई——६। मूल्य दो रुपये।

यह स्वामी अखंडानन्दजी की तीसरी पुस्तक है। इसके पूर्व 'मांडूक्य प्रवचन' व 'भक्ति रहस्य' पुस्तकें वे प्रस्तुत कर चुके हैं। इनके अनुयायियों व कुछ साहित्य-प्रेमियों ने 'साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' की स्थापना की है। ग्रन्थों से प्राप्त धन राशि ट्रस्ट के उद्देश्य पूर्तियों में लगायी जाती है। इस पुस्तक की भूमिका जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त लाभकर है। साधक में थोड़ी सी साधना के बाद जिस अभिमान का उदय हो जाता है उसकी ओर बाबाजी ने पहले ही ध्यान खींच दिया है। 'चित्तवृत्ति को भौतिक जगत् से ऊपर उठा लेने पर जीवन में एक प्रकार का अभिमान उदय होता है।' पहले से ही चेतावनी मिल जाने से कुशाग्र बुद्धि का साधक उस गर्त से सतर्क रहकर अपनी रक्षा कर सकता है। बाबाजी 'ज्ञान ही, साक्षात् साधन है, अविद्या-निवृत्ति ही फल है' कहकर साधकों को इधर-उधर भटकने पर रोक लगा देते हैं।

पुस्तक की भाषा अत्यन्त सादी व प्रभावमयी है। इस कारण आध्यात्म विषय ग्राह्य बना देती है। प्रथम दो अध्याय संस्मरणात्मक हैं। उनके पढ़ने में तो उपन्यास का सा आनन्द आता है। दिन-प्रतिदिन की साधारण उपमाओं द्वारा गहन विषय सरलता से समझा दिये गये हैं। यथा, 'रोज देखते हो पंचभूतों की सृष्टि कैसे होती है? तुम एक आसन पर शांत बैठे हो। मैं इसको आकाश का रूपक देता हूँ। अब तुम किसी अनिवार्य कारण से ौड़ पड़ो। इसे हम वायु कहेंगे। दौड़ने से जो गर्मी है वह अग्नि है। गर्मी में जो पसीना है वह जल है और जल जमकर मैल बन जायगा, मिट्टी बन जायगा। ... देखो तो सही तुम सारी सृष्टि का रहस्य चुटकी बजाते-बजाते समझ जाओगे।'

पुस्तक की भाषा में उत्तरोत्तर गंभीरता तथा विषय में गहनता आती जाती है। उड़िया बाबा तथा मोकलपुर के बाबा के संस्मरणों के उपरान्त पुस्तक में कहीं निबन्ध पद्धति तथा कहीं प्रश्नोत्तर शैली अपनायी गयी है। इस पुस्तक के भिन्न-भिन्न अध्याय भिन्न-भिन्न समय लिखे गये हैं। इस कारण उनकी शैली में अन्तर है। शैली में अन्तर होते हुए भी विषय की लड़ी में अन्तर नहीं आने पाया है। प्रत्येक अध्याय पाठक के लिए ज्ञानवर्द्धक है। यह २१० पृष्ठ की पुस्तक साधकों को सहायक सिद्ध होगी।

छँट चले बादल——लेखक, श्री देवदत्त 'अटल', पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि०, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली। सजिल्द। मूल्य ४ रुपये।

उपन्यास के लिए जो दो गुण आवश्यक हैं वे दोनों ही इस उपन्यास में हैं। उपन्यास रोचक भी है और मनोरंजक भी, तथा नवीन विषय को लेकर लिखा गया है। प्रेम का स्थान इस उपन्यास में उतना ही है जितने से रोचकता बनी रहे। अश्लीलता आसानी से इस उपन्यास में आ सकती थी, परन्तु आयी नहीं है।

उपन्यास प्रारंभ में तो यह आभास नहीं देता कि 'विन्नू' (जो बाद में विनय बन गया है) इस उपन्यास का प्रधान पात्र है। परन्तु जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे यह स्पष्ट होता जाता है कि सारा उपन्यास विनय को आधार बनाकर ही लिखा गया है। बाकी सब पात्र उसीके चारों ओर घिरे हुए हैं। जैसे-जैसे उन पात्रों के साथ विनय का सम्बन्ध टूटता जाता है वे पात्र भी हटते जाते हैं और विनय के नये सम्बन्धों के साथ नये पात्र ऊपर आ जाते हैं। जिन पात्रों का चित्रण थोड़ा हुआ है वे भी अपना प्रभाव पाठक पर छोड़ जाते हैं।

इस उपन्यास की शैली विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वाक्य छोटे तथा अधिकतर वार्त्तालाप के रूप में हैं। केवल अन्त में कुछ पैराग्राफ इसके विपरीत मिलते हैं।

इस उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसका प्रारंभ गाँव की गरीबी से होता है। इसमें दिखलाया गया है कि अँगरेजी सरकार और जमींदारों के अत्याचारों के बीच एक देहाती भारतीय निरक्षरता का पग्गड़ सिर पर रक्खे किस प्रकार जीवन निर्वाह करता है। उस काल की रेलों, स्टेशनों के प्लेटफार्मों, शहरों की सड़कों आदि के चित्र सजीव हो जाते हैं। क्रान्तिकारियों का यातनामय और जेल का जीवन, मृत्युदंड के कैदियों की कोठरी आदि की झाँकियाँ मिलती हैं। स्वयंसेवकों के भाग्य ही खराब हैं——जो त्याग के कारण जेल जाते हैं। जेल में कष्ट पाते हैं और जेल से निकल कर भी, क्योंकि उनको न तो कोई नौकर रखता था और उनका व्यवसाय भी उनकी जेल अवधि में समाप्त हो जाता था। इन सब बातों की अच्छी तस्वीर खींची गयी है। साथ-साथ उनके अन्दर की पोल भी मनोरंजक ढंग से दिखायी गयी है। अन्त में मंत्रीगण को भी अछूता नहीं छोड़ा गया है। उन पर भी छींटे कसे गये हैं। पुस्तक २०८ पृष्ठों की है। छपाई शुद्ध है।

मनोरंजक संस्मरण

हाफ डाक्टर

मुंशी अजमेरीजी बड़े हाजिर-जवाब व्यक्ति थे। एक बार उनके कोई परिचित सज्जन बीमार पड़ गये। एक देहाती वैद्य की चिकित्सा हो रही थी किन्तु लाभ नहीं हुआ। अंत में देहाती अस्पताल के एक डाक्टर बुलाये गये। डाक्टर साहब हाल ही में मेडिकल कालिज से निकले थे और उन्हें विशेष अनुभव नहीं हो पाया था। आते ही उन्होंने पूछा कि किसकी चिकित्सा हो रही थी। यह सुनने पर कि एक देहाती वैद्य इलाज कर रहे थे, वे अनुभवहीनता के कारण एकदम कह गये—'नीम हकीम खतर-ए-जान!' मुंशी अजमेरी भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने ताजे टटके और साहबजादे डाक्टर की ओर एक बार देखा, और तुरन्त ही तुक मिलाते हुए बोले—"हाफ डाक्टर, साफ मैदान!" डाक्टर साहब झेंप कर चुप रह गये।

जो हठ राखै धर्म की, तेहि राखै करतार

ओरछा के महाराज मधुकरशाह बादशाह अकबर के समकालीन थे। उस समय की प्रथा के अनुसार उन्हें समय-समय पर कुछ दिनों के लिए बादशाह के दरबार में रहना पड़ता था। दरबार में राजस्थान आदि के कितने ही नरेश भी उपस्थित रहते थे। उनमें कितने ही नरेश माथे पर अपने सम्प्रदाय के तिलक लगाया करते थे और तिलक लगाकर ही दरबार में जाते थे। एक दिन बादशाह अकबर को न मालूम क्या सूझा कि दरबार में कह बैठे कि मुझे माथे पर तिलक लगाना सख्त नापसन्द है। यह दरबार के शिष्टाचार के विरुद्ध भी है। अतएव अगले दिन से कोई भी व्यक्ति दरबार में तिलक लगा कर न आवे। नरेशों में इस आज्ञा से खलबली मच गयी। स्नान करने के बाद पूजा करते समय तिलक लगाया जाता है। दरबार प्रायः पूर्वाह्न में हुआ करता था। बहुत सोच-विचारकर उन्होंने तय किया कि आगे से बिना स्नान किये ही दरबार में जाया करेंगे। उस समय माथा सूना रहेगा। लौटकर स्नान-पूजन करके तिलक लगाया करेंगे जिससे शाही आज्ञा का भी पालन हो जाय और नित्यनेम भी निभ जाय। किंतु महाराज मधुकरशाह को बादशाह की यह आज्ञा बहुत अनुचित जँची। उन्होंने इसे अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता पर आघात समझा। वे उस अन्यायपूर्ण आज्ञा के सामने झुकने को तैयार नहीं हुए, और दूसरे दिन और दिनों से भी अधिक चकचके तिलक लगाकर दरबार में पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि बादशाह अपनी आज्ञा की अवज्ञा देखकर उन्हें दंड देंगे। वे मरने-मारने को तैयार होकर, तथा अपने अनु को बाहर लड़ने की आज्ञा देकर, दरबार में गये थे। दर में पहुँचकर उन्होंने नियमानुसार मुजरा किया। नरेश सूने माथे आये थे। महाराज के माथे पर नित्य भी चटक तिलक देखकर बादशाह की भौंहें तन गर्य उन्होंने पूछा—'क्या आपने कल मेरी आज्ञा नहीं थी? या उसे आप नहीं समझे थे? अथवा आप बग करने पर उतारू होकर मेरी आज्ञा के विरुद्ध तिलक ल कर दरबार में आये हैं?' महाराज ने नम्रता किंतु दृ से उत्तर दिया कि "बादशाह को मेरी राजभक्ति वि है। आप जानते हैं कि मैं आपके लिए सदैव लड़ने और म को तैयार हूँ। किंतु अपना धर्म मेरे लिए सर्वोपरि क्योंकि वह इस लोक और परलोक दोनों में मेरा सह है। तिलक लगाना मेरे धर्म का अंग है। उसका ल मैं शाही आज्ञा से भी नहीं छोड़ सकता। इसके लिए जो कुछ भी भोगना पड़े उसके लिए मैं तैयार हूँ।" उ निर्भीक उत्तर सुनकर कुछ देर के लिए सारे दरबा सन्नाटा छा गया। सभी दरबारी समझने लगे कि आज्ञा की अवज्ञा करने के अपराध में मधुकरशाह दुर्दशा हुए बिना न रहेगी। कुछ क्षण बाद दरबार सन्नाटा भंग करके बादशाह ने उच्च स्वर से कहा "वा वाह! मधुकरशाह, वाह! अपने धर्म के प्रति आ निष्ठा देखकर मैं बहुत खुश हूँ। मालूम हो गया कि अपने नित्यनेम में कितने पक्के हैं। मुझे तिलक ना नहीं है। मैंने तो आप लोगों की धार्मिक दृढ़ता देख लिए वह आज्ञा दी थी। आप ही अपने धर्म पर टिके आप टिकैत हैं। आज से यह तिलक जो आप लगाये हैं, मधुकरशाही तिलक कहलावेगा।"

इसी घटना का वर्णन एक तत्कालीन अज्ञात ने इस प्रकार किया है:—

हुकुम दियो है बादशाह ने महीपन कों
राजा, राव, रानासो प्रमान लेखियत है।
चंदन चढ़ायो कहूँ देव पद-बंदन कौ,
दैहों सिर दाग जहाँ रेखा रेखियत है।
सूनौ करि गये भाल, छोड़ि छोड़ि कंठ-माल,
दूसरो दिनेस और कौन देखियत है!
सोहत टिकैत मधुसाह अनियारो इमि—
नागन के बीच मनियारो पेखियत है!

मुंशी अजमेरीजी ने इस घटना का वर्णन अपनी किंतु अत्यंत ललित काव्य-कृति 'मधुकरशाह' में कि जो साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित हुई

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत—सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आसान नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी देखने को मिलती है—राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिए।

साहित्य अकादमी के १९६२ ई० के हिन्दी-पुरस्कार विजेता

श्री भगवतीचरण वर्मा—हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है, जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोधकर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise
SARASWATI—Reg. No. A—248

गुरुकुल काँगड़ी
29 JUL 1983
V-818

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्तीदेवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए०। मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी० मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोन आथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्-एल० बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस्०। मूल्य २)

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच्० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन्० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती

फरवरी

१९६३

राय साहब श्री राधा मोहन लाल **बी० ए० रिटायर्ड** जज **चीफ** कोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे **चित्र** हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०

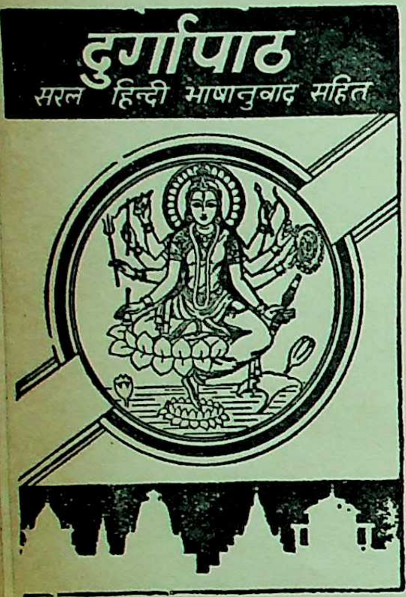
दुर्गापाठ
सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों **की भरमार** है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

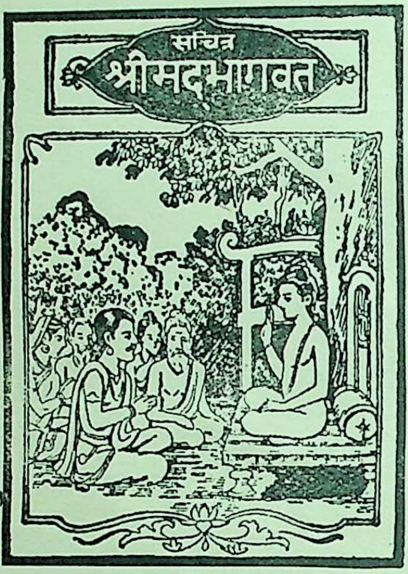
सचित्र
श्रीमद्भागवत

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी के गीता पर जो टीका लिखी है यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े आ मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अ टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक सा

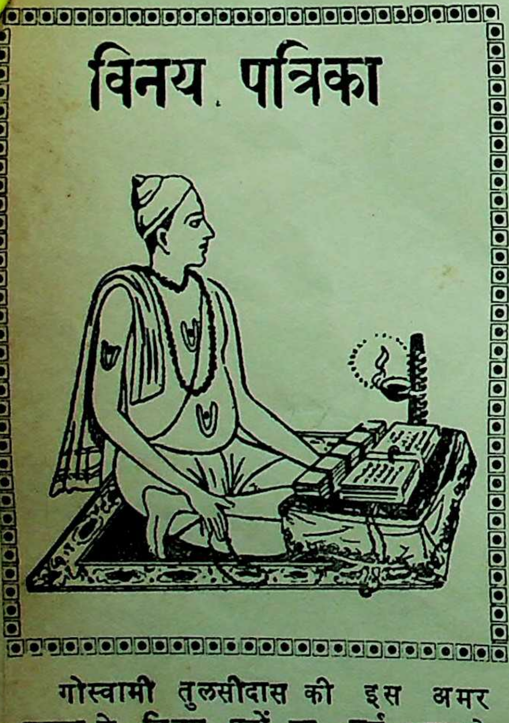

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का **मूल्य ४)** मात्र।

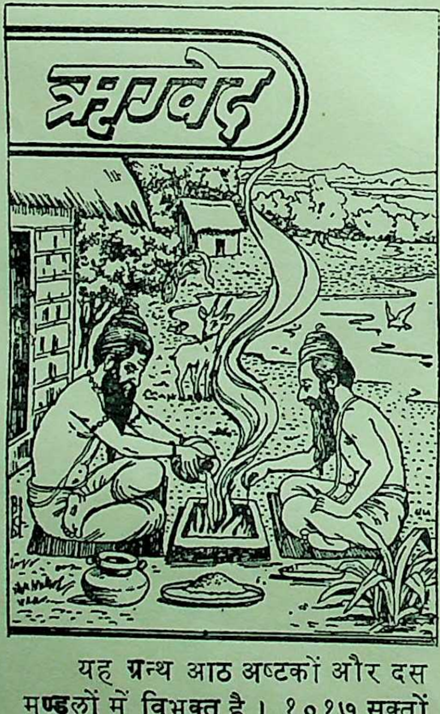

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५० । सजिल्द प्रति का मूल्य **१२)**

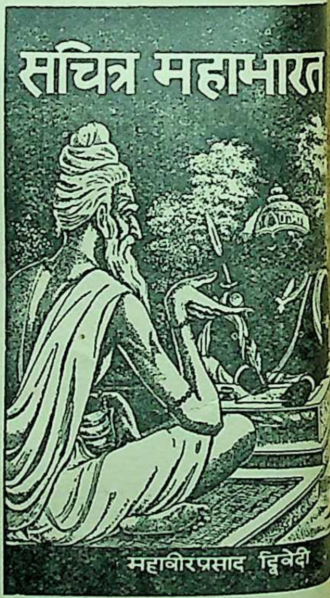
सचित्र महाभारत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

इसमें महाभारत के अ **पर्वों** की कथा बहुत ही सरल में लिखी गई है। इसके लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। और **सजिल्द** ग्रन्थ का मूल्य

17326
पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

यह अपने प्रण को दोहराने का समय है

आइये, आज हम हमलावर को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए अपने प्रण को दोहराएं। चौकसी और दृढ़ निश्चय में किसी तरह की ढिलाई न आने दें क्योंकि यह आपका अपना युद्ध है। यह फौरन काम करने का वक्त है। राष्ट्र सेवी संगठनों के स्वयंसेवकों की सूची में अपना नाम लिखवायें। कोई भी चीज ज़ाया न करें और फजूलखर्ची बिल्कुल बंद कर दें। खाने की चीजें और कपड़ा बहुत आवश्यक वस्तुएं हैं। इन्हें व्यर्थ नष्ट न करें। समय बड़ा कीमती है। इसे व्यतीत घंटों में न नापें बल्कि यह सोच कर नापें कि आपने क्या क्या काम कर लिया है। अपनी जिम्मेदारी निभायें। हर मामले में और हर समय अनुशासन से काम करें।

चौकस रहें

राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटायें

DA62/F5

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

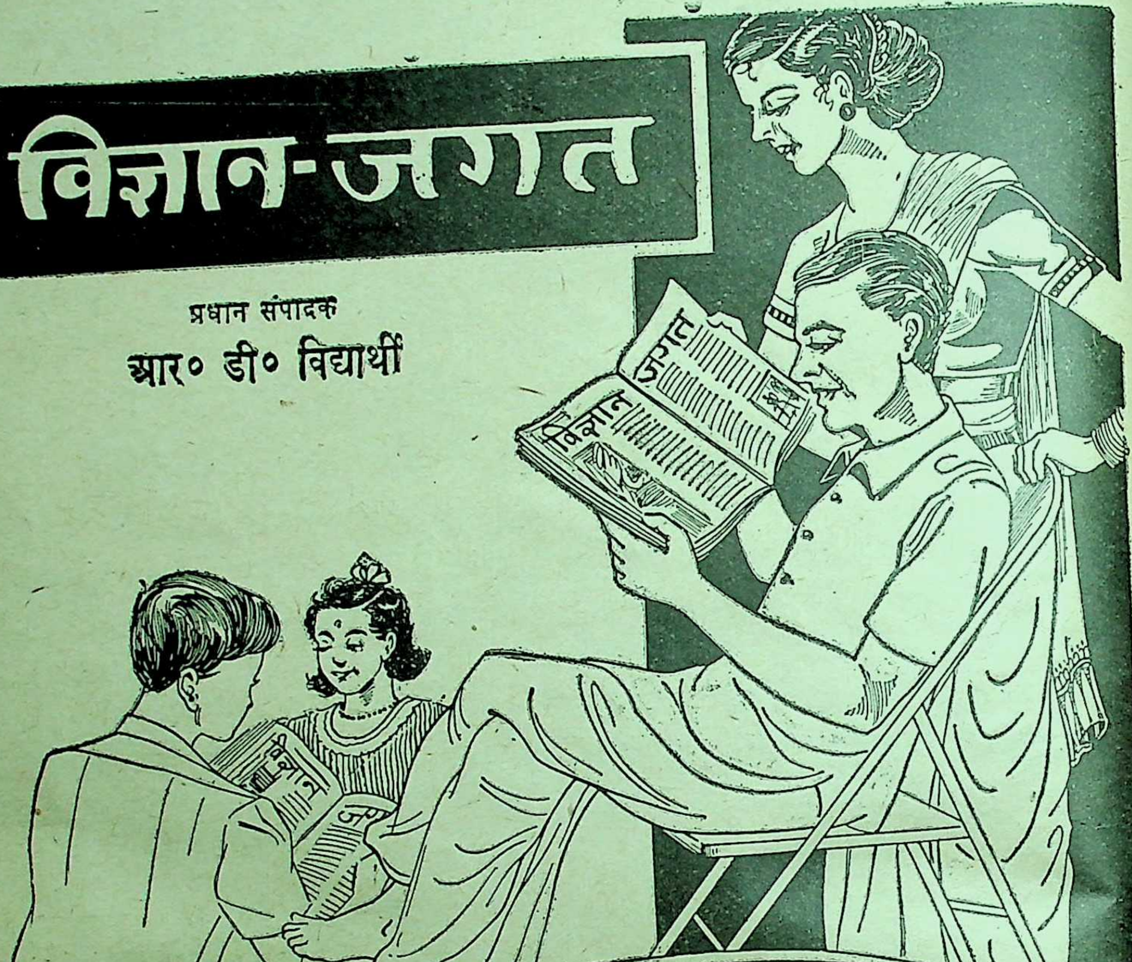

- ● प्रकाशित हो गया।
- ● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- ● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- ● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
- ● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- ● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

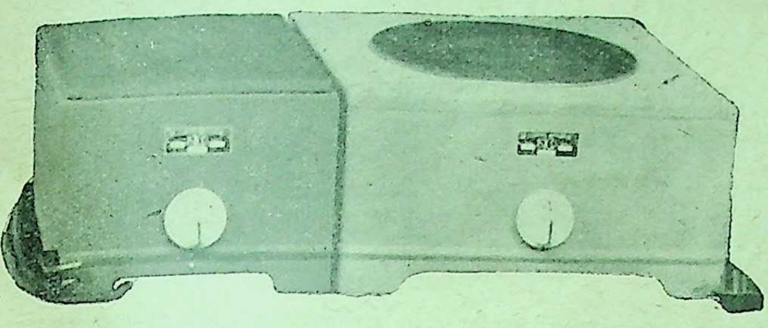

हाट प्लेट

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाऐंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ **॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥**

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

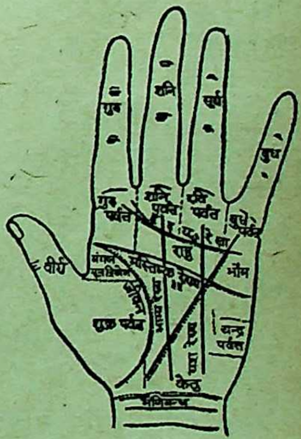
गुरु
शनि
सूर्य
बुध
गुरु पर्वत
शनि पर्वत
रवि पर्वत
बुध पर्वत
राहु
वीर्य
मंगल
मस्तिष्क रेखा
भौम
शुक्र पर्वत
चन्द्र पर्वत
केतु
मणिबन्ध

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:—

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

छप गया!

छप गया!

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद--हिन्दी राष्ट्र-भाषा कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है। आप लोगों ने इसकी तैयारी में परिश्रम किया है। छपाई आदि तो अच्छी होनी ही चाहिए, क्योंकि यह इंडियन प्रेस का प्रकाशन है। परिशिष्ट-स्वरूप संविधान-शब्दावली जोड़ देने से इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

डॉ० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रयाग विश्वविद्यालय--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। संकलन-कर्त्ताओं ने परिश्रम और विवेक से इस कोश का सम्पादन किया है। अर्थ की स्पष्टता और सुबोधता की दृष्टि से इस कोश का विशेष महत्त्व है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रमपूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय--राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अँगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा सङ्कलित इस सर्वोपयोगी कोश को अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की गई है। प्राचीन और अर्वाचीन गद्य-पद्य में प्रयुक्त होनेवाले अधिक-से-अधिक और नवीनतम शब्दों का इसमें समावेश किया गया है। कहावतें और मुहाविरे भी इसमें यथास्थान दिए गए हैं। कोश के अन्त में भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान-शब्दावली भी दे दी गई है।

प्रख्यात विद्वानों की प्रस्तुत सम्मतियाँ ही यह साक्षी दे रही हैं कि 'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' प्रत्येक सार्वजनिक, शैक्षणिक और व्यक्तिगत वाचनालय तथा छात्रों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

पद्मभूषण पं० सुमित्रानन्दन पन्त--इस कोश में मु प्राचीन व नवीन साहित्य में प्रयुक्त अनेक नवीन शब्दों क सफल संकलन मिला है। प्रादेशिक भाषाओं, अरबी, अँग रेजी के प्रचलित शब्दों का समावेश भी इसमें किया गय है। सन्देह नहीं कि यह कोश हिन्दी पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगा।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, भूतपूर्व राज्यपाल उत्तर प्रदेश--'हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश' बहु ही मूल्यवान् कोश है

पं० रमेशदत्त पाठ अध्यक्ष, हिन्दी-विभा महाकोशल महाविद्याल जबलपुर--'हिन्दी राष्ट्र भाषा-कोश' हिन्दी क एक भारी कमी की पू करता है। वह विद्यार्थि एवं विद्वानों दोनों के लि समान रूप से उपयोगी है

रायबहादुर पं० लज शंकर झा, आई० ए एस० (अवकाश-प्राप्त)-- प्रायः पचास हजार शब्द का भारी कोश मैंने देख और प्रसन्नता हुई कि हिन्द्री भाषा में भारी भारी कोश बनने लगे हैं × × × हिन्दी राष्ट्र भाषा हो जाने के कार ऐसे कोश की बहु आवश्यकता थी।

साहित्यवाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' छात्रों के लिए ही नहीं, साधार पाठकों के लिए भी बड़ा उपयोगी है। हिन्दी साहित्य प्रचलित सभी प्रकार के शब्दों के सरल, शुद्ध और स्प अर्थ दिए गए हैं। उसकी एक विशेषता यह भी है कि अ में अँगरेजी के उन पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवा हिन्दी शब्द दिए गए हैं, जो अब हिन्दी में प्रचलित हो हैं और जिनका ज्ञान साधारण पाठकों के लिए अत्य आवश्यक है। इस एक कोश से ही हिन्दी-प्रेमी पाठ की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सकती है।

पृष्ठ लगभग १६००; सजिल्द प्रति का मूल्य १४) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देश रक्षा के लिए
खरीदिये

राष्ट्रीय
रक्षा
बाण्ड
१९७२

४$\frac{1}{4}$ प्रतिशत सालाना ब्याज— हर ६ महीने बाद दिया जाएगा।

ये बाण्ड १०० रु० और इसके गुणितों में मिलते हैं।

१० नवम्बर, १९७२ को इन बाण्डों पर लिखी रकम लौटा दी जायेगी।

खरीदने के आवेदन पत्र रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के सभी कार्यालयों तथा स्टेट बैंक आफ इण्डिया की शाखाओं और उसके सहायक बैंकों में मिलते हैं।

डीए ६२/६२६

भारत सरकार
४$\frac{1}{4}$ % राष्ट्रीय रक्षा बाण्ड १९७२

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों म की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आदर्श
लिवर
टानिक

QUMARESH
DOSE
The Oriental Research & Chemical

ओ॰ आर॰ सि॰ एल का
कुमारेश

लीवर व पेट की पीड़ा की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ॰ आर॰ सि॰ एल॰ लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह––प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका––सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आपकी बचत राष्ट्र की बचत है

प्रीमियम इनामी बांड खरीदिये

बड़े इनाम के लिए : बड़े लाभ के लिए : बड़े काम के लिए

१०० रु० और ५ रु० मूल्यों के ये बेयरर बांड भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यालयों, भारतीय राज्य बैंक और उसके सहायक बैंकों की शाखाओं, खजानों तथा छोटे खजानों और डाकखानों में उपलब्ध हैं। बांड की रकम पाँच साल बाद १० प्रतिशत प्रीमियम सहित वापस कर दी जायगी। इसके अलावा इन बांडों के खरीदार १९६४ में इनामों की दो निकासियों में भाग ले सकेंगे। एक-एक करोड़ रुपये के प्रत्येक प्रकार के बांड के लिए हर निकासी में पाँच-पाँच लाख रुपये के इनाम रखे जायँगे। इस प्रकार १०० रु० के बांडों पर २४३ और ५ रु० के बांडों पर ५६८ इनाम बाँटे जायँगे। इनामों की संख्या और उनकी रकम सीमित नहीं होगी बल्कि बांडों की बिक्री में होनेवाली वृद्धि के साथ साथ बढ़ती जायगी।

लाभ (प्रीमियम) और इनाम दोनों आयकर से मुक्त

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रसारित

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है। विशेषत: उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०,

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

InEnglish **by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)** अंगरेजी में

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्‌भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

केश विन्यास
की पूर्णता
के लिये . . .

गोल्डेन आमला

केश तैल

बंगाल केमिकल
कलकत्ता · बम्बई · कानपुर

सावधान !

मक्कार दुश्मन मौके की ताक में है !!

युद्ध प्रयास में जरा भी शिथिलता
घातक होगी

हिमालय के शिखरों पर संगीनें तनी हुई हैं

देश के रणबाँकुरों को
शक्ति दीजिए

उत्पादन दुगुना करके अपना खर्च कम करके
और
बचत का धन राष्ट्रीय सुरक्षा कोष
में देकर

चौकसी ही आजादी की कीमत है।

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

पाँच पैसे में नया संसार

बाँझपन

का ठेके पर इलाज। पहले सन्तान पीछे दाम। अनगिनत सूने घर आबाद हो गये। एक कार्ड लिखकर ब्योरा मुफ्त लें।

डायरैक्टर—
श्री कुशल पुस्तक भवन, नाभा (पंजाब)

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचिपूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व ारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर कार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण र्बलता को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी
(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता
० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस र्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। ा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक वरण मुफ्त मँगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान रहें।

य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

आवश्यकता

(१) हिन्दी-संस्कृत, (२) आयुर्वेद में टीका टिप्पण, ुवाद, मौलिक आलोचना आदि के लिये दो लेखकों । घर बैठे स्थायी काम। वेतन क्रम १५०-१०-२५०) सिक। आवेदन हिन्दी-संस्कृत दोनों में भेजें।

डायरैक्टर—
श्री कुशल पुस्तक भवन नाभा (पंजाब)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००		
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५		
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५		
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५		
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५		
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०		
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५		
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·६०		
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०		
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०		
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५		
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७		
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५		
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५		
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०		
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८७		
कर्मयोग ..	१·४०	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान ..	१·६२	शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५	मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग ..	१·१२	चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा ..	०·६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·५०	ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत ..	०·५०	मन की शक्तियां	०·४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५		
शक्तिदायी विचार (,,) ..	०·६२		
मेरी समर नीति (,,) ..	०·६५		
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००		

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००
श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००
माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :
श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आंखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्योरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में ो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ ृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० १५ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·३७ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—

साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत——सरस्वती ीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी फलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं ानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ी कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। ्हन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की नेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्त्तिमान हो उठी है। स ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा ांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आसान नहीं है। ऐसी लात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव ढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ी है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने ो नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी खने को मिलती है——राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों क। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि——हिंदी ही नहीं—— मस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-मियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त ादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में ी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐति-ासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह——सुशोभित हना चाहिए।

❁

साहित्य अकादमी के १९६२ ई० के हिन्दी-पुरस्कार विजेता

श्री भगवतीचरण वर्मा——हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है, जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ११३
२—शककाल : एक नई शोध—पं० चन्द्रकान्त बाली १२३
३—बसन्त की गमक (कविता)—पं० जनार्दन-नाथ त्रिपाठी 'गोपाल' १२७
४—भारतीय क्रांतिवीर भाई भगवानसिंह ज्ञानी—डा० पाण्डुरंग सदाशिव खानखोजे .. १२८
५—इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (४)—पण्डित ब्रजमोहन व्यास .. १३१
६—भ्रमरानन्द का पत्र— .. १३७
७—कामदेव के पंच-पुष्पबाण—श्री गोस्वामी राम-बालक १४०
८—'पद्म' की रुबाइयाँ (कविता)—श्री पद्मकान्त मालवीय १४३
९—विश्वकाव्य में वसंत—श्री अनवर आगेवान १४४
१०—बनन में बागन में बगरो वसन्त है—श्री राधेश्याम गुप्त पत्रकार १४६
११—असम का परिचय (२) १४८
१२—मलिनियाँ (कविता)—श्री रामचन्द्र 'चन्द्र-भूषण' १५२
१३—युद्ध के हलके स्वचालित अस्त्र .. १५३
१४—जय हिन्दी ! जय नागरी ! (कविता)—प्रो० आनन्दनारायण शर्मा .. ..
१५—हाफ़िज़ और भारत—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन
१६—नीति-पंचामृत (कविता)—श्री राजेश दयालु "राजेश" .. ..
१७—आँगनों के बीच—नहीं ! नहीं ! नहीं !—श्रीमती शीला शर्मा .. ..
१८—आधी घनाक्षरी—प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय
१९—युधिष्ठिर-संवत् पर विचार—डॉ० अजय मित्र शास्त्री एम० ए०, पी-एच्० डी० ..
२०—'रामचरित-मानस' का 'काशिराज-संस्करण'—पण्डित किशोरीदास वाजपेयी ..
२१—विस्मृत गौरव की खोज में—मू० ले० श्री मनोहर नादकर्णी, रूपा० श्री नरेशचन्द्र मिश्र
२२—डिग्री काम न आयी—श्रीयुत मुरलीमनोहर एम० ए०, साहित्यरत्न .. ..
२३—नवीन प्रकाशन .. .. ..
२४—१९०७ की सरस्वती—शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
२५—मनोरंजक संस्मरण .. ..

अफवाहें न सुनिये।
न फैलाइये।

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। **मूल्य—एक रुपया आठ**

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम २६ **महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता** ४
'बुक्स', २२ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

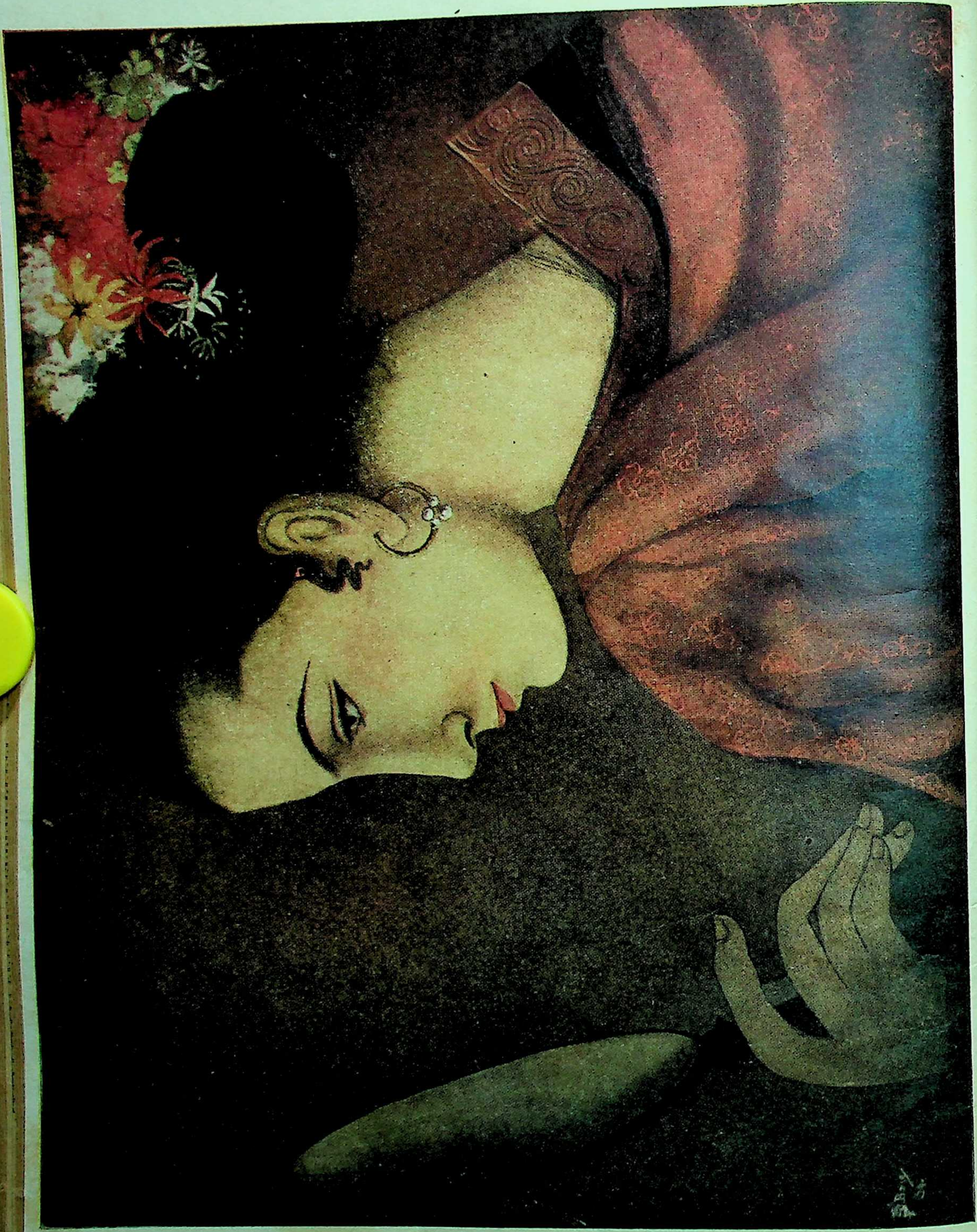

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका--**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
पूण संख्या ७५८
इलाहाबाद : फरवरी १९६३ : माघ २०१९ वि०
खण्ड १
संख्या २

सम्पादकीय

काला संशोधन--'सरस्वती' में हमने सुझाव दिया था कि इस संकटकालीन स्थिति में अँगरेजी को अनिश्चित काल के लिए सखी राजभाषा बनाने के लिए संविधान का प्रस्तावित संशोधन न लाया जाय। बाद में हमने सुना कि कांग्रेस के संसदीय दल की प्रबंध समिति ने भी यह सुझाव दिया और संसद की पिछली बैठक में वह संशोधन उपस्थित नहीं किया गया। किंतु अब यह समाचार मिला है कि सरकार उसे संसद के आगामी बजट-सत्र में उपस्थित करेगी। संकटकालीन स्थिति अभी समाप्त नहीं हुई है। उसकी घोषणा अब भी लागू है। यदि एक बार यह निश्चय कर लिया गया था कि संकटकालीन स्थिति में ऐसा विवादग्रस्त विधेयक न लाया जाना चाहिए तो मालूम नहीं कि अब क्या बात हो गयी जो वह निर्णय बदल दिया गया। क्या संकटकालीन स्थिति समाप्त हो गयी ? क्या अब देश में ऐसा वातावरण बन या है जिसमें उसकी तरह का विवादग्रस्त विषय उठाना श्रेयस्कर है ? इस प्रस्तावित संशोधन के विरोध में दिल्ली में भारतीय भाषाओं के प्रमुख साहित्यकारों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। चीन के आक्रमण से श पर जो संकट उपस्थित हुआ उसके कारण आयोजकों ने उस सम्मेलन को स्थगित कर दिया। हिंदी के कार्यकर्ता इस संकट काल में कोई ऐसा आन्दोलन आरंभ नहीं करना चाहते जिसमें सरकार की किसी प्रकार की आलोचना करने की गुंजाइश हो। इसलिए इस समय इस प्रस्तावित संशोधन के सम्बंध में देश का जनमत सरकार को नहीं मालूम हो सकता। १९६५ अभी दूर है। हम सरकार से अनुरोध करते हैं कि वह इस समय इस विवादग्रस्त विषय को उठाकर हिंदी-प्रेमियों के दिलों को न दुखावे।

हम जानते हैं कि १९६५ में केन्द्र में हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की तैयारी नहीं हुई। इस समय इसके लिए किसीको दोष देना बेकार है। स्पष्ट तथ्य यह है कि १९६५ में केंद्रीय शासन के लिए हिंदी का पूरा उपयोग संभव नहीं है। अतएव यह भी स्पष्ट है कि १९६५ में वहाँ अँगरेजी का पूरा स्थान हिंदी नहीं ले सकती। इसलिए अँगरेजी को अभी कुछ दिनों और केंद्र में रखना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। वास्तविकता को देखते हुए हम वहाँ कुछ दिनों और अँगरेजी को बनाये रखने के विरोधी नहीं हैं। यदि संशोधन का इतना ही प्रयोजन होता तो हम उसका विरोध नहीं करते। किंतु प्रस्तावित

संशोधन के अनुसार अँगरेजी अनिश्चित काल तक भारत की राजभाषा रहेगी। वह तभी हट सकेगी जब अहिंदी भाषी भारतवासी उसकी माँग करेंगे। यह स्पष्ट नहीं है कि वे वह माँग किस प्रकार करेंगे। यह सोचना तो व्यर्थ है कि भारत में कभी कोई अँगरेजी-प्रेमी रहेंगे ही नहीं। जिन लोगों के अँगरेजी में निहित स्वार्थ हैं वे तो सदैव ही अँगरेजी की माँग करेंगे। अँगरेजी समाचार-पत्र, जो अँगरेजी के बल पर जीते हैं, कभी अँगरेजी की माँग न छोड़ेंगे, और उनकी चिल्लाहट को सरकार अहिंदी-भाषियों का विरोध समझेगी। उनके उद्धरण देकर भविष्य की सरकारें सदा यह कह सकेंगी कि देश में हिंदी का विरोध है। अतएव यह संशोधन वास्तव में दिल्ली में अँगरेजी को दिल्ली की कील की तरह अडिग बना रहा है। अँगरेजी के साथ हिंदी का चलाना उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार अँगरेजी तारीखों के साथ 'राष्ट्रीय' शक तिथियों का। सरकारी कागजों में अँगरेजी तारीखों के साथ शक दिनांक भी छपे या लिखे रहते हैं, किंतु सारा काम अँगरेजी तारीखों को ध्यान में रखकर किया जाता है। देश में कहीं भी 'राष्ट्रीय' शक संवत् नहीं चलता। यह संशोधन वर्तमान रूप में हिंदी की भी यही दशा कर देगा। यदि सरकार वास्तव में हिंदी की हितेच्छु है तो वह अँगरेजी को पाँच-सात साल के लिए सहयोगी भाषा रखे, और इस बीच केंद्र में हिंदी का वातावरण बनावे और उसमें काम करने की लगकर तैयारी करे। किंतु अनिश्चित काल के लिए अँगरेजी को सहयोगी राजभाषा रखने का एक ही व्यावहारिक परिणाम होगा : हिंदी का सदा के लिए बहिष्कार। इसीलिए हम इस संशोधन को 'काला संशोधन' कहते हैं। सरकार को यह भी सोचना चाहिए कि इस संशोधन को वर्तमान रूप में लाने से देश की ४५ प्रतिशत हिंदी-भाषी जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह जनता कांग्रेस-भक्त रही है। इसके अतिरिक्त अहिंदी-भाषी प्रदेशों में भी लाखों लोग हिंदी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हैं। उन पर इस संशोधन का क्या प्रभाव पड़ेगा? उसे हिंदी-भाषियों की भावनाओं को ठुकराना न नैतिक दृष्टि से उचित है और न राजनीतिक दृष्टि से। वर्तमान संकटकालीन स्थिति में हम और अधिक कहना उचित नहीं समझते।

कोलम्बो के निर्दलीय राष्ट्रों के सम्मेलन के प्रस्ताव और चीन—चीन ने भारत पर चढ़ाई करके, सैनिक बल से, लदाख की वह सब भूमि ले ली है जिसे १९६० में उसने अपना बतलाया था, और जो शतियों से भारत में थी। उसने प्रायः बारह-तेरह हजार वर्गमील भूमि को चुपके-चुपके कुछ दिनों पहिले दबा लिया था, और सितम्बर में आक्रमण करके उसने हमारी ढाई-तीन हजार वर्गमील भूमि और ले ली। यद्यपि चीन ने सारे उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश पर अपना दावा किया है और यद्यपि उसकी दीर्घकालीन योजना बंगाल की खाड़ी तक पहुँचने की मालूम होती है, तथापि इस समय वह लदाख के उस प्रदेश पचा लेने को उत्सुक है जिस पर उसने धोखे से या ब पूर्वक अधिकार कर लिया है। वह उसे सिंकियाँग औ तिब्बत की सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता है। संसा की दृष्टि में अपनी अनीति और आक्रमण को छिपा तथा अपने को उदार प्रमाणित करने के लिए उसने उत्त पूर्वी सीमान्त के वे भूभाग खाली कर दिये हैं जिनमें व गत सितम्बर-अक्तूबर-नवम्बर में घुस आया था। उस यह भी कहा कि वह अपनी सेनाएँ मैकमोहन रेखा और लदा की उस रेखा से साढ़े बारह मील पीछे हटा लेगा जहाँ त वह बढ़ आया था। साथ ही भारतीय सेनाएँ भी अप सीमा में साढ़े बारह मील हट जायँ। यह स्थिति थी ज कोलम्बो में श्रीलंका, मिस्र, हिंदेशिया, कम्बोडिया, ब और घाना के प्रतिनिधियों ने एक सम्मेलन किया। इ सम्मेलन का उद्देश्य यह था कि भारत और चीन को मि कर आपस में इस विवाद को दूर करने के लिए सहम किया जाय। उन्होंने जो सुझाव दिये वे कोलम्बो प्रस्ता कहलाते हैं। उनका सारांश यह है कि भारत की सेना अपने क्षेत्र में पीछे न हटें। चीनी मैकमोहन पंक्ति औ लदाख को वर्तमान युद्ध-पंक्ति से साढ़े बारह मील पी हट जायँ। लदाख में चीनी सेना के हटने से साढ़े बार मील की जो पट्टी खाली हो, उसमें चीनी और भारती अपनी अपनी पुरानी असैनिक चौकियाँ बना लें। भार ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया, किंतु चीन ने य शर्त लगायी है कि उत्तरपूर्वी सीमान्त में चीन ने जिस क्षे को खाली कर दिया है उसमें भारतीय सेना न जाय, औ लदाख में चीनी सेना के हटने से जो पट्टी खाली हो उस भारतीय असैनिक चौकियाँ स्थापित न की जायँ। बद में चीन ने यह भी कहा कि वह भी वहाँ अपनी चौकि न बनावेगा। भारत को चीन की ये शर्तें मान्य न हैं। ये शर्तें कोलम्बो प्रस्तावों के विरुद्ध हैं। भारत कहना है कि वह चीन से तभी बात करेगा जब चीन उन्हें बिना शर्त के मान ले।

भारतीय संसद ने चीन के प्रस्तावों को मान लि यद्यपि कम्युनिस्टों को छोड़कर दूसरे सभी विरोधी द उन्हें स्वीकार करन के विरुद्ध थे। भारत यह सिद्धा मानता है कि आक्रमणकारी को आक्रमण का लाभ मिलना चाहिए। न्याय और औचित्य तो यह था कि ज तक भारत को सारी दबायी हुई भूमि से चीन न हट ज तब तक उससे समझौते की कोई बात न की जाय; कि हमारी सरकार ने नरम रुख लेकर इतनी ही माँग की चीन वहाँ लौट जाय जहाँ वह इस बड़े आक्रमण के पहि ७ सितम्बर को था। यद्यपि ७ सितम्बर पर लौटने नाम कोलम्बो प्रस्तावों में नहीं है, तथापि यदि लद में वह साढ़े बारह मील हट जाय तो वह शर्त बहुत पूरी हो जाती है।

यदि चीन उन दो शर्तों पर डटा रहता है जो उ कोलम्बो प्रस्तावों पर लगायी हैं तो भारत चीन से बात

करने को तैयार नहीं होगा। बातचीत तभी हो सकती है जब चीन भी, भारत की तरह, बिना किसी ननुनच के उन्हें पूरी तरह से मान ले।

चीन किसी न किसी प्रकार भारत को बातचीत के लिए राजी करना चाहता है, क्योंकि बातचीत आरंभ होते ही युद्ध की स्थिति समाप्त हो जायगी, और वह इस बातचीत को उसी प्रकार वर्षों तक चलाता रहेगा जिस प्रकार कश्मीर के पाकिस्तान द्वारा दबाये हुए भाग के सम्बंध में पाकिस्तान से वह प्रायः पंद्रह वर्षों से चल रही है। जब तक बातचीत होती रहेगी तब तक बहुत संभव यही है कि लदाख के चीन द्वारा दबाए हुए भाग पर उसका अधिकार बना रहेगा, और वहाँ वह अपनी स्थिति और मजबूत कर लेगा। यह कौन कह सकता है कि दस-पंद्रह वर्ष बाद क्या स्थिति हो? किंतु अभी तो भारत अपनी भूमि को आक्रामक चीन से मुक्त करने के लिए कृत-संकल्प है। इस बातचीत से भारत को यह लाभ अवश्य होगा कि वह यदि इस अवधि में प्रयत्न करे तो अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा सकता है, और चीन से टक्कर लेने की शक्ति उत्पन्न होने पर चीन का रुख भी बदल सकता है। इस बीच देश को एकाग्रचित्त से अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सोने पर प्रतिबंध——सोने पर प्रतिबंध लगा कर सरकार ने बड़ा क्रान्तिकारी कार्य किया है। इस प्रतिबंध के तीन प्रमुख उद्देश्य मालूम होते हैं। सोने के तस्कर व्यापार को रोकना, जनता के पास एकत्र अनुत्पादक सोने को उत्पादक कामों में लगाने के लिए उसे सरकारी कोष में जमा करने को प्रोत्साहित करना जिससे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता की समस्या सुलझायी जा सके, और जनता में सोने के प्रति जो एक व्यापक मोह है, उसे दूर करना।

अनुमान किया जाता है कि भारत में प्रति वर्ष ५० करोड़ रुपयों का सोना तस्कर लोग चोरी से लाते हैं और इस सब की खपत हो जाती है। इससे प्रति वर्ष देश का ० करोड़ रुपया विदेश चला जाता है और उससे देश के त्पादन को कोई लाभ नहीं होता। यदि सोने का तस्कर व्यापार रोका जा सके तो यह ५० करोड़ देश ही में रहे और उससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देश के उद्योगधंधों को लाभ हो। भारत में बाहर से सोने का आयात बंद है। किंतु सोने की माँग बहुत है। इसलिए यहाँ सोने का भाव सार के दूसरे देशों से प्रायः दूना है। अतएव तस्करों को चोरी से सोना लाने और बेचने में बड़ा लाभ होता है। यदि सोने की माँग कम हो जाय तो भाव भी गिर जाय। कार वर्षों से सोने के तस्कर व्यापार को रोकने का त्न कर रही है, किंतु उसे सफलता नहीं मिली। तस्कर ग बड़े से बड़ा जोखिम उठाकर अपना व्यापार चलाये ते थे, और सरकार निरुपाय थी। जब वह तस्कर पार को रोकने में असफल हो गयी तब उसने देश में सोने की माँग कम करने के उपाय करने आरंभ किये। इधर सोने की माँग भी बहुत बढ़ गयी है। इसका पहिला कारण तो भारत की जनसंख्या का बढ़ना है। पिछले प्रायः सौ वर्षों में भारत की जनसंख्या लगभग दुगनी हो गयी है। अर्थात् यदि सौ वर्ष पहिले मध्यम और उच्च वर्गों में सौ महिलाएँ थीं तो अब दो सौ महिला हैं। सो, आभूषणों की माँग भी दुगनी हो जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त, सरकारी कंट्रोलों के कारण इस देश में चोरबाजारी भी बहुत हुई और आयकर की ऊँची दरों के कारण चोरबाजारी की आमदनी छिपायी भी बहुत गयी। इस चोरबाजारी की आय को बैंकों में रखने या व्यापार में लगा देने से पकड़े जाने का डर रहता था। नोटों में भी उनका रखना जोखिम का काम था, क्योंकि एक बार सरकार ने हजार रुपये के नोटों को रद्द कर दिया था। इन चोरबाजारवालों को भय था कि न मालूम कब सरकार सौ रुपये के नोटों को भी रद्द कर दे और उनको भुनाते समय यह बतलाना पड़े कि ये नोट उन्हें कहाँ से और कैसे मिले। अतएव उन लोगों ने चोरबाजारी के रुपयों से सोना खरीदना आरंभ किया। सोना सबसे निरापद समझा गया। उसके दाम गिरने की संभावना नहीं थी। इधर पचास वर्षों से उसका भाव बढ़ता ही जा रहा है। इस प्रकार चोरबाजारी के रुपये भी सोने में लगने लगे और सोने की माँग और भी बढ़ गयी। देश में जिनके पास सोना था, वे उसे बेचते न थे। कानूनी ढंग से सोने का आयात होता न था। अतएव इस बढ़ी हुई माँग की पूर्ति के लिए तस्कर व्यापार का सोना ही एकमात्र स्रोत रह गया था। यदि सरकार की तस्कर-विरोधी मशीन तस्करों से अधिक दक्ष और चतुर होती, तो तस्करी सोना देश में न आने पाता। किंतु स्पष्ट है कि वह मशीन असफल रही। किंतु इस असफलता का कारण जितना तस्करों की चालाकी है, उससे कम सोने की माँग करनेवालों का असहयोग नहीं है।

इसलिए सरकार ने देश में सोने की माँग कम करने के उपाय आरंभ किये। इस बीच सरकार को योजनाओं को सफल करने के लिए विदेश से करोड़ों रुपयों के यंत्र तथा अन्य सामान मँगाने के लिए धन की आवश्यकता हुई जिसके लिए विदेशी मुद्रा चाहिए या सोना, क्योंकि वे उसका मूल्य अपनी मुद्रा में लेते हैं या सोने में। भारत का विदेशी व्यापार अभी इतना समृद्ध नहीं है कि उससे कमायी हुई विदेशी मुद्रा से हम अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सकें। अनुमान किया जाता है देश में २००० करोड़ रुपयों का सोना है। यह मूल्य सोने के अंतर्राष्ट्रीय भाव के अनुसार है। यदि इसका आधा सोना भी सरकार को मिल जाय तो उसके बल पर सरकार बहुत कुछ काम कर सके। इसी बीच चीन का आक्रमण हुआ और हमें अपनी सुरक्षा के लिए विदेशों से सैनिक सामान मँगाने के लिए भी और धन की आवश्यकता हुई। अतएव अब देश से तस्करी सोने के लिए प्रति वर्ष ५० करोड़ रुपयों की हानि रोकने का ही प्रश्न नहीं था, किंतु देश की समृद्धि बढ़ाने और

उसके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए भी हमें इस दबे हुए सोने की आवश्यकता थी।

सरकार ने सोने के **बांड** निकाले। सोना देकर ये **बांड** खरीदे जा सकते हैं। इन पर अच्छा ब्याज दिया जाता है। चोरबाजारी के रुपयों से सोना खरीदनेवालों को अभय देने के लिए सरकार ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि उनसे कोई यह न पूछेगा कि उन्हें यह सोना कहाँसे और कैसे मिला। किंतु एक तो सोने का जो मूल्य लगाया गया, वह भारत के बाजार-भाव के अनुसार नहीं था। वह अंतर्राष्ट्रीय दर के हिसाब से था। सरकार विवश थी, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय करार के अनुसार वह केवल अंतर्राष्ट्रीय दर पर सोना खरीद सकती है। इससे सोने का मूल्य प्रायः आधा रह गया। दूसरे, जिन्होंने चोर-बाजारों से सोना खरीदा था, उनके मन में यह चोर बना रहा कि आगे चलकर वे आयकर आदि **की** किसी मुसीबत में न पड़ जायें। इन सब कारणों से सोने के सरकारी **बांडों** की योजना सफल नहीं हुई।

अंत में सोने की माँग कम करके तथा सोने के व्यापार पर कड़ा नियंत्रण करके तस्कर व्यापार रोकने के उपाय करने को सरकार विवश हो गयी। सरकार ने स्त्रियों के पुराने स्वर्ण-आभूषणों पर कोई रोक नहीं लगायी। किंतु गहनों के अतिरिक्त जिस किसीके पास **पाँच तोले से** अधिक पासों, रवा, बर्तनों, सामान आदि के रूप में जितना सोना है, वह उसे **घोषित करना पड़ेगा। कोई व्यक्ति ५० ग्राम (प्रायः ५ तोला) से अधिक** सोना बिना घोषित किये नहीं रख सकता है। व्यापारियों **पर,** और सोना साफ करनेवाले कारखानों पर, विशेष रूप **से कड़े** प्रतिबंध लगाये गये हैं जिससे न तो तस्करों का सोना उन तक पहुँच सके, और न वे उस सोने को जनता में बेच सकें। तस्करी सोने की बाजार में पहुँच रोकने के लिए सरकार ने यह भी आज्ञा दी है कि भविष्य में कोई गहना १४ कैरट सोने से अधिक का न बनाया जायगा। अर्थात् एक तोले में प्रायः ९ आना भर सोना, और सात आना भर खोट रहेगा। इससे एक लाभ यह भी सोचा गया है कि जिस गहने के लिए पहिले १६ आने भर सोने की दरकार होती थी, वह अब नौ आने भर सोने में बन जायगा, और इस प्रकार सोने की माँग कम हो जायगी।

किंतु चौदह कैरट सोने की योजना अधिकांश जनता ने पसंद नहीं की। साधारण फाउण्टेन पैनों के निब १४ कैरट सोने के बनाये जाते हैं क्योंकि यह सोना बहुत कड़ा होता है। अधिकांश सुनारों का कहना है कि इतने कड़े सोने पर महीन काम नहीं हो सकता। अच्छे फाउण्टेन पैनों के निब तो १८ कैरट तक के होते हैं। उत्तर में विशुद्ध सोने के गहने पसंद किये जाते हैं, किंतु दक्षिण में २२ कैरट का सोना (गिन्नी का सोना) चलता है। १४ कैरट के सोने में सोने की वह आब नहीं रहती जिसके कारण स्त्रियाँ सोने के गहने पसन्द करती हैं। दूसरे देशों में कुछ गहने १४ कैरट सोंने के बनते हैं किंतु वहाँ ग अधिकतर जड़ाऊ होते हैं जिनमें सोना आभूषण का म अंग नहीं होता। जड़ाऊ गहनों में हीरा, पन्ना, माणि आदि रत्न लगाये जाते हैं जिनके कारण वे बहुत म होते हैं। भारत में उनका चलना कठिन है।

सराफों के पास असली सोने का जो तैयार माल उसे बेचने के लिए उन्हें एक महीने का समय दिया ग है। इस अवधि के बाद केवल १४ कैरट सोने के आभू बन और बिक सकेंगे। इन तैयार आभूषणों की बिक्री जोरों से हो रही है, और उनके खरीदने में जो उत्सु दिखायी पड़ती है, उससे स्पष्ट है कि जन मानस ने अभी सरकार के १४ कैरट सोने के आभूषणों की योजना समर्थन नहीं किया। सोने की यह योजना तभी सफल सकती है जब जनता पूरी तरह से सहयोग करे। उसने सहयोग न किया, और जनता में असली सोने मोह बना रहा, अथवा उसकी माँग बनी रही, तो सोने चोरबाजारी के नये नये उपाय निकल आवेंगे। सरकार सोने का रखना ही अपराध बना दे और सोने और सोने के आभूषणों को कुछ मुआविजा देकर कर ले (जैसे उसने जमींदारी को समाप्त कर दिया) सोने की माँग पर प्रभावी प्रतिबंध लग सकता है। यह कार्य अत्यन्त अप्रिय और एक सामाजिक क्रान्ति देगा। यह कहना कठिन है कि यदि सरकार कोई क़दम उठावे तो उसके क्या परिणाम होंगे। हम वर्त परिस्थिति में उसे अव्यवहार्य समझते हैं।

तब एक ही उपाय रह जाता है। वह यह कि धी धीरे जनता की मानसिकता को बदला जाय। किन्तु दो-एक दिन में नहीं हो सकता। उसके लिए पर्याप्त स सतत प्रचार और धैर्य चाहिए। किन्तु यह कहना क है कि हमारी अधीर सरकार में, जो समाजवाद को में तत्काल प्रतिष्ठित करने को आतुर है, इतना धै कि नहीं। समय इसलिए चाहिए कि सोने का मोह महत्त्व इस देश में अनादि काल से रहा है। वह श्र का सर्वोत्कृष्ट साधन रहा है। वह सामाजिक प्रति का अचूक चिह्न माना जाता रहा है। वह धन का स रूप समझा जाता रहा है। 'तप्त कांचन वर्ण', 'क के धाम' 'स्वर्ण कमल' आदि की उपमाएँ देकर क ने हमारी कल्पना में सोने को एक विशिष्ट स्थान दे है। वैदिक काल से हम अपनी प्रार्थनाओं में सु प्राप्ति की कामना करते आ रहे हैं। आज भी लक्ष्मी हम याचना करते हैं:

सुवर्णवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः
सुधान्यवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः।
कल्याणवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः
विभूतिवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः।

सुवर्ण हमारा सर्वप्रथम कामना रही है। अ शतियों और पीढ़ियों से बने संस्कार जादू की लक छमन्तर नहीं किये जा सकते। अतएव जनता म

के साथ प्रचार करने और परिवर्तित स्थिति में उसे सोने के नये उपयोग की अनिवार्यता समझाने की आवश्यकता है। जनता के साथ ले चलने से ही इस सुधार का स्थायित्व संभव है।

एक बात और भी याद रखनी आवश्यक है। सोने की माँग केवल स्त्रियों के आभूषणों और चोरबाजार के रुपयों को छिपाने के लिए ही नहीं है। आयुर्वेदिक ओषधियों में सोने की आवश्यकता होती है। चूड़ियों आदि पर लगाने के लिए तरल स्वर्ण काम में लाया जाता है। कितने ही कामों के लिए सोने के तबकों की जरूरत होती है। पुस्तकों की जिल्दों पर सोने से अक्षर लिखे जाते हैं। चित्रकला में सोने का रंग लगता है। गोटे के लिए सोने के महीन तारों की आवश्यकता होती है। किनखाव, ज़री और बनारसी साड़ियाँ तो सच्चे सोने के तारों से ही बन सकती हैं। ये सब भारत की वे कलाएँ हैं जिनके कारण भारत प्रसिद्ध है। सरकार ने इनके लिए सोना देने का वचन दिया है, किन्तु सरकार का तंत्र जिस ढंग से चलता है, उसमें लालफीताशाही का जो प्रभुत्व है, कल्पनाहीन अधिकारियों की जो उपेक्षा, उदासीनता तथा एकाधिकार सत्ता है, उनके किये गये गलत निर्णयों को पलटवाने के लिए जो असाध्य उपाय हैं, उनसे काम कराने के लिए जितनी हैरानी उठानी पड़ती है--इन सब बातों का विचार कर हमें भय है कि सरकार की सद्भावना के बावजूद सोने के प्रतिबंध से स्वर्ण पर निर्भर रहनेवाले उद्योगों और कलाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। सोने के प्रतिबंध से लाखों व्यापारी और कारीगर (विशेषकर सुनार) बेरोजगार हो जायँगे। सरकार का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह इन लोगों को वैकल्पिक काम दे जिससे इन्हें रोजी के लिए मोहताज न होना पड़े।

आजकल इँग्लैण्ड के ग्रह खराब हैं--कहा है कि 'समय एव करोति बलाबलम्!' यह देखकर आश्चर्य और खेद होता है कि जिस इँग्लैण्ड के विशाल साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, जिसकी शक्ति की सारे संसार में धाक थी और जिसकी मित्रता की कामना संसार के अनेक राष्ट्र करते थे, वही आज ठोकर पर ठोकर खा रहा है। और मजा यह है कि उसे ये ठोकरें अपने मित्रों ही से मिल रही हैं।

उसे पहिला धक्का अमरीका से लगा। इँग्लैण्ड उन चार देशों में है जो आणविक अस्त्र बनाता है। वे चार देश हैं--रूस, अमरीका, इँग्लैण्ड और फ्रांस। इनमें तीन पश्चिमी गुट के हैं, किन्तु अमरीका की नीति यह मालूम होती है कि उसके गुट में सिवाय उसके और कोई आणविक अस्त्र न बनावे। फ्रांस ने हाल ही में आणविक अस्त्र बनाना आरंभ किया है। अमरीका इससे प्रसन्न नहीं है। इँग्लैण्ड पहिले ही से आणविक अस्त्र बना रहा है। आणविक अस्त्र या तो तोपों के रूप में होते हैं या प्रक्षेप (मिसिल) के रूप में। प्रक्षेप अस्त्र तोप की तरह पृथ्वी से चलाये जा सकते हैं, या जहाज अथवा पनडुब्बी से, या वायुयान से। इँग्लण्ड की वायुसेना ने पिछले युद्ध में बड़ी उन्नति की और इस समय इँग्लैण्ड के पास 'वलकन' और 'विक्टर' नाम के वायुयान हैं जिनकी गणना संसार के सर्वोत्तम सैनिक वायुयानों में होती है। इँग्लैण्ड ने इन वायुयानों से चलाने के लिए 'ब्लूस्टील' नामक एक भयंकर आणविक प्रक्षेप बनाया है, किन्तु उसकी अधिक से अधिक मार डेढ़ सौ मील ही है। शत्रु के निशानों के इतने पास जाकर प्रक्षेप चलाने में बड़ी कठिनाई होती है। अतएव उसे ऐसे प्रक्षेप चाहिए जो कम से कम पाँच-छः सौ मील की दूरी से मारे जा सकें। तभी वह संभावित शत्रु पर प्रभावशाली रोक लगा सकता है। ऐसे प्रक्षेप अस्त्र बनाने के लिए कारखाना खड़ा करने में करोड़ों रुपयों की आवश्यकता होती है। इँग्लैण्ड में ऐसा कोई कारखाना भी तैयार नहीं है जो उसके बनाने का भार ले सके। अतएव इँग्लैण्ड ने 'स्काई बोल्ट' नामक एक आणविक प्रक्षेप की योजना बनायी और अमरीका के एक प्रक्षेप बनानेवाले कारखाने को उसे बनाने का काम सौंपा। वह कारखाना काफी दिनों से उसके बनाने का प्रयत्न कर रहा है और इँग्लैण्ड को ऐसी आशा थी कि वह अब शीघ्र ही तैयार हो जायगा। यदि 'स्काई बोल्ट' बन जाता तो इँग्लण्ड के पास अपना इतना शक्तिशाली आणविक प्रक्षेप हो जाता जिसके कारण किसीको सहसा उस पर आक्रमण करने का साहस न होता।

अमरीका को यह योजना पसन्द नहीं आयी। 'स्काई बोल्ट' अमरीका ही में बन रहा था, इसलिए वहाँ के कारखानों पर उसका परोक्ष नियंत्रण था। अमरीका ने इँग्लैण्ड को अपने आणविक प्रक्षेप अस्त्र अलग से न बनाने पर जोर दिया, और अंत में पिछले महीने नसाऊ (हवाना) में अमरीका के राष्ट्रपति कैनेडी और इँग्लैण्ड के प्रधान मंत्री मैकमिलन की भेंट हुई तो मैकमिलन पर इतना जोर पड़ा कि उन्हें 'स्काई बोल्ट' बनवाने का विचार छोड़ना पड़ा। इसके बदले अमरीका ने अपना 'पोलारिस' नाम का आणविक प्रक्षेप इँग्लैण्ड को देने का वचन दिया।

'पोलारिस' इस समय बहुत अच्छा आणविक प्रक्षेप समझा जाता है। उसकी मार हजार-आठ सौ मील की है, किन्तु वह अणुशक्ति से परिचालित पनडुब्बियों से चलाया जाता है। ये पनडुब्बियाँ इतनी शक्तिशाली होती हैं कि पानी के भीतर हजारों मील की यात्रा कर सकती हैं, और शत्रु देश के निकट जाकर निशाने पर प्रक्षेप मार सकती हैं।

'पोलारिस' का प्रयोग करने के लिए इँग्लैण्ड को अणुशक्ति से परिचालित पनडुब्बियाँ बनानी पड़ेंगी। अभी उसके पास वे नहीं हैं। इसमें कई वर्ष लग जायेंगे। और उसके बाद वह 'पोलारिस' प्रक्षेपों के लिए सदा अमरीका का मुँह देखा करेगा। यदि किसी कारण से कभी

अमरीका से वह न मिल पाया तो इँग्लैण्ड असहाय हो जायगा। इससे उसकी स्वतंत्र नीति भी न चल सकेगी। इसके अतिरिक्त उसकी वायुसेना का महत्त्व घट जायगा क्योंकि अणुयुद्ध में आणविक प्रक्षेपों से हीन वायुयान बहुत उपयोगी न होंगे। अतएव पोलारिस के लिए अमरीका पर निर्भर हो जाने से इँग्लैण्ड का स्वतंत्र आणविक शक्ति का रूप खतरे में पड़ गया है। इँग्लैण्ड की जनता इस निर्णय से बहुत क्षुब्ध है।

इँग्लैण्ड को दूसरी ठोकर फ्रांस ने दी। इस समय संसार में दो महान् शक्तियाँ हैं--अमरीका और रूस। योरोप को रूस से भय बना रहता है। योरोप इतने छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित है कि वह शक्तिशाली नहीं हो पाता। यदि पश्चिमी योरोप के सब राष्ट्र मिलकर एक संघ बना लें तो वह उतना ही बड़ा और शक्तिशाली हो जाय जितना अमरीका या रूस है, क्योंकि योरोप औद्योगिक दृष्टि से बहुत उन्नत है। उसमें प्रतिभा है, उसमें अत्यंत कुशल अभियंता और कारीगर हैं; उसके पास लोहे और कोयले का बहुत बड़ा भंडार है तथा उसमें संसार के कुछ अत्यंत उन्नत और दक्ष कारखाने हैं। योरोपीय एकता का पहला कदम योरोप का साझा बाजार था। इसमें फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, बेलजियम, इटली, हालैण्ड और लक्समबर्ग सम्मिलित हैं। इन्होंने आर्थिक एकता कर ली है और आपसी राष्ट्रीय तटकरों या चुंगी को समाप्त करके प्रत्येक देश के माल के लिए इन सारे देशों को खोल दिया है। इससे थोड़े ही समय में योरोप के उद्योग-धंधों ने आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है। अब दूसरा कदम राजनीतिक एकता अर्थात् योरोपीय संघ बनाने का है। इसमें इसके सदस्य-देश आंतरिक मामलों में स्वतंत्र रहेंगे, किन्तु विदेशी नीति और सुरक्षा संघ के अधीन रहेगी। जब यह संघ बन जायगा तब सैनिक शक्ति और आर्थिक सम्पन्नता में वह अमरीका या रूस से टक्कर ले सकेगा, और अभी संसार में जो दो महान् शक्तियाँ हैं--उनके समकक्ष यह तीसरी महान् शक्ति हो जायगी। आज योरोप को रूस के भय से अमरीका की सैनिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। अब भी कई हजार अमरीकन सेना योरोप की रक्षा के लिए वहाँ पड़ी है। यदि योरोप का यह राजनीतिक संघ बन जाय तो वहाँके लोगों की धारणा है कि उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए अमरीका का मुँह न ताकना पड़ेगा। फ्रांस के जनरल डिगॉल चाहते हैं कि योरोप के उस प्रस्तावित संघ में फ्रांस का प्रभाव सबसे अधिक रहे। आज उसके जो छः सदस्य हैं, उनमें सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली फ्रांस ही है। वे योरोप में अमरीकनों की उपस्थिति के विरुद्ध हैं। फ्रांस को शक्तिशाली बनाने के लिए उन्होंने अमरीका की पर्वाह न करके आणविक बम बनाया। उधर साम्राज्य के नष्ट हो जाने से इँग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी है। वह योरोप का ही अंग है। अतएव उसने भी साझा बाजार में सम्मिलि होने का निश्चय किया। साझा बाजार के अन्य पाँ सदस्य उसे सम्मिलित करने के पक्ष में थे। प्रायः ए वर्ष से बातचीत चल रही थी। पिछले मास ब्रुसैल्स साझा बाजार के छहों सदस्यों की बैठक हुई जिस इँग्लैण्ड को उसमें सम्मिलित करने पर अंतिम विचा हुआ। साझा बाजार के नियमों के अनुसार प्रत्ये निर्णय सर्वसम्मति से होना चाहिए। पाँच सदस्य इँग्लै को सम्मिलित करने के पक्ष में थे, किन्तु फ्रांस ने क विरोध किया, और इँग्लैण्ड साझा बाजार में सम्मिलि न हो सका। फ्रांस को इस बात का भय है कि इँग्लै के आ जाने से उसका प्रभुत्व समाप्त हो जायगा। सा बाजार में सम्मिलित न हो सकने के कारण इँग्लैण्ड बड़ी निराशः हुई है और उसकी आर्थिक स्थिति सुध रने का सहसा कोई उपाय नहीं दिखलायी पड़ रहा पिछले दो महायुद्धों में इँग्लैण्ड फ्रांस का सहयोगी औ मित्र रहा। इस प्रकार इस मामले में भी इँग्लैण्ड एक मित्र से ही ठोकर खानी पड़ी। किन्तु इँग्लैण्ड ब साहसी और नीतिकुशल है। देखना है कि वह इ परिस्थिति का सामना किस प्रकार करता है।

हिंदी संस्थाओं में हिंदी साहित्यकारों का स्थान--हिंदी साहित्य-सम्मेलन पिछले कई वर्षों से विश्वविद्याल के दीक्षान्त समारोह के अनुकरण पर अपनी परीक्षा में सफल परीक्षार्थियों का दीक्षान्त संस्कार करने ल है। इस बार हमें उसे देखने का सुयोग मिला क्यों संयोग से उन दिनों हम प्रयाग ही में थे। दीक्षान्त क सारी कार्यवाही बड़ी सादगी से, किंतु बड़े गौरवपूर्ण ढं से, सम्पन्न हुई। दीक्षान्त भाषण देने के लिए हिंदी प्रसिद्ध साहित्यकार और बिहार की विधान सभा के अध्य श्री सुधांशुजी पधारे थे। उनका भाषण बड़ा मार्मि उपयोगी और समयोचित था। समारोह की अध्यक्षत श्री श्रीप्रकाशजी ने की। वे भारत-सरकार द्वारा नियुक्त अस्थायी प्रबंध समिति के अध्यक्ष हैं। उनका भाषण बड़ मनोरंजक और सारगर्भित रहा। गैरिक गाउन धार किये हुए स्नातकों को संस्कृत में परम्परा से चली आ हुई वैदिक प्रतिज्ञा करायी गयी। सम्मेलन के आदा और प्रबंध समिति के मंत्री श्री गोपालचंद्र सिंह प्रतिज्ञाओं का हिंदी अनुवाद करते जाते थे। सा कार्य बड़ी सुरुचि के साथ सम्पन्न हुआ।

किंतु एक बात हमें खटकी। मंच पर अध्यक्ष औ दीक्षान्त भाषणकर्ता तथा समिति के मंत्री का बैठना ती ठीक ही था। आगत सज्जनों में इलाहाबाद हाईको के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश तथा हिंदुस्तानी एकाडमी भूतपूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति कमलाकान्तजी वर्मा त मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री डाक्टर कैलाशनाथ काट भी थे। वे [illegible] मंच के सामने की दर्शकों की प्रथ पंक्ति में बैठ गये थे। प्रबंधक उन्हें आग्रहपूर्वक मंच

ऊपर ले गये। इस प्रकार इन सम्मानित सज्जनों को जो सम्मान दिखाया गया, वह ठीक ही था। किंतु दर्शकों की उसी पंक्ति में सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति श्री वियोगी हरिजी और ८४ वर्ष के वयोवृद्ध साहित्य-सेवी साहित्य-वाचस्पति पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल भी बैठे थे। प्रबंधकों ने उनसे मंच पर बैठने का आग्रह नहीं किया। प्रश्न यह उठता है कि मंच पर आसन देना सम्मान दिखाना है या नहीं, और यदि वह सम्मान दिखाना है तो क्या हिंदी साहित्य-सम्मेलन में भी वह सम्मान केवल उच्च राजकीय पदाधिकारियों को ही देना चाहिए? क्या साहित्य-क्षेत्र में भी सम्मेलन का सभापति और साहित्यवाचस्पति इस योग्य नहीं समझा जायगा कि उसे वह सार्वजनिक सम्मान दिया जाय जो वर्तमान या भूतपूर्व राज-पुरुष को दिया जाता है? राजपुरुषों का सम्मान होना चाहिए। उस पर हमें आपत्ति नहीं है। किंतु यदि हिंदी साहित्य-सम्मेलन के मंच पर भी हमारे चोटी के साहित्यकार और साहित्यिक नेता इस योग्य नहीं समझे जाते कि उनका उसी प्रकार का सार्वजनिक सम्मान किया जाय, तो इसे हम हिंदी, साहित्य और साहित्यकारों का दुर्भाग्य ही समझेंगे। हमारा यह दृढ़ मत है कि साहित्यिक समारोहों में साहित्यकारों के साथ इस प्रकार का भेद भाव बरतना साहित्य और साहित्यकारों का अपमान है। साहित्यकार स्वभाव ही से विनम्र होते हैं। वे इस बात की माँग न करेंगे। शायद इसकी शिकायत भी न करें। किंतु हम लोग, जो स्वयं साहित्यकार नहीं हैं किंतु उनका सम्मान करते हैं, अवश्य ही इसे उचित समझते हैं कि कम से कम साहित्यिक समारोहों और साहित्यिक-मंचों पर राजपुरुषों से कम उनका सम्मान न होना चाहिए। हम लोग इस स्थिति को इतने दिनों से सहन करते आये हैं कि हमारा ध्यान ही इस विषमता की ओर नहीं जाता। हम आशा करते हैं कि भविष्य में साहित्यिक समारोहों के आयोजक इस मामले में अधिक सजग और सावधान रहेंगे।

मदरास में हिन्दी को एक और ठोकर—भारत सरकार की नीति के अनुसार अहिंदी राज्यों के माध्यमिक स्कूलों में दो-तीन वर्ष तक भारत की राजभाषा हिंदी पढ़ाने का प्रबंध किया गया है। कुछ राज्य इसमें दत्तचित्त होकर सहयोग कर रहे हैं। किन्तु यह बात छिपी हुई नहीं है कि दो एक राज्य हिंदी के विरोधी हैं और हिंदी पढ़ाने की योजना के प्रति उदासीन हैं। इनमें मदरास भी है। वहाँ हिंदी पढ़ाने का प्रबंध था और वर्ष के अंत में उसमें परीक्षा भी होती थी। किन्तु कक्षा चढ़ने के लिए हिंदी में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं था। अर्थात् जो विद्यार्थी हिंदी की परीक्षा में एक भी अंक नहीं पाते थे, उन्हें भी अगली कक्षा में चढ़ा दिया जाता था। इसका जो परिणाम होना चाहिए था, वही हुआ। विद्यार्थी हिंदी की परीक्षाओं में कोरी उत्तर पुस्तक छोड़कर चले आते थे। अब मदरास सरकार ने आज्ञा निकाली है कि हिंदी की पढ़ायी तो जारी रहेगी, किन्तु उसमें कोई परीक्षा न ली जायगी। जिस विषय में परीक्षा ही न हो, उसकी कक्षा में जाकर समय बर्बाद करना कितने विद्यार्थी पसन्द करेंगे, और यदि वे उसमें जायँगे भी तो कितना ध्यान देकर हिंदी सीखेंगे? इन कक्षाओं के चलाने में जो व्यय होगा वह व्यर्थ जायगा। हमें आश्चर्य न होगा यदि मदरास के हिंदी-विरोधी सरकार पर जोर डालें कि यह अपव्यय रोका जाय और हिंदी कक्षाएँ बंद कर दी जायें। यदि सरकार वास्तव में केन्द्रीय राजभाषा का प्रचार करना चाहती तो वह हिंदी में न्यूनतम अंक प्राप्त किये बिना विद्यार्थियों को अगली श्रेणी में न चढ़ने देती। यह दूसरी बात थी कि आरंभ में हिंदी में दूसरे विषयों की अपेक्षा कम न्यूनतम अंक रखे जाते। यह जानते हुए कि मदरास में एक वर्ग उत्तर-दक्षिण की एकता का विरोधी है और वह हिंदी का बराबर विरोध करता रहता है, यदि सरकार वास्तव में राजभाषा पढ़ाना चाहती तो उसके लिए प्रचार द्वारा उपयुक्त वातावरण बनाकर हिंदी-विरोध के विरुद्ध वातावरण बनाती। किन्तु मदरास की सरकार कभी भी हिंदी के समर्थन के लिए प्रसिद्ध नहीं रही। जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है, मदरास सरकार और द्रविड़ कड़गम में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि शासन के लिए उत्तरदायी होने और कांग्रेसी होने के कारण वह खुलकर हिंदी का विरोध नहीं कर सकती। किन्तु वह हिंदी के प्रचार के लिए कागजी कार्रवाई छोड़कर और कोई ठोस काम करने को तैयार नहीं है। अँगरेजी को सखी राजभाषा बनवाने में मदरास का सबसे अधिक हाथ है। वह अँगरेजी ही को भारत की राजभाषा बनाये रखना चाहता है। इसलिए उसकी सरकार की हिंदी के प्रति उदासीनता आसानी से समझ में आ जाती है। जब अनन्त काल तक अँगरेजी भारत की राजभाषा बनी रहेगी तो मदरासी हिंदी क्यों सीखें? हमें आश्चर्य न होगा यदि मदरास सरकार अपव्यय बतलाकर हिंदी कक्षाओं को भी समाप्त कर दे। यदि उसने ऐसा किया तो बहुत संभव है कि अन्य हिंदी-विरोधी राज्य भी उसका अनुसरण करें। इस प्रकार अँगरेजी वास्तविक रूप में भारत की राजभाषा और हिंदी सखी राजभाषा हो जायगी—कागज पर चाहे हिंदी मुख्य राजभाषा हो क्यों न रहे।

आचार्य शिवपूजन सहाय—आचार्यजी के सहसा निधन से हिंदी संसार को बड़ा धक्का लगा है। प्रायः छः महीने हुए, हम पटना गये थे और आचार्यजी से मिले थे। उस समय हमें क्या मालूम था कि हमारी उनकी वही अंतिम भेंट है। उस समय वे स्वस्थ और प्रसन्नचित्त दिखलायी पड़ते थे। १५ जनवरी को वे संध्या समय राष्ट्रभाषा परिषद् गये। वहाँसे लौटने में कुछ विलम्ब हो गया। खुली रिक्शा में उन्हें कुछ सर्दी लग गयी और

१६ तारीख को उन्हें ज्वर हो आया। वह बढ़ते-बढ़ते संध्या को १०३ अंश हो गया। किंतु सहसा तापमान कम होकर केवल ९८ अंश रह गया। उनके डाक्टर बुलाये

स्व० आचार्य शिवपूजन सहाय

गये। उन्होंने उन्हें तुरंत अस्पताल में भर्ती कराने की सलाह दी। रात्रि में वे अस्पताल पहुँचाये गये और उन्हें जनरल वार्ड में भर्ती कर दिया गया। दूसरे दिन सवेरे प्रायः चार बजे वे संज्ञाहीन हो गये। उन्हें पुराना मधुमेह (डायाबिटीज़) था, और उसके कारण उन्हें मधुमेही मूर्छा (डायाबिटिक कोमा) हो गयी। उस समय से जो वे अचेत हुए तो अंत तक उन्हें चेत नहीं हुआ। सवेरा होने पर डाक्टर लोग जब आये तब विधिवत् चिकित्सा आरंभ हुई, किंतु तब तक अति विलम्ब हो चुका था। यदि अस्पताल में पहुँचते ही, रात्रि में, उनकी समुचित चिकित्सा आरंभ कर दी जाती तो संभवतः स्थिति न बिगड़ती। हमारी सार्वजनिक संस्थाएँ निष्प्राण यंत्र की तरह काम करती हैं और नियमों तथा औपचारिक परम्पराओं के बंधनों में इतनी जकड़ी हुई हैं कि सद्भावना और शुभकामनाओं के रहते हुए भी उनके कार्य में वह मानवीय तत्परता नहीं आ पाती जिसके बिना कभी-कभी अनर्थ तक हो जाता है। दूसरे दिन सवेरा होने पर डाक्टरों ने उनकी परीक्षा करके उनकी चिकित्सा आरंभ की। डा० राजेन्द्रप्रसादजी ने जब उनकी अस्वस्थता का हाल सुना तो उन्होंने अपने डाक्टर भी भेजे। किंतु सब प्रयत्न व्यर्थ हुए, और २१ जनवरी को प्रातःकाल ३ और ४ के बीच में आचार्यजी चिरनिद्रा में सो गये। उनकी मृत्यु के समाचार से पटना नगर शोक में डूब गया। उनका शव बिहार प्रान्तीय सम्मेलन में लाया गया जहाँ पटना के साहित्यकारों और नागरिकों ने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उनकी शवयात्रा में अभूतपूर्व भीड़ थी। रास्ते में पड़नेवाली सार्वजनिक संस्थाओं ने अर्थी रोक रोक कर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। जनता ने उस कई मील की यात्रा में उनकी अर्थी के ऊपर इतने फूल बरसाये कि सड़कें फूलों से पट गयी थीं। इस बात का पता उस दिन लगा कि जनता के हृदय में उनके प्र कितना सम्मान और प्रेम था।

हम लोग प्रेम के कारण उन्हें 'शिवजी' कहते शिवजी के निधन से हिंदी का एक स्तंभ गिर गया, औ द्विवेदी युग की प्रायः अंतिम कड़ी टूट गयी। कविता छोड़कर हिंदी का कौन-सा ऐसा क्षेत्र है जिसको उन्हों अपनी प्रतिभा और लेखनी से नहीं चमकाया ? निबं आलोचना, कथा और सम्पादन के क्षेत्रों में उन्होंने प्रा आधी शती तक अनवरत और ठोस काम किया। काम उस अलंकरण बनानेवाले शिल्पी की तरह नहीं जो सारे जीवन में एक-दो सुंदर कलाकृतियाँ बना दे है। उनका काम तो उस स्थपति की तरह था जो अनव परिश्रम से एक दृढ़ विशाल भवन को एक-एक ईंट कर खड़ा करता है। ऐसे निर्माण कार्य में बड़ी तड़ भड़क नहीं होती। किंतु उसकी साधना से जो दृढ़ औ उपयोगी भवन निर्मित होता है उससे जनता को पीढ़ि तक लाभ होता है। उन्होंने अपने सतत परिश्रम अध्यवसाय से हिंदी भाषा और साहित्य का स्तर उठ का अनाकर्षक और पित्ते मारनेवाला काम किया। वह काम अत्यंत उपयोगी था। निश्चय ही उससे हि सबल हुई और निखरी।

वे लेखक थे, अध्यापक थे, सम्पादक थे। प्रत्येक क्षेत्र वे सफल रहे, और उनकी सफलता का रहस्य हाथ में हुए काम के साथ अपने को एकरस कर देना था। वे गणे शंकर विद्यार्थी या पराड़कर की पंक्ति के सम्पादक न वे महावीरप्रसाद द्विवेदी की परम्परा के सम्पादक उनका सम्पादन समाचारों को लेकर नहीं, विचारों लेकर होता था। यह दुर्भाग्य है कि उन्हें सम्पादन लिए कोई दीर्घायु पत्र नहीं मिला। इस कारण उन सम्पादन-प्रतिभा से हिंदी को उतना लाभ नहीं हु जितना हो सकता था। उनके सरल व्यक्तित्व और वि व्यवहार को देखकर किसीको यह संदेह भी नहीं हो सक था कि उनमें ऊँची श्रेणी की कार्य-कुशलता की क्षम भी है। संयोग से उन्हें बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् भार दे दिया गया। वहाँ उन्होंने सक्रिय रूप से दिख दिया कि उनमें किसी संस्था को सुचारु रूप से संग करने, योजना बनाने और संचालन करने की कि योग्यता है। जितने भी सरकारी साहित्यिक संस् इस देश में बने उनमें बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का सबसे अधिक सुनियोजित और सुचारु रूप से चला। पर शिवजी के व्यक्तित्व की छाप लग गयी।

व्यक्तिगत रूप से शिवजी अतिशय विनम्र और स थे। उनकी महानता पर विनम्रता का ऐसा आव था कि साधारणतया वह छिपी रहती थी। किंतु विनम्रता के नीचे फौलादी शक्ति थी। हिंदी के उनमें इतनी प्रगाढ़ भावना थी, और उसके हितों इतने सजग प्रहरी थे कि उसके हितों की रक्षा के

वे उग्र भी हो सकते थे और बड़े से बड़े व्यक्ति का भी विरोध कर सकते थे। फिर भी उनकी सरलता बच्चों की तरह थी। एक बार श्री श्रीविनोद शर्मा ने हास्य और व्यंग्य की एक पुस्तक छपायी। केवल मित्रों में बाँटने के लिए ही वह छपायी गयी थी और उसका संस्करण केवल १५० प्रतियों का था। अतएव वह केवल विशेष व्यक्तियों ही को दी जाती थी। एक सज्जन ने उन्हें यह पुस्तक दिखलायी। उन्हें पसंद आयी और उन्होंने पूछा कि वह किस प्रकार मिल सकती है। उन सज्जन ने कहा कि जो लोग लिखकर अपने को मूर्ख घोषित करते हैं, उन्हें ही यह पुस्तक दी जाती है। इसपर शिवजी ने श्री श्रीविनोद शर्मा को एक पोस्टकार्ड लिखा और उसमें लिखा कि मैं इतना मूर्ख हूँ कि लोगों ने मुझे आजीवन मूर्ख बनाया है। फिर भी मैं मूर्खता न छोड़ सका। मेरी मूर्खता का इससे बढ़कर क्या प्रमाण होगा कि मैं खुले पोस्टकार्ड पर यह स्वीकारोक्ति कर रहा हूँ? इस घटना से उनकी सरलता का और विनोदप्रियता का पता लगता है।

शिवजी चले गये। आजीवन उन्होंने एकनिष्ठ भाव से हिंदी की सेवा की। उन्होंने हिंदी की सेवा ही नहीं की, सैकड़ों युवकों को हिंदी की सेवा के लिए अनुप्राणित किया। उनका जीवन सफल और सार्थक था। जो लोग उनके मोहक व्यक्तित्व से परिचित थे वे आजीवन उनकी सरल और सौम्य मूर्ति को याद रखेंगे। उनके निधन से हिंदीवालों को एक आत्मीय का विछोह हुआ है। हम उनकी स्मृति के प्रति श्रद्धा से नत हैं और उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

मोना लीज़ा की अनोखी यात्रा––मोना लीज़ा कौन थी? वह फ्लोरेंस (इटली) के एक व्यापारी की पत्नी थी। सोलहवीं शती के प्रसिद्ध इटालियन कलाकार लिओनार्डो डा विंची ने उसका एक चित्र बनाया। इसे बनाने में उसे चार वर्ष लगे थे (१५०३-१५०७)। उसमें वह रहस्यमय ढंग से मुस्कुराती हुई दिखलायी गयी है। चित्र बड़ा नहीं है। कालान्तर में वह पैरिस के प्रसिद्ध संग्रहालय––लूव्र में पहुँच गया। इसे देखने के लिए सारे संसार से कलाप्रेमी आते हैं और घंटों उसकी रहस्यपूर्ण मुस्कान का रहस्य समझने का प्रयत्न करते हैं। हमने उसे १९२५ में देखा था। तब वह लूव्र संग्रहालय की एक दीवाल को सुशोभित कर रही थी। किन्तु अब कुछ वर्षों से उसे मोटे काँच के आवरण में रखा जाता है। उसका काँच एक इंच से भी अधिक मोटा है और वह तोड़ा नहीं जा सकता। उसकी रक्षा के लिए चौबीसों घंटे गारद का प्रबन्ध है क्योंकि चोरों से उसे बड़ा भय है। सन् १९११ में वह एक बार चोरी चला गया था। सारे संसार में खलबली मच गयी। अंत में पता लगा कि वह इटली पहुँच गया है। इटली के राजा ने उसे प्राप्त कर १९१४ में ससम्मान लौटा दिया। रोम से बिदा होते समय उसको सैनिक सलामी देकर उसका मान किया गया। इसका मूल्य लाखों और करोड़ों में आँका जाता है, किन्तु वास्तव में वह अमूल्य है।

अमरीका की राजधानी वाशिंगटन में अमरीका की राष्ट्रीय कलावीथी है। वह कभी-कभी विदेशों से प्रसिद्ध कलाकृतियाँ मँगा कर अमरीकन लोगों की कला-पिपासा को तृप्त किया करती है। पिछले महीने उसने फ्रांस से मोना लीज़ा को मँगा कर तीन सप्ताह तक प्रदर्शित किया।

मोना लीज़ा की अमरीका-यात्रा ऐतिहासिक है। कुछ दिन पहिले जब फ्रांस के राष्ट्रपति डि गॉल अमरीका गये थे तब उनकी सुरक्षा के लिए भी इतना कड़ा प्रबंध नहीं किया गया था जितना मोना लीज़ा की सुरक्षा के लिए। वह प्लास्टिक के दो मन भारी बक्स में बंद की गयी। यह बक्स इस प्रकार बनाया गया था कि उस पर न तो हवा का असर होता था और न समुद्र के खारे पानी का। वह उस बक्स में बंद करके एक फौलादी कवच की बंद मोटर में रखी गयी। इस गाड़ी का फौलाद का कवच इतना मोटा था कि उसे गोलियाँ नहीं वेध सकती थीं। दर्जनों मोटर-साइकिल और मोटर-सवार सशस्त्र पुलिस-रक्षकों से घिरी हुई मोना लीज़ा की कवचधारी मोटर हैव्र बंदरगाह पहुँची। वहाँ 'फ्रांस' नाम का प्रसिद्ध यात्री-जहाज उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके लिए प्रथम श्रेणी की एक वातानुकूलित कैबिन सुरक्षित थी। उसमें वह बड़ी सावधानी से रख दी गयी। उस कैबिन के द्वार पर चौबीसों घंटे सशस्त्र संतरियों का पहरा लगा रहता था। न्यूयार्क में उसका राजकीय स्वागत किया गया, और सशस्त्र पुलिस की रक्षा में उसे वाशिंगटन पहुँचाया गया। अमरीका में उसकी सुरक्षा का जितना कड़ा और सुनियोजित प्रबंध किया गया उतना बड़े देशों के राष्ट्रपतियों के लिए भी मुश्किल से किया जाता है। उसकी अमरीकन यात्रा में कई लाख रुपये व्यय हुए। अमरीका ने वह सब व्यय सहर्ष स्वीकार किया। वाशिंगटन में दूर-दूर से आकर लाखों अमरीकनों ने इस चित्र के दर्शन करके अपने सौंदर्यबोध की गंभीरता का परिचय दिया। इस घटना से मालूम होता है कि पाश्चात्य देशों में कला की कितनी गहरी अभिरुचि और कितना प्रेम है, और वहाँके लोग कला का कितना सम्मान करते हैं, तथा कलाकृतियों की सुरक्षा का कितना ध्यान रखते हैं।

जर्मन भाषा का वृहद् कोश––आधुनिक युग में कोशों का उपयोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा है और उन्हें यथासंभव पूर्ण संदर्भ ग्रन्थ बनाने का अधिकाधिक प्रयत्न किया जा रहा है। उनमें शब्दों के केवल अर्थ ही नहीं दिये जाते, उनकी व्युत्पत्ति, भिन्न-भिन्न युगों में उनका बदलता हुआ प्रयोग तथा प्रयोग के उदाहरण भी

दिये जाते हैं। भारत में शब्दों की व्युत्पत्ति के शास्त्र को निरुक्त कहा गया है और उसका आरंभ प्रायः वैदिक युग में हो गया था। यास्क का निरुक्त अति प्राचीन है। कोश भी बहुत प्राचीन काल से बनते आये हैं। पुराने संस्कृत कोशों में सबसे प्रसिद्ध अमर कोश है जिसे अमर सिंह ने बनाया था। उनकी गणना सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्नों में की जाती है। संस्कृत का शायद सबसे पहला आधुनिक कोश शब्द-कल्पद्रुम है जिसे राजा राधाकान्त देव ने १८३५ ई० के लगभग प्रकाशित किया। हिंदी में कई शतियों पहिले से नाममालाएँ (ग्लॉसरी) बनती रही हैं, किन्तु आधुनिक हिंदी कोशों का बनना इसी शती में आरंभ हुआ। अँगरेजी में नाममालाएँ तो कुछ दिनों पहिले से बन रही थीं, किन्तु पहिला कोश सन् १७५५ में डाक्टर सैम्युअल जानसन ने तैयार किया। अब तो कोश का बनाना प्रायः एक विज्ञान हो गया है, तथा भाषाओं के अतिरिक्त विषयों के भी अनेक अच्छे से अच्छे कोश बनने लगे हैं। फिर भी जर्मन भाषा के वृहद् कोश के तयार हो जाने का समाचार एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसका कारण यह है कि इसका बनना आज से प्रायः **सवा सौ** वर्ष पहिले आरंभ हुआ था। अठारवीं शती के अंत में जर्मनी में दो भाई रहते थे। एक का नाम जेकब ग्रिम (१७८५-१८६३) और दूसरे का विल्हेल्म कार्ल ग्रिम (१७८६-१८५९) था। ये दोनों ही भाई बड़े विद्याव्यसनी थे। इन्हें लोक-गीतों और लोक-कथाओं में बड़ी रुचि थी। उन्होंने कितनी ही लोक-कथाओं का संग्रह करके बच्चों के लिए उन्हें कहानियों के रूप में लिखा। ये कहानियाँ जो अँगरेजी में 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं, बाल-साहित्य की अनुपम रत्न हैं। सारे संसार में ये बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। किन्तु धीरे-धीरे जेकब ग्रिम की रुचि भाषा के रूप और शब्दों के परिवर्तन की ओर गयी। उन दिनों भाषा-विज्ञान नाम का कोई विषय नहीं था। केवल अपनी प्रतिभा के बल पर उसने जर्मन भाषा में आये हुए शब्दों का अध्ययन किया। उसने देखा कि आधुनिक जर्मन के बहुत से शब्द इंडो-जर्मन या पुरानी जर्मन से आये किन्तु उनका रूप बदल गया है। बहुत गहरे अध्यय के बाद उसने देखा कि इंडो-जर्मन के एक विशेष व्यंज की ध्वनि आधुनिक जर्मन में बराबर एक दूसरे विशे व्यंजन की ध्वनि ले लेती है। उसने यह बतलाया कि इंडो-जर्मन के किस व्यंजन की ध्वनि आधुनिक जर्म में किस ध्वनि ने ले ली है। उसने देखा कि यह ध्वनि परिवर्तन का क्रम नियमित है। एक विशेष व्यंजन क ध्वनि बदलने पर एक विशिष्ट ध्वनि का व्यंजन ही लेत है। उसने इस ध्वनि-परिवर्तन का नियम प्रतिपादि किया जो भाषा-विज्ञान में ग्रिम का नियम (ग्रिम्स लॉ कहलाता है। उसने जर्मन भाषा का एक वृहद् व्याकर लिखा। उसके बाद उसने जर्मन भाषा का एक वृह कोश बनाने का काम हाथ में लिया। इस कोश क नाम उसने 'डॉइशैज्र वॉर्टरबुक' (जर्मन शब्द पुस्तक रखा। किन्तु वह एक एक शब्द पर एक पूरा निबं लिखने लगा। अतएव वह कोश पूरा न हो पाया तब से युद्ध आदि के समय को छोड़कर जर्मन विद्वा उस कोश को पूरा करने में लगे थे। इन सवा सौ व में कोश-विज्ञान ने बड़ी उन्नति कर ली थी। अतए जर्मन विद्वानों को उस वृहद् कोश को आधुनिकतम औ अद्यतन बनाने में न मालूम कितना परिश्रम कर पड़ा। अब अंत में यह कोश तैयार हो गया है और खंडों में है। वह शीघ्र बाजार में आ जायगा। हिं में जो लोग कोश का तैयार करना हँसी-खेल समझते उन्हें जर्मन भाषा के इस वृहद् कोश के इतिहास से ला उठाना चाहिए। कोश बनाने का काम बहुत ही ऊँ दर्जे के विद्वानों का है। उसके लिए समय का बंध लगाना कठिन है। वास्तविक अच्छा कोश बना विद्वानों के लिए भी समय और श्रम-साध्य है। उसके लि प्रचुर धन की आवश्यकता है। आठ-दस करोड़ जर्म भाषा-भाषियों ने अपने वृहद् कोश के तैयार करने जो धैर्य, अध्यवसाय और लगन दिखायी है, वह बी करोड़ हिंदी-भाषियों के लिए भी अनुकरणीय है।

शककाल : एक नई शोध

पं० चन्द्रकान्त बाली

भारत-सरकार ने शक-संवत् को राजकीय अभिमान्यता दे दी है, इससे गत कई वर्षों से शक-संवत् की चर्चा सुनाई पड़ रही है। कई शताब्दियों से इधर उत्तर-भारत के जन-समाज में शक-संवत् लिखने की प्रथा क्षीण हो चुकी है। सारा राष्ट्र मालव-संवत्, जिसे आज भ्रमवश 'विक्रम-संवत्' नाम दे दिया गया है, लिखता आ रहा है। दक्षिण के सामान्य नागरिक इसके अपवाद बताये जा सकते हैं। कहते हैं, दक्षिण के जन-समाज का दिल जीतने के लिए भारत-सरकार ने 'शक-संवत्' पर 'राष्ट्रीयता' का लेबुल लगा दिया है। भारत-सरकार की प्रख्यापित राष्ट्र को भावनात्मक एकता देने की अथवा सांस्कृतिक परम्पराओं को आश्रय देने की नीति का दक्षिण-वालों पर क्या प्रभाव पड़ता है––यह तो आनेवाला समय बताएगा ; परन्तु कौन नहीं जानता कि भारत की प्रचलित संवत्-गणनाओं पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है। इतिहास का ठीक-ठीक परिशीलन न होने से मालव शकारि, विक्रमादित्य न होते हुए भी, 'विक्रमादित्य' बन गये ; शालिवाहन-विक्रमादित्य को कहीं से कहीं ठेल दिया गया है। साहसांक-शक सर्वथा लुप्त हो गया है। उसकी पहचान इतनी क्षीण-क्षीणतर हो गई है कि विश्वास और अनुमान––दोनों उसे छू भी नहीं सकते। और तो ओर, आज कौन जानता है कि प्रचलित शक-संवत् का नाम 'विक्रमांक-शक' संवत् है। राष्ट्रीय शक-संवत् से ९९४ वर्ष पूर्व भी एक शक-संवत् चला था, यह जान कर कौन विश्वास करेगा ? परन्तु यह सब सत्य है, दिन के प्रकाश की तरह और हाथ में पड़े कंगन की तरह।

प्रथम भाग

पहले शक-संवत् की प्रामाणिक सूचना वराह मिहिर ने दी है। इसका प्रयोग वराह मिहिर-स्कूल के अग्रणी प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण ने किया है। शक-संवत् के नाम साम्य के कारण प्रायः सभी मनीषियों ने उसे अर्वाचीन शक-संवत् (७८ ई०) से भिड़ा दिया है। यह अशुद्ध है। कुछ-एक शिलालेखों में इसी शक-संवत् का उल्लेख है। वराहमिहिर ने इस शक-संवत् का प्रारंभ युधिष्ठिर-संवत् २५२६ से माना है :

षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालः तस्य राज्यस्य

और हमने युधिष्ठिर-संवत् को ४० कलिपूर्व स्थिर कर दिया है। (द्रष्टव्य––'सरस्वती' का अगस्त १९६२ का अंक) कल्हण ने इसी शक-संवत् १०७० से अपना इतिहास आरंभ किया है। इसकी तालिका इस प्रकार है––

संवत्सर	युधिष्ठिर संवत्	प्राचीन शक	ईसवी
परिधावी	००	––	३१४२ पू०
काल्युक्त	२५२६	००	६१६ पू०
कीलक	३५९६	१०७०	४५५ ईसवी

युधिष्ठिर-संवत् ३५९६ तथा शक-संवत् १०७० की समन्वित गणना राजतरंगिणी में इस प्रकार है––

(क) लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शब्दकालस्य साम्प्रतम्।
सप्तत्याप्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥१०७०।

(ख) (१) वर्षाणां द्वादशशती षष्टिः षड्भिः संयुता ॥
१२६६+
(२) द्वे सहस्रे गते त्रिंशदधिकं च शतत्रयम् ॥२३३०
= ३५९६।

लौकिक-संवत् की गणना इससे पृथक् है। सप्तर्षि-संवत् के बारे में मतभेद पाया जाता है। एक पक्ष उसे १५ कलि-पश्चात् मानता है, दूसरा पक्ष उसे २५ कलि-पश्चात् बताता है। परन्तु अपनी गणना में सप्तर्षि-संवत् या लौकिक-संवत् ३२ कलि-पश्चात् ही ठीक बैठता है। यथा––३५९६––४० = ३५५६ –– ३२ = (३५) २४वें लौकिक-संवत् में शक-संवत् १०७० का होना इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि ६१६ ईसा-पूर्व से प्रचलित शक-संवत् सर्वथा स्वतंत्र था, जिसे समझने की आवश्यकता है। इस नई शोध के प्रकाश में––

राजतरंगिणी का अथ = (३५) २४ : युधिष्ठिर-संवत् ३५९६ : शक १०७० : ईसवी ४५५।

राजतरंगिणी की इति = (४१) २५ : युधिष्ठिर-संवत् ४१९७ : शक १६७१ : ईसवी १०५६।

को इतिहास के परिशीलन करनेवाले स्वीकार करेंगे ?

द्वितीय भाग

शक-संवत् का दूसरा प्रामाणिक उल्लेख भी मिलता है, जिसकी अनेक कड़ियों को मिलाने की आवश्यकता है। इसके स्थापक हैं—विक्रमादित्य शालिवाहन। शालिवाहन मालव शकारि के शत्रु के रूप में सदा स्मरण किये जाते हैं। जैन-मुनियों का दावा है कि शालिवाहन ने १३५ वर्षों के बाद मालव-विक्रमादित्य को मार गिराया तथा संवत्-स्थापना की—

> ततो वर्षशते पंच त्रिंशतः सन्धिके पुनः।
> तस्य राज्ञोऽन्वयं हत्वा वत्सरः स्थापितः शकैः॥

परन्तु अन्य ग्रन्थों की साक्षियाँ इसका खण्डन करती हैं—

> एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः।
> विक्रमादित्यपोत्रस्य पितृराज्यं गृहीतवान्॥

मालव-विक्रमादित्य का राज्यसिंहासन ५८ ईसा-पूर्व निश्चित है। तीन पीढ़ियों का शासनकाल यदि साठ वर्ष मान लिया जाय तो ५८+२=६०, ईसवी सन् २ में शालिवाहन ने—जिसने बचपन में अपने बुद्धि-वैभव से मालव शकारि को परास्त किया था—उज्जयिनी हस्तगत कर ली होगी। और उसका संवत्-स्थापन का कारण मालवों को पराजित करना नहीं था, बल्कि प्रजा को ऋणरहित करना था। जैसे कि लिखा मिलता है—

> हूणवंशे समुत्पन्नः विक्रमादित्यभूपतिः।
> गन्धर्वसेनतनयः पृथिवीमनृणां व्यधात्॥

कौन नहीं जानता कि मालव-विक्रमादित्य हूणवंशीय नहीं था। हूणवंशीय तो क्या, वह हूणदेशीय भी नहीं था। निष्कर्षतः शालिवाहन की ३२ ईसा-पश्चात् से संवत्स्थापना एक अकाट्य ठोस तथ्य है।

(क) अयहोल शिलालेख में उटंकित शक-संवत् कोई और शक-संवत् नहीं है। वह प्रसिद्ध शालिवाहन विक्रम-शाकाब्द ही है, जिसकी तालिका 'सरस्वती' अगस्त १९६२ के अंक में प्रस्तुत हो चुकी है—

संवत्सर	महाभारत संवत्	युधिष्ठिर-शक संवत्	(२) संवत्	ईसवी
प्लवंग	१	——	——	३१४७ पू०
प्रमादी	७	१	——	३१४१ पू०
विश्वावसु	३१७९	३१७३	००	३२ पश्चात्
दुर्मतौ	३७३५	३७२९	५५६	५८८ पश्चात्

(ख) विक्रमादित्य शालिवाहन की अन्य अकाट्य कड़ी है—'पृथ्वीराजरासो'। आम प्रसिद्ध बात है कि रासो-वर्णित संवत् मालव-संवत् से ९० वर्ष पश्चात् चल था। ५८+३२=९० वर्ष का अर्थ है ईसवी सन् ३२। इस संवत् को ठीक-ठीक न समझने के कारण म० म० ओझाजी तथा मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया में बड़ी दे तक लिखा-पढ़ी चलती रही। म० म० ओझाजी ने इस शक-संवत् की धज्जियाँ उड़ाने में कोई कोर-कसर नहीं रहने दी। पर विक्रम शाकाब्द आज भी अक्षुण्ण खड़ा है। सच बात तो यह है कि 'रासो' के संवत्-संबंधी पद्यों का अर्थ अभी तक किया ही नहीं जा सका। यथा—

(क) "इसका उत्तरार्ध सरल है। उसका अ यह है—हे विप्रगण! तीसरे शक में यह पृथ्वीराज का जन्म लिखा है। इस शक का नाम गुप्त है।"

—श्री भगवद्दत्त : भा० वृ० इ०, प्र०भा० पृष्ठ १७

(ख) "विक्रम और युधिष्ठिर संवत् के समान तीसरा शक संवत् ११०० जो पृथ्वीराज के जन्मादि के विषय मे माना गया है, वही विप्रों द्वारा गणित किया हुआ गौ रूप में लिखा गया है।"

—कविराज मोहनसिंह : पृ० रासो प्र०भा० पृष्ठ २३

ये दोनों अर्थ कितने असपष्ट और बेतुके हैं—इस प अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। इस अर्थ को समझ के लिए यह तालिका समझ रखनी होगी—

संवत्सर	(१) युधिष्ठिर संवत्	(२) कृत संवत्	(३) शक संवत्	ईसवी
४७ प्रमादी	१	——	——	३१४१ पू
९ युवा	३०८३	००	——	५८ पू
३९ विश्वावसु	३१७९	९०	००	३२
४८ आनंद	४२६२	११७९	१०८९	११२१
१४ विक्रम	४२८८	१२०५	१११५	११४७

> **एकादस सै पंचदह विक्रम-साक अनंद।**
> **तिहि रिपुजय पुर-हरन कौ हुअ प्रिथिराज नरिंद**
> **एकादससम वै सु कृत विक्रमजिपि ध्रमसुत**
> **तृतिय साक पृथ्यिराज कौ लिख्यौ विप्रगुणगुत**

संवत्-विज्ञान-सम्मत इन दोहों का अर्थ इस प्रकार है—ग्यारह सौ पन्द्रह विक्रम शाकाब्द (विक्रम संवत्

अ+नंद=९० वर्ष पश्चात्) में रिपुओं पर जय करने तथा उन्हींके नगरों को जीतने के लिए पृथ्वीराज का जन्म हुआ। ग्यारहवीं शती (में) तीन संवत् (**प्रसिद्ध**) हैं जैसे कि—— १ युधिष्ठिर संवत्, २ कृत-संवत् (**प्रसिद्ध मालव-विक्रम-संवत्**) तथा ३ विक्रम संवत् ; (**इनमें से मैं**) पृथ्वीराज के लिए तीसरे संवत् का प्रयोग कर रहा हूँ। (**और आनंद और विक्रम संवत् में**) २७ (**त्रिप्र**=३+**गुण**=२४=२७) अंक गुप्त हैं। यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि 'आनंद' संवत्सर तथा 'विक्रम' संवत्सर में २७ अंकों का व्यवधान है। यथा——४८+२६=७४ – ६०=१४ विक्रम संवत् यथार्थ है।

(ग) शालिवाहन-विक्रमादित्य का संवदारंभ ईसवी सन् ३२ से ठहराया है। इसका प्रमाण वलभी भंग में भी देखा जा सकता है। प्रसिद्ध है——

विक्रमादित्यभूपालात् पञ्चर्षित्रिकवत्सरे।
जातोऽयं वल्लभीभंगः, ज्ञानिनः प्रथमं ययुः।

इसका अर्थ है कि विक्रमादित्य के बाद ३७५वें वर्ष में वलभी भंग हुआ। बालबुद्धि इतिहासकार इसका अर्थ करेंगे विक्रमादित्य के ३७५वें वर्ष में, अर्थात् ईसवी सन्——५८=३१७ में वलभी-भंग हुआ। कितनी कच्ची बात है! यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि विक्रमादित्य-संवत् का नाम ९वीं शती से पूर्व या तो 'कृतसंवत्' था या फिर 'मालवसंवत्'। कौन जानता था कि इसका 'विक्रम-संवत्' यह नाम कभी प्रसिद्ध भी होगा! मत्स्यपुराण में लिखा है कि उज्जयिनी में गर्दभिल्लों के बाद शकों ने ३८० वर्ष शासन किया——

सप्त गर्दभिल्ला भूयो भोक्षन्तोमां वसुन्धराम्।
शतानि त्रीणि अशीतिं च शका ह्यष्टा दशैव तु॥

इन १८ शकों में प्रथम विक्रमादित्य-शालिवाहन है और अन्तिम विषमशील–विक्रमादित्य है। उसी विषमशील के ३७५वें वर्ष में वलभी-भंग हुआ। गणना करने पर——

शालिवाहन का संवदारंभ ईसवी ३२+
१८ शकों का संयुक्त शासन – ३८०+
विषमशील विक्रमादित्य के पश्चात् – ३७५=७८७

ईसवी सन् ७८७ में तदनुसार, मालव संवत्+५८=८४५ में वलभी-भंग निश्चित——

"**तेण य सिन्नेण विक्कमाओ अट्ठहिंसएहिं पणयालेहिं (८४५) वीरसाणं गएहिं बलहिं भंजिअण सो राया सारियो।**"

विक्रम-संवत् ८४५ तथा ईसवी सन् ७८७ में वलभी-भंग का उपक्रम इस बात का ज्वलन्त समर्थक है कि शालिवाहन-संवत् की स्थापना ईसवी ३२ में मानना ठीक है।

तृतीय भाग

विक्रमादित्य शालिवाहन का पौत्र साहसांक-विक्रमादित्य भी संवत्-स्थापकों में लिया जाता है। इसका सबसे बड़ा अकाट्य प्रमाण है——अलबेरूनी की मीमांसा। उसने जितने लक्षण लिखे हैं, वे सब-के-सब इसी महापुरुष पर घटते हैं। अन्य साक्ष्यों के प्रकाश में साहसांक को समझा जा सकता है।

(क) कश्मीर के राजपण्डित क्षीरस्वामी ने (ईसवी सन् ६४०) साहसांक का परिचय दिया है:

द्रौपदी विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः।

द्रौपदीगुप्त, विक्रमादित्य, साहसांक तथा शकान्तक——इन विशेषणों से युक्त शक राजा को अनेक स्थानों पर स्पष्ट देखते हैं।

(ख) अलबेरूनी ने गुप्त-संवत् तथा वलभीसंवत् को शक-संवत् से २४१ वर्ष-पश्चात् माना है, सो उसने उसे इसी शकसंवत् के २४१ वर्ष-पश्चात् माना है। प्रचलित शक-संवत् (७८ ई०) से २२९ वर्ष-पश्चात् गुप्त-गणना अथवा वलभी-गणना ठीक है, अन्यथा नहीं। इस तथ्य की पुष्टि आगामी भाग में स्पष्ट होगी। अलबेरूनी ने लिखा है——शककाल शकराजा की मृत्यु से चला ; इसके अखण्डनीय प्रमाण में 'शकनृपकालातीत' नामांकित वर्ष-गणना इसी शक राजा से अनुस्यूत है। यथा——

	मालव-	**साहसांक-**	**गुप्त-**	
संवत्सर	**कृत**	**शक**	**संवत्**	**ईसवी**
युवा	००	——	——	५९ पू०
बहुधान्य	१२४	००	——	६५ पश्चात्
विक्रम	३६५	२४२	००	३०७
***ईश्वर**	४२२	**२९९**	५७(१)	३६४
†नन्दन	९१७	**७९३**(४)	५५२	८५९
‡विकृत	१०९४	**९७२**	७३०	१०३७
§खर	११५५	**१०३३**	७९१	१०९८

इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध है कि ६५ ईसवी से चलनेवाले शक-संवत् के आलेख्य तो हैं, पर वे लुप्त हो चुके हैं, जिन्हें बुद्धिपूर्वक समझने की आवश्यकता है।

चतुर्थ भाग

विक्रमादित्य-शालिवाहन का द्वितीय पौत्र, साहसांक विक्रमादित्य का लघु भ्राता विक्रमांक शकराजा का अपना संवत् है, जो ७८ ईसा-पश्चात् तथा साहसांक शक से १३ वर्ष पश्चात् चला। ६५+१३=७८ ईसवी, बस इन भाइयों में केवल इतना अंतर है। यही विक्रमांक रा का चलाया शक-संवत् है, जिसे भारत-सरकार ने अप लिया है।

(क) कालिदास साहसांक विक्रमादित्य की शरण जाने से पूर्व इसीका सभाकवि था––

व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमांको नृ

(ख) क्षीरस्वामी ने इसके दो नामों का सं दिया है––

शूद्रकस्त्वग्निमित्राख्यः

विक्रमांक के अन्य नाम हैं––शूद्रक और अग्निमि अन्तिम नाम कालिदास की रचनाओं में उटंकित है––

सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे

कालिदास का स्मृत अग्निमित्र अन्य साहित्य विक्रमांक बन गया है।

(ग) अलबेरूनी ने लिखा है गुप्त संवत् शकों २४१ वर्ष पश्चात् चला। उसे हम साहसांक शक रा के प्रसंग में देख आये हैं। इस प्रकार 'गुप्त-संवत्' विक्रमां शकराजा के १३ वर्ष पश्चात् अर्थात्––१३=२२८ श पश्चात् स्थिर होता है। यहाँ लक्ष्य करने की बात यह कि अलबेरूनी ने 'गुप्त-वलभ' संवत् का ऐक्य मान लिया वस्तुतः यह बात नहीं है। गुप्त संवत् पाटलिपुत्र के सम का चलाया संवत् है जो पूर्वीय क्षेत्र में चला, वलभी-सं खंभात के राजा वलभराय का चलाया संवत् है जो पश्चि क्षेत्र में चला। इन दोनों में समानता केवल इतनी है इन आरंभ विक्रमांक शक से २२९ वर्ष-पश्चात् है और उनके ऐक्य का मूलमंत्र है। भावनगर के राजा गोवि गुप्त ने वलभी संवत् ५०० में तथा शक संवत् ७३० में ताम्रपत्र लिखवाये जो एक साल के अन्तर पर आगे हैं और वलभी संवत् तथा शक संवत् में २२९ वर्ष का व धान सिद्ध करते हैं। यथा––

संवत्सर	साहसांक शक	विक्रमांक शक	गुप्त/वलभी	ई
बहुधान्य	००	––	––	६
खर	१३	००	––	७
*विक्रम	२४२	२२९	००	३०
†शर्वरी	७४२	७२९	५००	८०
‡प्लव	७४३	७३०	५०१	८०

प्रमाणीकरणः––

*(क) श्री चन्द्रगुप्तस्य विजयराज्य-संवत्सरे पंचमे, कालानुवर्तमानसंवत्सरे **एकषष्ठ** ....। अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ६१–४=५७ गुप्त-संवत् में सिंहासन पर बैठा।

(ख) संवत्-प्रवर्तक विक्रमादित्य तथा आदित्य पोंवार (चन्द्रगुप्त) में ४२१ वर्षों का व्यवधान है––आईने अकबरी।

†शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु सप्तसु ७९३ नवतृतियाधिकेषु **नन्दन**संवत्सरान्तर्गत पुष्यमास ..... अमोघवर्ष का संजान ताम्रपत्र का लेख।

‡शके नवशतैर्युक्ते द्विसप्तत्यधिके तथा **विकृते** वत्सरे .. पौषमासे।

§शकनृपकालातीते दशशत(त्रयः)त्रिंशदधिके **खर**-संवत्सरे कार्तिकपूर्णमाश्याम् ....

(ग) जैन आचार्य वीरसेन स्वामी ने षड्खण्डागम की धवला टीका में विक्रमादित्य शकराजा का उल्लेख किया है––

अठ तीसम्हि सतसए विक्कमरायं किएसु सगणामे।

(घ) अन्य जैन-आचार्य जिन सेन स्वामी ने षड्खण्डागम की जय धवला टीका में विक्रम शक नरेन्द्र का उल्लेख किया है––

एकोनषष्ठिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य।

विक्रम शक संवत् ७३८ तथा विक्रम शक संवत् ७५९ तथा अमोघवर्ष के संजान ताम्रपत्र में ७९३ का उल्लेख एक ही परम्परा की सम्बद्ध कड़ियाँ हैं।

(ङ) कालिदास इसी महाराजा विक्रमादित्य साहसांक का सभाकवि है और लिखता है––

रसभावविशेषदीक्षागुरोः साहसांकस्य श्रीविक्रमादित्यस्य .....

उपसंहार

“मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं इस पहेली को सुलझाने में असमर्थ रहा हूँ” प्रो० बीवर के हैं। जिसने धड़ल्ले से अपनी बौद्धिक पराजय स्वीकार की है। परन्तु कितने भारतीय हैं, जिन्हें अपनी पराजय स्वीकार करने का साहस हो! इसमें कोई संकोच की बात नहीं कि हमने ‘शक गणना’ से कभी न्याय नहीं किया। इस अव्यवस्था का सारा दायित्व पश्चिमी विद्वानों पर डालना एक प्रकार की बौद्धिक पराजय है। हमें साहस के साथ आगे बढ़ना चाहिए और संवत्-विज्ञान के भली भाँति न जानने से जो भूलें हो चुकी हैं, उन्हें बड़ी तत्परता से सुधारना चाहिए तथा विगत अव्यवस्था का कुछ दायित्व अपने ऊपर भी लेना चाहिए। अभी शक-संवत् गणनाएँ और भी हैं——

(क) कनिष्क स्थापित संवत् ;
(ख) हर्ष-विक्रमादित्य का स्थापित शक-काल; तथा
(ग) विषमशील विक्रमादित्य का शक-काल।

परन्तु कई-एक अनिवार्य कारणों से अपने विषय को सीमित रखा जा रहा है।

---

*शक संवत् से २४१ वर्ष-पश्चात् गुप्त संवत् चला——अलबेरूनी। उसका यह कथन वलभी संवत् पर भी अविकल चरितार्थ होता है।

†गोविन्द गुप्त तृतीय का प्रथम ताम्रपत्रीय लेख।

‡उसीका द्वितीय ताम्रपत्रीय लेख।

चतुर्थ शककाल के अन्य अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं, जिन्हें विस्तारभय से स्थान दे सकना कठिन है।

बसन्त की गमक

पं० जनार्दननाथ त्रिपाठी ‘गोपाल’

मधु मखियान मकरन्द मधु-पायिन तें
मौन भंग होत, अमराई भई चह-चह।
अपत विटप पाँति लूटे से उदास हुते
एकै बार निधि पूरि ह्वैगे सब गह-गह।
सुकवि ‘गोपाल’ दिनपति के अलस तजे
अंबर अवनि में बिकास भरे कह-कह।
बेलिन नबेलिन निकुंजन में, गुंजन में,
तन-मन-बन हूँ में भरे हैं आनि मह-मह !

बीतिगे कुँहासे के रुँआसे भरे दिन रैन,
उमगत पट चहुँ छोरन लुनाई की।
सर-सरसी के तीर नीर झलकन लागे,
गुंजरनि छाई अरविन्द अरुनाई की।
सुकवि ‘गोपाल’ बेलि नवल निहाल देखो,
‘पी कहाँ’ पुकार तैसी परभृत गाई की।
बालो पियराई, कै बखानौं पियराई-बन,
झुकी अमराई तैसी, ऋतुप अवाई की।

भारतीय क्रांतिवीर भाई भगवानसिंह ज्ञानी

(१८८४-१९६२)

डा० पाण्डुरंग सदाशिव खानखोजे

मनुष्य संपत्ति और संतति को प्राप्तकर जीवन में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है, परन्तु उस प्रतिष्ठा को, जो मनुष्य को अमरत्व प्राप्त कराती है, प्राप्त करनेवाले कतिपय महानुभावों में डा० भगवानसिंह ज्ञानी भी एक थे। डॉ० भगवानसिंह उस कर्मवीरों में हैं जिनकी देश-भक्ति, समाजसेवा और धार्मिक वृत्ति ने सहस्रावधि हृदयों पर विजय प्राप्त की थी!

आज यह भारतमाता का सुपुत्र हमारे बीच नहीं है! उनकी मृत्यु आठ सितंबर १९६२ को हुई। यह दुःखद समाचार मुझे १० सितंबर १९६२ के स्टेट्समैन से प्राप्त हुआ। स्वातन्त्र्य, स्वातन्त्र्य की पुकार लगाते हुए दिन-रात तड़पनेवाले इस महान् क्रांतिकारी के विषय में आज स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी कुछ प्रकाशित नहीं हुआ। यह देखकर मुझे बड़ा ही दर्द पैदा हुआ। सच्चे देशभक्त की यह उपेक्षा नहीं है क्या? तो भी इस महान् क्रांतिकारी के अद्वितीय जीवन के कुछ प्रसंग और घटनाएँ, जो कि मेरी इस वृद्धावस्था की स्मरण-शक्ति से निकल रही हैं, आपकी सेवा में सादर समर्पित करता हूँ। और साथ ही मैं अपने शतशः प्रणाम इस देवता स्वरूप आत्मा को अर्पण करता हूँ!

भाई डॉ० भगवानसिंहजी आज हमारे बीच नहीं हैं परंतु उनका नाम भारतीय क्रांतिकारियों में ही नहीं, प्रत्युत भारत के सच्चे राष्ट्रीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखना उचित है।

आपका जन्म पंजाब प्रान्त के शिरहाली नामक ग्राम (जिला अमृतसर) में १७ जुलाई सन् १८८४ को हुआ था। उनके पिताजी सिक्ख समाज के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता और अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के गृहस्थ थे।

अपने पिता की छत्रछाया में उन्होंने समाज सेवा और देश-भक्ति का पाठ पढ़ा। उत्कट देशभक्ति की लगन होने के कारण जब हम लोगों ने आर्य बांधव समाज के कार्य का प्रचार करने हेतु श्री हनुमन्त नायडू प्रभृति को पंजाब भेजा तब डॉ० भगवानसिंहजी का ध्यान इस ओर गया और वे हमारी योजना के इतने उत्साही कार्यकर्ता बन गये कि इस कार्य का प्रचार बहुत ही अल्पका में सारे पंजाब भर में कर डाला। उन्होंने यह का इतने व्यवस्थित रूप से चलाया कि शीघ्र ही कि ही परिवारों में आर्य बांधव समाज के लिए एक-ए कार्यकर्ता तैयार कर डाले।

इसी कारण तत्कालीन अँगरेज सरकार की आं में यह कार्य चुभने लगा। इसलिए आर्य बांधव सम के कार्यकर्ताओं को अत्यन्त गुप्त रीति से अपने कार्य करने के लिए वाध्य होना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में डॉ० भगवानसिंहजी ने सब धर्म और समाज के लो से मिलकर लोकसंग्रह की वृत्ति आत्मसात् कर ली थ

सन् १९०२ में बंगाल-विभाजन के समय इस अठा- साल के अल्पवयी कार्यकर्ता ने जो अद्वितीय कार्य दिखाया, उसके कारण लोकमान्य बाल गंगाधर ति का ध्यान इनके कार्यों की ओर गया। जब लाल बा पाल के स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकड़ा तब भगवानसिंह ने बड़ी कर्मठता दिखलायी और अपने में इस आन्दोलन को बहुत बढ़ाया। इस तरह त्रिमूर्ति से संबंध बढ़ने पर, उनका मन बांधव समाज एक बड़े कार्यकर्ता भाई अजितसिंहजी की तरफ अ षित हुआ। सन् १९०६ में राष्ट्रीय विचारधारा भारतीयों ने परदेश जाकर सैनिक शिक्षण लेकर भा में सशस्त्र क्रांति करने का निश्चय किया। केवल नि ही नहीं किया, इस विचार को वे कार्यान्वित भी लगे। अँगरेज सरकार को इसका पता चल गया इसी कारण उसने देशभक्त लाला लाजपतरायजी, अंबाप्रसाद, अजितसिंह प्रभृति को राष्ट्रविरोधी कार्य घोषित कर कारागार में डाल दिया। इनमें से सु और अजितसिंहजी सरकार की आँखों में धूल कर ईरान खिसक गये। इसी समय सन् १९१० में भगवानसिंह बर्मा, स्याम, मलाया, जावा, सुमात्रा बोरनिओ की यात्रा कर हांगकांग पहुँच गये थे और जाकर उन्होंने गुरुद्वारों में सिक्खों के धर्मग्रंथ के अ पर भारतीय क्रांति का बीजारोपण किया। यहाँ

उनका परिचय डॉ० सन्यात सेन से हुआ। डॉ० सन्यात सेन एक महान् क्रांतिकारी थे। इन्हींकी क्रांति सेना में भरती होकर डॉ० भगवानसिंहजी ने भारतीय सैनिकों को भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पाठ पढ़ाया। ये प्रति रविवार को एक सभा किया करते थे। इन सभाओं में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि सभी लोग भाग लेने लगे। इस तरह से उन्होंने अपनी कार्य-पद्धति द्वारा करीब-करीब सात हजार लोगों का सहयोग प्राप्त कर लिया। भाई भगवानसिंहजी के इस कार्य का पता वहाँकी तत्कालीन अँगरेज सरकार को लग गया। उन्हें पकड़कर कैद में डाल दिया गया, परंतु सन् १९१३ में वे कारागृह से भाग खड़े हुए और कनाडा जा पहुँचे। इतनी सब मुसीबतें सहने पर भी उनके मन में दीप्त भारत-स्वातंत्र्य की ज्योति न बुझ सकी। उन्होंने कनाडा में भी अपने राष्ट्रीय कार्य को प्रारंभ किया। कनाडा में इस राष्ट्रभक्त ने "गुरु नानक नेव्हीगेशन-कंपनी" नाम की संस्था स्थापित करके अपना कार्य बढ़ाया। वहाँ भी अँगरेज सरकार ही थी। उसने कनाडा में भारतीयों का आना खतरनाक समझकर एशियाटिक इमिग्रेशन के कठोर कायदे बनाये। पश्चात् केनेडियन सरकार ने भाई भगवानसिंह को कनाडा से निष्कासित कर दिया। वहाँसे वे ब्रिटिश कोलंबिया चले गये।

यह भी ब्रिटिश साम्राज्य में था। ब्रिटिश कोलंबिया पहुँचने पर उन्होंने प्राध्यापक तेजसिंह, बाबू हरनाम सिंह, भाई बरकतुल्ला, लाला हरदयाल से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया।

इसी बीच प्राध्यापक तेजसिंह के राष्ट्रीय कार्य में बाधा डालनेवाले श्री० होपकिन्सन् (Hopkinson) को भाई मेवासिंह ने १८ नवम्बर १९१३ को मध्यरात्रि में पिस्तौल से उड़ा दिया। इसके पहिले उन्होंने सैनफ्रान्सिस्को में स्थापित की गयी गदर पार्टी का भार भाई भगवान्सिंह को सौंप दिया था। उपर्युक्त वध के परिणाम भाई भगवानसिंह को भोगने पड़े। सरकार ने उन्हें अत्यंत क्रूरता से मार-पीटकर देश के बाहर निकाल दिया, और जैसे तैसे वे वहाँसे जापान पहुँचे। मार्च १९१४ में जब वे जापानी जहाज पर चढ़ चुके थे तब ब्रिटिश सरकार ने इनकी गिरफ्तारी का वारंट निकाला, परंतु जहाज के जापानी कप्तान ने इनके सिर के बाल और दाढ़ी मूंड़कर इन्हें आस्ट्रेलियन कार्वो बतलाकर अँगरेजों के पंजों से बचाया।

जापान में इनका संबंध मौलवी बरकतुल्ला से हुआ। उन्हें भारतीय स्वातंत्र्य सेना का नेतृत्व दिया गया। मौलवी बरकतुल्ला का संबंध सनफ्रांसिस्को में प्रस्थापित गदर पार्टी के आश्रम से था ही। मौलवी बरकतुल्ला भारत में प्रस्थापित गदर पार्टी के मुसलमान समाज के मार्ग-दर्शक नेता थे। उस समय गदर पार्टी को सिक्ख समाज के एक कार्यकर्ता की अत्यंत आवश्यकता थी। इसलिए भाई भगवान् सिंह को उपर्युक्त पार्टी में सिक्ख नेता कहकर नियुक्त किया गया और दिनांक २३ मई १९१४ को वे सनफ्रांसिस्को के गदर आश्रम में जा पहुँचे।

लाला हरदयालजी गदर आश्रम का कार्य-भार श्री० सोहनसिंह भाकना के सुपुर्द कर यूरोप चले गये, और प्राध्यापक बरकतुल्ला, राजा महेंद्रप्रताप, पंडित रामचंद्र और सोहनसिंह प्रभृति-ने "भारतीय गदर" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। इसके बाद बर्लिन कमेटी ने स्विट्जरलैंड में जाकर वहाँ पर गदर पार्टी का काम शुरू किया, और ४३६ हिल स्टेशन, सनफ्रांसिस्को में गदर पार्टी के कार्यकर्ताओं को मिलने का संदेश दिया। यह बैठक १५ अगस्त १९१४ को हुई। इस बैठक में डॉ० भूपेंद्रनाथ दत्त, हेरम्बलाल गुप्त, पंडित रामचंद्र, पिंगले, राजगुरु, श्री० भट्टाचार्य (एम० एन० राय) आदि क्रांतिकारी आनेवाले थे। इनमें से बहुत से गुप्त रीति से आये भी थे। इस बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए :—

(१) अँगरेजों का खुलकर सामना करना।

(२) जर्मनी, आस्ट्रेलिया, अमरीका, जापान आदि देशों में भारतीय क्रांतिकारियों की गदर पार्टी की शाखाएँ स्थापित करना।

(३) सशस्त्र क्रांति के लिए सैनिक-शिक्षण-तज्ञ लोग तैयार कर उनके द्वारा भारत में 'क्रांति सेना' तैयार कर अँगरेजों को भारत से खदेड़ना।

(४) 'गदर' नामक वर्तमान पत्र द्वारा प्रा० बरकतुल्ला, रासबिहारी बोस, लाला लाजपतराय आदि कार्यकर्ताओं द्वारा भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिखे हुए स्फूर्तिदायक लेख प्रसारित कर अफगान, ईरान, तुर्की आदि देशों में भारतीय स्वातंत्र्य के विचार पहुँचाना।

इस कार्य का नेतृत्व भाई भगवानसिंह को ही दिया गया।

जब माव्हेरिक और अनिलारसन नामक दो किराये के जहाजों में, जर्मनी से खरीदे हुए शस्त्रास्त्रों को भारत में पहुँचाने की व्यवस्था की गयी तब इसका नेतृत्व भी भाई भगवानसिंहजी को ही दिया गया था। यह जाहिर किया गया कि इन जहाजों को युनाईटेड स्टेट्स फ़ुट्स कंपनी (United States Fruits Co.) का सामान ले जाने के लिए भाड़े पर लिया गया है। परंतु दुर्भाग्य से भाई भगवानसिंह को अमरीका से आते समय हवाना में बंदी कर लिया गया। किंतु वहाँसे छूटने पर वे दक्षिण अमरीका चले गये। इसके बाद जनरल जॉर्ज ग्राथेल की सलाह के अनुसार वे दक्षिण अमरीका से १७ अक्तूबर १९१६ को न्यूयार्क आ पहुँचे। इस समय उन्होंने अपना नाम, वेश तथा देश बदल डाला था। दि० ७ अप्रैल १९१७ को जब अमरीका प्रथम महायुद्ध में सम्मिलित हुआ तब सनफ्रांसिस्को में डॉ० तारकनाथ दास, संतोखसिंह, हेरम्बलाल गुप्त, भाई भगवानसिंह और पंडित रामचंद्र को पकड़ लिया गया। छः मास तक इन पर मुकदमा चलता रहा। फेडरल जज व्हैनप्लीस्ट ने इनको अत्यंत कठोर सजा सुनायी। इस केस के लिए ब्रिटिश सरकार ने साढ़े तीन लाख डालर और अमरीका ने पचास हजार डालर खर्च किये। अँगरेज़ी गुप्तचरों ने पंडित रामचंद्र को गोली से उड़ा दिया। इस तरह डेढ़ साल की कड़ी सजा भोगने पर जब महायुद्ध समाप्त हुआ तब भाई भगवानसिंह आदि कैद से छोड़े गये। सन् १९२० में सभी लोग रिहा कर दिये गये। भाई भगवानसिंह ने फिर से गदर पार्टी के कार्यों का प्रचार सन् १९२८ तक किया। उन्होंने "Pattern theory for Audio-Visual Education" आदि ज्ञानप्रसारक पुस्तकें लिखीं, और अनेक विद्यालयों, संस्थाओं, चर्चों और स्कूलों में अपने धार्मिक विचारों द्वारा राष्ट्रकार्य का प्रचार किया। जिन संस्थाओं द्वारा उन्होंने प्रचार कार्य किया उनमें प्रमुख (American Institute of Culture अमरीकन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, केलीफोर्निया जिसके संस्थापक डॉ० भगवानसिंह थे।

सन् १९४७ में भारत के स्वाधीन होने पर उन्हों भारत वापस आने का विचार किया। इसके पूर्व १९२९ में उन्होंने अपने कार्य की चमक रावी नदी पास तक दिखलाई थी, और १९४९ में "नवयुग" नाम एक मासिक भी चालू किया था। यह मासिक पंजा भाषा में था।

अन्त में भारत के इस महान् सेवक और रत्न ओर पंजाब के मुख्यमंत्री माननीय प्रतापसिंह कैरों ध्यान गया, और उन्होंने भाई भगवानसिंह के पंजा लौटने की व्यवस्था की। नागपुर कांग्रेस अधिवेशन समय वे मुझसे गले मिले थे। वही उनसे मेरी अंति भेंट थी।

दि० ८ सितंबर १९६२ को यह महापुरुष अप पार्थिव शरीर छोड़कर चला गया। भारतमाता गोद इस पुत्र के जाने से यद्यपि सूनी हो गयी है तथा उसका कार्य अमर रहेगा। उसकी प्रेरणा से भविष्य भी भारत में एक नहीं, हजारों ही भाई भगवान दिखेंगे।

आज स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी डॉ० भाई भगव सिंह ज्ञानी, एम० पी० टी० आचार्य, देशभक्त रामल जी वाजपेयी सरीखे महापुरुषों की मृत्यु के पूर्व उन उचित सम्मान न होना हमारे लिए खेद और लज्जा बात है। कर्मयोगी का लक्ष्य तो सतत कार्य करना ही है। फल की प्राप्ति से वह विमुख ही रहता है। तथ सामान्य मनुष्य के लिए वह गौरव और स्फूर्ति का बन जाता है। ऐसे महान् रत्नों में भाई भगवान ज्ञानीजी थे। मेरा उनको शतशः प्रणाम——

वन्दे मातरम् !

पांडु

इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (४)

पण्डित ब्रजमोहन व्यास

प्रयाग की महिमा

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :—

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुषपुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुवर सुखु पावा॥
कहि सिय लषनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा।
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंदरासि जनु पाई॥

जब गोस्वामीजी कहते हैं कि प्रयाग की महिमा अवर्णनीय है तब मैं—

प्रभु की कथा कहाँ लग बरनौं मोरे बुधि कछु नाहि।

प्रयाग की महिमा का आप इसीसे अनुमान कर सकते हैं कि वनवास का आदेश मिलने पर सीता और लक्ष्मण के सहित भगवान् रामचन्द्र सर्वप्रथम वत्स देश में प्रवेश कर प्रयाग में आये और वहाँ त्रिवेणी पर स्नान कर उसके तट पर स्थित भरद्वाज आश्रम में गये। महर्षि वाल्मीकि ने इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है जिससे उस समय के प्रयाग की समृद्धि की एक झाँकी मिलती है—

स लोकपालप्रतिमप्रभाव-
स्तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम्।
ततः समृद्धाञ्छुभसस्यमालिनः
क्षणेन वत्सान्मुदितानुपागमत्॥

वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड ५२-१०१

ते तु तस्मिन् वृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम्।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद्देशात्प्रतस्थिरे॥१॥
यत्र भागीरथीं गंगां यमुनाभिप्रवर्तते।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम्॥२॥
ते भूमिभागान्विविधान्देशांश्चापि मनोहरान्।
अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः॥३॥
यथा क्षेमेण सम्पश्यन्पुष्पितान्विविधान्द्रुमान्।
निर्वृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रमब्रवीत्॥४॥
प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम्।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितो मुनिः॥५॥
नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गंगायमनुयोर्वयम्।
तथाहि श्रूयते शब्दो वारिणो वारिघर्षजः॥६॥
दारूणि परिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः।
छिन्नाश्चाप्याश्रमे चैते दृश्यन्ते विविधाः द्रुमाः॥७॥
धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे।
गंगायमुनयोः सन्धौ प्रापतुर्निलयं मुनेः॥८॥

वाल्मीकीय रामायण—अ० का० ५४-१-८

(उन तीनों ने वह सुन्दर रात एक बड़े वृक्ष के नीचे बिताई। प्रातःकाल विमल सूर्य के उदय होने पर वे वहाँ से चले॥ १॥ जहाँ भागीरथी गंगा से यमुना मिली हैं, वहाँ जाने के लिए वे सघन वन के बीच से होकर चले॥ २॥ वे यशस्वी महानुभाव अनेक मैदान एवं मनोहर स्थानों को देखते हुए—जिनको उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था—चले॥ ३॥ विकसित वृक्षों को आनन्दपूर्वक देखते हुए रामचन्द्र चले। दिन के समाप्त होने पर राम ने लक्ष्मण से कहा॥ ४॥ प्रयाग के पास भगवान् अग्नि की ध्वजा एवं सगन्ध धूम देखो। इससे पता चलता है मुनि आश्रम में ही हैं॥ ५॥ निश्चय हम लोग गंगा-यमुना के संगम-स्थान पर पहुँच गये, क्योंकि दोनों नदियों के संघर्ष का शब्द सुनायी पड़ रहा है॥ ६॥ जंगली वस्तुओं से जीनेवालों के द्वारा काटी हुई लकड़ी दिखायी पड़ रही है और आश्रम में कटे हुए अनेक वृक्ष दिखायी पड़ रहे हैं॥ ७॥ धनुर्धारी वे दोनों दिन ढलते-ढलते गंगा-यमुना के संगम पर स्थित, मुनि के आश्रम पर पहुँचे॥ ८॥)

इस वर्णन में एक बात देखने की है। चीनी यात्री हुएन-साँग ने जैसा कहा था कि वत्स देश धनधान्य से परिपूर्ण था और इलाहाबाद और वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी के बीच में घोर जंगल था, वह वाल्मीकि के उपर्युक्त वर्णन से एवं कौशाम्बी के ध्वंसावशेषों में पाये पकी मिट्टी के ठीकड़ों से, जिन पर जंगल और उसमें विचरते हुए हाथी अङ्कित हैं, पुष्ट होता है।

एक बात बड़ी विलक्षण है जो कहता हूँ। महर्षि भरद्वाज 'कुलपति' थे। कुलपति उसे कहते हैं जिसकी अध्यक्षता में १०,००० विद्यार्थी आश्रम ही में रहकर विद्याध्यन करते है। यदि आप आजकल के इलाहाबाद को

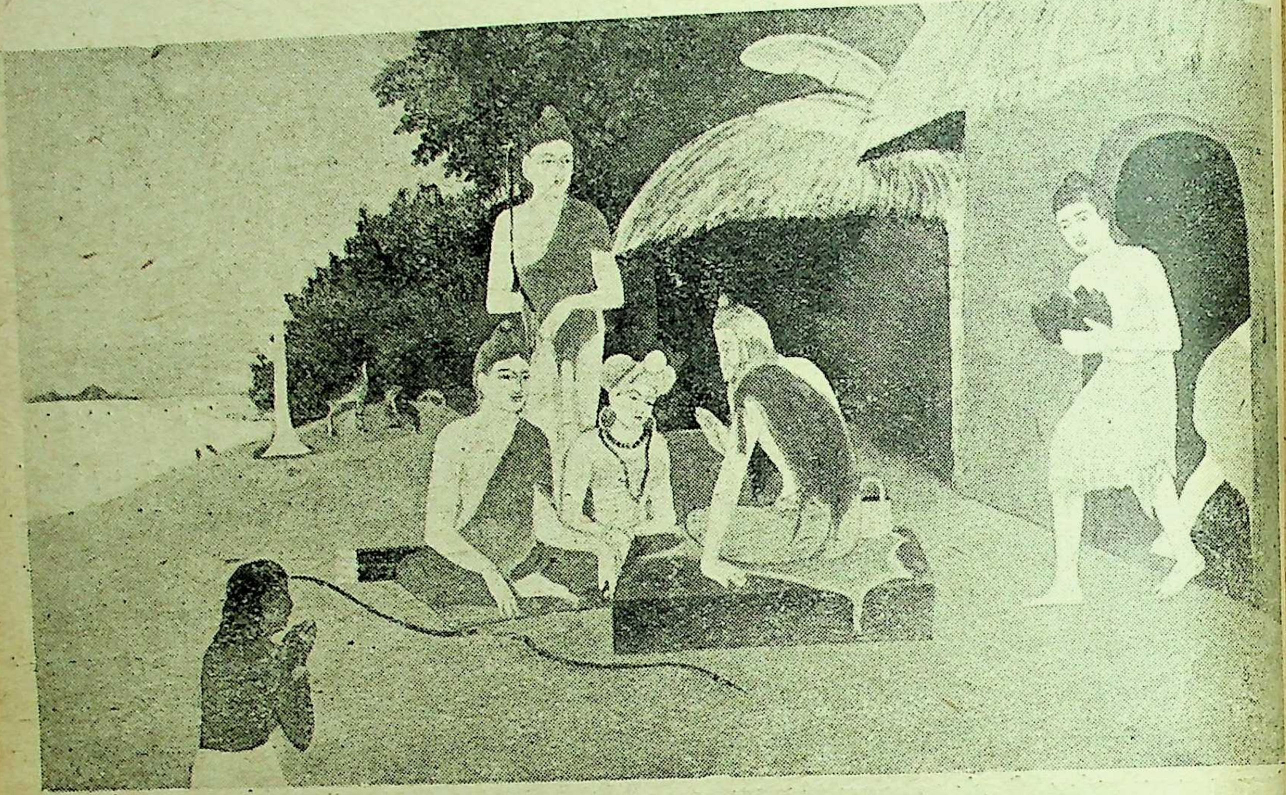

राम-लक्ष्मण और सीता भरद्वाज-आश्रम में

—चित्रकार : पं० शम्भुनाथ मिश्र

देखेंगे तो आप पायेंगे कि सूर्यकुंड से लेकर कटरे के समीपस्थ बैंक रोड के अन्त तक विद्या-सम्बन्धी संस्था ही है। यह श्रेणी लगभग दो मील लम्बी है। कायस्थ पाठशाला एवं हिन्दुस्तानी अकादमी से आरम्भ होकर, 'एल्फ्रेड पार्क' में स्थित 'पबलिक लाइब्रेरी' और प्रयाग संग्रहालय होते हुए म्योर सेंट्रल कालेज, अनेक छात्रालय, भरद्वाज आश्रम, और उससे सम्बद्ध विशाल विश्व-विद्यालय को पार कर अध्यापकों के निवास-स्थानों पर यह श्रेणी समाप्त होती है। सम्भव है—परन्तु यह कल्पनामात्र है—कि इस सम्पूर्ण भूभाग पर महर्षि भरद्वाज का विश्वविद्यालय रहा हो जहाँ निवास कर, उनकी अध्यक्षता में १०,००० छात्र विद्याध्ययन करते रहे हों। कल्पनामात्र से हृदय पुलकित हो उठता है।

दो बार भगवान् बुद्ध अपने भिक्खुओं के सहित प्रयाग में आये। कौन सा दैवी आकर्षण इस नगर में है जिसमें देव-तुल्य महान् आत्मायें निरन्तर आती रहती थीं, जिसका वाल्मीकि, वेदव्यास से लेकर आज तक के कवि यशगान करते नहीं अघाते। महाभारत में भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास कहते हैं—

ततः पुण्यतमं नाम त्रिषु लोकेषु भारत।
प्रयागं सर्वतीर्थभ्यः प्रवदन्त्यधिकं विभो॥
गमनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्युकालभयाच्चापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥
महाभारत तीर्थयात्रा पर्व–८५।७९।८०

(भरतनन्दन! तीनों लोकों में प्रयाग को सब ती की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं पुण्यतम बताते हैं। उस तीर्थ में ज से अथवा उसका नाम लेने मात्र से भी मनुष्य, मृत्यु के भय एवं पाप से मुक्त हो जाता है।)

लंका-विजय के बाद सीता को लेकर भगवान् रा चन्द्र पुष्पक विमान पर चढ़कर आकाश-मार्ग से अयो लौटे। जब वे प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम के पहुँचे तो वे सीता से कहते हैं—

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव
भस्मांगरागातनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गंगा
भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः॥

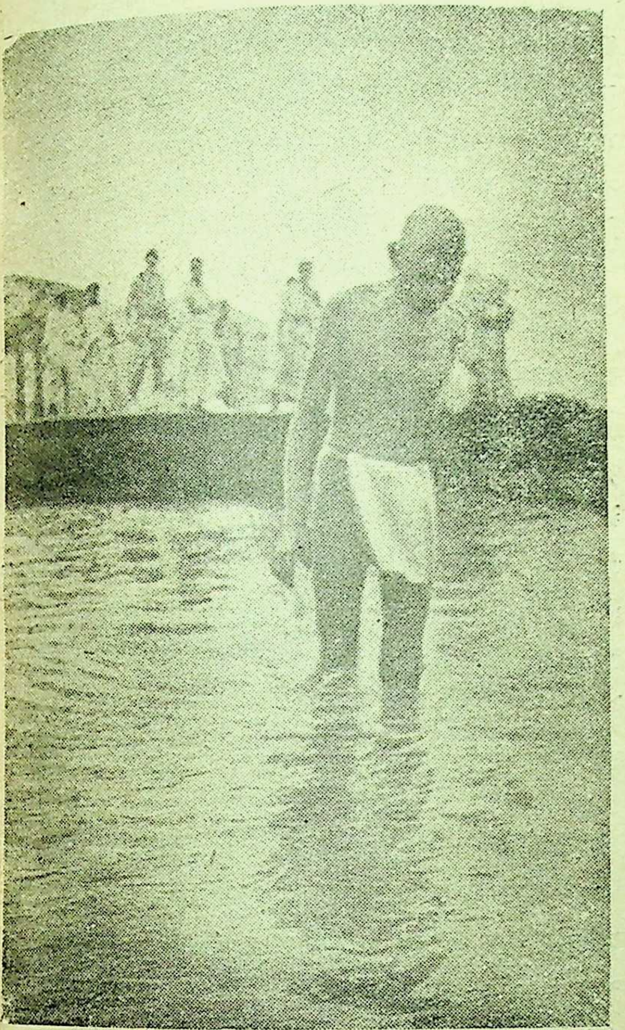

गङ्गाजी में गांधीजी स्नान कर रहे हैं

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते
पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तावावबोधेन विनापि भूय-
स्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः॥
रघुवंश--१३--५७, ५८

(हे सुन्दरि! वह देखो कहीं-कहीं पर यह गंगा भस्म लगाये हुए शिवजी के शरीर के समान दिखाई पड़ती है जिस पर काले-काले सर्प लिपटे हुए हों और जिसका प्रवाह यमुना की तरंगों के सम्मिलन से भिन्न हो गया है। समुद्र की इन दो पत्नियों के संगम में स्नान कर जो पवित्र होते हैं वे तत्त्वज्ञानी न होने पर भी संसार के बन्धनों से छूट जाते हैं।)

'द्विजेश' कवि कहते हैं--

जन्मनि संगी अंग जाको मम अंगही ते
चल्यो गंगन्हान जाते संग [illegible]
चलतहि आदि ही ते अनमन होन लाग्यो
जानै ना 'द्विजेश' कौन व्याधि कोप करिगो॥
कैकें किते जतन सों प्रयाग लों पहुँच के हू
अन्त मोकों मुण्डन को यों अशौच परिगो।
मेरो मित्र पाप, जो परम प्रिय मोको, हाय!
पहुँचो न गंग, पौर पन्थ ही में मरिगो॥

अब मैं प्रयाग की महिमा का वर्णन यहीं पर समाप्त करता हूँ।

महिमानं त्वदुत्कीर्य तव संह्रियते मनः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया॥
--कालिदास

(कोई भी व्यक्ति तुम्हारी महिमा का वर्णन करता हुआ उसे समाप्त करता है तो वह अपने श्रम के कारण अथवा अपनी अयोग्यता के कारण ही करता है। तुम्हारे गुणों की समाप्ति हो गयी, ऐसा नहीं है।)

माघमेले में त्रिवेणी-तट पर साधुओं का जलूस

पण्डित लक्ष्मीनारायण व्यास

इलाहाबाद के अनुपम व्यक्ति और उसके विशिष्ट भवन

मुझसे जैसा बना, मैंने इलाहाबाद का एक रेखाचित्र खींच दिया। फिर भी वह इस मानी में अधूरा है कि उसमें न कोई रंग भरा गया और न उसमें कोई पृष्ठभूमि (Background) ही दिखलायी गयी है। बिना इन दोनों साधनों के कोई भी रेखाचित्र, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसका सौंदर्य नहीं निखरता। इन दोनों के प्रयोग से चित्र बोल उठता है। ये रंग हैं, नगर के विशिष्ट व्यक्ति और पृष्ठभूमि है उसकी इमारतें। जिस प्रकार बिना रंग भरे चित्र में एकाकीपन होता है उसी प्रकार जन शून्य नगर भाँय-भाँय करता है। अतएव इस कमी की पूर्ति आवश्यक है :—

विशिष्ट व्यक्ति

इस प्रसंग में मैं उन्हीं थोड़े से व्यक्तियों की ओर संकेत करूँगा जिनका जन्म इसी नगर में हुआ है और जो लगभग सौ वर्ष के भीतर इस नगर में रहे हैं एवं उन व्यक्तियों का जिनके परिवार ने इस नगर को अपना लिया है।

जब विभिन्न मनुष्यों में गुणों का उत्कर्ष होता और वह विभिन्न क्षेत्रों में होता है तो उन मनुष्यों सूची गुणों के तारतम्य के अनुसार बनाना असम्भव जाता है। माणिक्य और मोती के सम्बन्ध में कौन सकता है कि कौन श्रेष्ठतर है, दोनों ही अपने-अपने क्षे में विशिष्ट होते हैं।

इस नगर की प्राचीन संस्कृति एवं पवित्रता ध्यान में रखते हुए मैं इस सूची में अपने पितामह, पू पाद गोलोकवासी पं० लक्ष्मीनारायण व्यास का नाम स प्रथम रखूँगा। वे मूर्तिमान् तप थे एवं मनसा वाचा कर्म पवित्रात्मा थे। प्रयाग के आध्यात्मिक गौरव के प्रतीक थे वे नगर के एक लब्धप्रतिष्ठ वैद्य थे। जीवन भर उन्हों वैद्यक की परन्तु कभी भी उन्होंने दवा का दाम न लिया और निःशुल्क रोगी को देखने जाते थे और यदि रो बहुत गरीब हुआ तो प्रायः उसे दूध खरीदने के लिए पै दे देते थे। उनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। सम्पू धन्वन्तरि निघंटु उन्हें कण्ठस्थ था। वे बड़े सद्गृहस्थ थे

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

आपका जन्म पौष कृष्ण ८ संवत् १९१८ तदनुस २५ दिसम्बर १८६१ को और देहावसान मार्गशीर्ष कृ ३ संवत् २००३ तदनुसार १२ नवम्बर, १९४६ हुआ। उनका गुणानुवाद थोड़े में कर देना मेरी श के परे है। इसे तो महर्षि अगस्त्य ही कर सकते हैं जि तपोबल से इतने विस्तीर्ण सागर का समावेश उनके छो से मुख में हो गया। फिर भी इतना कहूँगा कि—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

विपत्ति में धैर्य, ऊँचे पद पर पहुँचकर क्षमा करने शक्ति, सभा में वाक्‌चातुरी, युद्ध में अर्थात् सभाओं में अ प्रतिद्वन्द्वी को मुँह-तोड़ जवाब देने में विक्रम, वेद एवं ध शास्त्रों में व्यसन जो महात्माओं के सहज गुण हैं वे महामनाजी में थे। आप उपर्युक्त गुणों को जितना गु बढ़ाकर सोचें वे महामनाजी के गुणों की परिधि तक पहुँचेंगे। महामनाजी के महाप्रयाण से प्रयाग के धार्[illegible] की नींव जर्जरित हो गयी।

मेरे गुरुदेव, पूज्यपाद पण्डित बालकृष्ण भट्ट। जन्म ३ जून १८४३ : देहावसान——२० जुलाई १९१४।

कालिदास कहते हैं कि——

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।

सोना खरा है या टलहा, यह अग्नि में तपाने से पता चलता है। विधिना को जब देवता या दानव बनाना होता है तो वे मनुष्य को आपत्तियों की आग के ऊपर गरीबी की घरिया में छोड़ देते हैं। जो व्यक्ति तपने पर भी निष्कलुष निकलता है वह देव-तुल्य होता है। और जो कलुषित हो जाता है वह दानव बनकर निकलता है। भट्टजी देव तुल्य बनकर निकले। संस्कृत के प्रकांड पण्डित होते हुए ३३ वर्ष निरन्तर हिन्दी की सेवा की और 'हिन्दी प्रदीप' को अपना स्नेह उड़ेलकर बुझने नहीं दिया। जिन विषम परिस्थितियों में उन्होंने हिन्दी की नाजबरदारी की है, उन परिस्थितियों में साधारण साहित्यिक हिन्दी को तलाक़ दे देता। उनकी स्मृति के चरणों पर मैं अपना मस्तक नत करता हूँ।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन। जन्म १ अगस्त १८८२ : महाप्रयाण——१ जुलाई १९६२

शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः।।

——वाल्मीकि

चाहे दूसरे उसे ठीक समझें या गलत, अच्छा समझें या बुरा, जो मनुष्य किसी बात को कह देता है और उसका सत्यता से पालन करता है वही वीर मनुष्य पुरुषोत्तम है। राजर्षिजी एक मर्द आदमी थे। मर्दानगी की बड़ी सुन्दर व्याख्या 'ठाकुर' ने की है जो पूर्ण रूप से टण्डनजी पर लागू होती है——

बैर प्रीत करिबे की मन में न राखें शंक
राजा राव देख कें न छाती धाक-धाकरी।
आपने उमंग के निबाहिवे की चाह जिन्हें
एकसे दिखात तिन्हें बाव और बाकरी।
'ठाकुर' कहत मैं विचार कई बार देख्यों
यही मरदानन की टेंक बात आकरी।
गही तौन गही बात, छाँड़ी तौन छाँड़ि दई,
करी तौन करी, बात ना करी सो ना करी।।

टण्डनजी एक सिद्धान्ती आदमी थे। यों तो सभी आदमी कुछ न कुछ सिद्धान्ती होते हैं, पर टण्डनजी सिद्धान्त पर जूझ जानेवाले व्यक्ति थे। देखने में सीधे-सादे व्यक्ति मालूम पड़ते थे पर "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" के एक विचित्र सम्मिश्रण थे। देखने में कौन कह सकता था कि इस कृशकाय व्यक्ति के भीतर आग और पानी दोनों एक साथ रहते थे। टण्डनजी मूर्तिमान् त्याग थे। निस्पृहता उनका अलंकार था। हिन्दी एवं देश सेवा उनका जीवन था। इलाहाबाद में वे अपना सानी नहीं रखते थे।

पं० मोतीलाल नेहरू

पण्डितजी राजसी ठाठ के आदमी थे। देश-सेवा के लिए उन्होंने अपना राज तो छोड़ दिया परन्तु राजसी ठाठ उनके इतने सुन्दर शरीर को नहीं छोड़ सका——

तवविरह विधुरबाला सद्यः प्राणान् विमुक्तवती।
दुर्लभमीदृशमंगं मत्वा न ते तामजुः।।

(उस सुंदरी बाला ने तुम्हारे विरह से व्यथित होकर अपने प्राण को छोड़ दिया। परन्तु प्राण ने सोचा कि हमें इतना सुन्दर शरीर फिर कहाँ मिलेगा, अतः उसने उनके शरीर को नहीं छोड़ा।) पण्डितजी पानी की तरह रुपया बहाते थे। आये दिन उनके आनन्दभवन में (जो अब देश की सम्पत्ति है और स्वराज्यभवन के नाम से विख्यात है) बड़े-बड़े अफसरों की दावत होती रहती थी। अकबर साहब ने ठीक ही कहा है——

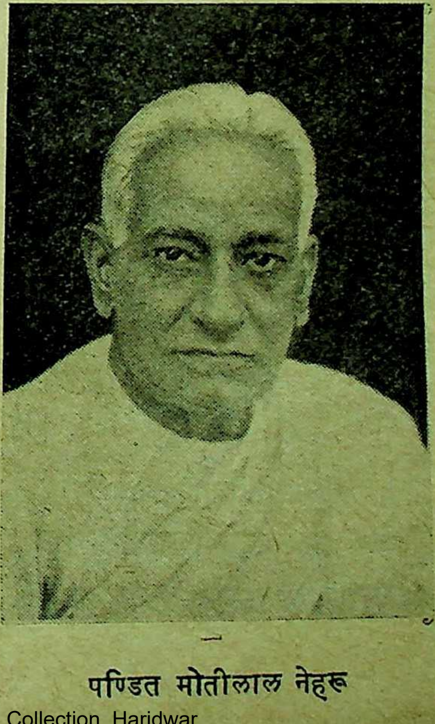

पण्डित मोतीलाल नेहरू

हर चन्द शेर आजिज, गर तालिबे-ग़िज़ा हो।
लेकिन न खायगा वह कुत्ते के संग रातिब॥

इस ठाठ के थे पण्डित मोतीलाल नेहरू।

पं० जवाहरलाल नेहरू

'किं कस्तूरिका मोदः शपथेन विभाव्यते,' कस्तूरी की महक शपथ खाकर बतलाने की अपेक्षा नहीं रखती। इनका मेरा साथ बहुत रह चुका है। जब मैं प्रयाग म्युनिसिपैलिटी का एक्जेकेटिव आफिसर था, ये मेरे चेयरमैन भी रह चुके हैं। इनके सम्बन्ध में आगे चलकर कहूँगा।

सर तेजबहादुर सप्रू

इनके बारे में मैं क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ, कुछ समझ में नहीं आता। मनुष्य का चित्रण भले-बुरे हो सकता है, फरिश्ते का नहीं। एख़लाक़, सच्ची भलमनसाहत, उदारता और अनेक मानवोचित गुणों के वे अगाध भंडार थे। शाम के बाद उनके गोल कमरे में, गुणग्राहियों का, यहाँ तक कि 'शरीफ बदमाशों' तक का, जिन्हें सप्रू साहब से कुछ अपना मतलब निकालना रहता था, एक हुजूम लगा रहता था। और सब कुछ जानते-समझते हुए भी वे उनकी मुरादें पूरी करते थे। इनके सम्बन्ध में भी आगे चलकर लिखूँगा।

सर तेजबहादुर सप्रू

महाकवि अकबर

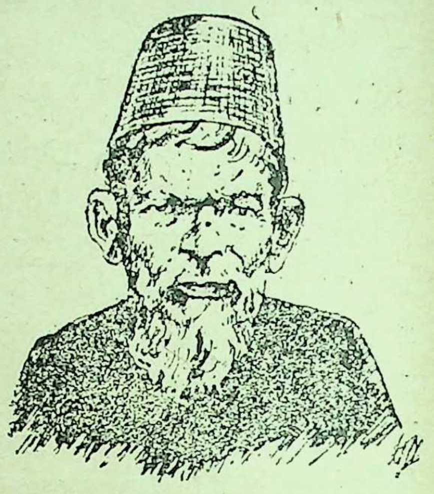

महाकवि अकबर

ये इलाहाबाद की एक बेमिसाल देन हैं। मुख़्तसिर से आदमी, मुख़्तसिर सी दाढ़ी, मुख़्तसिर सा रहन-सहन परन्तु हृदय इतना विशाल, नजर इतनी पैनी कि उन थाह पाना निहायत मुशकिल। खुश्क आँखों से च पोशीदा आँसुओं की बूँदों के द्वारा दरिया बहा देना उन्ह का हिस्सा था। खुद फरमाते हैं--

मेरा यह शेर, अकबर एक दफ्तर है मआनी का।
कोई समझे, न समझे, हम तो सब कुछ कह गुजरते हैं।

गम्भीर से गम्भीर विषय को हास्य और व्यंग्य पुट से मानव-हृदय में पैठा देने में उन्हें कमाल हासि था। उनके पास पत्र-पत्रिकाओं से अशआर के लिए लगात फरमाइशें आती रहती थीं और जहाँ तक हो सकता था भेजते थे। उन दिनों इलाहाबाद में लिखनेवाले थोड़े अतएव सम्पादकों को लेखों के लिए प्रयास करना पड़ था। सम्पादक हिन्दी साहित्य के संकुचित तालाब में डाले बैठे रहते थे। पत्रिकाओं का पेट कलकलाता र था। सम्पादक महोदय स्वयं अपना पेट काटकर पत्रिका पेट भरते रहते थे, पर मछली के दर्शन बड़ी मुशकिल से थे। उस वक्त मछलियाँ ही कम थीं। किया क्या जात पर अब पाँसा पलट गया है। अब प्रायः मछलियाँ सम्पा के टेबल पर नाचा करती हैं। अस्तु, सौभाग्य से अकबर यह सब नहीं करना पड़ा। एक बार सम्पादक के तक से खीझकर अपने अशआर के साथ यह ख़त दिया

जनाबमन्,

ये परचा जिसमें चन्द अशआर हैं इरसाल ख़िदमत
मेरे ये लख़्ते-दिल हैं, आपका माले-तिजारत है

--नियाज़मंद-अ

अकबर के रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं हो सक

कहाँ तक लिखूँ? बहुत से ऐसे महान् व्यक्ति इल बाद में थे। और अब भी हैं।

सब कहाँ, कुछ लाला-ओ गुल में नुमायाँ हो गयीं।
खाक में क्या सूरतें होंगी कि पिनहा हो गयीं॥--गालि

[

भ्रमरानन्द का पत्र

(साहित्यकारों का कर्त्तव्य)

सम्पादकजी

जय जुद्ध जुद्ध जुद्ध !

आपने तो सोच लिया होगा कि भ्रमरानन्द नेफा में लुप्त हो गये। पर अचरज न करें, भ्रमरानन्द हैं इसी पवित्र युद्ध-भूमि में। इधर एक नयी डेयरी खोली थी, आपको खबर नहीं दी। यह न तो मिसुरजीवाली डेयरी है, न बाबाजीवाली ही; और श्री विनोद शर्मा के साझे में जो साहित्यिक डेयरी शुरू हुई थी, वह भी नहीं। इस डेयरी में गउएँ नहीं, भैंसें नहीं, नवनीत का सेवन करने-करानेवाले बाबा भी नहीं। हैं इसमें मधुमक्खियों के छत्ते, और दूध रिफाइनरी की भारत में बनी मशीनरी। दूध की सप्लाई कई स्रोतों से हो रही है——देहाती इलाकों में भी अपने एजेण्ट हैं, शहरी इलाकों में भी। पहले तो दस जोड़े हंसों के पाले, पर कुछ तो उड़ गये, कुछ इस जलवायु में पनप न सके, सीधे ब्रह्मलोक चले गये; और कुछ पानी ही पीकर रहे, पर जब पानी में मेढक और मछली भी तैरने लगीं तो त्याग पत्र देकर मानसरोवर चले गये। आप सोचते होंगे कि दूध रिफाइनरी में हंस का क्या काम? सो आप साहित्यिक हैं न? दूध की रिफाइनरी में दूध तैयार नहीं होता; तैयार होता है दूध का पानी (अर्थात् दुग्ध-शुद्ध जल)। इसीलिए हंस पाले थे। दूध तो, आप जानते ही हैं, हमारे देशवासियों को ठीक तरह से नहीं पचता। तो हंसों के बिदा हो जाने पर मैंने नये सरस्वती-वाहन पाले,——हंसवेशी, पंखहीन, लोहित चञ्चु और जालीदार स्पंजनुमा पंजोंवाले सेवक, जो चञ्चु से कम पंजों से ही ज्यादा दूध सोख लें। सो जितनी भी दूध देनेवाली गउएँ थीं, पोथियाँ थीं, संस्कृतियाँ थीं, भूमियाँ थीं, सब जगह का दूध मनों आया और एक पोखर में मिला दिया गया। फिर दूध स्पंजी पंजों से सोखाया गया और दुग्धशोधित पानी का (बड़े सख्त पानी का) स्टाक तैयार हुआ। इसको नाम हमने दिया है सह-जीवनी नीरा। हमने बोतलें भर भर कर इस हार्ड वाटर के नमूने देश-देशान्तर भेजे। गर्म मुल्कों ने इसे गटागट पिया, ठंडे मुल्कों ने शराब के साथ आजमाया, सम्पादकों ने अपनी अँजुरी अधीर हो-होकर रोपी——'पहले हमें पिलाओ', कहते हुए; कवियों ने लेबुल चूमा, राजनीतिज्ञों ने पानी तो गिरा दिया पर बोतल और लेबुल रख लिया। (बोतल थी भी गोल-गोल, केवल कुछ कोनों पर तिकोनी, बड़ी ही डिजाइनदार, उसमें सर्पिल रेखायें लहर मारती थीं, लेबुल पर माडर्न प्रक्षाकुल कला के शोख रंग और बाकी रेखाएँ अंकित थीं।) नशाबन्दी के जमाने और खित्ते में काम आयेगी। सो, सौ बात की एक बात, खूब बिक्री हुई; जोरदार विज्ञापन हुआ; ढेरों प्रशंसा-पत्र मिले; कारबार चटक गया। यही कारण था कि भ्रमरानन्द खो गये थे। हाँ, मधुमक्खी पालन का वृत्तान्त तो अभी बतलाया ही नहीं।

यकीन मानिए, मधुमक्खी पालन सें बढ़कर शुद्ध सात्विक काम दुनिया में कोई नहीं। बिल्कुल सन्तों का-सा जीवन है इन मक्खियों का। मैंने एक क्रान्तिकारी प्रयोग किया। बजाय फूलों पर इन्हें रखने के, फूलों के और फलों तक के रस पर रखा। सो बागबानी की झंझट नहीं, फूलों का रस यहाँ-वहाँ से मँगाता हूँ, बिटामिन के अनुरोध से पत्तियों का रस भी मिला देता हूँ और बहुत बड़ी-बड़ी सीमेण्ट की क्यारियों में इन्हें अपने दुग्ध शुद्ध जल में मिला कर डाल देता हूँ फिर मक्खियों को छोड़ता हूँ। इन क्यारियों में मैंने सजीव-से रँगे कंकरीट के फूल-पौधे बनवा रखे हैं। सो मक्खियाँ आती हैं और रस से सार खींचती हैं। यही मधु संचित करा रहा हूँ। इसका नाम मैंने रखा है शान्ति-मधु (शान्ति मल्हम नहीं)। देंगे न दाद इस मौलिक सूझ की? यह शान्तिमधु बड़ा मीठा नशा करती है। पौष्टिक तो खैर है ही, अगर मेरे यहाँके पानी की बोतल में चार बूँद भी मिला दी जाय तो चर्बी कम कर देती है, और अगर राजस स्वभाव वाले व्यक्ति इसे अंगूरी में ढाल कर ही पीना चाहें तो वह अंगूरी भी अभिमन्त्रित हो जाती है। सो इस मधु की माँग की सुपर्णों ने, बूढ़े शेरों ने, तरुण भेड़ियों ने, अलमस्त भालुओं ने, नये मेमनों ने, पुराने अजगरों ने, सुग्गों ने, मैनाओं ने और अधबूढ़ी नवेलियों ने। यह मधु आँखों की ज्योति बढ़ाने में कमल के मधु से भी तेज है। कोई भी रोग हो, बिना इसके अनुपान के दवा अब कारगर नहीं होती।

आप आश्चर्य करेंगे, इस मधु को डिहाइड्रेट करके गोलियाँ बनवानी पड़ीं क्योंकि ऐलोपैथीवाले इसी शकल में इसकी माँग कर रहे थे। शान्तिमधु ने हमारी डेयरी का नाम खूब रोशन किया। हाँ, एक ही गड़बड़ी इसने की। भ्रमरानन्द की विजया में घुलकर यह बहुत ज्यादा नींद लाने लगी है। सो भ्रमरानन्द भाँग के नशे में स्वप्न लोक में जो घूमते रहते थे, वह भी बन्द है। अब चारपाई में ही धँसे पड़े रहते हैं। सो पाती न भेजने का यह दूसरा कारण है।

पर सम्पादकजी, न अब वह रिफाइनरी रही, न वह मधुकोष ही। एक दिन, या कहिए एक रात, लाल चींटे जमीन से निकले या कहीं पास से आये, राम जाने, क्यारी की क्यारी चट कर गये। मधुमक्खियाँ मकरन्द के भ्रम में बेखबर थीं, उन पर भी हमला बोल दिया उन्होंने। रिफाइनरी की मशीनों में दूध लगा था, सेवकों के पंजों में भी दुग्धशर्करा थी; सो पुर्जे ढीले हो गये, पैर अपंग हो गये, चींटों ने सारी जमीन चाल डाली, एक लेबुल तक नहीं बचा। भ्रमरानन्द का डेयरी के माध्यम से विश्व-विजय का स्वप्न भंग हो गया। खाली छत्ते हैं, छूछी बोतलें हैं, टूटे पुर्जे हैं, क्यारियों का सुररियलिस्टिक ढाँचा है, प्रेत की सूरत बनाये परिचारक हैं और इन सबके बीच आश्चर्यचकित भ्रमरानन्द स्वयं हैं। आदतों से मजबूर क्या करें? उन छत्तों में मरी माखियों को जमा हुआ मधु मान बैठते हैं, बोतलों के गहरे हरे रंग को आँखों में भर-भर नीरा तैरा लेते हैं। पड़ोसी हँसते हैं तो भंग का सोंठा लेकर दौड़ते हैं। पर आपसे क्या छिपाऊँ? भ्रमरानन्द को अपने इस कच्चे रोजगार पर बड़ी ग्लानि है, सपनों की दूकान उजड़ने का उतना गम नहीं, दूकान लगाने का ही बहुत बड़ा परिताप है। अभी दो दिन की बात है कि एक सांस्कृतिक आयोजन में मन बहलाने गये। पुराने पण्डितों का आयोजन था, इसलिए कुछ श्रद्धा भी थी। देखा वहाँ दो घड़े रख दिये गये, दो केले के खम्भे रस्सी से ऊपर बाँधकर खड़े कर दिये गये, घड़ों पर लाल कपड़े में ढँका एक एक खोखला नारियल रख दिया गया। नैयायिकों का घट था, घटत्व से परिपूरित हो गया। साहित्यिकों का नारियल था, रंगीन आवरण से ही सरस हो गया। वेदान्तियों का कदलीस्तम्भ था, आकाश में मायारज्जु से तन गया। दूध के जले भ्रमरानन्द ने टोका तो उत्तर मिला--कौन नारियल या घड़े के भीतर देखता है, और कदली की जड़ नीचे है या नहीं, इससे भी क्या मतलब? वह तनी है, इतना क्या काफी नहीं? बिचारे भ्रमरानन्द को लगा कि नहीं यह ठीक नहीं, यह आत्मवञ्चना है। सहमते सहमते फिर शंका की--'यह मंगलघट अपने मंगल के लिए है या दूसरों के?' शब्दब्रह्म ने इसका समाधान किया कि 'आकाश शून्य है, ब्रह्म शून्य है। शब्द आकाश का गुण है, वह भी शून्य है। शून्य से शून्य भर गया। आप जानते नहीं कि मंगलवारि तो इसी शून्य का विवर्त्त है।' इस उत्तर ने कुछ देर तक तो चमत्कृत कर रखा, पर थोड़ी ही देर में इस उत्तर की असंगति दिखने लगी, जब दायें बाजूवाला केले का खंभा बायें बाजू के मंगलघट पर किसी गुरुत्वाकर्षण नियम से भहराकर गिर पड़ा। नारियल एक ओर गया, घड़ा फूटा, केला धराशायी हुआ, नारियल के बीच रखे हुए रँगे चावल बिखर गये, लाल कपड़ा उतर गया; और शिष्यों पर मंगल अनुष्ठान के अधिष्ठाता की कोपाग्नि भभक उठी--'तुम लोगों ने सब चौपट कर दिया, उत्सव शुरू होने तक तो इसे थाम्हे रहते।' तब लगा कि शून्यवाद केवल घ के भीतर है और कदली के नीचे है, घड़ा और कदली शून्यवादी नहीं हैं। भ्रमरानन्द घर लौटकर इस घटना पर गौर करने लगे तो लगा कि शब्द से जितना ही भरता है, उतना ही रीतता भी है। शायद हमने सत्य को जो शब्द से भरा तो वह क्रिया से रीत गया। हमारे आदर्श जित ही वाणी से परिप्लावित हुए, आचरण से उतने ही खोख हो गये। हमारे अग्निहोत्र में अरणिमन्थन के बिना मन्त्र पाठ से जो आग धधकायी गयी, वह आहुति लेकर भी धध नहीं सकी, क्योंकि धधकते रहे केवल आहुति के मन्त्र,--आग तो सुलगी ही नहीं। यही सब सोचते-विचारते सि दुखने लगा, आँखें मूँद लीं, बिजली बुझा दी, पड़ रहे इतने में पड़ोसी का रेडियो चीख उठा--'बदल गया इति हास युद्ध के लिए बुद्ध भगवान् चले।' फिर बुद्ध के पी विरथ रघुवीर भी चले, शंकाकुल विभीषण भी चले, पे की डाली और पत्थर के टुकड़े लिये नारदी मोह के शिका वीर बाँकुरे दूल्हे भी चले। रक्तहीनों तक ने रक्तदा शुरू कर दिया। गीतों के रसिकों तक ने अग्निहोत्र शु कर दिया। अधसोयों ने जागरण के बिगुल बजाने शु कर दिये। रचना ने भ्रमरानन्द को धिक्कारा--'तु

अपने सिरदर्द की पड़ी है! तुम्हें सीमा का आह्वान नहीं सुनायी पड़ता? साहित्यकार के दायित्व का तुम्हें ज्ञान नहीं? देश का तुम्हें दर्द नहीं? संकट की घोषणा ने तुम्हें झकझोरा नहीं? तुम उठो, कलम को तलवार बना लो और अपने अक्षरों से संगीनों और गोलियों की फसल उगा दो। सुवर्ण नहीं तो सुनहले वर्ण ही सही; रक्त नहीं तो लाल स्याही ही सही; जौ, घी और तिल नहीं तो वनस्पति से सधा स्वर सही। आहुति दो, आहुति की वेला है।'

अब आप ही सोचिए सिर फटा जा रहा है, सब कुछ गँवा चुका हूँ फिर भी चुनौती स्वीकार करके आहुति तो दूँ, पर कहाँ? वह अग्निकुण्ड कहाँ है? उसमें समिधा जुटी भी है या नहीं? रचना दे दी, पहले यह तो बतलाओ। अग्निहोत्र के बारे में थोड़ा बहुत तो जानता ही हूँ। सबसे मुख्य अग्नि है गार्हपत्याग्नि। हम लोग विवाह करके इस अग्नि का आधान करते हैं। इसी अग्नि से आहवनीय और दाक्षिण अग्नि भी यथासमय प्रज्वलित करते हैं। भिक्षुधर्म की जय हो! जड़ ही कट गयी। जनमते ही तो हम लोग संन्यासी हो गये। विवाह किया तो अग्नि धधकाने के बजाय अग्नि बुझाने लगे। अब आहवनीय अग्नि को धधकायें कैसे? यह सही है कि हम लोग देवता से अधिक मनुष्यपरायण हैं, इसलिए दक्षिणाग्नि एक कोने में दूसरे घर से आग लाकर जला रखी है। उसपर ऋत्विजों, होताओं, उद्गाताओं और ब्रह्माओं के लिए बढ़िया खीर पकती रहती है। बीच-बीच में उष्ण कषाय पेय भी उबलता रहता है। अग्नि का आधान वचन में होने के लिए यह उष्ण कषाय (काफी) बहुत सहायक है। देवता भुला नहीं दिये गये, पर उनकी आहुति की वाहक अग्नि बुझा दी गयी। ऋत्विजों की टोली देवता जगाती रहती है। हवन हो न हो, होता स्वाहा की हुंकार लगाते रहते हैं, उद्गाता के गान भी छिड़ते ही रहते हैं और ब्रह्मा नये देवता गढ़ते रहते हैं। हवन अग्नि में हो यह क्या आवश्यक है? यज्ञ के अर्थ का नया विस्तार है। मध्ययुग में हवन पानी में हुआ, छोटी-छोटी तलैयों में हुआ, फिर मिट्टी में हुआ, स्वाधीनता के लिए हवन हवा में हुआ, अब महाकाश में होने लगा है। साहित्यकारो, आओ, आकाश में आहुति दो। एक राज-होता ने इस अग्निहोत्र का न्यौता भेजा है, एक उद्गाता मण्डल ने हल्दी-सुपारी भेजी है; और भ्रमरानन्द सोचते हैं कि कहाँ जायँ।

आहुति देने जायँ या आहुति होकर अग्नि धधकाने जायँ कि जिससे कल्पित सत्यों के बुझे कोयले भी लहक उठें, जाड़े में ठिठुरते कम्बलों में सिकुड़ते पुरोधा भी ताप से तप उठें, उनके मोटे कम्बल उतर जायँ, उनकी जड़ता पिघल जाय। मन्त्र आहुति नहीं बन सकता, पर आहुति-जीवन मन्त्र बन सकता है। जब मन्त्र निष्प्राण हो गये हों तो नये मन्त्र आहुतियों से बनेंगे। साहित्यकार का दायित्व पहले है कि मनुष्य का? मनुष्य के दायित्व से जो भागना चाहें, वे साहित्यकार के दायित्व की ओट लें। भ्रमरानन्द कवि नहीं, उपन्यासकार नहीं, मौलिक नहीं, पढ़ीस भी नहीं, समाज के निर्माता नहीं, समाज के ध्वंसक भी नहीं। पर इतने गैर जिम्मेवार भी नहीं हैं कि अपनी जिम्मेवारी अपनी कमजोरी के ऊपर डाल दें। भ्रमरानन्द मुर्दे नहीं कि किसी शंखध्वनि पर प्रलय के दिन कब्र से उठेंगे। कठपुतली नहीं कि किसी डोरी के खिंचाव से नाचेंगे। इतने पालतू भी नहीं कि पुचकारने पर भूँकने लगें। स्प्रिंगदार खिलौने भी नहीं कि जितनी चाभी भरी जाय, उतना ही चिचियाकर और उछल-कर रह जायँ। वे पहले आदमी हैं, तब साहित्यकार हैं। कल्पनालोक में विलास करने का अपराध किया है तो उसका प्रायश्चित्त दिखावे के लिए मात्र नहीं करेंगे-- करेंगे अपराध के मार्जन के लिए। होता या उद्गाता सार्थक हैं देवता को पाकर,--देवता जो यजमान में हैं, देवता जो अग्निमुख हैं, देवता जो ज्वाला हैं। इसलिए भ्रमरानन्द उस देवता के आगे प्रणत हैं, देवता के स्वयं घोषित ठेकेदार के आगे नहीं।

सम्पादकजी, अब आप ही सलाह दें कि अभिनव अग्निहोत्रों में शरीक होऊँ या अपनी सोयी आग धधकाऊँ। यह वसुधा मेरी भी वेदी है, औरों की भी वेदी है। पर आग मेरे घर की हो, तभी वेदी उसे स्वीकार करती है। कहिए, मेरी आग से आप भड़केंगे तो नहीं? इधर बिना आँच वाली आग का चलन ज्यादा रहा है। मेरी घरू आग तो चिटकती भी है। बोलिए, स्वीकार है? आप भी तो एक ब्रह्मा हैं, सम्पादक हैं न? बड़ा कठोर विकल्प है: प्रियदर्शी बनिए या व्याघ्रपराक्रम, गणेश बनिए या स्कन्द, महाभारत बाँचिए या धम्मपद, कर्मभूमि की-- धनुषाकार भारतभूमि की--प्रत्यंचा सँभालिए या महा-तारा का चीनांशुक, नकली आदर्शों की खोल उतारिये या फिर और खोल चढ़ाइए, भभक उठिए या धुएँ से घुटते रहिए? रामखुदैया नहीं चलेगी। भ्रमरानन्द का मोह भंग हो गया, डेयरीबाजी का नशा हिरन हो गया, नींद उचट गयी, अब अपने को और बहकावे में नहीं डाल सकते। आप साथ हैं? जवाब दीजिएगा, अपने आप,--पतंगबाजों की सलाह लेकर नहीं। भ्रमरानन्द के लिए युद्ध का विकल्प शान्ति नहीं पराजय है।

जा बप्पी की भुम्मडी चम्पिज्जइ अवरेण।
पुत्तें जाएँ कवणु गुण अवगुण कवणु मुएण ॥

जिसकी पितृभूमि पर दूसरे काबिज हो जायँ, उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ, और उसके मरने से ही क्या हानि?

आपका
भ्रमरानन्द

कामदेव के पंच-पुष्पबाण

श्री गोस्वामी रामबालक

ऋतुराज वसंत का शुभागमन हो गया है। विश्व के रंग-मंच पर प्रकृति-नटी नाना आभरणों से विभूषित और सोलहो शृंगार से सुसज्जित हो, अपने मनोहारी नर्तन से चराचर को विमुग्ध कर रही है। ऐसे ही सुहावने समय में——कामदेव हाथ में धनुष ले अपने पंचवाणों से संसार के मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, कीट-पतंगों आदि समस्त प्राणियों का हृदय वेधने के लिए निकलता है। मनसिज के कोमल कुसुमायुधों में वह प्रचंड शक्ति है, जिसके प्रहार से बड़े-बड़े योद्धा भी विकल हो जाते हैं। मन्मथ के इन पंच शरों की तीक्ष्ण नोकों में वह मादकता है, जिससे बड़े-बड़े देवता, ऋषि, मुनि, योगी, यति, तपस्वी भी लोक-लाज से आँख मूंद लेते हैं। कामदेव के कुसुम-शरों से विद्ध हो कितने ही राजा अपने राजपाट छोड़ दर दर की खाक छानने लगे, कितने ही विद्वानों और ज्ञानियों ने अपनी विद्वता और पांडित्य को तिलांजलि दे दी, कितने ही कुशल राजनीतिज्ञों ने अनंग के पुष्प-वाणों की मादकता से अंधे हो अपने देश की स्वतंत्रता दूसरे के हाथों बेंच दी——ऐसे प्रतापी हैं कामदेव के पुष्पवाण।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों के कुशल-चित्रकारों ने कंदर्प के कमनीय चित्र को अंकित कर उसके वास्तविक सौंदर्य का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। कवियों ने नाना प्रकार के छंदों में उसके वास्तविक रूपों को दर्शाने का प्रयत्न किया है। प्रर वे आज तक सफल नहीं हुए। हम यहाँ अनंग के रूप सौंदर्य का वर्णन करने नहीं बैठे हैं बल्कि इन कुछेक पंक्तियों में उसके पंच पुष्प बाणों की ही चर्चा करना चाहते हैं।

कामदेव के पाँच बाणों के नाम।——(१) सम्मोहन, (२) उन्मादन, (३) शोषण (४) तापन और (५) स्तम्भन। हमारे शास्त्रकारों और कवियों ने इन पाँच बाणों की कल्पना पाँच प्रकार के पुष्पों के रूप में की है। इनका उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में इस प्रकार किया गया है——

अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका।
नीलोत्पलं च पंचैते पंचशरस्य सायकाः॥

अर्थात् अरविंद, अशोक, चूत, नीलोत्पल और नवमल्लिका, ये पाँचो कामदेव के अमरबाण हैं। इन फूलों के नाम बड़े सुन्दर और श्रुतिमधुर हैं। इनका चयन भी उपयुक्त ही हुआ है। अब हमें यह देखना है कि इन फूलों के आधुनिक नाम क्या हैं, और ये किस ऋतु में कब फलते-फूलते और इन्हें कामदेव के बाण क्यों कहा गया है।

१——**अरविंद**——यह हमारा सुपरिचित लाल कमल है। जब यह खिलता है, तब इसका वर्ण स्थल-पद्म के समान कुछ लालिमा लिये हुए होता है। तदनंतर ज्यों-ज्यों य विकसित होता जाता है, त्यों-त्यों इसका रंग गाढ़ा लाल होता जाता है। वसंत ऋतु के आरम्भ से शरदकाल के अंत तक सब समय कमल मिलता है। शिशिर का आगमन होते ही यह कुम्हलाने लगता है। हेमंत और शीतकाल में लाल कमल कहीं दिखाई नहीं देता।

२——**अशोक**——यह मौलसिरी के समान एक बड़ पुष्प-वृक्ष है। वसंत काल में अशोक के फूल खिलते हैं औ वर्षाकाल तक रहते हैं। अशोक के फूल श्वेत और लाल दो रंगों के होते हैं। लाल रंग का अशोक कामोद्दीपक होता है। इसीलिए इसकी गिनती कामदेव के पंचबा में होती है। वसंत में अशोक वृक्ष की डालियाँ और ट नियाँ रक्तवर्ण के पुष्पों से लद जाती हैं। हरे-हरे पल्ल के बीच में लाल फूल देखने में बड़े सुहावने मालूम हो हैं। अशोक का व्यवहार औषधि के रूप में किया जाता है विवाहादि मांगलिक कार्यों में अशोक के पत्तों के तो और बंदनवार बनाये जाते हैं। रामायण में रावण अशोक वन का वर्णन मिलता है। वहीं उसने सीता रखा था।

३——**चूत**——आजकल इसका नाम आम्र-मंजरी आम का बौर है। आम्र-मंजरी की गंध अत्यंत माद भरी होती हैं। वसंत में जब आम में बौर आते दक्षिण-पवन मंदगति से बह रहा हो, डाल पर को कूक रही हो, तो उस समय आम के बगीचें की म गंध राह चलते पथिक को बरबस अपनी ओर आक कर लेती है और उसके अंग-अंग में मधुर मादकता

देती है। कवियों को तो आम्र-मंजरी मदहोश करके उनके हृदय की सुप्त काव्य-प्रतिभा को जाग्रत कर देती है। कवित्वहीन और अतीत यौवनाओं एवं युवकों के मन में भी मुकुल भार से झुके हुए आम्र वृक्षों को देखने से, मदन के तीक्ष्ण शरों की वेदना का अनुभव होता है। इसलिए कामदेव के पंचबाणों में आम्रमंजरी की गणना सर्वथा उपयुक्त ही हुई है।

४—नीलोत्पल—यह कुमुद और कल्हार जाति का फूल है। इसका आधुनिक नाम नीलकमल है। शरद्काल में सरोवरों में प्रस्फुटित होकर यह शीतकाल के अंत तक रहता है। इसका रंग कुछ हलका नीला होता है, इसलिए इसका शुभ नाम नीलोत्पल, नीलसरोरुह, नीलपद्म, इन्दीवर है। आयुर्वेदीय औषधियों में नीलोत्पल का व्यवहार होता है। नीलोत्पल दो तरह का होता है। एक छोटा, दूसरा बड़ा। छोटे का रंग हल्का नीला होता है, बड़े का गाढ़ा नीला। छोटा नीलोत्पल तो देखने में आता है, पर बड़ा बहुत कम दिखाई देता है। संस्कृत और हिन्दी के प्राचीन कवियों ने राम और कृष्ण के श्याम शरीर की उपमा नीलोत्पल या नीलकमल से दी है।

५—नवमल्लिका—इसके आधुनिक नाम के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। किसी-किसी का कहना है कि कालिदास आदि संस्कृत कवियों ने अपने काव्यग्रंथों में जिस नवमल्लिका का पुष्प वर्णन किया है, आजकल वह कहीं देखने में नहीं आता। किसीका कहना है कि यह कोई ऐसा फूल है जिसका रूप आजकल पहचाना नहीं जाता है और जो वनों में ही विकसित होकर मुरझा जाता है। कोई-कोई कहते हैं सम्भवतः किसी दूसरे नाम से इस फूल ने हमारी पुष्प-वाटिकाओं में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। कुछ कोषकारों ने नवमल्लिका का परिचय एक पुष्प विशेष से दिया है। इससे यह अनुमान करना कठिन है कि नवमल्लिका का आधुनिक नाम क्या है। किसी किसीने इसका अर्थ 'नूतन-मल्लिका' लिखकर ही संतोष कर लिया है। वामन शिवराव आप्टे ने सुप्रसिद्ध संस्कृत इंगलिश कोष में नवमल्लिका का अँगरेजी नाम Jassamine दिया है। Jassamine को चमेली कहते हैं। अतः श्री आप्टे के मतानुसार नवमल्लिका हमारी चिरपरिचित चमेली ही है। चमेली का रंग श्वेत होता है और वसंत में फूलती है। उसकी सुगंध भी अपूर्व मादकता-भरी होती है। बेला भी सफ़ेद रंग का फूल होता है और वसंत में ही फूलता है। मादकता पूर्ण गंध होने से ही प्रेमीजन अपनी प्रेमिकाओं को बेला-चमेली के हार पहनाते हैं। इसलिए यदि नवमल्लिका चमेली ही हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। गाजीपुर, जौनपुर और बलिया जिले के सिकंदरपुर में चमेली की खेती होती थी। चमेली का फूल खिलता भी आजकल ही है। फूली हुई चमेली के खेतों के पास से निकलने में नन्दन-निकुंज का स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है।

संस्कृत काव्य-ग्रंथों में नवमल्लिका का उल्लेख अनेक स्थानों में आया है। कालिदास के नाटकों और काव्यों में तो कई स्थानों में इसका वर्णन मिलता है। कालिदास ने इसका जो परिचय दिया है, उससे प्रतीत होता है कि नव-मल्लिका वसंत-काल में फूलती है। इसके फूल गुच्छों में खिलते हैं। इसकी सुगंध मनो-मुग्धकारी और मादकता-पूर्ण होती है। नव-मल्लिका के पुष्प-गुच्छों के पास नूतन किशलयों के रहने से, उनकी सुन्दरता किसी युवती के मुसकान भरे अधरों के समान दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। 'रघुवंश' में राजा दशरथ के राज्य में वसंतागमन का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं :

"अमदयन्मधुगन्धसनाथया
किशलयाधरसंगतया मनः।
कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका
स्मितरुचा तरु, चारु, विलासिनी।

भावार्थ—तरु, चारु, विलासिनी नवमल्लिका ने अपनी मधुगंध से किशलयरूपी अधरों पर फूले हुए कुसुम-गुच्छ की मधुर मुसकान से दर्शकों के मन को मुग्ध कर दिया।

'शकुंतला' नाटक में नवमल्लिका का जो वर्णन आया है, उससे प्रतीत होता है कि यह एक बड़ी लता है और आम्र-वृक्ष से लिपटी रहती है। कुसुमित नवमल्लिका कमनीयता में अन्य लताओं को मात देती है। उदाहरणार्थ 'शकुंतला नाटक' के निम्नलिखित कथोपकथन का अवलोकन कीजिए :—"अनसूया-शकुन्तला, आम्र की स्वयंवधू इस नवमल्लिका को, जिसका नाम तुमने वन-ज्योत्स्ना रखा है, कहीं भूल न जाना।"

"शकुन्तला—तब तो मैं अपने को भी भूल जाऊँगी। (लता के समीप जाकर और उसे ध्यान से देखकर) ओहो!

रमणीय काल में लता-पादप का मिलन हुआ है। वनज्योत्स्ना, नवमल्लिका, नवकुसुम यौवना और नव-पल्लव शोभित आम्र दोनों के ही विहार करने योग्य यह सुहावना समय है।"

'शकुंतला' का उपर्युक्त उद्धरण उस समय का है जब शकुंतला और दुष्यंत का शुभमिलन हुआ था। वनज्योत्स्ना, नवकुसुम यौवना, नवमल्लिका और आम्र मिलन तथा शकुंतला और दुष्यंत का मिलन **वसंत** में या प्रथम ग्रीष्म में ही हुआ था। इसका उल्लेख कवि कालिदास ने नाना रूपों में किया है; जिसकी चर्चा करने की यहाँ आवश्यकता नहीं।

श्री आप्टे के संस्कृत कोष में नवमल्लिका और भी कई नामों से उल्लिखित है, जैसे—भूपदी, शतभीर, आस्फोटा, मागधी, गणिका, यूथिका, अम्बष्ठा, अतिमुक्तलता, पुण्डक, वासंती, माधवी, सुमना, मालती, जाती, सप्तला, माध्य, कुन्द।

कालिदास ने अपने 'ऋतुसंहार' में वसंत का वर्णन करते समय नवमल्लिका के अर्थ में 'अतिमुक्तलता', 'कालिनी' और 'माधवी' का प्रयोग किया है।

यही है संक्षेप में कुसुमायुध के पंच पुष्पवाणों का परिचय, जिनके सहारे उसने विश्व को अपने वश में कर रखा है। इन बाणों की यह विशेषता है कि जिसको लक्ष्य करके ये चलाये जाते हैं, उसका प्राण हरण नहीं करते, बल्कि उसे अधमरा कर आजीवन तड़पाया करते हैं। पुराणों में लिखा है कि कामदेव ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं और पुष्प के धनुष बाण के साथ इसका जन्म हुआ। जब ब्रह्मा ने सरस्वती की सृष्टि की, तब उसने सर्वप्रथम उन्हें ही अपने पुष्पवाणों का लक्ष्य बनाया। कामदेव के शर से विद्ध हो जब ब्रह्मा विकल हो गये तब वह सरस्वती की ओर आकर्षित हुए। परंतु आँख खुलने पर वह अपने कुकृत्य पर अत्यंत लज्जित हुए और कामदेव को बुरा-भला कहने लगे कि रे अधम! तूने यह क्या अनर्थ कर डाला, मुझे अपनी ही पुत्री पर उन्मादित होने के लिए प्रेरित किया।

इस पर कामदेव ने कहा—'जगतसृष्टा, इसमें मेरा क्या अपराध? आपने ही तो मेरी सृष्टि कर मुझमें यह शक्ति प्रदान की है कि प्राणिमात्र में मैं कामवासना भर दूं। मेरा तो काम ही है, सबके हृदय को अपने पुष्प-बाणों वेधना। अब यह आहत व्यक्ति का काम है कि वह अ विवेक और सद्बुद्धि से अपनी हार्दिक व्यथा की उ चिकित्सा की व्यवस्था करे।' . . . ब्रह्मा निरुत्तर हो गये

विश्व-विजयी होने की लालसा से कामदेव ने अ योगिराज शंकर पर भी आक्रमण कर दिया था। समय उसने संसार में जो ऊधम और उत्पात मचा रखा उसका बड़ा रोचक वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण में किया है। वह लिखते हैं :—

"वन उपवन वाटिका तड़ागा,
परम सुभग सब दिशा विभागा,
जहँ-तहँ जन उमगत अनुरागा,
देखि मुयहु मन मनसिज जागा।"

× × ×

"जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम
ते निज-निज मरजाद तजि, भये सकल वश काम॥"

कामदेव ने चराचर को अपने वश में कर लिया शंकरजी पर उसका वश न चला। फिर भी वह निर्मित **वसंत** के रसाल तरु पर चढ़कर, मंजरियों के बी से कुसुम-शरों का प्रहार करता ही रहा। अंत में शं क्रुद्ध हो अपने तृतीय नेत्र से उसे भस्म कर डाला। पर देव मरा नहीं, मात्र उसका शरीर ही भस्म हुआ। अनंग शरीर-रहित कहलाता है।

आज मन्मथ अनंग है, अदृश्य है। हम उसे देख सकते फिर भी उसके अत्याचार और उपद्रव कम नहीं हैं। वह आज भी विश्व-विजय करने के लिए दुन्दुभि ब किले पर किले मिट्टी में मिलाता हुआ संसार में रहा है। तभी तो एक कविजी उसके अत्याचारों से प होकर अपनी प्रिया से कातर स्वर में कह रहे हैं :

"भागने लगी शीत की सेना सभी,
मन में कुछ शंक-सी माने हुए।

खड़े हैं बने बन्दी पलाश लखो,
किस भाँति ये रक्त में साने हुए।

कुसुमायुध सेनापती मन में,
जग जीतने का हठ ठाने हुए।

फिरता है प्रिये! मन बेधने को
सुमनों का शरासन ताने हुए॥

'पद्म' की रुबाइयाँ

श्री पद्मकान्त मालवीय

(१)

यह दुनिया मुझको क्या कहती है, अच्छा या बहुत बुरा ?
कब चिन्ता की ? मैंने पी है सदा तुम्हारी प्रेम-सुरा ।
मुझे दिखे हैं राम, कृष्ण, शिव सुरा छलकते भाजन में,
मदिरालय ही मेरे लिये अयोध्या है, काशी, मथुरा ।।

(२)

वह दुनिया वाले जो रहते मस्त सदा अपने धन में ।
वह क्या जानें, उन्हें समझता हूँ मैं क्या अपने मन में ?
चिन्ता चिता चढ़े करते हैं पहरेदारी सर्प समान,
मैं अलमस्त, पैर फैलाकर, सोता हूँ जग-उपवन में ।।

(३)

मेरे पापों की सुन्दरता किसने भला कभी देखी ?
अगर देख लो तो मोहित हो जाओगे उनपर तुम भी ।
उसने देखा है जो सर्व व्यापी, सर्वनियन्ता है,
मेरे पीछे-पीछे फिरती है अब कृपा दया उसकी ।।

(४)

कितने छोटे, कितने खोटे, इस जगती के हैं अब लोग ।
जिन्हें लगे हैं बनने, ठनने, अहंकार, माया के रोग ।
देव बनें इस इच्छा में ये मानवता भी बेंच चुके,
देव बने न रहे मानव ही, अब बस हैं पशुता के योग ।।

(५)

आंचल फैलाये बैठा हूँ कबसे देव ! तुम्हारे द्वार ?
एक बार तो कृपा-दृष्टि हो जाय इधर भी प्राणाधार!
माना पापों का पुतला हूँ, किन्तु तुम्हारा ही तो हूँ,
दंड दिया मुझको तो सोचो, तुम्हें कहेगा क्या संसार ?

(६)

झुका तुम्हारे सन्मुख जो सिर, वह तो और कहीं न झुका ।
एक तुम्हारे बल पर मैं दुनिया के रोके नहीं रुका ।
मुझको क्या अपमान, मान, जो भी है सभी तुम्हारा है,
जो चाहे तुम करो, स्वयं को मैं तो तुमको बेंच चुका ।।

विश्वकाव्य में वसंत

श्री अनवर आगेवान

प्रकृति कवियों की चिर सहचरी है। उसके नित्यनूतन उल्लासयुक्त वातावरण ने कवि की अंतरात्मा को आकर्षित किया है। वसंत की अवर्णनीय शोभा को कौन भुला सकता है? दूर दूर क्षितिज के उस पार तक खेतों में इठलाती पीली-पीली सरसों, आम्र-मंजरियों पर बैठी कोयल की सुमधुर ध्वनि, अशोक की नवफूटी कोपलें, निर्गुण्डी टेंग और पलाश के लाल-लाल फूल, मधु पीकर मतवाले बने हुए भ्रमरों का गुंजार, कवि के हृदय में हर्ष की हिल्लोरें तथा अनुराग उत्पन्न कर देते हैं। मानों, वसन्त कवियों की मधुरिम कल्पना का स्रोत है। इसी कारण, विश्व के सभी महान् कवियों ने अपनी कविताओं में किसी-न-किसी रूप में वसंत को स्थान दिया है।

संस्कृत के महाकवि कालिदास ने वसंतागमन का मनोरम चित्रण दिया है:

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रमाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।

—कुसुम, फिर पल्लव, उनके साथ भौंरे और कोकिल की मधुर ध्वनि, इस प्रकार द्रुमवती वनस्थली में वसंत यथाक्रम अवतीर्ण हुआ।

ऋतुराज वसंत के शुभागमन से समस्त भूतल पर एक नवीन आनन्द एवं उल्लास का मादक वातावरण छा जाता है।

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते॥

—वृक्ष कुसुमों से, जलाशयों से, स्त्रियाँ प्रेमोद्रेक से, वायु सुगन्धि से, सन्ध्या शीतलता से, दिवस प्रफुल्लता से, मानों सभी वासंती सौंदर्य से प्रिय तथा स्निग्धसात हो रहे है।

इस प्रकार हिमानी शीत से ठिठुरी हुई प्रकृति के ऋक्ष आँचल से एक नई चेतना जाग उठी है। वसन्त की बहार से वन-उपवन, बाग-बगीचे सुहावने हो उठे हैं। आम के नये बौर की सौरभ से समस्त वातावरण सुगन्धित हो उठा है। वसंत की इस मधुर-मस्त बेला में कविवर रवीन्द्रनाथ के अन्तर से भावधारा उमड़ पड़ती है:

ब्याकुल बकुले फूले, भ्रमर भरे पथ भूले।
आकाशेर गोपन बानी, वातासे करे कानाका
बनेर अंचलखानि पुलक उठे फूले फूले॥

(बकुल के फूल पागल से हो रहे हैं। भौंरे अपनी भूलकर मतवाले-से मँडरा रहे हैं।

आकाश अपने हृदय की गोपन बातों को प धीरे-धीरे कह रहा है।

और पवन का आँचल फूलों के रूप में भर उठा

इस मधु ऋतु में सम्पूर्ण वनस्पतियाँ और प्राणी म से ओतप्रोत हो जाते हैं। वासंती की इस चतुर्दिक् स का उर्दू के महाकवि गालिब ने बड़ा ही सजीव एवं चित्र उपस्थित किया है:

फिर इस अन्दाज से बहार आई,
हो गये मह्लोमए तमाशाई।
देखो ए साकिनाने खित्तए-खाक,
इसको कहते हैं आलम-आराई
कि जमीं हो गई है सर-ता-सर,
रूकशे सतहे चर्ख मीनाई
सब्जे को जब कहीं जगह न मिली,
बन गया रूए आब पर काई
सब्जओ गुल के देखने के लिए,
चश्मे-नरगिस को दी है बीना
है हवा में शराब की तासीर,
बादानोशी है बादा पैमा

धीमी और सुगन्धित बयार से आम्र-मंजरियों टहनियाँ आपस में आलिंगन कर एक दूसरे का चुम् रही हैं और कहीं-कहीं नन्हीं-नन्हीं क्यारियाँ कुल सी मदमस्त हो झूम रही हैं। वसंत का यह रमणी आधुनिक हिन्दी के महाकवि निरालाजी प्रस्तुत कर

मग में पिक-कुहरित डाल-डाल
है हरित विटप सब सुमन-माल
हिलतीं लतिकाएँ ताल-ताल पर सस्मित
पड़ता उन पर ज्योतिः प्रपात
हैं चमक रहे सब कनक गात
बहती मधु-धीर समीरज्ञात, आलिंगित

वसन्त की सुषमा से धरती-आकाश में अनुराग छा ाता है। रात-दिन सुहावने हो जाते हैं। मानों, चारों ोर कमनीयता फैल जाती है। अतः आंग्ल कवि टामस श ने वसन्त-ऋतु पर चतुर्दिक् बिखरे हुए अपार प्रकृति-ौंदर्य को निरखते हुए लिखा है:

यह बसंत, मधु बसंत,
ऋतु-राज मनोनीत !
खेलती हैं जिसमें कलियाँ
बालाएँ करतीं रंग-रलियाँ
नहीं डँसता शीत,
गाते सुभग खग गीत
कू-कू ! जग-जग !
यु-वी ! टु-विटा-वू !

× × ×

खेतों की साँसें गंध-अलस
डेज़ी करते हैं चरण परस
प्रेमी पाते हैं प्रिया दरस
प्रौढ़ाएँ लेतीं आतप-रस
गली-गली में बरस-बरस
जाता खग-गीत सुधा-रस
कू-कू ! जग-जग !
यु-वी ! टु-विटा-टु !

एक स्विस कवि के इस छोटे गीत में कोमल कल्पना र मधुर भाव की अभिव्यंजना देखिए—

आओ, वसन्त !
तुम्हारा स्वागत !!
आल्पस के हिम-शृंग
कैसे चमक रहे हैं?
जैसे चाँदी की बतखें
रंग-बिरंगे फूल !
और चिकनी-चिकनी मृदु पत्तियाँ
तुम्हारे ही स्वागत में नयन बिछाये हैं !
स्विट्जरलैण्ड की देहरी पर
कदम रक्खो !
आओ, शबनम से
तुम्हारे चरण पखारूँ !

जर्मन के महाकवि हाईने ने प्रकृति की सूक्ष्म झाँकी थ अनुभूति का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है:

हरित घास के नीचे से
ये प्यारे प्यारे नीले नीले
फूल जो ऊपर झाँक रहे हैं
वासंती की मदमाती आँखें हैं।
एक फूल को मैंने तोड़ा
न जाने क्यों मेरे अन्तर में
भावों का एक ज्वार उठा,
एक कसक उठी, एक चाह जगी
एक चिर-विस्मृत सौंदर्य-सुधा की याद लगी।
मम अंतर की ज्वाला को
बुलबुल निज स्वर में ढाल रही
और, मेरे अन्तर की पीड़ा से
बन-बन कम्पित, मुखरित है।

अपलक नयनों से प्रिय वसन्त की प्रतीक्षा करती जर्मन कवयित्री कुमारी मारग्रेट स्टेंकर की यह हृदयग्राही कविता सुनिए—

मैं तुम्हारी लम्बी प्रतीक्षा किये बैठी थी,
राह में पलक पाँवड़े बिछाए,
और तुम प्रपात के रूप में
कल-कल निनाद करते हुए
मुझे जगाते आये !
तुम्हारी मुस्कराहट के दर्शन
मैंने पुष्पों में पाये,
और फिर मैं मन ही मन
मुस्करा उठी,
तुम्हें चूमने के लिए, प्यारे !
वसन्त तुम आ गये,
स्वागत !

अन्त में रूसी कवि अफ़नसी फेट का यह मधुमय चित्रण देखिए—

मैं फिर आता हूँ नया उपहार लेकर
तुम्हें यह कहने कि है प्रभात सुंदर,
कि मंजरियाँ ओसकणों से भीगी-भीगी
और हैं स्वर्णिम धूप में चित्रमयी !
कहने, कि वनवीथियों में अँगड़ाई ले रही है
हर कुंज-कुंज में, शाख-शाख में
कि सद्यः जागे विहगगण की काकली में
हो उठी है आज आतुर प्यास मुखरित !
कहने, कि सभी से भेंटता हुआ
मधुरानंदसमीरण में बह रहा है,
कि मैं क्या गाऊँगा? न जानता हुआ
फिर भी जानता हूँ, गान मुझमें उठ रहा है !

इस प्रकार वासन्ती सौंदर्य ने विश्व के सभी कवियों को समान भाव से प्रभावित किया है।

बनन में बागन में बगरो वसन्त है

श्री राधेश्याम गुप्त पत्रकार

ऋतुराज वसन्त के आगमन से सर्वत्र एक नयी चेतना जाग उठी है। तुषार के घोर सन्ताप से संत्रस्त वन-उपवन तरु-गुल्म और गिरि-पर्वत पुनः सुहावने हो उठे हैं। इन्दीवरों में नये दल निकलने लगे। छोटे-छोटे हरे पल्लव फैलने लगे, मानों नीलम के फर्श पर मणि-मणिक्य जड़े जाने लगे हैं। सुदूर क्षितिज के उस पार तक खेतों में इठलाती-लहराती पीली सरसों, आम्रमंजरियों पर बैठी काली कोकिल की कूक, अशोक की नवफूटी कोपलें, निर्गुंडी टेग, पलास के रक्तिम पुष्प टेसू, सहकार मंजरी के केसर से मूर्छित और मधुपान से मत्त होकर ठौर-ठौर सुरीली शहनाई बजाते भौंरे कल्याणमय मधुमास के आगमन का नवीन सन्देश दे रहे हैं। समस्त प्रकृति ऋतुराज के भव्य स्वागत के लिए मदमस्त होकर उमंग से आत्म-विभोर हो नाच उठी है। इस उल्लासमय अवसर पर सौन्दर्य की अधिष्ठात्री प्रकृति का अंग-अंग अपनी मनोज्ञता से आच्छादित और हिल्लोलित हो रहा है।

भारतीय कवि का भावुक हृदय ऋतुराज वसन्त के इस अपरिमित नयनाभिराम सम्मोहक सौन्दर्य एवं शोभा पर खूब रीझा है। अनुपम उल्लासयुक्त वातावरणवाले वसन्त ने काव्य साधकों को नवीन प्राणोदन दिया है। फलतः उसकी इस अतुलित चारु भव्यता से रूप-पिपासु साधकों का मन मादकता, आनन्द और हर्ष से विभोर हो उठा है, जिससे उन्होंने ऋतुराज के अनूठे चित्र प्रस्तुत किये हैं। तथा जिनमें प्रकृति का मानवीकरण करके उसमें एक अपूर्व चेतनाशक्ति का दिग्दर्शन कराया है।

वसन्त ऋतु का आगमन होते ही मधुमास का विलास प्रारम्भ हो जाता है। सर्वत्र एक नव्य स्फूर्ति तथा मस्ती छा जाती है। त्रिविधि- दक्षिणी शीतल सुगन्धित समीर, रंग-बिरंगी कुसुमावली, भ्रमरों का मधुर गुंजार, बौराये आम्रवृक्षों पर कोकिलों की कूक चित्त को अनायास ही प्रफुल्लित कर देती है। श्री द्विजदेव कवि ने प्रकृति के ऐसे ही रूप व्यापार का मौलिक चित्रण किया है :—

औरै भाँति कोकिल चकोर और ठौर बोले,
औरै भाँति सबद पपीहन के ह्वै गये।
औरै भाँति पल्लव, लिये हैं बृन्द-बृन्द तरु,
औरै छबि-पुंज कुंज-कुंजनि उनै गये।
औरै भाँति शीतल सुगंध मन्द-मन्द डोलै,
द्विजदेव देखत न ऐसे पल ह्वै गये।
औरै राग, औरै रंग, औरै साज, औरै संग,
औरै बन, औरैं छन, औरै मन ह्वै गये।"

कवि देव को अनंग सहचर की कोमलता, कमनी एवं सुकुमारता ने इतना अधिक प्रभावित किया है उन्होंने ऋतुराज को शिशु के रूप में देखा है जो राजम में दास-दासियों की देखरेख में गहरी निद्रा में निमग्न कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण में वासन्ती वैभव छटा ही सुन्दर ढंग से अंकित की है :—

डार द्रुम पालना, बिछौना नव पल्लव के
सुमन झँगूला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झुलावैं, केकी, कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावै, हुलसावै करतारी दै।
पूरित पराग सों उतारयो करै राई-लौन,
कंजकली नायिका लतान सिर सारी दै।
मदन महीपति कौ बालक वसन्त ताहि
प्रातहिं जगावत गुलाब चटकारी दै।

बालकों की भाँति मनोमुग्धकारिणी क्रीड़ाएँ हुए ऋतुराज वसन्त ने सर्वत्र व्याप्त होकर जगती के अणु में अपनी छवि-माधुरी की निर्झरिणी प्रवाहित क है जिसमें मानव से लेकर पशु-पक्षी तक आप्लावित ह हैं। कवि पद्माकर के भावों का प्रवाह यों उमड़ा है :

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में,
क्यारिन में, कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में, पौनहू में,
पानन में पीक में, पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में, दुनी में देस-देसन में,
देखौ द्वीप-द्वीपन में दीपत दिगन्त है।
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में बगरयौ वसन्त है।

प्रकृति वर्णन के सिद्धहस्त कवि सेनापति ने सुषमा-श्री का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किय कवि ने ऋतुराज को उद्दीपन के रूप में ही विशेष लिया है। संयोग में भी और विप्रलम्भ में भी, पर वि में इसका अधिक प्रयोग हुआ है। इस ऋतु में टेग और पलास के लाल-लाल पुष्पों की विशेष अ रहती है। इन पुष्पों को निर्धूम अंगार मानकर उत भरने की विह्वलता विचार और वर्णन यद्यपि कुछ है किन्तु फिर भी वह मार्मिकता रखता है :—

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विसाल, संग–
स्याम रंग भेटि मानों मसि में मिलाये है।
तहाँ मधुकाज आस बैठे मधुकर पुंज,
मलय-पवन बन उपवन धाये हैं।
'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु––
देखि-देखि भाव कविता के मन आए हैं।
आधे बन सुलगि, सुलगि रहे आधे मानों
विरही दहन काम क्वैला परचाये हैं॥

इस समय आम के नये बौर की सुगन्ध से समस्त वन-उपवन महक उठे हैं। धीमी और सुगंधित वायु से आम्र-मंजरियों से लदी टहनियाँ आपस में आलिंगन कर एक दूसरे का चुम्बन कर रही हैं। आम के बौरों की सुगन्ध से छककर तथा माधुरी लता के पुष्पों की मधुर सुगंध से सने और मकरन्दरूपी मदिरा-पान से मतवाले भ्रमर इधर-उधर झुण्ड बाँधकर मँडरा रहे हैं। पर ऋतुराज की छटा ने वियोगियों, उपवनों तथा वनों के समाज को काम बाणों का पंजर बना दिया है। कवि बिहारी के भावों का प्रवाह यों उमड़ता है :––

छकि रसाल-सौरभ सने, मधुर-माधुरी गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झँपत, झार-झार मधु गंध॥
दिस-दिस कुसुमित देखियत उपवन विपिन समाज।
मनहुँ वियोगिनु कौ कियो सर-पंजर ऋतुराज॥

कवि 'पूर्ण' ने तो ऋतुराज वसंत को एक सर्व सुन्दरी किशोरी के रूप में देखा है। अपनी सम्पूर्ण सज्जा के साथ वसन्त ने किसी प्रसाधन तथा शृंगार-सम्पन्न अति आकर्षक नवयौवना से होड़-सी लगा रखी है। दोनों ही आकर्षण में एक दूसरे को पराजित कर देना चाहते हैं :––

बासित क्यारि उतै, स्वांसा की सुगन्ध इतै,
अधुरन लाली इतै, उतै तरुवन्त की।
उतै अरविंदन पै छटा ज्यों मलिंदन की,
अंगन पै इत केस कालिमा अनन्त की।
कोकिल कलाप उत, मधुर अलाप इत,
टेसू उतै, सारी इतै सूहो छविवंत की।
'पूरन' बिलोकौं चलि कैसी लाल कानन में––
होड़-सी लगी है षोड़सी की औ वसन्त की।

मधु-सम्पन्न ऋतुराज वसन्त ने ठाकुर कवि की विरहिणी नायिका को काम के बाणों का शर-पंजर बना दिया है। फिर भी यह काली कोकिला पेड़ की ऊँची डाल पर बैठकर कूक रही है और भौंरों ने तो गूंज-गूंजकर उसका हृदय ही छलनी कर दिया है। किन्तु विरहिणी को विश्वास है कि उसका कन्त उसके पास अवश्य आयेगा। तभी तो वह कहती है :––

बौरे रसालन की चढ़ि डारन
कूकत कोयलिया मौन गहै ना।
'ठाकुर' कुञ्जन-पुञ्जन गुंजत
भौरन को दल चुप्प चहै ना।
सीतल मन्द सुगन्धित बीर
समीर लगै तन धीर धरै ना
व्याकुल कीन्हों वसन्त बनाय कै
जाय कै कन्त सौ कोऊ कहै ना।

संयोग की अवस्था में जो प्रकृति सौन्दर्य मादक और मनोहर प्रतीत होती है, वियोग के क्षणों में वही दाहक बन जाती है। वसन्त का उमंग उन्माद और सौन्दर्ययुक्त मधुमय वातावरण भी प्रिय के वियोग में कवि मंसाराम की विरहिणी नायिका के हृदय को कचोट रहा है। जहाँ-तहाँ खिलते पलास के पुष्प अग्नि की प्रज्वलित लौ के समान लगते हैं। प्यारे के वियोग की विरहाग्नि में जलती हुई उसकी प्रियतमा कहती है :––

प्यारे के वियोग आली उठि आग वृन्दावन
जरती सदेह कुंजें सुन्दरी उहाँ-उहाँ।
बौरे कचनार, आँच उठति पलासन तें
कुसुम करील डीठ परति जहाँ-तहाँ।
'मंसाराम' तिन्हैं भेंटि आवत समीर वीर
तपो जात तन तातो लागति जहाँ-तहाँ।
मृग अधमारे बिललात हैं भंवर कारे
कोयल हैं कोइलें, पुकारती कहाँ-कहाँ।

ऐसे मीठे, सरस, सरल, सुन्दर और सहज काव्य-वर्णन बरबस ही असंख्य हृदयों को स्नेहप्लावित कर देते हैं। ब्रजभाषा काव्य-साहित्य में ऋतुराज वसन्त के ऐसे अनेक सजीव काव्य-चित्रण हैं जिनकी सरसता, सरलता, सुन्दरता और सहजता में मानवमन आनन्द की हिलोरों में अनायास ही डूबने लगता है।

असम का परिचय (२)

नृतत्व शास्त्र की दृष्टि से असम में कई प्रकार के रक्तों का मिश्रण है। विविध जातियाँ भिन्न-भिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें मुख्य हैं आस्ट्रो-एशियन (खासी जयन्तिया), शुद्ध द्रविड़ (केवर्त्त और बानिआ), मंगोल-द्रविड़ (कचारी, राभाभेष, मिरी, लालंग, गारो, नागा, कूकी आदि) और आर्य (कलिता, कायस्थ और ब्राह्मण)। विशुद्ध मंगोल रक्त केवल अ-होमों के पुरोहितों में तथा विशुद्ध आर्य रक्त ब्राह्मणों में मिलता है। शेष सभी मिश्रण हैं। मंगोल-द्रविड़ सभी पीले या गौरवर्ण के होते हैं। महाभारत में किरातों का वर्णन स्वर्ण-पीत वर्ण कह के किया गया है। ये द्रविड़-मंगोल मिश्रण मंगोलों की बर्मी शाखा और तिब्बती शाखा में अधिक हुआ है। यहाँके कान्यकुब्ज ब्राह्मण सावधानी से अपना रक्त अभी तक सुरक्षित रखे हैं। गौर स्वर्णाभ वर्ण, उन्नत नासिका, ऊँचे कदवाले बहुत से ब्राह्मण गाँवों में पाये जाते हैं। यों अपवाद हर जगह हैं, और जो ब्राह्मण गौड़ देश से गये हैं उनका रंग कालापन लिये हुए है। परन्तु कुछ परिवार सीधे कन्नौज से पालों, शालस्तम्भों एवं वर्मनों तथा बाद में अहोमों द्वारा निमंत्रित होकर गये हैं। संस्कारों की पद्धति, विवाह की पद्धति एवं अन्य क्रियाकर्म में गौड़ ब्राह्मणों का अनुकरण न करके काशी की परम्परा का अनुकरण होता है। आर्यों में 'कलिता-वर्ग' सर्वप्रथम इस देश में पहुँचा। ये कायस्थों से (जिन्हें बंगाल, आसाम, उड़ीसा में क्षत्रिय श्रेणी का माना जाता है) जरा सा नीचे माने जाते हैं। ये मूलतः खेतिहर हैं। आज ब्रह्मपुत्र की उपत्यका में समूची आर्य सभ्यता विद्यमान है। परन्तु विविध पहाड़ियों में ऊपर की मंगोल-द्रविड़ जातियाँ अपने-अपने रीति-रिवाजों के साथ चल रही हैं।

खासी और जयंतिया की पहाड़ियों में जो जाति रहती है उसे खासी और जयन्तिया ही कहते हैं। खासी लोगों में मातृ सभ्यता का प्राधान्य है और स्त्रियों को बहुपतित्व का अधिकार है। धन-सम्पत्ति पुत्री को मिलती है, पुत्र को नहीं। इनका धर्म 'प्राकृतिक धर्म' है। कुछ जादू-टोना एवं विविध परम्पराएँ, जैसा आदिम प्रकार के धर्मों में होता है, चलती हैं। प ईसाई मिशनरी बड़ी तेजी से काम कर रहे हैं।[१]

कचारी और कोच का असम के इतिहास में मह पूर्ण भाग है। कोचों की रूपरेखा मंगोलों जैसी परन्तु मूलतः ये द्रविड़ थे। दारंग जिले के पास ग की पहाड़ियों में गारो जातियाँ रहती हैं। लुशाई पह में डफला और लुशाई। लुशाई प्रायः सभी क्रिश्चि हो गये हैं। उनमें साक्षरता ८०% है। लुशाई पं माला में ही मिजो पहाड़ी के आस-पास रहनेवाले मि संघ हैं। इन्होंने भी लुशाई लोगों की तरह क्रिश्चि जीवन प्रणाली अपना ली है। लुशाई-मिजो पहाड़ियों ७०% व्यक्ति ईसाई हैं। खासी पहाड़ी में ४०% नागाओं में २०%। इनमें जो ईसाई नहीं हैं वे प्र आदिम धर्म को मानते हैं। परन्तु इनके सामाजिक ठन पर भी पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव पड़ रहा है।

---

[१] इसमें सन्देह नहीं कि ये मिशनरी स्कूलों और पतालों द्वारा इन जातियों की सेवा कर रहे हैं तथा उ उनके जीवन-स्तर को उठाया है। फिर भी राष्ट्री की दृष्टि से किसी भारतीय धर्म के मिशनरी यह करते तो और सुन्दर होता क्योंकि कभी कुछ फुसफुसाहट सुन पड़ती है जिससे "ईसाईस्तान" दुर्गन्ध प्राप्त होती है। अन्यथा ईसाई धर्म के प्रति पंक्तियों के लेखक के मन में अति आदर है। धर्म सबसे ऊँची परिणति है 'प्रेम', जिसकी सर्वोत्तम वैष्णवों और रोमन कैथोलिकों दो ही में मिलती किया भी जाय तो क्या किया जाय? हिन्दुओं के नरी आर्य-समाज पर शासन की क्रूर दृष्टि है। बनिया बन गये हैं। बौद्ध ही कुछ कर सकते थे सरकार से उन्हें प्रोत्साहन भी मिलता। परन्तु उ हिन्दुओं को गाली देने से ही फुरसत नहीं। ह निकली धर्मानन्द कौशाम्बी की मोटी पुस्तक "M and Reality" इस बात का सबूत है। आलोच सहिष्णुता को बौद्ध-सन्देश घोषित करनेवाले पण्डित इस समय सबसे अधिक द्वेषपूर्ण भाषा उपयोग करते हैं। यह बड़े खेद की बात है।

नागा जाति के लोग नागा पर्वतों में रहते हैं। इस समय तो अलग से 'नागालैण्ड' की रचना हो गयी है। नागाओं में ८ बड़े-बड़े घराने हैं——आओ, अंगभी, लोहता, सेमा, रेंगचा, कोन्यक आदि। इसमें कोन्यक बड़े लड़ाके होते हैं। इनमें अतिथि-सत्कार की बड़ी प्रथा है। ये मृत मांस का भी भक्षण बड़े स्वाद से कर लेते हैं। पहले नरमुण्ड का संकलन हरेक नवयुवक के लिए गौरव की वस्तु था। परन्तु ये सब बातें ईसाई धर्म के प्रवेश से धीरे-धीरे खतम हो रही हैं। मणिपुर राज्य की जनता हिन्दू धर्म और संस्कृति को मानती है, परन्तु रक्त के हिसाब से नागा और कूकियों जातियों का मिश्रण है। मणिपुर की गद्दी पर, राजकुमार नहीं, राजकुमारी ही अभिषिक्त होती थी। १९४७ में इस राज्य का भारत संघ में विलय हो गया। नागाओं के अन्दर ग्राम प्रजातंत्र आज भी जीवित है।

खाम्टी, मीरी, मिरीशी आदि अनेक छोटी-मोटी जातियाँ हैं जिनकी अपनी-अपनी अलग संस्कृति और अलग भाषा है। मध्य असम में नवगाँव जिले में तथा शिवसागर में मिकिर की पहाड़ियाँ हैं। इनमें तुरंग, वारो, फकियाल आदि मिकिर-जाति-संघ के घराने रहते हैं।

'नेफा' के अन्तर्गत विविध जातियों का मधुमक्खी के छत्ते की तरह अद्भुत जाल बिछा है। इनमें प्रायः असम के दूसरे भाग में रहनेवाली जातियों के ही प्रतिनिधि हैं। (१) नेफा में रहनेवाली जातियों की सूची इस प्रकार से दी जा सकती है——

(१) मोंपा, शेरदूकपेन, खोवा, डफला और आका (सेला में)।

(२) डफला और अपतानी (सुवर्णश्री में)

(३) मियोंग, गैलाङ, बोकर, बोरी, पालीलिबो, वागिन, मोंपा (अबोर में)।

(४) मिजू, दिगरू, पदम, खम्प्टी, सिगफों, काचीन, तंगसा, बांचो, होवा नोकट्टे (तिराप सीमान्त में)।

(५) मिशमी (मिशिमी पहाड़ी में)।

(६) संतम, चांङ, यिमचंग्र, कोन्याक, फोम और सीमा (नागा पहाड़ी की तलहटी में)।

इन जातियों में प्रायः वही हैं जो असम के मैदानी इलाकों में पायी जाती हैं। 'नेफा' में दो ही प्रकार के धर्म हैं——एक तो आदिम धर्म, दूसरा है बौद्ध धर्म।

असम प्रदेश के धर्म

जहाँ तक पहाड़ी जातियों के आदिम धर्म का प्रश्न है कोई एक समन्वित रूपरेखा प्रस्तुत करना कठिन है। वे प्रकृति की शक्तियों को ही ईश्वर या देवता मानते हैं। जादू, टोने, टोटके एवं विधि निषेधों की इतनी लम्बी और बड़ी **सूची** है कि उन पर लिखने के लिए काफी अनुसंधान एवं संकलन की आवश्यकता होगी। शेष धर्मों में इस्लाम और ईसाई धर्मों की रूपरेखा जैसी अन्य प्रान्तों में है वैसी यहाँ पर भी। यहाँ कोई उनमें नवीनता नहीं आयी है। मुसलमानों की संख्या यहाँ पर दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। यहाँ इस विषय पर कुछ लिखना विषयान्तर होगा।

हिन्दू धर्म का सबसे प्रबल रूप यहाँ वैष्णव धर्म के रूप में है। इसका प्रतिद्वन्द्वी है शाक्त मत। जगत् प्रसिद्ध है कि असम तंत्रविद्या का प्रधान केन्द्र रहा है। कामाख्या मन्दिर में दस महाविद्याओं की मूर्तियाँ एवं मन्दिर की तांत्रिक कीर्त्ति का विशद विज्ञापन इस बात का प्रमाण है। बाद में बौद्ध धर्म का गलित रूप वज्रयान, जिसका केन्द्र नेपाल और तिब्बत था, यहाँ पर चला। सिद्धाचार की भूमि तिब्बत का प्रभाव इस देश पर पड़ा। यहाँ पहले से ही अनार्य संस्कृति विद्यमान थी। अनार्य संस्कृति का मेल इन चीजों से खूब बैठता था। अतः ये चीजें खूब चलीं, विशेषतः निम्न कोटि की जनता में। गोरखनाथ के गुरु मछीन्दरनाथ कामरूप के धीवर थे। उनके बनाये चर्यापदों में लोहित (ब्रह्मपुत्र का दूसरा नाम) का जिक्र बार-बार आता है। बौद्ध धर्म के ध्वंस के बाद ये सब चीजें शाक्त मत में आत्मसात् हो गयीं।

परन्तु उच्च वर्ग में शाक्त मत को प्रश्रय नहीं था। बर्मन वंश, शालस्तम्भ-वंश, पालवंश के बाद कोच राजागण सभी शैव या वैष्णव थे। अभिजात वर्ग शैव या वैष्णव ही था। परन्तु साधारण जनता का धर्म तो लोक-धर्म होता है। उसमें ऊपर की कही तंत्र-मंत्र की बातें और शाक्त धर्म का प्रभाव काफी था। जनता के अन्दर इस शाक्त उपासना का ऐसा विकृत रूप फैला कि भैरवी चक्र नारी-अपहरण चक्र बन गये और दुराचार ने अपनी

सीमा को स्पर्श कर लिया। ऐसे क्षण १६वीं शती में असम प्रदेश में एक महापुरुष का जन्म हुआ। महापुरुष शंकरदेव, जिन्होंने अपने शिष्यों के द्वारा वैष्णव साहित्य का प्रचार करवाया तथा वैष्णव धर्म की विजय-पताका इस प्रदेश में उड़ा दी। जनता शाक्तों की विकृति से तंग थी। अतः काफी तादाद में लोगों ने इस धर्म का स्वागत किया। शंकरदेव एवं उनके शिष्य माधवदेव का वैष्णव धर्म 'महा पुरुषिया सम्प्रदाय' कहलाता है। दोनों उच्च कोटि के कवि, दार्शनिक एवं नाटककार तथा चित्रकार थे। इनके मरने पर दो और महापुरुष आये, दामोदरदेव और हरिदेव। इन्होंने वैष्णव धर्म की अन्य दो स्वतंत्र शाखाओं की स्थापना की।

शंकरदेव के वैष्णव धर्म का मूल आधार है, भागवत। इस धर्म में श्री विग्रह की जगह भागवत की पोथी ही पूजी जाती है। साथ ही मन्दिर हो तो ठीक है, अन्यथा 'नामघर' (कीर्त्तनगृह) ही इस धर्म का मुख्य केन्द्र है। पूजा के स्थान पर कीर्त्तन को ही प्रतिष्ठित किया गया है। यों मूर्तिपूजा का विरोध कहीं नहीं है और बड़े-बड़े महापुरुषिया मठों में कृष्ण-मूर्त्तियाँ भी हैं। शायद सरलता के लिए कीर्त्तन को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। प्रत्येक गाँव में यहाँ 'नामघर' होता है। कई गाँवों के ऊपर एक 'स्तम्भ' (मठ) रहता है। सामाधिकारी ही प्रधान गुरु होता है। शंकरदेव ने कर्मकाण्ड को कोई महत्त्व नहीं दिया है । कट्टर महापुरुषिया वैष्णव श्राद्ध आदि न करके भागवत का वाचन करा देते हैं। भागवत का पद्यानुवाद शंकरदेव माधवदेव ने स्वतः किया है। शंकरदेव के धर्म का दूसरा नाम है—"एकशरण धर्म" । एक 'श्रीकृष्ण' को छोड़कर (या एक 'राम' को छोड़कर) अन्य कोई देवता नहीं। यहाँ तक कि 'राधा' का भी वहिष्कार है। कामरूपी तांत्रिक उपासना में 'नारी' केन्द्र थी। इसीसे शंकरदेव ने 'राधा' का भी वहिष्कार कर दिया। श्रीकृष्ण ही परमात्मा हैं। एकमात्र वही सारे देवता हैं। शंकरदेव ने 'राम' की प्रशंसा में भी गीतों की रचना तथा एकाध नाटक ('राम विजय नाट') भी लिखा है। शंकरदेव धार्मिक नेता और सुधारक दोनों थे। शूद्रों को भी कण्ठी-माला धारण कर लेने पर भागवत बाँचने का अधिकार इन्होंने प्रदान किया है। यों शंकरदेव से पहले मध्वाचार्य ने, जो 'द्वैत' वैष्णव मत के जन हैं, इस तथ्य को प्रधानता दी थी। माध्वमत का के उस समय बंगाल भी था। चैतन्यदेव के दीक्षागुरु स्व माध्व थे।

दामोदरदेव और हरिदेव ब्राह्मण थे। इन्हें अपने वैष्णव धर्म को कर्मकाण्ड एवं स्मृति-परम्परा अनुवर्त्ती बनाया है। शंकरदेव-माधवदेव जाति के काय थे। शंकरदेव गृहस्थ थे, एवं माधवदेव उनके शि होते हुए भी संन्यासी थे। उन्होंने ब्रह्मचारी वैष्ण का एक अलग दल स्थापित किया था, 'केवलिया मत इसमें दीक्षा वही लेता है जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले।

शैवधर्म कभी भी असम के अन्दर अपना अलग संगठन नहीं बना सका। शैव मन्दिर काफी हैं। स प्रसिद्ध है उमानन्द का मन्दिर, जो कामाख्या श पीठ के भैरव के रूप में प्रतिष्ठित है। यह गोहाटी पास ब्रह्मपुत्र नदी के भीतर एक रेती पर स्थित है। वह बड़ा ख़तरनाक है। शिवरात्रि को यहाँ पर मेष बलि दी जाती है। यह भारतवर्ष के अन्य शिवमन्दिरों से बलि को छोड़कर दूसरी बातों में समान है।

वैष्णवों और शाक्तों का ऊपर वर्णन किया है। परन्तु इतना होते हुए भी व्यवहार में देखा गया कि लोग विष्णु, शिव, शक्ति सभी को समान मानते आज के युग में इन बातों को लेकर रागद्वेष करने बेवकूफी कौन करेगा? आज हिन्दू धर्म का सम रूप ही व्यवहार में लाया जाता है।

भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक

असम के तीन प्राकृतिक भाग हैं: ब्रह्मपुत्र या मुख्य असम, सुरमा घाटी और दक्षिण का पह क्षेत्र। एक ओर हिमालय और दो ओर ऊँची पहा से घिरे होने के कारण इस प्रदेश में छोटी-बड़ी अ नदियाँ हैं। इनमें से कई बड़ी नदियाँ यातायात के में आती हैं। इस प्रदेश की स्थिति ऐसी है कि की खाड़ी की मानसून की हवाएँ इसके पहाड़ों से वेग से टकराती हैं और यहाँ बहुत अधिक वर्षा होती इसके विभिन्न क्षेत्रों में ५० इंच से २५८ इंच तक औसत वर्षा प्रतिवर्ष होती है। चिरापूंजी नामक

में सबसे अधिक पानी गिरता है। १८६१ में यहाँ ९०१ इंच पानी गिरा था। साधारण रूप से चार सौ से पाँच सौ इंच पानी यहाँ बरसता है। यहाँ एक बार एक दिन में ४१ इंच पानी गिरा था! यह शिलांग के निकट है, और संसार में सबसे अधिक वर्षा के लिए प्रसिद्ध है।

राजधानी शिलांग नगर में है जो खासी-जयन्तिया पहाड़ियों पर प्रायः चार हजार फुट की ऊँचाई पर बसा है। यहाँ रेल नहीं जाती। गौहाटी से यह ६३ मील है। वहाँसे शिलांग तक सुन्दर पहाड़ी सड़क बनी है। असम में बड़े नगर नहीं हैं। एक लाख की जनसंख्या का भी कोई नगर नहीं है। गौहाटी, तेजपुर, डिब्रूगढ़ और सिलचर महत्त्वपूर्ण कस्बे हैं। सारे राज्य में केवल १७ नगरपालिकाएँ हैं। यह गाँवों और छोटे कस्बों का प्रदेश है। गाँवों की संख्या प्रायः साढ़े पचीस हजार है।

पहाड़ी और बरसाती प्रदेश होने के कारण यहाँ असंख्य छोटी नदियाँ और नाले हैं जिनके कारण सड़कों का बनाना बड़ा कठिन है, क्योंकि उन पर पुल बनाना और बरसात में पुलों का रखरखाव करना सहल नहीं है। इसलिए यहाँ प्राचीन काल से ही नदियों के द्वारा आवागमन और माल भेजने का चलन रहा है। ब्रह्मपुत्र के द्वारा स्टीमर कलकत्ते तक जाते हैं, किन्तु पाकिस्तान के बन जाने से नदी के उस यातायात में काफी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं। अब सरकार सड़कों को बढ़ाने की ओर ध्यान दे रही है और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सड़कों की लम्बाई तिगुनी हो गयी है। अब असम में प्रायः सात हजार मील लंबी पक्की सड़कें हैं। ब्रह्मपुत्र नदी असम को उत्तरी और दक्षिणी असम में बाँट देती है। अब ब्रह्मपुत्र पर पुल तैयार हो गया है। इससे दोनों क्षेत्रों में व्यापार और आवागमन की सुविधा हो जायगी। असम में रेल की सुविधा अधिक नहीं है। अमीनगाँव से ब्रह्मपुत्र के उत्तर तेजपुर तक रेल चली गयी है। अमीनगाँव से ब्रह्मपुत्र पार करने पर पांडू नगर मिलता है। यहाँसे ब्रह्मपुत्र के दक्षिण किनारे की रेल आरंभ होती है जो सदिया और डिब्रूगढ़ तक चली गयी है। यहाँ छोटी लाइन की रेल है जो बहुत तेज नहीं चलती।

भारत के विभिन्न भागों से असम पहुँचना कठिन ही नहीं, बहुत समय भी लेता है। इसलिए असम की यात्रा वायुयान द्वारा अधिक सुविधाजनक है। असम में यात्रा इतनी मंथर गति से होती है कि एक नगर से दूसरे नगर जाने में बहुत समय लग जाता है। इसलिए सारे मुख्य नगरों को वायुयान जाते हैं, और समय बचाने के लिए लोग वायुयानों से यात्रा करना पसंद करते हैं। इसी कारण इस प्रदेश में वायुयान-यात्रा का अधिक चलन है।

असम का भूगर्भ अस्थिर है। इसलिए वहाँ बहुधा भूकम्प आया करते हैं। असम में १८९१ में जो भूकंप आया था वह संसार के इतिहास में सबसे भयंकर था। १९५७ में वहाँ जो भूकम्प आया वह भी संसार के सबसे भयंकर प्रथम पाँच भूकम्पों में गिना जाता है।

नदियों के मैदानों में अच्छी खेती होती है। लोगों का मुख्य भोजन चावल है। चावल खूब होता है। गेहूँ की खेती नहीं के बराबर होती है। गन्ना, आलू, दालें और सरसों भी काफी पैदा की जाती है। असम में जूट की भी खेती होती है और यहाँ काफी और अच्छा जूट होता है। कपास और तमाखू भी उत्पन्न होती है, किन्तु असम की सबसे महत्त्वपूर्ण पैदावार चाय है। यह पहाड़ों की ढालों पर उत्पन्न की जाती है। असम की चाय संसार प्रसिद्ध है और इंग्लैण्ड में इसकी बहुत खपत है। यहाँ असंख्य चाय-बागान हैं जिनमें उत्तर भारत के कुली अधिकतर काम करते हैं। यह रोजगार पहिले अँगरेजों के हाथ में था, किन्तु अब कलकत्ते के कितने ही पूँजीपति मारवाड़ियों ने बहुत से चायबागान खरीद लिये हैं। असम की चाय से भारत को कितनी ही विदेशी मुद्रा मिलती है।

वनों और जंगली जानवरों के उल्लेख के बिना असम का वर्णन अधूरा रहेगा। अफ्रीका को छोड़कर संसार में असम के बराबर और किसी भाग में जंगली जानवरों की बहुतायत नहीं है। यहाँ गैंडे, मिथुन, जंगली हाथी, शेर, चीते, जंगली भैंसे, तरह-तरह के हिरन तथा अन्य कितने ही प्रकार के जंगली जानवर हैं। इनको नष्ट होने से बचाने के लिए सरकार ने चार सुरक्षित वन-क्षेत्र बना रखे हैं जिनमें शिकार करना मना है। इनमें काजीरंगा नामक सुरक्षित वन प्रसिद्ध है। असम में तरह-तरह के जंगल हैं और उनमें नाना प्रकार की मूल्यवान लकड़ी मिलती है।

असम में रेशम का उद्योग बहुत पुराना है। वहाँ का रेशमी कपड़ा, रेशमी चादर और मूँगा नामक रेशम बहुत प्रसिद्ध है। किन्तु आधुनिक युग में असम का महत्त्व उसके तेल के कुओं के कारण है। भारत में ये सबसे पुराने तेल के कुएँ हैं। असम के पूर्वी छोर पर, ब्रह्मपुत्र के दक्षिण, डिग्बोई नामक स्थान में पुराने तेल के कुएँ हैं। नाहरकटिया में भी नये कुएँ खोदे गये हैं। संभावना है कि असम में और भी मिट्टी का तेल मिले। असम में कच्चे मिट्टी के तेल से काफी परिमाण में केरोसिन और पेट्रोल तैयार किया जाता है। मिट्टी के तेल के अतिरिक्त यहाँ कोयले की भी खानें हैं जिनसे प्रायः पाँच लाख टन कोयला प्रतिवर्ष निकलता है।

असम भारत का अत्यंत महत्त्वपूर्ण किन्तु उपेक्षित भाग रहा है। भारत के अन्य भाग के लोगों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। चीनी आक्रमण के कार उसका महत्त्व बहुत बढ़ गया है और एक प्रकार से उसक सुरक्षा के अर्थ सारे देश की सुरक्षा हो गये हैं। अ एव उस पर चीनियों की शनि दृष्टि हुई है। इतना नहीं, पाकिस्तान की निकटता ने भी वहाँ अनेक स स्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। असमी और बँगला भाषा के संघर्ष का भी वह अखाड़ा हो गया है। हमें यह भूल जाना चाहिए कि असम हमारा सबसे महत्त्व पूर्वी प्रदेश है। वह हमारा पूर्वी द्वार है। उसकी सुरक्ष उसकी आन्तरिक शान्ति, और उसकी समृद्धि सारे के लिए आवश्यक है। देश के अन्य भागों के निवासि को असम की गति-विधियों में अधिक रुचि लेनी चाहि और उससे अधिकाधिक सांस्कृतिक और आर्थि सम्बन्ध बढ़ाने चाहिए।

मलिनियाँ

श्री रामचंद्र 'चंद्रभूषण'

मलिनियाँ तेरी डलिया बिना डाल फूली-अनफूली रही

कौन सी सोनपरी का केश
बहा लाई गीतों की धार
कि जिसको दूर-दूर से देख
मचलता मन का राजकुमार
कि सुधियाँ रह-रह उठीं कचोट
सेज भी होकर शूली रही।

उझक सी गई नशीली आँख
फड़कने लगी रँगीली पाँख
स्वप्न के अणु का यह विस्फोट
लाख में एक, एक में लाख
नुकीली सी लगती तसवीर
तीर सी बनकर तूली रही।

शब्द ने दिया एक व्यवधान
अर्थ से मिली एक सौगन्ध
धूप में उखड़ गया हर रंग
हवा में बहक गई हर गंध
बौर से फिसल गये हर भौंर
तितलियाँ भूलीं-भूलीं रहीं।

युद्ध के हलके स्वचालित अस्त्र

जब हम वाटर्लू, वाग्राम, सीडान आदि के प्रसिद्ध युद्धों का वर्णन पढ़ते हैं तो युद्धभूमि में एक साथ पलटनों और रिसालों के शत्रु पर आक्रमण करने और सैनिकों के एक दूसरे से गुथ जाने और मारकाट के वर्णनों स हमें रोमांच हो जाता है। क्रीमिया युद्ध के बालक्लावा में अंग्रेज लाइट ब्रिगेड ने रूसियों पर जो आक्रमण किया था उसे लार्ड टैनिसन ने अपनी 'चार्ज आफ दि लाइट ब्रिगेड' नामक कविता में अमर कर दिया है। इस देश में भी मुदकी, फीरोजपुर, महीदपुर, पलासी आदि के युद्धों में इसी प्रकार लड़ाइयाँ हुई। यद्यपि उन दिनों बंदूक काम में आती थीं, तथापि उसको एक बार दागने में इतना समय लगता था कि जो रिसाला साहस के साथ आक्रमण करने की ठान लेता, उसे रोकना कठिन हो जाता। किंतु स्वचालित अस्त्रों के आविष्कार ने स्थिति एकदम बदल दी। अब स्वचालित अस्त्रों से गोलियों की लगातार मार की जा सकती है। संहारकारी आधुनिक गोलियों की अजस्र बौछार का सामना करना अब संभव नहीं है। स्वचालित अस्त्रों ने युद्ध का ढंग ही बदल दिया है।

पहिले यह समझ लेना चाहिए कि स्वचालित अस्त्र (ऑटोमैटिक वेपन automatic weapon) क्या है? साधारण बंदूक को चलाने के लिए प्रत्येक बार उसे भरना, उसका घोड़ा दबाना और उसके खाली कारतूस को निकालना पडता है। इसमें समय लगता है। बहुत अभ्यस्त सिपाही भी ऐसी बंदूकों से एक मिनिट में आठ दस गोलियों से अधिक नहीं चला सकते। किंतु स्वचालित अस्त्रों में कारतूसों या गोलियों की माला या पेटी लगा दी जाती है, और जब एक बार उसका घोड़ा दबा दिया जाता है तब वह बराबर दगती चला जाता है। गोली अपने आप नली के सामने आती जाती है और खाली कारतूस अपने आप निकलता जाता है। इस प्रकार स्वचालित अस्त्र से एक मिनिट में कई सौ गोलियाँ दागी जा सकती हैं।

स्वचालित छोटे हथियार अनेक प्रकार के होते हैं। यहाँ हम उनमें से केवल कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण हथियारों का वर्णन करेंगे जिनका उपयोग साधारणतया किया जाता है।

(१) **मझोली मशीन गन**—'मशीन गन' एक प्रकार की स्वचालित बंदूक है किंतु बंदूक की तरह हर एक सिपाही इसे लेकर चल नहीं सकता। सबसे पहिले इसका आविष्कार हिरम मैक्सिम नामक एक अमरीकन ने किया था। बाद में इसमें सुधार होते गये, और अँगरेजों ने 'विकर' नाम की एक मशीनगन बनायी जो बहुत प्रसिद्ध हुई। वर्तमान मझोली मशीनगन उसी का उन्नत संस्करण है। यह एक मुड़नेवाली तिपाई पर इस तरह चढ़ाई जाती है कि उसकी नली आराम से चारों दिशाओं में घूम सकती है। इसकी नली धातु की एक चौड़ी नली में रख दी जाती है। इस चौड़ी नली में पानी भरा रहता है। तेजी से गोलियाँ चलाने के कारण मशीनगन की नली गरम हो जाती है। उसे ठंडा करने के लिए पानी से भरा यह खोल उसके ऊपर चढ़ाया जाता है। इससे सेना की साधारण एनफील्ड राइफिल की ·३०३ गोलियाँ चलाई जाती हैं। किंतु मशीनगन की नली एक तो राइफिल की नली से लंबी होती है, दूसरे उसकी नली के आरंभ में, भीतर की ओर, ऐसा घुमाव दे दिया जाता है कि जिसके कारण इसकी गोली राइफिल की गोली से अधिक दूर जाती है। इसकी अधिकतम मार २८०० गज है, किंतु १००० गज और २००० गज के बीच इसकी मार बड़ी कारगर होती है। इसके बाद इसका जोर कम हो जाता है। विशेष प्रकार की गोली-बारूद के उपयोग से इस मशीन गन से ४००० गज तक मार की जा सकती है, किंतु यदि इससे ये गोलियाँ अधिक चलायी जायँ तो बंदूक की नली बहुत जल्द बेकार हो जाती है। इसलिए इसमें इस विशेष प्रकार की गोलियाँ बहुत कम चलायी जाती हैं। इसमें २५० गोलियों की एक माला लगा दी जाती है। जब यह मशीन गन चलती है तो माला में लगी गोलियाँ अपने आप उसकी नली के सामने आती जाती हैं। इससे एक मिनिट में ५०० गोलियाँ दागी जा सकती हैं। गोलियों की खाली माला एक क्षण में बदली जा सकती है। यह मशीन गन बड़ी सच्ची मार करती है, और चलाते हुए इसे किसी ओर भी घुमाया जा सकता है।

कुछ देशों की सेनाओं की मशीन गनें कुछ भिन्न प्रकार

की हैं। उनकी नलियाँ पानी के बजाय हवा से ठंडी की जाती हैं। द्वितीय महायुद्ध में जापानी सेना 'स्पेण्डो' नाम की जो मशीन गन उपयोग में लाती थी, वह इसी प्रकार की थी। वास्तव में इसे जर्मनों ने बनाया था। जापानियों ने इसमें कुछ परिवर्तन करके इसे अपने यहाँ बना लिया था। वे इससे ६·५ मिलीमीटर की गोली चलाते थे। यह वही गोली थी जो जापानी सेना की अरीसाका नामक राइफिल से चलायी जाती थी।

जब इस मशीन गन को खाई में बैठ कर चलाया जाता है तो चलानेवाला अपने लक्ष्य को नहीं देख सकता। इसलिए इसमें ऐसा प्रबंध किया गया है कि इसके ऊपर एक डंडा सा लगा रहता है जो खाई के ऊपर तक उठ सकता है। उसके सिरे पर शीशों का ऐसा प्रबंध है कि नीचे बैठा हुआ आदमी खाई के बाहर की चीजें दूर तक देखकर अपने लक्ष्य की स्थिति जान सकता है।

इन मशीन गनों की बटालियनें बना दी जाती हैं, और ये बटालियनें इन्फेंट्री डिवीजनों के साथ लगा दी जाती हैं। वहाँसे उनकी टुकड़ियाँ ब्रिगेडों या पैदल बटालिनों के साथ कर दी जाती हैं। शत्रु को आगे बढ़ने से रोक रखने के लिए ये बहुत प्रभावशाली होती हैं। आक्रमण के समय भी इनकी मार से शत्रु को बहुत हानि पहुँचाई जा सकती है।

२—**हलकी मशीनगनें**—यह मशीनगन बड़ी हलकी होती है। किसी प्रकार की हलकी मशीनगन साढ़े दस सेर, और किसी प्रकार की साढ़े ग्यारह सेर भारी होती है। इनकी नलियाँ हवा से ठंडी की जाती हैं, और यदि इनसे अधिक देर तक बराबर गोलियाँ चलायी जायँ तो ये नलियाँ गर्म होकर लाल हो जाती हैं। इस कारण साथ में फालतू नलियाँ रखी जाती हैं। कुशल सिपाही नली बदलने में पूरा एक मिनिट भी नहीं लेता। इस मशीनगन से इच्छानुसार एक गोली, या सैकड़ों गोलियाँ लगातार चलायी जा सकती हैं। नली एक दुपाई के सहारे खड़ी की जाती है जिससे गोली चलाते समय वह हिलडुल न सके। भारतीय सेना में जो हल्की मशीनगन उपयोग में लायी जाती हैं उसका नाम "ब्रेन" है। इसमें २८ गोलियों की एक पेटी लगा दी जाती है जिससे निकल कर गोलियाँ अपने आप नली में चली जाती हैं। इसकी अधिकतम मार १००० गज की है। यह मशीन गन गैस से चलती है। इसमें जो बारूद रखी जाती है उससे गैस बनती है। यह गैस न एक छेद में होकर इस प्रकार वेग से निकलती है कि का पिस्टन पीछे हट जाता है। यह पिस्टन नली के पि सिरे के 'लॉक' को चला देता है जिससे गोली चल है। इस प्रकार जब एक बार यह क्रिया आरंभ हो तो जब तक बंद न की जाय, वह बराबर चलती रह और गोलियाँ बराबर दगती रहती हैं। नली के पि सिरे का 'लॉक' चलने के साथ खाली कारतूस निकालता, पेटी के नये कारतूस को उसके स्थान पहुँचाता और उसे दागता रहता है। ये क्रियाएँ गै जोर से बराबर अपने आप होती रहती हैं।

पैदल सेना की टुकड़ियों (सैक्शनों) के साथ हलकी मशीनगन चलानेवाले रहते हैं। इनकी मा बचने के लिए शत्रु खडा नहीं हो सकता। उसे अपना नीचा रखना पड़ता है। इसकी मार की आड़ में अ टुकड़ी आगे बढ़ सकती है।

३---**सब मशीनगन**---सब-मशीनगन एक हथियार है और अब पैदल सेना में काफी उपयोग में लगा है। अमरीका में शिकागो नामक एक बड़ा नगर वहाँ के गुंडे वास्तव में डाकू थे। पुलिस से उनकी ब मुठभेड़ हो जाया करती थी। ये गुंडे बड़े धनी और प्रभ शाली थे। पुलिस के पास साधारण तमंचे (रिवाल्व रहते थे। इन गुंडों ने उनके तमंचों की मार को बे करने के लिए इन सब-मशीन गनों को तैयार करा इन्हें टामसन सब-मशीनगन या केवल टॉमी गन भी हैं। यह 'ब्रेन' की तरह चलती थी। उसीकी तरह इ पेटी में भर कर गोलियाँ लगायी जाती थीं। इससे इंच व्यास की गोलियाँ चलायी जाती थीं। यह इ हलकी और ले चलने में सुविधाजनक होती थी कि आदमी बड़े आराम से उसे ले जा सकता था। अच मुठभेड़ के लिए यह आदर्श हथियार था। उससे शत्रु एक साथ गोलियों की बौछार कर, और उसे किंकर्त विमूढ़ बना कर, चुपचाप खिसका जा सकता था। जब सेना में इसके प्रयोग पर विचार किया जाने लगा मालूम हुआ कि यह बहुत जटिल, भारी और महँ और इससे जो गोली मारी जाती है वह आवश्यकता अधिक बड़ी और भारी है। इसलिए इसीके आधार सेना के लिए एक नयी मशीन गन बनायी गयी।

नाम 'स्टैन मशीन कार्बाइन' रखा गया। संक्षिप्त में इसे केवल "स्टैन गन" भी कहते हैं। इससे ९ मिलीमीटर की गोली चलायी जाती है। एक पेटी में १८ गोलियाँ भरी होती हैं, और इससे एक मिनिट में ६०० गोलियाँ चलायी जा सकती हैं। इसमें यह भी सुविधा है कि चाहे एक गोली चलाओ, चाहे तीन-चार गोलियाँ दागो या एक साथ सैकड़ों गोलियों की बौछार कर दो। इसका वजन तीन सेर से कुछ ही अधिक होता है। यह कंधे पर रखकर चलायी जाती है और १०० गज तक इसका निशाना बहुत सच्चा बैठता है। किंतु यह कमर पर रखकर, या बैठकर झुके हुए भी चलायी जा सकती है। इस प्रकार चलाने में इसका ठीक निशाना तीस गज तक ही लग सकता है। जहाँ शत्रु की टुकड़ियों से अचानक मुठभेड़ हो जाय वहाँ यह बड़े काम का अस्त्र है।

४--**राइफिल**--सारे संसार के पैदल सिपाहियों का व्यक्तिगत हथियार राइफिल है। भारत की सेना में जो राइफिल चलती है उसका नाम ली एन्फील्ड बोल्ट ऐक्शन गजीन राइफिल है। उसकी नली के छेद का व्यास ३०३ इंच है अर्थात् इससे ·३०३ इंच व्यास की गोली मारी जाती है। इस राइफिल का वजन प्रायः साढ़े चार र है। इसमें गोलियों की जो पेटी लगायी जाती है उसमें स गोलियाँ रहती हैं। प्रशिक्षित सिपाही इससे एक मिनिट दस गोलियाँ चला सकता है। वैसे तो इसकी मार ००० गज तक की है किंतु व्यवहार में ३०० गज से अधिक र के निशाने पर इसे चलाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इससे अधिक दूरी के आदमी पर ठीक निशाना नहीं लगाया जा सकता। इसे चलाने के लिए प्रत्येक बार उसमें लगे हत्थे (बोल्ट) को खींचना पड़ता है। इसकी गोली बड़ी शक्तिशाली होती है। आदमी को गिराने लिए उतनी शक्तिशाली गोली की आवश्यकता नहीं है। अनुभव से जाना गया कि युद्ध में सिपाहियों के लिए न तो इतनी दूर मार की राइफिल आवश्यक है, और न इतनी शक्तिशाली गोली की। यह इतनी भारी है कि सिपाहियों इसको लेकर चलना कठिन हो जाता है और वे बेकार जाते हैं। इस प्रकार यह देखा गया कि इस राइफिल अपव्यय होता है और उन पर बेकार का बोझ पड़ता इन बातों को ध्यान में रखकर ·३०३ ली एन फील्ड ० के० एस० राइफिल बनायी गयी। इसकी नली कुछ कम लम्बी होती है और इसका वजन केवल साढ़े तीन सेर है। यह विशेषकर उन सैनिकों के लिए बनायी गयी थी जिनके लिए कम वजन के हथियार आवश्यक हैं, जैसे वायुयानो से छतरी द्वारा सैनिकों को हल्के हथियार देना परमावश्यक है। किंतु इसमें एक खराबी पायी गयी। उसकी नली तो छोटी कर दी गयी, किंतु इसकी गोली उसी पुराने आकार और शक्ति की रखी गयी। इसलिए चलाते समय वह बहुत जोर का धक्का देती थी जिससे सैनिक पर जोर तो पड़ता ही था, उसकी दक्षता भी कम हो जाती थी। इसलिए पिछले महायुद्ध में अमरीका ने एक नयी राइफिल बनायी। इसका नली के छेद का व्यास ·३० इंच था। इसकी मार ३०० गज की थी और इसका वजन कुल ढाई सेर था। इसकी गोली ·३०३ की राइफिल से कुछ छोटी होती है, किंतु अपनी मार के भीतर वह बहुत कारगर होती है। इसमें दूसरी अच्छाई यह है कि पुरानी ·३०३ राइफिल की तरह इसके चलाने के लिए हत्था नहीं खींचना पड़ता। यह अर्द्धचालित है, और मशीन गनों की तरह गैस से संचालित होती है। इसलिए इससे एक मिनिट में अधिक गोलियाँ चलायी जा सकती हैं। गैस-परिचालित होने के कारण इसके चलाने पर चलानेवाले को धक्का भी नहीं लगता। इसके इन गुणों के कारण इस राइफिल से सज्जित एक प्लैटून गोलियों की उतनी ही करारी मार कर सकता है जितनी पुरानी हत्थों से चलनेवाली राइफिलों से सज्जित पूरी एक कम्पनी। सिपाही को हाथ में कम वजन सम्हालना पड़ता है और बार-बार धक्के न लगने के कारण उसे थकावट भी नहीं होती। नाटो देशों ने इससे भी छोटे व्यास की--अर्थात् ·२८० इंच व्यास की नलीवाली राइफिलें अपनी सेनाओं को दी हैं। इनकी गोलियाँ भी छोटी होती हैं, किंतु जितनी उनकी मार है, उसमें वे आदमी को गिरा देने में पूरी तरह से समर्थ हैं। हमारे शत्रु चीनियों ने भी यही किया है। उनकी राइफिलें पूरी तरह से स्वचालित हैं और उनकी गोलियाँ भी ·३० व्यासवाली गोलियों से कुछ छोटी हैं। उनकी मार इतनी दूर नहीं जाती जितनी और राइफिलों की, और न उनकी गोलियाँ ही इतनी शक्तिशाली हैं जितनी और राइफिलों की। किंतु उनके लड़ने का ढंग ऐसा है कि एक साथ बहुत से सिपाही उन्हें कम दूरी से चलाते हैं। इससे उनका असर काफी होता है।

संसार के भिन्न-भिन्न सेनाओं के हथियार अपनी युद्ध-प्रणाली को परम्पराओं के अनुसार विकसित हुए हैं। दिनों दिन नये और अधिक उन्नत हथियार बनाये जाते हैं। संसार के बड़े-बड़े कारखाने लाखों और करोड़ों रुपये खर्च करके नये प्रकार के विस्फोटक, बारूद, गोलियों और नये ढंग के स्वचालित हथियारों का निर्माण करते रहते हैं। किंतु लाखों सिपाहियों को नये हथियारों का अभ्यास कराना बड़ा कठिन, श्रम और समयसाध्य काम है। इससे भी अधिक कठिन और खर्चीला उन लाखों सिपाहियों को नये हथियारों का देना है क्योंकि लाखों की संख्या में खरीदने या बनाने पर करोड़ों रुपयों की आवश्यकता होती है। हथियार बनानेवाले कारखानों को नये सिरे से नये ढंग की मशीनें लगानी पड़ती हैं। चालू हथियार बेकार हो जाते हैं और उनके खरीदने पर जो करोड़ों रुपयों का व्यय हुआ है वह पानी में चला जाता है। इसलिए कोई भी देश, कम से कम शान्ति के समय, अपनी सारी सेना के पुराने हथियार बदलने में असमर्थ रहता है। किंतु ऐसा अवसर आ जाता है जब अपने शत्रु के हथियारों घटिया हथियारों का उपयोग खतरनाक हो जाता है, तब देश को आत्मत्याग करके तथा कष्ट उठा कर सेना को उन्नत और आधुनिक हथियार देने ही पड़ते विज्ञान की उन्नति के साथ लड़ाई के हथियारों में भी उन्नति हुई है और बराबर होती जाती है। युद्ध भी परिस्थिति के अनुसार बदल रही है। कभी नये यारों के कारण लड़ाई का ढंग बदलना पड़ता है, और अनिवार्य कारणों से विशेष प्रकार का लड़ने का ढंग नाना पड़ता है। तब उस ढंग के अनुकूल हथियारों आविष्कार किया जाता है। स्वचालित हथियारों युद्धकला को बहुत प्रभावित किया है क्योंकि अंत में का मेरुदंड सैनिक है, और उसका आधुनिक अस्त्र रा हैं। वह जितनी ही उन्नत और कुशल होगी, सिपाही उतना ही दक्ष और प्रभावशाली होगा।

जय हिन्दी ! जय नागरी !

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

जय हिन्दी ! जय नागरी !
जिसमें विद्यापति ने गाया मंजरियों का गीत,
कवि कबीर के दीप्त स्वरों से जो अभिषिक्त, पुनीत,
मलिक मुहम्मद ने दुहराया मधुर प्रेम संगीत,
जन-जन के मानस की भाषा भाव भरी, गुण-आगरी!
जिसमें सूरदास की वीणा की मादक झंकार,
जिसमें तुलसी की आत्मा की ज्योतिर्मयी पुकार,
जिसमें केशव की रसवंती कला खड़ी ले प्यार,
प्यासे मरुथल में छलकाई मीराँ ने रस-गागरी!

मर्म बेधनेवाले लघु-लघु सतसैया के ती
देव और मतिराम बाँधते पाँवों में मंजी
घनानंद गाते जग जाती अकथ प्रेम की पी
और उधर भूषण की वाणी लिए क्रांति की आगरी
भारतेंदु कर गये नये युग का मंगल-आह्वा
जयशंकर, मैथिलीशरण ने रचा नया परिधा
गरल पान कर दिया निराला ने नवजीवन-दा
भारत की भारती, अमर है इसका सदा सुहागरी

हाफ़िज़ और भारत

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

शेरे हाफ़िज़े शीराज़ मीगोयन्द ओ मीरक़सन्द।
स्याह चश्माने कशमीरी ओ तुरकाने समरक़न्दी॥

——हाफ़िज़

शीराज़वाले हाफ़िज़ का काव्य पढ़ते-पढ़ते मस्त होकर नाचने लगते हैं काली आँखोंवाले कशमीरी और समरकन्द के गौर वर्ण।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हाफ़िज़ के जीवनकाल में उनका दीवान भारतवर्ष में केवल कशमीर में ही पढ़ा जाता था। पढ़ा तो हर जगह जाता था परन्तु सौन्दर्योपासक हाफ़िज़ ने केवल काली आँखोंवाले कशमीरियों पर ही गर्व करना उचित समझा। बाकी पढ़ो तो क्या, और न पढ़ो तो क्या!

हाफ़िज़ के एक लड़के शाह नैमान ने भारतवर्ष में आकर व्यापार आरम्भ किया था। परन्तु दुर्भाग्य से अल्पायु में ही उसका देहान्त हो गया और बुरहानपुर में उसने समाधि पायी? इससे अनुमान लगता है कि दक्षिण भारत से हाफ़िज़ के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ रहे होंगे। एक बार हाफ़िज़ ने दक्षिण आने का इरादा भी किया। जब यह समाचार दक्षिण पहुँचा तो बहमनी वंश के बादशाह महमूदशाह को बहुत प्रसन्नता हुई और उसने अपने प्रधान मंत्री फ़ैज़ुल्ला के हाथ से एक निमंत्रण-पत्र लिखवाकर भेजा और साथ में एक अशर्फियों की थैली भी। हाफ़िज़ में भी 'निरालापन' था। थैली पहुँचते ही निर्धनों, विधवाओं और अनाथों की सहायता प्रारम्भ हो गई। लोगों के समझाने-बुझाने पर जो थोड़ा-बहुत बचा उसे लेकर हिन्दोस्तान की राह पकड़ी। रास्ते में एक पुराना मित्र मिल गया——दीन हीन फटे हाल। जो पास में था उसे दे दिया। अब पैसा पास न होने से हाफ़िज़ लौटने लगे कि दो भारतीय व्यापारी मिल गये। उन्होंने हाफ़िज़ की इस यात्रा का सारा खर्च देना स्वीकार किया। हाफ़िज़ उनके साथ हुरमज तक आये। यहाँ सहसा आँधी आ जाने से हाफ़िज़ उलटे शीराज़ लौट पड़े, और अशर्फियों की थैली के बदले में वज़ीरे आज़म फ़ैज़ुल्ला को एक ग़ज़ल लिखकर भेज दी जिसके कुछ मिसरे ये हैं:——

दमे बाग़म बसर बुरदन जहाँ यकसर नमीअरज़द।
बमय बफ़रोशदलकेमा कुज़ीं बेहतर नमी अरज़द॥

——प्रभुचिन्तन में बीतनेवाला एक क्षण सारी दुनिया से अधिक मूल्यवान् है। सारी उपासना और कर्मकाण्ड के बदले प्रेम रूपी मदिरा का एक प्याला भी मिल जाये तो भी सौदा सस्ता है।

तिरा आँ के बके रूये ख़ुद ज़ मुश्ताकाँ बपोशानी।
के सौदाये जहाँदारो ग़मे लश्कर नमी अरज़द॥

——तेरे लिए यही अच्छा है कि प्रेमियों के सामने अपना मुँह लेकर न आवे क्योंकि वियोगी को दुनियादारी की चिन्ता शोभा नहीं देती।

बस आसाँ मीनमूद अव्वल ग़मे दरिया बबूये सूद।
ग़लत गुफ़्तम के हर मौजश बसद गौहर नमी अरज़द॥

——आर्थिक लाभ की आशा के सामने समुद्र-यात्रा की कठिनाइयाँ सरल लगती थीं। यह मेरी गलती थी। एक एक लहर पार करने के बदले सौ-सौ रत्न मिलें तो भी कम हैं।

चू हाफ़िज़ दर क़नाअत कोश ओ अज़ दुनियाए दूँ बगुज़र।
के यक जौ मिन्नते दूनाँ बसद मनज़र नमी अरज़द॥

——हाफ़िज़ की तरह सन्तोष की साधना कर और कमीनी दुनिया को छोड़, इसलिए कि कमीनों के अहसान का एक जौ सौ मन सोने के बदले भी उठाना ठीक नहीं।

सारी ग़ज़ल से पुत्रवियोग की जलन और फलस्वरूप बहमनशाह व वज़ीरे आज़म व दक्षिण भारत के अपने समस्त पाठकों के प्रति रोष प्रकट होता है। हमारी समझ में हाफ़िज़ जानबूझ कर नहीं आये। आँधी और रुपये की तंगी का केवल बहाना था। इसीलिए सम्भवतः उन्होंने बहमनशाह की भेजी हुई थैली में से एक पाई भी अपने लिए नहीं रखी, सारी दान कर दी।

बंगाल का बादशाह सुल्तान ग़यासुद्दीन हाफ़िज़ का अनन्य भक्त था। इसके यहाँ सरो, गुल और लाला नामक तीन दासियाँ स्नान कराने के काम पर नौकर थीं। बादशाह इनके प्रेम-पाश में पड़ गया और इन तीनों से विवाह करके इन्हें बेगम बना लिया। एक दिन बादशाह के मुँह से यह मिसरा निकल पड़ा——

साक़ी हदीसे सरो गुलो लाला मीरवद

बादशाह को दूसरा मिसरा नहीं सूझा। सारे दरबारी प्रयत्न करके हार गये परन्तु समस्या पूर्ति नहीं हुई। तब यह मिसरा हाफ़िज़ शीराज़ी के पास भेजा गया। उन्होंने फौरन पूरी की पूरी ग़ज़ल बनाकर भेज दी जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

साकी हदीसे सरो गुलो लाला मीरवद।
वीं बहस बासलासा ग़ुस्साला मीरवद॥

—साक़ी, फूलों में शराब के तीन प्यालों के बारे में बहस चल रही है (१. वसन्त ऋतु आ गई) ऐ साक़ी, शराब ला, २. सरो, गुल और लाला नाम की दासियाँ स्नान के बारे में बात कर रही हैं।——यूनानी हकीमों ने सुबह हा सुबह तीन प्याले शराब पीने का विधान दिया है जिससे शौच खुलकर आता है और शरीर की आन्तरिक शुद्धि हो जाती है। इसे ही फ़ारसी में सलासा ग़ुस्साला कहते हैं।)

शकर शिकन शुवन्द हमा तूतियाने हिन्द।
जीं क़न्दे पारसी के बंगाला मीरवद॥

—भारत के सभी कवियों का मुँह मीठा होगा इस ईरानी मिठाई (ग़ज़ल) से जो बंगाल को जा रही है।

भारतवर्ष के सभी बादशाह हाफ़िज़ के अनन्य प्रेमी रहे हैं। बाबर ने जब शीराज़ में प्रवेश किया तो हाफ़िज़ का मक़बरा टूटी-फूटी दशा में देखा। अपने उस्ताद मौलाना मुहम्मद मेमाई के कहने से बाबर ने इसका नये सिरे से निर्माण कराया। जिस प्रकार तुलसी के भक्त रामशलाका प्रश्न का उपयोग अपना भविष्य जानने के लिए करते हैं, उसी प्रकार हाफ़िज़ के भक्त उनके दीवान से फाल देखते हैं। हुमायूँ बादशाह जब ईरान की सहायता से भारत विजय के लिए निकला तो हाफ़िज़ के दीवान से फ़ाल देखी। शेर निकला :—

अज़ीज़ मिस्र बरग़मे बिरादराने ग़य्यूर।
ज़ क़अ्रे चाह बरआमद बओज माह रसीद॥

—मिस्र का लाड़ला ईर्ष्यालु भाइयों की इच्छा के विरुद्ध कुएँ से बाहर निकला और चाँद जैसा आकाश में चमका।

हुमायूँ बहुत प्रसन्न हुआ, देहली पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की।

हाफ़िज़ के दीवान का जहाँगीर लड़कपन से ही बहुत प्रेमी था। जब उसने इलाहाबाद में अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया और हार गया तब कुछ ने समझाया कि अकबर के पास जाकर क्षमा माँग कुछ दरबारियों का कहना था कि भाग चलो, अकब पास जाना काल को निमन्त्रण देना है। जहाँगीर (समय सलीम) बहुत असमंजस में था। एक दिन हा का दीवान खोला फ़ाल निकली।

ग़मे ग़रीबी व ग़ुरबत चू बरनमी ताबम।
बशहर ख़ुद रवम ओ शहरयार ख़ुद बाशम॥

—जब कि मैं परदेश के कष्टों को सहन नहीं सकता तो क्यों न अपने नगर में जाऊँ और अपने बाद के पास रहूँ।

यह फ़ाल निकलते ही सलीम फ़ौरन आगरे के चल पड़ा। बाप ने बेटे को छाती से लगाया और उ सारे अपराध क्षमा कर दिये।

औरंगजेब काव्य को इस्लाम के विरुद्ध समझता परन्तु हाफ़िज़ का वह भी प्रेमी था। कहते हैं हाफ़िज़ दीवान वह सिराहने रखकर सोया करता था। डा० जदुनाथ सरकार के एक लेख से इतना तो सिद्ध हो जाता है कि औरंगज़ेब हाफ़िज़ के शेरों का सुभाषित रूप में प्रयोग करता था। सरकार महोदय लिखते हैं औरंगज़ेब को सूचना मिली कि उसके पोते बीदरबख्त अपनी पत्नी शम्सुन्निसा से बोलचाल बन्द है, कारण बीदरबख्त ने एक दिन शम्सुन्निसा को पाजी की ब कह दिया था। औरंगज़ेब ने इसी सूचना-पत्र पर हाथ से हाफ़िज़ के निम्नलिखित शेर लिख दिये :—

सुबह दम मुर्ग़े चमन बागुले नौसाख़्ता गुफ़्त।
नाज़ कम कुन के दरीं बाग़ बसे चूं तो शगुफ़्त॥
गुल बख़न्दीद के अज़रास्त न रंजम बले।
हेच आशिक़ सुख़ने तल्ख़ ब माशूक़ न गुफ़्त॥

—सुबह ही सुबह बुलबुल ने एक नवविकसित फू कहा, "तू नखरे कम कर, इस बाग में तेरे जैसे न कितने फूल खिल चुके हैं।" फूल ने हँसकर उत्तर दि "बुलबुल, तू सच कहता है परन्तु आशिक माशू कड़वा नहीं बोला करता।"

औरंगजेब के पुत्र अकबर ने जब बाप के खि विद्रोह किया तो उसने भी औरंगज़ेब को पत्र लि समय हाफ़िज़ का निम्नलिखित शेर लिखा था :—

पिदरम रोज़ये रिज़वाँ ब दो गन्दम बफ़रोख़्त।
ना ख़लफ़ बाशम अगर मन बजौ ए न फ़रोशम॥

—मेरे बाप ने गेहूँ के दो दानों के लिए स्वर्ग को बेच दिया था। मैं भी यदि एक जौ के दाने के पीछे स्वर्ग न बेच दूँ तो अपने बाप का असली बेटा नहीं। (जैसे तुमने अपने बाप शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह किया ऐसे ही मैं भी तुम्हारे विरुद्ध विद्रोह कर रहा हूँ। हज़रत आदम ने शैतान के बहकाये में आकर गेहूँ खा लिया था इसी के दण्डस्वरूप वे स्वर्ग से निकाले गये। जौ=शराब क्योंकि जौ से शराब बनती है।)

हाफ़िज़ ने जगह-जगह हिन्दू शब्द का प्रयोग किया है, इस ख़ूबी के साथ कि चाहे वहाँ उसका अर्थ काला ले लिया जाये, चाहे माशूक़, चाहे चोर या डाकू, सब ठीक बैठ जाते हैं।

बजुज़ हिन्दुए ज़ुल्फ़श हेचकस नीस्त।
के बरख़ुरदार शुद अज़ रूये फ़र्रुख़॥

फ़र्रुख़=हाफ़िज़ की एक प्रेयसि का नाम।

—उसके हिन्दुआना केश को छोड़कर कोई ऐसा नहीं है जो फ़र्रुख़ के कपोलों को छू सके।

हिन्द शब्द का भी हमारे देश के अर्थों में हाफ़िज़ ने कई जगह प्रयोग किया है, दो एक स्थान पर हाफ़िज़ में बिरहमन (ब्राह्मण) शब्द भी आया है।

भारत के फ़ारसी, उर्दू व हिन्दी कवियों पर हाफ़िज़ का बहुत बड़ा प्रभाव है कहा जाता है कि उर्दू की इश्क़िया शायरी में एक भी भाव ऐसा नहीं है जो हाफ़िज़ में न आ चुका हो। क़ुछ थोड़े से उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

१ **हाफ़िज़**—

हज़ार बार शुवद आशना ओ दिगर बार।
मिरा बबीनद ओ गोयद के ईंच कस बाशद॥

—हज़ार बार की जान-पहिचान है फिर भी जब मुझे खता है तो पूछता है कि यह शख्श कौन है।

ग़ालिब—

पूछते हैं वोह के ग़ालिब कौन है।
कोई बतला दो के हम बतलायें क्या॥

हाफ़िज—

ईं ख़िरक़ा के मन दारम दर रहने शराब औवला।

—यह नमाज़ पढ़ने के कपड़े जो मेरे पास हैं इनका इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है कि इन्हें गिरवी रखकर शराब पीली जाये।

ग़ालिब—

रखता फिरू हूँ ख़िरक़ा ओ सज्जादा रहने मय।

३. **हाफ़िज़**—

दिलबरा बन्दानवाज़ियत के आमोख़्त बगो।
के मन ईं ज़न बरक़ीबाँ तो हरगिज़ न बरम॥

—ऐ दिलबर, तुझे विनय किसने सिखाई? क्योंकि ऐसा विचार तो मैं अपने मन में नहीं लाऊँगा कि तेरे दूसरे आशिक़ों ने तेरी आदत ठीक कर दी हो।

ग़ालिब—

सुहबत में ग़ैर की न पड़ी हो कहीं यह ख़ू।
देने लगा है बोसे बग़ैर इल्तजा किये॥

४. **हाफ़िज़**—

गर ज़ मस्जिद ख़राबात शुदम ऐब मुकन।
मजलिसे वाज़ दराज़स्त वो ज़मां ख़्वाहिद शुद॥

—अगर मैं मस्जिद से उठकर शराब की भट्टी पर चला गया तो निन्दा मत कर। मजिस्द में धर्मोपदेश तो अभी बहुत देर तक चलेगा यह थोड़ी सी ही देर का काम है।

अज्ञात—

मजलिसे वाज तो ता देर रहेगी क़ायम।
मयख़ाना है, अभी पीके चले आते हैं॥

५. **हाफ़िज**—

मन अरज़ाँ के गिरदम ब मस्तिये हलाक।
ब आईने मस्ताँ बुरीदम ब ख़ाक॥
ब ताबूते अज़ चोब ताकम कुनीद।
ब राहे ख़राबात ख़ाकम कुनीद॥
ब आबे ख़राबात गुसलम दहीद।
पस आँगाह बर दोशे मस्तम नहीद॥
मरी नरीद बर गौरे मन जुज़ शराब।
मयारीद दर मातमम जुज़ रबाब॥
वलेकिन बशर्ते के दर मर्गे मन।
न नालद बजुज़ मुतरिबो चंगो ज़न॥

—जब मैं मस्ती की दशा में मृत्यु को प्राप्त होऊँ तो मुझे पियक्कड़ों की प्रथा के अनुसार मिट्टी देना। मुझे अंगूर की लकड़ी के ताबूत में रखना और शराबख़ाने के पास मेरी क़ब्र बनाना। मुझे शराब से स्नान कराना और मेरी अर्थी को नशे में मस्त लोगों के कन्धों पर रखना।

मेरी क़ब्र पर सिवाय शराब के कुछ और मत छिड़कना, और मेरे शोक में सिवाय बाजा बजाने के कुछ और मत करना। मेरी मृत्यु पर सिवाये गाने-बजानेवालों के कोई दूसरा विलाप न करे॥

बच्चन--

मेरे शव पर वह रोए, हो जिसके आँसू में हाला,
आह भरे वह, जो हो सुरभित मदिरा पीकर मतवाला,
दें मुझको वे कंधा, जिनके पद मद-डगमग होते हों,
और जलूं उस ठौर जहाँ पर कभी रही हो मधुशाला!
और चिता पर जाय उँडेला पात्र न घृत का पर प्याला,
घंट बँधे अंगूर लता में किन्तु न जल हो पर हाला,.....

इस्लाम में गाना-बजाना भी शराब पीने की तरह निषिद्ध है परन्तु हिन्दूधर्म में केवल शराब निषिद्ध है, गाना-बजाना नहीं, इसलिए बच्चन ने संगीत का स्थान भी मदिरा को दे दिया है।

डा० सर मुहम्मद इक़बाल हाफ़िज़ के विरोधियों में थे। उन्होंने अपनी एक फ़ारसी ग़ज़ल में बताया था कि हाफ़िज़ ने मुस्लिम युवकों को विलासी और अकर्मण्य बना दिया है। इस पर हाफ़िज़ के भक्तों ने उन्हें लाहौर में घेर लिया था। इक़बाल साहब को क्षमा-याचना करनी पड़ी। वैसे इक़बाल भी हाफ़िज़ से कम प्रभावित नहीं। हाफ़िज़ की नक़ल पर उन्होंने भी 'साक़ीनामा' लिखा है। हाफ़िज़ का साक़ीनामा शृंगारिक है, इक़बाल का राजनीतिक। हाफ़िज़ से 'बुल अजबी अस्त' 'बुलहबी अस्त' शब्दावली भी इक़बाल ने चुराई है। कई स्थानों पर हाफ़िज़ के शृंगारिक भावों से राजनैतिक अर्थ खींचने का प्रयत्न किया है। हाफ़िज़ ने फ़रख और शाख़े नबात के साथ-साथ अपनी एक तीसरी प्रेयसी सलमा को भी अपने काव्य में याद किया है। सलमा नाम इन तीनों में सबसे अधिक ललित है इसलिए आजकल उर्दू के ही कवि अपनी प्रेयसियों को सलमा नाम से अपने में याद करते हैं। सिनेमा के भी कई गीत हाफ़िज़ अनुवाद मात्र होते हैं :--

हाफ़िज़--

शुनीदम के चूँ ग़म रसानद गुज़ंद।
ख़रोशदिन दफ़ बुवद सूद मन्द॥

--मैंने सुना है जब ग़म सताये तो बाजे का स्वर पहुँचाता है।

जब दिल सताये ग़म, तू छेड़ सखि सरगम

नीति-पंचामृत

श्री राजेश दयालु "राजेश"

कोउ सहाय करिहै नहीं बानी बोले दीन।
निज गुन-बल बित और सों छीन सके तौ छीन॥

बड़ो भये कोउ सब थलहिं काज नाहिं है देत।
ज्यौं सूरज समरथ नहीं सेद सुखावन हेत॥

नेक भूल करि सुजन के गुननि परै नहिं धूर।
उबरि ग्रहन सों रहत हैं ससि-सूरै ससि-सूर॥

झगरि बगरि भाई सुजन बहुरि एक ह्वै जाहिं।
खनकि-खनकि चुरियाँ रहें बाहि कलाई माहिं॥

जो कोऊ बिपदा सहै, तासों जस को मेल।
इंजिन अनल-अहार-बल ऐंचत सारी रेल॥

आंगन के बीच—

नहीं ! नहीं ! नहीं !

मान लिया आपके बच्चे बड़े आज्ञाकारी हैं, बड़े होनहार हैं, बड़े शिष्ट हैं और आपने उनको सब कुछ सिखा दिया है––परन्तु एक बात मैं भी आपसे पूँछूं? क्या आपने उनको 'नहीं' कहना भी सिखाया है?

आपसे ही क्यों, आपके बच्चों ही से क्यों न पूंछ लूं! आप बहुत पढ़ गये हैं––या पढ़ गयी हैं? स्कूल की किताबें बन्द हो गयीं हैं और अब आप अपने आपको इतना समझदार समझने लगे हैं कि स्ट्राइक, भूख-हड़ताल व नारे लगाकर सरकार की नीति में, व अपने कालेज के अध्यापकों की व्यवस्था में हस्तक्षेप करें व संशोधन करें (जैसी उस समय की परिस्थिति हो।) स्कूल की किताबें बन्द करके आप कालेज पढ़ने जाने लगी हैं, या पढ़ने जाने लगे हैं। मैंने यह इसलिए नहीं कहा कि इसमें अत्यन्त प्रत्यक्ष विरोधाभास है। संक्षेप में, मैंने मान लिया कि आप बहुत योग्य हैं––बहुत समझदार हैं। आपकी योग्यता और समझदारी में मुझको कोई संदेह नहीं है––परन्तु क्या आपको 'नहीं' कहना आ गया है? अगर नहीं आया है, तो आपकी इस योग्यता और समझदारी की धारणा को ठेस लगे बिना न रहेगीं।

आपके माता-पिता का उत्तर भी मैं जानती हूँ और आपका भी। आपके माता-पिता का उत्तर है कि 'मेरे माँ-बाप ने मुझे 'नहीं' कहना नहीं सिखाया––मैं भी अपने बच्चों को यह नहीं सिखाऊँगी।' आपके माँ बाप के सामने यह आधुनिक परिस्थितियाँ नहीं थीं, वर्ना वे आपको इस 'नहीं' के गुण पहले ही सिखा देते क्योंकि वे अत्यंत व्यवहार-कुशल थे। परिस्थितियाँ उनके बच्चों को इतनी कच्ची उम्र में अकेले बाहर भेजने को बाध्य नहीं करती थीं।

आपका उत्तर है कि हम अपना भला-बुरा स्वयं समझते हैं। आप हमारे बीच में आनेवाले कौन होते हैं? मैं कहती हूँ कि आप अपना भला बुरा बिल्कुल नहीं समझते—अगर आप समझते होते तो वे गलतियाँ कभी न करते जो आज आप खुले आम कर रहे हैं।

जितना ही अधिक लज्जाशील, सुशील व सीधा बालक व बालिका होती है, 'नहीं' की शिक्षा उसके लिए उतनी ही अधिक आवश्यक होती है। उतना ही उसके हृदय में यह अधिक जमाने की आवश्यकता पड़ती है कि ठीक समय पर "नहीं" कहना निर्लज्जता नहीं लज्जा का भूषण है; उच्छृंखलता नहीं, सदाचार है; अशिष्ट नहीं एक अतिशिष्ट व्यवहार है। जितना अधिक संकोची बालक हो, 'नहीं' कहने की निर्भीकता उसके हृदय में उतनी ही अधिक जगानी होगी। वर्ना हर समय 'हाँ' कहने का स्वभाव उसको बहुत बड़े खतरे में डाल देगा। 'नहीं' कहने का संकोच और सदैव 'हाँ' कहने का स्वभाव मात्र उसको अपनी प्रकृति के प्रतिकूल ले जाकर वह कार्य करा डालेंगे जो कि यदि उसमें 'नहीं' कहने का साहस होता तो वह कभी नहीं करता। समय पर 'नहीं' कहने का आत्मबल न होना, आपकी सन्तान को किस घोर संकट में डाल सकता है। इसके उदाहरण प्रायः प्रतिदिन मिलते हैं, परन्तु हम उनका कारण तो खोजते नहीं, बस यह कहकर टाल देते हैं कि 'न, न, न, हमारा मुन्ना ऐसा काम नहीं कर सकता।'

मेरे एक मित्र का षोड़शवर्षीय अत्यन्त सुशील और आज्ञाकारी बालक कालेज में शाम को खेलने के बाद, धीरे-धीरे देर से आने लगा। कुछ दिनों तो बात चलती रही, परंतु जब उत्तरोत्तर देरी बढ़ती गयी और अधिक रात्रि होने लगी, तो माता पिता पहले यही सोचते रहे कि इतना आज्ञाकारी सुशील बालक किसी व्यसन में तो पड़ ही नहीं सकता, मित्रों में गप्पाष्टक, सिनेमा-थियेटर में ही इतनी देर कर देता होगा। फिर जब वह एक दिन अस्थिर पैरों से घर लौटा तो उस रात मेरे किवाड़ों पर एक हल्की सी चाप पड़ी और सहेली की आवाज सुनायी पड़ी। 'सो गयीं क्या? देखना तो···को आज क्या हो गया है! उनसे कैसे कहूँ? कहीं···को मार बैठें तो।'

मैं उठकर···के कमरे में गयी। वह कपड़े पहने ही पलंग पर लेट गया था—चेहरे पर परेशानी दिखायी पड़ रही थी। मैंने उसके माथे पर हाथ फेरा तो वह एक साथ फूट-फूटकर रोने लगा। और कहने लगा 'मैं यह सब कुछ नहीं करना चाहता। पर वे लोग पीछे पड़ जाते हैं। मैं उनके सामने ना नहीं कर पाता।'

'उनका' मुकाबला करने का आत्मबल उसमें कैसे भरा गया, स्पष्ट रूप से 'नहीं' कहने की निर्भीकता उसमें कैसे डाली गयी, यह एक दूसरी कहानी है।

समय पर 'नहीं' नहीं कह सकने के साहस की आवश्यकता लड़कियों में और भी अधिक गंभीर हो जाती है। संकोच ही संकोच में वे इतना अधिक आगे बढ़ जाती हैं कि उन्हें इसका ज्ञान नहीं रहता कि यह चरम सीमा है, इसके आगे और बढ़ने का स्थान नहीं, अब आगे बढ़ना पतन है। जब परिस्थिति बहुत गंभीर हो जाती है तो यह पूँछने पर कि 'तुमसे तो ऐसी आशा नहीं थी, तुमको तो हम बहुत सीधा और भला समझते थे, आखिर तुमने यह क्या किया?' तो उत्तर उनकी प्रकृति के अनुकूल ही मिलता है। जिसका सारांश यह होता है कि अपनी प्रकृति के संकोच और 'नहीं' न कह सकने के स्वभाव के कारण वह अपने ऊपर अत्याचार करती रही।

क्या आप चाहते हैं कि आपकी भोली सन्तान चालाक और मार्ग भ्रष्ट जन-समुदाय का शिकार बनती रहे? उचित समय पर 'नहीं' कहने का आत्मबल ही उसकी रक्षा आजीवन कर सकता है। उसे इस शब्द का गौरव समझाइए।

आधी घनाक्षरी

प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय

दिसम्बर १९६२ की सरस्वती में श्री रघुवंशलाल जी गुप्त का "नया छंद" लेख छपा है जिसमें उन्होंने श्री गोकुलचन्द शर्मा के "तपस्वी तिलक" और अपने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "नैवेद्य" से उदाहरण उद्धरित किये हैं और षोड़शी घनाक्षरी के उचित गुणों का बखान किया है।

मैंने अपनी ही लिखित "चेतना" मासिक पत्रिका के चौथे अंक में (जो आश्विन संवत् २००५ में छपी थी) अपनी लिखी "दिग्विजित" अथवा "कल्याणकथा" नाम की कविता छापी थी। यह काव्य २४ पृष्ठों का आधी घनाक्षरी में लिखा गया था सन् १९२८ में अर्थात् संवत् १९८५ में। ७६८ पंक्तियाँ हैं। छन्द एक ही है। आरम्भ ही के अंश से उदाहरण देता हूँ। गुप्तजी मिला लें। अन्यकिम् ?

दिग्विजित

विद्याधर धवल कहाँ ये उड़े जात युग
बिकल बिके से नैन चीरत समीर पथ ?
झूमि रहीं मत्त नलिनीन सों निकसि लट
दिव्य पट फहरि फहरि हरें रवि रथ ॥

कैधौं हरलोचन धधकि उठ्यो हिमगिरि
कैधौं अलका की अनी धाई है विजयिनी ?
कैधौं मेघमाला भिस उमड़्या पतालकुल
कैधौं अबै विक्रम उयो है उज्जयिनी ?

मन्द मन्द दिपत अहो ये दोउ सौरमणि
दोऊ कुन्दसरिस मुकुन्द परे पियरे।
टूटि टूटि लसइ बलाकन सो मुक्तमाल
स्वर्णजाल सकल सिहरि भए सियरे ॥

ऐसे सुनि माधव किरीटी सों कमलनैन
बैन ये उतावले मधुर मुसकाइ मन।
बोले पार्थ व्याकुल भयाकुल ये विद्याधर
खोजत वृथा हैं ऋषिशाप सों कहूँ शरन ॥

तुकान्त आधी घनाक्षरी के प्रयोग से कथा कहने का तारतम्य बहुत सुगम और सुन्दर हो जाता है। सिलसिला सहल-रुकाव सरल-संगीत मधुर और तरल आगे भी यों ही हैं। देखिए :—पंक्तियाँ ४८ से ५६ और ७३ से ७६ ॥ सारा काव्य इसी छन्द में है।

केवल २१ छन्द कहीं-कहीं प्रयोजन विशेष से अथवा स्तुति वा प्रार्थना के आवेश में पूरे घनाक्षरी हैं। दो स्थानों में दो-दो घनाक्षरियों में एक ही तुक है। एक स्थान में जप के लिए आठों पंक्तियों में एक ही तुक है। तुक एक प्रयोग भावानुसार सुन्दर हो सकता है। परन्तु आधी घनाक्षरी तो पूरी सरिता है। भागीरथी !

एकै संग नयन ऊरध उठे अनगिन
जैसे अरि अनी वायुयानन निरखती।
देखी कोउ अहह प्रभात ससिलेखा इव
अधोमुखी अधम क्षणप्रभा सी गिरती ॥
सफरी से चरन जुगल भुज सर्पिनी सीं
एकाबली लसति विहंगमुख अन्त्रिका।
नैना अनिमेखी निमि कारन निरास मृत
गोली मानौ लगत पथरिगे सकुन्तिका ॥

·· ··

कोन कोन विसरि अपान महा कोलाहल
मातो हरि आरती करइ स्वर्ग सबरो।
आगे चले कौतुकी चकित पृथासुत संग
मेरो मन थकित अवनि आयो जबरो ॥

युधिष्ठिर-संवत् पर विचार

डॉ० अजय मित्र शास्त्री एम्० ए०, पी-एच्० डी०

सरस्वती के अगस्त १९६२ के अंक (पृ० १२९-१३४) में 'युधिष्ठिर-संवत्' के विषय में पं० चन्द्रकान्त बाली का एक रोचक और विचारोत्तेजक निबन्ध प्रकाशित हुआ है। इस लेख में श्री बाली का प्रयोजन यह सिद्ध करना है कि युधिष्ठिर-संवत् कलियुग की स्थापना के ४० वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। अपने मत के समर्थन में लेखक ने प्रतिपादित किया है कि महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर ने कुल मिलाकर ३६ वर्ष राज्य किया, १५ वर्ष धृतराष्ट्र के वन-प्रस्थान के पूर्व और इस घटना के पश्चात् भगवान् कृष्ण के निधन तक २१ वर्ष, तथा इसके ४ वर्ष अनन्तर कलियुग का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार युधिष्ठिर के राज्याभिषेक और कलियुगारम्भ के बीच ४० वर्ष का व्यवधान है। इस मत के अनुसार युधिष्ठिर-संवत् की स्थापना ई० पू० ३१४१ (कलियुगारम्भ ई० पू० ३१०१+४०) में हुई।

श्री बाली का यह विचार हमें मान्य नहीं है। इस विषय में उपलब्ध प्रमाणों का परीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि उनका मत निराधार है। महाभारत युद्ध में विजय के पश्चात् ही युधिष्ठिर को राज्य मिला और इस समय के आसपास ही युधिष्ठिर-संवत् का आरम्भ हुआ होगा। फलस्वरूप युधिष्ठिर-काल कब प्रचलित हुआ इस प्रश्न का निश्चित उत्तर महाभारत-काल के निर्णय पर ही निर्भर करता है। किन्तु दुर्भाग्यवश इस सम्बन्ध में प्राचीन लेखकों के बीच गम्भीर मतभेद था।

स्वतः **महाभारत** में प्राप्त कतिपय उल्लेखों के अनुसार भारत-युद्ध द्वापर और कलियुग की सन्धि में हुआ और युद्ध के तत्काल पश्चात् कलियुग का प्रारम्भ हुआ।[१] चालुक्य सम्राट् पुलकेशी द्वितीय के काल के ऐहोल की पहाड़ी पर स्थित जैन मन्दिर के काव्यमय शिलालेख के रचयिता कविवर रविकीर्ति ने इसी मत का अनुसरण किया है। उक्त लेख में कलियुगारम्भ और भारतसंग्राम-काल को अभिन्न मानते हुए कहा गया है कि भारत-युद्ध का ३७३५वाँ गत वर्ष शक वर्ष ५५६ से अभिन्न है।[१]

इसके विपरीत **पुराणों** में कलियुग का प्रारम्भ कृष्ण के स्वर्गारोहण के दिन से माना गया है।[२] **महाभारत** के कथनानुसार युद्ध में विजयप्राप्ति के अनन्तर १५ वर्ष तक पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार राज्य-कार्य किया।[३] इसके बाद भीम की कटूक्तियों से खिन्न होकर धृतराष्ट्र के वन चले जाने पर युधिष्ठिर ने स्वतंत्र रूप से राज्य करना आरम्भ किया। **३६वें** वर्ष में कृष्ण का स्वर्गारोहण हुआ।[४] यह कहना कठिन है कि ३६वाँ वर्ष महाभारत के बाद से गिना गया है अथवा धृतराष्ट्र के वन-गमन से। प्रथम विकल्प के अनुसार कलि का प्रारम्भ भारत युद्ध के ३६वें वर्ष से मानना चाहिए और दूसरे विकल्प के अनुसार ५१वें वर्ष से।

तृतीय मत पुराणों के वंशवर्णन पर आधारित है। पुराणों के कथनानुसार परीक्षित के जन्म अर्थात् भारत

---

[१] अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरु-पाण्डवसेनयोः॥
——आदिपर्व, २।१३।
प्राप्तं कलियुगं विद्धि। शल्यपर्व, ६०।२५।
एतत् कलियुगं नामाचिराद् यत् प्रवर्तते।
वनपर्व, १४९।३८।

---

[१] त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दे शतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥
एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ६, पृ० ७।

[२] यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज।
वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः॥ विष्णु
पुराण, अंश ४, अ० २४, श्लोक १०८।
अन्य उल्लेख्य सन्दर्भ हैं—भागवत, स्कन्ध १२,
अ० २, श्लोक २९; वायु, ९९।४२८-४२९;
ब्रह्माण्ड, ३।७४।२४१; मत्स्य, २७३।४९-५०;
ब्रह्म २१२।८।

[३] पाण्डवाः सर्वकार्याणि संपृच्छन्ति स्म तं नृपम्।
चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दश पञ्च च।
आश्रमवासिकपर्व १।६।

[४] षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
मौसलपर्व, १।१।

[1]और महापद्मनन्द के राज्याभिषेक के बीच १०१५,[2] ५०[3] अथवा १११५[4] वर्षों का व्यवधान था। नन्द- के राजाओं ने कुल मिलाकर १०० वर्ष राज्य किया, सके पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासन पर आसीन हुआ। नी लेखकों के साक्ष्य तथा अशोक की धर्मलिपियों से त होता है कि चन्द्रगुप्त का राज्यभिषेक ई० पू० १ के आस पास हुआ। इस प्रकार भारत-संग्राम ई० १४३६ (१०१५+१००+३२१), १४७१ (१०५० ०० +३२१) अथवा १५३६ (१११५+१०० ३२१) के आसपास हुआ। परीक्षित से लेकर महा- नन्द तक के राजाओं की जो संख्याएँ पुराणों में दी ी हैं उससे भी इस तिथि की पुष्टि होती है। जरासन्ध का सहदेव भारत युद्ध में मारा गया, जिसके अनन्तर २ बृहद्रथवंशी राजाओं ने गिरिब्रज में राज्य किया।[5] द्रथ वंश के अन्तिम राजा रिपुञ्जय की हत्याकर के मंत्री पुणिक ने अपने पुत्र को राज्य दिया। इस के पाँच राजाओं के अनन्तर शैशुनाग वंश आया समें १० राजा हुए। महापद्मनन्द इस वंश के अन्तिम जा महानन्दी का पुत्र था। इस प्रकार महाभारत के से महापद्म के पूर्व तक कुल ३७ राजाओं क नाम लते हैं जिनके लिए १०१५, १०५० अथवा १११५ का समय पर्याप्त है।

---

[1] भारत युद्ध के समय परीक्षित गर्भ में था। अतः उसका जन्म भारत-युद्ध की समाप्ति के कुछ ही समय बाद हुआ होगा।

[2] यावत् परीक्षितो-जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद् वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम्॥

[3] यावत् परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद् वर्षसहस्रं तु ज्ञेय पञ्चाशदुत्तरम्॥ विष्णु ४।२४।१०४।

[4] आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद् वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम्॥ भागवत, १२।२।२६।
अधिकतर पुराणों में १०५० वर्ष का समय दिया गया है।

[5] कुछ पुराणों में बृहद्रथवंशी राजाओं की संख्या २२ है और कुछ में ३२। किन्तु किसी भी पुराण में २२ से अधिक राजाओं के नाम नहीं मिलते, अतः यही संख्या प्रामाणिक है।

चौथे मत का उल्लेख प्रसिद्ध ज्योतिर्विद वराहमिहिर तथा काश्मीर के इतिहासकार कवि कल्हण ने किया है। कविवर वराहमिहिर ने **बृहत्सहिता** में लिखा है कि जब युधिष्ठिर पृथिवी का शासन कर रहे थे तो सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे तथा शक-संवत् के आरम्भ-काल में २५२६ वर्ष जोड़ने से युधिष्ठिर का काल निकाला जा सकता है।[1] शक-काल ई० स० ७८-७९ में आरम्भ हुआ। इस मत के अनुसार महाभारत युद्ध का काल ई० पू० २४४९-२४४८ में निश्चित होता है। वराहमिहिर का अनुसरण करते हुए कल्हण ने **राजतरंगिणी** में कहा है कि द्वापर के अन्त में भारत युद्ध हुआ इस किंवदन्ती से विमोहित होकर कुछ लोगों ने काश्मीर के राजाओं का काल गलत मान लिया है और कौरव-पाण्डव वस्तुतः कलियुगारम्भ के ६५३ वर्ष पश्चात् हुए।[2] ई० स० १०३० में लिखते हुए सुप्रसिद्ध अरबी लेखक अबू रिहान अथवा अलबेरूनी ने कहा है कि उक्त वर्ष और युधिष्ठिर के काल के बीच ३४७९ वर्ष का अन्तर है।[3] इस कथन के अनुसार भी युधिष्ठिर-काल अथवा भारत युद्ध ई० स० २४४९ में ही निश्चित होता है। हर्षवर्धन के समसामयिक कामरूप-नरेश भास्कर वर्मा के निधानपुर ताम्रपट्ट से भी इस तिथि को कुछ समर्थन प्राप्त होता है। इस ताम्रपट में कहा गया है कि जिस राजवंश में भास्कर वर्मा हुआ उसके संस्थापक नरक का पुत्र भगदत्त महाभारत युद्ध में मारा गया। उसके पुत्र वज्रदत्त तथा अन्य वंशजों ने पुष्यवर्मा के राज्याभिषेक तक ३००० वर्ष राज्य किया। भास्कर वर्मा सप्तम शताब्दी के मध्य-

---

[1] आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वि (२५२६) युतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥ बृहत्संहिता, १३।३।
इस श्लोक का हमने जो अर्थ ऊपर दिया है वह भट्टोत्पल की टीका के अनुसार है। कल्हण ने भी इस श्लोक को इसी अर्थ में उद्धृत किया है।

[2] भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः।
केचिदेषां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे॥
शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः॥ राजतरंगिणी, १।४९,५१।

[3] सचाउ, अलबेरूनी'स इंडिया, खण्ड १, पृ० ३९३।

भाग में हुआ और वह पुष्यवर्मा की १२वीं पीढ़ी में था। अतः पुष्यवर्मा चतुर्थ शती के अन्त अथवा पाँचवीं सदी के आरम्भ में हुआ होगा। इसमें ३००० वर्ष जोड़ने से महाभारत युद्ध का समय लगभग ई० पू० २५०० में पड़ता है।[१]

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि भारत युद्ध और फलतः युधिष्ठिर के काल के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय लेखकों के बीच मतैक्य का अभाव है। उपर्युक्त मतों में से प्रथम को स्वीकार करने पर मानना पड़ेगा कि महाभारत का युद्ध और कलियुगारम्भ ये दोनों घटनाएँ एक ही समय घटीं और फलस्वरूप युधिष्ठिर-संवत् और कलियुग का आरम्भ एक ही समय हुआ। दूसरे मत के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ भारत-युद्ध के ३६ या ५१ वर्ष बाद हुआ। इसके विपरीत अन्तिम दो मतों को प्रामाणिक माना जाय तो भारत-युद्ध और युधिष्ठिर के राज्याभिषेक को कलियुगारम्भ के अनेक शताब्दियों पश्चात् घटित होना स्वीकार करना पड़ेगा। इनमें से कौन सा मत अधिक प्रामाणिक है, कहना असम्भव है। आधुनिक विद्वान् भी इस विषय में एकमत नहीं हैं। किन्तु अधिकांश विद्वानों का विचार है कि भारत-युद्ध कलियुगारम्भ के सैकड़ों वर्ष बाद हुआ। उपर्युक्त चारों परम्पराओं में से किसीको भी प्रामाणिक मानने से श्री बाली के मत का समर्थन नहीं होता। एक क्षण के लिए यदि यह कल्पना भी कर ली जाय कि कलियुग वस्तुतः श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण से आरम्भ हुआ तो युधिष्ठिर का राज्याभिषेक इस घटना के ३६ या ५१ वर्ष पूर्व से मानना पड़ेगा और यदि श्री बाली का यह अनुमान ठीक हो कि युधिष्ठिर ने सिंहासनासीन होने के ५-६ वर्ष बाद अपने नाम से प्रसिद्ध संवत् या काल-गणना का आरम्भ किया तो युधिष्ठिर-संवत् का आरम्भ ३१-३० अथवा ४६-४५ कलिपूर्व में होना चाहिए, ४० कलिपूर्व में किसी भी प्रकार नहीं। श्री बाली का यह कथन भी पूर्णतः निराधार है कि वराहमिहिर के अनुसार कलि से ४ वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर का वनप्रस्थान सिद्ध होता है। कुतूहलमञ्जरी और ज्योतिर्विदाभरण परवर्ती काल की जालसाजी है तथा आधुनिक विद्वान् इन्हें प्रामाणिक नहीं मानते। यदि तर्क के लिए यह मान भी लिया जाय कि युधिष्ठिर-संवत् का आरम्भ युधिष्ठिर ने सिंहासनासीन होने के ५-६ वर्ष बाद
कलि युधिष्ठिर के हिमालय-प्रस्थान के ४
प्रारम्भ हुआ, जिसके लिए कोई प्रमाण नहीं
युधिष्ठिर-संवत् का आरम्भ कलिपूर्व ३५-३४
चाहिए, ४० कलिपूर्व में नहीं।[१]

आगे चलकर श्री बाली ने ६१६ ईसा पूर्व के
की नई शोध का उल्लेख किया है,[२] किन्तु इसके
उन्होंने एक भी प्रमाण नहीं दिया। इस सम्ब
उल्लेखनीय है कि अनेक आधुनिक लेखकों ने
५००-६०० वर्ष पूर्व आरम्भ होनेवाले एक
की कल्पना की है, जिसका कोई आधार नहीं
हरणार्थ, गुलशन राय, कोट वेंकटाचलम, तिरु
आदि के मत में ईरान के सम्राट् कुरुष ने अपने
साम्राज्य की स्थापना अथवा भारत आक्रमण के
में ई० पू० ५५० में कालगणना के एक प्रकार
पना की जो आगे चलकर शक-काल या शक-सं
लाया। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनु
ू० ५४३ में बुद्ध के निर्वाण से एक संवत् का आर
जो शककाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शककाल
प्रमाणहीन उद्भावना का एकमात्र प्रयोजन है
लेखकों और ऐतिहासिक घटनाओं की प्राचीन
करना। किन्तु प्रामाणिक इतिहास के निर्माण
नाओं का कोई महत्त्व या उपयोग नहीं हो सक

---

[१] इस सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय
है कि युधिष्ठिर द्वारा कालगणना की स्थापना
किसी भी अतिप्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता। व
ने भी सप्तर्षिचार के सन्दर्भ में केवल युधिष्ठिर
काल और शकारम्भ (ई० स० ७८) के मध्य
का ही उल्लेख किया है, युधिष्ठिर-संवत्
प्रतीत होता है कि युधिष्ठिर ने किसी संवत्
नहीं किया। बाद के लेखकों ने ही इसकी कल्
गणना की सुविधा के लिए की। महाभारत
ष्ठिर के जीवन की छोटी-छोटी बातों तक
किया गया है। यदि युधिष्ठिर ने किसी संवत्
किया होता तो महाभारत में अवश्य ही इस
उल्लेख होता।

[२] श्री बाली ने लिखा है कि ईसा-पूर्व
पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री पर या तो युधि
अंकित है या फिर प्राचीन शक-संवत्। हम
में आज तक ऐसा एक भी उदाहरण नहीं आ

श्री बाली ने यह भी लिखा है कि 'वराहमिहिर का भी १०० ईसा पूर्व निश्चित है।' यह धारणा भी ही अप्रामाणिक है जितनी कि उनकी अन्य धार- हैं। इसके समर्थन में केवल दो श्लोक उद्धृत किये सकते हैं। गणक कालिदास-प्रणीत **ज्योतिर्विदाभरण** नुसार वराहमिहिर उस विक्रमादित्य की सभा के रत्नों में से एक था जिसने ई० पू० ५७ में विक्रम- की स्थापना की थी। यह गणक कालिदास **कुमार-**व, **रघुवंश** और **मेघदूत** के रचयिता कालिदास से न होने तथा उक्त विक्रमादित्य के समसामयिक रत्नों में से एक होने का दावा करता है—

धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेत लभटटघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वं वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

ज्योतिर्विदाभरण, २२-१०

ज्योतिर्विदाहरण की अप्रामाणिकता इसीसे स्पष्ट एक ओर तो इसका लेखक ई० पू० ५७ में विक्र- की स्थापना करनेवाले विक्रम का समकालीन का दावा करता है और दूसरी ओर वह एक ज्योतिषी भाँति यह भविष्यवाणी करता है कि शकसंवत् विक्र- के १३५ वर्ष बाद अर्थात् ई० स० ७८ में आरम्भ । इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि इस ग्रन्थ की ई० स० ७८ के पूर्व की नहीं मानी जा सकती। ात ज्योतिषी पण्डित सुधाकर द्विवेदी और शंकर कृष्ण दीक्षित ने ज्योतिर्विदाभरण की ज्योतिषपरक श्री का परीक्षण कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह शके ११६४ या ई० स० १२४२-४३ से प्राचीन हो सकता। दूसरा श्लोक **कुतूहलमजरी** का है जिसके ार वराहमिहिर का जन्म युधिष्ठिर-संवत् ३०४२ आ।[1] शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने प्रतिपादित किया है कि इस श्लोक में वर्णित तिथि की संगति किसी भी प्रकार नहीं बैठाई जा सकती।[2] इस विषय का अधिक विस्तार न कर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि स्वतः वराहमिहिर के ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य से इस धारणा का खण्डन होता है। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ **पञ्च-सिद्धान्तिका** १।८-१० में अहर्गण लाने के लिए शक-संवत् ४२७ अर्थात् ई० स० ५०५ का उल्लेख किया है, जो उक्त ग्रन्थ का रचनाकाल प्रतीत होता है। अरब लेखक अबू रिहान ने भी इसी मत को प्रामाणिक माना है।[3] उज्जैन के ज्योतिषियों ने विलियम हंटर को ज्योतिर्वेत्ताओं की एक नामावली दी थी जिसमें वराह-मिहिर के लिए शके ४२७ तिथि दी गई है।[4] **पञ्च-सिद्धान्तिक**, १५।५ में वराहमिहिर ने सुप्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट के मत का उल्लेख किया है। आर्यभट का जन्म ई० स० ४७६ में हुआ और उसने ४९९ में अपने विख्यात ग्रन्थ **आर्यभटीय** की रचना की। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्यकरण के टीकाकार आमराज के कथनानुसार शके ५०९ अर्थात् ई० स० ५८७ में वराह-मिहिर का देहावसान हुआ। इन सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि वराहमिहिर को ईस्वी सन् की पाँचवीं सदी से पूर्व किसी भी प्रकार नहीं रखा जा सकता।

---

[1] स्वस्ति श्रीनृपसूर्यसूनुजशके याते द्विवेदाम्बर-
४२)
त्रैमानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूद्
वेदांगे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशिभिः॥

[2] भारतीय ज्योतिष (हिन्दी अनुवाद, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश), पृ० २९४, टिप्पणी १.

[3] अलबेरूनी'स् इंडिया खंड १, पृ० ३९२; खंड २, पृ० ७, ८६, २७७.

[4] कोलब्रुक, मिसेलेनियस एसेज, खंड २, पृ० ४६१-४६३.

'रामचरित-मानस' का 'काशिराज-संस्करण'

पण्डित किशोरीदास वाजपेयी

(गताङ्क से आगे)

करिय—'करिअ' आदि

संस्कृत में 'किंकरणीयम्' 'वचनं श्रवणीयम्' आदि से 'ईय' अंश लेकर और ह्रस्वता संपादित करके अवधी-ब्रजभाषा आदि के साहित्य में 'इय' प्रत्यय चला—'कीजिय काज विचारि' 'जागिय कृपानिधान' आदि प्रयोग। जनभाषा में भी—'सात पाँच मिलि **कीजिय** काजा, हारे-जीते होय न लाजा' आदि प्रयोग देखे जाते हैं। इसी 'इय' में 'त' लगाकर 'कहिय' से 'कहियत' और 'सुनिय' से 'सुनियत' आदि की रचना—'**कहियत** नन्दलाल घर-घर मैं जाइ करत माखन की चोरी'। 'कहियत'—कहा जाता है। 'सुनियत'—सुना जाता है—'सुनियत स्याम मधुपुरी हू तजि अब कहुँ अनत सिधारे।' 'कहिय' 'सुनिय' आदि में एक निवेदन-सा है और कर्ता प्रायः मध्यम पुरुष। 'सुनियत' आदि वर्तमान कर्मकर्तृक प्रयोग।

'कीजिय' आदि के 'य' को 'ए' करके 'कीजिए' आदि रूप राष्ट्रभाषा में चलते हैं। 'कीजिये' संकर-रूप गलत।

'काशिराज-संस्करण' में सर्वत्र 'करिअ', 'कीजिअ', 'सुनिअ' जैसे रूप हैं। इसका मतलब यह हुआ कि 'कीजिअ' और 'कीजिए' का कोई सम्बन्ध नहीं! 'अ' को 'ए' कौन करेगा? 'य' को तो 'ए' होता ही रहता है—'गयउ'> 'गएउ' आदि। सूर आदि ने ब्रजभाषा में और जायसी आदि ने अवधी में यकारान्त ही प्रयोग किये हैं, अकारान्त नहीं। 'मानस' के सन् १९०१-१० के छपे संस्करणों में भी 'कीजिय' जैसे पाठ ही हैं। जब से 'भाषा-विश्लेषण' का जोर बँधा और काशी नागरीप्रचारिणी सभा की 'खोज-रिपोर्ट' ने दो-चार हस्तलिखित प्रतियों का पता दिया, तब से 'कीजिअ' आदि का चलन हुआ। भारतवर्ष में ये ही तीन-चार प्रतियाँ 'मानस' की हुई हों, ऐसा तो कहा नहीं जा सकता। सहस्रों प्रतियाँ एक-एक क्षेत्र में होंगी, जो मुद्रण-यंत्र ने समाप्त कर दीं। 'श्री वेंकटेश्वर प्रेस' उन दिनों हिन्दी-संस्कृत पुस्तकें छापने में अग्रणी था। उसकी पुस्तकों में आगे-पीछे एक विज्ञापन छपा रहता था—"जिन सज्जनों के पास हिन्दी या संस्कृत की कोई हस्तलिखित पोथी हो, वे हमारे पास उसे हम उसे छाप देंगे। छपने पर पोथी भेजने पचीस छपी हुई प्रतियाँ भेंट करेंगे और उनका छाप देंगे।" इस तरह मँगाकर काम चल छपने के बाद उन मूल प्रतियों को कौन पूछता में जैसे अन्य पाण्डुलिपियाँ नष्ट कर दी जाती ही उनकी भी सद्गति हो जाती होगी। ब हुई सस्ती पुस्तक सुलभ हो जाने पर देश की लिखित प्रतियाँ भी जीर्ण होकर नष्ट हो गयीं; या चूहे चट कर गये। जो बच रहीं, उनकी मा गयी और उनका ही सहारा लिया जाने लगा ये हस्तलिखित प्रतियाँ आपस में मिलतीं नहीं, हैं। सन् १९३६ में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'रा मानस' का सटीक संस्करण अपने 'हिन्दी (प्रयाग) से प्रकाशित किया। इसका सम्पाद में त्रिपाठीजी ने कई वर्ष परिश्रम किया था और (श्रवणकुंज), राजापुर और मलिहाबाद जा-जा प्रतियों को **पैनी** दृष्टि से देखा और पढ़ा था। उ के सम्बन्ध में त्रिपाठीजी ने जो कुछ लिखा है स्पष्ट है कि उनमें बहुत गपड़चौथ है। अपनी 'तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई' बताने में से आगे हैं और जगह-जगह लिख भी दिया है खत तुलसीदास।'

खैर, अब आप 'कीजिय'—'कीजिअ' जाइए। कहते हैं काशी में 'मेघा भगत' नाम गोस्वामी तुलसीदास के भक्त और मित्र थे लिए तुलसीदास की प्रति से कैथी लिपि में एक प्रति तैयार करायी गयी। तुलसीदासजी कै से परिचित थे या नहीं और उन्होंने इस कैथी देखा कि नहीं; यह सब विदित नहीं है। कै पूर्ण नहीं है; कई त्रुटियाँ हैं। लिखो कुछ; प आगे तुलसी की प्रति से नागरी में और मेघा प्रति से कैथी में 'मानस' की प्रतियाँ उतरती र आगे चलकर तुलसीदास के हाथ की लिखी प्र हो गई। फिर कैथी-प्रति से नागरी प्रति और

ति से कैथी प्रति बनने-चलने का क्रम बँधा। प्रति-लपि करनेवालों में सब शिक्षित ही रहे हों, यह बात हीं है। नकल भर तो करनी थी ! प्राप्त पुरानी तियों की पुष्पिकाएँ तथा यत्र-तत्र दी हुई टिप्पणियाँ ादि बतलाती हैं कि उस तरह कलम के चलानेवाले से-कैसे थे। उन्हें राम-कथा से मतलब था, किसी ाषा-बखेड़े से नहीं। 'कीजिय' हो, तो भला और कीजिअ' हो, तो भला। अर्थ तो बदला नहीं। दोनों ा उच्चारण भी मिलता-जुलता ही है। यों 'कीजिअ' ी चल पड़ा।

कैथी लिपि की प्रतियों में 'य' का प्रायः बहिष्कार । वहाँ 'माया' तक को 'माआ' कर दिया गया है; सा मिश्रजी ने लिखा है। जब 'माया' ही 'माआ' बन यी, तब 'कीजिय' आदि का 'कीजिअ' आदि हो जाना ई बड़ी बात नहीं है——जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं, हहु तूल केहि लेखे माहीं!'

'माआ' को तो फिर नागरी में 'माया' कर लिया या, पर 'कीजिअ' आदि ज्यों के त्यों लोगों ने ले लिये। ाशिराज-संस्करण' भी उसी राह पर है। एक जगह श्रजी ने लिखा है कि कैथी ने 'मानस' में बहुत 'महत्त्वपूर्ण' पाठ-परिवर्तन उपस्थित किये हैं। या' को 'माआ' कर देना क्या कम महत्त्व की बात ? 'पाठ-परिवर्तन' का क्या महत्त्व? पाठ-संशोधन कोई चीज भी है। कदाचित् 'अद्भुत' के अर्थ में श्रजी ने 'महत्त्वपूर्ण' शब्द का प्रयोग किया है।

अच्छा, चलो, 'कीजिय' को 'कीजिअ' कैथी लिपि ही चला दिया; अर्थ भी नहीं बदला; उच्चारण भी लता-जुलता है; तब फिर झगड़ा किस बात का? 'कीजिअ' सही!

इस पर निवेदन है कि भाषा का स्वरूप बिगाड़ना क नहीं। चपटी और मोटी नाक से भी वही काम ता है, जो सुन्दर सुडौल से; पर अच्छा लगने का भी ल है। भाषा की प्रकृति भी देखी जाती है। बोलने 'कीजिय' 'सुनिय' अच्छा लगता है, या 'कीजिअ' नअ' आदि? फिर, कीजिए, सुनिए आदि की पर-ा कहाँ ढूँढ़ी जाएगी? 'सुनियत' को क्या 'सुनि- कर देंगे? बढ़िया भाषा बन जाएगी! भाषा की प्रकृति 'इ'—'ई' के अनन्तर अ— आ रखने की है ही नहीं। तालु (इ-ई) से उलटे लौटकर कंठ (अ-आ) को जाने में वागिन्द्रिय कुछ परेशानी अनुभव करती है। इसीलिए 'अ' को 'य' कर लेती है। 'य' का भी तालु स्थान है। निकट > निअड > निअद> 'नियर।' 'पर्वत नियराई'—'निअराई' नहीं; 'बिटिया' होता है, 'बिटिआ' नहीं। किसी चौथे दर्जे के छात्र के सामने बोल देखिए, वह 'बिटिया' लिखेगा, 'बिटिआ' नहीं। पंजाबी में अवश्य 'कुड़िआँ' चलता है; हिन्दी में 'लड़कियाँ', 'निधियाँ' आदि रूप होते हैं—'लड़किआँ' 'निधिआँ' नहीं। 'निधियाँ' बोलने में जो सुख है, वह 'निधिआँ' बोलने में है क्या?

विदेशी शब्दों का ग्रहण भी इसी पद्धति पर है। '**इंडिया**' चलता है, '**इंडिआ**' नहीं। '**गाजियाबाद**' चलता है, 'गाजिआबाद' नहीं।

फिर 'इअ' प्रत्यय का निकास ढूँढ़ो! 'इय' का निकास तो 'गमनीय', 'श्रवणीय' आदि से जान पड़ता है। किसी प्राकृत से यह 'इय' आया है; असली प्राकृत से। बनावटी प्राकृतों में तो 'पिता' और 'माता' भी 'पिआ'—'माआ' बना दिये गये हैं! संभव है, उस समय भी वैसी ही कोई 'सुधरी हुई' लिपि ईजाद हुई हो, जैसी की बाद में 'कैथी लिपि' सामने आयी और इसीलिए उसमें भी 'माया' आदि को 'माआ' जैसा रूप मिल गया हो और फिर उस लिपि के वे ही रूप ज्यों के त्यों (नाटक आदि में) नागरी लिपि में कर लिये गये हों। लिपि-भेद से बड़ा घोटाला पड़ जाता है। मध्यप्रदेश के 'छत्तीसगढ़' क्षेत्र में कई छोटे-छोटे वैष्णव राजा थे। एक राजा ने अपनी राजधानी बसाकर उसका नाम (अपने इष्टदेव की जन्मभूमि के नाम पर) 'नन्दगावँ' रखा। अँगरेजी राज आने पर 'नन्दगावँ' नागरी की जगह रोमन लिपि में चला और Nand को लोगों ने पढ़ा '**नाँद**'। फिर नागरी लिपि में भी—'राजनाँदगावँ' लिखा जाने लगा। अब आप पत्र वहाँ भेजें और पता लिख दें—'राज नन्दगावँ' तो मारा-मारा फिरेगा। 'मध्यप्रदेश' लिख देने से शायद पहुँच भी जाये; पर 'नन्दगावँ' लिख देने के कारण आप मूर्ख या दकियानूसी समझे जायेंगे और 'नाँदगावँ' लिखो, तो शिक्षित। कुछ वही स्थिति 'कीजिय' और 'कीजिअ' की है, जो कैथी लिपि का स्मरणीय प्रसाद है।

'पेम' और 'सरऊ'

'काशिराज-संस्करण' में कहीं 'प्रेम' की जगह 'पेम' छापा गया है और कहीं तदवस्थ 'प्रेम'। इसी तरह कहीं 'सरजू' और कहीं 'सरऊ!' 'सरऊ' तो बहुत ही भद्दा लगता है! कहा जाए—'गाधितनय सरऊ तब न्हाए' तो यह भान हो जायेगा—'तब सरऊ गाधितनय न्हाए।' प्रसंग और औचित्य से समझा जा सकता है कि 'सरजू' के लिए 'सरऊ' है। परन्तु मन में वह गाली भी तो आ जायेगी न? यह तो हुआ साहित्यिक दोष। अब यह सोचिए कि 'सरजू' को 'सरऊ' बना क्यों दिया गया? 'सरजू' बोलने में क्या कष्ट है? 'सरयू' का रूपान्तर तो 'सरजू' ठीक; पर फिर 'सरजू' को 'सरऊ' क्यों किया गया? और, जब ग्रन्थ में कहीं 'सरजू' भी है, तब दूसरी जगह 'सरऊ' किस लिए?

मिश्रजी ने लिखा है कि हस्तलेखों में जिस शब्द का जो रूप जहाँ मिला, उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया है—एकरूपता का आग्रह नहीं किया गया। यह बात 'गयउ' और 'गएउ' और 'ऋतु'-'रितु' आदि के बारे में ठीक कही जा सकती है। 'राखा' की तुक में 'भाखा' और 'भाषा' भी मानी जा सकती है; पर 'सरजू' और 'सरऊ' के बारे में नहीं। सर्वत्र इस शब्द की एकरूपता अपेक्षित है—'सरजू।' 'ज्'—लोप का कोई कारण नहीं। ग्रामीण जन भी 'सरजू' को कहीं भी 'सरऊ' नहीं बोलते। 'गरजू' को कोई 'गरऊ' बोलता है क्या?

ऐसा जान पड़ता है कि किसी ऐसी प्राकृत-अपभ्रंश की छाया पड़ गयी है, जहाँ अन्धाधुन्ध उपान्त्य-व्यंजन का लोप कर देना महत्त्व की बात समझी जाती थी। 'पाप' को भी 'पाअ' और 'पाद' को भी 'पाअ।' हिन्दी का सम्बन्ध ऐसी किसी प्राकृत-अपभ्रंश की धारा से दूर का भी नहीं है। यहाँ 'पाद' के रूप 'पायँ' 'पावँ' चलते हैं। अनुनासिक रूप प्रयोजन से हैं। अन्यत्र 'पाया' 'पावा' आदि रूप गृहीत हैं। 'पाद' कहीं 'पाअ' नहीं बोला जाता। 'पाप' ज्यों का त्यों चलता है। 'सरजू' किसी ऐसी प्राकृत में रूप बना, जिसकी धारा में वर्तमान लोकभाषाएँ हैं। कोई ऐसी भी धारा भाषा की होगी, या वैसी लिपि होगी, जहाँ 'सरयू' को 'सरऊ' रूप कर दिया गया; जैसे कैथी लिपि में 'मान
'माया' को 'माआ' और 'कीजिय' आदि को
आदि। उसी 'सरऊ' को किसी ने 'मानस' में
रख दिया और उसीका ज्यों का त्यों ग्रहण उस
के लिए 'काशिराज-संस्करण' में भी हो गया।
भाषा ऐसे बेढंगे शब्द पसन्द नहीं करती। यहाँ
चलता आया है, चल रहा है और आगे भी चलेगा

अवधी आदि का अपना रूप है, अपनी
उसे बिगाड़ना ठीक नहीं।

'प्रेम' भी कहीं 'पेम' कर दिया गया है!
पूछे क्यों? 'प्रेम' को 'पेम' कौन बोलता है?
बिगाड़कर बोला, तो 'परेम' हो जाएगा;
कहीं नहीं। कहीं किसी जगह कोई प्रतिलिपिक
'र्' लगाना भूल गया और 'प्रेम' का 'पेम' हो
अन्यत्र उसने 'प्रेम' ही लिखा। सम्पादकों ने दो
ग्रहण कर लिये; यह कहकर कि शब्दों की ए
कोई जरूरी नहीं है! परन्तु 'सम्पादक' कोई प्रति
नहीं कि 'यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मय
कर छुट्टी पा जाये!

'र' से हिन्दी को परहेज नहीं है। 'धर्म'
किसी प्राकृत में 'धम्म' हुआ और किसी में
'धरम' वाली प्राकृत 'हिन्दी-संघ' की भाषाओं से
रखती है। यहाँ सर्वत्र 'धरम' चलता है। 'पर
यह नाथ हमारा' या 'परम धरमु यह।' कहीं
या 'धामु' नहीं होता। यदि 'र्' से परहेज हो
सर्वत्र 'धम्मु' 'धामु' की धमाचौकड़ी 'धरम' के
मचती। यह भी नहीं कि 'हिन्दी-संघ' की भाष
'धम्म' वाली धारा का पता न हो। 'कामु
कुछु है नाइँ, अठिलात फिरत हैं' और 'काम
लगे ही रहते हैं' इत्यादि युग्म-प्रयोगों में वही
'काम-धाम'—कर्म-धर्म। अन्यत्र 'धरमु हमार'
है; 'धामु हमार' नहीं।

यदि अवधी आदि को र् से परहेज होता, तो
हीन डरपत' न होता, 'पियाहीन' होता।
'प्रिया' भी 'पिया!' स्त्री-सुलभ मधुर प्रयो
और 'पिया' होते हैं। 'प्रिय' का 'पिय' और
कर 'पिया।' परन्तु 'सरजू' को 'सरऊं'
सुनी जाता। 'सरजूदास' तो सुने हैं;

स' कभी नहीं सुन पड़ा। इसलिए मर्यादा पुरुषोत्तम पवित्र नदी को 'मानस' में 'सरऊ' करना ठीक नहीं! सीदासजी कभी भी 'सरजू' को 'सरऊ' नहीं लिख कते। इसी तरह——

'गुरु' को 'गुर' कर देना

षा की प्रकृति, भाषाविज्ञान, तुलसीदास की वना और जनभाषा के विरुद्ध है। तुलसीदास भाषा अनभिज्ञ न थे और संस्कृत के पंडित थे। वे संस्कृत 'गुरु' शब्द से परिचित थे। जायसी जैसे मुसलमान वि ने भी 'पद्मावत' में 'गुरु' का ही प्रयोग किया है; र' का नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी-थावली' की भूमिका में तुलसी के जो पद्य उद्धृत किय उनमें भी 'गुरु' ही है——'श्रीगुरुपद नख।' जनभाषा भी 'गुरुजी' बोला जाता है; 'गुरजी' नहीं। बहुत ा, तो दीर्घान्त 'गुरूजी' हो गया और बस। 'वही मैं चेला' और 'गुरू मिले रैदास' आदि प्रयोग हैं; कि 'वही गुरा मैं चेला' और 'गुरा मिले रैदास।' श्रजी ने लिखा है कि 'गुर' शब्द ही देश्य भाषा में ता है। कौन सी 'देश्य भाषा' में? मिश्रजी ने ा है——'निगुरा' में 'गुर' है; 'गुरु' नहीं; इसलिए य भाषा का प्रातिपदिक 'गुर' ही है और जहाँ 'गुरु' े, उसे उस 'उ' से युक्त समझना चाहिए, जो 'राम' 'रामु' कर देता है! यह मिश्रजी के 'उ' प्रेम का उदाहरण है। तब तो 'चरु' का रूप 'चर' होगा र 'उ' लगकर 'चरु।' जो लोग 'भानु' को तत्सम कृत और 'भान' को तद्भव मानते हैं; वे भी प्रत्या-त समझिए! 'भानु' का वहिष्कार 'गुरु' की ही ह और 'भान' देश्यभाषा। इस 'भान' में फिर 'उ' ाकर 'भानु!' यानी 'भानु' भी तद्भव शब्द और ' भी। तथापि इज्जत देने के लिए 'उ' के बिना 'गुर' प्रयोग——'बन्दौं **गुर** पद कंज!' कदाचित् 'भान' कर ही 'गुर' की कल्पना हुई हो! 'भान' यहाँ ता है——'लाला चन्द्रभान।' कोई कह रहा है——

करु मन मालपुअन को ध्यान!
न्यौता सुने नींद नहिं आवै,
कब ऊगैं गे भान।

यहाँ 'ध्यानु' 'भानु' **भी** हो जायेंगे। परन्तु 'गुरजी' शंन कहीं नहीं। 'ध्यानु' तो नहीं, पर 'भानु' तत्सम है।

'निगुरा' में भी 'गुर' प्रातिपदिक नहीं, 'गुरु' ही है। समासान्त 'आ' प्रत्यय हिन्दी में जब होता है, अन्त्य पद के अवर्ण के साथ सवर्णदीर्घ सन्धि हो जाती है——'तिमंजिला मकान।' मंजिल+आ='मंजिला।' यदि अन्य कोई स्वर अन्त में हुआ, तो उसका लोप हो जाता है। साग और पहिती (दाल) मिलकर——'सगपहिता।' 'पहिती' की 'ई' का लोप और प्रत्यय के 'आ' से मिलकर——'सगपहिता।' **इस** 'सगपहिता' को देखकर कोई अवधी-पांचाली में कहे——'आजु तौ भाई **पहिता** अरहर कै खाई है' तो उसे लोग क्या कहेंगे? कहेंगे, 'पहिता का होति है जी?' इसी तरह 'मानस' के पाठक पूछ सकते हैं कि यह 'गुर' कैसा है, जिसके पाँव भी हैं? 'गुर' दूसरी चीज है, 'गुरु' से। पुराने दुकानदार बतायेंगे कि वे अपने बच्चों को हिसाब के कैसे-कैसे 'गुर' बताया करते थे। 'ग्राम्य गिरा' में भी तुलसीदास 'गुरु' को कभी भी 'गुर' करनेवाले नहीं।

'निगुरा' को देखकर 'गुर' प्रातिपदिक माननेवाले 'हिसाब बेबाक हुआ' के '**बेबाक**' में 'बाक' प्रातिपदिक समझकर 'मेरे दस रुपये तेरे ऊपर **बाक** रहे' बोलेंगे!

'जो' और जेहि' का झगड़ा

'श्रीगणेश' देखिए :——

'जो सुमिरत सिधि होइ'

हमें याद है——

'जेहि सुमिरत सिधि होइ'

कौन सा पाठ ठीक है? 'करौ अनुग्रह सोइ' में 'सो' देख कर 'जेहि' की जगह 'जो' कर दिया गया है। 'जो'–'सो' का मेल बैठाने के लिए! परन्तु अर्थ? अर्थ से मतलब नहीं!

'जो सुमिरत सिधि होइ' का अर्थ है——

'जो स्मरण करता है, सिद्धि होती है'

मतलब निकला? यदि 'सिधि होइ' की जगह 'सिधि देत' पाठ होता, तो जरूर अर्थ निकल जाता——'जो स्मरण करते ही सिद्धि देता है।' परन्तु 'होइ' की जगह 'देत' किया नहीं जा सकता; क्योंकि 'सोइ' से बेमेल हो जाएगा। 'सिधि होइ'——सिद्धि होती है; 'जेहि सुमिरत'——जिसका स्मरण करते ही। 'छुअत टूट'——छूते ही टूट गया। यानी 'जेहि' कर्मकारक है।

'जो' कर्तृवाच्य क्रिया का कर्ता होगा; पर यहाँ तो ('होइ' क्रिया का) कर्ता है---'सिधि।' 'सिद्धि होती है; जो होता है' नहीं। काशिराज-संस्करण में भी ऐसी चीजें मिलें, यह आश्चर्य की बात है! जो स्मरण करते ही सिद्धि हो जाता है? क्या मतलब?

'परिच्छा' को 'परि॑छा'

काशिराज-संस्करण में 'परिच्छा' आदि को 'परि॑छा' आदि रूप से सर्वत्र रखा गया है। उच्चारण स्पष्ट करने के लिए ऊपर एक डंडा रखा गया है---'परि॑छा' 'ल॑छ' आदि। 'लच्छ' न करके 'लछ!' यानी एक नया उच्चारण-संकेत! परन्तु इस नये संकेत की झंझट खड़ी क्यों की गयी? 'परिच्छा' और 'लच्छ'-'दच्छ' क्यों न लिखे गये?

संस्कृत तद्रूप (तत्सम) शब्दों में यह नयी व्यवस्था नहीं है—'बुद्धि-रासि' को 'बु॑धि-रासि' नहीं किया गया। इसी तरह क्रुद्ध, शुद्ध आदि को 'क्रुध'-'शुध' नहीं किया गया है। हेतु यह दिया है कि 'बुद्धि' आदि प्राचीन प्रतियों में इसी तरह लिखे मिलते हैं; पर 'दच्छ' आदि की जगह 'दछछ' आदि लिखने में कठिनाई हुई! महाप्राण को महाप्राण से कैसे मिलायें! नीचे (व्यंजन मात्र का) चिह्न लगाने की चाल लोकभाषा में नहीं कि--'दछ्छ' लिख देते! 'दछछ' कुछ और ही बन ज़ाता है और अल्पप्राण (च्) आदि लिखने-मिलाने की चाल नहीं; इसलिए (पुरानी प्रतियों में) 'दच्छ' का रूप 'दछ' लिखा गया और (दच्छ) उच्चारण स्पष्ट करने के लिए ऊपर कुछ संकेत किया गया। वही संकेत इस संस्करण में ऊपर डंडा है, जिसे मिश्रजी ने 'उदात्त' की संज्ञा दी है! समझ में नहीं आता कि जब संस्कृत तद्रूप शब्दों में अल्पप्राण को महाप्राण से मिला कर 'मानस' में लिखना गलत नहीं, तो फिर 'दच्छ' आदि कैसे गलत हो गये! और महाप्राण से मह
का मेल हो कैसे? 'लक्खन' में 'क्' और 'ख' का
है; या 'ख्'-'ख' का? संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश
वर्तमान लोकभाषाओं में---सर्वत्र--- ऐसी जगह
प्राण महाप्राण से मिलता है। 'अच्छा' को '
कौन लिखता है? क्यों लिखे? अब आगे क्या है
हिन्दी में 'अ॑छा तुम कम॑छा जाकर अपने म॑थे कल
ीका लो' इस तरह 'अच्छा' 'कमच्छा' और 'मत
लिपि-विन्यास करना होगा? क्या 'कत्था' को
बनना होगा? क्या जायसी के 'पद्मावत' आदि
यह सब चलेगा? अन्यथा भाषा ही दूसरी जान प
इस डंडे वाली भाषा-लिपि से लाभ क्या?
परिचय याद करने की जरूरत क्यों पड़े?

संकेतों की भरमार है। कहीं नीचे आड़ा डं
कहीं ऊपर सीधा डंडा है और कहीं ऊपर भी
डंडा है।—ह्रस्व 'ए'-'ओ' के उच्चारण चार सौ
से लोग बराबर समझते आ रहे हैं; उससे भी प
'पद्मावत' आदि में। आज भी 'सोहराब मोदी'
गोपाल मोहता' 'रामचन्द्र मेहरा' 'गुलाबी
आदि में इन स्वरों के ह्रस्व उच्चारण डंडे के बि
सब लोग समझ लेते हैं। न समझने पर भी अर्थ में
झंझट नहीं। फिर भी नये संकेतों की कल्पना।
से But के उच्चारण में भेद प्रकट करने के
अँगरेजी में भी कोई संकेत-कल्पना नहीं है।
'मानस' में ह्रस्व 'ए' 'ओ' के लिए पृथक् संकेत
इन ह्रस्वता-बोधक संकेतों का विरोध नहीं करते;
केवल यह हैं कि इनके बिना भी काम रुका
परन्तु उस खड़े डंडे का सख्त विरोध है—'म
'म॑छ' करना भाषा के सिर पर एक भारी बोझ
है! इससे भ्रम बढ़ेंगे, भाषा विकृत होगी। ह
एकदम नापसन्द करते हैं।

* * *

एक मराठी हास्य-व्यंग्य कथा

विस्मृत गौरव की खोज में

मूल ले० श्री मनोहर नादकर्णी

रूपां० श्री नरेशचन्द्र मिश्र

"प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजी महाराज का गौरव किस चीज में निहित है ?" यह एक ऐसा बहुचर्चित, ज्वलंत प्रश्न है जिस पर अनेक विचारक और विद्वान् अलग-अलग मत रखते हैं। मजे की बात तो यह कि हर विद्वान् अपनी ही मान्यता को "वेद वाक्य" की तरह शाश्वत सत्य मानता है और दूसरे विद्वानों के विचारों पर "नास्तिको वेद निंदकः" की मुद्रा में सिर हिलाता है।

ऐसी विषम परिस्थिति में मैं यदि इन सभी विद्वानों को इनके व्यक्तित्व के अनुरूप क्षमा के तुलादान पर चढ़ा लूँ, और फिर संभ्रम भरी मुद्रा में निवेदन करूँ कि इन सभी के विचार गलत हैं, तो ?

तो निश्चय ही देश के वैचारिक जगत् में प्रलय की आँधी आ जायगी और आलोचनाओं का विशाल महल मलवा बनकर मुझ गरीब के ऊपर ढह पड़ेगा, और मेरी आवाज उसके नीचे घुटकर रह जायगी।

लेकिन मैं बुद्धिजीवी होने के नाते इस दुर्घटना की आशंका झेलकर भी अपने विचार पर "भगीरथ" हूँ। टलूँगा नहीं, अपने समर्थन में तर्क देता जाऊँगा। इनमें सबसे वजनी तर्क ये कि प्राचीन काल से लेकर आज बीसवीं सदी के सातवें दशक तक के किसी भी महापुरुष के चित्र पर दृष्टि डालिये तो पता चलेगा कि उसका अपना एक "ट्रेड मार्क" है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जटासंभार, लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण का मोर मुकुट, प्रतापी प्रताप का मंदिर-कलश-सा टोंकदार मुकुट, शाहंशाह औरंगजेब का हुक्का और शाहजहाँ के हाथ का गुलाब-पुष्प आदि इसी "ट्रेडमार्क" के अंतर्गत आते हैं। ये ट्रेड मार्क न हों और आप किन्हीं दो पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुष का अंतर बता दें तो जानूं। पौराणिक ऐतिहासिक प्रमाणों की बात दकियानूसी लगती हो तो आधुनिक साक्षी लीजिए। आखिर ये राष्ट्र प्राण नेहरू की टोपी, तानाशाह हिटलर की बटरफ्लाई, मूँछ और कूटनीतिविद् चर्चिल की चुरुट क्या चीजें हैं ? इन्हीं उपकरणों से तो हम इन महापुरुषों को कार्टूनों में भी पहचान लेते हैं। तो, अब यह सिद्ध हो गया कि महापुरुषों को पहचानने के लिए उनके कर्तृत्व की अपेक्षा उनके ट्रेड मार्क पर ध्यान देना चाहिए।

अब इस तथ्य की रोशनी में शिवाजी महाराज का अध्ययन करें तो उनके शौर्य, युद्ध, नैपुण्य और चतुराई की बातें उपेक्षणीय लगती हैं। माना कि उनके ये गुण उल्लेखनीय महत्त्व रखते हैं, लेकिन सिर्फ इन्हींके द्वारा छत्रपति की पहचान तो नहीं हो सकती।

पहचान के लिए जरा गौर से छत्रपति के चित्र को देखिए। बताइए तो इस चित्र में कौन-सी चीज आपका ध्यान सबसे ज्यादा आकर्षित करती है ? उनका घोड़ा ? नहीं, घोड़ा तो उन दिनों अदने सिपाही भी रखते थे। तब उनकी भवानी ? नहीं जी, भवानी-जैसी तलवारें तो उन दिनों घर-घर में थीं। फिर ?

प्रश्न इतना आसान नहीं जो बिना मेधा पर कुछ बल दिये हल हो जाय। जरा गौर से मेरे निकट आइए तो कान में बतला दूं। "छत्रपति का गौरव-चिह्न है उनका जिरेटोप (पगड़ी विशेष)।"

मेरी बात पर चौंकने या अविश्वास करने की जरूरत नहीं। आप ही सोचिए उन दिनों जब अन्य मराठा सैनिक साफा, रूमाल, पटका या दूसरे शिरोभूषणों से अपनी शोभा बढ़ाते थे, छत्रपति को ही जिरेटोप पहनने की क्या गरज अटकी थी ?

शौर्य, युद्ध-नैपुण्य या चतुराई की बातें करेंगे तो मैं वीरवर तानाजी को ला खड़ा करूँगा। यह बहादुर मराठा इन गुणों में छत्रपति से कम था ? नहीं, बिलकुल नहीं। बल्कि यह भी छत्रपति की तरह दादाजी कोणदेव और समर्थ रामदास का शिष्य था। फिर इसे शिवाजी जैसी प्रतिष्ठा क्यों न मिली ? कारण स्पष्ट है। इसके पास छत्रपति-जैसा जिरेटोप नहीं था।

आपको किंवदन्ती में गायी जानेवाली घटना याद है, जब छत्रपति एक मंदिर में बैठे संत तुकाराम के अभंग

सुन रहे थे और कल्याण के सूबेदार ने उन्हें घेर लिया था? इस सूबेदार ने छत्रपति को कभी देखा नहीं था लेकिन उसे यकीन था कि जिसने जिरेटोप पहन रखा हो वही शिवाजी है। और आप जानते हैं इस प्रसिद्धि का फायदा छत्रपति ने कैसे उठाया? अपने ट्रेडमार्क, उस जिरेटोप को एक मावले सिपाही के सिर पर रखकर वे नौ दो ग्यारह हो गये और वह गरीब गिरफ्तार कर लिया गया।

लेकिन आप यह न समझिये कि उस गौरवपूर्ण जिरेटोप का अतिरिक्त भार होनेवाले गरीब सिपाही की जान छत्रपति ने यों ही चली जाने दी। दूसरे ही दिन ६२२ पैदल और २३५ अश्वारोही सैनिकों के साथ वे सूबेदार की छावनी पर टूट पड़े और अपना जिरेटोप छीन कर हवा हो गये। जिरेटोप के बहाने वह गरीब मावला भी अपने बाल-बच्चों को फिर देख सका।

तो यह है मराठा राज्य के संस्थापक छत्रपति के जिरेटोप की महत्ता। नयी गद्य शैली में कहें तो "छत्रपति और जिरेटोप दो समानार्थक शब्द हैं, जिनमें से एक के उच्चारण पर दूसरा स्वयं ध्वनित हो जाता है।"

चिंता का विषय तो यह है कि छत्रपति का कवच, अँगरखा और उनकी तलवार वगैरह तो देश के किसी न किसी संग्रहालय में सुरक्षित हैं लेकिन उस गौरवशाली जिरेटोप का कोई पता नहीं है। आखिर ऐसा क्यों हुआ? क्या देवपुरुष के प्रभामण्डल की तरह वह जिरेटोप छत्रपति के साथ ही दिव्यलोक चला गया? जिस पवित्र चिह्न के कारण राष्ट्रनायक शिवाजी की पहचान होती थी वह लापता हो गया और हमारा राष्ट्रीय चरित्र इतना शोचनीय हो रहा है कि हमने उसकी खोज तक न की? मैं शिवाजी के जीवन के सम्बन्ध में रिसर्च करनेवाले मनीषियों से जोरदार शब्दों में पूछना चाहता हूँ कि उन्होंने इस अलभ्य अवशेष को ढूँढ़ने के लिए क्या किया? संभव है अन्वेषक विद्वान लौटकर यही सवाल मुझसे पूछ दें। लेकिन मैं इसके लिए बैठा हूँ और सुधी चिंतकों को बता देना चाहता हूँ कि इस कठिन अन्वेषण कार्य को मैंने कहाँ तक आगे बढ़ाया है?

सर्वप्रथम, "छत्रपति के शिरोभूषण की खोज कहाँ से प्रारम्भ की जाय?" इस जटिल समस्या पर पहाड़-सा चिंतन करने के बाद मैंने उसका उपयुक्त केंद्र सोच निकाला। शिवाजी के वर्तमान वंशजों का पता लगात हुआ मैं उनके निवासस्थान पर पहुँचा। वहाँ मैंने छत्र पति के उत्तराधिकारी पद-निवृत्त महाराज से भेंट कर का प्रयत्न किया, पर यह जानकर बड़ी मायूसी हुई कि वे दिल्ली गये हुए हैं। दिल्ली से भी आगे उनका अ जाने का प्रोग्राम था क्योंकि उन्हें रेस के लिए घोड़े खरीदने थे। रेस के लिए ही सही, किन्तु वर्तमान महाराज अपने श्रेष्ठ पूर्वज छत्रपति के घोड़े खरीदने की परंप का निर्वाह किया है, यह जान मुझे अन्दर से बड़ी प्रसन्नत हुई। फिर सोचा, आया हूँ तो महाराज के बजाय उन दीवान से ही मिलता चलूँ। शायद उनसे कोई पकड़ बात मालूम हो जाय। सो एक कारकुन को मिलाक उसके जरिये दीवान साहब तक पहुँचने का मार्ग प्रश किया। उस कारकुन ने तीन दिन दौड़ाने और इंतजा करवाने के बाद चौथे दिन "साहब" का मूड देख मु पेश कर दिया।

अभिवादन की औपचारिकता समाप्त होने प दीवान साहब ने मेरे शुभागमन का प्रयोजन पूछा तो मैं तब तक की की गयी मौलिक खोज का सारांश बता क उनसे इस सम्बन्ध में कुछ सहायता देने की प्रार्थना की

इस पर दीवान साहब ने अत्यन्त रूखे स्वर में ब लाया कि दो तीन वर्ष बाद नौकरी से निवृत्त होने पर स्वयं इस सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत अन्वेषण कार्य करेंग इसलिए मेरी अधिक सहायता करना उनके लिए सम्भ न होगा। फिर भी जब मैं आया ही हूँ तो वे एक सवाल का जवाब दे देने में कोई हर्ज नहीं समझते।

मैंने इतनी-सी कृपा के लिये भी उन्हें ढेर सारा धन् वाद देकर निवेदन किया कि मैं बड़े महाराज का जि टोप देखना चाहता हूँ। यदि वह उनके संग्रह में हो दिखलाने की कृपा करें। "जिरेटोप!" वे करीब-करी झल्ला कर बोले "बड़े महाराज ने कभी जिरेटोप पह ही नहीं। वे तो पुच्छलदार साफा पहनते थे, वह दरबार के मौके पर। इसके अलावा तो वे अँगरेजी ट ही पहनते रहे। वे टोप जरूर पचास-पचपन की ता में पड़े हुए हैं।"

"ओह मैं आपके बड़े महाराज की नहीं, स प्रतिपालक, प्रातःस्मरणीय, क्षत्रिय कुलावतंस, महारा

राज्य-संस्थापक छत्रपति श्री शिवाजी महाराज के विषय में कह रहा हूँ।"

"क्यों साहब" दीवान महोदय ने अत्यन्त विरक्ति भरे स्वर में पूछा, "आप किसी नाटक कम्पनी में काम करते हैं क्या ?"

मैंने चौंक कर सिर हिलाया तो वे बोले, "तब आप शिवाजी महराज के इतने सारे विशेषण––बिना रुकावट के एक साथ कैसे बोल गये ? आजकल नाटक वालों के अलावा किसे याद हैं ये विशेषण ? ऐसे पिटे-पिटाये विशेषणों का प्रयोग करके भी आप नवीन पद्धति का अन्वेषक होने का दावा करते हैं ?"

दीवान साहब की फटकार से घबराकर मैं बोला, "नहीं, श्रीमान् ! मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि अभिनेता नहीं विशुद्ध अन्वेषक हूँ। बस आप कृपा कर जिरेटोप दिखला देते तो ......।"

"अजी कहाँ का जिरेटोप और कहाँ की पगड़ी ! हमारे यहाँ उस जमाने का क्या रखा है ? हाँ, अगर आप उसे खोजना ही चाहते हैं तो आगरा या दिल्ली जाइए। छत्रपति के स्वर्गवासी होने के बाद औरंगजेब का लड़का ––क्या नाम था उसका, हाँ बहादुरशाह ! वही बहादुरशाह शायद उस जिरेटोप को ले गया होगा तो वह उत्तर में ही कहीं होगा।"

दीवान साहब ने अपने रूखे उत्तर से निराश मेरे दिल को सांत्वना की थपकी देते हुए चेकबुक उठाई और उसे भरकर मेरी ओर बढ़ा दिया, "आपके अन्वेषण के प्रति हमें भी दिलचस्पी है। आर्थिक सहायता के रूप में हम यह रकम आप को भेंट कर रहे हैं। अब आज्ञा दीजिए और कोई काम की बात खोज में मिले तो सूचना देने का कष्ट करियेगा।"

बाहर निकलकर देखा तो वह चेक मुबलिग रु० २·५० न० पै० मात्र का था। कैश होने के पहले वह तीन बार बैंक से लौटा भी। किन्तु मुझे खुशी थी कि छत्रपति के वर्तमान वंशज अपने पूज्य पूर्वज में दिलचस्पी तो रखते हैं। यह चेक तो उसीका केवल एक 'प्रतीक' था।

खैर, मुझे तो पग आगे बढ़ाकर बाधाओं के डर से उसे पीछे लौटाना आया नहीं। यात्रा का प्रबन्ध कर निकल पड़ा। उत्तर भारत आने का शुभवसर मिल ही गया था तो लगे हाथ काशी, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थों का भी भ्रमण न कर लेना पारलौकिक दृष्टि से घाटे की बात होती। सो तीर्थ-पुरोहितों से निबट-निबटाकर ताजमहल की नगरी पहुँचा।

आगरे में जगह-जगह चक्कर मारे, वहाँका वस्तु-संग्रहालय छान मारा पर जिरेटोप का कहीं पता न मिला। वहाँके अधिकारियों से परामर्श किया तो उन्होंने बतलाया कि बहादुरशाह दकन से लौट कर आगरे आया ही नहीं था। वह तो सीधा दिल्ली चला गया था। इसलिए मुझे अपनी खोज के लिए दिल्ली जाना चाहिए।

उसी दिन रात की गाड़ी से दिल्ली पहुँचा और वहाँ के महाराष्ट्र भवन में डेरा डाला। सौभाग्य से मेरे ही "वजन" के एक अन्वेषक मुझसे दो दिन पूर्व दिल्ली आकर वहीं ठहरे हुए थे। उनके अन्वेषण का विषय भी छत्रपति ही थे। वे उस पिटारे की खोज में थे जिसमें बैठ कर शिवाजी महाराज, औरंगजेब की कैद से भाग निकले थे। उन्होंने अपने दो दिन के दिल्ली-भ्रमण के आधार पर विश्वासपूर्वक कहा कि शिवाजी का जिरेटोप यहाँ नहीं है। इसके लिए तो मुझे बम्बई के संग्रहालयों में खोज करनी चाहिए थी।

सुना था दुनिया गोल है, पर इतनी गोल है कि पास की चीज के लिए हजारों मील का चक्कर लगाना पड़ता है, यह मुझे उसी दिन मालूम हुआ। खैर, बम्बई पहुँचकर सबसे पहले रानीबाग के म्यूजियम में गया। वहाँ तत्कालीन ढाल, तलवार और भाले बरछे तथा जिरह बख्तर सभी कुछ मिले किन्तु छत्रपति के जिरेटोप का कहीं कोई पता नहीं था।

खुद खोजते-खोजते थक गया तो एक गाइड का सहारा लिया, "क्यों भाई––तुम्हें छत्रपति के जिरेटोप के बारे में कुछ मालूम है ?"

"नहीं जी"––उसने नम्र स्वर में उत्तर दिया।

"तो फिर वह मुझे कहाँ देखने को मिलेगा, कुछ बतला सकते हो ?"

"नहीं जी"––उसने पहलेवाला जवाब दुहरा दिया।

अब मैं म्युजियम के प्रधान क्यूरेटर से मिलने गया। वहाँ पता चला कि प्रधान, उपप्रधान तो नहीं, हाँ एक कलार (क्लर्क) से भेंट हो सकती है। मैं इतना आतुर था कि कलार साहब के शरण में जाना ही उपयुक्त लगा।

'क्या चाहिए आपको ?' कलार साहब ने यथासम्भव अदब से पूछा।

मैंने भी पर्याप्त नम्रता से बतला दिया कि मुझे क्या चाहिए।

"ओ शिवाजी महाराज की टोपी पूछ रहे हैं आप ? वह यहाँ नहीं मिलेगी। आप कालबादेवी में मूलजी खूलजी ड्रेसवाले के म्यूजियम में जाइए। वहाँ इस तरह की चीजों का विशाल संग्रह है। पुराने राजाओं के मुकुट, जिरेटोप, आबाशाही पगड़ी, किलक, आगरकर की पगड़ियाँ, सावरकरजी की गोल टोपियाँ सब मिलेंगी वहाँ। आप वहाँ जाइए मैं टेलीफोन से आपका परिचय दिये देता हूँ।"

भावावेश में मैंने उन कलार महोदय की बाहें पकड़ कर उन्हें धन्यवाद दिया। सिर्फ दो कदम के फासले पर स्थित विजय-रेखा पर जिस तरह दौड़नेवाले लपक

पड़ते हैं, कुछ उन्हींकी-सी गति कालबादेवी जाते समय मेरे अंदर आ गयी।

मूलजी खूलजी के संग्रहालय में पहुँच कर मैंने देखा कि कलार महोदयकी बात शत-प्रतिशत ठीक थी। वहाँ भाँति-भाँति के जिरेटोप और पगड़ियाँ सजायी हुई थी।

अब मेरे सामने एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। आखिर इनमें छत्रपति का वह गौरवशाली जिरेटोप कौन-सा है। फिर एकाएक कलार महोदय के टेलीफोन की बात याद आ गयी। मैंने संग्रहालय के मालिक के पास जाकर उसका हवाला दिया। उन्होंने आदरपूर्वक मुझे कुरसी पर बैठाया, फिर कोका कोला का आर्डर देकर पूछा, "हाँ, आपको कौन-सा जिरेटोप चाहिए ?"

"शिवाजी महाराज का जिरेटोप"--मैंने बच्चों की तरह सरल आग्रह के भाव में फरमायश की। "अरे ! ये सारे के सारे जिरेटोप शिवाजी के ही हैं। उनके सिवा और कोई जिरेटोप पहनता ही नहीं था। यह तो छत्रपति की स्पेशलिटी थी।" उसकी बात सुनकर मैं तो आसमान से गिरा। अभी तक मैं समझता था कि छत्रपति के पास एक ही जिरेटोप होगा, लेकिन वहाँ तो ढ़ेर सारे दिख रहे थे। मैंने एक बार अपनी संशोधक दृष्टि से उन्हें ध्यानपूर्वक देखा। तत्काल एक पुरातात्विक शंका मेरे मन में उठी। मैंने संग्रहालय के मालिक से पूछा, "क्यों जी, ये सारे जिरेटोप शिवाजी के ही हैं ?"

उसने बड़े तपाक से सवाल के जवाब में सवाल कर डाला, "आखिर आपको मेरी बात पर शक क्यों हो रहा है ?"

"शक की बात नहीं, पर इनके आकार छोटे बड़े--"

"ओ अब मैं समझा" संग्रहालय का मालिक ठठाकर हँसा, "क्यों साहब ! इसी सूझ पर आप अन्वेषक होने का दावा करते हैं ? अरे; इन जिरेटोपों को देखकर प्राइमरी स्कूल का लड़का भी बतला देगा कि ये छोटेवाले शिवाजी के बचपन के, उससे बड़ेवाले युवावस्था के और उससे बड़ेवाले उनके राज्याभिषेक के हैं।"

अब तो मेरी क्षणिक शंका बिलकुल निर्मूल हो गयी। मैंने कृतकृत्य दृष्टि से तृप्त हो उन जिरेटोपों को घूरा--लाल, नीले, पीले, सुनहले, गुलाबी और काले--

काले जिरेटोप पर निगाह पड़ते ही मन के कोने में दबी शंका ने फिर विद्रोह करना चाहा। मैंने उसकी ओर इंगित कर पूछा, "क्यों साहब, ये काला--"

"उसको छोड़िए"--संग्रहालय के मालिक ने मेरी बात काटते हुए गुलाबी रंगवाला जिरेटोप मेरे सिर पर रख दिया, "आप तो इसे खरीद लीजिए। खूब फबेगी आपको।"

"अरे, अरे यह क्या करते हो, मंदिर का शिखर-कलश कहीं कहार के चबूतरे पर शोभा देता है"--फुर्ती से जिरेटोप उतारकर मैंने श्रद्धापूर्वक उसे प्रणाम किया, एक ओर रख दिया। अपने माथे में अभी भी तेजस पर णुओं का करेण्ट महसूस कर रहा था।

अब मोल-भाव का कोई सवाल नहीं था। रुपये में एक जिरेटोप खरीद कर मैं पूर्णकाम हो पहुँचा। अद्वितीय सफलता के उपलक्ष में एक स्पे चाय पी, फिर सो गया। सारी रात सपने में मैं योजना बनाता रहा कि अपने इस मौलिक अन्वेषण किस तरह लेखबद्ध कर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित वाऊँगा और पत्र-पत्रिकाओं से चाँदी काटने के बाद किस तरह पुस्तकाकार प्रकाशित करवाऊँगा। प्रका को पुस्तक देते समय कितने प्रतिशत रायल्टी की रखूँगा ?

और सोकर उठते ही मैंने प्रातःस्मरणीय छत्र को जिरेटोप का दर्शन करने के लिए अलमारी की दृष्टि घुमायी। किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर दो क्षणों लिए तो मेरे दिल की धड़कन ही बन्द हो गयी। हादसा-भरा दृश्य सामने था। अलमारी से नीचे पर बिखरा वह जिरेटोप अब सचमुच ही ऐतिहा बन गया था। मुझे यह समझने में देर न लगी कि सम्पूर्ण अर्थों में ऐतिहासिक बनाने का श्रेय पालतू बि के बच्चों को है। सदियों से अखण्ड वह शिरोभ आज खण्ड-खण्ड हो गया था। उसके अन्दर चिप हुए चीथड़े–मेरी निराशा का व्यंग्य कर रहे थे।

मैं काँपते हाथों, भग्न प्रतिभा के अवशेष बटो लगा किन्तु एकाएक जिरेटोप के अंदर वाले हिस्से में काये एक कागज को देखकर हतप्रभ रह गया। आँखों विश्वास न हुआ तो मैंने झुककर उस कागज को लिया। इस पर छपा था "डान मिल्स मीडियम रेट"

निर्निमेष नेत्रों से अखबार के उस टुकड़े को घूरता रह गया। शायद मैं सदियों तक उस असंभव दृश्य घूरता ही रहता पर शीघ्र ही मेरी आँखों के सामने अं छा गया।

मित्रो, शिवाजी के विषय में मेरा प्रथम एवं अं अन्वेषण यहीं समाप्त होता है। इसके बाद मैं "मू खूलजी ड्रेसवाला" के यहाँ कैसे गया, उसके नौकर कैसे मेरी खिल्ली उड़ायी और अंत में तीस रुपये खरीदे गये उसे ऐतिहासिक जिरेटोप के अवशेष दो मैंने कैसे वापस लिये, इन बातों का वर्णन मैं नहीं चाहता। आखिर आनेवाली पीढ़ी के अन्वेषण स्कालरों के लिए भी तो कुछ बातें छोड़ देनी चाहि

तो, अब मैं जिरेटोपवाले संशोधन कार्य को समाप्त कर रहा हूँ। लेकिन आप लोग इसका यह न लगायें कि मेरी अन्वेषण-प्रियता को इस असफ से कोई ठेस पहुँची है। मैंने अपने लिए दूसरा विषय लिया है। वह है समर्थ गुरु रामदास की खड़ाऊँ।

डिग्री काम न आयी

श्रीयुत मुरलीमनोहर एम० ए०, साहित्यरत्न

संसार जानता है कि भगवान् ने मुझे धन तो नहीं पर विद्या और सम्मान दिया है। मैंने एम० ए०, एल-एल० बी० की उपाधियाँ अपने अध्यवसाय और प्रयत्न से प्राप्त की हैं। परन्तु कोई नहीं जानता उस मासिक वेदना और आन्तरिक क्लेश को जिसको ढोते-ढोते मेरा जीवन बीत गया। कोई कल्पना नहीं कर सकता मेरे दिल में उठती हुई उस भयानक टीस का जो असफलता की हर मंजिल पर मेरा दामन पकड़े रही और मैं केवल एक उपाधि के लिए, एक छोटी-सी डिग्री के लिए, जीवन भर तरसता रहा। आहें भरता रहा।

उपाधि के महत्त्व की छाप मेरे अविकसित मस्तिष्क पर जीवन के आरम्भ में कुछ गहरी पड़ी थी। अक्षर ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही मैंने देखा मेरे मकान के बराबर वाली कोठी के फाटक पर तख्ती लगी थी। उस पर अंकित था रायबहादुर डाक्टर प्यारेलाल शर्मा "बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०" पड़ोस के दूसरे बँगले के फाटक पर लिखा था "डाक्टर प्रभूदयाल एम० ए०, एल-एल० डी०।" मेरी भोली जिज्ञासा को पिताजी ने शान्त किया। उन्होंने समझाया, राय बहादुर की उपाधि शर्माजी को अँगरेजी सरकार से मिली थी क्योंकि स्वतंत्रता-आन्दोलन को कुचलने के लिए उन्होंने जिला अधिकारियों को बड़ी सहायता दी थी। परन्तु एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी० इत्यादि की उपाधियाँ तो प्रत्येक व्यक्ति को मिल सकती हैं यदि वह विश्व-विद्यालय के आचार्यों को अपने अध्ययन से संतुष्ट कर दे। और मैंने कल्पना की कि एक दिन मेरे बँगले के फाटक पर भी लिखा होगा "अरविन्द जैन, एम० ए०, एल-एल० बी० इत्यादि।"

जैसे जैसे दिन गुजरते गये और मैं स्कूल की परीक्षाए पास करता गया, नाम को विविध उपाधियों से सजाने की इच्छा बढ़ती गयी। हाईस्कूल में मेरी प्रतिभा कुछ निखरती-सी प्रतीत हुई। जब मैंने परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की तो मेरे सपने और भी रंगीन हो गये और भविष्य में विश्वास और भी दृढ़ हो गया। परन्तु समाज की वर्तमान व्यवस्था में प्रतिभा और परिश्रम का क्या स्थान है, इसका ठीक अनुमान मुझे उस समय हुआ जब पिताजी के अचानक देहावसान के उपरान्त, सारी कच्ची गृहस्थी शहर छोड़कर गाँव चली गयी और अपनी विधवा माता और छोटे भाई-बहनों के उदर पोषण के लिए मुझे कालिज की पढ़ाई छोड़कर कस्बे के एक दफ्तर में ६० रु० मासिक की नौकरी करनी पड़ी। मुझे ऐसा लगा कि मैं कल्पना-लोक से उतरकर वास्तविकता की कठोर भूमि पर आ गिरा हूँ। सपनों के रंग उड़ गये हैं और डिग्री प्राप्त करने की उत्कंठा मजबूरियों के शिकंजे में तड़प रही है।

जब मैं शहर जाता तो मुझे अपने पुराने सहपाठियों के सामने जाते शरम लगती। नवीनचन्द्र शर्मा जो तीन वर्षों में हाईस्कूल में उत्तीर्ण हुआ था, इण्टर में केवल दो ही वर्ष अनुत्तीर्ण होने के पश्चात् अब बी० ए० में आ गया था। प्रभाशंकर बी० ए० में दो वर्ष से फेल हो रहा था। पर इससे क्या? था तो वह विश्व-विद्यालय का छात्र। यदि संयोगवश कभी इन पुराने साथियों से भेंट हो जाती तो वे मुझे एक तुच्छ दृष्टि से देखते; उनकी बातें प्रायः इस प्रकार की होतीं "क्या बात कही है, नो नौलेज विदाउट कालेज। भाई, हाई स्कूल और इण्टर करके तो आजकल चपरासी की जगह भी नहीं मिलती", "बिना यूनिवर्सिटी एजूकेशन के कल्चर नहीं आता।" इत्यादि। ये कटाक्ष मेरी आहत आकांक्षाओं पर किस प्रकार चोट करते, मैं क्या बताऊँ? मैं देखता नवोदित कुसुम-सी हँस-मुख छात्रायें, और छात्र मन मसोस कर रह जाता। कुछ समय और निकल गया और मैंने चुपके-चुपके बी० ए० और एम० ए० की सभी पुस्तकों का अध्ययन कर लिया। एक बार, दो बार, तीन बार। शेक्सपियर की सभी रचनायें मैंने पढ़ डालीं। मिल्टन और आर्नल्ड, शेली और कीट्स की मार्मिक कृतियों का अध्ययन मैंने यूनीवर्सिटी क्षेत्र के बाहर ही कर डाला। राजनीति और अर्थशास्त्र के गूढ़ सिद्धान्त और उनके तत्त्वों का विश्लेषण मैंने स्वयं कर लिया। परन्तु योग्यता से कहीं अधिक आवश्यक योग्यता के प्रमाण-पत्र की होती है। मैंने विश्वविद्यालय के आचार्यों के साथ सम्पर्क स्थापित किया। वे मुझसे प्रभावित भी हुए।

पर मेरे पास डिग्री नहीं थी और डिग्री नहीं तो कुछ भी नहीं। समाज में मेरा मूल्य ६० रुपये मासिक के क्लर्क से अधिक और कुछ न था। मैंने विश्वविद्यालय के अधिकारियों से निवेदन किया था कि मेरी दीनावस्था पर दया करके मुझे बी० ए० की परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाय। दो वर्ष घर से दूर प्रयाग में रहकर विश्वविद्यालय में उपस्थिति मेरे लिये असम्भव थी। प्रोफसर चोपड़ा ने मेरे साथ सहानुभूति अवश्य दिखाई पर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए बोले, "यह कैसे हो सकता है मिस्टर अरविन्द ! मैं मानता हूँ कि तुम्हारा अध्ययन यहाँके छात्रों से अधिक विस्तृत, अधिक गहन है। हो सकता है परीक्षा में तुम्हें प्रथम श्रेणी मिल जाय। परन्तु प्राइवेट परीक्षा का तो कोई नियम नहीं है; और न इस विषय में संबंधित नियम शिथिल ही किये जा सकते हैं। तुमने पुस्तकें अवश्य पढ़ी हैं, पर विश्वविद्यालय का कल्चर कहाँ से लाओगे ? मुझे खेद है कि तुम्हें विश्वविद्यालय में रहकर अध्ययन करने का, यहाँके प्रोफेसरों से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने का और यहाँके सांस्कृतिक जीवन से लाभ उठाने का अवसर न मिला। यह कमी ऐसी है जो तुम्हारे जीवन में कभी पूरी नहीं हो सकती। यदि विश्वविद्यालय इस कमी के होते हुए भी तुम्हें परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दे दे और पास होने पर तुम्हें बी० ए० की उपाधि से विभूषित कर दे तो निश्चय ही कुछ दिनों में परीक्षा का स्तर गिर जायेगा। डिग्री का महत्त्व समाप्त हो जायेगा।"

मैंने देश के सुदूर विश्वविद्यालयों से परीक्षा में बैठने की अनुमति माँगी। सालों पत्र-व्यवहार चलते रहे। परन्तु मेरा अनुनय विनय असफल रहा। ऐसा प्रतीत होता मानों प्रोफेसर चोपड़ा के वक्तव्य का रेकार्ड देश के समस्त विश्वविद्यालयों को भेज दिया गया था जो मेरे छूते ही बज उठता था। मैंने मन में कहा यह एक अजीब-सी बात है। डिग्री उसे मिलती है जो इतना सम्पन्न हो कि घर छोड़कर प्रयाग में दो वर्ष विश्वविद्यालय का जीवन बिताये। उसके ऊपर और कोई उत्तरदायित्व न हो, उसे रोटी की चिन्ता न हो, उसे अपने आश्रितों की परवाह न हो। और वह प्रयाग-से खर्चीले नगर में विश्वविद्यालय की खर्चीली और तड़क-भड़कवाली जिन्दगी के खर्चे का भार वहन कर सके। अध्ययन, प्रयत्न, प्रतिभा य डिग्री की कसौटी नहीं है। एक विचित्र-सी झुँझलाहट मा हुई। सोचा मिस्टर चोपड़ा से चलकर कह दूँ, वि विद्यालय विद्या का पवित्र मन्दिर है। यहाँ आप अ श्यता का प्रश्न नहीं उठा सकते। इसका दरवाजा स रूप से सब के लिए, गरीब अमीर सब के लिए खो होगा। इस पर केवल सम्पन्न व्यक्तियों की मोनो नहीं हो सकती। आप निर्धन को उच्च शिक्षा से वं नहीं कर सकते। मैं डिग्री की भीख तो माँगता न मैं तो परीक्षा का अवसर चाहता हूँ। आप परीक्षा स्तर कठिन से कठिन कर दें। जो विद्यार्थी विश्वविद्या में बरसों से रह रहे हैं, जिनका आपसे निकट संपर्क जिन्होंने विश्वविद्यालय के जीवन से कल्चर का पाठ है, मैं तो उन्हींके साथ प्रतियोगिता चाहता हूँ। उन साथ हर क्षेत्र में प्रतियोगिता चाहता हूँ। आप उन साथ मुझसे लिखित परचे करवा लें। भाषण दिलवा मौखिक परीक्षा ले लें या रचनात्मक कार्य करा लें। मैं उत्तीर्ण हो सकूँ तो डिग्री दीजिये और नहीं तो मैं की भीख नहीं माँगता।

परन्तु प्रोफसर चोपड़ा से, और दूर और निक विभिन्न विश्वविद्यालयों से जो उत्तर मुझे मिले केवल खेद का एक संदेश था। उनकी सहानुभूति खो थी। उनमें एक सारहीन उपदेश की झलक थी। देने के लिए उनके पास निराशा के अतिरिक्त और न था।

एक दिन शहर जाने का संयोग हुआ। सुना प्रभाशंकर और नवीनचन्द्र शर्मा आई० ए० एस परीक्षा देकर लौटे हैं। जब मैं शर्मा के घर पहुँच प्रभा वहाँ मौजूद था। उनके और कुछ मित्र भी चर्चा का विषय था विगत आई० ए० एस० पर उन लोगों ने मुझे कुछ उपेक्षा की दृष्टि से देखा। देहाती लड़का जिसने विश्वविद्यालय की रोशनी देखी, आई० ए० एस० परीक्षा के मर्म को क्या सम अनमनी दृष्टि से मैंने पास में पड़े हुए प्रश्न-पत्रों का आरम्भ किया। निबन्ध के प्रश्न-पत्र को देखकर मैं सा गया। जिस विषय में निबन्ध लिखना था, उसी पर मैंने एक निबन्ध लिखकर 'हिन्दुस्तान क्रान्तिक भेजा था। संपादक ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा और अगले विशेषांक में उसे प्रकाशित करने की

मुझे दी थी। मैं आई० ए० एस० की परीक्षा में बैठकर अपनी योग्यता का परिचय देने के समर्थ था, यह और बात है। परन्तु उस परीक्षा का द्वार मेरे लिए और मुझ जैसे सैकड़ों दीन व्यक्तियों के लिए बन्द है। आई० ए० एस० की बात छोड़िये। मेरे सामने छोटे-बड़े सैकड़ों पदों के विज्ञापन आये। एस० ए० एस०, इन्कम टैक्स इन्सपेक्टर, डिप्टी कलेक्टर, प्लानिंग अफसर, इक्साइज इन्सपेक्टर, स्कूल मास्टर किसी पद के योग्य तो मैं नहीं था। मेरे देखते-देखते प्रभाशंकर और नवीनचन्द्र दोनों गिरते पड़ते परीक्षायें देते, चुनावों में जाते और एक दिन मैंने सुना कि प्रभाशंकर प्लानिंग अफसर हो गया, और नवीन सुपरिण्टेण्डेण्ट इक्साइज। वे ग्रेजुएट थे, उन पदों के योग्य थे, प्रतियोगिता का प्रश्न नहीं था। केवल चुनाव था। और कौन जाने चुनाव में क्या क्या होता है? वे हो गये अफसर। दोनों के दोनों। मैं हाथ मलता रह गया अपनी दशा पर। छोटे भाई अब ऊँचे दर्जो में आ गये थे। मेरा वेतन वही ६० रुपये। अब प्रश्न यह था कि छोटे भाइयों को ग्रेजुएट कैसे बनाया जाये। यदि वे ग्रेजुएट न हो सके तो क्या जीवन में ऊपर उठने का रास्ता उनके लिए भी बन्द हो जायेगा? सरकारी सेवाओं की विज्ञप्तियाँ क्या उनके लिए भी अर्थहीन हो जायेंगी?

समय बीतता गया और आयु बढ़ती गयी। नौकरियों के लिए जो उच्चतम सीमा आयु की निर्धारित है, मैं उसे पार कर गया। अब मेरे सामने एक विस्तृत अन्धकार था। न डिग्री मिली, न कोई सम्मानित स्थान। परन्तु अब क्या छोटे भाई-बहनों को भी इस गर्त में छोड़ दिया जाय? सहसा मन में एक विद्रोह भावना जाग्रत हो उठी। मैंने दृढ़ संकल्प किया, सरकारी सेवाओं पर हम सबका समान अधिकार है। उनपर किसी वर्ग विशेष का सर्वाधिकार नहीं रह सकता। शिक्षा, योग्यता और योग्यता के प्रमाणपत्र, इन पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। जो शिक्षा के योग्य हो उसे शिक्षा मिले। जो डिग्री लेने की क्षमता रखता हो वह डिग्री ले। यह सरासर अन्याय है कि कानून ऐसे व्यक्तियों को डिग्री देता है जो सम्पन्न हैं। डिग्री का मूल्य रुपयों में इतना महँगा है कि साधारण हैसियत का व्यक्ति उसकी आकांक्षा नहीं कर सकता। मैं डिग्री लूँगा और अवश्य लूँगा। मैं छीन लूँगा उसे सम्पन्न हाथों से, मैं छीन लूँगा उसे उन व्यक्तियों के हाथों से जिनमें न तो प्रतिभा है न स्वाध्याय। और जिन्होंने केवल इसलिए उसे प्राप्त किया है कि वे आर्थिक दृष्टि से या परिस्थिति की दृष्टि से अधिक भाग्यवान हैं। मैं छीन लूँगा अपनी डिग्री उन विद्वान् महामहोपाध्यायों के हाथों से जिन्होंने उस पर अपनी मोनोपली स्थापित कर रखी है।

परन्तु यह प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी। मैं बहुत दिन तक क्लर्क ही रह गया। वेतन वही ६० रुपये से बढ़कर सत्तर रुपये। छोटे भाई भी एक-एक कर के पढ़ना छोड़ते गये। बहनों के ब्याह की समस्या और गृहस्थी के बोझ के नीचे उग्र आकांक्षाएँ और क्रान्ति के मनोभाव दबकर सो गये।

पर राख के इस ढेर के नीचे एक चिनगारी सुलगती रही। सुलगती रही। प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय में प्रवेश होते और प्रतिवर्ष परीक्षाएँ होतीं। मई-जून के समाचार-पत्र नवीन ग्रेजुएटों की तालिका से भरे हुए निकलते। दिसम्बर में दीक्षान्त समारोह होते। हाय! क्या ये एकेडेमिक गाउन मेरे लिए नहीं हैं? प्रभात मेरे मित्र का लड़का है। मैंने उसे ए बी सी डी सिखाई थी। वह गाउन पहने हाथ में डिग्री की कुंडली लिये चला आ रहा है। गर्व से उन्नत सर और फूला हुआ वक्ष; और वह मालती है, पड़ोस की वह छोटी लड़की। अरे! मेरे सामने गुड़िया खेलती थी। गाउन कितना अच्छा लगता है उसकी सलोनी देह पर! मानों सपना देख रहा हूँ। अपने जीवन की वास्तविकता से बहुत दूर है डिग्री-प्राप्ति का सपना। और अब उसके प्रति वह आकर्षण भी नहीं रहा। मन उचट सा गया। एक गम्भीर उदासी सी छा गयी अपने दिल-दिमाग पर।

पर एक दिन जब सूचना मिली कि वयस्क और कारबारी युवकों के लिए विश्वविद्यालय ने रात्रि-कक्षाएँ लगाने का निश्चय किया है तो मैंने भी उस कक्षा में प्रवेश करा लिया, यद्यपि युवकों में मेरी गणना नहीं थी, यद्यपि विश्वविद्यालय के अनेक अध्यापक मुझसे आयु में छोटे थे और मेरे सहपाठी मेरे ही लड़के-लड़कियों के बराबर मालूम होते थे। जिस दिन मेरा प्रवेश हुआ, कितना हलका सा लग रहा था मेरा मन। मानों युग-युग से लदा हुआ बोझ उठ गया है। पिछले पन्द्रह वर्षों के प्रवेश के दृश्य आँखों में फिर गये। जब परीक्षा हुई तो पन्द्रह वर्ष की परीक्षाएँ आँखों के सामने आ गयीं। अब उत्सुकता और तीव्र हो गयी। एक-एक दिन पूरे वर्ष भर का लग रहा था। कब दो वर्ष बीतें, परीक्षा हो और डिग्री मिले।

आखिर पढ़ाई समाप्त हुई। परीक्षा हुई और कुछ महीनों के पश्चात् मैंने समाचार-पत्रों में देखा कि मैं बी० ए० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया। मैंने आँखें फाड़-फाड़ कर कई बार देखा। बात ठीक थी। मैं सचमुच ग्रेजुएट हो गया।

और अब मैं एम० ए०, एल्-एल० बी० हूँ। जीवन के ४५ वर्ष बीत चुके हैं। पर मेरा वेतन अभी तक केवल १००) रुपये तक सीमित है और अब इससे अधिक मेरी डिग्रियों का मूल्य भी नहीं है। मकान के सामने एक तख्ती पर लिखा है 'अरविन्द जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०।' पर इन उपाधियों की उपयोगिता का समय निकल गया है। खेती सूख गई है, अब वर्षा से क्या लाभ?

घर के बरामदे में बैठा हुआ मैं देख रहा हूँ धान के सूखे खेतों को, जिनकी मृतप्राय फसल पर कातिक के महीने में झमाझम पानी बरस रहा है।

नवीन प्रकाशन

काश्मीर से कावेरी--सम्पादक, कृष्ण कुमार धवन। प्रकाशक, लेखक, डी० ए० वी० कालिज, चंडीगढ़। मूल्य, दो रुपये।

सम्पादक के बड़े भाई श्री बलराज बड़े समाजसेवी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता थे। वे कश्मीर में पैदा हुए और श्रीरंगम् के पास कावेरी नदी में एक डूबते हुए बच्चे को बचाने में बच्चे को बचा कर स्वयं डूब गये। जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया तब अखनूर में उन्होंने भारतीय सेना की बड़ी सहायता की। जिस ब्रिगेडियर की उन्होंने सहायता की थी उसने कहा था कि यदि वे (बलदेव जी) उन दिनों अखनूर में न होते तो रियासत की सम्पूर्ण पश्चिमी सीमा पर आज पाकिस्तान का अधिकार होता। उसने उन्हें सेना में भर्ती होने का बड़ा आग्रह किया। सीधा कैप्टेन का पद दिलाने का आश्वासन दिया, किन्तु ये संघ की सेवा की प्रतिज्ञा ले चुके थे। उन्होंने सेना में जाना स्वीकार नहीं किया। वे त्यागमय तपस्वियों का जीवन बिताते थे और आजीवन ब्रह्मचारी रहे। समय-समय पर उनके मन में जो विचार उठते थे उन्हें वे एक कापी में टीप लिया करते थे। इनके पढ़ने से मालूम होता है कि वे कितने ऊँचे व्यक्ति थे। ये विचार नवयुवकों के लिए प्रेरणाप्रद हैं और उनके लिए मननीय हैं। आरंभ में उनका संक्षिप्त जीवन वृत्त दे दिया गया है तथा उन्हीं का लिखा 'सिंहावलोकन' भी है जिसमें उन्होंने अपने जीवन का संक्षिप्त वर्णन किया है। पुस्तक पठनीय है --विशेषकर नवयुवकों के लिए।

बिहार की महिलाएँ--(श्री राजेन्द्र अभिनन्दन ग्रंथ) सम्पादक, आचार्य शिवपूजन सहाय। प्रकाशक, महिला चर्खा समिति, पटना ३। बड़ा आकार, सचित्र। मूल्य, १५ रुपये।

यह पुस्तक माननीय डा० राजेन्द्रप्रसादजी के अभिनन्दन में बिहार की महिला चर्खा समिति ने तैयार करके उन्हें समर्पित की है। आरंभ में इस समिति के अध्यक्ष श्री जयप्रकाश नारायण की भूमिका है। इसका सम्पादन आचार्य शिवपूजन सहाय ने किया। यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है। भारत में आधी से अधिक महिलाएँ हैं। उनके जागरण के बिना देश जागृत नहीं हो सकता। किन्तु शतियों की निद्रा के बाद उन्हें जगाना सरल काम नहीं है। यह तभी हो सकता है जब नारियाँ स्वयं मैदान में आवें और नारी जागरण अभियान का नेतृत्व करें। सौभाग्य से नारियों ने यह कार्य आरम्भ कर दिया है और इसीलिए भा का भविष्य उज्ज्वल मालूम होता है। किन्तु पि पचास-साठ वर्षों में इन आरंभिक कार्यकर्तियों का अति दुरूह और कंटकाकीर्ण रहा है। उन्होंने जो किया है उसका अभिलेख रहना आवश्यक है क्यों कुछ दिनों बाद स्थिति इतनी बदल जायगी कि भूल जायेंगे कि इन दूरदर्शी और साहसी महिलाओं किन परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। बहुधा नींव के पत्थरों को भुला देते हैं किन्तु सारा उन्हींपर टिका रहता है। इसलिए 'बिहार की लाएँ' प्रस्तुत करने का विचार अत्यन्त सुन्दर और योगी था। इस विशाल ग्रंथ में बिहार की उन चा महिलाओं का जीवन वृत्त दिया गया है जिन्होंने बि में महिला जागरण का श्रीगणेश किया तथा उसे बढ़ाया। उनके अतिरिक्त बिहार की दस धर्म महारानियों का भी जीवनवृत्त दिया गया है। आर नारियों के ऊपर ५० विविध निबंध दिये गये हैं जो सां तिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान् हैं सभी अधिकारी विद्वानों के लिखे हुए हैं। बिहार ११ महिलोपयोगी संस्थाओं का परिचय भी एक खंड में दे दिया गया है। इस प्रकार यह अभिनंदन बिहार के महिला जागरण का पूरा इतिहास और धित जानकारी का भंडार है। डा० राजेन्द्रप्रसा महिलाओं के उत्थान में सदैव रुचि लेते रहे हैं। अभिनन्दन के लिए इससे बढ़कर और कोई ग्रंथ न सकता। अन्य राज्यों के लिए भी ऐसी पुस्तकें होनी चाहिए। हम इस उपयोगी और प्रेरणाप्रद का स्वागत करते हैं।

राह और रोड़े--छगन लाल जैन, प्रकाश ज्योति कार्य्यालय, फैंसी बाजार, गौहाटी (असम) १·७५ पैसा।

यह एक ऐसा उपन्यास है जिसके द्वितीय अध्या आते ही यह मालूम हो जाता है कि समस्त उपन्यास है, जिस प्रकार प्रायः भारतीय चलचित्रों में दे थोड़ी देर बाद ही यह मालूम हो जाता है कि इस च में क्या है। एक नायक जिसका कि साधारण का होना आवश्यक है तथा जिसके चरित्र से च होने का आभास होना भी उतना ही आवश्यक है। वान् ऐसा चित्रण उसका नहीं होता, वरन् ऐसा कि लेखक ऐसा चाहता है कि पाठक उसको च मान लें।

द्वितीय, एक तरुण नायिका जिसका कि खल नायक को जूतियों से पीटना आवश्यक है, और तृतीय उन जूतियों से पिटने के लिये एक सम्पन्न घराने का, परन्तु बुरी संगत में पड़ा हुआ खल नायक, जिसका कि नायक के प्रति ईर्ष्यालु हो जाना स्वाभाविक है। अपनी ईर्ष्या को क्रियान्वित करने में वह नायक व नायिका को और समीप ले आता है तथा स्वयम् कचहरी की हवा खाता है। यही इस उपन्यास की कहानी है। इस उपन्यास के अनुसार प्रत्येक कन्या का तरुणी हो जाना ही एक उपन्यास है!

पिटे हुए कथानक के साथ-साथ उपन्यास की शैली भी पिटी हुई है। पिटे हुए शब्द-विन्यासों से ही लेखक अपना काम निकालता चला गया है। निरालाजी के 'वीणा वादिनि वर दे' व सुमित्रानन्दन पंत की 'मेरा प्रतिपल सुन्दर हो' आदि कविताएँ देकर उपन्यास का स्तर ऊँचा करने का प्रयास किया गया है परन्तु उन कविताओं से जो पहले से ही परिचित हैं, उनकी दृष्टि में उपन्यास का स्तर वहीं का वहीं रह जाता है। चलचित्र के लिये यह उपन्यास भले ही अत्यन्त उपयुक्त कहा जा सकता हो क्योंकि इसमें नृत्य व संगीत के लिये भी अन्त में पर्याप्त स्थान है। पुस्तक राष्ट्रभाषा के प्रचार कार्य में संलग्न देश के अगणित भाई-बहनों की मूक सेवा, साधना व कर्त्तव्य-निष्ठा को समर्पित की गयी है। पुस्तक में कहीं मार्मिकता आयी है तो उसके समर्पण में। यदि प्रत्येक कार्य्यकर्त्ता का प्रचार कार्य्य में वही भाग्य रहता है जो 'जीवन' का रहा तो उसके कार्य्य-कलापों से किसीकी समवेदना आवश्यक नहीं है।

नैवेद्य—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—प्रकाशक, राजपाल ऐण्ड सन्स, पोस्ट बौक्स १०६४, दिल्ली। मूल्य दो रुपये।

कविवर रवीन्द्र की कविताओं पर टिप्पणी करना सूरज को दीपक दिखाना है। उन्होंने दिव्य भावनाओं से ओतप्रोत अगणित गीत लिखे हैं। हृदय में जैसे-जैसे भाव आते गये हैं वे कविता में वैसे ही उतरते चले गये हैं। उनमें कृत्रिमता और भाषा की जटिलता का आडंबर नहीं है। 'गीतांजलि' के समान ही भक्ति व आत्म-समर्पण भावना से ओत-प्रोत गीत 'नैवेद्य' में भी हैं। ये सभी गीत गेय हैं। टैगोर संगीत में रचे जाने पर उनकी सुन्दरता अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर सकेगी। अनुवाद भी मूल के समान ही सुन्दर उतरा है। भाव, शब्द व अर्थ तीनों में से कोई भी अनुवाद में विकृत नहीं हुए हैं, तथा मूल की सरसता ज्यों की त्यों बनी रही है। गीत के अन्त में प्रत्येक गीत एक चित्र द्वारा चित्रित किया गया है जिससे पुस्तक में सुन्दरता आ गयी है। चित्र और भी सुन्दर हो सकते थे परन्तु पुस्तक का मूल्य देखते हुए जैसे हैं वैसे भी बहुत अच्छे हैं। उनके ये गीत भारतीय होते हुए भी सम्पूर्ण विश्व की निधि हैं क्योंकि उनकी भावना केवल भारतीय के हृदय में उठने वाली ही भावना नहीं है—वह विश्व के प्रत्येक भक्त के हृदय में चाहे, वह किसी भी देश का क्यों न हो, अपने भगवान् के प्रति उठती है। इसी कारण वे गीत इतने जगत-प्रिय हैं।

हृदय का काँटा—तेजरानी पाठक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २६-ए चन्द्रलोक, जवाहरनगर दिल्ली, बिक्री केन्द्र—नई सड़क दिल्ली। मूल्य तीन रुपये।

इस उपन्यास की कथा को यदि थोड़ा सम्भाला गया होता तो इस उपन्यास में स्त्रियों के हृदय के भावों को व्यक्त करके मर्मस्पर्शी व सरस बनाने का पर्याप्त स्थान था। पतिव्रता प्रतिभा जो प्राचीन सीता सती सी नारियों के समान पति-सेवा के लिये आतुर लगती है पति के भीषण रोग से रोगी होने पर सदैव रात्रि को 'थक कर सोती है' और उसकी बहन मालती बराबर रातों रात जगकर उसके पति महेश की सेवा करती है—रात के दो-दो बजे आग्रह कर के दवा पिलाती है। पतिव्रता प्रतिभा की नींद उस रात व उस समय ही टूटती है जब कि उसको अपने पति पर संदेह होता है। पुस्तक उस काल को लेकर लिखी गयी है जब कि जमींदारी प्रथा प्रचलित थी क्योंकि पुस्तक की पृष्ठभूमि जमींदार घराने की ही है। किंतु यह कुछ आश्चर्यजनक मालूम होता है कि जमींदार साहब का हुक्का-पानी गाँव वाले बन्द करने का साहस करें और जमींदार साहब के घर की महिलाएँ एक साधारण नौकरानी 'सुखिया' की भेद-भरी दृष्टि से इतनी विचलित हो जायँ कि घर छोड़ कर भाग जायँ! मदिरापान का वर्णन कृत्रिम हो गया है। इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं क्योंकि लेखिका को मदिरा-पेयी समाज का अनुभव नहीं है।

यदि इस प्रकार के दो-चार अस्वाभाविक स्थलों को छोड़ दिया जाय तो उपन्यास पठनीय और रोचक है। सामान्यतः स्त्रियों के लिए इस देश में उपन्यास लिखना कठिन है क्योंकि यहाँके सामाजिक वातावरण में उन्हें समाज के विभिन्न अंगों और स्तरों का सूक्ष्म निरीक्षण करने का अवसर प्रायः नहीं मिलता। उन्हें अधिकांश कल्पना ही से काम लेना पड़ता है। इन कठिनाइयों को देखते हुए श्रीमती तेजरानी का यह उपन्यास सराहनीय है। कथा में गति है, कुछ पात्रों का चित्रण सुन्दर हुआ है और रोचकता बराबर बनी रही है। इससे मालूम होता है कि उनमें उपन्यास लिखने की प्रतिभा है और यदि उन्हें समाज के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का अवसर मिले तो उनकी प्रतिभा और भी निखर सकती है।

शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

दूसरी जून १९०६ का दिन मेरे जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन डालनेवाला था। भारतवर्ष की प्राचीन नगरी काशी में साधारण वृत्ति पर विद्याभ्यास करते हुए संसार के व्यवहारों से अनभिज्ञ, मेरे जैसे पुरुष का अमरीका के प्रसिद्ध शिकागो नगर में, बिना किसी प्रकार की जान-पहचान के, प्रवेश करना, वास्तव में एक आश्चर्यजनक बात थी। मेरे पास कोई परिचयदायक (Introductory) पत्र तक किसी मित्र के नाम न था। कोई भी मनुष्य अपनी जान-पहचान का नहीं था। यहाँ तक कि मैं कभी अपने जीवन में होटल में नहीं गया था। काँटे और छूरी से किस प्रकार लोग खाना खाते हैं? कैसे किसीके साथ यहाँ बातचीत करते हैं? इत्यादि बातों से मैं बिलकुल ही अनजान था।

प्रातःकाल १० बजे मैं बेंकोवर से चिकागो पहुँचा। बेंकोवर से चिकागो २८०० मील के करीब है। जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची और 'शिकागो' यह ध्वनि मेरे कान में आयी, तब मैंने जाना कि स्टेशन आ गया। सब लोग जो गाड़ियों में थे, बाहर निकले और चल दिये। मैंने कहा—"मैं कहाँ जाऊँ?" सबसे पीछे मैं अपनी ट्रंक सँभाल गाड़ी से नीचे उतरा। जब टिकट देकर बाहर आ खड़ा हुआ तब एक गाड़ीवाले ने मुझसे पूछा कि कहाँ जाना होगा? कहाँ बतलाता? किसी जगह का नाम भी नहीं जानता था, जहाँ जाकर ठहर सकता। सोचते-सोचते Y.M.C.A. (यंग म्यन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन) का नाम स्मरण आया। अहा! ईसाइयों की कदर बाहर आकर मालूम होती है। ये सभायें क्या ही अच्छी हैं। यहाँ पर नवयुवक देश की—जाति की—सेवा करना सीखते हैं, कोई परदेशी आवे तो उसकी सहायता करते हैं, और एक हमारे देश की धार्मिक सभायें हैं जिनका समय आपसे शास्त्रार्थ और एक दूसरे की मानहानि में व्यतीत होता है। तभी तो यह दुर्दशा है।

गाड़ी में बैठे-बैठे मैं लोगों को इधर-उधर देखता था। सब साफ-सुथरे थे। नये बूट, नये शूट, बाल सँवारे हुए, क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी इधर-उधर जा रहे थे। चार दिन के लगातार सफर से मेरे कपड़े काले हो गये थे। खास कर पतलून तो बहुत ही मैली हो गई थी। मेरे सारे वस्त्र बड़े सन्दूक में, जो मालगाड़ी में रक्खा गया था। और नया सूट न होने से मैं कपड़े बदल नहीं सकता था। मैं बारबार अपने कपड़ों की ओर देखता और अपना मुकाबला सड़क पर जाते हुए लोगों से करता था। इतने में गाड़ी Y.M.C.A. के पास आ गई। गाड़ीवान ने दरवाजा खोला। एक लड़का फौरन असबाब उठाने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु जब उसने मेरे मैले कपड़े और चार दि डाढ़ी देखी तब ठहर गया। मैंने उसके चेहरे पर मुस हट पाई। मैंने अपना ट्रंक उठाया और उस बड़ी अ लिका में गया। दूसरी मंजिल पर एसोसिएशन का था। जब मैं अन्दर गया, एक नवयुवक मुझे मंत्री मह के पास ले गया, जो बड़ी नम्रता से मेरे साथ पेश उन्होंने मुझे किसी होटल में जाने की सम्मति दी चाहता था कि किसी जापानी विद्यार्थी का पता लग तो अति उत्तम हो। एसोसिएशन के मन्त्री ने कई टेलीफोन किया। परन्तु कुछ पता न मिला। मुझे बोधी सोसाइटी का पता मालूम था। तो मैंने वहाँ किसी जापानी विद्यार्थी का स्थान जानने का निश्चय कि अपना ट्रंक Y.M.C.A. में रख, मैं सोसाइटी की त में निकला।

सड़क पर अजीब दृश्य था। स्त्रियाँ, पुरुष इधर भागते जा रहे थे। साफ-सुथरे, प्रसन्न वदन, अपने कार्यों में ऐसे लगे हुए थे जैसे मधुमक्षिकाएँ। किसी आलसियों की भाँति जाते हुए न देखा। सभी फु थे। क्या बुड्ढे, क्या युवा, क्या बालक क्या बालि कालचक्र की भाँति घूमते थे। एक ओर छोटे-छोटे बा "डेलीन्यूज" "रेकार्ड हेरल्ड" नामक दैनिक पत्र बेचते थे। बिजली की गाड़ियाँ खचाखच भरी हुई इध से उधर, उधर से इधर चल रही थीं। घोड़े-गा छकड़े, माल-असबाब से लदे हुए दिखाई देते थे। ओर बड़े-बड़े लोहे के खम्भों पर, सड़क से ४० गज आकाश में, एक और सड़क थी, जिस पर दूसरी बिजल गाड़ियाँ (Elevator Cars) गड़गड़ शब्द करती इधर-उधर भाग रही थीं।

मार्ग में मुझे सबसे पहले मेसानिक टेम्पल (Mas Temple) की ऊँची इमारत मिली। यह २२ मं मकान है। आकाश से बातें करता है। ख्याल विज्ञान क्या नहीं कर सकता।

सोसाइटी के मकान का पता मैंने पुलिस के एक सि से दरियाफ्त किया और शीघ्रता से उस ओर रवाना परन्तु शिकागो संसार के बड़े शहरों में तीसरे दरजे इसकी गलियाँ २० मील लम्बी हैं। एक तो २७ मी इसलिए मुझे उस मकान पर पहुँचने में २ घंटे के लग गये। रास्ते का दृश्य, मेरे लिए बहुत ही मनो था। जब मैं मारशल फील्ड (Marshal Field आलीशान दूकान के पास पहुँचा तब उसे देख कर मैं यान्वित हो गया। कितनी भारी दूकान। करोड़ों [illegible] माल। प्रत्येक प्रकार की वस्तु बिक्री के लिए मौ

चित चाहता था कि इसके अन्दर जाकर अच्छी तरह देखूँ। परन्तु समय नहीं था और मुझे चिन्ता रात को रहने की थी।

डीपर वारन गली में महाबोधी सोसाइटी का आफिस था। उस अट्टालिका के पास पहुँचा तो मालूम हुआ कि आफिस १०वीं मंजिल पर है। मकानों के ऊपर जाने के लिए क्या ही अच्छा प्रबन्ध किया हुआ है। एक जंगलेदार कोठरी रहती है। उसमें कोई १० आदमी खड़े हो सकते हैं। वह बड़े-बड़े रस्सों से बँधी होती है। कोठरी क्या उसे एक प्रकार का खटोला कहना चाहिए। उसका सम्बन्ध प्रत्येक मंजिल के साथ होता है इसके भीतर खड़े होकर जिस मंजिल पर जाना हो नौकर से कह दो। वह उसी मंजिल पर पहुँचाकर दरवाजा खोल देता है। बस आप अपने कमरे में चले जाइए। प्रत्येक इमारत में इस प्रकार के तीन चार स्थान ऊपर नीचे जाने-आने के लिए होते हैं। थोड़ा समय और अधिक लाभ, यह नियम प्रत्येक स्थान में देखा जाता है।

मकान के ऊपर पहुँच कर दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि महाबोधी सोसाइटी ने अपना दफ्तर बदल दिया है। एक मेम साहबा ने बड़े प्रेम से मुझे नये आफिस का पता लिखकर दिया। मैंने उसे तलाश करने का विचार किया। परन्तु ११ बजे से ३ बजे तक लगातार घूमने में मैं थक गया था। यही नहीं, बल्कि बेंकोवर से चिकागो तक चार दिन मैंने केवल मुठ्ठी भर चनों से ही निर्वाह किया था। यद्यपि प्रत्येक रेलगाड़ी के साथ भोजन की गाड़ी (Dining Car) रहती है जहाँ मुसाफिर समयानुकूल भोजन पाते हैं, परन्तु मेरे लिए यह प्रबन्ध न होने के तुल्य था। जन्म से मांस, मदिरा से घृणा होने के कारण मुझे ४ दिन निराहार रहना पड़ा और शिकागो में पहुँचकर भी कहीं कुछ प्रबन्ध न कर सका। तिस पर भी चार घंटे लगातार शहर में घूमना। इससे शरीररूपी गाड़ी धीमी चलने लगी। तो भी महाबोधी, सोसाइटी की तलाश ज़रूर करना था। तदर्थ मैं रवाना हुआ।

रास्ते में जाते हुए कई एक स्थानों पर मैंने छोटे-छोटे होटलों के नोटिस और नाम के बोर्ड देखे। दिल में आया कि क्यों न इनमें से किसी में एक रात ठहर जाऊँ और दूसरे दिन चिकागो विश्वविद्यालय में जाकर किसी जापानी विद्यार्थी का पता मालूम करूँ। एक पथिकाश्रम के ऊपर गया। जाकर प्रबन्धकर्त्ता से सब हाल पूछा। उसने मेरा नाम लिख लिया। और मुझे एक कमरे में जाने का इशारा किया। न जाने उस समय मेरे मन में क्या आ गया। मैंने समझा कि शायद कुछ दाल में काला है। मैं सीढ़ियों से नीचे उतरकर गली में आ गया। पीछे से मालूम हुआ कि वह चोरों का अड्डा था, जो मुसाफिरों को रात को टिकाते हैं और सोते हुए की जेब से सब कुछ निकाल सफाई कर देते हैं। सवेरे प्रबन्धकर्ता अपना किराया लेता है। शामत का मारा बेचारा मुसाफिर चुपचाप सब सहता है और लाचार हो वहाँ से चल देता है।

खैर, मैं १ घण्टे के बाद महाबोधी सोसाइटी में पहुँचा। वहाँ जो महाशय कार्यालय में काम करते थे उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी रामकहानी सुनी। मेरे साथ चलकर किसी अच्छे होटल में मेरे लिए प्रबन्ध करने को वे उद्यत् हो गये। उनके साथ बिजली की गाड़ी पर बैठ थामसन होटल में मैं गया। रास्ते में डाकखाने की जंगी इमारत देखने में आई।

थामसन होटल के प्रबन्धकर्ता ने मेरे मैले कपड़े देख और मुझे परदेशी जान कमरा देने से इन्कार किया। इसलिए वहाँ से मैं और मेरा साथी निराश होकर दूसरे होटल में गये। वहाँ रहने के लिए किसी प्रकार प्रबन्ध हो गया। केवल दो रात ठहरने के लिए ६ रुपये देने पड़े। वह महाशय जो महाबोधी सोसाइटी से मेरे साथ आये थे, मेरे प्रबन्ध करके चले गये। मैं एक नौकर के साथ खटोले (एलिवेटर) में बैठ चौथी छत पर पहुँचा। नौकर ने मुझे एक अच्छे सजे हुए कमरे में ले जाकर कहा--"लीजिए महाशय, यह कमरा आपके लिए है"। यह कहकर वह चला गया।

नौकर के चले जाने पर मैंने दरवाजे को अन्दर से लगा दिया। मैंने परमात्मा का धन्यवाद किया कि रात को रहने के लिए स्थान तो मिला। परन्तु चिन्ता यह लग रही थी कि कपड़ों का प्रबन्ध कैसे होगा? कपड़े सब काले हो रहे थे। साबुन पास था। विचार किया कि शायद कल असबाब न मिल सके। इससे कपड़े अवश्य धोने चाहिए। कमरे के अन्दर गरम और ठंडे पानी के दो नल थे। वहाँ मैंने सब कपड़े धोये। इस काम में रात के १० बज गये। फिर हजामत बनाई। तब इस बात की चिन्ता दूर हुई कि बाजार में मैले कपड़ों से कैसे जाना होगा? अन्त को थका हारा भूखा ही लेट रहा। सुन्दर सुथरे बिछौने पर लेटते ही निद्रा देवी ने मुझे अपना लिया।

पाठक, लेख द्वारा मुझे आपसे निरन्तर मिलने का इरादा है, पर आज इतना ही बस होगा।

मनोरंजक संस्मरण

पुरस्कार पर व्यंग्य

साहित्यिक पुरस्कारों से जहाँ अच्छे साहित्य का सम्मान होता और कवियों को आर्थिक लाभ होता है, वहाँ कभी-कभी आलोचकों को चुटकी लेने का अवसर भी मिल जाता है। हम अपने पाठकों को बता चुके हैं कि एक बार कानपुर में एक पुरस्कार-प्रतिद्वंद्विता में पं० नाथूराम शंकर शर्मा और त्रिशूल (पं० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही) दोनों ही की कविताओं पर विचार हुआ था और पुरस्कार त्रिशूलजी को मिला था, जिस पर शंकर जी ने कहा था

शंकर कविता क्या करे, क्या पावे उपहार ?
पुरस्कार तो ले गया शंकर का हथियार !

आज हम ऐसी ही एक दूसरी घटना का संस्मरण सुनाते हैं। ओरछा के महाराज वीरसिंहजू देव ने व्रजभाषा काव्य के प्रोत्साहन के लिए २००० रुपये का वार्षिक देव पुरस्कार स्थापित किया। प्रथम वर्ष पुरस्कार में स्वर्गीय पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपना 'रस कलश' नामक व्रजभाषा का विशाल ग्रंथ भेजा। उसीमें श्री दुलारेलाल भार्गव ने अपनी 'दुलारे दोहावली' भी भेजी जिसमें प्रायः २०० दोहे थे। दोनों ही व्रजभाषा के उच्च कोटि के काव्य थे। हरिऔधजी प्रसिद्ध और ज्येष्ठ कवि थे। कुछ लोगों ने समझ रखा था कि पुरस्कार उन्हींको मिलेगा, किन्तु जब निर्णय प्रकाशित हुआ तो मालूम हुआ कि वह श्री दुलारेलाल भार्गव को मिला है। हरिऔधजी को पुरस्कार न से कुछ लोगों को आश्चर्य हुआ, और उनके भक्त निराशा भी हुई। हरिऔधजी के इन भक्तों में के श्री त्रिभुवननाथ सिंह 'सरोज' भी थे। उन्होंने घटना पर एक व्यंग्यपूर्ण छंद लिखा और एक समा पत्र में छपा दिया। वे भार्गवजी के मित्र थे। लेखक की जगह अपना नाम न देकर ठाकुर श्री सिंह का नाम दे दिया। वह छंद इस प्रकार था:

तब तें कविताई है तेज भई,
जब तें मरिगे तुम्हरे ददुआ
लिखि द्वै शत दोहन कों सहजै
जग छापि लियौ करिकें जदुआ
मतिराम कहाँ ? पदमाकर को ?
भए देव, बिहारी सबै भकुआ
धनि यार दुलारे ! हजार मिले,
हरिऔध के हाथ लग्यो कबुआ

जब यह छंद छपा तब उसके नीचे ठाकुर का नाम देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होंने 'हरिऔधजी का बुढ़भस' नाम से हरि की कड़ी समालोचना छापी थी। ठाकुर साहब ने दक से जवाब तलब किया। सम्पादक ने स्पष्ट देकर ठाकुर साहब को इस व्यंग्योक्ति के जन उत्तरदायित्व से मुक्त किया, किन्तु साहित्य-ज इस छंद की बहुत दिनों चर्चा होती रही।

* * *

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

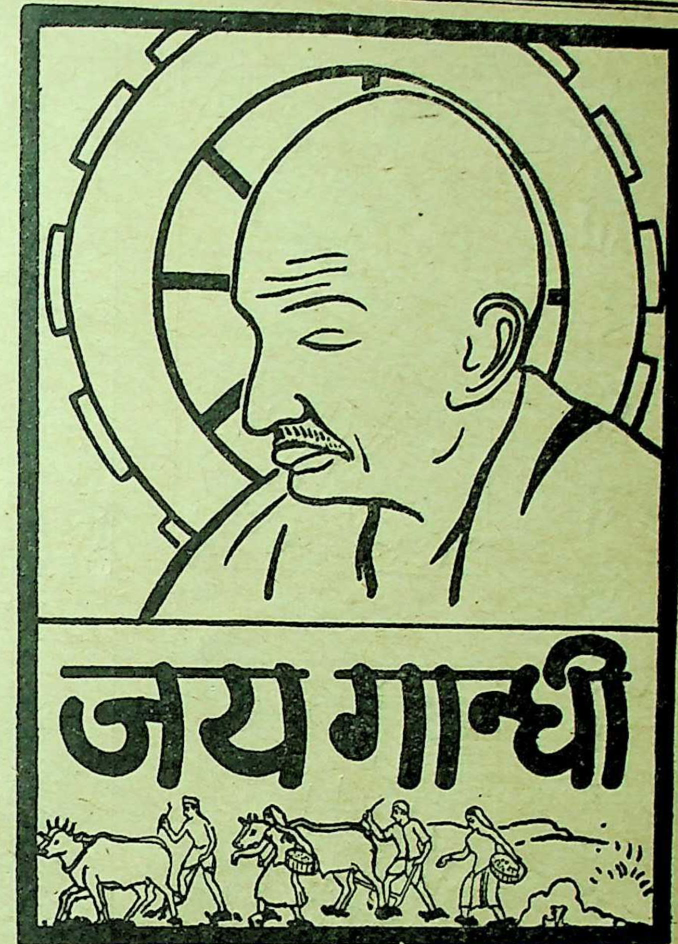

बापू का अनमोल स्मारक

जय गान्धी

इसे प्रत्येक परिवार, और प्रत्येक घर में पहुँचना चाहिए

क्यों ?

नैनी जेल में बंद सन् १९४२ के राष्ट्रीय सैनिकों को श्री सोहनलाल द्विवेदी की युगावतार कविता ने कितना बल प्रदान किया था, यह तो वे ही लोग जानते हैं जो वहाँ मौजूद थे। आज के अनेक मंत्री, मुख्य मंत्री भी, उस समय कारा-जीवन व्यतीत कर रहे थे। बापू ने प्राणों की बाजी लगा दी थी। आश्वासन का आधार मिलना आवश्यक था, क्योंकि हम मानसिक और नैतिक रूप से रह रहे थे। प्रोफेसर राधेश्याम ने उसी समय गाया था—चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग, उसी ओर। इस गीत से हममें कितनी दृढ़ता, कितनी शक्ति, कितना आत्मविश्वास आ गया था, कि हम सभी ने शर्माजी के स्वर में स्वर मिलाकर नैनी जेल को गुँजा दिया था।

श्री सोहनलाल द्विवेदी की अनेक कविताएँ हमें प्रोत्साहित करती रही हैं, कठिनाइयों एवं अत्याचार से डटकर मुकाबला करने के लिए शक्ति और प्रेरणा देती रही हैं, **आज भी वे गीत हमें गर्व से सिर उठाने योग्य बनाते हैं, द्विवेदीजी की ये राष्ट्रीय रचनाएँ राष्ट्रीय निधि के रूप में सुरक्षित रहें यह आवश्यक है।**

जय गांधी उन्हीं युगान्तरकारी गीतों का नयनाभिराम प्रकाशन है। ज्वलंत राष्ट्रीयता और चुनौतीपूर्ण देशभक्ति के कारण इन गीतों को राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्घोष और जयगान बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जय गांधी की कविताओं की विशेषता यह है कि इसमें इस प्रकार की कविताओं का बाहुल्य है, जिससे पुण्यश्लोक महात्माजी का आलोक हममें जाग्रत रहे। इस दृष्टि से ये रचनाएँ उस देश के नरनारियों के लिए बहुत मूल्यवान् हैं, जो बापू को भूल नहीं पाते। ये रचनाएँ गांधीजी के पुण्यपथ पर चलने की प्रेरणा देती रहेंगी इसमें सन्देह नहीं।

जय गांधी—सत्यमेव अत्यधिक सुरुचिपूर्ण संस्करण है। इसे प्रत्येक परिवार में, प्रत्येक घर में पहुँचना चाहिए।

—अमृतबाजार पत्रिका

मूल्य केवल १५) रुपये

प्राप्तिस्थान—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

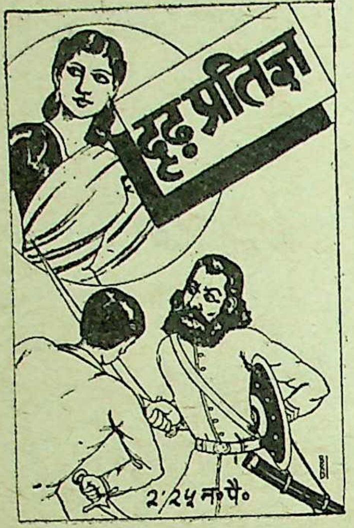
दृढ़ प्रतिज्ञ
२'२५ न॰ पै॰

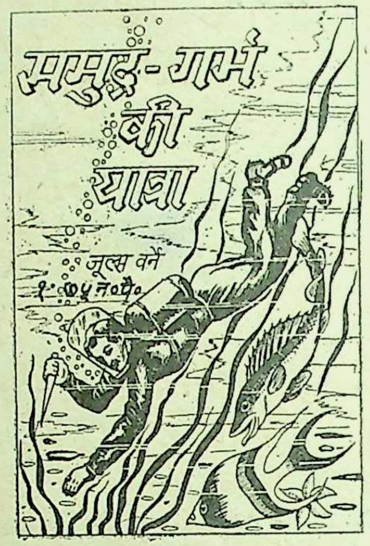
समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्न
१·७५ न॰ पै॰

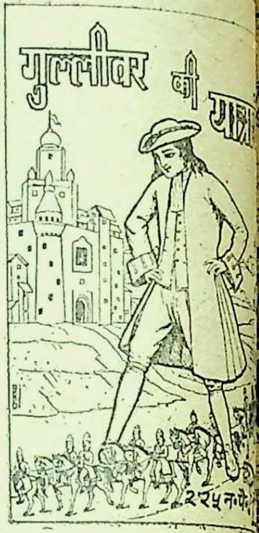
गुलीवर की यात्रा
२'२५ न॰ पै॰

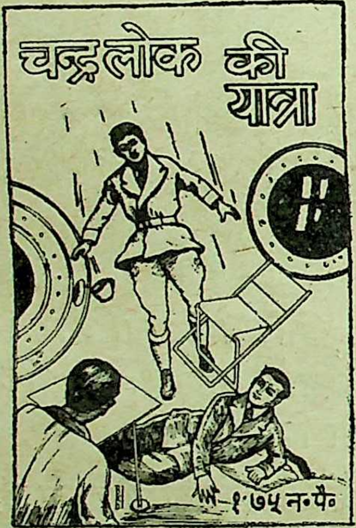
चन्द्रलोक की यात्रा
१·७५ न॰ पै॰

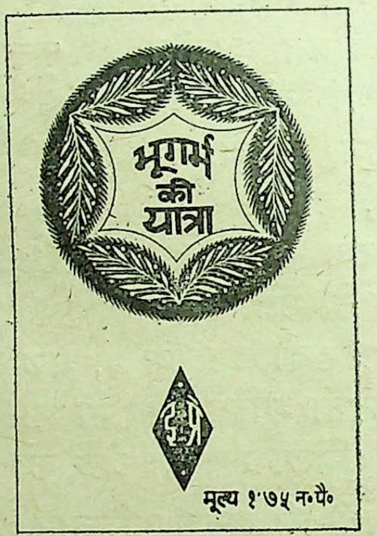
भूगर्भ की यात्रा
मूल्य १·७५ न॰ पै॰

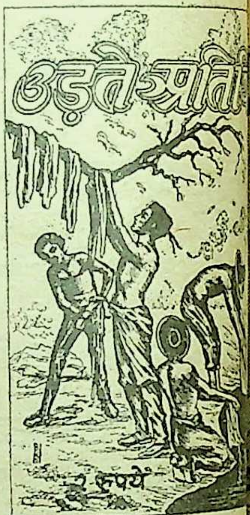

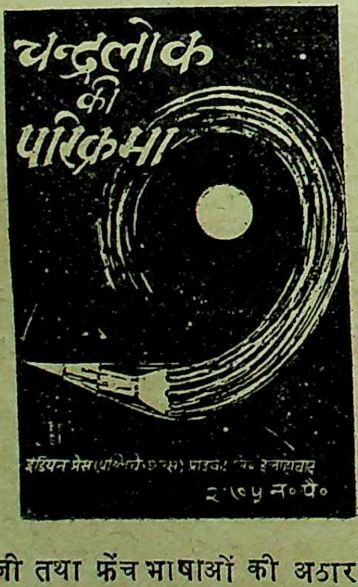
चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰ इलाहाबाद
२·७५ न॰ पै॰

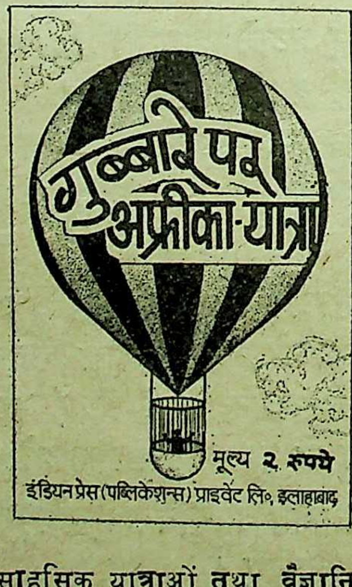
गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद

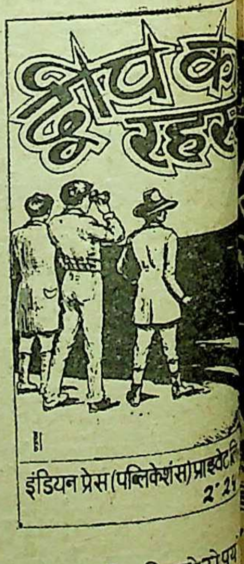
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट
2'25

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी न्यासों के अनुवाद डॉ॰ नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

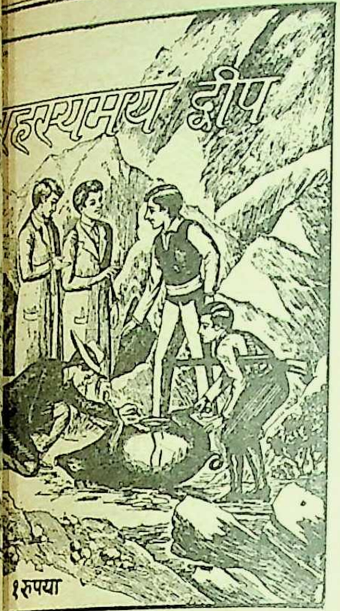
रहस्यमय द्वीप
१ रुपया

८० दिनों में
पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न.पै.

आकाश में युद्ध
२ रुपये

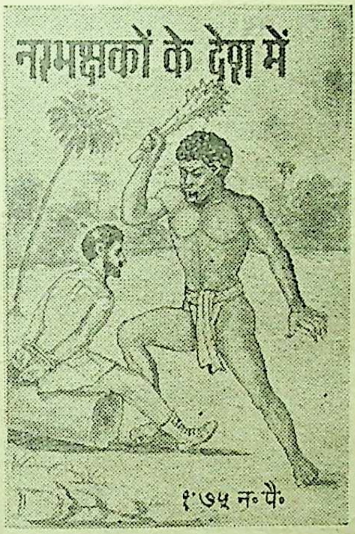
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न.पै.

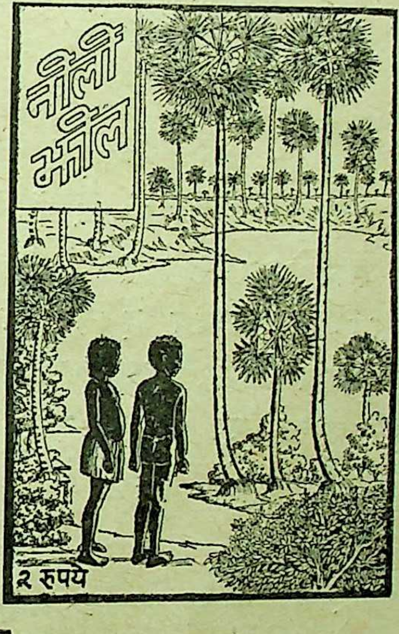

केशंस) प्राइवेट लि
२.२

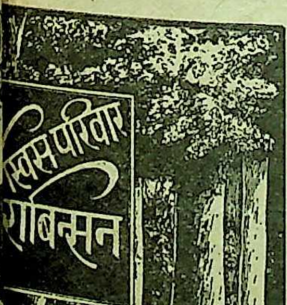
स्विस परिवार
राबिन्सन
इं. प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न.पै.

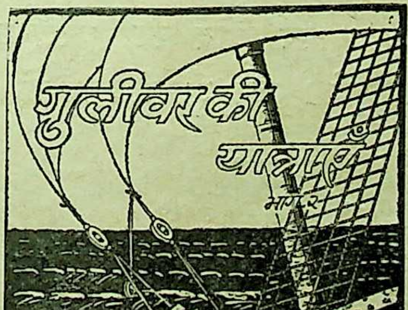
गुलीवर की
यात्राएँ
भाग २
२.२५ न.पै.

मास्टर मैन रेडी
२.७५ न.पै.

किशोरोपयो
क हैं कि

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरपयोगी उप-

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मुल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्‌भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २।।) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानिवाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १।।) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे प्रकाशित नवोनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है; नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालसटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १·७५ न० पै० मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १।) या १ रु० २५ नये पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

मझली महारानी

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १॥) या १ रु० ७५ नये पैसे।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है। पृष्ठ १८०; मूल्य १ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

आधुनिक छपाई

लेखक श्री कृष्णप्रसाद दर

भूतपूर्व मैनेजर, इलाहाबाद लाजर्नल प्रेस और भूतपूर्व टेक्निकल एडवाइजर दि हिन्दुस्तान टा
प्रेस, नई दिल्ली, और वर्तमान वर्क्स मैनेजर इंडियन प्रेस, प्राइवेट लि०, इलाहाबाद।

आजकल सभी लोग अच्छी छपाई चाहते हैं, परन्तु आकर्षक छपाई कैसे की जाय, सबको ज्ञात नहीं। 'आधुनिक छपाई' इसी दिसा में एक सफल कदम है। अब तक अपने कि की यही एक पुस्तक हिन्दी में है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है आधुनिक छपा सहायता से ऐसा व्यक्ति भी सरलता से अपना काम चला सकता है, जिसने कभी किसी खाने में काम न किया हो। फिर आधुनिक छपाई के विभिन्न आकर्षक रूपों, शैलियों छापेखाने सम्बन्धी सभी आवश्यक अंगों पर इस पुस्तक में इतनी सरल और बोलचाल की में प्रकाश डाला गया है कि प्रत्येक मुद्रक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

आद्योपान्त सचित्र, सजिल्द और बढ़िया कागज पर आकर्षक ढंग से मुद्रित पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयि इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदा मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब्र मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उ संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भ पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तकथाओं का समावे जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर चित्र छापा गया है। कथा भाग में ाये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों ादि का परिचय अन्त में संक्षेप है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

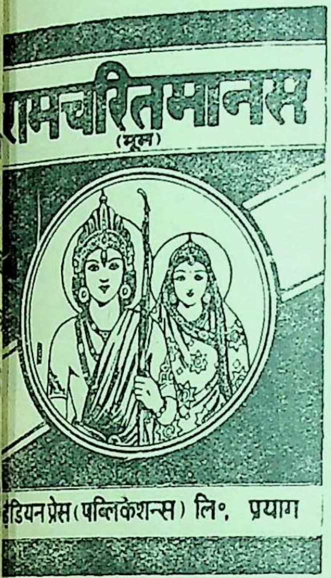
रामचरितमानस
(मूल)
डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

टीकाकार——रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

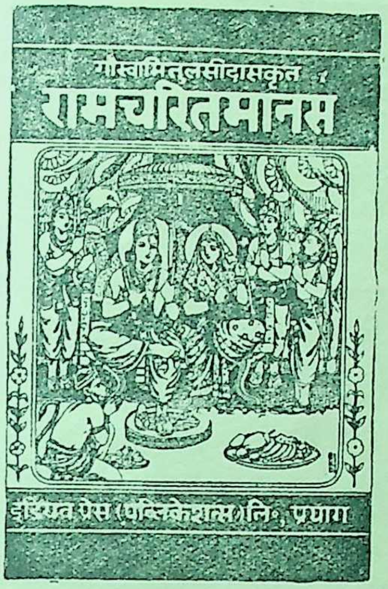
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

सचित्र
रामचरितमानस

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्याकाण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने ोग्य रामायण के सातों काण्डों की रल भाषा में कथा। मूल्य १) पया।

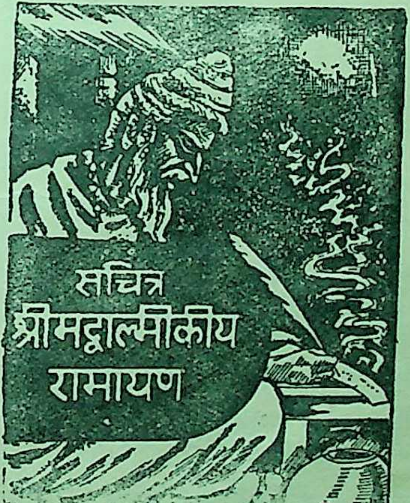
सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न० पै० प्रति भाग है।

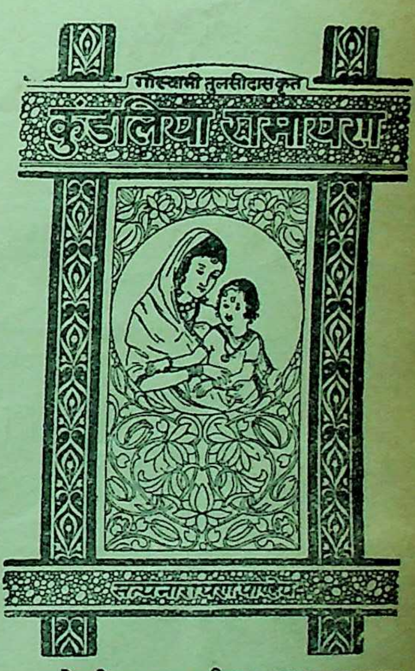
गोस्वामी तुलसीदासकृत
कुंडलिया रामायण
सत्यनारायण पाण्डेय

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7.50
Single Copy : Rs. 0.65 Naye Paise

SARASWATI—Reg. No. A-

29 JUL 1983
२० ॥॥ १९८३

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

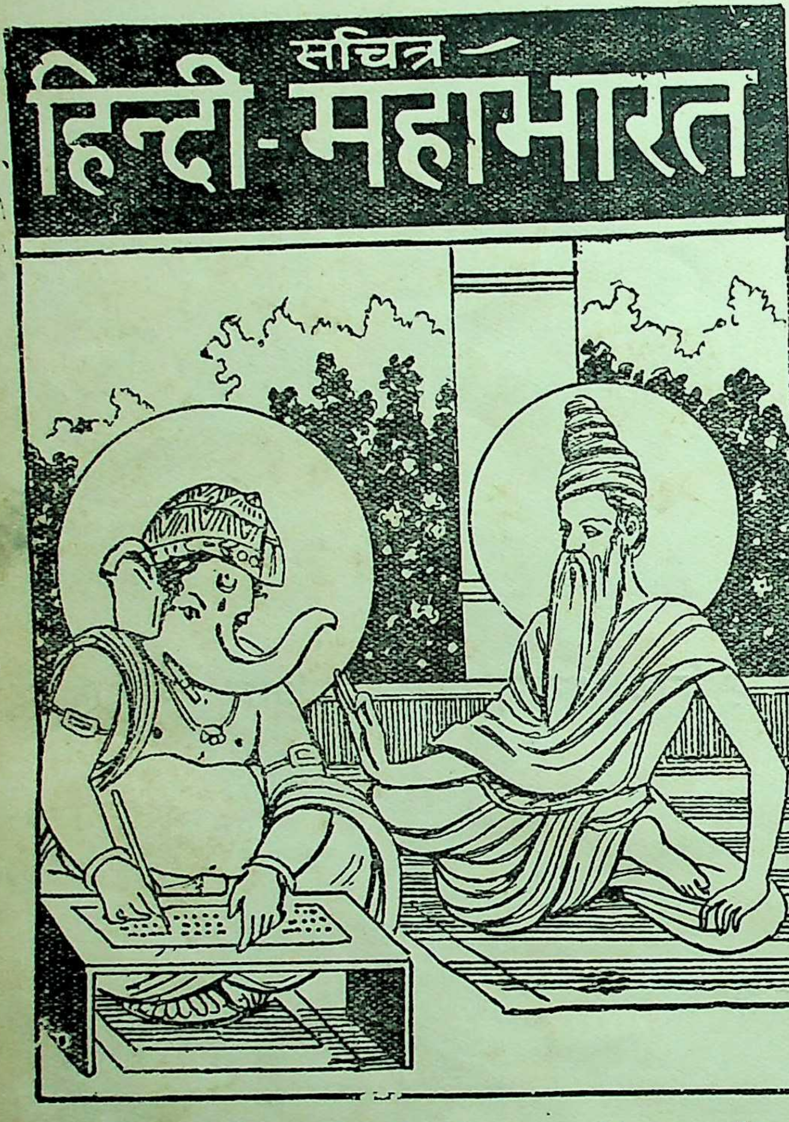

महाभारत
पाँचवाँ वेद कहते हैं।
ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास
अनेक शास्त्रों का व
करके जीवनक्रम
सुलभ रीति बतलाई है
इसमें तीर्थों और
का वर्णन है, पुण्य पु
की चरितावली है, ऋषि
के उपदेश हैं, सु
उपाख्यान हैं और
पर स्थिर रहकर उ
करने का मार्ग बतला
गया है। यह ग्रन्थ
खण्डों में समाप्त हु
है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १ से
खण्ड तक प्रत्येक खण्ड का मूल्य १०) रु०। ९वें खण्ड का ५.५० नये पै
दसवें खण्ड की सहायता से पढ़नेवाला पुस्तक में तुरन्त अपने मन के
को ढूँढ़ लेता है। इस खण्ड का मूल्य ४.२५ नये पैसे।

भारतीय संस्कृति का प्रकाशस्तंभ

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रय

सरस्वती

होलिकांक

मार्च १९६३

गुरुकुल कांगड़ी

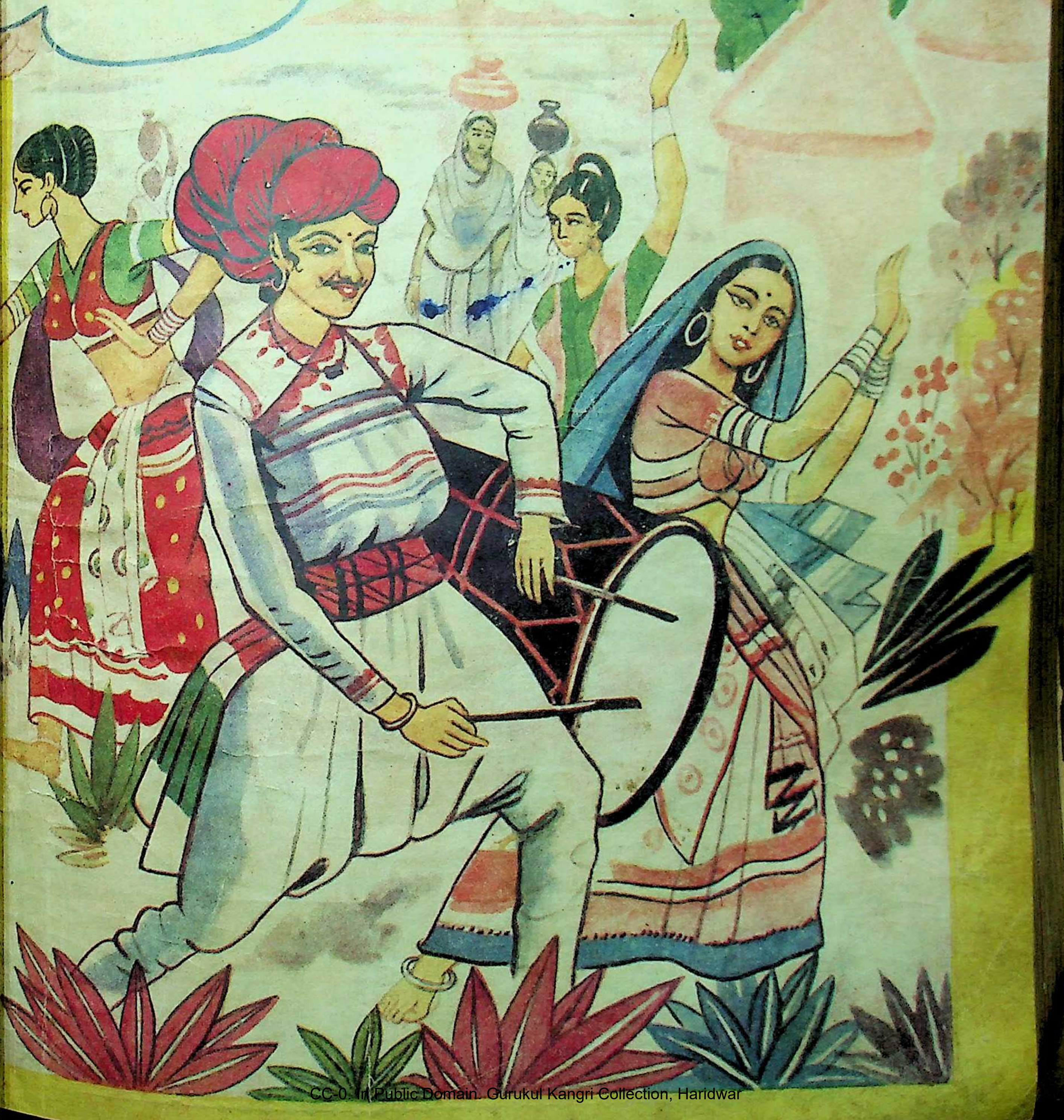

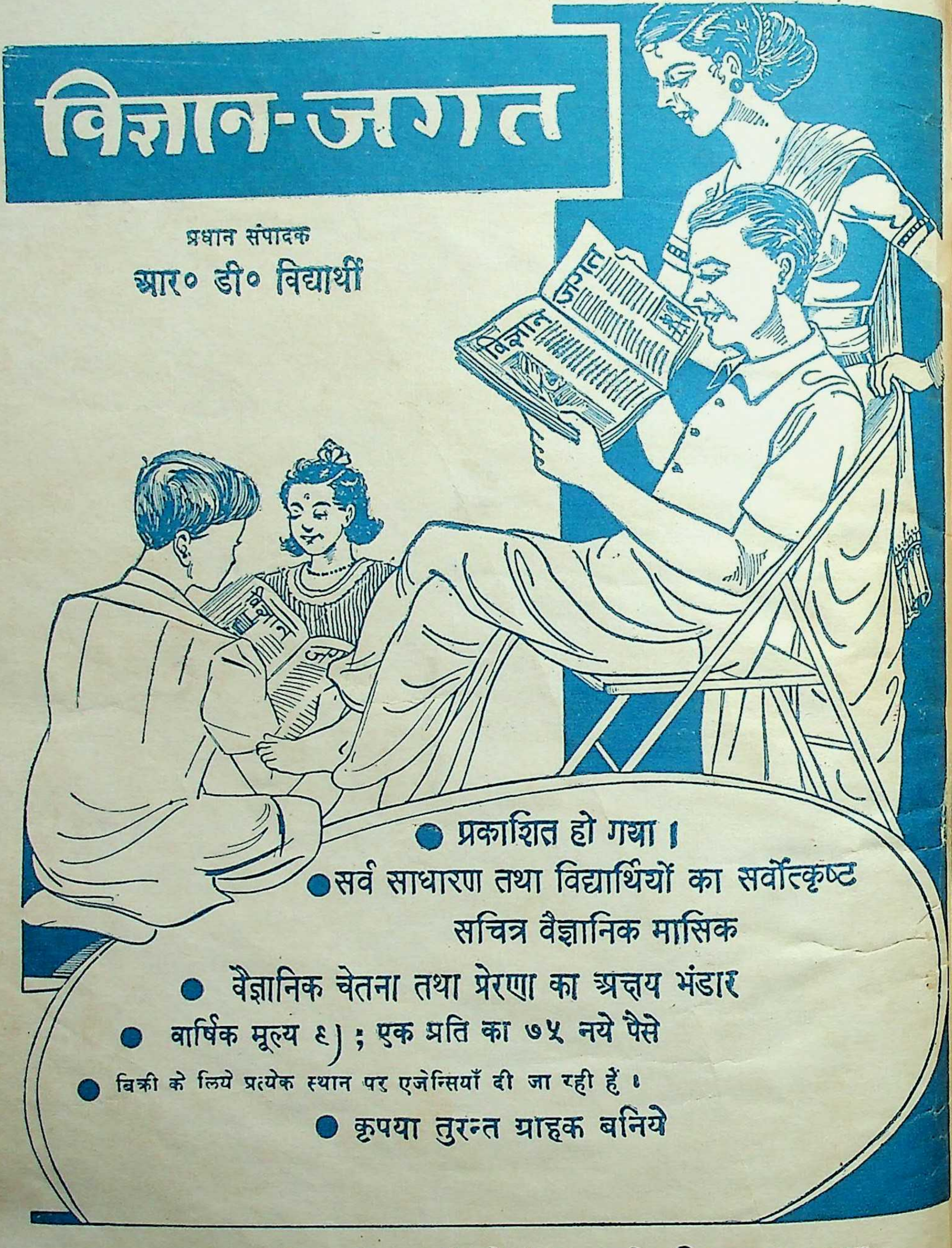

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक
आर० डी० विद्यार्थी

● प्रकाशित हो गया।
● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट
सचित्र वैज्ञानिक मासिक
● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
● वार्षिक मूल्य ९) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

अनोखी - अछूती - लाजवाब

गृहस्थी

जेमिनी चित्र

प्रदर्शित होरहा है

१ मार्च से

विश्वंभर पैलेस इलाहाबाद
और
उत्तर प्रदेश के सभी प्रमुख
नगरों में

संगीतः रवि · गीतः शकील · संवादः पं मुखराम शर्मा · निर्देशकः किशोर साहू

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीका तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक ही जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रप भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८० पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानी लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० १५ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१'३७ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १'१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गाग रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्ति हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आ नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक वि चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-की श्रेणी देखने को मिलती है––राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि––हिं ही नहीं––समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इ समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह––सुशोभित रहना चाहिए।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें अत्यधिक आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-वि का स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहि सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। क कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल नि

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

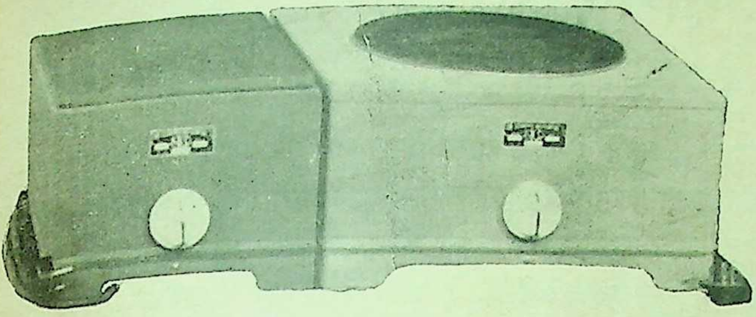

हाट प्लेट

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ **॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥**

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

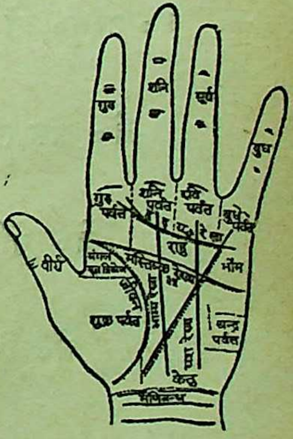

देखिये :—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् तथा प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवां मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

एक वैज्ञानिक बात . . .

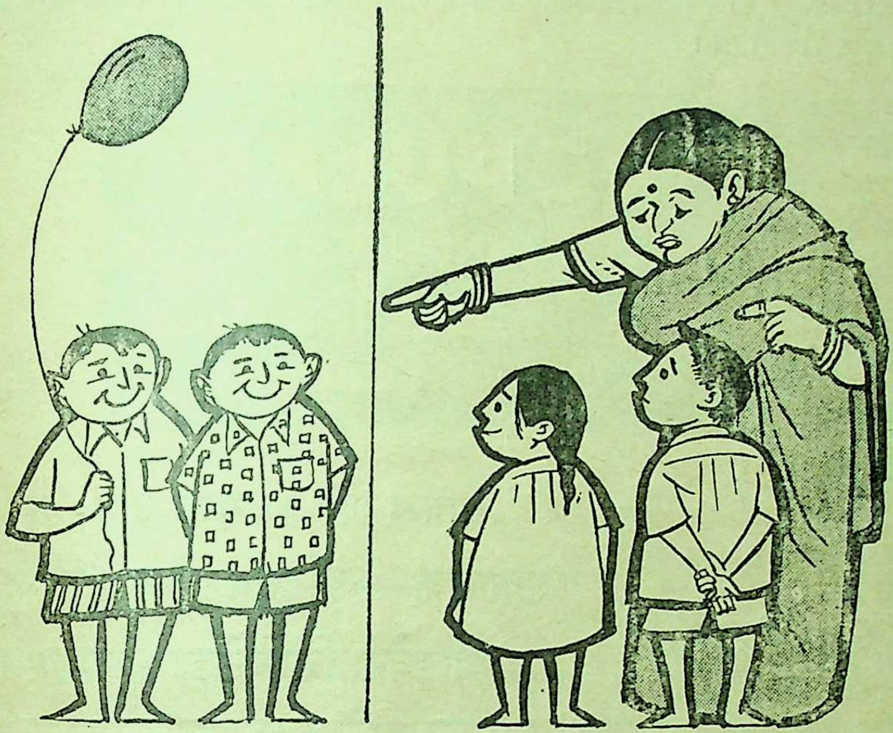

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें अपने बच्चों की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इससे बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचती है। यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है। नन्हे मुन्नों (और मेट्रिक बाटों) के गुणों को परखिये और उन्हें ज्यों का त्यों अपनाइये।

मेट्रिक तोल का जोड़-तोड़ करके सेर न बनाइये।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में अक्सर नुकसान रहेगा।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

पूर्ण अंकों में

मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

डी ए ६२/५४७

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोक
का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी
के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरे
अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उप
है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे
सकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

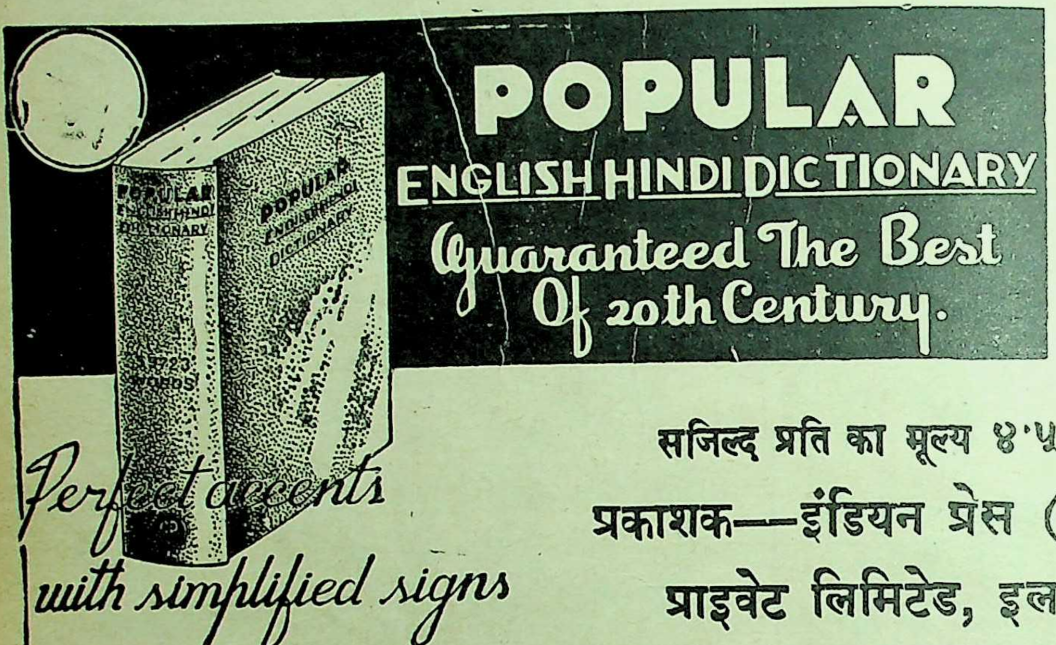
POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शन

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस)
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।......'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष विश्वविद्यालय प्रयाग—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।......'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सुगंधित
ब्राह्मी
केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वेदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल
केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

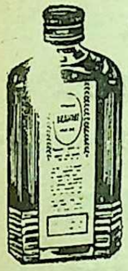

बज उठी रणभेरी !

आज़ादी की रक्षा के लिए
राष्ट्रनेता का आह्वान है
'तस्मात् युद्धस्व भारत'
उत्पादन के मोरचे पर—
आपका कर्म;
युद्ध के मोरचे पर—
आपका शौर्य;
स्वाधीनता को शाश्वत
बनायेगा

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

पाँच पैसे में नया संसार

बाँझपन

का ठेके पर इलाज। पहले सन्तान पीछे दाम। अनगिनत सूने घर आबाद हो गये। एक कार्ड लिखकर ब्योरा मुफ्त लें।

डायरैक्टर—
श्री कुशल भवन, नाभा (पंजाब)

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयि इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदा मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे क पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उप संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भट पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावे जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २'५० नये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** **अनु०—रामनिवास श**

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लो लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना को और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इ नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों म पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English **by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)** अंगरेजी

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त हो किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभका है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रु

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

FORM IV

(See Rule 8)

1.	Place of Publication.	Allahabad.
2.	Periodicity of its publication.	Monthly.
3.	Printer's Name	Shri P. L. Yadav.
	Nationality	Indian.
	Address	36, Pannalal Road, Allahabad.
4.	Publisher's Name	Shri B. N. Mathur.
	Nationality	Indian.
	Address	36, Pannalal Road, Allahabad.
5.	Editor's Name	(i) Pt. Sri Narain Chaturvedi. (ii) Shrimati Sheela Sharma.
	Nationality	Indian.
	Address	(i) 53, Khurshed Bagh, (Vishunupuri) Lucknow. (ii) Prashashak Bhawan, Bena Jabar Road, Kanpur.
6.	Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners of shareholders holding more than one per cent of the total capital.	1. Shri H. P. Ghosh 2. Shri H. S. Ghosh 3. Shri H. N. Ghosh 4. Shri H. B. Ghosh 5. Shri D. P. Ghosh 5, Malaviya Road, Allahabad.

I, B. N. Mathur, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated 1.3.63.

(Sd.) B. N. Mathur,
Signature of Publisher

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

जासूसी गल्प
निशीथकुमार राय
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया निकल

भेद भरी बातों को जान

मनुष्य की अदम्य लालसा संसार देशों में जासूसी कहानियों के प्रकट होती है। संसार के सब के साहित्य में ऐसी रहस्योद् कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्र हो रही हैं। लेखक प्रयाग के नामा फौजदारी के वकील श्री हरिमोहन राय के पुत्र स्वयं भी न्यायिक अधिकारी इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ जगत् में यथेष्ट ख्याति प्रा चुकी हैं। यह उनकी लिखी जरूरी कहानियों का द्वितीय है जिसमें समय-समय पर प्रकाशित हुई उनकी ३२ कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३ ५०

नोट—कृपया अपनी प्रति कराने के लिए आर्डर भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मंगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

आवश्यकता

(१) हिन्दी-संस्कृत, (२) आयुर्वेद में टीका टिप्पण, अनुवाद, मौलिक आलोचना आदि के लिये दो लेखकों की। घर बैठे स्थायी काम। वेतन क्रम १५०–१०–२५०) मासिक। आवेदन हिन्दी-संस्कृत दोनों में भेजें।

डायरैक्टर—
श्री कुशल पुस्तक भवन नाभा (पंजाब)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८७

कर्मयोग ..	१·४०	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान ..	१·६२	शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५	मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग ..	१·१२	चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा ..	०·६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·५०	ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत ..	०·५०	मन की शक्तियाँ	०·४०

विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५
शक्तिदायी विचार (,,) ..	०·६२
मेरी समर नीति (,,) ..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००
श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००
माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

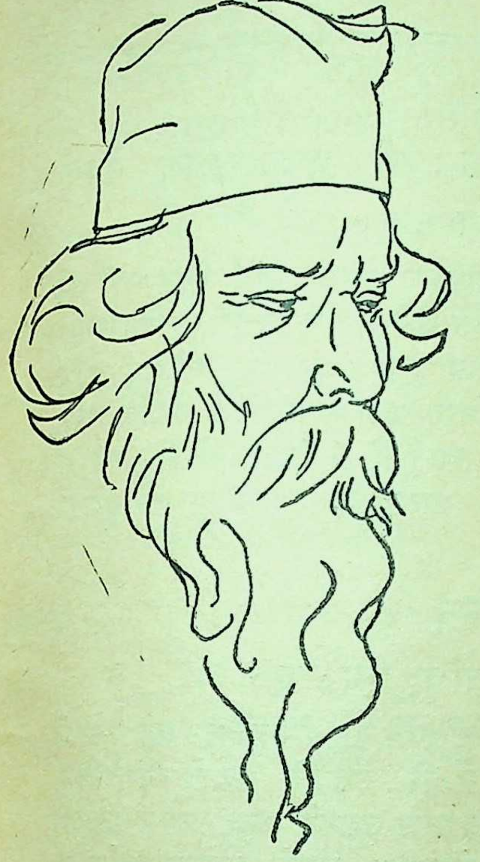

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत का उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी--श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०

पृथ्वी का इतिहास--श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद--श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ--श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत--लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष--गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान--संशोधित संस्करण--इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान--शचीन्द्रनाथ सान्याल

●● ●●● ●●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगोने
पूर्व के पुराने हीरे

विषय-सूची

१--सम्पादकीय .. २०९
२--उत्तर हरिवंश--श्री सूर्यनारायण "भानु" २१७
३--बीती बातें (कविता)--कुँअर सोमेश्वरसिंह २२०
४--भामासाह संबंधी कतिपय महत्त्वपूर्ण विवरण--श्री अगरचन्द नाहटा .. २२१
५--गाँव सारा सो रहा है! (कविता)--श्री जयप्रकाश यादव .. २२४
६--वीर शहीद रोशनसिंह--श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी २२५
७--निमिया के पात झरे! (कविता)--दीनबन्धु पाण्डेय २३१
८--सीता-हनुमान-संवाद तमिल में हुआ था या अंग्रेजी में?--पंडित अमृतलाल नागर २३२
९--जो प्यारों के हाथों पड़ते (कविता)--श्री रवि २३४
१०--वैज्ञानिक शब्दावली की प्रवृत्तियाँ--श्री कस्तूरमल बांठिया .. २३५
११--बाजन लागे ढोल--शीला शर्मा .. २४०
१२--सम्राट् शाहजहाँ के समकालीन काशी के एक विद्वान्--श्री आनन्दस्वरूप गुप्त एम० ए० शास्त्री .. २४१
१३--'रामचरित-मानस' का 'काशिराज-संस्करण'--पण्डित किशोरीदास वाजपेयी .. २४५
१४--चोट (कविता)--श्री रतिभानुसिंह नाहर २४९
१५--भारतीय संस्कृति-केन्द्र 'जावा'--पण्डित सूर्यनारायण व्यास .. २५०
१६--सरिता का जल (कविता)--श्री सुदीप २५२
१७--साहित्य में सच्चा अनुसन्धान--प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय ..
१८--मंगल: हमारा रहस्यमय पड़ोसी--डा० अरविन्द मोहन .. ..
१९--आँगनों के बीच--बाजत ढोल मजीरा--श्रीमती शीला शर्मा ..
घर-गृहस्थी–खिलौने ..
२०--श्रीराम की पुष्पक-यात्रा (कविता)--अनु० सन्तकुमार टण्डन 'रसिक' ..
२१--अमरवाणी--हीराकोयला--श्रीमती कम रत्नम् .. ..
२२--स्वयंबद्ध--श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी एम० ए०
२३--कवि और विधायक (कविता)--श्रीयुत निरंकार देव सेवक ..
२४--केले--डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ..
२५--कृपा--श्री राजेश दयालु "राजेश" ..
२६--पुरस्कार--श्री शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुंडि'
२७--चाँदनी रात में--अनु० राजेन्द्रनाथ मिश्र एम० ए० .. ..
२८--प्रेम की नगरी--श्री श्रीकृष्ण ..
२९--प्यार की मार--श्री सुधीन्द्र 'सुकुमार' ..
३०--परम्परा--श्रीराम शर्मा 'राम' ..
३१--नवीन प्रकाशन .. ..
३२--१९०७ की सरस्वती--रायबहादुर कवि-वर श्री राधानाथ राय--पाण्डेय पुरुषोत्त प्रसाद और पाण्डेय लोचन प्रसाद
३३--मनोरंजक संस्मरण ..

खेत-खेत से खूब उगाओ।
जवानों की शक्ति बढ़ाओ।

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित
श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।
हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचा एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य—एक रुपया आठ

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम २६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता
'बक्स' २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबा

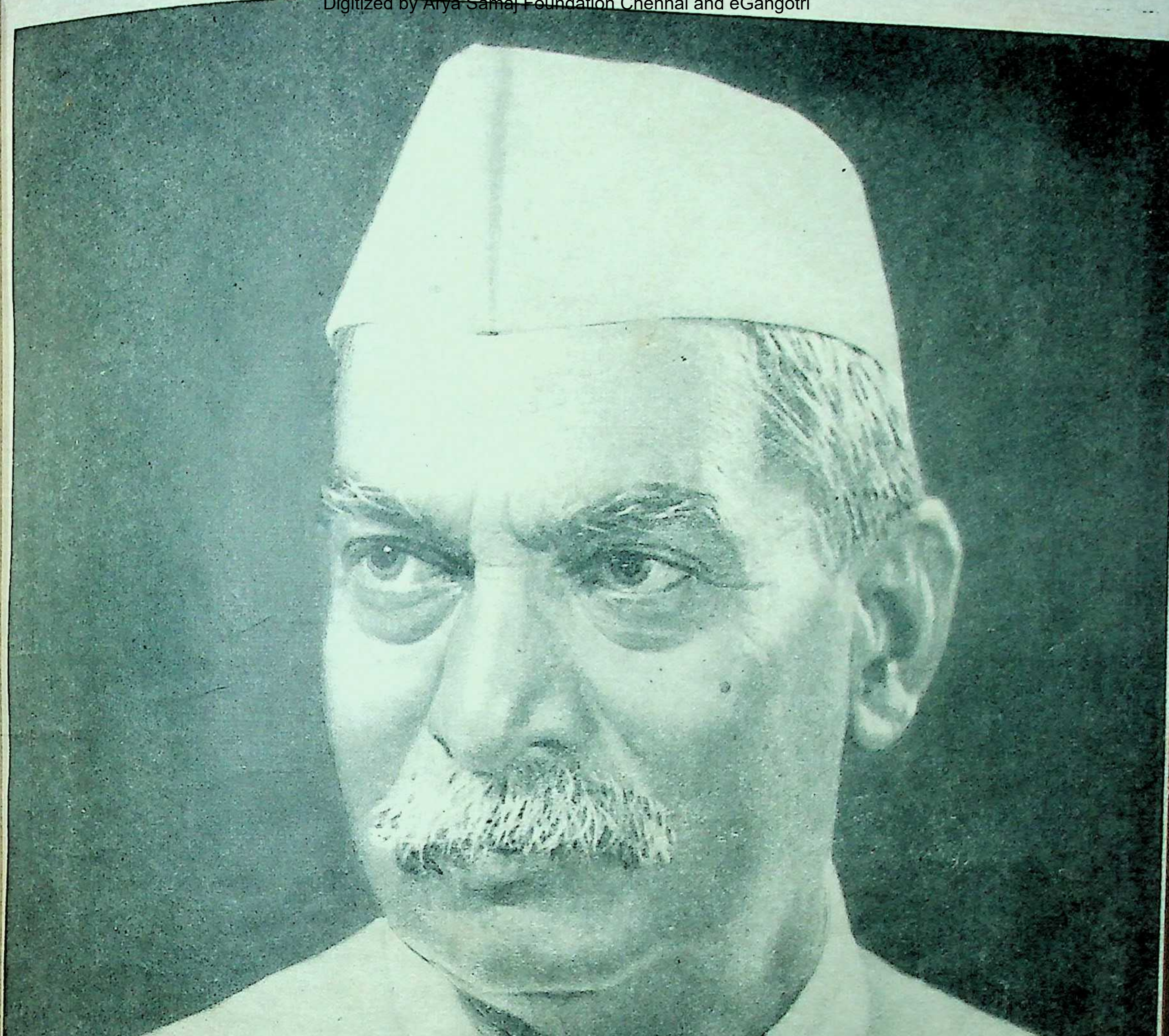

भारत गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेन्द्रप्रसाद

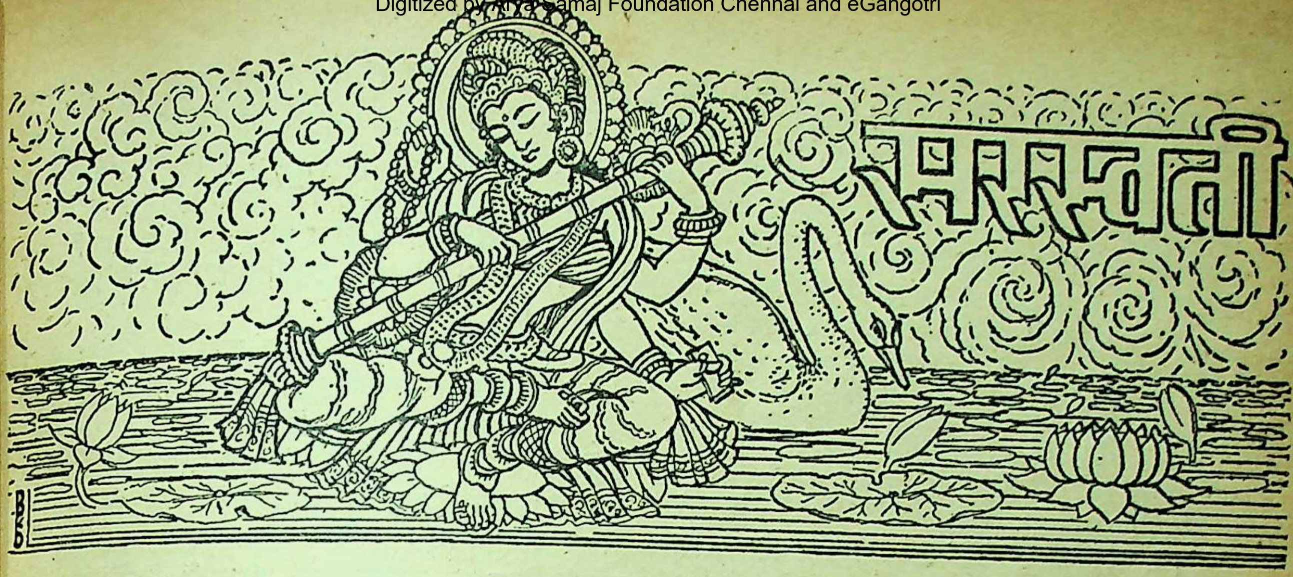

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
पूर्ण संख्या ७५९

इलाहाबाद : मार्च १९६३ : फाल्गुन २०१९ वि०

खण्ड १
संख्या ३

सम्पादकीय

देशरत्न का स्वर्गवास——ये पृष्ठ छपने ही जा रहे थे कि हमें देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के आकस्मिक स्वर्गवास का दुःखदायी समाचार मिला। उस दिन संध्या के समय वे पटना विश्वविद्यालय में दीक्षांत भाषण देनेवाले थे और एक दिन पहिले तक स्वस्थ थे। सबेरे ही उन्हें ज्वर हो आया जो कालज्वर प्रमाणित हुआ और प्रायः अठारह घंटों की अल्प अवधीय बीमारी ने भारत-माता से उसके सबसे मूल्यवान् रत्न को छीन लिया।

प्रायः आधी शती तक राजेन्द्र बाबू भारत के राजनीतिक रंगमंच पर रहे। कांग्रेस के दूसरे (कलकत्ता) अधिवेशन में जिसमें दादाभाई नौरोजी अध्यक्ष थे, उन्होंने स्वयंसेवक के रूप में कांग्रेस की सेवा आरम्भ की, और [illegible]ी योग्यता, सेवा की उत्कृष्टता, चरित्र की निर्मलता, देशसेवा की एकान्त निष्ठा और लोकप्रियता के कारण वे अँगरेजी राज्य में अनौपचारिक 'राष्ट्रपति' (जैसा कि उन दिनों कांग्रेस-अध्यक्ष को कहा जाता था) ही नहीं हुए किन्तु स्वतन्त्र भारत के पहिले औपचारिक राष्ट्रपति भी चुने गये। देश ने अपनी श्रद्धा और अपने प्रेम का द्वार उनके लिए उन्मुक्त भाव से खोल दिया था। प्रेम के कारण देशवासी उन्हें 'राजेन्द्र बाबू' के प्रिय नाम से याद करते थे, किन्तु श्रद्धा के कारण जनता ने उन्हें 'देशरत्न' की अनौपचारिक उपाधि दे रक्खी थी।

वे गांधीजी के अनन्य भक्त और अनुयायी थे। यों तो गांधीजी के अनुयायियों की संख्या अनन्त थी; किन्तु वे उन इने गिने अनुयायियों में थे जो गांधीजी के वाक्यों और आदेशों को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार कर लेते थे। ऐसा कभी नहीं सुना गया कि गांधीजी के दीर्घकालीन सम्पर्क में राजेन्द्र बाबू का उनसे कभी कोई गहरा मतभेद हुआ हो। उन्होंने गांधीजी को सर्वभाव से अपना नेता और गुरु माना, और आजीवन उनके चरणचिह्नों का अनुसरण किया।

वे संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गये। संविधान सभा में सभी दलों के सदस्य थे और संविधान तैयार करने का कार्य अत्यन्त जटिल था। किन्तु राजेन्द्र बाबू ने जिस सफलता के साथ संविधान सभा का संचालन किया उसे देखकर सारा देश और सभी दल के लोग मुग्ध हो गये। यह कहना कठिन है कि उस सफलता का अधिक श्रेय उनकी बेजोड़ योग्यता को था या उनके मृदुल स्वभाव और व्यवहार-कुशलता को।

वे भारत के पहिले राष्ट्रपति हुए। यह आधुनिक युग और भारतीय इतिहास का चमत्कार था कि एक आश्रमवासी संत अपनी कुटी छोड़कर दिल्ली के वैभवपूर्ण विशाल राजप्रासाद में जा पहुँचा। किन्तु राजप्रासाद उनके सरल हृदय को प्रभावित न कर सका। ऊपरी वैभव रखते हुए भी उसे अपना वातावरण आश्रम का वातावरण बनाना पड़ा। उनके व्यवितत्व के जादू से उसका पाश्चात्य वातावरण भारतीय हो गया। स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति की हैसियत से उन्होंने जो परम्परायें स्थापित कीं वे स्वस्थ और भारतीय थीं। राष्ट्रपति दलगत राजनीति से ऊपर है। कांग्रेसनिष्ठ होते हुए भी राजेन्द्र बाबू ने अपने व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया कि वे दलों से ऊपर हैं। वे सारे देश के हैं। वे भारतीय आदर्शों के प्रतीक हैं, उनके रक्षक और पोषक हैं। वे सारे देश के हृदय-सम्राट् हो गये थे।

एशिया और अफ्रीका के कितने ही नव-स्वतन्त्र राज्यों में जनतन्त्र स्थापित हुए, किन्तु असफल रहे। उनके विपरीत, भारत में जनतन्त्र सफल रहा। वैसे तो इस सफलता का श्रेय सारे देश के राजनीतिक-बोध को है, किन्तु यदि प्रथम राष्ट्रपति में व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठकर संवैधानिक मर्यादाओं के पालन करने की अपूर्व क्षमता न होती तो यह कहना कठिन है कि हमारा जनतन्त्र इतनी सफलता प्राप्त कर सकता अथवा इतने सुन्दर ढंग से चल सकता या नहीं। उन्होंने अपने श्रेष्ठ व्यक्तित्व, उच्च चरित्र तथा आदर्श भारतीय शिष्टता के कारण राष्ट्रपति के गौरव और उसकी मर्यादा को इस महान् देश के राष्ट्रपति के उपयुक्त स्तर पर पहुँचा दिया।

देशरत्न अन्य नेताओं से भिन्न थे। उनकी यह भिन्नता, उनकी विनम्रता, उनकी सादगी, भारतीय आदर्शों, भारतीय जीवन-प्रणाली और धर्मनिष्ठा में परिलक्षित होती थी। उनकी हृत्तंत्री जन-मानस की भावनाओं के साथ समस्वर थी। साधारण भारतीय उनमें अपने आदर्शों, आकांक्षाओं और निष्ठा का मूर्त रूप देखता था। यही कारण है कि वे देशवासियों के हृदय के जितने निकट थे उतने और नेता नहीं हो सके। किन्तु उनकी विनम्रता दुर्बलों की विनम्रता नहीं थी। सिद्धान्त और सत्य के मामले में वे झुकना नहीं जानते थे। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' के वे सजीव उदाहरण थे।

उनकी हिन्दीनिष्ठा अप्रतिम थी। अन्य नेताओं की तरह उन्होंने अपनी आत्मजीवनी विदेशी भाषा में लिखकर अपनी मातृभाषा के प्रति उदासीनता और उपेक्षा नहीं दिखायी। उन्होंने अपनी आत्मकथा हिन्दी में लिखी। उससे हिन्दी का गौरव बढ़ा। हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कराने में उन्होंने जो अप्रत्यक्ष सहयोग दिया उसका मूल्यांकन करना आज सम्भव नहीं है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति के पद को उन्होंने सुशोभित किया। राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा के वे आदि-सदस्य रहे। दक्षिण भारत प्रचार-सभा के गांधीजी के बाद वे अध्यक्ष हुए। राष्ट्रपति-भवन में हिन्दी को उसका उचित स्थान देने में वे सदैव सतर्क रहते थे। संसद में वे हिन्दी में भाषण देते थे। राष्ट्र के पद से उन्होंने अपने सीमित क्षेत्र में राष्ट्रभाषा हि को सदैव मान्यता दी। उनके कारण दिल्ली में हिन्दी क्या स्थान मिल गया था, यह उनके वहाँ से हटने के उसकी स्थिति से प्रत्यक्ष हो जाता है। पहिले राजर्षि का और अब राजेन्द्र बाबू का निधन हिन्दी के लिए वज्रपात के समान है।

सरस्वती पर उनकी विशेष कृपा थी। सरस्वती हीरक जयन्ती उत्सव की अध्यक्षता उन्होंने स्वीकार ली थी, किन्तु आकस्मिक बीमारी के कारण वे प्र नहीं आ सके। अतएव उन्होंने उस उत्सव का एक राष्ट्रपति-भवन में करने की अनुमति दे दी जिसमें सम्मि होकर उन्होंने जो मौखिक काव्यमय और साहि भाषण दिया वह सरस्वती की ही नहीं, हिन्दी भाषा एक अमूल्य निधि है।

उनके आकस्मिक निधन से हम स्तब्ध और हत हो गये हैं। इस समय उनके सम्बन्ध में अधिक लि हमारे लिए सम्भव नहीं है। वे आधुनिक भारत निर्माताओं में थे। स्वतन्त्रता के बाद के भारत में उ जो महत्त्वपूर्ण कार्य था. वह आज जनता के सामने है। भविष्य में जब इतिहास के निष्पक्ष विद्वान् गोपनीय कागज-पत्रों का अध्ययन करेंगे जो आज उप नहीं हो सकते, तब वे बतला सकेंगे कि स्वतन्त्र भारत जहाज के कुशल परिचालन में, उसकी गृह और पर नीतियों के निर्धारण में, तथा भारत को भारतीय ब रखने में उनका कितना महत्त्वपूर्ण योग था। इतिहास उनके राजनीतिक व्यवितत्व को ठीक तरह से उभार उनके साथ न्याय कर सकेगा। हम उनके इतने निक कि उनकी गगनचुंबी महत्ता को ठीक तरह से नहीं सकते।

उनके निधन से गांधीयुग की एक बड़ी महत्त्व कड़ी टूट गयी। आचार्य विनोबा भावे गांधीजी के आ त्मिक, और पं० जवाहरलाल नेहरू उनके राजनी उत्तराधिकारी हैं। हमारा सौभाग्य है कि वे अब हमारा मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। किन्तु राजेन्द्र बाबू उ मानवता, उनके निश्छल और सरल व्यक्तित्व, उ सिद्धान्तों, उनकी राजनीति और उनकी भारतीय आ त्मिकता के समन्वय के प्रतीक थे। उनका व्यवितत्व क्राइस्ट और गांधीजी की याद दिलाता है।

राजेन्द्र बाबू का पार्थिव शरीर भस्म हो गया, वह भस्म माता गंगा में विसर्जित हो गयी। किन्तु उ चरित्र प्रकाश-स्तम्भ की भाँति भारत की अगणित पी को अपनी भारतीयता और स्वतन्त्रता को बनाये में मार्ग-दर्शन करता रहेगा। राजेन्द्र बाबू अमर हैं!

इराक की क्रांति——गत मास इराक में राज्य हो गयी। सेना के कुछ भाग ने सहसा विद्रोह करके राजधानी बगदाद पर अधिकार कर लिया, और

तानाशाह जनरल कासिम को पकड़ लिया। पकड़ने के बाद उनपर कुछ अभियोग लगाकर उनके विचार करने का नाटक किया गया, और तुरन्त ही उन्हें गोली मार दी गयी। कासिम ने प्राणों की भिक्षा माँगी किन्तु उससे कहा गया कि क्या तुमने फैजल की जान बख्शी थी? ठीक ही है, 'खाड खने जो और कों, वाकों कूप तयार!'

इराक राज्य का पूरा अरबी नाम है "अल जम्हूरिया अलइराकिया"। इस देश को अँगरेजी में मैसोपोटामिया कहते थे। यह ईरान के पश्चिम में स्थित है। इसका क्षेत्रफल १,७१,६०४ वर्गमील है। इसकी जनसंख्या १९५९ में ६४,१३,६५८ थी। इनमें प्रायः २ लाख ईसाई, कुछ यजीदी और कुछ यहूदी हैं। ७५ प्रतिशत निवासी अरब हैं, १५ प्रतिशत कुर्द जाति के लोग हैं। शेष में ईरानी आदि हैं। अधिकांश मुसलमान शिया सम्प्रदाय के हैं।

इराक का बहुत सा भाग रेगिस्तान है, किन्तु यहाँ संसार प्रसिद्ध दो नदियाँ हैं जिनके नाम दजला और फरात (अँगरेजी में यूफ़िटीज और टाइग्रीज) हैं। अनादि काल से इन नदियों की तलैटियाँ उर्वर रही हैं और उनमें खेती होती रही है। उनसे नहरें निकालकर सिंचाई की प्रणाली भी अत्यन्त प्राचीन है। किन्तु नदियों से दूर के क्षेत्रों में खेती नहीं हो सकती। इराक के खजूर संसारप्रसिद्ध हैं और संसार में जितने खजूरों की खपत होती है, उसके ८० प्रतिशत इराक से जाते हैं। किन्तु इराक की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति मिट्टी का तेल है। किरकुक नामक स्थान में सबसे पहिले (१९२५ में) मिट्टी का तेल मिला। अब ऐनजाला, रूमालिया तथा बसरा के पास भी तेल के कुएँ खोदे गये हैं। १९६१ में इनसे ४ करोड़ ८० लाख टन से अधिक तेल निकाला गया। तेल निकालने का ठेका अँगरेजी कम्पनियों के पास है किन्तु वे इराक सरकार को अपने लाभ का आधा भाग देती हैं। १९६१ में इराक सरकार को इन कम्पनियों से ९ करोड़ ५० लाख इराकी दीनार से अधिक का धन मिला था (२० इराकी दीनार बराबर १ अँगरेजी पाउंड के)।

देश की राजधानी बगदाद है। इसकी जनसंख्या दस लाख के लगभग है। मोसुल एक दूसरा प्रसिद्ध बड़ा नगर है। फारस की खाड़ी पर बसरा नाम का प्रसिद्ध बंदरगाह है।

इराक की मुख्य भाषा अरबी है, किन्तु कुर्दिस्तान के लोग कुर्द भाषा बोलते हैं। कुर्दिस्तान का कुछ भाग तुर्की में, कुछ रूस में और अधिकांश इराक में है। ये कुर्द स्वतन्त्र कुर्दिस्तान बनाना चाहते हैं और इनका झगड़ा यहाँके अरब लोगों से बराबर चलता रहता है। ये योद्धा हैं और बहुधा विद्रोह कर दिया करते हैं।

इराक संसार के प्राचीनतम देशों में गिना जाता है। दजला और फरात से सींचे हुए इस प्रदेश में सुमेर, बेबिलन और असुर साम्राज्य पनपे। ईसा पूर्व ४००० वर्ष पहिले से यह प्रदेश सभ्यता का केन्द्र रहा। ईसा पूर्व छठी सदी में ईरान के शाह साइरस ने इसपर अधिकार कर लिया, किन्तु ईसा पूर्व ३३१ में सिकन्दर ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। यहाँ सुमेरी, बेबीलोनी और असुर सभ्यताओं के अनेक चिह्न मिलते हैं और पुरातत्ववेत्ताओं के अन्वेषण के लिए यहाँ असंख्य स्थान अब भी उपलब्ध हैं। पुरातत्ववेत्ताओं के परिश्रम से इस क्षेत्र के अनेक पुराने स्थानों का पता लगा है, तथा वहाँकी पुरानी सभ्यताओं के बारे में अनेक तथ्य तथा प्राचीन स्थान प्रकाश में आये हैं। सातवीं सदी के आरम्भ में अरबों ने इस प्रदेश को जीत लिया। यहाँके पुराने निवासी प्रायः नष्ट हो गये और यहाँ अरब जाति के लोग बस गये। ईरान की तरह यहाँ भी अरबों ने मुस्लिम धर्म फैलाया और तब से यह मुसलमान देश है। बगदाद को खलीफाओं ने अपनी राजधानी बनाया, और उनके राज्यकाल में बगदाद का वैभव अभूतपूर्व रूप से बढ़ा। वह मुस्लिम साम्राज्य और मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र हो गया। वहाँके खलीफाओं में हारूँ रशीद का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। 'अलिफ लैला' नामक प्रसिद्ध कहानी की पुस्तक यहीं और उसीके समय में बनी। किन्तु तेरहवीं शती में मंगोलों ने चंगेज खाँ और तैमूर के नेतृत्व में इस प्रदेश को नष्ट कर दिया। उन्होंने यहाँ ऐसा विनाश किया कि यह हरा-भरा प्रदेश मरुस्थल हो गया और आज तक वह पूर्वस्थिति पर नहीं पहुँच पाया। बगदाद बिलकुल उजाड़ दिया गया था। मंगोलों के बाद सोलहवीं शती से लेकर अठारहवीं शती तक यह तुर्कों और ईरानियों की साम्राज्य-लिप्सा का अखाड़ा बना रहा। अन्त में इसपर तुर्की का अधिकार हो गया, और १८३१ ई० में वह तुर्क-साम्राज्य का एक प्रान्त बना दिया गया। प्रथम महायुद्ध में जब तुर्की ने जर्मनी का साथ दिया तब अँगरेजों ने भारतीय सेना भेजकर उसे जीत लिया। १९३२ तक अँगरेजों ने उसपर राज्य किया और फिर उसे स्वतन्त्र राज्य बना दिया।

इराक में कोई राजवंश नहीं था। अरब के जिद्दा नामक स्थान के मुफ्ती ने प्रथम महायुद्ध में तुर्कों को हराने में मित्र राज्यों की बड़ी सहायता की थी। फलतः जब जार्डन और इराक के नये राज्य बने तब उसके पुत्रों को वहाँका राजा बनाया गया। वह राजवंश 'हाशमी' कहलाता है।

मिस्र, सीरिया, लेबनान, अरब, जार्डन, यमन और इराक के अधिकांश निवासी अरब हैं। वहाँ अरबी भाषा बोली जाती है। इन प्रदेशों में बहुत दिनों से यह आन्दोलन चल रहा था कि सारे अरब-भाषी देशों का एक विशाल राज्य बनाया जाये। जब मिस्र में क्रान्ति हुई और वहाँका खदीव निकाल दिया गया, तथा सेना के हाथ में वहाँ का राज्य आ गया तब इस आन्दोलन को बड़ा बल मिला। इराक, जार्डन और अरब के राजवंश इसके विरुद्ध थे, किन्तु इन देशों के कुछ लोग इस विशाल अरब राज्य को बनाने के पक्ष में थे। १ फरवरी १९५९ में मिस्र और सीरिया का संयुक्त अरब संघ बन गया। इससे घबड़ा कर जार्डन और इराक के हाशमी राजाओं ने

अरब यूनियन के नाम से १४ फरवरी को एक संघ बनाने की घोषणा की। इराक का राजा फैजल द्वितीय उस समय अवयस्क था। उसका अभिभावक उसका चाचा था। वहाँका प्रधान मंत्री नूरी अस्सईद नामक एक चतुर राजनीतिज्ञ था। ये लोग पाश्चात्य देशों के मित्र थे और बगदाद संधि में सम्मिलित थे। मिस्र इनके विरुद्ध था, और बराबर इनके विरुद्ध प्रचार कर रहा था। देश में नूर अस्सईद की नीति और शासन के विरुद्ध काफी असंतोष था जिसे इस विशाल अरब आन्दोलन ने और तेज कर दिया। फलस्वरूप १४ जुलाई को सेना ने विद्रोह करके बगदाद पर अधिकार कर लिया और राजा, उसके अभिभावक, राजकुमार, राजवंश के अनेक लोगों तथा नूरी अस्सईद का वध कर दिया। इस विद्रोह के नेता थे ब्रिगेडियर अब्दुल करीम कासिम और कर्नल अब्दुल सलाम आरिफ। इन्होंने जार्डन के साथ जो संघ बनाया गया था, उसे तुरन्त ही भंग कर दिया। बगदाद संधि से अपने को अलग कर लिया और रूस से मित्रता कर ली। पश्चिम का प्रत्यक्ष विरोध न करते हुए भी उससे वे अलग हो गये। आगे चलकर कासिम तानाशाह हो गया और उसने आरिफ को बन्दी बनाकर उसपर अभियोग चलाया तथा उसे मृत्युदंड सुना दिया। किन्तु १९६१ में उसने आरिफ को छोड़ दिया। धीरे-धीरे उसने कम्युनिस्टों का सहयोग प्राप्त कर लिया। रूस से उसे बड़ी सैनिक सहायता मिली। आज इराक की सेना के पास तीन चौथाई सैनिक सामान रूसी हैं। उत्तर में कुर्दों ने विद्रोह कर दिया जिसे कासिम ने बड़ी निर्दयता से दबाया, किन्तु वे बराबर लड़ते रहे। मिस्र के नासिर से उसकी अनबन हो गयी। उसके विरुद्ध जनता में असंतोष बढ़ने लगा, और गत मास आरिफ के नेतृत्व में सेना और कुछ राजनीतिक दलों ने मिलकर क्रान्ति कर दी। कासिम का साथ केवल कम्युनिस्टों ने दिया, किन्तु अन्त में कासिम पकड़ा गया और उसे गोली मार दी गयी।

इराक में कई राजनीतिक दल हैं। वहाँ अब भी पुराने राजवंश के अनुयायी मौजूद हैं। इराकी राष्ट्रवादी भी हैं। कम्युनिस्ट काफी संगठित हैं और कासिम की बाद की नीति के कारण वे काफी शक्तिशाली हो गये थे। किन्तु इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वहाँ एक दल है जो समाजवादी है, और जिसका नाम "बाथ" है। यह दल सीरिया में बना। इसका उद्देश्य विशाल अरब राज्य का निर्माण करना है। सीरिया से यह दूसरे अरब देशों में फैला। यह दल कम्युनिस्ट-विरोधी और मिस्र का पक्षपाती है। इसी दल की सहायता से इराक की यह क्रान्ति हुई है। उसने इतने ही अल्प समय में कम्युनिस्टों का भीषण दमन कर डाला है। मालूम होता है कि उसने कम्युनिस्टों की मोहल्लेवार सूची बना रखी थी, और क्रान्ति होने पर उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर पकड़ लिया गया या मार दिया गया। इराक में जो नयी सरकार बनी है उसमें कई दलों के लोग हैं, किन्तु बहुमत बाथदल के लोगों का है। उसमें सेना के भी कई सदस्य हैं। अभी यह कहना कठिन है कि क्रान्ति का अरब-एकता पर क्या प्रभाव पड़ेगा, कि इसमें संदेह नहीं कि इराक की नई सरकार की मिस्र मित्रता रहेगी। ऐसा मालूम पड़ता है कि इराक की सरकार स्थायी रहेगी और यदि उसने बुद्धिमानी से का लिया, और कुर्दों को प्रसन्न रक्खा तथा रूस या पश्चि को बहुत अप्रसन्न नहीं किया तो वह देश को सम बनाने तथा शान्ति स्थापित करने में सफल होगी।

अंग्रेजी को पुनः प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न—अंग्रे को अनिश्चित काल के लिए भारत की सहयोगी राजभा बनाने का विधेयक अभी संसद में उपस्थित नहीं हु किंतु इस संबंध में सरकार का दृढ़ निश्चय देश को माल हो गया है। इसके परिणाम भी सामने आने लगे बहुत से लोगों ने, विशेषकर हिंदी-विरोधियों ने, यह मा लिया है कि इस देश में अंग्रेजी अनन्त काल तक सहयो राजभाषा बनी रहेगी। सरकारी कर्मचारियों और अ कारियों को अंग्रेजी ही में काम करने की पूरी छूट रहे उसका जितना अधिक ज्ञान होगा, सरकारी नौकरियों प्रवेश पाने में उतनी ही सफलता मिलेगी, तथा अब हि के ज्ञान की आवश्यकता न रह जायगी। अतएव मद्रा के माध्यमिक स्कूलों में दो-तीन वर्ष तक जो नाममात्र लिए हिंदी पढ़ाने का नाटक किया जाता रहा है, उस असलियत- हिंदी की परीक्षा बंद करके खोल दी गयी यह अपव्ययपूर्ण मजाक कब तक चल सकता है? हि को अनावश्यक प्रमाणित करके, अब मदरास अंग्रेजी फिर वही स्थान देने का उपक्रम कर रहा है जो उसे अंग्रे के समय में प्राप्त था। अंग्रेजों के समय में ऐंग्लो-व क्यूलर स्कूलों में तीसरी कक्षा से सारी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाती थी। राष्ट्रीय आंदोलन और शिक्ष शास्त्रियों के मत से प्रेरित होकर इन स्कूलों में शिक्षा माध्यम मातृभाषा कर दी गयी। अंग्रेजी एक अनिव विषय के रूप में छठवीं कक्षा से पढ़ायी जाने लगी। कि अंग्रेजी के भक्तों ने चिल्लाना आरंभ किया कि अंग्रे का स्तर बुरी तरह गिरता जा रहा है। विश्वविद्याल तो अंग्रेजीपरस्तों के गढ़ ही हैं। सबसे अधिक चिल्लाह उन्होंने मचायी। लोक सेवा आयोग अपनी परीक्ष अंग्रेजी के माध्यम से लेते हैं। उन्होंने भी अंग्रेजी सुरक्षा के सहगान में अपना स्वर मिलाया। सरकार भी इस वर्ग के लोगों की कमी नहीं है। अतएव अंग्रे का स्तर उठाने के लिए, और उसका शिक्षण सुधारने लिए, प्रयत्न होने लगे। अंग्रेजों और अमरीकनों का आर्थि और राजनीतिक स्वार्थ इसी में है कि भारत में सदा सर्व के लिए अंग्रेजी बनी रहे। अतएव उन्होंने अंग्रेजी शिक्ष के लिए ट्रेनिंग कालिज खोलने, उनके लिए सेमिनार चल अंग्रेजी में सस्ती पाठ्यपुस्तकें देने आदि में आश्चर्यज तत्परता दिखायी। हमारे देश में तो इस समय वि सहायता लेना फैशन हो गया है। हमारी सरका

ह सब सहायता स्वीकार करके अंग्रेजी का स्तर उठाने का बीड़ा उठा लिया। किंतु अध्यापकों ने कहा कि भारत में अंग्रेजी का स्तर मैट्रिक तक पहुँचते-पहुँचते तब ऊँचा होता था जब वे तीसरी कक्षा से दसवीं कक्षा तक, पूरे आठ वर्ष, अंग्रेजी पढ़ते थे। अतएव छठी कक्षा से केवल पाँच वर्ष अंग्रेजी पढ़कर बेचारे विद्यार्थी उस स्तर पर कैसे पहुँच सकते हैं? हमारी कृपालु सरकार ने तुरंत तीसरी कक्षा से अंग्रेजी अनिवार्य कर दी। किंतु बात यहीं समाप्त नहीं हुई। अंग्रेजों के राज्य में हमारे विद्यार्थी स्कूलों में आठ वर्ष अंग्रेजी पढ़ते ही न थे, अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम भी थी। इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि सभी विषय अंग्रेजी के द्वारा पढ़ाये जाते थे। अर्थात् अब जब अंग्रेजी एक विषय है तो वे आठ वर्ष तक प्रतिदिन केवल एक घंटे अंग्रेजी पढ़ेंगे, अंग्रेजी बोलेंगे, अंग्रेजी सुनेंगे। किंतु जब वह शिक्षा का माध्यम थी तो वे नित्य पूरे पाँच घंटे अंग्रेजी पढ़ते, अंग्रेजी बोलते और अंग्रेजी सुनते थे। अब अंग्रेजी का वह पुराना स्तर कैसे आ सकता है जब तक कि अंग्रेजी को फिर से स्कूलों की शिक्षा का माध्यम न बना दिया जाय? अभी भारत-सरकार ने तो इसे नहीं माना; किंतु मदरास सरकार ने इस ओर बढ़ने का साहस किया है। वहाँ भी माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम तमिल कर दी गयी थी। किंतु अब वहाँके शिक्षा-मंत्री ने स्कूलों के अधिकारियों को अनुमति दे दी है कि जहाँ माँग हो वहाँ वे अपने स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने की कक्षाएँ भी खोल लें। उद्देश्य यह है कि दस वर्ष तक पाँच घंटे नित्य सभी विषय अंग्रेजी में पढ़कर विद्यार्थियों की अंग्रेजी इतनी मजबूत हो जाय कि जब सरकारी नौकरियों के लिए चुनाव हो तो वे उन प्रदेशों के विद्यार्थियों को चारों खाने चित्त कर दें जहाँ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है और जहाँ के विद्यार्थियों ने आठ वर्ष तक नित्य केवल एक घंटे ही अंग्रेजी पढ़ी है। सेवा-आयोग, सेवा में भर्ती करनेवाले अधिकारी आदि अंग्रेजी के ज्ञान पर जो बल देते हैं, वह किसीसे छिपा नहीं है। अतएव मदरास के उम्मेदवारों से पीछे न रहने के लिए दूसरे प्रदेश भी मदरास का अनुगमन करके अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करने को बाध्य होंगे। अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए सहयोगी भाषा बनाने के निर्णय का यह एक परिणाम है। विधेयक पारित हो जाने के बाद न मालूम कितनी बातें सामने आवेंगी——

इब्तदा-ए-इश्क है, रोता है क्या?
आगे आगे देखिये, होता है क्या!

हिंदी और भारत-सरकार——संविधान ने हिंदी को भारत की राजभाषा माना और भारत सरकार का उत्तरदायित्व है कि वह उसके प्रचार, प्रसार और लोकप्रिय बनाने का प्रबंध करे। इधर उसके रुख में जो परिवर्तन हुआ है उसका अनुमान इन बातों से लगाया जा सकता ——

(१) जब से हिंदी राजभाषा घोषित हुई तब से सवा आठ बजे सबेरे, और रात के हिंदी समाचार सारे देश के आकाशवाणी संस्थानों से प्रसारित (रिले) किये जाते थे। यह नीति १९६२ के अंत तक चली।

(२) कलकत्ता, बम्बई, नागपुर, मदरास आदि हिंदी क्षेत्रों से बाहर के कुछ प्रमुख स्थानों से हिंदी के जो कार्यक्रम प्रसारित किये जाते थे, उनका समय कहीं कम, कहीं अधिक घटा दिया गया।

(३) अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी का प्रचार करने के लिए कितने ही अहिंदीभाषी क्षेत्रों के आकाशवाणी संस्थानों से वहाँकी भाषाओं के माध्यम से हिंदी सिखाने की पाठमालाएँ प्रसारित की जाती थीं। वे भी अब बंद कर दी गयी हैं। शायद अंग्रेजी के सहयोगी राजभाषा होने के कारण अब उन क्षेत्रों में हिंदी पढ़ाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

हम इन पर कोई टीका-टिप्पणी करना अनावश्यक समझते हैं। हवा का रुख तिनकों की गति से जान लिया जाता है।

भारत की वायुसेना और विदेशी सहायता——नवंबर ६२ में चीन ने भारत पर जो आक्रमण किया था उसकी एक बड़ी विशेषता यह थी कि उसने अपनी वायुसेना का उपयोग बिलकुल ही नहीं किया। शायद इसका कारण यह रहा हो कि लदाख और उत्तर-पूर्वी सीमान्त में उसका तात्कालिक सैनिक उद्देश्य सीमित था जिसके लिए उन पहाड़ी प्रदेशों में वायुसेना की सहायता आवश्यक नहीं थी। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वह तिब्बत में अपनी वायुसेना के लिए पर्याप्त पैट्रोल न एकत्र कर पाया हो। किन्तु चीन का खतरा अभी हमारे सिर पर है, और यह नहीं कहा जा सकता कि वह कब आक्रमण कर बैठे, और यदि वह भविष्य में आक्रमण करता है तो अपनी वायुसेना का उपयोग न करेगा। उसके पास विशाल वायुसेना है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि उसके पास तीन हजार से अधिक युद्ध के वायुयान हैं जिनमें १८०० विभिन्न प्रकार के रूसी मिग हैं। इन वायुयानों से हमारी सेना, हमारे नगरों, कारखानों, सड़कों, पुलों, रेलों आदि को काफी क्षति पहुँचायी जा सकती है। हमारी वायुसेना अपेक्षाकृत बहुत छोटी है और हमारे पास इतने शक्तिशाली वायुयान भी नहीं हैं कि हम शत्रु के वायुयानों का डटकर सामना कर सकें। हमारी उत्तरी सीमा दो हजार मील लम्बी है। उसकी रक्षा और पहरेदारी के लिए हमें अपनी वायुसेना को बढ़ाना आवश्यक है। चीन के अतिरिक्त पाकिस्तान की सीमा की रक्षा की भी समस्या है। अमरीका ने पाकिस्तान को अपने अत्यन्त शक्तिशाली वायुयानों की दो टुकड़ियाँ दी हैं जिनमें २४ वायुयान हैं। इससे भारत और पाकिस्तान की वायुसेना का संतुलन बिगड़ गया है। इसी

संतुलन को सुधारने के लिए हमने रूस से मिग वायुयान माँगे थे। उसने हमें केवल १२ वायुयान देने का वचन दिया, और अभी तक केवल ४ वायुयान दिये हैं। शेष ८ मिग प्रायः डेढ़ साल में मिलेंगे। रूस ने भारत में मिग बनाने का कारखाना खोलने का वचन अवश्य दिया है, किंतु उसके बनने और उससे वायुयान तैयार होने में कम से कम पाँच वर्ष तो लग ही जायेंगे। एक कहावत है––'घड़ी में घर जले और अढ़ाई घड़ी भद्रा!' सो, इन मिग वायुयानों से भारत की वायु-सुरक्षा की तात्कालिक समस्या हल नहीं होती। चीन का खतरा हमारे सिर पर मँडरा रहा है। अतएव हमें अपनी वायु-सुरक्षा का प्रबंध तुरन्त करना है।

इसीलिए जब चीन ने आक्रमण किया तब हमने स्थिति की गंभीरता समझ कर अमरीका और इंग्लैण्ड से वायु-सुरक्षा में सहायता देने को कहा। तात्कालिक संकट तो टल गया, किन्तु भावी संकट का सामना करने के लिए हमें तैयारी करनी है। हमारे कहने पर भारत की वायु-सुरक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओं का अनुमान करने तथा उसकी योजना बनाने में सहायता देने के लिए अमरीका, इंग्लैण्ड, कनाडा और आस्ट्रेलिया के वायुसेना विशेषज्ञों का एक दल जनवरी में भारत आया, और वह हमारी वायुसेना के अधिकारियों से परामर्श करके तथा यहाँ की स्थिति का अध्ययन करके लौट गया है। वह अपना प्रतिवेदन अपनी सरकारों को देगा, और तब उसपर विचार करके ये सरकारें भारत-सरकार को सलाह देंगी।

जब यह दल आया तब लोगों ने उसके आने के कारणों के तरह-तरह के अटकल लगाये। कुछ लोगों ने, न मालूम किस आधार पर, यह कहा कि ये पाश्चात्य देश भारत में अपनी वायुसेना रखकर एक प्रकार की 'हवाई छतरी' से उसकी रक्षा करेंगे। इसके अर्थ यह होते हैं कि भारत विदेशी वायुसेनाओं को अपनी भूमि पर हवाई अड्डे बनाने की अनुमति देगा। ऐसा करने से वह पाश्चात्य सैनिक संगठनों में फँस जायगा और उसकी निर्दलीय नीति समाप्त हो जायगी। इसका एक परिणाम यह होगा कि हम रूस की सहानुभूति खो देंगे। किंतु प्रधान मंत्री ने स्पष्टीकरण करके यह भ्रम दूर कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि भारत के निमंत्रण पर ही विशेषज्ञों का दल यहाँ आया था और उसका उद्देश्य केवल भारत की वायु-सुरक्षा पर सलाह देना है।

दूसरे महायुद्ध ही में युद्ध के वायुयानों ने बड़ी उन्नति कर ली थी, किंतु उसके बाद से तो उनमें कल्पनातीत उन्नति हुई है। अब पंखे और इंजिनवाले वायुयान पिछड़ गये हैं। शब्दवेधी गति से चलनेवाले जैट वायुयानों ने उनका स्थान ले लिया है। रडार प्रणाली का इतना विकास हो गया है कि सैकड़ों मील दूर यदि कोई वायुयान सीमा पार करे तो उसका पता लग जाता है। वायुयान पहिले केवल बम गिराते थे, किंतु अब उनसे प्रक्ष्येप मारे जाते हैं। ऐसे प्रक्ष्येप तैयार किये गये हैं जो शत्रु के वायुयान पर चलाये जा सकते हैं और वे स्वयं उसकी ओर खिच जाते टक्कर मारकर उसे नष्ट कर देते हैं। किंतु इन लड़ाकू वायुयानों को चलाने के लिए बड़े प्रशिक्ष कुशलता की आवश्यकता होती है। इनका उपयो हो सकता है जब देश में जगह-जगह रडार स्टेशनों बिछा हो। रडार स्टेशनों का बनाना और उनको भी बड़ा खर्चीला है। नये द्रुतगामी जेट वायु लिए हवाई अड्डों की हवाई पट्टियाँ भी अधिक करनी होंगी। अद्यतन अमरीकन लड़ाकू वायुयानों टुकड़ियों का मूल्य पाँच करोड़ डालर है। उनके हवाई अड्डों, रडार स्टेशनों आदि के बनाने औ रखाव के लिए भी इतनी ही रकम आवश्यक है। केवल दो टुकड़ियों के लिए दस करोड़ डालर (प्राय करोड़ रुपये) चाहिए। और फिर दो टुकड़ियों विशाल देश की वायुरक्षा ठीक तरह से हो भी नहीं क्योंकि हमारा शत्रु काफी शक्तिशाली है। तब प्रश्न है कि जब हम शत्रु का सामना करने योग्य वायुसे रख सकते तब क्या हम देश की वायु-सुरक्षा किसी सत्ता को सौंप दें? यह न तो संभव है, और न वांछ पहिले तो वर्तमान शक्ति-संतुलन के संसार में देश, वह चाहे जितना शक्तिशाली और समृद्ध हो, भारत ऐसे विशाल देश की रक्षा का उत्तर नहीं ले सकता। दूसरे यह वांछनीय भी नहीं है इससे हमारी निर्दलीय नीति समाप्त हो जायगी हमारे आत्मसम्मान को ठेस पहुँचेगी। सबसे बढ़ यह होगी कि हमारी वायुसेना का विकास अवरुद्ध हो जायगा, उसमें कुंठा और हीनता की भावना उ जायगी जो देश को सशक्त होने में बाधक होगी। यह आवश्यक है कि हम अपनी वायु सुरक्षा का दायित्व स्वयं लें तथा अपनी वायुसेना को शीघ्र उन्नत और अद्यतन करें। यह भी स्पष्ट है कि यह कार्य हम अकेले नहीं कर सकते। इसके लिए हम मित्रों से तकनीकी, प्रशिक्षण-सम्बन्धी और साम जो अधिक से अधिक सहायता मिल सके, वह ध पूर्वक लेनी चाहिए।

विवाह पर श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित का भारत के उन्नत और आधुनिक नगरों तथा विश्ववि की आधुनिक उच्च शिक्षा प्राप्त कितनी ही म का जीवन का लक्ष्य बदल गया है। वे अब वि अपेक्षा नौकरी या व्यवसाय को वरीयता देती हैं। से बहुतों का मत है कि विवाह से वे बंधन में पड़ और अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पातीं। आज कितनी ही पढ़ी-लिखी लड़कियाँ विवाह विरुद्ध हैं। 'विवाह' दकियानूसी समझा जाने और नौकरी आदि करके स्वतंत्र और स्वावलम्बी आधुनिकता तथा प्रगतिशीलता का चिह्न बन गया है मास नागपुर में स्त्रियों की एक विशाल सभा में बो

महाराष्ट्र की राज्यपाल श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने इस 'आधुनिक' विचार की आलोचना करते हुए कई महत्त्वपूर्ण बातें कहीं। श्रीमती पंडित पर पुरातनवादिता का अभियोग नहीं लगाया जा सकता। अतएव उनके कथन का विशेष महत्त्व है। उन्होंने जो कुछ कहा उसका सारांश यह है: "विवाह के सम्बन्ध में आज लड़कियों और उनके माता-पिताओं के जो उलझे हुए विचार दिखलायी पड़ते हैं, उनसे मुझे घवड़ाहट होती है। कुछ लोग विवाह को कैदखाना बतलाते हैं। वे नौकरी को मानों स्वर्ग का द्वार समझते हैं। मेरी सम्मति में स्त्रियों के लिए जीवनयापन का सबसे अधिक श्रेष्ठ और सम्मानित उपाय (पेशा) विवाह ही है। मेरा विवाहित जीवन बहुत सुखी रहा। मैंने अपनी संतान का पालनपोषण करके उन्हें बड़ा किया, और मैं यह बात बड़े गर्व के साथ कह सकती हूँ कि विवाहित जीवन के दिन मेरे जीवन के सबसे सुखी दिन थे, और जो संतोष और वस्तुएँ मुझे उस जीवन में मिलीं वे मुझे सार्वजनिक जीवन में नहीं मिलीं––यद्यपि देश और विदेश में मुझे बड़े-बड़े पद और सम्मान मिले। लड़कियों के माता-पिताओं को चाहिए कि वे परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने पर इतना बल न दें जितना लड़कियों को जीवन-यापन के लिए योग्य बनाने में।"

आज जब व्यापक स्त्री-शिक्षा के कारण लड़कियों में नौकरियों का मोह बढ़ रहा है तथा बेरोजगारी की समस्या दिनोंदिन भीषण होती जा रही है, श्रीमती पंडित के इस अनुभव-सिद्ध मत पर शिक्षित महिलाओं को गंभीरता से विचार करना चाहिए।

अंडोरा का सुरक्षा बजट––हमारे देश में कितने ही छोटे-छोटे राज्य थे। लौहपुरुष सरदार पटेल ने उन सबको समाप्त करके भारत को एक कर दिया। किंतु संसार में अभी भी कितने ही जेबी राज्य हैं। लक्समबर्ग, मोनाको, टिकन आदि। इसी श्रेणी में अंडोरा का जेबी राज्य भी आता है। यह सर्वप्रभुत्वसम्पन्न राज्य स्पेन और फ्रांस के बीच की पर्वतमाला (पिरीनीज) में स्थित है। यह ऊँची पर्वतमालाओं के बीच में घाटियों और दर्रों का क्षेत्र है। राज्य की अधिकतम लम्बाई ३० किलोमीटर (प्राय: ८ मील) और चौड़ाई २० किलोमीटर (कोई १२ मील) । इसमें कुल ६ गाँव हैं। जनसंख्या प्राय: पाँच हजार है। यह राज्य सन् १२७८ से चला आ रहा है। इसका अपना राष्ट्रीय ध्वज है जिसमें तीन खड़ी नीली, पीली और लाल पट्टियाँ हैं। इसकी सामान्य सभा (संसद) में २४ निर्वाचित सदस्य हैं। दूसरे देशों के राजदूत भी उसके दरबार में भेजे जाते हैं। इंग्लैण्ड ने उसके लिए एक कौंसल जनरल नियुक्त कर रखा है। स्वतंत्र राज्य का पूरा तामझाम इसके पास है। स्वभावत: उसका वार्षिक बजट भी सामान्य सभा के सामने उपस्थित किया जाता है। उसमें वे सब मदें होती हैं जो एक स्वतंत्र देश के बजटों में होनी चाहिएँ। उसमें 'सुरक्षा' की मद भी होती है। इस वर्ष उस मद में पचीस रुपये रखे गये हैं! अंडोरा के इस सुरक्षा बजट से दूसरे देशों के सुरक्षा बजटों की तुलना कीजिए! मुरारजी भाई ने ८६० करोड़ रुपयों का सुरक्षा बजट तैयार किया है। १९६१ में अमरीका का सुरक्षा बजट ४३,२१,१०,००,००० डालर का था। और अंडोरा ने सुरक्षा बजट में ये २५ रुपये भी क्यों रखे? क्या उसे किसीसे युद्ध छेड़ना है, या उसे अपने पड़ोसी स्पेन या फ्रांस के आक्रमण का भय है? जी नहीं। उसने ये २५ रुपये इसलिए अपने सुरक्षा-बजट में रखे हैं कि यदि कोई ऐसा विदेशी राजपुरुष आ जाय जिसको तोपों की सलामी देना आवश्यक हो तो २१ तोपों तक की सलामी दी जा सके! सलामी देना सेना का काम है, इसलिए यह मद उसी शीर्षक के अंतर्गत रखी जा सकती है। शान्ति का स्वप्न देखनेवालों के लिए अंडोरा आदर्श तीर्थस्थान है। वहाँ स्थायी शान्ति है जो १२७८ ई० से कभी भंग नहीं हुई। बड़े-बड़े विजयी सम्राट् और लड़ाकू नेता आये और चले गये। फर्डिनेंड, इसाबेला, चौदहवाँ लुई, नैपोलियन, कैसर और हिटलर––कोई भी उसकी शान्ति भंग न कर सके। उस दिन १३ "शान्ति सैनिकों" की एक टुकड़ी शान्ति का संदेश लेकर दिल्ली से पीकिंग को रवाना हुई है––उस पीकिंग को, जहाँ शान्ति की दुकानदारी उसी तरह है जिस तरह मदिरालय में गंगाजल! 'रे गंधी! मति अंध तू अतर दिखावत काहि?' यदि वे अंडोरा जायँ तो इन शान्ति सैनिकों को वहाँ शान्ति के साक्षात् दर्शन हों। अंडोरावासियों को उनके सम्मान में २१ तोपों तक की सलामी देने में कोई कठिनाई न होगी क्योंकि उनके बजट में इसकी गुंजाइश है। किंतु वे चीन जा रहे हैं। ये शान्ति-प्रार्थी

"गमिष्याम्युपहास्यताम्। प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।"

रीवाँ के सफेद शेर——सफेद हाथी की तरह सफेद शेर भी बहुत दुर्लभ हैं। वे संसार की विचित्र वस्तुओं में गिने जाते हैं। रीवाँ के महाराज के पास कुछ सफेद शेर हैं। रीवाँ से कुछ दूर गोविन्दगढ़ में महाराज का एक महल है। ये सफेद शेर उस महल के एक भाग में रखे गये हैं। कितने ही विदेशी यात्री और इस देश के लोग प्रतिवर्ष उन्हें देखने जाते हैं। एक बार दिल्ली की प्रदर्शनी में उनमें से एक शेर भेजा गया था जिसे देखने को मध्यप्रदेश के पंडाल में भीड़ लगी रहती थी। उनके पालन-पोषण में बहुत व्यय होता है। महाराज की आय भी कम हो गयी है और वे समझते हैं कि अब वे उनका व्यय नहीं उठा सकते। कहा जाता है कि उन्होंने केंद्रीय सरकार और कुछ राज्यों को उन्हें ले लेने को कहा, किंतु कोई सहमत नहीं हुआ। सुना जाता है कि महाराज अब उन्हें जंगल में छोड़ देने का विचार कर रहे हैं। जो जंगली पशु पिंजड़ों में बहुत दिनों बंद रखे जाते हैं और जिन्हें बिना शिकार किये ही समय पर भोजन मिल जाता है, उनमें जंगली जानवरों की तरह शिकार करने की क्षमता नहीं रह जाती। वे जंगल में रहनेवाले जानवरों के समान सशक्त नहीं रह जाते। यदि वे जंगल में छोड़ दिये जायँगे और जब वहाँ उनकी मुठभेड़ जंगली शेरों से होगी तो निश्चय ही वे समाप्त हो जायँगे। यदि वे बच भी गये तो प्राकृतिक ढंग से शिकार करने के अभ्यस्त न होने के कारण वे या तो गाँववालों के ढोरों को खायँगे या मनुष्यभक्षी हो जायँगे। भारत में इतने पशु-संग्रहालय हैं। आश्चर्य की बात है कि इन दुर्लभ शेरों को उनमें से किसीमें आश्रय नहीं मिल रहा। एक ओर तो जंगली जानवरों की सुरक्षा के लिए आश्रय (सैंक्चुअरी) बनाये जा रहे हैं, दूसरी ओर ऐसे दुर्लभ पशुओं के लिए आश्रय नहीं मिलता। हम आशा करते हैं कि इस विशाल देश में इन दुर्लभ शेरों की रक्षा के लिए कोई न कोई संस्था या सरकार आगे आवेगी।

परमाणु बमों की बिभीषिका——हाल ही में रू प्रधान मंत्री श्री ख्रुश्चेव ने बतलाया है कि रूस के १०० मीगाटन शक्ति के बम हैं। हीरोशिमा में जो प बम गिराया गया था वह २०,००० (बीस हजार) टी० ए० टी० (डाइनामाइट) की शक्ति का था। मीगाटन के बम की शक्ति १०,००,००,००० (दस क टन टी० एन० टी० (डाइनामाइट) की होगी। ऐसे बम के विस्फोट से जो विनाश होगा उसकी कल्पना ही जी दहल उठता है। उनका कहना है कि यदि प या हाइड्रोजन बमों का उपयोग हुआ तो ६० से ८० करोड़ आदमी मर जायँगे। उनसे उत्पन्न रेडियो किरणों से जो नाश होगा वह अलग है। योरप में कहीं भी ऐसा बम गिराया गया तो रूस भी नाशक प्रभाव से न बचेगा। इसलिए संभावना क है कि रूस योरोप में उसका प्रयोग करे। किंतु अ इतनी दूर है कि वहाँ उसे गिराने को जोखिम व सकता है। उधर अमरीका ने भी तरह-तरह के आ अस्त्र तैयार कर रखे हैं। अनुमान है कि उन सबकी ४०,००० है। इनकी संहार-शक्ति भी रूसी आ अस्त्रों से कम नहीं है। यही कारण है कि आज दो देशों के अधिनायक यह जानते हैं कि आणविक यु दोनों ही का विनाश है। यही ज्ञान दोनों को युद्ध से हुए है। किसीने कहा है——"दर्द का हद से गुज दवा हो जाना।" दोनों की शक्ति इस पराकाष्ठा प गयी है कि वे स्वयं उससे भयभीत हैं। किंतु मनुष्य समझदारी ही से काम नहीं करता। कभी-कभी वह उत्तेजना और आवेश में आकर अकरणीय काम क है। अतएव ये संहारकारी अस्त्र मानवता के सदैव खतरा बने रहेंगे। इसलिए संसार के को इतना प्रबुद्ध और शक्तिशाली हो जाना च कि वह इन देशों के अधिनायकों को निरस्त्रीकरण लिए विवश करे। तभी मानवता सुख की सां सकती है।

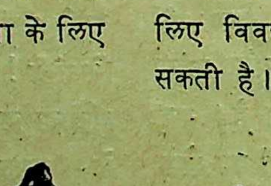

"उत्तर हरिवंश"

श्री सूर्यनारायण "भानु"

उत्तर हरिवंश आन्ध्र साहित्य के संसार में आलोकमय काव्य है। इसकी रचना 'नवीन गुण सनाथ' नाचन सोमनाथ ने की थी जो ईस्वी चौदहवीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए थे। इन्होंने अपने इस काव्य को भगवान् 'हरिहरनाथ' के नाम पर अंकित किया था।

महर्षि वेदव्यास ने संस्कृत 'हरिवंश' पुराण की रचना की थी जिसके आधार पर तेलुगु में सबसे पहिले कवित्रय के विभूति पुंज एर्रा प्रेगडा ने 'हरिवंश' लिखा। नाचन सोमनाथ एर्रा प्रेगडा के समकालीन थे और उनका 'उत्तर हरिवंश' एर्रा प्रेगडा के हरिवंश से उत्तरकालीन। सोमनाथ के हरिवंश का पूर्वभाग अप्राप्य है। कुछ विद्वानों का कहना है कि सोमनाथ ने हरिवंश का उत्तर भाग मात्र लिखा है।

हरिवंश श्रीकृष्ण के वंश का और उसमें उत्पन्न महापुरुषों के इतिहास का वर्णन करनेवाला काव्य है। एर्रा प्रेगडा ने अपने हरिवंश की रचना में व्यास मुनि का अनुसरण किया था। परन्तु सोमनाथ ने हरिवंश के कुछ ही आख्यानों को अपना कर अपनी कल्पना के बल पर सुन्दर काव्य का मंदिर बनाया। कवि ने यह क्यों किया? इसकी जानकारी के लिए कवि की सामयिक स्थिति का जानना अत्यन्त आवश्यक है।

ईस्वी चौदहवीं शती में दक्षिण भारत की राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति बड़ी अस्थिर थी। काकतीय साम्राज्य का पतन हो चुका था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। साथ-साथ बहमनी राज्य की नींव भी पड़ चुकी थी। राज्य की तीव्र लालसा से हिन्दू और मुसलमानों की स्पर्धा ने तीव्र रूप धारण कर लिया था। स्थान-स्थान पर युद्धों के नारे सुनाई पड़ने लगे थे।

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के साथ शतियों से विच्छिन्न हिन्दू धार्मिक साम्प्रदायिक सहनशीलता की सुव्यवस्था की जाने लगी। हंपी में विरूपाक्षेश्वर के मंदिर का निर्माण कर शैवों के बारे में भी काफी उदारता दिखायी गयी। इन सारी बातों का प्रभाव 'उत्तर हरिवंश' काव्य पर देखा जा सकता है।

'उत्तर हरिवंश' में प्रधान रूप से तीन बातें लक्षित होती हैं:—

(१) हरिहराद्वैत की भावना।
(२) युद्ध वर्णनों की बहुलता।
(३) श्रीकृष्ण की जगतपालिनी, धर्मरक्षिणी एवं दुष्ट संहारिणी मूर्ति की स्थापना।

इस काव्य में मणियों में सूत्र के जैसे हरिहराद्वैत की भावना भरी पड़ी है जिससे कवि ने अपने समय के शैवों और वैष्णवों का साम्प्रदायिक विद्वेष मिटाने का प्रयत्न किया। इस विषय के प्रतिपादन का ऐसा समग्र रूप और कहीं तेलुगु साहित्य में नहीं मिलता। युद्ध-वर्णनों की बहुलता का कारण कवि के सामयिक युद्धों का वातावरण हो सकता है। श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति का प्रतिपादन काव्य में सर्वत्र लक्षित होता है। इस प्रकार सोमनाथ ने निज कालानुरूपी काव्य-वस्तु ग्रहण कर 'उत्तर हरिवंश' काव्य की रचना की थी।

ईस्वी चौदहवीं शती तक तेलुगु साहित्य में भाव-प्रधान पुराणशैली प्रचलित रही। परन्तु इस शती से धार्मिक सुव्यवस्था के साथ-साथ कविता की सर्वांगीण सुन्दरता निखर उठी।

कविता का यह नव विकास 'उत्तर हरिवंश' में देखा जा सकता है। नाचन सोमनाथ 'नवीन गुण सनाथ' नामक उपाधि से अलंकृत हुए थे। इस काव्य के आधार पर कवि के नवीन गुण ये कहे जा सकते हैं—

(१) संवादों का चतुर समावेश।
(२) भाव और कला की संतुलनात्मक योजना।
(३) अतिशय चमत्कार का प्रदर्शन।
(४) सुमधुर कल्पना का समावेश।
(५) प्रचण्ड पाण्डित्य का प्रदर्शन।
(६) विस्मयात्मक घटनाओं की योजना।

(७) श्लेष पर अधिक अनुराग।

(८) सजीव शब्द-चित्रण।

(९) लोकोक्तियों का अधिक प्रयोग।

(१०) शब्दार्थालंकारों की योजना।

(११) शब्दार्थों का समान गौरव प्रदर्शन—आदि।

अब हम "उत्तर हरिवंश" के काव्य दर्शन करेंगे। इस काव्य के छः आश्वास हैं जिनमें कुल १५०० पद्य हैं। प्रथम आश्वास में नरकासुर का वध, द्वितीय और तृतीय आश्वासों में पौंड्रक वासुदेव आदियों के वृत्तान्त, चतुर्थ आश्वास में 'हंस' 'डिभकों' का उपाख्यान, पंचम और षष्ठ आश्वास में बाणासुर की कथा है।

उर्वशी और नरकासुर के संवाद में नाचन सोमनाथ के संवाद-संधान की पटुता देखी जा सकती है। संस्कृत मूल में जो अत्यल्प रूप में बताया गया है उसीको कवि ने अपनी कल्पना से बढ़ा-चढ़ा कर सुन्दर संवाद का रूप दे दिया है।

अमरपुरी पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त नरकासुर कामातुर होकर उर्वशी को अपनी सभा में बुलाता है। उर्वशी विवश होकर वहाँ आती है और अपने पूर्ण पयोधरों पर अपनी चमकदार नजरों को फैलाती हुई एक स्तम्भ के सहारे इस प्रकार खड़ी हो जाती है मानों गान्धार शिल्प की सुन्दर सजीव मूर्ति हो। उसे देखकर नरकासुर इस प्रकार बोलता है—

"नाक पुरंबुलो मेरसि, नंदन केलि जरिंचि दिव्य, कां
ता कर तालवृन्त समुदाय समीरमु सोक, राज्यमुं
गं कोनि नेडु दिग्विजय गौरव धन्युडनैन ना सभन्
नी वनुदोयि वेन्नेललु निडक कोर्कुलु नाकु निडुने!"

हे सुन्दरी! स्वर्ग मेरे वश में आया है। नन्दन वन मेरा क्रीड़ोद्यान बना है। अमर नारियाँ मेरे यहाँ खड़ी हो पंखा झल रही हैं। ऐसे मेरे सभाभवन में तुम्हारे नयनों की चन्द्रिका के बिना मेरी कामनाएँ कैसे पूरी हो सकती हैं?

अवे सुत्राम रथंबु लल्लवे कुबेरानेकप श्रेणु ल
ल्लवे वार्धीन्द्रु तुरंगमंबु लवे प्रेताधीश वीरावळुल्
दवुलं बारिन बट्टि तेच्चि रनि लो दैतेयु ले सोम्मु लि
दुविदा नीकु ब्रियंबु गैकोनुमु नी युल्लंबु देल्लंबुगन्।"

"देखो उधर! वे ही तो इन्द्र के रथ हैं। वे ही कुबेर के गज हैं। वे—वे ही वरुण के अश्वराज हैं। वे ही प्रेताधीश के वीर भट हैं। मेरे पराक्रमी सै इन सबको पकड़ लाये हैं। इनमें जो तुम्हें पसंद ले लो। मैं तुम्हारा मधुर परिरंभण मात्र चाहता है

इन बातों से विकल होकर भी उर्वशी निज चतुरता से इस प्रकार कहती है—

"हे राजन्! तुम सुविशाल पृथ्वी के प्रभु तुम्हें स्त्रियों की कमी ही क्या है? यह मेरा अहो है कि तुम मुझे चाहते हो। परन्तु क्या तुमने पहले इस प्रकार मेरा गौरव बढ़ाया है?"—इस पर दान ने मुस्कुराते हुए कहा—"वाह, उर्वशी क्या कहा तुम मैं देवताओं के निवास में कामुक बनकर आऊँ? वैभव के बिना यहाँ आना खतरनाक है न!"—'हाँ तो सच है' उर्वशी ने कहा, "यदि तुम्हारे मन में शक घर कर बैठा था तो यहाँ आना बिलकुल अच्छा था। तो फिर राजन्! तब मुझे अपनी विहार-वा में ही क्यों नहीं बुलाया?"—नरकासुर ने हँ जवाब दिया—"अरी! ऐसी गणिका की बातें करो। इन्द्र मेरा शत्रु है। तुम उसकी सभा की नर्तकी हो। ऐसी को बुलाना, बताओ, कहाँ ठीक है?" 'हाँ हाँ', उर्वशी बोली—"मैं गणिका सही। तुमने तो इन्द्र को जीतकर मुझे बन्दी बना लाने के लिए अपने भटों को भेजा है। देखो, मेरा कितना विकल है। ऐसी मुझे अपना कर कैसे पाओगे? क्या तुम्हारे जैसे वीर रसाभास पसन्द हैं? स्वर्ग में अनुपम सुन्दरियाँ हैं। तब मुझ ग का, जिसने अपनी जवानी भरे बाजार में कभी बे परिरंभण क्यों चाहते हो?"—नरकासुर बोल उ "उर्वशी! ऐसा खेल रचकर यहाँसे भाग जाना चा हो न! हाँ! तुम इस कला में प्रवीण भी हो। इस प्रकार बोलनेवाले नरकासुर को देखकर मुस् हट से अपनी पलकों में लाज भरती हुई उर्वशी तरह कहा—"तुम राजा हो। बातों में तुम्हें कौन सकता है? मेरी बिनती सुनो। इन्द्र की हार हुई। उनकी सारी संपत्ति के प्रभु बने हो। उनकी सारी तुम्हारी सेवा करती रहेंगी। तब मैं किस काम की परन्तु तुम्हारी एक ही कमी मुझे खलती है राजन्! उस स्थान के अधिपति नहीं बने हो जहाँ मुनि यज्ञ हैं। इतनी सी कमी भी क्यों हो राजन्? यज्ञफल

बनो।"—यह सुनकर नरकासुर की वीरता उद्बुद्ध हो जाती है।—'जो तुमने कहा सो बिलकुल ठीक है' नरकासुर क्रुद्ध होकर बोल उठा—"उर्वशी! अगर मैं यह काम न कर सकूँ तो अमर नारियाँ अवश्य मेरी हँसी उड़ायेंगी।" —ऐसे कहते नरकासुर का मन अपनी उच्च आकांक्षा की ओर अग्रसर होता है। इधर उर्वशी छुटकारा पाकर वहाँ से भाग जाती है। इस प्रकार यह मधुर प्रसंग समाप्त हो जाता हे।—यहाँ कवि के संवादचातुर्य और अतिशय चमत्कार लक्षित होते हैं। उद्धृत पद्यों में सोमनाथ की विशिष्ट शैली भी दर्शित होती है।

'उत्तर हरिवंश' में रसों का सुन्दर समावेश हुआ है। उर्वशी और नरकासुर के संवाद में श्रृंगार और वीर रसों का पोषण हुआ। जब उषा के लिए चित्रलेखा अनिरुद्ध को पकड़ ले जाती है तब अंतःपुर की स्त्रियाँ क्रन्दन करती हैं। उस स्थान पर करुण रस की पुष्टि हुई है। पिशाचों के यथार्थ रूप चित्रण में भयानक रस और जब 'हंस' तथा 'डिभक' दुर्वासा का अपमान करते हैं तब हास्यरस प्रतिपादित हुए हैं।

नरकासुर से पीड़ित मुनिजनों के कष्टों को सुनकर श्रीकृष्ण इतने क्रुद्ध हो जाते हैं कि उनके नेत्र अरुण कमल के दलों के समान हो जाते हैं और मुखमंडल उदय भानु का प्रतीक बन जाता है। लीजिए कवि का अनुपम वर्णन देखिए—

अरुणांभोरुह पत्र वेत्रुडु समुद्यद् भ्रूकुटी भंग भा
सुर फाल स्थलुडुं जला चल मनश्शूलायमान व्यथा
परिवेषानन भानु मंडलुडु नै प्रत्यक्ष रौद्रं बनन्
रकालंभ विजृंभणंबु नेरपेन् नारायणुं डाकृतिन्।

जिनके नेत्र अरुण कमल के पत्रों से हैं, जिनकी भौंहें चढ़ी हुई हैं, जिनका मुख पीड़ित करनेवाली व्यथा के परिवेष से भानुमंडल-सा दीखता है वे श्रीकृष्ण नरकासुर के वध का विजृंभण करके प्रत्यक्ष रौद्र जैसे दर्शन देने लगे।

इस पद्य में मूर्तीभूत रौद्ररस के दर्शन होते हैं और ाब्दचित्रण रसाभिव्यंजक बन बैठा है। शांतरस रजत ारि पर मुनियों के हरिहराराधन में लक्षित होता है। स प्रकार इस काव्य में रसों की सुव्यवस्था की गयी है।

इस काव्य में रूप चित्रण की सफल साधना है। नरकासुर के साथ युद्ध करते समय सत्यभामा जब धनुष चढ़ाकर बाण छोड़ने लगी तब धनुष का निचला भाग कमर से, उसकी डोरी कर्णालंकार से, पयोधर और नयन वाणों से और संधान हाथ से टकराने लगे। इस तरह वह युद्ध करती हुई शत्रु शरीर छेदने लगी। इसी भाव का मूर्त चित्रण लीजिए—

गनयंबुन् गोनयंबु नेत्रडुमु तो गर्णावतंसंबु तो
जनुदोयि गनुदोयि सायकमु तो संधान हस्तंबु तो
जेनकं जयुचु नेयुचुंडे सति लक्षीभूत दैतेय त—
र्जन गर्जारव जर्जरांग रुधिरासारंबु तोरंबु गन्।

सती सत्यभामा धनुष की शिखा और मौर्वी अपनी सुन्दर कमर से और कर्णालंकार से, अपने स्तनद्वय और नेत्रद्वय बाण से और संधान हस्त से टकराती हुई युद्ध करने लगी जिससे तर्जन और गर्जन करनेवाले लक्षीभूत नरकासुर के शरीर से रक्त का अधिक प्रवाह होने लगा।

इसी संदर्भ में सत्यभामा कभी नरकासुर को देखकर बाण बरसाने लगी और कभी श्रीकृष्ण को देखकर मृदुहास बरसाने लगी जब कि उसके पयोधरों के शिखरों पर मंदार मकरंद के छींटे बिखरे पड़े हैं और दुपट्टा थोड़ा खिसक गया है—इसी भाव से संपन्न यह पद्य लीजिये—

अरि जूचुन् हरि जूचु जूचुकमुलं दंदंद मंदार के—
सरमाला मकरंद बिंदु सलिल स्यंदंबु लंदंबु लै
तोरुगं बय्यद कों गोंकित दोलगं दोड्तो शरासारमुन्
दरहासामृत पूरमुं गुरियुचुं दन्वंगि केकी गतिन्।

सत्यभामा अरि को (नरकासुर को) हरि को (श्रीकृष्ण को) देखती हुई एक पर बाणों की परंपरा अन्य पर मृदुहास का अमृत बरसाती, खेलनेवाली जैसी दीखने लगी जब कि उसके गले की मंदार-केसर-माला के मकरन्द बिन्दु उसके कुचों पर कभी-कभी टपकने लगे और उसका आंचल थोड़ा खिसक भी गया।

इस संदर्भ में श्रृंगार रस और वीर रस का सुन्दर समावेश हुआ है। शब्द चमत्कृति भी अत्यन्त मनोहर है।

'उत्तर हरिवंश' में अलंकार योजना भी पटुता से हुई है। युद्ध करते समय नरकासुर का बाण श्रीकृष्ण के माथे पर लगने का अलंकृत वर्णन देखिये—

अर चंदुरु डेंदमु लो
जोर बारि वणंकु तोकचुक्कय पोलेन् ।

श्रीकृष्ण के माथे पर लगा हुआ नरकासुर का बाण ऐसा दीखने लगा मानों अर्द्धचन्द्र के हृदय में लगकर हिलता हुआ पुच्छल तारा हो।

प्रकृति वर्णन में उदय भानु के अरुण बिंब का मनोहर रूप लीजिये—

कुंकुम हर्त्तिचि कोन गोर दीर्चिन
पुरुहूतु निल्लालि बोट्टनंग ....
तोलि दिक्कु तोय्यलि चेलुल पै जल्लंग
निंड मुंचिन पैडि कुंड यनग .... ।

उदय भानु का अरुण बिंब ऐसा दीखने लगा मानों इन्द्र की पत्नी शची के मुख की कुंकुम-बिंदी हो, जो उँगली के नखाग्र से सँवारी गयी हो। ... उदय दिशा सुन्दरी के हाथ का सुवर्णमय कलश हो जो अपनी सखियों पर छिड़कने के लिए भर लिया गया हो।

इस प्रकार सोमनाथ ने अलंकार चित्रण और प्रकृति वर्णन में भी अपनी सिद्ध-हस्तता प्रकट की।

बीती बातें

कुँअर सोमेश्वरसिंह

बीती बातें आ न सकेंगी
जीवन की छीना-झपटी में
जो कुछ खोया मिल न सकेगा,
लू लपटों का मुरझाया यह
उर उपवन फिर खिल न सकेगा।
बीती रातें आ न सकेंगी
बीती बातें आ न सकेंगी
उठ न सकेंगी अरमानों की
फिर से गिरी हुई दीवारें,
उरतंत्री के टूटे तारों
की बेबस झीनी झंकारें।
गीत पुराने गा न सकेंगी
बीती बातें आ न सकेंगी
अब न जुटा पायेंगे हम फिर
जीवन के बिखरे भागों को,
औ' अपनी विह्वल चेष्टायें
किस्मत के टूटे धागों को।
फिर से कभी मिला न सकेंगी
बीती बातें आ न सकेंगी॥

भामासाह संबंधी कतिपय महत्त्वपूर्ण विवरण

श्री अगरचन्द नाहटा

मध्यकालीन भारत के दानवीरों में भामासाह बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। महाराणा प्रताप अपने स्वातन्त्र्य प्रेम और महान् वीरता के लिये प्रसिद्ध हैं, भामासाह उन्हीं प्रताप के दीवान थे। राजस्थान के आधुनिक ढंग के इतिहास के सर्वप्रथम लेखक कर्नल टॉड ने जनश्रुति के आधार से अपने ग्रन्थ में भामासाह के संबंध में लिखा है कि "महाराणा प्रताप ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिये पहाड़ी स्थानों को छोड़कर किसी दूर-वर्ती स्थान पर चले जाने का विचार किया। उनके साथी सरदार इसके लिए तैयार हो गये और अरावली के पर्वत के शिखर पर चढ़ना शुरू किया। चित्तौड़ के उद्धार की आशा अब उनके हृदय से जाती रही थी: इसी समय मेवाड़ राज्य का वृद्ध-मंत्री भामासाह राणा प्रताप से आकर मिला और अपने जीवन भर में जो सम्पत्ति उसने एकत्रित की थी वह सब उसने राणा प्रताप को लाकर सौंप दी।* यह सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि उससे १२ वर्ष तक २५ हजार सैनिकों का खर्च पूरा किया जा सकता था। भामासाह से इस सम्पत्ति को पाकर राणा प्रताप की शक्तियाँ फिर जागृत हो उठीं। उन्होंने पर्वत छोड़कर चले जाने का विचार छोड़ दिया और चित्तौड़ के उद्धार का नया कार्य-क्रम बनाने लगा। थोड़े ही दिनों में उन्होंने राजपूतों की एक अच्छी सेना बना ली।" अर्थात् भामासाह ने महाराणा को अवसरोचित महान् आर्थिक सहायता दी जिससे वे कृत-कार्य हो सके। इसीलिये आज भी जब-जब जनता को दान देने की प्रेरणा दी जाती है तो भामासाह का नाम और उदाहरण उपस्थित किया जाता है। वर्तमान राष्ट्रीय संकट के समय में भी सरकार को दिल-खोलकर आर्थिक सहायता देने की प्रेरणा देते हुए भामासाह के पुनीत नाम का स्मरण सभी लोग करते नजर आते हैं। इसलिये भामासाह संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण विवरण प्रकाश में लाना आवश्यक समझा गया।

सुप्रसिद्ध इतिहासविद् रायबहादुर महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकरजी ओझा ने भामासाह के संबंध में अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में लिखा है कि "भामासाह कावड़िया गोत्र के ओसवाल जाति के महाजन भारमल का बेटा था। महाराणा सांगा ने भारमल को रणथम्भोर का किलेदार नियुक्त किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल (बून्दीवाला) वहाँका किलेदार नियुक्त हुआ उस समय भी रणथम्भोर का बहुत-सा काम इसीके सुपुर्द रहा। उसका बेटा भामासाह वीर प्रकृति का पुरुष था और वह प्रसिद्ध हल्दीघाटी की लड़ाई में कुँवर मानसिंह की सेना से लड़ा था। पीछे से महाराणा प्रतापसिंह ने महासानी रामा के स्थान पर उसको अपना प्रधान मंत्री बनाया। "भामो परधानी करै रामो कीनो रद्द" महाराणा ने चावन्ड में रहते समय भामासाह को मालवे पर चढ़ाई करने के लिये भेजा जहाँ से वह २५ लाख रुपये और २० हजार अशर्फियाँ दंड में लेकर चूलिया गाँव में महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ और वह सारी रकम उसने महाराणा को भेंट की। फिर बादशाह अकबर ने मिर्जा खाँ (खानखाना) को फौज देकर मालवे की ओर भेजा जिससे भामासाह जाकर मिला। मिर्जा खाँ ने महाराणा को बादशाही सेवा में ले जाने का बहुत कुछ यत्न किया परन्तु भामासाह ने इसे स्वीकार न किया। जब दीवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया गया उस वक्त भामासाह भी महाराणा के राजपूत सरदारों के साथ लड़ने को गया था।*

महाराणा कुंभा और सांगा की संचित की हुई सारी सम्पत्ति बहादुरशाह की पहली चढ़ाई के पूर्व ही मुसलमानों के हाथ न लगे: इस विचार से चित्तौड़ से हटाकर पहाड़ी प्रदेश में सुरक्षित की गयी थी। भामासाह महाराणा का

---

*चारण रामनाथ रतनु लिखित इतिहास राजस्थान (सं० १९४८) के पृष्ठ ५३ में लिखा है—"परताप सिह ी को गोठ देकर अपने पुरखाओं का उपार्जित समस्त व्य जो भूमि में गड़ा था, यों कहकर भेंट कर दिया—ह द्रव्य महाराज का ही है और महाराज के काम में ही गे तो उचित है मुझको इतने द्रव्य की कोई आवश्यकता हीं।"

*ओझाजी उपरोक्त कथन का आधार श्यामलदास का "वीर विनोद" है जो संवत् १९४३ में छपा था।

विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसीकी सलाह के अनुसार मेवाड़ राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखा जाता था जिसका ब्योरा भामासाह एक बही में रखा करता था और आवश्यकता पड़ने पर उन स्थानों से द्रव्य निकालकर लड़ाई का खर्च चलाया करता था। वह महाराणा प्रतापसिंह के पीछे महाराणा अमरसिंह का प्रधान बना और महाराणा की सम्पत्ति की व्यवस्था भी पहले के अनुसार वही करता रहा। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों उसने उपर्युक्त बही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसमें राज्य खजाने का ब्योरेवार विवरण है इसलिये इसको महाराणा के पास पहुँचा देना। भामासाह की मृत्यु वि० सं० १६५६ माघ सुदी ११ को हुई। भामासाह का नाम मेवाड़ में वैसा ही प्रसिद्ध है जैसा गुजरात में वस्तुपाल तेजपाल का। वह वीर, राज्य प्रबन्ध कुशल, सच्चा-स्वामिभक्त, और विश्वासपात्र सेवक था। महाराणा प्रतापसिंह और अमरसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसकी बहुत कुछ खातिर की। उसकी हवेली चित्तौड़ में तोपखाने के मकान के सामनेवाले कवायद के मैदान के पश्चिमी किनारे पर थी। भामासाह का भाई ताराचन्द भी वीर प्रकृति का पुरुष था। और हल्दीघाटी की लड़ाई में वह अपने भाई के साथ रहकर लड़ा था। ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम भी रहा था।"

भामासाह के वंशज आज भी उदयपुर में हैं और उन्हें महाराणाओं और जाति-पंचायत में विशेष सम्मान प्राप्त है।

भामासाह की इतनी अधिक प्रसिद्धि के कारण गौड़, तेली, अग्रवाल आदि कई जातियों ने इसे अपनी जाति का होना बतलाया है। उन सबका खण्डन प्रस्तुत लेख के लेखक द्वारा समय समय पर किया जाता रहा है। भामासाह की जीवनी संबंधी खोज भी मैं कई वर्षों से कर रहा हूँ। परखेद है प्रयत्न करने पर भी इच्छित सामग्री नहीं मिली। जो ५-७ उल्लेख प्राप्त हुए उन्हें प्रस्तुत लेख में प्रकाशित किया जा रहा है।

समकालीन ग्रन्थों में भामासाह का सबसे प्रथम उल्लेख संवत् १६४५ के श्रावण शुक्ला पंचमी को भामासाह के भाई ताराचन्द के आदेश से सादड़ी में रचित जैन कवि हेमरत्न सूरि की 'गोरा-बादल चौपाई' में मिलता है। उक्त 'पद्मिनी चरित' की प्रशस्ति में लिखा है :—

प्रथ्वी प्रगट राण प्रताप : दिन दिन चढ़ते तेज विश्व
तस मंत्रीसर बुद्धि निधान : कावेढ़्याकुल तिलक सम
साम धरम धुर भामोसाह : वैरी वंश विधुसण
तस लगु भाई ताराचन्द : अवनी जागि अवतरियो
धुव जिम अविचल पाले धरा : शत्रु सुह कोधा पा
तसु आदेश लही सद भाय : बादल बात रची सद भा

दूसरी समकालीन रचना "भामा बावनी" ने है जिसकी रचना संवत् १६४६ के आसोज सुदी १ "विदुर" नामक कवि ने भामासाह के नाम से की। इ प्रारम्भिक पद्यांक २ और ३ में भामासाह के वंश और परम्परा का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है —

नृमल गच्छ नागोरि ज्ञानि, देपाल जिसा गुर।
दया ध्रम दाखिये, देव चउवीस तिथंकर॥
पिरियावटि पृथीराज, सांड भारमल्ल सुणिज्जे।
जसवंत बांधव जोड़, करण कलोयाण कहिज्जइ॥
ताराचन्द लखमण राम जिम, थित थोमण जोड़ी
कुल तिलक अभंग कावेड़ियां, भामो उजवालण भयो।
मूल पेड़ भारमल्ल, साख कावेड़्यां सोहइ।
पुत्र पौत्र परिवार, मडरि मंजण दति मोहइ।
लखमी नित लख गुणी, फालत्यां सुइज फूल फल।
विस्तरियो जसवास, कौर कवि करइ कतूहल।
विस्तार घणउ चिहुं खंड विचइ, जुगि आलंबणि एह
कलिकाल इयइ पीथल कुलइ, भामउ कलपतरू भवण।

इन पद्यों से भामासाह नागोरी गच्छीय देपा अनुयायी थे। और कावेड्या पृथीराज (पीथल) के में उत्पन्न हुए थे। ये विशेष सूचना मिलती है। समका दो ताम्रपत्रों में भी भामासाह का उल्लेख है जिन एक की नकल बहुत वर्ष पहले 'सरस्वती' में प्रकाशि थी और दूसरे ताम्रपत्र की नकल 'राजस्थान भारती'

परवर्ती जैन उल्लेखों में १८वीं शताब्दी के उत के कवि दौलत विजय (दलपत) रचित "खुमाण रा में भामासाह संबंधी एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख है जि अनुसार महाराणा अमरसिंह के समय आर्थिक संकट दूर करने के उद्देश्य से भामासाह अहमदाबाद के सें सहायता लेने जाते हैं और १२ वर्ष तक के युद्ध का व सामान अहमदाबाद के सेठ से प्राप्त कर अमरसिं उत्साहित करते हैं। खुमाण रासो के पद्यांक ३४१ ३५१५ में युद्ध प्रसंग वर्णित है। मूल पद्य "शोध पत्रि

ें शीघ्र ही प्रकाशित किये जा रहे हैं। यहाँ केवल प्रारम्भ और अन्त के आवश्यक पद्य दे दिये जाते हैं :—

अमर तणो मंत्रीसवर : भुज बल भामो साह।
बुद्धिवंत नै साम ध्रम : दाटक दूठ दुवाह ॥३४६८॥
आयो साह गूजर धरा : सहरै अहम्मदाबाद।
दुस्सासन दूकान परि : साजस करि संवाद ॥३४९९॥
अहंमदाबाद सुंअंत भामोसाह : अमर पास आयो उछाह।
असी सहस साथें असवार : आये बाये अन्त-न-पार ॥३५१४॥
अमर राण थी कियौ जुहार : मिलिया साह थकी जुझार।
हिम्मत पकड़ी पकड़ो तरवार : ऊठावो थाणा इण वार ॥
३५१५॥

१९वीं शताब्दी के नागोरी तपागच्छीय जैन-विद्वान् रघुनाथ ऋषि ने "नागपुरीय लोंका गच्छ पट्टावली बन्ध" में भामासाह को इतना द्रव्य कैसे प्राप्त हुआ और ागोरी लोंका गच्छ की भामासाह और उसके भाई तारान्द ने क्या और कितनी सेवा की, इसका अच्छा विवरण मिलता है। यद्यपि वह लोकप्रवाद पर आधारित है और भामासाह के बहुत पीछे का लिखा हुआ है फिर भी काफी रोचक होने से पट्टावली के आवश्यक अंश का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है। संवत् १६१६ चित्तौड़ ें कावड़िया भारमल्ल तपागच्छ का धनवान श्रावक था। उस समय वहाँका भामा नाम का एक नाहटा था उसके र में पुण्य के संयोग से दक्षिणावर्त नाम का शंख था। सके पास होने से घर में अठारह करोड़ धन प्रकट हुआ। सके पश्चात् ६ मास के अनंतर शंखदेव ने भामाक को वप्न में दर्शन दिया और कहा——अरे भामासाह ! तू न, तेरी पत्नी के पेट में पुत्री रूप में कोई जीव आया है। ावड़िया भारमल की भार्या के पेट में कोई पुण्यात्मा ीव पुत्र रूप में उतरा है। इसलिये उसके पुण्यों से प्रेरित ेकर भारमल कावेड़िया के घर जाऊँगा। यह सुनकर ामाक बोला——यों मत जा। जैसे मैं करूँ (? कहूँ) से जा। यह कहने पर उसने ठीक है, ऐसा कहा। इसके श्चात् सवेरा होने पर भामाक दक्षिणावर्त शंख को सोने थाल में रखकर और अत्यन्त बहुमूल्य कपड़े में ढककर मस्त कुटुम्बी-जनों के साथ, शंख के शब्द से सैकड़ों लोगों जगाता हुआ, भारमल्ल के घर की ओर चला। उसे ता हुआ देखकर भारमल्ल आनंद के साथ और आदरक सामने आकर मिला और पूछने लगा——कैसे आये, कहिये। यह कहने पर भामाक बोला——हे श्रेष्ठ धनिक ! हे सम्म संबंधी ! मेरे पुत्री होगी और तुम्हारे पुत्र। उनका संबंध करने के लिये नारियल के स्थान में यह अद्भुत माहात्म्य वाला शंख देता हूँ। यह सुनकर उसने अत्यन्त हर्षित होकर बड़े दान-मान के साथ उसे ग्रहण किया। भारमल्ल ने घर की कोठरी में चन्दन की चौकी पर रखकर अच्छी तरह पूजा करके देवता को नमस्कार किया। देवता ने अठारह करोड़ धन वहाँ प्रकट किया। इसकी बड़ी कीर्ति फैली।

एक बार शुद्ध तपस्वी साधुजनों के गुणों से शोभित श्री देपागर स्वामी को भारमल्ल ने वहाँ वन में ऊँचे मंडप के नीचे धर्म-ध्यान करते हुए देखा और उनकी वन्दना की। कानों से पवित्र धर्मोपदेश रूप अमृत का पान किया। अति प्रसन्न होकर भारमल्ल ने सोचा——अहो! मेरा बड़ा भाग्योदय प्रकट हुआ जो ऐसे गुण-गौरव को देखा। मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। तब भारमल्ल और, और भी बहुत से श्रावक, नागोरी लुंकागण के हो गये। पीछे भारमल्ल के भामा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ा उत्सव किया। सब जगह दान आदि से अर्थी जनों के मनोरथ पूरे किये। और भी ताराचन्द्र आदि पुत्र हुए। उनमें भामासाह और ताराचन्द्र प्रसिद्ध हुए। अपने गच्छ के अनुराग के कारण बहुत से लोगों को अपने गण में लाये। फिर श्री राणाजी से मंत्री पद पाकर प्रबल हुए। ताराचन्द ने सादड़ी नामक गाँव बसाया। वहाँ पौषधशाला आदि स्थान करवाये। जगह-जगह, नगर-नगर में गाँव-गाँव में बहुत से लोगों को धन दे-देकर अपने गण के बनाये। श्री नागोरी लंकागण ने बहुत ख्याति प्राप्त की। फिर भामासाह दिगंबर मत के नरसिंघ पौरों को अपने गण में लाया। बहुत धन देकर उनको १७०० घर प्रदान किये, भिंगरकपुर (भींडर) आदि में। तब श्रावकों के एक-लाख-चौरासी हजार घर हो गये। देपागर सूरि के शासनकाल में लुधियाना निगम के रहनेवाले श्री चन्द्र नामक ब्राह्मण चौरासी करोड़ धन का पति था।

नागौरी-लुंका-गच्छ की राजस्थानी भाषा की पट्टावली में भामासाह के पहले पुत्र न होने फिर देपागर की माला के प्रभाव से पुत्र होने आदि का उल्लेख इस प्रकार है :——

"सं० १६१६ कावड़िया साह भारमल्लजी भामोजी तपगच्छ (में) हुआ। भामेजी रे पुत्र हुवो नहीं। तिवारे भामोजी श्री जी (आचार्य देपागर) पासे आव्या। व्याख्यान सुणि नै घणो प्रसन्न हुवो। पछै हाथ जोड़ि ने बोल्यो...स्वामी म्हारै पुत्र नहीं, म्हैं घणा ही इलाज किया पिण पुत्र नहीं (हुवो)। तिवारे श्री पूज्य जी आपरे हाथ सूँ माला दे नै कहचौ-आ माला धारी स्त्री रे गले में घाल देवो। नवें महीने पुत्र हुसी। तिवारे उणारे वचन सूँ नवें महीणे पुत्र हुवो। तिवारे परचो देनै भारमल्लजी भामेजी ने नागोरी लुंके गच्छ किया। तठा पछे भामेजी संवत् १६२१ राणे जी राजसी जी (?) कने मीडी एक रो होकम लेई ने मेवाड़ गोढ़वाड़ में दंड मांडचो। पछै जिणा सुँ दंड सज्यो नहीं तिणां री बदली साढ़ा-नव-मण-सोनो देने १० हजार घर नागौरी लुंके गच्छ किया: ५१ उपासरा कराया।"

लोंका गच्छ की उपरोक्त दोनों पट्टावलियों से यह स्पष्ट है कि इस गच्छ के अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में भामासाह (और उसके भाई ताराचन्द) का विशेष हाथ रहा है। अब हमें भामासाह संबंधी जो एक राजस्थानी गीत प्राप्त हुआ है, उसे हम नीचे दे रहे हैं। यह गीत हमारे संग्रह के एक बड़े गुटके में प्राप्त हुआ है। उदयपुर के राजकीय सरस्वती भण्डार तथा भामासाह के वंशजों के पास ऐसे और भी कुछ पद्य आदि प्राप्त होने सम्भव हैं।

गींत भामैरो छै

पछमाध धरा पुरब मै पेखे लग आबू गिरनार लग
भांमौ जे वड चावरो भूपत जायो न को जांमसै जग
काछ पंचाल किराडु का बल रांमा करे अखंडत रा
सातांदीयां मांहि न सुणीयो इवडो न को वांणीयो आज
अलगा भोम आछरे अलवर हौ तो विरद न कोइ
वांणंण जायो इयो वांणीयो, कोइ जे हुवै तो केथ कहो
भारमलोत तणो भरमंडल यश वुद अचल जपै सं
सारंग जगड वेसा भराया दागे भांमो जग दातार

भामासाह की जितनी अधिक प्रसिद्धि है, देखते हुए उसके जीवन चरित्र संबंधी प्राचीन का प्राप्त न होना बहुत ही अखरता है। आधुनिक द्वारा भी उल्लेखनीय दो ग्रन्थ ही भामासाह संबंधी गये हैं जिसमें पहला "भाग्य विधायक भामासाह" नो पुनरुद्धार) नामक ग्रन्थ तो गुजराती में जैन भावनगर द्वारा कई वर्षों पहले छपा था। कुछ वर्ष हिन्दी जैन कवि धन्य कुमार जैन ने "भामासाह" एक नाटक लिखा जो जैन पुस्तक भवन, कलक प्रकाशित हुआ है। वास्तव में ऐसे प्रसिद्ध देशभक्त दानवीर के संबंध में कवियों एवं लेखकों को कई करनी चाहिए थी। आशा है अब भी उनका ध्या आवश्यक कार्य की ओर जायगा।

गाँव सारा सो रहा है !

श्री जयप्रकाश यादव

सो रहे घर-द्वार सारे,
शान्त जीवन, मौन तारे,
धार में केवल समय के विगत मुखरित हो रहा है।
दैन्य में जनमे-मरे जो,
विजन में फूले-झरे जो,
याद में उनकी कहीं पर एक पंछी रो रहा है।
है क्षितिज मन का अँधेरा,
गाँव उजड़ा, दर्द मेरा,
तम निराशा का युगों से हृदय-दीपक ढो रहा है।

वीर शहीद रोशनसिंह

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी

प्रसिद्ध "काकोरी षड्यंत्र केस" में जिन चार अभियुक्तों को फाँसी की सजा दी गयी थी, उनमें रोशनसिंह भी थे। मुकद्दमे के लम्बे दौरान में, किसी क्रान्तिकारी या उनके किसी वकील के मन में लेशमात्र भी इस सन्देह का उदय नहीं हुआ था कि रोशनसिंह को भी फाँसी हो सकती है।

मुकद्दमा विशुद्ध राजनीतिक मुकद्दमा था। अभियोग से राजनीतिक धारा हटा लेने पर कोई डकैती का आरोप किसी हालत में किसीके ऊपर नहीं सिद्ध हो सकता था। इस कारण मुकद्दमे के परिणाम का अनुमान भी राजनीतिक दृष्टिकोण से ही किया जाता था, और काकोरी केस में रोशनसिंह को कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं दिया गया था। समझा जाता थ कि उन्हें पाँच साल से अधिक का दण्ड नहीं मिलेगा। लेकिन रोशनसिंह के बारे में यह अनुमान पूरी तरह गलत निकला।

स्पेशल सेशन जज, लखनऊ, ने सन् १९२७ के अप्रैल महीने में सजा सुनाते समय रोशनसिंह को दफा १२१ ए यानी "बादशाह को ब्रिटिश भारत के तख्त से महरूम करने की कोशिश और साजिश" में पाँच साल की सजा सुनाई। इंडियन पीनल कोड की दफा १२० की यानी "उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए षड्यंत्र" करने के लिए भी पाँच साल की सजा दी, और दफा ३९६ यानी "डकैती मय कत्ल"––बमरौली डकैती के जुर्म में फाँसी यानी मौत की सजा दी।

रोशनसिंह को भी सबसे बड़ा दण्ड!––एक बिलकुल अप्रत्याशित बात थी। सभी दंग रह गये थे। साथ में शहजहाँपुर के रामप्रसाद बिस्मिल तथा बनारस के राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को भी फाँसी की सजा सुनाई गयी थी। लेकिन उसमें आश्चर्य की बात नहीं ी। सबको मालूम था कि काकोरी केस में अगर किसी क को भी फाँसी की सजा हुई तो वह व्यक्ति रामप्रसाद बिस्मिल होगा। क्रान्तिकारी पार्टी में प्रान्त के 'वायोंस' यानी सब हिंसावादी "ऐक्शन" के इनचार्ज की हैसियत से हिंसात्मक कार्यों की जिम्मेदारी उन पर आ पड़ती थी। दोनों "मुखबिर" शाहजहाँपुर के ही थे। इन दोनों के बयानों ने शाहजहाँपुर के महत्त्व को आवश्यकता से ज्यादा बढ़ा दिया था।

दूसरे फाँसी के दण्ड के लिए राजेन्द्र लाहिड़ी का अनुमान किया गया था। वारंट निकलते ही राजेन्द्र लाहिड़ी बनारस से फरार हो गये थे और कुछ दिनों बाद बंगाल में एक "बम" फैक्टरी में कई नौजवानों के साथ पकड़े गये थे। उस फैक्टरी में बहुत से तैयार बम-गोले थे और वे सब बड़े खतरनाक किस्म के थे। बंगाल पुलिस को मालूम हो गया था कि उन बमगोलों को बनानेवाले विदेश में शिक्षाप्राप्त, अनुभवी और विशेषज्ञ नलिनी गुप्त थे। नलिनी गुप्त रूस से लौटे थे और "कानपुर कम्युनिस्ट षड्यंत्र केस" में भागे हुए फरार थे। नलिनी गुप्त और यतीन दास (जो बाद में अनशन कर शहीद हुए थे) किसी काम से बाहर गये हुए थे। वे पकड़े नहीं गये। राजेन्द्र लाहिड़ी उस केस में दस साल सजा पाकर लखनऊ लाये गये थे। उस बमगोले की फैक्टरी की सजा के कारण राजेन्द्र लाहिड़ी भी ज्यादा खतरनाक होकर सामने उभर आये थे। वैसे, वास्तव में राजेन्द्र लाहिड़ी से ज्यादा खतरनाक कई लोग थे जिनकी साख उस समय तक के पार्टी के सक्रिय खतरनाक कामों की सूची में राजेन्द्र लाहिड़ी से अधिक थी।

अशफाक उल्लाखाँ को मुख्य केस में इन लोगों के साथ दण्ड नहीं मिला। वे मेरे साथ अलग मुकद्दमे में थे जिस पूरक (सप्लीमेंटरी केस) का निर्णय तीन महीने बाद सुनाया गया था।

ऐसी परिस्थिति में भी––रोशनसिंह के फाँसी के दण्ड पाने की कोई कल्पना न रहने पर भी––रोशनसिंह फाँसी का दण्ड सुनकर बिलकुल ही विचलित नहीं हुए थे। इसका मार्मिक वर्णन उनके साथी मन्मथनाथ गुप्त ने अपने क्रान्तिकारी जीवन से सम्बन्धित लेखों में लिखा है।

इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि रोशनसिंह एक महावीर योद्धा, त्यागी तथा बलिदानी व्यक्ति थे। इसी रूप में ही रोशनसिंह वर्णित भी किये गये हैं। लेकिन रोशनसिंह का सही मूल्यांकन आज तक नहीं हुआ है। और सही मूल्यांकन किये बिना इतिहास अधूरा रह जाता है। काकोरी-युग का सच्चा इतिहास लिखने के लिए सब घटनाएँ वास्तविक रूप में सामने आ जानी चाहिए।

पहिला प्रश्न यह है कि कब और कैसे रोशनसिंह क्रान्तिकारी दल "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन" में सम्मिलित हुए?

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में शाहजहाँपुर के जो थोड़े से लोग जेल गये थे, उनमें रोशनसिंह एक प्रमुख व्यक्ति थे। सजा काटते हुए बरेली जेल में मेरठ के असहयोगी बिष्णुशरण दुबलिश से रोशनसिंह का परिचय और घनिष्ठता हुई। उस परिचय ने ही रोशनसिंह को बाद में क्रान्तिकारियों से मिला दिया। और रोशनसिंह ही रामप्रसाद बिस्मल को हमारी क्रान्तिकारी पार्टी में लाये।

बात यों थी। शचीन्द्रनाथ सान्याल को जब सन् १९२३ के आरंभ में मालूम हुआ कि बंगाल की अनुशीलन पार्टी ने बनारस में क्रान्तिकारी संगठन का काम जोरों से कर रक्खा है, तो वे भी चौकन्ने हो गये। शचीन्द्रनाथ सान्याल को षड्यंत्र के मामले में सन् १९१५ में आजन्म कालेपानी की सजा मिल चुकी थी। सन् १९२० में देशबन्धु चित्तरंजन दास की लिखा-पढ़ी और मध्यस्थता से शचीन सान्याल अंडमान से छोड़ दिये गये थे और इलाहाबाद आकर विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। आप "बन्दी-जीवन" नाम से अपनी क्रान्तिकारी जीवन की आत्मकथा लिख रहे थे और बंगाली मासिक पत्रों में प्रकाशित करा रहे थे। उनमें देशभक्ति की लगन और आग थी। वे कब चुप बैठनेवाले थे? बनारस में अनुशीलन पार्टी की गतिविधि देखकर वे भी मैदान में कूद पड़े और संगठन करने लगे।

शचीन्द्र सान्याल एक पुराने और धक्काड़ संगठनकर्त्ता थे; और थोड़े ही समय में उन्होंने इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, मेरठ तथा शाहजहाँपुर को संगठित कर डाला। मेरठ के बिष्णुशरण दुबलिश रो को जेल के परिचय के कारण क्रान्तिकारी संग लाये, और रोशनसिंह ने रामप्रसाद बिस्मिल को नाथ सान्याल से मिलाया। सान्याल बाबू ने राम को देखते ही उनमें हिंसात्मक कामों के लक्षण परिलक्षित कर लिये। इस विषय पर दो खूब बातचीत हुई।

उन दिनों रामप्रसाद ने शाहजहाँपुर में की बुनाई का कारोबार फैला रक्खा था। अच्छा व्यापार था। उन्होंने कम से कम एक साल का माँगा। सन् १९२४ के मध्य तक अपना सारा बार लपेटने के बाद ही क्रान्तिकारी दल में सक्रिय लेने का वादा किया।

उस समय तक अशफाक उल्ला खाँ शाह के कांग्रेसी क्षेत्रों में एक अच्छे वक्ता के रूप में चुके थे। वे एक सच्चरित्र और प्रतिभाशाली नेता के रूप में माने जाते थे। स्वराज पार्टी के में काम करनेवाले वक्ताओं में अशफाक प्रमुख अशफाक रामप्रसाद को बहुत परेशान भी करते गये थे कि क्रान्तिकारी संगठन किया जाय। सिंह भी जब कभी शहर आते थे, रामप्रसाद से करते थे और बराबर रामप्रसाद के वादे की याद थे।

मैं पहले पहल शाहजहाँपुर में रामप्रसाद बि अशफाक, तथा रोशनसिंह से सन् १९२४ के पूर्व मिला जब मैं वहाँ जोगेश चटर्जी के साथ पहुँचा इससे थोड़े ही दिन पहले शचीन्द्रनाथ सान्या जोगेश और रामप्रसाद बिस्मिल का परिचय दिया था।

उस समय तक रामप्रसाद ने अपना व्यवसाय दिया था। कारखाने का थोड़ा ही सामान रहा था। उसे भी बेच-बाचकर सारा कारोबार करने की चेष्टा कर रहे थे।

हम (मैं और जोगेश चटर्जी) रामप्रसाद पर ही ठहरे थे। मेरी, जोगेश चटर्जी और राम की लगातार कई दिनों तक बातचीत हुई। संगठन के बारे में मैं सबसे ज्यादा बोलता था। दिनों पार्टी के संगठन की बातें मेरे इर्द-गिर्द

कती रहती थीं। खैर, रामप्रसाद अपनी बात पर अटल रहे, और उन्होंने सारे कारबार को पूरी तरह से लपेटने के बाद ही सक्रिय होने की बात कही। यह काम सितम्बर तक खतम करने का उनका वचन था।

अशफाक और रोशनसिंह से भी हम मिले। रोशनसिंह अवस्था में हम सबसे बड़े ही नहीं, काफी बड़े थे। मेरी संस्कृति ने मुझे बड़ों का सम्मान करना सिखाया था। लेकिन रोशनसिंह को मजाक करके उमर के व्यवधान को चन्द मिनट के परिचय में ही मिटा देते देखा। बात-बात में जेल जीवन की चक्की, कोल्हू आदि कड़े परिश्रम की बातें आ गयीं। बड़े मजे में वे सुनाते गये—अपने निराले ढंग से। कहते-कहते यह भी हँसते हुए कह गये—"कांग्रेस के आन्दोलन में सजा क्या कोई सजा है? सिर्फ साल डेढ़ साल की सजा! कागज भी खराब होता है। सजा का पता अब चलेगा।"

देखने में रोशनसिंह का व्यक्तित्व रामप्रसाद और अशफाक के आकर्षक व्यक्तित्व जैसा न था, और न उनके चेहरे से अशफाक और रामप्रसाद जैसा कठोर ब्रह्मचर्य ही टपकता था। उसके विपरीत, उनके साधारण चेहरे से, उनकी कुछ धँसी हुई आँखों से, मालूम पड़ता था कि जीवन का उन्होंने भोग भी किया है। उनके आँखों की चमक से, प्रसन्नचित्त और रसिकतापूर्ण बातों से, जाहिर होता था कि जीवन की सब यथार्थता को वे अनायास स्वीकार करते हैं। उससे मुँह नहीं मोड़ लेते हैं। उनमें कोई कट्टरता नहीं, वैसा कोई बन्धन भी नहीं। हर हालत में खुश!

उसके बाद मैं शाहजहाँपुर आता जाता रहा।

× × ×

एक बार शाहजहाँपुर में रामप्रसाद के घर पर रोशनसिंह मिले। वहाँसे हम तीनों नदी किनारे जाकर एक निर्जन स्थान पर बैठ गये। रामप्रसाद ने पार्टी का व्यापक संगठन के बारे में बताने को कहा। विषय मेरा प्रिय था। मैंने खूब विस्तार से बातचीत की। रोशनसिंह बीच-बीच में कुछ सवाल भी पूछते जाते और मैं साफ करता जाता था। मैंने बताया कि हमारा संगठन इतना शक्तिशाली हो गया है कि हम उत्तर प्रदेश के किसी भी ऐसे एक जिले के हैडक्वार्टर पर, जिसमें मिलिटरी छावनी न हो, (जैसे प्रतापगढ़, रायबरेली या पीलीभीत) अधिकार कर ले सकते हैं। संगठन का आकार बढ़ने पर दो, चार, दस जिलों पर कब्जा हो सकता है। यही क्रान्ति की प्रचेष्टा है। हम कामयाब हों चाहे न हों, इस प्रचेष्टा में ही देश आगे बढ़ जायगा। रामप्रसाद बराबर केवल सुनते रहे, कुछ बोले नहीं। और मैंने खूब बातें कीं।

इस गंभीर वातावरण में कुछ अनजान आदमी पास से गुजरे। हम खामोश हो गये। रोशनसिंह ने निस्तब्धता भंग की और बोले—आइये, कुछ फड़कती हुई चीज सुनाइये।

पहिले मेरी समझ में नहीं आया। फिर जब समझा कि गाने की बात कह रहे हैं, तब मैंने कहा कि मुझे गाना बिलकुल नहीं आता है। तब उन्होंने रामप्रसाद से गाना गाने को कहा—वह भी कुछ फड़कती हुई चीज।

रामप्रसाद ने एक उर्दू गजल सुनायी। एक आदिरसात्मक प्रेमसंगीत। रामप्रसाद ने खूब दिल खोलकर गाया और उसमें काफी दर्द भर दिया। गीत खतम हुआ—एक कोमल और करुण मूर्छना पर।

गीत समाप्त होने पर हम मौन रहे। रामप्रसाद के मुँह से वह प्रेम संगीत मुझे कुछ अटपट सा लगा। मैं सोच रहा था—कहाँ यह कठोर ब्रह्मचारी, सिर्फ एक समय भोजन करनेवाला रामप्रसाद, और कहाँ आदिरस में सराबोर यह प्रेम संगीत। इतने में रोशनसिंह मजे में चिल्ला उठे—"लूट ले बेटी"—

और बाकी वाक्य को पूरा किया बड़े तपाक से और खूब जोर से चिल्लाकर—रामप्रसाद ने। और फिर दोनों हँसते-हँसते लोट-पोट गये। हँसने में मैंने भी साथ दिया।

अनजान तीन चार आदमी जो दूर जाते हुए गीत सुनने को खड़े हो गये थे, हँसते हुए यह कहकर चल दिये—"चलो, सब पिये हुए हैं।"

फिर हम लोगों में बमरौली की बातचीत हुई। किस स्टेशन पर उतरना पड़ेगा, वहाँसे कितनी दूर जाना होगा। थाना बमरौली से कितनी दूर पर है। जिससे जबरदस्ती चन्दा लेना है—यानी जिसके घर डकैती डालना है—वह क्या है आदि। और रोशनसिंह ने सारी योजना विस्तार से बतायी। वह सारी योजना रोशनसिंह की ही थी।

दूसरे दिन हम लोग चल दिये। इस दल में हम कोई १२ या १३ आदमी थे। सब पार्टी के सक्रिय सदस्य थे।

शाहजहाँपुर के रामप्रसाद, अशफाक तथा रोशनसिंह को छोड़कर और सब बनारस के ही थे। शाहजहाँपुर से सटे हुए पीलीभीत जिले के गाँव बमरौली में यह काम हुआ। घर था एक महाजन का जो कि चीनी मिल का मालिक भी था।

अधिक विस्तार में न जाकर इतना बताना काफी है कि सब कुछ योजना के अनुसार हुआ। विरोध का सामना करने के लिए छत पर डटे हुए पहरा देने लगे रोशनसिंह, रामप्रसाद और अशफाक, और शेष लोग मकान के अंदर थे। मैं पाँच सात मिनट सब कुछ देखता रहा। मैंने तभी हस्तक्षेप किया जब एक नौजवान साथी ने एक स्त्री के मस्तक पर पिस्तौल के कुन्दे से वार किया, जिससे खून बह निकला। वह स्त्री बता नहीं रही थी कि धन कहाँ गड़ा है। मैंने साथी को रोककर वहाँका नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया। उस स्त्री के एक लड़के को सामने लाकर जब मैंने उस स्त्री को डराया कि न बताने पर इसे गोली मार दूँगा, तब उसने वह जगह बता दी जहाँ रुपया जमीन में गड़ा था। सारी बातें सँभल गयीं। मकान के अन्दर शान्ति से सारा काम हो गया। लेकिन बाहर बड़ा विरोध हुआ। गोली चलानी पड़ी। आदमी जख्मी हुए। एक मरा भी।

कई मील चलकर हम सुस्ताने बैठे। इस कार्य्य ने हमें थका दिया था। ऐसा कार्य्य योंही थका देता है। युद्ध में उत्तेजना और थकान दोनों हैं। उस समय भी रोशनसिंह को विनोदप्रिय और लापरवाह जैसा पाया। सुस्ताते हुए, दो सौ गज पर हिलती हुई किसी वस्तु को दिखाकर मैंने रोशनसिंह से पूछा—"उस पर निशाना लगा सकते हैं आप ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"वह तो गाय है। उससे आगे और सौ डेढ़ सौ गज पर आदमी मालूम पड़ता है। उसे अभी ठंडा कर सकता हूँ। लेकिन आप जाकर देख आवें—वह कोई लुगाई तो नहीं है।"

मैंने योंही कहा—"लुगाई होने से क्या फर्क पड़ता है ?" उनका जवाब मिला—"लुगाई को नहीं मारूँगा। एक लुगाई मरने से तीन मर सकते हैं। शायद एक गोद में हो, और क्या सबूत उसके पेट में भी दूसरा तैयार नहीं हो रहा है।"

मैंने कहा—'आपको लुगाई की बहुत याद आती है।'

उनका उत्तर मिला—"क्यों न हो ? दो लुगाई अपनी हैं। आपके पास कितनी हैं ?"

मैंने कहा—'माफ कीजिए, मुझे नहीं चाहि

फिर रोशनसिंह ने कहा—"पछतावा तो नहीं है

मेरे पूछने पर कि पछतावा कैसा, उन्होंने कहा—कहावत जो है, दिल्ली के लड्डू वाली।"

इसी ढंग से वे बातें करते रहे। उन्हें उस सम मैंने गम्भीर होते नहीं देखा।

लेकिन वह चौकन्ने थे। निगाह उनकी चारों रही। दूर-दूर तक वह देखते रहे। बमरौली ऐक्शन का संगठित था। उस वक्त भी वह हम लोगों के मा थे। पूरी जिम्मेदारी उनके ऊपर थी।

बात करते हुए वह खड़े हो गये—यह कह बहुत आराम कर लिया अब चला जाय। और क चलकर रेलवे लाईन तक हमें पहुँचाकर और हम रामप्रसाद के सुपुर्द कर वे अकेले दूसरी तरफ चल अपने घर की तरफ।

उसके बाद रामप्रसाद सबको शाहजहाँपुर शह पैदल लाये। अपराह्न तीन बजे के लगभग हम सब पर उतरे थे, और दूसरे दिन दोपहर बारह बजे तक पहुँचे। सबका हाल बुरा था। सबके पैर सूज ग रामप्रसाद बिस्मिल भी शिथिल पड़ गये थे। केवल अ सुस्थिर थे। उनके चेहरे पर शिकन भी नहीं आ परन्तु उस बार ५५-५६ मील लगातार पैदल चल जँचा नहीं। शहर में अशफाक ने एक राजा साह कोठी ले रक्खी थी, जिसमें हम सब ठहराये गये थे। राजा साहब की शिकार पार्टी के आदमी बन गये थे पहुँचकर हम सब राइफिल, बन्दूक, पिस्तौल एक क पटककर—भूखे-प्यासे ही सब के सब ढेर हो गये थे।

× × ×

उस घटना के करीब दो महीने बाद रामप्रसा पत्र पाकर मैं झाँसी से शाहजहाँपुर आया। आने पर प्रसाद ने शिकायत की कि रोशनसिंह पार्टी की "विंचेस्टर राइफिल" और एक माऊजर पिस्तौल द हैं, लौटाना नहीं चाहते। उन चीजों को आपको करना है। इसीलिए आपको बुलाया है। यह काम से ही हो सकेगा।

बात मेरी समझ में नहीं आयी। छानबीन करने पर रामप्रसाद ने कुछ ज्यादा साफ नहीं किया। अपनी अज्ञानता ही जाहिर की और कहा——"ठाकुर साहब हैं। नहीं देंगे। जिद है। और हो ही क्या सकता है?"

तब हमने योजना बनाई। रोशनसिंह को लिख भेजा गया——"रामप्रसाद के तरफ से——पार्टी के प्रान्तीय नेता आये हुए हैं, जिन्हें आप जानते हैं। वे राइफिल और पिस्तौल ले जाना चाहते हैं। उन्हें जरूर देना है। उनको साथ लेकर परसों तक आपके यहाँ आ जाऊँगा।"

फिर हम दोनों खेड़ा नवादा के लिए रवाना हुए। खेड़ा नवादा में रोशनसिंह का घर था। रेलवे स्टेशन पर उतर कर करीब सात-आठ मील पैदल चलना पड़ा। रामप्रसाद भी रास्ता नहीं पहचानते थे। हम पूछते-पूछते वहाँ पहुँचे। खेड़ा नवादा ठाकुरों का गाँव है। उन दिनों नामी और मशहूर था। लेकिन उस गाँव का नाम लेना मुनासिब नहीं समझा गया। उन दिनों वहाँ पुलिस से गोली चल गयी थी। किसी ठाकुर को गिरफ्तार करने पुलिस की गारद लेकर दरोगा पहुँचे। ठाकुरों ने फैसला किया गिरफ्तारी नहीं होगी। लिहाजा उन्होंने बन्दूकें निकाल लीं। पूरे गाँव की नाकेबंदी करके जमकर लड़ने को तैयार हुए। गोलियाँ चलीं। परिस्थिति को खतरनाक समझकर दरोगाजी अपनी गारद लेकर भाग खड़े हुए।

फिर अंग्रेज सुपरिंटेंडेंट पुलिस पूरी गारद लेकर पहुँचे। गाँव के बाहर पड़ाव डाला। गाँव को घेर भी लिया। बड़े बूढ़ों के बीच बचाव करने पर स्थिति सँभली और मुलजिम ने आत्म-समर्पण किया——दरोगाजी भी दूसरे जिले में बदल दिये गये।

ऐसे गाँव का रास्ता पूछकर हम अपनी तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करना नहीं चाहते थे।

खेड़ा नवादा के पास एक गाँव "बहेड़" है। ठाकुरों का बसाया हुआ गाँव। इस गाँव में सिर्फ बेश्याएँ ही बसाई गयी थीं। रामप्रसाद के सुझाव पर मैं "बहेड़" का रास्ता पूछता गया। लोग भी समझे होंगे——दोनों मनचले नौजवान हैं।

हम रोशनसिंह के गाँव पहुँचे जब करीब दोपहर का समय था। रोशनसिंह ने बड़ी आवभगत की। कुछ शिष्टाचार के बाद मैंने पत्र की बात पूछी——पत्र मिला है कि नहीं? उन्होने पत्र मिलना स्वीकार किया——जो कि एक नौजवान के हाथ भेजा गया था। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि रात को हम नहीं ठहरेंगे। रात वाली ट्रेन से ही लौटना है। उन्होंने स्टेशन तक पहुँचाने का वादा किया। निकट में कोई और स्टेशन है, वहाँ से ट्रेन पकड़ने के लिए शाम छः बजे निकलना काफी होगा।

वह हमारे साथ नहाने के लिए नदी को चल दिये। नदी किनारे पहुँचकर उन्होंने दूर जंगल की तरफ इशारा करके कहा——"यहाँ अशफाक ने जंगली सूअर का शिकार किया था। भागते हुए सुअर को एक गोली से मार गिराया था। यहीं पर अशफाक निशाना लगाने का अभ्यास करते हैं। अक्सर आते हैं अपने भाई की बन्दूक लेकर।"

मैंने कुछ आश्चर्य जाहिर किया——"मुसलमान और सूअर"! मैंने जानना चाहा कि फिर क्या हुआ।

रोशनसिंह ने बताया——"हमने चमारों को सहेज दिया। वे काट-कूटकर ले गये। थोड़ा अच्छा हिस्सा हमने ले लिया। हमारे यहाँ पका और ठाकुरों ने खाया।"

मैंने पूछा——"आप ने भी खाया? और अशफाक?"

रोशनसिंह बोले——"मैं खाता हूँ। मैंने जरूर खाया।"

"और अशफाक?"

रोशनसिंह हँसे——"कुँअर साहब ने शिकार तो किया और जंगली सुअर मार गिराया। लेकिन उन दिनों उनका व्रत था। स्वच्छ शाकाहारी थे। व्रत की बात सुनकर किसी ठाकुर ने उन्हें खाने के लिए जोर नहीं दिया। उस दिन मैंने अशफाक को बहुत परेशान किया था, तंग किया। चौके में हम बैठे खा रहे थे। मेरे बगल में अशफाक बैठे थे। आठ-दस ठाकुर और थे। मैंने बीच में टोक दिया, कुँअर साहब, आपके व्रत का कारण बता दूँ? अशफाक ने नाराज होकर कहा, खाना छोड़कर चला जाऊँ? मैंने खुशामद कर मनाया। फिर ठाकुरों ने जिद्द की। बता ही दिया जाय। आखिर मैंने बताया कि कुँअर साहब के राइफल की गोली से इत्तफाक से एक बछड़ा मर गया। कुँअर साहब हिरन मार रहे थे। हिरन ऐन मौके पर भाग खड़ा हुआ। रायफल की सीध पर आधी मील दूर पर एक बछड़ा मर गया। कुँअर साहब ने शान्ति करायी। बहुत दान-दक्षिणा दी। क्या क्या नहीं किया! लेकिन उससे तसल्ली नहीं हुई। प्रायश्चित्त का व्रत लिया——दो साल विशुद्ध शाकाहारी रहेंगे। ठीक ही है, क्या करें! ठाकुर होकर रायफल तो छोड़ नहीं सकते हैं।"

रोशनसिंह उस दिन की याद करके हँसे।

नदी किनारे मेरे कपड़े उतारने से पहले ही रामप्रसाद पानी में उतर गये थे। बातचीत करते हुए, कपड़े उतारते समय रोशनसिंह ने मेरी बंडी के जेब में रखा हुआ पिस्तौल देख लिया। उन्होंने पूछा––क्या है?

मैंने उत्तर दिया––वही चीज है।

उन्होंने रामप्रसाद के कपड़ों की तरफ ताका, और मैंने बता दिया––उधर भी है।

उन्होंने आश्चर्य से पूछा––आखिर क्यों? मेरे यहाँ आने के वास्ते इसकी क्यों जरूरत पड़ी?

मैंने कहा––सिर्फ सावधानी बरतने के लिए।

हम दोनों गम्भीर थे। एक दूसरे की आँखों में आँखें गड़ाये आमने-सामने खड़े थे। वातावरण में तनाव था।

इतने में मैंने कहा––चलिए तैरा जाय।

हमलोग नहाये। कुछ बातचीत भी करते रहे। कुछ तैरे भी। लेकिन तनाव कुछ बना ही रहा।

खाने के बाद आराम करते समय रामप्रसाद ने उनसे कितनी ही बातें पूछीं। कुछ सन्तोष भी जाहिर किया। शाम को चलते समय मैंने रोशनसिंह को सामान की याद दिलायी। उन्होंने कहा––'इस गाँव में नहीं है। मेरा एक भतीजा उसे लेकर स्टेशन रवाना हो गया है। वहींपर वह मिलेगा। मैं भी आपके साथ स्टेशन तक पहुँचाने जा रहा हूँ। फिकर न करें।'

स्टेशन पर एक लड़का बिस्तर लेकर हमें मिला। रोशनसिंह ने वह बिस्तर मेरे हवाले किया। मेरे पूछने पर उन्होंने आश्वासन दिया कि सब ठीक है। कोई फिकर की जरूरत नहीं।

तब उन्होंने पूछा––अब बताइये। यह सब क्या माजरा है?

मैंने उल्टा पूछा––आप पार्टी की चीज (हथियार) क्यों दबा बैठे थे? यह तो गलत बात रही न?

उन्होंने अचरज में कहा––अच्छा, यह बात है! पंडित ने यों कहा है! मेरे सामने कहे!

रामप्रसाद उस वक्त टिकट खरीदने गये हुए थे। मैं झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था। मैंने उनसे कहा––इस समय आप जायँ। फिर कभी आपसे बातचीत होगी। मैंने हाथ बढ़ाया। हाथ मिलाया। और नमस्ते कहा। वह भी मान गये और "नमस्ते" कहकर चल पड़े।

लेकिन फिर रोशनसिंह से मेरी कभी बातचीत हुई। शाहजहाँपुर लौटकर मैंने अशफाक उल्ला से सब बतायीं और कारण पूछा। अशफाक रामप्रसाद के भक्त थे। वे बोले––कोई माकूल वजह होगी जिससे ढंग से रामप्रसाद ने रोशनसिंह से बिगाड़ कर लिया।

शाहजहाँपुर का संगठन रामप्रसाद के जिम्मे इसलिए दखल देना मैंने मुनासिब नहीं समझा। स्थिति से मैं खुश भी नहीं था।

× × ×

इसके बाद कई डकैतियाँ डाली गयीं। सब रामप्र के नेतृत्व में। सब में मैं शरीक हुआ। बमरौली के मेरी "डयूटी" हमेशा मकान के फाटक के बाहर गयी। पहरे की डयूटी। रामप्रसाद ही यह डयूटी देते रहे। लेकिन किसी में भी रोशनसिंह बुलाये नहीं रोशनसिंह की अनुपस्थिति मुझको बराबर अख रही।

इन डकैतियों में रोशनसिंह के बदले में रामप्र बराबर बुलाते रहे––पेशेवर बदमाशों को। पार्टी की ता मजबूत होने पर भी––और उन बदमाशों की कोई आ श्यकता न होने पर भी रामप्रसाद पेशेवरों को क्यों बु रहे––यह कभी भी उन्होंने साफ नहीं किया।

अशफाक भी दो योजनाओं में नहीं आये।

इन सब डकैतियों में काफी विरोध का सामना हु गोलियाँ चलीं। काफी आदमी मारे गये। लेकिन कुछ नहीं लगा। बिलकुल कुछ नहीं लगा। यह ऐतिहासिक सत्य है जिसे सब साथी जानते हैं। डरकर झक मारकर पेशेवरों ने भी आना और साथ देना कर दिया। फिर गाँव की आखिरी डकैती में रामप्र खुद पीटे गये और जख्मी हो गये। सबके सब पीटे ग पार्टी के सबसे सक्रिय सदस्य सब उस डकैती में पकड़ जाते––यदि मैं बड़ी मुश्किल से परिस्थिति को सँभा में सफल न हुआ होता। उस मकान के फाटक के बा मैं और रामप्रसाद थे। अशफाक शाहजहाँपुर में बी थे, अतः उसमें नहीं आये थे। मैंने रामप्रसाद से कई कहा था कि मेरे कन्धे पर चढ़कर खपरैल पर चढ़ जा मैं नीचे रहूँगा। लेकिन वह राजी नहीं हुए। खपरैल से आसानी से मुकाबला किया जा सकता था। नतीजा बहुत बड़ी दुर्घटना होते-होते बची।

उस डकैती में भी कत्ल हुआ। हुआ नहीं, करना पड़ा। लेकिन उसमें भी कुछ हाथ नहीं लगा। उल्टा उसमें एक मिलिटरी बुलडाग पैटर्न सरविस रिवालवर खो दिया। आजाद उसे उसी घरपर छोड़कर चले आये थे जिसके लिए आजाद को सजा देनी पड़ी, उसी "क्विकसिलवर" चन्द्रशेखर आजाद को जिसका व्यक्तितत्व बाद में इतना विकसित हो गया था कि वह क्रान्तिकारियों का "सरताज" बन गया था।

× × ×

आखिर प्रतिक्रिया हुई। गाँव की डकैती के खिला आवाज उठायी गयी। नौजवानों ने साथ दिया। रामप्रसाद तब भी अकड़े रहे। पार्टी से विभक्त होकर दो टुकड़े हो जाने का मौका आया। तब कहीं नेता राजी हुए और यह सिद्धांत माना गया कि आइन्दा गाँवों में डकैती डालकर व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं लूटी जायगी।

तुलनात्मक दृष्टि से इन गाँव की डकैतियों में रोशनसिंह की बमरौली योजना पूर्ण सफल थी। कामयाबी थी उसमें। और उसमें धन भी काफी मिला था।

फिर काकोरी कस चला। शाहजहाँपुर संगठन की कमजोरी थी कि वहाँके सबके सब पकड़ लिये गये। पुराने बमरौली में भाग लेनेवाले रोशनसिंह भी पकड़े गये जब कि बनारस के कितने ही लोग--जिन्होंने बमरौली से लेकर लगातार करीब-करीब सब डकैतियों में भाग लिया था--जैसे "तगड़े-जवान" (पार्टी का दिया हुआ नाम) महाबीर सिंह, काशी विश्वविद्यालय के होस्टेल और इंजिनियरिंग कालेज का पूरा दल--कभी नहीं पकड़ा गया। वे अगर पकड़े जाते तो उन सबको शाहजहाँपुर के दोनों मुखबिर पहिचान लेते। इन लोगों के पकड़े न जाने का कारण यह था कि बनारस के मजबूत संगठन में कोई मुखबिर पैदा नहीं हुआ।

आरंभ में ही मैं बता चुका हूँ कि फाँसी की सजा आकस्मिक और अप्रत्याशित ढंग से सुनाये जाने पर भी रोशनसिंह ने उसे साधारण भाव से ग्रहण किया था। गीता के प्रवचन इनके जीवन में साकार थे--यह दिखला दिया उन्होंने। फाँसीघर में लम्बे अरसे तक अकेले बन्द रहने पर भी उनमें कोई भी परिवर्त्तन नहीं आया। कोई कमजोरी नहीं आयी। बल्कि उनके चरित्र में दिन पर दिन और निखार आता गया। जीवन और मृत्यु में कोई भेद वह नहीं मानते थे--यह उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया। उन्होंने यह भी साबित कर दिया कि उनके जीवन के भोग उनके ऊपर कोई असर डाल नहीं सके। भोग को भी उन्होंने जीवन का एक अंग मानकर ही स्वीकार किया था।

और १९ दिसम्बर, १९२७, के दिन अपना सिर ऊँचा करके ही वह "ओम् शान्ति" "ओम् शान्ति" कहते हुए **फाँसी** पर लटक गये।

पुरानी बातें याद आने पर उन दिनों की गाँव की डकैतियाँ मेरे मानसपटल पर चलचित्र जैसी रह-रहकर आती रहती हैं। सैंतिस साल से अधिक गुजर जाने पर भी, मैं अपने मन से आज भी यह बात हटाने में असमर्थ हूँ कि रोशनसिंह के सक्रिय सहयोग लेने से, क्रान्तिकारी दल का उस जमाने का इतिहास कुछ और ही ढंग से बनता।

तब वह इतिहास और ज्यादा गौरवपूर्ण ढंग से लिखा जा सकता था।

निमिया के पात झरे !

दीनवन्धु पाण्डेय

निमिया के पात झरे,
हुए हरे;
उजराई गाँछ।
ठोंगों पर बौर भरे,
राग ढरे;
गम्हराई गाँछ।
महुआरो बास घिरे,
रंग गरे;
सेनुराई गाँछ।
दिन बीतें आस करे,
धीर धरे;
अलसाई गाँछ।
निमिया के पात झरे,

सीता-हनुमान-संवाद तमिल में हुआ था या अंग्रेजी में?

पंडित अमृतलाल नागर

माननीय श्रीप्रकाशजी की स्थापना--आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के अनुसार अशोक वाटिका में हनुमानजी ने भगवती सीता के पहली बार दर्शन करते समय उनसे देव-भाषा संस्कृत के बजाय मनुष्यों की भाषा में बातें की थीं। रामायण लिखे जाने के बाद से अब तक पण्डितगण बराबर इस विषय पर बहस करते रहे हैं कि आखिर वह कौन सी लोकभाषा थी जिसमें सीताजी ने हनुमानजी से बातें की थीं। हाल ही में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए माननीय श्रीप्रकाशजी ने कहा था कि हनुमानजी ने सीताजी से तमिल भाषा में बातें की थीं। माननीय श्रीप्रकाश ने यद्यपि अपने तर्क की व्याख्या नहीं की फिर भी हमारे सुनिश्चित अनुमान से उनके तर्क का आधार निम्नलिखित बातें हो सकती हैं:--(१) हनुमानजी उत्तर भारत की भाषाएँ नहीं जानते थे। (२) अशोक वाटिका में सीताजी की परिचर्या करनेवाली दासियाँ चूँकि तमिलभाषी थीं इसलिए सीताजी को तमिल भाषा बोलने-समझने का अभ्यास हो गया था। (३) दक्षिण भारतीय होने के कारण हनुमानजी तमिल अवश्य ही जानते होंगे। इसलिए दोनों की बातचीत तमिल भाषा ही में हुई थी।

हमारी शंका--(१) दक्षिण भारत में इतना हिन्दी प्रचार कार्य होते हुए भी हनुमानजी ने हिन्दी क्यों नहीं पढ़ी? क्या हनुमानजी का द्रविड़ मुन्नेत्र कजगम से कोई सम्बन्ध था? (२) इस बात का क्या प्रमाण है कि अशोक-वाटिका में सीताजी की परिचर्या करनेवाली स्त्रियाँ तमिलभाषी ही थीं? और यदि यह मान भी लिया जाय कि त्रिजटा आदि तमिलभाषिणी थीं, तो भी एरिस्टोक्रेट राजपुत्री राजवधू सीता अपने लिए 'सीता अंबा' के बजाय 'चीता अम्मा' सुनकर अपनी आपत्कालीन उदार नीति के बावजूद उसे कदापि सहन न कर पाती होंगी। किसी बात के ऊपर यदि एरिस्टोक्रेट की नाक पर बारीक सिकुड़नें और त्यौरियों में बल पड़ जाते हैं तो कालान्तर में वे मुख पर से भले ही मिट जायँ पर मन से नहीं मिटते। जानकीजी के तमिल भाषा सीखने में यह मनोवैज्ञानिक बाधा अ
आप में एक गम्भीर विचारणीय विषय है। (३) हनुमान
जिस क्षेत्र के राज-कर्मचारी थे वह कन्नड़ भाषा-भा
था। पंपासर आदि आज तक उसी भाषा क्षेत्र
माने जाते हैं। यह भी एक उजागर बात है
महान् और सनातन संस्कृति के धनी होते हुए
तमिलभाषियों ने कर्नाटक संगीत को अपने यहाँ प्रति
दे रक्खी है। हनुमानजी संगीत विद्या के मान
आचार्य हैं। आचार्यों की यह मानी-जानी आदत हो
है कि श्रद्धालु चेलों के सामने उनकी भाषा न बोल
अपनी भाषा को प्रतिष्ठा देते हैं। यदि ऐसा नहीं क
तो अंग्रेजी में बोलते हैं; पुराने जमाने में संस्कृत बो
करते थे। हर हालत में संगीताचार्य हनुमन्तजी
तमिल भाषा ज्ञान इतना नहीं हो सकता कि वे सीता
से तमिल में कूटनीतिक बातें करते।

हमारी नवीन स्थापना--उपरोक्त कारणों से हम
निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अशोक वाटिका में सीता हनुम
संवाद भले ही मानवीय भाषा में हुआ हो पर तमिल
किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं हुआ था। तब प्र
उठता है कि वह दूसरी मानवीय भाषा कौन सी
होगी? हमारा विनम्र मत यह है कि हनुमानजी
सीताजी से अंग्रेजी में बातें की थीं, और यह भी
दोनों की मूल मातृभाषा अंग्रेजी ही थी। अपने इस
की पुष्टि के लिए हम कुछ ऐतिहासिक तथ्य यहाँ प्रस्
करते हैं।

विदेशी नामों के गलत उच्चारण करना या उन्हें अ
ढंग से ढाल लेना मनुष्य की पुरानी आदत है। भारती
लेखकों ने यूनानी अलेक्जेण्डर को अलक्षेन्द्र और अ
सुन्दर नामों से पुकारा और मिनाण्डर को मिलिन्द ब
दिया; इसी तरह यूनानी इतिहासकारों ने पुरु को पो
श्रीकृष्ण को हिराक्लीज और चन्द्रगुप्त को सैण्ड्रोको
बना दिया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम सीता

के पिता और पितामह के नामों पर तनिक विचार करें। उनके पिता का नाम जनक है और दादा का मिथि। मिथि से तुरन्त अंग्रेजी शब्द (myth) का ध्यान हो आता है। ऐसा लगता है कि इँग्लैण्ड निवासी कोई मिस्टर मिथ किसी प्रकार घूमते-भटकते बिहार प्रदेश के विदेह क्षेत्र में पहुँच गये। तकदीर और तदबीर की कृपा से मिथ साहब वहाँ के राजा हो गये। गँवार प्रजा के उच्चारण दोष के कारण ही 'मिथ' शब्द 'मिथि' हो गया। राज्य स्थापित हो जाने पर मिथ साहब ने इँग्लैण्ड से अपने बाल-बच्चों को भी यहीं बुला लिया। मि० मिथ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम मि० जॉन के था। मि० जॉन के अपने साथ अपनी पोष्यपुत्री मिस जॉन के को भी मिथिला ले आये। यही मिस जॉन के हमारे इतिहास में जानकीजी के नाम से विख्यात होकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र की अर्धांगिनी हुईं।

मिस जॉन के का पूरा नाम क्या है——मिस जॉन के का भारतीय नाम सीता है। इस नाम की वास्तविकता पर विचार करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उनका विलायती नाम क्या था। चूँकि सीताजी हमारे भगवान् की पत्नी हुईं, उन्हें जगदंबा का पद मिला। इसलिए भारतीय पुराणकारों ने उनका असली नाम गायब कर देने का षड्यन्त्र रचा जिससे कि उन्हें कोई विलायती न समझ सके। लेकिन, 'सत्यमेव जयते' ! आखिर हमें पता लग ही गया। 'सीता' शब्द से दो बातें सिद्ध होती हैं, एक तो यह कि वो मि० जॉन के को हल चलाते समय मिली थीं और दूसरी यह कि वो पश्चिम से आई थीं। वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि राजा भगीरथ की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने गंगा को जब अपनी जटा से बिन्दु सरोवर में छोड़ा तो उसकी सात धाराएँ बहीं। तीन धाराएँ पूरब में गयीं, तीन पश्चिम में और सातवीं को भगीरथ ले भागे। पश्चिम में जानेवाली गंगा की तीन धाराओं में से एक का नाम सीता है। इससे यह सिद्ध होता है कि पश्चिम से आने के कारण ही राजपुत्री मिस जॉन के को भी सीता कहकर कारा गया। साथ ही इससे यह भी सिद्ध होता है कि मि० जॉन के ने राजा जनक बनने से पहले इँग्लैण्ड में हल लाते समय ही सीता को पाया था। अब प्रश्न यह आता कि इँग्लैण्ड में उन्हें कहाँ पाया गया ?

मिस कैम्ब्रिजा जॉन के——सीताजी लक्ष्मीजी का वतार हैं। लक्ष्मीजी के नामों की फिहरिस्त में एक नाम कम्बुजा भी है जो अलक्षेन्द्र और सैण्ड्रोकोटस के समान ही बिगड़ा हुआ लगता है। वास्तविकता यह मालूम होती है कि जब मि० जॉन के सपरिवार मिथिला पहुँचे तो एक नई लड़की को देखकर राजा मिथि ने पूछा कि यह कौन है। जॉन के बोले, यह धरती की बेटी है, मैंने इसे हल चलाते समय पाया था। मिथ साहब बड़े प्रसन्न हुए, कहा : "ओः, तब तो ये हमारी कैम्ब्रिज की धरती की बेटी है। इसका नाम मैं कैंब्रिजा रखता हूँ।" इस कैम्ब्रिजा शब्द की बनावट ही यह सिद्ध करती है कि तब तक मिथ साहब पर भारतीय संस्कृति, साहित्य और व्याकरण का पूरा प्रभाव पड़ चुका था।

सीताजी की वंश-परम्परा और मातृभाषा के प्रश्न को हल करने के बाद अब अँगरेजी को हनुमानजी की मूल मातृभाषा सिद्ध करना ही हमारा एकमात्र परम पावन कर्तव्य शेष रह जाता है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि आज से पन्द्रह वर्ष पहले तक हमारे देशवासी इँग्लैण्डवालों को लाल मुँह का बन्दर कहा करते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले इँग्लैण्ड में भी वानर राज्य ही था और इसीलिए डार्विन अपने पुरखों को शीघ्र पहचान सका था। किष्किन्धा में भी वानर राज्य था पर ये वानर काले मुँह के थे। इन किष्किन्धा वासी वानरों से भेद करने के लिए ही इँग्लैण्डनिवासी मि० हँनमैन हमारे देश में आज तक सिन्दूर से रंगे जाते हैं। महावीर मि० हँनमैन ने लंकाविजय के बाद भगवान श्रीराम से बड़ा इनाम-इकराम पाने पर अपने देश में 'लंका क्षारक' नाम का एक नगर बसाया था जो अब अँगरेजी उच्चारण की विवशता के कारण 'लंकाशायर' कहलाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि भारत में हनुमान के नाम से प्रसिद्ध लंकाक्षारक कपीश्वर मि० हँनमैन की मातृभाषा भी वास्तव में अँगरेजी ही थी।

सीताजी दुमविहीन क्यों ?——कहा जाता है कि लंकाविजय के उपरान्त सीताजी जब राम के कैम्प में आईं तो किष्किन्धा की वानरियों ने उनके दर्शनों की लालसा प्रकट की थी। उन्होंने सुन रक्खा था कि सीताजी अनुपम सुन्दरी हैं पर जब उन्होंने उन्हें देखा तो बहुत निराश हुईं। वानरियों की दृष्टि में बेदुम की वानरी

भला सुन्दरी कैसे मानी जा सकती थी ? तब मि० हॅनमैन अर्थात् हमारे हनुमानजी ने वानरियों को बतलाया कि कैम्ब्रिज में लोगों की प्राकृतिक दुम नहीं होती। वहाँ यूनिवर्सिटी ही लोगों को डिग्रियों के पूँछ-पुछल्ले खोंसा करती है। इस प्रकार सीता और हनुमान दोनों ही अँगरेजी भाषी थे। एकदेशीय होने के कारण ही सीताजी ने हनुमानजी को बड़ी-बड़ी शक्तियाँ प्रदान कर रक्खी थीं––"जानकी ध्यान मात्रेण लंघिता सप्त सागराः।" कैम्ब्रिजा जॉन के ने अपने पति को विलायती ब्यूराक्रेसी का भी भक्त बना दिया था। श्रीराम स्तोत्र में भगवान् को 'जानकी विरहाक्रोशी श्रीरामः' कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'जॉन के ब्यूराक्रेसी' के कारण ही रामराज में अँगरेजी और लालफीताशाही को मान्यता मिली थी।

हिन्दीवालों का धोबीपाट और हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य––आधुनिक हिन्दी साम्राज्यवादी जनों के काले कारनामों को सतर्कतापूर्वक ध्यान में रखते हुए दृढ़ विश्वास के साथ हम यह कह सकते हैं कि हिन्दीवादी धोबियों के उत्पात के कारण ही भगवान् श्रीरामचंद्रजी को जगज्जननी सीता महारानी को देश-निकाला देना पड़ा। लक्ष्मण भी अँगरेजी भक्त हो गये थे, स्वयं हनुमानजी उन्हें पढ़ाते थे। श्री भगवतीचरण वर्मा की रिसर्च के अनुसार सीताजी को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आने के बाद लक्ष्मणजी अपने बड़े भाई से विद्रोह करके लखनऊ चले आये। मि० हैनमैन ने भी श्रीराम सरकार की नौकरी छोड़ दी और लक्ष्मण के साथ ही साथ लखनऊ आ गये। भगवती बाबू के कथनानुसार लखनऊ के लक्ष्मण टीले पर बैठकर दोनों ने आपस में बड़ी कहा-सुनी की। हनुमानजी बोले : "राम कायर हैं, हिंदी वालों से डरकर उन्होंने सीता मा को निकाला है।" लक्ष्मण बोले "मेरे भाई को कायर मत कहो।" इस पर दोनों में लड़ाई हुई। लक्ष्मणजी ने कहा कि मेरे टीले को छोड़कर चले जाओ। हनुमानजी क्रोध में छलांग मारकर गोमती नदी के उस पार चले गये और अलीगंज में अपना मंदिर बनवाकर रहने लगे। भगवान् राम ने यह सुना तो घाघरा में डूबने चले। तब हिंदीवालों ने प्रार्थना की–– "भगवान मत डूबिए।" भगवान् ने तड़पकर अँगे
में कहा "सर, यू हिंदी वालाज़ हॅव ड्राउण्ड मी।"
वाक्य के प्रथम शब्दों के कारण ही घाघरा नदी अर्था
में 'सरयू' कहलाती है।

इन सब बातों का विचार करके हम इसी नि
पर पहुँचे हैं कि हिन्दी का मुँह काला करके हमें अवं
रेजी ही को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहि
सुनार की सौ के मुकाबले में लोहार की एक ही घन
बहुत काफी होती है। राष्ट्रभाषा के रूप में जब अँ
अँगरेजी ही समर्थ है तब चौदह राष्ट्रभाषाएँ देश
लादना बड़ी भारी मूर्खता है। साथ ही साथ घोर अन्
और घोर नास्तिकता भी। हमें चाहिए कि श्री
जानकी, हनुमान आदि अवतारी पुरुषों के द्वारा सी
अँगरेजी भाषा को ही धर्मभाव से शीघ्राति
अपना लें। सीता माता की भाषा ही हमारी अ
मातृभाषा हो सकती है। जय अँगरेजी! जय भारत
इज़ इंडिया !

जो प्यारों के हाथों पड़ते

श्री रवि

फूल गये रौंदे श्रद्धा के राहों बीच बिचारे––
पुष्प अर्चना के, प्रतिमा में प्यार जगाते हारे।
कुछ सुमनों का गला घोंट देती है खुद ही डाली,
जो प्यारों के हाथों पड़ते––वह ही लगते प्यारे॥

घूँघट के अन्तःपुर में ही प्रिय छबियों का मेला––
प्राण लगा रहने दो यों ही, है यौवन मधु बेला।
प्यार रूप के इसी द्वैत से बनी वेदना जीवन,
तुमको शपथ लाज की गोरी, रहे न दर्द अकेला॥

तरुणाई की तरल कामना उद्‌गारों में रहती––
भँवर भावना की अनुभव के अनुभावों में बहती।
कब किसको अवकाश दिया करता है हँसता मौसम ?
मिली न तलछट भी प्यासे को दुनिया अपनी कहती॥

वैज्ञानिक शब्दावली की प्रवृत्तियाँ

श्री कस्तूरमल बांठिया

कोई भी शिशु उपयुक्त शब्द न मिलने तक बोलना बंद नहीं रखता है। प्रयुक्त शब्द उपयुक्त है या नहीं, इसकी तनिक भी परवाह किये बिना ही, वह अपने मनोभाव अपने परिसीमित शब्द-भंडार से स्पष्ट कह देने का निरंतर प्रयत्न करता रहता है। धीरे-धीरे न केवल उसका शब्दकोष ही बढ़ता जाता है, अपितु वह मनोभाव व्यंजक उपयुक्त शब्द स्वतः प्रयोग भी करने लग जाता है। इस स्वाभाविक तथ्य को वैज्ञानिक स्पष्ट स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "जब तक हम वैज्ञानिक ज्ञान को शुरू से ही अपनी भाषा में उपलब्ध नहीं कराएँगे, तब तक हम विज्ञान को असली रूप में नहीं पा सकेंगे, क्योंकि विज्ञान के बुनियादी तथ्य आमतौर पर आरंभिक ज्ञान प्राप्त करते समय ही स्वस्थ ढंग से अंकुरित होते हैं। पर यदि इस अवस्था में इन बुनियादी बातों को बताने के लिए कक्षा में एक अन्य भाषा की शब्दावली इस्तेमाल की जाती है और इसके बाहर दूसरी, तो बेचारा विद्यार्थी उलझन में पड़ जाता है। उसके दिमाग में वैज्ञानिक ज्ञान उतने सहज ढंग से नहीं पनप पाता और इन बुनियादी बातों के बारे में उसकी पकड़ इतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी कि तब हो पाती जब कि उसकी अपनी ही भाषा में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता। फिर यह भी आज एक माना हुआ तथ्य है कि जिस भाषा में व्यक्ति अपने को व्यक्त करता है, उस भाषा का उसके विचारों पर भी असर पड़ता है।"

दुर्भाग्य से हमारे भाग्यविधाता अँगरेजों ने इस वैज्ञानिक तथ्य को सदा ही ठुकराया और बार-बार यह दोहराते रहकर कि भारतीय भाषाओं में उपयुक्त शब्द नहीं होने से कम से कम विज्ञान का ज्ञान उसके द्वारा न तो प्राप्त किया जा सकता है और न कराया ही, हममें ऐसी एक भ्रांत धारणा दृढ़ जड़बद्ध कर दी कि हम उसे ही सदा के लिए परम स्वाभाविक मान बैठे। और पिछले पंद्रह वर्ष से देश का समूचा राजकाज सम्हाल लेने पर भी उस अस्वाभाविक मान्यता का दामन उतनी ही दृढ़ता से आज भी हम पकड़े बैठे हैं और विद्युत् गति से बढ़ते हुए सामान्य तौर पर बुनियादी वैज्ञानिक ज्ञान को ही नहीं अपितु सुकुमार (ह्यूमैनिटीज) साहित्यिक ज्ञान तक को उस समय तक विदेशी अँगरेजी भाषा द्वारा ही देश के नवयुवक-नवयुवतियों के गले उतारते रहने पर कटिबद्ध हैं जब तक कि वैज्ञानिक भाषाविद् राज्यमान पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत नहीं करें अथवा स्वयम् राज्य ही ऐसा न करें। देशी भाषा शब्दावली के प्रयत्न तो देश में चिरकाल से होते ही रहे थे। परन्तु तत्कालीन सरकार की घोर उपेक्षा से प्रचार में नहीं आने से उनका आदर्शानुरूप (स्टैंडर्डाइजेशन) स्थिर न हो सका जैसा कि जापान में हो गया था हालांकि उस भाषा में भी पाश्चात्य विज्ञान को व्यक्त करनेवाले शब्द प्रारम्भ में नहीं थे और इसकी बुनियाद जर्मन भाषा द्वारा शिक्षण देकर ही वहाँ पहले-पहल कुछ वर्षों तक डाली गयी थी।

स्वराज-प्राप्ति के बाद तो इन प्रयत्नों में बाढ़ सी आ गयी परन्तु शिक्षण में उनका प्रयोग पहले की तरह ही प्रायः वर्ज्य सा रहा। यदि उनका प्रयोग शिक्षा माध्यम बदलकर वेग से प्रोत्साहित किया जाता तो बहुत संभव है कि उनमें से कितने ही इस १५ वर्ष की अवधि में आदर्शानुरूपित (स्टैंडर्डाइज) भी हो जाते। परन्तु हमारी अपनी ही सरकारें क्षेत्रीय और राष्ट्रभाषा हिन्दी को शिक्षा माध्यम करने को प्राथमिकता देने को किसी भी तरह से अपने को तैयार नहीं कर सकीं।

यही नहीं पर वैयक्तिक जो भी प्रयत्न इस विषय में हुए उन सबको हमारी अपनी सरकार ने ही इसलिए अमान्य कर दिया कि वे प्रमुखतः संस्कृत पर आधारित थे यद्यपि हमारे संविधान में इस विषय में स्पष्टतः आदेश है : "by drawing wherever necessary or desirable, for its vocabulary, primarily on Sanskrit and secondarily on other languages".

एक ओर तो हमारी अपनी ही सरकार ने ऐसी शब्दावली को अमान्य कर दिया, तो दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय कहे जाने वाले शब्दों को ज्यों का त्यों ले लेने का भी उसने दृढ़ आग्रह किया। जब सरकार को यह बात स्वीकृत न होने से वैयक्तिक प्रयत्न ठंडे पड़ गये तो इस विषय का सारा उत्तरदायित्व सरकार पर ही आ गिरा।

पर तब भी सरकार ने इसको सर्वापेक्षा प्राथमिकता नहीं दी। कहा जाता है कि सरकार द्वारा अब तक ३ लाख पारिभाषिक शब्द निर्माण किये जा चुके हैं, परन्तु उच्च माध्यमिक शिक्षा के उपयोग के कुछ हजार शब्द इसी वर्ष प्रकाशित किये गये हैं। सरकार ने इस प्रकाशन के प्राक्कथन में स्पष्ट स्वीकार किया है कि ये शब्द अंतिम नहीं माने जा सकते हैं। प्रयोग द्वारा ही इनका अंतिम रूप स्थिर होगा। सरकार की इस मन्थर गति का ही परिणाम है कि हमारे देश की, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी, वैज्ञानिक ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में वैसी प्रगति कदाचित् ही हो सकी हो जैसी कि साम्यवादी चीन में पिछले १२ वर्ष में हुई कही जाती है। साम्यवादी चीन का इस आशातीत प्रगति का प्रमाणपत्र उस छः सदस्यीय अन्वेषक मंडल ने दिया है जो इंग्लैण्ड की रायल सोसाइटी ने वहाँ पिछले नवम्बर में ही भेजा था। इस मंडल के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए श्री डी० जे० जसावाला का 'टाइम्स आफ इंडिया' ता० २४-१२ में एक पत्र प्रकाशित हुआ है जो इस प्रकार है :—

"आपके पाठकों को यह जानना कदाचित् रुचिकर हो कि इंगलैंड की रायल सोसाइटी ने छः संदस्यों का एक मंडल पिछले नवम्बर महीने में उस देश की विज्ञान में प्रगति का निर्धारण करने को भेजा था। जो कुछ वहाँ देखा उससे वह मंडल बहुत ही प्रभावित हुआ था। चीनियों की कहने जैसी कोई भी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि उस दिन तक नहीं थी जब कि वहाँ १९४९ में साम्यवादी शासन स्थापित हुआ था। फलतः २०वीं सदी तक पहुँचने के लिए उन्हें प्राथमिकताओं का चुनाव करना आवश्यक हो गया था। ऐसा लगता है कि चीन में विज्ञान का अध्ययन भली प्रकार से योजित है, और जनता एवं सरकार दोनों ही विज्ञान के आज के अनन्यतम महत्त्व से परम अवगत है। भौतिकी और इंजीनियरिंग के अध्ययन को परम अग्रता प्रदान की गयी है।

"सर गार्डन सदरलैंड के अनुसार ठोस अवस्था भौतिकी (सॉलिड स्टेट फिजिक्स) और इलैक्ट्रानिक्स का उनका विकास 'अत्यन्त ही प्रभावक' है। कुछ ही वर्षों में चीनी न केवल पश्चिम की बराबरी में पहुँच जाएँगे, अपितु अगले दशक में वे उससे आगे भी अच्छी तरह होंगे। बहुत कुछ ऐसा ही धातुविज्ञान (मैटलर्जी) और उच्च पालीमर एवं मणिभ (क्रिस्टल) शिल्प में है। इन विज्ञानों में कुछ के प्रयत्न यू० के० के प्रयत्नों की तुलना में छोटे फिर भी वे बहुत कुशलता से संचालित हैं। ६० प्रति संयंत्र रूसी, पूर्वी जर्मनी अथवा चेकोस्लोवेकिया के परन्तु स्वदेश-निर्मित इलैक्ट्रानिक उद्योग भी अच्छा है भौतिकी प्रयोगशालाओं में उतने ही अच्छे संयंत्र हैं जि अच्छे संसार में अन्यत्र पाये जाते हैं।

जीव-विज्ञान में, ऐसा लगता है कि, प्रो० सी० ए वाडिंग्टन और सर जार्ज ब्राउन चीनी काम के मानक के संचालन से कम प्रभावित हुए। पीकिंग मैडीकल महावि लय में अनुसंधान उस स्तर का ही लगा कि जो पश्चि में त्रीशाब्द में था। सिवा प्रायोगिक भौतिकी (एक्सपे मेंटल एम्ब्रियालोजी) के और काम केवल कामचल था। चीन ने अभी तक आणुविक जीव-विज्ञान (मालीक्यू बायोलोजी) के क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया यद्यपि उसके बाबत जानते तो हैं और इसका प्रारंभ करने पूरे उत्सुक भी हैं। शास्त्रीय जीव-विज्ञान और कृ (अकडैमिक बायोलोजी एंड एग्रीकल्चर) में बिलगाव लगता है। पीकिंग द्वारा चीन के कृषि-उन्नति अभिय का जितना प्रचार किया जा रहा है उसे देखते अजीब तो लगता है, पर मंडल को यह कुछ उत्सा वर्धक भी लगा क्योंकि इससे इस धारणा की पुष्टि हो है कि विज्ञान में ऊपर से किसी प्रकार का आदि डिक्टेशन नहीं है। क्योंकि उस राष्ट्र के लिए कि आधुनिक वैज्ञानिक युग में छलांग ले रहा हो, इस प्र का हस्तक्षेप विनाशक हो सकता है।"

अपनी प्रगति का यथार्थ निर्धारण आप नहीं कि जा सकता है। इसके निर्धारक तो तटस्थ व्यक्ति ही सकते हैं। हमने स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् किन-किन क्षे में कितनी प्रगति की, इसका निर्धारण करने को ह भी यदि ऐसा ही कोई अन्वेषक मंडल आमंत्रित करें ठीक हो। चीन ने रायल सोसाइटी को अन्वेषक मं भेजने को आमंत्रित किया होगा, यह संभव नहीं। उ इससे कितना सहयोग किया, इसका भी पता नहीं है फिर भी इस मंडल के प्रतिवेदन से आज की परिस्थिति में हम चीन की वैज्ञानिक तैयारियों और अपनी कमि का अवश्य ही बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। बताता है कि हमारा प्राथमिकता का दृष्टिकोण अब

स्वस्थ नहीं रहा। उसे हमें शीघ्र बदलना ही होगा। ऐसा नहीं लगता कि चीन वैज्ञानिक ज्ञान की प्रगति के लिए पारिभाषिक शब्दावली के फेर में हमारी तरह पड़ा हो और न यह ही मालूम होता है कि विज्ञान की उन्नति के लिए उसने अँगरेजी, रूसी अथवा और किसी विदेशी भाषा का दामन पकड़ रखा है।

हमें आश्चर्य है कि श्री ओमप्रकाश शर्मा ने अपनी सामयिक अँगरेजी पुस्तक 'वैज्ञानिक शब्दावली की प्रवृत्तियाँ' के द्वितीय भाग में जहाँ रूस, जापान, इजराइल, इंडोनेशिया, और आधुनिक तुर्की की प्रवृत्तियों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया है, वहाँ चीन की प्रवृत्ति को सर्वथा ही भुला दिया है जिसका जानना आज हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। यह पुस्तक यद्यपि सरकारी या अर्द्ध-सरकारी तक भी नहीं कही जा सकती है, फिर भी श्री शर्मा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से प्रकाशित होनेवाले मासिक 'कृषि' के हिन्दी संपादक हैं और इनका हिन्दी निदेशनालय से बराबर ही संपर्क रहता है। अतः उस निदेशनालय की पारिभाषिक शब्दावली-प्रवृत्ति पर साधिकार लिखने के सभी साधन उन्हें सहज ही प्राप्त हो सकने के कारण वे हमें ऐसी पुस्तक प्रदान कर सके हैं जिसकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता थी। पर खेद इतना है कि शर्माजी ने यह पुस्तक उस अँगरेजी में लिखी और प्रकाशित की है जिसके स्थानापन्न करने की प्रवृत्तियों का विज्ञ संसार ो परिचय इसके द्वारा कराया गया है। सरकार के इस विषय के प्रयत्नों के विषय में जन-साधारण में गलतफहमी और नासमझी पर्याप्त फैली हुई है और वह इसमें हो रही री के लिए अँगरेजीदाँ, विशेषतः सरकारी लोगों को ही, धानतः जिम्मेदार ठहराती है क्योंकि निहित स्वार्थ अँगरेजी संबद्ध हैं। अतः सरकारी पक्ष का यथार्थ परिचय जो कि स पुस्तक में कराया गया है, उस अधिकांश जनता को सके हिन्दी संस्करण के प्रकाशन से ही हो सकता है। में आशा है कि इसका हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं सुलभ संस्करण प्रकाशित कराने का केन्द्रीय हिन्दी देशनालय शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न करेगी। आइए, अब इस पुस्तक की कुछ विशिष्टताओं से भी यहाँ संक्षेप परिचय प्राप्त कर लें।

इसमें दो विभाग हैं। पहला विभाग 'वैज्ञानिक दावली और भारतीय भाषाएँ' शीर्षक से है जिसमें पाँच निबन्ध और तीन परिशिष्ट हैं। निबन्धों के विषय और लेखक क्रमशः इस प्रकार हैं:—

१—भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शब्दावली, लेखक : डॉ० डी० एस० कोठारी।

२—वैज्ञानिक शब्दावली द्वारा सांस्कृतिक एकीकरण, लेखक : डा० विश्वनाथ प्रसाद।

३—भारतीय भाषाओं में समान शब्दावली का तर्क, लेखक : डॉ० एन० के० सेठी।

४—वैज्ञानिक शब्दावली के विकास में क्रियाविधिक दृष्टिकोण, लेखक : डॉ० बी० आर० सक्सेना।

५—वैज्ञानिक शिक्षा का माध्यम, लेखक : ओमप्रकाश शर्मा।

इसी विभाग में निम्नलिखित तीन परिशिष्ट भी हैं:—

१—एप्रिल १९६० का वैज्ञानिक शब्दावली विषयक राष्ट्रपति का निदेश;

२—आधुनिक भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति का विवरण; और

३—भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक पदों की पारिभाषिक शब्दावलियों की सूची।

दूसरे विभाग का शीर्षक है 'वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और विश्व प्रवृत्ति' और इसमें साम्यवादी रूस, जापान, इजराइल, इंडोनेशिया और तुर्की, प्रत्येक की प्रवृत्तियों का पृथक्-पृथक् शीर्षकों में दिग्दर्शन कराया गया है। यूनेस्को की एतद्विषयक प्रवृत्तियों पर भी एक निबंध है, और सबसे अंत में विज्ञान और औद्योगिकी (टेक्नालोजी) की अँगरेजी में प्रकाशित प्रमुख शब्दावलियों की सूची दी गयी है।

हमारे प्रयत्नों का मूल्यांकन करने की दृष्टि से यह दूसरा विभाग ही उपयोगी है और इसके संकलन का श्रेय इस ग्रंथ के संपादक श्री शर्माजी को है। प्रत्येक देश की इन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन कर शर्माजी ने उन देशों की चुनी हुई विभिन्न विषयों की शब्दावलियों की सूची भी अन्त में दे दी है जिससे हम अपने प्रयत्नों की आसानी से तुलना कर सकते हैं। भाषाओं की विविधता की दृष्टि से रूस के प्रयत्न हमारा अच्छा मार्गदर्शन करते हैं क्योंकि इन प्रयत्नों ने न केवल वहाँके वैज्ञानिक विकास को ही प्रोत्साहित किया है अपितु देश के औद्योगीकरण

को भी प्रगति दी है। यदि यह कहा जाय कि हमारे औद्योगीकरण की प्रगति का हमारे वैज्ञानिक विकास से जरा भी संबंध नहीं, तो वह अत्युक्ति नहीं होगी। हमारे देश में स्थापित नये उद्योग सभी विदेशी सहयोग के ऋणी हैं न कि हमारे वैज्ञानिक विकास के।

साम्यवादी रूस में भी हमारे देश की तरह ही अनेक अपूर्ण विकसित भाषाएँ हैं। हमारी अधिकांश भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं, पर वहाँकी भाषाएँ अधिकांशतः विभिन्न-मूल की हैं। यद्यपि रूस ने रूसी भाषा का जानना अनिवार्य नहीं किया और सबको अपनी ही भाषा बोलने, लिखने और पढ़ने में वहाँ पूरी स्वतंत्रता है, फिर भी सन् १९२६ से १९४० की अवधि में वहाँके दो करोड़ लोगों ने रूसी भाषा, जो कि उस देश की सार्वजनीन भाषा मान ली गयी है, सीख ली जैसे कि राजनैतिकों का विरोध होते हुए भी दक्षिण और पूर्वी भारतीय अधिकाधिक संख्या में हिन्दी भाषा सीख रहे हैं। रूस की केन्द्रीय सरकार ने गणराज्यों की भाषा-विषयक स्वतंत्रता चाहे दे रखी हो, पर वहाँकी विभिन्न अकादमियाँ द्विभाषिक वैज्ञानिक पत्रिकाएँ प्रकाशित कर रही हैं। यही नहीं, ये पत्रिकाएँ इन लेखों के सारांश मूल लेख की भाषा न जाननेवालों के लिए दूसरी भाषाओं में भी प्रकाशित करती हैं। हमारे यहाँ ऐसा प्रयत्न न तो केन्द्र सरकार करती है और न कोई प्रान्तीय सरकारें। हिन्दी और प्रान्तीय भाषा के मासिकों में सामान्यतया वैसे खोजपूर्ण और ज्ञान-वर्धक गंभीर लेख कम ही प्रकाशित होते हैं जैसे अँगरेजी की उसी विषय की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। गंभीर लेखों का सार भी हिन्दी पत्रों में प्रकाशित नहीं किया जाता। हमें तीन भाषा पढ़ने का सिद्धान्त मान लेने को कहा तो जोरों से जा रहा है परंतु तीन भाषाएँ सरलता से लिखाने की विधि अभी तक नहीं निकाली गयी।

रूसी वैज्ञानिक शब्दावली के विकास का इतिहास भी कम रोचक और शिक्षाप्रद नहीं है। हमारी ही तरह वहाँ भी ये प्रयत्न १७वीं शती के अंत से होने लग गये थे परंतु उसे वेग तो १९वीं सदी के अंत में ही मिला था। साम्यवादी सरकार ने इसे और भी तीव्र वेग दिया और इस प्रवृत्ति के नियमन के लिए विद्वानों की अकादमी के तत्त्वावधान में सन् १९३३ में पारिभाषिक शब्दावली आयोग नियुक्त कर दिया। इस आयोग ने सन् १९३८ से १९५० तक अवधि में कोई ५६ शब्दावली सूचियाँ तैयार कर इनमें लैटिन, ग्रीक, फ्रैंच, जर्मन और अंग्रेजी भाषाओं शब्द भी कुछ उच्चारण भेद के साथ ले लिये गये जैसे हमारे यहाँ सरकार के दबाव से आज अंतर्राष्ट्रीय शब्दों ओट में वे लिये जा रहे हैं। परंतु यह आश्चर्य की ही है कि आज रूसी राष्ट्रीयता विदेशी के स्थान में स्वदे शब्दों को स्थान अधिकाधिक देती जा रही है। इस विषय श्री शर्मा द्वितीय विभाग के पृष्ठ ११ पर स्पष्ट ही कहते कि "With the tide of Russian nationali running so strong, it can be assum that the purely Russian term will time win out, but at present either fo is likely to be met, and the number such instances of duplicate terms very large indeed."

इजराइल के प्रयत्न तो हमारे और हमारे वैज्ञानि को स्तंभित कर देंगे। यह तो सभी को ज्ञात है कि भाषा कल तक मृत भाषा ही थी। इस भाषा का दिन तक संसार में औल्ड टेस्टमैंट के सिवाय दूसरा शायद ही उपलब्ध था। यहूदी तितर-बितर हो गये और सर्वत्र ही वे प्रायः तिरस्कृत थे यद्यपि सं का वाणिज्य-व्यापार बहुत कुछ उन्हीं के हाथों में इनका अपना कोई देश नहीं था। सन् १९१७ में इं के प्रधान मंत्री बालफोर ने जब कि प्रथम विश्व-युद्ध तुर्कों से अँगरेजों ने पैलस्टाइन जीत लिया था, यहूदियों का देश स्थापन करने का वचन दिया। य इजराइल की रियासत की वहाँ नियमपूर्वक स्थापना १९४६ के बाद ही संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा हुई, बालफोर की घोषणा के दिन से ही पैलस्टाइन में स्थान से यहूदी आकर बसने लगे थे। इसको हि के यहूदी विरोध और देश निष्कासन ने पूरी-पूरी प्र दी। इन विभिन्न देशों के प्रवासी यहूदियों ने एकी की दृष्टि से यहूदी भाषा ही को पुनरुज्जीवित करने हिब्रू भाषा काउंसिल की स्थापना की, और उसके प्रयत्न से एक दशाब्द में ही यह मृतभाषा एक जीवित शक्तिशाली भाषा बन गयी। इजराइल राज्य की स्थ के पूर्व ही इस काउंसिल ने वैज्ञानिक और आधुनिक वि

धारा की अभिव्यंजना के साधनरूप से हिब्रू भाषा को विकसित करने में बहुत प्रगति कर ली थी । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ज्योंही इजराइल राज्य की स्थापना हुई, वहाँ की संसद की भाषा ही हिब्रू नहीं बना दी गयी अपितु जनता की, रंगमंच की और सामयिक पत्रों की भी भाषा वह हो गयी। इसके सिवा उस राज्य के शिक्षा एवं सांस्कृतिक मंत्रालय ने ६०० घंटों के पाठों के पाठ्यक्रम भी भिन्न-भिन्न भाषी आगन्तुकों को हिब्रू भाषा सिखाने को चालू कर दिये। फलतः चार वर्ष की अल्पावधि में ही १,२०,००० आगन्तुक **यहूदी हिब्रू** सीखकर परस्पर एक हो गये। सरकार और अनेक वैयक्तिक संस्थाओं के सहयोग से उस एक समय की मृतभाषा में विज्ञान की प्रायः प्रत्येक शाखा के ग्रंथ आज प्राप्त हैं। यह बताता है कि प्राथमिकता देकर सरकार जनता के सहयोग से मृतभाषा को भी सर्वप्रकार से सम्पन्न कर सकती है। हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाएँ आज पंद्रह वर्षों के बाद भी **सम्पन्न नहीं हैं तो** इसके लिए हमारे विद्वान् और सरकार दोनों की उपेक्षा ही उत्तरदायी कही जा सकती है।

जापान **की भाषा-नीति** से भी हमने अपने देश में वैज्ञानिक साहित्य की कमी को शीघ्रातिशीघ्र पूरी करने में कोई प्रेरणा **या सहायता नहीं ली**। जापान में पारिभाषिक शब्दावली के विकास की कथा का वर्णन करते हुए श्री शर्मा कहते हैं कि "आज से ९० वर्ष पूर्व सम्राट् मेइजी के राज्यकाल में जापान में पश्चिमी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रवेश हुआ था । यूरोप के अनेक विद्वान् जापानी विद्यालयों में यह शिक्षा देने के लिए नियुक्त किये गये जिन्होंने अपनी-अपनी मातृभाषा द्वारा ही जापानियों को विज्ञान की शिक्षा दी क्योंकि वे जापानी भाषा नहीं जानते थे। यही क्यों, जापानी तक भी जर्मन अथवा अंगरेजी में ही इसलिए विज्ञान सिखाते थे क्योंकि उनके पारिभाषिक शब्द जापानी में नहीं थे।" पर जापान सरकार ने जापानियों को जापानी **भाषा** द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा देने का उत्तरदायित्व जापानी अध्यापकों पर डाल ही दिया। पारिभाषिक शब्दावली बनने तक की प्रतीक्षा नहीं की जैसा कि हमारी सरकार कर रही है। प्राथमिकता देने पर असाध्य भी साध्य हो जाता है। जापानी चित्र लिपि है और उसमें वैज्ञानिक शब्दों की परिभाषा करना आसान भी नहीं। वहाँ रोमन लिपि के प्रचार के प्रयत्न भी इसीलिए बहुत काल से हो रहे हैं। द्वितीय युद्धोपरान्त इन प्रयत्नों को वेग भी दिया गया। परंतु कुछ वर्षों के परीक्षण पश्चात् वहाँकी सरकार को फिर से अपनी सनातन लिपि को ही अपना लेना पड़ा है। श्री शर्मा कहते हैं कि "पूर्व के अत्यन्त उद्योग-प्रवण देश जापान ने यह सारी प्रगति अपनी ही भाषा के माध्यम से प्राप्त की है। उसका उदाहरण भारतीयों को जो कि वैज्ञानिक समझ के प्रसार के लिए बुनियादी वैज्ञानिक शब्दावली के विकास करने में कठिन परिश्रम कर रहे हैं, अवश्य ही प्रोत्साहक होगा।"

इस पृष्ठभूमि में श्री शर्मा की पुस्तक का पहला भाग जब पढ़ा जाता है तो वह हमारे आज तक के इस ओर **किये गये प्रयत्नों पर गर्व करने योग्य** प्रतीत **नहीं होता**। पर फिर भी उन्हें जानना हमारे लिए उपयोगी इसलिए है कि हम **अपनी सरकार** पर इसे प्राथमिकता देने के लिए **दबाव डालें।** देश का विभाजन और अराजकता तक का भी स्वागत कर हमने अँगरेजों को यहाँसे चले जाने को विवश किया। वैसे ही **शिक्षा में** कुछ अव्यवस्था का स्वागत करके और अँगरेजी का मोह त्याग के ही हम अपनी भाषाओं द्वारा देश में वैज्ञानिक ज्ञान ही नहीं अपितु आवश्यक सभी बातों की बुनियाद फिर से सुदृढ़ कर सकेंगे जो कि पिछले १०० वर्ष के अँगरेजी संपर्क के कारण अव्यक्त रूप में हिल गयी है। पहले विभाग में डा० कोठारी का निबंध उसका प्राण ही कहा जाएगा। शेष लेख उसी पृष्ठभूमि में पढ़े जाने पर हमें लाभान्वित करेंगे। श्री शर्मा का प्राक्कथन हमारे पारिभाषिक शब्दावली के प्रयत्नों का संक्षिप्त इतिहास है। श्री शर्मा ने पहले विभाग के अपने अंतिम निबंध में जो अँगरेजी की वकालत की है, वह हारी-बाजी का सा ही प्रयत्न कहा जाएगा। अँगरेजी का देश में विरोध मानने और उद्घोष करनेवालों को समझाने में समय खर्च करना अब व्यर्थ है। जब तक अंगरेजी का ज्ञान-विज्ञान भंडार संपन्न है, तब तक उसे कोई भी कहीं अपदस्थ नहीं कर सकता है। पर इसका यह तात्पर्य **नहीं कि इस कारण** विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में न देकर **अँगरेजी में** दी **जाय और वह हमारे** बालकों **को आरंभिक कक्षाओं से ही पढ़ायी जाय।** मातृभाषा के स्थान में नहीं तो कम से कम उसकी मातृभाषा और हिन्दी **में** बोलना, परस्पर पत्र-व्यवहार करना स्वतंत्र भारत में गौरवपूर्ण **समझा जाना चाहिए,** और अँगरेजी में बात करना, वक्तृता देना तथा पत्र-व्यवहार करना लज्जास्पद नहीं तो गौरववर्धक माना जाना जितना शीघ्र रुक जाए, वह अच्छा है।

◆

बाजन लागे ढोल

श्रीमती शीला शर्मा

आ गई लगन की घड़ी। पर ब्याह करना कोई इतना आसान नहीं। यह हुलिया बनानी पड़ती है।

ये वो वचन हैं जो जीवन भर निभाने होंगे। समझ कर भरियेगा।

“माँ! तेरी बाँदी लेने जा रहा हूँ। क्यों कुएँ में कूदती हो।” माँ के कान में ये आश्वासन के शब्द कहना आवश्यक हैं वरना माँ कुएँ में एक पैर लटकाये तो बैठी ही है।

आ गयी समस्या! इनकी भाभियाँ भी कैसी है क्या गाँठ लगाई है। जी हाँ! पर यह है कंगन की बे कुछ दिखाइए न चतुराई!

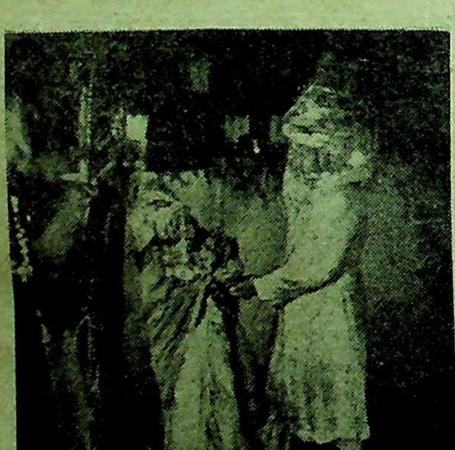

शुक्र है! उनकी हुलिया भी वैसी ही है। अब शरमाने की कोई बात नहीं!

बड़े खुश हैं! मार लिया मोर! जरा देखें इनकी भी राई! भाभियाँ हमारे भी हैं—तुम्हारी भाभियों से कम

सम्राट् शाहजहाँ के समकालीन काशी के एक विद्वान्

श्री आनन्दस्वरूप गुप्त एम० ए०, शास्त्री

मुसलमानी शासनकाल में भी संस्कृत के अनेक प्रसिद्ध विद्वान् भारत में हुए। अकबर और शाहजहाँ जैसे हान् मुगल सम्राट् संस्कृत-विद्वानों का विशेष आदर रते थे, और उनको अनेक प्रकार से प्रोत्साहन तथा ाश्रय देते थे। अकबर के आदेश से सन् १५८० ई० महाभारत का जो फारसी अनुवाद किया गया ा, उसमें संस्कृत के अनेक हिन्दू पण्डितों से सहयोग ाप्त किया गया। सम्राट् शाहजहाँ ने अपने समय के ाशी के महान् विद्वान् कवीन्द्राचार्य सरस्वती की विद्वत्ता या परोपकार वृत्ति से प्रभावित होकर उनको जो म्मान प्रदान किया वह शाहजहाँ की गुणग्राहकता या कवीन्द्राचार्य के विस्तृत प्रभाव का ज्वलन्त दाहरण है। शाहजहाँ के राज्यकाल की एक अत्यन्त हत्वपूर्ण घटना के साथ तो शाहजहाँ के नाम के साथ वीन्द्राचार्य का नाम भी सदा जुड़ा रहेगा।

मुसलमानी शासकों ने हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के तिरिक्त कर लगा दिये थे। शाहजहाँ के समय में हिन्दुओं र तीर्थ-कर लगा हुआ था, विशेषकर जो तीर्थयात्री काशी या प्रयाग में आते थे, उनको इस तीर्थकर का भार सबसे धिक वहन करना पड़ता था। सारी हिन्दू जनता इस री कर-भार से त्रस्त हो उठी थी, परन्तु सम्राट् के इस याय के सामने किसीको भी मुँह खोलने की हिम्मत नहीं ी थी। ऐसे विकट समय में काशी के संन्यासि-विद्वान् न्द्राचार्य सरस्वती ने हिन्दू जनता को इस अन्यायपूर्ण ह्य कर-भार से मुक्त करने का बीड़ा उठाया। एक निश्चय तथा आशा के साथ वे आगरे को चल दिये; ी के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति भी उनके साथ हो ि। आगरा पहुँचकर कवीन्द्राचार्य शाहजहाँ के दीवान-ाम में प्रविष्ट हुए, और वहाँ उन्होंने इतनी प्रभावशाली स्विता, वाग्मिता तथा सुतर्कपूर्ण युक्तियों के साथ ी तथा प्रयाग में लगनेवाले इस तीर्थकर का विरोध ा कि शाहजहाँ के दरबार में उपस्थित इराक, ईरान, ां, बलख, खुरासान, कंधार, काबुल, कश्मीर इत्यादि के भूपालों एवं उमरावों ने आश्चर्य चकित होकर न्द्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की—

काश्मीरैराककारस्करदरदखुरासानहब्शान जाता
बंगारब्बा फिरंगास्तुरुकशकबदक्शानमुलतानबल्काः।
खांधारः काबिलेन्द्रा अपि धरणिभृतस्ते मगा रूमशामाः
श्रीमच्छ्रीशाहिजाहानरपतिसदसि त्वां कवीन्द्र स्तुवन्ति॥

(कवीन्द्रचन्द्रोदय, पद्य १७०)।

कवीन्द्र के असाधारण पाण्डित्य तथा व्यक्तित्व का शाहजहाँ तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि काशी तथा प्रयाग पर लगाये जानेवाला तीर्थकर तत्काल समाप्त कर दिया गया। शाहजहाँ ने कवीन्द्राचार्य को, 'सर्वविद्यानिधान' की उपाधि से विभूषित किया, और उन्हें अपने दरबार में विशिष्ट स्थान प्रदान किया। दारा की रुचि तो पहले से ही हिन्दुओं के दर्शनों एवं उपनिषद्-ग्रन्थों में थी, वे स्वयं भी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्होंने सन् १६५६ ई० में बनारस में उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया। अतः कवीन्द्राचार्य जैसे उच्चकोटि के संस्कृत-विद्वान् तथा पहुँचे हुए साधु को पाकर दारा ने अपने को कृतार्थ माना तथा उनको अपना आध्यात्मिक गुरु बना लिया। दाराशिकोह की कवीन्द्राचार्य पर (जिनका संन्यास-आश्रम का नाम 'नृसिंहाश्रम' था) कितनी अगाध श्रद्धा थी यह दारा द्वारा कवीन्द्राचार्य (नृसिंहाश्रम) को किये जानेवाले नमस्कार के निम्नलिखित वाक्य से स्पष्ट हो जाता है :—

'सच्चिदानन्दस्वरूपेषु महायतिवरभूपेषु परिकल्पित-निर्विकल्पसमाधिविध्वस्तसंसारमहाश्रमेषु श्री गोस्वामि नृसिंहाश्रमेषु ...... महम्मददाराशिकोहकृता ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरमन्त्रपूर्वका नमस्काराः सन्ति।'

(कवीन्द्राचार्य कृत 'कवीन्द्रकल्पद्रुम' के काशी से प्राप्त एक हस्तलेख से)।

कवीन्द्राचार्य के शुभ प्रयत्न से काशी तथा प्रयाग के तीर्थयात्रियों पर लगनेवाले कर के हटाये जाने से सारी हिन्दू जनता हर्ष और उल्लास से भर गयी। काशी, प्रयाग तथा भारत के अन्य विद्या-केन्द्रों एवं तीर्थस्थानों में निवास

करनेवाले विद्वान् पण्डितों ने उत्कृष्ट शैली के संस्कृत पद्य और गद्य में सौ के लगभग अभिनन्दनपत्र तथा प्रशस्तिलेख लिखकर कवीन्द्राचार्य को समर्पित किये। पट्टवर्धन महादेव भट्ट नामक एक दक्षिणी पण्डित ने तो संस्कृत और मराठी इन दोनों भाषाओं के पद्य और गद्य में लिखकर सबसे लम्बी प्रशस्ति कवीन्द्र को अर्पित की। इन प्रशस्तिलेखकों में बंगाल के प्रसिद्ध नैयायिक तथा 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' के रचयिता विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य, काव्यप्रकाश की प्रसिद्ध टीका 'तिलक' के रचयिता जयराम भट्टाचार्य, 'संस्कारमयूख' के रचयिता सिद्धेश्वर भट्ट मीमांसक, 'अद्वैतामृत' के रचयिता ब्रह्मेन्द्रसरस्वती तथा 'द्वैतनिर्णय सिद्धान्त संग्रह' के कर्ता भानु भट्ट आदि भिन्न-भिन्न शास्त्रों तथा सम्प्रदायों के विद्वान् थे। कवीन्द्र के प्रति इन प्रशस्तिकारों के हृदय में कितना अधिक सम्मान था, तथा उनके कर-विमोचन रूप उपकार के प्रति सभी लोग कितने अधिक कृतज्ञ थे, यह काशी के समस्त संन्यासियों, पण्डितों तथा महाजनों की ओर से अर्पित निम्नलिखित प्रशस्ति से प्रकट हो जाता है :—

'कवीन्द्रमोक्षवन्महाकरविमोचनपरिगृहीत श्रीभगवत्स्वरूपान्, श्रीसार्वभौमसम्मानितान्, श्रीसर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्यसरस्वतीश्रीपादान् वाराणसीवासिनः संन्यासिपण्डितमहाजनप्रभृतयः समस्तजना यथोचितकलिताञ्जलिपुटा अष्टांगीस्पृष्टभूमयश्चाशीराशीन् प्रणामांश्च निवेदयन्तो विज्ञापयन्ति।'

(कवीन्द्रन्चद्रोदय, पृष्ठ ३१)

श्री कृष्णोपाध्याय नामक एक पण्डित ने इन सब प्रशस्तियों का 'कवीन्द्रचन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ के रूप में संकलन किया। इन्होंने स्वयं भी पैंतीस पद्यों में लिखकर एक प्रशस्ति कवीन्द्राचार्य को अर्पित की थी। कवीन्द्राचार्य के व्यक्तित्व को ठीक-ठीक समझने के लिए इन प्रशस्तियों का बहुत अधिक महत्त्व है। साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी इनका महत्त्व कम नहीं है। यद्यपि इन प्रशस्तियों में कवीन्द्राचार्य के गुणों का वर्णन कहीं-कहीं अत्युक्तिपूर्ण है, तथापि ये प्रशस्तियाँ उस समय की उच्च साहित्यिक कृतियाँ हैं, अतः उनमें इस प्रकार के अलंकारों का होना अनिवार्य था।

शाहजहाँ के राज्यकाल (१६२७-५८ ई०) के अन्त में बर्नियर नाम का प्रसिद्ध फ्रेंच यात्री भारत में आय वह लगभग दस वर्षों तक यहाँ रहकर १६६७ ई० में होता हुआ वापिस लौट गया। फारस से लिखे हुए एक पत्र में बर्नियर ने काशी के एक ऐसे प्रधान पण्डि उल्लेख किया है जो उस समय सम्पूर्ण भारत में प्रसि तथा जिसका सम्बन्ध शाहजहाँ के दरबार से था जिसको उसने सफेद रेशमी धोती पहने हुए तथा रेशमी चादर धारण किये हुए देहली के प्रसिद्ध रा पर पालकी में तथा पैदल घूमते हुए देखा था। इस पण्डित के साथ बर्नियर का तीन वर्षों तक घनिष्ठ रहा। यद्यपि बर्नियर ने अपने पत्र में काशी के इस पण्डित का नामोल्लेख नहीं किया है, तथापि विद्व मतानुसार काशी का यह प्रधान पण्डित कवीन्द्रा अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था।

कवीन्द्राचार्य के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें के लिए कवीन्द्रचन्द्रोदय के समान ही बर्नियर के का भी बाह्य साक्ष्य के रूप में अपना महत्त्व है। अन्त के रूप में कवीन्द्राचार्य का स्वयं रचित ग्रन्थ 'कवीन्द्र द्रुम' (जो अभी तक केवल हस्तलेखों के रूप में ही प्र प्रधान सामग्री है। इसके अतिरिक्त कवीन्द्राचार्य की हुई टीकाओं की पुष्पिकाओं से भी उनके जीवनवृत्त परिचय मिल जाता है।

कवीन्द्राचार्य का जन्म दक्षिण में गोदावरी के स्थित 'पुण्यभूमि' में हुआ था। इन्होंने प्रधानतया ऋ आश्वलायन शाखा का अध्ययन किया था ('ऋ भ्यस्ता सांगा शाखाश्वलायनी शस्ता' क० चं०, पृ

ये अठारहों विद्याओं में निष्णात थे; चारों वे वेदांग, अठारहों पुराण, धर्मशास्त्र, योगवासिष्ठ, छन्द पाणिनि व्याकरण, महाभाष्य एवं साहित्य में पा (क० च०, १०–१२, ५७)। इनकी तर्कश वाग्मिता विलक्षण थी ('नरीनर्त्ति तर्कों यदीयः सरीसर्त्ति वाणी यथा सिन्धु धारा' क० च०, ५६)। में कामदेव के समान, विद्याओं में बृहस्पति के समान काव्य में स्वयमेव स्वयं थे (क० च० ४८)। ये समान गम्भीर, पृथ्वी के समान धीर, शुक्र के समान बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, राम के समान तथा चन्द्रमा के समान सुरूपवान बतलाये गये च० ४६, ४८)। इन्हें बलि, दधीचि और कर्ण

दार, दानी और परोपकारी कहा गया है (क० च० ६)। परम ऐश्वर्यसम्पन्न तथा वैभवशाली होने पर भी सांसारिक विषयों के प्रति बचपन से ही निःस्पृह तथा दास रहे ('निःस्पृहता विषयेभ्यः प्राप्ताशैशवसमये' क० ० ५)। अतः वेद वेदांग तथा विविध शास्त्रों के अध्ययन पश्चात् इन्होंने संन्यास ग्रहण करके ब्रह्मसमाधि का भ्यास किया :—

अधीत्य वेदवेदांगकाव्यशास्त्राणि सर्वशः।
ततः स्वीकृत्य संन्यासं ब्रह्माभ्याससमाश्रितः॥
(कवीन्द्रकल्पद्रुम)।

गोदातीरनिवासी कवीन्द्राचार्य गोदा प्रदेश को त्याग- रकृष्ण भट्ट नामक अपने भाण्डारी को साथ लेकर काशी आ बसे ('गोदातीरनिवासी पश्चाद्येनाश्रिता काशी' क० ० ४)। १६३७ ई० में शाहजहाँ द्वारा अहमदनगर का जामशाही राज्य मुगल साम्राज्य में विलीन कर दिया गया। तिक विद्वानों के कथनानुसार कदाचित् इसी राजनैतिक थल-पुथल के कारण कवीन्द्राचार्य ने काशी-प्रवास ग्रहण या होगा, परन्तु उनकी उच्च धार्मिक भावना भी उनके शी आने में कारण हो सकती है। काशी में उन्होंने अपने न, दान, औदार्य, दया, शील, संतोष, वैराग्य आदि गुणों काशी के सभी पण्डित तथा विद्वानों को प्रभावित कर या। काशी के संन्यासि-समाज एवं विद्वत्समाज ने इन्हें यानिधान', 'कवीन्द्र' तथा 'आचार्य' पदों से सत्कृत किया ० च० ७, ८, १६)। ये काशी के सर्वप्रधान पण्डित गये ('आनन्दारण्यपारीन्द्र श्रीकवीन्द्र सरस्वती' क० १०)। 'कवीन्द्राचार्य' ही इनका नाम पड़ गया और का मूलनाम (वह चाहे जो भी रहा हो) विस्मृत हो ।

कवीन्द्राचार्य के जीवन की मुख्य घटना शाहजहाँ से शी और प्रयाग पर लगनेवाले तीर्थकर को समाप्त ना है। एक मुसलमान सम्राट् द्वारा किसी हिन्दू सी के प्रभाव में आकर हिन्दुओं के प्रति इतनी क उदारता प्रदर्शित करना मुसलमानी इतिहास में अभूतपूर्व घटना थी, जो कट्टर मौलवियों तथा मान इतिहासकारों की रुचि के विरुद्ध थी, अतएव भी मुसलमान इतिहासकार ने इस प्रसिद्ध घटना उल्लेख तक नहीं किया है। कवीन्द्र-कल्पद्रुम तथा न्द्रचन्द्रोदय से ही हमें इस कर-विमोचन की घटना का पता चलता है। इस घटना का ठीक समय ज्ञात नहीं है, परन्तु कवीन्द्रकल्पद्रुम में कवीन्द्राचार्य ने स्वयं इस घटना का उल्लेख किया है (करान्मोचितौ येन काशीप्रयागौ)। 'कवीन्द्रकल्पद्रुम' का एक हस्तलेख (संख्या ३९४७) इंडिया आफिस लाइब्रेरी में है। कैटेलाग में एगलिंड्ज द्वारा दिये हुए विवरण के अनुसार इस हस्तलेख का प्रथम पत्र १६५० ई० के लगभग का लिखा हुआ है। यदि यह बात ठीक है तो यह निश्चित है कि १६५० ई० से पूर्व ही काशी और प्रयाग का तीर्थकर समाप्त कर दिया गया था।

केवल काशी और प्रयाग का ही नहीं, अपितु सभी अन्य तीर्थों का कवीन्द्राचार्य ने उद्धार किया ('अखिलतीर्थोद्धारतां संदधानः' क० च०, ५८)। इस अपूर्व उपकार से उनका यश सर्वत्र फैल गया (क० च० ११५), और वे ऐसे सम्मान को प्राप्त हुए जिसकी तुलना तत्कालीन इतिहास में कदाचित् ही मिले। जो कार्य किसीके द्वारा नहीं हो सका वह उन्होंने किया, उन्होंने असाध्य को भी साध्य कर दिखाया :—

तत्कृतं यन्न केनापि तद्दत्तं यन्न केनचित्।
तत्साधितमसाध्यं यत्कवीन्द्रयतिना भुवि॥
(क० च० ९३)

उच्च कोटि के विरक्त संन्यासी होने पर भी कवीन्द्र का ऐश्वर्य तथा वैभव कम नहीं था। उनकी अपनी भी अतुल सम्पत्ति थी। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ से भी उनको दो सहस्र रुपयों की पेंशन मिलती थी। काशी में गंगा के पावन तटपर उनका विशाल भवन था, द्वार पर द्वारपाल खड़े रहते थे, घर में अनेक रक्षक नियत थे, मुख्य द्वार पर गंगा-तरंगों से आकुल हथिनी विनोद करती थी। उनके पास सदैव ही श्रुति और शास्त्र के ज्ञानी विद्वान् जमा रहते थे, बड़े-बड़े भूपाल भी इनसे मिलने के लिए आते थे (क० च० ११३)। परन्तु कवीन्द्र इस अतुल वैभव के बीच में पद्मपत्रवत् निर्लेप ही रहते थे। उनकी यह सारी विभूति 'परोपकाराय' ही थी। वे विश्वकल्याणकारी थे (क० च० ४२), विश्वोपकार ही उनका एकमात्र व्रत था (क० च० १२६), अतएव वे निरन्तर परोपकार में निरत रहते थे ('अनवरत परोपकार-निरत', क० च० पृष्ठ २६)। उनके हृदय में दया का अटूट भण्डार था, परकष्टनिवारण में वे सदैव तत्पर रहते थे (क० च० १२२)। उनकी विद्या भी विश्वोपकार के लिए ही थी ('सर्वोपकृतये विद्या-

ऽधीता' क० च० १२६)। वे नित्य-प्रति काशी में गंगा के तट पर निर्धनों, ब्राह्मणों तथा विद्यार्थियों को सुवर्ण वितरण करते थे (क० च० ११६)। वे वस्तुतः 'दारिद्रच-विद्रावण' थे (क० च० ९८)। पूर्णानन्द ब्रह्मचारी नामक एक प्रशस्तिकार ने इनके 'कवीन्द्र' नाम का निर्वचन इस प्रकार किया है :—

(क) 'करस्य मोचनं यस्मात्, (वी), वीतरागो विवासनः। (न्द्र) द्रवति द्रविणं नित्यं कवीन्द्रस्तेन कथ्यते'। (क० च० ११४)।

अपने युग के संस्कृत के इतने महान् पण्डित होने पर भी कवीन्द्र के विचारों में संकीर्णता नहीं थी। उनके धार्मिक एवं सामाजिक विचार परम उदार थे। वे विशेषतः शिव के उपासक थे ('दासीभूतः स्मरारेः' कवीन्द्र कल्पद्रुम)। परन्तु उन्होंने कवीन्द्रकल्पद्रुम में तुलसीदासजी के समान ही भवानी, गणेश, सूर्य, नृसिंह, श्रीकृष्ण, रामचन्द्र, हनुमान, गंगा, यमुना आदि विभिन्न देवताओं के स्तोत्र लिखे हैं। दाराशिकोह, बर्नियर, दानिशमन्दखाँ (देहली के तत्कालीन गवर्नर) जैसे अहिन्दुओं को भी संस्कृत पढ़ाने में तथा उनके साथ शास्त्रचर्चा करने में वे संकोच नहीं करते थे। काशी में कवीन्द्राचार्य ने बर्नियर को वहाँके छः प्रसिद्ध पण्डितों से भी मिलाया था।

कवीन्द्राचार्य की विद्याभिरुचि प्रसिद्ध थी। काशी में उनका अपना एक बहुत बड़ा ग्रन्थसंग्रह (पुस्तकालय) था, जिसमें वेदों से लेकर बौद्धग्रन्थों तथा जैनग्रन्थों तक का विशाल संग्रह था। उनके ग्रन्थसंग्रह के सभी ग्रन्थ सुन्दर तथा शुद्ध अक्षरों में लिखे हुए थे। कवीन्द्राचार्य ने अनेक ग्रन्थ तो अपनी देख-रेख में लिखवाये थे। अल्लाबख्श नाम का उनका एक मुसलमान लेखक भी था, जिसका लिखा हुआ 'वामनसूत्रवृत्ति' नामक ग्रन्थ का हस्तलेख अब भी वर्तमान है। इनके सभी ग्रन्थों पर 'सर्वविद्यानिधानकवीन्द्राचार्यसरस्वतीनां ....पुस्तकम्' सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ है। कवीन्द्राचार्य के देहावसान के पश्चात् इस पुस्तकालय के बहुत से ग्रन्थ बाहर चले गये, जो अब भी कहीं-कहीं मिल जाते हैं। उनकी मृत्यु के कुछ समय पश्चात् इस ग्रन्थ-संग्रह की सूची एक दक्षिणी ने मराठी में लिखी। यह सूची डा० गंगानाथ झा को काशी के एक मठ से प्राप्त हुई, और बाद में यह

सूची गायकवाड ओरियण्टल सीरीज में प्रकाशि
(१९२१ ई०)। इस सूची में २१९२ ग्रन्थों का
है। सूची के आरम्भ में 'सूची सर्वविद्यानिधानक
चार्यसरस्वतीनां ग्रन्थसंग्रहस्य, वेदान्ती का बाग,
तट, बनारस' लिखा हुआ है। इस सूची में
ऐसे ग्रन्थों का नाम दिया हुआ है जो अनुपल
अथवा जिनका निर्देशमात्र अन्य ग्रन्थों में मिल
इस सूची में अष्टादश महापुराणों में देवीभागवत
नन्दिपुराण का नाम दिया हुआ है, और श्री
का नाम उपपुराणों में दिया है। इसके अ
बोपदेवकृत 'भागवत' का भी उल्लेख है।
शीर्षक में 'काशी पुराण' का नाम भी है।

कवीन्द्राचार्य का पाण्डित्य तो अगाध था। वे
सर्वविद्यानिधान थे। इन्होंने वेदों से लेकर काव्यों
पर भाष्य तथा व्याख्या लिखी है। उन्होंने ऋग्वे
भी नव्यन्याय की शैली में एक भाष्य लिखा था,
कुछ पत्र डा० हरप्रसाद शास्त्री को मिले थे।
ब्राह्मण पर भी उनका भाष्य है, जिसका एक ह
आफरेख्ट (Aufrecht) के दिये हुए विवरण के
बीकानेर महाराज के पुस्तकालय में है। उनकी दश
चरित की 'पदचन्द्रिका' टीका तो प्रसिद्ध ही है।

शाहजहाँ के कहने से उन्होंने भाषा में भी कुछ
ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें से 'कवीन्द्रकल्पलता', 'सम
तथा 'ज्ञानसार' विशेष उल्लेखनीय हैं। डा० ता
के कथनानुसार फारसी अनुवाद सहित 'ज्ञानसार
'योगवाशिष्ठसार') का एक हस्तलेख गंगानाथ झा
इंस्टीटचूट में है। यह दोहे और चौपाइयों में लिख
है। ज्ञानसार का एक दोहा निम्नलिखित है—

दुःखमय जग अज्ञ को ज्ञानी को सुखरूप।
भुवन अँधेरो आँधरन्ह औरन को जोत अनूप॥

इस दोहे से स्पष्ट है कि कवीन्द्र निराशावा
थे। वे अन्य संन्यासियों की भाँति संसार को दुःख
मानते थे। वास्तव में कवीन्द्राचार्य जैसे आस्ति
ज्ञानी के लिए दुःख तो केवल अज्ञान का प्रति
है, सर्वत्र आनन्द ही तो 'अनूपजोति' के रूप में प्र
है, इसीलिए उपनिषद वाक्य है :—

'यद्ध्येष आकाश आनन्दो न स्यात्को ह्यन्यात्कः

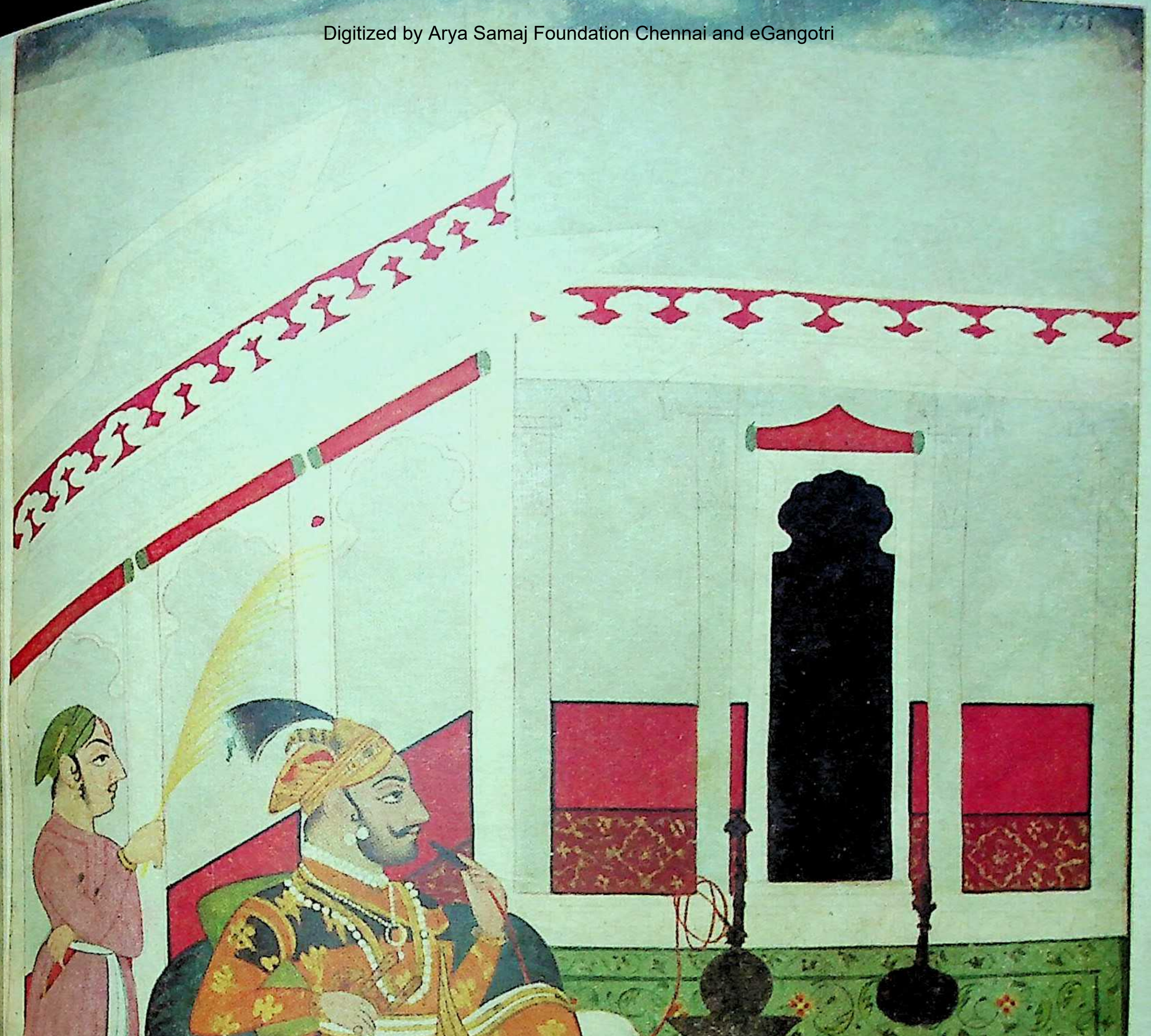

संगीत सुनते हुए राजपूत महाराज

[राजस्थानी १८वीं शती

'रामचरित-मानस' का 'काशिराज-संस्करण'

पण्डित किशोरीदास वाजपेयी

(गताङ्क से आगे)

'बायस', 'पायस' का नया विवाद

'मानस' में दुर्जन-मनोवृत्ति का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने उपमानार्थ 'कौआ' उपस्थित किया है। वह वाक्य बचपन से मेरे कंठ पर यों जमा हुआ है:—

बायस पालिय अति अनुरागा,
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा!

परन्तु बाद के सुसम्पादित संस्करणों में यह पाठ है

बायस पलिअहि अति अनुरागा,
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा!

यानी मुझे 'पालिय' याद है; बाद के संस्करणों में 'पलिअहिं' है।

परन्तु 'काशिराज-संस्करण' में यह पाठ है:—

पायस पलिअहिं अति अनुरागा,
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा!

होहिं, होइ, होय पर कोई विवाद नहीं। 'पालिय' और 'पलिअहिं' या 'पलिअहिं' पर मतभेद हो सकता है। 'निरामिष' पर मुझे कुछ विशेष कहना है; पर 'बायस', 'पायस' का तो विचित्र झगड़ा है! मुझे जो पाठ याद है, उसका अर्थ है—

"कौए को चाहे जितने प्रेम से (बढ़िया-बढ़िया चीजें खिला-पिलाकर) पाला जाये; पर वह क्या कभी (सात्विक) निरामिष हो सकता है?"

'पलिअहि' पाठ का **अर्थ** कुछ फेर-फार से होगा। 'पलिहहि' भविष्यत् कालकी क्रिया है; 'ह्' का लोप होकर 'पलिअहि' जैसे 'होहि' का 'होइ' और 'करहि' का 'करइ'। 'पलिअहि' का स्वर-व्यत्यय होकर 'पलिहइ' और सन्धि होकर 'पलिहै'। 'पालिय' का प्रयोग निवेदन और संभावना आदि में होता है; विधि में भी। 'नीम न मीठो होय दूध सों सींचिय केतो'। 'पालो' विधि या आज्ञा भी है और संभावना में भी—'चाहे जिस प्रेम से पालो'। यों 'पालिय' अधिक जमता है। किसी लिपिक ने कदाचित् सोचा हो कि 'पालिय' तो विधि हो **गयी**—'कौए' को अत्यन्त प्रेम से पालना चाहिए'! इस 'अनर्थ' की संभावना करके कदाचित् 'पलिअहि' कर दिया गया हो, जिसका बहुवचन 'पलिअहिं' है। परन्तु इधर-उधर करके अर्थ लग ही जाता है। अर्थ में कोई अन्तर वैसा नहीं पड़ता, समझने पर। **वाक्य** में 'शब्दादर्थो वलवत्तरः'—अर्थ ही पर जोर रहता है।

परन्तु 'पायस' का क्या अर्थ होगा?—

"चाहे जितने प्रेम से खीर को पालो, कौआ कभी भी निरामिष नहीं हो सकता!"

क्या मतलब? कहते हैं कि अर्थ करो—'खीर खिला कर'। यह 'खिला कर' अर्थ किस शब्द का है? ऐसी मनमानी! और, खीर पर ही अधिक जोर क्यों? कौए को न मालपुए वैसे अच्छे लगते हैं, न दाख-चिरौंजी आदि ही जैसी कि खीर; यह कैसे जाना? कोई परीक्षण हुआ है? 'अति अनुरागा' से खीर आदि सभी पदार्थ आ जाते हैं। तब फिर केवल 'खीर' पर ही बाँध देना किस काम का?

यह 'पायस' कैसे आ गया? जिन लोगों ने किसी हस्तलिखित पोथी की प्रतिलिपि कभी की है, वे जल्दी समझ जायेंगे। मैंने वृन्दावन में सन् १९१४-१५ में कई हस्तलिखित पुस्तकों की प्रतिलिपि की थी। 'परशुराम सागर', 'महाबानी' तथा 'आदि बानी' की पूरी नकल अपने हाथ से की थी। नकल करते समय चाहे जितनी सावधानी रखो, कहीं न कहीं प्रमाद हो ही जाता है। यदि किसी अक्षर की जगह कोई दूसरा अक्षर आ गया; या मात्रा आदि में गड़बड़ी हो गयी, तो तुरन्त उस पर हड़ताल फेर दिया और जो कुछ वहाँ लिखना हुआ; सूखने पर लिख दिया। हड़ताल पहले से ही प्रतिलिपिक अपने पास तैयार रखता है। कभी-कभी कोई दूसरा भी संशोधन कर देता है। 'मानस' की प्रतिलिपि करते समय किसी ने 'बायस' की जगह 'पायस' कर दिया और फिर ध्यान जाने पर 'पा' को 'बा' बना दिया। बैरागी लोगों में सबसे अधिक प्रिय भोजन है 'पायस'। खीर और मालपुए उड़ते हैं—'कारी रोटी, धौरी दाल' चलती है। उसी झोंके में 'बायस' का 'पायस' हो गया! साधारण बात **है**। आप कुछ लिखते हैं, तो कितनी भूलें होती हैं? फिर ठीक कर देते हैं; परन्तु कोई पढ़नेवाला आपके ठीक किये हुए शब्द को न लेकर उस (प्रमाद-पतित) शब्द को ही ले ले, तो क्या किया जाये? 'मानस' की पुरानी जिस प्रति से कटा हुआ 'पायस' काशिराज-संस्करण में लिया गया है, उसीमें उसका संशोधित रूप 'बायस' है। 'सभा' के संस्करण में भी 'बायस' ही है और अन्य सुसम्पादित संस्करणों में भी 'बायस' ही है। परन्तु 'काशिराज-संस्करण' में 'पायस' है और इस पाठ को इस संस्करण की 'दो चार उपलब्धियों' में प्रमुखता दी गयी है!

'बायस' से अरुचि का कारण 'पुनरुक्ति' दोष समझा गया है। परन्तु 'पुनरुक्ति' दोष 'अनित्य' है। काम न चलने पर पुनरुक्ति की जाती है। कालिदास आदि महाकवियों ने भी 'पुनरुक्ति' की है और 'मानस' में भी प्राप्य है—

हरि हित सहित राम जब जोहे;
रमा समेत रमापति मोहे।

'हरि' और 'रमापति' अलग-अलग हैं क्या ? यदि वहाँ पुनरुक्ति हटाना ही है, तो 'पायस' से न हटेगी। 'पायस' उस दोष का इलाज नहीं है; क्योंकि उससे तो कोई अर्थ ही न निकलेगा ! इससे तो वह साधारण दोष ही ठीक है। जो दवा एक साधारण रोग हटाकर बहुत बड़ा रोग पैदा कर दे, वह भी कोई 'दवा' है ? (यहाँ, दो बार 'दवा' है। पुनरुक्ति है। प्रबुद्ध पाठक ठीक कर लेंगे !) उस पद्य से 'बायस' को हटाना ही है, तो 'पायस' न देकर वाक्य यों करना होगा :--

पालिय-पोसिय अति अनुरागा,
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा !

परन्तु मैं 'बायस' को हटाने के पक्ष में नहीं हूँ। हाँ, यह जरूर समझने की बात है कि तुलसीदास ने यहाँ 'निरामिष' शब्द रखा होगा; या 'अमलरुचि' ? संभव है, पहले 'निरामिष' रखकर फिर संशोधन किया भी हो; पर सात्विक वैष्णव सन्तों को पहलेवाला पाठ 'निरामिष' ही पसन्द पड़ा हो और वही चल पड़ा हो। अरुचि का कारण 'मल' हो सकता है। काव्य में मल-मूत्र आदि का उल्लेख नहीं होता; परन्तु आवश्यकतानुसार दोष भी गुण हो जाता है। कौए के स्वभाव में मलप्रियता कही ही जायेगी; जरूरी है। आमिषभोजिता से वह बात नहीं आती, जो 'मलप्रियता' से। कौए का यह स्वभाव है। संस्कृत सूक्तियों में भी ऐसा ही है :--

तत्काक त्वयि युक्ताः कटुवाग्वैवर्ण्यधूर्तताशुचिताः।
यदि विष्ठाकृमिपुष्टे तत्र न दोषा हि तच्चित्रम् !

--सो, अरे कौए, तू जो ऐसा कटुभाषी है, काला और धूर्त है; ऐसा नापाक है; सो सब ठीक ही है। तुझमें यह सब स्वाभाविक ही है; क्योंकि पाखाने के कीड़े खा-खाकर तू पुष्ट हुआ है न ! यदि वे दोष तुझमें न होते, तो जरूर आश्चर्य की बात होती। गोस्वामीजी ने, संभव है, 'अमलरुचि' पाठ आगे-पीछे रखा हो--'होइ अमलरुचि कबहुँ कि कागा !' 'अमलरुचि' बड़ा निर्मल विशेषण है और उपमेय तक पहुँच जाता है। 'विष्ठाकृमि' जैसी वीभत्सता भी नहीं है। 'मानस' के प्रेमी और रामभक्त जनों में आमिषभोजी भी रहे हैं; हैं; और रहेंगे। सब संसार वैष्णव न हो जाएगा। ऋषियों में भी वैसे (आमिषभोजी) रहे हैं और कुछ द्विजों के लिए भी तुलसी ने 'विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा' लिखा है। तब फिर कौए को वैसा लिखने से इन सभी पर कुछ आक्षेप हो जाता है। क्या तुलसीदास को यह अभीष्ट हो सकता है ? कौए की अतिनिन्द्यता के लिए मलप्रियता ही प्रसिद्ध है। खैर, जो भी हो; पर 'बायस' की जगह 'पायस' कर देना एक प्रमाद ही है।

'घंट' और 'घटा'

दो-चार उपलब्धियों में से प्रथम का उल्लेख ऊपर हुआ। एक और उपलब्धि है 'घंट' की जगह 'घटा' पाठ करने की।

रामजी की बरात का वर्णन है। उसमें हाथियों की भी एक छटा है :--

चले मत्त गज घंट-विराजी

मस्त हाथी झूमते हुए चल रहे हैं, जो घहराते हुए घंटों से सुशोभित हैं। घंटे दोनों ओर न घहरा रहे हों, तो हाथी की क्या शोभा ? 'घंट-विराजी मत्त गज चले'। 'घंटा' का रूप 'घंट'। अन्यत्र भी 'घंट घंटि धुनि' आदि में 'घंटा' का रूप 'घंट' हुआ है।

परन्तु 'काशिराज-संस्करण' में 'घंट' की जगह 'घटा' पाठ का समर्थन-उपादान है ! यानी "**मत्त गज चले और घटा सुशोभित हुई**"; कैसे :--

मनहु सुभग सावन-घनराजी।

मानो सावन की घन-राजी (बादलों की छटा) उमड़ रही हो।

'गजघटा' और 'घनघटा' का प्रयोग तो होता है; पर केवल 'घटा सुशोभित हुई' जैसी चीज सामने नहीं आयी। 'मत्त गज चले' और तब 'घटा विराजी' क्या है ! 'घटा' सुशोभित नहीं हुआ करती है; विकंपित करती है।

मिश्रजी ने लिखा है--"इस अर्द्धाली में 'घंट विराजी' व्याकरण-विरुद्ध है। 'विराजी' क्रिया 'घंटि' पाठ चाहती है। पर हाथी के गले में 'घंटी' !"

मिश्रजी का तात्पर्य यह है कि 'विराजी' क्रिया स्त्रीवर्गीय है और इसलिए इसका कर्ता स्त्रीवर्गीय होना चाहिए--'घटा'। यदि 'घंट' पाठ हो तो 'विराजे' क्रिया चाहिए। घंटे पुंवर्गीय और बहुत हैं न ! परन्तु क्रिया स्त्रीवर्गीय एक वचन है--'विराजी'। 'घटा विराजी'। 'घंट विराजी' गलत है। यह मतलब मिश्रजी का है।

परन्तु 'घंट-विराजी' तो 'गज' का विशेषण है; कोई 'क्रिया' नहीं है। 'घंट-विराजी मत्त गज चले'। 'घंटों से सुशोभित मस्त हाथी चले'। 'घंटा' न हो, तो हाथी सूना और गड़गड़ाहट न हो, तो सावन-भादों के काले बादल भी वैसे ही ! यदि 'घंटा' न रखें, तो बादलों की गर्जना का भी आभास न मिलेगा !

सो,
'चले मत्त गज घंट-विराजी'
'मनहु सुभग सावन घनराजी'
बहुत ठीक पाठ है।

'धिग' और 'धीग' का झमेला

गोस्वामी जी ने उन पाखंडियों की चर्चा की है, जो तिलक-माला या गेरुए वस्त्रों के सहारे 'महात्मा' बन कर

लोगों को ठगते हैं। 'धर्म' का नाम लेकर मौज करना काम! इसे एक धन्धा ही बना लिया है! धिक्कार है ऐसे पाखंडियों को, जो रोटी के लिए धर्म को बदनाम करें! वे कहते हैं कि मैं भी तो वैसा ही हूँ! धर्म के ध्वज (निशान, चिह्न) जिन लोगों ने एक धन्धे के रूप में ग्रहण कर रखे हैं, उन (धर्मध्वज-धन्धकों) में मेरा पहला नंबर है; क्योंकि मैं उन सबसे अधिक पाखंडी हूँ, उनका सरगना (धोरी) हूँ--

'तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी
धिग धर्मध्वज धंधक धोरी।'

'धन्धक-धोरी'--धन्धा करनेवालों का सरगना। 'धन्धक'--धन्धा करनेवाले। 'धर्मध्वज धंधक'--धर्म के ध्वजों (तिलक-छाप आदि निशानों) को धन्धा के रूप में अपनानेवाले।

या, इस धन्धे के सरगना--'धन्धा के धनी-धोरी'। 'क' आगे आने पर ह्रस्वता--'**धन्धक** धोरी'। मतलब वही है। 'क' अवधी में आता ही है--'पितु आयसु सब **धरम क** टीका'।

मिश्रजी ने 'धिग' की जगह 'धीग' पाठ स्वीकार किया है और 'धन्धक' की जगह 'धन्ध्रक'--

'तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी,
धीग धरमधुज धंध्रक धोरी।'

इस पर उनकी उपपत्ति यह है:--"प्राचीन पाठ 'धीग धरमधुज धंध्रक धोरी' है। 'धीग' को कैसे 'धिग' पढ़ लिया गया, यह कैथी लिपि बता देगी। वहाँ 'धीग' को 'धिग' और 'धीग' दोनों पढ़ सकते हैं। जिसमें 'धीग' को 'धिग' पढ़ा, उसने 'मानस' के नियम के विरुद्ध 'धर्मध्वज' को भी पढ़ा। 'मानस' में संस्कृत के दो शब्दों के समस्त होने पर 'संयुक्ताद्यं दीर्घम्' का नियम हिन्दी-पाठ में नहीं है। 'धंध्रक' शब्द के 'र्' को अनावश्यक समझकर 'धंधक' कर दिया गया। इसके अर्थ में आज भी मतभेद है। यह (धंध्रक) 'धँधरक' का खिंचा हुआ रूप है, जिसका दूसरा रूप पूर्वी भाषाओं में 'ढँगरच' चलता है। **'ढँग' या 'ढोंग' रचनेवाला** इसका अर्थ होता है। केवल श्री विजयानन्द त्रिपाठी ने अर्थानुसारी पाठ 'धँधरच' रखा है; शेष में 'धंध्रक' का 'र' भी हट गया है। इसका कारण यह है कि बालकाण्ड की सबसे प्राचीन उपलब्ध प्रति (श्रावणकुंज, अयोध्या) में परवर्ती संशोधित पाठ 'धंधक' है। उसीमें, संशोधन के पूर्व का पाठ, 'धंध्रक' ही है। '**धंध्रक**' का अर्थ झगड़ा-ब्रखेड़ा, द्वन्द्व करनेवाला लगाया गया है।"

यानी 'धंध्रक' का अर्थ बखेड़िया लगाया गया है! परन्तु वे 'धर्मध्वज' लोग झगड़ा-बखेड़ा नहीं, शान्त रहने का अभिनय करते हैं! झगड़ा-बखेड़ा करने से तो उनका धन्धा चलेगा ही नहीं!

कैथी लिपि में उसी शब्द को चाहे 'धिग' पढ़ लो, चाहे 'धीग'! तभी तो '**धिग**' को '**धीग**' पढ़ लिया गया!

'धर्मध्वज' का (पद्य-विशेष में) संस्कृतानुसारी उच्चारण 'मानस' के हिन्दी-पाठ में न हो, यह नियम किसने बनाया है? आठवें दर्जे के किसी हिन्दी-छात्र से 'धिग धर्मध्वज' को पढ़वाकर सुनिए; ऐसे छात्र से, जो संस्कृत न जानता हो और संस्कृत छन्द शास्त्र का नियम भी न जानता हो। वह यदि यहाँ 'धर्म' के अन्त्य 'अ' पर जोर देकर पढ़े, तो 'धर्मध्वज' पाठ सही और यदि वैसा न पढ़े--'रामप्रसाद' के 'म' जैसा उच्चारण करे, तो फिर 'धरमधुज' पाठ सही।

'धंध्रक' का 'धँधरच' करके ढोंग रचनेवाला' अर्थ 'पुनरुक्ति' है। 'धर्मध्वज' का ही वह अर्थ है--ढोंगी-पाखंडी'। मालूम देता है, 'धंधक' में 'र्' भूल से लग गया था जो ठीक कर दिया गया।

बालकाण्ड की सबसे प्राचीन प्रति में जो संशोधित पाठ है, उसे न मानकर क्या सबसे नई और असंशोधित ('रफ') प्रति का पाठ प्रामाणिक माना जाये? यदि सबने 'धंधक' और 'धर्मध्वज' पाठ रखा है, तो हर्ज क्या? पर बहुमत सदा ही ठीक नहीं होता। आप अपना पाठ ('धंध्रक' वाला) रखिए। जो ग्राह्य होगा, गृहीत हो जाएगा; शेष रह जाएगा।

'मानस' में संस्कृत पद्य और उनकी वर्तनी

गोस्वामीजी ने, उस युग में, 'मानस' की रचना जन-भाषा में करके हमारे सामने अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। इससे पहले किसी भी तरह की रचना जन-भाषा में जिन्होंने की, वे या तो संस्कृत से अनभिज्ञ थे और या संस्कृत की प्रतिद्वंद्विनी कोई नई भाषा खड़ी करना चाहते थे। मलिक मुहम्मद जायसी आदि प्रथम श्रेणी में आते हैं, जो देवभाषा (संस्कृत) से अनभिज्ञ थे। अनेक 'प्राकृत'--कवि दूसरी कोटि के हैं। इन लोगों का संस्कृत के प्रति न कोई मोह था, न ममता थी। संस्कृत के कवि-पण्डित जनभाषा की कृति का मजाक उड़ाते थे; यह तो 'मानस' के प्रारम्भ में ही प्रकट किया गया है। गोस्वामीजी मर्य्यादा-पुरुषोत्तम के भक्त थे और मर्य्यादा का पालन पूर्णरूप से करते थे। जन-भाषा में 'मानस' की रचना की और शीर्ष-स्थान संस्कृत को दिया। प्रत्येक 'सोपान' के प्रारम्भ में देवस्तुति देव-भाषा में है। जनता को जो कुछ कहना-समझाना है; वह सब जन-भाषा में है।

गोस्वामीजी के मंगल-पद्यों में एक विशेषता है। 'सोपान' की कथा-वस्तु का आभास भी मंगल-पद्यों से मिल जाता है। प्रकरण के अनुसार ही वन्दना के पद हैं।

'मानस' की समाप्ति पर भी दो श्लोक संस्कृत के हैं, जो 'काशिराज-संस्करण' में भी गृहीत हैं। ये दोनों श्लोक प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं; क्योंकि तुलसीदास की न तो इनमें विनय-भावना है, और न भाव-प्रवणता ही! ये गलत-सलत भी हैं। 'मानसं तुलसीदासः **चकार**' इस 'चकार'

से तो बहुत स्पष्ट हो जाता है कि बाद में किसीने जोड़ दिये हैं। गोस्वामीजी अपने लिए 'चकार' इस परोक्ष भूतकाल की क्रिया का प्रयोग कैसे कर सकते थे? बहुत दिन बाद कोई कह सकता है––'तुलसीदासः मानसं चकार'। पद्य ही देख लीजिए :––

> **यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमम्,**
> **श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।**
> **मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः, शान्तये,**
> **भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।**

पद्य की वर्तनी हमने यहाँ संस्कृत की ही रखी है; 'काशिराज-संस्करण' की नहीं। उस वर्तनी की चर्चा आगे करेंगे। यहाँ तो पद्य-परीक्षण ही अभीष्ट है।

पहली बात तो यही कि पद्य में 'चकार' क्रिया है, जिससे स्पष्ट है कि यह जोड़-गाँठ तुलसी की नहीं, किसी तुलसीभक्त की है।

'श्री शंभुना' का विशेषण 'प्रभुणा' ठीक; परन्तु सुकविना' वैसा नहीं। 'प्रभु' तो 'कवि' है ही; वेद-प्रसिद्ध है। परन्तु वह 'सुकवि' कैसा, जो जान-बूझकर 'दुर्गम' कविता करे? सुकवि प्रसादगुण-पूर्ण कविता करता है। हाँ, सुगम चीज भी अपनी अशक्ति से किसीके लिए 'दुर्गम' हो जाये, यह अलग बात है।

'श्रीमद्रारामपदाब्जभक्तिं प्राप्त्यै' गलत प्रयोग है; 'प्राप्तुम्' चाहिए। परन्तु वह भक्ति तो उनमें थी ही; अन्यथा 'रामायण' की रचना ही क्यों करते? 'अनिशम्' क्रिया-विशेषण भी गलत है। स्मरण और ध्यान आदि का विशेषण 'अनिशम्' हो सकता है; 'प्राप्ति' का नहीं। 'प्राप्ति' रात-दिन नहीं होती रहती है भक्ति की। वह कोई व्यापार से प्राप्त होनेवाली दौलत नहीं है कि सदा प्राप्त होती रहे! यदि कहा जाता––'श्रीमद्रामपदाब्ज-भक्तिमचलां कर्तुम्' तो कुछ ठीक कहा भी जा सकता था। भक्ति जो प्राप्त है, उसे 'अचल करने के लिए'।

'रघुनाथनामनिरतम्' ('रामायणम्' का) विशेषण भी गलत है। पुंवर्गीय 'रघुनाथनामनिरतः' होता, तो 'तुलसीदासः' का विशेषण ठीक बैठ जाता। रामायण क्या 'रामनाम में निरत' होगी? वह तो चरितामृत है।

उस 'प्रभु' की बनाई 'रामायण' को 'भाषाबद्ध' किया! चरित और कथा 'भाषाबद्ध' होती है। किसी दूसरे की, दूसरी भाषा में बनी चीज को, अपनी भाषा में बाँधा नहीं जाता, अनुवाद किया जाता है! जो चरित पहले शंभु ने संस्कृत में वर्णित किया, उसे मैं भाषाबद्ध कर रहा हूँ–– भाषा में उतार रहा हूँ, यह कहना था। परन्तु 'चकार' है। तुलसीदास और 'मानस' के संबंध में कोई दूसरा ही कह रहा है।

ये अन्त के दोनों श्लोक सभी प्राप्त हस्तलिखि प्रतियों में हैं भी नहीं।

इन सब कारणों से, मेरा अनुमान है, ये दोनों श्लो गोस्वामी तुलसीदासजी के रचित नहीं हैं। उनके भा और पद हम पहचानते हैं। उनसे इनका मेल नहीं बैठता फिर भी, अनुमान ही तो है, 'इदमित्थं' कसम खाकर नहीं कह रहा हूँ।

काशिराज संस्करण की वर्तनी

काशिराज-संस्करण में संस्कृत-पद्यों की वर्तनी ध्या देने योग्य है। यहाँ वर्गीय पंचमाक्षरों की जगह अनुस्वा दिया गया है और मिश्रजी ने लिखा है कि हस्तलिखि प्रतियों के साक्ष्य पर ऐसा किया है। परन्तु साक्ष्य ग भी हो सकता है। इन प्रतियों के साक्ष्य से यह कैसे मा लिया जाये कि तुलसीदास को उतना भी संस्कृत-व्याकर का ज्ञान न था जितना कि आजकल 'प्रथमा' परी उत्तीर्ण संस्कृत छात्र को हो जाता है? कोई छात्र लि दे––'मया छंदः शास्त्रमधीत' तो परीक्षक समझ लेगा यह व्याकरण नहीं जानता। उसके नंबर कट जायें क्योंकि वाक्य गलत है। चाहिए––'मया छन्दःशास्त्र धीतम्'। संस्कृत में कहीं पर 'सवर्ण' नहीं होता; क 'नित्य' होता है और कहीं विकल्प से। सभी पद एक लाठी से नहीं हाँके जाते। मिश्रजी ने अवधी भाषा पदों में तो एकरूपता रखी नहीं है, हस्तलेखों के सा पर और संस्कृत पद्यों में सर्वत्र अनुस्वार करके एकरूप ला दी है; हस्तलेखों के ही साक्ष्य पर! 'पालि' अं 'प्राकृत' भाषाओं की वह सरणि है, संस्कृत की नहीं। हस्तलेखों का साक्ष्य तुलसीदास को गलत पेश करता है ऐसा साक्ष्य निर्णायक (न्यायाधीश) आँखें बन्द कर नहीं मान सकता। प्रथम सोपान के मंगला-चरण में देखिए––

> **वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि।**
> **मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ।**

रेखांकित पदों की वर्तनी गलत है। चाहिए––मं नाम्' 'छन्दसाम्' 'मंगलानाम्' 'वन्दे'। 'मंगलानां च' अं 'मंगलानाञ्च' वैकल्पिक रूप हैं; चाहे जैसा लिख दो यानी 'नांच' और 'नाञ्च' दोनों ठीक हैं। ये बातें संस् के प्रारंभिक छात्र भी जानते हैं; पर तुलसीदास न जान हों, यह कैसे कहा जा सकता है? हस्तलेख (हस्तलिखि प्रतियाँ) ऐसी जगह कैसे हम प्रमाण-रूप मान लें? अं जगह हस्तलिखित प्रतियों के पाठों पर मिश्रजी ने वि किया है और कई पाठ प्रामादिक माने हैं। तब सं पद्यों में सर्वत्र अनुस्वार प्रामाणिक कैसे? हस्तलि प्रतियाँ बिना सोचे-समझे सर्वत्र साक्ष्य रूप से न मा जायेंगी। प्रतिलिपिक लोग कैसे पंडित होते थे, 'पुष्पिका' आदि से स्पष्ट है। वे अक्षर की नकल

करते थे, और 'छन्द'-'छंद' में अन्तर न समझते थे। लोक-भाषा में अन्तर वैसा है भी नहीं। इसीलिए 'पालि'-'प्राकृत' में सर्वत्र अनुस्वार गृहीत हुआ। परन्तु संस्कृत की तो अपनी पद्धति है। बड़ी लाइन के इंजन को छोटी लाइन की पटरी पर चलाना ठीक नहीं। संस्कृत-पद्यों में वर्तनी संस्कृत की ही रहेगी। आप अपने हिन्दी ग्रन्थ में किसी दूसरी भाषा की कोई चीज देते हैं, तो उसे किस वर्तनी में रखते हैं?

संस्कृत पद्य जो 'मानस' में हैं, उनकी वर्तनी संस्कृत के अनुसार ही रहनी चाहिए। हाँ, संस्कृत-छाया पर जो छन्द हैं; संस्कृत नहीं, संस्कृतनुमा भाषा में जहाँ छन्द हैं, वहाँ सर्वत्र अनुस्वार दे सकते हैं। 'प्राकृत' में संस्कृत छाया पर रचे पद्य ऐसे ही हैं। उसी तरह 'मानस' के वैसे छन्दों में भी अनुस्वार चल सकता है। विचार-विमर्श के लिए इतना बहुत है।

'बड़प्पन' का 'बड़त्तन'

केहि न सुसंग बड़प्पनु पावा'

इसका 'शुद्ध' रूप मिश्रजी ने यह माना है——

'कहि न सुसंग बड़त्तन पावा'

'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका के 'मालवीय शती-अंक' में 'मानस'-पाठ पर मिश्रजी का जो लेख छपा है, उसमें लिखा है——

''मानस' का निर्माण जिस **समय** हुआ, उस **समय** अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का पूरा प्रभाव था। 'मानस' के प्राचीनतम हस्तलेखों से यह सिद्ध है कि इस ग्रन्थ में अपभ्रंश या प्राकृत के परम्परित रूपों का व्यवहार कई स्थानों पर है। उन रूपों को न समझने के कारण परिवर्तन हुए और पाठ बदल गये।''

इसके अनन्तर 'मानस' की उपर्युक्त पंक्ति उद्धृत करके मिश्रजी ने लिखा है——''इसमें 'बड़त्तनु' को न समझने के कारण उसका आधुनिक रूप 'बड़प्पनु' कर दिया गया है।''

यहाँ मिश्रजी को अपभ्रंश-काव्य के कुछ उद्धरण देने चाहिए थे, जिनमें 'बड़त्तनु' का प्रयोग हुआ है और जायसी आदि कवियों को भी गवाह के रूप में उपस्थित करना था। 'मानस' की रचना 'अपभ्रंश या प्राकृत' में नहीं, अवधी में हुई है और कोई कारण नहीं कि सामने के 'बड़प्पन' को छोड़ हजारों मील पीछे छूटे हुए किसी शब्द को ढूँढ़ कर वहाँ ला बैठाने का भगीरथ प्रयत्न गोस्वामी जी करते! 'केहि' की जगह 'कहि' छपा है!

यहीं पर मिश्रजी ने यह भी लिखा है कि

'प्रभु तन चितै प्रेम पन ठाना'

''यहाँ 'प्रेमतन' का परवर्ती पाठ 'प्रेमपन' है। अपभ्रंश 'प्रेमत्तन' का रूप 'प्रेमतन' हो गया है। जैसे 'बड़त्तन' बनाया गया 'बड़प्पन', उसी तरह 'प्रेमत्तन' का 'प्रेमतन' और फिर 'प्रेमपन'।''

यानी यहाँ 'प्रेमतन' शुद्ध पाठ है! अवधी में 'पन' भाववाचक प्रत्यय है; 'तन' नहीं! फिर भी मिश्रजी को 'तन' से प्रेम है, तो 'बड़त्तन' वे बोलें; लोग समझ लेंगे; समझ लेना चाहिए।

परन्तु वही भाववाचक 'तन' फिर 'प्रेम' के साथ कैसे लगेगा? बड़े का भाव ('बड़प्पन' न सही) 'बड़त्तन' सही; परन्तु प्रेम, स्नेह, बैर, विरोध आदि तो स्वतः भाववाचक संज्ञाएँ हैं! तब फिर इनके आगे भाववाचक 'तन' कैसे आयेगा? क्यों आयेगा? 'इनसे हमारा प्रेम है'——'प्रेमपन' नहीं; 'प्रेमत्व' नहीं; 'प्रेमता' नहीं! 'प्रेमपन' है——'प्रेम-प्रण;' वैसा ही, जैसा उमा ने ठाना था——'वरौं सम्भु न त रहौं कुमारी।' 'प्रण' का रूप 'पन' है। मिश्रजी प्राकृत-अपभ्रंश के 'तन' भाववाचक प्रत्यय को 'प्रेम' के साथ बैठाना चाहते हैं।

(समाप्त)

चोट

श्री रतिभानुसिंह नाहर

पत्थर के पाँव तले फूलों की महिमा——
छेनी की चोटों पर चन्दन की गरिमा——
अन्तर की ड्योढ़ी पर सहसा टकरा गई,
शिल्पी की मूर्ति और मन्दिर की प्रतिमा।

भारतीय संस्कृति-केन्द्र 'जावा'

पण्डित सूर्यनारायण व्यास

जावा का भारतीय नाम 'यव द्वीप' है। यद्यपि आज यह भारत से सुदूर है, तथापि यहाँ भारतीय-संस्कृति के सहज और सरल-दर्शन किये जा सकते हैं। शताब्दियों के विभिन्न संस्कारों के पश्चात् भी यवद्वीप की भारतीयता उसकी भाषा-संस्कृति, और साहित्य से स्पष्ट प्रकट होती है। अवश्य ही जावा में बौद्ध-धर्म का प्रभाव अधिक है, किंतु यह कहना कठिन है कि यहाँ आरंभ में बौद्धों ने प्रभाव डाला अथवा ब्राह्मणों ने। सिंहल-द्वीप में बौद्धों के पूर्व आर्यों का प्रसार हो गया था। इससे विदित होता है कि इन द्वीपों में आर्य-संस्कार बहुत पहिले प्रविष्ट हो चुके थे।

बालि द्वीप में दो प्रकार की लौकिक-भाषाएँ हैं, और दो लेखन की भाषाएँ हैं। मूल देश्य-जनों की भाषा—मलाई और सूडानी है। जावा के ग्रंथों की भाषा आधुनिक-प्रचलित जावानी-भाषा से सर्वथा भिन्न है। आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व जावा में मुसलमानों का प्रवेश हुआ था। उसके पूर्व जो हिन्दू इस प्रदेश में गये, उन्होंने प्रस्तुत प्रचलित-भाषा का प्रचार किया था। वही आज यहाँ की लौकिक-भाषा बनी हुई है।

हिन्दुओं के साथ जावा में संस्कृत ने प्रवेश किया। बहुत समय पूर्व बाली में एक 'निरर्थ' नामक ब्राह्मण गया था। उसने वहाँ एक ग्रन्थ "काकसमुच्चय" निर्मित किया, परंतु इस बात को प्रमाणित करने के लिए आज कोई आधार उपलब्ध नहीं है।

जावा की शासन-व्यवस्था का भारतीय व्यवस्था से अद्भुत साम्य है। राजा, रानी, मंत्री तथा अधिकारियों के नाम भारतीय-परम्परा के अनुरूप ही मिलते हैं।

जावा में प्रकाशित 'नागरिक-कृतागम' नामक काव्य ग्रंथ में अमात्य, पुरोहित, धर्माध्यक्ष आदि ४३ नाम ऐसे उल्लिखित हैं, जिनसे हमारी परम्परा पूर्ण परिचित चली आ रही है। अवश्य ही शासनाधिकारियों के नामों में 'जलधि-मंत्री' आदि कुछ नाम ऐसे हैं, जिसकी संभवतः हमें आवश्यकता नहीं हुई होगी। जलधि-मंत्री समुद्रमंत्री का पद है। परतु अन्य अनेक नाम ऐसे हैं जिनका हमारे उपयोग होता रहा है। जैसे—अमात्य, अध्यक्ष, अ राज, अधिमंत्री, आर्य, उपमंत्री, पति, पुरोहित, मं महागुरु, महाधिकार, वीर प्राण, युद्ध-मंत्री, राज-परा राजाध्यक्ष, राजाधिकार, राजाधिराज, वीरमण्ड वीराधिकार, वृद्ध-मंत्री, शूराधिकार, सिंहाधिकार, सु त्तम, सुधर्मोपपति, स्थापक आदि।

भारत की तरह ही जावा में भी चतुर्वर्ण का समा महत्त्व था। वर्षगणना के लिए वहाँ शालिवाहन-शक प्रचार था, और काव्य-निर्माण में ऐसे अधिकांश-श का प्रयोग हुआ है जो उत्तर काल में भारत में प्रच थे। नीति ग्रंथों में भारतीय कामन्दकीय नीति प्रचार भी जावा में हुआ है। अवश्य ही हमारे प्र नाट्य-साहित्य का जावा में प्रवेश दिखाई नहीं लगता है जिस समय भास-कालिदास के काव्य-ना से हमारे देशवासी अज्ञात थे, उस समय भारतीयों ने में प्रवेश किया होगा।

जावा के लोग प्रथम शैव-भावना-प्रधान थे, भारत में बुद्ध को विष्णु के अवतारों में माना गया है, जावा के बुद्ध 'शैव' हैं। जावा वैष्णव-धर्म से अपरि नहीं रहा है। वहाँ पुराकाल की विष्णु मूर्ति भी होती है। इससे यह अनुमान होता है कि जब पौरा ब्राह्मण-ग्रंथों का अवतरण हुआ, और उनका पर्याप्त प्र प्रसार नहीं हुआ उस समय भारतीयों का जावा से हुआ होगा। भारतीयों का, भाषा संस्कृत होने के जावानी भाषा में उसका व्यापक प्रवेश हो गया है। ग्रंथ-निर्माण, धर्म, और अध्यात्म की वस्तुओं में का अधिक प्रयोग हुआ है। और लौकिक-भाषा के होते हुए भी उसमें संस्कृत समाविष्ट है। जावा में को एक पवित्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया गया जावा-वाली में चारों वेद उपलब्ध नहीं हैं। किंतु अधिकांश महत्त्वपूर्ण भाग मिलता है। वेद के

ब्रह्माण्ड-पुराण मिलता है। बाली में शैव का प्रभुत्व रहा है। तुतुर अर्थात् तत्व-ग्रंथ (तंत्र) भी मिलते हैं, परंतु यह पुरोहितों और साधारण समाज के लिए भिन्न-भिन्न रूप में हैं। जैसे पुरोहितों के लिए बुवन-संक्षेप (भुवन-संक्षेप), भुवन कोष, वृहस्पति तत्व, सार-समुच्चय, तटव ज्ञान, कंदमन, तम्भक-मोथी आदि।

साधारण-समाज के लिए—राजनीति नीतिप्रण, कामंदकनीति, नर नाट्य, रण जन्म (रण-यज्ञ) और तिथि दशगुणित आदि। संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद, रामायण, महाकाव्यों के रूपान्तर आदि।

रामायण के ६ काण्ड ही जावा में प्रचलित हैं। उत्तर कांड एक स्वतंत्र-ग्रंथ के रूप में प्राप्त है। मि० वेबर ने इससे यह अनुमान लगाया है कि भारत में रामायण के साथ जब उत्तर कांड जोड़ा नहीं गया था तब ६ कांड जावा में प्रचलित हो गये थे। जावा में महाभारत नहीं मिलता, किंतु उसके कर्त्ता का नाम, और १८ पर्वों का पता जावावासियों को था। ६ पर्व तो वहाँ मिलते भी हैं।

कविरायण के कर्त्ता—रामकुसुम के पुत्र हेम्यू-दर्पण द्वारा रचित 'समरदहन' काव्य मिलता है जो संभवत: 'कुमारसंभव' का रूपान्तर है। इसी प्रकार 'सुगान सतक' काव्य के लिए मि० वेवर का कथन है कि वह रघु-वंश का स्वतंत्र अनुकरण है। एक 'बोम काव्य' है जो भौमकाव्य' ही है। इसमें भौम (मंगल) को भारतीय रणा के अनुरूप 'पृथ्वीपुत्र' ही माना गया है। इसी कार 'अर्जुन विजय-काव्य' रामायण के उत्तर-काण्ड कथा से सम्बन्धित है। एक अन्य 'सुतसोम' कथा ग्रंथ जिसमें अनेक कथाओं का वर्णन है। क्या ही उत्तम हो जावा में उपलब्ध इन ग्रंथों का अनुवाद भारत में भी काश पा सके! यह आवश्यक है।

जावा के शासकों और भिक्षुओं ने साहित्य-निर्माण परम्परा को बनाए रखा है। जावा में अन्य साहित्य की ह धर्मग्रंथों की भी पर्याप्त रचना हुई है। यह जानकर श्चर्यमुग्ध होना पड़ता है कि जावा का धर्मशास्त्र भी -प्रणीत ही है। यहाँ उसे 'प्रवु-मनु' कहा गया है। के अतिरिक्त पौराणिक-साहित्य भी पर्याप्त है। जैसे—स्त्य पर्व, अर्जुन-प्रबंध, सहस्रबाहु, अर्जुन-विजय, अर्जुन-विवाह, भारत युद्ध, भीष्म पर्व, भीम काव्य, कुंति-काव्य, नव रुचि। इनके सिवा जावा के पंडितों की निर्मित स्वतंत्र रचनाएँ भी पर्याप्त हैं। गद्य-साहित्य भी काफी है। एक पुस्तक बाबद संगूकल (भारत शृंखला) में पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर जावा में भारतीयों के प्रवेश निवास आदि का वर्णन, तथा भारतीय अवतारों की पौरा-णिक—रूपक-कथा का विस्तार भी है।

भारत के कथा सरित्सागर और कादम्बरी की तरह जावा में विविध कथा-साहित्य भी है। किंतु इनमें सिंहा-सन बत्तीसी से लेकर मुसलमानी कथाओं का भी समावेश हो गया है। परंतु इनका क्रम विचित्र है। ऐतिहासिक व्यक्तियों का पौराणिक-पुस्तकों से रोचक-सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। पंचतंत्र की कथाओं की तरह भी कई कथाएँ मिलती है।

भारतीय-काव्यों में जिस प्रकार अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है उसी तरह जावा में भी कई छन्दों में काव्यों का प्रणयन हुआ है।

शार्दूलविक्रीड़ित, कृतिसूर्य, अन्त्यष्टि सूत, सुवहना, स्रग्धरा, मन्दाक्रांता, वसन्ततिलका, मात्रा, वर्ण आदि में भारतीय हैं।

जावा के प्रसिद्ध-ग्रंथ 'नागरकृतागम' का एक शार्दूल-विक्रीड़ित छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है।

'तिक्कम् भक्ति सिरान् मके बुदि सिरा श्रीराजपटतीश्वरो।
सरमानुत् व्रतपक्ष सोगत स संस्कारे दगन् संग्विजाः।
तंसा श्रीकृत वर्धनेश्वर पिता ये श्रीनरेन्द्राधियः,
संदेयाय पगेः सिरेग्सुगत मार्गाग्दे सुका निग्जगुः।'

(—नागरकृतागम ३–१)

यह विशुद्ध शार्दूल-विक्रीड़ित छंद का उदाहरण है, जिसमें संस्कृत का कितना अधिक प्रभाव है, यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इसी तरह जावानी साहित्य में आयुर्वेद, कामशास्त्र, दर्शन आदि पर भी ग्रन्थ हैं। जावा में भारतीय संस्कृति के प्रभाव के दर्शन वहाँके स्थानों, नगरों और कथा एवं वीथियों के नामों में पर्याप्त होते हैं। वे नाम हमें परकीय प्रतीत ही नहीं होते। जैसे—अंतःपुर, अंतर-शशि, अन्ध, अधि-वसुधा, अमृतवाहिनी, अमृत-सभा, अयोध्यापुर, अधि-राज्य, आर्य, ईशान, वज्र, ईश्वर-ग्रट, कण्डव वन, (खाण्डव वन), कमल मण्डक, कर्णाटक, कांचि, कांचिपुरी, कम्बोज,

कुटी, रत्न पंकज, कुमुद, कुलनंदन, केतकी, गृहस्थ, चम्पा, जगद्धित, जम्बूद्वीप, जय, जयकृत, जलगिरि, तरुण, तरुणध्वज, ताल, श्रीफल, धर्मनगरी, नंदनवन, नन्दीनगर, नील कुसुम, नीरांजन, वकुलपुर, वज्रलक्ष्मी, वज्रासन, रंगपुर, रति-मन्मथाश्रम, लोचन, सिद्ध मात्र, हिमवाक्, सुगतासन, इत्यादि। इन नामों को पढ़कर शायद आज का भारतवासी भी आत्मनिरीक्षण करने को विवश होगा कि वह किस प्रकार पश्चिमाभिमुखी प्रवृत्ति में है, जब कि जावा भारतीय संस्कृति का अब भी समाराधक बना हुआ है।

जावा में अब भी ब्राह्मणों का निवास है और वे बौद्धों के तिरस्कार की वृत्ति लिये हुए हैं। वे अपने को शैव मानते हैं। नगर में ब्राह्मणों का आवास पूर्व भाग में है; और दक्षिण की ओर बौद्धों का निवास है। ब्राह्मणों में पर्व, उपवास आदि होते हैं। कर्मकाण्ड की प्रवृत्ति है। पंचांग-निर्माण, ज्योतिष की जानकारी भी उनमें है। वे भारतीयों की तरह आज भी धोती पहनते हैं। वहाँ देवों की उपासना, यंत्र-मंत्र और तंत्रों का भी प्रचलन है। जावा में स्त्रियों को भी वेद का अधिकार है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि जब भारत में स्त्री को वेदाधिकार निषिद्ध हुआ उससे पूर्व ही जावा में ब्राह्मणों का प्रवेश हो चुका होगा।

यहाँ चांद्र-मास मानने की पद्धति प्रचलित है और भारतीय पंचांगों का उपयोग होता है। इतिहास साक्षी है कि भारत के कई पंडित बौद्धकाल और उसके पश्चात् धर्म प्रचार के लिए जावा-सुमात्रा-स्याम आदि देशों में गये थे। दो हजार वर्षों से ऊपर का समय हो गया है इन द्वीपों से हमारा सम्बन्ध बना हुआ है। ये द्वीप बृहत्तर-भारत के अंग बने हुए थे। इसलिए भारतीय-संस्कृति का प्रभाव बना रहना स्वाभाविक ही है। पराधीनता के काल में भारतीयों ने विवश हो अपनी संस्कृति के प्रति उपेक्षा की हो, किंतु जावा-सुमात्रा-स्याम आदि द्वीपों ने अपनी संस्कृति को सुरक्षित बनाए रखा है। उनके नाम, धाम, काम, वेश-भूषा में आज भी वह जीवित-जागृत है, साहित्य-संस्कृति में उसका निखरा हुआ रूप स्पष्ट दिखाई देता उनके संस्कारो में भारतीयता पद-पद पर प्रकट है। य के विश्वविद्यालय में जो स्थान संस्कृत को है, और नार में जिस प्रकार संस्कृत में अभिरुचि है, वह हमारे स्पर्धा का विषय ही है। उनके विद्यापीठों में 'महा वि के पद की प्रतिष्ठा है। विद्वान्, और महा विद्वान् उपाधि दी जाती है। और 'गाऊन' की जगह पीत धान की प्रतिष्ठा है जब कि हम पश्चिम के अन्धानु में प्रगतिशील हैं! विविध संस्कारों, उत्थान-पतनों चक्रव्यूहों में पड़कर भी इन द्वीपों ने भारतीय-संस्कार आस्था सुरक्षित रखी है। इसलिए अलग रहते हुए भारतीयता की साक्षी सुरक्षित किये हुए हैं। प्राचीन द्वीप, और वर्तमान-जावा हमारी संस्कृति-शृंखला अटूट-कड़ी है।

सरिता का जल

श्री सुदीप

कल-कल करता सरिता का जल
लहर-लहर मन उठता प्रति-पल।

लहर-लहर में तान छिपी है,
लघु-लघु कण में जान छिपी है।
मृतकों को देता नवजीवन,
कितना सुन्दर रस-संजीवन।

जगती का नित धोता आंचल,
कल-कल करता सरिता का जल।

गुरुकुल कांगड़ी

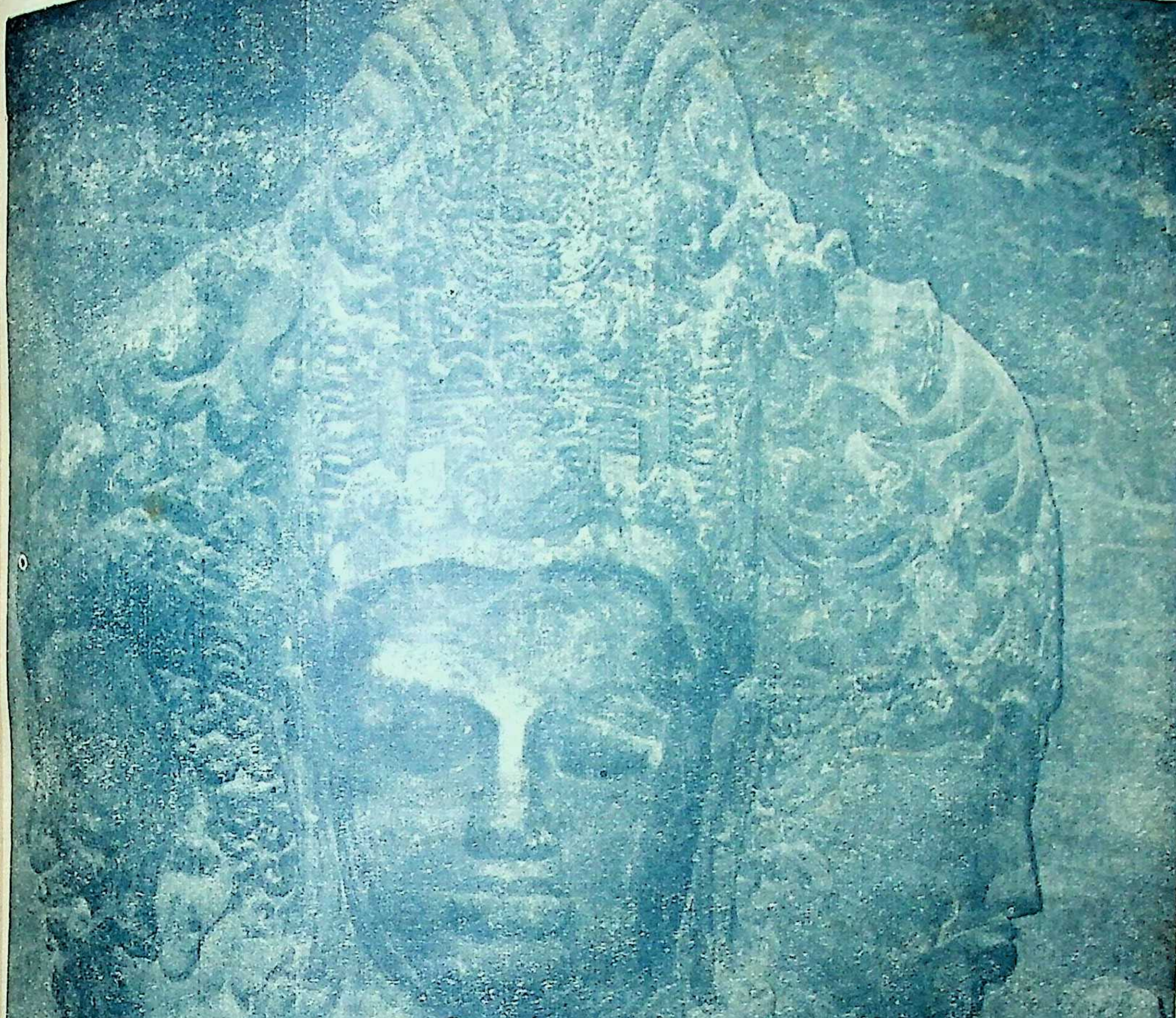

ग्रीस के नरेश अपनी महारानी और राजकुमारी सहित एलीफेंटा (बम्बई) में प्रसिद्ध त्रिमूर्ति देखने गये।

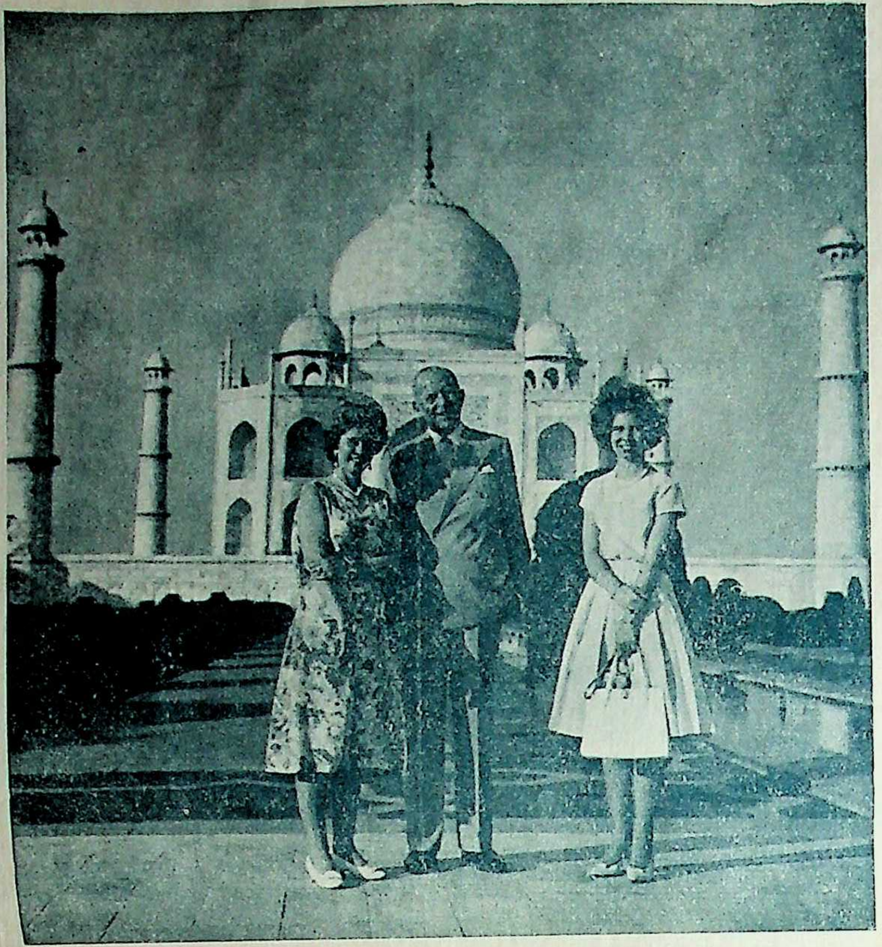

ग्रीस-नरेश अपनी महारानी और राजकुमारी सहित ताजमहल में। ये पिछले महीने भारत की यात्रा करने आये।

कम्बोडिया के शासक राजकुमार नरोतम सिंहानुक अपनी महारानी सहित एलौरा के एक गुफा मंदिर में। ये पिछले महीने भारत की यात्रा करने आये।

साहित्य में सच्चा अनुसन्धान

प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय

"द्रोणाचार्य की अन्तिम रात्रि" शीर्षक लेख नवम्बर १९६२की सरस्वती पत्रिका में छपा है। लेखक श्री सुरेशचन्द्र जी हैं जिनसे मैं परिचित नहीं हूँ। भाषा रोचक है, कथाक्रम में कौशल है परन्तु कल्पना कपोल-कल्पित, पूर्ण रूप से मिथ्या है। द्रोणाचार्य के चरित्र पर भयंकर आक्षेप ही नहीं, दारुण परशु-प्रहार है, कुठाराघात से भी बढ़कर। उनके समस्त जीवन को जड़-मूल से खोदकर ही नहीं बहाया है, उनके शिक्षक धर्म की बोटी-बोटी काट डाली है, उनकी आत्मा तक पर बारम्बार "वार" किया है। यह अनुचित है।

लेखक शिक्षक वर्ग की दीन-हीन-मलीन दशा दिखलाने के लिये महाभारत काल के राजाओं ही का नहीं, समस्त भारतवर्ष के राज्यवंशों का, क्षात्र प्रकृति का अपमान करता है। यह प्रकट है कि ऐसा सर्वव्यापी दोषारोपण अपने आप ही अपना गौरव खो बैठता है। किमधिकम्।

परन्तु क्षात्र-प्रकृति को नीचा दिखाना इस समय तो विशेष रूप से उपयुक्त नहीं है। ब्राह्मण का केवल बदला लेने के लिये क्षात्रवृत्ति को भी स्वीकार करना अत्यन्त अनुपयुक्त कहा जावगा। विशेषकर, जब वह पूर्ण रूप से असत्य है। बदला लेने की भावना इसमें नहीं थी। द्रोण द्रुपद की "भेंट" के पहले अस्त्र विद्या में पारंगत हो गये--परशुराम से भी।

मैं यहाँपर केवल द्रोणाचार्य के चित्रण को लूँगा।

(१) द्रोणाचार्य की अन्तिम रात्रि उनके शिविर में नहीं बीती। वह जयद्रथ-वध के बाद जो घोर रात्रियुद्ध दोनों ओर से हुआ और जिसमें घटोत्कच कर्ण द्वारा मारा गया उसकी व्यग्रता और संचालन में व्यतीत हुई।

(२) इसी रात्रि में "वीर श्रेष्ठ जयद्रथ" को 'सर्वम् कुशलम्' की रिपोर्ट संध्या समय लेटे सेनापति को भेजना उपहासास्पद है क्योंकि जयद्रथ-वध तो उसी दिन संध्या को सूर्य रहते हुआ था और उसका शिर उसके पिता की गोद में जा गिरा था!

(३) कृष्ण और अर्जुन का द्रोणाचार्य के पास आना और बिना कुछ कहे वापिस हो जाना ऐसी कल्पना है जो बिलकुल व्यर्थ है। तब संध्या के उपरान्त चाँद नहीं निकल आया था। आधी रात से अधिक की घोर अंधकार में लड़ाई के बाद निकला था, व्यास ने कहा है, "कामिनी कपोल की तरह"! द्रोण का अश्वत्थामा-प्रेम गुप्त नहीं था। विदुर जानते थे कौरवी मन्त्रणाओं से। जब श्रीकृष्ण उनके यहाँ दूत होकर ठहरे थे, विदुर ने कृष्ण से कह दिया होगा। विदुर को युधिष्ठिर प्रिय थे परन्तु उन्हें बतलाने का कोई समय नहीं आया। कर्ण और शकुनी तो यों ही दुर्योधन के कान भरा करते थे कि द्रोणाचार्य अश्वत्थामा को भारत की राजगद्दी देना चाहते हैं और छिपे पाण्डवपक्षी हैं। लेखक ने यह भाव खुलकर यों नहीं व्यक्त किया क्योंकि यह पूर्ण असत्य था। कर्ण अपने से श्रेष्ठ धनुर्धर द्रोण का तेजोवध करना चाहता था, परन्तु वह इतना नीच नहीं था कि जब उसका तेजोवध करने वाले भीष्म चलनी होकर गिरे तब वह द्रोणाचार्य के गुण न स्वीकार करता। उनको सेनापति बनाने का प्रस्ताव उसीने किया और अपनी झूठी चुगली का पाप धो डाला। द्रोण ने कर्ण को युद्ध छोड़ने से नहीं रोका। कर्ण के 'मोटिव' व्यासजी ने पूर्ण रूप से लिखे हैं।

(४) "अग्निमित्र" भूल है अग्नि वेश्य के लिये।

(५) द्रोण ने पाण्डवों को कौरवों से अधिक शिक्षा नहीं दी, केवल अर्जुन को दी क्योंकि उसने अपने को उस शिक्षा का पात्र प्रमाणित किया था।

(६) द्रोणाचार्य ने कौरवों की आत्मश्लाघा नहीं बढ़ाई।

वह सर्वदा दुर्योधन से पाण्डवों का उनका न्यायानुसार भाग देने को कहते थे।

(७) जब शिक्षाकाल में द्रोणाचार्य ने समान भाव रखा तब आगे किसी स्थल पर उनका किसी भाँति का पक्षपात वेदव्यास या वैशम्पायन ने नहीं कहा है। वह सम्राट् के शस्त्र गुरु थे धर्मगुरु नहीं। युधिष्ठिर और दुर्योधन के राजगुरु पुरोहित दूसरे थे।

(८) एकलव्य को शिक्षा द्रोणाचार्य ने नहीं दी। रामकुमारजी वर्मा उनको केवल राजकीय शिक्षक मानते हैं जो दूसरी जातियों को शस्त्र-शिक्षा नहीं देते थे। एकलव्य की अंगुष्ठ दक्षिणा माँगना वह अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की द्रोण-प्रतिज्ञा और अर्जुन की प्रार्थना पर मढ़ते हैं। मेरे विचार में द्रोणाचार्य निषादों की दस्यु प्रवृत्ति अच्छी भाँति जानते थे। उनके रक्षक और भक्षक दोनों रूप पहचानते थे, और आगामी अहित न होने की आशंका ही से उन्होंने ऐसा किया। उनका विचार सत्य निकला क्योंकि इतने पर भी एकलव्य ने मिथ्या वासुदेव पौण्ड्रक से मिलकर द्वारका पर रात्रि में छापा मारा और प्रातःकाल कृष्ण के आने पर उनके द्वारा मारा गया। द्रोणाचार्य पर धर्मभंग का लांछन नहीं लग सकता जैसे शम्बूक के तपस्या करने पर प्राणदण्ड देते समय भगवान् रामचन्द्र ने कहा था कि एक दण्डनीय ब्राह्मण को क्षमा करने से महाराजा मान्धाता का विनाश हुआ ईश्वरीय दण्ड से, राजधर्म न पालन करने पर। एकलव्य दण्डकारण्य से नहीं आया था। निषाद प्रत्येक नदी तट पर थे। कुरुक्षेत्र में भी थे। द्वारका और कौरव राज्यों के बीच में उनका भी राज्य था। लेखक का अध्ययन छिछला है।

(९) "मैंने किसी राजपुत्र पर विश्वास नहीं किया"—नितान्त असत्य है। द्रोणाचार्य का युधि
की सत्यपरायणता पर इतना विश्वास था
वह यह भी मानते थे कि उन्होंने युधिष्ठि
पकड़ने की प्रतिज्ञा दुर्योधन से की थी
वह युधिष्ठिर को नहीं डिगा सकेगी। श्री
की "कूटनीति" केवल युधिष्ठिर की, भावी
राज की इसी सत्यपरायणता की परीक्षा
उसमें युधिष्ठिर उत्तीर्ण नहीं हुए क्योंकि उ
दुविधा का उत्तर दिया। सत्य का पा
दुविधा से दुरंगी चाल से नहीं होगा इसी
"नरोवा कुंजरोवा" शंखनाद में लोप हो
और युधिष्ठिर की चूक पर ऐसा माया
आवरण पड़ गया कि उन्हें माया का नरक
भोगना पड़ा। यह कृष्ण की योगमाया
थी। केवल असत्यभाषियों को शिक्षा,
शिक्षा—जिसका फल द्रोणाचार्य ने भी भु
अपने शिष्य-प्रेम से। न युधिष्ठिर ने साफ
भीमसेन को झूठा कहा, न अर्जुन ने धृष्ट
को व्यावहारिक रूप से रोका।

(१०) शिक्षकों को वर्तमान दुर्दशा से निकालने
सरकार ने कई बार असफल प्रयत्न किया
अब तो बलिदान का समय है, युद्ध में योग
का। भारतीय शिक्षकों ने कभी वर्ग को
से नहीं लड़ाया, न इसकी कल्पना ही की
धर्म की तो दूर रही। आजकल शिक्षकों
अपने धर्म-पालन का अपूर्व अवसर आया
धर्मयुद्ध का महाद्वार खुल गया है। धर्म जी
धर्म द्वारा। सत्य द्वारा शस्त्र च शास्त्र च
का अधिकार ब्राह्मणों को है—विशेषकर
त्काल में, वा राजाज्ञा से, वा जब क्षत्रियों
रक्षा न हो सके। कल्पना से एक पवित्र च
पर मिथ्या लांछन लगाना अत्यन्त अनुचि
साहित्य में अपराध है। सरस्वती का अप
है।

* * *

मंगल : हमारा रहस्यमय पड़ोसी

डा० अरविन्द मोहन

सौर मडल में मंगल ही एक ऐसा ग्रह है जो हमारी पृथ्वी से मिलता-जुलता है। पृथ्वी से किये गये निरीक्षणों के फलस्वरूप ऐसे प्रमाण मिले हैं कि कदाचित् मंगल ग्रह में किसी भाँति की चेतन-सृष्टि या जीवन हो। इसीलिये कृत्रिम उपग्रहों द्वारा मंगल के धरातल की खोज-बीन पर इतना जोर दिया जा रहा है।

पिछली शती में मंगल की जानकारी दूरबीनों से की गयी। इसका सूर्य के चारों ओर प्रदक्षिणा का पथ दीर्घवृत्ताकार है जिसकी सूर्य से न्यूनतम दूरी लगभग १३ करोड़ मील, तथा अधिकतम दूरी साढ़े पंद्रह करोड़ मील है। पृथ्वी व मंगल की न्यूनतम दूरी साढ़े तीन करोड़ मील तथा अधिकतम बीस करोड़ मील है जब क्रमशः दोनों ग्रह सूर्य के एक ही ओर अथवा आमने-सामने होते हैं।

आकार रूप-रेखा

मंगल का अध्ययन प्रति दो वर्षों में एक बार संभव होता हैं जबकि पृथ्वी के यह समीप चला आता है। सूर्य का एक पूरा चक्कर करने में मंगल को ६२७ दिन लगते हैं अर्थात् इसके एक वर्ष में ६२७ दिन होते हैं। मंगल की ओर अंतरिक्ष राकेट आदि छोड़ने का उपयुक्त समय दो वर्षों में इसी क्रम से आता है।

मंगल एक छोटी दुनिया है--पृथ्वी की आधी, और चंद्रमा के दुगुनी आकार की। इसका व्यास ४,२०० मील का है। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर इसका व्यास कम है--सौर मंडल में ऐसा अन्य ग्रहों में कहीं भी नहीं देखा गया है। अतः इस रहस्य की खोज करना विज्ञान का एक लक्ष्य है।

मंगल पृथ्वी से बहुत हलका है। उसका भार या बल पृथ्वी का दसवाँ अंश है। धरातल पर मंगल की गुरुत्वाकर्षण शक्ति (जिस बल से वह प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचता है) पृथ्वी की लगभग तिहाई है। अतः यंत्रों से लैस अंतरिक्ष यात्री मंगल पर केवल ४० या ४५ किलोग्राम भारी होगा। इस कम आकर्षण के कारण वातावरण का घनत्व मंगल से काफी ऊपर तक समान रहेगा जबकि पृथ्वी से आध मील ऊपर हो। वायु के घनत्व में अत्यधिक कमी हो जाती है।

इसका एक दूसरा परिणाम यह है कि मंगल से छूटते समय पृथ्वी के राकेट को केवल ३ मील प्रति सेकेंड की गति आवश्यक होगी जबकि पृथ्वी से निकलने के लिए इसका दुगुना वेग आवश्यक होता है।

मंगल के दो चंद्रमा हैं: फोबोस व डीमोस उनको कहा गया है। इनका व्यास लगभग १० मील से भी कम है। फोनोस मंगल के धरातल के अत्यन्त समीप है तथा ७ घंटे ३९ मिनट में एक चक्कर पूरा करता है--स्वयं मंगल अपनी धुरी पर एक चक्कर इससे भी कम समय में पूरा करता है। अतः वहाँ का एक दिन हमारे दिन का चौथाई अवधि का होता है।

मंगल का रंग लाल दिखता है। धारणा रही है कि धरातल का तीन चौथाई क्षेत्रफल मरुस्थल है। मंगल का लाल रंग इसलिए है कि मरुस्थल की बालू में लोहे का आक्साइड (मोरचा समान) या अन्य कोई धातु का मिश्रण है। मंगल का वायुमण्डल भारी गैसों से युक्त है। इसमें हाइड्रोजन या हीलियम का अभाव होगा। आक्सीजन की जोरदार खोज की गयी, पर मंगल के वायुमंडल में आक्सीजन का कोई पता न चला। कार्बन-डाइ-आक्साइड निश्चय रूप से वहाँ के वायुमंडल में है।

जलवायु, ऋतु व वातावरण

मंगल पर पानी का भी अभाव अखरता है। पृथ्वी के मरुस्थलों में मिलनेवाले पानी की न्यून मात्रा का भी केवल एक सौवाँ अंश मंगल पर है। धरातल की चट्टानों में पोटैसियम का प्रमाण मिला है और इसके रेडियो विकीरण से आरगन बनकर वायु में होगी। यद्यपि नाइट्रोजन का होना प्रयोगों द्वारा सिद्ध न हो सका परन्तु धारणा है कि इसीकी अधिकता मंगल पर होगी।

पृथ्वी के ऊपर ११ मील पहुँचने पर वायु का दाब जितना है वही मंगल के धरातल पर है—८० मिली बार—जो पृथ्वी की धरातल पर वायु दाब का दसवाँ अंश भी नहीं है। परन्तु मंगल की गुरुत्वाकर्षण की कमी के कारण धरातल से १७ मील ऊपर का वायुदाब पृथ्वी के इतने ही ऊपर के दाब से अधिक ही है।

मंगल के ऊपर तीन रंग के बादल पाये जाते हैं : नीले, पीले और सफेद। इनमें से दो तो मंगल के खास बादल हैं, तथा सफेद बादल पृथ्वी से मिलते-जुलते बादल हैं। मंगल पर पवन तथा आँधियों की गति व दिशा का ज्ञान इन बादलों के निरीक्षण द्वारा किया जाता है। ६० मील प्रति घंटे तक की पवन मंगल पर 'देखी' गयी है।

उपरोक्त ज्ञान के सहारे मंगल की ऋतु का अध्ययन संभव है। सूर्य से मंगल की दूरी जानने पर उस पर पड़ने वाली ऊष्मा फलतः उसपर तापमान की गणना की जा सकती है—यह शून्य में ४० डिगरी कम तापमान है। मंगल का वर्ष हमारे दो वर्षों के समान है। अतः ऋतुयें लम्बी हैं और समान नहीं होतीं क्योंकि मंगल सूर्य के चारों ओर गोलाकार पथ पर नहीं परिक्रमा करता। दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म काल १६० दिन, शीतकाल १८२ दिन, शरद १९९ दिन तथा बसंत १४५ दिन के होते हैं।

दिन में ग्रीष्म काल का तापमान ७०° फे० तक हो जाता है जबकि मंगल सूर्य के निकटतम हो गया हो। परन्तु जाड़ों में कभी भी तापमान बर्फ के जमने के मान ३२° फे० के ऊपर नहीं उठने पाता। रात्रि में अत्यन्त शीत वातावरण रहता है : मध्य भागों पर शून्य से ७०° कम तथा ध्रुवों पर १५०° कम तक पाया जाता है।

बर्फीले प्रदेश व विचित्र वनस्पति

मंगलग्रह की एक विशेषता उसके ध्रुवीय क्षेत्रों का बर्फीला आवरण है जो मौसम के साथ हटता बनता रहता है। शीतकाल में इनका क्षेत्रफल ४० लाख मील तक हो जाता है। वसंत आते ही यह कम होकर केवल भूमि पर काले धब्बे छोड़ता है जो कि आवरण को कई टुकड़ों में बिखरा देते हैं। शीतकाल में पूरा ग्रह श्वेत बादलों से ढँका रहता है जिनके नीचे ध्रुवीय बर्फ छिप जाती है।

एक अन्य रहस्यमय विशेषता मंगल की वह काली पट्टी प्रस्तुत करती है जो कि बर्फीले प्रदेश को चारों ओर घेरे रहती है। बर्फीला क्षेत्र बढ़ने-घटने पर भी यह पट्टी सदैव चारों ओर घेरा बनाये रहती है। यह काली पट्टी, धारणा है कि बरफ के कणों का समूह है। प्रयोगों द्वारा निरीक्षण किया गया है कि मंगल की बर्फीली भूमि पर बरफ की परत पतली है। अतः गरमी पाने पर वह
जाती है और भूमि दिखने लगती है।

मंगल पर काले क्षेत्र भी अनेक हैं। यह अने
व आकार के स्थायी स्वरूप हैं। परन्तु कुछेक में परि
होता भी देखा जा चुका है। कभी-कभी काला क्षेत्र
कर बढ़ जाता है और कुछ वर्षों के पश्चात् पुनः पूर्व आ
का बन जाता है। यह भी मंगल का एक रहस्य है।

धारणा है कि मंगल की वनस्पति का मौसम के
सार घटना या बढ़ना इसका कारण है। यह भी
है कि वहाँ यदि प्राणी हैं तो वे जलवायु के अनुसार
भोजन उपजाओ आदि नारों को साकार करते हों,
स्थलों को सींचकर और उसमें खेती कर पेड़ पौधों
उगाकर। पर यह वनस्पति हमारी पृथ्वी की हरि
की सी न होकर काई, कैक्टस, लिचेन, कुकुरमुत्ता आ
स्वरूप की है। यह क्लोरोफिल विहीन वनस्पति है।

नहरें और प्राणी ?

माउन्ट पालोमर के २०० इंचीय दूरबीन के
पिछले चार पाँच वर्षों में देखे व चिह्नित नकशों से वि
हुआ है कि वनस्पति में कार्बनिक सी-एच बौंड हैं।
काले भागों में पाये गये हैं और मरुस्थलों में नहीं।
आशा बलवती हो गयी है कि मंगल पर 'जीवन
बुनियाद है अवश्य।

मंगल पर दिखनेवाली नहरों का समूह भी बुद्धि
प्राणियों का होना बतलाता है। अनेक झील या ता
में से पानी लाने ले जाने योग्य नहरें भी चित्रित की
हैं। सूखा प्रदेश, हिमाच्छादित ध्रुवीय प्रदेश, दो
बीच नहरों का जाल निश्चय ही बतलाता है कि मंगल
बुद्धिजीवी प्राणी रहते हैं या रहते थे।

परन्तु वैज्ञानिकों का एक समूह इन नहरों को
दोष या भ्रान्ति भी मानता है। आधुनिक मान्यता
नहीं है—और इसलिये भी अंतरिक्ष वेध द्वारा मंगल
जानकारी इन नहरों के अस्तित्व सम्बन्धी ज्ञान को
करेगा। पृथ्वी के इस रहस्यमय पड़ोसी पर अन्य प्रा
का संसार बसा है कि नहीं यह जानने की उत्कंठा
प्रबल हो उठी है जबकि हम अन्य ग्रहों की सैर के
कदमों को आगे बढ़ा रहे हैं।

आंगनों के बीच—

बाजत ढोल मजीरा

मान होरी खेले री राजा मान होरी खेले री....
प्रेम प्रीति की गाँठ परी है जो मन भायो सो खेले री—
 री राजा मान होरी

—बैजू बावरा

× × ×

लाड़ली, मान न करिये होरी के दिनन में।
कौन तिहारी बान.....
बरस दिना के खेल छाड़िकें बैठी हो भौहें तान।
लाड़ली, मान न करिये।

—बैजू बावरा

× × ×

होली खेलो रे कान्हा ब्रज के बसिया
अपने अपने घर से निकसीं
एक साँवर एक गोरी,
आये अचानक किशन मुरारी
रोकी मग भर जोरी
सुघरि नारि करती पुकार कै
निकसी हेलन होली
होली खेलन चलीं ब्रज की बनिता
होली आइ रे कान्हा ब्रज के बसिया।

× × ×

मोहन नन्दलाल होली पर आये
खेले बिन रहना नहीं।
होली की रतियाँ रस की भरी
ऐसा न हो कि अकेली पड़ी
किए जाना करार
होली पर आये बिन रहना नहीं
मोहन नन्दलाल....

× × ×

आज खेलो श्याम संग होरी
पिचकारी रंग भरि केसर की।
आज कुँवर कन्हैया संग सखी राधा
रंग भरी जोरी सोहत ही—
आज खेलो श्याम संग होरी।
आज खेलो श्याम संग होरी।
नटखट सखियाँ शोर मचावत
नाचत दै दै तारी रे
आज खेलो श्याम संग होरी।
रंग में कैसे होली खेलूँगी सँवरिया के संग
कोटे कोटे माट भराये, उनमें डाला रंग
भर पिचकारी सम्मुख मारी चोली हो गई तंग।
रंग में....
तबला बाज सरंगी बाजे, और बाजे मृदंग
ताता थेई कान्हा नाचे, राधाजी के संग।
रंग में....
लहँगा तेरा घूम घुमारा, चोली तेरे अंग
बलम तुम्हारे रसिया चलो हमारे संग।
रंग में....

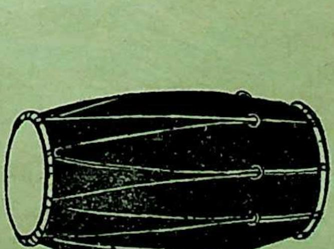

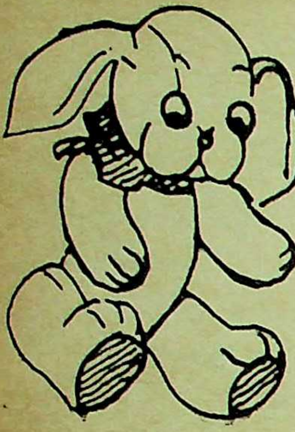

खिलौने

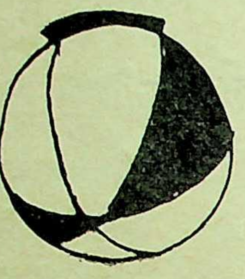

लीजिए पुराने गर्म कपड़ों से नन्हें-मुन्नों के लिए खिलौने बनाइए। पुराने गर्म कपड़ों से बने खिलौने नर्म रहते हैं और उनमें जितने ही छोटे मोटे रंग-बिरंगे टुकड़े लगें उतनी ही उनकी सुन्दरता बढ़ती है। खिलौने बनाने में आजकल तो वास्तविकता की अपेक्षा बच्चे की मनोरंजकता की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस कारण 'म्याऊँ' और 'भौं भौं' बनाते समय इसकी चिन्ता न करें कि कपड़ों के टुकड़े ऐसे बचे हैं कि 'म्याऊँ' का रंग तो हरा हुआ जा रहा है। हाँ, इसका ध्यान अवश्य रक्खें कि कपड़ा मुलायम हो जिससे बच्चे को उसका स्पर्श प्रिय हो। आँखें बटन की न हों बल्कि काले धागे से कढ़ी हुई हों, वरना आँख का बटन न जाने कब मुन्ना के मुँह में पहुँचकर पेट में जाने के इरादे से, न जाने कहाँ, अटककर आपको महा संकट में डाल देगा। खिलौने भरने के समय किसी लकड़ी व बिनाई की सिल से भली भाँति खिलौनों को भरें।

चल-बे-टट्टू के बाल और पूंछ काली ऊन से ब है। पर काले गर्म कपड़े की पट्टी भी नीचे से ए सी रहे, व ऊपर से बालों का आभास देने के लिए स्था स्थान से काटी जा सकती है। उस पट्टी को गले सिलाई के साथ सी देने से ही बन जाने के पश्च सफाई अधिक आयेगी। पूंछ भी लम्बे काले गर्म कप के टुकड़ों को जोड़कर व एक कपड़े को ही काट-क कर (नीचे से जुड़ा रहे जिससे सिलाई सुविधापू हो सके) बनाई जा सकती है। (आवश्यक नहीं है रंग काला ही हो, लाल रंग व कोई भी रंग बस न कीला भर हो, उचित रहेगा।) लगाम पुराने ड्रे गाउन की रेशमी डोर की भी बन सकती है, व यदि टट्टू की इज्जत का सवाल है तो किसी शॉल बॉर्डर व गर्म कपड़े की सिली पट्टी व किसी फ्लास्क टाँगने के चमड़े के स्ट्रैप का प्रयोग किया जा सकता है

गेंद तो स्पष्ट है ही ६ रंग-बिरंगे सन्तरे की फ के से कटे कपड़े चाहिए सी दिया, और गेंद बन गई हाँ, अन्दर पुरानी उधड़ी ऊन या बारीक कटे कपड़े तो ठीक है, वरना 'मुन्ना' के जोश का कुछ ठिक नहीं। किसीके सिर पर ही न बन आये! 'भौं भौं' 'म्याऊँ' के दोनों कान दो रंगों के बन सकते हैं, बिल्लो रानी के साथ यह आजादी नहीं बर्ती जा सक उनके कपड़ों का ध्यान रखना होगा।

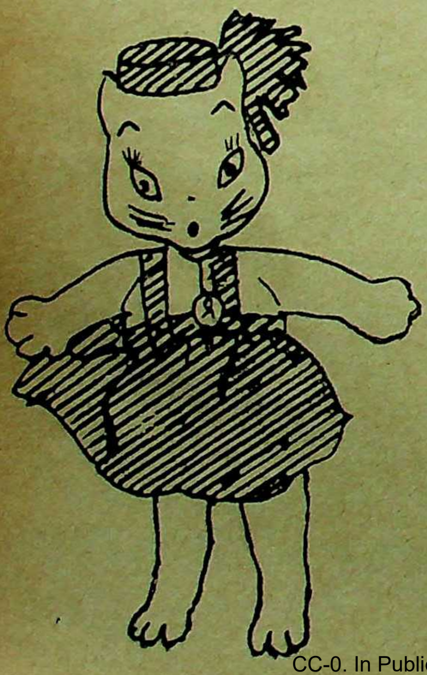

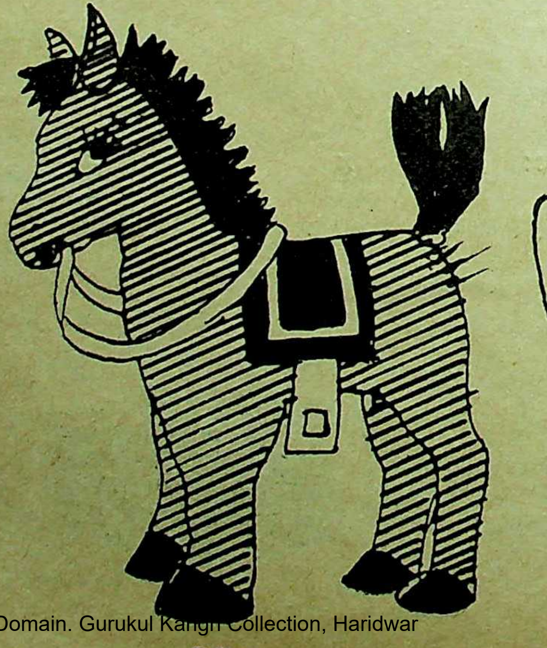

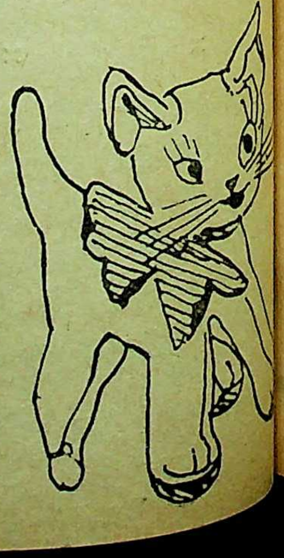

श्रीराम की पुष्पक-यात्रा

मूल—त्रयोदश सर्ग : "रघुवंश"

अनुवाद—सन्तकुमार टण्डन 'रसिक'

आकाश-मार्ग में यान चला जब हौले
रत्नाकर को तब देख राम यों बोले—
"फेनिल सागर वह हुआ सेतु से खंडित
निर्मल अम्बर जैसे तारागण-मण्डित

छाया पथ के द्वारा विभक्त अति सुंदर,
देखो, वैदेही ! प्रिये, सुसज्जित सत्वर।

कपि-दल-निर्मित वह सेतु मलय तक फैला
है कहीं धवल वह, कहीं रंग मटमैला।

जलनिधि यह सगर-सुतों के द्वारा वर्धित
था किया उन्होंने भी अपूर्व यश अर्जित।

इससे रवि-किरणें गर्भ-ग्रहण करती हैं
सम्पत्ति और बड़वाग्नि यहाँ रहती हैं।

अज्ञेय विष्णु की भाँति प्रकृति है सीता !
दशदिशि व्यापी महिमा अत्यधिक पुनीता।

होता युगान्त जब योग मग्न होता है
शीतल पाटी पर 'पुरुष' वहीं सोता है

उसकी सुनाभि से विकसित कमलासन पर
स्तुति करता है आसीन प्रथम धात्रा वर।

ज्यों शत्रु त्रस्त राजागण आश्रय पाते
हैं धर्मवीर के शुभ चरणों में आते

कितने पर्वत जो हुए इन्द्र से आहत
पाते नदीश के आज अंक में राहत।

वाराह जिसे पाताल पुरी से लाये
पृथ्वी पर जल का क्षण अवगुंठन भाये।

देखो नदीश की भोग वृत्ति लोकोत्तर
देता उनको अपनी तरंग बढ़ बढ़ कर

कितनी प्रगल्भ ये सरिताएँ हैं सीता !
उनके तरंग-अधरों को वह भी पीता।

सीते! सुन्दर हैं कितनी वहाँ मछलियाँ
लगता है जैसे मचल रहीं जलपरियाँ।

मुख में भर भर लेती हैं जल क्रीड़ाहित
कर देतीं शिर छिद्रों से उच्च प्रवाहित।

सहसा जल-ग्राह निकल कर आ जाते हैं
करते विभक्त जल फेन बहुत भाते हैं।

जो उनकी कर्णपटी पर लग कर शोभित
कर लेता मेरा प्राणप्रिये ! मन मोहित।

तट पर भुजंग अनिलाशी पड़े हुए हैं
मणि के समूह मस्तक पर जड़े हुए हैं।

सागर की लहरों से अभिन्नता पाते
जो रवि-कर से चमके पहिचाने जाते।

अधरों से उन मूँगों की चट्टानों पर
लहरों ने फेंके शंख असंख्य मनोहर।

वे अपना नोकीला मुख छिदवाते हैं
इस दुर्गति से वे एक न बच पाते हैं।

जल पीने को उत्सुक भवरों के ऊपर
हैं घूम रहे बादल देखो घिर घिर कर।

लगता है यह मन्दर पर्वत फिर आया
मथने को इस विस्तृत सागर की काया।

ऊपर से सागर लौह चक्र सा लगता
जिसके तट पर ताली तमाल वन पलता।

वह तट मुझको लगता है सुन्दर कैसा
उस चक्र-परिधि पर काली रेखा जैसा।

प्रेयसि ! बिम्बाधर-पान हेतु जो प्यासा
मण्डन विलम्ब लख मेरी आतुर आशा

तट-अनिल केतकी-राग-रेणु-कण संचित
अभिषेक कर रहे हैं तुमको अनुरंजित।

दीर्घाक्षि ! आ गए क्षण में तट के ऊपर
फल युक्त पूग-माला वह नीचे भू पर।

आवरण सीपियों के टूटे हैं बिखरे,
कितने मोती हैं पड़े रेत में छितरे।

हे मृगनयनी ! देखो वह पिछले पथ पर
है कठिन बहुत मिलना फिर ऐसा अवसर।

जैसे जैसे जल राशि कि पीछे छूटी
वन भूमि उसीसे निकली जैसी फूटी।

जैसा जैसा होता है यह मन मेरा
वैसा वैसा लेता विमान यह फेरा।

ऐरावत के मद की सुगन्ध का ले बल
होकर त्रिमार्ग-गा-वीचि-दलों से शीतल

आकाश वायु आकर लघु गति से सीता
तेरे मुख की इस स्वेद-राशि को पीता।

कौतूहल-वश वातायन से फैलाकर
जिन मेघों पर हाथों को प्रिये ! दिया धर।

विद्युत् ऐसी चमकाई जैसे कंचन
वे बना रहे हैं नए दूसरे कंगन।

वह देखो लम्बी पतली छाल लपेटे
पा विघ्न-रहित स्थान, तपस्वी बेटे

चिर त्यक्ताश्रम में पुनः वास करते हैं
कुछ नये उटज भी आज वहाँ बनते हैं।

देखो, यह है स्थान जहाँ पर मैंने
देखे थे सुन्दर सुन्दर दो मृग-छौने।

तेरे पद से वियुक्त च्युत नूपुर पाया
जब तुम्हें खोजता हुआ यहाँ में आया।

मैं था शोकाकुल थका हुआ कुछ हारा
लतिका ने झुकी हुई शाखाओं द्वारा

अनुकम्पा पूर्वक इंगित मुझे किया था
जिस पथ से रावण भागा हुआ गया था।

इन मृगियों ने था छोड़ दिया तृण खाना
इनकी दयनीय दशा का कठिन बताना

मेरे दुर्दिन को देख अश्रु भर आया
पथ मुझे अपरिचित आँखों से दिखलाया।

वह गगन विचुम्बी माल्यवान की चोटी
कुछ अवधि विरह की, वहाँ कटी थी खोटी।

हाँ, एक समय में एक साथ बरसाया
नवजल मेघों ने मैंने अश्रु गिराया।

वर्षा-पूरित-सर-निःसृत वाष्प सुगंधित,
केका की स्निग्ध मधुर ध्वनि वह आनंदित,

आधा पराग खोकर कदम्ब वह फूले,
हाँ मिले, तुम्हारे बिना उन्हें हम भूले।

भयशीले! सुनी सक्लेश गर्जना भारी
जो कभी लगा करती थी मुझको प्यारी।

हो आई पुनः सजीव पूर्व की विस्मृति
कंपित अंगों के आलिगन की स्मृति।

नव विकसित ले नवकोष वाष्प स्पर्शित
नव कंदल पुष्प निरख न हुआ मैं हर्षित।

वे इन नयनों की आभा अधिक छुए थे
जो परिणय-अग्नि-धूम्र से लाल हुए थे।

यह थकी हुई सी दृष्टि उतरती नीचे
इच्छा होती इसको पम्पासर सींचे

जिसके जल तट पर झाड़ी फैल रही हैं
चंचल सारस की जोड़ी खेल रही हैं।

देखे थे प्रिये! यहीं जब हुआ वियोगी,
मैंने कितने ही चक्रवाक संयोगी।

था एक दूसरे के मुख में कुछ देता
दूसरा कमल की केसर मुख में लेता।

सुन्दर स्तन-स्तवकों से हो करके भारी
पतली सी झुकी अशोक लता वह प्यारी।

मैं तेरे भ्रम में आलिंगन को लपका
दुर्भाग्य किंतु हा! एक विघ्न आ टपका।

आँखों में भर कर जल, लछमन ने रोका
'यह भाभी नहीं, लता है भैया'––टोंका।

सुन स्वर विमान की कंचन किंकणियों का
देखो ऊपर चढ़ना यह सारस कुल का,

स्वागत को गोदावरी नदी से आता
यह अभिनन्दन अति प्राणप्रिये का भाता।

मृग देख रहे हैं, पंचवटी वह नीचे,
जो गये स्नेह-जल के द्वारा थे सींचे

वे बाल-आम्र घट-जल द्वारा संवर्धित
चिरकाल अनन्तर लख कर मन आनंदित।

बैठा करते तट पर मृगया से थककर
आता समीर शीतल तरंग पर होकर

निर्जन निकुंज में शीश गोद में होता
हाँ, यहीं भूमि पर मैं था प्रतिदिन सोता।

बन कर नक्षत्र जो शरद काल में निर्मल
करते हैं वर्षा-जल को पावन कोमल,

कर दिया नहुष को इन्द्रासन से था च्युत,
देखो वह आश्रम उन अगस्त्य का अच्युत।

मुनि कृत सुयज्ञ का धूम्र यहाँ तक आता
निर्मल घृत के कारण सुगन्धि है लाता।

यह अन्तःकरण हमारा उसको पाकर
हो कलुष-मुक्त हल्केपन से जाता भर।

बादल-दल से घिर कर लगता है कैसा
मटमैला लगता चन्द्र बिम्ब के जैसा।

मानिनि! वह वन से घिरा हुआ पंपासर
शतकर्णि सुमुनि का ख्यातिलब्ध क्रीड़ासर।

यह मुनि के कुश की शाखाओं पर जीवित
वन के अनेक मृग थे इनके सहचर नित।

जब एक बार बैठे समाधि दृढ़ लेकर
तब देवराज भी देख हुए भय-कातर।

भेजे तब तत्क्षण सुन्दरियों के दल प्यारे
यौवन के कपटी मंत्रों से मुनि हारे।

मुनि-सौध सरोवर ही में स्थित है सुन्दर
आ रहा जहाँ से यह मृदंग स्वर ऊपर।

पुष्पक की शाला को करता है मंडित
सुन सुन्दर सीते! यह संगीत अखंडित।

वह अन्य तपस्वी है सुतीक्ष्ण आराधक
रवि तप्त प्रज्ज्वलित अग्नि ताप का साधक

उसका चरित्र प्रख्यात सौम्य अति पावन
वह दृढ़ समाधि में स्थित है मन-भावन।

इसके व्रत से हो गए इन्द्र थे शंकित
भेजा सुरंगनावलि विलास से अंकित।

प्रिय हाव-भाव शत हास लास दिखलाए
मुनि को विलास क्या कुछ विदग्ध वे भाए ?

उस ऊर्ध्वबाहु ने दक्षिण हाथ उठाया
जो मेरे प्रति सम्मान-सन्देशा लाया।

कुश नोच मृगों को अति दुलार वह करता
निज वाम हस्त में अक्षमाल है धरता।

मुनि मौन-व्रती ने नमस्कार का उत्तर
शिर द्वारा हमको दिया तनिक सा झुक कर।

वह पावन परम तपोवन आश्रयदाता
आश्रमवर है शरभंग ऋषी का आता

मन्त्रों के द्वारा शुद्ध हुआ था जो तन
उसको उसने कर दिया अग्नि में अर्पन।

उसका आतिथ्य वहाँ वृक्षों में स्थित
देते पथिकों को मधुफल छाया इच्छित।

पेड़ों को मुनि ने पुत्र भाँति था पाला
उसका अपूर्व था सीते! स्नेह निराला।

हे वन्धुरगात्रि! सुन्दरी! सुमुखी! प्रेयसि!
शोभा इस सुन्दर चित्रकूट की श्रेयसि।

गिरती धारें झरनों की छोटी मोटी
मेघों से लिपटी यह पर्वत की चोटी।

यह कूट गरजता क्रुद्ध बैल सा कोई
शृंगों पर नद की माटी लगी भिगोई।

स्मितिप्रसन्न अति क्षीणकाय दुख-हरिता
निस्पन्द प्रवाहित वह गोदावरि सरिता।

किस भाँति कहूँ उसकी सुन्दरता कैसी ?
लगती ग्रीवा में महि के मुक्तावलि सी।

पर्वत के पास तमाल तरुण मन भाए
जिनके पल्लव से अलंकार बन पाए।

यव-अंकुर से तव पाण्डुकपोल सुशोभित
करते मेरा मन कर्णाभूषण मोहित।

वह अत्रि मुनी सा आश्रम और कहाँ है
वैसा प्रभाव लोकोत्तर शेष जहाँ है।

निष्पुष्प वृक्ष भी फल धारण करते हैं
भयरहित जन्तु सब हिल मिलकर चरते हैं।

शिव के मस्तक पर माला सी जो शोभित
सप्तर्षि हस्त से हेम पद्म वे उद्धृत

मुनि जन के अभिषेकार्थ प्रवाहित गंगा
अनुसूया को हो गई कृतज्ञ त्रिपथगा।

मुनि वीरासन में समाधिस्थ हैं प्रतिपल,
वे वेदि मध्य कुछ वृक्ष खड़े हैं निश्चल।

योगाधिरूढ़ से वे प्रतीत होते हैं
उनके हर क्षण स्थिर व्यतीत होते हैं।

देखो वह है वट श्याम मनोरथ वाला
जिसने अपने फल से प्राणों को पाला।

वे लाल लाल फल कितने सुन्दर लगते
मानों मरकत में लाल बहुत से जगते।

वह इन्द्रनील-युत गुम्फित मुक्ता माला
लगता है हार कहीं ज्यों कमलोंवाला।

हों गुँथे बीच में जैसे नीले उत्पल
संगम की शोभा पलट रही है प्रतिपल।

नव नील धवल हंसों की रेखा अंजित
चंदन से चर्चित भूमि श्यामगुरु चर्चित।

काली छाया से युक्त चन्द्रिका मनहर
या नीलाम्बर पर शुभ्र शरद के जलधर।

हे अनवद्यांगि! जनकजा! एक, अभंगा
देखो, मिश्रण करतीं जल जमुना गंगा।

अन्यत्र कृष्णुरग-आभूषण में शंकर,
लगता है बैठे बदन राख से रँग कर।

जो प्राणी संगम पर जा कभी नहाया
बस, उसने सीधा द्वार स्वर्ग का पाया।

वह तत्व ज्ञान के बिना मुक्ति पाता है
पृथ्वी पर पुनः न दुख सहने आता है।

हैं वहीं निषादाधिप गुह का सुन्दर पुर,
हैं जन्म जहाँ लेने को लालायित सुर।

हाँ, वहीं मौलिमणि थी प्रिय! मैंने त्यागी
लख जटाजूट करुणा सुमन्त्र की जागी।

'माँ कौशल्या की इच्छा रही अधूरी
कैकेयी! तेरी दुष्ट कामना पूरी'।

जिसके हेमाम्बुज-रेणु यक्ष-पत्नी के
सौंदर्य-प्रसाधन प्रस्तुत हैं कुच-द्वय के

उस ब्रह्म सरोवर से सरयू आती है
वेदों की वाणी यह विवरण लाती है।

हैं गड़े यज्ञ के खंभे सरयू-तट पर
था स्नान किया इच्छ्वाकु वंशजों ने वर।

सौभाग्य अयोध्याराजपुरी का पावन
जिसके समीप सरिता यह बहती भावन।

उत्तर कोशल राजाओं की यह माता
वन्दन अभिनन्दन में मेरा मन गाता।

इसके रेतीले तट पर खेल हुए थे
वे इसके पय से पोषित पुष्ट हुए थे।

सम्माननीय सरयू सरिता जननी सी,
शीतल समीर से आज विजन करती सी।

आलिंगन करती वह तरंग-भुज द्वारा
मानों मैं दूरागत उसका सुत प्यारा।

गोधूलि काल के ताम्रवर्ण से ऊपर
आ रहे धूलि के बादल भू से उठकर।

इससे अनुभूति हृदय में ऐसी आई
लेने आ रहे ससैन्य भरत प्रिय भाई।

पित्राज्ञा मुझसे हुई पूर्ण विधि पालित
अब राज्य मिलेगा वह अभुक्त संरक्षित।

जैसे सयत्न रक्षित निधि प्रिये! घनेरी
लछमन ने लौटा दी थी मुझको मेरी,

निश्चय ही साधु सभी हैं मेरे भाई
अर्पित निधि जिनसे सदा यथाविधि पाई।

सम्मानित मेरे गुरु वशिष्टजी आगे
वृद्धामात्यों के साथ सभी कुछ त्यागे,

वह अर्घ्य लिए आते हैं वल्कल धारी
करुणा से प्रेरित मूर्ति भरत की प्यारी।

सबसे पीछे है अतुलित सेना का बल
आ रहे सभी सीता! देखो वे पैदल।

यह भरत युवा होकर भी हुआ न भोगी
कैसे कठोर संयम से निर्मल योगी!

सुन्दरी राज्य श्री इसके अंक सुशोभित
मेरी निधि पर इसका मन हुआ न मोहित।

जन-मन हो इसका मुझसे अधिक उपासी
मेरा भाई असिधार-व्रती अभ्यासी।"

आ गया अचानक उन आँखों में पानी
जब सुना चुके वे करुणा कलित कहानी

अधिदेव-प्रेरिता-शक्ति संग परिचालित
नक्षत्र मार्ग से नीचे पुष्पक विचरित।

भरतानुगामिनी प्रजा देखती ऊपर
आ गया उतर कैसे विमान यह भू पर?

सेवा-व्रत-कुशल कपीश बालि के भाई
रामाश्रय के हित अपनी भुजा बढ़ाई।

उन स्फटिक सीढ़ियों पर अपने पग रखकर
धीरे धीरे वे उतरे नीचे भू पर।

उस समय विभीषण भक्त सामने आया
निज हाथ उठा कर उसने मार्ग दिखाया।

करके प्रणाम इच्छ्वाकु वंश के गुरु को
भर लिया भुजाओं में निज भ्रातृ भरत को।

ले लिया राम ने अर्घ्य, आँख में पानी
भाई का मस्तक चूम हुए निर्वाणी।

श्मश्रु वृद्धि से मुख ऐसा था लगता,
वट के हो चारों ओर प्ररोह लटकता।

उन वृद्ध मन्त्रियों के प्रति राम नमित थे
वाणी सुमधुर करुणा से अधिक द्रवित थे।

"दुर्जात बन्धु सुग्रीव हरीश्वर भाई
इस भक्त विभीषण की न कहीं समताई"

सम्मानपूर्वक परिचय से आनन्दित
लक्ष्मण से पहिले हुए भरत से वंदित।

इसके पश्चात् मिले सौमित्र नमित मुख
गाढ़ालिगन में कस कर लिया अमित सुख।

रामाज्ञा से वानर सेना के नायक
मानव शरीर धर कर सुन्दर सब लायक।

देखे तब उनने हाथी काले काले
सब झपट पड़े उन पर, बैठे मतवाले।

जब कर्णपटी से मदजल हुआ प्रवाहित
बैठे भूधर पर उनको यह आभासित।

बैठे रावण के बन्धु और अनुगामी--
रथ पर, जब आज्ञा दिया राम ने स्वामी

माया विकल्प निर्मित उन रथ से बढ़कर
मानव निर्मित जिन पर बैठे सब चढ़ कर।

रघुपति अनुजों को लेकर हुए सुशोभित
पुष्पक विमान पर जिस पर ध्वज आरोपित

जैसे बुध और बृहस्पति दोनों मिलकर
सुन्दर विद्युत-युत सान्ध्य जलद के ऊपर।

जो प्रलय काल में ईश्वर से उद्धारित
पृथ्वी की शोभा फिर से हुई प्रसारित,

ज्यों शरद काल में चन्द्र किरण छुट जाती
वर्षा ऋतु की घन मेघावलि लुट जाती।

श्रीराम-शक्ति से पराभूत वह संकट
सीता की मुक्ति विनष्ट हुआ वह कंटक।

धृतमती जगत माँ हुईं भरत से वंदित
सारा समाज यह देख हुआ आनंदित।

लंकेश्वर की शत प्रणति भंग-व्रत-भागी
वे जनक सुता के चरण पूज्य अनुरागी

रख दिया भरत ने शीश वह जटाधारी
वे पावन हुए परस्पर मिल कर भारी।

आगे आगे थी प्रजा मनोहर सुखकर
क्रोशार्द्ध गया वह यान मन्दगति उड़कर

आया अयोध्या का उदार वह उपवन
हो गए पुलक से भर कर सब हर्षित मन।

वह धीरे धीरे उतर वहाँ पर आया,
पट-भवन हेतु उसके था जहाँ रचाया।

अमरवाणी

'हीराकोयला'

(द्वारा श्रीमती कमला रत्नम्)

विदेशी कहते हैं संस्कृत मृतभाषा है
हम कहते हैं, वह अमरों की वाणी
देवगीर्भारत की आशा है।

क्या भाषा है!
'अइउण्
ऋलृक्
हयवरट्
जबगडदश्
कपय्
शषसर्
हल्
भैरव का अभिनय
झलमल।

निघण्टु की मृत्तिका
यास्क की अस्थियाँ
ताण्डव की झञ्झा
अक्षरों का आकाश
शब्दों के शंख
धातु का प्रकाश
संज्ञा, क्रिया, विशेषण का जल।
अव्यय, सर्वनाम के अवयव
सुप्, तिङ, कृदन्त के तार
तद्धित, विभक्ति की अल्पना
संधि के धागे
समासों के साँचे

प्रत्यय-उपसर्ग की नवीनता
कारक की गंभीरता।
अभिधा के नेत्र
लक्षणा के श्रवण
व्यञ्जना की नाड़ियों में
अर्थ का स्रवण
मूर्ति के मस्तक में
ध्वनि का गुञ्जन
उत्प्रेक्षा के रंग
उपमा के वसन
उणादि के आश्चर्य

गायत्री के बाहु
छन्दस् के चरण
पिंगल का लय
समस्त पर काव्य का आवरण।

रस का निष्पन्द
लोकोत्तर आनन्द!
मानव की प्रतिमा अभंग
मुक्ति की अनुभूति।
मनुष्य के ही समान
सन्तान-प्रवर्तन की शक्ति।
एक ही मूल से हार,
उपहार, आहार, विहार,
संहार, प्रहार, समाहार,
अभिहार, परिहार निर्हारवत्'
सहस्रों अर्थों की उत्पत्ति।
"हिरण्यगभः समवर्तताग्रे
ईशावास्यमिदं सर्वम्
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि
वक्रतुण्ड महाकाय!
दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षः
अविघ्नं कुरु मे देव!
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्
आसीद्राजा नलो नाम।"

आदि अजर, अमर वाक्यों को
काव्य की त्वचा हटा
धातु, संज्ञा, विभक्ति
समास, विशेषण
सन्धि, कारकरूप अवयवों को
बुद्धि के चाकू से विश्लेषण
कर ही, आज का विद्यार्थी
अभिनव शरीर-शास्त्री
संसार की वाणियों की जन्मदात्री,
धात्री, पितामही संस्कृत के अर्थ समझता है।

क्या भाषा है!
ब्रह्मा की सृष्टि की
मनुष्य के शरीर की
सर्वांग परिभाषा है!

—हीराकोयला

स्वयंबद्ध

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी एम० ए०

आज सुबह से ही नीता बहुत परेशान है। शायद इतनी मनोव्यथा उसने जीवन में कभी नहीं झेली। बड़े तड़के रामजीवन आया था। रामजीवन नीता के पति सुरेन्द्र का नौकर है। उसके पिता के समय से। उसने सुरेन्द्र को गोदी में खिलाया है। सुरेन्द्र को बड़े होते और बिगड़ते देखा है। उसकी नयी मालकिन के प्रति असीम अनुरक्ति रही है। पर आज जब मालिक मालकिन के संबंध बिगड़ गये हैं और मालकिन अपने पिता के घर आ गयी है तो वह भी उसने हृदय पर पत्थर रखकर सहा है। आज बड़े तड़के उसी रामजीवन ने आकर नीता का द्वार खटखटाया तो नीता स्तंभित हो गयी। उसके चेहरे पर असीम वेदना परिलक्षित हो रही थी। पूछा, तो कुछ देर चुप रहकर बताया था कि उसके पति-गृह से आने के पश्चात् उसके मालिक सुरेन्द्र खुल कर खेले हैं और कंपनी के पाँच हजार रुपये जुये में फूँक दिये हैं। कल जब हिसाब पकड़ा गया है तो उन्हें एक दिन का समय दिया गया है। या तो रुपये जमा करें नहीं तो पुलिस के सुपुर्द कर दिये जावेंगे।

'तो मैं क्या करूँ! जावें जेल! जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।' नीता ने तड़ाक से उत्तर दिया।

'आप नहीं करेंगी तो कौन करेगा? इतने बड़े खानदान की इज्जत धूल में मिल जावेगी'; आँखों में आँसू भरकर उस बूढ़े ने कहा था।

और नीता उलझन में पड़ गयी है। वह इस स्वामिभक्त बूढ़े को कैसे समझावे कि एक खानदान की इज्जत को ठोकर लगाकर ही उसने सुरेन्द्र से विवाह किया था। वह न अति सुन्दर थी न कुरूप। बलिष्ठ, सुपुष्ट देह का सुरेन्द्र उसे भा गया। उसने सोचा उसके सुन्दर तन में अपने अरूप को समर्पित कर देगी, और जो अभाव उसे जीवन भर सालता रहा है उसे सदा के लिए मिटा देगी। सुरेन्द्र ने भी तो उससे यही कहा था कि चाहे उसका वर्ण गौर न हो पर उसकी देहयष्टि बहुत आकर्षक है और वह ठगा बैठी। पिता थे उसके बड़े अधिकारी, सम्पन्न, शाली। चाहते थे अपनी बेटी का किसी बराबर के दान में विवाह करना। उन्हें मालूम हुआ तो खिन्न बेटी की हठ को जाना तो अनुमति दे दी। केवल कहा कि समझदार हो, जैसा ठीक समझो, करो; ऐसा न हो कि गलती बहुत मँहगी पड़े। और हुआ है। कुछ दिन तो सुरेन्द्र बड़ा प्रसन्न रहा पर कुछ दि खीजा-खीजा रहने लगा। न जाने क्यों उसे व दिखने लगी। कभी उसकी मोटी नाक से चिढ़ उसके श्याम वर्ण से। रोज उसे पिता से रुपये मां कहता। सुरेन्द्र को आशा थी कि नीता के पिता बड़े हैं। बड़ी शान से रहते हैं, इसलिए काफी धन दि पर उसे क्या मालूम था कि किसी ईमानदार के यहाँ चाँदी की सिल्लियाँ नहीं ढलतीं। अतएव ज अपनी भूल मालूम हुई तो वह और भी रूखा हो नित्य नीता को झिड़कता। वह भी कुछ नहीं कहती चुप रोया करती। कहती भी किससे? पिता से नि से कहती और बाकी बचा कौन? रामजीवन न को समझता और समझा-बुझाकर उसे खिला-पिला रोज रात को सुरेन्द्र नशे में धुत होकर लौटता तो से थकी नीता उसको बिस्तर पर लिटा देती और व ओर देखता तक नहीं। एक-आध बार टोका तो उसने हाथ भी चला दिया। और वह आँसुओं को बैठी रह गयी। कुछ दिन बाद शराबी पति के जेब एक पत्र से उसे मालूम हुआ कि उसके चतुर पति प्लेस के एक बड़े व्यापारी की कन्या को प्रेमपाश लिया है। और वह दिन भर भूखी-प्यासी पड़ी र दिन सुरेन्द्र ने मुँह फेरकर बड़े कर्कश स्वर में उ कि वह उससे ऊब गया है। उसने अदालत में पृथकता की कार्यवाही चला दी है, बेहतर हो वह अ के घर चली जावे। और वह अपने पिता के घर च पिता ने उसे देखा पर कुछ नहीं कहा।

तब से तीन महीने हो गये हैं। नीता ने बहुत सहा है पर चुप चुप। उसके पिता उसकी व्यथा जानते हैं। उसकी ओर देखते ही उनकी आँखें भर आती हैं। बुढ़ापे में जब उन्हें शांति मिलनी चाहिए थी, वे बेचैन से रात भर जागते रहते हैं। नीता यह सब समझती है। घुट-घुटकर रोती है, पर दोनों किसीसे कुछ नहीं कहते। और आज तीन महीने बाद रामजीवन आया है सुरेन्द्र के लिए याचना का संदेश लेकर। उसका खून उबल उठा है, इच्छा हुई है कि कहला दे कि रुपये के लिए प्रेम बेचने वाले के प्रति उसके हृदय में अपार घृणा है। पर सामने रामजीवन खड़ा है, भूखा, कृश देह, न जाने किस डोर ने इस बूढ़े को उस स्वार्थी और निकम्मे मालिक से बाँध रखा है! कौन-सी है वह डोर। वह विह्वल हो उठती है और जा खड़ी होती है अपने पिता के पास! पिता एकाएक चौंक उठते हैं पर बाहर रामजीवन को खड़ा देखकर कुछ समझते हैं और बताई हुई राशि का चैक लिख देते हैं। और रामजीवन चला जाता है।

तब से नीता निढाल पड़ी है। निर्जल, बिलकुल पाषाणवत्। उसका मष्तिष्क सुन्न हो गया है, वह कुछ नहीं सोच सकती। प्रभात की लाली संध्या की लाली में ढल रही है पर किसीमें साहस नहीं हुआ है कि उससे कुछ कहे। इतने में टेलीफोन की घंटी बजती है। बताया गया है कि सुरेन्द्र का फोन है। उसने रिसीवर उठाया है। सुरेन्द्र बोल रहा है। उसका कंठ आर्द्र है, लज्जित है। वह कह रहा है कि वह बहुत अनुग्रहीत है। पश्चात्ताप की अग्नि से दग्ध है। वह क्षमा चाहता है और प्रणय की भीख माँगते हुए अदालती कार्यवाही समाप्त करने का वायदा कर रहा है।

नीता को लगता है जैसे उसके हृदय पर से पत्थर हट गया है। वह क्षण भर मौन रहकर, एकदम शांत और निष्कम्प वाणी में उत्तर देती है "आपके कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए अनुग्रहीत हूँ। पर जिंदगी टूटकर जुड़ा नहीं करती। हमारे लिए यही भला होगा कि जैसे हैं वैसे ही रहें।" और झट से रिसीवर रख देती है।

कवि और विधायक

श्री निरंकारदेव सेवक

आज शेली की अमर वह पंक्ति मुझको याद आती
"कवि हुआ करते विधायक सृष्टि के हैं
पर जिन्हें दुनिया नहीं पहचान पाती।"
विश्व के सारे समाजों सभ्यताओं
के अमर आदर्श कवियों के दिये हैं
आज तक सब देश जिन पर चल रहे हैं
वे नियम सिद्धान्त के पथ
शेक्सपियर मिल्टन कबीरा सूर तुलसी आदि ने निर्मित किये हैं।

रूढ़ियों की शृंखलाएँ तोड़ते कवि
नित नये विश्वास के सपने दिखाते,
मोह माया में पड़े जकड़े हुओं के
बन्धनों को काट कर उड़ना सिखाते।
और यह सच है अगर, तो विश्व की धारा-सभायें
जो निरन्तर लड़ झगड़ कर
बात अपनी ही पकड़ कर
नित नये कानून के पिंजड़े बनातीं
व्योम में उड़ते हुओं को फाँसती हैं
और उनके तड़फड़ाने पर जरा-सा मुस्कराकर खाँसती हैं,
क्या नहीं अपना समय बरबाद करतीं?
मन नहीं जब तक नये बनते, नया जीवन न आता।
काम यह कवि कर रहे हैं
सब इसी संघर्ष में रत मर रहे हैं।
कवि विधायक ही नहीं होते, नये युग के विधाता।
और यह जादूगरी सब कर रहे वह
साधन ही के सहारे
पास वरना कौन साधन
एक टूटी लेखनी है, और कुछ कागज फटा-सा!

केले

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

दरअसल मेजर शर्मा के हाथों में कुछ ऐसा जादू था कि गया-गुजरा निराश-से-निराश मरीज भी उनके हाथ लगते ही एकदम ठीक हो जाता है। जब से मिलिटरी अस्पताल में वे आये तभी से पूरे शहर में उनकी शोहरत हो गयी। शहर के जाने-माने डाक्टर उनका लोहा मानने लगे। एक प्रकार से उनके सामने अपने को बौना समझते। हर गंभीर मामले में उनकी राय लेते और तब कुछ ही दिनों में लोगों की जबान पर मेजर शर्मा ऐसे बैठ गये, जैसे पटरी पर गाड़ी। बड़े गये-बीते ऐसे रोगियों को उन्होंने बातों-ही-बातों में ठीक किया, जो बिलकुल ही जीने की आशा खो बैठे थे।

मिसेज वर्मा को हमेशा शिकायत रहती थी कि उन्हें खाना ही हजम नहीं होता। बार-बार उल्टियाँ आ जातीं, कभी-कभी खन की बंदें भी गिर पड़तीं। अंग-अंग टटे-टटे से लगने, जोड़-जोड़ में अजीब-सा दर्द उठता। मिस्टर वर्मा ने पचासों इलाज कराये। अच्छे-अच्छे डाक्टरों को दिखाया। कई दवाइयाँ पिलाईं, कई इंजेक्शन लगवाये, एक्स-रे लिये, पर रोग जैसे-का-तैसा। मेडिकल कालेज में ले गये। वहाँ विशेषज्ञों ने कहा कि वैसे तो कुछ पता नहीं लग रहा, शायद पेट का ऑपरेशन करने से ठीक हो जाय। जो-जो जिस-जिस ने कहा, सब किया गया पर मिसेज वर्मा की हालत बिलकुल भी नहीं सुधरी, उल्टे दिन-प्रति-दिन बिगड़ती गयी। बेचारे वर्मा किसी स्कूल में अध्यापक थे। जो कुछ कमाते, उससे भी दुगना खर्च हो गया परन्तु कुछ भी फायदा न हुआ। तब बेचारे मेजर शर्मा के पास गये, मरीज का पूरा किस्सा सुनाया और बड़ी खुशामद की कि आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप एक बार उन्हें देख लें। मैं मुँह माँगी फीस देने को तैयार हूँ, क्योंकि कुछ-कुछ उड़ती हुई खबर थी कि मेजर शर्मा खाली एक बार मरीज को देखने के चालीस रुपये लेते हैं। दूसरे, चीर-फाड़ करते-करते उनका दिल पत्थर से भी सख्त हो गया है, किसी पर रहम नहीं करते। मेजर शर्मा ने उस समय मिस्टर वर्मा से फीस के बारे में कुछ नहीं कहा और अपनी निकाली, सीधे मिस्टर वर्मा के साथ चल पड़े। घर गये। चारों ओर एक सरसरी नजर फेरी फिर मिसेज वर्मा से बात की। मिस्टर वर्मा चाय में लग गये। थोड़ी देर की बात-चीत के बाद शर्मा ने मिस्टर वर्मा को अलग से बताया कि मिसेज को कोई भी बीमारी नहीं है। वर्मा ने सुना तो कि भी विश्वास नहीं किया परन्तु मेजर शर्मा ने अपनी पर जोर देते हुए कहा कि आपकी पत्नी को वै कुछ गोलियाँ दे दी हैं, परन्तु असल में बीमारी बैठने से है। उनसे घर का पूरा काम लीजिए। खाना बनाने दीजिए। चौका-चूल्हा करने दीं मतलब यह है कि जितना अधिक काम वह करेंगी ही जल्दी ठीक हो जायेंगी। दूसरी कोई बीमारी है। बैठे-बैठे भला खाना कैसे हजम होगा? उन्हें सब मत कहिए, गोलियाँ देते जाइए। मैंने उनसे भी करने के लिए कह दिया है। और तब सुना कि ही दिन में मिसेज वर्मा बिलकुल स्वस्थ हो गयीं। साल से जिस मर्ज से परेशान थीं उससे एकदम छु मिल गया। सब मेजर शर्मा की वाह-वाह करते

मिसेज प्रकाश के हाथों और गालों पर फुंसियाँ रहती थीं। पचासों मलहम लगाये, सौ इस्तेमाल किये, दिल्ली-बम्बई आदि बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया, पर उनकी फुंसियाँ कभी ठी नहीं हुईं। बेचारी अच्छे खाते-पीते घर की पानी की तरह रुपया बहाया, पर कुछ भी आर पहुँचा। अन्त में मेजर शर्मा से प्रार्थना की उन्हें भी देख लीजिए। मेजर शर्मा ने जैसे उन्हें कहा कि आपके सिर में खुश्की है, आप रोज शम्पू और खुश्की को दूर करने के लिए निम्बू का कीजिए। कमाल देखिए दस दिन में वे ठीक हो

मिसेज कपूर की शिकायत थी कि वह न तो और न गर्मियों ही में चूल्हे पर बैठ सकती हैं, क्योंकि

लीवर की बीमारी है। मेजर शर्मा ने उनसे भी यही कहा कि आप दस दिन तक लगातार खाना पकाइए फिर देखिए आपका लीवर ठीक होता है या नहीं। और हुआ भी वही। दस ही दिन में मिसेज कपूर बिलकुल तन्दुरुस्त हो गयीं।

मिसेज सेठ को दिल के दौरे होते थे। कभी-कभी अचानक उनकी छाती में असह्य पीड़ा होती थी और वह बेचारी कराहने लग जाती थीं। मेजर शर्मा के पास मामला गया तो उन्हें मालूम हुआ कि बीमारी-ईमारी कुछ भी नहीं है। मिसेज सेठ को 'कम्प्लैक्स' है कि पति 'नॉनमैट्रिक' और आप डबल एम० ए० हैं। यहाँ भी मेजर शर्मा ने दिल रखने के लिए कुछ गोलियाँ दीं, पर मिस्टर सेठ से अलग जाकर कहा कि आपकी पत्नी को कुछ भी रोग नहीं है, खाली 'कम्प्लैक्स' है। आप खूब गप्पें मारा कीजिए, उनकी हर बात काटिए, फिर देखिए क्या होता है। सुना कि कुछ ही दिनों में वह भी चंगी हो गयीं। ऐसी न जाने कितनी-कितनी श्रीमतियों को मेजर शर्मा ने ठीक किया। उनका कहना है कि नब्बे प्रतिशत ऐसी औरतें ही बीमार होती हैं जिन्हें कुछ काम-धाम नहीं होता, बैठे-बैठे, पड़े-पड़े जब घंटों ऊल-जलूल सोचती हैं, तो सिर में चक्कर आयेगा ही। बैठे-बैठे कमर थक जाती है। हाथ-पैर दुखने लग जाते हैं और फिर उन्हें बहम हो जाता है कि उन्हें कोई भयंकर बीमारी लग गयी है। दस दिन उनसे काम लीजिए, फिर देखिए क्या होता है। वे स्वयं अपनी पत्नी के किस्से सुनाते कि एक बार मिसेज शर्मा कहने लगीं कि आज तो मेरी कमर दुख रही है। मेजर शर्मा ने नौकर कहीं बाहर भेज दिया और दो-चार मेहमान खाने पर बुला लिये। फलतः मिसेज शर्मा को खुद खाना पकाना पड़ा, और फिर रात को सारा दर्द नदारद। उनका अपना सिद्धान्त था कि जो भी चुपचाप खाली बैठेगा उसे जरूर कुछ न कुछ परेशानी होगी—चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष। औरतों को तो ज्यादा बेकार सोचने से ही बीमारी बढ़ती हैं। जो दिन भर अपने काम में लगी रहती हैं, उन्हें बीमारी प्रायः होती ही नहीं। अपने शहर में न जाने उन्होंने कितनों को ठीक किया पर उनके बारे में सबसे बुरी बात यह फैली हुई थी कि अपनी फीस ऐंठ कर लेते हैं। उसमें कभी कोई रियायत नहीं करते। लोग यही कहते कि मेजर शर्मा को इतनी तनख्वाह तो सरकार से मिलती है, और ऊपर से फिर इतनी आमदनी। फिर भी पैसे के मामले में बड़े कंजूस हैं। पर वैसे सभी उनकी तारीफ के पुल बाँधते कि डाक्टर क्या है, साक्षात् भगवान् है भगवान्!

एक दिन मेजर शर्मा बड़े परेशान-से नजर आये। मुझे लगा कि जरूर कुछ गड़बड़ है। उखड़े-उखड़े से लग रहे थे। मेरे और मेजर शर्मा के सम्बन्ध बहुत ही अच्छे थे। मेजर शर्मा सब बातें खुलकर बताते थे पर आज जैसे ही कार से उतरे हड़बड़ाहट में पूछा कि भाई कुछ केले हैं? मैंने मना कर दिया। रात के साढ़े दस बज रहे थे। मैंने और बातें पूछनी चाहीं पर वे एकाएक बाजार की तरफ भाग खड़े हुए और मैं देखता ही रह गया। मुझे बड़ा धक्का-सा लगा, अचरज भी हुआ कि आज मेजर शर्मा को क्या हो गया है। जल्दी-जल्दी में न ठीक ढंग से बातचीत ही की, न बैठे ही, बस उड़ते-उड़ते आये, केलों के बारे में पूछा और भाग खड़े हुए। ऐसा वे कभी नहीं करते। आखिर नाराज तो नहीं हो गये या किसी गंभीर मामले को देखने के लिए गये, या उस माली के लड़के के कारण तो मुझसे नाराज नहीं हो गये। मैं कुछ अजीब-सा आदमी हूँ। दूसरे का दुख मुझसे नहीं देखा जाता। एक दिन किसी माली के लड़के की बुरी हालत देखी तो मैंने उससे पूछा—'भाई, तुम्हारे लड़के की तो बुरी हालत है। भयंकर बीमारी है, इलाज-विलाज क्यों नहीं कराते?' माली ने अपनी लाचारी और बेबसी दिखाते हुए कहा—'क्या करूँ बाबूजी, अच्छे-से-अच्छे डाक्टरों को दिखाया पर हमारी तकदीर ही खराब है, यह ठीक ही नहीं हुआ। एक-से-एक इलाज किये। मनौतियाँ कीं, पूजाएँ कीं; पर बाबूजी! यह ठीक नहीं हुआ। हमारा एक ही तो लड़का है। इसके लिए हमने पूरी कोशिश की। कहाँ-कहाँ ले गये। कितने-कितने रुपये खर्च किये पर ठीक नहीं होता।' उस समय तो मैं चुपचाप चला गया पर एक दिन मैंने बातों-ही-बातों में मेजर शर्मा से उसकी बीमारी का जिक्र किया तो उन्होंने कहा—कभी देख लेंगे। और तब एक दिन अकस्मात् वही माली मिल गया। हमने उसे बच्चा दिखाने को कहा। मेजर शर्मा ने कहा 'आज शाम को ही चार बजे तक उसे मिलिटरी अस्पताल में ले आना, वहीं देख लेंगे।' माली

बेचारा शाम को ठीक समय पर बच्चा लाया। मेजर शर्मा ने खुद अपने आप उसका खून टेस्ट किया और न-जाने क्या-क्या किया। फिर उसे वहीं अस्पताल में रख दिया। अपनी जेब से उसकी दवाइयों पर खर्चा किया। खाने-पीने से लेकर न-जाने कितनी-कितनी चीजें! माली भी रात-रात को वहीं रहता, उसका भी खाने का इन्तजाम किया। इस प्रकार एक महीने तक उसे वहाँ रखा तो वह ठीक होने लगा। मैंने मेजर शर्मा से कई बार कहा कि आपने मेरे कहने पर बेकार ही मुसीबत मोल ले ली। मैंने आपको बेकार परेशान किया। अब इसकी छुट्टी कर दो। माली से कह दो कि अब इसे यहाँसे ले जाय पर मेजर शर्मा दूसरी बातें ही छेड़ देते और माली का लड़का वहीं रह गया। मुझे अजीब-सा लगा, क्योंकि मुझे मालूम था कि उसका सारा खर्चा डाक्टर को अपनी जेब से देना पड़ रहा है। आज मैंने सोचा कि शायद इसी बात पर डाक्टर कुछ खीझे हुए हैं।

दूसरे दिन जब मेजर शर्मा मिले तो मैंने वही कल-वाली बात शुरू कर दी कि कल आप बड़े परेशान थे। क्या बात है? कोई ऐसा-वैसा केस आ गया था क्या? और तब मेजर शर्मा ने कहा कि नहीं ऐसी-वैसी कोई बात नहीं थी—मुझे केले चाहिए थे। रात को दस बजे अपने घर गया तो वहाँ भी केले नहीं मिले। कार में कर भागा-भागा आपके घर आया तो वहाँ भी केले थे। साढ़े दस बज गये थे। बाजार बंद होनेवाला इसलिए जल्दी-जल्दी बाजार गया और कुछ केले ख

'आखिर रात के साढ़े दस बजे आपको केलों की इ जरूरत क्यों पड़ गयी?'—मैंने उत्सुकता से पूछा।

'अरे, वही तो मैं तुम्हें बताने जा रहा था। लड़का माली का, तुम्हें याद है न? मैं जब रात के बजे उसे देखने गया तो उससे पूछा बेटा, भूख तो लगी है, कुछ खाओगे? तो वह कह बैठा कि केले खाऊं अब आप ही सोचिए कि उसकी इतनी छोटी-सी बात मैं कैसे टालता? वह भी क्या सोचता कि डाक्टर केले भी नहीं खिला सका, इसलिए रात के ग्यारह केले लाया और तब उसे केले खिलाये, मैं डाक्टर बात को सुनकर हक्का-बक्का रह गया कि बाप रे इतना ख्याल है डाक्टर को अपने मरीज का। माली लड़के के लिए केले लेने इतनी रात कार में बैठकर मील दूर गये। कितना बड़ा इन्सान है यह व्यक्ति! मुझे मालूम हुआ कि मेजर शर्मा की सफलता का क्या है। मुझे मेजर शर्मा हिमालय से लगे और सामने मैं अपने को बिलकुल बौना समझने लगा।

कृपा

श्री राजेश दयालु "राजेश"

हरि पिचकारी मोहुँ पै, मारी गुन-छबि-कोष।
पिचकारी मरती कहा, मरि गे मेरे दोष॥

हास्यकथा

पुरस्कार

श्री शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुंडि'

फिल्मचक्षु बोले, हे अभिनेतानन्द ! कलकल-निनादिनी पवित्र सलिला भगवती धेनुमती के सुरम्य तट पर विलासपूर्ण वैभवों से ओतप्रोत भोगवती नामक एक नगरी है। वहाँ पर अभिनेत्रीमल नामक एक व्यक्ति रहते हैं। उन्हें साहित्य से बड़ा प्रेम है। अतएव उन्होंने साहित्य-समिति के नाम से एक संस्था खोल रखी है जिसके वे स्वयं कोषाध्यक्ष हैं। एक रविवार को ७।। बजे प्रातःकाल उन्होंने अपने यहाँ समिति की बैठक बुलाई। दो घंटे लगातार सदस्यों की प्रतीक्षा करते-करते जब उनके धैर्य का बाँध टूटने लगा तब अनुजरक्त शर्मा घोड़ा बेन्दुला की टाप के समान वहाँ पर आ टपके। इन महोदय का चाकलेटी रंग, घासलेटी ड्रेस तथा नई कविता के समान स्नेह-रहित खड़े हुए बेतुके बाल, अपनी खर उदासीनता की छटा से उनके चेहरे पर उदासी चार चाँद लगा रहे थे। इनके साथ दो मित्र ीर थे जो आयु से नवयुवक किन्तु देखने में सुन्दर अधेड़ तीत होते थे। बैठक की कार्यवाही के कोरम में कमी ने के कारण इधर-उधर की बातें चल पड़ीं। एक त्र ने ऐनक उतारते हुए कहा, भाई शर्मा! आज-ल के कवि तो दूसरे कवियों की कविताओं को समूचा निगल जाते हैं, उसमें थोड़ा सा नमक-मिर्च लगाने कष्ट भी गवारा नहीं करते।

अनुजरक्त शर्मा तुक से बैठते हुए बोले, 'भाई ौर्यसिंह, यह तुम्हारी कोई नई खोज नहीं है। इसके ले के लोग तो आज के भी कवियों के कान काटते थे।'

सिंहजी ने बैठने का आसन बदलते हुए कहा, 'चाहे भी हो मगर ऐसा अंधेर न होता रहा होगा।'

'होता क्यों नहीं था?' जरा गर्म होकर शर्मा ने उत्तर ा। 'सुनो, यह उस समय की बात है, जब भारत विद्वान् होते थे। वसंतगढ़ नाम का एक राज्य था। का राजा मदनमर्दनसिंह जूदेव बहुत प्रतापी एवं प्रिय था। उसके राज्य की राजभाषा संस्कृत थी। वहाँ की जनता मामूली बातचीत में भी सस्वर श्लोकों का ही प्रयोग करती थी। राजा के एक रूपवती कन्या थी जिसकी पड़ी चोटियाँ हिमालय की खड़ी चोटियों से अपना पानी भरवाती थीं। यों तो वह विदुषी न थी परन्तु संस्कृत काव्य से विशेष रुचि रखती थी। राजा उसे बहुत प्यार करते थे और वे अपने मन में यही सोचा करते थे कि वे अपनी राजकुमारी का विवाह किसी होनहार कवि के साथ करेंगे।'

'एक दिन राजा ने अपने महामंत्री से अपने विचार प्रगट कर दिये। महामंत्री बड़ा योग्य व्यक्ति था। उसने राजा के विचार का समर्थन करते हुए कहा, "महाराज, आपके विचार सराहनीय हैं। यदि आप प्रतिवर्ष कवियों को उनकी उत्तम पुस्तकों पर पुरस्कार देने की घोषणा कर दें तो इसमें आम के आम और गुठली के भी दाम हो सकते हैं।" राजा को महामंत्री की मंत्रणा बहुत प्रिय लगी और उन्होंने शीघ्र ही इस कार्य को आरम्भ करने की इच्छा प्रगट की।'

'राजा की आज्ञा पा कर, महामंत्री ने तत्काल पाँच प्रमुख विद्वानों के सहयोग से एक पुरस्कारदात्री समिति की स्थापना कर दी और राज्य में यह घोषणा करवा दी कि प्रतिवर्ष मदनोत्सव के अवसर पर राजा की ओर से कवियों को उनकी उत्तम कृति पर पुरस्कार दिया जावेगा, तथा जिस कवि को राजकुमारी पसन्द कर लेगी, उस कवि के साथ उसकी शादी कर दी जायेगी। इस घोषणा के पश्चात् नियमानुसार पुरस्कार का कार्य प्रारम्भ हो गया।'

'धीरे-धीरे पुरस्कार की गंध विदेशों में भी फैलने लगी। उस समय हिंगलाज देश में वृद्धसेन नामक एक सेठ रहता था। उसके दो पुत्र थे। एक का नाम धर्मध्वज तथा दूसरे का नाम शीतध्वज था। धर्मध्वज उद्यमी था, इसलिए उसका हाथ पीला हो गया था लेकिन

शीतध्वज निष्काम था। अतएव वह बे नकेल का ऊँट रहा। एक दिन वह चारपाई पर टाँगें फैलाये लेटा था। किसी कार्यवश उसकी भाभी उधर आ गई और उसको अकारण चारपाई तोड़ते देखकर उबल पड़ी। शीतध्वज को भाभी की यह गरमी सहन न हुई और वह चपचाप वहाँ से गोल हो गया।'

'कुछ दिन इधर-उधर की धूल फाँकने के बाद, शीतध्वज वसंतगढ़ राज्य में आया। वहाँ भिडपाल नाम के एक व्यवसायी से उसकी भेंट हो गयी। उसकी गिरी दशा को देखकर भिडपाल को बहुत दया आई। उसने उसको बताया कि यहाँके राजा प्रतिवर्ष कवियों की उत्तम पुस्तक पर पुरस्कार देते हैं। अतएव यदि वह कविता करना जानता हो तो उसका भला हो सकता है। शीतध्वज ने उदास होकर जवाब दिया 'बन्धु! यह पेशा तो मेरे पुरखे भी नहीं करते थे भला मैं किस प्रकार इसका अधिकारी हो सकता हूँ।'

'भिडपाल कुछ समय तक अपना शिर खुजलाता रहा, फिर उसके पश्चात् बोला, 'एक युक्ति बताता हूँ। शायद इसके द्वारा अंधे के हाथ बटेर लग जाये। किन्तु इस कार्य में जो भी लाभ होगा, उसमें से आधा मैं ले लूंगा।' मरता क्या न करता, शीतध्वज ने उसकी शर्त मान ली। शीतध्वज की स्वीकृति के बाद भिडपाल ने बताया, 'यहाँसे कुछ दूर पर दुखहरणपुर है। वहाँ पर उत्तुंग गिरि दुबे रहते हैं। वे महाकवि हैं। भगवान् का दिया हुआ उनके एक ही पुत्र है जिसको उसके मित्र कवि कुमार कहते हैं। अभी हाल में वह काशी पास करके घर लौट रहा था। मार्ग में कामिनीगंज के निकट स्वयंप्रभा नाम की एक सुन्दर कन्या से उसकी भेंट हो गयी। सुन्दरी के सौन्दर्य पर आसक्त होकर कवि कुमार उसके सामने कादम्बरी के पन्ने खोलने लगा। स्वयंप्रभा को उसकी यह धृष्टता असह्य हो गयी। अतएव वह कड़ाकेदार रेवड़ियों की वाणी में कड़क कर बोली, "देख पथिक! यदि तू मुझसे विवाह करना चाहता है तो सीधे मेरे पिता से बातें कर वरना देख! मैं तेरे प्रेम के भूत को उतार दूंगी।" लड़की की टेढ़ी तेवर देखकर युवक काशी की विद्या भूल गया और सीधा कन्या के पिता के पास आया। लड़की का पिता कवि कुमार की प्रार्थना पर अप्रसन्न नहीं हुआ, अपितु प्रेमपूर्वक बोला, 'युवक! मैं अपनी कन्या का सम्पन्न कुल में करना चाहता हूँ। अतएव यदि तु घर हरा-भरा है तो अपने पिता से परामर्श कर मुझसे मिलो।'

'कन्या के पिता की धारणा सुनकर कवि कुमा हृदय बैठ गया क्योंकि वह जानता था कि उसके श्रीवर नहीं, अपितु हंस कुमार हैं। अपने दिल में कर वह वहाँसे अपने घर आया तथा सीधे अपनी के पास गया। उस समय वह दाल में नमक डाल रही थी। पुत्र को सकुशल आया हुआ देखकर वह प्रसन्न हुई और बारम्बार उसका शिर सूंघने माँ के मिलने पर जब कवि कुमार ने कोई प्रसन्नता मुद्रा न दिखाई तब वह घबड़ा कर उसकी ओर लगी। माता को आश्चर्य में पड़ते देख कर उसने मन की बात प्रकट कर दी। पुत्र की अप्राप्य अ से माता की ममता को चोट लगी। इसी समय गिरि दुबे भी बाहर से आ गये और अपने पुत्र कर पहिले तो बहुत प्रसन्न हुए किन्तु जब उनको प्रेम कहानी का पता लगा तब वह आगबबूला हो वे अपने पुत्र के प्रति कुछ अनर्गल शब्द निका रहे थे, किन्तु उनकी बीती बातों ने उनकी जीभ ली। इसलिए वे शान्त हो गये तथा अपनी समझाकर कहने लगे कि जिस प्रकार वह उनको है, उसी प्रकार पुत्र को स्वयंप्रभा भी मिलेगी। वेश में वे अपनी पत्नी को धीरज तो बँधा गये अब उन्हें रुपयों के लाले पड़े हैं।" इसलिए इस समय उनके पास जाओगे तो धन के लाल तुम्हारी समस्या हल कर देंगे।'

'भिडपाल के आदेशानुसार शीतध्वज दुबे यहाँ गया और १० रु० प्रति श्लोक की दर से ५०० ले आया। उसके मित्र ने उन रचनाओं की एक पुस्तक बनवाकर पुरस्कार के लिए शीतध्वज के से महाराजा के पास भेज दी। संयोग से उस पुस्तक में शीतध्वज को प्रथम पुरस्कार के साथ कुमारी भी मिल गयी। अपने दिन फिरते देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई तथा अपने मित्र के प्रति प्रगट करता हुआ वह अपने देश को रवाना हो गया

'शीतध्वज को धनधान्य से पूर्ण आया हुआ देखकर, उसके पिता तथा भाई ने बड़ा स्वागत किया। राजकुमारी को अपनी देवरानी के रूप में प्राप्त कर उसकी भाभी ने मुस्कराते हुए कहा, 'लाला! यह मेरी वाणी का असर है।' अब शीतध्वज बड़े आनन्द के साथ अपने घर में रहने लगा, तथा आसपास के राजों में भी उसका सम्मान बढ़ने लगा। किन्तु उसकी यह प्रसन्नता उसके पट्टीदारों से न देखी गयी। उन्होंने पता लगाना शुरू किया कि लंगूर के हाथ हूर कैसे पड़ गयी। खोज करते-करते उनको यह भेद मिला कि वसंतगढ़ के राजा के यहाँ उसको कविता में प्रथम पुरस्कार एवं राजकुमारी मिली है। इस सूचना से उनके कान और खड़े हो गये क्योंकि वे जानते थे कि शीतध्वज कवि तो क्या कवि की दुम भी नहीं है। अतएव उन्होंने एक गुप्त पत्र महामंत्री के पास भेज दिया। पत्र को पढ़कर महामंत्री के हाथ के तोते उड़ गये। उन्होंने शीघ्र ही निर्णायकों को बुला भेजा तथा उनके आने पर वह पत्र उनके आगे रख दिया। पत्र को पढ़कर निर्णायकों ने निवेदन किया, "महाराज! इसमें शीनध्वज के शत्रुओं का जाल प्रतीत होता है जो उनकी विमल कीर्ति पर कीचड़ उछालना चाहते हैं। वरना हमने तो भली प्रकार से इस पुस्तक को देख लिया था"।

'निर्णायकों के स्पष्टीकरण से महामंत्री को सन्तोष नहीं हुआ। रह-रह कर उन्हें यह विचार कटोच रहा था कि हो न हो इसमें कुछ अवश्य दाल में काला है। अतएव उन्होंने वह पुस्तक मँगवाई और जैसे उसको खोलकर देखा, वैसे ही प्रथम पृष्ठ पर उनको अपनी एक प्रमुख कविता ज्यों की त्यों लिखी हुई दिखाई पड़ी। अब तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने और आगे जब उस पुस्तक को देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि इसमें शीतध्वज की एक भी रचना नहीं है बल्कि सारी कविताएँ राज्य के प्रमुख कवियों की ही हैं। उन्होंने निर्णायकों की ओर क्रोधपूर्ण नेत्रों से देखा और उनके उचित उत्तरदायित्व न निबाहने पर उन्हें बहुत बुरा-भला कहा।'

'जब यह समाचार राजा को मालूम हुआ तो उनके पैर के नीचे की जमीन खिसक गयी और उनके भी क्रोध का पारा चढ़ गया। उन्होंने उसी समय शीतध्वज को बुलवा भेजा। शीतध्वज के आने पर राजा ने गरजकर उनसे पुस्तक के विषय में पूछा। महाराजा की लाल-पीली आँखें देखकर शीतध्वज के आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसने हाथ जोड़ते हुए जवाब दिया, "दयानिधान, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। मैंने तो इस पुस्तक के श्लोकों को उत्तुंगगिरि दुबे से मोल लिया था। मुझे क्या पता उन्होंने मुझे स्वरचित रचनायें दी थीं या किसी अन्य कवि की।" शीतध्वज की बात सुनकर राजा का क्रोध और भी भड़क गया। उन्होंने शीघ्र ही दुबे को बुलवा भेजा। दुबे ने आकर निवेदन किया, "कृपानिधान! मैं इस विषय में किंचित् दोषी नहीं हूँ क्योंकि कविता मोल लेते समय, शीतध्वज ने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया था!" दुबे जी की सफाई सुनकर राजा को हँसी आ गयी। उन्होंने सोचा जब सारा आवाँ का आवाँ ही दूषित है तो दंड किसको दिया जाये। अतएव उन्होंने शीतध्वज को भी बेदाग छोड़ दिया।'

'शर्माजी ने मुस्कराते हुए प्रश्न किया, 'बताओ सिंह साहब! क्या समझे?' इस प्रश्न को सुनकर उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि मुँह बा कर रह गये। शर्मा को उनकी यह हरकत अच्छी नहीं लगी। अतएव वे तुनक कर खड़े हो गये और कहने लगे, "भैंस के आगे बीन बाजे, भैंस खड़ी पगुराय।" बैठक में गण पूर्ति के अभाव के कारण वे पुनः अपनी कुर्सी पर नहीं बैठे, और अपने घर का रास्ता नापने लगे।

फिल्मचक्षु ने पूछा, "हे अभिनेतानन्द! दुर्बोधसिंह ने क्यों मुँह बा दिया था?' अँगड़ाई लेते हुए अभिनेतानन्द ने जवाब दिया, 'स्वामिन्! उसने इस अफसोस में मुँह बा दिया था कि वह उस समय उस राज्य में क्यों न हुआ?"

चाँदनी रात में

मूल ले० नोरा बर्क

अनु० राजेन्द्रनाथ मिश्र एम० ए०

बच्चा हालांकि बहुत ही मासूम था पर उसे पता था कि वह और उसकी माँ किसी खतरनाक रास्ते पर आगे बढ़ रहे थे। वह बड़ी सावधानी के साथ गाँव की तरफ चली जा रही थी।

सामने के मैदान में खेतों के उस पार हरी-भरी फसल के बीच से गुजरनेवाले रास्ते पर वह दूधिया चाँदनी में नहाया हुआ खड़ा था। पास में ही फलों की बगीची भी थी।

कहना न होगा जहाँ भोजन होता है वहाँ खतरा भी रहा करता है। एकाएक उसकी माँ खड़ी हो गई। उसका सिर तन गया। वह अपना थूथुन इधर-उधर घुमाकर कुछ सूँघ रही थी। उसके गले पर घोड़े की नाल का सा बना सफेद दाग व मैले-कुचैले पंजे चाँदनी में चमक रहे थे।

उसने जरा देर ठहर कर आराम किया, फिर बदन के काले बालों को झुलाती हुई—जिनके कारण शहद की मक्खियाँ उसकी त्वचा तक नहीं पहुँच पातीं—बच्चे को साथ लिये हुए खरामा-खरामा आगे बढ़ी।

वह हिन्दुस्तान के आरामतलब भालू थे जो अक्सर मैदानों व पहाड़ी की तराई में पाये जाते हैं किन्तु ये पशु होते बड़े भयानक और संगदिल हैं। एक तो ये बहरे होते हैं, दूसरे, इन्हें दूर की चीज भी दिखाई नहीं देती। इसलिए अक्सर किसी मुसाफिर या लकड़हारे से टक्कर लगते ही यह हमला कर बैठते हैं जब कि चीता या शेर ऐसा कभी नहीं किया करते। वे कभी मनुष्यों से टक्कर लेना पसंद ही नहीं करते।

इस इलाके में जंगली भालू अक्सर रात में पहाड़ी दामन से उतर कर गाँवों की खेती चौपट करने आया करते हैं। और सुबह होते ही ऊपर सोने व आराम करने के लिए लौट जाते हैं। यही इनकी दिनचर्या है। यह विशाल वन्य पशु अपनी मूंगों जैसी नन्हीं आँखों से नीचे की ओर सिर डाले हुए आते हैं और गाँवों की हरी-भरी फसल चौपट करके लौट जाते हैं।

यह पहला ही मौका था जब यह भालू का बच्चा अपनी माँ के साथ इस गाँव में आया था, इसलिए वह शान से लुढ़कता चला आ रहा था। कभी ह सूँघता हुआ, कभी इधर-उधर देखता हुआ वह माँ के से सटा हुआ आगे बढ़ा आ रहा था क्योंकि निर्जन वन्य पशुओं के बच्चों के लिए माँ—रक्षिका, भोज वाली व गुरु हुआ करती है। निर्बल का बल माँ के साकार राम हुआ करता है।

तारों से जड़ी इस रात में **चन्द्रमा** न था, गर्मी को ठंढक ने ले ली थी। इसी तरह सबेरा भी हो ज अंधकार का स्थान दूधिया कोहरा ले लेगा और रा जायेगी तो प्रभात आ ही जायेगा। बादलों के पीछे की कालिमापूर्ण शृंखलाएँ लहरा रही थीं। मैद वायु और गीदड़ों की ध्वनि का साम्राज्य था।

बच्चे की नाक में अनाज की सुगन्ध आने ल साफ जाहिर है कि अब गाँव दूर नहीं हो सकता। गाँ आने का अर्थ है फल, फूल, अनाज, भैंसे और इन्सा पास आ जाना। वे लम्बी-लम्बी घास में आगे बढ़े आ बच्चे ने एक बाँस की झाड़ी पर नजर दौड़ाई जो एक आदमी !

माँ बेटे को यहाँ किसीके होने की आशा न थ एकाएक एक आदमी से आँखें चार हुईं तो वे चौंक नंगे पैरोंवाला भारतीय किसान देख उसका खू लगा और **दोनों** चौकन्ना हो गये।

उसने देखा कि माँ थोड़ा पीछे हटी और हमले के तैयार हो गयी। उसने ताबड़तोड़ हमले किये। इन् गर्मागरम खून बह निकला, घाव गहरे जो हुये थे। रंगवाले इन्सान के बदन से पसीने की बदबू भी आई।

आदमी दर्द भरी आवाज में चीख उठा। उसने की कोशिश की, रेंगने व घिसटने की कोशिश भी की, भालू उसकी धज्जियाँ उड़ा रहा था। वह उस पर बुरी पिला पड़ा था।

गाँव से खाली टीनों की आवाज आई, शोर रोशनियाँ भी चमकीं। गाँववाले लाठियाँ सम्हाले बजाते हुए लालटेनें लिये हुए चले आ रहे थे।

भालू प्राण बचाने के लिए भाग खड़े हुए।

एकाएक बहरा कर देनेवाला धड़ाका हुआ, तोड़ादार बन्दूक से निकली हुई लौ चमकी और शीशे के छर्रे माँ भालू के बदन में जा घुसे।

वह चीखी, हाफी लँगड़ाती हुई घिसटी और बढ़ती गयी। बच्चा उसके साथ-साथ चला जा रहा था।

थोड़ी देर में शोर भी समाप्त हो गया। चन्द्रमा निकल आया।

वे लम्बी घास तक पहुँच गये। पहुँचते ही हिरनों के गिरोह में भगदड़ मच गयी। बारहसिंहों के सींग चाँदनी में चमक उठे। वे सब के सब सर पर पैर रखकर भाग गये। बाँसों की झुरमुट ने उन्हें अपने आप में छिपा लिया।

अब भालू बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। बच्चा अपनी माँ की ओर ताक रहा था।

उसका सिर लटक चला था—साँसें भी उखड़ी-पुखड़ी आ रही थीं। वह खून उगल रही थी।

बच्चा उसी की बगल में चला जा रहा था——कभी-कभी वह इधर-उधर निगाहें भी डाल लिया करता था——हवा भी सूंघ लेता था जिसके द्वारा रात में भी उसे जंगल का हाल मालूम होता रहता था।

आगे की ओर जब वे धीरे-धीरे बढ़ रहे थे तो उन्हें पत्थरों के नीचे बहती हुई जलराशि की कलकल ध्वनि सुनाईदी। भालू माँ ने भी यह ध्वनि सुनी। वह हाँफती हुई किसी प्रकार पानी की ओर चल दी। उन्हें आता देख दलदल के पासवाले मृग चौकड़ी भर कर भागे।

वे दोनों जब जलधारा की ओर उतरे उन्हें जल के ऊपर से आनेवाली ठण्ढी हवा का स्पर्श प्राप्त हुआ। नदी की तलहटी में चमकदार गोल रुपए जैसे पत्थरों का किनारा था। उन पर चाँदनी फैली पड़ रही थी। चाँद की किरणें उन टुकड़ों को सचमुच सूखी धार के पासवाली रेती सहित भूमि से विभिन्न और चमकदार बना रही थीं।

भालू माँ उधर ही बढ़ी। वह हाँफ गयी और धड़ाम से उन पर गिर पड़ी। उसका थूथन पानी की पतली रेखा को छू रहा था। साँसें धीमी-धीमी आ रही थीं। उसके थूथन से निकलता हुआ रुधिर पानी को लाल कर रहा था।

उसकी पुतलियाँ पथरा गयीं। आँखें सदा को बन्द हो गयीं।

वह शान्त निश्चेष्ट पड़ी थी।

बच्चा भालू निर्जीव माँ की बगल में पत्थरों पर बैठा था। भालू माँ के लिए रात में सोना अशोभनीय था किन्तु बेटा माँ से कैफियत तलब करने की हिम्मत कैसे कर सकता था!

हवा में ठण्ड बढ़ती जा रही थी इसलिए वह माँ से चिपट कर गर्म रहने के लिए जा बैठा किन्तु उसने अनुमान किया कि यहाँ तो और भी ज्यादा ठण्ड लग रही है।

उसे भूख भी लगी।

उसने माँ के आस-पास चक्कर काटे——घुरघुराया भी। फिर बैठा——उठ खड़ा हुआ——पुनः बैठा। वह अज्ञान और भूख दोनों का शिकार था।

ठण्डा पानी पीकर उसने कुछ देर के लिए पेट की ज्वाला शान्त की। पर पेट की आग पानी से नहीं, खाने से बुझती है।

वह पुनः माँ की बगल में आकर बैठ गया।

तारों भरी शान्त रात में कितनी घटनाएं घट जाया करती हैं। नदी कलकल ध्वनि करती हुई बह रही थी। उल्लू पंख फैलाये हुए उन चूहों के शिकार में व्यस्त था जो घास में दाने-चारे के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। पानी की सतह पर मच्छर भनभना रहे थे। दूर से शेर के गुर्राने की आवाज भी आ रही थी।

वन की तारों भरी रात ऐसी थी। दूर-दूर तक घने वन, मैदान और पहाड़ियों का दामन फैला हुआ था। कटीली झाड़ियाँ छोटे-बड़े वृक्ष, बीच-बीच में घास, नदी का तट-किनारे की कगारें व कटानें और न जाने क्या-क्या? इन सब में छोटे-बड़े वन्य पशु पक्षी आराम या काम कर रहे थे और बेचारा भालू का बच्चा माँ की बगल में इस आशा में बैठा था कि वह कब उठे और हम शिकार को चलें।

धीरे-धीरे उसकी परेशानी डर में बदलने लगी। उसे मानसिक आघात सा पहुँचने लगा। भय के साथ साथ कुछ शोकग्रस्त भाव-लहरियाँ भी आयीं। वह भय से सहम गया। उसके सारे शरीर पर रोंगटे काँटों की तरह खड़े हो गए।

वह नितान्त अकेला था।

बड़ी देर के बाद, अंधकार छट चला। नदी पर कोहरा छाया हुआ था। लम्बी-लम्बी घास——जिसमें हाथी खो जाएँ——वह भी कोहरे से ढकी थी। जंगली मुर्ग ने बाँग लगायी। सूर्य आग के गोले की तरह निकल आया।

उसकी माँ के चेहरे पर चींटियाँ घिर आयीं। आँखों पर मक्खियाँ बैठने लगीं।

फिर आसमान से एक गिद्ध ने उस पर झपट्टा मारा ——नग्न शरीर वाला मरे पशु का गोश्त खानेवाला कुरूप गिद्ध——वह वहीं मड़राता रहा। उसने उसकी माँ की गर्दन पर चोंच गड़ाई उस पर भी पंख फड़फड़ाये। बेचारा बच्चा उठकर पास की घास में चला गया।

बीसियों पक्षियों ने हमला प्रारम्भ कर दिया। वे आपस में लड़े-झगड़े। फिर पहले ने गोश्त की बोटी नोची। उसे मुँह में दबाया और पास के ठूँठ पर जा पहुँचा। धीरे-धीरे सभी पक्षियों ने ऐसा ही किया।

फिर सब खा-पीकर उड़ गये।

बेचारे बच्चे ने माँ तक आने की फिर हिम्मत की, पर अब माँ खत्म हो चुकी थी। हड्डी-पसली पत्थरों पर बिखरी पड़ी थी। उसका तो काम तमाम हो चुका था।

उसने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा और बिलखने लगा।

उसे अब बड़ी तेज भूख लगी थी किन्तु अब दिन हो गया था और वह दिन की रोशनी में कुछ भी देख नहीं सकता था। फलस्वरूप वह सिकुड़ कर तलहटी में एक पेड़ की खोखली जड़ों के बीच सो गया। उसने पेट दाब लिया। उसके चारों ओर गीली मिट्टी की महक लहरा रही थी। वहाँ वह गर्मी से मुक्त था ही क्योंकि भालू को अपने बालों से बहुत गर्मी लगती है। वह लगभग बहरा था अतः उसे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा और वह चैन से सोता रहा। नींद में वह शहद, फल और चींटियों के सपने भी लेता रहा। उसे लाल गोश्त भी ख्वाब में दिखाई दिया।

संध्या समय वह जागा, उसने माँ से हिदायतें चाहीं --तभी याद आया कि माँ तो . . . . .।

एक बार फिर वह नदी के किनारे तक गया पर वहाँ अब क्या रक्खा था ?

उसने सूँघ कर यह जानने की कोशिश की कि वह किधर गयी। शेर के पग-चिह्न तो वहाँ मिले पर माँ के चरणचिह्न कहीं न मिले। रेत पर हिरनों, हाथियों के पग-चिह्न भी मिले। भालू के चिह्न भी मिले, पर वे तो बहुत ही पुराने थे।

क्या वह गाँव की ओर चली गयी ?

उसे गाँव का रास्ता याद हो आया। वह उसकी आँखों के सामने झूल उठा साफ-साफ पर खतरों से भरा हुआ। वहाँ खाने को बहुत कुछ है। उसने उधर देखा, मन ललचाया पर खतरा भी याद आया, मन डर गया। अब उसके और गाँव के बीच भय की दीवार थी, जो पशुओं और मनुष्यों के बीच सृष्टि के सृजन काल से चली आ रही है। हवा में धुएँ की लहर थी, यद्यपि उसे सिखाया नहीं गया था फिर भी अन्तरात्मा की पुकार आयी कि उसे मनुष्यों से दूर ही रहना चाहिए।

उसकी भूख प्यास अब मर चुकी थी। हाँ पेट में एक दर्द सा जरूर था। जिसे उसने पेट को दबा कर कम करना चाहा और फिर आगे बढ़ चला।

वह रही दीमक की पहाड़ी--लम्बी, ऊँची, पत्थर जैसी सख्त। अगर उसकी माँ यहाँ होती तो उसने इसे तोड़ गिराया होता, वह उसकी दो-एक मीनारें तोड़कर जो हवा पहुँचाने के लिए बनी होती है, उन्हीं पर थूथुन जमा देती और साँस के साथ खींच कर उन नन्हीं दीमकों से नाश्ता का काम प्रारम्भ कर देती।

बच्चे ने एक नन्हीं चोटी को धर दबोचा और जोर देकर उसे तोड़ दिया। उसमें दूध के दाँत जमाकर गड़ाये --चोटी टूट गयी।

उसने मुँह में गयी मिट्टी थूक दी।।

उसे विध्वंस स्थल में बहुत सी दीमकें दौड़ती-भागती नजर आयीं। दीमकें प्रकाश सहन नहीं कर सकतीं। उन्हें प्रकाश से कष्ट होता है, अतः वे दौड़-भाग रही थीं अपने अँधेरे घर में सुरक्षित हो जायें। उसने सूराख थूथनी जमा दी और खींच-खींचकर दीमक चटकोरने पहले उन्हें एक पंजे से दबाता फिर दूसरे में लेता और मुँह में। इसी प्रकार भालू उड़ती हुई चींटियों का तमाम किया करते हैं। थोड़ी ही देर में वह सब दी को जो दिखाई दी थीं खत्म कर डाला। चिकनी मीन के मार्ग नीचे अंधकार में पहुँचे रहते हैं वहाँ कुछ नहीं दि देता। वहाँ दीमक नीचे थीं पर इस बेचारे को कैसे दि देतीं। उसे निराश होना पड़ा। उसने पहाड़ी पर पं बहुत चलाये पर हार माननी पड़ी क्योंकि वह मी कांक्रीट की तरह कठोर थी क्योंकि रज के कण दीमक थूक से अच्छी तरह चिपके रहते हैं। वह निराश हो दिया। इस दीमक की पहाड़ी की मरम्मत दीमक कामगरों (Workers) द्वारा हो जायेगी। तक वह ऐसी लगेगी जैसे कुछ हुआ ही न था। दि गर्मी इस गीली पहाड़ी को फिर कांक्रीट की तरह कर देगी।

वह गाँव की ओर बढ़ा।

एक खेत में कटीली झाड़ी के पास एक बकरी बच्चा उसे दिखाई पड़ा। अँधेरे में वह भूरा दिखा। दोनों आँखें मिलीं। वह मिमियाँ उठा। डर के मारे काँप भालू के बच्चे की अन्तरात्मा ने कहा--"यह रहा भोजन"।

नन्हें भालू ने नन्हें बच्चे की बुरी तरह नोचा- की। वह मर गया। यह तो प्राकृतिक निर्मम नियम है "जीवो जीवस्य भोजनम्"।

मरे बच्चे को नन्हें भालू ने डट कर खाया। नन्हीं खुरी से ऊपर टाँग पर दाँत लगाये और धीरे- दिल के मुलायम **स्वादिष्ट** गोश्त तक जा पहुँचा। बड़े प्रेम से उसका तमाम खून पिया।

साथ ही कुछ झाड़ी में छिपा दिया ताकि चा बिल्ली या गंदे गीदड़ उसे न खा सकें।

इस भोजन के पश्चात् नन्हें भालू ने कुछ दिन मूल और चींटियों का चूरन चक्खा। कभी भूखा भी धीरे-धीरे जंगल में रहकर वह पक्का हो गया।

उसने खटमिट्ठे बेर भी खोज लिये। वहीं टहनियों की आड़ में अपनी पाड़ (निवासस्थल) भी बना ली जैसा कि सभी भालू बनाते हैं और उस बैठते हैं।

यहाँ से वह आस-पास के फल तोड़ सकता चाँदनी रातों में चारों ओर देख सकता था। हवा सकता था। शहद की दूर से आने वाली खुशबू ले सकता था और सबसे बढ़कर अब वह अपने दृश्य- का राजा था।

प्रेम की नगरी

श्री श्रीकृष्ण

पात्र-परिचय

सोम बाबू :--'प्रेम की नगरी' नामक नाटक के निर्देशक।

रंजन बाबू :--सह-निर्देशक।

कंचनजी :--नाटक के लेखक।

शील बाबू, दया बाबू, प्रवेश बाबू, उदय बाबू, विनय, कुमारी नीरा :--नाटक के पात्र-पात्री।

समय :--सायंकाल, साढ़े छः बजे।

स्थान :--एक ऐसी कोठी का कोई सजा हुआ कमरा, जो यार-दोस्तों की कारगुजारियों के लिए काम आ सकता हो।

(कमरे में तीन दरवाजे हैं, दो पूर्व की ओर, एक पश्चिम की ओर। पश्चिमवाला दरवाज़ा सड़क पर खुलता है और पूर्व की ओरवाले दरवाजे भीतर की ओर खुलते हैं। कमरे में कुछ फिल्मी तस्वीरें दीवार पर लगी हुई हैं। परदा उठाने पर सोम बाबू, रंजन बाबू और कंचनजी किन्हीं विचारों में खोये दिखाई पड़ते हैं।)

सोम बाबू--अजीब हालत है! लोग पहले तो जबरदस्ती खुशामद कर-करके पार्ट ले लेते हैं और जब रिहर्सल होता है, तो पैरों में मेंहदी लग जाती है।

रंजन बाबू--(कलाई पर बँधी घड़ी देखते हुए) साढ़े छः! मालूम होता है लोग-बाग अब अपनी-अपनी खुशामदें हमारे मुँह से वापिस लेना चाहते हैं। सोम बाबू, आज दो-चार पार्ट बदल दीजिए।

कंचनजी--बिना परिश्रम किये ही वाहवाही लूटने की इच्छा रखनेवाले कभी सफल कलाकार नहीं बन सकते।

सोम बाबू--(सामने की ओर देखकर) लो, एक साहब तो टपके।

(शील बाबू 'हमारी गली आना' गुनगुनाते हुए नाटकीय ढंग से भीतर प्रवेश करते हैं। एक नजर कमरे में चारों ओर डालते हैं। फिर थोड़ा-सा चौंककर सोम बाबू की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हैं।)

शील बाबू--जै रामजी की, भाइयो। रिहर्सल नहीं है क्या आज?

सोम बाबू--आपको किस समय की सूचना मिली थी, जनाब?

शील बाबू--मुझे तो छः बजे का समय बताया गया था। लेकिन देखता हूँ यहाँ तो अभी कुछ भी नहीं है। क्या समय में कुछ हेरफेर हो गया है?

सोम बाबू--जी नहीं, हम ही ने घड़ी को आधा घंटा तेज कर रखा है। जब तक सब लोग नहीं आ जाते, तब तक यह बराबर छः बजाती रहेगी!

शील बाबू--असल में मुझे बड़ा अफसोस है। मैं 'पतिता' की मैटिनी देखने चला गया था। वहाँसे छूटते ही बस सीधा चला आ रहा हूँ।

रंजन बाबू--और आपसे उम्मीद ही क्या की जा सकती थी!

कंचनजी--क्यों, शील बाबू, सुनते हैं फिल्म कोई खास नहीं। आपकी क्या राय है?

(शील बाबू आगे बढ़कर एक सोफे पर बैठ जाते हैं।)

शील बाबू--इस बारे में क्या कहा जा सकता है। जब कोई मिल-मालिक किसी भिखारिन पर रीझ जाता है, तो अपन का तो बस यह जी चाहता है--काश हम भी कोई लड़की होते और हमारे हाथ में एक कासा होता।

सोम बाबू--शील बाबू, यह क्या बात है? एक तो आप इतने लेट आये हैं, और फिर आते ही सिनेमा का राग छेड़ दिया। यह बात ठीक नहीं है।

(शील बाबू कुछ कहने के लिए मुँह खोलते ही हैं कि सामने से प्रवेश बाबू, दया बाबू, उदय बाबू और विनय भीतर प्रवेश करते हैं। सब लोग आपस में हाथ उठा-उठाकर अभिवादन करते हैं।)

सोम बाबू--बड़े खेद की बात है, अब पौने सात बजे आ रहे हैं आप लोग!

प्रवेश बाबू--बात यह है साहब, कि कुँवारों में और गृहस्थियों में कुछ तो फरक होता ही है। आजकल की पत्नियों को रेलों के इंजन में लगा दिया जाये, तो ब्रेक की जरूरत न रह जाये!

(सब लोग हँस पड़ते हैं और सोम बाबू कुढ़कर रह जाते हैं।)

सोम बाबू--अच्छा जी, आप आ गये इसके लिए आपकी ब्रेक को धन्यवाद! मेरा विचार है अब शुरू किया जाये, देर काफी हो गयी है और जिन-जिन लोगों को आना था वे आ चुके हैं।

रंजन बाबू--हाँ, हाँ, शुरू कीजिए, अब इन्तजार ही किसका है?

सोम बाबू--तो पहले उदय बाबू...अरे, भई उदय बाबू, कहाँ हैं आप?

उदय बाबू--(कमरे के दूसरे कोने से) मैं यहाँ हूँ, सोम बाबू।

सोम बाबू--अरे, आप उधर खड़े-खड़े क्या कर रहे हैं? इधर आइए! और, हाँ, आपका कागज कहाँ है?

उदय बाबू--कैसा कागज, मेरे पास तो कोई कागज नहीं है?

सोम बाबू--(रंजन बाबू से) सुन रहे हैं आप, रंजन बाबू! (फिर उदय बाबू की ओर मुँह करते हुए) मैं पूछता हूँ कि आपके यहाँ आने से फायदा ही क्या हुआ? यह तो तब है, जबकि कई-कई बार याद दिला दी।

गयी थी, यहाँ तक कि कार्ड में भी लिख दिया गया था। क्या आप उस कागज को घर पर ही भूल आये जिस पर आपका पार्ट लिखा हुआ था ?

उदय बाबू--ओह, कितनी बड़ी भूल हो गयी ! लेकिन आप शुरू कीजिए। कुछ-कुछ मुझे याद भी तो है। बाकी आप 'प्राम्प्ट' करते रहिए।

सोम बाबू--यह नहीं हो सकता, उदय बाबू ! जब पार्ट ही याद न होगा, तो अभिनय क्या करेंगे आप, खाक ? जाइए, घर से कागज लेकर आइए। तब तक हम अगले सीन का रिहर्सल करते हैं।

उदय बाबू--अच्छा, साहब, अब तो आपकी 'डिक्टेटर-शाही' माननी ही पड़ेगी। (चले जाते हैं)।

प्रवेश बाबू--अच्छा, तो सोम बाबू, मेरा विचार है अगर मुझे भी आज्ञा दे दी जाए, तो अच्छा है।

सोम बाबू--(चौंकते हुए) यह क्या ? आप कहाँ जा रहे हैं ? अभी आपको आये देर ही कितनी हुई है ?

प्रवेश बाबू--यह ठीक है, पर मेरी जरूरत ही क्या है ? तीसरे सीन का रिहर्सल तो आज किसी हालत में हो ही नहीं सकता।

सोम बाबू--यह आप कैसे कह सकते हैं ? दूसरे सीन के बाद तीसरे सीन का रिहर्सल ही तो हम करने जा रहे हैं।

प्रवेश बाबू--पर यह सम्भव कैसे हो सकता है ?

सोम बाबू--क्यों, अड़चन क्या है ?

प्रवेश बाबू--मिस नीरा जो नहीं हैं, और तीसरे सीन में उनका ही मुख्य पार्ट है।

सोम बाबू--(सोच में पड़ते हुए) हाँ, यह जरा सोचने की बात है।

कंचनजी--यह तो बड़ी मुसीबत हुई। क्या कोई उन्हें बुलाकर नहीं ला सकता ?

दया बाबू--बुलाकर तो मैं ला सकता हूँ, लेकिन मेरे साथ दूसरी मुसीबत है। मैं उनका घर नहीं जानता।

विनय--खैर, घर का तो मुझे भी पता नहीं है। मगर मालूम तो किया ही जा सकता है।

रंजन बाबू--वाह, फिर क्या दिक्कत है ! आप दोनों चले जाइए।

प्रवेश बाबू--कैसी अजीब बात है ! तब तो हो लिया रिहर्सल ! मैं कहता हूँ किसीको बुलाने की जरूरत ही क्या है ? जिसे गरज पड़ेगी नौ दफा आयेगा।

शील बाबू--मैं आपसे सहमत हूँ। बल्कि मेरा तो विचार है कि किसी लड़की-वड़की के चक्कर में न पड़कर यह पार्ट विनय बाबू को सौंप दिया जाय। उन पर कोई पार्ट है भी नहीं। आख़िर जहाँ लड़कियाँ नहीं मिलतीं, वहाँ भी तो ड्रामे होते ही हैं।

कंचनजी--लेकिन अब वह जमाना कहाँ है कि किसी लड़के को लड़की के कपड़े पहनाकर खड़ा कर दिया जाये ? दर्शक वास्तविकता चाहते हैं।

शील बाबू--फिर इन लड़कियों के नखरे कैसे बर
किये जायें ?

दया बाबू--टिकट बिकवाने हों, तो कीजियेगा
जनाब, लड़की तो वह चीज है कि जहाँ लोगों
यह मालूम हुआ अमुक ड्रामे में कोई लड़की भी
कर रही है, फिर टिकट-घर की खिड़की टूटते
नहीं लगती।

शील बाबू--यह कोई बात नहीं है। हमारे विनय
क्या किसी लड़की से कम हैं !

विनय बाबू--डाइरेक्टर साहब, मुझे शील बाबू के
पर आपत्ति है। उन्हें अपने शब्द वापस लेने चाहि

सोम बाबू--इन छोटी-छोटी बातों पर बुरा मानना
लोगों को शोभा नहीं देता। आप कलाकार हैं
अभिनय की कला में तो भगवान् और भंगी दोनों
रूप धरना पड़ता है।

कंचनजी--मैं तो कहता हूँ नारी पुरुष से कहीं महान
नारी का रूप धरने को मिले, तो इससे बड़ी सौ
की बात और हो ही नहीं सकती।

विनय बाबू--तो मेरा प्रस्ताव है कि मिस नीरा का
कंचनजी को सौंपा जाये।

कंचनजी--(चौंककर) एं ! आपको यह प्रस्ताव
हुए मेरी मूँछों का कोई ख्याल नहीं आया ?

विनय बाबू--कला के नाते जब सोहराब मोदी ने
सिर तक घुटवा दिया था, तो आपको मूँछें सफ
कराने में क्या संकोच है ?

(सामने से मिस नीरा प्रवेश करती हैं)

सोम बाबू--लीजिए, साहब, झगड़ा किस बात का
वह आ रही हैं नीराजी। नीराजी, मैं आपसे इ
देरी का कारण पूछ सकता हूँ ?

मिस नीरा--जरूर पूछ सकते हैं। बात यह हुई कि
सिर में आज दिन-भर दर्द रहा। मैं तो शायद
भी न, लेकिन फिर ख्याल आया कि मेरे कारण
सब लोगों को परेशानी होगी।

सोम बाबू--खैर, आप बैठिए। अब दूसरे सीन का रि
आरम्भ होता है।

मिस नीरा--लेकिन मेरे सिर में तो अब भी दर्द है।
वापस लौटना चाहती हूँ।

सोम बाबू--यह और सुनो ! आपको आये अभी दे
नहीं हुई कि आप ने चलने की भी रट लगा दी।

मिस नीरा--रोग-शोक पर किसीका बस थोड़े ही

सोम बाबू--अच्छा तो, रंजन बाबू, पहले तीसरे
का ही रिहर्सल हो जाये। प्रवेश बाबू, आप
होकर अपने डायलाग बोलिए।

प्रवेश बाबू--(मिस नीरा की तरफ दोनों
फैलाते हुए, खड़े होकर)--रानी ! जब-जब
देखता हूँ, तब-तब मुझे ऐसा महसूस होता है
दुनिया की बादशाहत मुझे मिल गयी है।

सोम बाबू--ऊँह ! तो इसमें दोनों हाथ फैलाने की

बात है, प्रवेश बाबू ? आप मिस नीरा के निकट आते हुए फिर से बोलिए।

वेश बाबू--(हाथ पीठ-पीछे बाँधकर, धीरे-धीरे मिस नीरा की ओर बढ़ते हुए)--रानी . . . . (सब लोगों को हँसते देखकर उनकी तरफ मुँह करके) इसमें हँसने की क्या बात है, साहब ?

म बाबू--सचमुच बड़े अफसोस की बात है! न तो आप लोग स्वयं ही कुछ करते हैं और दूसरा कोई करता भी है, तो उसकी हँसी उड़ाते हैं। शर्म आनी चाहिए आप लोगों को! हाँ, प्रवेश बाबू, आपके इन हाथों से मैं बड़ा परेशान हूँ। आप या तो इन्हें फैलायेंगे या पीठ पीछे बाँध लेंगे। मैं कहता हूँ कृपा करके इन डायलॉग्स के भीतर जो भाव हैं उन्हें ग्रहण करने की कोशिश कीजिए। मिस नीरा, आप इनके डायलॉग्स के बादवाले अपने डायलॉग्स बोलिए।

स नीरा--(आसमान की ओर देखने का अभिनय करती हुई) मैं तो आपकी चरणदासी हूँ, मेरे देवता, मेरे... मेरे .....

म बाबू--हाँ, हाँ, शाबाश! कहिए, मेरे प्रियतम! (मिस नीरा चुप खड़ी रह जाती हैं।)

चनजी--नीराजी, कहिए, कहिए, नहीं तो सब गुड़-गोबर हो जाएगा।

स नीरा--मुझसे यह सब नहीं कहा जायेगा। मुझे शर्म आती है।

म बाबू--कमाल की बात है! इसमें शर्म की क्या बात है? यह तो ड्रामा है। आपके कहने से ही प्रवेश बाबू आपके इतने निकट सम्बन्धी थोड़े ही बन सकते हैं! क्या मुँह और क्या मसूर की दाल!

श बाबू--आप अपने शब्द वापस लीजिए, सोम बाबू इसमें मेरा अपमान होता है।

नजी--देखिए, प्रवेश बाबू, इस समय विवाद खड़ा न कीजिए।

नीरा--और मैं कहती हूँ इसके कहने की जरूरत ही क्या है--जब इसके कहे बिना भी काम चल सकता है?

बाबू--फिर तो, सोम बाबू, ऐसे ही चलने दीजिए, जब नीराजी को यह बात पसंद नहीं है।

नजी--वाह साहब, आप भी कैसी बातें करते हैं! भला यह कैसे हो सकता है। 'प्रेम की नगरी' में ये वार्तालाप ही तो वास्तविक हैं।

बाबू--मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। वास्तविक जीवन में कोई पत्नी अपने पति को और कोई प्रेमिका अपने प्रेमी को 'प्रियतम' से संबोधन नहीं करती। यह आप-जैसे नाटककारों की हवाई उड़ानें हैं!

कंचनजी--अजी, वास्तविक जीवन की भली चलाई! उसमें तो किसी भी नाम से संबोधन नहीं होता। बस 'ए जी', **'ओ जी'** से काम चल जाता है। हमें ड्रामा दिखाना है, कोई प्रहसन नहीं!

मिस नीरा--तो, डाइरेक्टर साहब, मैं जाऊँ फिर? मुझसे यह पार्ट नहीं होगा।

सोम बाबू--अरे, यह आप क्या कहती हैं! सारे ड्रामे में आपका ही पार्ट तो एक ऐसा है, जिसे कुछ कहा जा सकता है।

मिस नीरा--लेकिन मैं यह सब खुराफात नहीं बक सकती। मैं तो इसके भी विरुद्ध हूँ कि प्रवेश बाबू के मुख से 'रानी' कहलाया जाये।

कंचनजी--तब तो हो चुका नाटक! मेरा विचार तो यह है कि आप इस ड्रामे की एक-एक प्रति अपनी छाती पर रखकर सो जाइए। रात को स्वप्न में पूरा ड्रामा देख लीजिए।

शील बाबू--मेरा तो प्रस्ताव है कि कोई दूसरा ड्रामा लिखा जाए, जिसमें किसी तरह का प्रेम-व्रेम न हो; बस, भाई-बहन का शुद्ध और पवित्र प्रेम दिखाया गया हो, बल्कि मैं तो कहता हूँ कि उसमें कोई नारी पात्र ही न हो, तो अच्छा है।

सोम बाबू--(हताश होकर सोफे पर गिरते हुए) अब तो यही अन्तिम राह रह गयी है। कंचनजी, कुछ सुना आपने ?

कंचन जी--सब सुन रहा हूँ, सोम बाबू, मगर मेरे घर के आस-पास कोई कुआँ भी तो नहीं है।

मिस नीरा--अच्छा, तो मुझे तो आज्ञा दीजिए। अब नौ बज चुके हैं।

(सब लोग उठ जाते हैं और सोम बाबू भी मरे हुए-से खड़े हो जाते हैं।)

सोम बाबू--चलिए, मैं भी चलता हूँ।

(सामने से उदय बाबू आते दिखाई पड़ते हैं। उनके हाथ में एक कागज है।)

उदय बाबू--बड़ी मुश्किल से ढूँढ़कर लाया हूँ। अरे, आप लोग कहाँ चले? क्या सब सीन खतम हो चुके?

सोम बाबू--जी हाँ, उदय बाबू; जो आखिरी था वह आपने पूरा कर दिया!

प्यार की मार

श्री सुधीन्द्र 'सुकुमार'

यतीन बाबू अभी एक पुस्तक उठाकर पढ़ने बैठे ही थे कि उनका पाँच वर्ष का लड़का मनोहर दौड़ा हुआ आया और फुसफुसाकर बोला, "पिताजी, माताजी डिब्बे में से निकालकर चुपचाप खा रही हैं, मुझे नहीं देतीं।"

यतीन बाबू ने आँखें फैलाकर कहा, "अच्छा!"

"हाँ!" मनोहर ने भी आँखें गोल करते हुए कहा।

यतीन बाबू ने पूछा, "तो मैं क्या करूँ?"

कुछ देर सोचकर मनोहर उछल पड़ा, जैसे कि कोई तीर मार लिया हो, और बोला, "आप उनको मारिए। सबसे छिपाकर चीज क्यों खाती हैं।"

"तो मैं उनको मारूँ?"

"हाँ"

"काहे से? डण्डे से या थप्पड़ से?"

मनोहर फिर सोच-विचार में पड़ गया, किन्तु उसकी उर्वरा बुद्धि ने झट से उत्तर तैयार कर लिया। वह बोला, "आज थप्पड़ से मारिए और फिर कभी ऐसा किया तो......।"

आगे कहने से वह रुक गया। न जाने क्यों! यतीन बाबू ने पुस्तक यथास्थान रख दी और शीशे में अपना चेहरा देखने लगे कि किस 'पोज' से मनोहर की माँ के पास जाना ठीक रहेगा। फिर दाँतों को भींचकर और माथे पर सिलवटें डाल कर वे चल दिये। मनोहर पुलकित होकर उनके पीछे चल पड़ा। आज मिलेगा माताजी को चोरी करने का मजा। मैं जब कोई चीज माँगता हूँ, तो मना कर देती हैं—'ज्यादा नहीं खानी चाहिए। यह नुकसान करती है। अपनी नीयत मत बिगाड़ो।' अपनी नीयत तो देखती नहीं हैं, मुझसे कहती रहती हैं। मनोहर कमरे से बाहर ही पर्दे की ओट में खड़ा रह गया। वह नहीं चाहता था कि उसकी माँ को इस बात का पता लग जाये कि शिकायत करनेवाला कौन है।

यतीन बाबू ने भीतर जाकर तेज आवाज में रेखा से पूछा, "क्यों जी, तुम चुपचाप क्या खा रही थीं?"

"कुछ भी तो नहीं।" रेखा ने आश्चर्य से कहा।

यतीन बाबू ने मुड़कर मनोहर को देखा। पर्दे के नीचे से उसके पैर चमक रहे थे। यतीन बाबू ने रेखा को उस ओर संकेत करके धीरे से झूठमूठ को रोने के लिए कहा और जोर की ताली पीटकर चीखे, "झूठ बोलते तुम्हें शर्म नहीं आती। मनोहर मुझसे कह रहा था कि तुम डिब्बे में कुछ निकालकर चुपचाप खा रही थीं और उसे नहीं दिया।"

"तुमने तो मुझे डरा दिया।" रेखा ने मुस्कराकर धीमे से कहा।

"स् स् स्," यतीन बाबू होठों पर उँगली रखते हुए फुसफुसाकर बोले, "तुम तमाशा देखती जाओ। हाँ, जरा 'स्टैप बाइ स्टैप' रोना तो शुरू करो।"

रेखा ने धीरे-धीरे 'ऊँ ऊँ' की आवाज और जोर से कहा, "मैंने तो कुछ भी नहीं खाया हर झूठ बोल रहा है।"

यतीन बाबू ने पहले से अधिक तेज आवाज पीटी और चिल्लाए, "हाँ, मनोहर झूठ बोल और तुम सच बोल रही हो। अभी मनोहर को कहलवाऊँ?"

"हाँ, बुलाकर कहलवाइए, तब मानूँ। आकर इतने थप्पड़ लगा दिये।" रेखा का तेज हो गया।

पर्दे के पीछे से सिसकी सुनाई पड़ी। लगातार तालियाँ पीटते गये और कहते रहे, क्या रखा है? मनोहर आज तक झूठ नहीं बोलेगा। यह तो नहीं कि अपनी गलती स्वीका उल्टे झूठ बोले जा रही हो।

"हाँ, हाँ, मैं झूठी ही सही। तुम्हारा बेटा हरिश्चन्द्र ही सही, पर जरा उसे मेरे सामने तो अभी पता लग जायेगा कि कौन झूठ बोल

मनोहर के रोने की दबी आवाज आयी। बाबू अब अपनी हँसी न रोक सके, मनोहर को पीछे से खींचकर ले आये। मनोहर समझा उससे पूछताछ होगी, इसलिए वह और जोर लगा। यतीन बाबू ने उसे गोद में उठा लिया "तू क्यों रो रहा है?"

मनोहर कोई उत्तर न देकर रोता रहा। बाबू बोले, "देख तेरी माताजी को मैंने कितना अब तो तुझे खुश होना चहिए। बता और माताजी को?"

मनोहर ने रेखा की ओर देखा, वह अपनी के छोर से अपनी आँखें मल रही थी। वह पटककर यतीन बाबू की गोद से उतरने की चेष्टा हुआ चीख पड़ा, "नहीं।"

"अरे! तूने ही तो कहा था कि थप्पड़ से मारो, अब क्यों रो रहा है?"

मनोहर ने फिर एक दृष्टि सिसकती हुई डाली और गोद से उतरने को छटपटाने लगा। बाबू ने मुस्कराकर रेखा की ओर देखा और को उतार दिया। गोद से उतरते ही वह भाग से लिपट गया।

रेखा ने उसे अलग हटाकर कहा, "हट मैं तो चोर हूँ। झूठ बोलती हूँ। अब मेरे पास रहा है। मुझे थप्पड़ों से पिटवाकर अब मेरे आ रहा है?" क्षण भर मनोहर ने अपने हाथ आँसू भरी लाल आँखों से रेखा को देखा, फिर फैलाकर 'नहीं' कहता हुआ रेखा की छाती में

यतीन बाबू ने हँसकर रेखा से कहा, "बस बस करो। बेचारे का रोते-रोते बुरा हाल हो

रेखा ने ममत्व से भरकर मनोहर को गोद लिया और उसके आँसुओं से गीले गालों पर की बौछार कर दी। मनोहर की हिचकियाँ बँध

हानी (युद्ध की भावना पर आधारित)

परम्परा

श्रीराम शर्मा 'राम'

गरीब की जवानी और जाड़ों की चाँदनी रात का आनन्द जिस प्रकार कोई नहीं ले पाता, कदाचित् सी तरह, उस नगर के एक पुरवे में बसी बुढ़िया पारो ओर भी किसीने देखना पसन्द नहीं किया, यद्यपि ह पारो उस विशाल नगर में ही पैदा हुई, पाली-पोसी यी और बड़ी होने पर, वहीं ब्याही गयी थी। नगर की भव से भरी दोपहरी में पारो ने अपना दाम्पत्य जीवन बिताया और जब भगवान् ने उसे असमय ही वैधव्य या, तो उसे सहेजने के लिए भी, वह पारो समाज के लाहलपूर्ण वातावरण में ऐसे खो गयी, जैसे समुद्र एक बूंद, जहाँ उसका कोई अस्तित्व नहीं था। त्थर के समान उसका जीवन था जिस पर कोई भी कर मारता और उपेक्षा भाव से उसे निहारता हुआ कल जाता। मानों पारो समाज का अंग बनकर भी रस्कृत थी, जूठन थी। जिसका न कोई अहम् था, सम्मान था।

पारो का पूरा नाम था, पार्वती। परन्तु जब बच-से ही 'पारो' कहकर उसे सम्बोधित किया गया, उसके पति ने भी, उस छोटे नाम को पसन्द किया। वा होने पर तो 'पार्वती' का सम्बोधन जैसे स्वप्न-हो गया। वह समाज के लिए अशोभनीय तो दुरूह अवश्य था, क्योंकि घर-घर की मजदूरी के पेट पालनेवाली पारो कभी 'पार्वती' भी थी, माननीय नारी थी, ऐसा किसी एक व्यक्ति ने भी कार नहीं किया।

किन्तु कहावत है कि बारह वर्ष बाद घूरे के भी य बदलते हैं, तो ऐसा ही एक समय पारो को प्राप्त । उसका पुत्र था अजित, जिसे पारो ने सचमुच अपने प्राणों की सेज पर सुलाकर पाला था। वह न उसका सहारा था, आँखों का तारा। उस अजित ाईस्कूल से अधिक शिक्षा प्राप्त नहीं की। कदाचित् इसमें आर्थिक रुकावट इतनी महत्त्व की नहीं, जितनी कि उस अजित की अपनी व्यक्तिगत इच्छा थी। उस अजित को खेल-कूद का अधिक शौक था। अपने साथियों में सदा ही 'कैप्टेन' का रोल लेता। और इसका कारण था, उसका बलिष्ठ और लम्बा-चौड़ा शरीर। अजित कुश्ती भी लड़ता और सरकार की ओर से स्थापित 'जनता बटालियन' में जाकर कवायद और निशानेबाजी का अभ्यास करना उसे सदा ही प्रिय लगता था।

फलस्वरूप, जब देश पर विदेशी शत्रु का आक्रमण हुआ तो वह अजित फौज में भर्ती हो गया। आश्चर्य कि उस समय पारो ने न पुत्र की इच्छा का विरोध किया और न ममता के कारण अपनी आँखों से एक आँसू ही बहाया। यद्यपि, उस समय मुहल्ले के लोगों की धारणा थी कि यह पारो अब नहीं रहेगी, मर जायेगी। क्योंकि इस बात को सभी पड़ोसी जानते थे कि पुत्र ही उसका आधार था—उसका प्राण! कदाचित् लोगों की इस आशंका का कोई अन्य कारण हो, तो हो; एक यह अवश्य था कि पारो उस समाज के समक्ष केवल पुत्र के लिए अनेक बार दीन और याचिका बनी थी। वे लोग अभी इस बात को नहीं भूले थे कि जब एक बार अजित टाइफाइड में बीमार पड़ा, तो पारो दर-दर मारी-मारी फिरी थी। उसने न पण्डितों के द्वार छोड़े, और ना ही वैद्य-हकीमों के! उन दिनों पुत्र की बीमारी पर जो खर्च हुआ, तो उसके लिए भी पारो को अथक परिश्रम करना पड़ा था। लोग रात में आराम की नींद लेने और पारो घर से दूर, मन्दिर जाती। वहाँ भगवान् के चरणों में अपना सिर झुकाती और आँखों के आँसू बहाकर प्रार्थना करती, प्रभो, मुझे ले लो। मेरे अजित को इस बीमारी से मुक्त कर दो।

यों भी, यद्यपि पारो स्वभाव की दीन और दयालु

थी, तथापि जब उसका अजित छोटा था, तो यदि कोई बालक उसे मार देता, उस पर कोई अपराध आरोपित करता, तो तब वह पारो, मानों अपनी अवस्था भूलकर, उस घर पर जा चढ़ती जिसके बच्चे ने उसके अजित को मारा या अपमानित किया था। ऐसी अवस्था में पारो ने यह एक बार भी नहीं समझा कि वह घर अमीर का था, मोहल्ले के अलम्बरदार का था। वह तब मजदूरी करके पेट भरनेवाली पारो न रहकर, अपने अजित की 'माँ' होती और उस घर के अभिभावकों को सम्बोधित करके, वह सब कहने से न चूकती कि जो उसके लिए अप्रत्याशित था, कदाचित् अशोभनीय। उस समय तो पारो क्षुब्ध बनी होती। दाँत निपोरकर 'म्याऊँ' कहनेवाली बिल्ली के स्थान पर शेरनी।

कदाचित् यही कारण था कि मोहल्ले के बच्चे भी इस बात को समझते, उनके माँ-बाप भी रोकते कि पारो के लड़के से दूर रहो। इसलिए मोहल्ले के वे सम्भ्रान्त परिवार कि जिनके यहाँ पारो मजदूरी करती, उनकी सेवा करती, तो वे बदले में चार पैसे देने के अतिरिक्त, निश्चय ही, उस पारो को इस योग्य नहीं समझते कि वह भी समाज का एक अंग है, उसका भी कोई अर्थ है, वह उपादेय या सार्थक है। अपितु होता यह कि यदि पारो सामने पड़ जाती, तो लोग मुँह और नाक चढ़ाते, माथे में बल डालते और उससे बचकर निकल जाते।

किन्तु जब पारो का पुत्र अजित फौज में जाने लगा, तो उस दिन वह सम्भ्रान्त परिवारों का समाज, वह स्त्री-पुरुषों का समूह, वे महल-दुमहलों के मालिक अपनी अटारियों से झांकते हुए, बालकनियों पर खड़े हुए, यह देखकर सचमुच स्तम्भित रह गये कि फौज में जाने को उद्यत अजित हँस रहा है, प्रसन्न बना है। पारो भी एक अपूर्व सम्मान से विभूषित है। मानों उसके मानस में सोया हुआ स्वत्व जाग उठा है। वह किलकिला रहा है। मचल रहा है। पारो के द्वार पर स्त्री-पुरुषों की भीड़ है। उसी समय जब उसने अपने पुत्र के माथे पर तिलक लगाया, उसे दही-पेड़ा खाने को दिया, तो लोगों ने ऊँचे स्वर में कहा––'पार्वती, तेरा जन्म सफल हुआ।'

और जब अजित माँ के चरणों में झुककर प्रणाम करने लगा, तो तब, पारो ने जैसे जीवन में अपार हर्ष मानकर, गर्व से पूरित बनकर, वरद् हस्त उस अजित के सिर पर रख दिया और ––'बेटा, युद्ध में जाता है, तो पीठ न दिखाना। को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारना।'

पारो के इस अमर-वाक्य को सुनने के सा लोगों ने उसपर फूल बरसाये, गले में फूलों के हार

अजित ने कहा––'माँ, आशीष दो, तुम्हारा निकम्मा न बने। देश के लिए वफादार रहे।'

पारो ने गद्गद होकर कहा––'अरे, बेटा! तू इस माँ की आज्ञा मानता है तो यह कैसे हो भारतमाता की लाज नहीं रखेगा। तूने ही तो बताया कि वह सभी की माँ है।'

अजित बोला––'हाँ, मा! भारत मा सम की मा है। उस मा का सोहाग रखने के लिए क्या, लाखों माताओं के लाल अपनी कुर्बानी दे जब मा का खप्पर सूना होता है, तो इस धरती के अपना लहू मा को भेंट करते हैं।'

पारो हँसी, मुसकरायी––'अब तू बड़ी बात लगा है। जाने क्या-क्या पढ़ गया। मैं तो बात समझती हूँ कि देश की लाज रखने के लिए बड़े, अमीर-गरीब सभी को कुछ-न-कुछ त्याग पड़ता है। और मेरी सम्पदा है तू, तुझे युद्ध कर क्या मेरा त्याग पूरा नहीं हुआ?' यह क पारो का स्वर भारी हो गया। जैसे उसके गले आ गया। उससे आगे नहीं बोला गया।

उस समय उपस्थित समुदाय का हृदय आर्द्र हो बहुतों की आँखों में आँसुओं का वेग उमड़ एक प्रौढ़ व्यक्ति ने आगे बढ़कर पारो को सु 'पार्वती, तू धन्य है। आज तूने भी देश के लि किया है... अपना सर्वस्व भेंट कर दिया है

पारो सचमुच ही रो पड़ी और बोली––' यह अजित मेरा क्या, सभी का है। समाज का का है।'

लाला ने कहा––'हाँ, पार्वती, यह देश सभी तेरा अजित भी सब का है। हम सभी एक सदस्य हैं। एक ही खून और ईमान सब घरों में

उसी समय अजित फिर मा की ओर झुका। वह चलने को प्रस्तुत हुआ। तभी पारो ने उसका मुँह चूम लिया। उसने अपने पुत्र को बिदा कर दिया।

× × ×

पारो का मकान अपनी सम्पत्ति था। वह छोटा मकान था। किन्तु उसके आस-पास जो ऊँचे मकान थे, वे शानदार और भव्य दिखायी देते थे। पारो के निकटस्थ के लाला ने, जिसका मकान पारो के मकान को छूता था, कई बार इस बात का प्रयत्न किया कि पारो अपना मकान बेच दे। जितना रुपया चाहे ले ले। यद्यपि, यह बात लाला ने कभी साक्षात् होकर पारो से नहीं कही, किन्तु जो मकान के दलाल थे, उनकी मार्फत उस तक पहुँचा दी। लेकिन पारो ने उन दलालों को जो उत्तर दिया, वह नकारात्मक तो था ही, कषैला और तिक्त भी था। जो भी दलाल पारो के पास आये, उसने उन सभी को फटकार दिया। पारो ने साफ कह दिया, मुझे पता है कि तुम किसके भेजे आये हो। लाला को अपने लम्बे-चौड़े मकान पर सन्तोष नहीं, तो मेरे इस छोटे से मकान पर डोरा डालना चाहा है। मुफ्त का रुपया पा गया है न, वह लाला! अब भूल गया, जब परचूनिये की दुकान करता था। कौड़ी-कौड़ी का माल बेचता था। आज रुपया आया, तो धरती की ओर से मुँह मोड़कर आसमान की ओर देखने लगा।

भले ही, लाला पारो के उस भावनात्मक मत का कायल न हो, परन्तु इतना उसके भी मन में आता, यह औरत मूर्ख है तो क्या, अपने सम्मान की कीमत जानती है। पारो इतना समझती है कि पुरखों का मकान बेचने का अर्थ है, उनके नाम पर पानी फेर देना। किन्तु फिर भी लाला को रोष था, उसे यह अच्छा नहीं लगता था कि उसका सुन्दर महल इसलिए शोभा नहीं पाता कि उसके बराबर में वह टूटा-फूटा मकान पारो ने घेर रखा है। वह महल की शोभा घटाता है।

किन्तु उन्हीं दिनों एकाएक, पारो के प्रति नगर का वह मोहल्ला क्या, समूचा समाज आकर्षित हो गया। एक दिन नगर के अखबारों में पारो के लड़के अजित का फोटो छपा और उसके साथ दुःखद समाचार था कि वीर अजित बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया।

इस प्रसंग को लेकर ही, नगर के बड़े मैदान में सभा हुई। लोग पारो को वहाँ ले गये। कुछ वक्ताओं ने वीरगति पाये उसके पुत्र की प्रशंसा की और कुछ ने कहा कि पार्वती एक वीर माता है। इसकी कोख से एक ही पुत्र पैदा हुआ और वह इस समूचे नगर का मस्तक ऊँचा कर गया।

जलसा हुआ, तो उसके बाद जलूस निकाला गया। अजित का चित्र सजा कर एक गाड़ी में रखा गया। पारो को ऊँचे स्थान पर बैठाया गया। यद्यपि उसने बार-बार कहा कि यह तमाशा है, मेरे लिए अशोभनीय है, परन्तु नगर के उत्साही युवकों ने अन्ततः उसे सहमत कर लिया।

यों, पारो की जिन्दगी का एक वह दिन भी बीत गया। जैसे उसकी जिन्दगी में एक नया मोड़ आ गया। यह कौन कह सकता था कि पारो उस प्रदर्शन और प्रशस्ति से प्रसन्न थी या नहीं, परन्तु यह तथ्य था कि उस दिन के बाद वह वृद्धा जैसे और अधिक अशक्त बन गयी। मानों उसकी कमर टूट गयी। लोगों ने भले ही उसकी आँखों में आँसू नहीं देखे, किन्तु उसके अन्तर्तम में जो एक प्रकाश-स्तम्भ खड़ा था, तूफान का एक आघात आते ही, वह भड़भड़ाकर गिर गया। उस पारो के अन्तःप्रदेश में गहरा अन्धेरा छा गया।

फलस्वरूप, मोहल्ले की और पड़ोसियों की एक यह निश्चित धारणा थी कि अब पारो देर तक नहीं रहेगी। मर जायगी। जिसका हाथी-सरीखा बेटा चला गया, वह भला अब कब तक जीवित रहेगी?

किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, तो पारो भी जैसे अपने को झकझोरती गयी। बदलती गयी। पहिले वह जीविका के हेतु का सम्पादन करके सीधी घर आती। अजित था, तो उसकी बात सुनती। उसके लिए नाना प्रकार की खाने की वस्तुएँ बनाने का प्रयत्न करती। परन्तु जब वह फौज में गया, तो उसके पत्रों की प्रतीक्षा करती। पत्र आता, तो उसे किसीसे पढ़ाती। फिर उसे दूसरों को दिखाती। उस अवस्था में वह इतनी प्रसन्न कि लोगों को सुनाकर कहती, मेरा अजित देश का काम करने में लगा है, वह दुश्मन से लड़ रहा है......भारतमाता की पूजा कर रहा है, मेरा अजित!

यही देख-सुनकर लोग कहते—मूर्ख है, यह पार्वती! एक लड़का क्या पा गयी, जैसे कारूँ का खजाना। वह फौज में लड़ने गया है, तो उसकी बहादुरी के तराने गाती हुई नहीं अघाती! और यह नहीं सोचती, वहाँ एक इसीका लड़का नहीं; जाने कितने हैं अपनी माताओं के लाल....जवाँ मर्द......

समाज का यह भाव कदाचित् पारो भी समझती। यदा-कदा सुन भी पाती। इसीसे उसके मन में एक ऐंठन-सी, चुभन-सी होती और वह अपने आप कहती—हाय! इन लोगों को मेरा अजित युद्ध में जाता भी अच्छा नहीं लगा। वह देश के शत्रु से लड़ने गया है, तो इन लोगों को पसन्द नहीं आया। ये लोग महलों में बैठकर मौज उड़ाते हैं, आराम की नींद लेते हैं, तो मेरा अजित जब बर्फ की चट्टानों से घिरा ठण्ड में सिकुड़ा दुश्मन की गोलियों के सामने अड़ा है, तो इन आदमियों का दिल यह भी नहीं कहता कि वह अपने देश के लिए त्याग करते जा पहुँचा है, उस भयावने पथ पर! उस मौत के मुँह में जा पड़ा है, मेरा लाल!

अब, जब अजित नहीं रहा, पारो का सहारा टूट गया, तो अपने अन्धेरे घर में बैठे हुए, उसके मन में बार-

बार आता, अब क्यों आते हैं लोग इस दरवाजे पर! इस पारो के पास! अब मेरे पास क्या रखा है! जो कुछ था, वह मैंने दे दिया। लोग कहते हैं कि सब इस धरती से पैदा हुए हैं, भगवान् के दिये हैं, तो मेरा अजित भी उसी भगवान् के दरबार में पहुँच गया... बड़ा छलिया.... कपटी... मा को छोड़ गया न! मुझसे कहता था मा, मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगा। तू मरेगी, तो तेरी अर्थी कन्धे पर उठाकर ले जाऊँगा। तुझे चन्दन की चिता में सुलाऊँगा... झूठा कहीं का! धोखेबाज!

मोहल्ले के एक वृद्ध व्यक्ति जिन्होंने किसी समय अजित को प्राथमिक शिक्षा दी थी, अजित के मरने के बाद प्रायः पारो के पास आते। बैठते। कुछ बातें करके उस पारो का अशान्त मन स्वस्थ करने का प्रयत्न करते।

जब एक दिन पारो ने आँखों में आँसू भरकर गद्-गद स्वर से उन पण्डितजी को अजित की पुस्तकों की ओर इंगित किया, तो उसने कहा--'महाराज, मेरा अजित कितनी बार कहता था मुझसे, कि मा, तुझे तीर्थाटन कराऊँगा। तुझे भागवत और रामायण भी पढ़कर सुनाऊँगा। पर वह तो एक बार भी ऐसा नहीं कर सका। कहता था, मा, तेरे मरने पर मैं एक बड़ा यज्ञ सम्पन्न करूँगा.....'

पण्डितजी चौंके और बोल पड़े--'अरी, पार्वती! तू रोती है। अपना दिल कमजोर करती है। और जानती है कि इतना सब तूने किया, तो अब......'

पार्वती सचमुच ही विलख पड़ी। वह फुफक कर रोती हुई बोली--'पण्डितजी, मैं सोचती हूँ, अजित मेरा बेटा तो था, पर वह तो इस छोटे से जीवन में ही मेरा गुरु बन गया। मुझे जाने कैसे-कैसे उपदेश दे गया।'

पण्डितजी बोले--'हाँ, वह गुरु था, तेरा भी और समाज का भी। मैंने भी तो उसे पढ़ाया था। लेकिन वह जिस धर्म की पूजा कर गया, वह धर्म सबसे बड़ा है। इस धर्म की पूजा के लिए तो युगों से इन्सान कृत संकल्प रहा। नर से नारायण बनाकर पूजा गया, यह इन्सान!'

पारो ने कहा--पण्डितजी, पिछली रात सपने में अजित दिखायी दिया था। उसके कन्धे पर बन्दूक थी, पूरा फौजी बना था। उसने आते ही मुझे फौजी सिलूट दिया और बोला--"मा, तू दुआ कर, उन जवानों के लिए कि जो मोर्चे पर हैं, लड़ रहे हैं, लड़ते-लड़ते मर चुके हैं।"

पण्डितजी ने कहा--'वाह, क्या सुन्दर सपना आया था, तुम्हें। सचमुच स्तुत्य! जरूर, तेरा अजित स्वर्ग में जाकर बैठा है। अब वह ऐसी ही बात कर सकता है।' वह बोले--'पार्वती, इस धरती के सभी जवान तेरे बच्चे हैं, तेरे अजित हैं। यह वास्तविकता है।'

पारो बोली--'पर ऐसा सोचता कौन है! सब अपनी ओर देखते हैं। अपने स्वार्थ का पेट भरते हैं।'

पण्डितजी गम्भीर बन गये और बोले--'हाँ, पार्वती, यही इस धरती का दोष है। पर जब मुसीबत आती आँधी चलती है, धरती फटती है, आसमान आग उगल है, तो सब एक हो जाते हैं। सैलाव आता है, तो सब बहा ले जाता है। छोटा-बड़ा एक ही नाव पर स होता है। सच, पार्वती, अब तू यही सोच। यही का

× × ×

और उन दिनों नगर में नित्य ही सभाएँ हो चेटकों द्वारा समाज को नव-जागरण का दिया जाता। उस दिन भी सभा थी। जनता बड़ी सं में उपस्थित थी। तभी पारो मंच की ओर बढ़ी। ने देखा, तो चर्चा चली, अरे, यह पार्वती.... अ की मा!

किसी ने कहा--'अब पगली हो गयी है। लड़के गम पत्थर की तरह अपनी छाती पर लिये फिरती

दूसरे ने कहा--'वह भारी गम था। आश्चर्य यह पार्वती मरी नहीं।'

'जी, अभी मरेगी! काले कौवे खाकर उतर है, इस धरती पर!' एक अन्य ने उपेक्षा से कहा।

'राम-राम! कितनी दुर्बल बुढ़िया है। कैसी जर्ज

'हाँ, जर्जर तो है, पर इसकी आत्मा में चेतना नव-ज्योति से जगमगाती है, यह पार्वती!'

सुना, तो एक ने हँसा और उपेक्षा भाव से अपना बिचका दिया।

तभी दूसरा बोला--'सुनो, सुनो, देखो क्या कह पार्वती! कुछ गोद में लिए स्टेज पर चढ़ी है।'

और सभी के उस ओर कान लगे, मुँह उठे। पर पार्वती कह रही थी--'मेरा एक बेटा था, वह के काम आ गया। अब मेरे पास एक मकान है, अजि बहू के लिए बनाया यह जेवर है, मैं इस सबको उन के लिए देती हूँ कि जिनके साथ मेरा अजित चला, बढ़ा और दुश्मन की गोली खाकर सदा के लिए सो

जनता से आवाज उठी, स्वर गूँजा--'अजित की जय हो!'

लोगों ने एक-दूसरे की ओर देखा, जैसे आमने-वाले को समझना चाहा, उससे कुछ कहना पसन्द कि तभी किसी ने कहा--'अब क्या रहा, इस बुढ़िया के पा

कदाचित् किसीके पास इस बात का जवाब था। उस अवस्था में कोई कुछ कह भी क्या सकता तब तो श्रद्धा और सदाशयता के साथ सभी ने यह कि पारो उस स्टेज से उतरी और धीरे-धीरे मन्थर के साथ, लकड़ी के सहारे चलती हुई, नगर के उस वि पथ पर ऐसे आगे बढ़ गयी कि मानों अब वह खाली निःशक्त थी, और उस धरती पर अकेली। और चित् पार्वती यह भी समझने में असमर्थ थी कि जो उसने की, वह उसकी अपनी थी, अकेली थी। ब की वह परम्परा निश्चय ही, समाज में, गहरा नहीं पहुँच सकी थी, पारो की समता में नहीं....

नवीन प्रकाशन

लम्बोदर त्रिपाठी——लेखक स्वर्गीय पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'। प्रकाशक साहित्य सेवक कार्य्यालय, जालिपा देवी, वाराणसी। पृष्ठ-संख्या २०६।

यह एक रोचक उपन्यास है। अपने कथानक में यह तीन प्रकार के लोगों को लेकर चला है। ये तीनों ही आज हमारे समाज में पाये जाते हैं। एक हैं पुरानी परिपाटी के अनुयायी, दूसरे हैं आधुनिक विचारों का भला-बुरा सोचे बिना उनकी ओर अग्रसर होनेवाले, तथा तीसरे हैं वे जो अपनी वासना से इतने तृप्त हो चुके हैं कि अब उनका वासना सुख अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने ही में रह गया है। तीनों ही प्रकार के प्राणी हमारे समाज में——कहीं-कहीं तो एक ही परिवार में, पाये जाते हैं। लेखक ने तीनों का ही चरित्र-चित्रण सफल रूप से किया हे। उनके व्यवहार में कहीं भी अस्वभाविकता नहीं आने पायी है। कथानक बहुत ही रोचक है। उषा और निर्मला का चरित्र-चित्रण भिन्न होते हुए भी सफल उतरा है। भाषा सरस है और शैली में अपनापन है। 'हिन्दू स्त्रियों को फँसाते कितनी देर लगती है, जरा सा कलंक उनके माथे पर लगा कि उन के घरवालों ने ही उनको छोड़ा' 'रियासत के काम में तो मैं पिसा जा रहा हूँ, अब औटे दूध पर थोड़ी सी मलाई चढ़ी तो उसको औरों को छोड़ दूँ ?' 'फिर बताइये, थोड़ी सी ठर्रा न पियें तो पूर्वजों की कीर्तिलता किस तरह-हरी-भरी रहे।' आदि उदाहरण उन कथानकों के हैं जिनसे कि भाषा में सरसता आ गयी है। आवरण के चित्र तथा 'समर्पण' को पढ़कर इसके हस्यरस का उपन्यास होने का धोखा होता है। परन्तु ऐसा है नहीं।

मास्टर सिलबिल——लेखक चिरंजीत, प्रकाशक, आत्माराम ऐंड सन्स, दिल्ली। मूल्य तीन रुपये।

हिन्दी साहित्य में ऐसी पुस्तकों की बहुत कमी है जिन्हें पाठक यों ही अपना मनोरंजन करने को उठाकर पढ़ डालें। 'मास्टर सिलबिल' उस कमी को पूरा करते हैं। मनोविनोद के लिए १५९ पृष्ठों की इस पुस्तक में पर्याप्त मसाला है। इस पुस्तक के लेखक श्री चिरंजीत आकाशवाणी में काम करते हैं, और हास्यरस के लेखक भी हैं। 'सम्भवतः मास्टर सिलबिल' की ये कथाएँ पहले आकाशवाणी के लिये ही लिखी गयी थीं और बाद में इनको पुस्तकाकार करने का विचार हुआ। पुस्तकाकार रूप में आ जाने से मनोविनोदप्रिय प्राणियों के लिए तथा चौदह-पन्द्रह वर्ष के तरुणों के लिए एक अच्छी पुस्तक अवश्य उपलब्ध हो गयी है। इस आयु के लोगों के लिए हमारे साहित्य में बहुत कम पुस्तकें हैं। यदि उनके लिए लिखे उपन्यास अच्छे हैं तो जटिल हो जाते हैं, और उनमें विनोद का पुट कम हो जाता है। और यदि वे अच्छे नहीं हैं तो उनके लिए अपठनीय हो जाते हैं। सरल, निर्दोष मन-बहलाव की पुस्तकों के अभाव में हमारे नवयुवक अवांछनीय उपन्यास ही मन-बहलाव के लिए पढ़ने लग जाते हैं और उनसे उनके स्वच्छ मानसिक पटल पर विकृत छायाएँ पड़ने लग जाती हैं। उनका व्यक्तित्व बार-बार ऐसी पुस्तकों के पठन से विकृत हो जाता है।

पुस्तक में कुल मिलाकर मास्टर सिलबिल की १३ मनोरंजक कथाएँ हैं। सभी सरस हैं। परन्तु 'धनवान बनने लगे लेकिन' में हास्यरस और करुणा का अनोखा सम्मिश्रण है। यदि कहीं समस्त पुस्तक में यही सम्मिश्रण बना रहता तो यह पुस्तक कोरी मनोविनोद की पुस्तक बनकर ही न रह जाती वरन् साहित्य में अपना एक विशेष स्थान बना लेती।

पुस्तक में प्रत्येक कथा के साथ एक चित्र भी दिया गया है जिससे पुस्तक और अधिक आकर्षक हो गयी है।

विद्यापति पदावली (प्रथम खंड)——नैपाल में प्राप्त विद्यापति के पदों का संग्रह। बड़ा आकार, सजिल्द, पृष्ठ संख्या १०८+३९८, प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना। मूल्य साढ़े सात रु०।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने महाकवि विद्यापति के सम्पूर्ण पदों को निकालने की योजना बनायी है। यह योजना तोन खंडों में पूरी होगी। प्रस्तुत खंड में उनके प्रायः सारे पद (जिनकी संख्या २६२) जो नैपाल के राज्य पुस्तकालय में मिले हैं, संग्रहीत हैं। इसका सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है। विद्यापति की पदावली के संस्करण श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त, सर्वश्री खगेन्द्रनाथ मिश्र और विमलबिहारी मजूमदार तथा श्री सुभद्र झा निकाल चुके हैं। हिंदी में भी उनकी पदावली निकली है। किंतु इन सबमें कुछ न कुछ त्रुटियाँ हैं। विद्यापति की पदावली की एक पांडुलिपि तरौनी में मिली। रागतरंगिणी में भी उनके अधिकांश पद मिले थे। किंतु नैपाल की पांडुलिपि का विशेष महत्त्व है। यह मिथिला की पुरानी लिपि में है और इसमें सबसे अधिक पद हैं। इसका सम्पादन बड़ी योग्यता और सावधानी से किया गया है। प्रत्येक पद के पाठ भेद विस्तृतरूप से दिये गये हैं। उसके शब्दार्थ

बहुत समझाकर बताये गये हैं, और अंत में सरल भाषा में प्रत्येक पंक्ति का अर्थ दे दिया गया है। इस कारण यह सुसम्पादित संस्करण विद्वानों, विद्यार्थियों और साधारण पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी है। आरंभ में राष्ट्रभाषा परिषद् के अंतर्गत संगठित विद्यापति समिति के अध्यक्ष कुमार गंगानंदसिंह जी की एक भूमिका है जिसमें विभिन्न संस्करणों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इसके बाद सम्पादकों की भूमिका है जो अत्यंत विस्तृत है और जिसमें विद्यापति के जीवन का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में पांडित्यपूर्ण विवेचन है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने विद्यापति की पदावली का इतना सुसम्पादित और विस्तृत संस्करण निकालकर साहित्य की अमूल्य सेवा की है। उसे जिस सुंदर ढंग से निकाला गया है वह राष्ट्रभाषा परिषद् के स्वरूप के सर्वथा अनुकूल है।

भारतीय, अब्दकोश——१९६३——बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। मूल्य, आठ रुपये।

यह इस अब्दकोश (इयर बुक) का दूसरा वर्ष है। हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि पिछले वर्ष की अपेक्षा यह अधिक सावधानी से निकाला गया है और इसमें वे त्रुटियाँ नहीं हैं जिनकी ओर हमने गत वर्ष संकेत किया था। इसका ढंग भी गत वर्ष से अच्छा और अधिक उपयोगी है। इस वर्ष इसमें संसार के प्रायः सभी देशों का परिचय और संबंधित आवश्यक जानकारी दे दी गयी है। इस रूप में यह बहुत उपयोगी संदर्भ ग्रंथ हो गया है। हिंदी में अब्दकोश का अभाव था। यह उस अभाव की पूर्ति करता है। अब्दकोश एक ऐसा उपयोगी और आवश्यक संदर्भ ग्रंथ है कि इसकी आवश्यकता सभी व्यवसायियों, पत्रकारों, शैक्षणिक संस्थाओं, कार्यालयों, विद्वानों और विद्यार्थियों को होती है। यह भारतीय अब्दकोश हिंदी में उस अभाव की पूर्ति करता है।

राष्ट्रभाषा हिंदी : समस्याएँ और समाधान——प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। मूल्य डेढ़ रुपये।

इसमें परिषद् के ग्यारह वार्षिकोत्सवों के सभापतियों के अध्यक्षीय भाषणों का संग्रह है। इनमें ऐसे विद्वानों और साहित्यिक महारथियों के भाषण सम्मिलित हैं जैसे, आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० सम्पूर्णानंद, श्री मैथिलीशरण गुप्त, काका साहेब कालेलकर, सेठ गोविंददास, कुमार गंगानंद सिंह, डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु आदि। इन भाषणों में हिंदी और हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का सारगर्भित विवेचन किया गया है। इनसे उन लोगों को, जो हिंदी की समस्याओं में रुचि लेते हैं, बड़ी प्रेरणा मिलेगी और नये-नये दृष्टिकोण मिलेंगे। हिंदी प्रेमियों को यह पुस्तक विशेषरूप से रुचिकर होगी।

मगही संस्कार गीत——डा० विश्वनाथप्र
प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। बड़ा आ
सजिल्द। मूल्य, साढ़े छः रुपये।

लोकगीतों पर अनेक पुस्तकें निकली हैं किंतु यह अ ढंग की एक विशिष्ट पुस्तक है क्योंकि यह बड़े वैज्ञा ढंग से लिखी गयी है। आरंभ में एक विद्वत्तापूर्ण 'प्रस्ताव में मगही प्रदेश, मगही बोली और संस्कारों का बड़ा और तात्विक विवेचन किया गया है। संस्कारों का तात्विक रूप जनता में संस्कारों से कम महत्त्वपूर्ण समझा जाता, और जब कि शास्त्रसम्मत संस्कार भी संस्कृत मंत्रों और श्लोकों द्वारा सम्पन्न होते हैं, लौकिक रूप जनभाषा द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। लेखक ने उनका बड़ा समीचीन विवेचन और वर्णन है। जन्म से मृत्युपर्यन्त जो लौकिक संस्कार मगही में हैं उनके गीत इसमें संग्रह किये गये हैं। विवाह आ कितने ही लौकिक संस्कार हिंदुओं की तरह मुसल भी करते हैं, और लेखक ने बड़ी सूझ-बूझ से उन् अलग अध्यायों में संकलित कर दिया है जिनसे हिंदू-मुसलमान जनता की मौलिक एकता प्रमाणित है। प्रत्येक गीत के आरंभ में उसका अवसर और प दे दिया गया है तथा आंचलिक शब्दों के अर्थ पाद णियों में दे दिये गये हैं। प्रस्तावना में विद्वान् लेख मगही और भोजपुरी के सूक्ष्म भेद को बड़े स्पष्ट ढं समझाया है। इस पुस्तक का साहित्यिक महत्त्व तो है साथ ही नृतत्व विज्ञान (अंथ्रोपोलोजी) तथा समाज- के अध्ययन करनेवालों को भी यह अत्यंत उपयोगी होगी। इस विषय पर इतनी सुसम्पादित और मह पुस्तक हमारे देखने में और कोई नहीं आयी। इससे साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है।

हमारे नियोजन का इतिहास (द्वितीय पंच योजना काल) **द्वितीय भाग**——ले० कुमारी इंदिरा मो शर्मा। प्रकाशक, हिंदी भवन, कालपी। मूल्य, रुपये।

लेखिका ने प्रथम भाग में प्रथम पंचवर्षीय योजना विवरण प्रकाशित किया था। इस भाग में द्वितीय वर्षीय योजना के उद्देश्यों और उपलब्धियों का और विस्तृत वर्णन है। अनेक आँकड़ों को देकर यो की गतिविधि, उसकी सफलताएँ और असफलताएँ झायी गयी हैं। पुस्तक सरल भाषा और स्पष्ट शै लिखी गयी है, और द्वितीय योजना के संबंध में जानकारी ही नहीं, एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में जानकारी आ आवश्यक है। इस पुस्तक के द्वारा वह सरलता से हो सकती है।

रायबहादुर कविवर श्री राधानाथ राय

पाण्डेय पुरुषोत्तमप्रसाद और पाण्डेय लोचनप्रसाद

जो मनुष्य दृढ़ अध्यवसाय, कर्त्तव्य-पालन और सुचरित्र ही के बल से जनसमाज के उच्च सोपान पर आरूढ़ होकर सदैव देश-सेवा ही का ध्यान रखते हैं, और सुकवि तथा-सुविद्वान् होकर इस असार संसार में परोपकार ही को अपना सर्वस्व समझते हैं, वे समाज के शीर्ष स्थान में स्थान पाते हैं। आज हम सरस्वती के पाठकों को एक ऐसे ही पुरुष-रत्न का जीवनचरित भेंट करते हैं।

कटक प्रान्त में बालेश्वर एक जिला है। इस जिले में केदारपुर नाम का एक ग्राम है। राधानाथ का जन्म इसी ग्राम में शकाब्द १७७१ को आश्विन अमावस्या को हुआ। इनके पिता का नाम श्री सुन्दरनारायण राय और माता का तारणी दासी था।

राधानाथ को मातृ-सेवा बदी न थी। उनकी मातृ-प्रेम-पिपासा पूर्ण नहीं होने पाई। मातृ चरण-तरु की छाया में वे अपने दुःखातपसन्तप्त मानस को आजन्म शान्ति प्रदान न दे सके। कराल काल ने पाँच वर्ष के बालक राधानाथ को मातृहीन कर, तारिणीदासी को अपने पाश-जाल में डाल, इस जगत्-जंजाल से दूर कर अनन्तशान्ति-सुखदायिनी महानिद्रा देवी की गोद में शयन करा दिया।

राधानाथ के पूर्व-पुरुष मेदिनीपुर के अन्तर्गत राधानगर में निवास करते थे। कोई ३-४ सौ वर्ष पूर्व, बंगाल छोड़कर वे उड़ीसा में आ बसे थे। उनकी जातीय उपाधि 'दे' है, किन्तु 'राय' उनकी प्राचीन राजदत्त पदवी है।

६ वर्ष के होने पर राधानाथ केदारपुर की ग्राम्य पाठशाला में प्रविष्ट हुए। क्षीण और रुग्णशरीर होने के कारण उनके अध्ययन में अनेक बाधायें उपस्थित हुईं। एक बार उनका कासरोग अति प्रबल हो उठा। तब उनके पिता, जो बालेश्वर में सरकारी नौकर थे, चिकित्सा के लिए उन्हें वहीं ले गये। धीरे-धीरे कई साल में राधानाथ को इस रोग से मुक्ति मिली और १० वर्ष की अवस्था में वे बालेश्वर के जिला स्कूल में भरती हुए।

गणित में राधानाथ का अनुराग स्वाभाविक था। इस विषय में अपनी क्लास के विद्यार्थियों से वे हमेशा आगे रहते थे। १६ वर्ष की अवस्था में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होकर एफ० ए० के लिए प्रेसिडेन्सी-कालेज (कलकत्ता) में भर्ती हुए। किन्तु वहाँ का जल-वायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था। इससे वे बीमार होकर एक महीने के अन्दर ही बालेश्वर लौट आये। कुछ दिनों बाद वहाँ के जिला स्कूल में ३०) रुपये मासिक वेतन पर वे तृतीय-शिक्षक नियुक्त होकर काम करने लगे।

दो तीन वर्ष बाद कटक में कालेज स्थापित हुआ। इस पर राधानाथ के आत्मीय, उड़ीसा के सुप्रसिद्ध डेपुटी कलेक्टर परलोकवासी जगन्मोहन राय, ने राधानाथ को शिक्षक का पद त्याग कर कालेज में भरती होने की राय दी। और उनके कुल व्यय का भार अपने ऊपर लिया। किन्तु स्वावलम्बनशील राधानाथ को ऐसा करना अनुचित जान पड़ा। इससे उन्होंने इस बात को नामंजूर किया।

राधानाथ के पिता फारसी के सुपण्डित थे। इसके सिवा उड़िया, बँगला, हिन्दी और संस्कृत में भी उन्हें यथेष्ट अनुराग था। अँगरेजी और संस्कृत के विद्वानों के सहवास में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। राधानाथ को अपने निरीक्षण में रखकर हितोपदेश द्वारा उन्होंने खूब सच्चरित्र बनाया।

राधानाथ शिक्षा-विभाग को छोड़कर किसी और महकमे में प्रवेश करना चाहते थे और विकालत-परीक्षा के लिए भी प्रस्तुत हो रहे थे। परन्तु उनके पिता ने उन्हें शिक्षा-विभाग में ही रहकर शनैः-शनैः आत्मोन्नति करने की आज्ञा दी।

राधानाथ नौकरी भी करते थे और एक संस्कृत चतुष्पाठी में संस्कृत भी पढ़ा करते थे। एफ० ए० की परीक्षा देकर बी० ए० परीक्षा की पुस्तकें भी वे पढ़ते थे। इसी समय बालेश्वर में राधानाथ के भूतपूर्व सहपाठी श्री दामोदरप्रसाद दास ने उड़िया और बँगला की पुस्तकों का एक पुस्तकालय स्थापित किया। राधानाथ वहाँ नित्य जाया करते थे। वह स्थान बालेश्वर के उन्नतिशील युवकों का केन्द्र-स्थल था। वहाँ सुप्रसिद्ध लेखक और कवि श्री फ़कीरमोहन सेनापति भी आया करते थे। उनके तथा दामोदरप्रसाद के उत्साह से राधानाथ उत्कल तथा वंग-भाषा के अध्ययन में लगे और बँगला में "कवितावली" नामक एक क्षुद्र कविता रचकर प्रकाशित की।

१८ वर्ष के नवयुवक राधानाथ-रचित कविता की प्रशंसा उस समय के कई एक बँगला-पत्रों ने की। अमृत-बाजार-पत्रिका ने पुस्तक की आशातीत अच्छी समालोचना करके राधानाथ को उत्साहित किया। उत्साहित होकर उन्होंने उड़िया भाषा में "इटालीय युवा" नामक एक नवन्यास लिखकर "उत्कलदर्पण" मासिक पत्र में प्रकाशित किया। और भी छोटे-छोटे कितने ही लेख लिखकर उन्होंने प्रकाशित किये।

बालेश्वर में प्रायः ५ वर्ष काम करके राधानाथ पुरी के जिला-स्कूल में द्वितीय-शिक्षक नियुक्त होकर वहाँ गये। उनके छात्रों में स्वनामविख्यात श्रीमधुसूदन राय भी थे।

धीरे-धीरे मधुसूदन राय राधानाथ के प्रियतम छात्र और सुहृद हो गये। साहित्य-चर्चा में दोनों का बड़ा प्रेम था। दोनों एक साथ रहकर अवकाशानुसार नानाविध ग्रन्थालोचना तथा रचना करने लगे। उसी समय राधानाथ ने बँगला में अपनी कविता का द्वितीय भाग और मेघदूत का उत्कल-अनुवाद रचा। आपका मेघदूत-अनुवाद बहुत ही सरस और सुमिष्ट हुआ। हमारी इच्छा थी कि आपके अनुवाद के दो चार उदाहरण देते। पर हिन्दी जानने-वालों में बहुत कम सज्जन उत्कल-भाषा से परिचित होंगे। अतएव हम अपनी इच्छा-पूर्ति से विरत होना ही अच्छा समझते हैं।

पुरी में सुख्याति-पूर्वक दो वर्ष काम करके तीसरे वर्ष राधानाथ डेपुटी कलेक्टरी की परीक्षा के लिए क़ानून पढ़ने लगे। मानसिक परिश्रम अधिक करने से उनको पुनर्वार रोगग्रस्त होना पड़ा। इस बार रोग यहाँ तक बढ़ गया कि उन्होंने जीवन की आशा ही छोड़ दी। कास-श्वास ने उनके शरीर को बिलकुल ही जर्जरित कर दिया। यह कास-रोग अद्यावधि उनके शरीर में बना हुआ है। इसी कारण से सभा-समिति आदि में जाने और योग देने से वञ्चित रहते हैं।

दुःख की बात है कि राधानाथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री शशिभूषण राय भी मूर्छा-रोग से बहुधा पीड़ित रहते हैं। इस तरह की पारिवारिक और मानसिक पीड़ा के कारण राधानाथ का मन यहाँ तक सन्तप्त रहता है कि वे अच्छी तरह साहित्यानुशीलन नहीं कर सकते। अपनी "चिलिका" नामक कविता में उन्होंने अपने पीड़ित हृदय के उच्छ्वासों को बड़े ही कारुणिक शब्दों में प्रदर्शित किया है।

दारुण कास-श्वास रोग से मुक्ति पाने के कई महीने बाद वे बांकुड़ा जिला स्कूल के द्वितीय-शिक्षक नियत हुए। उसके ६ महीने बाद वे बालेश्वर जिले के स्कूलों के डेपुटी इन्सपेक्टर हुए। बालेश्वर आकर वहां के राजा बैकुण्ठ-नाथ की सहायता से उन्होंने अपनी "कवितावली" का दूसरा भाग प्रकाशित किया। बंकिम-बाबू-सम्पादित वंग-दर्शन, भूदेव-बाबू-सम्पादित एडुकेशन-गजट, और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-सम्पादित "पक्षपातसम्प्रदाय" ने अपनी अपनी आलोचना में इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की।

उस समय बंकीम-बाबू के भूतपूर्व सहाध्यायी कलकत्ता-निवासी श्रीजगदीशनाथ राय बालेश्वर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे। उनके पुत्र बाबू राधानाथ राय, एम० ए०, कलकत्ते से आकर अपने पिता के साथ बालेश्वर में रहते थे। बंकीम बाबू ने इन्हीं राधानाथ को "कवितावली" का प्रणेता जान उनके पिता जगदीशनाथ को एक अभिनन्दन और आशीर्वाद-पूर्ण पत्र लिखा। जगदीशनाथ पत्र पाकर विस्मित हुए। अनुसन्धान करके "कवितावली" के प्रकृत लेखक राधानाथ के घर स्वयं जाकर उनको उन्होंने वह प्रशंसापत्र दिखाया और अपना परिचय देकर चिर सूत्र से उन्हें आबद्ध किया।

राधानाथ के बालेश्वर आने के थोड़े दिन बा सूदन राय नामक एक महाशय तत्रस्थ ज़िला- द्वितीय शिक्षक नियुक्त हो कर बालेश्वर आये। उ राधानाथ के पिता की मृत्यु हुई। इससे उन्हें वेदना सहनी पड़ी। किन्तु प्रतिभाशाली मधुसूद की समागम रूपी अमूल्य औषधि के प्रयोग से उनका वियोग-दुखरूपी रोग शीघ्र जाता रहा। तदनन्तर ने मिलकर "उत्कल-कवितावली" की रचना की पुस्तक इतनी उत्तम है कि आजकल कलकत्ता-विश्ववि की प्रवेशिका-परीक्षा की पाठ्य पुस्तक है।

५ वर्ष डेपुटी इन्सपेक्टर रहकर राधानाथ उ जाइण्ट इन्सपेक्टर नियत हुए। इसी समय उन्होंने में "लेखावली" नामक पुस्तक लिखकर स्कूलों के इन् श्रीभूदेवमुखोपाध्याय को समर्पित किया। उसकी पर मुग्ध होकर भूदेव बाबू ने उसका अधिकांश स्व दित "एडुकेशन गजट" में प्रकाशित किया और पुस्तकाकार प्रकाशित करने की अनुमति दी। राधानाथ बँगला-रचना में प्रयास करना छोड़ उड़िया में कविता करने के लिए कृतसंकल्प हुए।

राधानाथ उत्तम कवि तो हैं ही, पर आप संगीत में भी खूब प्रवीण हैं। एक बार उपेन्द्रभञ्ज की गाकर उन्होंने भूदेव बाबू का चित्त चुरा लिया था। पर तथा उनकी मनोहर कविता पर मुग्ध होकर बाबू ने अपने "एडुकेशन गजट" में एक प्रशंसात्मक उत्साह-वर्द्धक कविता प्रकाशित कर, अपनी सहृद पूर्ण परिचय दिया। उस कविता का पहिला पद्य य

"राधानाथ उड़िश्यार गौरव-केतन,
उदार, विनीत, धीर, सुबोध, सुजन,
नानाभाषा-विभूषित,
नाना-शास्त्र-सुपण्डित,
कविता-कानने पिकवर, प्रियवर,
स्वर्गीरस्वभावे पूत तोमार अन्तर।"

भूदेव बाबू के साथ राधानाथ ने वंग तथा बि नाना स्थानों में परिभ्रमण किया। देश-भ्रमण में रा का विशेष अनुराग है——यह उनका पैत्रिक गुण है। काल में वे अपने पिता के साथ पर्य्यटन करने जाय थे। उनके पिता उन्हें समुद्र, पर्वत, देश, नदी, झील दिखाते थे और उनसे जो जो लाभ हैं वे उन्हें बताय थे।

भूदेव बाबू के साथ काशी तक जाकर भी रा को तृप्ति नहीं हुई। इससे तीन महीने की छुट्टी बंगाल, **बिहार**, अयोध्या, संयुक्तप्रान्त, राजपूताना, हिमालय, दार्जिलिंग, गुजरात, महाराष्ट्र तथा म

६६३

अनेक स्थानों में उन्होंने पुनः परिभ्रमण किया। पनी इस यात्रा का वर्णन उन्होंने अपनी "चिलिका" मक कविता में बड़ी ही उत्तमता से किया है।

भ्रमण के समय सम्बलपुर के अन्तर्गत "उत्कलीया-कार" के प्रणेता बामण्डाधीश्वर श्रीसुढ़लदेव, के० सी० ाई० ई० से उनकी भेंट हुई। श्री सुढ़लदेव के समान द्यारसिक, सुपण्डित और विद्योत्साही राजा से मिलना राधानाथ के साहित्य-जीवन की प्रधान घटना है। राधानाथ ने अपनी कई कवितायें उन्हें समर्पित की हैं।

१८९२ ई० में राधानाथ ने जाइण्ट इन्सपेक्टर के द से स्कूलों के इन्सपेक्टर के पद पर उन्नति पाई और ९०१ में इस पद के सबसे ऊँचे स्थान पर वे विराजमान ए।

राधानाथ की कार्य्यदक्षता, ईमानदारी और राज-क्ति पर सन्तुष्ट होकर गवर्नमेण्ट ने उन्हें १८९६ में रायबहादुर की पदवी दी है। अब शायद पेन्शन लेकर आप ईश्वराधन में अपने जीवन का अन्तिम भाग व्यतीत कर रहे हैं।

राधानाथ की उत्कल कविता का सामयिक क्रम इस कार है :--

१ मेघपूत, २ कवितावली, ३ केदार-गौरी, ४ न्द्रभागा, ५ नन्दिकेश्वरी, ६ ऊषा, ७ पार्वती, ८ लिका, ९ महायात्रा, १० यताति केसरी, ११ तुलसी-तवक, १२ उर्वशी, १३ दरबार और १४ दशरथ-लाप।

इनके सिवा और भी कितनी क्षुद्र-क्षुद्र कविताएँ आपने नाई हैं।

राधानाथ हिन्दी जानते हैं तुलसी स्तवक, में उन्होंने तुलसीकृतरामायण के वर्षा और शरद् वर्णन का उत्कलानुवाद किया है। उसके दो तीन नमूने देखिए :--

मूल :--बरसहिं जलद भूमि नियराये।
यथा नवहिं बुध विद्या पाये॥
अनुवाद :--वर्षन्ति महीमुखे नइँ अम्बुदे।
विद्या-सम्पदे यथा नमन्ति बुधे॥
मूल :--बूँद अघात सहैं गिरि कैसे।
खल के वचन सन्त सह जैसे॥
अ० :--सहन्ति धारापात शइलगण।
खल-वचन यथा सहे सुजन॥
मू० :--रस-रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
अ० :--सर-सरित-नीर क्रमे हटइ।
ममता यथा साधू मनु टुटइ॥

आपकी कविता सरस, भावपूर्ण और मनोहारिणी होती हैं। वे नवों रसों में भावमयी कविता कर सकते हैं। उन्हें यदि नवरस सिद्ध कहें तो अत्युक्ति न होगी। उनकी कविता उत्कल-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। वे प्रकृति-चित्रण में सिद्धहस्त हैं। उनकी कविता पढ़ते-पढ़ते पाठकों के सामने वर्णित वस्तु के चित्र नाचने से लगते हैं।

इस समय राधानाथ की उम्र ४७ वर्ष की है। उनकी सरस कविता से मुग्ध होकर वंगीय-वनिता-कवि-ललाम-भूता श्री नगेन्द्रबाला सरस्वती और कविवर श्री नवीनचन्द्र आदि ने उनकी प्रशंसाविषयक कविता लिखकर अपनी गुणग्राहकता का पूर्ण परिचय दिया है।

श्री राधानाथ के जीवन की अनेक घटनाएँ शिक्षापूर्ण अतएव अनुकरणीय हैं। उनके अन्यान्य गुणों में विनय और परदुःखकातरता प्रधान है। इन्हीं गुणों के बल से आज राधानाथ उड़ीसा के तिलक-स्वरूप हो रहे हैं।

मनोरंजक संस्मरण

चोटें

हिंदी के आरंभिक काल में, और प्रायः दो दशक पहिले तक, हिंदी साहित्यिक आपस में काफी चोटें किया करते थे। वे सार्वजनिक व्यक्तियों पर भी तानाकशी करने में नहीं झिझकते थे। किंतु फिर भी, इन उग्र और बेदर्द चोटों के बावजूद, उनमें पारस्परिक प्रेम और आदर-भाव बना रहता था। वे चोटें कितनी कड़ी होती थीं, और कितनी व्यक्तिगत होती थीं, उनके दो-तीन उदाहरण यहाँ पाठकों के मनोरंजनार्थ दिये जा रहे हैं। ये बातें पुरानी हो गयी हैं और समय के प्रभाव से अब उनमें वह तीखापन नहीं रह गया जो पहिले था। अब इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसी कारण हम उनको होली के अवसर पर प्रकाशित कर रहे हैं जिससे वे विशुद्ध हास्य समझी जायँ।

स्वामी विवेकानन्द और अंडा

स्वामी विवेकानन्दजी अमरीका गये हुए थे। यहाँ लोगों ने उड़ा दिया कि वहाँ वे अंडे खाने लगे हैं। उन दिनों किसी संन्यासी के अंडे खाने की बात से लोग बहुत भड़कते थे। शायद स्वामीजी के इस तथाकथित कथन से कि—It is not that goes in which defiles a man but that which comes out. (मनुष्य उससे अपवित्र नहीं होता जो भीतर जाता है किंतु उससे अपवित्र होता है जो उससे बाहर निकलता है) उनके अंडा खाने के समाचार से लोग और अधिक क्षुब्ध हो गये थे। स्वर्गीय बाबू बालमुकुंदजी उन दिनों भारतमित्र के सम्पादक थे। वे उसमें कभी होली पर, कभी टेसू के दिनों में, कभी वैसे ही, व्यंग्य लिखा करते थे। इस अंडाकाण्ड पर उन्होंने एक कविता लिखी। स्वामीजी वेदान्ती थे। अतएव उनके अद्वैतवाद को लेकर व्यंग्य किया गया। कविता यह थी :—

गुरु शिष्य सम्वाद

शिष्योवाच

गुरू जी ! इसका कहिए भद
अंडा भला कि मंडा बाबा ! आत भली या मेद
बिस्कुट भली कि सोहन हलुआ, बक बक भली कि वेद ?

गुरुः ऊचू

बच्चा ! इसका सुन लो भेद
जो अंडा सोई ब्रह्मण्डा, वही आँत वही मेद
मिले तो मंडा चक्खो
नहीं तो अंडा भक्खो !

(मंडा संदेश की तरह की एक मिठाई का नाम है।)

होली का एक व्यंग्य

स्वर्गीय पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने शायद कौमुदी की भूमिका में आधुनिक कवियों की आलोचना की थी। बहुत कम लोगों ने उसका दिया था, किंतु बहुत से साहित्यिक उनसे अप्रसन्न थे। उन दिनों उन्होंने प्रयाग में 'हिंदी मंदिर' के एक पुस्तकों की दूकान खोल रखी थी जिससे वे भी करते थे। अगली होली में रसालजी ने चोट की——

हिंदी मंदिर के अंदर वे तिरभंगे करि नैन
कविता को कौमुदी दिखावें, बोलें करुए बैन
भला जय बोलो रमैया बाबा की

आलोचक की आलोचना

स्वर्गीय पंडित कृष्णबिहारी मिश्र वकील थे। भव्य व्यक्तित्व था और वे घनी मूँछें रखते थे। के उद्भट विद्वान् थे और अपने समय के प्रखर थे। मिश्रबंधुओं ने अपने हिंदी नवरत्न में देव को से बड़ा कवि माना था। पंडित कृष्णबिहारीजी को देव से बड़ा कवि मानते थे। इस मत के में उन्होंने 'देव और बिहारी' नाम की एक लिख डाली थी। वे आलोचना करते समय लिहाज नहीं करते थे, और आलोच्य कृति की से आलोचना किया करते थे। उनकी आलोचनाओं का उत्तर देना सरल न था। 'शिकार' मन ही मन कुड़बुड़ाकर रह जाते बार किसी कवि ने उनकी आलोचना से त्रस्त हो पर यह छंद लिख डाला था :

हिंदी के आप हिमायती हैं बड़े,
आपको मानों सरस्वती ने

भाषा की लीडरी आपके हाथ,
दिमाग है आपका प्लीडरी में

मूछियों को तौ लड़ाते हो रोज,
औ ओज मुछंदरी आप में है

बोलिए, आलोचना आपकी, सच,
आलोचना है कि 'आलूचना

ये नमूने बड़ी हलकी चोटों के हैं ! भारी नमूने छापने का साहस हममें नहीं है। नमूने पर्याप्त हैं।

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत——१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·००
हिन्दी महाभारत——आचार्य द्विवेदीजी	६·००
हिन्दी ऋग्वेद——रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्‌भागवत——दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण——दो भागों में	१३·००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)——पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)——श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)——स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३·५०
विनयपत्रिका (सटीक)——स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४·००
कवितावली (सटीक)——पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
कुण्डलिया रामायण——सत्यनारायण पांडेय	४·००
तुलसी रत्नावली——केदारनाथ गुप्त	१·५०
तुलसी के चार दल——श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन——महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्——श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
दुर्गापाठ——अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२·००
श्री भगवत तत्त्व——श्री करपात्रीजी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : ·65 Naye Paise
SARASWATI—Reg. No.

29 III/1983
J. 8/12 GIIIu NB

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञान वृद्धि कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए० मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

दृढ़-प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी० मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५।

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोन आथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्-एल्० बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस्०। मूल्य २)

स्विस परिवार रॉबिसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन—(मू० ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

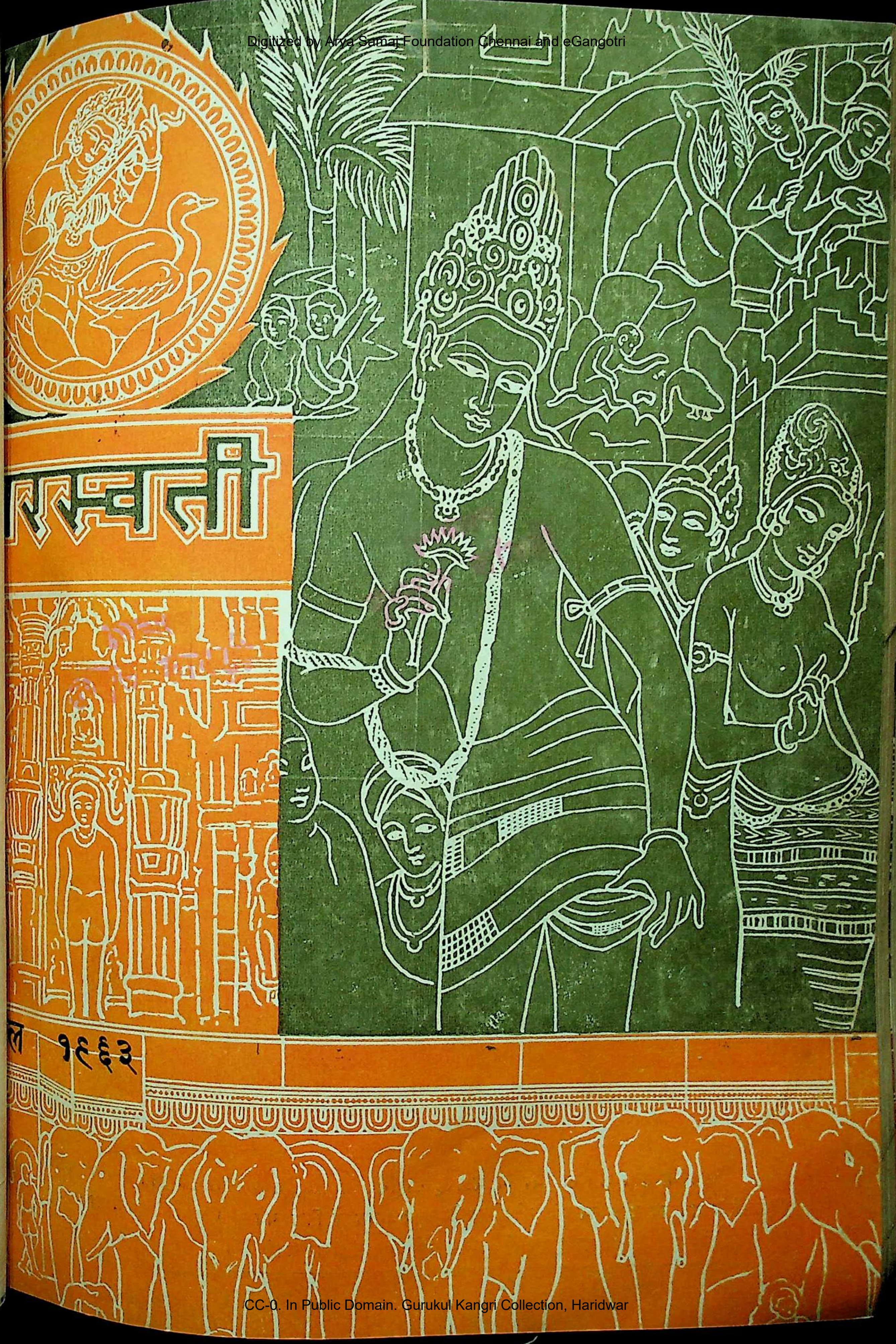

रस्वती

ल १९६३

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

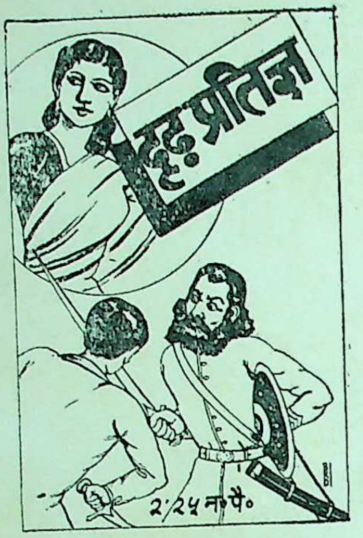
दृढ़प्रतिज्ञ
२.२५ न॰पै॰

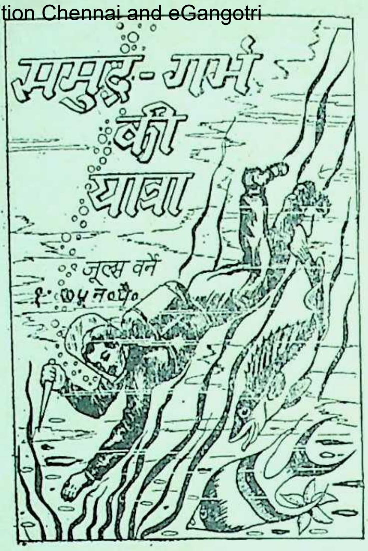
समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्ने
१.७५ न॰पै॰

गुलीवर की या
२.२५ न॰पै॰

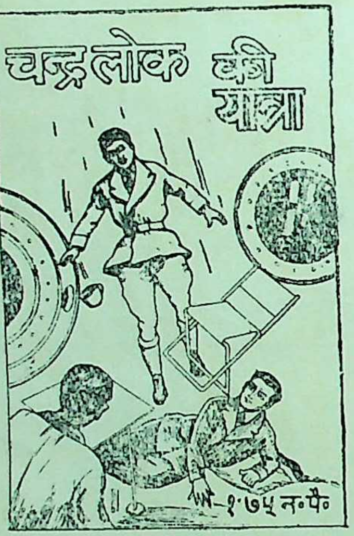
चन्द्रलोक की यात्रा
१.७५ न॰पै॰

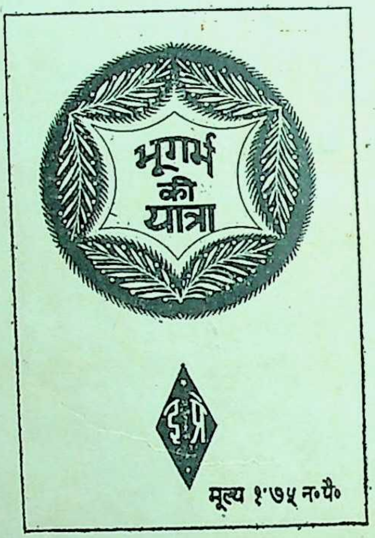
भूगर्भ की यात्रा
इं.प्र.
मूल्य १.७५ न॰पै॰

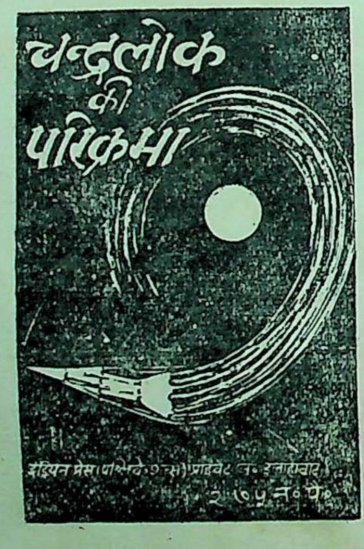
चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰ इलाहाबाद
२.७५ न॰पै॰

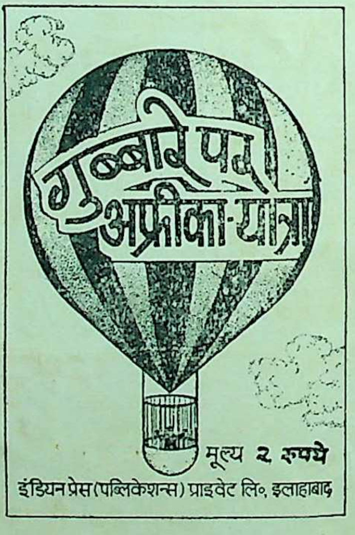
गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद

द्वीप
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइ

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरो
न्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं
तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

मैं किस प्रकार सहायक हो सकती हूं ?

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

इस देश की गौरवमयी परम्परा के अनुसार भारतीय स्त्रियां देश रक्षा के काम में बहुत कुछ मदद दे सकती हैं। वे अपने यहाँ के महिला संगठन में शामिल हो कर रक्षा कार्य में हाथ बटा सकती हैं तथा और भी कई कर्तव्य निभा सकती हैं ● राष्ट्रीय रक्षा कोष में दान दें तथा औरों को ऐसा करने के लिए उत्साहित करें। रक्षा पत्र खरीदें। अपना अनुशासन और व्यवहार ऐसा बनाएं जो दूसरों के लिए अनुकरणीय हों।

- कोई चीज ज़ाया न करें। बिना सोचे समझे खरीदारी न करें और कीमतों को बढ़ने से रोकें।
- सोना न खरीदें, अपना सोना देश के लिए अर्पित करें।
- अपना कार्य दृढ़ता से करती रहें, चाहे कार्य कैसा भी क्यों न हो। अधिक कुशलता से किया गया हर कार्य राष्ट्र के लिए सहायक होता है और उससे भारत की स्थिति और अधिक सुदृढ़ होती है।
- ढिलाई और आलस बिल्कुल छोड़ दें—यह काम का वक्त है, अमल का वक्त है।

चौकस रहें

—राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटाएं

डीए ६२/एफ-७

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीका तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीर जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्र भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानी लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० १५ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·३७ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—

साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन में बधाई दूं, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गाग रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्ति हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास की श्रेणी देखने को मिलती है——राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि— ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी——सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह——सुशोभित रहना चाहिए।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कद कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के ल ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-बिन्दुओं स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहि सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का **हीरक** जयन्ती विशेषांक है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

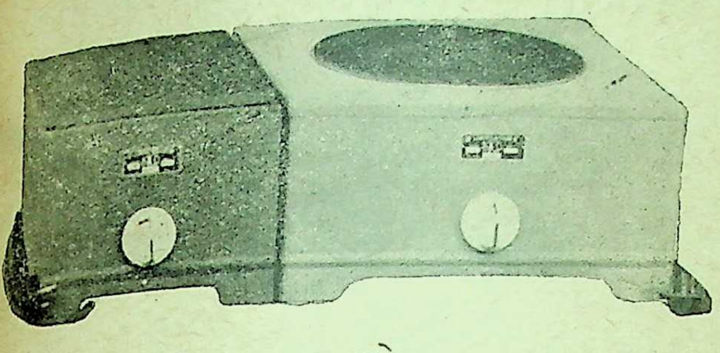

हाट प्लेट

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥ **॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥**

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

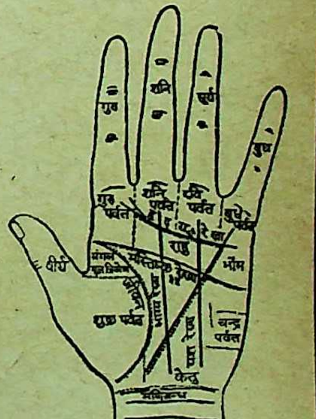

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, आई० सी० एस०, एम्बेसडर आफ इंडिया पेकिंग, चीन क्या कहते हैं :—
ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को यह पत्र देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक है परन्तु मुझे इसमें किंचित्‌मात्र भी संदेह नहीं है कि यह विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है। मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्योतिष में अधिक पड़ने से मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है। इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझ ज्योतिषाचार्य श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया। उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं। अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें।

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी**
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आदर्श
लिवर
टानिक

QUMARESH
The Oriental Research & Chemical

ओ॰ आर॰ सि॰ एल का
कुमारेश

लीवर व पेट की पीड़ा की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ॰ आर॰ सि॰ एल॰ लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

रजनीगंधा
देवेन्द्र दत्त तिवारी

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन-कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

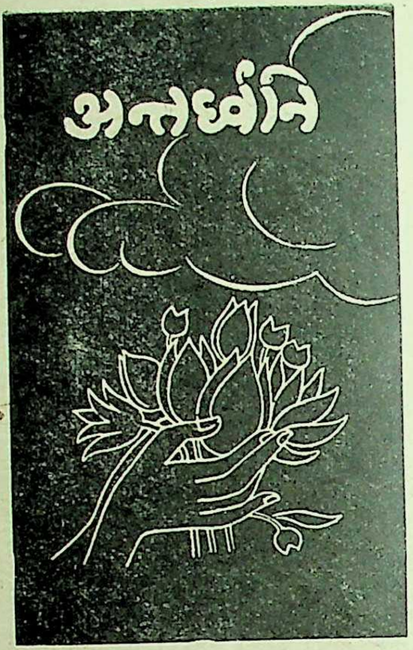

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूँज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

जासूसी गल
निशीथकुमार रा
इंडियन प्रेस(पब्लिकेशंस)प्राइवे
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया निकल

भेद भरी बातों को जा
मनुष्य की अदम्य लालसा संसार
देशों में जासूसी कहानियों के
प्रकट होती है। संसार के
के साहित्य में ऐसी रहस्योद
कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्र
हो रही हैं। लेखक प्रयाग के
नामी फौजदारी के वकील
श्री हरिमोहन राय के पुत्र
स्वयं भी न्यायिक अधिकारी
इनको लिखी जासूसी कहानियाँ
जगत् में यथेष्ट ख्याति प्रा
चुकी हैं। यह उनकी लिखी
जरूरी कहानियों का द्विती
है जिसमें समय-समय पर
प्रकाशित हुई उनकी ३२
कहानियाँ संगृहीत हैं।
पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५०

नोट—कृपया अपनी प्रति
कराने के लिए आर्डर
भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सुगंधित
ब्राह्मी
केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वेदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल
केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

गैस-वायु पेट दर्द के लिए

गैसहर पिल्स गैस, वायु, गोला, बादी, मंदाग्नि, कब्ज, पेट का दर्द, शूल, पेट का भारीपन, और गैस-वायु विकृति के कारण पैदा होने वाली शिकायतों के लिए उपयोगी, खुराक हजम करके दस्त साफ लाकर भूख बढ़ाती है। ११ वर्षों से गैस-वायु—पेटदर्द के लिये उपयोगी ने वाली आयुर्वेदिक औषधि; वैद्य, डाक्टर तथा अस्पताल में इस्तेमाल की ती है। ५० गोलियों की छोटी शीशी रु० १·५० व १५० गोलियों की बड़ी शी रु० ४) वी. पी. और से० टे० खर्च अलावा।

बल-वर्धक, रक्त-वर्धक, स्फूर्ति-वर्धक

धानुपान गोलियाँ—पाचनक्रिया सुधार कर दस्त साफ लाती है, रस, रक्त-रुधिर इत्यादि सप्त धातुओं को पोषण देकर, यौवन-क्ति, दिमागी ताकत, जीवन-शक्ति और वजन बढ़ाने वाली ३४ वर्ष की सिद्ध आयुर्वेदिक औषधि, ३२ गोलियाँ छोटी शीशी रु० १·५० और गोलियाँ बड़ी शीशी रु० ४) वी. पी. खर्च अलावा। वी० पी० के लिये मनगर लिखें।

र जगह दवा वाले बेचते हैं। वी.पी. के लिये जामनगर लिखें।
नेवाले—दुग्धानुपान फार्मेसी, गांधी चौक, 'दुग्धानुपान भवन', जामनगर (सौराष्ट्र)

स्त्रियों के लिए शक्तिवर्धक
'दीना पिल्स'

खाने-पीने अहार-विहार की अनियमितता की शिकायतें, पाचन की मंदता, हाथ, पैर, कमर में दर्द, शारीरिक कमजोरी, प्रसूति के बाद की निर्बलता, खून की कमी, सगर्भावस्था की शिकायतें इत्यादि के लिए उपयोगी; शरीर में रक्त की वृद्धि, शक्ति, स्फूर्ति, चैतन्य, और तंदुरुस्ती बढ़ानेवाला स्त्रियों का आयुर्वेदिक टानिक। ४० गोली छोटी शीशी रु० १·५० और १२० गोली बड़ी शीशी रु० ४) वी० पी० अलावा।

सेल स्टाकिस्ट : बम्बई—बीछीं ब्रदर्स, ७९ प्रिसेंस स्ट्रीट। देहली—जमनादास कं० चांदनी चौक। देहली—कांतिलाल र० परीख, चांदनी चौक। वाराणसी—राधेलाल संस बैटरीवाला, चौक। कलकत्ता—सौराष्ट्र स्टोर्स, १८ मल्लिक टि। कानपुर—प्रवीणचन्द जयन्तीलाल ५८-७७ बिरहाना रोड। नागपुर—अनन्तराय ब्रदर्स कीराना ओली। लपुर—खुन्नेलाल छिगेलाल। लखनऊ—इन्द्रचन्द कं०, चौक। इलाहाबाद—चंपकलाल कं०, ४६ जोनस्टनगंज। ने रोग की सम्पूर्ण हकीकत लिख भेजें। वैद्यराज की सूचनानुसार सलाह मुफ्त लिखकर भेजी जायेगी।
लिखें—वैद्यराज पो० बो० ३२ जामनगर (सौराष्ट्र)

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, श्रौर छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन श्रौर मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जो

वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

● ● ● ● ● ● ●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस श्राने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,
जो श्रापके मनोरंजन श्रौर ज्ञानवर्द्धन में श्रपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की श्रोर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्स्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी
(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता
डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का
निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ
उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये
वरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

य बी० आर० बोरकर, आयुवद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

आवश्यकता

(१) हिन्दी-संस्कृत, (२) आयुर्वेद में टीका टिप्पण,
नुवाद, मौलिक आलोचना आदि के लिये दो लेखकों
ी। योग्यता प्रमाणित होने पर घर बैठे स्थायी काम
या वेतन क्रम १५०—१०—२५०) मासिक। आवेदन
न्दी-संस्कृत दोनों में भेजें।

डायरैक्टर—**श्री कुशल पुस्तक भवन (१)**
नाभा (पंजाब)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली (") —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८७

कर्मयोग ..	१·४०	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान ..	१·६२	शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५	मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग ..	१·१२	चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा ..	०·६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·५०	ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत ..	०·५०	मन की शक्तियाँ	०·४०

विवेकानन्दजी के उद्‌गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५
शक्तिदायी विचार (") ..	०·६२
मेरी समर नीति (") ..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००
श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००
माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

सुन्दर, नवीन ज्ञानवर्द्धक सामग्री और आकर्षक चित्रों से सज्जित 'विज्ञान-जगत्' को भारत सरकार द्वारा छपाई और सजावट के लिए १९६२ का उत्कृष्टता पदक प्रदान किया गया है।

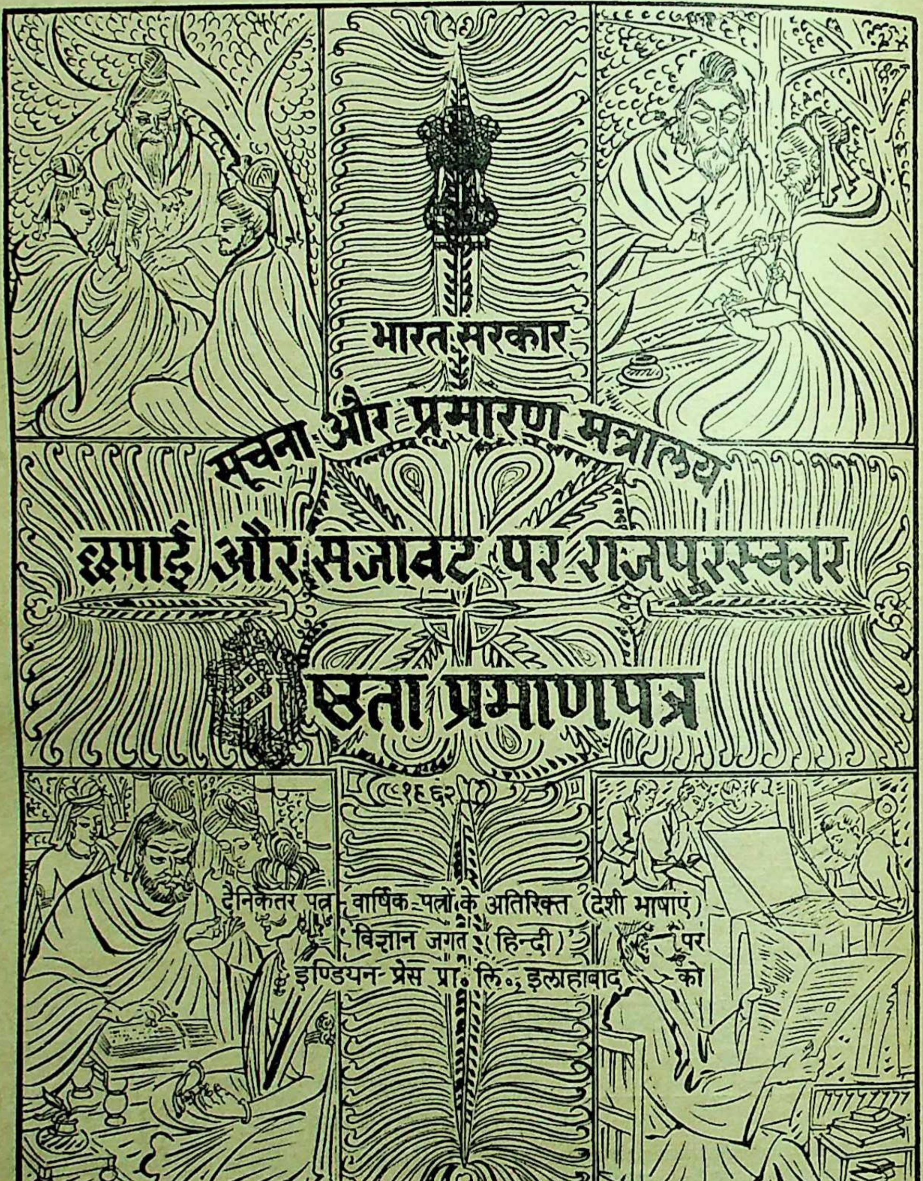

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

श्रेष्ठता प्रमाणपत्र

१९६२

दैनिकेतर पत्र: वार्षिक-पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)

विज्ञान जगत (हिन्दी) पर

इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद को

- ● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- ● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- ● वार्षिक मूल्य ९) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
- ● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- ● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

राष्ट्र को अपना

* सोना
* खून
* श्रम
* शौर्य

दीजिये

आज पूर्वापेक्षा उसे

इनकी अधिक जरूरत है

पाँच पैसे में नया संसार

बाँझपन

तथा स्त्री पुरुष के विशेष रोगों का शर्तिया इलाज। पहले लाभ पीछे दाम। अनगिनत दुःखी घर आनन्दित हो गये। एक कार्ड पर अपना हाल लिखकर ब्योरा मुफ्त लें।

संचालक--**श्री कुशल भवन (३), नाभा (पंजाब)**

विज्ञान-जगत् (मासिक पत्रिका) में

विज्ञापन

देकर लाभ उठाइये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

आधुनिक छपाई

लेखक श्री कृष्णप्रसाद दर

भूतपूर्व मैनेजर, इलाहाबाद लाजर्नल प्रेस और भूतपूर्व टेक्निकल एडवाइजर दि हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, और वर्तमान वर्क्स मैनेजर इंडियन प्रेस, प्राइवेट लि०, इलाहाबाद।

आजकल सभी लोग अच्छी छपाई चाहते हैं, परन्तु आकर्षक छपाई कैसे की जाय, यह वको ज्ञात नहीं। 'आधुनिक छपाई' इसी दिसा में एक सफल कदम है। अब तक अपने विषय ी यही एक पुस्तक हिन्दी में है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है आधुनिक छपाई की हायता से ऐसा व्यक्ति भी सरलता से अपना काम चला सकता है, जिसने कभी किसी छापे- ाने में काम न किया हो। फिर आधुनिक छपाई के विभिन्न आकर्षक रूपों, शैलियों और पेखाने सम्बन्धी सभी आवश्यक अंगों पर इस पुस्तक में इतनी सरल और बोलचाल की भाषा प्रकाश डाला गया है कि प्रत्येक मुद्रक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

आद्योपान्त सचित्र, सजिल्द और बढ़िया कागज पर आकर्षक ढंग से मुद्रित ३८७ ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

छप गया!

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद—हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है। आप लोगों ने इसकी तैयारी में परिश्रम किया है। छपाई आदि तो अच्छी होनी ही चाहिए, क्योंकि यह इंडियन प्रेस का प्रकाशन है। परिशिष्ट-स्वरूप संविधान-शब्दावली जोड़ देने से इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

डॉ० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। संकलन-कर्त्ताओं ने परिश्रम और विवेक से इस कोश का सम्पादन किया है। अर्थ की स्पष्टता और सुबोधता की दृष्टि से इस कोश का विशेष महत्त्व है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रमपूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अँगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

पद्मभूषण पं० सुमित्रानन्दन पन्त—इस कोश में प्राचीन व नवीन साहित्य में प्रयुक्त अनेक नवीन शब्दों का सफल संकलन मिला है। प्रादेशिक भाषाओं, अरबी, अँगरेजी के प्रचलित शब्दों का समावेश भी इसमें कि
है। सन्देह नहीं कि यह कोश हिन्दी पाठकों के लिए
उपयोगी प्रमाणित होगा।

**श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, भूतपूर्व राज
उत्तर प्रदेश**—
राष्ट्रभाषा कोश'
ही मूल्यवान् को

**पं० रमेशदत्त
अध्यक्ष, हिन्दी-
महाकोशल महावि
जबलपुर**—'हिन्दी
भाषा-कोश' हिन्दी
एक भारी कमी
करता है। वह विद्
एवं विद्वानों दोनों
समान रूप से उपयो

**रायबहादुर पं०
शंकर झा, आई०
एस० (अवकाश-प्रा**
प्रायः पचास हजार
का भारी कोश मैंने
और प्रसन्नता हु
हिन्दी भाषा में
भारी कोश बनने
× × × हिन्दी
भाषा हो जाने के
ऐसे कोश की
आवश्यकता थी।

साहित्यवाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालाल ब
'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' छात्रों के लिए ही नहीं,
पाठकों के लिए भी बड़ा उपयोगी है। हिन्दी सा
प्रचलित सभी प्रकार के शब्दों के सरल, शुद्ध और
अर्थ दिए गए हैं। उसकी एक विशेषता यह भी है
में अँगरेजी के उन पारिभाषिक शब्दों के पर्या
हिन्दी शब्द दिए गए हैं, जो अब हिन्दी में प्रचलित
हैं और जिनका ज्ञान साधारण पाठकों के लिए
आवश्यक है। इस एक कोश से ही हिन्दी-प्रेमी
की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सकती है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा सङ्कलित इस सर्वोपयोगी कोश को अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की गई है। प्राचीन और अर्वाचीन गद्य-पद्य में प्रयुक्त होनेवाले अधिक-से-अधिक और नवीनतम शब्दों का इसमें समावेश किया गया है। कहावतें और मुहाविरे भी इसमें यथास्थान दिए गए हैं। कोश के अन्त में भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान-शब्दावली भी दे दी गई है।

प्रख्यात विद्वानों की प्रस्तुत सम्मतियाँ ही यह साक्षी दे रही हैं कि 'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' प्रत्येक सार्वजनिक, शैक्षणिक और व्यक्तिगत वाचनालय तथा छात्रों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

पृष्ठ लगभग १६००; सजिल्द प्रति का मूल्य १४) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

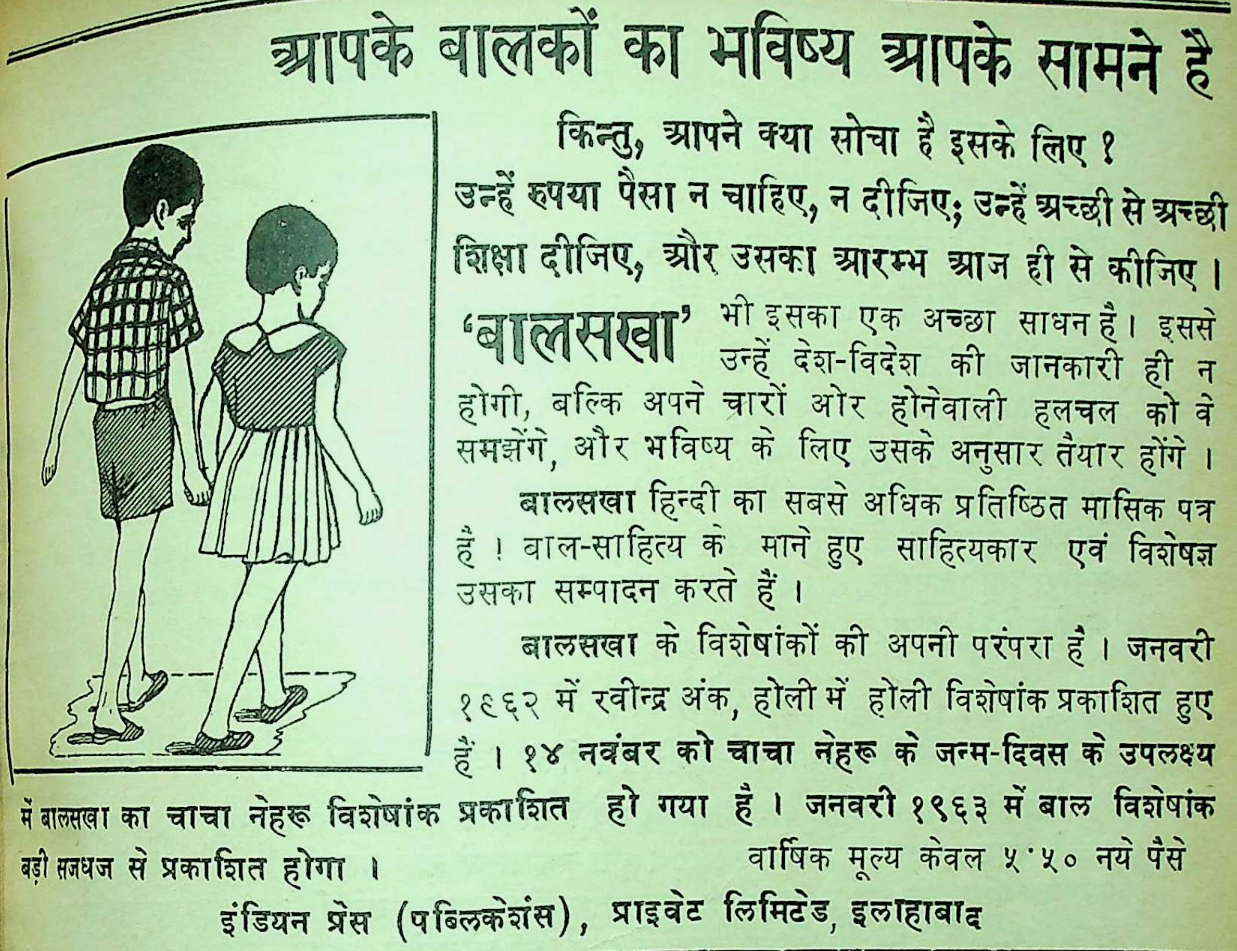

आपके बालकों का भविष्य आपके सामने है

किन्तु, आपने क्या सोचा है इसके लिए ?

उन्हें रुपया पैसा न चाहिए, न दीजिए; उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा दीजिए, और उसका आरम्भ आज ही से कीजिए।

'बालसखा' भी इसका एक अच्छा साधन है। इससे उन्हें देश-विदेश की जानकारी ही न होगी, बल्कि अपने चारों ओर होनेवाली हलचल को वे समझेंगे, और भविष्य के लिए उसके अनुसार तैयार होंगे।

बालसखा हिन्दी का सबसे अधिक प्रतिष्ठित मासिक पत्र है ! बाल-साहित्य के माने हुए साहित्यकार एवं विशेषज्ञ उसका सम्पादन करते हैं।

बालसखा के विशेषांकों की अपनी परंपरा है। जनवरी १९६२ में रवीन्द्र अंक, होली में होली विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। **१४ नवंबर को चाचा नेहरू के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में बालसखा का चाचा नेहरू विशेषांक प्रकाशित हो गया है। जनवरी १९६३ में बाल विशेषांक बड़ी सजधज से प्रकाशित होगा।**

वार्षिक मूल्य केवल ५·५० नये पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

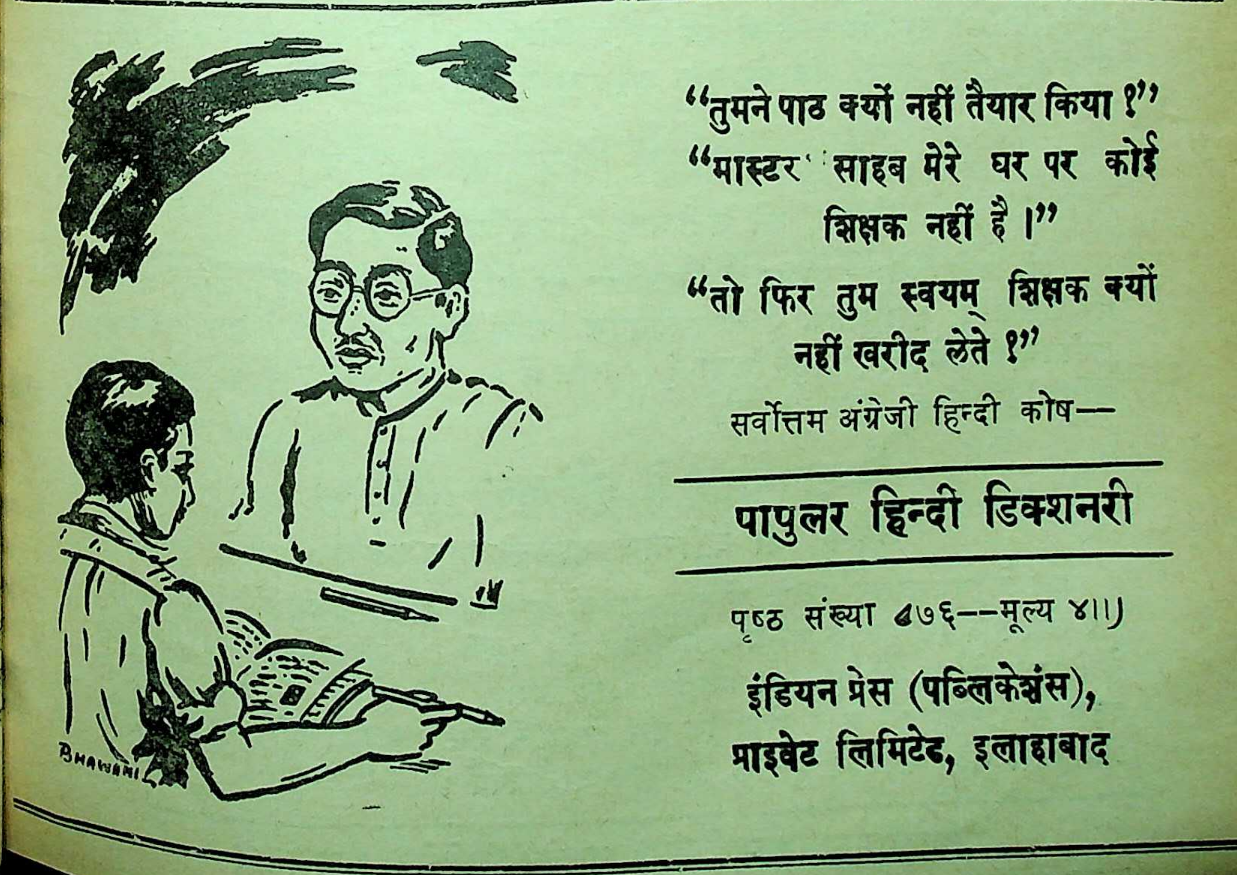

"तुमने पाठ क्यों नहीं तैयार किया ?"
"मास्टर साहब मेरे घर पर कोई शिक्षक नहीं है।"
"तो फिर तुम स्वयम् शिक्षक क्यों नहीं खरीद लेते ?"

सर्वोत्तम अंग्रेजी हिन्दी कोष—

पापुलर हिन्दी डिक्शनरी

पृष्ठ संख्या ८७६—मूल्य ४॥)

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत——१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·००
हिन्दी महाभारत——आचार्य द्विवेदीजी	६·००
हिन्दी ऋग्वेद——रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्भागवत——दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण——दो भागों में	१३·००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)——पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)——श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)——स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३·५०
विनयपत्रिका (सटीक)——स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४·००
कवितावली (सटीक)——पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
कुण्डलिया रामायण——सत्यनारायण पांडेय	४·००
तुलसी रत्नावली——केदारनाथ गुप्त	१·५०
तुलसी के चार दल——श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन——महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्——श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
दुर्गापाठ——अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२·००
श्री भगवत तत्त्व——श्री करपात्रीजी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१--सम्पादकीय ३०५
२--क्या वेद में इतिहास है?--पं० चन्द्रकान्त बाली ३१३
३--आधुनिक काल में वीरता की काव्य-परम्परा--श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह .. ३१७
४--हमारे संग्रह-कार्य के कतिपय संस्मरण--श्री अगरचन्द नाहटा ३२०
५--गीत की धुन गूँजती है (कविता)--श्री जयप्रकाश यादव ३२२
६--तिब्बत के दलाई लामा और चीन--श्री सीताराम जौहरी ३२३
७--गीत--पाण्डेय शशिभूषणप्रसाद 'शीतांशु' ३२७
८--पं० रामनरेश त्रिपाठी के जीवन की कुछ अछूती झाँकियाँ--श्री मार्कण्डेयसिंह .. ३२८
९--परमाणु वैज्ञानिक डा० नील्सबोर--श्री व्रजेश्वरप्रसाद शर्मा ३३३
१०--क्या अँगरेजी से हिन्दी हार गयी--श्रीमती शीला शर्मा ३३५
११--तोपें और तोपखाना-- ३३७
१२--चार मुक्तक (कविता)--श्री रतिभानु सिंह नाहर .. .. ..
१३--साहित्य और नैतिक मूल्य--श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी .. .. ..
१४--इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (५)--पं० व्रजमोहन व्यास ..
१५--आँगनों के बीच--अन्न के दो ग्रास--श्रीमती शीला शर्मा .. ..
घर-गृहस्थी--सुई डोरे का रोमान्स--श्री 'कनक' .. ..
१६--सिक्के का दूसरा पहलू--श्री राजेश्वर-प्रसादनारायणसिंह .. ..
१७--बन्धन--श्री विद्या गुप्ता .. ..
१८--वैज्ञानिक का निमंत्रण और नाइट्रोजन के यौगिक--श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'
१९--नवीन प्रकाशन .. .. ..
२०--१९०७ की सरस्वती--परलोक-वासी मिस्टर जॉन बीम्स--ले० काशीप्रसाद जायसवाल (लिंकन्स इन, लन्दन) ..
२१--मनोरंजक संस्मरण .. ..

समय की पुकार :
अधिक उपज
अधिक बचत
अधिक मेहनत

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित
श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।
हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्य एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य--एक रुपया आठ आ

प्राप्तिस्थान--श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम २६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
बुक्स, २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

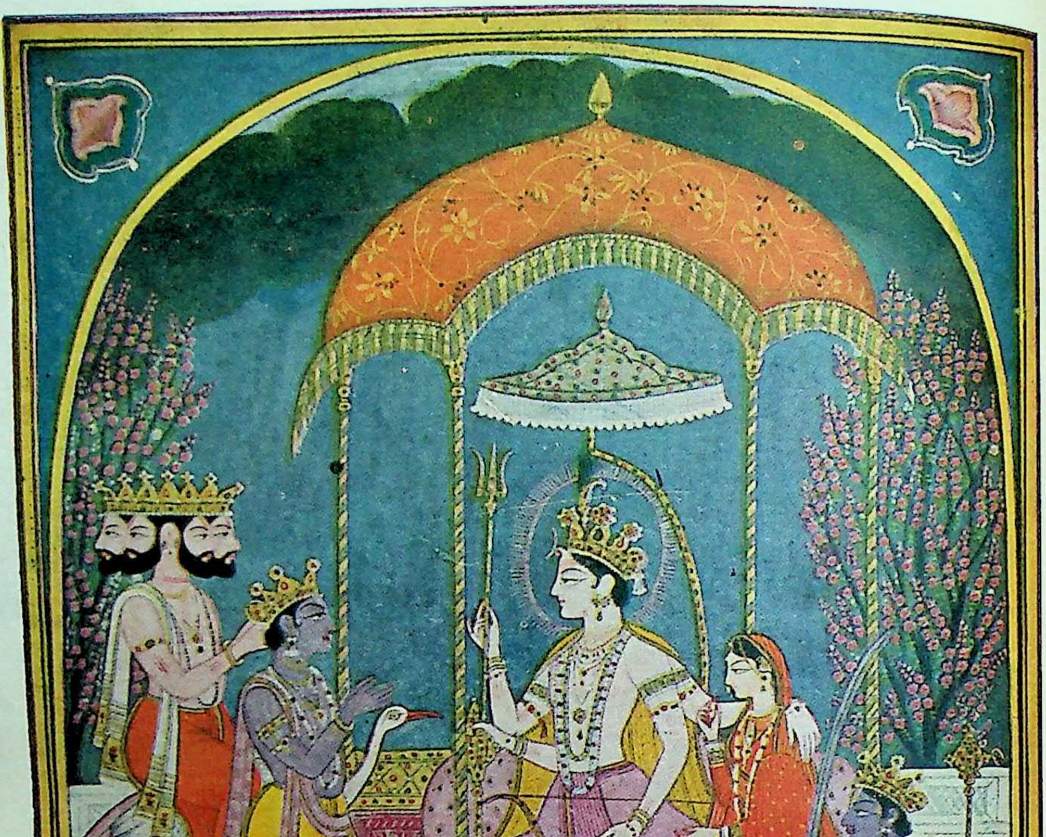

देवताओं के प्रार्थना करने पर रावण को मारने के लिए विष्णु भगवान् का
महाराज दशरथ के यहाँ अवतार लेने की
इच्छा करना

सरस्वती

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
पूर्ण संख्या ७६०

इलाहाबाद : अप्रैल १९६३ चैत्र २०२० वि०

खण्ड १
संख्या ४

सम्पादकीय

हिंदी क्यों अक्षम रही—संविधान में हिंदी को केन्द्र की राजभाषा स्वीकार करते हुए यह व्यवस्था की गयी थी कि सन् १९६५ तक भारत-सरकार हिंदी में काम करने की पूरी तैयारी कर ले जिससे १९६५ से केन्द्र का सारा या अधिकांश काम हिंदी में होने लगे। किंतु स्पष्ट है कि सरकार आवश्यक तैयारी नहीं कर सकी और अब अंग्रेजी को 'सखी' भाषा बनाने जा रही है जिससे अनिश्चित काल तक अंग्रजी भारत की——नाम में 'सखी' किंतु वास्तव में मुख्य—राजभाषा बनी रहे। केन्द्र में हिंदी की तैयारी का काम शिक्षा-मंत्रालय को सौंपा गया था जिसके मंत्री स्वर्गीय मौलाना आजाद थे। मौलाना साहब देश के उन नेताओं में थे जिनमें जनता का पूरा-पूरा विश्वास था, जिनका आदर हिंदू-मुसलमान समान रूप से करते थे। किंतु यह बात छिपी नहीं है कि मौलाना साहब 'हिंदुस्तानी' को भारत की राजभाषा बनाना चाहते थे। उनकी भारत-भक्ति और राष्ट्रीयता १२५ प्रतिशत असंदिग्ध थी, किंतु उनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा अरब और मिस्र में हुई थी जिससे उनका साहित्यिक, सांस्कृतिक और भाषा-सम्बन्धी संस्कार एक विशेष प्रकार का हो गया था। उससे उनका दृष्टिकोण प्रभावित हुए विना नहीं रहा। उनके जीवन-काल ही में लोग शिकायत करते थे कि शिक्षा-मंत्रालय हिंदी के प्रचार और प्रसार में उदासीन है। गत मास बंबई राज्य के राष्ट्रभाषा-सम्मेलन में बोलते हुए केंद्रीय सरकार के एक भूतपूर्व मंत्री तथा पंजाब के भूतपूर्व राज्यपाल श्री न० वि० गाडगिल ने कहा कि "यद्यपि मौलाना साहब बड़े विद्वान्, प्रशासक और शिक्षा-शास्त्री थे तथापि उनमें हिंदी का वह प्रगाढ़ प्रेम नहीं था जो होना चाहिए था, और इससे केन्द्र में जो वातावरण बन गया उसके फलस्वरूप हिंदी कोई वास्तविक उन्नति नहीं कर पायी। यदि ऐसा न हुआ होता तो आज देश में हिंदी प्रशासन की भाषा हो गयी होती।"

श्री गाडगिल देश के प्रमुख नेताओं में हैं। सरकार में वे अत्यन्त उत्तरदायी पदों का भार ग्रहण कर चुके हैं। उन्होंने जो बात कही है वह एक ऐतिहासिक तथ्य है। मौलाना साहब ने हिंदी का सारा काम अपने हाथ में ले लिया था। जो दूसरे लोग कुछ करना चाहते थे, उन्हें करने नहीं दिया। जिस दिन संविधान सभा ने हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया उसके दूसरे दिन हमारी भेंट

स्वर्गीय रविशंकरजी शुक्ल से हुई। हमने उनसे कहा कि प्रशासन में शीघ्र हिंदी लाने के लिए यह आवश्यक है कि शीघ्रातिशीघ्र प्रशासनिक शब्दावली हिंदी में बना ली जाय। यदि आप इस काम को अपने हाथ में ले लें तो आपकी बनायी शब्दावली सभी हिंदीभाषी राज्यों में चल जायगी, और इन राज्यों में हिंदी का प्रवेश तुरन्त किया जा सकेगा। उन्हें यह सुझाव पसन्द आया और उन्होंने कुछ दिनों बाद नागपुर में राज्यों के प्रतिनिधियों को निमंत्रित करके एक सम्मेलन किया भी। जब एक-डेढ़ वर्ष बाद हमें उनसे भेंट करने का फिर अवसर मिला तो हमने इस विषय की प्रगति पूछी। उन्होंने कहा कि मौलाना साहब का कहना है कि अंतर्राज्य उपयोग के लिए हिंदी की शब्दावली बनाना केन्द्र का काम है। अतएव हमने उस काम से हाथ हटा लिया है। और केन्द्र ने क्या काम किया? इतने दिनों बाद अभी कुछ दिन पहिले एक पारिभाषिक कोश निकाला है जिसमें 'अंतर्राष्ट्रीय' शब्दावली के नाम पर ढेरों अंग्रेजी शब्द ले लिये गये हैं, और फिर भी वे सब अभी "कच्चे" हैं। उन्हें 'पक्का' करने में न मालूम अभी कितना समय और लगेगा।

इसमें संदेह नहीं कि यदि हिंदी का काम उस समय शिक्षा-मंत्रालय को न सौंपकर एक स्वतन्त्र मंत्रालय को सौंप दिया जाता और उसके मंत्री, सचिव आदि चुनते समय यह ध्यान रखा जाता कि वे हृदय से हिंदी के समर्थक हैं, तो केन्द्र में हिंदी ने अभी तक बहुत कुछ उन्नति कर ली होती। किंतु केवल मौलाना साहब ही उस स्थिति के लिए उत्तरदायी नहीं थे। केन्द्र में अन्य महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ भी रही हैं जो हृदय से अंग्रेजी चाहती हैं। मौलाना साहब का उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष था, किंतु परोक्ष हिंदी-विरोधियों ने भी हिंदी के रास्ते में अड़ंगे लगाने में कसर नहीं की।

सेठ गोविन्ददास को हिंदी-निष्ठा का पुरस्कार—इस समय हिंदी संसार अत्यन्त अस्त-व्यस्त है। हिंदी आन्दोलन का नेतृत्व हिंदी-साहित्य-सम्मेलन करता था, किंतु कुछ विघ्नसंतोषियों की कृपा से वह अदालती दलदल में फँसा हुआ है। उसके लिए एक कार्यवाहक समिति सरकार की ओर से बनी है जिसकी वैज्ञानिक स्थिति अस्पष्ट है। यह समिति सम्मेलन के आंतरिक प्रशासन में अवश्य ही कुछ उपयोगी कार्य कर रही है, किंतु वह हिंदी आन्दोलन का नेतृत्व करने या उसमें भाग लेने में असमर्थ है क्योंकि उसमें सरकारी अधिकारी भी हैं। हिंदी के अधिकांश नेता कांग्रेसी रहे हैं, और इस समय हिंदी के सम्बन्ध में कांग्रेस के कर्णधारों का जैसा रुख है, उसे देखते हुए वे अपने दल की भाषा-नीति का खुला विरोध करने का साहस नहीं कर सकते। किंतु फिर भी सेठ गोविंददास और श्री दिनकर अपने-अपने ढंग से हिंदी के हितों की रक्षा करने का प्रयास करते हैं। सेठ गोविंददासजी ने तो प्रयाग में यह घोषित भी कर दिया था कि जब अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए केन्द्र की सखी राजभाषा बनाने का विधेयक संसद में आवेगा, तब वे उसका विरोध करेंगे। संसद में इस बात का ध्यान रखते हैं कि वहाँ हिंदी की मर्यादा न होने पावे। इसका परिणाम यह हुआ है कि कांग्रेसी तथा अन्य राजनीतिक विरोधी उनके इस हिं प्रेम के कारण उन्हें 'साम्प्रदायिक' या 'जनसंघ का यती' कहकर उनको बदनाम करने लगे हैं। उनके यह प्रचार इतना बढ़ गया कि गत मास उन्हें एक जनिक वक्तव्य देना पड़ा। सेठजी संसद के सबसे और वरिष्ठ कांग्रेसी सदस्य हैं। वे एक धनकुबेर परि में उत्पन्न होने पर भी कांग्रेस में सम्मिलित हुए। तब अनेक बार कांग्रेस के आन्दोलनों में जेल गये। कांग्रेस की समाजवादी नीति का बराबर समर्थन कि कांग्रेस की निर्दलीय परराष्ट्र नीति के वे समर्थक रहे वे बराबर कांग्रेस टिकट पर ही चुनाव लड़ते रहे हैं। हिंदी और अंग्रेजी को लेकर कांग्रेस के कर्णधारों और मतभेद है। यह मतभेद इसी एक विषय तक सी है। किंतु उनके विरोधियों ने उनके इस हिंदी-प्रेम लेकर उन्हें साम्प्रदायिक कहकर बदनाम करना आ कर दिया है। हमें यह देखकर अत्यंत खेद हुआ अपने को हिंदी का समर्थक कहनेवाले एक-दो हिंदी ने भी, हिंदी का साहसपूर्ण समर्थन करने के लिए उ सराहना करने के बजाय, उनको बदनाम करने में सह दिया है ।

अंग्रेजी समर्थक और हिंदी-विरोधी लोगों से तो अपेक्षा ही की जाती है कि वे सेठजी के समान हिंदी- का विरोध करेंगे। जब वर्तमान संसद का नया अधिवे आरंभ हुआ तब पहिले दिन संसद के अध्यक्ष का चु किया गया। संसद की इस बैठक की अध्यक्षता संसद ज्येष्ठतम सदस्य करता है। सेठजी ने ज्येष्ठतम होने के कारण उसकी अध्यक्षता की, और जो कुछ वह पहिले हिंदी में, और फिर अंग्रेजी में। इस अंग्रेजी पत्र स्टेट्समैन के संसदीय संवाददाता ने आलोचना करते हुए लिखा :

"Right at the start of the Second Sabha, another Hindi enthusiast (but reasonable by far than the Socialists) bro unwanted comedy into Parliaments Proc ings by forcing on Hindi a recogni which it did not need. As a temporary Spe elevated to the post for a single day, Govind Das was called upon to preside the election of a Speaker for the full The task was simple...and could have completed quickly. But Seth Govind complicated it for himself, and deprived occasion of some of its dignity, by rea every proposal and decision twice over Hindi and English. While many mem gave in to their sense of amusement, he himself up in knots to the obvious disple of Mr. Nehru, who wore a frown as he sat through the ungainly proceedings."

इसका आशय यह है कि सेठजी ने "हिंदी पर जबर्दस्ती वह मान्यता लादकर, जिसकी उसे आवश्यकता नहीं थी, संसद की कार्यवाही को मनोरंजक व्यंग्यात्मक नाटक बना दिया।" काम बड़ा सरल था किंतु सेठजी ने "प्रत्येक वक्तव्य और निश्चय को दो बार, हिंदी और अंग्रेजी में, पढ़कर उसे अपने लिए जटिल बना लिया तथा इस अवसर की प्रतिष्ठा को कुछ कम कर दिया," "कुछ सदस्य तो इसका मजा लेते रहे, किंतु वे अपने को उलझनों में डालते रहे जिसे देखकर स्पष्टतः श्री नेहरू अप्रसन्न हो रहे थे और जब तक यह अशोभनीय कार्यवाही चलती रही उनकी त्यौरी चढ़ी रही।"

इस आलोचना की ध्वनि अवमानना की है। आगे चलकर भी इस लेख में हिंदी के प्रति असहानुभूतिपूर्ण रुख व्यक्त किया गया है। इस पर सेठजी ने स्टेट्स्मैन को जो पत्र लिखा, उसका भावानुवाद यह है:--

"इस सम्बन्ध में मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि जब-जब मैंने नयी लोकसभा के अस्थायी अध्यक्ष का काम (१९५७ और १९६२ में) किया तब-तब लोकसभा की कार्यवाही हिंदी और अंग्रेजी--दोनों ही भाषाओं--में की गयी। प्रधान मंत्री की पूर्व सहमति से यह किया गया था।

आपको यह मालूम होना चाहिए कि हमने अपने संविधान में हिंदी को अपनी राजभाषा स्वीकार कर लिया है, और संविधान का अभिप्राय है कि १९६५ में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ग्रहण कर ले।

आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि यदि १९६५ के बाद भी कुछ दिनों अंग्रेजी चलती रहे तो वह सखी ापा होगी। मुख्य भाषा हिंदी ही रहेगी। आपका समा-ार-पत्र इंग्लैण्ड में प्रकाशित नहीं होता, और आपसे आशा ी जाती है कि आप उस भाषा के प्रति उचित आदर लावेंगे जिसे हमारे संविधान ने राजभाषा स्वीकार या है। आपके समान पत्रों और व्यक्तियों के कारण ग्रेजी का इतना विरोध बढ़ गया है। मैं आशा करता हूँ क आप अपना ढंग सुधारने का प्रयत्न करेंगे।"

स्टेट्समैन ही नहीं, अधिकांश अंग्रेजी समाचार-पत्र ी परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हिंदी का विरोध करते हैं। नमें कुछ तो यह कहकर हिंदी के प्रति मौखिक सहानु-ति दिखला देते हैं कि "अंत में, कभी न कभी, हिंदी स देश की राजभाषा होगी ही," किंतु वे अंग्रेजी को बनाये ने, उसकी जड़ मजबूत करने और हिंदी के उपयोग ा विरोध या उसे निरुत्साहित करने में बराबर कटिबद्ध ते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे अंग्रेजी भी जिनके स्वामी हिंदी भाषा-भाषी हैं यह रुख अपनाते क्योंकि उनके सम्पादक हिंदी-विरोधी क्षेत्रों के हैं। जी समाचार-पत्रों का इतना रोब है कि हिंदीवाले का विरोध भी नहीं करते। इसलिए हम सेठजी को ट्स्मैन की इस अवमाननापूर्ण आलोचना का करारा उत्तर देने के लिए हार्दिक बधाई देते हैं। सेठजी को इस समय दोहरे विरोध का सामना करना पड़ रहा है--अपने लोगों का, और अंग्रेजी-परस्तों का। ऐसे ही अवसरों पर मनुष्य की परख होती है। नीति में कहा है--

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषं परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥

किंतु हिंदी के सच्चे भक्त इस गाढ़े समय में हिंदी को मँझधार में न छोड़कर अपने हितों को खतरे में डालने के लिए, तथा उनके अनन्य और एकनिष्ठ सक्रिय हिंदी प्रेम के लिए सेठजी की प्रशंसा सदा करेंगे। हिंदी के इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा। औरंगजेब के समय में एक युद्ध में जब शत्रु की विजय होने लगी और सब सहयोगी पलायन कर गये तब भी बूंदी का हाड़ा राजा मैदान में डटा रहा। भूषण ने इसका वर्णन करते हुए कहा था:

हय चले, हाथी चले, संग छाँड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचल में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो!

सेठ गोविंददासजी भी हिंदी-अंग्रेजी के इस संघर्ष में (जिसमें अंग्रेजी को सफलता मिलती जा रही है) हाड़ा राजा की भूमिका निवाह कर उससे होड़ करते हुए हिंदी के पक्ष में अडिग और अचल खड़े हैं।

अपव्यय--राज्य के कर्णधारों से अपेक्षा की जाती है कि सार्वजनिक कामों में भी जनता का पैसा खर्च करते समय वे इस बात का ध्यान रखेंगे कि किसी प्रकार का अपव्यय नहीं होता। किंतु जब जनता का रुपया अपने ऊपर खर्च करने का अधिकार उन्हें मिल जाता है तब तो यह उनका विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है कि वे उसे बहुत सोच-समझकर खर्च करें। पिछले मास संसद में आवास-व्यवस्था के मंत्री श्री मेहरचंद खन्ना ने केंद्रीय मंत्रियों के बिजली और पानी के व्यय के जो आँकड़े रखे उनसे बड़ी खलबली मच गयी। नियमानुसार प्रत्येक मंत्री को राज्य की ओर से रहने के लिए एक बँगला दिया जाता है जिसका किराया नहीं देना पड़ता। बँगले की सजावट का सारा सामान भी (जैसे मेज, कुर्सी, सोफा, फर्श, कालीन, पर्दे, आलमारी आदि) उन्हें राज्य से मुफ्त मिलता है। यही नहीं, बिजली का सामान भी (जैसे हीटर, पंखे, फिजिडेयर, कूलर आदि भी) उन्हें आवश्यकतानुसार निःशुल्क दिये जाते हैं। इस सजावट और आरायश के सामान के अतिरिक्त इन बंगलों में जो बिजली और पानी व्यय होता है उसका मूल्य भी सरकारी कोष से दिया जाता है। बँगले के बाग, फुलवारी और घास के लॉन आदि का प्रबंध भी सरकार के खर्च से होता है। श्री खन्ना ने एक सदस्य के प्रश्न के उत्तर में मंत्रियों के बिजली और पानी के व्यय की एक तालिका उपस्थित की। इसमें पिछले छः महीनों का औसत मासिक व्यय दिखलाया गया है। वह तालिका इस प्रकार है:

मंत्रिमंडल के मंत्री	औसत मासिक व्यय बिजली	 पानी
श्री जगजीवन राम	४७४·३६	५०·७५
,, गुलजारीलाल नन्दा	३१२·४१	५३·००
,, लालबहादुर शास्त्री	५८०·९३	१२०·६९
,, टी० टी० कृष्णमाचारी	२२१·४९	४५·७५
,, सरदार स्वर्णसिंह	२५१·३४	४८·८७
,, के० सी० रेड्डी	४७०·८६	६०·९२
,, एस० के० पाटिल	५०३·५८	८५·२५
,, हाफिज मु० इब्राहीम	४६४·७९	८२·००
,, ए० के० सेन	५५८·४७	६२·००
,, यशवन्तराव चव्हाण	(अप्राप्य)	४२·३८
,, केशवदेव मालवीय	२०४·५०	५३·१७
,, गोपाल रेड्डी	२२३·३५	१०८·८२
,, सी० सुब्रामनियम	३५४·००	(अप्राप्य)
,, हुमायुन कबिर	१८८·४७	४५·२५
,, का० ला० श्रीमाली	२५०·४१	३३·४२
,, सत्यनारायण सिंह	३००·२२	११८·९०
राज्य-मंत्री		
श्री मेहरचन्द खन्ना	१७०·४९	३१·२२
,, मनूभाई शाह	८५·९८	४१·९०
,, नित्यानंद कानूनगो	२७५·२३	१३२·१७
,, राजबहादुर	१९९·६८	६६·७५
,, एस० के० डे	१६६·७०	१९·०८
सुश्री सुशीला नय्यर	९१·७८	८७·६७
श्री जयसुखलाल हाथी	१६४·०८	८३·४२
श्रीमती लक्ष्मी मैनन	६५·६७	३४·४६
श्री के० रघुरमैय्या	३२२·४५	७८·४१
,, ओ० वी० अलगेसन	२३२·२३	४३·५०
,, रामसुभग सिंह	२३१·७६	४७·६०
,, आर० एम० हाजरनवीस	१८२·६०	२९·४२
उप मंत्री		
श्री बलीराम भगत	१५७·१२	२३·४१
,, मनोमोहन दास	१०६·७८	२९·७९
,, शाहनवाज खाँ	१०२·९७	४१·३३
,, ए० एम० टामस	१९७·६१	४०·४६
,, एस० वी० रामस्वामी	१०४·०६	८७·००
,, अहमद मोहीउद्दीन	३१६·९७	१६·६१
श्रीमती तारकेश्वर सिन्हा	१४१·३१	३१·१७
श्री पी० एस० नसकर	२०१·७८	४३·१३
,, बी० एस० मूर्ति	२७६·४८	७६·०८
श्रीमती टी० एस० रामचन्द्रन	१२१·७९	४१·२५
श्री डी० आर० चवन	१३८·६१	६१·३७
,, सी० आर० पट्टभीरामन्	१५७·५५	३२·७५
श्रीमती एम० चन्द्रशेखर	१४७·५०	३६·४६
श्री जगन्नाथ राव	१०७·९४	८८·७८
,, शामनाथ	५५·२१	१८·५०
,, डी० एस० राजू	१४०·४१	४२·४४
श्री दिनेश सिंह	१८०·००	
,, बी० मिश्र	२१८·५४	
,, बी० भागवती	१२६·१५	
,, एस० डी० मिश्र	१९०·००	
,, प्रकाशचंद्र सेठी	६३·२६	

इस सूची में प्रधान मंत्री और श्री मुरारजी के पानी और बिजली का हिसाब नहीं है। इसका यह है कि ये जिन कोठियों में रहते हैं वे आवास वि अधीन नहीं हैं। वे दोनों कोठियाँ राष्ट्रपति भव परिधि में आती हैं और उनका व्यय राष्ट्रपति भ खाते में से दिया जाता है। इसलिए श्री खन्ना को व्यय की जानकारी नहीं थी।

मंत्रिमंडल के मंत्रियों, राज्य-मंत्रियों और उप-मं को जो कोठियाँ दी जाती हैं वे उनकी पद-मर्यादा के होती हैं। मंत्रिमंडल के मंत्रियों की कोठियाँ बहुत होती हैं। उनमें भृत्यवर्ग आदि के लिए भी मकान बड़ा उद्यान होता है, घास का लम्बा-चौड़ा चौगान है। राज्य-मंत्रियों को उनसे छोटी, और उप-मंत्रि उनसे भी छोटी कोठियाँ दी जाती हैं। अतएव मंत्रि के मंत्रियों, राज्य-मंत्रियों और उप-मंत्रियों के पानी-बि के व्यय में बड़ा अंतर होना अनिवार्य है।

मंत्रियों के यहाँ आये दिन अनेक अतिथि आते हैं। इन अतिथियों में निजी मित्रों और संबंधियों की बहुत कम होती है। अधिकांश अतिथि उनके मंत्री के कारण आते हैं। उनके कितने ही कर्मचारियों को वश अधिकांश समय उनकी कोठियों में रहना पड़ता है उनकी पद-मर्यादा के कारण उनके पास भृत्यवर्ग अच्छा खासा समूह रहता है। जनता अपेक्षा करती मंत्रियों के बगले में घास के बड़े चौगान हों, बड़ा इस लम्बे अहाते को रात में अँधेरे में नहीं रखा जा गर्मी में कूलर और पंखों का प्रयोग और जाड़ों में का प्रयोग करना ही पड़ता है। ये भारत ऐसे के शासक हैं। इनसे मिलने देश-विदेश के बड़े-बड़े आया करते हैं। अतएव इन्हें ऊपरी टीमटाम पड़ती है। इसीलिए इनकी कोठियों के सजाने और रखाव पर इतना व्यय होता है।

किंतु फिर भी पानी और बिजली पर इन की कोठियों पर जो व्यय होता है वह बहुत अधि श्री खन्ना ने सुझाव दिया था कि पानी-बिजली पर मंत्रि के मंत्रियों की कोठियों पर २५० रुपया से अधिक व्यय न हो। यह राशि कम नहीं है। बड़े अधिकारि पास भी बड़ी कोठियाँ होती हैं। उन्हें बिजली-पा व्यय अपनी जेब से देना पड़ता है। वे सावधान हैं और इस मद्द में उनका मासिक व्यय पचास-सा से अधिक नहीं हो पाता। यह देखते हुए मंत्रियों के २५० रुपये प्रति मास बिजली पानी में व्यय कर बड़ी मितव्ययिता न होगी।

इस आपत-काल में जनता को मितव्ययिता और कष्ट सहन का उपदेश दिया जा रहा है। किंतु सरकार में इसके लक्षण कम ही दिखलायी पड़ते हैं। कितने ही कार्यालयों को वातानुकूलित कर दिया गया है। कितने ही में 'कूलर' लगा दिये गये हैं। किंतु इस देश में करोड़ों व्यक्तियों को ये सुविधाएँ नहीं हैं। वे गर्मी और जाड़े की तीव्रता के साथ लड़ते हुए अपना काम करते हैं। मदरास के मुख्य-मंत्री श्री कामराज नादर ने अपने कमरे में यह कहकर 'कूलर' नहीं लगने दिया कि जब मदरास के अनेक व्यक्तियों को दो बार पेट भर भोजन भी नहीं मिलता तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं इस प्रकार की व्यक्तिगत सुख-सुविधा उनके पैसे से भोगूं? किंतु उचित-अनुचित का यह सूक्ष्म बोध हमारे कितने नेताओं और मंत्रियों में है? यही कारण है कि जब वे देश के आपतकाल में जनता को कष्ट सहन करने का उपदेश देते हैं तो उनके राजसी ठाठ को देखकर जनता उनकी बातों को 'कथा के बैगन' समझकर सुना-अनसुना कर देती है। मंत्रीगण और नेता गांधी के इस देश में मितव्ययिता, कष्टसहन, सादगी और तपश्चर्या को अपने जीवन में उतारने में पूर्ण रूप से असफल हुए हैं, और यही कारण है कि उपदेशों की अजस्र धारा बहाते रहने के वावजूद वे देश में मितव्यायिता और सादगी का वातावरण बनाने में असमर्थ हैं। जनता का जीवन वसे ही बहुत सादा है। उसमें साधारण सुविधाएँ ही कम हैं। उससे और अधिक मितव्ययी होने और सादगी अपनाने के उपदेश देना उन लोगों को शोभा नहीं देता जो उसीके रुपयों पर वातानुकूलित महलों और कार्यालयों में रहते हैं और जिनके घर नित्य दीपावली होती है।

मलएशिया—जब कोई व्यक्ति मरणासन्न होता है, या विरक्त होकर सांसारिक झंझटों से दूर होना चाहता है, तब वह अपनी सम्पत्ति आदि का प्रबंध करता है। ठीक यही दशा उस महान् ब्रिटिश साम्राज्य की है जिसमें किसी समय सूर्य अस्त नहीं होता था। द्वितीय महायुद्ध में इंग्लैण्ड के धन-जन का इतना नाश हुआ, और इस बीच उसके अधीन प्रमुख देशों में स्वतंत्रता प्राप्त करने की इतनी तीव्र माँग हुई कि उसने देखा कि मेरे पास इतनी शक्ति नहीं रह गयी है कि इन अनिच्छुक देशों को अपने अधीन रख सकूं। इस बीच संसार में रूस और अमरीका की महान् शक्तियों का उदय हुआ। राष्ट्रसंघ के बन जाने से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संसार का जनमत बनने लगा। इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ बुद्धिमान् और यथार्थवादी हैं। जब उन्होंने देखा कि हम बलपूर्वक इन देशों को बहुत दिनों अपने अधीन नहीं रख सकते तब उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी से उन्हें स्वराज्य देना आरंभ कर दिया। एशिया में भारत, पेलेस्टाइन, बर्मा, लंका से लेंकर अफ्रीका के घाना, सोमालिया, टैंगानीका आदि देशों को स्वतंत्र करने की जो प्रक्रिया आरंभ हुई वह आज भी जारी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि ऐतिहासिक दबाव के कारण जिब्राल्टर, मॉल्टा, अदन, हाँगकाँग के समान कुछ सैनिक महत्त्व के स्थानों को छोड़कर इंग्लैण्ड अपने साम्राज्य के प्राय: सभी प्रदेशों को स्वराज्य देकर उनसे अपना पिंड छुड़ाने को उत्सुक हैं।

उसी सिलसिले में उसे अपने दक्षिण-पूर्व एशिया के साम्राज्य की भी व्यवस्था करनी थी। इस भाग में उसके अधिकार में मलाया और उत्तरी बोर्नियो थे। मलाया में उसके संरक्षण में भारत के देशी राज्यों की तरह, कई रियासतें थीं, और सिंगापुर का महत्त्वपूर्ण बंदरगाह, उसके सीधे शासन में था। उसने १९५७ में मलाया और सिंगापुर को स्वतंत्रता दे दी। आज मलाया वहाँ की ११ रियासतों का संघ राज्य है। सिंगापुर एक अलग और स्वतंत्र नगर-राज्य है।

अब अंग्रेजों के गले में इस क्षेत्र में उत्तरी बोर्नियो का उत्तरदायित्व अटका रह गया है। किंतु उसका निवटारा इतना सहल नहीं है जितना मलाया और सिंगापुर का।

बोर्नियो संसार का चौथा सबसे बड़ा द्वीप है। क्षेत्रफल २,९०,०१२ वर्गमील) इसका दो-तिहाई से कुछ अधिक दक्षिणी भाग (२,२०,१४८ वर्गमील) डच लोगों के अधिकार में था, और जब इंडोनेशिया स्वतंत्र हुआ तब वह भी इंडोनेशिया राज्य में चला गया। उत्तरी बोर्नियो अल्पांश होने पर भी बहुत समृद्ध है, क्योंकि यहाँ तेल के कुएँ हैं। अतएव उस पर इंडोनेशिया के दाँत हैं। इसके अतिरिक्त उत्तरी बोर्नियो के उत्तर में—समुद्र पार—फिलिपाइन का स्वतंत्र राज्य है। वह भी इस पर अपना दावा करता है।

ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो में तीन राज्य हैं—ब्रुनेई (२,२२६ वर्गमील), सरावक (४८,२५० वर्ग मील) और उत्तर-पूर्वी बोर्नियो (२९,३८८ वर्ग मील)। पिछले दो पर अंग्रेज सीधे शासन करते हैं। ब्रुनेई में उनके अधीन एक सुलतान राज करता है। इन तीनों की सम्मिलित जनसंख्या कुल १२ लाख ८२ हजार है, जब कि इंडोनेशिया की जनसंख्या ९ करोड़ ५८ लाख से अधिक और फिलिपाइन की भी २ करोड़ ४० लाख है। यदि ब्रिटिश अधिकृत उत्तरी बोर्नियो स्वतंत्र कर दिया जाय तो अन्त में इन दो शक्तिशाली राज्यों में से कोई न कोई उसे अवश्य हड़प लेगा।

इसलिए अंग्रेज चाहते हैं कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के उनके साम्राज्य के सब भाग मिलकर एक संघ बना लें। मलाया और सिंगापुर भी बहुत छोटे हैं। मलाया की जनसंख्या ६९ लाख और सिंगापुर की १६ लाख है। ये दोनों भी अनुभव करते हैं कि अपने पड़ोसियों को देखते वे बहुत छोटे और निर्बल हैं, इसलिए वे भी उत्तरी बोर्नियो के तीनों क्षेत्रों से मिलकर संघ बनाने में अपना कल्याण समझते हैं। इससे एक तो उनकी शक्ति बढ़ जायगी, दूसरे उत्तरी बोर्नियो की खनिज सम्पत्ति—विशेषकर मिट्टी के तेल से—उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी। इसके अतिरिक्त ब्रुनेई और सरावक में मलय के बहुत से लोग

बस गये हैं और वहाँकी भाषा भी मलायी भाषा है। अतएव अंग्रेजों और मलाया तथा सिंगापुर ने निश्चय किया है कि इन पाँचों क्षेत्रों को मिलाकर 'मलएशिया' नामक एक संघ बनाया जावे।

इस प्रकार इस प्रस्तावित संघ में ये राज्य होंगे :—

राज्य	क्षेत्रफल	जन-संख्या
उत्तरी बोर्नियो	२९,३८८	४,५४ ३२८
ब्रुनेई	२,२२६	८३,८७७
सरावक	४८,२५०	७,४४,५२९
मलाया	५७,७००	६९,०९,०००
सिंगापुर	२२५	१६,६५,४००

इस प्रकार यदि ये पाँचों राज्य मिल जायें तो प्रायः एक करोड़ जनसंख्या का एक संघ बन जायगा। मलाया और सिंगापुर के शासक अगले अगस्त तक इस संघ का निर्माण करना चाहते हैं। सरावक और उत्तरी बोर्नियो के स्वामी अंग्रेज तो सहमत हैं ही, और आशा है कि ब्रुनेई के सुलतान भी उसमें सम्मिलित हो जायँगे।

किंतु अभी इसमें कितनी ही बाधाएँ हैं। इंडोनेशिया एक शक्तिशाली राज्य है। वह दो-तिहाई बोर्नियो का स्वामी है। डच लोगों को निकालकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद उसने पश्चिमी इंदियन द्वीप को भी ले लिया है। इसलिए उसके हौसले बहुत बढ़े हुए हैं। ब्रुनेई के कुछ लोग उसके पक्ष में हैं। कुछ दिनों पहले उन्होंने विद्रोह करके सुलतान से वहाँका शासन छीन लेना चाहा क्योंकि सुलतान से उन्हें यह आशा नहीं थी कि वह इंडोनेशिया में (जो एक प्रजातंत्र है) सम्मिलित होना स्वीकार करेगा। यदि सरावक से अँग्रेजी सेना आकर सुलतान की सहायता न करती तो बहुत संभव था कि इंडोनेशियनों के समर्थक विद्रोही ब्रुनेई पर अधिकार कर लेते। ब्रुनेई के इंडोनेशिया के साथ चले जाने पर मलएशिया संघ का बनना कठिन हो जाता। इंडोनेशिया इस प्रस्तावित संघ का विरोध कर रहा है। मलायावालों का कहना है कि ब्रुनेई के विद्रोह में उसकी शह है। उधर फिलिपाइन ने भी उत्तरी बोर्नियो के मलाया में मिलने का विरोध किया है, किंतु उनका विरोध सैद्धान्तिक है। इधर इंडोनेशिया प्रयत्न कर रहा है कि फिलिपाइन भी उसका साथ दे। किंतु मलाया इस संघ को बनाने के लिए कृतसंकल्प है। यदि इंडोनेशिया ने इसका प्रत्यक्ष और सक्रिय विरोध किया तो दक्षिण पूर्वी एशिया की शांति भंग होने की संभावना है।

अनुचित आलोचना—कुछ दिन हुए, इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ शाखा के तत्कालीन न्यायाधीश श्री मुल्ला ने एक वाद के निर्णय में प्रकारान्तर से लिखा था कि "कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर ऐसा मालूम होता है कि पुलिसवालों ने यह समझ लिया है कि कानून का पालन करते हुए न तो अपराधों की जाँच की जा सकती है और न सुरक्षा ही रखी जा सकती है, और ये कार्य तभी हो सकते हैं जब या तो कानून तोड़ा जाय या प्रकार उसे झाँसा दिया जाय। कम से कम एक सौ की परम्परा से मालूम होता है कि उनका विश्वास है। . . . मैं उत्तरदायित्व की पूरी भावना से कहता कि देश में कानून तोड़नेवालों का कोई एक ऐसा नहीं है जिसके अपराध उस संगठित संस्था के (अप के) निकट भी आते हों जिसे भारतीय पुलिस कहते यदि पुलिस में मुहम्मद नयीम के समान अधिकारी हो जायँ तो यह अच्छा होगा कि हम अपने संविधान को डालें, जनतंत्र और नागरिकों के अधिकारों को भूल जायँ, तथा अपने दंड-विधानों में ही नहीं, प्रत्युत रण कोशों में भी कानून और अन्य पारिभाषिक के अर्थ बदल दें।" ये वाक्य निर्णय के अंग नहीं थे। केवल प्रसंगोक्ति (ऑबिटर डिक्टा) थे। इनके रहने न रहने से निर्णय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इनको पढ़कर पुलिसवालों को बहुत बुरा मालूम हु हाईकोर्ट की इस सम्मति के बाद पुलिस पर न तो को ही विश्वास रह जाता और न पुलिस में आत्मसम् तथा आत्म-विश्वास ही। इनमें इतनी अतिशयोक्ति और ये इतने एकांगी थे कि उनकी अपेक्षा हाईको एक जज से नहीं की जाती थी, क्योंकि जज सब बातों न्यायतुला पर रखकर निर्णय करते हैं तथा संयमित नपी-तुली भाषा में अपना निर्णय देते हैं। पुलिस असंतोष को शांत करने, तथा राज्य की पुलिस में का विश्वास बनाये रखने के लिए उत्तर प्रदेश सर ने हाईकोर्ट से प्रार्थना की कि ये आपत्तिजनक माननीय न्यायाधीश के निर्णय से निकाल दिये जा यह आवेदन-पत्र न्यायमूर्ति मुल्ला को ही दिया गया, उन्होंने राज्य की यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। उत्तर प्रदेश सरकार ने भारत के सर्वोच्च न्यायाल प्रार्थना की कि न्यायमूर्ति मुल्ला के निर्णय में से ये निकाल दिये जायँ। गत मास सर्वोच्च न्यायालय ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसने इन आपत्तिजनक को न्यायमूर्ति मुल्ला के निर्णय से निकाल देने की दे दी। अपने निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायाल कहा—"इस मुकदमे के तथ्यों को देखते हुए न तो ये समीचीन थे और न मुकदमे के निबटारे के लिए ही आवश्यकता थी। इनमें से कुछ वाक्य तो ऐसे हैं संयम की कमी और न्याय्य दृष्टिकोण का अभाव पड़ता है।"

इस देश में न्यायालयों की साख बहुत ऊँची है। ठीक भी है, क्योंकि भारत के न्यायालयों की पर बहुत उत्कृष्ट रही है। इसलिए न्यायालयों की का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। लोगों का वि है कि उसमें नीर-क्षीर-विवेक रहता है, और उसकी वली बड़ी संयत और नपी-तुली होती है। हाईकोर्ट उपर्युक्त निर्णय में भारत की सारी पुलिस को अयो और [illegible] का ऐसा व्यापक प्रमाणपत्र दे दिया

था जो लोगों को अतिरंजित मालूम होता था। उससे जनता का पुलिस में विश्वास डिग जाता, और हीन-भावना के कारण पुलिस की दक्षता भी कम हो जाती। सर्वोच्च न्यायालय ने उपर्युक्त निर्णय से आपत्तिजनक वाक्य निकालकर देश की सुव्यवस्था और न्यायालयों की प्रतिष्ठा का बड़ा हित किया है।

पंडित व्रजमोहन व्यास––हमें अपने पाठकों को यह सूचित करते अत्यन्त दुःख होता है कि गत २६ मार्च को हमारे आदरणीय मित्र और 'सरस्वती' के पाठकों के सुपरिचित एवम् प्रिय लेखक पं० व्रजमोहन व्यास का प्रयाग में सहसा स्वर्गवास हो गया। होली के पहिले से उनका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था, किंतु चिंता की कोई बात नहीं मालूम होती थी। हमें उनका अंतिम पत्र २१ मार्च का लिखा हुआ मिला। उसमें उन्होंने लिखा था "लेखमाला का नं० ५ लेख सेवा में भेज रहा हूँ। प्रथम प्रशासनिक चेयरमैन लाला शिवचरणलाल से सम्बन्धित अनुभवों को जितना लिखना था, लिख दिया। अब जवाहरलालजी से सम्बन्धित अनुभवों की पारी है। इस संबंध में कई प्रश्न अपने पिछले पत्र में पूछे थे। उनके उत्तर मिलने पर ही नं० ६ आरंभ कर सकूँगा।....स्वास्थ्य अभी वैसा ही गड़बड़ चल रहा है। ईश्वरेच्छा।" यह पत्र हमें २३ मार्च को मिला। हम उनके प्रश्नों का विस्तृत उत्तर देने का विचार कर ही रहे थे कि २७ मार्च को सवेरे एक मित्र ने उनके सहसा स्वर्गवास का हृदयविदारक समाचार दिया। उनके पत्र में ऐसा कुछ भी संकेत नहीं था जिससे मालूम हो कि उनका स्वास्थ्य चिंताजनक है। इस कारण उनके निधन के समाचार ने हमें स्तब्ध कर दिया।

व्यासजी का व्यक्तित्व अद्भुत था। उनका कसरती शरीर, तेजोमय गौर मुख, चमकते हुए नेत्र और उनकी यासिक्त वाणी लोगों को बरबस आकर्षित कर लेती थी। ऐसे सभाचतूर, कर्मठ, युक्तिकुशल व्यक्ति हमें कम ही देखने को मिले। उन्हें असंख्य श्लोक, शेर, दोहे और छंद कण्ठस्थ थे, लतीफों और संस्मरणों की तो वे ान थे। अपने साधारण वार्तालाप में भी वे उनका प्रयोग इस चतुरता से करते थे कि उनसे बात करने में चि दर्जे का बौद्धिक आनन्द मिलता था। संस्कृत श्लोकों इतने शुद्ध उच्चारण, सुस्वर और काकु से पढ़ते थे श्रोता मुग्ध हो जाते थे। किंतु वे केवल वाक्शूर ही नहीं थे। बड़े क्रियाशील और कर्मठ व्यक्ति थे। प्रयाग म्युनिसिपल संग्रहालय उनका मानसपुत्र है जिसकी ना इस समय उत्तर भारत के सर्वोच्च संग्रहालयों में म्युनिसिपैलिटी की एक्जिक्यूटिव अफसरी उन्होंने र वर्ष बड़े ठाठ से की। संस्कृत साहित्य, हिंदी, उर्दू, तिहास तथा कला में उनकी विशेष रुचि थी। पं० लकृष्ण भट्ट, महामना मालवीयजी, राजर्षि टंडन, तेजबहादुर सप्रू आदि प्रयाग के प्रमुख व्यक्तियों से उनका बड़ा निकट का सम्पर्क था। वे प्रत्येक सांस्कृतिक या साहित्यिक कार्य में सहयोग देने को तैयार रहते थे। पिछले वर्ष सरस्वती हीरक जयन्ती को सफल बनाने में उन्होंने जो जीतोड़ परिश्रम किया, उसे 'सरस्वती' सदैव याद रखेगी।

व्यासजी विदग्ध साहित्य-रसिक थे, किंतु वे लेखक न थे। पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० श्रीधर पाठक, पं० जगन्नाथ राजवैद्य, महामना मालवीयजी, अकबर इलाहाबादी, सर तेजबहादुर सप्रू आदि के अनेक मनोरंजक संस्मरणों को हमने उनसे सुना था। हमने उनसे उन हथकंडों का भी हाल सुना था जिनसे उन्होंने, कोई साधन न होते हुए भी, केवल अपनी सूझबूझ से, प्रयाग का विशाल म्युनिसिपल संग्रहालय बना डाला। हमारे आदरणीय मित्र राय कृष्णदासजी भी संग्रहालय के मामले में उनके सहधर्मी हैं, और व्यासजी के प्रशंसक हैं। उन्होंने भी हमसे व्यासजी के संस्मरणों की कई बार प्रशंसा की। सरस्वती का सम्पादन लेने के कुछ दिनों बाद हमारे मन में आया कि व्यासजी से प्रयाग की पुरानी विभूतियों और बातों को लिखवा लेना चाहिए। किंतु उन्हें लिखने के लिए राजी करना सरल नहीं था। लेखक न होने के कारण उन्हें यह विश्वास नहीं था कि वे अच्छे लेख लिख सकेंगे। हमने उनसे कहा कि आप जिस प्रकार अपने संस्मरण सुनाते हैं, उसी प्रकार उन्हें लिख डालें। हम जानते थे कि इस शैली में लिखने से कितनी ही अप्रासंगिक बातें भी आ जायँगी। किंतु हमें उनकी वर्णन शैली इतनी रोचक मालूम हुई कि हमें विश्वास था कि उनके लेखों से बहुत सी अज्ञात बातें तो प्रकाश में आवेंगी ही, साथ ही वे लेख अपने ढंग के अनोखे और रोचक भी होंगे। बहुत पीछे पड़ने पर वे लिखने को सहमत हुए, किंतु एक बार जहाँ उन्होंने लिखना आरंभ किया वहाँ उन्हें स्वयं आत्म-अभिव्यक्ति में आनन्द आने लगा और वे जमकर लिखने लगे। कभी-कभी हमें उनके अप्रासंगिक अंशों को काट देना पड़ता था किंतु वे कभी बुरा नहीं मानते थे। बहुधा कहा करते थे, और कई बार लिखा भी––"साहित्यशास्त्र के आप कुशल वैद्य हैं। पाठकों की नब्ज आप मुझसे अधिक अच्छा समझते हैं।" वे बहुधा लेख लिखने के पहिले उसकी रूपरेखा आदि के सम्बन्ध में हमसे सलाह भी कर लिया करते थे। हमें इस बात का संतोष है कि हमने उनसे पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रयाग संग्रहालय और महामना मालवीयजी सम्बन्धी संस्मरण लिखवा लिये। इनमें कितनी ही बातें प्रकट हुईं जो अज्ञात थीं। उनके म्युनिसिपैलिटी के अनुभव भी बड़े महत्त्वपूर्ण थे। अभी तो वे उनकी भूमिका ही लिख पाये थे। आगे चलकर उनमें बड़ी अनोखी बातें आनेवाली थीं। इसलिए हमें खेद है कि हमने उनसे और पहिले सरस्वती में लेख लिखने के लिए आग्रह क्यों नहीं किया। उनके लेख सरस्वती के पाठक बड़े चाव से पढ़ते थे, और उन्हें बहुधा सराहना के पत्र लिखते थे।

उन्हें संस्कृत में एक प्रशंसात्मक पत्र लिखा था। २१-२-६२ को उन्होंने वह पत्र हमें देखने के लिए भेजा, और लिखा—"मेरे लिए यह पत्र इसलिए महत्त्व का है क्योंकि सत्यव्रतजी से मेरा पूर्वपरिचय नहीं है। मैंने उन्हें देखा भी नहीं है। मुझे इसका सन्तोष है कि मेरी लेखमाला लोग चाव से पढ़ते हैं। और विद्वानों के भी इसी प्रकार के पत्र आये हैं जिन्हें मैंने सँजोकर रखा है। वे मेरी पारिश्रमिक-स्वरूप निधि हैं। इसके लिए मैं सरस्वती का आभारी हूँ, विशेषकर आपका जिसने मुझे मार्गप्रदर्शन किया है और लेखमालाओं के लिखने में प्रयुक्त एवं प्रोत्साहित किया है। 'स तु विशेषदुर्लभः सदुपन्यसति कृत्यवर्त्म यः'—भारवि।" खेद है कि 'सरस्वती' भविष्य में उनके सरस और मनोरंजक लेखों से वंचित रहेगी।

हम दोनों प्रयाग के निवासी थे, और इस कारण हमारा उनका परिचय बहुत पुराना था। उनके छोटे भाई हमारे सहपाठी थे। अतएव उनके निधन से हमें एक पुराने सुहृद का वियोग हुआ है। सरस्वती की जो हानि हुई है, वह तो प्रत्यक्ष है। हम अपने मित्र और सरस्वती के सेवक, विदग्ध और वाग्मी, पंडित व्रजमोहन व्यास को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके शोकसंतप्त परिवार, विशेष कर उनके सुपुत्र पं० रामचंद्र व्यास के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

श्री सियारामशरण गुप्त—हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि, सफल उपन्यासकार और निबन्ध-लेखक श्री सियारामशरण गुप्त के सहसा निधन का समाचार हिंदी-संसार के लिए अनभ्र वज्रपात के समान है। हम उसके लिए बिलकुल ही तैयार न थे। वे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त के अनुज थे। आजकल राज्यसभा चल रही है और वे दिल्ली में हैं। श्री सियारामशरण जी उनके पास दिल्ली गये हुए थे। वहाँसे ८ मार्च को उन्होंने हमें एक पत्र लिखा था। प्रकारान्तर से उसमें उन्होंने लिखा था—"मैं यहाँ आया तो ज्ञात हुआ कि आप यहाँ आये थे। कैसा योगायोग कि आप झाँसी पहुँचे तब आपके दर्शन नहीं हुए, यहाँ भी आकर उससे वंचित रहा और मैं स्वयं लखनऊ गया तब आप वाराणसी गये हुए थे! अब आगे की ओर ही ताकना है।" हमें अप्रैल के प्रथम सप्ताह में दिल्ली जाना था, और हम उस समय उनसे वहाँ मिलने की आशा लगाये हुए थे। "आगे की ओर ताकना" केवल ही सिद्ध हुआ। "यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति

सियारामशरणजी में अनेक गुण थे, किंतु शि शीलता की तो वे मूर्ति थे। विनम्रता उनमें इतनी मात्रा में थी कि आजकल के आत्मविज्ञापन और आगे आगे ढकेलने की प्रवृत्तिवाले युग में बहुत से लोग व्यक्तित्व, चरित्र और कृतित्व का सही मूल्यांकन नहीं पाये। फिर भी लोगों को, कपड़े में लपेटे गये अंगा तरह, उनकी उत्कृष्टता की उष्णता का अनुभव हुए नहीं रहता था।

वे अनन्य वैष्णव और अनन्य गांधीवादी थे। उदार वैष्णव हृदय अत्यन्त विशाल था। उसी का फल था कि उन्होंने 'अमृतपुत्र ईसा' नामक काव्य रचना की जिसमें ईसा के चरित्र और संदेश को बड़ी भूति के साथ उत्कृष्ट काव्य में चित्रित किया है। में इसका अंग्रेजी अनुवाद विलायत में छपा है और उसकी बड़ी प्रशंसा हुई है। उनकी कविता में उच्च काव्य-प्रतिभा की झलक तो मिलती ही है, वह आदर्शवाद से भी ओतप्रोत है। उनका आ निष्क्रिय नहीं है। वह प्रेरणाप्रद है। उनके ग्रामजीवन पर आधारित हैं और उसकी समस्या विचारोत्तेजक प्रकाश डालते हैं। वे हिंदी गद्य सिद्धहस्त लेखक थे। उनके निबंधों की शैली और उच्च कोटि की हैं।

स्वर्गवास के समय उनकी आयु ६७ वर्ष की यों तो वे दमा के पुराने रोगी थे, किंतु इधर ऊप स्वस्थ मालूम होते थे। गत वर्ष सरस्वती हीरक में वे लम्बी यात्रा का कष्ट उठाकर सम्मिलित 'सरस्वती' से उनका बहुत पुराना सम्बन्ध था। वे काल के इने-गिने लेखकों में रह गये थे।

राष्ट्रकवि को सियारामशरणजी से अगाध हम उन्हें 'राम-लक्ष्मण' की जोड़ी कहा करते थे। के इस दारुण वियोग से उन्हें जो दुःख हुआ होगा, हम कल्पना ही कर सकते हैं। किन्तु वे धीर और हैं। हम उनके प्रति, तथा सारे परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करते हैं। उन्हें इस बात से कुछ कि सारा हिंदी संसार उनके इस दुःख में साझी हम भाई सियारामशरणजी की स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

क्या वेद में इतिहास है ?

पं० चन्द्रकान्त बाली

भारत का आस्तिक-समाज वेद को अपौरुषेय मानता है; यह अलग बात है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के विद्वान् 'अपौरुषेयत्व' की व्याख्या अपनी सीमा-बद्ध स्थापना को हृदयंगम करके अलग-अलग प्रस्तुत करते हैं; मानों 'मंजिल' सब की एक है, पर रास्ते सबने अपनी कल्पना के अनुसार बना रखे हैं। 'अपौरुषेयत्व' की कुछ-एक परिभाषाएँ इतनी जटिल हैं कि तर्क अथवा प्रतिभा सौ-सौ यत्न करके भी उन्हें छू नहीं पाती; उसकी कुछ-एक व्याख्याएं इतनी लचकीली हैं कि वेद में से जो चाहो ढूँढ़ लो, उसका सम्बन्ध धर्म अथवा कर्म से हो, या न हो। स्वामी विवेकानन्द की प्रस्तावित वेद की 'अपौरुषेयता' इतनी तर्क-संगत एवं सुपाच्य है कि वेद की वास्तविकता भी हमसे ओझल नहीं रहती और तर्क-तोप की भयानक दनादन भी उसे हत-श्री नहीं कर पाती।[1] विश्व भर के पुस्तक-इतिहास में वेद—विशेषतया ऋग्वेद—प्राचीन-से-प्राचीनतम प्रतिभ आविष्कार मान लिया गया है। वेद इतना सनातन या पुरावर्ती है कि उसका आविर्भाव-काल दूरगामी, सघन एवं संकुचित हो गया है कि तदभिमुख अनुमान की सभी दौड़ें विफल हो गई हैं। जो रचना पौरुषेय प्रतिभा की पकड़ से परे हो, उसे अपौरुषेय नहीं कहा जायेगा तो और—क्या कहा जायेगा ?

वेद को सब सत्य विद्याओं की एकमेव पुस्तक कहा जाता है। यहाँ सवाल पैदा होना स्वाभाविक है कि क्या वेद में 'इतिहास' के लिए कोई स्थान है ? क्योंकि इतिहास भी एक सत्य विद्या है। इस प्रश्न के समाधान में 'एक पक्ष' इतना उदार एवं व्यावहारिक है कि वह क्या वयक्तिक और क्या सांस्कृतिक—सभी प्रकार के इतिहास को वेद का विषय सहर्ष मानता है; इस पक्ष का आस्तिकता रूपी आवेष्टन बड़ा ही लचकीला है। इस सवाल पर 'दूसरा पक्ष' इतना कठोर है कि वह वेद में किसी किस्म के ऐतिहासिक तत्त्व के अस्तित्व का बड़ी कट्टरता से खण्डन करता है; और जब उसके सामने हठात् ऐतिहासिक विवरण उपस्थित किया जाता है तो उसकी प्रस्तावित वैदिक अपौरुषेयता मुरझाने लगती है। अपने ही बनाये संसार में रहनेवाला यह 'दूसरा पक्ष' वेद-मंत्रों के अर्थ-परिवर्तन करने में इतना कुशल है कि वह अर्थ और अनर्थ के भेद-भाव को मिटाने का बोझ तो उठा सकता है, पर वेद में इतिहास की सत्ता उसे किसी भी दशा में स्वीकार्य नहीं।

वेद का अर्थ-निर्धारण करते समय पुराण तथा इतिहास की अनिवार्य सह-सत्ता की शर्त मान ली गई है: **इतिहास-पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।** इतिहास-पुराण की छाया में वेदार्थ-प्रतिपादन पर जोर देना इस बात का सूचक है कि वेद का गूढ़ अन्तःकरण इतिहास-पुराण के सान्निद्धय में ही चमकता है। आविर्भाव की दृष्टि से पुराण-ग्रन्थ वेद से वयस्क हैं[1]। अथववेद ने पुराणों के इस दावे को मान लिया है[2]। इतिहास या पुराण की परिभाषा बाँधने में हम स्वतंत्र नहीं हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों ने ये सब परिभाषाएँ परम्परागत मान्यताओं के अनुरूप पहले से लगा रखी हैं[3]। निर्वाचन-प्रणाली के आचार्य महर्षि यास्क ने पुराणों की निरुक्ति इस प्रकार दी है: **पुरा नवं भवति,** जो पौराणिक स्थापना का शत-प्रतिशत समर्थन ही करती है[4]। वेद-प्राकटच से पूर्व 'पुराण' नये-नये समझ जाते थे। वेदों ने अपने अस्तित्व से पुराणों को सचमुच 'पुराण' बना डाला। श्रीरूप गोस्वामी की पुराण-परिभाषा : **पुरा नयति इति पुराणम्** भी हमें वेद-प्राक्तन युग की ओर देखने की प्रेरणा देती है। जो हो, वेदार्थ-प्रतिपादन में

---

१. सरस्वती : जनवरी १९६३, पूर्ण संख्या—७५७, ष्ठ २६

१. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
—मत्स्यपुराण

२. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रिताः।
।११।७।२४

. देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा इदं वा अग्रे नैव किंचिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।—
—ऐतरेय ब्राह्मण

४. पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्।
—वायुपुराण

फा० ४

'पुराण' अथवा 'इतिहास' की 'अनिवार्यता' मानों ऋषियों का वेद में निगूढ़ ऐतिहासिक तत्त्वों की ओर निभ्रन्ति निर्देश है। वेद में उपस्थित पुरूरवा:-उर्वशी संवाद[१] तथा यम-यमी संवाद की चर्चा पुरानी पड़ चुकी है; हम इन आख्यानों को दुहराकर पिष्ट-पेषण का अपराध अपने ऊपर लेना पसन्द नहीं करेंगे। आज के नए तथ्यों के प्रकाश में वेद में इतिहास-तत्त्व के खोजने का प्रयास ही इन पंक्तियों के आविर्भाव का मूल है। निकट-से-निकट भूत-काल की घटना या गाथा को 'इतिहास' तथा ऊर्ध्व-से-ऊर्ध्ववर्ती भूतकाल की घटना या गाथा को 'पुरातत्त्व' अथवा 'पुराण' कहते हैं; पुराणवार्ता कभी इतिहास मानी जाती थी; आज जिसे हम इतिहास मान रहे हैं, वह भविष्य में चलकर पुराणवार्ता समझी जाएगी; राम कभी इतिहास-पुरुष थे, पर वे आज हमारे समक्ष केवल पुराण-पुरुष ही मान्य हैं; शिवाजी तथा महाराणा प्रताप जो आज इतिहास-पुरुष माने जाते हैं, दस हजार वर्ष पश्चात् निश्चयपूर्वक पुराण-पुरुष ठहराए जायँगे। कहाँ 'इतिहास' समाप्त होता है और कहाँ से 'पुराण' प्रारंभ होता है-- इसका निश्चय करना महा कठिन है; अलबत्ता हम 'इतिहास' और 'पुराण' को एक मानकर चलगे--यह हमारे कृपालु पाठक को हृदयंगम कर लेना चाहिए।

आदिमानव का मूलस्थान

इस विस्तृत पृथ्वी पर आदिमानव-रचना कहाँ हुई? और कहाँ से उसका निकास या फैलाव हुआ? यह एक प्रश्न है, जिसका समाधान अनेक पण्डितों ने दिया है। स्वामी दयानन्दजी ने भी इसका समाधान प्रस्तुत किया है:

इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों से पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सीध इसी देश में आकर बसे[२]।

कितना सुन्दर होता, यदि स्वामीजी अपने कथन की पुष्टि में कोई वेदमंत्र प्रस्तुत करते। स्वामीजी इतिहास के भय से कोई मंत्र प्रस्तुत नहीं कर सके; पर यार ने ढूंढ़-ढाँढ़कर वेदमंत्र प्रस्तुत कर ही दिए हैं[१]। वैदि के महान् पण्डित पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इसका अर्थ प्रस्तुत किया है:

त्रिविष्टप शब्द का अपभ्रंश रूप आजकल 'ति है। यह प्रदेश हिमाचल की उत्तर दिशा में है[२]।

विचारों के प्रमुख व्याख्याता शिवपूजनसिंह कुशवा लिखा है: **इन वेद-मंत्रों से परमात्मा ने सि रूप से बतलाया है कि जो स्थान पृथ्वी पर पहले होता है और जिसमें मनुष्यों की सर्वप्रथम उत्पत्ति है उसी का नाम 'विष्टप' 'त्रिविष्टप' व स्वर्ग है। सृष्टिक्रम सदैव चालू रहता है[३]।**

स्वामीजी जिस बात को रहस्यमय छोड़ गए उन्हीं के अनुयायियों ने बात छुपाए नहीं रखी। धन्य यदि आदि मानव के मूल स्थान विषयक इतिहास को कर कहा जाता तो आज चीन के समक्ष हम अपना जोरदार शब्दों में पेश करते और अपने इतिहास को धिक प्राचीन बताते; कारण ऋग्वेद जैसी प्राची पुस्तक संसार में और कोई नहीं है। यदि वेद में 'इति मानें तो उसकी अपौरुषेयता खण्डित हो जाती है; 'त्रिविष्टिप' का कोई यौगिक अर्थ माने तो तिब्ब अपना सांस्कृतिक अधिकार छिन्न-भिन्न होता है। जिस तरफ पहलू बदलते हैं, उधर सुई चुभती है। इसे हैं स्व-वचन-व्याघात दोष!

सप्त सिन्धु

पञ्जाब का वैदिक नाम है--सप्तसिंधु। वेद में नदियों का वर्णन है[४]। वेद में जहाँ इतिहास है

---

[१] इतिहास इत्युर्वशीपुरूरवसो: संवादादि, उर्वशी हाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव।

[२] सत्यार्थप्रकाश : राजसंस्करण : तृतीयावृत्ति विक्रम-संवत् २०१८ : पृष्ठ १९४।

[१] (क) इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोह शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे। ऋग् ८।
(ख) साकं सजातै: पयसा सहैद्युदुब्जैनां महतेवी ऊर्ध्वो नाकस्याधिरोह विष्टपं स्वर्गो लोक यं वदन्ति। अथर्व० ११।१।७

[२] महाभारत की समालोचना : द्वितीय भाग, द्वि संस्करण : पृष्ठ ११६।

[३] वेदवाणी : मई १९५८ : १०-७ अंक : पृष्ठ १५

[४] इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परु असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणुह्या मया। ऋ० १०।७५।५

१९६३

भूगोल-खगोल विद्या भी है[1]। जो विद्वान् वेद में इतिहास-तत्त्व को डंका बजा कर मानते हैं, वे तो वेद में वर्णित पंजाब-भूमि के पावन दर्शन करते हैं। परन्तु 'पंजाब' वेद में किस प्रकार आ सकता है ? ऐसी धारणा रखनेवाले लोग मनमाने ढंग पर वेदार्थ प्रतिपादित करते हैं[2]। योगिराज अरविंद घोष भी इन अनैतिहासिकवादियों की रक्षा करते नजर आते हैं। उन्होंने सात नदियों के नाम योगपरक देखे हैं और उनके नूतन अर्थाधान में सारी शक्ति लगा दी है।[3] चूँकि बीच में योग-विद्या की बात आ टपकी है, और इसके साथ योगिराज अरविंद का नाम संलग्न है, अतः इस बात को ललकारना हम पसन्द नहीं करते। अलबत्ता, इतना स्मरण कराना आवश्यक मानते हैं कि यदि वेद में पंजाब का अस्तित्व निरुक्ति-स्तर पर स्वीकृत होता तो आज पंजाब पर हम अपना दावा समाप्त न कर देते। पाकिस्तान बन जाने के बाद हम पंजाब पर अपना सनातन अधिकार उसी प्रकार भूल बैठे हैं, जिस प्रकार हमारे निकटवर्ती पुरखा लोग अफगानिस्तान को भूल गये थे। स्पष्ट हो, अफगानिस्तान का वैदिक नाम भी 'सप्तसिन्धु' ही है। 'अफगानिस्तान' सिन्धु-पारवर्ती सप्ताम्बु-प्रदेश है और 'पंजाब' सिन्धु-अवारवर्ती पञ्चाम्बु-प्रदेश। वेद में 'इतिहास' न मानने से अफगानिस्तान गया-सो-गया, अब पंजाब भी चला गया है; आज भारत की न वैदिक सीमाएँ रही हैं, न पौराणिक; अब उसकी केवल राजनीतिक सीमाएँ रह गई हैं, जो अग्नि में पड़े चर्म की तरह सिकुड़ती सी रही हैं।

सृष्टि-संवत्

इधर आर्य-जगत् में धीमा-सा स्वर सुनाई पड़ने लगा है कि सृष्टि-संवत् अशुद्ध है, उसमें संशोधन की आवश्यकता है[1]। आज (ईसवी १९६३) सृष्टि-संवत् का १,९७,२९,४९,०६४वाँ वर्ष है। नये संशोधन के अनुसार सृष्टि-संवत् इस प्रकार होना चाहिए :

सृष्टि-संवत् के मूलवर्ष--	१,९७,२९,४९,०६४+
संशोधित वर्ष	८,६४,०००=
योग	१,९७,३८,१३,०६४

सृष्टि-संवत् में प्रस्तावित संशोधन का जो कारण दिया गया है, उससे डार्विन-थ्यूरी को चार चाँद लग गये हैं। हम तो भ्रमवश डार्विन को केवल काल्पनिक संसार का निवासी ही समझते रहे हैं; पर आज पता चला है कि डार्विन सचमुच वैदिक ऐतिह्य का अद्भुत प्रतिभाशाली महान् आचार्य है। डार्विन का दावा है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम वानस्पतिक प्राणियों का उद्गम हुआ था, उससे जन्तु-जगत् और जन्तु-जगत् से मानव का विकास हुआ। वानस्पतिक प्राणियों का प्रथम उद्गम यजुर्वेद के एक मंत्र से सिद्ध है[2]। आनन्द की बात यह है वनस्पति-सृष्टि तथा मानव सृष्टि में कोई तीन महायुग, अर्थात् १,२९,६०,००० मानुष वर्षों का व्यवधान है। यदि इसे वस्तुतः जानना चाहें तो दो सृष्टि-संवत् मानने होंगे। यथा—

१—वनस्पति-संवत् :	१,९७,३८,१३,०६४;
२—मानव-संवत् :	१,९६,०८,५३,०६४।

यह है आज का अभिनव ऐतिह्य अनुसन्धान। इस पर भी पक्का दावा यह है कि वेद में इतिहास नहीं है। औषधी-जगत् एवं वनस्पति-जगत् दोनों 'मानव-जगत्' से निश्चयपूर्वक पूर्ववर्ती हैं, यह बात ॐ **द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः** —इस मंत्र से भी अवगत हो जाती है।

---

[1] खगोलमथ भूगोलं लोकवृत्तं यथातथम्।
पुराणात् साधु विज्ञाय वेदान्तं ज्ञातुमर्हति॥
—पुराणोत्पत्तिप्रसंग

[2] वेदवाणी : फरवरी १९५८ : १०-४ अंक : पृष्ठ ३०-३१

[3] (क) (१) आनन्द की धारा, (२) सत्ता की धारा, (३) चैतन्य की धारा, (४) सत्य की धारा, (५) मन की धारा, (६) प्राणधारा तथा (७) अन्नमय स्थूलधारा।

(ख) (१) गांधारी, (२) हस्तिजिह्विका, (३) पूषा, (४) यशस्विनी, (५) अलंवुषा, (६) कुहू और (७) शंखिनी।

---

[1] वेदवाणी : मार्च १९६१ : १३-५ अंक : पृष्ठ १५-१६।

[2] या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यः त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह ँ शतं धामानि सप्त च।
य० १२। ७५।

अब तक हमने एक ऐसे 'पक्ष' पर विचार किया है कि जो वेद में ऐतिहासिक तत्त्वों के अस्तित्व से बड़ी दृढ़तापूर्वक इन्कार करता आया है, पर आवश्यकता पड़ने पर पुरायुगीन ऐतिह्य पर अर्ध-स्वीकृति भी दे रहा है; और अब एक एसे 'पक्ष' पर भी विचार कीजिए जो बड़ी उदारता से वैयक्तिक इतिहास को वेद से आरंभ करता है और पुराण-ग्रन्थों में उसका विस्तार सिद्ध करता है।

वैतहव्य-भार्गव संघर्ष

देश की पावन वर्ण-व्यवस्था पर चोट करनेवाले लोग भार्गव-वंश तथा वैतहव्य वंश के सनातन कालीन संघर्ष का प्रायः उल्लेख करते रहते हैं। समाज-व्यवस्था में——चाहे उसका आधार धार्मिक हो या आर्थिक——वर्ग-संघर्ष की प्रशंसा नहीं की जा सकती, वह चाहे ब्राह्मण-क्षत्रियों में संघर्ष हो या पूँजीपति-मजदूर में। चाहे ब्राह्मण-क्षत्रियों के संघर्ष की आप जितनी निन्दा करें, कम है; पर उसके वेदकाल से लेकर ७८ ईसवी तक लम्बे इतिहास से इनकार नहीं कर सकते। अनेक बार वैतहव्यों ने भार्गवों को पछाड़ दिया और अनेक बार भार्गवों ने वैतहव्यों को। इस वर्ग-संघर्ष का मूल अथर्ववेद में निहित है:

अतिमात्रमवर्धन्त नो दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवत्॥
——अथर्ववेद ५।१९

इस वैतहव्य-भागर्व-संघर्ष का विस्तार अनेक पुराण ग्रन्थों में है[1]। महाभारत में वीतहव्यों के वंशधर हैहयों का जिक्र है। यथा——

शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशः।
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः॥
तस्यान्वये द्वौ राजानौ हे राजन् संबभूवतुः।
हैहयस्तालजंघश्च वत्सस्य जयतां वरः॥

इस संघर्ष की कहानी पुराणों तक सीमित नहीं रही, महाकाव्यों तथा तांत्रिक ग्रन्थों तक फैल गई है[1]। वैतहव्य-भागर्व संघर्ष की कहानी को आध्यात्मिक बदल के हील-ओ-हुज्जत से पल्टा नहीं जा इतनी व्यापक लोक-विश्रुत तथा पुराण-विश्रुत मूल अथर्ववेद में उपलब्ध है——यह जहाँ संघर्ष- लिए गौरव की बात है, वहाँ वेद में ऐतिहासिक सत्ता का अखण्डनीय प्रमाण है।

उपसंहार

वेद अपौरुषेय हैं या नहीं——फिलहाल इस प्रश्न छोड़ भी दिया जाय, तब भी वेद में इतिहास की मानने या न मानने के सवाल पर आस्तिक-समाज 'स्कल' बड़ा कट्टर है, वेद में इतिहास का जोरदार करता है; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर दबे स्वर में हास की बात करता नजर आता है। इसके विपरीत 'स्कूल' वेद में इतिहास मानता है और डटकर है; उसके मत में पुराणों की समस्त कथाओं के में हैं; तभी तो उसने नारा लगाया है: **वेदपुराण वाक्यता।**

देखें, इन विपरीत दिशा में खड़े दो सामञ्जस्य कब पैदा होता है?

---

[1] द्रष्टव्य——ब्रह्माण्ड-पुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण, आदि।

[1] (क) संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिख
यूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी
कार्तवीर्यः। रघुवं

(ख) ॐ ह्रीं कार्तवीर्य खलं द्वेषय द्वेषय,
रक्ताक्षो रक्तवाह्य धनुर्धरो रक्तगन्धः
यज्वालय स्मृति मर्दय मर्दय ॐ स्वाहा।

आधुनिक काल में वीरता की काव्य-परम्परा

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह

राजस्थान के वीर कवियों की परम्परा में आधुनिक काल में श्री सूर्यमल्ल मिश्रण का नाम उल्लेखनीय है। वे बूंदी में उस समय उत्पन्न हुए जब कि सारे देश में स्वतंत्रता का आन्दोलन अँगरेजों के विरुद्ध छिड़ा हुआ था। उन्होंने अपने समय के नरेशों को देशभक्ति और वीरता के लिए प्रोत्साहित किया। उनकी वीर सतसई राजस्थानी बोली में बहुत ही वीरतापूर्ण काव्य है। उन्होंने अपने समय के नरेशों और सामन्तों को प्रोत्साहित करते हुए अनेक कविताएँ और पत्र लिखे हैं। श्री बलवन्तसिहजी के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था :—

'राजन के राज बलवंत महाराज तेरे गर लटकी आज लाज रजपूती की।'

आउवे के ठाकुर खुशालसिंह को यह स्फूर्तिदायक शब्द लिखकर भेजे थे—

**'बड़े बड़े वीरन में बूड़ी रजपूती तिन्हें बोरि कैं पहारन सौं तेंही भरी बाँध है।
खगन तें खेती निपजाई तें खुशालसिंह मिश्रण को तोपर जय श्री रंगनाथ हैं।'**

देवगढ़ के रावत रणजीतसिंह के लिए कहा :—

'जंग जय कुंजर निबंधन के न के खंभ तेरे भुजदंड ये तरा चित्रकूट के।'

वीर सतसई को प्राचीन वीर काव्य की अंतिम कड़ी माना गया है। इसका रचना-काल संवत् १९१४ है। उसके उद्देश्य के संबंध में उन्होंने लिखा है कि उसे सुनकर कायरों को भी जोश आ जाय और विद्रोह की फौज डटकर अँगरेजों का मुकाबला कर सके :—

**जे दो ही पख उजला, जूझण पूरा जोध।
सौंता वे मण सौं गुणा वीर प्रकाशण बोध॥**

इसके बाद इस परम्परा में कोई कवि देखने में नहीं आता। इस वीर वृत्ति के कारण सूर्यमल्लजी को वीर रसावतार भी कहा गया है। युद्धभूमि में जाकर ललकार सुनानेवाले चारणों की परम्परा में कदाचित् यही अंतिम ललकार है। सूर्यमल्लजी ने ठाकुर फूलसिहजी (पीपल्यावालों) को एक पत्र में लिखा था—

'इस क्रान्ति ने अँगरेज को चालीस से लेकर साठ-सत्तर बरस पीछे डाल दिया है। तो भी ये राजा लोग कायरता दिखा रहे हैं और गुलामी करते हैं। किन्तु मेरी यह बात आप याद रखिये कि जो एक बार अँगरेज रह गया तो वह सर्वशक्तिमान हो जावेगा। पृथिवी का मालिक कोई भी न रहेगा।' (मूल पत्र राजस्थानी में है।)

अँगरेजी राज की स्थापना के बाद मानों वीरता का युग ही चला गया। बीच में किसी वीर काव्य का नाम हमें नहीं मिलता। वर्त्तमान काल के वीर काव्यों की परम्परा के प्रारंभकर्ता 'निराला' माने जा सकते हैं। उन्होंने राम की शक्ति-पूजा में बड़ी ओजपूर्ण भाषा में वीर रस का सिंचन किया है। उसका उदाहरण देखिये :—

**रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर।
आज का तीक्ष्ण शर विधृत-क्षिप्रकर वेग प्रखर
शतशेल सम्बरण नीलनभ-गर्जित-स्वर
प्रतिपल परिवर्तित-व्यूह-भेद कौशल-समूह—
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह क्रुद्ध कपि विषम हूह।
विच्छूरितवह्नि-राजीव नयन हत लक्ष्य वाण
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन महीयान।
राघव लाघव रावण वारण गत युग्म प्रहर
उद्धत-लंकापति-मर्द्दित-कपि दल बल विस्तर।
अनिमेष राम विश्वविद्दिव्य भर भंग भाव—
विद्धांग-बद्ध-कोदंड-मुष्टि-स्वर-रुधिर स्राव
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल
मूर्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल-॥**

श्री श्यामनारायण पाण्डेय ने अपनी "हल्दीघाटी" में राजपूती वीरता का सजीव दृश्य उपस्थित कर दिया है :—

**लड़ लड़ कर अखिल महीतल को शोणित से भर देनेवाली
तलवार वीर की तड़प उठी अरि-कण्ठ कतर देनेवाली।
राणा का ओज भरा आनन सूरज समान चमचमा उठा
बन महाकाल का महाकाल भीषण-भाला दमदमा उठा॥
भेरी प्रताप की बजी तुरत बज चले दमामे घमर घमर
घम-घम रण के बाजे बाजे, बज चले नगारे घमर घमर।
कुछ घोड़े पर कुछ हाथी पर कुछ योद्धा पैदल हो आये
कुछ ले बरछे, कुछ ले भाले, कुछ शर से तरकस भर लाये।**

रण-यात्रा करते ही बोले राणा की जय ! राणा की जय !
मेवाड़ सिपाही बोल उठे, शतबार महाराणा की जय !
हल्दीघाटी के रण की जय, राणा प्रताप के प्रण की जय,
जय जय भारत माता की जय, मेवाड़-देश-कण-कण की जय !

श्री श्यामनारायण ने अपनी "झाँसी की रानी" में एक बार फिर स्वतंत्रता की पुकार जगा दी है। उन्होंने अपने महाकाव्य को पुकारों ही में विभाजित किया है। उनकी ओजपूर्ण शैली देखिये :—

जग उठी प्रजा नवीन भाव मुस्करा उठे।
एक साथ ही सहस्र-ओंठ फरफरा उठे॥
जग उठे स्वजाति के दबे व्रती जवान भी।
जग उठे स्वतंत्र-आर्य धाम के निशान भी॥
जग उठा पवित्र-आर्यरक्त मुण्ड दान-भी।
जग उठा पवित्र-रामराज्य का विधान भी॥
जग पड़े अगस्त्य धीर सिन्धु काँपने लगा।
जग उठा नगेश शृंग व्योम नापने लगा॥
जग उठे प्रताप वीर गान गूँजने लगा।
जग उठे शिवा स्वधर्म मस्त झूमने लगा॥
जग पड़ा स्वदेश-प्रेम तरु-पवन पहाड़ में।
जग उठी नवीन-शक्ति आर्य-हाड़ हाड़ में॥
जग पड़ा स्वतंत्र-शब्द सिंह की दहाड़ से।
जग पड़ा त्रिपुण्ड स्वस्ति मंत्र की पुकार से॥

"झाँसी की रानी" की वीरता का चित्रण करने में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान अपनी एक ही कविता के द्वारा हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हो चुकी हैं :—

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी॥
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी॥
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

हरदयालसिंह ने "रावण महाकाव्य" लिखकर उस युग में वीर काव्य के साथ व्रजभाषा की परम्परा भी चला दी है :—

साजे गजमदमत्त सैल शृंगन सम सोहत
जिन पै सुभट समूह चढ़ैं देवन मन मोहत।
ता खन वारन वृन्द तहाँ यहि विधि छवि छाज
जनु कज्जल गिरि सिखिर नील नीरद बहु राज

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने तो जय भारत और
बध लिखकर मानों हमें महाभारत काल ही में
कर दिया है। उसकी एक छटा देखिये :—

भय कहते हैं किसे कर्ण न था जानता
छक्के से छुड़ा दिये परन्तु घटोत्कच ने।
मानों भीमभैरव ही उसके बहाने
कौरवों की सेना ध्वंस करने को आ गये।
जाता था बवंडर-सा वह जिस ओर को
उड़ते विपक्षी तृण तुल्य थे तुरन्त ही।
वाहन ही कौन था जो तेज सहे उसका।
पैदल ही प्रलय मचाया उस योद्धा ने।
भागे सब अश्व गज सामने से उसके
शल्य ने कठिनता से रोका रथ अपना॥

"गुरुकुल" में ही उन्होंने सिख गुरुओं की वीर
चित्रण खींचकर हमें उस वीर युग में पहुँचा दिया

गुरु ने कहा कि क्या चिन्ता है
रक्खूँगा मैं तो निज मान,
आज न होंगे तो कल होंगे
सफल हमारे सब बलिदान।
डरते हैं ये दुर्बल राजा—
मरें मिटें हम सब क्यों व्य
अच्छी बात, बनाऊँगा मैं
मार मार कर इन्हें समर्थ।
छोड़ दिया सिक्खों को गुरु ने—
भंग करो इनकी जड़ शान्ति:
जागे क्रोध-मूर्ति रख कर ही
इनमें स्वाभिमान की कान्ति।
अरि-विरुद्ध राजा न मिले थे
गुरु विरुद्ध मिल गये समस्त
भाल पीटते हैं अपना ही
क्लीव कर्महीनों के हस्त!

श्री दिनकरजी ने अपने "कुरुक्षेत्र" में युद्ध का
जागता चित्र उपस्थित किया है। उसके अन्त में
आशा व्यक्त की है :—

आशा के प्रदीप का जलाये चलो धर्मरा
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति

१९६३

भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से ॥
हार से न मनुष्य की महिमा घटेगी और
तेज न बढ़ेगा किसी मानव का जीत से।
स्नेह बलिदान होंगे, माप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से॥

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने उसी युग के वीर "सेना-ति कर्ण" पर अपनी कलम चलाई है जो कि मेघनाद-वध के समान भिन्न तुकान्त में लिखा गया है। उसके कुछ छन्द देखिये :--

शस्त्र से सजे हैं पाण्डु दल के वीर सभी।
रत्न मुकुटों से यथा रवि की
किरणें निकलती हैं दुर्निवार तेज से
दीप्त हो रही हैं तट भूमि रण भूमि की।
धनुष निषंग असि तोमर परिघ से
पाश से गदा से दृढ़ वर्म से तलत्र से
वीर सजे रोष और हर्ष की तरंगों में
डूबते हैं जैसे कभी और उतराते हैं॥

श्री आनंदकुमार ने फिर वीर कर्ण का चरित्र ऊपर ठाते हुए "अंगराज" काव्य लिखा है। उनकी वीरता ा एक दृश्य देखिये :--

र सुनो वह मनोभिमानी अंगदेश का राजा कर्ण।
झड़ बन जो सदा गिराता शत्रु-शिरों को यथा प्रपर्ण॥
ति जिसकी ध्वजा देखकर दिग्गयन्द बन्धन-भय युक्त।
ग-शृंखला-केतु उड़ाता जाता यथा नाग निर्मुक्त॥

श्री रामकुमारवर्मा ने महाभारत के एक दूसरे क्षित पात्र "एकलव्य" के चरित पर अपनी लेखनी जमाई है :--

वत्सदन्त-बाण संधान किया अर्जुन ने
कर्तन किया तुरन्त उठी हुई पूँछ का।
व्याघ्र ने दहाड़ कर पुनः शेषशक्ति से
पार्थ-सर्वस्वान्त करने को एक बार ही
प्रबल प्रचंडता से काल-सी उछाल ली
शक्ति ही ने व्याघ्र का प्रबल रूप ले लिया।
पार्थ का धनुर्दण्ड टूट गया क्षण में ही।
शीघ्रता से भल्लमुख-बाण लेके हाथ में॥

श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश ने उक्त सब काव्यों से विशाल "तारक वध" महाकाव्य २० लम्बे सर्गों में लिखकर विश्राम लिया है। उनकी ओजस्वी वाणी का चमत्कार देखिये :--

लड़ते लड़ते मरने ही को हमने जीवन धारा।
क्षत्रिय तरुण अगर लड़ने से अपना मुँह मोड़ेंगे।
कीर्ति स्वर्णघट अपने हाथों हतभागे फोड़ेंगे।
मरैं अहिंसा हिंसा दोनों हम स्वधर्म पालेंगे।
जिसने आँख दिखाई हमको उसको दल डालेंगे।
अस्त्रों का न प्रयोग करें क्यों? क्यों वे गये बनाये?
किंकर्तव्यमूढ़ता आयी, कैसे हम बौराये!
कौशलेश-साम्राज्य-प्रतिष्ठा बन्दीगृह में बैठी।
और अहिंसा-व्याख्या-निधि में कुमति हमारी पैठी।
महाराज ने, गुरु वशिष्ठ ने डाल दिये यों कन्धे॥

कवि राजेश्वर गुरु ने अपने छोटे से काव्य में गढ़ा-मंडले की वीरांगना दुर्गावती का वीर चरित्र हमारे सामने रखा है। इससे एक पद्य उद्धृत कर हम वीर-परम्परा की अंतिम कड़ी को समाप्त करेंगे :--

स्वयं दुर्गा का बनी अवतार,
रानी वायु-सी इस क्षण यहाँ
उस क्षण वहाँ पर
दुश्मनों के बीच में लहरा रही थी।
घूमती तलवार का अस्तित्व कोई था नहीं;
हाँ रोशनी की एक रेखा रक्त में डूबी हुई
उन धूम्र मेघों में सतत झिलमिल किये थी।
जिधर को वह कौंध जाती
आहतों का हृदयद्रावक रुदन,
मरणासन्न प्राणों की अखीरी करुण-निःस्वासें गगन
को चीर देतीं।

देख रानी का पराक्रम प्रबल
सैनिक वर्ग का भी जोश दुगुणित हो रहा था।

हमारे संग्रह-कार्य के कतिपय संस्मरण

श्री अगरचन्द नाहटा

प्राचीन एवं कलापूर्ण वस्तुओं का संग्रह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्राचीन संस्कृति का पता लगाने के लिए वह अत्यन्त आवश्यक भी है। पर यह संग्रह-कार्य कोई साधारण काम नहीं है। इसके लिए काफी सूझ-बूझ, परख, धैर्य, लगन और प्रभविष्णुता की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो संग्रह-कार्य भी एक कला है। गीता में कहा है "कर्म में कुशलता ही कला है।" और संग्राहक का कई बातों में कुशल होना बहुत ही जरूरी है।

अपने जीवन के विगत ३५ वर्ष मैंने शोध एवं संग्रह के कार्य में बिताये हैं और उस कार्य में काफी प्रेरणादायक और कटु-अनुभव भी हुए हैं। यहाँ उनमें से थोड़े से अनुभव का संस्मरण दिये जा रहे हैं। मेरे इस कार्य में मेरे भ्रातृपुत्र भँवरलाल नाहटा का भी सदा सहयोग रहा है।

वि० संवत् १९८४ की वसन्त-पंचमी को जैनाचार्य जिन कृपाचन्द्र सूरि जी का बीकानेर पधारना हुआ और वे हमारी कोटड़ी में ही विराजे। उनके घनिष्ठ एवं निकट सम्पर्क से हमें बहुत बड़ी धार्मिक एवं साहित्यिक प्रेरणा मिली। राजस्थान के जैन कवि समय-सुन्दर संबंधी स्व० मोहनलाल देसाई का एक निबंध उसी समय हमें पढ़ने को मिला; और उससे प्रेरणा पाकर उनकी जीवनी और रचनाओं की खोज का काम प्रारम्भ कर दिया। उस प्रसंग में सर्वप्रथम बीकानेर के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों का अवलोकन करते हुए हमें प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों का महत्त्व विदित हुआ और उनके संग्रह करने की प्रेरणा भी मिली।

समय-सुन्दर जी की 'पाप-छत्तीसी' नामक एक रचना की हस्तलिखित प्रति कला-मर्मज्ञ स्व० पूर्णचन्द जी नाहर, कलकत्ता की लाइब्रेरी में होने की सूचना श्री मोहनलाल देसाई ने अपने निबंध में दी थी, उसे देखने के लिए हम श्री नाहरजी के यहाँ पहुँचे और उनका संग्रहालय तथा भवन देखकर हमारे मन में भी प्राचीन कलापूर्ण के संग्रह की रुचि उत्पन्न हुई। इन दोनों प्रसंगों का परिणाम है कि अब तक हमने करीब २० हजार लिखित प्रतियाँ, अपने बड़े भाई स्व० अभयराजजी के नाम से स्थापित "अभय जैन ग्रन्थालय" में कर ली हैं। और अपने पूज्य पिता श्री की स्मृति में "श्री शंकरदान नाहटा कला-भवन" में हजारों सैकड़ों सिक्के, मूर्तियाँ और अनेक कलापूर्ण वस्तुओं का संग्रह कर सके हैं। इस संग्रह कार्य में सुखकर एवं कटु अनुभव हुए, उनमें से कुछ यहाँ किये जा रहे हैं।

बीकानेर के रांगड़ी चौक में स्थित बड़े उपा करीब १०० वर्ष पूर्व शताधिक यति रहते थे। और पास हस्तलिखित प्रतियाँ भी काफी परिमाण में थीं। से कुछ यतियों का संग्रह तो वृहद् ज्ञान-भण्डार में हो गया है पर नावारिस यतियों के ग्रन्थ एक भण्डार में पड़े थे, उचित सार-सँभाल के अभाव विशिष्ट संग्रह अव्यवस्थित हो गया अतः उसे रद्दी कर एक बाड़े में डाल दिया गया था। उनमें से कृपाचन्द्र सूरि के शिष्य तिलोक मुनि ने अपने पास करके रख लिये और कुछ मुकनजी यति ने बटोर एक बार भँवरलाल ने उस खण्ड के कुछ पन्नों को तो उसे रद्दी समझ के डाले हुए ढेर में बहुत-सी मह सामग्री मिलने की संभावना दिखाई दी। उसने उपाश्रय के यति पन्नालालजी से पूछा कि यह खण्ड तरह क्यों डाल रखा हैं ? और इसके संग्रह का क्या है ? तो पन्नालालजी ने कहा—यह रद्दी है पता पानी लगेगा, यति लोग इनका कूट्टा बना लेंगे। यह भँवरलाल को बड़ा दुःख हुआ और उसने कहा— कूट्टले का जो भी मुनासिब हो पैसा दिलवाकर, इसे कूट्टा बनाने के लिए बटोर रखा है, उनसे हमें

१९६३

दें। यति पन्नालालजी ने मुकनजी के एक शिष्य के अधिकार में जितना भी वह खन्तड़ (अव्यवस्थित हस्तलिखित प्रतियांश) था, हमें खूब सस्ते में दिलवा दिया। कुल १३ रुपये में कई छबड़े-भरे ग्रन्थ हमारे हस्तगत हो गये। इस सौदे की एक शर्त के अनुसार आचार्यों द्वारा यतियों को दिये हुए सैकड़ों आदेशपत्र हमें वापस लौटाने पड़े, जो कि तत्कालीन इतिहास की जानकारी के लिए बहुत ही उपयोगी थे। फिर भी उस संग्रह में राजाओं के दिये हुए कई खास रुक्के, मस्त योगी ज्ञानसार जी की कृतियों के विकीर्ण पत्र एवं खरड़े आदि काफी महत्त्व की वस्तुएँ हमें प्राप्त हुईं। पर इस संग्रह को सुव्यवस्थित करने में हमें जो कठिन परिश्रम करना पड़ा वह भी चिरस्मरणीय रहेगा।

हस्तलिखित प्रतियाँ खुले पन्नों के रूप में होती हैं इसलिए उनके पन्ने इधर-उधर हो जाने पर, विशेषतः अनेक प्रतियों का जब ढेर कर दिया जाता है तो, उनमें से एक-एक पत्र को छाँटकर उस प्रति को पूर्ण करना बहुत ही समय एवं श्रमसाध्य बन जाता है। हमने उन अस्तव्यस्त पत्रों को ठीक करने के लिए एक पूरा कमरा रोका और आदि पत्र, मध्य पत्र, अन्त पत्र, भाषा, लिपि, पंचपाठ, त्रिपाठ आदि शैलियों के पन्नों के अलग-अलग थाग लगाये और एक-एक पत्र को छाँटकर व एकट्ठे कर सैकड़ों प्रतियों को पूर्ण किया। ज्यों ही एक प्रति पूर्ण होती, हमारा मन उत्साह से भर जाता और इस तरह पूरी तत्परता एवं उत्साह के साथ उस कार्य में कई महीने जुटे रहे। बीच-बीच में भोला पक्षी-कबूतर आकर अपने पंखों की फरफराहट से हमारे छाँटे हुए पन्नों को जब उड़ाकर हमारे काम को गुड़-गोबर कर देता तो हमें इन पर बड़ा रोष आता, पर निरुपाय थे क्योंकि प्रकाश के लिए कमरे का दरवाजा खुला रखना आवश्यक था। गर्मी के दिनों में इन पत्रों को छाँटते हुए हमारा शरीर पसीने से तर-बतर हो जाता और उन हस्तलिखित प्रतियों के साथ जो बहुत सी धूल की गर्दी लगी हुई थी वह हमारे शरीर और कपड़ों से चिपक जाती। कई घंटों तक निरन्तर छँटाई का काम करने के बाद जब हम कमरे से बाहर आते तो हमारे कपड़े और शरीर इतने गंदे हो जाते कि बिना नहाये और कपड़ा बदले किसीको मुँह दिखाना कठिन हो जाता। पर कई महीनों के बाद जब हमें सैकड़ों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उस खन्तड़ में से प्राप्त हो गये और बहुत-सी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री भी मिली तो हमें अपने श्रम का सुफल मिलने से बड़ा सन्तोष हुआ ?

उसी समय तिलोक मुनि ने उसी रद्दी के ढेर में से छाँट-छाँट कर या पन्नों को इकट्ठा कर २५ रुपये म खरीदे हुए उस खन्तड़ को कई बन्डलों में बाँधकर रखा था। हमने उनसे प्रार्थना की यह सारा खन्तड़ हम बेच दें, क्योंकि इसी ढेर के बहुत से पन्ने हमारे खरीदे हुए संग्रह में भी आ चुके हैं। तिलोक मुनि ने कहा—कि मैं ज्ञान को बेचता नहीं; समय मिलने पर इसको ठीक करूगा। हमने उनसे कहा कि बहुत दिनों से आपके पास ये बन्डल यों ही पड़ हैं और आपको अब तक समय ही नहीं मिला तो कृपया अब उसे हमें ही दे दें, हम ठीक कर लेंगे। उनको भी हमारी यह बात जँच गई फलतः खन्तड़ में से संगृहीत सारे बन्डल हमें निःशुल्क दे दिये और खरीदे हुए ग्रन्थों का मूल्य ३० रुपये देकर हम वह सारा संग्रह ले आये। इससे हमें अपने यहाँकी अपूर्ण प्रतियों को पूर्ण करने म बड़ी सुविधा हो गई।

इसी खन्तड़ का कुछ अंश जो यति मुकनजी ने अपने पास रख छोड़ा था, उसमें संवत् १४८८ की लिखी हुई एक 'तपागच्छ-गुर्वावली' की ३ पत्रों की प्रति के २ पत्र भी थे। इस प्रति का तीसरा पत्र हमारे खरीदे हुए खन्तड़ में आ चुका था। इस महत्त्वपूर्ण प्रति को पूर्ण करने के लिए हमने मुकन जी से बहुत अनुरोध किया तो अन्त म उन्होंने उन दो पत्रों का मूल्य एक रुपया माँगा। हमने इसे भी जीत का ही सौदा समझा और तत्काल मुँह-माँगा देकर उन दोनों पत्रों को खरीद लिया। वसे दो पत्रों की अपूर्ण प्रति का दो आना भी कोई नहीं देता पर हमें तो अपनी प्रति को पूर्ण करना था।

प्राचीन वस्तुओं का संग्रह केवल पैसों के द्वारा ही नहीं होता। इस कार्य में काफी मिलनसारिता व होशियारी की जरूरत होती है। जो कार्य पैसे के बल पर नहीं होता उसे सम्पन्न करने के लिए अन्य उपाय सोचने पड़ते हैं। जो व्यक्ति अपनी अधिकृत वस्तु बेचना नहीं चाहता उससे वह वस्तु कैसे ली जा सकती है, इस संबंध की हमारी एक रोचक अनुभूति यह है कि उस व्यक्ति की रुचि एवं प्रकृति का पता लगाना चाहिए। फिर उसी के अनुसार

कोई उपाय करने पर सफलता मिल सकती है। इस संबंध में हमारा एक संस्मरण यहाँ दिया जा रहा है।

बीकानेर में पूनमचन्दजी श्रीमाली नामक एक सज्जन मंत्रविद् विद्वान् थे। मुझे किसी से विदित हुआ कि उनके यहाँ बहुत से हस्तलिखित जैन ग्रन्थों की प्रतियाँ पड़ी हैं। तत्काल मैं उनके पास पहुँचा और उन्होंने अपने सहज सौजन्यवश प्रतियों को मुझे दिखा दिया पर वे उन्हें पैसे लेकर देनेवाले नहीं थे। और मुझे किसी तरह उनसे वह संग्रह लेना ही था। इसलिए श्रीमालीजी को एक दिन मैं अपने घर पर लाया और अपनी संग्रहीत वस्तुओं को हमने कितनी सार-सँभाल के साथ रखा है, दिखाते हुए उनसे कहा––कि आपको मंत्र-शास्त्र का शौक है अतः हम अपने संग्रह के मंत्रों संबंधी छाँटे हुए हस्तलिखित पत्रों को आपको भेंट दे देंगे और आप कृपया हमें अपने यहाँ की प्रतियाँ हमारे संग्रह के लिए दे दें। हमारी यह सूझ-बूझ काम कर गई। हमारे संग्रह को सुव्यवस्थित देखकर वे प्रभावित हुए और अपने काम की चीज प्राप्त होने की अभिलाषा ने उन्हें हमारी इष्ट-सिद्धि के लिए तैयार कर दिया। हम दो बोरों म भरकर उन प्रतियों को यहाँ ले आये। उनमें से सचित्र प्रतियाँ भी थीं खरीदने का मूल्य शताधिक रुपये होता।

अब मेरे अविस्मरणीय एवं कटु अनुभव भी सुनि मारवाड़ के एक यतिजी के अधीनस्थ बहुत-सी हस्तलि प्रतियों के बन्डल वहाँ के जैन-मंदिर की एक आलमा पड़े थे। मैं उन्हें देखने गया तो उन्होंने चाबी नहीं आदि का कहकर टाल-मटोल की। पर मुझे तो प्रतियों को देखना ही था। इसलिए मैंने एक पत्थर लेकर आलमारी के ताले को किसी तरह खोल लिया आलमारी के फाटक खुलते ही मुझे मर्मान्तक दुःख क्योंकि वर्षा का पानी उस आलमारी में प्रविष्ट सारे ग्रन्थ चिपककर थेपड़े हो गये थे और इतने क्षुद्र वहाँ उत्पन्न हो गये थे कि उन प्रतियों के हाथ लगाते असंख्य जन्तु बाहर भागने लगे। फिर भी यतिजी से कहा कि इन नष्ट हुए ग्रन्थों को भी हमें दे दें पर वे लिए तैयार नहीं हुए और दूसरी बार जाने पर विदित कि उन सैकड़ों प्रतियों को पानी में बहा दिया गया

गीत की धुन गूँजती है

श्री जयप्रकाश यादव

(१)

गाँव-घर का छोड़ आँचल,
तैर कर निद्रित पलक-दल,
कुंज के तम, कूल के विस्तार में फिर कूजती है।

(२)

याद कोई उभरती है,
अश्रु-जल में सिहरती है,
बेबसी पर इस हृदय के रात सारी सुबुकती है।

(३)

शान्त हो जाता पवन जब,
शान्त हो जाता गगन जब,
दर्द की कलियाँ चटक कर विरह की छवि पूजती हैं।

तिब्बत के दलाई लामा और चीन

श्री सीताराम जौहरी

माओ का कहना है कि ऐतिहासिक अनुभव खून और लोहे से लिखे जाते हैं। खून किसका ? निर्बल और गरीब जाति के बच्चों का, बुड्ढों का, औरतों का। चीनी युवकों का नहीं। यह तभी हो सकता है जब शत्रु इतना भोला हो कि वह उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाय, और उनकी कूटनीति को न समझ कर धोखा खा जाय। चीनियों की इस कपटनीति के सबसे बड़े शिकार तिब्बत के धर्मगुरु तथा शासक दलाई लामा हुए।

लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि ईसा की सातवीं शताब्दी के आरंभ तक चीनियों को तिब्बत की ठीक प्रकार से जानकारी भी नहीं थी। उन्हें केवल इतना मालूम था कि दक्षिण में एक बंजर देश है जहाँ एक तिनका भी नहीं उगता। इसे वे क्यांग जाति का देश कहते थे। ('क्यांग' नाम चीन ने बिहार में बसनेवाली एक जाति का दिया था)। परन्तु चीनी राजा को ६३९ ईस्वी में भारत आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग से तिब्बत तथा नैपाल की पूरी सूचना मिल गयी। उस समय तिब्बत तथा नैपाल भारत में ही सम्मिलित थे और तिब्बत में सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे।

इस प्रसंग में एक बात ध्यान देने योग्य है कि चीनी यात्रियों के भारत-भ्रमण कोरी तीर्थयात्राएँ नहीं थीं। पांचवीं शती में फाहियान, छठी शती में सुंग युंग और सातवीं शती में ह्वेनसांग का भारत आना चीनी विस्तारवाद की एक भूमिका मात्र थी। चीनी तुर्किस्तान में बसे हिन्दू उपनिवेशों की धन-सम्पत्ति और खुशहाली देखकर चीनी राजाओं का जी धरे-थामे न रहता था। चीनी राजा मिगटी (६२ ईस्वी) को तो रात में सोते समय भी इन उपनिवेशों का सोना ही नजर आता था। उसने अपने सेनापति से बताया कि बुद्ध भगवान् की एक विशाल सोने की मूर्ति ने सपने में कहा कि पश्चिम में सेना को भेजो जो बुद्ध भगवान् को ढूँढ़ कर लाये। फल यह हुआ कि चीनी सेना ने उपनिवेशों को लूटा और वे वहाँसे बुद्ध भगवान् की कितनी ही सोने की मूर्तियाँ अपने देश उठा ले गये। चीनी राजाओं को भारतीय उपनिवेशों से जो सोना मिला उससे उनकी लोलुपता और बढ़ गयी और वे एक दिन भारत के सोने को लूटने के मनसूबे बनाने लगे। इसके लिए भारत और भारतीय धर्म की जानकारी आवश्यक हुई। भारत में आनेवाले चीनी यात्रियों से उन्हें भारत-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती थी।

हाँ, तो सातवीं शताब्दी से चीन की आँख तिब्बत पर लग गयी। चीन ने कुछ छेड़-छाड़ भी की, किन्तु तिब्बत के राजपूत राजा ने चीन पर स्वयं आक्रमण कर दिया और चीनियों को जान छुड़ाना मुश्किल पड़ गया। चीन के राजा ने प्रायश्चित्त के रूप में अपनी लड़की तिब्बत के महाराजा के साथ ब्याह दी। किन्तु इसका परिणाम और भी बुरा हुआ। तिब्बत में चीन को षड्यंत्र करने का एक बड़ा अच्छा साधन मिल गया। उसके सहारे चीनियों ने फिर सिर उठाया। एक-दो बार उन्हें मुँह की खानी पड़ी, किन्तु बाद में तिब्बत के राजा को चीनियों से सन्धि कर लेनी पड़ी। बस फिर क्या था ? तिब्बत की राजनीति में चीनियों का हस्तक्षेप बढ़ा चला और अंत में तिब्बत के महाराज लांग दारमा (६४२ ईस्वी) की हत्या करवा दी गयी। इसके बाद तिब्बत में सूर्यवंशी राजाओं का राज्य समाप्त हो गया। राज-परिवार के कुछ लोग लद्दाख भाग आये और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उनके वंशज वहाँ राज्य करते रहे।

महाराज लांग दारमा की मृत्यु के बाद तिब्बत में लामा धर्म ने और जोर पकड़ा। यह कहने को तो बौद्ध धर्म था किन्तु इस पर हिन्दू शाक्त धर्म की स्पष्ट झलक थी। भारत से आए हुए पंडित पद्मसंभव के प्रयत्नों से लामा धर्म तिब्बत भर में फैल गया। किन्तु इस शाक्त प्रभावित बौद्ध-धर्म का विस्तार चीनियों को लगातार खटक रहा था।

तिब्बत को भारत के प्रभाव से हटाकर अपनी ओर घसीटना उस समय चीन का लक्ष्य था। इसके लिए उन्होंने धर्म का सहारा लिया। तिब्बत से साक्या पा पंथ के पंडित को बुलाकर चीनी राजा कुबला खाँ ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया। भारत में उस समय मुसलमानों का राज्य फैल चुका था। लामाओं को दक्षिण में अपने

धर्म के विस्तार का मार्ग बन्द दिखाई पड़ा। उसके विपरीत उत्तर में उनके धर्म का स्वागत हो रहा था। मंगोलिया ने बौद्ध धर्म पहिले ही स्वीकार कर लिया था। चीन को तंग करनेवाले मंगोल अब अहिंसावादी और शांतिप्रिय हो गये थे। ऐसे अवसर पर चीन ने बौद्ध धर्म का चोगा पहिना। किंतु इससे उसकी साम्राज्य-लिप्सा या विस्तारवाद की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मंगोलिया और तिब्बत पर उसकी लोलुप आँखें लगी रहीं।

चीन में कुबला खाँ के मुअन वंश के पतन के बाद मिंग वंश का राज्य आया। राजवंश बदले किन्तु राजनीति नहीं बदली। चीनियों की दृष्टि तिब्बत पर लगी रही। इसी बीच चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध में पंडित सोन खा पा को तिब्बत में बड़ा सम्मान मिला। सा क्या पा पंथ के द्वारा फैलाए धर्म में पंडित सोन खा पा ने बहुत सुधार किए। इन सुधारों को माननेवालों का संप्रदाय ही अलग बन गया जो पुराने सम्प्रदाय से बहुत भिन्न था। दोनों पंथ एक दूसरे से एकदम अलग-अलग हो गए। नया पंथ पीला पंथ कहा जाने लगा और पुराना पंथ लाल पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चीनियों को अच्छा अवसर हाथ लगा। दोनों को लड़ाकर वे पीले पंथ के पक्षपाती बन गए। लाल पंथ वालों को जब अधिक तंग किया गया तो वे दक्षिण तिब्बत, लद्दाख और भूटान में आ बसे।

पंडित सोन खा पा के बाद उनकी गद्दी उनके दो शिष्यों में बँट गयी। इनमें से गिएशुब को गंडेन गुम्फा मिल गया और दूसरे शिष्य गंडेन ट्रुबपा ने शिंघटसे के पास टीशो लम्पो नाम के नए गुम्फा की नींव डाली। गंडेन ट्रुबपा ने अपने गुरु से भी अधिक सम्मान और ख्याति प्राप्त कर ली। अपने अंध-विश्वासी भक्तों के बीच उसने यह ऐलान कर दिया कि मृत्यु के बाद वह मनष्य जाति को धर्म का मार्ग दिखाने के लिए फिर से जन्म लेगा। उसकी मृत्यु के बाद खोज आरंभ हुई और गंडेन ग्याटसो नाम के बालक को टीशो लम्पो का लामा बनाया गया। गंडेन ग्याटसो की मृत्यु के बाद सोनाम ग्याटसो को उस गद्दी पर लाया गया। सोनाम बड़ा ही चतुर और धर्मशास्त्र का पंडित सिद्ध हुआ। अपने देश में ही नहीं, मंगोलिया में भी इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मंगोलिया का राजा तो उससे इतना प्रभावित हुआ कि उसे बज्रधर दलाई लामा की उपाधि से विभूषित किया। गंडेन ट्रुबपा से आरंभ होनेवाली लामाओं की इस परंपरा में तीसरे नम्बर पर था। इसलिए माना यह गया कि के रूप में दलाई लामा का यह तीसरा अवतार था। बाद अवतार होते रहे और तिब्बत की जनता ने लिया कि महाप्रलय तक तिब्बत में प्रचलित पी सरदार दलाई लामा ही माना जावेगा। चीनियों से होकर भारत में शरण लेनेवाले वर्तमान दलाई इसी परंपरा के चौदहवें दलाई लामा हैं।

तीसरे के बाद चौथे, और चौथे के बाद पाँचवें लामा ने अवतार लिया। पाँचवें को तिब्बती बड़ी प्रतिष्ठा मिली है। वह 'महान् पंचम' के नाम से किया जाता है। इनके समय में चीन में मिंग वंश का हुआ और मंचू राजाओं ने राज्य की बागडोर एक बार फिर राजवंश बदला किन्तु राजनीति का वही रहा। मंचू राजाओं ने भी पीले पंथ को के विरुद्ध दूरी सहायता पहुँचाई।

पाँचवाँ दलाई लामा बड़ा साहसी और था। वह तिब्बती साम्राज्य की वृद्धि चाहता था। और पूर्व में शक्तिशाली चीनी राजाओं से उसका चल नहीं सकता था। सिंक्यांग के अरबों के बीच उसकी दाल गलती न दिखाई दी। दक्षिण-पूर्व में सहारे कुछ काम अवश्य बन गया। लामाओं ने उन्होंने स्वप्न में देखा कि दक्षिण-पूर्व में एक देश है बुद्ध भगवान् दर्शन देंगे। इस देश का नाम स्वप्न रखा गया। बस फिर क्या था? धर्मान्ध तिब्बती के झुंड दक्षिण-पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ के निकट लगे। उनके साथ में तिब्बती फौजें भी आती थीं। समय इन देशों की कोई मान्य सीमा रेखा तो थी जिसके हाथ में जो भूमि आयी, वह वहीं उसे बैठ गया। यहाँ तक कि स्यांग (वर्तमान उत्तर सीमान्त) में मचूका तक, और लोहित में मीपी और तक तिब्बती आ बसे। बेचारी अरण्य जातियों को और दक्षिण की ओर खिसक जाना पड़ा।

पंचम दलाई लामा धर्मगुरु के रूप में प्राप्त शक्ति से संतुष्ट नहीं था। राजनीतिक दृष्टि से में राज्य अब भी आमदो के राजवंश का ही था। की सहायता से उसने आमदो राजा की हत्या और चीनी सहयोग से शासन करने के लालच

१९६३

अपनी राजधानी चीन के और निकट ल्हासा में ले गया। उसके बाद तिब्बती राज्य के विस्तार के लिए उसने लद्दाख और भूटान पर कई हमले किये। किन्तु हर बार उसे मुँह की खानी पड़ी। टवांग में भी उसे सफलता न मिल पायी। केवल दक्षिणी-पूर्वी भाग में स्थित कोलिता नाम के राज्य को अहोम साम्राज्य के एक मांडलिक राजा से छीन लेने में वह अवश्य सफल हुआ। सम्भवतः आसाम के अहोम उस राजा की सहायता के लिए नहीं पहुँच सके।

दक्षिण में राज्य का विस्तार करने में पाँचवें दलाई लामा को जो असफलता मिली उससे यह पता चल गया था कि ल्हासा में राजधानी पहुँच जाने से दक्षिणी तिब्बत में शासन-सत्ता कुछ ढीली पड़ रही थी। इस समस्या का समाधान करने के लिए पाँचव दलाई लामा ने कौड़ी तो दूर की फेंकी किन्तु दाँव जो पड़ा वह चीनियों के अनुकूल बैठा और उससे तिब्बत तथा दलाई लामा दोनों के विनाश का बीजारोपण हो गया। दक्षिणी तिब्बत स्थित टीशो लम्पा के गुम्फा में पंचम दलाई लामा ने अपने गुरु को लामा नियुक्त कर दिया, और यह घोषणा की कि मैं केवल अवलोकितेश्वर का ही नहीं, अमिताभ का भी अवतार हूँ। उसने यह भी कहा कि इस बार मृत्यु के बाद मैं दो अवतार लूंगा। अवलोकितेश्वर की आत्मा दलाई लामा के रूप में और अमिताभ की पंछेन लामा के रूप में प्रकट होगी। इस प्रसंग में यह समझ लेना चाहिए कि यद्यपि अमिताभ अवलोकितेश्वर के गुरु हैं, तब भी शासन-सूत्र दलाई लामा के हाथ में होने के कारण प्रतिष्ठा दलाई लामा की ही अधिक मानी जाती है।

पंचम दलाई लामा के बाद दो बालकों की खोज हुई। एक को ल्हासा में दलाई लामा, और दूसरे को टीशो लम्पो में पंछेन लामा बनाकर रखा गया। धर्म के नाम पर किये गये इस जाल में चीनियों का कितना हाथ था, यह कहना कठिन है। किंतु इसमें संदेह नहीं कि चीनियों ने स्थिति से पूरा लाभ उठाया। इस प्रकार उन्हें दलाई लामा का एक संभावित प्रतिद्वन्द्वी मिल गया। तिब्बत का इतिहास साक्षी है कि पंछेन लामा ने सदैव साथ चीनियों का दिया है। आज भी जब दलाई लामा ने भाग कर भारत में शरण ली है तब एक नकली पंछेन लामा चीनियों की कठपुतली बना तिब्बत में चीनियों का साथ दे रहा है।

पंचम दलाई लामा की मृत्यु के बाद चीनियों ने टवांग क्षेत्र (उपुसी में) को वश में करने की एक नई चाल चली। छठा दलाई लामा बनाने के लिए जो बालक चुना गया वह टवांग के पास के एक गाँव का था। किन्तु यह चाल बेकार सिद्ध हुई क्योंकि छठा दलाई लामा (लोजांग-रिनछेन-जांग-पांग गियामजो) चीनियों की हाँ म हाँ नहीं मिलाता था। वह एक स्वतंत्र विचार वाला व्यक्ति था। इसलिए चीनी उससे सशंकित थे। लोजांग की शक्ति को कम करने के लिए चीनियों ने एक चाल फिर चली। लोजांग को शासन में सहायता देनें के लिए एक सलाहकार समिति नियुक्त कर दी गयी। इस समिति के चार सदस्य थे: एक तिब्बती लामा, तारतार का राजा, कोकोनार का राजा और चीन का राजा। परंतु लोजांग किसी के दवाव में नहीं आया। कुछ समय बाद तिब्बती लामा और तारतार के राजा गिंगकर खान में कुछ अनबन हो गयी। गिंगकर खान ने लामा को मार डाला। चीन को एक अच्छा अवसर हाथ आया। चीनी राजा की आज्ञा लेकर लोजांग को दलाई लामा के पद से हटा दिया। यही नहीं, लोजांग को बातचीत के लिए पेंकिंग बुलाया गया। कहते हैं वह राह में ही मर गया। वास्तविकता यह थी कि चीनियों ने उसे मरवा दिया।

छठे दलाई लामा की मृत्यु के बाद तिब्बतियों ने आमदो परिवार में से एक बालक को चुना। किन्तु चीनियों ने उसे दलाई लामा नहीं माना और उस बालक को उसके माता-पिता तथा सेना समेत गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद पता नहीं उसका क्या हुआ। संभवतः चीनियों ने उसे मरवा दिया। उसके स्थान पर चीनियों ने अपनी पसन्द का सातवाँ दलाई लामा बनाया। कहा जाता है कि वह तारतार के राजा गिंगकर खान की एक रखैल से पैदा हुआ लड़का था। तिब्बती जनता को शान्त करने के लिए यह प्रचलित किया गया कि सातवें में दलाई लामा की केवल श्वास है, आत्मा नहीं है। परन्तु तिब्बती शान्त न किये जा सके। उन्होंने मंगोलिया की मदद से विद्रोह कर दिया। इस पर चीनी फौजें ल्हासा में घुस पड़ीं और उन्होंने मंगोलियन फौजों को खदेड़ दिया। अब चीनियों ने अपने दो राजदूत ल्हासा में रखने आरंभ कर दिये जो अम्बन कहे जाते थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वह चीन की प्रभु सत्ता

स्वीकार कर ले। इस प्रकार सन् १७२० में तिब्बत को इस बात के लिए विवश किया गया कि वह अपनी विदेश नीति चीन के हाथ सौंप कर अपनी एकछत्र स्वतन्त्रता में बट्टा लगा ले। परमात्मा की गद्दी पर बैठे दलाई लामा द्वारा किसी की प्रभु सत्ता स्वीकार करना तिब्बतियों को बहुत अरुचिकर लगा। सातवें के बाद आठवाँ दलाई लामा गद्दी पर आया। वह चीनियों से घृणा करता था। उसके समय में तिब्बतियों ने अपनी स्वतन्त्रता में चीनी दखलन्दाजी के विरुद्ध विद्रोह किया। किन्तु फौजी दृष्टि से कमजोर होने के कारण वे दबा दिये गये। दलाई लामा को चीनियों ने कुछ समय के लिए निर्वासित भी कर दिया।

अब चीनियों को यह समझ में आने लगा कि दलाई लामा यद्यपि उन्हीं का नियुक्त किया हुआ होता था, किन्तु तिब्बत में भगवान् की तरह पूजे जाने के कारण वह चीनियों का दबाव नहीं मानता था। उसकी शक्ति को बाँटने के कुछ प्रयत्न तो वे पहले ही करके देख चुके थे। पंछेन लामा को नियुक्त किया, सलाहकार समिति बनाई। मंगोलिया में सोन खा पा के अवतार माने जाने वाले तारा लामा की गद्दी स्थापित कराई और दलाई लामा को देश-निकाला का दंड तक दिया——किन्तु तिब्बती जनता पर दलाई लामा का प्रभाव कम न किया जा सका। अतएव इस बार चीनियों ने समस्या की जड़ पर वार करने का निश्चय किया। उन्होंने सलाहकार समिति में रहनेवाले तिब्बती लामा को अपने पक्ष में मिला लिया। उसे अपने पक्ष में फोड़ लेने के लिए बहुत बड़ी घूस दी गयी। चीनियों ने उसे यह अधिकार दे दिया कि जब तक दलाई लामा चुना जानेवाला बालक नाबालिग रहे तब तक वह दलाई लामा के बदले कार्यवाहक राजा (रीजेण्ट) के रूप में शासन करता रहे। अब क्या था? सलाहकार समिति में कभी चीन का साथ देनेवाला लामा भी यही चाहने लगा कि दलाई लामा सदैव नाबालिग बना रहे जिससे उसका शासन करने का अधिकार बराबर बना रहे। चीनी चाल कारगर सिद्ध हो गयी। तिब्बती लामा ने चीनियों के साथ साँठ-गाँठ करके अपना उल्लू सीधा किया। दलाई लामा की गद्दी के लिए नये-नये बालक चुने जाते रहे और बालिक होने के पहिले ही ये हत्यारे उन्हें मौत के घाट उतारते गये। नवें दलाई लामा ग्यारह साल की अवस्था में, दसव अट्ठारह साल की अवस्था में, ग्यारहवें तथा बारहवें सत्रह-सत्रह साल की अवस्था में छोड़ गये।

अब तेरहवें दलाई लामा की बारी आयी। जान पड़ता है कि इस षड्यंत्र का भेद खुल चु तिब्बती लोग सतर्क हो गये थे। तेरहवाँ दलाई अपनी अट्ठारह साल की आयु पूरी करने वाला कार्यवाहक (रीजेण्ट) लामा ने उस पर हमला कर लोग पहिले से ही सतर्क थे। तिब्बती युवकों ने लामा को पकड़ कर मार दिया और उससे दलाई ला मुहर भी छीन ली। दलाई लामा ने शासन की ब अपने हाथ में ले ली और चीनी अम्बन के अधिक समाप्त कर दिये। चीन ने दूसरे अम्बन को तिब्ब और कोशिश यह की कि दलाई लामा की मुहर व ली जाय। तिब्बतियों ने किसी प्रकार ले-देकर अ संतुष्ट कर लिया और मामला टल गया। वास्तव से चीनियों को असली मुहर का पता ही नहीं है। १९५१ के तिब्बत-चीन समझौते पर चीनियों ने लामा की जो मुहर लगा रखी है वह एकदम जा चौदहवें दलाई लामा का भी यही कहना है कि वह झौता चीन द्वारा तैयार किया गया एक जाल-मात्र

तेरहवें दलाई लामा ने बड़े होकर जो सबसे काम किया वह था तिब्बत को चीनी दासता से मुक्त क सन् १९१२ में उसने तिब्बत की स्वतंत्रता घोषित क उसके बाद सन् १९१४ में शिमला-सम्मेलन हुआ भारतीय, चीनी और तिब्बती प्रतिनिधियों ने भाग चीनी लोग अब भी अपना पंजा ढीला नहीं करना थे। किंतु तिब्बती यह चाहते थे कि किसी प्रकार को तिब्बत की भूमि से बाहर कर दिया जाय। सन् में तिब्बती लोगों ने चीनी फौजों को पूर्व की ओर दिया। उस समय चीनियों ने फौजी संघर्ष का सहा लिया। तिब्बत को काबू में करने के लिए उन्होंने चालबाजी से काम लिया। भीतर भीतर आग रही और सन् १९२४ में दलाई लामा और पंछेन में झगड़ा हुआ। दलाई लामा के सामने चीन से लेनेवाले पंछेन लामा की दाल न गली। उसने चीन में शरण ली। इस आपसी झगड़े से तिब्ब कमजोर पड़ गया। चीन ने इस कमजोरी से उठाकर सन् १९३४ में तिब्बत का कुछ भाग हड़प

उसके बाद १९३७ में पंछेन लामा चीन में ही मर गया। तिब्बती लामाओं ने मिलकर एक बालक चुना और उसे पंछेन लामा की गद्दी सौंप दी। चीन ने घोषणा की कि वह उसे पंछेन लामा नहीं मानता। चीन में एक और पंछेन लामा चुना गया। यह माओ का पछेन लामा कहा जाता है। आजकल तिब्बतियों का चुना हुआ असली पंछेन लामा दलाई लामा के साथ भारत में है, और माओ का नकली पंछेन लामा चीनी कठपुतली बना तिब्बत में बैठा है।

दलाई लामा को खदेड़कर चीन तिब्बती भूमि का मालिक बन बैठा है। किन्तु वह अभी तिब्बत को काबू में नहीं कर पाया है। बहुत दिनों तक धर्म का ढोंग बनाकर चीन तिब्बत को फुसलाए रहा। किन्तु इस बार धर्म का साथ छोड़कर वह मुश्किल में पड़ गया है। धर्म का ढोंग बनावे भी तो कैसे? तिब्बत का परमेश्वर दलाई लामा तो भारत में बैठा है। पंछेन लामा भी असली नहीं है। दलाई लामा के रहते तिब्बत में भला नकली पंछेन लामा को कौन पूछेगा!

किन्तु अभी सावधान रहना है। अपनी तिब्बत-विजय को स्थायी बनाने के लिए चीन अवश्य कोई तगड़ी चाल चलेगा। हो सकता है कि वह किसी प्रकार दलाई लामा को उड़ाने की कोशिश करे। यह भी हो सकता है कि वह दलाई लामा की हत्या तक का प्रयत्न करे और उसके बाद तिब्बत में अपने मन का एक दलाई लामा खड़ा कर दे। मुश्किल ही क्या है? एक दिन माओ का पंछेन लामा सवेरे उठकर कह देगा कि मुझे सपने में बोधिसत्व ने दर्शन दिया है और कहा है कि दलाई लामा अमुक स्थान पर प्रकट होगा। अब यह भारत-सरकार और दलाई लामा पर है कि चीनी मक्कारी को सफल न होने दिया जाय।

वास्तव में तिब्बत का मामला यदि इन दलाई लामा के रहते न सुलझा लिया गया तो तिब्बत का भाग्य सदैव के लिए अस्त हुआ समझना चाहिए। इसके लिए भारत को अपना सोचने का ढंग बदलना पड़ेगा। दलाई लामा को शरणार्थी देवता मानकर उसके लिए फूल-चन्दन और भोग का प्रबन्ध कर देने भर से काम नहीं चलेगा। भारत इसके आगे और बहुत कुछ कर सकता है।

गीत

पाण्डेय शशिभूषणप्रसाद 'शीतांशु'

जाने क्यों अब गीत नहीं बनते हैं?
लगता, जीवन के सब पल रोते हैं!
नेहा को जग ने माना दुर्बलता,
युग को मिली न मुझको भाव-शबलता!
बरस बीसवाँ तार नहीं तनते हैं!
रही अभिख्या अपनी कालिख वाली,
पाटल ने सब अपहृत कर ली लाली!
चोट मिली जो ओठ नहीं खुलते हैं!
दृष्टि आज ऐसी कि चित्त स्थिर है,
जीवन के क्रम में ये सब फिर-फिर हैं!
चिन्तन के हो वृन्त फूल फलते हैं!
जाने क्यों अब गीत नहीं बनते हैं?

पं० रामनरेश त्रिपाठी के जीवन की कुछ अछूती झाँकिय

श्री मार्कण्डेयसिंह

स्वर्गीय पं० रामनरेश त्रिपाठीजी से मेरा व्यक्तिगत परिचय जनवरी १९३७ में हुआ जब पहली बार मैंने उनके दर्शन हिन्दी मन्दिर प्रयाग में किये। उस समय से लेकर उनकी मृत्यु के समय तक मेरा सम्पर्क उनके साथ बराबर बना रहा। सन् १९४६ और १९५० के बीच में जब मेरी नियुक्ति सुल्तानपुर में हुई तो उनसे मेरा सम्पर्क अधिक घनिष्ठ हो गया। इस बीच मुझे उनको बहुत नजदीक से देखने का अवसर प्राप्त हुआ। ज्यों-ज्यों मैं उनके सम्पर्क में आने लगा, मेरी यह धारणा सुनिश्चित होने लगी कि हिन्दी साहित्यकारों में शायद कम ही ऐसे लोग होंगे जो उनकी तरह से वाक्-पटु और तत्काल बुद्धि वाले हों। उनके व्यंग्य सूक्ष्म और हृदय-वेधी होते थे। उनकी बातचीत करने और पत्र लिखने की शैली बड़ी हृदय-ग्राही थी। उनके जैसा निर्भीक व्यक्ति भी मिलना कठिन है। कुछ मिसालें देना अनुपयुक्त न होगा।

'तुलसी सत्संग भवन' के लिए उन्हें एक भूमि-खण्ड की आवश्यकता थी। तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर श्री कृपासिन्धु मिश्र,आई०सी०एस० ने उस भूमि को किसी और ही को देने का संकल्प कर लिया था, केवल रजिस्ट्री होनी बाकी थी। त्रिपाठीजी को जब यह बात मालूम हुई तो वे उनसे मिले और उन्होंने उस भूमि के लिए प्रार्थना की। डिप्टी कमिश्नर ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि वह भूमि तो मैंने किसी और को दे दी है। त्रिपाठीजी ने तत्काल कहा कि यह बड़े दुःख की बात है कि जिस महात्मा की बदौलत आपका नाम ३५ करोड़ भारतीय नित्य जपते हैं उसके लिए जमीन का एक छोटा टुकड़ा देने में भी आप अपने को असमर्थ पा रहे हैं। यह कहते हुए उन्होंने रामायण से "कृपा सिन्धु नर-रूप हरि" वाली पंक्ति पढ़ दी। उसका प्रभाव यह हुआ कि श्री मिश्र ने पहला मसविदा फाड़ दिया और वह भूमि-खण्ड-तुलसी-सत्संग भवन के लिए दे दिया।

एक बार एक विशिष्ट व्यक्ति ने त्रिपाठीजी को समय दिया कि वे लखनऊ जाकर उनसे जो कुछ कहना चाहें, कहें। जब वे लखनऊ पहुँचे तो उन्हें समय नहीं मिला कि वे इनसे बात कर सकें। उन्होंने कहा कि मैं १०-१५ रोज में सुल्तानपुर में आनेवाला हूँ और आकर बात कर लूँगा। जब वह सुल्तानपुर आये तो त्रि जी दिन-भर उनके पीछे-पीछे फिरते रहे, लेकिन करने का समय नहीं मिला। सन्ध्या समय जब वे समय लोगों से हाथ मिलाने लगे तो त्रिपाठीजी ने कि मुझे खेद है कि आपका सारा समय चाय और चला गया और जिस काम के लिए आप आये थे, वह नहीं हो पाया। आपने मुझे भी समय दिया था, वह भी मझे नहीं मिल पाया। उन महाशय ने कहा कि तो नहीं मिला लेकिन जो बात आपको मुझसे कह वह मेरे अन्य साथियों से, जो यहाँ रहते हैं, क्यों नहीं हो? मैं उनसे पूछ लूँगा। त्रिपाठीजी ने कहा कि आप भी जानते हैं और मैं भी जानता हूँ कि ये आपके कबंध हैं जिनके हाथ हैं पर सिर नहीं; और हाथ आपकी सभा में उठा देते हैं। (कबंध एक राक्ष जिसके सिर नहीं था)। यह सुनते ही उन महा अपना जाना १५ मिनट के लिए स्थगित कर दिया त्रिपाठीजी से एकान्त में बात की।

किसी की गलती पकड़ने पर वह उसे प्रकाश में लाते थे। एक बार त्रिपाठीजी ने किसी मंत्री को पत्र भेजा। पत्र का उत्तर महीने की ४ तारीख को गया, लेकिन लिफाफे पर डाकखाने की मोहर उस की १७ तारीख की लगी। त्रिपाठीजी ने वह पत्र लिफाफा मंत्री महोदय को भेजा और यह लिखा कि आफिस से डाकखाना ८७ गज पर है, और यह १३ दिन में ८७ गज चली। इस प्रकार जो व्य दिन में २।। कोस चलता था, वह आपसे कहीं अधिक शील था।

किसी समय त्रिपाठीजी को कुछ तकावी मंजू थी लेकिन तकावी का रुपया मिलने के पहले उनसे अधिकारी ने बहुत से अनावश्यक प्रश्न किये। दुखी होकर उन्होंने संबंधित मंत्री को पत्र लिखा कि लोग जगह-जगह व्याख्यान देते हैं कि हमारे पास को देने के लिए नाना प्रकार के सामान रक्खे हैं। में यह सही भी है, लेकिन उन वस्तुओं को बाँटने

आपने जिले में पुरी के जगन्नाथ सरीखे अफसर तैनात कर दिये हैं जिनके हाथ ही नहीं हैं। वे बेचारे बाँटें तो कैसे बाँटें? इसलिए किसान आज भी भूखा और दुखी है। व्यंग करते हुए निम्नलिखित दोहों की रचना भी इसी बात पर शायद उन्होंने की :—

"रामजस ने भूमि माँगी पाठशाले के लिये
मित्र बोले दण्ड बैठक करके आओ तब कहो।
तेल मिट्टी के लिए दरख्वास्त दी सुखराम ने
मित्र बोले कोक विद्या पढ़ के आओ तब कहो।"

एक बार त्रिपाठीजी ने बातचीत के सिलसिले में निम्नांकित दोहा पढ़ा :—

"आगिल बुद्धी बाँणियाँ पाछिल बुद्धी जाट।
तुरत बुद्धि है तुरकणां बांम्हन बुद्धि न हाट॥"

टिप्पणी करते हुए त्रिपाठीजी ने कहा ब्राह्मण में बुद्धि नहीं होती। इतना पढ़ा-लिखा हूँ, लेकिन मुझसे अमुक काम में इतनी बड़ी भूल हो गयी। मैं उनके मुँह की ओर ताकता रहा। उन्होंने कहा कि शायद आप यह सोच रहे हैं कि इस दोहे में ठाकुर का जिक्र नहीं आया। मैंने कहा, सचमुच मैं यही सोच रहा था। त्रिपाठीजी ने हँसते हुए कहा, ठाकुर तो अक्ल के बाजार में गया ही नहीं; इसलिए उसका जिक्र इसमें कैसे आता?

एक व्यक्ति के एम० एल० ए० चुने जाने पर उसका स्वागत समारोह हुआ जिसमें त्रिपाठीजी भी बुलाये गये। एक वयोवृद्ध सज्जन ने पहले व्याख्यान दिया, उसके बाद जो एम० एल० ए० चुने गये थे, उन्होंने भाषण दिया और यह भी कहा कि पहले बोलने का तो मेरा अधिकार है क्योंकि यहाँ की जनता ने मुझे अपना प्रतिनिधि चुना है। उनके बाद त्रिपाठीजी बोलने खड़े हुए। उन्होंने कहा कि सम्भवतः मुझसे भी कोई पूछे कि आपको तो किसीने चुना नहीं है, आप किसकी ओर से बोल रहे हैं? तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं उन ८३ प्रतिशत लोगों की ओर से बोल रहा हूँ जिन्होंने इन एम० एल० ए० महोदय को वोट नहीं दिया। (उन्हें केवल १७ प्रतिशत वोट मिले थे)।

एक उच्च अधिकारी ने जब चार्ज लिया तो त्रिपाठीजी नसे मिलने गये। किसी तरह से उन अधिकारी के न में ऐसी धारणा बैठा दी गयी थी कि त्रिपाठीजी ठीक व्यक्ति नहीं हैं। वे सरकार में जाकर अधिकारियों की निंदा करते हैं। उन्होंने सोचा कि इनको कुछ दबाने की आवश्यकता है। त्रिपाठीजी के कमरे में घुसते ही उन्होंने कहा कि 'त्रिपाठीजी! आपकी आदत अच्छी नहीं है। आप गवर्नमेंट में जाकर सरकारी कर्मचारियों की निंदा करते हैं और उनके खिलाफ दरख्वास्तें भेजते हैं। आपको लखनऊ जाना कम करना होगा।' त्रिपाठीजी ने कहा कि सरकारी कर्मचारियों में गवर्नर जनरल से लेकर आज तक जितने कर्मचारी हैं, मेरी आदत उन सबसे अच्छी है। क्योंकि मैं अपने दरवाजे पर आये हुए व्यक्ति का अपमान नहीं करता; और अब आपसे विदा लेता हूँ। रहा लखनऊ जाने की बात, सो आप किसी भिखमंगे का भी लखनऊ जाना नहीं रोक सकते। अधिकारी ने बहुत माफी माँगी लेकिन त्रिपाठीजी अपमान को भूलनेवाले व्यक्ति नहीं थे और वे उनके कार्यकाल में हमेशा ही उनके विरोधी बने रहे।

एक ताल्लुकेदार ने अदालत द्वारा त्रिपाठीजी की कुछ जमीन ले ली। स्थानीय अधिकारियों ने इनकी कोई सहायता नहीं की। अन्ततोगत्वा इन्होंने अनशन कर दिया। परिणामस्वरूप स्व० श्री रफी अहमद किदवई बीच में पड़े और त्रिपाठीजी का कार्य हुआ। रफी साहब ने पूछा कि आपने अनशन क्यों किया? त्रिपाठीजी ने कहा, क्योंकि सरकार में रफी साहब ऐसी हस्ती मौजूद थी। मेरा दृढ़ विश्वास था कि श्री रफी साहब मुझे जरूर मनाने आवेंगे और इसी विश्वास पर मैंने अनशन किया था और यह धारणा सत्य हुई।

किसी माल के मुकदमे में त्रिपाठीजी हार गये, जिसके फलस्वरूप उनकी थोड़ी सी भूमि निकल गयी। उसके कुछ दिन पश्चात् जब वह तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर से मिलने गये तो उन्होंने प्रसंग-वश उनसे कहा कि आप बहुत ही सज्जन और दयालु पुरुष हैं। आज तो नहीं, लेकिन किसी न किसी दिन आपके दिल में इस बात का दर्द अवश्य होगा कि आपके राज्य में एक गरीब किसान की भूमि छीन कर एक राजा को दे दी गयी। इस बात का डिप्टी कमिश्नर पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने फौरन श्री त्रिपाठीजी के लिए पर्याप्त भूमि की व्यवस्था करा दी।

एक बार वे बीमार पड़े। मैं देखने गया। उन्होंने कहा कि चावल मेरे अनुकूल नहीं पड़ता लेकिन जब सामने

आ जाता है तो बिना खाये जी भी नहीं मानता। बीबी को मैं मौत की छोटी बहन समझता हूँ। मौत उसे पहले से भेजकर अपना काम हल्का कर लेती है। बीबी यह जानते हुए कि चावल मुझे अनुकूल नहीं पड़ता, थोड़ा सा सामने रख ही देती है।

एक बार वह अपने एक परिचित व्यक्ति के यहाँ गये जिनके चरित्र और व्यवहार के वे बड़े आलोचक थे। वहाँ कोई पेय पदार्थ आया। त्रिपाठीजी को उसमें विष होने का सन्देह हुआ फिर भी उन्होंने उसे पी लिया। मैंने पूछा कि आपने पिया क्यों? उन्होंने कहा, जिह्वा का कमजोर ब्राह्मण जो था—जानते हुए भी कि विष होगा, उस पेय की खुशबू और मिठास के कारण पी लिया। घर में आकर यदि काफी न पी ली होती तो मालूम नहीं क्या दुष्परिणाम होता!

राजा, ताल्लुकदार, सरकारी अफसरों से प्रायः उनकी नहीं पटी। उनके वे कटु आलोचक थे। कभी-कभी उन पर किये गये त्रिपाठीजी के आक्षेप उचित नहीं होते थे। एक बार मेरी पत्नी की बीमारी में त्रिपाठीजी उन्हें देखने आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मेरी पत्नी से पूछा कि आपने किसी राजा के यहाँका अन्न तो नहीं खाया? उन्होंने कहा कि मैंने तो नहीं खाया है। त्रिपाठीजी ने कहा कि डिप्टी साहब (मैंने) ने खाया होगा और उसी पाप से आप बीमार हैं। पति के पाप का प्रायश्चित्त तो पत्नी ही को करना होता है। उन्होंने यह भी कहा कि राजान्न खाने ही से मेरे परिवार की दुर्गति हो रही है।

दिन में सोनेवाले को दरिद्रता का रूप और कड़ी बोली बोलनेवाले को अकुलीन कह कर निन्दा करते थे।

कुचैलिनम् दन्तमलोपधारिणम्,
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणम् च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानम्,
विमुंचति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

यह श्लोक मैंने उनसे कई बार सुना।

उनका जीवन बड़े-बड़े लोगों से संघर्ष करने ही में बीता। किसी छोटे से उलझते मैंने उन्हें कभी नहीं पाया। संघर्ष में वे बहुत कटु हो जाते थे। यही कारण है कि उनके व्यंग्य भी बड़े तीक्ष्ण होते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे लड़ाई भी बुद्धिमान् आदमी से लड़ने में मजा आता है जो परेशान करने के लिए अच्छे-अच्छे व्यूह रच सके। मूर्ख से लड़ने में तो मैं अपना अपमान है समझता हूँ।

१९४४ और १९५५ के बीच में बहुत से व्यंग्यात्मक दोहे सुलतानपुर के लोगों की जबान पर आ गये। उनमें कभो कलक्टर पर, कभी किसी और अफसर पर, कभी किसी वकील पर, कभी किसी जमींदार पर, और कभी किसी और व्यक्ति पर व्यंग्य छिपा रहता था। एक बार एक कलक्टर ने त्रिपाठीजी से कहा कि मैंने सुना है कि आप सबके ऊपर दोहे बनाया करते हैं। त्रिपाठीजी ने जवाब दिया कि ये दोहे लावारिस बच्चों की तरह से हैं, कभी मेरे गले से चिपट जाते हैं, कभी देवकलीदीन के, (एक स्थानीय वकील और कांग्रेसी नेता), कभी अभयराजजी के, कभी किसी और के। यह नहीं कहा जा सकता कि असल में यह बच्चे हैं किसके। यद्यपि इन पद्यों में से किसी-किसी में देवकलीदीन का नाम कवि के रूप में आता था, लेकिन यह निश्चय है कि उनसे उनका कोई संबंध नहीं था। सुल्तानपुर में लोगों का विश्वास है कि ये दोहे त्रिपाठी जी रचते थे, किन्तु उन्होंने अपने मुंह से कभी उन्हें अपना नहीं कहा। सुलतानपुर की कचहरी के हाते में कई एक इमली के पेड़ हैं। त्रिपाठीजी उसे "इमली क्लब" कहा करते थे। वे कहते थे कि कई लोग मिल-जुल कर "इमली क्लब" में इन पद्यों की रचना करते थे। शाम होते-होते सुलतानपुर ऐसे छोटे शहर में ये दोहे घर-घर में प्रवेश कर जाते थे। त्रिपाठीजी को राजा-ताल्लुकदारों से इतनी चिढ़ थी कि यदि वे किसी अफसर को किसी राजा या ताल्लुकदार के यहाँ दावत या पार्टी में देख लेते तो उनकी यह धारणा हो जाती कि अब वह अफसर न्याय करने में असमर्थ हो गया। कुछ दोहों में यह मनोवृत्ति स्पष्ट है। उन दोहों में से कुछ दोहे नीचे दियें जाते हैं:

(१)

डिनर लंच टी तीन हैं, राजा के हथियार।
चतुर चतुर बचि के गये, घायल हुए गँवार॥

(२)

साहब तालुकदार से, डिनर लंच टी लेत।
वह क्या सुने किसान की, फकत दुहाई देत॥

(३)

फिरि आये तेरह नदी, सात समुन्दर पार।
सो प्याली भर चाय में, डूबि गये सरकार॥

(४)

राजा के घर दावत खाय, आँख कान दोनों से जाय।
सुलतांपुर में ऐसा रोग, भोग रहे हैं साहब लोग।।

(५)

बाड़े बीच गँवार की आई भैंस दुधार।
हण्डा लिये वकील सब, डण्डा लिये गँवार।।

(६)

राजाजी के तीन हैं, घर के भीतर घाट।
सदा रहत उतरत चढ़त, मोटर कुर्सी खाट।।

(७)

सुलतांपुर में आ बसे, तरह तरह के चोर।
कोई धोती चोर है, कोई चिट्ठी चोर।।

(८)

साहब साही पालि कैं, आँख बन्द करि लीन,
अब किसान कैसे जियें, कहँ देवकली दीन।
कहें देवकलीदीन सुनौ भाई सुलतांपुरिया,
पहिरौ गेरुआ वस्त्र, उजारौ आपनि कुरिया।।

(९)

सुनै नहीं माने नहीं, सहैं न इण्टरवीन।
अजमायेंगे संखिया, चतुर देवकलीदीन।।

(१०)

राष्ट्र को किसने दिया क्या, त्याग क्या-क्या कर दिया।
मित्र बोले, हमने भाई! अक्ल न्यौछावर किया।।

(११)

जब पहली अपरैल को, साहब चारज लीन
तबै अकिल सब चुइ परी कहैं देवकलीदीन।
कहैं देवकलीदीन बूँद कछु हमहूँ पाये,
बड़ी भागि से खड़ा रहे, लगहीं मुँह बाये।।

(१२)

मार खाय चन्दा पचै, नुसखा है नमकीन।
बलिया जीता अकिल में, कहैं देवकलीदीन।।

(१३)

सोलह आने में मिलै, कुली एक रैदास।
पन्द्रह आने में मिलै साहब बी० ए० पास।

(१४)

साही का काँटा लगै, घर में होवै रार।
साही बैठे बगल में, कुशल करै करतार।।

(१५)

जमींदार ने सौदा किया, गारी दिया बेगारी लिया।
साहब को दी चाय दलाली, गाड़ी चली लखनऊवाली।।

(१६)

अकिलि चली बर खोजने, फिरी लोक में तीन।
सुलतांपुर ही में मिले, मित्र देवकलीदीन।।

उपरोक्त दोहे किसी-न-किसी प्रसंग में रचे गये होंगे और जो लोग उन प्रसंगों को जानते हैं वह ही उनका समुचित आनन्द ले सकते हैं।

उपमायें वह हमेशा नई-नई और बड़ी सजीव देते थे। केवल एक नमूना दे रहा हूँ। एक मीटिंग में एक वकील साहब बिना पूछे बिना सभापति की आज्ञा लिये और बिना प्रयोजन उठ-उठ कर बोल दिया करते थे। मैंने त्रिपाठीजी से, जो मेरे बराबर ही में बैठे थे, कहा कि इन्हें सभा की मर्यादा का कोई ध्यान नहीं है। त्रिपाठीजी ने कहा कि ये हारमोनियम के वह ढीले रीड हैं जो बिना उँगली रखे ही पों-पों करते हैं।

उनके बहुत से पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं जिनका कुछ अंश उद्धृत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। उनसे उनके चरित्र की विशेषता प्रगट होगी। इन झरोखों से उनके जीवन की अनेक अछूती तसवीरों के दर्शन मिलेंगे।

"परसों एक मजिस्ट्रेट थर्ड-क्लास का टिकट लेकर इण्टर में बैठे थे। चपरासी टी० टी० से कहने आया था कि साहब थर्ड के टिकट से इण्टर में बैठे हैं। टी० टी० मुझसे बातें कर रहा था। मैंने पूछा तुम ऐसे साहबों को कुछ कहते नहीं? उसने कहा—एक दो हों तो कहूँ। कितने तो टिकट भी नहीं लेते। मजिस्ट्रेट साहब ने बारह आने पैसे की बचत के लिए रेलवे की यह चोरी की थी। उनको अगर कोई १२ रुपये दे देगा तो वह जैसा चाहे वैसा न्याय भी करा लेगा। यह सब देखकर मन में दुःख होता है। यह सरकार की अँतड़ी के कीड़े हैं।"

"शक्तिमान सरकारी कर्मचारी से झगड़ा हो तो केस को लंबा कर देने में प्रतिवादी को लाभ होता है क्योंकि तब तक वादी अपनी शक्ति के गर्व में कई अपराध और कर डालता है और प्रतिवादी सबको पकड़-पकड़ प्रगट करता रहे तो वादी झुँझला जाता है। यहाँ भी वैसा ही हो रहा है। "पाप को प्रकाश में रख दो, सूख जायगा। अँधेरे में रक्खोगे तो पनपेगा।" गांधीजी का यह वचन शब्द-शब्द सत्य होता जा रहा है। पाप पनप रहा है। मैं उसकी पनप को उजाले में रख दिया करता हूँ। .... जी (एक अधिकारी) में दम नहीं है। उनको मेरी सब बातें मालूम हैं, पर "जैसे नपुंसक नाह मिलै तो कहाँ लगि नारि सिंगार बनावै" जैसी बात है।"

"इस वर्ष लेखकों को जो पुरस्कार दिये गये हैं, उसमें ग्राम-साहित्य के लिए मेरा भी नाम है। मैंने राज्यपाल श्री मुंशी को, जो मेरे पुराने साहित्यिक मित्र हैं, पुरस्कार देने के भद्दे ढंग पर अर्थात् "खजाने से जाकर ले लो" पर लिखा था, कि यह तो टुकड़ा फेंक देने जैसा लगता है। पुरस्कार का धन भारतीय विधि से सम्मानपूर्वक दिया जाना चाहिए। कल श्री मुंशी के सेक्रेटरी का पत्र आया है जिसमें मेरे सुझाव को बहुत सुन्दर बताया गया है और लिखा है कि सरकार इसकी व्यवस्था कर रही है।"

“और कोई नया समाचार नहीं, बम्बई में समुद्र की लहरें गिना करता था। यहाँ.....

पुरवाई दिन-भर चलै, विधवा पान चबाय।
ऊ पानी लै आवै, ई पानी लै जाय।।

का तमाशा देख रहा हूँ।”

“मुकदमे के बारे में आपकी कामना के लिए अनुग्रहीत हूँ। बन्दूक से मक्खी मर तो सकती नहीं, पर वह भेड़िये को परेशान जरूर कर सकती है। मेरा यही किस्सा है। जीवन में कितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, कुछ ठिकाना है? दो बड़ी लड़ाइयाँ तो जौनपुर में लड़नी पड़ीं। आप सुन चुके होंगे। एक कोइरीपुर में हिन्दू-मुसलमानों के दंगे की, दूसरी सिंगरामऊ के राजा की। सुलतानपुर में चार डी० सी०, दो एस० पी०, कई सब-इन्सपेक्टर और राजा से। यद्यपि भगवान् ने सभी में मेरा सिर ऊँचा ही रक्खा, पर वह मुझे ही क्यों अपने हाथ का डंडा बनाये रखता है, यह समझ में नहीं आता। स्वभाव भी कुछ उसने क्षत्रिय का सा दे रक्खा है। “छत्री भगत न मूसर धनुही।” सम्भव है, मैं पूर्व जन्म में ठाकुर रहा होऊँगा। अन्याय सहन नहीं होता। और मन शीघ्र ही सत्य और न्याय की रक्षा में कष्ट सहने को तैयार हो जाता है।”

वास्तव में त्रिपाठीजी अन्याय से लड़कर ही मानते थे। उनकी जबान से निम्नांकित श्लोक बीसों बार मैंने सुना। शायद इसमें उनका जीवन-दर्शन है।

नात्यंतं सरलैर्भाव्यं, गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिन्द्यन्ते सरलास्तत्र, कुब्जास्तिष्ठंति पादपाः।।

(अत्यन्त सीधे मत बनो——जंगल में जाकर देखो, सीधे पेड़ कटे हुए हैं और टेढ़े खड़े हैं।)

“कष्टों से घबड़ाता नहीं हूँ। क्योंकि मानता हूँ सुख-दुःख पूर्व निश्चित है। जब सारा कार्य किसी अदृश्य शक्ति ही से हो रहा है तब घबड़ाने की बात भी नहीं। हम तो कठपुतली हैं, डोरी किसी और के हाथ में है।”

“प्रकृति के प्रति मेरा भी प्रेम किसी से कम नहीं, बल्कि मैं उसे दान किया करता हूँ क्योंकि मेरे पास कवि नाम की द्रौपदी की बटलोई है जो उसके (सेठ के) पास नहीं है और कभी चूकती नहीं। अतएव बाँटता मैं हूँ, भोगता वह है। भोगनेवाला भी स्वाद का अच्छा पारखी हो, तभी दोनों को आनन्द आ सकता है। बिहारी ने पते की बात कही है——

“अनियारे दीरघ नयनि, कितो न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछु, जिहि बस होत सुजान।।

सो जो सुजान होगा, वही वश में हो सकता है। कोई लकड़बग्घा नहीं।”

त्रिपाठीजी अपनी यात्रा में कहीं एक धनी परिवार के साथ ठहरे थे। उसके संबंध में कहते हैं——

“घर के लोग छोटे-बड़े सभी सुशिक्षित, सुसभ्
सदाचारी हैं। रहन-सहन देशी-विदेशी दोनों का
है। इसमें सबसे कौतूहलजनक बात यह है कि
दोनों प्रतिदिन मन्दिर में भगवान का दर्शन करते
हैं और स्तोत्र भी पढ़ते हैं और मैं पीछे
मुसकराता हूँ।”

“आपको यह पत्र एक विशेष स्वार्थ-वश लिख
हूँ। लड़की के लिए वर अभी तक नहीं मिला। जो
हैं, वे बिल्कुल नृसिंह भगवान् की तरह होते हैं।
कुछ, आधा कुछ। विश्वविद्यालय की दीवारों के
तक बी० ए०, एम० ए० डिग्रियों में बड़ी गरमी रहती
लड़के का बाप उसीकी गरमी से मतवाला होकर
के बाप को आदमी ही नहीं समझता। पर विश्ववि
के फाटक के बाहर डिग्रियाँ चपरासी, कांस्टेबिल,
पाल आदि की गरमी के बराबर भी गरम नहीं
उनके भरोसे बेटी का ब्याह करना आजीवन बेटे के
की चिन्ता अपने सिर लेना है। अतएव मैं साधारण
गृहस्थ घर और शिक्षित वर चाहता हूँ ताकि खाने-
की चिन्ता न रखकर मैं भी उसकी उन्नति में सह
हो सकूँ।”

एक वर मिला लेकिन उसने कहा कि स्थायी
मिले तो शादी करूँ। इस सम्बन्ध में त्रिपाठीजी
हैं “वर को स्थायी काम देने के लिए एक मिल-
मित्र को लिखा तो उसने झुँझला कर उत्तर दि
‘नौकरी देना कठिन नहीं, पर बेटी दो तो रोटी
यह ढंग मुझे पसन्द नहीं। उसीको बेटी दो, जिसके
रोटी हो।’ यह वसूल है तो युक्तिसंगत, और मुझे
सन्देह हो गया कि वर मनोवैज्ञानिक मूर्ख है। नहीं
पहले विवाह कर लेता, पीछे तो मैं स्वयं नौकरी के
दौड़-धूप करने लगता। इससे वह चित्त से आधा
गया।

“सावित्री के बाद मालती और है। दो ये बड़े
मेरे सिर पर हैं। ये उतर जाते तो मैं मनुष्य जीवन
अन्तिम साध भी मिटा लेता और गाँव-गाँव घूमकर
दोहे की सचाई परखता——

मरनो भलो विदेश को, जहाँ न अपना कोय।
माटी खायँ जनावराँ, महा महोच्छव होय।।”

ऐसा था त्रिपाठीजी का अद्वितीय व्यक्तित्व
जीवन-पथ पर हमेशा बड़ी निर्भीकता से चले और
हुए कष्टों से लड़ते रहे। निम्नांकित शेर उनके
में कितना मौजूँ है :

तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत।
हम जहाँ में तेरी तस्वीर लिये फिरते हैं।।

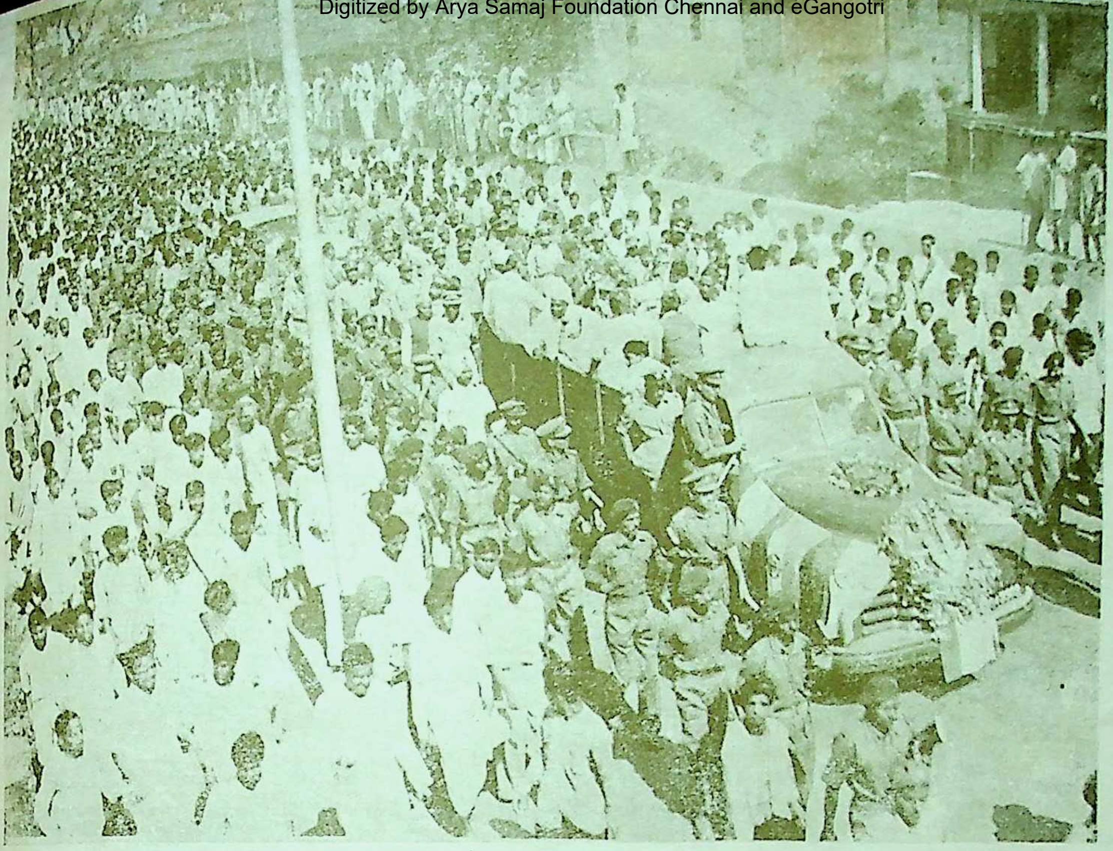

राजापुर कैनाल ब्रिज से गुजरते हुए जुलूस का एक अन्य दृश्य

स्व० राजस्थान के भूतपूर्व मुख्य मंत्री
श्री जयनारायण व्यास

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व
प्रधान न्यायाधीश स्वर्गीय श्री पतंजलि शा

स्वर्गीय पं० व्रजमोहन व्यास

परमाणु-वैज्ञानिक डा० नील्स बोर

श्री व्रजेश्वरप्रसाद शर्मा

डेनमार्क के महान् वैज्ञानिक डा० नील्स बोर का स्थान उन वैज्ञानिकों में से एक है जिन्होंने विश्व के समक्ष परमाणु ऊर्जा एवं परमाणु बम का रहस्य प्रस्तुत किया। उन्होंने एवं अमेरिका के अन्य कतिपय वैज्ञानिकों ने ही सम्मिलित रूप से अनुसंधान कर परमाणु-बम की खोज का श्रेय प्राप्त किया। परमाणु-संरचना एवं न्यूक्लीयर ऊर्जा के क्षेत्र में भी डा० बोर ने अभूतपूर्व योगदान दिया। उन्हें प्रायः 'आधुनिक भौतिकी' का पिता कहा जाता था।

जीवन

प्रोफेसर बोर का जन्म डेन्मार्क में सन् १८८५ में हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के वर्षों में वे डेन्मार्क छोड़कर अमेरिका चले आये थे। अमेरिका में उन्होंने प्रिन्सटन के उस इंस्टिच्यूट ऑव एडवान्स्ड स्टडीज में कार्य किया, जो कि आइन्स्टीन, इलियट और टायनबी जैसी महाप्रज्ञाओं की ज्ञान-साधना का केन्द्र रहा है। अमेरिका में रहकर ही उन्होंने परमाणु-बम के निर्माण में सहायता दी। सन् १९१२ में प्रथम बार उन्होंने परमाणु-निरूपण सम्बन्धी अपने सिद्धांत की घोषणा की। कैम्ब्रिज में कुछ काल तक वे वैज्ञानिक रसायनविद् सर रथरफोर्ड के विद्यार्थी भी रह चुके थे। रथरफोर्ड के परमाणु-रचना सम्बन्धी सिद्धांत की उन्होंने विशद व्याख्या की और परमाणु-रचना के एक नये पहलू को वैज्ञानिकों के समक्ष प्रस्तुत किया। इस विषय पर उनकी खोज विश्व-विख्यात हो गयी।

सम्मान और निधन

वैज्ञानिक अनुसंधान और विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के उपलक्ष्य में उन्हें सन् १९२२ में भौतिकी का नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत वे परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोगों पर महत्वपूर्ण खोजें करते रहे। सन् १९५७ में उन्हें 'शान्ति के लिए परमाणु' पुरस्कार मिला। विज्ञान के इस महान् उपासक का देहांत ७७ वर्ष की आयु में १८नवम्बर,१९६२ को कारोनरी थ्रौम्बासिस से पीड़ित होने के कारण कोपेनहागन में हो गया। उनकी असामयिक मृत्यु पर ब्रिटिश विज्ञान सोसायटी के अध्यक्ष सर जॉन काकक्राफ्ट ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा--'उनकी मृत्यु से परमाणु-विज्ञान को बहुत क्षति पहुँची है।'

परमाणु-संरचना पर खोज

डा० बोर को सर्वाधिक ख्याति उनके परमाणु-संरचना के सिद्धांत और उसकी पुष्टि के लिए किये गये मौलिक प्रयोगों के कारण प्राप्त हुई। ऊर्जा के निश्चित राशियों में होनेवाले आदान-प्रदान सम्बन्धी क्वांतम सिद्धांत को उन्होंने कुछ नवीन प्रयोग कर और विस्तृत रूप दिया। उन्होंने इस विषय पर एक नवीन एवं मौलिक सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनका सिद्धांत यह बतलाता था कि परमाणु के न्यूक्लीयस के इर्द-गिर्द इलैक्ट्रान्स चक्कर लगाते हैं। रथरफोर्ड ने परमाणु में एक न्यूक्लीयस की उपस्थिति का पता लगाया और बताया कि इलैक्ट्रान्स न्यूक्लीयस के चक्कर लगाते हैं परन्तु उक्त विचार को मानना कुछ कठिन था, क्योंकि ऐसा मानने का परिणाम यह होगा कि आकर्षण के कारण विद्युत् ऋणी इलैक्ट्रान, विद्युतधनी-न्यूक्लीयस के पास पहुँच जायेंगे और वहाँ उन पर स्थित विद्युतमात्रा के उदासीन हो जाने से उनका अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा। श्रेणीबद्ध यान्त्रिक क्रिया के आधार पर ऐसी कोई संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं की गई थी, जिससे कि प्रत्येक तत्त्व उसके वर्ण-क्रम से पहिचाना जा सकता; जबकि प्रत्येक रासायनिक तत्त्व एक विशेष प्रकार की मिश्रित चमकदार रेखाओं का वर्णक्रम बनाता है। प्रत्येक रासायनिक तत्त्व एक निश्चित संख्या का तरंग-दैर्घ्य विकिरित करता है, क्योंकि वर्णक्रम की प्रत्येक रेखा प्रकाश के तरंग-दैर्घ्य को प्रदर्शित करती है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने इन तरंग दैर्घ्यों में मनोरंजक गणितीय सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की, परन्तु उनके उद्गम की व्याख्या करने में असफल रहे।

क्वांतम सिद्धांत की व्याख्या

सन् १९१३ में डा० बोर ने क्वान्तम सिद्धांत के आधार पर उक्त बात की व्याख्या निश्चित आधारभूत बातों की सहायता से प्रस्तुत की। उन्होंने श्रेणीबद्ध भौतिकी के

सिद्धांतों के प्रतिकूल कल्पना की कि इलैक्ट्रान्स कुछ निश्चित कक्षाओं में ही चक्कर लगा सकते हैं और इन कक्षाओं में चक्कर लगाते समय वे ऊर्जा को विकिरित नहीं करते वरन् जब एक इलैक्ट्रान बड़ी कक्षा से छोटी कक्षा में कूदता है तो ऊर्जा को विकिरित करता है। ये कक्षाएँ ऐसी चुनी गयी थीं कि ऊर्जा का एक क्वांतम उस समय मुक्त होता था जब कि ऐसी कूदने की क्रिया होती थी। बोर का यह सिद्धांत बहुत लोकप्रिय हो गया, क्योंकि उसके आधार पर बहुत सी बातों को संतोषप्रद ढंग से समझाया जा सकता था।

परमाणु-निरूपण

उपरोक्त खोज के अतिरिक्त उन्होंने दूसरा महान् अनुसंधान परमाणु की संरचना के सम्बंन्ध में किया, जिससे परमाणु की रचना का सरलतम रूप ज्ञात हुआ। उन्होंने इस विषय में एक सर्वथा नवीन सिद्धांत की पुष्टि की। उन्होंने बताया कि इलैक्ट्रान्स न्यूक्लीयस के चारों ओर एक परिधि के रूप में बन्द कक्षों (Closed orbits) में चक्कर लगाते रहते हैं। डा० बोर ने यह भी सुझाव रखा कि—"इलैक्ट्रान न्यूक्लीयस के चारों ओर घूमते रहते हैं और उन पर न्यूक्लीयस की आकर्षण शक्ति, बराबर की केन्द्रापसारी शक्ति के कारण अप्रभावित रहती है।" न्यूक्लीयस के गिर्द इलैक्ट्रान इस तेजी से घूमते हैं कि अपने कक्ष में किसी भी स्थान पर उनका पाया जाना अनिश्चित सा हो जाता है। पथगामी इलैक्ट्रान को न्यूक्लीयस के गिर्द एक अनिश्चित पथ के रूप में दिखाया जाता है, जिसे इलैक्ट्रान मेघ कहते हैं। प्रोफसर बोर के परमाणु-निरूपण से परमाणु की संरचना अतिसूक्ष्म सौर-मण्डल के रूप में सामने आयी।

प्लूटोनियम का आविष्कार

परमाणु ऊर्जा पर अनुसंधान करते समय जून १९४० में डा० बोर ने यूरेनियम-२३५ के अतिरिक्त एक नवीन तत्त्व को भी परमाणु ऊर्जा की उत्पत्ति का और इस नवीन तत्त्व को उन्होंने प्लूटोनियम दिया। इस नवीन तत्त्व को आवर्त सारिणी में दिया गया। प्लूटोनियम का परमाणु भार यह परमाणु बम के निर्माण के लिए एक सिद्ध हुआ था।

यूरेनियम-२३५ पर अनुसंधान

डा० बोर ने यूरेनियम-२३५ की खोज कर एवं अमेरिका में डा० फर्मी, आइन्स्टीन व्होलर के साथ अनुसंधान कार्य कर परमाणु बम में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया। उनका यह था कि परमाणु शक्ति का उपयोग केवल की सेवा और विकास के लिए ही किया जाना

मानव-समाज की प्रगति में

मानव-समाज की प्रगति के लिए विज्ञान करनेवाले वैज्ञानिकों में डा० बोर अग्रगण्य आइन्स्टीन के समान ही उनका भी यही दृढ़ परमाणु शक्ति का उपयोग मानव समाज की किया जाय, उसके विनाश के लिए नहीं।' रसायन के क्षेत्र में नवीन अनुसंधान कर और का प्रतिपादन कर उन्होंने आधुनिक विज्ञान दिशा दी।

परमाणु-शक्ति के क्षेत्र में उनकी सेवाओं रखते हुए अमेरिका की परमाणु-बम निर्माण सदस्य बनाया गया। विगत कई वर्षों से वे के इंस्टीच्यूट ऑव थ्योरैटिकल फिजिक्स के पद पर कार्य कर रहे थे। विज्ञान के क्षेत्र में ही उनको महान बनाने वाली हैं, और उनके सदैव याद किये जायेंगे।

क्या अँगरेजी से हिंदी हार गयी ?

श्रीमती शीला शर्मा

के पृष्ठों में 'क्या हिन्दी अँगरेजी से हार गयी' स्या ने मुझे भी प्रेरणा दी और मैं सोचने लगी क्या व हिंदी अंगरेजी से हार गयी है ? पहले तो शीर्षक कुछ क्रिकेट मैच का-सा आनन्द आया, और पढ़ते सा लगा मानों कोई क्रिकेट रसिक पूछ रहा हो 'क्या य टीम अंगरेजी टीम से हार गयी ?' भाषा प्रेम ने न्दर भी जोश मारा, और जैसे क्रिकेट की मैच का हाल जानने को उत्सुक जन रेडिओ की कमेन्टरी ते हैं मैंने भी हिन्दी और अंगरेजी भाषाओं के द्वंद्व की विक स्थिति जानने के लिए, इधर-उधर दिन प्रति- भाषा व्यवहार की ओर ध्यान देना आरंभ किया। ी जाती, बड़ी चौकन्नी होकर सुनती कि परस्पर में कौन सी भाषा इस समय जीत रही है। यथार्थ ज्ञान एक वस्तु है, आँकड़ों का ज्ञान और विद्वानों की या एक दूसरी ही वस्तु। स्वयम् ही क्यों न देख लो कि यं क्या है।

एक दिन संध्या को हिंदी के कवि श्री बालकृष्ण राव के हुंची। बातों-बातों में राव साहब ने कहा "नौकर सी बातें करने लगे हैं! मैं उधर से निकला तो मेरा र किसीसे कह रहा था 'साला! बड़ा लोफर है। क शो देखता है।' उनकी बात सुनकर मुझे गा कि हिंदी-अँगरेजी की इस होड़ में मानों अंगरेजी रन एक साथ बना लिये हों--एक छक्का जमा दिया र वास्तव में अँगरेजी ही जीत रही हो। मन कुछ हुआ। स्पष्ट था कि हिंदी अँगरेजी से हार रही सरे दिन सोकर उठी, तो उठते ही नौकर ने कहा, , बहू जी! आपका पुराना सेवक सेवा में उपस्थित सके मुंह से ऐसी मँजी हिन्दी सुनकर ऐसा आश्चर्य क मैं उसकी ओर मुँह बाये देखती ही रह गयी। मेरी ा देखकर उसने फिर दुहराया, 'आपका पुराना रामलाल जो दो मास की छुट्टी पर गया था, त सेवा में वापिस आ गया है।" ऐसी सुन्दर हिंदी में एक साथ इतनी प्रसन्न हो गयी जैसे भारतीय फिर से मैदान में जम जाने का शुभ समाचार मिला हो! (बाद में मालूम हुआ कि हमारा यह नया नौकर आठवीं कक्षा उत्तीर्ण है।)

इच्छा होती है कि यथार्थ की ओर भी दृष्टिपात किया जाय। आँकड़े जाँचने और गहन विवेचना करने में कहीं यथार्थ तो हमसे ओझल नहीं हुआ जा रहा? यहाँ कुछ व्यक्तिगत अनुभव सुनाती हूँ। उत्तर प्रदेश में उत्पन्न होने के कारण मेरी धारणा थी कि हिंदी पर तो मेरा जन्मजात अधिकार है। पर एक अहिंदी प्रांत में ऐसे अनुभव हुए कि मैं सोचने लगी हम हिंदी-भाषियों ने तो केवल नारे लगाने ही का ठेका ले रखा है। हिंदी का वास्तविक उद्धार तो ये अहिंदी-भाषी कर रहे हैं।

इधर मैं दक्षिण भारत गयी थी। कालीकट में एक महिला से भेंट हुई और वार्त्तालाप सभ्य समाज के अनुसार अँगरेजी में प्रारंभ हुआ। मैंने पूछा--

'आप क्या करती हैं?'

उत्तर मिला--'पढ़ाती हूँ।'

'क्या पढ़ाती हैं?'

'हिंदी।'

मैंने अचरज से पूछा--'हिंदी? अरे! तो आप मुझसे अँगरेजी में क्यों बातें कर रही थीं?"

उन्होंने कुछ रुककर हिंदी में उत्तर दिया 'इसलिए कि हिंदी बोलने का अभ्यास हमारा नहीं पड़ पाता। जो व्यक्ति भी उत्तर भारत से आता है वह अँगरेजी ही बोलता आता है।' मुझे लगा इस उत्तर के साथ उन्होंने मेरे मुँह पर एक चपत जड़ दी हो खैर, मैंने सोचा ठीक ही तो कह रही हैं। बातों का क्रम बनाये रखने को मैंने पूछा 'आपको तनख्वाह क्या मिलती है?'

वे फिर चुप हो गयीं, और रुक कर बोली "आप का अभिप्राय है कि मुझे वेतन कितना मिलता है?" प्रश्न सरल था पर मुझको लगा कि मानों उन्होंने 'यह तुम हिंदी बोल रही हो' कहकर, दूसरे गाल पर भी तमाचा जड़ कर मेरा मुंह सीधा कर दिया। उन्हींसे पता चला कि केरल का प्रत्येक पाठशाला जानेवाला बालक हिंदी पढ़ता है।

दूसरा पाठ एक नन्हीं बालिका ने पढ़ाया। केरल परिवार की एक दस-वर्षीया बालिका बाहर खेल रही थी। मैंने उसे बुलाकर पूछा 'तुम हिंदी पढ़ती हो?' उसने सिर हिलाकर कहा 'हाँ।' मैंने कहा 'जरा अपनी किताब तो लाना'। वह जाते-जाते रुकी, और बोली 'आपका तात्पर्य है कि मैं अपनी पुस्तक ले आऊँ?'

यह दूसरा पाठ था, जिससे मुझे ज्ञान हुआ कि हम हिंदीभाषी कोरे नारे लगाते हैं—हिंदी की वास्तविक आराधना ये अहिंदी-भाषी कर रहे हैं।

उसकी नन्हीं-सी बात से मुझे उत्तर मिला कि साइन-बोर्डों पर बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग करके वास्तव में हिंदी के शब्दों का प्रयोग करना हमें क्यों अखरता है—अहिंदी-भाषी को क्यों नहीं अखरता। बात यह है कि हम हिंदी सीखना नहीं चाहते हैं, हम उसकी सेवा नहीं करना चाहते। चाहते हैं कि वही टूटी-फूटी, लूली-लँगड़ी भाषा हमारी सेवा करती रहे। हमने बिना प्रयास के, हिंदी न जाननेवाले लोगों से केवल सुन-सुन कर सीख ली है, हम उसे स्वस्थ नहीं करना चाहते।

उस नन्हीं सी बालिका के उत्तर ने मुझे समझाया कि मास्को में पं० नेहरू का भाषण एक हिंदीज्ञाता रूसी महिला क्यों न समझ सकी थी, जब कि ताशकंद में उनके भाषण में वहाँके परिचित (अरबी-फारसी के) शब्द आते ही अनन्त करतल ध्वनि हो उठती थी। क्योंकि पं० नेहरू का भाषण जिस भाषा में दिया गया था वह हिंदी से दूर, और उर्दू के समीप था।

उस नन्हीं-सी बालिका ने एक दूसरी घटना जिसे हम हास्यप्रद समझा करते थे, मेरे मस्तिष्क में फिर से घुमा दी और उसका एक दूसरा एवं गंभीर पहलू सामने ला दिया। एक रूसी महिला ने सड़क पर चलती हुई एक स्त्री को देखकर मुझसे कहा था, 'एक नारी पथ पर चल रही है।' हमने हँसकर उसका संशोधन किया 'अरे! एक औरत सड़क पर जा रही है।' इसमें हिंदी कौन सी है? हमारी या रूसी महिला की? भारत की राष्ट्रभाषा कैसी होनी चाहिए? अहिंदी प्रान्त व रूसी महिला वाली हिंदी या हमारी हिंदी? हम राष्ट्रभाषा हिंदी में अन्य प्रदेशों में प्रचलित उन संस्कृत शब्दों को वरीयता दें जो हिंदी में भी चलते हैं, या चाँदनी चौक, बल्लीमारों हिंदोस्तान के शीराज लखनऊ में किसी समय प्र 'शुस्ता' शब्दों से ही चिपके रहें, और राष्ट्रभाषा के अपने को भी शेष भारत से दूर कर दें?

इसी यात्रा में एक मद्रासी सज्जन ने सारी सम का उत्तर अपने क्रोध की एक झल्लाहट में दे दिया किसी पंजाबी सज्जन के अहंकारात्मक कटु व्यव सम्भव है कि, पहले ही से दुखी बैठे थे। मुझसे "आपकी यात्रा कैसी रही?" मैंने उत्तर दिया कि " यात्रा तो दृश्यों तक ही सीमित रह गयी क्योंकि भाषा का ज्ञान न होने से हम उसकी आ सुन्दरता और मधुरता का ज्ञान तो कर ही नहीं सके

वे एक साथ प्रसन्न होकर बोले, 'आपको भाषा प्रेम है? एक ये उत्तर के रहनेवाले पंजाबी अपनी की भाषा पर हँसते हैं! कहते हैं कि हमें रेडियो की समझ में नहीं आती। उनसे पूछो कि तुम्हारी क्या आता है? अँगरेज बनते हैं, पर अँगरेजी नहीं अँगरेजी में बोलना आरंभ करते हैं, और पंजाबी में करते हैं। यह कहने में तो उन्हें लज्जा आती है कि हिंदी आती है। इनको आता क्या है?"

किसी पंजाबी सज्जन से क्रुद्ध होकर भले मद्रासी सज्जन के ये उद्‌गार बाहर निकल पड़े यह बात लागू हममें से कितनों पर नहीं होती? भी बहुतेरे हिंदी अपनाने में यों सकुचाते हैं जैसे कोई पेबंद दिख गया हो, जैसे धनी मानियों के परिवार का एक निर्धन सदस्य सहसा आकर गया हो!

फिर भी इन अन्तर्द्वन्द्वों और विरोधों के रहते हिंदी मदान में डटी हुई है। वह अँगरेजी से बराबर ले रही है। यों कहिये कि अभी खेल समाप्त नहीं है। निर्णय का समय अभी नहीं आया है। एक खेल 'ड्राँ' पर भले ही 'ड्रा' हो जाय, पर आँख अपने आसपास देखनेवालों, भावी पीढ़ी बनानेवाले और जनता की भाषा पर ध्यान देनेवालों को इसमें भी संदेह नहीं है कि अँगरेजी-हिंदी के इस द्वंद्व में विजय हिंदी ही की होगी।

तोपें और तोपखाना

जब तक तोपों का आविष्कार नहीं हुआ तब तक घिर जाने पर लोग किलों में चले जाते और फाटक बंद करके बैठ रहते थे। दीवार के निकट यदि शत्रु आते तो उन्हें तीरों या बंदूकों की मार से आगे बढ़ने से रोक देते। किलों की दीवारों को तोड़ने का उस समय कोई साधन नहीं था। किंतु जब तोपों का आविष्कार हो गया, और जब अधिक भयंकर तोपें बनने लगीं, तब किलों की दीवारों का तोड़ना सरल हो गया। किले अरक्षित हो गये। तोपों का आरंभिक उपयोग किलों को तोड़ने में ही होता था।

तोपों का आविष्कार तभी संभव हुआ जब बारूद का आविष्कार हो गया और मनुष्य ने यह जान लिया कि बारूद की शक्ति से गोले फेंके जा सकते हैं। कहते हैं कि चीन-वालों ने बहुत पहिले बारूद का आविष्कार कर लिया था। योरोप में इंग्लैण्ड के फ्रांसिस बेकन ने पहिले पहिल बारूद बनायी। किंतु चीन में, और योरोप में भी बहुत दिनों आतिशबाजी छुड़ाने में ही उसका उपयोग होता रहा। सन् १३१३ ई० में जर्मनी के एक पादरी बर्थोल्डश्वार्ज ने एक नली में बारूद भरकर और उसके भीतर उसका विस्फोट करके यह देखा कि नली के भीतर जब बारूद जलती है तो उससे इतनी शक्ति उत्पन्न होती है कि बारूद और नली के मुंह के बीच में जो गोला रख दिया जाय वह विस्फोट की शक्ति से दूर फेंक दिया जाता है। उसने पहिली तोप बनायी। इसी आविष्कार ने सैनिक संसार में क्रांति कर दी। किले अरक्षित हो गये। युद्ध में तोपों की मार से सैनिक आतंकित हो जाते। योरोप के शक्ति-शाली राजा तोपें ढलवाने लगे। उन दिनों पूरी नली नहीं ढाली जाती थी। लोहे की मोटी पत्तियों को गोलाई में रखकर नली बना ली जाती थी, और पीटकर पत्तियों को मिला दिया जाता था। ऊपर से इन्हें लोहे की पत्तियों से बाँध दिया जाता था। इन नलियों का व्यास बनाने वाला अपनी इच्छा के अनुसार छोटा या बड़ा रखता। फलतः कोई दो तोपें एक आकार की नहीं होती थीं। सोलहवीं सदी में स्पेन में राजा पाँचवाँ चार्ल्स राज करता था उसे तोपों का बड़ा शौक था। उसने अनुभव किया कि प्रत्येक तोप की नली के व्यास की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न आकार के गोले बनवाने पड़ते हैं। इसलिए उसने इन नलियों के व्यासों के आकार निर्धारित कर दिये। उसने आज्ञा दी कि तोपें उसके बतलाये केवल सात व्यासों की बनायी जायें। तब से प्रत्येक देश ने अपनी तोपों के आकार निर्धारित कर लिये हैं। उन दिनों की तोपें आज की तोपों को देखते बड़ी अविकसित थीं। आज की तोपें बड़ी जटिल होती हैं। रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र और गणित की उन्नति के साथ तोपों की भी उन्नति होने लगी। अब तोपें विशेष प्रकार के कड़े लोहे या पीतल की ढाली जाती हैं।

तोप की परिभाषा देना कठिन है क्योंकि आज कितने ही अस्त्र हैं जो गोले फेंकते हैं। किंतु साधारण रूप से कहा जा सकता है कि बारूद या विस्फोटक की शक्ति से २० मिलीमीटर (·८ इंच) से अधिक व्यास के गोलों को फेंकनेवाले अस्त्रों को तोप की संज्ञा दी जाती है। ऐसे अस्त्र तीन प्रकार के होते हैं :—

साधारण तोप (गन)—इसकी नली (बरल) लम्बी होती है, वह लम्बी मार करती है और उससे निकले हुए गोले का पथ अपेक्षाकृत चपटा या सीधा होता है।

हाविजर या हाउजर—इसकी नली अपेक्षाकृत छोटी होती है और इससे निकला हुआ गोला इसके मुँह से निकलकर निशाने पर प्रायः एक अर्द्धवृत्त बनाता हुआ जाता है।

मॉर्टर—इसकी नली बहुत छोटी होती है। इसकी मार निकट की (केवल कुछ गज की) होती है। इसका गोला छोटे कोण से एकदम ऊपर उठकर निशाने पर गिरता है।

आजकल की तोपों का उपयोग—आजकल तोपों का उपयोग युद्ध के मैदान में आक्रमण और बचाव—दोनों ही—अवसरों पर किया जाता है। आक्रमण करने के पहिले शत्रुओं की पंक्तियों और जमावों पर कसकर गोला-बारी की जाती है। इससे एक तो मार्ग में जो जो अवरोध (जैसे कँटीले तारों के जाल आदि) होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं; दूसरे शत्रु के जमाव तितर-बितर हो जाते हैं। इससे वह आक्रमण का सामना पूरी तैयारी से नहीं कर सकता। जिस समय अपनी सेना शत्रु की पंक्तियों की ओर बढ़ रही हो, उस समय उस पर गहरी गोलाबारी करने से

शत्रु के सैनिक अपने सिर खाइयों से ऊपर नहीं उठा सकते, और वे हमारे बढ़ते हुए सैनिकों पर गोली चला कर उनकी गति रोक नहीं सकते। बचाव के समय शत्रु के मार्ग पर गोलाबारी करते रहने से शत्रु आगे बढ़ नहीं सकता। इससे उसका आक्रमण या तो रुक जाता है या अव्यवस्थित हो जाता है।

इन लड़ाइयों में जो तोपें उपयोग में आती हैं उनको सामूहिक रूप से फील्ड आर्टिलरी (मैदानी तोपखाना) कहते हैं। इसमें निम्न प्रकार की तोपें होती हैं:—

(१) **भारी तोपें**—इनसे २०० पाउण्ड (प्राय: ढाई मन) भारी गोले चलाये जाते हैं। इनकी मार २०,००० (बीस हजार) गज या प्राय: साढ़े ग्यारह मील से अधिक की होती है। ये तोपें 'हाविजर' कहलाती हैं।

(२) **मझोली तोपें**—इनसे १०० पाउण्ड या प्राय: सवा मन भारी गोले चलाये जाते हैं। इनकी मार १५,००० से २०,००० हजार गज तक (आठ मील से प्राय: साढ़े ग्यारह मील तक) होती है। इन तोपों की नलियों का व्यास ५·५ इंच या इसके आस-पास होता है। साधारण युद्ध में ये तोपें सबसे अधिक उपयोगी होती हैं, क्योंकि सामान्यत: आठ-दस मील से अधिक दूर पर शत्रु पर गोलाबारी करने की आवश्यकता नहीं होती।

(३) **मैदानी तोपें (फील्ड आर्टिलरी)**—साधारण लड़ाई में इन्हींका उपयोग अधिकतर किया जाता है। ये पैदल डिवीजन के साथ होती हैं। इनसे २५ पाउण्ड भारी (प्राय: बारह सेर का) गोला मारा जाता है। इसकी मार १३४०० गज (प्राय: पौने आठ मील) तक की होती है। युद्ध में सामान्य कार्य के लिए यह सबसे अधिक उपयोगी तोप समझी जाती है।

(४) **पहाड़ी तोपखाना**—साधारण तोपें पहियों पर चढ़ी रहती हैं और गाड़ी की तरह खींच कर ले जायी जाती हैं। किंतु पहाड़ों पर गाड़ियाँ नहीं जा सकतीं। इसलिए पहाड़ों की लड़ाई के लिए ऐसी तोपें बनायी जाती हैं जिनके भाग अलग-अलग करके उन्हें खच्चरों पर लाद दिया जाता है और जहाँ आवश्यकता पड़ी, वहाँ उन्हें जोड़कर तोप तैयार कर ली जाती है। ये तोपें हाविजर प्रकार की होती हैं। इनकी नली का भीतरी व्यास इंच होता है और इनसे २० पाउण्ड (प्राय: सेर) भारी गोला चलाया जाता है। इनकी ६,००० गज (प्राय: साढ़ तीन मील) की है।

(५) **पैराट्रूप मैदानी तोपें**--जब कहीं छतरी सेना जाती है तो जहाँ वह उतरती है वहाँसे गोलाबारी करने के लिए उसे तोपों की आवश्य होती है। उनके लिए तोपें भी छतरी के गिरायी जाती हैं। इसलिए ये तोपें बहुत और हलकी बनायी जाती हैं जिससे गिरने ख़राब न हो जायें और छतरी में बोझ न बढ़ ये तोपें सामान्यत: ७५ मिलीमीटर व्यास होती हैं।

(६) **वायुयान नाशक तोपें**— (ऐक-ऐक)—जब वायुयानों का आक्रमण होता है तब उनको गिराने के लिए आकाश में गोले मारे जाते ऊपर जाकर फट जाते हैं और उनके टुकड़े की तरह वायुयान पर लगते और उसे नष्ट देते हैं। कभी-कभी गोला सीधे वायुयान पर है और उसकी धज्जियाँ उड़ जाती हैं। ये तीन प्रकार की होती हैं। (१) हलकी जिसका व्यास ४० मिलीमीटर होता है। गोला ९,००० फुट की ऊँचाई तक जाता शत्रु के विमानों को निशाने पर पहुँचकर उतरना पड़ता है जिससे वे ठीक निशाना बम मार सकें। इसलिए इतनी ऊँची मार वाली तोपें नगरों, शिविरों, कारखानों की लिए उपयोगी होती हैं और सामान्यरूप से का उपयोग होता है। (२) भारी वायुयान तोपें होती हैं जिनकी मार ४०,००० फुट तक जाती है। सामान्य रूप से वायुयान अधिक ऊँचाई पर नहीं उड़ते। बहुत सी तोपें लंबी पंक्ति में खड़ी कर दी जाती हैं और जब के वायुयानों का आक्रमण होता है तब उनके वरत बम-वर्षा की जाती है जिससे जमीन से तक छूटते हुए गोलों का एक पर्दा-सा बन जा

१९६३

इस पर्दे को पार कर शत्रु के वायुयानों का आगे बढ़ना असंभव हो जाता है। (३) एक तीसरे प्रकार की वायुयान नाशक तोप ३·७ इंच होती है। इसे रडार की सहायता से चलाया जाता है। रडार के पर्दे पर दूर से आते हुए शत्रु के वायुयान का पता लग जाता है और उसकी गति तथा दिशा का भी ज्ञान हो जाता है। तब तोप के गोले की गति के हिसाब से वह बिजली के यंत्रों से उस पर चलायी जाती है।

किंतु अब इन वायुयान नाशक तोपों का उपयोग कम होता जा रहा है क्योंकि जो राष्ट्र सैनिक मामलों में उन्नत हैं वे अब वायुयानों को नष्ट करने के लिए प्रक्ष्येपों (मिसिल) का प्रयोग करते हैं। ये प्रक्षेप या तो जमीन से चलाये जाते हैं, या वायुयानों से। ये वायुयान पर अचूक निशाना मारते हैं।

(७) **टैंक नाशक तोपें**—ये तोपें शत्रु के आगे बढ़ते हुए टैंकों को बेकार करने के काम में लायी जाती हैं। ये पिछले (दूसरे) महायुद्ध में बनी, जब टैंकों का उपयोग बहुत अधिक होने लगा था। टैंकों पर मोटी इस्पात की चद्दर चढ़ी होती है जिसके पीछे बैठ कर शत्रु के सैनिक टैंकों पर चढ़ी हुई छोटी तोपें और मशीन गनें चलाते हुए विपक्षी की सेना के निकट आ जाते और उसे हानि पहुँचाते हैं। साधारण गोले या बंदूक की गोलियाँ उनकी इस्पात की मोटी चद्दर को हानि नहीं पहुँचा सकतीं। इसलिए इस्पात की चद्दर बेधने के लिए विशेष प्रकार के गोले बनाये गये हैं। ये गोले इस्पात की चद्दर को बेध कर टैंक के भीतर घुस जाते और भीतर बैठे सैनिकों को मार या घायल कर देते हैं। इन वायुयान नाशक तोपों के गोले १७ पाउण्ड भारी होते हैं। ये तोपें बड़े वेग से गोला मारती हैं, और सीधी मार करती हैं। इनकी मार १५०० गज तक की होती है जिससे तोपची देख सके कि निशाने पर ठीक तरह से गोला लगा या नहीं।

इनके अतिरिक्त समुद्रतट पर बसे नगरों, किलों आदि को शत्रु के जहाजों की गोलाबारी से बचाने के लिए समुद्रतटीय तोपें भी होती हैं। ये सीमेंट के बने पक्के चबूतरों पर चढ़ी होती हैं और बहुत बड़ी और दूर मार की होती हैं। इनके गोले १५ या २० मील तक जा सकते हैं जिससे तट से १५-२० मील दूर के शत्रु के जहाजों पर गोलाबारी की जा सके।

जहाजी तोपें अलग होती हैं। ये जहाजों पर चढ़ी होती हैं। इनमें भी छोटी, मझोली और बड़ी तोपें होती हैं। सबसे बड़ी तोप की नली का व्यास १५ इंच होता है। बड़े लड़ाकू जहाजों पर १५ या १६ इंच मोटी इस्पात की चद्दर चढ़ी होती है। १५ इंची तोप का गोला १८ या २० मील दूर से मारा जाता है और इतना शक्तिशाली होता है कि शत्रु के जहाजों की इस मोटी चद्दर को बेध कर उसमें छेद कर देता है। ऐसा एक गोला २५ मन भारी होता है! ये जहाजी तोपें संसार की सबसे अधिक शक्तिशाली तोपें होती हैं। मैदान की लड़ाइयों में इतनी भारी तोपों का प्रयोग नहीं होता।

गोले की गति—जिस गति से तोप का गोला तोप के मुँह से निकलकर निशाने पर जाता है उसे उसका 'वेग' या 'विलोसिटी' कहते हैं। कुछ तोपों को चलाते समय उनकी नलियाँ पृथ्वी से प्रायः समानान्तर रखी जाती हैं। उनसे जो गोले छूटते हैं वे प्रायः सीधे जाते हैं, अधिक ऊँचे नहीं उठते। ऐसी तोपें 'गन' (या साधारण तोप) कहलाती हैं। सीधे जानेवाले गोले के पथ को चपटा प्रक्षेप पथ (फ्लैट ट्रेजेक्टरी) कहते हैं। किंतु दागते समय कुछ अन्य तोपों की नलियों को इस प्रकार ऊपर की ओर उठा दिया जाता है कि वे पृथ्वी से कोण बना देती हैं। इस कारण उनसे छोड़े हुए गोले पहिले ऊपर उठते हैं और आकाश में एक प्रकार का अर्द्धवृत्त बनाते हुए निशाने पर गिरते हैं। इस विशेष प्रकार के अर्द्धवृत्त को 'परवलय' (अंग्रेजी में पैराबोला) कहते हैं, और इसके पथ को 'ऊँचा प्रक्षेप पथ' (हाई ट्रेजेक्टरी) कहते हैं। ऐसी तोपें हाविजर या हाउजर कहलाती हैं। साधारण हाविजर के गोले अधिकतम ३ से ५ मील की ऊँचाई तक जाते हैं। पिछले महायुद्ध में जर्मनों ने एक वृहदाकार भीषण तोप बनायी थी जिसका नाम 'बिग बर्था' रखा गया था। इससे उन्होंने ८० मील दूर से पैरिस पर गोलाबारी की थी। छूटने पर इसका गोला अपने पथ पर जो परवलय बनाता था उसकी अधिकतम ऊँचाई प्रायः २० मील थी—अर्थात् संसार के सबसे ऊँचे गिरि शिखर ऐवरेस्ट से चौगुनी ऊँची!

किंतु अब वायुयानों के द्वारा दूर के निशानों पर बम फेंके जा सकते हैं, और हजारों मील दूर से प्रक्ष्येप (मिसिल) मारे जा सकते हैं। इसलिए दूर की मार के लिए तोपों का उपयोग बंद होता जा रहा है।

तोप के भाग---तोप अपेक्षाकृत एक सरल अस्त्र है। इसका मुख्य और महत्त्वपूर्ण भाग इसकी नली है। यह नली एक ओर (बाहर की ओर) खुली रहती है। पीछे की ओर इसमें ढक्कन लगा रहता है जो खोला जा सकता है और फिर बड़ी दृढ़ता से बन्द किया जा सकता है। नली भीतर से बिल्कुल चिकनी नहीं होती। उनमें घूमती हुई लकीरें बनी होती हैं। इन दरारों के कारण गोला नली के मुँह से घूमता हुआ निकलता है और बराबर घूमता हुआ अपने प्रक्षेप पथ पर जाता है। आठ-इंची गोला छोड़े जाने पर वह हवा में प्रति मिनिट ५,८०० बार घूमता है। इस प्रकार घूमने के कारण उसके पलीते में लगी हुई एक कील ढीली हो जाती है जिसके गिरते ही पलीता भभक उठता है और गोला फूट जाता है। इस नली को उठाने और गिराने के लिए चर्खियाँ लगी होती हैं। पुराने समय में पलीता जलाकर तोप चलायी जाती थी, किंतु अब वह बिजली से चलायी जाती है। इसलिए तोप के साथ बिजली के यंत्र भी रहते हैं। जब तोप चलानी होती है तब बिजली खोल देते हैं। इसके खोलने से एक प्लेटिनम का तार जो गोले की टोपी को छुए रहता है, गर्म होकर तुरंत लाल हो जाता है। उसकी गर्मी से टोपी में भरी बारूद या विस्फोटक पदार्थ भभक उठता है और तोप चल जाती है। जब तोप चलाई जाती है तब उसे (तोप को) बड़े जोर से धक्का लगता है। जब तोपें गाड़ियों पर चढ़ी होती थीं तब वे उस धक्के से कई गज पीछे हट जाती थीं। किंतु अब तोपों की नलियाँ एक तरह के पालने पर चढ़ाई जाती हैं जिससे सारे धक्के का वेग इस पालने में लग कर समाप्त हो जाता है और तोप अपनी जगह से पीछे नहीं हटती। पहिले तोपें जिन गाड़ियों पर चढ़ायी जाती थीं उनके पहिए ताँगों के पहियों की तरह लकड़ी के होते थे और उन पर लोहे की हाल चढ़ी होती थी। इसलिए उनका खींचना कठिन था और वे ऊबड़-खाबड़ स्थानों में नहीं ले जायी जा सकती थीं। उन्हें खच्चर या तोपखाने के भारी घोड़े खींचते थे। किंतु अब उनमें रबड़ के बड़े हवा भरे पहिए लगाये जाते हैं और उन्हें मोटर या ट्रैक्टर से खींचा जाता है। पहाड़ों पर ले जाने के लिए तों प्रकार बनायी जाती हैं कि उनके भाग अलग कर जा सकें। अलग करके उन्हें खच्चरों पर लाद जाता है, और इच्छित स्थान पर उन भागों को मिलाकर तोप काम में लायी जा सकती है।

तोप का गोला---वास्तविक अस्त्र तो गोला है। तो केवल उसे मारने का साधन है। गोला ही निशाने लगकर शत्रु को हानि पहुँचाता है। ये गोले कई के होते हैं, और इस बात को ध्यान में रखकर बनाये हैं कि उनसे क्या काम लेना है। (१) कुछ गोले सै को मारने और घायल करने को बनाये जाते ये विस्फोटक गोले होते हैं, इनकी शक्ति का अनुमान किया जा सकता है कि जहाँ २५ पाउंड भारी ऐसा फटता है उसके आसपास ५० गज के भीतर के आद को उसके टुकड़े मार डालते या घायल कर देते हैं। कुछ गोलों का उद्देश्य यह होता है कि जहाँ गिर फूटें वहाँके आस-पास के मकानों, घेरों, खाइयों, तारों के जाल आदि को नष्ट कर दें। (३) कुछ सीमेंट-कंक्रीट के मकानों या चौकियों (पिल बाक्सों) धराशायी करने के लिए होते हैं। (४) कुछ गोले दार इस्पाती टैंकों या मोटरों के कवचों को बेधने के में आते हैं। इनका अगला सिरा विशेष प्रकार की इस्पात का होता है। (५) कुछ गोले धुआँ फैला लिए बनाये जाते हैं। जहाँ वे फटते हैं वहाँ आस-पा तक घना और गहरा धुआँ फैल जाता है। यह धुआँ गहरा होता है कि उसके आर पार कुछ दिखा देता। यदि शत्रु की सेना तोपों या बन्दूकों से मार रही है तो उसके आगे इस प्रकार का धुएँ का गहरा कर देने से वह निशाना साधकर हम पर गोले गोला नहीं चला सकता। यदि हमें शत्रु पर आ करना है तो उसके आगे धुआँ का पर्दा कर देने के हमारी सेना उसपर आक्रमण करके उसके पास तक सकती है, और शत्रु हमारे बढ़ते हुए सैनिकों को दे सकने के कारण ठीक तरह से उसकी गति को अवरुद्ध कर सकता। (६) एक गोले आग लगाने के लिए जाते हैं। जब वे शत्रु के शिविर में फूटते हैं तो उनसे हुआ तरल पदार्थ निकलता है जो आस-पास की ज आग लगा देता है। (७) एक गोले प्रकाश कर

१९६३

लिए दागे जाते हैं। जब वे रात्रि में आकाश में फटते हैं तब गहरी काली रात में भी मीलों तक थोड़ी देर के लिए दिन का सा प्रकाश कर देते हैं। इस प्रकार गोलों के भिन्न-भिन्न उपयोग हैं। जिस काम के लिए गोला बनाया जाता है, उसमें उसी तरह का मसाला (रासायनिक पदार्थ) भरा जाता है।

तोप के गोले के दो भाग होते हैं। मुख्य गोला, और उसकी टोपी। टोपी का काम यह है कि जब पलीता लगाने पर वह भभके तब उसकी बारूद में विस्फोट हो, और उस विस्फोट के वेग से उसके आगे रखा गोला नली के मुँह से बड़े वेग से बाहर फेंक दिया जाय। यह आगे चलकर समझाया जायगा कि टोपी के विस्फोटक के फटने से गोला किस प्रकार बाहर फेंक दिया जाता है।

कुछ गोलों में बारूद या विस्फोट की टोपी उसके निचले भाग में उसी प्रकार बनी होती है जिस प्रकार बंदूक के कारतूस में। कारतूस के सिरे पर शीशे की गोली होती है, और उसके नीचे कागज की खोल में विस्फोटक भरा होता है। तोप में इस कारतूस के पिछले भाग में पलीता लगा होता है। किंतु कुछ गोलों में यह व्यवस्था नहीं होती। तोप का पिछला सिरा खोलकर उसमें पहिले गोला भर दिया जाता है और उसे लकड़ी से ठोंककर नली में कुछ आगे बढ़ा दिया जाता है। इसके बाद, गोले के पीछे, कपड़ों के थैलों में भरा हुआ विस्फोटक नली में भर दिया जाता है। थैले के पिछले भाग में पलीता होता है जिसमें बारूद या अन्य कोई शीघ्र भभक उठने वाला रासायनिक पदार्थ भरा रहता है। इसे बिजली से भभका दिया जाता है जिसके भभक उठने पर थैलों में भरा हुआ विस्फोटक पदार्थ एकदम फूट पड़ता है और उसकी गैस बन जाती है। थैलों में, या गोले के निचले भाग (टोंटी) में भरा हुआ विस्फोटक सामान्यत: कॉर्डाइट नाम का पदार्थ होता है।

विस्फोटक दो प्रकार के होते हैं: निम्न विस्फोटक (low explosives) और उच्च विस्फोटक (high explosives)। निम्न विस्फोटक गोले को तोप से बाहर फेंकने के काम में आते हैं, और उच्च विस्फोटक गोले के भीतर भरे जाते हैं। ये इतने शक्तिशाली होते हैं कि फटने पर गोले के मोटे लोहे के आवरण को टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं।

गोले का आकार शिवलिंग की तरह गावदुम होता है। मनुष्यों को मारने के लिए जो गोले होते हैं उनका आगे का सिरा कुछ गोलाई लिये होता है। किंतु जो गोले लोहे की मोटी चद्दर बेधने के लिए बनाए जाते हैं उनका अगला सिरा नुकीला होता है।

गोले का पिछला भाग आगे के भाग से कुछ कम चौड़ा होता है और उसमें आगे थोड़ा निकला हुआ एक भाग होता है जिसे ड्राइविंग बैंड कहते हैं। इसके बाद मुख्य गोला होता है जो पोला होता है किंतु जो लोहे का बना होता है। इस पोले भाग में या तो केवल उच्च विस्फोटक, या उच्च विस्फोटक और धुआँ या प्रकाश उत्पन्न करनेवाला रासायनिक पदार्थ भरा होता है। गोले के नुकीले सिरे पर एक फ्यज लगा होता है जिस पर धक्का लगने से, या घूमते समय जिसके ढीले हो जाने से गोले में भरा हुआ उच्च विस्फोटक फूट पड़ता है। यह विस्फोट इतने जोर का होता है कि गोले के लोहे की दीवार टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और ये टुकड़े चारों ओर गोली की तरह छिटक जाते हैं।

निम्न विस्फोटक पदार्थों में सबसे साधारण कॉर्डाइट नामक पदार्थ है। यह नाइट्रोग्लिसरीन, गन कॉटन और मिनरल जैली के संयोग से बनाया जाता है। इसे रस्सी के आकार में बनाते हैं। पलीते की बारूद के भभकने से यह सहसा जल उठता है और एकदम इसकी गैस बन जाती है।

डाइनामाइट और ट्राईनाइट्रोटालीन नामक दूसरे प्रसिद्ध विस्फोटक हैं। पिछले पदार्थ को संक्षेप में टी० एन० टी० कहते हैं।

तोप गोला कैसे फेंकती है? संसार के सारे पदार्थ या तो ठोस होते हैं, या तरल या धुएँ, भाफ अथवा गैस के समान सूक्ष्म रूप में। एक पदार्थ तीनों रूप ले सकता है। जैसे, पानी जब जम कर ठोस हो जाता है, तब वह हिम या बर्फ कहलाता है और पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। साधारण रीति से पानी तरल रूप में रहता है। जब वह गरम किया जाता है तब भाफ बनकर गैस का रूप ले लेता है। यहाँ दो बातें याद रखनी चाहिए। पहली तो यह कि जब ठोस अवस्था से तरल या गैस की अवस्था में आता है तब उसका परिमाण (वाल्यूम) या आकार बढ़ जाता है। ठोस अवस्था में उसे जितना स्थान चाहिए, उससे कई गुना अधिक स्थान उसे गैस के रूप में आने पर आव-

श्यक होता है। दूसरी बात यह है कि जब कोई पदार्थ गरम होता है तब भी उसका आकार बढ़ता है।

अब देखिए कि पदार्थों के गैस बनने पर बढ़ जाने का क्या परिणाम होता है। बटलोई में पानी गरम करते समय यदि उसके मुँह पर एक कटोरी रख दी जाय तो आरम्भ में पानी और कटोरी के बीच जो स्थान है उसमें हवा भरी होगी। किंतु जब पानी की भाफ बनने लगती है तो वह इस स्थान की हवा का स्थान घेर लेती है। पानी की एक बूंद जब भाफ बनती है तो अपने आकार से कई गुना अधिक स्थान घेर लेती है। जब बटलोई का खाली स्थान भर जायगा, और नयी भाफ बनती रहेगी तथा कटोरी के ऊपर रखे रहने के कारण बाहर न निकल पावेगी तो उसका दबाव बढ़ जायगा और वह बटलोई से बाहर निकलने का प्रयत्न करेगी क्योंकि अब बटलोई में उसके लिए जगह नहीं है। वह बटलोई में तो छेद करके निकल नहीं सकती। इसलिए वह ऊपर रखी कटोरी को अपने वेग से थोड़ा ऊपर उठा देती है और बाहर निकल जाती है। यदि भाफ का वेग अधिक हुआ तो कभी-कभी वह कटोरी को दूर फेंक देती है।

सारांश यह कि किसी घिरी हुई या बंद जगह में जब कोई पदार्थ एकाएक गैस का रूप लेता है तो वह फैलता है और निकलने के लिए उस ओर जाता है जिधर उसे सबसे कम रुकावट मालूम होती है। यदि बंद वस्तु में गैस का दबाव बहुत अधिक बढ़ जाय तो कभी-कभी उसके वेग के कारण वह वस्तु फट जाती है। इंजिन के बायलरों के फटने की घटनाएँ इसी कारण से होती हैं। इसी सिद्धान्त पर तोप और बंदूकों का निर्माण हुआ है।

पुरानी चाल की बंदूकों और तोपों में पहिले मुँह की ओर से ठूँस-ठूँसकर बारूद भरी जाती थी, और बाद में उसके ऊपर गोली या गोला भर दिया जाता था। जब बंदूक का घोड़ा दबाया जाता, या तोप की बारूद में पीछे की ओर से जलता पलीता लगाया जाता तब बारूद बंद नली में (घिरी जगह में) एकाएक भभक उठती और एकदम उसकी गैस बन जाती। यह गैस अपने लिए उस स्थान से कई गुना अधिक स्थान चाहती है जितना बारूद ने घेर रखा था। नली और घोड़े की ठोस दीवाल होने के कारण वह उधर तो बढ़ नहीं सकती। उसे बढ़ने के लिए नली का खुला छेद ही मिलता है जिस पर गोली या गोले की डाट लगी हुई है। वह बड़े वे उधर ही बढ़कर निकलती है और निकलने के वेग से या गोले को नली के बाहर दूर तक फेंक देती है।

विस्फोट होने पर बारूद या कार्डाइट पलक गैस बन जाते हैं और उनका आकार एकदम बढ़ है। वह कितना बढ़ता है, इसका अनुमान इस बा किया जा सकता है कि एक ग्राम कार्डाइट रखने के एक घन सेंटीमीटर जगह चाहिए, किंतु भभकने पर एक ग्राम कार्डाइट से जो गैस बनती है उसके लिए १० घन सेंटीमीटर जगह चाहिए। अर्थात् गैस बनने पर लिए एक हजार गुना बड़ा स्थान चाहिए। जब भभ के कारण यह गरम हो जाती है तब तो इसका आ (वॉल्यूम) और भी बढ़ जाता है। तोप में तो बहुत कॉर्डाइट भरा रहता है। जब बंदी नली में उसका वि होता है तो उससे अपार गैस बनती है। उस बंद जग निकलने के लिए वह जोर का दबाव डालती है। यदि पाव टी० एन० टी० का विस्फोट हो तो इससे बनी गैस दबाव तोप की नली के भीतर प्रत्येक इंच पर २०० (प्रायः ५,६०० मन) के वजन का होगा! आठ इंची का गोला १०० सेर या ढाई मन का होता है। उसकी तो नली में कार्डाइट का विस्फोट होने पर उससे बनी गैस दबाव इतना भयंकर और वेगवान होता है कि वह में रखे गोले को पाँच मील दूर फेंक देती है। जिस समय वह तोप के मोहरे से निकलता है उस उसकी गति २०० फुट प्रति सैकंड अर्थात् प्रायः १३० प्रति घंटे होती है।

इस प्रकार तोप की नली से गोला दगता है, उसके मोहरे से निकलकर लक्ष्य या निशाने की ओर है। गोले में आगे की ओर एक पलीता या फ्यूज लगा है। ये पलीते या तो गिरने पर धक्के से फूटते हैं या तरह लगाये जाते हैं कि गिरने के बाद निर्धारित सम फूटें। पहिले प्रकार को धक्के का पलीता (फ्रिक्शन फ् और दूसरे को निर्धारित समय पलीता (टाइम फ् कहते हैं।

जब गोले का यह पलीता फूटता अर्थात् जल है तब उसकी गर्मी से गोले में भरा उच्च विस्फोटक विस्फोट हो जाता है और उसके टुकड़े-टुकड़े हो जा कुछ पलीते इस प्रकार लगाये जाते हैं कि ऊँचाई पर

टें। ये प्रकाशक गोलों (स्टार शेल) और बमनाशक गोलों में सामान्यतः लगाये जाते हैं।

तोपखाने का संगठन—हम सरस्वती में सेना के संगठन का वर्णन छाप चुके हैं। सेना का एक निश्चित भाग 'डिवीजन' कहलाता है। प्रत्येक डिवीजन को तोपखाना दिया जाता है।

तोपखाने में भी रेजिमेंट होते हैं। एक रेजिमेंट में तीन बैटरी होती हैं। एक बैटरी में ८ तोपें होती हैं। बैटरी को दो भागों में बाँटते हैं। प्रत्येक भाग को ट्रूप कहते हैं और प्रत्येक ट्रूप में ४ तोपें होती हैं। प्रत्येक ट्रूप के फिर दो टुकड़े किये जाते हैं जिन्हें सेक्शन कहते हैं। प्रत्येक सेक्शन में दो तोपें होती हैं। यह संगठन निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट हो जायगा :—

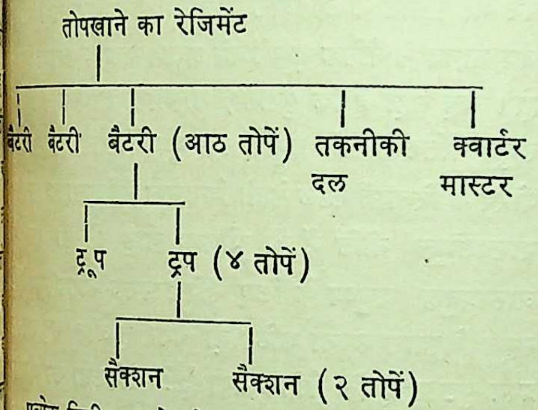

प्रत्येक डिवीजन को तोपखाने के ऐसे ३ रेजिमेंट दिये जाते हैं। प्रत्येक रेजिमेंट में साधारण २४ तोपें होती हैं। इस प्रकार ३ रेजिमेंटों में ७२ तोपें होती हैं। इन साधारण रेजिमेंटों के अतिरिक्त प्रत्येक डिवीजन को वायुयान-नाशक तोपों का एक रेजिमेंट दिया जाता है। इस रेजिमेंट में ५४ तोपें (बोफर्स) होती हैं। एक टैंकनाशक तोपों का भी रेजिमेंट होता है जिसमें २४ वायुयाननाशक तोपें होती हैं।

डिवीजन का जनरल आवश्यकतानुसार इन्हें अपने अधीनस्थ ब्रिगेडों में बाँट देता है। ब्रिगेडियर को जो तोपखाना मिलता है, वह उसे सुविधा और आवश्यकता के अनुसार बटालियनों को दे देता है। प्रत्येक तोप को चलाने के लिए तोपची, परिदर्शक आदि होते हैं।

चार मुक्तक

श्री रतिभानुसिंह नाहर

भ्रम है सब, दिन कैसा, रात क्या !
तममय या ज्योति-सिन्धु-स्नात क्या !
अपनी ही साँसों से बुझ गया,
माटी का दिया हूँ बिसात क्या !

❀

जब तक यह चक्र कुम्भकार का—
यह ज्योतित स्नेह ज्योतिधार का—
तब तक यूँ जल-जल कर बुझूँगा,
बुझ कर भी रहूँगा अँगार का।

❀

जीवन के ललचाते राग से—
इतराते मृत्यु के विराग से—
तेरी भी प्यास कभी बुझेगी,
पूछूँगा मरघट की आग से।

❀

मरनेवालों को यहाँ लाके दिखाना होगा—
हर कफन, हर दफन, हर पर्दा उठाना होगा—
जिन्दगी - मौत में चलती है दुश्मनी कब से,
लेने-देने के मालिकों को बताना होगा।

साहित्य और नैतिक मूल्य

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी

साहित्य और नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध का प्रश्न आजकल बहुधा उठाया जाता है। यह कहना कठिन है कि यह प्रश्न कितना साहित्यिक दृष्टि से उठाया जाता है और कितना साहित्येतर दृष्टिकोण के कारण, किंतु यह स्पष्ट है कि इस प्रश्न का अंतिम उत्तर उपलब्ध नहीं हो सका है। आज से कुछ शताब्दि पूर्व ऐसा कोई प्रश्न पुराने साहित्यकार के सम्मुख नहीं था। मानव एक सर्वव्याप्त पारमार्थिक सत्ता में विश्वास करता था जिसका स्वानुभव ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय था। साहित्य सृजन का आरम्भ वाणी विनायक की वन्दना से होता था और मानव के नैतिक आधार, मानदण्ड व उद्देश्य स्पष्ट थे। विज्ञान के विकास ने मानव के विश्वास को जड़ से हिला दिया। उसने मनुष्य के तन को चीर कर देखा, पेड़ को काट कर देखा, पत्थर को पीस कर देखा पर उसे कहीं भी सर्व व्याप्त सत्ता से बौद्धिक साक्षात्कार नहीं हुआ। स्वभावतः उसका विश्वास डगमगाया। साहित्य व जीवन के वे मूल्य जो एक काल से सर्वमान्य चले आ रहे थे, संदिग्ध हो गये और शंका, अनिश्चय व जिज्ञासा ज्ञान के समस्त क्षेत्र में परिव्याप्त हो गयें। मूल्यों पर इतना संकट कभी नहीं था जितना आज है। आज जो भी मूल्य है, वह संदिग्ध है, और उनका नकार भी संदिग्ध है। श्रद्धा भी संदिग्ध है और संदेह भी संदिग्ध है। मानव-जीवन के इतिहास में ऐसी परिस्थिति संभवतः कभी उत्पन्न नहीं हुई होगी। श्रद्धा और संदेह के इस द्वंद्व ने घोर अनिश्चय की स्थिति उत्पन्न की है। यह आभ्यांतरिक संकट आज के साहित्य का प्रमुख लक्षण है। टी० एस० इलियट ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है,

> "The greater part of our reading matter is coming to be written by people who not only have no real belief but are even ignorant of the fact that they are still people in the world so backward or so eccentric as to continue to believe."

श्रीराधाकृष्णन् द्वारा Recovery of Faith. से उद्धृत

नैतिकता बहुत कुछ देश काल पर आधारित होती है। अतएव उसकी कोई भी परिभाषा आत्यन्तिक नहीं हो सकती। व्यावहारिक रूप में नैतिकता एक प्रका लोकरूढ़ि या परम्परा होती है, जो हर समय और जिक स्थिति के लिए अलग-अलग होती है। कुमारसंभव का एकादश सर्ग जिसमें शिव-पार्व उन्मुक्त कामक्रीड़ा का वर्णन है, एक समय श्रेष्ठ रहे होंगे। तो दूसरे दिन उनके पठन-पाठन से जाने लगा। कोणार्क व खजुराहो के शिल्पखंडों को एक दिन महान् कलात्मक कार्य जानकर निर्मित किया होगा, आजकल मंदिरों पर कोई भी ऐसे शिल्प प्रद उचित नहीं समझता। किंतु देश-काल से प्रभावि पर भी संसार के इतिहास में ऐसा कोई युग नहीं जब मानव ने नैतिक मूल्यों को अनावश्यक व त्याज्य हो। यह सही है कि पुरानी, शास्त्रीय, धार्मिक व संभूत नैतिकता की प्रवृत्ति इस युग में ह्रासमान है योरप के रिनासाँ काल से ही विचारक नैतिकता का मानवसंभूत नीति में ही खोजना चाह रहे हैं। आत्मप्रबुद्ध मनुष्य के लिए ईश्वरपरक नैतिक मू सहज विश्वास करना कठिन हो गया है और वह प्रश्न पूछता है कि नैतिक क्या है? नैतिकता का आज मनुष्य स्वयं बनना चाहता है, और जो दायित्व धर्म या ईश्वर पर था, उसे वह आज स्वयं वहन चाहता है।

आज मानव उन्नति कर रहा है, और यंत्र उन्नति का साधन है। यंत्र नैतिक व अनैतिक दो निरपेक्ष है। पर मानव यंत्र के साथ यंत्र नहीं हो और न नैतिक या अनैतिक के विचार को ही त्याग है। यही कारण है कि यांत्रिकता की वृद्धि के साथ-सा नैतिक मूल्यों के बारे में और भी जागरूक होते जा वे नैतिकता के प्रचलित रूप से संतुष्ट नहीं हो पा वैसे साहित्यकार नैतिकता के प्रचलित रूप से कभी हो भी नहीं सकता। क्योंकि इसका अर्थ होगा, संघर्ष का अभाव, जो वास्तव में कभी होता वास्तव में साहित्यकार का लगाव नैतिकता के उन मूल स्रोतों से होता है जो उसे आत्मनियंत्रण के लिए

करते हैं, ताकि वह श्रेष्ठ सामाजिक प्राणी बन सके। उसका समस्त प्रयत्न इन्हीं मूल्यों के स्थापन व पोषण की ओर होता है।

आज जब परम्पराएँ तेजी से बदलती जा रही हैं, मानव कैसे नैतिक बना रह सके, हमारे युग और साहित्य की प्रमुख समस्या है। साहित्यकार का दायित्व पाठक को कुछ सामाजिक नैतिक मूल्यों से परिचित कराने भर में ही समाप्त नहीं हो सकता, अपितु उसे ऐसे परिवेश का निर्माण करना होगा, जिसमें नैतिक बने रहने को हर पाठक में अंतःप्रेरणा हो। नैतिक मूल्य सामाजिक रूढ़ि नहीं अपितु व्यक्तित्व के निर्माणकारी तत्त्व होना चाहिए। पूर्ण एकीकृत व्यक्तित्व न केवल श्रेष्ठ सामाजिक घटक होता है अपितु अपने आप में मानवता की चरम उपलब्धि होता है। नैतिक मूल्यों में विश्वास भर ही आवश्यक नहीं होता जब तक वे मूल्य आचरण में प्रतिबिम्बित न हों, तब तक समाज का निर्माण सही दिशा में नहीं हो सकता। विचार व आचरण में सामञ्जस्य प्रधान नैतिक मूल्य है, जो मानव को नैतिक बनाये रखने में सर्वाधिक सक्षम होता है। साधारण शब्दों में हम इसे ईमानदारी कहते हैं। यह ईमानदारी ही सबसे प्रधान नैतिक मूल्य है। आज ऐसे परिवेश के निर्माण की आवश्यकता है, जिसमें मानव ईमानदार बन सके व बना रह सके। इस ईमानदारी का प्रमाण मानव स्वयं होना चाहिए, क्योंकि मानव जो मानता है, और समाज जो मानता है (ईमानदारी से, धींगा धींगी से नहीं) उसमें कोई वास्तविक विरोध नहीं हुआ करता। समाज की नैतिक मान्यताएँ, व्यक्तियों की नैतिक मान्यताओं की ही औसत होती हैं, अतएव औसत इकाई का विरोधी हो, ऐसा मानने की कोई गुंजाइश नहीं प्रतीत ोती। इसलिए यह शंका, 'कि यदि मानव अपना प्रमाण यं बनने लगा, तो समाज विश्रृंखलित हो जावेगा, निर्मूल । कर्म व आचरण में सामञ्जस्य या दूसरे शब्दों में टिग्रिटी या ईमानदारी ही नैतिकता का मूलाधार है ससे समस्त नैतिक मूल्य निस्सरित होते हैं।

साहित्य में यह प्रश्न हाल में और भी तेजी से उठाया ने लगा है। पिछले दो सौ वर्षों में इँगलैंड में टाब्स, ट, मिल, हक्सले, लेविस, आस्टिन, डार्विन आदि साहित्य- र व विद्वान् हुए हैं, जो नास्तिक थे और मानव संभूत तिक मूल्यों के विवेचन के लिए प्रयत्नशील हुए। मनो- ज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण मानव मन के अंतर घुसकर वैज्ञानिक ढंग से विचार करना साहित्यकार को य बन गया। परिणाम यह हुआ कि समाज के प्रचलित ओं को विशेषकर यौन-मान्यताओं को इससे विशेष लगी। टामस मान का 'ब्लैक स्वान' व लारेन्स के 'लेडी टरलेज लवर' ने हाल ही में काफी हलचल पैदा की। ली में अज्ञेय का 'नदी का द्वीप' अपने साहसिक प्रयास के रण वार्त्ता का विषय रहा। ऐसे अनेक प्रयासों ने साहित्य अश्लीलता का प्रश्न पैदा किया है। मानव की मौन भावनाओं का यथातथ्य चित्रण आज बुरा नहीं माना जाता। वैसे भी अश्लीलता की कोई आत्यन्तिक परिभाषा तो हो नहीं सकती। समय व परिस्थिति के अनुसार वह बदलती रहती है। मोटे तौर पर जुगुप्सा उत्पन्न करने- वाली कृति अश्लील कही जा सकती है। पर एक ही कृति अपरिपक्व पाठक के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न कर सकती है पर परिपक्व पाठक के हृदय में पैदा नहीं करती। अत- एव यह विवादास्पद प्रश्न हो जाता है कि क्या उसे अश्लील की संज्ञा दे दी जावे। आज का साहित्यकार श्लील-अश्लील को तत्कालीन सामाजिक मान्यता का प्रश्न मानता है, वह तो कृति पर केवल सुंदर असुंदर की दृष्टि से ही विचार करता है। ओल्ड वेली में, 'लेडी चेटरलेज लवर' के मामले में बचाव पक्ष की ओर से साक्षी देते हुए प्रोफेसर पिंटो ने कहा है,

"The real culture makes us give to a word only those mental imaginative reactions which belong to mind and save us from violent and indiscriminate reactions which may wreck social decency. In the past, man was too weak minded or crude minded to contemplate his own physical body and physical functions without getting all messed up with physical reactions that overpowered him. It is no longer so, culture and civilisation has taught us to separate the reactions."

स्पष्ट है कि औचित्य से हीनकर नंगापन देखना या दिखाना ही अश्लील है। बच्चे की नग्नता अश्लील नहीं लगती, किंतु वयस्क की लग सकती है। इसलिए यदि कोई साहित्यिक कृति सौंदर्य दृष्टि से हीन होकर या दूसरे शब्दों में औचित्य-हीन होकर केवल नंगेपन का प्रदर्शन करती है, तो अश्लील मानी जावेगी; और असामाजिक होगी। समाज को अधिकार होना चाहिए कि ऐसी कृति पर आवश्यक नियंत्रण करे। जिस प्रकार साहित्यकार समाज से संरक्षण चाहता है, उसी प्रकार समाज भी साहित्यकार से संवर्द्धन चाहता है। यह तो पारस्परिक व्यवहार है, स्वाभाविक है कि साहित्यकार सामाजिक आचरण का अनुशासन स्वीकार करे। बहुधा ऐसा होता है, कि साहित्यकार को समाज की तत्कालीन मान्यताएँ अनुचित व त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती हैं। ऐसी स्थिति में वह क्या करे? यह टकराहट की स्थिति है। पर टकराना हरएक के वश की बात नहीं। कुछ टकराते हैं, अधिकांश समझौता कर लेते हैं। जो अड़ते हैं, नुकसान भी उठाते हैं, पर नये मूल्यों व परम्पराओं का निर्माण करते हैं। समय की बालुआ पर पदचिन्ह वे ही छोड़ जाते हैं अतएव टकराना या समझौता करना साहित्यकार का अपना निजी प्रश्न होता है, जो उसकी प्रवृत्ति, चरित्र व सामर्थ्य पर निर्भर होता है। किंतु यदि कोई रचना, चाहे वह कितनी ही परिपक्व हो, अपरिपक्व पाठक में असामाजिक भावनाएँ जगाती है, तो ऐसी स्थिति में क्या उसे प्रकाशन पाने दिया

जावे ? दूध स्वास्थ्यकर भोजन है किंतु अतिसार के रोगी को हानि पहुँचाता है, तो क्या दूध का उत्पादन बंद कर दिया जावे ? समाज को अधिकार है कि वह आवश्यक नियंत्रण व नियमन करे। श्रेष्ठ स्थिति वह होती है जिसमें न दूध का उत्पादन ही बंद होता है और न अतिसार के रोगी को दूध ही मिल पाता है। श्लीलता पूर्ण दृष्टि में निहित है, अधूरापन चाहे लेखक में हो या पाठक में, असाहित्यिकता का उद्‌गमस्थान है; क्योंकि जैसा प्रोफेसर पिंटो ने कहा है : सभ्यता के विकास ने हमें प्रतिक्रियाओं को निरपेक्ष दृष्टि से देखना सिखा दिया है।

कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न पैदा होते हैं। इस सामाजिक नियंत्रण की मर्यादा क्या हो ? क्या सामाजिक नियंत्रण साहित्यकार की स्वाधीनता का हनन नहीं करेगा ? दूसरी ओर, व्यावसायिकता के इस युग में, जब पत्रिकाओं का संपादन व साहित्य का प्रकाशन व्यावसायिक लाभ की दृष्टि से किया जाता है, साहित्यकार नैतिकता का कहाँ तक निर्वाह कर सकेगा ? क्या सरकारी कुर्सी पर बैठकर साहित्यकार चिंतन की स्वाधीनता की रक्षा कर सकता है ? आज से पच्चीस वर्ष पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी। द्विवेदी युग के साहित्यकार अपनी स्पष्ट नैतिक मान्यताएँ रखते थे, चाहे हम दकियानूस कहकर उनका उपहास करें, किंतु यह निर्विवाद है कि चारित्रिक दृष्टि से वह काफी ऊँचे थे। आज के व्यावसायिक युग में नैतिकता का निर्वाह एक कठिन समस्या है। जहाँ तक साहित्यकार की स्वतंत्रता का प्रश्न है, उसकी रक्षा अनिवार्य है। मानव का नीर-क्षीर विवेक इस स्वतंत्रता का आधार हो सकता है। "इस प्राथमिक मान की रक्षा, जिससे और सब मान उद्‌भूत होते हैं, और सब मर्यादाएँ और प्रतिष्ठाएँ जन्म लेती हैं, हम सबका उत्तरदायित्व है।" (अज्ञेय—आत्मनने किंतु परिस्थिति ऐसी पैदा होती जा रही है कि समस्त दृष्टिकोण ही व्यावसायिक होता जा रहा है। अवसरवादिता युगधर्म के नाम पर स्वीकार की जाने लगी है। जिसके परिणामस्वरूप आज का साहित्यकार चिंतन की स्वाधीनता की परवाह कम करने लगा है। दूसरी ओर दलगत राजनीति के अपने अलग तकाजे हैं। बहुत कुछ रचनाएँ किसी नैतिक दायित्व की भावना पर आधारित न होकर किसी ग्रुप या दल विशेष के हित संवर्द्धन के लिए होने लगी हैं। दल की नीति स्वाधीन विवेक पर प्राथमिकता पाने लगी है। यह एक अजीब निस्सहायता की अवस्था है, जिसके चरणों पर व्यक्तिगत स्वातंत्र्य सर्मापित होने लगा है। नैतिक दृष्टि से यह कहाँ तक उचित है, एक विचारणीय प्रश्न है।

लगता ऐसा है कि सत्ता लोलुप व व्यावसायिक इस युग में साहित्यकार का स्वतंत्र रहना कठिन है। प्र पर प्रलोभन व भय है। पत्र, रेडियो, सरकारी प्रक दूतावासों की कूटनीतिक पत्रकारिता आदि ऐसे प्र हैं, जिनसे बचकर साहित्यकार का स्वतंत्र रहना क प्रतीत होता है। दूसरी ओर राजनीति के कालनेमि हुए हैं, जो व्यक्तिगत चिंतन को पनपने का अवसर नहीं चाहते। परिणामस्वरूप कितने से साहित्यकार जो इस सरकारी करण और राजनीतिकरण के से बचकर अपना स्वतंत्र निर्वाह कर सकने में समर्थ रहे हैं। स्वार्थ के दुर्दमनीय प्रवाह ने नैतिक पर भयंकर संकट उत्पन्न कर दिया है। गत में योरप में उत्पन्न हुआ यह संकट भारत तैर आया है। इसके बारे में लिखते हुए टामस हा कहा था :

"Whether owing to the barbarizing of in younger minds by the dark madness of late war, the unabated cultivation of se ness in all classes, the plethoric grow knowledge with the stunting wisdom, a rading thirst after outrageous stimulatio from any other cause, we seem threat with a new Dark Age." (Late lyrics).

इस प्रकार आज साहित्यकार के संमुख नैतिक की समस्या अत्यन्त जटिल हो गयी है। अपने स विवेक की रक्षा करते हुए, सामाजिक उत्तरदायित्व निबाहना एक कठिन कार्य है जब कि चारों ओर व्य व राजनीति के जाल बिछें हुए हों। अपनी निष्ठा व दारी का पालन करते हुए, सामाजिक समस्याओं के जागरूक होकर उन पर अपना मत प्रकट करना, व सुलझाव में योग देना अत्यंत जटिल कार्य है। आ साहित्यकार को परिस्थिति की यह चुनौती है, जिसे कार करना ही होगा। आज साहित्यकार को उस वरण का निर्माण करना है, जिसमें स्वाधीन व्य पनप सके। ऐसे स्वाधीन व्यक्तित्व को गढ़ना है जो और सामाजिक उत्तरदायित्व दोनों के तकाजों को पूर्वक निबाह सके। वह अपने प्रति भी उत्तरदायी है समाज के प्रति भी। पर विवेक पंगु होकर वह सा उत्तरदायित्व का भली भाँति वहन नहीं कर स अतः प्राथमिकता तो स्वाधीन व्यक्तित्व के निर्मा विकास व रक्षण को ही दी जानी चाहए किंतु सा उत्तरदायित्व से भी आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं। इंटिग्रिटी, ईमानदारी का पालन करते हुए, सा दायित्व के प्रति सतत जागरूकता द्वारा ही नैतिक पर इस संकट का सामना किया जा सकता है।

इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (५)

पण्डित ब्रजमोहन व्यास

इस लेख-माला की भूमिका कुछ लम्बी हो गयी, इसके लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे। इस भूमिका को अब मैं सहसा समाप्त करता हूँ। अपने अनुभवों के लिखने के पूर्व तीन चीजों की जानकारी नितान्त आवश्यक है। बिना उनकी जानकारी के संस्मरणों के तारतम्य, म्युनिसिपैलिटी की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को समुचित रूप से समझ पाना कठिन होगा।

(१) इलाहाबाद की मुख्य-मुख्य घटनाओं का तिथि-क्रमानुसार विहंगम दृश्य।

(२) इलाहाबाद की जन-संख्या में इधर १०० वर्षों में निरन्तर वृद्धि।

(३) इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड एवं नगर महापालिका के चैयरमैनों एवं मुख्य नगर-अधिकारियों का प्रशासन-काल।

१—इलाहाबाद की मुख्य-मुख्य घटनाओं का तिथि-क्रमानुसार विहंगम दृश्य।

त्रेता युग	राम, लक्ष्मण-सीता का आगमन
ई० पू०—	
४५०	महात्मा गौतम बुद्ध का आगमन
३१९	चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य
२३२	अशोक ने कौशाम्बी में स्तम्भ खड़ा किया, बाद में वही किले में खड़ा किया गया।
ई० ३२६	समुद्रगुप्त का आधिपत्य हुआ।
४००	चीनी बौद्ध यात्री फाहियान का आगमन
५२५	कन्नौज के राजा यशोधर्मन का आधिपत्य
६४४	चीनी यात्री हुएनसैंग का आगमन
७३२	गौड़ के पाल नरेशों का आधिपत्य
७४८	शंकराचार्य कुमारिल भट्ट से मिले।
८१०	कन्नौज के परिहार राजाओं का आधिपत्य
१०९०	कन्नौज के गहरवार राजाओं का आधिपत्य
१३००	आचार्य स्वामी रामानन्द का जन्म
१३९४	जौनपुर के बादशाहों का आधिपत्य
१५००	महाप्रभु चैतन्य का आगमन
१५८३	किले की नींव पड़ी।
१५९९	युवराज सलीम प्रयाग का सूबेदार हुआ
१६०१	खुसरो बाग बना।
१६२२	खुसरो की लाश खुसरोबाग में दफन
१६६६	छत्रपति शिवाजी का आगमन
१७४९	मराठों ने चढ़ाई की और नगर को लूटा।
१७६४	शाह आलम द्वितीय नगर में रहने लगा।
१७७३	अंग्रेजों ने सूबे को ५० लाख पर शुजाउद्दौला के हाथ बेंच डाला।
१७८३	अकाल पड़ा।
१८०१	इलाहाबाद में स्थायी रूप में आधिपत्य
ई० १८०३	घोर अकाल पड़ा
१८२४	हिन्दी की खड़ी बोली के आदि गद्यलेखक मुं० सदासुखलाल की मृत्यु।
१८३६	राजधानी बना
१८३७	अकाल और लूटमार
१८४०	पं० अयोध्यानाथ का जन्म
१८४०	अर्धकुम्भ
१८४४	पं० बालकृष्ण भट्ट का जन्म
१८४६	पूर्ण-कुम्भ
१८५२	अर्धकुम्भ
१८५७	प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम—गदर
१८५८	पूर्ण कुम्भ
१८६०	पं० श्रीधर पाठक का जन्म
१८६१	पं० मोतीलाल का जन्म
१८६१	पं० मदनमोहन मालवीय का जन्म
१८६३	म्युनिसिपैलिटी की स्थापना
१८६४	पहिली प्रदर्शिनी
१८६४	अर्धकुम्भ
१८७०	पबलिक लाइब्रेरी की स्थापना
१८७०	पूर्ण कुम्भ
१८७२	मेओहाल बना
१८७२	म्योर सेन्ट्रल कालिज खुला
१८७५	सर तेजबहादुर सप्रू का जन्म
१८७६	अर्ध-कुम्भ
१८७७	हिन्दी प्रदीप निकला
१८८२	पूर्ण कुम्भ
१८८२	बाबू पुरुषोत्तमदास का जन्म
१८८४	इंडियन प्रेस का स्थापन
१८८६	कुलभास्कर मुं० कालीप्रसाद का देहान्त
१८८७	युनिवर्सिटी की स्थापना
१८८८	कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन
१८८८	अर्घकुम्भ
१८८९	भारतीभवन पुस्तकालय की स्थापना
१८८९	पं० जवाहरलाल नेहरू का जन्म
१८९१	कटर वर्क्स का खुलना
१८९२	पं० अयोध्यानाथ का देहान्त
१८९२	कांग्रेस का अधिवेशन
१८९४	पूर्ण कुम्भ
१८९६	अकाल पड़ा
१९००	अर्धकुम्भ
१९००	सरस्वती पत्रिका निकली
१९०१	भयंकर प्लेग
१९०६	पूर्ण कुम्भ
१९१०	विराट् प्रदर्शिनी

ई० १९१०	हिन्दीसाहित्यसम्मेलन की स्थापना
१९१०	काँग्रेस का अधिवेशन
१९१०	हिन्दी प्रदीप बन्द
१९१०	मिंटोपार्क बना
१९१२	अर्ध कुम्भ
१९१४	पं० बालकृष्ण भट्ट का देहान्त
१९१६	म्युनिसिपल बोर्ड के सभापति बोर्ड चुनने लगा
१९१६	सर सुन्दरलाल का देहान्त
१९१८	पूर्ण कुम्भ
१९१८	बिजली की रोशनी आई
१९१९	बमरौली में हवाई अड्डा
१९२०	तिलक का अस्थि-प्रवाह
१९२१	महाकवि अकबर का देहान्त
१९२४	हिन्दू-मुस्लिम दंगा—दशहरा बन्द
१९२४	अर्धकुम्भ
१९२५	प्रयाग संगीत समिति की स्थापना
१९२६	हिन्दू-मुस्लिम दंगे
१९२७	हिन्दुस्तानी एकादमी की स्थापना
१९२८	पं० श्रीधर पाठक का देहान्त
१९२९	गांधीजी ने म्युनिसिपैलिटी पर झंडा फहराया
१९३०	पूर्ण कुम्भ
१९३१	पं० मोतीलाल नेहरू का देहान्त
१९३१	म्युनिसिपैलिटी ने अजायबघर खोला
१९३६	दशहरे का मेला फिर होने लगा
१९३६	अर्धकुम्भ
१९३९	कमला नेहरू अस्पताल का शिलान्यास गांधीजी ने किया।
१९४२	पूर्ण कुम्भ
१९४८	अर्धकुम्भ
१९४८	संगम में गांधीजी का अस्थिप्रवाह
१९४९	सर तेजबहादुर सप्रू का देहान्त
१९५३	म्युनिसिपैलिटी का नगरमहापालिका में परिवर्तन।
१९५४	पूर्ण कुम्भ
१९६०	अर्धकुम्भ
१९६१	महाकवि निराला का देहान्त
१९६१	भारत-रत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास का देहान्त
१९६३	भारतरत्न, भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद का संगम में अस्थि-प्रवाह, ९ मार्च।

(२) इलाहाबाद की जन-संख्या

१८५३	७२,०९३
१८६५	१,०५,९२४
१८७२	१,४३,६९३
१८८१	१,६०,११८
१८९१	१,७५,२४६
१९०१	१,७२,०३२
१९११	१,७१,६९७
ई० १९२१	१,५७,२२
१९३१	१,७३,८
१९४१	२,४६,२
१९५१	३,३२,६
१९६१	४,२९,४८

(३) म्युनिसिपल बोर्ड के अशासनिक सभापति उनकी प्रशासन-अवधि। १ जुलाई १९१६ अशासनि (non-official) प्रशासन का आरम्भ।

१—लाल शिवचरणलाल १०-१०-१६ से १६-१२-२० तक

२—बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ३-१-२१ से १०-३-२२ तक

३—रा० ब० कामताप्रसाद कक्कड़ २३-३-२२ से २९-३-२३ तक

४—पं० जवाहरलाल नेहरू ३-४-२३ से २८-२-२५ तक

५—पं० कपिलदेव मालवीय १९-३-२५ से १४-१२-२५ तक

६—रा० ब० कामताप्रसाद कक्कड़ १५-१२-२५ से १४-१२-२८ तक

७— ,, ,, १८-१२-२८ से २९-२-३२ तक

८— ,, ,, ७-३-३२ से २५-११-३२ तक

९— ,, ,, १२-१२-३२ से ११-१-३६ तक

१०—डा० कैलाशनाथ काटजू ११-१-३६ से २५-८-३७ तक

११—श्री रणेन्द्रनाथ वसु २६-८-३७ से २३-१०-४४ तक

१२—रा० ब० कामताप्रसाद कक्कड़। ३-१-४५ से

१३— ,, ,, ४५ से २३-६-४८ (देह

१४—पं० विशम्भरनाथ पांडे १३-८-४८ से ९-७-५३ तक

(४) ऐडमिनिस्ट्रेटर द्वारा बोर्ड का प्रशासन

१—श्री ए० डी० पन्त, आई० ए० एस० (अवसरप्राप्त) १०-७-५३ से ३०-४-५५ तक

२—श्री एस० सी० बोस मलिक आई० ए० एस०। ३०-४-५५ से १५-१०-५६ तक

३—श्री लाल रत्नाकरसिंह, आई० ए० एस० १२-१-५६ से ३१-१-६० तक

(५) बोर्ड का नगरमहापालिका में परिवर्तन १-२-६०

१—श्री लाल रत्नाकर सिंह, आई० ए० एस० मुख्य नगर-अधिकारी १-२-६० से २९-४-६१

९६३

२—श्री के० के० शर्मा, आई० ए० एस० मुख्य नगर-अधिकारी	३०-४-६१ से १५-८-६२ तक।
३—श्री उदयवीरसिंह, पी० सी० एस०, मुख्य नगर-अधिकारी	१६-८-६२ से १४-९-६२ तक
४—श्री वी० डी० सेठ, आई० ए० एस०, मुख्य नगर-अधिकारी	१५-९-६२ से अभी तक।

(६) नगरप्रमुख-

१—पं० विश्वम्भरनाथ पांडे	१-२-६० से ३१-१-६१ तक।
२—श्री बालकृष्ण राव	१-२-६१ से ३०-४-६२ तक।
३—श्री जुल्फेकार उल्ला	१-५-६२ ....

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जायगा कि जब से निसिपैलिटी की स्थापना हुई तब से अब तक उसका ासन-काल चार भागों में विभक्त हो सकता है :—

)१८६३ से १९१६ तक कलेक्टरों की अध्यक्षता में प्रशासन।

२) १९१६ से १९५३ तक बोर्ड से चुने हुए सभापति की अध्यक्षता में।

३) १९५३ से १९६० तक सरकार से नियुक्त ऐडमिनिस्ट्रेटरों की अध्क्षता में।

४) १९६० से अब तक सरकार से नियुक्त मुख्य नगर-अधिकारियों की अध्यक्षता में।

मैंने १९२१ में एकजेकेटिव आफिसर के पद का भार ण किया और १४ दिसम्बर १९४३ को स्वेच्छा से टायर' हो गया।

उपर्युक्त सूची नं० ३ के देखने से पता चलेगा मेरे कार्य-काल में (१) राजर्षि पुरुषोत्तमदास न, (२) राय बहादुर बाबू कामताप्रसाद कक्कड़,) पण्डित जवाहरलाल नेहरू, (४) पण्डित कपिलदेव ल्वीय, (५) डा० कैलाशनाथ काटजू और (६) श्री न्द्रनाथ वसु बोर्ड के चेयरमैन थे। यद्यपि नेहरूजी ने भी हाल में ही पटना में व्याख्यान देते कहा है कि सभी न एक समान है फिर भी "My home state, Uttar adesh, who had a superiority complex that e is leader-producingstate (मेरी जन्मभूमि उत्तर प्रदेश को इस बात का गर्रा है वह नेताओं को पैदा करनेंवाला प्रदेश है।) जब अपना गवाह विरुद्ध (hostile) हो जाय तो मुकदमे को ते कितनी देर लगती है। अतः मैं गीता के इस वाक्य अनुसार कि 'नात्मानमवसादयेत्' (अपने को तुच्छ ी न समझे) इतना मैं अवश्य कहूँगा कि इलाहाबाद निसिपैलिटी को इस बात पर नाज है कि ऐसे-ऐसे टी के लोग उसके अध्यक्ष रह चुके हैं। इस पर समान होना स्वाभाविक है। मैं स्वयं इसका गौरव अनुभव करता हूँ कि ऐसे बड़े लोगों के नेतृत्व में मैंने २२ वर्ष इलाहाबाद की जनता की सेवा की है।

लाला शिवचरणलाल—इनकी अध्यक्षता के समय मैं एकजेकेटिव आफिसर नहीं था, पर बोर्ड का मेम्बर था। अतएव उस समय के दो-एक संस्मरण आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ। शिवचरणलालजी एक तेज आदमी थे। चतुर थे। यार-बाश आदमी। सब कुछ अल्लाह ने दे रक्खा था सूरत के सिवा। वे म्युनिसिपैलिटी रूपी शतरंज के एक कुशल खेलाड़ी थे। कुछ थोड़े से तगड़े मोहरों को यथा-स्थान रखकर उनकी अर्दब में कोई न कोई चाल चलते रहते थे। परन्तु .....की तरह उनकी चाल टेढ़ी ही रहती थी। वे बेचारे नहीं जानते थे कि एक प्यादा भी मात दे सकता है। यों तो वे बोलचाल में हँस-मुख थे परन्तु बोर्ड की मीटिंग में कुरसी पर बैठते ही उनकी जबान में कड़ुवापन आ जाता था। और फिर कुछ नकिया कर बोलते थे। अतः अच्छी बात भी बुरी लगती थी। वे नहीं जानते थे कि—

वाङमाधुर्यात् नान्यदस्ति प्रियत्वं
वाक्पारुष्यात्तूपकारोऽपि नष्टः।
किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं
को वा लोके गर्दभस्यापराधः॥

(मीठी बोली से बढ़कर और कोई चीज प्रिय नहीं होती। कटु वाणी से किया हुआ उपकार भी नष्ट हो जाता है। देखो कोयल किसीको कुछ देती नहीं परन्तु मीठे वचन बोलती है। इससे सभी को प्रिय लगती है किन्तु गदहे का कोई अपराध नहीं है परन्तु उसका स्वर कर्कश होता है अतः वह सबको अप्रिय है।) म्युनिसिपैलिटी की मीटिंगों में कटु-भाषी होने के कारण बहुत से मेम्बर उनसे नाराज रहने लगे। बात यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने सोचा कि त्याग-पत्र देकर इस झंझट से छुट्टी पा जायँ। मैं एक निरपेक्ष मेम्बर था। प्रपंचों से कोसों दूर रहनेवाला।

यस्मिन् कुलेऽहमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते।

(मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ था उसमें हाथी नहीं मारा जाता) मैंने उन्हें त्यागपत्र देने की सलाह दी। मेरी समझ में यही ठीक आया। उनकी तबीयत में मेरी सलाह जम गयी। "चोरन बचका लीन बेगारी छुट्टी पाइन" उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। पीछे पछताये थे। एक दिन नकियाकर मुझसे कहने लगे 'व्यासजी! आपकी सलाह मानकर मैंने गलती की।'

जो कुछ भी हो, उनकी सबसे बड़ी देन थी म्युनिसिपैलिटी के लिए और विशेषकर मेरे लिए, बिस्मिल साहब। 'बिस्मिल' साहब म्युनिसिपैलिटी में कैसे आये?

फरवरी सन् १९२१ की बात है। उस वक्त लाला शिवचरणलाल बोर्ड के चेयरमैन थे। मैं मेम्बर था। ईद का जमाना था। लाला शिवचरणलाल और उनके अन्तरंग मित्र, मुसलमानों के नेता, खाँ साहब अब्दुल बाकी

खाँ ने इस ईद के त्योहार पर शानदार मशायरे का आयोजन किया। यह मशायरा बड़े ठाठ-बाट से जमना किनारे राजा बनारस की कोठी में हुआ। कुल इन्तजाम बिस्मिल साहब के सुपुर्द था। उन दिनों बिस्मिल साहब को सिवाय शायरी और आवारागर्दी के और कोई काम नहीं था। जवानी का आलम, शायरी का मर्ज और आवारागर्दी!! खुदा हाफिज। लेकिन महज शायरी से 'पेट गो तसकीन पा जाये मगर तनता नहीं'; माना कि उनके वालिद बुजुर्गवार मुंशी विशेसरदयाल चुंगी में इन्सपेक्टर थे और बिस्मिल साहब का पेट भरते रहते थे पर बिस्मिल ऐसे स्वाभिमानी आदमी को बेकारी टीसती थी। वे कभी-कभी खीझकर शायरी पर उबल पड़ते थे—

न छेंड ऐ वक़हते-बादे-बहारी, राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेकार बैठे हैं।।

बोर्ड के मेम्बर होने के नाते मैं भी आमंत्रित था। मशायरा शुरू हुआ। मिसरा तरह दीवाने-गालिब से चुन कर दिया गया:—

'हाय! वह जूद-पशीमा का पशीमा होना।'

शहर के प्रायः सभी शायर वहाँ मौजूद थे। खास-खास शायरों ने अपने-अपने कलाम पढ़े। अब 'बिस्मिल' साहब की बारी आयी। वे बड़े नाजो-अन्दाज से उठे। उनके पढ़ने का अन्दाज उन्हीं का हिस्सा है। गजल के कुछ शेर नीचे लिखता हूँ:—

दिल में तीरे निगहे नाज का मेहमाँ होना।
कोई मुशकिल नहीं अब इसको रगे-जाँ होना।।
कर चुका चाक तो फिर नया बख़ियागरी से हासिल।
अब गरेबान तो मुशकिल है गरेबाँ होना।।
आइना देखने को शौक़ से देखो लेकिन।
अपनी सूरत न कहीं देख के हैराँ होना।।

गजल का पढ़ना क्या था, विस्मिल साहब ने मशायरा लूट लिया। चारों तरफ से वाह-वाह की झड़ी लग गयी। मशायरे का सेहरा बिस्मिल साहब के सर पर रहा।

दूसरे दिन लाला शिवचरणलाल ने बिस्मिल साहब को बुलवाया और पूछा 'म्युनिसिपैलिटी में नौकरी करोगे'? अन्धा क्या चाहे? दो आँखें।

विस्मिल साहब की मुराद पूरी हुई। उनकी बेकारी दूर हो गयी।

साथ ही साथ चेयरमैन साहब ने उन्हें नौकरी से कहीं अधिक मूल्यवान एक सलाह दी। बोले "देखो, याद रखना—

(१) रिशवत से हमेशा अपने को दूर रखना।

(२) किसी मेम्बर के घर न जाना। अपने काम से काम रखना और

(३) दफ्तर में सबसे पहले आना और दफ्तर बन्द होते ही घर चले जाना।

फिर तुम्हारा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा और तुम दिन-ब-दिन तरक्की करोगे। यह सलाह बिस्मिल साहब के दिल में घर कर गयी और वे उसे गठियाकर बाब

शिवचरणलाल का पत्र लिये हुए पण्डित बेनीप्रसा जो उन दिनों म्युनिसिपैलिटी के एक्जेकेटिव थे, के पास गये। पण्डित बेनीप्रसाद ने उन्हें सर से पैर तक घूरकर देखा जैसे उन्हें विश्वास न हो कि यह आवारा-रुख आदमी भी नौकरी के समझा जा सकता है। परन्तु लाचारी थी। साहब के नुमाइन्दे जो थे।

एक्का टाँगा के लहीम-शहीम इन्सपेक्टर हाकिमसिंह को बुलाकर उनके नीचे बिस्मिल को नियुक्त कर दिया वे एक पेंड़ के नीचे बैठकर करने लगे।

बिस्मिल साहब के दोस्तों ने उन पर फिकरा शुरू किया। कहने लगे 'आप भी अजीब आदमी हैं साहब! आपको क्या सूझी कि आप इस महकमे फँसे।' बिस्मिल साहब ने तुरन्त जवाब दिया— करें भाई

किसी ने सैर जमाने की सरसरी कर ली
किसी ने 'लीडरी' कर ली 'पिलीडरी' कर ली
शिकम-पुरी की तमन्ना में हजरते 'बिस्मिल'
जो हमसे कुछ न बन आई तो नौकरी कर ली।

इसके बाद लाला शिवचरणलाल साहब ने मैनी से इस्तीफा दे दिया। उनके स्थान पर बोर्ड ने (भारतरत्न राजर्षि) पुरुषोत्तमदास को चेयरमैन पण्डित बेनीप्रसाद मिश्र की भी नियुक्ति की अवधि हो गयी। उनके स्थान पर बोर्ड ने मुझे चुना १५ जून १९२१ से काम करने लगा। बिस्मिल पेंड़ के नीचे कलम घिसते ही रहे।

एक दिन बोर्ड के एक मेम्बर, आयुर्वेद पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल मेरा ध्यान बिस्मिल की ओर आकृष्ट करते हुए बोले "व्यासजी! होते हुए भी गुणी का आदर नहीं करते। बिस्मिल अपने नगर के एक प्रतिभाशाली शायर हैं। कीचड़ से निकालकर कोई दूसरी जगह दीजि बड़े असमञ्जस में पड़ा। थोड़े ही दिनों बाद मेरे की जगह खाली हुई। सोचा, बिस्मिल साहब को पेशकारी में ले लूँ। पहिले तो मैं झिझका। एकजेकेटिव आफिसर का पेशकार!! जिसे हो वही यह सोच सकता। म्युनिसिपैलिटी में १४ महकमे थे और हर महकमे में अलग-अलग और फिर बोर्ड और उसके अफसर लोग। इन से लगभग चार-पाँच सौ मिसलें एकजेकेटिव के पेशकार के पास, जनमेजय के सर्पयज्ञ में सर्पों प्रतिदिन आती रहती थीं। उस समय एक ही आफिसर था। अब दो हैं। इसको विस्तार से आवश्यकता नहीं। काम भारी था। वह किसी बूते का नहीं था। वह कुछ ऐसी बात थी बजाना और चना चबाना। पेशकारी तो पीसनेवाला कर सकता था।

बहरहाल जी पोढ़ाकर मैंने उन्हें अपनी पेशकारी में छः महीने के 'प्रोबेशन' पर ले लिया। मैं तो उनका काम देखकर हैरत में आ गया। बिस्मिल साहब रोज सुबह आठ बजे दफ्तर में आ जाते और दो बजे तक में लगभग तीन चौथाई मिसलों पर, जो 'रुटीन नेचर' की होती थीं उन पर मेरा हुक्म लिखकर मेरे दस्तखत के लिए भेज देते थे। और बकीया एक चौथाई, जिन पर देख-समझकर हुक्म देना होता था, उन्हें एक बंडल में बाँधकर भेज देते थे। मैं उन्हें रात में पीटा करता। दो बजे तक बिस्मिल साहब किसीसे बात तक नहीं करते थे और अपने काम में पिले रहते थे। अगर शामते-आमाल, दो बजे के भीतर उनसे कोई कुछ पूछने गया तो पागल कुत्ते की तरह काटने दौड़ते थे। इसका परिणाम यह था कि कभी एक दिन के लिए भी उनके पास मिसिल की कौन कहे, एक चिट भी कागज बकाये में नहीं रहती थी; भले ही मेरे पास चाहे बकाया रह जाय। उसके लिए भी वे मेरे सर पर सवार रहते थे और जब तक वह लौट न जाय, चैन नहीं लेते थे। चोटी का शायर होते हुए भी जब तक वे दफ्तर में रहते थे तब तक उनके लिए "काम है पेशे नजर और शायरी बालाये ताक" रहता था।

बिस्मिल साहब रिश्वत से कोसों दूर थे, हालाँ कि एक्जेक्टिव आफिसर की पेशकारी वह जगह है जहाँ पेशकार रोज अपनी मुट्ठी गरम कर सकता है, पर बिस्मिल साहब इसके डाँड़े नहीं गये। एक बार म्युनिसिपैलिटी के एक बड़े ठीकेदार बिस्मिल साहब के पास आये। किसी बड़े टेंडर की फाइल देखना चाहते थे। उन्होंने उस फाइल को माँगा और साथ-साथ बिस्मिल साहब के हाथ में एक लिफाफा रखकर कहा कि यह आपके लिए है। बिस्मिल साहब ने लिफाफे को खोला तो देखा कि उसमें सौ सौ के पाँच नोट थे। वे लिफाफे की तरफ हिकारत से देखकर, जैसे लिफाफे से कह रहे हों, बोले——

आई है बेहया मेरा ईमां खरीदने।
दुनिया खड़ी है दौलते-दुनिया लिये हुए॥

——हफीज जालन्धरी

और आँख उठाकर ठीकेदार साहब से कहने लगे। आपका बहुत लेहाज करता हूँ। आप इस रुपये को जेब में रख लें और चले जायँ। इससे ज्यादा मैं कुछ न कहूँगा। ठीकेदार साहब सिटपिटा गये और बिस्मिल साहब की तारीफें करते कमरे के बाहर निकल गये। पाँच-सात दिन बाद बिस्मिल साहब ने इस वाकये का जिक्र किया। मैंने कहा 'शाबाश! तुमसे मुझे यही उम्मीद थी। मैंने तुम्हें ठोंक-बजाकर इस ओहदे पर मुस्तकिल किया है।'

ये तो खैर एक ठीकेदार थे। कोई मेम्बर सिवा चेयरमैन साहब के बिस्मिल साहब से कोई फाइल नहीं देख सकता था। मैंने तो एक बार मेम्बरों को चुनौती दी थी कि अगर कोई बिस्मिल साहब के पास कोई फाइल देख ले तो मैं उसे एक शानदार दावत दूंगा। बहुतों ने कोशिश की और असफल रहे। अगर सफल हो जाते तो उनकी दावत तो पक्की थी ही। साथ-साथ बिस्मिल साहब की बरखास्तगी भी निश्चित थी। मैं बख्शनेवाला नहीं था।

दूसरे सिलसिले में बोर्ड के एक प्रभावशाली मेम्बर साहब ने बिस्मिल साहब से एक फाइल देखने के लिए माँगी। बिस्मिल साहब ने साफ इन्कार कर दिया। जोरदार मेम्बर थे, बड़े लाल-पीले हुए। बोले "आप जानते नहीं, मेरा नाम फलाँ है। मैं आपकी रिपोर्ट करूँगा।" बिस्मिल साहब ने भी बिना किसी हदस के जवाब दिया, "मेरा भी नाम बिस्मिल है। आप शौक से रिपोर्ट कीजिये।" मैं बगल के कमरे में बैठा हुआ काम कर रहा था। मेम्बर साहब ने मुझसे बिस्मिल साहब की शिकायत की। मैंने उन्हें बुलवाया। बिस्मिल साहब ने जो बातें हुई थीं साफ-साफ कह दिया। मैंने मेम्बर साहब से कहा कि बिस्मिल साहब को मैंने हुक्म दे रखा है कि बिला मेरी इजाजत के किसीको भी कोई मिसिल न देखायें। उन्होंने ठीक ही किया जो नहीं दिखलाया। अगर दिखला देते तो मैं उन्हें बरखास्त कर देता। मेम्बर साहब का मुँह उतर गया और वे कुछ भुनभुनाते हुए मेरे कमरे के बाहर चले गये। इसके बाद मैं किसी काम से अपने बँगले पर आया। जब लौटकर दफ्तर गया तो देखा कि मेरी मेज पर बिस्मिल साहब के हाथ का लिखा यह शेर रखा है।

लुत्फ़ इसमें है और ख्वारी भी।
एक तमाशा है पेशकारी भी॥

इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि जो कुछ थोड़ी सी कामयाबी मुझे अपने उत्तरदायित्व के निभाने में मिली है उसमें बहुत बड़ा हिस्सा बिस्मिल साहब का है। इसके लिए मैं उनका उपकृत हूँ।

"घी बनावे सालना बड़ी बहू का नाम"

बिस्मिल साहब के सम्बन्ध में मैंने थोड़ा विस्तार से यों लिखा कि म्युनिसिपैलिटी उनकी मिसाल का अनुकरण करे और बोर्ड एवं उसके अफसरान इसे समझें कि जब तक——

(१) जब तक लगन से काम करनेवाले, ईमानदार कर्मचारियों का आदर और उनके पेट का ख्याल न किया जायगा,

(२) जब तक बेजा आघातों से उनकी रक्षा न की जायगी,

(३) जब तक बोर्ड और उसके अफसरान अपने मातहतों के प्रति निष्पक्षता का व्योहार न करेंगे और

(४) जब तक बोर्ड का प्रत्येक कर्मचारी जनता के प्रति सहानुभूति एवं उनके दुख-निवारण करने का भरसक प्रयत्न न करेगा, तब तक गरीब जनता के पैसे से वेतन लेना पाप होगा। यही मेरे बाईस बरस के अनुभवों का निचोड़ है।

आंगनों के बीच —

अन्न के दो ग्रास

किसी का पेट केवल दो हल्के फुल्के खाने से भर है, तो किसी को पेट भरने के लिए भारी-भा रोटियाँ चाहिए। किसीको भोजन की इतनी आव नहीं होती जितनी पेय पदार्थों की। उन्हें पेय ही अधि होते हैं। उन्हें दूध, फल का रस, लस्सी या कोई वर्द्धक पेय भोजन से अधिक प्रिय ही नहीं लगता, वह भोजन का स्थान ग्रहण कर लेता है। इसके विपरी लोग पेयों से दूर भागते हैं और कहते हैं कि भाई! जब तक ठोस भोजन न जाय तब तक काम नहीं च पेय के स्थान पर कुछ भोज्य वस्तु ही मुझे अनुकूल प ऐसा क्यों होता है? आपने कभी सोचा है?

एक बार एक अति मिताहारी परिवार ए सम्बन्धी के घर ठहरा जिनके घर के लोगों के पेटों की झूलकर अन्दर भरी रोटियों के भार से आगे लट थी। जितनी रोटियाँ सारे नवागत परिवार के के लिए बना करती थीं (जिनकी संख्या थी ६— के लिए २ पत्नी के लिए और दो बच्चों के लिए) वहाँ परिवार का एक सदस्य केवल नाश्ते में खा करता था। मकान मिल जाने पर जब मिताहारी ने उन सम्बन्धी का घर छोड़ा तो पूरे तीन वर्ष यह गृहिणी सोचती रहीं कि हमने उनके घर एक मा खाना खाया है, एक दिन तो उन्हें बुला कर खाना दें। पर यह विचार कि 'हमारा एक मास का राशन एक दिन भोजन में समाप्त हो जायगा,' वे सा बटोरती रह गयीं पर भोजन न करा पायीं।

इसी पर एक दूसरी घटना याद आयी। छोटे के पालने में बड़े बूढ़ों से बड़ी सहायता मिलती है मेरे भाग्य में ऐसी कोई सहायता नहीं थी। घर अकेले चलाना था। न आगे कोई बड़ा न पीछे कोई मेरा छोटा आठ मास का बालक पौन शीशी गाय क

पीता था और प्रसन्न था, और साथ ही मैं भी प्रसन्न थी। एक दिन मेरी ननद अपनी उसी आयु की मुन्नी को लेकर घर आयी और उसको दूध पिलाने लगी। एक बोतल दूध लौटा और उसको पिला दिया। मुझको वह दूध भी कुछ अधिक लगा परन्तु मैंने सोचा थोड़ा-बहुत अन्तर तो प्रत्येक बालक की क्षुधा में होता ही है। परन्तु जब उस बोतल के खाली हो जाने पर पुनः उन्होंने उतना ही दूध बोतल में फिर भरा और मुन्नी उसको भी पी गयी तो मेरे हृदय की प्रसन्नता शंका में बदल गयी। प्रत्येक शंका-समाधान के लिए मेरे पास सिवाय डाक्टर के कोई और न था, इस कारण प्रथम अवसर मिलते ही मैं डाटर के पास भागी, और उनसे कह सुनाया कि यह पौन बोतल दूध पीता है और इसीकी आयु के और बच्चे दो बोतल दूध पीते हैं तो अवश्य ही इसको कम आहार मिल रहा है। डाक्टर ने बच्चे की ओर देखा। वह आराम से मुसकरा रहा था। उन्होंने कहा कि श्रीमतीजी पहले यह बताइये कि दोनों बच्चों में स्वस्थ कौन है? मैंने निःशंक भाव से कहा स्वस्थ तो यही है। वजन में तिगुना नहीं तो दूना तो है ही और रोता भी नहीं है। डाक्टर ने मेरी ओर देखकर कहा 'देवीजी! आपको बालक के स्वास्थ्य से मतलब है या उसकी दूध की बोतलों की गिनती से?' टका सा उत्तर पाकर मैं चुप होकर उठने को हुई तो पीछे से डाक्टर की आवाज आयी—"Young mothers will be young mothers!" (नवोढ़ा मातायें नवोढ़ा ही रहेंगी!) सुनिये! सुनिये! आप तामक्त तो हो गयीं पर आपकी बुद्धि अभी मेरे कथन अर्थ सोच ही रही है। तो कारण मैं आपको बता दूँ—माँ के दूध पर पला हुआ बच्चा उतना ही दूध पीता है जितना उसको पीना चाहि । ऊपर के दूध पर पले बालकों की पेट की झिल्ली प्रारंभ से ही दूध की मात्रा अधिक पहुँने के कारण बढ़ जाती है फिर जब तक उतना दूध हीं पहुँच जाता उनको तृप्ति नहीं होती है। ऐसा नहीं कि अधिक दूध पीने के कारण उनमें शक्ति अधिक हो। के विपरीत उनकी पाचन-शक्ति को अधिक काम करना ता है। इस कारण वे दुबले होते हैं—चिड़चिड़े हो ते हैं।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि अधिक भोजन करना एक आदत की बात है। जिस प्रकार कुछ लोगों को धिक बोलने की आदत होती है, उसी प्रकार कुछ लोगों को अधिक खाने की आदत होती है। वह आदत भी बहुत सी आदतों के समान अनजाने में बचपन में ही पड़ जाती है। भोजन की इन आदतों में बहुधा माता का बहुत कुछ हाथ होता है। भोजन की अपेक्षा अधिक मात्रा में दूध पर पाले गये बालक आजीवन पेय पीने की क्षमता अधिक रखते हैं, भोजन की कम। वे भोजन तो सूक्ष्म करते हैं परन्तु दूध, लस्सी, शर्बत, फलों का रस आदि पेयों को ग्रहण करने की क्षमता उनमें, उन पुरुषों से अधिक होती है जिन्होंने बचपन में दूध कम पिया है। जिन बालकों को दूध की मात्रा कम व अन्न की मात्रा अधिक दी जाती है वे आजीवन भोजन अधिक मात्रा में कर सकने की क्षमता रखते हैं, पेयों से उन्हें अरुचि होती है। बाल्यावस्था में फलों का सेवन करनेवाले बालक आजीवन फलों के बिना भोजन में एक असंतुष्टि का अनुभव करते हैं। इस प्रकार हमारे भोजन का स्वभाव हमारे बाल्यकाल में ही पड़ जाता है और उसमें हमारी माताओं का बहुत कुछ हाथ होता है।

इसके अतिरिक्त अधिक भोजन करने के कुछ मानसिक कारण भी हैं। जिस बालक में हेय भावना (Inferiority complex) होती है एक तो वह बालक भोजन अधिक मात्रा में करता है, दूसरे वह बालक भी जिसे प्रेम वा आदर नहीं मिलता, वह भी भोजन अधिक मात्रा में करने लग जाता है। कारण कुछ भी हो, परन्तु परिणाम इन कुंठाओं का यह होता है कि बालक हो वा प्रौढ़, भोजन वह अधिक मात्रा में करने लग जाता है मानों जगत् से मिले निरादर व स्नेहहीन भावना की न्यूनता की पूर्ति वह अपने शरीर को अधिक भोजन देकर करना चाहता हो। जब तक उसमें यह भावना बनी रहती है तब तक उसमें आत्मबल बना रहता है। जब यह भावना टूटने लगती है तब उसका आत्मबल भी घटने लगता है और भूख भी। बहुधा देखा गया है कि माता के निधन के पश्चात् तिरस्कृत होनेवाले बालक अधिक भोजन करने लग जाते हैं, मानों वे इस रूप में घर पर अपना अधिकार माँग रहे हों। स्कूल में सहपाठियों द्वारा अपमानित होने पर भी उसका क्रोध, लज्जा व अपमान कभी-कभी भोजन पर निकाला जाता है। इस कारण भोजन के प्रति पहले से अधिक अधिकार दिखाना या पहले से अधिक अरुचि दिखाना दोनों ही ध्यान देने की वस्तु हैं। प्रौढ़ हों या बालक, यह

प्रतिक्रिया दोनों में ही होती है इस आत्मज्ञापन के कारण चाहे भिन्न-भिन्न ही क्यों न हों।

तीसरा कारण अधिक भोजन करने का होता है बुद्धि का उस विषय पर नियंत्रणहीन हो जाना। एक बार एक शादी के अवसर पर एक ऐसे साहब से मुठभेड़ हुई जो पहली पंगत के साथ खा चुकने पर फिर दूसरी पंगत की पत्तल पर भी बैठ जाते थे। पहले तो यही लगा कि अपनी ही गलती होगी। दूसरी बार फिर उतना ही भोजन कोई कुछ पुरस्कार पाने पर भी नहीं कर सकता, —"परन्तु जब रात को भी, और फिर दूसरे दिन भी, वे दो-दो बार पंगत में बैठते दिखायी पड़े तो कुतूहल हुआ कि माजरा क्या है? तो पता चला कि एक बार 'मैंटल हौस्पिटल' हो आये हैं। यों तो पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये हैं परन्तु रोग का इतना लक्षण लगा-लिपटा रह ही गया है।

अधिक भोजन करने में यों तो कोई बात नहीं। स्पष्ट ही है कि जिसके पास है वही खाता है। कोई हम से और आपसे माँग कर तो खाता नहीं। जिसके पास हो नहीं वह खायगा क्या? इस विचार को मन तो लेता है परन्तु शरीर इसके साथ सहमत नहीं होता। बोल जाता है—कभी गठिया के रूप में, कभी म जलोदर आदि रोगों के रूप में। तैत्तिरीयोपनिषद् इसको अपने ही ढंग से कहा है...यो मा ददाति स मा ३ वाः। अहमन्नमन्नमदन्तमा ३द्मि। ....को भोग्य पदार्थों का दान ही उनकी रक्षा का सर्वोत्तम है! इसके विपरीत जो अपने ही लिए अन्नरूप भोगों का उपभोग करता है, उस खानेवाले को मैं अ होकर निगल जाता हूँ। 'अन्नं न परिचक्षीत'—अन्न अवहेलना न करे। 'अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम् ?' 'अन्न बढ़ाओ' इसका व्रत ले। परन्तु यदि असंयम से प्रयोग होता है तो अन्नरूप होकर मैं उसको नि जाता हूँ।

सारांश यह कि पहले असंयमी पुरुष अन्न को है, फिर अन्न असंयमी पुरुष को खा जाता है।

घर-गृहस्थी

'सुई डोरे का रोमान्स'

श्री 'कनक'

आज का युग एक प्रगतिशील युग है। आज जहाँ हर क्षेत्र अपने शिखर पर है, कसीदाकारी भी कुछ पिछड़ी नहीं। प्रत्येक स्कूल व कालेज में, घर और बाहर इसका अत्यन्त महत्त्व है। छोटी-छोटी बच्चियों को प्रारम्भ से ही इसका ज्ञान स्कूलों में कराया जाने लगता है। प्रत्येक शहर में जगह जगह आज सिलाई व कढ़ाई के कालेज खुले हुए हैं किन्तु फिर भी हमारी बहुत-सी बहनें इसके प्रत्येक टाँके को नहीं जानती हैं जिससे उन्हें कसीदाकारी करने में उतनी सुगमता नहीं प्राप्त होती। एक बात और है कढ़ाई के द्वारा आप अपने घर की प्रत्येक वस्तु को सुन्दर बना सकती हैं। जैसे बच्चों के कपड़े, तकिए के गिलाफ, चादरें, मेजपोश एवं इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ।

यहाँ पर मैं आपको कसीदाकारी के प्रत्येक मह पूर्ण टाँके के विषय में चित्र सहित बताने का प्रयत्न करूँ इसमें मुख्य दस टाँके हैं जो निम्नलिखित हैं—

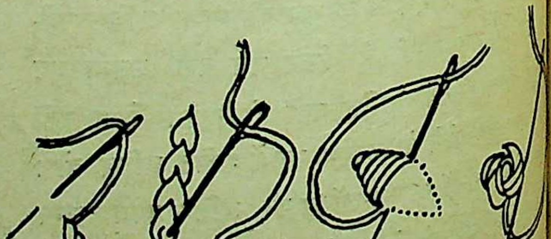

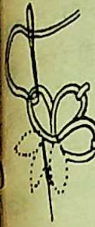

लेज़ी डेजी

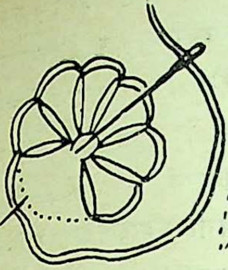

बटन होलरिंग

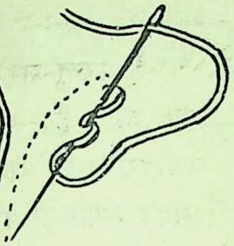

फ्रेंच नाट

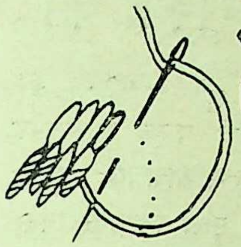

लौंग शार्ट स्टिच

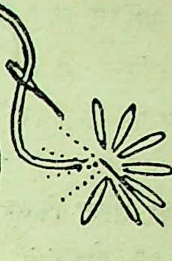

स्ट्रेट स्टिच

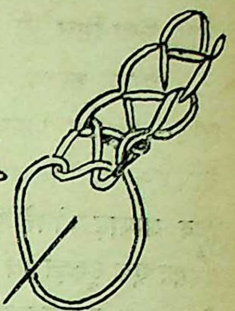

रिबिन स्टिच

यह तो हुआ आपका प्रत्येक मुख्य टाँका जिसके द्वारा आप अपने व अपने बच्चों के कपड़ों को आकर्षक बना सकती हैं।

बच्चों की बिब अथवा ट्रे क्लाथ के लिए कुछ आकर्षक नमूने—

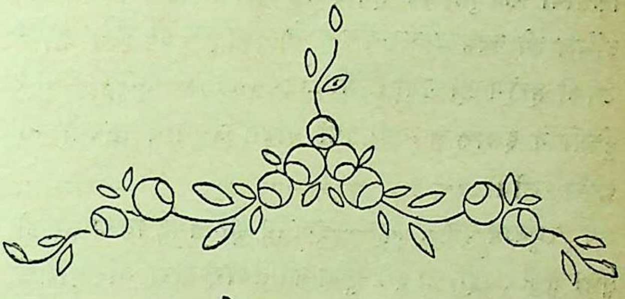

ट्रे क्लाथ पर

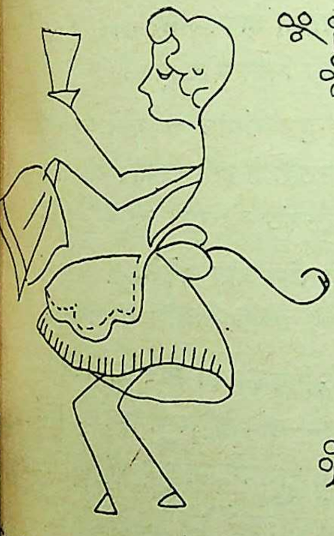

बिब के लिए एक आकर्षक नमूना

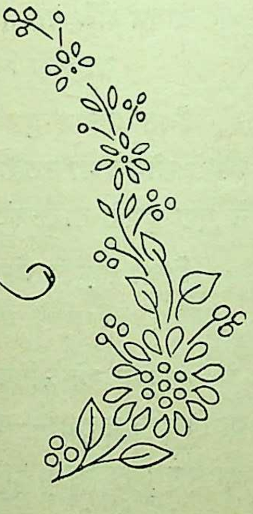

ट्रे क्लाथ पर
दोनों ओर बनाइए

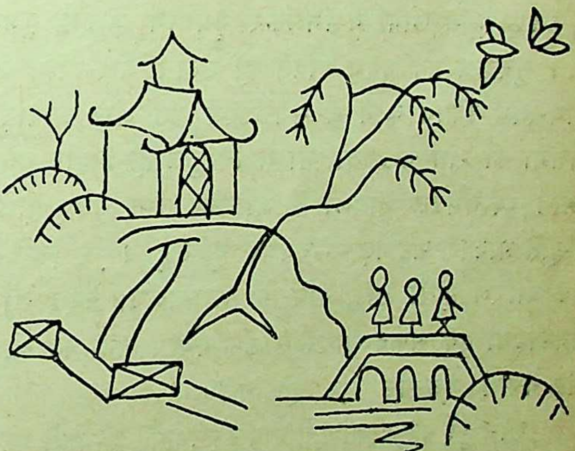

बिब अथवा बच्चों के तकिए के गिलाफ पर

उपरोक्त नमूनों द्वारा आप अपने बच्चों व अपने घर की प्रयोग की वस्तुओं को आकर्षक एवं सुन्दर बना सकती हैं।

कहानी

सिक्के का दूसरा पहलू

श्री राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह

जब आषाढ़ बीतने पर आया किन्तु आकाश में बादल का एक टुकड़ा भी दृष्टिगोचर न हुआ तब मदारीपुर और उसके अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में कुहराम मच गया। किसानों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। आनेवाले दुर्भिक्ष की कल्पना कर-कर के वे भयाकुल हो उठे। नींद उनकी हराम हो गयी। औरतें देव-पितर मनाने लगीं। पुरुषों ने इलाके के ज्योतिषी पंडित रघुनाथ द्विवेदी की शरण ली।

रघुनाथ दुबे ने कहा——इन्द्रदेव कुपित हैं, बिना उनकी पूजा के खैर नहीं, सो इन्द्र-पूजा की तैयारी करो यदि दुर्भिक्ष से बचना है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

इलाके के लोगों ने मिलकर धूमधाम से इन्द्र पूजा की। सुरराज का हृदय द्रवित हो उठा। शंख-ध्वनि के साथ-साथ ईशान कोने से मेघ गरज उठे और आषाढ़ी पूर्णिमा की रात चन्द्रज्योत्स्ना से बिल्कुल ही विहीन बनी रही। व्योममंडल बादलों से आच्छन्न तथा सुबह होते-न-होते आकाश फट पड़ा——घनघोर वृष्टि हुई। पूरे एक घंटे तक बारिश होती रही, गाँव के ताल-तलैये, गड्ढे और पगडंडियाँ एक सफेद चादर से ढँक गयी। नदी का स्रोत बढ़ गया। जल-थल एक हो गये।

शाम हुई पर आकाश से बादल हटे नहीं, छाय ही रहे। कुछ काल के लिए सप्तर्षियों का दल दृष्टिगोचर हुआ, फिर उनकी ओट में जा छिपा। तमिस्रा ने पृथ्वी को अपने आँचल में छिपा लिया।

गहन अँधेरी रात थी वह, पर किसानों के घर आनन्दोल्लास से जाज्वल्यमान थे। घर-घर से बारहमासा गाने की आवाज फूट पड़ी थी।

सुबह होते ही किसान हल-बैल लेकर खेतों में कीच करने चले। जिनके पास धान के पौधे तैयार थे उन्होंने धान की रोपाई भी शुरू कर दी।

इसके तीन दिनों बाद। दिन ढल चला था। रश्मिरथी शनैः शनैः पश्चिम की ओर जा चुका था। रथ के घोड़े थके-थके-से लग रहे थे। चन्दू अहीर की नवविवाहिता वधू रधिया धान रोपकर घर लौट रही थी। पसीने से तर था। कपोल के अश्रु ढलक-ढलक कर पर आ गिरते थे तथा सूर्य की अन्तिम किरणों में हुए मोती के समान लग रहे थे। वह गाँव की नव वधू थी, फिर भी उसका हृदय आज आपे से बाह रहा था। दो महीने पहले उसकी सास ने आँखें मूंद ली और अब वही घर की मालकिनी थी, अतएव धान कर आज वह मन ही मन भावी फसल और उसकी से गढ़वाये हुए गहनों की कल्पना में डूबी हुई खुशी से रही थी। स्वर से संकोच का पर्दा हटा कर शीघ्र ही गाना भी आरम्भ किया। गाई——

सावन अैले रामा, बादर अैले,
ना अैले पिया मोर हाय!

जिस प्रकार एक कोयल के गाने पर आसपा दूसरी कोयलें गा उठती हैं उसी प्रकार रधिया के ने एक दूसरे नारी-कंठ को गाने की प्रेरणा दी—

जिया तड़पत दिन रात अकेले,
बिजुरी चमकि-चमकि डरपाय।

रधिया को प्रतिद्वन्द्वी का स्वर पहचानने में या विलम्ब न हुआ——गाँव के एक मजदूर की पत्नी का वह स्वर था। रामधन मल्लाह की वह बहू थी उम्र तो थी ही, स्वभाव में भी रधिया से उसकी समानता थी, अतएव दोनों में पूरी मैत्री भी थी। बाहर एक बड़े-से मैदान में सैकड़ों मजदूर-मजदूरिन तोड़ने में लगी हुई थीं, उन्हीं में शुकिया भी शामि उसका स्थान सड़क के किनारे पड़ता था, अतएव को उसे ढूंढ़ना न पड़ा। पगडंडी से उतरकर राज आते ही वह उसे मिल गयी। रधिया ने मुसकि पूछा——

“कौन तुझे तड़पाता रहा है, बहन?

‘वही जो परदेश से अभी तक लौटा नहीं,

ने कहा।

९६३

दोनों खूब खिलखिलाकर हँसीं और रधिया शुकिया आग बैठ गयी। शुकिया का रोड़ा तोड़ना, किन्तु, जारी हा। उमंगभरे शब्दों में उसने कहा——बहन ! इस रोड़ा तोड़ने में भी बड़ा मजा आता है। देखो न, सुर्खी का यह र मेरे ही तोड़े हुए रोड़ों का है।

रधिया——मुझे तो यह काम जरा भी पसंद नहीं। पर लाओ तो तोड़ कर देखूँ कि इस रोड़ा तोड़ने में क्या मजा है।

शुकिया——नहीं, बहन, मैं तुझे न तोड़ने दूँगी। यदि कहीं हाथ में मुचक आ गयी तो वे मुझे क्या कहेंगे। मैं उनसे उलाहना न लूँगी राधू !

रधिया——अच्छा न दो, पर यह तो बताओ कि इतने ईंट और रोड़े किसलिए तोड़े जा रहे हैं ?

शुकिया——सुनती हूँ, यहाँ एक कारखाना बनने जा रहा है। बड़ी-बड़ी इमारतें बनेंगी, और यहाँ एक नगर बसेगा, बिजली लगेगी, पानी का कल लगेगा, इस गाँव का कलेवर ही बदल जायगा।

रधिया——राम-राम ! तब तो हम बरबाद ही हो जायेंगे, बहन !

शुकिया——क्यों राधू, हम बरबाद क्यों होंगे ? इंजिनियर साहब तो कहते थे कि कारखाना बनने पर इस गाँव में कोई गरीब न रह जायगा, कोई दुखिया न रहेगा, सब लोग मालोमाल हो जायँगे। फिर तू एसा क्यों कहती है ?

रधिया——जो देखा है, उसके बल पर। जानती हो बहन, मेरे मैके के करीब ही एक चीनी का कारखाना है, गाँव के बहुतेरे लोग वहाँ मजदूरी करते हैं, पर उससे गाँव का भला तो कुछ हुआ नहीं, बल्कि लोगों में तरह-तरह की बुराइयाँ ही आ घुसीं। शराब पीना, जुआ खेलना, शहर जाकर सिनेमा देखना, यही सबों ने सीखा है और अपनी कमाई का सारा पैसा वे इन्हीं में खर्च कर देते हैं। यही नहीं, बहुतों का चालचलन भी बिगड़ गया है। मेरे एक बड़े भाई हैं, वे पहले बहुत सीधे-से थे पर जब से यह कारखाना बना और वे वहाँ कमाने लगे तब से उनका स्वभाव ही न जाने कसा-कैसा हो गया है। पीने-पाने लगे हैं और क्या कहूँ बहन, घर की बात है पर तुमसे छिपाना क्या है, पीकर नशे में चूर हो जाते हैं तो मेरी भाभी का पीटते-पीटते कचूमर निकाल डालते हैं। वही क्यों, सारे गाँव में यह रोग फैल गया है। इसीलिए तो घबड़ाती हूँ बहन, कि हमारे गाँव की भी कहीं यही दशा न हो।

इंजिनियर की बातों से प्रभावित शुकिया के हृदय पर किन्तु इन बातों का कोई असर न हुआ। वह भू-स्वर्ग बननेवाले गाँव का स्वप्न देखती ही रही।

बरसात के दिन बीतते ही मकानों का बनना शुरू हो गया। बड़ी-बड़ी इमारतें उठ खड़ी हुईं। सड़कें बन गयीं। बिजली लग गयी। इधर खेतों में धान के पौधे बालों से लद गये। गजकेसर, कान्हर, लालसर, ललदेइया, तुलसी-फूल और बासमती के दाने सुरभि से पवन को भरने लगे। उनकी मादक सुगन्धि से आकर्षित होकर झीलों में जल-पक्षियों का दल उतर आया। उनके 'कुर्र-कुर्र' शब्द से रात की नीरवता नष्ट हो गयी।

गाँव के मल्लाहों की पाँचों अँगुलियाँ घी में थीं। रात में जाल में जल-बतखें पकड़ते, दिन में उन्हें बाजारों में बेचते फिरते। इससे उन्हें खासी आमदनी होने लगी। शुकिया ने मजदूरी करना छोड़ दिया। पक्षी-विक्रय से आये हुए रुपयों से उसके पति ने उसके कान के बाले बनवा दिये। वह आनन्दातिरेक से नाच उठी, रधिया को जाकर बाले दिखाये। रधिया को ये बाले इतने पसंद आये कि उसने तत्काल यह निश्चय कर लिया कि खेत का धान बेचकर वह भी कान के बाले ही बनवायेगी। फिर शुकिया के गालों पर हल्की चोट देकर उसने कहा——कोई सुहागिन हो तो तुम-जैसी; कैसे सुन्दर बाले बनवा दिये हैं उन्होंने !

शुकिया के गालों पर लाली छा गयी, होठों पर मुसकान की पतली रेखा खिच उठी, बोली——धान कटने दो बहन, तुम्हारे बाले ही नहीं बनेंगे, पाँव के छल्ले भी बन जायँगे।

गाँववालों के उमंग-कुसुम पर किन्तु एक दिन अचानक तुषारपात हो उठा। सारे गाँव में यह खबर फैल गयी कि कारखाने के लिए जमीन की जरूरत है, गाँव के चारों टोले खाली करने पड़ेंगे। सरकार उन्हें मुआवजा देकर ले लेगी। और इस खबर के फैलने के दो दिनों के भीतर ही जमीन मापनेवालों की टोली गाँव में आ घुसी। गाँववालों ने देवताओं से मिन्नतें माँगी कि उनके घर न जायँ। देवता भी बड़ों की ही सुनते हैं, लाख मिन्नतों पर भी उनके घर न बच पाये। सारा गाँव खाली करना पड़ा पर वहाँ इसके बदले में इस्पात का एक ऐसा कारखाना उठ खड़ा हुआ जो एशिया के बड़े-बड़े कारखानों से मुकाबला कर सकता था।

गाँव के लोग, पर तितर-बितर हो गय। उनका सुगठित समाज छिन्न-भिन्न हो गया। मनों पसीना गिराने के बाद जो उन्हें मुआवजा मिला, उसे लेकर वे जहाँ-तहाँ जा बसे। मदारीपुर गाँव का नामोनिशान मिट गया। झील से नहर निकाल कर उसका जल सुखा डाला गया और इसके फलस्वरूप अब जल-बतखों का आना भी बन्द हो गया।

झोंपड़ियों का गाँव मदारीपुर इन्द्रपुरी बन गया। बड़ी-बड़ी कोठियाँ, चिमनियाँ, क्लब, अस्पताल, सिनेमा-घर, बाजार, रेस्टुरां, पुष्प-वाटिकाएँ, 'सड़क खुशनुमा, डिनर हरशब' ! पर प्रकृति के लीला स्थल मदारीपुर के प्राचीन सौन्दर्य की बारीकी इस नये नगर को नसीब न हो सकी।

चार साल बीत गये। शाम का समय था। दिन और रात के बीच का सन्धि-काल किसी को दृष्टिगोचर न हुआ चूँकि उसके आने के पूर्व ही बिजली जल उठी तथा उसके तीव्र प्रकाश से शहर और उसका अड़ोस-पड़ोस

जगमगा उठा। निशा-नागरी का धीरे-धीरे अवनी पर उतरना, चरागाह से लौटती हुई गउओं के पाँव से धूल का उड़ना, उनके गले की रुद्रघंटिकाओं का बजना, खूंटे से बँधे हुए उनके बच्चों का प्रतीक्षा में रँभाना, वृक्षों पर बुलबुल और मैनों की सन्ध्याकालीन अंतिम चहचहाहट, घर लौटते हुए किसानों का बिरहा गाना––ये सभी अब अतीत की चीजें बन गयी हैं। कारखाने का भोंपू बजा और लोगों ने जाना कि शाम हुई। मजदूर अपने-अपने क्वार्टरों को लौटे। उनकी बीड़ियों के धुयें और गंध से वातावरण भर उठा। दूसरी ओर, अफसरों के बँगलों में रेडियो बज उठे।

शुकिया के खसम ने यहीं मजदूरी पकड़ ली है तथा उपर्युक्त क्वार्टरों में से एक में वह परिवार के साथ रहा करता है। उसके चेहरे पर अब देहातीपन नहीं, वह खासा शहरू बन गया है। बड़े-बड़े बाल रख लिये हैं जिनमें दिन में तीन बार वह कंघी लगाता है। खुशबूदार तेल का इस्तेमाल करता है। धोती की जगह पाजामा पहनता है, बदन पर नीले रंग की कमीज। पीने की ऐसी लत लग गयी है कि कारखाने से लौटते ही वह ठर्रे की दूकान पर आ धमकता है।

पर रामधन से भी अधिक परिवर्तन उसकी स्त्री में हुआ है। रोड़ा तोड़नेवाली गँवारिन शुकिया अब सोलह आने नगरनिवासिनी बन गयी है। तरह-तरह से बाल सँवारती है, केश-विन्यास के लिए पड़ोसिनों में उसे प्रसिद्धि प्राप्त है। खुशबूदार तेल से उसके बाल सदा चिकने और तर बने रहते हैं। जूड़े में फूल, कान में नई डिजाइन के झूमके, माथे पर टिकुली की जगह बिन्दी डाल कर वह मन-ही-मन चित्रपट की तारिकाओं से अपनी तुलना करती है। ठर्रे से पिपासा शान्त करने की उसे भी लत लग गई है। ग्रामीण शालीनता खोकर वह अक्सर नौजवान मजदूरों का सिनेमा के गीतों और अपनी ठठोलियों से मनबहलाव करती है––जब रामधन शराब के नशे में चारपाई पर बेहोश पड़ा रहता है। उसे इस बात का नाज है कि उसके पीछे लोग दौड़ते हैं।

पर गाँव के अधिकांश बाशिन्दे इलाका छोड़कर अन्यत्र चले गये। इन्हीं में रधिया का परिवार भी था।

मदारीपुर से चालीस मील उत्तर एक कस्बे में उसका पति रिक्शा चलाता है जिसे उसने अपने मुआवजे के रुपयों से खरीदा था। वहीं अपने दो छोटे बच्चों के साथ एक तंग गली में इस परिवार ने फिर से संसार बसाया है। एक छोटी-सी कोठरी, जिसमें सूर्य का प्रकाश मुश्किल से पहुँच पाता है, उसका वासस्थान है।

सावन की रात, आकाश बादलों से घिरा हुआ है। रह-रह कर बिजली कौंधती है, मेघ गरज पड़ते हैं। ऐसा लगता है मानों कुछ ही काल में घनघोर बरसा होनेवाली है। ऊमस से लोग परेशान हो रहे हैं। जिन्हें बिजली नसीब है, वे पंखा खोलकर लेटे हुए हैं। जिन्हें क नहीं, वे हाथों से विजन डुलाते हैं, फिर भी पसीना बतर हो रहे हैं।

रधिया बच्चों को चटाई पर सुलाकर आ पति के सिरहाने बैठी हुई उन्हें पंखा झल रही है। बी में सर पर हाथ रखकर ज्वर का तापमान देखती है। उसमें अभी तक उसे कमी नहीं नजर आ पति का कराहना रह-रह कर उसे बेचैन कर डाल

पिछले पाँच महीनों से उसे जब-तब ज्वर आ करता था। स्थानीय एक बंगाली डाक्टर से इलाज पर भी ज्वर छूटा नहीं, दिन-ब-दिन बढ़ता ही अन्ततोगत्वा उसे चारपाई धरनी पड़ी। कमायी के पैसे इलाज में समाप्त हो गये, आगे की कमायी तो थी ही।

गत चार दिनों से तपेदिक, जिसका वह शि रहा है, ने भीषण रूप धारण कर लिया है। अन्न-जल कर वह बेहोशी की दशा में पड़ा हुआ जीवन की घड़ियाँ गिन रहा है। कान के बाले बेचकर रधिया तक काम चलाया था, अब उसके पसे भी समाप्त-प्रा पड़ोस के लोग पैंच देने के भय से उसे देखते ही झाँकने लगते हैं।

पंखा झलते हुए रधिया की आँखें लग गयीं। जगत् में विचरती हुई वह मदारीपुर जा पड़ी। घर, बैलों का जोड़ा, बैंगन-वाटिका, लहलहाते हुए क्षेत्र, पड़ोस के महुए का वृक्ष, सभी मूर्तिमान हो घर के बगल में एक अहीर-परिवार रहता था घर पर उसका रोजमर्रा का आना-जाना था। वहाँ के गीत गाये जा रहे थे। उसकी सखी यमुना का होने जा रहा था। वह सज-धजकर बहू बनी हुई थी। रधिया उसे देखते ही गले से लिपट गयी। ब वियोग के बाद के इस मिलन ने उसकी आँखों को से तर कर दिया। दोनों ही रो उठीं। रोते-रोते की आँखें खुल गयीं और उसने देखा—रोगी की दशा अधिक बिगड़ गयी है, वह अन्तिम साँसें ले रहा है।

रधिया के उच्च क्रन्दन से ही अड़ोस-पड़ोस के समझ गये कि रोगी अब इस संसार में नहीं रहा। में उसका घर पड़ोसियों से भर गया।

श्मशान से लौट कर रधिया ने देखा—बच्चे छटपटा रहे हैं। घर में कुछ चने बचे हुए थे, उनसे उनकी क्षुधा शांत की।

शाम हुई। बच्चे सो गये। रधिया घर के द पर मौन खड़ी थी। उसके सामने भविष्य का समुद्र लहरा रहा था। गृह-प्रदीप बुझा हुआ था। वहाँ से बीस कोस दूर मदारीपुर का नव-निर्मित विद्युत्छवि से जाज्वल्यमान था।

बन्धन

श्री विद्या गुप्ता

स्थान—एक प्रसिद्ध नगर
समय—साढ़े चार से ६ बजे तक

पात्र

मि० खन्ना—एक फैक्टरी के मैनेजर,
मि० वर्मा—"शू" कम्पनी के प्रोप्राइटर,
नित—मि० खन्ना का १२ वर्षीय पुत्र,
सेज खन्ना
सेज सहानी
स मेहरोत्रा } आधुनिक शिक्षा में पली संभ्रान्त महिलाएँ :
न्हिया—मिसेज खन्ना की सेविका :
नू—मिसेज खन्ना की ८ वर्षीया पुत्री :

(एक सम्पन्न परिवार के भवन का अन्दर का कक्ष। कोच-कुर्सी, पुस्तकों की अलमारी, टेबल, ड्रेसिंग-टेबिल दि से सुसज्जित है।)

न्दिरा—(दर्पण में देखकर केस सँवारते हुए भाषण की क्तियों को दोहराती है)

'शताब्दियों की नींद से अब नारी जाग उठी है। ह अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। वह अब ता के बन्धनों को काटकर ही रहेगी। **(रुककर दासी पुकारती है।)** जोन्हियाँ! ओ जोन्हियाँ!

(नेपथ्य से 'आई मेम साहब!' नौकरानी का प्रवेश)

रा—जोन्हियाँ, देखो साढ़े चार बजे मुझे एक मीटिंग में जाना है, भाषण देने के लिए। उधर ही से एक ड्रामा के रिहर्सल के लिए चली जाऊँगी। तुम बच्चों को स्कूल से आने पर जल-पान करा देना और रात को ८ बजे तक खिला-पिला कर सुला देना। मुझे लौटने में शायद देर हो जावे। साहब से कह देना, वे भी खाना खा लें, मेरी प्रतीक्षा न करें।

न्हियाँ—मेम साहब, आज मैं जरा जल्दी घर जाना चाहती हूँ। मेरे छोटे लड़के को बुखार आ गया है मेम साहब!

रा—**(झल्ला कर)** बच्चा बीमार है तो क्या तुम्हारा आदमी नहीं सँभाल सकता? क्या बच्चों को पालने की जिम्मेदारी अकेले तुम्हीं पर है? तुम रोज ही जल्दी मचाये रहती हो, आज बच्चा बीमार है, आज यह काम है, आज वह काम है। तुम्हारा आदमी घर में बैठा-बैठा क्या करता है?

जोन्हियाँ—मेम साहब, वह मर्द हैं। बच्चों को रखना क्या जानें? मेरे ऊपर बिगड़ने लगेंगे।

इन्दिरा—बिगड़ने लगेंगे? तुम्हारी जैसी अपढ़, गँवार औरतों ने ही इन आदमियों का दिमाग खराब कर रक्खा है। इनकी इसी मूर्खता का लाभ उठाकर यह पुरुष जाति स्त्रियों को अपना गुलाम बनाये है। अपने आदमी से कहती क्यों नहीं हो कि घर के कामों में, बच्चों की देख-रेख में तुम्हारी मदद करे? वह निठल्ला घर में बैठा-बैठा क्या करता है?

जोन्हियाँ—अरे मेम साहब, आप यह कहती क्या हैं? यह कहकर मैं रहूँगी कहाँ?

इन्दिरा—छिः छिः! कैसी दीनता का भाव है? असह्य है यह! आज मैं सभा में स्त्रियों को समझाऊँगी कि पुरुषों ने उन्हें कितने अन्धकार में रख छोड़ा है। सहधर्मिणी, देवी, लक्ष्मी आदि बड़े-बड़े शब्दों के मायाजाल में जकड़कर उन्हें भुलावे में डाले हैं। व्यवहार में पुरुष उन्हें पशु समझता है। अच्छा जाओ, साहब से कहकर चली जाना।

(नौकरानी का प्रस्थान)

इन्दिरा—**(विरक्तिपूर्वक जोन्हियाँ की ओर देखकर)** कैसा अज्ञान है! **(भाषण के पृष्ठ उलटते हुए)** स्त्रियों की सहनशीलता का यह दुष्परिणाम कितना भयंकर है कि पुरुष उन्हें अपनी क्रीत-दासी समझ बैठा है। वह गृह-स्वामिनी नहीं, गृह स्वामी की सम्पत्ति है। आज की शिक्षा-प्रणाली भी उसे घर के बाहर फैले प्रकाश को न दिखाकर, घर के अन्दर एक सीमा में ही बन्दिनी देखना चाहती है। मैं उन्हें समझाऊँगी कि वे इन बेड़ियों को काटकर प्रकाश में

बाहर आवें। **(दर्पण में देखकर मेक-अप ठीक करती है।)**

(मीना का प्रवेश : आयु लगभग ८ वर्ष, स्कूल से लौटी है, कन्धे पर बैग है : माता को देखकर हर्षविभोर हो उसकी ओर दौड़ती है।)

मीना—माँ! माँ! मेरे स्कूल में ड्रामा होनेवाला है। वार्षिकोत्सव होगा न? मैं भी डांस में पार्ट ले रही हूँ। तितली और फूलों का डांस! मैं तितली बनूँगी माँ, और फूलों पर यों मडराऊँगी! **(नाचकर दिखलाती है।)** मेरे लिए एक बढ़िया नाइलौन की फ्रॉक चाहिए माँ, जिसमें ऐसी फिल हो कि तितली के पर से लगें।

इन्दिरा—अच्छा बन जावेगी। **(भाषण की पंक्तियों पर दृष्टि दौड़ाते हुए)** मीनू देखो, मैं एक भाषण देने जा रही हूँ। **(पुनः दर्पण में देखकर पाउडर आदि ठीक करते हुए।)** तुम और अनिल जलपान कर के मिल-जुलकर खेलना-कूदना। झगड़ना मत। अच्छा!

मीना—**(मुँह फुलाकर)** माँ! तुम रोज ही घूमने चली जाती हो। अनिल भइया मेरे साथ खेलते ही नहीं। या तो लड़ते रहते हैं, या खेलने चले जाते हैं। मुझे अकेले घर में अच्छा नहीं लगता माँ! मुझे भी साथ ले चलो न?

इन्दिरा—**(कुछ झिड़की के स्वर में)** तुम्हें ले चलूँ? मैं भाषण देने जा रही हूँ। वहाँ बच्चों का काम नहीं। जाओ कपड़े बदल कर, मुँह हाथ धोकर कुछ जलपान कर लो। मैं जल्दी आ जाऊँगी।

मीना—**(रूठ कर)** माँ! तुम हमेशा यही कहकर चली जाती हो और जब मैं तुम्हारा रास्ता देखते-देखते थक कर सो जाती हूँ तब न जाने कब आती हो।

इन्दिरा—**(किंचित फुसलाकर)** तुम्हारे पिताजी तो घर पर ही रहते हैं, उनसे कहानी सुनना। मुझे देर हो रही है, अब मैं जा रही हूँ। **(जाती है।)**

(मीना एक ओर उपेक्षा से बैग फेंक कर कोच पर बैठ जाती है, कुछ सोचती है। जोन्हियाँ का प्रवेश)

जोन्हियाँ—मीनू! मेरी अच्छी देवी! अभी कपड़े भी नहीं बदले? चलो, कपड़े बदलवा दूँ, फिर कुछ नाश्ता कर लो।

मीनू—**(रूठे स्वर में)** नहीं, मुझे भूख नहीं है। नहीं खाऊँगी। कपड़े आप ही बदल लूँगी। है।)

जोन्हियाँ—"खूब हैं हमारी मेम साहब! न ख्याल, न अपने आदमी का। अपना घर नहीं बनता, चली हैं औरतों को सुधारने! भलाई कर !

(अनिल का प्रवेश, लगभग १३ वर्ष की आयु। से लौटा है, हाथ में किताबें हैं। आते ही लापरवाही से मेज पर पटक देता है।)

अनिल—जोन्हियाँ, क्या खड़ी-खड़ी बड़बड़ा रही जाओ दौड़कर मेरे जलपान का प्रबन्ध करो। लगी है। फिर मुझे खेलने जाना है।

(जोन्हियाँ का प्रस्थान : मीनू का प्रवेश : एक गुड़िया लिए उसे दुलराती आती है।)

अनिल—**(डाँट भरे स्वर में)** क्यों री मीनू! गुड़िया ही खेलती रहती है या कुछ पढ़ती- भी है? जब देखो गुड़िया! **(चपत लगा मीनू रोती है, अनिल हँसता है।)** बस रोने रोनी लड़की, सुन मीनू! हमारे स्कूल में एक पिक्चर आई थी। **(मीनू उत्सुक होकर है।)** उसमें युद्ध का दृश्य था। शिवाजी के सैनिक शत्रुओं के सिपाहियों के सिर तलवार घुमा कर ऐसे उड़ा रहे थे : **(एक हाथ मार कर की गुड़िया दूर फेंक देता है : मीनू गुड़िया कर आँसू पोंछती हुई जाती है। जोन्हिया प्रवेश।)**

जोन्हियाँ—भइया! मीनू को क्यों रुला रहे हो? बेचारी ने कुछ नाश्ता भी नहीं किया है। उसे मना लो और नाश्ता भी कर लो।

अनिल—अच्छा, अच्छा। रहने दो अपना "मीनू को रुला रहे हो, उसे मना लो।" उँह नाश्ता करके जाता हूँ खेलने और फिर पिक्चर

(गाते हुए जाता है—"जब प्यार किया तो क्या?")

जोन्हियाँ—**(जाते हुए अनिल की ओर विरक्ति कर)** यह बड़े घरों के लड़कों का हाल है!

पर की चीजें सँभाल कर रखती है : मि० खन्ना का प्रवेश)

ना—(हैट मेज पर रखकर कोट उतारते हुए) जोन्हियाँ ! बच्चे स्कूल से आ गये क्या ? मेम साहब कहाँ हैं ?

न्हियाँ—साहब बच्चे तो आ गये हैं। जलपान भी करा दिया है। पर अनिल भइया ने बेबी को रुला दिया है। वह रूठी बैठी हैं। मेम साहब कहीं सभा में कुछ बोलने गयी हैं। आपके लिए चाय यहीं ले आऊँ क्या ?

र खन्ना—(खिन्न स्वर में) नहीं, चाय की जरूरत नहीं है। मैं आफिस से पीकर आ रहा हूँ। तुम बच्चों को जरा यहाँ तो भेज दो। (जोन्हियाँ जाती है) : यह लड़का दिन पर दिन उद्दंड होता जा रहा है। घर पर रहता है तो शैतानी, बाहर जाता है तो वहाँ से शिकायतें !

(चिन्तित भाव से समाचार-पत्र उठाकर पढ़ने लगते फिर दीवार की ओर देखते हैं। थोड़ी देर में जोन्हियाँ मीनू के साथ प्रवेश : मीनू एक टूटी गुड़िया हाथ में है।)

न्हियाँ—साहब अनिल भइया खेलने चले गये। कहते थे कि उधर से ही "रूप की रानी और चोरों का राजा" पिक्चर देखकर लौटेंगे।

—(**गुड़िया का टूटा सिर पिता को दिखलाते हुए**) पिताजी देखिए, भइया ने मेरी गुड़िया का सिर यों हाथ मारकर तोड़ दिया है।

—(**प्यार से पास बुलाकर दुलराते हुए**) मीनू बेटी, जाओ कुछ खा लो। लौटने दो अनिल को आज। हम उसे सजा देंगे और तुम्हारे लिए नई गुड़िया ला देंगे।

(दरवाजे पर आहट, जोन्हियाँ का प्रस्थान)

—पिताजी मैं इतनी बड़ी गुड़िया लूँगी (**संकेत से बतलाती है**) जो चलती भी है और बात भी करती है, कहती है 'हलो ममी' नीरा के डैडी ऐसी गुड़िया इंग्लैंड से उसके लिए लाये हैं।

—(**मुस्कुराते हैं**) अच्छा, मिल गयी तो जरूर लावेंगे नहीं तो इँगलैंड से ही मँगवा देंगे।

(जोन्हियाँ का प्रवेश)

—साहब मिसेज सहानी और मि० वर्मा आये हैं। ड्राइंग रूम में बैठा दिया है।

खन्ना—यहीं बुला लाओ। वे तो नित्य के मिलनेवालों में हैं।

मीना—(**पिता के कालर का बटन लगाते हुए**) पिताजी, मेरी गुड़िया जल्दी मँगवाइयेगा। नीरा को अपनी गुड़िया की बड़ी शान है।

(वर्मा और मिसेज सहानी का प्रवेश। खन्ना उठकर स्वागत करते हैं। मीनू अपनी गुड़िया का टूटा सिर सहलाते हुए उसे गले से लगाती है।)

मि० वर्मा—कहिए मि० खन्ना, आजकल तो क्लब का रास्ता ही छोड़ दिया है। घर में बैठकर बच्चे खिलाने की ड्यूटी मिली है क्या ?

खन्ना—(**लज्जित भाव से**) नहीं भाई, जरा भाई बहिन झगड़ पड़े थे, सो मीनू रूठी बैठी थी। (**हँसकर**) नयी गुड़िया की डिमांड कर रही है, जो चलती-फिरती भी हो, और "हलो ममी" भी कहती हो।

(वर्मा और सहानी जोर से हँसते हैं, मीनू भाग जाती है।)

मि० खन्ना—जोन्हियाँ !

(नेपथ्य से—"जी आई"। जोन्हियाँ का प्रवेश)

खन्ना—आप लोगों के लिए चाय लाओ।

वर्मा और सहानी—नहीं, नहीं। चाय तो अभी पीकर ही चले हैं। आज तो आपको लेकर क्लब जावेंगे।

(जोन्हियाँ का प्रस्थान)

खन्ना—(**चुप रहते हैं।**)

मिसेज सहानी—मिसेज खन्ना कहाँ हैं? क्या किसी "सोशल गैदरिंग" में गयी हैं? आजकल तो किसी न किसी प्रोग्राम में बराबर ही उनका नाम सुनायी पड़ता है। अबकी काउंसिल के चुनाव में भी जरूर वही आवेंगी।

मि० वर्मा—भाई खन्ना, आप बड़े "लकी" हैं? हमारा तो घर में घुसने को भी जी नहीं चाहता। क्या फूहड़ बीवी पाई है, घर में घुसते ही शिकायतों की पोटली खोलकर बैठ जाती है। घर से भागकर ही छुटकारा मिलता है।

मिसेज सहानी—(**व्यंग्यपूर्वक**) और मि० खन्ना घर में बैठे बच्चे खिलाया करते हैं। यह भी कोई "लाइफ" है? हाउ डल इट इज! मैंने तो अपने बच्चों को होस्टल में रख दिया है। "ऐटीकेट" और "डिस्सी-

प्लिन" की जैसी शिक्षा होस्टल में मिलती है, वैसी घर में कहाँ ? अब यही देखिए : बच्चे लड़ पड़े अब लड़की को नयी गुड़िया की रिश्वत देनी ही होगी, नहीं तो खाना नहीं खावेगी, रोवेगी। हाउ फसी ! मैं तो मि० वर्मा से भी कहती हूँ कि बच्चों को होस्टल में रखकर पढ़ाइए।

वर्मा—मैंने इस साल जुलाई में ही साहबजादे को तो होस्टल में भेज दिया है। अब रह गयीं लड़कियाँ, उन्हें इस बार यहाँ तो कहीं होस्टल में जगह नहीं मिली। अब देहरादून और शान्तिनिकेतन को लिख रखा है। घर में तो एकदम स्पोआएल हो रही हैं।

मिसेज सहानी—अच्छा मि० खन्ना, अब उठिये। चलिये क्लब। आपके बिना ब्रिज जमता ही नहीं, और आप हैं कि क्लब की ओर झाँकते भी नहीं।

मि० खन्ना—मिसेज खन्ना किसी मीटिंग में भाषण देने गयी हैं। जाने कब लौटेंगी ! क्लब में देर हो गयी तो मीनू अकेले घर में घबरावेगी।

वर्मा—**(ठहाका लगाकर)** तो मैंने ठीक ही कहा था कि हजरत को बच्चे खिलाने की ड्यूटी मिली है।

मिसेज सहानी—मि० खन्ना, यू आर स्योआर्यलिंग योर चिल्ड्रन। मेरी ममी और डैडी तो बड़े ही सोशल थे। पार्टी, क्लब, पिकनिक लगे ही रहते थे। पर बच्चे उनके रास्ते का रोड़ा कभी नहीं बने। मैं तो चार वर्ष की थी तभी कान्वेंट में पढ़ने और होस्टल में रहने के लिए भेज दी गई थी। वे भी स्वतन्त्र रहे और हमें भी बराबर के बच्चों के साथ खेलने कूदने को मिला। अब आपका और मीनू का भला क्या साथ ? दिस इस बैड् फार द प्रापर मेन्टल डेवलपमेन्ट आफ द चाइल्ड। आपने शायद साइकालोजी नहीं पढ़ी ? बच्चों को उनके बराबर का साथ न मिले तो वे चिड़चिड़े, जिद्दी और उद्दंड हो जाते हैं ?

खन्ना—सचमुच मैंने तो इस प्राबलम पर अभी तक सोचा ही न था।

वर्मा—हाँ, तो मिस्टर खन्ना, अब क्या विचार है ? घर में बैठे गुड़िया खेलेंगे या क्लब चलकर इन्टीलेक्चुअल्स की कम्पनी इन्ज्वाय करेंगे ? आज तो मिस भाटिया भी आवेंगी, अपने यौरोप के सुनावेंगी।

खन्ना—**(उठते हुए कोट उठाकर)** अब जब मिसेज सहानी आ ही गये हैं तो भला घर में देंगे ? इस यूनाइटेड फ्रन्ट के आगे तो मुझे सरन्डर करना पड़ता है। **(पुकारते हैं)** ओ जोन्हियाँ !

(नेपथ्य से—"जी आई" जोन्हियां का

खन्ना—जोन्हियाँ, मैं जरा मिसेज सहानी और के साथ बाहर जा रहा हूँ। तुम मीनू को कर समय पर खिला-पिलाकर सुला देना।

(सब जाते हैं, जोन्हियाँ स्तब्ध भाव से

जोन्हियाँ—**(खीझकर बड़बड़ाती है)** यह भी माँ गयी भाषण देने और नाटक खेलने, बाप दोस्तों के साथ घूमने ! मैं भला माँगूँ अब ? मीनू !

(मीनू गुड़िया लिए प्रवेश करती है)

मीनू—**(कमरे में पिता को न देखकर)** क्या चले गये ?

जोन्हियाँ—हाँ क्लब गये हैं। आओ तुम्हारे बाल

(जोन्हियाँ मीनू के बाल बाँधती है। दूसरी मिसेज खन्ना और मिस मेहरोत्रा का प्रवेश।)

मीनू—**(माँ को देखकर आह्लादपूर्वक)** माँ,

मिस मेहरोत्रा—आज आपका भाषण गजब देखा आपने कैसी पिन ड्राप साइलेन्स थी

मिसेज खन्ना—अब देखें इस नाटक का पड़ता है ? रिलीफ फंड के लिए रुपया इसलिए टिकट तो बहुत बिके हैं। काफी डबल परपज सर्व होगा : सामाजिक प्रदर्शन और जनसेवा। अच्छा आप बैठें, मैं अभी आवश्यक चीजें लेकर आ रही

(अन्दर जाती है)

मिस मेहरोत्रा—हलो बेबी ! तुम्हारा नाम

मीनू—जी, मीनाकुमारी।

मिस मेहरोत्रा—**(सोफे पर पड़ी गुड़िया की ओर** क्या तुम अभी तक गुड़िया खेलती हो ! **है, मीनू शर्मा कर चुप रह जाती है।)**

न्हियाँ—तो बेचारी घर में अकेली पड़ी-पड़ी क्या करे ? न कहीं खेलने जा पाती है, न घर में कोई साथी है।

(मिसेज खन्ना का एक **अटैंची लिये प्रवेश।)**

न्हियाँ—**(मिसेज खन्ना को जाने के लिए तत्पर देख** कर) मेम साहब, साहब को तो मिस्टर वर्मा और मिसेज सहानी क्लब लिवा ले गये। मुझे घर जल्दी जाना है। आप कब तक लौटेंगी ?

सेज खन्ना—यह तो बड़ी कठिनाई है ! मेरा जाना तो बहुत आवश्यक है। तुम आज कुछ देर में ही चली जाना। साहब ज्यादा देर तो बाहर रहेंगे नहीं।

न्हियाँ—मेम साहब, मेरा बच्चा बहुत बीमार है। रोवेगा।

(मिसेज खन्ना सोच में पड़ जाती हैं)

स मेहरोत्रा—क्या सोच रही हैं मिसेज खन्ना ? जल्दी कीजिए। दीज सरवेन्ट्स आर आलवेज मेकिंग इक्सक्यूसेज। डोन्ट बादर।

सेज खन्ना—नो मिस मेहरोत्रा, जोन्हियाँ इस नाट दैट टाइप आफ सरवेन्ट। आज मुझे मीनू के कारण रुकना ही पड़ेगा।

मिस मेहरोत्रा—ओह मिसेज खन्ना, डोन्ट बी सेन्टीमेन्टल। मीनू काफी बड़ी है। उसके लिए क्यों रुकना पड़ेगा ? थोड़ी देर की तो बात है। वह घर में रहकर पढ़ती लिखती रहेगी, दरवाजा बन्द कर लेगी। बस !

नू—(डरकर) नहीं माँ, मैं अकेली नहीं रहूँगी। मुझे डर लगता है।

स मेहरोत्रा—नानसेंस ! डर क्या होता है ? मैं जब छोटी थी तब मैंने एक मूवी देखी थी। उसमें एक आठ साल की लड़की ने चोर पकड़ा था। उसके घर के लोग किसी पार्टी में गये थे, चोर ने मौका देखा और अन्दर छिप गया। किन्तु लड़की डरी नहीं, चतुराई से उसे पकड़वा दिया। तुम क्या आठ साल की भी नहीं हो ?

सेज खन्ना—**(प्रभावित होकर)** नवाँ साल है इसे। पर एकदम अल्हड़ बच्ची बनी है। क्या बताऊँ, इसके कारण मुझे बहुत बार मन मार कर अपना प्रोग्राम "कैंसिल" करना पड़ता है !

मेहरोत्रा—खूब ! मिसेज खन्ना आप भी खूब हैं ! मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि आप इतनी वीक माइन्डेड हैं। यदि ऐसा है तो लड़की को होस्टल में रखिए। क्या इसके पीछे अपना "पब्लिक केरियर" बिगाड़ लेंगी ? चिल्ड्रन मस्ट नाट बी ए बर्डेन अपान द पेरन्ट्स !

मीनू—नहीं, नहीं ! मैं होस्टल में नहीं रहूँगी। माँ, मुझे डर लगता है !

मिस मेहरोत्रा—फिर वही डर की बात ! अरे, वहाँ तुम्हारे बराबर की लड़कियाँ होंगी, खेलने-कूदने को मिलेगा, डर तो पास भी नहीं फटकेगा। ठीक है न ? चलिए मिसेज खन्ना। **कलाई पर बंधी घड़ी देखकर**) देर हो रही है।

मिसेज खन्ना—आप ठीक कह रही हैं मिस मेहरोत्रा ! मीनू को होस्टल में रखना ही ठीक रहेगा। मुझे इस बात का ध्यान ही न आया था। **(जोन्हियाँ से)** तुम थोड़ी देर तक साहब का रास्ता देखना। न लौटें तो फिर चली जाना। मीनू ! दरवाजा बन्द कर के पढ़ना-लिखना। डर किस बात का ? मैं तुम्हारे लिए चाकलेट का डिब्बा लाऊँगी। अच्छा टा टा !

(दोनों जाती हैं : जोन्हियाँ निराश भाव से देखती हैं।)

जोन्हियाँ—क्यों मीनू, मैं चली जाऊँ तो तुम घर में अकेली रह जाओगी ? सचमुच दरवाजा बन्द कर लेने पर फिर डर की क्या बात है ?

मीनू—नहीं नहीं ! मैं अकेली नहीं रहूँगी। मुझे बहुत डर लगता है। अनिल भइया ने बताया था कि रात को भूत आते हैं, और बच्चों को अकेले पाकर उठा ले जाते हैं। या तो तुम मेरे पास रहो, या मुझे अपने घर ले चलो।

जोन्हियाँ—तुम्हें अपने साथ घर ले जाऊँ और यहाँ घर में ताला लगा दूँ ? फिर पीछे साहब, मेम साहब, अनिल भइया आवें तो दरवाजे पर बैठे रहेंगे। क्यों ? **(विषाद पूर्वक हँसती है)** तुम थोड़ी देर अकेली रह जाना न ?

मीनू—**(जोन्हियाँ से लिपट जाती है)** नहीं, नहीं ! मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। मैं अकेली नहीं रहूँगी।

जोन्हियाँ—**(प्यार से मीनू की पीठ थपथपाकर)** अच्छा, नहीं जाऊँगी। मैं इन छोटी-छोटी बाहों का बन्धन न तोड़ सकूँगी। मेरे सोना के पास तो उसका बाप होगा, पर मेरी मीनू के पास तो न उसकी माँ है, न बाप। वह बेचारी तो एकदम अकेली है घर में !

* * *

वैज्ञानिक का निमंत्रण और नाइट्रोजन के यौगिक

श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"

पिछले मई मास की बात है। मैं अपने मित्र मेजर जोशी के पास भीमताल गया हुआ था। एक दिन सबेरे नौ बजे जोशी ने अपनी डाक में आये एक निमंत्रण-पत्र को उठाकर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—"घोष साहब की प्रयोगशाला के वार्षिक समारोह का निमंत्रण है। आप भी चल सकते हैं। कल सुबह चलना होगा।"

हम नैनीताल के आसपास के सभी रमणीक स्थल देख चुके थे। तथा पहाड़ों के उस एक ही प्रकार के दृश्य से ऊब भी गये थे। यह तो हमें मेजर जोशी पहले ही बता चुके थे कि घोष साहब की प्रयोगशाला भीमताल से लगभग ६० मील दूर सोमेश्वर नामक स्थान के निकट है तथा उनके खाद्यान्नों पर किये गये अनुसंधानों की रिपोर्टें अनेक वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में छपती हैं। मैं इस अवसर को चूकना न चाहता था, झटपट स्वीकृति दे दी।

दूसरे दिन हम लोग सबेरे आठ ही बजे चल पड़े। भुआली में आलू के फार्म के एक रिसर्च आफिसर भी हमारे साथ हो लिये। उन्हें भी घोष साहब का निमंत्रण था। रानीखेत पहुँचने पर सेब के बाग के विशेषज्ञ मिस्टर विश्वास भी उसी मोटर में आ गये। उन दोनों ने डाक्टर घोष के अनुसंधानों की ऐसी मजेदार कहानियाँ सुनाईं कि तीन घंटे का वह मार्ग बिना किसी कष्ट के कट गया। उन्हीं लोगों से मुझे ज्ञात हुआ कि घोष साहब की पत्नी एक अमेरिकन महिला है तथा उनकी वह प्रयोगशाला किसी समय उस महिला के पिता का निजी अस्पताल और सेनीटोरियम था।

दोपहर से कुछ पहले हमारी मोटर कौशिला नदी की घाटी में उतर गयी। गेहूँ की अधपकी सुनहरी फसल से लदे खेतों के बीच होते हुए हम सोमेश्वर की चीड़ वनों से ढकी पहाड़ी पर चढ़ने लगे। वह चीड़ के लिए पतझड़ की ऋतु थी। चीड़ के पतले तार से नुकीले पत्ते हवा में तैरते मोटर की खिड़कियों के अन्दर आ रहे थे। ताँबे के रंग की वे तीन तीन पत्तियाँ एक सिरे पर मुलायम मखमली डंठल से बँधी होती थीं मानो तीन तीन तीलियों की कूँचियाँ हों। जब उन सहयात्रियों ने मुझे बताया कि नुकीले तिनकों से घोष प्रयोगशाला में खाद्यान्न बना प्रयत्न हो रहा है तो उस प्रयोगशाला के प्रति मेरा षंण और भी अधिक बढ़ गया। पहाड़ की ऊँचाई तिनकों का ढेर इतना अधिक था कि पेड़ों के नीचे पत्थर ढककर एकाकार हो गये थे। कहीं-कहीं तो बने लाल लाल कालीन की ऊँचाई हाथ-डेढ़ हाथ थी। हवा के एक ही झोंके में तिनकों की बौछारें पड़ती थीं।

"बेकार वस्तु है यह।" सेब विशेषज्ञ ने कहा-तो देखने में यह नारियल के रेशों सी लेकिन इसकी नहीं बन सकतीं। जरा सा जोर पड़ने पर ये तिनके कर टूट पड़ते हैं। पिछली लड़ाई के दिनों में इनसे और गद्दियाँ बनाने का प्रयत्न किया गया था किन्तु नहीं मिली। चुभनेवाली नोकें बाहर निकल आ अन्दर रह जाता है चूरा। पहाड़ी औरतें इनको नीचे बिछाने के लिए काम लाती हैं। वह देखिए। कर विशेषज्ञ ने पहाड़ से उतरती हुई स्त्रियों की सी पंक्ति हमें दिखला दी। उनके सिरों पर रस्सी के में बँधे गोल-गोल गट्ठर थे।

चीड़ के जंगलों के उपरान्त हम देवदार और के हरे-भरे जंगल में पहुँच गये। चढ़ाई अब और भी थी और मोटर घौं-घौं करती हुई आगे बढ़ रह थी आगे सोमेश्वर का सरकारी डाकबँगला मिला। बाद अस्पताल था। दूर चोटी पर मकानों की रंग की छतें बीरबहूटियों की भाँति चमक रही थीं। घोष साहब की प्रयोगशाला थी। उस स्थान से की ओर जानेवाली सड़क आकाश से टूटकर डोरी सी उस जंगल में उलझी दिखलाई दे रही थी

कुछ दूर तक कंकड़ बिछे ऊबड़-खाबड़ मार्ग करने के बाद 'घोष-शिखर' का आरंभ हो गया। फाटक के अन्दर खूब साफ-सुथरे बँगले थे। भाँति-भाँति के पुष्प खिले थे। बरामदों में हाइड्रे

भरे विशाल गमलों का दृश्य तो और भी सुन्दर था। न्हीं पुष्पों के निकट जब हमारी मोटर रुकी तो घोष-दम्पति ने हमारा स्वागत किया। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए वे हमें बरामदे की ओर ले चले।

घोष साहब किंचित् साँवले वर्ण के, लगभग पचास वर्ष की आयु के, दोहरे शरीर के गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। उनका सिर गंजा था। मुच्छ विहीन चेहरे पर कहाँ माथा समाप्त होता है और कहाँ सिर का आरंभ होता है इसका पता नहीं चलता था। मिसेज घोष छरहरे शरीर की तीस-पैंतीस वर्ष की सुघड़ आकृति की महिला थीं। उनका चेहरा गुलाब की पंखुड़ी सा कोमल और सुन्दर था। उनके कन्धों पर अधकटे बालों की सुनहरी लटें बड़ी आकर्षक लग रही थीं। उन्होंने घुटनों तक नीला फ्राक पहन रखा था।

बहुत दिनों से भीमताल की उस घिचपिच में रहने के उपरान्त वह साफ-सुथरा और एकाकी आवास जिसमें हमें टिकाया गया था, हमें एक नितान्त उन्मुक्त वातावरण की अनुभूति दे रहा था। उस आवास में हमें हमारी ही भांति आमंत्रित दो विदेशी सज्जन भी मिले। एक का नाम था हौलिस्टर और दूसरे का नेव। वे किसी कालेज में दो वर्ष के लिए अध्यापन-कार्य पर भारत आये थे तथा उस प्रयोगशाला में उसी दिन सबेरे पहुँचे थे। घोष साहब के अनुसंधानों से उन्हें भी बहुत दिलचस्पी थी।

हाथ-मुंह धोने के उपरान्त सभी अतिथि बैठक में एकत्र ए। अमेरिकन अतिथियों को बीयर की बोतलों की ओर पकते देखकर मेजर साहब ने भी उनका साथ दिया। ने शरबत से प्यास बुझाई। ताजे खुबानी फलों का वह रबत बड़ा स्वादिष्ट था। शायद बीयर भी अच्छी थी। सकी प्रशंसा करते हुए मेजर साहब ने कहा--"यह बीयर र्मन मालूम होती है। ऐसी दुर्लभ वस्तु मुझे बहुत दिन द, और वह भी इस जंगल में, मिल पायी। मिसेज घोष के गृहशिल्प की तारीफ किये बिना नहीं रहा जा सकता।"

सेब-विशेषज्ञ ने कहा--"निस्संदेह, अपने ही अनु- धानों में तल्लीन रहकर बाहरी दुनिया को भी भूल जाने- ाले वैज्ञानिकों को सौभाग्य से ही ऐसी चतुर गृहणियाँ लती हैं।" मिसेज घोष की सतर्कता और सावधानी ी प्रशंसा होने लगी।

मिसेज घोष स्त्री-सुलभ संकोच से बोलीं--"आप तो अतिशयोक्ति करने लगे। मेरे पति वास्तव में अपने काम में बहुत मशगूल रहते हैं लेकिन ऐसे विभ्रान्त नहीं कि उनको अपने घर की सूझ बूझ भी न रहे।"

घोष साहब ने मोटी भारी भरकम आवाज में प्रतिवाद करते हुए कहा--"नहीं, नहीं, मैं कुछ भुलक्कड़ तो होता जा रहा हूँ। लेकिन मिस्टर जोशी, असली बात तो रही जाती है। यह बीयर जर्मन नहीं, हमारी प्रयोगशाला की उत्पत्ति है।"

"ओह!" सेब विशेषज्ञ ने कहा--"तो यह भी संश्लेषित है, सिन्थेटिक?" अतिथियों के चेहरों पर आश्चर्य के भाव देखकर घोष साहब की दृष्टि में अपूर्व चमक आ गयी। वे बोले--"न केवल यह बीयर, यहाँ आज हम आप लोगों को ऐसा भोजन देंगे जिसमें चावल, आटा, पनीर, मक्खन, शक्कर सभी कुछ चीजें संश्लेषित हैं। हमारी इसी प्रयोगशाला में चीड़ की नुकीली पत्तियों से तैयार की हुई।"

मिसेज घोष ने कहा--"मैं तो अपने इन अतिथियों को भोजन करा देने के उपरान्त इस रहस्य का उद्घाटन करना चाहती थी। कोई बात नहीं, आपने पहले ही बतला दिया।"

हौलिस्टर नाम के अमेरिकन अतिथि ने अपनी आधी बोतल मेज के दूसरे कोने की ओर सरका दी और सिगार लेकर पीते हुए कहा--"आप अपने तैयार किये हुए खाद्यान्नों का उपयोग करने से पहले उनका भली भाँति परीक्षण तो कर लेती होंगी?"

"इसमें क्या संदेह?" सेब-विशेषज्ञ ने कहा--"यह तो होता ही होगा।" हौलिस्टर ने कहा--"फिर भी कभी-कभी ऐसा होता है--"

मिसेज घोष ने कहा--"कन्टेमिनेशन? आपका तात्पर्य है कि जिन यंत्रों और उपकरणों से ये खाद्यान्न बनाये जाते हैं उनका संसर्ग-दोष विषाक्त प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। लेकिन हम इसके निवारण की पूरी सावधानी बरतते हैं।"

मैंने सोचा मिसेज घोष जैसी सुघड़ और सुसंस्कृत महिला से इस भाँति की जिरह करना इस अमेरिकन की निरी अभद्रता है। बनर्जी के सवेरे के वे शब्द कि जहाँ घोष साहब में पहाड़ों की सी रुखाई और गंभीरता है वहीं उनकी पत्नी में पहाड़ों का ही कवितामय सौन्दर्य और उन

घाटियों की जैसी शालीनता भी है, मेरे कानों में गूँजने लगे।”

हौलिस्टर पर उनके कथन का प्रभाव नहीं पड़ा। उसने वह बोतल दुबारा नहीं उठायी। अपने विचारों में खोया हुआ-सा वह सिगार पीता रहा।

शायद अपने खाद्यान्नों को निर्दोष सिद्ध करने की ही व्यग्रता के कारण मिसेज घोष तत्काल उठीं और बोलीं—“आइए मिस्टर हौलिस्टर, मैं आपको इस संबंध में भली भाँति आश्वस्त कर दूँ। अभी खाने में कुछ देर है। तब तक हम लोग प्रयोगशाला का एक चक्कर लगा लें।”

सेब-विशेषज्ञ बनर्जी ने नटखट की भाँति मुँह बनाते हुए कहा—“मुझे तो बड़ी भूख लगी है। पहले खाना ही आ जाये। प्रयोगशाला में फिर भी घूम सकते हैं।”

उसके दूसरे साथी ने कहा—“बनर्जी साहब को शाम के छः बजे तक काठगोदाम पहुँच जाना है। हमारे एक अफसर आ रहे हैं उन्हें लेने जाना इनके लिए आवश्यक है।”

उस नटखट अतिथि की ओर मुड़ते हुए मिसेज घोष ने अँगरेजी में कहा—“हाँ, मुझे ज्ञात है मिस्टर बनर्जी, आपको अपने डाइरेक्टर साहब को लेने जाना है। कोई बात नहीं, मैं आपको अधिक देर नहीं रोकूँगी। आप तो अपने ही परिवार के से सदस्य हैं। जब तक हम प्रयोगशाला का चक्कर लगाते हैं आप भोजन कर लीजिए।”

फिर हम सब की ओर क्षमा याचना की दृष्टि से देखती हुई वह अपने नौकर को बुलाकर बोली—“तुम बनर्जी साहब को झटपट खाना खिला दो। इनको ढाई बजे डाक की मोटर से काठगोदाम जाना है। जरा डाकखाने में भी कहला दो कि मोटर इस ओर से होती हुई आये और इनको लेती जाये।”

दुबारा बनर्जी की ओर स्नेह भरी दृष्टि फेरती हुई वह बोली—“आप पैन्ट्री के पासवाले कमरे में भोजन करने में बुरा तो नहीं मानेंगे? मैं आपको यहाँ अधिक देर तक रोककर डाइरेक्टर साहब को नाराज नहीं कर सकती। सवा बज गया है। हमें लैब का चक्कर लगाने में कम से कम आधा घंटा तो लग ही जायेगा।”

हमें ज्ञात हुआ कि बनर्जी उस प्रयोगशाला में किसी अमेरिकन संस्था से छात्रवृत्ति लेकर दो वर्ष तक अनुसंधान-कार्य कर चुके हैं और मिसेज घोष उनको अपने बेटे भाँति मानती है।

उनको वहीं छोड़कर शेष अतिथि प्रयोगशाला ओर बढ़े। सीढ़ियों से उतरकर पीछे की ओर गहराई पर लकड़ी के मोटे-मोटे कुन्दों से प्रज्वलित रूम को बचाते हुए हम एक लम्बे बरामदे को पार एक हाल में पहुँचे। उसमें पूरी लम्बाई पर फैली मेजें प्रत्येक मेज पर काँच के दो-दो बीकर पड़े थे। पर काँच के पल्लों की आलमारियों में शीशे और मिट्टी के उपकरण और यंत्र रखे दिखलाई दे रहे एक ओर की दीवाल पर बृहदाकार चित्रों में स्टार्च, प्रोटीन, वसा आदि कार्बनिक पदार्थों के अणुओं की के चार्ट बने थे। कमरे की मेजों पर रखी पुस्तकों यत्र-तत्र बिखरे यंत्रों से पता चलता था कि वहाँ थोड़ी देर पहले कुछ लोग शोध-कार्य कर रहे होंगे।

घोष साहब हमारे आगे-आगे थे। उन्होंने कहा “यह अनुसंधान-कर्ताओं का कमरा है। इस समय वे खाना खाने गये हैं। आजकल विभिन्न कृषि-खाद्य सं की ओर से शोध करनेवाले इक्कीस वैज्ञानिक हैं इस प्र शाला में।”

कुछ और सीढ़ियों को उतरकर हम प्रयोगशाला पिछले भाग में आ गये। वहाँ चीड़ की नुकीली प को काट-पीसकर उनकी लुगदी बनाने की मशीनें थीं। स्वतःचालित नालियों में होकर पत्तियाँ रौलरों के बीच दबती पिसती हुई आगे बढ़ रही थीं।

एक चिमटी से तीन तीलियों की एक पत्ती को कर हमारी ओर करते हुए घोष साहब ने कहा— वर्ष हजारों टन पत्तियाँ इन जंगलों में बेकार जाती आपने देखा होगा पहाड़ की ऊँचाई पर जहाँ किसान नहीं पहुँच पाई हैं इन लाल तिनकों से कंकड़-पत्थर ढक गये हैं। कहीं-कहीं तो इनसे भूमि पर बने की ऊँचाई दो-तीन फुट ऊँची हो गयी है। मनुष्य तो पशु भी पत्तियों से ढके पहाड़ पर नहीं चल पाते, फिसलन होती है इनसे ढकी हुई भूमि पर। जंगल के लिए ये पत्तियाँ बड़ी मुसीबत की चीज है। कहीं चिनगारी भी पड़ जाये तो सारा जंगल मिनटों में हो जाता है। आपने पेड़ों पर लटके नोटिस-बोर्ड मार्ग में स्थान-स्थान पर लगे देखे होंगे जिनमें

और पर्यटकों को सावधान किया गया है कि मार्च महीने से जून के अंत तक इन जंगलों में पीनी या सिगरेट पीना दंडनीय है।

फिर पत्तियों की नारंगी रंग की लुगदी से भरे मोटे नल का एक पेंच खोलकर उसके अन्दर रखी एक कटोरी को झटपट फुर्ती से उसमें डुबोकर फिर उसे लुगदी को हमारी ओर बढ़ाते हुए घोष साहब ने कहा––"लेकिन सच पूछिए तो यह चीज इतनी बुरी नहीं है। इसमें स्टार्च है, बहुत बढ़िया किस्म का कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन है, चिकनाई है और ग्लुटीन नाम की वह वस्तु है जो चावल में भी नहीं होती। इसके अतिरिक्त इसमें मांसपेशियों को शक्ति देनेवाली फेबरीन है, फासफोरस है, थोड़ी-बहुत मात्रा में लोहे, मैगनीज तथा आइडीन जैसे तत्त्व भी हैं। मैंने इन वस्तुओं से ही खाद्यान्न बनाने का प्रयत्न किया है।" लुगदी को कूड़े की बाल्टी में फेंककर कटोरी को सावधानी से ताक में रखकर घोष साहब हमें लेकर आगे की ओर बढ़े।

अगला कमरा बहुत बड़ा था। उसमें छोटे-बड़े अनेक नलों के जाल से स्थान स्थान पर आकर उस लुगदीवाले मोटे नल में मिलते जा रहे थें। प्रत्येक जोड़ पर मंडपाकार पारदर्शक काँचों में थर्मामीटर लगे हुए थे। बीच में एक बड़े से स्विच-बोर्ड पर तापमान और दबाव नापने की अनेक सुइयाँ नाच रही थीं। पारदर्शक काँचों में उबलता हुआ नारंगी पदार्थ थोड़ी देर अटकता हुआ फिर गहराई की ओर धँसता जा रहा था। कुछ फिरकियाँ बड़ी तेजी से नाच रही थीं।

उस कमरे से आगे एक साफ-सुथरे कमरे में मशीन से बन्द होती हुई बोतलों की ओर संकेत करते हुए घोष साहब ने कहा—"यहाँ पर लुगदी से एक प्रकार का तारकोल जैसा तेलिया पदार्थ अलग करके शीशियों में बन्द होता है।"

एक बन्द शीशी को उठाकर हमारी ओर घुमाते हुए वे बोले—"यह पीला तारकोल एक बहुमूल्य पदार्थ है। त्वचा रोगों के लिए यह अचूक दवा है। विदेश में भी इसकी बहुत माँग है। केवल इसी पदार्थ की बिक्री से प्राप्त होनेवाले धन से हमारी प्रयोगशाला अब आत्मनिर्भर हो चली है।"

उससे भी आगे के कमरे में ले जाकर उन्होंने हमको समझाया कि किस प्रकार दिन में कई बार नमूने लेकर उस लुगदी के कीटाणुरहित और निर्दोष होने की परीक्षा की जाती है तथा कीटाणु नाश के लिए किन पदार्थों का उपयोग किया जाता है।

आगे बढ़कर हम एक ऐसे कमरे में घुसे जहाँ मथनियों, चर्खियों और गैस से भरे अनेक प्रकार के बर्तनों से लुगदी में विटामिन, सुगन्ध तथा एनजाइम जैसी वस्तुएँ मिलाई जा रही थीं। अंत में हम उस कमरे में गये जहाँ स्टार्च से बने चावल, सेवइँ, सूजी, आटा आदि तैयार खाद्यान्नों की अलग-अलग प्रकार की वस्तुओं का प्रदर्शन किया गया था।

सब कुछ देख चुकने के उपरान्त जब हम खाने के कमरे में पहुँचे तो देखा कि बनर्जी उसी कमरे में कोने पर एक छोटी सी मेज लगाये भोजन करने में तल्लीन है उसकी थाली में परसे गये चावलों से सुन्दर बासमती के से चावलों की सुगन्ध आ रही थी।

शरबत और बीयर की बोतलें फिर खुलने लगीं। हौलिस्टर का संदेह अब भी बना हुआ था। वह कुर्सी पर बैठते-बैठते बोला—"मिसेज घोष, आप भोजन के पका लिए जाने के बाद भी उसे किसी पालतू जन्तु को खिला लेती होंगी?"

मिसेज घोष ने बुरा नहीं माना। वह तत्काल बोली—"निस्संदेह गिनी पिग्स की एक पूरी पल्टन इसी काम में लाई जाती है। यही नहीं हमारे वैज्ञानिक लोग इस प्रयोगशाला में बनी प्रत्येक वस्तु में रेडियमधर्मी आइसोटोप मिलाकर उनसे बने पाचक तत्त्वों की चूहों और बिल्लियों के विभिन्न अंगों पर हुई प्रतिक्रियाओं का निरन्तर परीक्षण करते हैं। उस ओर पालतू जानवरों का जो बाड़ा है उनमें से प्रत्येक का पालन इसी प्रकार के संश्लेषित भोजन से होता आ रहा है।"

कुछ सोच कर हौलिस्टर ने धीरे से फिर अपना प्रश्न और निर्दयता से दुहराया––"निरन्तर विषाक्त भोजन करते रहने से भी उस भोजन के विष के अवरोध की क्षमता जन्तुओं में उत्पन्न हो जाती है। थोड़ा-थोड़ा करके साँप का जहर देकर पाले गये घोड़ों में घातक जहर के प्रति पूर्ण प्रतिरक्षक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे ही घोड़ों के रक्त से तो साँप के काटे की दवा आजकल बनती है।"

यह कहकर एक उड़ती सी नजर बरामदे की ओर डालते

हुए वह बोला--"मिसेज घोष आपने कभी इन कुत्तों को ऐसा संश्लेषित भोजन दिया है ?"

"क्षमा कीजिए" मिसेज घोष ने खिसियानी सी होकर कहा--"हमारी प्रयोगशाला में शाकाहारी भोजन ही संश्लेषित होता है। ये कुत्ते गोश्त खाते हैं और हैं भी ये दोनों पिल्ले अभी बहुत छोटे। साल भर भी नहीं हुआ इनको।"

हम सबकी दृष्टि बरामदे में बँधे कॉकर-स्पेनियल के काले जोड़े की ओर गयी। लेकिन हौलिस्टर उठकर मेज की ओर बढ़ा और बोला--"तब ये कुत्ते आज मेरे परीक्षण के लिए बिलकुल उपयुक्त हैं। क्या मैं इनको आज के ये भोज्य पदार्थ खाने दे सकता हूँ ?"

मिसेज घोष के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह एक बड़ी सी प्लेट लेकर मेज पर रखे भोजन के बर्तनों में से एक-एक दो-दो चम्मच लेकर बरामदे में आ गया। फिर उसने बरामदे के चिकने फर्श पर चावल, पूड़ी, पनीर तथा अन्य सभी व्यंजनों को बिखेर कर उन दो पिल्लों को खिलाना आरंभ कर दिया।

उस ओर मेज पर रखे व्यंजनों से ऐसी सुस्वादु गंध आ रही थी कि सभी के मुँह में पानी आ रहा था। केवल वही असभ्य हौलिस्टर अपनी धुन में सवार सा बरामदे में बैठा उन कुत्तों से खेल रहा था। थोड़ी देर बाद मिसेज घोष ने स्वयं बाहर आकर कहा--"ये पिल्ले बड़े पेटू हैं। इतने खाने से इनका काम नहीं चलेगा। वैसे भी इनका खाने का समय हो गया है। अच्छा, आज इनको शाकाहारी भोजन ही दे दें। कहिए कौन सी चीज दें ?"

और कोई होता तो उतने ही से मान जाता किन्तु हौलिस्टर तो अपनी जिद पर अड़ा था अड़ा ही रहा। बोला--"चावल, कढ़ी और पनीर दे दीजिए इनको। यही चीजें मुझे पसन्द हैं और इन्हीं में मुझे कुछ सन्देह सा हो रहा है।"

मिसेज घोष में असाधारण सहनशीलता थी। उसने अब भी शान्त भाव से अपने नौकर से कहा--"जमादार से कहो कि इन कुत्तों की तामचीनी की प्लेटें लेता आये।"

प्लेटों के आ जाने पर मिसेज घोष ने हम सब के देखते-देखते उन प्लेटों को चावल, कढ़ी, पनीर और इन्हीं चीजों से बने अन्य व्यंजनों से भर दिया। फिर उनकी जंजीरें खोल दी गयीं। दोनों पिल्ले बड़े चाव से भोजन करने लगे।

उसी समय आँगन में घर्र-घर्र आवाज हुई। की लाल मोटर बनर्जी को लेने आ पहुँची थी। इतना खाना खा गया था कि अपना कोट सँभालते, पहनते और हम लोगों से बिदा लेते उसे सात-आठ लग गये। मोटरगाड़ी के चले जाने पर शेष खाने की मेज पर टूट पड़े। उतनी देर में सभी की तेज हो चुकी थी। भोजन बड़ा ही सुन्दर था। अनुमान था कि शायद चावल खाते-खाते भूसे का स्वाद आयेगा अथवा रसदार तरकारी में तारपीन की सी गन्ध आयैगी। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। कुछ ऐसा था मानों बाजार से छाँट कर लाये गये से उत्तम आटे, चावल और पनीर का प्रयोग किया हो। थे तो हम छः सात ही व्यक्ति लेकिन हमने कई डोंगे खाली किये। स्वयं संदेही हौलिस्टर भी जीभ खारते नजर आता था।

चार बजे के लगभग भोजन समाप्त होने के काँफी आ गयी। वह काली कॉफी और उसमें मिला भी संश्लेषित है यह जानकर जो झिझक हुई वह उसे पर लगाते ही दूर हो गयी। विश्वास ही नहीं होता था यह सब चीड़ की पत्तियों से उसी प्रयोगशाला में बना

कॉफी के दो बर्तन समाप्त कर चुकने के हम लोग फिर बैठक की ओर आ गये। कुछ बरामदे कुर्सियों में बैठे धूम्रपान का आनन्द लेने लगे।

मिसेज घोष ने ताश की गड्डी हाथ में ली ही कि उनका वर्दीधारी नौकर पास आकर बोला--साहब, एक पिल्ला मर गया है। वही जिसके माथे सफेद निशान था।"

मिसेज घोष को पसीना हो आया। उन्होंने एक करके अपने सभी अतिथियों की ओर दृष्टिपात फिर अपने पति की ओर देखा। मानो उस संकट में अपने पति की सहायता की मूक याचना कर रही

घोष साहब के चिकने माथे पर भी पसीने की उभर आयीं। उनकी दृष्टि उसी कोने की ओर चली जहाँ दो ही घंटे पहले वह पिल्ला बरामदे में बँधा

कुछ देर शान्त रहने के बाद वे बोले--"कहीं गलती हो गयी हम लोगों से। हो सकता है पनीर में

१९६३

नाइड का अंश आ गया हो। नाइट्रोजन के इन यौगिकों का भरोसा नहीं किया जा सकता।"

हौलिस्टर ने कुर्सी से उठते अँगरेजी में कहा—"हमें जल्दी करनी चाहिए, अस्पताल है कितनी दूर?"

शवयात्रियों की भाँति चुपचाप हम लोग डिस्पैन्सरी की ओर पैदल चले। डाक्टर उस समय आराम कर रहा था। उसे जगाया गया। उसके पास दो ही स्टमक-पम्प थे। अतिथि लोगों के अतिरिक्त उन नौकर-चाकरों को मिलाकर उसे बारह व्यक्तियों के पेट खाली करने थे। बिना ऐसा किये काम ही नहीं चल सकता था। आलू-विशेषज्ञ तो एसा घबड़ा गया था कि उसकी साँस रुकी जा रही थी।

घोष साहब ने कहा —"पहले मैं अपना पेट खाली करा लूं। मुझे अभी डाकखाने जाकर काठगोदाम तार करना होगा। बेचारा बनर्जी न जाने किस हालत में होगा। यदि डाक की मोटर अभी रानीखत न पहुँची हो तो वहीं मैं उसे डाक्टर के पास चले जाने का संदेश दे दूँगा।"

एक-एक करके सभी के पेट खाली किये गये। मेजर साहब ने पंप का उपयोग करने के उपरान्त अस्पताल की चारपाई पकड़ ली। उनकी आँतें दुखने लगीं। आलू-विशेषज्ञ अधमरा रह गया। मेरे लिए भी वह एक दुखद अनुभव था।

मिसेज घोष ने अपना उपचार नहीं किया। यह कहकर हमारा आग्रह टाल दिया कि वे पहले भी दो-तीन बार वैसा ही भोजन भर पेट कर चुकी हैं। वास्तव में वे इतनी व्यस्त थीं कि उनके लिए अपना उपचार करना संभव भी न था। वह तो एक सुशिक्षित परिचारिका की भाँति लगातार हमारी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहीं। कभी किसी की दुखती पीठ को सहलातीं, कभी किसी को पानी पिलातीं और कभी सहारा देकर उठातीं।

छः बजे थके-माँदे सब लोग फिर बैठक में एकत्र हुए। घोष साहब बनर्जी के लिए बहुत चिंतित थे। काठगोदाम की तार की लाइन खराब थी और रानीखेत में डाक की मोटर से उनका संपर्क नहीं हो सका था।

जब मेजर साहब ने गाड़ी निकालकर वापस चलने की तैयारी की तो घोष साहब की पत्नी ने सकुचाते धीमे स्वर में कहा—"एक एक प्याली चाय पी लीजिए। इस बार मैंने चाय और दूध दोनों वस्तुओं को बाजार से मँगाया है।"

खाली पेट उस लम्ब सफर में चलना ठीक भी न था। मुझे तो बिना कुछ खाये मोटर-यात्रा में मतली बहुत आती है। भला खाने को वहाँ क्या मिलता? पर मिसेज घोष बड़ी सूझ-बूझ की महिला थीं। उन्होंने बिस्किट का एक बन्द पैकेट और कैडबरी के चौकलेट हमारे सामने रख दिये।

चाय पीकर शरीर में कुछ ताजगी आयी। उस समय अपने उसी नौकर को, जिसने उस पिल्ले की मृत्यु का समाचार दिया था, सामने देखकर मिसेज घोष ने कहा—"अरे, उस बिचारे कुत्ते को अभी मत दफनाना। मैं जरा उसकी लाश देखना चाहती हूँ।"

मिसेज घोष की ओर आश्चर्य से देखते हुए वह नौकर बोला—"मैम साहब, आप देख भी न सकेंगी उसे! बड़ी ही खराब मौत हुई है उसकी!"

घोष साहब ने अपनी पत्नी से अँगरेजी में कहा—"प्रिये, हम उसकी आँतों की परीक्षा करायेंगी। विष का प्रवेश कहाँ किस प्रकार हुआ यह जानना आवश्यक है। अभी उसे दफनाने का प्रश्न ही नहीं है।"

वह नौकर थोड़ी-बहुत अँगरेजी समझता था। घोष साहब के वाक्यों में "प्वाइजन" शब्द का बार-बार उल्लेख होते सुनकर वह बोला—"प्वाइजन? प्वाइजन जैसी कोई चीज नहीं साहब, वह खुला रह गया था। डाक-गाड़ी के नीचे आ गया। दोनों पहिए उसके सिर के ऊपर होकर निकल गये। सिर का ऐसा कचूमर निकल गया है कि देखते नहीं बनता।" यह कहते-कहते नौकर स्वयं भी अपने कंधों को झटका देकर उस वीभत्स दृश्य की याद करके आँखें मूँदने लगा।

सब अतिथियों के चेहरों पर मुस्कराहट छा गयी। सभी की जान में जान आयी। हौलिस्टर तो क्षण भर बाद इतनी जोर से हँस पड़ा कि मेज पर रखी चाय की प्यालियाँ भी हिलने लगीं।

मेजर जोशी ने कहा—"मिसेज घोष, बड़ा ही सुन्दर भोजन था वह। अब भी उसमें से कुछ बचा हो तो ले आइए। इस लम्बी यात्रा में खाली पेट मेरी आँतें दुखने लगेंगी।"

नवीन प्रकाशन

भगवद्गीता--मूल लेखक, डा० राधाकृष्णन्। अनुवादक, श्री विराज एम० ए०। प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली। सजिल्द, बड़ा आकार, पृष्ठ संख्या ३७६ अच्छा कागज और अच्छी छपायी। मूल्य, १२ रुपये।

डा० राधाकृष्णन् ने श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद अँगरेजी में किया था। साथ ही, स्थान स्थान पर स्पष्टीकरण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ भी दे दी थीं। यह पुस्तक उसी अँगरेजी संस्करण का अनुवाद है। ऐसा मालूम होता है कि यह अनुवाद और टीका मुख्य रूप से विदेशी पाठकों को ध्यान में रखकर लिखी गयी थी। इसलिए यह उन भारतीयों के लिए भी बहुत उपयोगी है जिनकी शिक्षा-दीक्षा अँगरेजी में हुई है और जिनकी मानसिकता पाश्चात्य है। अँगरेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार से इस देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है। सरस्वती के पाठकों को गीता का महत्व या उसके अभिप्राय को समझने की आवश्यकता नहीं है। डा० राधाकृष्णन् का अनुवाद बहुत ही सरल, तथा उनकी टिप्पणियाँ अत्यन्त स्पष्ट और बुद्धिगम्य हैं। साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति को वे गीता के समझने में बड़ी सहायक होंगी। डा० राधाकृष्णन जन्मजात अध्यापक हैं और वे अपने श्रोताओं की कठिनाइयों और मानसिक उलझनों को समझते हैं। इसलिए उन्होंने कठिन और उलझे हुए स्थलों को बड़े पांडित्यपूर्ण ढंग से, किंतु बोधगम्य शैली और सरल भाषा में समझा दिया है। हिंदी में इस टीका का अनुवाद कर अनुवादक और प्रकाशक ने जनता का बड़ा उपकार किया है।

अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है। भाषा स्पष्ट और प्रवाहशील है। विषय को देखते हुए वह काफी सरल भी है। किंतु हमें एक बात बहुत खटकी। हिंदी में--और विशेषकर श्रीमद्भगवद्गीता के समान धार्मिक ग्रंथों में, श्रीकृष्ण, भगवान् शंकराचार्य, भगवान् रामानुजाचार्य, भगवान् बुद्ध आदि के नाम शिष्टता और आदर के साथ लिये जाने चाहिए। हिंदी में, और भारत में, ऐसी ही प्रथा है। इसलिए जब इस पुस्तक में हम इसके विपरीत बात देखते हैं, तब क्षोभ होता है। यथा :

"जब बुद्ध भिक्षुक के वेश में हाथ में भिक्षा-पात्र लिये भिक्षा माँगता हुआ अपने पिता की राजधानी में वापस लौटता है तो उसका पिता पूछता है : 'यह सब क्यों ?"

"रामानुज परम् को क्रिया विशेष मानता है और उसके अनुसार अर्थ हैं...."

"हँसी इस बात का द्योतक है कि उसने बु
बुद्धिवाद प्रयत्न को भाँप लिया था।"

(यहाँ 'उसने' श्रीकृष्ण के लिए लिखा गया है

हम अपने इन आदरणीय महान् पुरुषों के लि
अवज्ञासूचक भाषा अत्यंत आपत्तिजनक समझते हैं।
प्रति यह अवज्ञा तब और भी असहनीय हो जाती है
हम देखते हैं कि अनुवादक ने कुछ लोगों के लिए
सूचक भाषा का प्रयोग किया है। यथा:

"शंकराचार्य इस अनेकता के उल्लेख को केव
मानते हैं। उनकी युक्ति है कि बहुवचन का प्रयोग
शरीरों के लिए किया गया है, जोकि अलग-अलग है
विश्वजनीन आत्मा के लिए नहीं।

रामानुज कृष्ण, अर्जुन और राजाओं में किं
भेद पर जोर देता है और उसे अंतिम मानता है।"

(पृष्ठ

भगवान् शंकराचार्यजी के लिए आदर-सूचक
का प्रयोग किया गया है। यह बहुत उचित है।
भगवान् रामानुजाचार्यजी के लिए जिस भाषा का
किया गया है, उससे अनुवाद की उनके प्रति
स्पष्ट है।

भगवान् शंकराचार्यजी ही के लिए नहीं, अनु
ने कुछ और लोगों के लिए भी आदरसूचक भा
प्रयोग किया है। जैसे :

> "श्री गैरल्ड हर्ड ने अपनी पुस्तक
> मास्टर' (१९४२) में 'समाज के चतुर्विध
> की आवश्यकता पर जोर दिया है। वे लि
> ....."(पृष्ठ ३५३)।

जो लेखक गैरल्ड हर्ड और भगवान् शंकरा
के लिए आदर-सूचक भाषा का प्रयोग करता है, व
गीता के अनुवाद में भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् बु
भगवान् रामानुजाचार्य के लिए 'वह', 'उसने' आदि
प्रयोग करता है तो तिरस्कार और अवज्ञा की
स्पष्ट हो जाती है। हमें खेद है कि इस धार्मिक
के अनुवाद में इस प्रकार की संकीर्णता और अ
प्रकट की गयी। श्रद्धालु पाठकों को यह दोष इत
मालूम होगा कि वे इस पुस्तक का उपयोग नहीं
और इसके लिए हम उन्हें दोष भी नहीं देंगे।
इस पुस्तक को, इसी दोष के कारण, दुबारा देख
न करेंगे। हम भारतीय लेखकों और प्रकाशकों से
शिष्टता और सुरुचि तथा सहिष्णुता की अपेक्षा

अर्हत प्रवचन—पं० चैनसुखदास। प्रकाशक, ालादय ग्रंथमाला, जैन संस्कृत कालिज, मणिहारों का ास्ता, जयपुर। सजिल्द, मूल्य, साढ़े तीन रु०।

इस संकलन में आचार्य कुंदकुंद, स्वामी वट्टकेर, वामी कार्तिकेय तथा अन्य जैन आचार्यों के वचनों का ग्रह है। ये जैन आचार्य प्राकृत में लिखते थे। जैन साहित्य हुत विशाल है। उसका बहुत-सा अंश प्राकृत में है। स पुस्तक में इन आचार्यों के अनेक उपयोगी विषयों पर वचन दिये गये हैं जिन्हें विषयों के अनुसार क्रमबद्ध किया गया है। प्रत्येक प्राकृत पद्य के नीचे सरल हिंदी में अनुवाद दे दिया गया है। पुस्तक में नीति और आचार विषयक अनेक सुन्दर सूक्तियाँ हैं। वैसे तो यह सभी को रुचिकर होगी, किंतु जैन पाठकों के लिए विशेषरूप से उपयोगी है।

भूमिजा—(नाटक) श्री सर्वदानन्द। प्रकाशक, ारतीय ज्ञानपीठ, काशी। सजिल्द, मूल्य डेढ़ रुपया।

हिंदी में रंगमंच बहुत शिथिल है। वास्तव में हिंदी में सका अभाव है। रंगमंच के अभाव में अभिनीय नाटकों का अभाव स्वाभाविक है। इंटरमीजिएट और बी० ए० के कोर्सों में एक नाटक रखा जाता है। प्रमादजी के नाटकों ने प्रायः एकाधिकार कर रखा था, किन्तु कोर्सों के लिए नाटक लिखे जाने लगे। उनमें अधिकांश पठनीय होते हैं—अभिनीय नहीं। इसलिए जब कोई रंगमंच के योग्य नाटक दिखलाया पड़ता है तब प्रसन्नता होती है। 'भूमिजा' उसी प्रकार का नाटक है। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं क्योंकि श्री सर्वदानंद की नाटक में रुचि केवल शास्त्रीय नहीं है। रंगमंच का घनिष्ट परिचय होने के ारण उनका उससे व्यावहारिक परिचय है। इसीलिए ह नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल है और इसके अनेक फल अभिनय इस बात के प्रमाण हैं।

नाटक में सीता की कथा है। भारतीय परम्परा नुसार नाटक दुःखान्तक नहीं होना चाहिए, किंतु श्चात्य ट्रेजेडियाँ पढ़ते-पढ़ते हमारी रुचि बदल सी यी है और अब भारतीय नाटककार भी ट्रैजैडी लिखना क समझते हैं। शायद उनका मत है कि करुणरस के रिपाक के लिए वह अत्यंत आवश्यक है। उत्तर रामरित भी इसी विषय पर आधारित है किंतु परम्परा की क्षा के लिए उसे सुखान्तक बना दिया गया था। आधुनिक परिवेश में लेखक ने ऐसी कलाबाजी को अनावश्यक मझा और उसे विशुद्ध 'ट्रैजैडी' बना दिया। किंतु यह नना पड़ेगा कि उसमें लेखक को पूरी सफलता मिली है। र्शक या श्रोता सीता की ट्रैजैडो पर बिना आँसू बहाये हीं रह सकते।

सीता का चरित्र अत्यन्त उदात्त है। वह इतना ात्त हो गया है कि भगवान् राम का चरित्र दब गया है। ही नहीं गया, कहीं कहीं तो वह दर्शक को सहानुभूति तक देता है। लव से मिलने पर, जब लव और कुश यह सुनकर शंका प्रकट करते हैं कि भगवान् राम ही उनके पिता हैं, तब वे पश्चात्ताप की मूर्ति होकर अपने से कहते हैं—"राम, तू अब भी जीवित है। भगवान् अंशुमाली रच दो अपनी किरणों से राम की मरण-शय्या। वह दुर्भिक्ष है, महामारी, हाहाकार, सर्वनाश है राम। अकल्याण, कलंक, अशाति और अनर्थ का जीवित अभिशाप है वह। बालिबध का पापी, कुम्भकर्ण का हत्यारा, विभीषण को भ्रातृद्रोह सिखानेवाला पातकी, सीता के निष्कलंक समर्पण का निर्दय दम घोंटनेवाला निर्दय और तपस्वी शम्बूक की हत्या का अपराधी राम तुम्हारी अनन्य घृणा का पात्र है लव कुश। इसे घृणा चाहिए, घृणा! तुम्हारी सीता की, इस चराचर ब्रह्माण्ड की घृणा! स्नेह उसे मत दो, भक्ति और आदर उसे मत दो। दो अपनी उपेक्षा, दो अपना तिरस्कार।" और लव भी उनसे कहता है—"महाराज रामचन्द्र, आप सम्राट् हों, चक्रवर्ती सम्राट् हों, स्वयं ईश्वर हों, किंतु लव, उपेक्षिता माता का उपेक्षित पुत्र लव, आपको कहेगा कायर, स्वार्थी और रक्त-पिपासु।" आलोचक के समान वैष्णव को यह वार्तालाप प्रिय न हो तो आश्चर्य नहीं। पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार पुत्र पिता का न्यायाधिकारी भले ही हो सके, किंतु जहाँ "पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परमन्तपः" आदर्श रहा है वहाँ वाल्मीक के आश्रम में पला हुआ बालक अपने पिता से ऐसी बात कहे; यह ऐतिहासिक वास्तविकता नहीं कहीं जा सकती। यदि लव ने इँगलैण्ड या अमरीका में 'माडर्न' शिक्षा पायी होती तो 'डैडो' को 'ओल्डफूल' आदि कहना अस्वाभाविक नहीं मालूम होता। इसके अतिरिक्त, जिन लोगों के हृदयों में भगवान् राम का तुलसीदास का बतलाया हुआ "प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः तथा न मम्लौ वनवा सदुःखतः मुखाम्बुजश्री रघुनंदनस्य" का चित्र अंकित है, उनके गले राम का उपर्युक्त भावोन्मादिक प्रलाप कैसे उतर सकता है?

अवश्य ही यह दृष्टिकोण का भेद है। हम भगवान् राम को श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं। नाटककार आधुनिक युग का बौद्धिक प्राणी (रेशनलिस्ट) है जिसके मानस में शायद भक्ति आदि की दकियानूसी ग्रथियाँ नहीं हैं। वह भगवान् राम के कार्यकलापों को साधारण आधुनिक व्यक्तियों के रूप में, और आधुनिक परिवेश में देखता है। विचार स्वातन्त्र्य का तकाजा है कि उसे इसका अधिकार दिया जाय।

किंतु नाटक की दृष्टि से, यदि हम यह भूल जायँ कि कथावस्तु का सम्बन्ध उन भगवान् राम से है जिनको कोटि-कोटि हिंदू अवतार मानते हैं, तो केवल कला और साहित्य की दृष्टि से—और शुष्क बौद्धिकता के मापदंड से—मानना पड़ेगा कि यह नाटक सफल है: सीता का चरित्र हमारी सर्वांश सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। नाटकीयता की बराबर रक्षा की गयी है। वार्तालाप कहीं भी शिथिल नहीं होने पाये और कथा में सतत प्रवाह है।

आखिरी आवाज (उपन्यास)—रांगेय राघव। प्रकाशक, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली। मूल्य, सात रुपये।

डा० रांगेय राघव हिंदी के यशस्वी उपन्यासकार थे। यह उनका अंतिम उपन्यास है जो उनके स्वर्गवास के बाद प्रकाशित हुआ है। उससे इसका विशेष महत्त्व है। इस उपन्यास की औपन्यासिकता निर्विवाद है। कथा के प्रवाह, घटनाओं की अनायासता और विचित्रता, सभी पर रांगेय राघव की छाप है। इस कथा की पृष्ठभूमि ऐसे गाँव की है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पहिले किसी राज्य में था। राजाओं के जाने के बाद वहाँ किस स्तर के और किस प्रकार के लोग राजनीतिक प्रभाव में आ गये, और उनमें कितनी निम्नकोटि की दलबंदी, घात-प्रतिघात और आपसी स्पर्द्धा है—ये सब बातें बड़े वास्तविक ढंग से इस उपन्यास में दिखलायी गयी हैं। पुलिस का रवैया शासन पर व्यंग्य है। अफसरों की भ्रष्टाचारिता का नग्न चित्रण है। यदि वह यथार्थ चित्रण है तो स्थिति की भयंकरता से किसी भी देश-हितैषी का दिल बैठ जायगा। हमने कांग्रेस की दलबंदी की निम्नस्तरीय स्थिति का चित्रण कहीं नहीं पढ़ा। उपन्यास आरंभ से अंत तक रोचक है। कथा के प्रवाह और स्थिति के चित्रण में पात्र गौण हो गये हैं। फिर भी कई पात्रों का चरित्र सफलतापूर्वक उभारा गया है जो अपनी दृढ़ताओं और कमजोरियों में सजीव हो उठे हैं। इसमें कत्ल का मुकदमा मुंसिफ के सामने पेश किया गया है। जहाँ तक हम जानते हैं मुंसिफ दीवानी ही के मुकदमे करते हैं। भाषा में भी कहीं-कहीं गड़बड़ियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे 'मनुष्य का गोबर', 'आवारा मवेशी तो नहीं लग रही थी', 'बेचैन मत बनो', 'हल लेकर खेत पर जोतने चला जाता था', 'इंसान साँस से झूझता है', आदि। शायद रांगेय राघवजी को इसे दुहराने का अवसर नहीं मिला। ऐसी अवस्था में छापने के पहिले इसको किसी विद्वान् से दिखलवा लेना चाहिए था।

तूफान और जिन्दगी—(उपन्यास) मूल लेखक, मामा वारेरकर। अनु० रामचंद्र र० सर्वटे। प्रकाशक, राजपाल एण्ड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली। मूल्य, तीन रुपये।

मामा वारेरकर का यह समस्यामूलक उपन्यास है। एक अज्ञात कुलशील अनाथ बालक को अनाथालय से लाकर एक महाराष्ट्र ब्राह्मण दम्पत्ति पुत्ररूप में पालते हैं।
वह वास्तव में एक मुसलमान माता का
"संस्कारात् प्रवला जातिः" वाला सूत्र प्रमाणित
है। वह एक अस्वाभाविक वातावरण में पलता
आई० सी० एस० में आने तक स्त्रियों से सर्वथा
है। विलायत जाने पर भी वह स्त्रियों से कैसे
में नहीं आता। एक प्रगतिशीला पारसी युवती
उसका मन खिंच जाता है और एक सरदार
अपनी पुत्री मढ़ना चाहते हैं क्योंकि वह आई० सी०
है। सरदार कन्या का आचरण बड़ा अस्वाभावि
वह वेश्या के समान बरताव करती है जो इस
स्वाभाविक नहीं है। नर्गिस को देश-सेविका के
चित्रित किया गया है। अंत में जब इस युवक
जन्म का पता लगता है और वह अपनी वास्तविक
का मुकदमा करता है—जो स्वदेशी या खिलाफ
लन में पकड़ी गयी है—और उसे अपने जन्म
हाल मालूम होता है तो पारसी युवती की
प्रेरित होकर वह नौकरी से त्यागपत्र दे देता है।
शीलता और आधुनिकता के आग्रह के कारण
कन्या का चित्रण बहुत निम्नकोटि का, और
का बड़ा ऊँचा चित्रित किया गया है। कथा में
सत्य खींचकर लाने का प्रयास किया गया है—
नहीं झलकता। वैसे, उपन्यास रोचक है।
दृष्टि से वह सफल है।

संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ—
पं० जनार्दन भट्ट। प्रकाशक, नेशनल पब्लिशिंग
२६ ए चंद्रलोक, जवाहर नगर, दिल्ली। मूल्य,
इसमें २० शीर्षकों के अंतर्गत संस्कृत के
हुए चोटी के और चुभते हुए श्लोक संग्रह किये
संकलनों पर सकलनकर्ता के पाण्डित्य, सुरुचि,
और व्यक्तित्व की छाप रहती है। इस संकलन
पड़ता है कि संकलनकर्ता विदग्ध विद्वान् हैं।
का चुनाव बड़ी सुरुचि से किया गया है।
सरल हिंदी में उनके अर्थ दे दिये गये हैं तथा
उनके समानान्तर हिंदी के छंद भी। हमने अभी
प्रकार के आधुनिक जितने संकलन देखे, उनमें
सर्वोत्तम मालूम पड़ा। इससे संस्कृत साहित्य के
सर्वोत्कृष्ट रत्नों से पाठकों का परिचय हो जायगा।
में सावधानी बरती गयी है क्योंकि अशुद्धियाँ
हैं। यह सुंदर संकलन बड़ा उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक

९०७ की सरस्वती

परलोक-वासी मिस्टर जॉन बीम्स

ले० काशीप्रसाद जायसवाल (लिंकन्स इन, लंदन)

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य ?
काञ्चनमणि-संयोगो नो जनयति कस्य लोचनानन्दम्

सरस्वती के पाठकों को डाक्टर हार्नली, डाक्टर ग्रियर्सन, और मिस्टर ग्रौस के जीवन-चरितों में मिस्टर म्स का उल्लेख मिला होगा। इन महाशय के विशेष रिचय के लिए यह नोट आज लिखा जाता है। मिस्टर म्स भारतीय भाषाओं के विद्वान् थे। हिन्दी से उनका शेष सम्बन्ध था।

२१ जून १८३७ ईसवी को इनका जन्म ग्रीनिच सिटल में हुआ था। इनके पिता पादरी टामस बीम्स न्दन के सेंट जेम्स गिरजाघर के धार्मिक उपदेष्टा थे और पितामह, जान बीम्स, हमारे 'लिन्कन्स इन' के बैरिस्टर और बेन्चर थे। साथ ही वे के० सी० (K. C.) अर्थात् बादशाह के वकील, भी थे। इँगलैंड में बैरिस्टरी बेंचर और के० सी० होना बहुत बड़े मान की बात मझी जाती है।

मिस्टर बीम्स को मरचेन्ट टेलर स्कूल में डाक्टर ग की निगरानी में, शिक्षा दी गयी थी। यहीं से इनको डियन सिविल सरविस में एक जगह मिल गयी। इसके द, ये हेलीबरी कालेज में संस्कृत और फारसी सीखने । १८५६–५७ के बीच इन्हें चौथे टर्म में संस्कृत र फारसी में पारितोषिक मिले। १८५८ में ये हिन्दुस्तान ये। ५९ से ६१ तक पंजाब में इनकी नौकरी थी। से अन्त तक ये बंगाल में रहे। ६७ में स्थायी कलेक्टर र ८१ में कमिश्नर हुए। दो बार बोर्ड आव रेविन्यु स्थानापन्न मेम्बर भी रहे। सन् १८९३ के मार्च में इन्डियन सिविल सर्विस से अलग हुए।

पंजाब और बंगाल में रहने के कारण बीम्स साहब वहाँकी भाषाओं और उप-भाषाओं का व्यावहारिक हो गया। १८६६ में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका में इनके लेख पहले पहल प्रकाशित हुए। उन्हें इन्होंने चम्पारन से लिखा था। विषय था कि—अदालती उर्दू में अर्बी के शब्द बर्ते जायें या नहीं। इस विषय पर इनकी राय का उल्लेख हमारे पिछले लेखों में हो चुका है। एक बरस पहले मिस्टर बीम्स का ध्यान बिशप कैल्डवेल के लिखे द्राविड़ी भाषाओं के तारतम्य बोधक व्याकरण (Comparative Grammar of Dravidian Languages) पर गया। इनके विचार में आया कि आर्य भाषाओं का भी एक ऐसा ही व्याकरण बनना चाहिए। सन् १८६६ में आपने इस विषय का अध्ययन आरम्भ किया और ७२ में उसका प्रथम फल प्रकाशित हुआ।

इस अभ्यन्तर में कई एक छोटी-छोटी चीजें इनकी लेखनी से निकलीं। १८६७ में Outlines of Indian Philology (भारतीय शब्द-व्युत्पत्ति विद्या की बाहरी रेखाएँ) नामक पुस्तक इनकी छपी, जिसका दूसरा संस्करण १८६८ में निकला। यह सबसे पहला ग्रन्थ भारतीय भाषाओं की व्युत्पत्ति विद्या का था। इसके पहले और किसी ने भारत की समग्र आर्यवंशीय भाषाओं पर कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। यद्यपि इसके बहुतेरे सिद्धान्त, बाद के भाषा-तत्त्ववेत्ताओं (डाक्टर हार्नली, डाक्टर ग्रियर्सन आदि) के अनुसन्धान से, भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गये हैं, तथापि इस ग्रन्थ की बहुतेरी बातें आज भी वैसी ही उपयोगी हैं जैसी प्रकाशित होने के समय थीं।

सन् १८६८ में इँगलैंड की रायल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में नेपाल और भोजपुर की भाषाओं पर मिस्टर बीम्स के लेख मुद्रित हुए। इन उप-भाषाओं पर ये प्रथम लेख थे। इनके बाद डाक्टर ग्रियर्सन ने बिहारी भाषा पर लिखा।

१८८५ ईसवी तक, बीम्स साहब का सम्बन्ध बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी से बना रहा। २० वर्ष तक

आप उसकी पत्रिका में लेख लिखते रहे। इन लेखों में से कई लेख मैंने "हिन्दी" और "चन्द की हिन्दी" आदि पर देखे हैं। चन्द बरदाई की कविता का अध्ययन पहले पहल आप ही ने आरम्भ किया और आप ही के प्रयत्न से उसने प्रसिद्धि प्राप्त की। चन्द का छन्दोबद्ध अँगरेजी अनुवाद भी आपने शुरू किया था। पर पीछे से जब इस बात की चर्चा छिड़ी, कि रासो के कर्ता चन्द ही हैं या और कोई, तब उन्होंने उसका अवलोकन बन्द कर दिया और शायद इसीसे उन्होंने अनुवाद भी पूरा न किया। इसके सिवा पुरातत्त्व और उड़ीसे के इतिहास पर भी, १८७० और १८९३ के बीच, उक्त सभा की पत्रिका में आपने बहुत कुछ लिखा। आपके ये लेख विशेषतः चन्द बरदाई और कुछ अन्य पुराने हिन्दी कवियों पर ही हैं।

सन् १८८४–८५ में "अकबर के समय का भारतीय भूगोल" आपने प्रकाशित किया। इस बीच में इंडियन ऐंटिक्वेरी (Indian Antiquary) नामक बम्बई के पुरातत्त्व सम्बन्धी पत्र के भी आप सहायक लेखक थे। उस समय इंडियन ऐंटिक्वेरी में अच्छे-अच्छे लेखक थे। उसमें मिस्टर बीम्स ने बड़े-बड़े विद्वानों के ग्रन्थों की आलोचना की है और बंगाल और उड़ीसे के प्राचीन साहित्य पर कुछ नये लेख भी लिखे हैं।

सन् १८६९ में, सर हेनरी एलियट के "Supplemental Glossary of Indian Terms" (भारतवर्षीय पारिभाषिक शब्द-कोष के परिशिष्ट) का संस्करण आपने छापा, जो अँगरेजी के लिए बहुत ही लाभदायक है। ३२ वर्ष बाद, अर्थात् १८९१ में, इनका नामी बंगाली भाषा का व्याकरण मुद्रित हुआ। इसमें साधु और इतर, दोनों तरह की वंगभाषाओं का विवेचन है।

सेवावृत्ति से उपरत होने पर आपने इम्पीरियल और एशियाटिक क्वार्टरलि रिव्यु में ही विशेष करके लिखा। एक बार आपने एक प्राकृत कोश बनाने का विचार किया था। पर ग्रन्थ-प्रकाशकों से पूरा प्रोत्साहन न मिलने के कारण आपने उस विचार को त्याग दिया। मरने के पहले इस अविश्रान्त परिश्रमशील विद्वान् ने बाबर के आत्मचरित (तुर्की) का अनुवाद आरम्भ किया था।

बीम्स साहब का "भारतीय आर्यभाषाओं का तारतम्यबोधक (अथवा तत्त्वसादृश्य निरूपक) व्याकरण"
इनकी लेखनी का सर्वोत्तम रत्न है। यह १८६६ में
किया गया और क्रमशः ७२, ७५ और ७९ में
हुआ। सन् १८७२ में तीन तरफ से आधुनि
भाषाओं पर, युरोपियन विद्वानों की लेखनी से लेख
डाक्टर हार्नली के गौड़ भाषाओं पर भाषा-तत्त्व-
निरूपक लेख, और मिस्टर बीम्स के व्याकरण का
भाग—इसी सन् में प्रकाशित हुए। डाक्टर ट्रम्प ने
सिंधी ही भाषा का विवेचन किया था। पर डाक्टर
के लेख बड़े महत्त्व के हुए; भाषाशास्त्र में डाक्टर
की गंभीर गवेषणा के ये उदाहरण रूप हैं। इनके
किये गये बहुत से सिद्धान्त मिस्टर बीम्स ने पीछे से
किये। पर मिस्टर बीम्स का ग्रन्थ अपने विषय
ग्रन्थ था। उसमें बीम्स साहब ने अद्भुत
दिखलाया है। अपने सिद्धान्तों का निरूपण
तर्कशास्त्रानुकूल करके भी विषय को जटिल नहीं
दिया। बड़ी सरलता और योग्यता से आपने विचार
है। यह ग्रन्थ मिस्टर बीम्स का कीर्तिस्तम्भ है।
इसकी बहुत-सी बातें डाक्टर हार्नली और डाक्टर
की गवेषणा से रद हो गयी हैं। तो भी वह अपने
पहला और मौलिक ग्रन्थ होने से अब भी उसका
है। डाक्टर ग्रियर्सन ने लिखा है कि भाषाशास्त्र के
यन में उनको इस ग्रन्थ से बहुत सहायता मिली है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने बीम्स साहब के मार्ग पर
बहुत कुछ किया। बीम्स उन्हें बराबर प्रोत्साहन
साथ ही भाषा विषयक कामों में सहायता भी
डाक्टर ग्रियर्सन के लिंग्युस्टिक सर्वे (भाषा के
की वंग भाषा विषयक रिपोर्ट का आपने संशोधन
था, और बहुत-सी सूचनाएँ दूसरे विषयों में भी
इस सम्बन्ध में डाक्टर ग्रियर्सन ने अपनी कृतज्ञता,
बीम्स की मृत्यु पर रायल एशियाटिक सोसायटी के
एक लेख लिखकर प्रकाशित किया है। वे कहते हैं
समय किसी सिविलियन का भाषाशास्त्र के सिद्धा
ढूँढ़ निकालना बुरा समझा जाता था। पर उन्हें
बीम्स से, जो सिविलसर्विस में उनके ऊपर थे,
१८७८ ईसवी के लगभग पाकर बहुत उत्साह

इतने अगाध अध्ययन में डूबे रहने पर भी
बीम्स चिट्ठियों का उत्तर तुरन्त देते थे। डाक्टर
कहते हैं कि मिस्टर बीम्स के साथ पत्र-व्यवहार में,

९६३

ाहब ही हमेशा पीछ रहते थे। जवाब में देरी इन्हीं से ाती थी।

विवाद के समय बीम्स साहब की लेखनी में बड़ी व्रता आ जाती थी। इसका उदाहरण डाक्टर हार्नली र इनके बीच का भाषा-सम्बन्धी विवाद है। बीम्स ो अपने अध्ययन में विश्वास रहता था। पर दूसरे विद्वानों की अखण्डनीय युक्तियों को आप स्वीकार भी र लेते थे। बीम्स साहब भारतीय भाषाशास्त्र की बातों ं प्रथम प्रमाण माने जाते हैं।

बीम्स साहब को फारसी की कविता का बड़ा शौक ा। भारतवर्ष के काव्य में वे महाभारत की बड़ी तारीफ ते थे। उसे वे योरप के प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्यों में सी से कम न समझते थे।

मार्च १८९३ में मिस्टर बीम्स ने सिविल सर्विस से न ली और इँगलिस्तान आये। २४ मई सन् १९०२ ो लम्बी बीमारी पाकर, समरसेट में आपका शरीरपात हुआ। जून में रायल एशियाटिक सोसाइटी में आपके ए शोक प्रकाशित किया गया।*

ुणी हो या निर्गुण, मरना सभी को पड़ता है। भेद तना ही है कि एक के लिए संसार शोक करता है उसका म पीछे भी सम्मान के साथ लिया जाता है दूसरे के र जाने से पृथ्वी हलकी हो ज़ाती है। हमारे देश बहुत से कलेक्टर, कमिश्नर और लाट आते और वहाँ चले जाते हैं। किसीका नाम विद्या, विवेक, सौशील्य और सहनुभूति के बल से अचल हो जाता है और किसीका दुर्व्यवहार के बल पर।

मिस्टर बीम्स की विधवा जीवित हैं। उनके तीन लड़के और पाँच लड़कियाँ हुई। उनकी एक लड़की जनरल सर हेनरी गियरी को व्याही हैं। मिस्टर बीम्स के चित्र के लिए हम डाक्टर ग्रियर्सन और जनरल सर हेनरी के बहुत अनुगृहीत हैं।

हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाले विद्वानों में से चार के संक्षिप्त वृत्तान्त सरस्वती में प्रकाशित हो चुके। इस सम्बन्ध में इन महाशयों के विषय में और लिखा जा सकता है। डाक्टर गिलक्राइस्ट, मिस्टर फ्रेडरिक पिन्काट, फ्रेंच-विद्वान् डिट्यासी, मिस्टर निकलसन् और रेवरेंड, ग्रीव्ज। फ्रेडरिक पिनकाट की जीवनी, हरिश्चन्द्र के चरित-लेखक लिखनेवाले हैं। बड़ी कृपा हो यदि आप पिनकाट साहब पर एक छोटा-सा लेख खड्गविलास प्रेस की सामग्री के आधार पर, लिखकर सरस्वती में प्रकाशित करके इस विषय में लेखमाला को पूरा करने में हमें सहायता दें।

डाक्टर हार्नली, मिस्टर बीम्स और डाक्टर ग्रियर्सन ने जो व्याकरण लिखे हैं उनका उल्लेख कई बार सरस्वती में आया है। क्या ही अच्छा हो यदि क़ोई लेखक, इन ग्रन्थों से काट-छाँटकर हिन्दी व्याकरण विषयक पुरातत्वों को प्रकाशित करें। इस विषय में हरिश्चन्द्र की नवप्रकाशित जीवनी में एक अध्याय पढ़कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई। यह अध्याय बड़ी योग्यता से लिखा गया है। हरिश्चन्द्र के चरित-लेखक महाशय से हमारी यह भी प्रार्थना है कि यदि आपको अवकाश हो तो इस विषय में भी आप हाथ लगावें। इससे हिन्दी का बड़ा उपकार होगा। हमारा विचार इस विषय में लिखने का था, और उसका आरम्भ भी किया था। पर अब उसका होना जरा मुश्किल मालूम होता है।

---

*सभा के अधिवेशन में डाक्टर ग्रियर्सन ने एक लेख ा था जो पीछे से सोसायटी के जरनल में प्रकाशित ा। विशेष करके उसी लेख के आधार पर यह नोटिस ी गयी है।

—लेखक।

मनोरंजक संस्मरण

एकाक्ष कवि का पलायन

उत्तर मध्यकालीन युग में अवध के उत्तरी तराई के प्रदेश में कासी नाम की किसी रियासत के किसी राजा के दरबार में गौतम नामक एक कवि थे। गौतमजी एक नेत्र से हीन थे परन्तु कविता अच्छी करते थे। एक बार राजा साहब के किसी दरबारी ने, उन्हींके संकेत पर, गौतमजी के एकाक्ष होने पर कुछ व्यंग्य किया। उन्होंने गौतमजी पर कोई व्यंग्यात्मक छन्द दरबार में पढ़ा। राजा साहब भी उस छन्द को सुनकर हँस पड़े; दरबारी तो ऐसी घटनाओं से प्रसन्न होते ही हैं।

कवि जी को इस अपमान पर बड़ा क्षोभ हुआ। भरे दरबार में इस प्रकार उपहास के पात्र बनाये जाने पर वे रुष्ट हो उठे। इस घटना में राजा साहब की दुरभिसंधि का अनुमान भी उन्होंने कर लिया। अपने क्रोधावेश में उन्होंने तुरन्त ही एक छन्द रच डाला और उसे दरबार में, महाराज के सम्मुख पेश किया। छन्द इस प्रकार था :—

> **'सुरुख'[1] उदैपुरी, 'बरात'[2] मारवाड़ भूप,**
> **'चंग'[3] नृप कूरम, 'कैंयाच'[4] बीर बांसी को।**
> **लाज को जहाज, सब राजन को सिरताज,**
> **'ताज'[5] राजगढ़ को प्रताप कित्ति खासी को।**
> **'सेर'[6] सम हिम्मति, सुमेरु सम उन्नताई,**
> **'समसेर'[7] बाँधौगढ़, उज्जल बिभासी को।**
> **'गंजीफा के रंग सो गिनाए रंग सातौ तहाँ,**
> **'आठौं' रंग गौतम गनायो भूप कासी को।।**

उक्त छंद में गंजीफे के सात रंग तो भिन्न-भिन्न राज्यों के नरेशों पर घटित किये हैं किन्तु अन्तिम, आठवाँ रंग, जो 'गुलाम' होता है, राजा साहब पर आरोपित किया गया है। जिस प्रकार आजकल ताश का खेल लोकप्रिय है, उसी प्रकार उस युग में गंजफा खेला जाता था।

उक्त छन्द में छिपे हुए गहरे व्यंग्य का प्रहार करके गौतमजी ने अपने अपमान का पूरा बदला ले लिया। राजा साहब को गुलाम बनाकर वे दरबार से उठ खड़े हुए और घर चले आये। दरबार में सन्नाटा छा गया। थोड़ी देर बाद द्वेषियों ने कानाफूसी शुरू की। राजा साहब को भड़काया कि गौतम को दण्ड मिलना चाहिए। आज्ञा हुई कि गौतम पकड़कर लाये जायँ। हरकारे भेजे गये, किन्तु गौतमजी तब तक नगर त्याग चुके थे। उन्होंने पलायन ही में अपनी कुशल समझी।

एक आँख का रहस्य

उस समय पंजाब में महाराज रंजीतसिंह के का सूर्य तप रहा था। पंजाब में एक मुसलमान लि था। मध्य युग में छपायी की कला उन्नत नहीं उन दिनों सभी पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। और ईरान में इन पुस्तक लिखनेवालों ने सुंदर लिखने की कला बहुत उन्नत कर ली थी। यह मु लिपिकार भी अक्षर लेखन की कला में अद्वि उसने वर्षों के परिश्रम से कुरान शरीफ की एक प्र तैयार की। उसके अक्षर अत्यन्त सुंदर थे, और पुस्तक लिपिकला का अत्यन्त उत्कृष्ट नमूना थी वह तैयार हो गयी तो वह उसे लेकर कितने ही मु रईसों और नवाबों के यहाँ गया। सबने पुस्तक की प्रशंसा की, कितु उसका मूल्य इतना अधिक था कि ने उसको खरीदने का साहस नहीं किया। इस पुस्तक को लेकर वह लाहौर भी गया क्योंकि उ वह पंजाब की राजधानी था और वहाँ बड़े उन्न तथा धनी मुसलमान रहते थे। कितु उन्होंने प्रशंसा करके उसे टरका दिया। वह बहुत निराश इसी बीच महाराज रंजीतसिंह ने इस कला निराशा की कहानी सुनी। उन्होंने उसे बुला बड़े आदर से बैठाया और उसका हाल पूछा। कुरान की प्रति महाराज को देखने को दी तब में लेकर महाराज ने उसे सिर से लगाया और पन्ने उलटकर उसे देखने और उसकी लिपिकला करने लगे। अंत में उन्होंने उसे अपने निजी के लिए खरीद लिया और लिपिकार को उसकी अधिक पुरस्कार दिया।

महाराज के एक मुसलमान वजीर थे। उ फकीर अजीजुद्दीन था। इस घटना को लक्ष्य क महाराज से कहा—"आप तो सिख हैं, फिर की धार्मिक पुस्तक के प्रति आपने इतना दिखलाया ?" इसपर महाराज ने कहा—"मैं को एक ही आँख से देखता हूँ। कहीं मैं एक एक आँख से, और दूसरे धर्म को दूसरी आँख लगूँ, इसीलिए ईश्वर ने मेरे पास एक ही आँख है !"

यह धर्म-निरपेक्षता उस युग की है जि 'सेक्युलर' शब्द इस देश में कोई जानता भी न भावना थी, शब्द नहीं था। अब शब्द है, किन्तु पकड़ में नहीं आती !

प्रकाशक : पी० एल० माथुर इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बापू का अनमोल स्मारक

जय गान्धी

इसे प्रत्येक परिवार, और प्रत्येक घर में पहुँचना चाहिए

क्यों ?

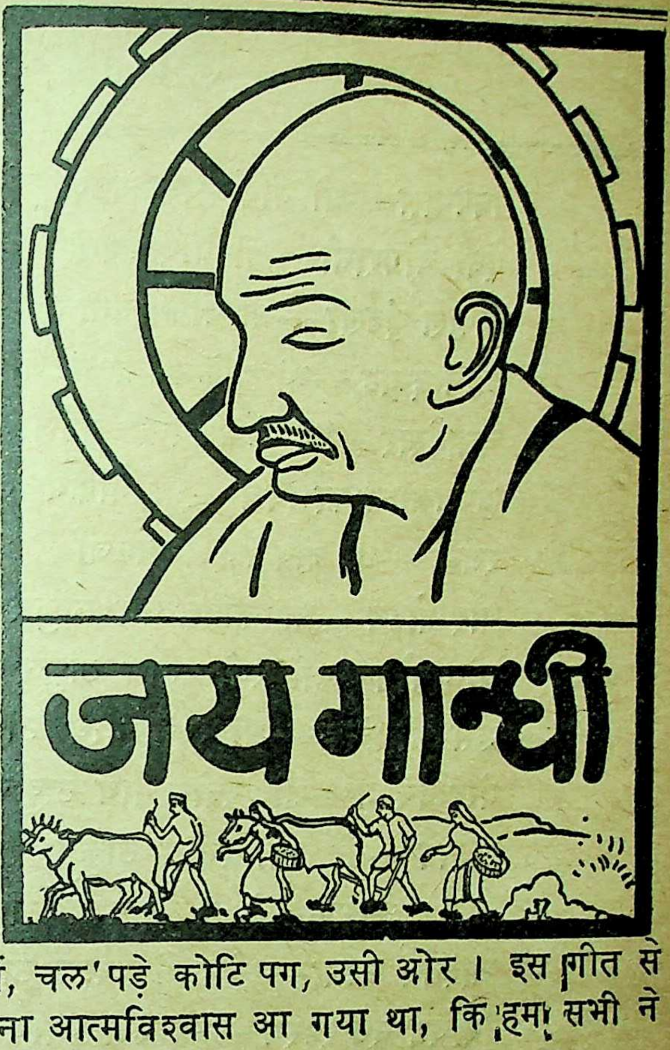

नैनी जेल में बंद सन् १९४२ के राष्ट्रीय सैनिकों को श्री सोहनलाल द्विवेदी की युगावतार कविता ने कितना बल प्रदान किया था, यह तो वे ही लोग जानते हैं जो वहाँ मौजूद थे। आज के अनेक मंत्री, मुख्य मंत्री भी, उस समय कारा-जीवन व्यतीत कर रहे थे। बापू ने प्राणों की बाजी लगा दी थी। आश्वासन का आधार मिलना आवश्यक था, क्योंकि हम मानसिक और नैतिक रूप से रह रहे थे। प्रोफेसर राधेश्याम ने उसी समय गाया था—चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग, उसी ओर। इस गीत से हममें कितनी दृढ़ता, कितनी शक्ति, कितना आत्मविश्वास आ गया था, कि हम सभी ने शर्माजी के स्वर में स्वर मिलाकर नैनी जेल को गुंजा दिया था।

श्री सोहनलाल द्विवेदी की अनेक कविताएँ हमें प्रोत्साहित करती रही हैं, कठिनाइयों एवं अत्याचार से डटकर मुकाबला करने के लिए शक्ति और प्रेरणा देती रही हैं, आज भी वे गीत हमें गर्व से सिर उठाने योग्य बनाते हैं, द्विवेदीजी की ये राष्ट्रीय रचनाएँ राष्ट्रीय निधि के रूप में सुरक्षित रहें यह आवश्यक है।

जय गांधी उन्हीं युगान्तरकारी गीतों का नयनाभिराम प्रकाशन है। ज्वलंत राष्ट्रीयता और चुनौतीपूर्ण देशभक्ति के कारण इन गीतों को राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्घोष और जयगान बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जय गांधी की कविताओं की विशेषता यह है कि इसमें इस प्रकार की कविताओं का बाहुल्य है, जिससे पुण्यश्लोक महात्माजी का आलोक हममें जाग्रत रहे। इस दृष्टि से ये रचनाएँ उस देश के नरनारियों के लिए बहुत मूल्यवान् हैं, जो बापू को भूल नहीं पाते। ये रचनाएँ गांधीजी के पुण्यपथ पर चलने की प्रेरणा देती रहेंगो इसमें सन्देह नहीं।

जय गांधी—सत्यमेव अत्यधिक सुरुचिपूर्ण संस्करण है। इसे प्रत्येक परिवार में, प्रत्येक घर में पहुँचना चाहिए।

—अमृतबाजार पत्रिका

मूल्य केवल १५) रुपये

प्राप्तिस्थान—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद

चुने हुए उपन्यास

विष-वृक्ष—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	२·००
देवी चौधरानी—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
कपाल-कुंडला—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
आनन्द मठ—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
चन्द्रशेखर—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·२५
कृष्णकान्त का बिल—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
रजनी—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	०·७५
गौर मोहन—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	५·५०
योगायोग—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	४·००
रूस की चिट्ठी—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
मेरा बचपन—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
राजर्षि—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
चार अध्याय—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
आश्चर्य घटना—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
विचित्र वधू-रहस्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
मुकुट—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	०·३१
गृहदाह—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	४·००
श्रीकान्त—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	६·००
लेन-देन—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	३·५०
देहाती समाज—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२·००
शुभदा—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२·५०
पंडितजी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२·००
परिणीता—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·५०
बड़ी दीदी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·५०
छुटकारा—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·३१
ब्राह्मण की बेटी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

स्वामी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·७५
बैकुंठ का बिल—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·७५
मझली दीदी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·००
अरक्षणीया—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·६२
नवविधान—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·६२
सुधा—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·७५
महाराष्ट्र जीवन-प्रभात—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·००
राजपूत-जीवन-सन्ध्या—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·००
माधवी-कंकण—श्री रमेशचन्द्र दत्त	१·५०
प्रांतिक—श्री ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	३·००
समाज—श्री रमेशचन्द्र दत्त	१·२५
पथभ्रान्त पथिक—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय	२·७५
धोखा-धड़ी—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय	२·७५
आखिरी सलाम—डा० ब्रजेश्वर वर्मा	४·५०
हार या जीत—डा० ब्रजेश्वर वर्मा	२·००
कुलबोरन—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य	२·५०
राजदुलारी—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य	१·२५
अपना-पराया—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·५०
उड़ते-पत्ते—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·५०
शीलादेवी—श्री नलिनीरंजन चौधरी	२·७५
संगति—श्री गोपालचन्द्र शास्त्री	१·५०
युद्ध और शान्ति—महर्षि टालस्टाय	५·००
रुबिया—श्री अवध उपाध्याय	२·००
सत्याग्रही—श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय	१·५०
द्वंद्व—श्री सरोजकुमारी देवी	२·७५
रिक्ता—श्री नीहारबाला देवी	१.२५
ब्रजनाथ का विवाह—श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त	२·२५
नवीन संन्यासी—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	४·७५
रत्नदीप—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	२·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें ह। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

सरस काव्य साहित्य

सरस सुमन---श्री गुरुभक्तसिंह	०·५०
मधुस्रवा---श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·२५
प्रतिमा---श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
वनवास---श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
किंकिणी---श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
लक्ष्मण-शक्ति---श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
मन्दार-माला---श्री देवेन्द्रनाथ पाण्डेय	२·००
विजया---श्री 'अभिराम'	१·००
नव सतसई-सार---डा० कैलाशनाथ भटनागर	२·७५
चारण---पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी	०·३१
हल्दीघाटी---श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·७५
रूपान्तर---श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
तुमुल---श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ---श्री सोहनलाल द्विवेदी	७·५०
जय गांधी---श्री सोहनलाल द्विवेदी	१५·००
कुणाल---श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·००
युगाधार---श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·५०
भैरवी---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५
चित्रा---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·३१
वासन्ती---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·३१
पूजागीत---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·५०
वासवदत्ता---श्री सोहनलाल द्विवेदी	४·५०
बाल-भारती---श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·२५
झरना---श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
विषपान---श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
बाँसुरी---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

बच्चों के बापू—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
चेतना—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
प्रेमांजलि—ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
जगदालोक—ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
संचिता—ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
ग्रामिका—ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
मानवी—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
ज्योतिष्मती—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
सुमना—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
माधवी—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
विश्वगीत—ठाकुर गोपालशरण सिंह	१·७५
क्षण के बीज—गौरीशंकर लहरी	२·००
उद्धव-शतक—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	२·००
गंगावतरण—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	१·२५
द्विवेदी काव्यमाला—संग्रहकर्त्ता—पं० देवीदत्त शुक्ल	४·००
मेघदूत—अनुवादक—राजा लक्ष्मणसिंह	१·००
पद्यमाला—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१·००
माधुरी—श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	०·७५
एकादशी—श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	१·५०
दैत्यवंश—श्री हरदयालुसिंह	३·५०
देव-दर्शन—श्री हरदयालुसिंह	२·००
बिहारी-विभव—श्री हरदयालुसिंह	२·००
मंजीर—श्री गिरजाकुमार माथुर	१·००
तक्षशिला—श्री उदयशंकर भट्ट	३·००
कविता-कलाप	३·००
पद्य-समुच्चय—स्वर्गीय कमताप्रसाद गुरु	१·००
रविबाबू के कुछ गीत—अनुवादक—श्री रघुवंशलाल गुप्त	२·५०
खैयाम की रुबाइयाँ—श्री इकबाल वर्मा 'सेहर'	४·००
संक्षिप्त पद्मावत—रायबहादुर सुन्दरदास	२·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। बी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

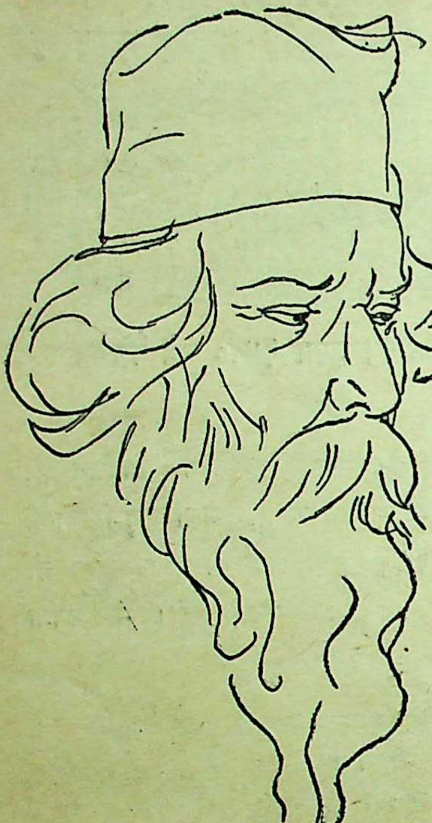

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि
चार अध्याय	१·५०	डाकघर

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा लि इलाहाबाद

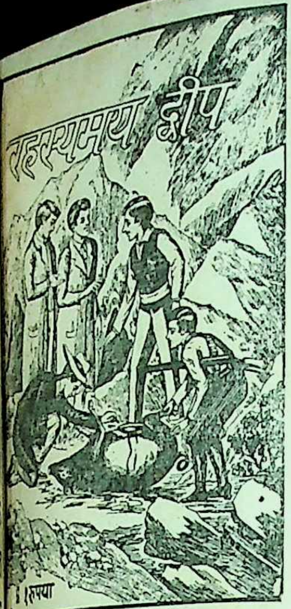
रहस्यमय द्वीप
१ रुपया

पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न०पै०

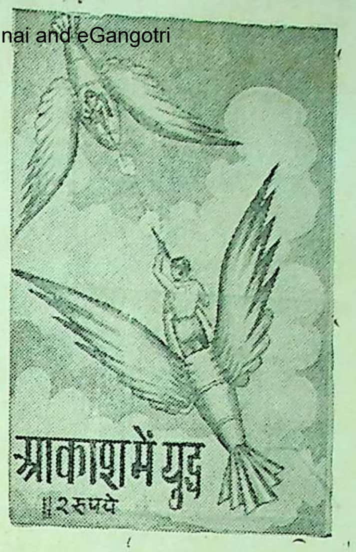
आकाश में युद्ध
२ रुपये

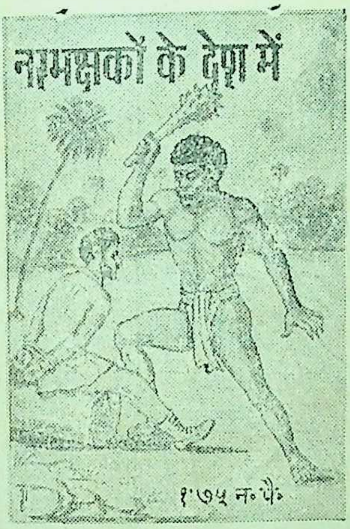
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न०पै०

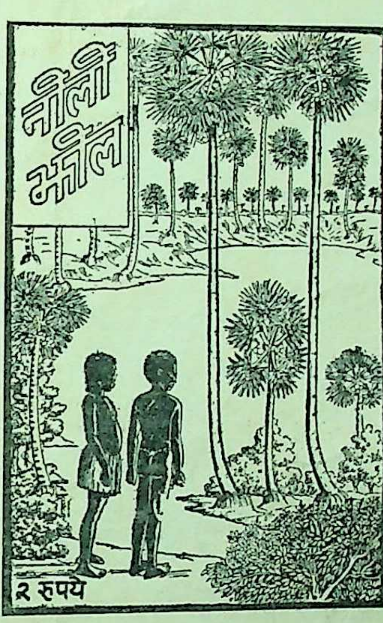

विस परिवार रॉबिन्सन
न प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न०पै०

गुलीवर की यात्राएँ
भाग २
२.२५ न०पै०

मास्टर मैन रेडी
२.७५ न०पै०

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप- ासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर ा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0.65 Naye Paise

SARASWATI—Reg. No. A-

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

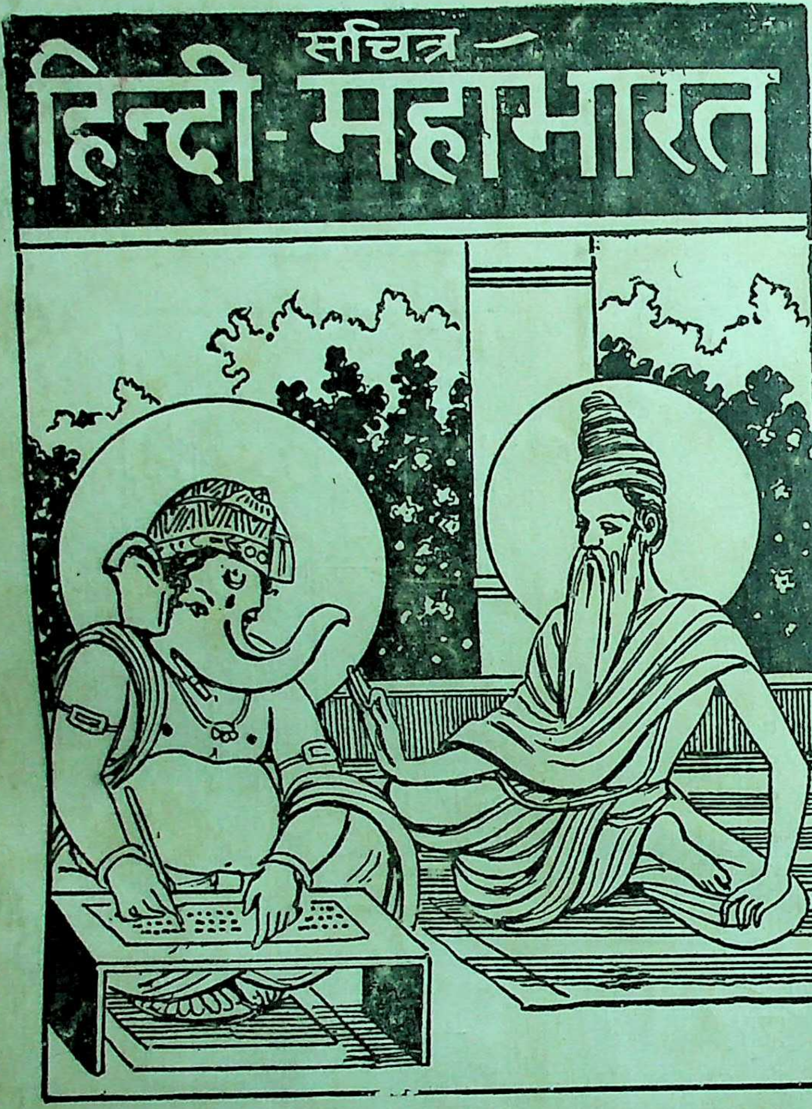

महाभारत पाँचवाँ वेद कहते हैं। इ ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास अनेक शास्त्रों का व करके जीवनक्रम सुलभ रीति बतलाई इसमें तीर्थों और ब्र का वर्णन है, पुण्य पु की चरितावली है, ऋषि के उपदेश हैं, सु उपाख्यान हैं और ध पर स्थिर रहकर उन्न करने का मार्ग बतला गया है। यह ग्रन्थ खण्डों में समाप्त हु है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १ से खण्ड तक प्रत्येक खण्ड का मूल्य १०) रु०। ९वें खण्ड का ५.५० नये पै दसवें खण्ड की सहायता से पढ़नेवाला पुस्तक में तुरन्त अपने मन के को ढूँढ़ लेता है। इस खण्ड का मूल्य ४.२५ नये पैसे।

भारतीय संस्कृति का प्रकाशस्तंभ

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्र

रस्वती

मई

१९६३

कांगड़ी

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

दृढ़ प्रतिज्ञा
२.२५ न० पै०

समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्न
१.७५ न० पै०

गुलीवर की यात्राएँ
२.२५ न० पै०

चन्द्रलोक की यात्रा
१.७५ न० पै०

भूगर्भ की यात्रा
मूल्य १.७५ न० पै०

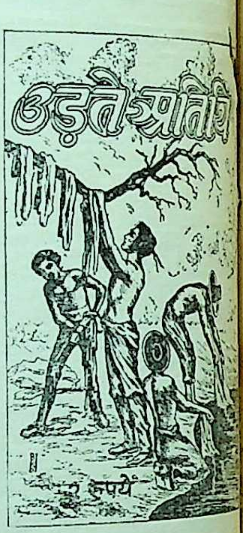

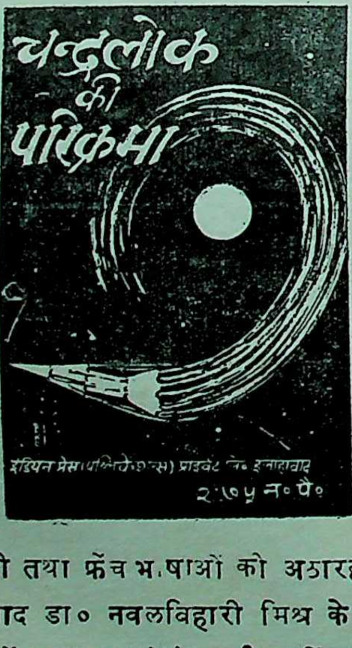
चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद
२.७५ न० पै०

गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०
२.२५ न० पै०

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी न्यासों के अनुवाद डा० नवलविहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं । पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं ।

गुरुकुल कांगड़ी

आप चाहे कुछ भी काम क्यों न करते हों...

आपका काम
देश के लिए
किया गया काम है।

आप, आपका काम, आपका जीवन सभी कुछ उस भारत के अभिन्न अंग हैं जो आज कुशलता तथा शक्ति बढ़ाने के काम में जी जान से जुटा है। इस वक्त ढील-ढाल या अकुशलता के लिए कोई जगह नहीं है। आपका काम चाहे कुछ भी क्यों न हो, वह पूरी चतुराई और उत्तम ढंग से होना चाहिए। काम में रुकावट या कोई और अड़चन न आने दे और कुछ भी ज़ाया न करें। पूरी कुशलता से पूरी शक्ति से अपने काम में लगे रहें। विजय आप सरीखे लाखों-करोड़ों लोगों की कठोर मेहनत का ही फल होती है।

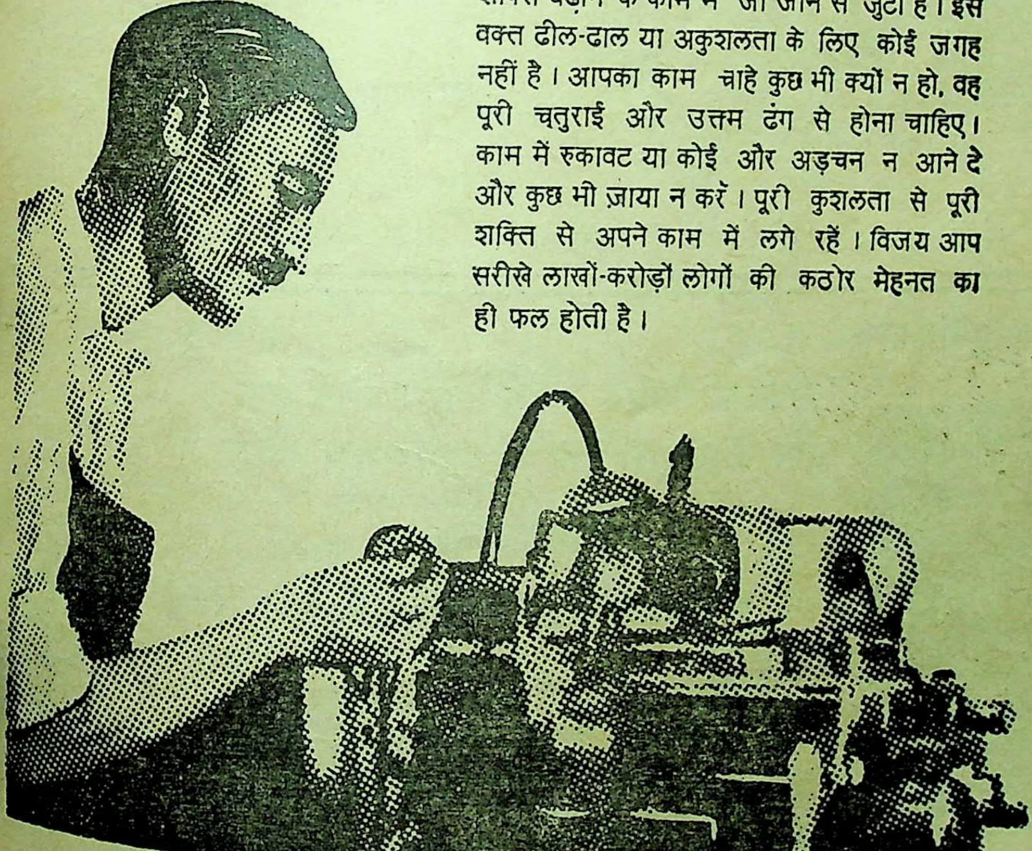

जी तोड़ मेहनत करें
अधिक उत्पादन और सुदृढ़ रक्षा के लिए

DA—63/70

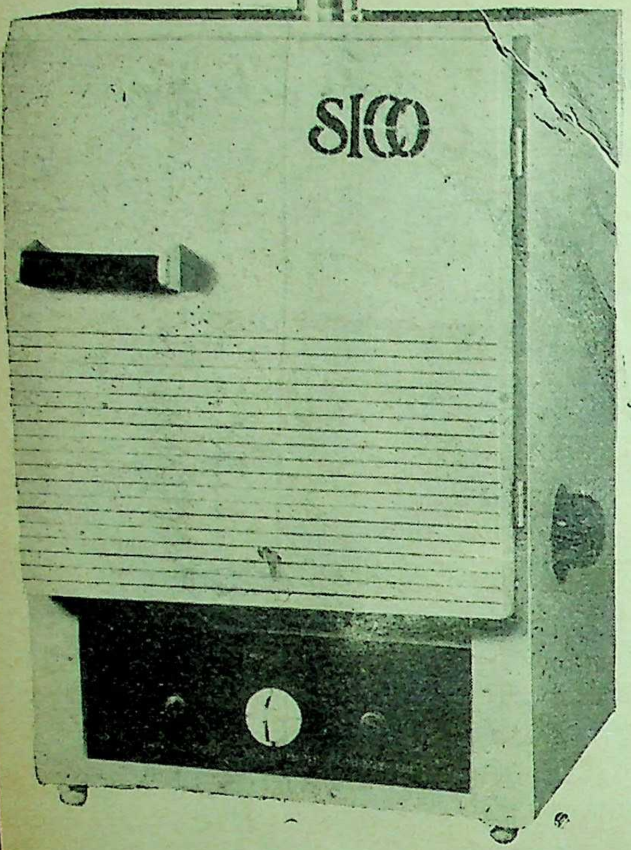

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाऐंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

सीको हाट ऐयर ओवेन

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ **॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥**

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

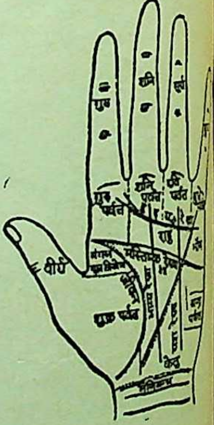

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए :—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जी के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् त प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही विशेष चमत्कार रखते हैं।

आचार्य सद्‌गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

खरीदिये
भारत सरकार के
प्रीमियम
इनामी बाण्ड

बड़े इनाम
५ वर्ष बाद
पकने पर १० प्रतिशत प्रीमियम
प्रीमियम और इनाम आय कर से मुक्त

ये बाण्ड
सभी डाकघरों, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया
के कार्यालयों, स्टेट बैंक आफ इण्डिया की
शाखाओं तथा उनके सहायक बैंकों से मिल सकते हैं।

राष्ट्रीय बचत संगठन

डी ए ६३/१५

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है। नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालसटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बंगाल केमिकल का

गोल्डेन

आमला

हेयर ऑय

केशचर्या और केशचर्चा की सर्वोत्तम सामग्री।
सुगंध और गुणों में इसकी बराबरी न

आज से ही व्यवहार कीजिये। सब
दूकानों में मिलता है

बंगाल केमिक

कलकत्ता • बम्बई • का

एक ही आवाज़ है
एक ही स्वर है
एक ही नारा है
काश्मीर से कन्याकुमारी तक
कच्छ से कामरूप तक
कि
आक्रमणकारी को निकाल बाहर करने के लिए
अधिक मेहनत करेंगे
अधिक पैदा करेंगे
अधिक बचत करेंगें
और
बचत का धन

राष्ट्रीय सुरक्षा योजनाओं में लगायेंगे

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्र पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर दे दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (स

मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

ज्ञानवृद्धि के लिए

बच्चों का प्यारा

बालसखा

अपने बच्चों को पढ़ायें

वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० न० पै०

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १·७५ न० पै० मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १।) या १ रु० २५ नये पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

मझली महारानी

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १॥।) या १ रु० ७५ नये पैसे।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है। पृष्ठ १८०; मूल्य १ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अंगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ।।) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट

लिमिटेड, प्रयाग

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदे ..
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र)
—प्रथम भा
पत्रावली (") —द्वितीय भा
विवेकानन्दजी के संग में ..
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..
कर्मयोग .. १·४० भक्तियोग ..
राजयोग .. ३·०० ज्ञानयोग ..
प्रेमयोग .. १·३७ सरल राजयोग
हिन्दू धर्म .. १·५० धर्मरहस्य
धर्मविज्ञान .. १·६२ शिकागो वक्तृता
प्राच्य और पाश्चात्य १·२५ मरणोत्तर जीवन
विविध प्रसंग .. १·१२ चिन्तनीय बातें
मेरे गुरुदेव .. ०·६२ भारतीय नारी
शिक्षा .. ०·६२ मेरा जीवन तथा ध्ये
कवितावली .. ०·६२ हमारा भारत
पवहारी बाबा .. ०·५० ईशदूत ईसा
वर्तमान भारत .. ०·५० मन की शक्तियाँ
विवेकानन्दजी के उद्‌गार (पॉकेट साइज) ..
शक्तिदायी विचार (") ..
मेरी समर नीति (") ..
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रक
श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भा
श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट स
प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय
माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मि
विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट स

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नाग

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचिपूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आर्कषित किया है । हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं । संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है । इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता ।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है । यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है । इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है । इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है । खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है । उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है । पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं । सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है । इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं । किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी । सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

परमाणु ऊर्जा

और उसके

लेखक—जेरालड वेन्ट **शान्तिपूर्ण उपयोग** अनुवादक—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

रजनीगंधा
देवेन्द्रदत्त तिवारी

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल है। सफल गायक का कोमलतम र इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों मौलिकता और कल्पना की एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची का प्रतीक है। हिन्दी काव्यो- इस कृति को देखते ही आनन्द- र हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

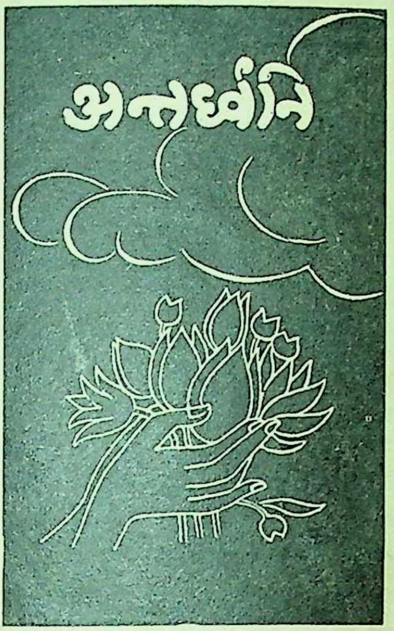

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

जासूसी गल्पगुच्छ
निशीथकुमार राय

इंडियन प्रेस(पब्लिकेशंस)प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेदभरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यात-नामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोक
का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी
के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरे
अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी वही
है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहावरे
संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

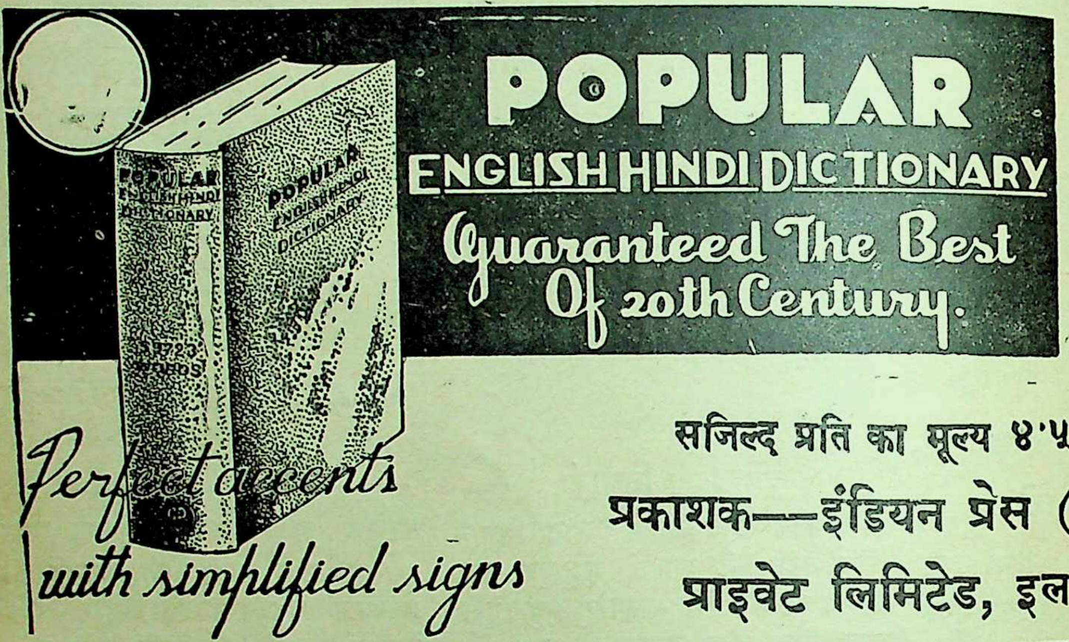
POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs

पापुला
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शन

सजिल्द प्रति का मूल्य ४'५० नये पैसे
प्रकाशक——इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस)
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।......'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष विश्वविद्यालय प्रयाग——'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।......'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवां मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ४०१
२—भेषज विद्या या वनस्पतिशास्त्र—श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी ४११
३—पुरातत्त्व-उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं का काल-निर्धारण—प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी .. ४१४
४—स्व० बन्धुवर सियारामशरणजी गुप्त—श्री कृष्णानन्द गुप्त ४१७
५—अतृप्त प्यास (कविता)—श्री आनन्दकुमार 'आसु' ४१८
६—गांधीवादी साहित्यकार स्व० सियारामशरण गुप्त—श्री शैवाल सत्यार्थी .. ४१९
७—राजभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में श्री न० वि० गाडगिल के विचार— .. ४२१
८—सन्त जेसू क्रिस्त से (कविता)—काडेन्द्र बालधा कुलगोद "वाणीदास" .. ४२६
९—इंडिया आफिस लाइब्रेरी का प्रश्न—श्री उदयनारायणसिंह ४२७
१०—भीगे पलकों की भाषा (कविता)—कुँवर हरिचन्द्र देव वर्मा 'चातक', कविरत्न .. ४२९
११—मणिपुर के लोकनृत्य—श्री ऋषि मामचन्द्र कौशिक ४३०
१२—'मानस' का काशिराज संस्करण—श्री कन्हैयासिंह एम० ए०, एल्-एल० बी० ..
१३—प्रतिमा के प्रति (कविता)—श्री महेन्द्रपालसिंह
१४—प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण, खंड दूसरा—आवश्यक परिमार्जन—श्री मुनि कान्तिसागर .. ..
१५—स्वर्गीय भोलादत्त पाण्डे और उनके पत्र—श्री चारुचन्द्र पांडे .. ..
१६—तुम्हारी तूलिका ने (कविता)—श्री महेन्द्रसिंह .. .. ..
१७—क्षयमास—श्री मंगलीप्रसाद मिश्र ..
१८—समाधि-गीत (गीत)—प्रो० रामस्वरूप आर्य
१९—आँगनों के बीच—१—क्या आपने सुना है?—श्रीमती शीला शर्मा .. ..
२—घर गृहस्थी—बंगाली गृहस्थों का भोजन—रोमोला कर .. ..
२०—प्रार्थना-गीत (गीत)—श्री राजेन्द्रप्रसादसिंह
२१—शहद की मक्खी—श्री स्वरूप ढौंडियाल ..
२२—नवीन प्रकाशन .. .. ..
२३—१९०७ की सरस्वती—श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी बी० ए० एल्-एल० बी०
२४—मनोरंजक संस्मरण .. ..

मजदूर-कामगर और किसान
ये भी रक्षा के स्तंभ महान

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य—एक रुपया

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम २६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता
'बक्स' २३ थार्नहिल रोड,

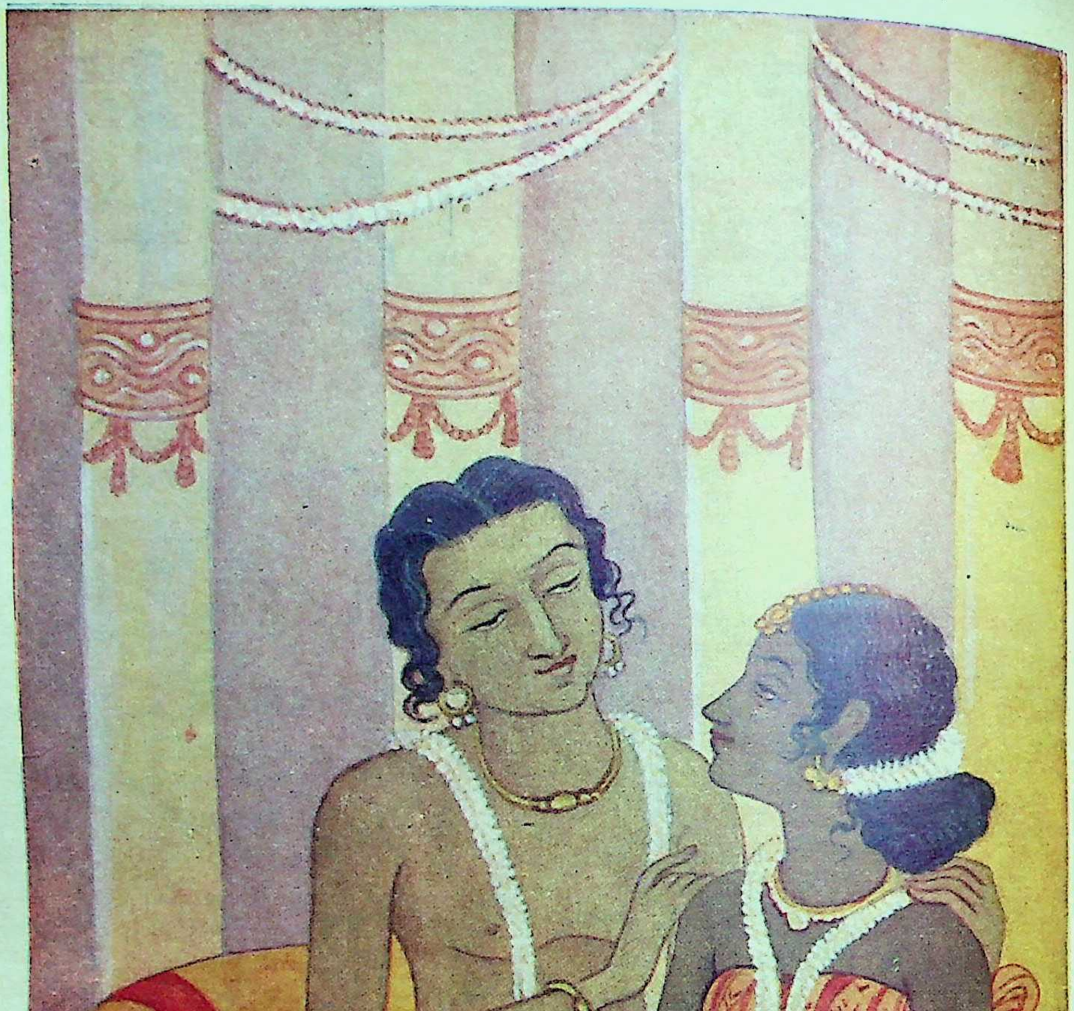

ऋतुराज आगमन

—चित्रकार ए० के० हल्दार

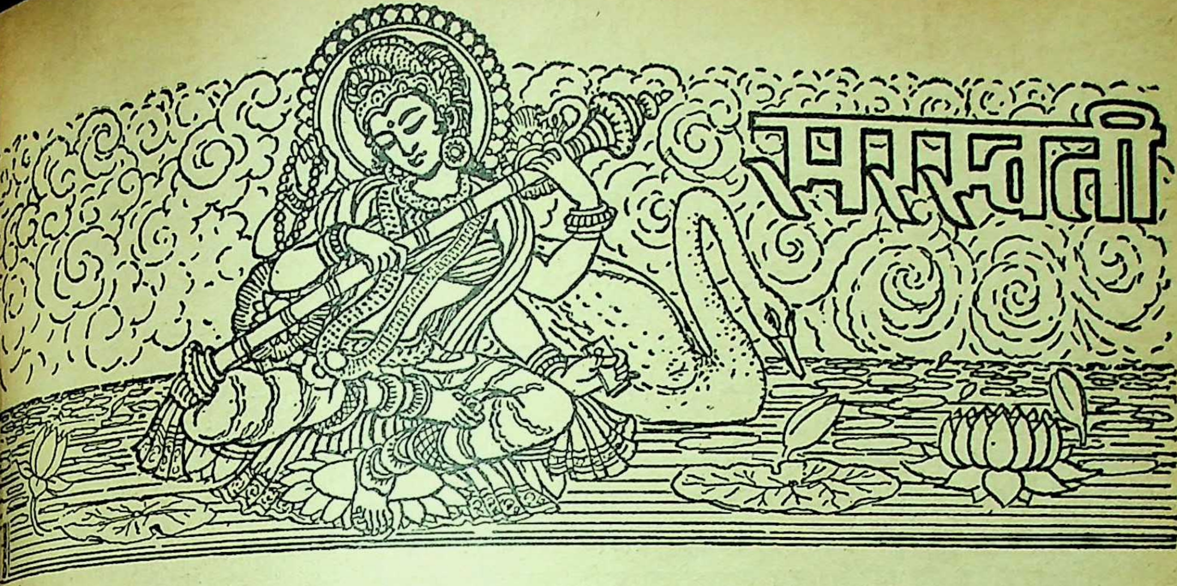

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
पूर्ण संख्या ७६१

इलाहाबाद : मई १९६३ वैशाख २०२० वि०

खण्ड १
संख्या ५

सम्पादकीय

अंग्रेजी की जय !—लोकसभा ने गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री का वह विधेयक स्वीकार कर लिया जिसमें अनिश्चित काल के लिए अंग्रेजी को भी भारत की राजभाषा के रूप में व्यवहार करते रहने की व्यवस्था की गयी है। अंग्रेजी के भक्तों को प्रसन्न करने के लिए इसमें दो संशोधन भी जोड़े गये। इस संशोधित रूप में यह विधेयक अब राज्यसभा को भेजा गया है। वहाँ भी यह स्वीकार कर लिया जायगा। यह ठीक है कि इसमें हिंदी के उस कागजी सम्मान को नहीं बदला गया जो उसे संविधान में दिया गया है। हिंदी अब भी कागज पर "मुख्य राजभाषा' रहेगी। किंतु वह सामन्तकाल की उस वंध्या पटरानी की तरह रहेगी जो सम्मान के साथ किसी महल में अपने दिन गिना करती थी और दो-चार वर्षों में किसी औपचारिक अवसर पर याद कर ली जाती थी। सारी शक्ति राजा की चहेती रानी या रखैल के पास होती थी और राजा उसीके साथ रंगरेलियाँ किया करता था। यह मानना पड़ेगा कि इस देश में अंग्रेजी की अभूतपूर्व विजय हुई है, और वह यहाँ अब दिल्ली की कील की तरह अचल और अटल हो गयी है। हिंदी की मार्मिक पराजय हुई है। अंग्रेजी की इस विजय का श्रेय सबसे अधिक हमारी सरकार को है। इसके बाद अंग्रेजी-परस्तों को, और उसके बाद स्वयं "हिंदी वालों" को है।

यदि कोई साहूकार मुद्दती हुंडी दे और निश्चित तिथि पर उसको न सकारे तो उसकी साख नष्ट हो जाती है और वह दिवालिया समझा जाता है। सरकार ने संविधान रूपी हुंडी में हिंदी को १९६५ में एकमात्र राजभाषा बनाने का वचन दिया था। उसने उसे सकारना अस्वीकार कर दिया। अब उसने दूसरी हुंडी दी है जिसमें कोई मुद्दत (अवधि) भी नहीं है। कहा है कि आगे चल कर कभी, अनिश्चित सुदूर भविष्य में, उसका भुगतान किया जायगा। हम उस अनिश्चित और अकल्पित भविष्य की आशा करते रहें! "आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।" या, फिर ग़ालिब के स्वर में स्वर मिलाकर कहें—

> **तेरे वादे पै जिये हम, तो ये जान ! झूठ जाना**
> **कि खुशी से मर न जाते अगर ऐतबार होता।**

चूँकि हम हिन्दी-भक्त सरकार के इस पर "वादे" पर खुशी से मर नहीं गये और अब भी जीवित हैं, इससे स्पष्ट है कि हमारा सरकार के इस "वादे" पर कोई विश्वास नहीं है। जब सरकार अपनी मुद्दती हुंडी ही को

सकारने से नट गयी तब यह कैसे विश्वास किया जाय कि वह अपनी गैरमुद्दती हुंडी को कभी सकारेगी? अँगरेजी दिनों दिन दृढ़ होती जायगी। यह आश्वासन देकर कि हिन्दी तब तक राजभाषा के रूप में दृढ़तापूर्वक नहीं चलायी जायगी जब तक अहिंदी-भाषी ही उसकी माँग न करेंगे, हिन्दी के भाग्य का निर्णय हिन्दी-विरोधी अहिन्दीभाषियों के हाथ में सौंप दिया गया है। प्राचीन काल में पोलैंड की राजसभा में निर्णय बहुमत से नहीं, सर्वसम्मति से किये जाते थे। यदि एक भी सदस्य विरोध में मत दे देता तो प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो सकता था। इस मत को "लिबरम् वीटो" कहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ शासन अक्षम और असंभव हो गया। हिन्दी के सम्बन्ध में कुछ-कुछ वैसी ही "लिबरम् वीटो" अहिंदीभाषियों को दे दी गयी है। इन बारह-तेरह वर्षों ही में अँगरेजीपरस्त इतने संगठित हो गये हैं कि उन्होंने संविधान की हिन्दी सम्बन्धी धारा को बेकार कर दिया। जिस प्रकार से अँगरेजी की जड़ जमायी जा रही है, जिस प्रकार सारे देश के प्राइमरी स्कूलों में अँगरेजी अनिवार्य की जा रही है, जिस संगठित रूप से अमरीका और इंग्लैंड की सहायता से इस देश में उसका प्रचार किया जा रहा है, विश्वविद्यालय जिस प्रकार दृढ़तापूर्वक उसका अंचल पकड़े हुए हैं और जिस प्रकार द्रविड़ कड़गम और बंगाल के अँगरेजी शिक्षित लोग कृतसंकल्प होकर हिंदी का विरोध कर रहे हैं, उन सब बातों को देखते हुए यह आशा करना दुराशा मात्र है कि ये हिन्दी-विरोधी कभी हिन्दी का समर्थन करेंगे। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर वे तो अब यह माँग करने लगे हैं कि संविधान की जिस धारा में हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया है, वही निकाल दी जाय। गत ३० अप्रैल को मदरास में एक विशाल सभा हुई। अँगरेजी-प्रेम और हिन्दी के प्रति घृणा का जो प्रदर्शन इस सभा में किया गया है उसको नजरअंदाज करना मूर्खता होगी। अँगरेजी-प्रेम और हिन्दी-विरोध ने श्री राजगोपालाचारी और द्रविड़ कड़गम के नेता श्री अन्नादुराई ऐसे परस्पर विरोधी तत्त्वों को एक मंच पर ला बिठाया था। इस सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से यह माँग की कि संविधान से हिन्दी को राजभाषा घोषित करने वाली धारा निकाल दी जाय। श्री राजगोपालाचारी ने कहा कि 'हिन्दीभाषी लोगों के आधिपत्य से बचने के लिए इस समय अहिंदीभाषियों का परीक्षा का समय है। बिना बलिदान के कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।' उन्होंने एकमात्र अँगरेजी को केन्द्र की राजभाषा बनाने की माँग की। श्री अन्नादुराई ने कहा कि हिन्दी के लद जाने से 'तमिलदेशीय प्रत्येक व्यक्ति का सर्वनाश हो जायगा क्योंकि इससे वह गुलाम हो जायगा।' (Imposition of Hindi would be a death-blow to every Tamilian because it would 'enslave' him.) अंत में उन्होंने कहा कि 'मैं राजगोपालाचारीजी से हिन्दी के विरुद्ध आन्दोलन की रूपरेखा बनाने की प्रार्थना करता हूँ और उन्हें आ देता हूँ कि मेरी "पार्टी" और उसके सदस्य को बनाये रखने के लिए प्रत्येक बलिदान क तैयार रहेंगे।' ("He assured him (Mr., Ra lachari) that his party and its members be prepared to secrifice anything for continuance of English.) ऐसी अवस्था यह आशा करना कि इस प्रकार के हिन्दी- अहिन्दीभाषी लोग एक दो शतियों में भी छोड़कर हिन्दी के पक्ष में हो जायेंगे, अपने धोखा देना है। लोकसभा के निर्णय के बाद ह गोविन्ददासजी से इस सम्बन्ध में बात कर हमारे विचार सुनकर उन्होंने कहा कि "आप बड़े निरा वादी मालूम होते हैं। मैं तो आशावादी हमने उनसे यही निवेदन किया कि "हमें न आशा होना चाहिए, और न निराशावादी। हमें तो य वादी होना चाहिए। यथार्थता देखकर ही भवि सम्बन्ध में कल्पना करनी चाहिए। अपनी हार्दिक कामना या भावना के चश्मे से भविष्य को देखने से थंता लुप्त हो जाती है।" हमारा मत है कि जो इस विधेयक को दिया गया है, उससे हिन्दी का भ अंधकारमय हो गया है। अब दो-चार पीढ़ियों तक राजभाषा के रूप में व्यवहृत नहीं हो सकती। कारण राज्यों में देशी भाषाएँ वास्तविक रूप में राज न हो सकेंगी, और केन्द्र में तथा अधिकतर राज्यों में अँगरेजी ही वास्तविक राजभाषा बनी रहेगी। लोग अब भी विश्वास या भोलेपन में आकर सन्तान को हिन्दी या देशी भाषाएँ पढ़ाएँगे वे भविष्य के साथ खिलवाड़ करेंगे। यदि अपनी से भीख नहीं मँगवाना तो उसे अँगरेजी ही पढ़ाना चाहि हमारे कर्णधार, नेता और "इस्पाती ढाँचे" के प्र इसीलिए अपने बच्चों को अँगरेजी माध्यम के में पढ़ा रहे हैं। जनता को उन्हींका अनुसरण चाहिए। "महाजनो येन गतः स पन्थाः।" शासित जन के लिए हिन्दी-स्कूल और बेसिक शिक्षा पर्याप्त

यह बात भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है इस सर्वप्रभुत्व सम्पन्न गणतन्त्रात्मक जनराज्य "भारत इज इंडिया" में संविधान का इतना महत्त्व और नहीं है जितना गृहमंत्री या प्रधान मंत्री के आश्वासन जिस संविधान की अक्षुण्णता बनाये रखने और पालन करने की शपथ प्रत्येक संसद-सदस्य लेता है संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि १९ भारत सरकार की एकमात्र राजभाषा हिन्दी उसके बाद अँगरेजी का उपयोग उन विशेष कामों लिए हो सकेगा जिनकी अनुमति संसद देगा। सं के इस स्पष्ट संकल्प के विरुद्ध इतना ही आश्व नहीं दिया गया कि अँगरेजी का उपयोग १९६५ के भी होता रहेगा, किन्तु यह भी आश्वासन दिया गया

१९६३

तब तक हिन्दी में राज-काज करना अनिवार्य न किया जायगा जब तक अहिन्दी-भाषी उसकी माँग न करेंगे। इस विधेयक के राजसभा द्वारा अंतिम रूप से स्वीकृत हो जाने के बाद हम अगले अंक में इस विषय पर विस्तृत विचार करेंगे।

नया बजट और डाक की दरें——भारत के नये बजट में जो कर-भार बढ़ाया गया है वह संसार के इतिहास में अभूतपूर्व है। इससे जनता——विशेषकर निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के लोगों——का जीवन-यापन अत्यन्त कष्टकर हो जायगा क्योंकि उनकी आय निश्चित होती है और वे अपनी आय बढ़ाने में असमर्थ हैं। इस कर के कारण जिन व्यापारियों, कारीगरों और श्रमिकों का व्यय बढ़ेगा वे अपनी कमी पूरी करने के लिए अपने माल या काम की दर बढ़ा लेंगे। इससे उन वस्तुओं का भी मूल्य बढ़ेगा जिन पर कोई नया कर नहीं लगा। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से भारत की जनता पर ९०० करोड़ से अधिक का कर-भार बढ़ा है। किंतु इसमें प्रायः आधा कर-भार श्री मुरारजी देसाई के वित्तमंत्रित्वकाल में लगा है। यदि सरकार अपव्यय रोकने में समर्थ होती तो शायद उसे इतना ऊँचा कर न लगाना पड़ता।

जो नये कर लगाये गये हैं उनमें कितनों ही से जनता के कष्ट बढ़ जायँगे, किंतु हम यहाँ केवल डाक की बढ़ी हुई दरों की चर्चा करेंगे। अन्य विभागों की तरह डाक-विभाग की कार्यकुशलता घट रही है। प्रत्येक मास हमारे पास कुछ न कुछ ग्राहकों के पत्र आते हैं कि उनके पास अमुक मास की 'सरस्वती' नहीं पहुँची। डाक के द्वारा कलेंडर, दैनंदिनी, सचित्र पुस्तकें भेजने से उनका पहुँचना इतना विरल हो गया है कि अब बड़े-बड़े संस्थानों से डाक द्वारा उनका भेजना बंद कर दिया है। कलकत्ता और दिल्ली, दिल्ली और मदरास आदि के बीच वायुयानों द्वारा डाक भेजने से कुछ बड़े नगरों में पत्र चाहे शीघ्रता से पहुँच जाते हों, किंतु इन महत्त्वपूर्ण स्थानों को छोड़कर, छोटी जगहों में डाक अब विलम्ब से पहुँचती है। इलाहाबाद का पत्र हमें लखनऊ में प्रायः तीसरे दिन——और कभी-कभी तो चौथे दिन मिलता है। किंतु फिर भी डाक-विभाग अपनी दरें बढ़ाता चला जाता है। उसने पोस्टकार्ड का मूल्य पाँच पैसे से बढ़ाकर छः नये पैसे कर दिया है। जब दशमलव प्रणाली आरंभ की गयी तब उसका मूल्य अपने आप बढ़ गया था। किंतु सबसे अधिक दुखदायी वृद्धि रजिस्ट्री कराने और पुस्तकें भेजने के लिए की गयी है। किसी समय रजिस्ट्री दो आने में होती थी। आजकल उसकी दर आठ आना है। अब वह ५५ पैसे हो गई। पुस्तकों का भेजना भी बहुत महँगा हो गया है। ये दरें हास्यास्पद हैं क्योंकि बहुधा पुस्तक के मूल्य से अधिक तो उन्हें डाक से भेजने में लग जायगा। दिल्ली के प्रकाशकों ने बतलाया है कि महात्मा गांधी के संक्षिप्त आत्मचरित्र का मूल्य एक रुपया है, किंतु यदि उसे डाक से भेजा जाय तो उस पर एक रुपया और ग्यारह नये पैसे के टिकट लगाने होंगे। वी० पी० से पुस्तकें मँगाना तो अब प्रायः बंद ही हो जायगा क्योंकि उसमें रजिस्ट्री और मनी आर्डर का व्यय और देना पड़ेगा। सरकार जानती है, या उसे जानना चाहिए कि अधिकांश जनता गाँवों और छोटे कस्बों में रहती है जहाँ न पुस्तक-विक्रेता हैं और न जहाँ पुस्तकालय हैं। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति पुस्तक पढ़ना चाहता है तो या तो वह उसे किसी विक्रेता से मँगाता है, या किसी पुस्तकालय से। अमरीका हमारे देश से कहीं अधिक समृद्ध है, किंतु वहाँकी सरकार लोगों को अपना ज्ञानवर्द्धन और पुस्तक प्रकाशन में प्रोत्साहन और सहायता देती है। पुस्तकालयों से पुस्तक मँगाकर पढ़ने के लिए उसने लोगों को और भी अधिक सुविधाएँ दे रखी हैं। स्टेट्स्मैन के एक संवाददाता ने अमरीका और भारत में डाक से पुस्तक भेजने के व्यय के मनोरंजक आँकड़े दिये हैं। वे ये हैं:——

पुस्तक-विक्रेता द्वारा	भारत में वर्तमान	भारत में प्रस्तावित	अमरीका में
१३५९ ग्राम (प्रायः डेढ़ सेर) भारी पुस्तक भेजने के लिए	१·६७ न० पै०	२·९० न० पै०	१९ सैंट (९० न. पै.)
उपर्युक्त पुस्तक को किसी पुस्तकालय से मँगाने या लौटाने के लिए	१·६७ न० पै०	२·९० न० पै०	६ सैंट (२९ न. पै.)

किंतु भारत में वास्तव में इससे अधिक व्यय पड़ेगा क्योंकि यहाँ के डाक-विभाग में तब तक ठिकाने पर पुस्तक पहुँचने का कोई भरोसा नहीं जब तक उसे रजिस्ट्री से न भेजा जाय। अतएव इसमें इस समय रजिस्ट्री का शुल्क (५५ नये पैसे) और जोड़ना चाहिए। यदि हम डेढ़ सेर भारी कोई पुस्तक अपने मित्र को भेजना चाहते हों, या किसी पुस्तक-विक्रेता से मँगाना चाहते हों तो हमें अब ३ रुपया और ४५ नये पैसे खर्च करने होंगे। अमरीका ऐसे धनी देश की डाक-दरों से भारत ऐसे दरिद्र देश की दरों की तुलना कीजिए! हमारी सरकार अपने अरबों रुपयों के बजटों में से दो-चार लाख की पुस्तकें खरीद कर समझ लेती है कि हमने साहित्यवर्द्धन में काफी सहायता कर दी। यदि अमरीकन सरकार की तरह उसे जनता को प्रबुद्ध और शिक्षित करने की लगन होती तो वह ऐसा काम न करती जिससे इस दरिद्र देश के बहुसंख्यक लोगों के लिए डाक से पुस्तकें मँगाना असम्भव हो जाता। ऐसा मालूम होता है कि हमारी सरकार रुपये के मामले में उन्हीं पूँजीपतियों का अनुकरण करती है जिन्हें वह शोषक कहती है तथा जिनका एकमात्र लक्ष्य, अन्य बातों को ताख पर रखकर, केवल धन पैदा करना है। हमारी समझ में नहीं आता कि जो सरकार कल्याणकारी होने का दावा करे और जो जनता में शिक्षा प्रसार करना अपना उद्देश्य बतलावे, वह कुछ लाख रुपयों की आय के लिए जनता को पठन-सामग्री कैसे दुर्लभ कर सकती है। एक पाश्चात्य मनीषी ने कहा

था। They perish for lack of vision——जिनमें भविष्य के लक्ष्यों और परिणामों की दूर-दृष्टि नहीं होती, वे नष्ट हो जाते हैं। माननीय संचार-मंत्री साहित्यप्रेमी हैं। वे उस वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो दरिद्र है और जिसे शिक्षा और ज्ञान दोनों की आवश्यकता है। डाक विभाग अपनी नीति से——अर्थात् पुस्तकों, समाचार-पत्र-पत्रिकाओं आदि के संचार की सुविधाओं से, देश में ज्ञान-प्रसार का बड़ा साधक या बाधक हो सकता है। हमारा उनसे विनम्र अनुरोध है कि वे एक समिति नियुक्त करें जो इस विषय की जाँच करे कि डाक विभाग की नीति से शिक्षा और ज्ञान-प्रसार पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। यह विषय जनता की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण है कि डाक विभाग इसका समीचीन सिंहावलोकन करके भविष्य के लिए अपनी नीति स्पष्ट कर ले। यदि अरबों रुपयों की आयवाली भारत सरकार के दस-बीस लाख की आय छोड़ देने से देश में विद्या, ज्ञान और शिक्षा के प्रसार में पर्याप्त सहायता मिल सके तो उसे इस 'त्याग' से मुँह न मोड़ना चाहिए।

'अफसरों को हिंदी नहीं आती'——मुरादाबाद में उत्तर प्रदेश सरकार का एक पुलिस ट्रेनिंग कालिज है। उसने हाल ही में पुलिस के उपयोग के लिए कुछ प्रकाशन किये हैं। समाचार-पत्रों में जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उसके अनुसार ये प्रकाशन तीन प्रकार के हैं: (१) कान्स्टेबुलों के लिए, (२) दरोगा लोगों के लिए, और (३) पुलिस के अफसरों के लिए। कान्स्टेबुलों के लिए सब पुस्तकें केवल हिंदी में प्रकाशित की गयी हैं, दरोगा लोगों के लिए हिंदी और अंग्रेजी में, तथा 'अफसरों' के लिए केवल अंग्रेजी में। उत्तर प्रदेश की राजभाषा हिंदी है। समझा जाता है कि वहाँके सब अफसर हिंदी जानते हैं। किंतु मालूम पड़ता है कि ऐसा समझना लोगों का भ्रम है। कान्स्टेबुल केवल हिंदी जानते हैं। कुछ दरोगा तो बी० ए० या एम० ए० हैं, किंतु कुछ हेड कांस्टेबिली से उन्नत हुए हैं। अतएव जो बी० ए० या एम० ए० हैं वे हिंदी नहीं जानते। उनके लिए पुस्तकें अंग्रेजी में होनी ही चाहिए! हाँ, जो हेड कान्स्टेबिली से आये हैं वे अवश्य ही हिंदी जानते हैं। इसीलिए इस वर्ग के लिए पुस्तकें हिंदी और अंग्रेजी——दोनों—में छापी जाती हैं। उत्तर प्रदेश में अफसरों से यह अपेक्षा करना कि वे हिंदी में पुस्तकें पढ़ेंगे, सरासर पागलपन है! हिंदी तो केवल अर्द्धशिक्षित लोगों के लिए है। या जो उच्च ज्ञान और महत्त्वपूर्ण जानकारी 'अफसरों' के योग्य है, वह हिंदी में व्यक्त नहीं की जा सकती, या अफसर हिंदी में छपी पुस्तकें पढ़ना पसन्द नहीं करते या पढ़ने की योग्यता नहीं रखते! उत्तर प्रदेश सरकार के पुलिस विभाग ने भाषा का यह वर्गभेद करके उत्तर प्रदेश सरकार की राजभाषा का कितना सम्मान किया है और अपने 'अफसरों' की हिंदीनिष्ठा या उनके हिंदी-ज्ञान को कितना विज्ञापित किया है! उत्तर प्रदेश में हिंदी १९४८ से राजभाषा है। इन पंद्रह वर्षों में उसके शासन तंत्र में हिंदी का कितना प्रसार या प्रचार हुआ है, और उसका क्या सम्मान है, वह इस वर्गभेद से स्पष्ट हो जाता

साइकिल युग——एक बार नेहरूजी ने कहा भारत में इस समय साइकिल युग है। आज भी इ में शायद बैलगाड़ियों की संख्या अधिक है, किंतु संदेह नहीं कि अब बाइसिकिलें घोर देहातों में भी गयी हैं। गत मास संसद में सरकार की ओर से गया है कि भारत में दिसंबर १९६२ के अन्त में १० बाइसिकिलें थीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरं (सन् १९५१-५२ में) उनकी संख्या केवल बीस थी। अर्थात् दस वर्षों में उनकी संख्या साढ़े चार बढ़ गयी। इससे मालूम पड़ता है कि देश का बाइसिकि करण कितनी तीव्र गति से हो रहा है। अब भार अच्छी बाइसिकिलें बनने लगी हैं, और उन्हें बनाने कितने ही कारखाने खुल गये हैं। संसार में सर्वो बाइसिकिलें इंग्लैण्ड में बनती हैं। भारत में जो सिकिलें बन रही हैं वे अँगरेजी बाइसिकिलों के नमूने अनुसार हैं। कई भारतीय बाइसिकिल-निर्माताओं ने इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध बाइसिकिल-निर्माताओं के सहयोग अपने कारखाने खोले हैं। बड़े कारखानों के अतिरि कई जगह, विशेषकर पंजाब में, बाइसिकिल के वि भाग कुटीर उद्योगों की तरह, या छोटे-छोटे कारख में बनाये जाते हैं। इंग्लैण्ड में भी इस प्रकार का विभा है। वहाँ कोई कारखाना केवल बाइसिकिल की बनाता है, तो कोई केवल उसका फ्रीह्वील। कोई के घंटी बनाता है, तो कोई केवल बैठने की गद्दी। सिकिल-लैम्पों के कारखाने भी अलग हैं। भारत में चेन, फ्री ह्वील, घंटी, गद्दी, लैम्प आदि अच्छे नहीं बन अच्छे छर्रों के बनाने का भी कोई प्रामाणिक कारख नहीं है। अतएव अभी अच्छी देशी बाइसिकिलों में कई विदेशी भाग लगाने पड़ते हैं। भारत ऐसे देश बाइसिकिल——विशेषकर निम्न मध्य और निम्न वर्ग लिए——वरदान है। इस उद्योग का भविष्य इस देश में उज्ज्वल है। बाइसिकिलों की माँग दिनोंदिन बढ़ है। संतोष की बात है कि भारतीय बाइसिकिलों को ए और अफ्रीका के देशों में भी बेचने का प्रयत्न किया रहा है। इसलिए आवश्यक है कि हम अपनी बाइसिकि को ऐसा अच्छा बनावें कि वे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में गुणों के कारण लोकप्रिय हो जायँ।

किंतु संसार की तुलना में हम कितने पिछड़े हुए हैं अमरीका में प्रत्येक तीन अमरीकनों के बीच एक मोटर है। यहाँ पचास भारतवासियों के बीच अभी केवल बाइसिकिल है! किंतु यदि हम इसी गति से उ करते रहे तो दस साल बाद हमारे देश में चार बाइसिकिलें हो जायँगी——अर्थात् दस-ग्यारह आदमियों बीच में एक। तब बाइसिकिल युग पूरी तरह जायगा। अभी तो उसका प्रथम चरण है।

हमारी एक चूक—मार्च के अंक में एक विनोदपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था जिसका शीर्षक था—"सीता-हनुमान-संवाद तमिल में हुआ था या अंग्रेजी में।" इसमें सिद्धहस्त लेखक ने श्री श्रीप्रकाशजी के इस कथन की आलोचना की थी कि वह संवाद तमिल में हुआ था, साथ ही गवर्नमेंट की अंग्रेजी को चिरस्थायी बनाने की नीति की आलोचना भी की गयी थी। वह लेख हास्य और व्यंग्य की बड़ी सुंदर कृति थी। हमने उसे पसंद किया और उसे प्रकाशित कर दिया।

किंतु उसके प्रकाशन के बाद हमारे पास कई पत्र आये जिनमें हमारे विवेक की आलोचना थी। उनमें एक पत्र माननीय डा० सम्पूर्णानन्दजी का भी था। उसमें अन्य बातों के अतिरिक्त उन्होंने यह भी लिखा था कि "सभ्य समाज में यह सर्वत्र माना जाता है कि व्यंग्य, मजाक, हास्य में गुरुजन का नाम नहीं घसीटना चाहिए। यह व्यवहार व्यक्तियों के गुरुजनों तक ही सीमित नहीं है प्रत्येक राष्ट्रों, धर्मों, वर्गों के गुरुजनों तक जाता है। जिस लेख की ओर मैंने संकेत किया है उसमें सीताजी के साथ मजाक किया गया है। यह कल्पना की गयी है कि वह किसी अंग्रेज की लड़की थीं। यह कुरुचि का उग्र निदर्शन है। मैं जानता हूं कि आजकल उन लोगों में, जिनको थोड़ी सी अंग्रेजो पढ़ लेने से ही सब नियमों की परिधि के ऊपर और बाहर पहुंचा दिया है, यह प्रवृत्ति बढ़ी हुई है। इंद्र, विष्णु, शंकर सभी के साथ मजाक होता है। इन स्वतंत्रचेताओं को यह बात कभी नहीं खटकती कि इस्लाम और ईसाई धर्म के महापुरुष कभी हास्य के पात्र नहीं बनाये जाते। न उनको इस बात की चिन्ता होती है कि यह लोग करोड़ों लोगों की श्रद्धा के आस्पद हैं। इस बात पर थोड़ा दुःख प्रकट किये बिना नहीं रह सकता कि सरस्वती में ऐसे मजाक को जगह मिली और यह बात सरस्वती की मर्यादा से मेल नहीं खाती। हिन्दी में सुरुचिमय हास्य की रक्षा हो, इसका दायित्व सरस्वती पर उसके जन्म-काल से ही रहा है।"

हमने इस पत्र पर तथा अन्य पत्रों पर भी कई दिन तक बड़ी गंभीरता से विचार किया। हमारे स्मृति-पटल पर कितने ही पुराने छंद उभर आये जिनमें देवी-देवताओं के साथ मजाक किया गया था। किंतु हमें यह भी याद आया कि "पुराणमित्येव न साधु सर्वम्।" हमने यह भी सोचा कि हम कितनी ही पुरानी बातों को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसते और यदि उन्हें उचित नहीं समझते तो छोड़ देते हैं। तब इस पुरानी प्रवृत्ति ही से क्यों चिपका रहा जाय? शायद अपनी राजनीतिक असहायावस्था में विरोधियों के द्वारा अपने देवी-देवताओं और गुरुजनों पर किये जानेवाले आक्षेपों, व्यंग्यों और मजाकों को सुनते-सुनते हमारी श्रद्धा की भावना कुंठित हो गयी और इस कारण हम स्वयं उन व्यंग्यों और मजाकों को दुहराने लगे। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमारी मानसिक दासता' का ही यह एक पहलू है। पश्चिम से ग्रहण किये गये 'विचार-स्वतंत्रता' और 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के सिद्धान्तों ने हमें और ढीठ और असावधान बना दिया, और अपनी 'विचार-स्वतंत्रता' को स्वच्छंदतापूर्वक ज्ञापित करने के लिए हम उन देवी-देवताओं का खुला मजाक उड़ाने लगे जिनकी ओर से कोई बोलनेवाला न था। अपने देवी-देवताओं को छोड़कर दूसरों के गुरुजनों का मजाक करने का हमने साहस नहीं किया क्योंकि उसमें खतरा था। माननीय डा० सम्पूर्णानन्दजी ने हमें इसपर विचार करने के लिए विवश किया, और हम इसी परिणाम पर पहुँचे कि वास्तव में यह प्रवृत्ति अनुचित और अशोभनीय है। हमें इस बात से और भी अधिक दुःख हुआ कि हमने अनजान में सरस्वती की मर्यादा को भंग किया। हमें इस चूक का खेद है।

बाबू गुलाबरायजी का निधन—हमें यह जानकर दुःख हुआ कि गत मास आगरे में बाबू गुलाबरायजी का स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ७६ वर्ष की थी। वे अपने मित्रों और शिष्यों के वृहत् समुदाय में 'बाबूजी' के नाम से प्रसिद्ध थे। उनका विषय दर्शनशास्त्र था, और उसीमें उन्होंने एम० ए० किया था। किंतु वे धीरे-धीरे हिंदी-आलोचना के क्षेत्र में आ गये और इसमें उन्होंने बड़ी ख्याति प्राप्त की। आरंभ में वे महाराज छतरपुर की सेवा में रहे, किंतु अंत में आगरे आ गये थे, और वहाँ साहित्य-सेवा में लग गये। वे स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को हिंदी भी पढ़ाते थे, और अंत में आगरे के सेंट जान्स कालिज के सम्मानित प्राध्यापक नियुक्त हुए। आगरा विश्वविद्यालय ने उनकी सेवाओं और विद्वत्ता के उपलक्ष में उन्हें डी० लिट्० की सम्मानित उपाधि से अलंकृत किया था। बाबू गुलाबरायजी बड़े गंभीर प्रकृति के पुरुष थे, किंतु उनमें विनोद-प्रियता भी पर्याप्त मात्रा में थी। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की तरह वे अपने को ही हास्य का आलम्बन बनाते थे। उनके आत्मचरित्रीय संस्मरणों में उनकी यह विनोदप्रियता बड़ी अच्छी तरह झलकती है। आधुनिक साहित्य की आलोचना को पुष्ट करने में उनका बड़ा योग था। वे द्विवेदी युग के सरस्वती के लेखक थे और उसकी हीरक जयन्ती पर उसके पुराने विशिष्ट लेखक होने के कारण उनका बहुमान किया गया था। बाबू गुलाबरायजी की मृत्यु से हिंदी संसार, और विशेषकर आगरा और उसके निकटवर्ती क्षेत्र की बड़ी क्षति हुई है। हम उनके परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते और उनकी स्मृति के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

गोपालसिंह नेपाली का निधन—सहसा हृदय की गति रुक जाने से प्रसिद्ध गीतकार कवि गोपालसिंह नेपाली की मृत्यु से हिन्दी को एक और आघात लगा। नेपाली हिंदी के श्रेष्ठ गीतकारों में थे। उनके कविता-पाठ का ढंग अनूठा था, और जो एक बार उनके किसी गीत को सुन लेता था उसके मस्तिष्क में उसका स्वर सप्ताहों

गूँजा करता था। उनकी गणना हिंदी के सर्वश्रेष्ठ गीतकारों में होती थी और जिस कवि-सम्मेलन में वे पहुँच जाते थे वह चमक उठता था। उनके गीत बड़े लुभावने होते थे। भाषा की दृष्टि से वे बड़े परिष्कृत होते थे और उनमें भावना का गहरा पुट होता था। वे चलचित्रों में भी गये, और गीतकार के रूप में उन्हें काफी सफलता भी मिली, किंतु वे निर्माता बनना चाहते थे। चलचित्रों के निर्माण का व्यवसाय उन ऐसे व्यवसाय-बुद्धि के अभाव-वाले भावुक कवि की सामर्थ्य के परे था। असफलता ही उनके हाथों लगी। एक बार निर्माण कार्य करने के बाद चलचित्र के लिए गीतों का काम करना उनके लिए असंभव हो गया। वे धीरे-धीरे फिर साहित्य-क्षेत्र में आ गये और इधर उन्होंने युद्ध-सम्बन्धी कुछ अच्छी कविताएँ भी लिखी थीं। खेद की बात यह है कि उनके समान प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए भी गीतों के क्षेत्र में योगक्षेम का प्रबंध संभव नहीं हुआ। उनका जन्म मोतीहारी (बिहार) जिले में सन् १९१३ में हुआ था। उनमें काव्य की जन्मजात प्रतिभा थी और वे शीघ्र ही प्रसिद्धि पा गये। उनमें प्रौढ़ता आ रही थी कि वे हमसे छीन लिये गये। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति व्यक्त करते हैं।

राहुलजी--प्रायः एक वर्ष से हिंदी पर बड़े क्रूर ग्रह आये हुए हैं। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद, बाबू शिवपूजनसहाय, श्री सियारामशरण गुप्त, बाबू गुलाबराय आदि प्रख्यात हिंदी-सेवकों और साहित्यकारों को इस अभागे वर्ष ने हमसे छीन लिया। १३ अप्रैल को लोकसभा में अंग्रेजी को इस देश में अचल करके हिंदी को उसके न्याय्य और वास्तविक स्थान से वंचित करने का विधेयक प्रस्तुत किया गया। उसी दिन संध्या को बाबू गुलाबराय का देहान्त हुआ और चौबीस घंटे के भीतर महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने शरीर छोड़ दिया। इतिहास में हिंदी के ऊपर इतने अल्पकाल में इतनी विपत्तियाँ एक साथ कभी नहीं आयीं।

राहुलजी असाधारण व्यक्ति थे। यदि वे भारत के अतिरिक्त किसी दूसरे देश में पैदा हुए होते, अथवा यदि भारत में ही उन्होंने हिंदी में काम न करके अंग्रेजी में लिखा होता तो अंग्रेजीदाँ नेताओं ने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्ति घोषित करके उन्हें कितना उछाला होता! जितना काम राहुलजी ने किया उतना अपने क्षेत्र में कम ही भारत-वासियों ने किया है, किंतु हिंदी में काम करने के कारण देश के पठित अंग्रेजीदाँ समाज का ध्यान उनकी ओर उचित मात्रा में नहीं गया। राहुलजी के समान अप्रतिम साहित्य-कार, विद्वान्, पर्यटक और बहुभाषाविद् व्यक्तियों को भी ये अंग्रेजीदाँ उचित मान्यता देने को तैयार नहीं हैं क्योंकि वे देशी भाषाओं की सेवा करते हैं। देशी भाषाओं का महत्त्व घटाने के कारण ही उनके चोटी के कार्यकर्ताओं की उपेक्षा होना स्वाभाविक ही है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि देशी भाषाओं में कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं होता, दूसरी ओर जो काम करते हैं उनकी उपेक्षा क उन्हें उचित मान्यता न देकर उन्हें निरुत्साहित करने प्रयत्न किया जाता है। तब देशी भाषाएँ कैसे हमारे राजनीतिक नेताओं में द्वितीय श्रेणी के राज की मृत्यु पर भी "संदेश" देने की होड़ सी लग किंतु अधिकांश को राहुलजी की मृत्यु पर कुछ कहने आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। और तो और, हिंदी के राज्यपालों और उनके मुख्य मंत्रियों ने भी मृत्यु पर कोई ध्यान नहीं दिया। उत्तर प्रदेश में पैदा ही हुए थे। बिहार से उनका घनिष्ठ संबंध इनके राज्यपालों और मुख्य मंत्रियों को भी इस क्षेत्र महान् सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षति का कोई नहीं हुआ। दिल्ली के दो अंग्रेजीदाँ राजनीतिक ने ने अवश्य ही समवेदना प्रकट की। हम इसके लिए आभारी हैं।

राहुलजी का जन्म आज से ठीक सत्तर वर्ष (९ अप्रैल को) आजमगढ़ जिले के एक गाँव के पारी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका बाल्य नाम केदारनाथ पांडे था। उन्होंने गाँव में और का संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। विवाह भी हुआ, और पहिली पत्नी गाँव में अभी भी जीवित हैं। किन्तु वे एक विरक्त होकर वैष्णव वैरागी हो गये और उनका नाम हुआ बाबा रामउदार। 'सरस्वती' में जब लिखना आरंभ किया तब उनके आरंभिक लेख इसी से छपे थे। वैरागियों का जीवन रुचिकर मालूम होने शायद एक कारण यह भी था कि वैरागी सतत परि होते हैं, और उन्हें आरम्भ ही से घूमने का शौक वैष्णव धर्म भक्तिप्रधान है। उनकी बुद्धि तर्कप्रधान अतएव वैष्णवत्व उनसे बहुत दिनों नहीं निभा, आर्यसमाजी हो गये। किंतु घूमना जारी रहा। घामते वे लंका पहुँचे। वहाँ बौद्ध धर्म से प्र होकर वे बौद्ध हो गये। कुछ दिनों भिक्खु भी रहे बाद में गृहस्थ हो गये। उनके समान तीक्ष्णबुद्धि विचारवान् व्यक्ति देशकी तत्कालीन राजनीतिक हल से अप्रभावित नहीं रह सकता था। वे असहयोग आं में कूद पड़े। कई बार जेल गये। किंतु उनका हि हृदय कांग्रेस के संयम, समन्वयवाद आदि से संतुष्ट रह सका। वे कम्यूनिस्ट हो गये। बाद में उन्होंने का विरोध भी किया, और कांग्रेसी जेल का भी अ प्राप्त किया। किंतु इधर कुछ वर्षों से उन्होंने राजनीति से एकदम वैराग्य ले लिया था। वे अपना समय पठन-पाठन, लेखन और भ्रमण ही में लगाते थे।

वे महान् यात्री थे। यह कहना शायद अत्युक्ति हो कि भारत के ज्ञात इतिहास में (हमारी जान में) बड़ा भारतीय पर्यटक और कोई नहीं हुआ। श्रीज्ञान और दीपंकर की परम्पराओं का पालन ही किया, उसे और आगे बढ़ाया। उन्होंने चार बार की, तीन बार चीन की, कई बार जापान की और

या मध्य एशिया, ईरान, अफगानिस्तान, योरप आदि की यात्राएँ कीं। किंतु उन्होंने अपने देश की उपेक्षा नहीं की। न मालूम कितनी बार उन्होंने सारे देश का चक्कर लगाया, और उनकी यात्राएँ सुगम और "फैशनेबुल" यहीं तक ही सीमित नहीं थीं। उदाहरण के लिए, आज बीस-पच्चीस वर्ष पहिले उन्होंने दुर्गम लद्दाख की यात्रा की थी। ये यात्राएँ केवल सैर-सपाटे के लिए नहीं होती थीं। वे कुछ उद्देश्य को लेकर होती थीं। एक दो बार तिब्बत की यात्रा करने के बाद उन्होंने देखा कि वहाँके मठों में ऐसे अनेक हस्तलिखित ग्रंथ सुरक्षित हैं जो अब भारत में या अन्यत्र अलभ्य हैं। वे उन्हें ला नहीं सकते थे। किंतु उन्होंने वहाँके कई मठों के अध्यक्षों से उनकी प्रतिलिपि या फोटो लेने की अनुमति प्राप्त कर ली थी। उन दिनों पुस्तकों के माइक्रो-फिल्म बनाने की प्रथा बहुप्रचलित नहीं थी, और साधनहीन राहुलजी उसका प्रबंध कर भी नहीं सकते थे। तिब्बत की बीहड़ यात्रा करने को कोई फोटोग्राफर न मिलता था। वे स्वयं विद्याप्रेम के कारण यह सब कर रहे थे, और रुपये के जोर से किसी फोटोग्राफर को ले जाना उनके लिए संभव नहीं था। उन दिनों हम इलाहाबाद में एक सरकारी पद पर थे। उन्होंने अपनी समस्या हमसे कही। न मालूम क्यों उन्हें विश्वास था कि हम यह समस्या हल कर सकेंगे। राहुलजी हमारे मित्र तो थे ही, हमें उनके विद्याप्रेम और अलभ्य संस्कृत ग्रंथों के उद्धार के कार्य से बड़ी सहानुभूति थी। स्वर्गीय डा० काशीप्रसाद जायसवाल उनके बड़े मित्र थे और उनका इतिहास प्रतिष्ठान इस यात्रा में उनकी कुछ सहायता कर रहा था। किंतु कोई अच्छा फोटोग्राफर न मिल रहा था जो बिना धन के लोभ के तिब्बत की लंबी, साहसिक और कष्टकर यात्रा करने को तैयार हो। दूसरी बात यह भी थी कि राहुलजी के समान व्यक्ति के साथ निर्वाह करना भी सब का काम न था। यात्रा में दुर्गम पहाड़ों पर चलना आरंभ करते तो सबेरे से संध्या तक अविश्रांत चलते ही चले जाते। लिखने-पढ़ने का काम करने लगते तो एक आसन पर लगातार पंद्रह-बीस घंटे काम ही करते रहते। ऐसे व्यक्ति का साथ देने योग्य व्यक्ति, और वह भी बिना पैसे के लोभ के, कहाँ मिलता! संयोग से उन दिनों इंडियन प्रेस में एक नवयुवक फोटोग्राफर काम करता था। वह अविवाहित, स्वस्थ, कष्टसहिष्णु और साहसिक था। बड़ा अच्छा फोटोग्राफर था। हमारी उससे जान-पहचान थी और वह हमें मानता भी था। इंडियन प्रेस के तत्कालीन जनरल मैनेजर श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) ने उसे एक लाइका कैमरा दे रखा था जो उन दिनों सर्वोत्तम कैमरा समझा जाता था। हमने इस नवयुवक को राहुलजी के साथ जाने को राजी किया। पटल बाबू ने भी सहमति दे दी। बिना किसी आर्थिक प्रलोभन के, केवल हमारे कहने पर, उस साहसिक युवक ने तिब्बत जैसे दुर्गम स्थान की लंबी और कष्टकर यात्रा स्वीकार कर ली। इसके लिए हम उसके सदैव कृतज्ञ रहेंगे। राहुलजी भी उसके कार्य और व्यवहार से बहुत संतुष्ट रहे। उसने उस यात्रा में, राहुलजी के आदेशानुसार और उनके निरीक्षण में, तिब्बती मठों की संस्कृत हस्तलिपियों के कई हजार पृष्ठों के उत्कृष्ट फोटोग्राफ लिये। उस नवयुवक फोटोग्राफर का नाम फेनी मुकर्जी है और अब वह भारत सरकार के सूचना विभाग में फोटोग्राफर है। उसने लौट कर अपनी यात्रा और राहुलजी की कार्यप्रणाली का जो विवरण दिया उससे हम आश्चर्यचकित रह गये। उस अभियान में लिये गये संस्कृत ग्रंथों के फोटो के एलबम पटना के जायसवाल प्रतिष्ठान में सुरक्षित हैं।

राहुलजी ने जो साहित्य लिखा उसका विषय-वैविध्य, गुण और आकार देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है, विशेषकर जब इस बात पर भी विचार करें कि उनके चंचल और अशान्त चरण सतत भ्रमण करते रहते थे। उन्हें अपनी लिखी पांडुलिपि को दुहराने का न धैर्य था, न अवकाश। उससे उसमें त्रुटियाँ भी रह जाती थीं, जो अच्छे सम्पादन से अनायास दूर हो सकती थीं। उनके अनूदित और मौलिक ग्रंथों की संख्या १५० और २०० के बीच है। उनका शायद सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य त्रिपिटक का हिंदी अनुवाद है जिसमें उनके पालि भाषा का पांडित्य भली भाँति परिलक्षित होता है। उन्होंने यात्रा संबंधी अनेक पुस्तकें लिखकर हिंदी यात्रा-साहित्य की समृद्धि की। इनमें उनकी सोवियत रूस और लद्दाख संबंधी यात्राओं की पुस्तकें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने कितने ही उपन्यास, कहानियाँ और नाटक भी लिखे। किंतु ये सब सोद्देश्य थे, अपने विचारों का प्रचार करने के लिए। और इसीलिए वे बहुत विवादग्रस्त रहे, जैसे "वोल्गा से गंगा तक"। किंतु इन पुस्तकों में भी वे तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण चित्रित करने में सफल रहे। अंतिम कुछ वर्षों से वे इतिहास और दर्शन में विशेष रुचि लेने लगे थे। उनका मध्य एशिया का इतिहास हिंदी का गौरव ग्रंथ है। उसके जोड़ की पुस्तक अन्य भाषाओं में भी शायद ही कोई हो। उसे साहित्य अकादमी से पुरस्कार भी मिला था। घूमने और सैलानीपन की मात्रा उनमें इतनी अधिक थी कि उन्होंने "घुमक्कड़ शास्त्र" नाम की अपने ढंग की एक अनोखी और मनोरंजक पुस्तक ही लिख डाली थी। वह भी हिंदी साहित्य की एक अपूर्व निधि है।

उनकी हिंदीनिष्ठा बहुत गहरी थी। हिन्दी उनके लिए "धर्म" थी। उस युग में हिंदीनिष्ठा वाले कई नेता थे, किंतु उनकी हिंदीनिष्ठा किसी से कम नहीं थी। जब उनका नाम हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सभापतित्व के लिए प्रस्तावित किया गया तब कुछ अनजान हिंदी-प्रेमियों को उनके सम्बन्ध में शंका थी क्योंकि राहुलजी कम्यूनिस्ट थे, और कम्यूनिस्ट पार्टी उर्दू या हिंदुस्तानी की समर्थक समझी जाती रही है। कम्यूनिस्ट दल का अनुशासन भी बड़ा कड़ा है और लोगों को शंका थी कि दल के अनुशासन के कारण वे हिंदी के हितों की समुचित रूप से रक्षा न कर सकेंगे।

किन्तु हम लोग जो उन्हें जानते थे, इस बात से आश्वस्त थे कि हिंदी के हित उनके हाथों में पूर्णरूप से सुरक्षित है। और जब शंकालु लोगों को आश्वस्त कर दिया गया तब प्रायः सर्वसम्मति से वे सम्मेलन के अध्यक्ष चुन लिये गये। बाद में अपनी हिंदीनिष्ठा के कारण उन्हें कम्यूनिस्ट पार्टी से अलग भी होना पड़ा, किंतु वे हिंदी के प्रति कभी कर्त्तव्यच्युत नहीं हुए। हिंदी के ऐसे निष्ठावान् समर्थक (जो राजनीति के क्षणिक लाभ को त्याग कर हिंदी के हितों के लिए डट सकें) आज कितने हैं? इसीलिए इस समय, जब हिंदी पर ऐसा संकट है और हमें उनके समान दृढ़ निष्ठा के नेता की आवश्यकता है, उनका निधन हमारी वेदना को और बढ़ा देता है।

राहुलजी महापंडित और बहुभाषाविद् थे। तिब्बती, चीनी, रूसी आदि दर्जनों विदेशी भाषाओं को वे भली भाँति जानते थे। उन्हें बोल सकते थे। उनमें लिख-पढ़ सकते थे। संस्कृत, पालि और अपभ्रंश के तो वे मान्य पंडित थे। दर्शन और इतिहास तथा तुलनात्मक धर्म के वे अद्वितीय विद्वान् थे। अपनी विद्वता के कारण वे रूस के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर नियुक्त हुए। श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष बनाये गये। किंतु हमारे लिए यह लज्जा की बात है कि अपने देश में उनके लिए कोई स्थान नहीं था, क्योंकि वे अंग्रेजी के विद्वान् नहीं थे और न उन्होंने किसी विश्वविद्यालय से वह एम० ए० या पी एच० डी० ही किया था जिसे आजकल के अपरिपक्व नवयुवक आसानी से कर लेते हैं और जिनके बल पर वे अपरिपक्व युवक विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक पद पा जाते हैं। इस देश में स्वतंत्रता के बाद भी अंग्रेजी का इतना प्रभुत्व है कि केवल अंग्रेजी की डिग्री न होने के कारण महापंडित राहुल सांकृत्यायन के समान प्रकांड विद्वान् को भी भारत के किसी विश्वविद्यालय में स्थान नहीं मिल सका। और फिर भी हमारे नेता भारतीय विद्या और पांडित्य के ह्रास पर घड़ियाली आँसू बहाते हैं! किंतु अंग्रेजी न जाननेवाले महान् विद्वान् को भी वे एकदम अयोग्य समझते हैं। स्वदेश में इस उपेक्षा के कारण तथा अर्थाभाव से पीड़ित होकर, खराब स्वास्थ्य रहने पर भी, उन्हें विवश होकर लंका के विश्वविद्यालय की नौकरी स्वीकार करनी पड़ी। विश्वविद्यालयों की कौन कहे, दूसरी संस्थाओं में भी 'डाक्टरों' के सामने उनकी पूछ नहीं थी। जब काशी नागरी-प्रचारणी सभा में हिंदी विश्वकोष के लिए एक सम्पादक की आवश्यकता हुई, तब उनका नाम भी प्रस्तावित हुआ। उनके समान और कोई कर्मठ और विद्वान् व्यक्ति उपलब्ध नहीं था। किंतु डिग्री और डाक्टरी-पदवी-हीन राहुलजी उस पद पर भी न लिये जा सके, और एक डाक्टर उपाधिधारी सज्जन उसपर रखे गये। यह है वह व्यावहारिक सराहना जो इस देश में उन विद्वानों को मिलती है जिन्होंने अंग्रेजी डिग्रियों और डाक्टरी पदवियों को संग्रह न करने की मूर्खता की है! किसी समय कहा जाता था 'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'। स्वतंत्र भारत में 'सर्वेगुणाः अंग्रेजीमाश्रयन्ति'!

रही सम्मान की बात। उत्तर प्रदेश (जहाँ पैदा हुए थे) के अंग्रेजीदाँ और अंग्रेजीग्रस्त शासित विश्वविद्यालयों ने पिछले दस-पंद्रह वर्षों ही मिनिस्टरों से लेकर बहुचर्चित उपन्यासकारों, और कवियों को 'आनरेरी डाक्टरेट' की सम्मानित किया है। किंतु इन विश्वविद्यालयों वातावरण में विचरनेवाले महाप्रभुओं और तथा संकुचित हिंदी विभागों ने राहुलजी को इस के योग्य भी नहीं समझा। भारत सरकार भी इतने सोती रही, किंतु वह संयोगवश उनकी मृत्यु से चार पहिले सहसा जाग उठी, और उसने उन्हें "पद्मभूषण सम्मान दिया जिसे ग्रहण करने के पहिले ही वे बसे। किंतु देर से ही सही, और पद्मभूषण ही भारत-सरकार ने उनकी विद्वता और कृतित्व को मान्यता तो दी! हम इसीके लिए उसके आभारी

हिन्दी जगत् ने अवश्य उन्हें सिर आँखों पर उन्हें हिंदी का सर्वोच्च सम्मान "साहित्य वाचस्पति" से प्रायः १५ वर्ष पहिले दिया गया था। कम लो जानते हैं कि "साहित्य वाचस्पति" का सम्मान ऊँचा और महत्त्वपूर्ण है। इतना बतला देना पर्याप्त महात्मा गांधी ने कभी कोई सम्मान या पदवी नहीं की। किंतु जब हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें वाचस्पति' की उपाधि देने का प्रस्ताव किया तब उसे सहर्ष स्वीकार कर इस सम्मान को सम्मानित हिंदी ने उसी 'साहित्य वाचस्पति' से राहुलजी को किया था जिससे गांधीजी तक अपने को सम्मानित थे। हिंदी संसार ने उन्हें दूसरा सर्वोच्च सम्मान साहित्य-सम्मेलन का सभापति बनाकर दिया।

राहुलजी का व्यक्तित्व बड़ा सरल और था। गंभीर होने पर भी उनमें मानवीयता और शीलता की पर्याप्त मात्रा थी। हम बहुधा सोचा थे कि हम में और राहुलजी में इतनी घनिष्ठता सौहार्द क्यों है। हममें उनमें कोई साम्य नहीं ऐसे दो विषम व्यक्ति मुश्किल से मिलेंगे। हमारे उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों आकाश-पाताल का अंतर था। फिर भी प्रायः तीस वर्ष के परिचय में, जिसने प्रगाढ़ मैत्री का रूप ले था, हमारा उनका मतभेद कभी नहीं हुआ। उनकी हिंदीनिष्ठा और गंभीर विद्वता हमें उनके निकट का कारण थी, किंतु इतने लम्बे समय के स्निग्ध संबंध लिए ये ही बातें पर्याप्त नहीं थीं। वास्तविक उनके हृदय की विशालता, उदारता और दूसरों की नाओं का सम्मान करने की प्रवृत्ति थी। वे हमारे कई बार ठहरे। वे जानते थे कि वैष्णव और पुराने ब्राह्मण परिवारों में किन बातों का विचार करना हमारे घर की स्त्रियों या बच्चों को उनके व्यवहार या

ीत से यह कभी नहीं मालूम हुआ कि वे एक 'जातिहीन,' नास्तिक' या 'मांसभक्षण के प्रचारक' का अतिथि-सत्कार र रहे हैं। दूसरों की व्यक्तिगत भावनाओं का ध्यान खना उनकी ऐसी विशेषता थी जिससे उनके सैद्धान्तिक तभेदों की तीक्ष्णता का बोध नहीं होता था। इसीलिए सब प्रकार के लोगों में घुलमिल जाते थे और उनके मित्रों तथा प्रशंसकों का समुदाय इतना विस्तृत था।

"सरस्वती" को इस बात का श्रेय और गर्व है कि राहुलजी का साहित्यिक जीवन उसीके पृष्ठों में आरंभ हुआ। उन्होंने हमें कई बार बतलाया था कि सरस्वती ने उन्हें हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त किया था। उन्होंने सरस्वती के माध्यम से हिंदी की सेवा आरंभ की। उस समय आचार्य द्विवेदीजी इसका सम्पादन छोड़ चुके थे किंतु जब उन्होंने उनके लेख पढ़े तो तत्कालीन सम्पादक से लिख कर पूछा कि 'यह नवीन प्रतिभा कौन है ?' राहुलजी हमारे मित्र थे, किंतु सरस्वती का सम्पादनभार लेने पर हमने उन्हें लेख भेजने को नहीं लिखा। सारे जीवन सरकारी सेवा करने के बाद मित्रों के दबाव से हमने यह नया और गुरु-भार ले लिया था, किंतु अपनी अयोग्यता और त्रुटियों को हम समझते थे। इस अनधिकार चेष्टा के कारण साहित्य के महारथियों को (वे भले ही मित्र क्यों न हों) लेख के लिए लिखने में संकोच होता था। कितने ही मित्रों ने हमारे इस दुःसाहस की सफलता पर संदेह भी प्रकट किया था। किंतु राहुलजी ने हमारे बिना माँगे लेख तो भजे ही, हमारे साहस की सराहना भी की। दो-तीन वर्ष पहिले जब एक बार मिले तो बातों ही बातों में कहने लगे कि मैं सरस्वती की सम्पादकीय टिप्पणियों से बहुत घबड़ाता हूँ। हमने इसका कारण पूछा तो बोले कि 'सरस्वती की स्थिति ऐसी है कि उसकी फाइलें भारत ही नहीं संसार के भी कितने बड़े पुस्तकालयों में रहती हैं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें कम रखी जाती हैं। इसमें जो कुछ छप जायेगा वह स्थायी अभिलेख हो जायगा, और आज से सौ-पचास वर्ष बाद जब कोई शोध करेगा तो इसके सम्पादकीय इस समय की गतिविधियों तथा विचारों के प्रमाण माने जायेंगे। क, साप्ताहिक तथा कुछ दिन प्रकाशित होनेवाली या ी पत्रिकाओं की वह स्थिति नहीं है। इसलिए जो कुछ सरस्वती में छपता है उसका स्थायी महत्त्व है।' उन्होंने भी कहा कि इसीलिए मुझे संतोष है कि इसके सम्पादकीय संतुलित होते हैं। हमें किसीकी प्रशंसा से इतनी न्नता नहीं हुई जितनी राहुलजी की इस सरल और क सम्मति से। बीमार होने से एक-दो सप्ताह पहिले उन्होंने एक लेख भेजा था, किंतु शायद उस समय तक उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका था। अक्षर इतने अस्पष्ट थ कि हम उसे पढ़ ही नहीं सके, और उसके बाद ही वे इतने बीमार हो गये कि उसे उनके पास फिर से लिखने के लिए भेजना बेकार हो गया था। सरस्वती के हीरक जयन्ती समारोह में सरस्वती के वरिष्ठ लेखक के रूप में उनका भी सम्मान किया गया था, किंतु उन दिनों वे कलकत्ते के अस्पताल में बेहोश पड़े थे और उत्सव में न आ सके। किंतु हमें संतोष है कि उसके विशेषांक के लिए वे एक लेख भेज चुके थे जो उसमें छपा है।

राहुलजी के समान बहुमुखी प्रतिभा के कर्मठ व्यक्तियों को पैदा करने में प्रकृति अत्यन्त कृपण है। ऐसे व्यक्ति कभी-कभी ही पैदा होते हैं। वे जन्मजात विद्रोही थे, किंतु पिछले कुछ वर्षों से उनके स्वभाव में बड़ी मृदुता और स्निग्धता आ गयी थी। शिष्टता की वे मूर्ति थे, और अपने विरोधियों से भी उनका व्यवहार कभी भी कटुता या अशिष्टता के निकट भी नहीं पहुँच सकता था। स्वयं विद्वान् थे, और विद्वानों का सम्मान करना जानते थे। संस्कृत के सीधसादे पंडित, जिनकी विद्वता की थाह हम अपने अज्ञान के कारण नहीं पाते थे और इसलिए हम उनका समुचित आदर नहीं करते थे, उनसे सदैव समादृत होते थे। एक बार एक समिति में हम उनके साथ थे। उसमें दो पुराने ढंग के वैयाकरण थे, और एक आधुनिक ढंग के डाक्टर भी थे। पंडितों ने जो बात कही वह डाक्टर साहब को कुछ 'पंडिताऊ' लगी और उन्होंने उसका विरोध किया। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने राहुलजी से दाद चाही क्योंकि वे उन्हें प्रगतिशील समझते थे। किंतु प्रश्न पांडित्य का था। राहुलजी ने बड़ी नम्रता के साथ कहा कि उन दोनों महान् वैयाकरणों के मत के विरुद्ध जाने का मैं साहस नहीं कर सकता। लखनऊ के सम्मेलन ने देवनागरी लिपि में जो 'इ' और 'ई' की मात्राओं में गड़बड़ी पैदा कर दी थी, तथा देवनागरी लिपि में और भी कितने ही ऐसे परिवर्तन कर दिये थे जो जनमत के विरुद्ध थे, उन्हें ठीक करा कर देवनागरी लिपि का रूप शुद्ध करने में भी राहुलजी का बड़ा हाथ था।

हिंदी की भावी पीढ़ियाँ इस महान् व्यक्ति को सदैव याद करेंगी। उनकी कर्मठता, उनकी हिंदीनिष्ठा, उनका विद्याप्रेम, उनका साहस हमारे देश के नवयुवकों को अनन्त काल तक प्रेरणा देते रहेंगे। राहुलजी का चैतन्य अंश तो साल भर पहिले ही समाप्त हो चुका था; पार्थिव शरीर अब समाप्त हुआ है। किंतु उनका यशःशरीर चिरजीवी है। उनके आदर्शों और कृतियों से हिंदी का गौरव बढ़ता रहेगा और उनका आदर्श हिंदी लेखकों और कार्यकर्ताओं को बराबर प्रेरणा देता रहेगा।

* * *

भारती-कण्ठाभरण (३)

स्व० पण्डित ब्रजमोहन व्यास

चीन के सन्दर्भ में

द्विषतामुदयः सुमेधसा गुरुरस्वन्ततरः सुमर्षणः।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः।।
—भारवि। किरातार्जुन य–२–८

ऐश्वर्य की कामना करनेवाले लोग अपने शत्रुओं के महान् अभ्युदय को, यदि वह विनाशोन्मुख है तो, सहन कर लेते हैं। परन्तु शत्रु के उस महान् विनाश को वे सहन नहीं करते जो फलोन्मुख अथवा जोत की ओर अग्रसर होता है।

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः।।
—भारवि। किरातार्जुनीय–२२०

मनुष्य राख के ढेर को तो अपने पैरों से कुचल देता है, परन्तु जलती हुई आग को नहीं कुचलता। इसी कारण स्वाभिमानी लोग अपने प्राणों को तो सुख से छोड़ देते हैं किन्तु अपनी तेजस्विता अथवा मान-मर्यादा को नहीं छोड़ते।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।।
—माघ। शिशुपाल वध। २–४६

जो धूल पैर से आहत होने पर उड़कर आहत करनेवाले के सिर पर चढ़ बैठती है, वह उस हाथ-पैरवाले मनुष्य से श्रेष्ठ है, जो अपमानित होने पर भी अकर्मण्य के समान हाथ पर हाथ धरे इतमीनान से बैठा रहता है।

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्।।
—माघ। शिशुपाल वध। २–४२

जो बर्बर शत्रु के साथ वैमनस्य कर उसकी उपेक्षा करते हैं और सजग नहीं रहते वे वायु के सम्मुख तृणों के समूह में आग लगा कर सोते हैं।

चरैवेति ! चरैवेति

ना ना श्रान्ताय श्रीरस्ति। पापो नृषद्वरो जन।
इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति ! चरैवेति।
—ऐतरेय ब्राह्मण।

पुरुषार्थहीन को (विजय) लक्ष्मी नहीं प्र होती। निठल्ला रहनेवाला पापी है। उद्यमी मित्र परमेश्वर है। चले चलो ! चले चलो !

पुरुषस्य कृतं भुजद्वयं प्रविधातुं द्वयमेव वेधसा
सुहृदामुदयं च विद्विषामवलेपप्रतिघातमेव च।
——कुमारदास। जानकीहरण-४-

ब्रह्मा ने मनुष्य के दो हाथ, दो कामों के करने के लिये बनाये हैं। एक अपने मित्रों का अभ्युदय दूसरा शत्रुओं का दर्प चूर्ण करने के लिये।

शरणोप तं न पाति यो न भिनत्ति द्विषतां समुन्नति
न स बाहुरसाधनक्षमो नरवृक्षप्रभवः प्ररोह
——कुमारदास। जानकीहरण--४-

जो शरण में आये हुए की रक्षा नहीं करता शत्रुओं की बढ़ती को नहीं काटता, वह बाहु नि है और मनुष्यरूपी वृक्ष की टहनी मात्र है।

सहायाः साधनोपायाः विभागो देशकालयोः
विनिपातप्रतीकारः सिद्धिः पञ्चांगमिष्यते॥

मित्र-राष्ट्रों की सहायता, कार्य सिद्धि के उपायों का एकत्रीकरण, देश और काल के अनु उन उपायों का प्रयोग, शत्रु के द्वारा किये हुए आ का प्रतिकार और शत्रु पर विजय प्राप्ति–ये पाँच नीति के अंग हैं। और इन्हींके अनुष्ठान से राष्ट्र राज्यलक्ष्मी सुरक्षित रहती है।]

आत्मोदयः परग्लानिः द्वयन्नीतिरितीयती।
तदूरीकृत्य कृतिभिः वाच पत्यं प्रतायते॥
—माघ। शिशुपालवध। २-

अपनी जीत और शत्रु का पराजय। बस, ही राजनीति है। इस सिद्धान्त को मानकर राजनी इन्हींकी आड़ में, बड़े-बड़े प्रवचन कर आँख झोंकता है।

भेषज विद्या या वनस्पतिशास्त्र

श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी

वनस्पतिशास्त्र की आधुनिक उपलब्धियों में भारतीयों की प्राचीन देन का अध्ययन नहीं हो पाता क्योंकि इस म्बन्ध में क्रमबद्ध साहित्य नहीं उपलब्ध होता। लेकिन का तात्पर्य यह नहीं कि इस ओर ध्यान ही नहीं दिया या। इसके लिए 'वृक्षायुर्वेद' एवं 'भेषजविद्या' आदि ब्द व्यवहार में आते थे। वृहत्संहिता, अग्निपुराण आदि में अनेक स्थानों पर 'भेषजविद्या' शब्द का प्रयोग किया गया है। अर्थशास्त्र में 'गुल्मवृक्षायुर्वेद' शब्द आता है। विनयपिटक में बतलाया गया है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में भिक्षु आत्रेय आयुर्वेद के अध्यापक थे। उन्होंने अपने शिष्य जीवक को आदेश दिया कि विश्वविद्यालय की दीवार के आसपास ४ योजन तक पादपों का र्गीकरण एवं गुण निर्देश करे। जीवक की यही परीक्षा थी जिसमें वह उत्तीर्ण हुआ और बाद में बिम्बसार का चिकित्सक बना।

इस विद्या में भारतीयों का ज्ञान किस प्रकार का था, इसे समझने के लिए कुछ तथ्यों का अध्ययन आवश्यक है। बीज में पहले अंकुरोद्भेद (जर्मीनेशन) होता है। ऊपर के अंकुर का छिलका भेद कर अंकुर निकलता है। इसकी वृद्धि के लिए ऋतु, क्षेत्र और जल की आवश्यकता होती है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि ईसा से पूर्व भारतीयों को इस सिद्धान्त का ज्ञान था कि वृक्षोत्पत्ति और वृद्धि के लिए वायु, उष्णता और जल की आवश्यकता होती है। ल या विस्तार में दो भाग होते हैं, कांड और पर्ण। कांड है। इसमें पर्व (इंटरनोड) और ग्रंथि या पर्वसन्धि होती है। इससे पर्ण या पर्व निकलते हैं। पादप सकांड, अकांड या स्तम्भ होते हैं। जिसमें पत्ती नहीं निकलती से स्थाणु या शंकु कहा जाता है। झाड़ीवाले पादप प कहलाते हैं।

शाखा, प्रशाखा और अणुशाखा के क्रम से शाखाओं का विस्तार होता है। भूमि में रहनेवाला देहभाग कन्द कहा जाता है। वह देखने में मूल सा ज्ञात होता है। पर वास्तव में मूल होता नहीं, क्योंकि 'कन्द' 'मूल' शब्द अलग-अलग अर्थ रखते हैं। कन्द की परिभाषा है "यन्मूलमेव बीजः" हरे रंग के होने से पर्ण या पत्र कहलाता है। पत्ते एक पर्ण, द्विपर्ण, त्रिपर्ण और सप्तपर्ण आदि अनेक प्रकार के होते हैं। आकार के अनुसार ही उनका नाम होता है। प्रमाण के लिए, अश्वपर्णक घोड़े के कान के समान, मूसिकपर्णी चूहे जैसा, और हंसपदी आदि।

फूल का आरम्भिक रूप है कलिका या कली। खुलती हुई कली मुकुल या कुड्मल और पूर्णरूप से विकसित विकच या स्फुट कहलाती है। फूलों का गुच्छा स्तवक या गुच्छक कहा जाता है। गुच्छों में उगनेवाले फूल को मंजरी कहा जाता है। छाते की आकृति का पुष्प छत्र कहा जाता है। जिस रेशे से फूल और फल पादप में जुड़े रहते हैं उसे प्रसवबन्धन कहते हैं। पुष्प के विभिन्न अंग हैं: पुष्पछंद, पुष्पदल, पराग, केसर, रेणु आदि। पुष्प का पर्यवसान फल में होता है। हरे फल सलातु, जलदार फल जालक या क्षारक, और सूखे वाण कहलाते हैं। बीज ही से अंकुर निकलता है। उसके ऊपर छिलका बीजकोश कहलाता है, और भीतर का गूदा शस्य, बीजपत्र या बीजदल। शार्ङ्गधरपद्धति में आम्र वृक्ष की जो जीवनी दी है उससे इस पर प्रकाश पड़ता है।[2]

निर्बल पादप लता, वल्ली या व्रतती कहलाते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं: एक जो वृक्ष की चोटी पर चढ़ते हैं, "मूला चाग्रगता लता", और दूसरे वे जो भूमि में छितराते हैं। भूमि में छितरानेवाले को 'पृतानिनी' कहते हैं। वृक्ष के स्कन्द में लिपटनेवाली लता या वल्ली होती है "वल्ली वेष्टते वृक्षः।" वृक्षों पर उड़नेवाली वृक्षरुह कहलाती है और पैरासाइट 'वृक्षादनी' कहलाते हैं।

माइक्रोसकोप यन्त्र के १६वीं शती में आविष्कार के बाद पश्चिम वालों को वृक्षों की भीतरी रचना देखने का अवसर मिला। अपने यहाँ इस सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का ज्ञान पहले ही हो चुका था। अपने यहाँ वृक्षों के शरीर के पाँच क्षेत्र माने गये हैं:

---

[1] सुश्रुत, शरीरस्थान, खंड २, पृ० २२

[2] यो दृष्टः स्फुटदस्थिसम्पुटवसन्निर्यत्प्रवालाङ्कुरो
दैवात् स द्विदलादिकक्रमवशादारूढशाखाशतैः।
स्निग्धं पल्लवितो घनं मुकुलितः स्फुरच्छदं पुष्पितः
शाखाग्रैः फलितो भृशं च विनतः कोप्येष चूतद्रुमः ॥

त्वच, मांस, गूदा, अस्थि (लकड़ी), मज्जा स्नायु (रेशा)। बृहदारण्यकोपनिषद् में मांस के दो भेद बताये गये हैं: बल्कल और शकल।[1] वृक्षों के घाव को भरने के लिए मनुष्य के समान ही स्वाभाविक रीति से भरने का प्रकार शंकर मिश्र के उपास्कर[2] और गुणरत्न की टीका में बताया गया है। पादप शब्द से स्पष्ट है कि वृक्ष भूमि से रस रूप में अपना खाद्य लेते हैं। इसका ज्ञान हिन्दुओं को बहुत पहले से था। रस के पत्तियों में पहुँचने, सूर्यताप तथा वायु से उसके परिपक्व आदि का क्रमिक वर्णन शान्ति पर्व में विस्तार के साथ बताया गया है।[3]

इस सम्बन्ध में पहली खोज पश्चिम में १७२७ में स्टेफेन हेल्स की है, जिसका ज्ञान हिन्दुओं को बहुत पहले से था। खाद्य के कणों में सूर्यशक्ति के संग्रह का ज्ञान तो ऋग्वेद से ही है।[4] शरीर में रस के संचालन (सरकुलेशन) का ज्ञान हार्वी को १७वीं शती में हुआ किंतु ईसा से पूर्व कणाद ने इस ओर संकेत किया था।[5] शंकर मिश्र ने उपास्कर में इसकी चर्चा की है। भागवत के "उत ओत सहः" से भी यही भाव व्यक्त होता है। बाल, कुमार और युवा ये तीन अवस्थाएँ वृक्षों की मानी गयी हैं। वृक्षों की अधिकतम आयु १० हजार वर्ष मानी गयी है। वृक्षों में अनुकूल की ओर प्रसार और प्रतिकूल की ओर संकोच होता है। 'सजातीयानुबन्धानुकूलोपगमप्रतिकूलापगमादिभ्यः।' वृक्ष रात्रि में पत्ती बन्द कर सो जाते हैं 'रात्रौ स्वपः रात्रौ पत्रसंकोचः।' वृक्षों पर स्पर्श का प्रभाव पड़ता है। 'लज्जारुणप्रवर्तणां हस्तादिस्पर्शात् पत्रसंकोचः।' दिन में भिन्न-भिन्न समय में फूल विकसित होते हैं। कुछ दिन में, एवं कुछ रात्रि में भी खिलते हैं। 'पद्मादीनां प्रातर्विकसनम्, घोसात्यकादिषु पुष्पानां च संध्यायां कुमुदादीनां तु चन्द्रोदये'।

अपने यहाँ वृक्षों को सजीव कहा गया है। मनु के अनुसार वृक्षों को सुख दुख का अनुभव होता है। 'अन्तःसंज्ञा भवत्येते सुखदुःखसमन्विताः।' महाभारत पर्व (अध्याय १८२) में इस पर पर्याप्त प्रकाश है। भागवत में भी इस पर विचार किया गया है। की उत्पत्ति-प्रकार इस तरह है; बीजरुह, मूलज, स्कन्दरोपणीय, अग्रबीज, पर्णयोनि, सौनरुज। विस्तृत वर्णन बृहत्संहिता, अर्थशास्त्र, अभिधान मणि, एवं सुमंगलविलासिनी आदि ग्रन्थों में आ वृक्षों में यौन सम्बन्ध के प्रश्न पर अधिक प्रकाश पड़ता। किन्तु हारीतसंहिता के शारीर स्थान में विचार किया गया है। केतकी के स्त्री पुरुष के अलग नाम गिनाये गये हैं। पुरुष सित केतकी के विफला, और धूलिपुष्पा नाम दिया गया है, और के लिए स्वर्णकेतकी नाम आया है। फसलों के का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है[6]। अदल-बदल कर के बोने का वर्णन तैत्तिरीय संहिता में भी आया उक्त कल्पतरु में लिखा है कि प्रति वर्ष एक भूमि में करने से भूमि के गुण का क्षय हो जाता है[8]।

वृक्ष किस प्रकार की भूमि में उत्पन्न होते हैं दृष्टि से भूमि तीन प्रकार की बतायी गयी है, अनूप और साधारण। सुश्रुत आदि में इनका आया है। अर्थशास्त्र भी इस पर प्रकाश डालता है वहाँ इस पर भी प्रकाश डाला गया है कि इस की भूमि में कितने अंश में जल गिरता है। पादपों नामकरण वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक ढंग से किया गया सर विलियम जोन्स को मानना पड़ा है कि यदि यस को इस देश की प्राचीन भाषा का ज्ञान हो उसने स्वयं यहाँकी नामकरण की पद्धति अपनायी है नाम प्रायः दो प्रकार के माने गये हैं: परिचय के सार और गुणों के अनुसार। "परिचयज्ञापिका और "गुणप्रकाशिका संज्ञा"। आयुर्वेद की दृष्टि से ने उनके दो भाग किये हैं, विरेचन एवं अनूपान। चन ६०० प्रकार के, और अनूपान ५०० प्रकार के

---

[1] बृहदार० उ० ३।९। [2] उपास्कर ४।५।६।

[3] वक्रेनोत्पलनालेन यथोर्द्ध्वम् जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपम्।
तेन तज्जलमादत्तम् जरयत्यग्निमारुतौ।
आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते॥

[4] ऋ० २।१।१४। ८।४३।९।

[5] वैशे० ५।२।७।८

[6] ऋग्वेद ८, ९१, ५, ६

[7] द्विसंवत्सरस्य सस्यं पच्यते। तैत्तिरीय०
७, ३७

[8] तथा वर्षेषु वर्षेषु कर्षणात् भूगुणक्षयः
एकस्यां गुणहीनायां कृषिमन्यत्र कारयेत्

[9] अर्थशास्त्र २, २४

ाये गये हैं। अनूपानों को ५०-५० के १० वर्गों में विभाजित किया गया है। सुश्रुत ने उन्हें ३७ गुणों में ाँटा है। चरक ने ६ मुख्य वर्ग रखे हैं: सूकधान्य, मीधान्य, शाकवर्ग, फलवर्ग, हरितवर्ग, आहारयोगि-र्ग, तैल और इक्षुवर्ग। सुश्रुत ने १५ वर्ग किये हैं: ल्यधान्य सृष्टिक, वृहिधान्य, कुधान्य, विभिन्न प्रकार के धान्य, वैदल, तिल, जव, शिम्ब, फलवर्ग शाक, पुष्प, द्भिद, छत्ता, कन्द, तैल एवं इक्षु। भावप्रकाश में १३ वर्ग बताये गये हैं।

विकास के सम्बन्ध में बृहत्संहिता ने पुनर्जन्म िद्धान्त का प्रयोग किया है। उनके अनुसार मनुष्य योनि क आने में वृक्षों को कठिनाई नहीं है, किन्तु एक विशाल ल की सीमा पार करनी पड़ती है।[1] वृक्षों के औषध र पर्याप्त साहित्य मिलता है। इस प्रकार के साहित्य का म अथर्ववेद से प्रारम्भ हो जाता है।[2] सायण ने अपने ाष्य में वृक्षों को हानि पहुँचाने वालों की लम्बी सूची ी है। अर्थशास्त्र, अग्निपुराण, बृहत्संहिता आदि में वृक्षायुर्वेद पर अलग अध्याय हैं। बृहत्संहिता की टीका में आचार्य कश्यप का नाम दिया गया है। वे वृक्षों की िकित्सा के विशेषज्ञ हैं। शार्ङ्गधर राजा हम्मीर के दरबार में (१२८३-१३०१) रहते थे। उनकी सारंग-द्धति के उपवन-विनोद प्रकरण में वृक्षायुर्वेद के सम्बन्ध में बहुत विचार उठाया गया है। अमरकोश और अभिधान-चिन्तामणि में उस समय के कितने ही वृक्षों के नाम आते हैं। सस्यविद्या या सस्यवेद के नाम से इस पर विचार किया गया है।[3]

श्री गिरिजाप्रसन्नकुमार मजूमदार कलकत्ता विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र (बाटनी) के प्रोफ़ेसर थे। उन्होंने 'सम आस्पेक्ट्स आफ इंडियन सिविलाइ-जेशन' में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। उपवन-विनोद का भी उन्होंने अँगरेजी में अनुवाद किया है। उसकी भूमिका में उन्होंने इस प्रश्न पर विचार किया है। उनका मत है कि "प्राचीन हिन्दुओं में इस विषय के अध्ययन का गम्भीर रूप स्थिर कर लिया गया था। आज की कई खोजों का उन्होंने पहले ही ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आज विभिन्न विद्याओं के समान वनस्पतिशास्त्र का भी पर्याप्त विकास हो चुका है। यह कहना कि प्राचीन काल में आज की खोजों से कहीं अधिक खोज हो चुकी थी, या प्राचीन काल में ऐसी खोज हो ही नहीं सकती थी, आदि बातें विवाद की हैं। इनसे तथ्य एवं काम की बातें नहीं निकल पातीं। उपयोगी बात कहीं मिल जाय उसका उपयोग होना चाहिए। फलों के सम्बन्ध में नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। प्राचीन काल में भी इसके सुझाव मिलते हैं। उनका भी प्रयोग करना चाहिए। प्रमाण के लिए अर्थशास्त्र में बिना बीज के बदर के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। इसका प्रयोग अभी बाम्बे इन्स्टीच्यूट ने किया है। इस प्रकार के अन्य भी कितने प्रयोग हैं जिन पर ध्यान देना चाहिए।

---

[1] स्थावरं विंशतेर्लक्षं जलजं नव लक्षकम्।
कूर्माश्च नव लक्षं च दशलक्षं च पक्षिणः॥
त्रिंशल्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं च वानराः।
ततो मनुष्यतां प्राप्य तत्तत्कर्मणि साधयेत्॥

[2] अथर्ववेद ६ ५०।

[3] सस्यवेदप्रदाने च सम्पन्नाः यस्य शालयः।——नन्दि-पुराण।

पुरातत्त्व-उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं का काल-निर्धारण

प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी,

किसी देश के सही और व्यवस्थित इतिहास के निर्माण में वहाँके पुरातत्त्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार के अनेक प्राचीन सभ्य देशों के बारे में विविध कहानियाँ सुनने को मिलती हैं। कुछ जनश्रुतियाँ तो बहुत रोचक हैं। परन्तु उन देशों के प्रामाणिक इतिहास हमें मुख्यतया पुरातत्त्व की कृपा से ही प्राप्त हो सके हैं। मिस्र देश का प्रायः समूचा पुराना इतिहास पुरातत्त्व द्वारा ही निर्मित हो सका है। सुमेर, बेबीलोन और क्रीट की पुरानी सभ्यताएँ भी उत्खनन द्वारा प्रकाश में आई हैं। मध्य एशिया और अफगानिस्तान के पुराने इतिहास में पुरातत्त्व ने चार चाँद लगा दिये हैं। यूनानी और रोमन सभ्यताओं के कई अंग अधूरे रहते, यदि कुदाल और फावड़े के सहारे कई प्राचीन टीलों की खुदायी न की गयी होती।

हमारे देश के इतिहास के बारे में भी पहले लोगों की विचित्र कल्पनाएँ थीं। अब से लगभग सौ वर्ष पूर्व पुरातत्त्व का प्रवेश इस देश में हुआ। अनेक प्राचीन स्थानों का सर्वेक्षण और उत्खनन किया गया, जिसके आधार पर आज हम इस स्थिति में हैं कि निश्चयपूर्वक कह सकें कि भारतीय सभ्यता कम से कम पाँच हजार वर्ष पुरानी है तथा इसका प्रसार किन्हीं युगों में अफगानिस्तान, मध्य एशिया के कई भागों एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी हो पाया था।

पुरातत्त्व के अन्तर्गत के सभी पुरानी वस्तुएँ आती हैं जो या तो जमीन के ऊपर हैं या उसके भीतर दबी हैं। एक जमाना था जब कि कुछ लोगों को अजीब लगनेवाली पुरानी चीजों को इकट्ठा करने का बड़ा शौक था, जनसाधारण में कौतूहल का होना स्वाभाविक है और इस प्रकार की वस्तुओं को वे मुख्यतया इसी रूप में देखते थे। पुरानी चीजों के संबंध में अकसर लोगों को यह कहते सुना जाता है कि अमुक चीज हजारों साल पुरानी है, चाहे वह यथार्थ में सौ-दो सौ वर्ष पुरानी ही क्यों न हो।

पुरातत्त्व जहाँ इस बात पर जोर देता है कि किसी चीज का ठीक-ठीक समय निर्धारित किया जा सके वहाँ वह यह भी जानने का प्रयत्न करता है कि उस वस्तु का तत्संबंधी युग के मानव के साथ किस प्रकार का था। इस प्रकार यह जानकारी प्राप्त करने का किया जाता है कि किसी युग में मानव और सभ्यता का निर्माण किस प्रकार हुआ।

पुरातत्त्व में खुदायी या उत्खनन का विशेष मह खुदाई से हम यह चाहते हैं कि जमीन के गर्भ से निकलें। परन्तु इससे अधिक पुरातत्त्व-विशेषज्ञ यह अभिलाषा होती है कि वह उन वस्तुओं का पा सम्बन्ध जोड़ सके और इस प्रकार मानव-सभ्य एक जीती-जागती तसवीर सामने खड़ी कर सके से पचीस-तीस वर्ष पहले जो उत्खनन होते थे वस्तुओं की प्राप्ति की ओर अधिक ध्यान रह परन्तु अब वस्तुओं की अपेक्षा खुदाई में उपलब्ध स्तरों की सभ्यता जानने पर अधिक बल दिया जा उत्खनन की वर्तमान प्रणाली 'स्तरीकरण की कही जाती है। इस प्रणाली में काल-बोध की ओर ध्यान दिया जाता है। इसका मुख्य सिद्धांत यह हम निश्चित कालवाली वस्तुओं के आधार पर उन से संबंधित अन्य वस्तुओं का भी काल निर्धारण 'ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना' इस सिद्धांत का धार है। इसे इस प्रकार समझना चाहिए—मान कि किसी टीले की खुदायी करते समय हम सतह फुट नीचे पहुँच गये। वहाँ हमको गुप्त सम्राट का एक सिक्का मिला। उसी स्तर से कुछ हड्डियाँ मिट्टी के खिलौने या बर्तनों के टुकड़े मिले। मालूम है कि गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त ईस्वी चौथी में हुए थे। इस आधार पर हम उस स्तर से प्राप्त सामग्री को भी ई० चौथी शती में रखेंगे।

स्तरीकरण की यह प्रणाली काल-निर्धारण सहायक सिद्ध हुई है। हाँ, खुदाई करनेवालों विशेष के सीमा-निर्धारण का विशेष खयाल रखना है। यह भी देखना पड़ता है कि सभ्यता के किसी कोई गर्त तो नहीं आ पड़ा है। इस प्रकार के फेंकने के लिए या अन्य कार्यों के लिए बनाये कभी किसी पेड़ की उपस्थिति या भट्टी के प्रकार के गर्त मिल जाते हैं। उनके अंदर पाई

राख, भुरभरी मिट्टी, कोयले आदि से गर्त की पहचान प्रायः आसानी से हो जाती है। किसी स्तर से प्राप्त ज्ञात तिथि वाली वस्तुओं में सिक्के, शिलालेख, अभिलिखित मिट्टी की मुहरें आदि उल्लेखनीय हैं। कभी-कभी पाषाण या मिट्टी की मूर्तियाँ भी उपयोगी होती हैं जिनकी बनावट के आधार पर हमें उनके काल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त रहती है। सागर जिला के एरण नामक स्थान में हाल में जो उत्खनन हुआ उसमें मौर्य, सातवाहन तथा गुप्त काल के स्तरों से ऐसी अनेक वस्तुएं प्राप्त हुईं। इनमें सिक्कों और मुहरों के ठप्पों के अतिरिक्त मिट्टी की मूर्तियाँ, मनके आदि थे।

स्तरीकरण की काल-निर्धारण पद्धति में यह आवश्यक है कि हम वस्तु के प्राप्ति-स्थान का ठीक लेखा-जोखा रखें। भूस्तर विज्ञान की प्रणाली के आधार पर हमें न केवल सतह से वस्तु-प्राप्ति की गहराई की नाप करनी पड़ती है, बल्कि यह भी आवश्यक होता है कि एक निश्चित स्थान से पड़ी दूरी का भी ध्यान रखा जाये। यह विधि थी डाइमेंशनल रिकार्डिंग (तीन आयामवाली) कहलाती है और इसमें इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है कि खुदायी के समय प्रकाश में आने पर इसकी वास्तविक स्थिति कहाँ थी।

स्तरीकरण की विधि की एक विशेषता यह है कि किसी स्थान की सभ्यता का पता लगाने के लिए इस विधि में यह आवश्यक नहीं कि संपूर्ण स्थान को ही खोद डाला जाये। यदि कोई विस्तृत टीला है तो उस पर के एक या दो ऊँचे स्थानों को खोदना आवश्यक है। इसी से साधारणतः उस पूरे टीले की, जहाँ पहले कोई नगर आबाद रहा होगा, समयविषयक जानकारी हो जाती है। इस विधि में इस प्रकार गहरी या खड़ी खुदाई का विशेष महत्त्व है, न कि विस्तृत या पड़ी खुदायी का। पड़ी खुदाई की आवश्यकता हमें उन बड़े नगरों के संबंध में ही पड़ती है जिनकी नगर निर्माण विधि विशेष ढंग की होती है।

पुरातत्त्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण काल-निर्धारण विधि 'कार्बन-१४' या 'सी-१४' प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रारंभ द्वितीय महायुद्ध के बाद हुआ और इसकी उद्भावना का श्रेय शिकागो विश्वविद्यालय के विलर्ड लिब्बी को है। इस प्रणाली का मूलभूत सिद्धांत यह है कि सभी जीवित प्राणियों और वनस्पतियों में कार्बन-१४ (८ निओट्रान : ६ प्रोटान) मौजूद रहता है। उनकी मृत्यु के बाद कार्बन अलग हो जाता है और क्रमशः नाइट्रोजन का रूप ग्रहण कर लेता है। वैज्ञानिकों द्वारा यह गणना की गयी कि उक्त कार्बन १४ का आधा भाग ५,५६८ वर्षों में गायब होता है। वर्त्तमान कार्बन के रेडियो-साधर्म्य की तुलना प्राचीन कार्बन के रेडियो साधर्म्य के साथ की जाती है और इस प्रकार जले अनाजों, लकड़ी, हड्डी, सीप आदि का काल-निर्धारण किया जाता है, क्योंकि इन सबमें कार्बन-तत्त्व मौजूद रहता है। इस तुलना से पता चलता है कि जिस प्राणी या उद्भिज के अवशेष का परीक्षण किया गया है उसकी मृत्यु के समय से लेकर परीक्षण-तिथि तक कितनी अवधि बीत चुकी। इस आधार पर यह भी निश्चय किया जाता है कि किसी इमारत के या किसी टीले के उत्खनन से निकला अवशेष कितना पुराना है और तदनुसार उस इमारत या स्तर विशेष का समय निर्धारित होता है। विशेषज्ञों के अनुसार ३० वर्ष से लेकर ५०,००० वर्ष पुरानी वस्तुओं तक का काल-निर्धारण इस विधि द्वारा हो सकता है।

कार्बन-१४ विधि पुरातत्त्व के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका श्रेय निस्संदेह भौतिकशास्त्र को है। इस विधि के आधार पर युरोप के अमर्सफ़ुर्ट नामक स्थान से प्राप्त लकड़ी के एक टुकड़े का समय ५८,००० ई० पूर्व निश्चित हुआ जब कि वहाँ मानव के कोई चिह्न न थे। उत्तर अमेरिका के टैक्सास से प्राप्त अवशेष ३५,००० ई० पूर्व के तथा इराक की शनिदर गुफा ३२,००० ई० पूर्व की निकली। इन दोनों पिछले स्थानों में उस समय मानव का अस्तित्व था। उत्तरी ईराक में जरमो नामक गाँव में इस परीक्षण से इस बात का पता चला कि ७००० ई० पूर्व में वहाँ खेती होती थी।

मध्यप्रदेश के कई स्थानों के अवशेषों को इस परीक्षण के लिए अमेरिका के पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय भेजा गया। नीमाड़ जिले में नर्मदा तट पर स्थित महेश्वर तथा नवदाटोली से खुदायी में प्राप्त चाल केलिथिक या ताम्राश्म सभ्यता के अवशेषों का समय ई० पू० १८०० निश्चित हुआ। सागर-विश्वविद्यालय द्वारा सागर जिले के एरण नामक स्थान में जो उत्खनन हुआ उससे प्राप्त ताम्राश्म युग के कुछ अवशेष ई० पूर्व २००० के

ठहरायें गये हैं और अंतिम अवशेष ई० पूर्व ९०० के। नीमाड़ तथा सागर जिले में इन वस्तुओं के मिलने से प्रतीत होता है कि यहाँ ईरान से आर्यों की एक शाखा ई० पूर्व १८०० के लगभग आयी और वह दक्षिणी एवं पूर्वी मालवा होकर पूर्व की ओर गयी। महेश्वर की खुदायी से यह भी प्रमाणित हुआ है कि दक्षिण मालवा के पुराने किसान लगभग ई० पूर्व २००० से लेकर ई० पूर्व ७०० तक अपने पुराने ढंग के औजारों से काम करते रहे और एक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तनों को उपयोग में लाते रहे। इसके बाद उज्जैन तथा उत्तर के अन्य भागों से लोहा प्रयोग करनेवाले लोग दक्षिण मालवा गयें और वहाँ के पुराने लोगों को हटाकर वे बस गये, इसका प्रमाण ई० पूर्व ७०० के बाद के लोहे के औजारों तथा विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तनों से मिला है।

कार्बन–१४ विधि के द्वारा बलोचिस्तान की पुरानी सभ्यताओं का तिथि-निर्धारण भी किया गया है। वहाँ की सबसे पुरानी सभ्यता ई० पूर्व ३५०० की ठहरी है। इस विधि के द्वारा ऐतिहासिक युग के काल-निर्धारण में भी हमें सहायता मिली है। सिक्कों तथा अभिलेखों द्वारा प्रामाणित तिथियों की पुष्टि इस विधि से संभव हो सकी है।

काल-निर्धारण की एक अन्य विधि का प्रयोग अब किया जाने लगा है। इस विधि को 'थरमोलु मिनिसेंस' कहा जाता है। वैज्ञानिक इस बात को मानते हैं कि रेडियो साधर्म्य तत्त्व सब में मौजूद रहते हैं। इससे रेडिएशन की उत्पत्ति होती है। इस आधार पर प्राचीन टीलों से उत्खनन में प्राप्त कुछ मृद्‌भांडों के अवशेषों को ८००° फार्नेहाइट गरम किया गया और उनमें विशेष प्रकार की चमक निकली। यह परीक्षण अवशेषों पर भी किया गया और यह निष्कर्ष नि कि जितनी अधिक मात्रा में यह चमक किसी अवशे निकलती है वह उतना ही अधिक प्राचीन है। इस द्वारा एक लाख वर्ष पूर्व तक की वस्तुओं का काल-नि रण संभव हो सकता है। भारत के लिए यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। यहाँ मृत्पात्रों के रूप में तिहासिक अवशेष बड़ी मात्रा में प्राप्त होते हैं स्थानीय अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

काल-निर्धारण की उपर्युक्त विधियों का अब अमरीका तथा यूरोप के प्रायः सभी उन्नत में होने लगा है। हाल में भारत में भी इस प्रकार व्यवस्था हो गयी है और बंबई में टाटा इंस्टीट्यूट दिशा में प्रगति कर रहा है। दिसंबर, १९६२ में इस इंस्टीट्यूट में किये जा रहे कार्बन–१४ प्रयोग देखने का सौभाग्य मिला। देश के जिन प्रमुख स में उत्खनन किये जा रहे हैं उनके अवशेषों को प णार्थ यहाँ मँगाया गया है। परीक्षण के बाद जो सामने आये हैं वे बहुत संतोषजनक सिद्ध हुए हैं। प्रयोगशाला के प्राध्यापक डा० राम के द्वारा ज्ञात कि प्रयोग करते समय आँकड़ों की गणना में विशेष रखना आवश्यक है। गणना में एक प्रतिशत भूल वस्तु-अवशेष के समय में ८० वर्षों तक का अंतर आ है। आशा है बंबई की यह परीक्षण-शाला भारत पुरातत्त्व के लिए बहुत लाभप्रद सिद्ध होगी।

स्व० बन्धुवर सियारामशरणजी गुप्त

(एक व्यक्तिगत श्रद्धांजलि)

श्री कृष्णानन्द गुप्त

उरई में अपने पुत्र के निवासस्थान पर कमरे में बैठा हुआ था। इतने में पड़ोस के एक सज्जन जो मेरे परिचित और यहाँ अध्यापक हैं, साइकिल से उतरे। जैसे उन्होंने मुझसे ही कुछ कहना चाहा। मैं उन्मुख हुआ। और उन्होंने कहा :—

'आपने सुना, सियारामशरणजी नहीं रहे!'

'अरे!' इससे अधिक मुँह से और कुछ नहीं निकला। जैसे बिजली का एक धक्का लगा। पुस्तक अलग रख दी। उन्होंने बताया कि अभी-अभी रेडियो से समाचार आया है।

'सियारामशरणजी नहीं रहे।' इकदम गलत। यह हो कैसे सकता है! अभी-अभी एक दो महीने पूर्व ही तो प्रयाग के अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन में अचानक ही उनसे भेंट हुई थी। और अभी जब चिरगाँव गया तो पता चला कि वे दद्दा के पास दिल्ली में हैं। दमे के तो वे पुराने रोगी थे। उसकी कोई बात आयी भी होगी तो ध्यान नहीं दिया। परन्तु फिर भी वे स्वस्थ हैं यह पता चल गया। अतः यह संभव कैसे हो सकता है कि चिरगाँव जाने पर उनसे भेंट नहीं होगी, उनको कमरे में बैठा हुआ नहीं पाऊँगा, उनको तलाश करता हुआ जब मैं उनके पास जाऊँगा तो मैं उनसे यह नहीं पूछूँगा कि आजकल आप क्या लिख रहे हैं, और तब क्या वह यह उत्तर देकर कि तुम्हें कौन मेरी रचना पसंद आती है, वे क्या अपनी नवीन से नवीन काव्यकृति मुझे सुनाने नहीं बैठ जावेंगे और तब क्या पाण्डुलिपि को उनके हाथ से लेकर मैं यह नहीं कहूँगा कि नहीं, इस प्रकार आपके द्वारा सुनने में मैं अपने कान और मन दोनों को एकाग्र नहीं कर पा रहा हूँ, मैं स्वयं इसे ध्यानपूर्वक पढ़ूंगा—यह कैसे संभव है कि चिरगाँव जाने पर यह सब नहीं होगा, और सियारामशरणजी मुझे नहीं मिलेंगे! मेरे बड़े पुत्र ने कहा—"दादा, रेडियो का समाचार है। भला गलत कैसे हो सकता है?" फिर भी विश्वास नहीं कर सका। न जाने क्या गड़बड़ी हो गई हो! परन्तु उसके पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल जब एक दैनिक में उसी समाचार को पढ़ा तो नेत्रों के सामने एक कुहासा सा छा जाने के कारण विशेष नहीं पढ़ सका। विधि की अवगति गति समझ में आयी। दद्दा (राष्ट्रकवि पूज्य मैथिलीशरणजी) को तार दिया और अपनी विनम्र श्रद्धांजलि भाई सियारामशरणजी की दिवंगत आत्मा को अर्पित की।

जीवन की कितनी कड़ुवी मीठी स्मृतियाँ उनके साथ विजड़ित थीं। एक समय था जब हम प्रायः नित्य बैठकर अथवा घूमने जाते समय (उस समय उनके अनुज चारुशीलाशरणजी बराबर साथ रहते थे) न जाने कितनी बातें करते थे। उस समय साहित्य-सदन के साथ मेरे एक लेखक और प्रकाशक के सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। मेरी दो एक पुस्तकें भी वहाँसे प्रकाशित हो चुकी थीं। चिरगाँव में मेरी ससुराल भी है। इस कारण मैं अधिकांश चिरगाँव ही रहता। संध्या के समय प्रायः बखरी में—अर्थात् सियारामशरण और दद्दा के साथ उनके घर पर ही भोजन करता। कभी-कभी संध्या को वे भी मेरे यहाँ पहुँच जाते और वहीं व्यालू करते। मेरे उनके बीच आय का विशेष अंतर नहीं था। वे मुझसे ३ या ४ वर्ष ही अधिक बड़े थे। पहली पत्नी के वियोग के पश्चात् मेरा दूसरा विवाह हुआ। दद्दा से संकोच करता था। बहुत कम उनके पास बैठता था। इसलिए मेरा अधिकांश समय जब भी बखरी जाता तो भाई सियारामशरणजी के पास ही बीतता। कितनी साहित्य-चर्चा, कितना व्यंग्य-विनोद, कितनी इधर-उधर की गप-शप। मेरे साहित्यिक जीवन के वे बड़े मधुर दिन थे। एक-एक करके वे मानों स्मृति पट पर उभर रहे हैं। उस समय के लिखे सियारामशरणजी के पत्र आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं। मैं यह सन् १९२६ से ३२-३३ के बीच तक की बात कर रहा हूँ। उसी समय मैं चिरगाँव आया और साहित्य मणि-माला के नाम से पुस्तक प्रकाशन की एक योजना बनी। उस समय के एक पत्र में भाई सियारामशरणजी ने मुझे लिखा कि आज मैंने तुम्हें सपने में देखा और मैं तुम्हें

अपनी एक रचना सुना रहा हूँ। उनके एक नाटक के सम्बन्ध में जब मैंने एक विस्तृत पत्र लिखा तो उन्होंने उत्तर दिया––तुम तो सदैव जैन साधुओं की तरह सम्मार्जनी हाथ में लिये रहते हो। जहाँ बैठते हो वहाँ झाड़-फूंककर बैठते हो। वास्तव में बात ठीक थी। वे मेरी आलोचनात्मक प्रवृत्ति से कभी-कभी ऊब जाते थे। परन्तु मुझमें उनकी बड़ी आस्था थी और बावजूद तमाम बातों के उनके मन में स्थान पाने का सुअवसर मुझे मिला हुआ था।

मुझे ठीक स्मरण नहीं कि पहले-पहल हम लोग कब मिले। कदाचित् यह सन् २५ या २६ के आस-पास की बात है। मैं उस समय झाँसी के इंटर कालेज में इंटर मीजियट के प्रथम वर्ष में पढ़ रहा था। उस समय तक 'सुधा', 'माधुरी' आदि पत्रों में मेरी कई कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं, तथा लोग मुझे एक कहानी-लेखक के रूप में जानने लगे थे। मेरी एक कहानी उन्हीं दिनों 'प्रताप' प्रेस से प्रकाशित होनेवाली 'प्रभा' मासिक पत्रिका में भी प्रकाशित हुई। उसकी ओर बंधुवर सियारामशरणजी का विशेष ध्यान गया। उनकी भी 'प्रभा' में एक कहानी प्रकाशित हुई थी। किसी कार्यवश वे भी झाँसी पधारे और संध्या के समय उन्होंने मेरे यहाँ आने की कृपा की। मैं यदि भूलता नहीं हूँ तो उस दिन शरद् पूर्णिमा थी। छात्रावास के भोजनालय में खीर-पूड़ी बनी थी। भाई चारुशीलाशरणजी तो साथ थे ही। हम सबने एक साथ भोजन किया। हो सकता है यों साधारण तौर से हम लोग मिल चुके हों। परन्तु वह पहली भेंट थी जिसमें हम लोग तुरन्त एक दूसरे के बहुत निकट आ गये। उनकी 'विषाद' और 'आर्द्रा' ये दोनों ही काव्य-रचनाएँ मुझे बहुत प्रिय लगीं। अब भी हैं। उसका कारण कदाचित् यह रहा कि वे मेरी तत्कालीन मनोदशा के बहुत अनुकूल थीं। मेरी प्रथम पत्नी का वियोग हो चुका था। शोक पवित्र होता है। और भाई सियारामशरणजी की अनेक रचनाएँ एक विशेष प्रकार की करुणा, कोमलता और पवित्रता से भरी हुई हैं जो किसी भी सहृदय पाठक के मन को विगलित करती हैं और उसे निर्मल बनाती हैं। इस कारण उनकी रचनाओं ने मुझे विशेष आकृष्ट कर रक्खा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। भाषा के सम्बन्ध में मेरा उनसे कभी-कभी मतभद हो जाता था। परन्तु बाद अनुभव किया कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक होती है और उसके लिए उसे पूरी छूट मिलनी मैं उस सम्बन्ध में गलती पर था।

भाई सियारामशरणजी बड़े भोले और स्वभाव के थे। दंभ उनको छूकर नहीं गया था। रहन-सहन भी बड़ी सात्विक थी जो उनकी में सम्यक् रूप से प्रतिफलित हुई है।

उनके साथ गांधीवादी विचारधारा का हिन्दी का एक श्रेष्ठ विचारवान् कवि उठ गया। मैं विशेष रूप से कहना चाहता हूँ। जो उन्होंने निबंध, कुछ दो एक नाटक और उपन्यास लिखे उनके कोमल कवित्वमय हृदय का प्रतिबिम्ब परन्तु यह इस तरह की चर्चा का अवसर

पूज्य दद्दा से क्या कहूँ? और क्या चारुशीलाशरणजी से जिनके लिए वे अविच्छि सिवा इसके कि नियति के आदेश के आगे हम झुकायें और जो कुछ हुआ उसे मूक भाव से स्वीकार

अतृप्त प्यास

श्री आनन्दकुमार 'आशु'

मेरे मन की संध्या में
अब प्रातः का आभास नहीं!
ढल गया दिवस, अब रात हुई,
होने की थी जो बात हुई।
स्मृतियों के बादल छलके,
आँखें सौ-सौ बरसात हुईं!
भींगे पलकों में सपनों की
तस्वीर रही, विश्वास नहीं!
इच्छाएँ मेरी शूल हुईं,
दुनिया मेरे प्रतिकूल हुई,
मधु स्नेह तृषा की प्यास गहन
मेरे जीवन की भूल हुई!
बालू के रेतों सी अतृप्त
मेरे अंतर में प्यास कहीं!

गांधीवादी साहित्यकार स्व० सियारामशरण गुप्त

(एक साहित्यिक वार्ता)

श्री शैवाल सत्यार्थी

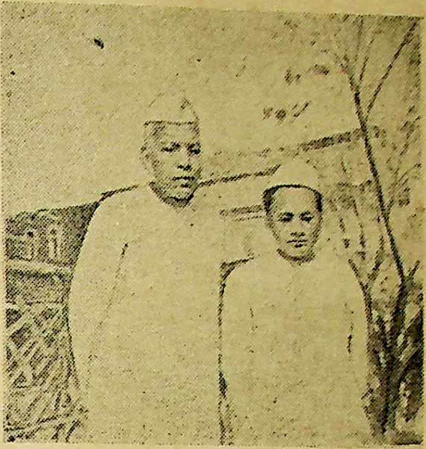

२९ मार्च, १९६३ को, हिन्दी के महान् गांधीवादी साहित्यकार श्री सियारामशरण गुप्त का—६७ वर्ष की उम्र में, दिल्ली में देहान्त हो गया। वे राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज थे। दोनों में स्नेह इतना था कि 'राम-लक्ष्मण की जोड़ी' कहलाती थी। लक्ष्मण चले गये, राम अकेले रह गये—'हिन्दी की सम्पूर्ण-अयोध्या' अश्रुपूरित है।

कई वर्ष पहले की बात है—

मैं झाँसी गया तो, अपने मित्र विद्रोही से कहा कि चिरगाँव चलो, 'हिन्दी के राम-लक्ष्मण के दर्शन करेंगे। श्री मैथिलीशरणजी, उन दिनों भी राज्य-सभा के सदस्य थे, डर यह था कि कहीं वे दिल्ली न हों—और हमारा जाना निरर्थक न जाये। विद्रोही ने मालूम किया, तो वे वहीं थे।

दोपहर की बस से, हम लोग चिरगाँव पहुँचे। 'हिन्दी की अयोध्या!' पूछते-पूछते घर पहुँचे, गुप्तजी को कौन नहीं जानता। सब ओर बड़ी सादगी का वातावरण था। ज्ञात हुआ कि मैथिलीशरणजी विश्राम कर रहे हैं। हम लोगों से भी, भोजन तथा आराम के लिए पूछा गया। दोनों में से, हमें कुछ नहीं करना था। उतावली थी तो दर्शनों की, और यह भी कि समय हो तो—लगे हाथ 'इन्टरव्यू' भी ले डाले जायें।

पूछने पर मालूम पड़ा कि सियारामशरणजी अपने कमरे में हैं, और जगे हुए हैं। पुछवाने पर, उन्होंने तुरन्त हम लोगों को वहीं बुलवा लिया। कुछ सिड़्ढियाँ नीचे को उतरकर, तहखाना-सा' कमरा था—पुस्तकों का तहखाना। एक तख्त पर—सिर्फ सादगी और सरलता से बनायी गयी, एक सौम्य-मूर्ति बैठी हुई थी। हमने प्रणाम किया, वे हाथ जोड़कर मुस्करायें, कुछ कहा भी—तो लगा कि हम किसी सन्त के सामने खड़े हैं।

वहीं तख्त पर ही, हम लोग बैठ गये। कुछ इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर पूछा—"कैसे आना हुआ?"

मैंने कहा—"दर्शन और इन्टरव्यू।"

वे हँसे, बोले—"हमारा क्या इन्टरव्यू? दद्दा (मैथिली-शरणजी) का इन्टरव्यू लीजिए।"

"दद्दा तो अभी सो रहे हैं। तब तक, आपसे ही कुछ साहित्यिक वार्ता हो जायं।" मैंने कहा—"मेरे पास कुछ प्रश्न हैं?"

और वे, मेरे प्रश्नों के उत्तर देने के लिए तैयार हो गये। अपनी इस वार्ता का विवरण मैं नीचे दे रहा हूँ।

मेरा पहला प्रश्न था—आपके साहित्यकार का प्रारम्भ, कितनी आयु में, कैसे और साहित्य की किस विद्या से हुआ?

"यही कोई ८, १० वर्ष की उम्र से। मूलतः कविता से ही शुरुआत हुई। उस समय लिखनेवाले कम थे, जो लिख दिया उसे महत्त्व मिल गया। कोई संघर्ष नहीं था। लिखकर, दद्दा को दिखाता था—उन्होंने पसन्द की तो, अखबार में भेज दी। नहीं तो, रद्दी की टोकरी में।"

उनके उत्तर में आश्चर्यजनक सरलता थी।

दूसरा प्रश्न—आपकी पहली पुस्तक कौन-सी थी?

"मौर्य-विजय।" तीन अंकों में—जो सन् १३ या १४ में, 'सरस्वती' में छपी थी।

तीसरा प्रश्न—अपनी रचना-प्रक्रिया के विषय में बताइए, और यह भी कि कोई चीज लिख लेने के बाद, आपको कैसा लगता है?

"किन्हीं विशेष परिस्थितियों में, कोई उद्गार फूट पड़ते हैं। यह बड़े स्वाभाविक रूप से ही होता है। पहले, दद्दा की ही भाँति, स्लेट पर लिखता हूँ––कागज क्यों खराब हो, व्यर्थ क्यों काटा-पीटा जायं? अच्छी चीज लिख जाती है, तो मन को बड़ा आनन्द होता है। 'इन्टरव्यू' पूरा कर लेने के बाद, आपके मन की जो स्थिति हो समझ लीजिए, वही मेरी।"

मैंने पूछा––किस पुस्तक को लिखकर, आपको सबसे अधिक प्रसन्नता हुई?

'बापू' लिखकर जो आनन्द हुआ, वह और कभी नहीं। सन् ३८ की बात होगी। कई दिन मन उड़ा-उड़ा रहा। बापू के पास, कुछ दिन वर्धा में रहा। वे चिरगाँव आनेवाले थे, मेरी इच्छा थी कि एक छोटी-सी कविता लिखकर, उन्हें भेंट करूँ। वृन्दावनलाल जी से कहा तो, उन्होंने भी कहा कि इस तरह की कविता सुन्दर बन पड़ेगी। गर्मी के दिनों में, जिस तरह आकाश पर मेघ उमड़ आते हैं, वैसे ही 'बापू' का निर्माण हुआ! गुरुदेव टैगोर ने एक बार कहा कि कवि का जीवन तो, उसकी कृतियों में बिखरा होता है।"

मेरा अगला प्रश्न था––आपके प्रिय कवि तथा लेखक कौन हैं? किनसे आपको प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन मिला?

"तुलसीदास, कालिदास, रवीन्द्र, शरत्, सुमित्रानन्दन पन्त तथा वृन्दावनलालजी मुझे विशेष प्रिय हैं––और जिनसे कलम पकड़ने की प्रेरणा मिली। दद्दा, रायकृष्ण-दास तथा मुन्शी अजमेरी ने समय-समय पर सिखाया, राय दी, आगे बढ़ाया। निरालाजी से बड़े स्नेह-सम्बन्ध हैं। विश्व-साहित्य में, गोर्की से अधिक टाल्सटाय ने मुझे प्रभावित किया।"

जब मैंने पूछा कि साहित्य के अतिरिक्त, आपके क्या शौक हैं? तो हँसकर बोले––"इसके अतिरिक्त तो बस, बीमार रहना और आराम से दवायें खाना!"

उनका उत्तर इतना मजेदार था कि हम लोग भी हँसे बिना न रह सके।

तभी मैंने प्रश्न किया––साहित्य से पलायन करने का, कभी आपका मन हुआ?

"जीवन से पलायन करके तो, साहित्य में आया हूँ!" उत्तर में बड़ा आत्मविश्वास था। बोले––"साहित्य के रोजगार में, हुन्डी नहीं चली तो––पलायन। जो हिन्दी को जितना दे सका, और हिन्दी उससे जितना ग्रहण कर सकी––बस। जितना लिखा जाता है, वह सब सोना नहीं होता। अपनी हर चीज को, सोना नहीं समझ लेना चाहिए।"

शिक्षा-दीक्षा तथा अन्य भाषाओं के ज्ञान के विषय में पूछने पर, उत्तर मिला––"स्कूल-कालेज तो हम गये नहीं। यूँ, बँगला जानते हैं। थोड़ी-थोड़ी मराठी, गुजराती भी।"

भोजन के बारे में पूछा तो, मुस्कराकर बोले, "अच्छा प्रश्न है। और इसका अच्छा उत्तर भी वे लोग दे सकते हैं, जो बढ़िया माल खाते हैं। हम तो––घास-पात
वाले––वही साधारण भोजन, दाल-रोटी।"

तब मैंने भी मुस्कराकर, एक गम्भीर प्रश्न
लिया––"हमारे साहित्यकार (एक निराला को
दीजिए) राज्याश्रय ग्रहण करते जा रहे हैं, इस
में––आपके क्या विचार है?

"विनोबाजी के विचार से, कुछ परिश्रम तो
ही चाहिए। हमारा साहित्यकार, कार-मोटर में बैठकर
ऑफिसर न बन जाये। गांधी जी के शब्दों में––
की तरह कपड़ा बुनकर भी, साहित्य का महान्
सकता है!"

जीवन की अविस्मरणीय घटना पूछने पर,
अतल गहराइयों में वे डूब-से गये। कुछ सोचकर
"एक बार अपनी बहुत-सी पान्डुलिपियाँ, रेल में
उतर आया, फिर नहीं मिलीं। यह क्या कम
स्मरणीय है? और मेरे जीवन की सबसे बड़ी
कि एक बार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का बुलावा
किन्तु नहीं जा सके। यदि जा पाता, दर्शन कर
तो यही अविस्मरणीय हो जाता!"

तभी, मालूम हुआ कि दद्दा जाग गये हैं।
शरणजी ने पूछा, "हम लोग उधर ही चलें?"

मैंने कहा––बस, एक अन्तिम प्रश्न। जीवन,
तथा समाज के प्रति आपका दृष्टिकोण?

"जीवन समष्टि के लिए है, और
व्यक्तित्व का विलीनीकरण ही––साहित्य और समाज
हम सब उठ खड़े हुए। प्रेस में रुककर
जी अपनी कहानियों की पुस्तक 'मानुषी'––लिखकर
हस्ताक्षर करके, मुझे देते हुए बोले, "आप
आपको यह पसन्द आयेगी।" उनके अद्भुत
पर, हम मुग्ध थे।

बैठक में पहुँचे तो देखा––श्वेत वस्त्रों में,
तथा सौम्यता के प्रतीक राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी
बैठे हैं। हम लोगों ने श्रद्धावनत प्रणाम किया।
र्वचन मिला। कुशल-प्रेम पूछी। फिर, बातें होते
विद्रोही ने कहा कि धूप ढल रही है, और
प्रस्ताव रखा। स्वीकृति मिल गयी। हम बस,
बगीचे-जैसी जगह में आ गये। फोटो खिच गये।

लौटे तो, तश्तरियों में––स्वभाव तथा
की सादगी-सा ही, सादा नाश्ता आ गया––एक
एक कुरकुरा पापड़ तथा एक भुनी हुई मिर्च।
बहुत स्वादिष्ट था।

समय काफी हो गया था। हमें झाँसी भी लौटना
'हिन्दी के राम-लक्ष्मण' के दर्शनों की अभिलाषा
गयी थी। प्रणाम करके, आज्ञा माँगी।

वापसी के लिए, बस में बैठ गये थे।
समय हो गया था––और 'चिरगाँव की
तब मुसकरा रही थी!

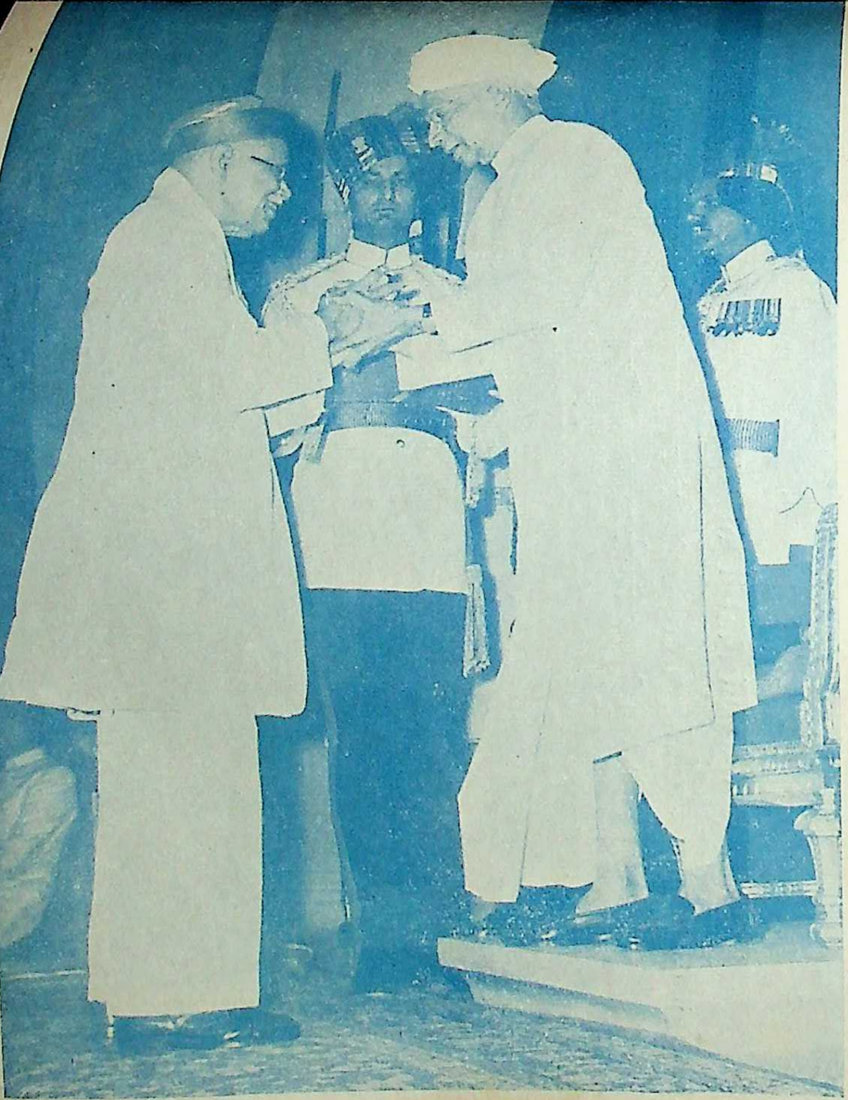

संस्कृत के विद्वान् डा० पाण्डुरंग वामन काणे को इस वर्ष राष्ट्रपति ने 'भारतरत्न' के सर्वोच्च सम्मान से विभूषित किया।

भारत के उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन को इस वर्ष 'भारतरत्न' का सर्वोच्च सम्मान दिया गया। राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किये जाने के बाद वे राष्ट्रपति से हाथ मिला रहे हैं।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन

स्वर्गीय बाबू गुलाबराय

तीन संस्कृत विद्वानों का सम्मान

(इस वर्ष महाराष्ट्र, तमिल और उत्तर भारत के तीन संस्कृत विद्वानों का सम्मान राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन के एक विशेष उत्सव में किया गया।)

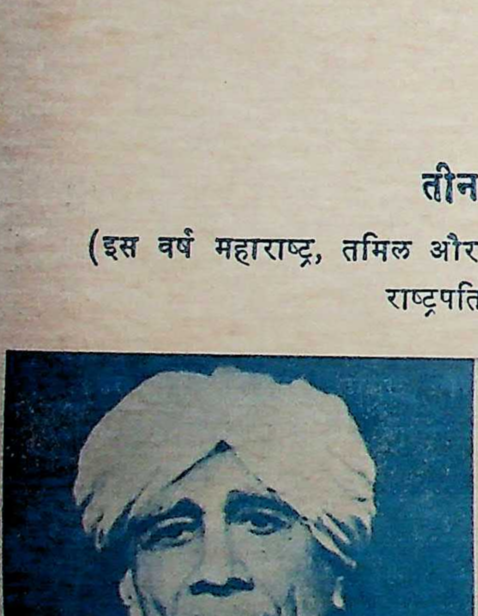

श्री हरि दामोदर वेलनकर,

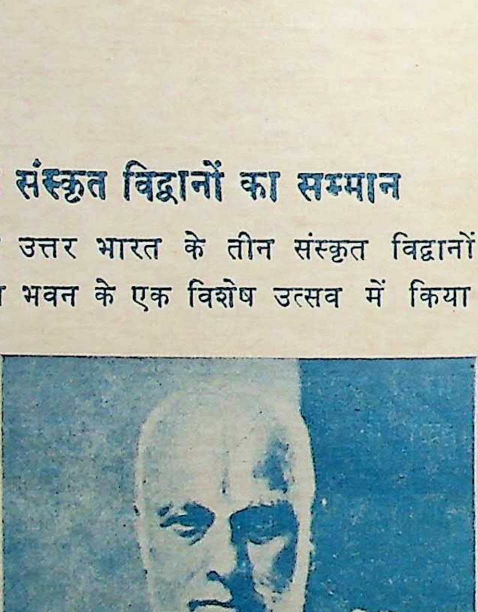

श्री अग्निहोत्रम् तथा देशिक ताताचार्य,

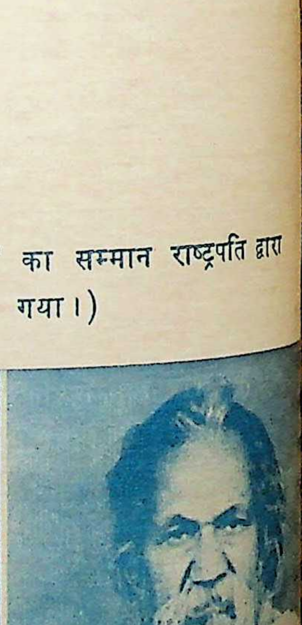

श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

राजभाषा हिंदी के संबंध में श्री न० वि० गाडगिल के विचार

(अप्रैल की 'हिंदी क्यों अक्षम रही' शीर्षक टिप्पणी में हमने श्री न० वि० गाडगिल के एक भाषण का उद्धरण या था। यह उनका वह दीक्षान्त भाषण था जो उन्होंने बम्बई राष्ट्रभाषा प्रचार सभा में हिंदी परीक्षाओं में उत्तीर्ण तकों को सम्बोधित किया था। इस भाषण का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि संविधान सभा में हिंदी को राज- षा बनाने में श्री काका साहेब गाडगिल का बड़ा हाथ था। वे भारत सरकार के केन्द्रीय मंत्री तथा पंजाब के ज्यपाल रह चुके हैं। कांग्रेस के मान्य प्रमुख नेताओं में हैं। अतएव उन्होंने इस भाषण में जो कुछ कहा है वह क्षणिक हत्व का नहीं है। वह भावी इतिहासकारों के लिए बड़ा मूल्यवान् होगा। इस समय भी हिंदी प्रेमियों को उससे हिंदी की वर्तमान दशा समझने में सहायता मिलेगी। इसलिए हम वह पूरा भाषण सरस्वती में प्रकाशित कर रहे ।—सम्पादक, सरस्वती।)

इस वर्ष के पदवीदान समारोह के लिए आप लोगों मुझे आमंत्रण दिया और मेरा जो सम्मान किया उसके ए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यह जो मौका मुझे पने प्रदान किया है, उसका लाभ उठाकर हिन्दी के रे में मैं कुछ विचार आपके सामने रखूँगा। नागपुर में रह वर्ष पहले मैंने राष्ट्रभाषा सम्मेलन के प्रसंग पर पने कुछ विचार रखे थे। बारह वर्ष के बाद जो हमने शा की थी, वह कुछ पूरी तरह से सफल नहीं हुई। ९४९ में जब भारत ने संविधान को स्वीकार किया तो मने यह कामना मन में रखी कि १९६५ तक हिन्दी का चार सारे भारत में होगा और हिन्दी भाषा भारत राज्य भाषा होगी। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि दी भाषा के बारे में केन्द्रीय सरकार की नीति अस्पृह- य रही। संविधान बनते समय भी कुछ नेताओं ने दी भाषा का विरोध किया था। उनमें ज्यादातर लोग ण भारत के थे। लेकिन उनके साथ कुछ भारतवासी स्लिम नेता भी थे। संविधान बनते समय, और उसके द, जो कुछ कार्रवाई हुई उसका नतीजा यह हुआ कि दी का प्रकट और गुप्त दोनों दृष्टियों से विरोध शुरू गया। जब हम एक राष्ट्र और एक राज्य बन गये तब है आवश्यक है कि कम से कम हमारी राजभाषा एक । गांधीजी बड़े दीर्घद्रष्टा थे। उन्होंने राष्ट्रनिर्माण के यं में एक भाषा का महत्त्व जाना था, और सारे हिन्दुस्तान भाषाओं में हिन्दी भाषा में उतनी क्षमता पायी जो राजभाषा के लिए आवश्यक थी। राज्य की एक पा न हो तो एकता-वृत्ति और हितैक्य-भाव अपूरा रहता और विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जाती हैं। राष्ट्र में घटन का कार्य और भावनात्मक एकता का कार्य भाषा द्वारा सबसे ज्यादा होता है। ज्ञान और भावना दोनों का आदान-प्रदान करने का कार्य भाषा ही करती है। राष्ट्रीय एकता में भाषा का महत्त्व मौलिक है। यह लोकमान्य तिलकजी ने भी माना था और उन्होंने यही मत प्रकट किया था कि राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दी ठीक है।

कुछ दिन पूर्व मुझे पुराने बम्बई शासन के पुराने कागज पढ़ने का मौका मिला और १४-४-१८४७ जी० डी० १८४९ व्हाल्यूम २४ में एक निवेदन मिला। वह निवेदन उस समय के बोर्ड आफ एजुकेशन के अध्यक्ष सर अर्स्किन पेरी का था। उन्होंने लिखा है, "देशी वांग्मय के पुरस्कार के बारे में मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। वह यह है कि बम्बई इलाके में मराठी, गजराती, कन्नड़ आदि भाषाएँ हैं। मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि शासन के लिए हिन्दुस्तानी सरीखी एक भाषा मुकर्रर हो और उस भाषा को और उसके वांग्मय को पुरस्कार शासन द्वारा मिले। उस भाषा का विकास अत्यन्त आवश्यक मैं मानता हूँ। मैं और भी कहना चाहता था; लेकिन समय के अभाव में मैं ज्यादा अभी नहीं कह सकता।" १८४७ के ये विचार पुरोगामी और दीर्घदृष्टि के हैं। अंग्रेजों ने शासन के लिए अंग्रेजी भाषा को स्वीकार किया और हिन्दुस्तानी वैसी की वैसी रह गयी। अंग्रेजों के आने के पहले सदियों से उत्तर और दक्षिण भारत में हजारों यात्री आते-जाते थे, और रामेश्वर का व्यंकटाचार्य वाराणसी को जाता था। सारी यात्रा खुश्की से होती थी, और यात्रा में सारी दिक्कतें जो दूर हो जाती थीं वह हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा के द्वारा। धर्म, संस्कार और संस्कृति एक होने की वजह से, और साथ-साथ मराठी, गुजराती, हिन्दी, ब्रज आदि भाषाएँ संस्कृत भाषा से

प्राकृत भाषा द्वारा निर्माण होने की वजह से, ये सारे भाषा-भाषी मतलब समझते थे और सारा व्यवहार सुविधा के साथ हो जाता था। आधुनिक युग में सारी सामाजिक और राजकीय संस्थाओं और विचारधाराओं--दोनों में परिवर्तन हुआ है, और समाज अपनी भाषा को समृद्ध बना रहा है। हिन्दी भाषा कुछ १९वीं सदी में समृद्ध होने लगी, हिन्दी का नया युग शुरू हो गया। देश में राष्ट्रीयता का भाव १९वीं शताब्दी में प्रकट हो गया, और भारत एक राष्ट्र है और उसका एक राज्य होना चाहिए, ये आदर्श इसी समय लोगों के सामने आये। भारत वैसे तो सांस्कृतिक दृष्टि से एक राष्ट्र था ही, लेकिन एक राज्य न होने की वजह से जो एक राज्य की भाषा आवश्यक होती है, वह नहीं थी। अंग्रेजों ने तो शासन के कार्य के लिए अंग्रेजी का सिक्का जारी किया। उन्होंने देशी भाषाओं को उत्तेजन जरूर दिया; लेकिन उन-उन क्षेत्रों में किसी समय में भी हिन्दी या और कोई भाषा राष्ट्रभाषा करने की आवश्यकता उन्होंने नहीं मानी। वे जानते थे कि एक दिन भारत को छोड़ के जाना होगा। और वह दिन जब आ जायगा तब उनके लिए वह गौरव का दिन होगा। प्रगति पर भारत को देखकर और भारत देश को एक संयुक्त राज्य देखकर (फेडरल) वे जाना चाहते थे। कम से कम उनमें से दो दीर्घ दृष्टि और उदार-मतवादी थे उनकी यह राय थी। लार्ड मैकाले से एक ने पूछा, "हिन्दी लोगों को अगर आधुनिक शिक्षा दी जाय, तो क्या वे स्वराज्य नहीं माँगेंगे और अंग्रेजों को विदा होना नहीं पड़ेगा?" उन्होंने जवाब में कहा, "यह तो हमारा आदर्श है। हिन्दी लोगों को आधुनिक स्वराज्य के लिए शिक्षित और पात्र करके, और जब वे कहेंगे, अपना शासन सम्हालने के लिए सुयोग्य हो जायँगे और वे उसकी बागडोर हाथ में लेने के लिए माँग रखेंगे तो हमें भारत से जाना होगा और वह दिन अंग्रेज सभ्यता और राष्ट्र के लिए एक महा-पर्व होगा, एक गौरव का समय होगा।" और हुआ वसा ही। १८५७ के बलवे के बाद या स्वातंत्र्य-युद्ध के बाद अंग्रेजों की नीति बदली, और ९० वर्ष में आहिस्ते-आहिस्ते राजकीय प्रगति होती रही; कभी उसकी गति तीव्र थी, कभी मंद थी, कभी क्रमवाद था, कभी क्रांतिवाद था। उस स्वातंत्र्य-कविता का वृत्त कभी मंदाक्रांता, कभी शार्दूल विक्रीडित। आखिर में भारत स्वराज के घाट के ऊपर पहुँचा। अंग्रेजों ने
विषयक क्षेत्र में, औद्योगिक क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र
राजनैतिक क्षेत्र में जो कुछ किया उसमें उ
संमिश्रित थी। उनमें से जो स्वार्थी थे उन्होंने इ
के शुरू से झगड़े का बीज बोया। राज्य को संघटि
राष्ट्रीय भावना को भी कुछ अंश में संघटित कि
सामाजिक विघटन का भी कार्य किया। किसी
उन्होंने भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा या शासन
एक भाषा का ऐसा कोई प्रबंध नहीं किया, औ
में यह सिद्धांत माना गया कि भारत की एकता, रा
और राष्ट्राभिमान, ये सारी अंग्रेजी भाषा की औ
विचारों की देन है। इसमें कोई शंका नहीं कि
राष्ट्रीयता का भाव जो आज हमारे सामने है, यह
राष्ट्रों के विचारों की एक निर्मिति है, कम से
निर्मिति का धात्री-कर्म अंग्रेजी भाषा ने किया है।
के जन्म के बाद १९०६ तक, याने बीस से
सारी कांग्रेस की कार्रवाई अंग्रेजी में होती थी।
के कलकत्ता के कांग्रेस के अधिवेशन ने स्वराज्य
स्वावलंबन और राष्ट्रीय शिक्षण, इन चार सि
स्वीकार किया और इन चार खम्भों के ऊपर
स्वातन्त्र्य की मंजिल रखी गयी। सारे भारत में
द्वारा राजकीय क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में विचार
होना अपरिहार्य था। हर एक सूबे में सूबे की
बंग-भंग आंदोलन के बाद, ज्यादा पैमाने में
कार्य होने लगा, किन्तु अखिल भारतीय स्तर पर
ही चलती थी। १९१५ में गांधीजी भारत
१९१६ में उन्होंने राजकीय मंच पर कदम रखा।
में अहमदाबाद में प्रांतिक राजकीय परिषद्
अपना भाषण गुजराती में और कुछ हिन्दी
वह एक अचरज की बात मानी गयी। १९२०
कार (असहयोग) का उदय हुआ। तब से
प्रगति राष्ट्रीय स्तर पर होने लगी। १९२५
के कांग्रेस में एक प्रस्ताव पास हुआ और कांग्रेस
प्रणाली में हिन्दी का प्रवेश हुआ। गांधीजी
एकता लाने के लिए, और राष्ट्रीयता को सुदृढ़
करने के लिए हिन्दी को एक साधन माना।
के विरोध के ऊपर हमारा मोर्चा जुटा
उसका यह रूप ऋण-स्वरूप (निगेटिव्ह) था।

ट्रीयता को धन-स्वरूप याने (पाजिटिव्ह) बनाना हते थे।

आधुनिक इतिहास तो यह बताता है कि केवल वंश, ल भाषा एक होने की वजह से आधुनिक राष्ट्र नहीं ता, और बना भी, तो वह नहीं टिकता। जिस भौगो- प्रदेश के लोग आपस में अपने को एक समझते हैं र प्रदेश के बाहर के लोगों को पृथक् समझते हैं, वहाँ ट्रीयता का निर्माण होता है। संलग्नता और विलगता, नता और पृथक् भाव दोनों के होने से राष्ट्रीयत्व फलता फूलता है। केवल प्रदेश से याने केवल भूगोल से राष्ट्र हीं बनता। जिस भूमि के ऊपर हमारे पूर्वजों ने पराक्रम या है, जिसके लिए, जिसके गौरव के लिए वे जिये और वह भूमि पितृ-भू मातृ-भू बनती है, पुण्य-भू बनती है। हाँके पर्वत प्रतिभा को प्रेरणा देते हैं। वहाँकी नदियाँ व्य का स्रोत उत्पन्न करती हैं, वहाँकी मिट्टी का कण- ण हमारे लिए स्वर्ण कण बनता है। अन्य शब्दों में, तिहास और भूगोल, पराक्रम और प्रदेश, दोनों के एकत्र आने से, समन्वय से, राष्ट्र पैदा होता है। इस कार्य में समान र्म, समान संस्कृति, इनके साथ-साथ समान भाषा भी हो तो दूध में शक्कर जैसा ही होता है। इस दृष्टि से गांधीजी हिन्दी का प्रचार-कार्य शुरू किया। कुछ वर्षों तक हिन्दी र हिन्दुस्तानी का झगड़ा रहा, लिपि का झगड़ा रहा, किन सिद्धांत रूप से एक राष्ट्रभाषा हो, इसकी मान्यता ष्ट्र ने दे दी। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा वर्षों तक चार का कार्य होता रहा। दक्षिण भारत में हिन्दी का चार-कार्य बहुत दिन से चलता रहा है, और आज भी रहा है। अगस्त १९४७ में देश स्वतन्त्र हुआ, और सारे न्दी-प्रेमियों ने सोचा कि अब हिन्दी के दिन आये हैं और हिन्दी भारत की बिन्दी बनेगी। इतना ही नहीं जैसे- से भारत की प्रतिष्ठा बढ़ती जायगी वैसे-वैसे क्षणशः र क्रमशः हिन्दी का वैभव और क्षेत्र बढ़ता जायगा। सरीखे कुछ लोगों ने सोचा कि वह दिन अब दूर नहीं स दिन हम हिन्दी को एक अन्तर्राष्ट्रीय-प्रतिष्ठा-प्राप्त षा के रूप में देखेंगे। देखें ऐसे ख्वाब एक-एक से दम कले, निकले बहुत अरमान, तो भी कम निकले। चन्द प्न साकार हुए। लेकिन खेद से कहना पड़ता है कि न्दी का स्वप्न अभी तक पूरा नहीं हुआ।

९-१२-४७ के मंगल प्रभात में संविधान सभा का कार्य शुरू हुआ और नये भारत के निर्माण का नक्शा हम बनाने लगे। राज्य का स्वरूप क्या हो? संयुक्त या एक स्वरूपी? विधानसभा एक गृही हो या द्विगृही हो? मतदान का हक किसको प्राप्त हो? कौन-कौन से मौलिक स्वातंत्र्य या अधिकार नागरिकों के लिए हों? राज्य किन का हो? कैसा हो? किसके लिए हो? न्यायदान कैसा हो? सारे सवाल हमारे सामने आये। करीब-करीब तीन वर्ष तक विचार-विनिमय के बाद हमारा संविधान बन गया। बहुत कुछ अड़चनें आयीं, संघर्ष हुआ, राजी हुई, नाराजी हुई। कुछ चिन्ता के और कुछ आनन्द के क्षण आये। तो भी विवेक को मार्गदर्शक बना के हमने काम किया। व्यक्तिगत अभिमान को जगह नहीं दी। हिन्दी या हिन्दुस्तानी क्या संज्ञा हो, इस पर झगड़ा चला। एक पक्ष पंडितजी के इशारे पर चलता था और एक पक्ष महर्षि टंडनजी के इशारे पर चलता था। चर्चा-सत्र शुरू हुआ और मुझे ऐसा लगा कि इस चर्चा में कौरव-पांडव जैसे पराक्रमी भाई-भाई होते हुए भी एक-दूसरे के सामने खड़े हो गये। चन्द लोगों ने मध्यस्थी करके समझौता कराने का प्रयास किया, उनमें से मैं एक था।

पंडितजी से मैं मिला और मैंने कहा कि हिन्दी संज्ञा को आप मान लें और हिन्दी का स्वरूप निश्चित कर लें, तो यह सवाल हल हो जायगा। कांग्रेस पार्टी के जलसे की सदारत मैंने स्वर्गीय पटेलजी की आज्ञा के अनुसार की, और एक घंटे के अन्दर फैसला हो गया। भाषा का नाम हिन्दी हो और भाषा का स्वरूप व्यापक हो। इस हिन्दी भाषा में अन्य भारतीय भाषाओं के अच्छे-अच्छे मुहावरे भी हों और जहाँ 'आवश्यक और वांछनीय' हो वहाँ संस्कृत शब्द से ही काम लेना होगा। ऐसा ही दृष्टिकोण प्राचीन काल में था। पूर्व मीमांसा काल में जब शिष्यों ने नयी क्रिया के लिए नये शब्द की योजना क्या हो, ऐसा सवाल ऋषिजी से पूछा तो उन्होंने कहा, "अगर प्रचलित शब्द न हों तो संस्कृत शब्द से लो।" 'यवन शब्दाभावे निरुक्तादयाः।' याने 'यवन' याने "प्रचलित शब्द न हो तो संस्कृत लेना चाहिये।" मर्म यह है कि भाषा द्वारा मन के विचार औरों को समझाना है। अगर मेरी भाषा ऐसी संस्कृत-मिश्रित हो जो बेचारे किसान न समझें तो वहाँ सारे प्रयत्न व्यर्थ होते हैं। वैसे ही अगर फारसी या अरबी शब्दों से भरी हुई हिन्दी या हिन्दुस्तानी हो तो दक्षिणात्य लोगों के

लिये वह ग्रीक और लैटिन के समान होती है। इस दृष्टि से अगर हम देखें तो संविधान में जो कुछ किया है वह एक सुवर्णमध्य है, और संस्कृत पर आधारित प्रचलित शब्दों से विभूषित हिन्दी उपयुक्त और सौन्दर्यशील दोनों है। जीवन केवल उपयुक्तता नहीं, केवल सौन्दर्य नहीं, गद्य और पद्य का एक सुन्दर मिश्रण है। इस दृष्टि से संविधान-स्वीकृत हिन्दी राष्ट्रीय भाषा है, अभी तो संघराज्य की भाषा है, यथाकाल वह राष्ट्रभाषा होने की क्षमता रखती है।

जीवन में भाषा बगैर व्यवहार नहीं हो सकता। आचार्य दण्डी का कथन है, "वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते"—वाणी का प्रसाद हो तो संसार का जीवन चलता है। संविधान के अनुसार भारत-प्रजातंत्र का सिक्का २६ जनवरी १९५० से शुरू हुआ, और हम समझते थे कि कुछ कार्य-क्रम हिन्दी प्रसार के लिए बनाया जाएगा और १९६५ तक यह संक्रमण काल रहेगा और पश्चात्, जिस तरह से हमने अंग्रेजों को बिदा दे दी उसी तरह से, अंग्रेजी को बिदा देंगे। खेद की बात यह है कि कुछ कार्य-क्रम, कुछ ठोस कार्यक्रम, केन्द्रीय शासन ने निश्चित नहीं किया। घटक राज्यों ने जो कुछ किया वह उदासीनता के साथ। हिन्दी का प्रचार और प्रसार सरकार की जिम्मेदारी थी। उसका बोझ राष्ट्रभाषा प्रचार संस्थाओं पर पड़ा। मंत्रिमंडल में, और बाहर भी, व्यक्तिगत रूप में अल्प-स्वल्प कोशिशें कीं; लेकिन केन्द्रीय सरकार का वातावरण केवल उदासीन नहीं था, बल्कि विरोधी था, और विरोधकों को भड़काया जाता था। साथ-साथ यह भी कहना होगा कि कुछ हिन्दी भाषा-भाषी आग्रही बन गये, कट्टर-पंथीय बन गये। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी की प्रगति शासन के द्वारा बहुत कम हुई। दक्षिणात्य जनता का विरोध नहीं था, अभी भी विरोध नहीं। विरोध है, जो बाबू हैं या बाबू बनना चाहते हैं, उनका विरोध है। इतिहास यह बताता है कि काल राज के सामने हतप्रभ हो जाता है। महाभारत में यह कहा है, "मन में संशय मत करो, राजा कालस्य कारणम्।" राजा के कहे पर प्रजा चलती है। मुगल थे तो पर्शियन-फारसी का बोल-बाला हुआ और कलकत्ता से काश्मीर तक फारसी पढ़ाई जाती रही। शासन में काम करनेवाले भी उसी भाषा में काम करते थे। कुछ दिन मराठों का राज्य रहा, और जिन प्रदेशों में रहा, वहाँ शासन का में चलता रहा और कई जगह सारे हिसाब- महकमों में "मोडी" लिपि इस्तेमाल की उसके बाद अंग्रेज आये और राजभाषा अब भारतीयों का राज्य आया है, लोकशाही है, उसके संविधान में संघ-राज्य-भाषा का गया है तो वह संघ-राज्य की भाषा शासन की गई है। पंद्रह वर्ष की मियाद मेरी दृष्टि से हमारे केन्द्रीय शासन में मौलाना साहब शिक्षा मंत्री तो इस बारह वर्ष की अवधि में हिन्दी पूरी तरह की भाषा हो जाती। मौलाना साहब बड़े विद्वान कुशल थे, आला दर्जे के पंडित भी थे; लेकिन के लिए उनके दिल में जो एक तीव्र लगन होनी थी वह नहीं थी। जो वातावरण केन्द्रीय शासन हुआ, उसका परिणाम यही हुआ है कि हिन्दी किनारे से छूटी ही नहीं, फिर परले किनारे जाना रहा। १९६२ में दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य के अपने अध्यक्षीय भाषण में मैंने उसके सामने क्रम रखा। उसका स्वरूप ऐसा था कि सरकारें निकालें जिसमें—

(१) हर एक केन्द्रीय सरकार का नौकर के अन्दर देवनागरी का अक्षर ज्ञान पूरा करे।

(२) उसके बाद दो वर्ष के अन्दर मिडिल की शिक्षा प्राप्त करे।

(३) उसके बाद तीन वर्ष के अन्दर एस० तक की हिन्दी शिक्षा प्राप्त करे। इस कार्यक्रम चतुर्थ श्रेणी के चपरासी और तीसरी श्रेणी के जाते थे।

(४) उनके बाद तीन वर्ष के अन्दर बी० ए० हिन्दी शिक्षा जो प्रथम और द्वितीय श्रेणी के वे प्राप्त करें।

(५) उसके बाद १ वर्ष में जो बड़े-बड़े हैं एम० ए० तक की हिन्दी शिक्षा प्राप्त करें।

इस कार्यक्रम के अनुसार साढ़े नौ वर्ष के अन्दर शासन चलाने वाले हिन्दी के जानकार बन जाते साथ मैंने एक शर्त रखी थी, वह यह थी कि इस के अनुसार अगर कोई नौकर कामयाब न हो तो उसको तरक्की न मिले। यह सारी योजना मौला

९६३

मैंने भेजी थी। कुछ चर्चा हुई, पर कुछ नतीजा नहीं कला। दक्षिणात्य लोगों को भड़काया गया और जो र्य शासन का था वह उन्होंने नहीं किया, जान-बूझ के घटनवाद को आशीर्वाद दे दिया। आज यह नौबत गयी है कि संविधान में संशोधन करने का विधेयक कसभा के सामने है। जो कुछ किया वह एक दिखावा ा। जो आवश्यक और जो अग्रस्वरूपी था, वह नहीं किया। कुछ शब्द-कोष को पैसे दिये। कुछ संस्थाओं को नुदान दिया, कुछ ग्रन्थों को पुरस्कृत किया; लेकिन जो आवश्यक चीज थी, वह नहीं की। जो आवश्यक गहना ता है, जसा कि मंगलसूत्र, वह तो नहीं बनाया और ड़े-बड़े गहने जो रोज नहीं पहने जाते, उनको बनाया, ना ही हुआ। जब दस वर्ष के बाद कमीशन मुकर्रर हुआ र सारे देश में कमीशन ने यात्रा की, मैंने कमीशन को ताया कि कुछ निश्चय से शासन काम करता तो आज का विरोध नहीं आता। विरोध के पीछे स्वार्थ की भी भावना है। दक्षिणात्य समझते हैं कि अगर अंग्रेजी भाषा न रही तो दक्षिणात्य लोगों को केन्द्रीय शासन में उतना प्रवेश नहीं मिलेगा जितना आज मिला है। मैंने कमीशन के सामने यह बात कही कि केन्द्रीय शासन में भरती घटक राज्यों की लोक-संख्या के अनुपात में हो। ऐसा ही कुछ अन्य युक्त राज्यों में होता है। रिपोर्ट आने के बाद पार्लिया-ट में बहस हुई और दक्षिणात्य लोगों ने धमकी से काम या। भारत राज्य से अलग होने के आलाप निकाले, र उससे डर के हमारे नेताओं ने वचन दे दिया कि जब क अहिन्दी लोग हिन्दी को नहीं चाहते हैं तब तक अंग्रेजी षा हिन्दी के साथ-साथ १९६५ के बाद सखी भाषा सोशिएट लैंग्वेज) रहेगी। मुझे ऐसा लगता है, सखी न के आयेगी और सम्राज्ञी बन के रहेगी। हिन्दी अप-मानित होगी और प्रत्यक्ष अनुभव यह आयेगा कि अंग्रेजी हामी बढ़ते जायेंगे और उनके हाथ में एक ह्वीटो पावर ने इन्कार की ताकत रहेगी। हिन्दी की प्रगति, इस वस्था में कम होगी, और जब वह षोडश कलापूर्ण राष्ट्र-भाषा नहीं बनेगी तो हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाने का हमारा स्वप्न धूमिल हो जायेगा। मैं समझ सकता हूँ अहिन्दी लोगों का विरोध। जो हिन्दी काम हो रहा है वह ांति के साथ हो रहा है। हम किसीके ऊपर हिन्दी लादना नहीं चाहते। हम तो अनुनय के साथ, मुहब्बत के साथ अहिन्दी लोगों को हिन्दी की तरफ़ आकर्षित करना चाहते हैं। हिन्दी की जो व्याख्या संविधान में है वह व्यापक, उदार और समावेशक है। कुछ व्यवहारतः भी झुकना आवश्यक है तो भी झुकने को तैयार हैं। झगड़े का मार्ग हम नहीं चाहते; लेकिन साथ-साथ हमारे जीवन का यह सिद्धांत है कि हम धमकी से नहीं झुक जायेंगे, कुछ व्यवहार्य मार्ग निकल सकता है। मैं बड़ी नम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि हमारे नेता जिद्द की बात न करें। वे भी कुछ दक्षिणात्य लोगों को समझाएँ और जो संशोधन आया है उसमें या तो कुछ काल-मर्यादा रखें या समय-समय पर हिन्दी के बारे में पार्लियामेंट को पुनर्विचार करने का अधिकार दे दें। इसके साथ-साथ केन्द्रीय शासन में विधायक कार्य-क्रम रखा जाय और झगड़ा जल्दी से जल्दी प्रेम के साथ खत्म हो जाय।

आजकल हम भावात्मक एकता की बात कर रहे हैं और कुछ महीने पहले बड़ी-बड़ी आवाजें निकलीं और गड़े हुए मुर्दों को निकाला गया और जो अल्पसंख्यक थे, धार्मिक और जातीय दृष्टि से, उन्होंने चिल्लाना शुरू किया और सारे लोग कहने लगे कि देश की एकता खतरे में है। सच बात तो यह थी कि चन्द लोगों का नेतृत्व खतरे में था। आर्थिक क्षेत्रों में शासन को सफलता न मिली। जब लोग नाराज हो जाते हैं, तब चतुर नेतृत्व कुछ ऐसी घोषणाएँ करता है कि अगले संभ्रमित हो जाते हैं और असली दुःखों को भूलकर कुछ झूठे नारों में मग्न हो जाते हैं। ऐसा ही एक झूठा नारा, देश की एकता खतरे में है, दिल्ली के उर्दू बाजार में लगाया गया। उस वक्त मैंने कहा था, ये सारी बातें झूठी हैं, अगर देश पर सचमुच हमला हो जाय तो चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर सारा देश शासन के पीछे बलिदान के लिए तैयार होगा। वही अनुभव अक्तूबर १९६२ में आया। अब संकटकालीन परिस्थिति का फायदा लेकर भारत में सामाजिक और आर्थिक पुनर्रचना करनी है। लेकिन अनुभव तो यह आ रहा है कि संकट-काल का बहाना बनाकर पूंजीपतियों का कब्जा देश के ऊपर हो रहा है। देश में दो देश नजर आ रहे हैं। एक चन्द संपन्न लोगों का, और एक बहुसंख्यक विपन्न लोगों का। देश की और-और समस्याओं का हल करना स्थगित किया जा रहा है। हम जरूर परचक्र का मुकाबला करेंगे, और साथ-साथ देश का विकास करेंगे, और साथ-साथ

भाषा का भी सवाल हल करेंगे। सारे भारतीय एक हृदय हों और सारी चौदह भाषाएँ संपन्न और सजीव हों। साथ-साथ हिन्दी की प्रगति तेजी से हो। हिन्दी एक संघटित करनेवाली शक्ति है। जन-साधारण को एक विशाल जीवन की तरफ से जाने का मार्ग है। जो राष्ट्रभाषा हिन्दी बन रही है वह संपन्न होगी, सौंदर्यशील होगी, प्रेरणा देनेवाली होगी, और जीवन के सारे क्षेत्रों में प्रकट होनेवाले भावों को अभिव्यक्त करनेवाली होगी। वह अब किसी एक प्रदेश की न होने की वजह से सारे देश की होगी और सारे देश का बौद्धिक और व्यावहारिक जीवन समृद्ध करेगी। हिन्दी का प्रचार-कार्य एक वाग्यज्ञ है। वह हम 'सर्वेषां अविरोधेन' करना चाहते हैं। अंग्रेजी के साथ हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। वह भी हम पढ़ेंगे, क्योंकि के साथ हम सम्बन्ध रखना चाहते हैं। मातृ- पढ़ेंगे, क्योंकि माता के समान उसको हम पवि हैं। हिन्दी, मातृभाषा, अंग्रेजी और संस्कृत, चारों का ज्ञान अगर हम प्राप्त करें तो चारों पुरुषार्थ हासिल करेंगे। प्रिय मित्रो, आप राष्ट्रभाषा प्राप्त करके दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं। सारे याद रखिए कि मधुवती वाणी से कुछ प्राप्त हो हिन्दी, जिसमें आप बोलेंगे, उसे समृद्ध बनाने कोशिश करना यह आपका कर्त्तव्य है और इसमें सफलता प्राप्त हो, यही मेरा आशीर्वाद है।

सन्त जेसू क्रिस्त से

काडेन्द्र बालधा कुलगोद "वाणीदास"

(१)

दिव्य पुरुष! धर मर्त्य देह
तू धरती पर अवतरित हुआ
मानवता का मान बचाने,
सत्य हेतु बलिदान हुआ।

(२)

जब जग निद्रा में सोता है
अम्बर पर तम छाता है।
जड़-जगती को जागृत करने
दिव्य तेज तब आता है।

(३)

जो आता है, सो जाता है;
नियति नियम है परम कठोर।
पर आया तू पाप हटाने
अर ले गया शोक बटोर।

(४)

शूल 'क्रॉस' के फूल मानकर
हँसते जीवन त्याग दिया।
हम मानव ने तुम्हें मार, अब
है पूजन का स्वाँग किया!

(५)

मुख से तो संदेश तुम्हारे
अब भी मानव गाते हैं,
विश्वनाश को अणुबम लेकर
क्रिसमस आज मनाते हैं।

(६)

इन 'इज्मों' के कपट-नाट्य से
मानव चाह रहा है त्राण
देवदूत! इनसे रक्षा कर,
दो हमको चिर जीवन दान।

(७)

धर्म-पतन से भीत जगत है,
बाहर भीतर शान्ति नहीं
तारो प्रभुवर! ज्योति दिखाओ
तुम्हें छोड़ है आस नहीं।

इंडिया आफिस लाइब्रेरी का प्रश्न

श्री उदयनाराण सिंह

लन्दन के ह्वाइट हाल के पास किंग चार्ल्स स्ट्रीट पर स्थित राष्ट्रमंडल सम्पर्क (कामनवैल्थ रिलेशंस) कार्यालय की चौथी मंजिल पर इंडिया आफिस लाइब्रेरी है जिसकी समस्त सामग्री ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के लिए अत्यधिक महत्त्व की है। यह लाइब्रेरी कानूनी दृष्टि से भारत की सम्पत्ति है। ब्रिटिश सरकार के अधिकारी भारत विभाजन के बाद से ही इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि लाइब्रेरी का हस्तांतरण भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी को न किया जाय और समय समय पर वे इस आशय का वक्तव्य भी देते रहते हैं कि लाइब्रेरी पर भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी का कोई दावा नहीं है। लाइब्रेरी की इमारत भारतीय धन से तैयार की गयी है और सन् १९३७ ईसवी तक लाइब्रेरी का समस्त खर्च तत्कालीन भारत सरकार अदा करती थी। भारत की स्वतंत्रता के अब लगभग १६ वर्ष व्यतीत हो रहे हैं किंतु फिर भी इस पुस्तकालय के स्वामित्व का मामला अभी तक हल नहीं हो सका।

लाइब्रेरी की स्थापना

इंडिया आफिस लाइब्रेरी की स्थापना ५ मई सन् १७९८ को की गयी थी। इसकी स्थापना करने में ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों का हाथ था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों के कोर्ट का इस संबंध में एक प्रस्ताव इस प्रकार था—"हम पता चला है कि पिछले कुछ वर्षों से हमारे कतिपय कर्मचारी भारत में प्राच्य साहित्य की पुस्तकों एवं पांडुलिपियों को एकत्र कर रहे हैं और बाद में इन्हें इंगलैंड ले आते हैं। यदि यह महत्त्व की सामग्रियाँ व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में रहीं तो इस बात का भय है कि ये इधर-उधर खो जायँगी जिससे यूरोप एवं भारत को काफी नुकसान होगा।" कोर्ट के इस प्रस्ताव की उस समय कोई अनुकूल प्रतिक्रिया न हुई और जिन अँगरेजों ने भारत से अलभ्य पुस्तकों एवं अन्य सामग्रियों का संकलन एवं संग्रह किया था उन्होंने कोर्ट के प्रस्ताव को देखते हुए भी उन्हें नहीं लौटाया।

इस प्रस्ताव के कुछ वर्ष बाद संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् चार्ल्स विल्किन्स के सुझाव पर भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हैस्टिंग्स ने ब्रिटेन में एक संग्रहालय की स्थापना करने के प्रस्ताव की पुष्टि की। इसके अनुसार विल्किन्स को सन् १८०१ ईसवी में २४००) वार्षिक वेतन पर इंडिया आफिस लाइब्रेरी का पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त किया गया। वस्तुतः इसी समय के बाद लाइब्रेरी की स्थापना समझनी चाहिए। यदि इस लाइब्रेरी की स्थापना न की जाती तो भारत से संबंधित उन साहित्यिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकों, पांडुलिपियों एवं अन्य सामग्रियों का पता ही न चलता जिन्हें अँगरेज भारत से लेते गये थे। इस दृष्टि से इस लाइब्रेरी की स्थापना का और भी महत्त्व है।

पुस्तकों का संग्रह भेंट

इंडिया आफिस लाइब्रेरी की स्थापना के बाद पुस्तकालय को अपना सबसे बड़ा पुस्तकों का संग्रह राबर्ट ओर्म ने भेंट किया। राबर्ट ओर्म ने अपने भारत प्रवास के समय सैकड़ों पुस्तकें एकत्रित कर रखी थीं जिनमें कुछ पांडुलिपियाँ भी थीं। जॉन लीडन ने, जो सन् १७७५ में डेन होम (राक्सवर्गशायर) में पैदा हुए थे और कालान्तर में डाक्टर के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में भारत में जिन्होंने काम किया था, अपना संग्रह भी लाइब्रेरी को प्रदान कर दिया। उनके संग्रह की सूची इस प्रकार बनायी गयी थी :—"कुल मिलाकर १६ बड़े संदूक हैं जिनमें ताड़ पत्रों पर एक शैली में लिखित कम से कम २५०० लेख, २०३७ पांडुलिपियाँ, १४८ चीनी मुद्रित पुस्तकें, श्रीरामपुर के प्रेस से ३० मुद्रित पुस्तकें और गैर नत्थी किये हुए कागज पत्र हैं जिनमें विभिन्न भाषाओं की संक्षिप्त शब्दावलियाँ हैं....।" सन् १८५८ में इंडिया आफिस का निर्माण होने पर इस पुस्तकालय को ब्रिटिश सरकार को हस्तांतरित कर दिया गया। सन् १९४७ में इंडिया आफिस की समाप्ति होने पर इसकी जिम्मेदारी राष्ट्रमंडल सम्पर्क मंत्री के हाथ में चली गयी लेकिन इस पुस्तकालय का पुराना नाम बना रहा।

पुस्तकों की संख्या

वर्तमान समय में इंडिया आफिस लाइब्रेरी में लगभग ३ लाख प्रकाशित पुस्तकें तथा २५ हजार पांडुलिपियाँ

हैं। इनमें यूरोपीय भाषाओं की ७० हजार पुस्तकें हैं जो भारत विषयक जानकारी प्राप्त करने के लिए सबसे बड़ा संग्रह है। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय में बँगला की २४ हजार, उर्दू की २० हजार, संस्कृत तथा प्राकृत की २० हजार तथा हिन्दी की २० हजार पुस्तकें हैं। इनके अलावा मराठी, पंजाबी, तमिल, गुजराती, फारसी तथा तेलुगू की भी पुस्तकालय में पर्याप्त पुस्तकें हैं। इन विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों की संख्या भी हजारों ही हैं। पुस्तकालय में ८० अन्य प्राच्य भाषाओं की पुस्तकें भी हैं। पांडुलिपियाँ, टाइप में नकल की हुई, कागज, ताड़पत्र, भोजपत्र, लकड़ी पर लिखित सामग्रियाँ हैं। केवल यूरोपीय भाषाओं की पांडुलिपियाँ १००० भागों में हैं और कई सौ हस्तलिखित पोथियों की जिल्दबंदी नहीं की गयी है। पुस्तकालय में प्राच्य विषयक २०,००० पोथियाँ हैं। लाइब्रेरी में ५०० वर्ष की प्राचीन पुस्तकों से लेकर वर्तमान समय तक की पुस्तकें मौजूद हैं। पांडुलिपियों में दाराशिकोह द्वारा लिखित पुस्तक की पांडुलिपि भी है।

लाइब्रेरी में सर ओरल स्टाइन द्वारा संग्रहीत, तिब्बती, खोतानी, संस्कृत, चीनी तथा सोग्दी भाषाओं की पांडुलिपियाँ भी हैं। प्रसिद्ध अँगरेज मैकेन्जी द्वारा संकलित फारसी, अरबी, तमिल तथा तेलुगू भाषाओं की पांडुलिपियाँ भी हैं। इनके अतिरिक्त टीपू सुल्तान की एक मौलिक पांडुलिपि लाइब्रेरी में है जिसे टीपू सुल्तान ने अपने हाथों से लिखा था। इसमें टीपू सुल्तान ने अँगरेजों के प्रति अपनी धारणा का उल्लेख किया है।

दुर्लभ चित्र

पुस्तकालय में चित्रों की संख्या काफी है जिनमें ३०,००० चित्र पुरातत्व विषयक हैं। ५ हजार चित्र दक्षिण-पूर्वी एशियाई भागों के पशुओं, पक्षियों तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों से संबंधित हैं। इनमें भारतीय चित्रों के ६७ अलबम भी हैं जिन्हें जानसन ने एकत्रित किया था। संग्रहालय की दीवारों पर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व की चीजों को फ्रेम में रखकर लटकाया गया है। इनमें आॅलिवर क्रामवेल तथा वैलस्ली के स्वतः लिखित पत्र भी हैं।

टीपू का चीता

लाइब्रेरी में टीपू सुल्तान का बनाया एक खिलौना भी है जो "टीपू के चीते" के नाम से प्रसिद्ध है। इस खिलौने में एक चीते की मूर्ति के पास एक अँगरेज हैट है। इस खिलौने में चाबी लगाने से शेर के गुर्राने की आती है और साथ ही अँगरेज के डरने की सी जाती है। टीपू के पराजित होने के समय यह ब्रिटेनवासियों को श्रीरंगपट्टम में १७९९ में और १८०० में इसे ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालक के पास भेज दिया गया जो इंडिया आफिस आ गया। भारत से ब्रिटेन भेजने से पहले इस एक स्मरणपत्र में यह लिखा गया था कि "यह एक धराशायी यूरोपीयन को भक्षण करते हुए चीते की अनुकृति है। चीते की देह के भीतर की सीमा में कुछ नलियाँ हैं और स्वाभाविक की चाबियों की एक पंक्ति हैं। अवयव से उत्पन्न चीते की दहाड़ से भयभीत विपत्ति में पड़े मनुष्य की याद दिलाने के लिए हैं। यंत्र की रचना की गयी है कि जिस समय उसके अवयव काम हैं यूरोपीयन का हाथ प्रायः उठ जाता है और असहाय और दयनीय दशा का बोध होता है। चीते को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। इस को अब एक काँच के कटघरे में रखकर लंदन के एवं अलबर्ट संग्रहालय में रख दिया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इंडिया आफिस भारतीय इतिहास, साहित्य तथा संस्कृति से वस्तुएँ हैं जिनका भारत आना अत्यधिक इस लाइब्रेरी में संग्रहीत दुर्लभ पांडुलिपियों के से अध्ययन एवं अनुसंधान की भी आवश्यकता है भारत के साहित्यिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पर समुचित प्रकाश पड़ सके। जब कभी यह प्रश्न संसद अथवा उससे बाहर उत्पन्न होता है तो मंत्री यह अश्वासन दिया करते हैं कि लाइब्रेरी के वार्ता चल रही है और समस्या के शीघ्र हल होने की जाती है। वैज्ञानिक अनुसंधान तथा सांस्कृतिक के मंत्री डाक्टर हुमायूँ कबीर ने ३ अगस्त लोकसभा में यह बताया था कि "ब्रिटिश यह दृष्टिकोण है कि लाइब्रेरी ब्रिटेन की ही है पिछले ५ वर्षों से इस बात का कोई भी संतोषजनक नहीं दे रही है कि पुस्तकालय पर उसका मई सन १९६० में राष्ट्रमंडलीय सम्मेलन में

लिए जब नेहरू जी लंदन गए हुए थे उस समय उन्होंने इंडिया आफिस लाइब्रेरी के प्रश्न पर पाकिस्तान के राष्ट्रति अयूब खाँ के साथ ब्रिटिश सरकार के राष्ट्रमंडलीय सचिव से बातें की थीं। उस समय यह सुझाव रखा गया था कि इंडिया आफिस लाइब्रेरी भारत, पाकिस्तान तथा टेन के बीच विभाजित कर दी जाय। २२ मार्च १९६१ को लोकसभा में हुमायूँ कबीर ने इस समस्या के बारे में ह आश्वासन दिया था कि "यदि समस्या का हल लाइरी पर तीनों देशों के स्वामित्व के आधार पर विभाजित के करना है तो यह समझौता भारत के लिए अधिक युक्त नहीं कहा जा सकता।" लाइब्रेरी का भारत था पाकिस्तान में बँटवारा कुछ हद तक ठीक भी कहा जा सकता है क्योंकि लाइब्रेरी अविभाजित भारत की सम्पत्ति है। अभी गत २२ मार्च को लोकसभा में पुनः हुमायूं कबीर ने कहा था कि "भारत एवं पाकिस्तान इस प्रश्न पर एक मत है कि लाइब्रेरी पर ब्रिटेन का किसी भी प्रकार का दावा अनुचित है।"

आशा है भारत सरकार इस मामले को अति शीघ्र हल करने की कोशिश करेगी ताकि लाइब्रेरी की अमूल्य वस्तुएँ भारत एवं पाकिस्तान को प्राप्त हो सकें। इस संबंध में एक बात विशेषरूप से ध्यान में रखने योग्य है कि जब लाइब्रेरी की सामग्रियों का भारत एवं पाकिस्तान में विभाजन होने लगे तो उन वस्तुओं को प्राप्त करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए जिनका भारतीय साहित्य एवं इतिहास से मूलतः संबंध हो। कहीं ऐसा न हो कि भारत से संबद्ध सामग्री पाकिस्तान चली जाय। पालि, प्राकृत एवं ब्राह्मी पांडुलिपियों को प्राप्त करने की विशेषरूप से कोशिश करनी चाहिए क्योंकि इनका संबंध भारत की संस्कृति एवं सभ्यता से विशेषरूप से है।

भीगे पलकों की भाषा

कुँवर हरिचन्द्र देव वर्मा 'चातक', कविरत्न

भूल से ही मुस्करा दो
हाय! मेरी ओर।
तो तनिक मैं और जी लूँ——
गरल अमृत समझ पी लूँ!
कोरकित हो जाय फिर से——
कामना की कोर।
भूल से ही मुसकरा दो
हाय! मेरी ओर।
छला जाऊँ हाथ से
तेरे मुझे स्वीकार,
रुद्ध तेरे हाथ से ही
हो समर्पण-द्वार।
प्यास को यह बाँह लम्बी–
बने तृप्ति-हिलोर।
भूल से ही मुसकरा दो।
हाय! मेरी ओर।

नयन के जब कंठ में हो
भरा सावन-गीत,
झूठ ही तब स्वप्न में
मुझको बुलाओ मीत।
रह, कहो चितचोर?
क्या बिना आये सकूँगा—
भूल से ही मुसकरा दो
हाय! मेरी ओर।
दुख रहे हैं रात के ये
नयन तकते राह।
बीन के भी बोल डूबे——
शोक-सिंधु अथाह।
उड़ गई कोयल सुनो!
यह पतझरों का रोर
भूल से ही मुसकरा दो
हाय! मेरी ओर।

मणिपुर के लोकनृत्य

श्री ऋषि मामचन्द्र कौशिक

मणिपुर भारत की चार पवित्र शास्त्रीय नृत्य-संस्थाओं की भूमि है, साथ ही सुन्दर नर्तकों की भी भूमि है। यहाँ के नारी वर्ग में नृत्यकला का ज्ञान और अभ्यास अनिवार्य माना जाता है। नृत्यकला यहाँके पुरुषों का ऐच्छिक विषय माना गया है—तथापि अधिकतर लोग नृत्य से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि नृत्य उनके जीवन का एक अंग बन गया है। मणिपुर का रास-नृत्य यहाँके आनन्दमय लोकनृत्यों के समूह का एक उत्तम नृत्य है।

मणिपुर का उद्गम प्रागैतिहासिक है। इसकी कथा पुराणों में वर्णित है। कहा जाता है कि एक समय शिव और पार्वती एक लीला का आनन्द भोगने के लिए किसी नये और सुन्दर स्थान को चले। मणिपुर के चारों ओर घिरी पर्वतश्रृंखला पर पहुँचकर भगवान् शिव ने नीचे की ओर देखा। पर्वतमाला से घिरी एक सुन्दर घाटी पानी में डूबी हुई दिखाई पड़ी। स्थान बहुत ही रमणीक था। अतः भगवान् शिव ने त्रिशूल से पर्वत पर प्रहार किया। पर्वत ने पानी को मार्ग प्रदान किया। पानी बह जाने के कारण भूमि का सुन्दर भाग उनकी लीला की क्रीड़ा और नृत्य से सुशोभित हो उठा। पर्वतों से आच्छादित यही भूभाग आज मणिपुर के नाम से प्रसिद्ध है। शिव और पार्वती की लीला का वह नृत्य मणिपुरी लोकनृत्यों में "लाई-हरवा" के नाम से प्रसिद्ध है। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह नृत्य प्रागैतिहासिक काल का माना जाता है। मणिपुर की जनता के सामाजिक उत्थान में इस नृत्य का महत्त्वपूर्ण योग है। "लाई-हरवा" नृत्य मणिपुर के विभिन्न देवी-देवताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य अत्यन्त मनोरंजक होता है। नर्तक और नर्तकी आत्म-विभोर होकर दो प्रेमियों के रूप में, पति-पत्नी के रूप में, नृत्य करते हुए खाम्बा और थोपकी के अलौकिक प्रेम का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं। मणिपुर के लोक नृत्यों में लाई-हरवा चिर परिचित सुप्रसिद्ध लोकनृत्य है। मणिपुर के सभी लोकनृत्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस नृत्य के भावों से अत्यधिक प्रभावित हैं।

मणिपुर में कुशल नर्तक ही नहीं, उत्तमकोटि के गायक भी होते हैं। यहाँकी अधिकांश जनता वैष्णव है। श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का, उनकी सीखों और सिद्धान्तों का यहाँ के जन-जीवन पर स्पष्ट रूप से अंकित है।

कर्तल और राखल

मणिपुर के संगीत का प्रचलित स्वरूप कर्तल राखल कीर्तन है। गीत और संगीत का मधुर जब गति धारण करता है तब गायक और संगीत हो जाते हैं। यह समूह धीरे-धीरे नृत्य का करता है जिसमें पुरुष अकेले, या अपने जोड़े के साथ प्रस्तुत करते हैं। कीर्तन मणिपुर के दो सुप्रसिद्ध "पंचचोलन" और "कर्तल सोलन" को जन्म दे चोलन का अर्थ तीव्र गति होता है। अतः यह नृ के बोलों पर शरीर के विभिन्न अंगों की तीव्र गति का चित्र प्रस्तुत करता है। कर्तल वादक और गायक के और अवरोह पर कर्तालों की ध्वनि तीव्रतम गति भटकने नहीं देती। मणिपुर के संगीत का सुन्दर गीत—संगीत और नृत्य के मधुर मिलन का उदाहरण है।

"राखल नृत्य" अथवा 'ग्वाल नृत्य' वसंत सुन्दर और आकर्षक वस्त्र धारण करने के पश्चात् किया जाता है। इस नृत्य में श्रीकृष्ण के बाल-जीवन प्रस्तुत किया जाता है।

सामाजिक नृत्य

तवल-चौगी नृत्य मणिपुर का सामाजिक नृत्य है होली के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है। मधुरतम चाँदनी में यह नृत्य अनुपम आनंद प्रस्तुत है। यह नृत्य जातीय और सामाजिक बन्धनों से रहित कोई भी व्यक्ति निर्धन, धनवान् या किसी भी जाति इस नृत्य में भाग ले सकता है। होली के अवसर नृत्य बहुत ही आकर्षण प्रस्तुत करता है क्योंकि रात में युवक और युवतियों के समूह को एक तक नृत्य करने का अवसर प्राप्त होता है।

रासलीला और वसन्तराज

रासलीला मणिपुर का सुप्रसिद्ध नृत्य है। यह नृत्य यहाँ के नृत्यों से आयु में बड़ा नहीं, तथापि शिल्प, इसका शास्त्रीय स्वरूप और इसकी ख्याति

कि सभा द्वारा जो शोधमूलक कार्य हुआ है, वह आज भी अभिनन्दनीय-अनुकरणीय है। आज भी वही शोधविवरण शोध के आधारभूत स्तंभ माने जाते हैं। अभी तक मेरे अवलोकन में सभा द्वारा प्रकाशित १३, १४, १५, १६ और १८ विवरण ही आये हैं। इनमें जो भी मेरी दृष्टि में मुझे परिमार्जन जैसा लगा उस पर मैंने पृथक्-पृथक् निबंधों में प्रमाण पुरस्सर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। मैंने अनुभव किया कि विवरण लेनेवालों की असावधानी से जो भूलें एक विवरणिका में आयीं वही आगे के विवरणों में भी चलती रहीं। बल्कि विवरणों के गलत आधार पर टिप्पणियाँ भी सही तथ्य समुपस्थित करने में असफल रहीं। मेरी सम्मति में अच्छा हो कि सभा आज तक प्रकाशित खोज विवरणों का पुनः परीक्षण करवाकर एक नवीन संस्करण प्रकाशित करवा दे। ऐसा करने से सभा का गौरव ही बढ़ेगा।

अस्तु।

यहाँ बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा प्रकाशित और सुप्रसिद्ध विद्याव्यासंगी श्री डा० धीरेन्द्र ब्रह्मचारीजी द्वारा संपादित "प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण-खंड दूसरा" पर कुछ विचार करना है। निःसंदेह राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इसे प्रकाशित कर ना० प्र० सभा के कार्य को अपने क्षेत्र में आगे बढ़ा कर प्रोत्साहन दिया है। पर इस विवरण में कुछ ऐसी स्खलनाएँ हैं जिनका परिमार्जन आवश्यक है, क्योंकि ऐसे पुरुषार्थ ही तो आचार्यत्व के लिए लिखे जानेवाले महानिबंधों के आधार होते हैं और जिन कृतियों के विवरण इस पुस्तक में समाविष्ट हैं वे ही रचनाएँ भविष्य में भी मिलने की भावना रहती है। अतः युग का तकाज़ा है कि भविष्य में भ्रम न फैले। न भूलों को दुहराने का ही प्रसंग उपस्थित हो।

मैं अन्वेषकों से निवेदन करना चाहूँगा कि भविष्य में वे कवि और कृति के संबंध में जो कुछ भी ज्ञातव्य बताना चाहें, अच्छा हो उन्हीं के शब्दों ही में बतावें ताकि बाद में किसी भी प्रकार की गलतफहमी न फैले।

आगे की पंक्तियों में आप देखेंगे कि स्वल्प प्रमाद से कितना बड़ा अनर्थ हो गया है।

इसमें ईसवीखाँ, पदुमनदास, भारामल्ल और निम्बार्क संप्रदाय के प्रथम वाणीकार श्री भट्टजी पर विस्तार से विचार किया गया है। गोविंद किंकर (जिसे रामसनेही संप्रदाय के प्रवर्तक रामचरण माना गया है, ठीक नहीं है) नागरीदास (इन पर मैं आगरा विश्वविद्यालयान्तर्गत हिन्दीविद्यापीठ की त्रैमासिक पत्रिका "भारतीय साहित्य", जनवरी, १९५६, में प्रकाश डाल चुका हूँ) सुखलाल (इन पर मैं ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित १८ त्रैवार्षिक विवरण के परिमार्जन में विस्तृत प्रकाश डाल चुका हूँ) और हरिराम या हरिराय आदि पर भी परिमार्जन अपेक्षित था, पर इन पर अन्यत्र यथा प्रसंग विचार किया जा चुका है।

४ **ईसवीखाँ**—इनका परिचय इन शब्दों में दिया गया है "ईसवीखाँ नाम नया मिला है। इन्होंने राजा छत्रसिंह की आज्ञा से "बिहारी सतसई" की "रस मंजरी" टीका लिखी है। ये सत्रहवीं सदी के कवि हैं। इन पर तथा इनकी रचना पर अभी अनुसंधान नहीं हुआ है।"

उपर्युक्त परिचय सर्वथा निर्दोष नहीं है। ईसवीखाँ का अस्तित्व समय सत्रहवीं सदी बताना तो और भी हास्यास्पद है। जब "बिहारी सतसई" ही सं० १७१९ अर्थात् अठारवीं सदी की रचना है तो ईसवीखाँ सत्रहवीं सदी के कवि हो ही कैसे सकते हैं? मूल रचना हुए बिना उस पर टीका लिखी भी कैसे जा सकती है? टीकाकार ने स्वयं इस टीका के अंत में जो प्रणयन समय दिया है वह सं० १८०९ है। टीका का प्रणयन राजा छत्रसिंह की आज्ञा से किया गया था। यह राजा नरवरनरेश रामसिंहजी (जो सं० १८३९ तक वर्तमान थे) के पिता थे। इस टीका का नाम "रसमंजरी" न होकर "रसचंद्रिका" है जो पृष्ठ ५९ पर मूल पाठ से स्वतः सिद्ध है।

ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित "हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों के अठारहवें त्रैवार्षिक विवरण" की संख्या १४ में इसका उल्लेख हुआ है और वहाँ पर भी "रसचंद्रिका" का ही विवरण दिया गया है।

प्रसंगवश मैं यहाँ पर अपने संग्रह की अन्यत्र अनुल्लिखित "बिहारी-सतसई" की दो प्रतियों का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ, संभव है भविष्य में ये उपयोगी प्रमाणित हों।

प्रति १—७३ पत्रात्मक यह प्रति प्रायः शुद्ध है, इसमें ७१६ दोहे हैं। प्रथम दोहा तो "मेरी भव बाधा हरो" है और अंतिम इस प्रकार है—

प्रथम देव वानी हुतो पुनि नर बानी कीन्ह।
लाल बिहारी कृत कथा पढ़ै सु होइ प्रवीन॥

इति श्री बिहारी सतसईया समाप्तं ।। संवत १७८८ वर्षे चैत्र मासे शुक्लपक्षे दशमी सोमवासरे बिहारीसतसईया समाप्त ।। लिखितं जती आसानन्द षरतरगच्छे ।। श्रीश्री पठन हेतवे। महाजन रामकृष्ण हेतवे ।।

इस प्रति में रचना सं० का दोहा इस प्रकार दिया है---

हुकुम पाइ जैसाह को हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारीसतसयी भरी अनेक सवाद ।।७१३।।
संवत ग्रह ससि जलधच्छत् छठि तिथ बासर चंद।
चैत्र मास तपस्विन पुस्तक आनन्द कंद ।।७१४।।

प्रति सं० २---८७ पत्रात्मक प्रति में दोहों की संख्या ७०६ है। प्रथम दोहा समान है। अंतिम इस प्रकार है---

जौ लों लसो न कुल कथा ठिक तौ लों ठहराइ।
देषै आवत देषही क्यौं ह्वै रह्यो न जाय।।

इति श्री कवि बिहारीदासकृत सप्तसतिका सम्पूर्णा जाता

ए दूहा सब सातसे सुकवि बिहारी कीन।
बेधक वानो अति सरस रसिकन कौं करि दीन।।

सं० १७९३ वर्षे मिती भादवा सुदी १३ सोमवासरे लिखितं जती लक्ष्मीचंदगणि। पारष श्री सगतसिंह पठन हेतवे।। श्री बीकानेर मध्ये।।

२०---पदुमनदास

ये कवि हजारीबाग जिले के रामगढ़ राज्य के खैर श्री दलेलसिंह (स्वयं राजा भी कवि थे) के आश्रित थे। इनकी कई रचनाओं का परिचय दिया गया है और विवरण की १८, ४०, ८१, ८२ संख्याओं में इनकी कृतियों का विवरण है। इस कवि का उल्लेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तेरहवें त्रैवार्षिक (सन् १९२६--२८) में भी आया है। इसमें कोई संदेह नहीं ये अच्छे कवि थे।

मुझे इनके विषय में केवल इतना ही विनम्र निवेदन करना है कि संख्या ४०--विवरण पृष्ठ ४७ पर "भाषा भूषण" को, केवल मन्नूलाल पुस्तकालय के सूचीपत्र के आधार पर ही इसे पदुमनदास की कृति बता दिया गया है जो सत्य नहीं है। टिप्पणीकार ने अपनी ओर से अवश्य संकेत दिया है कि "ग्रंथ में ग्रंथकार के नाम का पता नहीं चलता है।" जहाँ विवरण लेनेवाले विद्वान्, जिनके समक्ष-प्रति रहती है, ऐसी भयंकर भूल कर बैठते हैं, वहाँ केवल सूचीपत्र को आधारभूत प्रमाण मान लेना, जिसका कोई ठोस आधार न हो, और अपनी विवरणिका में उल्लेख कर देना एक विद्वान् के लिए तो अति साहस ही कहा जायगा, क्योंकि जैसा कि प्रारंभ में सूचित किया जा है कि ऐसे विवरण ही तो आगे चलकर गवेषणा के बनते हैं। अतः सावधानी अपेक्षित है।

सच बात तो यह है कि यह "भाषा भूषण" दास की रचना न होकर जोधपुर के महाराजा सिंह (समय सं० १६९५--१७३५) की सर्वस्वी है। विवरणकार ने इसका पाठ ऐसा भ्रष्टतापूर्ण लि जब तक पदच्छेद ठीक से न किया जाय तब तक भाव समझ में नहीं आते। कम से कम ऐसे प्राचीन के लिए पाठ का संयोजन समुचित होना नितान्त वांछ

जिस प्रति से "भाषा भूषण" का पाठ दिया है अपूर्ण प्रतीत होती है। यद्यपि अंतिम भाग के प्रतियों में मिलते हैं, तथापि संख्या का जहाँ तक पर्याप्त वैषम्य है। दोनों प्रतियों में पद्य संख्या है। पाठान्तर भी कम नहीं हैं। इन पंक्तियों के के संग्रह में इसकी दो प्रतियाँ सुरक्षित हैं परिचय विद्वत्परिचयार्थ यहाँ उद्धृत करना समुचित पड़ता है---

प्रथम प्रति १९ पत्रात्मक है और इसका काल सं० १८२२ है। इसकी पद्य संख्या २१० है प्रति राजस्थान के नराइणा नामक स्थान में प्रतिलि

दूसरी प्रति "आलम और शेख" के संग्रहीत के गुटके में हैं, जिसका प्रतिलिपि काल सं० १८ इसका आदि और अंत भाग इस प्रकार है।

विघन हरन तुम हौ सदां गणपति होइ सहाय।
विनती कर जोरें करौं दीजै ग्रंथ बताय।।१।।
जिहि कीन्हौ परपंच सब अपनी इच्छा पाय।
ताकौं हौं बंदन करौं हाथ जोरि सिर नाय।।२।।
करुनाकर पोषत सदा सकल सृष्टि के पांन।
ऐसे ईश्वर को हिये रहौ रैनि दिन ध्यांन।।३।।
मेरे मन में तुम रहौ ऐसो क्यौं कहि जाय।
तातैं यह मनुं आपसौं लीजै क्यौं न लगाय।।४।।

अन्त भाग---

अलंकार सब अर्थ के कहैं एक सौ आठ[1]।
करे प्रगट भाषा विषै देषि संस्कृत पाठ।।२

---

[1] सं० १८२२ वाली प्रति में आठ के स्थान पर पाठ है।

१६६३

शब्दालंकृत बहुत है अछिर कै संयोग।
अनुप्रास षट विधि कहै जै है भाषा जोग ॥२०७॥
ताही नर के हेत यह कीनौं ग्रंथ नवीन।
जो पंडित भाषा निपुन कविता विषै प्रवीन ॥२०८॥
लछिन तिय अरु पुरुष के हाव भाव सर धाम।
अलंकार संयोग तैं "भाषा भूषण" नाम ॥२०९॥
भाषा भूषण ग्रंथ कौ जो देषै मन लाय।
विविधि अरथ साहित्य रस समझै सबै बनाय ॥२१०॥

इति श्री मन्महाराजाधिराज राठौड़वंशावतंस जसवंत-सिंह विरचित भाषाभूषण समाप्तं ॥

वंदहि लहिर सु उपजै सागर नागर भूप।
फागुन कागुन तिथि लिखौ भूषन भाषा रूप ॥

२६——भारामल

इनकी "शील कथा" का विवरण देकर बताया गया है कि इसका रचनाकाल सं० १९५३ है। कवि का विशेष परिचय नहीं दिया गया है। संपादक को किसी खोज विवरणिका में नहीं मिला।

इनका विशिष्ट परिचय इस प्रकार है——

कवि भारामल का उल्लेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों के चौदहवें त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-१९३१) में हुआ है। वहाँ इनकी "मुक्तावली कथा" और "दर्शन कथा" का विवरण दिया गया है। परिचय देते हुए सूचित किया है कि "कवि फर्रुखाबाद के रहनेवाले थे।" पर इसका आधार अज्ञात है। कवि की एक और रचना "कर्म पच्चीसी" उपलब्ध है जिसमें इनका निवासस्थान "स्यौपुर" (ग्वालियर राज्यान्तर्गत) बताया है।

प्रकृति पच्यासी जाणि के करम पच्चीसी जाण।
सुंदर भारैमल्ल......स्यौपुर जांन ॥

राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची
भा०४, पृष्ठ ७६९

"प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के विवरण" में "शील कथा" का रचनाकाल सं० १९५३ दिया है। वह गलत है। कवि की अन्य प्राप्त रचनाओं के संवतों से यह समय साम्य नहीं रखता। इनकी अन्य कृतियें इस प्रकार हैं——१—कर्म पच्चीसी, २ चारुदत्त चरित्र (रचना काल सं० १८१३), ३ सप्त व्यसन कथा (रचनाकाल सं० १८१४) इसकी प्रशस्ति में कवि ने आत्मवृत्त विस्तृत रूप से दिया है, पर इन पंक्तियों के लिखते समय प्रति सम्मुख नहीं हैं) ४ दान कथा, ५ निशिभोजन कथा, स्फुट पद और विनतियाँ आदि।

४५——श्री भट्टजी

इनके विषय में प्रकाश डालते हुए सूचित किया गया है "आभास दोहा" के ग्रंथकार, निमादित्य के शिष्य थे, वृंदावनवासी, संवत् १६०१ के लगभग वर्तमान, ठाकुर जुगलकिशोर नामक किसी राजा के आश्रित कवि।

कवि परिचय की उपर्युक्त पंक्तियों में ऐतिहासिक दृष्टि से विरोधाभास परिलक्षित होता है। विद्वत्लेखिनी-प्रसूत तथ्य किसी भी नवशोधकर्ता को सहज ही भ्रमित कर सकता है। निम्न तथ्य ऊपर के उद्धरण से प्रकट होते हैं——

१ "आभास दोहा" श्री भट्टजी की रचना है।

२. कृतिकार निमादित्य के शिष्य थे और सं० १६०१ के लगभग वर्तमान।

३. ठाकुर जुगलकिशोर नामक किसी राजा के आश्रित।

सूचित भ्रामक तथ्यों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है——

१——ग्रंथकार का अर्थ समुचित रीति से न समझने के कारण कभी-कभी न केवल भ्रान्तियों का सृजन हो जाता है, अपितु नई उद्भावनाओं से भविष्य के अनुसंधित्सु भी गलत परम्परा दोहराते रहते हैं। इसके अनेक उदाहरण हिन्दी-जगत् में विद्यमान हैं। अतः परिष्कार वांछनीय है। अन्वेषक का प्राथमिक कर्त्तव्य होना चाहिए कि जिस संप्रदाय से जिस रचना का संबंध हो, उसका अधिक नहीं तो सामान्य ज्ञान तो होना ही चाहिए, ताकि विद्वज्जगत के समक्ष अपनी स्थिति हास्यास्पद न बने। यदि "आभास दोहा" का परिचय लिखते समय उपर्युक्त पंक्तियों को ध्यान में रक्खा जाता तो संभव है समस्या समाधान का रूप ले लेती। डा० साहब श्री धीरेन्द्रजी ब्रह्मचारी जैसे अध्ययनशील अनुशीलक से ऐसी भूल कदापि न होती।

"आभास दोहा" श्री भट्टजी की कोई स्वतंत्र रचना नहीं है। यदि निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुगामियों द्वारा प्रणीत हिन्दी की अन्य सम्प्रदाय संबंधी रचनाओं का परिशीलन किया होता तो अन्वेषक और सम्पादक भ्रमित न होते। न कल्पना प्रसूत तथ्य ही समुपस्थित करते। यद्यपि

इन पंक्तियों के लेखक का भी एतद्विषयक अध्ययन अत्यन्त सीमित है तथापि वह साम्प्रदायिक वाणियों और एवं निम्बार्क-परम्परा के उत्तरवर्ती हिन्दी के विद्वानों की कृतियों के आधार पर यह कह सकने की स्थिति में है कि "आभास दोहा" लगभग प्रत्येक वाणी में व्यवहृत हुआ है। १९वीं शताब्दी तक यह प्रणाली प्रचलित रही। वाणियों में जो बात गेयपद में कहनी होती है उसका आभास या सारांश कवि प्रथम दोहे में सूचित कर देता है। इसीलिए "आभास दोहा" की संज्ञा दी गई प्रतीत होती है। वर्ण्यतथ्य का पूर्वाभास ही "आभास दोहा" है। इस प्रथा के पुरस्कर्ता श्रीभट्टजी ही थे। अन्वेषक ने टिप्पणी में पृष्ठ ६ पर लिखा है कि "ग्रंथ का नाम यद्यपि आभास दोहा है। किन्तु सर्वत्र साधारण दोहा आया है, अतः यह नाम समुचित नहीं प्रतीत होता।" ऐसा लगता है कि अन्वेषक ने सोरठे समान आभास दोहे को भी दोहे का एक प्रकार मान लिया है।

"आभास दोहा" कथित कृति वस्तुतः श्रीभट्टजी द्वारा प्रणीत कृष्ण भक्तिपरक शृंगारिक पद हैं जिनका उल्लेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के पंद्रहवें त्रैवार्षिक विवरण" पृष्ठ ३२७, ३२८ संख्या २०४ पर मिलता है और इसीके अठारहवें विवरण में भी कतिपय पद संग्रहीत हैं। दूसरे विवरण की प्रति अपूर्ण थी, पर कुछ पद पूर्ण हैं। ये सब श्रीभट्टजी की वाणी का ही अंश हैं। तभी तो आलोच्य प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण, खंड द्वितीय, पृष्ठ ६ पर यह उल्लेख पाया जाता है "इति श्री आदिवाणी जुगलसत व्रजलीला पद सम्पूर्ण"। यदि अन्वेषक महोदय का ध्यान इस पंक्ति पर केन्द्रित हुआ होता तो कृतिका नाम "आभास दोहा" न देते।

कृष्ण-भक्ति के परमोपासक चार सुप्रसिद्ध सम्प्रदायों में निम्बार्क परम्परा सापेक्षतः अल्पअन्वेषण का विषय रहा है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि इसका साहित्य प्रकाश में कम आया है। ज्ञात और प्रकाशित साहित्य पर भी विद्वज्जगत का ध्यान कम ही गया है। व्रजभाषा और साहित्य के विकास और संरक्षण में वल्लभाचार्य एवं तदनुयायियों का मूल्यवान् योग रहा है वहाँ निम्बार्क-परम्परा ने भी सूचित साहित्य और भाषा को कम परिपुष्ट नहीं किया। संस्कृत-साहित्य की मैं बात नहीं करता, पर हिन्दी साहित्य के आधार पर निःसंकोच क सकता है कि श्री भट्टजी प्रथम कलाकार हैं जिन्हें कवि के आसन पर बैठाया जा सकता है। "युगल इनकी सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त कृति है जो महावा रूप को लिए हुए है। कवि ने इसकी रचना में, जैसे ऊपर कहा जा चुका है, क्रम रक्खा है एक दोहा, तद दोहे के ही विशिष्ट भाव के गेयपद में विस्तार। स दायिक सिद्धान्तानुकूल कृष्ण की मधुर भक्ति से ओतप्रोत है। तभी तो इसे "आदिवाणी" की सं अभिषिक्त किया गया है। निम्बार्क मतानुयायी र और कृष्ण की समान भाव से अर्चना करते हैं। इ परिणाम यह हुआ कि कृष्ण के जीवन की सर्वो घड़ियों—बाल-लीलाओं—का वर्णन निम्बार्क-परम्प नहीं मिलता। शृंगारप्रधान वर्णन में वियोगादि अवकाश कहाँ?

यह असंदिग्ध सत्य है कि श्री भट्टजी भाव, र और शृंगारिक दृष्टि से राधा-कृष्ण की छवि अं करने में परम निपुण शब्दशिल्पी हैं। कतिपय वि मत है कि इस "आदिवाणी" का वास्तविक वि भाष्य के रूप में इनके शिष्य हरिव्यासजी ने "महा रचकर किया। इसमें श्री भट्टजी का भी संके पर कट्टर अनुयायी इसे स्वीकार नहीं करते। हरि जी की वाणी और उनके समकालिक अन्य साहित्यि यथा समय प्रकाश डालने का प्रयास किया जायगा। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आदिवाणी की को ही महावाणी में अपनाया गया है।

सभा द्वारा प्रकाशित पंद्रहवें विवरण के पृष्ठ पर अन्वेषक ने ठीक ही लिखा है—"वृज के कवि राधा-कृष्ण का शृंगार वर्णन करने में ये (श्री भट्ट थे। आज दिन भी ब्रज के प्रमुख मंदिरों में जब का शृंगार किया जाता है, इन्हींके पद गाये जाते हैं। साम्प्रदायिक औदार्य की अपेक्षा कवि की काव्य- चमत्कार कहना अधिक उपयुक्त होगा।

१८-१९ वीं शती के निम्बार्क सम्प्रदाय के एक विद्वान् श्री वृंदावनदेव के शिष्य श्री गोविंदस्वा "हरिगुरु सुयश भास्कर" की उन्नीसवीं किरण में वाणी" के विषय में एक छप्पय प्राप्त है जो, इस है

१६६३

आदि बांनि श्रीभट्ट प्रभू की जगत उजागर।
महावांनी श्रीहरिव्यास देव की सब सुख सागर।।
श्री परशुराम देवकी प्रभुजू कौ बानी।
श्री वृन्दावनदेव श्री जू की जानी।
बांनी च्यारि प्रकार की सुनैं गुनैं करि हेत अति।
श्री गोविंद ता दास कौं युगल अपुन पोढ़ेंत सति।।

हस्तलिखित गुटका पत्र ९२ (मेरे संग्रह में)

२—"प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के विवरण" में श्रीभट्टजी को निमादित्य का शिष्य बताते हुए इनका अस्तित्व समय सं० १६०१ स्थिर किया है जो विरोधाभास का प्रतीक है। जहाँ तक इनके अस्तित्व का प्रश्न है, सं० १६०१ उपयुक्त हो सकता है, पर साथ में निम्बार्काचार्य के शिष्य होने की बात समझ में नहीं आती। अप्रासंगिक होते हुए भी निम्बार्काचार्य के समयादि पर विचार करना ही पड़ेगा, समस्या तभी समाधान का रूप ग्रहण कर सकेगी।

निम्बार्काचार्य का समय संदिग्ध है। इस सम्प्रदाय के अनुगामी इन्हें ५-६ शताब्दी में होने की बात कहते हैं, पर जब हम इन द्वारा मान्य सैद्धान्तिक पक्ष को सम-सामयिक साहित्य के प्रकाश में देखते हैं तो यह समय निम्बार्काचार्य के लिए उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। उदाहरणार्थ, वे रामानुजाचार्य द्वारा समर्थित ब्रह्मात्मैक्य प्रतिपादकसिद्धान्त का खंडन करते हैं जैसा कि केशव–काशमीरी के ब्रह्मसूत्र भाष्य (१-४-२३) से प्रमाणित है। दूसरा प्रबल कारण यह भी है कि इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण की पूजा समान भाव से प्रचलित हैं। "हरिवंशपुराण" "भागवत्-पुराण" और "विष्णुपुराण" में राधा का नामोल्लेख तक नहीं है। रामानुजाचार्य ने मायावाद का प्रबल खंडन किया है और निम्बार्काचार्य इस पर मौन हैं। इसी तथ्य के आधार पर पं० किशोरदास ने निम्बार्क के अनुगामी पुरुषोत्तमाचार्य रचित "दशश्लोकी" टीका की भूमिका में प्रकट किया है कि वह गौड़पादाचार्य के समकालिक थे। डा० रामकृष्णगोपाल भांडारकर ने अपने शैव और वैष्णव धर्म के प्रामाणिक इतिहास में प्रबल तर्क-युक्त शैली एवं सैद्धान्तिक पक्ष के आधार पर कहा है कि निम्बार्काचार्य निश्चय रूप से रामानुज के परवर्ती हैं। इस सम्प्रदाय की प्राप्त पट्टावलियों से भी (यद्यपि पट्टावलियाँ भी असंदिग्ध तथ्य समुपस्थित करने की क्षमता नहीं रखतीं) डा० भांडारकर के समर्थन को पुष्टि मिलती है। अतः सम सामयिक साहित्य एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष यह निकलता है कि निम्बार्काचार्य का अस्तित्व समय १२ वीं शताब्दी है। इतः पूर्व इनका अस्तित्व समय मानने में और भी कई साम्प्रदायिक आपत्तियाँ हैं, पर उन सभी का विस्तार करने का यह स्थान नहीं। विस्तृत परिचयार्थ इन पंक्तियों के लेखक का "हरिगुरु-सुयशभास्कर—एक अध्ययन" नामक निबंध देखना चाहिए।

इतने विवेचन के बाद यह बहुत स्पष्ट हो गया है कि निम्बार्काचार्य के समय से श्रीभट्टजी का समय (सं० १६०१) किसी भी दृष्टि से मेल नहीं खाता। अतः उनके शिष्य होने का सवाल ही खड़ा नहीं होता।

पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र—संपादित और सभा द्वारा प्रकाशित "हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों के त्रैवार्षिक विवरण" (सन् १९४१—४३) के पृष्ठ १५० पर सूचित है कि "वृन्दावन में कहते हैं कि श्रीभट्टजी अल्लाउद्दीन के समय में वर्तमान थे"। अलाउद्दीन का समय १४वीं शती है—और श्रीभट्टजी का १७वीं सदी का प्रारंभकाल या सोलहवीं का उत्तरार्द्ध।

निम्बार्क संम्प्रदायमान्य साहित्य और आचार्य परम्परानुसार श्रीभट्टजी सुप्रसिद्ध विद्वान् और निपुण शास्त्रार्थी आचार्य केशवजी काशमीरी के शिष्य और महावाणी के प्रणेता हरिव्यासजी के गुरु थे। वृंदावनदेवाचार्य-रचित "सम्प्रदाय स्तोत्र" और इनके शिष्य श्री गोविंद स्वामी प्रणीत "हरिगुरुसुयश भास्कर" के निम्न उल्लेख उपर्युक्त मत का समर्थन करते हैं—

तस्य केशव काशमीरी शिष्यो विद्या निकेतनः।
यवनाचार्य संजेता नेता दिग्विजयी कुरुः।
श्रीमच्छ्रीभट्टनामानं स्वपट्टे भिषिक्तवान्।
महाभावेन केनापि राधिकाकृष्णयोःरहः।।

सम्प्रदाय स्तोत्र

× × ×

तिन के शिष्य अमित मुखी जांनौ केशव काशमीरी भट मांनौ।
दिग्जेता नेता सबकेरे अनगन पंडित जिनके चेरे।।
भक्त गुणागण सबके नायक वंदौं तिनके पद सुख दायक।
तिनके शिष्यन में अति लायक बंदौं श्रीभट प्रेम प्रदायक।
देखि प्रगट दंपति सुखदायक दिग्जेता रसिकन के नायक।।
तिन कौ यश हरत अघशूला बंदौं तिनके पद सुखमूला।
तिनके शिषि अनगन रस सागर जिनमें मुखि हरिदास उजागर।।

× × ×

तिनके भट्ट केशव कशमीरी दिग्जित नाम।
सर्व गुरुगवंत सो महा सुविद्या धाम॥
अनगन संत समाज सब दिना तातसकी लार।
बहुरि संग चतुरंगिनी सेना साथ उदार॥
पुरसोत्तमपुर में भुजा दरसाई शत पांच।
तिनकी आज्ञा भारती सुर नर मांनत सांच॥
भू-मंडल सब शिषि करी हरी अविद्या रास।
सकल गुणा गुण तासके भये दास के दास॥

× × ×

तिन के शिषि श्रीभट्ट प्रभु करुना सिंधु उदार।
सकल रशिक सिरदार सौ आदि गिरा करतार॥
जिन कीनौं परगट अधिक वृंदा विपिन विहार।
निर्गुन त्रिगुन परात पर नित दंपति आगार॥

आलोच्य विवरण के पृष्ठ ६ पर सूचित है कि "हस्तलिखित प्रति के पृष्ठ ६५ पर भट्ट केशवप्रसाद का नाम—नित अभंग केलि हित हिय में राग।—देखत भट श्री केशवप्रसाद॥" उपर्युक्त केशवप्रसाद से तात्पर्य केशव काशमीरी से ही है। संपादक यदि केशव की खोज के लिए प्रयत्न करते तो परिणाम संतोषजनक आता।

आचार्य केशव[१] काशमीरी का उल्लेख "सम्प्रदाय, प्रदीप" में गदाधर भट्ट ने किया है और सूचित किया है कि ये वल्लभाचार्य (सं० १५३५—१५८७) के समकालिक थे। अतः केशव का समय स्वतः स्थिर हो जाता है, और इनके बाद श्री भट्टजी के समय पर अधिक परिश्रम करने जैसा कुछ शेष रह नहीं जाता। विद्वानों ने इन्हें ३०वें पट्टधर बताया है, पर डा० भांडारकर ने ३३वें पट्टधर के रूप में दामोदर गोस्वामी को बताया है जिनका समय सं० १८०६, ईस्वी १७५० है। जब कि मेरे संग्रह की निम्बार्क—पट्टावली और सम्प्रदाय स्तोत्रानु ३३वीं पीढ़ी में (निम्बार्क को छोड़कर) हरिवं हैं और निम्बार्काचार्य को सम्मिलित किया जा नारायणदेव का स्थान आता है जो परशुराम के शि और वृन्दाबनदेव के गुरु थे। इन्हींके समय में कि के समीप "सलेमाबाद" में इस मत का पर्याप्त प्र नहीं हुआ वल्कि राजकीय परिवार भी उसे सम्मा दृष्टि से देखता था।

संतप्रवर नाभादासजी ने अपनी "भक्तमाल" गुरुशिष्य केशव और श्रीभट्ट का उल्लेख किया है। सामयिक अन्य कृतिकारों ने भी इन दोनों का अपनी नाओं में आदरणीय स्थान दिया जो उनकी तात्का महती प्रतिष्ठा का सूचक है।

३—आलोच्य विवरणिका में श्रीभट्ट को जुगलकिशोर नामक राजा का आश्रित कवि बता जिसका आधार यह दोहा है—

जनम-जनम जिन के सदा हम चाकर निशि
त्रिभुवन पोषक सुधाकर ठाकुर जुगल कि

इकताला

जुगल किशोर हमारे ठाकुर,
सदा सर्वदा हम जिनके हैं जनम जनम घर जाये चाकर

साहित्य से परिचय रखनेवाला साधारण पाठ सरलता से समझ सकता है कि उपर्युक्त पद्य का क है? इन शब्दों में कवि ने अपने आराध्य की स्तुति न कि किसी राजा की। कृष्ण-भक्ति से ओतप्रोत जीवन रहा हो, परम की प्राप्ति ही जिनका काम्य हो, आत्मानन्द के लिए जो साहित्य सृष्टि करता हो, किसी संसारलिप्त राजपुरुष की सेवा में कैसे रह है? और पद्यों से भी वह तथ्य कहाँ प्रतिस्फुटित है जिसकी कल्पना विवरण में की गयी है। स्पष्ट कह तो वे किसी के आश्रित नहीं थे अपितु भगवद्भ थे।

---

[१] इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में शारदा पीठोत्पन्न श्री केशव काशमीरी के शास्त्रार्थों और अन्य जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर प्रमाणिक प्रकाश डालने वाला "केशवऋषि चरित्र" विद्यमान है। संस्कृत की यह लघु रचना मूल्यवान् ज्ञातव्यों का भंडार है।

स्वर्गीय भोलादत्त पाण्डे और उनके पत्र

श्री चारुचन्द्र पांडे

आज से लगभग ७७ वर्ष पूर्व कुमाऊँ के एक उच्च ब्राह्मण परिवार में पं० भोलादत्तजी का जन्म हुआ, जिनके साहस और प्रतिभा की गाथा कुमाऊँ ही नहीं, पूरे देश के लिए गौरव की वस्तु है। सीमित साधनों वाले युवक अपनी हिम्मत, सूझ-बूझ और कठिन परिश्रम से क्या कर सकते हैं, विद्या का सच्चा प्रेम मनुष्य के अन्दर कैसी तीव्र लगन पैदा कर देता है, आज के विद्यार्थी को देश के लिए क्या करना है—इन बातों को सीखने में स्वर्गीय पांडे जी का जीवन पथ-प्रदर्शक का काम करेगा। अपने देश की आजादी के लिए वे कितने चिन्तित थे, इसका आभास भी उनके इन पत्रों द्वारा मिलेगा जो उन्होंने अमेरिका से अपने घर वालों को लिखे थे।

जिला अल्मोड़ा में पाटिया के नारायण पांडे वंश-शाखा में त्यूनरा वाले पं० विश्वेश्वर पांडेजी के पुत्र केवलानन्दजी और उनके जमुनादत्तजी हुए। इनके घर में सन् १८८५ में विदेश यात्रा के पथ प्रदर्शक पं० भोलादत्तजी का जन्म हुआ। भोलादत्तजी जमुनादत्तजी के तृतीय पुत्र थे। पं० गौरीदत्त पांडे 'गौर्दा', कुमाउंनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि, इनके बड़े भाई थे। भोलादत्तजी ने बचपन में अल्मोड़े के संस्कृत स्कूल में कुछ शिक्षा पायी, उसके बाद वे अपने पिताजी के साथ देहरादून चले गये और वहीं मिशन स्कूल में पढ़ने लगे। १९०३ में पुनः अल्मोड़े से ही एंट्रेंस परीक्षा पास करके कुछ दिन इन्होंने इण्टर कक्षा में भी पढ़ा। पहिले से ही इनके विचार विदेश यात्रा करने के थे। साथियों के बीच प्रायः इस इरादे की चर्चा भी किया करते थे, किन्तु लोग इनकी बात पर हँसते थे क्योंकि उस ज़माने में सीमित साधन और सामान्य स्थिति का एक सामान्य बालक जापान जाने की बात करे! इनके साथियों ने इन्हें 'भोलिया, जापान' कहकर चिढ़ाना शुरू किया, अर्थात्—'भोलिया तूं पान' (घर की ऊपरी तिमंजिल) में जा।

बचपन में ये बड़े चंचल स्वभाव के थे; ड्रामा, खेल-कूद, गाने-बजाने में बड़ी रुचि रखते थे। देशहित की भावना, स्वतंत्र विचार-शक्ति, दया-भाव, स्वयंसेवक बनने की प्रवृत्ति इनके भीतर बचपन से थी। बुद्धि बड़ी प्रखर थी। सभाचतुरता, निर्भीकता तथा कष्टसहिष्णुता के उज्ज्वल गुण छुटपन से ही इनमें वर्तमान थे।

अपने ही उद्योग से ये इस प्रयत्न में लगे रहे कि किसी प्रकार विदेशों की यात्रा करके कुछ उपयोगी ज्ञान प्राप्त किया जाये और व्यावहारिक विज्ञान की शिक्षा लेकर अपने देश के उद्योग को नये प्रकाश से जगमगाया जाये। अपनी सूझबूझ से इन्होंने देहरादून के रईसों से परामर्श करके बंगाल के एक एसोसिएशन से लिखा-पढ़ी शुरू कर दी और थोड़ा सा द्रव्य बटोरकर १९०६ में जापान के लिए चल पड़े। इस समय उनकी अवस्था पूरी २१ वर्ष भी नहीं थी। दो वर्ष तक जापान रहने के बाद १९०७ के अन्त में अमेरिका जाने की सोची। जहाज के कष्ट से रास्ते ही में अस्वस्थ हो गये, ज्वर खाँसी होने से क्षय की आशंका बतायी गयी, फलतः अमरीकी तट पर उतरने से मना कर दिया गया। बड़ी मिन्नत के बाद १ माह तट पर ही रहने का आदेश हुआ। किन्तु १ माह में भी जब स्वास्थ्य नहीं सुधरा तो अधिकारी डाक्टर ने जापान लौटने पर विवश किया। जापान में ६ माह रहकर स्वास्थ्य बना लिया। घरवालों को कुछ नहीं बताया, न मालूम स्वावलंबन की किस अदम्य शक्ति से अपना खर्च कैसे पैदा किया, कुछ नहीं बताया। कुछ कुछ हाल 'माडर्न रिव्यू' और 'सरस्वती' पत्रिका के 'मेरी रामकहानी' शीर्षक लेखों से ज्ञात हुआ। ६ माह बाद फिर अमरीका पहुँचे। डाक्टर ने जाँच की, ठीक पाया और समुचित प्रमाणपत्र देकर अमरीकी भूमि में प्रवेश करने दिया। वहाँ अध्ययन के लिए एक संस्था में नाम लिखाया। इस बीच मेहनत मजदूरी करके या किताबें बेचकर अपना गुजारा किया और विद्याध्ययन किया। बाद में घर से कुछ सहायता भेजी गयी। १९१० नवम्बर में औरगन विश्वविद्यालय से कृषिशास्त्र की विशेष योग्यता प्राप्त कर डिग्री लेने के उपरान्त फ्रांस, इँगलैंड, इटली, जर्मनी होते हुए भारत पहुँचे। बम्बई में पं० नारायणकिशन जोशी तथा भवानीदत्त जोशी वकील के यहाँ उतरे, उन्होंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। वहाँ से इलाहाबाद पहुँचे। स्कूल, कालेजों के छात्र और बहुत से अन्य सज्जन स्टेशन पर पहुँचे हुए थे, जिनमें पं० गंगादत्त पांडे उल्लेखनीय हैं। उन्हीं के परिश्रम से ऐड्रेस तैयार हुआ, स्वागत का प्रबन्ध हुआ, स्टेशन पर पुष्पवृष्टि हुई, जै-जैकार के नारे लगे और बैंड बाजे के साथ जलूस निकला। भोलादत्तजी ने एक संक्षिप्त भाषण भी दिया। दूसरे दिन बड़ी शानदार गार्डन पार्टी का आयोजन किया गया। तार तथा पत्रों द्वारा स्वागत सत्कार समारोह की खबरें इधर-उधर पहुँचीं। कुमाऊँ के पुरातनवादियों में खलबली मच गयी कि विदेश-यात्रा से दूषित व्यक्ति का यह कैसा सम्मान! घोर आन्दोलन छिड़ा, प्रायश्चित्त होने लगे, स्पर्श-दोष, दृष्टि-दोष मिटाये जाने लगे और बहू, बेटी, सास-ससुर, दामाद, भाई-भाई एक दूसरे से छूटने लगे।

इलाहाबाद से गंगास्नान, गोदान करके भोलादत्त जी अपने बड़े भाई गौरीदत्त व चचेरे भाई कृष्णानन्द वकील साहब के साथ काशी स्नान करने गये। काशी में श्री गिरीशचन्द्र जोशीजी के यहाँ ठहरे। जोशीजी के रसोइये ने नौकरी छोड़ना स्वीकार किया, पर विदेश-यात्रा से भ्रष्ट व्यक्ति के लिए रोटी पकाना स्वीकार न किया। इस बीच पं० केशवदत्त शास्त्रीजी से मिलकर काशी से व्यवस्थापत्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया तो ज्ञात हुआ कि वहाँ भी श्रीप्रकाशजी की विदेश-यात्रा के सम्बन्ध

में बड़ा आन्दोलन हो रहा है और सिवाय पं० सुधाकर द्विवेदी के अन्य लोग विदेश-यात्रा के मामलों में अनुदार हैं। बनारस से ये लोग लखनऊ होते हुए देहरादून पहुँचे। पं० भोलादत्तजी के पिता स्टेशन पर आये थे। श्री महन्त लछमनदासजी के नेतृत्व में लोग जमा हुए, पुष्पमालायें पहनायी गयीं और फूलों की वर्षा से भूमि भर गयी शहर में जलूस निकला। भोलादत्त जी पैदल ही चले, सजे हुए हाथी, घोड़े, बग्घी आदि साथ चलीं। अपने घर आये, नौबत बज रही थी बंदनवारों से घर सुशोभित था। देहरादून के लाला बलदेवसिंह ने लड्डू मँगवाकर भोलादत्तजी के हाथ से उसी वक्त बँटवाये। सभी ने सहर्ष वह प्रसाद स्वीकार किया, सिवाय भोलादत्तजी के अधिकांश पर्वतीय रिश्तेदारों के, जो दुम दबाकर भाग गये, केवल तीन चार व्यक्ति ही इनमें साथ रहे, शेष अपना धर्म बचाने खिसक गये। अल्मोड़े में भोलादत्तजी को जाति से बाहर करने के लिए घर-घर घूमकर दस्तखत भी कराये गये। खान-पान बन्द होने लगा, बहू-बेटियों का मायके ससुराल जाना रोक दिया गया, यहाँ तक कि जो भोलादत्तजी के पक्ष का समर्थन करता वही समाज-बहिष्कृत हो जाता। किन्तु उदार वृत्तिवाले लोगों ने उनका साथ भी दिया।

इस बीच उनके पिता ने हरिद्वार के प्रसिद्ध पंडित लोगों से भोलादत्तजी के प्रायश्चित्त करने हेतु व्यवस्था-पत्र लिया और उनसे माघ (१९१०) महीने में नियमानुसार प्रायश्चित्त कराया गया। जब उन्होंने सिर मुंडन करके हुलिया न बिगाड़ने की विज्ञप्ति की तो पिताजी ने कहा-'दुनियाँ कहाँ मानती है?' भोलादत्तजी पिता की आज्ञा न टाल सके। नाई सिर मूँड़ता जाता था, भोलादत्तजी रोते जाते थे। इन लोगों को अपने सम्बन्धियों से अनेक कटु वचन सुनने पड़े, एक ने तो यहाँ तक कह डाला था कि जिस जहाज में भोलादत्त आ रहा है, वह डूब जाता तो अच्छा होता।

इसके बाद भोलादत्तजी नैनीताल आये। बड़ी हलचल मच गयी। अल्मोड़ेवालों को तो उनके घुराड़ी से इधर आने में धर्म भ्रष्ट होने का भय होने लगा। असहयोग की बड़ी-बड़ी तैयारियाँ होने लगीं। पुरातनवादियों का रोष पहले गौरीदत्तजी पर टूटा, गौरीदत्तजी की अनुपस्थिति में उनके बाल-बच्चों को घर से बाहर निकाल कर उनका असबाब भी बाहर फेंक दिया गया। सर्दी का मौसम था, बूंदाबाँदी हो रही थी। गौरीदत्तजी ने बाजार से लौटने पर अपने परिवार की दुर्दशा देखी——बच्चे बिलख रहे थे, गठिया से लुंज पत्नी बरामदे में ठंड से अकड़ रही थी। बड़ी मुश्किल से एक रात नीचे के बरामदे में रहने की इजाज़त दी गयी। नौकर को सिखाया गया कि इन अछूतों के साथ मत रहो। गौरीदत्तजी की विधवा बहू को, जो रोटी-पानी परिवार को देती थी, परिवार त्यागने का आदेश दिया गया। आसमान के तारे गिनगिनकर रात काटी। दूसरे दिन एक किराये के मकान में जाने का निश्चय हुआ, जिसका बयाना बहुत पहले दिया जा चुका था। किन्तु यहाँ भी मुहल्लेवाले इकट्ठा हो और हो-हल्ला मचाने लगे कि अछूतों को मुहल्ले में कैसे दी जा रही है। गौरीदत्तजी ने वीरतापूर्वक 'अदालत खुली है, जो हो सके कर लो; जब मकान मा कब्जा दे रहा है तो तुम रोकनेवाले कौन होते हो?' कमरे में घुस गये। धर्म-धुरंधरों की इस नीचता को सुनकर भोलादत्त जी ने अल्मोड़े में कदम भी नहीं और नैनीताल से ही देहरादून वापस चले गये। इस एक सभा हुई, उसमें यह तै हुआ कि गौरीदत्त को प्राय कराकर समाज में ले लिया जाय किन्तु भोलादत्त को गौरीदत्तजी से जबर्दस्ती प्रायश्चित कराया गया उन्होंने यही कहा, 'तुम कितने ही प्रायश्चित्त करा गौरीदत्त अपने भाई को हरगिज नहीं छोड़ेगा।' बीच शादी-विवाह में गौरीदत्तजी को निमंत्रण देने मनाही कर दी गयी, सार्वजनिक टंकी से उनके पानी पर आपत्ति उठायी गयी और उन्हें पग पग पर लांछित गया। १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हजारों संख्या में कूर्माचली विदेश गये, लौटे, किन्तु कि प्रायश्चित कहाँ का तिलपात्र। पर भोलादत्तजी के सन्निपात में यही बड़बड़ाते थे कि हाय! मैंने भो प्रायश्चित्त हेतु आज्ञा माँगी, प्रायश्चित्त कराया, फिर दुष्टों ने मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया। समाज के धर्म को कोसते हुए २ जून १९११ को उनके प्राण उड़ गये। अर्थी सजी, देहरादून के कई स्त्री-पुरुष हुए, पांडेजी के इष्ट-मित्र दुम छिपाकर अर्थी के पीछे श्मशान तक चले। चंदन की चिता में देह रखी किन्तु श्मशान पर लकड़ी देने को उद्यत नातेदारों रोकते हुए भोलादत्तजी ने गर्जना की 'खबरदार जो पिता की अर्थी को छुवा तो! बीमारी में सुख पूछने नहीं आये!' ये गीदड़ चुपचाप दूर हट गये। तेरहवीं के भोज में न जाने हेतु देहरादून के ब्राह्मण चौधरियों भड़काया गया किन्तु महन्त साहब समझदार और उदार उन्होंने कहा 'नहीं सब जायेंगे, मैं खुद जाऊँगा, मेरे द के कारिन्दे, पुरोहित, दीवान सब उनका प्रसाद पा

भोलादत्तजी की मृत्यु रहस्य ही है। १९११ से काश्मीर में ये सेरीकल्चर के डाइरेक्टर नियुक्त हुए करीब २८½ वर्ष की उम्र में जम्मू में उनका देहान्त गया। न कोई पत्र छोड़ गये, न संदेश। शाम को आये, आराम चौकी पर बैठे। आध घंटे बाद नौकर खाने की घंटी दी कोई उत्तर नहीं। बार-बार घंटी पर भी जब भोजन के कक्ष में नहीं आये तो शंका नौकर ने बैठक में जाकर देखा, गर्दन लटकी है, प्राण उड़ गये हैं। घरवालों को तार दिया गया, दाहादि प्रबन्ध हुआ। पोस्टमार्टम में घातक विष निकला।

उस जमाने में एक अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न युवक के उद्योग को उन्नत करने की नई विधियाँ विदेशों से कर स्वदेश लौटा था, किन्तु विधाता ने उसे छीन लि इस वीर युवक के पत्रों से आज के नवयुवक कुछ

इस आशा से उनके पत्रों के कुछ अंश उद्धृत किये रहे हैं। ये पत्र उन्होंने अपनी विदेश-यात्रा के दौरान थे। पत्र पहाड़ी (कुमाउंनी) पत्र-शैली में लिखे हैं, जिनका हिन्दी भाषान्तर करके दिया जा रहा है। पत्र हिन्दी में लिखा हुआ भी मिला है और एक अन्य शैली में। उसके सारांश का अनुवाद कर दिया गया है। मूलपत्र श्री हेमन्तकुमार पांडे, वैद्यराज अल्मोड़ा भतीजे) के पास सुरक्षित हैं।

श्री भोलादत्त पांडे यद्यपि विज्ञान की शिक्षा हेतु कठिनाइयों को सहते हुए विदेशों में रहे किन्तु उनका ध्येय भारत की आजादी था। उनके प्राप्त पत्रों में कों को इसकी झलक अनेक स्थलों पर स्पष्ट रूप से सकेगी। संभवतः हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारी दल में बराबर रहे हों; इस विषय में उनके अन्य पत्र व्यवहार पता लगने पर अधिक विस्तार से कुछ कहा जा सकेगा। उक्त परिचय उनके बड़े भाई श्री गौरीदत्त पांडेजी छोड़े गये विवरण के आधार पर तैयार किया गया है।

(१) माता, पिता, भाई को

C/o General Delivery
Berkeley, California
U. S. A.
Dated 20th March 08

....वहुत दिन पूर्व माताजी का पत्र भी आया था, र का पत्र पढ़ते समय जी भर आता है, इसी कारण जल्दी-जल्दी में स्वयं पत्र नहीं लिखता। पत्र लिखते तुम लोग याद आ जाते हो....आप सब न मालूम हैं चिन्ता रहती है। इतना ही दुख अधिक है कि में मैं आपका सहायक न हो सका। मैं यहाँ बड़ी तरह कालेज पढ़ता हूँ। भोजन का खर्च चलाने घंटे रोज काम करता हूँ और आज एक माह से यहाँ सरकार के Immigration office में Interpreter काम मिला है। हफ्ते में एक रोज दुभाषिये काम के हेतु २, ३ घंटे के लिए जाता हूँ और रु० मिल जाते हैं, अगर माह में ४ रोज मेरी जरूरत तो ६० रु० हो जायेंगे। किन्तु इस स्थान के लिए कई कोशिश कर रहे हैं। आगे क्या हो, कुछ निश्चित । यदि यह कार्य बना रहा तो कष्ट दूर हो जायेगा पढ़ने में आसानी होगी। यदि यह काम अधिक दिनों नहीं रहा तो आगामी गर्मियों की छुट्टियों में यहाँ देहात में जाकर कहीं काम करूँगा जिससे अगले वर्ष फीस आदि चल जाय। किन्तु काम गर्मियों में जो ता है, वह अधिकतर फल-फूल तोड़ने, खेती-पाती का होता है, अतएव सख्त होता है। किन्तु सब जायेगा। घर में तो हम अपने हाथ से पानी तक नहीं सकते थे मगर यहाँ सब किस्म का काम कर सकते हैं कोई इज्जत नहीं जाती।

पहिले पहल कालेज जौइन करते वक्त एक माह तक कोई काम नहीं मिल सका। फीस देने के बाद पास में कुछ नहीं बचा। तो कुछ दिन रूखी रोटी खाने के बाद पानी पी लेता था मगर आजकल एक वक्त १ रु० तक का खाना खा लेता हूँ। मामूली दर्जे प्रतिमाह खर्च यहाँ १०० रु० तक का है, कपड़े वगैरह अलग हुए।

हिन्दुस्तान के हाल अखबारों में पढ़ते हैं, वहाँ के सब अखबार हमारे पास आते हैं। हम सोलह छात्र भारतीय हैं। बरक्ले शहर, जहाँ यूनिवर्सिटी है, सैनफ्रेंसिस्को से ४५ मिनट का मार्ग रेल व जहाज से है और मैं वहाँ हफ्ते में एक दफा जहाज में चीन-जापान से आनेवाले लोगों में दुभाषिये का काम करता हूँ। तहाँ आजकल होली के दिन होंगे। मुझे दो वर्ष हुए इसी महीने घर छोड़कर आया था। परमात्मा की कृपा हुई तो किसी दिन विद्या हासिल करके मैं घर लौटूँगा, चिन्ता न करें।—

भोलादत्त

(२) माता-पिता को

C/o General Delivery
Berkeley, California U. S. A.
30th March 08

......आप मेरे कष्ट को सोचकर दुखी होते होंगे, मगर मुझे कोई बड़ा कष्ट नहीं है। मैं काम करता हूँ, मगर बिना काम किये दुनिया में कुछ होता नहीं और फिर काम करने की आदत भी पड़ गई है, इसलिए कुछ कष्ट ज्ञात नहीं होता, अतएव मेरे हेतु दुख न कीजियेगा। और यदि आपका दुख मेरे आपके सम्मुख न होने के कारण हो तो यह उचित नहीं है। आप विद्वान् हैं। मैं आपको शिक्षा नहीं दे सकता मगर इतना ही कह सकता हूँ कि हिन्दू धर्म का अनुसरण करनेवालों को मन की शांति के निमित्त कोई कठिनाई नहीं है। सुख दुख तो हमारे सामने कोई महत्त्व नहीं रखते। हम लोग दुख को भी सुख समझ सकते हैं, मोह का हम शीघ्र त्याग कर सकते हैं, समय हमारे लिए विलम्ब वाला नहीं है। सांसारिक मोह को वे लोग मन में स्थान देते हैं, जो केवल इसी संसार में विश्वास करते हैं.....। यह संसार केवल एक वस्तु से उद्भूत है किन्तु यहाँ की सब वस्तुएँ एकत्र नहीं रहतीं, सब भिन्न-भिन्न स्थानों में बँट जाती हैं, तथापि विद्वान् सब वस्तुओं को एकत्र और अपना ही समझते हैं। यदि मैं आपको अपने सामने और आप मुझे अपने पास समझें तो मन शान्त हो सकता है। हम लोग संसार में भिन्न-भिन्न कर्म करने के लिए आये हैं। सब अपने-अपने कर्मों का फल भोगने के लिए जन्म लेकर आये हैं; तो फिर कैसे उसे छोड़ सकते हैं ? अमीरी-गरीबी ये सब केवल इसी संसार की हैं। सन्तोष मुख्य वस्तु है, हमारा हिन्दू धर्म संतोष की शिक्षा देता है। दुनिया की कोई वस्तु संतोष देने वाली नहीं है। जिसे जितना अधिक प्राप्त होता है, वह उतनी ही और अधिक इच्छा करता है। सबसे उत्तम यह है कि हम अपने-अपने स्थान को ऊँचा करने का प्रयत्न करें और संतुष्ट रहें। यदि आपको कोई

आपत्ति हो तो जरूर लिखियें। मेरी हालत ऐसी तो नहीं है कि कुछ आर्थिक मदद कर सकूं मगर इतना है कि कहीं रात में दो-एक घंटा कुछ काम करके महीने में १५ रु० माहवार तक कभी-कभी भेज सकूंगा।

—भोलादत्त

(३) घर को

C/o General Delivery
Berkely, California U. S. A.
May 1st 08

.......आजकल मेरे इम्तिहान चल रहे हैं, ५ ता० मई को समाप्त होंगे। छुट्टियों में मेरा इरादा काम के लिए जाने का है। अभी निश्चय नहीं किया है कि क्या काम करूँगा, मगर जो भी मिलेगा करना होगा। बाहर देहात में जाकर किताबें बेचने का इरादा किया था किन्तु उस काम में सफलता की आशा कम देखकर कोई और काम करने की सोच रहा हूँ।

यहाँ आजकल वसन्त ऋतु है। यह जगह न गर्म है, न ठंडी, मौसम सदा एक सा ही रहता है। गर्मियों में सिर्फ कुछ गरम होता है, मगर अल्मोड़े से ज्यादा नहीं। इस ओर फलफूलों की बहुतायत है। यह जगह शिकागो की तरह ठंडी नहीं है। वहाँ की भाँति यहाँ इमारत और तिजारत भी नहीं। मगर यहाँ मजदूरी ज्यादा है, काम ज्यादा मिलता है, इसी कारण यहाँ आया। आबहवा भी उत्तम है। एक ओर बर्कले है, दूसरी ओर सैनफ्रेंसिस्को, बीच में समुद्र की खाड़ी है। जगह शिकागों से भी महँगी है। सिर की हजामत के एक बार के सवा रुपये लगते लगते हैं, एक कमीज की धुलाई आठ आना है, शिकागो में पाँच आना थी। मगर यहाँ १ घंटा काम करने की मजदूरी १० आने १२ आने है। ढाई आने से कोई चीज कम में नहीं आती, सिवाय पोस्टकार्ड लिफाफे के। ताँबा कहीं नहीं चलता। स्वयं खाना बनाने पर २५) माहवार में हो जाता है। एक सूट २०) तक ले लेती है। एक कमरे का किराया भी २५) माह है। सबसे घटिया जूते की जोड़ी के दाम ९) हैं। फीस साल भर में १००) से १८०) तक लगती है, उसे जुटाने का यत्न गर्मियों की छुट्टियों में करना होता है।

......आपने दुख प्रकट किया है, सो मैं पढ़ाई पूरी करके जल्दी घर आऊँगा। अब कोई विघ्न नहीं होगा, सिलसिला जम गया है। वहाँ लौटकर देश का कुछ उपकार कर सकूंगा ऐसी उम्मीद है।........ रोज मुड़वाने के झगड़े से बचने के लिए मैंने फ्रांसीसी दाढ़ी रख छोड़ी है, सो देखकर पहचानियेगा। फोटो सस्ती थी, इसलिए ले ली थी, अभी नहीं आई, आने पर भेजूंगा।......इस मुल्क में हम शून्य जीवन व्यतीत करते हैं, यहाँ कोई सुख हमारे लिए नहीं है। विलायत, फ्रांस आदि से यहाँ का जीवन भिन्न है। यहाँ आकर मेरा स्वभाव एकान्त में रहने का हो गया है। बहुत कम बोलता हूँ, दो एक दिन तक खोलता।

(४) भाई को

C/o General D
Berkley, California U
Dated 11th May

....मगर एक बात जरूरी है कि बच्चों ड़ने का एक मुख्य कारण यह होता है कि उन तालीम दी जायेगी और जैसी उनकी संगति हो ही असर पैदा होगा। दोष तो जो बिगड़ जाता का होता है और उसका जन्म खराब होता है, की उत्पत्ति के कारण को रोकने से भी काम च है। ऐसे बच्चे को मेरी समझ में ऐसी जगह प चाहिए, जहाँ पर खूब सख्ती से गुजर करनी पड़े तंगी के साथ रहना पड़े। मैं बच्चों को मार सुधारने में यकीन नहीं करता, मारपीट करना काम है। हमारे बच्चे बिगड़ते हैं तो कारण हम भले नहीं थे। हमारा चाल चलन, रंग-ढंग और आदत यदि अति उत्तम हो, हममें अदब, का की पाबन्दी का बन्धन यदि हो, तो कोई मजा बच्चों पर ऐसा खराब असर पड़ सके। मगर ऐ में जब कि हिन्दुस्तान के लोगों में ऐसी बातें कम पाई जाती हैं, सबसे उत्तम यह है कि बच्चे बोर्डिग हाउस में भेज दिया जाय और उसकी लाड़-प्यार सब त्याग दिया जाये।

....हमारा इम्तिहान हो चुका है और माह की छुट्टियाँ हैं। ५, ७ दिन में यहाँ से जाकर किताब बेचने का इरादा कर रहा हूँ। और भी मिलते हैं, फलफूल तोड़ने आदि के। का काम भी मिलता है। मगर यदि अवसर अ तो किताब-बिक्री में अधिक धन मिलने की सं घर-घर फिरना पड़ता है और मुश्किल होता है कामयाब होने की बात है।....मेरा अगर पता वक्त जरूरत के मालूम करना हो तो Hindi student's Assosiation, Berkley Ca दर्याफ्त किया जा सकता है और Registrar Caifornia, Berkley California को लिखने किया जा सकता है।

(५) माता-पिता को

C/o General D
Berkley, Californi
Dated 1 No

......पिछले पत्र ने आपको व्याकुल सो पत्र लिखने के बाद में पछताया। मैंने कु

६३

वह पत्र लिखा था, मेरी दशा कुछ खराब नहीं है। ई समय दुख का भी होता है, पर ज्यादा नहीं रहता। अब बिलकुल ठीक हूँ और अपनी पढ़ाई में लगा हूँ। ...धैर्य धारण कर थोड़े दिन और काट लीजियेगा र फिर मैं आपके चरणों में आकर उपस्थित होऊँगा। Entomology अर्थात् कीड़े-मकोड़ों की विद्या और ticulture अर्थात् फल-फूल की खेती, बाग-बगीचे की ी सीख रहा हूँ और यह हिन्दुस्तान में बहुत दायक है। साथ में अन्य बातें भी सीखने की कोशिश रता हूँ।.......

....यहां कालेज में प्रातः आठ बजे से संध्या ६ े तक काम रहता है और फिर पढ़ना पड़ता है। एक ट भी फुरसत नहीं मिलती।.:..

मा! तेरी बहुत याद आती है, तुझे देखने की बहुत ा हो गई है। थोड़े दिन और हैं, सो धैर्य कर रखा मेरी कोई चिन्ता न करना, मैं बहुत अच्छा हूँ। ा लिखवाया हुआ पत्र भेजना।

—भोलादत्त

(६) भाई को

C/o General Delivery
Berkley California U. S. A.
Dated 4th June 09

.....और जो पराधीनता के कारण किसी प्रकार न्नति नहीं की जा सकती लिखा है, सो सत्य ही है। नु उन्नति करने के लिए भी वस्तु की आवश्यकता होती से प्राप्त करने की यदि चेष्टा नहीं की जाये, तो ीनता भी प्राप्त नहीं होती, उन्नति भी नहीं होती; ि स्वाधीनता उन्नति के लिए आवश्यक और उन्नति ीनता के लिए आवश्यक है। हमसे क्या हो सकता है र हमारा क्या वश चलता है, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। कुछ भी जिससे छोटी वस्तु या बड़े कारण की सहायता कती है, उसके निमित्त चेष्टा करनी चाहिए। जितने े हम लोगों के व्यर्थ और मूर्ख कार्यों में, उदाहरणार्थ ह, आतशबाजी आदि कामों में लगाये जाते हैं, उसकी दि यदि विद्यालय खोल दिया जाये, या कोई छोटा-बड़ा ा काम किया जाये, तो क्रम-क्रम से दशा बदली जा ी है। ऐसे बहुत से काम हैं।—की होली कोई अच्छी है। हर एक आनन्द, क्रीड़ा, हास्य की एक व्यवस्था दि उसके बाहर चला जाये तो दशा पतित हो जाती ऐसे स्थान पर हो सके अपने किसी बच्चे को नहीं जाने चाहिये। उसके मन पर एक ऐसा खराब असर पैदा ा है जो कभी ऊँचे विचार पैदा नहीं होने देता और मनुष्य न, चित्त व शरीर का भी क्षय कर देता है। 'अतर' दम लगाकर परस्त्रियों की ओर देखने की लालसा सात दिन तक क्षमा कर दी जाय तो उसके असर ाद में जो अपराध होंगे, वे अपराधी का ही नाश ं करेंगे, किन्तु तमाम देश के हेतु विनाशकारी होंगे। क्योंकि देश प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि कुबुद्धि पर निर्भर करता है। क्या इस काम को सुधारना छोटा काम है? और क्या आप इसकी चेष्टा नहीं कर सकते? क्या जो लोग इस प्रकार के अनेक कामों को छोड़ देंगे उनका धर्म नष्ट हो जायेगा? धर्म क्या रोटी भात में उपस्थित है या अच्छे काम करने में?

पाटिया में डाकखाना खुला, सुन्दर हुआ, अखबार पत्र आदि का सुभीता रहेगा।

—भोलादत्त

(७) पिता को

C/o General Delivery
Berkeley, Cal. U. S. A.
4 Jun 09

.........आबहवा यहाँकी बहुत उत्तम है। आजकल यहाँ वर्षा की ऋतु है, मार्च के माह तक वर्षा रहती है, फिर नवंबर तक नहीं होती। हम हिन्दुस्तानी छात्रों ने बर्कले में एक मकान किराये पर लिया है। उसमें दस-बारह जने रहते हैं, अपने ही हाथ से खाना पकाते हैं और अपना सब काम आपस में मिलकर करते हैं।.....

भोलादत्त

(८) चाचा को

C/o Gen. Delivery
Berkeley, Cal. U. S. A.
Jun. 30th. 09.

.....दुःख और सुख तो तुल्य वस्तुएँ हैं। जिसको तुम या मैं दुख या असफलता समझते हैं, उसे कदाचित् तुलना करने पर हम सुख या सफलता कह सकते हैं। मनुष्य की दशा उसके मन के ऊपर निर्भर करती है...:। हो सकता है मेरे उदास मन की छाया मेरे पत्र पर पड़ गयी हो। लम्बे समय से मेरे मन पर उदासी छा गयी है, कारण उसका ज्ञात नहीं हो पाता। मेरा मन न बहुत बोलने को करता है, न कोई खेल-तमाशा देखने को। न किसीसे मिलने पर हर्ष होता है, न अपने दुख को देखकर शोक। चचा, मुझमें पहिले से बहुत परिवर्तन हो गया है। यदि किसीको मैं अविनयी या कुचरित्र देखता हूँ तो मन को अति खेद हो जाता है। तुमने ईश्वर पर विश्वास करने के लिए लिखा है, यही तो एक बड़ी भारी शंका मुझे है। मैं अपने को नास्तिक भी नहीं कह सकता क्योंकि मैं विश्वास करता हूँ कि कोई मुख्य कर्ता या कारण हो सकता है, तथापि मेरा विश्वास कुछ विचित्र हो गया है। मैं अर्द्धांश वेदान्त, अर्द्धांश बौद्ध मत को सिद्ध समझता हूँ। ईश्वर की सहायता क्या कर सकती है, यदि हमारे कर्म ही ठीक नहीं। प्रत्येक कार्य हमारे कर्म के ऊपर निर्भर करता है। ईश्वर पर विश्वास करना ठीक है किन्तु यदि हम अपने पर विश्वास कर सकें तो

फिर ईश्वर पर विश्वास करने का क्या प्रयोजन ? प्रत्येक मनुष्य अपनी मुक्ति (इस जगह में हो या इसके बाद) का प्रयत्न करता है। यदि हमारे कर्म ठीक हों, तो हमें किसीका भय नहीं। आज के कर्मों का फल आज नहीं तो किसी न किसी समय मिलता ही है। सहसा शुभ-चरित्र अर्थात् morality in the strictest sense और सुकर्म हमारे रक्षक हैं। बहुत दिनों से मेरे मन में अशांति है, मैंने पहिले भी लिखा था। जगत् में मनुष्य ईश्वर-ईश्वर करके...कोई क्रिस्तान हाय हाय करके मरता है, कोई दाल-भात का धर्म करते छुआछूत से मरते हैं; किन्तु इनमें कितने असत्य, दगाबाजी आदि से बचने की कोशिश करते हैं, यह उनका ही मन जानता है। सबसे मुख्य बात है हम पहले इस जगत् का भला करें, पहले इस जगत् को समझें पहले इस जगत् का फर्ज अदा करें, फिर उस जगत् की सोचें। जो मनुष्य इस जगत् में, जिसे वह जानता है, कुछ नहीं कर सकता, तो वह उस जगत् में क्या कर सकता है, जिसे वह कुछ भी नहीं जानता ? ईश्वर क्या प्रार्थना स्वीकार करता है, या हमारे कर्म हमें राह बताते हैं ? .....तथापि मैं अपने को शुद्ध हृदय व धार्मिक समझता हूँ, इसमें तर्क को स्थान नहीं।......मैं अपने को ऐसे कार्य में तैयार कर रहा हूँ, जिससे मैं लौटने पर देश को लाभ पहुँचा सकूँ। १½ वर्ष के भीतर मेरे मन की पढ़ाई पूरी हो जायेगी। किन्तु मेरी नीयत फिरंगी सरकार की नौकरी करके अपनी स्वाधीनता को बंधन में डालने की नहीं है। डिगरी यदि चाहूँ तो पढ़ाई ३ वर्ष की और करके पा सकता हूँ, मगर वह पढ़ाई Elective subjects की होगी मैं Practical subjects खतम कर लौटने पर फायदेमन्द हो सकूँगा।....मैं इन १½ वर्षों को इस तरह व्यतीत करूँगा जिसमें Practical knowledge प्राप्त हो। इस समय तक मैंने Agriculture तथा horticulture सीख लिये हैं, आगे Dairy Industry और Breeding of Farm animals इत्यादि सीखना निश्चय किया है। तहाँ लौटकर मैं Dairy factory तथा Apiary सुगमता से खोल सकूँगा और horticulture में भी तरक्की कर सकूँगा।... मुझे अपने को फायदा पहुँचाने या नाम कमाने का लोभ नहीं है, देश की सेवा करने का स्नेह है, किसी प्रकार कर सकूँगा। हास्य यदि हो भी तो थोड़े ही दिन रहेगा।

'सरस्वती' अगले मास में पहुँचेगी, अत्यन्त हर्ष हो रहा है बहुत कृपा हुई। देश छोड़ने के बाद हिन्दी का एक भी सुन्दर पत्र पढ़ने में नहीं आया। उदास मन को जितना सुख मातृभाषा का सुन्दर लेख पढ़ने में प्राप्त होता है, उतना किसी वस्तु से नहीं मिल सकता। देश लौटकर हिन्दी पढ़ने का विचार कर रहा हूँ।

P.s. ...मुझे नौकरी करने की इच्छा नहीं है, इस कारण डिग्री का लोभ भी नहीं। भारतवर्ष को Practical विद्या की अधिक आवश्यकता है, इसी कारण अपने को Theoretical मनुष्य बनाना नहीं चाहता। —भोलादत्त

(९) भाई को

C/o Gen. D
Berkeley, Cal. U
30 Jan.

....तथापि प्रश्नों का उत्तर फिर लिख

(१) यहाँ १२ छात्र हिन्दुस्तान के हैं १ मद्रासी, २ पंजाबी और एक मैं।

(२) मेरा पता यदि पूछना हो तो Uni California के रजिस्ट्रार को लिखकर मिल

(३) विद्यार्थियों के नाम हैं:—

J. C. Nag, S. N. Guha, D. N. Guh Das, A. Laskar, S. Bose, K. C. Das K. Ram shatrctin (Madras) Sant Lal G Devi Dayal (Punjab)

(६) हमारी गुजर यहाँ नाना प्रकार के से होती है। ज्यादातर खानसामागिरी का का है। ३ घंटे रोज काम करके खाना मिलता है का, और यदि शनिश्चर के दिन घर साफ करने मिल गया तो घंटे में ।।।) के हिसाब से या ॥) से मिलता है, पर काम कभी-कभी मिलता है। कभी तंगी भी अधिक रहती है, कभी-कभी गुजर चल जाती है।

(७) मैं एग्रिकल्चर पढ़ रहा हूँ। एग्रि शुमार हैं:—

Horticulture फल, फूल, बगीचा कृषि
Dairy Industry मक्खन, दूध चीज इत्या
Animal Husbandry अर्थात् गौ (जा
सुधारना)
Agricultural Chemistry मिट्टी में
से क्या होगा
Agronomy अनाज की खेती
Agricultural Engineering खेती की
Plant Pathology पेड़ों की बीमारी
Economic Entomology कीड़े-मकोड़ों
(खेती के नाशकारी कीड़े)
Apiculture मधुमक्खी

इत्यादि-इत्यादि करीब १०० प्रकार की सम्बन्धी विद्याओं जसे कि Poultry husband पालना, मुर्गी पालना, अंडों का व्यापार हेतु Bacteriology का ज्ञान, Horticul Botany, Physics का ज्ञान जरूरी होता है

(१०) बहिन को

C/o Gen. D
Berkeley, Cal.
Feb. 2

......माँ मेरी याद में अश्रुपात कर

ती है—यह पढ़कर मन में अधैर्य हुआ...अब मैंने च्चय किया है कि शीघ्र लौट जाऊँगा.....डेरी के ावा मैंने गाय, बैल, भेड़, घोड़ा आदि जानवरों को ुस्त तथा उन्नत करने की विद्या सीखी है। ऐसी य पैदा की जा सकती है, जो एक साल में चार हजार मक्खन दे सके और ऐसी भेड़ पैदा की जा सकती है ससे ज्यादा ऊन पैदा हो। ......मधुमक्खी पालन ही क ऐसी विद्या है कि एक बक्स मधुमक्खी के छत्ते से एक ल में २०० से ८०० पौंड तक अर्थात् १०० सेर से ०० सेर तक शहद निकाला जा सकता है....इसी एक रोबार को अच्छी तरह जमाने में आरंभ करने से लाभ ने तक मेरे २, ३ वर्ष का प्रयत्न लगेगा।....

भोलादत्त

(११) भाई को

Gen. Delivery
Berkeley, Cal. U. S. A.
21st May 09

(अंगरेजी पत्र के मुख्य अंश का अनुवाद)

य भाई

आपने श्री पन्नालालजी के सम्बन्ध में जो लिखा उसे पढ़कर प्रसन्नता हुई—विशेषकर उस बातचीत जो आपसे और उनसे हमारे समाज के सुधार के प्रश्न र हुई।

× × ×

मैं जाति में लिए जाने के सम्बन्ध में उदासीन हूँ। जाति में रहने या न रहने से विशेष अंतर नहीं पड़ता तु मैं यह अवश्य सोचता हूँ कि अब वह समय आ ा है कि जब हमें अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए क्रिया- ह हो जाना चाहिए। हम सड़े-गले रीति-रिवाजों के ा नहीं रह सकते। यदि आप हिन्दू सभ्यता का प्राचीन व फिर लाना चाहते हैं तो हमें अपनी संस्थाओं को ना ही उदार बनाना होगा जितना वे उस युग में थे नका हम गुणगान करते हैं। बिना सोचे समझे पुरानी तों से चिपके रहने में कोई लाभ नहीं है। एक ही न उठ सकता है, और वह मेरे विवाह का है। किन्तु समान एक वेदान्ती और राष्ट्रीयतावादी के लिए कोई समस्या नहीं है। जब मैं सारे भारत को एक ता हूँ (और भारत की प्रत्येक सच्ची संतान को उसे ही मानना चाहिए) तो क्या मैं जिससे चाहूँ उससे न्ध करने को स्वतंत्र नहीं हूँ?

भोलादत्त पांडे।

(१२) चाचा को (हिन्दी में)

Seattle (Washington)
6th Sept. 09

चचा,

आपका हिन्दी भाषा में लिखित पत्र मिला, पढ़कर जो हर्ष हुआ, उसको प्रकट नहीं कर सकता। मन में सोचता हूँ कि ऐसी अच्छी भाषा मुझे भी लिखना आ जाती तो क्या ही आनन्द न होता। .....मैं ढाई महीने से सियाटल शहर में आया हुआ हूँ। यहाँ पर एक बड़ी भारी प्रदर्शनी हो रही है, उसका चित्र एक पोस्टकार्ड में आपको भेजा था, आशा है आपको मिला होगा। .....मैं इस स्थान में द्रव्य उपार्जन का अवकाश देखकर आया था और दो महीने के अन्दर खाने-पीने के अतिरिक्त लगभग २५०) के कमाया भी था....कुल ३०) के करीब यहाँ से ओरेगन जाने का किराया लग जायगा। अब इसी फिकर में हूँ कि वहाँ जाकर कैसे चलेगा... जिस स्थान में काम करता था वहाँ से ३ हफ्ते में १०० रुपया और कमाने की आशा थी पर वहाँ झगड़ा हो जाने के कारण काम छोड़ देना पड़ा।.... और मेरा इरादा अपना भोजन आप ही पकाकर खाने का है जिससे ३०) या ४०) माहवार में ही निर्वाह कर सकूँ......किन्तु इस वर्ष अच्छा हूँ और यदि आराम के साथ पढ़ना मिल जायेगा तो सब आन्तरिक दुर्बलता दूर हो जायेगी।

मैं आजकल एक लेख 'सरस्वती' के लिए लिख रहा हूँ। विषय "अमेरीका में हिन्दू छात्रों का जीवन" है। शीघ्र ही समाप्त कर सचित्र भेजने वाला हूँ। आशा है छप जाकर आपके हाथों भी पड़ेगा।

मुझे अब से पत्र इत्यादि नीचे लिखे पते पर भेजा कीजियेगा।

B. D. Pande esqr.
Oregon Agricultural College
Corvallis, Ore; U. S. A.

.....................आपका प्रिय
भोला

(१३) पिता, माता, भाई को

C/o General Delivery
Stanford University
Stanford, California

.....सब लोगों को कालेज खुलने पर हर्ष हुआ रहता है, मगर मेरा मन उदास रहता है, मेरे मुख पर रंज की छाया रहती है। किताबें खरीदने के लिए भी पास में पैसे न हों, तो यहाँ किससे व्यथा कही जा सकती है? मन ही में रखनी होती है। मेरे सिवाय और करीब-करीब सब जनों को कुछ न कुछ व्यय उनके घर या मित्रों से मिल जाता है, पर मुझे कहीं से भी मिलने का भरोसा नहीं रहा। कपड़ा, लत्ता, खाना, पीना जैसे भी हो उद्यम करके चल जाता है। अपने को जैसे भी हो वैसे चला लेता हूँ......मगर समय सदा एक सा नहीं रहता। बिना कष्ट के कुछ प्राप्ति नहीं होती। —डिप्टी कलेक्टरी के उम्मीदवार हैं, ऐसा सुना, हर्ष

भी हुआ, दुःख भी। दुख इसलिए कि पराधीनता ही रही, पत्र में नहीं लिख सकता। हमारे पत्र तहाँ पहुँचने से पूर्व खोले जाते हैं, तुम्हारे ऊपर आपत्ति आ सकती है। इतने ही से समझ लेना।

.....मुझे हिन्दी भाषा का बहुत शौक हो गया है मगर 'बंगवासी' के सिवाय और कोई पत्र पढ़ने में नहीं आता, यदि तहाँ से हिन्दी 'सरस्वती' जो इंडियन प्रेस इलाहाबाद से निकलती है, मेरे लिए भिजवा देंगे तो अच्छा होगा। कदाचित् यहाँ भेजने का एक साल का ५ रुपया करीब लगे। सो वहाँको मेरा पता भेज देना और पूछकर मेरी तरफ से जमा कर देना, वे मेरे वास्ते भेजते रहेंगे। हम लोगों को अपनी भाषा पहिले जाननी चाहिए। अँगरेजी तो हमारी मातृभाषा नहीं है और दूसरे की भाषा को मातृभाषा बनाना मूर्खता है। अँगरेजी सीखना भी उत्तम है, मगर अपनी भाषा पहिले, फिर दूसरे की भाषा।

एक बात और लिख भेजना। तहाँ अर्थात् युक्त प्रदेश में लोगों के खयालात अभी तक फिरंगी सरकार के विषय में वैसे ही हैं, या बदल गये हैं। बंगालियों को साहस हो—इत्यादि। भारतवर्ष में भारतवासियों का अधिकार अर्थात् किसी और का क्यों? ऐसा हो—ये बातें क्या तहाँ फैली हैं? तुम्हारी चिट्ठियाँ खोली नहीं जातीं, तुम जो चाहो लिख भेजना इशारे में मालूम कर लूंगा। युक्त प्रदेश का एक भी समाचारपत्र पढ़ने में नहीं आता। इस जगह में हम कुल ३ हिन्दुस्तानी हैं। दो बंगाली हैं और एक मैं हूँ, सो अब ज्यादा खबर कागज भी नहीं मिलते। और जो भय्या आपने लिखा है कि हमको किसीके भले बुरे से क्या काम—सो भला बुरा किसका है? सिर्फ बंगदेशियों का नहीं—मेरा और तुम्हारा और तमाम भारतवासियों का। हमारे घर में शत्रु लूट करे और हम भीरु होकर चुप बैठे रहें, यह धर्म कैसा? अब चुप बैठने के दिन नहीं रहे।

और जो आपने लिखा है कि हिन्दुस्तान लौटने के समय शिखा आदि बढ़ा लेना चाहिए, सो तुम यह ख्याल न करना कि मैं क्रिस्तान हो गया हूँ। मैं तुमसे भी अधिक हिन्दू हूँ मगर तुम्हारे मेरे मत में फर्क यह है कि मैं वेदान्त मत का अनुचारी हूँ, और वेदान्त मतवालों को इन सब पाखंडों से निवृत्ति है। वेदान्त के सिवाय और सब मतों को हम लोगों को इस समय उड़ा देना चाहिए। पौराणिक मत की मान्यता ठीक नहीं है, और वेदान्त के सिवाय और दूसरा मत इतना ऊँचा नहीं है। हमारे शास्त्रों में नीच मूर्तिपूजा से लेकर ऊँचे मत तक हैं, सो ऊँचे को ग्रहण क्यों न किया जाये। मूर्तिपूजा सिर्फ मूर्खों के लिए ठीक है, मगर जब ज्ञान हो गया तो उसे छोड़ देना चाहिए। मैं अद्वैत मार्ग का प्रशंसक हूँ। कर्म और कर्म के फल और पुनर्जन्म जानने पर सब सिद्ध हो जाता है! हमारा कुटुम्ब पंडितों का कुटुम्ब है और यह आशा की जाती है कि फिर एक बार और हम लोग प्राचीन ऋषियों के समान उन्नति करें और उसी उच्च पद तथा अपूर्व मार्गों की प्रा मैं सोचता हूँ, आप भी वेदान्त मार्ग के ही अ यद्यपि पौराणिक संसर्ग में बद्ध होकर भ्रम में प आपको ज्ञान देने लायक नहीं किन्तु यह सोचकर चित् आप विचार करके मुझे शिक्षा देंगे और पूर्ण करेंगे, यह लिखा और आशा करता हूँ कि आ मेरे विचार मिलेंगे।

.....मा, तूने अपने मुख से बोलकर लि चिट्ठी एक भी एक साल से नहीं भेजी। तेरी लि चिट्ठी पढ़कर मन को सबसे अधिक हर्ष होता है अपने सामने लिखवाकर भेजेगी। रात अधिक हो समय ज्यादा लिखने को नहीं मिलता, सो फिर

—मो

(१४) परिवार को

बरक्ले कै

अमे

.....गर्मियों में काम करना अवश्य है। काम में दो हफ्ते से हूँ, अभी कुछ नहीं मिला सो खा न कुछ मिल जायेगा.... जीवन संग्राम में बिना सफलता नहीं मिल सकती.... सदा धैर्य रखना माँ को इतना घबराना नहीं चाहिए। कुछ दिन जापानी मिला था, जो सात वर्ष से यहाँ पढ़ रहा है भी माँ बाप हैं, कभी उसे अधैर्य नहीं दिखाते। धैर्य के समान कुछ नहीं है। हिन्दू मा को पुत्र की बड़ी इच्छा रहती है, किन्तु प्रत्येक वस्तु का होता है। अपने समय पर सब कार्य ठीक हो जाते हैं मन को समझाना चाहिये।....

(१५) बिखरा पत्रांश

....ज्ञात होता है इसकी रुचि चित्रविद्या है। यदि ऐंसा हो तो किसी चित्र विद्यालय (Art में भेजना उत्तम होगा.... भारत में बहुत चित्रकारी कर सकते हैं। इस विद्या की ओर दिया गया है किन्तु सभ्यता की बढ़ती के साथ की भी उन्नति होनी चाहिए। यदि उसका दि तो जरूर मौका दिया जाय। कई बार खासकर ऐसा होता है कि लोग यह नहीं जानते कि उनक काम के लायक है। उसे किस विद्या का स्वाद कौन गुण ऐसे हैं, जिनमें अवसर मिलने पर कर सकता है। यदि इसकी स्वाभाविक रुचि में हो तो निस्संकोच उसी राह लगाइएगा। कुछ सीखने के बाद दो एक वर्ष के लिए इटली है, वहाँ रहने का खर्च भी ज्यादा नहीं लगता। ही यह आवश्यक है कि थोड़ा बोध गणित विद्या हास का हासिल हो। हिन्दी भाषा में पूर्णता धर्म की शिक्षा हो (कथा पुराण नहीं) बल्कि गीता इत्यादि।

.....यदि मनुष्य का आचरण ठीक हो तो मन को मिलेगा, और मन में बल हो तो कोई काम कठिन हीं। इसलिए उसको धमकाना नहीं चाहिए कि तू स्कूल नहीं गया, तूने ऐंट्रेन्स भी पास नहीं किया, तू कुछ नहीं। यदि मनुष्य का आचरण ठीक हो और उसमें देश-क्ति हो और दुनियाँ में क्या होता है यह जानने की विद्या और अपना पेशा हो तो कोई परवाह नहीं वह स्कूल हो या नहीं—उतना ही काफी है।—का छोटी अवस्था न पढ़ने का दोष उसका नहीं, हमारा व स्कूल का है, उसकी बुद्धि का नहीं बल्कि पढ़ानेवाले की बुद्धि का और संगति का है।

जहाँ मैं आजकल हूँ वह वही जगह है जहाँ पहले जहाज उतरा था। यह कैलिफोर्नियाँ के उत्तर में है, यहाँ शहर की आबादी २½ लाख के करीब है, सूर्य अस्त यहाँ आजकल ॥ बजे होता है ९॥ बजे तक चाँदनी रहती है, सूर्योदय बजे होता है। जगह ठंडी है। यहाँ से और उत्तर जाने पर अलास्का देश है जहाँ १२ बजे सूर्यास्त होता है, चार उदय होता है।

भोलादत्त

(१६) भाई को

C/o Gen. Delivery
Berkeley, California U. S. A.

मेरा मतलब समाज-विरुद्ध चलने का नहीं है। में रहकर समाज की उन्नति करना, आपका मेरा का धर्म है।...और केवल उन रीतियों को उच्च स्वरूप देने की प्रबल आवश्यकता है। मुझे पद की आकांक्षा भी नहीं है। किसी प्रकार तहाँ देश-सेवा करने योग्य हो जाऊँ, यही एक मन में है....।साल भर में हँसी भी नहीं आई। आशा हूँ कि सफल होने पर तहाँ आकर खूब हँसूँगा।....

प्रिय भ्रातृ भोला

(१७) बिखरा पत्रांश

....डिग्री के वास्ते ठहरने में कोई अधिक लाभ नहीं। आशय Practical विद्या जहाँ से भी हो वहाँसे तहाँ लाभदायक बनने का है। सरकारी नौकरी तो कभी नहीं करूँगा। सो ऐसी बात सीखने में हूँ जिससे कोई एक पैसा तक न दे तो भी अपने आप थोड़े धन, सौ रुपये से ही बहुत काम चला सकूँगा।...... लौटने का खर्च तहाँ से न भी मिले तो सोचता हूँ खतम करके कुछ काम करके सात-आठ महीने में टने का खर्च कमा सकूँगा।

मुझसे जितनी हो सके देश की सेवा करूँगा किन्तु चाहता हूँ। एक Apiculture में इतना शहद मधु पैदा किया जा सकता है, जिसमें यदि लगे रहें यहाँ लोग लखपती हो जाते हैं। तहाँ के लोग बड़ी बड़ी चाहते हैं, किन्तु छोटी वस्तुओं का भी लाभ नहीं समझते।....

अल्मोड़े में बुनने का स्कूल खुला, हर्ष हुआ।

भोला

(१८) माता, पिता, भाई को

1041, Waveland ave.
Chicago Illinois U. S. A.
9th Dec. 07

.....पत्र आपके इतनी मुद्दत में आते हैं। महीने में एक पत्र तक आप नहीं देते, मेरा भी मन लिखने को कैसे चाहेगा? और साथियों को हफ्ते-हफ्ते घर से पत्र मिलते हैं। जब सब लोग पत्र पाते हैं मैं मन ही मन तुम लोगों की याद करके दिल में दुखी होता हूँ। तुम सब मेरे विरुद्ध क्यों हो गये हो कुछ मालूम नहीं। मैं यहाँ अकेले एक कमरे में रहता हूँ और अपने लिए एक बड़ी दूकान पर, जहाँ कि ५ हजार मर्द और औरत काम करते हैं, काम करता हूँ। रात में पढ़ने के लिए जगह दिक्कत की लगी, अब आदत पड़ गयी है।

....अमेरिका ने दुनिया की कल कार्रवाई और तिजारत में इतनी तरक्की कर ली है कि तमाम इँगलैंड, जर्मनी फ्रांस सब पछाड़ दिये हैं। यहाँकी एक-एक चीज इतनी बड़ी और आलीशान है कि मनुष्य देखकर हैरान हो जाता है। एक शिकागो शहर जहाँ मैं आजकल हूँ, इतना बड़ा है कि कुछ कहा नहीं जाता। एक-एक गली की लंबाई २० मील तक है आबादी २४८०००० है। सिर्फ एक फैक्ट्री यहाँकी इतनी बड़ी है और इतने पियानो बाजे बनाती है कि फ्रांस की जितनी सब फैक्ट्रियाँ मिलकर बनाती हैं और शिकागो में पिछले साल इतने कपड़े बनाये गये कि जितने से तमाम स्पेन के आदमियों को कपड़ा बँट सकता है, विगत वर्ष यहाँ इतने जूते तैयार किये गये, जिससे मेक्सिको के हर आदमी, औरत, बच्चे को जूते पहनाये जा सकते हैं। यहाँके ठेकेदारों ने १ लाख मकान बनाये। इस शहर की केवल नयी इमारतें एक पंक्ति में रखी जायें तो एक छोर से दूसरे तक ५० मील तक चली जायेंगी। यहाँ एक बैंक की इमारत है, जिसमें १० हजार टन लोहा लगा है। और आठ हजार बिजली की रोशनी से ज्योतिमय की जाती है। पहिली मशीन जो कृषि विद्या उपयोगी बनायी गयी; दुनिया में पहिले शिकागो में बनी है। सब किसान लोगों ने कहा—फैक्ट्रियों के लिए इंजन बने, सवारी के लिए रेल बनी, हमारे लिए कुछ नहीं? तमाम खेती दराती व हँसली से काटनी पड़ती है—सो एक आदमी ने खेत काटने की मशीन बना दी।.... मैंने जब खेत में काम किया तो देखा यहाँका हल आसान पहिये के साथ चलता है और हाथ भर जमीन खोद देता है। काटने की मशीन आठ फुट खेती की बालों को एक साथ काटती चली जाती है, साथ ही साथ गट्ठर बाँधकर फेंकती चली जाती है। इसके दाम ५००) हैं, घोड़ों से खींची जाती है।

शिकागो के आदमी बिजली की सी फुर्ती रखते हैं। औरत मर्द बिजली के माफिक काम करते हैं और जो यहाँ रहता है, वह भी वैसा ही हो जाता है। आपने यहाँके अनाज का भाव पूछा है, सो इस देश में करीब-करीब सभी वस्तुएँ पैदा होती हैं। यह मुल्क बहुत बड़ा है। यहाँ के दक्षिण में रुई, नारियल भी पैदा होते हैं। चावल १ सेर ।।) में मिलता है, मक्खन १ पौंड १) में, आटा १० पौंड ४८ पैसे में, केले की फली ।।) दर्जन, अंगूर ।-) सेर, सेव २० पैसे के ३, बीन ≡) पौंड, मटर की दाल =)।। पौंड, सिवईं ।≡) पौंड, किसमिस ।।) पौंड, नाशपाती सुखाई हुई ।≡) पौंड, काफी ।।-) पौंड, चाय सीलोन की नंबर अव्वल २) पौंड। दूध बहुत सस्ता है, हिन्दुस्तान के बराबर सस्ता। मिर्च-मसाले हर किस्म के मिलते हैं, मगर लोग नहीं खाते। धोबी एक कपड़ा धोने का ।-) लेता है, कालर चार पैसे, रूमाल दो पैसे, जुराब जोड़ी =), बनियान =)।। यहाँ लोग कोट पैंट काले या धीमे रंग के पहनते हैं। सफेद पतलून धोने का १) लगता है। सिर के बाल बनाने के एक वक्त के ।।।), दाढ़ी बनाने के ।।) लगते हैं। एक कपड़ा सूट बनाने में ९०) लगता है और मोल लेने में ५०)। हम तो मोल ही ले लेते हैं। और चीजों की बनिस्बत खाना सस्ता है मगर घर में नहीं बनाने वालों को बहुत महँगा पड़ता है। होटल में ४०) माहवार पड़ जाते हैं, घर पर २५) में हो जाता है। मैं एक कमरे का किराया २५) महीना देता हूँ, और सुबह अपने हाथ से खाना बनाता हूँ। जिस घर में मैं रहता हूँ उसकी मालकिन ने मुझे अपने किचन में पकाने की इजाजत दे रखी है, मगर पकाने का समय नहीं मिलता, प्रातः दूध, मक्खन, रोटी और केक खाकर काम पर चला जाता हूँ, रात और दोपहर में बाहर खाता हूँ। यह मुल्क दुनिया भर में महँगा है, यहाँके बनिस्बत इँगलैंड बहुत सस्ता है। जर्मनी में ३०) या ४०) में यहाँ से अच्छी तरह हो सकता है। यहाँ के लोग बहुत घमंडी हैं और अकेले खानेवाले हैं। यह मुल्क बहुत अमीर है, यहाँ गरीब कोई नहीं। सब लोग यहाँ अच्छे ढंग से खाते-पीते हैं, मगर इस मुल्क में संतोष बिल्कुल नहीं है। यहाँकी जिन्दगी कैदखाने के समान है। यहाँ स्वाधीनता सब मुल्कों से ज्यादा है। यहाँ हर कोई स्वच्छ है मगर रुपये की हाय-हाय हर वक्त है। यहाँकी जिन्दगी घोड़े-बैलों की जिन्दगी है। द्रव्य होने पर भी सुखभोग नहीं। हम यहाँ सब जगह जा सकते हैं, सब काम जो अमीर आदमी करते हैं, कर सकते हैं। मगर यहाँके लोग अच्छा खाने, पहिनने, रुपया कमाने पर भी जानवरों के समान जीवन व्यतीत करते हैं। इँगलैंड और यूरुप के देशों में लोग यहाँ से अच्छी तरह रहते हैं। यहाँ हाय-हाय बहुत है, ज्यादातर आदमी संकुचित विचारों के हैं, ठीक बनियों के समान। मगर भले लोग भी बहुत हैं। यहाँ इल्म की तरक्की है, सब बातों की तरक्की है, मगर मजदूरों के लिए यह मुल्क बहुत अच्छा है। जिसे कहीं मुक्ति न मिले काशी में मिलेगी, मगर जो भलामानस काशी में जायेगा उसकी कम्बिख्ती आयेगी। यहाँ तो छोटे आदमी आकर बड़े हो जाते हैं। यहाँ लाखों पर यहाँ लखपती की कोई परवाह नहीं करता लखपती ८ बजे से ५ बजे तक काम करते हैं, बदले सलाम तक नहीं पाते। यह मुल्क कमाने के रहने के वास्ते नहीं।

सूर्योदय आज ७ बजकर ७ मिनट में, बजकर १९ मिनट में था।....यहाँ के मकान पाइपों से गरम रहते हैं, गैस और बिजली की प्रकाशित किये जाते हैं।

पढ़ने और कमाने का सिलसिला एक साथ मुझे यहाँ असंभव दीख रहा है। यहाँ जो बनिया हो कार हो, कौतुक वाला हो, फरेबी हो, वह खूब लेता है, मामूली आदमी कुछ नहीं कमा सकता। मैं छोड़कर पश्चिम की ओर सैनफ्रांसिस्को की तरफ सोच रहा हूँ। वहाँ जाकर जनवरी में कालेज होने का उद्योग है।.....

(१६) छोटे भाई को

1041, Waveland Av
Chicago. Illinois U

....अब तुम सयाने हो गये होगे। अब उम्र अपने को सँभालने और अपना यत्न करने की है। अब तुम उस अवस्था को प्राप्त हो गये हो, कई बातों को सोचना चाहिए और जिस उम्र में अपने को या श्रेष्ठ बना सकता है, या बुद्धिहीन भाँति बन जाने की आशंका में रहता है।....इस मनुष्य को कितने प्रकार की आदतें पड़ जाती हैं तुम्हें मालूम नहीं होंगी। उन बातों का ध्यान आता है, जबकि समय हाथ से निकल चुका होता है फिर पछताकर कुछ नहीं हो सकता। इस समय गँवा देना अपनी तमाम जिन्दगी को गँवा देने के जो कुछ भला सीखना हो इसी उम्र में प्रारंभ है और अगर बुनियाद पड़ गई तो फिर उस बुनियाद तोड़ नहीं सकता। तुम्हारी उम्र अब एक तरु समान है जिसे वायु जिस ओर चाहे उसी ओर है और अगर एक बार तिरछा हो गया, तो होना असंभव हो जाता है। सबसे पहली बात रखनी चाहिए यह है कि अपने को तमाम किस्म संगति से बचाना। जितना असर सोहबत का उतना किसी अन्य चीज का नहीं। ....तुम में एक तिनके के सदृश हो, जिसे वायु जिस उस तरफ उड़ा ले जाती है मगर यदि इस उम्र में चाल-चलन सुधार लिया और सुधारते चले गये एक दिन आयेगा जब तुम्हें मालूम होगा कि तुमने जीत ली है। तुम फिर अपने को जिस तरफ चाहो सफलता प्राप्त करने हेतु लगा सकते हो। इस ऐसी जगह में, जहाँ पर हँसी-तमाशा हो रहा हो, बड़ी लालसा होगी और समझोगे कि बस इसमें

नहीं है। मगर वह बाद में जहर का असर करेगा। मैं यह बात खुद अपने तजुर्बे की कह रहा हूँ। सो, भाई मेरे तजुर्बे से सीखना अच्छा है, अपना तजुर्बा करके कष्ट में पड़ना ठीक नहीं। मैं जब तुम्हारी उम्र में था, पढ़ना-लिखना छोड़ ड्रामा पार्टियों में पड़कर अपने को आज धिक्कार रहा हूँ। हाय! वह उम्र चली जाती है, फिर हाथ मल कर कुछ हाथ नहीं आता। फर्ज करो तुम्हें गायन का शौक है, तो सीख लो, उसमें कोई शर्म नहीं। मगर ऐसे गीत सीखो जिसमें कुछ अक्ल की बात हो, जिससे तुम्हारी बुद्धि बढ़े किन्तु ऐसी जगह पर मत जाओ जहाँ कि तुम अक्ल की बात न सीख सको, जहाँ पर ऐसी बातें हों जिसे तहाँ 'मजाक' कहते हैं।.... मन में दृढ़ निश्चय कर लो कि मैं अपने को एक गुणी श्रेष्ठ मनुष्य औरों से ऊँचे दर्जे का बनाऊँगा। अपना एक प्रोग्राम बना लो, उसके मुताबिक काम करो जैसे मैं पाँच बजे उठकर शौच से निवृत्त हो किताब पढ़ूँगा। ८ बजे तक पढ़कर नौ बजे नहाकर ईश्वर की प्रार्थना करके खाना खाकर स्कूल जाकर हमेशा अपना पाठ तैयार करके शाम घर आ स्कूल का काम कर रोज घंटा भर खेलकर या शुद्ध वायु में घूमकर घर लौट खाना खाकर किताब पढ़ने में लगूँगा और १० बजे बिस्तर पर जाऊँगा। यदि आवश्यक हो तो घर का काम कर माता पिता की सेवा करूँगा। इस तरह चलने पर बदन में एक बल पैदा होता है, जिससे बड़े-बड़े काम सिद्ध होते हैं। रोज आधा घंटा अखबार हिन्दी या अँगरेजी जो हो, पढ़ने का नियम कर लेना चाहिए। और एक बात यह कि मेरा क्या होगा, मैं क्या करूँगा ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए। हमेशा मन को प्रसन्न रखना चाहिए। हमेशा हँसमुख और छाती से गंभीर स्वर से वचन निकालकर बात करनी चाहिए.... यह प्रण कर लेना कि बीस वर्ष की उम्र तक तम्बाकू, सुपारी नहीं खाऊँगा। तम्बाकू से कलेजा जल जाता है, बुद्धि का नाश हो जाता है, आदमी को अनेक प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं। कई बार क्षय रोग हो जाता है। मनुष्य हीन हो जाता है, यह बात सत्य है। बीस वर्ष बाद फिर उतना भय नहीं रहता, तब कुछ अक्ल आ जाती है, फिर अपने लिए आप सोचा जा सकता है। रात में १२ बजे से अधिक जागने के समान विनाशकारी और कुछ नहीं। तमाम रामलीला, रासलीला और नाच जो आधी रात बाद तक होते हैं, सिर्फ मूर्ख लोगों की संगति से बढ़कर और कुछ नहीं है। पंडित फलाने नारायण भी जाते हैं, वे मूर्ख थोड़े ही हैं, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। वे पढ़े-लिखे मूर्ख ही हैं, मूर्खों के सरदार हैं। भाई इस वक्त ये सब बातें मधुर लगेंगी मगर यदि अपना नाश करना हो तब ऐसी बातों में जाना चाहिए और यदि अपने को पंडित और शक्तिमान बनाना हो तो जितने भी ब्रह्मचर्य के नियम हैं, उन सबको पिताजी से पूछकर उन पर अमल करना चाहिए। अपने शरीर को दुख नहीं देना चाहिए। मन को शुद्ध रखना चाहिए। किसीकी बुराई कभी नहीं करनी चाहिए।.....सबकी इज्जत करनी चाहिए, नम्रता दिखानी चाहिए। हमेशा मीठी और ठीक बात बोलनी चाहिए।.....सफाई बदन की बहुत जरूरी है। हमेशा अपने कपड़े साफ और बदन साफ रखना चाहिए। बदन की हिफाजत, चमड़े की हिफाजत करनी चाहिए। बालों को रोज कंघी करके साफ सुथरा रखना चाहिए।.....तन्दुरुस्ती सबसे मुख्य वस्तु है, एक तन्दुरुस्ती होने से हजार काम सिद्ध होते हैं, सो ऐसा कोई काम नहीं करना या ऐसे किसी काम में शामिल नहीं होना चाहिए जिससे तन्दुरुस्ती खराब हो। महीने में एक बार स्टेशन में जाकर अपना वजन लेना चाहिए। फिर हर हफ्ते या महीना अपना वजन बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए....यदि अपने को एक पूर्ण मनुष्य (पशु नहीं) बनाना चाहो तो आचरण सँभालने की कोशिश करना। आचरण के माने खाने-पीने पहनने के नहीं हैं, मगर चाल-चलन से हैं।

धैर्यवान बनना चाहिए और किसीके सामने झुककर अर्थात् डरकर बात नहीं करनी चाहिए। मन को बलवान बनाना चाहिए।....

भोलादत्त

तुम्हारी तूलिका ने

श्री महेन्द्रसिंह

कभी नीहार बन करुणा विवश नभ से बरसती है,
अरुण की एक चेरी सी किरन भू पर उतरती है,
पुलक संस्पर्श से द्युति तन सजल मन छलछलाती है,
हृदय की मौन करुणा आर्द्र होकर गीत गाती है,
अरुन तरु पात हँसते हैं विहग गन चहचहाते हैं,
सुरभि वरदान भर उर में कुसुम दल मुस्कुराते हैं।
छबीली रात भी मणि मोतियों से तन सजाती है,
बनी अभिसारिका मुग्धा अजाने देश जाती है,
चटक चन्दा चमकता है थिरकती चाँदनी भू पर,
अनोखी लय सुनाता है पवन भर वेणु के से स्वर।
उषा अनुराग रंजित हो सकल अगजग जगाती है,
तुम्हारी वन्दना के गीत वाणी गुनगुनाती है,
विवश मैं गीत गाता हूँ, अवश अब भाव हैं मेरे,
तुम्हारी तूलिका ने आज नभ पर कोटि रंग फेरे!

क्षय मास

श्री मंगलीप्रसाद मिश्र

जन साधारण ने अधिक मास तथा उसके पर्याय पुरुषोत्तम मास तथा मलमास नाम तो प्रायः सुने ही हैं परन्तु क्षय मास का नाम सुनकर कुछ कुतूहल होना स्वाभाविक ही है। क्षय मास का अर्थ एक मास का न होना जानकर साधारण जनता को अचकचाहट होगी ही क्योंकि उसके जीवन-काल में ऐसी घटना कभी हुई ही नहीं। प्रथम बार संवत् २०२० विक्रमी में ही होगी।

क्षय मास १४१ वर्ष पश्चात् होने जा रहा है। संवत् १८७९ वि० में पौष मास का क्षय हुआ था। जैसे गत-वर्ष अष्टग्रही योग शताब्दियों पश्चात् होने के कारण विश्व भर के विद्वज्जनों का विचारणीय विषय बना रहा, उसी प्रकार यह क्षय मास योग भी एक सौ इकतालीस वर्ष बाद आने के कारण एक नवीन तथा जटिल विषय प्रतीत होने लगा है जिसके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान की जिज्ञासा लगभग सभी को होने लगी है।

संवत् २०२० विक्रमी के कई पञ्चांगों के उत्तर-भारतीय निर्माताओं ने अपने अपने पंचांगों में पृथक्-पृथक् मासों का क्षय दिखाया है। किसी ने कार्त्तिक का, किसी ने मार्गशीर्ष का, तथा किसी ने पौष का क्षय माना है। ऐसी अवस्था में जनता किसे ठीक माने, यह समस्या अपने आप ही उठ खड़ी होती है। अतः शास्त्रीय विवेचन द्वारा इस समस्या का समाधान होना अत्यावश्यक है। इस पर देश के विद्वान् दैवज्ञ विचार-विमर्श करें और क्षय मास होने के पूर्व ही सब एकमत होकर यह निर्णय कर लें कि अमुक मास का क्षय मानना समीचीन है।

ब्रह्मसिद्धांतकर्ताओं ने चांद्रमण्डलान्त सूर्यमण्डलान्त से चांद्रमास कहा है, और आचार्यों ने अमावास्या से अमावास्या तक अमान्त मास कहा है। इसीको चांद्रमास कहते हैं। यह ठीक है, क्योंकि अमावास्या में चंद्र और सूर्य का योग होता है पर जब षट्घटी के बाद वियोग होता है, उस वियोग के कारण अपर वियोग जब तक रहता है, तब तक रविमण्डलांत मास को ब्रह्मसिद्धांतकर्ता क्षयमास अधिमास के निर्णय में स्वीकार करते हैं। जैसे कि सूर्य-ग्रहण में मोक्षस्थिति के समय में षट् घटी से न्यून देखा जाता है, तो भी पूर्वाचार्य 'रसनाडयोर्कमण्डलमित्युक्तम्। तत्रागम एव प्रमाणम्" कहते हैं। जिस मास में संक्रांति न हो उसे अधिक मास कहते हैं। जिस मास में दो संक्रां हों उसे क्षय मास कहते हैं। इसका उदाहरण ब्रह्म नुसार श्री भास्कराचार्य ने स्वरचित सिद्धांतशिरो में दिया है। यथा, "असंक्रांतिमासोधिमासः स्फुटः स्या संक्रांतिमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयः कार्तिक त्रयेनान्यथा स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च।" प्रकारेण "गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले तिथीशैर्भवि त्यथांगाक्ष सूर्यैः। गजाद्रयग्निभूमिस्तथा प्रायशोयं कु वषैः क्वचिद्गोकुभिश्च।" इस प्रकार जिस मास संक्रांति नहीं हो वह अधिक होता है, जिस मास में संक्रांतियाँ हों, वह क्षय मास होता है। जिन मासों का होता है वे कार्त्तिकादि तीन मास हैं। कार्तिक, मार्ग पौष। इन ही तीनों मासों की क्षय संज्ञा मानी गयी है, की नहीं। अब विशेषता यह है कि मार्गशीर्ष और इन दोनों का क्षय ही होता है। इनका कभी भी अ मास नहीं होता तथा कार्त्तिक मास ऐसा है जो अ भी होता है, और क्षय भी होता है। वैसे ही माघ ऐसा महीना है जो न कभी अधिक होगा, न क्ष होगा।

क्षय मास १४१ वर्ष पश्चात् होता है। विशेषता है कि कभी कभी १९ वर्ष बाद फिर भी क्षय होता है इसके पूर्व में भी क्षय हो जाता है। जब क्षय मास हो तो उसके पूर्व एक अधिक मास और बाद में भी एक अ मास हुआ करते हैं। परंतु क्षय मास वाले वर्ष में फा चैत्र, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक में से ही कोई अधिक हो पर फाल्गुन चैत्र, में से कोई अधिक होगा। जिस में कार्त्तिक का क्षय होगा उसके पूर्व अधिक भाद्रपद होगा, अर्थात् कार्त्तिक अधिक नहीं होगा। इस एक पंचांग में यही देखने को मिला कि कार्तिक को अधिक तथा कार्त्तिक का ही क्षय माना है। यह ठीक है। "यस्मिन् वर्षे कार्त्तिकक्षयोभवति तस्मिन् ज्येष्ठाधिमासो भवेत्।" अत्र ज्येष्ठशब्देन भाद्रपदो यतः क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये। नियमात्।" अब कहना यह है कि कुछ पंचांगकर्ता मार्गशीर्ष बदि ३० अमावस्या को धन की संक्रांति लि और मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष व पौष कृष्णपक्ष का क्षय

है। यह किस प्रकार से? जब धन की संक्रांति हो गयी तब तो पौष मास का क्षय होना चाहिए न कि मार्गशीर्ष का। मासगणना संक्रांतिपरत्व होती है।

अब देखना यह है कि इस वर्ष सं० २०२० वि० में किस मास का क्षय होगा। ऊपर कह आये हैं कि जिस महीने में दो संक्रांतियाँ होंगी, वही मास क्षय होगा। इस वर्ष कन्या की संक्रांति शुद्ध प्रथम आश्विन बदि ३० को होगी। फिर द्वितीय आश्विन बदि ३० अमावास्या को तुला की संक्रांति होगी ५१ घटी पर। उसके बाद कार्तिक सुदि १ प्रतिपदा को वृश्चिक की संक्रांति होगी ४४ घटी पर। तदनन्तर मार्गशीर्ष बदि ३० अमावास्या को धन की संक्रांति होगी १३ घटी पर। तत्पश्चात् पौष सुदि १ प्रतिपदा को मकर की संक्रांति होगी ३२ घटी। अब देखना यह है कि किसमें दो संक्रांति हुईं। विदित होता है कि वृश्चिक संक्रांति में दो संक्रांतियाँ हुईं। प्रतिपदा अमावास्या के मध्य वृश्चिक और धन की संक्रांति हो गयीं। इसलिए मार्गशीर्ष का क्षय माना जाय क्योंकि वृश्चिक संक्रांति से मार्गशीर्ष माना जाता है।

संक्रांतियों की संख्या उतनी ही रहती है। न घटती है, न बढ़ती है। अमान्त मास में अधिक होता है और त्रांत मास में क्षय होता है जिसकी गणना पूर्णिमान्त मास से होती है। इस कारण मार्गशीर्ष बदि १ प्रतिपदा से लेकर मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा तक क्षय मास होगा। जैसे कि भूतपूर्व सं० १८७९ वि० शाके १७४४ में पौष मास का क्षय हुआ था। उस पचांग में भी पूर्णिमान्त पौष मास का क्षय है। यह प्राचीन पंचांग श्री शंकर विद्याधर पुस्तकालय कमेटी, इटावा (उ० प्र०) में प्राप्य है। इसके देखने से शंका की निवृत्ति हो जायगी।

जन्मपत्रिका निबंध ग्रंथ में गणना किये हुए बहुत से अधिक मास एवं विशेषाधिमास तथा क्षय मास दिये हुए हैं। उनमें भी संवत् २०२० वि० शाके १८८५ में मार्गशीर्ष का ही क्षय दिखाया है और आश्विन का विशेषाधि मास दिखाया है तथा चैत्र का मलमास दिया है।

जन साधारण की जानकारी के लिए यह भी बता देना उचित है कि शास्त्र के अनुसार अधिकाधिक मासों में गर्भाधान से अन्नप्राशन कर्म तक के संस्कार करने का निषेध नहीं हैं। विवाह, मुंडन, यज्ञोपवीत तथा प्रतिष्ठादि कर्म करने का निषेध है। विशेष जानकारी के लिए धर्मसिंधु, निर्णयसिंधु ग्रंथ देखना चाहिये। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में क्षय मास में जन्म-मरणादिक क्रम किया है इसकी भी व्यवस्था दी है "तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयर्द्धे तथोत्तरः। मासाविति बुधैर्ज्ञेयौ क्षयमासस्य मध्यगौ।" इतिवृहत्कालनिर्णये॥

ध्यान देने की बात यह है कि जब मार्गशीर्ष का क्षय होगा, या और किसी भी मास का, तब उसके बाद का जो मास होगा उसके कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष दोनों ही पक्षों में यानी संपूर्ण मास भर सभी तिथियों में किसी भी तिथि के पूर्वार्द्ध भाग में, जिनके जन्म-मरण होंगे उनकी वर्षगाँठ या श्राद्ध सदा मार्गशीर्ष में ही हुआ करेगी, तथा पौष की सभी तिथियों के उत्तरार्द्ध में जन्म-मरण होगा उनकी वर्षगाँठ तक श्राद्ध सदा पौष मास में ही हुआ करेंगे।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि क्षय मास वाले वर्ष में दो अधिक मास होते हैं, तब मलमास किसे माना जाय। इस संबंध में भी शास्त्र का मत है "मासद्वयेब्दमध्ये च संक्रमो न भवेद्यदा। प्राकृतस्तत्र पूर्वस्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः" इति जावालिः। एक साल में अधिक मास दो होने पर उन दो मासों में से पहिला विशेष मास माना जाय। इसको मलमास नहीं मानना चाहिए। दूसरे को मलमास मानना चाहिए। पहिले में कोई काम वर्जित नहीं है क्योंकि प्राकृत है, दूसरे में मलमास के नियम मानने चाहिए। ये मलिम्लुच है, यानी मलमास है।

समाधि-गीत*

प्रो० रामस्वरूप आर्य

तारों भरे नील अम्बर की सुखद छाँह में
खोदो मेरी कब्र मुझे उसमें सोने दो।
आनंदित मैं रहा, अन्त भी हर्षपूर्ण है
स्वेच्छा से मैं शयन कर रहा, यह होने दो।
अंकित करना यही छंद मेरी समाधि पर:
सो जाऊँ मैं इसी धूलि में यही साध थी;
नाविक अपने घर पहुँचा है सिंधु पार कर
और शिकारी शैल-शिखा से निज कुटिया पर।

---

* प्रस्तुत गीत आर० एल० स्टीवेन्सन रचित 'Requiem' नामक कविता का भावानुवाद है।

अंगारों के बीच-

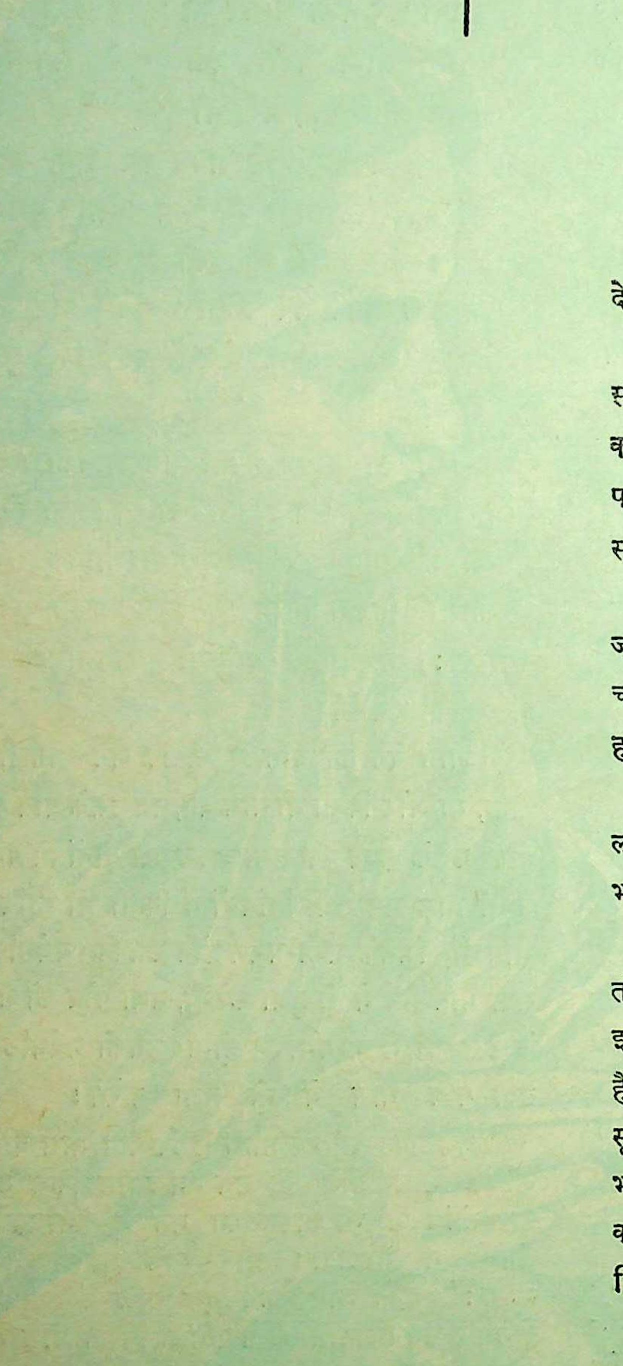

क्या आपने सुना है?

"यह चीन वाले जब किसीको वन्दी वनाते हैं या तो उसकी जीभ काट लेते हैं या उसे अंधा देते हैं। और फिर उन्हें बीहड़ जंगलों में छोड़ देते हैं

"क्या आपने सुना है 'कि जो कुछ सामान भी सीमा पर गये जवानों के लिये बनाकर भेजती हैं वह कलकत्ता के बाजारों में बिक जाता है और उन तक पहुँचता। आपकी बनाई हुई जरसी, भेजी हुई मिठा सभी कलकत्ते के बाजार में बिक जाती हैं।"

"सीमा पर युद्ध करने के लिए हमारे जवानों जो बन्दूकें दी गयी हैं उनमें बहुत सी बन्दूकें ऐसी हैं चलती ही नहीं हैं। गोलियाँ उनमें फँस जाती हैं हमारे जवान उनको झकझोरते रह जाते हैं।"

"सेना में अंधाधुंध भर्ती हो रही है। ऐसे-ऐसे ढीले लोग लिये जा रहे हैं जो चार कदम दौड़ भी नहीं सकते भला, ये आदमी युद्धक्षेत्र में क्या करेंगे?"

अगर आपने अभी तक इनमें से कोई बात नहीं तो एक न एक दिन जरूर ये बातें आपके कान में पड़ेंगी इसे निश्चय जानिए। देश में हर तरह के आदमी हैं। यदि न बसते होते तो भारत के इतिहास में ऐसी सूची उन गद्दारों की कैसे बनती जिन्होंने समय-समय भारत के वीरों को धोखा देकर या उनके मनोबल कम करके सारे देश को दासता की श्रृंखलाओं में जकड़ दिया था।

ऐसी बातें सुनकर एक उदासी आपके हृदय में जाती है। आप सुनकर भी उनपर विश्वास नहीं चाहते। आपका कर्त्तव्य ऐसे समाचार सुनकर नीची कर लेने मात्र से समाप्त नहीं हो जाता। उनको प्रोत्साहन मिलता है। वे सोचते हैं कि एक मुहरे को हमने मात दे दी। ऐसे विमुख मार्गियों बन्द करने का केवल एक उपाय है कि जितनी ही सनसनी फैलानेवाली खबर वे आपको सुनायें उनसे

चुभते हुए प्रत्युत्तर से उनका मुँह बन्द कर दिया जाय।

युद्धभूमि के बंदियों के जत्थे के जत्थे वापिस आ रहे हैं। उनके नेत्रों में मातृभूमि के दर्शन करने की शक्ति है। उनके हाथों में उसकी पवित्र रज का तिलक लगाने की शक्ति है। यदि कोई नेत्रहीन हो गये हैं तो वे वे विमुख-गामी ही हैं जिन्हें नेत्रवान बंदी नेत्रहीन दीखते हैं।

भले ही हमारा बनाया हुआ कुछ सामान हमारे जवानों तक पहुंचने के बदले कलकत्ते के बाजार में पहुँच जाय। यदि बालक को भोजन परोसकर दी हुई थाली संयोग से कोई कुत्ता जुठार जाय तो क्या बालक के लिए फिर दूसरी वार थाली नहीं परोसी जाती? जिनके हृदय में स्नेह है वे इन बातों से नहीं बहका करते।

सेना में अंधाधुंध भर्ती हो रही है तो होने दो। यह तो प्रसन्नता की बात है कि देश की सेना बढ़ रही है। भर्ती करना सेना का काम है। जो व्यक्ति उसके योग्य मालूम पड़ता है उसकी वह भर्ती करती है। हम अपना काम तो करते नहीं, केवल दूसरे के काम में मीन-मेख ही निकाला करते हैं। तोंद व देशभक्ति कोई दो विरोधी वस्तुएँ नहीं हैं। आज हमें सुडौल शरीरों की इतनी नहीं, देश-भक्तों की आवश्यकता है। शरीर तो सेना की कड़ी मेहनत से सुडौल किये जा सकते हैं और कुछ सप्ताहों ही में तोंद छँट सकती है, परन्तु बुझे हुए हृदयों में देशभक्ति की लौ क्यों कर जलाई जा सकती है? जो यह समाचार सुना रहे हैं उनका शरीर तो सुडौल है। फिर वे सेना में क्यों नहीं भरती हो गये? उनको देश की सुरक्षा के आगे अपने सुडौल शरीर की सुरक्षा का अधिक ध्यान है! हमें वे बेडौल शरीर ही मुबारक रहें जिन्हें अपने शरीर की सुरक्षा के आगे देश की सुरक्षा का पहले ध्यान है।

घर-गृहस्थी

बंगाली गृहस्थों का भोजन

श्री रोमोला कर

महिला-जगत् में अपने परिवार के लिए भोजन बनाना हमेशा एक बड़ी कला रही है और रहेगी। हमारे जीवन में रसया भी एक बड़ी वस्तु है। जैसे हमारे पुरुष, परिवार की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए दिन भर काम करते हैं वैसे ही हम स्त्रियों को कम से कम खर्च में काम चलाना अपना कर्त्तव्य मान लेना चाहिए। हिन्दुस्तान के हर प्रदेश में ऐसी बहुत सी पाक विधियाँ हैं जो पुष्टिकर, स्वादिष्ट और कम खर्चे की होती हैं। उदाहरण के लिए बंगाल को लीजिए। नीचे कुछ ऐसी बंगाली पाक विधियाँ दी गयी हैं जो बहुत पुरानी हैं पर अभी भी बहुत प्रचलित हैं, क्योंकि समय की कसौटी पर वे उपयोगी पायी गयी हैं। हम जब अपने घर के पुरुषों के सामने प्रतिदिन का भोजन रखते हैं तब यह याद रखना चाहिए कि उनकी दृष्टि में भोजन का स्वादिष्ट, पुष्टिकर और अल्पव्ययी तीनों का साथ-साथ होना ही सराहनीय है।

श्री रोमोला कर

चड़चड़ी—यह एक प्रकार की मिश्रित सब्जी है। इसमें पालक, मूली, बैंगन और आलू पड़ते हैं। बंगाल में सूखी सब्जी छौंकने के लिए एक मिश्रित मसाला उपयोग में लाया जाता है जिसमें साबूत सरसों, मेथी, मँगरैल, जीरा और सौंफ सब बराबर हिस्सों में मिलाया जाता है। इसको "पाँच-फोड़ंग" कहते हैं। सब्जी छौंकने के पहले थोड़ा-सा पाँच-फोड़ंग घी या तेल में छौंक दिया जाता है।

सामग्री :—

सरसों का तेल	१½ छटाँक
पाँच-फोड़ंग	¼ चाय के चम्मच भर
हल्दी और नमक	रुचि के समान
चीनी	२ चाय के चम्मच भर
पालक	½ सेर
मूली	२
बैंगन	१ पाव
आलू	१½ पाव

बनाने की विधि—पालक बड़े-बड़े काट कर धो लीजिए। मूलियों को खुरच कर चार फाँकों में काट लीजिए और फिर हर एक फाँकी के १½ इंच के टुकड़े बनाइये। आलू और बैंगन भी मूली के आकार के काट कर धो लीजिए।

अब तेल को एक पीतल की कड़ाही में गर्म कीजिये। जब धुआँ निकलने लगे तब पाँच-फोड़ंग डाल दीजिए और फिर पालक व मूली छौंक दीजिए। मिलाकर ढाँक दीजिए। जब पालक और मूली आधे गल जायें तब आलू, हल्दी और नमक डालकर मिलाइये और फिर ढांक दीजिये। जब आलू आधा गल जाये तब बैंगन डालकर, मिलाकर, फिर ढाँक दीजिये। बैंगन गलने पर आ जाये तो चीनी छोड़िए, और धीरे-धीरे चलाकर सुखा लीजिए। यह सब्जी दाल-चावल या खाली चावल के साथ अच्छी लगती है।

मोचार घण्टों—केला तो हर जगह खाया जाता है मगर लोगों ने उसके फूल पर ध्यान कम दिया है। केले के फूल की सब्जी बहुत अच्छी होती है और थोड़ी सी मेहनत से बड़ी स्वादिष्ट बन सकती है। फूल के पत्ते तोड़ कर हर पत्ते के नीचे से छोटे फूलों को निकाल कर रखिए। अब इन फूलों की डंडियों को कागज की नाव के आकार के छिलकों को निकाल दीजिए। फिर इन छोटे फूलों को खूब बारीक काटकर धो लीजिए। अब उन्हें पानी में दो घंटे भिगो रखिये और फिर पानी फेंक दीजिए। इसके बाद २० मिनिट तक उसे इमली के साथ पानी में उबाल कर पानी से निकाल लीजिए। जब फूलों को काटें तब हाथ पर थोड़ा नमक लगा लेना चाहिए और अपने कपड़ों को उसके दाग से बचाना चाहिए।

सामग्री :—

केले के छोटे फूल (बड़े में से निकालने के बाद)	½ सेर
घी	एक छटांक
तेजपात	एक
अदरख	१ इंच का टु
सौंफ	चाय के १ चम्म
धनिया	चाय के २ चम्म
जीरा	चाय के १ चम्म
गोल मिर्च	१२ दाना
लाल मिर्च	अन्दाज का
चीनी	चाय के २ चम्म
नमक	अन्दाज का
दूध	१½ छटांक
मैदा	चाय के २ चम्म
पिसा गरम मसाला	चाय के आधे भर
आलू	एक पाव
बरी	१ छटांक

आलू और बरी तलने के लिए तेल

बनाने की विधि—आलू को खूब छोटा क तेल में तल कर रखिये। बरी को भी तलकर चूरा क रखिए। सब मसाला पीस लीजिए। अब उबले अदरख, सौंफ, धनिया, जीरा, गोल मिर्च, लाल चीनी और नमक को एक साथ मिलाकर रखिये। घी में तेजपात छौंक कर मसाले मिले हुए फूल को दीजिए। थोड़ा, भूनकर एक पाव पानी और त आलू छोड़ के ढाँक दीजिए। जब पानी आधा सु तब दूध और मैदा को मिलाकर उसमें डाल दी अब उसे सुखाकर गर्म मसाला मिलाकर उतार ली परसने के पहले से निकालकर ऊपर से बरी फैला दी यह भी चावल के साथ खाया जाता है।

"मूड़ी घण्टो"—रोहू मछली के सिर को बं बहुत स्वादिष्ट समझा जाता है। वहाँके लोग यह भी हैं कि इससे बुद्धि तेज होती है। इसका स्वाद और पूरे गृहस्थी को देने के लिए चने की दाल में पकाने का बहुत पुराना और अच्छा है।

१९६३

ामग्री :—

धुली हुई चने की दाल	१/२ सेर
हल्दी	अन्दाज की
नमक	अन्दाज का
ीनी	चाय के दो चम्मच भर
अदरख	एक इंच का टुकड़ा
तेजपात	एक
छोटी इलायची	तीन
बड़ी इलायची	एक
गोल मिर्च	आठ दाना
दालचीनी	एक इंच का टुकड़ा
हरी मिर्च	तीन
घी	एक छटाँक

िर को तलने के लिए तेल।

ाने की विधि—

मछली के सिर को तीन या चार टुकड़ों में काट कर ले लीजिए। जब सिर को काटें तो याद रखना चाहिए कि जहाँ पर उसका भेजा है उस जगह के बीच से न काटें जिससे भेजा बाहर न निकल आये। अब टुकड़ों में नमक और हल्दी लगाकर खौलते हुए तेल में तल लीजिए। दाल को धोकर पानी में हल्दी और नमक डाल कर पका लीजिए। जब दाल पकने पर आ जाये तब पिसी हुई अदरख, बारीक कटी हुई मिर्च और मछली के सिर के टुकड़ों को तोड़कर उसमें मिला दीजिये। दाल गल जाने पर चीनी डालिये और दाल गाढ़ी होते ही उतार लीजिए। घी गर्म करके उसमें खड़ा गर्म मसाला डालिए और दाल में छौंक लगा दीजिए। घी और मसाला मिलाकर दाल को ढका रहने दीजिए। इसको पूरी या चावल के साथ खाते हैं।

प्रार्थना-गीत

श्री राजेन्द्रप्रसादसिंह

आज संस्कारों का
अर्पण लो!

गुहा-मनुज मुझमें चुप,
प्रस्तर-युग मौन,

धातु-छन्द से मुखरित
कर-तल-ध्वनि कौन?

मध्य-युगी रक्त-स्नात
यौवन का दर्पण लो!

आधुनिक मनुज मेरे
नख-शिख में लीन,

विद्युन्मूर्च्छिता धरा,
मैं यन्त्रासीन!

अविगत के आसन पर
आगत का तर्पण लो!

लो, अब स्वीकारो यह
व्यापक सन्देह,

अपने प्रति शंका का
प्रायोगिक गेह।

'इहागच्छऽ, इहतिष्ठऽऽ..'
अजिर का समर्पण लो!

आज संस्कारों का
अर्पण लो!

शहद की मक्खी

श्री स्वरूप ढौंडियाल

सरकती घड़ी की सुइयाँ धीरे-धीरे दस और ग्यारह के दरमियान इकट्ठी हो गयीं; तब भी काम को किसी ने नहीं छुआ। फाइलें बंद की बंद। सब हैरान-परेशान थे कि साढ़े नौ बजे सीट पर चिपक जाने वाला और सवा पाँच तक सीट से टस-से-मस न होने वाला सैक्शन आफीसर बालमुकंद आज गैरहाजिर, और वह भी पूरे छः साल बाद।

छः साल—क्षणिक जीवन की यह अवधि कम नहीं होती। सर्दी-गर्मी, बारिश-तूफान, पिछले छः सालों में कोई भी दिन ऐसा नहीं आया, जब बालमुकंद दफ्तर न पहुँचा हो। और खूबी यह कि वह भी साढ़े नौ। उसकी घड़ी भी कम्बख्त उसीकी तरह नियमित थी। थी तो पुरानी, उन्नीस सौ बीस का माडल, लेकिन जैसे बालमुकंद टूटने और कब्र की ओर बढ़ने के बावजूद भी अधिक ताजा हो रहा था, उसी तरह घड़ी पुरानी होते और घिसते हुए भी अधिक ठीक टाइम देने लगी थी। अनुमान लगाना सहल न था कि बालमुकंद के कारण घड़ी ठीक चलती है या घड़ी के कारण बालमुकंद। लेकिन यह निश्चित और निर्विवाद था, कि घड़ी और उसके जीवन में अन्तर है तो सिर्फ इतना ही, कि वह बेजान सा दीखता था और उसकी घिसी-पिटी घड़ी अधिक सप्राण, अधिक ताजी।

यों तो उसके दफ्तर न आने पर सबको प्रसन्नता होनी चाहिए थी, क्योंकि सब तंग थे उससे, खासकर उसकी समय की पाबंदी से। न वह स्वयं लेट आता, न किसीका लेट आना गँवारा करता। और तो और, डाइरेक्टर भी उसके हाथों-हाथ नाचता था। जिसकी बालमुकंद शिकायत कर दे, समझो साहब ने उसे बुलाकर दो-चार खरी-खोटी सुना दी, कुछ नहीं तो एक लम्बा-सा लेक्चर झाड़ दिया। इसी कारण कुछ तो इतने जले-भुने थे कि बालमुकंद पर दो-चार तगड़े हाथ अजमाने की योजना कई बार सफल होते-होते बची। प्रत्येक की महती आकांक्षा थी कि बालमुकंद का तबादला हो जाय या हार्टफेल, तभी वे मुक्ति की साँस ले सकेंगे। परन्तु तबादला और हार्टफेल होने की उम्मीद रही दूर, बालमुकंद ने पिछले छः सालों में एक दिन का नागा नहीं किया, कभी बीमार नहीं पड़ा, कोई आवश्यक कार्य नहीं आया उसके जीवन में।

लेकिन जाने सब आज क्यों बुझे-बुझे से थे। कर भी खुश क्यों नहीं हो पाये। सारे सैक्शन में छाई रही। मुकर्जी, यशवंत, जुगिंदर, महेन्द्र, चोपड़ा, हाड़ा, कुलकर्णी, सब फलों से लदी डाल फाइलों पर झुके रहे। सिर उठाकर देखने मात्र फलों की तरह जैसे कहीं सिर न झड़ जाएँ।

आखिर महेन्द्र ने मौन तोड़ा—"बालमुकंद गैरहाजिर, ओह! .... नामुमकिन!"

फिर तो सब अटकलें लगाने लगे। कोई कारण नहीं आ रहा था। बीमार...बीमारी की सम्भावना नहीं थी। बीमार पड़नेवालों में वह नहीं। और बालमुकंद अचानक मर जाय, इतनी उनमें से किसीकी नहीं थी। सबने सुना था कि पत्नी और दो बच्चे गाँव में हैं। स्वयं वह अकेले है। गृहस्थी की झंझटों से वह दूर था। फिर...

यशवंत बोला—"साले की टाँग टूट गयी होती तो...।"

उसका 'नहीं तो' से तात्पर्य यही था कि टाँग के अलावा बालमुकंद सैक्सन आफीसर गैरहाजिर हो सकता।

"वेरी गुड—वेरी गुड!" हमेशा गुमसुम, खोया-सा रहनेवाला कुलकर्णी अपनी सीट से यशवंत के सामने आ गया। उसके कंधे पर हल्का जमाते हुए बोला—"यार! तुम्हारे मुँह में घी- टाँग ही टूट जाती! ..."

राजेश्वर सीट से ही चिल्लाया—"अबे वो सिर्फ टाँग टूटने को ही कहता है?"

राजेश्वर के कहने से साफ झलकता था कि टाँग मात्र से ही उनके प्रतिशोध की धधकती अग्नि पड़ सकती। आज तक की जलन, कुढ़न और इतने से ही शांति नहीं मिलने की। वह तो...

और फिर... क्या था? हर एक ने जो दिल में कहा, मन की भड़ास बुझाने का अच्छा अवसर था। भी जिसे गालियाँ याद थीं, उगल दीं। और कुछ शेष था कि बरामदे से आती बूटों की आवाज नजदीक होती गयी। सब स्तब्ध हो गये।

ठीक मिस्टर गुलाटी के बूटों की तरह थी। एक मनहूसियत कमरे में छा गयी। सबके मन में यही था——"कमबख्त ! आज भी नहीं रुका। मौत उसे आज भी नहीं आयी।"

लेकिन, आगन्तुक को देखते ही मुर्झाये चेहरे खिल उठे। कमरे की मनहूसियत एक बार फिर मर गयी। अपनी कल्पना से सब नाहक ही परेशान हुए। चोर को सपने में तिजोरियाँ और मोची को जूते ही दिखाई देते हैं। आने वाला, बालमुकंद नहीं था, एक अन्य ही व्यक्ति था जो किसीकी पहचान में नहीं आया। वह दरवाजे पर खड़ा-खड़ा कमरे के प्रत्येक व्यक्ति को घूरता रहा। मैला-कुचैला व्यक्ति। दाढ़ी-मूँछें सफाचट। उम्र का अन्दाजा लगाने की किसीने जरूरत नहीं समझी। बातें उसी भूले प्रसंग पर फिर जोर-शोर से जमतीं कि दरवाजे पर खड़ा व्यक्ति हांडा के पास पहुँचा, क्योंकि उसीकी सीट दरवाजे से घुसते व्यक्ति के सबसे नजदीक पड़ती थी।

सब, बालमुकंद का नाम सुनकर चौंके। आगन्तुक हांडा से पूछ रहा था——"क्यों, क्या बालमुकंद साब यहीं काम करते हैं ?"

"हाँ!" हांडा ने हैरानी से कहा——"लेकिन वे दफ्तर नहीं आये।"

उस व्यक्ति ने खाँसते हुए गम्भीरता से कहा——'मैं, जानता हूँ। उनका पड़ोसी हूँ। वह बीमार हैं। तीन दिन तक शायद दफ्तर न आ सकें। सिर्फ इत्तिला देने आया हूँ। यह रही अर्जी !"

निरपेक्ष भाव से इतना कहकर और अप्लिकेशन पकड़ाकर वह कमरे से बाहर निकल गया, जैसे उसका काम सूचित कर देने भर का रहा हो।

सब देर तक जड़वत् बैठे रहे। कुछ कहने के लिए जैसे शेष न रह गया हो। लेकिन आहिस्ते-आहिस्ते प्रत्येक के चेहरे पर स्थिति की शोभनता और उपयोगिता को भाँपकर एक ताजगी उभरती गयी। तीन दिन की स्वतंत्रता का उचित उपयोग करने की स्कीम हर एक के दिमाग में साकार हो उठी थी। कोई चाय पीने में घण्टों लगायेगा, कोई बारह से तीन बजे तक का फिलम शो, दफ्तर में हाजिरी बजाने के बाद भी देख सकेगा और कुलकर्णी तो निश्चय ही चार बजे के बाद सीट पर कदापि नहीं बैठेगा। साइकिल पर दो जमते पैंडल मारे और बात की बात में घर।

यह स्थिति अधिक देर नहीं रही। दीवाल पर लटकी घड़ी ने टन् से एक बजाया। लंच टाइम हो गया था। अपने टेबिल के बिखरे पत्रों को सब फाइलों में समेटने लगे।

लंच में कोई बाहर नहीं गया। चोपड़ा की तास मण्डली ने कमरे से बाहर निकलने में कोई सक्रियता नहीं दिखायी। राजेश्वर का वाली-बाल क्लब खूब जोरों से दफ्तर के बाहर अहाते में वालीबाल खेलने में मशगूल था, लेकिन राजेश्वर की बला से। सीट से उनकी भी उठने की इच्छा नहीं थी। और-तो-और पूरे एक बजे टिफिन-डब्बे को खोलकर रोटियों पर पिल पड़ने वाला जुगिंदर भी चुपचाप बैठा रहा। इसी तरह मुकर्जी, यशवंत, महेन्द्र, हांडा, कुलकर्णी भी सीटों से ही चिपके रहे। मजाल है, कल तक ही कमरे में एक बजे के बाद कोई ठहरा हो। बालमुकंद सेक्शन आफीसर सिर झुकाये लंच भर काम करता रहता था, फिर किसे अच्छा लगता कि लंच की स्वतंत्र, मादक, प्यारी घड़ियों को बालमुकंद के सामीप्य से गंदला किया जाय।

चाण्डाल चौकड़ी के ठहाकों से सारा सैक्शन गूंज रहा था। बालमुकंद से सम्बन्धित बातों के अतिरिक्त किसी को अन्य बात नहीं सूझ रही थी। महेन्द्र अपनी आदत के मुताबिक खिचड़ी बोली, आधी अँगरेजी, आधी हिन्दी में बढ़-चढ़कर कह रहा था——"साला ! डैम... बीमार भी पड़ा तो सिर्फ तीन दिन के लिए। मुद्दत के बाद और वह भी थी, ओनली थ्री डेज ! मैंने तो एक साल पहले डाइरेक्टर के सामने ही बालमुकंद को वार्न (खबरदार) कर दिया था कि 'यही रवैया रहा, तो, किसी दिन तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। यू विल लूज यौर लाइफ वन डे। "डाइरेक्टर चौंक गया था। लेकिन बोला नहीं—— कुछ नहीं बोला। ह्वाट कुड ही स्पीक ? बोल ही क्या सकता था वह ?"

हांडा, जो चिंचड़े की तरह गर्दन मोड़े, ध्यान से अभी तक सिर्फ सुन ही रहा था, एकाएक उठ खड़ा हुआ। सबके ध्यान को आकर्षित करने के लिए उसने तीन तालियाँ बजाईं और सड़क पर दवा बेचनेवाले दवाफरोश की तरह नाटकीय अंदाज में कहने लगा——"वाह, वाह ! क्या दिन है आज ! यारो, एक मुद्दत के बाद यह दिन नसीब हुआ है जो किसी खुशनसीब को भी मयस्सर नहीं होता। आज एक ग्रैंड पार्टी होनी चाहिए। कण्ट्रीब्यूटरी पार्टी।

हर आदमी कुछ-न-कुछ जरूर दे। क्यों भाइयो, मेरी तदबीर पसन्द आयी ?"

मुकर्जी, यशवंत, चोपड़ा, कुलकर्णी खुशी से प्रस्तावित योजना की स्वीकृति में तालियाँ बजाने और उछलने वाले ही थे, कि बारिश में भीगे हुए बन्दर की तरह चेहरे पर झुरझुरी डालकर राजेश्वर ने प्रतिवाद किया—"क्या वाहियात बात है ? पार्टी और अपने पैसे देकर ! मुझे यह कतई मंजूर नहीं।"

लेकिन हांडा ने योजना की असफलता पर खिसियाने की बजाय सबल तर्कों से जीतने की ठानी—"पार्टी अवश्य होगी। खुशी का दिन और शहनाइयाँ न बजें ! लानत है हम पर। रही पैसे की बात। डाका डालें, चोरी करें, या किसीकी जेब काटें। मैं राजेश्वर से ही पूछता हूँ, खुद पैसे न दें, फिर पार्टी कैसे हो ?"

सबने सिर हिला कर, मुस्कराकर, हांडा की बात की ताईद की। निश्चित था कि पार्टी होकर रहेगी। राजेश्वर के पास भी जैसे अन्य कोई सबल तर्क न था। उसकी बात बहुत कमजोर पड़ गयी थी। तथ्यहीन बात जमे भी कैसे ?

लेकिन, राजेश्वर हार जाय, यकीन के काबिल बात न थी। गंभीर बनने का नाट्य करते हुए, जैसे वह कोई बहुत महत्त्वपूर्ण और रहस्यमय बात करना चाहता है, पहले उसने छत की ओर शून्य दृष्टि से देखा और फिर अपनी बाईं आँख को मलते हुए कहा—"पार्टी हो, और अवश्य हो। लेकिन जरा भी आप अक्ल से काम लें तो आपको बेवकूफ कौन कहे। भले आदमियो, बालमुकंद बीमार है, यह क्यों न करें कि सब उसके हाल-चाल पूछने उसके घर जायँ और चाय-पानी के लिए वह जरूर पूछेगा। फिर खाली चाय पिलाने से तो वह रहा। बिस्कुट, समोसे चाय के साथ मिलेंगे ही। समझ लेंगे याद-खबर लेने नहीं गये, चाय पीने गये हैं। एक पत्थर दो से चिड़िया मारना इसे कहते हैं।"

योजना जोरदार थी। हांडा को भी मानना पड़ा। अंतिम फैसला हुआ, कि आठों पाँच बजे के बाद बालमुकंद के घर जायेंगे, महज चाय-पानी उड़ाने। और बताया जायेगा कि उसकी बीमारी की खबर सुनकर अधिक चिंतित हो उठे थे, अतः रुक नहीं पाये।

"अच्छा मजाक रहेगा।"

"हाँ...हाँ, गहरा मजाक।" महेन्द्र ने ताईद की।

लंच खतम हो चुका था, लेकिन काम पर मन नहीं था। नजरें बार-बार रिस्टवाच पर जा थीं। घड़ी की सुइयाँ, कमबख्त जैसे अड़ियल तरह जम गयी थीं। वक्त काटना दूर था।

तीन बजे के निकट फिर वाद-विवाद शुरू हो और निर्णय यहाँ तक जा पहुँचा कि यदि सम्भव हो से पहले ही बालमुकंद के घर धावा बोला जाय। सबको अखर रही थी। फैसला हुआ कि डाइरे छुट्टी माँग ली जाय।

"सब चले जाओगे, काम कैसे होगा ?" ने होठों पर जीभ फेरते हुए कहा। लगता था, वह अच्छे मूड में हैं। और फिर उसने एक कुटिल राजेश्वर, हांडा और महेन्द्र पर फेंकते और मुँह बनाते हुए कहा—"समझ नहीं पाया, आज मिस्टर बालमुकंद की इतनी चिन्ता क्यों ? बखूबी हूँ कि कल तक ही आप लोग उसके जानी दुश्मनों ताज्जुब है। खैर... छुट्टी इस समय नहीं मिल पाँच के बाद चले जाना।"

बात ठीक थी। उतावली क्यों ? सीट पर आकर मन मारकर बैठ गये। फिर कोई बात नहीं हुई। त्यों समय कट गया।

हँसी-ठट्ठों में डूबे, साइकिल पर दबादब पैडल सब हवा से बातें कर रहे थे। सूर्य अस्ताचल की था। ठण्डियों के दिन, दफ्तर से निकलो कि रात लेती है।

"गरमा-गरम समोसे।" हांडा ने सड़क पर लोगों की परवाह न करते हुए हाँक लगाई।"

और फिर क्या था, असंख्य अटकलें लगीं। के तौर-तरीकों पर, और अधिक-से-अधिक माल के बारे में, डटकर विचार-विनिमय होने लगा।

कनाट-प्लेस समाप्त होने के बाद पहाड़गंज की मुड़ना था। पहाड़गंज थाने से आगे सदर बाजार एक गली में बालमुकंद रहता था।

सूर्य डूब चुका था। अंधकार का एक झीना धरती को मकड़ी के जाले की तरह चारों ओर से चुका था।

सामने दरवाजे पर लटकी काली तख्ती पर सफेद क्षरों में लिखा 'बालमुकंद गुलाटी' दूर से ही साफ खायी दे रहा था। दरवाजे के निकट एक मरियल कुत्ता हिलाता असहाय-सा इधर-उधर देख रहा था। वह ना कमजोर था कि उसका भूंकना तक हैरानी की लगती थी। लैम्प-पोस्ट के झिलमिल प्रकाश से के अंधकार में कोई कटौती नहीं हो रही थी। लैम्प-पोस्ट यदि नहीं होता, तो भी खिड़कियों से छनकर आता ही लैम्प-पोस्ट के उजाले की पूर्ति कर लेता। पता कैसी गली थी कि कोई बच्चा भी खेलता नजर न ता। गली की नीरवता और एक सुप्त-मौन से कुछ भावना अंतर से उबल रही थी कि बालमुकंद की यत आज तक इस बीमार-सी गली में खराब क्यों हुई, उसे आज से बहुत पहले बीमार हो जाना चाहिए था।

सब कशमकश में थे कि कौन दरवाजा खटखटाये और न पहले अंदर प्रविष्ट हो ? अभी दरवाजा खटखटाया ने ही वाला था कि अंदर से किसी औरत की सिसकियों-रा स्वर मोटे किवाड़ों को छेदकर साफ उन तक आ हुंचा। हैरान होकर सब अपनी-अपनी जगह पर पत्थर प्रतिमा की तरह खड़े-के-खड़े रह गये। सिर्फ साइकिलें थ से थामे एक दूसरे की ओर देखने लगे कि यह सिस-यां कैसी और वे भी एक औरत की ?

"मैं कहता हूँ ऐसा क्यों किया तुमने ?" सिसकियों बीच बालमुकंद चिल्ला रहा था—"किसने कहा था हें यहाँ आने को ? मैं कहता हूँ, मेरी मजबूरियों को कब समझोगी ? तुम कहती हो छः साल हो गये हैं अलग-अलग रहते। क्या मैं नहीं चाहता कि अपने बच्चों के साथ हँसी-खुशी दो दिन गुजारूँ, परिवार कर अपने जीवन के बाकी दिन आराम से बिताऊँ ? की रोटी किसे भली लगती है ? रात को भूतों की अकेले-अकेले कौन सोना चाहेगा ? आखिर मैं भी मी हूँ, मेरा भी दिल है... लेकिन, क्या तुम नहीं तीं कि छोटा भाई इण्टर में पढ़ रहा है, बहिन की होनी है, बच्चे भी पढ़ने की उम्र को पार करने लगे और कल लड़कियाँ भी शादी के काबिल हो जायेंगी। र तुम भी यहाँ शहर में मेरे साथ रहो तो कैसे चले ? महँगाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। दो-चार रुपये जो गाँव भेजता हूँ, बोर्डिंग में पढ़ते भाई को दे रहा हूँ, लड़कियों की शादी के लिए जमा कर रहा हूँ, वह कहाँ से आयेंगे तब ? कैसे बचेंगे पैसे ?"

सब बाहर सुन रहे थे ।

बालमुकंद की आवाज डूबती गयी जैसे कोई आहिस्ते-आहिस्ते उसका गला दबोच रहा हो—"फिर भी तुम बेवकूफी करती हो ? जानते हुए अनजान बनती हो ? यहाँ चली आई, न खबर, न सूचना। मैं आज दफ्तर नहीं जा पाया। मामूली क्लर्क से सैक्शन आफीसर बना हूँ। पिछले छः सालों में एक दिन को भी छुट्टी नहीं ली। मातहत तक तंग हैं मेरी इस आदत से। लेकिन सोचता हूँ कि यदि इसी तरह आफीसरों को खुश करता रहा, तो वह दिन दूर नहीं कि अण्डर सेक्रेटरी बन जाऊँगा। और भले ही हम जिन्दगी का आनंद नहीं ले सके, लेकिन मेरा भाई पढ़-लिखकर बहुत बड़ा आदमी बनेगा, बहिन की शादी अच्छी जगह हो जायेगी और मेरे बच्चे . . .भगवान् उन्हें मेरी भी उमर दे। जरा सोचो। बोलो, जाओगी न कल गाँव... जाओगी न ? मेरी अच्छी...आओ... इधर आओ न।"

बाहर खड़े सब एकाएक महेन्द्र की हल्की-सी चीख से हड़बड़ा गये। साइकिलें थामे दरवाजे से हट गये। महेन्द्र की इस असभ्य हरकत से सब बौखलाए हुए थे कि पूरी बात भी नहीं सुनने दी। चाय-पानी की संभावना तो बहुत पहले मिट चुकी थी, लेकिन सब अंत जानना चाहते थे। महेन्द्र ने सब गुड़-गोबर कर दिया था ।

"धत तेरे की !" महेन्द्र अपने हाथ को मसलता हुआ बोला—"साली मक्खी ने काट खाया है। आप रो रहे हैं पूरी बात सुनने के लिए, यहाँ जान को आ पड़ी है।"

और पागलों की तरह वह फिर खिलखिलाकर हँस दिया। सब भौंचक्के होकर उसकी ओर देखने लगे। हँसते-हँसते महेन्द्र कह रहा था—"साली, हरामजादी मक्खी ! शहद किसी और को, और डंक हमें।"

महेन्द्र के मजाक को समझते हुए भी कोई हँसा नहीं। अभी भी किसीकी सिसकियों का स्वर, उनके हृदय से मिटा नहीं था। बिना आपस में बातचीत किये सब धीरे-धीरे, साइकिलें थामे गली से बाहर हो गये ।

नवीन प्रकाश

वैष्णव कबीर--स्वामी योगिराज वत्स, प्रकाशक स्वामी योगिराज गोवत्स, गरुड़दास आश्रम, रामानन्द रोड, हरिद्वार, मूल्य ५) रु०।

सुन्दर और सुसज्जित यह २५० पृष्ठों की पुस्तक अपने नाम से यह आभास देती है कि 'कबीर' पर ही लिखी गयी हो। वास्तव में ऐसा नहीं है। कबीर से प्रारंभ होकर यह उनके आचार्य रामानन्द पर आ जाती है और उसमें उनका जीवन काल, उनके ऐतिहासिक कार्य, उनका धार्मिक क्षेत्र, रामानन्द सम्प्रदाय का पूरा इतिहास दिया गया है जिसमें रैदास, मीराबाई, पयोधारी कृष्णदासजी, बालाबाई तथा उक्त समय के कितने ही भक्तों और सिद्धों की चर्चा है। रामानन्द सम्प्रदाय का इतिहास विवरण के साथ दिया गया है, उसके समकालीन सम्प्रदायों, उनका रामानन्दी सम्प्रदाय से मेल तथा भगवान् बुद्ध के विचारों में रामानन्दी वैष्णव धर्म का मेल पर भी विचार प्रकट किये गये हैं। इसके पश्चात् रामोपासना के प्रधान ग्रन्थों तथा रामानन्द सम्प्रदाय की शाखाओं का वर्णन है। अन्त में फिर कबीर साहेब का वर्णन है। इस प्रकार आदि और अन्त में कबीर साहेब का वर्णन है और मध्य में रामानन्द सम्प्रदाय का विस्तृत इतिहास है। अन्त के अध्यायों में एक अध्याय कबीर साहेब के वैष्णव होने का प्रतिपादन करता है। सम्भवतः इसी कारण पुस्तक का नामकरण 'वैष्णव कबीर' किया गया है। कबीर के वैष्णव होने का प्रतिपादन अच्छे ढंग से किया गया है। सुन्दर दृष्टांत दिये गये हैं।

'कबिरा कूता राम का, मोती मेरा गाऊँ,
गले राम को जेवरी जित खेंचत तित जाऊँ।'

और इस धारणा को कि कबीर हठयोगी व सूफी थे बहुत प्रभावहीन रूप से काटा है।

'वैष्णव की झोपड़ो भली
साकत को नहिं गाँव'

इतिहास भी अत्यन्त सरस बन पड़ा है। उस समय की देश की दशा का यह पुस्तक अच्छा ज्ञान कराती है। हिन्दू धर्म किन-किन बाधाओं को पार कर आज तक थोड़ा बहुत बच कैसे सका है, इसीपर आश्चर्य होता है। परिस्थितिवश एक बार धर्म-परिवर्तन हो जाने के पश्चात् किस प्रकार धर्म के परिवर्तित हो जाने से दुखी प्राणी जन पुनः हिन्दू धर्म फिर स्वीकार करने के लिय आतुर थे, और किस प्रकार पग्गड़धारी पंडितों ने उन्हें इससे दूर आश्चर्य नहीं कि विक्षिप्त होकर वे ही प्राणी पाकर बदला लेने की भावना से ही अपने नये इतनी कट्टरता से जम गये।

कुंभ के पर्व पर स्नान के लिए उतरे विचारशील हिन्दुओं की भृकुटी तनी ही रहती लोग ही जानते हैं कि उस उथल-पुथल के काल में सम्प्रदाय के वैरागी छोटी-छोटी 'जमातों' के रूप में घूम कर धर्म की लौ को प्रज्वलित रखते थे। पर सब के आचार्य मिलकर विचार-विमर्श करते नये विचार तथा नयी योजनाएँ लेकर फिर देश उतर पड़ते थे। तत्पश्चात् इन 'जमातों' के बढ़ पर इन्हें 'रामदल' की संज्ञा प्राप्त हुई। फिर के अन्दर धार्मिक स्थानों को बचाने के लिए दल का उदय हुआ और वह रामदल का अखाड़ा लगा। आदि आदि।

पुस्तक की शैली सुन्दर है, परन्तु लेखक ने को (प्रचलित या जो कि अन्य ग्रन्थों से प्राप्त बिल्कुल वैसी की वैसी स्वीकार कर लिया है। पाठकों को यह स्वीकार न होगा। उनका भी बौद्धिक विवेचन हो जाता तो अच्छा होता। को ज्यों का त्यों रख देने से रोचकता तो अवश्य है परन्तु जहाँ वे आयी हैं वहाँ आधुनिक पाठक की को ध्यान में रखते हुए उनका विवेचन आव थोड़ा-सा विचार करने से बहुत सी किंवदन्ति हो सकती हैं, जैसे 'देवि लक्ष्मी' के स्थान पर को ही न मानकर लक्ष्मी-स्वरूपा किसी नारी को से भाव स्पष्ट हो जाता है।

भगवान के पाँच अवतार--लेखक स्वामी सरस्वती : प्रकाशक सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट रिजरोड मलबार हिल, बम्बई--६, पृष्ठ-संख्या मूल्य दो रुपये।

इस पुस्तक में भगवान् के पाँच अवतार वतार, श्री कच्छपावतार, श्री वाराहावतार, वतार, श्री वामनावतार का वर्णन है। वर्णन है, तथा प्रत्येक अवतार के वर्णन के पश्चात् दिया गया है जिसमें उस अवतार के रूप का वर्णन उस अवतार के जाप के लिये एक मंत्र दिया है तथा के जाप के लाभ बतलाये गये हैं।

यह पुस्तक कथावाचक व कथा रूप में भगवान् की हिमा का स्वाध्याय करनेवाले भक्त जनों के लिये हित-ारी है। सत्यनारायण की कथा के समान "जैसे उनका ला हुआ वैसे सब का भला हो,' 'बोलो सत्यनारायण गवान् की जय!' के समान ही इसमें कथा की रोचकता है। भाषा सादी और सुंदर है।

अवतारों के कई अर्थ हैं उसमें पृथ्वी के विकास का तिहास निहित है। ऐसे किसी भी विचार का विवेचन स पुस्तक में नहीं किया गया है।

प्राकृतिक जीवन की ओर——लेखक, एडोल्फ जेस्ट, नुवादक, बिट्ठलदास मोदी, सस्ता साहित्य मंडल काशन, नई दिल्ली——१। मूल्य डेढ़ रुपया। पृष्ठ-ख्या २५६।

यह पुस्तक ऐडोल्फ जेस्ट की 'रिटर्न टु नेचर' का नुवाद है। प्रायः सभी मुख्य भाषाओं में इसके अनुवाद ए हैं। हिंदी को यह अनुवाद अब प्राप्त हुआ है। गांधीजी ाकृतिक चिकित्सा' में विश्वास करते थे, और मिट्टी ी पट्टी का उपयोग भी करते थे। यह बात तो सब को दित ही है। अनुवादक का कथन है कि, 'रिटर्न टु नेचर' ो ही उनका ध्यान प्राकृतिक चिकित्सा की ओर आकृष्ट िया था।

इसमें संदेह नहीं कि आजकल के कृत्रिम जीवन को न में लाने में यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। हम तो जानते हैं कि 'अल्ट्रा वौयलेट रेज' एक लैम्प हो सकती है, पर यह भूल गये हैं प्राकृतिक रूप से किरणें उस सूरज में हैं जिसके साथ हम नित प्रति दिन ते और सोते हैं। यह हमको पता है कि 'औक्सीजन' ंडरों में मिलता है, परन्तु आमोद-प्रमोद के लिए कमरों में जाते समय यह भूल जाते हैं कि इनका अक्षय ार वायु ही है। इस कारण इस पुस्तक को पढ़ लेने के ात् चाहे हम उसकी विचारधारा से सहमत हों या न एक बार अपने रहन-सहन, खान-पान की ओर आलोच-अवलोकन करने को विवश हो जाते हैं। हम कृत्रिम रहन-सहन और खान-पान के इतने अभ्यस्त ये हैं और उस ऊँघ हुए ढर्रे पर इतने अचेत होकर चले जाते हैं कि यह तो हम सोचते ही नहीं कि 'क्या में संशोधन हो सकता है?' या 'क्या वह हमारे ए उचित है?' सुविधा और अभ्यास ने पथ्य पर विजय त कर ली है। ऐसी अवस्था में यदि कोई भी पुस्तक रा ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करे तो वह अवश्य ही महत्त्वपूर्ण कार्य्य करती है। इसमें स्नान, रहने का न, वेश-भूषा, आहार, शिक्षा, जीवन आदि की प्रत्येक वश्यकता पर तो अपने विचार प्रगट किये ही गय हैं, ही पृथ्वी के सामीप्य से लाभ, मिट्टी की पट्टी के पयोग, बच्चों के भरण-पोषण के लाभदायक ढंग, वायु र प्रकाश स्नान के लाभ तथा तरीके भी बताये गये हैं, अन्त में कुछ उपचार भी दिये गये हैं।

आधुनिक शिक्षा में पले प्राणी को इस पुस्तक की कुछ बातें स्वीकार नहीं होंगी। जैसे, 'डिपथीरिया भयानक रोग नहीं है,' 'टीका चाहे चेचक का ही क्यों न हो, नहीं लगवाना चाहिये' (चेचक के प्रकोप के बाद इसको स्वीकार करना और कठिन है) 'दूध उबालकर नहीं पीना चाहिये' (ग्वालों के रोगों से मरे पशुओं की ओर देखकर इसको ग्रहण करना मुश्किल लगता है।) दूध उबालकर न पियो के पश्चात् पशु स्वस्थ हो, इसपर वे अपने विचार प्रकट करना भूल गये हैं। अस्वस्थ पशुओं का बिना उबला दूध, जिसमें ग्वाला कभी-कभी छोटी मछली भी नाप जाता है, कहाँ तक कच्चा ही पीने के योग्य है, यह सोचने की बात है।

इसे पढ़ते समय कभी-कभी यह इच्छा होती है कि पुस्तक में जब किसी मत का प्रतिपादन किया गया है तब उसकी पुष्टि करने के लिए ऐसे कारण और दिये गय होते जो बुद्धि को ग्राह्य होते। धरती पर बाहर सोने के मत का प्रतिपादन करते समय एक बात मिली——'दूर्वा दिन में नहीं, रात को ही बढ़ती है। इससे यह अंदाज लगाया जाता है कि धरती की शक्ति रात को खास तौर पर शक्तिशाली होती है।' बार-बार यह पढ़ने पर कि——'क्योंकि पशु ऐसा करते हैं इस कारण मनुष्य को भी यह करना चाहिए,' कुछ पाठक अन्त में शायद यह आशा भी करने लग जायँ कि पुस्तक शायद अब यह कहे कि 'क्योंकि रात्रि में, पशु अपनी-अपनी गर्दन घुमाकर और उसे अपने पैरों पर रखकर सोता है, इस कारण मनुष्य को भी उसी प्रकार सोना चाहिए।'

बंजर धरती तथा अन्य श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानियाँ——संपादक, विश्वनाथ। दिल्ली प्रेस, दिल्ली। मूल्य तीन रुपये।

'बंजर धरती' तथा अन्य ऐतिहासिक कहानियाँ, जैसा नाम से ही स्पष्ट है, ऐतिहासिक कहानियों का एक संग्रह है। इस पुस्तक में १२ ऐसी कहानियाँ संग्रहीत हैं जिनकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई भारतीय ऐतिहासिक युग है। सब कहानियाँ सरस व उच्च श्रेणी की हैं। इनके संस्करण में संपादक का उद्देश्य था कि 'क्या गल्तियाँ कमजोरियाँ थीं जिन्होंने गौरवशाली भारत को पतन और पराधीनता के गर्त में गिराया, उनके ऊपर उठना होगा ताकि वे फिर न दुहराई जायें......फूट, द्वेष, संकीर्णता, रूढ़िवादिता, स्वार्थ, नारी व शूद्र पर अत्याचार, अनाचार ये ही हमें गिराते हैं।......इन पुरानी गल्तियों को हमें दूर करना ही होगा।'

इस उद्देश्य को सम्मुख रखकर कोई भी साहित्य प्रकाशित हो यह देश के लिए बड़े भाग्य की बात है। किंतु कहानियाँ इस ढंग से कही गयी हैं कि उनके अंतर निहित उद्देश्य की ओर पाठकों का ध्यान नहीं जाता।

सत्तावन का सेनानी--अनु० आर० आर० सरवटे, लेखक बसन्त वरखेड़कर, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली--६, मूल्य साढ़े पाँच रुपये।

उपन्यास के लेखक श्री वसन्त वरखेड़कर मराठी के एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। आपके कई नाटक और कुछ उपन्यास मराठी में प्रकाशित हो चुके हैं। इस ऐतिहासिक उपन्यास 'सत्तावन का सेनानी' के भी मराठी में कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी में यह प्रथम बार अनुवादित हुआ है। 'अनुवाद सुन्दर और मूल सा ही जान पड़ता है। यह अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति के वीर सेनानी तांत्या टोपे के जीवन पर आधारित एक करुण, सुन्दर और सरस उपन्यास है। इतना रोचक है कि पढ़ते-पढ़ते वह कब समाप्त हो गया, इसका पता ही नहीं चलता। विलायती, मुगली व भारतीय तीनों ही संस्कृतियाँ उस समय विद्यमान थीं। तीनों के चित्रण में लेखक को सफलता मिली है। उस काल का चित्रण बहुत ही वास्तविक व करुण हुआ है। तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई व जेनी तीनों का ही चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक और प्रभावशाली है। विलासिता, फरेब और देश-भक्ति तीनों ही उस समय अपनी चरम सीमा पर थे। एक ओर देशभक्ति की लौ प्रज्वलित थी, दूसरी ओर फरेब और कूटनीति का जाल बारीकी से फैला था और तीसरी ओर विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। उस काल का चित्रण सफलता से कर देना कोई आसान काम नहीं है। उस काल के सफल चित्रण तथा तात्या टोपे एवं रानी झाँसी के चरित्र-चित्रण की सफलता पर लेखक बधाई का पात्र है। विलासिता का वर्णन हो और उसमें फूहड़पन न आये यह लेखक के चतुर कलाकार होने का द्योतक है। शैली के इस संयम ने उपन्यास को बहुत ऊँचा उठा दिया है। तात्या टोपे के हृदय की मानवता और दिव्यता का सम्मिश्रण अत्यंत अनूठा, सरस तथा स्वाभाविक है। इस उपन्यास ने यह प्रमाणित कर दिया है कि बिना किसी प्रेमकथा के भी उपन्यास सरस और हृदयग्राही हो सकता है। तात्या टोपे से नरवीरों का जीवन चरित्र उदात्त और दूसरों के लिए स्फूर्तिदायक होता है। यदि दूसरी भारतीय भाषाओं से ऐसी ही कुछ और पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में हो सके तो हिन्दी की बड़ी सेवा हो।

हमारे जल-पक्षी--श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह, प्रकाशक--निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली--८ सचित्र--१२ रंगीन और अनेक सादे चित्र। मूल्य, ढाई रुपये।

श्री सिंह ने कुछ दिन पहिले 'हमारे पक्षी' नाम की उपयोगी और मनोरंजक पुस्तक लिखी थी जिसमें इस देश के उन पक्षियों का वर्णन है जो गाँवों या नगरों के आसपास पाये जाते हैं। किंतु इस देश में ऐसे भी पक्षी हैं जो जल के पास रहते हैं। उनका ज्ञान हमें बहुत कम है। श्री सिंह ने इस पुस्तक के द्वारा नगरों में रहनेवालों के लिए आश्चर्य और कुतूहल का एक नया संसार ही सामने ला दिया है। इसे पढ़ने पर हमें मालूम हुआ कि हमें अपने देश कितने संदर कुतूहलवर्द्धक और उपयोगी पक्षियों का चय नहीं है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि प्रकार के हैं और उनमें से अनेक केवल जाड़े के हजारों मील की गगन-यात्रा करके उत्तर के से यहाँ आते हैं। उनकी आदतें बड़ी कुतूहल वाली हैं। इसमें अनेक सुंदर चित्र दिये गये हैं। चित्रों से इन पक्षियों के सौन्दर्य का कुछ आभास सकता है। चित्रों का चयन बड़ी सावधानी और के साथ किया गया है। बालकों और किशोरों के तो यह अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है ही, अनेक वयस्कों को यह बड़ी रोचक मालूम होगी विषय पर हिंदी में नहीं के बराबर साहित्य है। हम को इस सुंदर और उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए देते हैं। इसे लिखने में उन्हें जो प्रयास और करना पड़ा होगा उसकी हम कल्पना कर सकते हैं। की छपाई भी बहुत अच्छी है। यदि किसी गैर- संस्था ने इसे प्रकाशित किया होता तो जो मूल्य रखा गया है, वह बहुत उचित था। किंतु यह प्रकाशन है। सरकार का ध्येय ज्ञान का प्रचार चाहिए, और वह तभी हो सकता है जब ऐसी पुस्तकें को सुलभ हों। साधारण जनता को इसका मूल्य मालूम पड़ेगा। यदि कुछ घाटा उठाकर भी इसके प्रचार के लिए इसे माधारण जनता को सुल सके तो वह उसके उद्देश्यों के अनुकूल ही होगा।

काला हंस--(उपन्यास) अनुवाद। मू० ले० मान। अनु० काशीनाथ मिश्र। प्रकाशक, कम्पनी, कलकत्ता--१२। मूल्य, तीन रुपये।

टॉमस मान के इस उपन्यास की पश्चिमी जगत में बड़ी चर्चा रही। कुछ लोग इसमें अश्लीलता का आरोप करते थे, और अन्य इसे एक कला कृति। इसमें एक पचास वर्ष की विधवा एक वर्ष के नवयुवक के प्रति उसके शारीरिक सौन्दर्य आकर्षित हो जाती है और उसमें वासना जागृत है। संयोग से कैंसर की घातक बीमारी के में आ जाने के कारण वह वासना मनोवैज्ञानिक रह जाती है। विधवा की एक अविवाहिता पुत्री और एक युवक पुत्र भी है। इस विचित्र चित्रण टॉमस मान ने बड़े सजीव ढंग से किया है। में उस अवस्था में वासना का उफान बड़ा है। किंतु लेखक ने नायिका के मनोभावों के पर विशेष बल दिया है। यह असामान्य ढंग का है। यह घटना प्रधान नहीं है। जिन लोगों वैज्ञानिक उपन्यासों में रुचि हो, और जो पाश्चात्य शैली के उपन्यास पढ़ना चाहते हों रुचिकर होगा। अनुवाद की भाषा अच्छी और है। पुस्तक सादे किन्तु सुरुचिपूर्ण ढंग से छपी है।

१९६३

कलकत्ता के नजदीक (उपन्यास-अनुवाद) मू० ले० न्द्रकुमार मित्र। अनु० पृथ्वीनाथ शास्त्री। प्रकाशक, त्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६। सजिल्द। आकार। मूल्य, साढ़े सात रुपये।

बँगला के आधुनिक उपन्यासों में इस उपन्यास ने ना विशेष स्थान बना लिया है। साहित्य अकादमी ने पर पांच हजार का पुरस्कार देकर लेखक को समादृत है। और वास्तव में है भी यह उपन्यास अनूठा। शती के उत्तरार्द्ध में कलकत्त के निकट के निम्न के परिवारों पर कैसी बीतती थी, नगर के विकास सरकार द्वारा जमीन और मकान ले लेने से उनके यों की क्या दशा हो जाती थी, पुरुषवर्ग कितना और पतित हो गया था, स्त्रियों को सतत रिवर्तनशील सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति नी और अपने परिवार की मानमर्यादा बचाने में दुःख उठाना पड़ता था—इस सबका इस उपन्यास जीता-जागता चित्रण है। यह उपन्यास स्त्री चरित्रों आधारित है। सभी स्त्री पात्राओं का जीवन से साहस-संघर्ष देखकर पाठक बरबस उनके अदम्य साहस की, और उनके अभिशप्त जीवन की करुण दुर्दशा देख प्रति समवेदना से अभिभूत हो जाता है। यह बड़ा शक्तिशाली उपन्यास है और इसकी पात्राएँ पढ़ने के बहुत दिनों पाठक के मस्तिष्क पर छायी रहती है। सबसे आश्चर्य की बात है कि इसमें जितने पुरुष हैं प्रायः सब के सब निकम्मे और चरित्रहीन——जिनसे को वितृष्णा हो जाती है। यह उपन्यास पिछली की निम्न मध्यवर्ग का बंगाल की महिलाओं के प्रति चरित्र, साहस, कष्ट-सहिष्णुता, जीवन-संघर्ष और मूल्यों के प्रति अगाध आस्था के लिए एक कलाकार प्रशंसात्मक भावना की अभिव्यक्ति है। यह उपन्यास जानने के लिए भी पढ़ना चाहिए कि बंगाल में आधुनिक उपन्यास कला का क्या रूप है और वह कहाँ पहुँच है। प्रत्येक उपन्यास प्रेमी और साहित्य की गतिविधि ध्यान देने वाले व्यक्ति को इसे पढ़ना चाहिए। अनुवाद साधारण है और इसमें भाषा के सुधार की काफी इश है। कहीं-कहीं अप्रचलित क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग गया है तो कहीं उर्दू के शब्दों को इस तरह बलपूर्वक का प्रयत्न किया गया है कि वे वहाँ खप नहीं पाते। हरण के लिए यह वाक्य देखिए——"उनकी प्रातःकाल गंगास्नान सफेद धुली धोती से परिवृत्त हस्ती से कांश मुहल्लेवासी परिचित थे।" सद्य-गंगास्नान का धुली धोती से संबंध इस वाक्य में अटकल से समझा सकता है; 'परिवृत्त' भी कम हिंदी जाननेवालों को यद न खटके, किंतु इस वाक्य में उर्दू का 'हस्ती' हाथी की अलग और स्पष्ट खड़ा है जो इस वाक्य के शब्दों की रादरी में बाहरी सा लगता है। एक और वाक्य देखिए। जिस (मकान) ने हमें इतने दिन आश्रय दिया, उसे स कदर छोड़ जाना ठीक नहीं।" वह मकान को धोकर साफ कर रही है। यहाँ 'इस प्रकार' या 'गंदी हालत' में कहना ठीक होता। 'इस कदर' का उपयोग यहाँ अशुद्ध है। भाषा संबंधी अन्य प्रकार की त्रुटियाँ बतलाने का यहाँ स्थान नहीं है। यदि प्रकाशक अगले संस्करण में किसी अच्छे जानकार से इसकी भाषा सुधरवा लें तो इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के प्रति न्याय होगा।

गिरिव्रज राजगृह—डा० रामप्रकाश शर्मा। प्रकाशक, तरुण भारत प्रेस, बी० एम० दास रोड, पटना–४। सचित्र। मूल्य, ४ रुपये।

बिहार में राजगिरि या राजगृह प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान है। महाभारतकाल में यह जरासंध की राजधानी थी। जरासंध बड़ा पराक्रमी राजा था। उसके आतंक से आसपास के राजा घबड़ाते थे। उसने मथुरा राज्य की स्थिति संकटपूर्ण कर दी थी। इसके बाद भी जब तक पाटलिपुत्र में राजधानी स्थापित नहीं हुई, वह मगध की राजधानी बना रहा। बुद्ध और महावीर ने अपने धर्मों का प्रचार यहाँ किया, और उनके जीवन से राजगृह का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। बौद्ध ग्रंथों में राजगृह की चर्चा अनेक बार हुई है। वह बड़ा समृद्धिशाली नगर था। चीनी यात्रियों ने भी उसका वर्णन किया है। आज यह स्थान शतियों की उपेक्षा के कारण महत्त्वहीन और अल्पकाय है। उसी राजगृह का यह विस्तृत इतिहास और उसके वर्तमान रूप का मनोरंजक तथा सूचनाप्रद वर्णन है। पुस्तक में लेखक के परिश्रम, खोज और अध्ययन के प्रमाण पग पग पर मिलते हैं। हमने हिंदी में किसी प्राचीन या नवीन स्थान के ऊपर इतना विस्तृत, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक पुस्तक नहीं देखी। इसके पढ़ने से राजगृह का गौरवशाली अतीत पाठक के हृदय में मूर्त हो उठता है। इससे यह भी मालूम पड़ता है कि अब लोगों का ध्यान उसकी ओर गया है तथा कुछ दशकों से वहाँ के ऐतिहासिक अवशेषों का अध्ययन होने लगा है। आरंभ में पटना भूमंडल के आयुक्त श्री श्रीधर वासुदेव सोहोनी की विस्तृत और पाण्डित्यपूर्ण भूमिका है जिसने इस पुस्तक का महत्व और बढ़ा दिया है। ऐसी सुंदर और महत्वपूर्ण पुस्तक लिखने के लिए लेखक हिंदी जगत की कृतज्ञता का पात्र है। इसके आदर्श पर यदि अन्य प्राचीन नगरों पर पुस्तकें तैयार की जायँ तो देश का बड़ा उपकार होगा। हम एक बात से निराशा हुई। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की छपाई वैसी नहीं हुई जैसा होना चाहिए था। इसमें कागज भी अच्छा नहीं लगाया। चित्र दिये गये हैं पर उपयुक्त कागज पर न छापने के कारण वे इतने अच्छे नहीं छपे जितने अच्छे छपने चाहिए थे। इससे इस महत्वपूर्ण पुस्तक के साथ अन्याय हुआ है। बिहार सरकार या बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् को इस प्रकार के उपयोगी और महत्वपूर्ण ग्रंथ को सुंदर ढंग से प्रकाशित करने के लिए लेखक या प्रकाशक की सहायता करना चाहिए था। हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक का समुचित प्रचार होगा तथा सरकार से

इसका पोषण होगा तथा इसका अगला संस्करण अच्छे ढंग से निकलेगा।

श्री सूक्त—हिंदी भाषान्तर सहित। टीकाकार श्री चरणतीर्थ महाराज। प्रका० श्री भुवनेश्वरी पीठ, गोंडल (सौराष्ट्र) मूल्य, एक रुपया।

इस पुस्तक की उपयोगिता और लोकप्रियता इसीसे प्रमाणित है कि यह उसका छठवाँ संस्करण है। मूल संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद भी दे दिया गया है। श्री सूक्त और पुरुषसूक्त प्रसिद्ध वैदिक सूक्त हैं जिनका प्रचार सनातन धर्मी जनता में बहुत दिनों से है। यह पुस्तक इस सूक्त का विधिवत् पारायण करनेवालों के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि इसमें श्री सूक्त पर आधारित सभी पूजनों और अनुष्ठानों की विधि और विवरण दिये गये हैं। पुस्तक अपने ढंग की अनोखी और सनातनधर्मी जनता के बड़े काम की है। छपाई स्पष्ट और शुद्ध है। हिंदी टीका सरल है। श्री सूक्त के चक्र और तांत्रिक प्रयोग भी दिये गये हैं जिससे इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है। पुस्तक का आकार आदि देखते हुए मूल्य बहुत ठीक है।

समितिवाणी—हिंदी साहित्य समिति, भरतपुर की त्रैमासिक पत्रिका। वार्षिक मूल्य ६ रुपये।

भरतपुर की हिंदी साहित्य-समिति देश की बहुत पुरानी साहित्यिक संस्थाओं में है। इसकी स्थापना १९१२ में हुई थी। इसने अपने प्रयत्न से एक बार भरतपुर में हिंदी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन भी किया था। बीच में समिति का काम कुछ ढीला पड़ गया था किंतु संतोष की बात है कि अब उसमें फिर गति आयी है। भरतपुर में हिंदी के उत्साही कार्यकर्ताओं का एक छोटा सा दल है। उसके तत्त्वावधान में आ जाने से हमें समिति का भविष्य उज्ज्वल मालूम होता है जिसका एक प्रमाण यह त्रैमासिक पत्रिका है। यह इसका प्रथम अंक है। इसमें १९० पृष्ठ और १२ स्तम्भ हैं जिनमें साहित्य के सिद्धान्त, साहित्य का इतिहास, अविदित साहित्य और साहित्यकार, भाषा एवं भाषाशास्त्र, साहित्यिक विचार-विमर्श, साहित्य की विधाएँ, हिन्दीतर साहित्य, दर्शन एवम धर्म, क्षेत्रीय साहित्य और भरतपुर क्षेत्र में साहित्यिक शोध उल्लेखनीय हैं। भरतपुर वास्तव में ब्रजभाषी क्षेत्र है। मेवात और राजस्थान से वह लगा हुआ है। यहाँ भाषा और साहित्य सम्बन्धी खोज की अगणित संभावनाएँ हैं। इसीलिए हम इसके 'अविदित साहित्य और साहित्यकार, क्षेत्रीय साहित्य ओर भरतपुर क्षेत्र में साहित्यिक शोध' नामक स्तंभों से विशेष प्रभावित हुए और उन्हें बहुत उपयोगी समझते हैं। जिस ढंग से इन्हें आरंभ किया गया है वह बड़ा आशाजनक है। इनमें मेवाती लोकगीतों, सूदन, रांगेय राघव, नामदेव, रज्जब लेख बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। हम आशा करते हैं कि इस सिक से हिंदी की बड़ी सेवा होगी तथा इससे और आस-पास के साहित्य-प्रेमी लोगों में अपने साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न होगी और उनसे शोध और साहित्य सृजन की प्रेरणा भी मिलेगी। का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है। हम करते हैं कि यह त्रैमासिक पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में प्रति रुचि और जागरूकता उत्पन्न करेगा। कालिज स्कूलों के हिंदी-विभागों और हिंदी-प्रेमियों के लि बहुत उपयोगी है।

सम्वत् २०२० का शिव पंचांग—निर्माता, ज्यो चार्य पं० रामव्यास पांडेय। प्रकाशक, ज्ञानमंडल, वारा मूल्य १ रुपया।

सम्वत् २०२० का सौर पंचांग—पं० राम पांडेय। प्रकाशक, ज्ञानमंडल, मूल्य, बारह आने।

शिव पंचांग परम्परानुकूल तैयार किया गया है। व्यासजी इस समय के काशी के प्रमुख ज्योति हैं और पिछले वर्ष के पंचांग में उन्होंने जो वर्षफ था उसमें की कई बातें ठीक उतरीं। यह पंचांग सावधानी से पुरानी परम्परा के अनुसार तैयार गया है और इसमें सभी ज्ञातव्य बातें बड़े प्राम रूप में दी गयी हैं। पंडितों और गृहस्थों के लिए यह उपयोगी है और काशी के पंचांगों में यह बहुत मान्य प्रामाणिक माना जाता है। सौर पंचांग का प्र काशी के प्रसिद्ध विद्याप्रेमी और कर्ण बाबू शिव गुप्त ने आरंभ किया था। यह सौर गणना के अ तैयार किया गया है किंतु इसमें भी परम्परानुकूल चां का पंचांग दिया गया है। सौर वर्ष अधिक वैज्ञानिक जाता है और बहुत से विद्वान् उसका अनुसरण करते इस पंचांग की विशेषता यह है कि इसमें सौर और दोनों गणनाओं का उपयोग किया गया है जिससे यह के लिए उपयोगी है। इसकी एक और विशेषता यह इसकी सौर तिथियाँ कलैंडर के ढंग से छापी गयी हैं सुविधा के लिए चान्द्र तथा अंग्रेजी तिथियाँ भी दे हैं, और इसका उपयोग कलंडर की तरह कमरे में कर भी किया जा सकता है। इसमें मुहूर्त आदि आवश्यक बातें दे दी गयी हैं। आरंभ में ज्योतिष सामान्य जानकारी भी दे दी गयी है जिससे सा लोगों को भी ज्योतिष संबंधी उपयोगी बातें मा सकती हैं।

१९०७ की सरस्वती

श्रीयुत गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी, बी० ए०, एल-एल० बी०

श्री शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित

दो वर्ष से हम श्री युक्त गोबर्धनराम माधवराम त्रिपाठी परिचय हिन्दी पाठक-वृन्द को देने का विचार कर रहे किन्तु किसी न किसी कारण से आज तक हम अपनी पूर्ण न कर सके। इस बीच में इनकी पार्थिवलीला वरण हो गई। अतएव शोकाकुल हृदय से इनका वृत्तान्त जितना, हमें मालूम हुआ है उतना ही, हैं।

श्रीयुक्त त्रिपाठी महाशय का जन्म विक्रम संवत् १९११ विजयादशमी (२० अक्टोबर, १८५५ ईसवी) को रात प्रान्त के अन्तर्गत "नड़ीयाद" नामक कसबे में था। ये नागर ब्राह्मण थे जो गुजरात के पंचद्राविड़ों सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनके पिता का नाम श्रीयुक्त वराम धीरजराम त्रिपाठी था। गोवर्धनरामजी के समय इनके पिता की स्थिति बहुत अच्छी थी। ई में उनकी सराफे की दुकान थी। इसलिए चार-च वर्ष के बाल्य वय में ही गोबर्धनराम जी को बम्बई हने का सुयोग प्राप्त हुआ। इनका विद्याभ्यास वहीं रू हुआ। मातृ-भाषा गुजराती का अभ्यास इन्होंने की बुद्धिवर्धकशाला में किया। वेदान्त पर एक सिद्ध ग्रन्थ (A Sketch of Vedanta Philosophy) नेवाले श्रीयुक्त मनःसुखराम सूर्यराम इनके पिता के मित्र थे। वे गोवर्धनरामजी के अध्ययन पर पिता तुल्य दृष्टि रखते थे। इनका अँगरेजी अध्ययन आरम्भ ना मातृभूमि "नड़ीयाद" में हुआ। वहाँ पहले तीन तक अभ्यास करके वे फिर बम्बई गये। वहाँ के फिन्स्टन हाई स्कूल' में चौथी से सातवीं कक्षा तक यास कर, सालहवां वर्ष पूर्ण होते ही, वे बम्बई विश्व-यालय की प्रवेशिका-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बीस ही की उम्र में इन्होंने बी० ए० की पदवी प्राप्त की। शास्त्र, इतिहास, तथा न्याय और नीतिशास्त्र, इनके क विषय थे। संस्कृत के लिए इनको सन् १८७५ में, विश्वविद्यालय का 'सुन्दरजी जीवाजी एसे प्राइज' इनाम मिला। सन् १८७६ में, 'ects of Early Marriages on the ogress of the natives of this Country.' अर्थात् विवाह से हमारे देशवासियों की शिक्षा विषयक ति पर क्या असर पड़ता है--इस विषय पर निबन्ध न के लिए विश्वविद्यालय का 'करसनदास मूलजी प्राइज' भी इन्होंने प्राप्त किया।

इसके बाद इनके दुर्भाग्य के दिन आये। सात वर्ष क इनके कुटुम्ब पर आपत्ति के घनघोर मेघ छाये रहे। वर्धनरामजी को पहले ही से स्वतंत्र जीवन निर्वाह करने शौक था। उन्होंने ऐसा ही जीवन व्यतीत करने का संकल्प तक कर लिया था। परन्तु सन् १८६४-६५ में, बम्बइ, में 'शेयर्स' के सट्टे का बाजार बहुत ही गर्म हो उठा। इनके पिता उसी की लपेट में आ गये। उनको इस व्यवसाय में बहुत नुकसान रहा। वे ऋणी हो गये। इसलिए सारे कुटुम्ब को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। पर इस महात्मा ने अचल धैर्य से सारी विपत्ति झेल डाली। और पिता को ऋणमुक्त करने का आश्वासन दिया। इस आपत्ति के कारण, माता-पिता के सुख सम्पादन के लिए, इनको अपने पूर्वोक्त संकल्प से विचलित होना पड़ा। इसी समय, अभाग्यवश, इनको एक प्रकार का शिरोरोग हो गया। अँगरेजी साहित्य और संस्कृत (न्याय) में एम० ए० की परीक्षा ये देना चाहते थे। पर इस रोग के कारण इन्हें वह विचार छोड़ना पड़ा। यह व्याधि बहुत दिन तक बनी रही। इससे कई बार इनका स्वास्थ्य बिगड़ा। तब भी धीरे-धीरे अभ्यास करके, कई मर्तबे की निष्फलता के बाद, अन्त में, ये सन् १८८३ ई० में, एल-एल० बी० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये।

बी० ए० पास होते समय इन्होंने ये संकल्प किये थे। (१) एल-एल० बी० अर्थात् विकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण होना, (२) एल-एल० बी० होने के बाद बम्बई में विकालत करना, (३) चालीस बयालीस वर्ष की उम्र में विकालत छोड़ना और (४) किसी की नौकरी न करना। परन्तु माता-पिता की सेवा के लिए चौथा संकल्प, कुछ समय के लिए, इन्हें छोड़ना पड़ा। भावनगर राज्य में, श्रीमान् श्यामलदास परमानन्ददास के मन्त्रित्व समय में, इन्होंने उनके अँगरेजी सेक्रेटरी के तौर पर नौकरी स्वीकार की। वहीं इन्होंने अपने संकल्प की पूर्ति के लिए कानून का अभ्यास भी शुरू किया। दीवान साहब ने इन्हें न्यायाधीश का पद देने का वादा किया और कहा कि उस पद पर अधिक वेतन मिलेगा। सेक्रेटरी के पद पर अधिक वेतन की आशा नहीं। परन्तु विद्यारसिक गोवर्धनरामजी ने दीवान साहब ही के पास रहना पसंद किया। यहाँ इन्हें बहुत कम काम करना पड़ता था। कुटुम्ब पोषण के लिए केवल १२५) रु० का ही वेतन इन्होंन बस समझा। १८७५ ईसवी में, बी० ए० पास करने के बाद, कई स्थानों से अच्छी अच्छी जगहों के लिए ये बुलाए गये थे। १८७६ में, कच्छ राज्य के अमात्य, स्वर्गवासी दीवान बहादुर मणीभाई जसभाई ने ३००) पर, हुजूर सेक्रेटरी के पद के लिए इन्हें बुलाया था। सन् १८८३ में श्रीमान् श्यामलभाई ने २५०) पर, भावनगर राज्य में, और श्रीमान् हरिदास बिहारीदास देसाई ने, ३००) पर, जूनागढ़ राज्य के न्याय विभाग में काम करने के लिए इनसे कहा था। १८८५ में बड़ोदा राज्य के भूतपूर्व दीवान काजी शहाबुद्दीन

साहब ने, महाराज गायकवाड़ की आज्ञा से, ५००) पर, उस राज्य में 'विद्याधिकारी' के पद के लिए, इन्हें बुलाया था। पीछे से कई वर्ष बाद श्रीमान् कच्छ नरेश ने, १५००) मासिक पर दीवान का पद देने की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु वे इन सब सूचनाओं को कृतज्ञतापूर्वक अस्वीकार ही करते गये और अपने पूर्वसंकल्प पर निश्चल रहे।

१८८३ में एल-एल० बी० पास करके, १८८४ ई० के प्रारम्भ से, इन्होंने बम्बई में विकालत का काम आरम्भ किया और अपने असली सिद्धान्त पर दृढ़ रहकर सन् १८९८ में विकालत करना छोड़ भी दिया।

धन लोभ बहुत बुरा होता है। उससे छूटना कठिन काम है। गवर्नमेंट अपने अधिकारियों को, वृद्ध होने पर, पेन्शन लेने के लिए मजबूर करती है। तब भी लोभ के वश होकर बड़े-बड़े अधिकारी अपनी नौकरी की समयावधि बढ़ाने के लिए प्रायः अनेक प्रकार के प्रयत्न और खुशामद करते हैं। इतना ही नहीं, कुछ लोग तो एक सेवा-वृत्ति से निवृत्त किये जाने पर दूसरी सेवा की शृंखला में आप ही आप जा फँसते हैं। इस दशा में एक प्रतिष्ठित वकील का, धन की कुछ भी परवा न करके, अपने व्यवसाय को स्वयं अपनी ही इच्छा से, केवल चौदह-पन्द्रह वर्ष काम करके छोड़ देना क्या तारीफ की बात नहीं है? गोवर्धन रामजी जैसे स्वार्थत्यागी महात्माओं के उदाहरण इस समय बहुत ही कम देख पड़ते हैं। जिस समय उन्होंने विकालत छोड़ी, वे वृद्ध नहीं थे। उनके जीवन का मध्यकाल था। उनकी कीर्त्ति खूब बढ़ रही थी। पन्द्रह वर्ष की विकालत में उनका नाम सर्वव्यापी हो गया था। गुजरात, खानदेश, धारवाड़, रत्नागिरी, शोलापुर, नासिक, आदि स्थानों तक के रईस, जमींदार, राजे-महाराजे उन्हें काम देते थे। ऐसे समय में कीर्त्ति और कंचन दोनों का त्याग करके, 'वानप्रस्थ सेवन'—एक कस्बे में आत्मचिंतन—करने बैठना सबका काम नहीं।

गोवर्धनरामजी एकांतवासी और मननशील प्रकृति थे। यश उपार्जन की लालसा से कोई काम करना उन्हें पसन्द न था। तथापि प्रसंग प्राप्त होने पर देशसेवा, जन-सेवा और साहित्य-सेवा करने में वे संकोच भी नहीं करते थे। जिस समय ये कालेज में थे इन्होंने हनी क्लब (Honey Club) नामक एक मण्डली की स्थापना की थी। उसके एक अधिवेशन में इन्होंने, सन् १८७३ में, 'State of Hindu Society in the Bombay Presidency" अर्थात् 'बम्बई प्रान्त में हिन्दू समाज की अवस्था' नामक एक लेख पढ़ा था। एक बार ""Is there any Creator of this Universe" अर्थात् इस सृष्टि का क्या कोई उत्पन्नकर्त्ता भी है? इस नाम का भी निबन्ध इन्होंने पढ़ा था। इससे प्रतीत होता है कि देशसेवा और तत्त्व चिन्तन इनके जीवन के प्रधान उद्देश्य शुरू ही से थे। बम्बई, अहमदाबाद, नड़ीयाद, अहमदनगर, सूरत, सिद्धपुर आदि स्थानों में इन्होंने गुजराती और अँगरेजी भाषाओं में कई व्याख्यान दिये थे। इनके व्याख्यान सर्वथा गम्भीर और चिन्तनयोग्य होते थे। कांग्रेस में भी इन्होंने क
वक्तृता दी थी।

कुछ समय हुआ अहमदाबाद में एक गुजराती सा
परिषद् का अधिवेशन हुआ था। उसके ये अध्य
उस समय इन्होंने जो व्याख्यान दिया था वह ब
उत्तम और युक्तिपूर्ण था।

पुस्तकावलोकन से इनको विशेष प्रेम था—अं
गुजराती और संस्कृत के गम्भीर ग्रन्थों का इन्होंने
अभ्यास किया था। इतिहास पर इनकी बहुत रुचि
इनका इरादा था कि सारे संसार का इतिहास पढ़क
प्रबन्ध लिखें कि भविष्यत् में भारत का क्या होनेवा
इनका ऐतिहासिक ज्ञान, इनकी पुस्तकों में, स्थान-
पर प्रकट होता है।

गुजराती लोगों में ये सरस्वतीचन्द्र के लेखक के
से प्रसिद्ध हैं। गुर्जर साहित्य में यह ग्रन्थ अद्वितीय
अपूर्व है। इसके मुकाबले का कोई ग्रन्थ आज तक
राती भाषा में नहीं लिखा गया। इसका प्रथम भा
१८८७ में, निकलता था। बकल के हिस्ट्री आव सि
ज़ेशन (सभ्यता का इतिहास) नामक ग्रन्थ के नि
पर जैसी चर्चा इँग्लैंड के शिक्षित समाज में हुई थी वै
'सरस्वतीचन्द्र' के निकलने पर गुजराती साहित्य-
में हुई थी। यह ग्रन्थ चार बड़े-बड़े भागों में विभ
प्रथम भाग सन् १८८७ में, दूसरा १८९२ में, ती
१८९८ में, और चौथा १९०१ में प्रकाशित हुआ
अर्थात् इस समग्र पुस्तक के प्रकट होने में पन्द्रह वर्ष
सरस्वतीचन्द्र ने गुजराती साहित्य पर अविरल प्र
डाला है। पुस्तक है तो उपन्यास, परन्तु उसे ज्ञान
अनुभव का सागर कहना चाहिए। कल्पना, रस,
विधान, भाषा गौरव आदि का उन्नत स्वरूप इस
में मिलता है। धर्म, समाज, राजनीति आदि
गंभीर विषयों पर उसमें बड़ी ही योग्यता से चर्चा की
है। फिर भी खूबी यह है कि पुस्तक के स्वारस्य में
भी बाधा नहीं आई। राजा से लेकर रंक तक,
से मूर्ख तक, आबाल वृद्ध, स्त्री पुरुष, सभी उसे
असाधारण लाभ उठाते हैं। गुजरातियों को इस
ने रसज्ञ, विचारशील, और कल्पनाप्रिय बना दि
इसने बहुतों के जीवन में उमंग और उत्साह भर
बहुतों के जीवन-क्षेत्र में उच्चाशय का बीज बो दि
बहुतों के अभिलाषों को खूब उत्कट बना दिया है।
हो विपथगामियों को उन्नत पथ दिखाया है। बहु
शुष्क जीवन को रसाप्लुत किया है। बहुत
गुजरात के नवीन युग का यह महाभारत है।
तक गुजराती भाषा का अस्तित्व रहेगा, तब तक 'सर
चन्द्र' उपन्यास भी विद्यमान रहेगा। इसमें कु
सन्दह नहीं। इस ग्रन्थ ने इसके लेखक को अमर
दिया।

इस पुस्तक के पहले और दूसरे भाग के अ
का मराठी भाषान्तर भी हो चुका है। हमारे

राती भाषा से परिचय रखते हैं उन्हें यह पुस्तक ने की हम सिफारिश करते हैं। और हिन्दी लेखकों से जिनको उपन्यास लिखने का शौक है उनसे हम सवि- य प्रार्थना करते हैं कि कुछ समय के लिए ऐयारी और सूसी कथायें लिखना छोड़कर, इस पुस्तक का भाषा- र हिन्दी में कर डालें।

श्रीयुक्त गोवर्धन रामजी केवल उपन्यासकार ही हीं थे, वे उत्तम कवि भी थे। कविता का उनको ल्यावस्था ही से शौक था। जब वे गुजराती वाचन- ला की दूसरी पुस्तक पढ़ते थे तभी उन्होंने उसके एक र एक छोटा-सा पद्य बना कर अपनी माता को भेजा। ा। बड़े होने पर इनकी कवित्वशक्ति का बीज अंकु- त हो उठा। उसका यह फल हुआ कि इन्होंने १८८९ 'स्नेहमुद्रा' नामक एक उत्तम काव्यग्रन्थ प्रकट या। इस काव्य में वैसे ही उत्तम भाव हैं जैसे कि रेजी और संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों में पाये जाते हैं। १९०२ में, अपनी ज्येष्ठ पुत्री के जीवन चरित को ावती नी जीवनकला' नाम से इन्होंने प्रसिद्ध किया। की यह कन्या कर्त्तव्य-परायणा, मेधाविनी और विशुद्ध- ता थी। इसका चरित बहुत ही अच्छी शैली में खा गया है और हर एक स्त्री-पुरुष के पढ़ने लायक है। इनके अन्य छोटे-छोटे ग्रन्थों और लेखों का उल्लेख म नीचे करते हैं--

(१) Classical Poets of Gujarat and their uence on Society and morals--अर्थात् 'गुजरात सिद्ध कवि और समाज तथा नीति पर उनका व'--यह निबन्ध इन्होंने बम्बई के विल्सन-कालेज स्वर्गवासी माननीय जवेरीलाल उमियाशंकर याज्ञिक भापतित्व में पढ़ा था। यह अंगरेजी में है और काकार छपा है। गुजरात के प्राचीन कवियों के य में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले अँगरेजी- त पाठकों को यह पुस्तक जरूर देखना चाहिए। क्त गोवर्धनरामजी के अन्य सब ग्रन्थों की तरह ी बम्बई में एन० एम० त्रिपाठी कम्पनी (कालबा रोड) से मिलता है।

(२) 'एशिया, युरोप विगेरे खंडोमानी महाप्रजा ना जनस्वभावनां लाक्षणिक दृष्टान्त।'

(३) 'साक्षर श्रीनवलराम लक्ष्मिराम नी जीवन- ' यह एक बहुत बड़े गुजराती समालोचक का जीवन न्त है और सुपाठ्य है।

(४) Conflict of Laws between Converts and Non-converts in India

यह कानून विषयक ग्रन्थ अँगरेजी में है।

इसके सिवा 'ईस्ट एण्ड वेस्ट', 'इण्डियन रिव्यू', 'हिन्दूस्तान रिव्यू' आदि अँगरेजी मासिक पत्रों में उनके अनेक लेख निकले हैं। 'सतीचुनी' नामक एक गुजराती सती का चरित इन्होंने 'ईस्ट एण्ड वेस्ट' में लिखा था। उसका भाषान्तर तैलंगीभाषा में भी हुआ है।

बम्बई विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा में ये गुजराती के परीक्षक नियत होते थे। कई वर्ष तक ये विश्वविद्यालय के फेलो भी थे।

यद्यपि कई वर्ष से ये निवृत्तिमार्ग के पथिक हो रहे थे तथापि देशसेवा और साहित्य-सेवा के लिए उन्हें अपने जीवन को प्रवृत्तिमय बनाना ही पड़ता था।

श्रीयुक्त गोवर्धनराम जी का स्वभाव बाल्यावस्था ही से शुद्ध, पवित्र और अनुकरणीय था। विद्यार्थिदशा में न कभी इन्होंने छिप कर किसी विद्यार्थी के परचों की नकल की और न किसी को नकल करने दिया। इनके स्वभाव में दृढ़ निश्चय बहुत था। ये गणित के विषय में बहुत ही कच्चे थे--इतने कि एक बार परीक्षा में इन्हें २०० में से केवल ८ नम्बर मिले! तब से इन्होंने इस न्यूनता को दूर करने का निश्चय किया और छुट्टी के दिनों में गणित का अभ्यास इतने परिश्रम से किया कि फिर कभी इन्हें लज्जित होने का मौका नहीं आया।

वानप्रस्थ अवस्था में ये अपना अधिक समय योग-साधन और उपनिषदों के अभ्यास में व्यतीत करते थे। अनेक आधि-व्याधियों से ग्रस्त होने पर भी ये अपने संकल्प से कभी विचलित नहीं हुए। ये इस जमाने के ब्रह्मर्षि थे। इन्हें देखते ही देखनेवाले के मन में पूज्यभाव उत्पन्न होता था। हाईकोर्ट में एक बार ये बहस कर रहे थे। उस समय इनकी कार्यकुशलता और योग्यता को देखकर इनके प्रतिपक्षी वकील मिस्तर चौबले ने यह कहा कि :--"I love you, I respect you, I revere you, I admire you." ऐसे-ऐसे उद्गार और भी कई सज्जनों ने इनके विषय में निकाले हैं।

इस पूजनीय पुरुष ने, ४ जनवरी १९०७ को, मध्याह्न के दो बजे, अपने मित्र, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अध्यापक श्रीयुक्त त्रिभुवनदास गज्जर के मकान पर, इस नश्वर संसार का त्याग किया।

मनोरंजक संस्मरण

नवीनजी का विनोद

कानपुर में बाबू हीरालाल खन्ना को अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने का एक विशाल उत्सव हुआ। उसमें आचार्य नरेन्द्रदेव, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त, बाबू सियारामशरण गुप्त, पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि कितने ही प्रतिष्ठित सज्जन पधारे थे। गुप्त बंधु, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और नवीनजी स्वर्गीय श्री हरिशंकर विद्यार्थी के बँगले में ठहरे थे। पं० बनारसीदासजी को सबेरे साढ़े-तीन चार बजे उठ जाने की आदत है। वे उस समय चाय पीते हैं और फिर टहलने के लिए निकल जाते हैं। और लोग देर से उठने के अभ्यस्त थे। एक दिन अपने नियम के अनुसार बनारसीदास जी सबेरे साढ़े तीन बजे उठकर बँगले के सामने की घास पर टहलने लगे। उस समय घोर अंधकार था। उस घास के मैदान के सामने जो कमरे थे उनमें से एक में कोई बहू सो रही थी। खिड़की खुली थी। संयोग से उसकी आँख खुल गयी और उसने उस अँधेरे में एक मानव आकृति देखकर समझा कि कोई चोर आ गया है। दूसरे कमरे में नवीनजी सो रहे थे। उसने जाकर धीरे से उन्हें जगाया और अपनी आशंका बतलायी। नवीनजी ने अपनी खिड़की से झाँककर देखा और वे बनारसीदासजी को पहचान गये। बहू से बोले––"जाके सो रह वे तेरे ससुर हैं। उन्हें नींद नहीं आती। इससे घूम रहे हैं।" जब सबेरे सब लोग उठे और चाय पर बैठे तब नवीनजी ने बनारसीदासजी से कहा कि सियारामशरणजी ने आप पर एक दोहा बनाया है। बेचारे सियारामजी अवाक् होकर उन्हें देखने लगे। दूसरे लोग उनसे उसे सुनाने का आग्रह करने लगे। किन्तु बेचारे सियारामजी जितना इंकार करते थे, लोग उतना ही अधिक आग्रह करते थे। अन्त में नवीनजी बोले––"यह दोहा सियारामजी ने हमें सुनाया था और गुप्त रखने को कहा था। इसलिए वे नहीं सुना रहे। किन्तु आप लोगों को मैं आनन्द से वंचित नहीं करना चाहता, इसलिए चाहे सियारामशरणजी नाराज ही जायें, मैं उसे आपको सुना दूंगा।" इतना कहकर बनारसीदासजी के सबेरे टहलने की घटना यह दोहा सुनाया :

"भिनसारें ही उठि गयो अपनो बिस्तर
घास खाइबे कों कढ़्यौ यह बनारसी साँड़।

बेचारे सियारामजी विरोध ही करते किन्तु सब लोग उन्हें इस दोहे के लिए बधाई दे इस दोहे का आनन्द सभी लोगों ने लिया; और अधिक स्वयं बनारसीदासजी ने।

शुक्लजी की विनोदपूर्ण सलाह

जब हम फैजाबाद में नियुक्त थे तब हमने हिन्दी शिक्षकों के लिए एक पंद्रह-दिवसीय आयोजन किया था। हमारी प्रार्थना पर चंद्रजी शुक्ल भी उसमें एक सप्ताह के लिए और उन्होंने आगत हिन्दी शिक्षकों के लाभ के साहित्य और इतिहास पर एक भाषणमाला एक दिन वे दर्शन करने अयोध्या गये। वहाँ गढ़ी के पास एक भिखारी खड़ा था जो बाबू लोगों कहकर भीख माँगता था कि "साहब की रहे।" उसको बार-बार यह टेक दुहराते सुनकर पास गये और धीरे से बोले––"यदि तुम 'साहब ऊँची रहे' के साथ यह भी कहा करो कि 'मेम जूती ऊँची रहे' तो तुम्हें स्त्रियों से भी काफी जो अभी तक तुम्हें कुछ नहीं देतीं।" बड़ी यह सलाह देकर वे हम लोगों में आ मिले। जानने का कुतूहल हुआ कि शुक्लजी उस पास क्यों गये थे कि सिवाय बात करने के कुछ दिया नहीं था। वे बोले––"यही, व्यापार कुछ सलाह दी थी!" बाद में उन्होंने अपनी बतलायी। वह भिखारी उन ऐसे गंभीर और से उस सलाह को सुनकर कुछ देर के लिए हो गया, किन्तु हम लोगों ने "ऊँची जूती रहे" याद कर लिया।

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एन० [illegible] लिमिटेड, इलाहाबाद

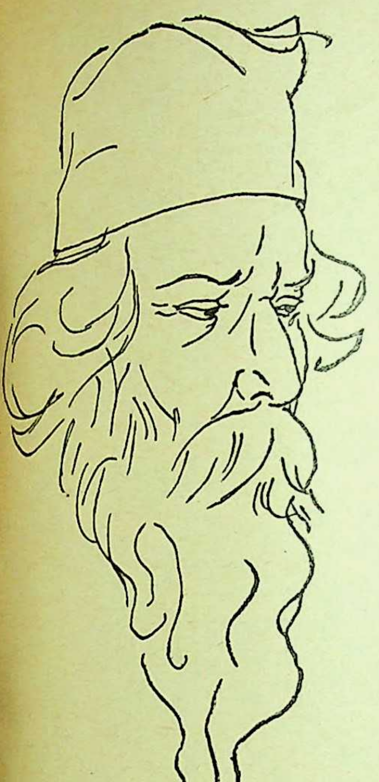

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे कुछ चुने हुए उपन्यास

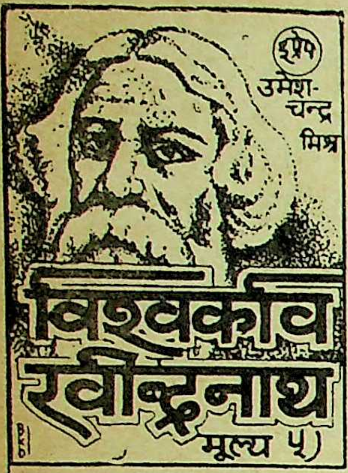
इं.प्रे
उमेश-चन्द्र मिश्र
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ
मूल्य ५)

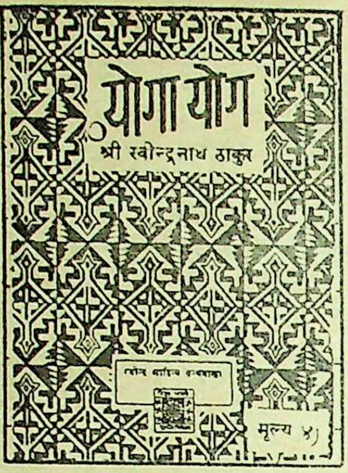
योगा योग
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य ४)

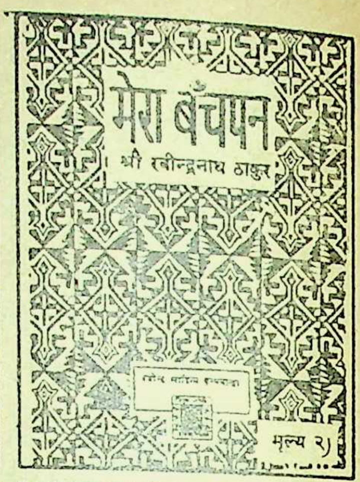
मेरा बचपन
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य २)

चार अध्याय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

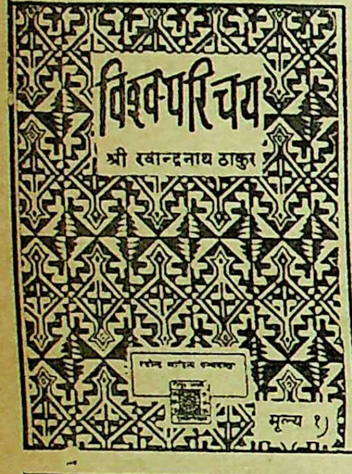
विश्व-परिचय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १)

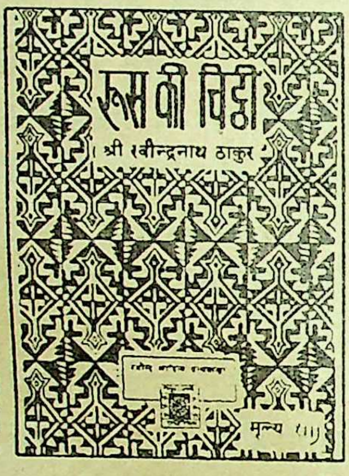
रूस की चिट्ठी
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १।।)

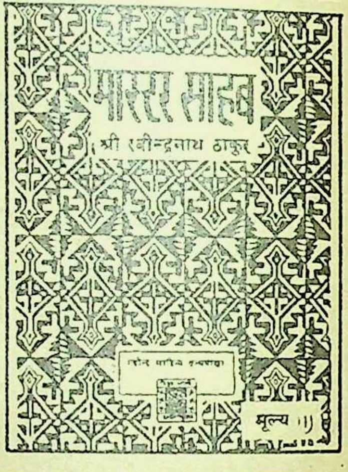
मास्टर साहब
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य ।।)

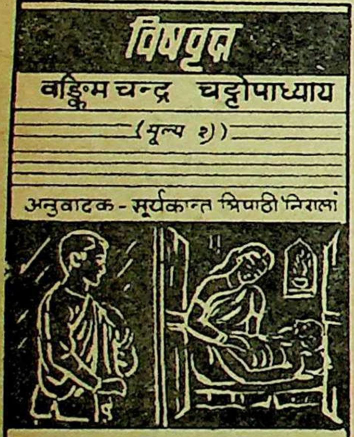
विषवृक्ष
बङ्किम चन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य २)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

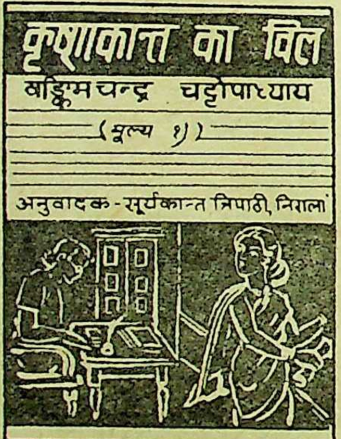
कृष्णकान्त का विल
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला

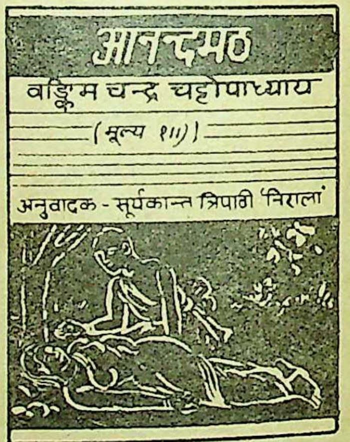
आनन्दमठ
बङ्किम चन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १।।)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कपाल-कुण्डला
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
इं.प्रे

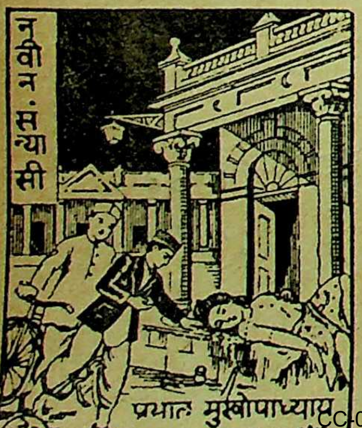
नवीन संन्यासी
प्रभात मुखोपाध्याय
मूल्य ४।।)
इं.प्रे

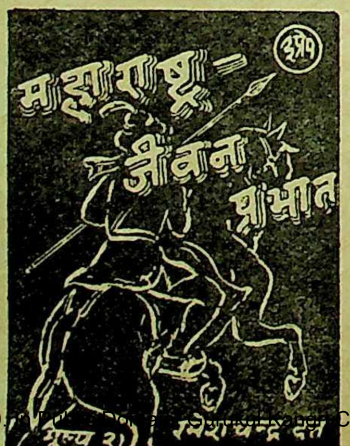
इं.प्रे
महाराष्ट्र-जीवन प्रभात
मूल्य २)
रमेशचन्द्र दत्त

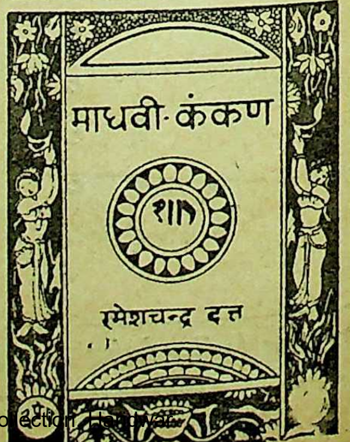
माधवी-कंकण
१।।)
रमेशचन्द्र दत्त

राजपूत-जीवन-सन्ध्या
रमेशचन्द्र दत्त

नवीन काव्य-कृतियाँ

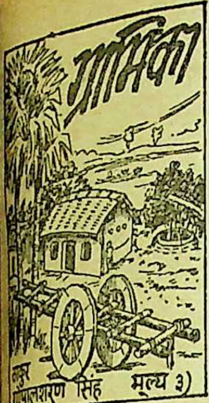
ग्रामिका
ठाकुर गोपालशरण सिंह मूल्य ३)

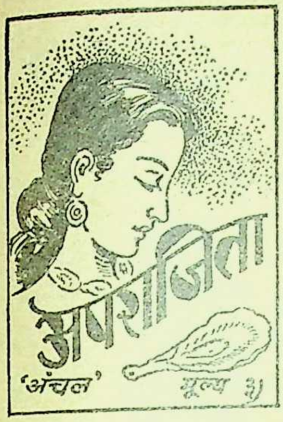
अपराजिता
'अंचल' मूल्य ३)

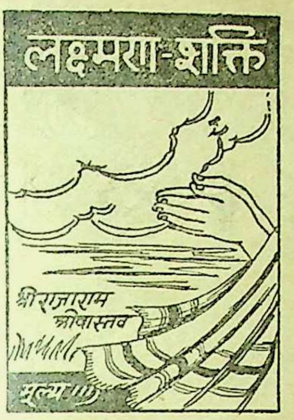
लक्ष्मण-शक्ति
श्री राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य ॥)

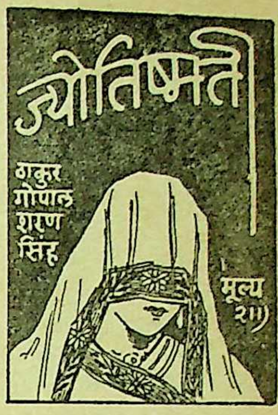
ज्योतिष्मती
ठाकुर गोपाल शरण सिंह
मूल्य २॥)

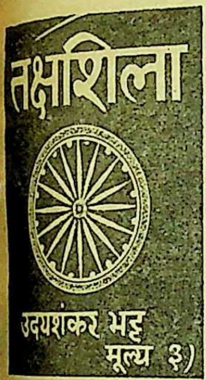
तक्षशिला
उदयशंकर भट्ट
मूल्य ३)

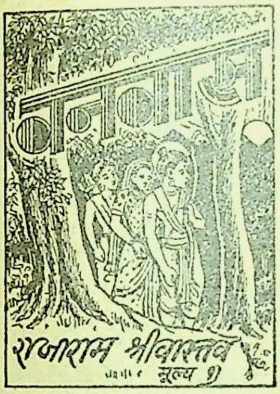
वनवास
राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य १)

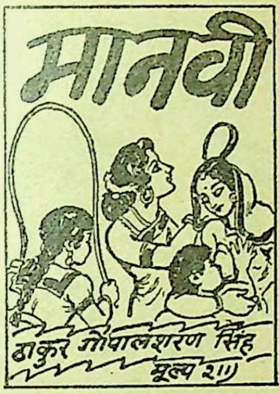
मानवी
ठाकुर गोपालशरण सिंह
मूल्य २॥)

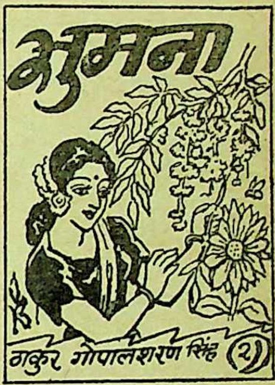
सुमना
ठाकुर गोपालशरण सिंह (२)

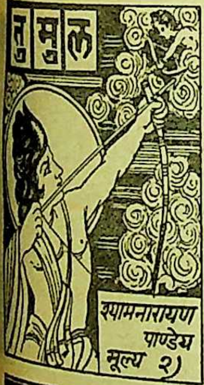
तुमुल
श्यामनारायण पाण्डेय
मूल्य २)

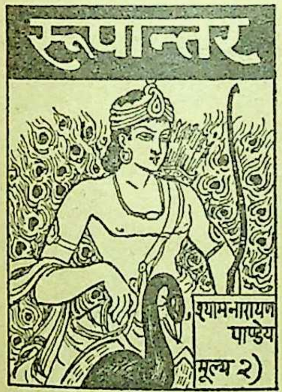
रूपान्तर
श्यामनारायण पाण्डेय
मूल्य २)

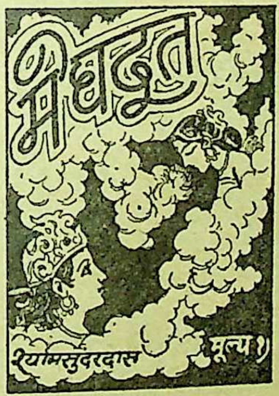
मेघदूत
श्यामसुन्दरदास मूल्य १)

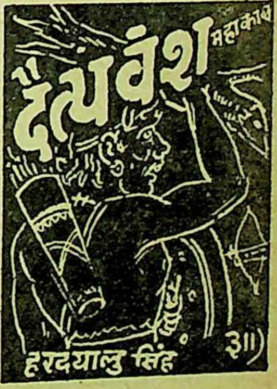
दैत्यवंश
महाकाव्य
हरदयालु सिंह ३॥)

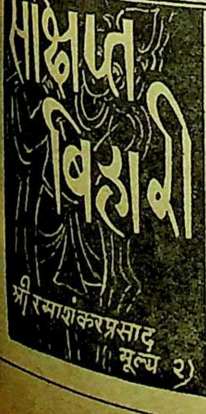
संक्षिप्त बिहारी
श्री रमाशंकरप्रसाद
मूल्य २)

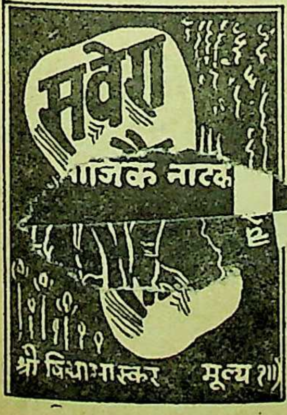
सवेरा
आजके नाटक
श्री विद्याभास्कर मूल्य १॥)

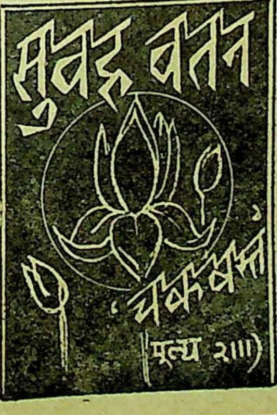
सुबह वतन
चकबस्त
मूल्य २॥)

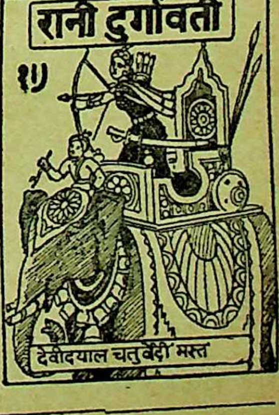
रानी दुर्गावती
१)
देवीदयाल चतुर्वेदी मस्त

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवा

स्वामी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १)

छुटकारा
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)

पण्डित जी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
ब्राह्मण की बेटी
मूल्य २॥)

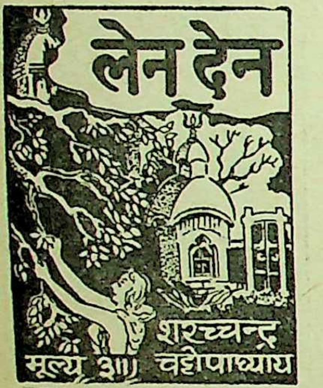
लेन देन
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ३॥)

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)
परिणीता

शुभदा
मूल्य २॥)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

श्रीकान्त
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मँझली दीदी
मूल्य १)

देहाती समाज
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

नव विधान
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

वैकुण्ठ का विल
मूल्य ॥)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

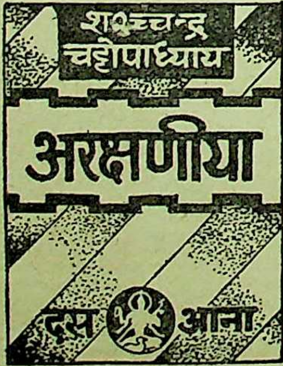
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
अरक्षणीया
दस आना

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
गृह-दाह
मूल्य ४)

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास

आखिरी सलाम
(मूल्य ४॥)

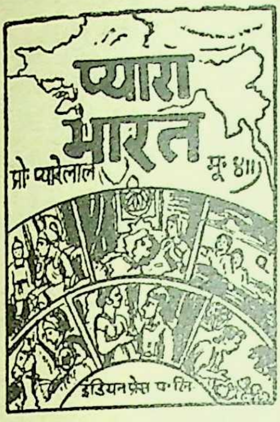
प्यारा भारत
प्रो० प्यारेलाल
मू० ४॥)
इंडियन प्रेस प० लि०

दिव्यचक्षु
मुकुन्द
३॥)

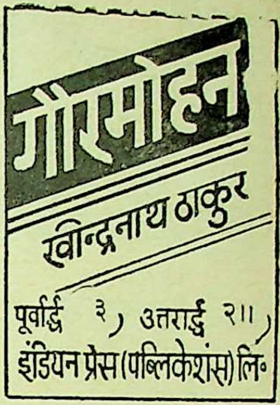
गोरमोहन
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
पूर्वार्द्ध ३) उत्तरार्द्ध २॥)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) लि०

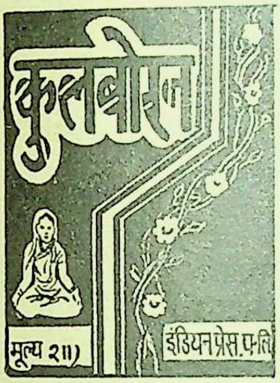
कुलबोरन
मूल्य २॥)
इंडियनप्रेस.प.लि

रामलाल
मन्नन द्विवेदी
मूल्य १॥)

नाटक प्रहसन

रंगीन पर्दा
चतुर्वेदी
मूल्य १॥)

मझली महारानी
मूल्य १।।।)
सदगुरुशरण

मूल्य १)
शबरी अछूत?

नाटक और नायक
६ भाग
प्रत्येक का मूल्य — १)

भूख
सामाजिक नाटक
मूल्य १)

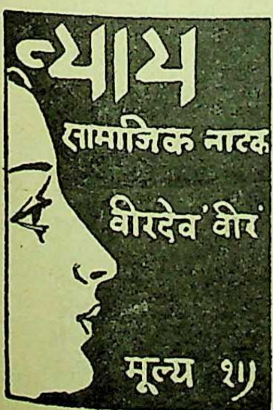
न्याय
सामाजिक नाटक
वीरदेव 'वीर'
मूल्य १॥)

शकुंतला नाटक
श्यामसुंदरदास १॥)

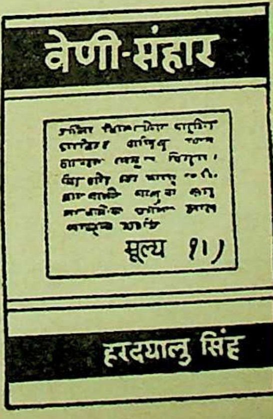
वेणी-संहार
मूल्य १)
हरदयालु सिंह

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद

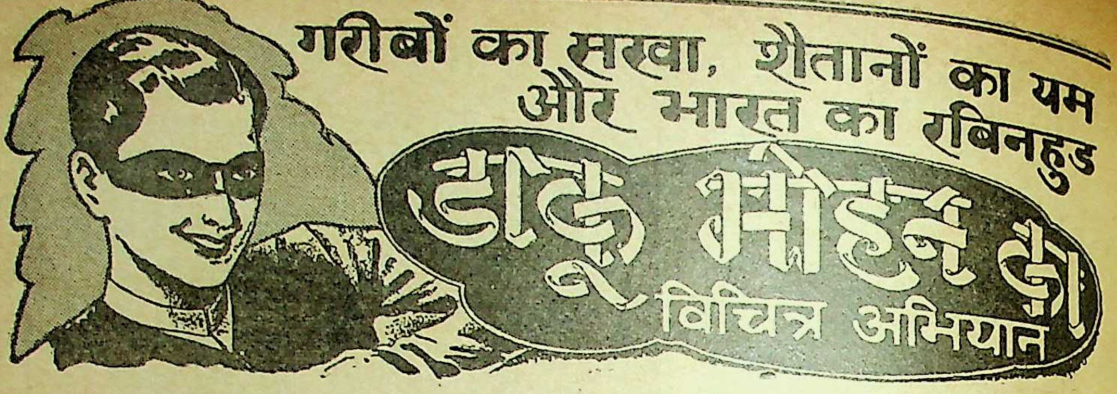

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
पृथ्वी का इतिहास——श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
क्रभेद——श्री महावीरप्रसाद गहमरी
रसंदर्भ——श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत——लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष——गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण——इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान——शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम-विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·००
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६·००
हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३·००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३·५०
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४·००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१·५०
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
दुर्गापाठ—अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२·००
श्री भगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

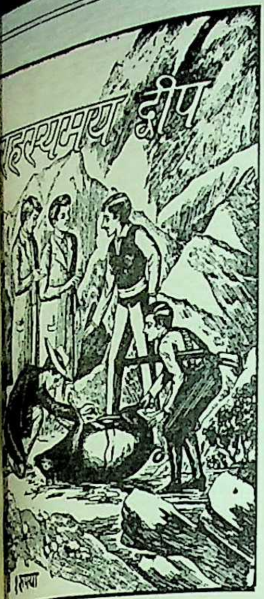
हस्यमय द्वीप
१ रुपया

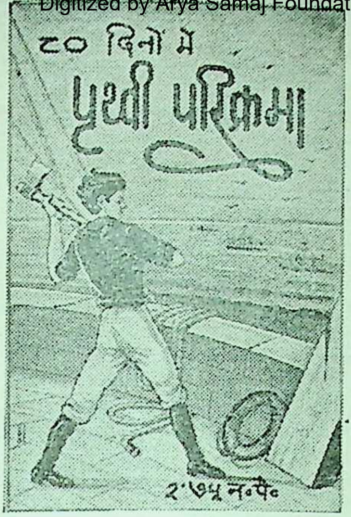
८० दिनों में
पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न॰पै॰

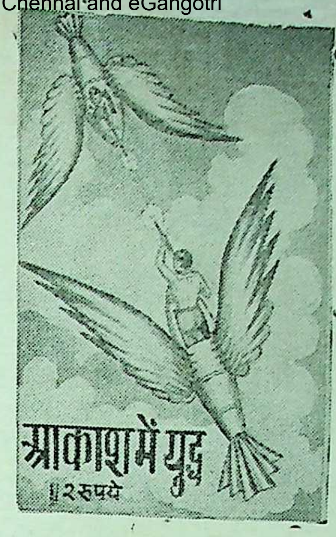
आकाश में युद्ध
२ रुपये

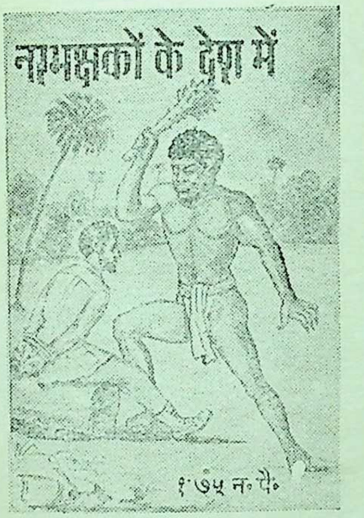
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न॰पै॰

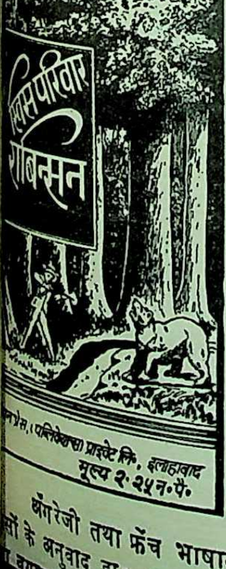
स्विस परिवार
रॉबिन्सन
न प्रेस, (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न॰पै॰

गुलीवर की
यात्राएँ
भाग २
२.२५ न॰पै॰

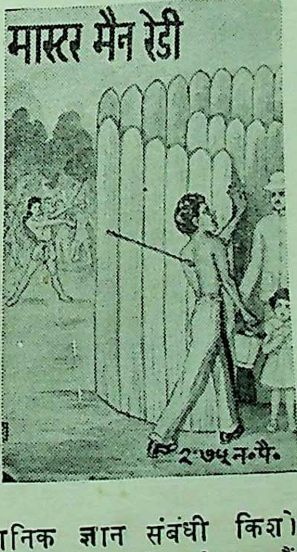
मास्टर मैन रेडी
२.७५ न॰पै॰

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-
सों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर
वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

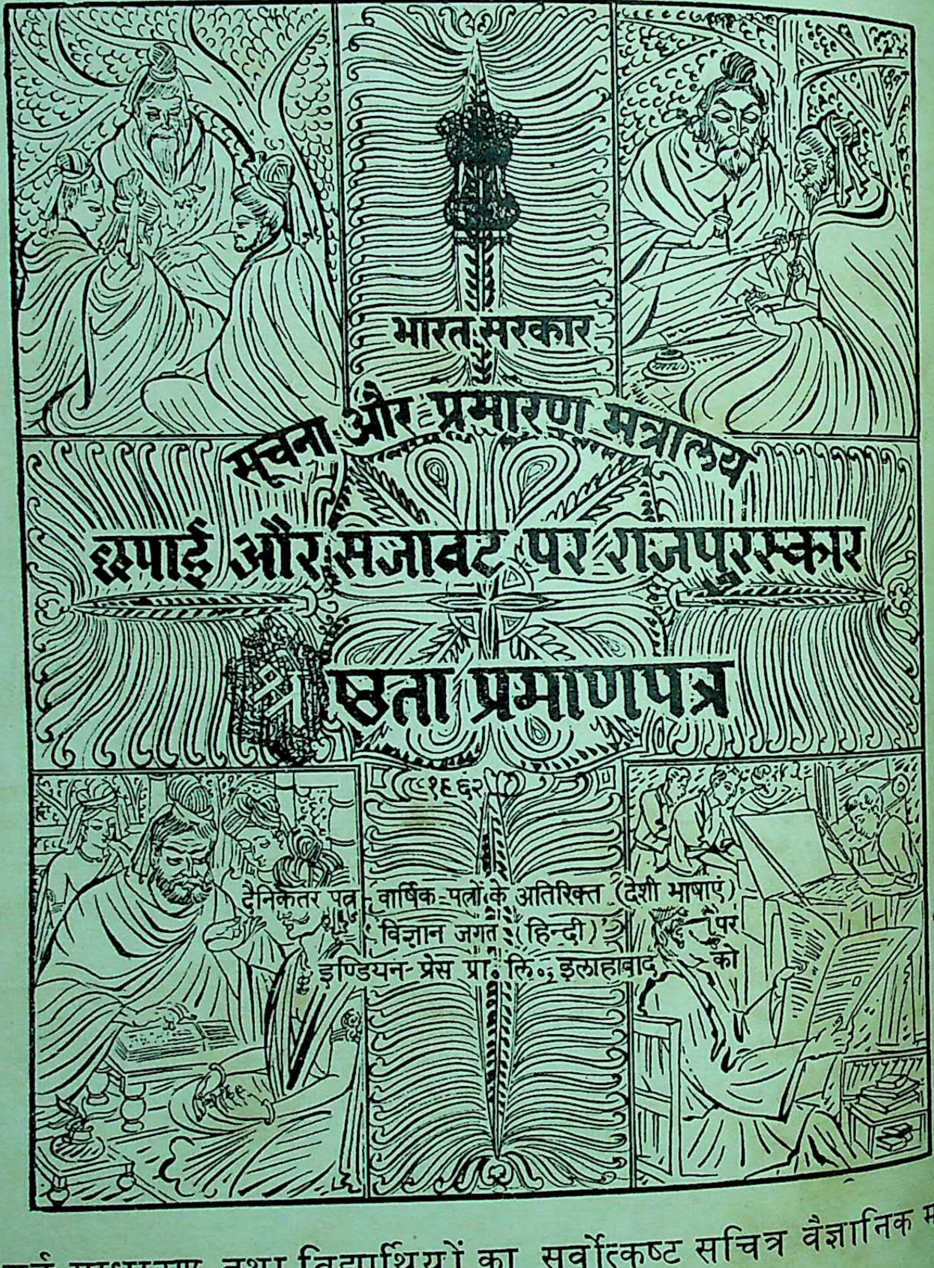

भारत सरकार
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार
श्रेष्ठता प्रमाणपत्र
(१९६२)
दैनिकेतर पत्र-वार्षिक-पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)
'विज्ञान जगत' (हिन्दी) पर
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

सरस्वती

जून १९६३

गुरुकुल कांगड़ी

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीक तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्र भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठ तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्था लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० १५ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१·३७ नये पै

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—

साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरि

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको कि में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मू हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विक की श्रेणी देखने को मिलती है——राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। नि:संदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि— ही नहीं——समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहि समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी——सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारे के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह——सुशोभित रहना चाहिए।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-बिंदु स्पष्टत: दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुत: इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिलम की तरह है। कहना पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड प्रयाग

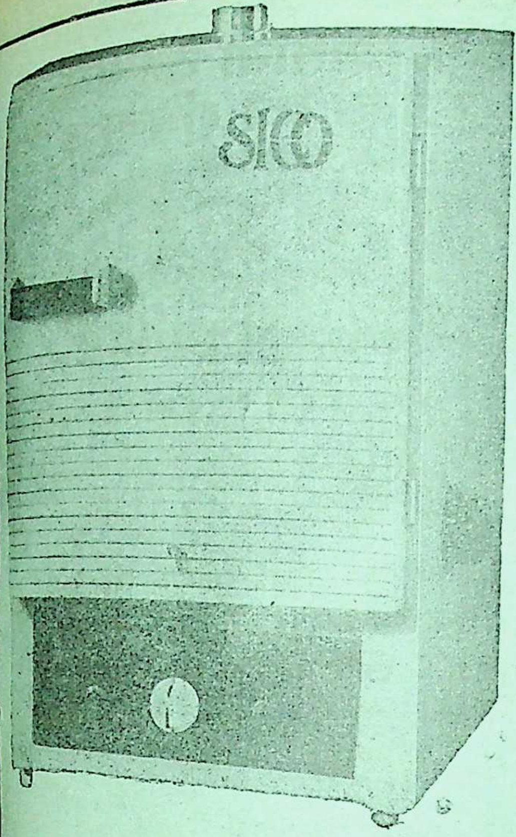

सीको हाट ऐयर ओवेन

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाऐंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,
इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद, तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

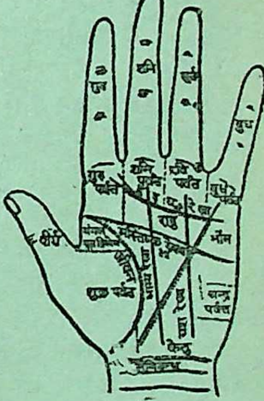
गुरु पर्वत
शनि पर्वत
रवि पर्वत
बुध
बुध पर्वत
राहु
भौम
मस्तिष्क
शुक्र पर्वत
चन्द्र पर्वत
केतु
मणिबन्ध

देखिये:—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:—

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

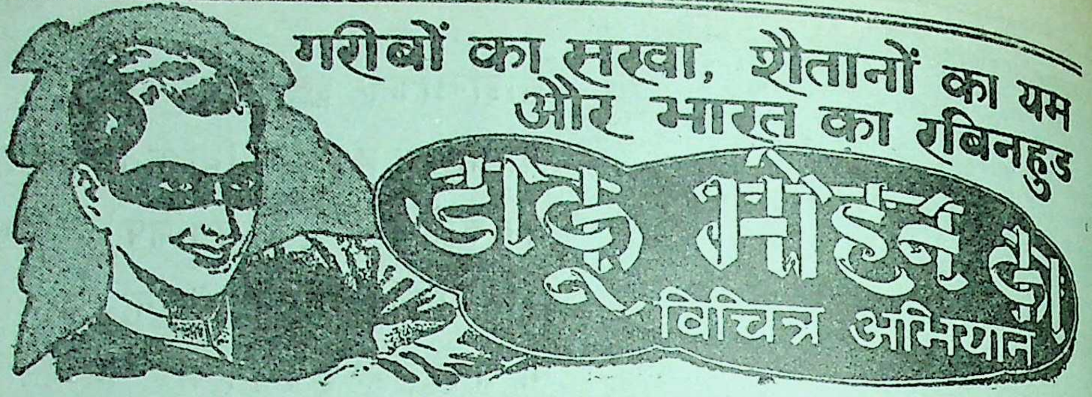

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित बीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ भ्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीघाता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी॰ पी॰ द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

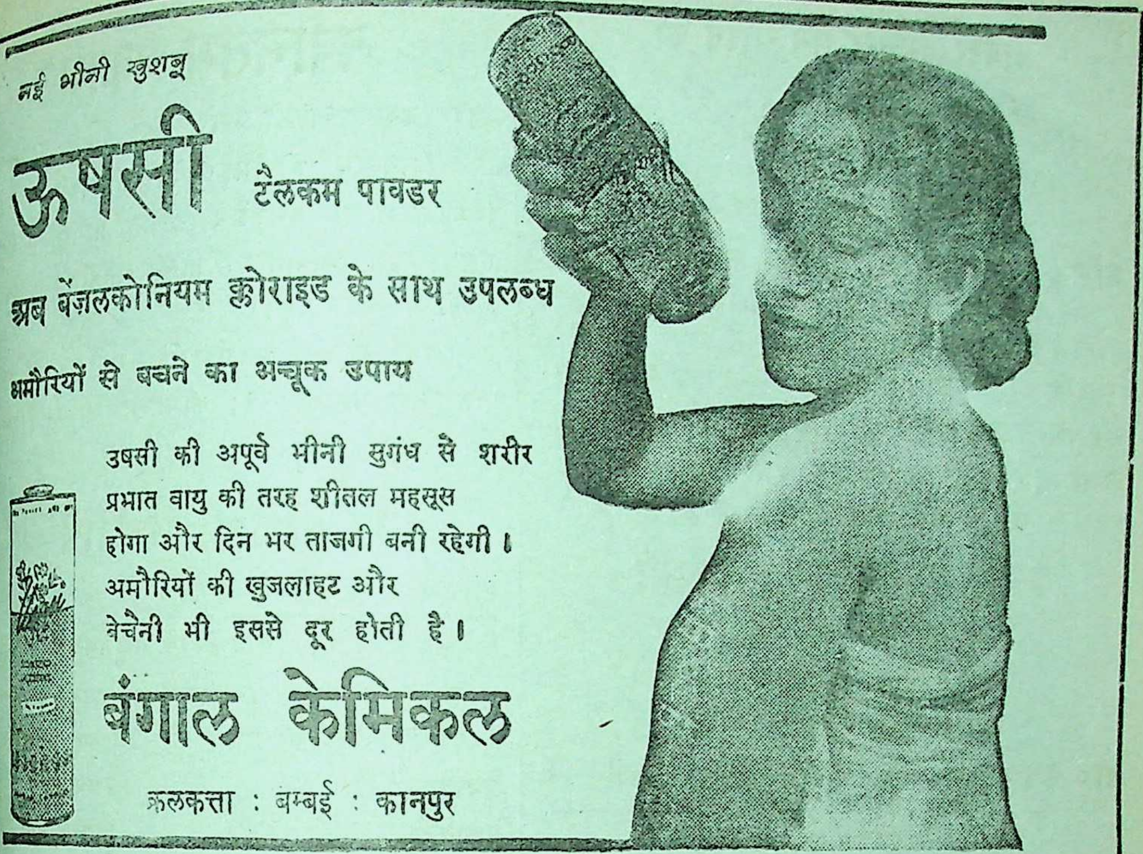

नई भीनी खुशबू

ऊषसी टैलकम पावडर

अब बेंज़लकोनियम क्लोराइड के साथ उपलब्ध

अमौरियों से बचने का अचूक उपाय

उषसी की अपूर्व भीनी सुगंध से शरीर
प्रभात वायु की तरह शीतल महसूस
होगा और दिन भर ताजगी बनी रहेगी।
अमौरियों की खुजलाहट और
बेचैनी भी इससे दूर होती है।

बंगाल केमिकल

कलकत्ता : बम्बई : कानपुर

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस
काल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा
भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये।
का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक
वरण मुफ्त मँगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान रहें।

के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

ज्ञानवृद्धि के लिए
बच्चों का प्यारा

बालसखा

अपने बच्चों को पढ़ायें
वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० न० पै०

हमें कीमतों को बढ़ने से रोकना है।

अगर कोई व्यक्ति मुल्क के खतरे के वक्त

अपना खुद का फायदा उठाना

चाहता है तो

वह राष्ट्रविरोधी है और देश

को

नुकसान पहुँचाता है।

—जवाहरलाल नेहरू

अधिक मूल्य न दीजिए

और

कीमतों को न बढ़ने दीजिए

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ।।) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट
लिमिटेड, प्रयाग

नवीनतम प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग—स्वामी सारदान

(भगवान श्रीरामकृष्णदेव की उन्हीं के शिष्य द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, एवं सम्पूर्ण जीवनी का हिन्दी अनुवाद। पुस्त खण्डों में पूर्ण होगी।)

प्रथम खण्ड—आकर्षक जैकेट एवं १३ चित्रों पृष्ठ डबल डिमाई ४७६; कीमत ८ रुपये। (द्वि तृतीय खण्ड शीघ्र प्रकाशित होंगे।)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)
पत्रावली —प्रथम भाग
पत्रावली —द्वितीय भाग
विवेकानन्दजी के संग में ..
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..
स्वाधीन भारत! जय हो! ..
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..
कर्मयोग .. १·७५ भक्तियोग ..
राजयोग .. ३·०० ज्ञानयोग ..
प्रेमयोग .. १·३७ सरल राजयोग
हिन्दू धर्म .. १·५० शिकागो वक्तृता
मेरे गुरुदेव .. ०·६२ प्राच्य और पाश्चात्य
शिक्षा .. ०·८५ मेरा जीवन तथा ध्येय
कवितावली .. ०·६२ हमारा भारत
पवहारी बाबा .. ०·६० मन की शक्तियाँ

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लि

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपु

माल मँगाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम॰ए॰
पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—ल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम॰ए॰
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

● ● ●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ।।) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट
लिमिटेड, प्रयाग

नवीनतम प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग——स्वामी सारदान

(भगवान श्रीरामकृष्णदेव की उन्हीं के शिष्य द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, मु एवं सम्पूर्ण जीवनी का हिन्दी अनुवाद। पुस्त खण्डों में पूर्ण होगी।)

प्रथम खण्ड——आकर्षक जैकेट एवं १३ चित्रों पृष्ठ डबल डिमाई ४७६; कीमत ८ रुपये। (द्विती तृतीय खण्ड शीघ्र प्रकाशित होंगे।)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

विवेकानन्द चरित——सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)
पत्रावली —प्रथम भाग
पत्रावली —द्वितीय भाग
विवेकानन्दजी के संग में ..
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..
स्वाधीन भारत! जय हो! ..
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..
कर्मयोग .. १·७५ भक्तियोग ..
राजयोग .. ३·०० ज्ञानयोग ..
प्रेमयोग .. १·३७ सरल राजयोग
हिन्दू धर्म .. १·५० शिकागो वक्तृता
मेरे गुरुदेव .. ०·६२ प्राच्य और पाश्चात्य
शिक्षा .. ०·८५ मेरा जीवन तथा ध्येय
कवितावली .. ०·६२ हमारा भारत
पवहारी बाबा .. ०·६० मन की शक्तियाँ

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया चास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर नता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

रकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०

थ्वी का इतिहास——श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

भेद——श्री महावीरप्रसाद गहमरी

संदर्भ——श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत——लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष——गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण——इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान——शचीन्द्रनाथ सान्याल

● ● ● ● ● ● ●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,
जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

दृढ़प्रतिज्ञ
२.२५ न.पै.

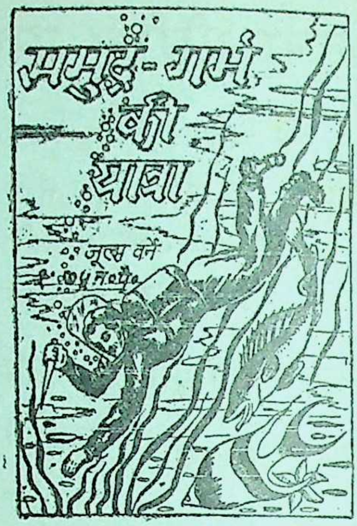
समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्ने

चन्द्रलोक की यात्रा
१.७५ न.पै.

भूगर्भ की यात्रा
इ.प्र.
मूल्य १.७५ न.पै.

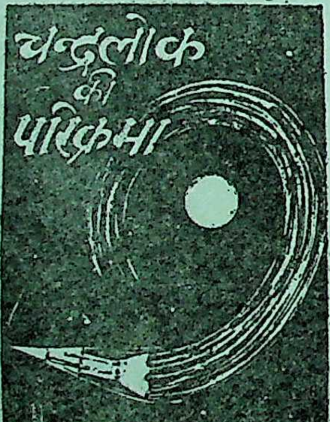
चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस

गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि.

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-न्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्वावधान में किये गये हैं । पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं ।

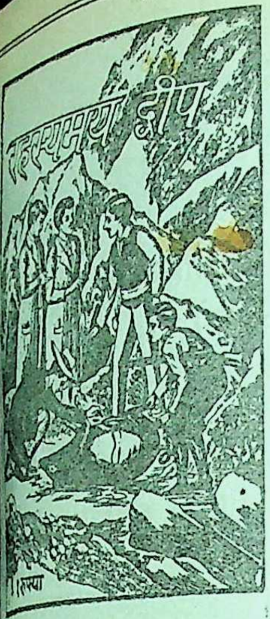
रहस्यमयी द्वीप
१ रुपया

पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न.पै.

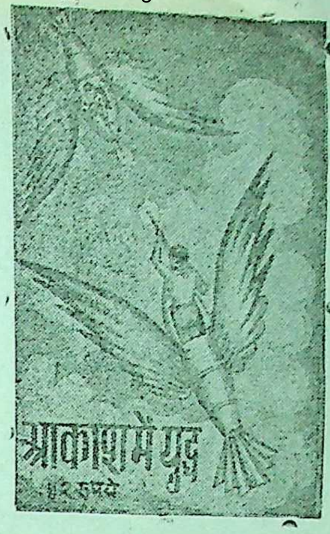
आकाश में युद्ध
२ रुपये

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

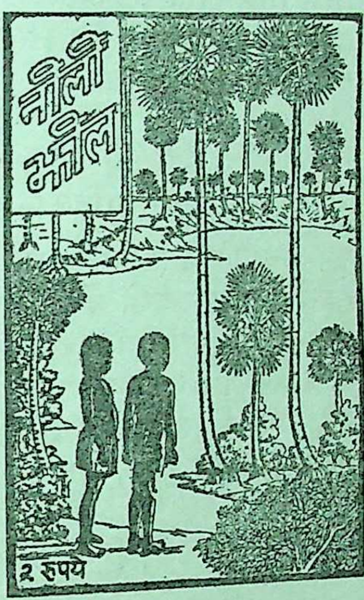

गुप्तधन
१.७५ न.पै.

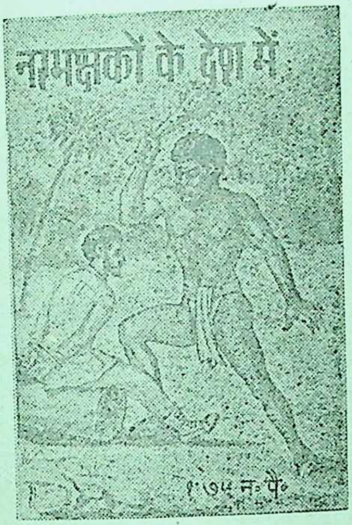
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न.पै.

स्विस परिवार राबिन्सन
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि., इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न.पै.

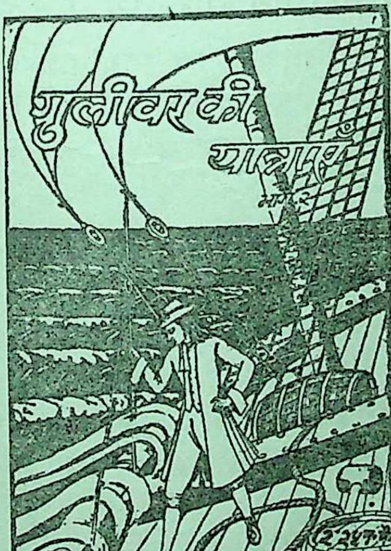
गुलीवर की यात्राएं
२.२५ न.पै.

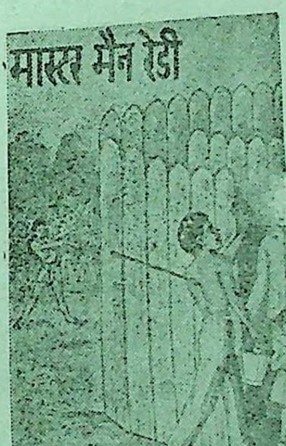
मास्टर मैन रेडी
२.७५ न.पै.

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा [illegible] जगत संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वांचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे बृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

छप गया !!

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद—हिन्दी राष्ट्र-[भाषा]-कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य [सेवा] की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

[डॉ० धी]रेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व अध्यक्ष, [हिन्दी]-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-[कोश] मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर [पहुँचा] हूँ कि हिन्दी के दो-तीन [अच्छे] कोशों में से एक यह [है, नि]स्सन्देह है। आप लोगों [ने इस]की तैयारी में परिश्रम [किया] है। छपाई आदि तो [अच्छी] होनी ही चाहिए, [क्यों]कि यह इंडियन प्रेस का [प्रकाश]न है। परिशिष्ट-[रूप में] संविधान-शब्दावली [दे दे]ने से इसकी उप-[योगिता] और बढ़ गई है।

[डॉ०] रामकुमार वर्मा, [एम० ए]०, पी-एच० डी०, [प्रयाग विश्व]विद्यालय—[हिन्दी] राष्ट्रभाषा-कोश' [का उप]योग मैंने सफल रूप [में क]िया है। संकलन-[कर्ता]ओं ने परिश्रम और [लगन] से इस कोश का [संपाद]न किया है। अर्थ [की स्प]ष्टता और सुबोधता [की दृ]ष्टि से इस कोश का [विशेष] महत्त्व है। मैं इसके [अधिका]धिक प्रचार की कामना [करता] हूँ।

[पं]० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, [सागर] विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। [ब]हुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रमपूर्वक संग्रह [कि]या गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

[श्र]ी विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर [महा]विद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश [उप]योगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के [अँग]रेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

पद्मभूषण पं० सुमित्रानन्दन पन्त—इस कोश में मुझे प्राचीन व नवीन साहित्य में प्रयुक्त अनेक नवीन शब्दों का सफल संकलन मिला है। प्रादेशिक भाषाओं, अरबी, अँगरेजी के प्रचलित शब्दों का समावेश भी इसमें किया गया है। सन्देह नहीं कि यह कोश हिन्दी पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगा।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' बहुत ही मूल्यवान् कोश है।

पं० रमेशदत्त पाठक, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, महाकोशल महाविद्यालय जबलपुर—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' हिन्दी की एक भारी कमी की पूर्त्ति करता है। वह विद्यार्थियों एवं विद्वानों दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

रायबहादुर पं० लज्जाशंकर झा, आई० ई० एस० (अवकाश-प्राप्त)—प्रायः पचास हजार शब्दों का भारी कोश मैंने देखा और प्रसन्नता हुई कि हिन्दी भाषा में भारी-भारी कोश बनने लगे हैं। × × × हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जाने के कारण ऐसे कोश की बहुत आवश्यकता थी।

साहित्यवाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' छात्रों के लिए ही नहीं, साधारण पाठकों के लिए भी बड़ा उपयोगी है। हिन्दी साहित्य में प्रचलित सभी प्रकार के शब्दों के सरल, शुद्ध और स्पष्ट अर्थ दिए गए हैं। उसकी एक विशेषता यह भी है कि अन्त में अँगरेजी के उन पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द दिए गए हैं, जो अब हिन्दी में प्रचलित हो रहे हैं और जिनका ज्ञान साधारण पाठकों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस एक कोश से ही हिन्दी-प्रेमी पाठकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सकती है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा सङ्कलित इस सर्वोपयोगी कोश को अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की गई है। प्राचीन और अर्वाचीन गद्य-पद्य में प्रयुक्त होनेवाले अधिक-से-अधिक और नवीनतम शब्दों का इसमें समावेश किया गया है। कहावतें और मुहाविरे भी इसमें यथास्थान दिए गए हैं। कोश के अन्त में भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान-शब्दावली भी दे दी गई है।

प्रख्यात विद्वानों की प्रस्तुत सम्मतियाँ ही यह साक्षी दे रही हैं कि 'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' प्रत्येक सार्वजनिक, शैक्षणिक और व्यक्तिगत वाचनालय तथा छात्रों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

पृष्ठ लगभग १५००, सजिल्द प्रति का मूल्य १४) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रि
का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी श
के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी
अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उप
है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इ
संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
Perfect accents
with simplified signs

पापुलर
इंग्लिश-
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४.५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

परमाणु ऊर्जा

और उसके

लेखक—जेराल्ड वेन्ट **शान्तिपूर्ण उपयोग** अनुवादक—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

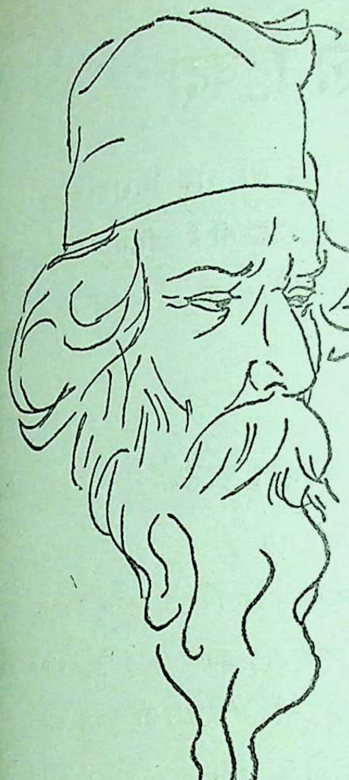

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

राष्ट्रचेता कवि सोहनलाल द्विवेदी

जिसकी कविता जीवन, उत्साह, वेग और बलपूर्ण हैं और जो लोक शिराओं में नवजीवन का संचार करती हैं—जिसकी वाणी बिजली सी हृदय में उतरती है—जिसने राष्ट्रीय चेतना को काव्य का सच्चा रूप दिया है—और जिसमें बालकों की सी मृदुता और बच्चों की सी सरलता है निम्न कविता पुस्तकें लिख चुके हैं :—

राष्ट्रीय चेतना और बाल मनोरंजन की कविता पुस्तकें

जय गांधी—लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सजधज से प्रकाशित संग्रह	१५·००
गांधी अभिनन्दन ग्रंथ—गांधीजी के संबंध में विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट कवितायें एकत्र संग्रहीत	७·५०
कुणाल—राजकुमार कुणाल की कारुणिक कथा पर शान्त रस सफल खंड काव्य	३·००
भैरवी—राष्ट्रीय जागरण के गीत जिनमें जनता रसमग्न हो उठती है। चार संस्करण हो चुके हैं	२·७५
पूजागीत—जीवन में स्फूर्ति का संचार करनेवाली राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह	२·५०
वासवदत्ता—प्रेम, कर्तव्य तथा आदर्शों के द्वन्द्वयुक्त बौद्ध आख्यान पर आधारित खंड काव्य	२·००
विषपान—समुद्रमंथन की पौराणिक कथा के आधार पर प्रवाह और ओजपूर्ण खंड काव्य	१·००
शिशु भारती—बालकों के लिए सरस और शिक्षाप्रद गीतों की रोचक पुस्तक	१·००
झरना—इस पुस्तक की कवितायें पढ़ते ही बच्चे उछल पड़ते हैं	१·००
बांसुरी—नन्हें पाठकों के लिए लिखी मनोहर विचित्र कवितायें	२·७५
युगाधार—चुनी हुई कवितायें स्वतन्त्रता की प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाली	३·५०
चित्रा—ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रण युक्त कविताओं और भावपूर्ण गीतों का संग्रह	२·३१
वासन्ती—स्फुट कविताओं का सुन्दर और सरस संग्रह	२·३१
बच्चों के बापू—गांधीजी और सब नेताओं का परिचय करानेवाली बहुरंगी छपी कविता पुस्तक	२·००
बाल भारती—बच्चों में नवीन उत्साह उत्पन्न करनेवाली सरल मनोरंजक कवितायें	१·२५
चेतना—गांधीजी को आराध्यदेव मानकर रची हुई उत्प्रेरक कविताओं का संग्रह	२·००
दूध बताशा—दो रंगों में छपे बालकों के लिए मधुर कविता गीत	१·२५
हँसो हँसाओ—बच्चों को गुदगुदी और हँसी पैदा करनेवाली कवितायें	१·५०

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

बाल कवि श्री निरंकारदेव सेवक के अपूर्व प्रकाशन

फूलों के गीत

बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। मूल्य १ रुपया ७५ नये पैसे।

रिमझिम

रिमझिम में निरंकार जी के वे अनमोल बालगीत संगृहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य २) रुपये।

माखन-मिसरी

इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और माखन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। मूल्य २) रुपये।

पंचतन्त्री

पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वे कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मूल्य ३) रुपये।

मुन्ना के गीत

बच्चों के सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गए हैं। मूल्य २) रुपये ५० नये पैसे।

धूपछाया

बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम झूम उठते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

दूध जलेबी

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ४८७
२—संस्कृत में वस्तु के परिचायक उपाय—श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ४९५
३—हिन्दी की प्रातिपदिक-व्यवस्था—पं० किशोरीदास वाजपेयी ४९८
४—कौन तुम (कविता)—श्री राजेन्द्र मिश्र .. ४९९
५—कौशाम्बी के इतिहास पर नया प्रकाश—प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी ५००
६—चाँदी की रातें थीं (कविता)—श्री राज किशोर ५०२
७—ब्रजभाषा का एक 'ज्ञानकोश'—श्री प्रभुदयाल मीतल ५०३
८—आगामी 'क्षय-मास'—एक समस्या ! .. ५०७
९—महापंडित राहुल के कुछ संस्मरण—श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी ५१०
१०—सौन्दर्याष्टक (कविता)—श्री राजेशदयालु "राजेश" ५१७
११—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में—श्री फंनी मुकर्जी ५१८
१२—कालिदास के नाम पत्र—श्री चंचरीक चतुर्वेदी .. ..
१३—आँगनों के बीच—हाय ! मैं किसके पाले पड़ गयी !—श्रीमती शीला शर्मा
घर-गृहस्थी—नन्हें मुन्नों के कपड़े ..
१४—दूर अभी कजरारे बादल (कविता)—श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी' .. ..
१५—बस अभी आता हूँ—श्रीमती शीला शर्मा ..
१६—आवश्यकता है—व्यवहार-कुशल की—श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक" ..
१७—देखा-सुना (३)—श्री मनमोहन गुप्त ..
१८—नवीन प्रकाशन .. ..
१९—१९०७ की सरस्वती—(१) एक तरुणी का नीलाम—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ..
(२) मृगनैनी बनने का सुयोग—लाला भगवानदास .. ..
२०—मनोरंजक संस्मरण .. ..

मजदूर-कामगर और किसान
ये भी रक्षा के स्तंभ महान

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। **रुपया आठ आना।**

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम २६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

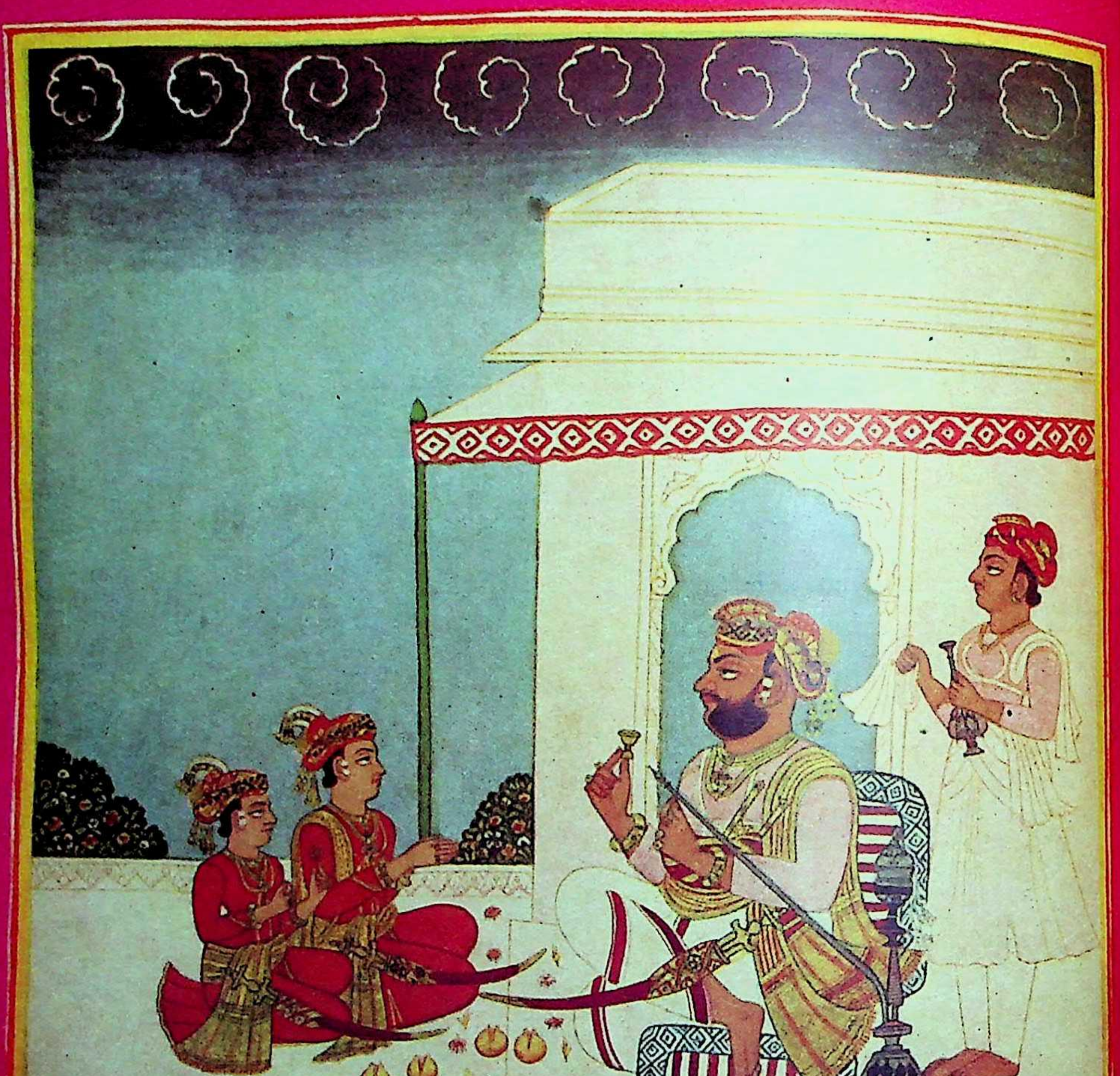

मारवाड़ का एक ठाकुर सरदार

(अमल करते हुए । सामने उसके दो कुँअर बैठे हैं)

राजस्थान की जोधपुर-शैली अठारहवीं शती] [श्री महावीरसिंह गहलोत के सौजन्य से।

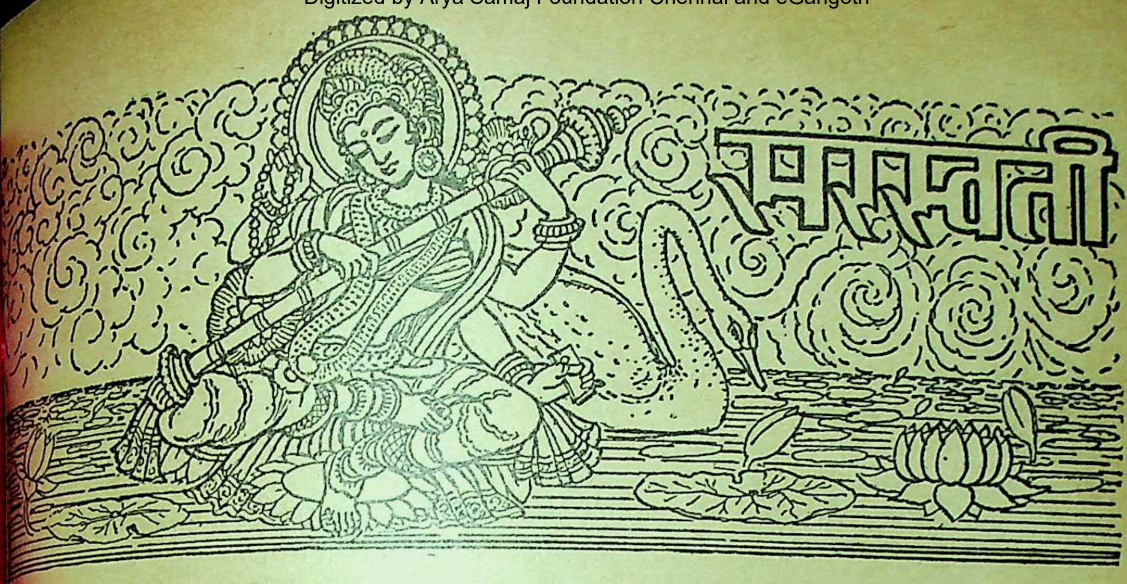

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
संख्या ७६२
इलाहाबाद : जून १९६३ ज्येष्ठ २०२० वि०
खण्ड १
संख्या ६

सम्पादकीय

(खेद है कि हमें अभी तक लोकसभा और राज्यसभा की राजभाषा-सम्बन्धी बहसों का विवरण प्राप्त नहीं ा। अतएव संसद में दिये गये भाषणों पर हम अपने विचार अभी प्रकट नहीं कर सकते। हमारा विचार है कि होने पर संसद में दिये गये महत्त्वपूर्ण भाषणों को हम अपने पाठकों की जानकारी के लिए 'सरस्वती' में क्रमशः भी कर दें।—सम्पादक।)

हिंदीप्रेमी क्या करें?—संसद में १९६५ के बाद रेजी को जारी रखने का विधेयक स्वीकृत हो गया। गृहमंत्री ने यह भी कहा है कि इससे हिंदी का नुकसान न होगा। हिंदीवालों के आँसू पोंछने के उन्होंने यह भी कहा है कि इस विधेयक से हिंदी के भाषा-पद की पुष्टि होती है। बकौल गालिब के बहलाने को यह खयाल अच्छा है।' अँगरेज हाकिम तंत्रता माँगने पर हिंदुस्तानी विद्रोहियों को इसी समझाया करते थे कि तुम्हें जो प्राविंशल आॅटोनमी में स्वशासन) और डोमीनियन स्टेटस (उपनिवेश) दिया जा रहा है, वह पूर्ण स्वराज से किसी तरह नहीं है।

तुलसीदासजी चाहे 'हँसब ठठाइ फुलाउब गालू' को साथ करना असंभव समझते हों, पर हमारे गृहमंत्री 'असंभव' को 'संभव' करके पैगम्बरी 'चमत्कार' दिखला रहे हैं। इस विधेयक को लाने से पहले, लाते समय संसद में, और लाने के बाद बाहर भीतर सब जगह श्री लालबहादुर शास्त्री हिंदी के दीवानों (फैनेटिक्स) को यही उपदेश दे रहे हैं कि 'हिंदी को लादना नहीं चाहिए', 'अभी हिंदी बहुत पिछड़ी हुई है', 'उसमें काम नहीं हो सकता', 'हिंदी का प्रेम से प्रचार करना चाहिए' और 'हिंदीवालों को दक्षिण की भाषा सीखनी चाहिए।' उधर वे, और प्रधान मंत्री हिंदी-विरोधियों को यह भी आश्वासन दे रहे हैं कि 'हिंदी में कभी काम न होगा', 'हिंदी न जानने से किसीको नौकरी या तरक्की पाने में कोई बाधा न होगी।' यही नहीं, 'अँगरेजी के दीवानों' के संतोष के लिए विधेयक में यह संशोधन भी कर दिया गया कि आगे जब भी कभी हिंदी की प्रगति (?) की जाँच के लिए संसद के सदस्यों की समिति नियुक्त होगी तब उसकी रिपोर्ट सभी राज्यों के शासनों को भेजी जायेगी और सबकी राय से ही उसपर कोई निर्णय होगा।

इन सब बातों का निष्कर्ष यही निकलता है कि 'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।' अर्थात् संविधान में जिस प्रकार सब को रोजी, रोटी, शिक्षा देने की बात कही गयी है और वह कागज ही पर रह गयी है, उसी प्रकार हिंदी को राजभाषा बनाने की बात भी कागज पर बनी रहेगी।

राज्यसभा में ५ मई को बिल पर बोलते हुए श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा कि दक्षिण में लोगों को बेचैनी थी कि सन् १९६५ के बाद क्या होगा, और उन लोगों की इच्छा थी कि सन् ६५ के बाद भी अँगरेजी को जारी रखने के लिए कानून बनाया जाये, इसीसे यह बिल प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद गृहमंत्री ने यह भी फरमाया कि हिंदीभाषी राज्यों को चाहिए कि पहले अपने यहाँ हिंदी को काम-काज में लावें, तब दूसरे राज्यों को भी ऐसा करने में सरलता होगी। यह नेक सलाह आपने द्रविड़ नेता श्री अन्नादुराई के कहने पर दी है। आपने यह भी कहा कि प्रधान मंत्री के आश्वासन की बात नहीं है। भाषा का प्रश्न महत्त्व का है। कोई भी सरकार हो, उसे एक भाषा का निश्चय करने के पहले सौ बार सोचना होगा। अंत में अपनी सफाई में आपने यह भी कहा कि मेरी आलोचना दिनकरजी ने भी की है, और अन्नादुराई ने भी। इससे पता चलेगा कि मैंने मध्यम मार्ग का अवलंबन किया है। द्रविड़स्तान चाहनेवाले अन्नादुराई ऐसे सज्जन को एक पलड़े में बैठाकर दिनकरजी को उनके बराबर तौलना शायद उन्होंने दिनकरजी के लिए बड़े गौरव की बात समझी हो।

शास्त्रीजी अपनी और अपने नेता नेहरूजी की सफाई में चाहे जो कह लें, पर प्रश्न स्पष्ट है कि उनकी हिंदी-विरोधी प्रवृत्ति ने ही हिंदी-विरोधियों को उभाड़ा है। उनके ही रुख से यह धारणा फैली कि सरकार का इरादा हिंदी में काम करने का नहीं है। इसीलिए सरकारी कर्मचारी और सरकारी नौकरी के इच्छुक हिंदी सीखने की ओर से उदासीन हो गये। आखिर दक्षिण में यह बेचैनी क्यों फैली कि १९६५ के बाद क्या होगा? क्या उनको पता न था कि संविधान में लिखा हुआ है कि सन् १९६५ के बाद अँगरेजी में काम न होगा? और इसकी क्या गारंटी है कि सन् १९७५ में या सन् २०७५ में भी उनको बेचैनी न होगी? गृहमंत्री प्रधान मंत्री के आश्वासन की बात करते हैं, परंतु राष्ट्रपति के उस आदेश का क्या हुआ जो उन्होंने सन् १९६० में दिया था और जिसमें केन्द्रीय सरकारी नौकरियों की परीक्षा हिंदी के माध्यम से भी लेने की बात कही गयी थी? राष्ट्रपति के उस आदेश की पूर्ति के लिए गृहमंत्री ने क्या किया और क्या कर रहे हैं? वह आदेश तो उन्हींके मंत्रालय को दिया गया था। क्या मंत्रियों के दिये हुए आश्वासन का महत्त्व राष्ट्रपति के आदेश से अधिक वजनी होता है?

गृहमंत्री ने हिंदी राज्यों से हिंदी में काम करने को कहा है। मगर जब अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी और दक्षिणी भाई हिंदी राज्यों में नियुक्त होंगे और हिं काम करने का आदेश होने पर चिल्ल-पों मचावेंगे, क्या गृहमंत्रीजी स्वयं ही हिंदी राज्यों को असहनशी और प्रांतीयता के लिए न फटकारेंगे? दूसरी बात क हिंदी राज्यों में तो पढ़ाई हिंदी में हो रही थी और हिं काम भी शुरू हो गया था, लेकिन केन्द्र से ही पुकार कि अँगरेजी का 'स्टैंडर्ड' गिर रहा है, अँगरेजी 'स्टैंडर्ड' बढ़ाओ! लड़कों को कसकर तीसरी कक्षा अँगरेजी पढ़ाओ! उधर केन्द्रीय परीक्षाएँ हिंदी में न के कारण हिंदी राज्यों के लड़के भी उनमें कम सफल लगे, और उन राज्यों और उन वर्गों के सफल लड़के संख्या बढ़ गयी जो अँगरेजी से चिपके रहे। स्वयं प्रधान को भी 'अँगरेजीवालों की जाति' का उल्लेख करना प अस्तु, इस प्रकार हिंदी राज्यों को दंड देकर अब उनसे जा रहा है कि तुम क्यों नहीं हिंदी में काम करते? हि राज्य भी गरीब की जोरू हो गये। हिंदी में काम करें मारे जायँ, न करें तो भी मारे जायँ। केन्द्रीय गृहमंत्री को ऐसा ही हिंदी-प्रेम है तो क्या हम पूछ सकते हैं उन्होंने, जब वे उत्तर प्रदेश में मंत्री थे, हिंदी में क्या क कर दिखाया? पुराने मध्य भारत में तो हिंदी में का होता था, क्यों उसे हिंदी छोड़कर अँगरेजी में काम क को बाध्य किया गया?

आश्वासन दिया जाता है कि हिंदी न जानने के का किसीको नौकरी में नुकसान न होने दिया जाये परिणाम यह हुआ कि स्टेट्समैन में एक सज्जन ने शिकायत की कि अंडमान द्वीपों में नौकरी के लिए हि जानने की शर्त क्यों लगाई गयी? अहिंदी-भाषियों हितों की रक्षा करना ठीक है, मगर इसका यह अर्थ तो कि हिंदीभाषियों के उचित अधिकारों को मारा ज उनके बच्चों को रोजी-रोटी से वंचित किया जाय? मद्रास या अन्य किसी राज्य को भय है कि हिंदी के का उसके आदमी नौकरी में न आएँगे, तो हिंदी में पढ़ने को भी खतरा है कि अँगरेजी लगी रहने से उनका मारा जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों में अखिल भार सेवाओं में जो लोग लिये गये हैं, उनमें कितने दक्षिण (त आदि) के हैं? और जो हिंदी क्षेत्रों से लिये गये हैं कितने ऐसे हैं जिन्होंने अँगरेजी स्कूलों में शिक्षा पायी अतः सबके प्रति न्याय करने के लिए केंद्रीय नौकरियों तुरंत ९० प्र० श० स्थान जनसंख्या के अनुपात से रा में बाँट दिये जाने चाहिए। शेष १० प्र० श० खुले चाहिए और उनकी भर्ती बुद्धि-परीक्षा और व्यक्तित्व आधार पर होनी चाहिए।

एक बात और। जब संविधान की व्यवस्था का ति दर करके हिंदी को उसके स्थान से वंचित किया जा है तो हिंदीवालों को भी रोमन अंकों की व्यवस्था के में पुनर्विचार करना चाहिए। गृहमंत्री संविधान जिस धारा का हवाला देकर कह रहे हैं कि संसद को कानून बनाने का अधिकार है कि १९६५ के बाद भी

नों में अँगरेजी का उपयोग हो, उसीमें नागरी या भारतीय अंकों का व्यवहार जारी रखने की भी व्यवस्था है। कार ने अँगरेजी का व्यवहार घटाने और हिंदी का व्यवहार बढ़ाने का तो कोई प्रयत्न नहीं किया, किन्तु री अंकों पर रोक लगाने में उसने परम उत्साह या है। केवल सरकारी काम में ही नागरी अंकों निषेध नहीं किया गया बल्कि नागरीप्रचारिणी सभा गैर सरकारी संस्थाओं को भी अँगरेजी अंकों का ग करने को बाध्य करने की कोशिश की गयी है। अस्तु, अब हिंदीवालों को तीन बातों पर ध्यान देना है।

१—राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार अखिल भारतीय और असैनिक सेवाओं की प्रतियोगिता में हिंदी में परीक्षा देने की अनुमति हो।

२—अखिल भारतीय नौकरियों में विभिन्न राज्यों कोटा बांधा जाये और किसी राज्यविशेष के लोगों की संख्या से बहुत अधिक जगहों पर कब्जा न करने जाये।

३—चूंकि हिंदी को राजभाषा बनाने की बात टाल दी है, और संविधान की व्यवस्था तोड़ी गयी है, हिंदीवाले रोमन अंकों को स्वीकार न करेंगे इस प्रकार अँगरेजी पर कोई रोक नहीं लगायी गयी नागरी अंकों पर भी कोई प्रतिबंध न रहे।

हिंदी संसार का नेतृत्व—हिंदी संसार नेतृत्वहीन छिन्न-भिन्न हो रहा है। आरंभिक युग में हिंदी का आन्दोलन उन लोगों ने चलाया जो राष्ट्रभक्त थे। कालान्तर में वे सब कांग्रेसी हो गये। अतएव हिंदी-आन्दोलन ल कांग्रेसियों के हाथ में आ गया। उस समय हिंदी प्रचार और उसे राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित करने की कांग्रेस के उद्देश्यों में भी थी। किन्तु कांग्रेसी सरकार के बनने पर शासन का अधिकार उन लोगों के हाथ गया जो संस्कारवश अँगरेजी-भक्त थे या जिन्हें हिंदी प्रेम नहीं था। मालूम होता है कि संविधान में उन्होंने इच्छापूर्वक हिंदी को राजभाषा के रूप में मान तो लिया अँगरेजीभक्त होने या हिंदी से उदासीन होने के उन्होंने पंद्रह वर्ष बाद हिंदी को राजभाषा पद पर ष्ठित करने के लिए समुचित तैयारी नहीं की। अँगरेजी की कहावत है कि "पहिले तो कुत्ते को दोष लगाओ, फिर उसे गोली मार दो।" पहिले तो उन्होंने हिंदी राजभाषा बनाने की ठीक तरह से तैयारी ही नहीं की; वे बराबर उसके विरुद्ध बोल-बोलकर हिंदी के विपरीत वातावरण बनाते रहे। इससे हिंदी-विरोधी तत्त्व हो गये। उनकी चीत्कारों का हवाला देकर अँगरेजी चिरस्थायी करने का विधेयक लाया गया। जो हिंदी जाने-माने नेता थे वे प्रायः सब कांग्रेस में हैं। उनमें से एक तो संसद के सदस्य भी हैं। किन्तु उनकी कांग्रेस-उनकी हिंदी-भक्ति से कहीं अधिक बलवती है। अतएव जो लोग हिंदी का पक्ष लेकर उसके लिए लड़ सकते थे, वे बधिया होकर बैठ गये। कांग्रेस की दृष्टि से उनका यह काम अत्यन्त सराहनीय रहा, किन्तु हिंदी की दृष्टि से वह घातक था। कांग्रेस अब यदि स्पष्ट रूप से हिंदी-विरोधी संगठन नहीं, तो हिंदी-निरपेक्ष संस्था अवश्य है। हम अवश्य ही कुछ कांग्रेसी व्यक्तियों को इसका अपवाद समझते हैं, किन्तु आज सामान्यतः हिंदीभाषी कांग्रेसी में भी हिंदी के लिए वह आग नहीं है जो उसके नेताओं में होनी चाहिए। इसलिए यदि हिंदी आन्दोलन जीवित रखना और चलाना है तो हिंदी को नये नेतृत्व की तलाश करनी पड़ेगी।

हिन्दी के साहित्यकारों और पत्रकारों ने या तो इस विधेयक का महत्त्व समझा ही नहीं, और यदि समझा भी तो उन्होंने उसके विरुद्ध आन्दोलन करने की आवश्यकता नहीं समझी। एक वर्ष पहले से मालूम था कि यह विधेयक आनेवाला है, किन्तु उन्होंने हिंदी संसार को जाग्रत या संगठित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इस बीच प्रयाग और लखनऊ में हिंदी के साहित्यकारों की कई परिगोष्ठियाँ हुईं। उनमें 'साहित्यकार के कर्त्तव्य' आदि हवाई विषयों पर तो विचार हुआ, किन्तु इनमें से किसीने राजभाषा हिंदी की आसन्न विपत्ति पर कोई विचार करना उचित या आवश्यक नहीं समझा। वे अपने को "साहित्यकार" समझते हैं जिनका सम्बन्ध अखिल-मानवता से है। शायद वे अपने को हिंदी की संकुचित परिधि में बाँधना अपने विशाल व्यक्तित्व की श्रेष्ठता के विरुद्ध समझते हैं। बाद में "पुनश्च" की तरह, या रस्म अदा करने के लिए, प्रयाग के कुछ साहित्यिकों ने विधेयक के विरोध में दिल्ली के अधिकारियों को, औपचारिकता की पूर्ति के रूप में, कुछ लिखा सही; किन्तु वह उनकी व्यक्तिगत राय मात्र थी। उस विरोध के पीछे उस "समष्टि" का बल नहीं था जिसकी शपथ वे दिन-रात खाया करते हैं। हिंदी साहित्यकारों ने इस अवसर पर जो उदासीनता दिखलायी वह आश्चर्य-जनक है। भाषा के पचड़े में पड़कर सिर दर्द मोल लेना उन्हें बेकार मालूम होता है। इसके अनेक अपवाद भी हैं और कुछ साहित्यकारों में हिंदी की आग है, किन्तु वे संख्या में कम और असंगठित हैं।

कितने ही साहित्यिक हैं जिनकी आज की स्थिति हिंदी के कारण है। वे संसद या विधान मंडलों में हैं। जो ऐसे स्थानों में नहीं भी हैं, उनका सामाजिक सम्मान और श्रेष्ठ स्थिति हिंदी के कारण ही है। यदि उनका हिंदी में स्थान न होता तो समाज में उन्हें कोई नहीं पूछता। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे लोग भी इस अवसर पर प्रायः निष्क्रिय रहे। उन्होंने मूंग की दाल के समान सीठे और सत्वहीन औपचारिक भाषण भले ही दे दिये हों, किन्तु कोई ठोस कार्य नहीं किया। जब हिंदी पर संकट आया तो अकबर इलाहाबादी के शब्दों में उन्हें 'ग़म बहुत है, मगर आराम के साथ।' ऐसे ही लोगों पर तुलसी-दास की यह उक्ति लागू होती है कि "सर्बस खाइ, भोग

करि नाना। समरभूमि भा दुर्लभ प्राना।" यदि वे अपना पद नहीं छोड़ सकते थे, हिंदी-विरोधी मंतव्य का कोई सक्रिय विरोध नहीं कर सकते थे, तो कम से कम हिंदी के हितों का जो हनन हो रहा है उसका प्रतीकात्मक विरोध करने के लिए 'पद्मभूषण' और 'पद्मश्री' के अलंकार तो लौटा सकते थे ! तब सरकार को मालूम होता कि हिंदी के नेताओं को वास्तविक ठेस पहुँची है। जलियानवाला काण्ड के बाद कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ ने उसके प्रतीकात्मक विरोध में अपनी 'नाइटहुड' लौटा दी थी, क्योंकि उस काण्ड से उनके हृदय को वास्तविक चोट लगी थी। यदि हिंदी के इन 'नेताओं' को भी हिंदी की इस दुर्दशा से सचमुच चोट लगती तो वे भी कम से कम कोई ठोस प्रतीकात्मक विरोध तो करते। जब कभी हिंदीभाषा के आन्दोलन का इतिहास लिखा जायगा, तब इतिहासकार को बरबस कहना पड़ेगा कि अवसर आने पर हिंदी के नेता पल्ला झाड़कर 'रणछोड़दास' हो गये !

प्रायः यही हाल हिंदी के पत्रकारों का है। हिंदी पत्रों में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल है, और हिंदी का प्रश्न राष्ट्रीयता और हमारे राष्ट्रीय सम्मान तथा जनता के हितों से नीर-क्षीर की तरह मिला हुआ है। किंतु हिंदी समाचार-पत्रों ने (कुछ अपवाद छोड़कर) जनता को प्रबुद्ध करने का अपना कर्त्तव्य ठीक तरह से नहीं किया। जनता समझ ही नहीं पा रही कि क्या हो रहा है।

सारांश यह है कि इस समय हिंदी संसार नेतृत्वहीन है। सामान्यतः उसके साहित्यकार और पत्रकार हिंदी की समस्याओं से उदासीन हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि अब क्या किया जाय। स्पष्ट है कि पुराना नेतृत्व न तो योग्य सिद्ध हुआ, और न उसने कर्मठता ही दिखलायी। आज हिंदी को नये नेतृत्व और नवयुवक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा की हीरक जयन्ती—गत मास लखनऊ में उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा की सत्तरवीं जयंती का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। आर्य समाज ने भारतीय नव जागरण में स्तुत्य कार्य किया है। पिछली शती में हिंदू धर्म पर दूसरे धर्मों का सुनियोजित आक्रमण होने लगा। हिंदू समाज जीवित समाज है, और जीवित वस्तुओं पर जब कोई क्रिया की जाती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी होती है। बंगाल का ब्राह्मो-समाज इसी प्रकार की एक प्रतिक्रिया थी। किन्तु आर्य समाज का वह प्रतिक्रियात्मक रूप अधिक व्यापक और सुसंगठित था। एक ओर तो उसने शंकालु लोगों की निष्ठा को हिंदू या वैदिक धर्म में पुनःप्रतिष्ठित करने का कार्य किया, और दूसरी ओर उसने हिंदू समाज में फैली हुई कुरीतियों और दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया। हिंदू समाज में 'उदारता' का अतिरेक आ गया था। उसकी सहिष्णुता अवगुण हो गयी थी। आत्म-विश्वास तिरोहित हो गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि सड़कों और चौराहों पर दूसरे धर्मों के प्रचारक देवी-देवताओं और आचार्यों का मजाक उड़ाते, हि पर आक्रमण करते, और हिंदू चुपचाप उन्हें सुना क आर्यसमाज ने उनमें अपने धर्म की श्रेष्ठता का भाव कर उसके प्रति निष्ठा उत्पन्न की, और हिंदू धर्म पर मण करनेवालों की बातों को चुपचाप सुन लेने की आदत को दूर किया। इतना ही नहीं, अँगरेजी के कहावत के अनुसार कि "ऑफेन्सिव इज दि बैस्ट आव डिफेन्स" (रक्षा का सबसे अच्छा उपाय आ है) उन्होंने हिन्दू धर्म पर आक्रमण करनेवालों पर की भाषा में आक्रमण आरंभ किया। इसीलिए लोग आर्यसमाज को 'हमलावर' (ऐग्रैसिव) संस्था झने लगे। अवश्य ही यह आक्रमण की प्रवृत्ति जब बार आरंभ हुई तब उसका उपयोग सदैव विवेक के नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ कि हिंदू धर्म जो खुले वाचिक आक्रमण होते थे, वे बन्द हो गये। आर्यसमाज को भी उस पद्धति को अपनाने की आवश्य नहीं रही। आर्यसमाज में आज वह प्रवृत्ति नहीं आर्य समाज ने हिंदू समाज के उत्थान में अपूर्व कर्म उत्साह और त्याग दिखलाया। आर्यसमाज अपने अ और क्रियाशीलता के लिए प्रसिद्ध हो गया। जो उससे सहमत न थे, वे भी उसका आदर करने लगे

भारत में धर्म सदैव राजनीति के ऊपर रहा है। शासकों की अबाध शक्ति और मनमानी पर सदैव अं रखता रहा। जनता में उसकी साख राजनीति से अ रही। इसीलिए बड़े-बड़े शक्तिशाली सम्राट् भी कौपीन ऋषि-मुनियों और सन्त-महात्माओं के चरणों में बैठते स्वामी दयानन्दजी स्वयं राजाओं पर अंकुश रखते यदि धार्मिक संस्थाएँ भी राजनीतिज्ञों की चेरी हो तो इस देश के आदर्श उलट-पलट जायँ और उसकी परम उलटी बहने लगे। इसीलिए हमें यह देखकर आश्चर्य कि इस समारोह के विविध उत्सवों में उद्घाटनकर्ता अध्यक्ष कोई न कोई मंत्री था। होना तो यह चाहिए कि इन उत्सवों के उद्घाटन और अध्यक्षता का आर्यसमाज के विद्वानों और त्यागी नेताओं से कराया जाता, किन्तु यदि उदारता की दृष्टि से समाज के बाहर के लोगों को भी बुलाना था, तो दे गण्यमान्य विद्वान् या सन्त बुलाये जाते। यदि रा नीतिक नेताओं पर ही दृष्टि जमी हुई थी तो के बाहर के भिन्न दलों के नेता निमंत्रित किये सकते थे। किन्तु केवल मिनिस्टरों को बुलाकर समाज के कर्ताधर्ताओं ने लोगों में यह धारणा कर दी कि वह भी दूसरी संस्थाओं की तरह मिनिस् परस्त हो गया है। हमारी सम्मति में यह धा गलत है, किन्तु मिनिस्टर-परस्ती का जो प्रदर्शन गया है उससे लोगों ने यदि ऐसी धारणा बना हो तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।

और मानो-न-मानो, हमारे प्रधान मंत्री ने इस

सम्मिलित होकर हवन किया! और वह भी शुद्ध से! उस शुद्ध घी से, जो हमें नसीब नहीं होता। हमारे प्रधान मंत्री स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे 'धार्मिक' क्ति नहीं हैं। हम उन्हें एक मार्क्सिस्ट समाजवादी और भौतिकवादी समझते हैं। यदि वे हवन में विश्वास ते हों तो हमें आश्चर्य होगा। हवन से देवता प्रसन्न ते हैं—यह दकियानूसी विचार है। बुद्धिवादी लोग ते हैं कि हवन से वायु शुद्ध होती है। किन्तु विज्ञान की ति के इस युग में डी० डी० टी० का छिड़काव वायु अधिक सफलता से शुद्ध कर सकता है, और हवन की ह उसमें दुर्लभ खाद्य पदार्थों का अपव्यय भी नहीं होता। म होता है कि अपनी उदारता और 'मुरव्वती' स्वभाव कारण हमारे प्रधान मंत्री हवन करने को राजी हो ये। किन्तु देश के चोटी के नेताओं से सैद्धान्तिक मामलों धिक दृढ़ता की अपेक्षा की जाती है।

बंगाल में बँगला राजभाषा——हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इतने दिनों बाद बंगाल सरकार ने राज्य की राजभाषा अँगरेजी के स्थान पर बँगला त कर दी, और कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ के विगत जन्म-से उसमें कार्य करने का श्रीगणेश कर दिया। जनता स्वराज्य बिना जनता की भाषा के सफल नहीं हो ता। राजकाज में बँगला के उपयोग से शासन जनता धिक निकट आ जायगा। जो लोग अँगरेजी में लिखते अँगरेजी में सोचते भी हैं; और जब अँगरेजी में ते हैं तो जान या अनजान में अँगरेजों की तरह सोचते बँगला में काम करने पर वे बंगाली की तरह सोचेंगे उनका हृदय बंगाल की जनता के हृदय के साथ त होगा। हम यह भी आशा करते हैं कि बंगाल में केवल 'घोषित' राजभाषा न रहेगी जैसा कि हिंदी प्रदेश या मध्यप्रदेश में है। बंगाली लोगों का अपनी भाषा के प्रति जो सराहनीय प्रेम है, वह सर्वविदित किन्तु हम यह भी जानते हैं कि इस देश में बंगाल मदरास का शिक्षित वर्ग अँगरेजी पर सबसे अधिक है। देखना है कि बंगाल कहाँ तक अँगरेजी के जाल से निकल कर अपनी मातृभाषा के प्रति अपने व्य का पालन करता है।

बुद्धिहीनता या शरारत?——प्रायः दो-तीन वर्ष हुए, ने यह निश्चय किया था कि सभी भारतीय भाषाओं लिए देवनागरी लिपि के उपयोग को प्रोत्साहन दिया य। किन्तु मालूम होता है कि भारत-सरकार के अव-व एक मस्तिष्क से परिचालित नहीं होते। प्रत्येक अव-व अपने मनमाने ढंग से चलता है और इस बात की पर-ह नहीं करता कि भारत सरकार की घोषित नीति के नुसार वह काम कर रहा या नहीं। उत्तर-पूर्वी सीमान्त देश में प्रायः दो दर्जन आदिम जातियाँ रहती हैं। प्रत्येक की बोली अलग अलग है, किन्तु किसी बोली के लिखने की कोई लिपि नहीं है। अँगरेज सरकार ने ईसाई मिशनरियों को इन आदिम जातियों में काम करने और उन्हें ईसाई बनाने की पूरी छूट दे रखी थी। इसका एक फल तो यह हुआ कि उन्होंने इन जन-जातियों में यह भावना भर दी कि वे भारत से भिन्न हैं। दूसरा फल यह हुआ कि इनकी प्रेरणा से वहाँके नये ईसाई भारत से अलग एक 'क्रिश्चियनलैण्ड' का स्वप्न देखने लगे। इन मिशनरियों ने इन्हें पढ़ाने के लिए विद्यालय खोले और इन ईसाइयों को उनकी भाषा रोमन लिपि में लिखकर पढ़ाने लगे। किन्तु अधिकांश जन-जातियों में शिक्षा नहीं फैली। स्वतंत्रता के बाद उन्हें हिंदी पढ़ायी जाने लगी, किन्तु असम सरकार उन्हें असम में मिलाना चाहती थी, इसलिए हिंदी बंद करके असमी की शिक्षा आरंभ हुई। किन्तु उनकी शिक्षा की समस्या का हल तभी हो सकता है जब उन्हें उनकी बोलियों ही में शिक्षा दी जाय और उनका विकास किया जाय। अब प्रश्न यह उठा कि ये बोलियाँ किस लिपि में लिखी जायँ क्योंकि उनकी अपनी कोई लिपि नहीं । यदि देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और देश की एकता की दृष्टि से उसके महत्त्व पर ध्यान न भी दिया जाता, तो भी भारत सरकार की नीति के अनुसार इन बोलियों को देवनागरी लिपि में लिखा जाना चाहिए। किन्तु हमें समाचार-पत्रों में यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि गौहाटी विश्वविद्यालय की सहायता से केन्द्रीय सरकार इन जनजातीय भाषाओं के लिए एक नयी लिपि का निर्माण करने की योजना में लगी है। एक ओर तो भारत सरकार देश की भावनात्मक एकता का राग अलापती है, दूसरी ओर उसके कुछ अंग ऐसे काम कर बैठते है जिससे विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। हमें आशा कि संसद के सदस्य इस मूर्खता को रोकने के लिए सरकार पर जोर देंगे। देवनागरी बनी-बनायी और समर्थ लिपि है। यदि देश में भाषा और लिपि की एकता अभी संभव नहीं है, तो जहाँ हमें नये सिरे से कोई लिपि चलानी है, वहाँ तो कम से कम हम देश की सर्वमान्य और स्वीकृत लिपि को चलावें जिससे भविष्य में उनको एक करने की समस्या कुछ सरल हो जाय।

विश्वविद्यालयों में प्रवेश और अँगरेजी का अच्छा ज्ञान——सरकार की अँगरेजी-परस्त नीति ने इस समय अँगरेजी के दीवानों का दिमाग आसमान पर चढ़ा दिया है। उनकी दुरभिलाषाएँ कितनी ऊँची पहुँच गयी हैं, इसका एक उदाहरण अभी हाल में सामने आया है। कुछ दिन पहिले अँगरेजी के प्रोफेसरों का एक विशेषज्ञ-मंडल बनाया गया था। उसने हाल ही में अपने प्रस्ताव दिये हैं। उनमें एक प्रस्ताव यह है कि जिन विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अँगरेजी है उनमें वे ही विद्यार्थी भर्ती किये जायँ जिन्हें माध्यमिक शिक्षा की अंतिम परीक्षा में अँगरेजी में अच्छे अंक मिले हों। अभी अधिकांश माध्यमिक परिषदों ने हाईस्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के अंक

३५ हैं। इस मंडल का कहना है कि परीक्षा में उत्तीर्ण होने के अंक यही बने रहें, किन्तु विश्वविद्यालय यह नियम बना लें कि जिन विद्यार्थियों ने अँगरेजी में एक सीमा से कम अंक पाये हैं (४५ या ५० प्रतिशत) वे अँगरेजी माध्यम के विश्वविद्यालयों में भर्ती नहीं किये जा सकेंगे। जिन विश्वविद्यालयों ने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया है, उनमें भी विज्ञान की शिक्षा अधिकतर अँगरेजी ही के माध्यम से दी जाती है, क्योंकि भारत सरकार के हमारे महाप्रभु और विश्वविद्यालयों के महाप्रभु देशी भाषाओं को विज्ञान पढ़ाने के लिए एकदम अक्षम समझते हैं। अतएव जो विद्यार्थी अँगरेजी में बहुत अच्छे न होंगे (अर्थात् ४५ या ५० प्रतिशत अंकों से कम पायेंगे) उनके लिए इस देश में विश्वविद्यालयीन विज्ञान की शिक्षा का द्वार सदा के लिए बंद हो जायगा। इस देश में बहुत कम ऐसे विश्वविद्यालय हैं जिनमें शिक्षा का माध्यम अँगरेजी न हो। अतएव यदि इन अँगरेजी-विशेषज्ञों की बात चल गयी तो अँगरेजी में उच्च अंक प्राप्त न कर सकने के कारण हजारों विद्यार्थी विश्वविद्यालय की शिक्षा से वंचित हो जायँगे। इन अँगरेजी के दीवानों को इंग्लैण्ड चले जाना चाहिए। यहाँ अँगरेजी का गिरता हुआ स्तर देख-देखकर उन्हें कष्ट होता है, और उनके कारण वे विद्यार्थी जो मातृभाषा के द्वारा उच्च से उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, उससे वंचित रह जायँगे। यह इंडिया दैट इज भारत ही है जहाँ एक विदेशी, और वह भी गुलामी की याद दिलानेवाली भाषा, तथाकथित शिक्षित लोगों को इतनी अनिवार्य मालूम पड़ती है! अँगरेज चले गये—इन मानस-पुत्रों को छोड़ गये!

डा० रघुवीर—हिंदी के दुर्दिन अभी समाप्त हुए नहीं मालूम होते। सारा हिंदी संसार और भारत का विद्वत् समाज यह समाचार पढ़कर स्तब्ध रह गया कि अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रसिद्ध विद्वान्, हिंदी के अनन्य समर्थक और नेता, डा० रघुवीर की मृत्यु सहसा एक मोटर-दुर्घटना में हो गयी। वे डा० राममनोहर लोहिया के चुनाव में उनका समर्थन करने के लिए जीप से फर्रुखाबाद जा रहे थे कि कानपुर से कुछ दूर जीप में कुछ खराबी आ गयी और वह एक पेड़ से टक्कर खा गयी। डा० रघुवीर की आयु केवल ६१ वर्ष की थी। सन् १९०२ में उनका जन्म रावलपिंडी के एक साधारण परिवार में हुआ था। उन्होंने लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० किया और फिर विदेश चले गये। लंडन विश्वविद्यालय से उन्होंने पी-एच० डी०, तथा हालैण्ड के यूट्रेक्ट विश्वविद्यालय से डी० लिट० किया। उन्होंने मध्य, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति और साहित्य का विशेष अध्ययन किया था। वे कितनी ही योरोपियन, एशियायी और भारतीय भाषाएँ जानते थे। अपने सांस्कृतिक अध्ययन को सुनियोजित ढंग से चलाने के लिए उन्होंने १९३४ ई० में "भारतीय संस्कृति की अंतर्राष्ट्रीय डमी" नामक संस्था स्थापित की, जो अब दिल्ली काम कर रही है। डा० रघुवीर ने चीन, जापान, थाई मंगोलिया, जावा, बाली, कम्बोज आदि कितने ही का भ्रमण किया था। वहाँ जाने का उनका भारतीय संस्कृति के चिह्नों तथा साहित्य का अनुसं था। उन्होंने अपनी एकाडमी में इन यात्राओं में अनेक ग्रन्थों और वस्तुओं का बड़ा महत्त्वपूर्ण संग्रह लिया था। एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार के सर्वमान्य और प्रतिष्ठित विद्वान् माने जाते थे। इस पर उन्होंने कितनी ही पुस्तकें भी लिखीं। इनमें भाषा की रामायण का अँगरेजी अनुवाद तथा एक पुस्तक का अनुवाद जिसमें भारतीय भौगोलिक भाषाओं का संकलन है, विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण उन्होंने कई वेदों के भी सुसम्पादित संस्करण निका सब मिलाकर उन्होंने ८८ ग्रंथों की रचना की जिन कई अनुवाद तथा कोश भी हैं।

हिंदी के वे अनन्य उपासक थे। मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्य मंत्री स्वर्गीय पं० रविशंकर शुक्ल उनकी विद्व और हिंदीनिष्ठा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने नागपुर बुलाकर विश्वविद्यालय की बी० ए० और एस-सी० कक्षाओं के लिए हिंदी और मराठी में विवि ज्ञान और विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने काम सौंपा। उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय में शिक्षा माध्यम हिंदी और मराठी को कर दिया था। डा० र वीर केवल विद्वान् ही नहीं थे, उनमें उच्च श्रेणी की संगठ योग्यता भी थी। उन्होंने थोड़े ही समय में विविध विष पर विश्वविद्यालय के स्तर की प्रायः दो दर्जन पाठ्य पुस्तकें हिंदी और मराठी में तैयार कर दीं। जब मध्यप्रदे में हिंदी और मराठी राजभाषाएँ घोषित हुईं तब प्रशास निक शब्दों के हिंदी पर्यायों की आवश्यकता का अनु हुआ। संविधान में भी हिंदी भारत की राजभाषा घो हो चुकी थी। किंतु दिल्ली के प्रभुगण पारिभाषिक को की तैयारी में ढील कर रहे थे। तब डा० रघुवीर ने बृहद् कोश तैयार किया जिसमें न केवल प्रशासनिक हैं, किंतु ज्ञान और विज्ञान के सभी आवश्यक शब्द गये हैं। यह बृहद् कोश डा० रघुवीर की कीर्ति को स्थायी रखेगा। जिस प्रकार योरोपियन भाषाओं वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द लैटिन (और ग्रीक) के आ पर बनाये गये हैं, उसी प्रकार डा० रघुवीर ने इस वि कोश के शब्दों को संस्कृत के आधार पर बनाया। का चयन बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया गया। संस्कृ मूलक होने के कारण——तथा प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में हृत पारिभाषिक शब्दों को ले लेने के कारण——अं और उर्दू जाननेवाले लोगों ने इस महान् कृति का उड़ाया और उसका विरोध किया। किन्तु जब रुपया खर्च करके और आठ-दस वर्षों तक काम करके

द भारत-सरकार ने अपना कोष बनाया (जो इससे हुत छोटा है) या जब लोकसभा ने अपना कोश तैयार या तब मालूम हुआ कि उन दोनों कोशों ने डा० रघुवीर कोश का बहुत काफी उपयोग किया है। वास्तव में बात है कि यदि ज्ञान-विज्ञान का ऐसा पारिभाषिक कोश ना जो भारत की अधिकांश भाषाओं को ग्राह्य हो र जिससे हिंदी का गौरव बढ़े तो कोश-निर्माण के जो रभूत सिद्धान्त डा० रघुवीर ने सामने रखे, उनको कर और कोई मार्ग नहीं है। अपेक्षाकृत अल्प अवधि तना बड़ा और ऐसा प्रामाणिक कोश बनाकर डा० वीर ने अपनी विद्वत्ता और कर्मठता का मूर्त प्रमाण । वे ऐसी कृति बना गये हैं जो भावी कोशों का आधार होगा। इस कोश को बनाकर उन्होंने की अभूतपूर्व सेवा की। इसी एक कृति से हिंदी और साहित्य के इतिहास में उनकी कीर्ति अमर गी।

किंतु अन्य विद्वानों और साहित्यिकों की तरह वे न किताबी कीड़े थे और न परमुखापेक्षी थे। वे हिंदी के भक्त थे। उनका विश्वास था कि देश का वास्त- कल्याण तभी होगा जब हिंदी भारत की राजभाषा गी, राष्ट्रभाषा भी हो जायगी। वे हिंदी के राजभाषा जाने को बड़ा महत्त्व देते थे। उनके लिए भार- संस्कृति और हिंदी का समन्वित नाम 'धर्म' था, और लिए वे सब कुछ त्याग करने को तैयार थे। जब में १९६५ के बाद भी अंग्रेजी को राजभाषा के रूप रहने का विधेयक लाया गया तो उन्होंने अन्य साहित्यिकों की तरह अपने पुस्तकालय की सुरक्षा ने को बंद नहीं कर लिया। उन्होंने डा० लोहिया हिंदी जनता की भावनाओं को व्यक्त करने के संसद के सामने विशाल जन-समूह के प्रदर्शन का किया। हिंदी की रक्षा के लिए इस गाढ़े समय में वे आये, और यह आशा की जाती थी कि भविष्य का नेतृत्व उन्हींके कुशल हाथों में रहेगा।

उनमें अपार ऊर्जा थी। गहन अध्ययन, शोध, पुस्तक- के साथ-साथ वे राजनीति में भी सक्रिय भाग लेते उनकी योग्यता और निष्ठा से प्रभावित होकर स्व० रविशंकर शुक्ल ने उन्हें मध्यप्रदेश की ओर से धान सभा में भिजवा दिया था। बाद में वे वहींसे प्रदेश की ओर से राज्यसभा के सदस्य भी रहे। किंतु रकार की चीन-सम्बन्धी नीति से क्षुब्ध होकर उन्होंने स से त्यागपत्र दे दिया था, और वे जनसंघ में सम्मि- हो गये थे। जनसंघ में उन्होंने नये प्राण फूँक ये थे।

डा० रघुवीर के निधन से अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का महान् विद्वान् उठ गया। सार्वजनिक जीवन से एक , योग्य और सिद्धान्त पर दृढ़ रहनेवाला देशभक्त चला गया। किंतु सबसे अधिक हानि हिंदी की ई। ऐसा कर्मठ, विद्वान् और सूझ-बूझ का दूसरा नेता हिंदी को शीघ्र शायद ही मिले। इस संकट के समय उनके निधन से देश की अपार क्षति हुई है। हम उनकी स्मृति में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

रॉकफैलर फाउण्डेशन की अर्द्धशती—गत मास आधुनिक धर्मादा संस्थानों में सबसे पुराने संस्थान—रॉकफैलर फाउण्डेशन—को स्थापित हुए पूरे पचास वर्ष हो गये। मानवता के इतिहास में किसी धनिक ने इससे पहले न तो इतना धन ही दान में दिया था, और न दान देने में इतनी व्यापक दृष्टि ही दिखलायी थी। रॉकफैलर ने इस संस्थान को सब मिलाकर २४,१६,०८,३५९ डालर और ७४ सैंट दान में दिये। एक डालर मोटे ढंग से पौने पाँच रुपये से कुछ अधिक का होता है।

रॉकफैलर जन्म से धनी नहीं थे। उन्होंने जो पहली नौकरी की उसमें उनका वेतन केवल ४ डालर प्रति सप्ताह था। धीरे-धीरे वे साधारण क्लर्क से खजांची हो गये। अपने अल्प वेतन में से उन्होंने बचत करके १००० डालर बचाया, और वे एक दूकान के साझीदार बन गये। १८६३ में पैनसिलवानिया में मिट्टी का तेल निकला। रॉकफैलर ने अपने साझीदार के साथ तेल शोधने का एक छोटा सा कारखाना खोल लिया और बाद में साझीदार को रुपया देकर उसे खरीद लिया। अपनी प्रतिभा, परिश्रम और सूझ-बूझ से धीरे-धीरे उन्होंने जगत्प्रसिद्ध स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी स्थापित की। वे उसके अध्यक्ष हो गये। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोहे की खानों, जंगल की पैदावार आदि के कितने ही काम किये। वे अमरीका के सबसे धनी व्यक्तियों में समझे जाने लगे। १८९६ में उन्होंने व्यापार से अवकाश ग्रहण कर लिया, और उनके लड़के काम देखने लगे। उनकी मृत्यु ९८ वर्ष की आयु में १९३७ में हुई। मृत्यु के समय यह पता लगा कि उन्होंने अपने जीवन में ५३,००,००,००० डालर दान में दिये थे। उनके दानों की संख्या बहुत अधिक है, किंतु इनमें दो उल्लेखनीय हैं। एक तो शिकागो विश्वविद्यालय की स्थापना और दूसरा रॉकफैलर फाउण्डेशन। शिकागो विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए उन्होंने ६० लाख डालर दिये थे। उनका दान देने का ढंग यह था कि वे सदैव यह शर्त लगाते थे कि जितना रुपया मैं दूँ, उतना ही, या उसका एक निर्धारित अंश और लोग भी दें। जब शिकागो वि० वि० के लिए उन्होंने ६ लाख डालर की पहिली किश्त दी, तब उन्होंने यह शर्त लगा दी थी कि दूसरे लोग मिलकर ४ लाख डालर एकत्र करें।

राकफेलर-फाउण्डेशन अपने ढंग की अनोखी संस्था है। अप्रैल १९१३ में न्यूयार्क की विधान सभा ने एक विधेयक पारित करके इस संस्थान को वैधानिक रूप दिया। रॉकफैलर ने इस संस्थान का उद्देश्य रखा—"सारे संसार में मानवता के कल्याण में सहायता देना।" आरंभ में इसने अपने कार्यक्रम में तीन बातें रखीं —(१) हुकवर्म, मलेरिया और पीतज्वर (यलो फीवर) को समाप्त करने के

लिए शोध कार्य और विभिन्न सरकारों के साथ सहयोग; (२) साधारण जन के स्वास्थ्य के सुधार के लिए काम करनेवाली संस्थाओं को सहायता और (३) अमरीका तथा दूसरे देशों में चिकित्सा शास्त्र, जन-स्वास्थ्य-विज्ञान और परिचर्या (नर्सिंग) की शिक्षा की उन्नति और प्रसार। इसके लिए संस्थाओं को अनुदान देने, विद्यार्थियों और कार्यकर्त्ताओं को वृत्तियाँ देने तथा सर्वेक्षणों और प्रचार के साधनों को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था थी। १९२९ के बाद इस संस्थान का कार्य-क्षेत्र बढ़ा दिया गया। अब चिकित्सा और स्वास्थ्य के अतिरिक्त विज्ञान, जैसे जीव-शास्त्र, भौतिकी तथा सामाजिक शास्त्रों (इतिहास, अर्थ-शास्त्र आदि), कृषि तथा अन्य विषयों जैसे दर्शनशास्त्र, भाषा-विज्ञान आदि का भी समावेश कर लिया गया। यह संस्थान स्वयं शोध कार्य बहुत कम करता है। अभी केवल कुछ चिकित्सा-शास्त्र (विशेषकर वाइरस सम्बंधी) और कृषिसम्बन्धी शोध को छोड़कर यह विश्वविद्यालयों, शोध संस्थाओं आदि को अनुदान देकर ही ज्ञान का प्रसार करता है।

रॉकफैलर की महत्ता का एक प्रमाण यह भी है कि यद्यपि उन्होंने इस संस्था को इतना प्रचुर धन दिया तथापि उसमें अपना कोई अधिकार नहीं रखा। संस्थान का एक न्यास (ट्रस्ट) है जिसमें २१ सदस्य हैं। संस्थान का कार्य उसके अध्यक्ष और वैतनिक कर्मचारियों द्वारा होता है जिन्हें न्यास नियुक्त करता है। ऐसी निस्पृहता कम देखने में आती है। रॉकफैलर के संस्थान बनाने के बाद अमरीका में कई संस्थान बने जिनमें फोर्ड मोटरों के बनानेवाले हैनरी फोर्ड का फोर्ड संस्थान (फोर्ड फाउण्डेशन) बहुत प्रसिद्ध है। इनके बनाने में सबने रॉकफैलर का ही अनुसरण किया।

रॉकफैलर संस्थान ने संसार के अनेक देशों को उपकृत किया क्योंकि संस्थापक ने उसका कार्यक्षेत्र सारा संसार रखा था, और अखिल मानवता की सेवा करना उनका ध्येय था। भारत में भी इस संस्थान से कई स्वास्थ्य और कृषि-सम्बन्धी योजनाओं को सहायता मिली है। रॉकफैलर ने व्यापार के दाँवपेचों का उपयोग कर अपार धन अर्जित किया, किंतु उन्होंने उसका सदुपयोग किया और दूसरे धनिकों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया। इस उपयोगी संस्थान ने इन पचास वर्षों में रंग, जाति, वर्ग, वर्ण या धर्म का भेद किये बिना जनता की सेवा करने और ज्ञान के विस्तार में जो अभूतपूर्व कार्य किया है, वह इसके लिए गर्व का विषय है। रॉकफैलर के समान विश्वबंधुत्व का व्यावहारिक प्रचार करनेवालों को देखकर आशा होती है कि विश्वबंधुत्व का आदर्श सफल हो सकता है।

दीपावली करने पर कर--इस अभाव, महँगी आर्थिक संकट के युग में एक ओर तो लोग चिल्ला-चि कर अपव्यय बंद करने और सब काम सादगी से करने उपदेश दे रहे हैं, और दूसरी ओर लोगों में प्रदर्शन अपव्यय की प्रवृत्ति बेतहाशा बढ़ रही है। विवाह अवसरों पर इस प्रवृत्ति का कुरूप और बेढंगा स्वरूप को मिलता है। बड़े नगरों में जो विवाह होते हैं उनमें वि की भड़कीली और आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने दीपावली, खर्चीले और बड़े भोज (जिनमें कितना ही सा नष्ट हो जाता है) और ध्वनिविस्तारक से कर्कश स्व सस्ते और कभी कभी कुरुचिपूर्ण गानों का प्रसारण सा बातें हो गयी हैं। ध्वनिविस्तारक के कर्कश स्वर पड़ोसि का काम करना हराम कर देते हैं, और यदि वे सोना तो उनकी नींद हराम हो जाती है। नगरों के अभूत विस्तार के कारण प्रायः सभी नगरों की पानी और बि की व्यवस्था अपर्याप्त हो गयी है। तिस पर जब एक सैकड़ों लोग विवाहोत्सवों पर दीपावली के लिए बि माँगते हैं तब बिजली का अपार अपव्यय होता है। बिजली कम्पनी तो उससे कुछ लाभ कर लेती है, किंतु ज को उससे बड़ा कष्ट होता है क्योंकि यह बिजली कहीं कहीं कमी करके ही दी जा सकती है। फिर, बि पर इतना बल पड़ता है कि वह बार बार बंद हो जाती जिससे जनता को बड़ी असुविधा होती है। यदि लोगों सुरुचि हो, और उन्हें देश की शक्ति का अपव्यय न क की समझ हो तो ये धन के कुरूप प्रदर्शन अपने आप हो जायें। किंतु, "नये धनियों" में विशेष रूप से प्रवृत्ति बढ़ रही है। हमने सुना है कि दिल्ली आदि नगरों में विवाह के समय लोग हजारों रुपये केवल बि की दीपावली पर खर्च करते हैं। इसलिए हमें यह समा पढ़ कर प्रसन्नता हुई कि पंजाब की सरकार ऐसे अव पर दीपावली करनेवालों पर भारी कर लगाने जा रही है दीपावली में खर्च की हुई बिजली की प्रत्येक यूनिट दस रुपये कर लगाया जायगा। यह कर अधिक मा होता है, किंतु हम इसे उचित समझते हैं। जिनके प्रदर्शन करने के लिए फालतू धन है, उन्हें प्रदर्शन संतोष तथा सुख प्राप्त करने के लिए भारी मूल्य भी चाहिए। दूसरे राज्यों को भी यह कर लगाना चाहि ध्वनिविस्तारक यंत्र के उपयोग पर भी इसी प्रकार का लगाने की आवश्यकता है। उसके एक घंटे के उप पर सौ रुपये का कर बेजा न होगा। दूसरे और ती घंटे के लिए यह कर चक्रवृद्धि से बढ़ना चाहिए। इस प्र के करों से मुरारजी भाई को सहायता तो मिलेगी हमारे संस्कारों में आवेगी। अपव्यय भी कम होगा और

संस्कृत में वस्तु के परिचायक उपाय

श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

संस्कृत के परवर्ती साहित्य में लक्षण बनाने की कला का बहुत अधिक विकास देखा जाता है। गंगेशोपाध्याय ने संस्कृत भाषा को जो एक नया मोड़ दिया, उस मोड़ ने ...ति अवच्छेदकावच्छिन्न बहुल भाषा की शैली ने लक्षण ...ने में एक विलक्षण गांभीर्य दे दिया। किसी भी वस्तु ...ऐसा एक लक्षण बना लेना उस समय बहुत बड़ी ...ला मानी जाने लगी जिसमें एक भी दोष न हो। ...ण बनाते समय तीन दोषों से उस लक्षण को बचाना ...ना है—वे दोष हैं: अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और ...संभव। उदाहरणार्थ, गौ का यदि यह लक्षण बनाया ...कि पूंछवाला पशु गौ होती है, तो इस लक्षण में प्रथम ...व्याप्ति दोष होगा। अतिव्याप्ति का अर्थ है उस ...में भी लक्षण का लागू हो जाना जो कि उस लक्षण ...क्ष्य नहीं है। गौ को लक्षण बनाते समय एक ...से पशु गाय ही हमारा लक्ष्य है न कि गाय के अतिरिक्त ...कोई पशु भी। ऐसी स्थिति में हमारा यह लक्षण ...पूंछवाला पशु गाय होती है' गाय के अलावा घोड़े ...भी परिचायक हो जायगा, और पूँछवाला रहने के ...घोड़ा भी गाय शब्द के अर्थ की सीमा में आ जायगा। ...दोष को लक्षण से दूर रखने के लिए लक्षणीय पदार्थ ...उस खास बात को दिखाना होगा जो उस पदार्थ के ...तिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में देखने को न मिलती हो। ...उस लक्षण के द्वारा उस पदार्थ का निश्चित परिचय ...सकेगा। यही लक्षण की उपादेयता है। इसीलिए ...की यह स्वीकृत परिभाषा है कि—

"असाधारणो धर्मो लक्षणम्"

किसी भी पदार्थ का वह धर्म अर्थात् विशेषता लक्षण कहलाती है जो असाधारण हो, जो उस पदार्थ के अतिरिक्त अन्यत्र न दिखाई देती हो।"

लक्षण के निर्माण में जो दूसरा दोष आता है वह है 'अव्याप्ति'। इस दोष के होने पर लक्षणीय पदार्थ के किसी भाग का परिचय तो मिल जाता है, पर उस पदार्थ का कुछ भाग छूट भी जाता है। उदाहरण के लिए सफेद गाय को देखकर गाय के लक्षण में यदि सफेद रंग को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो लाल रंग की और काले रंग की गायें उस लक्षण बाहर रहेंगी। इसी प्रकार रंग का समावेश करने पर लक्षण अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हो जायगा।

तीसरा दोष लक्षण निर्माण में जो दिखाया जाता है वह है 'असंभव'। किसी पदार्थ का परिचय देते समय यदि ऐसी कोई बात उसमें जोड़ दी गई जिसका उस पदार्थ के स्वरूप में कोई अस्तित्व ही न हो, वहाँ असंभव दोष होता है। उदाहरणार्थ, गौ के लक्षण में यदि यह कह दिया जाय कि गौ वह पशु होता है जिसके पंख हों, तो यह लक्षण असंभव दोषग्रस्त माना जायगा। कारण यह कि किसी भी गौ के पंख नहीं होते।

इन तीनों दोषों से जो लक्षण बचा रहे उसे पूर्ण लक्षण माना जाता है। अब देखना यह है कि लक्षण के निर्माण का उद्देश्य क्या है। एक उद्देश्य तो स्पष्ट है और वह यह कि किसी भी पदार्थ का असंदिग्ध ज्ञान लक्षण के द्वारा करा दिया जाता है। लक्षण दो प्रकार के होते हैं: स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण। किसी वस्तु के स्वरूप का पूरा ज्ञान करा देनेवाला लक्षण स्वरूप लक्षण कहलाता है। गौ के स्वरूप में एक असाधारण वस्तु है, वह है: ककुद। जो पशु ककुद वाला हो वह गौ है। यह गौ का स्वरूप लक्षण होगा। दूसरे तटस्थ लक्षण के द्वारा किसी वस्तु के ऐसे प्रभाव या कार्य का परिचय दिया जाता है जो उसके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ से साध्य न हो। इसका प्रसिद्ध उदाहरण वेदान्तियों का 'ब्रह्म' है। ब्रह्म का स्वरूप लक्षण नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि वेदान्त की मान्यता के अनुसार 'ब्रह्म' अपने स्वरूप में अज्ञेय है, उसके पूर्ण स्वरूप को कोई नहीं जान सकता। वही जान सकता है जो स्वयं भी 'ब्रह्म रूप' ही हो जाय—

"जानति तुम्हहिं तुमहि होइ जाई।"

इसलिए ब्रह्म के ज्ञान के लिए 'स्वरूप लक्षण' को छोड़कर शास्त्रकारों ने तटस्थ लक्षण को स्वीकार किया है। ब्रह्म के स्वरूप को दिखलाते हुए वेदान्त सूत्र के रचयिता वेद-व्यास ने कहा है—'जन्माद्यस्य यतः' अर्थात् ब्रह्म वह है जहाँसे इस समस्त संसार की उत्पत्ति होती है। यह एक ऐसा कार्य है जो दर्शनों के अनुसार ब्रह्म के अलावा और किसीके द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता। यही तटस्थ लक्षण कहा जाता है। अपने व्यावहारिक प्रयोगों में भी हम किसी

पदार्थ के प्रभाव को दिखलाकर उसके स्वरूप का परिचय दिया करते हैं।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि लक्षण निर्माण की प्रक्रिया पदार्थों के पूर्ण परिचय देने का प्रयास है। इसके अतिरिक्त पदार्थ परिचय के तीन अन्य उपाय भी हैं जिनका सर्वत्र उपयोग होता है। वे हैं विशेषण, उपलक्षण और उपाधि। यदि किसी विशेष मनुष्य का परिचय देना हो तो उसके साथ ऐसा विशेषण लगाया जाता है जो उसमें पूर्ण रूप से समन्वित हो, साथ ही जो अन्य मनुष्यों से उस मनुष्य को अलग करके प्रकट कर सके। जैसे 'काला आदमी' इस प्रयोग में 'काला' इस विशेषण ने किसी मनुष्य का ऐसा परिचय दिया जो गोरा नहीं है। यह दूसरे से पृथक्करण ही विषेषण की प्रधान बात है। साथ ही विशेषण के रूप में जो बात कही गयी है वह उस मनुष्य के स्वरूप में भी शामिल होनी चाहिए और उसका अनुभव भी होना चाहिए। कालापन मनुष्य के स्वरूप में भी शामिल है और आँखों से उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है। लक्षण में जैसे तीन शर्तें थीं, वैसे ही विशेषण में भी दो बातें हैं। पहिली बात तो यही है कि विशेषण के द्वारा कही गयी बात पदार्थ के स्वरूप में गृहीत अवश्य होनी चाहिए। यदि हम यह कहें 'हरे रंग का आदमी' तो यह विशेषण गलत होगा क्योंकि किसी भी मनुष्य में हरे रंग की सत्ता का अभाव है। दूसरी बात यह है कि विशेषण के द्वारा बतायी जानेवाली विशेषता के उस वस्तु के सजातीय अन्य किसी व्यक्ति में अभाव भी होना आवश्यक है। 'काला आदमी' में काला यह विशेषण इसीलिए सार्थक है कि बहुत से आदमियों में काले रंग का अभाव भी है। यदि हम किसी मनुष्य के लिए यह कहें कि 'हाथ पैर वाला आदमी' तो यह 'हाथ पैर वाला' विशेषण गलत होगा, क्योंकि विशेषण का मुख्य प्रयोजन है अन्य सजातीय व्यक्तियों से उस व्यक्ति की पृथकता का ज्ञान करा देना। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं देखा जाता जिसके कि हाथ पैर न होते हों। तब इस विशेषण से किसको पृथक् किया जाय? अतः यह विशेषण सार्थक नहीं कहा जा सकता। विशेषण का पृथक् ज्ञान मुख्य बात है।

परिचय देने का दूसरा उपाय है उपलक्षण। यह भी एक प्रकार का विशेषण का ही प्रयोग है, परन्तु भेद यह है कि जहाँ "विशषण" में उस विशेषता का पदार्थ के स्वरूप में सर्वदा रहना आवश्यक है, उस प्रकार यहाँ यह विशे सर्वदा नहीं रहती, अपितु परिचय देते समय उस विशे की उस वस्तु में सत्ता आवश्यक है। इसका उदाहरण कि किसी व्यक्ति के द्वारा यह पूछने पर कि 'अमुक व्य का मकान कौन सा है' उत्तर में यह कहा जाय कि उस वह मकान है जिसके सामने मोटर खड़ी है। यह परि उपलक्षण रूप से ही दिया गया। मोटर का सामने होना उस मकान के स्वरूप में शामिल नहीं है, हमेशा मकान के आगे मोटर खड़ी ही रहेगी, यह आवश्यक नहीं है। परन्तु परिचय देते समय उसकी वहाँ स्थि रहनी चाहिए। इससे परिचय मिल जाना अनु सिद्ध है।

परिचय देने का तीसरा उपाय है 'उपाधि'। य भी यद्यपि विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त होती है तथा जैसे उपलक्षण में विशेषण का एक तत्त्व छोड़ दिया जा वैसे इसमें दूसरा तत्त्व भी छोड़ दिया जाता है। मका का उपलक्षण से परिचय कराते समय मोटर का साम दिखाई देना आवश्यक , परन्तु उपाधि में वह परिचाय विशेषता पृथक् दिखाई नहीं देती है, साथ ही अन्य लो से भिन्नता का परिचय करा देती है। उदाहरणार्थ, महाशय "पद्मभूषण" की उपाधि से विभूषित किये ग उनके स्वरूप में कोई विशेषता उत्पन्न नहीं हुई। परन् परिचय देने का तथा अन्य व्यक्तियों से भिन्नता का अनु भव करा देने का काम उपाधि के ज्ञान से हो गया।

लक्षण, विशेषण, उपलक्षण और उपाधि ये पदा परिचय के उपाय दिखाए गए। पाँचवाँ एक उपा "उपमान" दिखा कर भी परिचय देने का है। इस प्रसिद्ध उदाहरण यह है कि 'गवय नाम के एक पशु परिचय आकार आदि में उससे समानता रखनेवाली की समानता बतला कर कराया जाय।' गवय गाय समान होता है, यह कहकर भी परिचय दिया जाता है। यही उपमान प्रमाण से स्वरूप ज्ञान कहलाता है। इ सन्दर्भ में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वस्तु परिच के उपर्युक्त उपायों से प्रायः परोक्ष परिचय ही होता है। प्रत्यक्ष परिचय तो इन्द्रियों के वस्तु के साथ सन्निकर्ष ही होता है। अन्य सभी उपायों में सबसे विशद तथा स्प उपाय लक्षण ही है क्योंकि लक्षण में अन्य उपायों का प्रायः समावेश हो जाता है, साथ ही उस वस्तु का

१६६३

ान भी होता है। किन्तु वस्तु को हम उसके लक्षण के हारे आसानी से समझ सकते हैं। परन्तु साथ ही उन स्तुओं की असाधारण विशेषताओं को ढूँढ़ निकालना आसान नहीं है और इसमें शिथिलता आने पर अव्याप्ति दि दोषों के प्रवेश से वह लक्षण उस पदार्थ का वास्तविक चय नहीं दे सकता। लक्षण की इस कठिनाई का त साहित्य के उत्तर काल में खूब लाभ उठाया गया। ी भी पदार्थ के लक्षण में अव्याप्ति आदि दोषों की भावना कर अपने पांडित्य का सिक्का जमाने के लिए के विद्वानों में गहरी प्रतिस्पर्धा देखी जाने लगी। वादी जब वादी के बनाये हुए लक्षण में अव्याप्ति आदि षों को प्रकट करता तो उत्तर में वादी उन दोषों को दूर अपने लक्षण में सुधार करता। अथवा प्रतिवादी के ए हुए दोष की निस्सारता प्रदर्शित करते हुए अपने की पूर्णता को युक्तियुक्तपूर्वक सिद्ध करता। इस पर आगे लम्बा विचार विमर्श होता। कई बार तो ारों को अपने ग्रन्थों में से दस-दस, बीस-बीस दोषों क्षण से हटाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता। इस यह लक्षण निर्माण की प्रक्रिया विद्वत्ता का अखाड़ा ी। विद्वत् परिषदों के शास्त्रीय विचार में जो विद्वान् लक्षण पर दिये जानेवाले दोषों का अन्त तक समाधान चला जाय, वही सबसे बड़ा विद्वान् माना जाता है।

साहित्य जैसे विषय के विवेचक ग्रन्थों में भी लक्षण के ार की सूक्ष्मता को नहीं छोड़ा गया। काव्य का जो आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में प्रस्तुत किया, के ग्रन्थकारों ने उस लक्षण में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, व नाम के तीनों दोष दिखा दिये। इनमें साहित्य-कार आचार्य विश्वनाथ और रसगंगाधर के रचयिता राज जगन्नाथ मुख्य हैं। इन आचार्यों ने मम्मट के व्यलक्षण में विस्तारपूर्वक उपर्युक्त दोष दिखा कर ने नवीन लक्षण प्रस्तुत कर उनकी युक्तिपूर्ण स्थापना । पंडितराज जगन्नाथ ने मम्मट के लक्षण की आलोचना बाद विश्वनाथ के काव्यलक्षण को भी अनुपयुक्त ठहरा अपने नवीन काव्यलक्षण की स्थापना की। आगे कर काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने मम्मट के लक्षण दिखाए गये दोषों को निस्सार सिद्ध कर उस लक्षण की ादेयता को फिर से प्रतिष्ठित किया।

इसी प्रकार सर्वोच्च कोटि का जो ध्वनि काव्य माना जाता है उसका जो लक्षण ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धनाचार्य ने प्रस्तुत किया था, आचार्य महिम भट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ व्यक्ति विवेक में उस ध्वनि लक्षण की बड़ी विस्तृत समीक्षा करके लक्षण में अनेक प्रकार से तीनों दोष दिखलाने का प्रयत्न किया। आगे चलकर मम्मट आदि आचार्यों ने उक्त दोषों की निस्सारता सिद्ध की। कहने का तात्पर्य यह कि साहित्य सम्बन्धी विवेचना में भी लक्षण की सदोषता को आचार्यों ने सहन नहीं किया।

वैसे तो यह लक्षण निर्माण कला बड़ी रोचक है और जो प्राचीन शैली के संस्कृत के विद्वान् हमारे देश में हैं, उन्हें इस प्रकार के विचार में जितना आनन्द प्राप्त होता है वह उनके लिए अन्यत्र दुर्लभ है, परन्तु पदार्थ परिचय की इस लक्षणात्मक विशेष शैली के सर्वग्राह्य होने में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं। सबसे पहिली कठिनाई तो यह है कि दोष दिखाने और उन्हें दूर करने के प्रयत्न में भाषा इतनी जटिल और समास-बहुला हो जाती है कि उसके अर्थ को हृदयंगम करना ही एक बड़ी समस्या हो जाती है। दूसरी बात यह है कि इस तरह के विचार की गंभीरता में प्रवेश करने के बाद पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान, जिसके लिए यह सारा प्रयत्न है, एक ओर रक्खा रह जाता है। तीसरी बात जो इस शैली में है वह यह कि एक बार इस शैली का निकट परिचय हो जाने पर दोषदर्शन की प्रवृत्ति ही बहुत अधिक जागृत हो जाती है। इस शैली का विद्वान् बिना खंडन किये कोई बात ही नहीं कहता। इस शैली के जिन प्राचीन विद्वानों ने ग्रन्थ रचनाएँ की हैं उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित ग्रन्थकारों के लक्षणों पर दोष दिखाकर प्रहार करना अपना प्रथम कर्तव्य माना। अस्तु, आगे चलकर इस शैली ने सूक्ष्मता और गांभीर्य धारण किया और इस शैली के विद्वानों का यह दावा है कि इस शैली को छोड़कर किसी पदार्थ की वास्तविकता को जानने का भाषा के माध्यम से और कोई दोष शून्य उपाय ही नहीं है।

किंतु फिर भी यह स्पष्ट है कि भाषा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का परिचय देने में संस्कृत ग्रन्थों में अनेक प्रकार के प्रयत्न हुए हैं जिनका अंतिम उद्देश्य वस्तु के पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर लेना रहा है।

हिन्दी की प्रातिपदिक-व्यवस्था

पंडित किशोरीदास वाजपेयी

प्रतिपद अपनी झलक देनेवाला शब्द रूप 'प्रातिपदिक' कहलाता है। 'प्रातिपदिक' में ही 'के' 'को' आदि विभक्तियाँ लगती हैं। 'प्रातिपदिक' हिन्दी के 'अपने' हैं और संस्कृत के तद्रूप-तद्भव भी। विदेशी भाषाओं से भी शब्द लेकर हिन्दी ने अपने प्रातिपदिक आवश्यकता के अनुसार बनाये हैं। 'पानी' तद्भव और 'जल' तद्रूप शब्द यहाँ चलते हैं। इसी तरह लालटेन, डाक्टर, अस्पताल आदि विदेशी शब्द तद्भव रूप में गृहीत हैं। तद्रूप 'लेन्टर्न', 'डॉक्टर', 'हास्पिटल' आदि रूप (हिन्दी में) लिखना-बोलना गलती है। इसी तरह 'ग़लती' लिखना-बोलना गलती है। सभी भाषाएँ ऐसा करती हैं। 'गंगा जी' को अँगरेजी ने 'गेंजिज' करके अपना प्रातिपदिक बनाया है। वहाँ 'गंगाजी' नहीं चलता।

अनेक रूपों में विकास

कभी-कभी हिन्दी ने अनेक रूपों में एक ही शब्द का विकास ग्रहण किया है। हिन्दी में (संस्कृत के) विसर्गन्ति पदों को निर्विसर्ग करके प्रातिपदिक रूप में ग्रहण है और व्यंजनान्त को स्वरान्त कर लिया गया है। संस्कृत के 'पयः', 'नभः' आदि पदों के विसर्ग हटाकर 'पय', 'नभ' आदि हिन्दी में प्रातिपदिक हैं। या फिर 'पयस्', 'नभस्' आदि व्यंजनान्त प्रातिपदिकों के अन्त्य व्यंजन हटाकर 'पय', 'नभ' आदि प्रातिपदिक। कभी-कभीं व्यंजन को स्वरान्त कर लिया गया है—'धनुष्' को 'धनुष'। 'राजन्' प्रातिपदिक न लेकर उसका स्वरान्त पद 'राजा' हिन्दी ने प्रातिपदिक रूप में लिया है—'राजा ने कहा।' कभी 'अ' लगा कर 'राजन' कर लिया गया। परन्तु 'नामन्' को 'नामन' रूप में नहीं लिया। 'नामन्' का 'पद' ही ('नाम') हिन्दी का प्रातिपदिक है। इसलिए भाषा-विज्ञानियों का यह कथन गलत है कि हिन्दी में 'घास', 'मास' और 'कान', 'ध्यान' आदि व्यंजनान्त ('घास्', 'कान्' आदि) हैं। उनकी बात न व्यवहार से सिद्ध है, न प्रमाण से ही। वैसा होता तो हिन्दी में 'नभस्' और 'नामन्' जैसे प्रातिपदिक होते।

'गो' संस्कृत और 'गौ' हिन्दी

संस्कृत में 'गो' प्रातिपदिक है, जिसके 'गौः' 'गावौ' आदि 'पद' चलते हैं। हिन्दी ने 'गो' प्रातिपदिक नहीं लिया। पद 'गौः' के विसर्ग हटा कर 'गौ' अपना प्रातिपदिक बनाया। 'गौ की सेवा होती है'—'गो की' नहीं। 'गौ की रक्षा करनी है'—'गो की' नहीं।

परन्तु इसी ('गो') प्रातिपदिक के बहुवचन को भी निर्विसर्ग करके हिन्दी ने अपना दूसरा प्रातिपदिक (तदर्थक ही) बना लिया है—'गाय'।

'गावः' के विसर्ग हटा कर 'गाव' और 'व' को 'य' करके 'गाय'। 'व' को 'य' कर लेने की प्रवृत्ति है ही—नवः 7 'नया' और 'वा' 7 'या'। अन्यत्र 'गाव' ही चलता है और हिन्दी में भी समस्त संज्ञा 'गावजबाँ' चलती है। कहीं 'ग' को 'क' होकर 'काव' भी। 'गाव' में 'ई' लगा कर 'गावी' का भी चलन कभी था, जिसका उल्लेख 'महाभाष्य' में है। 'गाव' स्त्रीवर्गीय शब्द होने पर भी 'ई' स्त्री-प्रत्यय, जैसे हिन्दी में 'दवा' से 'ई'—'दवाई'। 'दवा' भी चलती है। 'गाव' से 'गाय' हो गया।

इसी तरह 'नौ' का बहुवचन 'नावः' विसर्ग-रहित होकर हिन्दी-प्रातिपदिक 'नाव'। नदी में नाव चलती है; 'नौ' नहीं। हाँ, स्वार्थिक 'क' प्रत्ययान्त 'नौका' अवश्य हिन्दी में भी प्रातिपदिक है। हिन्दी ने 'गौ' प्रातिपदिक लिया, पर 'नौ' नहीं; यह अपनी प्रवृत्ति। तो 'गौ' का ही भिन्न वर्ण-विन्यास से लिखित रूप है। 'गऊ', 'गौ' और 'गाय' प्रातिपदिक संस्कृत के एकवचन और बहुवचन पदों के निर्विसर्ग रूप हैं। तो, हिन्दी ने ये दो प्रातिपदिक क्यों बनाए ? उत्तर है—प्रदेश-भेद से। किसी प्रदेश में 'गौः' का 'गौ' बना और किसी में 'गावः' का रूप 'गाय'।

संस्कृत में भी ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है। 'श्वन्' प्रातिपदिक का बहुवचन पद है—'श्वानः'। इसके विसर्ग हटा कर संस्कृत ने स्वयं भी कहीं 'श्वान' प्रातिपदिक अपना बना लिया है—'श्वान इव शब्दायते'। 'श्ववद्' भी होता है। 'श्वानसिंहगजद्विजाः' प्रसिद्ध ही है।

इसी तरह 'नृ' प्रातिपदिक का बहुवचन 'नरः' है। इसके विसर्ग हटा कर 'नर' भी प्रातिपदिक—'नरः सोऽयम्'। 'नृपः' में 'नृ' प्रातिपदिक है और 'नरपतिः' में 'नर' है। 'नरपः' नहीं सुनाई देता है। 'नृपतिः'—'नरपतिः' दोनों चलते हैं।

इसी तरह संस्कृत में 'देवृ' शब्द का बहुवचन पद देवरः'। इसके विसर्ग हटाकर संस्कृत ने 'देवर' दिक भी बना लिया—'लक्ष्मणो देवरस्तस्याः'। णो देवा तस्याः' जैसे प्रयोग नहीं मिलते। 'देवृ' द 'देवा' है, जैसे 'पितृ' का 'पिता'। ऐसा जान है कि बहुवचन 'देवरः' के विसर्ग हटाकर 'देवर' दिक बहुत पहले बन गया था; क्योंकि महर्षि यास्क र' का ही प्रयोग किया है और वेद-मंत्र में भी ही है। चलन 'देवर' का हो गया; पर बना वृ' भी। कोश आदि में 'देवृ' विद्यमान है; पर आदि में जैसे 'नृ' प्रचलित है, उस तरह 'देवृ' नहीं।

इन्द्रियाँ कैसे ?

दी के किसी-किसी पद में लोग प्रातिपदिक-विषभ्रम में बुरी तरह पड़ जाते हैं। लोग 'इन्द्रियाँ' पद न्द्रिय' प्रातिपदिक समझ लेते हैं और इसीलिए आदि की तरह 'इन्द्रियें हमें खींचती हैं' लिख । 'इन्द्रिय' तद्रूप शब्द संस्कृत समस्त शब्दों में ही ती है—'घ्राणेन्द्रिय' 'इन्द्रिय-सन्निकर्ष' आदि। योग में भी एकवचन—'नाक भी अत्यन्त उपयोगी है'। परन्तु बहुवचन में स्वतंत्र प्रयोग 'इन्द्रिय' हीं होता। 'इन्द्रियाँ दस हैं', यहाँ 'इन्द्रिय' प्रातिनहीं है। 'य' को 'ई' करके ('सवर्ण दीर्घ एकादेश')—'इन्द्री' प्रातिपदिक है। 'घृत' का 'घिय' होकर इसी तरह 'इन्द्रिय' का 'इन्द्री'। 'इन्द्री' का न 'इन्द्रियाँ'; जैसे लड़कियाँ, नदियाँ आदि। याँ दस (और 'मन' सहित ग्यारह) हैं; इसलिए न ही प्रयोग होता है—'इन्द्रियाँ'। एकवचन में तद्रूप 'इन्द्रिय' चलता है; क्योंकि 'इन्द्री' (एकवचन) व्यवहार हिन्दी में इन्द्रिय-विशेष में प्रचलित है।

बहुवचन के विसर्ग हटाकर ही संस्कृत पद 'दाराः' हिन्दी ने अपना प्रातिपदिक 'दारा' बनाया है—'सुत सब के सही'। इसी तरह—युवानः 7 'जवान' और १—गुणवन्तः 7 गुनवन्त, २—श्रीमन्तः 7 श्रीमन्त, ३—हनुमन्तः 7 हनुमन्त, ४—वलवन्तः 7 वलवन्त ५—जीवन्तः 7 जीवन्त, ६—सन्तः 7 सन्त, ७—महान्तः 7 महन्त, ८—जयन्तः 7 जयन्त (संस्कृत में भी) जैसे प्रातिपदिक हैं; पर 'श्रीकन्त' है 'श्रीकान्त' से। पृथक् भी 'कन्त न आए, वसन्त का भी अन्त हुआ'। व्रजभाषा आदि में 'कन्त' ही चलता है—'कान्त' नहीं। 'कन्त' मधुर है। इसी तरह स्त्रीमुख से 'पिय' अच्छा लगता है; पर पुरुष सदा 'प्रिया' कहेगा; कभी भी ('प्रिया' की जगह) 'पिया' नहीं। हिन्दी के प्रातिपदिक और धातु शब्दों का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति पर हुआ है।

कौन तुम ?

श्री राजेन्द्र मिश्र

कौन तुम सुकुमार छन्दों में विहरती कल्पना सी,
काव्य में अन्तस्थ लय सी, प्रणय की आराधना सी,
थके हारे क्लान्त मन में आस की संभावना सी,
चिर प्रतीक्षित मिलन-क्षण में युग युगों की कामना सी ?

प्रीति में विश्वास सी, औ साधना में प्रतिफलन सी,
राग में शृंगार सी तुम प्रार्थना में अश्रुकन सी,
कौन तुम सौन्दर्य-प्रतिमे ! चेतनों की चेतना सी,
आदि कवि की सर्जना में प्रेरणा की वेदना सी ?

अर्ध-रात्रिक कौमुदी में वेणु कूजित रागिनी सी,
व्योमगंगा की छटा सी, ऐन्द्रजालिक कामिनी सी,
झिलमिलाती तारिकाओं में विहँसती रोहिणी सी,
कौन तुम मेरे हृदय में मोहिनी ! सम्मोहिनी सी ?

काव्य में शिवतत्त्व बन कर लोक का संताप हरतीं,
कला में सौन्दर्य चितवन सृष्टि का शृंगार करतीं,
कौन तुम संगीत रसिके ! सत्त्य वीणा में गुँजातीं
धूल से मानव बनाकर दिव्यता का स्वर पढ़ातीं !

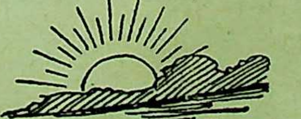

कौशाम्बी के इतिहास पर नया प्रकाश

प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी

भारतीय इतिहास में कौशाम्बी का नाम प्रख्यात है। प्राचीन साहित्य में इस नगर के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। बौद्ध, जैन, वैदिक तथा पौराणिक धर्मों का यहाँ विकास हुआ। व्यवसाय तथा व्यापार का भी यह नगर एक बड़ा केन्द्र था। अनेक व्यापारिक राजमार्ग कौशांबी होकर जाते थे।

सम्राट् अशोक का एक अभिलिखित पाषाण-स्तम्भ यहाँ मिला है। शुंग-काल से लेकर गुप्तकाल के अंत तक पाषाण तथा मिट्टी की बहुसंख्यक कलापूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण भी यहाँ हुआ।

अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य-साम्राज्य विशृंखलित हो गया। वत्स जनपद, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी, ने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित की। यहाँके अनेक स्वतंत्र शासकों के सिक्के तथा अभिलेख मिले हैं। उनसे ज्ञात होता है कि अशोक के बाद से लेकर समुद्रगुप्त के विजय काल तक कौशाम्बी में अनेक स्वतंत्र शासक थे। लगभग साढ़े पाँच सौ वर्षों के इस लम्बे काल में जिन बहुसंख्यक शासकों ने कौशाम्बी पर राज्य किया उनमें से अधिकांश के नाम ज्ञात हो चुके हैं। इन शासकों की संख्या ४० से ऊपर है। अधिकतर राजा 'मित्र' नाम वाले हैं। प्रतीत होता है कि एक या कई मित्र-वंशों का आधिपत्य यहाँ बहुत समय तक विद्यमान रहा। इन मित्र-राजाओं का सम्बन्ध पुष्यमित्र शुंग या उसके वंशजों के साथ क्या था, इसकी निश्चित जानकारी अभी तक नहीं हो सकी। परन्तु पंचाल, मथुरा तथा संभवतः मगध के मित्रवंशीय राजघरानों के साथ कौशाम्बी के मित्र शासकों के सम्बन्ध थे। इसका पता अनेक अभिलेखों से चला है। पंचाल के राजा वंगपाल का प्रपौत्र आषाढ़-सेन था, जिसके भानजे बृहस्पति मित्र (द्वितीय) का उल्लेख कौशाम्बी के समीप पभोसा नामक स्थान में प्राप्त अभिलेखों में हुआ है। यह बृहस्पतिमित्र (द्वितीय) कौशाम्बी का राजा था और इसके सिक्के वहाँसे बड़ी संख्या में मिले हैं। इसी प्रकार मथुरा के मोरा नामक स्थान से प्राप्त एक शिलालेख में कौशाम्बी के राजा बृहस्पतिमित्र (प्रथम) का नाम मिला है, जिसकी पुत्री मथुरा के शासक को ब्याही थी। कौशांबी के शासक अग्रराज का प्रपौत्र धनभूति द्वितीय था, जिसके मथुरा में दान-कार्य का उल्लेख वहाँ पाये गये शिलालेख में मिला है।

कुछ समय पूर्व वैशाली की खुदाई से मिट् एक मुद्रा मिली थी, जिस पर राजा अग्निमित्र के सम्बन्धी का नाम लिखा है। मैंने इस मुद्रा में उल्लि अग्निमित्र को कौशाम्बी का शासक माना है। सि सिक्के बड़ी संख्या में यहाँ प्राप्त हुए हैं। हाल में प्र संग्रहालय में मिट्टी की एक पकी ईंट पर राजा मित्र का नाम मुझे देखने को मिला। यह ईंट कौ से प्राप्त बताई जाती है। बोधगया के वेदिका में उल्लिखित राजा ब्रह्ममित्र तथा अग्निमित्र मेरे वि से कौशांबी के ही शासक हैं।

वरुणमित्र तथा पोठमित्र राजाओं के न केवल सि बल्कि अभिलेख भी प्राप्त हो चुके हैं। कौशाम्बी शासक अग्रराज (अगरजु)का नाम भरहुत-वेदिका द्वार-स्तंभ पर उत्कीर्ण मिला है। इस शासक के सि भी पर्याप्त संख्या में मिल चुके हैं। डा० काशीप्र जायसवाल का अनुमान था कि ये सिक्के पुष्यमित्र द्वारा जारी किये गए। उन्होंने सिक्कों के लेख को रजस (या अगरजुस) के स्थान पर 'सुगरजस' पढ़ा परन्तु अब यह निश्चित हो चुका है कि इन सिक्कों सम्बन्ध पुष्यमित्र शुंग से नहीं है। इन सिक्कों के तथा भरहुत लेख वाले शासक को मैं एक ही मानता

अब तक कौशाम्बी के लगभग २० मित्र-शा के नाम ज्ञात हो चुके हैं। प्रोफेसर अनंत सदाशिव अ कर ने बड़े परिश्रम से कई शासकों का पता लगाकर प्रकाश में लाने का सराहनीय कार्य किया। ईश्वर राममित्र तथा प्रियमित्र नामक नये शासकों के सि मेरे द्वारा प्रकाशित किये गये। हाल में कौशाम्बी जिन नये मित्र-शासकों का पता मुझे चला है वे हैं शिवमित्र, भीममित्र, भूमिमित्र तथा वछ (वत्स) मि शिवमित्र का एक शिलालेख भी पहले मिल चुका विन्सेंट स्मिथ ने कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित कौ के जिन सिक्कों को प्रकाशित किया था उनमें से पर के लेख को मैंने 'वछमितस' पढ़ा है। वरु

जा के अनेक सिक्के मिल चुके हैं। हाल में प्रयाग-हालय के मुद्रा-विभाग में तथा प्रयाग के उत्साही मुद्रा-हक श्री जनेश्वरदास के संग्रह में मुझे कुछ ऐसे के देखने को मिले जिन पर 'वरुनस' लेख लिखा है। कहना कठिन है कि इन सिक्कों को प्रचारित करने राजा वरुणमित्र ही था, या अन्य कोई शासक। सी (इलाहाबाद के समीप) से मिट्टी की एक हाल में मिली है जिस पर रुद्रदेव नाम लिखा है। न के प्रयाग-अभिलेख में एक राजा रुद्रदेव का आया है। कुछ समय पूर्व कौशाम्बी से प्राप्त ताँबे सिक्के पर श्रीरुद्र नाम मिला था।

० अलतेकर ने कुछ सिक्कों को प्रकाशित करते समय उन पर 'रजतिमितस' लेख पढ़ा था और ना था कि उनके जारी करनेवाला राजा रजति-था। मैंने इन सिक्कों को ध्यान से देखने पर यह कि वे कौशाम्बी के प्रथम मघवंशीय राजा भीम-हैं; क्योंकि उन पर ब्राह्मी लेख 'राजा भीमसेनस' 'रजतिमितस') लिखा है।

-राजाओं के अतिरिक्त कौशाम्बी के जिन अन्य के नाम अभिलेखों तथा सिक्कों से जाने जा सके है—अग्रराज (या अंगराज), ववघोष, अश्वघोष, न, पर्वत, सुदेव (?) तथा इन्द्रदेव। हाल में श्वरदास के संग्रह में मुझे सुंग वर्मा नामक एक शासक का सिक्का देखने को मिला। इस सिक्के लिपि से अनुमान होता है कि इस राजा का शासन ० २०० के लगभग रहा होगा। यह सिक्का नामक राजा के सिक्के से कई बातों में मिलता-है। श्री ऐलेन ने विष्णुदेव को कन्नौज के शासकों ना था, परन्तु प्रतीत होता है कि विष्णुदेव भी जी का ही राजा था।

कौशाम्बी के उपर्युक्त शासकों की मुद्राओं पर ओं के नाम ब्राह्मी लिपि में लिखे मिले हैं। परन्तु कीय संग्रहालय लखनऊ के लिये जनेश्वरदास-संग्रह हाल में खरीदे गये ताँबे के एक सिक्के पर खरोष्ठी में नस' लिखा मिला है। यह किसी मित्र शासक द्वारा प्रचलित किया गया होगा। मेरे देखने में कौशाम्बी मित्र शासक की यह पहली मुद्रा आई है जिसमें राजा का नाम खरोष्ठी लिपि में लिखा है।

कौशाम्बी के उक्त शासकों के अतिरिक्त यहाँ पर मघ-वंश के अनेक राजाओं ने शासन किया। इस वंश का सबसे पहला राजा भीमसेन था, जिसने दूसरी शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश से वत्स प्रदेश में शासन प्रारम्भ किया। इसके तथा इसके कई वंशजों के अधिकार में वत्स जनपद तथा उसके दक्षिण वर्तमान मध्य प्रदेश के शहडोल जिले तक का भूभाग था। इसका पता कौशाम्बी, भीटा, बांधवगढ़, सिलहरा (जिला शहडोल) आदि स्थानों से प्राप्त अभिलेखों, सिक्कों तथा मुहरों से चला है। मघ-वंश के नौ राजाओं का उल्लेख पुराणों में मिलता है। परन्तु अब तक नौ से अधिक राजाओं का पता चला है। हो सकता है कि मुख्य मघशाखा में नौ शासक ही रहे हों और शेष मुख्य वंश की अन्य शाखाओं में हुए हों। इन राजाओं के जो नाम अब तक ज्ञात हो सके हैं वे ये हैं—भीमसेन, प्रौष्ठश्री, भद्रमघ, शिवमघ, वैश्रवण, भीम वर्मा, शतमघ, विजयमघ, जयमघ, पुरमघ, नव या नविक, धनदेव तथा श्री रुद्र। हाल में शेषदत्त नामक एक नये शासक की पहचान मैंने कुछ मुद्राओं के आधार पर की है। सिलहरा तथा बघोरा के शिलालेखों से विचित्रसेन, स्वामिदत्त तथा शिवघोष नामक राजाओं का भी पता चला है। मघ-शासकों के साथ इनका क्या सम्बन्ध था, यह अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

अभी तक विद्वानों की प्रायः यह धारणा रही है कि कुषाण शासक कनिष्क प्रथम तथा उसके कई उत्तराधिकारियों का शासन कौशाम्बी तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश पर था और प्रारम्भिक मघराजा कुषाणों के अधीनस्थ शासक थे। अनेक विद्वान् सारनाथ को भी कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत रहा हुआ मानते हैं। यह धारणा मुख्यतया कनिष्क के उन अभिलेखों पर आश्रित है जो कौशाम्बी तथा सारनाथ की बुद्ध प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियाँ बल नामक भिक्षु की प्रेरणा से बुद्धमित्रा नामक महिला द्वारा प्रतिष्ठापित कराई गयी थीं। भीटा तथा कौशाम्बी में पर्याप्त उत्खनन कार्य कराया जा चुका है, परन्तु वहाँसे कोई ठोस प्रमाण नहीं मिले जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि वत्स प्रदेश पर कुषाण शासन था। प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा कौशाम्बी में जो उत्खनन-कार्य पिछले लगभग बारह वर्षों से हो रहा है, उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के अतिरिक्त कनिष्क के शासन-काल की

एक प्रतिमा मिली है, परन्तु उसपर भी दानदात्री के रूप में उसी बुद्धमित्रा का नाम उत्कीर्ण है। प्रतीत होता है कि बुद्धमित्रा द्वारा ये प्रतिमाएँ मथुरा से कौशाम्बी, सारनाथ, श्रावस्ती आदि अनेक स्थानों में भिजवाई गयीं। भारत के विभिन्न स्थानों में प्राप्त इन बौद्ध-मूर्तियों का मुख्यतः धार्मिक महत्त्व है, न कि राजनीतिक। यदि मघ-शासक कुषाणों से स्वतंत्र न होते तो वे अपने अभिलेखों और सिक्कों पर 'महाराजा' या 'राजा' उपाधियाँ अंकित न कराते। उनके किसी भी लेख में कुषाण-सत्ता के प्रति मान्यता का किंचित् भी आभास नहीं प्राप्त होता। मेरी मान्यता है कि कुषाणों का शासन कौशाम्बी पर कभी स्थायी रूप से नहीं रहा और समुद्रगुप्त के अभ्युदय तक वत्स जनपद विदेशी सत्ता से स्वतंत्र बना रहा।

कौशाम्बी के बहुसंख्यक शासकों को देखते हुए डा० रमेशचन्द्र मजूमदार के समान कतिपय विद्वानों का यह अनुमान विचारणीय है कि यहाँके शासकों ने ईस्वी पूर्व दूसरी शती के उत्तरार्ध से अपने स्वतंत्र सिक्के जारी किये होंगे। कौशाम्बी से अब तक ४० से ऊपर राजाओं के सिक्के मिल चुके हैं और इस बड़ी संख्या को देखते हुए इस जनपद के शासकों द्वारा स्वतंत्र सिक्के प्रचारित करने की तिथि काफी पहले ले जानी होगी।

उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त कौशाम्बी से हाल में कुछ ऐसी मुद्रायें मिली हैं जिनसे भारत में मुद्रा-प्रचार के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्व की जानकारी मिली है। कौशाम्बी के कई हजार सिक्कों का अध्ययन करते समय मुझे कुछ ऐसे सिक्के देखने को मिले जिन पर अशोककालीन ब्राह्मी लिपि में 'गंधिकानाम्' लेख है। इस लेख से स्पष्ट है गन्धिकों (इत्र का काम करनेवालों) की श्रेणी के द्वारा ये सिक्के जारी किये गये। हाल में कौशाम्बी के एक सिक्के पर 'नेगम' नाम लिखा मिला है। अभी तक केवल तक्षशिला से प्राप्त कुछ सिक्कों से हमें यह जानकारी मिली थी कि विभिन्न व्यवसायों के संगठनों या श्रेणियों को सिक्के प्रचलित करने का अधिकार शासन द्वारा प्राप्त था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में तथा अन्य साहित्यिक ग्रंथों में श्रेणियों के मुद्रा-प्रचलन-अधिकार का उल्लेख मि है। इसकी पुष्टि अब कौशाम्बी की उक्त मुद्राओं से हो गयी है। कौशाम्बी के कुछ सिक्के ऐसे भी मिले जिन 'कोशबिकानां' लेख है। इसका अर्थ है कि ये कौ के निवासियों द्वारा जारी किये गये सिक्के थे। ये भी किन्हीं श्रेणियों द्वारा ही प्रचारित किये गये होंगे। दोनों प्रकार की मुद्राओं की ब्राह्मी लिपि लगभग काल की है जिस काल में निगम-सिक्के प्रचलित कौशाम्बी से नगर–नामसूचक तांबे के कुछ सिक्के भी मिल चुके हैं जिन पर कोसबि, कसवि या क लेख मिले हैं। इस प्रकार के नगरवाची सिक्के उज्जयिनी, एरिकिण, वाराणसी, माहिष्मती, विदिशा से भी प्राप्त हो चुके हैं।

चाँदी की रातें थीं

श्री राजकिशोर

कागज की नौका से सागर पार नहीं होता।
टूटे तारों का कोई आधार नहीं होता।
सब इसकी गहराई का अनुमान लगा लेवें–
इतना छिछला जीवन का मझधार नहीं होता।

ममता के आँचल की छाँव कहाँ पाओगे?
बार-बार मनचाही ठाँव कहाँ पाओगे?
जाते हो, जाओ, पर इतना तो बतला दो–
परदेसी, फिर ऐसा गाँव कहाँ पाओगे?

आरती के ये दिये धुँधला चुके होंगे।
वन्दना के गीत भी पथरा चुके होंगे।
देव ! जब तक दृष्टि तुम अपनी उठाओगे,
अर्चना के पुष्प ये मुरझा चुके होंगे!

यौवन की ज्वाला थी, मधु की बरसातें थीं,
मदमाते सपनों की रसभींगी बातें थीं
अब भी हैं याद मुझे जीवन के वे क्षण, जब
सोने के दिन थे औ' चाँदी की रातें थीं!

ब्रजभाषा का एक "ज्ञानकोश"

श्री प्रभुदयाल मीतल

प्रायः २५-३० वर्ष पूर्व हिन्दी के कुछ तथाकथित प्रगतिशील लेखकों ने नवीनता के आवेश में अपनी प्राचीन बातों की कटु आलोचना करना आरंभ किया था। उन्होंने ब्रजभाषा साहित्य को भी इसलिए बदनाम ने का बीड़ा उठाया था कि उन्हें इसमें विलासितापूर्ण नाओं के अतिरिक्त और कुछ भी दिखलाई नहीं था। उनके उक्त दृष्टिकोण पर दुःख प्रकट करते स्व० पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय "हरिऔध" ने था—

"जब इन दिनों सभी भा-सोसाइटियों में प्राचीनता हो रही है तो साहित्य क्षेत्र कैसे सुरक्षित रहता? हवा इसमें भी फैली। इसीलिए आज ब्रजभाषा आँख से भी नहीं देखी जाती। सभी ऐसा कह रहे बात नहीं कही जा सकती, किन्तु हिन्दी संसार में ऐसा दल है जो हाथ धोकर इसके पीछे पड़ गया है। भाषा के साथ उसके प्राचीन कवियों की भी कुत्सा है और उन्हें खरी-खोटी सुनाता है[1]।"

स्व० हरिऔधजी ने प्रबल युक्तियों और प्रचुर ों से उन लोगों को करारा उत्तर देते हुए यह सिद्ध था कि ब्रजभाषा साहित्य में विलासतापूर्ण कविताएँ टे म नमक बराबर भी नहीं हैं; उसका अधिकांश कल्याणकारी और उपयोगी रचनाओं से भरा हुआ उसके बाद इस प्रकार का विरोध बहुत कम हो गया। भी जब-तब यह बेसुरा राग सुनाई दे जाता है कि भाषा साहित्य में उपयोगी ग्रंथों का बड़ा अभाव है।

इधर अन्वेषणप्रिय विद्वानों के परिश्रम से नित्य नये प्रकाश में आ रहे हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भाषा साहित्य में सभी विषयों के अगणित ग्रंथों की ना हुई थी। यद्यपि आक्रमणकारियों की बर्बरता र हमारी असावधानी से अपार साहित्य नष्ट हो गया तथापि अब भी इतना शेष है कि वह ब्रजभाषा की साहि- समृद्धि को भली भाँति सिद्ध कर सकता है।

अभी तक हिन्दी के बड़े-बड़े विद्वानों की यह धारणा कि कृष्णोपासक संप्रदायों में से चैतन्य मत को छोड़कर और सबका विशाल साहित्य ब्रजभाषा में रचा गया है। चैतन्य मत का साहित्य तो संस्कृत और बँगला भाषाओं में ही मिल सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में भी चैतन्य मत के केवल ८-१० कवियों का ही नामोल्लेख हुआ है, जब कि अन्य संप्रदायों के सैकड़ों कवियों का वर्णन किया गया है। इधर नवीन अनुसंधान से चैतन्य मत के शताधिक भक्त कवियों की अगणित रचनाएँ भी उपलब्ध हो चुकी हैं। इनसे ब्रजभाषा के भक्ति साहित्य की समृद्धि का और भी पुष्ट प्रमाण मिला है। इस नवीन उपलब्धि का विस्तारपूर्वक वर्णन मेरे नव प्रकाशित ग्रंथ "चैतन्य मत और ब्रजसाहित्य' में हुआ है।

इधर मुझे "दंपति वाक्य विलास" नामक एक ग्रंथ देखने को मिला है। इसकी रचना वृन्दावन निवासी गोपाल कवि ने की है। वह कवि चैतन्य मतानुयायी था, अतः मेरे उक्त ग्रंथ में उसका संक्षिप्त परिचय तथा उसके रचे हुए ग्रंथों का नामोल्लेख हुआ है। उन ग्रंथों में इस ग्रंथ का भी नाम है। चूँकि उस समय तक यह ग्रंथ मुझे देखने को नहीं मिल सका था, अतः उसका नाम "दंपति वाक्य विलास" के बजाय "दंपति काव्य विलास" छप गया और उसकी विशेषता पर भी कुछ प्रकाश नहीं डाला जा सका।

"दंपति वाक्य विलास" कई दृष्टियों से बड़ा अद्भुत ग्रंथ है। इसमें पति-पत्नी के संवाद रूप में संसार की अनेक बातों का ज्ञान और अनुभव भर दिया गया है। इस प्रकार यह एक "ज्ञानकोश" जैसा है। इससे कवि की बहुज्ञता तथा उसके प्रचुर सांसारिक अनुभव का परिचय मिलता है। इसकी रचना सं० १८८५ की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुई थी; जैसा निम्नोल्लेख से सिद्ध है—

ठारह सौ पिच्यासिया, पून्यौ अगहन मास।
दंपति वाक्य विलास कौं, तब कीनों परकास॥

इसकी जो प्रति उपलब्ध हुई है, वह सं० १९०० की ज्येष्ठ शु० ७ सोमवार की है और उसे स्वयं कवि ने वृन्दावन के मनीपाड़ा मुहल्ला स्थित अपने निवास-स्थान पर लिखा था। इसका उल्लेख ग्रंथ की पुष्पिका में इस प्रकार हुआ है—

---

[1] विभूतिमयी ब्रजभाषा, पृ० ३

"इति श्री दंपति वाक्य विलास संपूर्ण समाप्त संवत् १९०० मि० जेष्ठ सुदी ७ चन्द्रवार लिपी स्व हस्त मनीपारे मध्य वृन्दावन में सुभमस्तु।"

इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि एक बार उसने काव्य-रचना के दुःख और सुख का वर्णन करते हुए दो कवित्त बनाये थे, जिन्हें उसने अपने पिता को सुनाया था। पिताजी ने प्रसन्न होकर उसी शैली में एक ग्रंथ बनाने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञानुसार इस ग्रंथ की रचना हुई है। इसके पठन-पाठन से बुद्धि का विकास होगा। संसार में प्रतिदिन जिन बातों से काम पड़ता है, उनके गुण-दोषों का इससे ज्ञान प्राप्त होगा। इसकी रचना पति-पत्नी द्वारा गुण-दोष के कथन रूप में हुई है, अतः इसका नाम "दंपति वाक्य विलास" रखा गया है—

कविता कृत दुख सुक्ख के, कवित बनाए दोइ।
कवि प्रवीन पितु कों जबहिं, जाय सुनाए सोइ॥
ह्वै प्रसन्न ताही घरी आज्ञा मोकों दीन।
दंपति वाक्य विलास सुत, कीजै ग्रंथ नवीन॥
जिनकी आज्ञा पाय मैं, कीनौ ग्रंथ प्रकास।
कहत सुनत याके सदा, होइ बुद्धि परगास॥
जिन बातन तें जगत में, काम परत नित आइ।
तिनके गुन-दूषन सकल, कहि गुपाल कविराय॥
पिय प्यारी मिलि परस्पर, कहि गुन दोष प्रकास।
याते नाम धर्‌यौ सुकवि, दंपति वाक्य विलास॥

इस ग्रंथ में वर्णित विषयों के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि संसार दुःखों की खानि है, अतः इसके पढ़ने से पाठक को ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति होगी, तथा इससे गुणी जनों को प्रसन्न करने की योग्यता उत्पन्न होगी। वह जो काम करेगा, उसमें कभी धोखा नहीं खायगा। उसे कभी हानि नहीं होगी, तथा वह कमाई करने की विद्या जान सकेगा। उसे ज्ञान की प्राप्ति होगी तथा धनवानों और गुणवानों को वह प्रसन्न रख सकेगा। उसका अपयश दूर होगा और उसके सुयश की वृद्धि होगी। इस प्रकार इस ग्रंथ की रचना के कितने ही हेतु हैं—

जग दुख खान जान, उपजें विराग ग्यान,
आवें गुन घने गुनवानन रिझैवे के।
करै कोई काम तामें दगा नहिं खाइ,
हानि टोटौ नहिं आवे, आवै हुनर कमैवे के॥
सबही कों ज्ञान, धनवानन कों राजी करन,
धरन नरन गुनवानन रिझैवे के।
कुजस गमैवे के, औ सुजस बढ़ैवे के,
सु केते हेत दंपति विलास के बनैवे के॥

जैसा लिखा गया है, इसकी रचना पति-पत्नी संवाद रूप में हुई है, जो इसके नाम की सार्थकता को करता है। पति इस संसार के अनेक विषयों, व्यक्ति और पदार्थों के गुणों का वर्णन करता है तथा पत्नी दोषों का बखान करती है। इस प्रकार अनेक सामाजि बातों के गुण-दोषों की रोचक शली में समीक्षा हो है। अंत में संसार की समस्त वस्तुओं में दोषों बुराइयों की अधिकता जान कर पति की रुचि संसार हटकर भगवान् के भजन में होती है। इस प्रकार प्राप्ति के साथ ही साथ भगवान् के प्रति आसक्ति अध्ययन का फल है।

इस ग्रंथ की प्रति मध्यम् आकार के १९० पन्नों ३८० पृष्ठों में लिखी गयी है, अतः यह एक बड़ा ग्रंथ इसमें २७ अध्याय हैं, जिन्हें प्रबंध का नाम दिया गया प्रथम प्रबंध में मंगलाचरण, कवि वंश वर्णन, कवि स्थान वर्णन, ग्रंथ हेतु, रचना-काल आदि का कथन फिर अन्य प्रबंधों में क्रमशः चारों दिशाओं का गमन, द्वादस मास, मादक द्रव्य, विभिन्न कार्यों के यात्राएँ, सब प्रकार के मनोरंजक खेल, विभिन्न प्रकार निवासस्थल, नाना प्रकार के पेशे और व्यवसाय, और राज्य के छोटे-बड़े नागरिक और अधिकारी, वर्ण और जातियाँ, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति और निंदनीय, गुणी और मूर्ख तथा वांछनीय और नीय स्त्री-पुरुष आदि सैकड़ों प्रकार के व्यक्तियों, और वस्तुओं के गुण-दोष का विस्तारपूर्वक कथन गया है। इस रचना के कुछ उदाहरण देखिये—

पति चित्रकार के गुणों का वर्णन करता हुआ है—

दोहा—चित्रकार कों चित्र के, लिखत सुक्ख सरसात।
सो सुनि लीजै चित्त दै, प्यारी गुन अवदात॥
कवित्त—निसि दिन हरि के चरिनन में रहै चित,
होत है पवित्र चित्र चित्रित विचार
'सुकवि गुपाल', सो निहाल होत हाल,
सो हजारन ही लेत है, रिझाय रिझवार

१६६३

चतुराई आवैं, विश्वकर्मा कहावैं, देस-
देस नाम पावै सो सँवारै घर-बार कों।
राखत बहार, टू हो नर-नारि,
यातें बड़ा सुखकार, रोजगार चित्रकार को ।।

इस पर पत्नी उसके दोष बतलाती है—

—धन ठहरै नहिं पास बहु, जात नैन की जोत।
पावत कितने दुक्ख नित, चित्र चितेरे होत।।

—लाखन कमाइ तऊ खाक न रहाइ,
यामैं सीता कौ सराप, पाप लागत उकेरे कों।
'सुकवि गुपाल' देवी-देव को लिखत चित्र,
पावै कष्ट भारौ, सदा साँझ सौं सबेरे कों।।
लौरी फटि जात, औ कमर रहि जात,
मरि जात ऊँचें-नीचें गिरै, लगै ढका ढेरे कों।
चित मेरे कोऊ सुहात नहिं नेरे,
दुख होत है कितेरे चित्र चित्रित चितेरे कों।।

ति वैद्य के गुणों का वर्णन करते हुए उसके धंधे की
इस प्रकार करता है—

—तजि जोतिष कौ काम, बनो वैद्य वैद्यक करौ।
होइ देस में नाम, ए सुख सरस सदा रहे।।

—सायन बनाइ कै रसायन कमावै,
नाम पावै गाँम-गाँम, काम करै जने-जने कौ।
हृष्ट-पुष्ट देह, नेह निरवाहै सब
जीव-दान दैकैं जस लेत नर घने कौ।
होइ उपकार, जुर्‌यौ रहै दरबार द्वार,
ओषधि के सार तें सँभारै काज अनेकौ।
कहत "गुपाल" होत हाल ही निहाल
यातें सबही में भलौ रोजगार वैद्यपने कौ।।

इस पर पत्नी वैद्यक के धंधे की बुराई बतलाती है—

—बड़ी बड़ाई वैद्य की, बरनि बताई बात।
बालम बहुरि सुनों बहुत, बुरबाई विख्यात।।

—मरेन कों मारै, बुरौ सबकौ विचारै,
पर-नारी हाथ डारै, नित रहै यामें भेद कौ।
सुख सौं न सोवै, पर दुक्खन कों रोवै,
धकपक ही में खोवै दिन, करै काम कैद कौ।।
हत्या पर हेत, घरै करै रेत-खेत,
पाछैं ओषधि कों देत, बदी लेत पहिले सैद कौ।
कहत "गुपाल कवि" मेरे जान में तौ यातें,
सबही तें बुरौ रोजगार यह वैद कौ।।

पति तम्बाकू के गुणों का इस प्रकार वर्णन करता है—

दोहा—याकी महिमा अधिक है, कलिजुग की सौहगात।
राजा रंक फकीर सब कोउ तम्बाकू खात।।

कवित्त—रहे गरमाईं नित मुख अरुनाई,
सुखदाई लगै भोजन पै पान के खवैया कों।
'सुकवि गुपाल' यातें कंठ रहे साफ,
भलौ सिष्टाचार होत हितू यार जाति भैया कों।।
कढ़ैं कैयो काम, घने चाहियै न दाम
कछू कष्ट कौ न काम, है अराम के लिवैया कों।
कहैं भैया भैया, रुख राखत मँगैया
यातें एते सुख होत हैं, तंबाकू के खवैया कों।।

इस पर पत्नी तम्बाकू खाने के दोष बतलाती है—

दोहा—थूकत होत हिरान नित, आवत है अति धाँस।
बहुत तमाखू खात में, नैनन कौ होइ नास।।

कवित्त—नैन जोति जात, कही जात नहीं बात,
औ घिनात, हारि जात गात, थूकै थल-थल में।
जोभ फटि जात, पीक लीलैं लगि जात,
मांगिवे कूँ चलि जात मन, दूसरे सूँ पल में।।
'सुकवि गुपाल' बुरे दाँत परि जात,
हाथ-मुख रहै करुवे, न आवे स्वाद जल में।
परति न कल, रह्यौ जात नहिं पल,
जरि जात है कमल, या तमाखू के अमल में।।

इसी प्रकार सैकड़ों व्यक्तियों, वस्तुओं और विषयों के गुण-दोषों का वर्णन इस ग्रंथ में बड़ी सरसतापूर्वक रोचक शैली में किया गया है। यदि इस ग्रंथ का सुसंपादित रूप में प्रकाशन हो सके, तो एक उपयोगी रचना का उद्धार हो सकता है।

इस ग्रंथ का रचयिता गोपाल राय वृन्दावन के मनीपाड़ा मुहल्ला का निवासी था। वह जाति का ब्रह्मभट्ट था और उसके पिता का नाम खड्ग राय उपनाम "प्रवीन कवि" था। इसका उल्लेख ग्रंथ के आरम्भ में इस प्रकार हुआ है—

खरग राय परबीन सुत, कवि गुपाल यह नाम।
मध्य मनीपारे बसै, श्री वृन्दावन धाम।।

कवि ने अपने वंश का परिचय देते हुए बतलाया है कि उसके पूर्वजों में एक परम प्रतापी युगराज नामक कवि हुए थे। उनके पुत्र मुरलीधर हुए। उनके पुत्र घनश्याम वृंदावन में आकर रहने लगे थे। घनश्याम के पुत्र प्रवीन-

जी हुए जिन्होंने छंद और रसशास्त्र तथा एकादशी और कार्तिक माहात्म्य के ग्रंथों की रचना की थी। प्रवीनजी का पुत्र गोपाल कवि हुआ, जिसने "दंपति वाक्य विलास" की रचना की है——

कवित्त——परम प्रतापी कवि भए जुगराज राय,
जाके मुरलीधर प्रगट नाम पायौ है।
जाके घनश्याम सुत वृन्दावन बसे आनि,
करि करनी कों जस जग में बढ़ायौ है॥
जनमि प्रवीन ग्रंथ पिंगल औ रस जाल,
एकादसी कातिक महातम कौ गायौ है।
जाकौ सुत प्रगट गुपाल कविराय,
तिनि दंपति के वाक्य के विलास कों बनायौ है॥

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि कवि के पितामह किसी अन्य स्थान से आकर वृन्दावन में रहने लगे थे। कवि का पिता खड्गराय उपनाम "प्रवीन" स्वयं भी एक प्रसिद्ध कवि था। इसी कारण गोपालराय भी उत्तम कवि हो सका था। इस ग्रंथ के रचने की प्रेरणा भी कवि को अपने पिता से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत ग्रंथ में कवि ने अपने जन्म संवत् का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इसका अनुमान कवि की रचनाओं से किया जा सकता है। इसी कवि का एक अन्य ग्रंथ "श्री वृन्दावन धामानुरागावली" सं० १९०० का रचा हुआ उपलब्ध है। उसके रचना-काल के आधार पर हमने पहिले इसका जन्म-काल सं० १८६० के लगभग अनुमानित किया था[1]। अब "दंपति वाक्य विलास" के प्राप्त होने से कवि का जन्म-संवत् कुछ पूर्व का मानना आवश्यक हो गया है।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है कि प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सं० १८८५ में हुई थी और स्वयं कवि के हाथ लिखी हुई उसकी प्रति सं० १९०० की उपलब्ध है। प्रति के अन्त में कवि ने अपने रचे हुए १८ ग्रंथों नामोल्लेख इस प्रकार किया है——

दंपति विलास, रससागर उभय, पंचध्याई,
काव्य प्रश्नोत्तर षटरितु भीने हैं।
चीर हरन लीला, दानलीला, मानलीला,
बन भोजन की लीला, बंसी-बेनु गीत कीने हैं।
दसम कवित्त, अकलनामा, नख-सिख,
गुरु कौमुदी, जमुन-गंग अष्टक नवीने हैं।
ब्रजजात्रा औ वृन्दावन विलास आदि,
अष्टादस ग्रंथ ये गुपाल कवि कीने हैं॥

उपर्युक्त कथन के अनुसार कवि कृत ग्रंथों के ना इस प्रकार होते हैं——

१—दंपति वाक्य विलास, २—रस सागर, ३— पंचाध्यायी, ४—प्रश्नोत्तर, ५—षट्ऋतु, ६—चौ हरन लीला, ७—दानलीला, ८—मानलीला, ९- वन भोजन लीला, १०—बंशी लीला, ११—दश स्कंध के कवित्त, १२—अक्लनामा, १३—नखशि १४—गुरु कौमुदी, १५—यमुनाष्टक, १६—गं ष्टक, १७—ब्रजयात्रा और १८—वृन्दावन विलास

यदि उक्त ग्रंथों की रचना सं० १८८५ तक न हुई थी, तब भी सं० १९०० तक अवश्य हो गयी थी इतने ग्रंथों की रचना से तथा "दंपति वाक्य विलास" जैसे प्रचुर अनुभवपूर्ण ग्रंथ के कारण कवि का जन्म-काल सं० १८५० के बाद मानना किसी प्रकार संगत नहीं मालूम हो है। हमने पहिले इस कवि के जिन ग्रंथों का नामोल्ले किया है, उनकी संशोधित नामावली भी अब उक्त कथ के प्राप्त होने से प्रस्तुत की जा सकती है।

---

[1] चैतन्यमत और ब्रजसाहित्य, पृ० ३१३।

* * *

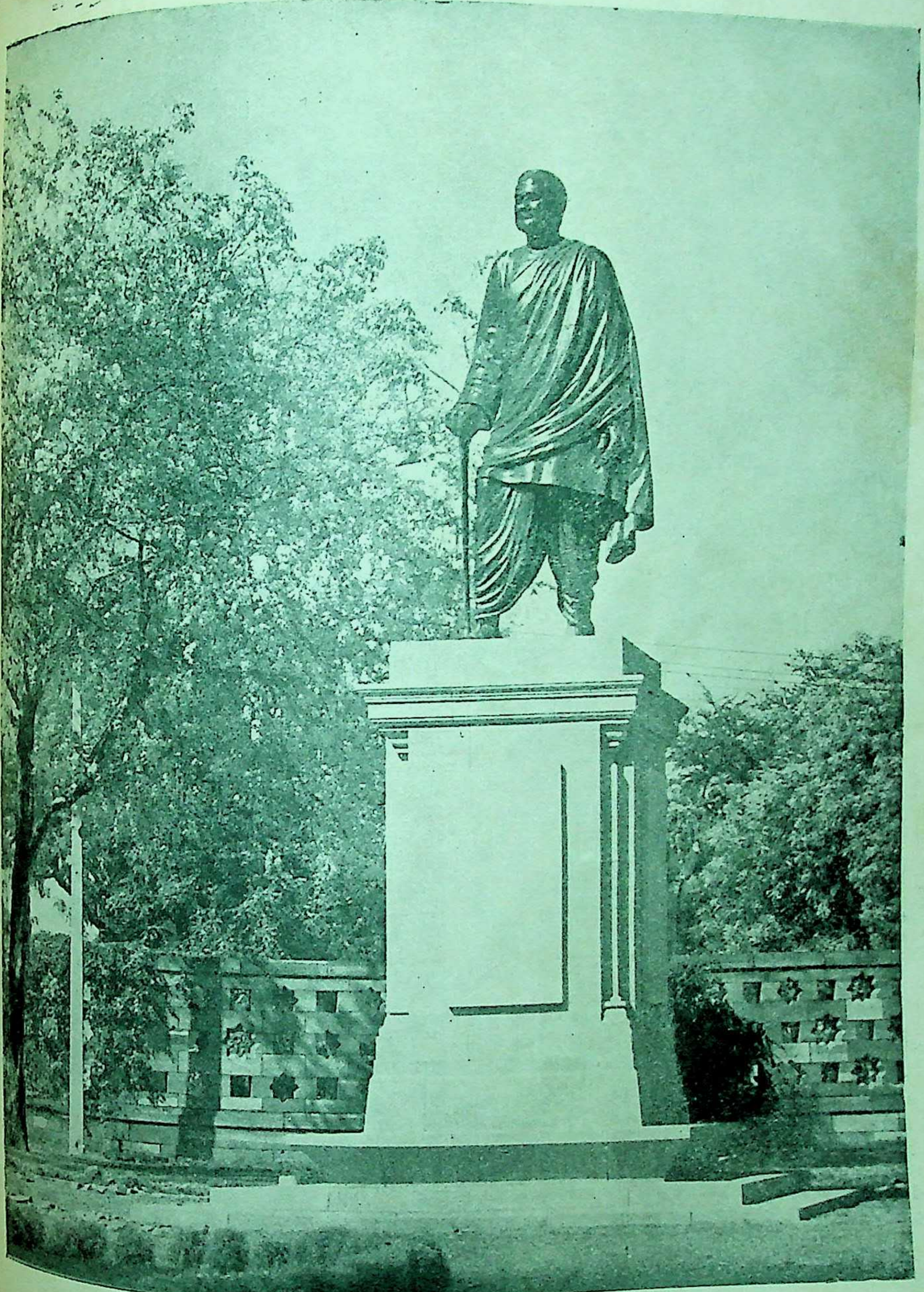

गत मास नयी दिल्ली में भारतीय संसद भवन के सामने त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू की कांस्य प्रतिमा स्थापित की गयी।

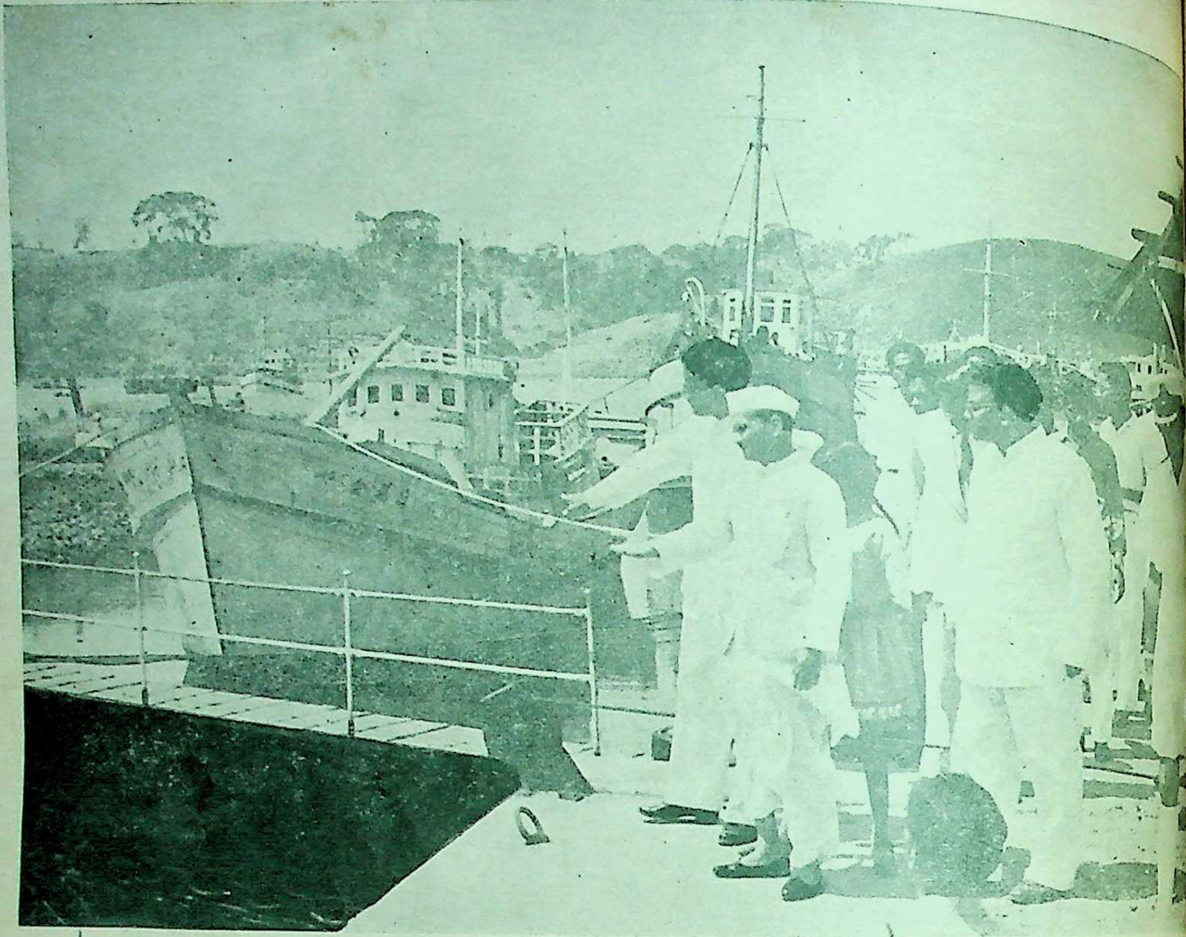

गत मास गृहमंत्री माननीय लालबहादुर शास्त्री अंडमान द्वीप का दौरा करने गये। वहाँके बंदरगाह में जहाजों की मरम्मत के बाड़े का निरीक्षण करते हुए।

डा० रघुवीर

आगामी 'क्षय-मास'—एक समस्या !

२२ मार्च को विषुवत्-दिन माना जाता है। आर्यों ने ई० स० पूर्व ४००० या ६००० वर्ष से यही क्रम माना स्व० लोकमान्य तिलक ने 'ओरायन' (मृगशीर्ष) बात प्रमाणित भी की है। इससे विदित होता है समय से पूर्व हमारी यह मान्यता चली आती 'वेदांग ज्योतिष' के द्वारा इस दिन को प्राप्त करने ति बतलाई गई है। इसका समर्थन जैन-ज्योतिष) से भी होता है। भागवत में भी मेष एवं बुत्ता में दिन रात्रि की समता मानकर विषुवद्दिन को किया गया है।

त्कालीन सूर्य-सिद्धांत आदि ग्रंथ विषुवत् स्थान दि क्षेत्रों की गणना करते हैं। उसी तरह भास्करा- भी इसी दिन सौर वर्ष किस कारण माना जाना बतलाते हैं। वही आयनिक-सौर वर्ष बनता है। दिन वसंत काल के मध्य में आता है। इसी आय- सौर वर्ष के आधार पर ऋतुओं की गणना की जाती र बम्बई के ज्योतिर्विद्-सम्मेलन ने भी इसे माना सका आयोजन स्व०.लोकमान्य ने सं० १९६१ में था।

शी के सर्वमान्य स्व० बापूदेव शास्त्री ने १९६८ में कहा था कि हमारे सिद्धान्त ग्रंथों के नक्षत्र भोगों नक्षत्र-चक्र के मूलकीलक का कोई निश्चय नहीं जा सकता, इसलिए अयन-गणना के द्वारा ही पंचांगों ना की जाए तो वह धर्मशास्त्रसम्मत हो सकती ही बम्बई सम्मेलन का भी निर्णय था। यदि हमारे न ग्रन्थों के एक तारा से अयनांश प्राप्त किया जा है तो दूसरे किसी एक तारे से अयनांश क्यों नहीं हो सकेगा ?

नक्षत्रों के योगों का स्थूल मापन हुआ है। और चित्रा ध्यतारा से अयनांश लाना सर्वथा काल्पनिक है। चक्र के मूल आरंभ स्थान का इस प्रकार निर्णय हो सकता। इन नक्षत्रों की अपनी गति है। और से आदि से हमारा स्थिर आरंभ स्थान कौन सा यह जानना भी कठिन हो गया है।

वैसे पुरातन वदिक, सूत्र, स्मृति, महाभारत आदि सूर्यसिद्धांत तथा भास्कराचार्य आदि सौर-वर्ष मान का जो लक्षण दे रहे हैं, वह अयन-सौर-वर्ष का ही है। इसलिए इन पुरातन आयनिक-सौर-वर्ष पर आधारित चांद्र-मास द्वारा जो पंचांग बनाये जाते हैं, वे धार्मिक हैं। इसी आयनिक-सौर वर्ष के आधार पर क्षय, और अधिक मास की गणना की जानी चाहिए, और वही वास्तविक है। आज जो नवीन चित्रा-पक्ष को लेकर चला जा रहा है, वह केवल काल्पनिक है, और शास्त्र के आधार से सम्बन्धित नहीं है। यही कारण है कि आगामी क्षय-अधिक-मास में गड़बड़ उत्पन्न हो गई है। खेद तो यही है कि उसी काल्पनिक-चित्रापक्ष को लेकर हमारा राष्ट्रीय कहा जाने वाला पंचांग भी जुड़ गया है।

काल्पनिक-आरंभ-स्थान को लेकर जिन पंचांगों का देश में निर्माण हो रहा है, वे निराधार, उपपत्ति-विहीन, शास्त्र-विरुद्ध तो हैं ही किंतु वे ऋतुओं में होनेवाले उत्सव-पर्वों को भी मनमाना बना रहे हैं और गड़बड़ पैदा कर मौन बने रहते हैं। इस कारण जन-साधारण में बहुत भ्रम उत्पन्न होने लगे हैं। यदि सही ढंग से देखा जाय तो इन कल्पित अयनवालों के स्वयं के गणित से ही इस वर्ष कोई क्षय, या—अधिक मास ही नहीं आता है। राष्ट्रीय पंचांग ने पंचांगों की एकता के बजाय, अनेकता और भ्रम ही बढ़ाया है। वे सर्वसम्मत हल निकालने की अपेक्षा मतभेदों के जन्म देने में सहायक बने हैं।

मीन और मेष की संधि कहाँ, और कौन सी है, यह पता लगाने के लिए ग्रीनविच-अब्जर्वेटरी से पूछा गया था। पता चला कि मीनराशि की ग्रंथी 'अल्फामीसियम्' तारे के आगे है। उसका विषुव बिन्दु से भोग २९ अंश रहता है। अर्थात् २९ अयनांश ही रहते हैं। और जो लोग ईटा मीशियम् से गणना करते हैं, उनके क्रम से २७ अंश पर आते हैं। मि० रॉक्सन; अपने ग्रंथ 'फिक्स्ड स्टॉर्स' में मीन-तारकाओं का अंत २७ अंश और मेष तारकाओं का आरंभ १८ अंश पर सूचित करता है। इससे १९ से २७ अंश पर्यंत मेष राशि मीन तारकों में ओव्हरलैप हो जाती है। यह आर्य पद्धति के अनुसार झीटापीशियम् से आरंभ होती है। इस प्रकार मेषादि—अर्थात् अश्वि-न्यादि बिन्दु कहाँ रहता है, इसका कोई निर्णय नहीं हो पता, फिर भी सभी अयनांशवादी यही कहते हैं कि हमारा

पंचांग निरयन है। इस उलझन में न पड़ते हुए प्राचीन विषुव आदि १२ धार्मिक-आयन-संक्रमण जहाँ ठीक होते हैं, वहीं गणना स्वीकार कर लेना उचित होता है। इस क्रम से तारा, ग्रह युति देने के कारण हमारे पुरातन वैदिक-नक्षत्र क्रम समन्वित हो जाते हैं। हम अपनी काल-गणना सौर, सायन, और नाक्षत्र क्रम से करते आये हैं। इनमें सौर और सायन-गणना चल होती है। इसलिए नाक्षत्र-स्थिर-गणना के कारण ही हमारी कल्पांत-गणना की गयी है। इसी गणना से हमारे पंचांग बनाये जाते हैं। इनमें एक सौर वर्ष ३६५ दिन ६ घं० ९ मि० और चांद्रवर्ष ३५४ दिन, ८ घ० ४८ मिनिट का होता है।

यहाँ सौरवर्ष, चांद्रवर्ष की अपेक्षा ११ दिन अधिक होता है। इसलिए सौर चांद्र गणना में जो प्रति वर्ष ११ दिनों का अंतर पड़ता है, उसीके समन्वय के लिए अधिक, और क्षय मास की योजना की गयी है। इस संबंध में श्री पुरुषोत्तम जोशी ने लिखा है--

"(१) ज्योतिर्गणित के अनुसार अधिमास और क्षयमास की निष्पत्ति इस प्रकार होती है कि 'अमावस्या की समाप्ति से अमावस्या की समाप्ति-पर्यन्त का चांद्रमास और सूर्य की संक्रान्ति की समाप्ति से संक्रान्ति की समाप्ति पर्यन्त सौरमास होता है। जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति न हो वह अधिमास और जिस चान्द्रमास में दो सूर्य संक्रान्ति हो वह क्षयमास कहा जाता है।' सबसे बड़ा चान्द्रमास २९ दि. १९ घ. ३६ मि. का होता है और वृश्चिक से मकर तक के सौरमास क्रम से २९ दि. १४ घ. ३३ मि., २९ दि. १० घ. ४० मि. और २९ दि. १२ घ. ५७ मि. के होते हैं। इससे इन संक्रमणों में ही सबसे बड़ा चान्द्रमास आये तो उसमें दो सूर्य संक्रमण होने से क्षयमास आ जाता है।

"(२) हमारे सभी श्रौतस्मार्त कर्मों में सर्वप्रथम 'देशकालौ संकीर्त्य' के अनुसार हमको हमारे भू-भाग और काल को संकल्प में सृष्टि के आरंभ से हमारे कर्म के आरम्भ के काल तक का युगमन्वन्तरादि क्रम से स्मरण आवश्यक होता है। इस कारण ही हम प्रतिवर्ष का पंचांग बनाकर उसके अनुसार अपने संस्कार करते रहते हैं। परंपरा से ये पंचांग अपने गणित (सौर, आर्य, ब्राह्म) के नाम से प्रचलित थे, किन्तु अब कुछ समय से इन पंचांगों को वेधसिद्ध, दृक्सिद्ध, दृक्तुल्य, खगोलसिद्ध, दृग्गणितैक्यादि विशेषण लगने लगे हैं। इसका यह अर्थ है पंचांगों में ग्रह नक्षत्रादिकों के जो स्थान दिये प्रत्यक्ष वेध से भी दिखते हैं। अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, रशिया आदि राष्ट्रों की ऑब्जरवेटरियों से वर्ष "नॉटिकल-अलमनैक" प्रकाशित किये जाते हैं भी इन्हीं ग्रह नक्षत्रादिकों के स्थान वेधसिद्ध ही दिये हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन पंचांग और "नॉटिकल-अलमनेक" का ग्रह नक्षत्रादिकों की आरम्भ स्थान एक ही है। वेध से जो ग्रह-नक्षत्र देखे हैं वे पृथ्वी के किसी भी भाग से देखे जायें, उनकी का आरम्भ स्थान संपात ही होता है। इसलिये वह सांपातिक या दृश्य गणना होती है। इस गणना की शक १८८५ में तुलारंभ २३ सेप्टेम्बर से मकरारंभ दिसम्बर तक कोई क्षयमास उपलब्ध नहीं होता, यह की तालिका से स्पष्ट है।

अमान्त ता. १८ सेप्टे. इ. स्टँ. घ. २ मि. २१
तुलारम्भ ता. २३ सेप्टे. इ. स्टँ. घ. २३ मि. ५
अमान्त ता. १७ ऑक्टो. इ. स्टँ. घ. १८ मि.
वृश्चिकारंभ ता. २४ ऑक्टो. इ. स्टँ. घ. ८ मि. ५
अमान्त ता. १६ नव. इ. स्टँ. घ. १२ मि. २१
धनुषारंभ ता. २३ नवं. इ. स्टँ. घ. ६ मि. २०
अमान्त ता. १६ दिसं. इ. स्टँ. घ. ७ मि. ३
मकरारंभ ता. २२ दिसं. इ. स्टँ. घ. १९ मि. ३३

पूना और नागपुर से जो शुद्ध पंचांग और पंचांग निकलते हैं उनको ये उपरोक्त पंचांग क्या यह कर सकते हैं कि वे दृक् सिद्ध नहीं? यदि वे भी दृक् हैं तो उनकी गणनानुसार शक १८८५ में कोई नहीं तो इन पंचांगों में क्षयमास कैसे? अर्थ इसका कि शक १८८५ में दृश्य गणित से तो क्षयमास नहीं, किन्तु हमारे असंचालित प्राचीन गणित से अधिक और मार्गशीर्ष क्षय आता है तथा भारतीय परंपरारहित काल्पनिक अयनांश से कार्तिक ही और कार्त्तिक ही क्षय आता है।

"(३) अयनांश के संबंध में ई० १९०४ के भारतीय ज्यौतिष सम्मेलन मुंबई, जिसमें श्री तिलक, म. म. श्री नारायणजी व्यास और श्री आप्टे उज्जयिनी, श्री केतकर आदि समस्त ज्योतिर्विद् उपस्थित थे वहाँ यह निर्णय हुआ है कि

म्यामयनांशानयनम् काल्पनिक वाचनिक प्रमाणा-त्" अर्थात् मघा और चित्रा की तारकाओं से अयनांशानयन काल्पनिक है। कारण इनसे अयनांशानयन कोई शास्त्रीय वचन नहीं है। इस निर्णय के अनुसार ही लोकमान्य तिलक ने एक पंचांग समिति नियुक्त करके त (रेवती) तारका से जो गणना आरम्भ की के आधार पर केवल शास्त्र सेवा भाव से ही एक पंचांग जनता की सेवा में प्रस्तुत किया जो आज शुद्ध वा पंचांग के नाम से प्रसिद्ध है। श्री लोकमान्य जैसी विभूति ने यह पंचांगशोधन कार्य शास्त्र-सेवा तिरिक्त किसी और रूप से किया यह तो आज कोई की नहीं कह सकता। तो फिर उन्होंने जो किया, वह आज के जसी कोई राजनैतिक भूल है? श्री मान्य के जीवन में भूल और वह भी शास्त्रीय भूल जैसे प्रत्यक्ष शास्त्र में यह कदापि संभव नहीं। भारतीय सिद्धान्तोक्त परंपरा के अनुसार ज्यो-त में जो संचालन किया उससे संक्रमण काल में आने से सर्वसाधारण जनता में यह भ्रम होने लगा तक तो कई वर्षों से मकर संक्रमण १४ जनवरी रहा है और इस गणित से वह १० जनवरी को श्री लोकमान्य के अनन्तर जनता के इस भ्रम का ने के लिए कुछ लोगों ने ऐसे काल्पनिक अयनांश कि जो "ग्रहलाघव" के लगभग ही हो, पंचांग प्रकाशन कि जिससे जनता कई वर्षों तक यह ही समझती रहे चालित गणित से भी हमारी परंपरा ही प्रचलित इस बुद्धिभेद से हमारे यहाँ बहुत बड़ी हानि हुई है। ह कि हमारे जिस वैदिक ज्ञान के आधार पर विदेशों ज सौर परिवार की यात्रा करने की स्पर्धा हो रही र यहाँ हम उस ज्ञान के मूल उपासक इन क्षय और की उलझनों में व्यस्त हैं। इसका एक ही कारण है हमने कुछ शताब्दियों से पुस्तकें ही देखीं, आकाश नहीं अर्थात् प्रत्यक्ष वेध नहीं लिये। बाहरी देशों को न में आकाश देखना आवश्यक होने से वे दृश्य गणना त आगे गये और आज की वायुयान की यात्रा ने सौर परिवार भ्रमण पर प्रवृत्त किया। श्री लोक- आदि विभूतियों ने भारतीय ज्योतिर्गणित की रा को अक्षुण्ण रखते हुए कालान्तर संस्कार देकर रे प्राचीन गणित को संचालित किया, जैसा कि रे पूर्वाचार्य करते आये थे। दूसरा संचालन से जो र पड़ने लगा उसको प्रत्यक्ष देखने की प्रवृत्ति जो साधारण म हुई थी वह इन काल्पनिक अयनांश से वृत्ति में चली गयी। इस बुद्धिभेद का घटस्फोट भी शक ८८५ में जनता के समक्ष आ गया। ज्योतिर्गणित वेध र निर्भर है। इसमें होनेवाले परिवर्तन प्रत्यक्ष वेध के द्वारा किये जाते हैं। ये काल्पनिक अयनांश वेधों के द्वारा नहीं लिये गये हैं। ये तो केवल जनता में बुद्धिभेद पैदा करने की कल्पना से ही लिये गये हैं।

"(४) ऊपर यह कहा है कि सभी पंचांग निरयण गणना से ही बनाये जाते हैं, दृश्य गणना से नहीं। यदि दृश्य गणना से बनाये जाते हों तो हमारे उत्तरायण और दक्षिणायन पूर्वकाल जो कि २२ दिसम्बर और २२ जून को प्रत्यक्ष दृश्य होते हुए भी इन पंचांगों में १४ जनवरी और १६ जुलाई को ही लिखे जाते हैं। इससे यह सिद्ध है कि हमारे यहाँ निरयण गणना ही मुख्य होकर शास्त्र-विहित नक्षत्र पर से ही अयनांशानयन कहा है न कि बहुजनसंमत (व्होटिंग) प्रक्रिया से। यदि हमने इस बहुजनसंमत अयनांश पर चलना आरम्भ कर दिया तो हमारी गति त्रिशंकु के जैसी होकर हम न तो प्राचीन ज्योतिर्गणित पर ही रह सकेंगे न संचालित गणित पर। बीच में ही रहकर हमारी श्रौतस्मार्तयुगादि परिभाषात्मक कल्प में सृष्टि के आदि से अन्त तक की काल-गणना और उसके साथ किये गये ग्रहानयनादि इतिहास से भी वंचित हो जायेंगे। इसलिए या तो हम अपनी विशुद्ध प्राचीन गणना से ही चलें या विशुद्ध संचालित गणना से। इस बीच की काल्पनिक गणना से नहीं चलें जिसने कि हमको विगत अर्धशताब्दि से अपनी प्रगति में अवरोध कर रखा है। आज हमारे सामने वास्तविक तो यह है कि हम अपनी वेद-वेदांग की रक्षा के लिए अपने थोथे पक्षाभिमान का पूर्णतः परित्याग करके एक विचारधारा से ही कार्य करें जिससे हमारे ज्योतिर्गणित और उससे होनेवाले धार्मिक पर्वों पर आर्यधर्मेतरों को यह कहकर कि ज्योतिर्गणित से आनेवाले पर्व भी एक एक महीने आगे-पीछे हों, यह कैसा गणित–यह उपहास करने का अवसर न मिल सके और हम भी "युगमन्वन्तरकल्पाः। कालपरिच्छेदकाः स्मृतावुक्ताः। यस्मान्न रोमकेते स्मृतिवाह्यो रोमकस्तस्मात्" इसके अनुसार हम स्मृतिविरोधी न बन सकें।"

आज इस आगामी क्षय-मास को लेकर जो विवाद उत्पन्न किया जा रहा है, वह ज्योतिर्विज्ञ और पंडितों की प्रतिष्ठा के लिए अनुकूल नहीं है। जहाँ राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता है वहाँ जनता में बुद्धि-भेद को बढ़ाना उचित नहीं। ये हमारी जो परम्पराएँ हैं वे धर्मशास्त्र-अनुकूल चली आ रही हैं। और राष्ट्रीय-पंचांग, तथा उसका अनुसरण करनेवाले अन्य पंचांगों से धार्मिक प्रवृत्ति में अनजाने ही बाधा उत्पन्न हो रही है। इसलिए उसे शासन द्वारा, तथा अन्य जनों द्वारा प्रचारित करना जहाँ विघातक है, वहाँ अशास्त्रीय, और महज कल्पित भी है।"

इस तरह अशास्त्रीय कल्पना को 'वाद' का रूप देकर जनता को भ्रान्त करना या बुद्धिभेद बढ़ाना सर्वथा अनुचित एवं व्यर्थ भी है। उसका शास्त्रीय एवं धर्म-पद्धति से कोई भी सामंजस्य नहीं है।

महापंडित राहुल के कुछ संस्मरण

श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी

त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जन्म ९ अप्रैल सन् १८९३ ई० में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद की सदर तहसील के 'पन्दहा' नामक छोटे से ग्राम में अपने नाना पं० रामशरण पाठक के घर हुआ था। राहुलजी के पिता उसी जिले के मुहम्मदाबाद तहसील के कनैला गाँव के रहनेवाले थे। राहुल के पिता का नाम श्री गोवर्द्धन पाण्डेय और माता का नाम कुलवन्ती देवी था। पन्दहा-निवासी रामशरण पाठक के १-२ पुत्र पैदा हुए थे पर वह शैशवावस्था ही में मर गये। उनकी पुत्री कुलवन्ती ही बच गयी थी। उसका विवाह पाठकजी ने बड़ी धूमधाम से पं० गोवर्धन पाण्डेय के साथ किया। वह अधिकतर अपने पिता के घर पन्दहा में रहती थी। वर्ष के २-४ माह अपने पति के घर कनैला आती थी। गोवर्द्धन पाण्डेय कई भाई थे। वह सुशिक्षित नहीं थे। केवल साक्षर थे। मुड़िया अक्षर में लिखते-पढ़ते थे। राहुल के पिता का उपनाम 'पुजारी' था। वह पूजा-पाठ बहुत करते थे। बिना स्नान, पूजा किये अन्न ग्रहण नहीं करते थे। राहुलजी की माता भी सीधी-सादी, सदाचारिणी, घर-गृहस्थी सँभालनेवाली आदर्श महिला थीं। वह पढ़ी-लिखी नहीं थीं।

केदार पाण्डेय अपने माता-पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ। ननिहाल और घर दोनों जगह समान आदर था। इनके नाना जवानी में रियासत हैदराबाद (दक्षिण) में फौज के सिपाही थे। कुछ दिन नौकरी करके उन्होंने छोड़ दी थी। गाँव में जब वे कहीं बैठते थे तो निजाम हैदराबाद की शान बान और अपनी सिपाहिगिरी की कहानियाँ लोगों को सुनाते थे। केदार जब मिडिल स्कूल में पढ़ते थे तब इनके नाना घर आ गये थे। फौज में रहने से वे मांसाहारी हो गये थे जिसका बुरा असर केदार पर पड़ा। वे भी पक्के मांसभक्षी हो गये। कभी-कभी इनके नाना तालाबों, पोखरों से जीवित मछलियाँ पकड़ कर लाते थे और नाद में पानी भरकर उसमें छोड़ देते थे। धीरे-धीरे कई दिन तक वे उन्हें पकाकर स्वयं भी खाते और केदार को भी खिलाते थे।

६ वर्ष की अवस्था में केदार को निकट की रानी-सराय प्राइमरी पाठशाला में पढ़ने को भेजा गया। पढ़ने में ये तेज थे। इन्होंने शीघ्र ही वहाँकी पढ़ाई समाप्त कर ली। फिर इन्हें निजामाबाद के मिडिल स्कूल में पढ़ने को भेजा गया। हिन्दी कवि-सम्राट् स्वर्गीय हरिऔधजी उसी ग्राम के रहनेवाले थे। जिस स्कूल में केदार ने शिक्षा पायी कई वर्ष पूर्व हरिऔध ने भी वहीं शिक्षा पाई थी। बाद में वह उसी स्कूल में अध्यापक भी रहे। १८९८ ई० में हरिऔधजी काननगो हो गये और परगना नत्थूपुर, तहसील घोसी (आजमगढ़) चले गये।

हरिऔधजी का नाम हिन्दी के कवियों में हो चुका था। जब वे छुट्टियों में निजामाबाद घर आते थे तो स्कूल के अध्यापक अपने शिष्यों के जाकर उनका दर्शन करते थे। राहुलजी ने १९५ फरवरी में मुझसे निजामाबाद में बताया कि यही है जहाँ मैंने पढ़ा था और उन्होंने हरिऔधजी के घर का खंडहर भी दिखाया था।

सन् १९०८ ई० में केदार पाण्डेय ने उर्दू अच्छे नम्बरों से पास किया। हिन्दी इनकी द्वितीय थी। मिडिल स्कूल में भी यह पढ़ने में तेज थे। से निजामाबाद ४, ५ मील है। मिडिल की अन्तिम की पढ़ाई में ये अपने साथियों के साथ वहीं रहते थे पढ़ाई रात में भी होती थी। जब ये मिडिल पास कर तो इनके नाना और पिता चाहते थे कि अँगरेजी पढ़ें इनका मन न लगा। बाद में पिता की इच्छा हुई कि अध्यापकी करें, पर इधर भी उनका ध्यान न लगा नाना और पिता के बहुत आग्रह पर ये अपने फूफा महादेवजी व्याकरणी से उनके घर बछवल में संस्कृत पढ़ने लगे। बछवल गाँव इनके घर कनैला २ मील दक्षिण है। प्रायः वर्ष भर इन्होंने वहाँ संस्कृत पढ़ी। जब इच्छा होती थी तब ये घर आते और बछवल चले जाते थे।

केदार पाण्डेय जब मि० स्कूल में पढ़ते थे तभी इनकी माता का देहान्त हो गया। केदार के बाद श्यामलाल तब रामधारी उसके बाद श्रीनाथ का जन्म हुआ कुलवन्ती की अन्तिम सन्तान 'रामप्यारी' थी जिसका देहान्त ११ वर्ष की आयु में हो गया था।

केदार उस समय घर-द्वार छोड़कर भाग गये थे दक्षिणी भारत में घूम रहे थे। इनके छोटे भाई श्रीनाथ का शरीरान्त गत वर्ष शरद ऋतु में हो गया। वह में एक होटल चलाते थे। उनका लड़का दिल्ली टेरिएट में नौकर है। शेष २ भाई श्यामलाल रामधारी जीवित हैं और कनैला में खेती करते हैं। पर २५-२६ बीघा खेत है। देहात के प्रतिष्ठित व्यक्ति में इनके भाइयों की गणना है। वर्ष भर इनके यहाँ के कवि, लेखक, पर्यटक आदि आते रहते हैं खूब सत्कार होता है।

केदार पाण्डेय के पूर्वज गोरखपुर जनपद के थे। उनके एक पूर्वज पं० चक्रपाणिजी संस्कृत के बड़े धुरन्धर विद्वान् हुए। वह भारत के देशी राज्यों घूम-घूमकर अपनी विद्वत्ता दिखाते थे। भ्रमण करते मुगल-सम्राट् जहाँगीर के समय में वह मेंहनगर के राजा के यहाँ पहुँचे। यह स्थान अब गढ़ जिले में है। उस समय वहाँके राजा थे। राजा ने उनके पाण्डित्य से प्रसन्न होकर

रियात मितू परगने में ५१ बीघा भूमि, १ घोड़ा, १ शाल था बहुमूल्य वस्त्र और कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कार में ीं। पंडितजी वहीं बस गये।

गोरखपुर मलाँव से उन्होंने अपना सारा परिवार लिया। वे जहाँ रहते थे वह स्थान 'चकरपानि पांड़े पुरा' कहा जाने लगा। इस समय उसका नाम चक्र-पुर है। परिवार के बढ़ जाने पर पैतृक सम्पत्ति जित हो गयी। कुछ लोग चक्रपानिपुर, कुछ एकौना, कनैला और कुछ दौलताबाद चले गये। कनैला में पांडेय आये। उन्हींके वंश में राहुल का जन्म हुआ पं० चक्रपाणि को ५१ बीघा जो भूमि मिली थी अब 'एकौना' नामक ग्राम आबाद है। उपरोक्त ग्रामों में इनके वंश के लोग हैं। यह सांकृत्य गोत्र रयूपारी पांडेय थे। जब ये साधु हुए तो कई वर्ष इन्होंने अपना नाम 'रामोदार दास' रक्खा था। जब बौद्धभिक्षु हुए तो गौतम बुद्ध के पुत्र का नाम अपना नाम रख लिया। राहुल के आगे अपना सांकृत्य भी लगाने लगे। सांकृत्य से सांकृत्यायन बन गया। अब पूरा नाम 'राहुल सांकृत्यायन' लगे। यही नाम जगत्-विख्यात हो गया।

राहुल का विवाह नाना ने ११ वर्ष की अल्पायु ही में र्ष की एक कन्या से कर दिया था। इनकी विवा-स्त्री अभी जीवित हैं और ७१, ७२ वर्ष की इस उनकी आयु है। बाल श्वेत हो गये हैं। आँखों धुंधला दिखायी देता है। १९५७ में आँगन में पैर जाने से उनकी कमर की हड्डी टूट गयी है और के सहारे चलती हैं। कई महीने खटिया पर ही रहीं। उनका घर में पूर्ण सम्मान है। घर की वह वृद्धा हैं। शरीर बड़ा सुघर था। अब भी उनका सुन्दर ही है। वह पक्की ईश्वर-भक्त हैं और सदैव न् का नाम लेती रहती हैं। उनके पिता का घर मगढ़ से पश्चिम अहिरौला बाजार के पास एक में है।

दामाद जब साधु हो गया तब सासु और ससुर रोते-बीमार होकर मर गये। उनकी स्त्री के दो भाई थे। साधु हो गये और एक अभी हैं। उनका वंश चल है। राहुलजी की स्त्री ने राहुलजी को आजीवन अच्छी र देखा भी नहीं। वह कभी उनसे बोली भी नहीं। होंने अपना जीवन एक सती देवी की तरह सच्च-रित्रतापूर्वक बिताया है।

राहुल ने अपने भ्रातृज उदयनारायण पाण्डेय एम० ए०, अध्यापक, बुद्ध इन्टर कालेज, सारनाथ को १९५५ में एक पत्र लिखा था। उसमें पूछा था कि तुम्हारी चाची इस समय कनैला में हैं या तुम्हारे पास? बेचारी का जीवन मैंने नष्ट कर दिया, वह पचास साल से मेरी प्रतीक्षा में बैठी है, मैंने उसे हलाल कर दिया। राहुल जी अब उससे मिलना चाहते थे पर वह कह नहीं सकते थे, लज्जित थे। स्त्री भी मन से दुखी थीं और उनके सम्मुख नहीं जाती थीं। १९५७ की फरवरी से उनकी स्त्री की इच्छा यह हो गयी थी कि उनके साथ रह कर कुछ सेवा कर पति-पत्नी का धर्म पूरा हो, पर इसका योग नहीं आया।

१९०८ ई० में मिडिल पास करके डेढ़-दो-वर्ष संस्कृत पढ़ने के बाद राहुलजी दुनिया देखने के लिए भागने लगे। इनके गाँव कनैला के दक्षिण मार्गवती नदी (मेगई) बहती है। यह अपने समवयस्क साथियों के साथ वहाँ स्नान करने जाते थे और नदी में खूब तैरते थे। स्नानोपरान्त सब साथी उस नदी के किनारे स्थित 'उमरपुर' की कुटी पर जाते थे। वहाँपर लम्बी उम्र के एक विद्वान्, त्यागी, तपस्वी परमहंसजी रहते थे। जब ये बार-बार दर्शन करने जाने लगे तो महात्मा ने कहा कि बेटा! तुम संसार भ्रमण करो। दुनिया में बहुत चीजें देखने योग्य हैं, कूप-मंडूक न बनो। यह बात इनके मन में बैठ गयी।

ये घर से या ननिहाल से अकस्मात् कहीं भाग जाते थे। बाहर जाकर अपने फुफेरे भाई बागीशदत्त, बछवल वाले को पत्र भेजते थे। वह पत्र लेकर इनके घर आकर पता बता देते थे और पिताजी जाकर समझा-बुझाकर वापस ले आते थे। पिता ने कई बार कहा कि 'बेटा! पढ़ाया, लिखाया, शादी-ब्याह कर दिया, तुम जेठे लड़के हो, मैं बूढ़ा हुआ, घर-द्वार सँभालो।' समझाने पर ये कुछ दिन घर या ननिहाल रहते थे, किन्तु फिर भग जाते थे। यह एक बार छपरा जिला (बिहार) में भाग कर गये। घूमते-घामते इन्हें एक साधु का मठ मिला। मठाधीश सम्पन्न था। उसने इनका परिचय आदि पूछ कर कहा कि यहीं रहकर हमारी पाठशाला में पढ़ो। हम तुमको महन्त बना देंगे। वे वहाँ रुक गये। कई महीने बाद इन्होंने वागीशदत्त को पत्र लिखकर बुलाया। वह गये और उनसे मिल आये। घर आकर उन्होंने इनके पिता को पूरा पता बता दिया। इनके पिता गये। समझा-बुझाकर इन्हें ले आये। ये कुछ दिन घर पर रहे। पिता ने डाँटकर कहा कि अब भी चेतो, विवाह कर दिया है, दस बीघा खेत भी ले दिया है, बाग बगीचा भी लगा दिया है। किस बात की तुम्हें तकलीफ है जो भागा करते हो? साधू होकर द्वार-द्वार भीख माँगोगे, कितने दुख की बात है। बार-बार समझाया, समझो। न समझना हो और भागना ही हो तो अपनी 'माई' (तरुण स्त्री) को भी साथ लेते जाना। राहुल ने सुन लिया, मन में क्रुद्ध हुए और यह संकल्प किया कि अच्छा अब यह 'माई' ही रहेगी।

घर, ननिहाल, फूफा के घर रहने तथा भागा-भागी में कई वर्ष बीत गये। नाना भी इस कुचाली नाती के व्यवहार से दुखी थे। उनके समझाने का भी कुछ प्रभाव न पड़ा। उन्होंने कहा कि हम अपना खेत, बाग, घर तुम्हीं को देंगे। तुम अपनी स्त्री के साथ यहीं आकर रहो, खेती कराओ, खाओ और खिलाओ। किन्तु हमारी आँखों के सामने रहो। हमारी बुढ़ौती आयी, कोई लड़का

है नहीं। मुझे कौन सहारा देगा? ये हाँ कर देते, पर २-४ महीनों के बाद फिर भाग जाते थे। भागते-भागते इन्होंने काशी, अयोध्या, फैजाबाद, गोरखपुर, बलिया आदि शहर देख लिये।

१९१६ ई० में यह ननिहाल से कन्धरापुर अपने चाचा की ससुराल अपनी इच्छानुसार गये। उन लोगों को यह मालूम था कि यह लड़का बार-बार घर से भागता है और साधु होना चाहता है। इन्हें लोगों ने आदर से रक्खा और रात में समझाया। दूसरे दिन इनके साथ एक आदमी लगा दिया और 'भूजा', भेली, सत्तू आदि बाँधकर एक गठरी दे दी। आदमी से कहा कि इन्हें पन्दहा पहुँचा आओ। वह आदमी इन्हें लेकर चला। दो मील जाने के बाद इन्होंने उससे कहा कि तुम गठरी का सामान लेकर अपने घर जाओ, मैं अकेले ही चला जाऊँगा। वह प्रसन्न होकर सामान लेकर घर चला गया और शाम को जाकर बता दिया कि कुछ दूर जाने पर उन्होंने मुझे वापस कर दिया। लोग चिन्तित हुए। जब पन्दहा दूसरा आदमी भेजा तो पता लगा कि वे कहीं भाग गये हैं। इन्होंने यह बात मुझे १२ फरवरी १९५७ को जब मैं इनके साथ आजमगढ़ की पुरातात्त्विक यात्रा कर रहा था, कन्धरापुर पहुँचने पर बतायी थी। य भाग कर अतरौलिया होते हुए अयोध्या आये और वहाँसे पैदल काशी गये थे।

इस बार का भागना इनका ऐसा हुआ कि फिर तो ये अपने घर ३४ वर्ष बाद दो-चार घंटों के लिए बौद्ध-भिक्षु के रूप में आये। अपने आने की सूचना उन्होंने अपने घर दे दी थी और आजमगढ़ में कविवर 'शैदा' के पास भी सूचना भेज दी थी। ये मऊ होकर गर्मी के दिनों में रेल से आजमगढ़ आये। परमेश्वरीलाल गुप्त के यहाँ रुके। वहाँ शहर के साहित्यसेवियों ने खूब स्वागत किया। कवियों ने कविताएँ सुनाईं। वहाँसे ये कुछ लोगों के साथ ननिहाल पन्दहा गये। खूब स्वागत हुआ। वहाँसे हाथी पर चढ़कर 'कनैला' गये। वहाँ सभी रिश्तेदार, गाँव, देहात के नर-नारी इनके दर्शनार्थ उपस्थित थे। इन्होंने मित्रों के साथ आँगन में भोजन किया। जब हाथ धोने उठना चाहते थे तब इनकी विवाहिता पत्नी ने पैर पकड़कर रोना शुरू किया। पैर छुड़ाकर ये भागे और बाहर आकर भाई श्यामलाल से पूछा कि यह कौन थी? भाई ने कहा आपकी विवाहिता स्त्री। राहुल ने पूछा, 'यह अभी तक जीवित है?' भाई ने कहाँ 'हाँ।'

हाथ-मुँह धोकर वह हाथी पर चढ़े और आजमगढ़ गये। इनका गाँव कनैला आजमगढ़ से आठ कोस दक्षिण चंडेसर-तरवा रोड पर है।

जनवरी १९५७ में आजमगढ़ के जिलाधीश ने राहुल जी से प्रार्थना की कि प्रदेश सरकार यू० पी० के प्रत्येक जिले का गजेटियर नये सिरे से लिखा रही है। आजमगढ़ का गजेटियर भी तैयार कराया जा रहा है। आप कुछ दिन यहाँ आकर इसमें हमारी सहायता करें। इ लिखा कि फरवरी के दूसरे सप्ताह में हम आयेंगे एक सप्ताह का समय देंगे। ये ११ फरवरी को १२ बनारस से बस द्वारा आजमगढ़ आये और उन्होंने फरवरी तक जिले का भ्रमण किया। १७ फरवरी हरिऔध कला-भवन आजमगढ़ में सार्वजनिक भा देकर वे १८ फरवरी को मसूरी चले गये।

काशी से जब ये आजमगढ़ बस स्टेशन पर पहुँचे तब हजारों की संख्या में साहित्यिकों, वकीलों, व्यापारियों छात्रों आदि ने शानदार स्वागत किया। पं० मं प्रसाद ज्योतिषी के मकान में (जहाँ ठाकुर ज्योतिस सिंह, कर्मयोगी के सम्पादक रहते थे) वे ठहराये गये।

उन्होंने शैदा साहब से पूछा कि कोई ऐसा व्यक्ति है जो पूरा जिला घूमा हो, और मुझे प्राचीन टीले, मन्दिर, शिलालेख, कोटें आदि दिखा सके। उन्होंने कहा कि पास में यह जो व्यक्ति बैठे हैं, वे आपको सब बतायेंगे। यह जिला भर खूब घूमे हैं। राहुलजी ने कहा आप मे और निकट आ जावें, और मैं निकट की कुर्सी पर बैठ गया। उन्होंने तहसील-तहसील का अलग-अलग विवरण पूछना शुरू किया। मैंने बताना शुरू किया। वह लिखते गये। बाद में उन्होंने कहा कि जो विशेष दर्शनीय हों उनके नाम लिखकर मुझे दे दो। मैंने थोड़ी देर में सूची दे दी। उन्होंने एक सप्ताह का प्रोग्राम बनाया और जिलाधीश के यहाँ कहला भेजा कि अगले दिन प्रातः ७ बजे वे एक जीप भेज दें। इसके बाद भोजन का आयोजन हुआ। भोजन में चावल, दाल, रोटी, टमाटर का कतरा, प्याज का कतरा, हरी धनियाँ और पुदीना की चटनी तथा एक तश्तरी में बकरी का मांस था। हम लोग ५, ६ हाथ की दूरी पर बैठकर अखबार पढ़ने लगे। राहुलजी खाना खाने लगे। मांस में बकरी की टाँग की एक बड़ी हड्डी थी जिसमें मांस जकड़ा हुआ था। ये जोर-जोर से उसे दाँतों से खींचते थे पर वह न निकलता था। बार-बार के प्रयत्न से वे विजयी हुए। इनके मांसाहार का हाल मैं सुन चुका था। आज प्रत्यक्ष देख लिया। मन में घृणा हुई। मैंने सोचा कि राहुलजी महापंडित अवश्य हैं। लोग इन्हें महात्मा समझते हैं, पर यह तो बड़ा धोखा है। यह बौद्ध होते हुए महान् मांसभक्षी हैं। महात्मा बुद्ध दयासागर थे, पर उनके धर्मानुयायी ये राहुलजी मांसाहारी! मन में सोचकर चुपचाप बैठा रहा।

मैं भी रात में वहीं सोया। प्रातः शौचादि के लिए जब उठा और इनके कमरे में मैंने झाँका तो देखा कि वे दीपक जलाकर पुस्तक पढ़ रहे थे। ७ बजे तक वह शौचादि से निवृत्त हो गये और मैं भी। उन्होंने चाय पी और जीप को कई बार पूछा। जीप आने में देर हो गयी। वह रुष्ट हो गये। उन्होंने मुझसे एक रिक्शा लाने को कहा। मैं रिक्शा लाया। इन्होंने कैमरा लट काया, नई धोती पहनी, सिल्क का नया बंगाली कुर्ता पहना और एक रेशमी चादर कंधे पर डाल ली।

१९६३

मा लगा लिया। रिक्शे पर बैठ गये। अपना चमड़े बैग जिसमें कागज-पत्रादि थे, मुझे दे दिया। मैं भी शे में बैठ गया। रिक्शा आजमगढ़ फैजाबाद रोड र चला। पछुवा हवा तेज थी। वह रिक्शे को पीछे लती थी, रिक्शावाला जोर लगाकर पश्चिम जाना ता था। बड़ी कठिनाई थी। चलते-चलते हम लोग रापुर बाजार पहुँचे।

बाजार के आगे मनुरी गाँव मिला। वहाँ गाँव के जंगल में एक ऊँचा टीला दिखायी दिया। टीले ईंटों की एक गिरी हुई मीनार दिखायी दी। राहुलजी रिक्शा रोककर निकट जाकर उसे देखा और नी डायरी में कुछ लिखा। एक ग्रामवासी ने बताया वह पुराने जमाने में अमुक राजा की कोट थी। वहाँसे लोग कप्तानगंज पहुँचे। रिक्शा से उतरे तब तक से जिला सूचना अधिकारी जीप लिये आये और देर से लाने के लिए क्षमा माँगी। सब लोग पास के सीन मन्दिर में गये। इसके पूर्व राहुलजी ने २) शेवाले को देकर बिदा कर दिया। उदासीन मंदिर पुजारी ने समझा कोई सेठ आये हैं, पूजा चढ़ावेंगे। वह हुए आये। हम लोगों ने मूर्तियों का दर्शन कर मार्ग पकड़ा। ११ से १६ फरवरी तक की पूरी त्रा वृत्तान्त बहुत लम्बा है। यात्रा की प्रत्येक बात ने से तो लेख बहुत बढ़ जायगा। अतः मुख्य-मुख्य लिखी जाती हैं। राहुलजी ने ११ से १६ फरवरी आजमगढ़ के निम्नलिखित ग्रामों की यात्रा की। ख्वरापुर, कप्तानगंज, महाराजगंज, कुसुर कढ़वा, व कोट, कौड़िया, नन्दना कोट, अतरौलिया, बौंडरा ट, कोयलसा, बूढ़नपुर, रजादेपुर, पूर्वी माई का थान का कोट, घनछुला मैंगापुर (टौंस के तट पर), गोंठा, ली लक्ष्मण मन्दिर, हरिजन गुरुकुल दोहरी घाट, कोट, सीयरही कोट, राजा नहुष की कोट, घोसी कोट, नत्थूपुर कोट, राजा माधोमल्ल की कोट, न, रतोय ताल, कमल सागर, मि० स्कूल के पास यों व बस्ती की कोट, महाराज पिथौरा का बनवाया १५२९ वि० का मन्दिर कोपागंज, शाहजहाँ शाह की पुत्री जहाँआरा की जागीर मऊ की कोट रियापुर की जागता देवी का स्थान, पल्लिगढ़ की कोट, ड़ी की मूर्तियाँ, कनैला, बछवल, दौलताबाद, चिरैया- ट, बरहलगंज बाजार, शिशवाकोट, मेंहनगर कोट, री बाँध खजुरी की मूर्तियाँ, जिगिनी स्कूल, सिहपुर कुन- वा की मूर्तियाँ, डोभाँव की राजा गोविन्दचन्द गहरवार और भावसिंह की कोट और मूर्तियाँ, किसुनपुर जलाल- र की मूर्तियाँ, तप्पा टारी की मूर्तियाँ, डीहा स्कूल, वा कोट, सरायमीर, दत्तात्रेय, दुर्बासा, फूलपुर, पन्दहा, निजामाबाद आदि।

महाराजगंज में भैरोंबाबा के स्थान पर पकी मिट्टी की खला की बनी छोटी-छोटी कुइयाँ बहुत हैं। वहाँके लोगों ने बताया कि यहाँ दक्ष नामक एक राजा थे। उन्होंने सवा लाख मन घी से यहाँ यज्ञ किया था। यह कुइयाँ हवन कुण्ड है। राहुलजी ने बताया कि यह 'पाखाना' है। पहले जमाने में गाँवों और कस्बों, शहरों में सब जगह ऐसे संडास बनते थे। उन्होंने ऐसे कूप पल्लीगढ़ में भी देखे और यही कहा। बाद में मैंने जिले के कई गाँवों में उस आकार के कूप देखे जिससे लोग पानी पीते हैं पर वह कुछ चौड़े थे। उन्होंने बताया कि ऐसे कूप प्राचीन नगर ध्वंसावशेषों में सभी जगह मिलते हैं। इनका नाम 'गूथ कूप' है।

१५ × ९ × २।। इंच की ईंटों को उन्होंने कुषाण-कालीन (ईसा की प्रथम शताब्दी) बताया।

नन्दना की कोट पर जब गये तो वहाँके प्रधान ने टीले से निकले चाँदी के सिक्के दिखाये। वह स्थान भी बताया जहाँसे मिट्टी की 'भरुकी' में सिक्के मिले थे। उन्होंने बताया कि मैंने २-४ सिक्के जिलाधीश आजमगढ़ को दिये हैं। राहुलजी ने सिक्कों को पंचमार्क सिक्के बताया (ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से पहले की मुद्रा)। १६ × ९ × २।। इंच की ईंटें कुषाण काल और ३ इंच की मोटाईवाली ईंटें पंचमार्क सिक्कों की समकालीन बताईं। महाराजगंज के पूर्व कुसुर कढ़वा के प्राचीन मन्दिर में मूर्तियों के अन्दर एक चीनी महातमा की मूर्ति थी। पुजारी कहीं गये थे। पुजारिन घूँघट काढ़ कर बैठ गयीं। राहुलजी ने कहा कि लो, यह २) पुजारिन को पूजा दे आओ और 'चीना बाबा' को उठा लो। मैंने आज्ञा का पालन किया। पुजारिन खुश हो गयी पर मूर्तिवाली बात उसे ज्ञात न हुई। राहुलजी कहते थे कि महाराजगंज और ननना की खुदाई हो तो काली मिट्टी के मौर्यकालीन ठीकरे और बहुमूल्य मूर्तियाँ आदि मिल सकती हैं। वह जो भी बताते थे खुद नोट कर लेते थे, और मैं भी लिख लेता था। बौंडरा कोट में उन्होंने १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में लड़नेवाले राजा बेनीमाधोसिंह की गढ़ी देखी। उस कुल की विधवा वर्तमान रानी सावित्री देवी और उनके नाबालिग पुत्र राजेन्द्र का हाल-चाल नौकरों से पूछा और कोट देखा। अराँव को राहुलजी ने बताया कि आँव ग्राम का प्राकृत अपभ्रंश रूप है। यह १९-२० एकड़ में ११-१२ फुट ऊँचा ध्वंसावशेष है। यहाँ की ईंटें १८ इंच लम्बी ९ इंच चौड़ी और ३ इंच मोटी थीं। इन्हें उन्होंने ईसा पूर्व की शताब्दियों की बताया। कौड़िया के एक मन्दिर में एक खंडित मूर्ति मुस्लिम काल से पूर्व की मिली।

सराय मीर के रौजे को राहुलजी ने बताया कि यह कोई मन्दिर था। बाद में एक साधु ने बताया कि रौजे के पासवाले भींटे से बहुत-सी खंडित मूर्तियाँ मिली थीं। लोग उठा ले गये। मन्दिर के पत्थर इधर-उधर पड़े हैं। दीवार में एक पत्थर लगा था जिस पर लिखा था 'देवल' (देव-स्थान)। यहाँ सैयद इमदाद हुसेन के पास प्राचीन शाही कागजात हैं। यहाँ मदरसा इस्लाह में ४०० और मदरसा बैतुल उलूम में २०० छात्र पढ़ते थे। यहाँ एक कब्र देखी

गयी जो प्रसिद्ध मुस्लिम सन्त सैयद अली आशिकान की है। उस पर हिजरी ९५५ अर्थात् १५४८-४९ ई० की तिथि खुदी थी। फूलपुर तहसील के पास जगदीशपुर में एक मूर्ति दर्शनीय है। निजामाबाद के पास भैरवपुर की चौकिया में शीतला माता का देवालय है। पूर्व के मन्दिर में एक पत्थर में सप्त मातृका उत्कीर्ण थीं। निजामाबाद में औरंगजेब कालीन मस्जिद देखी।

१३ फरवरी बुधवार को टारी की जागता देवी परम जोतमाई का स्थान देखा। खंडित मूर्तियों के टुकड़े मिले। बतलाया कि टीला खोदने पर अधिक मूर्तियाँ मिलेंगी। चकरपानपुर में एक शिवालय देखा गया। राहुलजी ने बताया कि हमारे पूर्वज पं० चक्रपाणि के नाम पर यह गाँव है। यहाँसे इच्छा पाँड़े कनैला गये थे। उसी कुल में मैं हूँ। शिवालय १६वीं सदी से पूर्व का है। यहाँ कई प्राचीन मूर्ति-खंड थे, कुछ नवीन भी थे।

शिशवा की कोट पर मंगल कलश लिये दो मूर्तियाँ नवीं या दसवीं शती की देखी गयीं। १६ × ९ × २।। की कुषाण कालीन ईंटें कोट भर में बिखरी हैं। एक जगह बड़ा हौदा भूमि में गड़ा दिखायी दिया जो वर्तमान हौदों से काफी लम्बा, चौड़ा और गहरा था। इस टीले को राहुल जी ने २००० वर्ष पुराना बताया। यहाँ भी गूथ कूप थे। यहाँ किसी जमाने में शिशुपाल नामक राजा हो चुका है। इस कोट की खुदाई आवश्यक है।

बछवल——यह गाँव राहुलजी के फूफा पं० महादेव जी का था। यहाँ राहुलजी ने जब उनका नाम केदार पाँड़े था, अपने फूफा से सन् १९०६ में कुछ दिन तक संस्कृत पढ़ी थी। यहाँकी कोट में भी पुरातत्त्व के अवशेष हैं।

किसुनपुर (रसूलपुर)—कँटीली झाड़ियों में कई पार्षदों के साथ-साथ प्रधान मूर्तियाँ थीं। बूट धारिणी-द्विभुज सूर्य प्रतिमा ४० इंच लम्बी ९वीं या १०वीं शताब्दी की थी। उसके साथ की त्रिभंगी स्त्री मूर्तियाँ बहुत सुन्दर थीं। पास की ३८ इंच की विष्णु की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर थी। उससे पश्चिम की झाड़ी में भी प्राचीन मूर्तियाँ थीं। उन मूर्तियों को 'मरी माई' के नाम से लोग पूजते हैं। राहुलजी ने बताया कि प्राचीन काल में राजा लोग जब कोटें बनाते थे तब ब्राह्मणों की कुमारी कन्याओं को खरीद कर कोट के द्वार पर उनकी बलि देते थे। वही कोट की 'मरी देवी' कही जाती थीं। क्या पागलपन था!

दौलताबाद—प्राचीन स्थान है, पर पहले क्या नाम था पता न चला। १६११ ई० में मेंहनगर के राजा अभिमन्युसिंह ने जो बाद में मुसलमान हो गये थे और उनका नाम दौलत खाँ पड़ा, इस गाँव का नाम दौलताबाद रख दिया। यहाँके मन्दिर, मूर्तियाँ, ईंटें बताती हैं कि यह कस्बा हजारों वर्ष प्राचीन है। यहाँ डीह स्थान के पास एक बौद्ध स्तूप है। २२०० वर्ष पूर्व यहाँ एक समृद्धिशाली कस्बा था।

चिरैया कोट—डीह द्वारा (माहुल) के राजा असल देव का बसाया कस्बा है। यहाँ राजा ने एक कोट के अन्दर हजारों पक्षियों को पाला था। उसे पक्षियों से बहुत प्रेम था। उसीसे इसे 'चिरैया कोट' (चिड़ियोंवाली कहते हैं। यहाँ के कोट से पंचमार्क मुद्रायें मिलती हैं।

मेंहनगर के प्राचीन नाम का पता न लगा। १६०९ ई० में जौनपुर के सूबेदार अभिमन्युसिंह को जहाँगीर ने २० परगना जागीर और राजा की तथा सवा लाख मुद्रा नानकार प्रदान किया। राजा मेंहनगर को राजधानी बनाया। यहाँ कोट बनवाया लगभग ५०० बीघे में फैला है। इसकी मीनारें ७० फुट ऊँची हैं और कई मील से दिखाई देती हैं।

सन् १६०९ से १६६५ ई० तक मेंहनगर राज्य राजधानी रहा। राजा जब मुसलमान हो गये तब पुत्र आजमखाँ ने १६६५ में अपने नाम से टौंस के किना जंगल काटकर 'आजमगढ़' दुर्ग बनवाया और बसाया।

सिंहपुर कुनबिया कुषाणकाल का है। यहाँ राहु जी ने इतिहास प्रेमी प्रसिद्ध रईस ठाकुर श्री विश्वना सिंह के घर भोजन किया। ६ठीं और ७वीं शती के शिला लेख और प्राचीन कई मूर्तियाँ देखीं। ठाकुर साहब ने ताँ के दो कनिष्क के पैसे दिये और बताया कि इस टीले ताँबे, चाँदी के सिक्के और कौड़ियाँ विशेष रूप से मिल हैं। यहाँ राजा मेंहनगर गंभीर सिंह और विक्रमादि सिंह की समाधि बेसो नदी के किनारे बनी है। रुदाइन दा (रुद्राणी) लाल पत्थर की हैं, वह पृथ्वी पर लेटी हैं। उन पुत्र गणेश भी पास बैठे हैं। यहाँ भी कुषाण कालीन ईंटें हैं।

पल्हना——रामनौमी का मेला लगता है। यहाँ पहुँचते पहुँचते राहुलजी के पेट में दर्द होने लगा। पल्हना की देवी मूर्ति को उन्होंने बताया कि यह गौतम बुद्ध की मूर्ति है। उसका शरीर का भाग पृथ्वी में गड़ा है, केवल पाल्थी वाला पैर उलटकर ऊपर दिखायी पड़ता है। कहा कि यहाँ खुदाई होनी चाहिए। वहाँसे जीप डोभाँव गयी। मैं वहाँके इतिहास-प्रेमी मास्टर राजनाथ सिंह (अब स्वर्गीय) को राहुलजी के आने की खबर दे चुका था। उन्होंने स्वागत की खूब तैयारी की थीं। कई फाटक बन वाए थे। गाँव के बाहर के द्वार पर तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। राहुलजी फूल-मालाओं से लादे गये। लोग बैठके में गये। १० मिनट सुस्ताकर डीहचौरे की मूर्तियाँ देखने गये। राहुलजी के साथ सैकड़ों व्यक्ति चलते थे। चुनाव की धूम थी। मिडिल स्कूल में कई नेता लोग भाषण दे रहे थे। किन्तु सबके भाषण मन्द हो गये। राहुलजी जब बाराह मंदिर पर गये तो पुजारी से कहा गया कि मूर्ति का पर्दा हटाओ। उसने इनकार किया। ये बहुत बिगड़े। बाद में ग्रामवासियों ने पुजारी से कहा कि हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध विद्वान् हैं, आप जैसे हो मूर्ति का दर्शन कराइये। पुजारी ने पर्दा और मूर्ति का वस्त्र उठाया। मूर्ति देखी गयी। गहरवार काल की उत्तम कला है। लगभग १०० वर्ष पूर्व पास के तालाब से मिली थी। ज्ञात होता है कि जब मुसलमान मूर्तियों को तोड़ रहे थे

१९६३
र के रक्षकों ने मूर्ति को तालाब में फेंक दिया था।
जाता है कि एक तमोली पान को पानी देने के लिए
खोद रहा था तब मूर्ति का पता लगा। डोभाँव गहर-
काल में बड़ा कस्बा था। यहाँ बहुत मंदिर थे। गाँव
चारों ओर मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। वहाँ से दोना नदी
नारे हम लोग गये। महाराज गोविन्दचन्द देव
वार का निर्मित आषाढ़ सुदी द्वितीया संवत् १२०१
का गिरा-पड़ा मंदिर और शिलालेख देखा गया।
की यात्रा में अपशकुन हो गया था। राहुलजी
आजमगढ़ ही भूल आये थे। अतः आज कहींका
ले सके। उन्हें इस बात का बड़ा पश्चात्ताप था।
से आगे चलने पर तो उनके पेट में इतना दर्द
कि हम लोग घबड़ा गये।

१ फरवरी की यात्रा में पलिगढ़, सिरियापुर, मऊ
घोसी देखा गया। पलिगढ़ में ७वीं शती के बुद्ध के
र मिले। उन्होंने वे जीप में रख लिये। गाँव के
वाद-विवाद करने लगे कि आप लोग हमारे
को कहाँ ले जा रहे हैं। राहुलजी ने उन लोगों
झाया। बाद में गाँव के कई शिक्षित व्यक्ति आये
स्नानादि को पूछा। ऊख का रस और हरे मटर
ने एक ब्राह्मण के द्वार पर ग्रहण की। मिडिल स्कूल
प्राचीन 'गूथ कूप' देखा। प्रधानाध्यापक ने कई
यहाँ प्राचीन चिन्ह थे, दिखाये। वहाँसे सिरियापुर
यहाँ एक मिट्टी का ढूह था और मिट्टी ही की बहुत
याँ थीं। वहाँ से मऊ होते हुए कोपागंज गये।
के पश्चिम का प्राचीन मन्दिर जो भुवनेश्वर के
के आकार का है, देखा। शिलालेख पढ़ा। फिर घोसी
आज साथ में जिला बोर्ड के मंत्री श्री विजयनारायण-
थे। उन्होंने अस्पताल पर जीप रोककर पूर्व
डाक्टर से कहा कि आप जल्द ४, ५ आदमियों
भोजन बनवायें। हम लोग नहुषकोट देखकर १ घण्टे
आयेंगे। वापसी में वहाँ भोजन किया गया।

नाथ भंजन से जीप जब कोपा जा रही थी तो
की प्राचीन इमारतों का जिक्र किया। उन्होंने
क्या देखना है, यहाँका इतिहास ज्ञात है। मैं बता
मऊ संस्कृत मुकुट (कस्बा) का अपभ्रंश है।

घोसी—राजा नहुष की कोट देखकर राहुलजी ने
कि घोसी की प्राचीनता के बहुत से पुरातात्त्विक
पहिले मिल चुके हैं। यहाँसे प्राप्त मूर्तियाँ, खिलौने,
आदि देश और विदेश के कई संग्रहालयों में रक्खे
यह टीला अपने अन्दर बहुत सी प्राचीन निधियों को
बैठा है। यहाँ खुदाई कराने की आवश्यकता है।
टीले पर पुरातत्त्व विभाग का 'संरक्षित स्मारक' वाला
नामपट्ट लग जाना चाहिए। एक व्यक्ति ने बताया कि
बरसात में अठन्नी भर का एक चाँदी का सिक्का
और दो-तीन ताँबे के सिक्के मिले थे जो कनिष्क के बताये
थे

पुर-मधुबन में मल्ल राजाओं की कोट देखी।
जगह-जगह प्राचीन सरोवर और ध्वंसावशेष थे। प्राकृतिक सुषमा मनोहर थी। वहाँसे कमल सागर मिडिल स्कूल पर पहुँचे। मास्टरों से रास्ता पूछ कर कोट पहुँचे। कमल सागर में मैंने बताया कि यहाँ स्वामी सत्यानन्द का घर है। राहुलजी ने कहा कि वे हमारे साथी थे। लाहौर, अमृतसर, आगरा में हमारा उनका साथ था।

निवियाँव हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र का गाँव है। यहाँके लोगों ने उनका घर दिखाया किंतु वे प्रयाग थे। निघियाँव के पढ़े-लिखे लोग एकत्रित हो गये। उन लोगों ने प्राचीन दर्शनीय स्थानों को दिखाया। एक वृद्ध ने बताया कि यह कोट राजा नृग का है। लगभग ६० वर्ष हुआ मिट्टी निकालते समय यहाँसे पत्थर की २ बड़ी मूर्तियाँ निकली थीं जो उधर झाड़ी में खड़ी हैं। हम लोग वहाँ गये। मूर्तियों की सुन्दरता देखकर सब लोग मुग्ध हो गये। राहुलजी ने उनके चित्र खींचे। ईंटें कुषाण कालीन मिलीं। पैमाना १६ × ९ × २।। इंच था। गूथकूप भी मिले।

वहाँसे बेलवली मठ पर गये। यह स्थान दोहरी घाट से ३ मील पूर्व है। समृद्ध वैरागी मठ है। यहाँ प्राचीन मूर्ति है जिसे लक्ष्मणजी की मूर्ति कहते हैं पर वह चतुर्भुजी विष्णु भगवान् की मूर्ति है। इस मूर्ति को राहुलजी ने गहरवार काल की बताया। मूर्ति का चित्र खींचा। मूर्ति का पत्थर काला है। ४।। फुट ऊँची है। चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये हैं। निचले दोनों हाथों के नीचे दो देवियों की मूर्तियाँ हैं। इस मूर्ति के नीचे एक स्त्री और एक पुरुष हाथ जोड़े खड़े हैं। राहुलजी ने बताया कि यह मूर्ति बनवानेवाले राजा-रानी हैं।

रियाँव——टीले पर विष्णु की प्राचीन मूर्ति है। एक पत्थर पर सभी अवतार दिखाये गये थे। यहाँ कनिष्क का एक पैसा मिल गया जो कभी किसी भक्त ने मूर्ति पर चढ़ाया होगा। टीला भयानक था और जीव-जन्तुओं का घर था। इस मूर्ति को राहुलजी ने ११वीं शताब्दी की बताया। कोइल मर्याद सियाह की देवी बड़ी 'जागती' मानी जाती हैं। यहाँ प्रतिदिन मेला लगा रहता है। यहाँ १४ × ९ × २।। इंच की ईंटें बहुत हैं। यहाँ कोई विशाल मन्दिर या कोट था। यहाँकी मूर्तियों को मुसलमान आक्रमणकारियों ने तोड़-ताड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। १०वीं ग्यारहवीं शती की मूर्तियों में शंकरजी की ८ इंच की और एक देवी की मूर्ति १० इंच की थी। तीन-चार मूर्तियाँ जीप पर रख ली गयीं। वहाँ मूर्तियों के पचासों खंडित भाग पड़े हैं।

सियरही का टीला देखा गया। लोगों ने बताया कि यहाँ बरसात में पंचमार्क सिक्के मिलते हैं। ईंटें १४ × ९ × २।। इंच की थीं। ये मौर्य शुंग काल तक की मानी जाती हैं। सियरही से अमिला आये। यह पं० अलगूराय शास्त्री का गाँव है। शास्त्रीजी के अनुज प्रिंसपल राम लच्छनजी प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोग उनके घर गये और वहाँ भोजन करके गोंठा को चल दिये।

गोंठा में नन्द टीला देखा गया। टीले पर काले पत्थर की मानवाकार शंकरजी की बैठी हुई मूर्ति है जिसकी भुजाएँ और नाक मुसलमान आक्रमणकारियों ने तोड़ दी हैं। सूर्यास्त हो गया। गाड़ी बीमार पड़ गयी। आध आध मील पर बिगड़ने लगी। आज परिश्रम काफी हुआ था। राहुलजी सो गये। चतुर मोटर चालक किसी तरह ११ बजे रात को आजमगढ़ पहुँचा। वहाँ राहुलजी जगे और अपने कमरे में गये। वे रात में ११ या १२ बजे तक तो साहित्यगोष्ठी करते थे। प्रश्नकर्ताओं को उत्तर देते थे। दिन भर की यात्रा को लिखते थे। २, ३ घंटा सोकर कुछ पढ़ते थे। दूसरे दिन ७ बजे यात्रा के लिए तैयार हो जाते थे।

पन्दहा में जब वे अपनी ननिहाल गये तो अपनी वृद्धा मामी के लिए नयी साड़ी और हाँड़ी में मिठाई ले गये थे। वहाँ स्वागत की बड़ी तैयारी थी। हजारों व्यक्ति उपस्थित थे। फाटक बने थे। दावत का प्रबन्ध था। फोटोग्राफर मौजूद था। यहाँ राहुलजी के साथ के सभी व्यक्तियों का फोटो खींचा गया। ग्राम के तरुणों से राहुलजी ने एक एक करके परिचय पूछा।

आजमगढ़ शिब्ली मंजिल में वह कई दिन गये। पुस्तकालय देखा। वहाँके मुस्लिम विद्वान् नित्य ही शाम को इनसे मिलने आते थे। प्रसिद्ध उर्दू लेखक मौलवी सबहाउद्दीन साहब उनके बहुत प्रशंसक हो गये थे। वे राहुलजी को पुस्तकालय में कई बार ले गये। चलने के दो दिन पूर्व उन्होंने राहुलजी को शिब्ली मंजिल से प्रकाशित वज्ममलूकिया (भारत के प्रथम मुस्लिम राजवंश यानी गुलाम वंश के समय के सांस्कृतिक और साहित्यिक कामों का इतिहास), ताजुल मआसिर, तबक़ाते नासिरी आदि ग्रंथ भेंट में दिये। मआसिर में १३वीं सदी की मुस्लिम विजयों का उल्लेख है। इन पुस्तकों को राहुलजी ने बहुत पसन्द किया और कहा कि इनका हिन्दी अनुवाद होना चाहिए। ता० १७ फरवरी की दोपहर में राहुलजी को हरिऔध कलाभवन में ले जाया गया। उन्होंने इस यात्रा में जो कुछ सामान एकत्रित किया था वह सब कलाभवन को भेंट कर दिया। इतिहास-पुरातत्त्व प्रेमी जिलाधीश ने भी सब सामान देखा। वे सब मूर्तियाँ हरिऔध कलाभवन की शोभा बढ़ा रही हैं। बाद में मैंने बहुत सी मूर्तियाँ, खिलौने, हस्तलिखित पुस्तकें, ताम्र-पत्र प्राचीन सिक्के, तलवारें आदि सामान को देकर उस संग्रह को बढ़ाया।

१७ की शाम को नगर के साहित्यिकों, सरकारी कर्मचारियों आदि की उपस्थिति में जिले के इतिहास पुरातत्त्व पर राहुलजी ने भाषण दिया। जब कवि लोग कविता-पाठ कर रहे थे तो वे सो गये थे, और देर में जगे। बाद में कई व्यक्तियों ने ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्व संबंधी प्रश्न किये जिनका उत्तर राहुलजी ने दिया। आज वह संस्कृतज्ञ पंडितों की पोशाक अर्थात् धोती, बगलबन्दी, चादर धारण किये थे। लोगों ने बारम्बार आग्रह किया कि आजमगढ़ आपकी जन्मभूमि है। आप वार-बार यहाँ आवें लोगों को दर्शन दें तथा ज्ञान वृद्धि में सहायता राहुलजी ने स्वीकार किया।

१८ फरवरी को प्रातः राहुलजी ने मेरा नाम 'खोजीराम', और अपना चित्र दिया तथा एक लिखकर दिया और कहा कि तुम देश या विदेश में ऐतिहासिक पुरातात्त्विक खोज करने जाओगे यह काम देगी। ८ बजे वह जीप से आजमगढ़ स्टेशन और फिर जल्द ही आने को कहकर रेल पर बैठकर दून-मसूरी चले गये। बीच में हमारा उनका जारी रहा। कभी पटना, कभी काशी, कभी प्रयाग कभी मसूरी से उन्होंने पत्र लिखे। पत्र में वह इस पर जोर देते रहे कि संसार भ्रमण करो—हिन्दी सेवा करो। हिन्दी साहित्य में इतिहास, पुरातत्त्व साहित्य की बहुत कमी है, इसे भरो।

दूसरे जाड़े में राहुलजी आजमगढ़ अकस्मात् स्त्री और पुत्र, पुत्री के साथ आये। वह प्रथम परिचित सुशिक्षित हिन्दी प्रेमी ईसाई मि० जस्टिन से पत्र व्यवहार करके उन्हींके यहाँ रुकने की इच्छा कर चुके थे। ब्राडवे ने एक बंगला सुसज्जित किया। में वे चार दिन रहे। शहर के साहित्यिकों को यह अच्छी न लगी। लोगों ने कहा कि हिन्दी सेवकों के तो हरिऔध कला-भवन 'अतिथिगृह' है। वे एक के यहाँ क्यों रुके? इस बार लोग उनसे मिलने न वह जीप से अपने ननिहाल और अन्य रिश्तेदारियों गये।

स्त्री, बच्चों के साथ पितृ-गृह कनैला भी प्रथम परिणीता को इस बात से बड़ा दुःख हुआ। कहती थीं कि जब दूसरा विवाह ही करना था तब मुझे छोड़ा। फिर मेरी सौत को लेकर मुझे चिढ़ाने आये उन्होंने राहुलजी का दर्शन भी न किया। नई स्त्री ने पति की प्रथम स्त्री का चरण छुआ था। इस बार भी घर बड़ी भीड़ जुटी थी। मन ही मन कुछ लोग उनके कार्य से घृणा कर रहे थे कि साधु होकर फिर हुए, और नई स्त्री के साथ आकर ६० वर्ष से पति वियोग में बैठी सती को चिढ़ाया।

एक बुढ़िया भरिन ने कहा कि "ऊ (राहुल) फुकवना का एजइन आवेला, हमरी रनियाँ (राहुल प्रथम परिणीता) के रिगावे-का उनक नवकी हमरी पंडिताइन ले नीकि बा? तनिकों देखे नइखे। हमार पंडिताइन बूढ़ि भइली पर अब्बौ मेहरारू में देखे लायक हई। गोल कऽमुँह बा डब्बू

सन् १९६१ ई० के जाड़े में जब मैं राहुलजी के कनैला गया तो उनके भाई लोग कहीं गये थे। दो घर पर थीं। एक राहुलजी की स्त्री और दूसरे जी की स्त्री। मैंने प्रणाम करके कुशल पूछा। के बाद मैंने एकान्त देखकर पूछा, कि माताजी मैका कहाँ है? वहाँ पिता, भाई, भतीजे हैं कि

श्रीमती रामदुलारी देवी
(राहुलजी की प्रथम पत्नी)

बताया कि मैका अहिरौला है। पिताजी रोते-रोते ... एक भाई साधू हो गया। एक हैं, उसीके ... हैं। आगे उन्होंने कहा कि तूँ पंडितजी के साथ ...चिट्ठी पत्री भेजेलऽ एगो हमार सनेस भेजतऽ ...जवाब दे लैं"। मैंने कहा कि जो सन्देश भेजना ... बतलाइए, मैं भेज दूँगा। कहिए :—

...न्होंने कहा कि 'हमारी इच्छा है कि मैं कुछ दिन ... रहकर कुछ सेवा करती जिससे हमारा परलोक ...ता। जब विवाह होता है तब आग, पानी, देवताओं ... 'किरिया' खाई जाती है कि हम लोग प्रेम से और हर दशा में साथ-साथ जीवन बितायेंगे। सो यह ... बेकार हो गयीं। मैं ५०, ६० वर्ष से बैठी हूँ। अब ... बीत गया। थोड़े दिन की मेहमान हूँ। फिर बोलीं, ... जल्दी हमके दुनियाँ से उठा नइखें ले जात। हमार ... इच्छा वा कि ऊ हम कें चारों धाम करा देतें। ... सज्ञी दुनियाँ देखलें हमकें कुछ नाहीं देखवलें। ... अगर अइसन घर नाहीं मिलल रहित त हमार गुजर ... होइत। ई कह कि परानी नीक मिलल रहली हऽ ... कटि गइल। हमार सनेस पहुँचाव आ जवन जवाब ... हमकें बतावऽ।' मैंने उन्हें लिखने का वचन दिया। ... दिन यह सन्देश मसूरी भेजा। राहुलजी ने लिखा ... समय हम कई झंझटों में हैं। बाद में सोचेंगे और तुमको ... लिखेंगे। इसके बाद वे लंका चले गये और डेढ़ वर्ष ... रह कर आये। तब से स्वास्थ्य ही खराब हो गया। ... की बीमारी कई वर्ष से थी। शरीर की निर्बलता ... गयी। धीरे-धीरे मस्तिष्क शून्य हो गया। स्मरण-... समाप्त हो गयी। अब वह किसीको पहचानते ... थे। जब दिल्ली के साहित्यिकों ने औषधि कराने के ... उन्हें मास्को विदा किया तो वे रो पड़े थे। उन्हें कभी-कभी अपने व्यतीत जीवन की बातों का स्मरण हो आता था। मास्को आने के बाद आशा थी कि अब वह चंगे हो जायेंगे पर काल ने न छोड़ा, और अन्त में १४ अप्रैल सन् ६३ को दोपहर से थोड़ी देर बाद हिन्दी नभ का यह सूर्य दार्जिलिंग के अस्पताल में सर्वदा के लिए अस्त हो गया।

उनकी विवाहिता स्त्री ने मुझसे अगस्त १९६२ में पूछा था कि क्या जवाब मिला। मैंने कहा वह तो खुद ही बीमार हैं, परेशान हैं। वह प्रबन्ध न कर सकेंगे। हम किसी उपाय से आपको चारों धाम की यात्रा करावेंगे। उन्होंने कहा कि इस अवसर पर भी वह हमको कुछ दिन साथ रखते तो अच्छा होता। मैं उनकी स्त्री से बैर नहीं करूँगी।

मुझे उस समय महाकवि देव की एक सवैया की यह पंक्ति याद आयी—

साथ में राखिए नाथ ! उन्हें
हम चाहती हाथ में चार चुरी ये।

भारत के हिन्दी सेवकों का धर्म है, और उनसे प्रार्थना है कि चन्दा कर, धन संग्रह कर महापंडित राहुल सांकृत्यायन की प्रथम परिणीता की अन्तिम इच्छा 'चारो धाम' करने की पूर्ण करें। यह कार्य परम पुनीत होगा।

सौन्दर्याष्टक

श्री राजेशदयालु "राजेश"

असि बिजुरी, जसि न जुरी घननि करोर।
कसक कहौं लावनिता, बनिता ! तोर॥
तुव मुख चन्द न कहिहौं, रहिहौं मौन।
तोहिं सब चितवैं, चन्दहिं चितवै कौन ?
उज्जर बरन, अँग-अँग भरन अनूप।
दृर्गाहि रसै रस, बदनहिं रूपै रूप॥
सिर स्रिखंड, दृग कजरा, अधरा पान।
गोर कपोल, थोर बम, रूप महान॥
कील नासिकहिं, अँग-अँग बिजन हेरि।
पातरि-पातरि पातरि जनु रस केरि॥
बसहु बँगालै नागरि ! नागिनि लेइ।
कोउ डसि जाय तौ कोऊ झारि तौ देइ॥
अमरित भरेउ बच्छ, दृग, बच, अधरान।
गोरिया ! देहिया तोर कि अमरित दान॥
दीठि कगद भल, कर कल, मुरनि सँवारि।
टंकन करति बिमोहति कंकन वारि॥

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में

श्री फेनी मुकर्जी

[तिब्बत के मठों में सुरक्षित प्राचीन और दुर्लभ संस्कृत ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ संग्रह करने के लिए राहुलजी सन् १९३८ में बिहार सरकार की सहायता से एक अभियान किया था। हाथ से प्रतिलिपि कराने में बड़ा समय इसलिए उनके पृष्ठों के फोटो लेने का निर्णय किया गया। इस कार्य के लिए एक साहसी युवक एवम् कुशल ग्राफर की आवश्यकता थी। राहुलजी ने हमसे एक फोटोग्राफर देने को कहा। श्री फेनी मुकर्जी उस प्रयाग में थे और इंडियन प्रेस में काम करने के अतिरिक्त हमारा विभागीय (शिक्षाप्रसार विभाग का) काम कर दिया करते थे। हम उनकी फोटोग्राफी-कला से तो प्रभावित थे ही, साथ ही युवक फेनी के चरित्र, उद्योगशीलता, व्युत्पन्नमति, सूझबूझ और परिश्रम करने तथा कष्ट सहने के गुणों से भी परिचित थे। राहुलजी साथ तिब्बत की दुर्गम यात्रा के लिए हमें वे ही सर्वोत्तम व्यक्ति मालूम पड़े। हमने इस यात्रा का महत्त्व कर उनसे राहुलजी के साथ जाने को कहा। हमें प्रसन्न और अनुगृहीत करने के लिए वे राजी हो गये। उन्हें समझा दिया था कि इस अभियान की सफलता अधिक से अधिक पृष्ठों के सुंदर फोटो लाने पर है, और भी बतला दिया था कि उनके कार्य के असंतोषजनक होने पर हमारी बदनामी होगी क्योंकि राहुलजी यही कहेंगे चतुर्वेदीजी ने उपयुक्त फोटोग्राफर नहीं दिया। राहुलजी की मृत्यु के बाद सहसा हमने सोचा कि उस यात्रा विवरण सरस्वती के पाठकों के लिए मनोरंजक होगा। इतना पुराना संस्मरण लिखना बड़ा कठिन है। दो-तीन वर्ष पहिले दिल्ली में जो जलप्लावन हुआ था उसमें फेनी मुकर्जी के घर का निचला खंड पानी में डूब गया उसमें उनके कितने ही पुराने कागज-पत्र, फोटोग्राफ और फोटो के निगेटिव जल में डूब जाने के कारण नष्ट हो गये थे। फिर भी हमने उनसे संस्मरण लिखने के लिए लिखा। उन्होंने उपलब्ध सामग्री के आधार पर लिखना स्वीकार कर लिया। इसी समय उन्हें महामहिम राष्ट्रपति के साथ अफगानिस्तान और ईरान जाने आज्ञा हुई। इस कारण वे पूरा संस्मरण नहीं लिख सके। उन्होंने पहिला अंश अफगानिस्तान जाने के पहिले कर भेज दिया और शेष अंक लौटकर लिखने का वचन दिया है। चित्रों के जो निगेटिव बच रहे थे, या जो क्षत हुए थे, उनसे उन्होंने कुछ फोटोग्राफ भी तैयार करके भेजे हैं। उनमें एक हमारा फोटोग्राफ भी है जो १९ में उन्होंने लिया था किंतु जो अब तक उन्होंने हमें नहीं दिखाया था। अपनी २५ वर्ष पुरानी सूरत देखकर हम चकित रह गये! हम इस महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक लेख को सरस्वती में क्रमशः प्रकाशित करेंगे। यह उसका अंश है। आशा है कि सरस्वती के पाठकों को यह रुचिकर मालूम होगा।—सम्पादक, सरस्वती।]

राहुलजी की मृत्यु के कारण आज से लगभग पच्चीस साल पहले का अपने जीवन का एक परिच्छेद सहसा स्मरण हो आया। वह परिच्छेद था संस्कृत ग्रंथों के फोटोग्राफ लेने के लिए राहुलजी के नेतृत्व में तिब्बत का अभियान। लामाओं के पवित्र देश में प्रवेश करने का सौभाग्य पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदीजी की कृपा से प्राप्त हुआ था जिनको मैं 'भैया साहब' कहा करता हूँ। आज फिर २५ साल बाद उन्हींका आदेश पालन करते हुए मैं उसका संस्मरण लिख रहा हूँ। तिब्बत के मठों में संचित प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की पांडुलिपियों की अनुकृतियाँ प्राप्त करने के लिए बिहार सरकार के समर्थन से एक भारतीय दल महापंडित राहुल सांकृत्यायन के नेतृत्व में तैयार किया गया जिसमें पाँच सदस्य थे। सीलोन-निवासी अभयसिंह परेरा, जो तिब्बती और पाली भाषा के विद्वान्; गेनदोम छोम फेल गेशोला; पंजाब-निवासी कवलकृष्ण अरोड़ा, कलाकार; और उत्तर प्रदेश-निवासी मैं—फेनी मुकर्जी। मेरे ऊपर सारा भार था फोटोग्राफी द्वारा प्राचीन तालपत्रों पर लिखी हुई पुस्तकों की करने का। इस कार्य के लिए पहले भी राहुलजी बार तिब्बत जा चुके थे, परन्तु अनेक कारणों से मोटी- सैकड़ों पुस्तकों की नकल न हो सकी थी। फोटो के द्वारा एक पृष्ठ का ज्यों का त्यों चित्र एक पल में जा सकता है। मोटें रूप से इस अभियान को सफल मेरे ही ऊपर निर्भर था। कलकत्ता विश्वविद्यालय चित्रकला विद्यालय (Art School) से शिक्षा प्राप्त के बाद मैं बड़ी लगन से फोटोग्राफी का काम सीखने करने लगा था।

मैं उन दिनों आदरणीय भैया साहब की देख-रेख उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा-प्रसार विभाग के संबंधी कार्य में अपनी फोटोग्राफी कला द्वारा कर देता था। चतुर्वेदीजी उस समय उत्तर सरकार के शिक्षा-प्रसार विभाग के सर्वेसर्वा थे। फोटोग्राफी की कला से प्रभावित होकर उन्होंने इतने महत्त्वपूर्ण और कठिन कार्य को सौंपने

१९६३ म्मेदारी ले ली। उस समय मेरी आयु थी केवल २४ वर्ष।

पासपोर्ट और आवश्यक आज्ञापत्र इत्यादि संग्रह रने के बाद राहुलजी २८ अप्रैल १९३८ को कलकत्ते पहुँचे। मैं वहाँ पहले ही से फोटोग्राफी की विदेशी नियों से सलाह करने और फोटोग्राफी सम्बन्धी सामग्री न करने के लिए पहुँच गया था। राहुलजी कुछ ही पहिले रूस देश से गिलगिट और लद्दाख के बर्फीले से भारत लौटे थे। वे बहुत कमजोर और थके हुए इसलिए इस महत्त्वपूर्ण यात्रा की तैयारी का सारा मेरे ही ऊपर आ पड़ा। उनका दुर्बल स्वास्थ्य देख- हम चाहते थे कि यात्रा कुछ दिनों के लिए कर दी जाय, किंतु राहुलजी का कहना था कि जब र्ट (पारपत्र) हाथ में आ गया है तो हम लोगों को न चल देना चाहिए। विलम्ब होने पर स्थिति हो जाने की आशंका है। अतएव मैंने रात और दौड़-धूपकर यात्रा की आवश्यक सामग्री एकत्र कर और ३० अप्रैल को हम दोनों सायंकाल दार्जिलिंग में बैठकर सिलीगुड़ी को चल दिये। रेलगाड़ी के दर्जे में ठसाठस भीड़ थी। कुलियों की सहायता नों वजन का सामान डिब्बे में ठुँसवाते-ठुँसवाते गाड़ी देकर चल पड़ी। हम लोग किसी प्रकार डिब्बे में गये। हम लोगों को बैठने की जगह न मिली। मैं खड़ा रहा, किंतु वे एक गठरी पर बैठ गये। एक चारी महात्मा को गठरी पर बैठा देखकर किसी न ने अपने पैर सिकोड़कर बेंच पर उनको बैठने की ह दे दी और मैं उनकी जगह गठरी पर बैठ गया।

ज्यों-त्यों करके रात भर की यात्रा समाप्त हुई और रे दिन पौ फटते हम सिलीगुड़ी पहुँच गये। मैं तो इधर ान उतारने में लग गया और उधर राहुलजी झटपट मोटर टैक्सी १५) रु० में तय कर लाये। बिना मुँह ये और बिना चाय पिये हम दोनों मोटर में सामान कर कालिमपोंग की ओर चल पड़े। वह पहली मई ९३८ का दिन हमारे लिए कितना उल्लासपूर्ण था! ारों ओर सुंदर और शस्यश्यामल पहाड़ी दृश्य था तथा ंडी हवा चल रही थी। मोटर में बैठे-बैठे ये विचार उठते थे कि हम हिमालय के विश्वविख्यात पर्वतों के उस पार स पृथ्वी की सबसे ऊँचाई पर बसे हुए एक अति प्राचीन देश की सभ्यता से भेंट करने चल रहे हैं। वहाँ अत्यंत शीत है और देश भी अत्यंत रूखा-सूखा और विरल बसा है, फिर भी वह ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टि से इस संसार में अद्वितीय है। शतियों से वहाँ एक-सी धार्मिक विचारधारा प्रवहमान है। पहाड़ों और नदियों की ऊँचाई तथा गहराई भले ही घट-बढ़ जाये, परन्तु उनके धर्म और विश्वास का काँटा अटल पड़ा है। फिर सोचा कि इस यात्रा का मार्ग कितना टेढ़ा-मेढ़ा, ऊँचा-नीचा, भयानक और दुर्गम है। फिर यह सोचने लगा कि इस अभियान में फोटोग्राफी के काम की जिम्मेदारी कितनी गंभीर और महत्त्वपूर्ण है और संयोग से वह मुझ ऐसे तरुण के ऊपर आ पड़ी है। मैं उसे ठीक-ठीक निभा सकूंगा या नहीं? हजारों रुपयों की योजना सफल करना है, आदरणीय भैया साहब का मुख उज्ज्वल करना है, तथा भारतमाता के युग-

श्री फेनी मुकर्जी अपने प्रिय खच्चर के साथ
जिसका नाम उन्होंने 'दे' रखा था।

युग के खोये हुए पुराने अनमोल रत्न खोज लाने का भार हमें सौंपा गया है। मैं सोचने लगा कि यदि इस बार भी पहले की तरह यह अभियान असफल हो गया तो फिर भारत के लिए उन प्राचीन ग्रंथों का पुनरुद्धार करना बहुत दिनों के लिए टल जायगा। आज सोचता हूँ कि हमारे इस अभियान के बाद दूसरा महायुद्ध हो गया, अंग्रेजी साम्राज्य भारत से हट गया, तिब्बत में लूटमार, मारकाट और बरबादी का बाजार गर्म हुआ, देखते ही देखते युगों तिब्बत की पुरानी सभ्यता नष्ट करके राख कर दी गयी। कहाँ गयीं उन मठों की वे पुरानी ऐतिहासिक पुस्तकें? कहाँ रहे तिब्बत के वे महत्त्वपूर्ण सामग्रियों से भरे हुए जगमगाते विशाल मठ, मंदिर और दुर्ग? तिब्बत की गौरवशाली सभ्यता के भंडार और भंडारी सदा के लिए लुप्त हो गये।

यह ४० मील लम्बी मोटर की सुंदर पक्की सड़क चुम्बी नदी के साथ-साथ अति सुहावने वनों-पर्वतों में होती हुई, घुमावदार मार्गों से इस प्रकार जा रही थी मानों तरह-तरह के प्राकृतिक बाग-बगीचों की सैर कराती जा रही हो। मैं अभी हाल में ही विख्यात काश्मीर के भ्रमण से लौटा हूँ, और भारत के लगभग सभी पहाड़ी स्थानों को देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। परन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह दार्जिलिंग वाली पहाड़ी सड़क सबसे अधिक आकर्षक है। देखते ही देखते १० बजे प्रातः तिस्ता के पुल को पार करके कालिमपोंग पहुँच गये।

कालिमपोंग एक बहुत ही सुन्दर पहाड़ी बस्ती है। वह कई ऊँची-नीची पहाड़ियों पर बसी हुई है। यहाँसे एक सड़क तिब्बत की ओर जाती है। इस सड़क को इस शती के आरंभ में अंग्रेजों ने उस समय बनाया था जब तिब्बत के साथ उनका युद्ध हो रहा था। आजकल इसी रास्ते से तिब्बत और भारत के साथ सम्पर्क हो सकता है। यहाँ पहुँचने पर अभियान के तीसरे सदस्य गेशेलाजी से भेंट हुई। तिब्बती और अंग्रेजी भाषा की जानकारी होने के कारण वे हमारे दल के द्विभाषिया का काम करते थे। कालिमपोंग के बाजार से कुछ और जरूरी चीजें खरीदी गयीं। तिब्बत में रुपये पैसे के लेनदेन के लिए एक नेपाली महाजन से हुंडी ले ली। उस समय सारे तिब्बत में लेनदेन का काम ये नेपाली किया करते थे। तिब्बत में प्रत्येक व्यापारी नगर में इन लोगों की कोठियाँ थीं। नेपाली महाजन साहू धर्मरत्न से राहुलजी भली परिचित थे। राहुलजी की पिछली यात्राओं में भी उनकी सहायता की थी।

इस मनोरम सुन्दर पहाड़ी नगरी कालिमपोंग लोग कविगुरु रवीन्द्रनाथजी टागोर के दर्शन करने उन दिनों अस्वस्थ होने के कारण वे वहाँ ठहरे हुए थे। कालिमपोंग बहुत प्रिय था। उनको अत्यन्त दुर्बल राहुलजी बड़े दुखी हुए। राहुलजी ने उनसे कहा, " इस महत्त्वपूर्ण यात्रा की सफलता के लिए आपका प्राप्त करने आये हैं।" कवि-गुरु ने अपना क्षीण हाथ सिर पर रखा, और राहुलजी को निहारकर बोले।

"जोदी तोर डाक सुने केऊ ना ऽ आसे तवे चोलोरे!!

ऐकला चोलो, ऐकला चोलो, ऐकला चोलोरे तोर डाक ....!!"

अर्थात् :—यदि तुझको इस जीवन-पथ का साथी न मिले तो अकेले ही चलता रह।

राहुलजी ने भी अपने कंपित स्वर में उत्तर देते जो कुछ कहा उसका आशय था कि हम अपना उद्देश्य करने में कोई कसर न रखेंगे, और आपके आशीर्वाद विश्वास है कि हमें सफलता होगी।

४ मई १९३८ को सबेरे हम तीनों अपने-अपने पर सवार होकर तिब्बत की ओर चल पड़े। " गाँव होते हुए हम सायंकाल पाँच बजे पहले पड़ाव " नामक गाँव में पहुँचे। हम सिक्कम राज्य में होकर रहे थे। यहाँके पहाड़ी हरे-भरे जंगल बड़े ही हैं। ऐसा मालूम पड़ता था कि हम सुन्दर रंग- फुलवाड़ियों में होकर चल रहे थे। नीले गगन में बादल शंकर-पार्वती के दर्शन करने को उड़े चले थे। फल-फूलों की सुगंधि से आकर्षित होकर नाना की तितलियाँ उड़ती फिर रही थीं। ऐसे ही रहे प्राचीन काल के तपोवन जिनके झरनों के कलकल और चिड़ियों के मधुर संगीत से स्वर मिलाकर उस ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों ने वे अमर गान गाये जो हमारी संस्कृति को आज भी गौरवशाली बनाये हैं। दिन भर की यात्रा के बाद हम अपने पड़ाव पर राहुलजी बैठ गये मोमबत्ती के उजाले में लिखने

तिब्बत के राहुल अभियान के तीन सदस्य
(बायें से) श्री कँवलकृष्ण, श्री गाण्डम चोम्पेल गैशेला (द्विभाषिया) और श्री फेनी मुकर्जी। (पीछे हिमाच्छादित शिखर है। पृष्ठभूमि में वनस्पतिहीन रूखे पर्वत हैं।)

। कब तक लिखते रहे, कब सो गये, कुछ पता नहीं। हम सब पड़ते ही बेखबर सो गये थे।

यात्रा के चार-पाँच दिनों में "नाथंग" गाँव तक ही सके। आँधी, बारिश, ओलों और बर्फ से पिट-पिटाकर बुरा हाल हो गया। एक दिन में बीस-बाईस मील चल पाते थे। चारों ओर के सुन्दर मनोरम दृश्यों ने लोगों को मतवाला बना रक्खा था। सायंकाल के जब हम किसी गाँव के पड़ाव पर पहुँचते तो उस सराय मैली-कुचैली स्वामिनी हमारी आवभगत और देख- इतने प्रेम से करती कि हमारा शरीर और मन फिर सजीव हो उठता था। रास्ता धीरे-धीरे भयानक और हो चला था। पहाड़ी तेज नदियों के किनारे-किनारे सैकड़ों फुट ऊँचाई पर चढ़ते, और फिर उतरते। पग-डंडियाँ इतनी सँकरी और टेढ़ी-मेढ़ी थीं कि तनिक भी चूक या अनमने होने पर हमारी तथा हमारे खच्चरों की जान खतरे में थी।

नाथंग गाँव में तेज हवा, और बर्फ के तूफान के कारण दो दिन रुके रहना पड़ा। सौभाग्यवश सराय की स्वामिनी के घर बड़ी धूम-धाम मची हुई थी। पास के गुम्पा (मठ) से लामा और उनके शिष्य ढावा लोग एक विशेष पूजा करने के लिए आमन्त्रित किये गये थे। इतने व्यस्त रहते हुए भी घर की स्वामिनी ने हम सबों की देख-रेख बड़े ही स्नेह से की। जब उनको पता चला कि पीतवस्त्रधारी राहुलजी एक भारतीय लामा हैं, तो उनको बड़े आदर से पूजागृह में ले जाकर आमंत्रित तिब्बती लामा के समीप बिठाया गया। यह पूजा छः दिन से लगातार चल रही थी। सत्तू की बनी एक तीन फुट ऊँची बुद्ध भगवान् की सुन्दर मूर्ति स्थापित की गयी थी। उसके चारों ओर उसी प्रकार की अनेक छोटी-छोटी मूर्त्तियाँ सजाकर रखी गयी थीं। सामने चौकी पर लगभग ४० घी के दीपक जल रहे थे। समूचे कमरे को रंग-बिरंगे कपड़ों की झालरों और झंडियों से सजाया गया था। लोहबान और धूप की सुगन्धि से

वातावरण महक रहा था। लामा गहरे लाल रंग के मोटे ऊनी कपड़े का ढीला-ढाला जरी से सुसज्जित अँगरखा पहिने विराजमान थे और उनके दायें-बायें छः ढावा (ब्रह्मचारी) बैठे खूबसूरत रंगीन बड़ी-बड़ी डुगडुगी एक ताल से बजा रहे थे। लामा सामने रक्खी हुई अपनी मोटी धार्मिक पुस्तक एक संगीतमय स्वर में जोर-जोर से पढ़ते जा रहे थे। ढावा लोग अपने बाजे बजाकर उन तिब्बती भाषा के मंत्रों को दोहराते जा रहे थे। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि यह घर हाल ही में बनवाया गया था। तेज हवा, पानी और तूफान से डरकर घर के स्वामी ने इस पूजा का आयोजन करवाया था जिससे दुष्ट भूत-प्रेत नुकसान न पहुँचा सकें। वे मंत्र चारों ओर की हवा से भूत-प्रेत भगाने के लिए पढ़े जा रहे थे। हम लोग भी आगे जाने से डराये गये, और लामा के आदेशानुसार पूजा के अन्त तक रुकना पड़ा। दूसरे ही दिन वह पूजा समाप्त हुई और लामा अपने साथ में उस मूर्ति को उठाये, ढावा लोगों की डुगडुगियों के ताल से लय मिलाते हुए, मंत्र उच्चारण करते हुए ताजी बर्फ से पटे हुए उस गाँव की परिक्रमा करने लगे। सारे गाँव के लोग पीछे-पीछे सिर झुकाये हाथ जोड़े चल रहे थे। दो-तीन घंटे इस प्रकार हमको भी उनके साथ घूमना पड़ा। अंत में उन सब मूर्तियों को एक पवित्र स्थान पर बर्फ के नीचे दबा दिया गया। सबों को यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि उस गाँव के सब भूत और चुड़ैल भगा दिये गये हैं और जो नहीं भागना चाहते थे उनको उस बर्फ के नीचे सदा के लिये गाड़ दिया गया। उनके विश्वास और रीति-रिवाजों को देखकर राहुलजी ने कहा कि हम और ये भोटिया लोग एक ही माला की लड़ी हैं।

दूसरे दिन फिर हम तीनों अपने-अपने खच्चरों पर सवार होकर आगे चल पड़े। सामने का पहाड़ सफेद बर्फ से ढका हुआ था, और इसी पहाड़ पर चढ़कर हमको आगे जाना था। खच्चर बेचारों के पैर फिसल रहे थे और वे हमारे कोड़े खा-खाकर हाँफते हुए चढ़ रहे थे। चारों और चाँदी सी सफेद ऊँची-नीची पहाड़ियों का दृश्य बड़ा ही सुहावना लग रहा था। बर्फ नर्म होने के कारण खच्चरों के पैर घुटने तक धँसे जा रहे थे। इतने आकर्षक और मनोरम दृश्यों से प्रभावित होकर, राहुलजी के मना करने पर भी, मैं अपने खच्चर से उतर पड़ा और लगा फोटो खींचने। खच्चर अपनी आदत के अनुसार चलता चला ग और आगे निकल गया। मैं घुटनों तक धँसनेवाली ब पर चलता रहा और सुन्दर मनोरम दृश्यों के फोटो उतारता रहा। किंतु परिणाम यह हुआ कि खच्चर निकल जाने से सारे दिन लगभग २१ मील की या पैदल ही करनी पड़ी। इस बर्फ से पटे हुए पहाड़ का ना "जालिप-ला" है। इसकी ऊँचाई लगभग १४,००० फु है। यह तिब्बत का प्रहरी समझा जाता है और एक पवि शिखर माना जाता है।

जिस प्रकार आज दिन के उजाले में सफेद पहाड़ दृश्य सुहावना लगता था, उसी प्रकार "रिमछेन गंज" गाँव की चाँदनी रात भी अत्यंत मनोरम मालूम हुई चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई थी। भयानक सन्नाटे कभी-कभी बर्फ पड़ जाती थी। ऐसा लगता था मान रूई की बारिश हो रही है। दूसरे दिन आगे बढ़े तो रास्ते में कई पहाड़ी झरने दिखायी पड़े। सबसे मजेदार बा यह देखने में आयी कि इन झरनों का पानी बर्फ बनक ऊपर से नीचे तक लटक रहा था। मानों बर्फ के बं हुए यह मॉडल पहाड़ों की देह पर प्रकृति ने सज रखे हों। तेज ठंडी हवा को चीरते हुए हम आ बढ़ चले।

जैसा पहले बता चुका हूँ, राहुलजी का स्वास्थ्य उन दिनों बहुत गिरा हुआ था। उसपर कड़ी सर्दी की मार सहन करते हुए खच्चर की कमरतोड़ सवारी ने उनको बीमार कर दिया। फारीजोंग पहुँचते ही उनको बड़े जोर का ज्वर आ गया। इस कारण वहाँ रुकना पड़ा हमारे दो-चार दिन बड़े ही परेशानी में बीते। उनका ज्वर बढ़ता ही गया। उस ऊसर मरुभूमि में दवा-दा की कोई सुविधा नहीं थी। सैकड़ों मील लम्बे-चौड़े इ पठार पर बर्फ के समान ठंडी हवा, लगातार, बड़ी ते गति से चला करती है। बर्फ फिर गिरने लगी और ह समय डाकुओं का डर खाये जा रहा था। वहाँ रह निरापद न समझकर, गाँववालों की सहायता से, छः लकड़ी की डाँडी बनवाकर राहुलजी को छः आदमि के कंधों पर लादकर ग्यानसी की ओर अग्रसर हुए। दिन इस प्रकार धीरे-धीरे आगे चलने पर एक बड़ी मनोरम झील के समीप आ पहुँचे। सफेद बर्फ से ढके एक बहुत बड़े पहाड़ के तले यह झील है। इस

१९६३

का नाम "चोमोलारी" है। इस पवित्र शिखर को तिब्बती लोग देवता मानकर पूजते हैं।

उस रात जिस गाँव में हमने पड़ाव किया उसके वासी बहुत ही गरीब थे, पर बड़े ही दयालु थे। बीमार राहुलजी का हाल-चाल पूछने के लिए सारे गाँव के नर-री आ गये। हमारे प्रार्थना करने पर वे राहुलजी मन बहलाने के लिए गाने-बजाने लगे। उनका गीत इस प्रकार था :—

चोमों श्री चेंगा मिते छेरी ढांगी।
साबुह खाने फिपग्यां, जुगसाह फारी-थांगा।
फारी मोंगने मान्सो चुमने, लैंला कुहईबे छुम्बे।
ताहसो तोंगना मिडिंग,
चोमो श्री चेंगा।।

अर्थात्—"हम चोमोलारी के पास रहनेवाली भोली-ली लड़कियाँ हैं। हे राहगीर! तुम हमको मत छेड़ो। री से होकर गुजरनेवाले यात्री! तुम आओ, हमारे खाना खाओ और अपने-अपने काम पर चले जाओ। पाप में मत लपेटो।"

वह गाना बड़े ही मीठे स्वर में स्त्रियाँ नाच-नाचकर रही थीं और पुरुष हाथों में तार का एक बाजा बजा-कर नाच रहे थे। उनका यह संगीत इतना मधुर चित्ताकर्षक था कि अस्वस्थ राहुलजी उठ उन्होंने मुझसे कहा कि इन लोगों को कुछ तिब्बती दे दो।

दूसरे दिन जब हम राहुलजी को गर्म चाय और से साथ में लाई हुई दवा पिलाकर चलने लगे किसीके छींकने की आवाज हमारे कान में पड़ी। पर क्या? अभी मुश्किल से एक घंटा चले होंगे कि मेरा र शैतानी करने लगा और बड़ी तेजी से भागता-ता पास की पहाड़ी पर चढ़ने लगा। उसकी पीठ से कर मैं ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर गिर पड़ा। जब आया तो किसी तरह खच्चर पर सवार होकर आगे। मेरी छाती में बड़ी पीड़ा हो रही थी और साँस लेते ऐसा मालूम होता था कि कोई छुरा भोंक रहा हो। राहुलजी को नहीं मालूम होने दिया कि मैं बुरी तरह हो गया हूँ। मुझको भी आज रात को बड़े जोर का हो आया, और दूसरे दिन मेरे लिए हिलना-डुलना मुश्किल हो गया। परन्तु फिर भी संकोच के कारण तथा राहुलजी की बीमारी के कारण अपना दुख-दर्द कलेजे में छिपाये हुए आगे बढ़ चला। गिरते-पड़ते, कठिनाइयों पर कठिनाइयाँ झेलते हुए हम लोग आगे बढ़े जा रहे थे कि अचानक रास्ते में दूसरी ओर से आते हुए हमें अपने तीसरे साथी अभयसिंह परेरा मिल गये। वे ग्यानसी से हमारे चढ़ने के लिए तीन अच्छे खच्चर खरीद कर हमको लिवाने आ रहे थे। उनसे भेंट करके हम सबों का साहस दुगना हो गया और इन तेज तथा नर्म चालवाले खच्चरों पर सवार होकर सरपट भगाते २२ मई १९३८ को हम तिब्बत के प्रसिद्ध नगर ग्यानसी पहुँच गये जो दक्षिण में तिब्बत का द्वार समझा जाता है।

ग्यानसी लामाओं की एक बड़ी सुन्दर नगरी है। शान्तिपूर्ण नगर की सड़कों के किनारे-किनारे सुन्दर-सुन्दर छोतन और मानी (प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षुओं की समाधियाँ एवं धार्मिक स्मारक) बने हुए हैं। नगर की उत्तरी सीमा पर यहाँका विशाल मठ जगमगा रहा था। पहाड़ियों पर चारों ओर दूर तक चीन की दीवार की भाँति चारदीवारी बनी हुई थी। यहाँ उस समय अँगरेजी सेना की एक छावनी थी और अँगरेजों का एक अस्पताल भी था। राहुलजी को अस्पताल के बड़े डाक्टर के पास ले जाकर दिखाया। जब उनकी दवा आदि का प्रबंध हो गया तब मैंने अपनी छाती में लगी चोट की परीक्षा करवाई। मालूम हुआ कि मेरी छाती की दाहिनी ओर की दो पसलियाँ टूटी पड़ी हैं।

राहुलजी और मैं दोनों अस्वस्थ जरूर थे, परन्तु बहुत प्रसन्न थे। उस दिन वसाखी पूर्णमासी होने के कारण सारे नगर में लामा लोग सज धजकर घूम-घाम रहे थे। वह त्यौहार (उत्सव) का दिन था जिससे तिब्बत-निवासी बड़े प्रसन्न और मग्न हो रहे थे। जहाँ-तहाँ धार्मिक चित्रों की प्रदर्शनियाँ सजी हुई थीं। धार्मिक भजन-गान हो रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि तिब्बती व्यापारियों का धनी नगर होने के कारण यहाँ हर बुद्ध पूर्णमासी को बुद्ध भगवान् का जन्म-दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है, और यह उत्सव एक सप्ताह तक चलता रहता है। हमने दूर से देखा कि बौद्ध मठ के समीप की पहाड़ी पर बड़े मोटे अक्षरों में तिब्बती भाषा में खुदा हुआ था उनके धर्म का यह सर्वप्रिय मंत्र :—

ओम् मनिः पद्म हुँः

(क्रमशः)

कालिदास के नाम पत्र

श्री चंचरीक चतुर्वेदी

कविकुल कंठाभरण,

निश्चय ही तुम अमरावती में निवास कर रहे होगे। इस मर्त्यलोक में जीवित है अभी भी तुम्हारा यशःशरीर। परंपरागत आत्मा की स्थिति सम्बन्धी भारतीय मान्यताओं में हमारा विश्वास है। निश्चय ही रम्भा, तिलोत्तमा तथा विशेषतः मेनका तो तुम पर कृपा रखती ही होगी, क्योंकि शकुन्त पत्र में परित्यक्त उस पुत्री की यशःगाथा तुमने अमर कर दी है। तुम्हें मिलता ही होगा कभी-कभी आमंत्रण अलकाधिराज कुबेर का, जो तुम्हारे मेघ के माध्यम से भेजे गये शापित विरही यक्ष की सन्देशगाथा सुन आर्द्र हृदय हो अपने जन को शापावधि से पूर्व ही मुक्ति दे बैठे थे। वह यक्ष भी सयक्षिणी निश्चय ही तुम्हें आमंत्रित करता होगा अपनी उसी गवाक्षमयी अट्टालिका में जहाँ स्फटिक, मूँगे तथा नीलमयुक्त सोपान वाली बावली अपने स्फूर्तिकारी सलिल से युक्त होगी। यक्षिणी द्वारा सिखायी गयी वह सारिका भी अक्षुण्ण पति मिलनगाथा सहित तुम्हारी प्रशस्ति गा रही होगी। किन्तु तुम्हें इधर भी ध्यान देना होगा, इस भारत वसुंधरा पर, जहाँ निवास करके तुमने निष्कासित अवधि में यक्ष की शरणदा इस भूमि की सुषमा वर्णन अपने स्वर्गीय काव्य में करके अमरता प्राप्त कर ली। तुम्हें तो संभवतः अमरावती में रहकर मालव, दशपुर, विदिशा, प्रयाग, हरद्वार प्रभृति स्थलों की विस्मृति हो गयी होगी, क्योंकि किसी देवांगना के गवाक्ष में जुटी देवगोष्ठी को सुना रहे होगे तुम अज विलाप अथवा देवराज इन्द्र के आग्रह पर शकुंतला विदा क्षण, जिसे सुनते ही जननी मेनका के नेत्र जलपूरित हो उठे होंगे। वहाँपर रहकर साहस न होता होगा तुम्हें माँ शैलाधिराज तनया अपर्णा के नख-शिख वर्णन करने का, जिसके लिखने मात्र से ही हो गया था तुम्हें कुष्ठ जिससे रघुवंश में रामगुण वर्णन करने से अत्यंत कठिनाई से तुम्हें मुक्ति मिली थी। कभी स्मरण आता होगा तुम्हें क्षिप्रा का वह तट? महाकाल के घंटों का निनाद? रक्तिम मीनाक्षी मालविकाएँ? तथा कुंभस्तनी अभिसारिकाओं की गजगति? पता नहीं तुम कहाँ होगे। किन्तु इसी विश्वास पर कि देवलोक में तुम्हारे प्रति कोई ईर्ष्या न होगी और जहाँ भी कहीं तुम्हारा अस्थायी निवास होगा, कोई भी देव तुम तक यह पत्र पहुँचा ही देगा। और होते यदि इस मर्त्यलोक की भारत वसुंधरा या अन्य किसी में तो पा जाते हम तुम्हारे पत्र प्राप्ति का प्रमाण- जिसे आज एकनालेजमेंट ड्यू कहते हैं। तुमसे यह अभ्यर्थना है कि आज आ जाओ केवल एक वार, मर्त्यलोक की भारत भूमि पर! केवल कुछ दिनों लिए अपनी सद्भावना-यात्रा पर, क्योंकि क्षिप्रा पावन तट, महाकाल का मन्दिर, वेत्रवती की यह काम है कि उन्हें अमर बनानेवाले कालिदास पुनः यहाँ जायें केवल एक ही बार, जिनके समक्ष वे प्रगट कर अपनी कृतज्ञता।

उपमा-सम्राट्! यह आग्रह तो तुम्हें मानना ही होगा क्योंकि पौलस्त्य, हिरण्याक्ष, हिडम्ब राक्षस होते हु भी थे तो आर्यपुत्र ही। उसी प्रकार देवलोक निवा हो जाने पर भी तुम्हारी भारतीयता तो रहेगी ही। तुम्हारी भारतीय वाणी में आज भी हम दुनिया को रहे हैं कि हमें अडिग आस्था है पंचशील, स्नेह पारस्परिक प्रेम के सिद्धांत में। तुम्हारे उस शकुन्त के विरह में है विश्वनारी की पीड़ा और यक्ष के वि में है निहित पुरुषमात्र की आकांक्षा। यदि तुम आगमन निमंत्रण को स्वीकार कर लो अनौपचारिक से ही, तो यहाँसे प्रयत्न करके गणराज्य भारत की से देवाधिदेव इन्द्र की सेवा में वहाँसे सद्भावना- निधि-मण्डल भेजने के लिए एक आमंत्रण प्रेषित करा जाय। उस सद्भावना मंडल के साथ तुम यहाँ ही, उस पुष्पक यान से आओगे जिसे अलकाधि तुम्हें अपनी मैत्री के कारण अवश्य ही दे देंगे। विश्वास में निहित है हमारा स्वार्थ, क्योंकि अन्य में आने-जानेवाले यानों का निर्माण अभी यहाँ प्र वस्था में ही है और उनपर परीक्षण किये जा रहे पुष्पक का निरीक्षण करने अमरीका और रूस के निक यहाँ दौड़े आवेंगे और भारत प्रचुर विदेशी अर्जित कर सकेगा।

कविवर! आमंत्रण तो देवराज अवश्य ही स्वी [illegible] तुम्हें तो सहर्ष भेजेंगे ही, क्योंकि अना

१९६३

के समान ही वहाँ भी तुम दुर्लभ रत्न बन चुके होगे और तुम्हें ही नियुक्त किया जायगा इस सद्भावना मण्डल का ता। जब अपने प्रतिनिधि मण्डल का प्रस्तावित कार्यक्रम भेजना तो उसमें यह उल्लेख करना न भूलना कि तुम्हारे ल के सदस्य निरामिष हैं अथवा मांसाहारी तथा उनकी ज्य सामग्री क्या है। उपरोक्त विवरणों को आज की ा में मेनू की संज्ञा दी गयी है। साथ में अपनी दैनिक श्यकताओं का भी उल्लेख करना न भूलना अन्यथा हें अनेक असुविधायें होंगी। तुम्हारे बाद यहाँ ोक नाम का एक सम्राट् हुआ था। उसने करुणा से लित होकर पशुबध बंद कर दिया था। किन्तु उसी नाम पर हमने विदेशों से आनेवाले सम्मानित अतिथियों के लिए एक 'होटल' खोल रखा है जिसमें नाना कार के मांस के आधुनिक व्यंजनों द्वारा अशोक का किया जाता है। यदि आपको आपत्ति न होगी तो आपको उसीमें ठहरावेंगे। आपके समय में 'होटल' थे। आप आकर देखेंगे कि उसके वैभव के सामने पुरी का वैभव झख मारता है।

कालिदास! तुम्हारी रचनायें मैंने पढ़ी हैं! उनके भाषाओं में किये गये अनुवादों की प्रशस्ति भी है। प्रभावित हूँ मैं तुम्हारी लेखनी-शक्ति से। शृंगार रस के संयोग एवं वियोग की विविध अवस्थाओं के वे चित्रण जो तुम्हारी रचनाओं में सहज गति काशित हो उठे। काव्यशास्त्र के नियमानुरूप तो वे, किन्तु आज उन्हें रीति की संज्ञा दे बैठे यहाँके त्यिक इतिहासज्ञ। कवि हृदय होने के कारण तुम्हें मान मैं एक अनधिकार धृष्टता कर बैठा इसके क्षमा करना। मेरा अब तो यह कर्त्तव्य है कि यहाँ परिवर्तित स्थिति एवं लोकाचार से तुम्हें अवगत दूं अन्यथा कहीं अपनी अज्ञानजन्य त्रुटि से तुम्हें ग्लानि न हो और तुम्हें यहाँकी नवप्रचलित अखबार-रूपी मृगया का लक्ष्य न बनना पड़े।

रसिक! देवलोक के राजकीय स्तर पर प्रेषित भावना प्रतिनिधि मण्डल लेकर तुम यहाँ आओगे। पुरानी इन्द्रप्रस्थ नगरी का अर्वाचीन नाम दिल्ली है। राज्याध्यक्ष न होने के कारण उसके राजभवन के, जिसे राष्ट्रपति भवन कहते हैं, तुम द्वारका या अशोक कक्ष में पहुनाई न प्राप्त कर सकोगे। किन्तु प्रतिनिधि मण्डल के नेता होने के कारण तुम्हें राजनगरी दिल्ली की चाणक्य पुरी में नवनिर्मित शीत ताप नियंत्रित अशोका होटल नामक भव्य प्रासाद के एक कक्ष में ठहराया जावेगा। अब हमने संस्कृत उच्चारण को पाश्चात्य ध्वनि प्रणाली में ढाल लिया है। अब हम श्लोक को श्लोका, गुप्त को गुप्ता, शुक्ल को शुक्ला कहते हैं। इसीलिए हमारे सुसंस्कृत नेता अशोक को अशोका कहते हैं। यहाँ पालम नामक विमान-निलय पर पुष्पक से उतरते ही तुम्हारा सम्मान किया जायगा जो राजकीय स्तर पर होगा। और तुम्हारा स्वागत करेंगे भारत सरकार के सांस्कृतिक कार्य-व्यापार के राज्य-मंत्री श्री हुमायुन कोबिर। इसी अवसर पर शासकीय प्रमुख प्रोटोकल, उच्च अधिकारी, संसद सदस्य, विविध राष्ट्रों के कूटनीतिज्ञों के प्रतिनिधि, नगर प्रमुख नूरुद्दीन अहमद तथा विविध संस्थाओं के प्रतिनिधि भी तुम्हारा स्वागत करेंगे। इन्हें आज की भाषा में वी० आई० पी० की संज्ञा दी गयी है। विमान-निलय से ज्योंही तुम राजमार्ग पर तैल संचालित खुले हुए मोटर नामक यान पर श्री हुमायुन कोबिर के साथ स्थान ग्रहण कर प्रयाण करोगे, तो "कालिदास जिन्दाबाद" "हिन्दुस्तानी देवलोकी भाई-भाई" आदि विभिन्न प्रकार के नारों नामक जयघोषों से वातावरण गूँज उठेगा। इसी समय कुछ मनचले व्यक्ति "कालिदास अमर रहें" की ध्वनि से भी स्वागत गान करेंगे। इस अपनी शोभा यात्रा में तुम सजग रहना। तुम पाओगे कि एक ही व्यक्ति ध्वनि-विस्तारक यंत्र नामक यंत्र की सहायता से सहस्रों व्यक्तियों की ध्वनियों से अपनी ध्वनि तीव्र कर सकेगा। यह यंत्र आज के संभाषण युग का अद्वितीय वरदान है। इस अवसर पर तुम्हें एक मामले में विशेष रूप से सजग रहना होगा। विमान-निलय पर पत्रकार संज्ञा वाला एक वर्ग तुम्हें मिलेगा जिनसे वार्तालाप करते समय तुम्हें सतत सचेत रहना पड़ेगा। इनसे सदैव ही मन्द हास्ययुक्त वाणी में चर्चा करना क्योंकि इस युग में प्रशस्ति एवं प्रसिद्धि के ये ही माध्यम हैं। तुम पुष्पक से उतरने के पहले ही उसके सौन्दर्य प्रसाधन कक्ष में दर्पण देखकर अपना उत्तरीय तथा आस्कंध फैली कुंतल केशराशि को भली भाँति व्यवस्थित कर लेना। साथ ही यान से उतरते समय अपनी पादुका को इस ढंग से रखना कि अधिक ध्वनि न हो और फिसल न जाओ। पत्रकार वर्ग तुम्हारे आशुचित्र खींचेगा, विविध प्रश्न पूछेगा और पश्चात् में

समाचारपत्र नामक दैनिक, साप्ताहिक, सान्ध्य, अर्द्ध साप्ताहिक, मासिक पत्रिकाओं में व्यंगात्मक चित्रों सहित विविध विवरणों वाले लेख प्रकाशित करेगा। यद्यपि तब तक तुम्हें भारत की भौतिक उन्नति का कुछ भी ज्ञान न होगा तथापि यदि तुम सद्भावना स्थापित करना चाहते हो तो अपनी अलंकारमयी भाषा में उसकी प्रशंसा करना तथा यह बतलाना कि देवलोक निवासी भारत की उन्नति से बहुत प्रभावित हैं तथा वे भारतीयों से सगे भाई की तरह प्रेम करते हैं।

मनमोहक! जब तुम राजमार्ग पर मोटर नामक यान की सीट नामक स्थान पर बैठे-बैठे ही गतिमान होगे तो पथ के दोनों दिशाओं में सहस्रों की संख्या में नरनारी विविध प्रकार के नारों नामक जयघोषों से सूदूर तक स्वागत करेंगे। इस उपस्थित जनराशि को देख तुम प्रफुल्लित हो उठोगे इसे अपनी लोकप्रियता मान। किन्तु प्रसन्नता की इस स्थिति में आने के पूर्व यह आवश्यक है कि तुम शांत चित्त से यह जान लो कि इतनी जनता यहाँ किस प्रकार आयी। तुम्हारे आगमन के उपलक्ष में अनेक संस्थाओं ने अपने विद्यालय, कार्यालय आदि बन्द किये होंगे। अन्य कर्मचारियों को तुम्हारे दर्शन सुलभ करने के लिए अनेक कार्यालय भी ३ घंटे के लिए बन्द कर दिये गये होंगे। इनके अतिरिक्त निकट तथा सुंदर अंचलों से आये वे पर्यटक भी अपने दिल्ली निवासी संबंधियों के साथ होंगे जिनको ये पर्यटक स्थानाभाव, अर्थाभाव के कारण भारस्वरूप मालूम होते होंगे, और जो पर्यटकों की बाध्य पहुनई करने के लिए यहाँ विवश खड़े होंगे।

सुहृद! जैसे ही तुम अशोका होटल पहुँचोगे तुम्हें इस विशाल भवन को देखकर प्रसन्नता होगी। किन्तु तुम्हें होटलों की कल्पना भी न होगी क्योंकि तुम्हारे युग में यदि कुछ भी था तो यात्रियों के विश्राम हेतु राजाओं, धर्मात्माओं तथा श्रद्धालु नगर सेट्ठियों द्वारा स्थान-स्थान पर बनवायी हुई धर्मशालायें थीं। आज तो यहाँ का समाज धर्म-व्यवस्था वाला नहीं है, वह तो अर्थ-व्यवस्था वाला है। यहाँ तो अब सब सामग्रियों का क्रय-विक्रय होता है। आतिथ्य सत्कार का भी अब क्रय-विक्रय होता है। यहाँ आने पर तुम्हें स्वयं ही कुछ दिनों में इसकी अनुभूति हो जायगी। क्षणिक विश्राम के बाद ही तुम राजघाट जाना, जहाँ हमारे नव-राष्ट्र के निर्माता बापू की समाधि है। यहाँ उपानह या चरण-पादुका त्याग कर उस समाधिस्थल पर नागरी लिपि में लिखे "हे राम" शब्द के निकट ही, पु निर्मित पुष्पमाला सर्मापित कर, दो मिनट मौन धारण क न भूलना। वहाँसे लौटकर तुम मध्याह्न आहार करोगे। अब संभवतः तुम्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना कर पड़ेगा, क्योंकि अपने युग की सर्वमान्य वर्णव्यवस्था के तुम अनुयायी होंगे तथा भोजन के मामले में तुम विश हो, पंक्तिबद्ध हो, चरण प्रक्षालन कर, शुद्ध हो भूमि प बैठकर भोजन करने के अभ्यस्त होंगे। आज तुम्हें अ अपनी शुचिता की मान्यता बदलनी होगी। वस्त्र त उपानह उतारने की कोई आवश्यकता नहीं। भूमि पर उ विश होने की भी अब कोई आवश्यकता नहीं। जहाँ त शुचिता का प्रश्न है, वह केवल स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से है। शुचिता के लिये तुम मृत्तिका के स्थान पर साबु नामक ठोस पदार्थ का प्रयोग करना जिसके निर्माण शुद्ध वनस्पति तेलों के मिश्रण से निर्मित किये जाने के प्रमाण-पत्र होंगे। इस पदार्थ को हाथ में थोड़ा सा ज लेकर घर्षण करना और इस घर्षण से उत्पन्न फेन राशि अपनी करतली को धोना। पश्चात् में कपास त निर्मित प्रक्षालन वस्त्र से, जिसे 'टर्किश टावेल' की संज्ञा है, हाथ पोंछना। फिर मेज के निकट अवस्थित कुर्सी नामक आसन पर विराज कर मेज के ऊपर रखे छोटे-छोटे क वस्त्र में से, जिन्हें आज "नेपकिन" नाम से पुकारा जा है, एक को अपनी युगल जंघाओं पर रखना जिससे भोज करते समय खाद्यान्न के अंश गिर कर तुम्हारे वस्त्रों को गन्दा न करें। इसी कक्ष में एक मंजूषा से विविध प्र की संगीत ध्वनियाँ निकल रही होंगी। निश्चय ही भारतीय आकाशवाणी अथवा सीलोन रेडियो द्वारा प्र रित चलचित्रों के गीतों की ध्वनि होगी, जो पाश्चा रॉक–एण्ड–रोल, रोला रंबा आदि ध्वनि के अनुरूप होंगी उसी समय तुम्हारे निकट 'बैरा' नामक एक व्यक्ति आ जिसे तुम "ब्वॉय" कह कर पुकार सकते हो। यह चीनी मिट्टी के बने हाफ तथा क्वार्टर नामक पात्रों तुम्हारे समक्ष रखे धब्बे रहित धातु अर्थात 'स्टेनलैस स्टी के पात्र में तुम्हारे द्वारा पूर्व में भेजे गये मेनू के अनु सामग्री एक एक करके रखेगा। भोजन-समाप्ति बाद तुम्हारे समक्ष एक लघु पात्र में "कॉफी" नामक पदार्थ आयेगा जिसे तुम निःसंकोच पी जाना। तुम्हें जानकर विस्मय होगा कि यहाँपर नियुक्त

१९६३

विदेशी रसोइयों को प्रति माह ढाई सहस्र रुपये की धन-वेतन के रूप में दी जाती है।

बन्धुवर! संध्या को "विज्ञान भवन" नामक भव्य गार में तुम्हारे सम्मान में एक कार्यक्रम आयोजित या जायगा जिसकी अध्यक्षता संभवतः हमारे राष्ट्र- अथवा प्रधान मंत्री करेंगे। इसमें तुम्हें अनेक स्वागत न एवं प्रशस्ति पत्र भेंट किये जावेंगे। अन्त में किसी कृतिक' संस्था द्वारा तुम्हारी किसी रचना के अंश का नय किया जायगा। इसी बीच तुम्हारे समक्ष टी-छोटी गुम्फित पत्र पुस्तिकायें जिन्हें "ऑटोग्राफ- " कहते हैं, आयेंगी। तुम हस्ताक्षर न करना और य हो अस्वीकार कर देना। इस अभिनय के पश्चात् प्रचलित करतल-ध्वनि परंपरानुसार उपस्थित नर- हर्ष व्यक्त करेंगे। तुम केवल स्मित हो नम्र मुख हो क्योंकि ऐसे समय में विनय ही शोभा देता है।

बन्धु! एक बात की चर्चा करना मैं भूल गया। यह सद्भावना मण्डल कुछ निर्धारित अवधि ही आवेगा। अतः पूर्व ही में तुम्हारे यात्रास्थल त कर लिये जावेंगे। मेरे अनुमान से इनमें उज्ज- नासिक, विदिशा, प्रयाग, हरद्वार तथा काश्मीर होंगे। इनके अतिरिक्त तुम्हारे आगमन पर दक्षिण , महाराष्ट्र तथा बंगभूमि के प्रतिनिधि मण्डल भेंट कर अपने यहाँ आमंत्रित करेंगे। तुम निश्चिन्त होकर ना कि "मैं तो आपके ही अधीन हूँ"। मैं तुम्हें स दिलाता हूँ कि तुम्हारी यात्रा के व्यवस्थापक ही इन कार्यक्रमों को स्वीकार कर लेंगे क्योंकि के अमोघ अस्त्र हड़ताल तथा अनशन का प्रयोग सद्भावना मण्डल के समक्ष देखना वे न चाहेंगे। के समय सबसे पहले तुम्हें उज्जैन जाना होगा, वह विशेष वाष्पचालित यान से जिसकी तुम कल्पना भी न पाओगे कि लौह शलाकाओं पर अत्यंत वेग से दौड़ने यान भी निर्मित किये जा सकते हैं। उज्जैन आगमन तुम्हारा राज्यीय स्वागत होगा। यहाँके राज्यपाल, ख्यमंत्री, नगरप्रमुख, पद्मभूषण सूर्यनारायण व्यास प्रभृति प्रतिष्ठित व्यक्ति तुम्हारी अगवानी करेंगे। तुम्हारे वहाँ आते ही कुछ शिखा सूत्रधारी त्रिपुण्ड मण्डित ब्राह्मण संस्कृत के श्लोकों में अभ्यर्थना करेंगे तथा कुछ मालव कन्यायें तुम्हारी दीपार्चना करेंगी और जलपूरित मंगल-कलश लिये खड़ी रहेंगी। उन्हें देख तुम यह न समझना कि ये मालविकायें स्वतः ही उत्साहित होकर वहाँ उपस्थित हुई हैं। उन्हें इसी कार्य निमित्त वहाँ लाने की व्यवस्था की गयी होगी जिसका पूर्व में परीक्षात्मक-रूप में अभिनय किया गया होगा। तुम महाकाल के अभिषेक में तो अवश्य ही सम्मिलित होगे। उस समय पूर्व के घन-निनादों को लज्जित करने वाले घंट-घोष न हो रहे होंगे, और न तुम्हारे समय के श्रद्धालु भक्तों का विशाल समुदाय ही वहाँ होगा। तुम्हें वहाँ जो भी थोड़े बहुत लोग दिखें उन्हें ही देखकर सन्तोष करना होगा, क्योंकि आज यहाँ के नागर धर्मप्रधान न होकर अर्थप्रधान वृत्ति वाले हो गये हैं और जो धर्म में आस्था रखनेवाली क्षीण भक्तावलि होगी उसे इस युग में कम न समझना। वहाँसे तुम क्षिप्रा के तट पर अवश्य जाना। यह पावन क्षिप्रा आज अति क्षीण तन्वंगी के समान गतिहीन होगी जिसकी प्रवाह वाली दिशा के निम्न भाग की ओर वहाँकी महापालिका द्वारा नगर की अशुद्ध जलवाहिनी नालिका मिला दी होगी जिसके विरुद्ध वहाँकी जनता में एक आन्दोलन चल रहा होगा। तुम विक्रम-कीर्तिमन्दिर के आधारशिला स्थल पर अवश्य जाना जिसका मूल पूर्व शिलान्यास-स्थल कुशल यांत्रिकों के सुझाव से बदल दिया गया है। पद्मभूषण श्री सूर्यनारायण व्यास इस संबंध में अवश्य चर्चा करेंगे। तुम नगर के "वाराणसी पयस्विनी" नामक क्रय स्थल पर अवश्य जाना जिसके स्वामी बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम से एक पात्र भर पिस्तई मसाले का संबल तुम्हें करायेंगे और खेद व्यक्त करेंगे कि उज्जयिनी को शुष्क क्षेत्र घोषित कर दिये जाने के कारण विजया पान से तुम्हारा स्वागत न कराया जा सका। तुम व्यासजी तथा शिक्षामंत्री श्री शर्माजी दोनों से ही प्रेमपूर्वक मिलना न भूलना। इस नगरी में यहाँका प्रदेशीय शासन तुम्हें अपने प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित उज्जयिनी दर्शन तथा मेघदूत अनुवाद भेंट करेगा और इस उत्सव में यहाँके विभागीय फोटोग्राफर नाम के जीव चित्र ले रहे होंगे, तथा "कालिदासक भारत यात्रा वृत्त" चलचित्र तैयार करने में चलचित्रकारों की मंडली व्यस्त रहेगी। तुम इस नगरी में अपनी उन गजगामिनी मालविकाओं के समूहों को न पाओगे जिनका उल्लेख तुमने अपनी रचनाओं में किया है। अब यहाँ मालव का प्राचीन परिधान देखने को न मिलेगा।

अब वहाँ महाराष्ट्र बालिकायें साड़ी नामक चीर वस्त्र अथवा अनेक प्रान्तीय बालिकाएँ सलवार कुरता नामक पंचनदीय परिधान धारण किये मिलेंगी। यहाँकी निकटवर्ती इन्दौर नामक इन्द्रपुरी देखना भी न भूलना जहाँ मजदूर नामक वर्ग एक बड़ी संख्या में वस्त्र मिलों में काम करता तुम्हें मिलेगा। आगे तुम दशपुर जाने की भी इच्छा व्यक्त करोगे। यह नगर अब पूर्व का दशपुर नहीं वरन् आज का मन्दसौर है। वहाँ तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि शकों पर विजय पानेवाले यशोधर्मन् का कीर्ति-स्तंभ खंडित होकर धराशायी हो रहा है। उसके निकट तुम चंचल चर्मण्वती नदी पर गांधी सागर नाम के बँधे बाँध को अवश्य देखना। इस चंचला चंबल को बंधनमयी बनाने में यहाँके द्रविड़ नामक ब्रह्मचारी अमात्य सदा लगनशील रहे हैं। यहाँसे लौटते समय तुम्हें राजा भोज द्वारा निर्मित नगरी मिलेगी, जिसे उसने वेत्रवती पर बाँध बनाकर बसाया था, और जो अब भोपाल नाम से इस मध्यप्रदेश की राजधानी है। वहाँ तुम्हें रात्रि भर विश्राम करना पड़ेगा। विश्राम-हेतु जब इस नगरी के पुल पोख्ता से तुम टी० टी० नगर जाओगे तो विद्युत् प्रकाश से प्रतिबिंबित बड़ा तालाब बहुत ही मनोहारी लगेगा। यहाँ तुम प्रातः ही बिजली का कारखाना देखते हुए विदिशा को प्रस्थान कर जाना। मार्ग में भगवान् तथागत के शिष्यद्वय सारिपुत्त मोग्गलायन के समाधिस्थल साँची-स्तूप अवश्य देखना। यहाँसे तुम शीघ्र ही विदिशा पहुँच जाओगे। तुम्हें इस विदिशा की वर्तमान दशा देखकर अत्यंत ही क्लेश होगा। बड़े-बड़े सार्थवाहों वाली वह भव्य विदिशा अब एक सामान्य नगरी है जहाँ तुम्हें कोई भी आकर्षण न मिलेगा। यहाँपर उदयगिरि की उन गुफाओं की दशा देखकर तुम्हें मर्मान्तिक पीड़ा होगी जिनको उनके गौरवशाली दिनों में देखकर तुम प्रसन्न होते थे। परम भागवत यवन, हेलिओडोरस के विशाल विष्णुमंदिर के अब खँडहर भी न दीखेंगे। केवल उसके गरुड़ध्वज को देखकर, जिसे अपने अतीत के गौरव से अनभिज्ञ वहाँ के निवासी खंभा बाबा कहते हैं, तुम वाष्पयान से प्रयाग के लिए प्रस्थान करना। यहाँ इस नगरी में पावन त्रिवेणी-तट के दर्शन कर वहाँ स्नान अवश्य ही करना क्योंकि वहाँका जल आज भी सुखद है। सरस्वती तो अब लुप्त हो ही गयी है। यहाँ स्नान के पूर्व क्षौर कर्म तथा स्नान के पश्चात् सवा रुपये का गौदान करना न भूलना, नहीं तो श्रद्धालु नापितों एवं प्रयागवालों की तुम पर से आस्था हट जायगी। यहाँसे वाष्ययान से तुम नासिक के लिए प्रस्थान करना जहाँ गोदावरी में स्नान कर यहाँकी प्रसिद्ध टकसाल भी देखना। तुम यहाँसे महाराष्ट्र की महानगरी बंबादेवी के लिए प्रस्थान करोगे जहाँ अप्सरा अणु भट्टी, भारत प्रवेश द्वार के अतिरिक्त किसी प्रसिद्ध सिनेस्टूडियो को देखना न भूलना, जहाँ देश के प्रसिद्ध सिने कलाकार तुमसे भेंट करने अवश्य ही आवेंगे। तुम्हें यहाँसे शीघ्र ही दक्षिण के केरल प्रदेश को प्रस्थान करना है जहाँकी प्रकृति की
सुषमा को देख तुम भारत-नन्दन-कानन कश्मीर को
जाओगे। यहाँकी तन्वंगी श्यामाएँ अपनी कुंतल केश
युक्त आकृति लिये अपनी दीन अवस्था में भी अपने
कलापों में व्यस्त रहेंगी और तुम्हारे आगमन का
कोई भी प्रभाव न पड़ेगा। यहाँसे तुम सेतुबंध
जाना न भूलना जिसका सेतु आज भी सागर में
प्रवेश करता प्रतीत होता है। यहाँसे तुम्हें पुनः
लौटना होगा। यहाँ तुम्हें निश्चय ही आगरा
स्थान देखने की इच्छा व्यक्त करनी चाहिए जहाँ
शासक शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा दिवंगता
महल की स्मृति में वह समाधि-भवन बनाया है
प्रेरणा तुम्हारे अज, पुरुरवा तथा यक्ष को भी न हुई
इसे ताजमहल कहते हैं। यहाँपर तुम्हारे स्वागत में
उत्तर प्रदेश के कोई कनिष्ठ या उपमंत्री सेलखड़ी की
छोटी सी ताजमहल की प्रतिकृति भेंट करेंगे जिसे
रावती के किसी अद्भुतालय में वहाँके देवगणों के
के लिये अवश्य रखना। आगे तुम्हें हरद्वार के लिए
करना पड़ेगा। यह अब पूर्व की तपोभूमि नहीं है,
इसे सैलानियों के स्वर्ग की संज्ञा दी जानी चाहिए।
हरि की पैड़ी पर स्नान कर तुम लक्ष्मण झूला तथा
श्रम अवश्य देखना, जहाँसे श्रद्धालु अपनी बदरिका
यात्रा प्रारंभ करते हैं। तुम दिल्ली वापस आकर वायु
से नभगामी होकर भारत वसुंधरा के नन्दन
कश्मीर को प्रस्थान करोगे, जहाँ पृथ्वी का मानदंड हिम
पर्वत, किरीट के रत्नों के समान शोभायुक्त है।
तुम्हें यह जानकर अत्यंत क्लेश होगा कि उत्तर की
अभेद्य प्राचीर अब आक्रांता चीन से पददलित हो
तथा कैलाश, मानसरोवर जैसे पावन तीर्थ अब
अधीन हैं। सुरक्षा की दृष्टि से तुम सुदूर हिमा
के अंचल में न ले जाये जाओगे। यहाँ तुम श्रीनगर
देख पाओगे। यहाँ तुम डल नामक झील अथवा
नद में किसी कश्मीरी बाला के बजरे में बैठकर
विहार करना, साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से, तथा
गमन की सुविधाहेतु बने बनिहाल नामक भूगत मार्ग
देखना न भूलना। इच्छा करने पर अमरनाथजी जा
हो। यहाँसे तुम पुनः दिल्ली को प्रस्थान करोगे जहाँ
बंगभूमि के शस्यश्यामल प्रदेश की राजनगरी
जाना। यहाँ चौरंगी स्थान पर निर्मित भव्य
विक्टोरिया मैमोरियल, ईडन गार्डन देखकर तुम्हें
होगी। कलकत्ते का वह नभस्पर्शी सेतु भी तुम्हें
नवीन कल्पना करने की प्रेरणा देगा। इस बंगभूमि
गुरुकुल शान्तिनिकेतन को देखना तुम न भूलना
एक तुम्हारे ही एक सहधर्मी ने स्थापित किया था।
यहाँसे पुनः दिल्ली आना होगा। यहाँपर राम
मैदान नामक स्थान अथवा लाल किले में तुम्हारा
जनिक अभिनन्दन होगा जिसमें रजत मंजूषा में
एक प्रशस्ति पत्र यहाँके नगरप्रमुख द्वारा तुम्हें भेंट
जायगा। तुम्हारे सम्मान में भारत शासन के डाक

१९६३

द्वारा चलाये गये टिकट भी भेंट किये जायेंगे। साथ ही संभवतः सांस्कृतिक कार्य विभाग के मंत्री हुमायुन कबिर तुम्हें भेंट करेंगे तुम्हारी भारत यात्रा की चित्रावली। तुम इस अभिनन्दन समारोह का उत्तर कंठ पूरित, वाष्प लोचनयुक्त वाणी में ही देना। बात का स्मरण रखना कि संस्कृत में न बोलो, क्योंकि संस्कृत तो यहाँ मृत भाषा घोषित की जा चुकी है। यदि आंग्ल-भाषा में बोल सकोगे तो समाचारपत्रों में तुम्हें अच्छी 'पब्लिसिटी' मिलेगी और भारत का नेता शासकवर्ग तुम्हें आधुनिक, प्रगतिशील तथा उदार समझकर तुम्हारी भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा। किंतु तुम अंग्रेजी में न बोल सको तो तुम आज की मान्य फ़ारसी शब्द बहुला कृत्रिम हिन्दुस्तानी नामक भाषा में बोलना। यदि कहीं संस्कृतनिष्ठ हिंदी में बोले तो तुम क्रियावादी संकुचित दृष्टिकोण के और हिंदी साम्राज्य-घोषित कर दिये जाओगे। इस भाषण को तुम्हें तैयार करना पड़ेगा। तुम्हारे सचिव या सहायक आकाशवाणी सहायता से चाँदनीचौक की टकसाली भाषा में उसे र करवा लेंगे। तुम्हें उसे केवल पढ़ देना होगा। वश भी कभी आशु भाषण न देना। अन्त में आभार कर अपने पुष्पक यान पर भाव भीनी बिदाई कार करते हुए देवलोक को प्रत्यावर्तित होना।

सहृदय! इस यात्रा में तुम्हें अत्यंत ही कठिनाई गी। मेरे भी लिए यह संभव नहीं कि प्रत्येक सूक्ष्म से विषय पर विस्तार से प्रकाश डाल सकूँ क्योंकि अभी यह पत्र पर्याप्त विस्तृत हो गया है। इस अनाकांक्षित में मेरा भी स्वार्थ है क्योंकि स्वभावतः ही तुम्हारी गियों के मिलन कराने की वृत्ति से प्रेरित हो यक्ष समान मैं भी अपनी प्रिया से मिलन की आकांक्षा हेतु याचना कर रहा हूँ। मेरा यह वियोग शापजन्य , वरन् एक प्रदेशीय शासकीय सेवा में हुए जनहित की टि से मेरे स्थानान्तरण के कारण है। नवीन स्थान में वास एवं आर्थिक समस्या के कारण मेरा प्रिया-विरह या है। युवावस्था के इस विरह और फिर षड्ऋतुओं में कितनी वेदना सह रहा हूँ, यह तुम्हीं जान सकते हो। प्रार्थना है कि इस भारत यात्रा में अपनी सुविधा के लिए सेवाएँ तुम इस राज्य से माँग लो जहाँ बन्दीजन के रूप मैं राज्य के क्रियाकलापों का विस्तृत गान किया करता हूँ। मैं भाषण तैयार करने की कला में निपुण हूँ। ऐसे प्राणी की सेवा की कामना करने से अपने प्रवास में तुम्हें बड़ी सहायता मिलेगी। साथ ही तुम्हारे द्वारा मेरी सेवा की अस्थायी कामना करने पर ही मैं प्रमुख पदों पर स्थित अधिकारियों एवं विधाता-अमात्यों की दृष्टि में आ जाऊँगा, जिससे संभव है मेरी पदोन्नति हो जाय और आर्थिक लाभ के साथ मैं ऐसे स्थान पर पहुँच जाऊँ जहाँ अपने परिवार के साथ तुम्हारा यशगान करता हुआ रह सकूँ। वियोग में संयोग तुमने सदा कराया है। शाकुंतल के दुष्यन्त और शकुन्तला, मेघदूत के यक्ष और यक्षिणी, कुमारसंभव की शैलजा अपर्णा और शिव, रघुवंश के राम और सीता के मिलन के कारक तुम्हीं तो हो! तो फिर मैं एक अकिंचन अप्रसिद्ध व्यक्ति क्यों न तुम्हारे उदार स्वभाव से लाभ उठा अपनी प्रियतमा से मिलन-सुख प्राप्त करूँ? और फिर इससे तो तुम्हारे इस उपदेश "याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा" की और भी प्रसिद्धि होगी, और इस अणुयुग की हिन्दी भाषा की यह रचना भी साहित्याकाश की अमूल्य निधि हो जायगी। स्वर्गीय हरदयाल सिंह आपको 'भाई कालिदास' कहते थे। वे कहते थे हम दोनों समानधर्मा, अतएव भाई हैं। मैं हरदयाल सिंहजी की तरह कवि तो नहीं हूँ किंतु कवि-हृदय तो हूँ ही। और इस युग में कविता फैशन में नहीं है। यह युग गद्य का है। आज जो कविता लिखी जाती है वह भी गद्यनुमा। इससे मैं अपनी प्रतिभा को नकली कविता में बर्बाद न करके केवल गद्य में सीमित किये हुए हूँ। किंतु हूँ मैं भी आपका समानधर्मा ही। मैंने आपसे इतनी बातें कीं। आपके ही शब्दों में कहूँ—

संबन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते
तद्भूतनाथानुग नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥

परिस्थिति के अनुसार इसे सुधार लेना। आपके श्लोक पर कलम चलाने का साहस मैं नहीं कर सकता।

वन्दनीया मातृवत् अग्रजपत्नी विद्योत्तमा भाभी को मेरा नमन कहें, तथा रसिक युगल यक्ष-यक्षिणी को सस्नेह वंदे।

अत्यंत विकलता से पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करता हुआ—

तुम्हारा अनुज, शुभैषी एवं कृपाकांक्षी
चंचरीक

आंगनों के बीच--

हाय ! मैं किसके पाले पड़ गयी !

इधर चार पत्र मिले। चारों से एक ही ध्वनि निकल थी "हाय ! मैं किसके पाले पड़ गयी ! उनसे का कोई इलाज बतलाइये; वरना मैं घुल-घुलकर जाऊँगी।"

चारों ने नाम न बताने की कसम खिलवायी थी यह भी लिखा था कि मेरे पत्रों को छाप न दीजिये उनका संकोच देखकर मुझको लगा कि देखो, यह की ललनायें हैं जो घुल-घुल कर मरना पसन्द करतीं परन्तु अपने घर की लाज नहीं खोलना चाहतीं।

उनके पत्रों की इसी अन्तिम पंक्ति से प्रेरित हो मैं उनको इलाजों की यह सूची बता रही हूँ; वरना लि कर भेज देती, 'अपने घर के किस्से आप जानिये— मतलब ?' पर बहन, जब आपने इलाज पूछा है तो मैं लिखकर कैसे भेज सकती हूँ ?

आपका संकोच व्यर्थ है—यह समस्या केवल आ नहीं है—नारी मात्र की है और न जाने कब से चली रही है। न जाने किस समय से, कितनी स्त्रियाँ, मुस्कराकर, तो कोई रोकर, अपना माथा ठोंककर कह चुकी हैं कि 'हाय ! मैं किसके पाले पड़ गयी !' आपबीती ही नहीं, जगबीती है।

मेरी एक रिश्ते में दादी थीं, जो मायके आयी हुई पति का पत्र आया कि 'फौरन चली आओ।' उत्तर गया 'अभी नहीं आऊँगी।' पति का उत्तर 'अगर नहीं आओगी तो मैं दूसरा ब्याह कर लूँ इधर से जवाब गया 'ब्याह कर लोगे तो लड्डू हमें भी देना।' बिचारी अपने भाई के ब्याह के लिए रुकी हुई एक सप्ताह बाद एक लड्डुओं का पार्सल दादीजी को गया और हमारे लिए ठुनकती, लजाती, एक दूसरी

ली आईं। आपके पति इनसे तो अच्छे ही हैं न? फिर सोच जिए कि आप कितनी भाग्यशाली हैं, वरना लड्डुओं के ल पर कितने दिन गुजर होती! ये दादीजी मुझे नऊ के बाजार में कपड़ा खरीदती मिलीं। माँ ने मेरा चय कराया। एक साथ तपककर बोलीं, अच्छा तो खिल्ला है!' (उस दिन मुझे अपने नाम का नया रण मालूम हुआ।) मैंने तो गोद में देखी थी। मा की जीवनकथा सुनकर मुझको तीन दिन नींद नहीं —यही सोचती रही कि तीन-तीन लड़कों को लेकर और कैसे जिन्दगी काटी होगी? कैसे समय मायके थीं जो लौटकर पति का मुँह ही नहीं देखा! परन्तु देखकर ऐसा लगता है मानों जीवन में दुख क्या है, जानती ही न हों। उस समय कपड़े की दूकान पर भी हम सबसे ज्यादा प्रसन्न दिख रही थीं। सुना, बच्चों पाल-पोसकर, बड़ा करके, अब मस्त होकर भगवत् करती हैं और कहती हैं भला हो भगवान् का जो उस से छुट्टी मिली।

मेरा विवाह होकर आया तब श्वसुरालय में एक फुफेरी मिलीं, जिनके पति उस समय के फैशन के अनुसार मुखी' प्रेमी हो गये थे। बुआजी को जब इसकी ' मिली तब फूफाजी के घर में घुसते ही उन्होंने चिमटे से उनका स्वागत किया और अपने जाने का टीमेटम्' दे दिया। बुआजी अनिन्द्य सुंदरी थीं और पूरे १६ भाई थे। वह उनके १६ भाइयों का भय था उनकी वह अनिन्द्य सुदरता थी जो फूफाजी ने वर्षों क्षमा-याचना की प्रार्थना की। पर बुआजी भला माननेवाली थीं? चूड़ी पहनतीं, बिंदी लगातीं पर को 'मुआ' ही कहकर सम्बोधित करती थीं। जब उन्हें की मृत्यु का समाचार मिला तो उसके एक ही दिन नयी चूड़ियाँ पहनकर आयी थीं। बुड्ढी हो गयी , अपने पोपले गाल हिलाकर बोलीं 'मुये ने मेरे एक का नास मार दिया।' और सारी चूड़ियाँ उसी समय ड़ डालीं। पति के मर जाने का अफसोस उनको नहीं था, पर सुहाग-चिह्न तोड़ने का दुख उनकी आँखों में स्पष्ट था।

यह तो अपना व्यक्तित्व है, किसीको पति से अधिक सुहाग-चिह्न प्रिय हैं, किसीको लड्डू—आप भी सोच लें कि आपको क्या प्रिय है। अगर समस्या इन्हींसे हल हो जाय तो बड़ा अच्छा। परन्तु यदि मामला टेढ़ा है, और बात ज्यादा संगीन है, तो उसका पुराना वैद्यक इलाज है रामायण व गीता व अन्य किसी धर्मग्रन्थ का पाठ। यह इलाज पुरानी पद्धति का होता है और इसलिए काढ़े के रूप में घोंट-घोंटकर थोड़ा-थोड़ा दिया जाता है। देर तक पकता है, और रस जरा-सा निकलता है और उसको नियमित रूप से बहुत दिनों तक पीना पड़ता है। यही हाल इस पुरानी पद्धति के पाठ रूपी इलाज का है—बहुत पढ़ो तब जरा सा तथ्य हाथ लगता है, और नियमित रूप से कितने ही दिनों तक इसका सेवन करना होता है।

आधुनिक डाक्टरी इलाज है, सीधे कोर्ट में नालिश कर दो। वकील की चिट्ठी पहुँची नहीं कि पैन्सिलीन का सा काम हो गया और कहीं अगर कोर्ट का सम्मन पहुँच गया तो सोच लो सीधा 'अक्रेमाइसीन' का इंजेक्शन लग गया। रोगी तत्काल रोग-मुक्त ही नहीं हो जाता—सीधा भागा-भागा पत्नी के चरणों में पहुँच जाता है—फिर बाद में 'रिऐक्शन'—प्रतिक्रिया जो आजकल की दवाओं की हुआ करती है—भले ही हुआ करे।

लेकिन यदि आप यूनानी इलाज की कायल हैं और हकीमों में विश्वास रखती हैं तो उसका भी नुस्खा मौजूद है। आप मायके चली जायँ और वहाँसे एक दूसरे की नब्ज टटोलें। अगर उनकी नब्ज की चाल तेज है तो आप रुकी रहें वरना आपको खतरा है। अगर आपकी नब्ज तेज है तो वे रुके रहें वरना उनको खतरा है। और जब दोनों की नब्ज एकसार हो तो समझ लीजिए कि खतरे का चिह्न उड़ गया है और सुलह के लिए मैदान साफ है।

अब आप अपने व्यक्तित्व एवं परिस्थिति के अनुसार अपना इलाज खोज लें। मेरी अपनी राय थी कि यदि आप वकील की बेटी, पोती, धेवती आदि हैं तो आधुनिक इलाज भले ही अपना लें, औरों को तो वह महँगा पड़ेगा।

अगर गोद में छोटा बच्चा है तो यूनानी इलाज ठीक रहेगा क्योंकि इधर आप नब्ज टटोलती रहेंगी उधर बच्चा बड़ा होता रहेगा। क्या पता इसी बीच में नब्ज एकसार हो जाय!

परन्तु यदि आप वास्तव में दुखी हैं—सोचती हों कि घर तो मुझे आना ही है—वे जैसे भी हों, तो आप पुराना वैद्यक इलाज करें जो रोग जड़ ही से निकल जाय। जिस प्रकार प्रत्येक पथ्य और औषधि का सेवन का एक समय

होता है उसी प्रकार इसके सेवन का भी एक समय है। यदि लाभ तत्काल और शत-प्रतिशत चाहती हों तो इस धर्मग्रन्थ-पाठ का सेवन समय है जब पति दफ्तर से आया हो, या जा रहा हो। उससे भी अधिक लाभदायक होता है जब उसके भोजन का समय हो। दो-चार रोज तो और उद्विग्न रूप दिखायी देगा पर तीसरे रोज जिस प्रकार आज्ञाकारी हनूमानजी सीताजी के सामने अशोक वाटिका में हाथ जोड़कर खड़े हो गये थे, उसी प्रकार आँख उठाते ही आप देखेंगी कि आपके पतिदेव परम दीन स्वरूप में, नत मस्तक आपके सामने खड़े हैं और कह रहे हैं, 'देवि ! क्षमा करो, त्राहि माम्, त्राहि माम्––मुझे भोजन दो।' ऐसा ही इन धर्मग्रन्थों के पाठ का फल है।

हाँ ! एक और इलाज निकला है वह है होमियोपैथी का। लेकिन वह दिन प्रति दिन के चुटपुट के लिए ठीक रहता है––जैसा 'सिम्पटम' (रोग लक्षण) देखा, वैसी ही इधर से 'पोटैन्सी' बढ़ा दी। उधर मामला चढ़ा हुआ देखा तो इधर से जवाब में चरपरेपन की 'पोटन्सी' गयी और उधर से मामला ढीला पड़ा तो अपना भी रोज के '6 ×' पर आ गये, या आवश्यकता के अनु खाली 'शुगर' की ही 8 पाउडर देने लगे। यह इलाज फिर अभ्यास से ही सिद्ध होता है––धीरे-धीरे आप पारंगत हो जायेंगी।

पड़ोसिन खिड़की में से झाँक कर यह अभी-अभी गयी हैं "जानती हो ! जानती हो ! क्या किया दम्मों ने जाने कौन ऐसी मरम्मत करी दोनों की कि वे तो घर जा बेहोश हो गयीं और मियाँजी टूटा पैर लेकर पड़े हैं ! भी तो तंग आ गयी होंगी ऐसे मर्दुये से ! क्या करती ? पर किया खूब !" खिड़की फिर पहले की तरह हो गयी––मैं कहती हूँ ठीक ही तो है ! इलाज में चीर-भी चलती है––लेकिन हाँ जब कोई और चारा न जाय ! तब ! अगर आप सर्जरी को ही अन्तिम निर्णय समझती हैं तो फिर क्या है ! उठाइये·····

घर-गृहस्थी––

नन्हें मुन्नों के कपड़े

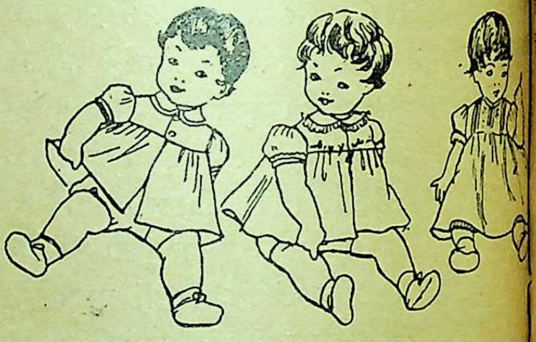

नवजात शिशु के दो-चार वस्त्र सुन्दरता का ध्यान रखनेवाली नारियाँ पैरों से जरा लम्बे बना लेती हैं। ये वस्त्र पीछे से छः सात इञ्च तक तो टेप (तनी) या बटन से बन्द रहते हैं और बाकी खुले रहते हैं।

बैठने की आयु के होने पर उनके वस्त्र घुटनों के ऊपर तक के कर दिये जाते हैं जिससे कि घुटने आदि चलने वे घुटनों के नीचे न आ फँसें। ये सभी वस्त्र या तो आगे पूरे खुले हैं या पीछे से––जिससे कि पहनाने उतारने सुविधा बनी रहे। परन्तु इसका ध्यान रहे कि अन्दर बनयायन बहुधा वह प्रयोग में लायी जाती हैं जो छाती दुहरी आती हैं। पहला सिरा तनी से बाँयीं ओर बाँध गया फिर उसके ऊपर से दाहिना सिरा दाईं ओर। छाती में ठंड लगने का डर नहीं रहता।

नीचे के जाँघिये उसी कपड़े के बनायें जिसकी फ़ाक है। वे सुविधापूर्वक जल्दी-जल्दी बदले जा सकें कारण उन्हें एक ओर या दोनों ओर से पूर्णतः खुला और पहनाते समय बटनों से बन्द किया जा सके।

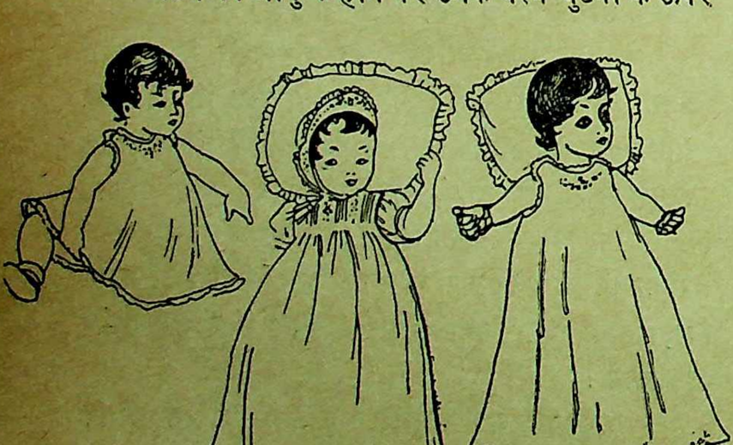

१९६३

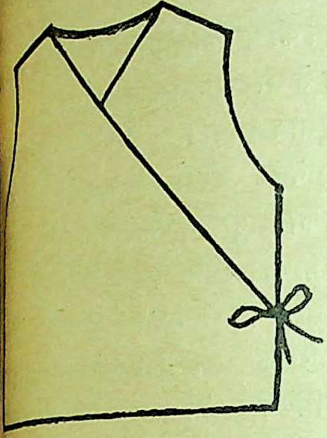

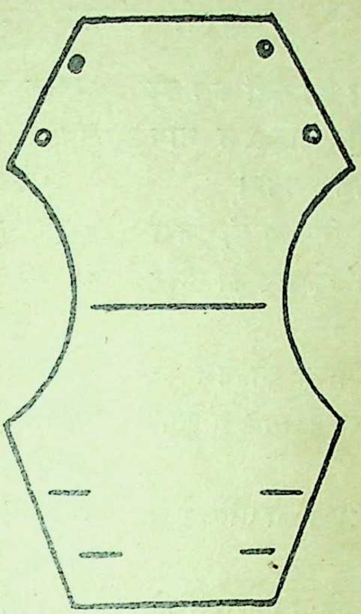

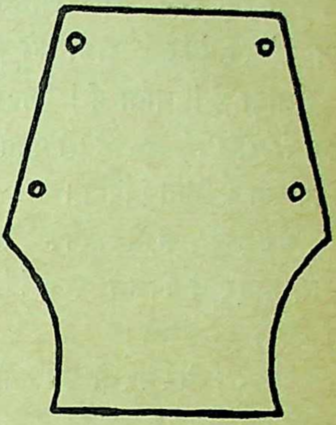

बहुत छोटे बच्चों को अन्य वस्त्र गीला करने से बचाने …तौलिये के कपड़े को जाँघिये के रूप में या तिकोना …र उपयोग में लाया जाता है—इसका ध्यान रहे कि …ये वस्त्र छोटे न कट जायँ और उनको सुदृढ़ रखने के …जो पिनें उपयोग में लाई जायें वे साधारण पिनें न हों वरन् 'नैपी पिन' ही हों जो विशेष तौर से इसी उपयोग के लिए दुकानों पर मिलती हैं। धोने की सुविधा के लिए पहनाते समय इनके अन्दर मलमल के टुकड़े लगा दिये जाते हैं जो सुविधा के अनुसार अलग धोने को दे दिये जाते हैं।

दूर अभी कजरारे बादल

श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

बीत गया मधुमास रे !
मुरझायीं कलियाँ, फूलों का यौवन पड़ा उदास रे !
बीत गया मधुमास रे !
कितने जीवन के घट खाली,
है उदास उपवन में माली,
किरणों का शर चला रहा है तमक-तमक आकाश रे !
बीत गया मधुमास रे !

भटक रहा मरु में प्यासा मन,
तोड़ कर्म-संयम का बंधन,
धू-धू आग लगी सागर में, चंचल ग्रीष्म-बतास रे !
बीत गया मधुमास रे !
मूर्च्छित प्रकृति, चेतना पागल,
दूर अभी कजरारे बादल,
दूर्वासा के शाप-ताप सी बढ़ी विश्व की प्यास रे !
बीत गया मधुमास रे !

'बस, अभी आता हूँ !'

श्रीमती शीला शर्मा

'अरे, सुनते हो ! नाश्ता लगा रक्खा है। कहीं कल की तरह बदन पोंछते-पोंछते ही बाहर न भाग जाना !' रसोईघर से राधा की आवाज आयी।

'आता हूँ ! आता हूँ ! नहाकर निकला हूँ, जरा बदन तो पोंछ लूँ—कपड़े तो पहन लूँ।' किशोर का उत्तर ड्रेसिंग रूम से सुनाई दिया।

'मैंने कहा, कपड़े पहनकर सीधे नाश्ते की मेज पर आना, बाहर न निकल जाना !' राधा बरामदे में कुर्सी पर बैठती हुई बोली।

'तुम तो सिर पर ही चढ़ गयीं।' बालों को तौलिये से रगड़ते हुए किशोर बोला।

'सिर पर न चढ़ूँ तो क्या करूँ ? बिना नाश्ता किये न जाने दूँगी। कपड़े पहन कर तो तुम ऐसे मुस्तैद हो जाते हो जैसे घोड़ा जीन से कसे जाने पर टाप देने लगता है। अच्छी नौकरी है जो सबेरे का एक गिलास दूध चैन से पीना हराम हो गया है !'

टन . . . टन . . . टन . . .

'हुजूर ! टेलीफोन है !' चपरासी टेलीफोन लेकर आया।

'किसका फोन है ?' बालों पर तौलिया रगड़ते हुए किशोर ने पूछा।

'हजूर अम० अल० ए० साहब का।'

'कौन से अैम० एल० ए० साहब का ?'

'हजूर, मेवालाल अम० एल० ए० का। बहुत बिगड़ रहे हैं। कहते हैं जल्दी क्यों नहीं देता।'

बालों में कंघा खोंसे किशोर ने टेलीफोन पकड़ा—'कहिये मेवालालजी ! क्या बात है ?'

'बात यह है कि बड़ी ज्यादती हो रही है। आपको कुछ पता नहीं। तहलका मचा हुआ है।'

'क्या हो रहा है ? कुछ बताइये तो !'

'लेडी डाक्टरों के ऊपर बड़ा अन्याय हो रहा है !'

'क्या अन्याय हो रहा है ? साफ-साफ बताइये।'

'लेडी डाक्टर आशा का सामान निकालकर फेंका जा रहा है। आदमी खड़े हुए हैं। क्या अनर्थ है ?'

'आपको पता है कि वह तीन महीने से अनधिकृत रूप से उस मकान में रह रही हैं जिसमें कि अब नई लेडी डाक्टर को रहना चाहिए। आखिर कब तक मुहल जाय ?'

'पन्द्रह दिन की मुहलत दीजिए, और इतने में मिनि साहब के पास से आपके पास फोन आ जायेगा।' टेली पर उधर से सुझाव आया।

'सुनिये सुनिये ! परसों वहाँ एक केस हो चुका नई डाक्टरिन को बाहर से आना पड़ा, और वे सम पहुँच नहीं सकीं, और इसीमें एक जच्चा औरत मर ग किससे जवाब तलब किया जाय ? लेडी डाक्टर के क्वा इसीलिए बने हैं कि वे अस्पताल के पास रहें। मुहलत नहीं मिलेगी—'

'आप मुहलत नहीं देंगे ?'

'नहीं दूँगा—पहले जिनके लिए अस्पताल बने उनका ख्याल किया जाय या . . .'

'आप सोच लीजिए ! वरना . . .'

'वरना क्या ?'

'मिनिस्टर साहब तक बात पहुँचेगी . . .'

'पहुँच जाय—मैं भी पहुँचा दूँगा . . .' किशोर टेलीफोन पटक दिया।

'हाय राम ! यह फोन कहाँसे आ गया ?' रा कुढ़कर बोली—'अब आओ न, दूध पी लो ! टोस्ट ठंडा हो गया।'

'तुम भी मुसीबत कर मारती हो ! कह रहा हूँ आता हूँ। ज़रा कपड़े पहन लूँ—' और किशोर कमरे ओर बढ़ गया।

टेलीफोन की घंटी फिर बजी।

'साहब टेलीफोन है।' चपरासी फिर पहुँचा।

'किसका ?' अन्दर से आवाज आई।

'मिम्बर साहब का।'

'नाम बताओ।'

'मुसद्दीलाल मिम्बर कह रहे हैं कि जल्दी है।'

राधा फिर बड़बड़ाई 'ऐसी क्या मुसीबत है फिर फोन आ गया—नाश्ता करके ही फोन लेते ?'

'सच में तुम भी हद कर देती हो ! कह दिया अभी आ रहा हूँ। नाश्ता कहीं भागा जा रहा है

१९६३

'कहिए ? क्या बात आ गयी सबेरे-सबेरे ?' तौलिया
ठे ही किशोर ने रिसीवर मुँह से लगाया।

'यों बात थी जी, कि जो आप सड़क बनवा रहे हो
जी, सो उसका जो 'मैनहोल' है न जी--सो उसीकी
बत बात करनी थी जी।'

किशोर ने खीजकर कहा 'क्या बात करनी है उसकी
बत ?'

'उसको खोदने के लिए आदमी खड़े हैं जी--सुनते
हैं जी।' उधर से उत्तर आया।

'आप उन्हें क्या सुना रहे हैं ? बड़ी मुश्किल है ! पहले
लोग शोर मचाते हैं कि काम नहीं होता, काम नहीं
ता। जब काम करने को आदमी आते हैं, तो आप
उनको काम नहीं करने देते--फिर काम कैसे हो ?'

'मैं यूँ कहूँ था जी कि अपने लाला बद्रीप्रसादजी हैं
उनको तो आप जानो ही हो न, बड़े नामी लोग हैं अपने
र के जी। सो उनके दरवाजे पर पड़े हैं मैनहोल सो..'

'सो तो गलत है।' खीजकर किशोर बोला। 'मैंने
ी भांति देख लिया है कि किसीके दरवाजे पर मैनहोल
पड़े। गलत बात क्यों कह रहे हैं आप ?'

'गलत बात यों ना है जी कि दरवाजे से दस गज दूर
पड़े है। पै काम काज तो लागो ही रहैगो वा पर, सो
ने-जाने में आप जानो ही हैं जी कि दिक्कत पड़े ही है।'

'सुनिये ! ये मैनहोल मैं तीन बार बदल चुका हूँ।
स सड़क पर सब माने-जाने लोग रहेंगे उस सड़क पर
होल' नहीं बनेगा क्या ? जिधर को खसकाओ उधर
कोई माना-जाना आदमी निकल आता है !'

'क्या सो मैनहोल नहीं बनेगा जी ? अच्छा सो एक
त जान रखियो जी कि अपने जो मिनस्टर हैं न--क्या
हैं, मैं नाम भूल गया जी सो इनके साले हैं। बात
नी नहीं जी।' उधर से घुड़की आयी।

'ना दबे !' किशोर ने फोन पटक दिया और कमरे
में चला गया।

कपड़े पहनकर बाहर निकला तो देखा राधा हाथ
में तश्तरी लिये उनकी ओर देख रही है। किशोर
माफी माँगता सा बोला 'अभी आया, जरा दफ्तर की
क पर झांक आऊँ, कोई जरूरी कागज न आया हो।
स अभी आया एक मिनिट में !' और किशोर दफ्तर
में घुस गया।

'ओ हो ! मैं तो भूल ही गया था। आज तो
बड़ी जरूरी मीटिंग है। टाइम भी हो गया...'

'अभी तो बहुत टाइम है।' राधा ने आगे बढ़ते
हुए कहा।

'रेलवे क्रासिंग बन्द हो गयी जो रास्ते की ! मैंने कहा न, आधा घंटा लगेगा मीटिंग में बस...' कार स्टार्ट हो गयी और किशोर चला गया।

× × ×

चार बजे शाम को किशोर के दर्शन हुए।

'चाय का प्याला मिलेगा' आते ही उसने पूछा।

'सुबह का नाश्ता रक्खा है। वहीं मिलेगा।' किशोर चुप।

'खाना खाया था ?' राधा ने तमककर पूछा।

"अगर एक दिन नहीं खाया तो क्या दुबला हो जाऊँगा ? उपवास से कोई नहीं मरता। अच्छा; सुनो वह जो मकान मिल रहा था न शिवप्रसाद को ? वह अब उसे नहीं मिलेगा।'

'क्यों ?'

'ऐसी ही बात है ?'

'बताओ तो क्या बात है ? कितने परेशान हो रहे हैं विचारे मकान के लिए ! बदली पर यहाँ आये हुए चार महीने हो गये हैं। बच्चे कहीं पड़े हैं, खुद कहीं पड़े हैं। बीमार अलग हैं--बताओ क्या बात है ?'

'बात यह है कि एक साहब यहाँ आये हैं जिन्होंने एक तोप की भतीजी से शादी कर ली है। अब मकान उनको मिले कि इन शिवप्रसाद को मिले जिनकी रिश्तेदारी में दूर दराज तक कोई तोप नहीं है ?'

"कौन सी तोप ?" राधा ने पूछा।

"कलक्टर साहेब कह रहे थे कि....की भतीजी हैं। खुद ऊपर से फोन आया है। अब मैं क्या करूँ ? कैसे टालूँ ? बिचारा शिब्बू इतने दिन कष्ट में रहा, थोड़ा और रह लेगा।"

× × ×

'अब आप यह क्या कर रही हैं ? कहानी लिख रही हैं ? लिखिए साहब, आप स्वतंत्र भारत की नागरिक हैं। आपको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। आपको लेख और कहानी लिखने की छूट है। लेख लिखिए, कहानियाँ लिखिए। यहाँ तो मरने की भी छुट्टी नहीं है।' किशोर लिखे हुए पन्नों की ओर झाँकता हुआ बोला।

'कहानी कौन लिख रहा है ? डायरी के पन्ने लिख रही हूँ।' तुम्हारी 'बस, अभी आया !' की गाथा है रोज की।' राधा कलम घसीटते घसीटते बोली।

'अरे ! तोबा करो ! यह क्या लिख मारा तुमने ? नौकरी से निकलवाओगी क्या मुझको ? जो चार रोटियाँ महँगाई में मिलती हैं--सो भी बन्द कराओगी क्या ? भगवान्, ऐसी बीवी किसीको न दे !'

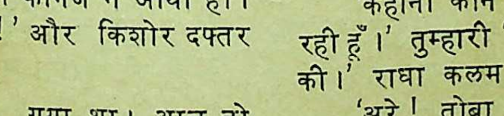

आवश्यकता है—व्यवहार-कुशल की

श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"

नवम्बर मास में पूरक बजट के कारण काम इतना बढ़ गया था कि किसनलाल को बहुत सी फाइलें घर लानी पड़ती थीं। वह अधीक्षण-अभियन्ता के कार्यालय का संगणक था। (हिन्दी नामकरण से पहले यही पद सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर का कम्प्यूटर कहा जाता था।) एक दिन सबेरे अपनी खटिया पर बैठे वह पंचवर्षीय योजना के अधीन बननेवाली बिल्डिंगों संबंधी व्यय के औसत, पूर्वानुमानित, संशोधित और शेष धनराशियों के आँकड़ों पर जुटा था कि उसीके दफ्तर का बाबू मदनलाल ताजा अंगरेजी दैनिक पत्र लेकर आ खड़ा हुआ। किसनलाल को नमस्कार करके बोला—"कम्प्यूटर साहब, एक विज्ञापन है बिलकुल आपके ही मतलब का।"

किसनलाल अपने काम में दक्ष था। वह स्वयं परिश्रमी था और अपने अधीन काम करनेवालों से भी काम लेना जानता था। उसके इंजीनियर उससे प्रसन्न थे लेकिन वह अपनी नौकरी से ऊब चुका था। उस दफ्तर में उसकी नियुक्ति किसी शिकायत के कारण हुई थी। उसे यह बात खटकती थी कि यदि उस झूठी शिकायत की ठीक जाँच हुई होती तो ऐसा न होता और वह भी अपने और साथियों की भाँति सहायक इंजीनियर हो गया होता। हालाँकि उसके वेतन में कमी नहीं हुई थी फिर भी कहाँ एक इंजीनियर की सैर-सपाटे की मुक्त जिन्दगी और कहाँ दफ्तर की दिमाग को चाट जानेवाली वह कम्प्यूटरी। इतना होने पर भी वह अपनी व्यथा को अपने मातहतों पर प्रगट नहीं करता था। रात दिन कसकर काम करता था कि कभी न कभी उसके अफसर उसे फिर इंजीनियर बना ही देंगे।

जब मदनलाल ने मोटे टाइप में छपे उस विज्ञापन को उसके सामने रखा तो उसने फाइल को अनिच्छा से एक ओर सरकाकर उसे पढ़ा। विज्ञापन था—

"एक प्रसिद्ध विदेशी औद्योगिक संस्था को अपने पश्चिम भारत के कारखानों के लिए जनरल मैनेजर की आवश्यकता है। वेतन होगा दो हजार रुपए प्रतिमास। महँगाई भत्ता वेतन का १० प्रतिशत तथा आवास की सुविधाएँ भी दी जायेंगी। प्रार्थी को इंजीनियरिंग और कम्पनी कानून में दक्षता प्राप्त होनी चाहिए। उसे किसी बड़े कारखाने या सरकारी कार्यालय में काम करने कम से कम दस वर्ष का अनुभव होना चाहिए। ३५ वर्ष से अधिक न हो तथा वह दूर-दूर यात्राएँ में समर्थ हो। प्रार्थियों को विश्वास दिलाया जाता कि उनकी अर्जियाँ गोपनीय रखी जायेंगी। अर्जी साथ अपना नया फोटोग्राफ तथा अपने अनुभव प्रशिक्षण के प्रमाण-पत्र भेजने आवश्यक हैं। अर्जियों छानबीन के बाद चुने गये कुछ प्रार्थियों को साक्षात् के लिए बुलाया जायेगा। इसके लिए उन्हें उचित व्यय मिलेगा।" अर्जी भेजने के लिए पोस्टबाक्स नम्बर दिया गया था।

खटिया के एक कोने पर बैठता हुआ मदन बोला—"इन विदेशी कम्पनियों की नौकरी आई० ए० एस०—पी० सी० एस० जैसी नौकरी से भी अच्छी हो है। इस कम्पनी को तो, मुझे लगता है, आपके ही अनुभव, आपकी ही शिक्षा और आपकी ही आयु के अधिकारी की आवश्यकता है।"

कम्प्यूटर को विज्ञापन को दुबारा पढ़ते देख मदनलाल कहता गया—"इधर नौकरी से रिटायर होने अवधि के तीन साल बढ़ जाने से जब निकट भविष्य आपकी पदोन्नति संभव नहीं है तो उसी साढ़े तीन में खटना बेकार है। कौन जाने आप इस कम्पनी नौकरी में ले लिये जायें। क्यों न एक अर्जी भेज दीजिए।"

मदनलाल का इतने सबेरे आकर उस बात को छेड़ और इस प्रकार उसके काम में बाधा डालना उसे तनि भी अच्छा नहीं लगा था। वह मन ही मन सोच रहा कि इसी मदनलाल के सामने मैं कई बार कह चुका कि न मुझे रुपये-पैसे का लालच है और न मैं अपने से ही जी चुराना चाहता हूँ फिर भी इसने यह कैसे लिया कि मैं अपने इस पद से संतुष्ट नहीं हूँ। मैं आदर्श जीवन की बात इन लोगों से करता हूँ उस इस व्यक्ति पर, ज्ञात होता है, कुछ असर ही हुआ है।

फाइल की ओर फिर लपकते हुए उसने धीरे कहा—"परमात्मा की कृपा से अब तक मेरी नौ चैन से कटी है अब आगे भी कट जायेगी। मुझे न

१९६३

अभिलाषा है न महत्त्वाकांक्षा। मेरा विवेक सदा उज्ज्वल रहे, मैं किसीसे ईर्ष्या न करूँ। मैं पूर्ण रूप से सुखी हूँ। मुझे अब और कुछ भी नहीं चाहिए।"

किसनलाल को फिर उसी कोरे आदर्शवाद की बातें करते देख मदनलाल उठ खड़ा हुआ और जाते-जाते कहा—"तो जैसी आपकी इच्छा, मैं अखबार रखे जा रहा हूँ। एक बार आप मेरी बात पर फिर गौर कर लीजिएगा।"

उसके चले जाने पर किसनलाल फिर उन्हीं आँकड़ों में जुट गया। किन्तु दो मिनट बाद उसको रबर लेकर अपनी लिखी हुई संख्याएँ मिटानी पड़ीं। वह वास्तविक व्यय के आँकड़ों को अनुमानित व्यय के आँकड़ों से जोड़ रहा था।

उसने दीर्घ निश्वास लेकर फाइल को सरकाकर उस अखबार पर नजर डाली और वह उसमें प्रकाशित समाचारों पर सरसरी नजर डालता हुआ फिर उसी विज्ञापन पर आकर अटक गया। उसने अपने ही से तर्क किया मदनलाल ठीक ही तो कहता था। अर्जी तो गोपनीय रखी जा सकती ही। न किसी से अनुमति लेनी है और न किसीकी खुशामद करनी है। दराज में अपना पास-पोर्ट साइज का नया फोटो भी है ही। पुराने सार्टिफिकेटों की प्रतियाँ भी भरी पड़ी हैं। बजट की फाइल को बन्द करके उसने सादे कागज पर अर्जी लिख ली। लिफाफा बन्द करते समय अपने उन प्रमाण-पत्रों को देखकर उसे अचानक विचार आया कि शायद इस नियुक्ति के लिए उस जैसे उपयुक्त लोग कम ही निकलेंगे। अर्जी भेजने के दो-तीन दिन बाद तक यह भावना बनी रही और वह यही सोचता रहा कि मदनलाल को वह उसके उस सुझाव के लिए धन्यवाद देगा किन्तु नये साल के आते ही काम में इतनी भीड़ सी आ गयी कि वह अपनी उस अर्जी के विषय में बिलकुल भूल गया।

जनवरी मास के दूसरे सप्ताह में एक दिन घर लौटने पर उसे चिकने कागज पर छपा बढ़िया लेटर हैड वाला करीने से टाइप किया पत्र मिला। वह था——

"प्रिय श्री किशनलाल,

हमें आपको यह सूचित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि हमारे उस विज्ञापन के उत्तर में आवेदन-पत्र भेजने वाले दो हजार व्यक्तियों में से कम्पनी ने जिन दो सौ चुने हुए उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाने का निश्चय किया है उनमें से आप भी एक हैं। आप बीस जनवरी को हमारे मुख्य कार्यालय में अपने मूल प्रमाण-पत्रों सहित आने का कष्ट करें। आपको अपने शहर से यहाँ तक आने का रेल का पहले दर्जे का किराया इन्टरव्यू के तुरन्त ही बाद दे दिया जायेगा। यदि आप उसमें सफल हो गये तो आपको एक मास के भीतर अपने पद का भार सँभालना होगा।"

उस पत्र की प्राप्ति के उपरान्त किसनलाल अपने बारे में नये दृष्टिकोण से सोचने लगा कि शायद दुनिया में उसके लिए भी सुख और समृद्धि का जीवन संभव है। उस पत्र को जितनी बार वह पढ़ता उसकी आशा उतनी ही बलवती होती जाती। जैसे-जैसे साक्षात्कार के लिए निर्धारित दिन समीप आता गया उसका उत्साह बढ़ता गया। वह मदनलाल को उसके प्रस्ताव के लिए धन्यवाद देने का निश्चय करता किन्तु फिर यह सोचकर चुप रह जाता कि सारा मामला अभी तक गोपनीय है। यह सब शिष्टाचार वह नियुक्ति के बाद मिलनेवाले एक मास की अवधि में भी बरत लेगा।

जनवरी के तीसरे सप्ताह एक दिन दो सौ परीक्षार्थी उस कारखाने के विशाल कार्यालय में एकत्र हुए। उनकी व्यावसायिक बुद्धि और योग्यता की जाँच के लिए छः घंटे की परीक्षा निर्धारित की गयी थी। तीन मनोवैज्ञानिकों ने एलेक्ट्रोनिक-मशीनों की सहायता से उम्मीदवारों की शैक्षिक, शारीरिक, बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक योग्यताओं के परिणाम विशेष प्रकार के छिद्रित पत्रकों और पंच-कार्डों पर अंकित किये। फिर उन कार्डों की जाँच होने लगी कि किसे सबसे अधिक अंक मिले हैं।

किसनलाल प्रसन्न था। उसने सभी प्रश्नपत्र बड़ी सावधानी से हल किये थे। जब वह अन्य उम्मीदवारों के साथ शाम के पाँच बजे परिणाम के घोषित होने की प्रतीक्षा में बड़े से हाल में गया तो सोचने लगा कि जब वह हाई स्कूल में पढ़ता था तो उस वर्ष बोर्ड की परीक्षा में सारे प्रदेश में उसने चौथा स्थान प्राप्त किया था। दो वर्ष बाद इन्टरमीडिएट की परीक्षा में उसका नम्बर तीसरा था। पहली परीक्षा में साठ हजार विद्यार्थियों में चौथा और दूसरी में बीस हजार में वह तीसरा आ गया था तो अब दो सौ परीक्षार्थियों में क्या वह पहला नहीं आ सकता ?

किन्तु अपने प्रतिद्वन्द्वियों की ओर दृष्टिपात करने पर उसका दिल बैठने लगता था। वहाँ उससे भी अधिक चुस्त और उससे भी बढ़िया अँगरेजी और हिन्दी बोलनेवाले बीसियों युवक थे। वह सोचता कि विद्यार्थी जीवन का वह मुकाबला था एक वर्ष की परीक्षा का। यहाँ ये दस-बारह परीक्षाओं के चुने हुए आवेदक हैं।

उन परीक्षाओं के आरंभ होने से पहले उसी सबेरे मुख्य परीक्षक ने कहा था—"हम अनूठी सूझबूझ और बिरली व्यावसायिक बुद्धि के नवयुवक को अपने कारखाने का जनरल मैनेजर बनाना चाहते हैं। वह अपने मातहतों के प्रति सहिष्णु हो तथा उनमें विश्वास-भाजनता उत्पन्न करने की क्षमता रखता हो। वह जीवन के नित्य प्रति बदलते प्रतिमानों और मूल्यों को समझता हो और अपने संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव को ताड़कर उससे उसीकी मनचाही भावना के अनुसार काम निकालने की विशेषता रखता हो। व्यापारिक-संस्थाएँ शासक प्रकृति के अधिकारी को ही नहीं चाहती हैं, उन्हें आवश्यकता होती है व्यवहार-कुशल अभिरक्षक की भी। वे पुरानी विचारधारा के आदर्शवादी को भी नहीं चाहते। अकेले आदर्शवाद से भी उनका काम नहीं चलता। उनका जनरल मैनेजर भले और बुरे, सर्व-साधारण से, मधुर संबंध बनाये रखने का माद्दा रखता हो।" किसनलाल उसके कहे उन शब्दों को मन ही मन दुहराता हुआ अपने द्वारा दिये गये उन प्रश्नोत्तरों से मिलाने लगा जिनमें परीक्षार्थियों से पूछा गया था कि आपके अधीन कितने कर्मचारी हैं, उनमें से कितनों के खिलाफ अवज्ञा तथा अनुशासनहीनता की कार्यवाहियाँ पिछले दो साल में आपने की हैं, और उसे अपने दिये गये उत्तर सबसे खरे लग रहे थे।

दस ही मिनट के उपरान्त दाहिनी ओर का दरवाजा खुला। एक लम्बा-सा व्यक्ति जो उस जाड़े में भी कमीज और पतलून पहने हुए था, हाथ में कागज लिये हुए उन सबको संबोधित करके बोला—"मैं आप सबको अपनी कम्पनी की ओर से धन्यवाद देता हूँ कि आप लोगों ने यहाँ आकर हमारे इस काम में सहयोग दिया। परीक्षाफल बन चुका है। आप अपने-अपने कार्ड बाहर के नोटिस बोर्ड पर बैठे हुए कर्मचारी से ले सकते हैं। वही आपको आपके मार्ग-व्यय का चेक भी देगा। अब केवल चार सज्जन यहाँ रुक जाएँ। उनको आधे घंटे के भी हमारे मुख्य प्रबंधसंचालक के सम्मुख जाना होगा

कागज को अपनी आँखों के समीप ले जाकर उ उन चार व्यक्तियों के नाम पढ़े—अविनाश मलिक ३५, रायस रौबिन नं० ८९, किसनलाल नं० १०७ और अमिताभ पाण्डे नं० १६७।

किसनलाल की नसों में अपना नाम उन चार व्यक्ति की सूची में पाकर झुरझुरी सी होने लगी। उस भीड़ में उस जाननेवाले दो ही व्यक्ति थे, बाजपेयी और कैलाशनाथ एक क्षण उन दोनों पर दृष्टि डालने के लिए उसने उस भी को ध्यान से देखना आरंभ किया। फिर यह सोचकर कि इस समय उन असफल लोगों के बीच में पड़ना उचि नहीं है, वह चुपचाप बाहर खिसक गया।

ठीक पाँच बजे वह अपने तीन और प्रतिद्वन्द्वियों के साथ मुख्य-प्रबंधसंचालक के कार्यालय में पहुँचा। ए कर्मचारी ने उनके लिए किवाड़ खोल दिये। वह बड़ा वर्गाकार कमरा था। दीवारों के सहारे पुस्तकों और यंत्रों से भरी आलमारियाँ लगी थीं। बड़ी सी मेज के किनारे मुख्य-संचालक की कुर्सी खाली थी। वह अभी नहीं आये थे। उनकी मेज पर एक ऊँचे कलमदान में काँच की लाल और काली दावातें रखी थीं। लैम्प की रोशनी में कलमदान पर रखे पुराने ढंग के निब वाले कलम, कागज-तराश, पेंसिल और रबर रखे थे। पा ही चार छोटे-बड़े कई प्रकार के तम्बाकू के पाइप कतार से सजे थे। उन चीजों को देखकर वे लोग सोचने लगे कि मुख्य-संचालक अवश्य ही पुरानी चाल ढाल का अंग्रेज होगा।

ठीक पाँच बजकर पाँच मिनट में दरवाजा खुला और काला ऊनी सूट पहने एक बूढ़ा-सा व्यक्ति मेज की ओर बढ़ा। चारों व्यक्ति उसे देखकर कुर्सियों से उठ खड़े हुए। कुछ उस जाड़े की शाम के कारण और कुछ अपने भवि की आशंका से वे सभी काँप से रहे थे। वह बूढ़ा था कोई विदेशी किन्तु बुढ़ापे के कारण उसके चेहरे की चम लाल और भूरे चकतों से बदरंग हो गयी थी। वह मुँह पाइप दबाये था। उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें बिलकुल सफे थीं। उन मूँछों के कारण किसनलाल को वह रूसी ले मैक्सिम गौर्की जैसा लग रहा था। कोट के भीतर रंग के उसके वास्कट की जेब में से लटकती उसकी

जंजीर चमक रही थी। शायद उस जंजीर के एक पर उसकी जेब घड़ी थी।

मेज पर बैठकर एक बार उन चारों पर दृष्टि डालकर बिना किसी पूर्व भूमिका के उसने कहा——युवको! मैं बड़े असमंजस में पड़ गया हूँ। कों की समिति ने जो परीक्षाफल मेरे पास भेजा में आप चारों को बिलकुल बराबर अंक मिले निस्संदेह आप चारों ही समान रूप से योग्य हैं। कम्पनी में स्थान एक ही है। यदि आप लोग चार दो ही होते तो मैं किसी सिक्के को उछालकर पट कहकर एक को चुन लेता। चार व्यक्तियों करना संभव नहीं है, इसलिए मैंने निश्चय किया मैं आप लोगों की कोई व्यावसायिक परीक्षा यानी टेस्ट ले लूँ। जो इस अंतिम परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करेगा उसीको मैं अपना जनरल नियुक्त करूँगा।”

इतना कहकर उसने अपने बाएँ अँगूठे पर पाइप को फिर राख को मेज पर रखी तश्तरी पर गिराया। में रखे चमड़े के थैले को खोलकर उसमें नया भरते हुए वह बोला——“आप जानते ही हैं कि ही हमारा धंधा है। व्यापार की वृद्धि पर ही हमारी संस्था का जीवन निर्भर है। इसलिए यहाँ कर्मचारी का यही एकमात्र मुख्य कर्तव्य है कि वह की नई संभावनाओं की खोज करता हुआ उत्पादन को कम करने का प्रयत्न करे। उत्पादन व्यय के होने से हम दूसरों के मुकाबिले में टिक सकते हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों में हमें प्रतियोगिता का सामना होता है लेकिन व्यापार में यह संघर्ष अधिक व्यापक प्रत्येक व्यापारी अपने-अपने क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न है। इस प्रयत्न में हमारी संस्था सदा ही ईमानदारी सच्चाई पर निर्भर रही है। हम चाहते हैं कि हमारे चारी अपने प्रति ईमानदार हों और दूसरों के प्रति ईमानदार।”

अपना पाइप सुलगाकर वह फिर बोला——“ईमानदारी की परिभाषा कठिन है। उसकी अनुभूति ही की जा सकती है। किसी दार्शनिक ने कहा है कि यदि साध्य शुभ हो तो साधन भी न्यायोचित हो जाते हैं। मेरा अपना मत है कि बिना दूसरों को दुखाये जो भी काम किया जायेगा वह शुभ और ईमानदारी का ही होगा। अपने व्यवसाय की वृद्धि के लिए हम इसी एकमात्र नियम का पालन करते हैं। अब मैं उस व्यावसायिक प्रश्न पर आता हूँ जो मैं आप लोगों को हल करने के लिए देना चाहता हूँ।” यह कहकर उसने फिर एक बार उन चारों की ओर देखा और कहा——“मान लीजिए हमारे इस कारखाने में एक छोटी सी स्वतः चालित ऐसी टंकी का निर्माण हुआ है जो जमीन के अन्दर से पानी को खींचकर स्वतः भर जाती है और एक बार भर जाने पर फिर अपने आप बन्द हो जाती है। ऐसी टंकी बाथरूमों के लिए बहुत उपयोगी होगी। आपने बहुधा देखा होगा कि बाथरूमों की बहुत सी फ्लश टंकियाँ टपकती हैं। बहुत-सी टंकियों के साइफन इतनी जल्दी खराब हो जाते हैं कि उनके भर जाने पर भी पानी ऊपर से बहने लगता है। इससे एक तो पानी का अपव्यय होता है दूसरे फर्श और दीवारों पर लगातार पानी रहने से उनकी जल्दी-जल्दी मरम्मत आवश्यक हो जाती है। इस शहर का सबसे बड़ा होटल है सुभाष होटल। अब मान लीजिए हम अपनी आधुनिक टंकियाँ उस होटल को बेचना चाहते हैं। इसके लिए पहले हमें थोड़ा-सा अनुसंधान करना होगा कि उस होटल में कुल कितनी टंकियाँ हैं, कितनी उनमें से प्रतिदिन खराब रहती हैं? मरम्मत का व्यय क्या है? इन बातों के ज्ञात होने पर आप उस होटल के प्रबन्धकर्ता से तर्कनिष्ठ बात कर सकेंगे कि हमारी इन टंकियों के लग जाने से उनकी प्रतिवर्ष कितनी बचत हो सकती है।”

इतना कहकर अपने वास्कट की जेब से घड़ी को बाहर निकालकर वह बोला——“अब पाँच बजकर पच्चीस मिनट का समय हुआ है। आप चारों को दो बातों का पता लगाने के लिए एक घंटे का समय दिया जाता है। आप उस होटल के प्रबन्धकों से बिना मिले ही यह पता लगा लाइए कि वहाँ कितनी फ्लश-टंकियाँ हैं और कितनी इस समय खराब हैं। इस काम के लिए आपको किसी सवारी की आवश्यकता है तो वह आपको हमारे कारखाने से मिल जाएगी। कोई यंत्र, कोई फीता, मापक अथवा कोई टेलीस्कोप चाहिए तो वह आप यंत्रागार से ले सकते हैं। कोई पुस्तक या मैनुअल चाहिए तो वह भी आप कैटलाग देखकर इन आलमारियों में से अथवा हमारी बड़ी लाइब्रेरी से लेकर पढ़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त

कुछ और व्यय भी आपको इस काम के लिए करना पड़े तो वह आप कर सकते हैं। शर्त यही है कि आप अपने उत्तर के साथ-साथ व्यय का खुलासा भी यहाँ इसी कमरे में ठीक साढ़े छः बजे आकर मेरे सामने लिखकर देंगे। अच्छा, मैं आपकी सफलता की कामना करता हूँ, जाइए।"

चारों उम्मीदवार इस विचित्र प्रश्न से मन ही मन मुसकुरा रहे थे। कमरे से बाहर निकलकर उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा तक नहीं। उनमें से तीन बाहर निकल आए, चौथा आलमारी में रखी पुस्तकों और यंत्रागार की मशीनों की सूची देखने वहीं रह गया। उनमें से अमिताभ पाण्डे नामक व्यक्ति एक कार माँगकर सीधे सुभाष होटल की ओर चल पड़ा। वह उसी होटल में टिका था। वह जल्दी से जल्दी वहाँ जाकर उस तिमंजिले होटल की खिड़कियाँ गिन लेना चाहता था। वह जानता था कि प्रत्येक पंक्ति में कमरों की संख्या दो दो करके बढ़ती जाती है। तीन पंक्तियाँ हैं और तीन मंजिलें। पीछे की पंक्ति के बीच के कमरों की खिड़कियाँ गिन लेने पर तथा उस संख्या को दो से विभाजित करने पर भागफल बाथरूमों की संख्या होगी। उसके बाद हाल और भोजनालय के बाथरूमों को वह स्वयं उनके अन्दर जाकर देख सकता है। उसे जल्दी इसी बात की थी कि बाहर बढ़ते अँधेरे के कारण वह टपकती छतों या गीली दीवालों को बाहर से देखने पर शायद पहचान न सकेगा।

दूसरे व्यक्ति ने जिसका नाम मलिक था फाटक पर आकर टेक्सी ले ली। वह भी होटल की ओर भागा लेकिन न उसने होटल के अन्दर प्रवेश किया और न खिड़कियाँ ही गिनीं। उसने फाटक पर लगे उस बड़े पत्थर पर होटल का निर्माण करनेवाली कम्पनी का नाम पढ़कर टैक्सीवाले से कहा कि वह उसे तत्काल उसी इंजीनियरिंग कम्पनी के कार्यालय में ले चले। सिकन्दर इन्जीनियरिंग वर्क्स नाम की उस मकानों के बनाने वाली कम्पनी का कार्यालय शहर के एक कोने पर था। वहाँ पहुँचने में उसे दस मिनट लग गये। वहाँ मलिक ने मकानों के डिजाइन की पुस्तकों को खरीदने का इरादा प्रकट करके कम्पनी के मैनेजर से कहा—"मैं अमुक शहर में इन्जीनियर हूँ। उस शहर का इम्प्रूवमेंट-ट्रस्ट आपके ही शहर के सुभाष होटल के आकार का एक होटल बनाने का ठेका देना चाहता हूँ। यदि आप उस प्रकार की बिल्डिंग के डिजाइन वाली पुस्तक मुझे दिखला सकें तो मैं उसकी एक प्रति खरीद
मैनेजर ने उसको पान सिगरेट पेश किये और
प्रकार की कीमती पुस्तकें उसके पास रख दीं।
जल्दी जल्दी उन सब पर दृष्टि डालकर कहा—"
बनाई बिल्डिंगों की भी मैंने बड़ी प्रशंसा सुनी है
यह सुभाष होटल जिस कम्पनी ने बनाया है उस
प्रशंसा करनी ही होगी। ऐसी मितव्ययिता और
कलात्मक शैली आजकल कम ही मिलती है।"

मैनेजर ने कहा—"यह तो हमारी ही कम्पनी
बनाया हुआ है।"

बनावटी आश्चर्य प्रकट करते हुए उसने कहा—
आप सच कह रहे हैं कि वह आपका निर्माण है? आल
से बड़े-बड़े नीले नक्शों से भरी एक मोटी सी जिल्द नि
कर मैनेजर ने उसके सामने रख दी। पुस्तक के
लिखा था—"सुभाष होटल के निर्माण का अन्तिम प्राक्क

मलिक ने उसे झपटते हुए कहा—"क्या इसे मैं
सकता हूँ?" उत्तर "नहीं" मिलने पर वह बोला—
मैं एक मिनट इसे यहीं देख सकता हूँ?" मैनेजर ने
स्वीकृति दे दी। उस होटल के निर्माण के व्यय के
मीनों की छानबीन करता हुआ वह उस पेज पर
गया जहाँ फ्लश-टंकियों की खरीद और फिटिंग का
मीना था। उसने संख्या याद कर ली कि कुल टं
दो सौ बारह हैं।

तीसरा व्यक्ति था किसनलाल। कारखाने से
लेकर होटल के फाटक के बाहर पहुँचने पर वह कुछ
सोचता रहा कि उस होटल में जाकर उसके एक एक
बाथरूम को देखकर घंटे भर में वापस आना संभव है
नहीं। तभी उसने देखा कि मलिक नामक उसका
द्वन्द्वी फाटक पर लिखे होटल-निर्माता का नाम पढ़कर
कहीं उसे ढूँढ़ने चल पड़ा है। इन्जीनियरिंग दफ्तरों
काम करने के कारण किसनलाल जानता था कि
सभी बड़ी इमारतों के कार्यालयों में उस इमारत की
बुक रहती है जिसमें उसका प्लान भी रखा रहता है
ऐसी लाग-बुक सुभाष होटल के कार्यालय में उसके
टेकर के पास होगी। मैनेजर से पूछा और न किसी और
वह होटल की ओर बढ़ा और मुख्य कार्यालय में न
उसने केयर-टेकर के निवास की ओर अपनी मोटर मोड़
[illegible] से बन्द था। दो-तीन बार किवाड़ों पर

के बाद तहमद बाँधे एक बच्चे को गोद में लिये एक बाहर निकल आया। किसनलाल ने कहा——"भाई मैं इन्जीनियर के कार्यालय का कम्प्यूटर हूँ। मिनट आपका समय लूँगा। मुझे कुछ जरूरी काम ही लौट जाना है। क्या आप मुझको इस होटल बिल्डिंग का नक्शा एक मिनट के लिए देखने की इजाजत। यहाँ आप ही तो केयर-टेकर हैं?"

केयर-टेकर ने स्वीकृति में सिर हिला दिया। वह थोड़ी में रहा कि होटल का नक्शा इस अपरिचित को दिखलाना किसी भाँति अनुचित तो नहीं है। किसनलाल ने जेब से दस एक नोट निकालकर करते हुए बच्चे के हाथ में थमाकर कहा——"बड़ा लगता है बच्चा। हाँ भाई, जानते ही हो कम्प्यूटर जिन्दगी कैसी होती है। सरकार नयी-नयी बिल्डिंगें रही है। मैं उन सबके आँकड़े जमा कर रहा हूँ। इधर से कोई उधर से। अगर खुद बैठकर जोड़-के हिसाब में उलझूँ तो कई दिन लग जायेंगे। इस-लिये आपके पास आ गया हूँ। न मैनेजर से पूछा किसी और से।"

केयर-टेकर बच्चे को नोट से खेलते देख, बोला——"आप क्या कर रहे हैं?"

किसनलाल खीसें निपोड़े बोला——"कुछ नहीं। कुछ बच्चों के घर खाली हाथ आ गया हूँ। हाँ भाई, उस प्लान को दिखलाइए।"

केयर-टेकर ने अपनी बैठक में उसे बिठाकर दराज से नक्शा निकाला और उसे दे दिया और कहा——"यहीं देख लें।"

किसनलाल ने कहा——"और क्या भाई, कहीं बाहर ले जाऊँगा?" उसने उस पुस्तक में देख लिया कि होटल में दो सौ बारह फ्लश टंकियाँ लगायी गयी थीं। में चार और टंकियों की व्यवस्था की गयी। इतना जानने में उसे तीन मिनट भी नहीं लगे।

"आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।" कहकर किसन-लाल ने सिगरेट निकालकर एक स्वयं अपने मुँह पर लगाई, दूसरी केयर-टेकर की ओर बढ़ा दी। पहले उसकी सिगरेट जलाकर फिर अपनी सुलगाकर कुर्सी से उठते हुए उसने कहा——"टंकियों के साइफन कैसे निकले हैं? कितने काम देते हैं बिना मरम्मत कराये हुए?"

"कुछ न पूछिए साहब।" केयर-टेकर ने कहा——"आज ही चार चोक हो गये हैं। एक तिहाई तो पहले से ही खराब पड़े हैं।"

"ओह।" "अच्छा भाई, नमस्ते। बड़ा काम हो गया आपकी कृपा से।" कहकर किसनलाल वापस लौट गया।

चौथे परीक्षार्थी रौबिन ने यह सोचकर कि संचालक ने कहा है कि इन पुस्तकों और यन्त्रों से भी उस होटल के बाथरूमों की गिनती में सहायता मिल सकती है उसी कमरे की आलमारियों में लगी पुस्तकों को देखना आरंभ किया। डाइनमों, मोटर, तेल के इन्जन आदि से संबंधित पुस्तकें उसे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं लगीं और वह यन्त्रों की आलमारियों की ओर बढ़ा। छोटे-छोटे फीतों और मापकों के बाद दूसरी आलमारी में भूमि की ऊँचाई-नीचाई देखने वाले दूरबीन और प्रेक्षक यंत्र थे। कुछ ऐसे भी दूरबीन थे जिनके सिरों पर दूर स्थित वस्तुओं के चित्र खींचने के कैमरा लगे हुए थे। एक आलमारी में आधुनिक ढंग के पेरीस्कोप थे जिनसे पनडुब्बी अथवा खाई के भीतर बैठा मनुष्य उन वस्तुओं को भी देख लेता है जो उसकी आँख के सामने नहीं होते। रायस रौबिन उन यंत्रों से विमोहित सा एक ऐसे पेरीस्कोप को देखने लगा जिसमें तिकोने ठोस काँचों, समतल दर्पणों और लेन्स लगी नलियों के द्वारा दर्शक अपनी दृष्टि घुमाए बिना अपने समीप दायें, बाँयें, ऊपर, नीचे घटित होती हुई घटनाओं को देख सकता है। उसने सोचा कि उस यंत्र को लेकर वह उस होटल के पास उपयुक्त स्थान पर बैठकर शीघ्रता से सभी बाथ-रूमों की गणना कर लेगा। जब घड़ी ने छः बजाए तो उसे ख्याल आया कि समय कम है और उसे तत्काल ही होटल की ओर चल देना है। यंत्र की रसीद लाइब्रेरियन को देकर वह भी मोटरखाने की ओर बढ़ा। उसने ड्राइवर को हुक्म दिया कि गाड़ी तत्काल सुभाष होटल की ओर ले चले।

ड्राइवर मोटर लेकर फाटक के पास पेटरोल पम्प पर गया और उसने रायस रौबिन को बताया कि एक पहिए में हवा कुछ कम है पहले उसे ठीक भाँति भरा लेना है। पाँच मिनट बाद हवा भराकर जब वह आगे बढ़ा तो पचास गज के लगभग चलने पर वह पहिया फिसफिसाकर चपटा हो गया। ड्राइवर ने क्षमा याचना करते हुए कहा——

"मैं जल्दी ही दूसरा पहिया लगा लेता हूँ। इसमें कहीं छेद हो गया है।"

रौबिन ने स्वीकृति में सिर हिला दिया। उस चपटे पहियें को निकालकर दूसरे के लगाने में छः बजकर अठारह मिनट हो गया। रौबिन ने झुँझलाकर कहा—— "अब रहने दो, अब मुझे वापस दफ्तर में जाने दो।"

जब रौबिन एक ही मिनट बाद पोर्टिको में उतरा तो उसके तीनों साथी परीक्षा भवन में प्रविष्ट हो रहे थे। वह भी अपना पेरीस्कोप लेकर उनके पीछे-पीछे अन्दर दाखिल हुआ। उसके तुरंत ही बाद कमरे में पाइप के तम्बाकू की गन्ध ने भी प्रवेश किया। बूढ़े संचालक ने दाहिनी ओर के किवाड़ खोलकर अपने चश्मे के ऊपर से उनकी ओर देखा। तम्बाकू का धुँआँ उसकी मूछों के चारों ओर अटककर अनेक नीली शिखाओं के बाहर निकल रहा था। रौबिन शेष तीनों साथियों के बैठ जाने पर भी उसका ध्यान अपनी ओर आर्कषित करने के लिए खड़ा रहा।

उत्तर लिखने के लिए उन सबको कागज का केवल एक एक पन्ना देने के बाद रौबिन को अपनी सीट पर खड़ा देखकर वह बोला——"नवयुवक, तुम क्या चाहते हो?"

रौबिन ने कहा——"सर, मैंने इस यंत्र से कुछ मापन लिये हैं। अब फिर उन्हें देखकर मैं अपने उत्तर लिखूंगा। कृपया इसे अपने पास रखने की अनुमति दे दें।"

"निस्संदेह।" बूढ़े ने कहा——"आप प्रश्नों का उत्तर लिखने में इसका प्रयोग कर सकते हैं।"

रौबिन ने पहले कागज के पन्ने पर अपना नाम आदि लिखा। फिर संक्षेप में उसने उस पेरीस्कोप की बनावट के बारे में तीन पंक्तियाँ लिखीं। इसके बाद उसने उस यंत्र की तीन नलियों को ऐसे व्यवस्थित किया कि वे तीनों उसके तीनों साथियों की मेजों पर फोकस हो गयीं। यंत्र इतना शक्तिशाली था कि उसके साथी क्या लिख रहे हैं यह बात उसे नलियों पर लगे दूरबीनों से साफ-साफ दिखलायी देने लगी।

पन्द्रह मिनट के बाद उसने भी शेष तीन साथियों के साथ-साथ अपना उत्तर बूढ़े संचालक के सामने रख दिया। खिड़कियाँ गिननेवाले उम्मीदवार अमिताभ ने वह २१० लिखी थी। व्यय के लिए उसने पाँच लिटर पे का दाम तीन रुपए पचास नये पैसे माँगा था। नाम के परीक्षार्थी ने वह संख्या २१२ लिखी थी बिल दिया था तेईस रुपये का, जो उसने मकानों के इन की पुस्तक खरीदने तथा टैक्सी का किराया व्यय किया था। किसनलाल ने वह संख्या २१६ लिखी और अपने कर्तृत्व का वर्णन करके व्यय बताया था टेकर को दिया गया दस रुपये का टिप। रौबिन रा अपने यंत्र की प्रशंसा करने के उपरान्त लिखा था प्रकार उसी यंत्र की सहायता से वह शेष तीनों के उत्तर देखकर बिना उनकी जानकारी के ही नकल कर रहा है तथा उसे तीनों के उत्तरों में से सही संख्या लगती है। उसने यह भी लिखा कि उस के लिए उसे कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ा।

चारों नवयुवकों को थोड़ी देर चुपचाप बैठे रह संकेत करके बूढ़ा परीक्षक उनके दिये उत्तरों को एक करके पढ़ गया। उसकी गंभीर मुद्रा पर उन उत्तरों को पढ़ते समय तनिक भी भाव-परिवर्तन नहीं लायी दिया। उस गंभीरता के कारण उन चारों ने कि शायद फिर भी उनको बराबर नम्बर मिलें निर्णय न हो पायेगा।

थोड़ी देर बाद अपना चश्मा उतारकर मेज पर हुए वह बोला——"नवयुवको, मैं रायस रौबिन व्यक्ति को सबसे अधिक नम्बर देता हूँ। आपमें से भी यह नाम हो वह कृपया उठ खड़ा हो।"

रायस रौबिन के खड़े हो जाने पर उस बूढ़े ने पहना और उसके उत्तर को जोर से पढ़ा। फिर वह "मैं सोचता हूँ कि अपने प्रतिद्वन्द्वियों को ठेस पहुंचाये उनके रहस्य को ज्ञात कर लेने तथा उत्पादन यथासंभव कम रखने का जो अनूठा उदाहरण इस ने प्रस्तुत किया है वह आधुनिकतम है और आज के जीवन के मूल्यों के अनुकूल भी। आप लोग भी मुझसे सहमत होंगे।"

देखा-सुना

(३) मानवी देवी और मानवीय हृदय

श्री मनमोहन गुप्त

जाननेवालों के सामने मझली जीजी का नाम लेते ही वे आपसे आप आदर से माथा झुका लेंगे। यों आनन्दमयी माँ" या श्री रामकृष्ण परमहंस देव वाली सदा माई" अथवा "मीराबाई" आदि का जितना जन साधारण लोगों में है, उससे कुछ कम सम्मान, जाननेवालों में, मझली जीजी का न था।

कुलीन घर की कन्या तो थी ही। न मालूम किस किसी कुलीन-कुल-गौरव के श्री चरणों में समर्पण उनके पिता ने उनके लिए सिन्दूर लगाने का, काँच चूड़ी पहनने का तथा चौड़ी कन्नी की साड़ी पहनने अधिकार प्राप्त कर लिया था। वे कुलीन महाशय काशी से उँगली पकड़ा कर विदेश ले गये थे। दो ही दिन के वाद श्रीमान् उन्हें पति के चरणों में समर्पण उनसे उन्हें अंगीकार कराकर, सधवा कहलाने अधिकार ले आये थे।

उस समय उस समाज की यही रीति थी तो लोगों आलोचना या कानून कर ही क्या सकता था? परिवारों के घर-घर में यही चलता था। उन की लड़कियों का, बहुत छोटी अवस्था में, कुमारी कर; जरा बड़ी या सिन्दूर की मोहर वाली हुई सधवा पुजवाकर, उससे भी बड़ी हुई तो उभय रीत अर्थात् सधवा पुजवाकर तथा बड़े आदमियों के घरों भोजन बनाने का काम करके जीवन यापन होता था। देखते जन्म लेतीं, कुमारी बनतीं, सधवा बनतीं, प्रौढ़ा होतीं, वृद्धा होतीं, मर भी जातीं। सब काम गति से हो जाते थे। किन्तु सधवा का पतिदेव से का सौभाग्य न होता था।

इसी प्रकार से मझली जीजी किसी युग में कुमारी सधवा बनी होंगी। मैंने होश सम्हालकर उन्हें सधवा जान-पहिचानवालों की नमस्या के रूप ही में देखा। एकदम बोलती न थीं, नित्य दिन निकलने के बाद गंगाजी जातीं। स्नान आदि करके बड़ी देर तक पूजा करती थीं, फिर रास्ते में पड़ने वाले मन्दिरों में दर्शन करती हुई घर आती थीं। गोरी-गोरी, छरहरी, जोगिया रंग की कन्नी वाली रेशमी साड़ी; ऊपर से रेशमी चादर ओढ़े; नंगे पाँव, हाथ में पूजा का पात्र लिये जब खुले बालों से घर की ओर चलतीं तो यही लगता था कि कोई स्वर्ग की शापभ्रष्टा अप्सरा अभी-अभी तपस्या से उठकर आ रही हैं। जिधर से निकल जातीं उधर ही लोग आँख भर कर देखे बिना नहीं रहते। कहीं आँख मूँदकर कमण्डल उठाकर खड़ी होती थीं तो लगता था कि हल्की गुलाबी श्वेत प्रस्तर की मूर्ति को बनाकर किसी सिद्धहस्त शिल्पी ने खड़ा कर दिया है, उसी मुद्रा में।

वही मझली जीजी एक दिन स्नान करके गंगाजी के किनारे, पण्डों के लगाये हुए एक पटरे पर बैठकर, औरतों के घाट पर, आँख मूँदे पूजा कर रही थीं। उसी समय मैं भी स्नान करने गया था क्योंकि उस दिन पिताजी किसी काम से बाहर गये हुए थे। अन्यथा मझली जीजी के घर वापस होने के बाद ही मुझे स्नान करने का अवसर प्राप्त होता था। पढ़ने-लिखने, पाठ याद करने में विलम्ब हो जाता था। तब तक मझली जीजी का वापस होने का समय हो जाता था।

तैरकर दूर चला गया था। वापस होते समय देखा कि सूर्य की ओर हाथ जोड़े आँख मूँदे, मझली जीजी पूजा में मग्न हैं। सात-आठ वर्ष के बच्चे के लिए सब घाट बराबर थे। फिर भी मैं मर्दों के घाट की ओर ही बढ़ा। औरत मरद दोनों घाटों पर मेरा समान अधिकार था।

अभी बढ़ा ही था कि देखा एक घुंघराले लम्बे-लम्बे बाल तथा घुंघराली काली दाढ़ी वाले सज्जन गले भर पानी में पैठे एकटक मझली जीजी को देख रहे हैं।

मेरा नहाते समय तैरना रह गया। मैं भी गले भर पानी में खड़े-खड़े उन सज्जन को देखने लगा। अत्यन्त सतर्क था कि कहीं उनके साथ मेरी आँखें मिल न जायँ।

उसकी नौबत न आयी, क्योंकि वे एकटक उधर ही देख रहे थे। देखते-देखते अधिक समय तक पानी में

रहने से मेरी उँगलियों की गद्दियों पर झुर्रियाँ पड़ने लगीं। मगर वे सज्जन अभी भी वैसे के वैसे ही खड़े रहे।

मुझे अजीब सा लगा। यह आदमी कैसा है कि औरतों के घाट की ओर मुँह किये पानी में खड़ा हुआ है? घाटों के पण्डे औरतों के घाटों की ओर जाने में पुरुषों को रोकते थे तथा यदि उधर कोई गलती से चला भी जाता था तो डाँटते, फटकारते या चिल्लाते थे। इसीसे उन सज्जन का यह कार्य मुझे बुरा लगा। परन्तु वे औरतों के घाट में तो थे नहीं, फिर उन्हें पण्डाजी से कहकर डाँट ही कैसे खिलाता? चुपचाप खून का घूँट पीकर रह गया। गमछा वगैरह निचोड़ा फिर ऊपर बैठे-बैठे उसका तमाशा देखता रहा।

इधर मेरा गीला गमछा भी सूख गया परन्तु फिर भी वह आदमी गले भर पानी में जैसे खड़ा था वैसे ही खड़ा रहा।

धत् तेरे के! होगा कोई बदमाश!

सोचकर, घर का रास्ता लिया। घर तक पहुँचते-पहुँचते सोचता गया कि कहीं वह चौबीसो घंटे ऐसे ही गले भर पानी में खड़ा तो नहीं रहता है? कोई साधू, महात्मा या योगी तो नहीं है जो तपस्या करता हो? घर में जाकर चैन न पड़ा। मन किया कि जाकर देख आऊँ कि अभी तक वह वैसे ही खड़ा तो नहीं है?

फिर सोचा, चौबीस घंटे खड़ा रहनेवाला होगा तो शाम को ही देख लूँगा। अभी जल्दी क्या है? सोचकर उस समय रुक गया। शाम को अपने निर्णयानुसार पहुँचा।

गर्मी के दिन थे। अनेक लोग स्नान कर रहे थे किन्तु वे घुँघराले बाल और दाढ़ीवाले कहीं न दिखलायी पड़े। देखकर मुझे बड़ा क्षोभ हुआ। तय किया कि आज जो चूक गया सो चूक गया, अब कल नहीं चूकने का। बड़े सबेरे, दिन निकलते-निकलते पहुँच गया। इक्के-दुक्के लोग उस समय स्नान कर रहे थे किन्तु उन सज्जन का पता न था।

आज तो तय करके आया ही था कि उन्हें अन्त तक देखकर ही जाऊँगा। इस कारण बगल में गमछा दबाये बैठा रहा। अनेक आये, अनेक गये, परन्तु उनका पता न था।

आनेवाले रास्ते की ओर मुँह किये बैठा ही रहा। निश्चित समय पर मझली जीजी दिखाई पड़ीं। वे दिन निकलने के बाद ही घर से चलती थीं।

मझली जीजी को देखा ही था कि थोड़ी दूर पर से आते हुए वही दाढ़ीवाला व्यक्ति भी दिखाई पड़ा। अरे, यह क्या? यह तो कोई साधू है! सिर से पैर गेरुआ वस्त्र से ढका है!

उधर मझली जीजी का घाट में उतरना था इधर बाबाजी भी पानी के भीतर उतर पड़े। फिर वहीं यानी गले भर पानी में खड़े-खड़े एकटक मझली जीजी को देखने लगे।

मझली जीजी पानी में बड़े शान्त भाव से एक-एक पैर को बढ़ाती जाती थीं और नीचे की ओर के कपड़े को दबाती जाती थीं। जरा भी कपड़े को सम्हाल से बाहर नहीं होने देती थीं। शान्त भाव से ही एक-एक अंग को गले भर पानी के अन्दर ही खड़े-खड़े मलती थीं। अनगिनत बार डुबकी लगातीं किन्तु कभी भी ऊपर का पानी गोला बनाकर फैलने नहीं पाता था।

उठते समय उससे भी शान्त भाव से ऊपर उठीं। उनकी धोती सफेद, महीन तथा खूब साफ थी। ज्यों-ज्यों पानी से ऊपर उठती गयीं त्यों-त्यों उनकी चमड़ी के साथ धोती चिपकती गयी। अन्दर का हल्का गुलाबी सफेद चमड़ी का रंग इतना साफ दिखायी पड़ता था कि यदि उनके शरीर में कहीं रोआँ भी होता तो ध्यान से देखनेवाले की दृष्टि से वह छिप नहीं सकता था। अंग-प्रत्यंग की मांस-पेशी का एक-एक बल स्पष्ट दिखायी पड़ रहा था। स्वस्थ, गोल किन्तु पतले हाथ; स्वस्थ कि बल खाती हुई कमर; वजनदार किन्तु ठोस से नितम्ब जंघे देखने पर यह लगता था कि ऊपर कोई वस्त्र ही नहीं है।

धोती के आँचल से, वक्ष से लेकर कमर के नीचे तक का भाग दोनों हाथों से दबाये थीं। इसीसे उन अंगों की स्पष्टता दृश्य न थी, अन्यथा जब खुले बालों से उठकर खड़ी हुईं तो यही लग रहा था कि जलदेवी मूर्तिमान होकर सामने खड़ी हो गयी हों। तब भी बालों मुक्ता के कणों के से जल-बिन्दुओं की धार चल रही थी। कुछ समय तक खड़ी ही रहीं, फिर आहिस्ते-आहिस्ते से सर के बाल से लेकर एक एक अंग को पोंछा। छोटी सी गठरी में से वही भगवे रंग की साड़ी निका

१९६३

धीरे खूब सम्हल कर उसे पहिना। छोड़ी हुई धोती पैर के पास गिराया। बाद को धीरे-धीरे सीढ़ियों उतरकर उसे धोया और निचोड़ा। फिर गीला गमछा गीली धोती की एक गठरी बनायी। उसे पास रख- घाट पर बाँधे हुए तखतों में से खाली स्थान में बैठ गयीं करने।

बड़ी देर तक पूजा वगैरह करती रहीं और उधर जगह पर वह बाबाजी बराबर एक ही स्थान पर रहे। मैं भी बराबर एक बार मझली जीजी को देखता एक बार बाबाजी को। अपना स्नान तो रह ही

आने समय पर मझली जीजी पूजा आदि समाप्त उठने ही वाली थीं कि बाबाजी भी निकलने की करने लगे। जब तक मझली जीजी ऊपर का रास्ता के लिए सीढ़ी चढ़ने लगीं तब तक बाबाजी भी चार सीढ़ी पीछे तक पहुँच चुके थे। उनसे भी तीन-सीढ़ी पीछे ही मैं था। रास्ते में जिन-जिन मन्दिरों जीजी गयीं, सभी में वे बाबाजी भी गये। पीछे मैं भी गया। मझली जीजी एकाग्र चित्त से देवताओं पूजन करतीं और बाबाजी एकनिष्ठभाव से मझली का निरीक्षण करते। मैं दोनों के पीछे-पीछे आँखों पुतलियों को फिराता।

इसी प्रकार से जब मझली जीजी ने अन्तिम गलियों में पहुँचकर अपनी गली का रास्ता पकड़ा तब दूसरी गली की ओर बढ़ गये। मैं मझली जीजी पीछे चला। जब मझली जीजी घर में घुस गयीं मैं वापस घाट की ओर बढ़ा।

मुझे स्नानादि समाप्त करके वापस आने में यद्यपि हुई तथापि दादी ने घर को माथे पर उठा लिया कि उनके हिसाब से मैं घण्टों नहाता रहा। इतनी देर स्नान करने पर क्या-क्या बीमारियाँ हो सकती हैं, उस- व्याख्यान दिया। पिताजी के वापस आते ही शिकायत मार खिलाने की धमकी भी दी। आगे यदि किसी इतनी देर हुई तो लाठी से मारती-मारती पकड़ लायेंगी, कसम खायी। आदि आदि, सब कुछ किया।'

× × ×

दूसरे दिन स्नान करने के लिये जाने का मुझे कोई उत्साह नहीं है, यह देखकर दादी समझीं कि अगले दिन उन्होंने बहुत डाँटा है, इस कारण मैं नहीं जा रहा हूँ। कुछ समय तक तो चुप रहीं, फिर अपने मन से ही बड़बड़ाने लगीं। कहीं दाल धोने नल के पास आतीं तो कहतीं—"आजकल घोर कलियुग आ गया है। मजाल है कि बड़े बच्चों को कुछ कह दें · बड़ों की बातें तो जैसे बच्चों के लिए बाण-सरीखी हैं · · · "

फिर वहाँसे चूल्हे के पास जाकर बटलोई में दाल छोड़ती जातीं और कहती जातीं—"अब दरवाजे के सामने कोई मोची आयेगा तो कह दूँगी कि मेरा मुँह सी देवे। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। मुँह ही सिला हुआ होगा तो अन्याय देखकर भी मुँह न खोल पाऊँगी।"

उधर सब्जी की टोकरी लेने जातीं तो कहती जातीं —"अरे बाबा! मुझे कितने दिन जीना है? मौत के घर की ओर तो पाँव बढ़ाये हुए हूँ ही। चाहती हूँ कि जाते समय सबको तन्दुरुस्त देख जाऊँ।···मैं नहाने के लिए जाने को किसीको मना थोड़े ही करती हूँ · · · बस, इतना चाहती हूँ कि सब काम ठिकाने से हो · · · किसी काम की अति करने पर उसका फल बुरा होता है।"

इसी प्रकार से कदम-कदम पर अपने मन से बड़बड़ाने पर भी मैं निश्चेष्ट हूँ, देखकर वह सीधे मेरे सामने आयीं। पूछा—"क्यों नहीं जायगा नहाने? मैंने मना किया है तुझको?"

फिर भी मैं बोलता नहीं देखकर चटाचट अपने गालों में अपने हाथों से कई तमाचे जमा दिये। कान उमेठते हुई बोलीं—"ले, मुझसे अपराध हो गया···क्या उसकी माफी नहीं है?"

साथ-साथ रुआँसी हो गयीं।

उधर मझली जीजी का भी नहाने जाने का समय हो रहा था। मैं धीरे-धीरे उठा। फिर गमछा पहना। धीरे-धीरे नहाने के बाद पहनने के लिए दूसरा गमछा उठाया। एक-एक करके, जैसे गिन-गिनकर, पाँव बढ़ा रहा हूँ, ऐसे सदर दरवाजे की ओर बढ़ा।

—"क्या तेल ने भी दोष किया है?"

पीछे से दादी ने कहा। मैं रुक गया।

मुझे रुका देखकर दादी ने कहा—"तेल की बात याद दिलाकर मैंने कौन सा अन्याय किया जो तू मुँह फुलाये रुक गया?"

खिझककर मैंने कहा—"लाओ न · · · "

उधर से तेल की कटोरी उठाकर दादी ही ले आयीं। खूब ज्यादा-सा तेल सिर से ही लगाना शुरू किया। देखकर मैंने तुनककर कहा—"क्या · · मैं · · · पकानेवाली लाठी हूँ जो इतना-इतना चुपड़ने लग गयी ?"

"——नहीं। तू नहीं है तो क्या ? हर बात में जिद ! न मालूम कब तक पानी में पड़ा रहेगा ?"•••ज्यादा तेल लगा दूँगी तो कम से कम भरोसा तो रहेगा कि नुकसान न होगा।"

कहते ही कहते कमर के पास का गमछे का फन्दा खींच दिया। गमछा खुल गया। तुरंत तेल चारों ओर चुपड़ दिया। मैंने कहा—"तू बड़ी वैसी है। जरा भी मेरी शरम लगने की बात नहीं समझती है। जब तब नंगा कर देती है।"

"अब अगले जनम में समझूंगी · · · · तभी तू मेरे लिए बड़ा आदमी बनेगा।"

फिर बोली—"मैं तो कहना नहीं चाहती हूँ कि तू कितना नहाना। मगर और भी तो लड़के अपने बाप-माँ के साथ आते होंगे। उन्हें देखकर तो समझ सकता है कि कितना नहाना चाहिए और कितना न चाहिए। इसमें तो दोष नहीं; कि इसमें भी दोष होगा ?"

तुरन्त मैंने गमछा उठाकर पहन लिया। फिर बिना कुछ कहे बाहर चला गया। दादी ने सदर दरवाजे की ओर मुँह किये कहा—"औरों के साथ पानी में उतरना और उन्हींके साथ निकल आना।"

× × ×

मझली जीजी के घर में जब पहुँचा तो देखा कि वह भी चलने की तैयारी कर रही हैं। वह स्वभावतः गम्भीर होने के कारण किसीको मुँह लगने नहीं देती थीं। इसीसे मेरी हिम्मत नहीं पड़ी कि कहूँ—"मैं भी तुम्हारे साथ नहाने जाऊँगा।" मुझे स्नान करने के लिए जाने को तैयार देखकर भी उन्होंने एक बात न पूछी।

वह अपनी तैयारी करती रहीं और मैं दूसरी बहिनों के साथ बातें करके समय काटता रहा। जब मझली जीजी तैयार होकर निकल गयीं तो मैं भी धीरे से सरक गया। दस-पन्द्रह कदम उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

जिस समय वह दो गलियों की जोड़ पर पहुँचीं तो उधर से वे ही बाबाजी आते हुए दिखायी पड़े। कल की तरह आज भी पाँच-सात कदम पीछे बाबाजी और कुछ पीछे मैं चला।

घाट में भी आगे के दिन की तरह ही सब बातें मैं आज और देर तक न ठहरा। अपने समय से किया। बाबाजी को अपनी जगह पर छोड़कर ही घर आया। समय पर वापस हुआ देखकर दादी खूब हुई। सिर हिलाहिलाकर गर्वित भाव से कहने ——"कौन कहता है कि मेरा छोटे मुझे प्यार नहीं करता मेरी बातों को नहीं मानता ? अपनी भलाई समझता ? किसीसे कम होशियार है ?"

आदि-आदि न मालूम क्या-क्या कहने लगीं। मुझे यह चिन्ता खाये जा रही थी कि मझली जीजी कैसे कहूँ कि अमुक बाबाजी तुम्हारे पीछे पड़ा है!

दिन भर में कई बार हिम्मत बाँधी किन्तु जीजी की प्रशान्त मूर्त्ति तथा गम्भीर प्रकृति की स्मरण होते ही हिम्मत पस्त हो जाती। कैसे किया जाय यह तक ठीक न कर पाया।

इसी उधेड़-बुन में पड़े-पड़े एक बार मन में आया कहीं हिम्मत करके कहा और मझली जीजी पूछ बैठीं कौन है वह ? नाम क्या है ? रहता कहाँ है ?

तो क्या उत्तर दूंगा ?

इसी उधेड़-बुन में वह दिन बीत गया। दूसरे पिताजी भी आ गये थे और मैं भी पढ़ चुका था। के बहाने मझली जीजी के लौटने के समय पर ही रास्ते में ही वह मिल गयीं। मुझको देखने पर भी ऐसे बगल काटकर निकल गयीं जैसे कि इस जीवन कभी मुझे देखा ही न हो।

ठीक पीछे ही बाबाजी थे। आगे बढ़कर मैंने पीछा पकड़ा। रास्ते में ही मझली जीजी छूट गयीं मैं बराबर चलता गया। बाबाजी गलियों में जिस घाट पर स्नान करते थे, उस घाट से पाँच- इधर ही जा पहुँचे।

वह घाट बड़ा ऐतिहासिक घाट था। न मालूम युग में किसी राजा ने अपनी अथवा अपने ही आत्मीय की पुण्यस्मृति में उसे बनवाया था। लोग नाम तो भूल गये थे, केवल उनके स्थान का नाम रखे थे। वह घाट उसी स्थान के नाम से प्रसिद्ध उस घाट के ऊपर ही उनका महल था। उस समय

उस राज्य के हाथ से निकलकर किसी पण्डाजी के ...ओं के हाथ लग गया था। वे ही उस महल में जगह-जगह किरायेदार बसाये हुए थे।

नदी के किनारे की ओर सीधी चार-पाँच मंजिल दीवार उठी हुई थी। उसके ऊपर ही महल बना था। ऊँची दीवार में जगह-जगह कबूतरों के रहने ...छेद बने थे जिनके ऊपर छाँह के लिए, पतले-पतले ...सात इंच पत्थर निकाल दिये गये थे। वे धूप तथा ...छेदों की रक्षा करते थे और बाकी समय कबूतरों ...का काम देते थे।

...घाट पर दीवार के सहारे बारह-बारह फुट अन्दाज ...दालान बने थे। जो कोई भी चाहता वह किसी दालान ...महीने बिना किराया दिये ही रह सकता था। ...संन्यासी तथा भिखमंगों के लिये बनवाये गये थे। ...अब गंगाजी की बाढ़ की मिट्टी और बालू भर जाने ...वे प्रायः बेकार हो गये थे। पुराने युग में राजा की ...हर साल बालू निकलवा दी जाती थी, किन्तु अब तो ...तैसे मिट्टी से भरे रहते थे। इसीसे अब उनमें ...रहता न था। भिखमंगों या साधुओं में उन कमरों ...मिट्टी निकलवाकर रहने का उत्साह नहीं था। वे ...बन्द ही रहते थे। भले ही उनके अन्दर छेद बनाकर ...साँप रहते हों।

उन्हींमें से एक को बाबाजी ने साफ कर लिया था। ...में बाँस के टट्टरों से बन्द करवाकर उनमें पीछे से ...लगवा लिया था। बीच की चार फुट जगह रास्ते ...छोड़ दी थी और उसमें टट्टर का ही एक दरवाजा ...लिया था।

...कहीं जाते समय उसे बन्द करके ताला लगा देते थे। ...लिए साँकल आदि का प्रबंध कर लिया था। इस ...उनके लिये वह दालान एक कमरे का काम देता ...। यद्यपि वह स्थान लोगों के प्रातःस्नान के बाद ...सुनसान हो जाता था, तथापि उस युग के वैसे ...ओं के स्थानों को कोई विशेष महत्त्व न देता था। ...जानते थे कि अन्दर अधिक से अधिक नारियल के ...का एक कमण्डल होगा, एक चटाई, उसके ऊपर ...गेरुआ वस्त्र का विस्तर। बिस्तर का अर्थ कुछ पुराने ...कपड़े बिछे होंगे और अधिक से अधिक दान में पाया ...कोई कम्बल।

सच पूछा जाय तो बाबाजी ने भी टट्टर लगवाये होंगे तो किसी चोर या उचक्के के भय से नहीं बल्कि भगवान् शंकर के नाम पर पले हुए लावारिस भीमकाय साँड़ों से बचने के लिए। कहीं उनकी निगाह खुले हुए दालान में रखी चीजों पर पड़ जाती तो वे उन्हें बिना नष्ट किये न मानते। फिर, वहाँ ललमुँहे बन्दरों की भी कमी न थी।

बाबाजी टट्टर खोलकर अन्दर दाखिल हुए। दूर से मैं देखता रहा। कुछ समय तक खड़े-खड़े देखता रहा। उन्होंने अपने गीले कपड़ों को खुले हुए दरवाजे पर सूखने के लिए डाल दिया। फिर अन्दर जाकर कुछ समय तक न मालूम क्या-क्या करते रहे, फिर कमण्डल हाथ में लिये टट्टर बन्द करके निकल गये। शायद किसी छत्र (सत्र) या भण्डारे में भोजन करने उसी घाट की सीढ़ी से ऊपर चले गये।

उनका अदृश्य होना था कि मैं टट्टर के पास पहुँचा। दरवाजे वाले टट्टर की खाली जगहों से अन्दर झाँककर देखा। प्रथम दृष्टिनिक्षेप में ही मेरे रोएँ खड़े हो गये। ऐसा लगा कि दीवार के पास एक कोने में मझली जीजी खड़ी हैं। कोई दूसरा समय होता तो शायद विश्वास भी हो जाता, किन्तु अभी-अभी जो उन्हें घर में जानेवाली गली में छोड़ आया था। विश्वास न हुआ। आँखों को दबाकर कुछ समय तक बन्द रक्खा फिर खूब ध्यान से देखा। इस बार जान पाया कि वह मझली जीजी नहीं हैं। बल्कि उनकी तस्वीर एक चौखटे पर कसे हुए कपड़े पर बनी है। बड़ी देर तक ऊपर से नीचे तक देखता रहा। गमछा हाथ में लिये घाट की सीढ़ी से स्नान करने के लिए उतरते समय की वह तस्वीर थी।

आश्चर्यचकित कर दिया मुझे उस चित्र ने। इतनी सजीवता न मालूम किसने उस चित्र में डाल दी थी? जीवन में पहली बार मैंने अनुभव किया कि चित्रों में इतनी सजीवता हो सकती है। तन्मय होकर देखता ही रहा। इधर-उधर आँखें फिर ही नहीं रही थीं।

जब तन्मयता भंग हुई तो दूसरी ओर आँख फेरी। उधर भी मझली जीजी ही थीं, किन्तु वह था स्नान करके कपड़ा बदलने के समय का चित्र। बड़ी देर तक उसे भी देखता रहा।

तीसरे चित्र पर जब मेरी निगाह गयी तो मैं आपे

से बाहर हो गया। मन-ही-मन कहा--अरे साले बाबा, तू इतना पहुँचा हुआ है? . . . इसीसे एकटक ताका करता है?

यह चित्र था मझली जीजी की उस अवस्था का जिस अवस्था का चित्र मैं किसी और के पास, कम-से-कम मझली जीजी जैसी अच्छी स्त्री का, देखना नहीं चाहता था।

किसी दिन, न मालूम किस दिन, कपड़ा बदलते समय, अचानक पहननेवाला कपड़ा नीचे सरक गया था; यह चित्र उसी अवस्था का था। मझली जीजी को इस अवस्था में शायद ही किसीने देखा होगा। मुझे ऐसा चित्र बनाना असभ्यता का काम लगा। सिर से पैर तक गुस्से में लाल हो उठा। मन किया कि कहींसे अलकतरा लाकर चित्र को बिगाड़ दूँ। किन्तु साथ ही मन में हुआ कि यही अच्छा अवसर है मझली जीजी के सामने उस बदमाश साधू की पोल खोलने का।

एक ही साँस में जाकर मझली जीजी के सामने रुका। सोचा था कि उसी दम में सब बातें कह डालूँगा। किन्तु उनके सामने पड़ते ही जैसे मेरी बोलती बंद हो गयी। कैसे आरम्भ किया जाय, कुछ समझ में नहीं आया। कुछ समय तक खड़ा रहा, कई बार ओठों को जीभ से चाटा, मगर मुँह से एक भी शब्द निकाल न पाया। जैसे गया था वैसे ही बैरंग वापस हुआ।

कैसे आरम्भ करता? कहता कि एक बदमाश बाबा है, उसने तुम्हारी नंगी तस्वीर बनायी है? या यह कहता कि बिल्कुल सच्ची सी लगती है? तो क्या कपड़ा बदलते-बदलते किसी दिन ऐसा भी हुआ कि तुम नंगी हो गयी थी?

कुछ न ठीक कर पाया और न कुछ कह पाया। फिर मझली जीजी का ध्यान आया जिनका नाम लेते ही पिता जी तक के हाथ सिर पर उठ जाते। केवल पिताजी ही क्यों, मेरे परिचितों में कोई ऐसा न था कि मझली जीजी की परछाईं तक की इज्जत न करता हो।

मझली जीजी किधर से भी चली जायँ, यदि जमादार सड़क बुहारता हो तो वह भी तुरन्त दूर से देखकर ही बुहारना बन्द करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता था। गली में लड़के गोली खेलते हों तो गली से सब गोली उठा लेते, एवं गम्भीर होकर खड़े हो जाते। ऐसी मझली जीजी को यह असभ्य संवाद मैं कैसे सुनाता? हिम्मत पस्त थी।

आश्चर्य यह कि मैंने मझली जीजी को कभी किसी को डाँटते या बुरा-भला कहते नहीं देखा था, फिर भी उनसे सब थर्राते थे। यहाँ तक कि उनकी अपनी माँ को भी उनसे कभी दो-चार घड़ी बैठकर बातें करते मैंने नहीं देखा था यद्यपि उनके घर में हरदम मेरा आना-जाना रहता था।

कहते हैं कि सात या आठ वर्ष की अवस्था में उनके पिता जब उन्हें किसी कुलीन ब्राह्मण के चरणों में
कर, गौरीदान का पुण्य अर्जन करके घर वापस
थे, तब उन्हें रेल में हिमालय की किसी गुफा में रहने
एक साधू मिला था। उसने इनके पिता से कहा
स्वयं जगद्धात्री ने छलना करके जन्म लिया है।
कभी अनादर न करना, अन्यथा सर्वनाश हो जायगा।

इस जनश्रुति में चाहे कोई तथ्य हो अथवा नहीं,
हम सब इसे सच मानते थे। साथ-साथ यह भी मान
कि वे इतनी मेधावी थीं कि उसी आठ वर्ष की अवस्था
उन्होंने गीता, चण्डी तथा स्वामी शंकराचार्य के
स्तोत्रों को पड़ोस में रहनेवाले एक पण्डितजी से
सुनकर कंठस्थ कर लिया था।

वे पण्डितजी चार बजे के पहिले ही गंगास्नान
समाप्त करके घर लौट आते थे। फिर शुद्ध उच्चार
साथ पाठ करते थे। मझली जीजी न कहीं गयीं और
आयीं और न वे पढ़ना-लिखना ही जानती थीं। फिर
ये सब सुन-सुनकर ही उन्हें याद हो गये। नित्य
का स्नान, स्नान के बाद पूजन। शायद पूजाविधि
अपनी माँ से सीख ली थी। उनकी माँ तो दिन
से पूर्व ही घर से निकल जाती थीं, और अधिक
बीते घर आती थीं। न मालूम कितने घरों में
बनाती थीं। सारा परिवार तो उसी औरत के
चलता था। अन्यथा उनके पिता को कई घरों में
करवाने पर भी सामान्य आय ही होती थी। वह
अनिश्चित थी। घर का पूजापाठ बन्द न हो,
मझली जीजी को ही सब कुछ करना पड़ता था।

एक और बात प्रसिद्ध थी। कहते थे कि
जीजी कभी अशुद्ध नहीं हुई थीं। उस युग में मैं
होने का अर्थ समझता नहीं था। बस इतना ही जानता
कि अन्य औरतों की तरह कभी भी मझली जीजी
तीन-चार दिन अलग-अलग भागती नहीं फिरती
शायद इसीलिए लोग उन्हें और भी दैवीशक्ति-
समझते थे। बड़े-बूढ़ों को यहाँ तक कहते सुना है कि
दिन प्रलय होनेवाला होगा उसी दिन वह अशुद्ध

ऐसी मझली जीजी के सामने मेरा मुँह नहीं
कोई बड़ी बात न थी। उस दिन तो जैसे का तैसा
हुआ, किन्तु पेट में बमविस्फोट होने लगे। अन्त में
सोचते एक रास्ता निकाल ही लिया। वह रास्ता
कि बाबाजी के यहाँसे सब तस्वीरों को चुरा
मझली जीजी के सामने सब पटक दूँ। उसमें
की आवश्यकता न होगी और वे स्वयं ही मुझसे
तब उस हरामजादे बाबा की सारी पोल खुल
इससे बढ़कर और कोई अच्छी तरकीब मुझे नहीं
झट मन ही मन तय करके चुटकी बजायी। यानी
में काम होगा।

× × ×

नवीन प्रकाशन

अनुदान—कहानी-संग्रह। मू० ले० श्री वनफूल। श्री गोपाल माहेश्वरी, प्रकाशक, बंगीय हिंदी-परिषद्, किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता——१२। सजिल्द। मूल्य तीन रुपये।

ी वनफूल बँगला के मूर्धन्य कथाकार हैं। उनकी यों का यह हिंदी अनुवाद अभिनन्दनीय है। अनुवाद हुआ है। बंगीय हिंदी-परिषद् ने इसका प्रकाशन हिंदी का बड़ा हित किया है, क्योंकि इससे बँगला के आधुनिक सर्वोत्तम कथा शिल्प का परिचय ठकों को प्राप्त होगा। श्री वनफूल के संबंध में कुछ ी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे प्रख्यात साहित्य-हैं। इस संग्रह में उनकी ३५ कहानियाँ संग्रहीत हानियों का शिल्प तो अनोखा और आधुनिकतम के हृदय पर करारी चोट करती हैं और पाठक को ंसाती और कभी रुलाती हैं, किंतु वे इतनी विचारो-हैं कि उसे समाज की समस्याओं पर विचार करने भी कर देती हैं। प्रत्येक कथा-साहित्य प्रेमी को हानियों को पढ़ना चाहिए। हम इस सुंदर और प्रकाशन का स्वागत करते हैं।

ं का पत्ता (उपन्यास)——अमृता प्रीतम। जपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली——६, मूल्य तीन रुपये।

ी अमृता प्रीतम पंजाबी भाषा की सर्वश्रेष्ठ लेखिका, र और कवयित्री हैं। उनकी कृतियों को साहित्य मी से भी पुरस्कार मिला है और वैसे भी उनका बहुत लोकप्रिय है। प्रस्तुत उपन्यास में विभा-के समय के पंजाब के मध्यवर्ग का चित्रण है। विभा-ने वहाँके सुखी और साधारण परिवारों के जीवन शान्ति कर दी उसका आभास इस उपन्यास से ा है। कथा रोचक है और रोचक ढंग से कही गयी ह भावुकताप्रधान कथा है जिसमें नारी के प्रेम हराई का चित्रण कलापूर्ण ढंग से किया गया है। ास-प्रेमियों को यह अवश्य ही रुचिकर होगा। पुस्तक से यह नहीं मालूम होता कि उन्होंने यह हिन्दी में लिखी या यह उनके पंजाबी उपन्यास का वाद है। इसकी भाषा कहीं-कहीं बहुत अटपटी है और प्रान्तीयता की झलक आवश्यकता से अधिक है। ने अपना सिर रेल की पटरी पर रखा हुआ था" 'कोई पकड़ हो गयी है उसे' पंजाबी भाषा की दृष्टि से ही ठीक हों किन्तु वे साधु हिन्दी में मान्य नहीं हैं। प्रकार के, तथा अन्य प्रकार के भी भाषा के दोषों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। छपाने के पहिले ऐसी उत्तम पुस्तकों की भाषा सावधानी से शुद्ध करा ली जानी चाहिए। छापे की भी अशुद्धियाँ काफी हैं——विशेषकर मात्राओं की। या तो मात्राएँ छपने में टूट गयी हैं या उन्हें ठीक नहीं किया गया। अमृता प्रीतम के समान लेखिकाओं की कृतियों को अच्छी हिन्दी में शुद्ध ढंग से न छापने से साधारण हिन्दी पाठकों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

राष्ट्रीय ग्रंथ-सूची (हिन्दी भाग) १९६०। सम्पादक——वी० एस० केशवन्। प्रकाशक, भाषा-विभाग, उत्तर प्रदेश। बड़ा आकार। सजिल्द। पृष्ठ-संख्या, ४४७, मूल्य आठ रुपये। अधीक्षक, राजकीय मुद्रण तथा लेखन-सामग्री, गवर्नमेंट प्रेस बुक डिपो, इलाहाबाद से प्राप्य।

भारत-सरकार भारत में प्रकाशित सभी भाषाओं की पुस्तकों के प्रकाशन का वार्षिक विवरण निकालने लगी है। अँगरेजी में सभी भाषाओं की पुस्तकों की वृहद् सूची निकाली जाती है, किन्तु अन्य भाषाओं की सूचियाँ अलग से भी उन भाषाभाषी राज्यों के द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। वे उन भाषाओं में होती हैं। हिन्दी पुस्तकों की सूची का हिन्दी संस्करण तैयार और प्रकाशित करने का काम उत्तर प्रदेश की सरकार को सौंपा गया है। यह विवरण सन् १९५८ से प्रकाशित होना आरंभ हुआ है। इस प्रकार यह इस विवरण के प्रकाशन का तीसरा वर्ष है। प्रस्तुत विवरण में १९६० में प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों का विषयानुसार और वैज्ञानिक विभाजन के अनुसार वर्णन दिया गया है। अनुक्रमणिका में अकारादि क्रम से लेखकों और पुस्तकों के नाम के अनुसार भी पुस्तकों की सूची दी गयी है। यह अत्यन्त उपयोगी संदर्भ ग्रन्थ है और यह शोधकर्ताओं, पत्रकारों, विश्वविद्यालयों आदि के लिए बड़े काम का है। इससे १९६० के हिन्दी प्रकाशनों का पूरा चित्र सामने आ जाता है। पुस्तक का सम्पादन और प्रकाशन बड़ी योग्यता और परिश्रम से किया गया है। इसीलिए छापे की अशुद्धियाँ बहुत कम हैं, किन्तु जो थोड़ी-बहुत हैं, वे भी इस प्रकार के ग्रंथ में खटकती हैं। उदाहरण के लिए पृष्ठ २५१ पर 'सार्वलौकिक' के स्थान पर 'सार्वलौलिक' या अन्यत्र 'सीताराम' की जगह 'सीतराम।' अखरौटी की एकरूपता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। २५० पृष्ठ पर एक पंक्ति में 'महासु' और एक पंक्ति छोड़कर यही शब्द 'महासू' छपा है।

अँगरेजी में छपी इस प्रकार की पुस्तकों में छापे की अशुद्धियाँ ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलतीं। कोई कारण नहीं कि इस प्रकार के हिन्दी प्रकाशनों में वही दक्षता न लायी जा सके।

इस ग्रंथ में यदि वर्ष के प्रकाशन की एक संक्षिप्त आलोचना भी सम्मिलित कर दी जाया करे तो इस ग्रंथ की उपयोगिता और भी बढ़ जाय। उस आलोचना में हिन्दी प्रकाशन की प्रवृत्तियाँ और भिन्न-भिन्न विषयों के प्रकाशनों के गुण और आकार का वर्णन हो तो हिन्दी साहित्य की प्रगति का स्पष्ट चित्र पाठकों के सामने आ जाय।

इस विवरण के अध्ययन से मालूम होता है कि यद्यपि संख्या में हिन्दी प्रकाशन असंतोषजनक नहीं है, तथापि उसके प्रकाशन अनियोजित और सस्ते हैं, तथा गंभीर एवम् ज्ञानविज्ञान के प्रकाशनों की ओर ध्यान नहीं है। उदाहरण के लिए, इतिहास में केवल दो पुस्तकें निकलीं। इनमें एक रूसी ग्रंथ का अनुवाद है। विज्ञान की केवल आठ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, और ये प्रायः सभी स्कूली या बालकोपयोगी थीं। इस वर्ष अमरीकी साहित्य की ६, अँगरेजी साहित्य की ९, जर्मन साहित्य की १, फ्रेंच साहित्य की ६, रूमानी साहित्य की १, ग्रीक साहित्य की १ पुस्तक, और ८ रूसी पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुईं। हिन्दी मौलिक कथा साहित्य में ११४ पुस्तकें निकलीं। उर्दू साहित्य पर ११ मौलिक पुस्तकें लिखी गयीं, और ८ उर्दू की कथा-साहित्य की पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हुए। १३ बँगला पुस्तकों, १ असमी पुस्तक, ३ मराठी पुस्तकों और १४ गुजराती पुस्तकों के अनुवाद हिन्दी में छपे। १ ताजिक भाषा की पुस्तक का भी अनुवाद हिन्दी में निकला। १ तमिल, ४ मलयालम और २ तैलगू पुस्तकों के अनुवाद हिन्दी में वर्ष भर में निकले। इनसे हिन्दी प्रकाशन की प्रवृत्तियाँ मालूम हो सकती हैं। यदि इस प्रकार वार्षिक प्रकाशन का विश्लेषण भी साथ में छापा जाय तो उससे बड़ा लाभ होगा। यहाँ यह भी कह दें कि अनुवाद के ग्रंथों का पता ठीक-ठीक नहीं लगता। उदाहरण के लिए जहाँ तक हमें मालूम है श्रीमती कृष्णा हठीसिंह की पुस्तक 'कोई शिकायत नहीं' मूल रूप से अँगरेजी में, और कृष्णचन्दर की 'एक गधे की आत्मकथा' उर्दू में लिखी गयी थीं। हिन्दी में उनका अनुवाद छपा है। किन्तु इस विवरण में वे इस तरह दी गयी हैं कि हिन्दी की मौलिक पुस्तकें मालूम पड़ती हैं।

हमें मालूम है कि प्रकाशनों का इस प्रकार का विवरण तैयार करना कितना परिश्रम-साध्य कार्य है। आरंभ में जो कठिनाइयां होती हैं, उनका भी हमें ज्ञान है। उपर्युक्त आलोचना का आशय इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के महत्त्व को घटाना नहीं है। उसके महत्त्व और उसकी तैयारी में जो परिश्रम किया जाता है, उसकी हम सराहना करते हैं। किन्तु हम चाहते हैं कि यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ और भी अधिक उपयोगी हो। इसीलिए ये
दिये गये हैं।

सुगम भक्ति मार्ग—स्वामी अखंडानन्द
सत्साहित्य प्रकाशन, २५५ ए/१६ रिजरोड,
हिल बम्बई—६, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य दो रुपये।

यह पुस्तक उन साधकों के लिए लाभकारी
दूसरों के मार्गदर्शन के बिना स्वयम् पूजन व
करना चाहते हैं। गुरु शिष्य सम्बन्ध, दीक्षा व
का महत्त्व तथा कुछ भक्तों के जीवन-चरित्रों का
करने के पश्चात् इसमें मंत्रों के जप की विधि भी
गयी है। भक्तों के वे ही चरित्र चुने गये हैं जिनसे
स्पष्ट होता है कि भगवान् निश्छल हृदय के पूजन
मणि-मुक्ता के आडम्बरमय पूजन से अधिक
समझते हैं। भक्त किरात और नन्दी वैश्य, भक्त
नाभ तथा राजा पुण्यनिधि के चरित्र निश्छल
भक्ति के प्रतीक हैं। मंत्रों की जप-विधि बताने
इन चरित्रों को रखकर लेखक ने स्पष्ट संकेत
कि जप विधि विशुद्ध हृदय से की जाय तभी वह
पूर्ति में समर्थ होती है। कोरे मंत्र जाप से पूर्ण
प्राप्ति नहीं होती।

साधक अपने मानसिक स्तर के अनुरूप ही
पुस्तकों को खोजता है तथा उन्हींसे उसको लाभ
है। कोरे ज्ञान की पुस्तकें ज्ञानियों को तो सरस
परन्तु दूसरे मानसिक स्तर के प्राणियों को वे नीरस
होंगी। इस कारण उस पुस्तक में 'अखंड ज्ञान
होते हुए भी पाठक उससे पूर्ण लाभ न उठा
इस दृष्टिकोण से देखते हुए यह पुस्तक उस जन
दाय के लिए लाभकारी है जो पूजा, वंदना, पाठ
के लिए पंडितों का आश्रित है। पुस्तक की शैली
तथा भाषा सुन्दर और शुद्ध है।

चैतन्य मत और ब्रज साहित्य—
मित्तल, साहित्य संस्थापन, मथुरा, पृष्ठ-संख्या
मूल्य १० रुपये।

यह पुस्तक चैतन्य देव, उनके सम्प्रदाय और
कवियों के बारे में एक महत्त्वपूर्ण तथा परिपूर्ण पुस्तक
पुस्तक के अन्त में समय-समय के चैतन्य महाप्रभु के
कुछ प्रसिद्ध मंदिर व स्थानों के सब मिलाकर
भी दिये गये हैं। अब तक एक स्थान पर गौड़ीय
के हिन्दी कवियों के विषय में जानकारी नहीं मिलती
इस पुस्तक ने इस बहुत बड़ी कमी को पूरा
अभी तक प्रायः लोगों की यही धारणा है कि चैतन्य
प्रभु ने केवल संस्कृत और बँगला साहित्य को ही
दी परन्तु यह जानकर हर्ष होता है कि हिन्दी
को भी उनसे प्रेरणा प्राप्त हुई है। इतना
विस्तृत साहित्य बिखरा पड़ा होने के कारण
सुलभ न था। लेखक ने जिस सुव्यवस्थित रूप से
प्रस्तुत किया है वह सराहनीय है।

यह ग्रन्थ दो भागों में विभाजित है। प्रथम खंड में न्य महाप्रभु, उनके सहकारी भक्तों, कवियों, विद्वानों प्रचारकों के जीवन वृत्त तथा उनकी रचनाओं का परिदिया गया है। दूसरे खंड में चैतन्य मत की पृष्ठ-, उसके विकास क्रम, प्रचार-प्रसार और आरंभिक नाओं का विवेचन हुआ है। लेखक का परिश्रम सराहनीय है। यह लिखने में हर्ष होता है कि ने अपने परिश्रम में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इस की सबसे महत्त्व की वस्तु उसकी परिपूर्णता है। गौड़ीय सम्प्रदाय के हिंदी कवियों का पूर्ण इतिहास ही—साथ ही साथ यह पुस्तक कोरा इतिहास ही नहीं रह गई है। उसमें भक्ति-साहित्य की सरसता भक्तों के सुन्दर पद जो स्थान-स्थान पर उद्धृत गये हैं वे इस पुस्तक को अमूल्य बना देते हैं।

नैतिक जीवन का सिद्धान्त—लेखक जॉन ड्यूई। कृष्ण चन्द्र, आत्माराम ऐंड सन्स, दिल्ली, पांच रुपया, पृष्ठ-संख्या १९८।

जॉन ड्यूई आधुनिक युग के प्रमुख शिक्षा-शास्त्री, एवम् विचारक माने जाते हैं। उनकी दार्शनिक धारा पियडर्स, जेम्स आदि के विचारों से होने पर भी नवीन है। दार्शनिक विचारों होंने एक नया मोड़ दिया है—'विचार शक्ति' को रूप से समझा है। इनका मत है कि विचार कर्म दाता है और कर्म द्वारा प्राणी जीवन में निरन्तर की समस्याओं का हल करता है। मनोविज्ञान, शिक्षा और नैतिक सिद्धान्तों पर आपने कई पुस्तकें हैं—जो आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। प्रस्तुत उनके 'थ्योरी ऑफ दी मौरेल लाइफ' का अनुवाद इसमें ६ अध्याय हैं: १—नैतिक सिद्धान्त का स्वरूप, ध्येय श्रेयस और बुद्धि, ३—अधिकार, कर्तव्य व री, ४—अनुमोदन, पैमाना और सदाचरण, ५—क विकास और ज्ञान, ६—नैतिक व्यक्तित्व—ये सभी किसी भी विचारशील प्राणी को रुचिकर प्रतीत । इन सबसे प्रतिबिंबित होता है कि मूल पुस्तक सुन्दर व रुचिकर होगी परन्तु अनुवाद ने उसकी ता पर बड़ा आघात किया है। अनुवाद की सुन्दरता है कि वह अनुवाद न प्रतीत हो और मूल की सुन्दरता उभार दे। इस पुस्तक का अनुवाद शाब्दिक दृष्टि-से शुद्ध होते हुए भी इतना शाब्दिक है कि उसको में कठिनता सी होती है। प्रत्येक भाषा की वाक्य अलग होती है। अनुवाद में यदि शब्द तो हिंदी के जायें और वाक्य-रचना अँगरेजी की ही रहे (या मूल की रहे) तो उससे पुस्तक की सरसता चली जाती है पाठक को पढ़ने और विषय ग्रहण करने में असुविधा ती है। इस पुस्तक के अनुवाद में यही दोष आ गया है। इसका ठीक ढंग से पुनरीक्षण कर दिया जाता और में प्रवाह होता तो यह पुस्तक बड़े काम की होती।

हौलदार—लेखक शैलेन्द्र मटियानी, प्रकाशक आत्माराम ऐण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली ७, पृष्ठ-संख्या ३६१, मूल्य ६ रु०, जिल्द मोटी।

यह उपन्यास पहाड़ी गाँव की पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया है। कथा नवीन है प्रायः उपन्यास में प्राप्त पिटी हुई कथा नहीं है। डूँगरसिंह हौलदार होने के स्वप्न लेकर गाँव से पलटन में भरती होने गया था पर हवलदारी तो दूर रही अपनी ही भूल से अपने पैर में गोली मार कर अपना एक पैर खोकर घर वापिस बैरंग चला आया।

अपनी उच्चाभिलाषाओं का खंडहर होते देख जो एक निराशा मन में समा जाती है, अंगहीन शरीर में जब स्वयम् वही काम करने की शक्ति नहीं रहती जो पहले चुटकियों में हो जाते थे उस समय जो विवशता अंगहीन प्राणी के हृदय में आ जाते हैं, अपनी शारीरिक असमर्थता से जो प्राणियों में स्वयम् ही एक हीन भावना आ जाती है जिसमें वह साधारण बातों के भी दूसरे अर्थ लगाने लग जाता है—इन सभी कुंठाओं का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक हुआ है। किस प्रकार महत्त्वाकांक्षायें थपथपा-थपथपाकर विक्षिप्त हृदयों को आगे की ओर ढकेलती जाती हैं, इन सभी का चित्रण इतना वास्तविक हुआ है कि डूँगरसिंह पाठकों की दया और सहानुभूति का पात्र हो जाता है। उसका चित्रण एक सजीव प्राणी का चित्रण है जिसके हृदय में समय की प्रेरणा के अनुसार कभी भले विचार उठते हैं तो कभी बुरे।

उपन्यास पूर्णतः समाप्त नहीं है। बाद की कथा 'बारूद व बचुली, नामक उपन्यास में शीघ्र ही प्रकाशित होगी। जिस पहाड़ी पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गयी है उसका चित्रण इतनी अच्छी तरह से किया गया है कि यह मानना पड़ेगा कि लेखक का पहाड़ी और ग्रामीण जीवन का ज्ञान यों ही इधर-उधर से सुनकर जाना हुआ नहीं है। इतने सफल चित्रण के लिये लेखक बधाई का पात्र है।

तुलसी का अन्तर्जगत—लेखक देवेन्द्रसिंह, मंजुल, साहित्य सदन १६९, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या २९३, मूल्य ५·४० न० पै०।

इस पुस्तक का अभिप्राय उन अनुभूतियों और आस्थाओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना है जिनसे परिचय प्राप्त किये बिना पाठक तुलसी की कृतियों का पूर्ण रसास्वादन करने से वंचित ही रह जाते हैं। ये अनुभूतियाँ इतनी भावपूर्ण, मर्मस्पर्शिनी तथा रससिक्त हैं कि उनको काव्य का माध्यम बनाने के कारण ही उनके काव्य में एक नैसर्गिक सहजता आ गयी है—लेखक उन्हीं को खोल-खोलकर पाठकों के सम्मुख रख रहा है। उसके इस प्रयास में यह स्वाभाविक ही है कि रामायण की सुन्दरतम चौपाइयाँ ही छँट-छँटकर सम्मुख आयें क्योंकि जिन चौपाइयों में अनुभूति है वे ही अत्यन्त रसरिक्त हैं। इस प्रकार सुन्दर चौपाइयों की एक यूथिका सी इस पुस्तक में तैयार हो गयी है। तुलसी कृतियाँ स्वयम् इतनी अधिक मार्मिकता से सुवासित हैं कि जो ग्रन्थ भी उन पर लिखा

जाने के कारण उनका सामीप्य प्राप्त करता है वह भी सन्निकटता के कारण ही सुवासित हो उठता है। यह ग्रन्थ भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है।

यह पुस्तक ऐसे पाठकों के लिए तो अत्यन्त महत्त्व की है जो तुलसी की कृतियों का आनन्द लेने में तो रस-विभोर हो जाते हैं परन्तु यह नहीं बता पाते कि इस आनन्द की प्राप्ति का कारण क्या है और उसके फलस्वरूप 'कोरे भावुक' होने की उपाधि प्राप्त करते हैं। पुस्तक दो खंडों में विभाजित है--पहला है 'भाव जगत्', दूसरा है 'काव्य जगत्।' काव्य जगत् के अन्तर्गत आनेवाले सात अध्यायों में लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि इसमें मानव जीवन को सार्थक व अर्थपूर्ण बनाने का अनुपम गुण है।

इस पुस्तक के लेखक अँगरेजी विभाग के अध्यक्ष हैं। अँगरेजी विभाग के अध्यक्ष होने के कारण हमें यह तो स्वीकार ही करना होगा कि वे आधुनिक आलोचना के समस्त दाँवपेचों के ज्ञाता होंगे। यदि संस्कृत का कोई विद्वान् अपना मत प्रदर्शित करता तो हम उसे भले ही उतना महत्त्व न देते जितना कि हम अँगरेजी की आलोचना-कला के ज्ञाता को देते हैं--क्योंकि हमारे देश की प्रथा है कि विलायत से किसी विशेषज्ञ को बुलाकर उसके खरा कह देने पर ही हम अपनी वस्तु को खरा कहते हैं।

ग्वालकवि--प्रभुदयाल मीतल। साहित्य संस्थान, मथुरा। मूल्य ३ रु०।

ग्वाल कवि उत्तरार्द्ध ब्रजभाषा काल के बहुत प्रसिद्ध कवि थे किन्तु उनका जीवन वृत्त किसी ने सम्बद्ध रूप में अभी तक नहीं लिखा था। श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस प्रामाणिक जीवनी को लिखकर साहित्य का बड़ा उपकार किया है। ग्वालजी के जीवन की बिखरी हुई घटनाओं और जनश्रुतियों का संकलन और परीक्षण अपने ही बड़ा काम था। मीतलजी ने जिस योग्यता से उसे सम्पन्न किया है उसे देखकर उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। आवश्यकता इस बात की है कि अन्य पुराने प्रतिष्ठित कवियों की जीवनी इसी प्रकार लिखी जाय। यह पुस्तक ऐसी जीवनियों के लिए आदर्श स्थापित करती है। ग्वाल जी का जीवन बड़ा राजसी था और तत्कालीन कितने ही रजवाड़ों से उनका सम्बन्ध था। इस पुस्तक में उनकी विस्तृत चर्चा की गयी है। उनके शिष्यों और समकालीन कवियों का परिचय भी दे दिया गया है। अन्त में उनके काव्य का सुन्दर और सुसम्पादित संकलन भी है। पुस्तक बड़े अनुसंधान और परिश्रम से लिखी गयी है। इससे ग्वाल के समय की ब्रजभाषा का अच्छा परिचय मिलता है और ग्वाल का कृतित्व और व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। यह पुस्तक ब्रजभाषा काव्य-प्रेमियों और उस समय के साहित्य में शास्त्रीय रुचि लेनेवालों के बड़े काम की है।

सुराना मध्य प्रदेश डायरेक्ट्री १९६३--प्रकाशक, सम्पतलाल हेमराज सुराना जैन, १८ इतवारिया बाजार, इंदौर। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य ५)।

हिंदी में डाइरेक्टरी तैयार करने की प्रथा
आरंभ नहीं हुई। इस देश में सभी डाइरेक्टरियाँ
में बनती हैं। इसलिए हिंदी की यह डाइरेक्टरी
से अभिनन्दनीय है। मध्य प्रदेश व्यापार की
महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ खनिज और वन की
अटूट खजाना है। यहाँ अपेक्षाकृत कल-कारखाने भी
हैं और कृषि उत्पादन भी बहुत है। इस डाइरे
प्रत्येक प्रकार के व्यापारिक संस्थानों के नाम और
गये हैं। प्रत्येक जिले का औद्योगिक और
परिचय भी दिया गया है। मध्य प्रदेश सम्बंधी
जानकारी के अतिरिक्त वहाँकी योजनाओं, पंचायत
कृषि, उद्योग और व्यापार संबंधी क्रमबद्ध विस्तृत
इस ढंग से दी गयी है कि किसी जानकारी को
आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुओं के
और दरों संबंधी सभी प्रकार की जानकारी दी
प्रशासनिक विवरण और पत्र-पत्रिकाओं का
दिया गया है। सारांश यह कि मध्य प्रदेश संबंधी
आवश्यक जानकारी इस डाइरेक्टरी से मिल सकती
यह व्यापारियों के विशेष उपयोग की है। हम इस
रेक्टरी की सफलता चाहते हैं जिससे दूसरे क्षेत्रों
इस प्रकार की डाइरेक्टरियाँ निकल सकें।

तुलसीदास--चिन्तन और कला। सम्पादक,
इन्द्रनाथ मदान। प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज़,
६। मूल्य, पाँच रुपये।

इस पुस्तक में तुलसीदास पर दस विद्वानों के
हैं। ये सब निबन्ध इस प्रकार लिखे गये हैं कि
मिलाकर तुलसीदास के कृतित्व के सम्बन्ध में
अध्ययन हो गया है। पुस्तक तुलसी का अध्ययन
वालों के लिए उपयोगी है। इनमें डा० श्यामसुंदरदास
आचार्य रामचंद्र शुक्ल के लेख पुराने हैं, शेष सभी
नये हैं। इनमें डा० मदान और रूस के हिंदी विद्वान
वरान्निकोव के लेख विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

बँगला की प्रतिनिधि हास्य कहानियाँ--
पृथ्वीनाथ शास्त्री और योगीन्द्र कुमार लल्ला।
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६। बड़ा आकार,
अनेक रेखा-चित्र। मूल्य, १० रुपये।

इस अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक में बंकिमचंद्र
से लेकर शंकर तक के ३५ बँगला लेखकों की हास्य,
और व्यंग्यात्मक कहानियाँ संकलित हैं। कथा
में (कम से कम भारतीय भाषाओं में) बँगला
बेजोड़ है। इस संग्रह में बँगला की विनोदात्मक
की छटा देखने को मिलती है और इनके पढ़ने से
होता है कि बँगला हास्यरस की कहानियाँ कितनी
कोटि की हैं, उनमें कितनी सुरुचि है और कितनी
चोट करने की क्षमता है। इन कहानियों का चयन
सावधानी से किया गया है। सभी कहानियाँ बड़ी
और उच्च कोटि की हैं। संकलन बहुत अच्छा है
अनुवाद की भाषा भी संतोषजनक है। इन

साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्तियों का अच्छा मनो- न होगा।

नाभिकीय ऊर्जा—प्रकाशक, पीपुल्स पब्लिशिंग (प्रा०) लिमिटेड, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली। १ रुपया।

आज परमाणु ऊर्जा विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि नाभिकीय ऊर्जा (न्यूक्लिअर एनर्जी) से असंख्य नाएँ हैं। यह पुस्तक उसी विषय पर है। वास्तव में नी चिल्ड्रन्स एनसाइक्लोपीडिया के इस विषय के आधारित है और रूसी मूल का भावानुवाद मालूम है। इस जटिल विषय को बड़े सरल और स्पष्ट ढंग ाया गया है। इस विषय में रुचि लेनेवालों के बहुत उपयोगी है—विशेषकर उन लोगों और र्थियों के लिए जो इस विषय को समझना चाहते हैं। में अनेक स्पष्ट और उपयोगी रेखाचित्र हैं जिनसे को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। इस पुस्तक में एक बड़ी आश्चर्यजनक बात यह है कि इसमें बड़े आकार के पृष्ठ हैं। कितने ही चित्र हैं। बड़ा कागज लगाया है। पट्ठे की जिल्द है जिस पर आवरण है। और फिर भी मूल्य केवल एक रुपया पुस्तक की लागत ही एक रुपये से अधिक होगी। में नहीं आता कि यह इतने कम मूल्य में किस बेची जा सकती है।

विज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान—मूल लेखक, जेम्स ; अनुवादक, विश्वामित्र शर्मा। प्रकाशक, आत्मा- ड सन्स, दिल्ली-६। सजिल्द, सचित्र और बड़ा । मूल्य, साढ़े सात रुपये।

श्री कोनेण्ट अमरीका के एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक हैं। में उन्होंने अमरीका के येल विश्वविद्यालय में के ऊपर एक व्याख्यानमाला दी थी। उसमें यह बतलाया था कि उन साधारण विद्यार्थियों को ज्ञान नहीं पढ़ते, आधुनिक विज्ञान की मौलिक और बातों को व्यावहारिक रूप से किस तरह बतलाया ता है। ये व्याख्यान इतने उपयोगी प्रमाणित हुए पुस्तकाकार छपे और बड़े लोकप्रिय हुए। प्रस्तुत उसी पुस्तक का अनुवाद है। इसमें १२ अध्याय र इन्हींमें विज्ञान के मौलिक सिद्धान्त ही नहीं बतलाये प्रत्युत यह भी बतलाया गया है कि रसायन शास्त्र, की, भूगर्भ शास्त्र आदि के आविष्कारों से उद्योग , औषधि, यांत्रिकी आदि में क्या उन्नति हुई है। यह समझाया गया है कि "वैज्ञानिक विधि" क्या है तथा आज संसार में राज्य, आविष्कारक और विज्ञान का क्या संबंध है। यह पुस्तक इतनी स्पष्ट और मनोरंजक शैली में लिखी गयी है कि साधारण पाठक भी इसे भली भाँति समझ सकता और उससे रस ले सकता है। अनेक सुंदर और स्पष्ट चित्रों ने इसकी उपयोगिता और भी बढ़ा दी है। हिंदी में इस प्रकार की पुस्तकों का अनुवाद बहुत आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा हिंदी भाषी जनता और विद्यार्थियों में विज्ञान की जानकारी का प्रसार सरल हो जायगा।

ज्ञानसार ग्रन्थावली—सम्पादक, अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा। प्रकाशक, नाहटा ब्रदर्स, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता—७। सजिल्द। मूल्य, ढाई रुपये।

मुनि ज्ञानसार अठारवीं शती के एक विद्वान् और प्रतिष्ठित जैन संत थे। वे बड़े विद्वान् थे और उन्होंने देश का खूब पर्यटन किया था। वे विद्वान् होने के अतिरिक्त कवि भी थे और हिंदी में उन्होंने प्रचुर परिमाण में काव्य रचा है। उनकी अधिकांश रचनाएँ जैन धर्म से संबंधित हैं, किंतु प्रकारान्तर से उनमें तत्कालीन समाज और इतिहास के भी प्रसंग आ गये हैं। इस विशाल ग्रंथ में (जिसकी पृष्ठ-संख्या ४९० है) मुख्य रूप से उनकी आध्यात्मिक कृतियों का एक अंश ही प्रकाशित हो सका है। इनके पढ़ने से मालूम होता है कि वे उच्च कोटि के धार्मिक पुरुष थे और भाषा पर उनका अच्छा अधिकार था। उनका जन्म राजस्थान में हुआ था। इसलिए उनकी भाषा में राजस्थानी पुट का होना स्वाभाविक है। जैसे,

हे जिन राय सहाय करो यू
चंदनबाला बाकुल बहिरी, ज्यूँ उधरी त्यूँ ही उधरो यू।
शूली तें प्रभु सेठ सुदरसण, सिहासण बड़े वेग धर्‌यो यू।
चरण डस्यौ चंडकौशिक सांपे, करुणाकर प्रभुदेव कर्‌यौ यू

किंतु कहीं-कहीं शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग मिलता है। जैसे

तो बिन मोसे पतित को, लाज राखिहै कौन
ग्रीष्म ताप को हरि सकै, बिन मलयाचल पौन।

विद्वान् होने के अतिरिक्त सतत भ्रमण से उनकी निरीक्षण शक्ति बहुत तीक्ष्ण हो गयी थी। इसलिए स्थान-स्थान पर उन्होंने देखी हुई बातों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। 'पूरब देश' की चर्चा करते हुए उन्होंने बंगाल के लोगों को अहिंसक जैन साधु की दृष्टि से देखा और उसका वर्णन किया। मुनि ज्ञानसार जी की यह कृति धार्मिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, साथ ही भाषा के विकास के अध्ययन में भी इसका महत्व है। राहुल सांकृत्यायन ने एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ा दिया है।

एक तरुणी का नीलाम

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

मुश्तरी नाम की एक वेश्या ने, जो कविता भी करती थी, एक बार अपने दिल के विषय में एक पद्य कहा था। जहाँ तक हमें याद है, वह पद्य यह था :—

ख़रीदारो लो चल के बाज़ार देखो।
दिले मुश्तरी अब बिका चाहता है॥

इस बार वनिता ने तो अपना दिल ही बेचना चाहा था; पर अमेरिका की खूब पढ़ी-लिखी एक नौजवान कुमारिका ने अपने सारे शरीर को, मन और प्राण सहित, नीलाम कर देने का इश्तहार दिया है। वह युवती वाशिंगटन की रहनेवाली है। शिकागो में वह टाइपराइटिंग का काम करती है। मरते दम तक सर्वश्रेष्ठ "बोली" बोलनेवाले की दासी होने का इसने विचार किया है। वह अपने को नीलाम करना चाहती है। इसका कारण आप उसी के मुँह से सुनिए :—

"इस नीलामी नोटिस को पढ़ कर लोगों को आश्चर्य्य होगा। परन्तु आश्चर्य्य करने का कोई कारण नहीं। क्योंकि और तरुण लड़कियाँ भी तो अपने को बेच कर लोगों की ग़ुलामी करती हैं। हाँ, उनकी ग़ुलामी कुछ कुछ दूसरी तरह की जरूर है। पर है वह भी पूरी पूरी ग़ुलामी। ग़ुलामी के सिवा और कुछ नहीं। कोई कोई प्रति सप्ताह तनख्वाह पाने के परिवर्तन में, अपने को बेच डालती हैं; कोई कोई पतिप्राप्ति के परिवर्त्तन में पति को मालिक बनाकर उसके आधीन रहना क्या ग़ुलामी नहीं? औरों की नौकरी करना क्या ग़ुलामी नहीं? ये बातें सर्व साधारण के सामने प्रकाश-रूप से नहीं होतीं। हर एक नौजवान लड़की चुपचाप ग़ुलामी स्वीकार कर लेती हैं। यही बात मैं प्रकाश-रूप से करना चाहती हूँ। मैं सब लोगों को सूचना देकर अपने को नीलाम करने जाती हूँ। इस तरह नीलाम करने से मुझे आशा है मेरी क़ीमत लोग कुछ अधिक लगावेंगे। अतएव खुल्लम खुल्ला नीलाम करने में हानि ही क्या है?

"मेरा परलोकवासी पिता सरकारी नौकर था। मुझे लिखाने, पढ़ाने और शिक्षा देने में उसने ३०,००० रुपये खर्च किये। इतनी लागत से मैं जवान होकर नीलाम होने लायक हुई हूँ। पर यद्यपि मैं जी जान होम "टाइप राइटिंग" का काम करती हूँ, तथापि ३० हफ्ते से अधिक मुझे तनख्वाह नहीं मिलती। मेरी तै में जो मूल धन लगाया गया है। उस पर यह ५ फी के हिसाब से भी तो नहीं पड़ता! अब मैं यह जानने लिए उत्कंठित हो रही हूँ कि गुलामों के मालिक अमेरि निवासी धनवान् लोग, जियादह से जियादह कि कीमत देकर गुलाम बनाने के लिए अमेरिका ही की तरुण कुमारी को खरीद कर सकते हैं। मैं जानना चाह हूँ कि इस तरह की गुलाम कुमारिकाओं का बाजार क्या है। जब कोई आदमी किसी चीज को खरीद करना चाहता है तब वह उसके गुणों का वर्णन भी सुनना चाह है। बहुत अच्छा, जब मैं अपना नीलाम करने पर उता हूँ, तब अपना वर्णन भी अपने ही मुँह से क्यों न करूँ सुनिए——

"मैं तरुण हूँ, समझदार हूँ, पढ़ी लिखी हूँ, शिष्ट व्यवहारज्ञ हूँ, सच बोलती हूँ, विश्वासपात्र हूँ, न्यायनि हूँ, काव्यरसज्ञ हूँ, तत्वज्ञ हूँ, उदार हूँ——सबसे बड़ा मुझमें यह है कि मैं स्त्रीत्व के सर्वोच्च गुणों से विभूषि हूँ। मेरे भूरे नेत्र बड़े-बड़े हैं। मेरे ओठों से सरसता टपक है। मेरे दाँत अनार के दाने हैं। मैं अपने को सुन्दरी नहीं कह सकती, पर मेरी शकल सूरत बहुत ही लुभाव है। मेरा चरित्र खूब उच्च और दृढ़तापूर्ण है। हाव- भी मुझमें कम नहीं है। दिल मेरा छोटा नहीं, बहुत ब है। कभी-कभी मैं बहुत ही विनोदशील हो जाती मैं खुश मिजाज होकर अपनी प्रतिष्ठा का हमेशा ख रखती हूँ। पढ़ने लिखने में मैं खूब दिल लगाती हूँ। धार्म्मिक तो हूँ, परन्तु धर्म्मान्ध नहीं। मैं सीना तो जानती; पर पहनने के कपड़े बहुत अच्छे काट सकती और काटना ही मुशकिल काम है। दुकान में रक्खे हुए बुरे मांस की मुझे पहिचान नहीं; पर खिलाने पिलाने में बड़ी होशियार हूँ। मेहमानों को खुश करना मैं अच्छा जानती हूँ। हिसाब लगाने में मैं कच्ची हूँ; पर आल्हे किस्से कहना मुझे खूब आता है"।

यह इस अमेरिकन तरुणी के इश्तहार का कुछ अंश इसने अपने इश्तहार में यह भी लिख दिया है कि, र्वश्रेष्ठ बोली बोलने वाला है, इसका फ़ैसला करना मेरे ही हाथ में है। मैं जिसे चाहूँगी उसी की लगाई ीमत क़बूल करके उसके हाथ अपने को बेच दूँगी। सुनते हैं बहुत लोगों ने इस कुमारी के साथ शादी करने की इच्छा ज़ाहिर की है। ये सब सभ्यता के चोचले हैं। देखते जाइए, यूरप और अमेरिका के सभ्य-समाज में क्या-क्या गुल खिलते हैं।

मृगनैनी बनने का सुयोग

लाला भगवानदास

—मैंने सुना है कि मिर्जापुर के डाक्टर ओमेरा बनाने की क्रिया में एक अद्भुत शस्त्रोपचार tion) कर दिखाया है।

—कैसा शस्त्रोपचार किया है, उसका कुछ वर्णन ीजिए।

—मैंने सुना है कि एक अंधी स्त्री की खराब काल कर फेंक दीं और उनकी जगह एक कुत्ते ऐसी कुशलता के साथ बिठाल दीं कि चन्द दिनों त्री देखने लगी।

—निस्सन्देह, यह तो बड़ी अद्भुत कारीगरी डाक्टर को तो धन्वन्तरि का अवतार कहना मिर्जापुर के लोग बड़े भाग्यवान् हैं, जिनके शहर ऐसे उत्तम डाक्टर रहते हैं।

—अजी भाग्यवान् तो केवल वहाँ के महाजन सकते हैं जो डाक्टर साहब को अपने घर पर बुला करा सकते हैं। मामूली आदमी तो सिविल सर्जन और उनकी क़ीमती दवाओं का खर्च ही नहीं कर सकते।

स्त्री—अजी जो ग़रीब हैं वे अस्पताल में जाकर साहब से दवा करा सकते हैं।

पति—अस्पताल में तो प्रतिदिन इतने रोगी जाते सिविल सर्जन के लिए सब रोगियों को देखना कठिन जाता है।

स्त्री—यदि सिविल सर्जन सब ग़रीब रोगियों को हीं देख सकते तो उन्होंने उस ग़रीब अंधी औरत की कैसे बनाईं?

पति—अजी वह औरत किस्मत की अच्छी थी; उसकी आँखें बन गईं। अब यदि शहर के सब अंधे और अंधियाँ जाकर अपनी आँखें बदलवाना चाहें तो क्या डाक्टर साहब उनकी दरख्वास्त मंजूर कर लेंगे?

स्त्री—क्यों नहीं, वह प्रतिदिन एक एक करके सबकी आँखें बना सकते हैं।

पति—तो तुम भी क्यों नहीं जातीं? तुम्हारी आँखें ज़रा छोटी हैं; इन्हें बड़ी करा लावो।

स्त्री—भाड़ में जायँ बड़ी-बड़ी आँखें। क्या बड़ी-बड़ी आँखें लेकर मैं अपने को आफत में डालूँगी। देखो, बंगालिनों की आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे बेचारी आजकल कैसी मुसीबत में पड़ी हैं। यदि अबला जाति की पूर्णरूप से रक्षा करनेवाली महारानी विक्टोरिया जीती होतीं तो कदाचित् मैं भी अपनी आँखें बड़ी कराने की हिम्मत करती। आजकल की हलचल में तो मैं ऐसी हिम्मत नहीं कर सकती। फिर यदि बड़ी आँखों से आप मुझे कुछ अधिक बड़े देख पड़ते तो मैं अपने को ख़तरे में भी डालना पसंद करती। व्यर्थ कष्ट उठाने से क्या लाभ?

पति—अगर तुमको मैं बड़ा न देख पड़ूँगा तो न सही; तुम तो मेरी आँखों में बड़ी हो जावगी। तुम्हारे कानों तक फैले हुए बड़े नेत्रों को देखकर मेरे नेत्र तो आनन्दित होंगे। तुम्हारे नेत्ररूपी कमलों को देखकर मेरे चक्षुरूपी चंचरीक तो प्रफुल्लित रहेंगे और रहीम का यह दोहा चरितार्थ होता रहेगा—

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, अँखियन को सुख होत॥

स्त्री—बस आपको इन्हीं बातों का हर वक्त ध्यान रहता है। अच्छा हुआ जो इस साल आप कांग्रेस में कलकत्ते नहीं गये, नहीं तो वहाँ से आपका लौटना कठिन हो जाता। भला यह तो बतलाइए कि डाक्टर साहब ने उस अंधी औरत के नेत्रकूपों में कुत्ते के नेत्र क्यों लगाये, क्या किसी और अच्छे जानवर की आँखें न मिल सकती थीं?

पति—अजी कुछ अंगरेज़ हिन्दुस्तानियों को कुत्ते के समान समझते हैं। इसलिए डाक्टर साहब ने हिन्दुस्तानी औरत की आँखों में कुत्ते ही की आँखें लगाना मुनासिब समझा होगा।

स्त्री—अंगरेज़ लोग शायद हिन्दुस्तानियों को इस कारण कुत्ते समझते हैं कि वे हमेशा से स्वामिभक्त रहे हैं। और स्वामिभक्ति है भी अच्छी चीज़। क्योंकि बिना इसके स्वतंत्र देशों में भी काम नहीं चल सकता। जब परमेश्वर ही बिना भक्ति के नहीं रीझता तब मनुष्य कैसे रीझ सकता है। यह तो हुई हिन्दुस्तानियों की बात। अब यह बतलाइए कि यदि कोई फ़िरंगिन अंधी हो जाय तो डाक्टर साहब उसकी आँखों की जगह किस जानवर की आँखें लगावेंगे?

पति—फ़िरंगिन के लिए तो बिल्ली की आँखें अच्छी होंगी।

स्त्री—बिल्ली की आँखें तो छोटी होती हैं; वे काहे को फ़िरंगिनों को पसन्द आवेंगी?

पति—अजी अंगरेज़ों को नीली ही पीली आँखें पसन्द होती हैं; इसलिए वे उस रंग की छोटी आँखें भी पसन्द कर लेंगे।

स्त्री—मैंने सुना है कि इटलीवासी फ़िरंगी काले नेत्र पसंद करते हैं।

पति—तो उनके लिए डाक्टर साहब कोई काली बिल्ली ढूँढ़ लेंगे।

स्त्री—अजी आप तो हँसा करते हैं, क्या काली बिल्लियों के नेत्र काले होते हैं?

पति—अजी फिर मैं क्या बतलाऊँ; जो डाक्टर साहब को सूझेगा करेंगे। अगर मुझसे पूछा जाय तो मैं इटली, रूम, अरब वगैरह की स्त्रियों के लिए ऊँटनी की आँखें लगाने की राय दूँगा। क्योंकि उसकी आँखें बड़ी कँटीली और प्यारी मालूम होती हैं और उन मुल्कों में ऊँटनियाँ इफ़रात से मिल भी सकती हैं। जो फिरंगी लम्बी गर्दन वाली रमणी पसंद करते हैं उनके लिए तो ऊँटनी की एक वाञ्छनीय वस्तु है और सम्भव है कि जिस के ऊँटनी की आँखें लगाई जायँ उसकी गर्दन भी कुछ में लम्बी हो जाय।

स्त्री—क्यों नहीं, और वह कुछ दिनों में बिना पिये रेगिस्तान में दौड़ने भी लगे।

पति—तो क्या जो स्त्रियाँ मृगाक्षी कहलाती हैं जंगलों में घास चरती फिरती हैं?

स्त्री—आपकी बातों से तो ऐसा ही मालूम है। अच्छा अब इन बातों को जाने दीजिए। मुझे मृ शब्द सुनकर यह बात याद आई कि हिन्दुस्तानी स्त्रि की आँखों में डाक्टर साहब मृगी की आँखें क्यों नहीं ल हिन्दुस्तानी काव्यों में तो जहाँ देखो वहाँ मृगनैनी स्त्रियों की प्रशंसा है, और सब सुन्दर स्त्रियों को पदवी पाने की आकांक्षा रहती है।

पति—अगर तुम्हारी भी यही इच्छा हो तो मैं डा साहब से तुमको भी मृगनैनी बना देने की दरख्वास्त मिर्जापुर के बड़े अस्पताल के पास होगन साहब ने एक में कई मृग और मृगी पाल रखी हैं। इससे मृगी के लिए हमलोगों को कहीं दूर भी न जाना पड़ेगा।

स्त्री—अजी होगन साहब अपनी मृगी काहे को लगे।

पति—अजी वे न देंगे तो मैं दस बीस रुपये करके तुम्हारे लिए किसी दूसरी जगह से एक मृगी दूँगा। और जब यह प्रथा चल निकलेगी तब तो ब लोग मृगी लिये गली गली पुकारते और यह दोहा फिरेंगे—

मृगनैनी यदि बनन है, लो यहि मृग के नैन।
जाको कोरन में बसै, धनुसायकयुत मैन॥

और फिर जब हिन्दू और मुसलमान-रमणियों देखा देखी कोई हिन्दुस्तानी ईसाइन भी कोई मृग या खरीद लेगी और डाक्टर साहब को अपने मकान के से जाते देखेगी तो पुकार कर कहैगी "ओमेरा डा ओमेरा डाक्टर! मुझे भी मृगनैनी बनाता जा और फीस लेता जा"। फिर तो थोड़े ही दिनों में मिर्जा में झुण्ड की झुण्ड मृगनैनी सुन्दरियाँ देख पड़ने और मृगलोचनी बनने की लालसा से दूर दूर के नगरों नवयौवना चञ्चला स्त्रियाँ चौकड़ी भरती चली आवेंगी

मनोरंजक संस्मरण

अपने रोग का मज़ाक

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने देवतुल्य शरीर पाया बड़ा भव्य व्यक्तित्व था और स्वास्थ्य भी बहुत था। इसीके बल पर वे स्वतन्त्रता-संघर्ष में अथक और कष्ट सहन कर सकते थे। किंतु उन्हें बवासीर रोग हो गया था। कोष्ठवद्धता की भी शिकायत थी और बाद में उन्हें काँच निकलने का भी कष्ट हो जाया करता था। इसलिए शौचालय में उन्हें देर लगती थी। इससे वे बहुत दुखी थे, किन्तु उनके में बड़ी मस्ती थी। इसलिए वे उसको भी मज़ाक लेते थे।

वे कलकत्ता के कांग्रेस-अधिवेशन में गये हुए थे। एक मित्र के यहाँ ठहरे थे। उनका जन्म मालवा में में हुआ था और लड़कपन भी वहीं बीता था। मालवा के प्रमुख व्यक्तियों से उनका बड़ा सौहार्द उस अधिवेशन में उनके पुराने मालवी मित्र पं० नारायण व्यास भी आये थे, जो कहीं अन्यत्र ठहरे एक दिन व्यासजी और उन्होंने मिल कर नगर में कुछ लोगों से मिलने का कार्यक्रम बनाया। निश्चित से कुछ पहले व्यासजी नवीनजी के डेरे पर पहुँच किंतु देखा कि नवीनजी, घुटन्ना पहने, कान पर जनेऊ हुए बीड़ी पी रहे हैं। व्यासजी ने उनका यह रूप और देखते ही रह गये। नवीनजी भी अपने 'बानक' स्वयं हँस पड़े। व्यासजी ने पूछा कि कितनी देर में गा। उन्हें नवीनजी की शौचालय-साधना का पता । नवीनजी ने कहा कि आध-पौन घंटा तो पाखाना ही जाता है। सो उससे निवृत्त होकर चलेंगे। जी ने पूछा——भला पाखाने में इतनी देर लगने का काम है, तो उत्तर में नवीनजी ने कहा यह भले आदमियों लक्षण है। और फिर बोलें, यह शास्त्रसम्मत है। वाणी-सिक्त श्लोक में कहा गया है——

पाखानस्य सु-सदने
घण्टाप्येकं न बैठते हैं जो !
तेनाम्बा यदि सुतिनी
वद वन्ध्या कीदृशी नाम !

"यह सुनकर नवीनजी की माता को बाँझपन के अपवाद से बचाने, तथा उनका मातृत्व सार्थक होने देने के लिए, व्यासजी कुर्सी खींचकर जमकर बैठ गये और समाचार-पत्र पढ़ने लगे। नवीनजी बीड़ी सुलगाते हुए पाखाने में घुस गये।

श्री माली

स्वर्गीय बाबू राजेन्द्रप्रसादजी पं० सूर्यनारायण व्यास का बड़ा सम्मान करते थे और जब तक वे राष्ट्रपति रहे तब तक दिल्ली जाने पर व्यासजी को अपने पास राष्ट्रपति भवन ही में ठहराते थे। राष्ट्रपति-भवन का वह भाग जिसमें राष्ट्रपति का परिवार रहता है, परिवार-कक्ष (फैमिली विंग) कहलाता है। उसीमें एक जोड़ कमरा व्यासजी के लिए सुरक्षित रहता था। राष्ट्रपति-भवन का उद्यान बहुत सुंदर और बहुत बड़ा है। अँगरेजों के समय ही से राष्ट्रपति-भवन के कमरों को फूलों से सजाने की प्रथा चली आ रही है। कभी यह सजावट साधारण होती है, और कभी माली अपनी कला दिखलाने के लिए विशेष अवसरों पर बहुत अच्छी फूलों की सजावट कर देते हैं।

एक दिन राष्ट्रपति के कमरे में व्यासजी बैठे हुए उनसे बातचीत कर रहे थे। परिवार के तथा राष्ट्रपति के अत्यंत निकट कुछ और व्यक्ति भी थे। उनमें से एक सज्जन ने कहा——"बाबूजी! आज भवन के माली ने व्यासजी का कमरा बहुत बढ़िया ढंग से सजाया है।" इस पर व्यासजी ने बड़ी गंभीरता से उन सज्जन से कहा——"देखिए, आप भवन के प्रतिष्ठित माली का नाम ठीक ढंग से नहीं ले रहे हैं। जब से भारत-सरकार ने 'मिस्टर' शब्द हटाकर नाम के आगे 'श्री' लगाने का निर्णय किया है तब से दिल्ली के प्रत्येक माली को 'श्री माली' कहा जाना चाहिए!"

व्यासजी की बात सुनकर और तो और, स्वयं राष्ट्रपतिजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४ जनवरी से जून, १९६३

विषय		लेखक	
१—अतृप्त प्यास (कविता)	..	श्री आनन्दकुमार 'आसु'	
२—अमरवाणी—हीरा कोयला	..	श्रीमती कमला रत्नम्	..
३—असम का परिचय	..		..
४—आँख की साख	..	डा० श्यामसुन्दर व्यास	७४,
५—आँगनों के बीच	..		८२, १६१, २५७, ३५२, ४५६,
६—आगामी 'क्षय-मास'—एक समस्या	..		..
७—आज मेरे द्वार? (कविता)	..	श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी	..
८—आधी घनाक्षरी	..	प्रो० शिवाधार पाण्डेय	..
९—आधुनिक काल में वीरता की काव्य-परंपरा	..	श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह	..
१०—आवश्यकता है व्यवहार कुशल की	..	श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"	..
११—इंडिया आफिस लाइब्रेरी का प्रश्न	..	श्री उदय नारायण सिंह	..
१२—इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव	..	पं० व्रजमोहन व्यास	५७, १३१,
१३—उत्तर हरिवंश	..	श्री सूर्यनारायण 'भानु'	..
१४—१९०७ की सरस्वती	..		१८२, २८५, ३७३, ४६०,
१५—एक आत्मविज्ञप्ति (कविता)	..	श्री विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'	..
१६—एक तसवीर : दो रूप	..	श्री रवीन्द्र मोहन एम० ए०	..
१७—कवि और विधायक (कविता)	..	श्रीयुत निरंकार देव सेवक	..
१८—कामदेव के पंच-पुष्पवाण	..	श्री गोस्वामी रामबालक	..
१९—कालिदास के नाम पत्र	..	श्री चंचरीक चतुर्वेदी	..
२०—कृपा	..	श्री राजेश दयालु "राजेश"	..
२१—केले	..	डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'	..
२२—कौन तुम (कविता)	..	श्री राजेन्द्र मिश्र	..
२३—कौशाम्बी के इतिहास पर नया प्रकाश	..	प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी	..
२४—क्या अँगरेजी से हिन्दी हार गई	..	श्रीमती शीला शर्मा	..
२५—क्या वेद में इतिहास है?	..	पं० चन्द्रकान्त बाली	..
२६—क्षय मास	..	श्री मंगलीप्रसाद मिश्र	..
२७—खिड़की खुली है	..	मूल ले० एच० एच० गनरो 'साकी' अनु० प्रो० आनन्दनारायण शर्मा	..
२८—गांधीवादी साहित्यकार स्व० सियारामशरण गुप्त		श्री शैवाल सत्यार्थी	..
२९—गाँव सारा सो रहा है! (कविता)	..	श्री जयप्रकाश यादव	..
३०—गीत	..	पाण्डेय शशिभूषणप्रसाद 'शीतांशु'	

विषय	लेखक	पृष्ठ
गीत की धुन गूंजती है (कविता)	श्री जयप्रकाश यादव	३२२
चाँदनी रात में	अनु० राजेन्द्रनाथ मिश्र एम० ए०	२७२
चाँदी की रातें थीं (कविता)	श्री राजकिशोर	५०२
चार मुक्तक (कविता)	श्री रतिभानु सिंह नाहर	३४३
चोट (कविता)	श्री रतिभानु सिंह नाहर	२४९
जय हिन्दी! जय नागरी (कविता)	प्रो० आनन्दनारायण शर्मा	१५६
जो प्यारों के हाथों पड़ते (कविता)	श्री रवि	२३४
डिगरी काम न आई	श्रीयुत मुरलीमनोहर एम० ए०, साहित्यरत्न	१७७
तिब्बत के दलाई लामा और चीन	श्री सीताराम जौहरी	३२३
तुम्हारी तूलिका ने (कविता)	श्री महेन्द्रसिंह	४५३
तेजपुंज विवेकानन्द	श्री ब्रजमोहन तिवारी	४३
तोपें और तोपखाना		३३७
दावा (कविता)	प्रो० शिवाधार पाण्डेय	५६
देखा-सुना	श्री मनमोहन गुप्त	५४३
नवीन प्रकाशन		९३, १८०, २८३, ३७०, ४६४, ५४९
नीमिया के पात झरे ! (कविता)	श्री दीनबन्धु पांडे	२३१
नीति-पंचामृत (कविता)	श्री राजेशदयालु 'राजेश'	१६०
पं० रामनरेश त्रिपाठी के जीवन की कुछ अछूती झाँकियाँ	श्री मार्कण्डेय सिंह	३२८
पद्य की रुबाइयाँ (कविता)	श्री पद्मकान्त मालवीय	१४३
परम्परा	श्रीराम शर्मा 'राम'	२७९
परमाणु वैज्ञानिक डा० नील्सबोर	श्री ब्रजेश्वरप्रसाद शर्मा	३३३
पुरस्कार	श्री शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुंडि'	२६९
पुरातत्त्व उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं का काल-निर्धारण	प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी	४१४
प्रतिमा के प्रति (कविता)	श्री महेन्द्रपाल सिंह	४३५
प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण——खंड दूसरा	——आवश्यक परिमार्जन——श्री मुनि कान्तिसागर	४३६
प्रार्थना-गीत (कविता)	श्री राजेन्द्रप्रसादसिंह	४५९
प्रेम की नगरी	श्री श्रीकृष्ण	२७५
प्यार की मार	श्री सुधीन्द्र सुकुमार	२७८
बन्धन	श्री विद्या गुप्ता	३५९
बनन में बागन में बगरो वसन्त है	श्री राधेश्याम गुप्त पत्रकार	१४६
बसंत की गमक (कविता)	पं० जनार्दन नाथ त्रिपाठी 'गोपाल'	१२७
बस अभी आता हूँ	श्रीमती शीला शर्मा	५३४
ब्रजभाषा का एक ज्ञानकोष	श्री प्रभूदयाल मीतल	५०३
बाजन लागे ढोल	शीला शर्मा	२४०
बीती बातें (कविता)	कुँअर सोमेश्वर सिंह	२२०
भामासाह संबंधी कतिपय महत्त्वपूर्ण विवरण	श्री अगरचन्द नाहटा	२२१
भारती-कण्ठाभरण	पं० ब्रजमोहन व्यास	३४
भारतीय क्रान्तिवीर भाई भगवानसिंह ज्ञानी	डा० पाण्डुरंग सदाशिव खानखोजे	१२८
भारतीय संस्कृति केन्द्र 'जावा'	पं० सूर्यनारायण व्यास	२५०
भीगे पलकों की भाषा (कविता)	कुँवर हरिश्चन्द्र देव वर्मा 'चातक', कविरत्न	४२९
भेषज विद्या या वनस्पति शास्त्र	श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी	४११
भ्रमरानन्द का पत्र		१३७
मंगल : हमारा रहस्यमय पड़ोसी	डा० अरविन्द मोहन	२५५
मणिपुर के लोकनृत्य	श्री ऋषि मामचन्द्र कौशिक	४३०

विषय		लेखक	
७५—मनोरंजक संस्मरण	..		९६, १८४, २८८, ३७६, ४७
७६—मलिनियाँ (कविता)	..	श्री रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण'	
७७—महामंडित राहुल के कुछ संस्मरण	..	श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी	..
७८—'मानस' का काशिराज संस्करण	..	श्री कन्हैयासिंह एम० ए०, एल्-एल० बी०	..
७९—युग पुरुष स्वामी विवेकानन्द	..	श्री मार्कण्डेयसिंह	..
८०—युद्ध के हलके स्वचालित अस्त्र	..		..
८१—युधिष्ठिर-संवत् पर विचार	..	डा० अजयमित्र शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०	..
८२—राजभाषा हिन्दी के संबंध में श्री न० वि० गाडगिल के विचार	..		..
८३—'रामचरित-मानस' का काशिराज संस्करण	..	श्री किशोरीदास वाजपेयी	..
८४—राष्ट्र के सूत्रधार—लोकमान्य तिलक	..	श्री जी० एस० पथिक	८९, १९८
८५—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में	..	श्री फेनी मुकर्जी	..
८६—विश्वकाव्य में वसंत	..	श्री अनवर आगेवान	..
८७—विस्मृत गौरव की खोज में	..	मू० ले० श्री मनोहर नादकर्णी, रूपा० श्री नरेशचन्द्र मिश्र	
८८—वीर शहीद रोशन सिंह	..	श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी	..
८९—वैज्ञानिक का निमंत्रण और नाइट्रोजन के यौगिक	..	श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	..
९०—वैज्ञानिक शब्दावली की प्रवृत्तियाँ	..	श्री कस्तूरमल बांठिया	..
९१—शककाल : एक नई शोध	..	पं० चन्द्रकान्त बाली	..
९२—शहद की मक्खी	..	श्री स्वरूप ढौंडियाल	..
९३—श्रीराम की पुष्पक-यात्रा (कविता)	..	अनु० सन्तकुमार टण्डन 'रसिक'	..
९४—संन्यासी का गीत (कविता)	..	अनु० श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी	..
९५—संस्कृत में वस्तु के परिचायक उपाय	..	श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी	..
९६—सन्त जेसू क्रिस्त से (कविता)	..	काडेन्द्र बालधा कुलगोद "वाणीदास"	..
९७—सम्पादकीय	..		१७, ११३, २०९, ३०५, ४०
९८—समाधिगीत (गीत)	..	प्रो० रामस्वरूप आर्य	..
९९—समुद्रगुप्त का वास्तविक उत्तराधिकारी रामगुप्त	..	श्री सत्यव्रत 'तृषित'	..
१००—सम्राट् शाहजहाँ के समकालीन काशी के एक विद्वान्	..	श्री आनन्दस्वरूप गुप्त एम० ए०, शास्त्री	..
१०१—सरिता का जल (कविता)	..	श्री सुदीप	..
१०२—साहित्य और नैतिक मूल्य	..	श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी	..
१०३—साहित्य में सच्चा अनुसन्धान	..	प्रो० शिवाधार पाण्डेय	..
१०४—सिक्के का दूसरा पहलू	..	श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह	..
१०५—सीता-हनुमान-संवाद तमिल में हुआ था या अँगरेजी में	..	पं० अमृतलाल नागर	..
१०६—सौन्दर्याष्टक (कविता)	..	श्री राजेशदयालु "राजेश"	..
१०७—स्वयंबद्ध	..	श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी एम० ए०	..
१०८—स्व० बन्धुवर सियारामशरण जी गुप्त	..	श्री कृष्णानन्द गुप्त	..
१०९—स्वर्गीय भोलादत्त पाण्डेय और उनके पत्र	..	श्री चारुचन्द्र पाण्डे	..
११०—स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन	..	डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या	..
१११—स्वामी विवेकानन्द के शिकागो के धर्मसंसद के भाषण	..		..
११२—हमारे संग्रह-कार्य के कतिपय संस्मरण	..	श्री अगरचन्द नाहटा	..
११३—हाफिज और भारत	..	श्री राजेन्द्रप्रसाद जन	..
११४—हिन्दी की प्रातिपदिक-व्यवस्था	..	पं० किशोरीदास वाजपेयी	..

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मुल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २।।) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १।।) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आतमनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है। नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालसटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १·७५ न० पै० मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १।) या १ रु० २५ नये पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

मझली महारानी

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १॥।) या १ रु० ७५ नये पसे।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है। पृष्ठ १८०; मूल्य १ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

ह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर छापा गया है। कथा भाग में हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों का परिचय अन्त में संक्षेप जिल्द प्रति का मूल्य ३)।

चरितमानस
(मूल)
के्शन्स) लि॰ प्रयाग

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे **चित्रों** की अधिकता है। सजिल्द **प्रति** का मूल्य ६)।

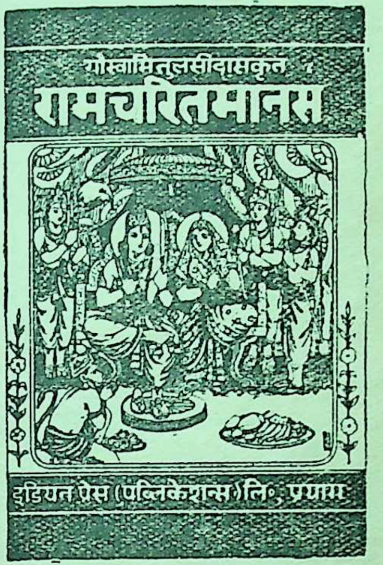
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि॰ प्रयाग

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द **ग्रन्थ** का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

सचित्र
रामचरितमानस

यन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि॰, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

योध्याकाराड

(सटीक)

में भरतजी के चरित का वर्णन विस्तार से है। रामवनगमन, प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं रचना तो अनुपम है ही। २·५० नये पैसे।

ाल-रामायरा

बालक-बालिकाओं के पढ़ने रामायण के सातों काण्डों की भाषा में कथा। मूल्य १)

सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न॰ पै॰ प्रति भाग है।

गोस्वामी तुलसीदासकृत
कुंडलिया रामायण
सत्यनारायण पाण्डेय

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

SARASWATI—Reg. No. A-

28 JUL 1983
V·812 9114 inB

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

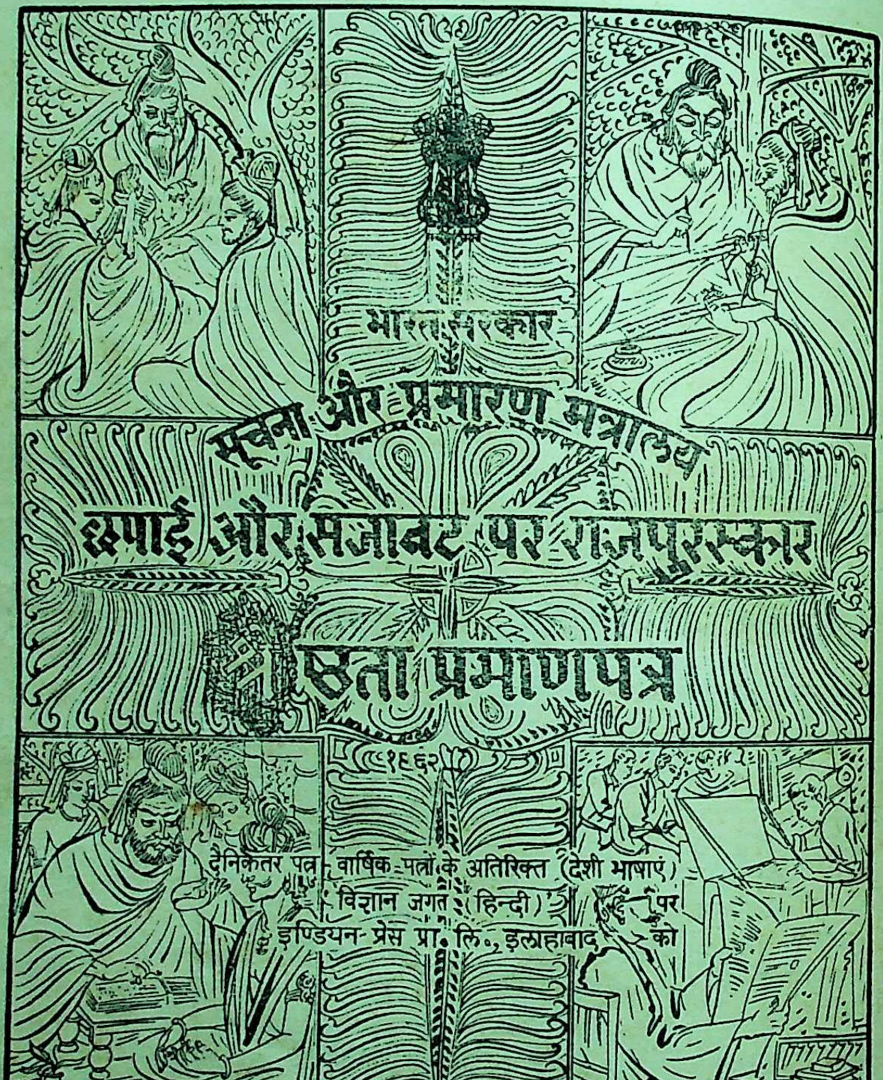

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

श्रेष्ठता प्रमाणपत्र

१९६२

दैनिकेतर पत्र - वार्षिक पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)
विज्ञान जगत (हिन्दी) पर
इण्डियन प्रेस प्रा. लि., इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

1526/11

कम्पनी के उत्पाद

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

29 JUL 1983
IAB

गपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०

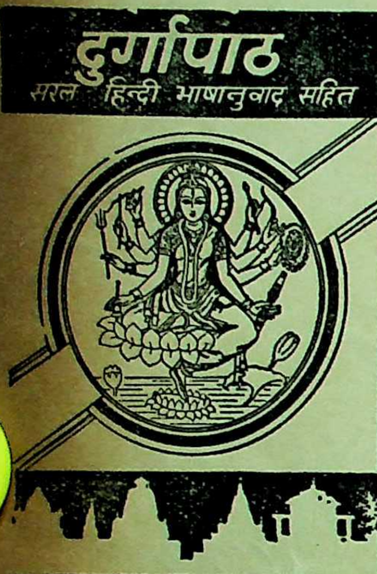
दुर्गापाठ
सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपय।

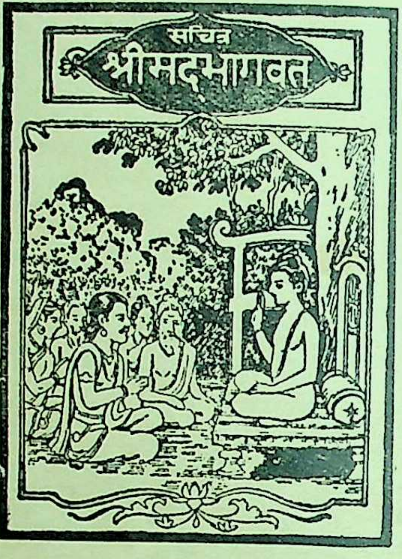
सचित्र
श्रीमदभागवत

ज्ञानेश्वर महाराज ने मरा
के गीता पर जो टीका लिखी
यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े
मूल संस्कृत श्लोक, साधारण
टीका है। सजिल्द प्रति का मू

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक सा

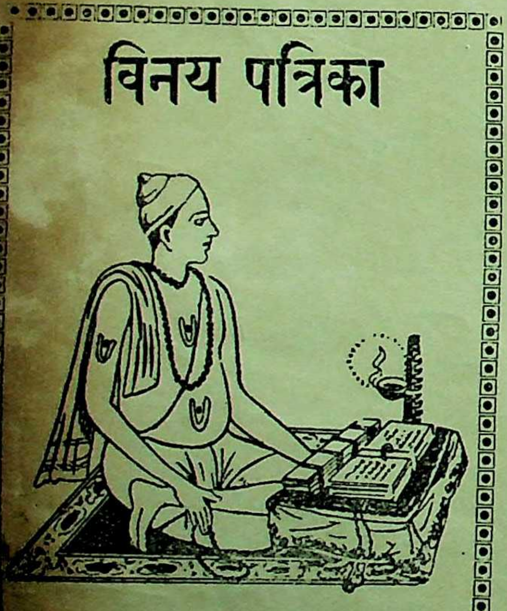

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।

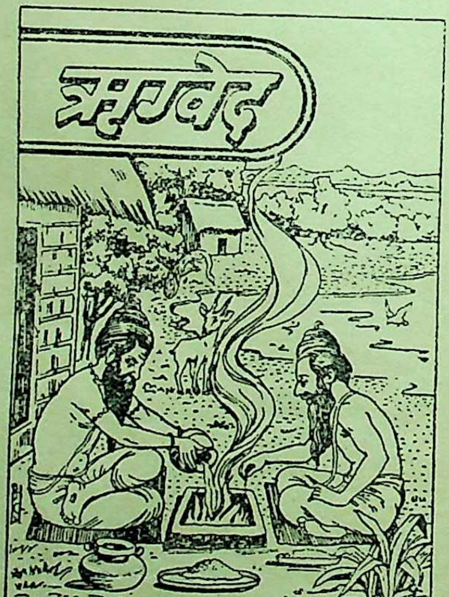

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)

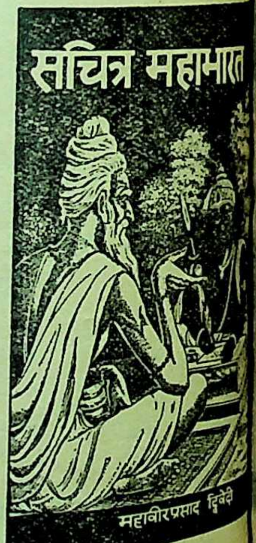
सचित्र महाभारत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

इसमें महाभारत के
पर्वों की कथा बहुत ही सरल
में लिखी गई है। इसके लेखक
महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं।
और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य

सीको इनक्यूबेटर

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइएटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी
लिमिटेड,
इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास,
नई देहली

माताटीला बाँध

इस बांध में सिंचाई हेतु लगभग चार अरब घनफुट पानी संचय किया जा सकता है। इसके निर्माण से इस क्षेत्र में नहरों का जाल बिछता जा रहा है। इससे झांसी, जालौन और हमीरपुर जिलों की ढाई लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएं मिली हैं।

इस बांध से २० हज़ार किलोवाट पनबिजली भी तैयार होगी। इस बिजली से कानपुर की संख्या के लगभग एक तिहाई कारखाने चलाये जा सकते हैं।

इससे आसपास के क्षेत्रों में लघु उद्योगों का विकास होगा। लोगों को नया रोजगार मिलेगा और खुशहाली बढ़ेगी।

यह बांध २०,९५० फुट लम्बा है और अपनी नींव से १५० फुट ऊंचा है। इसके निर्माण में १२ करोड़ रुपये लगे हैं।

देश में ऐसे अनेक बांध बन रहे हैं राष्ट्रीय बचत योजनाओं में धन जमा कर आप निर्माण के साझीदार बनें!

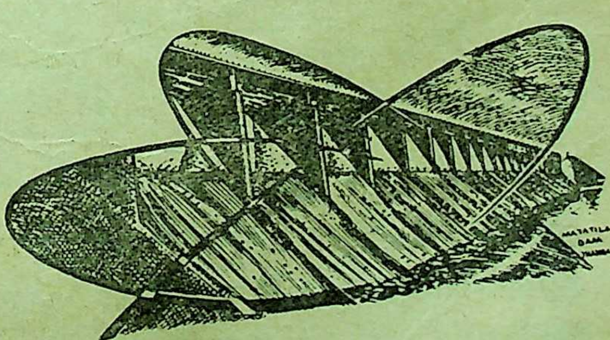

उत्पादन बढ़ाइए और बचाइए • बचत का धन निर्माण में लगाइए!

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

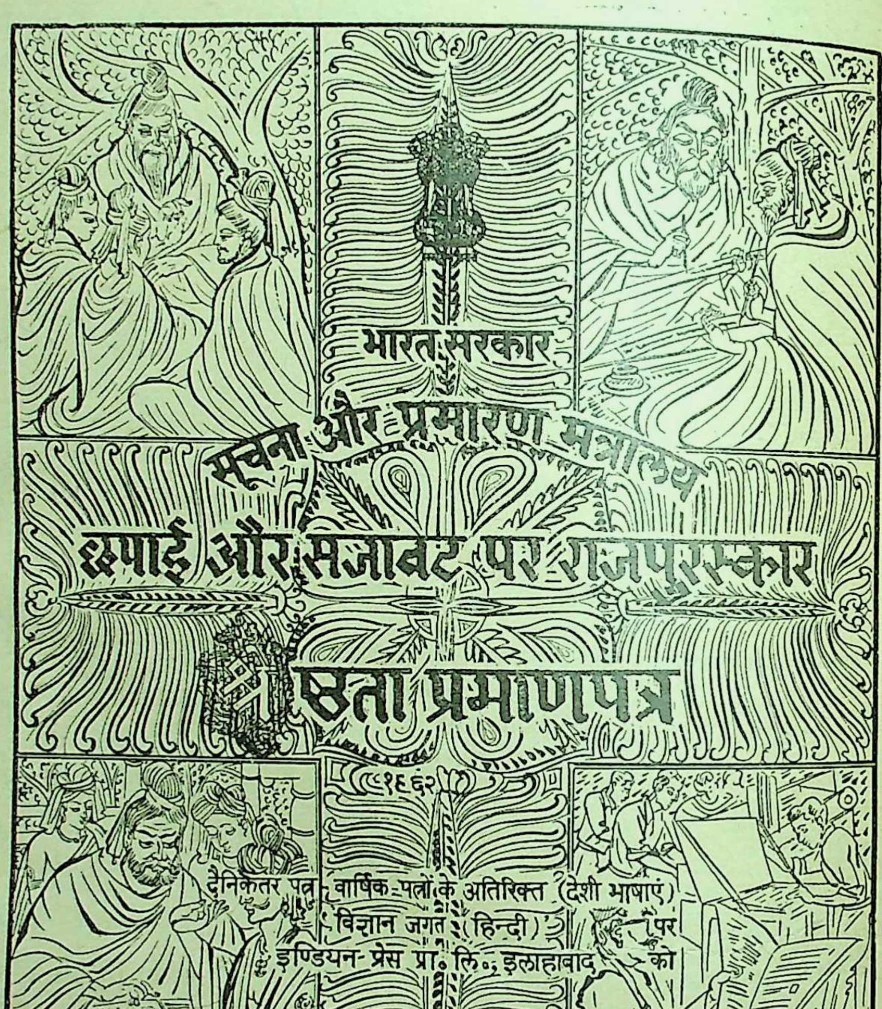

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

श्रेष्ठता प्रमाणपत्र

(१९६२)

दैनिकेतर पत्र, वार्षिक-पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)
'विज्ञान जगत' (हिन्दी)' पर
इण्डियन-प्रेस प्रा॰ लि॰, इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

स्नान का आनंद..
११. बंगाल केमिकल का गोल्डेन
सैन्डलवुड
सोप

स्नान के बाद इस साबुन की
चंदन की अपूर्व सुगंध दिन भर
आपको ताजा रखेगी।

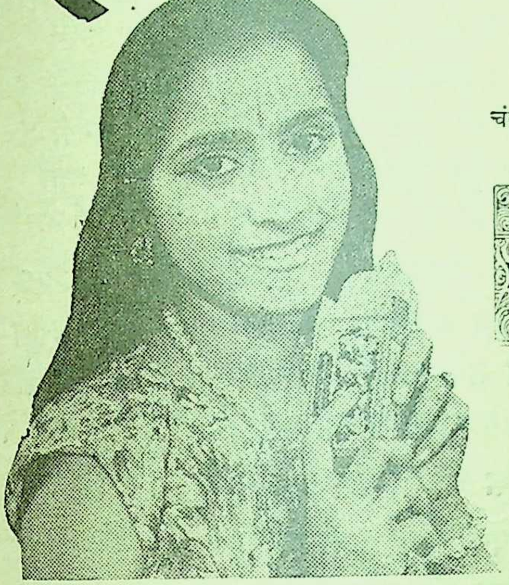

GOLDEN
SANDALWOOD
EXQUISITE SOAP

बंगाल
केमिकल
कलकत्ता • बम्बई
कानपुर

ोम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन के विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—
प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह
वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,
तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

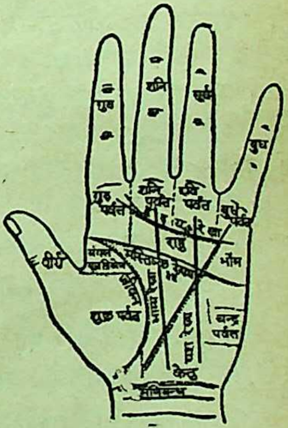
गुरु
शनि
सूर्य
बुध
गुरु पर्वत
शनि पर्वत
रवि पर्वत
बुध पर्वत
राहु
भौम
मंगल
शुक्र पर्वत
चन्द्र पर्वत
केतु
मणिबन्ध

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं :—
मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·४९ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक—मूल्य दो रुपये

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आसान नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी देखने को मिलती है—राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिन्दी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिए।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्यधिक प्रारंभ-विन्दुओं का आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

द्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध
परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व
दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर
के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया
लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया,
व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण
को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता
एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफ़ेद दाग

परिश्रम एवं खोज के बाद सफ़ेद दाग की औषधि का
किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ
है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये
पत्र मुफ्त मंगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

सरकार से रजिस्टर्ड

फेद दाग की दवा मूल्य ६)
विवरण
मुफ्त मंगावें

क्झमा (उकवत, खर्जूआ, विर्चाचिका) व्याधि पर यह परीक्षित दवा है। मू० ५) रु० डाक खर्च १।) रु०।

मा श्वास गुणकारी औषधि कीमत ५) रु० डाक खर्च १।) रु०

के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

नवीनतम प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग—स्वामी सारदानन्दकृत

(भगवान श्रीरामकृष्णदेव की उन्हीं के अन्तरंग शिष्य द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत एवं सम्पूर्ण जीवनी का हिन्दी अनुवाद। पुस्तक तीन खण्डों में पूर्ण होगी।)

प्रथम खण्ड—आकर्षक जैकेट एवं १३ चित्रों सहित; पृष्ठ डबल डिमाई ४७६; कीमत ८ रुपये। (द्वितीय एवं तृतीय खण्ड शीघ्र प्रकाशित होंगे।)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·६०
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५

कर्मयोग ..	१·७५	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·५०
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	शिकागो वक्तृता	०·६५
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५
शिक्षा ..	०·८५	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·६०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·६०	मन की शक्तियाँ	०·४०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी कि
पयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें
रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्तीदेवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए०। मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी०। मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले व
अनु० श्री केशव एस० केलक
मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले
जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप
एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोन
स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहो
बी० ए०, एल्-एल० बी० दो भागों में
मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरिय
अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए
मूल्य २·७५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु
डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी०
एस्०। मूल्य २)

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडा
वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल
मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच्० जी० वेल्स
अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री
जे० एन्० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·

डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरा हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गैस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवां मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ले : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

रजनीगंधा
देवेन्द्रदत्त तिवारी

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान
खिला हुआ गमकता पुष्प
न्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को
करने एवं पीड़ित मानवता
र्थिक शोषण से मुक्त करने का
'रजनीगंधा' के गीतों में सफल
है। सफल गायक का कोमलतम
इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत
में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों
मौलिकता और कल्पना की
एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के
कराती है। साथ ही देश के प्रमुख
र श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा
किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची
का प्रतीक है। हिन्दी काव्यो-
इस कृति को देखते ही आनन्द-
हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

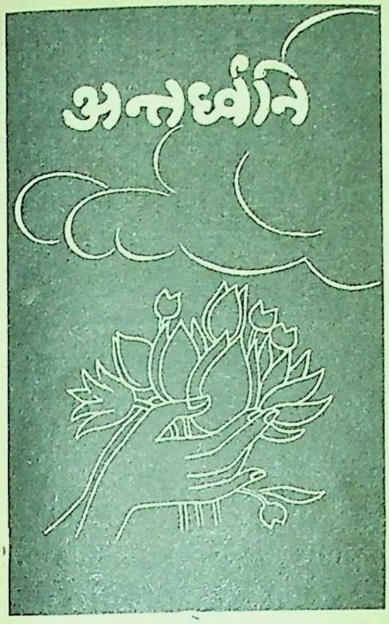

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

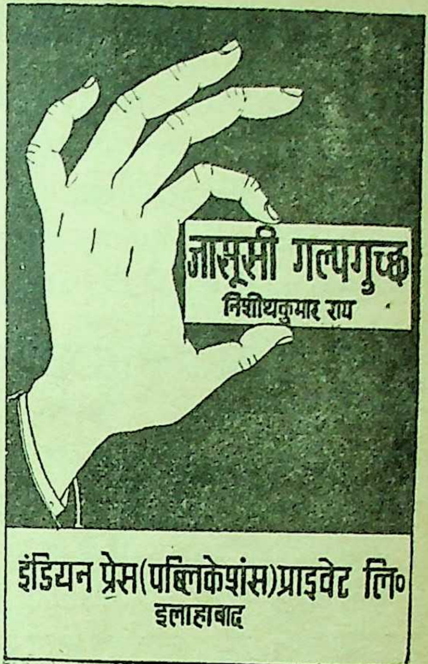

प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेदभरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योदभाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परभाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English　　by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)　　अँगरेजी में

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं।

२) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

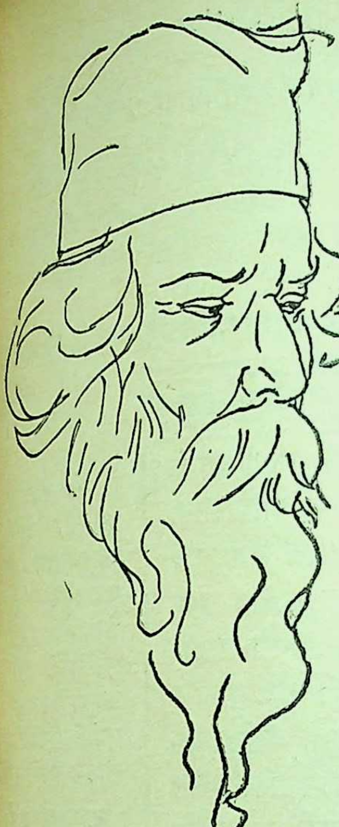

‘सत्यं, शिवं, सुंदरम्’ का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

छप गया !

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद—हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' में जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है। आप लोगों ने इसकी तैयारी में परिश्रम किया है। छपाई आदि तो अच्छी होनी ही चाहिए, क्योंकि यह इंडियन प्रेस का प्रकाशन है। परिशिष्ट-स्वरूप संविधान-शब्दावली जोड़ देने से इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

डॉ० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। संकलन-कर्त्ताओं ने परिश्रम और विवेक से इस कोश का सम्पादन किया है। अर्थ की स्पष्टता और सुबोधता की दृष्टि से इस कोश का विशेष महत्त्व है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा सङ्कलित इस सर्वोपयोगी कोश को अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की गई है। प्राचीन और अर्वाचीन गद्य-पद्य में प्रयुक्त होनेवाले अधिक-से-अधिक और नवीनतम शब्दों का इसमें समावेश किया गया है। कहावतें और मुहाविरे भी इसमें यथास्थान दिए गए हैं। कोश के अन्त में भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान-शब्दावली भी दे दी गई है।

प्रख्यात विद्वानों की प्रस्तुत सम्मतियाँ ही यह साक्षी दे रही हैं कि 'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' प्रत्येक सार्वजनिक, शैक्षणिक और व्यक्तिगत वाचनालय तथा छात्रों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रमपूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अँगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

पद्मभूषण पं० सुमित्रानन्दन पन्त—इस कोश में प्राचीन व नवीन साहित्य में प्रयुक्त अनेक नवीन शब्दों सफल संकलन मिला है। प्रादेशिक भाषाओं, अरबी, रेजी के प्रचलित शब्दों का समावेश भी इसमें किया है। सन्देह नहीं कि यह कोश हिन्दी पाठकों के लिए अत्य उपयोगी प्रमाणित होगा।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, भूतपूर्व राज्यपा उत्तर प्रदेश—'हि राष्ट्रभाषा-कोश' ब ही मूल्यवान् कोश है।

पं० रमेशदत्त पाठ अध्यक्ष, हिन्दी-विभा महाकोशल महाविद्याल जबलपुर—'हिन्दी राष्ट्र भाषा-कोश' हिन्दी क एक भारी कमी की पूर्ति करता है। वह विद्यार्थि एवं विद्वानों दोनों के लि समान रूप से उपयोगी है।

रायबहादुर पं० लज्जा शंकर झा, आई० ई० एस० (अवकाश-प्राप्त)—प्रायः पचास हजार शब्द का भारी कोश मैंने दे और प्रसन्नता हुई कि हिन्दी भाषा में भारी भारी कोश बनने लगे हैं। × × × हिन्दी राष्ट्र भाषा हो जाने के कार ऐसे कोश की बहु आवश्यकता थी।

साहित्यवाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' छात्रों के लिए ही नहीं, साधारण पाठकों के लिए भी बड़ा उपयोगी है। हिन्दी साहित्य में प्रचलित सभी प्रकार के शब्दों के सरल, शुद्ध और स्प अर्थ दिए गए हैं। उसकी एक विशेषता यह भी है कि अ में अँगरेजी के उन पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द दिए गए हैं, जो अब हिन्दी में प्रचलित हो र हैं और जिनका ज्ञान साधारण पाठकों के लिए अत्य आवश्यक है। इस एक कोश से ही हिन्दी-प्रेमी पाठकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सकती है।

पृष्ठ लगभग १६००, सजिल्द प्रति का मूल्य १४) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया साठ नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर नता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

न्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

ी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

दे—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

दर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

● ● ●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,

जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने
का
स्थान

इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन वि रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे काग पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयो संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटक पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अ में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये पैसे

आधुनिक छपाई

लेखक श्री कृष्णप्रसाद दर

भूतपूर्व मैनेजर, इलाहाबाद लाजर्नल प्रेस और भूतपूर्व टेक्निकल एडवाइजर दि हिन्दुस्तान टाइम्
प्रेस, नई दिल्ली, और वर्तमान वर्क्स मैनेजर इंडियन प्रेस, प्राइवेट लि०, इलाहाबाद।

आजकल सभी लोग अच्छी छपाई चाहते हैं, परन्तु आकर्षक छपाई कैसे की जाय, य सबको ज्ञात नहीं। 'आधुनिक छपाई' इसी दिशा में एक सफल कदम है। अब तक अपने विषय की यही एक पुस्तक हिन्दी में है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है आधुनिक छपाई की सहायता से ऐसा व्यक्ति भी सरलता से अपना काम चला सकता है, जिसने कभी किसी छापे खाने में काम न किया हो। फिर आधुनिक छपाई के विभिन्न आकर्षक रूपों, शैलियों और छापेखाने सम्बन्धी सभी आवश्यक अंगों पर इस पुस्तक में इतनी सरल और बोलचाल की भा में प्रकाश डाला गया है कि प्रत्येक मुद्रक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

आद्योपान्त सचित्र, सजिल्द और बढ़िया कागज पर आकर्षक ढंग से मुद्रित ३० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अंगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

POPULAR
ENGLISH-HINDI
DICTIONARY
POPULAR
ENGLISH-HINDI
DICTIONARY

POPULAR

ENGLISH HINDI DICTIONARY

Guaranteed The Best Of 20th Century.

Perfect accents with simplified signs

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे.

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

अनुशासन में शक्ति
यही देश की भक्ति

श्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—**श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम** २६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुकम', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय १७

२—शिव-काव्य की परम्परा—डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' एम० ए०, पी० एच-डी० .. २५

३—ब्रज की कविता-बनिता—श्री सुरेशचंद्र .. २७

४—मालवीयजी के अभ्युदय में अग्रलेख—श्री वें० ना० तिवारी २८

५—अफ्रीका और उसका नवजागरण—श्री राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह, संसद-सदस्य .. ३०

६—आग्रह (कविता)—स्वर्गीय भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) शास्त्री ३३

७—एशिया और अफ्रीका पर चीनी जाल—श्री सीताराम जौहरी ३४

८—हमारी वैज्ञानिक उन्नति में बाधाएँ—श्री कस्तूरमल बांठिया ३७

९—लज्जा-लावण्य (कविता)—श्री राजेशदयालु "राजेश" ४४

१०—हाफ़िज़ की गर्वोक्तियाँ—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन ४५

११—राजस्थान में शोध-कार्य करनेवाली प्रमुख संस्थाएँ—प्रो० नरेन्द्र भानावत एम० ए० .. ४९

१२—आज बादल डगमगाते (कविता)—श्री बीरबल महतो ५२

१३—मुल्ला दाउद—डा० सूरजप्रसाद शुक्ल ..

१४—वर्षा-गीत (कविता)—श्री सुधेश ..

१५—आचार्य रघुवीर—श्री ऋषि रामचन्द्र कौशिक .. .. ..

१६—बरसो मेरे बादल (कविता)—श्री सन्तकुमार टंडन 'रशिक' .. ..

१७—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (२)—श्री फेनी मुकर्जी .. ..

१८—सम्पादक के नाम पत्र—कमला रत्नम् ..

१९—आँगनों के बीच—मेरा मन डोले ..

" —घर गृहस्थी—चित्रकारी के लिए—श्री शान्तिदेवी जैन ..

२०—देखा-सुना—श्री मनमोहन गुप्त ..

२१—अपना साहब—डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ..

२२—नवीन प्रकाशन ..

२३—ब्रज-माधुरी (१)—पावस ..

२४—मनोरंजक-संस्मरण ..

२५—१९०७ की सरस्वती—जापान-नरेश मत्सूहीटू—श्री स्वामी सत्यदेव ..

विज्ञापनदाताओं से निवेदन

सरस्वती मासिक पत्रिका अपनी जन्मतिथि जनवरी १९०० से लगातार हिन्दी-जगत् की सेवा कर रही है। इसकी षष्टिपूर्ति जयन्ती के अवसर पर जो साहित्यिक समारोह किया गया वह सर्वविदित है। इस युग में जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुद्रण सामग्री प्राप्त न होने या अन्य कठिनाइयों के कारण या तो बन्द हो गया है या प्रकाशकों ने विज्ञापन-दर में वृद्धि कर दी है वहाँ सरस्वती ने अपनी विज्ञापन-दर सन् १९५८ तक पुरानी ही रक्खी है।

महँगाई के कारण हमने विवश होकर जनवरी १९५९ तथा जनवरी १९६१ में विज्ञापन-दर में थोड़ी वृद्धि की थी किन्तु इस वृद्धि से भी हम छपाई सम्बन्धी वस्तुओं के बढ़ते हुए दामों का मुकाबला न कर सके। अस्तु, हमें अब विवश होकर जुलाई १९६३ से निम्नलिखित अनुसार विज्ञापन दर में वृद्धि करने की आवश्यकता पड़ रही है। आशा है, कृपालु विज्ञापनदाता इस बढ़ी हुई दर को स्वीकार कर सरस्वती को सदैव की भाँति अपनावेंगे और हमें अपना सहयोग देंगे। इसके लिए विशेष आभारी होंगे।

विज्ञापन-दर

साधारण प्रति पृष्ठ	१००) रु०	साधारण आधा पृष्ठ	५५) रु०
साधारण ¼ पृष्ठ	३०) रु०	साधारण ⅛ पृष्ठ	१५) रु०
कवर चौथा पृष्ठ	२५०) रु०	कवर दूसरा व तीसरा पृष्ठ	१५०) रु०

व्यवस्थापक विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

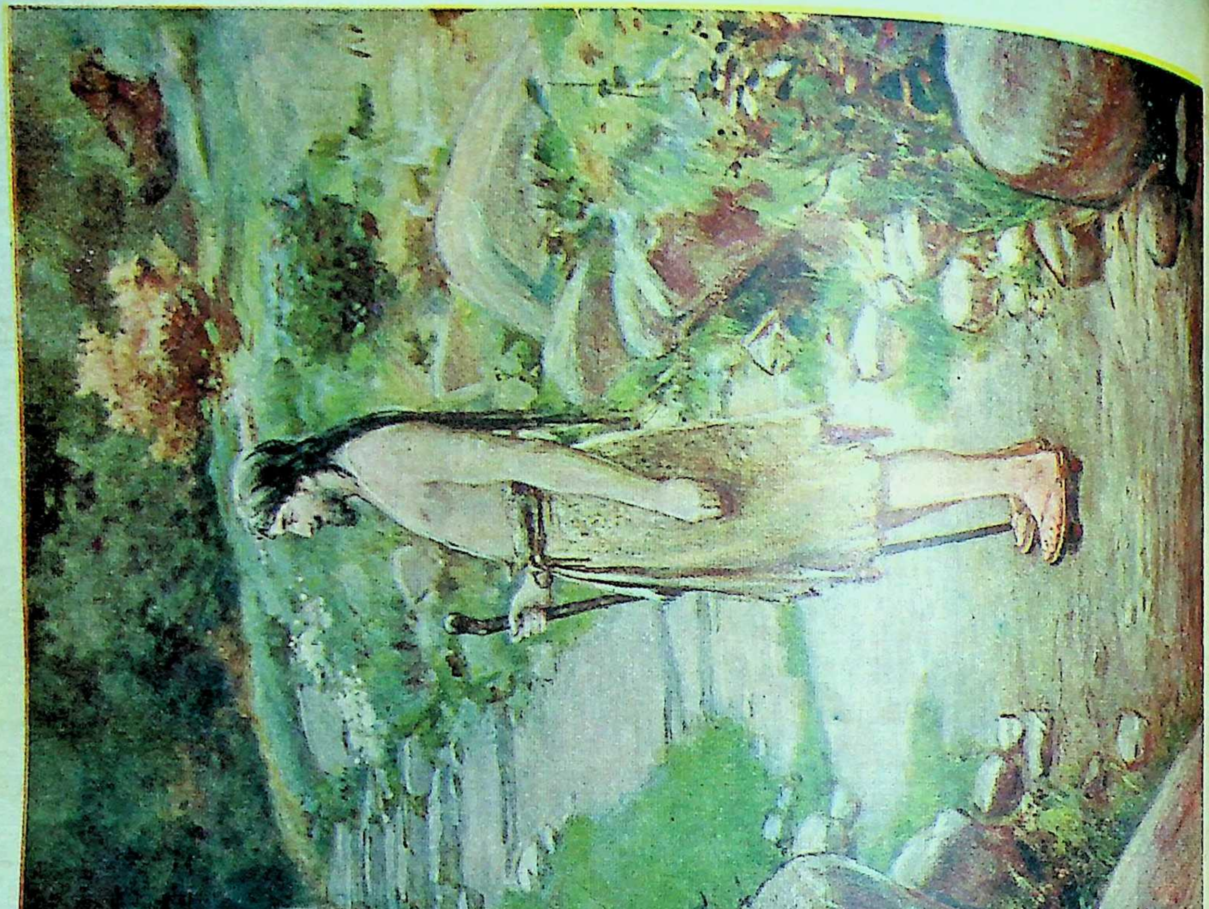

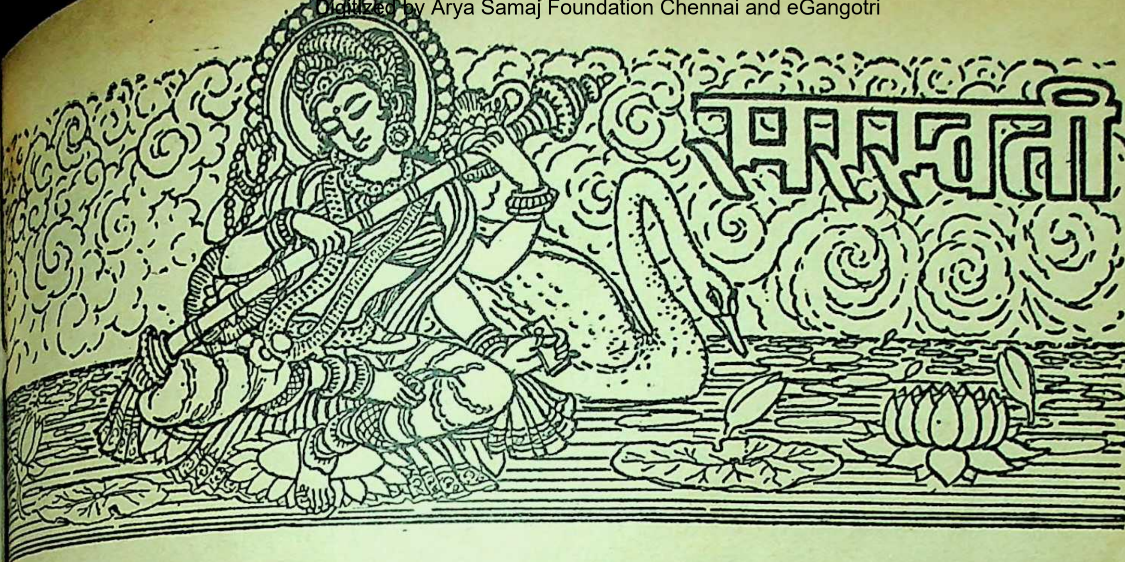

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

र्ष ६४
ंख्या ७६३

इलाहाबाद : जुलाई १९६३ आषाढ़ २०२० वि०

खण्ड २
संख्या ७

सम्पादकीय

राज्यों में भी अँगरेजी को अचल करने की —जिन राज्यों ने अपनी क्षेत्रीय भाषा को कानून अपनी राजभाषा बना लिया है, वे संविधान के जनवरी १९६५ के बाद राजकाज में अँगरेजी नहीं कर सकते। किंतु उन्हें अधिकार है कि केन्द्रीय सरकार ने विधेयक पारित कर, हिन्दी भाषा मानते हुए भी, अपने यहाँ अँगरेजी में काम का निश्चय किया है, उसी प्रकार वे भी कानून अपने यहाँ जनवरी १९६५ के बाद अँगरेजी का जारी रख सकते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य-और राजस्थान ने कानून बनाकर हिंदी को अपनी बना लिया है क्योंकि वह इन राज्यों की क्षेत्रीय है। किंतु वास्तविकता यह है कि यह कानून है। अँगरेजों के समय में जितना काम अँगरेजी था (विशेषकर उच्च कार्यालयों में) उसका प्रायः तिशत आज भी वहाँ अँगरेजी ही में हो रहा है। नुपात अनुमानित है। संभव है कि दो-चार प्रतिशत उधर हो। बतलाया जाता है कि बिहार में इधर कुछ हुई है। उसके विपरीत मध्य प्रदेश (विंध्य प्रदेश, कौशल और मध्य भारत) में जहाँ कुछ वर्षों पहले हिंदी बहुत कुछ चलने लगी थी, वह अब अँगरेजी द्वारा अपदस्थ कर दी गयी है। इनमें से अधिकांश राज्यों के अधिकांश मंत्री अपना प्रायः सारा काम अँगरेजी में करते हैं। कोई-कोई मंत्री जब कभी अपना आदेश हिंदी में लिख भी देता है, किंतु यदि जाँच की जाय तो पता लगेगा कि कितने ही वे मंत्री भी जो अपने को हिंदी-प्रेमी घोषित करते हैं, अपना अधिकांश काम अँगरेजी ही में करते हैं। अवश्य ही इस साधारण नियम के अपवाद भी हैं, किंतु बहुत कम। इसके कई कारण हैं। अधिकांश मंत्री कोरे राजनीतिज्ञ हैं। उन्हें हिंदी का कोई आग्रह नहीं है। उनके सामने कार्यालय की, और सचिवों की टिप्पणियाँ और संस्तुतियाँ अँगरेजी में आती हैं। अँगरेजी में लिखी बात पढ़कर उनकी प्रतिक्रिया भी अँगरेजी में होती है और उनकी विचार-सरणी अँगरेजी में दौड़ने लगती है। वे तत्काल अँगरेजी में अपने आदेश लिख देते हैं। उनमें इतना नैतिक साहस नहीं है कि वे अपने उन सचिवों से भी हिंदी में काम करने के आदेशों का पालन करने को कह सकें जो हिंदी में काम कर सकते हैं। अधिकारीवर्ग में कुछ हिंदी-विरोधी भी हैं, किंतु अधिकांश हिंदी-निरपेक्ष हैं। इस निरपेक्षता के कारण वे अपनी अँगरेजी लिखने

की आदत को नहीं बदल पाते। आदत बदलने के लिए जितनी स्फूर्ति और प्रयत्न की आवश्यकता है उतनी स्फूर्ति जगाने और प्रयत्न लगाने का न तो उनमें हिंदी-प्रेम है और न उसके लिए मंत्रियों का दबाव ही है। उनमें से कुछ तो अँगरेजी में लिखना आवश्यक समझते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि अच्छी अँगरेजी लिखने की योग्यता ही उन्हें पदोन्नति दिला सकती है और भारत सरकार में पहुँचा सकती है। जो थोड़े से हिंदीप्रेमी अधिकारी हैं वे 'दसनन महँ जीभ बिचारी' की तरह हैं, और उस वातावरण में कुछ नहीं कर पाते। इन राज्यों में हिंदी के राजभाषा हो जाने पर भी अधिकारियों को अँगरेजी में काम करने की छूट है। जब तक उन्हें यह छूट है तब तक वे हिंदी में काम न करेंगे और इसलिए हिंदी राज्यों के राजकाज में हिंदी नहीं चल सकती। चौदह-पंद्रह वर्षों से प्रचलित द्विभाषी-पद्धति ने यह प्रमाणित कर दिया है कि दो भाषाओं के उपयोग की छूट से हिंदी कभी वास्तविक राजभाषा नहीं हो सकती। हिंदी के हित के लिए द्विभाषा-सिद्धान्त घातक है। वैसे भी, अर्थशास्त्र का यह नियम कि खोटा सिक्का खरे सिक्के को चालू नहीं होने देता, भाषा के क्षेत्र में भी लागू है। अँगरेजी का खोटा सिक्का इस देश के खरे सिक्के (हिंदी) को कभी नहीं चलने देगा।

इसीलिए हिंदी-निरपेक्ष और अँगरेजी-प्रेमी मंत्रि-वर्ग और अधिकारी-वर्ग व्याकुल हैं कि जनवरी १९६५ के बाद, संविधान के अनुसार, जब इन राज्यों में सिवाय हिंदी के और किसी भाषा (अँगरेजी) में काम करना गैरकानूनी हो जायगा तब वे अँगरेजी में कैसे काम करेंगे। इसका एक ही उपाय है। वह यह कि वे भी अपने यहाँ यह कानून बनावें कि जिस प्रकार केन्द्र में हिंदी को राजभाषा मानते हुए भी अँगरेजी में अनिश्चित काल तक काम हो सकता है, वैसे ही इन राज्यों में भी अँगरेजी में काम जारी रह सके।

इसकी सबसे अधिक चिन्ता भारत सरकार के गृह-मंत्रालय को है जिसके मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने केन्द्र में अँगरेजी को अनिश्चित काल तक चलाने का विधेयक संसद में प्रस्तुत कर उसे पारित कराया था। इस मंत्रालय ने हाल ही में राज्य सरकारों का ध्यान अँगरेजी के उपयोग सम्बन्धी इस कठिनाई की ओर दिलाया है, और उन्हें यह सलाह दी है कि वे भी ऐसा विधेयक अपने विधानमंडलों में प्रस्तुत करके पारित करा लें जिससे उन्हें जनवरी १९६५ के बाद भी अँगरेजी में काम करने की छूट रहे।

भारत सरकार का गृह-मंत्रालय हिंदी के हित की बातों में तो बड़ी मंथर गति से चलता है, किंतु जब उसे अँगरेजी के हित का कोई काम करना होता है तो उसमें बड़ा शक्तिशाली बिजली का डाइनामो लग जाता है। दो-तीन वर्ष हुए, राष्ट्रपति ने राजभाषा सम्बन्धी कुछ आदेश दिये थे। उनमें रोमन अंकों के प्रयोग का आदेश भी था। वह अँगरेजी के हित में था। उसे तुरन्त ही बड़ी तत्परता और उत्साह से कार्यान्वि डाला। किंतु उन्हीं आदेशों का वह अंश, जिसमें रा ने अखिल भारतीय सेवाओं की चुनाव-परीक्षाएँ में भी करने का निर्देश दिया था, आज तक गृह-मंत्रा की अलमारियों की शोभा बढ़ा रहा है।

अँगरेजी विधेयक पर वादविवाद के समय संस स्वयं गृहमंत्रीजी ने, तथा अन्य कितने ही सदस्यों ने, बात की शिकायत की थी कि हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी में काम नहीं होता। क्या उन्होंने कभी वास्तविक और मुख्य कारण जानने का प्रयत्न कि वह कारण अधिकतर उन उच्च अधिकारियों का योग है जो इसी गृहमंत्रालय की छत्रछाया में है। गृहमंत्रालय वास्तव में चाहे तो राज्यों के ये उच्च कारी तुरन्त ही बहुत कुछ काम हिंदी में करने तब वे केवल वही काम अँगरेजी में करेंगे जिसे किसी का से अँगरेजी में करना अत्यन्त अनिवार्य है। किंतु वे जा हैं कि हिन्दी-सम्बन्धी शासकीय आदेशों का पालन न से उनका कोई बिगाड़ नहीं हो सकता। वे हिंदी के उप सम्बन्धी आदेशों की जितनी अवहेलना करते हैं, उस दशांश अवहेलना भी यदि अन्य सरकारी आदेशों करें तो उन्हें लेने के देने पड़ जायँ।

इसलिए हिंदी राज्यों में भी अँगरेजी को ब बनाये रखने की गृहमंत्रालय की आकुलता और छटपटा को देखकर हमें कोई आश्चर्य, खेद या निराशा नहीं क्योंकि——

जब तवक्कः ही उठ गयी 'ग़ालिब'
क्यों किसीका गिला करे कोई ?

किन्तु हम यह जानने को उत्सुक हैं कि गृहमंत्रा के इस परिपत्र और नेक सलाह की प्रतिक्रिया राज्यों के मंत्रिमंडलों पर क्या और कैसी होती यह निश्चय है कि यदि हिंदी राज्यों के अधिकारियों अँगरेजी में काम करने का विकल्प या छूट दे दी तो उनमें से ९९ प्रतिशत अधिकारी (चाहे स्वेच्छा चाहे अँगरेजी वातावरण के कारण) हिंदी में काम करेंगे। अतएव यदि गृहमंत्रालय की यह सलाह सरकारों ने कार्यान्वित कर दी तो हिंदी राज्यों में केन्द्र की तरह अँगरेजी ही चलेगी और राज के रूप में हिंदी विधान की शोभा बढ़ाती रहें

हम यह भी देखना चाहते हैं कि हिंदी राज्यों में के प्रचलन के लिए घातक इस प्रस्ताव में हिंदी की हिंदी के नेता और पत्रकार क्या रुचि दिखलाते हैं। प्रेमियों को गृहमंत्रालय के इस परामर्श का प्र और परिणाम स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। राज्य सरकारों ने इसे मान कर अपने यहाँ प्रस्तावित कानून बना लिया तो फिर हिंदीभाषी क्षेत्रों में——उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राज में——हिंदी न चल पायेगी। तब केन्द्र की तरह

उनके पास 'राजभाषा' होने का केवल कागजी मान रह जायगा। वास्तविक और व्यावहारिक भाषा अँगरेजी ही बनी रहेगी। और दस वर्ष बाद मन्त्रालय तथा हिंदी-विरोधी दल और नेता हमसे कि "केन्द्र में हिंदी चलाने की बात करते हो! नहीं कि हिंदी कितनी असमर्थ, अपूर्ण और अक्षम है कि वह हिंदी प्रदेशों ही में नहीं चल पाती? सौ-दो सौ वर्ष और प्रयत्न करो कि तुम्हारी भाषा काज के योग्य हो जाय। घबराते क्यों हो? हिंदी भी न किसी दिन भारत की राजभाषा होगी ही! पहिले उसे अपने घर में तो चलाकर दिखाओ!" यदि यह स्थिति बचानी है तो हमें हिंदी प्रदेशों में कानून नहीं बनाना चाहिए जिससे हिंदी की प्रगति में पड़ने की आशंका हो, या जिससे अँगरेजी हमारे में 'अंगद-पाँव' की तरह बैठ सके।

रोवाच--हिंदी संसार में भारतेन्दु के समय से "सरल" हिंदी के हिमायती होते रहे हैं। उस समय नेता राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद थे। द्विवेदी युग का जोर कम हो गया था, किंतु जब राजनीतिज्ञों ने संसार में प्रवेश किया तब इस विवाद ने हिंदी-नी समस्या का रूप ले लिया। अब आकाशवाणी नीति के कारण वह फिर मैदान में आ गयी है। के पंडित पद्मकान्त मालवीय इसी "सरल हिंदी" यती" हो रहे हैं। किंतु हिंदी का हाथी अपनी मंथर चला जा रहा है। उसने कभी विदेशी या दूसरी के शब्दों को मतरूक (वर्जित) नहीं किया। किंतु दूसरी भाषा के हजारों नये शब्द एक साथ हिंदी की बात करते हैं, या जब वे हिंदी के संस्कृतमूलक को बीन बीन कर निकालने और उनकी जगह उर्दू चलित अरबी या फारसी के शब्द प्रयोग करने का करते हैं तब हिंदीवाले उनकी बात नहीं सुनते। हिंदी रूपी दाल में विदेशी और अन्य भाषाओं के शब्द की तरह मिलाते रहे हैं। उससे दाल का स्वाद ता है। किंतु ये "सरल हिंदी के हिमायती" चाहते कि हम निमक में दाल मिला दें, अर्थात् दूसरी भाषा के को मुख्य रूप से ले लें और हिंदी के केवल थोड़े-शब्द ही रहने दें। हिंदीवाले निमक में दाल डालने तैयार नहीं हैं। फिर भी, जब कभी, बीच-बीच में करण के हिमायती अपना राग अलाप ही देते हैं। ली के साप्ताहिक हिंदुस्तान में डा० गार्गी गुप्त नाम की विदुषी ने "एक कहे और दूसरा समझे" शीर्षक से एक दार लेख लिखकर "सरल" हिंदी की हिमायत की। यह लेख नहीं, कविता है क्योंकि कल्पना-प्रधान है। उदाहरण लीजिए। वे कहती हैं: "कितने ही विदेशी शब्द हम प्रतिदिन बोलते हैं और यदि हम चाहें तो इन प्रचलित शब्दों के स्थान पर संस्कृत के पर्यायवाची शब्द कर रख भी सकते हैं, परंतु इससे लाभ क्या होगा ......इन शब्दों के यथार्थ पर्यायवाची शब्द तो संस्कृत में हैं नहीं, कई शब्दों की व्याख्या अथवा उनका निकटतम अनुवाद ही करना होगा जो अनावश्यक भी है और अवांछनीय भी, जैसे हम "फुटबाल" को "चरण-कन्दुक" या "पैर गेंद" और "ग्रामोफोन" को "लिखित-भाष" कहें।" और इन्हीं शब्दों का उदाहरण देकर लेख के बीच में बड़े टाइप में पूछा गया है-- "क्या फुटबाल को 'चरण-कन्दुक' और 'ग्रामोफोन' को 'लिखित-भाष' कहना उचित होगा?" किस उत्तरदायी हिंदी विद्वान् ने ऐसे शब्द गढ़ने की हिमाकत या हिमायत की है? किसने कब इनका प्रयोग किया है? ये सरल हिंदी के हिमायती डान क्विक्ज़ोट की तरह काल्पनिक दानवों से लड़ रहे हैं।

अब देखिए, ये सरल हिंदी की हिमायत करनेवाली विदुषी जो संस्कृतगर्भित भाषा का विरोध करती हैं, स्वयं कैसी भाषा लिखती हैं। उनके कुछ वाक्य ये हैं: "मैं मानती हूँ कि संस्कृत हमारी कई प्रादेशिक भाषाओं की 'आकर भाषा' है, और उसमें पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की अद्‌भुत और असीम क्षमता भी है, परन्तु फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में तमिल जैसी द्रविड़ भाषा और उर्दू जैसी विदेशी भाषाओं को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है और हम उनकी एकदम अवहेलना नहीं कर सकते। **दूसरे यह कि केवल संयोग की बात है कि** कुछ राजनीतिक परिस्थितियों के कारण भारत विज्ञान के नित्य नये अनुसंधानों के क्षेत्र में पिछड़ गया।" यह भाषा उन 'डाक्टर' महोदया ने लिखी है जो संस्कृतगर्भित हिंदी की विरोधी हैं, और जो "सरल भाषा" की वकालत करती हैं। हिंदी के अधिकांश लोग ऐसी ही "सरल" या इससे भी सरल भाषा लिखते हैं। फिर डाक्टर महोदया को क्या शिकायत है? उन्होंने अपना लेख अपनी आदर्श सरल हिंदी में लिखने की कृपा क्यों नहीं की? हमें सरल हिंदी का नमूना तो मिल जाता।

हम इस लेख के तर्कों की ओर ध्यान देना अनावश्यक समझते हैं। किंतु एक तथ्य का प्रश्न है: उर्दू "विदेशी भाषा" कबसे और कैसे हुई? क्या किसी अधिकारी हिंदी विद्वान् ने उसे विदेशी भाषा माना है? यदि हिंदी की "डाक्टर" होने के कारण यह उनका व्यक्तिगत मत या मौलिक अनुसंधान है तो हम सिवाय चुप रहने के और क्या कर सकते हैं? फिर भी हम अपने ज्ञानवर्द्धन के लिए जानना चाहेंगे कि वे अन्य विदेशी भाषाएँ कौन सी हैं जिन्हें राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है। फिर द्रविड़ भाषाओं को, जो भारतीय भाषाएँ हैं, भारत में मान्यता न मिलेगी तो कहाँ मिलेगी? क्या यह उनका अधिकार नहीं है? इसमें उल्लेखनीय बात क्या है?

इस लेख से हमें एक विचित्र और एकदम नया तथ्य मालूम हुआ। हम हिंदी के डाक्टर नहीं हैं। हिंदी में बी० ए० या एम० ए० भी नहीं हैं। केवल स्कूल में थोड़ी सी साधारण हिंदी पढ़ी थी। अतएव जब कोई विश्वविद्यालय का डाक्टर-छाप विद्वान् कुछ बात कहता है तब हम

आतंकित होकर आदर के साथ उसे सुनते और बड़ी नम्रता से उस पर विचार करते हैं। इस लेख में डाक्टर लेखिका कहती हैं--"साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं संस्कृत में भी सरल और कठिन, दोनों प्रकार के शब्द हैं। अमरकोष में लोहार, सुनार, कुम्भार, मजदूर, गाड़ी, डोली, लगाम आदि संस्कृत के सहस्रों सरल शब्दों का उल्लेख है, परन्तु शब्दावली में इनके स्थान पर भी संस्कृत के कठिन शब्द रखने की प्रवृत्ति है, जैसे ये शब्द ही अपने न होकर पराये हों। हमें इस प्रवृत्ति से बचना होगा।" हम यह पढ़कर अपने अज्ञान की लज्जा से सिकुड़ गये। हमारे पास अमरकोष का एक पुराना पंडिताऊ संस्करण है। हमने उसमें सुनार, लोहार, मजदूर, आदि 'सहस्रों सरल शब्दों' को बहुत खोजा, किंतु चूँकि हमें किसी विश्वविद्यालय में 'अनुसंधान' की न तो "ट्रेनिंग" मिली और न उसकी "टेक्नीक" ही सिखायी गयी। शायद इसीलिए हम उन "सहस्रों" "सरल" शब्दों का अनुसंधान अमरकोष की अपनी प्रति में नहीं कर सके। क्या डाक्टर साहिबा या वह विश्वविद्यालय जिसने उन्हें "डाक्टर" की उपाधि से अलंकृत किया है, हमें वी० पी० से उस विश्वविद्यालयीन अमरकोष की एक प्रति भेजने की कृपा करेंगी जिसमें ये "सहस्रों" शब्द दिये गये हैं। यदि वह उनका संदर्भ देकर उन्हें रेखांकित कर दें तो और भी महती कृपा होगी। अफसोस ! हम कम्पाउण्डर ही रह गये। यदि डाक्टर होते तो शायद हमारी दृष्टि तीव्र होकर दिव्य हो जाती। तब दिव्य दृष्टि से हम भी उन्हें अनायास देख लेते। अब इस वार्धक्य में हमें कौन "डाक्टरी" पढ़ाने को तैयार होगा ? नहीं तो हम आज ही "डाक्टरी" में नाम लिखा लेते। तब हमें मनमानी बात कहने का अधिकार हो जाता, और लोग उसे सादर सुनते, तथा बड़े-बड़े सम्पादक भी हमारे लेखों को आँख मूँद करके छाप दिया करते।

मृगमरीचिका--हिंदी के प्रोफेसरों की संस्था, भारतीय हिंदी परिषद् का वार्षिक अधिवेशन गत मास दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डा० नगेन्द्र की अध्यक्षता में अलीगढ़ में सम्पन्न हो गया। मूलरूप से यह संस्था हिंदी अध्यापकों की समस्याओं से सम्बन्धित है, और अपने ढंग से अच्छा काम कर रही है। वह सामान्यतः "हिंदी की राजनीति" से दूर रहती है। यह किसी सीमा तक ठीक भी है।

किंतु इस बार अपने भाषण में डा० नगेन्द्र ने विश्वविद्यालय की परिधि के बाहर की हिंदी की एक ज्वलन्त समस्या पर भी विचार किया। सन् १९६५ के बाद अँगरेजी को केंद्र के राजकाज में प्रयुक्त करने की जो खुली और सीमाहीन छूट दे दी गयी है उसपर अध्यक्ष ने खेद प्रकट करने के बाद कहा--"जो होना था वह हो गया, अगले १० वर्षों तक अँगरेजी को वह पद मिल ही गया जो उसे न मिलना चाहिए था। हिंदी-प्रेमियों को अब सोचना यह है कि वे इस अवधि में क्या मार्ग अपनाएँ। तीन ही विकल्प हमारे हैं और वह हैं असहयोग, संघर्ष और सहयोग प्रथम दो मेरे मत में आज की स्थिति में उचित नहीं तीसरा विकल्प है सहयोग, जिसका अर्थ यह है कि और आक्रोश को त्याग विवेकपूर्वक रचनात्मक का अवलम्बन किया जाय--अर्थात् अतीत की विफल का विश्लेषण और उनके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों अभिकरणों की छानबीन करने के स्थान पर वर्तमान भावी विकास योजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया इसके लिए यह विश्वास करना होगा कि शासन आगामी दस-बारह वर्षों में हिंदी के लिए सम्यक् करना चाहता है और हमें भी उसके आश्वासनों का आग्रह के साथ लाभ उठाना होगा जिस आग्रह के हिंदी के विरोधियों ने अँगरेजी-विषयक आश्वासन लाभ उठाया है। मैं समझता हूँ कि वर्तमान स्थिति सक्रिय सहयोग का यह मार्ग बुरा नहीं रहेगा--कम से एक बार आजमाने में कोई हर्ज नहीं है। मेरी धारणा है कि शासन ने जहाँ सही या गलत ढंग से अनुभव किया है कि अभी देश हिंदी को एकमात्र राजभाषा के रूप में ग्रहण करने को तैयार नहीं है, वहाँ उसे इस का भी विश्वास हो गया है कि हिंदी के विकास के उचित व्यवस्था नहीं हुई और दोष का परिमार्जन कर ही होगा।"

प्रोफेसरवर्ग से हम इस "सहयोग" के "सुसम्वाद" अतिरिक्त और किसी वस्तु की आशा भी नहीं करते हिंदी के प्रोफेसरों ने "उच्च साहित्य" के अध्ययन-अध्यापन का कार्य किया है, उनमें से कुछ ने उच्च या सर्जनात्मक साहित्य के निर्माण में भी प्रशंसनीय सहयोग दिया है, के रूप पर भी विचार प्रकट किये हैं, शास्त्रीय विचार विनिमय किया है, किंतु जनता में हिंदी के प्रचार प्रसार का काम उनके क्षेत्र से सामान्यतः बाहर रहा है इधर सरकार ने जो हिंदी समितियाँ बनायीं, शब्दावलि तैयार करने के लिए कमेटियाँ निर्मित कीं, पर्यायों आदि लिए गोष्ठियाँ कीं, अँगरेजी पुस्तकों के अनुवाद कराये हिंदी सम्बन्धी जो अन्य काम किये उनमें प्रोफेसरों को प्रधानता मिली। यहाँ तक कि जब हिंदी डाइरेक्टरेट बनी तब उसमें भी मुख्य कार्यकर्त्ता अधिकतर प्रोफेसरों में से ही लिये गये। अतएव अभी तक प्रोफेसरों ने सरकार के साथ सहयोग किया, और यह सहयोग उनके लिए प्रकार से फायदे का सौदा रहा। केंद्रीय और हिंदी-भाषी सरकारें प्रतिवर्ष हिंदी के नाम पर लाखों रुपया खर्च कर रही हैं, और जब तक संविधान में, तथा हिंदीभाषी राज्यों के कानूनों में, हिंदी कागजी राजभाषा बनी रहेगी तब तक वे हिंदी के नाम पर कुछ न कुछ खर्च करती ही रहेंगी, और उसका लाभ 'सहयोगियों' को मिलता रहेगा। सरकार की ये सब समितियाँ अमरीकन रॉकिंग चेयर की तरह हैं ये बराबर हिलती रहती हैं। इसमें बैठे हुए व्यक्ति को बराबर "गति" का बोध होता रहता है, यद्यपि वह एक

आगे नहीं बढ़ती। इनमें गति है, प्रगति नहीं। हाँ, सरकार को यह प्रचार करने का अवसर अवश्य जाता है कि हमने लाखों रुपये हिंदी की उन्नति में कर दिये।

भारत-सरकार ने एक कोष तैयार कराने की ना बनायी। वह वर्षों से बन रहा है। अब कहीं र उसका एक छोटा संस्करण निकला है जिसमें मीडिएट तक की आवश्यकता के ही शब्द हैं। इसे ज्योतिषी ही बता सकता है कि सम्पूर्ण कोष में कितना समय लगेगा। यदि व्यय देखा जाय दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ेगी। इसी प्रकार ारें हिंदी के प्रसार और प्रचार की योजनाएँ ती रही हैं, उनपर लाखों रुपये खर्च करती रही उन्हें हमारे प्रोफेसरों तथा कुछ अन्य विद्वानों का सहयोग मिलता रहा है। किंतु इन दस-बारह वर्षों लों और सतत सहयोग का परिणाम क्या निकला? प्रमाणपत्र मिला कि हिंदी अभी राजकाज के लिए है? क्या डा० नगेन्द्र समझते हैं कि भविष्य में हिंदी ों के सहयोग के मिलते रहने से सरकार की हिंदी-की गति में तीव्रता आवेगी? शायद उनका दिल्ली और सरकार में इतना प्रभाव हो कि वे इसके लिए स्त हों, किंतु हमें सरकार के संकल्प में कोई विशेष तन नहीं दीखता। फिर सहयोग की घोषणा निरर्थक योंकि यदि सरकार के साथ सहयोग करने की नीति आवश्यक घोषित न भी किया जाय, तो कौन सा ऐसा ों का प्रोफेसर या विद्वान् है जो सरकार के दिये हुए भाषा सम्बन्धी कार्य से इंकार कर दे——विशेषकर इसके लिए अच्छा पैसा भी मिलता हो या उससे गत प्रभाव बढ़ता हो? जिस वर्ग के समुदाय डा० नगेन्द्र बोल रहे थे उसने सदा तत्कालीन सरकार से योग ही किया है। "असहयोग" शब्द, इस संदर्भ में, की शब्दावली में है ही नहीं। भविष्य में भी ऐसा कोई नहीं है। और, कोई यह चाहता भी नहीं कि सर-र हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए जो भी काम क्ष या परोक्ष रूप से करे उसमें किसी तरह की बाधा । और न उसमें बाधा पड़ ही सकती है, क्योंकि शाली सरकार सहयोग खरीदती है, लेती नहीं। और इस अर्थ-प्रधान युग में सहयोग-विक्रेताओं की कोई मी नहीं है। डा० नगेन्द्र की घोषणा ने उस सहयोग नीति का जामा पहनाकर उसे केवल विहित और ष्ठित बना दिया है।

हिंदी का राजभाषा के रूप में प्रयोग प्रोफेसरों के साहित्य-निर्माण या सहयोग पर निर्भर नहीं है। वह शास्त्रीय या साहित्यिक समस्या नहीं है। वह है राजनीतिक समस्या। जब सरकार वास्तव में कोई काम करना चाहती है तो कठिनाइयों को नहीं देखती। स्वर्ण-नियंत्रण में कितनी कठिनाइयाँ हैं? कितने लोग बेरोजगार हो गये? कितना असंतोष उत्पन्न हुआ? किन्तु व्यापक जनहित में उसने कठिनाइयों की परवाह नहीं की। स्वर्ण-नियंत्रण कर ही डाला। जहाँ चाह, तहाँ राह। प्रश्न यह है कि जो सरकार चौदह वर्षों से हिंदी को राजभाषा बनाने की तैयारी नहीं कर सकी, वह सरकार क्या अपने विचारों और व्यक्तित्वों में इन्हीं दो-चार सप्ताहों में इतनी बदल गयी है कि उससे भविष्य में कोई दूसरे प्रकार की आशा की जा सकती है?

फिर प्रश्न यह है कि क्या सरकार इस क्रय-विक्रय वाले सहयोग के अतिरिक्त हिंदीवालों से कोई और सहयोग भी चाहती है? हाँ, वह यह सहयोग चाहती है कि हिंदीवाले उसकी आलोचना न करें, उसकी प्रशंसा करते रहें और जनता में इस बात का प्रचार न करें कि सरकार ने हिंदी के साथ अन्याय किया है और वह अँगरेजी को अनिश्चित काल के लिए इस देश की राजभाषा बनाये रखना चाहती है तथा उसने हिंदी की चुटिया उन अहिंदीभाषियों के हाथ में दे दी है जो हिंदी के जाने-माने विरोधी और अँगरेजी-परस्त हैं। यदि डा० नगेन्द्र चाहें तो हिंदीवालों की इस व्यथा और शिकायत पर पर्दा डालकर, और इसे भुलाकर, सरकार से सहयोग कर सकते हैं। वे कहते हैं कि पुरानी बातों को न उठाया जाय। वे इन बातों को गोल कर सकते हैं कि अँगरेजी अनिश्चित काल के लिए केंद्र की राजभाषा हो गयी है, किसी कार्यालय में उसमें टिप्पणी भी नहीं लिखी जा सकती जब तक उसमें ७५ प्रतिशत कर्मचारी हिंदी में काम न कर सकते हों, साथ ही किसी अहिंदीभाषी को हिंदी सीखने के लिए बाध्य भी नहीं किया जायगा जिससे हिंदी जाननेवालों का अनुपात केंद्र के सरकारी कार्यालयों में कभी ७५ प्रतिशत न हो सकेगा। वे जनता से यह कहते हैं कि "अगले दस वर्षों तक के लिए अँगरेजी को वह पद मिल ही गया जो उसे न मिलना चाहिए था।" मानों दस वर्षों बाद हिंदी केंद्र की एकमात्र राजभाषा हो जायगी और अँगरेजी केवल दस वर्षों के लिए वहाँ रखी गयी है! यह उनकी उस साधु प्रकृति का निष्कर्ष हो सकता है जो दूसरों के अभिप्रायों की सदा उदार व्याख्या करती है।

यदि सहयोग का सिद्धान्त ही मान लिया जाय, तो देखना है कि क्या सरकार वास्तविक सहयोग चाहती है? गत मास भोपाल में प्रजा सोशलिस्ट दल का अधिवेशन हुआ था। उस दल के नेता अब तक श्री अशोक मेहता थे, जो डा० नगेन्द्र ही की तरह, सरकार से सहयोग करने में कारुणिक विश्वास रखते हैं। उनका और उनके दल का क्या अनुभव रहा? वहाँ करुणापूर्ण ढंग से लोगों ने शिकायत की कि हम तो सरकार को सहयोग देते रहे हैं किन्तु सरकार ने हमारे सहयोग की कोई कद्र नहीं की। सरकार ने कोई प्रति-सहयोग नहीं दिया। एक समर्थ राजनीतिक दल का ऐसा अनुभव है। भग-

वान् करे कि डा० नगेन्द्र का अनुभव इतना कारुणिक न हो। हाँ, यदि वे इकतरफा सहयोग को ही सहयोग मानते हैं, तो उन्हें कोई निराशा नहीं होगी। जो भी सरकार कहे, वह आप करते जाइये। किन्तु आपकी बात न सुनी जायगी। वह नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह खो जायगी।

हमें अपना दिमाग साफ रखना चाहिए और स्थिति को ठीक तरह से समझ लेना चाहिए। साफ बात यह है कि सरकार राजनीतिक संस्था है। इस प्रजातंत्र में उसपर एक ही वस्तु प्रभाव करती है——जनता का मत। यदि डा० नगेन्द्र सचमुच वास्तविक अर्थ में हिंदी को राजभाषा पद पर देखना चाहते हैं तो यह कार्य सरकार के लिए पुस्तकें लिखने, शब्दावली तैयार करने, सरकारी समितियों की सदस्यता स्वीकार करने से नहीं होगा। सरकार के पास इतनी शक्ति और साधन हैं कि वह ये सब काम तो जिस दिन चाहे तुरंत करा सकती है। और यदि न चाहे, तो इतनी ढील दे दे कि यह काम दस-बीस दशकों में भी न हो। जनतंत्र में सरकार से काम कराने का एकमात्र उपाय उसपर जनता का दबाव डालना है। जब तक हिंदी के नेता जनता को प्रबुद्ध नहीं करते, उनमें भाषा की चेतना उत्पन्न नहीं करते, उन्हें यह नहीं समझाते कि अँगरेजी के बने रहने से जनता का अहित है, अँगरेजी से केवल कुछ विशिष्ट वर्गों के हाथों में देश की सत्ता और शासन बना रहेगा और जनता वास्तविक मालिक न बन सकेगी, तब तक जनता न चेतेगी और सरकार पर हिंदी को वास्तविक राजभाषा बनाने का पर्याप्त दबाव न डालेगी। और जब तक वह दबाव न डालेगी तब तक हिंदी के सारे प्रोफेसरों का सरकार के साथ सहयोग उसे टस से मस न कर सकेगा।

सरकार के साथ न असहयोग की आवश्यकता है और न संघर्ष की। जनतांत्रिक सरकार एक विशेष प्रकार का राजनीतिक तंत्र है। उसे संचालित करने, उसे मोड़ने और उससे मनचाहा काम कराने का एक ही उपाय है——उस पर जनता का दबाव डालना। इस समय हिंदी का नेतृत्व वे ही लोग कर सकते हैं जिनमें जनता की अदालत में अपील करने की क्षमता हो। इसके लिए हद दर्जे की लगन, त्याग, तपस्या, परिश्रम, कष्ट सहन की आवश्यकता है। दुर्भाग्य यह है कि प्रोफेसर लोग यह सब तो करने को तैयार नहीं हैं, किन्तु हिंदी के नेता बनने को उत्सुक हैं, और हमें यह उपदेश देने को तैयार हैं कि हम सरकार के साथ सहयोग करें, आक्रोश न करें। उन्हें "रंज बहुत है, मगर आराम के साथ।" यह कहकर कि सहयोग के सिवाय और कोई उपाय नहीं है, वे हिंदी जनता के मनोबल को कमजोर करते हैं। हमारा उनसे बड़ा विनम्र निवेदन है: "आप सरकार के साथ खुशी से सहयोग करें। साहित्य का निर्माण करें। शब्दावलियाँ तैयार करें। समितियों की सदस्यता करें। ये महत्त्वपूर्ण और आवश्यक का हैं। किन्तु ईश्वर के लिए हमारा मनोबल न घटा हिंदी का नेतृत्व न करें, क्योंकि हिंदी राजभाषा का प्र मूल रूप से शास्त्रीय नहीं है। यदि आप सचमुच हि को राजभाषा बनाना चाहते हैं तो जनता को प्रबु करने के लिए मैदान में आइये!"

रूस की नयी अन्तरिक्ष-विजय——रूस और अमरीका दोनों ही अन्तरिक्ष की विजय करने में लगे हुए हैं। अनादि काल से मनुष्य का यह स्वप्न था कि मैं वायु में चिड़ि की तरह उड़ूँ। वह बात अब इतनी साधारण हो गयी है कि लोग अब वायुयानों को मोटरबसों के समान सामान्य समझने लगे हैं। किन्तु जब पहिले-पहिले वायुयान आकाश में उड़ा तब मनुष्य आश्चर्यचकित हो गया था। वायु में उडने की कल्पना तो मनुष्य ने प्राचीन काल में की थी किंतु उसने दूसरे ग्रहों को जाने की कल्पना भी न की थी। किंतु वायुयानों और प्रक्षेप अस्त्रों के बन जाने के बाद मनुष्य की दुर्दम जिज्ञासा चंद्रमा, मंगल आदि ग्रहों तक पहुँचकर उनके सम्बन्ध में अपना कुतूहल शान्त करने को व्यग्र हो उठी। उसमें सबसे पहिले सफलता रूस को मिली। किंतु यह जानना आवश्यक था कि वायुमंडल से ऊपर अंतरिक्ष में, हजारों मील प्रतिघंटे से चलनेवाले यान में, प्राणी जीवित भी रह सकता है या नहीं, और यदि रह सकता है तो उसपर कोई प्रतिकूल प्रभाव तो नहीं पड़ता। इसलिए रूस ने सबसे पहिले एक कुतिया को अंतरिक्ष में भेजा। परीक्षा के बाद मालूम हुआ कि कुतिया को वह यात्रा सह गयी। तब उसने एक आदमी अंतरिक्ष में भेजा। उससे भी इस बात की पुष्टि हुई कि मनुष्य अंतरिक्ष की यात्रा सहन कर सकता है। यह देखने के लिए कि वह कितनी देर अंतरिक्ष में रह सकता है, इस यात्रा की अवधि बढ़ायी गयी। इस बीच अमेरीका ने भी अपना अंतरिक्ष यान तैयार कर लिया, और उसने भी इसी प्रकार के परीक्षण किये। पिछले मास रूस ने इस परीक्षण को और आगे बढ़ाया। अभी तक इन यात्राओं पर पुरुष ही भेजे गये थे। इस बार यह देखने के लिए कि स्त्रियाँ यह यात्रा कर सकती हैं या नहीं उसने एक यान में एक स्त्री भी भेजी। कई दृष्टियों से स्त्रियों का भेजना आवश्यक था। वायुयान की तरह अंतरिक्ष यान में भी निश्चित बोझ से अधिक नहीं रखा जा सकता। चालक का बोझ यदि दस-पाँच सेर भी कम हो तो यान में उतना भारी कोई नया यंत्र रखा जा सकता है, या खाने-पीने का सामान अधिक चढ़ाया जा सकता है। स्त्रियाँ पुरुषों से हलकी होती हैं। इसलिए यदि वे इन यानों के चालकों का काम करें तो अधिक सुभीता हो। दूसरे, वैज्ञानिकों का कहना है कि स्त्रियों की सहनशक्ति पुरुषों से अधिक होती है। स्त्रियों के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को बढ़ाने के लिए भी ऐसे कामों में स्त्रियों का सहयोग आवश्यक है। और यदि चंद्रमा तक

आदमी पहुँचा और उसे वह बसने योग्य मालूम हुआ तो केवल पुरुष तो उसे नहीं बसा सकते। इसलिए भी यह जानना आवश्यक है कि स्त्रियाँ अंतरिक्ष-यात्रा कर सकती या नहीं। जो भी हो, रूस ने इस बार एक नवयुवती को अंतरिक्ष यात्रा में भेजकर एक नया कीर्तिमान स्थापित कर दिया है। इस वीर महिला का नाम वैलेन्तिना तेरेश्कोवा है। उसकी अवस्था केवल २६ वर्ष की है। उसने अपने अंतरिक्ष यान में ४९ बार पृथ्वी की परिक्रमा की। अपनी यात्रा में उसने प्रायः २० लाख किलोमीटर दूरी तय की! रूसियों ने इस उड़ान के लिए उसका नाम 'समुद्री बत्तख' रख दिया था।

'समुद्री बत्तख' को अंतरिक्ष में भेजने के एक दिन पहले रूस ने कर्नल बाईकोवस्की को अंतरिक्ष यात्रा में भेजा था। उन्होंने अन्तरिक्ष में सबसे अधिक समय तक रहने तथा पृथ्वी की सबसे अधिक परिक्रमाएँ करने का कीर्तिमान स्थापित किया। उन्होंने पृथ्वी की ८२ परिक्रमाएँ कीं। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि मनुष्य को यदि भोजन और आक्सिजन मिलते रहे तो वह अनिश्चित काल तक अंतरिक्ष में रह सकता है।

इन यात्राओं में रूसियों ने इस बात का भी परीक्षण किया कि अंतरिक्ष में उड़ते हुए यान एक दूसरे के पास आ सकते हैं या नहीं। यदि ये पास आ सकें और साथ मिल कर उड़ सकें तो कई अंतरिक्ष यान मिलकर यानों का एक प्रकार का चबूतरा बना सकते हैं, और इस चबूतरे से चंद्रमा या मंगल को प्रक्षेप्य भेज सकते हैं। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण धरातल पर से प्रक्षेप्य भेजने के लिए जितनी शक्ति चाहिए उसका एक अंश ही उसे–पृथ्वी से सैकड़ों मील ऊपर स्थित——अंतरिक्ष यानों के चबूतरे से चलाने के लिए आवश्यक होगा। अंतरिक्ष में घूमते हुए 'अंतरिक्ष-चबूतरों' की सहायता से अनेक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान किये जा सकेंगे जो आज संभव नहीं है। इसलिए कर्नल बाईकोवस्की और तैरेश्कोवा के अंतरिक्ष यानों को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न किया गया, और दोनों के बीच की दूरी केवल तीन मील रह गयी! यदि वे इतने निकट लाये जा सकते हैं तो उनका एक दूसरे से सटकर उड़ना भी संभव है। मालूम नहीं कि इस बार इन्हें और अधिक निकट नहीं लाया जा सका, या जान-बूझकर और निकट नहीं लाया गया। किंतु इन उड़ानों से यह स्पष्ट हो गया है कि वे एक दूसरे के बिल्कुल निकट लाये जा सकते हैं।

रूस की इन आश्चर्यजनक उड़ानों ने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि अंतरिक्ष यात्रा में इस समय वह अद्वितीय है। उसके वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष विजय में सफलता प्राप्त कर ली है, और वह दिन अब बहुत दूर नहीं है जब मनुष्य अपने चर्मचक्षुओं से चंद्रमा के धरातल पर पहुँच कर उसके रहस्यों को जान सकेगा। और उसके बाद? कल्पना सारे विश्व में भ्रमण करने लगती है!

मुसलमानों में बहुविवाह––'विवाह' धार्मिक कृत्य है अथवा लौकिक या सामाजिक? यदि धार्मिक कृत्य है तो धर्मनिरपेक्ष राज्य को उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, और यदि वह लौकिक या सामाजिक कृत्य है तो उसके संबंध में जो भी कानून बनें वे देश के सारे नागरिकों पर समान रूप से लागू होने चाहिए। किंतु भारत में स्थिति स्पष्ट नहीं है। सरकार ने कानून बनाकर हिंदुओं के लिए बहुविवाह वर्जित कर दिया है। एक साथ एक से अधिक विवाह करने पर हिन्दू नागरिक को दंड मिलता है और यदि वह सरकारी सेवा में हुआ तो सेवा से निकाल दिया जाता है। भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। यदि वह विवाह को धार्मिक कृत्य समझता तो ऐसा कानून न बनाता। अतएव स्पष्ट है कि उसने उसे लौकिक (सिविल) कृत्य माना है। किंतु आश्चर्य की बात है यह बहुविवाह-निषेधक कानून भारत के मुसलमान नागरिकों पर लागू नहीं है। लौकिक कानून देश के समस्त नागरिकों पर समान रूप से लागू होने चाहिए। शायद सरकार ने विवाह को हिंदुओं के लिए लौकिक, और मुसलमानों के लिए धार्मिक कृत्य मान रखा है। इसीलिए उसने मुसलमानों में बहुविवाह पर रोक नहीं लगायी।

किंतु मुसलमानों में भी कुछ आधुनिक उदार विचार के लोग हैं और वे अपने समुदाय में भी यह सुधार करना चाहते हैं। टचूनीसिया और मिस्र मुस्लिम देश हैं। दोनों ही ने अपने यहाँ बहुविवाह वर्जित कर दिया है। किंतु भारत के मुसलमान अपने को अधिक कट्टर मुसलमान समझते हैं। शायद इसलिए वे बहुविवाह को मुस्लिम धर्म का अंग समझ कर उसे जारी रखे हुए हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि कुरान में बहुविवाह को कर्तव्य के रूप में कहीं नहीं बतलाया गया। केवल विशेष परिस्थिति में बहुविवाह करने की उसमें अनुमति मात्र दी गयी है। किंतु बहुत से मुसलमान बहुविवाह को मुसलमानों का धार्मिक अधिकार समझते हैं।

बम्बई की विधान सभा में एक मुसलमान सदस्य (श्री अलीहसन मामदानी) ने एक विधेयक प्रस्तुत किया है जिसमें मुसलमानों में प्रचलित बहुविवाह को वर्जित कर देने का प्रस्ताव किया गया है। विधान सभा के मुसलमान सदस्यों ने इस बात पर विचार करने के लिए कि यह प्रस्ताव कुरान के उपदेशों के विरुद्ध तो नहीं है, अपनी एक समिति बनायी। पुराने विचारों के मुसलमान इस विधेयक के विरुद्ध हैं। उन्हें यह भ्रम हो गया कि बम्बई की सरकार उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर रही है। स्थिति को स्पष्ट करने के लिए बम्बई सरकार के सूचना विभाग ने एक विज्ञप्ति निकाल कर स्थिति स्पष्ट की है। उससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि इस मामले में सरकार बिल्कुल तटस्थ है। इस पर वही निर्णय होगा जो मुसलमान सदस्य चाहेंगे।

हम यह नहीं समझ सके कि सरकार इस मामले में तटस्थ क्यों है। देश के सब नागरिकों को समान अधिकार

होने चाहिए। हमें ऐसे उदाहरण मालूम हैं जहाँ पत्नी के चिररोगी होने के कारण, या अन्य कारणों से, दूसरा विवाह आवश्यक हो जाता है। किंतु हिंदू नागरिक को वह सुविधा नहीं है। हमने ऐसे भी उदाहरण सुने हैं जहाँ किसी कारण से (विशेष कर प्रेम के कारण) दूसरी स्त्री से विवाह करने के लिए लोगों ने अपना धर्म परिवर्तन भी कर लिया है। इस भेदभाव से एक गंभीर समस्या भी उत्पन्न हो सकती है। यदि एक वर्ग को बहुविवाह का अधिकार है और दूसरे को नहीं है, तो जिस वर्ग को यह अधिकार है उसकी जनसंख्या अधिक बड़े अनुपात में बढ़ेगी जिससे कालान्तर में उसकी संख्या बढ़ जायगी। जहाँ दोनों वर्गों की जनसंख्या में कम भेद है वहाँ बहुविवाहवाले यदि आज अल्पमत में हैं तो थोड़े दिनों बाद बहुमत में हो सकते हैं, और समुदायों का संतुलन बिगड़ सकता है। अतएव सरकार को इस मामले में भेदभाव नहीं करना चाहिए और सब वर्गों के लिए यह लौकिक अधिकार (सिविल राइट) एक ही प्रकार का होना चाहिए। बंबई सरकार को इस मामले में तटस्थ रहने या अपने को निर्दोष सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

भारत में बढ़िया ह्विस्की का प्रबंध--शराबबन्दी कांग्रेस का एक प्रमुख सिद्धान्त है। गांधीजी इसे देश के कल्याण के लिए बहुत आवश्यक समझते थे। कई कांग्रेस सरकारों ने अपने अनेक नगरों और जिलों में मादक द्रव्यों का निषेध कर दिया था। फिर भी देश में लोग शराब पीते हैं और शायद सदैव ही देश में कुछ लोग ऐसे होंगे जो शराब पीते रहेंगे। व्यावहारिक, विशेषकर वित्तीय कारणों से, शराब बंद न करना एक बात है, किंतु शराब बनाने का कारखाना खोलना दूसरी बात। शराबों में 'ह्विस्की' नामक एक शराब होती है जिसको शौकीन शराबी बहुत पसन्द करते हैं। शराबों में उसका वही स्थान है जो मगही पान का पानों में। वह मूल्यवान् होती है। इसलिए उसे धनी लोग ही पी सकते हैं। वैसे, विदेश से आजकल शराब आना बंद है किंतु अब भी बाजार में वह मिल जाती है और हमें बतलाया गया है कि साधारण विदेशी ह्विस्की की एक बोतल सत्तर-अस्सी रुपयों में मिलती है। अच्छी ह्विस्की की बोतल तो सौ-सवा सौ रुपये की बिकती है। विदेश से ह्विस्की न आने के कारण देशी ह्विस्की बिकती है, किंतु पीनेवालों का कहना है कि उसमें असली ह्विस्की का मजा नहीं है। जिस प्रकार कलकत्ते का रसगुल्ला और संदेश, आगरे का पेठा और दिल्ली का सोहनहलुआ प्रसिद्ध है, उसी प्रकार स्काटलैण्ड की ह्विस्की सारे संसार में प्रसिद्ध है। कुछ तो शायद वहाँका जलवायु उसके लिए अनुकूल है और कुछ उसके बनानेवालों की निपुणता के कारण वह वहाँ इतनी अच्छी बनती है।

समाचार-पत्रों से ज्ञात हुआ है कि आन्ध्र के आबकारी मंत्री ने बतलाया है कि आंध्र देश की सरकार के ही शराब बनाने के कारखानों में ह्विस्की बनायी जाती है। किंतु वह विदेशी ह्विस्की के सामने जमती नहीं। इसलिए आन्ध्र सरकार स्काटलैण्ड से ह्विस्की विशेषज्ञ बुला रही है और उनकी सहायता से बढ़िया ह्विस्की बनावेगी। यदि स्काच विशेषज्ञों की सहायता से इस देश में बढ़िया ह्विस्की बनने लगे तो जो लोग ह्विस्की के शौकीन हैं उन्हें बड़ा आराम हो जायगा। इसके अतिरिक्त अच्छी ह्विस्की न मिलने के कारण जिन लोगों ने उसे पीना छोड़ दिया था, या इस कारण जिन्होंने उसका पीना आरंभ नहीं किया था, उन्हें भी अच्छी ह्विस्की पीने को मिल जाया करेगी। सारे भारत के ह्विस्की-बाजार में आंध्र सरकार का एकाधिपत्य हो जायगा और राज्य की आय बढ़ेगी। अच्छी ह्विस्की की माँग संसार के अनेक देशों में है। यदि स्काच विशेषज्ञों के हस्त-स्पर्श से उसका स्वाद महँगी स्काच ह्विस्की के निकट पहुँच गया तो वह विदेशों में भी खप कर मुरारजी भाई के लिए विदेशी मुद्रा ला सकती है।

किंतु प्रश्न यह है कि देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति में क्या अच्छी ह्विस्की का उत्पादन इतना आवश्यक है कि उसके लिए विदेशी विशेषज्ञ बुलाये जायँ? क्या आंध्र में जन-कल्याण की सारी योजनाएँ सफलता से चलने लगी हैं, और अब जनता की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी हो गयी है और उसका जीवन-स्तर इतना ऊँचा उठ गया है कि अब उसके पास स्काचनुमा ह्विस्की की स्वाद लेने के लिए फालतू पैसा आ गया है? क्या विदेशी-विशेषज्ञों का यह उपयोग देश की वर्तमान उन्नति के सोपान के साथ मेल खाता है? क्या आन्ध्र की उन्नति के लिए और कोई योजना सरकार के पास नहीं है?

दूसरी बात यह है कि जो देश, दल और सरकार नशाबंदी को अपना ध्येय बतलाती है, उसके लिए यह कहाँ तक उचित है कि वह शराबियों के संतोष के लिए अच्छी से अच्छी शराब स्वयं बना कर प्रस्तुत करे, जिससे उसके गुण और स्वाद के कारण वे और अधिक परिमाण में उसे पीने लगें, तथा जिससे नये शराबी उत्पन्न हों? आंध्र सरकार बड़ी समझदार है! वह नशाखोरी को सिद्धान्ततः मान कर 'खुदा' को भी खुश कर रही है, और बढ़िया शराब बना कर शैतान को भी! अवसर पड़ने पर दोनों ही काम आ सकते हैं।

शिव-काव्य की परम्परा

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' एम० ए०, पी० एच-डी०

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में शिव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मानव की आस्तिकता के नतम स्रोत हैं। सिन्धु-घाटी की सभ्यता के युग से वधि भारतीय जनता विभिन्न रूपों में उनकी पूजा आ रही है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योग आदि किसी र्ग से उनकी साधना की जा सकती है। साकार निराकार का भी उनके सम्बन्ध में कोई मौलिक नहीं है। देवताओं में वे महादेव हैं, त्रिदेव-मण्डल त्य और ईश्वर की प्राचीनतम कल्पना। भारतीय के सभी प्रमुख स्रोतों का उनसे सम्बन्ध है। नृत्य, संगीत, आदि कलाओं तथा आयुर्वेद, व्या- इत्यादि विद्याओं के वे आदि उपदेष्टा माने जाते भारतीय संस्कृति की एकता और अखण्डता के वे पुराने सूत्र हैं। आर्य और अनार्य दोनों संस्कृतियों को संगम कहा जा सकता है। पूर्व से पश्चिम तक, त्तर से सुदूर दक्षिण तक, समस्त भारत में शिव- और तीर्थों का प्रसार है तथा वय, वर्ग एवं वर्ण के व के बिना सभी लोग पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के नकी पूजा करते हैं।

र्म और संस्कृति के समान ही भारतीय साहित्य शिव का अत्यन्त प्राचीन तथा घनिष्ठ सम्बन्ध है। से अब तक जितना साहित्य संस्कृत और उसकी धिकारिणी राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखा गया है, में शिव-काव्य की एक अखण्ड परम्परा मिलती है। रम्परा ऋग्वेद से ही प्रारम्भ हो जाती है। उसके मण्डल के सूक्त ६०, मंत्र ५ में कहा गया है--

ज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
वा पिता स्व पा रुद्र एषां,
सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

अर्थात्—"हम सब ज्येष्ठ, कनिष्ठ, लघु, उच्च के से रहित हैं। हम सब मिलकर सौभाग्य के लिए नशील हों। कल्याणकारी श्रेष्ठ-कर्मा रुद्र परमेश्वर सबके पिता हैं तथा सबको सुख देनेवाली, सुन्दर दूध पोषण करनेवाली, प्रकृति हम सबकी माँ है।" ऋग्वेद में रुद्र सम्बन्धी इस प्रकार के कई मंत्र हैं। उन मंत्रों में शिव-काव्य के वे प्रारम्भिक स्रोत छिपे हुए हैं, जिनसे उद्गमित होकर स्तवन-परक शिव-काव्य एवं कथा-परक शिव-काव्य की दो भिन्न धाराएँ अखण्ड रूप में भारतीय साहित्य की विराट् भूमि पर प्रवाहित होती हुई अब तक चली आ रही हैं। उपर्युक्त मंत्र के भावों में उस कल्पना के बीज भी छिपे हुए हैं जिसने सिन्धु घाटी की सभ्यता में पृथक् पृथक् पूजित स्त्री-देवता एवं पुरुष-देवता को प्रकृति और रुद्र या शक्ति और शिव के दाम्पत्य सूत्र में बाँधा और उसके आधार पर अनेक शिव-कथाओं का विकास हुआ।

वेदों के पश्चात् संस्कृत में जो लौकिक काव्य लिखा गया उसमें वाल्मीकि-रामायण आदि-काव्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इस ग्रन्थ में राम-कथा के साथ शिव-काव्य के स्तवन-परक तथा कथा-परक दोनों रूपों का विकास मिलता है। महाभारत में भी विभिन्न शिव-कथाओं का कई पर्वों में रोचक ढंग से वर्णन किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य प्रमुख पात्र कृपा या वरदान पाने के लिए बड़ी श्रद्धा के साथ शिव का स्तवन करते हैं। शास्त्रीय ग्रन्थों में भी मंगलाचरण आदि के रूप में शिव-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण बिखरे पड़े हैं।

शिव-काव्य की यह स्फुट परम्परा आगे चलकर स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में विकसित हुई। फलतः स्तवन-परक तथा कथा-परक दोनों प्रकार के अनेक मौलिक शिव-काव्यों का प्रणयन हुआ।

स्तवन-परक स्वतन्त्र शिव-काव्यों में प्राचीनता की दृष्टि से बाण के "चण्डीशतक" का विशेष महत्त्व है। इसमें शक्ति के संदर्भ में शिव की महिमा का वर्णन मिलता है। प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य ने भी 'शिवापराधक्षमापण-स्तोत्र', 'भवान्यष्टक', 'आनन्दलहरी' या 'शिवानन्दलहरी' तथा 'शिवभुजंगस्तोत्र' आदि कई शिव-स्तवन लिखे जिनमें 'शिवानन्दलहरी' का विशेष महत्त्व है। इस ग्रन्थ में आत्मोद्धार के लिए आचार्य शंकर ने शिव के प्रति जो भाव प्रकट किये हैं, उनके आगे कृष्ण के प्रति सूर की उक्तियाँ भी नीरस जान पड़ती हैं।

स्तवन-परक अन्य शिव-काव्यों में कश्मीरी कवि पुष्पदंत का "शिवमहिम्नस्तोत्र", आनन्दवर्द्धन का

"देवीशतक", उत्पलदेव का 'स्तोत्रावली', जगद्धर भट्ट का 'स्तुतिकुसुमांजलि' आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन स्तोत्रों में शिव के सर्वकल्याणकारी और उदार रूप का पूर्ण तन्मयता से चित्रण किया गया है तथा उनकी शक्ति को जीव मात्र की रक्षा में तत्पर दिखलाया गया है। प्रसंगवश शिव और शक्ति के निवास-स्थल हिमालय-शिखर कैलास की सुषमा, उसके साथ प्रकृति की मनोरमता तथा गंगा की पवित्रता आदि के सरस वर्णनों को भी स्थान मिला है। भूमि के मुकुट उस हिमालय की ओर आँख उठानेवाले असुरों का संहार करने में शिव की शक्ति किस प्रकार सफल होती है, यह समस्त स्तवन-काव्यों की वर्णना का परम लक्ष्य है।

स्वतन्त्र प्रबन्धकाव्यों की परम्परा में कालिदास-कृत 'कुमारसंभव' का नाम सबसे पहले आता है। यह १७ सर्गों का एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। विद्वानों ने इसके प्रारम्भिक आठ सर्गों को ही कालिदास कृत माना है। इस महाकाव्य में शिव और पार्वती के दाम्पत्य सूत्र में जुड़ने के लिए किये गये तप तथा जीवन-गत संयम, योग एवं सदाचरण का ओजपूर्ण वर्णन करके कवि दोनों का लौकिक रीति से परिचय कराता है। उसके पश्चात् अष्टमसर्ग में असुर-संहार में सक्षम सन्तान की उत्पत्ति को ध्येय बनाकर दाम्पत्य-संभोग का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। विष्णु, इन्द्र, आदि देवताओं की मनोरथ-सिद्धि ही इस संभोग का मूल हेतु है। अन्त में कुमार की उत्पत्ति और उसके द्वारा देव-सेना का नेतृत्व ग्रहण कर आततायी तारकासुर का संहार दिखाया गया है। इस प्रकार यह काव्य हिमालय के इस ओजस्वी वर्णन से प्रारम्भ होकर—

अस्त्युत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ वारिनिधी वगाह्य,
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

सृष्टि-कल्याण के लिए असुर-संहार के साथ समाप्त होता है। भावाभिव्यंजना, काव्य-कला एवं महान् उद्देश्य की दृष्टि से यह महाकाव्य संस्कृत-साहित्य का ही नहीं, विश्व-साहित्य का एक श्रेष्ठ रत्न है।

'कुमारसंभव' के पश्चात् शिव-सम्बन्धी जिन प्रबन्ध-काव्यों का विशेष महत्त्व है, उनमें किरातार्जुनीय, हरविजय, श्रीकण्ठचरित्, 'पार्वती-रुक्मिणीय' 'हरचरितचिन्तामणि' आदि महाकाव्य आकार तथा
दृष्टि से ही नहीं, जीवन की विराट् और रमणीय
व्यक्ति की दृष्टि से भी संस्कृत के श्रेष्ठतम ग्रन्थ हैं।
सभी महाकाव्यों में आततायी और आक्रामक असुरों के
के लिए देव पौरुष की तत्परता, तपस्या,
अद्भुत शौर्य एवं पराक्रम का ओज-पूर्ण वर्णन किया
है। भारविकृत किरातार्जुनीय में अर्जुन अनाचारी
का संहार करने के लिए तपस्या करके शिव से
अस्त्र प्राप्त करते हैं। ५० सर्गों के विशाल
हरविजय में कश्मीरी कवि रत्नाकर ने शिव द्वारा
सुर-वध की कथा को चित्रित किया है। मंखक
श्रीकण्ठचरित्र नामक महाकाव्य में शिव द्वारा
संहार की कथा का २५ सर्गों में अत्यन्त मनोरम
ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया है। पार्वतीरुक्मिणी
विद्या माधव ने शिव-पार्वती तथा कृष्ण-रुक्मिणी के
को वर्णन का विषय बनाया है, किन्तु वास्तव में यह
अप्रत्यक्ष रूप से अनाचारों को कुचलने के लिए नई
के वरण का महाकाव्य है। जयरथ नाम के एक
कवि ने ३२ सर्गों का हरचरितचिन्तामणि
लिखकर एक ओर तो अपनी अद्भुत काव्य-दक्षता
परिचय दिया है और दूसरी ओर उसने जीवन की
के लिए आस्तिकता और आस्था की गहरी
जीवन-दृष्टि प्रदान की है।

संस्कृत के विराट् परिवेश में स्तवन तथा
विभिन्न भूमियों से होती हुई शिव-काव्य-धारा जब
साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुई तो उसे एक विचित्र
का सामना करना पड़ा। धार्मिक विश्वासों की
के कारण लोग यह भूल चुके थे कि साकार और
कार में कोई भेद नहीं है, न भक्ति और योग के
में कोई विरोध है। वे विष्णु और उनके अवतारों
शिव से पृथक् मानकर परस्पर झगड़ रहे थे।
धारा ने इस विचित्र स्थिति को सम्हालने के लिए
स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा आवश्यक न समझी। अतः
कालीन हिन्दी काव्य में शिव-काव्य एक अन्तर्धारा के
में विकसित हुआ। तुलसी का रामचरितमानस
पार्वती के संवाद के रूप में लिखा गया। उसके
में शिव-पार्वती का विवाह, मध्य में शिवोपासना की
और अन्त में रामराज्य के रूप में जीवन में शिवत्व

वतारणा दिखाने का यही रहस्य है। तुलसी के हनुमान व के ही एकादश रुद्र रूप हैं जिनकी शक्ति पर राम य निर्भर है। 'पार्वतीमंगल' में तुलसी ने शिव-पार्वती विवाह का वर्णन करके शिव-काव्य-धारा की स्वतन्त्र रा को भी आगे बढ़ाया। उनकी 'विनयपत्रिका' कृतियों में शिव-स्तवन की परम्परा मिलती है। अपने पदों में शिव-कथा और शिव-भक्ति का वर्णन है। जायसी ने भी रतनसेन की सफलता शिव की र निर्भर दिखाई है तथा कबीर का निरंजन शिव का रूप है।

तिकाल में शिवकाव्य की धारा सेनापति, भूषण, आदि की स्फुट कविताओं में विहार करती हुई स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में विकसित हुई। इस काल काव्यों में शंकर-पचीसी, शिवचौपाई, शंभु-शैलीनिधि, शंभु-शतक, शिवसतसई आदि ग्रन्थों का महत्त्व है।

धुनिक काल में शिव-काव्य-परम्परा में अनेक और मौलिक श्रेष्ठ काव्यों के नाम जुड़े। दोहा-शैली में लिखित पं० गौरीनाथ शर्मा का नामक ग्रन्थ इस युग का प्रथम मौलिक महाकाव्य है, जो सन् १९०१ ई० से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ को हमें -मानस कहना चाहिए। काव्य-कला की भी यह ग्रन्थ एक महाकाव्य है। आधुनिक अन्य महत्त्वपूर्ण शिव-काव्यों में 'पार्वती', एवं 'सारथी' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। काव्यों में कथा की वर्णना को महान् काव्य-पद्धति आरित करके जीवन की गंभीर व्याख्या के साथ उद्देश्य की अभिव्यक्ति की गयी है। 'पार्वती' में भव की कथा के साथ वर्णन प्रारम्भ होता है और संहार तक की कथा समान आरोह से चलती है। में आततायी असुरों की अनीति के दमन के मानवीय सत्य एवं अहिंसा की शक्ति का चित्रण गया है। सारथी महाकाव्य मनुष्य की आन्तरिक बाह्य त्रिपुर-अनीति तथा आधुनिक लौह-सभ्यता परिवेश में जीवन-मूल्यों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। तीनों महाकाव्य मानव-संस्कृति पर अचानक छा जानेवाले संकटों के प्रति सचेत हैं तथा असुर-संहार की भूमिका में विश्व-कल्याण का मार्ग दिखलाते हैं। 'पार्वती' का कवि कहता है—

> **जाग उठो बन मानवता के प्रलयंकर सेनानी।**
> **गूँज उठे नव सर्ग भारती क्रान्तिमुखी कल्याणी॥**
> **कोटि बाहु अवतार ईश के कोटि अस्त्र तुम धारो।**
> **कोटि कोटि विक्रम से अपने भू का भार उतारो॥**

इन महाकाव्यों के अतिरिक्त आधुनिक कालीन हिन्दी-शिव-काव्यों में उदयशंकर भट्ट के 'विजयपथ' एवं चतुर्भुजदास की 'शर्वाणी' नामक खण्डकाव्यों तथा कुमार-संभवसार एवं 'रूपान्तर' नामक भावानुवादों का भी पर्याप्त महत्त्व है। स्तवन-परक शिवकाव्यों में अनूप शर्मा की 'शर्वाणी' तथा शंकरसिंह का 'शंकर-शतक' आदि कृतियाँ भाव और कला की दृष्टि से उच्चकोटि की कही जा सकती हैं। स्फुट शिव-काव्य की परम्परा में नाथूराम शर्मा 'शंकर', पन्त, गुप्त, अनूप, दिनकर एवं आरसी आदि कवियों की वे राष्ट्रीय कविताएँ सदैव अविस्मरणीय रहेंगी जिनमें शिव को आदर्श मानकर भारतीय शौर्य, साहस, पौरुष एवं पराक्रम के भाव ओजस्वी वाणी में व्यक्त किये गये हैं।

ब्रज की कविता-वनिता

श्री सुरेशचंद्र

यमुना-तट एक कदम्ब तले,
बिखरी-अलकें वनदेवी मिली,
वह मौन थी, शीश झुकाए हुए
मनों धूल-सनी-सी गुलाबकली।
'तुम कौन हो?'--प्रश्न के उत्तर में
उसके स्वर गूँज गई मुरली,
कजरारी, उदास लिए अँखियाँ
व्रजभूमि की सो कविता निकली!

जिसके स्वर की सुन गीत-सुधा,
छछिया भर छाछ पै ब्रह्म नचा!
दृगहीन महाकवि ने जिसमें
चिर-सुन्दरता का था रास रचा।
गृह, पर्णकुटी, महलों ही नहीं,
जिसका रणभूमि लौं शोर मचा,
वह काँकरी बैठी अकेली चुने
जिस मोहनी से नहीं कोई बचा!

मालवीयजी के अभ्युदय में अग्रलेख

श्री वें० ना० तिवारी

श्री पद्मकांत मालवीय ने इधर बहुत ही स्तुत्य काम किया है। उन्होंने तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं-- 'मालवीयजी के अभ्युदय में अग्रलेख'; 'मालवीयजी की जीवन-झलकियाँ' और अपने काव्य-संग्रहों का पुनः प्रकाशन।

मालवीयजी के 'अभ्युदय' में अग्रलेखों का संग्रह पद्मकांतजी ने किया लेकिन इसकी भूमिका के लेखक हैं हमारे प्रथम राष्ट्रपति, डा० राजेन्द्रप्रसाद, जिनके नाम के आगे अब स्वर्गीय लिखना हमें बहुत खलता है।

इस भूमिका में डा० राजेन्द्रप्रसाद कहते हैं--'मालवीयजी का व्यक्तित्व महान् था; उनका पांडित्य भी वैसा ही प्रखर था किंतु उन श्वेत वस्त्र-धारी महामना मालवीयजी के जीवन में शरद की चाँदनी जैसा सौम्य और शीतलता भी थी। मनुष्य का व्यक्तित्व उसकी शैली में भी स्पष्ट हो जाता है और इन विविध लेखों में भी मालवीयजी के व्यक्तित्व का एक समग्र रूप हमें दिखायी देगा।' इसके उपरांत हमारे प्रथम राष्ट्रपतिजी ने यह लिखा कि मैं तो मालवीयजी की पुण्य-स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि ही भेंट कर सकता हूँ, और यह आशा प्रकट की कि सभी इस लेख-संग्रह से पूरा-पूरा लाभ उठाएँ।

आगे चलकर डा० राजेन्द्रप्रसाद लिखते हैं-- 'मालवीयजी को सरस्वती का वरदान ही प्राप्त न था, उनकी वाणी और लेखनी में साक्षात् सरस्वती विराजती थीं। इसीलिए उनकी वाणी से जो भी शब्द निकला, जन-मन पर उसका प्रभाव पड़ा और उनकी लेखनी से जो कुछ भी आलेखित हुआ, वह साहित्य की शाश्वत-निधि बन गया। मालवीयजी के लेखों के संबंध में कुछ लिखना व्यर्थ होगा, क्योंकि उनमें मालवीय जी की वाणी स्वयं मुखरित है; उनके शब्दों में मालवीयजी की प्रतिभा प्रकाशित है और उनमें उनके जीवन का अनुभव समाया हुआ है।

प्रथम अनुच्छेद में उन्हें यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि महामना मालवीयजी के शताब्दी-समारोह के अवसर पर मालवीयजी के लेखों का संग्रह प्रकाशित करने का विचार किया गया है। जिस प्रकार वह धारा जो प्रयाग में गुप्त रही और काशी में प्रकट हुई--मालवीयजी की लेखनी से निकली यह सरस्वती भी अभी तक छिपी रही, जो अब प्रकाश में आ रही है। मालवीय अग्रलेखों में जहाँ उनकी वाणी मुखरित हुई है, उन समावेश करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। मालवी का कहना है कि उनकी अभिलाषा मंद नहीं 'अभ्युदय' का संस्थापन इसी उद्देश्य से किया गया अतएव 'अभ्युदय' के संस्थापन के उद्देश्य का वर्णन क हुए वह कहते हैं--'पृथ्वी-मंडल पर जितने पर्वत हैं सबसे ऊँचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है, उसका ऊँचा धवल शिखर पृथ्वी के सब पर्वतों की धवल चोटि के ऊपर आकाश को शोभित करता है। हमारी प्रा और अभिलाषा है और परमेश्वर उसको पूरी करेगा हमारे देश का अभ्युदय पृथ्वी के किसी और देश के अभ्यु से किसी अंश में कम न रहे, वह चढ़ा-बढ़ा रहे जैसा हिमगिरि के शिखर और पर्वतों के शिखरों से बड़े हैं। हमारा देश नूतन अभिज्ञात, ऐसा देश जिसका पता लगा हो, नहीं है। अमेरिका के वासी पश्चिमी के नाम से प्रसिद्ध देश-निवासियों के समान सभ्यता-वि नहीं हैं। हमारा देश प्राचीन है और उस समय में सभ्य के शिखर को चूम चुका है जब कई और देशों के जंगलों में नंगे घूमते थे, वा असभ्य रीति से अपना जीव बिताते थे। काल-चक्र की गति में पड़ हम बहुत गिर गये हैं, किंतु अब जब हमको फिर चेतना हुई है अपने योग्य दशा में पहुँचने की इच्छा हुई है, तो हम प्राचीन पुनीत कुल और अपने पूर्वजों की उन्नत दशा विचार से तथा अपने और अन्य देशों के भाइयों की वर्तमा उन्नति की दशा के विचार से और सबके ऊपर अपने कल्याण के विचार से किसी ऐसे अभ्युदय से संतुष्ट हो सकते, जो ऊँची से ऊँची उन्नति की दशा से कुछ नीचा हो।'

मालवीयजी की अभिलाषा तो मंद नहीं थी और उद्देश्य को लेकर 'अभ्युदय' का संस्थापन हुआ था। दुःख की बात है कि मालवीयजी ने जिस बात को सन् १९ में उठाया था वह अँगरेजों की कृपा से सन् १९४६ पूरी हुई। यदि इसके पहले पूरी हुई होती तो शायद ह ऊपर न तो चीन का आक्रमण होता और न पाकि

१९६३

बनता। इसके लिए सन् १९४६के बजाय सन् १९३५ मालवीयजी का ध्येय सिद्ध हो जाना चाहिए था लेकिन के विधान के सामने हमें सिर झुकाना पड़ता है। आने इन दोनों बातों में भी कोई रहस्य छिपा हो! जिस ध्येय की पूर्ति के लिए 'अभ्युदय' का जन्म १९०७ में हुआ था वह पूरा हुआ ३९ वर्ष के बाद। 'अभ्युदय' के संस्थापक मालवीयजी की नीति जहाँ थी, वहाँ दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मुसलमानों धिकांश भाग ने मालवीयजी को और उनके ध्येय समझा और आज तक समझते हैं। यह खेद की है लेकिन जहाँ मुसलमानों के अधिकांश भाग ने वीयजी को सांप्रदायिक कहकर उनकी खिल्ली उड़ायी मालवीयजी के हृदय में मुसलमानों के प्रति घृणा त्याचार की भावना ने घर नहीं किया। सन् १९३४ बात है जब मैंने जिन्ना साहब की दो-जात नीति का छोड़ा था; उसमें मैंने कहा था कि इस नीति के ता सर सैयद अहमद थे। मालवीयजी ने उसी सर सैयद की तारीफ में बहुत से शब्द कहे और मुझे डांट-फटकार बतलायी कि सर सैयद अहमद के में ऐसी बातें न कहूँ। मालवीयजी अपनी नीति थे। उनकी धारणा थी कि दोनों मजहबों के——और इस्लाम धर्म के——तत्त्वों का सही-सही ज्ञान आवश्यक है। इसीसे सांप्रदायिकता का अंत हो सकता मारे इस कथन के प्रमाण हैं मौलाना शाहिद हुसेन नाब इश्तियाक हुसेन।

नाब हुसेन ने सत्य ही कहा है कि असली मजहब न लेने के बाद सांप्रदायिकता रही नहीं जाती। समय बनारस हिंदू यूनीवर्सिटी बिल सुप्रीम लेजि-असेम्बली में पेश हुआ था, उस समय एक हिंदू और मुसलमान ने यह कहा था कि बनारस हिंदू यूनी-और अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी के बन जाने सांप्रदायिकता का जोर देश में बढ़ेगा। इसका जवाब मालवीयजी ने उस समय कहा था कि यह लांछन विश्वविद्यालयों पर नहीं लगाया जा सकता क्योंकि और मुसलमानों को यदि असली धार्मिक शिक्षा दी तो इन दोनों विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी देश और की वैसी ही रक्षा करेंगे जैसी असांप्रदायिक विश्व-यों के विद्यार्थियों ने की। असांप्रदायिक विश्व-यों से निकले हुए विद्यार्थियों में, क्या हिंदू और मानों में, अलगाव की प्रवृत्ति नहीं है या दोनों जातियों सांप्रदायिकता के विष बोने की तमन्ना कम दिखायी है? ऐसी दशा में इन दोनों विश्वविद्यालयों में धर्म असली तत्त्वों की शिक्षा दी जायेगी और इसका णाम यह होगा कि जिन विश्वविद्यालयों में धार्मिक ता का अभाव है उनके विद्यार्थियों में जहाँ सांप्रदायिकता वहाँ इन दोनों विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों में सांप्रदायिकता का अभाव रहेगा क्योंकि इन दोनों विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अपने-अपने धर्म के असली सिद्धांतों को खूब अच्छी तरह से समझने लगेंगे। जनाब हुसेन के कथनानुसार मजहब के असली तत्त्वों के समझने के बाद सांप्रदायिकता का लेशमात्र भी नहीं रह जाता। उनके शब्द ये हैं——'सच्चा धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक हो ही नहीं सकता। वह ईमानदार जो होता है!'

अपनी नीति के कारण जहाँ मुसलमानों का अधिकांश भाग उन्हें सांप्रदायिक समझता रहा वहाँ मुसलमानों में कुछ ऐसे भी सज्जन थे जो मालवीयजी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनमें अकबर इलाहाबादी का नाम प्रमुख है। उन्होंने अपने काव्य में एक बार यह लिखा था कि 'प्रयागराज में मालवीयजी की बदौलत बुतों का सोहाग बना हुआ है।' मालवीयजी की तरह, अकबर साहब भी हिंदी के पक्षपातियों में थे। इसी बात को लेकर मुसलमानों के अधिकांश भाग ने मालवीयजी पर सांप्रदायिकता का लांछन लगाया था और अब तक वे लगाते जा रहे हैं। विगत द्वितीय महायुद्ध में एक मुसलमान सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलिस ने जब मुझसे यह कहा कि उत्तर प्रदेश की भाषा——कुमायूँ विभाग को छोड़कर——उर्दू है तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मालवीयजी ने शुरू से ही अपनी नीति निर्धारित कर ली थी। इसलिए 'अभ्युदय' के संस्थापन के बाद 'अभ्युदय' के अपने अग्रलेख में मालवीयजी ने लिखा था——'हिन्दुस्तान में अब केवल हिंदू ही नहीं बसते हैं——हिंदुस्तान अब केवल उन्हींका देश नहीं है, हिन्दुस्तान जैसे हिन्दुओं का प्यारा जन्म-स्थान है, वैसा ही मुसलमानों का भी है। ये दोनों जातियाँ अब यहाँ बसती हैं और सदा बसती रहेंगी। जितना इन दोनों में परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी, उतनी ही देश की उन्नति करने में हमारी शक्ति बढ़ेगी।'

इस नीति पर मालवीयजी सदा अडिग रहे। हिंदू-मुसलमानों को एक सूत्र में बाँधने की जो चेष्टा उन्होंने की वह जग-जाहिर है। उदाहरण के लिए प्रयागराज में मालवीयजी के ऐक्य सम्मेलन का जिक्र करना आवश्यक है। उन्होंने दोनों जातियों के मिलाने की भरसक कोशिश की, लेकिन अँगरेज कूट-नीतिज्ञों के सामने उनकी एक न चली। सिंध प्रदेश को स्वतंत्रता देकर अँगरेज कूटनीतिज्ञों ने मुसलमानों और हिंदुओं को एक में मिलने से रोका। उस समय भेद-भाव के जो बीज बोये गये उनका अंत में परिणाम निकला पाकिस्तान। देश का बटवारा हो गया और हिंदुओं को हिंदुस्तान आते हुए और भारत के मुसलमानों को पाकिस्तान जाते हुए किन संकटों का सामना करना पड़ा, उनकी करुण कहानी है। लेकिन मालवीयजी अंत तक अपने सिद्धान्त पर डटे रहे और हिन्दू-मुसलमानों में मेल कराने में कभी नहीं चूके।

अफ्रीका और उसका नवजागरण

श्री राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह, संसद-सदस्य

अफ्रीका संसार का एक ऐसा भू-भाग है जिसके संबंध में दुनिया सदियों तक अंधकार में पड़ी हुई थी तथा उसके तरह-तरह के विचार बने हुए थे––सही और भ्रमोत्पादक, दोनों ही। १८वीं सदी के मध्य में इँगलैंड ने एक ऐसे व्यक्ति को जन्म दिया था जिन्होंने पत्रों द्वारा पुत्र को शिक्षा प्रदान करने की योजना बनाई थी और उनके बाद संसार के कई महान् व्यक्तियों ने इस योजना का अनुकरण किया था। वह लार्ड चेस्टरफील्ड थे जिनके पत्रों का संग्रह, बहुत दिन हुए, हिन्दी में भी 'पिता के पत्र पुत्र के नाम' के शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। जिन लोगों ने उस पुस्तक को पढ़ा है उन्हें स्मरण होगा कि लार्ड चेस्टरफील्ड ने अफ्रीका के संबंध में लिखते हुए ये पंक्तियाँ लिखी थीं––"अफ्रीका के लोग संसार में सबसे अधिक अज्ञानी और अशिष्ट हैं। सिंह, शेर, चीते तथा अन्य वन्य पशुओं से, जिनसे वह देश भरा हुआ है, वे तनिक ही कम हैं।" इसके ठीक पचास साल बाद जिब्राल्टर होकर इँगलैंड से इटली जाते हुए अफ्रीका को देखकर प्रसिद्ध कवि ले-हन्ट ने भी उसे काले बाशिन्दों और सिंहों का देश बतलाया था। सारांश यह कि यूरोप की दृष्टि में अफ्रीका का अर्थ जंगली जानवरों और उन्हीं-जैसे भयंकर काले आदमियों के देश से था। इस विचार के प्रतिपादक दरअसल यूनान और रोम के वे लेखक थे जिन्होंने इसी क़लम-कूची से अफ्रीका को रँगा था। प्लीनी जैसे इतिहास के जगद्विख्यात लेखक तथा सौलिनस ने अफ्रीका के मनुष्यों को सिंह आदि हिंसक पशुओं से किसी कदर कम नहीं बताया है। ताज्जुब नहीं कि अनेक शताब्दियों तक योरोप में, जिसकी ज्ञान-गंगा की धाराएँ यूनान और रोम से काफी दिनों तक प्रभावित होती रहीं, अफ्रीका-संबंधी ये विचार प्रसार पाते रहे। १७७९ में प्रकाशित अँगरेजी के एक भूगोल-विषयक कोश में इस देश या महादेश के भीतरी हिस्से के संबंध में लिखा है––"जहाँ-तहाँ की ऊसर जगहों, लोगों की क्रूरता तथा जंगलीपन और इसके अधिकांश देशों के अगणित वन्य-पशुओं से यह साफ-साफ परिलक्षित है कि सूर्य की किरणें यहाँ इतनी अधिक उत्तप्त और शक्तिशाली होती हैं कि वनस्पतियों के रस को सुखाकर तथा प्राणियों के रक्त को आवश्यकता से अधिक उत्तेजित कर वे पहले को निःसार और दूसरे को भयंकर बना डालती हैं।"

पर जहाँ योरोप के कुछ लेखकों ने अफ्रीका का रूप खींचा वहाँ कुछ ऐसे लोग भी पैदा हुए जिन्होंने वास्तविक रूप के चित्रण की चेष्टा की––सिक्के के पहलू पर भी प्रकाश डाला। इनमें सबसे पहला १२वीं सदी में सिसिली में रहनेवाले एक अरब, शास्त्रवेत्ता इदरिसी का आता है। प्राचीन घाना की करते हुए उसने लिखा है कि यह अफ्रीका के सभी से अधिक विस्तृत, आबादी में घना और धनवान् है इसके बादशाह अत्यन्त न्याय-परायण हैं जिनके कीमती जेवरों की भरमार और एक बड़ी-सी सेना है।

१६वीं सदी का एक हब्शी यात्री इटालियन जल-दस्यु द्वारा पकड़ा गया। किंतु पोप ने उसे ईसाई बना आजाद कर दिया और उसका नाम 'लियो अफ्रीके रक्खा। तिमबकटू से लेकर नील नदी तक की यात्रा कर उसने अपने भ्रमण-वृत्तान्त लिखे। इनमें उसने प्रा सूदानी सभ्यता की चर्चा की है तथा लिखा है कि यहाँ शहर धनी व्यापारी और सभ्य लोगों से भरे हुए हैं। देहा में कृषक तथा भेड़ पालनेवाले रहते हैं जो जाड़ों में पशु के चमड़ों से अपने शरीर ढँकते हैं पर गर्मियों में नं धड़ंग रहना ही पसंद करते हैं।

लियो की यह पुस्तक १५५० में प्रकाशित हुई पर इस पूर्व ही पुर्तगीज यात्री इस महादेश की परिक्रमा कर चु थे। उन्होंने इसके संबंध की सारी बातें इसलिए गुप्त र छोड़ी थीं कि किसी और देश का यहाँ पदार्पण न हो और इसका सारा लाभ केवल उन्हें ही प्राप्त होता रहे। प उनकी यह मंशा पूरी न हो सकी। शीघ्र ही फ्रांसी अँगरेज और डच अफ्रीका के पश्चिमी हिस्से में जा पहुँ तथा धीरे-धीरे इथिओपिया, कांगो, अंगोला, मोजाम्बि मिस्र आदि देशों में अपने पाँव पसारने लगे। भारत की तरह अफ्रीका से भी इनका प्रथम संबंध व्यापार का हुआ। इनका माल अफ्रीका के विभिन्न देशों में बिकने लगा, और अफ्रीका के 'गुलाम' योरोप के बाजारों में बिकने लगे। १८वीं शती तक योरोप और अफ्रीका का यह व्यापार संबंध काफी घनिष्ठ हो गया। इसका अनुमान इसी लगाया जा सकता है कि जहाँ १७२० में इँगलैंड ने

१६६२ फ्रीका में १३०,००० पौंड का माल बेचा था वहाँ १७७२ में उसने वहाँ ८९९,००० पौंड का माल बेचा।

व्यापारियों के पीछे——जैसा कि हिन्दुस्तान के साथ हुआ था——राजनीतिज्ञों के कदम जा पहुँचे। फिर धीरे-धीरे योरोपीय देशों के प्रभाव-क्षेत्र कायम होने लगे। शों का निर्माण होने लगा और अफ्रीका के देश योरोपियनों——फ्रांस, इँगलैंड, पोर्चुगाल, बेलजियम के——अधिकार में आ गये। हाथ में तराजू और लेकर आये, और बन्दूक सँभालकर वे शासक बन स्थानीय जनता, स्त्री-पुरुष उनकी गुलामी की जंजीर गये। "बैरा बना वह कैम्प में, वह बन गई आया," इलाहाबादी की यह उक्ति चरितार्थ हुई।

अफ्रीका के सारे हिस्सों की, फिर भी, योरोपवालों को जानकारी न हो सकी। नदियों, दलदलों और जंगलों महादेश का अब भी काफी भाग अज्ञात और था। अतएव १७८८ में इँगलैंड में इस महादेश न्तस्थ (मध्य भाग) का पता लगाने के लिए एक बनायी गयी। सर जोजेफ बैंक्स १७७८ से १८२० यल सोसाइटी के अध्यक्ष थे उनके सहयोग से संस्था ने अपने इस उद्देश्य में काफी सफलता प्राप्त उत्तरी तथा पश्चिमी अफ्रीका के भूगोल का पता लगा, नदी के बीहड़ जल-मार्गों की जानकारी प्राप्त हुई, रेगिस्तान का ओर-छोर ज्ञात हुआ तथा सूदान के का वास्तविक वर्णन उपलब्ध हो पाया। पर इन यात्राओं में अनुसन्धानियों को बड़ी-बड़ी मुसीबतों का करना पड़ा जिसका एक उदाहरण हमें नाइजर की अनुसंधान-कथा से मिलता है। वह इस प्रकार पश्चिमी अफ्रीका की यह नदी प्राचीन काल से रहस्य सरिता कहलाती आई है, क्योंकि शतियों तक किसीको पता न था कि इसका उद्गम कहाँ है, तथा कहाँ जाकर समाप्त होती है। वास्तव में आज भी इसके पूरे जल-मार्गों का हमें पता नहीं है। दक्षिण अफ्रीका के ऊँचे पहाड़ों से निकलकर यह सियरालेवनी और गिन्नी की सीमाओं पार्श्वभाग से बहती हुई सहारा के रेगिस्तान को विभाजित करती है, फिर तिमबुकटू नामक शहर का, जिसकी चर्चा प्राचीन कथाओं में बार-बार आती है, पद स्पर्श करती है। सैकड़ों मील चलकर तब यह मच्छरों के घर यानी नमी से परिपूर्ण जंगलों में पहुँचती है। फिर नाइजेरिया के तट पर अपनी यात्रा समाप्त कर देती है। वह अफ्रीका के ९ ऐसे देशों को सींचती है जिन्होंने अभी अभी स्वतंत्रता प्राप्त की है। प्रायः दो हजार, या उससे भी अधिक वर्षों तक यह नदी एक पहेली बनी हुई थी। टालमी, हेरोडंटस आदि प्राचीन विद्वान् लेखकों को यह पता था कि पश्चिम अफ्रीका में इस नाम की एक नदी प्रवाहित होती है, पर यह किसीको पता नहीं था कि वह पूरब की ओर बहती है या पश्चिम की ओर। कई लोगों की तो यह धारणा थी कि वह सहारा के नीचे-नीचे प्रवाहित होती है।

इस नदी का सर्वप्रथम परिचय मुंगो पार्क नामक २४ वर्ष के एक स्काटलैंड निवासी डाक्टर ने प्राप्त किया। वह १७९६ में अकेला ही इसकी खोज में चल पड़ा था। कई बार लूटा गया, बीमार पड़ा, मरते-मरते बचा, बन्दी बना, फिर भी इस नदी का वह दर्शन न प्राप्त कर सका। अंत में घर लौटा और पुनः ४३ आदमियों के सरकारी प्रतिनिधि-मंडल का अध्यक्ष बनकर अफ्रीका गया, और इस रहस्यमयी सरिता के अन्वेषण में आगे बढ़ा। दुर्गम पथ और विषैली जलवायु के कारण वह और उसके साथी रास्ते में बीमार पड़ गये। जंगल में रहनेवाले आदिम जाति के लोगों के द्वारा ये बारम्बार लूटे भी गये। अधिकांश मृत्यु की गोद में जा पड़े। उनमें अंत में इस दल के केवल दो ही व्यक्ति जीवित बच रहे। इन्होंने अपने ही हाथों से एक नाव तैयार की और उस पर १,३०० मील की जल-यात्रा समाप्त कर जब वे नाइजेरिया के बुस्सा नामक शहर में पहुँचे तो उनकी नाव एक चट्टान से टकराई और वे दोनों नदी के गर्भ में जा पड़े। उर्दू के किसी शायर की यह उक्ति पार्क और उसके साथी पर पूरी तरह लागू होती है——फर्क इतना ही कि वे थके नहीं, बल्कि काल के मुँह में जा पड़े——

किस्मत पर उस मुसाफिरे-बेकस के रोइए,
जो थक गया हो राह में मंजिल के सामने।

सो ये भी मंजिल के सामने पहुँच कर काल-कवलित हो गये——वहाँ पहुँच न पाये।

दोनों नदी के अंतस्थल समुद्र पर पहुँचने ही वाले थे जब उन्हें दुर्घटना का शिकार हो जाना पड़ा।

इसके बरसों बाद संसार को इस नदी के आदि और अंत का वास्तविक पता लगा।

एक अर्से तक अफ्रीका के देश योरोप के गुलाम बने रहे। फिर आया, द्वितीय महायुद्ध के बाद, स्वाधीनता का प्रवाह।

भारतवर्ष, दक्षिण-पूर्व एशिया के देश, हिन्द एशिया आदि के साथ-साथ अफ्रीका के अधिकांश देशों में भी नवजागरण, नई चेतना स्पंदित हो उठी, और इन देशों ने भी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। जो अब भी पराधीन रह गये हैं वे भी आज आजादी की द्वार-देहरी पर पहुँच चुके हैं। कुल ४३ देशों में अब १७ या १८ से अधिक देश पराधीन नहीं रह गये हैं। दक्षिण-अफ्रीका को छोड़कर ऐसा लगता है कि अफ्रीका का अब कोई भी हिस्सा विदेशियों के अधिकार में न रह सकेगा। इसमें संदेह नहीं कि कालान्तर में ये देश संसार की राजनीति में प्रमुख हिस्सा लेंगे, पर इसके लिए इन्हें पारस्परिक एकता तथा राजनीतिक प्रौढ़ता प्राप्त करनी होगी जिसमें वहाँकी वर्तमान दशा देखते हुए लगता है कि अभी काफी समय लगेगा। अभी तो उनमें इन दोनों ही बातों की कमी जान पड़ती है। इसका सबसे बड़ा दृष्टांत हमें कांगो की वर्तमान अशान्त अवस्था में मिलता है।

जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ, अफ्रीका के भीतरी प्रदेशों का परिचय प्राप्त करने में योरोपवालों को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। इसका सबसे पहला कारण उसकी प्राकृतिक बनावट (उसके बीहड़ वन, दलदली जमीन और रेगिस्तान आदि) थी, पर उससे भी बढ़कर थी उसकी जलवायु। मलेरिया के मच्छर उनके सबसे बड़े शत्रु थे जिनके चंगुल में पड़कर मनुष्य के लिए प्राण बचाना मुश्किल हो जाता था।

मगर इन सारी चीजों से भी बढ़कर जो चीज उनके मार्ग में विकट रुकावट डालती थी वह थी वहाँके विभिन्न देशों के शासकों की विद्वेष-भावना। उत्तर अफ्रीका के लोगों में, सभी विदेशियों के लिए, विशेष कर योरोपवालों के लिए, एक जबर्दस्त अविश्वास की भावना काम कर रही थी। इस भावना के पीछे मुसलमानों और ईसाइयों के बीच का सदियों का संघर्ष था। इथियोपिया में एक सौ साल तक पुर्तगाली पाँव जमाने की कोशिश करते रहे——लड़े——पर सफल न हो पाये। अन्त में सन् १६३० ई० में उन्हें देश से बिलकुल ही निकल जाना पड़ा। पश्चिमी अफ्रीका-तट के छोटे छोटे देश मध्य अफ्रीका के लोगों को जबर्दस्ती पकड़ लाते थे और उन्हें योरोप के बाजारों में बेचते थे, और इस तरह इस जघन्य व्यापार से पैसा पैदा करने में लगे हुए थे। वे नहीं चाहते थे कि योरोप के देश अफ्रीका के भीतर घुसें, और उनकी दलाली मारी जाय। स्वभावतः वे अपनी पूरी शक्ति से इस बात की कोशिश में लगे हुए थे कि उनका यह प्रयत्न सफल न हो पाये, अफ्रीका के भीतरी हिस्सों के साथ उनका संबंध स्थापित न हो। और इन सारी बातों का नतीजा यह हुआ कि जिस आसानी के साथ एशिया और अमरीका में वे घुस गये उस आसानी से वे अफ्रीका में प्रवेश न पा सके। पर उन्होंने अपने प्रयत्न न छोड़े, कोशिश में लगे रहे, अपने बड़े-बड़े योद्धाओं और साहसी जनों का बलिदान करते रहे, जिसकी सबसे बड़ी मिसाल जेनरल गौर्डन की सूदान में की गई हत्या है, और अंत में साहस और कूटनीति के संयुक्त बल पर अफ्रीका में पाँव जमाकर ही योरोप ने दम ली। पर सफलता के साथ-साथ जिस विषैले वातावरण की सृष्टि हुई वह मिटी नहीं, और आज स्वतंत्र होकर भी अफ्रीका के राष्ट्रों में यदि योरोप के प्रति मैत्री-भाव की कमी है, और साम्यवादी विचारों की ओर वे आकृष्ट होते जा रहे हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? और फिर स्वतंत्र होकर भी अपनी हीन भावना से (जिसे अँगरेजी में inferiority complex कहते हैं तथा जिसका मूल कारण उनका रंग है) वे मुक्त नहीं हो पाये हैं। संसार के अधिकांश देशों से उनके न बनने का यही मनोवैज्ञानिक कारण है। योरोपवाले इन्हें हमेशा ओछी निगाह से देखते रहे, स्वभावतः आज स्वाधीन होकर ये उनसे वैर साधना चाहते हैं और उनसे इनका दुराव बढ़ता जाता है। स्वाधीन होकर भी अफ्रीका के ये देश अपने को योरोप के सांस्कृतिक प्रभाव से मुक्त नहीं कर पाये हैं, उनकी वेश-भूषा और भाषा सभी इस बात का समर्थन करती हैं।

अफ्रीका के देश आज एक उथल-पुथल की अवस्था में हैं——खासकर वे जो विदेशी-शासन से अभी-अभी मुक्त हुए हैं। उनमें अनुशासन एवं अनुभव की कमी तो है ही, स्थिरता का भी अभाव है। किंतु आशा की जाती है कि राजनीतिक संघर्षों की धूल जब नीचे बैठ जायगी और जनसत्तात्मक शासनपद्धति की जड़ दृढ़ता प्राप्त कर लेगी, तब संसार के राजनीतिक शतरंज की बिसात पर वे अधिक चतुराई और गंभीरता के साथ चाल चल सकेंगे। भविष्य उनका उज्ज्वल है। आर्थिक उन्नति के सारे साधन——जनसंख्या और खनिज सम्पत्ति आदि——उनके पास हैं। क्षेत्रफल की विशालता तो है ही, ऐसी दशा में समुन्नति के पथ पर आगे बढ़ने से उन्हें कौन रोक सकता है?

फ्रीका के आदिम निवासी कई जातियों में बँटे हुए
नके बीच मेल की आज भी बड़ी कमी है। इसके
विभिन्न देशों की सीमाएँ कुछ ऐसी गलत तरीके
धारित हैं कि एक ही जाति के लोग कई हिस्सों और
विभाजित हैं। कारण स्पष्ट है। योरोप के देशों
अफ्रीका में प्रवेश हुआ तो अधिकार-क्षेत्र प्राप्त
उनके बीच एक होड़ मच गयी। सबका यही
हा कि जितनी अधिक-से-अधिक भूमि वे ले सकें,
परिणाम यह हुआ कि उसका विभाजन जाति,
ादि किसी सिद्धांत पर न हुआ, और आज जब नवजागरण के फलस्वरूप वहाँके ये देश स्वतंत्र हुए हैं तो स्वभावतः सीमा को लेकर पारस्परिक संघर्ष के शिकार हो रहे हैं। पर, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, अफ्रीका के इन देशों को यदि उन्नत होना और अपनी आजादी को सुरक्षित रखना है तो उन्हें इन विवादों को समाप्त करना ही होगा।

संसार की आँखें आज इनकी ओर हैं—वह देखना चाहता है कि ये किस तरह अपनी आजादी को कायम ही नहीं रखते वल्कि संसार की राजनीतिक गतिविधि में भी हिस्सा बँटाते हैं।

आग्रह

स्वर्गीय भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) शास्त्री

ो चलें प्रिय ! नैनीताल।

र बहुत पड़ती है कभी-कभी लू भी चलती है।
ं से ऐसा लगता मानो सूरज आग उगलता
न गेह में ऊमस, मेरा बहुत बुरा है हाल।
में तुमसे कहती—चलो चलें प्रिय ! नैनीताल।

स बजे दफ्तर जाकर छुट्टी की तुम दे दो अर्जी।
, उनके आगे गढ़ देना कारण कुछ फर्जी—
टे भाई की शादी, या मरनेवाली है दादी,
ने वाला है मुन्ना, पहुँचाने जाना ससुराल।
तरह से छुट्टी ले लो, चलो चलें प्रिय ! नैनीताल।
र कुछ ध्यान न देना, पी० पी० एफ० से कर्जा लेना।
, धोबी, ग्वाले को अगली 'पे' मिलने पर देना।
बचा हुआ महरी को सब, देती हूँ आटा चावल दाल।
होटल में खाना खाएँगे—चलो चलें प्रिय ! नैनीताल।

सर्दी वहाँ बहुत पड़ती है, अपने ऊनी कपड़े ले लो,
मेरे लिए पुलोवर, जम्पर, शाल और साड़ी दो ले लो।
और नहीं कुछ लेना देना, हाँ, सूने लगते हैं बाल।
गोल्डन हेयर पिन दो ले लो, चलो चलें प्रिय ! नैनीताल।

खूब करेंगे सैर-सपाटे, गिरती सेहत होगी ठीक।
बोटिंग रोज ताल में होगी और चढ़ेंगे चीना पीक।
तल्ली, मल्ली ताल, फ्लैट सब घूमेंगे देखेंगे 'माल'।
देर मत करो बढ़ती गर्मी, चलो चलें प्रिय ! नैनीताल॥

एशिया और अफरीका पर चीनी जाल

श्री सीताराम जौहरी

प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हुआ ही था। हवा ने रुख बदला। जापान चीन पर चढ़ दौड़ा। उन्हीं दिनों एक जापानी जहाज द्वारा मैं कोलम्बो से विलायत की यात्रा पर रवाना हुआ। यह यात्रा लगभग एक मास में समाप्त होनी थी। युवक तो था ही, सो इस खाली समय में कुछ ऊल-जलूल करने की सूझी। बना मैं हस्तरेखा-विशारद और हाथ देख-देखकर इधर-उधर की उड़ाने लगा। जहाज में प्रथम श्रेणी के यात्रियों की संख्या दो दर्जन से तो अधिक न थी परन्तु उनमें मैं ही एक काला आदमी था; शेष थे योरोपियन। उन दिनों एशियावासियों के लिए जापानी लोग बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया करते थे। इस भावना की झोंक में वे योरपीयों से, विशेष रूप से अँगरेजों से, ठीक तरह बात भी न करते थे। जब कभी वे इनसे बात करते भी थे तो उनके होंठ भावावेग से फड़कने लगते थे। किसी न किसी तरह जापानी अफसर तो काम चला ले जाते थे; किन्तु साधारण जापानी के लिए उनसे स्वाभाविक रूप से बात करना, उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। मैं था एक तो एशियानिवासी, ऊपर से ज्योतिषी, बस अब क्या था? जापानियों में मेरी बड़ी माँग होने लगी। एक जापानी महिला कुमारी हारा का हाथ देखा, जो मन में आया कह डाला, पर तीर निशाने पर बैठा। कुछ बातें बिल्कुल ठीक निकलीं। अब तो जहाज के कप्तान, डाक्टर, सभी जापानी मेरे मित्र बन गये।

हमारा जहाज नेपिल्स के निकट पहुँच रहा था और योरपीय यात्रियों के प्राण सूखे जा रहे थे। उन्हें डर था कि कहीं मुसोलिनी नेपिल्स पहुँचते ही उन्हें नजरबन्द न कर ले। इटालियन सिपाहियों से भरे हुए अनेक जहाज उन दिनों अबीसीनियाँ जा रहे थे और मुसोलिनी ने तो अँगरेजों के विरुद्ध जिहाद ही छेड़ रक्खा था। जहाज को अगले दिन सात बजे सुबह नेपिल्स पहुँचना था। मैं अपने कमरे में मीठी नींद सो रहा था। ठीक बारह बजे किसीने दरवाजा खटखटाया। खोला, तो देखा कि सारे के सारे योरपीय यात्री बाहर खड़े हैं। हम लोग खाने के कमरे में गये तो मालूम हुआ कि वे लोग चाहते हैं कि मैं कप्तान से मिलकर यह मालूम करूँ कि इटालियन कहीं उन्हें तंग तो नहीं करेंगे। उन दिनों जापानियों और इटालियनों की मित्रता काफी बढ़ी हुई थी। एशिया को स्वतंत्र करने के फेर में था और मुसो अबीसीनियाँ को सभ्य बनाने के। मैं कप्तान की में गया। बातें हुईं। उसने वचन दिया कि वह यात्री का बाल भी बाँका न होने देगा। सुबह नेपिल्स पहुँच गया। मैं तो जी भरकर नेपिल्स घूमा और किसी यात्री ने जहाज से उतरने की भी हिम्म की।

जहाज में रहते-रहते तब तक काफी दिन हो थे। जापानियों से मेरा परिचय अब घनिष्ठ हो था। बातों ही बातों में वे कभी-कभी एशिया को स्व करने का प्रोग्राम भी बताया करते थे। अफसरों ने पूरी की पूरी स्कीम ही बता डाली। मेरा ऐसा व्य जिसने तीसरे दर्जे से ही अँगरेजी पढ़ी थी और वि यूनियन जैक को सेल्यूट देकर ही सेल्यूट करना सीखा भला उन जापानियों की बातों में कैसे आ सकता मेरे लिए तो अँगरेज एक अजेय शक्ति थे। यह बा १९३५ की। ठीक साढ़े छः साल बाद जापानी दूसरे वि युद्ध में कूद पड़े। वे सब बातें मेरे सामने आने लगीं जापानी अफसर मुझे बताया करते थे। मुझे आज आश्चर्य्य होता है जब मैं सोचता हूँ कि मेरे जै साधारण विद्यार्थी को उनके बढ़ने की पूरी की पूरी ज्ञात थी। मैं जानता था कि पर्ल हार्बर की घटना और किन परिस्थितियों में घटेगी, किंतु ब्रिटिश अमरीकन उनके मंसूबों से अनजान ही रहे।

१९४२ में जापानियों ने समूचे दक्षिणी-पूर्वी ए पर कब्जा कर लिया। नारा था एशिया एशियाव के लिए। इसी नारे की आड़ में वे बर्मा तक बिना कठिनाई के पहुँच गये। बर्मी नेता भी इस नारे के बने। जापानियों की बड़ी आवभगत की गयी। फिर स्वतंत्र हुआ तब कहीं उन्हें पता चला कि " एशियावासियों के लिए" का नारा एक धोखा था। बाबू ने तो जापानियों से बड़ी आशाएँ बाँध रक्खी परन्तु अन्त में उन्हें भी निराश होना पड़ा। इन सब का यह परिणाम हुआ कि जापानियों की हार भी प्रकार एकाएक हुई जिस प्रकार उनकी विजय

१९६३

ई थी। जापानियों की हार के साथ ही साथ उनका शिया एशियावासियों के लिए" वाला नारा भी बदला। इस हथकण्डे को अपनाया चीनियों ने। उन्होंने इसके अफ्रीका को भी जोड़ दिया। उन्हें भरोसा हो गया शिया तो आसानी से उनकी जेब में आ ही जावेगा, अफ्रीका में चीनी दावे का मनोवैज्ञानिक रंगमंच क्यों ार कर दिया जाय!

१९१४ तक तो अँगरेजों का साम्राज्यवादी रोलर बिना विरोध के ही चलता रहा। उनके अत्याचार आकर हरदयाल, महेन्द्रप्रताप, रासबिहारी जैसे, देश छोड़ चुके थे। उन्होंने चीन अथवा सुदूर शरण ली थी। चीन की विशालता तथा उसके होने के कारण उनको शरण लेने में कोई कठिनाई हुई। इन जैसे भारतीयों को अँगरेजों से घृणा थी। भारत में उनकी अबाध शोषण नीति का ाभाविक परिणाम था। भारतीयों का चीनियों अनुराग का यही कारण भी था। "एशिया एशिया- के लिए" नारा यहीं से चला। दुर्भाग्य की बात है क्तों द्वारा ही यह नारा भारतीय जनता में पहुँचा। दिन भी आया जब महात्मा गांधी के समय में शिया के नेतृत्व के मंसूबे बनाने लगा। स्वतंत्रता ही एशिया और अफ्रीका की पहली कान्फ्रेंस में हुई। परन्तु प्रतीत होता है कि महात्माजी के होते-होते हमारे हौसले भी पस्त हो गये। दिल्ली स के दूसरे कदम में वादुंग सम्मेलन जमा। और ० जवाहरलाल नेहरू ने चाऊ एन लाई को एशिया ई नेताओं के बीच प्रभुता दिलाने में कोई कसर ड़ी। पश्चिम तो उसी समय सब कुछ समझ गया, भारतीय देशभक्तों की समझ में चीनी इरादों का ों नहीं आया, इस पर अवश्य आश्चर्य होता है। ोचना तो बिल्कुल ही व्यर्थ है कि अपनी योग्यता महानता के कारण उन्हें इतना महत्त्व मिल गया। है कि हमारी सबको खुश करने की नीति ने चीनियों सार होने में मदद दी हो।

समय बदल गया। चीन जापानियों की तरह शिया एशियावासियों" के नारे की आड़ में युद्ध सुदूरपूर्व घनघोर बादलों की तरह छाने लगा। चाऊ एन लाई सफलतापूर्वक यह समा बाँधा कि चीन एक जनवादी राष्ट्र है। दूसरे देशों की जनता की स्वतंत्रता पर आघात करना चीन की प्रकृति के विरुद्ध है। तिब्बत का तो वह सुधार कर रहा है। कोरिया और हिन्द-चीन को तो स्वतंत्र होने में वह मदद दे रहा है। वह दुनिया के तमाम सोशलिस्टों को सोशलिस्ट बनने में मदद दे रहा है। अब क्या था? हम लगे तालियाँ पीटने। 'हिन्दी चीनी भाई भाई' का नारा दिल्ली से लगा तो भारत की गली गली में गूँजने लगा। बुद्ध आये, ईसा मसीह आये, मुहम्मद साहब, महात्मा गांधी आये पर संसार में शांति नहीं आई तो नहीं ही आई। फिर भी नेहरूजी शांति के दूत बन ही गये। दुनिया नेहरूजी की सार्थकता दुनिया के झगड़ों को शांत करने ही में देखने लगी। अँगरेजी तो हमने खूब पढ़ी पर लिडिल हार्ट के ये शब्द कि "यदि तुम शांति चाहते हो तो युद्ध को समझो" हमारी दृष्टि से ओझल ही रहे। हमने विश्वशांति चाही पर बिना लड़ाई को समझे हुए। शांति की बातें कीं; बिना शक्ति के। इसी कमजोरी का नतीजा है कि जो आज हम भुगत रहे हैं। एच० जी० वैल्स ने ठीक ही कहा है कि "प्रकृति के राज्य में कमजोरी और गलती का वही दण्ड होता है जो एक पाप का।" जितनी बड़ी गलती और कमजोरी, उतना ही बड़ा दण्ड।

समय फिर बदला, साथ ही साथ चीनी शांति के पैंतरे भी। अब चाऊ एन लाई ने कहना प्रारम्भ किया कि जवाहरलाल झगड़ालू हैं, हमारा बर्मा, नैपाल सबसे झगड़ा समाप्त हो गया परन्तु भारत अपना झगड़ा नहीं सुलझा रहा है। कुछ दिन यह चला। फिर नेहरूजी घोषित कर दिये गये साम्राज्यवादी एजेण्ट, 'एशिया एशिया-वासियों के लिए' नारे के सबसे बड़े बाधक। उनकी मजबूरी हो गयी तो चढ़ दौड़े नैफा और लद्दाख पर। इस बारे में मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है सिवाय इसके कि यदि पश्चिम मदद न करता तो क्या होता? अब तो इस घबराहट में शांति का स्वांग भरनेवालों के चेहरे जो बदले तो झलकने लगी वही दुर्बलता, वही हीन भावना। लगे जोर देकर कहने कि चीनियों के पास १३० डिवीजनें सेना हैं। अपनी ताकत नहीं बढ़ाई। कहा कि चीन ने धोखा दिया। इतिहास से मालूम होता है कि एक बार नहीं, अनेक बार तुर्किस्तान, तिब्बत, यूनान ने चीनियों को धूल चटाई थी। तमाम दुनिया मदद करती

रही, पर जापान के सामने यह एक बार सीधी कमर करके खड़े भी न हो पाये और यह बात फिर दुहराई जा सकती है। जब आठ करोड़ की जनसंख्या का जापान यह कर सकता है तो भारत तो ४० करोड़ का देश है। संकल्प और साहस की आवश्यकता है।

यह प्रथम अवसर नहीं है जब चीनियों ने धोखा दिया हो। ऐसा तो वह चीनी हुआंगटी प्रथम (२५० बी० सी०) के समय से करते चले आ रहे हैं। ऐसा नहीं कि और लोगों को मालूम न हो। पर भला कौन ६० करोड़ की जनसंख्या से व्यापार न करना चाहेगा? अंग्रेजों को ही लीजिए। अतीत में वे इस व्यापार के लिए तमाम भारतीय हितों का बलिदान करके तिब्बत, सिक्यांग जैसे प्रदेश चीन को भेंट कर चुके हैं, और आज भी एक ओर भारत को मुफ्त सहायता दे रहे हैं किंतु दूसरी ओर चीन को हवाई जहाज बेंच रहे हैं।

चीनी लगभग २२०० वर्षों से भारत की ओर बढ़ रहे हैं। पूरब से चीनी डाकू राजाओं ने शान जाति को दबाया, और कुबलिया खाँ ने चौदहवीं शती में शान रियासत का नामोनिशान मिटा दिया। अब बारी थी बर्मा की। परन्तु बर्मा जरा टेढ़ी खीर साबित हुआ। फिर भला अंग्रेजों के सामने वे टिक भी कैसे सकते थे। पर आज चीनियों ने बर्मा की नाकेबंदी पूरी कर ली है, और वह उनके लिये दुर्जेय नहीं रहा। सिक्यांग जो पहिले ही से गुलाम था, अब हान आबादी बसाकर हजम किया जा रहा है। तिब्बत में जो हुआ वह अनजानी बात नहीं। दुर्गम है तो हिमालय। उसके पार करने की फिराक में हैं। सोचते होंगे कि यदि यह हो जाय तो भारतीय कामरेडों की गाइड में कच्छप गति से ही सही, हान जाति के अजगर भारत में अन्दर की ओर सरकने लगेंगे।

उत्तर में चीनी मंचूरिया को नकशे से मिटा ही चुके हैं। वह तो रूस मंगोलिया के पीछे डटा है, नहीं तो वह कभी का अतीत की बात बन गया होता। चीन ने रूस से मंगोलिया के बारे में सन्धि अवश्य कर ली है, परन्तु सन्धियों को तोड़ना ही तो उसका इतिहास रहा है। यदि कोई चीज चीनियों को शांति और सन्धि पर टिका सकती है तो वह है चीनियों का खून और विजयी जाति का लोहा।

रूस का लोहा मजबूत है, तो चीन उस मोर्चे पर
तैयार नहीं। योरपीयों को अपना खून देने से
होता तो हाँगकाँग और मकाओ उन्हें दिखाई
पड़ते। यह है वह पृष्ठभूमि जिसमें माओ
नारा कि "चीन केवल एशिया ही को नहीं समस्त
को पूँजीवादियों के चंगुल से छुटकारा दिलायेगा,"
जा सकता है।

जब अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान पर अधिकार जमाया
चीनी नैपाल, सिकम, भूटान को अपने घेरे में
थे। भारत के सौभाग्य या अभाग्य के कारण
सिंहासन उस समय डावाँडोल था। जब केन्द्रीय
ही अस्तित्व खो रही थी तो फिर परिधि की इकाइयों
कौन खबर लेता? अंग्रेज तो नये थे ही, और साथ ही
व्यापारी। विशाल चीनी प्रदेश का व्यापार हथियाने
लिए वे उसे तिब्बत दे बैठे। किन्तु जब व्यापारी
कोण बदला तो राजनीतिक भूल उन्हें स्पष्ट नजर
और उन्होंने किसी तरह, कहीं रुपया देकर, कहीं
लड़कर, कहीं कूटनीति से, इन पहाड़ी रियासतों को
चीनी चंगुल से नहीं छुड़ाया वरन् तिब्बत में भी
पैर जमा ही लिये। उनके जाते ही 'भाई-भाई' के नारे
जोम में हम फिर वही गलती दुहरा बैठे जो कभी
ने की थी। अब हमने सबक सीख लिया है। उत्तर
सीमा से अब हम बेखबर नहीं रह सकते क्योंकि चीन
विस्तार नीति को कम्यूनिस्ट चीन ने और मजबूत
है। लाओस, वियतनाम आदि हिंद चीन के देशों से
विस्तार-नीति प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। भारत ही
नहीं, दक्षिण पूर्वी एशिया के कितने ही देशों को
की विस्तार-नीति से खतरा है। हम इसे समझें,
पूर्वी एशिया के लोग इसे समझें और उससे अपना
करने के लिए उपयुक्त नीतियों को अपनावें, अपनी
शक्ति बढ़ायें तथा भरोसे के शक्तिशाली राष्ट्रों के
मित्रता रखें। तभी हम चीनी अजगर को हिमालय
उस पार रख सकते हैं। और सबसे बड़ी आवश्य
इस बात की है कि हम 'एशिया एशियावालों के
भ्रमात्मक नारे की असलियत समझें।

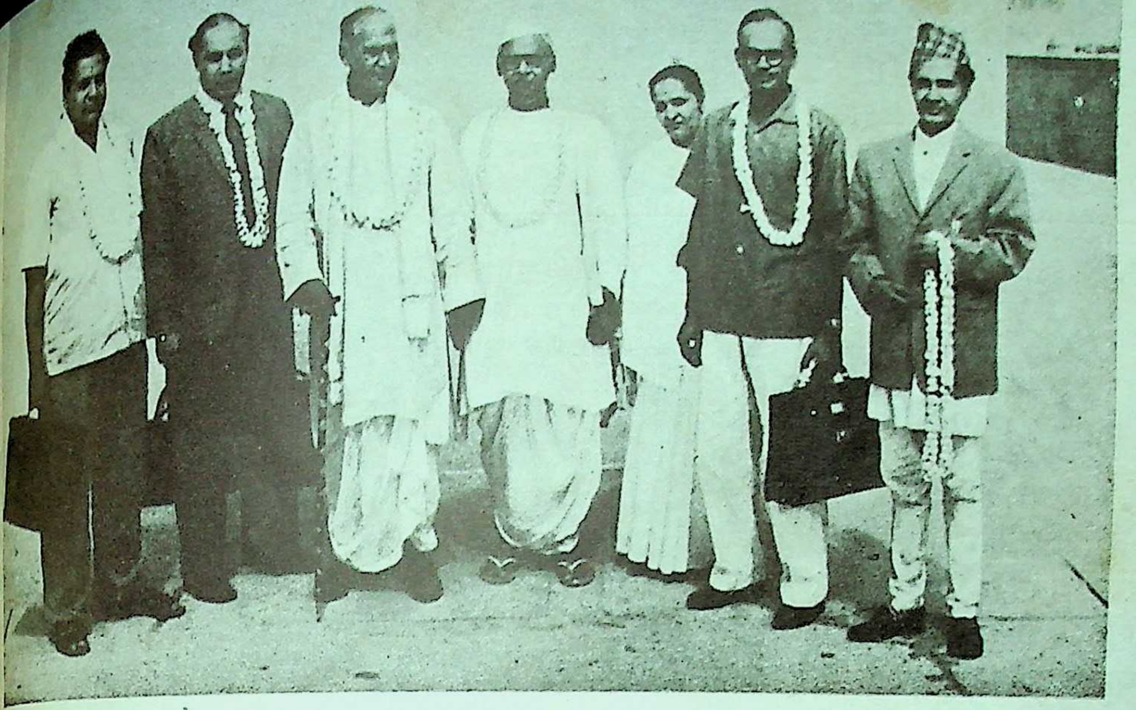

श्री देवराज दिनेश, डा० इन्दुशेखर, सांस्कृतिक सहचारी, सोहनलाल द्विवेदी, श्यामनारायण पांडेय, शान्ति मेहरोत्रा, रामावतार त्यागी तथा कृष्णप्रसाद रेमाल--अध्यक्ष, भारत नैपाल मैत्री संघ।

काठमांडू एरोड्रोम में शिष्टमंडल का स्वागत

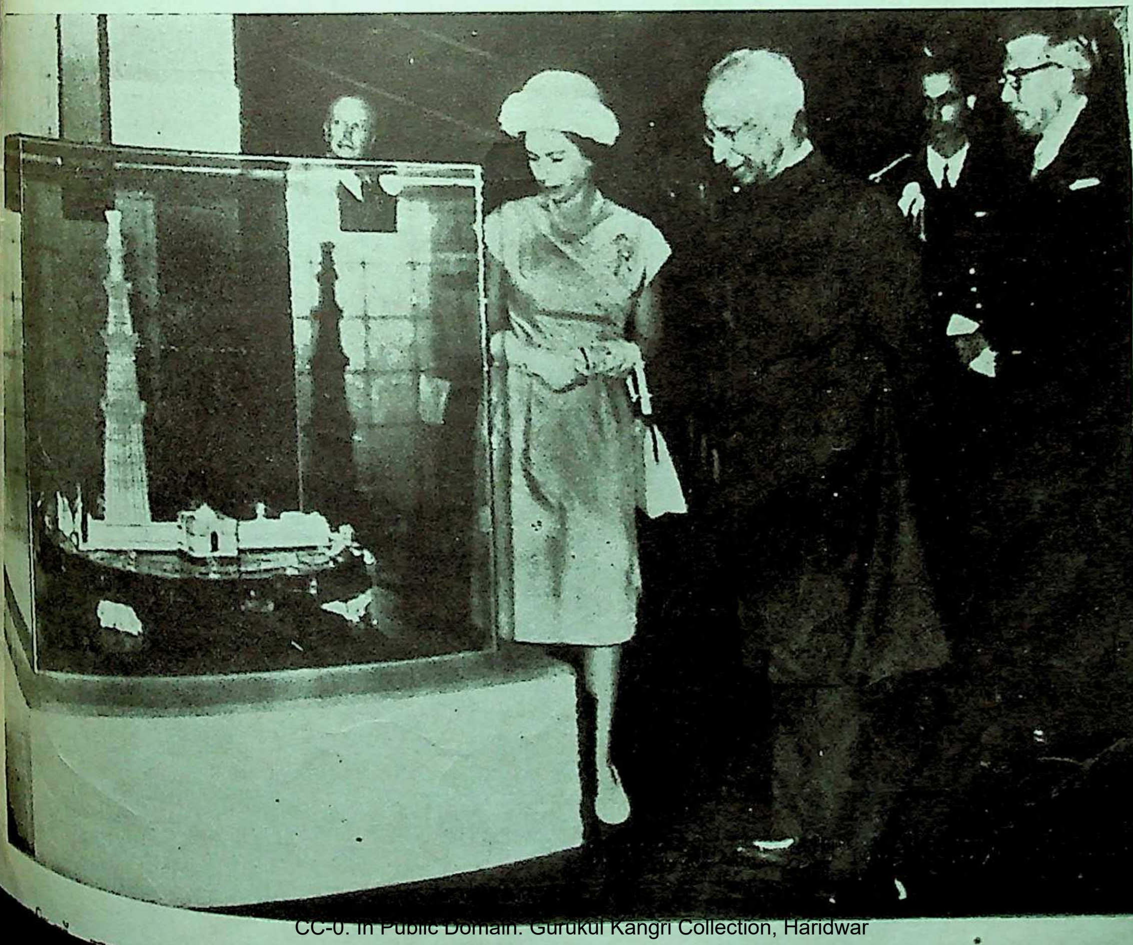

[illegible] ने [illegible] किया। वे इँगलैंड की महारानी के साथ

रूस के राष्ट्रपति ने दो महान् अंतरिक्ष यात्री-- वैलेन्तिना तैरेश्कोवा और कर्नल बाइकोवस्की को एक साथ 'सोवियत संघ के वीर' की उपाधि से विभूषित किया। उपाधि को ग्रहण करते हुए दोनों वीर प्रसन्न मुद्रा में।

वैलेन्तिना तैरेश्कोवा, पहिली महिला अन्तरिक्ष यात्री

वैलेन्तिना तैरेश्कोवा (अंतरिक्ष यान में कवच पहने हु

हमारी वैज्ञानिक उन्नति में बाधाएँ

गुरुकुल कांगड़ी

श्री कस्तूरमल बांठिया

पिछले दिनों भाषा विधेयक के समर्थन में सरकार द्वारा यह भी कहा गया था कि देश में वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि के लिए अँगरेजी को सन् १९६५ के बाद भी की त्यों चलाते रहना आवश्यक है क्योंकि संसार का निक ज्ञान अँगरेजी के ग्रंथों द्वारा ही हमें उपलब्ध हो ता है।

यद्यपि भारतवर्ष में पिछले डेढ़ सौ वर्ष से अँगरेजी शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है तथापि वैज्ञानिक शिक्षा ६०-७० वर्ष बाद ही शुरू हुई थी। इन वर्षों में इंगलैंड अमरीका ने जितने चोटी के विशुद्ध और व्यावहारिक निक उत्पन्न किये उनकी तुलना में भारतवर्ष ने अँगुलियों पर गिने जा सकें, उतने भी नहीं पैदा किये। हमारे निकों की दृष्टि में इसका कारण यह है कि "विज्ञान विकास किसी देश में तभी होता है जब वहाँ हाथ से करनेवाले और दिमाग से सोचनेवाले दोनों का न होता है। इसलिए वैज्ञानिक साहित्य की भाषा होना चाहिए कि जिसको विचारक और कारीगर समझ सकें। जहाँ पर इस प्रकार की परिस्थितियाँ हो जाती हैं, वहाँपर विज्ञान और औद्योगीकरण की तेज हो जाती है। ऐसी ही परिस्थितियों में आज से वर्ष पहले योरप की भाषाएँ फ्रेंच, जर्मन और अँगरेजी सित हुई थीं और इसीलिए आज रूस की क्षेत्रीय ओं का विकास हो रहा है। रूस में आज से ४० पहले जो औद्योगिक क्रांति शुरू हुई थी, उसका असर की विभिन्न भाषाओं पर आज स्पष्ट दृष्टिगोचर है क्योंकि इन भाषाओं में आज वैज्ञानिक साहित्य रचना हो रही है।"

भारतवर्ष की क्षेत्रीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य कमी की जो शिकायत आज भी की जा रही है, क्या यथार्थ कारण यह नहीं है कि हमारे यहाँ हाथ से करनेवाले और दिमाग से सोचनेवाले दोनों का न आज भी नहीं होता है? मिलन तो समान स्तर-ों में ही हो सकता है। जहाँ ऊँच-नीच की भावना का र पोषण होता रहे, और दिमाग से सोचनेवाला को ऊँचा मानता रहे, वहाँ हाथ से काम करनेवाले थ वह कभी नहीं मिलता। तभी तो पिछले दिनों मंत्री श्री नेहरू और गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने ही विभिन्न समयों पर लोगों को जनता की वेश-भूषा में ही उनके सामने जाने और काम करने की हित-क्षा दी थी। परंतु इस स्थिति में तब तक परिवर्तन हो नहीं सकता है जब तक अँगरेजी वेशभूषा और अँग-रेजी भाषा का देशी वेशभूषा और देशी भाषाओं से अधिक आदर होता है। सरकार की कहनी और करणी में यह अन्तर पिछले १५ वर्षों में दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहा है। गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ में जो अपूर्व सादगी हमारी वेशभूषा और रहन-सहन में ला दी थी, वह उनके अंतिम दिनों में, या यों कहिए हमारे राज्यभार सँभाल लेते ही काफूर होने लगी थी और आज तो वह अपवाद रूप ही रह गयी है। हमारी प्रत्येक बात में आज दिखावा अधिक, और वास्तविकता कम है। हम देश के सभी बच्चों पर अँगरेजी भाषा थोपने पर उतारू हैं।

वैज्ञानिकता को प्रगति देने के लिए हमारी पूर्वज अँगरेजी सरकार ने ही वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की स्थापना सन् १९४० के बहुत पहले ही कर दी थी, और उस साल उसका संचालक डा० श्री शांतिस्वरूप भटनागर को बना दिया था। जब अँगरेज श्री नेहरूजी आदि नेताओं को देश का शासन सौंपकर अगस्त १९४७ में यहाँसे बिदा हो गये तो यह सोचते हुए कि आधुनिकतम संयंत्रों से सुसज्जित राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ वैज्ञानिक पैदा करने के लिए अनिवार्य हैं, हमारे प्रधान मंत्रीजी ने इन्हें इतनी अधिक प्राथमिकता दी और इतनी संख्या में स्थापित कर दिया कि आज उनके लिए भारतीय वैज्ञानिक-संचालक मिलना भी सरकार के लिए सिरदर्द हो गया है। यदि ऐसा न होता तो राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के आद्य संचालक डा० कार्यमाणिकम् श्रीनिवास कृष्णन् (के० एस० कृष्णन) के १९५९ में निधन हो जाने के पश्चात् अभी तक क्या उनके रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं हो जाती? जब भी वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के संचालक का स्थान रिक्त हुआ उसकी पूर्ति करना सरकार के लिए सिरदर्द हो गया। हमें यह सोचना चाहिए था कि अनुसंधान न तो सुन्दरतम भवनों की उपज है और न आधुनिकतम वैज्ञानिक संयंत्रों की। जन-साधारण इनसे अवश्य ही आश्चर्यचकित एक बार किये जा सकते हैं, परंतु उतना ही शीघ्र वे निराश होकर इस महती फिजूलखर्ची की सरकार की टीका भी करने लग जाते हैं, जैसा कि आज कर रहे हैं, क्योंकि इन प्रयोगशालाओं ने इन वर्षों में कोई भी वैज्ञानिक पैदा नहीं किया है। सुप्रसिद्ध प्रो० नार्थकूट पर्किन्सन का यह कथन एकदम सत्य है कि "योजनाबद्ध अभिन्यास (Lay out) में परिपूर्णता उन्हीं प्रतिष्ठानों द्वारा सम्भव है जो समाप्त होने के सन्निकट पहुँच चुके हैं।....... परिपूर्णता अंतिमता है और अंतिमता मृत्यु है।" देश-देश के उदाहरणों में उन्होंने अँगरेजी साम्राज्यवादियों द्वारा आदर्श नई दिल्ली निर्माण की योजना का उदाहरण देते हुए यह बताया है कि उसके परिपूर्णता तक पहुँचते-पहुँचते अँगरेजी शासन ही समाप्त हो गया, और आज यह नई दिल्ली उसका मकबरा भर ही रह गया है।

भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियों से उपदेश

संसार के वैज्ञानिकों की जीवनियों से यही बोधपाठ हमें मिलता है कि उनके अदम्य उत्साह ने पथ की किसी भी बाधा की परवाह नहीं की, और वे सब दिल-तोड़ असुविधाओं में काम करते-करते सफलता के शिखर पर जा पहुँचे। नोबल पुरस्कार-विजेता श्री चन्द्रशेखरन रामन ने अपना 'रमन किरण' का आविष्कार कलकत्ते के बऊबाजार की भारतवर्ष की प्राचीनतम डा० महेन्द्रलाल सरकार स्थापित व संचालित इंडियन असोसिएशन फार दी कल्टीवेशन आफ साइंस की प्रयोगशाला में काम करते हुए ही किया था जिसे हम आज की भाषा में अद्यतन नहीं कह सकते हैं। श्री रामन की अपनी प्रयोगशाला अब बंगलोर में है जो हमारी सरकार द्वारा स्थापित प्रयोगशालाओं के सामने एकदम बौनी है, फिर भी उसी में प्रयोग करते हुए प्रो० रामन आज भी चमत्कारिक वैज्ञानिक अनुसंधान करते ही जाते हैं। सन् १९०७ में श्री रामन मद्रास विश्वविद्यालय से भौतिकी में एम० ए० हुए। स्वास्थ्य के कारण आगे अध्ययन करने को उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में जाने की आज्ञा नहीं दी गयी। इसलिए एम० ए० की परीक्षा देने के एक महीने बाद ही वे सरकारी वित्त विभाग की प्रतियोगिता परीक्षा में बैठ गये। इतने सम्मान से उन्होंने वह परीक्षा पास की कि २० वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें डिप्टी एकाउंटेंट जनरल बना दिया गया। दस वर्ष के बाद जब उनकी पदोन्नति हो रही थी, उन्होंने त्यागपत्र देकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक महाविद्यालय में 'भौतिक विज्ञान' के 'पालित आचार्य' का पद सँभाल लिया। श्री पालित के दानपत्र के अनुसार इस पद पर विदेशी उपाधिधारी को ही नियुक्त किया जा सकता था। परंतु सर गुरुदास बैनर्जी और सर आसुतोष मुखोपाध्याय ने दानपत्र की शर्त की इस पाबंदी से श्री रामन को मुक्त करा दिया। डिप्टी अकाउंटेंट जनरल का काम करते हुए भी श्री रामन वैज्ञानिक अनुसंधान करते ही रहे क्योंकि वह तो उनकी नस नस में व्याप्त था। इसके लिए विदेशों में जाकर काम करने की कमी उन्होंने कभी अनुभव नहीं की और न वहाँकी उपाधियों की ही हविस की। ये तो उन्हें स्वतः तभी से एक के बाद एक मिलने लगीं कि जब सन् १९२४ में उन्हें रायल सोसाइटी का फैलो बना लिया गया। उस समय इनकी आयु ३४ वर्ष ही की थी। इनके पूर्व रायल सोसाइटी के फैलो बनने का सम्मान सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजम् को, जो इन्टर तक ही पढ़े थे, सन् १९१८ में ३० वर्ष की आयु में प्राप्त हुआ था और दूसरी बार डा० श्री जगदीशचन्द्र बसु को सन् १९२० में ६४ वर्ष की आयु में प्राप्त हुआ था।

डा० श्री बसु ने तो यंत्र अपने निरीक्षण में भारतीय कारीगरों से कलकत्ते में ही बनवाए थे और उन्हींके द्वारा अपनी खोजों का रायल सोसाइटी के व्याख्यानों में प्रदर्शन भी किया था। श्री श्रीनिवास रामानुजम् तो मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में लिपिक का काम करते हुए गणितीय गवेषणाएँ कर रहे थे। गणित की धुन इतने मस्त थे कि उन्होंने अँगरेजी पढ़ने की ओर ध्यान दिया और परीक्षा में फेल भी हो गये। अँगरेजी का कचरा उनका ज्ञान अथवा उनका पोर्ट ट्रस्ट का लि जीवन गणित की अपूर्व खोजों में बाधक हुआ हो, नहीं लगता। जिसको जिसकी सच्ची लगन होती है बाधाओं की उपेक्षा करते हुए अपने ध्येय को पहुँच जाता है। जब हम भारतीय वातावरण में ही रहते हु रामानुजम्, रामन आदि वैज्ञानिक साधकों की साध का विचार करते हैं, और उनके साथ उनकी कि जि केम्ब्रिज आदि विदेशी विश्वविद्यालयों में और वहाँ वैज्ञानिकों के निर्देशन में साधना करने का सौभाग्य मि तुलना करते हैं तो यही कहना पड़ता है कि वे लोग विदे न जाते तो भी पीछे नहीं रहते। यही नहीं, अपितु देश वैज्ञानिक अनुसंधान की धारा को अब तक वे कहीं अधि परिपुष्ट कर देते जो आज सरकार करना चाहती है वैज्ञानिक भी जन्मते हैं, बनाये नहीं जाते और न किसी पर जबरन वैज्ञानिकता थोपी ही जा सकती है। यह सनातन सत्य हमारी केन्द्र सरकार की गत मार्च में की गई पारि तोषिक वितरण की घोषणाओं से भी पूरा-पूरा प्रमाणि होता है।

कैसे वैज्ञानिक खोजियों ने पुरस्कार जीते हैं?

डा० शान्तिस्वरूप भटनागर स्मारक दस-दस हजार के विज्ञान पुरस्कार विगत मार्च २९ को नई दिल्ली में टाटा इंस्टीटच्यूट आफ फंडामेंटल साइंस प्रतिष्ठान के प्रो० के० चन्द्रशेखरन् और इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टीटच्यूट के प्रो० सी० राधाकृष्णराव को दिये गये। इ पुरस्कार की स्थापना 'वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान प्रतिष्ठान' द्वारा सन् १९५७ में उसके प्रथ भारतीय संचालक डा० शांतिस्वरूप भटनागर की स्मृ में की गई थी और इनके दिये जाने का यह पहला ही अवसर है। खोजें कदाचित् ऐसे विशेष महत्त्व की हैं जि जिनका आज की चीन से अनबन की आपत्कालीन स्थि में प्रकाशित किया जाना उचित नहीं समझा गया हो।

फिर भी प्रसन्नता की बात यह है कि पुरस्कृत कि जाने योग्य खोज और आविष्कार की योग्यता का श्रीगणेश हम भारतीयों में हुआ तो कि जिसके लिए हमारे प्रधान मंत्रीजी ने अपने १५ वर्षों के शासन काल में करोड़ों की लागत की और अद्यतन संयंत्रों से सुसज्जित ५७ प्रयोगशालाएँ (२७ वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की और ३० प्रतिरक्षा विज्ञान प्रतिष्ठान डी० एस० ओ० के तत्त्वावधान में काम करनेवाली) देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित कराई हैं। फिर भी ये पुरस्कार-विजेता इन सरकारी प्रयोगशाला में प्रयोग करनेवाले न होकर बाहरी प्रतिष्ठानों के हैं। यह बात इन सरकारी प्रयोगशालाओं की कार्यपद्धति और सफलता को विज्ञापित नहीं करती।

पुरस्कार-विजेताओं की दूसरी घोषणा संसद में ता० २९ मार्च को ही उद्योग मंत्री श्री० नित्यानन्द नगो द्वारा की गयी कि केन्द्रीय आविष्कार प्रोत्साहन र्ड ने सन् १९६२-६३ में २८ व्यक्तियों को उनके विष्कारों के लिए पुरस्कार देने का निश्चय किया है नमें सात सरकारी और २१ गैर-सरकारी कर्मचारी और पहला ५०००) का पुरस्कार श्री एस० आर० को दिया जायेगा। अन्य पुरस्कारों की राशि और जेताओं के नामों की घोषणा संसद में तब यद्यपि नहीं की गयी तथापि इतना अवश्य कह दिया गया था कि पुरस्कार पानेवाले इन २८ व्यक्तियों में से सभी के पास न तो इंजीनियरिंग की योग्यता है और न वे इंजीनियर हैं। इनमें कितने इंजीनियर हैं, कितने इंजीनियरिंग योग्यतावाले, कितने अच्छी अँगरेजी पढ़े-लिखे और ने के लिए अँगरेजी अथवा अन्य भाषा भी काले अक्षर भैंस बराबर है, यह सब विवरण भी दे दिया जाता हम भारतीयों की मौलिक आविष्कार-शक्ति का अनुमान सुविधा से लगाया जा सकता था, और यह कि इसके लिए बचपन से तीन भाषा और उनमें से अवश्य ही अँगरेजी का शिक्षण कितना अनिवार्य है। हमारी अँगरेजी-परस्त सरकार इस प्रकार के और तथ्य देकर भाषा-विधेयक का विरोध प्रबल नहीं चाहती थी जो उसको १४ अप्रैल को संसद प्रस्तुत करना था। कुछ भी हो, जब भी ये अंक प्रकाशित होंगे, सरकार की, चाहे उसे कितनी ही अरुचिकर न हो, टीका हुए बिना रही नहीं सकती।

नेहरूजी के कथनानुसार देश से भुखमरी, रोग और गरीबी विज्ञान ही मिटाएगा

जब से हमारे प्रधान मंत्रीजी ने देश का शासन संभाला है वे सदा ही कहते रहे हैं कि केवल विज्ञान ही इस देश से भुखमरी, रोग और गरीबी उन्मूलन कर सकता है। भारतीय जनता अपने लोकप्रिय नेता की इस बात में अब तक पूरा-पूरा विश्वास करती आयी है। पर वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की शब्दाटोप प्रतिवेदनाएं पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि जनता में तो यह प्रतीति अब अधिक दिनों तक टिकी रहनेवाली नहीं है। के प्रतिवेदनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम अभी तक आविष्कारों की संख्या में केवल वैज्ञानिक शोध-निबंध ही मात्र प्रकाशित कर पाये हैं। पर शोध-निबंध ही तो सफल खोज नहीं है। व्यापारिक प्रयोग ही खोज की सफलता का एकमात्र निर्णायक है। जिस तकनीकी पत्रिका ने इसकी छानबीन की, वह सूचित करती है कि वैज्ञानिक निबंध (अभिलेख) लिखनेवालों में भारतवर्ष का एशिया महाद्वीप में दूसरा नंबर है। पहला नंबर है जापान का। परन्तु जापान शोध-निबंधों के साथ ही शोधों के व्यापारिक-व्यावहारिक प्रयोग में इतना अधिक प्रगति कर गया है कि उसका प्रभाव संसार के कोने-कोने में पड़ता है। उदाहरण स्वरूप, आप ट्रांसिस्टरों की बात ही लीजिए जिन्हें अपने गले में लटकाए घूमते हम अनेक भारतीयों को हर नगर में सहज ही देख सकते हैं। शोध को निबंधों से निकालकर उसे व्यावहारिक रूप देकर तथा उसे व्यापार के लिए उपयोगी बना देने की जो सतत चिंता जापान को रहती है, वह इसका एक अच्छा उदाहरण है। रूसी तानाशाह श्री निकिता ख्रुश्चेव तक जापानी ट्रांसिस्टर गले में लटकाने में नहीं हिचकिचाते क्योंकि जैसा उत्कृष्ट ट्रांसिस्टर जापान ने बताया है वैसा अन्यत्र नहीं बन पाया है। टाइम्स आफ इंडिया ने अपने सम्पादकीय में इसीलिए कहा कि The tremendous strides taken in Japan and the United States in this field were neither accidental nor offcially sponsored. They came as a result of the long term policy of encouraging radio amateurs to the fullest possible extent . Radio amateurs (or hams in informal parlance) thus form the back bone of Electronic Research. *Without a large group of these tinkering hams the daring imaginativeness and inventive genious essential to technical advance will not be available to any country.*"

(इटैलिक इस लेखक का है)।

अब हमारे देश की स्थिति को देखिए। हमने यद्यपि सन् १९६० में १५०८ वैज्ञानिक पुस्तकें, ३८३ तकनीकी पत्रिकाएँ और ६३६३ खोज महानिबंध प्रकाशित किये थे, तथापि खोजों को पेटेंट कराने की हमने उस साल केवल ७०० प्रार्थनाएँ ही कीं। इन खोजों का व्यापारिक उपयोग करने के लिए वे राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम (नेशनल रिसर्च डेवैलपमेंट कारपोरेशन जिसको संक्षेप में 'एन० आर० डी० सी० NRDC' कहा जाता है) को सौंप दी जाती हैं। यह सरकारी निगम है। मार्च १९६२ तक इस निगम को कुल ६२७ आविष्कार विकास के लिए सौंपे गए थे जिनमें से २७७ या तो वापिस ले लिय गये अथवा अस्वीकार कर दिये गये। दूसरे ११६ मुफ्त मुक्त कर दिये गये अर्थात् बिना किसी एवज के उनका लाभ उठाने को साहसी उपक्रमियों को दे दिया गया। केवल १५६ आविष्कार ही खानगी व्यापारियों अथवा कम्पनियों द्वारा खरीदे गये। क्या हमारे वैज्ञानिक आविष्कारों की सफलता के लिए इतना ही पर्याप्त माना जा सकता है? खरीदे हुए १५६ आविष्कारों में से केवल ५६ का ही मार्च १९६२ तक व्यापारिक उत्पादन हुआ जो इस विकास निगम को सौंपे गये कुल आविष्कारों का १० प्रतिशत भी नहीं है। क्या यह हमारे गर्व करने योग्य उपलब्धि है? यह तो सुई की खोज के लिए लाखों खर्च कर पहाड़ खोदने जैसा ही कहा जायेगा।

क्या अनुसंधान की वकालत ही अनुसंधान है?

हमारी वैज्ञानिक प्रगति की स्थिति वहाँ तक ही पहुँची है कि अनुसंधान की वकालत करना ही 'अनुसंधान'

माना जाने लगा है। यह भयंकर भूल है। यह बताती है कि हमारी कथनी और करनी में कितना बड़ा अंतर है। इसका प्रमाण हमें भारत सरकार के वैज्ञानिक नीति प्रस्ताव के उस अंश से मिल जाता है जहाँ यह आश्वस्त करने का प्रयत्न किया गया है कि विज्ञान-अनुसंधानी के सर्जनात्मक गुणों को प्रोत्साहन दिया जायेगा ताकि उसे पूरा-पूरा क्षेत्र प्राप्त हो। इस प्रस्ताव की स्याही सूखने भी नहीं पाई थी कि वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (CSIR) ने सन् १९६० में वैज्ञानिकों के वेतन संबंधी नयी सिफारिश कर दी जो कि उसकी दृष्टि में वेतन-आयोग की सिफारिशों का सुधार था। इसके द्वारा अवर और प्रवर (ज्यूनियर और सीनियर) वैज्ञानिकों के वेतन में भारी अन्तर कर दिया गया। अवरों का वेतन घटा दिया गया और प्रवरों का बढ़ा दिया गया। दूसरी बात यह की गयी कि वैज्ञानिकों की अनेक श्रेणियाँ और वेतनस्तर बना दिये गये जिसका परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिकों में भी 'जातिवाद' का हीन रूप में प्रवेश हो गया। संसार में वैज्ञानिकों में जातिवाद का ऐसा उदाहरण भारत ने ही सबसे पहले प्रस्तुत किया है जब कि भारत जातिवाद को सभी क्षेत्रों में से उन्मूलन करने को हर समय तत्परता दिखाना नहीं भूलता। तीसरी बात यह की गयी कि वेतन-स्तर ऐसे चलाये गये कि अनुसंधान शाखा के वैज्ञानिक को प्रशासनिक (कारकूनी) वैज्ञानिक से कम वेतन मिलने लगा। अर्थात् जो वैज्ञानिक 'अफसर' हो गया और शोध का प्रबंध करने लगा उसे उस वैज्ञानिक से अधिक वेतन दिया जाने लगा जो 'अनुसंधान' करता है। इसी नीति का परिणाम है कि हमारे वैज्ञानिकों में खोज और आविष्कार का उत्साह जो पहले ही मंद था, और भी मंदतम हो या रह गया है। वे समझने लगे कि खोज और आविष्कार करने में उतना लाभ और सम्मान नहीं है जितना वैज्ञानिक अफसरी करने में।

जानकारी (Know how) नहीं है।

रामानुजम्, जगदीशचंद्र बसु, प्रफुल्लचंद्र राय, बीरबल साहनी, मेघनाद साहा, चन्द्रशेखरन्, रामन जैसे इने-गिने वैज्ञानिकों का भारत निःसंदेह गर्व कर सकता है, परंतु यह नहीं माना जा सकता कि इनकी उपलब्धियाँ विज्ञान के पोषण की वर्तमान नीति के कारण हुईं। औद्योगिकी (टेक्नोलोजी) के व्यावहारिक क्षेत्र में भी कि जहाँ अनुसंधान की उपलब्धियों के विनियोजन के विशेष रूप से अत्यधिक अवसर प्राप्त हैं, वहाँ भारतीय जानकारी (Know-how) सामान्यतया दिखाई नहीं देती है।

संसार प्रख्यात खगोल भौतिक वैज्ञानिक श्री एस० चन्द्रशेखरन् ने, जिन्होंने कि वर्षों से अमरीका को ही अपना देश व घर बना रखा है, गत वर्ष गणितीय विज्ञान प्रतिष्ठान (इंस्टीटयूट आफ मैथेमेटिकिल साइंसेज) में कहा था कि "जब भारत में औद्योगिक विकास की चमत्कारिक पृष्ठ-भूमि में भारतीय विज्ञान का उसी अवधि का लेखा-जोखा लगाया जाता है तो मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वह न केवल निराशाजनक ही है अपितु निरुत्सा भी है।" उन्होंने केवल यही शिकायत नहीं की व्यक्ति रूप से वैज्ञानिक काम करनेवालों में निराशा और क्षो व्याप्त हैं, प्रत्युत उन्होंने यह भी कहा कि सामू रूप से वैज्ञानिक काम करनेवालों और संस्थाओं भी यह निराशा और क्षोभ फैल गया है। निरा का प्रधान कारण उन्होंने यह बताया कि सरकार और विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाएँ न तो उनका काम समझती हैं, और न उनका समादर करती हैं। इस वि में एक उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि भा में भारतीय वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के उच्च अधिकारी भी बिना पूर्व अनुमति प्राप्त किये, कि काम में १२॥) से अधिक खर्च नहीं कर सकते, जब कि अमरीका में एक साधारण कार्यकर्ता भी इससे दसगु रुपया जब चाहे तब खर्च कर सकता है। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने नई दिल्ली में इंजीनियरों की परिषद् में (इंस्टीटयूट आफ इंजीनियर्स) में बोलते हु कुछ दिनों पूर्व कहा था कि "देश में वैज्ञानिकों औ प्रौद्योगिकों को उचित प्रतिष्ठा-पद प्राप्त नहीं होता और इस बात पर उन्होंने विशेष रूप से खेद प्रकट किया था कि इस देश में वैज्ञानिक की अपेक्षा प्रशासक (एड-मिनिस्ट्रेटर) बहुत व्यापक अधिकार भोगता है। यहाँ अनुसंधान के कृत्यकारण और प्रशासन में नौकरशाही का ही बोलबाला है। यह एक सर्व स्वीकृत तथ्य है कि इस समय भारतवर्ष में वैज्ञानिक अनुसंधान अधिकांशतया सरकारी विभागों और सरकार प्रायोजित अभिकरणों का परिरक्षित क्षेत्र है। इन अधिकरणों में जो तीन सबसे बड़े हैं, वे हैं (१) वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (CSIR); (२) अणुशक्ति आयोग (एटोमिक एनर्जी कमीशन (AEC) और (३) प्रतिरक्षा विज्ञान प्रतिष्ठान (डिफेन्स साइंस ओरगेनिजेशन (DSO)।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और अध्यापक जे० बी० एस० हालडेन ने (जो कुछ वर्ष हुए भारतीयता प्राप्त कर यहीं बस भी गए हैं) कुछ ही दिन पूर्व कहा था कि "मैंने हाल में ही एक सुप्रसिद्ध भारतीय प्रयोगशाला के अध्यक्ष के प्रकाशनों की सूची देखी थी। एक वर्ष में इस अद्भु पुरुष ने ५० से अधिक वैज्ञानिक निबंध प्रकाशित कर दिये थे। इससे पूर्व इस वेग और गति से किसी एक मानव ने कभी आविष्कार किये ही नहीं। इसमें जरा भी संदे नहीं कि अवर सहायकों ने अधिकांश काम किया होगा। पर कि यही नहीं, संभवतया सारा काम उन्हींका हो। एक का भी इन निबंधों में नाम से जिक्र नहीं था।"

सरकारी प्रवक्ताओं की सदा यह शिकायत रह है कि भारतीय वैज्ञानिक अधिक वेतन के प्रलोभन से विदे चले जाते हैं और देश को नहीं लौटते। श्री हालडेन ने कहा कि "किसी अंश में यह सत्य अवश्य है कि वेतन और सुविधाओं का प्रलोभन बहुतों को विदेशी बना देता है परंतु इससे कहीं अधिक कारण तो उनके मान-सम्मा

ता है।" कलकत्ता रोटरी क्लब में बोलते हुए माननीय श्री हुमायूँ कबीर ने पिछले सितम्बर में ही कहा था कि ा के एक वैज्ञानिक ११० समितियों में हैं।" उन्होंने वैज्ञानिक का नाम नहीं बताया। परंतु यह स्पष्ट ही ट कर रहा है कि व्यक्ति विशेष किस प्रकार हमारे में अपने अवर (Junior) वैज्ञानिकों को प्रकाश में आने देने में सतर्क रहता है? एक प्रवर प्रगतिशील निक ने कहा था कि 'सरकारी वैज्ञानिक संस्थानों सरकारी वैज्ञानिकों के काम करने के नियम ऐसे हैं कि नी उन्नति करने के लिए वैज्ञानिक को विवश होकर कुदकी' (जाबजंपिग) लगानी पड़ती है।' फल- न तो वैज्ञानिक विकास ही करने का अवसर रहता और न अपने विशिष्ट विषय में कोई महत्त्व का उपादान दिया जा सकता है। सच तो यह है कि "जितनी ता से वैज्ञानिक प्रयोगशाला रूपी अंडे देश ने दिये रहा है, उतनी शीघ्रता से उन्हें सेने की योग्यता वैज्ञानिक देश में मिल ही नहीं रहे हैं। यदि स्थिति है तो फिर नैशनल फिजीकल लैबोरेटरी ीय भौतिक प्रयोगशाला) का लगभग अठारह महीने एक डा० के० एस० कृष्णन के निधन से रिक्त उसके संचालक का स्थान अभी तक भी क्यों नहीं या? अन्य देशों की बात छोड़ भी दी जाय, तो भी तो दूर, उस इंगलैंड तक से कुछ नहीं सीखा जिसका अनेक बातों में भी अपने को शिष्य मानते हैं। वहाँ कों की पदोन्नतियाँ उनके कार्य-विशेष में कुछ भी पहुँचाए बिना स्वतः होती रहती हैं। किंतु खेद है हमारे देश में वैज्ञानिकों की पदोन्नति, वेतनवृद्धि आदि शाही के दया-दाक्षिण्य पर निर्भर है। वे ही त करते हैं कि किस उत्साही एवम् साहसी वैज्ञा- को जिसने अपने क्षेत्र में प्रगति की है, कहाँ पदोन्नत जाए? इन्हीं बातों ने वैज्ञानिकों में अवसर- ता (कैरियरिज्म) की भावना को प्रबल प्रोत्साहन है और यथार्थ अनुसंधान को धराशायी कर दिया है।

ज्ञान और देश के उद्योग के बीच में गहरी खाई है

प्रगतिशील देशों में विज्ञान और उद्योगों के बीच भी खाई नहीं रहती। इसीसे उनकी वैज्ञानिक और गिक प्रगति प्रायः साथ-साथ चली है। अकस्मात् पीछे रह भी जाये तो उसे सहारा देकर तुरंत साथ खींच लिया जाता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए लिए वहाँके उद्योगपति बिना माँगे आशातीत दान और न्यास बना देते हैं। वे इन लोगों की खोजों से धिक लाभ कमाते हैं। हमारे देश में स्व० डा० प्रफुल्लचंद्र राय द्वारा स्थापित बंगाल कैमिकल एण्ड स्युटिकल प्रतिष्ठान ही में ऐसा समन्वय हुआ होगा। जाता है कि डा० शांतिस्वरूप भटनागर के आवि- कारों के पेटेंट खरीदकर बिड़ला बंधु, लाला श्रीराम, जुग्गीलाल कमलापति सिंघानिया, सर जे० पी० श्रीवास्तव, गनेश फ्लावर मिल, टाटा आइल मिल आदि ने समुचित लाभ उठाया। क्या कारण है कि आज ये ही उद्योगपति भारतीय वैज्ञानिक प्रगति के प्रति जैसा चाहिए वैसा कोई उत्साह नहीं दिखाते? भारतवर्ष की इस विषय में स्थिति प्रायः पहले जैसी ही है। यह स्थिति इसलिए और भी दुःखद है कि आज देश में सरकार ही सबसे बड़ा उद्योगपति है और वही विज्ञान का संरक्षक देवदूत भी। जब कि देश के विकास में वैज्ञानिकों की प्राज्ञ रहनुमाई औद्योगिक प्रगति को प्रभावक वेग दे सकती है, एक का दूसरे में घोर अविश्वास है। इस स्थिति का सारा ही दोष सरकार के सिर पर थोपना भी ठीक नहीं होगा। वैज्ञानिकों का भी दोष अवश्य है क्योंकि उन्होंने अपने आपको वास्तविक जगत से दूर सिनफिनी गढ़ (Ivory tower) में बन्द कर रखा है।

औद्योगिकों की यह आम शिकायत है कि ज्यों ही कोई प्रक्रिया विकसित हो गयी और उसका एकस्व (पेटेंट) वैज्ञानिकों से खरीद लिया गया, वे यह समझ लेते हैं कि उनकी इस विषय की सारी जिम्मेदारी समाप्त हो गयी। परंतु औद्योगिक कहता है कि अनुसंधानी वैज्ञानिक को प्रयोगशाला में विकसित प्रक्रिया की उस समय तक की सारी जिम्मेदारी भी उठानी चाहिए जब तक कि उस द्वारा व्यापारिक उत्पादन सफल नहीं हो जाये। संसार में सर्वत्र वैज्ञानिकों ने यह सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर उठायी है। इतना ही नहीं, परंतु कुछ ने तो आविष्कार को व्यापारिक रूप से सफल कर देने के बाद ही उसका एकस्व बेचा और उससे उद्योगपति के बराबर ही धन भी कभी-कभी कमाया है। संसार की वैज्ञानिक खोजों में से आधी से ज्यादा को अमरीका ने व्यापारिक रूप में सफल किया। उसका एकमात्र कारण यही था वेस्टिंगहाउस, फ्रेंकलिन, ऐडिसन, बेल आदि आविष्कारकों ने औद्योगिकों की अन्त तक सहायता की और अपने आविष्कारों को व्यावहारिक बनाने में जीवन की बाजी ही लगा दी थी। भारतीय वैज्ञानिक और औद्योगिक में ऐसा ही घनिष्ठ संबंध-संपर्क जमाने की परम आवश्यकता है। परंतु इस ओर किये गये प्रयत्नों को देखकर पूरी निराशा होती है। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (CSIR) की सन् १९६१-६२ की प्रतिवेदना में यह पढ़कर दुःख होता है कि "औद्योगिक संपर्क का राष्ट्रीय-प्रयोगशालाओं का काम इस वर्ष में सुदृढ़ किया गया और केन्द्र का राज्य मद्रास, बम्बई और कलकत्ता नगरों के क्षेत्रीय कार्यालयों में जो संपर्क विभाग प्रयोगस्वरूप स्थापित किया गया था, सितंबर २७, १९६१ को बंद या समाप्त कर दिया गया।"

सरकारी रिपोर्टों से ही जब वैज्ञानिक प्रगति का यह कच्चा चिट्ठा जाहिर है तो यह कौन इन्कार करेगा कि जो वैज्ञानिकता की मादक मदिरा हमें स्वराज्य प्राप्ति के दिन से अब तक पिलाई जाती रही है और जिसकी

मादकता में हम सतह के नीचे देख नहीं पा रहे थे, वह कब तक हमें मदहोश बनाए रख सकेगी? जिन पंचवर्षीय योजनाओं से रूस ने तरक्की करते हुए पिछले ३० वर्षों में संसार को चकित कर दिया, क्या उसी तरह हमारी ये पंचवर्षीय योजनाएँ, संसार को और हमें चकित कर सकेंगी? न तो युद्ध ही आरामपसंद लोगों से जीता जाता है और न समृद्धि ही ऐसे लोग प्राप्त कर सकते हैं। चर्चिल ने इंगलैण्डवासियों को युद्ध जीतने के लिए सदा ही खून-पसीना एक कर देने को आह्वान किया था। गांधीजी ने भी स्वातंत्र्य संग्राम के सेनानियों का इसी आदर्श पर नेतृत्व किया और मंजिल तक पहुँचा दिया। परंतु खेद कि मंजिल के निकट पहुँचते ही अच्छे से अच्छे सैनिक लुभा गये और अपने सेनानायक का उद्घोष सुनायी न पड़े ऐसा तेल कान में डालकर मंजिल पर अँगरेज मित्रों का हाथ पकड़ कर चढ़ गये; और सेनानायक की सीख को एकबारगी ही भुला बैठे। थोथे शब्दों से जोश टिकाये रखना तो बड़े से बड़े तानाशाह के लिए भी सदा संभव नहीं है। हमारी आज की सारी समृद्धि, हमारे त्याग और खून पसीने से नहीं, अपितु हर प्रकार की बिना माँगी और माँगी विदेशी सहायता से हो रही है। वहींके धन और उद्योगपतियों के बलबूते पर हमारे अधिकांश बड़े बड़े सरकारी एवं गैर-सरकारी उद्योग चल रहे हैं। क्या ऐसी नींव पर खड़ा हमारा औद्योगिक भवन समय असमय के झोंके खाकर खड़ा रह सकेगा?

हमारे वैज्ञानिकों का अवसरवादिता का यह मोह ही हमारा प्राणघाती हो जायेगा

वैज्ञानिक अनुसंधान के देश में हमारे सामने दो चित्र प्रस्तुत हो रहे हैं। यह निःसंदेह अत्यन्त उत्साहवर्धक है कि हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू तहे दिल से विज्ञान में श्रद्धाशील हैं और यह जानते हैं कि देश का विकास विज्ञान की शक्ति से किया जाना चाहिए। उन्हें वैज्ञानिकों का मान है और देश में 'वैज्ञानिक मिजाज' घर कर जाये, ऐसा वे दिल से चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक मंत्रालय भी प्रारम्भ से ही बना दिया जिसके मंत्री हैं माननीय हुमायूँन कबीर। वैज्ञानिक प्रगति के लिए छात्रवृत्तियाँ भी अधिकाधिक दी जा रही हैं। सुविधाएँ और अवसरों की प्रचुरतम वृद्धि कर दिये जाने पर भी यह निःसंदेह दुःख और खेद की ही बात है कि हमारे देश में बहुत ही कम वैज्ञानिक प्रगति हो पायी है कि जो उत्तम कही जा सके। पाश्चात्यों से हम भारतीय बौद्धिक स्तर पर किसी भी तरह हीन या न्यून भी नहीं हैं। फिर भी हमारी हीनता देखकर एक सूक्ष्मदर्शी मूल्यांकक ने कहा कि "भारत में विज्ञान और टेकनालोजी गहरी आन्तरिक निर्बलता की शिकार हैं। यदि समय रहते वे दूर नहीं हुईं तो इतना ही नहीं कि हम समुचित उन्नति नहीं कर पाएँगे, अपितु भावी सामाजिक एवम् आर्थिक प्रगति को भी हम खतरे में डाल देंगे। भारतीय अनुसंधान की कमजोरी है उसके गुण की और विश्वसनीयता (Lack of and dependability) की कमी। भारतीय और उनकी उपलब्धियाँ तभी पर्याप्त लाभकारक जब कि उनकी वैयक्तिक एवम् व्यावसायिक का मानक ऊँचा उठेगा। प्रखर स्पष्टवादी प्रो० ने एक स्थल पर लिखा है कि "हमारे देश में ऐसी प्रयोगशालाएँ हैं जो सार पदार्थ कुछ भी नहीं पैदा और विदेशी हुंडी प्रचुर मात्रा में खा जाती हैं। इतना करके भी वे नवयुवकों को प्रशिक्षण बहुत ही कोटि का देती हैं।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन युवक बहुत निराशा है जो कि बहुत अच्छा काम कर सकते परंतु निराश होकर इनमें से कई ने तो विदेश वहाँ ही काम करना स्वीकार कर लिया है, और कुछ अनुसंधान त्यागकर प्रशासनिक कार्य को स्वीकार लिया है।

प्रयोगशाला चाहे जैसी हो, पर उसमें तन्मय हो काम करने का वातावरण होना चाहिए। और यह वरण वहीं उपस्थित हो सकता है जहाँ ईमानदारी सत्य का मान किया जाता हो और परिणामों के की मुक्त आलोचना की जाती हो। यह भी याद वातावरण कैसा ही क्यों न हो, फिर भी तीसरी लोग प्रथम श्रेणी का वैज्ञानिक काम कर ही सकते हैं।

वैज्ञानिक कार्य अधिकांशतया अनेक और विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में होता है कि अधिकांश वैज्ञानिक लोग एकत्र होते हैं। काम करेंगी, वह सब उसके उच्चतम व्यक्ति पर ही तांश में निर्भर करता है। इसलिए इनका मुख्य न केवल प्रथम श्रेणी का वैज्ञानिक ही होना चाहिए ऐसा भी हो कि उसके संगी-साथी उसका सम्मान हृदय से करते हों। ऐसे व्यक्ति ही संस्था की बढ़ाते और बनाते हैं। सर्वत्र हमें ऐसे प्रथम के संचालक प्राप्त हो गये हों, यह नहीं कहा जा ऐसे प्रथम श्रेणी के संचालक पाने में हम बहुत ही भाग्यशाली हुए हैं। कहीं-कहीं तो वैज्ञानिक क्षेत्र में नगण्य जैसे लोग संचालक पद अपनी चतुर प्राप्त करने में सफल हो गये हैं। यह बात सच है कि चुनाव चुनाव-समितियों द्वारा ही हुआ है। परंतु के सदस्य भी तो अवसरवादियों द्वारा प्रभावित सकते हैं। इन पदों पर मिलनेवाला अधिक वेतन इनको प्राप्त अधिकार दोनों ही ने धनलोलुपी अवसरवादी को इनकी ओर आकर्षित कर और यही हमारी विपदा का मूल कारण है। ऐसी प्रतिक्रिया शृंखला (a chain reaction) दी है कि वैज्ञानिक अनुसंधान, श्री सी० पी० P. Snow) के कथनानुसार, एक वैयक्तिक का, कमरे में बैठकर खेलनेवाला खेल हो गया है

ierarchial politics, committee politics, corridor olitics and chamber politics सभी दाँव खुल कर जाते हैं।

ऐसे व्यक्ति के संचालक बन जाने पर वह अपने धिकार का प्रभाव दिखाने का कोई भी अवसर हाथ नहीं जाने देता। और इसी कारण वह अंतर्राष्ट्रीय तिप्राप्त वैज्ञानिक भी शीघ्र बन बैठता है। कहा जाता कि ऐसे ही वैज्ञानिकों ने देश में अधिकांश गद्दियाँ ला ली हैं। परंतु इनकी असलियत तो इने-गिने निकों ही को ज्ञात है। जो अनुसंधानक हैं उन्हें ो कोई पूछता है और न उनकी बात को कोई ना ही है, हालाँ कि ढोल की पोल उनके सामने दी से जल्दी खुल जाती है।

ऐसे व्यक्ति को ख्याति कायम रखने के लिए कुछ छ तो दिखाना ही पड़ता है। चूँकि वह स्वयम् कोई क कर्तब नहीं बता सकता, इसलिए वह अपने मात- द्वारा कुछ काम, दूर का प्रलोभन बताकर, कराता इससे यथार्थ अनुसधानक का ज्योंही भ्रम टूटा कि वह ों की फौज में भरती हो जाता है। परंतु जो अपने र-सा ही अवसरवादी होता है, उसकी चाँदी बन ती है। दोनों मिलकर अकरणीय कृत्य करने को भी हो जाते हैं और ऐसा कुछ पैदा कर ही देते हैं का विज्ञापन लाभ के लिए किया जा सके। सी० डी० टन लिखता है कि "जब वैज्ञानिक-आलोचना के नहीं रह जाते हैं, तो ऐसे अवसरवादी एक रात में ही महापंडित (Charlaton) बन जाते हैं। स्वामी ज्ञान निश्चय ही नौकर में कपट-जाल का साहस कर देता है।"

ह सनातन नियम है कि जहाँ मध्यम श्रेणी का सर्वोपरि अधिकारी बन जाता है तो वह प्रथम क सहायक से भय खाता है। और तब जो स्थिति ती है उसका चित्र प्रो० पार्किन्सन ने अपनी प्रथम पुस्तक न्सन्स ला' में इन शब्दों में खींचा है: "किसी ठान का अध्यक्ष यदि द्वितीय श्रेणी का हो तो वह चाहता है कि उसके सहायक सब तीसरी श्रेणी के वे सहायक भी यही चाहते हैं कि उनके सभी मातहत श्रेणी के हों। फल यह होता है कि उस प्रतिष्ठान शीघ्र ही मूर्खता में बदाबदी हो जाती है और सभी ने को अधिक मस्तिष्क-विहीन प्रमाणित करने लगते " ऐसे प्रतिष्ठान में वस्तुतः योग्य एवम् प्रथम श्रेणी व्यक्ति जो अनुसंधान में दिलचस्पी रखते हों, आने दिये जाते। भूले-भटके जो पहुँच जाते हैं तो वे या तो ज्ञानिक काम सँभालकर अपने वैज्ञानिक जीवन की या कर लेते हैं, अथवा देश त्याग अमरीका जैसे देश में के लिए जा बसते हैं जहाँ ऐसे वैज्ञानिकों की माँग और जहाँ उन्हें उचित सम्मान भी प्राप्त होता है।

ऐसा अवसरवादी वैज्ञानिक सदा ही विभाग के त्रियों और सचिवों को जो विज्ञान की बातों को या तो जानते ही नहीं हैं अथवा उनका बहुत सामान्य ज्ञान रखते हैं, एवम् अच्छे माल और कूड़ा-करकट में विवेक नहीं कर सकते हैं, येन केन प्रकारेण प्रभावित करता रहता है। फल यह होता है कि प्रयोगशाला में किया गया अनुसंधान का लक्ष्य किसी वैज्ञानिक समस्या का हल खोजने का नहीं अपितु सत्तारूढ़ राजनयिक और उच्चाधिकारी को भुलावे में डालना और प्रभावित करना ही हो जाता है। ये अवैज्ञानिक लोग इतना तो सहज ही समझते हैं कि १५ से २० अधिक होता है और इसीलिए वैज्ञानिक उपक्रमी अपनी तथाकथित वैज्ञानिक उपज को अंकों का रूप देकर मंत्रियों और सचिवों को प्रभावित करने के लिए कहता है कि उसने कितने 'वैज्ञानिक प्रकाशन' कर दिये हैं, चाहे उन प्रकाशनों में अन्यत्र किये अनुसंधान का वेहूदा पुनरावर्तन ही किया गया हो और तथ्य की बात शायद ही कोई हो। ऐसे निबंध तैयार करना यथार्थ अनुसंधान करने से कहीं अधिक सरल है। वह व्यापारियों से संपर्क साधकर अपने सम्पादकत्व में प्रकाशित की जानेवाली वैज्ञानिक पत्रिका के लिए उनके खर्च से ऐसा वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करवाता है। इस प्रकार की कई वैज्ञानिक पत्रिकाएँ देश में आज प्रकाशित हो रही हैं जिनमें भरा वैज्ञानिक कूड़ा (Garbage) अनुसंधान के पथ पर कदम रखनेवाले वैज्ञानिक नवयुवक को भ्रष्ट करनेवाला होता है। आश्चर्य तो यह है कि जिन्हें ऐसे प्रयत्नों का दमन करना चाहिए, वे ही उन्हें प्रोत्साहन दे रहे हैं। ऐसा न हो तो सरकार को सलाहकार समितियों (एडवाइजरी कमीटीज) द्वारा वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों के कर्तृत्व का मूल्यांकन कराना ही क्यों आवश्यक है? ये समितियाँ महिमान्वित वैज्ञानिक व्यापारिक संघ (Trade Union) ही तो हैं जो किसी का भंडाफोड़ नहीं होने देने के लिए ही बनी होती हैं। इन समितियों द्वारा अवसरवादी (Careerist) वैज्ञानिक इस चतुराई से सब कुछ इस प्रकार साध लेता है कि वह उत्कृष्ट प्रशासक का गौरव भी सहज ही प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न इसलिए यह है कि इसका इलाज क्या हो? पहला इलाज यही है कि इन वैज्ञानिक संस्थानों के शीर्ष को सुधार दिया जाये तो शेष स्वतः सुधर जायेगा। दूसरी बात यह है कि इनके शीर्षस्थान की ऐसे शिकारियों से रक्षा सावधानी से की जाय कि जिन्होंने इन्हें ध्वंस को, विनाश को, पहुँचाया है। तीसरी बात यह है कि गुणी की पहचान की जाय और उसका उचित सम्मान किया जाय और इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय कि चितारहित निर्वाह उसका स्वतः होता रहे। वैज्ञानिकों में ऊँच नीच जाति-भेद जो प्रशासकों द्वारा खड़ा कर दिया गया है, वह एकदम दूर कर दिया जाय। सर्वोपरि बात यह है कि हाथ से काम करनेवाले और मस्तिष्क से सोचने चिंतन करने वालों का परस्पर सम्पर्क बढ़े, इसलिए मातृभाषाओं द्वारा वैज्ञानिक प्रशिक्षण देने में उस समय की प्रतीक्षा नहीं की जाय जब तक कि सरकार की पसंद की पारिभाषिक

शब्दावली तैयार न हो जाय। यह घोड़े के सामने गाड़ी रखने जैसा प्रयत्न है। ऐसी गाड़ी धकेलकर मंजिल तक पहुँचने से पहले टूट भी जा सकती है। परन्तु यदि घोड़ा ठीक जगह जोता जाय तो वह गाड़ी को खींचकर शीघ्रातिशीघ्र मंजिल तक पहुँचा देगा, इसमें शंका को बहुत ही कम स्थान है। शिक्षा प्रान्तीय विषय है और प्रत्येक प्रान्त को अपने ही ढंग से शीघ्रातिशीघ्र सभी तरह से प्रगति करनी है। केन्द्र सरकार की नीति से अपने को बाँधना प्रान्त की प्रगति के पथ को अवरुद्ध करना है। प्रान्त की अपनी भी नौकरशाही है जिसे उसे प्रान्तीय भाषाओं में प्रशिक्षित करने से कौन रोक सकता है? प्राथमिकता मात्र ही प्रान्त को देना है। हमने स्वतंत्रता प्राप्ति के पंद्रह वर्ष बिता दिये। मातृभाषा द्वारा उच्च से उच्च शिक्षा देने और नवयुवक-नवयुवतियों में देश सेवा की भावना जागृत करने में हमने अब तक क्या किया है? हम बाहरी शान-शौकत का त्याग कर साधारण को साथ लेकर ही प्रान्त को समृद्धिशील सकते हैं। गांधी के इंगित पथ से यदि हम भ्रष्ट जाते तो हमारी दशा आज कुछ और ही होती। प्रजा सरकारों के मंत्रियों को मुँह पर ही कटी-जली सुनाती जैसी कि आज सुना रही है। कांग्रेस के से पंद्रह वर्ष से शासन किया जा रहा है। जनता असंतोष बढ़ रहा है, यह भी हमें नहीं भूलना चाहि समय को पहचान कर अपना रवैया सुधारें; देश का और हमारा कल्याण है।

इस लेख की प्रेरणा और लिखने में सहायता Times of India बम्बई के Sense and Nonsense Scientific Research और 'Careerism in Scien लेखों से मिली है। अतः उनके लेखकों व प्रकाशक का ही मैं आभार मानता हूँ।

लज्जा-लावण्य

श्री राजेशदयालु "राजेश"

दृग बोलैं सकुचाय कैं, अँग बोलैं अकुलाय।
मुख-मग प्रगटि मनोरथहिं रही न गिरा गिराय।।

लाज चोरि चिन्तति हती, छीनि न लीनी जाय।
मधुर गैल मैं आपनी मूरति गयी दिखाय।।

दृगनि बिधे दृग-बान तुव, हियैं जरै नेहागि।
पायनि लाज-जँजीर है, कितहुँ न पैयै भागि।।

मेरो हियो चुराय, लगे चुरावन आँखि तुम।
कत राखै न दुराय, चोर आपने साधनहिं?

सारी रैंन रमे अनत, अति रिस मैं ही आज।
पै कछु कहि पायी न लखि लालनीय हरि-लाज।।

वै सब त्यागी कहत हैं, मोहिं लगति है लाज।
हौं तौ संसारै तज्यौ, उन त्यागे रघुराज!

हौं अघ करतै जात हौं, तोसौं करुनै होहि।
जानै कैसी लाज है, मोहि लगै ना तोहि।।

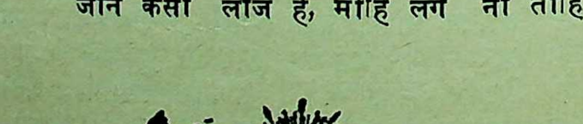

हाफ़िज़ की गर्वोक्तियाँ

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

है और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे।
हते हैं कि ग़ालिब का है अन्दाज़ेबयाँ और॥

र्वोक्ति कहना कवियों का स्वभाव है परन्तु ग़ालिब कलाम में जो चुलबुलाहट है उससे उनकी गर्वो- भी खाली नहीं। फ़र्माते हैं कि संसार में मेरे जैसे कवि और भी बहुत से हैं परन्तु लोग कहते हैं कि के कहने का ढंग ही कुछ अनूठा है।

नी अनूठेपन पर हाफ़िज़ ने भी गर्व किया है——

हाफ़िज़ माजराए इश्क़बाज़ी।
नो गोयद कसे बरोज़े अहसन॥

—हाफ़िज़ की तरह प्रेम की कहानी कोई अच्छे ढंग कहता।

फ़िज़ की गर्वोक्तियों में न केवल ग़ालिब की नूठापन है वल्कि उनकी संख्या भी बहुत अधिक लिब के सारे दीवान में मुश्किल से आठ नौ गर्वो- होंगी। हाफ़िज़ के यहाँ कम से कम दो सौ, ढाई सौ, एक फड़कती हुई। शायद ही दुनिया के किसी वि ने इतनी अधिक गर्वोक्तियाँ कही हों।

रे हाफ़िज़रा के यकसर मदह अहसाने शुमास्त।
र कुजा बशुनीदा अन्दाज़े लुत्फ तहसीं करदा अन्द॥

नूक़ को सम्बोधन करते हुए हाफ़िज़ कहते हैं काव्य जिसमें तुम्हारे अनुग्रह की प्रशंसा के सिवाय कुछ नहीं है जिसने जहाँ भी सुना है वहीं फड़क है और प्रशंसा करने लगा है। यही नहीं

हाफ़िज़ हदीसे इश्क़ तो अज़ बसके दिलकशस्त।
नुनीद कस के अज़ सर रग़बत ज़बर न कर्द॥

—ऐ हाफ़िज़ तू जो इश्क़ की बातें कहता है वे ऐसी य हैं कि जिसने भी तेरे शेर सुने हैं उन्हें कण्ठाग्र का प्रयत्न किया है। अच्छे काव्य की यह बहुत बड़ी ान है कि लोग उसे कण्ठाग्र करने का प्रयत्न ते हैं।

सुबहदम अज़ अर्श मी आमद ख़रोशे बांज़ गुफ्त।
क़ुदेस्यां गोये के शेरे हाफ़िज़ अज़बर मीकुनन्द॥

सुबह ही सुबह आकाश से शोरोगुल की आवाज़ आ ही है मानो कि फ़रिश्ते हाफ़िज़ के काव्य को कण्ठाग्र र रहे हों।

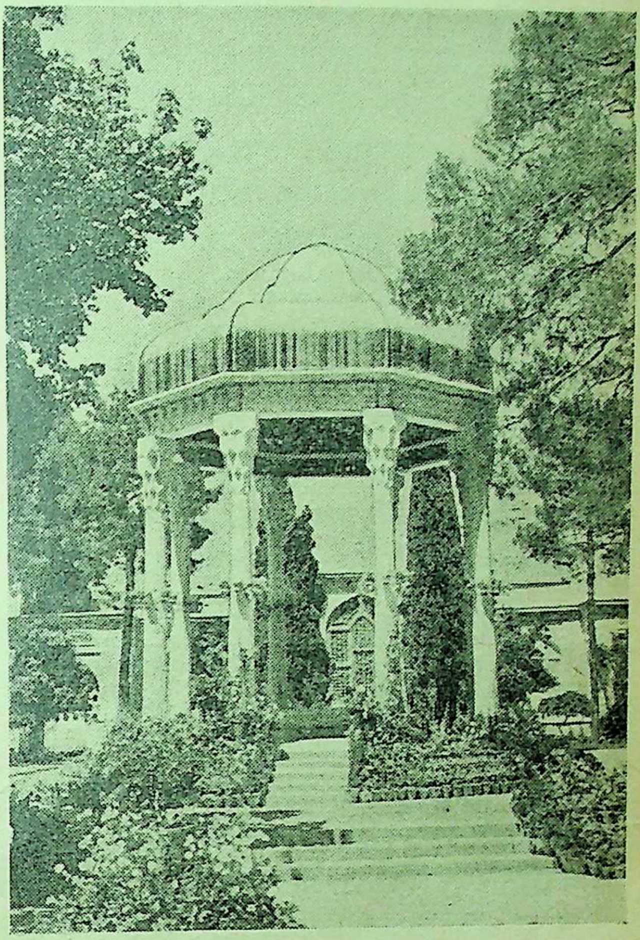

शीराज में हाफिज का मकबरा।
(ईरान सरकार ने इसका हाल ही में जीर्णोद्धार किया है।)

संगीत सभा को सम्बोधन करते हुए हाफ़िज़ कहते हैं

सरोदे मजलिसत अकनूँ फ़लक बरक़्स आवरद।
के शेरे हाफ़िज़े शीरीं सुख़न तराना अस्त॥

——तेरी यह महफ़िल ज़रूर आस्मान को नचा कर छोड़ेगी क्योंकि अब इसमें मधुरभाषी हाफ़िज़ की ग़ज़लें शुरू हो गई हैं।

गर मुतरिब हरीफ़ाँ ईं पारसी बख़्वानद।
दर रक्स हाल तारद पीरान पारसा रा॥

——यदि किसी संगीत प्रतियोगिता में गवैये मेरा फ़ारसी काव्य गाने लगें तो निःसन्देह ये बूढ़े-बूढ़े तपस्वी मगन होकर नाचने लगें। (पारसी——जिस भाषा को हम फ़ारसी कहते हैं उसका शुद्ध उच्चारण पारसी है।

[illegible]

अरबी में प की ध्वनि नहीं है इसलिये अरबों ने इसका उच्चारण बिगाड़कर फ़ारसी कर दिया जिसे ईरानी संस्कृति के अभिमानी हाफ़िज़ जैसे कवियों ने स्वीकार नहीं किया। पारसा = शुद्ध चरित, तपस्वी।)

ज़ शौक़े सर बदर आरन्द माहियान अज़ आब।
अगर सफ़ीनये हाफ़िज़ रसद बदरियाए॥

—हाफ़िज़ का काव्य यदि नदी किनारे गाया जाय तो मछलियाँ शौक़ के मारे पानी से सर बाहर निकाल लें।

हाफ़िज़ अज़ आबे ज़िन्दगी शेरे तो दाद शरबतम्।
तर्क तबीब कुन बया नुस्ख़ा शरबतम् बख्वाँ॥

—हाफ़िज़, तेरे काव्य की शरबत जैसी घूंट जीवन के लिये अमृत रूप है। आओ, हकीम की चिकित्सा छोड़कर इस शरबत को पियें।

हाफ़िज़ च तर्फ़े शाख़े नबातीस्त कल्के तो।
कश मेवा दिलपज़ीर तर अज़ शहदो शकरस्त॥

—हाफ़िज़, तेरी लेखनी किस शाखे नबात (वृक्ष की टहनी, मिसरी की डली, हाफ़िज़ की एक प्रेयसि) से बनी है कि उसका फल शहत और शकर से भी मीठा है।

शाखे नबात शीराज़ की एक परम सुन्दरी, विदुषी गणिका थी। हाफ़िज़ उस पर लट्टू थे। हाफ़िज़ का उससे कोई शारीरिक सम्बन्ध नहीं था। उनका प्रेम केवल निष्काम सौन्दर्योपासना तक सीमित था। हाफ़िज़ ने जगह-जगह उसे अपने काव्य में याद किया है और कहा है कि मेरे काव्य का प्रेरणा स्रोत* वही थी। आज भी जब हाफ़िज़ के भक्त उनके दीवान से फ़ालदेखने बैठते हैं तो आवश्यक उपचार करने के पश्चात् यह कहना नहीं भूलते, "ख्वाजा हाफ़िज़, तुम्हें शाखे नबात की क़सम, जो कुछ पूछा जाय उसका ठीक ठीक जवाब देना।" शम्सुलउलेमा मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद इसे मुसलमानों की जहालत बतलाते हैं।

हिजाबे ज़ुल्मत वाज़ाँ बस्ते आब ख़िज्र के गश्त।
ज़ नज़्मे हाफ़िज़ ओईं तबे हमचू आब ख़िजल॥

हाफ़िज़ के काव्य को देखकर अमृत होकर संसार से अपना मुँह छिपाकर भाग गया।

ग़ालिब ने उर्दू के श्रेष्ठतम कवियों से अ श्रेष्ठ ठहराते हुए कहा है—

रेख्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था॥

—ग़ालिब साहब, उर्दू शायरी का सेहरा आप ही के सिर नहीं है। आपसे पहिले एक मीर के कवि भी हो गये हैं।

मीर उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। मीर को कि 'दीवान कम अज़ गुलशने कश्मीर नहीं' सभी कवियों ने अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं। ग़ालिब भी। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के सम्पादकों ने भी मीर को श्रद्धाञ्जलि अर्पित हुए लिखा है, "Mir, however, is primarily a poet, unsurpassed in the beautiful and portrayal of all the situations of love as manifests itsef in Indian Moslem society"—मीर मूलतः श्रृंगार रस के कवि हैं। भारतीय समाज में प्रेम जितने भी विविध रूप लेता है उन जितना सुन्दर और मार्मिक चित्रण मीर ने किया वह अतुलनीय है।—ग़ालिब ने अपनी गर्वोक्ति में को मीर से भी श्रेष्ठ ठहराया है और मीर के प्रति प्रकार की अश्रद्धा भी प्रकट नहीं की। इसी हाफ़िज़ अपने को शेख सादी से श्रेष्ठ ठहराते कहते हैं—

उस्तादे ग़ज़ल सादीस्त पेश हमा कस उमा।
दारद सुख़न हाफ़िज़ तर्ज़े सुख़न ख़ाजो॥

—यद्यपि लोग सादी को ग़ज़ल का उस्ताद हैं परन्तु फिर भी हाफ़िज़ ने अपने काव्य में ख्वाजो पद्धति को स्वीकार किया है—ऐसा कहकर हाफ़िज़ ख्वाजो को शेखसादी से श्रेष्ठ ठहराया है, "लोग कुछ कहते हों हम तो ख्वाजो को ही पसन्द करते हैं" और ख्वाजो की दुर्गति कर डाली है—

च जाय गुफ़्ता ख़ाजो ओ शेरे सुलमानस्त।
के शेरे हाफ़िज़े शीराज़ ब ज़ शेरे ज़हीर॥

—ख्वाजो और सुलेमान की तो बात ही क्या, हाफ़ि शीराज़ी के शेर ज़हीर के शेर से बढ़कर हैं।

---

*आँ के दर तर्ज़े ग़ज़ल नुक्ता ब हाफ़िज़ आमोख़्त।
यार शीरीं सुख़न नादरा गुफ़्तारे मनस्त॥

—वह कि जिसने ग़ज़ल की बारीकियाँ हाफ़िज़ को सिखलाईं मेरा मधुर भाषी और अनोखी बातें करनेवाला यार है।

१९६३

मतलब यह कि शेख़ सादी से ख्वाजो का स्थान ऊँचा और ख्वाजो व सुलेमान से ज़हीर बढ़कर हैं और ज़हीर वे हाफ़िज़ शीराज़ी हैं। उन शेख़ सादी को कहीं भी न छोड़ा जिनके बारे में प्रसिद्ध है——

दर शेर स कस पयम्बरानन्द।
हर चन्द के 'ला नबी बादी ॥
अबयातो क़सीदा ओ ग़ज़ल रा।
फ़िरदौसी व अनवरी व सादी ॥

——यद्यपि इस्लाम का यह मान्य सिद्धान्त है कि द साहब के बाद कोई पैग़म्बर नहीं होगा फिर काव्य के क्षेत्र में तो तीन पैग़म्बर हो ही गये। कथन में फ़िरदौसी, प्रशस्ति में अनवरी और ग़ज़ल में सादी।

वस्तुतः हाफ़िज़ ने जो शेख़ सादी की भद्द की है निन्दनीय है, वैसे यह बात सर्वसम्मत है कि हाफ़िज़ सादी से कहीं बढ़ चढ़कर हैं। शेख़ सादी को काव्य का पैग़म्बर (ईशदूत) ठहरानेवाली इस लोकोक्ति रे में भी ऐसा प्रसिद्ध है कि जब यह लोकोक्ति पढ़ी तो हाफ़िज़ के भक्तों का चेहरा मुरझा गया और ने रोषपूर्वक पूछा, "और हाफ़िज़ ?" उत्तर मिला, हाफ़िज़ ! पैग़म्बरे सुख़न नहीं ख़ुदाये सुख़न है।" का फ़ारसी साहित्य में क्या स्थान है, यह स्वतन्त्र स्वतन्त्र पोथे का विषय है। यहाँ केवल समर्थ समा- मीर वलीउल्ला की सम्मति उद्धृत कर देना ही होगा। मीर साहब फ़रमाते हैं, "सादी पैग़म्बरे दरीं मानी अस्त के अवाव्वलीन शायरे ईरानी अस्त दर ग़ज़ल अहसासाते लतीफ़ रा बाहुस्ने तरकीबओ सते ज़बाँ दर अलफ़ाज़े सामआ नवाज़ बयान कर्दा ओ फ़न ग़ज़लगोई रा ब पाये बुलन्द रसानीदा वले तम नबूते नीस्त। ख्वाजा हाफ़िज़ ईं फ़नेशरीयत ब ओज कमाल रसानीद ओ ग़ज़ले ख्वाजा अज़ ग़ज़ल- शेख़ ब दर्जा बेहतरो अफ़ज़ल अस्त।"——सादी को इसलिए पैग़म्बरे सुख़न कहा जाता है कि वे ईरान के पहिले कवि हैं जिन्होंने मधुर भाव-व्यञ्जना, सुन्दर शैली, भाषा प्रवाह और उपयुक्त शब्दों के चुनाव द्वारा ग़ज़ल को ऊँचा उठाया है। काव्य की पैग़म्बरी उन्हीं पर अन्त नहीं हो गयी। ख्वाजा हाफ़िज़ ने इस कला में जो उत्कर्ष प्राप्त किया है उसके कारण उनकी ग़ज़लें शेख़ सादी की ग़ज़लों से बढ़-चढ़कर हैं।

हाफ़िज़ ने जो बहुत अधिक गर्वोक्तियाँ कही हैं उसका कारण उनका अहंकार या दूसरे कवियों की विनयशीलता नहीं है। वास्तव में अपने काव्य द्वारा जिस धन और यश की प्राप्ति हाफ़िज़ को अपने जीवन काल में ही हो गयी वह हरेक कवि को नसीब नहीं। हाफ़िज़ ने जो कुछ कहा है वह यथार्थ कहा है। ग़ालिब किस मुँह से गर्वोक्ति कहते ? विदेशों का तो कहना ही क्या, स्वयं उनके जीवन-काल में उनके देश में ही उनकी पूरी क़द्र न हुई और दुःख के साथ उन्हें कहना पड़ा

सौ पुश्त से है पेशये आबा सिपहगरी।
कुछ शायरी जरीये इज्जत नहीं मुझे ॥
क्या कम है यह शर्फ़ के ज़फ़र का गुलाम हूँ।
माना कि जा ओ मनसब ओ सरवत नहीं मुझे ॥

——'सौ पीढ़ियों से मेरे वंश के लोग सैनिक रहते चले आये हैं और योद्धाओं का सम्मान कवियों से अधिक होता है। इसीलिए समझ लेना चाहिए कि मैंने किसी मान प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए कविताएँ लिखना प्रारम्भ नहीं किया। मेरे लिए तो यही बहुत है कि मैं बहादुरशाह 'ज़फ़र' का छोटा सा सेवक हूँ, भले ही मुझे धन और पद की प्राप्ति न हुई हो।' उधर हाफ़िज़ का यह हाल था कि न केवल शीराज़ बल्कि दुनिया भर के बादशाह जहाँ भी फ़ारसी भाषा समझी जाती थी, हाफ़िज़ के पीछे पागल थे। तभी तो हाफ़िज़ सीना तानकर कहते हैं——

इराक़ो पारस गिरफ़्ती ब शेरे ख़ुद हाफ़िज़।
बया के नौबते बग़दादो वक़्ते तबरेजस्त ॥

——ऐ हाफ़िज़ तूने अपने काव्य से इराक़ व ईरान को ले लिया, आ कि अब बग़दाद और तबरेज़ को विजय करने का समय आ गया।

हाफ़िज़ हदीसे सहर फ़रेब ख़ुशत रसीद।
ता हद्द चीन ओ शामो ब इक़साये रूमो रै ॥

——ए हाफ़िज़ तेरी मनोहर और जादूभरी वाणी पहुँची है चीन और सीरिया, रोम व रै* की सीमा तक।

फ़गन्द जमजमये इश्क़ दर हज्जाज़ो इराक़।
नवाये बांग ग़ज़लहाये हाफ़िज़े शीराज़ ॥

---

*पार्थिया की राजधानी, इसी नाम का एक नगर ख़ुरासान म भी है।

हज्जाज और इराक़ में इश्क़ की हलचल मचा दी हाफ़िज़ शीराज़ी की ग़ज़लों की आवाज़ ने।

मुसलमानों के पवित्रतम तीर्थस्थल मक्का और मदीना हज्जाज में हैं और शिया सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ कर्बला इराक़ में है। इन धर्म स्थानों में भी जब हाफ़िज़ की इश्क़िया ग़ज़लें पढ़ी जाने लगीं तो वहाँ हलचल मचनी स्वाभाविक ही थी। शायद हाफ़िज़ के इसी शेर पर आर्य-समाजियों ने अपना यह शेर गढ़ा होगा--

आयेंगे ख़त अरब से उनमें लिखा यह होगा।
गुरुकुल के ब्रह्मचारी हलचल मचा रहे हैं।

हाफ़िज़ ने अपने काव्य के दो प्रधान उद्देश्य* बतलाये हैं रुपया कमाना और माशूक़ों को रिझाना। और वे गर्व पूर्वक कहते हैं कि वे अपने दोनों उद्देश्यों में सफल हुए, जहाँ ग़ालिब झींकते-झींकते मर गये--

बस कि लेता हूँ हर महीने क़र्ज़।
और रहती है सूद की तकरार॥
आपका बन्दा और फिरूँ नंगा।
आपका नौकर और खाऊँ उधार॥...
जिस पास रोज़ा खोल के खाने को कुछ न हो।
रोज़ा अगर न खाये तो नाचार क्या करे॥

वहाँ हाफ़िज़ सन्तोष की साँस लेते हुए कहते हैं--

बहमने दौलते मंसूर शाही।
इल्म शुद हाफ़िज़ अन्दर नज़्मे अशआर॥

--बादशाह मंसूर शाह की लक्ष्मी के अनुग्रह से हाफ़िज़ काव्य और कविता में प्रसिद्ध हो गया है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि ग़ालिब अपने काव्य द्वारा माशूक़ों को भी रिझाने में असमर्थ रहे क्योंकि यदि उनका काव्य ही उनके इस उद्देश्य के लिए यथेष्ट होता तो उन्हें चित्रकारी सीखने की क्या आवश्यकता थी?

सीखे हैं महरुख़ों के लिये हम मस्सवरी।
तक़रीब कुछ तो बहरे मुलाक़ात चाहिये॥

--चाँद जैसे चेहरेवालों के लिए ही हमने चित्र की कला सीखी है क्योंकि उनसे मिलने-जुलने और पास आने-जाने के लिए कुछ तो बहाना चाहिए।

हाफ़िज़ को इस प्रकार की कोई कठिनाई अनुभव हुई--

हाफ़िज़ तो ईं दुआ ज़ के आमोख़्ती के यार।
तावीज़ कर्द शेर तिरा ओ ब ज़र गिरफ़्त॥

--हाफ़िज़ तुझे यह किसका आशीर्वाद प्राप्त कि माशूक़ ने तेरे शेर का तावीज़ बनाया और उसे में मढ़ाया।

जब माशूक़ भी हाफ़िज़ के शेरों का तावीज़ बनाकर पहिनने लगे तो फिर उनके काव्य से दुनिया में और क्या चीज़ हो सकती है? बस, ही स्थान पर जाकर हाफ़िज़ का आत्मविश्वास पड़ता है--

अगर्चे हस्त शीरीं शेरे हाफ़िज़।
चू लाल ख़ुसरुवे ख़ूबाँ न बाशद॥

--यद्यपि हाफ़िज़ का शेर बहुत मधुर है, परन्तु मिठास माशूक़ के अधर रस में है वह उसमें कहाँ?

यह जानते हुए भी कि माशूक़ का अधर रस ग़ज़लों से कहीं अधिक मीठा है, हाफ़िज़ आशिक़ाना हत से यह भेद की बात माशूक़ के सामने प्रकट नहीं उसके सामने तो उसी तरह अकड़ते हैं जैसा हर सौभाग्यशाली आशिक़ को अकड़ना चाहिए--

सुख़न अन्दर दहाने दोस्त गौहर।
वलेकिन गुफ़्तये हाफ़िज़ अज़ाँ ब॥

--जो बात कि यार के मुख से निकलती है है, परन्तु हाफ़िज़ की वाणी उससे भी बढ़कर है।

---

*दानी मुराद हाफ़िज़ अज़ीं आहो नाला चीस्त।
अज़ तो करिश्मा ओ ज़ ख़ुसरुबे इनायती॥

--प्रिय, तू जानता है कि हाफ़िज़ के दर्द भरे काव्य का क्या प्रयोजन है। यह है कि तू नाज़ दिखलाये और बादशाह अनुग्रह करे।

राजस्थान में शोध-कार्य करनेवाली प्रमुख संस्थाएँ

प्रो० नरेन्द्र भानावत एम० ए०

स्थान कला, साहित्य और संस्कृति की रंगभूमि ही हैं वह वीरता, बलिदान और समर्पण का रण-स्थल जहाँ इसने हिन्दी के आदिकाल को अपनी वीर-ों का दूध पिला-पिला कर पुष्ट किया है वहाँ भावों का आलोक लुटाकर उसके हृदय को ी। 'राजस्थान माता की मूर्ति यदि बनाई जाय के एक हाथ में तलवार और दूसरे में वीणा देना ा, क्योंकि यहाँका कलाकार तलवार और तूलिका धनी रहा है तथा यहाँकी माटी वीरप्रसवा। हित्य-रचना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। राजस्थानी आचार्यों, भट्टारकों, साधुओं एवं ने प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी एवं राज-ें लाखों ग्रन्थों की रचना की। प्रत्येक रियासत कीय संग्रहालयों एवं प्रत्येक गाँव-नगर के मन्दिरों भण्डारों) में यह प्राणजीवी साहित्य संग्रहीत ही लोक-संस्कृति को अभिव्यक्त करनेवाला ी साहित्य लोक-कंठ में जीवित है। साहित्य समृद्ध परम्परा भारत के अन्य किसी प्रान्त मिलती।

चीन साहित्य की इस अमूल्य सम्पत्ति की ओर पहले तक विद्वानों का ध्यान नहीं था। १९वीं प्रारंभ में ईसाई-पादरियों ने धर्म-प्रचार करने के राजस्थानी भाषा की बोलियों में अपने धर्म-बिल के अनुवाद कराये तथा मैकेलिस्टर, ग्रियर्सन, ी आदि पाश्चात्य विद्वानों ने यहाँके महत्त्वपूर्ण प्रकाश में लाकर शोध-क्षेत्र में नई दिशा निर्धारित से राजस्थानी विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। ूल रूप से राजस्थान में जो साहित्य सम्बन्धी ार्य हो रहा है उसके दो रूप हैं :——

(१) **उपाधि-साक्षेप शोध**——यह कार्य राजस्थान विद्यालय द्वारा सम्पन्न हो रहा है। शोध-कर्त्ताओं विश्वविद्यालय पी-एच० डी० की उपाधि प्रदत्त ा है।

(२) **उपाधि-निरपेक्ष शोध**——यह कार्य विभिन्न ओं के माध्यम से सम्पन्न हो रहा है। कई विद्वान् कार्य में लगे हुए हैं। इस क्षेत्र में कार्य करनेवाली प्रमुख राजस्थानी संस्थाओं का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है——

(१) **साहित्य संस्थान, उदयपुर**——इसकी स्थापना जनार्दन राय नागर के अथक प्रयत्नों से संवत् १९९८ में हुई। इसका मुख्य कार्य राजस्थान के प्राचीन साहित्य, लोकसाहित्य एवं आदिवासी साहित्य के संग्रह, संकलन, सम्पादन एवं प्रकाशन का है। संस्थान ने अब तक लगभग २० हजार गीतों का संग्रह किया है। मेवाड़ी-मालवी कहावतों का संकलन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्थान के तत्त्वावधान में त्रैमासिक 'शोध-पत्रिका' का विगत १५ वर्षों से प्रकाशन हो रहा है। इस पत्रिका द्वारा अनेक प्राचीन कवि, कई महत्त्वपूर्ण अलभ्य ग्रंथ, शिलालेख एवं चित्र विद्वानों एवं इतिहासकारों के सामने आये हैं। साहित्यिक आसनों की परम्परा भी संस्थान की अपनी उपज है जिसके अन्तर्गत 'सूर्यमल्ल', 'ओझा', 'प्रेमचन्द' आदि आसनों से डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, अगरचन्द नाहटा आदि विद्वान् अभिभाषण दे चुके हैं।

महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन-प्रकाशन कर इस संस्थान ने हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है। कविराव मोहनसिंह के सम्पादकत्व में पृथ्वीराज रासो के ४ भाग (हिन्दी अर्थ सहित) प्रकाशित हो चुके हैं। दयालदास विरचित 'राणा रासो' मुद्रणाधीन है तथा 'पृथ्वीराज रासो-कोष' कविरावजी द्वारा तैयार किया जा रहा है। गीतों के महत्त्वपूर्ण संग्रह (प्राचीन राजस्थानी गीत भाग १ से १२ तथा राजस्थानी भीलों के लोकगीत भाग १ से ३) शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग १ से ४' का प्रकाशन संदर्भ-ग्रंथों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ओझा निबन्ध संग्रह, पृथ्वीराज रासो की विवेचना, राजस्थानी वार्ता भाग १ से ५, प्राचीन राजस्थानी लोकगीत भाग १ से ६, राजस्थानी भीलों की कहावतें, राजस्थानी दोहावली, राजस्थानी भाषा, पूर्व-आधुनिक राजस्थान, आदि इसके अन्य उल्लेखनीय प्रकाशन हैं।

(२) **सादूल राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट, बीकानेर**——बीकानेर रियासत के महाराजा स्वर्गीय सादूल

सिंहजी के नाम से स्थापित यह संस्था गत १०-१२ वर्षों से राजस्थानी साहित्य के संग्रह एवं प्रकाशन में लगी हुई है। इसके अध्यक्ष श्री अगरचन्द नाहटा राजस्थानी के प्राचीन साहित्य के अथक अन्वेषक हैं। उन्हींके पथ-प्रदर्शन में यह संस्था निरन्तर आगे बढ़ती रही है। इन्स्टीटयूट की ओर से त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'राजस्थान-भारती' का प्रकाशन होता है। इसके दो विशेषांक--डॉ० एल० पी० टैसिटोरी विशेषांक और महाराज पृथ्वीराज राठौड़ जयन्ती विशेषांक--शोधकर्त्ता-विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करते हैं। सन् ५६ में इन्स्टीटयूट की ओर से इटली-निवासी डॉ० एल० पी० टैसिटोरी का निधन-दिवस अखिल भारतीय स्तर पर मनाया गया था जिसकी अध्यक्षता डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने की और टैसिटोरी की नवनिर्मित समाधि का उद्घाटन डॉ० तिबेरिओ-तिबेरी ने किया। सन् ५९ में 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' के प्रणेता महाराज पृथ्वीराज राठौड़ का जयन्ती-महोत्सव मनाया गया जिसकी अध्यक्षता 'वरदा' के सम्पादक मनोहर शर्मा ने की।

इस वर्ष इन्स्टीटयूट केन्द्रीय सरकार के अनुदान से लगभग ३० महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन कर रही है। उल्लेखनीय ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं--राजस्थानी व्याकरण, राजस्थानी गद्य का विकास, अचलदास खीची री वचनिका, हमीरायण, दलपत विलास, पद्मिनी चौपाई, परमार वंश दर्पण, जैन रासादि संग्रह, सदयवत्स वीर प्रबन्ध, चंद्रायण, पृथ्वीराज राठौड़ ग्रंथावली, दुरसा आढ़ा ग्रंथावली, पीरदान लालस ग्रन्थावली, जिनराजसूरि कृत कुसुमांजलि, कवि विनयचन्द्र कृत कुसुमांजलि, राजस्थानी व्रत कथाएँ, राजस्थानी प्रेम कथाएँ आदि।

(३) राजस्थानी शोध-परिषद्, पिलानी--सन् १९३३-३४ में श्री बिड़लाजी के प्रोत्साहन तथा स्व० सूर्यकरणजी पारीक के सद्प्रयत्नों से इस परिषद् की स्थापना हुई। इसके अन्तर्गत सन् ३३ में 'राजस्थानी वार्ता', सन् ३५ में 'राजस्थान रा दूहा' तथा सन् ३८ में 'राजस्थान के लोकगीत' (दो खंड) प्रकाशित हुए। वर्त्तमान में बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट की ओर से डॉ० कन्हैयालाल सहल के सम्पादन में त्रैमासिक शोध पत्रिका 'मरुभारती' का प्रकाशन होता है।

(४) राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी--चौपासनी शिक्षा-समिति, जोधपुर, द्वारा राजस्थानी के शोध और प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण कार्य के लि अगस्त, १९५५ को इसकी स्थापना की गयी। त्रै शोध-पत्रिका 'परम्परा' के माध्यम से संस्थान ने जो साहित्य और लोक-साहित्य रसज्ञ पाठकों के समक्ष किया है, वह प्रशंसनीय है। 'परम्परा' का प्रत्येक अपने आप में एक विशेषांक होता है। अब तक निम्नलिखित विशेषांक निकल चुके हैं--

(१) **लोकगीत**--राजस्थानी लोकगीतों का अध्ययन व परिशिष्ट में चुने हुए गीत;

(२) **गोरा हट जा**--अंग्रेजी साम्राज्य-विरोधी ताओं का संकलन ऐतिहासिक टिप्पणियों सहित;

(३) **डिंगल कोश**--डिंगल के प्राचीन पद्य-बद्ध कोशों का संकलन;

(४) **जेठवे रा सोरठा**--जेठवा सम्बन्धी राजस्था व गुजराती सोरठे;

(५) **राजस्थानी बात संग्रह**--राजस्थानी की प्रा चुनी हुई बातें तथा विवेचन;

(६) **रसराज**--शृंगार रस सम्बन्धी राजस्थानी के हुए दोहों का संकलन;

(७) **नीति-प्रकास**--फारसी के ग्रंथ अखलाक-ए-मोह का प्राचीन राजस्थानी में गद्यानुवाद;

(८) **ऐतिहासिक बातां**--मारवाड़ के इतिहास से रखनेवाली प्राचीन बातें एवं विवेचन;

(९) **राजस्थानी साहित्य का आदिकाल**--आदिका राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी विविध लेख;

(१०) **पिंगल-सिरोमणि**--छंदशास्त्र का महत्त्वपूर्ण

(११) **राठौर रतन सिंध री वेलि**--वीर रस पूर्ण शती के आरंभ की वेलि।

सौभाग्य से संस्थान को श्रीनारायणसिंह जैसे राजस्थानी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ कुशल कवि-सम्पादक अध्यक्ष के रूप में मिल गये हैं। संस्थान द्वारा राजस्थानी भाषा के सवा लाख से शब्दों का हिन्दी अर्थ एवं ऐतिहासिक-सामाजिक टिप्पणियों सहित श्री सीताराम लालस के सम्पादकत्व में 'राजस्थांनी सबद कोस' तैयार किया गया है, जि ४ भाग हैं। ११०० पृष्ठों का पहला भाग प्रकाशित गया है।

संस्थान का संग्रहालय भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें अब १०० हस्तलिखित ग्रंथ, ५०० लोकगीत, २००० गीत व छन्द, दो सौ राजस्थानी बातें, एक सौ बीस और एक सौ जीवनियाँ संग्रहीत हो चुकी हैं। देश शोध-प्रेमी संस्थान से अधिकाधिक लाभ उठा इस दृष्टि से अब इसका कार्यालय चौपासनी से आ गया है।

(४) **जैन साहित्य शोध संस्थान, जयपुर**---राज- जैन ग्रंथ भण्डारों में सैकड़ों वर्षों से संकलित एवं साहित्यिक सामग्री को प्रकाश में लाने के लिए दासजी की प्रेरणा से श्री दि० जैन अतिशय महावीरजी ने जनवरी १९४७ में इस संस्थान की की। संस्थान ने सर्वप्रथम जयपुर के प्रसिद्ध एवं आमेर शास्त्र भण्डार की व्यवस्थित ग्रंथ-सूची एवं संग्रह तैयार करने का कार्य हाथ में लिया। डॉ० कासलीवाल के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'राज- जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ-सूची भाग १' में अधिक ग्रंथों का सविवरण परिचय दिया गया कार्य के बाद संस्थान ने राजस्थान के ८० से ग्रंथ-भण्डारों में सुरक्षित अज्ञात एवं प्राचीन ग्रंथों तैयार करवाईं जो प्रकाशित हो चुकी हैं। ग्रंथ- २ में ३७०० से अधिक, भाग ३ में २००० से तथा भाग ४ में १०,००० ग्रंथों का विवरण दिया संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य पर खोज करनेवाले विद्वानों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

स्थान की ओर से कवि सधारू विरचित प्रद्युम्न- भी प्रकाशित हो चुका है। निम्नलिखित तैयार की प्रतीक्षा में हैं --

जिनदत्त चौपई (२) राजस्थान के जैन मूर्त्ति लेख मंत्रलेख संग्रह (३) हिन्दी के नये साहित्य की खोज (४) हिन्दी पद्य संग्रह (५) ऐतिहासिक रचनाएँ एवं उनका परिचय।

(६) **राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ**---२४ १९५७ में इसकी स्थापना की गयी। इसके तत्त्वाव- में त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'वरदा' का प्रकाशन होता प्राचीन एवं लोकसाहित्य के मर्मज्ञ मनोहर शर्मा संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। अब तक संस्था की ओर से निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं--(१) राजस्थानी लोक संस्कृति की रूपरेखा (२) रससिद्ध रामनाथ कविया (३) अर्वाचीन राजस्थानी काव्य (४) राजस्थानी गीतों में रामकथा (५) रुक्मणी-मंगल (६) बीबी बाँदी को झगड़ो (७) चन्द्रसखी के हरजस और भजन आदि।

(७) **हिन्दी विश्व-भारती, बीकानेर**---भारती की स्थापना बीकानेर साहित्य-सम्मेलन द्वारा २६ जून १९५७ को हुई थी। तब से यह बीकानेर के जीवन में साहित्यिक जागरण उत्पन्न करने में प्रयत्नशील है। इसके अनुसंधान विभाग से 'सोढ़ी नाथीरा गूढ़ार्थ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस विभाग में दीनदयाल ओझा, भगवानदत्त गोस्वामी और जगदीश माथुर 'कमल' 'बन्धुत्रय' नाम से कार्य कर रहे हैं। इसके आगामी प्रकाशन हैं--(१) राजस्थान की कवयित्रियाँ (२) राजस्थानी साहित्य में प्रकृति-चित्रण (३) बीसलदेव रास--एक अध्ययन (४) गौरी गीत संग्रह (५) सप्तवासरीय कथा-संग्रह (६) राजस्थान के लोकोत्सव और मेले।

(८) **भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर**---लोक-साहित्य, लोक संस्कृति और लोककला को प्रकाश में लाने की दृष्टि से सन् १९५२ में श्री देवीलाल सामर ने इसकी स्थापना की थी। मण्डल ने अपने संग्रह में कई लोकगीत, कई लोक नाटच, कई चित्र एवं मूर्तियाँ, अनेक प्रकार के लोक-आभूषण, वेशभूषा आदि संग्रहीत किये हैं। कठपुतली-विभाग खोलकर इस क्षेत्र में भी नया कार्य किया है। त्रैमासिक शोध पत्रिका 'लोककला' के प्रकाशन द्वारा राजस्थानी लोक संस्कृति का उज्ज्वल रूप विद्वानों के सामने आया। राजस्थान के लोकानुरंजन, राजस्थान का लोक-संगीत, राजस्थानी लोकनृत्य, राजस्थानी लोकनाटच, राजस्थानी लोकोत्सव, राजस्थान-स्वर-लहरी इसके अन्यतम प्रकाशन हैं। पिछले वर्षों में इस मण्डल ने राजस्थान, मध्यप्रदेश, आसाम, मणिपुर एवं त्रिपुरा का सांस्कृतिक सर्वेक्षण भी किया है।

(९) **बागड़ प्रदेश साहित्य परिषद्, डूंगरपुर**---डूँगरपुर, बाँसवाड़ा का आदिवासी क्षेत्र बागड़ प्रदेश कहलाता है। इस क्षेत्र के लोक साहित्य एवं प्राचीन साहित्य को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से सं० २००१ कार्तिक शुक्ला सप्तमी को इस परिषद् की स्थापना की गयी। बागड़ी

लोकगीतों, कथाओं एवं मुहावरों का महत्त्वपूर्ण संग्रह तैयार किया गया है। परिषद् द्वारा दो महत्त्वपूर्ण प्रकाशन शीघ्र ही हो रहे हैं--(१) वीर काव्य-गलालेंग (२) सन्त मावजी। त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'वाग्वर' द्वारा उधर का लोकसाहित्य हिन्दी जगत् के सामने प्रगट हुआ है।

(१०) भारतीय विद्या मन्दिर-शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर--सन् ५८ के मध्य यह प्रतिष्ठान भारतीय विद्यामन्दिर के तत्त्वावधान में स्थापित किया गया। इस प्रतिष्ठान का मुख्य कार्य सन्त-साहित्य संग्रहीत करना है। अल्प समय में प्रतिष्ठान द्वारा राजस्थान में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों का सन्त साहित्य प्रचुर परिमाण में संग्रहीत किया गया है।

(११) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर--ऊपर हमने जिन १० संस्थाओं का परिचय दिया है वे सब गैर-सरकारी संस्थाएँ हैं। राज्य-सरकार से उन्हें समय-समय पर अनुदान मिलता है। यह संस्था राजकीय संस्था है। इसका मुख्य कार्यालय जोधपुर में है। शाखाओं के रूप में इसका विस्तार जयपुर तथा उदयपुर तक है। इस प्रतिष्ठान द्वारा राज० के हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहीत किये जाते हैं। प्रतिवर्ष हजारों ग्रंथ खरीदे जाते हैं। इसके डायरेक्टर पद्मश्री मुनि जिनविजयजी हैं। उनके निर्देशन में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित भी होते हैं। अब तक प्रतिष्ठान द्वारा अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें कुछ उल्लेखनीय ये हैं--(१) भट्ट सोमेश्वर विरचित काव्य प्रकाश (२) वस्तु रत्नकोश (३) मुंहता नेणसी री ख्यात भाग १ (४) भगतमाल--चारण ब्रह्मदास विरचित (५) किसना आढ़ा कृत--रघुबर जस प्रकास (६) राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथों की सूची भाग १-२ आदि।

उपर्युक्त शोधकार्य करनेवाली संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य और भी साहित्यिक संस्थाएँ (जैसे, भरतपुर हिंदी-साहित्य-समिति) प्रान्त के साहित्यिक-वाताव को सजीव एवं समृद्ध बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। संस्थाओं द्वारा संस्कृति का गौरव, सभ्यता का और इतिहास का वैभव जन-जीवन में नया उत्साह सौन्दर्य भरता है। राज्य-सरकार को अधिक अनुदान देकर इनके विकास में योग देना चाहिए।

आज बादल डगमगाते

श्री बीरबल महतो

आज बादल डगमगाते।
दामिनी-आघात से, या
निज हृदय की ताप से, या
शून्यता पाकर गगन की
दीन बादल थरथराते।
आज बादल डगमगाते।
स्वत्व अपना आज खोकर,
वायु को अधिकार देकर,
स्थान पाने इस धरा पर
आ रहे हैं लड़खड़ाते।
आज बादल डगमगाते।
हर तरह से हाय! हारे,
नत किए मस्तक बिचारे,
किस व्यथा की याद लेकर
धार आँसू की बहाते,
आज बादल डगमगाते।

मुल्ला दाउद

(बैसवारी बोली का प्रथम प्रेमाख्यानकार)

डा० सूरजप्रसाद शुक्ल

जीवनवृत्त

ऐसे समय में जब चारों ओर मुसलमान वर्ग स्वयं को शासक मानता हुआ हिन्दुओं का शोषण कर रहा था, हिन्दुओं की जीवन-प्रणाली में अभिरुचि का प्रदर्शन करते मुल्ला दाउद का हिन्दी-साहित्य-भूमि पर चरण ना निश्चय ही साहस का कार्य था। उन्होंने "चन्दा और रिक" की प्रेम-कहानी को काव्य में ढालकर हिंसा की पर स्नेह के जल को बरसाने का प्रयत्न किया।

मुल्ला दाउद के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में हिन्दी हित्य के सभी इतिहासकार मौन हैं। जनश्रुति और आर० नेविल के अनुसार वे डलमऊ ग्राम (जिला रायबरेली, तहसील और परगना डलमऊ) के निवासी । स्वयं मुल्ला दाउद ने चन्दायन काव्यान्तर्गत लिखा

डलमऊ नयरू बसै नव रंगा।
ऊपरिकोटु तले बहै गंगा।।
धरमी लोगु बसहिं भगवन्ता।
गुन गाहक नागर जस वन्ता।।

ग्रन्थ के आदि में भी निवासस्थान का स्पष्टीकरण द्वारा अनायास ही हो गया है, प्रथम पंक्ति है——

सरवह चंदायन गुफतार मौलाना दाउद दलमई।

दलमई ठीक उसी प्रकार निवासस्थानसूचक विशेषण जिस प्रकार जायसी। यहीं (डलमऊ में ही) फिरोज के सर्वप्रसिद्ध मकतब में धर्म-शिक्षा-पुस्तक के में उनके काव्य "चन्दायन" का पठन-पाठन होता । अपने प्रभावपूर्ण धार्मिक सिद्धान्तों के कारण देश की धानी दिल्ली में भी इस काव्य-ग्रन्थ का कम मान नहीं । मुसलमानों के बीच इस ग्रन्थ के लोक-प्रिय होने प्रमाण सर्वत्र मिलते हैं, हिन्दू-समाज ने भी इस ग्रन्थ को सम्मान नहीं दिया, स्थान-स्थान पर नागरी-लिपि में नेवाली इस काव्य-ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ इस तथ्य का प्रमाण हैं।

मुल्ला दाउद के कविता-काल के सम्बन्ध में विद्वान् मत नहीं हैं। मिश्र-बन्धुओं ने "चन्दायन" काव्य का रचनाकाल संवत् १३८५ वि० माना है। डॉ० पीताम्बरदत्त थ्वाल की दृष्टि में मुल्ला दाउद का उपस्थिति-काल १४९७ वि० है। श्री श्यामसुन्दरदास का कथन है कि सर्वप्रथम इस कवि का उल्लेख सुल्तान फीरोजशाह के राजत्वकाल में मिलता है अतः उसका समय संवत् १४२७ वि० के पूर्व माना जा सकता है। डॉ० रामकुमार वर्मा की मान्यता के अनुसार मुल्ला दाउद अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन था। अतः उसका कविताकाल संवत् १३७५ के आस-पास होना चाहिए। प्रसिद्ध इतिहासकार अलबदाउनी के अनुसार मुल्ला दाउद ने अपने प्रेम-काव्य की रचना जूनाशाह के सम्मान में की थी।

बदाउनी की सूचना को विश्वास योग्य कहा जा सकता है क्योंकि समय की दृष्टि से वह (बदाउनी) मुल्ला दाउद के अधिक निकट है। इसके अतिरिक्त मुल्ला दाउद भी बदाउनी के पक्ष में साक्षी देते हैं:——

बरस सात सै होये इक्यासी।
तिहि जाह कवि सरसेउ भासी।।
साहि पेरोज दीली सुल्तानू।
जौना साहि उजीरू बखानू।।

मुल्ला दाउद ने स्पष्ट रूप से "चन्दायन" काव्य के आरम्भ करने का काल हिजरी सन्७८१ (ई० सन्१३७९) दे दिया है और शाहेवक्त फीरोज तुगलक (ई० १३५१-१३८८) एवं उसके वजीर जूनाशाह का नामोल्लेख भी कर दिया है।

जूनाशाह को दिल्ली के सुल्तान फीरोजशाह तुगलक ने संवत् १४२७ वि० (सन् १३७०) में खानेजहाँ की मृत्युपरान्त प्रधान मंत्री पद पर प्रतिष्ठित किया था। जूनाशाह के कार्य-काल की समाप्ति सं० १४४६ वि० (ई० १३८९) के आसपास हो जाती है। अतः चन्दायन काव्य की रचना का काल संवत् १४२७ वि० और संवत् १४४६ वि० के बीच में ही होना चाहिए। जूनाशाह उदार, विद्वानों को आश्रय देनेवाला, सुसंस्कृत, शिक्षित, और जन-मंगलकारी कार्यों को करनेवाला व्यक्ति था। मुल्ला दाउद के शब्द हैं——

खान जहाँ धरि जुगि जुगि खानो।
अति नागरु बुधि वंतु बिना नो।।
चतुर सुजान भाख सब जानू।
रूपवंत मंतरो सुजानू।।

× × ×

यही जूनाशाह मुल्ला दाउद का आश्रयदाता था। प्रतीत होता है कि डलमऊ-स्थित उस मकतब के निर्माण का (जिसे फीरोजशाह तुगलक का बनवाया हुआ कहा जाता है) श्रेय भी जूनाशाह को ही है जिसमें दाउद के काव्य-ग्रन्थ का पठन-पाठन हुआ करता था। यदि इस अनुमान में सत्यता है तो निश्चय ही जूनाशाह के कार्य-काल के आरम्भिक दिनों में यह मकतब नहीं बना होगा, क्योंकि ऐसे जनहित-कारी कार्यों के सम्पादन के पूर्व जूनाशाह के लिए यह आवश्यक था कि वह सुल्तान के विश्वास को अर्जित कर ले। फीरोज तुगलक के अस्वस्थ रहने के कारण सुल्तान के सम्पूर्ण अधिकार-सूत्र जूनाशाह के हाथों में थे ही, उसके आदेश से, (उसको ही सर्मपित) काव्य-पुस्तक मकतब की पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकार कर ली गयी होगी, अन्यथा हिन्दू कहानी को केन्द्र

बनाकर लिखी हुई इस कविता-पुस्तक को धार्मिक दृष्टि से अनुदार मुसलमान-समाज न स्वीकार करता।

उपर्युक्त विश्लेषण के निष्कर्ष रूप में हम संवत् १४२७ वि० से लगभग आठ-नौ वर्ष उपरान्त अर्थात् संवत् १४३६ वि० के आस-पास चन्दायन की रचना का समय निर्धारित कर सकते हैं। चन्दायन काव्य के अब तक सुलभ न हो सकने के कारण मुल्ला दाउद का रचना-काल कुछ समय पूर्व तक अनुमान का विषय था।

मुल्ला दाउद की जीवन-घटनाओं के सम्बन्ध में इतिहासकार विशेष सामग्री नहीं प्रदान करते किन्तु इतना स्पष्ट है कि वे विरक्तों का सा जीवन व्यतीत करते थे। मुल्ला शब्द उनकी विद्वत्ता और धर्मतत्त्व-विज्ञता का परिचायक है, धार्मिक कट्टरता का द्योतक नहीं। हृदय की संवेदनशीलता ने उन्हें जहाँ कवि बनाया था वहाँ संकीर्णताओं से मुक्त करके उन्हें मानव की सामान्य भूमि पर भी प्रतिष्ठित किया था। वे शेख जैनदी[१] के शिष्य और अपने समय के सर्व-सम्मानित व्यक्ति थे। ख्वाज-ए-जहाँ ने सुल्तान फीरोजशाह को अपने अनुकूल करने के लिए एक बार मुल्ला दाउद को भी भेजा था। इससे ज्ञात होता है कि सुल्तान के हृदय में भी उनके लिए आदर के भाव थे। मनुष्य को दाउद ने अल्लाह का प्रतिरूप समझा। इस कारण मनुष्य उनके हृदय के स्नेह को प्रसाद रूप म अन्त तक पाता रहा। सब में 'आत्म-तत्त्व' के दर्शन करते हुए वे सबके प्रति सदय, उदार और समर्पणशील रहे।

मत और सिद्धान्त

सूफीमत के प्रचारक होने के कारण दाउद सब को अपना मानकर चले। इसीलिए उनका काव्य विद्वेष से मुक्त है। उन्होंने प्रत्येक भावना, प्रत्येक उपासना, प्रत्येक धर्म, और प्रत्येक सम्प्रदाय को आदर की दृष्टि से देखा। वेद-पुराण और कुरान को उन्होंने एक सा सम्मान दिया। सभी वर्ग के विद्वान् उनके लिए पूज्य थे। उन्होंने भौतिक-ऐश्वर्य से विरक्त रहते हुए इन्द्रिय-निग्रह को आध्यात्मिक साधना के लिए आवश्यक समझा। हठयोग, तंत्र और रसायन के चमत्कारों का वर्णन उनके काव्य में निश्चय ही मिलता है, किन्तु साधना की इस नीरस पद्धति को सर्वोच्च स्थान नहीं प्राप्त है। सर्वोच्च-स्थान तो उस पद्धति को प्राप्त है जिसका निर्माण पैगम्बरी एकेश्वरवाद, वेदान्तिक अद्वैतवाद और लौकिक प्रेम के सम्मिलित तत्त्वों से हुआ है, किन्तु जो पूर्णतया द्वैतवादी दर्शन से भी मुक्त नहीं है।

एकेश्वरवाद के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ पद उस अल्लाह को प्राप्त है जो सर्वत्र निवास करता है किन्तु जिस एक की सत्ता में अन्य सभी की सत्ताएँ नहीं समाई फरिश्ते, पैगम्बर आदि का अस्तित्व स्वतंत्र रूप से मान रहता है। अद्वैतवाद में आत्मा और परमा जगत् और ब्रह्म को एकरूप माना गया है। इस के प्रवर्तक शंकराचार्यजी के अनुसार एक शुद्ध-बुद्ध-नि मुक्त के अतिरिक्त दूसरी कोई भी स्वतंत्र और वस्तु नहीं है। दृष्टिगोचर होनेवाली भिन्नता मा दृष्टि का भ्रम और उस माया की उपाधि से होने आभास है जो अनिर्वचनीय (सदसद् विलक्षण अ सत् और असत् से भिन्न) होने के कारण अविद्या-स्व है, और जिसका निवारण एक मात्र ब्रह्म-ज्ञान द्वारा सम्भव है। समस्त वासनाओं और कर्मों को त्यागे बि ब्रह्म-ज्ञान असम्भव है अतः अद्वैतवाद संन्यास-नि निवृत्ति-परक मार्ग का प्रतिपादक है।

जहाँ तक ब्रह्म के सर्वव्यापक होने एवं इन्द्रिय-नि का प्रश्न है वहाँ तक एकेश्वरवाद, अद्वैतवाद और सू मत एकमत है, किन्तु जहाँ प्रेम-सम्बन्ध-स्थापन अ भक्ति-प्रदर्शन के लिए द्वैत की स्वीकृति का प्रश्न है व इनमें अन्तर दीख पड़ता है। एकेश्वरवाद में द्वैत की स्थिति हैं, किन्तु यह स्थिति समान-स्तरीय और हृद के रस से स्निग्ध नहीं है। अल्लाह, मुहम्मद साहब, मह भूत, फरिश्ते, जिन्न आदि में परस्पर जो सम्बन्ध है उ हम स्वामी और सेवक के बीच रह सकनेवाले नीर सम्बन्ध ही कह सकते हैं। अद्वैतवाद में निश्चय ही आत्म की स्वतन्त्र सत्ता है, किन्तु जगत की असत्यता से जो साधना जन्म ले लेती है वह सर्वजन-सुलभ नहीं होती। सूफीमत ने लौकिक दाम्पत्य-प्रेम का रंग देकर पैगम्बरी एकेश्वरवाद और भारतीय अद्वैतवाद के समन्वित रू को पारिवारिक रस प्रदान कर दिया। सूफियों की धारणा है कि मनुष्य जमाल और जलाल का यौगिक रू है। जो इसके पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। उस अल्लाह की रूह है। उसकी आवश्यकता अल्लाह को इसलिए है कि वह अपने को व्यक्त कर सके। स्पष्ट है कि इंसान में अल्लाह आत्मदर्शन करता है। इंसान तत्त्वतः 'हक' है। 'हक' से ही उसका उद्भव और हक में ही उसका विलय होता है। यही स्थिति ब्रह्म और प्रकृति की भी है। प्रकृति ब्रह्म का ही प्रतिरूप है। कण कण से ब्रह्म अपना प्रकाश फेंकता है किन्तु प्रकृति में उ ब्रह्म के लिए व्याकुलता और विह्वलता भी दृष्टिगोचर होती है।

परमात्मा और आत्मा, ब्रह्म और प्रकृति में परस्पर एक दूसरे के आलिंगन में बँध जाने के लिए जो तड़प है उससे तो द्वैत का ही आभास मिलता है, किन्तु व द्वैत अद्वैत को स्वयं में समेटे हुए है। इसे हम निःसंकोच द्वैताद्वैतवाद कह सकते हैं। मुल्ला दाउद के काव्य लौकिक प्रेम के धरातल पर इसी द्वैताद्वैतवाद का प्रतिपा पन्न हुआ है। अल्लाह परम सुन्दर है। अतः स्त्री-रू में उसे प्रस्तुत किया गया है। जीव-रूप पुरुष उसके लि

---

[१]—सेख जैनदी हौ पथिलावा।
धरम पंथ जिहुँ पायु गवांवा ॥
पाप दीन्ह में गंग बहाई।
धरम नाम हौ लीन्ह चुराई ॥

१६६३

द को रौंदता हुआ क्रमशः इश्क, जहद, म्वारिफ, वज्द, क, वस्ल और फ़ना की भूमियों पर से गुजरता है। न भूमियों पर वस्तुतः कष्ट-सहन, भौतिक-ऐश्वर्य-रित्याग, अहंविनाश, पूर्ण आत्मसमर्पण और चित्तवृत्ति-रोध की साधना विकास पाती रहती है। इसके अति-क्त मुल्ला दाउद द्वारा प्रतिपादित साधना का यदि म विश्लेषण किया जाय तो उसमें जैनधर्म की अहिंसा, द और नाथ सम्प्रदाय की हठवादी प्रक्रिया तथा गाथाओं की वीर-पूजावाली प्रवृत्ति का भी अस्तित्व थान मिलेगा।

रचना

मुल्ला दाउद का लिखा हुआ केवल एक प्रेम-काव्य ंथ है, उसका नाम है चन्दावत या चन्दायन। यह -ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हो सका है। श्री त सारस्वत द्वारा प्राप्त सूचना के अनुसार आगरा विद्यालय के हिन्दी-विद्यापीठ के पास चन्दायन की तियाँ फारसी लिपि में लिखी हुई हैं जिनका सम्पा-डा० माताप्रसाद गुप्त कर रहे हैं। निकट भविष्य सके प्रकाशन की सम्भावना है। तासी ने इस काव्य-की कुछ अप्राप्त प्रतियों का उल्लेख अपने हिन्दुई त्य के इतिहास में किया था, किन्तु ये प्रतियाँ अब हिन्दी-संसार को सुलभ नहीं हो सकी हैं। कहा ता है कि चन्दायन काव्य के कुछ पृष्ठ पूना के डेकन ज इन्स्टीट्यूट में, तथा कुछ बम्बई के डा० मोती-के पास सुरक्षित हैं। श्री रावत सारस्वत ने जिस के उद्धरणों को लेकर 'वरदा' में प्रकाशित करवाया स प्रति का लिपि-काल संवत् १६७३ है। "चन्दा-की यह प्रति आज से ३४३ वर्ष पूर्व शेखावटी स्थान) के फतेहपुर नामक शहर में लिखी गयी थी।

कथा और उसकी लोकप्रियता

पने चन्दायन-काव्य के लिए जिस प्रेम-कथा को ने चुना है वह कथा हिन्दुओं के जीवन से सम्बद्ध । कथा के प्रति मानव की स्वाभाविक रुचि होती है, किन्तु ऐसी कथा का, जो पाढ़ी-दर-पीढ़ी से सुनी रही हो और जो उदात्त प्रेम का अभिव्यंजन करने ी हो, जन-मन-हारी होना स्वाभाविक ही है। इस को मुल्ला दाउद द्वारा प्रदत्त कलात्मक तत्त्व ने चय ही और भी अधिक लोकप्रिय बना दिया होगा र यह कथा भी अपने युग में ठीक उसी भावमग्नता र तन्मयता से घर-घर गायी जाती रही होगी, जैसी लीनता से अब से कुछ समय पूर्व सारंगा सदावृक्ष की था गायी जाती थी, अन्यथा शेखावटी ऐसे दूरवर्ती प्रदेश में 'चन्दायन' की हस्तलिखित प्रति न प्राप्त होती। र्म के सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन ही जिस काव्य-ग्रन्थ का मूल उद्देश्य हो उसका सरल, सरस, जन-काव्य के मान लोक-प्रिय हो जाना विशेष आश्चर्य की बात है। धारण जनता का यदि इस काव्य ने मनोरंजन किया तो विद्वानों को विचार करने की सामग्री भी दी। इस प्रकार शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही वर्गों द्वारा इसे सम्मान प्राप्त हुआ।

इस कथा में काल्पनिक प्रसंगों का अभाव नहीं है किन्तु ऐतिहासिक तत्त्वों की भी उपेक्षा दृष्टिगोचर नहीं होती। आभीर राजा लौरिक देव ऐतिहासिक व्यक्ति है। वह अशिक्षित अवश्य था, किन्तु उसकी विनम्रता, वीरता, उदारता और कष्ट-सहिष्णुता की घर-घर में चर्चा होती थी। उसकी धर्म-निष्ठा सर्व-विख्यात थी, उसका-सा अतिथि-सेवी व्यक्ति महाकवि बाणभट्ट ने अपने जीवन-काल में कभी नहीं देखा था। उसके भद्रेश्वर दुर्ग में घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। देव-पुत्र तुवर मिलिन्द की एकमात्र कन्या चन्द्रदीधिति को उसने अपने यहाँ आश्रय ही नहीं दिया था अपितु उसकी सुरक्षा के लिए स्थाणेश्वर जाते समय उसके साथ एक सहस्र सेवक भी भेजे थे। उसके संयम, साहस और औदार्य के गीत गाये जाते थे। भोगलिप्सा से उसका जीवन पूर्णतया मुक्त था। उसके विश्राम-कक्ष की प्रस्तर-भित्तियों में गजदन्त के नाम पर कुछ लौह कीलक थे जिन पर धनुष्कांस्य और मुग्दर रखे हुए थे। वीणा का तो वहाँ नाम भी नहीं था। लोरिकदेव की काष्ठ शय्या पर ऊर्णस्तरण बिछे हुए थे, न कहीं ताम्बूल था, न सौगन्धिक पुटिका और न द्यूत-फलक। उसकी विशाल, बलिष्ठ देह के छन्द के साथ कक्ष का पूर्ण सामंजस्य था। वह अठारह वर्ष की अवस्था से ही गुप्त सेना का सैनिक रहा था। उसने सिन्धु और कुभा के उस पार तक समुद्र-गुप्त के गरुड़ध्वज को फहराया था। उसे यदि कोई आन्तरिक दुःख था तो यही कि स्कन्दगुप्त के साथ ही गुप्तों का प्रतापानल शान्त हो गया। उसकी दृष्टि में कान्यकुब्ज का शासक (हर्षवर्द्धन) नपुंसक और धर्माचारहीन था। घोड़े की पीठ पर दिन काटने और जुझाऊ बाजों की गड़गड़ाहट में ही रात्रियापन करने में पटु, इस निपट, सरल आभीर-राज को महाराज हर्षवर्द्धन 'अयोग्य' लगते थे। उसे ही नहीं, स्वयं हर्षवर्द्धन को विश्वास था कि गिरिवर्त्य के उस पार से आनेवाली म्लेच्छ-वाहिनी को बिना उसकी सहायता के नहीं रोका जा सकता। यही कारण था कि उसको अपने अनुकूल करने के लिए हर्षवर्धन ने बाण भट्ट को नियुक्त किया था।

ऐसे बलिष्ठ शरीर और सच्चरित्र, स्वाभिमानी लोरिकदेव को अपनी कथा का नायक बनाकर मुल्ला दाउद ने वासना-रिक्त प्रेम के अतिशय, उदात्त रूप को सामने रखा है। लोरिकदेव से अधिक उपयुक्त नायक मुल्ला दाउद को सामयिक समस्याओं को सुलझाने के लिए मिल भी नहीं सकता था। आन पर जान देनेवाले इस स्वामिभक्त आभीर-राज के तीन चारित्रिक गुणों ने दाउद को आकर्षित किया होगा :—

(१) आर्यावर्त के समाज में परिव्याप्त स्तर-भेदों के प्रति विरोधात्मक प्रवृत्ति

(२) समूचे देश की उत्कट कल्याण-कामना

(३) मलेच्छों के भेद-भाव-रहित सामाजिक विधान को सम्मान की दृष्टि से देखना और नर-लोक से लेकर किन्नर-लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय की अनुभूति-आकांक्षा। पर कल्याण-कामना से हिल्लोलित अन्तःकरण वाला कवि ऐसे ही नायक को लेकर ऊँच-नीच के भेद को मिटाने की कल्पना कर सकता था, क्रूरता के स्थान पर समवेदनशीलता की स्थापना के पूत कार्य को आगे बढ़ा सकता था, नारियों के प्रति सम्मान की दृष्टि का उन्मेष कर सकता था और भोग की साधना में योग का विधान प्रस्तुत कर सकता था। हर्षवर्द्धन की "रत्नावली" नाटिका जब लिखी गई थी उस समय लोरिक की आयु साठ वर्ष से अधिक थी अतः जिन घटनाओं का उल्लेख दाउद ने किया है वे इसके बहुत पूर्व की हैं।

चन्दायन और पद्मावत

जायसी ने अपने काव्य-ग्रन्थ "पद्मावत" में उन सभी प्रेम कहानियों का उल्लेख किया है जो उसके पूव लोकप्रिय थीं और जिनको भिन्न-भिन्न कवियों ने काव्य का विषय बनाया था। उन कहानियों में आश्चर्य है कि "चन्दायन" का नाम नहीं मिलता। विशेषता यह है कि जायसी का निवासस्थान, ग्राम जायस, मुल्ला दाउद के निवासस्थान ग्राम डलमऊ से अधिक दूर भी नहीं है। दोनों ही ग्राम रायबरेली जिले में स्थित हैं, अन्तर तहसीलों का है। डलमऊ डलमऊ तहसील में है और जायस सलोन तहसील में।

"चन्दायन" काव्य चन्दा और लोरिक के पारस्परिक प्रेम की अत्यन्त मनोहर झाँकी प्रस्तुत करता है। नायक-नायिका की एक दूसरे के लिए व्याकुलता, कष्ट-सहन, त्याग और उत्सर्ग की मर्मस्पर्शिनी प्रवृत्ति, पाठक और श्रोताओं के हृदय की कठोरता को गलानेवाली तथा पाशविक वृत्तियों के स्थान पर सद्वृत्तियों को विकास देनेवाली है।

"चन्दायन" काव्य का नायक लोरिक पद्मावत-काव्य के नायक रत्नसेन से भिन्न है। रत्नसेन जहाँ अपनी कष्ट-सहिष्णुता, विनम्रता और कोमलता से पद्मावती को प्रभावित करता है, वहाँ लोरिक वीरत्व-प्रदर्शन द्वारा चाँद को अपनी ओर आकर्षित करता है। लोरिक चाँद के जीवन का अनाहूत मेहमान नहीं है। उसे ससम्मान बुलाया गया है। उसने राव रूपचन्द के भीषण आक्रमण से चाँद के पिता की रक्षा करते हुए अपने जीवट, साहस और रण-कौशल का परिचय दिया है। इस प्रेमी में प्रेम की वह छिछली तड़पनेवाली प्रवृत्ति नहीं दिखलाई देती जो रत्नसेन में दिखाई देती है। उसका प्रेम स्वाभिमान के प्रकाश से दीप्त है। चाँद को पा जाने के बाद उसमें प्रेम की जो आत्म-विस्मृति और विह्वलता दृष्टिगोचर भी होती है वह केवल इसलिए है कि कवि चाँद और लोरिक के पारस्परिक प्रेम माध्यम से जीव और ब्रह्म की प्रेम-साधना का अभिव्यं करना चाहता है।

"चन्दायन" और 'पद्मावत' के कथा-विधान पूर्ण साम्य है। अन्तर केवल इतना ही है कि जैसे रत्नसेन को पद्मावती प्राप्ति से पूर्व सहन करने पड़ते वैसे लोरिक को चाँद-प्राप्ति के बाद सहन करने पड़ हैं। दोनों प्रबन्ध-काव्य के नायक पहले से ही विवाहि हैं, किन्तु जहाँ नायिका के विवाहित होने का प्रश्न वहाँ दोनों काव्यों में अन्तर है। "चन्दायन' की नायि चाँद का लोरिक से मिलने के पूर्व ही विवाह हो चु था, किन्तु वर के पूर्णतया अनुपयुक्त होने के कारण विवाह को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। चाँ पद्मावती के समान कोमलकाय और मोहक अवश्य किन्तु सौम्य और भीरु-स्वभाव नहीं है। वह रूढ़ियों बन्धन तोड़कर लोरिक को अपनाती, अपनी सौत हाथापाई करती और असपति से युद्ध कर उसे मा डालती है। "पद्मावत" की नायिका पद्मावती रत्नसे से मिलने के पूर्व कुमारी थी।

'चंदायन' की मैना निश्चय ही "पद्मावत" की ना मती से समानता रखती है। उसे भी रो-रोकर दि काटता हुआ हम पाते हैं। दोनों ही काव्यों में नायक-नायिका का मिलन बसंत के अवसर पर शिवमन्दिर होता है और नायक पहले ही मूर्च्छित हो जाता है। इ प्रकार हम देखते हैं कि दोनों काव्यों की कथा-वस्तु ए रूप है। वस्तुतः मसनवी ढंग पर लिखे जानेवाले काव् के लेखन की प्रणाली भी यही थी——ईशवन्दना, पैगम्ब वन्दना, मित्रवर्णन, राजवन्दना, गुरुवन्दना, आश्रय दाता वर्णन, काल एवं स्थान वर्णन, बाग-तड़ाग-वर्ण गढ़-वर्णन, जाति-वर्णन और मूल कथा-वस्तु का क्रमि विधान। यही प्रणाली "चन्दायन" काव्य में अपना गयी है और उसीके अनुरूप बाद के अन्य प्रेमाख्यान काव्य भी लिखे गये हैं।

प्रेम का स्वरूप

प्रेम का एकांतिक, लोक-बाह्य आदर्शात्मक और नायक-निष्ठ रूप ही प्रायः मसनवियों द्वारा स्वीकृ किया जाता है, किन्तु दाउद ने मसनवी-पद्धति अपनाते हुए भी उसके प्रेम-सम्बन्धी सिद्धान्त को नहीं अपनाया है। यदि लोरिक चाँद के लिए विरह-व्याकु है तो चाँद भी अपने प्रियतम के लिए कम चिन्ति नहीं है। प्रेम के लोक में निवास करता हुआ भी लोरि भौतिकलोक की समस्याओं के समाधान-हेतु तत्प दीखता है। कर्त्तव्य के विविध लक्ष्यों की ओर उस चरण बढ़ते हैं।

घटनाओं की योजना

दाउद ने घटनाओं का संयोजन बड़े ही आक और हृदय-स्पर्शी ढंग से किया है। प्रस्तुत और अप्र

समन्वय इस कलात्मक ढंग से कवि द्वारा हुआ है कि जोड़ नहीं दिखता। आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तुएँ पूर्णरूपेण एक दूसरे पर अवलम्बित तथा दूसरे को चटकीला बनानेवाली हैं। यही कारण कथा के उत्तरोत्तर विकास के साथ पाठक अथवा की जिज्ञासा बढ़ती जाती है।

कथा का आध्यात्मिक पक्ष

डा० रामकुमार वर्मा यह निश्चय नहीं कर पाये चन्दायन-काव्य की प्रेम-कहानी में कोई आध्यात्मिक व्यंजना है या नहीं। हिन्दी-साहित्य के अन्य लेखकों मुल्ला दाउद का उल्लेख-मात्र किया है। अब तक 'चन्दायन' काव्य प्रकाश में नहीं आया है। अतः इस काव्य में इस समय भी प्रामाणिक रूप से कुछ कह सकना नहीं है। जो उद्धरण 'वरदा' में प्रकाशित भी हुए हैं वे परिचयात्मक मात्र हैं। किन्तु जो सूत्र हमें इतिहासकार अलबदाउनी से प्राप्त होते हैं वे 'चन्दायन' काव्य के आध्यात्मिक पक्ष को सर्वथा स्पष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं:

"जूना शाह के सम्मान में मुल्ला दाउद ने "चन्दायन" नामक एक काव्य-ग्रन्थ लोरिक और चन्दा की प्रेम-कहानियों को केन्द्र बनाकर हिन्दी-मसनवी में लिखा। इस पुस्तक की प्रशंसा में कुछ भी नहीं कहना है क्योंकि दिल्ली में वह पुस्तक बड़ी लोकप्रिय है। शेख [illegible]द्दीन-वायज रवानी मुल्ला दाउद की कुछ काव्य-पंक्तियाँ नित्य धर्म-प्रवचन के उपरान्त पढ़ा करते थे और जनता उससे बहुत प्रभावित होती थी। एक दिन लोगों ने उनसे पूछा कि उन्होंने इस हिन्दी मसनवी को क्यों चुना है? शेख ने उत्तर दिया कि यह मसनवी ईश्वरीय सत्य की प्रतिपादिका ही नहीं है, पढ़ने में मनोरंजक, चिन्तन की सामग्री प्रदान करनेवाली और कुरान की कुछ आयतों का भाव स्पष्ट करनेवाली है।[1]"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि चन्दायन-काव्य लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का प्रकाशन करता है। कथा की प्रत्येक प्रत्यक्ष घटना किसी अप्रत्यक्ष की ओर संकेत करती है। लोरिक और चन्दा क्रमशः जीव और ईश्वर के प्रतीक हैं। गोवरदुर्ग के अधिपति राजा सहस दे और पाट महादेवी फूला रानी की सुन्दरी पुत्री चाँद के रूप का लोभी राजापुर-नरेश रूपचन्द, लोरिक की विवाहिता पत्नी मैना, असं[illegible] केवट, चाँद का पूर्वपति काना ब्राह्मण, समय-समय पर चाँद को डँसने वाला सर्प, द्यूत-क्रीड़ा में पटु सागपुरी का राजा महीपति, महीपति का मायावी भाई अरुपति आदि जीव और ब्रह्म के मिलन में बाधा डालनेवाली [illegible]त वृत्तियाँ हैं। ईश्वर की एक झलक पाने के लिए जीव भी उसी प्रकार भटकता है, कष्टों को, अभावों को, प्रहारों को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है जिस प्रकार हम लोरिक को चन्दा के लिए भटकते और कष्ट झेलते हुए देखते हैं। यह साधना साधक को कण-कण में रम रहे राम को देख सकनेवाली दृष्टि प्रदान करती है। साधक तुच्छ से तुच्छ भौतिक तत्त्व के लिए आत्मीय भावों की अनुभूति करने लग जाता है। उसके लिए सभी प्रणम्य हो जाते हैं।

"चन्दायन" काव्य को यदि हम हिन्दू और मुसलमान धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का संगम कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। प्रेम की कथा तो धर्म के कटु, रुक्ष और नीरस सिद्धान्तों को मधुर, स्निग्ध और सरस बनाने के लिए है। प्रेम के मधु में डुबोकर कवि ने धर्म के तिक्त तत्त्वों को सुस्वादु बना दिया है। पूर्ववर्ती सिद्ध, जैन और नाथ सम्प्रदायी कवियों के उदाहरण उसके सामने थे जिनके काव्य मंगल के तत्त्वों से युक्त होकर भी लोक-प्रिय नहीं हो सके थे। जन-प्रिय होने के लिए मुल्ला दाउद को अमीर खुसरो के समान छिछला होना भी इष्ट नहीं था। अमीर खुसरो को उसकी विनोदमयी पहेलियों के कारण जो प्रसिद्धि मिल रही थी, मुल्ला दाउद उससे परिचित था। प्रसिद्धि का मोह किसे नहीं होता? किन्तु मुल्ला दाउद के संयम ने उसे सामान्य धरती पर उतरने से बचा लिया और वह साहित्य को एक ऐसी कृति देने में समर्थ हो सका जो समय के साथ युग-युग तक उसे जिलाये रख सकनेवाली प्राण-चेतना से अलंकृत थी।

कला-पक्ष

दाउद पहुँचे हुए साधक और रस-सिद्ध कवि हैं। भावुकता उनके रोम-रोम से टपकती है। "चन्दायन" की प्रत्येक पंक्ति उनके भावुक स्वभाव का परिचय देती है। उनका हृदय प्रेम की पूत-भावनाओं से भरा था। यही कारण है कि वे विविध प्रेम-व्यापारों का सम्यक् निरूपण कर सके हैं। मैना के विरह-वर्णन में इतना आवेग, इतना दर्द और इतना प्रवाह है कि पाठक के हृदय में बरबस उस विरहिणी के लिए समवेदना उत्पन्न हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके चित्रण कहीं-कहीं अत्युक्ति पूर्ण हो गये हैं पर वे हास्यास्पद कहीं नहीं हुए हैं। उनमें गाम्भीर्य बना हुआ है। उनके वियोग-वर्णन में स्वाभाविक छटपटाहट है, टीस है। संयोग का वर्णन भी संयमित है। भोग-विलास के अतिरंजित चित्र नहीं मिलते। मिलन के अवसर जिस उल्लास, उत्साह और हर्ष से चित्रित किये गये हैं उससे काव्य में स्वाभाविकता के साथ-साथ रंगीनी भी आ गयी है। प्रेमियों के हृदय की विह्वलता का जैसा यथातथ्य वर्णन दाउद के काव्य में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। "चन्दायन" श्रृंगाररस-प्रधान काव्य है, किन्तु उसमें अन्य रस भी हैं। प्रत्येक रस अपने स्थान पर सार्थक और अपने निर्धारित शास्त्रीय लक्षणों से विभूषित हैं।

---

[1] —अलबदाउनी: मुन्तखबुत तवारीख, रैंकिग का अनुवाद (१८९८) भाग १ पृष्ठ ३३३

भावचित्रण के अतिरिक्त दाउद का दृश्य और वस्तु-चित्रण भी अत्यन्त कलात्मक है। दाउद सूक्ष्म-दृष्टि-सम्पन्न कलाकार थे। मानव-मन में क्षण-प्रतिक्षण करवट बदलनेवाले भाव भी उनकी लेखनी की पकड़ से नहीं बच सके। इसीलिए उनका चरित्र-चित्रण मनोविज्ञान की दृढ़ आधार-शिला पर आधारित लगता है।

दाउद छन्द-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता नहीं हैं। उन्होंने केवल दो प्रकार के (दोहा और चौपाई) छन्दों का प्रयोग किया है और इन छन्दों का भी नियमानुकूल प्रयोग वे नहीं कर सके हैं। मात्राओं में सर्वत्र एकरूपता नहीं मिलती।

उनकी भाषा ठेठ बैसवारी है। दाउद ही पहले कवि हैं जिन्होंने लोक-भाषा बैसवारी को साहित्यिक संस्पर्श प्रदान कर अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश के कठोर नियम-बन्धनों से मुक्त किया। अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश का क्षीण प्रभाव तब भी इनकी भाषा पर वर्तमान है जिससे भाषा कुछ अव्यवस्थित सी हो गयी है परन्तु स्वच्छता, मधुरता, सरलता और प्रसाद-गुण से उसको किसी भी प्रकार से रहित नहीं कहा जा सकता। समस्त-पदों का व्यवहार उन्होंने कहीं नहीं किया। फारसी के जिन शब्दों का प्रयोग उनके द्वारा हो गया है वे तत्कालीन समाज में सर्व प्रचलित रहे होंगे, इसमें सन्देह नहीं है। शब्दों के तोड़-मरोड़ की प्रक्रिया उनमें दृष्टिगोचर नहीं होती। न्यून-पदत्व दोष से उनके काव्य में विकार अवश्य आ गया है किन्तु यह विकार अर्थ-संघातक नहीं है। इसी प्रकार विभक्तियों, सम्बन्ध-वाचक सर्वनामों और अव्ययों का लोप भी खटकता है, किन्तु यह दोष कवि का नहीं, भाषा का है। बैसवारी बोली में विभक्तियों, सम्बन्धवाचक सर्वनामों और अव्ययों-रहित वाक्यों के प्रयोग का प्रचलन है। लोकोक्तियों और मुहाविरों ने दाउद की भाषा को सुग्राह्य बनाया है। उनका अपनी काव्यभाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्हें अपने भावों के अनुकूल शब्द-चयन की आवश्यकता नहीं पड़ती। भाव स्वयं अपने लिए शब्द खोज लेते हैं।

दाउद की मसनवी-शैली अपनापन लिये है। उस पर किसी अन्य शैली का प्रभाव नहीं है। वे अपनी बात अपने ढंग से कहते हैं। उनकी सूक्तियाँ, उनकी उक्तियाँ अपना निजी महत्त्व रखती हैं। उनमें अनुकूल प्रभाव डालने की अद्भुत क्षमता है। दाउद की भाषा में भक्त के जीवन की सी सादगी है। अनुप्रास, उपमा, रू
उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों
प्रयोग अनायास ही हुआ है। अत्युक्ति उनका प्रिय अ
कार है। एक उदाहरण देखिए :—

नरियर गोवा के तह रूखा, देखत रहै न लागै भूखा।

साहित्य में स्थान

प्रेम-मार्गी सूफी कवियों में दाउद सर्वोपरि
अग्रगण्य हैं। मुल्ला होकर भी इस्लाम की कट्टरता
वे मुक्त हैं, उनकी उदारता मानवता की सर्वसमन्
कारी भूमि पर हिन्दू-मुसलमानों के बीच सद्भावना
स्थापना करनेवाली है। वे प्रेमाख्यान-काव्य-धारा
जनक और बैसवारी बोली को काव्य-भाषा के रू
सर्वप्रथम स्वीकार करनेवाले हैं। लालचदास, जा
और तुलसीदास के लिए उन्होंने रास्ता साफ कि
मानवीय प्रेम के प्रचारक इस सूफी कवि को पाकर हि
धन्य हुई है।

वर्षा-गीत

श्री सुधेश

आ गई बरसात!
सजनी, आ गई बरसात।
सुधा की भीनी फ़ुहारें,
गन्ध की मादक बहारें,
कह रहीं जैसे प्रकृति के कान में कुछ बात!
बादलों की गोद दामिनि,
रस नहाई अलस कामिनि,
मान भी जाओ प्रिये! तुम आज मेरी बात।
विमल पुलकित अंग निखरे,
हैं हृदय के रंग बिखरे,
एक मीठी याद बन जाये सुहानी रात!
आ गई बरसात!
सजनी, आ गई बरसात।

आचार्य रघुवीर

श्री ऋषि मामचन्द्र कौशिक

जिस समय हमारा देश पराधीनता में जकड़ा हुआ राजनीतिक संघर्ष में रत था उस समय सन् २ में रावलपिण्डी के एक मध्यमवर्गीय परिवार में रघुवीर का जन्म हुआ। लाहौर विश्वविद्यालय से ए० किया, लण्डन से पी-एच० डी० तथा हालैण्ड डी० लिट्० की उपाधि ग्रहण की। आपके पिता के हेडमास्टर थे। वे आर्यसमाजी विचारधारा के थे। इसलिए स्वदेश-प्रेम आपको बपौती में ही । शिक्षा समाप्ति के पश्चात् भारत लौटे, और धर्म कालेज लाहौर में बीस वर्ष तक संस्कृत के रहे। इन्हीं दिनों विदेश में आपने लण्डन विद्यालय में एक स्थान के लिए इण्टरव्यू दिया। आपका निर्वाचन भी हो गया। किन्तु आप चुपके लौट आये। इस विश्वविद्यालय की नियुक्ति में पंद्रह वर्ष तक आपका नाम रहा। किन्तु आप नहीं। भारत में ही रम गये। मातृभूमि की सुनी। स्वातंत्र्य-संग्राम सम्बन्धी एक पुस्तक लिखी। पुस्तक गुप्त रूप से नवयुवकों को पढ़ने के लिए दी रही। इसी पुस्तक का आपने डच भाषा में अनु- किया, और वह इण्डोनेशिया में बिकी। किन्तु नेशिया पर डचों का साम्राज्य था, उन्होंने इस पुस्तक प्रतिबन्ध लगा दिया। जेल में डाक्टर सुकार्णो के भी गुप्त रूप से इस पुस्तक की एक प्रति पहुँची। पुस्तक पढ़कर प्रभावित हुए। इण्डोनेशिया के स्व- संग्राम में इस पुस्तक से उन्हें बहुत सी सहायता । यह बात डाक्टर सुकार्णो ने अपनी आत्मकथा लिखी है। १९४७ में देश-विभाजन से पूर्व आपको मध्य- के मुख्यमंत्री स्वर्गीय रविशंकरजी शुक्ल ने बुलवा । आप लाहौर से अपना सम्पूर्ण कार्यालय उठाकर पुर चले आये। दो सौ से अधिक सन्दूकों में दुर्लभ थे। मध्यप्रदेश सरकार की हिन्दी पारिभाषिक की सम्पूर्ण योजना के आप कर्ताधर्ता हो गये।

जिन लोगों ने आचार्य रघुवीरजी को स्वर्गीय शुक्लजी के स्थान पर भेंट करते देखा, और वहाँ शुक्लजी द्वारा आपका जिस ढंग से स्वागत होता रहा, उसे देखकर वे दंग रह जाते थे। स्वयं शुक्लजी आपको द्वार पर लाने के लिए जाते थे। जिस स्थान पर स्वयं मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री होने के नाते बैठते थे, वहीं आचार्य रघुवीरजी को भी बिठाते थे। मध्यप्रदेश के नागपुर विश्वविद्यालय की सीनेट ने निर्णय किया कि विश्वविद्यालय की पढ़ाई का माध्यम मराठी और हिन्दी हो। इसका श्रेय मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री स्वर्गीय रविशंकर शुक्ल तथा लौहपुरुष द्वारकाप्रसाद मिश्र को था। उसी समय डाक्टर रघुवीर ने विश्वविद्यालय के माध्यम के अनुसार हिन्दी और मराठी में चालीस से अधिक विविध विषयों की पुस्तकों की रचना की। ये पुस्तकें आज तक पाठचक्रम में लगी हुई हैं। आपने किसी भी प्रकार हिन्दी को किसी भी स्थान में हीन नहीं होने दिया।

आज से तीस वर्ष पूर्व आपने लिखा था, "जब तक सम्पूर्ण एशिया स्वतंत्र नहीं होगा तब तक यदि भारत स्वतंत्र भी होगा तो वह उसकी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होगी। भारत के निकट के सभी देश, जो भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित रहे, वे भारत के निकटतम साथी रह सकते हैं।" भारतीय संस्कृति को विदेशों में पहुँचाने के लिए आप सक्रिय रहे।

विगत पच्चीस वर्षों से हिन्दी को राज्यभाषा बनाने तथा उसकी समृद्धि के लिए जिन विद्वानों ने सहयोग दिया है उनमें स्वर्गीय आचार्य रघुवीर का भी प्रथम पंक्ति में स्थान है। १९३४ में आपने "सरस्वती विहार" (इन्टरनेशनल एकडेमी आफ इण्डियन कलचर) की स्थापना की थी। यह आपकी निजी संस्था है। इसके द्वारा आपने भारतीय संस्कृति, साहित्य, राजनीति तथा भारत की प्राचीन सभ्यता आदि के सम्बन्ध में ठोस कार्य किया है। १९३६ में आपने लाहौर में ही हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण के कार्य का श्रीगणेश किया था। इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य करने वाले आप ही थे। एक दो और सज्जनों ने प्रयत्न भी किये थे, किन्तु वे अग्रसर नहीं हो सके।

पारिभाषिक शब्दों का हमारे सामने एक गम्भीर प्रश्न था। देश क कुछ नेता कह रहे थे कि विदेशी शब्दावली को पूर्णतः स्वीकार किया जाए। किन्तु आचार्य रघुवीर ने इसका डटकर विरोध किया और कहा कि

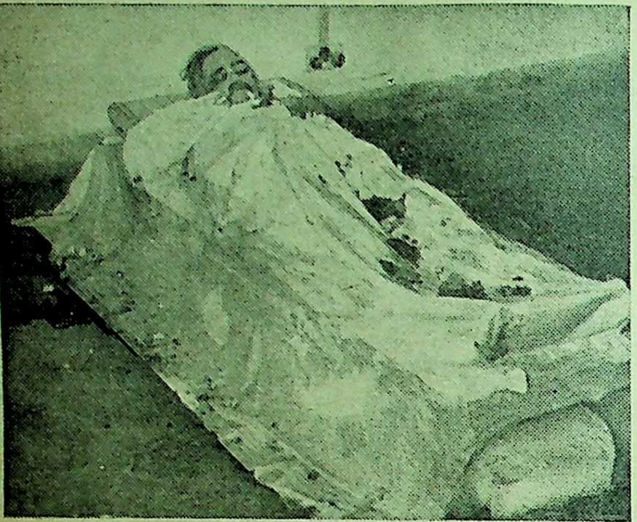

आचार्य रघुवीर चिरनिद्रा में

यदि आज हम विदेशी शब्दों को, जिनकी संख्या लाखों तक है, अपना लेते हैं तो हमारी भाषा बिगड़ जायेगी। साथ ही हमारा वैज्ञानिक सम्पूर्ण साहित्य विदेशी साहित्य की अनुकृति मात्र ही रह जायगा; क्योंकि शब्दों द्वारा ही भाषा का निर्माण होता है और शब्दों का निर्माण विचारों से होता है। यदि हम विदेशी शब्दावली अपना लेते हैं तो सदैव के लिए हमें अपने मौलिक चिन्तन का मार्ग बन्द कर देना पड़ेगा।

आचार्य रघुवीर नेताओं के जोरदार प्रचार से घबराये नहीं। उन्होंने पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर ही डाला। बीस वर्षों के संघर्ष के बाद सतत प्रयत्न से वे उसका निर्माण करने में पूर्ण सफल हुए। जून १९५५ में नागपुर से A Comprehensive English Hindi Dictionary प्रकाशित हुई। इसमें एक लाख से अधिक वे पारिभाषिक शब्द हैं जो आधुनिक विज्ञान की अनन्त शाखा-प्रशाखाओं में व्यवहृत किये जाते हैं। वैज्ञानिक शब्दों के पश्चात् प्रशासन-सम्बन्धी शब्दों की भी आवश्यकता थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उनकी आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव होने लगी। आप प्रशासन सम्बन्धी शब्दावली तैयार करने में जुट गये और उसे तैयार कर डाला। यह प्रसन्नता की बात है कि इस शब्दावली के अधिकांश शब्द थोड़े से समय में ही हमारी भाषा के अभिन्न अंग बन गये। सरकारी समितियों ने भी अपने कोष बनाते समय मुख्य रूप से उन्हींकी शब्दावली से सहायता ली। इन शब्दों के निर्माण से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में अद्भुत विस्तार है। अनेक प्रान्तों में प्रशासन सम्बन्धी इस का प्रयोग हो रहा है। शब्दों के निर्माण के लिए एक विशेष वैज्ञानिक पद्धति द्वारा कार्य किया, निःसंकोच पाणिनि-प्रणाली कह सकते हैं। भाषा- का कार्य आपका ऐतिहासिक कार्य रहा है।

अखिल विश्व मंगोल भाषा सम्मेलन में में भारत के प्रतिनिधि के रूप में आचार्य रघुवीर ने लिया। आप ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो रसायन, खगोल, वनस्पति, प्राणिशास्त्र आदि किसी भी विषय पर हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुए घंटों धाराप्रवाह बोलने की क्षमता रखते थे।

आप अपनी श्रम-साधना के बल पर ही न केवल में ही, विदेशों में भी कोषकार के नाम से प्रख्यात हो

लन्डन में १९३० में आपने डाक्टर ग्रियर्सन से की। किन्तु डाक्टर ग्रियर्सन ने हिन्दी पर जो किया यह आचार्य रघुवीर को चुभ गया। इसका देने की उन्होंने ठान ली। १९३१ में पेरिस में भाषा सिल्वाँ लेवी से भी भेंट की। आपने अपनी भाषा उन्नत करने का लक्ष्य अपने जीवन का एकमात्र बनाया, और विदेशी विद्वानों की चुनौती का सामना किया और अपनी योजना को क्रियान्वित दिखाया। उन्हें रसायनशास्त्र की शब्दावली बनाने सबसे अधिक सफलता मिली। १९४५ में वाराणसी पूना के विश्वविद्यालयों में इस योजना को क्रिया किया गया, तथा हिन्दी माध्यम के द्वारा रसा शास्त्र की शिक्षा दिलवाने का अभियान किया एक नया द्वार खोला।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जिस प्रकार से अनेक पाण्डुलिपियाँ लाये थे, उसी प्रकार आ रघुवीर चीन यात्रा से दो सौ अट्ठाइस मन प्रा दुर्लभ ग्रंथ लाये।

१९३४ से लेकर १९६० तक आपने भारत का नहीं, एशिया तथा योरोप का भी भ्रमण किया। में बर्मा, थाईलैण्ड, श्रीलंका, कम्बोडिया, इंडोने आदि का पर्यटन किया, और वहाँसे बहुत अधिक मा में शोध-सामग्री अपने साथ लाये।

१९६२ साइबेरिया के भ्रमण में वहाँसे आप चौरासी द्रों की प्राचीन तांत्रिक तसवीरें लाये थे।

आचार्य रघुवीर ने भारतीय संस्कृति का मधुसंचय नहीं किया, विश्व के समस्त देशों से भारतीय संस्कृति न्धी साहित्य को एकत्र ही नहीं किया, अपितु स्वस्थ सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रणाली को भी दिया। चीन, मंगोल, तिब्बती, डच तथा अँगरेजी दि संसार की प्रमुख भाषाओं में भारतीय संस्कृति हित्य का निर्माण कर उन देशों में भारतीय संस्कृति प्रचार किया। उनकी स्थापित की हुई संस्था समय-समय पर विदेशों के गवेषक आमंत्रित रहते हैं जो यहाँ रहकर भारतीय संस्कृति का न करते हैं।

आपने शब्दावली का निर्माण ही नहीं किया, अपितु प्रचार में भी परिश्रम और प्रयत्न किया। उन्हें महान् कार्य में कई प्रकार की समस्याओं और का सामना करना पड़ा, किन्तु वे विचलित नहीं । जिन आदर्शों को सामने रखकर उन्होंने अपने कार्य का श्रीगणेश किया था, उनका पालन वे तक करते रहे।

वे स्वतंत्र भारत की संविधान सभा के सदस्य थे। र आपने अपना कर्त्तव्य निष्ठापूर्वक निभाया। वित्र कार्य के लिए उन्हें बहुत आन्दोलन करना । बाद में वे संसद की राज्यसभा के सदस्य निर्वा- हुए। उन्होंने संसद में सदैव संस्कृतनिष्ठ हिन्दी समर्थन किया। हिन्दी-विरोधियों की चुनौती को कार करते रहे और उनका डटकर उत्तर देते रहे। सदस्य हो जाने पर भी हिन्दी पर किसी भी प्रकार हार का मुँहतोड़ उत्तर देने में नहीं चूके। हिन्दी ो मान प्राप्त हुआ इसमें आपका बहुत बड़ा रहा है।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भी आप अग्रणी रहे। ने भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर अभि- प्रकाश डाला। भारतीय संस्कृति का उत्थान करने- इस मनीषी के कार्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय ह अपर्याप्त होगी।

किस भाषा में कितने शब्द हैं, साहित्य से विज्ञान कितने अधिक शब्द व्यवहार में लाये जाते हैं, हिन्दी में कितने वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता है, ये सब तथ्य आपने परिश्रमपूर्वक एकत्र कर रखे थे और आवश्यकता पड़ने पर उनका तत्काल उपयोग करते थे। आपका स्वप्न था कि दक्षिण-पूर्व एशिया के देश ही नहीं, सम्पूर्ण एशिया एक सूत्र में बँध जाय।

आचार्य रघुवीर साहसी एवं स्पष्टवादी थे। संसदीय हिन्दी परिषद् में होने के नाते आपने सर्वप्रथम प्रधान मंत्री की आलोचना करते हुए कहा था कि देश के प्रधान मंत्री भारत की संसद में विदेशी भाषा में क्यों बोलते हैं। प्रधान मंत्री क्षुब्ध हो उठे, किन्तु आप रुके नहीं। सरकार की हिन्दी नीति की आलोचना करने में भी आप कभी संकोच नहीं करते थे।

संसद में पहुँचकर उनका ध्यान राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं की ओर भी गया। उन्होंने देखा कि आज की व्यवस्था में निर्धन अधिक निर्धन होते जा रहे हैं, पूँजीपति अधिक धनी हो रहे हैं। धनी और निर्धन के मध्य खाई बढ़ती ही जा रही है। आप देश की आर्थिक अवस्था पर विचार करने के लिए विवश हुए। आपने दूसरे देशों की अर्थ-प्रणालियों का अध्ययन किया। वहाँके समाधानों का भी अध्ययन किया तथा एक विशाल नई जनयोजना को जन्म दिया। इसका उद्देश्य यही था कि भारत के एक-एक नर-नारी की समृद्धि हो।

हिमालय पर पड़ी चीन की कुदृष्टि के वास्तविक अभिप्राय को आचार्य रघुवीरजी ने बहुत पहिले ही समझ लिया था। वे सरकार की नीति की आलोचना करते रहे। लोगों को उनकी बातें हास्यास्पद लगीं। परन्तु जब वास्तविकता प्रकट हुई तो लोग आपकी राजनीतिक दृष्टि और दूरदर्शिता के कायल हो गये।

उन्होंने अस्त्राखान (वोल्गा) से "पद्मपुराण", बाइकाल के निकट से 'सुभाषितरत्न', मंगोलिया से 'मेघदूत', 'विक्रमादित्य' तथा राजा भोज की कहानियों के मंगोल अनुवादों की प्राचीन पुस्तकें प्राप्त कीं। विदेशों में जाकर वहाँसे भारत की प्राचीन संस्कृति सम्बन्धी अनुपम सामग्री एकत्र की, और उससे 'सरस्वती-विहार' को भरा। यह विशुद्ध सत्य है कि विशाल भारत के प्राचीन इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं कला के अध्ययन के लिए भारत में अन्यत्र इतनी अधिक मूल्यवान् सामग्री अप्राप्य है।

आपकी मृत्यु से भारतीय संस्कृति का एक चलता-फिरता विश्वकोष चला गया। दक्षिण-पूर्व एशिया की संस्कृति की जीवित स्मृतियाँ नष्ट हो गयीं। हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति का एक प्रबल उपासक चला गया। हिन्दी को राजभाषा बनाने की लड़ाई का आपने प्रारम्भ ही किया था। इसीके लिए गत वर्ष आपने दिल्ली में एक भाषा-सम्मेलन बुलाया था। वह संघर्ष अभी आरंभ ही हुआ था कि आप हमारे बीच से उठ गये।

राष्ट्र के प्रति आपका अटूट विश्वास था। सदैव सरल जीवन निभाया और आनेवाली पीढ़ी के सम्मुख एक महान् उच्च आदर्श उपस्थित किया। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और आचार्य रघुवीर का निधन वर्षों तक हमें शूल की तरह चुभते रहेंगे, क्योंकि इन विद्वानों का कार्यक्षेत्र असाधारण था।

वे पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि की परम्परा के विद्वान् थे। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और आचार्य रघुवीर के निधन से माँ भारती हिन्दी अनाथ सी हो गयी। पता नहीं कि कितने वर्षों बाद इस क्षति की पूर्ति होगी। यह हिन्दी का कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि ठीक संकट के समय उसके एक से एक श्रेष्ठतम सपूत उठते जा रहे हैं!

संतोष इतना ही है कि आपके द्वारा स्थापित 'सरस्वती-विहार' के कार्य को अग्रसर करने में आपके पुत्र डाक्टर लोकेशचन्द्र, पुत्रवधू डाक्टर शारदारानी तथा सुपुत्री डाक्टर सुदर्शनादेवी संलग्न हैं। देश के सारे विद्वत् समाज की कामना है कि यह कार्य अग्रसर होता रहे। अथर्ववेद (पैप्पलादसंहिता), जैमिनीय ब्राह्मण और सामवेद, उद्धारक कोष, बुद्ध और बोधिसत्व मूर्तिकला में, वैदिक मिस्टिसिज्म, वाल्मीकि रामायण, चीनी रामायण, जैमिनीय संहिता, स्वरव्यंजना, अँगरेजी और भारतीय शब्दकोष, भारतीय पक्षी शब्दकोष, आ
शब्दावली, हिन्दी अँगरेजी पारिभाषिक कोष, अर्थ
कोष, आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

आपके निधन पर नैपाल, हालैण्ड, दक्षिण-वि
नाम, थाईलैण्ड और इन्डोनेशिया के राजदूतों
ओर से शोक सन्देश भेजे गये और हालैंड
राजदूत ने तो निवासस्थान पर जाकर श्रद्धाञ्ज
अर्पित की थी।

आप प्रमुख भाषाविद्, देशभक्त और संस्कृति
प्रेमी थे। आपकी हिन्दीनिष्ठा और साहित्य-
सदैव वंदनीय रहेगी।

बरसो मेरे बादल!

श्री सन्तकुमार टंडन 'रसिक'

तुम आये घनश्याम, और मैं राधा सी बन आ
आकर तुम चलने को उद्यत, मैं कुछ समझ न पायी!
स्नेह-वंचिता रहो कहीं तो हो जाऊँगी पाग
मेरे तन की धरती सूखी, बरसो मेरे बादल!

विद्युत् चमक उठी तो चमका मेरा लघुतम जीव
मलयानिल सी स्वांस चली तो महका मेरा मधुबन

दो छायाएँ मिलीं परस्पर हुई इकहरी गहरी
अवसर पाकर डूब गया संयम का दिनकर प्रहरी!

एक एक स्वर आया अंबर अधरों पर अनगा
मेरे पीड़ित चातक प्राणों को तुमने दुलरा
चले न जाना दिशा-नयन की कोरों में दे काजल
मेरे मन की धरती सूखी, बरसो मेरे बादल!

అ ఆ ఇ ఈ ఉ ఊ ఋ ౠ ఎ ఏ ఐ ఒ ఓ ఔ

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (२)

श्री फेनी मुकर्जी

उस दिन नगर में घूमते हुए हमें ऐसा मालूम हुआ कि हम तिब्बत देश के राजद्वार ग्यानसी नगरी में सैनिक की तरह घूम-फिर रहे हैं। मेरी छाती दाहिनी ओर दो पसलियाँ टूटी हुई पड़ी थीं और दयालु सिविल सर्जन ने मेरी छाती को पट्टी जकड़कर बाँध दिया था, तथा पूर्ण विश्राम करने आदेश दिया था। परन्तु, मन नहीं मानता बाहरी रुकावट या अड़चन। ग्यानसी पहुँचकर हमको लोगों से मेल-जोल करने का मौका मिला। चार दिनों में ही हमने समझ लिया कि उत्तरी के लोग अधिक ईमानदार, दयालु और कर्मशील हैं और दक्षिणी तिब्बत-निवासी बहुत शांतिप्रिय, कौशल में दक्ष और विद्या के प्रेमी होते हैं। उत्तरी ('खम्ब' प्रांत) के रहनेवाले 'खम्पा' कहलाते हैं। र पुरुष लम्बे-चौड़े, सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं। तिब्बत-निवासी देखने में बहुत मैले-कुचैले मालूम हैं किंतु उनके शरीर से विशेष खराब दुर्गन्ध नहीं। तिब्बत का रहन-सहन और वहाँके रीति-रिवाज भारत से भिन्न हैं। तिब्बत बहुत ठंडा और देश है जहाँ पानी से मुँह धोना भी बहुत यी है। मैं उस देश में छः महीने से अधिक रहा, बिना नहाये और हजामत बनाये आराम से रहता। मेरे सारे शरीर में मैल की एक काली परत यी थी, कपड़ों और बिस्तर में जुएँ और खटमलों र कर लिया था। वहाँके स्त्री और पुरुष, दोनों ही ढीला लम्बा कोट पहनते हैं। मर्द कोट के नीचे एक पायजामा पहनते हैं परन्तु स्त्रियाँ इसका प्रयोग नहीं। स्त्री-पुरुष एक ही तरह की पोशाक पहने हैं। दाढ़ी दोनों में से किसीके नहीं होती। दोनों ही के ों में गुथी हुई दो चोटियाँ लटकती हैं। स्त्री के कान में लम्बी वालियाँ लटकती हैं, और मर्द अपने एक कान सुन्दर रंगीन पत्थर का एक पेंसिलनुमा अलंकार ते हैं। इस पसिलनुमा अलंकार की लम्बाई बतलाती है कि पहिननेवाला कितना बड़ा सरकारी कर्मचारी है। स्त्री-पुरुष दोनों ही सुन्दर रंगीन पट्टियाँ कमर में लपेटे रहते हैं। पुरुष सामान्यतः एक भारी-भरकम तलवार-नुमा छुरा इस पट्टी में लगाये रहते हैं। स्त्रियाँ एक सुन्दर रंगीन झाड़न इस पट्टी से बाँधकर अपने घुटनों के ऊपर लटकाये रहती हैं। दोनों ही के पैरों में ऊन और चमड़े से बने हुए, घुटनों तक के ऊँचे, बूट जूते रहते हैं। जूते यहाँ अपवित्र नहीं समझे जाते। उन्हें पहिने हुए सब जगह चले जाते हैं। विशेष अवसरों पर स्त्रियाँ श्रृंगार के लिए अपने गालों पर लाल रंग लगा लेती हैं और काले कागज के छोटे-छोटे टुकड़े बिन्दी बनाकर जहाँ-तहाँ चिपका लेती हैं। सिर की शोभा बढ़ाने के लिए वह 'पागो' लगाती हैं। यह 'पागो' (जो मुकुट या टोपी के समान होती है) एक बाँस की बनी हुई कमानी पर असली व नकली मोती, कीमती पत्थर और चमकीले मोतियों की माला लटकाकर बनायी जाती है। 'पागो' इतनी लम्बी-चौड़ी भारी-भरकम होती हैं कि स्त्री अपने सिर को आसानी से घुमा-फिरा नहीं सकती। छोटे-छोटे बालकों की सफाई उसकी माता अपने थूक और कोट की रगड़ से करती हैं। यहाँकी रीति के अनुसार मनुष्य अपना थूक हमारे देश के गंगाजल की भाँति पवित्र समझकर प्रयोग करता है। शौच में पानी, मिट्टी या कागज का प्रयोग नहीं किया जाता। अधिकतर यहाँ लोग काले रंग का कोट पहिनते हैं और योरोपीय फेल्ट हैट लगाते हैं। भिक्षु और भिक्षुणियाँ कत्थई रंग का कोट पहिनती हैं। सारे स्त्री-पुरुषों के सिर पर सुन्दर चोटियाँ गूँथी रहती हैं, परन्तु भिक्षु और भिक्षुणियों के सिर मुँड़े रहते हैं।

ग्यानसी नगर की सड़कों पर घूमते-फिरते जब मैं यहाँके विशाल मठ के समीप पहुँचा तो देखा कि एक छोटा-मोटा बाजार लगा हुआ है। दुकानदार अपने ऊपर कपड़े की बड़ी-बड़ी छतरी लगाये बैठे हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही दुकानदारी कर रहे हैं। दुकानदारों की इन छतरियों को देखकर बनारस के गंगा घाट पर बैठे पंडों की याद आ गयी। मोटे रूप से वह बाजार हमारे देश के गाँव के हाट की भाँति लग रहा था। यह दुकानदार भारत और चीन से लायी हुई वस्तुएँ बेच रहे थे। अचानक एक तिब्बती सुन्दरी ने हिंदी में पुकारकर एक कैंची सिगरेट के बंडल को उठाकर बड़े आदर से कहा "तुम सिग्रेट लेगा ?" अपने देश की यह मधुर वाणी सुन-

ग्यानसी के बड़े मठ में स्थापित बुद्ध भगवान् की प्रायः तीस फुट ऊँची कमलासन पर विराजमान स्वर्णिम प्रतिमा।

कर मैं चौंक पड़ा। सिग्रेट की मुझको वास्तव में बड़ी आवश्यकता थी, परन्तु मैं अपने मुँह से कुछ बोल न सका। गुम-सुम खड़ा उस सुन्दरी की चंचल आँखें, यौवन से भरा और गठा हुआ शरीर देखता रह गया। वह अपने केश को कुछ-कुछ नैपाली ढंग की चोटी बनाकर सजाये हुए थी। वह ऐसे सौहार्द से मुझ विदेशी से बात करने लगी मानों हम दोनों बहुत पुराने परिचित हों। बात करते-करते वह हँसते हुए आकर मेरे समीप खड़ी हो गयी। अब अचानक मुझको याद आयी गले में लटके हुए कैमरे की। बिना पूछे, बिना डरे, मैं लगा उस तरुणी की तसवीरें उतारने। इस बीच में न जाने उसने हँस-हँसकर क्या-क्या कहा, परन्तु मैं लगातार उसकी प्रत्येक प्रतिभाशाली और तेजस्वी भाव-भंगिमा के चित्र उतारता गया। मेरे इस असभ्य व्यवहार का उसने विरोध नहीं किया। हम
दोनों के चारों ओर भीड़ जमा हो गयी। भीड़ के
अपनी (तिब्बती) भाषा में उस नारी से हँसी-मजाक
रहे थे। उस भरे बाजार में अपने को उसके बनाये
का कारण समझकर मैं बहुत दुखी हो उठा। मैंने अनु
किया कि मेरे ही व्यवहार के कारण वह इस प्रकार
का शिकार बन रही है। मैं तो मुसाफिर हूँ और न
अगले दिन कहाँ लुप्त हो जाऊँगा, परन्तु छोड़ जाऊँ
उस उदार अबला-निर्दोष नारी को सदा के लिए
मूर्ख और अज्ञानी तिब्बतियों के अश्लील व्यंग्यों के
में फँसा कर। मैंने चुपके से हाथ बढ़ाकर सिग्रेट का
ले लिया उसके हाथ से, और अन्दाज से उसकी कीमत
लगभग तीन गुने दामों के तिब्बती नोट उसके हाथ
देकर आगे चल पड़ा। अचानक उसके मुँह से एक
निकली---"ओ-बाबूला"--चलते-चलते घूमकर निहा
उसकी ओर तो देखा उसके उज्ज्वल चेहरे की बड़ी-
आँखों में आँसू टपक रहे हैं। मैं तेजी से बाजार से नि
चला। जाते-जाते देखा दुकानदार बैठे बेच रहे हैं
हुए समूचे बकरे, और भेड़ का मांस; चमड़े की फुटबाल
नुमा गोल कुप्पियों में मक्खन; सिगरेट-दियासलाई
चीनी और भारतीय रंगीन कपड़े, साँभर नमक, चीन
बनी हुई चाय की पत्तियों की जमी हुई साबुन की त
बड़ी-बड़ी टिकियाँ, मिट्टी के तेल के छोटे-छोटे डिब्बे
आलू। ग्यानसी तिब्बत के इस भाग के व्यापार का के
था। उन दिनों यह बड़ा बाजार हर रोज सुबह ल
था, और सैकड़ों नर-नारी खरीद-फरोख्त के लिए जमा
जाते थे। मांस, दूध, मक्खन, ऊन एवं नित्य के काम
आनेवाली भारतीय, चीनी और जापानी चीजें
बिकती थीं।

उन दिनों वहाँ नेपालियों की बड़ी-बड़ी दूकानें
वे लोग रेशमी, सूती और ऊनी कपड़ा, ऊन और
का व्यापार थोक के हिसाब से करते थे। वे रुपये का
देन भी करते थे। इनका यह कारोबार खूब उन्नति
था। ये लोग काफी मालदार थे। और तिब्बती सौदा
से लेनदेन का सारा कारोबार इन्हीं लोगों के हाथ में
वे लोग अपने देश से यहाँ आकर और दस-बीस साल
कर खूब ढेर सारा धन जमा करके फिर अपने देश को
जाते थे। इस बीच यहाँ रहने के आराम के लिए यहाँ
एक-दो तिब्बती स्त्रियाँ अपने घरों में बिठा लेते थे।

को लौटने पर उन स्त्रियों को बच्चों समेत यहीं छोड़ ते थे।

उस दिन बुद्ध भगवान् का जन्मोत्सव-संबंधी अन्तिम व बड़े जोर-शोर से मनाया जा रहा था। हजारों ी नर-नारी अच्छे-अच्छे रंगीन कपड़े पहिने इस ल मठ की ओर बढ़े चले आ रहे थे। गगन में प्रातः ते फटते ही शंख, घड़ियाल और तुरही बाजों की ज से सारी नगरी गूँज उठी थी। अनेक भक्त नर-लेट-लेटकर मंदिर की परिक्रमा लगा रहे थे। भिक्षु ारी हाथों में मंत्र लिखे हुए कागजों से भरे हुए एक फिरकीनुमा यंत्र को घुमा-घुमाकर मंत्र गुनगुनाते ूम-फिर रहे थे। छोटे-बड़े सभी दान-पुण्य के काम में थे। मंदिरों के भिक्षुकों को इसी एक महीने में आमदनी हो जाती थी।

ुझे बताया गया कि ग्यानसी का यह प्रसिद्ध मंदिर ग्यारह सौ वर्ष पुराना है। मैंने देखा कि इसकी दीवारों पर बहुत ही सुन्दर और बारीक नक्काशी ी है। इस विशाल सुन्दर मठ के ऊपर एक चौकोर त है जिसपर ताँबे और पीतल से बना हुआ एक म्बोतरे प्रकार का गुम्बज है जिसकी चोटी पर ुनहरी छतरी लगी हुई है। इसपर बड़े ही अच्छे से सोने का पानी चढ़ाया गया है। वह ऐसा रहा था मानों अभी बनाकर खड़ा किया गया इसको देखने से मुझे जगमगाता हुआ अमृतसर का मंदिर याद आ गया जिसे मैंने अंग्रेजी युग में देखा था ो उन दिनों मुझे बड़ा आकर्षक और बड़ी अच्छी में दिखलायी पड़ा था।

ाज जब मैं यह संस्मरण लिख रहा हूँ तब मेरा मन हो जाता है—सुन-सुनकर जगमगाते हुए मठों के िब्बत की बरबादी की कहानियाँ। रहती होंगी अब विशाल मठों में मानवता की शत्रु-सेनाएँ। जहाँ लामा धार्मिक कृत्यों में लगे हुए घूमा करते थे, वहाँ है कि अब उनका नाम भी शेष नहीं है। उन मठों कितने ही निरीह भिक्षुओं और लामाओं का बध कर गया। संसार के सबसे ऊँचे और प्राचीन धार्मिक के मठों में निर्दोष नर-नारियों की हत्या से सारा िमालय प्रज्ज्वलित हो उठा, और संसार का कोना-ोना राजनीतिक भूकम्प से डोल उठा। मानवता के बर्बर शत्रुओं ने तिब्बत के इन शान्ति के संदेशवाहक सारे मठों और मंदिरों को गोला-बारूद से भर दिया, और उनमें रहने लगे आदमखोर पशु। देखते ही देखते सदा के लिए लुप्त हो गये तिब्बत के वे मठ, मंदिर और उनके लामा!

उस दिन राहुलजी की तबियत कुछ अच्छी थी। हम उनको साथ लेकर इस प्रसिद्ध मंदिर के भीतर स्थापित बुद्ध भगवान् की मूर्ति का दर्शन करने चल पड़े। भीतर जाकर देखा कि लगभग तीस फुट ऊँची, बड़ी ही सुन्दर सुनहरी मूर्ति हीरे-जवाहरात से सुसज्जित जगमगा रही है। इस तमतमाती हुई स्वर्ण मूर्ति के समीप जल रहे थे छोटे बड़े सैकड़ों घी के प्रदीप। मंदिर के उस विशाल गर्भगृह में देवी-देवताओं की अनेक छोटी-बड़ी मूर्त्तियाँ स्थापित थीं। सारे फर्श पर बड़ी ही सुन्दर रंगीन अल्पनाएँ बनी हुई थीं। दूर, पीछेवाली दीवार से लगे हुए एक सुनहरे सिंहासन पर विराजमान थे इस मठ के लामा महोदय। उनका सम्मान जीवित बुद्ध की तरह होता था। वेशभूषा और कीमती गहनों की सजावट से वे एक देवता लग रहे थे। उनके समीप कुछ ऊँचे दर्जे के पंडित विराजमान थे और उनके चारों ओर बड़े तरीके से पंक्तियों में खड़े थे भिक्षुगण। ये भिक्षु उच्च स्वर से किसी धार्मिक ग्रंथ का पाठ कर रहे थे। बीच-बीच में शंख, घड़ियाल और ढोल गूँज रहे थे। जलते हुए लोहबान और धूपबत्तियों के गुच्छे से सारा वातावरण महक रहा था। और याक (सुरागाय) की पूँछ के चँवर डुलाते हुए भिक्षु इधर-उधर घूम-फिर रहे थे। दीवारों पर बड़े लम्बे-चौड़े धार्मिक चित्र बने हुए थे। प्रधान लामा के सिंहासन के दोनों ओर बड़ी-बड़ी मशालें जल रही थीं। इस दृश्य और इस वातावरण को देखकर मैं विश्व-विख्यात नर्त्तक उदयशंकर की नृत्य विद्या की प्रेरणा के स्रोत के रहस्य को कुछ-कुछ समझने लगा।

असल में अगर देखा जाये तो सिवाय इस मठ की भीत और दो एक मूर्त्तियों के सब कुछ ५० साल से ज्यादा पुराना नहीं था। मठ के स्वामी दिन पर दिन पुरानी चीजों को हटाकर बाहरी दुनिया से नयी चीजें मँगाकर इस मठ में लगाते या उसे सजाते जा रहे थे। यह ज्ञान हमें तब हुआ जब तिब्बत के भीतरी भागों के छिपे हुए मठों को देखने का मौका मिला। पर उस दिन तो अचानक मुझ ऐसे तरुण को इस मठ की विशालता और आडम्बर

ने मोहित कर डाला, और सैकड़ों तिब्बत-निवासियों को लेट-लेटकर बुद्धदेव की परिक्रमा और पूजा करते देख मैंने भी आगे बढ़कर उनके चरणों में माथा टेक दिया ! मन ही मन उन महान् देवता को प्रणाम करते हुए कहा--"धन्य हो हे महान् देवता ! तुम हजारों वर्ष जीवित रहकर आज भी दूर-दूर देशों के नर-नारियों के हृदय पर राज्य कर रहे हो। तुम आज भी संसार के सच्चे जीवन-पथ पर सच्चे मार्गदर्शक हो।" किंतु उसी समय अचानक किसीने मुझको पीछे से पकड़कर खींच लिया। मुड़कर देखा तो मुझे खींचनेवाले गेरुआ वस्त्रधारी और बौद्ध धर्म के अनुयायी स्वयं महापंडित राहुलजी थे। वे मुझसे कह रहे थे--"यह क्या मूर्खता कर रहे हो ?"--हक्का-बक्का होकर मैंने कहा "भगवान् को प्रणाम कर रहा था।" तीखी हँसी हँसकर उन्होंने मेरी इस भगवान्-भक्ति की बड़ी हँसी उड़ाई। कहने लगे "पागल ! यह तो धर्म के धोखेबाजों ने धन लूटने के लिए एक फर्जी मूर्ति बना रखी है।" मैंने पूछा "फिर असली भगवान् की मूर्ति कहाँ मिलेगी ?" बोले--"वह है लेनिन महाराज की जो विराजमान है रूस देश की राजधानी मास्को नगर में।" मैं यह सुनकर अपने घायल कलेजे को थामकर चुप रह गया। और फिर राहुलजी बोले--"फेनी बाबू ! नाराज क्यों हो रहे हो ? मैं तुम्हारे पूर्वजनों की और तुम्हारी भूल सुधार करके तुमको असली जीवन-धर्म का मूल-मंत्र सिखा रहा हूँ। गाय का मांस खाओ, और लाल झंडे का नारा ऊँचा करो। इसीसे होगा तुम्हारा और सारे भारत का कल्याण।" क्रोध और प्रतिशोध की ज्वाला से मेरा सारा शरीर काँपने लगा। परन्तु सब के सामने कुछ कहते न बना। बाहर निकलकर फिर वे बोले, "यह मंदिर और यह झूठी मूर्त्तियाँ तुमको रोटियाँ नहीं खिला सकती हैं।" मैं तो चुप रहा किंतु अभयसिंह ने कहा, "अगर तुमको इतनी भूख लग रही थी तो छोड़कर क्यों आ गये ? उन रूसियों की पत्तलों को खाया करते !" इस घटना से मेरे मन में बड़ी ग्लानि हुई और सारे दिन अन्यमनस्क रहा।

दूसरे दिन सबेरे से ही हमलोग खच्चर और गधे किराये पर देनेवालों की खोज में निकल पड़े जिससे तिब्बत देश के भीतर प्रवेश करें। हम लोगों की इस खोज को देखकर तिब्बत सरकार के जासूसों ने बहुत होशियारी से हम लोगों के प्रोग्राम को मालूम कर लिया। उनके अफसर आये और उन्होंने हमारे वे सारे कागज ध्यान से देखे जो श्री अभयसिंह परेरा अपने साथ लासा के तिब्बत की सरकार से लाये थे। देखने में वहाँके अफसर काफी रोबदार थे, और बातचीत भी बड़े तरीके से करते थे। हमारे इन सरकारी अनुमति पत्रों और हमारी ईमानदारी से वे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने हमको एक सरकारी आज्ञापत्र (परवाना) दिया जिसके अनुसार हम तिब्बत सरकार के माननीय अतिथि हो गये, और तिब्बत सरकार ने हमारी सुरक्षा और देखभाल का भार अपने ऊपर लेकर रास्ते के अधिकारियों को हर प्रकार से हमारी सहायता करने
आदेश दिया। इस प्रकार का मान विदेशियों के
तिब्बत ऐसे देश में ही दिया जाता था। भारत के
प्राचीन काल में फाहियान, ह्वेनसांग, मेगेस्थनीज
वास्कोडीगामा इत्यादि को ऐसा ही मान दिया गया
उनके चले जाने पर राहुलजी कहने लगे कि अगर
सिंहजी ये (visa) सरकारी आज्ञापत्र न लाये होते
आज हम लोगों को तुरन्त लौट जाना पड़ता।

ग्यानसी ही वह जगह है जहाँ ब्रिटिश राज्य से
छूटता था। उन दिनों डाकबँगले और डाकखाने भी
तक ही थे। वहाँ अँगरेजों की ५०० सिपाहियों की
फौज रहती थी। उन दिनों वहाँ सिक्खों के रेजिमेंट
सिपाही तैनात थे। हर तीसरे साल रेजिमेंट बदला जा
था। वहाँ तिब्बत सरकार का भी एक बहुत जबर्द
किला बना था जिसको जोंग के नाम से पुकारते थे।
एक तिब्बती गवर्नर रहता था, और जोंगसर के ना
से पुकारा जाता था। एक जोंगसर फारी के जोंग में
यहाँ आते हुए देखा था, और फिर यह दूसरा। इ
प्रकार तिब्बत में १३ जोंगसर अपने-अपने जोंग में बैठ
सारे तिब्बत के १३ प्रान्तों का प्रशासनिक प्रबंध करते थे
इन गवर्नरों के गवर्नर-जनरल थे महामाननीय "दा
लामा" जो सारे देश की फौज, पुलिस, वाणिज्य इत्या
की बागडोर सँभाला करते थे। इनकी राजधानी
शिगरषी नगर जिसकी विशालता लासा राजधानी
बाद दूसरे नम्बर पर समझी जाती थी। वाणिज्य
केन्द्र होने के नाते तिब्बत के बड़े नगरों में ग्यानसी
तीसरा नम्बर आता था। बाकी तिब्बत छोटे-बड़े अने
मठों में विभाजित था। अपनी जागीर और जमीन
लगान-वसूली और देख-रेख मठ के लामा लोग अ
भिक्षुओं की सहायता से कर लेते थे।

ग्यानसी नगर के चारों ओर पहाड़ियों के ऊपर
एक बड़ी ऊँची पत्थर की बनी हुई चारदीवारी बि
हुई थी। तिब्बत सरकार ने भी डाक और तार का ब
बस्त कर रखा था। लेकिन अधिकतर वे सरकारी का
ही करते थे और केवल मुख्य तीन ही नगरों त
सीमित थे।

सभी यात्री ग्यानसी तक जा पाते थे, और यह
मंदिरों और इधर-उधर की चीजों के फोटो लेकर ति
देश की कला और संस्कृति का कल्पित वर्णन करते
लेकिन ऐसा करना इस हजारों मील लम्बे-चौड़े उ
धार्मिक देश के प्रति बड़ा ही अन्याय था। अधिक
विदेशी लेखकों ने तिब्बत देश और उसके निवासियों
गलत वर्णन किया है। अपने-अपने दृष्टिकोण से
कल्पित कहानियों को गढ़कर उन्होंने तिब्बत के
को अशिक्षित और असभ्य बताया है। यह वैसे ही
कि अँगरेजों के समय में विदेशी पत्रकार भारत को
फकीरों, असभ्य सपेरों और पागल राजाओं एवं नवा
का देश बतलाया करते थे।

समय बड़ी तेजी से बीता जा रहा था। सवारी के च्चरों और माल लादकर ले चलने के लिए गधों और नौकर का प्रबंध कर डाला। जरूरी पत्र और तार ादि भारत को भेजे गये। अपने नेपाली महाजन साहु कम्पनी के यहाँ कलकत्ते की छूछिनशाह कम्पनी ई हुई हुंडी को तुड़ाकर कुछ तिब्बती पैसे, रुपये और के लिये। इन रुपये-पैसों को रक्षा के लिए दो पिस्तौल नसे ले लिये। वहाँ पिस्तौल या बन्दूक रखने के लिए लाइसेन्स की जरूरत नहीं पड़ती थी। हिन्दुस्तानी अँगरेजी सरकार के आदमी को अपनी जान बचाने किसी भी तिब्बती को मार डालने का अधिकार यह अधिकार अँगरेजों ने अपनी पिछली लड़ाई में को पराजित करके पाया था।

हाँ एक बड़े बूढ़े मारवाड़ी सेठ से भी मुलाकात हुई नाम था रायसाहब रामरत्नजी। वे वहाँ अनेक रह रहे थे। बड़े मालदार थे, और अँगरेजी फौज सप्लाई की ठेकेदारी का काम करते थे। उनसे जबूत बूट-जूते, मोजे, पट्टियाँ और ओवर कोट । उस दिन उन्होंने हम लोगों को बड़े प्रेम से एक का भोज दिया जिसमें, साहु धर्मरत्न, सिविल साहब, डाकखाने के पोस्टमास्टर साहब और रिसालदार साहब भी उपस्थित थे। पूछने पर मालूम हुआ रामरत्नजी अब अपने देश राजस्थान वापिस गयेंगे, क्योंकि बहुत बूढ़े हो गये थे और हिमालय की र्फीली चोटियों को पार करने के योग्य उनके घुटनों नहीं रह गयी थी।

मई १९३८ को हम लोग तैयार होकर तिब्बत री भागों के छोटे-बड़े नगर और मठ देखने के लिए । माल असबाब से लादकर गधे, नौकरों की देख- प्रातः ही "षालू" गुम्पा की ओर रवाना कर दिये र भी लग रहा था, खुशी भी हो रही थी और भी छा रही थी क्योंकि हृदय में विचार उठता संभव है कि हमारी यह छोटी-सी भारतीय टुकड़ी ही-सलामत भारत न लौट सके। पता नहीं हम भिन्न-भिन्न जातियों के पाँच सदस्यों में मेल-जोल न रहे। फोटोग्राफी का मुख्य काम सफल हो या नहीं? इत्यादि-इत्यादि बातें मन में उठकर चलित कर रही थीं।

हुलजी और अभयसिंहजी गेशेलाजी के साथ किसी परिचित से मिलने गये और यह तय हुआ कि घंटे बाद हम सब अपने-अपने खच्चरों पर सवार होकर तेज गति से चलकर अपने माल ले जानेवाले गधों से जा मिलेंगे। इस बीच मेरे मन में आया कि चुपके से जाकर एक बार फिर मन्दिर में बुद्ध भगवान् को प्रणाम कर आऊँ। मैं इधर-उधर की फोटो खींचने के बहाने एक घंटे के लिए कैमरा लेकर बाहर निकल पड़ा। सीधा भागा हुआ गया मन्दिर में, और बुद्धदेव के पैरों पर गिरकर पड़ा रहा कुछ देर, फिर अपनी सारी मनोकामनाएँ सुनायीं उनको गिड़गिड़ाकर। धीरे से उठकर निहारा उनके सदा हँसते हुए मुख को, मानों वे हाथ उठाकर कह रहे हों कि "घबराओ नहीं बालक, विजयी होकर अपनी भारतमाता का मुख उज्ज्वल करोगे।"

वहाँसे प्रसन्न हृदय तेज कदम से लौटा आ रहा था कि अचानक मुलाकात हो गयी उसी उस दिनवाली तिब्बती सुन्दरी से, जिसके फोटो खींचे थे मैंने, पागलों की तरह, भरे बाजार में। मुझे देखकर वह मुसकुरायी। मैंने पूछा—"पहिचाना ?" बोली "हाँ—फोटू उतारो मेरी।" मैंने कहा—"नहीं।" फिर बोली "चलो हमारे घर।' मैंने पूछा कौन है तुम्हारे घर में ? बोली—"मैं और मेरी माँ।" चुपचाप चल पड़ा उसके साथ। चलते-चलते देखा कैसी है उसकी अलबेली चाल, उसकी पतली कमर। उसका दरमियाना कद, भरी हुई छातियाँ, हृष्ट-पुष्ट बाहें और जाँघें और तिस पर मद भरे चंचल नैन ! हँस-हँस कर बातें करती, गाना गाती हुई ले चली मुझे उस पहाड़ी की ओर जहाँ दीख रही थीं दो-चार टूटी-फूटी झोपड़ियाँ। एक झोपड़ी के भीतर ले जाकर दिखाया अपनी अंधी बुढ़िया माँ को। अपनी माँ को झकझोरकर उसने बड़े प्यार से पता नहीं कि क्या कहकर मेरी ओर उँगली उठाई। वह बुढ़िया अंधी मालूम होती थी। न कुछ बोली, न हिली, न रोई और न हँसी—केवल निहारती रह गयी मेरी ओर अपने गले हुए नयनों से। तरुणी ने पूछा—"माँ अच्छा है ?" मैंने कहा 'हाँ।' थोड़ी देर रुककर मैंने घड़ी देखकर कहा, 'अब जायेगा।" उसने पूछा, "कहाँ ?" मैंने कहा "बहुत दूर—षालू गुम्पा।" फिर उसने कुछ न पूछा। चुपचाप जमीन पर बैठ गयी। मैं भी अपना उदास मन लिये लौट आया अपने पड़ाव पर, और थोड़ी देर में हम चारों चल पड़े अपने-अपने खच्चरों पर सवार होकर। ग्यानसी शहर से निकलकर जब हम गुजर रहे थे अँगरेजी फौज की छावनी के पास से, तो देखा कि खड़ी है वही चंचल-नैना तरुणी एक दीवार के सहारे, हमारी बाट लगाये। काफी दूर तक दिखायी पड़ी वह चली आ रही थी धीरे-धीरे हमारे पीछे-पीछे....।

सम्पादक के नाम पत्र

मान्यवर सम्पादकजी,

मार्च १९६३ की सरस्वती में छपी 'हीराकोयला' की कविता **अमरवाणी** देखने को मिली। कवयि साथ मेरा नाम भी भूल से छप गया है। इसलिए इन पंक्तियों द्वारा स्थिति साफ कर देना चाह हीराकोयला मेरी जन्म से अंधी, गूँगी बहिन है जो कुछ वर्षों से मेरे साथ रहने लगी है। इधर बहुत दिनों गुनगुनाया करती है जिसे उसके लिए लिखकर मैं सरस्वती-सम्पादक को भेज देती हूँ। उन्होंने उसकी र को प्रकाशित कर उसे अनुगृहीत किया है यह उनकी महानता है। परन्तु लिपिक के अलावा मेरा इसमें श्रेय नहीं है।

भारतीय राजदूतावास
सान्तियागो
२-४-१९६३

विनीत
कमला रतनम्

'ओसोर्नो ज्वालामुखी के निकट'

[हीराकोयला]

तुम ज्वालामुखी हो
कायर हो शिथिल हो
बुढ़ापे में बड़ी मुश्किल से
इतना ताप ढूँढ़ पाते हो
कि शताब्दी में एक बार
मुख से ज्वाला उगल सको,
फिर शान्त हो जाते हो।
तुम्हारी काली करतूतों से लज्जित
पृथ्वी तुम्हारी झुलसी छाती पर घास उगाती है,
फूल खिलाती है,
परन्तु स्वभाव से क्रूर
अपनी आदत से मजबूर
वीरता के गुणों से दूर
तुम छिप कर वार करते हो
वक्ष पर सन्देह रहित सोये
वृक्षों, पशुओं का
अपनी ज्वाला से संहार करते हो।
परन्तु तुम्हारी ज्वाला सच्चे तेज की ज्वाला नहीं
पृथ्वी के अजीर्ण का वमन है,
लहलहाते खेत, गोद में शिशुओं सहित हँसती
अप्सराओं
की हँसी का शमन है
तुम ज्वालामुखी हो, पर तुम्हारा अन्त
केवल जलन है।
तभी तो तुम्हारा मुँह काला है
बहुत दूर आस-पास जहाँ देखो
सभी कुछ काला है।
बर्फ की चादर भी तन ढकने को तुम्हें पूरी नहीं मि
और मुँह भी तुम्हारा विचाररहित मूर्ख के समान ख
खुला है

ज्वालामुखी !
दूर पूरब में, फिर उत्तर में
अपने भाई हिमवान् को देखो,
आकाश की ओर नेत्र लगाये
आधी रात और मध्याह्न में
वह अकेला, ऊँचा ठिठुरता
हमारी सीमा पर पहरा देता है
अंगों पर बर्फ की चादर ओढ़
उष्णता के सुख को छोड़
पृथ्वी के जल की व्यवस्था करता है,
नदियाँ बहाता है।
सुषमा और समृद्धि का ऐसा साज साजा है
कि मेरी माँ का मुकुट, हिमालय
हमारे हृदयों का राजा है।
यह तो जापानी ही हैं जो
सभ्यता के पर्वत पर चढ़
अत्यन्त शिष्टाचार के भयानक पथ पर बढ़,
ज्वालामुखी को राष्ट्रीय पर्वत मानते हैं,
पर उसके काले मुख को गहरी
बारहमासी, श्वेत, निष्पाप बर्फ से ढकना
वह भी नहीं भूलते !

नई गृहस्थी पुराने अनुभव

मेरा मन डोले

क्या आप भी उनमें से हैं जो सिगरेट, मदिरा, तम्बाकू आदि छोड़ने का संकल्प लिये, अपने किसी मित्र से छाती ठोंककर कहते हैं "यार ! तुमने क्या छोड़ा ? हमको देखो। न जाने कितनी बार छोड़ी और कितनी बार शुरू की ?"

या आप उनमें से हैं जिन्होंने जब किसी व्यसन को छोड़ने का संकल्प किया तो एक बार में ही उसको छोड़ दिया ?

या आप अभी उस उलझन में हैं कि किसी एक व्यसन-विशेष को छोड़ना तो चाहते हैं पर छोड़ नहीं पाते। यह आवश्यक नहीं कि छोड़नेवाली वस्तु कोई व्यसन ही हो। कोई भी वस्तु जो आपके स्वास्थ्य के लिए अहितकर हो उसके छोड़ने की इच्छा होते हुए भी आप अपना संकल्प इतना दृढ़ नहीं कर पाते कि उसको छोड़ सकें। हो सकता है कि अपने स्वास्थ्य के कारण नमक या चीनी या कोई भी उत्तेजक पदार्थ या मादक पदार्थ आपके लिए निषिद्ध हो, पर आप इच्छा होते हुए भी अपनी वासना के कारण उसको छोड़ नहीं पाते।

राह चलते हुए प्यास लगने पर आप अगर अन्यत्र कहीं जल न हो और केवल सड़क किनारे गड्ढे में जल दिखाई देता हो तो आप प्यासे क्यों रह जाते हैं ? आप के ग्रामीण साथी के सम्मुख तो यह समस्या नहीं उठती। वह तो सीधे जाकर गड्ढे का पानी पीकर अपनी तृषा शान्त कर लेता है और आपके साथ हो लेता है—परन्तु आप प्यासे ही आगे बढ़े चले जाते हैं और बस्ती आने पर शुद्ध जल ही ग्रहण करते हैं। आपने कभी सोचा है क्यों ? इसका साधारण-सा उत्तर है कि मन नहीं चाहता। पर आपका मन क्यों नहीं चाहता ? और

उस ग्रामीण का मन क्यों चाह गया ? क्यों मान गया कि वह गन्दा जल पी लो ? आपका मन क्यों नहीं माना ? केवल इसलिए कि आपका मन जल के भले-बुरे को समझता था। वह शिक्षित था। बालपने से मिली यह 'फेंको ! फेंको ! गन्दा पानी--साफ पानी पियो ! खुला रक्खा पानी पियोगे ? स्वच्छ ढका रक्खा पानी पियो' आदि शिक्षा अब आपके गले के इतने नीचे उतर गयी है कि तृषित होने पर भी आप जो भी पानी मिलेगा उसे ही नहीं पी लेंगे--पियेंगे आप स्वच्छ ही जल। जब आपके ग्रामीण साथी के मन पर किसी भी ऐसी शिक्षा का प्रभाव नहीं था, इस कारण उसने आराम से उस गन्दे पोखरे का जल पिया और अपनी तृषा बुझा ली। हमारा एक माली नल के नीचे बनी हौज में भरे पानी को चुल्लू ही से पिया करता था। एक दिन मैंने उसको टोका "माली ! काहे को हौज का गन्दा पानी पीते हो ? न जाने कब का भरा रहता है। न जाने कौन-कौन कुत्ता-बिल्ली उसे जुठार जाते होंगे। ऊपर से नल क्यों नहीं खोलकर साफ पानी पी लेते ?" माली जी ने उत्तर दिया 'नहीं बहनजी ! ई जल मीठ लागत है।' इसका क्या उत्तर है ? उसको वही जल मीठा लगता था। बात ग्रामीण या नागरिक की नहीं है। बात शिक्षित या अशिक्षित मन की है। यदि किसी वस्तु का त्याग करना है तो त्याग वही चिरकालीन होगा जिसकी ओर से आपका मन पूर्णतः शिक्षित और सचेत है। जिस वस्तु को कि आपके मन ने भली प्रकार विषवत् समझ लिया है वह कितने भी लुभावने रूप बनाकर आपके सम्मुख क्यों न आये, मन उसकी ओर से मुँह मोड़ लेगा। मन के पूर्णतः शिक्षित होने पर ही वह निषिद्ध वस्तु पूर्णतः त्याज्य हो सकेगी।

नाक को पकड़ने के दो तरीके हुआ करते हैं। एक तो सीधा और एक हाथ को गर्दन के पीछे से घुमाकर फिर नाक तक पहुँचाने का। जब सीधी तरह से नाक हाथ में न आये तो घुमाकर नाक पकड़ने की कोशिश करनी पड़ती है। मन यदि सीधे न समझे तो उसे उल्टी तौर से समझाने की भी एक विधि है। मन यदि स्वयम् अपने रस के कारण निषिद्ध वस्तु को ज्ञान होने पर भी न छोड़े तो मन के लिए उस वस्तु का, स्वयम् निषेध कर दो--मन को उसके सम्पर्क में न आने दो। रसास्वादन के लिए उस वस्तु के न मिलने पर मन स्वयं उसका स्वाद भूल जायगा।

मैंने कई बार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से प्रश्न करके देखा है। उत्तर मुझे एक ही मिला है। एक बार मैंने एक फलाहारी महिला से पूछा—"आपने इतने वर्षों से अन्न नहीं खाया। क्या आपका मन अन्न खाने को नहीं करता ?" उत्तर मिला "अब क्या करेगा ? अब तो अन्न का स्वाद भी भूल गयी।" इसी प्रकार एक सज्जन से चीनी पर प्रश्न करने पर कि "क्या आपको चीनी खाने की अब कभी इच्छा नहीं होती ?" उत्तर मिला "पहले कभी होती थी, परन्तु अब तो यदि भूल से चीनी कभी चाय में भी पड़ जाय तो बड़ा विचित्र स्वाद लगता है। यह तो मन है बेटा। जो कुछ भी आ जाय उसीमें रस लेने लगता है।" मन की परि तो उन्होंने स्वयम् ही कर दी। मन तो अपना रस ही लेगा। अभी एक रस से अभ्यस्त है, कुछ दिनों दूसरे रस से अभ्यस्त हो जायगा।

जिस प्रकार शरीर के किसी दुर्बल अंग को या सबल बनाने के लिए व्यायाम आदि होते हैं, प्रकार दुर्बल मन को भी सबल बनाने के लिए कई मा सिक व्यायाम हैं। मुझे याद है कि बचपन में मुझसे जाता था 'यदि कोई संकल्प करो तो उसको पूरा करो' --'यदि कोई काम शुरू करो तो उसको पूरा करो' 'अधूरा काम छोड़ना बड़ी बुरी बात है।' उस समय न 'संकल्प' का अर्थ समझती थी, न 'बुरी बात का' उस समय तो यही समझ में आता था कि जो काम कि भी कढ़ाई (कसीदा) या बिनाई का शुरू कर दिया उसे समाप्त ही करना होगा, वर्ना माँ से दस बातें सुन पड़ेंगी। उसका अर्थ तो अब समझ में आता है कि जो बालक बचपन में अपना काम अधूरा ही छोड़ देने अभ्यास बना लेता है वह आजीवन कोई भी काम पू रीति से समाप्त नहीं कर पाता। उसका संकल्प आजी वन कभी परिपूर्ण नहीं होता। इसके विपरीत, बालक पन से ही जिसको एक बार का उठाया काम समाप्त करने का अभ्यास कराया जाता है--काम भले ही छोटा ही क्यों न हो--उसकी संकल्प शक्ति आजीवन किसी काम को अधूरा नहीं छोड़ती। कितने भी कष्ट या संकट क्यों न पड़ें, वह अपने संकल्प को परिपूर्ण ही करके छोड़ती है। इस प्रकार अपने मन को सबल या निर्बल बनाने की शिक्षा वास्तव में हमें अपने बालकपन में ही मि जाती है। व्रत और नियम जो आज के सभ्य समाज को निरर्थक प्रतीत होते हैं, वास्तव में वे मानसिक व्या याम हैं जिनसे कि मन दृढ़ और सबल बनता है।

किसी भी काम को करने पर जब मन आपको स्व अकेले में धिक्कारता है तब उस प्रकार के काम को आप चाहे कितनी भी आवश्यकता क्यों न पड़े, अधि काल तक नहीं कर सकते। जिस वस्तु से मन एकांत घृणा करता है उसे एक दिन छोड़ना ही पड़ता है और जिस काम से मन एकांत में गौरव करता है वह काम कभी भी पूर्णतः छूटता नहीं। इसी कारण बाल्यकाल ही बालक के मन में बुरी वस्तुओं के प्रति घृणा और अच्छे कामों के करने में गौरव की भावना उत्पन्न करा सम्भवतः प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का एक अंग था। एक आधुनिक मनोवैज्ञानिक एक बार संध्या समय आकर के आधुनिक माँ-बापों को मेरे ही घर बैठकर समझा रहे थे कि "बच्चों में बालपन में ही किसी वस्तु के प्रति निरोध या अटकाव (Inhibitions) डाल देना वास्तव में उनके मन में व्यर्थ में ही कुंठाएँ उत्पन्न कर देना है।

िए बचपन में जिसने सुन रक्खा है कि मदिरा पीना ता है वह बड़े होकर पीता भी है तो यही सोचता है कि न कर रहा हूँ--वह पीता भी है पर पीने का सुख व नहीं करता। क्यों सुख अनुभव नहीं करता ? ने बाल्यकाल के निरोध के कारण।" इस उपदेश कारण यह था कि उनके एक मित्र ने मदिरापान का साथ छोड़ दिया था। इस बात से दुखी होकर ने यह पांडित्यमय मनोवैज्ञानिक विवेचन किया उनके इस कथन में से न जाने कौन-कौन सी यां निकल रही थीं। किन्तु मुझे तो वही पुरानी सीख आज भी ठीक मालूम होती है कि संतान को सदाचार के पथ पर रखना चाहते हो तो बाल्यकाल में ही उसके हृदय पर कुकर्मों के प्रति घृणाभाव भर दो। अभी उसका हृदय कोमल है। कोमल अर्द्ध-द्रवित लाख पर यदि कोई रंग मिला दो तो जमकर कठोर हो जाने पर भी वह अपना रंग नहीं छोड़ता। शायद प्राचीन बाल-शिक्षा-प्रणाली में इसी बात का ध्यान रक्खा गया था।

हमारे उपनिषदों में उस पुरुष को जो कि अपने मन को सुधारने में असफल रहा है 'नपुंसक' कह कर संबोधित किया गया है !

गृहस्थी--

चित्रकारी कीजिए

श्री शान्तिदेवी जैन

न पर दिन चित्रकारी का क्षेत्र विशाल होता जा है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जिसपर चित्रकारी ाई जा सके। क्या कागज, रिकार्ड, काँच के बर्तन र चित्रकारी देखी जा सकती है। यहाँपर रंगों कपड़ों पर ही चित्रकारी बनाने की विधि बतायी है जो आकर्षक ही नहीं अपितु टिकाऊ भी होती ही बचत भी। आप एक फूल लेकर उसे काढ़ें व बनायें तो तुलना करने पर पता चलेगा कितनी की बचत होती है। बहनें ड्राइंग का साधारण रखने पर भी इसे आसानी से बना सकती हैं। अब ा बनाने की विधि पर--

बाजार में कपड़ों पर चित्रकारी बनाने के विभिन्न के ट्यूब बिकते हैं। आपको जो-जो रंग लगाने हों ट्यूबों को खरीद लीजिए, साथ ही पतला ब्रुश व या तारपीन का तेल। जिस कपड़े पर डिजाइन हो उसपर पहले से पेन्सिल से नक्शा तैयार कर । फिर कपड़े के नीचे ब्लाटिंग पेपर का एक रखकर एक प्लेट में रंग व दो बूंद तेल डालकर लें। फिर ब्रुश में नाममात्र का रंग लेकर डिजा-बनायें। रंग ज्यादा होने पर कपड़ों पर फैलने का हता है। रंग केवल किनारों पर लगाकर ब्रुश में न रहे तो उससे शेड दे दें। विभिन्न रंगों के लिए ब्रुशों का होना आवश्यक नहीं बल्कि तेल में डाल-ब्रुश साफ कर लें। इस प्रकार एक ही ब्रुश कई के रंगों में प्रयोग किया जा सकता है। तेल की बन्द रखें अन्यथा उड़ जाने का भय रहेगा।

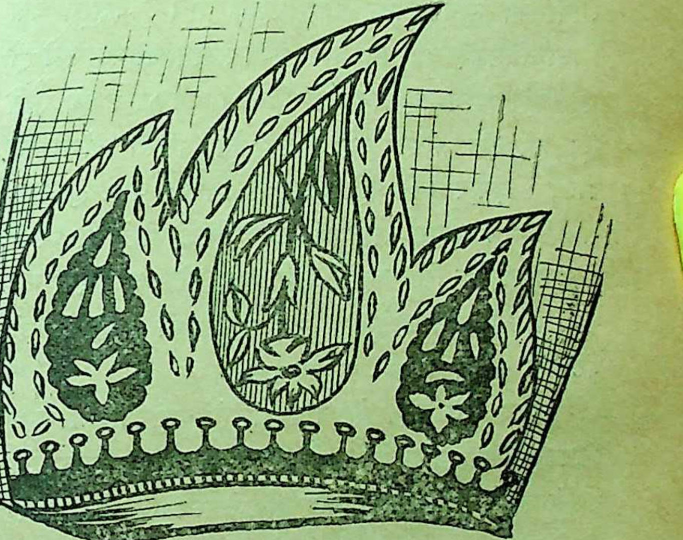

आवश्यकतानुसार हल्के व गहरे रंगों का प्रयोग किया जाय जिससे फूल-पत्तियों व आकृतियों में स्वाभाविकता दृष्टिगोचर हो। शेड के लिए सफेद रंग या जिस रंग का देना हो प्रयोग किया जाता है। शेड के लिए हमेशा सबसे बारीक ब्रुश प्रयोग में लायें।

चित्रकारी किये हुए कपड़ों के साथ यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि गन्दा न हो क्योंकि बार-बार धोने पर रंग छूट जाते हैं। जितने ज्यादा दिन के बाद धोये जायँगे रंग उतने ही पक्के होंगे। धोते समय ध्यान रखें कि डिजाइन पर साबुन न लगायें।

देखा-सुना

(३) मानवी देवी और मानवीय हृदय

(गतांक से आगे)

श्री मनमोहन गुप्त

दूसरे दिन से ही मेरे पास अनेक काम बढ़ गये। यानी पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त बाबाजी के कमरे को दूर से देखना। कई दिनों तक समय-असमय पर देखने तथा पीछे-पीछे लगे रहने के बाद यह तय हो पाया कि सबेरे ही सबसे अधिक समय मिलता है। उस समय बाबाजी मझली जीजी के पीछे पड़े रहते हैं।

किन्तु सबेरे कोई काम होना असम्भव था। यानी ताला खोलो, चित्रों को चुराओ, फिर ताला बन्द करो; इतने काम उस समय नहीं हो सकते थे। घाट पर हर समय लोगों का आना-जाना लगा रहता था। किसीने देख लिया तो पकड़ जायेंगे। दोपहर भर बाबाजी कमरे में ही रहते हैं। शाम को निकलते भी हैं तो आसपास ही रहते हैं। हाँ, एक और समय अच्छा है। मझली जीजी का पीछा छोड़कर ज्यों ही बाबाजी निकल जाते हैं उसी समय काम होना चाहिए। उनके पीछे-पीछे जाकर मैं देख आया था कि वहाँसे प्रायः दो मील दूर एक मठ में वे खाना खाने जाते हैं। उस समय भी प्रायः डेढ़ दो घंटे का समय मिल सकता था।

समय तय होने के बाद चाभी बटोरना आरम्भ किया। वैसा ताला पड़ोस के किसी भी घर में देखता तो उससे चाभी एक दिन के लिए माँग लेना। अवसर मिलते ही ले जाकर चाभी लगाकर देखता। पाँच-छः दिन के परिश्रम के बाद एक दिन ताला खुल गया। झट अन्दर दाखिल हुआ। सिवाय एक तस्वीर के बाकी सब यों ही टँगी हुई थीं। क्षिप्रता के साथ उन्हें घरी कर लिया। उधर एक मोटी सी किताब दिखाई पड़ी। उसे खोलते ही देखा कि वह चित्रों की संग्रही (album) है।

अरे राम! राम! इसमें तो और भद्दे चित्र। इसे छोड़ा नहीं जा सकता है। फ्रेम में लगे हुए चित्र को भी उचाड़ लिया। एक खासी गठरी हो गई। फिर मन में सोचा कि इसकी कूँची, रंग आदि भी गंगाजी में डाल दो कि जिससे आगे कभी चित्र बन ही न पावे।

सोचने में और करने में देर क्या? बाबाजी की चादर और लुंगी में दो गठरी बनीं। दोनों गठरियों लेकर बाहर निकला। रास्ता साफ था यानी इधर- कोई दिखाई न पड़ा। फिर ताला लगा दिया। वाली गठरी को गंगाजी को सौंपा जिससे कि उस साधु का चित्त साफ हो, और आगे से मझली जीजी नंगी तस्वीर न बनावे। दूसरी गठरी को लेकर अपनी गली में।

उस समय वहाँ भी रास्ता साफ ही मिला सब लोग खा-पीकर दरवाजे-खिड़की बन्द कर आराम रहे थे। भाग्य से घर के अन्दर का रास्ता भी साफ दादी उस समय भोजन बना चुकी थीं और पिताजी खिलाकर काम पर भेज करके, पूजा कर रही थीं। समाप्त होने के बाद मैं और दादी, एक साथ कभी- भोजन करते थे।

इन सब चीजों को सुरक्षित रखने के लिए मेरा पाखाने के ऊपर का बंद स्थान था। यथास्थान गठरी कर दादी के पास पहुँचा। जब खूब तबियत प्रसन्न हो थी तब मैं दादी की पीठ पर चिपट जाता था। वैसा ही इस समय भी किया। शायद कोई दूसरा दिन होता दादी की पूजा का ध्यान रहता। आज इतना प्रसन्न कि वह बात ध्यान से उतर गयी थी।

"हैं! हैं!"

मुँह बन्द किये ही दादी ने वर्जित किया। मुझे का ध्यान आ गया। मैं झट अलग हो गया। कुछ तक पास ही बैठा रहा। अन्तिम प्रणाम करके उठते दादी ने कसकर एक तमाचा मेरे गाल पर जमा दि उसे हजम करते हुए मैंने कहा—"चाहे जो करो। चित्त बहुत प्रसन्न है। मेरा खून भी कर डालोगी तो जरा भी न रोऊँगा।"

सुनकर दादी बिगड़ती हुई बोलीं—'खबरदार! पूजा के समय इधर-उधर किया तो...'

कहते ही कहते डाँट के स्वर में बोलीं—'ले! प्र ले! सर पर लगाकर भगवान् से माफी माँगकर खा

१९६३

कहना कि अब कभी पूजा के समय पर दादी के पीठ पर चढ़ूँगा।'

प्रसाद को तो झट मुँह में रख लिया। फिर दादी के ों को पकड़ते हुए कहना आरम्भ किया--'हे भगवान् ! यह पूजा करेंगी तो इनकी पीठ पर न चढ़ूँगा।'

सुनकर दादी मुस्किरा दीं और हाथ उठाकर मुझे ी से लगा लिया।

× × ×

ब सो गये थे। मैंने जाकर आहिस्ते-आहिस्ते गठरी । मझली जीजी की सबसे नंगी जो तस्वीर थी, िकाला। बगल में दबाकर मझली जीजी की कोठरी ुंचा।

के और लोग तो एक-एक कमरे में दो-तीन जने र रहते थे किन्तु मझली जीजी की कोठरी अलग उसीमें एक कोने में ठाकुरजी के पट आदि थे। ोने में मझली जीजी का सामान था। बाकी में विछाकर वह पड़ी थीं।

ाज मुझे जरा भी डर न लगा। हाथों-हाथ चोर ो पकड़ लाया था।

आहिस्ते-आहिस्ते मैंने जगाया। कभी न होनेवाली ो होते देखकर उन्होंने सोचा कि अवश्य ही कोई ी बात हो गयी है। वह पूछने ही जा रही थीं कि ोंठों पर उँगली रखकर चुप रहने का इशारा किया। ल में दबाई हुई तस्वीर को खड़े होकर पूरा खोल ा।

े कुछ सकपका गयीं। जल्दी-जल्दी अपनी साड़ी सम्हालने लगीं।

नकी आँखों में अभी भी नींद की खुमारी थी। र को देखते ही सब खुमारी जाती रही। उत्तेजित बोलीं--"कहाँ मिली ?"

सिर हिलाकर मैंने कहा--"यह क्या ? इससे भी ड़ी तस्वीरें मेरे पास हैं।"

सुनकर सारी गंभीरता जाती रही। बैठने के लिए ारा किया। फिर धीरे से बोलीं--"यह सब तू कहाँसे ा ? सच-सच बोलना..."

उत्तर कुछ और होना चाहिए था, मेरे मुँह से निकल ा कुछ और। मैंने कहा--"मैं क्या जानूं ? बाबाजी कमरे में जो कुछ मिली वही मैं ले आया।"

--"कौन सा बाबाजी ?"

--"वही जिसके संग तुम रोज नहाने जाती हो और आती हो !"

मझली जीजी का सारा शरीर पसीने से तर हो गया। वह और पास सरक आयीं। कान के पास मुँह लाकर बोलीं--"यह सब तू क्या कह रहा है ?"

मैंने कहा--"जो कुछ मैंने देखा है वही कह रहा हूँ। वह रोज-रोज तुम्हारे संग जाता है, फिर तुम्हारे ही संग-संग दो गली की मोड़ तक नहीं आता है ? मैंने क्या नहीं देखा ? मैं तो उसका घर तक देख आया। वहीं से तो ये सब तस्वीरें लाया हूँ।...अरे ! एक दो थोड़े ही। पचासों, हजारों तस्वीरें मेरे पास हैं।...किसीमें वह तुम्हारे पैरों पड़ रहा है। किसीमें तुम उसे लिपटकर खड़ी हो।

और आगे भी न जाने क्या-क्या कहता मगर मझली जीजी ने मेरे मुँह पर हाथ धर दिया एवं इशारे से चुप रहने को कहा। फिर इशारे से ही पूछा कि वे तस्वीरें कहाँ हैं।

मैंने भी इशारे से ही कहा कि सब मेरे पास मेरे घर में हैं।

सुनते ही वह उठ खड़ी हुईं। मुझसे इशारे से ही कहा कि अपने घर चल।

× × ×

दादी उस समय एक नींद पूरी करके अभी अन्दाज ही रही थीं कि बगल में मैं हूँ या नहीं कि इतने ही में मैं भी देखने पहुँच गया कि दादी सो रही हैं कि जाग। हाथ से दादी को अन्दाजते देखकर मैं जान गया कि अब आँख खोलने ही वाली हैं। झट मझली जीजी को इशारा किया कि उधरवाली चटाई उठा लेवें। क्षिप्रता के साथ मझली जीजी ने उधर से चटाई उठा ली।

उस चटाई को बिछाते-बिछाते मैंने कहा--"दादी को हरदम चिन्ता रहती है कि मैं कहाँ गया।...एक मिनट भी इधर-उधर न होने देंगी।"

दादी को सुनाकर ही जरा जोर से कहा था। सुनकर दादी ने उत्तर भी दिया--"नहीं। देखूँ नहीं ? धूप में तू अवारागर्दी करता फिरेगा और मैं चुपचाप पड़ी रहूँगी न ?"

--"पड़ी न रहोगी तो चिल्लाया करो। मैं तो मझली जीजी के साथ यहीं लेटूँगा।"

मझली जीजी का नाम सुनकर दादी को जरा भी विश्वास न हुआ था। इसीसे इस बार पूरी आँख खोलकर देखा। सचमुच मझली जीजी ही थीं। तुरंत उठकर बैठ गयीं। शायद सोचा कि उसांके पास वह आयी हैं। और विशेष किसी कार्यवश। बोलीं--"आओ, आओ, बैठो"।

झट मैंने कहा--"न, न, यहीं बैठो जीजी। मुझसे बातें करो।"

कहते ही कहते उनका हाथ पकड़कर केवल बैठाया ही नहीं, लेटा भी दिया। डाँटती हुई दादी बोलीं--"बुरी बात है। किसीके पास कोई भी काम हो..... बस बैठो या लेटो मेरे पास। ..... अरे! पहिले काम की बात हो जाने दे....... फिर जो भी........"

बीच में ही स्वल्पभाषी मझली जीजी ने कहा--"यों ही छोटे के पास चली आई हूँ...... मेरा कोई काम नहीं।"

इस बार दादी अपने मन ही मन बड़बड़ाने लगीं--'छोटे मेरा बहुत अच्छा है...... इसीसे तो भले लोग भी उसे इतना चाहते हैं।'

आदि, आदि; ऐसे किसी अवसर में जैसे बड़बड़ाया करती हैं उसी प्रकार से बकते-बकते फिर सो गयीं। मैंने मझली जीजी से शुरू से आखिर तक की सब बातें बतायीं। सुनकर मझली जीजी बड़ी असहाय जैसी बोलीं'--"तो इसमें मेरा क्या कसूर है?.....तू ने तो ऐसे कहा था जैसे कि मैंने ही सब दोष किया है।"

जोर देकर मैंने कहा--"तुम तो बड़ी जगद्धात्री देवी हो। उस बदमाश को भस्म नहीं कर देती हो? मैं जो भगवान् या भगवती होता तो उस हरामजादे की आँखें ही फोड़ देता। गंगाजी में गलेभर पानी में खड़े-खड़े तुमको ही देखा करता है, और तुम्हारे साथ न मालूम कितनी तस्वीरें बनाई हैं।"

कहते-कहते दादी की ओर देखा। वह शान्त थीं। मैंने कहा--"तस्वीरों को देखना हो तो नीचेवाली बन्द टट्टी के सामने चलो। सब दिखाऊँगा।"

वह तो आयी ही थीं इसीलिए। तुरन्त राजी हो गयीं। दोनों पाँव दबाकर पाखाने के सामने पहुँचे। चित्र-पंजी हाथ में देते ही उसने पत्ते उलटकर देखना आरम्भ किया। देखती जाती थीं और उनके कान तक लाल होने लगे। धीरे धीरे पैर काँपने लगे। वहीं पर बैठ गयीं।

मुझे ऐसा लगा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ेंगी। झट मैंने चित्रपंजी को अपने हाथों में ले लिया। तड़पड़ गठरी बाँधकर, सब कुछ छिपा दिया।

तब तक वह वहीं, पाखाने के सामने ही बेहोश होकर गिर पड़ीं। मैंने दादी को पुकारा। दादी भागती हुई आयीं। उसकी वह हालत देखकर धम से मेरे पीठपर एक जमा दी--"कहती हूँ कि लू-धूप में फिरा न कर... मानेगा नहीं। जा एक लोटा सुराही से पानी ला।"

पानी के कई छींटे आँख आदि पर देने के बाद आँखें खुलीं। सम्हलकर बैठ गयीं। मेरी ओर हाथ दिया। आहिस्ते-आहिस्ते मेरे सहारे ऊपर गयीं। हुई चटाई पर लेट गयीं। मेरी कमर के पास से जकड़कर, मेरी गोद में मुँह छिपाये फूट-फूटकर लगीं। मैं भी न जाने क्यों रोने लगा।

देखकर दादी बोलीं--"देखो लौंडे को! इसके माँ-बाप को बुला लाये, सो तो नहीं करेगा। बैठे-बैठे रोने! अच्छा मैं ही जाती हूँ।"

दादी आगे बढ़ने ही वाली थीं कि मझली जीजी रोता ही बोलीं--"कहीं न जाओ दादी। मुझे ऐसे रहने दो।"

फिर तो खूब फूट-फूटकर रोने लगीं। कभी हाथों को कसकर पकड़तीं, कभी उन्हें अपनी छाती से लेतीं, कभी आँखों से लगातीं; इसी प्रकार से न कितनी देर रोती रहीं।

मेरी भी आँखें गीली अवश्य थीं। किन्तु मैंने बन्द कर दिया था। दादी अवाक् सी खड़ी थीं। करें, कुछ समझ नहीं पा रही थीं।

× × ×

शाम को पड़ोस के लोगों ने, यानी औरतों ने, के मुँह से सब बातों को सुनकर निष्कर्ष निकाला कि आयी थीं'। कानों कान बात फैल गयी। फिर तो प्रश्न की झड़ी मुझको ही सम्भालनी पड़ी। कोई पूछती-'अच्छा उस समय तुझे भी लग रहा था कि कुछ शक्ति आ गयी है?' फिर दूसरी पूछती--'उस समय ऐसा लग रहा था कि एक भारी सिंह पर वह सवार है? तब तक दूसरी पूछ बैठती--'हाथ में त्रिशूल था खड्ग?'

इनमें से कोई बात मैंने देखी ही नहीं तो उत्तर देता? बेवकूफ-सा टुकुर-टुकुर ताकता रहा। तब स्वयं ही निष्कर्ष निकालने लगीं--'देवी अपनी माया मनुष्य को भुलाकर तब हटती हैं। उस अवस्था की यदि स्मरण ही रहे तो मनुष्य जीवन्मुक्त न हो जाय देवी में विलीन न हो जाय? अनेक तपस्या के फल छोटे को देवी ने दर्शन दिया यही बहुत है।'

मझली जीजी का स्वेच्छा से मेरे यहाँ दोपहर कड़कड़ाती धूप में आना, फिर मुझे पकड़-पकड़कर कोई देवी दर्शन से कम महत्त्व की चीज न थी। औरतों ने ऐसा समझ भी लिया हो तो कोई बड़ी बात थी। मुझे दुःख तो यही था कि देवी आयीं और मैं नहीं पाया।

शाम तक औरतों ने अपनी बातों से इतनी तो मेरे मन में भी पैदा कर ही दी थी कि मझली पर देवी आयी थीं और इसीसे यह सब हुआ।

फलस्वरूप और कुछ हुआ हो चाहे न हुआ हो, तो प्रमाणित हो ही गया था कि मुझसे भाग्यवान मुहल्ले में और कोई नहीं है क्योंकि देवी मुझे दर्शन

आयी थीं। उस समय जो कहीं थोड़ी और बुद्धि मुझमें होती तो मैं उसी दिन से देवी का पैगम्बर बन बैठता।

इस देवी पर्व की कृपा से उस दिन पढ़ाई से पीछा छूटा। पिताजी ने उस दिन औरतों के व्यूह को भेद करके मुझे बाहर निकालना ठीक न समझा। मुझे भी भोजन के समय तक ही फुर्सत मिली। फुर्सत का अर्थ कोई यह न समझे कि उस व्यूह में मेरा भी कोई काम था। मैं तो केवल बैठा था। औरतें आपस में ही प्रश्न उठाकर खड़ा कर लेती थीं, फिर नाना प्रकार की टीका के साथ उसका समाधान भी वे आपस में ही कर लेती थीं। बीच-बीच में इस बात पर एक मुहर और लग जाती थी कि मुझे देवी का निश्चित रूप से साक्षात्कार हुआ था। देवी कभी दुर्गा बन जातीं, कभी सिंह-वाहिनी।

देवी पर्व, भोजन पर्व तथा बिस्तर लगाने के पर्वों को समाप्त करके अभी छुट्टी पायी ही थी कि बाबाजी पर्व आरम्भ हो गया। यानी मझली जीजी आ धमकीं।

उन दिनों मैं छत पर तब तक अकेला ही सोया करता था जब तक कि दादी सब कामों को निपटा कर न आ जाती थीं। पिताजी तो हमेशा नीचे की छत पर सोते थे। मझली जीजी ने आते ही कहा--"आज छत पर आने में बड़ी देर कर दी। मैं बड़ी देर से तेरा रास्ता देख रही थी।"

उन्होंने पूछा--'सबेरे कै बजे तक तू पढ़ाई वगैरह से छुट्टी पाता है? कल मेरे साथ नहाने चलना है।'...

'अरे इसमें क्या। तुम जरा सा बाबू से कह देना, वह छुट्टी कर देंगे।'

वे बोलीं—'यही तो मैं नहीं चाहती। सब काम साधारण सा चलना चाहिए। मैं तो 'काम के बहाने देर न कर लूंगी।'

कुछ समय तक मैं चुप रहा। फिर कहा--'मगर मैं उस समय छुट्टी पाता हूँ जिस समय कि तुम्हारी पूजा के समाप्त होने का समय होता है। उतनी देर रुकोगी?'

—'हाँ, हाँ! मुझे जो उस बाबाजी को देखना है। तू उसे पहिचानता है।'

'ठीक है। जितनी जल्दी हो सकेगा मैं पढ़ाई वगैरह समाप्त कर लूंगा। करके ही तुम्हारे पास आऊँगा। फिर उसे दिखा ही दूंगा।'

इतना सुनते ही मझली जीजी चली गयीं। मैं भी जल्दी-जल्दी सो जाने की चेष्टा करने लगा कि जिससे सबेरे उठकर ही पढ़ाई-लिखाई समाप्त कर लूं।

× × ×

दूसरे दिन इतनी जल्दी उठकर पढ़ने बैठा कि मझली जीजी के नित्य के नहाने के जाने के समय तक ही उनके पास पहुँच गया। वह देखकर अवाक् हो गयीं। पूछ बैठीं—'अभी?'

'और क्या। सब काम निपटा कर आया। ऐसे थोड़े ही आया।'

उनके तैयार होने में देर न लगी। दोनों साथ ही घर से निकले, किन्तु दूसरी गली की मोड़ आने से पूर्व ही मैं पिछड़ गया। मझली जीजी ने कहा था--"तू जैसे उस दिन गया होगा उतना ही पिछड़ जा। नहीं तो सम्भव है कि वह बाबाजी भाँप जाय। पीछा न करे।"

और सब बातें दूसरे दिन की तरह हुईं, फिर भी बाबाजी न मिले। हम लोग घाटपर पहुँच गये, फिर भी बाबाजी का दर्शन नहीं हुआ। घाटपर पहुँचकर इधर-उधर भी बहुत देखा, मगर उन बाबाजी का कहीं पता नहीं था। पानी के अन्दर भी जितने लोग थे उनमें से हरेक को देखा, मगर वे नहीं ही दिखाई पड़े।

और दिन तो मझली जीजी पहुँचते ही अपने नियमित कामों में लग जाती थीं, किन्तु आज वह भी इधर-उधर देख रही थीं। सब तरह से ढूँढ़ कर भी जब नहीं पाया तो मझली जीजी के पास पहुँचकर आहिस्ते से कहा--'वे तो दिखाई नहीं पड़ते हैं। लगता है कि आये नहीं।'

सुनकर मझली जीजी बहुत खिन्न हो गयीं। आहिस्ते-आहिस्ते अपने काम में लग गयीं। मैं भी स्नान आदि समाप्त करने के लिए गंगाजी में उतरा। तैरने की तबियत न हुई। यों ही पानी में घुस कर बैठा। बार-बार घाट में आने के रास्ते की ओर देखता रहा। कितने ही आ जा रहे थे मगर बाबाजी का दर्शन नहीं हुआ। इसी बीच कई बार मझली जीजी की ओर भी निगाह गई। हरबार चारों आँखें एक हो जाती थीं। चारों आँखें एक होते ही वह आँखों को ऐसी बनाती थीं कि मानों प्रश्न कर रही हों कि कुछ पता चला। मैं भी जरा सा सिर हिलाकर नहीं कह देता।'

जो मझली जीजी नित्य आकर अपने कामों में मन लगाती थीं, आज उनका मन भी किसी काम में न लगा। जैसे तैसे नियम पालन करके मेरे साथ ही वापस चलने को तैयार हो गयीं। दोनों एक साथ ही आये थे, वापस भी साथ-साथ चले। किसी भी मन्दिर में न घुसीं। जैसे आयी थीं वैसे ही लौट चलीं।

जब एक दम घर के पास आ गयीं तो बोलीं--'तू जाकर देखकर आ सकता है कि वह आज क्यों नहीं आये? भागता हुआ जायगा और वैसे ही चला आयगा?

कुछ डरते हुए मैंने कहा--'कहीं पकड़ लिया तो?'

--'क्यों पकड़ा जायेगा? अगर पकड़ जाना होता तो कल ही पकड़ न जाता? कौन पहिचानेगा कि तू ने ही उनकी सब तस्वीरें चुरायी हैं? एसे ही दूर से देख आना।'

बात तो सच थी। मैं झट तैयार हो गया। गीला गमछा पहने ही चला। चलते समय मझली जीजी ने कहा--'देख! हड़बड़ाकर मेरे पास न आना। घर जाकर कपड़े वगैरह बदलकर रोज जैसे आता है वैसे ही

आना। तुझे देखते ही मैं अपनी कोठरी में चलीजाऊँगी। वहीं आकर सब बातें आहिस्ते-आहिस्ते बतलाना।'

× × ×

उधर जब बाबाजी के कमरे के सामने पहुँचा तो दूर से ही देखा कि दरवाजे वाला टट्टर खुला है। रुक गया। प्राण धुकधुकाने लगे। खड़ा ही रहा। घूम-फिरकर इधर-उधर देखते-देखते एक बार टट्टर की ओर भी देख लेता। आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। कुछ समय तक खड़े रहने के बाद स्थान परिवर्तन किया। वहाँसे भी उसी प्रकार से देखता रहा। फिर स्थान-परिवर्तन करके वहाँसे भी देखा। इसी प्रकार से स्थान-परिवर्तन करता रहा और देखता रहा। आगे न बढ़ा।

साहस ही न हुआ तो आगे क्या बढ़ता। आहिस्ते-आहिस्ते लौट पड़ा और घर का रास्ता लिया।

कुछ ही दूर गया था कि सोचा कि जाकर आखिर क्या बताऊँगा। न तो बाबाजी को ही देखा और न तो टट्टर के अन्दर ही देखा। केवल दूरसे खुले हुए टट्टर को ही देखा। इसमें बताने की क्या बात है?

तुरन्त मन में धिक्कार पैदा हुआ। सोचा कि कमसे-कम आगे बढ़कर तो देखता कि उसके अन्दर अब भी बाबाजी हैं या नहीं? शायद वे चले ही गये हों?

चले जानेवाली बात ही अधिक जँची, नहीं तो स्नान करने अवश्य आते। मझली जीजी के पीछे इतना पड़े रहनेवाला व्यक्ति बिना आये कैसे रहता?

बहुत कुछ सोचने के बाद यही निश्चय हुआ कि किसी प्रकार से अन्दर की भी खबर लिये बिना काम न चलेगा। कमसे कम कुछ निश्चित करके ही मझली जीजी के सामने जाना है।

पीछे लौटा। एकदम कमरे के पास गया। सामने ही, अन्दर की ओर, बाबाजी चुपचाप ऐसी जगह पर बैठे थे कि वहाँ कुछ अन्धेरा सा था। अन्धेरा सा न कहकर यदि कहूँ कि उजाला कम था तो अधिक ठीक होगा। वे बाहर की ओर ही मुँह किये बैठे थे।

बस, मेरा काम हो गया। दोबारा उधर जाने की आवश्यकता न थी। मैंने घर का रास्ता लिया। और भी दो-चार बातें जोड़कर कैसे 'मझली जीजी को सुनाना है, यही सोचता हुआ धीरे-धीरे चला जा रहा था। गति अत्यन्त मन्द थी। मन चिन्ताग्रस्त था।

घर से अभी आधे रास्ते पर ही था कि पीछे से किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रक्खा। मुँह घुमाकर देखते ही प्राण-पखेरू कूँच कर गया। स्वयं बाबाजी ही सशरीर मौजूद थे। दूषित मन की सफाई में मैंने कहा—'नमो नारायण!'

'नारायण''! कहकर बाबाजी ने उत्तर दिया।

मैंने तो काशी में उन दिनों साधुओं को देखते ही जो सब साधुओं से कहा जाता था वही कहा था। आगे जी ने पूछा—''क्या स्नान करके आ रहे हो बच्चा?'

प्रयोजन से अधिक नम्रता से मैंने कहा—'जी म-हा-रा-ज!'

'अच्छा, अच्छा! घर जा रहे हो?'

'जी हाँ! महाराज!'

'इधर ही कहीं रहते हो क्या?'

'जी हाँ महाराज!'

'किस घाट में स्नान करते हो?'

'........घाट में महाराज!'

'ओहो......तब तो बड़ी देर हुए नहा लिये होंगे'

'जी हाँ! स्नान किये बहुत देर हो गयी है।'

आगे क्या कहूँ समझ में न आया। मिनमिनाकर गया। तब तक बाबाजी ने पूछा—''अभी-अभी तुम .... घाट के सामने खड़ा देखा था.... उधर करने गये थे?''

मेरा शरीर सिहर उठा। मन ही मन मझली जी को कोसने लगा। किन्तु सटीक उत्तर न सूझ पड़ा। भी न मालूम कैसे मेरे मुँह से उत्तर निकल गया। कबूतरों के अण्डे देखने.....' शायद उपस्थित-बुद्धि काम किया हो।

'क्या तुम कबूतरों के अण्डे खाते हो?'

एक बार सिरा पकड़ लेने पर बात की बात में बढ़ाने में मुझसे उस्ताद शायद ही कोई था। बड़ों-बड़ों सात समुन्दर का पानी पिला देता। मैंने कहा—' के खाने में क्या धरा है? उन्हें तो डोरी में गूंथकर बनाते हैं।''

उत्तर सुनकर बाबाजी चकरा गये। वे बोले— बात है?'

'जी हाँ! महाराज!'

महाराजजी समझ गये थे कि यह लड़का भी धारण है। कुछ समय तक चुप रहे फिर बोले— अण्डे पाने हों तो खूब सबेरे ही जाना चाहिए? बाद तो कुत्ते वगैरह ले जाते हैं।

अपनी बात पर मुहर लगाते हुए मैंने कहा—'यहीं करता हूँ। आज देर हो गयी थी।'

बाबाजी के सन्देहों को जड़ से काटकर गिरा था। अब बाबाजी भी क्या कहते? मिनमिना बोले—'वहीं तो मैं रहता हूँ। देखता हूँ कि सबेरे लड़के खूब बटोर ले जाते हैं।'

उनका पत्ता कटा। वे दूसरी ओर बढ़ गये। पीछे से कहा—'नमो ना-रा-य-ण!' मैं घरकी

मिनमिनाकर उन्होंने भी कुछ कहा। बढ़ गया।

× × ×

अपना साहब

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

तो रास्ते पर पड़नेवाले सभी गाँवों में स्वागत की यारियाँ हो रही थीं, जिला साहब पहली बार इधर र आ रहे थे किन्तु भटगौं (भटगाँव) और रतगौं ासी चहल-पहल थी, क्योंकि दोनों गाँवों में दस े झगड़ा चल रहा था। सरहद (सीमा) पर जो भूमि थी, उसीकी तारीख पर जिलाधीश पधार । इसी भूमि के लिए कई बार दोनों गाँवों में फौज- हुईं। सीमा पर रात-रात भर स्त्री-पुरुष सब तक पहरा देते रहे। भटगौं के डंगर अगर कभी- रने वहाँ पहुँच जाते तो रतगौंवाले उन्हें भगा र रतगौं के डंगर वहाँ पहुँचते तो भटगौंवाले उन्हें ते और इसी बात पर कई बार झड़प हुई, मार- ई, गाली-गलौज हुई पर मामला खटाई में ही पड़ा । दस साल से मुकदमा चल रहा था। इसलिए ुद तहकीकात करने के लिए आ रहे थे। भटगौं ाह्मणों का और रतगौं रावत राजपूतों का। भटगौं- न्हें 'खस्या' (खस जाति) कहते और रतगौंवाले । इस बार भटगौंवाले कुछ जोश-खरोश में थे तगौंवाले कुछ ढीले-ढाले, क्योंकि जिला साहब इसी गाँव के बासिन्दे थे पर एक छोटी-सी दुर्घटना उन्हें गाँव से निकाल बाहर कर दिया था, उनके ालों का हुक्का-पानी बंद कर दिया था और इस ब वही गाँव का जगदीश जिलाधीश बनकर यहाँ था तो पचास बातें हो रही थीं। कोई कह रहा कहीं इस बार हमसे बदला न ले, पर हम भी देख हाईकोर्ट तक न छोड़ेंगे तो कोई कह रहा था——नहीं गदीश ऐसा नहीं करेगा। हम लोग उसका जी र स्वागत करेंगे, घर के भीतर बिठाकर उसीके ाना खायेंगे तो मामला एकदम सुलझ जायेगा। परिवारवालों का 'हुक्का-पानी' तो तभी खुल गया ब गाँव में यह बात फैली थी कि जगदीश कलक्टर या। और तभी खुशी से पागल होकर उसके बूढ़े ा का 'हार्ट' फेल हो गया था। घर पर परिवार के ाम पर बूढ़ी माँ और एक विधवा बहन ही रह गयी थी। ा की मृत्यु की खबर उसे तार द्वारा दी गयी थी पर वह आ न सका। तब उसने 'क्रिया-करम' के लिए चार सौ रुपये भेज दिये थे। वैसे, जब से कलक्टर हुआ, माँ के नाम पर हर महीने पचास रुपये 'खर्चा-पानी' के लिए आ ही रहे थे।

जगदीश को गाँव छोड़े लगभग दस साल हो गये थे पर उस दिन का दृश्य उसकी आँखों से कभी उतर न पाया, जब सारा-का-सारा गाँव उसे मारने के लिए दौड़ा था। किसीके हाथ में डंडा, किसीके हाथ में कुल्हाड़ा और किसीके हाथ में थमाड़ा (पाटल) सबके सब उसके घर पर जमा हो गये थे और बुरी-बुरी गालियाँ दे रहे थे—— 'बजर पड़े, आग लगे, साली ऐसी पढ़ाई-लिखाई को, इस नसपिट्टे ने सारे गाँव की नाक काट दी, इज्जत मिट्टी में मिला दी। उसकी माँ रो रही थी, पिता गरज रहे थे——इधर घर में पैर रखा तो टाँग तोड़ दूँगा साले की, बड़ा आया सुधार करनेवाला, खानदान पर बट्टा लगा दिया। इसीलिए तुझे पढ़ाने के लिए भेजा था—— इससे अच्छा तो यही होता कि घर पर ही रहता और अपनी खेती-बाड़ी करता। ऐसा दिन देखने को तो न मिलता। लोग क्या-क्या नाम धरेंगे। इससे तो अच्छा था कि मर ही जाता, तो गाँव के एक बुजुर्ग दहाड़ रहे थे——आज साले को जान से मार दूँगा, जा साले अपना मुँह काला कर, भाग यहाँसे, अगर एक मिनट भी यहाँ रहा तो जिन्दा जमीन में गाड़ दूँगा। तो कोई कह रहा था कितना बेशरम निकला साला——बदीण (नाचनेवाली हरिजन) से इश्क कर बैठा और अब ब्याह करने की तैयारी कर रहा है। ऐसी न जाने कितनी-कितनी बातें हुईं, जगदीश जैसे सब सुनकर पागल-सा हो गया। उसने उसी वक्त रूपा का हाथ पकड़ा और सदा के लिए गाँव छोड़ दिया था।

रूपा इलाके की प्रसिद्ध बदीण (नर्तकी)——रूप और सौन्दर्य जैसे उसके अंग-अंग से शहद की तरह चू रहा हो——चूलो (खुबानी) जैसे लाल-लाल गाल, इन्द्रधनुष-सा रंग-बिरंगा घाँघरा, हवा में लहराती-बल खाती लम्बी चुटिया, दो तोले की बुलाक जब उसके लाल-लाल होठों पर झूलती तो न-जाने कितनों के दिल दहल जाते। हाथों

पर चाँदी की चूड़ियाँ, उँगलियों पर सोने की अँगूठियाँ, कानों पर सोने के झुमके, माथे पर चमकती-दमकती बिंदिया, पतली-लचकती कमर, नाचती तो ऐसा लगता कि जैसे पहाड़ों में बहार आ गयी हो। सारे दर्शक मंत्र-मुग्ध होकर मेलों-त्योहारों में उसका नाच देखते और खुले दिल से दाद देते।

जगदीश अभी-अभी देहरादून से लौटा था। एम० ए० करने के बाद उसकी इच्छा थी कि अपने इलाके में ही कुछ काम करे, लोकगीत एकत्र करे। यहाँकी हस्त-लिखित पुरानी-पुरानी पोथियों का संग्रह करे। गाँव-गाँव के लोगों के साथ संपर्क स्थापित कर वार्ताएँ, जागर आदि पर खोज करे और इसी उद्देश्य से वह कुछ दिन तक इधर-उधर घूमता रहा। इसी बीच 'कतरसोम' (कार्तिक स्वामी का मेला लगा। गाँव-गाँव के लोग गाजे-बाजों के साथ वहाँ जा रहे थे। बच्चे-बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष सब मेले में शामिल हो रहे थे। कहीं ढोल-दमाऊँ बज रहे थे, कहीं शंख, कहीं तुरी, कहीं नगारे बज रहे थे तो कहीं मंकोरियाँ बज रही थीं। कोई नौकरी मिलने की फिराक में जा रहा था तो कोई मुकदमा जीतने की। कई स्त्रियाँ बच्चों की मनौतियों के लिए जा रही थीं, क्योंकि जिन स्त्रियों के बच्चे नहीं होते वे वहाँ जरूर जातीं और जिन पर देवता आता वे लोगों के कंधों पर नाचते और नाचते-नाचते नींबू और सन्तरे फेंकते। सन्तान की इच्छुक स्त्रियाँ अपने-अपने आँचल फैला देतीं। यदि भाग्यवश आँचल में सन्तरा गिर पड़ता तो लड़का होना निश्चित होता और यदि नींबू पड़ जाय तो लड़की। जिन औरतों के आँचल में ये पड़ जाते थे, वे उन्हें बड़ी हिफाजत से रखतीं, क्योंकि जब तक सन्तान हो तब तक उन्हें सुरक्षित रखना अनिवार्य था। यदि बीच में ही सन्तरा या नींबू खो गया तो फिर गर्भपात की पूरी संभावना मानी जाती––ऐसा अटूट विश्वास था वहाँके लोगों का। जिनके शरीर पर कोढ़ के दाग उठ गये हों वे देवता का चरणामृत अपने सारे बदन में मलते तो कोढ़ ठीक हो जाता––ऐसी न-जाने कितनी बीमारियों की अचूक दवाएँ थीं––कतरसोम की पूजा में, वैसे, कतरसोम का मन्दिर आठ-नौ हजार फुट की ऊँचाई पर है बहुत ही भव्य और दिव्य। वहाँसे चारों ओर हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ बिलकुल पास ही दिखाई देती हैं। वहाँसे हरि की पौड़ी, और न-जाने कौन-कौन से दूर-दूर के नगर लोगों को दिखाई देते। कतरसोम केदारनाथ घाटी में है। आस-पास बांज हरींज का घना जंगल, नीचे बहुत बड़ा समतल सोते का ठंडा-ठंडा पानी, मदमस्त कर देनेवाली जो भी जाता धन्य-धन्य करता और बार-बार करता उन लोगों की, जिन्होंने इतनी ऊँचाई पर भव्य मन्दिर बनाया था।

तो इस बार मेले में जहाँ हजारों स्त्री-पुरुष जगदीश भी पहुँचा। कई बादी-बदीण (नर्तक-नर्तकि वहाँ नीचे समतल मैदान में अपने करिश्मे दिखा रहे रूपा भी वहाँ पहुँची हुई थी, रूपा, वैसी होगी बीस-इक्की की पर लगती अभी पन्द्रह-सोलह साल की अनार की सी। उसके चाहनेवाले हजारों पर किसीमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि उसका खुले आम हाथ थाम ले और कर ले, क्योंकि ये बदीण जहाँ नाचने-गाने का काम थीं वहाँ कोई-कोई पैसा कमाने के लिए शरीर का व्याप भी कर बैठतीं पर लुक-छिपकर, क्योंकि डोमों (हरिजनों से बीठ (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) छूत मानते, उनसे अलग ही रहते, गलती से स्पर्श होने पर नहाना पड़ता। मन्दिरों और बीठों के घर पर नहीं जा सकते। उनका पानी अलग, खेती-बाड़ी अलग। कतरसोम के मन्दिर में भी उनका जाना निषिद्ध था, कई बार आर्य-समाजि के चक्कर में आकर बेचारे डोमों ने जनेऊ पहने, पूजाएँ शुरू कीं और मन्दिरों में जाने का निश्चय कि पर हमेशा ही मार खानी पड़ी। जब कभी उन्होंने दुस्साह किया बीठों ने आड़े हाथों उनकी खबर ली। इधर चल रहा था, लोकगीतों की स्वर-लहरियाँ चोटियों घाटियों में गूँज रही थीं, वहाँ कुछ दिल-फेंक छोकरों दिलों में 'धुक-धुक' हो रही थी। जगदीश ने रूपा नाच देखा और बाद में घंटों बैठकर गीत सुनता रहा लिखता रहा। रूपा जहाँ सुन्दर थी वहाँ पहुँची हुई 'अनप कवयित्री भी थी। बातों-ही-बातों में लम्बे-लम्बे मनभा गीत रच देती थी और वह हमेशा अपने बनाये गीतों गाकर ही नाचती थी। बस, कवयित्री ने जगदीश जादू कर दिया, उसने खुले आम उतने लोगों के सामने घोषणा कर दी कि मैं रूपा से ही ब्याह करूँगा— फिर क्या था हंगामा मच गया। लोग वहीं उन दोनों पीछे पड़ गये थे, पर दोनों वहाँसे भागकर गाँव आये

वालों को किस्सा मालूम हुआ तो उसकी खाल कालने के लिए सब उतारू हो गये और तब जगदीश के साथ गाँव से हमेशा के लिए चला गया था। जगदीश के जीवन में जैसे ही रूपा आयी कि उसकी पलट हो गयी। रूपा के कहने पर उसने आई० ए० की तैयारी की और रूपा का ही आशीर्वाद या प्रेरणा कि वह बाजी मार गया, फिर क्या था ट्रेनिंग के ही साहब बन गया था। इधर रूपा चुपचाप कहाँ वाली थी। प्रतिभा तो जन्मजात थी ही, कुछ नों में उसने अपना ज्ञान बढ़ाया। रोज नयी-नयी पढ़ने लगी और फिर तो ऐसे-ऐसे गीत, ऐसी-ऐसी याँ लिखी कि कुछ ही दिनों में वह साहित्य-जगत् सिद्ध हो गयी। भगवान् ने रूपा को जहाँ छप्पर फाड़ दिया हुआ था वहाँ अलौकिक प्रतिभा भी। कुछ नों में जगदीश की उन्नति पर उन्नति होने लगी। अब कोई कमी नहीं थी। रूपा वह रूपा न थी——अब जात वर्ग की रूपा थी, जिसकी एक-एक अदा अब सुसंस्कृत और परिष्कृत। उसका उठने-बैठने, फिरने, बोलने-चालने का सलीका ही बदल गया हर बात में शालीनता और शिष्टता, सुदक्षता और ता। अच्छे-अच्छे अफसरों की बीबियाँ उसके सामने भरतीं। इसलिए जगदीश को जैसे तीनों लोकों का मिल गया हो। ऐसी बीबी भी तो भाग्य से ही मिलती भी कुछ दिन पहले उसका तबादला उसीके जिले गया था। इसलिए आज वहीं अपने गाँव और रतगौं की तहकीकात करने के लिए आ रहा था।

रास्ते के गाँव-गाँव में उसका शानदार स्वागत हुआ। बीबी को गाँव-गाँव की स्त्रियों ने मालाएँ पहनाईं। बोलकर आवभगत की और तब दो दिन के बाद अपने गाँव में आ गया। गाँव-का-गाँव उसके के लिए घंटों से खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे वह पहुँचा, फूलों की मालाएँ उसे और उसकी बीबी पहनाई गयीं। शंख बजाये गये। सब उसे धन्य-धन्य लगे कि तूने ही हमारे गाँव की इज्जत रखी। आज हाँ-कहीं भी जाते हैं, तुम्हारा नाम लिया कि काम जाता है। आस-पास के गाँव हमसे डरने लग गये हैं। कह रहे थे——अब तू आ गया इसलिए गाँव की इज्जत हाथ में है। गाँववालों ने उसके खूब कान भरे। पीना हुआ। आज आबाल-वृद्ध सब उसकी सेवा में थे। उसकी बुढ़िया माँ की आँखों में ऐसी अद्भुत थी——कि क्या बताये, उसका नालायक बेटा जिले का साहब बन गया। उनके खानदान में तो कोई पटवारी भी नहीं हुआ था। वह मन-ही-मन 'कतरसोम' की मनौती कर रही थी। उधर रतगौंवालों का जैसे मुर्दा मर गया हो——बिलकुल सन्नाटा, बिलकुल उदासी थी। सब 'खुसर-फुसर' कर रहे थे कि हम जीतेंगे कैसे, वह तो अपने गाँववालों की ही तरफदारी करेगा। रातभर इस प्रकार बातें होती रहीं। अगले दिन प्राइमरी स्कूल में दोनों गाँव वालों को हाजिर होना था। बस, लोग सुबह पाँच बजे से ही साहब की प्रतीक्षा करने लगे।

लगभग ग्यारह बजे जिला साहब पधारे। मिसलें पढ़ी गयीं। गवाहों के बयान हुए। जमीन देखी गयी, क्योंकि स्कूल के पास ही वह गौचर भूमि थी। रतगौंवाले अपनी ओर से जोर लगा रहे थे कि साहब हमारे गाँववालों के पास खेती कम है इसलिए हम इस बंजर भूमि को आबाद करना चाहते हैं, हमारे गाँव के पास ही तो यह जमीन है। भटगौंवालों के पास बहुत सारी जमीन है, कई जंगल हैं और उनके गाँव से तीन मील की दूरी पर यह जमीन है। बीच में जंगल है तब यह गौचर भूमि। अगर उनको अपने डंगर ही चुगाने हैं तो जंगल में ही चराया करें।' तो भटगौंवाले बयान दे रहे थे——साहब यह जमीन हमारे दादे-परदादाओं की है। पुराने नक्शों में यह जमीन हमारे गाँव के नाम पर थी पर नये नक्शों में इन लोगों ने अमीनों को घूस देकर अपने नाम करवा दी। आप १८९० का नक्शा देख लीजिए, १९१० तक खसरा देख लीजिए और १९३० की बन्दोबस्ती साहब की मिसल देख लीजिए। इस प्रकार दो-तीन घंटे बयान और जिरह होती गयी और फिर साहब ने नये-पुराने दोनों नक्शों को देखकर दो घंटे के बाद फैसला दिया कि यह जमीन न भटगौंवालों को मिलेगी, न रतगौंवालों को, बल्कि दोनों गाँवों के जो गरीब डोम (हरिजन) हैं, जिनके पास अपना एक खेत भी नहीं है, उन्हें यह जमीन सरकार की ओर से दी जाती है। वे लोग आपस में बाँटकर इसे आबाद करें। बस, फिर क्या था——एक तूफान मच गया। भीतर-ही-भीतर सब गाली दे रहे थे कि उसी रूपा बदीण की मेहरबानी है, पर हम छोड़ेंगे नहीं, चाहे फीस में सारा गाँव ही बिक जाय और हरिजन मुस्करा रहे थे, रूपा को धन्य-धन्य कह रहे थे कि उसीका प्रताप है कि हमें भी जमीन मिल गयी। साहब ने भी क्या कमाल का फैसला किया है। साहब जो अपना है। अब इन बीठ सालों को भी देख लेंगे, कल ही कतरसोम के मन्दिर में जायेंगे। देखें साहब के सामने कैसे रोकते हैं?

नवीन प्रकाश

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता--महामहोपाध्याय डाक्टर प्रसन्नकुमार आचार्य, प्रकाशक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद। सजिल्द, मूल्य, ५ रु०

यह पुस्तक कई वर्ष पहिले छपी थी, किन्तु शायद प्रकाशित देर से हुई है। इस पुस्तक में थोड़े ही में (३०५ पृष्ठों में) भारतीय संस्कृति और सभ्यता का बहुत ही स्पष्ट, सहानुभूतिपूर्ण और विवरणपूर्ण वर्णन दे दिया गया है जिससे पाठक को भारतीय संस्कृति और सभ्यता का बहुत अच्छा परिचय मिल जाता है तथा उनके आधारभूत सिद्धान्त मालूम हो जाते हैं। इतने छोटे आकार में भारतीय सभ्यता ऐसे गंभीर और विस्तृत विषय का स्पष्ट परिचय देना साधारण योग्यता का काम नहीं है। यह पुस्तक इतनी सुन्दर और उपयोगी है कि प्रत्येक भारतवासी को पढ़नी चाहिए। दुर्भाग्य से आज हम पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से इतने आक्रांत हैं कि अपनी सभ्यता और संस्कृति के बारे में कुछ नहीं जानते। यह पुस्तक हमारे इस अज्ञान को दूर कर सकती है। इस दृष्टि से इसका अधिक से अधिक प्रचार होने की आवश्यकता है। इसका मूल्य इसके प्रचार में बाधक हो सकता है। सम्मेलन व्यापारी संस्था नहीं है। उसका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है। उसे इसका मूल्य इतना कम रखना चाहिए कि वह साधारण लोगों को सुलभ हो। 'आधारभूत कलाओं' नामक अध्याय के साथ चुने हुए चित्र होने चाहिए थे जिनसे इस अध्याय की उपयोगिता बढ़ जाती। उच्च माध्यमिक विद्यालयों में यह पुस्तक अनिवार्य रूप से (यह आवश्यक नहीं कि परीक्षा के लिए) पढ़ायी जानी चाहिए।

कालिदास पर दो ग्रंथ--(१) कालिदास-म० म० डाक्टर वा० वि० मिराशी, मूल्य, ४ रु०, (२) कालिदास और भवभूति--द्विजेन्द्रलाल राय, मूल्य ढाई रु० प्रकाशक, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, हीराबाग, बंबई-४

ये पुस्तकें अनुवाद हैं। पहिली पुस्तक मराठी से, और दूसरी बँगला से अनुवादित की गयी है। दोनों ही के लेखक लब्धप्रतिष्ठ सज्जन हैं। डा० मिराशी देश के संस्कृत और इतिहास के शीर्ष विद्वानों में गिने जाते हैं, और डी० एल० राय प्रसिद्ध नाटक-लेखक ही नहीं, विचारक भी थे। डा० मिराशी की पुस्तक की विशेषता यह है कि कालिदास के सम्बन्ध में अब तक जो सामग्री उपलब्ध हुई है वह सब विद्वान् लेखक ने साधारण पाठक की दृष्टि से साररूप में उसमें रख दी है। किन्तु यह तथ्यों का आकर नहीं है। पुस्तक में एकसूत्रता है सब बातें बड़े हृदयग्राही और सरल ढंग से बतलायी हैं। साथ ही कालिदास की प्रतिभा का, तथा उनके का ऐसा विवेचनपूर्ण और रससिक्त परिचय दिया है कि विदग्ध पाठक के ज्ञान-चक्षुओं के सामने कालि के काव्य की आत्मा मूर्त हो उठती है। कालिदास इस आकार का इतना प्रामाणिक, ज्ञानवर्द्धक और रंजक ग्रंथ हमारे देखने में और कोई नहीं आया। रण पाठक के लिए कालिदास के व्यक्तित्व और का अच्छा परिचय प्राप्त करने के लिए यह ग्रंथ और अत्यन्त उपयोगी है।

'कालिदास और भवभूति' में लेखक ने अभि शाकुंतल और उत्तर रामचरित का तुलनात्मक अध्य किया है। दोनों की आख्यान वस्तु, चरित्र चि नाटकत्व, कवित्व, भाषा और छन्द आदि पर बड़ी दयता और पैनी दृष्टि से विचार किया गया है। एल० राय केवल विद्वान् कवि और लेखक ही स्वयं बड़े नाटककार भी थे। अतएव उनमें नाटकों अभिनेयता तथा बारीक बातों की बड़ी गहरी पकड़ इसलिए उन्होंने इन नाटकों की तुलना करते उनका सम्यक् रूप से विवेचन किया। उन्होंने उन को भी स्पष्टरूप से कहा है जिन्हें वे दोष समझते हैं उनका कहना है कि "जो समालोचना विषय को करके अग्रसर होती है, और नाम से मोहित होकर कर बैठती है कि केवल प्रशंसावाद करूँगी, और अर्थशून्य रचना जान पड़ेगी वहाँ उसका कोई आ त्मिक अर्थ निकालूँगी, वह समालोचना नहीं, स्तुति है।" अंत में उनका निष्कर्ष है: 'इन दोनों नाटकों तुलना ठीक तौर से हो ही नहीं सकती। कारण, नाटक है, और दूसरा काव्य है।' इस तुलनात्मक अ यन को पढ़ते समय पाठक को एक नयी दृष्टि मिलती जिससे उसमें साहित्यिक कृतियों को एक नये ढं देखने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। उसे इस पु के पढ़ने से इन दोनों नाटकों को समझने और इन रसास्वादन लेने में सहायता तो मिलेगी ही, साथ उसे अन्य साहित्यिक कृतियों को अधिक सतर्कता विदग्धता से पढ़ने की योग्यता उत्पन्न होगी। वि रसिकों के लिए ये पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की एक ले० श्री नारायणप्रसाद बलूनी (पर्वतीय), प्रका श्री शालिग्राम आर्त, कोठीवाल, देवप्रयाग। प्राप्

१९६३

चौखम्भा संस्कृत सीरीज, पो० बा० न० ८, वाराणसी-
, मूल्य ३॥)

इस पुस्तक में भारतीय साहित्य और संस्कृति का चय दिया गया है। प्रथम खंड में प्राचीन भारतीय त्य और द्वितीय खंड में भारतीय संस्कृति का अध्य- किया गया है। इसका पहिला खंड बहुत अच्छा है इसमें वैदिक साहित्य से लेकर संस्कृत के गौरवकाल के वाङ्मय का सुबोध और ज्ञानवर्द्धक परिचय दे गया है। दूसरे खंड में भारतीय धर्मों, गणित, तिष आदि विद्याओं, कलाओं और भिन्न युगों की तिक दशा का परिचय है। परिशिष्ट के रूप नुत भारतीय स्मारकों का भी संक्षिप्त परिचय गया है। पुस्तक उपादेय है और प्राचीन भारतीय ति और साहित्य का परिचय प्राप्त करने का अच्छा न है।

भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा——ले० नदयाल उपाध्याय। प्रकाशक, राष्ट्रधर्म प्रकाशन टेड, गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ। मूल्य एक रुपया ३५ नये पैसे।

ाध्यायजी भारतीय जनसंघ के प्रधान मंत्री हैं विचारक हैं। भारतीय जनसंघ कुछ वर्षों से ही य राजनीति के मंच पर आया है और उसने इन दिनों में देश के राजनीतिक क्षेत्र में अपना निश्चित बना लिया है। भारत में एक-दो को छोड़कर राजनीतिक दल बामपक्षी हैं। वे मार्क्स के प्रति- समाजवाद और वर्गवाद में विश्वास करते हैं। चिन्तन पाश्चात्य है। उनका कहना है कि विज्ञान कनीक के इस असाधारण रूप से उन्नत युग में मार्क्स के बतलाये समाजवाद के अतिरिक्त और मार्ग नहीं है। उनकी राजनीतिक, आर्थिक और जिक योजनाएँ उसीपर आधारित हैं। संसार के देशों में दक्षिणपंथी राजनीतिक दल हैं। इस देश में दिनों से ऐतिहासिक कारणों से कांग्रेस ही सर्वमान्य था। वह अपने प्रमुख नेताओं के समाजवादी होने रण समाजवादी हो गया और इस प्रकार देश की समाजवादी हो गयी। किन्तु इस विशाल देश में पंथी विचार के लोगों की कमी नहीं है। अब वे गठित होने लगे हैं। इनमें जनसंघ और स्वतंत्र दल नीय हैं। यह जानना आवश्यक है कि ये दक्षिण- दल का—विशेषकर जनसंघ का——(हिंदी-भाषी क्षेत्रों ीका प्रचार है) देश की अर्थनीति के बारे में क्या ार है। जनसंघ के महामंत्री द्वारा लिखे जाने के रण इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है। भूमिका में क कहते हैं कि प्राचीन भारत की अर्थसंबंधी कल्प- ाओं अथवा आधुनिक भारत की अर्थ-व्यवस्था और ीति पर "अलग-अलग बहुत कुछ लिखा भी गया है। क इतिहास की खोज का विषय रहा है तो दूसरा अर्थ- स्त्री और राजनीतिज्ञ के विवेचन का। अर्थशास्त्रियों ने सरकारी रिपोर्टों के आधार पर पाठ्य पुस्तकें रची हैं तो राजनीतिज्ञों ने अपनी भूमिका के अनुसार अर्थ-व्यवस्था का चित्रण किया है।...किन्तु भूत के आधार पर वर्तमान का विचार कर भावी की दिशा निश्चित करने का प्रयास नहीं हुआ।" लेखक का कहना है कि उसने समन्वयात्मक ढंग से इन विषयों पर विचार किया है। पुस्तक में जो बातें कही गयी हैं और जो दिशा-संकेत किया गया है, उनपर यहाँ ठीक तरह से विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके लिए हमारे पास इस संक्षिप्त आलोचना में स्थान नहीं है। किन्तु हम इस पुस्तक को इसलिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं कि इससे जनसंघ की आर्थिक नीतियों की कल्पनाओं की रूपरेखा हमारे सामने प्रामाणिक रूप से आ जाती है। बहुत लोगों का यह कहना है जनसंघ केवल साम्प्रदायिक संस्था है। उसके पास कोई आर्थिक नीति या कार्यक्रम नहीं है। यह पुस्तक उस भ्रम को दूर करती है। जो लोग जानना चाहते हैं कि जनसंघ की आर्थिक नीतियों के क्या आधार हैं और वे किस दिशा की ओर समाज और देश को ले जाना चाहता है, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। जो जनसंघ के अनुयायी हैं उन्हें यह पुस्तक प्रेरणा देगी, जो विरोधी हैं उन्हें जनसंघ की आर्थिक नीति समझने में सहायता देगी। यदि वे उन्हें समझकर और उनपर विचार करके उनका खंडन करेंगे तो वह खंडन हवाई न होकर तर्कपूर्ण होगा। इसलिए यह पुस्तक सभी विचार के लोगों के पढ़ने योग्य है।

भारतीय ज्योतिष——श्री नेमिचन्द्र शास्त्री। प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। सजिल्द, पृष्ठ संख्या ६२०, मूल्य, ६ रुपये।

इसे सरल भाषा और सुबोध शैली में लिखा ज्योतिष का हस्तामलक कहना अधिक उचित होगा। इसमें भारतीय ज्योतिष की सभी व्यावहारिक और सैद्धान्तिक ज्ञातव्य बातें बड़े अच्छे ढंग से समझायी गयी हैं। इसे रुचि और ध्यान से पढ़ने से साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी ज्योतिष का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त कर सकता है, और यदि वह कुछ अधिक परिश्रम करे तो साधारण ज्योतिषी भी हो सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ज्योतिष ऐसे जटिल विषय को बड़े सरल ढंग से समझाया गया है। लेखक विभिन्न सिद्धान्तों के बारीक मतभेदों के भूलभुलैया में पाठक को नहीं घुमाता और उतनी ही बात कहता है जितनी उसके ज्ञानवर्द्धन और ज्योतिष शास्त्र को समझने के लिए आवश्यक है। कुछ लोगों का कहना है कि ज्योतिष में ग्रीक और अरबी शब्दों के प्रयोग से कुछ लोगों को भ्रम हो गया कि यह शास्त्र भारतवासियों ने ग्रीस और अरब से सीखा। लेखक ने इसका तर्कपूर्ण समाधान किया है। पुस्तक की छपाई और कागज सुन्दर है। इसकी छपाई और आकार देखते हुए पुस्तक का मूल्य बहुत संतोषजनक है।

वैचारिकी (निबंध-संग्रह)––श्रीमती शची रानी गुर्टू। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६, सजिल्द, मूल्य १० रुपये।

श्रीमती शची रानी गुर्टू हिंदी की लब्धप्रतिष्ठ लेखिका हैं। इस संग्रह में उनके समय-समय पर लिखे साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। आरंभ में कुछ निबंध सैद्धान्तिक हैं और बाद में परिचयात्मक या आलोचनात्मक। निबंधों का संग्रह होने के कारण इसमें एकरूपता नहीं आ पायी। किंतु सभी निबंध पठनीय हैं और साहित्य के विद्यार्थियों के लिए विचारोत्तेजक और ज्ञानवर्द्धक हैं। भारतीय साहित्यिकों के अतिरिक्त टाल्स्टाय और वर्ड्सवर्थ पर भी दो निबंध हैं। इनसे लेखिका के विस्तृत अध्ययन का पता लगता है। सब मिलाकर निबंधों की शैली और वस्तु-विधान सुंदर है।

यात्रा विवरण––(फाहियान, सुंगयुन, और सुलेमान सौदागर के यात्रा-विवरण) प्रकाशक, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सजिल्द, मूल्य ६ रुपये।

पहिले दो यात्रा-विवरणों का अनुवाद श्री जगन्मोहन वर्मा और तीसरी का श्री महेशप्रसाद साधु ने किया है। ये ग्रंथ पहिले अलग-अलग छपे थे। अब सभा ने तीनों को एक पुस्तक में छाप दिया है। अतएव यह इनका दूसरा संस्करण है। फाहियान का यात्रा-विवरण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसके आरंभ में ५६ पृष्ठों का एक निबंध है जिसमें इस यात्रा का समीक्षात्मक वर्णन किया है जिससे पाठकों को मूल यात्रा-विवरण समझने में सहायता मिलेगी। यह निबंध बड़े परिश्रम और खोज से लिखा गया है। अंत में परिशिष्ट के रूप में पुस्तक में आये बहुत से शब्दों और नामों की व्याख्या भी दे दी गयी है। सुंगयुन की यात्रा का सम्पादन भी प्रायः इसी प्रकार किया गया है। इसमें यात्री की भारत की पश्चिमी सीमा तक की यात्रा का वर्णन है। वह भारत के भीतरी भागों में नहीं घूमा। अतएव इसम मध्य एशिया, अफगानिस्तान तथा पुराने पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के वर्णन हैं। सुलेमान सौदागर की यात्रा का विवरण है। वह पहला अरब यात्री था जिसने भारत और चीन की यात्रा की थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि उसने यह यात्रा नवीं शती के पूर्वार्द्ध में की थी। यह यात्रा-विवरण बड़ा मनोरंजक है––विशेषकर इस लिए कि इसमें तत्कालीन भारत और चीन की सामाजिक दशा का बड़ा मनोरंजक और तुलनात्मक वर्णन है। हिंदी के इतिहास-साहित्य में यह पुस्तक बड़ी महत्त्वपूर्ण है और इतिहास-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

पौधों के रोग—डा० रघुबीरसहाय माथुर। प्रकाशक, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा। सजिल्द और
मूल्य ७ रुपये।

यह पुस्तक उद्भिद् व्याधिकी (प्लैण्ट पैथो
और शाकाण्विकी (बैक्टीरियोलॉजी) विषयों पर
लेकर बी० एस०-सी० के विद्यार्थियों के लिए लिखी
है। लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं और उन्होंने
विषय का अध्ययन अमरीका में किया था। यह
कृषि के लिए व्यावहारिक उपयोग का है क्योंकि
कीड़े लगने और दूसरे रोगों के कारण प्रत्येक वर्ष
की हानि होती है। अतएव विद्यार्थियों के
यह कृषि कार्य करनेवाले दूसरे शिक्षित (विशेष
विज्ञान जाननेवाले) लोगों के भी काम की है।
का प्रतिपादन और व्याख्या इस सुबोध ढंग से की
कि विद्यार्थी उसे सहज ही समझ लें। अनेक
द्वारा बहुत सी बातों का स्पष्टीकरण कर दिया गया
विश्वविद्यालयों में हिंदी माध्यम को सफल करने
लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। हम
अभिनंदन करते और इसकी सफलता चाहते हैं।

हिन्दी वार्षिकी––प्रधान सम्पादक, डा०
प्रकाशक, भारती साहित्य मन्दिर, (एस० चन्द
कम्पनी) फव्वारा, दिल्ली। मूल्य १० रुपये।

यह महत्त्वपूर्ण वार्षिक प्रकाशन है। इसमें सन्
के हिंदी साहित्य की उपलब्धियों, उसकी प्रवृत्तियों
उसके प्रकाशनों की अधिकारी विद्वानों द्वारा
की गयी है। पुस्तक के चार खंड हैं: (१) हिंदी
की प्रगति (२) श्रेष्ठ प्रकाशन (३) हिंदी में शोध
(४) हिन्दीतर भारतीय भाषाओं की गतिविधि।
खंड के देखने से मालूम होता है कि हिंदी का
कितना असंतुलित है। आलोचना और साहित्य
सिद्धान्तों पर तथा सर्जनात्मक साहित्य में काफी
हुआ है, किंतु ज्ञान-विज्ञान के साहित्य में कोई
नीय कार्य नहीं हो रहा। इधर ध्यान देने की
कता है। १९६१ के नाटकों का अध्याय
से पठनीय है। ३८ प्रकाशित पुस्तकों की
समालोचनाएँ की गयी हैं। इनमें कई
ग्रंथों की भी आलोचनाएँ हैं। यह विचारणीय है
अनूदित ग्रंथों को 'वार्षिकी' में आलोचना के लिए
सिद्धान्तों पर चुना जाय। यह वार्षिकी
प्रकाशन है। इससे हिंदी साहित्य की वार्षिक
का पता लगता है। जिस लगन और परिश्रम के
लेखकों ने इसमें सहयोग दिया है, वह स्तुत्य है।
४०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १० रुपये हमें
मालूम होता है। वह इसके प्रचार में बाधक होगा।

ब्रज-माधुरी (१)

पावस

बियत बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे,
बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन बन।
अकल बिकल ह्वै बिलाने हैं पथिकजन,
ऊर्ध्वमुख चातक अधोमुख मराल गन।
बेनी कवि कहत महो के महा भाग भये,
सुखद संजोगिन बिजोगिन के ताप तन।
कंज पुंज गंजन सिखीदल के रंजन,
सो आये मान-भंजन ये अंजन-बरन घन ॥

सुनि कै धुनि चातक मोरन की
चहुँ ओरन कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन में
सोई गावत राग अचूकनि सों।
कवि देव घटा उनई जु नई
बन भूमि भई दल दूकनि सों।
रंग राती हरी सतराती लता
झुकि जाती समीर के झूकनि सों ॥

कैधौं मोर सोर तजि गये री अनत भजि,
कैधौं उत दादुर न बोलत हैं ए दई।
कैधौं पिक चातक बधिक काहू मारि डारे,
कैधौं बग पांति उत अन्तरित ह्वै गई।
आलम कहत अलो अजहूँ न आये कन्त,
कैधौं उत रीति बिपरीति बिधि नैं ठई।
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही,
कैधौं मेघ जूझे, कैधौं बीजुरी सती भई ॥

बूड़ि मरैं न समुद्र में हाय, तौ
नाकई अंकु निछौछे डुबावैं।
का तजि लाज गराज करैं,
मुख कारो लिये इतैई उत धावैं।
नारि बिचारिन पै बज मारे
बृथा बुँदियान के बान चलावैं।
बीर हैं तौ बलबीरहिं जाय कै,
बीर बलो धुरवा धमकावैं ॥

नील पट तन पर घन से घुमाइ राखौं
दन्त की चमक चपला सी बिरचति हौं।
हीरन की किरनैं जगाइ राखौं जूगनू सी
कोकिल, पपीहा, पिक बानी सों ढरति हौं।
कीच अँसुवान की मचाइ कवि देव कहै
पीतम बिदेस को पधारिबो हरति हौं।
इन्द्र को सो धनु साजि बेसरि कसति आजु
रहुरे बसन्त तोहिं पावस करति हौं ॥

उत स्यामघटा इत हैं अलकैं
बगपाँति उतै इतै मोती लरी।
उत दामिनि दंत चमंक इतै
उत चाप इतै भ्रुव बंक तनी।
उत चातक तौ पिउ पीउ रटै
बिसरै न इतै पिउ एक घरी।
उत बूँद अखंड इतै अँसुवा,
बरखा बिरहीनि तें होर परी ॥

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई
देखौ आई ऋतु पावस, न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी सो
दरकी सुहागिनि की छोह भरी छतियाँ।
आई सुधि बरकी हिये में आनि खरकी
सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की
डग भई बामन की सावन की रतियाँ ॥

उमड़ि घुमड़ि घन छोड़त अखंड धार
अति ही प्रचण्ड पौन झूँकन बहत है।
द्विजदेव संध्या को कोलाहल चहूँधा
नभ सैल ते जलाहल को जोग उमहत है।
बुधि बल जाको सोई प्रबल निसा को मेघ,
देखि ब्रज सूनो बैर आपनो गहत है।
ए हो गिरिधारी! हौं तौ सरन तिहारी
अब फेरि यहि बारी ब्रज बूड़न चहत है ॥

भादौं की कारी अँध्यारी निसा
झुकि बादर मन्द फुहीं बरसावत।
राधिका आपने ऊँचे अटा पै
चढ़ी रस रंग मलारहि गावत।
ता समै नागर के दृग दूरि तैं
आतुर रूप की भीख यों पावत,
पौन मया करि घूँघट टारै,
दया करि दामिनि दीप दिखावत ॥

मनोरंजक संस्मरण

कवि और कविराज

कई वर्ष हुए ग्वालियर के कमला राजा मेडिकल कालिज के वार्षिकोत्सव में एक कवि-सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। कालिज के प्राध्यापक तो डाक्टर होते ही हैं, उसके विद्यार्थी भी 'डाक्टर' कहकर पुकारे जाते हैं। कवि लोग मंच पर बैठे थे और श्रोतागण सामने। सम्मेलन की अध्यक्षता पं० वासुदेव गोस्वामी कर रहे थे। कवियों में डा० बालेन्दु एम० ए०, डी० लिट० भी थे। जब गोस्वामीजी ने उन्हें यह कहकर आमंत्रित किया कि "अब मैं डा० बालेन्दु से कविता पढ़ने का अनुरोध करता हूँ", तब मेडिकल कालेज के प्रधानाचार्य बोल उठे--"यह हर्ष की बात है कि कवि भी डाक्टर हैं और श्रोता भी।" इसे सुनकर गोस्वामीजी ने कहा कि "प्रधानाचार्य की उक्ति बड़ी सुन्दर है, किंतु उसमें कवि विलीन हो गया है और डाक्टर उभर आया है। मैं इसे इस प्रकार कहना चाहता हूँ :

डाक्टर कविता पढ़ रहे डाक्टर के प्रति आज।
इत कवि राजत मंच पर, उत श्रोता कविराज !

गोस्वामीजी के इस आशु दोहे को सुनकर श्रोतागण आनन्द विभोर होकर देर तक तालियाँ बजाते रहे। कवि को उभारते हुए भी कवियों को केवल 'कवि' और अपने अतिथियों को 'कविराज' कहकर अतिथि-सुलभ विनम्रता दिखलायी।

बलि चाह्यौ आकाश कों हरि पठ्यो पाताल !

पं० वासुदेव गोस्वामी सरकारी सेवा में हैं। ऐकाउण्ट्स ऐसे शुष्क विभाग में रह कर भी कविता करते हैं और कविसम्मेलनों में कविता पढ़ते भी हैं। किंतु वे अपनी आवाज से संतुष्ट नहीं हैं। वे चाहते हैं कि उनकी आवाज कोमल और सुरीली हो। वास्तव में उनकी आवाज मर्दानी है जो उनके शुष्क व्यवसाय से सर्वथा मेल खाती किंतु जब कोमल और सरस कंठवाले कवियों को सम्मेलनों में सुनते हैं, और स्वयं कविता पढ़ने पर स्वर की उनके स्वर से तुलना करते हैं तब वे मोर की कुंठित और व्यग्र हो जाते हैं जिस समय उसकी अपने पैरों पर जाती है। पता नहीं कि उन्होंने और 'थ्रोट ड्रॉप्स' का सेवन किया या नहीं, किंतु भग से प्रार्थना अवश्य करते हैं कि उनका कंठ सुरीला हो जा कई बार उन्होंने भगवान् से कविता में प्रार्थना भी की—

"जय हो ! कृपानिधान ! कृपा कर मुझको तुम यह वर
कवि यदि मुझे बनाया है तो कोकिल जैसा स्वर दो!

संयोग की बात कि एक बार उनके गले में कुछ खरा आ गयी। पीड़ा होने लगी। पानी पीना कठिन हो गया बोलने में कष्ट होने लगा। आवाज और भर्रा ग बड़े परेशन हुए। घबड़ाए हुए डाक्टर के पास ग डाक्टर ने गले की परीक्षा करके कहा--"घबड़ाने की बात नहीं है। आपके गले में कौआ बढ़ गया है। दवा खाने और जो औषधि लगाने को दे रहे हैं उनसे दो-तीन दिन में बिल्कुल ठीक हो जायगा।" गोस्वामीजी डाक्टर का आश्वासन और दवाखाने की दवाइयाँ ले घर आये। बड़े दुखी हुए। भगवान् से कोकिल का स्व माँगा था, और गले में बढ़ गया कौआ! भगवान् प बहुत बिगड़े और उनको उपालम्भ देते हुए बोले—

गोस्वामी जी हुए क्षुब्ध अति, बोले फिर यह बा
"नहीं जानता था भगवन् ! तुम हो इतने अज्ञानी!
बूढ़े अति हो गये, बढ़ा बुढ़भस, हा ! कैसा खेद है!
नहीं समझ में आता अब कौए-कोकिल का भेद है!"

कौआ ठीक हो गया, किंतु गोस्वामीजी ने फिर कोकिल-कंठ होने की कामना नहीं की।

१९०७ की सरस्वती

जापान-नरेश मत्सूहीटू

श्री स्वामी सत्यदेव

> "It is a law of nature common to all kind, which no time shall annul or destroy, those, who have more strength and excel- shall bear rule over those who have less,"
>
> —Dionysius of Halicarnassus, I, 5.

संसार में प्राणियों के लिए सबसे पहला प्रश्न सम्बन्धी है। किस प्रकार हम अपनी प्राणरक्षा कर है? यही बात उनके लिए सबसे अधिक महत्त्व की गल में रहनेवाले फलाहारी पशु अपनी रक्षा के लिए ुंड में रहने का अभ्यास करते हैं। जंगली पशुओं ने प्राणों की रक्षा के लिए उनके शरीर की बनावट ही मजबूत होती है। वही पशु जब मनुष्य के हने लगते हैं तब उनके स्वभाव और शरीर में भेद ता है; उनकी आदतें बहुत कुछ बदल जाती हैं।

कृति का यह नियम है कि जो जीवधारी अपने पास- वालों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते वे न जीवन नन्द उठा सकते हैं और न अपना अस्तित्व ही कायम कते हैं। यह नियम सर्वव्यापी है। किसी तरफ ठाकर देखिए इस नियम की सर्वव्यापकता विद्य- है। इस नियम से कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य कोई बचा।

क समय था जब आदमी आनन्द से विचरा करते क्षों के फल खाना और जंगल में रहना उनको बहुत था। मनुष्य कम और खाने-पीने के सामान अधिक नुष्य की वह दशा बदली। आबादी के बढ़ने से खाने- के लिए दौड़-धूप होने लगी। पृथ्वी के भिन्न-भिन्न की ओर मनुष्य-सृष्टि फैलती गई। अनेक जातियाँ । वे जातियाँ देश, काल और ऋतु के अनुसार अपने र और रहन-सहन को बदलती गईं। वे जातियाँ ति करती गईं। उन्होंने संसार के जय और पराजय पना भाग लिया। जिन्होंने ऐसा नहीं किया, या न्होंने सिर्फ एक ही आद्य विषय में उन्नति की वे अपने से क कुशल, कुटिलनीति में अधिक निपुण, और युद्ध- में अधिक विशारद जातियों के पावों तले रौंदी गईं। को सेवा-वृत्ति का काम मिला।

इस बात की सत्यता और इस नियम के गौरव को पाठकों के हृदय पर अच्छी तरह अंकित करने के लिए आज हमने एक ऐसे पुरुष की संक्षिप्त जीवनी लिखने का विचार किया है जिसने इस नियम के महत्त्व को अनुभव करके केवल अपनी ही जाति के अस्तित्व को नहीं कायम रखा, किन्तु एशिया की सभी जातियों को डंके की चोट से इस नियम के समझने की घोषणा दी है। उसने बतलाया है कि कोरे ज्ञान-गीत से, सूखे दर्शनशास्त्र से, जाति का पेट नहीं भर सकता। मनुष्य-जाति तभी सुखी हो सकती है जब उसमें आत्मरक्षण की शक्ति हो। सन्तोष और क्षमा इसका नाम नहीं है कि हम अपना घरबार दूसरों के हवाले कर दें। हमको निश्रेयस का सुख तब तक नहीं मिल सकता जब तक हम अभ्युदय का सहारा न लें। संसार में आज मनुष्य जातियों में "जीवन" के लिए भयानक युद्ध हो रहा है। इस युद्ध में वही जाति अपना अस्तित्व कायम रख सकती है जिसके पास इस युद्ध के योग्य सामान है।

आओ, पाठक हम आपको जापान की इस अद्भुत उन्नति और प्रसिद्धि के कारण, निपन के अस्तित्व की रक्षा करनेवाले, जापान के वर्तमान सम्राट्, मत्सूहीटू की कथा सुनावें और बतलावें कि आज जापान करोड़ों रुपये खर्च करके बड़े-बड़े जंगी जहाज क्यों बना रहा है, और क्यों जापान के नर-नारी, बालक-बालिकायें अपने देश के लिए आत्मसमर्पण करना तुच्छ समझती हैं।

जापान के वर्तमान सम्राट् मत्सूहीटू (Mutsu Hito) का जन्म क्यूटो नगर में तीसरी नवम्बर १८५२ ई० को हुआ। आपके पिता महाराजाधिराज कोमेई (Komei) जो जापान के १२० वें सम्राट् थे, बड़े दयालु थे। पिता ने इनको आठ ही वर्ष की अवस्था में युवराज बनाया। यह अभी बालक ही थे कि अमरीका में गवर्नमेंट की ओर से जापान और अमरीका में मित्रता स्थापित करवाने के लिए कामोडोर पेरी जापान आये। इसी दिन से जापानी उन्नति का आरम्भ होता है। १८६० के युवराज मत्सूहीटू और १९०५ के सम्राट् मत्सूहीटू में आकाश-पाताल का फर्क है। इन्होंने केवल ३८ वर्ष में जो तजरिबे प्राप्त

किये हैं और जो घटनायें देखी हैं, संसार में शायद ही किसी राजा, महाराजा ने देखी हों। ऐसा मालूम होता है, मानों हजार वर्ष की ऐतिहासिक घटनाओं का निचोड़ ३८ वर्ष में ही इस महात्मा की जीवन-घटनाओं के भीतर भर दिया गया है। जो बालक मत्सूहीटू पचास वर्ष पहले, क्यूटो के महलों में शिशुक्रीड़ा करता था और जो अपने प्यारे निपन (Nippon) को छोड़ और किसी देश का नाम न जानता था, वही आज संसार की सभ्य जातियों के सम्मान और प्रतिष्ठा का भाजन है।

१५ वर्ष की उम्र में आप सिंहासनारूढ़ हुए। होते ही आपने अपनी स्वामिभक्त प्रजा को प्रतिनिधि-सत्ताक राज्य देने का निश्चय किया। तब तक जापान में रूस की तरह खुदमुख्तार शासन था। प्रजा अपने राजा को ईश्वर मानकर पूजा करती थी। अब तक जापान में वह भाव अधिकांश मनुष्यों में है--गवर्नमेण्ट के शासन का ढंग महाराजा की उम्र के साथ-साथ उन्नति करता गया। यह उन्नति जल्द हुई और कामिल हुई। जिस ढंग का शासन योरप में एक हजार वर्ष के जद्दोजहद, मार-काट और भयानक युद्धों के बाद प्रचालित हुआ, वही जापान ने अपने सुयोग्य सम्राट् की बदौलत बात की बात में प्राप्त कर लिया। विज्ञान के जो फल योरप को सैकड़ों वर्षों की लगातार कोशिश और सैकड़ों आत्माओं के बलिदान से चखने को मिले, जापान को अकेले अपने राजा के प्रताप और यत्न से सहज ही में मिल गये।

प्रजा-पालक मत्सूहीटू ने अपनी प्रजा-रूपी सन्तान के लिए स्वतन्त्रता का द्वार खोल दिया। दिन-रात उनकी उन्नति के यत्न में मग्न हो गया। जो सुधार परतन्त्र देशों में सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी कठिनता से होते हैं उन्हें अपनी प्यारी प्रजा के हित के लिए करने को वह तत्काल उद्यत हो गया। उसने जान लिया कि संसार में सबसे पहला प्रश्न जीवन-सम्बन्धी है। संसार की सभ्य जातियों की बराबरी तभी की जा सकती है, जब उनका सा सामान पास हो अन्यथा योरप के वैज्ञानिक बल के सामने एशिया-वालों का अस्तित्व असंभव है। यह रहस्य जानने में सम्राट् को देर न लगी। फिर प्रतीकार में देर कहाँ! भिन्न-भिन्न देशों में जापानी युवक भेजे गये। सब तरह के कला-कौशल और विज्ञान की शिक्षा का उपक्रम हुआ। जल-युद्ध-विद्या की उन्नति के उपाय सोचे गये। इन प्रयत्नों का फल यह हुआ कि थोड़े ही समय में जापान के वी
ओयामा, कुरोकी, नोगी, टोगो आदि का नाम संसा
प्रख्यात हो गया।

जापान की इस ख्याति, उन्नति और यश के
उसके वर्तमान सम्राट् हैं। जापान के शिन्टो धर्म के अनु
सम्राट् मत्सूहीटू ईश्वर के स्थान में हैं। किसी प्र
की भूल उनसे संभव नहीं। जापानियों की यही भावना
महाराजा के लिए प्राण देना ही जापानियों का धर्म है
अपने सम्राट् की आज्ञा का पालन करते-करते मर जा
जापानी अपना अहोभाग्य समझते हैं। यद्यपि और दे
में भी राजभक्त मनुष्य हैं परन्तु वहाँ राजा के सिवा ईश्
भी माना जाता है, और ईश्वरी आज्ञा के सामने रा
की आज्ञा तुच्छ समझी जाती है। जापान में शिन्टो ध
के अनुसार राजा ही ईश्वर का रूप है; उसकी पूजा, भ
और आज्ञापालन ही जापानियों का एकमात्र धर्म है

कोई-कोई पाठक शायद यह कहेंगे कि इस बीस
शताब्दी में, जब विद्या का इतना प्रकाश हो रहा है,
जापान ने विज्ञान में इतनी तरक्की की है, तब नो
कुरोकी जैसे विद्वानों का अपने महाराजा पर इतना अ
विश्वास कैसे हुआ? जापान के विद्वानों की इस श्र
इस भक्ति का कारण उनके महाराजा के अलौकिक
हैं। किसी साधारण राजा में यह शक्ति नहीं कि मत्सूह
की तरह दीर्घ दूरदर्शिता, सन्तोष, धर्य और प्रजावत्सल
दिखलावे और अपनी प्रजा को थोड़े ही समय में अन्ध
से निकालकर बड़े-बड़े सभ्यशिरोमणि देशों की प्र
से भी अधिक योग्य बना दे।

आठ वर्ष की उम्र में राजकुमार मत्सूहीटू अपने ब
भाई की मृत्यु के बाद युवराज बनाये गये। बालक
से ही महाराज दो गुणों के कारण प्रसिद्ध थे। एक
इरादे की मजबूती, दूसरा विद्वानों का संग। स्वामिभ
राजपुरुषों में से जो बुद्धिमान् और नीतिनिपुण थे उन
बातों को ये ध्यानपूर्वक सुनते थे, उन पर विचार क
थे। इसी से महाराज अपनी मानसिक और आत्मि
उन्नति करने, और वे बड़े-बड़े जातीय सुधार, जि
ऊपर इनका भविष्य अवलम्बित था, कर दिखाने
कृतकार्य हुए। इन्हीं गुणों की बदौलत सिंहासन
बैठते ही इन्होंने जापान की पुरानी शासन-प्रणाली
लना चाहा। इस पर मूर्ख लोगों ने तथा छोटे-

१८६३

राजाओं ने विरोध किया। पर नवयुवक महाराज ने बड़ी दृढ़ता से विरोध का सामना किया और सारी कठिनाइयों को दूर करने में सफलता पाई। राजा प्रजा सबने इनके प्रताप के सामने सिर झुकाया।

विरोध करनेवालों में राजा टोकूगावा, सामूराय, आदि मुखिया थे। पर उनकी एक भी न चली। उन्हें महाराजा की बात माननी ही पड़ी। महाराजा बगावत दूर करने के बाद बड़ी उदारता दिखाई। उन्होंने अपने विरोधी लोगों का बड़ा सम्मान किया और जो युद्ध में मारे गये थे उनकी भी बड़ी प्रतिष्ठा की। इसका फल यह हुआ कि देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक इनका यश छा गया।

पंद्रह वर्ष की उम्र में राज्य का भार इनके सिर पर पड़ा। पंद्रह वर्ष की उम्र ही क्या! बिलकुल तजरिबा नहीं होता। परन्तु महाराज इस छोटी उम्र में ही राज्य के भारी बोझ के उठाने योग्य हो गये थे। इनके पिता भी बड़े प्रजावत्सल और बुद्धिमान् शासक थे। इन्होंने महाराज मत्सूहीटू को बालकपन से ही उत्तम शिक्षा दी और इस भारी कार्य के लायक बना दिया था।

१८६८ में महाराजा ने हेरुको इचिजो नाम की कुमारी से विवाह किया। महाराजा की उम्र उस समय १६ वर्ष की थी और महारानी की १८ वर्ष की। महाराजा इस विवाह से बड़े सुखी हुए, क्योंकि इन्हें महारानी बड़ी नम्र और सुशीला मिलीं। केवल पुत्र न होने का दुःख था। परन्तु जापान के रस्म-रिवाज के अनुसार सन्तानोत्पत्ति के लिए दूसरी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध करना बुरा नहीं समझा जाता। इसलिए महाराज ने उस रीति का पालन किया और वर्तमान युवराज ऐसे ही सम्बन्ध का फल हैं।

जब शासन-प्रणाली का ढंग ठीक हो गया और देश का उपद्रव शान्त हो गया, तब महाराजा ने "गोनरोकू" अर्थात् योग्य विद्वानों को राज्य-कार्य के लिए नियत किया। ये विद्वान् बड़े नीतिज्ञ थे। ये इनके दरबार के रत्न थे। इन्होंने युवक महाराज की सेवा में तन, मन, धन सभी समर्पण कर दिया। इनमें से कई एक अपनी स्वामिभक्ति का पूर्ण परिचय देकर स्वर्गगामी हो गये हैं। परन्तु ईटो, यमागाटा, ओयामा, ओकुमा आदि के नाम अब तक निपन-जाति की शोभा बढ़ा रहे हैं।

महाराज बड़े मरदुमशनास हैं। जो पुरुष जिस योग्य होता है उसको वही पदवी दी जाती है। वे नवयुवकों से भी इसलिए परिचय रखते हैं, जिसमें वे उनके गुणों की परीक्षा कर सकें और उनके उत्साह को बढ़ा सकें। उनकी प्रिवी कौंसल में प्रत्येक सभासद को निर्भय होकर सम्मति प्रकट करने की आज्ञा है, और जल तथा थल-युद्ध के सम्बन्ध में भी प्रत्येक की सम्मति बड़े ध्यान से सुनी जाती है, और योग्य अयोग्य बातों पर अच्छी तरह विचार किया जाता है। रूस के साथ युद्ध होने की जब संभावना हुई थी तब महाराज ने एक जंगी कौंसल इसी अभिप्राय से स्थापित किया था। उसमें युवक सभासदों को अपनी-अपनी सम्मति खुले तौर पर प्रकट करने का पूर्ण अधिकार था। महाराज जानते हैं कि सभा-समाजों में "निर्भय सम्मति" बड़ा काम देती है। बिना उसके तत्त्व बात नहीं मालूम होती। महाराज ही के उदाहरण को देखकर रूस-जापान युद्ध में बड़े-बड़े सिपहसालारों और अफसरों ने रणभूमि में भी किसी बात पर विचार करने के समय छोटे-छोटे अफसरों को भी बुलाकर उनकी राय पूछना अपना कर्तव्य समझा था। उपयोगी बात चाहे बालक के मुँह से निकली हुई क्यों न हो उस पर चलना उन्होंने अपना धर्म जाना। कौंसल-बोर्ड के विषय में बातचीत करते समय एक दफे एक जापानी ने कहा था—"हमारी जाति एक युवा जाति है। हम लोग जहाँ बड़े की राय और सलाह की कदर करते हैं वहाँ युवकों की बातों पर भी पूरा ध्यान देते हैं। क्योंकि युवा जन काल की गति का अधिक अनुभव करते हैं और खासकर जंगी बातों में उपयोगी सलाह दे सकते हैं। क्योंकि आजकल उन्नति का जमाना है। नित नई बातें हुआ करती हैं। उनकी खबर, युवकों ही को अधिक रहती है।"

महाराज मत्सूहीटू सांसारिक उन्नति के रहस्य अच्छी तरह समझते हैं। जगत् परिवर्तनशील है। जो जातियाँ अपना कदम उसके साथ-साथ रखती जाती हैं वही ईश्वरी नियम का पालन करती हैं। वही सजीव बनी रहती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हम प्रत्येक बात में अपने प्राचीन पुरुषों का अनुकरण करें। यदि वे वल्कल पहनते थे तो हम भी वल्कल पहनें। वे नंगे फिरते थे, तो हम भी नंगे फिरें। हमको काल की गति

का ध्यान रखना चाहिए। जो-जो उन्नतियाँ दूसरी जातियों ने की हैं, उनसे हमें फायदा उठाना चाहिए। यदि वे तोप, बन्दूक तथा और वैज्ञानिक बल की महिमा युद्ध में दिखा सकते हैं, तो हमें भी ये सब साधन सिद्ध करना चाहिए। क्योंकि यदि हम ऐसा न करेंगे तो जिनके हाथ में ऐसे-ऐसे साधन हैं वे न जाने कब हमारे ऊपर आन कूदें और हमारे मुँह का टुकड़ा छीन लें। इस बात को महाराज ने अच्छी तरह हृदयंगम किया है। इसीलिए उन्होंने अपना सिद्धांत सूत्र यह बनाया है—"Keep all that was good and useful in the old–take all that is good and beneficial in the new," अर्थात् पुरानी बातों में जो अच्छी-अच्छी और उपयोगी हैं उनको बना रहने दो और नई बातों में जो उपयोगी और लाभदायक हैं उनका ग्रहण कर लो। जीवन की पवित्रता, सदाचार और धर्मपरायणता जैसी प्राचीन ऋषिमुनियों में थी उसे न छोड़ो। परन्तु आजकल की शिक्षा-प्रणाली, रहन-सहन का तरीका, उन्नति, विज्ञान और कलाकौशल छोड़ने से काम नहीं चल सकता। अपने निज के कामों तथा धार्मिक बातों में महाराज अपनी प्राचीन परिपाटी के अनुसार चलते हैं। परन्तु जिन बातों पर जाति की उन्नति और अस्तित्व अवलम्बित है उनके ग्रहण और प्रचार में अमरीका और यूरप का अनुकरण करते हैं। स्त्री-शिक्षा के लिए स्थान-स्थान पर पाठशालाएँ बनाई गई हैं, मकानों का ढंग बदलने की चेष्टा हो रही है, पोशाक का तरीका बदल रहा है।

महाराज बड़े प्रजावत्सल हैं। यह बात उनकी दिनचर्या से मालूम होती है। आप प्रातःकाल ५ बजे उठते हैं और अपने निज के दफ्तर में चले जाते हैं। वहाँ प्रत्येक राज्यकार्य इनके सामने होता है। सब अरजियाँ और कागजात पढ़े जाते हैं और कैसा ही निर्धन पुरुष हो उसकी भी बात ध्यान से सुनी जाती है। वहाँ पाँच से नौ बजे तक और फिर दस से दोपहर के दो बजे तक, आप काम करते हैं। रविवार को आराम करते हैं। रूस-जापान युद्ध के समय जब काम बहुत बढ़ गया था तब आप रविवार को भी काम करते थे। अपने सिपाहियों और जनरलों की आवश्यकता का पूरा ध्यान रखते थे। जब काम से फुरसत मिलती थी तब कमसरियट और मेगजीन वगैरह देखते थे। हर तरह से अपने सिपाहियों को उत्साहित करते थे। अपने महल का खर्च कम करके, युद्ध में सिपाहियों को सामान भेजते थे। बूढ़े आदमी, औरतें, बच्चे जो जापान में रह गये थे उनका भी पूरा ध्यान था। अपने सिपाहियों के दुःख से ये इतने दुःखी थे कि आपने चीनी ढंग पर विषयक एक कविता बनाई थी। उससे उनकी भूति और करुणा टपकती है। ऐसा मालूम हो मानों पिता अपनी सन्तान के दुःख को देखकर रहा है।

१९०४ और १९०५ के भयानक जाड़े में, जब राजा युद्धक्षेत्र के समाचारों से, जो उनको तार पहुँचते थे, सन्तुष्ट न हुए और ठीक-ठीक वृतान्त चाहा, तब आपने अपने महामंत्री को, युद्धक्षेत्र में और उसे ताकीद की कि वह प्रत्येक डेरे में जाकर हियों की दशा जाने और ठीक-ठीक हाल लिखे। कौन्ट हिजीकोटा रणभूमि से लौटे और शीत से जो सिपाहियों को हुआ था उसका ब्योरा कहा तब की आँखों में आँसू आ गये। परन्तु लाचारी उन्होंने हुक्म दिया कि महल में शीत दूर करने के आज से उष्णता का प्रबंध न किया जाय और कहा जब मेरी सन्तान शीत से दुःख उठा रही है, मेरा आराम से रहना नहीं है। चुनांचे युद्ध के अन्त महल में उष्णता का प्रबन्ध नहीं किया गया।

भला ऐसे प्रजापालक महाराज को जापानी पिता या ईश्वर समझें तो क्या आश्चर्य है। इसी जापानी सिपाही अपने महाराज के लिए मरने को रहते हैं। यह पितापुत्रवत् संबंध है जिसके जापानी नर-नारी अपने महाराज के लिए प्राण दे कोई चीज ही नहीं समझते।

पाठक! इस छोटे से लेख में उन सब गुणों वर्णन नहीं हो सकता जिनके कारण महाराज की कीर्ति चारों ओर छा रही है। महाराज के की कथा जापानी जाति के जीवन की कथा कामोडोर पेरी के जापान जाने पर अमरीका की मेण्ट से जापान का सम्बन्ध हुआ था। तब से किस शीघ्रता से, किस बुद्धिमत्ता से, जापान ने निर्बलताओं को दूर करने की चेष्टा की। किस से वीर जापानी युवक मातृभूमि की रक्षा के लिए देशों में कला-कौशल सीखने के लिए पहुँचे। प्रकार महाराज ने पचास ही वर्ष में जापानी जाति योरप के मुकाबले के लिए खड़ा कर दिया। यदि ऐसा न करता तो आज जापान को ही नहीं चीन भी योरप और अमरीका का दासत्व स्वीकार पड़ता।

इस अल्प चरित से बड़ी-बड़ी शिक्षायें मिलती हैं आशा है पाठक उनसे जरूर लाभ उठायेंगे।

* * *

प्रकाशक बी० एन० माथुर इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियां हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की **संकीर्ण समझ**, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, **गहरा** स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचिपूर्ण विषय है। पुस्तक **पढ़ने** के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियां इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियां ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहां ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियां हैं जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १·७५ न० पै० मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १।) या १ रु० २५ नये पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

मझली महारानी

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १।।।) या १ रु० ७५ नये पैसे।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है। पृष्ठ १८०; मूल्य १ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है; नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टाल्सटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह--प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आर्कषित किया है । हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं । संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है । इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता ।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है । यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है । इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है । इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है । खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है । उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है । पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं । सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है । इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं । किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी । सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये ।

ंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आंखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मुल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २।।) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १।।) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे ।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे ।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे ।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं । इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आतमनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे ।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है । विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है । पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

रामचरितमानस
(मूल)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

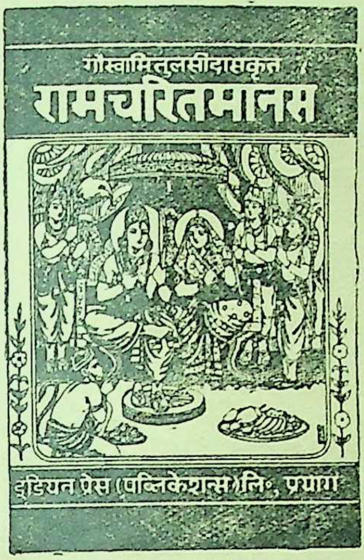
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

सचित्र
रामचरितमानस

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा म कथा। मूल्य १) रुपया।

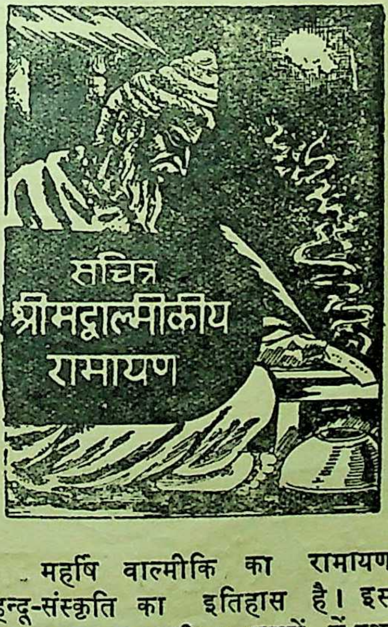
सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न० पै० प्रति भाग है।

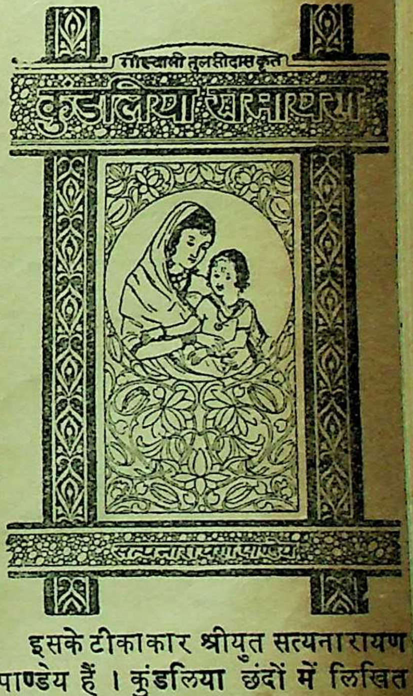
गोस्वामी तुलसीदासकृत
कुंडलिया रामायण
सत्यनारायण पाण्डेय

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

Yearly Subscription : R[illegible] Seven [illegible] Fifty Naye Paise [illegible]
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

25 JUL 1963

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

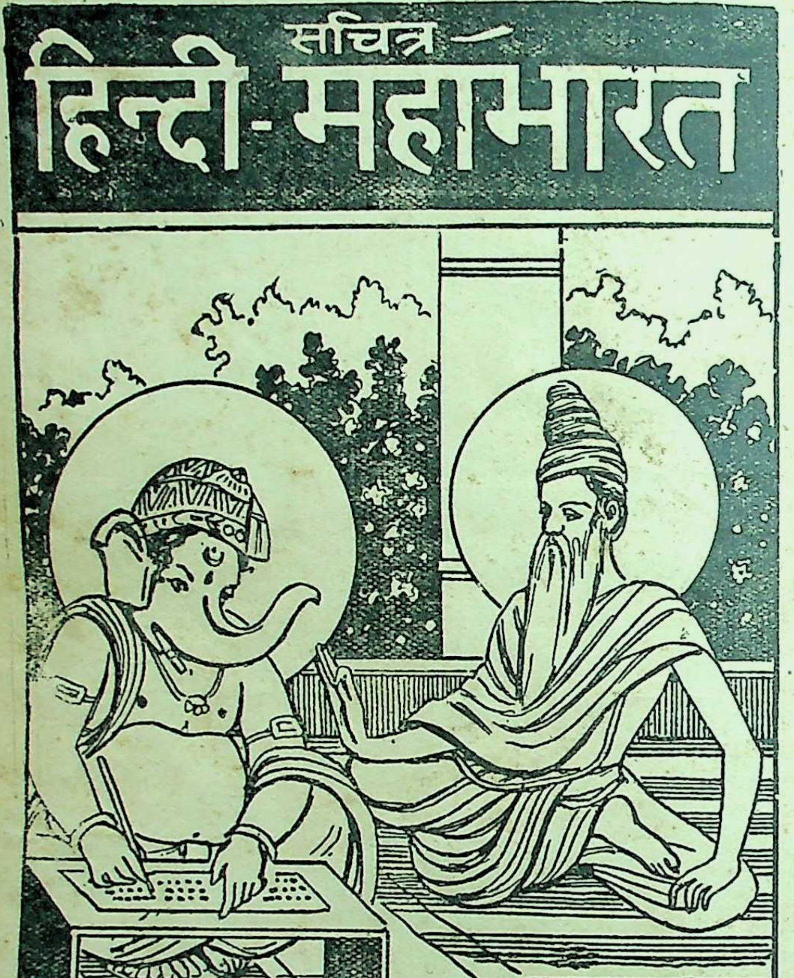

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १ से ८वें खण्ड तक प्रत्येक खण्ड का मूल्य १०) रु०। ९वें खण्ड का ५·५० नये पैसे। दसवें खण्ड की सहायता से पढ़नेवाला पुस्तक में तुरन्त अपने मन के स्थल को ढूँढ़ लेता है। इस खण्ड का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

भारतीय संस्कृति का प्रकाशस्तंभ

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, प्रयाग

सरस्वती

अगस्त

१९६३

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

दृढ़प्रतिज्ञ
२·२५ न॰पै॰

समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्ने
१·७५ न॰पै॰

गुलीवर की यात्रायें
२·२५ न॰पै॰

चन्द्रलोक की यात्रा
१·७५ न॰पै॰

भूगर्भ की यात्रा
मूल्य १·७५ न॰पै॰

उड़ते स्रातीय
२ रुपये

चन्द्रलोक की परिक्रमा
१·७५ न॰पै॰

गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियनप्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद

द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि॰, प्रयाग
२·२५ न॰पै॰

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उ
न्यासों के अनुवाद डॉ॰ नवलबिहारी मिश्र के [illegible] किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि कि
तथ वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के हास, उज्जयिनी के मुख्य नरपतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के वृत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद प से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज र सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी ार, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है, नका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अन्त छ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है। अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये पैसे।

विज्ञापनदाताओं से निवेदन

सरस्वती मासिक पत्रिका अपनी जन्मतिथि जनवरी १९०० से लगातार हिन्दी-जगत् की सेवा कर रही है। इसकी षष्टिपूर्ति जयन्ती के अवसर पर जो साहित्यिक समारोह किया गया वह सर्वविदित है। इस युग में जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुद्रण सामग्री प्राप्त न होने या अन्य कठिनाइयों के कारण या तो बन्द हो गया है या प्रकाशकों ने विज्ञापन-दर में वृद्धि कर दी है वहाँ सरस्वती ने अपनी विज्ञापन-दर सन् १९५८ तक पुरानी ही रखी है।

महँगाई के कारण हमने विवश होकर जनवरी १९५९ तथा जनवरी १९६१ में विज्ञापन-दर में थोड़ी वृद्धि की थी किन्तु इस वृद्धि से भी हम छपाई सम्बन्धी वस्तुओं के बढ़ते हुए दामों का मुकाबला न कर सके। अस्तु, हमें अब विवश होकर जुलाई १९६३ से निम्नलिखित अनुसार विज्ञापन दर में वृद्धि करने की आवश्यकता पड़ रही है। आशा है, कृपालु विज्ञापनदाता इस बढ़ी हुई दर को स्वीकार कर सरस्वती को सदैव की भाँति अपनावेंगे और हमें अपना सहयोग देंगे। इसके लिए विशेष आभारी होंगे।

विज्ञापन-दर

साधारण प्रति पृष्ठ	१००) रु०	साधारण आधा पृष्ठ	५५) रु०
साधारण ¼ पृष्ठ	३०) रु०	साधारण ⅛ पृष्ठ	१५) रु०
कवर चौथा पृष्ठ	२५०) रु०	कवर दूसरा व तीसरा पृष्ठ	१५०) रु०

व्यवस्थापक विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

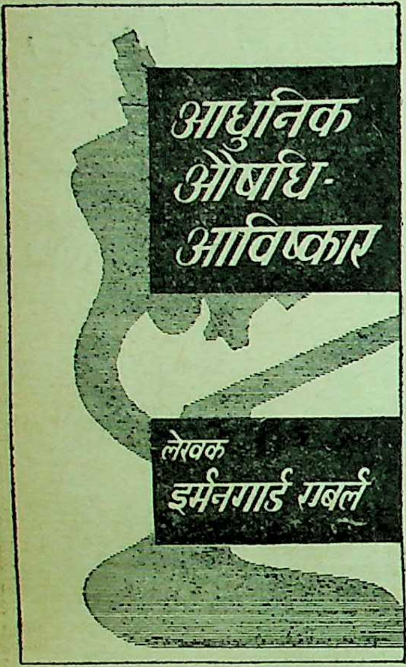
आधुनिक औषधि-आविष्कार
लेखक
इर्मनगार्ड ग़बर्ले

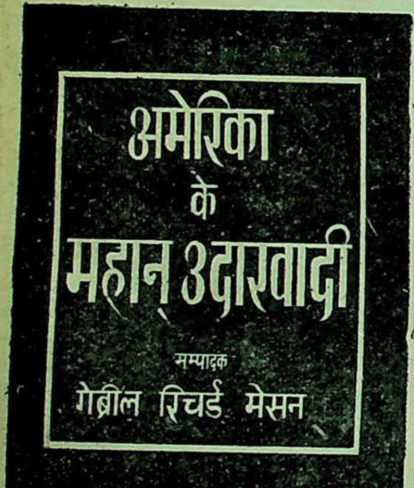
अमेरिका के महान् उदारवादी
सम्पादक
गेब्रील रिचर्ड मेसन

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू

प्रधान मंत्री, भारत

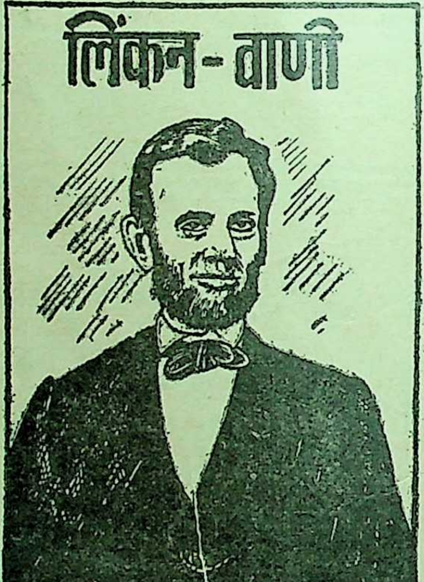

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन

मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदा
और उन्नयन करनेवाले मनुष्य
कुत्ते की सच्ची कहानी। सजि
सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पै

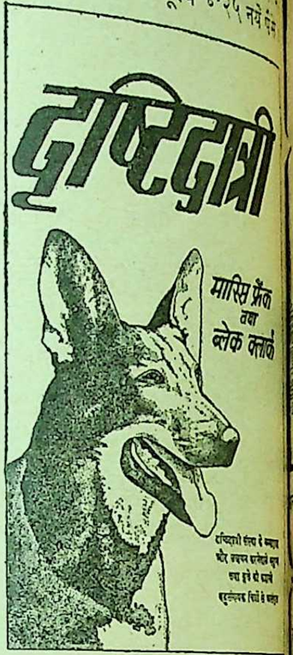
दृष्टिदात्री
मारिस फ्रैंक तथा ब्लेक क्लार्क

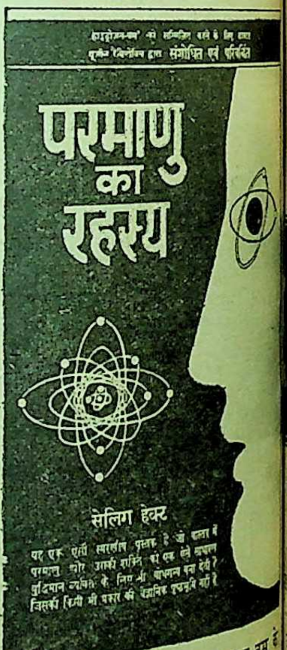
संशोधित एवं परिवर्धित
परमाणु का रहस्य
सेलिग हेक्ट

परमाणु बम और उद्जन बम के
रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यू
की युक्तियों के विकास का पूर्ण सार
इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का
मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

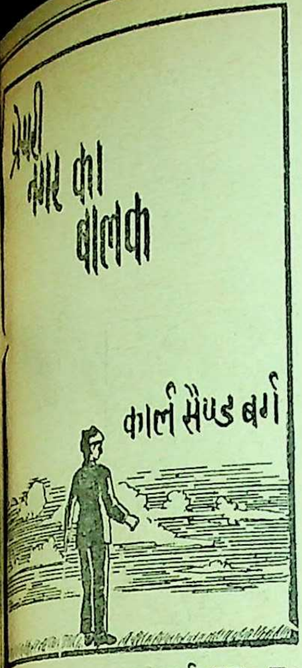
प्रेयरी नगर का बालक
कार्ल सैण्डबर्ग

—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०

मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे

सिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग

काल का हृदयग्राही वर्णन ।

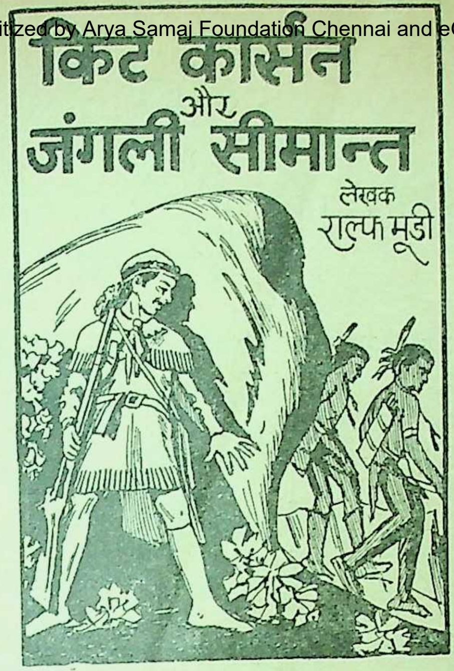
किट कार्सन
और
जंगली सीमान्त
लेखक
राल्फ मूडी

अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०

मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन ।

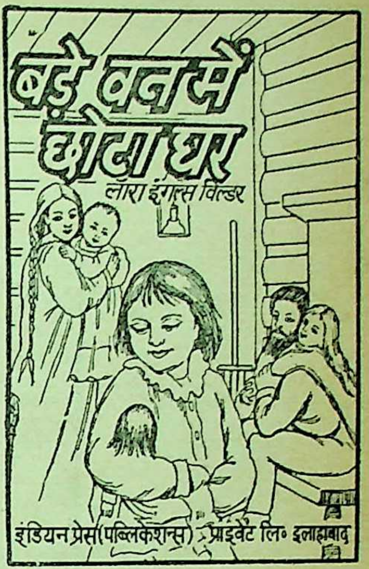
बड़े वन में छोटा घर
लॉरा इंगल्स विल्डर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०

मूल्य २ रु० ५० नये पैसे

लेखिका के बाल्यजीवन की सुन्दर कहानी में उस समय के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन ।

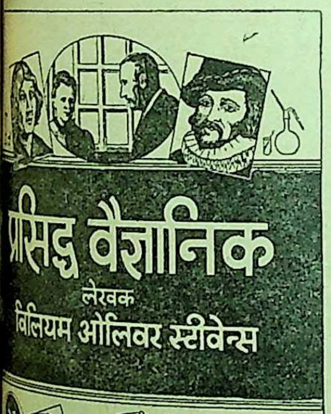
प्रसिद्ध वैज्ञानिक
लेखक
विलियम ओलिवर स्टीवेन्स

—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०

मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित ।

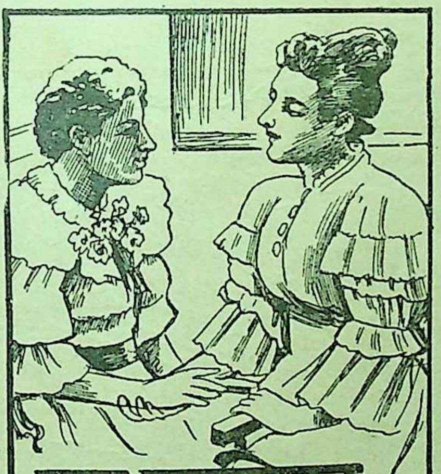
अध्यापिका
ऐन सलिवाँ मेसी

अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०

मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी ।

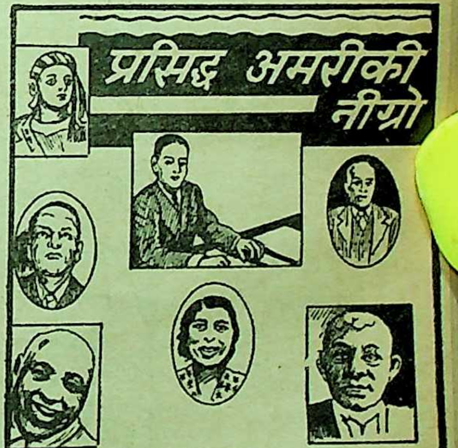
प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो
लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़

अनु०—रामऔतार अग्रवाल

मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

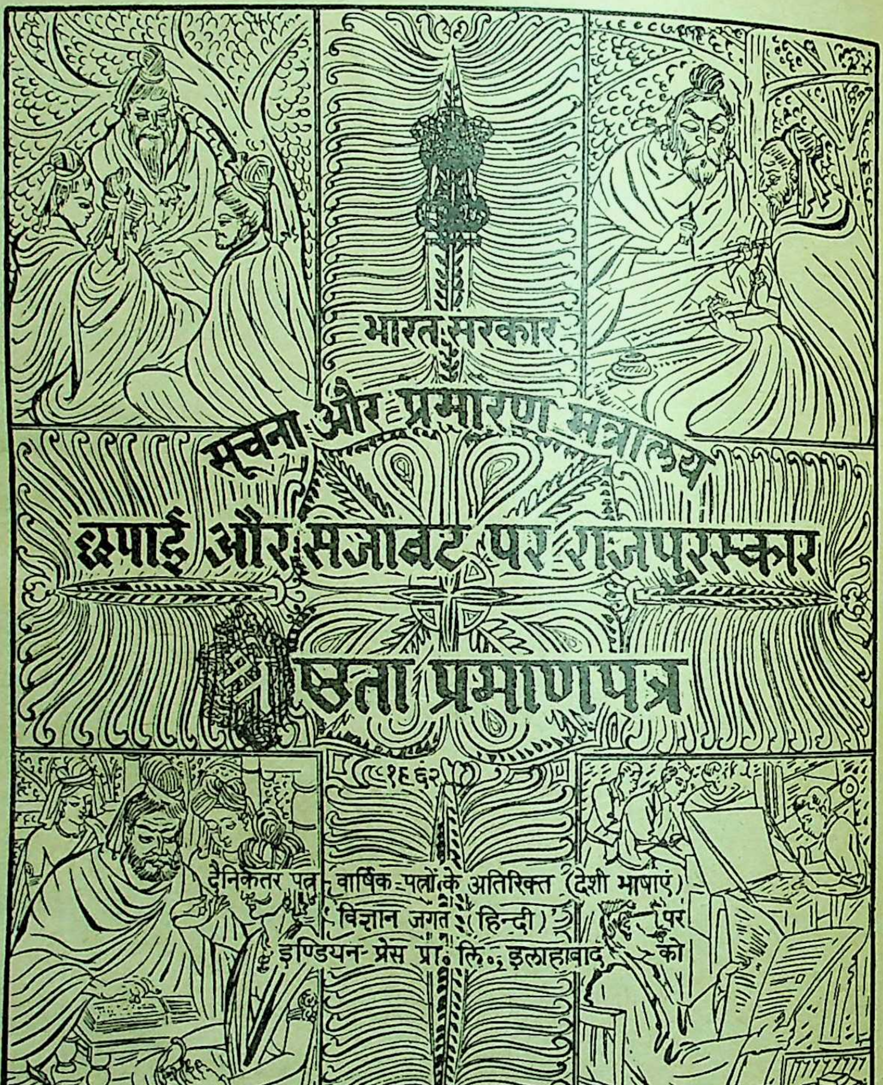

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

स्ता प्रमाणपत्र

(१९६२)

दैनिकेतर पत्र-वार्षिक पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)

'विज्ञान जगत' (हिन्दी) पर

इण्डियन प्रेस प्रा॰ लि॰, इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे।
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

द्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध
परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व
दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर
के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया
लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया,
व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण
को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का
किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ
है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये
पत्र मुफ्त मंगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

सरकार से रजिस्टर्ड
फेद दाग की दवा मूल्य ६)
विवरण
मुफ्त मंगावें

क्ज़िमा (उकवत, खर्जूआ, विचर्चिका)
व्याधि पर यह परीक्षित दवा है।
मू० ५) रु० डाक खर्च १।) रु०

मा श्वास गुणकारी औषधि कीमत ५) रु०
डाक खर्च १॥) रु०

के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

नवीनतम प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग—स्वामी सारदानन्दकृत

(भगवान श्रीरामकृष्णदेव की उन्हीं के अन्तरंग शिष्य द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत एवं सम्पूर्ण जीवनी का हिन्दी अनुवाद। पुस्तक तीन खण्डों में पूर्ण होगी।)

प्रथम खण्ड—आकर्षक जैकेट एवं १३ चित्रों सहित; पृष्ठ डबल डिमाई ४७६; कीमत ८ रुपये। (द्वितीय एवं तृतीय खण्ड शीघ्र प्रकाशित होंगे।)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
स्वाधीन भारत! जय हो! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·६०
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५

कर्मयोग ..	१·७५	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·५०
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	शिकागो वक्तृता	०·६५
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५
शिक्षा ..	०·८५	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·६०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·६०	मन की शक्तियाँ	०·४०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए:

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर—१

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानी तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्र भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·४९ नये

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक—मूल्य दो रुपये

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता भी धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ को एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध- के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-बिन्दुओं स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहि सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम [illegible] भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

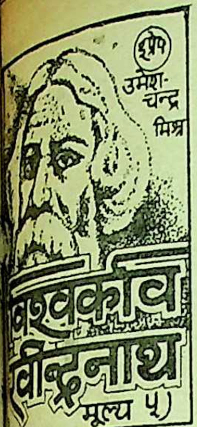
उमेश-चन्द्र मिश्र
श्वकवि
वीन्द्रनाथ
मूल्य ५)

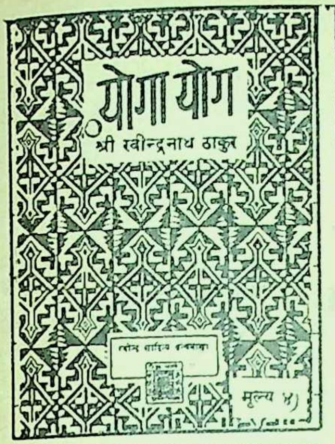
योगा योग
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य ४)

मेरा बचपन
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य २)

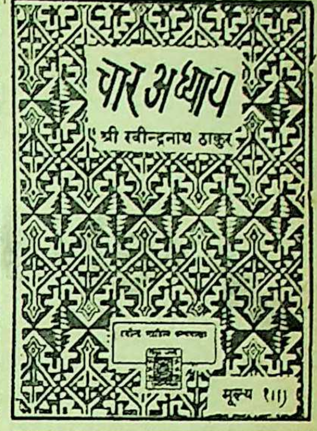
चार अध्याय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १॥)

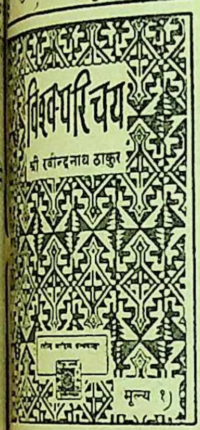
विश्वपरिचय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १)

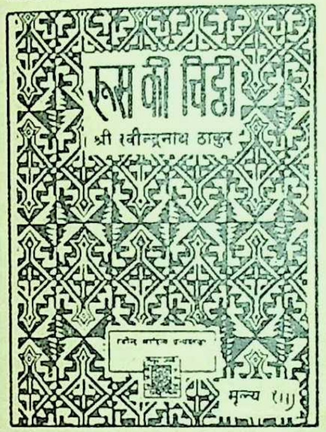
रूस की चिट्ठी
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १॥)

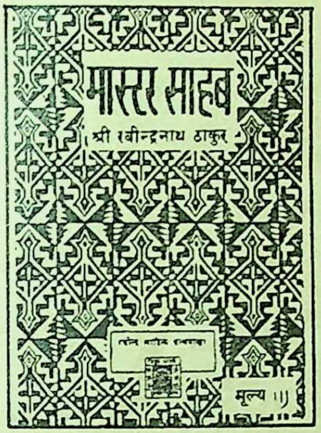
मास्टर साहब
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १।)

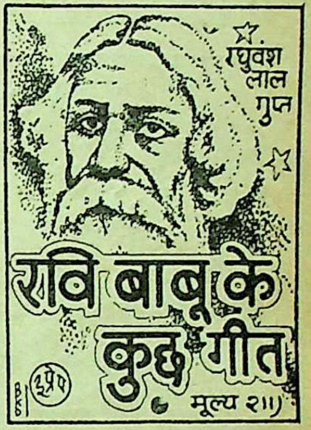
रघुवंश लाल गुप्त
रवि बाबू के कुछ गीत
मूल्य २॥)

विषवृक्ष
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कृष्णकान्त का विल
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला

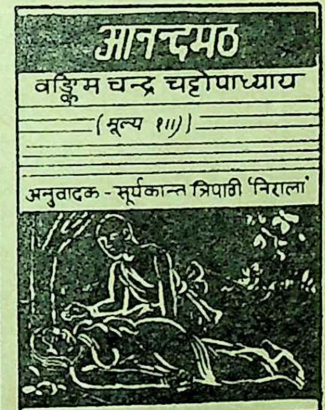
आनन्दमठ
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १॥)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कपाल-कुण्डला
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)

प्रभात मुखोपाध्याय
मूल्य ४॥)

महाराष्ट्र-जीवन प्रभात

माधवी-कंकण
२॥)
रमेशचन्द्र दत्त

राजपूत-जीवन-सन्ध्या
रमेशचन्द्र दत्त
मूल्य २)

कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास

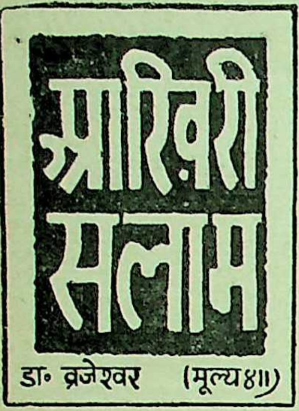
आख़िरी सलाम
डा॰ व्रजेश्वर
(मूल्य ४॥)

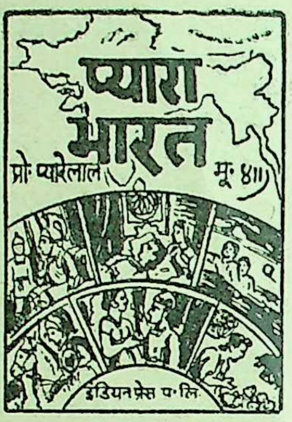
प्यारा भारत
प्रो॰ प्यारेलाल
मू॰ ४॥
इंडियन प्रेस प॰ लि॰

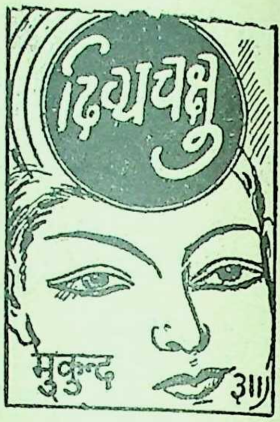
दिव्यचक्षु
मुकुन्द
३॥)

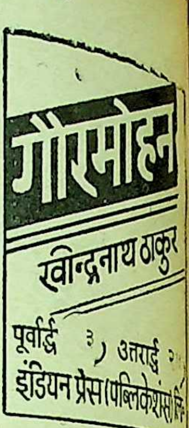
गौरमोहन
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
पूर्वार्द्ध ३) उत्तरार्द्ध
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) लि॰

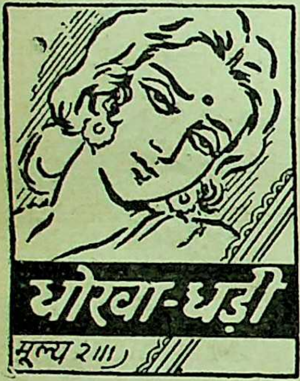

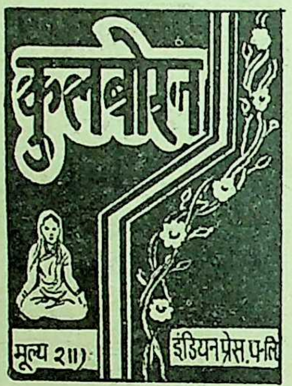
कुलबोरन
मूल्य २॥)
इंडियन प्रेस प॰ लि॰

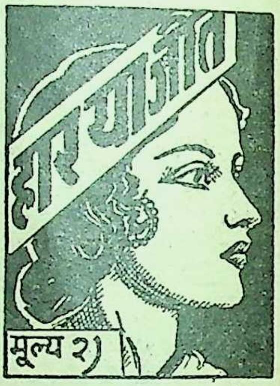

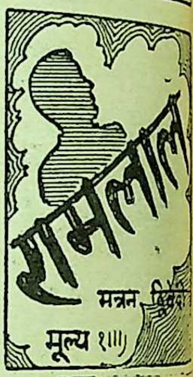
रामलाल
मन्नन द्विवेदी
मूल्य १॥)

नाटक प्रहसन

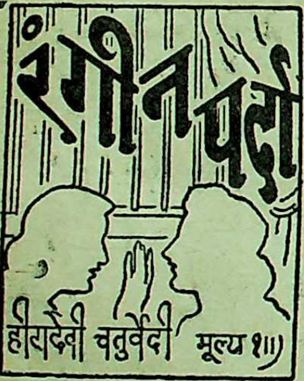
रंगीन पर्दा
हीरादेवी चतुर्वेदी
मूल्य १॥)

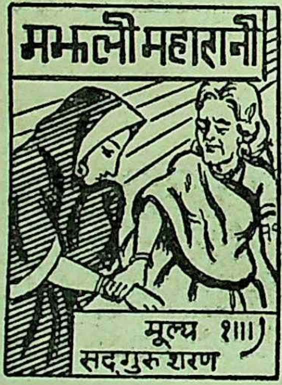
मझली महारानी
मूल्य १॥)
सदगुरु शरण

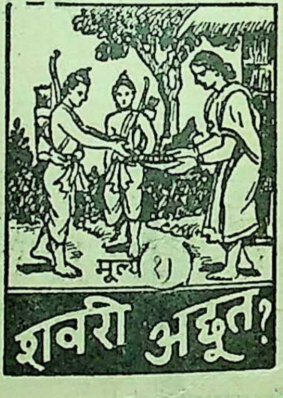
मूल्य १)
शबरी अछूत?

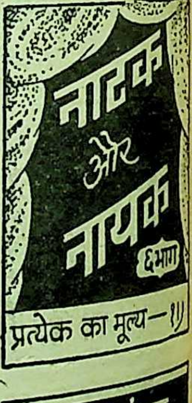
नाटक और नायक
६ भाग
प्रत्येक का मूल्य—१)

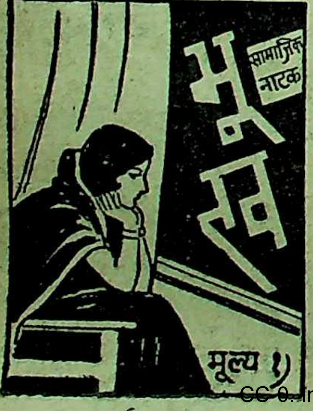
भूल
सामाजिक नाटक
मूल्य १)

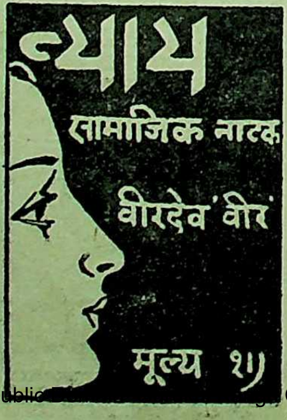
न्याय
सामाजिक नाटक
वीरदेव वीर
मूल्य १)

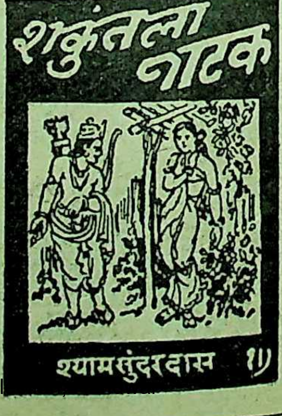
शकुंतला नाटक
श्यामसुंदरदास १)

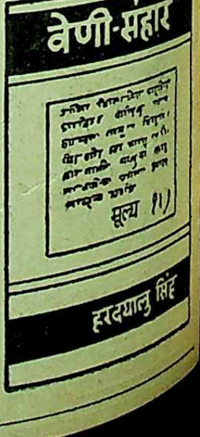
वेणी-संहार
मूल्य १)
हरदयालु सिंह

य ठाकुर
उतराई
मूल्य—१)
संहार
यालु सिंह

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

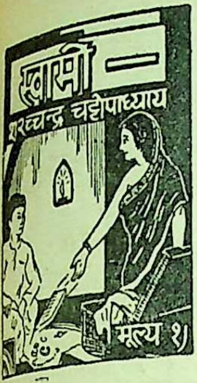
स्वामी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १)

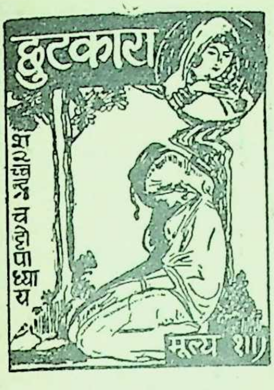
छुटकारा
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)

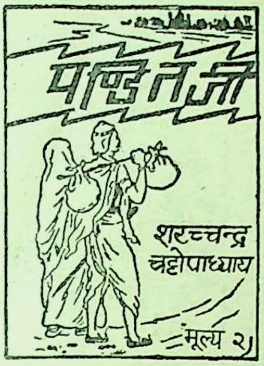
पण्डित जी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

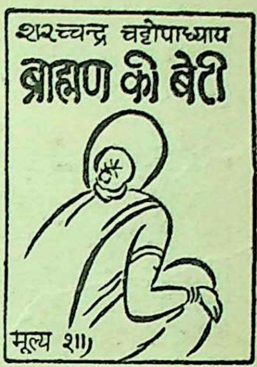
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
ब्राह्मण की बेटी
मूल्य २॥)

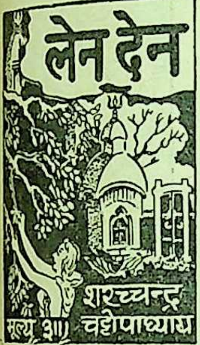
लेन देन
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ३॥)

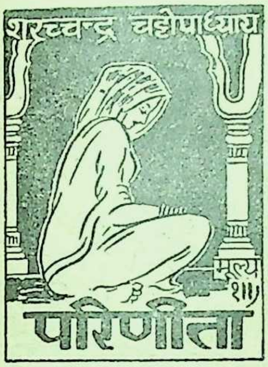
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)
परिणीता

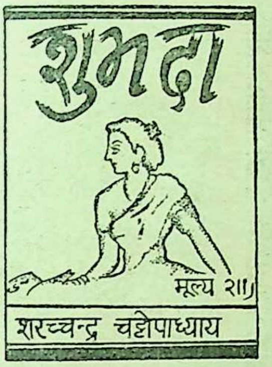
शुभदा
मूल्य २॥)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

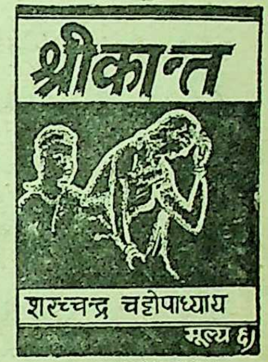
श्रीकान्त
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ६)

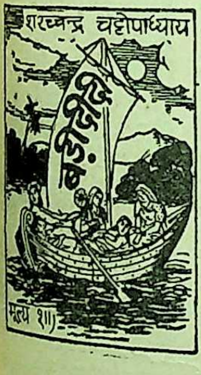
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
बड़ी दीदी
मूल्य १॥)

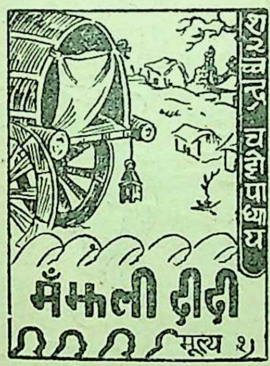
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मँझली दीदी
मूल्य २)

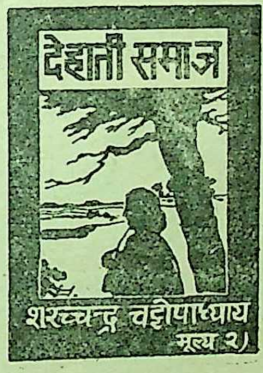
देहाती समाज
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

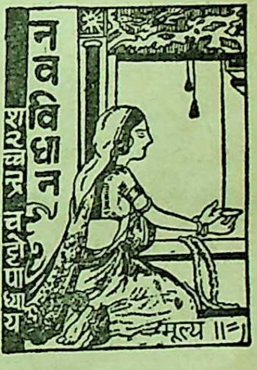
नवविधान
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ॥=)

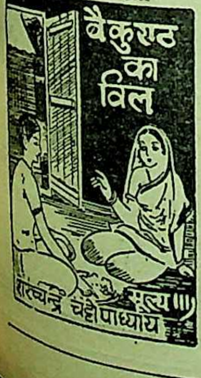
वैकुण्ठ का विल
मूल्य ॥)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

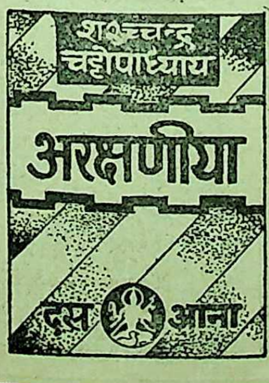
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
अरक्षणीया
दस आना

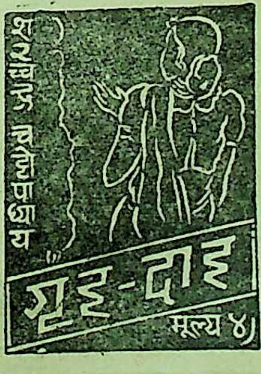
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
गृह-दाह
मूल्य ४)

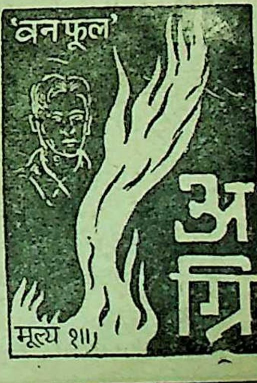
'वनफूल'
अग्नि
मूल्य १॥)

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

नवीन काव्य-कृतियाँ

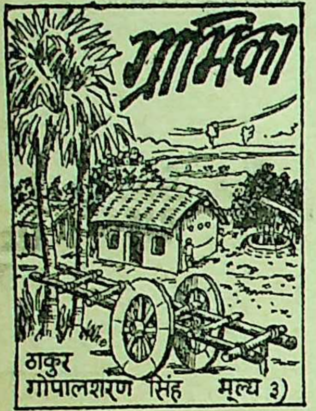
ग्रामिका
ठाकुर
गोपालशरण सिंह
मूल्य ३)

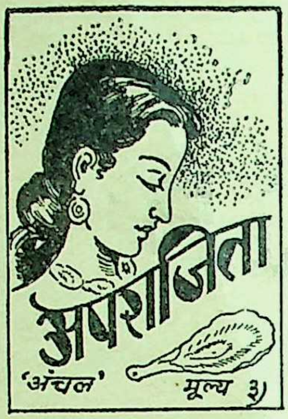
अपराजिता
'अंचल'
मूल्य ३)

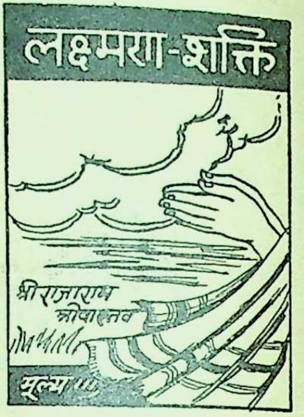
लक्ष्मण-शक्ति
श्री राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य ।।)

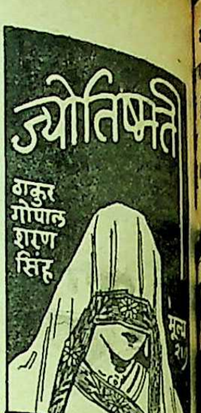
ज्योतिष्मती
ठाकुर
गोपाल
शरण
सिंह
मूल्य

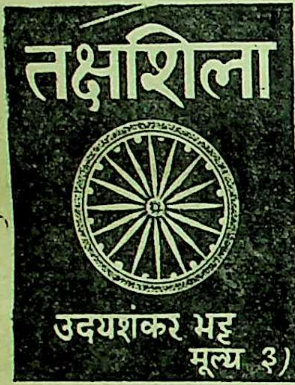
तक्षशिला
उदयशंकर भट्ट
मूल्य ३)

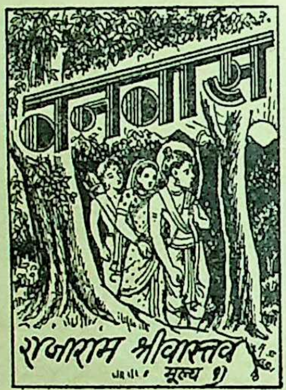
वनवास
राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य १)

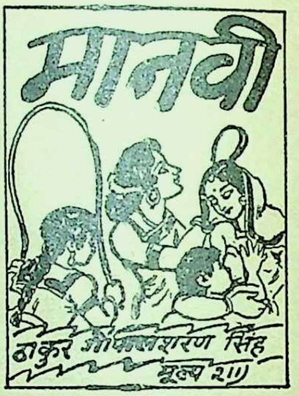
मानवी
ठाकुर गोपालशरण सिंह
मूल्य २।)

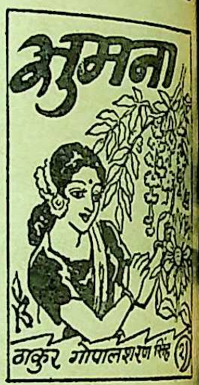
सुमना
ठाकुर गोपालशरण सिंह
२)

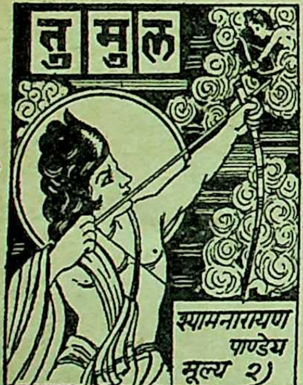
तुमुल
श्यामनारायण
पाण्डेय
मूल्य २)

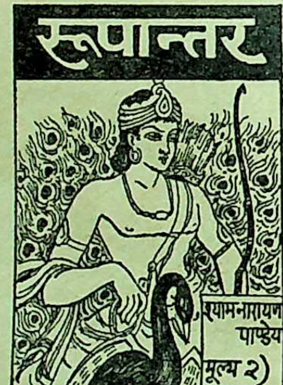
रूपान्तर
श्यामनारायण
पाण्डेय
मूल्य २)

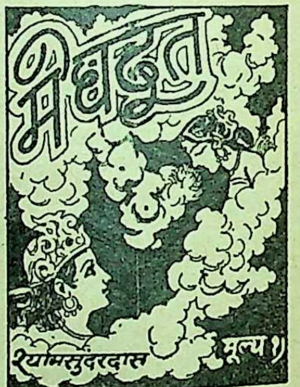
मेघदूत
श्यामसुंदरदास
मूल्य १)

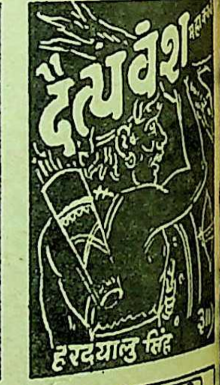
दैत्यवंश
महाकाव्य
हरदयालु सिंह
३)

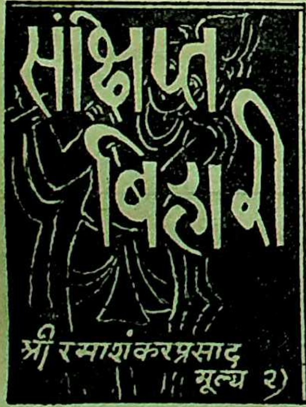
संक्षिप्त
बिहारी
श्री रमाशंकरप्रसाद
मूल्य २)

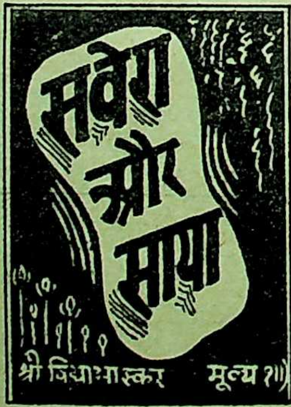
सवेरा
और
माया
श्री विद्याभास्कर
मूल्य २।।)

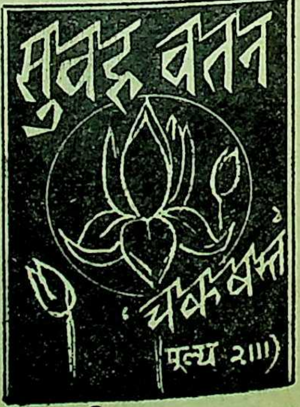
सुबह वतन
चकबस्त
मूल्य २।।)

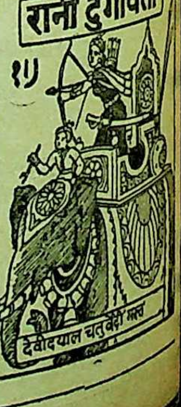
रानी दुर्गावती
१)
देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर छापा गया है। कथा भाग में देवताओं और ऋषि-मुनियों का परिचय अन्त में संक्षेप सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

चरितमानस
(मूल)
डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि॰, प्रयाग

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

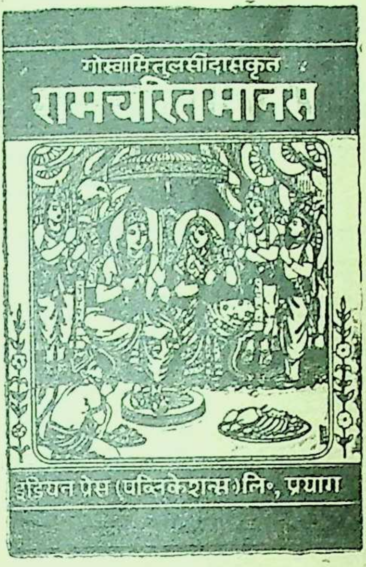
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि॰, प्रयाग

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

सचित्र
रामचरितमानस

यन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि॰, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन विस्तार से है। रामवनगमन, प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं रचना तो अनुपम है ही। २·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने रामायण के सातों काण्डों की भाषा में कथा। मूल्य १)

सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न॰ पै॰ प्रति भाग है।

गोस्वामी तुलसीदासकृत
कुंडलिया रामायण
सत्यनारायण पाण्डेय

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

राय साहब श्री राधा मोहन लाल बी० ए० रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०

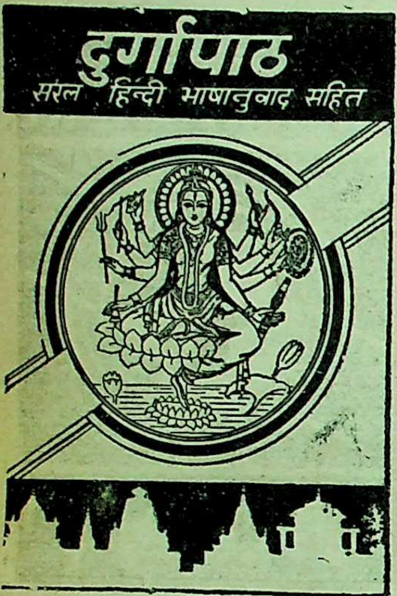
दुर्गापाठ
सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। समें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

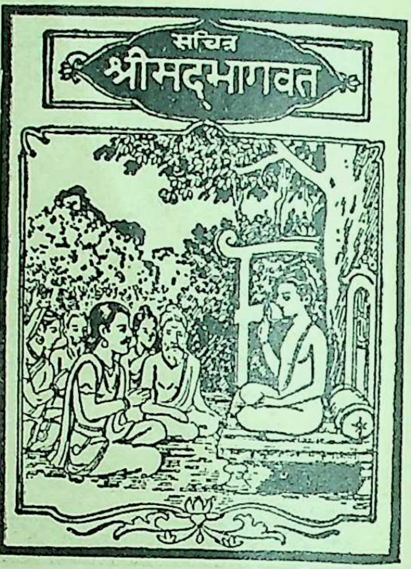
सचित्र
श्रीमद्भागवत

ज्ञानेश्वर महाराज ने
के गीता पर जो टीका लि
यह हिन्दी अनुवाद है।
मूल संस्कृत श्लोक, सा
टीका है। सजिल्द प्रति का

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक

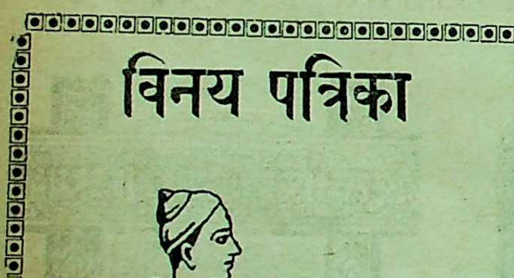

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।

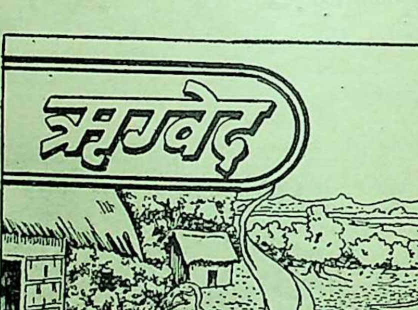

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५० । सजिल्द प्रति का मूल्य १२)

सचित्र महाभार
महावीरप्रसाद द्विवेदी

इसमें महाभारत के
पर्वों की कथा बहुत ही
में लिखी गई है। इसके लेख
महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं।
और सजिल्द ग्रन्थ का

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान वृद्धि के युग में भी जब तक का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से दित होता रहेगा, जब तक उसे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल हेंगे तब तक समाज में कविता दर का स्थान प्राप्त रहेगा।" कवि ने अपनी इस नवीन काव्य- में मानव की कोमलतम तियों, मधुतम स्पन्दनों तथा गी भावों की अभिव्यक्ति मय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ हृदयग्राही भाषा में की है। इन ओं के पाठ से जीवन की शाश्वत ता तथा अनन्त माधुर्य की गूँज में उठती रहती है। कवि ने अन्तस मुद्र का मंथन कर कविताओं के में मणिरत्नों का साहित्यसेवियों म्मुख प्रस्तुत किया है। कवि दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर प्रस्तुत करने के लिए बधाई का है। मूल्य २·५० नये पसे।

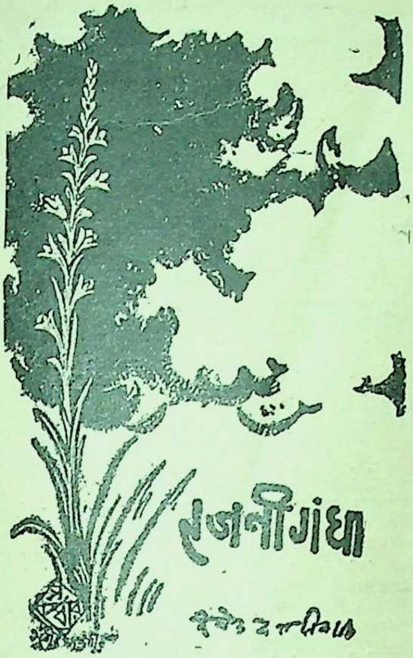

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

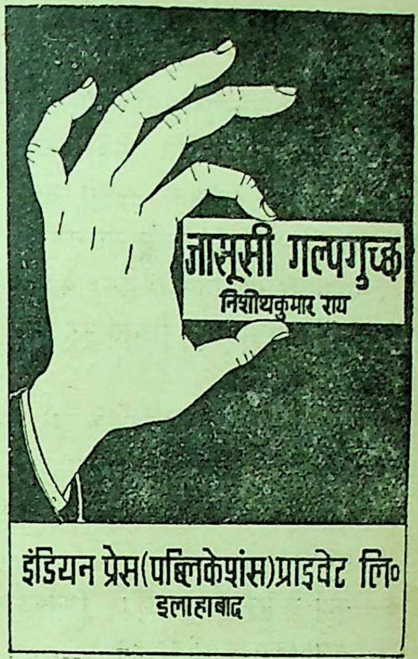

प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योदभाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ११३
२—गोस्वामी तुलसीदास की भाषा और शब्द—डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट० .. १२१
३—पावस गीत (कविता)—श्री 'अनन्त' चौरसिया १२५
४—हिन्दी भाषा की शिक्षा की समस्या—डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट० १२६
५—हिन्दी की वर्तमान स्थिति पर डा० सुधांशु के विचार १२९
६—'दम्पति वाक्य विलास' के दो प्रकाशित संस्करण—श्री अगरचन्द नाहटा .. १३१
७—कवियों का प्रिय—'चक्रवाक'—श्री चक्रधर नलिन १३३
८—यहाँ से दूर जा बरसो! (कविता)—श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव १३४
९—पेटेंट औषधियाँ व नशाखोरी—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा १३५
१०—तुञ्चत्तु रामानुजनेषुत्तच्छन्—केरल के तुलसीदास—कुमारी राधा अम्मल .. १३८
११—पठानों के अन्तहीन जत्थे—श्री हरिमोहन शर्मा १४०
१२—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (३) श्री फेनी मुकर्जी .. १४२
१३—राजभाषा विधेयक पर कविताएँ ..
१४—महाकवि सूर्यमल्ल और उनकी राष्ट्रीय भावना—श्री व्रजराज शर्मा, एम० ए०, बी० एड० .. ..
१५—हर्षकालीन कुण्डधानी विषय (जिला) और सोमकुंडिक ग्राम—श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी ..
१६—आकाश की नर्तकी—बिजली—श्री सुरेशचन्द्र गौड़, एम० एस्-सी० ..
१७—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का निबंध-साहित्य—श्री आनन्दनारायण शर्मा, एम० ए० ..
१८—दरवाजे के शीशे—श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी ..
१९—आँगनों के बीच—एक सत्य कथा—श्रीमती श्रीविलास .. ..
घर-गृहस्थी—नन्हे नन्हे मुन्ने ..
२०—एक चाँदनी रात—श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय
२१—देखा-सुना—श्री मनमोहन गुप्त ..
२२—नवीन प्रकाशन .. ..
२३—भारती-कण्ठाभरण .. ..
२४—व्रज-माधुरी (२) ..
२५—मनोरंजक संस्मरण ..
२६—१९०७ की सरस्वती—पण्डित कुन्दनलाल—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ..

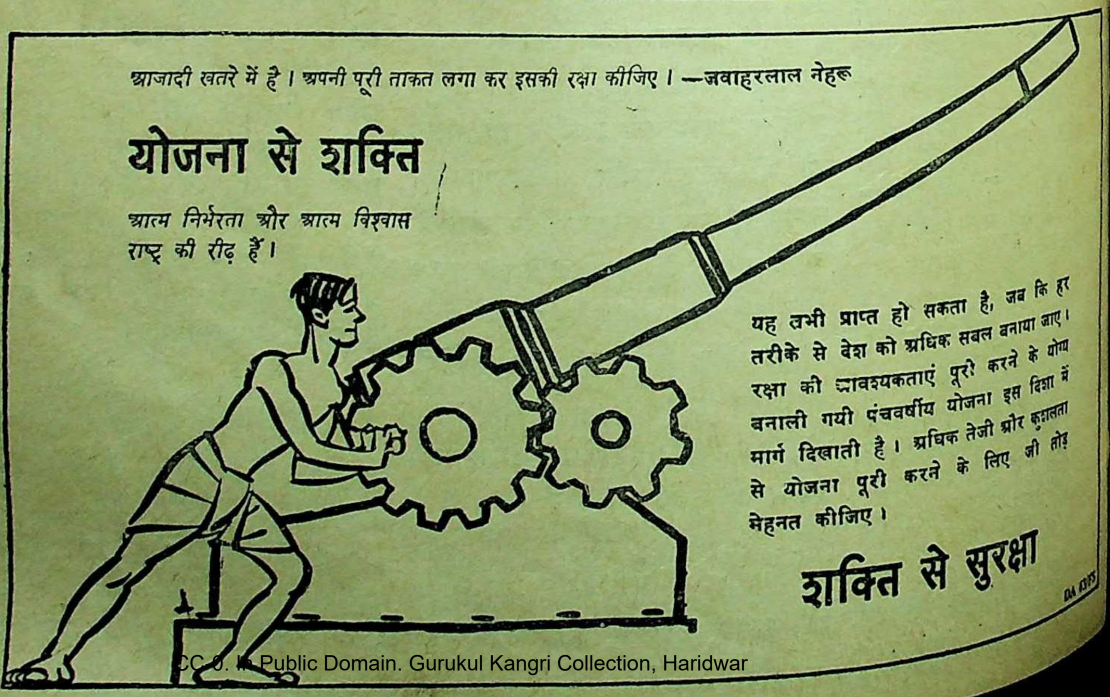

आजादी खतरे में है। अपनी पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए। —जवाहरलाल नेहरू

योजना से शक्ति

आत्म निर्भरता और आत्म विश्वास राष्ट्र की रीढ़ हैं।

यह तभी प्राप्त हो सकता है, जब कि हर तरीके से देश को अधिक सबल बनाया जाए। रक्षा की आवश्यकताएं पूरी करने के योग्य बनाली गयी पंचवर्षीय योजना इस दिशा में मार्ग दिखाती है। अधिक तेजी और कुशलता से योजना पूरी करने के लिए जी तोड़ मेहनत कीजिए।

शक्ति से सुरक्षा

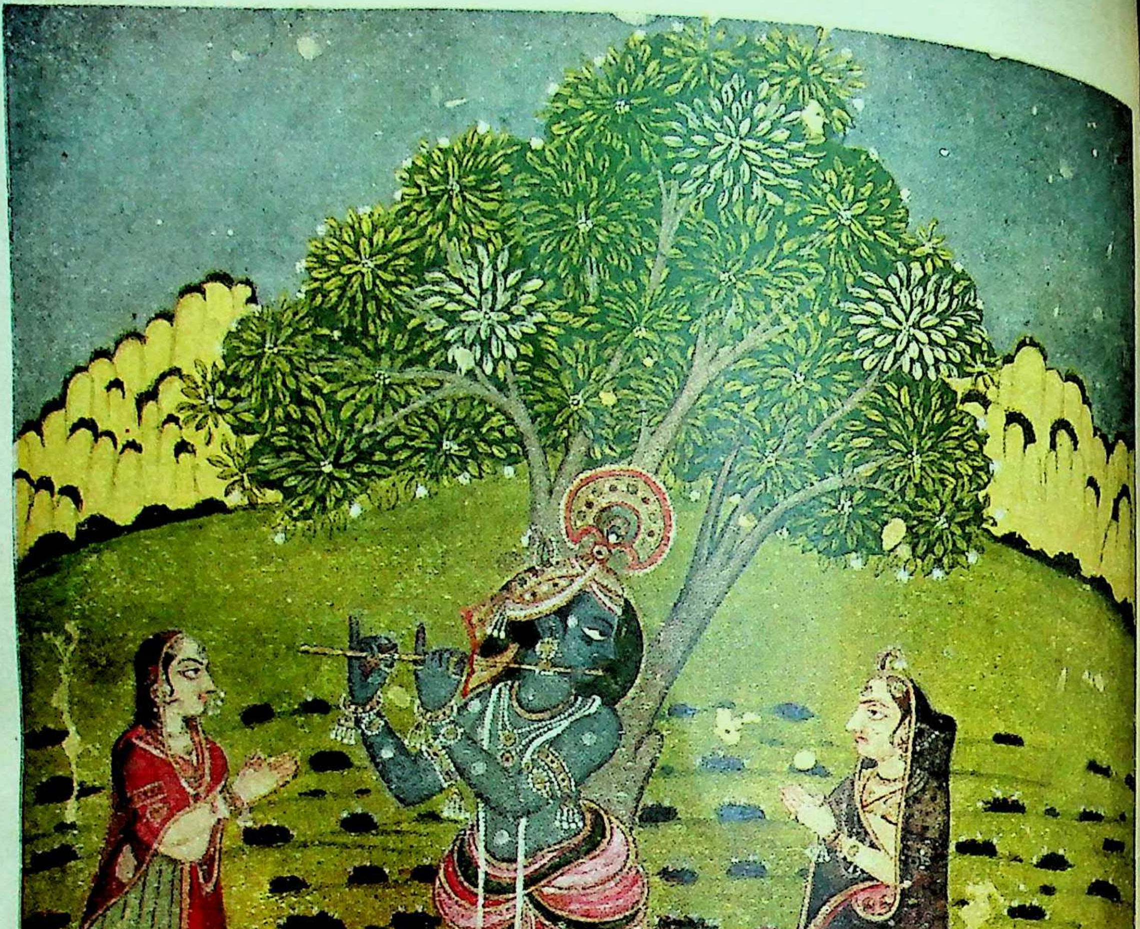

मुरलीधर

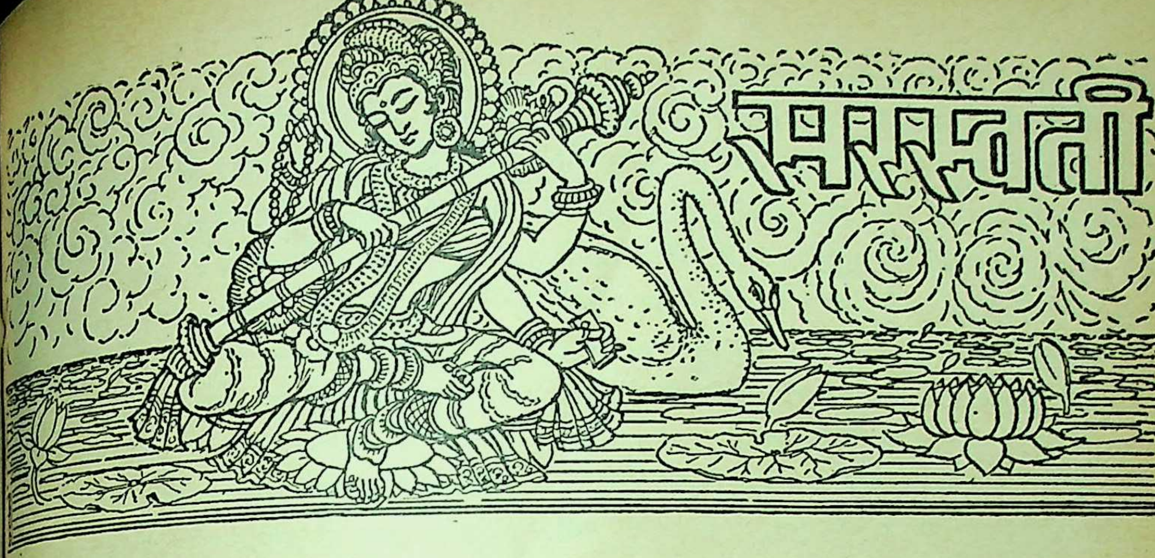

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
संख्या ७६४

इलाहाबाद : अगस्त १९६३ श्रावण २०२० वि०

खण्ड २
संख्या ८

सम्पादकीय

हिन्दी के प्रति स्टेट्समैन की असद्भावना——गत मास वाद के अंग्रेजी शिक्षण केन्द्र में बोलते हुए प्रधान मंत्री नेहरू ने अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की अहंमन्यता रिऑरिटी कम्प्लेक्स) की निंदा करते हुए कहा था न्होंने अपनी एक अलग 'जाति' ही बना ली है और पने को अंग्रेजी न जाननेवालों से अलग और श्रेष्ठ ते हैं। इस पर स्टेट्समैन ने अंग्रेजीदाँ लोगों की ालत की, और जो कुछ कहा उसका सारांश यह था श्री नेहरू की धारणा गलत है। किंतु वह अंग्रेजीदाँ ों की वकालत करके ही संतुष्ट नहीं हुआ। चलते-ाते उसने हिंदी पर भी एक दुलत्ती झाड़ दी। उसने जुलाई के सम्पादकीय के अंत में लिखा :

"If any language in India today has im-arted to a section of the people a superiorty omplex, that language is Hindi. It has also ucceeded in implanting into the non-Hindi-peaking a variety of fears in regard to their uture. In large parts of Northern India it is a considerable handicap not to read and speak Hindi, for not only are political speeches made almost exclusively in that language but such things as rood signs and car numbers are often also in Hindi. Rightly or wrongly those who do not know Hindi well frequently feel that by not learning this one out of India's fourteen languages they may be reduced to second class citizens for whom employment and other opportunities will steadily shrink. If linguistic chauvinism needs to be curbed, it is not only in the direction of English that one has to look.

"यदि आज भारत में किसी भाषा ने यहाँके लोगों के एक समुदाय में अहंमन्यता उत्पन्न की है तो वह भाषा है हिन्दी। वह अहिंदीभाषियों के हृदयों में भविष्य के लिए तरह-तरह के भय उत्पन्न करने में भी सफल हुई है। उत्तर भारत के अधिकांश भागों में हिंदी पढ़ और बोल न सकने से बड़ी अड़चन होती है, क्योंकि वहाँ केवल राजनीतिक भाषण ही हिंदी में नहीं होते, बल्कि बहुधा वहाँ सड़कों के चिह्न-पटों और मोटरों के नम्बर भी हिंदी में लिखे

होते हैं। सही या गलत, हिंदी न जाननेवाले यह अनुभव करते हैं कि भारत की चौदह भाषाओं में से एक इस भाषा को न जानने से हम द्वितीय श्रेणी के नागरिक रह जायेंगे जिनके लिए नौकरियों तथा अन्य रोजगारों में घुसने का अवसर दिनोंदिन कम होता जायगा। यदि भाषा सम्बन्धी प्रान्तीय कट्टरता पर अंकुश लगाना है, तो केवल अंग्रेजी ही की ओर देखने से काम न चलेगा।"

नेहरूजी ने डाँट बतलायी थी अंग्रेजीवालों को। नेहरूजी को उनके शत्रु भी "हिन्दीवाला" न बतलाएँगे। फिर स्टेट्समैन हिंदी पर क्यों बरस पड़ा? उसे हिंदी पर दुलत्ती झाड़ने की क्या आवश्यकता थी? इसका क्या अवसर था? 'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी।

अंग्रेजी के अधिकांश समाचारपत्र हिंदी के विरोधी हैं। कुछ तो अंग्रेजी में छपने के कारण, अंग्रेजी में उनके निहित स्वार्थ हैं, और कुछ यह बात भी है कि इन अंग्रेजी पत्रों के सम्पादकीय विभागों में उन प्रदेशों के लोगों की संख्या बहुत अधिक है जहाँ हिंदी का विरोध है। हिंदी प्रदेशों से भी जो अंग्रेजी पत्र निकलते हैं उनका भी बहुत कुछ यही हाल है, और इसी कारण ये समाचार-पत्र भी मजे से हिंदी का विरोध करते रहते हैं। यदि हिंदी प्रदेशों में भाषा सम्बन्धी प्रान्तीय कट्टरता (Linguistic chauvinism) होती तो इन हिंदी-विरोधी सम्पादकों को वहाँ रहना कठिन हो जाता। यदि इन अंग्रेजी पत्रों के अहिंदीभाषी सम्पादकों के प्रान्तों का कोई समाचार-पत्र अपने प्रान्त की भाषा का विरोध करे तो उसकी क्या दशा होगी, इसे वे जानते होंगे। यदि हिंदीवाले इतने सहिष्णु और उदार न होते तो उन्हींके पैसों से पलनेवाले सम्पादकों और लेखकों को हिंदी का विरोध करने का साहस न होता। हिंदी क्षेत्रों में कितनी भाषा सम्बन्धी प्रान्तीय कट्टरता (Linguistic chauvinism) है, इसके लिए इस समय इतना कहना ही पर्याप्त है।

स्टेट्समैन को इस बात की शिकायत है कि उत्तर भारत में सड़कों के चिह्न (जैसे मील, चौराहों पर लगे पट्टे, गाँवों के नामों के पट्ट आदि) और कहीं-कहीं मोटरों के नंबर भी हिंदी में लिखे हुए मिलते हैं, स्टेट्समैन भी शायद इस बात को मानने से इंकार न करेगा कि उत्तर भारत की क्षेत्रीय भाषा हिंदी है। हमारे असंख्य नागरिक केवल हिंदी जानते हैं। क्या उनकी सुविधा का ध्यान करके ये सब चीजें अंग्रेजी में लिखी जायँ? उत्तर प्रदे सरकार ने इन्हीं अंग्रेजीदाँ लोगों की सुविधा के लि मीलों के पत्थर क्रम से हिंदी और अंग्रेजी में लिखवाये हैं। क्या वे चाहते हैं कि गाँवों के नाम, गाँवों के रास्तों के पट्टे भी अंग्रेजी में लिखाये जायँ? हम समझते थे कि यह अंग्रेज-साम्राज्यवादी मानसिकता अंग्रेजी राज्य के साथ समाप्त हो गयी; किंतु यह हमारा भ्रम था। स्वर्गीय श्री एन० सी० मेहता आई० सी० एस० उत्त प्रदेश में कुछ दिनों शिक्षा-सचिव थे। हमें उनके अधी काम करने का गौरव प्राप्त था। एक बार हम उनके सा मोटर से यात्रा कर रहे थे। घोर देहातों में भी सू सूचना देनेवाले पट्टे अंग्रेजी में लिखे थे। दो-तीन घं की यात्रा करने के बाद वे सहसा हमसे बोले—" की मातृभाषा अंग्रेजी मालूम होती है; नहीं तो गाँवों में ये पट्टे अंग्रेजी में क्यों लिखे जाते?" उस युग के अंग्रेजों की मानसिकता ही ऐसी थी। वे सब काम अपनी सुविधा के लिए करते थे——प्रजा की सुविधा के लिए नहीं। एक समय था जब स्टेट्समैन उन्हीं शासक अंग्रेजों का प समझा जाता था। हिंदीवाले उसे 'ऐंग्लो इंडियन' पत्र कहते थे। कभी-कभी कोई हिंदी पत्रकार ऐसे पत्रों को (जैसे "इंग्लिशमैन", "स्टेट्समैन" आदि को) 'गोरा' या 'अधगोरा' पत्र कहते थे। अब पुराने अर्थ में उसके लि इस शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि अब उसके प्रायः सभी संचालक भारतीय हैं। किंतु अब एक नये ढंग के "ऐंग्लो-इण्डियन" उत्पन्न हो गये हैं जिनके दिमा 'ऐंग्लो' और शरीर 'इंडियन' हैं। हमारे अंग्रेजीपरस्त लोग उसी प्रकार के ऐंग्लो-इंडियन हैं। उन्हें हिंदीभाषी क्षेत्र में भी हिंदी का उपयोग खलता है। हिंदी क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग करना हिंदीवालों की भाषायी कट्टरता और संकुचित मानसिकता का द्योतक है, स्टेट्समैन की भाषा में वह शाविनिज्म (प्रान्तीय कट्टरता) है। किं क्या वह यह बतलाने का कष्ट करेगा कि हिंदी क्षेत्रों में भी हिंदी के उपयोग पर आपत्ति करने और वहाँ भी अंग्रे लादने के आग्रह करने को उनकी फरिश्तायी भाषा में क्या कहते हैं?

स्टेट्समैन ने अहिंदीभाषियों के इस कथित भय को भी व्यक्त किया है कि हिंदी न पढ़नेवाले द्वितीय श्रेणी के

नागरिक रह जायेंगे और उन्हें कम नौकरियाँ मिलेंगी। भारत के ४० प्रतिशत लोगों ने हिंदी को अपनी क्षेत्रीय भाषा स्वीकार किया है। वे अपना काम हिंदी में करना चाहते हैं, हिंदी पढ़ना चाहते हैं, हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। उन्होंने अंग्रेजी की ओर ध्यान देना बंद कर दिया है। उनके इस अपनी भाषा के प्रेम और शासकों द्वारा जबर्दस्ती लादी गयी भाषा के प्रति उदासीनता का उन्हें क्या परिणाम भोगना पड़ रहा है? स्टेट्समैन के कथनानुसार अहिंदीभाषियों को तो भविष्य में द्वितीय श्रेणी के नागरिक हो जाने और कम नौकरियाँ मिलने की आशंका है, किंतु हिंदीभाषी तो आज ही प्रायः उस अवस्था में जा पहुँचे हैं। दिल्ली के सरकारी कार्यालयों में लगी अफसरों की नाम-पट्टियों को एक बार पढ़ जाइए। सारी स्थिति सामने आ जायगी। क्या स्टेट्समैन बतलावेगा कि देश के ४० प्रतिशत (हिंदी) क्षेत्र के निवासियों का प्रतिनिधित्व दिल्ली के सरकारी कार्यालयों में किस अनुपात में है? अखिल भारतीय असैनिक सेवाओं और सैनिक सेवाओं में, प्राविधिक सेवाओं में वे किस अनुपात में लिये जाते हैं? स्वयं स्टेट्समैन के सम्पादकीय विभाग में उनका प्रतिशत क्या है? क्या हिंदीवालों में बुद्धि नहीं है? क्या कुछ वर्षों पहिले, जब हिंदी क्षेत्रों ने अंग्रेजी को उतना ही अपना रखा था जितना आज अहिंदी प्रान्तों ने अपना रखा है, हिंदी क्षेत्र के विद्यार्थी आई० सी० एस० आदि में अधिक संख्या में सफल नहीं होते थे? क्या स्वराज्य आते ही हिंदी क्षेत्र की बुद्धि मंद हो गयी और अहिंदी क्षेत्रों की एकदम चमक उठी? हिंदीवाले अपने हिंदी-प्रेम का दण्ड भुगत रहे हैं; पर वे शिकायत नहीं करते। क्या किसी अहिंदी क्षेत्र में अपने क्षेत्र के बाहर के (अन्य भाषा-भाषी) अधिकारी इतनी संख्या और अनुपात में हैं जितने हिंदी क्षेत्र में हैं? यह कैसी विडम्बना है कि जब हम अपने ही क्षेत्र में (बकौल स्टेट्समैन—नार्थ इंडिया में) हिंदी चलाते हैं तो इन अंग्रेजीपरस्तों के द्वारा बदनाम किये जाते हैं क्योंकि उन्हें इस स्थिति में हमारे "बॉस" बनने में कठिनाई होने की आशंका है! ये अंग्रेजीपरस्त सब कुछ करेंगे, विश्व की और भाषाएँ पढ़ेंगे, पर हिंदी न पढ़ने की उन्होंने शपथ ले रखी है। यही नहीं, उनका वश चले तो वे हमें भी हिंदी में कामकाज न करने दें। आज जो यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि हिंदी क्षेत्रों के विद्यार्थियों को अंग्रेजी पढ़ाने पर बल न देने से उन्हें सरकारी नौकरियाँ कम अनुपात में मिलने लगी हैं, तथा उन्हें नौकरी पाने में पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इससे हिंदी क्षेत्र में जो प्रतिक्रिया हो रही है और असन्तोष की जो आग धीरे-धीरे सुलग रही है उसका स्टेट्समैन को न तो पता है और न चिन्ता। उसे तो चिन्ता उन अंग्रेजीपरस्त और अंग्रेजीदाँ लोगों की है जो अत्यन्त अल्प संख्या में होते हुए भी अंग्रेजी में निष्णात होने के कारण देश पर शासन करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। 'स्टेट्समैन' की पुरानी परम्परा यही थी। हम समझते थे कि वह युग-परिवर्तन का रुख समझकर जनता की भाषा के महत्त्व को समझेगा। किंतु पुराने संस्कार बड़े प्रबल होते हैं। वह उन्हें नहीं छोड़ पाया। उन्हीं संस्कारों के वशवर्ती होकर स्टेट्समैन और उसके अंग्रेजीपरस्त भाईबंद हमपर यह जो अंग्रेजी लादते चले जा रहे हैं, वह तो है न्याय्य और उचित; किंतु यदि हम अपने ही क्षेत्र में हिंदी चलाते हैं तो हम हो जाते हैं "लिंग्विस्टिक शॉविनिस्ट" (भाषायी कट्टरतावादी)!

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम,
वे कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होती!

श्री मुरारजी भाई को साधुवाद! बम्बई में एक 'हिन्दी' विद्याभवन स्थापित किया गया है। उसके प्रमुख कार्यकर्ता वहाँके कुछ धनी मारवाड़ी हैं। श्री वासुदेव सोमानी नाम के एक बड़े पूँजीपति उसके अध्यक्ष हैं। इस संस्था के नाम में 'हिन्दी' शब्द के लगे रहने के कारण लोगों को यह भ्रम हो सकता है कि इन धनी मारवाड़ियों ने बंबई में अपने सह-भाषाभाषियों के बच्चों की शिक्षा की कठिनाई दूर करने के लिए वहाँ हिंदी माध्यम से शिक्षा देनेवाला एक स्कूल खोला होगा। किंतु इधर धनी मारवाड़ियों में एक नया वर्ग पैदा हो गया है जो परिवर्तित स्थिति में अमरीकन और ब्रिटिश पूँजीपतियों की तरह ही अपने को देश के सत्ताधारियों में समझने लगा है। और वह वर्तमान अंग्रेजी-प्रधान वातावरण में सत्ता हथियाने की दृष्टि से अंग्रेजीपरस्त हो गया है। कुछ दिन पहिले हमारे एक धनी वैश्य की एक बहिन अपनी सात-आठ साल की बच्ची के साथ कलकत्ते से आयी थीं। जब हम बच्ची से

हिंदी में बात करने लगे तो हमने देखा कि वह हमारी बात समझ नहीं पा रही। हमारे मित्र ने बतलाया कि वह कलकत्ते के एक अंग्रेजी-माध्यम स्कूल में पढ़ती है। घर में भी सब लोग पढ़े-लिखे हैं और अधिकतर अंग्रेजी बोलते हैं। इसलिए हिंदी समझने में उसे कठिनाई होती है! अब बड़े नगरों में कितने ही धनी मारवाड़ियों के बच्चे मिशनरियों के या ऐंग्लो-इंडियनों के अंग्रेजी-माध्यम स्कूलों में पढ़ते हैं क्योंकि सत्ताधारियों का विशेष वर्ग जनता से अपने को दूर रखने के लिए अपने बच्चों को इन्हीं में प्रशिक्षित करता है। इन स्कूलों का सारा वातावरण विदेशी संस्कृति से ओतप्रोत और अंग्रेजीमय है। हम भारत में ऐसे सत्ताधारी वर्ग की सृष्टि कर रहे हैं जो संस्कृति और भाषा में जनता से बहुत भिन्न होगा। सत्ता हथियाने के लिए उन्होंने राजकाज की भाषा ऐसी रखी है जिसमें जनता तब तक दक्षता प्राप्त नहीं कर सकती जब तक वह भी बचपन से ही सारी शिक्षा अंग्रेजी वातावरण में रहकर अंग्रेजी ही में प्राप्त न करे। इस तथ्य को हृदयंगम करके इन सत्ताभिलाषी मारवाड़ियों ने भी अपने को शासकवर्ग में सम्मिलित करने के लिए अपने ऊपर अंग्रेजी के 'इश्क' का 'जनून' चढ़ा लिया है। वे भी अंग्रेजी-परस्त हो गये हैं। इसी अंग्रेजी-परस्ती के कारण इनके 'हिंदी' विद्याभवन में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा गया है।

पहिले विद्या सम्बन्धी कार्यों का आरंभ विद्वानों या महात्माओं से कराया जाता था। किंतु मारवाड़ी बुद्धि व्यावसायिक ही नहीं, बड़ी व्यावहारिक भी होती है। भला, किसी विद्वान् को बुलाने से क्या लाभ होगा? वह किस काम आवेगा? मिनिस्टर को बुलाने से दस काम निकलेंगे, और उनके आने से जो प्रतिष्ठा बढ़ेगी वह घाते में! अतएव ये धनी सेठ सभी संभव और असंभव अवसरों पर चातक की तरह मेघरूपी मंत्रियों को निहारा करते हैं। यदि साधारण हाईस्कूल भी खोलें तो उसका उद्घाटन किसी मंत्री के द्वारा ही होना चाहिए। और जितना बड़ा सेठ हो, उसके आयोजन में उतना ही बड़ा मंत्री आना चाहिए। सो बंबई के इन बड़े पूँजीपतियों ने भारत के वित्तमंत्री श्री मुरारजी भाई देसाई को इस 'हिंदी' विद्याभवन का उद्घाटन करने के लिए राजी कर लिया। मुरारजी भाई हिंदी के पक्षपाती हैं, यद्यपि हिंदी के रूप के सम्बन्ध में उनके अपने विचार हैं। किंतु यह असंदिग्ध है कि वे हिंदी के पक्षपाती और इस देश के स्कूलों में अंग्रेजी-माध्यम के विरोधी हैं। वे यह समझ कर उसका उद्घाटन करने को राजी हो गये थे कि उसमें शिक्षा का माध्यम हिंदी है। किंतु उद्घाटन से कुछ ही पूर्व उन्हें मालूम हुआ कि इस स्कूल में 'हिंदी' शब्द उसी तरह हिंदी की प्रतिष्ठा और स्कूल की शोभा के लिए रखा गया है जिस प्रकार संविधान में 'राजभाषा हिंदी'। नाम 'हिंदी' स्कूल अवश्य है, किंतु उसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। जब उन्हें यह बात मालूम हुई तब उन्होंने उद्घाटन करने से इंकार कर दिया। अंग्रेजीपरस्त सेठों को बड़ी निराशा हुई। हम श्री देसाई की इस सिद्धान्त-दृढ़ता से बहुत प्रभावित और प्रसन्न हुए। हम उन्हें अंग्रेजी-माध्यम की इस प्रकार सार्वजनिक भर्त्सना करने के लिए अनेक और हार्दिक साधुवाद देते हैं। यदि उनकी तरह के दृढ़-चरित्र कुछ मंत्री इस देश में और हो जायँ तो देश का स्वरूप ही बदल जाय। अधिकांश मंत्री तो स्वयं ही अंग्रेजीपरस्त हैं, किंतु जो थोड़े से हिंदी-प्रेमी मंत्री हैं यदि वे भी ऐसी ही दृढ़ता दिखलावें तो देश का बड़ा कल्याण हो।

सरकार और मूल्यों में वृद्धि—कर बढ़ाते समय सरकार के उत्तरदायी सदस्यों ने बड़ी दृढ़ता से घोषित किया था कि वस्तुओं के मूल्यों को न बढ़ने दिया जायगा, और जो व्यापारी अनुचित ढंग से मूल्य बढ़ावेंगे उनके साथ कड़ा बर्ताव किया जायगा। किंतु सरकार के इस दर्पपूर्ण संकल्प के बावजूद प्रायः प्रत्येक वस्तु के मूल्य बढ़ते जा रहे हैं। सरकार निरुपाय और असहाय मालूम होती है। मूल्यों को स्थिर करने के लिए यदि वह किसी वस्तु का नियंत्रण करती है तो उस वस्तु के मूल्य बढ़ जाते हैं और वह चोर बाजार में जाकर और महँगी बिकने लगती है। कुशल अर्थशास्त्री ही इस गोरखधंधे का भेद समझ सकते हैं। किंतु यह स्पष्ट है कि माँग और पूर्ति पर वस्तुओं का मूल्य निर्भर है, और सरकार इस साधारण नियम को कार्यान्वित होने से रोकने में असमर्थ रहती है। जब कर बढ़ेंगे तो वस्तुओं के मूल्य भी बढ़ेंगे क्योंकि बढ़े हुए करों को उत्पादक और व्यापारी वस्तुओं का मूल्य बढ़ा कर ही दे सकते हैं। किंतु इस साधारण बात का विचार न कर सरकार और जनता के भी बहुत से लोग व्यापारियों को कोसा करते हैं कि उन्होंने वस्तुओं के मूल्य बढ़ा दिये। आज हमारी सरकार भी व्यापार करती है और कम से कम उसे साधारण व्यापारियों के सामने वस्तुओं का मूल्य स्थिर रखने का आदर्श रखना चाहिए। किंतु वास्तविकता क्या है? एसा मालूम पड़ता है कि कभी-कभी तो मूल्य बढ़ाने में सरकार साधारण व्यापारियों से भी आगे है। इसका एक बड़ा विचित्र उदाहरण हमारे सामने आया। रेलें सरकारी हैं। स्टेशनों पर चाय तथा खाद्य सामग्री बेचने का ठेका कुछ रुपये लेकर वे ठेकेदारों को दे दिया करती हैं। किंतु जब से "राष्ट्रीयकरण" का सिद्धान्त प्रमुखता से सामने आया है तब से रेलों ने भी कुछ स्टेशनों पर चाय और भोजन सामग्री बेचने का काम स्वयं ले लिया है। धीरे-धीरे सभी स्टेशनों पर सरकारी चाय और भोजन की दुकानें होंगी। अभी कुछ ही स्टेशनों पर सरकारी दूकानें हैं और कुछ पर पुराने ठेकेदारों की। हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सरकार ने अब एक प्याले चाय का मूल्य १२ नये पैसे से बढ़ाकर १३ नये पैसे कर दिया है, किंतु कई स्टेशनों पर पुराने ठेकेदार अब भी १२ नये पैसे में ही एक प्याला चाय देते हैं। इसी प्रकार सुना है कि सरकारी (रेल की) दूकानों ने काफी और भोजन का मूल्य भी बढ़ा दिया है। यदि ठेकेदार

नये पैसे में एक प्याला देकर भी उचित लाभ कमा है तो सरकार भी उतने ही में उसे क्यों नहीं बेच ? यदि ठेकेदार या दूसरे व्यापारी इस प्रकार बढ़ा देते तो हमारे बड़े-बड़े नेता और मंत्री उनकी खोरी' की भर्त्सना करते। किंतु स्वयं सरकार वही काम करती है तब ये लोग उसे 'मुनाफाखोरी' नहीं देते। यदि सरकार वास्तव में चाहती है कि मुनाफाखोरी न करें, और देश में वस्तुओं का स्थिर रहे तो उसे स्वयं आदर्श उपस्थित करना । व्यापारी के लिए 'लाभ' आवश्यक है। सरकार दूकानों पर लागत मात्र पर वस्तुओं को बेच सकती रकार की कथनी और करनी में सामंजस्य होना , नहीं तो उसकी गणना उन्हीं लोगों में होगी लिए तुलसीदासजी ने कहा है——

पर उपदेश कुशल बहुतेरे,
जे आचरहिं ते नर न घनेरे।

क्ति-संतुलन का नकशा बदल रहा है——पिछले के पहिले संसार में कई एक प्रथम श्रेणी की थीं–इँग्लेंण्ड, रूस, जर्मनी, इटली, फ़ांस, अमरीका जापान, किंतु दूसरे महायुद्ध के बाद संसार में केवल शक्तियाँ रह गयीं——रूस और अमरीका। रूस दल और अमरीका 'पश्चिमी' दल कहलाता था। म्यूनिस्ट देश रूस के अनुयायी या कठपुतली थे ! योरप, अमरीका के कितने ही देश, जापान, , कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि अमरीका के साथ थे। प्रकार शक्तियों के दो ध्रुव बन गये थे। पिछले दो में इनके शस्त्रास्त्रों की होड़ और शीतयुद्ध चलता संसार की राजनीति पर ये दोनों दल छाये हुए और अभी भी संसार उनसे आतंकित है।

तु इधर संसार के शक्ति-संतुलन का नकशा बड़ी बदल रहा है। पहिली ध्यान देने योग्य बात कि दोनों ही दलों में दरारें पड़ गयी हैं। पश्चिमी 'फ्रांस' अमरीका का अप्रत्यक्ष विरोधी हो गया है इसके कारण कितनी ही बातों में अमरीका की नहीं रही। पूर्वी दल में और भी बड़ी दरार पड़ गयी वहाँ चीन और रूस में बुरी तरह खटक गयी है, उनके मतभेद ने इतना उग्र रूप ले लिया है कि के सारे कम्यूनिस्ट दल रूस के पक्षपातियों और के पक्षपातियों में बँट से गये हैं। इसके अतिरिक्त, झगड़े में कुछ कम्यूनिस्ट देश खुलकर रूस का, और चीन का साथ दे रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि के कम्यूनिस्ट दल के नेतृत्व के लिए रूस और चीन में इतना बढ़ गया है कि वे एक दूसरे से बिल्कुल अलग जायेंगे। उधर, जैसा कि बतलाया गया है, फ्रांस अपनी चावल की खिचड़ी अलग पका रहा है और पश्चिमी का नेता बनने का स्वप्न देख रहा है। यदि उसकी नीति कुछ दिनों और चली तो पश्चिमी दल भी [illegible] दलों में विभक्त हो जायगा। अतएव संसार की शक्तियों का जो केन्द्रीकरण रूस और अमरीका के आस-पास हो गया था वह छिन्न-भिन्न होकर चार दलों में विभक्त हो जायगा।

एशिया और अफ़्रीका के कितने ही देशों ने पिछले दो दशकों में स्वतन्त्रता प्राप्त की है। उनमें राष्ट्रीयता का नया जोश और स्वतन्त्रता का नया उत्साह है। वे जानते हैं कि वे बहुत निर्बल हैं। बलवान् होने के लिए उन्हें अपनी आर्थिक और औद्योगिक उन्नति करनी होगी। इसके लिए शान्ति की आवश्यकता है। वे किसी लड़ाकू दल में नहीं मिलना चाहते। इसीलिए उन्होंने तटस्थता की नीति अपनायी है। किंतु आज संसार इतना सिकुड़ गया है कि एक देश को दूसरे देश की सहायता की अपेक्षा रहती है। रूस, चीन और अमरीका इन तटस्थ देशों की सहानुभूति प्राप्त करने और उन्हें अपने दल में लेने के लिए तरह-तरह से प्रयत्न कर रहे हैं। वे उन्हें आर्थिक और प्राविधिक सहायता देते हैं। उनमें अपना प्रचार करते हैं। कई तटस्थ देशों ने इस बात का प्रयत्न किया कि एशिया और अफ़्रीका के तटस्थ देशों का एक दल अलग ही बना लिया जाय। यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। किंतु अफ़्रीका के देश अपना एक समुदाय बनाने में सफल हो गये हैं। यह समुदाय अभी 'दल' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका संगठन बहुत ढीला है। किंतु यह असंभव नहीं है कि आठ-दस वर्षों में सारे हब्शी अफ़्रीका का एक संघ बन जाय।

अफ़्रीका के उत्तर में और पश्चिमी एशिया में कई अरब जाति के अरबभाषी राज्य हैं। यह क्षेत्र ईरान की खाड़ी से अटलांटिक महासागर तक फैला हुआ है और संसार के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सैनिक क्षेत्र में है। इन सबको मिलाकर एक अखिल-अरब संघ बनाने का प्रयत्न कितने ही दिनों से हो रहा है। इस प्रयत्न का केन्द्र मिस्र है। सारी अरब जनता इस उद्देश्य से सहमत है। अभी तो विभिन्न अरब देशों के राजनीतिज्ञ और नेता इसमें रोड़ा अटका रहे हैं, किंतु जब अरब जनता पूरी तरह से जागकर समर्थ हो जायगी तब कम से कम एक बार यह अरब संघ बन के रहेगा।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में अनेक छोटे-बड़े राज्य हैं——इंडोनेशिया, वियतनाम, वियतमिन्ह, लाओस, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, बर्मा, मलाया आदि। बर्मा को छोड़कर अन्य देशों में पीढ़ियों से असंख्य चीनी आकर बस गये हैं। इन पर चीन की कुदृष्टि है। वह धीरे-धीरे इस क्षेत्र में बढ़ता आ रहा है। उसने उत्तरी वियतनाम में अपनी कठपुतली सरकार बना रखी है जो दक्षिणी वियतनाम को हड़पने का सतत प्रयत्न कर रही है। उसीकी प्रेरणा और सहायता से लाओस के आधे भाग पर कम्यूनिस्टों ने अधिकार कर लिया है और वे सारे लाओस पर अधिकार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। लाओस और वियतनाम के बाद वे निश्चय ही कम्बोडिया और थाईलैण्ड पर डोरे डालेंगे,

और तब मलाया पर भी उनकी छाया पड़ जायगी। इंडोनेशिया और बर्मा चीन से आतंतिक हैं और उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वियतनाम अमरीका की सहायता लेकर, तथा मलाया आदि मलय एशिया संघ बना कर एवं ब्रिटिश सहायता के भरोसे चीन के पंजों से बचने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस क्षेत्र में जापान, फिलिपाइन और फार्मोसा तीन राज्य और हैं। किंतु इन्हें अमरीका का संरक्षण प्राप्त है। इसलिए इन पर अभी चीन की चाल नहीं चल सकती। दक्षिण-पूर्वी एशिया का भविष्य अनिश्चित है।

इस प्रकार हमारा संसार जो अब तक दो शक्तिशाली दलों में विभक्त था, धीरे-धीरे अब अनेक दलों में बँटता जा रहा है। अमरीका, योरप, रूस, चीन, अफ्रीका और अरब धीरे-धीरे संसार की शतरंज की बिसात पर अपने मोहरे बैठा रहे हैं। संसार का पिछले दो दशकों का शक्ति-संतुलन बड़ी तेजी से बदल रहा है। कहा नहीं जा सकता कि अगले दस वर्षों में संसार के शक्ति-संतुलन का ऊँट कौन-सी करवट लेने जा रहा है।

भारत बनाम चीन : अफ्रीका में--पिछले दशक की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना नये अफ्रीका का जन्म है। देखते ही देखते अफ्रीका का एक बहुत बड़ा भाग राजनीतिक दृष्टि से स्वाधीन हो गया है। सन् १९५१ में लीबिया की स्वतंत्रता के बाद से अब तक ३५ से भी अधिक स्वतंत्र देश अफ्रीका में जन्म ले चुके हैं। अंतिम यूगाण्डा है।

इन देशों का और भारत का क्या और कैसा संबंध है? सन् १९४७ के पहले और उसके बाद काफी समय तक ये देश भारत को अपना मित्र और पथ-प्रदर्शक मानते रहे। घाना, नाईजीरिया, सूदान आदि विभिन्न देशों के प्रतिनिधि बराबर भारत आते रहे। लेकिन पिछले वर्ष अक्टूबर सन् १९६२ के बाद चीन ने अफ्रीका के देशों में जो सर्वतोमुखी भारतविरोधी प्रचार किया है उससे हमारे देशवासी शायद ही भली भाँति परिचित हों। इसकी कुछ-कुछ भनक कोलम्बो-सम्मेलन के दौरान, उसके पहले और बाद में भी हमारे कानों में पड़ती रही। जहाँ-तहाँ सुनाई पड़ता था कि एशिया के देश चीन से भयभीत हैं, वे भारत के पक्ष को न्यायसंगत मानते हुए भी स्पष्ट रूप से नहीं बोल पाते हैं। यही संकोच, यही हिचकिचाहट अफ्रीका के देशों में भी देखी गयी। दक्षिणपूर्व एशियाई देशों का संकोच (या भय) तो समझ में भी आता है, क्योंकि इन देशों में चीनी काफी संख्या में हैं और चीन से वे किसी न किसी रूप में घनिष्ठतः संबद्ध हैं; किसी हद तक प्रवासी चीनियों की भक्ति-भावनाएँ भी चीन के शासकों से हैं; लेकिन अफ्रीका के देशों में ऐसा क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर कड़ुवा होते हुए भी सत्य है। उत्तर है: चीन के प्रचार की सफलता और नकारात्मक दृष्टि से हमारे प्रचार-अधिकारियों की असफलता।

अफ्रीका के देशों में किस प्रकार की भारत-विरोधी भावनाएँ उत्पन्न हो गयी हैं, इसका विवरण 'इं
एक्सप्रेस' के अफ्रीका स्थित संवाददाता श्री हरीश
ने पिछले मास भेजा है। वे अफ्रीकी देशों के राष्ट्राध्य
के सम्मेलन में भाग लेने जब अद्दीस-अबाबा गये तो
साथ होटल में घाना के एक पत्र के सम्पादक भी
जब संवाददाता की इन सम्पादक से सम्मेलन के बारे
बातचीत हुई तो बजाय अपने विचार बतलाने के वे सं
दाता पर ही बरस पड़े। बोले "आप भी साम्राज्यवादि
की तरह यह चाहते हैं कि वर्तमान सम्मेलन असफल
जाय! मैं जानता हूँ कि आप लोग कितने साम्राज्य
पोषक और उपनिवेशवादी हैं।" बाद में भारतीय सं
दाता को इन सम्पादक के बारे में बताया गया कि
आक्रमण के दौरान में ये सम्पादक चीनी प्रचार-सा
को अपने संवाददाता के संवादों के रूप में छापते रहे
इसी प्रकार टंगानिका में एक भारतीय प्रेस अधिका
को देखकर एक अफ्रीकन अफसर ने बड़ी नाक-भौं च
और अन्य व्यक्ति को संबोधित करके कहा--"आज
इन भारतीयों की संख्या बहुत अधिक होती जा रही है
कुछ नाईजीरिया के पत्रकारों को बार-बार यह क
पर भी विश्वास नहीं हुआ कि 'अफ्रीका डायरी' के प्र
निधि, सम्मेलन के लिए विशेष रूप से दिल्ली से आये
वे यही कहते रहे कि 'आप तो यहीं काफी समय से
रहे हैं। हमारे यहाँ भी भारतीयों की संख्या जरूर
ज्यादा है।' नाइजीरियन मित्रों से कहना पड़ा कि '
भारतीय अफ्रीका में ही नहीं रहते। कोई ४५ क
हिन्दुस्तान में भी रहते हैं।" काँगोवासियों का
ख्याल है कि श्री लुमुम्बा की हत्या भारतीयों के कार
हुई। उनका कहना है कि श्री राजेश्वरदयाल ने
उचित प्रबंध तथा सुरक्षा की व्यवस्था की होती तो
न मारे जाते।

एक भारतीय अर्थशास्त्री जिनेवा से सूदान गये
लेकिन वे इसलिए जिनेवा वापस लौट गये कि वहाँ
बड़ी असुविधा सी लग रही थी। वे अनुभव
रहे थे कि सूदानवासी उन्हें स्वीकार करने को तै
नहीं हैं।

ये कुछ स्फुट घटनाएँ हैं। इनके आधार पर निश्चि
परिणाम निकालना उचित न होगा लेकिन हवा का
तो तिनकों के उड़ने की दिशा से ही पता लगता है
भारत और भारतीय दृष्टिकोण के प्रति अज्ञान का
और प्रमाण लीजिए। अधिकांश अफ्रीकी यह समझते
कि भारत और चीन सीमा के एक छोटे से अंश के लिए
रहे हैं। इथियोपिया के सम्राट् हेलसिलासी ने भ
अफ्रीकी राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन के अपने उद्घा
भाषण में बाण्डुंग सिद्धान्तों के अनुसार भारत और
को झगड़ा सुलझाने की अपील की। यह भी तब,
हमारे राजदूत उनसे भेंट करके भारत का दृष्टिकोण
चुके थे। केमरून के राष्ट्रपति ने तो साफ तौर पर
की तारीफ की।

अभी हाल ही में कुछ मंत्रियों ने एशियाई और ी देशों की यात्रा की थी। ये मंत्री थे, श्री अशोक श्री दिनेशसिह और श्रीमती लक्ष्मी मेनन। इनमें से ने लौटकर बताया कि 'अब हमारे राजदूत भारत के ो पहले की तुलना में अधिक अच्छी तरह समझने ये हैं।' यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आक्रमण के में ये राजदूत भारतीय दृष्टिकोण क्या भली भाँति कर पाये होंगे? सच तो यह है कि हमारे राजदूत दूतावास तथा प्रचाराधिकारी अपने कर्त्तव्यपालन सफल रहे हैं। विदेशों में, और विशेषकर नवोदित ो राष्ट्रों में, यदि हमें अपनी मान-मर्यादा, भारत के और नीतिओं की रक्षा करनी है तो शीघ्र ही कुछ किया जाना आवश्यक है।

विद्यालय की शिक्षा और सस्ती करने का प्रयास---- आक्सफोर्ड के एक प्रोफेसर से किसी ने पूछा कि या है। उसने उत्तर दिया कि विश्वविद्यालय में पढ़ाया गया है, उसे भूल जाने पर जो कुछ मनुष्य बच रहे, वही शिक्षा है। इसका तात्पर्य यह है कि य पढाये जाते हैं, उनका विवरण महत्त्वपूर्ण नहीं हत्त्वपूर्ण है विविध विषयों और समस्याओं पर ों का आदान-प्रदान जो प्राध्यापकों और विद्यार्थियों करता है। शास्त्र-सम्बन्धी प्रेरणा जो प्राध्यापकों ती है, संतुलित दृष्टिकोण जो विद्या-चर्चा से प्राप्त है, चरित्र, व्यवहार और शिष्टाचार के वे मानदंड न्न शिक्षित सुसंस्कृत लोगों के सम्पर्क से सीखे जाते 'करणीय और अकरणीय' का सूक्ष्म विवेक जो विद्यालय के वातावरण में रहने से प्राप्त होता है-- ऐसी बातें हैं जिनको सामूहिक रूप से 'उदार शिक्षा' रल एज्यूकेशन) कहा जाता है। जो व्यक्ति बी० ए० म० ए० है उससे हम किसी विषय के उच्च- ज्ञान की ही अपेक्षा नहीं करते, किंतु यह भी अपेक्षा है कि उसका दृष्टिकोण, व्यवहार, विवेक और भी एक विशेष स्तर का होगा। इसीलिए विश्व-यों में विद्यार्थी भेजे जाते हैं जहाँ वे ये सब संस्कार करते हैं और उनको प्राप्त करने के प्रमाणस्वरूप 'डिप्लोमा' पाते हैं। किंतु हमारे देश में 'डिप्लोमा' मूल्य है, डिप्लोमा में निहित गुणों का नहीं। पहिली तो यह है कि विषयों के ज्ञान पर ही बल दिया जाता —और वह भी भाषा के ज्ञान पर। कोढ़ में खाज की , जिस भाषा पर जोर दिया जाता है वह है एक विदेशी जिसे इस देश के 'वर्नाक्यूलर' वातावरण में सीखना कठिन है। फिर, परीक्षा के नियम ऐसे हैं कि र्धारित ज्ञान का एक-तिहाई ज्ञान होना ही उत्तीर्ण होने के लिए पर्याप्त समझा जाता है। परीक्षा की पद्धति ी है कि परीक्षार्थी की बुद्धि को कम, उसकी रटने और ज्ञान को प्रदर्शित करने की योग्यता को लाभ मिलता है। हमारे विश्वविद्यालयों के स्तर की गिरावट के कारणों में यह भी एक बड़ा कारण है। इस स्थिति को सुधारने की जगह जब विश्वविद्यालय ही स्तर घटाने का काम करने लगें तो हमारी उच्च शिक्षा का मालिक भगवान् ही है। 'प्राइवेट' परीक्षार्थियों की प्रथा ने इस देश के परीक्षाओं के परिणाम के प्रतिशत घटा दिये हैं। अब इस रोग को और विस्तृत करने का प्रयत्न हो रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने अब पत्र-व्यवहार से शिक्षा देने की प्रथा का आरंभ किया है। कागज पर वह चाहे जितनी सुन्दर और निर्दोष हो, हमें अपने देश के लोगों के कार्य-कारिणी शक्ति का ज्ञान है। हम नित्यप्रति नाना प्रकार की योजनाओं को क्रियान्वित होते देखते हैं। अतएव हमें भय है कि यह पत्रव्यवहारी शिक्षा हमारी उच्च शिक्षा का स्तर और भी गिरा देगी। ऐसे विद्यार्थी क्या वास्तव में 'शिक्षित' होंगे? किंतु उनकी भी विवशता है। बिना बी० ए० किये वे न घर के रह जाते हैं और न घाट के। सरकार ही इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है। यदि शिक्षा का स्तर उठाना है तो हमें नौकरियों में प्रवेश पाने के लिए विश्वविद्यालय की उपाधियों की अनिवार्यता बंद करनी पड़ेगी। स्वर्गीय मौलाना आजाद इसपर विचार कर रहे थे। यदि नौकरियों के लिए उपाधियों के स्थान पर ज्ञान की शर्त लगायी जाय तो विश्वविद्यालयों की शिक्षा का स्तर उठेगा और विद्यार्थी भी उपाधि पर जोर न देकर 'ज्ञान' के अर्जन पर जोर देंगे।

रीवा के सफेद शेर बच गये--सरस्वती के पाठक जानते हैं कि सफेद शेर दुर्लभ पशु हैं। संसार में सिवाय रीवा के वे कहीं नहीं मिलते, और वहाँ भी बहुत कम मिलते हैं। महाराज रीवा के गोविन्दगढ़ महल में ऐसे आठ सफेद शेर पले थे। किन्तु उनके राज्य के विलीनीकरण के बाद उन्हें इनका व्यय अखरने लगा और अन्त में उन्होंने इन्हें निकाल देने का निश्चय कर लिया। किंतु भारत में उन्हें कोई खरीदने को तयार नहीं था। इसलिए वे उन्हें जंगल में छोड़ देना चाहते थे। जब यह बात समाचार-पत्रों में छपी तब विदेशों के चिड़ियाघरों का ध्यान उधर गया। अब इँग्लैण्ड के ब्रिस्टल के चिड़िया-घर ने एक लाख रुपयों में उनसे इन शेरों का एक जोड़ा खरीद लिया है और वे गत मास इँग्लैण्ड भेज दिये गये। दूसरा जोड़ा अमरीका के एक चिड़ियाघर ने खरीदा है। वह शीघ्र अमरीका जायगा। शायद महाराज से इन शेरों का एक जोड़ा दिल्ली के चिड़ियाघर को भेंट कर देने के लिए कहा गया, और वे इसके लिए राजी हो गये हैं। दो-तीन सप्ताहों में वह दिल्ली पहुँच जायगा। दो शेरों को महाराज गोविन्दगढ़ में रखेंगे। इनका व्यय-भार वहन करने में उन्हें शायद आपत्ति नहीं है। ये सफेद शेर संसार के दुर्लभ पशुओं में गिने जाते हैं। हमें खेद है कि भारत इन दुर्लभ पशुओं के चार जोड़ों को भी अपने यहाँ रखने में असमर्थ रहा। भारतीय वन-जीवन के इन दुर्लभ नमूनों के संरक्षण का प्रमाण न हमारी सरकारों

ने दिया और न हमारे पूँजीपतियों ने। पुराने राजे-महाराजे ऐसी वस्तुओं का मूल्य समझते थे। यही नहीं, कितने ही कलाकार उनसे प्रोत्साहन पाकर अपनी कलाओं की साधना करते थे, और भारत की हस्तकलाओं का संसार में सिर ऊँचा करनेवाले कितने ही शिल्प उनकी छत्रछाया में पनपते थे। वे समाप्त हो गये। हम उनकी ओर से उदासीन हो गये हैं। यदि यही दशा रही तो कुछ दिनों बाद इस देश की कितनी ही दुर्लभ वस्तुएँ और शिल्प सदा के लिए समाप्त हो जायँगे।

तमिल में भाषा-सम्बन्धी उन्माद--दक्षिण में चार प्रदेश हैं: तमिलनाड, आंध्रदेश, कर्नाटक (कन्नड्) और केरल। उत्तर भारत में सामान्य रूप से सबको 'मदरासी' कहा जाता है। इसका कारण हमारा दक्षिण-सम्बन्धी अज्ञान तो है ही, किंतु मुख्य कारण शायद यह है कि सारा तमिलनाड तथा अन्य प्रदेशों के बहुत से भाग अंग्रेजों के समय में मदरास प्रान्त में थे, और उस प्रान्त में होने के कारण उसके सभी निवासी 'मदरासी' कहे जाने लगे। इनमें तमिलभाषी प्रान्त (तमिलनाड) में इस समय भाषा का सबसे अधिक उन्माद है। आन्ध्र, केरल और कर्नाटक के निवासी उदार हैं और उनमें उत्तर-दक्षिण अथवा आर्य-द्रविड़ की भावना या तो बहुत कम है, और जो है वह सीमा का उल्लंघन नहीं कर गयी। किंतु तमिलनाड में सामान्यतः उत्तर की प्रत्येक वस्तु का विरोध और उसके लिए घृणा दिखलायी पड़ती है। संस्कृत का विरोध यदि भारत में कहीं है, तो वह इसी प्रदेश में। इसलिए हम उनके हिंदी-विरोध को उत्तर के विरोध का एक अंगमात्र समझते हैं। हम यह नहीं मानते कि उन्हें 'हिंदी' ही से 'बुग्जलिल्लाही' है। हमारे नेतागण हमको बराबर उपदेश दिया करते हैं कि उदार बनो। तुम्हारी भाषा में गुलामी के युग में जो विदेशी शब्द जबर्दस्ती लाद दिये गये थे उन्हें तुम वरदान समझो। उन्हें अपना समझो और अपनाओ। यही नहीं, विदेशी भाषाओं के भी अधिकाधिक शब्द लेते जाओ। इससे तुम्हारी मानसिकता विस्तृत होगी। किंतु हमारे तमिलभाषी जो कर रहे हैं, उसपर ये लोग चुप्पी लगा लेते हैं। जनवरी १९५८ से मदरास सरकार ने जिला स्तर तक अपने कार्यालयों की राजभाषा तमिल को घोषित किया। यह तो सभी जानते हैं कि मदरास की सरकार बड़ी कुशल सरकार है। वह जो काम करती है वह सोच-समझकर और सुनियोजित ढंग से। तमिल को राजकाज में प्रयोग करने की आज्ञा निकालने के साथ ही उसने प्रत्येक कार्यालय को एक अंग्रेजी-तमिल प्रशासन कोश भी दिया। हमें बतलाया गया कि अंग्रेजी प्रशासनिक शब्दों के तमिल पर्याय बनाने में यह सिद्धान्त सामने रखा गया कि इसमें न तो संस्कृत का शब्द लिया जाय और न अंग्रेजी का। को हिंदीवाले भी 'रेडियो' कहते हैं, किंतु उस तमिल शब्द 'वनाळी' रखा गया। उन्हें अपनी (तमिल) का असीम अभिमान और आग्रह है। धीरे-धीरे उनका ध्यान उन संस्कृत शब्दों की ओर जाने लगा है जो शतियों से उस प्रदेश में प्रचलित अभी हाल में वहाँ एक मजेदार घटना हुई जिससे तमिल की अंधभक्ति और संस्कृत-विद्वेष का किया जा सकता है। मदरास में एक नगर है— कोणम्। यहाँ शिवजी का प्रसिद्ध मंदिर—बृहदीश्व जो अपनी स्थापत्यकला के लिए प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध की मूर्ति यहीं है। कहा जाता है कि गरुड़ आकाश मा अमृत से भरा कुम्भ (घट) ले जा रहे थे कि वह हाथ से छूट गया। कुम्भ की कोर यहाँ गिरी और यहाँसे कुछ दूर कोडावसल में गिरा। तब से इस का नाम कुम्भकोणम् पड़ गया और यह एक तीर्थ गया। किंतु 'कुम्भ' संस्कृत का शब्द है। अभी हाल वहाँकी नगरपालिका ने प्रस्ताव किया कि उसका संस्कृत नाम बदलकर 'कुडन्तयी' कर दिया जाय। शब्द का भी वही अर्थ है जो कुम्भकोणम् का है, किंतु शब्द तमिल भाषा का है। मदरास सरकार ने बुद्धिम से काम लिया। नाम-परिवर्तन का प्रस्ताव स्वीकृत किया। किंतु इस घटना से तमिलनाड के लोगों तमिल भाषा के आग्रह और संस्कृत के प्रति विद्वेष का नया उदाहरण मिलता है। उत्तर की सभी भाषाएं के 'श्री' शब्द का प्रयोग करती हैं, किंतु कुछ दिन उसके प्रयोग के विरुद्ध भी वहाँ बड़ा आन्दोलन हुआ तमिल में 'श्री' के लिए 'तिरु' शब्द है। उनका आग्रह कि 'श्री' का प्रयोग वर्जित करके 'तिरु' का प्रयोग कि जाय। हम चाहें उनसे सहमत हों या न हों, हमें तमिल भाइयों की मानसिकता समझनी चाहिए। उन जो हिंदी-विरोध है उसे उनकी इस मानसिकता की पृ भूमि में देखना चाहिए। हमें यह न समझना चाहिए तमिल लोगों को हिंदी ही से कोई विशेष द्वेष है। उन समस्या केवल हिंदी को स्वीकार करने की नहीं है। वह उनकी उत्तर-भारत की अस्वीकृति का एक अंगमात्र है उनकी मानसिकता को बदलकर उनमें अखिल भार भावना उत्पन्न करना आज राष्ट्रीय भावनात्मक एक की सबसे बड़ी समस्या है। रोग इतना गहरा है कि अत्यन्त कष्टसाध्य है और उसके लिए शेष देश बड़े धैर्य, समझदारी तथा प्रेम से काम लेना चाहिए इसके लिए दीर्घकालीन प्रयत्न करने की आवश्य है।

हिंदी की वर्तमान स्थिति पर डा० सुधांशु के विचार

(सरस्वती की सम्पादकीय टिप्पणियों पर हमारे पाठक बहुधा अपनी सम्मतियाँ भेजा करते हैं। अधिकतर उनमें उनका समर्थन और प्रशंसा ही रहती है। पाठकों के समर्थन से हमें संतोष भी मिलता है और बल भी। किंतु उन पत्रों को प्रकाशित करना न आवश्यक समझते हैं, और न उचित; क्योंकि वे बहुधा व्यक्तिगत ही होते और उनमें सार्वजनिक रुचि की बातें नहीं होतीं। किंतु इस बार हम अपने इस सामान्य नियम का अपवाद करके लक्ष्मीनारायण सुधांशु का एक पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। डा० सुधांशु हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार हैं, बिहार की कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में हैं और इस समय बिहार की विधान सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) हैं। उनका साहित्यिक और राजनीतिक पद इतना ऊँचा है और जनता में उनका इतना सम्मान है कि उनकी सम्मति को आदर से सुनते हैं। हिंदी की वर्तमान अवस्था और उसकी समस्याओं पर डा० सुधांशु ने अपने पत्र में जो विचार प्रकट किये हैं वे जितने महत्त्वपूर्ण हैं, उतने ही सारगर्भित भी। उनका सार्वजनिक महत्त्व है। अतएव उनका पत्र यहाँ अविकल उद्धृत कर रहे हैं। एक प्रमुख जननेता के इन विचारों पर हिंदीप्रेमी जनता को गंभीरता से विचार करना चाहिए। हमें इस बात से और भी अधिक संतोष हुआ कि कांग्रेस में अब भी ऐसे नेता हैं जिनके हिंदी के सम्बन्ध में ऐसे विचार हैं। हमें विश्वास है कि इस समय जब कि हिंदी संसार में निराशा और उदासी छाई हुई है, डा० सुधांशु के विचारों से हिंदी प्रेमियों को उत्साहवर्द्धक प्रेरणा मिलेगी। सम्पादक—सरस्वती)

श्री चतुर्वेदीजी,

सरस्वती (जून, १९६३) की संपादकीय टिप्पणियाँ 'हिंदी प्रेमी क्या करें?' 'हिंदी संसार का नेतृत्व' पढ़कर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। यह पत्र मैं आपको बधाई देने के लिए ही लिख रहा हूँ। आपने राजभाषा या राष्ट्रभाषा हिंदी के संबंध में जिस वस्तुस्थिति का वर्णन किया है वह एक ऐसा कठोर सत्य है जिसका सामना हमें तत्परता से करना चाहिए।

भारत सरकार के कर्णधारों ने जिस भाषा नीति का अवलम्बन किया है उससे हिंदी अँगरेजी समस्या जटिलतर होती जा रही है। इससे कोई पक्ष पूर्णतः संतुष्ट नहीं है। इसका एक अर्थ यह लगाया जाता है कि भारत-सरकार ने मध्यम मार्ग चुना है। किंतु कभी-कभी मध्यम मार्ग का यात्री तट नहीं पहुँच भँवर में फँस जाता है। यही स्थिति आज भारत-सरकार की है और इसके कारण देश में भाषा-संबंधी गतिरोध उत्पन्न हो गया है। मैं प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू और गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री को हिंदी विरोधी नहीं मानता, किंतु दक्षिण भारत के कुछ व्यक्तियों के विरोध को उन्होंने इतना महत्त्व दे दिया कि अब उनके लिए इस समस्या का समाधान अधिक कठिन हो गया। संघीय राजभाषा के संबंध में एक बार भारतीय संविधान में जो निश्चय ले लिया गया उसका पालन भारत-सरकार ने नहीं किया। इन चौदह वर्षों के अंदर भारतीय संविधान में सत्रह संशोधन किये गये। सौ वर्ष से अधिक पूर्व पारित भारतीय दंड संहिता में भी अब तक इतने संशोधन नहीं हुए हैं। यदि पंद्रह वर्षों की अवधि लेकर भारत-सरकार संघीय राजभाषा हिंदी को संविधान विहित अधिकार नहीं दिला सकी तो अनिश्चित अवधि में सब कुछ अनिश्चित ही समझा जायगा। यह स्पष्ट मानना पड़ेगा कि संविधान की अवहेलना हुई है और इस अवहेलना को ही अब विधि सम्मत बना दिया गया है।

यदि दक्षिण भारत के कुछ व्यक्ति दुराग्रह से हिंदी सीखना न चाहें और उनके लिए यह वैधानिक सुविधा रहे कि वे संघीय भाषा हिंदी के स्थान पर स्वेच्छा से अँगरेजी का ही व्यवहार करें तो क्या यह उचित होगा कि उत्तर, भारत के लोगों की अनिच्छा रहने पर भी उन पर अँगरेजी लदी रह जाय?

कोई कुछ कहे, वस्तुतः केंद्रीय नौकरियाँ ही इस भाषा समस्या का मूल हैं। आपका यह सुझाव मुझे उचित मालूम पड़ता है कि केंद्रीय नौकरियाँ प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के अनुपात से बाँट दी जायँ। केवल दस प्रतिशत खुली प्रतियोगिता के लिए सुरक्षित रहे। प्रथम भाषा आयोग के अध्यक्ष श्री बी० जी० खेर के सम्मुख भी यह प्रश्न आया था, किंतु उन्होंने राष्ट्रहित के विचार से इसको टाल दिया। पहला भाषा आयोग के बाद फिर दूसरा भाषा आयोग भारत-सरकार ने गठित ही नहीं किया। भारतीय संविधान की उपेक्षा की गई। भारत की अखंडता

भी राष्ट्रहित में थी, किंतु अंततः वह भारत और पाकिस्तान के रूप में खंडित हुआ। इस दृष्टि से केंद्रीय सेवाओं के आवंटन की आवश्यकता नहीं समझी जा सकती है, किंतु विदेशी भाषा अँगरेजी को माध्यम बनाये रखने पर आनुपातिक आवंटन आवश्यक है जिससे अँगरेजी का जहर सर्वत्र नहीं फैले। गांधीजी ने स्वराज्य प्राप्ति के बहुत पूर्व कहा था कि यदि मुझे शासन का निरंकुश अधिकार प्राप्त रहता तो मैं विदेशी भाषा के माध्यम से देश के लड़के और लड़कियों की शिक्षा को तुरत रोक देता और अध्यापकों तथा प्राध्यापकों को उनकी सेवा-मुक्ति के आधार पर कहता कि विदेशी भाषा के बदले वे मातृभाषा का माध्यम अविलंब ग्रहण करें। यदि वे यह कहें कि मातृभाषा में पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं तो मैं कहता बिना पुस्तकों के ही पढ़ाओ। यह एक ऐसी बुराई है जिससे जितनी जल्द छुटकारा मिले उतना ही कल्याणकारक है। यह राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रश्न है कि केवल भारतीय भाषा को ही भारत की संघीय राजभाषा बनाना चाहिए। वस्तुतः समस्त उत्तर भारत के लोगों की मातृभाषा हिंदी नहीं है। इस क्षेत्र में अनेक उपभाषाएँ तथा बोलियाँ जैसे, मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, ब्रजभाषा, राजस्थानी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी आदि आदि बोली जाती हैं। ये सब हिंदी परिवार की हैं। भाषा वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक एकता के कारण इस क्षेत्र के लोग हिंदी को मातृभाषा के रूप में मानते हैं। यह समझने की बात है कि उत्तर तथा मध्य भारत के लोगों ने भाषा की एकता के नाम पर त्याग किया है। दुर्भाग्यवश यह बात द्रविड़ कुल की भाषाओं में नहीं है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम् एक दूसरे से इतनी भिन्न और अपरिचित हैं कि एक भाषाक्षेत्र की जनता दूसरे क्षेत्र की भाषा बिल्कुल समझ नहीं सकती। सीमा क्षेत्रों में अवश्य ही मिली-जुली भाषाएँ हैं, किंतु उनसे सबका काम नहीं चलता। गुजराती और मराठी की बात अलग रखें। ये चारों द्रविड़ कुलोद्भूत भाषा-भाषी परस्पर किस माध्यम से बातें करेंगे? आज अँगरेजी का माध्यम है, पहले यह काम संस्कृत करती थी। यदि अँगरेजी हटती है तो यह भार स्वभावतः ही हिंदी पर पड़ता है। हम चाहते हैं कि अँगरेजी भारत से हटे, वह विद्या बुद्धि का माध्यम भले ही रहे, हमारे विचार विनिमय का माध्यम नहीं रहे। यदि दक्षिण भारत के कुछ लोगों को हिंदी से इतनी चिढ़ है तो वे हिंदी को अपना माध्यम नहीं बनायें, हिंदी के अतिरिक्त किसी दूसरी भारतीय भाषा को ही माध्यम बना लें। हम इतना ही चाहते हैं कि संघीय राजभाषा के रूप में अँगरेजी का बहिष्कार प्रत्येक स्थिति में हो। अँगरेजों को देश से हटाने के लिए भारत की जनता ने जो त्याग और बलिदान किया वह अँगरेजी से इतना मोह रखेगी, यह बात समझ में की नहीं है। कारण स्पष्ट है, यह गृह-कलह है। दो-चार गिने-चुने रूठे व्यक्तियों को मनाने के लिए स्वाभिमान को तिलांजलि नहीं देनी चाहिए। हम थोपना नहीं चाहते, किंतु क्या हम अपने देशवासियों इतना कहने का भी अधिकार नहीं रखते कि वे भाषा का महत्त्व समझें। यह इतना सत्य है कि वे मानें या न मानें, हम कहते ही रहेंगे।

इधर गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने भा राज्यों के मुख्य मंत्रियों को संबोधित करते हुए कहा है यदि कोई राज्य सरकार अपने राज्य में २६ जनवरी १९६५ के बाद भी अँगरेजी का व्यवहार रखना चाहे तो उसे इसके लिए अलग से विधान बनाना पड़ेगा। इस अर्थ यह होता है कि जिन राज्यों ने हिंदी को विधान राजभाषा मान लिया है वे यदि अपने विधान में संशोध नहीं करते या अँगरेजी को रखने के लिए अलग विधा नहीं बनाते तो २६ जनवरी, १९६५ के बाद अँगरे स्वतः बाधित हो जायगी और उसका प्रयोग अवैधानि माना जायगा। यह एक सुअवसर है कि जिसका ला हिंदीभाषी राज्यों को उठाना चाहिए। हमें इस बात सावधान रहना है कि भारत-सरकार हिंदीभाषी रा को २६ जनवरी, १९६५ के बाद अँगरेजी को भी रख के लिए बाध्य नहीं करे। हमारा संविधान मुख्यतः संघी है, किंतु बहुत सी बातों में एकीय शासन के रूप में का चलता है। यदि भारत-सरकार हिंदीभाषी राज्य सरकार को हिंदी के साथ-साथ अँगरेजी को भी सहकारी राजभा बनाने के लिए बाध्य करे तो यह स्पष्ट मानना पड़ेगा कि राज्य सरकार या राज्य की जनता को कोई स्वतंत्र प्राप्त नहीं है। यह स्थिति बड़ी दुखद और असह्य होगी। हिंदीभाषी राज्य सरकार के नेताओं का यह कर्त्तव्य है कि ऐसी स्थिति आने पर इसका खुलकर विरोध करें। मैं गृह मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की ईमानदारी में विश्वा करता हूँ और उनसे यह उम्मीद रखता हूँ कि हिंदीभा राज्यों में वे ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न न होने देंगे।

बातें बहुत हैं, किंतु पत्र का कलेवर बहुत बढ़ गया है इसलिए अब इसे यहीं समाप्त करता हूँ।

आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं। मेरी बधाई स्वीकार करें।

भवदीय

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

‘दम्पति वाक्य विलास’ के दो प्रकाशित संस्करण

श्री अगरचन्द नाहटा

सरस्वती’ के जून ’६३ के अंक में श्री प्रभुदयाल मीतल का ‘ब्रजभाषा का एक ज्ञानकोश’ शीर्षक प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने गोपाल कवि रचित ति वाक्य विलास’ का परिचय प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ की जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसका य देतेहुए उन्होंने “इसमें २७ अध्याय हैं, जिन्हें प्रबन्ध म दिया गया है” लिखा है। उनके लेख से ऐसा त होता है कि यह ग्रन्थ अप्रकाशित है या कम से न्हें इसके प्रकाशित होने की जानकारी नहीं है। कवि की स्वयं लिखित संवत् १९०० की प्रति के र से प्रस्तुत लेख प्रकाशित किया है। पर यह ग्रन्थ र छप चुका है। जैसा कि उन्होंने लिखा है कि एक श की तरह यह ग्रन्थ उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। इसकी ओर अब से काफी वर्ष पहले उस समय के क किसनलाल श्रीधर और खेमराज श्रीकृष्णदास न जाना स्वाभाविक था। किसनलाल श्रीधर ने ला की छपाई द्वारा प्रकाशित किया था पर वह प्रति मुझे प्राप्त न होने से उसका प्रकाशन कब हुआ, रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी करीब र्ष पहले तो यह छपा ही होगा क्योंकि दूसरे को ६६ वर्ष हो गये। इसकी द्वितीयावृति जो श्रीकृष्णदास ने अपने बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस द्रित करके प्रकाशित की थी वह हमारे अभय जैन लय में है। विक्रम संवत् १९५२ अर्थात् अब से ६८ र्व यह द्वितीयावृत्ति निकली थी। उसके प्रारम्भिक न में पाठकों को सम्बोधित करके लिखा गया है महाशय--पाठक गण ! मेरे मन में बहुत दिनों से ही लालसा लगी थी कि भाषा के ललित छन्दों में कोई पुस्तक छपे कि जिसमें उद्यमों के गुण-दोष झलगये हों, सो आज दिन महाराज श्री १०८ श्रीकृष्ण धिपति की कृपाकटाक्ष से दम्पति वाक्य विलास नामक श्रीयुत् कवि गोपालराय निर्मित कविश्वर श्री जयलाल द्वारा मेरे हस्तगत होने से मेरी आशा पूरी हुई। इस क को प्रश्नोत्तर की रीति से उक्त कवि ने बड़ी मता से बनाया है कि जिसमें पुरुष ने प्रत्येक उद्यमों दोहा और कवित्त में वर्णन किया है और स्त्री ने उसे ही उक्त छन्दों में उसका दोष दिखाया है। यद्यपि संस्कृत में सुभाषित रत्नाकर, वृहद् सारंगधर आदि बहुत-से ग्रन्थ छपे हैं परन्तु वे संस्कृतज्ञ जनों को ही आनंददायक हैं। हमारे भाषा के रसिकजनों की तृप्ति उनसे होना असम्भव है। यह विचार के रसिकजनों के विनोदार्थ यह ग्रन्थ प्रथम किसनलाल श्रीधर ने छापा। परन्तु शिला की छपाई तथा काव्य की अशुद्धताई के कारण काव्यानुरागियों को प्रिय न हुआ। अतएव उनसे ग्रन्थाधिकार लेकर द्वितीयावृत्ति वाजपेयी पं० शिवदुलारे द्वारा परिशोधित कराय मुद्रित किया है।”

इससे स्पष्ट है कि किशनगढ़ के राज्य-मान्य कवि ब्रह्मदीपीय सेवक ज्ञातीय कवीश्वर श्री जयलाल द्वारा इसकी हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी। श्री जयलाल वास्तव में ही उस समय के सुकवि और उदार भावना वाले व्यक्ति थे। उनके रचित ‘छप्पन भोग चंद्रिका’ का पूर्वार्द्ध “नागर समुच्चय” के प्रारम्भ में छपा है, जिसमें श्री नागरीदासजी की समस्त रचनाओं का संग्रह सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्री नागरीदासजी का विस्तृत जीवन-चरित्र बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है। उसमें कवीश्वर जयलाल की दी हुई जानकारी का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसी तरह सुप्रसिद्ध मुंशी देवीप्रसादजी ने ‘राज रसनामृत’ में भी किशनगढ़ के महाराजाओं की जीवनी एवं कविता का जो विवरण प्रकाशित किया है उसमें भी राजकवि जयलालजी की उल्लेखनीय सहायता थी। मुंशीजी ने स्वयं लिखा है कि “इन (८ राजाओं) की कविता और संक्षिप्त जीवनी आगे लिखी जाती है। किशनगढ़ के राज्य कवि सेवक जयलालजी से इसके हस्तगत करने में बड़ी सहायता मिली।”

दम्पति वाक्य विलास की हस्तलिखित प्रति में २७ अध्याय या प्रबन्ध होने का उल्लेख श्री मीतलजी ने किया है पर प्रकाशित संस्करण में तो २१ विलास या प्रकाश हैं। पता नहीं मीतलजी ने संख्या देने में भूल की है या प्रकाशित संस्करण में ६ अध्याय कम हैं। यहाँ प्रकाशित संस्करण के २१ अध्यायों के वर्णनों के सूचक जो नाम छपे हैं उन्हें पद्य संख्या के साथ नीचे दिया जा रहा है, जिससे

हस्तलिखित प्रति से मिलान करके यह निर्णय किया जा सके कि ६ अध्यायों की संख्या में कमी-बेसी होने का वास्तविक कारण क्या है ?

१–धन सुख दुख वर्णनं नाम	प्र० विलासः	पद्य	२७
२–परदेश सुख दुख वर्णनं नाम	द्वितीय ,,	,,	२०
३–निज देश सुख वर्णनं नाम	तृतीय ,,	,,	४४
४–अमल प्रबन्ध वर्णनं नाम	चतुर्थो ,,	,,	३३
५–रुजिगार सूचि वर्णनं नाम	पंचमो ,,	,,	२७
६–ब्राह्मण रुजिगार तथा शास्त्र रुजिगार वर्णनं नाम	षष्ठो ,,	,,	७४
७–मंत्र प्रबन्ध वर्णनं नाम	सप्तमो ,,	,,	४०
८–साधु प्रकरण वर्णनं नाम	अष्टमो ,,	,,	७९
९–सहर प्रबन्ध वर्णनं नाम	नवमो ,,	,,	६४
१०–राजप्रबन्ध वर्णनं नाम	दशमो ,,	,,	१०४
११–फिरंगी रुजिगार वर्णनं नाम	एकादशमो,,	,,	४९
१२–वणिज व्यवहार प्रकरण वर्णनं नाम	द्वादशो ,,	,,	७६
१३–षट रकानि वर्णनं नाम	त्रयोदशो ,,	,,	२५
१४–जाति प्रबन्ध वर्णनं नाम	चतुर्दशो ,,	,,	८४
१५–अधम रुजिगार वर्णनं नाम	,,	,,	५५
१६–अधमाधम रुजिगार वर्णनं नाम	,,	,,	३२
१७–बाल्यादि अवस्था जगत प्रबन्ध ,,	,,	,,	५२
१८–परमार्थ रुजिगार वर्णनं नाम	,,	,,	२४
१९–कलहा पच्चीसी तथा फुहड़ पच्चीसी	,,	,,	२५
२०–शांति करुणा अष्टक वर्णनं	,,	,,	९-९
२१–ज्ञानोपदेश ग्रन्थ फल स्तुति	,,	,,	२८

कवि ने अन्त में अपनी १८ रचनाओं के नाम वाला जो पद्य हस्तलिखित प्रति में लिखा है वह मुद्रित संस्करण में नहीं है। श्री मीतलजी ने "३८० पृष्ठों में हस्तलिखित प्रति लिखी गयी है अतः यह एक बड़ा ग्रन्थ है" लिखा पर प्रति का साइज क्या है ? पद्य-संख्या कितनी है आदि ग्रन्थ का परिमाण उन्होंने नहीं बतलाया। मु ग्रन्थ १३८ पृष्ठों का है और प्रत्येक अध्याय की पद्य-सं मैंने ऊपर दे ही दी है। सम्भव है खेमराज श्रीकृष्ण ने मूल ग्रन्थ में कुछ कमी या रद्दोबदल कर दिया हो इसका निर्णय तो हस्तलिखित प्रति के साथ मिलान क से ही हो सकेगा। उस समय के लोगों की रुचि किस त के ग्रन्थों की ओर अधिक थी इसका वर्णन करते हुए क ने लिखा है––

"आल्हखंड ढोलादि दै, ऐसी वैसी बात।
इनके रिझवैया बहुत, या जग में विख्यात ॥१५॥
आल्हखंड ढोला रांझें बात पूतरी की
गोरेमियाँ बादर में मति गहगही है।
इश्क लैलै-मजनू को गावत निहालदे
छबीलिया भटयारी मांझ बुद्धि बही गई है।
दौलवषताजी माधवानलकी कथा बहु
किस्सा औफरोसिन में मति महि गई है।
कहत 'गुपाल' आजि कालि के जमाने बीच,
ऐसी ऐसी बातन की चाह रहि गई है।

कवि ने इससे पहले रस सागर आदि ग्रन्थ बनाये इसका उल्लेख भी अन्तिम अध्याय में इस प्रकार कि है :––

"रससागर दै आदि बहु, किए ग्रन्थ अभिराम।
कठिन अर्थ श्लेषयुत, कीने तिन में काम॥

दंपति विलास का रचना-काल व उससे पूर्व कई ग्रं रचे जाने के उल्लेख से कवि का जन्म १८४० के लग होना संभव है।

कवियों का प्रिय—'चक्रवाक'

श्री चक्रधर नलिन

शास्त्रवेत्ता लीनस महोदय चक्रवाक को 'एनस' जाति का पक्षी बतलाते हैं, तथा वैज्ञानिक भाषा में कासारका' अथवा 'कासारका रीटेंला' कहते हैं। तः चक्रवाक को 'रुडी गूज' या रुडी शैल ड्रेक के अभिहित किया गया है। बाहुल्यतः नर चक्रवाक बाई २५½ से २७ इंच तक, और डैने की १४½ इंच तक होती है। दुम और चोंच क्रमशः ६ इंच इंच दीर्घ होती हैं, सिर का रंग कुछ पीला और होता है, जो क्रमशः पीठ और छाती पर गहरा हो जाता है। मादा चक्रवाक के अंग नर के समान ते हैं, किन्तु रंग अपेक्षाकृत कुछ अल्प होते हैं, तथा काला पट्टा नहीं होता है।

वियों का प्रिय 'चक्रवाक' साहित्य में अमर है। क ने लिखा है "प्रेम की आनन्दविधायिनी दशा मनुष्य नरेतर प्राणियों से भी अपनी रागात्मक यों, भावनाओं और भावनाओं का स्पष्ट भास हं तो समस्त सृष्टि के विभिन्न उपादानों में व्याप्त साम्य की अभिव्यंजना होती है।" चक्रवाक भारतीय जीवन-बोध के अनुकूल मानवीय प्रमुख क वृत्ति-प्रेम के मूर्त आदर्श को प्रस्तुत करता है। की वियोगावस्था तथा मिलन की बाधाओं और ाओं का मार्मिक रूप-चित्रण चक्रवाक-मिथुन की बड़े अलौकिक ढंग से उद्घाटित करती है।

क्रवाक मिथुन की रात्रि वियोग के रूपकत्व का अलंकारशेखर (श्लोक १५) और अलंकारचिन्ता- (श्लोक ७८) में पर्याप्त मिलता है। महाकवि दास ने 'कुमारसंभव' के पाँचवें और २६वें श्लोक राक्रन्दी चक्रवाकों का उल्लेख और उसी समान ी की विरह-विह्वलता का बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। वाल्मीकीय रामायण में इनके शर- ीन तथा वर्षाकालीन गमन के अनेक रोमांचकारी विद्यमान हैं—

"सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः
प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकाः। ६

वर्षा ऋतु की सुहावनी वेला में हँसते गाते समीर मानसरोवर के प्रेमी चक्रवाक अपनी प्रेमिकाओं के साथ चले गये हैं! नवीन पुष्प फलादि उपहारों से परिपूर्ण ऐश्वर्यशाली चक्रवाक रूपी स्तनों को ऊँचे उठाते हुए मानसरोवर की सुदूर यात्रार्थ चक्रवाक नीलाकाश में अत्यंत दूर उड़ गये हैं। नदियाँ भी अपने आराध्य पति के समीप टूटे-फूटे किनारों को हटाकर जा रही हैं—

नद्यः समुद्ग्राहितचक्रवाका-
स्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा।
तृप्ता नवप्राभृतपूर्णभोगा
द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति। ७

या

अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः
स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः
महानदीनां पुलिनोपयातैः
क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकाः।

महाकवि कालिदास ने 'ऋतुसंहार' में इन्हें उत्पल और केशर भक्षण करनेवाला बतलाया है। महाभारत के आदि पर्व में हंस-कलहंस और चक्रवाक की उत्पत्ति धृतराष्ट्री से बतलायी गयी है—

धृतराष्ट्री तु हंसश्च कलहंसास्य सर्वशः
चक्रवाकांश्च भद्रा तु जनयामास सैव तु।"

हिन्दी के अमर कवि संत तुलसीदास चक्रवाक मिथुन का वर्णन अपने अनेक स्थलों पर करते हैं—

चक्रवाक मन दुख निश पेखी, जिमि दुर्जन पर संपति देखी।
देखहि चक्रवाक खग नाही, कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।

महाकवि कबीरदास अपने चमत्कारपूर्ण दोहे में शरतकालीन नदी के निर्मल जल में प्रणयलीला में निमग्न चक्रवाक का वर्णन करते हैं जो अत्यंत मनमोहक है—

ढलता सूरज देखिके चकवी दीनी रोय।
चल चकवा वा देश में रैन जहाँ नहिं होय!

चक्रवाक का बड़ा मधुर मूर्तात्मक सम्यक् चित्रण महाकवि सूरदास ने संयोग पक्ष में किया है—जो अनिर्वचनीय है—

विपुल पुलक कंचुक बंद छूटे हृदय अनंद भये,
कुच जुग चक्रवाक अवनि तजि अन्तरि रैनि गये।

प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि बिहारी चक्रवाक का वर्षा ऋतु में बड़ा मनमोहक वर्णन करते हैं——प्रतीक सामने खड़ा हो जाता है——

पावस घन अँधियार यहँ रहचो भेद नहिं आन।
रात-द्यौस जान्यो परत लखि चकई चकवान।।

वास्तव में चक्रवाक पक्षी एक भ्रमणशील पक्षी है जो अगस्त के अन्तिम दिनों में नेपाल में उत्तर की ओर से आना प्रारम्भ करते हैं और यह क्रम सितम्बर के मध्य तक अनवरत रहता है। वे मार्च के मास में दक्षिण की ओर लौटते हैं और मई के मध्यांतर उत्तर की दिशा को प्रयाण कर जाते हैं। यह पक्षी आधुनिक लेखकों तथा पक्षि-शास्त्रियों के निरीक्षण के अनुसार अधिकांशतः सिंध, बलोचिस्तान, पंजाब, नेपाल, बंगाल, राजपूताना, मध्य-भारत, कच्छ और गुजरात में दिखाई पड़ते हैं। चक्रवाक सिन्धु नदी और सिन्धु प्रान्तवर्ती झीलों के किनारे मिथुन-किलोल करते हुए पाये जाते हैं। रात में चक्रवाक एक दूसरे को उत्कंठा के स्वरों में पुकारते हैं! यह दिन में बहुधा आराम करते हैं तथा रात्रि को विचरण आदि की ओर ध्यान देते हैं। चक्रवाक आहार की खोज में बड़ी दूर-दूर तक चले जाते हैं।

चक्रवाक पक्षी का कवियों ने बड़े प्रमुदित होकर वर्णन किया है। इस पक्षी की भावुकता तथा निरालेपन से हर कलाकार प्रभावित हो जाता है। चक्रवाक का यह पवित्र प्रेम शाश्वत है, अक्षुण्ण है। वह सदैव चेतन रहेगा। उसमें प्रेम का सन्देश है, युग का उद्‌बोध है तथा रस का भंडार है। चक्रवाक प्रेम के पीछे पागल है और इस प्रकार निर्लिप्त होकर भी वह जगत को पारमार्थिकता का संदेश प्रदान करता है। ये अपने में अनेक गाथायें समाहित किये हुए हैं। महाकवि सूरदास ने युग को चक्रवाक का वियोग सन्देश देते हुए कहा है——

"निशि दिन चकई ब्याज बकति है प्रेम मनोहर हारी'

जो अमर है——तथा शाश्वत सत्य का पुनर्स्थापन है! और अंत में चकई को सम्बोधन करके ही जीव के ब्रह्म से सनातन वियोग को समाप्त करने के लिए सूर ने चकवे से कहलाया है——

चकई री! चलु चरन-सरोवर जहाँ न प्रेम-वियोग!

* * *

यहाँ से दूर जा बरसो!

श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव

यहाँ से दूर जा बरसो
क्षितिज में ओ घिरे बादल!
यहाँ है यक्ष का आँगन,
यहाँ नित भींगता है मन!
यहाँके हर ,नयन गीले,
मनाते हैं सदा सावन!
भला फिर क्यों रुकोगे तुम?
यहाँ तो हर हृदय घायल! यहाँ

वहाँ जाओ पिया बनकर,
मिलन का रूप सुंदर धर!
जहाँकी चातकी प्यासी,
बुलाती है तुम्हें जलधर!
बता देना वहाँ जाकर,
यहाँका हर पिया पागल! यहाँ

यहाँ आँसू विरह के हैं,
बरसते जा रहे नित दिन।
वहाँ उन्मत्त हो उमड़ो,
बरसते ही रहो रिमझिम!
वहाँकी हर विरहिणी का
उड़ाओ रेशमी आँचल! यहाँ

यहाँ हर साध झूठे हैं,
यहाँ हर मास रूखे हैं।
विरह की हर घड़ी मादक
मिलन को प्राण भूखे हैं।
कहो मनमोहनी से जा,
यहाँका हाल रे बादल!
यहाँसे दूर जा बरसो,
क्षितिज में ओ घिरे बादल!

पेटेंट औषधियाँ व नशाखोरी

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

कल हम पेटेंट दवाओं के दास बन गये हैं। हमसे अधिक हमारे डाक्टर उनकी मुट्ठी में हैं। भी मर्ज पर "मिक्सचर"--अनेक औषधियों को र शीशी में गीली कड़वी दवा देने की प्रथा नहीं सीधी-सादी सी तरकीब है गोली खा लेना। के लिए डाक्टर के पास जाने की भी जरूरत पेटेंट दवाओं का सूचीपत्र देखकर रोगी अपना कर सकता है।

औषधियाँ कई वर्गों में विभाजित हैं--सल्फा बारबिटुरेट्स, ब्रोमाइड आदि। इन दवाओं में ता है। तुरंत प्रयोग करते ही लाभ मालूम है और आदमी इनका दास बन जाता है। भाग-दौड़ की दुनिया में इतना अवकाश कहाँ कर चिकित्सा कराये। जरा सी देर में सुई लगा र छुट्टी मिली।

गी को एक ही प्रकार की पेटेंट दवा लाभ नहीं साल में सैकड़ों व्यक्ति पेनिसिलिन की सुई मर जाते हैं। कितने लोग गलत सुई के उप- जन्म भर के लिए किसी विशेष रोग के शिकार ते हैं। साधारण एस्पीरिन की गोली खाकर व्यक्ति भयंकर रोगों के शिकार बन जाते हैं। इन दवाओं की बड़ी खपत है। संयुक्तराज्य में साल भर में ९० करोड़ गोलियाँ ऐस्पीरिन में आ जाती हैं।

हमारे इस लेख का विषय ऐसी औषधियों से हानि- की समीक्षा नहीं करना है। हम एक दूसरी ही कहना चाहते हैं। आजकल की अधिकांश पेटेंट धियों के निर्माण में कोकेन, हाइड्रेल आव क्लोरोल, हुएना आदि मादक चीजों का उपयोग होता है। र औषधि के सेवन के साथ ही उनके भीतर बैठे नशे का शिकार बन जाता है। बिना जाने, बिना जाने ही, वह उस औषधि का बराबर सेवन करने ता है, इसलिए नहीं कि उसका मर्ज कायम रहता है क इसलिए कि शरीर में वह नशा न पहुँचने के कारण वापस आ जाने का भय रहता है। आधुनिक समाज इस प्रकार के नशाखोर बहुत बढ़ रहे हैं। एक बार जिसके शरीर में नशा का घुन लग गया, उसका मनुष्यत्व तथा व्यक्तित्व एक प्रकार से समाप्त समझिए। आज के युग में अपराधों में वृद्धि का कारण भी पेटेंट नशीली दवाएँ हैं।

नशाखोर की व्याख्या

नशेबाज दवाखोर या नशाखोर की हम मनगढ़न्त तथा अपने मन की व्याख्या नहीं करना चाहते। सन् १९५० में विश्व स्वास्थ्य संघ की एक विशेष समिति ने इसकी व्याख्या निर्धारित की है। उसके अनुसार दवाखोर नशेबाज की नीचे दी गयी पहचान है:--

(१) उस औषधि के सेवन की इच्छा तीव्र हो कि येन केन प्रकारेण उसे प्राप्त कर लिया जाय।

(२) खूराक की मात्रा बढ़ाने की तबीयत हो।

(३) उस दवा पर मन तथा शरीर की गति निर्भर करे।

(४) दवा के सेवन से व्यक्ति तथा समाज के जीवन को हानि पहुँचे।

डा० इजाबेल और डा० ह्वाइट का कहना है कि इसी श्रेणी में वे भी दवाएँ हैं जिनका सेवन नींद लाने के लिये या दर्द कम करने के लिये किया जाता है। जिन दवाओं में अफीम पड़ी होती है या जिनके द्वारा मन या शरीर सुन्न कर दिया जाता है, वे भी इसी श्रेणी में हैं। कैफीन की साधारण मात्रा का प्रयोग करते समय हमको अनुमान भी नहीं लगता कि वह किस सीमा तक हमारे शरीर में घुन कर बैठेगा। नींद लानेवाली दवा अब आत्म-हत्या का साधन बन गयी है। यही नहीं, गर्भवती स्त्रियाँ नींद आने की दवा बहुत खाती हैं। पर उनके पेट की सन्तान पर इतना भयंकर असर पड़ता है कि पिछले छः साल में यूरोप तथा अमरीका में १२,००० ऐसे बच्चे पैदा हुए हैं जिनको या तो हाथ नहीं हैं, या पैर नहीं हैं, या हाथ-पैर दोनों लापता हैं, इत्यादि।

शराबी और दवाखोर

मादक औषधियों के शिकार तथा शराबी में बड़ा अन्तर है। डा० व्लूलर ने इसकी समीक्षा की है। उनका कहना है कि शराबी दुर्बल मन, दुर्बल शरीर, दुर्बल

स्वभाव का तथा प्रायः चिड़चिड़ा होता है। शराबी विलासप्रिय तथा भावुक होता है। डा० व्लूलर के अनुसार ९८.९ प्रतिशत शराबी दुर्बल स्वभाव के होते हैं। १०.७ प्रतिशत शराबी स्वभावतः आत्महत्या की प्रवृत्तिवाले होते हैं तथा ४.१ प्रतिशत अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं।

डा० कील्ज होल्ज का कहना है कि कोकीन और अफीम से बनी दवाएँ या 'मार्फिया' की दवाओं के सेवन करनेवाले ७४ प्रतिशत व्यक्ति स्वभाव से चिड़चिड़े, तुनुक मिजाज, लड़ाकू, उदासीन, मन डूबा रहे, बड़ी जल्दी उत्तेजित हो जानेवाले बन जाते हैं। ४.६ प्रतिशत कामुक हो जाते हैं और १३.७ प्रतिशत आत्महत्या की सोचा करते हैं।

शराबी या नशीली चीजों के सेवन करनेवाले १२२ मरीजों की परीक्षा करने से पता चला कि उनमें से ६.६ प्रतिशत बचपन में माता के सुख से वंचित हो गये थे, २०.५ प्रतिशत के पिता बचपन में मर गये थे, २३.७ प्रतिशत के माता-पिता दोनों ही नहीं थे पर ४५.९ प्रतिशत ऐसे थे जिनको बचपन में परिवार तथा माता-पिता का सुख भी प्राप्त था फिर भी वे नशा खाने लगे थे। इसलिए यह कहना कि मातृ-पितृ-विहीन ही शराबी या मदकची होते हैं, गलत होगा। किन्तु डा० लामार्ट और डा० बैटर्से का कहना है कि उन्होंने जितने मादकद्रव्य-सेवियों की परीक्षा की (दवाखोर नहीं) उनमें फी दस में से आठ ऐसे थे जिनको बचपन में परिवार या पिता-माता का सुख तथा उनकी देखरेख का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। उनके अनुसार १६.५ प्रतिशत शराबियों या मदकचियों का जीवन छात्रावासों में तथा घर के सुख से रहित बीता था। इसी डाक्टर का कहना है कि यदि परिवार का जीवन शुरू से सुखी तथा ममतामय रहता है तो आदमी नशे की ओर कम जाता है।

डा० विली कसनेर (पश्चिमी जर्मनी के विद्वान्) ने साबित किया है कि शराबी ज्यादातर अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं। उन्होंने जितने शराबियों की परीक्षा की उनमें से ४०.२ प्रतिशत अपराधी थे। वे भी ज्यादातर चोरी के अपराधी थे, चाहे पुरुष हों या स्त्री। डा० कसनेर लिखते हैं:——

"अपने 'लोभ' की तृप्ति तथा 'प्यास' बुझाने की कभी न बुझनेवाली 'प्यास' प्रायः एक ही मौ कारण से पैदा होती है——वह है शुरू का दूषित स्नेह-रहित बचपन।"

दवाखोर नशेबाज का स्वभाव

शराबी या मदकची की तुलना में दवाओं का करनेवाले लोग बहुत कम अपराधी होते हैं। वे चमारी के फेर में कम पड़ते हैं। उनमें आत्महत्या प्रवृत्ति ज्यादा होती है। दवा के नशेबाज प्रायः लिखी श्रेणी के व्यक्ति होते हैं:——

(१) चिकित्सा का पेशा करनेवाले या प और पढ़ाने का काम करनेवाले व्यक्ति।

(२) ऐसे लोग जिनको कभी काफी कष्टदा बीमारी हो गयी थी उन्हें मार्फिया या उसकी श्रेणी दवाओं से लाभ पहुँचा, और फिर वे उन दवाओं के आ बन गये।

(३) महत्त्वाकांक्षी, क्रियाशील नर-नारी जि जीवन की ठोकरों ने विफल बनाया अतएव प्रयत्न परिणाम के बीच की भयंकर खाई ने उन्हें दवाओं आदी बना दिया।

(४) घर-गृहस्थी के काम से या अपनी नौकरी बोझ से लदी स्त्रियाँ ऐसी दवाओं की शरण लेती हैं

(५) अपने देश तथा जन्मभूमि से निकाले शरणार्थी।

खोज करनेवालों ने कई महत्त्व की बातें ढूंढ़ निका हैं। अविवाहितों की तुलना में विवाहित स्त्री-पुरुष अधिक शराबी और मदकची होते हैं। वैवाहिक जी की विफलता की यह करुण कहानी है। ऊपर हम १२२ मरीजों की परीक्षा का जिक्र किया है। उनमें ६२ विवाहित थे। २१ अविवाहित, १० का तला हो चुका था।

एक दूसरी परीक्षा से यह पता चला कि पति-प की उम्र का भी नशेबाजी पर बड़ा प्रभाव पड़ता है एक चिकित्सालय में ८६ दवाखोर पुरुष तथा १५ महिला दाखिल हुई थीं। इनमें २४ पुरुषों की स्त्रियाँ उन १३ वर्ष या इससे अधिक बड़ी थीं। ३९ की स्त्रि उम्र में काफी कम थीं। ८ स्त्रियों के पति उनसे में कहीं अधिक थे। शराब का सेवन पुरुषों में २५- वर्ष तथा स्त्रियों में प्रायः ४०-४५ की उम्र से शुरू हो

बढ़ जाता है। दवाओं का सेवन पुरुष-स्त्री दोनों वर्ष की उम्र से शुरू होता है या काफी बढ़ है। इन दोनों प्रकार की नशीली चीजों का सेवन नीचे लिखे कारणों से होता है :--

दवा का नशा

(१) बदन में दर्द
(२) दिमाग में उलझन
(३) काम ज्यादा करने की शक्ति प्राप्त करने
च्छा।
(४) चित्त की शान्ति के लिए
(५) वासना की तुष्टि के लिए

मादक द्रव्यों का नशा

(१) समाज में मेल-जोल बढ़ाने के लिए।
(२) दिमागी उलझन मिटाने के लिए।
(३) शरीर में स्फूर्ति के लिए।
(४) चित्त की शान्ति के लिए।
(५) वासना की तुष्टि के लिए।
(६) नींद लाने के लिए।
(७) समाज के प्रति घृणा तथा उपेक्षा के कारण।
(८) उत्तेजना के लिए।

बात ध्यान में रखने की है। दवा के नशा का और प्रकार के नशे की ओर नहीं बढ़ता। पर दवा के नशे की ओर जरूर बढ़ता है। उसका शराब से पूरा नहीं होता। वह दवा का भी आदी ता है।

ली दवाओं का जन्म और परिणाम

दर्द को तुरन्त शान्त करनेवाली नशीली दवा का सन् १८६९ में हुआ था जब डा० लीब्रिख ने क्लो- राइड्रेट का उपयोग किया था। तब से ऐसी दवाओं बाढ़ आ गयी और सन् १९०५ में ब्रिटिश मेडिकल सियेसन ने इन दवाओं को "बड़ी गुणकारी" औष- धि घोषित किया था। सन् १९५५ में ग्रेट ब्रिटेन में औषधियों का उपयोग इतना बढ़ गया था कि साल में १०,००,००,००,००० खूराक यानी साढ़े करोड़ रुपये की दवा खर्च हुई थी। सन् १९५५ ब्रिटिश डाक्टरों ने १,०६,००० नुस्खे लिखे थे। में १८,००० केवल ऐसी दवाओं के थे।

सन् १९६० में ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी दवाओं का सेवन करनेवाले ११·६४ प्रतिशत पुरुषों ने तथा १६·३८ प्रतिशत स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली थी यानी फी दस लाख जीवित पुरुष तथा स्त्री पीछे १३९ पुरुष तथा ८७ स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली। ऐसी दवा खानेवाले ८४ व्यक्ति आकस्मिक दुर्घटना के शिकार हुए।

आदतन नशीली दवाओं के इस्तेमाल करनेवालों की संख्या, संयुक्तराष्ट्र परिषद् के अनुसार, ३१४२ कनाडा में है, ४६,२५० संयुक्तराज्य अमरीका में है तथा ४,३२,६०९ भारतवर्ष में है। संयुक्तराज्य अमरीका के दवाखोर नशेबाजों का उम्र के हिसाब से विभाजन इस प्रकार है :--

१८ से २१ वर्ष	५,५५०
२१ से ३०	२७,७५३
३० से ४०	८,३२८
४० से ऊपर	४,६२५

स्वेडन में १७ वर्ष की उम्र में ही लगभग ४३ प्रतिशत पुरुष तथा २० प्रतिशत स्त्रियाँ (सन् १९५२-५४ में) मादक द्रव्य का सेवन कर चुकी थीं। जापान सरकार की रिपोर्ट है कि वहाँके बाल अपराधी "प्रापामिन" या "मिथिल प्रापामिन" नामक एक नशीली दवा का नित्य सेवन करते हैं। फ्रांस में सन् १९५७ में फी १,००,००० पुरुष पीछे १०९३ पुरुष--१५-१७ वर्ष की उम्र के बीच में, मादक द्रव्य सेवन के अपराधी थे। हांगकांग में सन् १९५९ में ऐसे अपराधियों की संख्या डेढ़ लाख से १,८०,००० तक थी। वे सब मदकची थे।

इन दवाओं के बनाने में अफीम की बहुत खपत होती है। ऐसी दवाएँ सबसे ज्यादा पश्चिमी जर्मनी में बनती हैं। एक ही दवा को भिन्न देशों के लिए भिन्न नाम रखकर बेचा जाता है। सन् १९५९ में पश्चिमी जर्मनी ने ३८,८०,००० किलोग्राम अफीम खरीदा था। कोकीन और पोस्ते के दाने का छिपा व्यापार बढ़ता जा रहा है।

इस प्रकार "शीघ्र दर्द दूर करनेवाली दवाओं" के द्वारा हम अफीम, कोकीन आदि के नशा के शिकार बनते जा रहे हैं। सभ्यता के लिए इसका परिणाम भयंकर हो रहा है।

तुञ्चत्तु रामानुजनेषुत्तच्छन्—केरल के तुलसीदास

कुमारी राधा अम्मल

उत्तर भारत के घर घर में जिस आदर से गोस्वामी तुलसीदासजी का नाम लिया जाता है उसी आदर से केरल में महलों से लेकर झोपड़ियों तक एषुत्तच्छन् का नाम प्रसिद्ध है। मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र की जीवनी की झलक तुलसी ने अपने "मानस" में दिखायी, इधर एषुत्तच्छन् ने तोते की वाणी में यही गाथा कहलायी—"रामायणं किलिप्पाट्टु"।

महात्माओं की जीवनी के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियों का होना स्वाभाविक सा जान पड़ता है। एषुत्तच्छन् भी इसके अपवाद नहीं। उनके जन्म के समय, कोल्लवर्ष* ६५०—७५० में, केरल में सनातनी नम्पूतिरियों का बोलबाला था। वे क्या कलाओं और क्या साहित्य में, सब में प्रवीण थे। ऐसे ही एक नम्पूतिरि ब्राह्मण के पुत्र थे—रामानुज। लेकिन इनकी माता एक "चक्काल नायर" औरत थीं। (चक्काला जाति से नायर हैं, लेकिन कोल्हू का अर्थात् तेली का काम करने के कारण हीन दृष्टि से देखे जाते थे।) रामानुज में पिता की विद्याबुद्धि के बीज पड़ गये जो समय पाकर पनप उठे और उनके साहित्य-वृक्ष की कोंपलें फूट पड़ीं। सनातनियों को एक नायर का ऐसा प्रभाव अखरने लगा। उन्होंने व्यंग्य किया—"तुञ्चन्टे चेक्किलएत्रयाटुम् ?" (तुञ्चन् के कोल्हू में कितना पेरा जायगा ?) उत्तर भी तुरंत मिला—"नालुं आरुम्" अर्थात् 'चारों वेद और छहों शास्त्र।' मतलब यह है कि एषुत्तच्छन् वेदविद्यापारंगत एवं शास्त्रज्ञ भी थे। इसी अध्ययन और नैसर्गिक प्रतिभा के कारण तुलसीदासजी के से भाव-गांभीर्य, अलौकिक काव्यकला एवं व्यक्तित्व की छाप इनकी रचनाओं में भी दर्शनीय है।

एषुत्तच्छन् क्रांतिकारी कवि थे। उनके समय में मलयालम कविता के लिए निश्चित सरणि न मिली थी। तब तक तो मलयालम साहित्य की कुल संपत्ति थी—तोलन् के कुछ पद्य, कण्णश कविताएँ और कुछ वटक्कन् पाट्टुकल्*। इसके अलावा कविता की भाषा के
में भी वह अव्यवस्था का समय था। कुछ कवि
मिश्रित मलयालम लिखते थे, तो कुछ ग्रामीण बोली
और कुछ संस्कृतगर्भित भाषा में। मलयालम के सरल
और संस्कृत के सरस पद मिलकर जो भाषा बनी
"मणिप्रवालम्†" कहते हैं। इसीको एषुत्तच्छन् ने
कविता का माध्यम बनाया। तुलसी के समय में भी
के लिए संस्कृत आदृत भाषा थी। फिर भी उन्होंने कवि
के लिए जनभाषा हिन्दी स्वीकार की थी। इसी प्र
एषुत्तच्छन् ने भी जनभाषा से अधिक निकटवर्ती संस्कृ
मिश्रित मलयालम को अपनाया। शंकराचार्य की ज
भूमि केरल में उस समय तक पण्डितों और कवियों
भाषा संस्कृत ही थी जिसे पढ़ा-लिखा समाज ही समझ पा
था, लेकिन एषुत्तच्छन् ने जो कविता लिखी, वह रसोई
में रहनेवाली माताओं, खेतों में काम करनेवाले कृष
और युद्धक्षेत्रों में लड़ाई करनेवाले वीरों के लिए समा
रूप से सुगम, सुबोध एवं आकर्षक थी। इसी कार
उनकी रचनाएँ सब के लिए सुलभ और सुबोध थीं।

अब हमें एषुत्तच्छन् की कला की ओर भी विचा
करना है। तुलसीदास अपने समय की सभी प्रचलि
भाषा-शैलियों और छन्दों में रचना करने में सफल हुए।
इसी प्रकार एषुत्तच्छन् भी विषयानुसार शैली और छन्दों
के आविष्कार तथा प्रयोग में समर्थ थे। अनेक उदाहरण
हमें उनके "भारत" और "रामायण" में मिलेंगे। लड़ाई
के दृश्यों में ललकार और रौद्र तथा वीरता, वेदान्त प्रति
पादन में गंभीर तथा शृंगार वर्णन में शिष्ट और संय
भाषा और शैली का प्रयोग किया गया है। गागर में साग
भरने की प्रवृत्ति एषुत्तच्छन् की प्रतिभा की विशेषता है।
शब्दचित्र भी आप अनुपम खींचते थे। उदाहरण के
लिए अर्जुन के बाण की गति देखिए—'गजवीर का सिर
काटकर, धनुष (प्रतिद्वन्द्वी का) काटकर, वीर भगद

---

* यह केरल का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक संवत् है जो ई० से सन् २५ वर्ष कम है। एषुत्तच्छन् के जीवन-काल का निर्णय अब तक नहीं हो पाया है।

*वटक्कन् पाट्टुकल् को हम हिन्दी वीरगाथाकालीन
मुक्तक काव्यों की श्रेणी के समझ सकते हैं।

†मणि रत्न समान मलयालम पद और प्रवा
मूँगा सदृश संस्कृत शब्द मिली भाषा।

िर काटकर, चौथे, हाथी की पूँछ भी काटकर वह कोलाहल मचाते हुए चला।'

न्दोयोजना में एषुत्तच्छन् की सी सफलता बहुत लयाल कवियों को मिली है। अपने समय के ों के विपरीत उनका निश्चय था--मलयालम कविता ए संस्कृत छन्दों की अपेक्षा द्राविड़ वृत्त ही फबेंगे। , कलकाञ्ची, मणिकाञ्ची, केका, अन्ननटा आदि का प्रसंगानुसार प्रयोग आपने किया। लेकिन दर्शन- ी बातें संस्कृत छन्दों में उपयुक्त समझीं। विषया- एषुत्तच्छन् ने छन्दों में हृदयाकर्षक परिवर्तन भी है। "किलिप्पाट्टु" नामक काव्यरीति तो आपकी वस्तु है। रामायण की संपूर्ण कथा "तोते की वाणी" ायी है। ओज, माधुर्य और प्रसाद गुण बिना प्रयास ी रचनाओं में आये मालूम होते हैं। एषुत्तच्छन् के अयत्नसाधित थे, अतः कविताकामिनी के लिए प नहीं, हारस्वरूप बन गये। "सीताजी ने स्वयं- र में धनुर्भंग करनेवाले राम को पहले नीलोत्पलों) से माला डालकर बाद में वटमाला पहनायी।" ्यूक समान चरणवाले परमपुरुष" आदि कितने उदाहरण में दिये जा सकते हैं।

त्तच्छन् की रचनाएँ आज तक अवितर्क रूप से जाती हैं--महाभारत, अध्यात्मरामायण (उत्तर- ड़कर) और हरिनाम-कीर्तन। उनके अतिरिक्त चिन्तारत्न, इरुपत्तिनालुवृत्तम् (चौबीस छन्दों-वाला शायद हिन्दी की बत्तीसी या बावनी की कोटि का) ब्रह्माण्ड-पुराण ये भी उनके ग्रन्थ कहे जाते हैं। इन कृतियों के परिशीलन करने से यही मालूम होता है कि वे भक्तहृदय कवि थे। अतः हमेशा पुराणों और शास्त्रों से ही अपनी रचना के लिए विषय वस्तु लेते थे। फिर भी उनकी रचनाओं में कवि के व्यक्तित्व की छाप है। इस कारण अनुवादों में भी मौलिकता की सुगन्धि आती है।

अब यह भी देख लेना चाहिए कि "तुञ्चत्तु रामानुजन्" को "एषुत्तच्छन्" नाम कैसे मिला? कुछ विद्वानों का मत है कि तमिल की बहन मलयालम भाषा के लिए अपनी कोई लिपि--एषुत्तु--न थी। इन्हीं महान् कवि ने मलयालम लिपि का आविष्कार किया। अतः इनको "लिपिकार" या "एषुत्तच्छन्" की उपाधि दी गयी। दूसरे विद्वानों का मत है कि वे "आशान्" या गुरु थे एवं विद्यार्थियों को वर्णमाला से पढ़ाते थे। इस कारण "एषुत्ताशान्" नाम पड़ा जो कालान्तर में "एषुत्तच्छन्" हो गया। दूसरा मत ही अधिक समीचीन मालूम होता है, क्योंकि मलाबार के पोन्नानि ताल्लुके में स्थित "तुञ्चन परम्पु" (रामानुज के घर के अहाता) से अब भी श्रद्धावान लोग बालू निकालकर अपने बच्चों को उसमें पहली बार अक्षर लिखवाते हैं।

इस तरह आचार्य तुञ्चत्तु रामानुजनेषुत्तच्छन् मलयालम साहित्य और केरल के जनजीवन दोनों में अपनी छाप लगा गये।

पठानों के अन्तहीन जत्थे

श्री हरिमोहन शर्मा

खानाबदोश जातियाँ अब दुनिया में रह ही कितनी गयी हैं! पिछली शताब्दी में कई बंजारा जातियों के लोग, देशान्तरगमन का अपना शौक छोड़कर किसी न किसी देश में स्थायी रूप से बस गये। परन्तु अभी तक यायावर-जीवन का मोह नहीं गया है तो दक्षिण ईरान तथा अरब की कुछ बंजारा जातियों में या अफगानिस्तान के पहाड़ी इलाकों से प्रतिवर्ष, खैबर, कुर्रम, तोची, गोमल तथा अन्य सैकड़ों अप्रसिद्ध दर्रों से होकर पाकिस्तान आनेवाले पठानों में। तीन लाख के करीब ये पठान, स्थायी रूप से, अभी तक न पाकिस्तान में बसने के इच्छुक हैं न अपनी जन्मभूमि अफगानिस्तान में। इनका सारा जीवन परिभ्रमण में ही व्यतीत हो जाता है।

इन खानाबदोश पठानों में हमारी दिलचस्पी दो कारणों से है। प्रथम—इसी जाति के कुछ लोग हमारे देश में बसे हुए हैं। वे या तो सूखे मेवों का धन्धा करते हैं या बहुत ऊँचे ब्याज पर रुपया कर्ज देते हैं। कुछ पठान चौकीदारी के काम में भी लगे हैं। हमारे देश में इन्हें 'काबुली' नाम से पुकारा जाता है, यद्यपि यह नाम गलत है, क्योंकि काबुल से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

पठानों में दिलचस्पी लेने का हमारा दूसरा कारण यह भी है कि पाकिस्तान इनका उपयोग कभी भी कश्मीर में उपद्रव करने तथा अराजकता फैलाने के लिए कर सकता है। १९४७ में भारत-शासित कश्मीर में जिहाद के नाम पर निर्दोष जनता की हत्या करने तथा लूटमार करनेवाले ये पठान ही थे।

स्थायी रूप से पाकिस्तान में बसे हुए पठान, संख्या में काफी कम होते हुए भी काफी प्रभावशाली हैं। पाकिस्तान की ९ करोड़ तीस लाख की आबादी में पठान केवल पाँच प्रतिशत हैं। पर, पाकिस्तान के प्रेसीडेण्ट अयूब खाँ, कई मंत्री तथा उच्च अधिकारी पठान ही हैं। पाकिस्तानी सेना में भी पठानों का बाहुल्य है। जब-जब पूर्वी पाकिस्तान के भावुक विद्यार्थी तथा अन्य शोषित और पीड़ित वर्ग शासन के खिलाफ आवाज बुलन्द करते हैं, पठान सैनिकों को ही उन्हें 'सबक सिखाने' के लिए भेजा जाता है।

काफी अर्से से पाकिस्तान सरकार इन खानाबदोश पठानों को स्थायी रूप से पाकिस्तान में ही बसाने की व्यवस्था कर रही है, पर सदियों से घुमक्कड़ जीवन बिताती आ रही इस बंजारा जाति को 'सभ्य' बनाना इतना आसान नहीं है। सभ्य पाठकों को, इस चिर-भ्रमणशील जाति के रंगीन जीवन तथा अद्भुत देशान्तर-गमन की झाँकियाँ दिलचस्प लगेंगी।

पुश्तो इस बंजारा जाति के लोगों की आम जबान है। वे अफगानिस्तान के गजनी प्रदेश तथा कन्धार के निवासी पठानों की 'गिलज़ई' शाखा से सम्बन्धित हैं। अफगानिस्तान में उन्हें 'कुची' या 'पोवेन्द' कहा जाता है। 'गिलज़ई' शाखा की भी कई उपशाखाएँ हैं—आका खेल, अली खेल, सुलेमान खेल आदि।

एक जमाना था जब ये लोग मध्य एशिया तथा भारत के बीच होनेवाले व्यापार की वस्तुओं के वाहन का साधन थे। आज भी ये लोग सूखा चमड़ा तथा लकड़ी लाते, ले जाते हैं।

समृद्ध बंजारे पठान बड़े शान से यात्रा करते तथा व्यापार की विभिन्न वस्तुओं को एक देश से दूसरे देश में ले जाते हैं। दर्जनों ऊँट, नौकर-चाकर तथा खाने-पीने का काफी सामान उनके कारवाँ में रहता है। पर अधिकांश बंजारे काफी निर्धन हैं, और उन्हें अपने तथा अपने मवेशियों को जीवित रखने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है। इनमें से कुछ तो इतने निर्धन हैं कि उनके पास मवेशी भी नहीं हैं।

इन बंजारे पठानों के देशान्तर गमन में कोई व्यवस्था या योजना नहीं दिखायी पड़ती। कहीं-कहीं समूचा गांव अपने पूरे साजो-सामान के साथ अफगानिस्तान के पहाड़ी क्षेत्रों में से दर्रों में आता दिखायी देता है, तो कहीं कुछ पुरुष अपने परिवार के सदस्यों को बीच में ही छोड़कर शेष फासला अकेले ही तय करते हैं। बड़े मनमौजी होते हैं ये लोग। इनका कोई काम योजनाबद्ध नहीं होता, और ये नियमों की कैद में रहना पसंद नहीं करते। ये स्वयं निर्मित नियमों से ही शासित हो सकते हैं।

प्रायः अक्तूबर के उत्तरार्द्ध में ये लोग अफगानिस्तान से अपनी यात्रा आरंभ करते हैं। मजे-मजे इनका काफिला सुबह को कुछ दूर चलेगा, और फिर सारे दिन, सारी रात आराम करेगा। एकाध परिवार के लोग काफिले से भटककर अपने लिये अलग रास्ते और दर्रे तलाश कर लेते हैं।

इतने आराम से चलता है इन लोगों का काफिला कि एक हफ्ते में दस-बारह मील भी चल लिया तो बहुत समझिये। जहाँ इनका डेरा लग जाता है, उसके आसपास के क्षेत्र के वृक्षों की खैरियत नहीं; काफिले के बच्चे और महिलाएँ अपना खाना पकाने के लिए उन्हें ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। पुरुष उनकी लकड़ी चीरकर, पाकिस्तान में बेचने के लिए जमा करते जाते हैं। कुछ पठान निकट के गाँवों के कृषकों के खेतों में मजदूरी करके पैसे कमाने का यत्न करते हैं। कुछ चुस्त पठान आगे निकल जाते हैं और पेशावर घाटी के जमींदारों के यहाँ मजदूरी करना आरम्भ कर देते हैं।

जिन तम्बुओं को सड़क के किनारे गाड़कर ये लोग रहते हैं, वे निहायत ही गंदे और फटे-पुराने होते हैं।

तम्बू बीसियों साल चलता है। मवेशी--ऊँट, बकरियाँ भी खुद उनके समान फटेहाल होती हैं, खुजली की बीमारियों से पीड़ित।

च्चे स्वस्थ तथा प्रसन्नमुख होते हैं, पर बेचारों भावक उनके लिए अच्छे वस्त्रों का प्रबन्ध नहीं कर वे अपने चारों ओर घोर दरिद्रता तथा उपेक्षा ते हैं, और इसी वातावरण में जीते और बड़े ।

बुल नदी की घाटी को पार करके इन लोगों का कुछ कम हो जाता है, तथा उनमें अधिक हलचल देने लगती है। लताबंद दर्रे के बीच होकर जाता बुल-जलालाबाद मार्ग मानो इन लोगों की यात्रा मय बना देता है। ऊँटों की रफ्तार ज्यादा तेज हो और लगता है, जैसे वह किसी निश्चित ध्येय पर चाहते हैं। उन पर सवारी करते हुए उनके स्वामी रे से नहीं लगते, कहीं पहुँचने की जल्दी में यात्रा यात्री से लगते हैं।

सारा सामान ऊँट की पीठ पर लाद दिया जाता छोटे बच्चों को उस सामान पर सबसे ऊपर 'बाँध' ाता है। ऊँट के हर कदम के साथ-साथ बच्चों की आगे-पीछे होती रहती है।

दम्पतियों के लिए विशेष सजे-सँवरे ऊँट रहते हैं। साज भी नया होता है, तथा बैठने की गद्दियाँ भी और मुलायम होती हैं। सौन्दर्य में पठान महिलाएँ किसी भी जिप्सी जाति की महिलाओं को परास्त ती हैं। वे अत्यन्त अभिमानिनी होती हैं, तथा प्रयोग बिलकुल नहीं करतीं। चाँदी के आभूषणों से कांतिमान शरीर जगमगाता रहता है। उनके हाथ से रचे होते हैं।

, कठिन बंजारा जीवन के कारण, पठान महिलाओं सौन्दर्य शीघ्र ही मुरझा जाता है। सौन्दर्य भले हो जाये, उनका दर्प कभी कम नहीं होता। पठान एँ बड़ी खुशमिजाज होती हैं, और कठोर जीवन जूद सदा प्रसन्न और मुस्कराती रहती हैं। पर, और कुदृष्टि डालनेवाले या किसी कारण से उन्हें करनेवाले व्यक्ति के प्राणों की खैर नहीं।

नवम्बर के अंत तक में काफिला पेशावर तक आ है। उन दिनों पेशावर की चाय की दुकानों तथा यों की दुकानों पर ये बंजारे पठान ही दिखायी देने हैं। पेशावर के मुख्य चौराहे—चौक यादगार में ऊँटों सवार पठानों को रोकते-रोकते तथा रास्ता बताते- पुलिस के सिपाहियों की नाक में दम आ जाता है। खैबर दर्रे से पेशावर जानेवाली सड़क पर टिड्डी-दल की भाँति पठान छाये दिखायी देते हैं। खैबर दर्रे के प्रवेश-द्वार पर स्थित जमरूद किले पर पहरा देते हुए अफरीदी सैनिकों की राइफिलों पर रश्कभरी निगाह डालते हुए ये पठान अफरीदी ग्रामों की राइफिल बनानेवाली फैक्टरियों से राइफिल खरीदने चले जाते हैं।

पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान की सीमा २०० मील लम्बी है। पाक की सीमा पर आकर इन बंजारों को एक-एक करके पाकिस्तान में प्रवेश करना पड़ता है। इस औपचारिकता के बाद, वे फिर अपने-अपने गिरोहों में सम्मिलित हो जाते हैं, तथा उनकी आगे की यात्रा जारी रहती है।

इस सीमा पर इन बंजारों की पठानों के वजीर, मसूद तथा दौर कबीलों के साथ प्रायः मुठभेड़ हो जाती है। वजीर कबीले के पठान बहुत खूँखार और निष्ठुर होते हैं, तथा दौर कबीले के पठानों को भी धोखेबाज और क्रूर माना जाता है। ये लोग जरा सी बात पर चिढ़कर मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं।

इस सीमा-प्रदेश को विकसित करने के लिए पाकिस्तान बन्नू के पास कुर्रम-गढ़ी योजना का निर्माण कर रहा है। इस बाँध के पूरा हो जाने पर १,३०,००० एकड़ भूमि कृषि-योग्य बन जायेगी, तथा बंजर पड़ी १,५०,००० एकड़ भूमि को पानी मिल सकेगा। पठानों को इस बाँध के निर्माण-कार्य में तो लगाया जा ही रहा है, बाद में उन्हें इसी भूमि पर बसने के लिए भी कहा जायेगा। इस प्रकार पाकिस्तानी अधिकारी पठानों की समस्या को, जिसे अंग्रेज कभी हल नहीं कर पाये, हल करने का विचार कर रहे हैं। अधिकांश पठान अपना खानाबदोशी जीवन समाप्त करके कृषक तथा श्रमिक का स्थिर तथा शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं। इससे पूर्व, काबुल-सरकार ने हेलमंद घाटी में इन पठानों को बसाने की योजना बनायी थी, पर वह योजना असफल रही। अब ये लोग भी शायद अपने यायावर जीवन से तंग आ चुके हैं।

पठान अपने साथ पाकिस्तान में गरीबी, भूख तथा विभिन्न रोग लाते हैं। उनके लिए पाकिस्तान-सरकार को पंजाब से गेहूँ मँगाने की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। उनके कारण खेतों को भी बहुत हानि पहुँचती है। फिर भी अनुमानतः पाकिस्तान सरकार १ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष इन बंजारे पठानों पर व्यय करती है, क्योंकि सीमान्त प्रदेश के मुख्य मंत्री अब्दुल कयूम खाँ के अनुसार--"इनकी सहायता तो करनी ही पड़ेगी, क्योंकि आखिर, ये हमारे ही भाई हैं।"

तिब्बत के पथरीले पठार पर यात्रा। यहाँ तूफानों और डाकुओं के भय के कारण यात्रा कठिन और खतरनाक

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (३)

श्री फेनी मुकर्जी

जगमगाते ग्यानसी नगर को पार करते हम चले जा रहे थे एक प्रसिद्ध मठ शालू (षालू) गुम्पा की ओर। प्राकृतिक वातावरण के साथ-साथ हमारा मन भी पलटा खा रहा था। धीरे-धीरे अपनी यात्रा के साथियों के असली रूप रंग दिखाई देने लगे। छाती की टूटी पसलियों का दर्द कम होता जा रहा था पर एक भयंकर तूफान उठने की आशंका उठ खड़ी हुई। पीत-वस्त्रधारी महामाननीय राहुलजी के असली रूप की झलक देखकर मेरे तरुण हृदय में एक उफान सा उठ रहा था। फिर, इस कारण भी कुछ घबराहट हो रही थी कि शीघ्र ही मेरी फोटोग्राफी की कला की परीक्षा होने वाली थी। यदि पहले ही मोर्चे पर से नाकाम रहा तो मेरी सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जायगी। नये वातावरण और नयी जलवायु में फोटो के यंत्र और रसायन ठीक ठीक काम करेंगे कि नहीं, इसकी चिंता मुझे अशांत किये हुए थी। फिर याद आयी उस तिब्बती सुन्दरी की जिसने मेरे मन में चलते-चलते एक ठेस लगा दी थी। पता नहीं वह लौट गयी अपने घर को, या चली आ रही है मेरे पीछे आँखमिचौनी खेलती हुई। इसी प्रकार की उधेड़-बुन में चला जा रहा था। बीच-बीच में यदि आस-पास के कुछ दृश्य आकर्षित करते तो उनके चित्र उतार लेता। शाम को थका-माँदा पड़ गया जाकर एक ढोल नामक गाँव की सराय में। दूसरे दिन सुबह पाँच बजे फिर आगे बढ़ चले। चारों ओर का दृश्य बड़ा ही वीरान और रूखा-सूखा था। हरियाली की जगह अब हम रेगिस्तान की भाँति ऊँचे-नीचे पीले रंग के मैदानी पठार पर चल रहे थे।

हम लोगों को तिब्बत सरकार ने पारपत्र (पा के साथ एक "लामका पत्र" भी दिया था, जिसके अनुसार हम लोगों को सरकारी अतिथि होने के कारण तिब्बत दे की सड़कों पर यात्रा करने का अधिकार दे दिया था। इस अधिकार के अनुसार हर एक गाँव के मुखिया (गोम्बू) का कर्त्तव्य था कि हमको हर प्रकार की सहायता करे। हम लोगों ने अपने सवारी के खच्चर खरीद लिये थे। हमारे माल लादने के लिए खच्चरों या गधों, एक दो कुली और नौकर की सवारी के लिए खच्चर का प्रबंध गोम्बू को करना पड़ता था। यह प्रबंध एक गाँव से आगे वाले दूसरे गाँव तक के लिए होता था। गोम्बू को हमारे आने की खबर पहिले से ही लग जाती थी और वह मारे बाद के परेशानी से बचने के लिए, भागकर प्रायः कहीं छिप

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (३)

काली[आँधी आ रही है।

था। कहाँ से लाये वह बेचारा बेगार और कुली ? सरकारी आज्ञापत्र के अनुसार खच्चरों और गधों का भाड़ा था तिब्बती दो न, और कुली का तीन पैसा प्रतिदिन। अतएव एक गाँव में अपने खच्चर और कुली बदलने के पड़ता था। पीछेवाले आये हुए कुली झट-खच्चरों से माल उतारकर किराया मिलते ही को वापस भाग जाया करते थे। स्थिति के भी सतर्क हो गये। आये हुए कुली और खच्चरों तब तक दबाये बैठे रहते जब तक कि फिर के लिए कोई प्रबंध न हो जाय। नौकर गाँव गोम्बू की खोज करने में जुट जाता। उसकी बाल-बच्चों को पकड़ लाता, और फिर बड़ी देर लों की सहायता से गोम्बू को पकड़ा जाता। म्बू बेचारा कहाँसे लाये पाँच-छः खच्चर या दो-तीन कुली ? उसकी इस हालत पर दया की पत्नी और गाँव के अनेक लोग दौड़े आते लोग पीछे के गाँव से आते थे, उनकी खुशामद वह ही फिर हम लोगोंको आगेवाले गाँव तक। परन्तु उनकी मुसीबत यह थी कि वे लोग च्चर किसीसे माँगकर लाते थे, और उन्हें उनको शीघ्र वापिस लौटाना होता था। कभी-वे राजी हो जाते, लेकिन अधिकतर गोम्बू को ही गाँववालों की खुशामद करके खच्चर और कुलियों का प्रबंध करना पड़ता। कभी-कभी नौकर को उनके साथ मारपीट भी करनी पड़ती। मना करने पर नौकर बिगड़ कर कहता कि ये लातों के देवता बातों से माननेवाले नहीं हैं। हम लोगों को सरकारी पत्र में गाँववालों के साथ सख्ती करने का भी अधिकार दिया गया था। इसलिए इस सरकारी पत्र को देखकर सभी गाँववाले डर कर, उदास चेहरा बनाकर, सामने खड़े अपनी लार टपकती हुई जीभ को निकालकर आजिजी जाहिर करते। गोम्बू की धर्मपत्नी और उसके कुटुम्ब के सभी लोग सिर झुकाये हुए गिड़गिड़ाकर खुशामद करते और माफी माँगते। इस प्रकार किसी विदेशी को सरकारी अतिथि के नाते देश की नागरिक-प्रजा पर सख्ती करने और उससे जबर्दस्ती काम लेने का अधिकार दुनिया के किसी भी देश में नहीं होता होगा। हम लोग भारत की खोई हुई पुरानी हस्तलिखित किताबों की खोज करने गये थे, किंतु हम तिब्बत देश की रीति-नीति देखकर आश्चर्य में आ गये। मालूम नहीं कि प्राचीन भारत में परदेशियों का सत्कार किस प्रकार होता था। हमारे देश की रीति-नीति प्राचीन काल में कैसी थी और हमारे यहाँ ऐसी कौन सी सम्पत्ति थी जिसको लूटने लुटेरे पहाड़-जंगल-नदी-नाले और समुद्रों को पार करते हुए दूर-दूर देशों से आते थे ? भारत की प्राचीन संस्कृति की सुगंधि उस समय तक पवित्र हिमालय की

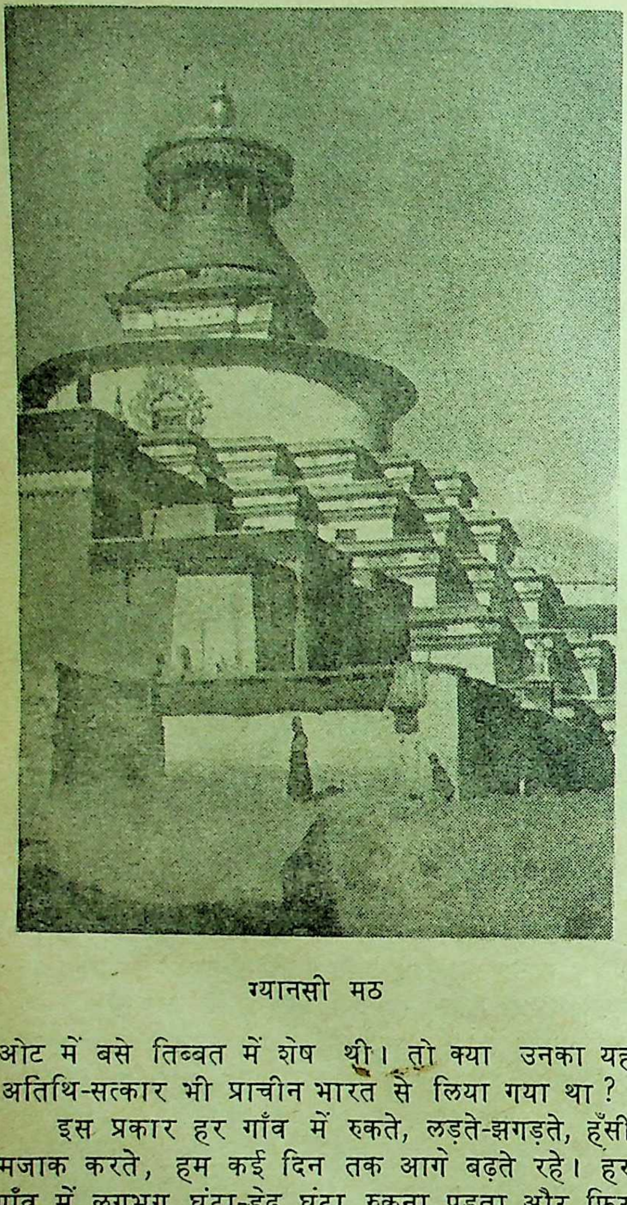

ग्यानसी मठ

ओट में बसे तिब्बत में शेष थी। तो क्या उनका यह अतिथि-सत्कार भी प्राचीन भारत से लिया गया था?

इस प्रकार हर गाँव में रुकते, लड़ते-झगड़ते, हँसी मजाक करते, हम कई दिन तक आगे बढ़ते रहे। हर गाँव में लगभग घंटा-डेढ़ घंटा रुकना पड़ता और फिर रेंगती हुई चाल से दिन भर में लगभग दस या बारह मील की यात्रा तै कर पाते।

एक दिन तीन बजे के लगभग पश्चिम की ओर अचानक सूर्य को छिपता हुआ देखकर हम चौंक पड़े। सोचने लगे कि क्या सूर्य-ग्रहण लग रहा है? दूरबीन लगाकर देखा तो मालूम पड़ा एक भयंकर काली आँधी आ रही है। हमारे छोटे से काफिले में भगदड़ मच गयी। लोग-बाग खच्चरों को कोड़े मार-मारकर तेज गति से दौड़ाने लगे। मैं भी उनकी देखा-देखी अपने अबोध खच्चर को मारने-पीटने लगा। राहुलजी पहिले भी तिब्बत आ चुके थे, और परिस्थिति से परिचित थे। उन्हें मालूम था कि उस रेगिस्तान की ये आँधियाँ कितनी भयंकर होती हैं। देखते ही वे हमसे बिना कुछ कहे-सुने अपने खच्चर को सरपट दौड़ाकर हमें वहीं छोड़ ऐसे चल दिये जैसे उन्हीं-की
जान सबसे मूल्यवान और प्रिय है और हम सब
करकट हैं। मुझको दया आई बेचारे गाँव से आये
वालों पर। उनके साथ-साथ मैं भी रेंगने लगा।
एक थी बुढ़िया औरत और एक था आधा अंधा बूढ़ा
उसका एक छोटा सा लड़का। गेशेलाजी और
लपककर आगे बढ़ गये रुपयों-पसों की थैलियों को
हुए। मुझको पीछे छोड़ गये मूल्यवान् फोटोग्राफी
लामाओं को भेंट देनेवाली सामग्रियों से भरे हुए
की देखरेख करने को, जो कि खच्चरों पर लदी हुई
शीघ्र ही आँधी आकर हमारे ऊपर जोर से हरहराने
सिर, मुँह, कान, नाक, आँख, बदन और हाथों पर
और कंकड़ियों से भरी हवा के थपेड़े पड़ने लगे।
रह-रहकर बिदकने लगा और अंत में बिगड़कर
भाग चला। इस उछल-कूद से मेरी छाती में
होने लगा। पर करता क्या? लगाम खींचे, एँड़
खच्चर पर चिपटा रहा। ठंडी तेज हवा के साथ
हल्की मेह की बूँदें ऐसी मालूम होती थीं मानों
गोलियाँ लग रही हों। भागते-भागते खच्चर थककर
हो गया, और रेंक-रेंककर उस ऊसर भूमि में चक्कर
लगा। उस धुंध में कोई प्राणी नहीं दिखायी पड़ रहा
संध्या की छाया बढ़ने लगी। कोई न था वहाँ
रास्ता बतानेवाला, और न मैं तिब्बती भाषा बोल ही
था। आत्मरक्षा के लिए केवल मेरे पास एक चाकू
खच्चर थककर बैठ गया और आगे चलने से उसने
मोड़ लिया। बेचारा बेजबान जानवर दुख से दुखी
बुरी तरह रेंकने लगा। खच्चर को खींचकर फिर
किया और उस पर सवार होकर कोड़े मारता हुआ
आगे बढ़ा। अचानक वह बेतहाशा भाग चला, और
बार भागते-भागते एक कीचड़ से भरे तालाब में आ
मैं भी पटकी खाकर कीचड़ में जा फँसा। किसी
मैं निकला। फिर खच्चर को खींच-खाँचकर
भूख, प्यास, थकान और छाती के दर्द ने मुझको
सा बना दिया। खच्चर की जीन को फिर से कसा
उस पर सवार होकर आगे बढ़ा। रात करीब-करीब
वाली थी। आँधी भी शांत हो चली थी। एक गाँव
समीप आ पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही असंख्य बड़े-बड़े
नाक कुत्तों ने आगे बढ़कर अजनबी का स्वागत
अजनबी जब तक खच्चर पर चढ़ा बैठा रहता है, तब
कुत्ते उसपर हमला नहीं करते, परन्तु खच्चर से
ही, या गिरते ही, वे देखते-देखते उसकी बोटी-बोटी
देते हैं। मैले-कुचैले ग्रामनिवासी लपककर आगे बढ़े
सहमकर खड़े हो गये। निकट आने पर उन्होंने
रिवाज के मुताबिक टोपी उतारकर जीभ से लार टप
कर हमको सलाम किया। तिब्बती भाषा तो मुझे
आती न थी। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली मिलाकर,
पाँव हिलाकर, कड़क कर पूछा हिन्दुस्तानी लामा
को गया है? उन लोगों ने भी अपनी भाषा में
कहकर हाथ उठाकर एक तरफ को उँगली दिखायी

ग भावना

तिब्बत का हर एक गुम्पा धार्मिक विद्यालय था सैकड़ों या हजारों की संख्या में छोटे-बड़े भिक्षु या बौद्ध-धर्मशास्त्र का अध्ययन करते थे। इन छात्रों ओं) को शिक्षा देने के लिए बड़े-बड़े गुम्पाओ विद्यालयों) में प्रशिक्षित स्नातक गुरु या लामा किये जाते थे। इन लामाओं की नियुक्तियाँ दलाई के निरीक्षण में बड़े-बड़े विद्वान लामाओं की एक करती थी। इन परिषदों के सदस्यों की नियुक्ति होती थी। हमारे देश के वर्तमान राज्य के मंत्रालय की जगह वहाँपर एक-एक परिषद् की बैठक दलाई लामा के निरीक्षण में होती थी। लामा धर्म-प्रबंध के राजा माने जाते थे। दलाई हर मामले में सही परामर्श देने के लिए देश के ान लामाओं का एक केन्द्रीय बोर्ड था, जिसमें आठ । हर एक सदस्य देश के हर मसले को भली झने का प्रयत्न करता था। ये देश के कोने-कोने अपने प्रतिनिधि रखते थे और उनसे प्रतिदिन खबरें लेते रहते थे। इस केन्द्रीय परिषद् की के हस्ताक्षर के बाद बड़े-बड़े मसलों पर दलाई भी हस्ताक्षर होते थे।

गुम्पा के उच्च अधिकारियों की इस नगरी में टा था कि कहीं कोई व्यक्ति नहीं दिखायी देता न किसी मनुष्य की आवाज सुनाई पड़ती थी। जे-खिड़की बंद थे। मकानों के भीतर कोई है या नहीं, इसका पता लगाने के लिए हम लोग के दरवाजे पर जाकर ज़ोर-जोर से "ओलो-र्थात् बालक-बालक कहकर पुकारने लगे। बहुत हीं से कोई उत्तर नहीं मिला। अंत में एक मकान र इसी प्रकार चिल्लाने पर भीतर से एक कुत्ता कुत्ते की भौंकने की आवाज भी हम थके-माँदे को बड़ी उत्साहवर्द्धक मालूम पड़ी। लगे जोर-चिल्लाने "ओलो-ओलो-ओलो"! कुत्ता भी लगा-ता रहा। थोड़ी देर बाद एक अधड़ उम्रवाले र खोलकर बाहर निकले। उनका शांतिमय भरा ट, घुटा हुआ सिर और चिंतनपूर्ण भरी हुई शांत रही थीं कि कोई महान् व्यक्ति हैं। उन्होंने हालचाल पूछा। हम लोगों का परिचय सुनकर और अंत में उन्होंने हमें अपने मकान के भीतर कहा। शालू गुम्पा के बड़े-बड़े अधिकारियों फसरों और विभागाध्यक्षों के ये मकान थे। ति नगरी में रहकर अपने धर्म के ग्रन्थों का अध्य-थे और अपनी रुचि के अनुसार नयी पुस्तकें थे। इन लामाओं की एक सभा का एक मुखिया लामा चुना जाता था जिसकी पुष्टि केन्द्रीय प्राप्त होने पर वह प्रधान लामा के पद पर ता था। इस मठ (गुम्पा) में लगभग दो हजार ा) विद्या प्राप्त करते थे। उच्च शिक्षा प्राप्त ए इस गुम्पा का स्नातक यहाँकी सिफारिश पर ल्हासा के सेरा या डेबुंग मठ में भर्ती हो सकता था। डेबुंग और सेरा की गुम्पाओं में क्रमशः आठ हजार और ग्यारह हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। वहाँके विद्यार्थियों को आगे चलकर धर्म की किसी विशेष शाखा का अध्ययन करना पड़ता था। जिस प्रकार हमारे देश के विश्वविद्यालयों में ग्रेजुएट होने के बाद डाक्टरेट की परीक्षा पास करने की योजना है उसी प्रकार वे वहाँ उच्च अध्ययन करते थे। फिर वहाँसे लामा बनकर किसी गुम्पा में प्रोफसर (लामा) नियुक्त हो जाते थे। यहाँके भी कोई कोई ग्रेजुएट तुरन्त ही स्थानीय सभा की सिफारिश से प्राध्यापक (लेक्चरर) बन जाते थे और वरिष्ठ लामाओं की देखरेख में उच्च विद्या प्राप्त करने के बाद डेबुंग या सेरा के मठों में प्राइवेट छात्रों की भाँति परीक्षा में बैठ सकते थे।

शालू जाते समय मेरा खच्चर थककर बैठ गया था।

दूसरे दिन अभयसिंहजी अकेले ही शालू गुम्पा के प्रधान लामा से भेंट करने चले गये। कुछ महीने पहले अभयसिंह यहाँ आये थे और हमारे आने की खबर उनको दे गये थे। अकेले उस ऊबड़-खाबड़ पथरीली चढ़ाई पर जाकर, लामाजी की अनुमति लेकर उसी दिन सायंकाल लौटकर उन्होंने बड़ी वीरता और फुर्ती का नमूना दिखाया।

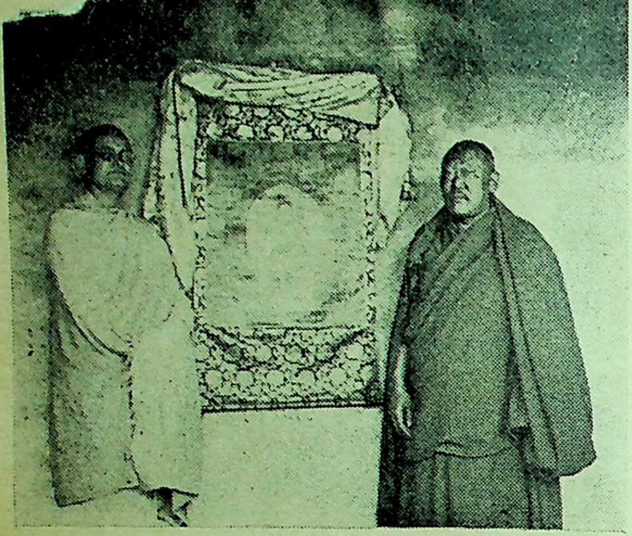

राहुलजी शालू गुम्पा क प्रधान लामा रिसुर आमूची के साथ अंतिम प्रधान लामा के मुख्य शिष्य के चित्र के पास खड़े हैं।

दूसरे दिन हम चारों व्यक्ति मार्ग के पत्थरों की शिलाओं को किसी तरह पार करके बड़ी मुश्किल से दोपहर तक गुम्पा जा पहुँचे। भीतर से आज्ञा प्राप्त होने पर हमने मठ के भीतर प्रवेश किया। एक कमरे से दूसरे कमरे, फिर तीसरे चौथे कमरों से गुजर कर हम एक बहुत बड़े आँगन में आ पहुँचे। थकान से हाँफ रहे थे, पर आगे चले जा रहे थे। यहाँके ढाबा लोग न थकते थे और न हाँफते थे। दिन भर दौड़ते नजर आते थे। पत्थर जड़े इस गोलाकार आँगन के चारों ओर बड़े ही अच्छे-अच्छे विशाल भवन एक के साथ एक सटे खड़े थे। इनकी रंगीन पर्दों वाली सुन्दर खिड़कियाँ और खूबसूरत छज्जे इन भवनों की शोभा को खूब चमका रहे थे। लकड़ी की एक रंगीन सीढ़ी दिखाई दे रही थी। इस सीढ़ी पर रंगीन कालीन बिछा हुआ था। इस सीढ़ी से चढ़कर कितने ही कमरों के भीतर से होते हुए, और फिर एक सीढ़ी चढ़कर हम सबसे ऊँचे खंड के एक कमरे में ले जाये गये। वहाँ सुन्दर सुसज्जित कमरे में प्रधान लामा के साथ छः और लामा उपस्थित थे। उन छः लामाओं में एक लामा वे भी थे जिनके घर में कल रात हम ठहरे थे। हम अपने साथ जालीदार कपड़े की बनी हुई पट्टियाँ, जिनको वह "थाका" बोलते हैं, ले गये थे। उनकी रीति के अनुसार हमने अपनी टोपी उतारकर उनको एक-एक थाका भेंट किया। उसी प्रकार उन्होंने भी एक-एक थाका अपनी कोट के से निकालकर हमें भेंट किया। बड़े आदर के साथ छोटे-छोटे खूबसूरत गलीचों पर बैठने को कहा हमारे बैठने के बाद वे भी बैठ गये। कुछ देर मौन हमारे द्विभाषिया गेशेलाजी ने बातचीत शुरू की। अचानक एक लामा ने कुछ कहा जिसको सुनकर राहु ने अपने साथ लायी हुई पोटरी खोलकर उन सबों को एक जेबी घड़ी, एलार्म टाइमपीस घड़ी, फाउनटेनपेन, एक जापानी रंगीन रूमाल में बाँधकर तीन तिब्बती कते हुए रुपयों के साथ भेंट की। घड़ियों की टिक की आवाज, एलार्म की घंटी की घनघनाहट सुनकर, कलमों से सदा बहती स्याही को देखकर वे बहुत प्र हुए। सुगंधि लगे हुए सिल्क के रूमालों को सूँघते, उनकी चटकीली रंगीन चित्रकारी को देखते—मानों अनमोल वस्तुएँ प्राप्त हो गयी हों। हमारे लिए गर्म मँगाकर सुन्दर रंगीन छोटी-छोटी चौकियों पर चाँदी-सोने के ढक्कनदार प्यालियों में रक्खी गयी। के लिए सूखा पनीर तश्तरियों में सजाया गया। ह बातचीत खूब प्रेम-भाव से चल रही थी। हम अ सच्चा उद्देश्य सदा छिपाये रहते थे। केवल यही बताते कि हम लोग भारतीय बौद्ध धर्म के भिक्षु हैं। भारत प्राचीन धार्मिक पुस्तकें नष्ट हो गयी हैं। सुना है तिब्बत के मठों में अनेक प्राचीन तालपत्र पर हस्तलि भारतीय ग्रंथ सुरक्षित हैं। इन्हींके अध्ययन के लिए भारत से चलकर यहाँ आये हैं, जिससे फिर लौटकर भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार कर सकें। ऐसा न से सदा के लिए भारत से बौद्ध धर्म लुप्त हो जायगा।

यह बातें इन लामाओं को बड़ी अच्छी लगती और धर्म के नाम पर वे हमारी बड़ी आवभगत करते तथा अपने मूल्यवान् पुस्तक भंडारों में प्रवेश करने चुनी हुई पुस्तकों को अपने कमरे में बैठकर पढ़ने की मति दे देते थे। यहाँके प्रधान लामा का नाम "रि आमूची" था। उन्होंने जब हमको बहुमूल्य पुस्तकालय से अपने पसंद के अनुसार पढ़ने के लिए किताबें निका की अनुमति दे दी तो हम मन ही मन मारे खुशी के उछ पड़े। किताबों से भरे हुए उनके विशाल पुस्तकालय घुसकर हम लोगों ने सायंकाल तक अनेक हस्तलिखि भारतीय प्राचीन पुस्तकें खोज निकालीं। हमें गुम्पा में

महाकवि सूर्यमल्ल और उनकी राष्ट्रीय भावना

श्री व्रजराज शर्मा, एम० ए०, बी० एड०

वीरपूजक चारणों में, चन्द के बाद, महाकवि सूर्यमल्ल ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। राजस्थान के इतिहास में इन वीरपूजक चारण कवियों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी कृतियों का बहुमुखी महत्त्व है। उनमें वीरता, देशभक्ति और हिन्दुत्व के प्रति आग्रह की त्रिवेणी का सुन्दर संगम हुआ है। सूर्यमल्ल की रचनाओं में संगम की पवित्रता और स्वाभाविक सुन्दरता अधिक स्पष्ट है। 'वंशभास्कर' तो कवि के प्रतिभा-प्रकाश से जगर-मगर है ही; वीर सतसई में भी उसका चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। यहाँ हमारा लक्ष्य इसी ध्वनिकाव्य 'सतसई' में प्रतिबिम्बित तत्कालीन राजनैतिक स्थिति तथा इसके द्वारा ध्वनित राष्ट्र-प्रेम की झलक पाठको के समक्ष रखना है। सूर्यमल्ल रचित सतसई (अपूर्ण-केवल २८९ दोहे) कवि के शब्दों में 'वीरप्रकासणबोध' है। उसकी वाणी 'जगानी' है—वीरों को मरने मारने के लिए प्रस्तुत करनेवाली है। जहाँ उसे सुनकर कायरों को भय लगता है, पीड़ा होती है वहीं यह, जिनमें जरा भी रजोगुण-वीरत्व, क्षत्रियत्व नहीं है, जिनमें वीरता के लिए आवश्यक उत्साह की न्यूनता है, उनमें भी यह स्फूर्ति प्रदान करती, वीरत्व भर देनेवाली वाणी उत्साह भरने में समर्थ है।

'जे थी रजोगुण ज्याँ नराँ वा पूरौ न उफाँण।
वे भी सुणताँ ऊफणै पूरा वीर प्रमाण।।'

और जो वस्तुतः कुलीन क्षत्रिय हैं, जिनके मातृ-पितृ दोनों पक्ष उज्ज्वल हैं और जो 'जूझण पूरा जोध' हैं वे इस 'वीरप्रकासणबोध' को सुनकर सौगुणे उत्साहित होते हैं—

'जे दो ही कुल ऊजला जूझण पूरा जोध।
सुणताँ वे भड़ सो गुणा वीर-प्रकासण-बोध।।'

अँगरेजों की 'इकडंकी'——एकतंत्र——के आगे नतमस्तक होकर, शूरवीरों ने ऐश और आलस्यवश अपने क्षत्रियोचित वीर स्वभाव को भुला दिया था—अपनी मान-मर्यादा को तिलांजलि दे, बहुमूल्य जीवन को वे व्यर्थ खो रहे थे। एकतंत्र में वस्तुतः इस प्रकार की उदासीन वृत्ति का प्रसार हो चलता है। व्यक्तिगत स्वार्थ बलवान् हो जाने से राष्ट्रीय एकता का प्रश्न गौण हो चलता है। कवि ने निम्नलिखित दोहे में इसी व्याधि की ओर मर्माहत होकर संकेत किया है—

इकडंकी गिण एक री भूले कुल साभाव।
सूराँ आलस ऐस में अकज गुमाई आव।।

पर जब समय बदला और स्वातंत्र्य-प्राप्ति का भाव लोगों में जागा तो अँगरेजों की 'इकडंकी' को उखाड़ फेंकने के लिए 'वीर' 'वीराँ रो कुल वाट' स्मरण करने लगे।

इण वेला रजपूत वे राजस गुण रंजाट।
सुमिरण लग्गा वीर सब वीराँरो कुल वाट।।

कवि की अन्तर्वृत्ति वीर प्रसंगों में खूब रमी है। उसे वीर-काल रुचता है। वीर उसके उपास्य देव हैं और वीरता के प्रति अनुराग उसकी उपासना है—साधना है। उसकी वाणी का संचार, वीर-भूमि में जिस खूबी और शक्ति के साथ हुआ है वह साहित्य की गौरवपूर्ण वस्तु है। सौभाग्य से, कवि ने १८५७ का मुक्ति-युद्ध अपनी आँखों देखा था। उसमें योग देनेवाले वीरों व योद्धाओं के उत्साहवर्द्धन के लिए उसने जो जबान खोली उसमें ओज, उफाण और मरने-मारने की तत्परता-भरा स्वर फूट निकला। सतसई में इसी स्वर का ओजस्वी रूप है।

कवि ने क्षत्रिय ललनाओं के उन दिनों को धन्य कहा है जब उन्होंने स्वातंत्र्य-प्राप्त्यर्थ युद्ध में उतरनेवाले वीरों को प्रसव किया था।

हूँ बलिहारी राणियाँ थाल बजाणे दीह।
वीर जमीरा जे जणै सांकलहीठा सींह।।

कवि ने एक सुन्दर अन्योक्ति द्वारा तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है। वीर-भूमि भारत, जिसमें प्रवेश करते समय बड़े-बड़े विदेशी सम्राट् भी घबराते थे, जहाँकी करारी तलवार की मार के मारे बड़े-बड़े महारथी इधर मुँह करने का भूलकर भी साहस नहीं कर सकते थे, वहीं आज अँगरेज जैसी कायर जाति स्वच्छंद शासन कर रही है। इस भाव को स्पष्ट करने के लिए अन्योक्ति है कि जिस वन में 'गेंद', 'गिवल', 'गिड़राज' भूलकर भी प्रवेश नहीं कर सकते थे वहीं आज 'जंबुक' ताखड़े होकर ऊधम कर रहे हैं। कवि के शब्द यों हैं—

'जिण बन भूल न जावता गैंद, गिवल, गिड़राज।
तिण वन जंवुक ताखड़ा ऊधम मंडै आज॥'
'ऐरे मृगराज! आज तेरे बिन ऊँही द्वार,
निर्भय शृगाली-वृन्द कुकल उचारत है।'

वाली स्थिति हो चली है। कवि ने केवल स्वातंत्र्य-संग्राम में बद्धपरिकर वीरों के कार्य-व्यापार की स्तुति ही नहीं की है---उसने उन लोगों की, जो मान-मर्यादा, देश-प्रेम, आदि को भूल आलसी हो रहे थे, भर्त्सना भी खूब की है। उनके लिए कवि की चुभती हुई व्यंग्योक्ति है---

खाटी कुलरी खोवणां ने पै घर घर नींद।
रसा कुँवारी रावतां वरती कोई वींद॥

कुछ लोग अपनी मिथ्या प्रशंसा में इतने रत थे कि अपनी पतन की स्थिति से जरा भी लजाते नहीं थे। उनके प्रति कवि का कथन है---

सेजां में घर घर सखी आणै धजर अजाण।
धारां में राखै धजर सो कुण कंत समाण॥

विलासी, कायर और अदूरदर्शी राजाओं के ऊँचे-ऊँचे धवल धामों से तो क्रांतिकारी वीरों के वे कच्चे और घास ढके झोंपड़े ही धन्य हैं---

टोटे सर का भींतड़ा घातै ऊपर घास।
वारी जै भड़ झूँपड़ा अधपतियाँ आवास॥

समय की माँग को न पहचानकर स्वार्थ और कायरतावश हीन जीवन-यापन करनेवाले लोगों से कवि को बड़ी नफरत है। वह तो कायर के पंड़ोस में भी नहीं रहना चाहता।

नहँ पड़ौस कायर नरां हेली वास सुहाय।
बलिहारी जिण देसड़े माथा मोल बिकाय॥

अँगरेजों ने उस समय कुछ प्रलोभन देकर, देश के कुछ तथाकथित समझदारों को अपनी ओर मिला लिया था। इन समझदारों में अधिकतर राजा और समर्थ-पूंजीपति ही थे। असल में इस मुक्ति-युद्ध में इन लोगों ने योग देना तो दूर रहा, क्रान्तिकारियों को कुचलने में ब्रिटिश शाही के हाथ मजबूत किये थे। राजपूताने के सभी राजा---बूंदी को छोड़कर---अँगरेजों के पृष्ट-पोषक होकर
अप्रत्यक्ष रूप से दमन में लगे थे। बहकावे में
मार्ग-भ्रष्ट हो रहे थे। कवि ने निदर्शना के सहारे
बात कितनी सुन्दर कही है।

पैला रे वह कावियाँ पड़ै सयाणां डूल।
डाकण रे घर डावड़ा भेजै जिकण म झूल॥

'डाकण रे घर डावड़ा' कितना सुन्दर मुहावरा है।
शत्रुओं के बहकावे में आना वैसा ही विनाशक है
डाकिन के घर बच्चे को भेजना। ऐसा ही भाव 'डा
के डेरा डावरे को डारि देत हैं' ('वंशभास्कर') में है।

कवि ने भरसक प्रयत्न किया कि क्रान्ति सफल हो
उसका यह स्वप्न साकार हो। कवि के पत्रों से यह
स्पष्ट है। कवि के आश्रयदाता बूंदी-नरेश रामसिंह
अँगरेजों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार से भी यह प्रक
कि उनपर कवि की वाणी का यथेष्ट प्रभाव था।
लाख कोशिश के बावजूद, क्रान्ति सफल न हो
कवि ने उसका कारण बताते हुए कहा है--

पूरा आकुल पाठड़ा भालां पड़तां भार।
हे कण कबला बाहरी झाड़ां झाड़ां डार॥

सूअर के पट्ठे शिकारियों की मार से आकुल होकर इ
तितर-बितर हो रहे हैं क्योंकि उनका कोई बली
नेता नहीं है। नेतृत्व-विहीन क्रान्तिकारियों की अस
का उक्त दोहे में स्पष्ट निदर्शन है। ऐसा ही भाव
दोहे का भी है :---

रुख रुख तीराँ रूँखड़ा मुख मुख वीरां मोल।
पूंचाला हेकण पखै दल में प्रबल दरोल॥

और कवि ने भारी हृदय से देखा कि मुक्ति-युद्ध योग्य
के अभाव में, विश्रृंखल होकर ठप हो गया---नैराश्य
भयंकर अंधकार छा गया। अपने सुनहले स्वप्नों का
प्रकार अन्त होते देख वह भी दुखी होकर मौन हो
सतसई अधूरी रह गयी।

हर्षकालीन कुण्डधानी विषय (जिला) और सोमकुंडिक ग्राम

श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी

प्रदेश (भारत) के आजमगढ़ जनपद की घोसी तहसील, परगना नत्थूपुर में थाना मधुबन से २ मील क्षिण खीरीकोठा और कंकराडीह ग्राम के मध्य रक्त-(रतोय) सरोवर (सरजू नदी का छाड़न) के किनारे सन् १८८८ ई० में स्व० बिल्लर मल्ल जमींदार से हल चलाते समय पकाई हुई मिट्टी की छोटी में कुछ स्वर्ण के सिक्के और एक ताम्रपत्र प्राप्त कुछ लोगों ने सिक्के देखे पर फिर वह छिपा दिये और आज तक उनका पता न चला कि किस राजा के संवत् के थे। ताम्रपत्र पर संस्कृत में कई पंक्तियों था। पहले गाँववालों ने पढ़ने की चेष्टा की हें सफलता नहीं मिली।

के थाने पर यह बात पहुँची। थानेदार साहब थे। उन्होंने ताम्रपत्र माँगकर जिलाधीश के पास भेज दिया। जिलाधीश विद्वान् और था। उन्होंने ताम्रपत्र को स्वच्छ कराकर कई से पढ़वाया और हिन्दी अनुवाद करवाया तथा सरकार के पास भेज दिया। वह ताम्रपत्र (बीस) इंच लम्बा और १२ (बारह) इंच है। आजकल वह उत्तर प्रदेश सरकार के राजकीय (म्यूजियम) में रक्खा हुआ है।

दानपत्र में आए हुए कुंडधानी विषय (जिला) सोमकुंडिक ग्राम पर विचार करना है। हर्ष के समय भुक्ति (कमिश्नरी) थी। श्रावस्ती के अन्तर्गत विषय (जिला) था। उस विषय के अन्तर्गत ग्राम में महाराजा हर्षवर्धन हर्ष संवत् २५ बदी ६ को विशाल सेना सहित आये थे। आने कारण था। हर्ष को अपने दानाध्यक्ष से ज्ञात कि कुंडधानी विषय के सोमकुंडिक़ ग्राम-निवासी नामक ब्राह्मण ने हमारे नाम से अंकित एक स्वयं लिख लिया है और वह सोमकुंडिक पर कर रहा है। हर्ष ने कहा कि मैं तो स्वयं शक्ति साधु-सन्तों, ब्राह्मणों, दीन-दुखी लोगों को दान दिया हूँ, वामरथ्य ने मेरे साथ ऐसी धूर्त्तता क्यों की?

महाराजा हर्ष ने अपने उच्चाधिकारियों से कहा कि मास में मैं कुंडधानी विषय का दौरा करूँगा। आप सब समुचित व्यवस्था करें। व्यवस्था शीघ्र हो गयी और महाराजाधिराज ने यात्रा आरम्भ की। हर्ष के साथ बहुत बड़ी सेना थी। कई हजार हाथी-घोड़े, तम्बू आदि थे। महाराज का पड़ाव सोमकुंडिक ग्राम में पड़ा। वहाँ उपस्थित अपने सभी राजकर्मचारियों को सम्बोधित कर उन्होंने कहा कि यहाँके वामरथ्य ,नामक ब्राह्मण ने मेरे नाम से जाली दानपत्र बनाकर, कई वर्ष से इस ग्राम का राज-कर राजकोष में नहीं जाने दिया। जब यह बात मुझे ज्ञात हुई तो मैंने उस दान-पत्र को रद्द कर दिया और इस ग्राम को दो विद्वान् परोपकारी ब्राह्मणों (वातस्वामी और शिवदेव स्वामी) को दान में दे दिया। आप लोग इस ग्राम का राज-कर वसूल कर उक्त दोनों ब्राह्मणों को दे दिया करें। इससे मुझे और मेरे कुल के स्वर्गीय पूर्वजों को अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

आगे महाराज हर्ष के दानपत्र की संस्कृत प्रतिलिपि और हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है:—

महाराजा हर्षवर्द्धन के दानपत्र (ताम्रपत्र) की प्रतिलिपि (हर्ष संवत् २५ की)

ॐ स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात् कपिन्थिकायाः महाराज श्रीनरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराज श्रीमदादित्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुःसमुद्रातिक्क्रान्तकीर्तिः प्रतापानुरागोपनतान्य राजे वर्णाश्रम व्यवस्थापनप्रवृत्त-चक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहरः परमादित्यभक्तः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीप्रभाकरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः सितयशःप्रतानविच्छरितसकल-भुवनमण्डलः परिगृहीत धनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपाल-तेजः सत्पथोपार्ज्जितानेकप्रवणभूमिप्रदानसम्प्रीणितार्थि-हृदयोतिशयित पूर्व्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीराज्य-वर्द्धन राजा नोयुधिदुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखा सर्व्वे समं संयताः। उत्खय-द्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं प्राणानुज्झित-वानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः।। तस्यानुजस्तत्पादा-

नुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्व्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीहर्षः श्रावस्तीभुक्तौ कुण्डधानीवैषयिकसोमकुण्डिकाग्रामे समुपगतां महासामन्त महाराज दौस्साधसाधनिकप्रमातारराजस्थानीयकुमारामात्योपरिक विषयपति भटचाटसेवकादीन्प्रतिवासिजनपदाश्च समाज्ञापयत्यस्तु वः संविदितमयं सोमकुण्डकाग्रामो ब्राह्मणवामरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इव विचार्य यतस्तच्छासनं संभक्त्वा तस्मादिक्षिप्य च स्वसीमापर्यन्तः सोद्रंगः सर्व्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतः सर्व्वपरिहृतपरिहारो विषयाद्वद्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगतः चन्द्रार्क्कक्षितिसमकालीनो भूमिच्छिद्रान्यायेन मया पितुः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीप्रभाकरवर्द्धनदेवस्य मातुः परमभट्टारिका महादेवी राज्ञी श्रीयशोमतीदेव्याः ज्येष्ठभ्रातृ परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानां च पुण्ययशोभिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्ट वातस्वामि विष्णुवृद्धसगोत्र वह्वृचसब्रह्मचारिभट्टशिवदेवस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्म्मणाप्रहारत्वेन प्रतिपादितः विदित्वा भवद्भिः समनुमन्तव्यः प्रतिवासिजनपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथा समुचिततुल्यमेयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्यायः अनयोरेवोपनेया सेवोपस्थानं च करणीयमित्यपि च अस्मात्कुलक्क्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् । लक्ष्म्यास्तद्रितसलिलबुद्बुदचंचलायाः दानफलं परयशः परिपालनं च।। कर्म्मणा मनसा वाचा कर्तव्यं प्राणिने हितं। हर्षेणैतत्समाख्यातं धर्म्मार्ज्जनमनुत्तमं। दूतकोत्र महाप्रमातार महासामन्त श्री स्कन्दगुप्तः महापटलाधिरणाधिकृतसामन्त महाराजेश्वर गुप्तसमादेशाच्चोत्कीर्णं गुर्ज्जरेण संवत् २०+५ मार्गशीर्ष वदि ६ [ओं स्वस्ति। कपित्थकस्थित नौका, हाथी और अश्व से युक्त स्कन्धावारात् (राजपड़ाव) से।]

हिन्दी अनुवाद

महाराज श्री नरवर्द्धन के श्री वज्रिणी देवी से उत्पन्न चरणसेवी पुत्र परमादित्य भक्त महाराज श्री राज्यवर्द्धन हुए। उनके श्री अप्सरा देवी से उत्पन्न चरणसेवी पुत्र परमआदित्यभक्त महाराज आदित्यवर्द्धन हुए। उनके श्री महासेन गुप्तादेवी से उत्पन्न चरणसेवी पुत्र परमआदित्यभक्त परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्धन हुए। उनकी कीर्ति चारों समद्रों के पार तक फैली थी; उनके सम्मुख प्रताप और अनुराग से लोग शीश झुकाते थे। उनकी भक्ति वर्णाश्रम की रक्षा में लगी थी और वे सूर्य के समान प्रजा के लिए अपनी शक्ति लगाते थे। उनके विमल यशवाली श्री यशोमती से उत्पन्न चरणसेवी पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धन हुए जो परम सौगत (बौद्ध धर्मावलम्बी) थे और सुगत (बुद्ध) के समान ही परहितकर्ता थे। उनके विमल यश से सारे भू मण्डल का वितान छाया हुआ था। उनमें कुबेर, वरुण, इन्द्र आदि लोकपालों के समान तेज व्याप्त था। उन्होंने सत्पथ से उपार्जित भूमि देकर भूखे हृदयों को गद्गद किया था। उन्होंने दुष्ट घोड़े के समान श्री देवगुप्त आदि को अपने कोड़े के प्रहार से वशीभूत कर लिया था। वे शत्रु का उन्मूलन कर, वसुधा को जीत लोकप्रिय कार्य कर सत्य अनुरोध की रक्षा करते हुए शत्रु के घर में मारे गए।

उनके छोटे भाई चरणसेवी परम महेश्वर के समान ही सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीहर्ष श्रावस्ती भुक्ति स्थित कुण्डधानी विषय के सोम कुण्डिक ग्राम में उपस्थित समस्त महासामन्त, महाराज, दौस्साधिसाधानिकों, प्रमातरों, राजस्थानियों, कुमारामात्यों, उपरिकों, विषयपतियों, भट चाट सेवकों आदि को आदेश देते हैं कि :—

आप सबको ज्ञात हो कि यह पता लगाकर कि सोमकुण्डिका ग्राम को कूट शासन (जाली दस्तावेज) के आधार पर वामरथ्य नामक ब्राह्मण भोग रहा है, उस शासन को नष्ट करवा दिया और उस ग्राम को लेकर अपने पिता परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन, अपनी माता परमभट्टारिका महादेवी यशोमतीदेवी और अपने ज्येष्ठ भाई परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धन के पुण्य और यश की अभिवृद्धि के लिए अग्रहार रूप में सावर्णि गोत्र के छन्दोग ब्रह्मचारी भट्ट वातस्वामी और विष्णुबृद्ध गोत्र के वाह्वृच ब्रह्मचारी भट्ट शिवदेवस्वामी को समस्त सीमा, उद्रंग, प्रत्याय आदि सहित दान कर दिया। अतः यह जानकर आप सब उसको स्वीकार करें और मेरे आदेश को मानते हुए जो कुछ भी तुल्यमेय भाग, भोग, कर आदि हो इन दोनों व्यक्तियों को दिया करें। जो कोई मेरे कुल में हों और अन्य लोग भी, इस दान को स्वीकार करें। लक्ष्मी

बुलबुले के समान चंचल हैं। अतः दान का फल और ही शेष रह जाता है। फलतः मनसा, वाचा, कर्म्मणा को अपना कर्तव्य करना चाहिए। हर्ष ने भी उसी की प्राप्ति की चेष्टा की है।

इस शासन के दूतक महाप्रमातर महासामन्त श्री गुप्त हैं और महापटलाधिकरणाधिकृत सामन्त ेश्वर गुप्त की आज्ञा से इसे गुर्ज्जर ने उत्कीर्ण ।

संवत् २५ मार्गशीर्ष वदि ६।]

इस दानपत्र में आये हुए दोनों ब्राह्मणों का घर कहाँ ह नहीं लिखा है। महाराज हर्ष ने जब दानपत्र दिया उस पड़ाव पर उक्त दोनों व्यक्ति उपस्थित रहे होंगे। कुंडिक ग्राम की पहचान आजकल के कुण्डा ग्राम से जा सकती है। यह कुण्डा घोसी-मधुबन रोड (आजमगढ़ से बलिया जानेवाली पक्की सड़क) पर स्थित ग्राम है। यहाँ सड़क पर ही प्राचीनकालीन दुर्ग भग्नावशेष है। बड़े-बड़े कमरे और चौड़ी, सुदृढ़ दीवालें तक मौजूद हैं। लगभग २० एकड़ में इस कोट के बिखरे हैं। ईंटें १६×९×३ इंच की हैं। कई वर्ष न लोग टीले को काटकर खेत बना रहे हैं। एक को टूटी हुई कई तलवारें और मिट्टी के पात्र में सिक्के मिले जो वहाँ के ग्राम प्रधान के पास जमा हैं।

कुंडधानी विषय

कुंडधानी विषय आजकल का सम्पूर्ण आजमगढ़ है। मौर्यकाल में राजा नहुष की कोट अर्थात् घोसी दिन तक जिले की राजधानी थी। घोसी-नरेश नन्द घोस चन्द्रगुप्त मौर्य का मित्र था। राजगद्दी बैठने के पूर्व चन्द्रगुप्त अपने मित्र के यहाँ महीनों तक रहा था। गद्दी पर बैठने के बाद उसने घोसी की उन्नति की। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद घोसी दुर्ग और शहर को कई राजाओं ने लूट लिया। घोसी गयी। सातवीं शती में जब महाराज हर्ष इस देश सम्राट् हुए तो उन्होंने अपने राज्य की व्यवस्था करते सरयू नदी के तट पर स्थित प्राचीन कस्बे कुंडधानी को विषय (जिला) बनाया। उस समय कुंडधानी प्रसिद्ध घाट था। वहाँ दूर-दूर से माल लदी नावें आती थीं। विष्णुपुर (महाराजगंज) से सरयू की एक धारा लेटा घाट होकर तरौका, चौको, कुंडधानी होकर कपालगढ़ से दक्षिण इन्द्रपुर कोट की उत्तरी दीवार (मौर्यकालीन) को छूती हुई नदवा सराय, भिखारीपुर होकर घोसी कोट से दक्षिण जाकर शाहरौजा (शहरोज) में तमसा नदी से मिल जाती थी। वहाँसे नावें तमसा से पूर्व या पश्चिम जाती थीं।

कुंडधानी नामक ग्राम आस-पास के किसी जिले में नहीं है। आजमगढ़ शहर से पश्चिम निजामाबाद के पास एक ग्राम "धनियाँकूँड़ी" है पर वहाँ कोई पुरातात्त्विक चिह्न नहीं हैं जिनसे उसे प्राचीन आबादी कहा जा सके। कुंडधानी का वर्तमान नाम तप्पा कुड़हनी है। तप्पा कुड़हन से उजड़कर ८, १० कोस तक वहाँके लोग चारों ओर गये हैं। कुछ लोग शहरों में हैं और अपनी जन्मभूमि तप्पा कुंड़हनी बताते हैं। आजमगढ़ जनपद की घोसी तहसील का अर्द्धभाग तप्पा कुड़हन में आ जाता है। कुड़हनी का टीला सैकड़ों बीघे में है। वहाँकी ईंटें, दीवारें, देवमूर्तियाँ सिद्ध करती हैं कि यह स्थान किसी काल में बहुत विख्यात था। ईंटें कई प्रकार की हैं। १॥-१॥ फुट तक की लम्बाई और १०, १० इंच की चौड़ाई की तथा ३, ४ इंच की मोटाई की लोहे के समान मजबूत ईंटों से टीला भरा है।

१३०० वर्ष का जमाना गुजरा; प्राचीन कुंडधानी के महल और अन्य दर्शनीय वस्तुएँ काल के गर्भ में छिप गयीं। दुर्भाग्यवश ब्रिटिशशासन में भी कोई ऐतिहासिक विद्वान् वहाँ नहीं पहुँचा।

कुंडधानी में पक्की सड़क, बस स्टेशन या रेलवे स्टेशन नहीं है। इसीलिए उच्चाधिकारी वहाँ नहीं पहुँचते। ग्रामवासियों को टीला खोदते समय अच्छे-अच्छे खिलौने, सिक्के, देवमूर्तियाँ आदि प्राप्त होती हैं। कुंडधानी के टीले से प्राप्त ईंटों से गाँव के लोग मकान, कूप, चबूतरे आदि बनाते हैं।

भारतीय पुरातत्त्व विभाग और उत्तर प्रदेश सरकार को सोमकुंडिक ग्राम और कुंडधानी विषय के पुरातत्त्व को खुदाई करके वहाँसे मिलनेवाली वस्तुओं को राजकीय संग्रहालय में या हरिऔध स्मारक कला-भवन आजमगढ़ में रख देना चाहिए जिससे उसके इतिहास का अध्ययन हो सके।

आकाश की नर्तकी—बिजली

श्री सुरेशचन्द्र गौड़, एम॰ एस्-सी॰

सम्भवतः अन्य किसी भी प्राकृतिक घटना ने इतना भय, रोमांच और आश्चर्य नहीं उत्पन्न किया होगा, और न आज भी करती होगी जितना तड़ित् और बादलों की कड़क से उत्पन्न होता है। अनादि काल से संसार के प्रायः सभी देशों में यही विश्वास प्रचलित था कि तड़ित् ईश्वर का दण्ड है, जिसका प्रहार वह उस प्राणी अथवा वस्तु पर करता है जिसके ऊपर वह कुपित हो जाता है। ग्रीक और रोमन देशवासी उसे भगवान् जुपिटर का प्रहार दण्ड मानते थे। आज भी बहुत से लोग ऐसा ही समझते हैं, और तड़ित् के वैज्ञानिक कारणों को समझने की चेष्टा करने के बदले चिरपोषित अन्धविश्वास पर ही अधिक भरोसा करते हैं। प्राचीन धर्म-ग्रंथों में वर्णित अनेक कथाएँ उनके इस अन्धविश्वास को बल देती हैं।

विद्युत् सम्बन्धी जानकारियों में कुछ वृद्धि होने पर वैज्ञानिकों की यह धारणा बनी कि साधारण तौर पर तड़ित् की घटना ठीक उसी प्रकार होती है जिस प्रकार संघनित्र (condenser) के प्लेटों के बीच, वायु में से होकर स्फुलिंगों का प्रवाह संघनित्र को अनाविष्ट (discharge) करते समय होता है। इस धारणा की पुष्टि करने के लिए प्रयोग करने का साहस किसीको नहीं होता था। किन्तु अन्त में बेंजामिन फ्रैंकलिन की प्रेरणा से फ्रांस के दो वैज्ञानिको—डालिबार्ड और डेलॉर ने प्रयोग करने का निश्चय किया। उन्होंने धातु के दो छड़ लिए। (डालिबार्ड का छड़ चालीस फुट तथा डेलॉर का छड़ निन्यानबे फुट ऊँचा था।) दोनों ही छड़ों से लगभग डेढ़ इंच तक स्फुलिंगों का विसर्जन करा सकने में सफल हुए। यह प्रयोग अत्यन्त खतरनाक था और आगे चलकर एक अन्य वैज्ञानिक ने यही प्रयोग दोहराते समय अपने प्राणों से हाथ धोये!

फिर भी उपर्युक्त प्रयोग से यह निश्चय न हो सकने के कारण कि छड़ों में उत्पन्न विद्युत् बादलों से ही आई है, क्योंकि छड़ों की पहुँच बादलों तक नहीं थी, बेंजामिन फ्रैंकलिन ने अपना सुविख्यात पतंगवाला प्रयोग किया। उसने एक पतंग उड़ाई और उसे बादलों के अन्दर तक पहुँचाया। ज्योंही पतंग की डोर भीगी, पतंग और डोर दोनों ही तन गये जिससे यह पता लगा कि दोनों विद्युत् आवेशयुक्त हो गये हैं। इस डोर में उसने एक चाभी बाँध दी थी। चाभी के पास उँगली ले जाने से दोनों के बीच चटचटाहट की आवाज के साथ स्फुलिंगों का विसर्जन हुआ। इतना ही नहीं, उस चाभी का स्पर्श लीडेन जार (Leyden Jar) से कराकर उसने उसे आवेशित भी कर लिया। इससे यह निश्चित हो गया कि बादलों में भी विद्युत् होती है। इस विद्युत् के स्फुलिंग रूप में विसर्जन को तड़ित् कहते हैं। यह विसर्जन बादल-बादल अथवा बादल-पृथ्वी के बीच हो सकता है।

तड़ित् प्रायः क्युमुलो-निम्बस मेघों में उत्पन्न हो है। इन मेघों में अत्यन्त प्रबल ऊर्ध्वगामी (up moving) पवन-धाराएँ चलती हैं जो लगभग ४० की ऊँचाई तक पहुँचती हैं। इनमें कुछ ऐसी क्रियायें हो हैं जिनके कारण इनमें विद्युत्-आवेशों की उत्पत्ति त विमोचन होता है। इन क्रियाओं के स्पष्टीकरण के लि विलसन, सिम्पसन, स्क्रेज (Scrase) आदि ने अ अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं जो परस्पर विरोधी जा पड़ते हैं। किन्तु इतना तो सभी बतलाते हैं कि तड़ि की जनक-प्रक्रियाएँ मेघों में होती हैं और उनके लि उन मेघों में विद्यमान् जल-सीकर अथवा हिम-क आदि अवक्षेपण कण (precipitation particle) ही उत्तरदायी होते हैं। बादलों में विद्युत् वितरण के सम्बन्ध में भी सभी एकमत हैं कि इनके ऊपरी स्तर धनाविष्ट तथा मध्य और निम्नस्तर ऋणाविष्ट होते हैं जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है। इन आवेशों का विभाजन मेघों के अन्दर ०° सें० ग्रे० ताप वाले स्तरों के भी काफी ऊपर होता है। इससे यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त होता है कि आवेश विभाजन मेघों में बनने वाले हिमकणों तथा ऊर्ध्वगामी पवन-धाराओं से ही होता है जल की बूंदों से नहीं। कभी-कभी निम्नस्तर में भी कहीं-कहीं धनावेशों का एक केन्द्र सा बन जाता है।

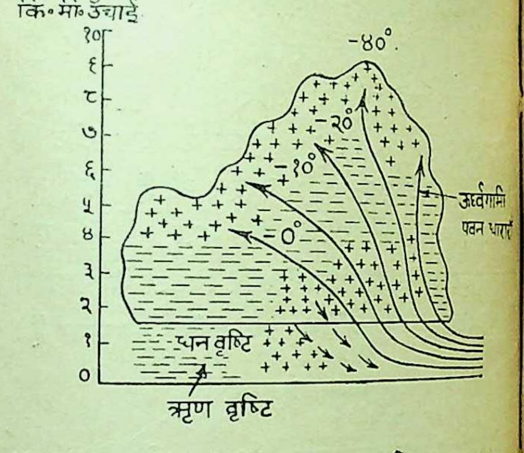

बादलों में आवेश का वितरण

बादलों के निम्नस्तरों पर ऋणावेश उत्पन्न हो जाने के कारण नीचे पृथ्वी के तल पर प्रेरण द्वारा धनावेश उत्पन्न हो जाते हैं। बादलों के आगे बढ़ने के साथ ही पृथ्वी पर के ये धनावेश भी ठीक उसी प्रकार आगे बढ़ते हैं। ऋणावेशों के द्वारा आकर्षित होकर भूतल के धनावेश पृथ्वी पर खड़ी सुचालक तथा अर्धचालक वस्तुओं पर ऊपर तक चढ़ जाते हैं। इस विधि से जब मेघों का विद्युत

१९६३

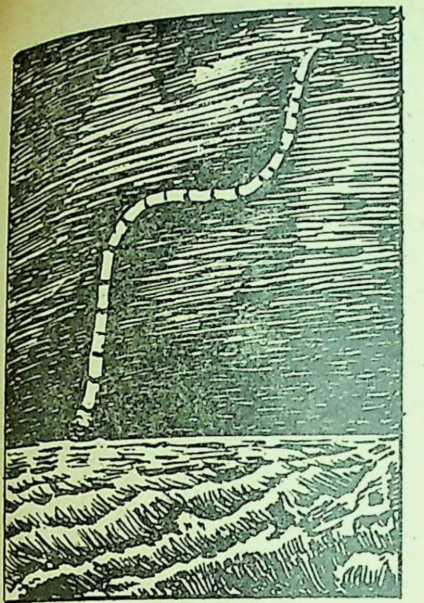

मनकामय तड़ित

सीमा तक पहुँच जाता है कि पड़ोसी आवेश केन्द्रों ीच विभव-प्रवणता (potential gradient) विभंग ak-down) मान तक पहुँच जाती है तो विद्युत् विसर्जन दीर्घ स्फुलिग के रूप में होता है। इसे तड़ित् ते हैं। पृथ्वी की ओर आनेवाली तड़ित् कई सोपानों ps) में होकर पहुँचती है। बादलों से इलेक्ट्रानों का प्रवाह (surge) १ माइक्रोसेकेन्ड (१×१०^{६} से०) ५० मीटर नीचे आता है और रुक जाता है। लगभग मा० से० के पश्चात् दूसरा सोपान आरम्भ होता है र इस प्रकार कई सोपानों में होकर अन्त में यह ्वी तक पहुँचता है। इसे प्रमुख आघात (leader ke) कहते हैं। अपने उद्गम स्थल से पृथ्वी तक ँचने में इसे कुल ·००२ से० से ·०१ से० तक का समय ता है।

उपर्युक्त तथ्य शॉनलैन्ड (Schonland) तथा उनके ोगियों द्वारा अत्यन्त सुग्राही केमरा की सहायता से गये फोटो चित्रों से प्रगट हुए थे। उसी फोटो पत्रिका यह भी दिखलाई पड़ा कि सोपान प्रमुख (step leader) पृथ्वी पर पहुँचने के क्षण ही एक अत्यन्त तीक्ष्ण ज्योति ्वी से मेघों की ओर उन्हीं सोपानों में होकर गई जिससे कर सोपान प्रमुख (step leader) आया था। उसे गामी आघात (Return stroke) कहते हैं। जहाँ पान प्रमुख का औसत वेग १०^{५} मीटर प्र० से० ता है वहीं प्रतिगामी आघात (Return stroke) का १०^{७} मीटर प्र० से० होता है। क्योंकि उसका मार्ग हले से ही आयनित (ionized) होने के कारण प्रशस्त हता है।

उपर्युक्त प्रमुख तथा प्रतिगामी-आघातों के बाद भी कई आघात क्रमशः नीचे और ऊपर की ओर आते-जाते दिखलाई पड़ते हैं। ये द्वितीयक आघात (Secondary Strokes) कहलाते हैं। नीचे आने वाले ये द्वितीयक आघात प्रमुख आघातों की भाँति सोपानों में नहीं आते।

बादलों के विभव और तड़ित् धाराएँ

सी० एफ० वैनर और जी० डी० मैककैन ने बतलाया है कि बादलों के विभव प्रायः दो करोड़ वोल्ट की कोटि के होते हैं। सिम्पसन और स्क्रेज ने प्रयोगों द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि १०००० फुट से अधिक ऊँचाई पर स्थित बादलों के विभव का प्रायः ५० से १०० वोल्ट प्र० सें० मी० की दर से पतन होता है। तड़ित प्रक्रिया के बीच में विद्युत् धारा का मान दो लाख से १५ हजार ऐम्पियर के बीच रहता है। इस प्रचण्ड धारा के कारण तड़ित के पथ में विद्यमान् वायु के अणु और परमाणु आयनित (ionized) हो जाते हैं और प्रकाश उत्पन्न करते हैं। यही चमक हमें दामिनि के रूप में दिखलाई पड़ती है।

यह स्पष्ट है कि वायु से होकर बादलों और पृथ्वी के बीच विद्युत् विसर्जन वहीं अधिक सम्भव होगा जहाँ वायु का प्रतिरोध विद्युत् को कम से कम पार करना पड़ेगा। इसीलिए ऊँची मीनारें, ऊँचे भवनों, एकाकी वृक्ष चाहे मैदान में हो या पहाड़ी पर तथा पताका दण्ड (Flagpoles) इत्यादि पर तड़ित का पतन अधिकतर होता है। इसका एक कारण यह भी है कि कोई वस्तु बादल से जितनी ही अधिक निकट होगी, उसपर उतना ही अधिक प्रेरित आवेश उत्पन्न होगा। इसके अतिरिक्त सपाट मैदान की अपेक्षा मीनारों, वृक्षों की चोटियों आदि के नुकीले होने के कारण उनपर विद्युत् आवेश अधिक मात्रा में एकत्र होता है।

तड़ित आघात (lightning stroke) जनित विद्युत् धारा एकदिशिक (unidirectional) होती है। आघात के लगभग ५ माइक्रोसेकेन्ड की अवधि में ही इसका मान क्रम से बढ़ता हुआ अधिकतम हो जाता है और लगभग २५ माइक्रोसेकेन्ड के अन्दर घटकर आधा भाग रह जाता है। यह प्रबल धारा प्रायः १०० माइक्रोसेकेण्ड तक रहती है। उसके पश्चात् क्रमशः घटते हुए कुछ सहस्र ऐम्पियर तक पहुँच जाती है और कुछ सहस्रांश सेकेण्ड (मिली सेकेण्ड) तक ऐसे ही बनी रहती है। यदि तड़ित् आघात की पुनरावृत्ति नहीं हुई तो कम होते-होते यह धारा निःशेष हो जाती है।

तड़ित के प्रकार (Kinds of lightning)

सामान्यतया तड़ित् तीन प्रकार की होती है।

(१) **विस्तृत** (Sheet) **तड़ित**—जो काफी विस्तृत क्षेत्र पर चमकती है और अविरल प्रकाश बादलों पर काफी दूर तक फैल जाता है।

(२) **धारीदार या रेख वर्ण** (Streak) **तड़ित**—जो अक्सर दिखाई पड़ती है। इसमें एक या अधिक

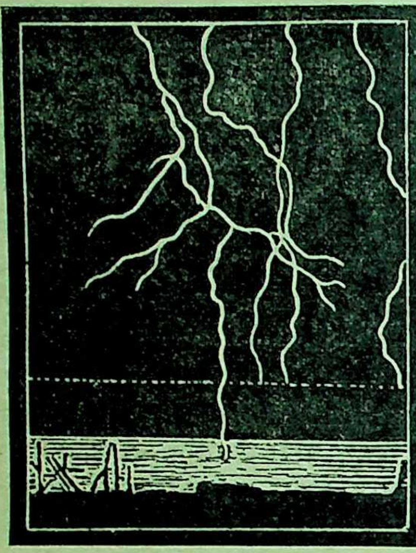

धारीदार तड़ित

प्रकाश रेखाएँ, सीधी या टेढ़ी, इधर-उधर बादलों में दौड़ती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। इसमें विद्युत विसर्जन बादल-बादल, बादल-धरती अथवा बादल-वायुमंडल के बीच होता है। यह तड़ित स्वयं तीन प्रकार की हो सकती है।

(अ) **मनकामय** (Beaded) जिसमें तड़ित के पूरे मार्ग में प्रकाश कहीं कम रहता है और कहीं-कहीं सघन प्रकाश के केन्द्र बन जाते हैं और घुण्डियों सदृश दिखलाई पड़ते हैं। (ब) **द्विमुखी** (Forked) जिसमें दो शाखाएँ विभिन्न दिशाओं को जाती हुई दिखलाई पड़ती हैं। और (स) **उष्म तड़ित** अर्थात् बहुत दूर पर होने वाला विद्युत् विसर्जन, जहाँ से आवाज नहीं पहुँच पाती।

(३) **कन्दुक** (Ball) **तड़ित**—जो एक ज्योतिर्मय गेंद की भाँति पृथ्वी की ओर आती हुई दिखलाई पड़ती है। इसका औसत व्यास २० सें० मी० होता है। ज्यों-ज्यों वह पृथ्वी की ओर अग्रसर होती है, उसका वेग घटता जाता है। लगभग ५ सेकेण्ड तक दिखलाई पड़ने के उपरान्त वह अत्यन्त प्रचण्ड ध्वनि के साथ विस्फुटित हो जाती है। यह बहुत ही कम दिखलाई पड़ती है। इसकी उत्पत्ति का कारण अज्ञात है।

तड़ित से रक्षा

भवनों को तड़ित् के सीधे आघात से बचाने के लिए बेंजामिन फ़्रैंकलिन द्वारा विकसित तड़ित दण्ड (lightning rod) व्यवस्था सर्वाधिक श्रेष्ठ है। लोहे एक छड़ जिसका ऊपरी सिरा भाले की भाँति नुकीला होता है और भवन के काफी ऊपर तक निकला रहता है, भवन के पार्श्व से होता हुआ भूमि के अन्दर काफी गहराई तक गड़ा रहता है। निचला सिरा भूमि में की एक पट्टिका में लगा होता है। यह तड़ित्-दण्ड बादल में विद्यमान तड़ित् के लिए न्यूनतम प्रतिरोध का मार्ग ही नहीं प्रशस्त करता प्रत्युत् यह भवन पर उत्पन्न प्रेरित विद्युत्-आवेशों को तत्काल पृथ्वी के अन्दर पहुँचा देता है। इस प्रकार बादलों और भवन के बीच आवेशों के पारस्परिक आकर्षण की सम्भावना भी पर्याप्त घटा देता है। अतीत से ही विद्युत् झंझाओं (electrical storms) के दिनों में नाविक अपने जलयानों के मस्तूलों से इस प्रकार बादलों की विद्युत् का क्षरण या लीक (leakage) देखते चले आ रहे हैं जो रात को अधिक स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसे वे सन्त एल्मों की अग्नि (St. Elmo's fire) कहते हैं।

आज कल तड़ित्-नियंत्रण सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। एक मनोरंजक प्रयोग मोटरकार में एक व्यक्ति को बैठाकर और उस मोटर में कृत्रिम तड़ित ऊपर से नीचे की ओर भेजकर दिया गया। चूँकि तड़ित में विद्यमान इलेक्ट्रानों में समान आवेशयुक्त होने के कारण परस्पर विकर्षण होता है, इसलिये मोटरकार की छत पर गिरते ही वे बिखर गये और उसकी दीवारों से होते हुए नीचे पृथ्वी में चले गये। इससे मोटर के अन्दर उनकी पैंठ भी न हो सकी और वह व्यक्ति सर्वथा सुरक्षित रह गया। इस प्रयोग से यह निश्चय हो जाता है कि आधुनिक धातु के ढाँचे वाले भवनों में, जिनकी नींव काफी गहरी होती है; बैठा हुआ व्यक्ति तड़ित् के प्रहार से अत्यन्त निरापद अनुभव कर सकता है। यदि ऐसा भवन अथवा तड़ित चालक युक्त भवन न मिल सके तो ऐसे विशाल भवन में आश्रय लेना चाहिए जो काफी विस्तृत हो। तड़ित युक्त आँधी तूफान के समय अँगीठी शालाओं (fireplaces), स्टोव तथा विद्युत् के अन्य सुचालकों से स्वयं को यथाशक्ति दूर रखना चाहिए। बाहर रहनेवालों को पहाड़ियों के ऊपर पुआल, इत्यादि के ढेर पर, एकाकी वृक्षों के नीचे, केतु-दण्डों (flag poles) के पास अथवा किसी प्रकार के धातु निर्मित वस्तु के समीप कभी न रहना चाहिये, न धातु से बने हुए किसी वस्तु को हाथ ही में लिये रहना चाहिये। पहाड़ों की कन्दराओं में घने वनों में अथवा किसी ढालू पहाड़ी के नीचे रहना सर्वथा निरापद होता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का निबन्ध-साहित्य

प्रो० आनन्द नारायण शर्मा, एम० ए०

हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र का अधिक महत्त्व उनकी कविताओं और नाटकों के कारण माना जाता है। उनके निबंधों की चर्चा प्रायः बहुत कम होती है। इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। पहली बात यह कि भारतेंदु के अधिकांश निबंध उस समय की पत्र-पत्रिकाओं, विशेष रूप से 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' और 'कविवचन-सुधा' की फाइलों में दबे हैं। कविताओं और नाटकों की भाँति उनके सुसंपादित संस्करण प्रकाश में नहीं आये हैं। दूसरी बात यह कि स्वयं निबंध अब तक हिंदी-साहित्य का एक अकुलीन स्वरूप माना जाता रहा है। उसे एक साहित्यिक विधा के रूप में वह प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी है, जो कविताओं, नाटकों या कुछ अंशों में उपन्यासों को मिली है। इसीलिए साहित्य के सामान्य पाठकों और आलोचकों द्वारा एक प्रकार से भारतेन्दु के निबंध-साहित्य की उपेक्षा होती आयी है।

किंतु एकाधिक दृष्टियों से हमारे साहित्य के इतिहास में भारतेंदु के निबंधों का विशेष महत्त्व है। भारतेंदु को पद्य-साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। उनकी अधिकांश कविताओं की भावभूमि वही है, जो भक्ति और शृंगारयुगीन कविताओं की है। यद्यपि उनमें भारतेंदु के व्यक्तित्व की कुछ घुलावट अवश्य है और कहीं-कहीं उनकी उक्तियाँ अपने पूर्ववर्त्तियों की अपेक्षा अधिक प्रभावशालिनी हैं, फिर भी उनके आधार पर किसी नवीन युग के उन्मेष की कल्पना नहीं की जा सकती। दूसरी ओर जहाँ उन्होंने सामयिक समस्याओं और युग चेतना को वाणी दी है, वहाँ उनकी कविता कलात्मकता से प्रायः वंचित हो गयी है।

भारतेंदु की कविताओं की अपेक्षा उनके नाटकों में नयापन अधिक है। उनके नाटकों में विषय-वस्तु के विस्तार के साथ यथार्थवादिता का गहरा रंग भी दिखलायी पड़ता है। किंतु उन नाटकों में खड़ीबोली-गद्य के बीच-बीच में ब्रजभाषा पद्य की बहुलता कभी-कभी अच्छे भले आदमी के तुतलाने जैसी लगती है और यह सूचित करती है कि उन नाटकों को संस्कृत के गद्य-पद्य-मिश्रित दृश्यकाव्य के प्रभाव से अभी मुक्ति नहीं मिली है। किंतु निबंधों के क्षेत्र में भारतेंदु को कोई परंपरा प्राप्त नहीं थी। न पाश्चात्य साहित्य से ही उनका उतने निकट का परिचय था कि उसकी तमाम विशेषताओं को अपने निबंधों में वे उतार पाते। यह पथ उन्होंने अपने पैरों चलकर तैयार किया है, इसलिए निबंध ही उनकी कर्त्तृत्वशक्ति के वास्तविक परिचायक कहे जा सकते हैं।

भारतेंदु के निबंध अंग्रेजी में लैंब और हैजलिट की परंपरा में नहीं आते, जिनमें अपने व्यक्तित्व का उन्मुक्त प्रकाशन ही लेखक का अभीष्ट होता है। फिर भी, भारतेंदु का व्यक्तित्व कुछ इतना सशक्त और प्राणवान था, जिसका कुछ-न-कुछ अंश उनकी सभी प्रकार की रचनाओं में मुखरित हुआ है। भारतेंदु के निबंधों के बारे में मॉन्टेन की भाँति यह नहीं कहा जा सकता कि 'इन निबंधों में मैंने स्वयं अपनी तस्वीर बनायी है।' भारतेंदु जनजीवन के कलाकार थे। इसलिए वे यथार्थ जगत् की कठोरता और कोलाहल का विश्लेषण करते हैं। साथ ही, भारतेंदु उस युग के पत्रकार थे, जब पत्रकारिता एक कला के रूप में हिंदी में अनुष्ठित नहीं हो पायी थी। फिर भी, उन्होंने एक सच्चे पत्रकार के दायित्व का प्रतिष्ठापूर्ण निर्वाह किया। जहाँ एक ओर उन्होंने अपने निबंधों द्वारा ज्ञान के विविध आयामों से जनसाधारण को परिचित कराने की चेष्टा की, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी गौरवमयी संस्कृति और परंपरा का परिचय देकर जातीय चेतना का विकास और विदेशी सत्ता के विरुद्ध देशवासियों का संघटन भी किया।

भारतेंदु के निबंध-साहित्य का पाठ बहुत अधिक चौड़ा है। विषय-वस्तु के आधार पर उसके सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पुरातत्त्व-संबंधी, यात्रा-वृत्तांत-संबंधी, हास्य-व्यंग्य-प्रधान आदि अनेक भेद किये जा सकते हैं। इनमें भी कला की दृष्टि से यात्रा-संबंधी और हास्य-व्यंग्य-प्रधान निबंधों का स्थान सर्वोपरि है। कहा जाता है, भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी रचनाओं में प्रकृति को बहुत कम स्थान दिया है। उनकी कविताओं में प्रकृति के जो चित्र आये हैं, वे भी परंपरागत और रूढ़िबद्ध हैं। उनमें प्रकृति के जीवंत और गतिशील स्वरूप की झाँकी नहीं मिलती। उदाहरण के लिए उनके यमुना और गंगा-वर्णनों को लिया जा सकता है। इस तथ्य से इन्कार नहीं कि इन कविताओं में आलंकारिकता के बोझ से प्रकृति का वास्तविक स्वरूप कुछ दब-सा गया है और स्वतंत्र निरीक्षण का भी उतना आभास नहीं मिलता। पर, भारतेंदु के यात्रा-वृत्तांत रोचकता की दृष्टि से तो अनुपम हैं ही, इनमें प्रकृति की विविध भाव-छवियों की झाँकी भी बड़े निपुण भाव से उतारी गयी है। उदाहरणार्थ उनकी 'वैद्यनाथ धाम की यात्रा' का यह अवतरण द्रष्टव्य है—"ठंढी-ठंढी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी। दूर धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियाँ छिपी हुई और कहीं चारों ओर से उनपर जल-धारा-पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे। काले पत्थरों पर हरी-हरी घास और जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े पेड़, बीच-बीच में मोटे पतले झरने, नदियों की लकीरें, कहीं चारों ओर से सघन हरियाली, कहीं चट्टानों पर ऊँचे-नीचे अनगढ़ ढोंके और कहीं जलपूर्ण हरित तराई विचित्र शोभा देती थी। अच्छी तरह प्रकाश होते-होते तो वैद्यनाथ के स्टेशन पर पहुँच गये।"

(हरिश्चंद्र चंद्रिका और मोहनचंद्रिका, आषाढ़ शुक्ल १, संवत् १९३७)।

इन यात्रा-संबंधी निबंधों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रकृति के विविध रूपों की छटा के साथ मानव-स्वभाव का भी मार्मिक विश्लेषण हुआ है। बीच-बीच में हास्य और व्यंग्य के मनोहर पुट द्वारा एक ओर भारतेंदु अपनी आत्मीयता से पाठकों को मोह लेते हैं और स्थान-विशेष की विचित्रता या विकृति का भी मधुर संकेत कर देते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु और उनके सहयोगियों की जिस भेदक विशेषता—सजीवता या जिंद:दिली की दिल खोलकर दाद दी है, वह भी उनकी कविताओं और नाटकों में उतनी नहीं, जितने उच्छल रूप में उनके निबंधों में वर्त्तमान है। चुटकियों और चिकोटियों की दृष्टि से उनकी 'सरयूपार की यात्रा' उल्लेखनीय है, जिसका आरंभ ही पर्याप्त विनोद और सजीवता के साथ हुआ है—“कल साँझ को चिराग जले रेल पर सवार हुए। यह गये, वह गये। राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ न जाने क्यों? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था। यह कंपनी यजीद के खान्दान की मालूम होती है कि ईमानदारों को पानी तक नहीं देती।” पुनः कुछ आगे आप कहते हैं—“अब आज आठ बजे सुबह रें रें करके बस्ती पहुँचे। वाह रे बस्ती! झख मारने को बसती है। अगर बस्ती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किसको कहेंगे? सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीरामजी ऐसा पंडित नहीं, खैर अब तो एक दिन यहाँ वसति होगी।” (हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड—६, संख्या—८, फरवरी १८७९)।

यहाँ 'बस्ती' शब्द को लेकर जो यमक की बहार दिखायी गयी है, यह शब्दक्रीड़ा भारतेंदु की प्रकृति का अंग थी। इसी प्रकार एक-एक शब्द को लेकर एक समाँ बाँध देने का कौशल उनमें अक्सर देखा जाता है। इसी तरह मेहदावल, लखनऊ और हरद्वार की यात्राओं का भी अपना महत्त्व है। इनसे भारतेंदु के विस्तृत ज्ञान, व्यापक सहानुभूति, स्वच्छंद सैलानी तबीअत, सूक्ष्म निरीक्षण, मानव-प्रेम और जिंद:दिली का पूरा पता मिलता है। इन निबंधों में विषय-वस्तु की उतनी कैद नहीं, इसलिए भाषा का भी स्वच्छंद, वैविध्यपूर्ण और निखरा हुआ रूप हमारे सामने आता है। शुक्लजी ने ठीक ही कहा है—“यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।” (इतिहास—पृ० ५०५) भारतेंदु के नाटकों की गद्यभाषा में पात्रानुकूल उतार-चढ़ाव और लचीलापन होते हुए भी परिष्कार का अभाव है। इसके विपरीत निबंधों की भाषा सहज, प्रवाहपूर्ण और चित्रात्मक है। उसमे आत्मीयता का गहरा पुट है। यात्रा-संबंधी निबंधों में अधिकांश डायरी-शैली में लिखे गये हैं, लेकिन हरद्वार, लखनऊ आदि की यात्राओं की शैली पत्रात्मक है।

यात्रा-संबंधी निबंधों के ही परिपार्श्व में भारतेंदु के व्यंग्यात्मक निबंधों को स्थान मिलना चाहिए। एक व्यंग्य-लेखक में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, भारतेंदु में वे पूरी तरह वर्त्तमान थे। भारत की प्राचीन संस्कृति और परंपरा के प्रति मन में मोह होने पर भी वे रूढ़ियों के हिमायती नहीं थे। उनमें युग की ऐतिहासिक चेतना वर्त्तमान थी और थी अपनी परंपरा के प्रगतिशील तत्वों की सच्ची पहचान। नवीन ज्ञान-विज्ञान के प्रति उनका हृदय और मस्तिष्क दोनों खुला हुआ था। साथ ही, व्यापक अध्ययन और पर्यटन ने उनके सामने देश का सारा मानचित्र उजागर कर दिया था। इसलिए युगजीवन की अधिकांश असंगतियों पर उन्होंने गहरी चोट की है। यहाँ तक कि वैयक्तिक हानि-लाभ की परवाह न कर शासनतंत्र की आलोचना करने से भी वे नहीं चूके हैं। 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' में केशवचंद्र सेन और स्वामी दयानंद के स्वर्ग पहुँचने पर वहाँके सनातनपंथी धर्मध्वजियों में जो शोरगुल होता है उसका तो मनोरंजक वर्णन है ही इसमें तत्कालीन रीति-नीति और प्रशासकीय औपचारिकताओं तथा लाल फीतेबाजी का भी खूब मखौल उड़ाया गया है। 'लेवी प्राण लेवी' में लार्ड मेयो द्वारा लगाये गये अतिरिक्त कर (लेवी) को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया गया है। साथ ही, इसमें सामंतों की जी-हुजूरी और रईसों की व्यक्तित्वहीनता का भी अच्छा चित्र उभरा है। 'सबै जाति गोपाल की' की शैली नाटकीय है। इसमें उन जातियों पर व्यंग्य किया गया है जो पारस्परिक श्रेष्ठता की होड़ में प्राचीनता के नाम पर अपने लिए नये-नये तर्कों का शीर्षासन उपस्थित करती हैं। कुछ पंडितों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि प्रत्येक नवीन वस्तु के लिए वे वेदो या उपनिषदों से प्रमाण ढूँढ़ने का द्रविड़ प्राणायाम करते हैं और तब फतवा देते हैं कि 'ऐसा तो हमारे यहाँ भी था।' यह बात आज भी पायी जाती है और भारतेंदु के युग में या उसके कुछ बाद तो यह हास्यास्पद स्थिति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। भारतेंदु को इस प्रवृत्ति से चिढ़ थी और ऐसे पुरातत्त्वधर्मी पंडितों का वे खुलकर मखौल उड़ाया करते थे। भारतेंदु के प्रामाणिक जीवनी-लेखक बाबू ब्रजरत्नदास ने अपनी पुस्तक 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' में काशी-नरेश के दरबार में घटी एक ऐसी ही घटना का उल्लेख भी किया है। ऐसे ही दिग्विजयी खोजियों की खबर लेते हुए भारतेंदु ने 'मुसलमान' और 'क्रिस्तान' शब्दों की अनोखी व्युत्पत्ति बतायी हैं—“'अल्लाहोपनिषत्' में इनकी बड़ी महिमा लिखी है—द्वारिका में दो भाँति के ब्राह्मण थे। बलदेवजी को मुशली मानते थे। उनका नाम मुशलिमान्य हुआ और जिन्हें श्रीकृष्ण मानते थे उनका नाम कृष्णमान्य हुआ। अब इन दोनों शब्दों का अपभ्रंश मुसलमान और क्रिस्तान हो गया।” (हरिश्चन्द्र मैगजीन, सं० ६, जिल्द ९, नवंबर १८७३)

इसी तरह 'पाँचवें पैगंबर' में सामाजिक और राजनीतिक विकृतियों पर व्यंग्य किया गया है। 'कंकड़-स्तोत्र'

१९६३

विशुद्ध विनोद से प्रारंभ होकर अँगरेजी शासन की आलोचना में समाप्त होता है। 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' की शैली गंभीरता के आवरण में चुहल भरी है। उसमें कल्पना की अतिरंजना के साथ यथार्थ का रुचिर समावेश है। उनके माध्यम से आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के आडंबरों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। पात्रों के साभिप्राय नामों ने तो अंतर्विरोध को उभार कर और भी कमाल किया है। व्यंग्यात्मक निबंधों की भाषा यात्रा-संबंधी निबंधों की अपेक्षा कुछ अधिक चटकीली है और इनमें स्थान-स्थान पर उर्दू-फारसी या अँगरेजी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। जिन निबंधों का वातावरण पौराणिक है, उनकी भाषा में तत्समता की पूरी छौंक है। फिर भी ये निबंध कहीं शिथिल नहीं हो पाये हैं और न इनमें किसी प्रकार का दुराग्रह ही लक्षित होता है। भारतेंदु के कुछ निबंधों में कहानी के तत्त्वों का भी अनजाने ही समावेश हो गया है। बात यह है कि उनके समय तक कहानी कला का स्वतंत्र विकास नहीं हुआ था। फिर वे स्वयं पत्रकार थे। इसलिए जनरुचि को आकृष्ट करने की चेष्टा उनमें बराबर मिलती है। कहानी का तत्त्व 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' या 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन' आदि निबंधों में काफी मिकदार में है। इसीलिए ये निबंध रोचकता मे किसीसे कम नहीं हैं।

भारतेंदु के कुछ निबंध विशुद्ध विचारात्मक कोटि में आते हैं। 'स्त्री-शिक्षा', 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है', 'हिंदी भाषा', 'नाटक' आदि निबंध इसी जाति के हैं। इनमें एक ओर लेखक देशप्रेम की भावना से अनुप्राणित है तो दूसरी ओर जीवन के प्रगातशील तत्त्वों के प्रति भी गहरी दिलचस्पी दिखाता है। भारतेंदु का ज्ञान कितना व्यापक था, उनकी दृष्टि कितनी पैनी थी, उनके कहने का ढंग कितना स्वच्छ और प्रभावशाली था, इसका कुछ अनुमान उनके 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' शीर्षक निबंध से लगाया जा सकता है। यह निबंध बलिया के ददरी के मेले में उनके द्वारा दिया गया अभिभाषण है। इसीलिए इसमें शैली की आत्मीयता और भाषा की सजीवता देखते ही बनती है। वे कहते हैं--"जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली हैं, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंगलैंड, फरांसीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है। दीआसलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है।...जरा अपने ही को देखो। तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो, वह अमेरिका की बनी है। जिस लकलाट का तुम्हारा अंगा है, वह इंगलैंड का है। फरांसीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हो और जर्मनी की बनी चर्बी की बाती तुम्हारे सामने बल रही है। यह तो वही मसल हुई कि एक बे-फिकरे मँगनी का कपड़ा पहनकर किसी महफिल में गये। कपड़े को पहचान कर एक ने कहा अजी अंगा तो फलाने का है। दूसरा बोला अजी टोपी भी फलाने की है तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि घर की तो मूछैं ही मूछैं हैं।" (नवोदिता हरिश्चंद्र-चंद्रिका, खंड--११, संख्या--३, दिसंबर १८८४)

जिस आर्थिक परतंत्रता को गांधीजी ने बीसवीं शती के प्रथम चरण में लक्ष्य कर अपने चरखे का दर्शन प्रचारित किया, उसे भारतेंदु ने उनसे लगभग चौथाई शती पहले देख लिया था और उसके विरुद्ध देशवासियों को आत्मावलंबन का पाठ पढ़ाया था। जो लोग साहित्य को राजनीति का अनुचर मानकर उसका अवमूल्यन करते हैं अथवा उसपर सामाजिक दायित्वहीनता का दोषारोपण करते हैं, उन्हें भारतेंदु और उनके सहयोगियों की इस प्रकार की रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए।

'हिंदी भाषा' शीर्षक निबंध में उन्होंने हिंदी की प्रचलित शैलियों के बारह उदाहरण दिये हैं और उनमें उसकी सहज स्वाभाविक और जातीय शैली का निर्देश किया है। उनका 'नाटक' शीर्षक निबंध हिंदी के नाटक-साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के साथ एक तरह से उसका अपना 'नाटचशास्त्र' भी है। अपने इस विस्तृत निबंध में भारतेंदु ने निर्भ्रांत शब्दों में घोषित किया है कि संस्कृत का नाटच-विधान काफी पुराना पड़ चुका है। अब केवल प्राचीन रूढ़ियों के अनुगमन से काम नहीं चलेगा। नवीन आवश्यकताओं के अनुसार नाटकों के स्वरूप में हेर-फेर जरूरी है।

भारतेंदु के चौथे प्रकार के निबंधों को हम ऐतिहासिक-पौराणिक की अभिधा देंगे। इसी शीर्षक के अंतर्गत 'रामायण का समय', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'वैष्णवता और भारतवर्ष', 'काश्मीर-कुसुम', 'बादशाह-दर्पण', 'उदयपुरोदय' आदि निबंध आयेंगे। इस प्रकार के निबंधों की विशेषता ऐतिहासिक गवेषणाओं या नवीन दृष्टिकोण के प्रतिपादन में उतनी नहीं, जितनी देशवासियों को उनकी विस्मृत परंपरा अथवा नवीन ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराने के लेखक के उत्साह में है। भारतेंदु ने जयदेव, सूरदास, महात्मा मुहम्मद आदि के जीवन-चरित्र भी लिखे हैं, जिनमें अपने समय तक की प्राप्त सामग्री का आलोड़न-मंथन किया गया है। इन निबंधों मे विद्वत्ता का आडंबर नहीं है, केवल सरल, सुबोध शैली में जन-समाज को आवश्यक जानकारी देने की सद्भावना है। ऐतिहासिकता के नाम पर प्रायः इनमें वंशपरंपरा, राजाओं के आरोहण-अवसान आदि का स्थूल ब्योरा ही मिलता है, जो उस समय के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। यद्यपि भारतेंदु सरल भाषा के पक्षपाती थे और जनजीवन के कलाकार होने के कारण मुहावरों को भाषा का अनिवार्य अंग मानते थे, फिर भी विषय के अनुरूप कहीं-कहीं उनकी भाषा अधिक गंभीर और मंथर हो गयी है। दूसरी ओर कभी-कभी विशुद्ध भाषा-ज्ञान के प्रदर्शन के उद्देश्य से भी उनके कुछ निबंध लिखे गये ज्ञात होते हैं। उदाहरण के लिए उनका 'खुशी' नामक निबंध हिंदुस्तानी से भी एक पग आगे फसीह उर्दू की जबानदराजी का एक

(शेष पृष्ठ १६६ पर देखिए)

दरवाजे के शीशे

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी

सामने की कोठी के दरवाजे के शीशे धुँधले पड़ गये हैं। शीशों के दरवाजे पारदर्शी होते हैं, प्रकाश को नहीं रोकते, अवांछित हवा को रोकते हैं; लेकिन जब वे धुँधले पड़ जाते हैं, तो केवल कहने भर को शीशे रह जाते हैं, महज गंदे पुट्ठे, जिनमें कदाचित ही कोई प्रकाश की किरण अपनी स्वर्णिम प्रभा से द्युतिवत्ता उत्पन्न कर सके, अन्यथा वे अपारदर्शी बने रहते हैं। उनमें झाँकने पर भी कक्ष के अंतर का कुछ भी स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता। वे बच्चों सी निश्छल मुस्कान नहीं मुस्कुराते, संसार के यथार्थ का आवरण ओढ़कर पारदर्शिता का ढोंग भर कर रुकनेवाले कृत्रिम पारदर्शी बन जाते हैं।

सामने की कोठी में किन्नी रहती थी। किन्नी मेरी सहपाठिनी थी, समवयस्का थी, अच्छी मित्र थी। हम दोनों साथ खेले, साथ बढ़े व साथ पढ़े थे। जीवन को हमने इतने पास से देखा था कि किन्नी के बँगले के दरवाजे के पारदर्शी शीशों की भाँति मैं उसके हृदय की अतल गहराइयों में छिपे किसी भी रहस्य का सहज में ही अनुमान कर लेता था। जैसे ही हम बड़े हुए, मुझे लगने लगा कि हममें कुछ राग संबंध है। कैसा राग संबंध था, यह मैं अब तक निश्चित रूप से नहीं कह सकता, किन्तु यह अवश्य है। अब भी जब मैं किन्नी के बारे में सोचता हूँ तो लगता है, संभवतः इतनी प्रगाढ़ता व तन्मयता के साथ मैं संसार में अन्य किसीके बारे में नहीं सोच सकता। हम साथ ही कालेज जाते, साथ ही खाते व साथ ही अधिकतर समय बिताते थे। किन्नी पितृहीन, अपनी माँ की अकेली संतान थी। जीवन में इतना दुलार उसे मिला था कि वह यह समझती भी न थी कि मलिनता किसे कहते हैं।

इन्हीं दिनों हमारी कक्षा मे एक नये छात्र ने प्रवेश किया। वह था अजीत। किसान का लड़का था, पर था मेधावी। लंबा-चौड़ा, हृष्ट-पुष्ट शरीर, अच्छी वक्तृता देता, संगठन करने में पारंगत, ऊँचे आदर्शों की बातें करता। सदा साहित्य चर्चा या राजनीति चर्चा किया करता। खूब पढ़ता और जितना पढ़ता उससे अधिक उसका प्रदर्शन करता। आते ही छात्रों में उसने दबदबा जमा लिया। पीड़ितों के लिए संघर्ष करने में उसे अजीब मजा आता था। जहाँ किसी आन्दोलन का प्रश्न उठता, वह उसमें कूद पड़ता, जलने का उसे तनिक डर नहीं था। अपनी प्रचंड बौद्धिकता के सहारे वह कालेज का अत्यन्त लोकप्रिय छात्र बन गया।

धीरे-धीरे अजीत से मेरी घनिष्टता बढ़ी। वह अक्सर मेरे यहाँ आ जाता। मार्क्स, सर्वोदय से लेकर खेती को नुकसान पहुँचानेवाले कीड़ों के बारे में बात किया करता। कभी मूड में आता तो बच्चन के गीतों को सुनाने लगता तो कभी कामायनी के छंदों को। स्वाभाविक था कि वह किन्नी को प्रभावित करता। मैंने अनुभव किया किन्नी से उसका परिचय बढ़ता जा रहा है। किन्नी उसके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित नजर आने लगी। अब भी बात करती अजीत के बारे में ही। मैं भी उपेक्षा-अपेक्षा के विवर्त में पड़ा उसकी बातों को सुनता रहता। मुझे लगा, अजीत का समय किन्नी के पास अधिक कटने लगा है। एक वैसाखी साँझ में मैंने देखा कि उसकी कोठी के सामने हँसते हुए लाल गुलमुहर को खिलखिलाते हुए अमलतास ने अपनी पीली-पुष्प गुच्छ बाहों में आलिंगित कर लिया है और बैसाखी साँझ किरण दरवाजे के पारदर्शी शीशों पर अपना सतरंगी लहँगा लहराकर नाच रही है। अजीत व किन्नी परिणय-सूत्र में बँध गये। अजीत किन्नी के यहाँ ही रहने लगा, पर उनसे मेरे परिचय में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया।

धीरे-धीरे हम लोगों ने कालेज की सीमाओं को पार कर लिया। मैंने दासवृत्ति अपनायी, अजीत स्वतंत्र रहा। वह पत्रों का संवाददाता था, राजनीतिज्ञ था, चुनाव लड़ता, भाषण देता, समाज-सेवा करता व मस्त रहता। वैसे किन्नी के पास इतना था कि उसका जीवन भर काम चल सकता था, अतएव वह अधिक निश्चित था। जीवन की व्यस्तता के कारण मैं भी उन लोगों से इतना नहीं मिल पाता था, जितना पहले मिल पाता था।

हर साल जब गुलमुहर व अमलतास फूलों का जश्न मनाते, किन्नी अपने विवाह की वर्षगाँठ पर एक शानदार दावत देती। मुझे अवश्य बुलाती और वह संध्या बड़े आनन्द में व्यतीत होती। किन्तु न जाने क्यों मुझे लगने लगा कि दरवाजे के शीशों में अब वह पारदर्शिता नहीं हैं, वे धुँधले पड़ते जा रहे हैं। एक दिन मैं दफ्तर से लौटा तो सुना, कि बाहर लान में बैठे हुए किन्नी और अजीत बहुत उत्तेजित होकर बहस कर रहे हैं। झाड़ी की आड़ में सरककर मैंने सुना, किन्नी उत्तेजित होकर कह रही थी "यह कैसी समाज-सेवा है तुम्हारी, जो चुनाव की पतिव्रता बन बैठी है। जब देखो तब चुनाव। कीर्तन मंडली से लेकर लोकसभा तक के चुनाव। उसमें हर प्रकार का छल-कपट, ऊपर से सेवा का दंभ।"

खीजकर अजीत बोला, "क्या मूर्खों सी बात करती हो, जब तक सत्ता अधिकार में न हो, सेवा कैसे हो सकती है। एक सैनिक सेनापति के मुकाबले में कितनी सेवा कर सकता है।"

किन्नी बोली, "तो इसके लिए जरूरी है कि अपनी पार्टी के साथी को हराने के लिए दूसरी पार्टी के उम्मीदवार को सहायता दी जावे, और चौबीस घंटे उखाड़-पछाड़ के अतिरिक्त कुछ न किया जावे।"

अजीत चिढ़ गया, बोला, "क्या बक-बक करती हो। तुम क्या समझो राजनीति की बातें, बहुत समाज-सेवी

बात करती हो, जाओ माँजो वर्तन दो-चार घरों में,
मना करता है।" और आँसू भरी आँखें ले किन्नी
चली गयी।

दिन बीतते गये। अमलतास के पीले पुष्प-गुच्छ
ने लगे। अजीत हमेशा राजनीति में व्यस्त रहता।
व संगीत की गोष्ठियाँ बुलाता, कविता भी लिखता,
सब कार्यों का एकमात्र उद्देश्य होता लोकप्रियता।
ता, लोकप्रिय अजीत के जीवन में अन्य सब
वस्तुओं का स्थान गौण था।

नी अब भी मुस्कुराती थी। पर उसकी मुस्कान
वह पारदर्शिता नहीं रह गयी थी। एक दिन बात-
सिलसिले में फीकी मुस्कुराहट बिखारते हुए उसने
हा था, "इनके दो पत्नियाँ हैं, एक मैं और दूसरी
ता, लगता है लोकप्रियता पटरानी है और मैं
मैंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, "नहीं जी,
समाज-सेवक है और जनप्रिय नेता है। उसे देख
मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। तुम्हें तो गर्व
चाहिए।"

कर किन्नी बोली; "भगवान् करे, तुम अगले
छोटी रानी बनो, और रात भर अपने राजा
रानी के पाँव दबाओ।"

ने बात बदलने की दृष्टि से कहा, इसमें क्या अनु-
कि समाज के लिए व्यक्ति अपने आप को मिटा

तीखा प्रश्न छोड़कर किन्नी चली गयी, "यदि
नेता ही अहंकार बन जाये तो।"

लगा, जैसे-जैसे अजीत यश सरणि पर ऊँचा
रहा है, किन्नी की मुस्कानें और भी फीकी
रही हैं। एक दिन वैसी ही बैसाखी साँझ फिर
अमलतास व गुलमुहर ने अपनी पुष्प-बाहुओं को
एक दूसरे को आलिंगनबद्ध किया और साँझ
ने दरवाजे के शीशों पर अपना सतरंगी लहँगा
चाहा, पर न जाने क्यों धुँधले शीशों पर वह रंग
सका। उनके विवाह की वर्षगाँठ थी। आमंत्रित
इकट्ठे हो रहे थे। किन्नी चिड़िया सी चहक रही
इतने में सेवाराम ने लान में प्रवेश किया। मैंने
सा निकृष्ट पुरुष शायद कभी देखा हो। महा-
और बदचलन, किन्तु अजीत का वह इलैक्शन-एजेंट
उसका वह प्रधान सहायक व प्रियपात्र था।
अजीत को कई चुनाव जिताने में मदद की थी।
में बीभत्स रस के समान वह आ धमका, अवां-

आते ही उसने एक फूहड़ फिकरा कसा "आज का दिन
हो अजीत बाबू, गुलों को और गुलचीं सब को।"
यह कहकर महिलाओं की ओर मुँह करके जोर से हँस
। मैंने देखा, किन्नी एकदम गंभीर हो गयी है।
प्रारम्भ हुआ। राजनैतिक कार्यकर्त्ता व समाज-सेवक अपना गोल बनाकर अलग हो गये और इतर जन अलग। वे लोग हर तरह के फूहड़ मजाक करने व शोर करने लगे। एकाएक सेवाराम ने अपने चम्मच से आइसक्रीम उछालकर अपने पास बैठी एक कार्यकर्त्री पर डाल दी और कुटिल हँसी हँसते हुए बोला, "अजी गैरों की आइसक्रीम बहुत खाती हो, जरा हमारी भी खाकर देखो, तुमको नेता बना दूँगा।" किन्नी की कोमल भावनाओं को आघात लगा। वह एकदम उफनकर बोली, "सेवारामजी, कृपया शिष्टतापूर्वक आचरण करें।"

सेवाराम ने उद्दण्डता से उत्तर दिया, "अजी शिष्टता तो अजीत बाबू को पढ़ाइये। हम लोग पढ़ने लगे तो अजीत बाबू नेता नहीं हो पायेंगे।"

क्रोध से काँपती हुई किन्नी बोली, "अगर नेता बनने के लिए आप जैसे लोगों का साथ जरूरी है, तो हमें नहीं है ऐसी नेतागीरी की जरूरत।"

"तो मुझे भी किसी बुर्जुये का साथ देने की जरूरत नहीं है, जो घर बुलाकर भले आदमियों का अपमान कराता है।" क्रोध से सेवाराम चिल्लाया और चप्पल फटफटाते हुए चल दिया। यह सब इतनी शीघ्रता से हुआ कि हम सब देखते ही रह गये। सेवाराम को जाते हुए देखकर अजीत व्यग्र हो उठा, वह भागते हुए बोला, "सेवाराम रुको।"

"नहीं रुकूँगा, आपकी मिसेज ने मेरा अपमान किया है। ऐसी बहुत कबूतरियाँ मैंने उड़ाई हैं, मैं किसीकी परवाह नहीं करता। शिष्टता सिखाने चली है।" सेवाराम ने उत्तर दिया।

'अरे रुको भी सेवाराम' अजीत ने मनाते हुए कहा 'यह तो तुम्हारा ही घर है।"

सहसा किन्नी दृढ़ हो उठी "देखिए, आप कृपया सेवारामजी को नहीं मनावें, उन्हें जाने दें।"

सहसा चिढ़कर अजीत बोला, "नहीं, सेवाराम अवश्य रहेगा, तुम जा सकती हो।"

अपमान से लाल हो किन्नी बोली, "नहीं, सेवाराम जी यहाँ नहीं रहेंगे।"

क्रोधोन्मत्त अजीत चिल्लाया, "रहेगा, रहेगा, अपने पैसे की शान दिखाती हो, गेट आउट, निकल जाओ यहाँ से।"

और अपमानित हो रोती हुई किन्नी अंदर घुस गयी। हम लोग चित्रलिखित से देखते रह गये।

दूसरे दिन किन्नी आयी और दिन भर रोती रही। न वह कुछ बोली और न मैं कुछ कह सका। अजीत सुबह से ही घर से चला गया था और नौकर से कह गया था कि जब तक सार्वजनिक रूप से किन्नी सेवाराम से क्षमा नहीं माँग लेती, वह घर में नहीं आवेगा।

अगले दिन मैंने देखा कि किन्नी व उसकी माँ कहीं जा रही हैं। ताँगे में सामान लदा हुआ है। मैं पास पहुँचा, तो नमस्ते करते हुए बोली, "छोटी रानी पटरानी

से हारकर महल छोड़कर जा रही है, शायद हमेशा के लिए।" और एक पीड़ापूर्ण मुस्कान बिखराती हुई चल दी। मैं जब तक उसका ताँगा दिखा, उसके मृतपीत मुख को देखता रहा। धुँधले शीशों के दरवाजे पर एक बड़ा-सा शीशा झूल रहा था।

कुछ दिन बाद मैंने सुना, अजीत ने तलाक की दरख्वास्त दे दी है। किन्नी किसी भी पेशी में नहीं आयी। तलाक मंजूर हुआ।

कुछ दिन बाद सुना, किन्नी दानपुर में अ के यहाँ है, उसने नर्सिंग की ट्रेनिंग ले ली है और के अस्पताल में अवैतनिक नर्स के रूप में सेवा क है।

फिर बैसाख आया है, अमलतास ने फिर पुष्प-बाहु को गुलमुहर की पुष्प-बाहु में डाल दि पर शीशों पर धूल चढ़ गयी है और साँझ किरन के रंग उसपर पड़कर धूसरित हो उठे हैं।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का निबंध-साहित्य

(पृष्ठ १६३ का शेषांश)

अच्छा नमूना है। यथा—"....खुशी ज़िंदगी का एक जुज़ेआज़म है और दुनिया में जितने मखलूकात हैं, सब खुशी के वास्ते मखलूक हैं। इसी सब खिलकत में जानदारों की बनावट और लियाक़त के मुताबिक खुशी बँटी हुई है।" यों, इस निबंध में बीच-बीच में व्यंग्य के छींटे भी बड़े पुरअसर हैं।

कुल मिलाकर भारतेंदु के निबंधों में विषय के विस्तार के साथ उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही विविधता है। शैली की सजीवता उनकी विशेषता है, व्यंग्य उनकी आकर्षण-शक्ति। इन निबंधों ने साहित्य के मंदिर में नवीन भावना की किरणों के प्रवेश के लिए वातायन का कार्य किया और जनमत जागरित करने में इनकी देन अप्रतिम है। इनके विषय में डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन अक्षरशः सत्य है—"निस्सन्देह भारतेंदु ने निबंध-कला को यहाँ वैसे ही निखारा है, जैसे प्रेमचंद ने उपन्यास-कला को। यह निबंध-कला ही रीतिकालीन साहित्य से पूरी तरह नाता तोड़ती है और हिंदी में यथार्थवाद के विकास का रास्ता दिखाती है। इस यथार्थवाद का स्रोत देशप्रेम है, उसकी शैली लोकप्रिय है और उसका दृष्टिकोण साधारण जनता का है।" (भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ० ११०)

इतना ही नहीं, हिंदी भाषा के विकास-क्रम में भी इन निबंधों का ऐतिहासिक महत्त्व है। भारतेंदु ने अपनी 'कालचक्र' शीर्षक पुस्तक में इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओं की तिथि देते हुए एक जगह लिखा है—'हिंदी नई चाल में ढली, सन् १८७३ ई०।' यह वही साल है, जि से 'हरिश्चंद्र-मैगजीन' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ आठ अंकों के बाद इसका नाम बदलकर 'हरिश्चंद्र च हो गया। यहीं से भारतेंदु के निबंध-लेखन की होती है और अप्रत्यक्ष रूप से भाषा को माँजने- और विविध आवश्यकताओं की पूर्त्ति के अनुरूप ब महत् अनुष्ठान का श्रीगणेश हो जाता है। भारतें किसी नवीन भाषा का निर्माण नहीं किया और न गढ़ने की कोई सर्वथा नई टकसाल ही कायम की। उन्होंने सहजता और सरसता को अपना लक्ष्य ब विदेशी शब्दों के प्रति उदारता की नीति बरतते हुए की जातीय शैली की प्रतिष्ठा का प्रयास अवश्य कि इस जातीय शैली के निर्माण में बुनियादी शब्द तो चाल की भाषा से लिये जाते हैं और गैर बुनियादी संस्कृत से। भारतेंदु की दूरदर्शिनी आँखों ने देख था कि प्रतिपल परिवर्त्तनशील परिस्थितियों का सा के लिए भाषा का स्वरूप लचीला होना आवश्य जीवन की भाँति ही साहित्य के क्षेत्र में भी ह दृष्टिकोण समन्वयात्मक होना चाहिए। लेकिन की समृद्ध परंपरा से विच्छिन्न होने पर हमारी त्रिशंकु की भाँति दयनीय हो जायगी। भारतेंदु प्रवर्त्तित जातीय शैली का मूलाधार यही है। सा इस जातीय शैली के निर्माण में जितना योग भारतेंदु के निबंधों का है, उतना न तो उनकी कविताओं का है न नाटकों का ही।

नई गृहस्थी पुराने अनुभव

एक सत्य कथा

श्रीमती श्रीविलास

[श्रीमती श्रीविलास प्रियजनों में 'बउआजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस समय आपकी आयु प्रायः ६८, ६९ वर्ष की होगी। वृद्धावस्था ने अपने सबसे प्रबल पाश 'रोग' से उनको घेर रक्खा है। एक बार अपने रोगी और जर्जर शरीर को लेकर प्रेमवश मुझसे मिलने आईं। जब उनको सरस्वती में 'आँगनों के बीच' शीर्षकवाले पृष्ठों के विषय में मालूम हुआ तो बोलीं, 'बिटिया! क्या हम अपने सारे अनुभव लेकर यों ही मर जायेंगी? तुम छापो तो नौकरों का असली हाल हम लिख कर भेजें।' यह सच्चा अनुभव उन्होंने भेजा है। बउआजी के पति स्वयम् एक उच्च अधिकारी थे और उनके परिवार में उच्च सरकारी अधिकारियों की किसी ओर से भी कमी नहीं है। उनके ये अनुभव बड़े अनोखे और सरस हैं।——

——सह-सम्पादिका]

एक किसी बड़े अफसर के यहाँ नौकर की आवश्यकता थी पर लोग यही कहते थे कि उनके यहाँ कोई महीने-दो महीने से अधिक टिकता ही नहीं है, कौन काम करने जायेगा। यदि कोई जाने को राजी भी हो जाता था और ईश्वर की असीम कृपा से अफसर के यहाँ पहुँच जाता था तो वहाँके नौकर या चपरासी कुछ न कुछ ऐसा कान भरते थे कि उस नये आनेवाले व्यक्ति का मन रहने को नहीं करता था, और अगर रह भी गया तो थोड़े ही दिनों में पुराने खुर्राट नौकरों के रंग में रँग जाता था। तब तो कुछ रोज रह जाता था और यदि उन लोगों में न रँगा तो दो-चार रोज बाद भाग जाता था।

मेम साहब (मालकिन) सब चीजों में ताला बंद किये रहती थीं और सावधानी से अपनी घर-गृहस्थी की देख-भाल करती थीं जैसा कि पुरानी स्त्रियों की आदत होती थी। यह बात उनके नौकरों को जरा भी रुचिकर

न थी। वे सब यही सोचते थे कि कैसे हम इन्हें बेवकूफ बनावें और हम लोगों की दाल गले।

मेम साहब रोज अपने सामने दूध उबलवाती थीं, खूब उछालकर मलाई डलवाती थीं। जब जरा मलाई पड़ जाय तब जाली की अलमारी में रखा कर ताला बंद कर देती थीं और सुचित्त हो जाती थीं। पर न जाने कैसे रोज-रोज यह होने लगा कि मलाई तो कढ़ाई में ज्यों कि त्यों रहे पर दूध गायब हो जाय और अलमारी में ताला बंद का बंद। सब घर वाले परेशान हो गये और कुछ समझ में न आया। एक नौकर मेम साहब व साहब का बहुत मुँहलग्गू था। वह बच्चों को भी बहुत प्यार करता था। घर का सामान भी ठीक से रखता था और समय-समय पर लोगों की चोरी या और कोई लड़ाई-झगड़े की बात होती थी तो सब बताकर मेम साहब को सचेत भी कर देता था। साहब जब कहीं बाहर जाते थे तो लौटने पर भीतर जाने के पहले ही बड़ी खैरख्वाही के कारण साहब के न रहने पर जो घटना घटती थी, उसका झटपट वर्णन कर डालता था। याने हर प्रकार से मालिक से प्रिय बनना चाहता था। कई दफे घर की छोटी-मोटी चीजें खो गयीं तो चट से जाकर कोई पंडितजी से प्रश्न निकलवाता था और जिसका नाम निकले उसे छोटी-मोटी सजा भी दिलवाता था। एक दिन मेम साहब बड़ी दुखी हो के कहने लगीं कि दूध का गायब होना एक आश्चर्य की बात है कि ताला बंद का बंद और ऐसी घटना हो जाय! क्या करें। नौकर ने बड़े आदर के साथ मेम साहब को सान्त्वना दी और कहा कि आप अधीर न होइए। मैं अभी पंडितजी से जाकर पूछता हूँ कि क्या कारण है कि ऐसी अचंभे की बात हो जाती है। नौकर के कहने पर मेम साहब को मानों डूबते को तिनके का सहारा मिला। वह बहुत प्रसन्न हुईं। नौकर की खूब तारीफ की और कहा कि एक तुम्हीं इस योग्य हो कि जरा हम लोगों की दिक्कत को दूर कर सकते हो। तुम निमकहलाल हो बाकी सबके सब तो निमकहराम हैं।

नौकर ने शाम को छुट्टी ली। पंडितजी के यहाँ गया, प्रश्न निकलवाया, पूँछताँछ की और सब बातों का यानी जो रोज दुर्घटना हो जाती थी उसका पता लगा कर आया। लौटने पर बहुत परेशान मालूम होता था और मालकिन से कहा कि क्या बतायें मेम साहब! कुछ कहते नहीं बनता है। यह कहिए कि भगवान दयावान हैं और आप ऐसी पुण्यात्मा हैं कि आप आपके बच्चों को कोई रेफ नहीं लगने पाया, जो यह दूध रोज गायब हो जाता है वह कोई आत्मा) उसे पी लेती है। सो पंडित कह रहे थे कि कठिन है उस भय से बचाना, पर मैंने बहुत प्रार्थ और हुजूर का नाम बताया। साहब के नाम से जी जरा वश में हुए और कहा कि इस बाधा को में तो कम से कम ५०० रु० लग जाते, पर मैं सा लिहाज से सिर्फ पूजा के सामान का एक सौ रुपया अपना मिहंताना छोड़ दूँगा।

मेम साहब बड़ी खुश हुईं पर साहब को यह जँची नहीं और अपनी मेम साहब से कहा कि 'किस यात बात में पड़ी हो? कहीं भूत-प्रेत भी होते हैं? और मामला होगा।' पर मेम साहब न मानीं और साहब को बिना जनाये एक सौ रुपया नौकर को कहा कि यह मेरी शंका दूर करो। मेरा कष्ट नि करो तो मैं सदा तुम्हारा यश गाऊँगी।

नौकरराम रुपया लेकर गये। पंडितजी ने क्या किया कुछ बताया नहीं। पर वह थोड़ा भभूत और थोड़ा जल (पानी) झड़वा-फुंकवाकर सारे घर में छिड़का, फूल व भभूत अलमारी में और हाथ जोड़कर कान पकड़कर अपने मालि कुशल-मंगल की प्रार्थना की।

सच में व्याधा दूर हो गयी और दूसरे दिन ज्यों का त्यों सुरक्षित रहने लगा। लोगों ने नौक और तारीफ की और साथ में पंडितजी की भी। किन बहुत चाहती थी कि वह महात्माजी का दर्शन पर नौकर ने कहा कि वह कहीं जाते नहीं हैं; न हर मिलते हैं। मेरे तो बाप-दादा सब उन्हें पूजते थे, मुझपर भी दया रखते हैं। खैर, अब मेम साहब धीरज मिला और साहब को भी कुछ-कुछ विश्वास कि कोई बाधा ही थी, कोई बुरी आत्मा का ही कुचक्र था।

ऐसे ही कई दफे छोटी-मोटी घटना घटती और पुराने नौकर राम ऐसा अपना रोब जमाये थे सब उसके हाथों की कठपुतली बने थे। एक दिन बात से नौकरराम ने नौकरी छोड़ दी और किसी

के यहाँ नौकरी की तलाश में गया। लोगों को आश्चर्य हुआ कि वहाँ तो यह मालिक-मालकिन का इतना प्रिय व विश्वासपात्र था! वहाँसे छोड़ क्यों दिया? बहुत पूछने पर कहा कि अब मेरा मन वहाँ से उचट गया है क्योंकि जो मेम साहब हैं वे हर चीज में ताला बंद किये रहती हैं और हर समय नौकरों के पीछे पड़ी रहती हैं। आखिर कहाँ तक बरदाश्त करूँ? नौकरी के लिए गया था उन्होंने कहा कि तुम्हारी में तो नहीं ताला बंद करती थीं। जब अपनी चीजों में ताला लगाया तो क्या हरज? तब नौकर ने कहा कि सब नौकरों को बेवकूफ बनाकर रख देती हैं। एक ऐसे थे कि उन्हें ऐसा छकाया कि आज तक साहब को पता भी न लगा, और फिर बताया कि दूध की आलमारी में बंद करती थीं और ताला लगाती पर मैं रोज रबड़ की टचूब डालकर दूध पी लेता था और मलाई कढ़ाई में रह जाती थी। जब वे बहुत दुखी हुईं तब एक सौ रुपया पंडित महात्मा के नाम से माँगा और उस रुपये से खूब मजा उड़ाया। थोड़ी राख व फूल लाकर दे दिये और उस दिन से दूध पीना छोड़ दिया। मैंने उन लोगों को खूब छकाया और रुपया भी ऐंठा।

जिसके यहाँ काम माँगने गया था वे यह सब हाल सुनकर अवाक् रह गयीं। कुछ बोलने की हिम्मत न हुई और कहा कि तुम बहुत बुद्धिमान् हो। मुझे जब आवश्यकता होगी तब तुम्हें बुलाकर काम पर रक्खूंगी, पर अभी तो आवश्यकता नहीं है।

जब नौकर चला गया तब उन्होंने ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया कि भगवान् ने ही उस नौकर की हरकत को उसीके मुँह से हमारे सामने कहला दिया जिससे कि हम उसे रखने से बच गये।

गृहस्थी

नन्हे नन्हे मुन्ने—

यह है प्रसिद्ध बतीसे की घुट्टी का नुस्खा। यह घुट्टी शिशुओं को दी जाती है--उदर सम्बन्धी बाल के लिये यह एक अचूक औषधि मानी जाती है। समय तो यह घुट्टियाँ ही एकमात्र उपलब्ध बाल- थीं। अभी भी नगरों से दूर बस्तियों में इनका काफी है। अस्पतालों के कारण नगरों में इनका भले ही कम हो गया हो परन्तु इससे इनकी ता पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा है।

बतीसे की घुट्टी

१—सौंफ	..	१ तोला
२—अजवाइन	..	१ ”
३—सनाय की पत्ती	..	१ ”
४—बड़ी बिरंग	..	१ ”
५—बड़ी फोंगा	..	१ ”
६—बड़ी इलायची	..	१ ”
७—छोटी इलायची	..	१ ”
८—बड़ी गोखरू	..	१ ”
९—छोटी गोखरू	..	१ ”
१०—निर्मली	..	१ ”
११—पिपल	..	१ ”
१२—मरोर फली	..	१ ”
१३—छोटी हर	..	१ ”
१४—बड़ी हर	..	१ तोला
१५—चौकिया सुहागा	..	१ ”
१६—मुलेठी	..	१ ”
१७—बनप्शा	..	१ ”
१८—उन्नाब	..	१ ”
१९—बेदाना	..	१ ”
२०—गुलाब के फूल	..	१ ”
२१—पोदिना	..	१ ”
२२—अंजीर	..	१ ”
२३—मुनक्का	..	१ ”
२४—बंशलोचन	..	१ ”
२५—जायफल	..	चार आना भर
२६—जावित्री	..	”
२७—ऐलवा	..	”
२८—केसर	..	”
२९—डिकामली	..	”
३०—काला नमक	..	”

हींग एक चना बराबर। हींग सुहागा भून कर पड़ेगा। सब को कूटकर रख लें। उसमें से दो चाय के चम्मच भर लेकर एक छटाक पानी में पकाकर जब तीन-चार चम्मच के बराबर रह जाय, छानकर मीठा मिलाकर और ठंडा करके शिशु को पिला दें।

एक चाँदनी रात

श्री जगदीशचंद्र पाण्डेय

वह बालकनी से लौटकर पुनः कमरे में चारपाई पर बैठ जाता है, स्विच फिर भी नहीं दबाता। टेबल पर रखी रेडियम-वाच दस बजाकर दस बजा रही है। एकाएक उसके माथे की रेखाएँ खिच आती हैं। सिर के बालों पर हाथ फेरते हुए कमरे की एक-एक वस्तु को देखता है—फर्श पर जगह-जगह सिगरेट के टुकड़ बिखरे हैं। टेबल पर कुछ किताबें बिखरी हुई हैं। एक किताब के पृष्ठ फड़फड़ा रहे हैं। उसके चेहरे पर निराशा की रेखाएँ खिंच आती हैं। एक गहरी निश्वास भरते हुए झटके के साथ उठकर बाहर दरवाजे तक आता है। सोचता है—देर करने से क्या? फिर तो होटल बन्द हो जायेगा। अब समय भी तो काफी हो आया है। फिर जाने क्या ख्याल आता है कि दरवाजे पर लटकते लेटर-बाक्स को घूरते हुए पुनः लौट पड़ता है।

सुबह दफ्तर को देर हो जाने के कारण वह खाना खा नहीं सका था। होटल के पास से गुजरने पर होटल के मालिक ने पूछा तक था—"क्या आज खाना नहीं?..." तब उसने सिर हिलाकर उत्तर दिया था—"नहीं। सुबह की 'नहीं' साँझ तक तो अलग, अब तक कायम थी। वैसे वह अब काफी भूख अनुभव करने लगा था। पर अब उसकी मानसिक भूख, शारीरिक भूख पर हावी हो आई थी। अगर यह भी समझ लिया जाय कि भूख पूरी तरह मिट चुकी है तो भी कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि आज दफ्तर से लौटने पर उसे दो पत्र मिले थे। दोनों में से किसीका भी उसके लिये महत्त्व कम न था।

बगल के कमरे से किसी बच्चे के रोने की आवाज आ रही है। साथ ही डाँट-फटकार भरी एक अन्य आवाज। बच्चा चुप होने का फिर भी नाम नहीं ले रहा है, रोता ही रहता है। यह आज की ही बात नहीं, ऐसा रोज ही होता है। इसीलिए वह जानता है, बनर्जी का सबसे छोटा लड़का रो रहा है। और वह यह भी जानता है—जब बच्चा बहुत मनाने पर चुप ही नहीं होता है तो बनर्जी साहब उस पर बरस पड़ते हैं। डाँट-फटकार के साथ-साथ कभी तो उसे बहुत बुरी तरह मारते हैं।

जब भी बनर्जी साहब अपने बच्चों को डाँटते या मारते हैं, वह एक अजीब तरह की घुटन अनुभव करता है। अपने अतीत की धूमिल स्मृतियों में खो जाता है। बार तो वह आधी रात में भी बाहर चला जाता घण्टों तक सड़कों पर ही घूमता रहता है। उसके मस्ति में बनर्जी की शिकायत घूमती रहती कि—बच्चे बहुत हैं। दिन भर खाते ही रहते हैं। किसी को ज़रा अधिक मिल जाय, बस छप्पर फाड़कर जमीन पर रख हैं।...और वह घण्टों तक सोचता रहता—आखिर खाते कितना होंगे? उतना ही तो खाते होंगे, जित उनका पेट माँगता होगा। क्या कोई भी भूख से अधि खा सकता है? क्या कभी इस बात को बनर्जी नहीं सोच होंगे? एक बनर्जी ही क्या, वे अन्य सभी, जिनकी शिकायत यही होती है। जो इसी शिकायत के कार बच्चों को डाँटते व पीटते हैं।

इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में कभी-कभी उसे सभी घटनायें याद हो आतीं, जिनके कारण उसे घर भागने को विवश होना पड़ा था, जिनके ही कार उसे दुनिया के वे कड़वे व मीठे अनुभव हुए थे। घर छोड़ से पहले उसे दुनिया का कुछ भी पता नहीं था। वह केव इतना जानता था कि उसे स्कूल जाना है, उसके बा खेलना है, फिर पढ़ना है--बस। भले ही भूख शान्त या नहीं।

मिस्टर बनर्जी अब शायद बच्चे के रोने से काफी तं आ चुके थे। वे बड़ी बेरहमी से बच्चे को पीटने लगते हैं। बड़बड़ाते हैं--सुबह सात बजे से रात के नौ बजे त कोल्हू के बैल की तरह काम करता हूँ। रात दो घड़ी कम्बख्त चैन से सोने नहीं देते। अब बनायें तुम्हारे लि रोटी।"

रोटी की बात सुनते ही जैसे उसकी अपनी भी भू खुल आई हो, दरवाजों पर सिटकिनी लगा वह बाह निकल आता है। होटल की ओर बढ़ता है। 'बन के शब्द,' 'पिता की एक एक बातें' व 'मुख्तलिफ लो की मुख्तलिफ बातें' उसकी कानों की झिल्लियों से टकराने लगती हैं। एक बार तो उसके मन में विचार आत है, लौट जाना चाहिये। इन्हीं विचारों में खोया-खोया-सा कुछ दूर चलकर वह थोड़ी देर तक विमूढ़ सा चाँदनी में खड़ा ही रह जाता है। सामने नीम की ही

१६६३

बारादरी के पेड़ों पर फूल खिल रहे हैं, जो चाँदनी में और भी उजले लग रहे हैं। फूलों की तीखी गन्ध चारों र फली हुई है।

जहाँ वह खड़ा है, इस देहली शहर के सबसे बड़े र का मध्य भाग है। सामने लगभग दो सौ दूकानें दुकानों के चारों ओर एक से हजारों सरकारी क्वार्टर ाथ ही क्वार्टरों के बीच से गुजरती अनेक सड़कें, कहीं-कहीं पर पार्क। उसके सारे शरीर पर एक ब सी शीतलता छा जाती है। और वह, सड़क ढलते-चलते मार्किट के सामने वाले पार्क पर यूँ खड़ा ाता है जैसे वह हो ही नहीं। आज वह कई दिनों ऐसी शीतल चाँदनी में था। सामनेवाले पार्क के बीच घरों में काम करनेवाले कई नौकर बैठे आपसी सुख-दुःख की बातें कर रहे थे। वह अवाक् न्हींको देखता रह जाता है। एकाएक उसके मन में ार आता है—धीरे-धीरे जाकर उनके बीच ही बैठ ं। अपनी पुरानी बातों को याद करूँ। कैसा था वह य भी।

ो वर्ष पूर्व वह भी तो ठीक इनकी ही तरह बैठा ा था इसी पार्क में। तब भी तो ऐसी ही असंख्य .....और गंध की बाढ़ होती थी, जो उसे बिल-कुल नहीं भाती थी।.......शीतल चाँदनी व हवा ने रोमांचित कर दिया। सामने दूकानों पर रोशनी रही है। होटल की रोशनी को देख उसकी आँखों ा खिच आती है। यद्यपि उसे होटल का खाना कुल पसन्द नहीं। कारण जब भी वह होटल में खाना बैठता तभी उसे अपने पिछले दिन याद हो आते। देर तक होटल में काम करनेवाले लड़कों को ही ा रहता। सोचता—जाने मेरी तरह इन्हें भी कौन ा यहाँके सब्ज़बाग दिखाकर भगा लाया। और जाने की कैसी परिस्थिति रही हो। इन्हीं विचारों में वह खो ा। एक दो रोटी खाकर ही चला आता। लेकिन फिर भी होटल में ही खाता है। इसलिए नहीं कि बूरी है। बल्कि इसलिए कि वह वर्षों से खाना बनाते-बनाते तंग आ चुका है। अब खाना बनाना उसे ज़रा भी ा नहीं लगता है। वह चाहता है—कुछ दिन तो कम कम पका-पकाया खाऊँ। ....वह लपक कर होटल में घुस जाता है।

होटल में पहुँचते ही देखता है, बैरा व बावर्ची खा रहे हैं। उसका माथा झनझना उठता है। वह जड़ सा खड़ा का खड़ा ही रह गया। सोचता रह गया कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं? रह-रह कर उसके मन में विचार आने लगे—लौट जाना चाहिए। पर अब वह बेहद भूख महसूस करने लगता है।

—'सब्जी तो होगी नहीं। फुल्के सेंको। दही के साथ खा लेंगे बाबूजी।' होटल का मालिक उसे देख कैश गिनते हुए बोल उठता है।

बावर्ची खाना छोड़ उठ जाता है। रोटी सेंकने आगे बढ़ता है। उसे उठते देख उसके मन में एक टीस उठती है। उसके मस्तिष्क में बनर्जी के शब्द कौंध जाते हैं—सुबह से रात तक कोल्हू के बैल की तरह काम करता हूँ, इस वक्त भी ये....। वह सोचता रह जाता है—यह बावर्ची भी तो मन ही मन कुछ ऐसा ही सोच रहा होगा। वह बावर्ची के पास जाकर कहता है—पहले खा लो भई। फिर सेंकना मेरे लिए रोटी।

बावर्ची उसकी ओर बड़ी देर तक श्रद्धा भरी आँखों से देखता है। मगर रोटी सेंकना नहीं छोड़ता है। वह अनमने मन से निढाल-सा कुर्सी सरका दूसरी पर टाँगों को फैला बैठ जाता है। सोचता है—"भूख" के विषय में। सोचता है—अपने पिता के विषय में। सोचता है—दुनिया के अनेक माता-पिता, भाई-बहनों, चाचा-ताउओं, यार-दोस्तों आदि के विषय में, जो सब इसी भूख के कारण एक दूसरों को छलते हैं, धोखा देते हैं। क्या इस भूख का, इस पेट का आदमी के पास कोई इलाज नहीं? .....शायद नहीं। अगर होता, तो आदमी वह सब कुछ नहीं करता, जो करता है।

तभी बैरा सामने रोटियाँ व दही रख देता है। उसके कुलाँचे भरते विचार इस तरह गायब हो गये, जैसे स्विच आन करते ही कमरे का अँधेरा। पेट में छिड़ी जंग को रोटियों से कुछ राहत मिली। वह रोटियों पर पिल पड़ता है। जाने वह कितनी रोटियाँ खा गया, इसका उसे कुछ अन्दाज ही नहीं। जब उसने होटल के मालिक को अपनी ओर घूरते देखा तो उसे लगा जैसे उसकी आँखें कह रही हैं—इतना ढेर-सा तुम खा गये। क्या अभी भी नहीं भरा पेट?

वह आँखों की प्रकट होते हुए, अप्रकट भाषा को

पढ़ने का अभ्यस्त रह चुका है। इसीलिए जल्दी ही ताड़ लेता है। झटके के साथ उठ बाहर चला आता है। फूलों की तीखी गंध अब उसके मन को कचोटने लगती है। अब उसे चाँदनी नहीं भाती है। बल्कि छिटकी चाँदनी वह नीले पीले जगमगाते बल्बों को देख तो उसे लगता है, जैसे ये अँधेरे को कम नहीं कर रहे हैं बल्कि अँधेरे को कम करने की होड़ में स्वयं ही उसमें समा गये हैं। उसकी आँखों के सामने घना अँधेरा छा जाता है। उसे याद हो आता है आज ही आये माँ के पत्र की एक-एक लाइनें––दो साल पहले तेरे पिताजी शान्ता की शादी की तैयारी कर रहे थे। पर उनके नसीब में उसकी शादी देखना न था। अब तो सब तेरे ऊपर है। मेरी एक राय है वैसे तो हम दहेज न जुटा पायेंगे। अगर कहीं तेरी शादी हो जाती तो कुछ दहेज भी जुट जाता। इसलिए किसी भी तरह हो दस-पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर घर आ जा। शायद..... फिर इस बार बैल मर जाने के कारण सारी खेती कुदाल से सम्हालनी पड़ी जिस कारण तेरी बहिन को घाम लग गया। एक मास की बीमारी के कारण काफी कमजोर हो गयी है। तू उसे भी देख लेगा।

उसका सिर भारी हो आता है। सोचा है, जल्दी से घर जाकर लेट जाऊँ। शायद कुछ समय के लिये शान्ति मिले। किन्तु पास ही नौकरों को बैठा देख उसके मन में विचार आता है कि जाकर नौकरों के बीच बैठ जाऊँ। घण्टों तक उनकी व्यक्तिगत बातें, मालिकों व मालिकिनों की दिलचस्प बातें सुनूँ, और अपने अतीत की कड़ियों को जोड़ता हुआ उन्हें अपने अनुभवों को सुनाऊँ। सुनाऊँ कि किस तरह पौ फटने से आधी रात तक कोल्हू के बैल की तरह काम करने पर भी उसने हाईस्कूल पास किया, किस तरह, कितने संघर्षों के बाद क्लर्क बना। उसके क्लर्क बने इतिहास भी एक अनोखा ही है। लेकिन उसकी आकां की चाँदनी रात अभी पूरी नहीं हुई। और वह अ के लिए अब भी कितना प्रयत्नशील है। पर अब स्थितियाँ उस पर हावी होती चली जा रही हैं। का आधा भाग-घर माँ को भेजना पड़ता है। रहने व खाने को भी पर्याप्त नहीं। अध्ययन व कि तो.......?

तभी वह देखता है नौकर उठ गये हैं, खेल खेलने लिए कपड़े उतार रहे हैं। उसके जी में आता है, वह उनके साथ खेल खेले ठीक पहले की तरह। लेकिन पार्क की ओर नहीं बढ़ता है। घर को लौट आता है।

बनर्जी साहब के कमरे की बिजली जली हुई है दरवाजे की सिटकनी खोल वह स्विच दबाकर चारपाई प बैठ जाता है। मगर सिरहाने की ओर आज के आये दो पत्रों को देख उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा आता है माँ के पत्र की एक-एक पंक्ति के साथ, कमल के पत्र की एक-एक पंक्ति उसके कानों की झिल्लियों में टकराने लगी है––गिरीश, तुम अपने को गरीब समझते हो। पर मैं तो केवल तुमको चाहती हूँ। मेरी अभिलाषा थी कि तुम कुछ पढ़ो। तुमने पढ़ा। और...!और...। अब मेरी अभिलाषा है कि मैं हमेशा-हमेशा के लिए तुम्हारे पा रहूँ।.......

सिर के बालों पर हाथ फेरते हुए वह बालकनी आ खड़ा हो जाता है। बनर्जी साहब के कमरे में स्टो जल रहा है। उसके सामने माँ-बहन व कमल का चि खिंच आता है। झटके के साथ लौट, स्विच बंद कर बिस्त पर लेट जाता है।

देखा-सुना

(४) मानवी देवी और मानवीय हृदय

गतांक से आगे

श्री मनमोहन गुप्त

जीजी ने कहा था कपड़े बदलकर आने के ए। इसीसे कपड़े बदलने के लिए घर गया। अरे ! मझली जीजी तो स्वयं ही वहाँ मौजूद थीं। खते ही दादी के साथ जिस बात में गुथी हुई थीं, क्षेप कर दिया। मैं भी सीधे वहीं पहुँचा।

दी दूर की चीजों को जितना कम देखती थीं पास जों को उतना ही साफ देखती थीं। मेरे गमछों ओर निगाह पड़ते ही बोलीं—खूब अवारागर्दी हो ही न?

हते कहते मझली जीजी की ओर मुँह किये कलपती हने लगीं—"वह तो स्वर्ग की देवी थी। डंके की र स्वर्ग सिधार गयी। और....मुझे... .मुझे िम्मेदारी सौंप गयी। मैं कहाँ तक सम्हालूँ? हो न कि गीले गमछे बदन पर ही सूख गये। फिर र आने का नाम नहीं।"

र दम लेती हुई बोली—"अरे बाबा कहीं जाना ड़े पहन कर जा। कहाँ गमछा पहने विश्वविजय फिर रहा था? कहूँगी तो तुनुक उठेगा। फिर कड़कर नहाने के लिए भेजना पड़ेगा। तुम्हीं बताओ छ हो जाएगा तो तकलीफ वह स्वयं पाएगा कि कौन समझावे इसको?"

यपि दादी अपनी आदत के अनुसार बड़बड़ाये ही थी तथापि बात मझली जीजी पर ही जाकर पड़ थी। वह बेचारी अत्यन्त लज्जित हो रही थी। से बोली—"इधर मेरा ध्यान ही नहीं था। नहीं तो बदलकर ही......।"

आगे कुछ कहने से पूर्व ही मैंने कहा—"बकने दो को। चलो ऊपर चलें!"

मझली जीजी की एक भी बात दादी सुन नहीं पायी , किन्तु मेरी बात सुनते ही चिड़चिड़ा उठीं—"हाँ रे! ने दो बुढ़िया को। सब ठस्सा निकल जाएगा जब क़ों-करते बिस्तर पकड़ेगा।"

इतने में ऊपर से पिताजी बोल पड़े—"क्या है रे छोटे?"

मैं भी भूल गया था कि अभी बाबू होंगे, शायद दादी भी भूल गयी थीं। मैंने जोरों से हाथ हिलाते हुए ओंठों पर ऊँगली रख दी। दादी को स्मरण हो आया। झट बात बदलती हुई और जरा जोर से कहने लगी—"बालों को गीले में ही न बुहारने से कँघा करते समय उखड़ते हैं।"

फिर और जरा जोर देकर आगे दादी बोली—"तुम ही बताओ मझली, मैं ठीक कहती हूँ...?"

इतने में पिताजी की फिर आवाज आई—"माँ ठीक तो क़ह रही हैं। बालों में कंघी कर लो।"

एक छलाँग में मैं दादी की रसोई के अन्दर पहुँच गया और उनसे चिपट गया। मुँह उठाकर उनके "हैं! हैं!" करने से पहिले ही मैं कूदते हुए सीढ़ी चढ़ गया। बालों में कंघी करते-करते बरामदे से मझली जीजी को इशारा किया कि वे अपने घर से होकर छत के रास्ते हम लोगों की छत पर आ जायें। वहीं बातें होंगी।

मझली जीजी चली गयीं। कुछ समय के बाद ही हम दोनों छत के उस कोने में एकत्र हुए जिस जगह पर अभी धूप आने में काफी देर थी।

बात की पहली दौर में ही मैंने कहा—"तुमको इस जनम में अकल नहीं आएगी। मैं इतना समझ पाया, मगर तुम नहीं समझ पायीं कि उस बाबा के बच्चे को शक हो जाएगा।.....जा.....जा....अभी जा... तुरन्त जा....कहकर भेज ही तो दिया था न?"

गुस्सा उतारने के बाद मैंने कहा—"कहीं अण्डों की बात भूल गया होता तो वह बाबा का बच्चा मेरी जान ही ले लेता। गले के पास हाथ तो था ही!"

सिहरती हुई मझली जीजी बोलीं—"तो क्या तुझे पकड़ लिया था?"

—"सिर्फ पकड़ना? मेरा प्राण लेने पर तुला हुआ

था। कहता था कि मेरे घर के सामने क्यों खड़ा था? जरूर..."

जरा सम्हलकर बैठती हुई मझली जीजी बोल पड़ीं—"जरूर चुराया है? ऐसा कहा? एकदम तुझे चोर बना दिया?"

दुतकारते हुए मैंने कहा—"उसका बाप भी मुझे चोर कहता तो मैं एक घूँसे में उसकी नाक न तोड़ देता। पूछ भर रहा था कि..."

—"वही तो मैं जानना चाहती हूँ कि क्या पूछ रहा था?"

—"तो मरी क्यों जा रही है?....सब एक-एक करके बताऊँगा।"

कहकर मैंने शुरू से आखिर तक एक-एक बात को विस्तार से बताया। जब अण्डेवाली बात पर आया तो वह सप्रशंस दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली—"तूने ऐसी बात झटपट बना कैसे ली?"

डाँटते हुए मैंने कहा—"दिन रात कोठरी के कोने में घुसी रहती हैं तो देखेंगी कहाँ से? पहले मैं टूटे हुए अण्डों को लाता नहीं था? उस पर रंग चढ़ाकर आदमी का माथा बनाता था। काली माई को वह माला पहिनाकर वर माँगता था कि खूब पढ़ाई हो, खूब यश हो, राजकन्या से ब्याह हो, छप्पन करोड़ के चौथाई रुपये और चौदह बरस की लुगाई हो।"

मझली जीजी यहीं पर खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—"तेरे को गोद में लेकर घुमाने के लिए या दूध पिलाने के लिए रे?"

मैंने उन्हें जोर से ढकेल दिया। कहा—"तू तो बड़ी बदतमीज है।"

फिर भी वह खिलखिलाती हुई बोली—"आठ नौ वर्ष के लड़के को यदि काली माई चौदह बरस की लुगाई देती तो वह और क्या करती? तू ही बता।"

बात की महत्ता को घटाते हुए मैंने कहा—"अरे! वह तो कहने की बात थी। सचमुच काली माई अगर देने को तैयार हो जाती तब अपने कन्धे से कन्धा मिलाकर देख लेता।"

× × ×

अन्त तक अब नित्य बाबाजी के पास जाना मेरा एक काम हो गया। मझली जीजी की प्रेरणा से ही मैंने गले पड़कर बाबाजी से दोस्ती की और अब नित्य एक जाकर कुछ न कुछ बाबाजी के विषय की बात जानकर उन्हें सुनाना भी मेरा काम हो गया था। बाबाजी के जाने में चूकूँ नहीं, इसलिए जबतक घर में रहता था तक मेरे आस-पास ही मझली जीजी चक्कर काटा क थीं।

इस अनुराग का कारण ठीक-ठीक मैं उस समझ तो नहीं पाता था किन्तु मझली जीजी ने जो समझाया था वह यह था कि पूर्वजन्म में बाबाजी कालिदास वाले दुष्यंत और वह थीं शकुन्तला। वह स्वयं भी यही मानती थीं।

वह जो चित्रपंजी (album) मैं उठा लाया उसमें शुरू से आखिर तक चित्र में दुष्यन्त और शकु को चित्र-द्वारा ही दिखलाया गया था। नीचे के स्थान भाषान्तर करके शायद, बाबाजी के ही बनाये श्लोक थे। उन्हीं श्लोकों के भावों को चित्र द दर्शाया गया था। प्रत्येक श्लोक के नीचे कालि लिखा था। भाषान्तर तो मेरी समझ में नहीं आता किन्तु श्लोक द्वारा जो वर्णन किया गया था उसका स चित्र सामने धर दिया गया था। मझली जीजी ही ऐ कहती थी।

मौके बे मौके मझली जीजी मुझे अपनी कोठरी में बैठाकर चित्रों के नीचे की कविता पढ़ने के लिए कहती वह पढ़ना तो जानती न थी। मैं पढ़ता था एवं वह नि में उसका अर्थ समझाती थी। उसकी समझाई हुई बा बस इतनी ही समझ में आती थी कि मैं भी उसकी एक बात चित्र में देखने लगता था।

एक दिन एक चित्र में मझली जीजी और बाबा को अजगर लीले जा रहा है देखकर मैंने पूछा—"शकुन्त और दुष्यन्त को क्या अजगर ने लील लिया था?"

दृश्य इस प्रकार का था—अजगर अपने शरीर पूँछ की ओर से फेंटे हुए था। ऊपर की ही ओर मुँह कि मझली जीजी और बाबाजी को एक साथ लीले जा रहा था। सर्प के जबड़ों के दबाव से दोनों जैसे पिसे जा रहे थे। फलतः दोनों एक दूसरे से सटे हुए लग रहे थे। मरना है, तो एक साथ ही मरने में तृप्ति है, यह भाव चेहरे पर स्पष्ट थी। कमर से कुछ ऊपर तक का भाग सर्प के मुँह के अन्दर था, और बाकी जो भाग ऊपर

एक मन दो काया सी लग रहा था। चेहरों पर उन्माद तृप्ति का संमिश्रण था।

मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए मझली जीजी ने कहा--गल ही तो गया था। अजगर को काल माना गया इस मिलन के मुहूर्त्त को काल ही विस्मरण करा ऐसा दिखाया गया है। और....' वे कुछ सोचने । मैं चुपचाप बैठा रहा।

कुछ समय के उपरान्त हम दोनों उठ खड़े हुए। जीजी ने समस्त चित्रों को यथास्थान रख दिया। हा--"चलेगा घाट किनारे घूमने ?"

ने काहे की आपत्ति थी। कुछ ही क्षणों में हम घाट के रास्ते पर दिखायी पड़े। धीरे-धीरे घाट के उतर पड़े। मुझे पानी के अन्दर पाँव डालकर बड़ा आनन्द आता था। मुझे वैसे बैठा देखकर जीजी ने कहा--मैं भी आज वैसे ही बैठूँगी।

× × ×

कुछ समय वहाँ बिताने के बाद मझली जीजी ने यों रे! उस बाबाजी को कभी घाट किनारे शाम को न देखा है ?"

ने कहा--"मुझे तो लगता है कि अब वे घर से ही नहीं। जब कभी जाता हूँ उसी समय अपने सामने बैठे ; या अधिक से अधिक घाट की पटरी नार सीढ़ी उतरकर घूमते हुए देखता हूँ। दूर से कर चुपचाप चला आता हूँ।"

कुछ समय तक मझली जीजी मौन रहीं, फिर पूछा--"समय भी वहीं कहीं होंगे ?"

ने उत्तर दिया--"और कहाँ जायेंगे ? ....वहीं

इस बार बड़ी देर तक चुप रही, फिर बोली--रे! हम लोग उधर से अगर निकलेंगे तो उन्हें देख ....यों ही ; दूर से ...."

कुछ नाराज सा मैंने कहा--"और उस साले के पास कोई जगह थोड़े ही होगी। वहीं कहीं मरियल या घूमता होगा...।"

मझली जीजी का चेहरा जरा झेंपा सा लगा। बोलीं--"इधर बहुत नाराज सा लगता है रे ?"

विचलित न करके मैंने कहा--"तुम बात ही ऐसी हो। वह भी कोई देखने लायक आदमी है क्या ? ! तुमको नंगा देखने के लिए गंगाजी के अन्दर खड़ा रहता था। और तुम उसी की बात रोज-रोज चाहती हो। फिर कहती हो कि देखने को मिलेगा नहीं। मेरा चले तो...मेरे पास बन्दूक होती तो मैं गोली से उड़ा देता। यों तो एक दिन वह साला मेरी से नहीं तो, उसका क्या नाम है....ढेले से तो मरता ही।"

मेरा चेहरा भी साथ-साथ तमतमा उठा। देखकर मझली जीजी ने कहा--"तू तो बहुत नाराज हो गया। अब मैं कभी तुझे जाने के लिए न कहूँगी। कभी उनकी बात पूछूँगी ही नहीं।"

मैं जरा ठंडा पड़ा। झट कहा--"नहीं। ऐसा मैं थोड़े ही कह रहा हूँ....मैं तो कह रहा था....कह रहा था....कह रहा था...."

अपने को ठीक से व्यक्त न कर सका। बस "कह रहा था" करते ही रह गया। उसे पूर्ण करती हुई मझली जीजी ने कहा--"तू कह रहा था कि उस बाबाजी, उनका नाम भी तू मेरे मुँह से सुनना नहीं चाहता है...... यही न ?"

मैंने कोई उत्तर न दिया। केवल मझली जीजी के चेहरे की ओर देखता ही रह गया। तब तक मझली जीजी ने प्रश्न किया--"हैं रे! वह बड़े खराब हैं न रे ?"

धीरे से माथा हिलाकर मैंने सम्मतिसूचक मुद्रा बनायी। तब तक वह बोली--"बहुत खराब...बहुत .....और, उससे भी बहुत ?"

फिर रुककर, और बदलकर कहा--"मैं उतना खराब थोड़े ही कह रहा हूँ....बस, बदमाश है। यही कहता था।"

मझली जीजी ने कहा--अच्छा तू भी बता कि तू उस सीधे-सादे आदमी की कोठरी से सब तस्वीरें उठा क्यों लाया ? उसकी कूँची वगैरह गंगाजी में फेंक क्यों दीं ? बात-बात में उसे गरियाया क्यों करता है ? इन सब का कोई उत्तर है तेरे पास ?"

गुर्राते हुए मैंने कहा--"ऐसा क्यों नहीं करता ? ...वह जो बहुत बड़ा शैतान है।"

फिर मझली जीजी ने पूछा--"यही तो मैं पूछ रही हूँ कि वह क्यों शैतान है ?"

--"वाह री। तुम्हें देखा करे....तुम्हारी नंगी-नंगी तस्वीर बनावे....और शैतान नहीं हुआ ?"

थूक निगलती हुई मझली जीजी ने कहा--"उससे तेरा क्या ? तुझे क्यों गुस्सा आता है ? उसने कोई तुझे थोड़े ही देखा ? ....या तेरी नंगी तस्वीर थोड़े ही बनायी ? .....फिर तुझे क्यों खराब लगा ?"

इसका मेरे पास कोई उत्तर न था। मैं स्वयं ही चक्कर में पड़ गया। फिर भी कह डाला--"मगर तुम्हारे बारे में तो ऐसा किया। ......और इसीसे मुझे गुस्सा आया।"

जरा कठोर होकर मझली जीजी ने कहा--"मगर उससे तेरा क्या ? ....मेरे लिए ऐसा किया और गुस्सा आया तुझे...? .... मुझसे तेरा क्या सम्बन्ध है? .....तू मेरा लगता ही कौन है जो हरदम उन्हें गरियाया....."

आगे कुछ कह न पायी। जैसे उसका गला रौंध आया। वह फूल-फूलकर आँचल में मुँह छिपाये रोने लगी। मैं भी उसकी कठोर बातों से जितना न घबड़ाया था उससे कहीं ज्यादा तिलमिला उठा। गुस्से में

मेरा छोटा-सा चेहरा लाल हो उठा। खड़े होकर मैंने कहा—जा हरामजादी...गंगा में डूब मर....मेरा क्या ?

कहते ही कहते तेज कदम ,घर की ओर बढ़ा। पीछे से मझली जीजी की आवाज आयी—"मेरी कसम ! जाना मत ! सुन तो जरा..."

सुनी अनसुनी करके मैं आगे बढ़ता ही गया।

आगे बढ़ तो आया किन्तु मेरे भी पाँव जैसे जकड़ते जाते थे। मन का क्रोध मझली जीजी की आँखों से ओझल होते ही जैसे ठंडा पड़ता जा रहा था। और कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद मुझे ऐसा लगा कि जैसे रह रहकर हृदय रो उठता है। घर की ओर बढ़ने का साहस न हुआ। लग यह रहा था कि कोई भी परिचित सामने पड़ेगा तो मैं रो पड़ूँगा। उधर आगे की ओर, एक एकान्त स्थान के मन्दिर के सामने एक पीपल का पेड़ था, उधर ही बढ़ गया। मुँह लटकाये पीपल के पेड़ के नीचे के चबूतरे पर बैठ गया। सब कुछ सूना-सूना सा लग रहा था। बार-बार मझली जीजी की बात स्मरण हो आती थी—मुझसे तेरा क्या सम्बन्ध है? तू मेरा लगता ही कौन है...? मुझसे तेरा.....? तू मेरा.....?

× × ×

अन्त तक हृदय को कठोर बनाने में असमर्थ ही रहा। यों ही बैठे-बैठे मझली जीजी की आँखों के आँसू की बात याद आते ही मेरा भी हृदय रो पड़ता था। यों तो मझली जीजी के सामने जब तक रहा, तब तक उनके आँसू देखने पर मैं गुस्से से आपे से बाहर हो जाता था किन्तु इस समय जब-जब उनके आँसू की बात स्मरण हो आती तब-तब मेरी भी आँखें डबडबा उठती थीं।

धीरे-धीरे दिन डूबने का समय आया। पढ़ाई का समय हो रहा था। आहिस्ते-आहिस्ते उठा और उसी प्रकार से घर की ओर बढ़ा। चलते समय ऐसा लग रहा था कि जैसे मेरे पाँव आठ-आठ मन के हो रहे हैं। माथा भी बहुत भारी लग रहा था। बगल से कोई चला जाता था तो मुझे अनुभव भी न होता था कि कोई मेरे बगल से जा रहा है।

एक प्रकार से लुढ़कते-लुढ़कते और लड़खड़ाते पैरों से मझली जीजी के घर के सामने तक पहुँचा ही था कि दरवाजे पर ही मझली जीजी की कई बहनें मिलीं। उनके सामने से एक प्रकार से बगली काटकर ही जा रहा था। कारण उधर मेरा जरा भी ध्यान न था।

उनके मकान के साथ ही मेरा मकान पड़ता था। यानी उनके सदर दरवाजे के बाद ही मेरे घर का दरवाजा पड़ता था। मैं उधर ही बढ़ रहा था कि सझली ने यानी मझली जीजी से ही जो छोटी थी उन्होंने "क्या हुआ है रे छोटे ?"

मैं रुक गया। अपने को सँभालते हुए कहा— छ....तो....नहीं।"

आगे बढ़ती हुई सझली जीजी ने कहा—"ऐसे तो नहीं। जरूर कुछ है।"

क्या उत्तर देता ? सोचकर आगे बढ़ने ही था कि वह एकदम मेरे पास आ गयी। मेरे कन्धों पर धरती हुई बोली—"क्या हुआ है रे? मझली जीजी रोती हुई आयी। तुम लोग निकले एक साथ आये अलग-अलग ?"

अभी भी मझली जीजी रो रही है सुनकर मेरा सहा धैर्य जाता रहा। मैं फूट-फूटकर रोने लगा। जीजी ने कहा—"क्या हुआ है बता?.....तू अच्छा है।"

यही तो मैं भी नहीं समझ पाता था तो क्या ? मैं रोता ही गया।

बड़े स्नेह पगे हाथों से मेरे सिरपर हाथ फेरते सझली जीजी ने कहा—"छी....मझली जीजी के ऐसा करना चाहिए। देख तो चलकर वह कैसे फूट रो रही है। इधर तू रो रहा है और उधर वह रो है। छी ! ऐसा नहीं करना चाहिए।"

इस बार मैंने रोते ही रोते कहा—"मैंने कुछ... ....तो....नहीं....किया।"

झट वह बोल पड़ी—"ऐसा कैसे हो सकता है जरूर तूने कुछ न कुछ कहा है।"

मैंने झट प्रतिवाद के रूप में कहा—"गंगाजी में मरने को कहा। यह तो मैं....हरेक को..... को भी कहता हूँ। सचमुच गंगाजी में डुबो थोड़े दिया ?"

इस बार सब लोग एक साथ हँस पड़े। "अच्छा....यह तुम दोनों के मनोमालिन्य की है? ....बस.....इतना ही ! ....इसीमें आसमान सिर पर...."

आगे सझली जीजी ने कहा—"अच्छा। कह दे कि ऐसा नहीं करूँगा।"

सझली जीजी के हाथ को झटके से हटाकर जोर देकर कहा—"धत् ! न ! न!"

कहकर ही एक दौड़ में अपने घर की ओर गया।

× × ×

(क्र

नवीन प्रकाशन

चित्ररेखा (जायसीकृत प्रेम-काव्य)––सम्पादक, शिवसहाय पाठक। प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक पुस्त- र, ज्ञानवापी, वाराणसी––१, मूल्य, ढाई रुपये। यह जायसी की रचना है जो अभी तक प्रकाश में आयी थी। पाठकजी ने प्रयास करके इसकी एक नी लिपि की पाण्डुलिपि प्राप्त कर इसका उद्धार ा। यह भी एक प्रेम-काव्य है और जायसी के पद्मावत लता है, भेद यह है कि यह सुखान्तक है। पाठकजी का सम्पादन बड़े परिश्रम से किया है और आरम्भ चार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका कर इसका महत्त्व और बढ़ा दिया है। प्राचीन हिंदी ों में––विशेषकर सूफी प्रेमाख्यानों में रुचि रखनेवाले कों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। इससे जायसी ला और काव्य को समझने में विशेष सहायता गी।

जनी में प्रभात का अंकुर (कविता-संग्रह)––श्री ारायण। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी ल्ली–६, सजिल्द, मूल्य, ४ रुपये।

श्रीमन्नारायण ने कवि-हृदय पाया, किंतु ऐसा लगा वे अर्थशास्त्र की मरुभूमि में जाकर अपनी काव्य- को खो बैठे। यह कविता-संग्रह इस बात का प्रमाण मरुस्थल की अंतःसलिला स्रोतस्विनियों की तरह अंतर में अब भी कविता लहलहा रही है। इस में उनकी १०८ कविताएँ संग्रहीत हैं। राष्ट्रकवि थिलीशरण गुप्त ने इनकी भूमिका लिखी है। ये एँ द्विवेदी युग की कविताओं की याद दिलाती इनकी भाषा सरल और गतिशील है। भावों में भूतिपूर्ण वास्तविकता है और विचारों में प्रगति- है। एक जगह वे कहते हैं––

राम! राम! चिल्लाना दुख में
रे मानव! कायरता तेरी।

× × ×

दुनिया ने कायर बन कर ही
बना लिया प्रभु नाम अफीम
खुद को खोज ईश को पा ले
मानव! तेरी शक्ति असीम?

कम्यूनिस्ट धर्म को 'अफीम' कहते हैं किंतु 'प्रभु' को हीं मानते। यहाँ कवि 'रामनाम' को अफीम तो मानता किंतु प्रभु की सत्ता में विश्वास करता है और उसकी का मार्ग अपने को समझता है। आर्थिक चिंतन का भी कविताओं पर यत्रतत्र प्रभाव है। जैसे

कलाकार! कहते हो रोटी
में सौन्दर्य नहीं कुछ मिलता!
मेरा जीवन-पुष्प सदा, कवि
रूखी ही रोटी से खिलता!

साथ ही देश के लिए उदबोधक और एकता स्थापित करनेवाली भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं की भी कमी नहीं है––

विविधता में एकता का
गान ही गौरव हमारा!
शान भारत की यही है,
युगों का सौरभ हमारा।

× × ×

यदि कभी भ्रम भूल से हम
विविधता का ऐक्य खोयें,
धर्म, भाषा भेद का चक्कर
चला विष-बीज बोयें,
छिन्न होगी, भिन्न होगी
राष्ट्र की गरिमा पुरातन
बिखर कर रज में मिलेगी
हिन्द की महिमा सनातन।

इस संग्रह में इसी प्रकार की सरल और उदबोधक कविताएँ संग्रहीत हैं जिनका साधारण जनता में प्रचार श्रेयस्कर है।

उर्दू की प्रतिनिधि हास्य कविताएँ––सम्पादक, अर्श मलसियानी। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सजिल्द, रेखाचित्र, बड़ा आकार। पृष्ठ संख्या ३०४। मूल्य, साढ़े सात रुपये।

इस प्रतिनिधि संग्रह में उर्दू के २७ चोटी के कवियों की हास्यरस की कविताएँ संग्रहीत हैं। कविताओं के आरंभ में प्रत्येक कवि का, और उसके काव्य का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है जिससे पाठक को कविता की पृष्ठभूमि समझने में बड़ी सहायता मिलती है। कविताओं का चयन बड़ी कुशलता से किया गया है। जीवन के सभी पक्षों पर––यहाँ तक कि आधुनिक कला पर भी, कवियों की फब्तियाँ पढ़ने को मिलती हैं। पाठक आनन्द-विभोर हो उठता है, और तीखे व्यंग्यों से वर्णित विषय का थोथापन स्पष्ट हो जाता है। पुस्तक उर्दू समझनेवालों का बहुत मनोरंजन करेगी और उनके लिए संग्रहणीय है।

ब्रजचंद्र विनोद (भाग १ और २)––श्री किशोरचंद्र कपूर। प्रकाशक, श्री मोहनचंद्र कपूर, एडवोकेट, लाठी

मुहाल, कानपुर। बड़ा आकार, सजिल्द रंगीन चित्र। मूल्य, सात रुपये (प्रत्येक भाग का)

श्री कपूर की कोठी कानपुर में कवियों का अड्डा है। उन्हें काव्य से हार्दिक प्रेम है और वे कवियों का बड़ा आदर और सत्कार करते हैं। वे स्वयं कवि होने का दावा नहीं करते किंतु शायद कवियों के 'संग' (या कुसंग') से वे भी कविता करने लगे। कपूर जी गंभीर प्रकृति के सज्जन हैं और उनकी प्रवृत्ति धार्मिक है। अपनी इस कवित्व शक्ति का सदुपयोग उन्होंने भगवान् के गुणगान में किया जिसका फल यह 'व्रजचंद्र विनोद' है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और महाभारत की कथा का वर्णन है। यह मुख्य रूप से वर्णनात्मक काव्य है। कथाओं में प्रवाह है और वर्णनशैली सरस और मनोरंजक है। इसकी भाषा बहुत सरल है--इतनी सरल है कि अर्द्धशिक्षित स्त्रियाँ और बच्चे भी उसे आसानी से समझ सकते हैं। सरल भाषा का लिखना कठिन काम है--विशेषकर जब महाभारत ऐसे ग्रंथ की कथा को कहना हो। किंतु श्री कपूर को इस प्रयास में सफलता मिली है। कपूरजी स्वयं साहित्यिक होने का दावा नहीं करते, किंतु इस ग्रंथ की रचना करके उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है व्यापार में फँसे रहने पर भी उनकी प्राकृतिक साहित्यिक प्रतिभा कुंठित नहीं हुई। अवश्य ही आधुनिक हिंदी काव्य की दृष्टि से इसका मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए। यह भिन्न उद्देश्य और भिन्न प्रकार के पाठकों के लिए रची गयी है। उस दृष्टि से श्री कपूर को पूरी सफलता मिली है। वे सबल सिंह चौहान आदि की परम्परा में बड़े मजे से रखे जा सकते हैं। जो लोग सरल भाषा की कविता में भगवान् का चरित्र और महाभारत की कथा पढ़ना चाहें उनके लिए यह ग्रंथ अमूल्य है।

रामायण कालीन संस्कृति--श्री शांतिकुमार नानुराम व्यास। प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली, अनेक रेखाचित्र। सजिल्द। मूल्य, चार रुपये।

यह उच्च कोटि की पुस्तक लेखक के गहन अध्ययन, विचारशीलता और मनन का जीवित प्रमाण है। हम श्रीमद्वाल्मिकीय रामायण को धार्मिक या साहित्यिक दृष्टि से पढ़ते हैं, किंतु बहुत कम पाठक इस बात पर ध्यान देते हैं कि उसमें हमारी तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति के अक्षय स्रोत और सजीव चित्र मिल सकते हैं। विद्वान् लेखक ने इसी दृष्टि से रामायण का अध्ययन कर उस समय के समाज, रीति रिवाजों, शिल्प, साहित्य, विज्ञा कला-कौशल, धर्म, दर्शन, खानपान, वेशभूषा, आचार- विचार आदि का जीता जागता चित्र प्रस्तुत कर दिया है। हमें उस समय के समाज का घनिष्ट परिचय प्राप्त होता है और हम रामराज्य को साकार रूप में देख सकते हैं। यह हिंदी का एक गौरव ग्रंथ है और इसे प्रत्येक उस व्यक्ति को जो भारत के चिर अतीत को समझना चाहता है, तथा उसकी संस्कृति के मर्म को जानना चाहता है, अवश्य पढ़ना चाहिए। हिंदी में इस प्रकार के गहन अध्ययन पर आधारित ग्रंथ कम ही हैं। हम इस सुंदर और महत्वपूर्ण कृति के लिए विद्वान् लेखक को हार्दिक बधाई देते हैं।

गंगोत्री दर्शन--श्री महावीर सिंह गहलोत। प्रकाशक, राजस्थान पुस्तक मंदिर, मेड़ती द्वार अन्दर, जोधपुर। सचित्र और सजिल्द। नकशा सहित। मूल्य चार रुपये।

हिंदी में कितनी ही पुस्तकें हिमालय के तीर्थों पर निकली हैं, किंतु यह पुस्तक अनोखी है। श्री गहलोत व्यवसाय से वकील हैं। उच्चशिक्षा प्राप्त है। साहित्य प्रेमी हैं। कलाविद् हैं। उनमें सूक्ष्म पर्यवेक्षण की क्षमता है। इसके सिवाय उन्हें पढ़ने-लिखने और घूमने-घामने का भी शौक है। ऐसा व्यक्ति जब यात्रा करता है तब उसकी यात्रा सामान्य तीर्थयात्रा ही नहीं रह जाती। इस पुस्तक में श्री गहलोत ने अपनी गंगोत्री यात्रा का अत्यंत रोचक और विचारोत्तेजक वर्णन किया है। वह इतना रोचक है कि हमें भी इस वार्धक्य में गंगोत्री की यात्रा करने की अभिलाषा हो आयी। यह पुस्तक मार्गदर्शिका के रूप में नहीं लिखी गयी, किंतु यात्रा का वर्णन इतना विवरणपूर्ण है कि वह मार्गदर्शिका का काम भी देती है। सुंदर चित्रों और नकशों ने इसको और अधिक उपयोगी बना दिया है। इस पुस्तक में प्राचीन ओर अर्वाचीन का सुंदर मिश्रण है। जहाँ एक ओर तीर्थस्थानों से संबंधित कथाएँ विस्तार के साथ मनोरंजक भाषा में दी गयी हैं, वहाँ साथ साथ उन स्थानों के आधुनिक रूप और आधुनिक आवश्यकताओं पर भी समीचीन प्रकाश डाला गया है। पुस्तक उपन्यास के समान मनोरंजक है। जो लोग गंगोत्री की यात्रा करना चाहें उन्हें तो यह अवश्य ही पढ़नी चाहिए किंतु जो उस यात्रा का इरादा न भी करते हों वे यदि इसे पढ़ेंगे तो उन्हें उस यात्रा का आंशिक आनन्द मिल जायगा। इस पुस्तक के महत्व और उपादेयता का इसकी दो ह ही प्रमाण काफी है कि भारत-सरकार ने इसकी दो प्रतियाँ खरीदकर इस प्रकाशन को समादृत किया है।

भारती-कण्ठाभरण

करोति काव्यं प्रायेण संस्कृतात्मा यथातथा।
पठितुं वेत्ति स परं यस्य सिद्धा सरस्वती॥

राजशेखर। काव्यमीमांसा

संस्कृत वाङ्मय में पाठसौंदर्य का विशिष्ट स्थान है। पाठसौंदर्य से संस्कृत 'सशर्कर पयः' हो जाती है। काव्य रचना करने में निपुण कवि जैसे तैसे काव्य रचना कर लेता है, परन्तु कविता पाठ करना उसे ही आता जिसे सरस्वती सिद्ध होती है।

यथा जन्मान्तराभ्यासात्कंठे कस्यापि रक्तता।
तथैव पाठसौन्दर्यं नैकजन्मविनिर्मितम्॥

राजशेखर। काव्यमीमांसा

जैसे पूर्व जन्मों के संस्कार से किसी किसी का गला ता होता है, उसी तरह पाठसौंदर्य भी अनेक जन्मों भ्यास से होता है।

था व्याघ्री हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभिश्च न पीडयेत्।
ीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत्॥

राजशेखर। काव्यमीमांसा

से बाघिन जब अपने (नवप्रसूत) बच्चों को दाँत कर ले चलती है तो वह उन्हें न तो इतने हलके है कि वे गिर जायँ, और न इतने जोर ही से है कि उन्हें पीड़ा हो, उसी प्रकार (उच्चारण ं) वर्णों का प्रयोग करना चाहिए।

न्! विज्ञापयामि त्वां स्वाधिकारजिहासया।
स्त्यजतु वा गाथामन्या वास्तु सरस्वती॥

राजशेखर। काव्यमीमांसा

क्षिणात्य विद्वान् शब्दों की नस-नस तोड़कर पढ़ते शब्दों की अखरौटी (स्पेलिंग) करते हों। इसके गौड़ देशवासी उन्हें "एक सर्रा" न अति स्पष्ट, अस्पष्ट। उनकी इस पाठप्रणाली से खीझकर देवी ने ब्रह्माजी से निवेदन किया "महाराज, गौड़ देशवासी प्राकृत भाषा का पढ़ना छोड़ दें पद से मेरा त्याग-पत्र स्वीकार किया जाय रे स्थान पर किसी दूसरी सरस्वती की की जाय।"

ढः पतित इति स्वसम्भवोऽपि
च्छानां परिहरणीयता ह्युपैति।
श्यश्च्युतमसितोत्पलं वधूनां
चीभि तदमनुयन्निरासुरापः।

रमणियाँ सरोवर में स्नान कर रही थीं। उनके कान म लगा हुआ कमल जल में गिर पड़ा और लहरों के थपेड़ों से किनारे लग गया। जल ने सोचा कि यद्यपि यह मेरा पुत्र है तथापि इतने ऊँचे पद पर पहुँचकर वहाँ से गिरा है। यह तो ऊँचे दर्जे के आदमियों के लिए बड़ी लज्जा की बात है। अतः उसने अपने पुत्र को लहरियों के थपेड़ों से अपने घर के बाहर निकाल दिया।

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिवक्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथु-पंक-कूट-लुठितैर्यस्मिन् मुहुर्मूर्छितम्।
तस्मिञ्छुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य यच्चेष्टितं
येनाकंठनिमग्न-वन्य-करिणां यूथैः पयः पीयते॥

जिस सूखे सरोवर में मेढक बिलों में पड़े-पड़े मृतप्राय हो रहे थे, कछुए शीतलता प्राप्त करने के लिए पृथ्वी में धँसे जा रहे थे और बड़े-बड़े मत्स्य कीचड़ के ढूहों पर छटपटा कर बार-बार मूर्छित हो रहे थ, इतने में 'अकाल जलद' (मेघ) ने आकर सूखे सरोवर में ऐसी वर्षा की कि अब उसमें जंगली हाथियों के झुंड गले तक डूबकर जल पी रहे हैं।

कवि "अकाल जलद" ने इस श्लोक में बड़े अनूठे ढंग से अपने नाम का समावेश कर दिया है।

अह्नाय प्रतिबुध्यतां, किमभवत्, रामांगना ह्याहृता
भुक्ता सा नु कथं, न भजते रामादृते जानकी।
रामः किन्न भवानभूत्, श्रृणु सखे तालीदलश्यामलं
रामाङ्गं दधतो ममापि कलुषीभावो न सञ्जायते।

रावण जब सीता को हर कर लंका ले गया तो उसने सीता को अपनी ओर अनुरक्त करने के अनेक उपाय किये परन्तु असफल रहा। घबराकर वह कुम्भकर्ण के पास सलाह लेने गया। उपर्युक्त श्लोक प्रश्नोत्तरी है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में राम की प्रशंसा में शायद ही इससे बढ़कर और कोई श्लोक कहा गया हो।

रावण——जल्दी उठो।
कुंभकर्ण——क्या हुआ ?
रा०——राम की स्त्री को हम हर लाये।
कु०——क्या तुमने उसका उपयोग नहीं किया ?
रा०——वह सिवाय राम के और किसीकी बात नहीं करती।
कुं०——आपने राम का रूप क्यों नहीं रख लिया ?
रा०——अरे भाई! सुनो भी। मैंने तालीदल के समान श्यामल राम का रूप बनाया, परन्तु उस स्वरूप को बनाते ही मुझ ऐसे रावण के भी हृदय में कलुषित भाव उत्पन्न ही नहीं हुआ।

ब्रज-माधुरी (२)

(१)

काल्हि, सखी हौं यौं सुन्यो, पौ फाटत पिय गौन।
पौ हियरो झगरो परो, पहिले फाटत कौन॥

(२)

जिहि बाम्हन पिय गौन की, साइति दई बताय।
सजनी ताहि बुलाइ दै, प्रान दान लै जाय॥

(३)

यह बूझन को नैन ये, लगि लगि कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी, पिय आवन की बात॥

(४)

बाम बाहु फरकत मिलैं, जो हरि जीवन मूरि।
तौ तोहीं सों भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि॥

(५)

पैंजनी गढ़ाइ चोंच सोने से मढ़ाइ दीहौं,
कर पर लाइ पर रुचि सौं सुधरिहौं।
कहै कवि 'तोष' छिन अटक न लैहौं अरु,
कंचन कटोरे अटा खीर भरि धरिहौं॥
ऐ रे कारे काग तेरे सगुन संजोग आजु,
मोरे पिय आवैं तौ बचन ते न टरिहौं।
करती करार तौन पहिले करौंगी सबै,
आपुने पिया को फेरि पीछे अंक भरिहौं॥

(६)

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
जानियत फैलि रह्यो बिष कारे नाग को।
बैरिनि भई है कारी कोयल निगोड़ी अरु
तैसोई भँवर कारो बासौ बन बाग को।
'भूषन' भनत कारे कान्ह के बियोग
हमैं भये दुखदाई जे करैया अनुराग को।
उमड़ि घुमड़ि कारो मेघ मारो चाहत है,
एतेऊ पै पूरित भरोसो कारे काग को।

(७)

इन नैननि में वह साँवरी मूरति
देखत आनि अरी सो अरी।
अब तौ है निबाहिबो याको भलो,
'हरिचन्दजू' प्रीति करी सो करी।
उन खंजन के मद गंजन सों,
अँखियाँ ये हमारी लरी सो लरी।
अब लोग चबाव करैं तो करैं
हम प्रेम के फन्द परी सो परी॥

(८)

बर संभु जटा तजि भागीरथी
बहि सागर मध्य धँसी सो धँसी।
करि कोटि उपाय बुझाये बुझै न,
सिला में कृसानु कसी सो कसी।
अब होनी जो होय सो होय 'प्रताप',
मयंक कलंक लसी सो लसी।
मृदु मूरति सुन्दर साँवरे की,
अब तौ उर बीच बसी सो बसी।

(९)

तुम चाहौ सो कोऊ कहौ हमकौं,
नंदवारे के संग ठईं सो ठईं।
तुम हौ कुल बीनै प्रबीनै सबै,
हम तौ कुल छाँड़ि गईं सो गईं।
'रसखानि' या प्रीति की रीति भली,
सो कलंक की मोटैं लईं सो लईं।
अब गाँव के बासी हँसौ तौ हँसौ,
हम स्याम की चेरी भईं सो भईं॥

साहित्यिक संस्मरण

"लाड़ई की जड़ हाँसी"

कानपुर में कांग्रस अधिवेशन हुआ। श्रीमती सरोजिनी डू उसकी अध्यक्षा थीं। स्वर्गीय जगदम्बाप्रसाद मिश्र षी' श्रीमती नायडू की राजनीति से असंतुष्ट थे। उस सर पर उन्होंने श्रीमती नायडू को लक्ष्य करके, कुछ र्ण छंद लिखे। उनमें व्यंग्य तो था ही, कुछ अवमानना थी। जैसे एक छंद की अंतिम पंक्ति थी––"नाचती नेहरू ख पै ये सरोजिनी आज बनी प्रेसिडैंटा।" इन छंदों चार भी हुआ। इससे कानपुर के कांग्रेसी नेता जी से क्षुब्ध हो गये। हितैषीजी के काव्यगुरु और सनेहीजी भी इन छंदों के कारण उनसे असंतुष्ट हो ये। किंतु, हितैषीजी से विवाद करने का किसीको नहीं होता था। कांग्रेस अधिवेशन के कुछ दिनों ही होली आयी। संयोग से उस अवसर पर वहाँ पद्मधर अवस्थी आये। वे बड़े प्रतिभाशाली युवक और उनमें आशु कविता की अद्भुत शक्ति थी। होली एक समारोह हुआ जिसमें कितने ही साहित्यप्रेमी नेता, स्थानीय कवि आदि सम्मिलित थे। उसमें जी, हितैषीजी और पद्मधरजी भी उपस्थित थे। अवसर पर लोगों ने पद्मधरजी को बाढ़ पर रख दिया उनसे हितैषीजी पर व्यंग्यात्मक छंद कहलाये जिनमें ही कटूक्तियाँ भी थीं और उनके निजी जीवन भी करारे प्रहार थे। आलोचना अत्यन्त तीखी तो ही, उसमें कहीं-कहीं शिष्टाचार का भी अतिक्रमण हो था। कानपुर के प्रमुख कांग्रेसी नेता और सनेहीजी धरजी को खुला प्रोत्साहन दे रहे थे। इस घटना तैषीजी इतने क्रुद्ध हो गये कि उन्होंने इन सबसे ना और बोलना भी बंद कर दिया।

जब यह बोलचाल एक वर्ष तक बंद रहा तब सनेहीजी को, जिन्हें हितैषीजी से बड़ा स्नेह था, हितैषीजी की अप्रसन्नता खलने लगी। उन्होंने शायद अनुभव किया कि हितैषीजी के साथ कुछ ज्यादती हो गयी है। अतएव अगली होली पर उन्होंने हितैषीजो को 'मनाने' के लिए एक छंद लिखकर वर्तमान् में छपवाया। वह छंद यह था :

होली की उमंग अंग अंग में समाई,
और भंग की तरंग रंग लायी थी ठठोली का।
प्रेम के प्रकाश का निराला कुछ ढंग हुआ,
संग संग सुख मिलता था व्यंग्य बोली का।
मेरे हृदयासन पै आप हैं विराजमान,
कोमल शरीर हुआ होगा लक्ष्य रोली का।
आपकी क्षमा के लिए सानुराग अर्पित है,
स्वीकृत हो मित्रवर! प्रेमपत्र होली का।

किंतु पद्मधरजी ने अपनी कविता में कुछ ऐसी बातें कह दी थीं जो हितैषीजी को छू गयी थीं। उनका क्रोध काव्यगुरु सनेहीजी की इस क्षमायाचना से भी उस समय शान्त नहीं हुआ। उन्होंने सनेहीजी के छंद का उत्तर इस छंद से दिया––

उठेगी उमंग कैसे जब एक एक पर
घृणित प्रहार करते हैं व्यंग्य बोली में।
दुख मिलता है किसीको तो किसीको सुख,
अपमान अपनों का करके ठठोली में।
भंग ही ने रंगभंग करके बिठाल दिया
सभ्य-शिरोमणियों को भंगियों की टोली में।
कैसा अनुराग! लगवाते मित्रता में दाग!
भाग रे हितैषी! लगे आग ऐसी होली में।

हितैषीजी का क्रोध शान्त होने में कई वर्ष लगे।

पण्डित कुन्दनलाल

पं० महावीरप्रसाद चतुर्वेदी

कविता भी प्रकृति-चित्रण है। वह भी एक प्रकार की चित्रविद्या है। पर कविता और चित्रकला दोनों से एक ही साथ प्रेम होना बहुधा कम देखा गया है। पण्डित कुन्दनलाल में दोनों बातें एक ही साथ थीं।

पण्डित कुन्दनलाल गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम गिरिधारी लाल और पिता का चतुर्भुज था। संवत १९१५ में इनका जन्म मथुरा में हुआ था। इनके बड़े भाई पण्डित श्यामलालजी जयपुर में वैद्य थे और पण्डित प्यारेलालजी सरिश्तेदार।

पण्डितजी के पूर्वज साधारण गृहस्थ थे। मालदार न थे। तथापि उन्होंने पण्डित कुन्दनलाल को यथा-शक्ति शिक्षा देने में कोई कसर नहीं होने दी। वे मथुरा के जिला स्कूल में पढ़ने भेजे गये और कई वर्ष तक वहाँ रहे। लड़कपन ही से उन्हें चित्र खींचने का शौक था। एक बार सुनते हैं, मथुरा के तत्कालीन जाइंट मैजिस्ट्रेट ग्राउज साहब स्कूल देखने गये। वहाँ कुन्दनलाल ने छात्रावस्था में ग्राउज़ साहब को देखते ही उनका चित्र खींचा और उसी वक्त स्कूल ही में भेंट किया। इतनी थोड़ी उम्र में कुन्दनलाल का चित्रनैपुण्य देखकर ग्राउ साहबज़ बहुत खुश हुए—तभी से ये साहब के कृपापात्र हुए और बहुत कुछ उनसे सहायता पाई।

स्कूल छोड़ कर पण्डित कुन्दनलाल ने सरकारी नौकरी कर ली। जिस समय ये बुलन्दशहर में कलेक्टरी के हेड क्लार्क थे, ग्राउज़ साहब फतेहगढ़ की कलक्टरी पर बदल आये। वहाँ इन्होंने पण्डित कुन्दनलाल की भी बदली करा ली। तब से पण्डितजी का और साहब का, साहब के पेन्शन लेकर विलायत जाने तक अखण्ड साथ रहा।

पण्डित कुन्दनलाल यद्यपि अँगरेजी के पदवीधर न थे, तथापि अँगरेजी लिखने और बोलने में उन्हें पदवीधरों से भी अधिक अभ्यास था। उनकी अँगरेजी की चिट्ठियों से उनकी योग्यता का अच्छा परिचय मिलता । उनकी कई चिट्ठियाँ हमारे पास हैं। उनमें कितनी ही बातें उन्होंने बड़े महत्त्व की लिखी हैं। हिन्दी, अँगरेजी के सिवा पण्डित जी उर्दू भी जानते थे। चित्रकला में तो आप बहुत ही व्युत्पन्न थे। चित्र खींचने में ये इतने चतुर थे कि आदमी को सामने बिठाकर बात की बात में उसका बहुत ही अच्छा चित्र खींच देते थे। कई नुमायशों में इनके चित्र की बड़ी तारीफ हुई थी और शायद इन्हें कोई पदक भी मिला था। "एक हिन्दू विधवा" और "राजपूत ब्राइड" (नवविवाहिता राजपूत-बधू), इनके ये दो चित्र बहुत बढ़िया समझे गये थे। "मराठा" और "मराठिन' का भी एक जोड़ा चित्र इन्होंने अच्छा बनाया था। सब मिला कर कोई छः-सात चित्र इन्होंने बनाये थे, पर के नाम ही नहीं मालूम हुए। नवविवाहिता राजपूत- के साथ उसके पति का भी चित्र था। पति लड़ाई में के लिए तैयार था। जाने के पहले वह अपनी नवीना से मिलने आया। उसे देखकर वधू ने कहा।

रणकूँ चाल्याँ साहिबा कांईं ढूंढ़त साथ।
थारे साथी तीन छे हिया, कटारी, हाथ॥

यही भाव चित्र में दिखाया गया था। चित्र के यह दोहा भी था। दोहे का अनुवाद भी अँगरेजी में प्रकार था—

Bound for fray, why halt my Lord?
What other aid need be?
Heart, right hand and trenchant sword
Are thy sure champions three.

यह चित्र शिमला की चित्र-प्रदर्शिनी कमिटी को पसन्द आया था। एक अँगरेज चित्रकार ने इसे पसन्द किया कि अपना १५०) रुपये का एक चित्र इसे बदल लिया।

"हिन्दू विधवा" का चित्र इन्होंने १८८८ ईसवी बनाया था। इसका एक फोटो फतेहगढ़ से श्री हरप्रसादजी ने हमारे पास भेजा है। उसे हम इस में प्रकाशित करते हैं। यह चित्र भी प्रदर्शिनी के कारियों ने बहुत पसन्द किया था।

कुछ लोगों का—खास करके विदेशियों का— कि भारतवर्ष की विधवा स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा होती है उन्हें और और क्लेशों के सिवा खाने-पहनने का भी उठाना पड़ता है। इस खयाल को दूर करने के लिए पण्डित जी ने एक चित्र बनाया था।

यह इन प्रान्तों की एक तरुण विधवा का चित्र इसे हम इस संख्या में प्रकाशित करते हैं। यहाँ काँच चूड़ियाँ, नथ, बिछुवे आदि चीजों और रंग बिरंगे को छोड़कर और सब चीजें पहनने ओढ़ने का विधवा को अधिकार है। खाने पीने में भी उन्हें कोई कष्ट दिया जाता। सिर के बाल भी नहीं मुड़ाये जाते। भाव इस चित्र में दिखाया गया है। चित्रगत विधवा अवयव इस बात की गवाही दे रहे हैं कि उसे खाने को कोई तकलीफ नहीं। प्रातःकालीन स्नान और पूजन पश्चात् यह स्त्री परमेश्वर से नित्य यही प्रार्थना करती कि मरने के बाद मेरा मेरे पति से फिर संयोग हो। दिन का यह चित्र है उस दिन स्नान और प्रार्थना के वह अपने मकान की छत पर दीवार से लगकर खड़ी हो है और पति के सोच में ध्यानस्थ सी है।

यदि पण्डित कुन्दनलालजी के कुटुम्बियों

१९६३

चित्रों में से कोई सज्जन हमें उनके अन्य चित्रों का भी एक एक फोटो भेजने की कृपा करें तो हम उन्हें कृतज्ञता-पूर्वक सरस्वती में प्रकाशित करेंगे।

संवत् १९४८ के आरम्भ (सन् १८९१ ई०) से पण्डित कुन्दनलाल ने 'कवि व चित्रकार' नाम का एक त्रैमासिक पत्र फतेहगढ़ से निकाला। इसका उद्देश्य कविता और चित्रकला की उन्नति था। चित्र भी इसमें कभी-कभी निकलते थे। इसके साथ एक बार नरगिस के स्वाभाविक पुष्प-गुच्छ का एक रंगीन चित्र निकला था, और एक बार सेव के पुष्प-गुच्छ का। ये चित्र बड़े ही मनोहर थे। हमें याद पड़ता है पंडित कुन्दनलाल ने लिखा था कि ये गुच्छ किसी हिंदू-कुल-कामिनी के कर-कौशल के फल हैं। पंडित जी इस पत्र में चित्रकला और फोटो-विषयक अनेक उपयोगी बातें सहज में बोधगम्य बातें लिखा करते थे। दो एक दफे उन्होंने अच्छे अच्छे चित्र और "डिज़ाइन" बनाकर भेजने वालों को इनाम देने की भी घोषणा प्रकाशित की थी।

कवि व चित्रकार के पहले अंक के आरम्भ में एक लावनी छपी थी। उसका शुरू इस प्रकार है।

प्रणमामि राधिकाकान्त पादयुगलन्ते।
विहरति रविजातीरविपुलविपिनान्ते।

इसके 'प्रणमामि' का "प्र" बड़े आकार में, बेल-बूटों से सुन्दर, बनाया गया था। सो किसी किसी रसिक कवि को वह देख ही न पड़ा। इस पर उन्होंने सम्पादक से शिकायतें कीं, जिन्हें पढ़कर पंडित कुन्दनलाल को ललित-कलाओं की अधोगति पर बड़ा दुःख हुआ। इतना बड़ा और इतना साफ 'प्र' होने पर भी, सिर्फ बेल बूटेदार होने के कारण, लोगों की नजर से गायब हो गया।

कवि व चित्रकार में अच्छी-अच्छी कवितायें, कविता-सम्बन्धी प्रबन्ध, पुस्तकों की आलोचनायें और चित्रकला-विषयक लेख छपते थे। पूर्ति करने के लिए समस्यायें दी जाती थीं। पहली समस्या इस विषय पर दी गई कि किसने और किस उद्देश्य से जालियों का प्रचार किया। इस पर सैकड़ों पूर्तियाँ आईं। पर विशेष करके शृंगार ही रस की। कुछ तो अश्लील तक थीं। जालियों के विषय को भी कविजनों ने शृंगार ही में डुबो दिया, इससे पंडित कुन्दनलाल को अफसोस हुआ। पर और अच्छी भी कुछ पूर्तियाँ थीं। अच्छी-अच्छी पूर्तियों को पंडितजी ने जाल-कौमुदी नामक पुस्तक मे प्रकाशित किया। इस पुस्तक में जालियों की उत्पत्ति पर पंडित जी ने एक लेख बड़े खोज से लिखा है। और कोई पौने सौ तरह की जालियों के नमूने दिये हैं। जालियाँ बनाने की रीति आदि का भी वर्णन इसमें है। जाली सम्बन्धी पूर्तियों की जाँच के लिए एक कमिटी बनी। उसके सभापति राजा लक्ष्मण सिंह जी हुए। कमिटी ने ७ कवियों की पूर्तियों को अच्छा ठहराया। उनमें से तीन को पंडित कुन्दनलाल ने दुशाला, घड़ी और ओढ़नी अपनी तरफ से पारितोषिक दिया, और शेष ४ को राजा लक्ष्मण सिंह ने अपनी तरफ से पगड़ी। पहला पुरस्कार, अर्थात् दुशाला, पंडित जयदेव जी (अलवर) को मिला। पंडित नाथूराम शंकर जी ने पगड़ी पाई। चन्द्रकला बाई (बूँदी) ने ओढ़नी।

कोई दो साल तक कवि व चित्रकार निकला। प्रत्येक अंक में एक न एक समस्यापूर्ति छपती रही। पूर्तियाँ अलग "पूर्तिपत्र" में निकलती थीं। पूर्तिपत्र कवि व चित्रकार के अंक के साथ ही बँटता था।

(१) भाल लिखी लिपि को सक टार
(२) सार यहै उपकार तजै ना
(३) उन्नति यों करिये कविता की
(४) बार करो जिन बार बराबर
(५) अब तो सब को गुरुदेव रुपैया

आदि समस्याओं पर उत्तमोत्तम पूर्तियाँ इस पत्र में प्रकाशित हुईं। कुन्दनलाल जी ने अच्छी अच्छी पूर्तियों के उपलक्ष्य में कवियों को सोने चाँदी के पदक, घड़ियाँ, पगड़ी आदि देकर उनका उत्साह खूब बढ़ाया।

कविता और चित्रकला के ऐसे प्रेमी को कुटिल काल ने बहुत दिन तक इस लोक में नहीं रहने दिया। पंडित कुन्दनलाल जी पहले श्वास-रोग से दुखी रहा करते थे। पर अब वे वात-व्याधि से पीड़ित हो गये। उन पर फालिज का दौरा हुआ। वे फतेहगढ़ से जयपुर गये। उनके कुटुम्बी वहीं थे। वहाँ चिकित्सा से पहले कुछ आराम भी हुआ। पर तीसरे दौरे में उसने पंडितजी की जान लेकर ही कल की। संवत् १९५१ की चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को, सिर्फ ३६ वर्ष की उम्र में, उन्होंने शरीर छोड़ दिया। कवि व चित्रकार का निकलना बन्द हो गया। साथ ही कवियों को पदक और दुशाले मिलने भी बन्द हो गये। कवि व चित्रकार का जो अंक उनकी मृत्यु के बाद निकला उसमें कितने ही कवियों ने बड़ी ही हृदयविदारिणी कविता में पंडितजी के असमय परलोकवास पर शोक प्रकट किया।

पंडित कुन्दनलालजी ने, पहली स्त्री के मरने पर, दूसरा विवाह किया था। मरने के वर्ष ही डेढ़ वर्ष पहले यह विवाह हुआ था। अतएव यह और भी दुःख की बात हुई।

पंडितजी थियासफिकल सोसायटी के सभासद थे और उसके तत्व में अच्छी पारदर्शिता रखते थे।

ग्राउज़ साहब ने तुलसीदास की रामायण का जो अँगरेजी में अनुवाद किया है वह पहले ८ रुपये में आता था। इससे उन्होंने उसे साहब की अनुमति से खुद छपाया और सर्वसाधारण के सुभीते के लिए उसकी कीमत घटा कर सिर्फ ३ रुपये कर दी।

इन्होंने फतेहगढ़ में एक सदुपकारिणी सभा भी स्थापित की थी। उसके आप सभापति थे। सज्जन और कुलीन स्त्री-पुरुष जो भूखे-प्यासे रहकर किसी तरह दिन काटते हैं, पर अप्रतिष्ठा के डर से किसी से कुछ माँग नहीं सकते उन्हें इस सभा से गुप्त सहायता मिलती थी। इस सभा ने कितने ही अनाथों और दीन-दुखियों का पालन किया।

यह अब तक बनी हुई है और अब तक दो-चार दीनों को अन्न, वस्त्र दे रही है।

पंडित कुन्दनलाल जी बड़े उदार, बड़े स्वदेश-भक्त और बड़े विद्या-प्रेमी थे। कवि व चित्रकार के निकालने में उन्होंने बहुत रुपया खर्च किया। पर हिन्दी के प्रवीण पाठकों ने उनके पत्र की बहुत कम कदर की। पंडितजी एक पत्र में लिखते हैं :—

My father left me no great fortune, nor my luck is over-fond of me. What little I can earn is hardly sufficlent for my own family, which is by no means small. I conduct the paper at a very heavy loss (one year's loss amounting to over Rs 800!) and this is in a sense injustice to my family, who have stronger claims on me than the magazine Yet I do what I can for the love of knowledge and glory of my country. × × × × I have sacrificed my health, my money, my time and if, still the King does not like the dish, woe to the goat which has lost its life!

अर्थात्—न हमारे कोई मौरूसी जायदाद है, न हम खुद ही भाग्यवान हैं। जो कुछ थोड़ा हमें मिलता है हमारे ही बाल-बच्चों के लिए काफी नहीं। कुटुम्ब भी हमारा छोटा नहीं। कवि व चित्रकार को चलाने में हमें बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। गत वर्ष हम ८०० रुपये से भी अधिक के घाटे में रहे। यह हमने मानो अपने कुटुम्ब पर जुल्म किया—अन्याय किया। कवि व चित्रकार की अपेक्षा अपने कुटुम्बियों की जरूरतों को रफा करना हमारा पहला काम है। पत्र की अपेक्षा कुटुम्ब का हक अधिक है। तिसपर भी अपने देश की सुख्याति और विद्याभिरुचि की प्रेरणा से जो कुछ हमसे हो सकता है, करते हैं। हमने अपना आरोग्य नष्ट कर दिया, अपना समय नष्ट कर दिया, अपना रुपया नष्ट कर दिया; इस पर भी यदि "खाना-पसन्द" शाह को शोरबा अच्छा न लगे तो उस छाग के लिए शोक है जिसने अपनी जान खो दी!

इससे पंडित कुन्दनलालजी के औदार्य, विद्या-प्रेम और स्वदेशाभिमान का अच्छा परिचय मिलता है। इतनी हानि उठाकर और इतना आत्महितोत्सर्ग करके भी प जी हिन्दी बोलने वालों की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सके। यह हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए बहुत बड़े कलंक की बात है। यह चौदह-पंद्रह वर्ष पहले की व्यवस्था का वर्ण है। पर अब तक यह दुरवस्था प्रायः पूर्ववत् बनी हु है। अब तक हिन्दी-पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों का विशे आदर नहीं है। अब तक हिन्दी बोलने वाली माता के सपूत हिन्दी में ख्वाब देखना छोड़ कर लिखना, पढ़ पसन्द नहीं करते। देखें कब तक यह उदासीनता बन रहती है—"कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"।

पंडित कुन्दनलालजी का फोटो और इस लेख के बहुत कुछ सामग्री भेजने के लिए हम फतेहगढ़ के म्यु निसिपल कमिश्नर, बाबू हरप्रसादजी, के बहुत कृत हैं।

मनोरंजक श्लोक

गणपत जानकीराम दुबे

जब श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मणसहित सीताजी को ढूँढ़ते हुए पंपा सरोवर पर पहुँचे तब एक बगुले की ध्यानस्थ मुद्रा देख रामचन्द्र जी कहते हैं :—

राम :—पश्य लक्ष्मण पंपायां बकः परमधार्मिकः।
शनैर्मुंचति पादाग्रं प्राणिनां वधशंकया॥

अर्थ :—हे लक्ष्मण! इस पंपा सरोवर के बगुले परमधार्मिक हैं। देखो वह बगुला कैसे धीरे-धीरे उठाकर रखता है। जानते हो किस लिए? उसे लगता है कि पैर के नीचे कोई जीव जन्तु दब कर न जायँ।

यह सुन कर एक मत्स्य ने कहा।

मत्स्य :—सहवासी विजानाति सहवासिविचेष्टितं
बकं किं वर्ण्यसे राम! येनाहं निष्कुलीकृ

किसी के चरित्र के विषय में पूँछना हो तो उ पड़ोसी से पूछिए। क्योंकि सहवासी ही सहवासी के गु वगुण भली भाँति जान सकता है। हे राम! आप की क्या बड़ाई कर रहे हैं? इसने तो मेरे सारे कुट नाश कर दिया।

***

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों म पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.) अंगरेजी में

In English

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोक का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी वही है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

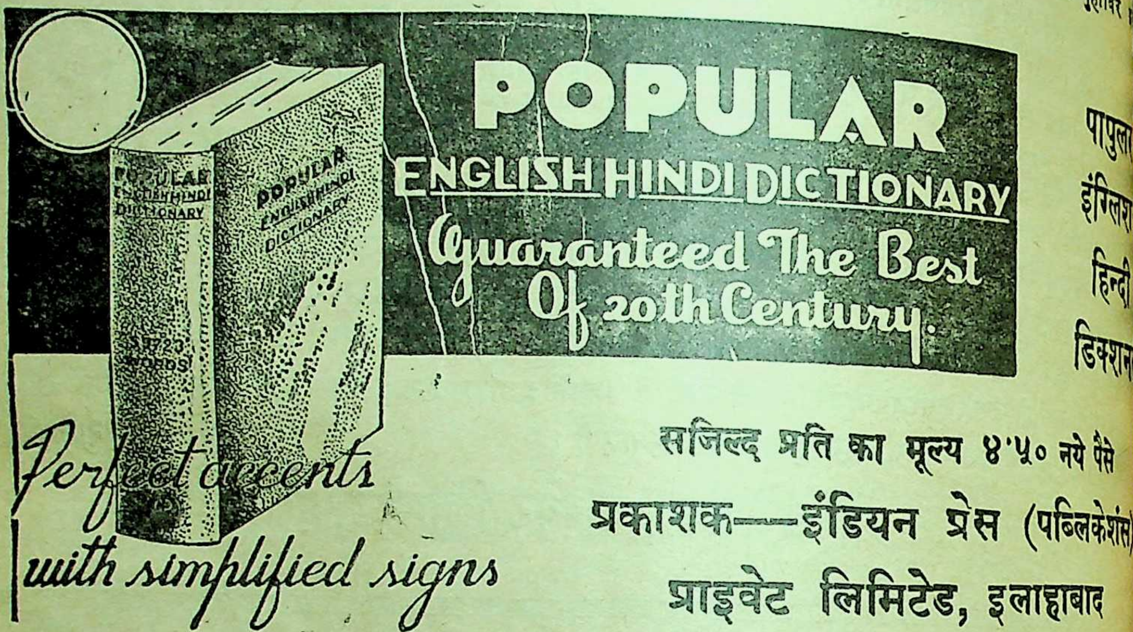
POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs
पापुलर
इंगलिश-
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४.५० नये पैसे
प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस)
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।......'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।......'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा र छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया ास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर ता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

न्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
ी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

● ● ● ● ● ● ●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,

जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
त्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है । हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करता है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं । संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है । इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता ।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है । यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है । इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है । इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है । खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है । उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है । पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं । सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है । इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं । किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी । सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

जवाहरलाल नेहरू

मानवता का प्रहरी

पी॰ डी॰ टंडन

भारत के प्राण
पण्डित जवाहरलाल नेहरू
की
७३ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य
में
हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १॥) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बाल कवि श्री निरंकारदेव सेवक के अपूर्व प्रकाशन

फूलों के गीत

बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। मूल्य १ रुपया ७५ नये पैसे।

रिमझिम

रिमझिम में निरंकार जी के वे अनमोल बालगीत संगृहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य २) रुपये।

माखन-मिसरी

इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और माखन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। मूल्य २) रुपये।

पंचतन्त्री

पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वे कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मूल्य ३) रुपये।

मुन्ना के गीत

बच्चों के सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गए हैं। मूल्य २) रुपये ५० नये पैसे।

धूपछाया

बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम झूम उठते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

दूध जलेबी

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

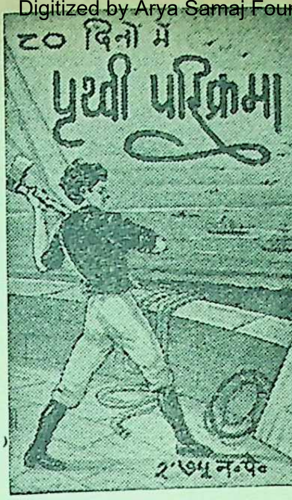
८० दिनों में
पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न.पै.

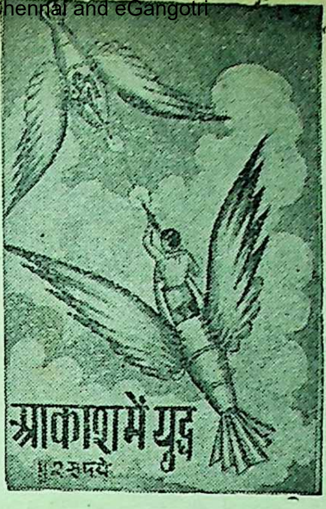
आकाश में युद्ध
२ रुपये

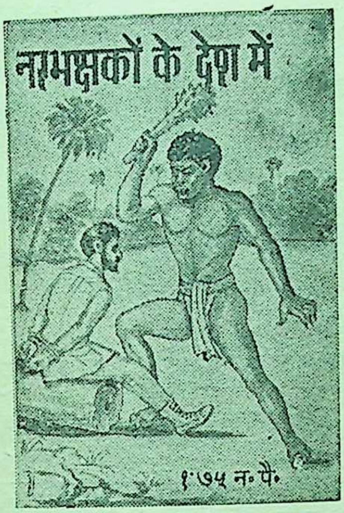
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न.पै.

स्विस परिवार रॉबिन्सन
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि., इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न.पै.

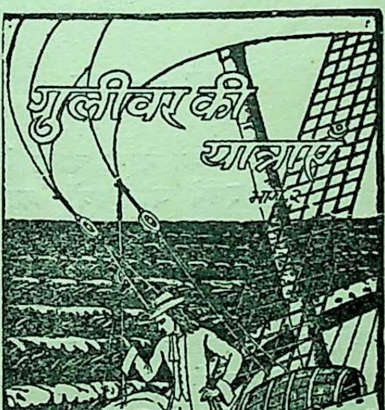
गुलीवर की यात्राएँ
भाग २
२.२५ न.पै.

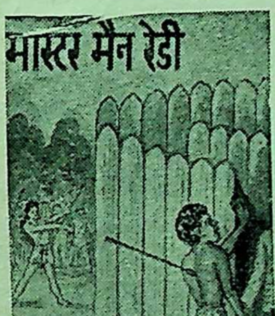
मास्टर मैन रेडी
२.७५ न.पै.

अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा बालक इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

Yearly Subscription: Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

SARASWATI—Reg. No. A

नेहरू चाचा के जीवन का बोलता हुआ रंगीन चलचित्र

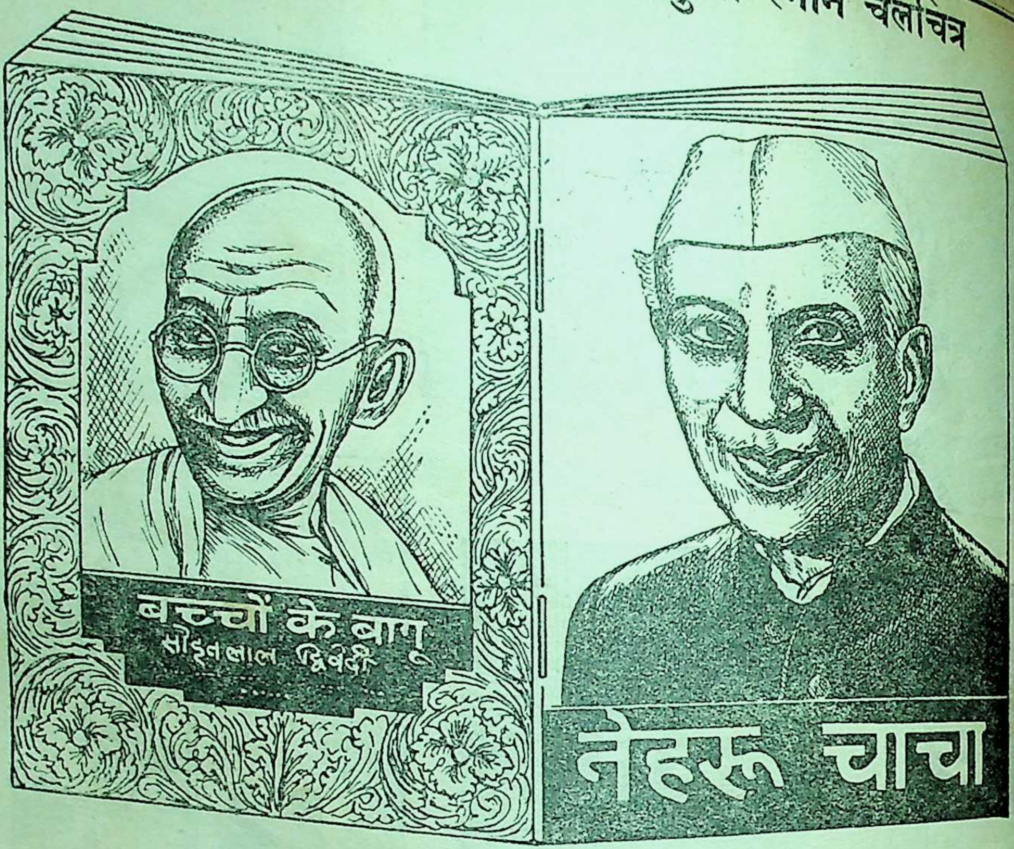

नन्हें मुन्नों के लिए सबसे नई कविता पुस्तक

देश के मूर्धन्य नेताओं एवं मान्य विद्वानों की शुभ कामनाएँ और कुछ सम्मतियाँ

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन (राष्ट्रपति—भारत)—नेहरू चाचा अत्यन्त उत्तमता से मुद्रित की गई है और इसके चित्रण बहुत ही सुन्दर हैं। इसकी सभी प्रकार से सफलता के लिए अनेक शुभ कामनाएँ।

प्रोफेसर हुमायूँ कबीर (मंत्री सांस्कृतिक मंत्रालय)—'नेहरू चाचा' का प्रकाशन अत्यन्त उत्तम है।

डॉ० सम्पूर्णानन्द (राज्यपाल राजस्थान)—बच्चों को नेहरू चाचा के संबंध में जानकारी कराने के लिए नेहरू चाचा उपयोगी पुस्तक है, इसमें जो चित्रों का संग्रह है उससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

माननीय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी (संसद सदस्य)—हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने देश के बालक-बालिकाओं के सामने सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों के जीवनचरित उपस्थित करें जिनसे उन्हें प्रेरणा मिले। यदि वे चित्रों के साथ हों, तब तो कहना ही क्या ? हर्ष की बात है कि प्रयाग का इंडियन प्रेस, यह शुभकार्य बड़ी खूबी के साथ कर रहा है। बच्चों के बापू नामक पुस्तक इसके पूर्व छप चुकी है। बंधुवर श्री सोहनलाल द्विवेदीजी ने बच्चों की जबान में पं० जवाहरलालजी का सुन्दर परिचय दिया है। निस्संदेह छोटे-छोटे बच्चों के लिए नेहरू चाचा बड़ी मनोरंजक और लाभदायक सिद्ध होगी।

मूल्य केवल २·२५ नये पैसे

अपनी प्रति के लिए सीधे प्रकाशक को लिखिए

प्रकाशक—**व्यवस्थापक इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद**

28 SEP [illegible] क्रम से १२३

रस्वती

म्बर

१९६३

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं । प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०
पृथ्वी का इतिहास——श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद——श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ——श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत——लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष——गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण——इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान——शचीन्द्रनाथ सान्याल

* * *

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,

जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

एक मनोवैज्ञानिक बात....

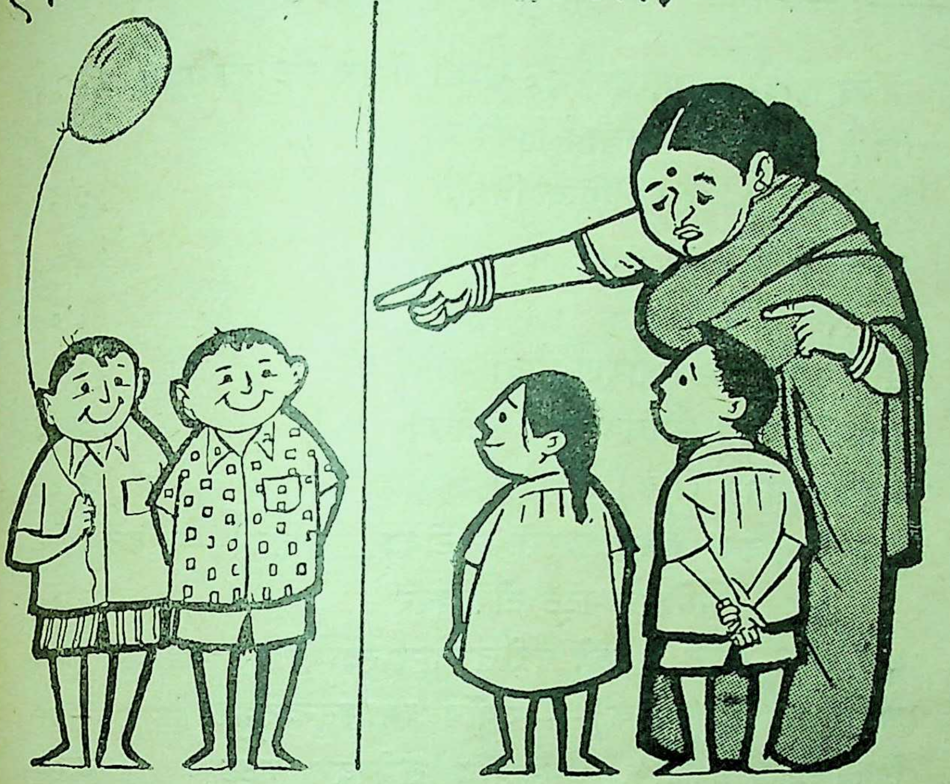

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें अपने बच्चों की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए। उनके अनुसार इससे बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचती है। यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है। नन्हे मुन्नों और मेट्रिक बाटों के गुणों को परखिये और उन्हें ज्यों का त्यों अपनाइये। मेट्रिक बाटों का उनके मूल्य के अनुसार ही इस्तेमाल कीजिए जैसे १०० ग्राम, २०० ग्राम, ५०० ग्राम व १ किलोग्राम।

मेट्रिक तोल का जोड़ तोड़ करके सेर न बनाइये।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में नुकसान हो सकता है।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

पूर्ण इकाइयों में

डी ए ११/७१ **मेट्रिक बाटों** का प्रयोग कीजिए

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत--१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०'००
हिन्दी महाभारत--आचार्य द्विवेदीजी	६'००
हिन्दी ऋग्वेद--रामगोविन्द त्रिवेदी	१२'००
श्रीमद्भागवत--दो भागों में	१६'००
ज्ञानेश्वरी गीता	६'००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण--दो भागों में	१३'००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२'००
रामचरितमानस (मूल)	३'००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)--पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६'००
सुन्दरकाण्ड (मूल)--श्री नरोत्तमदास स्वामी	१'००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)--स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३'५०
विनयपत्रिका (सटीक)--स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४'००
कवितावली (सटीक)--पं० चम्पाराम मिश्र	२'७५
कुण्डलिया रामायण--सत्यनारायण पांडेय	४'००
तुलसी रत्नावली--केदारनाथ गुप्त	१'५०
तुलसी के चार दल--श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३'००
द्वितीय भाग	२'७५
भक्तचरितावली	३'५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०'७५
वेदान्त दर्शन--महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५'००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्--श्री मंगलदेव शास्त्री	८'७५
दुर्गापाठ--अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२'००
श्री भगवत तत्त्व--श्री करपात्रीजी	३'००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं । हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें ।

लर वाटर बाथ

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी
लिमिटेड,
इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास,
नई देहली

ज्ञानवृद्धि के लिए बच्चों का प्यारा
बालसखा
अपने बच्चों को पढ़ायें वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० न० पै०

ादी खतरे में है ।
नी पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए ।
—जवाहरलाल नेहरू

उत्पादन बढ़ाइये

आज अधिक उत्पादन भारत के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शरीर के लिए जीवन-दायक रक्त । आप खेतों और कारखानों में जितना अधिक उत्पादन बढ़ायेंगे, देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी ।

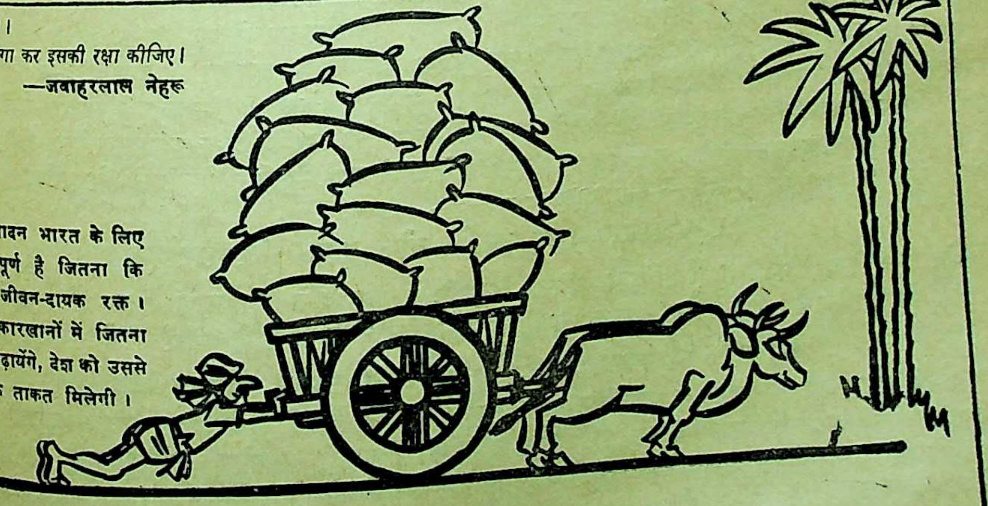

रक्षा व्यवस्था को सबल बनाइये

DA 83/F6

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·४९ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक—मूल्य दो रुपये

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्यधिक आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-विन्दुओं का स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सुगंधित

ब्राह्मी
केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वेदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल
केमिकल

कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

म् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।। ।। ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।।

न की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य——प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद, तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

श्री ब्रह्मदेव सिंह बी० ए०, सम्पादक, 'सेवा', इलाहाबाद क्या कहते हैं :——

न् १९५७ के फरवरी मास में मुझे सुप्रसिद्ध प्रकाण्ड पण्डित ज्योतिषाचार्य श्री पी० एन० सिंह जी से मिलने ाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों मैं बहुत बीमार था तथा मेरे इकलौते चिरंजीव का निधन भी हो गया था, इस बीमारी और असफलता दोनों साथी थे। इस परिस्थिति में मैं द्विविधा रूप में श्री पी० एन० सिंह चार्य जी से मिला। उन्होंने मेरे हाथ और जन्म-कुण्डली द्वारा मेरी विगत घटनाओं को आश्चर्यजनक रूप रूप में विवेचन किया तथा उन्होंने मुझे महाकल्याण प्राण रक्षा कवच भी धारण करने का परामर्श दिया जो आश्चर्यचकित यंत्र है। यंत्र धारण करने पर समय-समय पर मुझे उपर्युक्त यंत्र से आशातीत लाभ मिलता इसी यंत्र के प्रभाव से मैं आज तक अस्वस्थ भी नहीं हुआ। मुझे सन् १९६० ई० में एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई तथा ने का अपना निवासस्थान भी बना लिया। ज्योतिषी जी के चमत्कार और उनकी कृपा से मैं तथा मेरा परिवार समृद्धि से परिपूर्ण हुआ।

१२ दिसम्बर सन् १९६२। बी० डी० सिंह

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०
विश्वपरिचय	२·००
मास्टर साहब	०·५०
योगायोग	४·००
विचित्र वधू रहस्य	२·००
रूस की चिट्ठी	१·५०
मेरा बचपन	२·००
आश्चर्य घटना	२·५०
चार अध्याय	१·५०

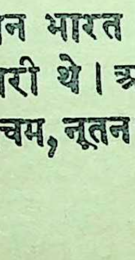

गीताञ्जली	१·५०
मुकुट	०·५०
विचित्र प्रबन्ध	२·२५
प्राचीन साहित्य	१·५०
गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
व्यंग कौतुक	१·२५
हास्य कौतुक	१·२५
राजर्षि	२·००
डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

सिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व तीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर र के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, र व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण ता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दिखाना है। इस पुस्तक में श्लोकों पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ ों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के केवल ॥) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरकार से रजिस्टर्ड

सफेद दाग की दवा मूल्य ६)
विवरण
मुफ्त मंगावें

क्झिमा (उकवत, खर्जूआ, विर्चचिका) व्याधि पर यह परीक्षित दवा है। मू० ५) रु० डाक खर्च १॥) रु०।

मा श्वास गुणकारी औषधि कीमत ५) रु० डाक खर्च १॥) रु०

द्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

नवीनतम प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग—स्वामी सारदानन्दकृत

(भगवान श्रीरामकृष्णदेव की उन्हीं के अन्तरंग शिष्य द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत एवं सम्पूर्ण जीवनी का हिन्दी अनुवाद। पुस्तक तीन खण्डों में पूर्ण होगी।)

प्रथम खण्ड—आकर्षक जैकेट एवं १३ चित्रों सहित; पृष्ठ डबल डिमाई ४७६; कीमत ८ रुपये। (द्वितीय एवं तृतीय खण्ड शीघ्र प्रकाशित होंगे।)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००		
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००		
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५		
पत्रावली —प्रथम भाग	५·२५		
पत्रावली —द्वितीय भाग	४·२५		
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५		
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०		
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५		
स्वाधीन भारत! जय हो! ..	१·५०		
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०		
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·६०		
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७		
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५		
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५		
कर्मयोग ..	१·७५	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग ..	३·५०
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म ..	१·५०	शिकागो वक्तृता	०·६५
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५
शिक्षा ..	०·८५	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·६०
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा ..	०·६०	मन की शक्तियां	०·४०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए:

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर—१

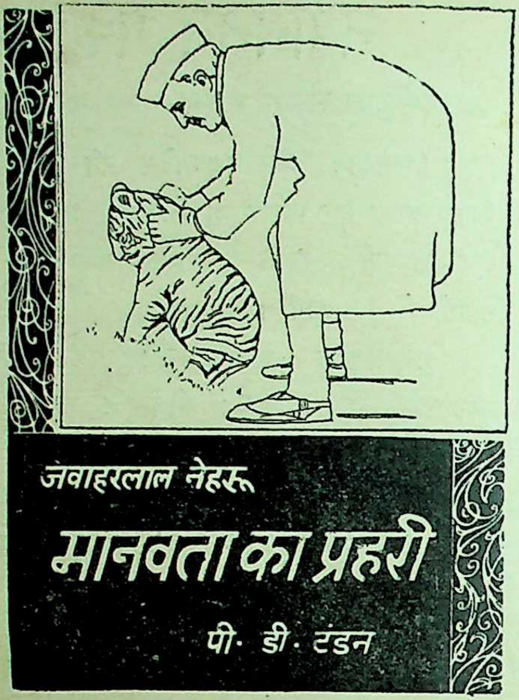

भारत के प्राण
पण्डित जवाहरलाल नेहरू
की
७४ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य
में
हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १॥) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

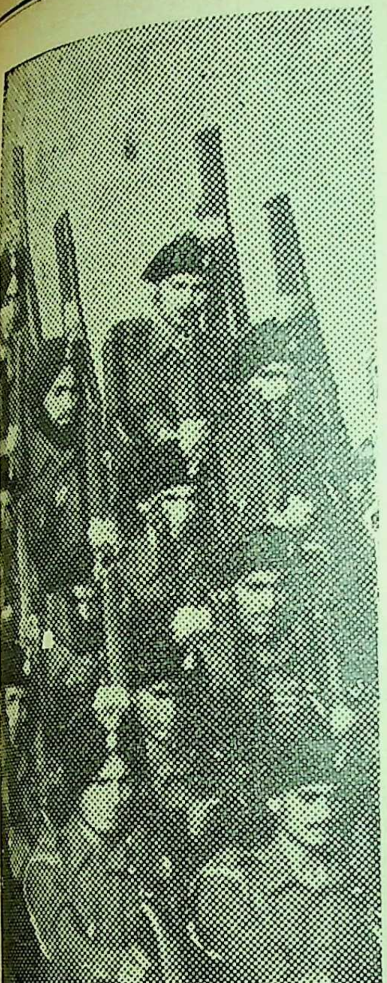

आयोजित विकास

तीसरी पंचवर्षीय योजना में ८० प्रतिशत से अधिक योजनाएं रक्षा का अत्यावश्यक अंग हैं और शेष पंचवर्षीय योजना भी परोक्ष रूप से इससे सम्बद्ध है।

औद्योगिक विकास की गति तेज करने और रक्षा के लिए अधिक शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से योजना को और ठीक-ठाक कर दिया गया है।

इस्पात और मशीनी औजार, खनिज तथा कच्चे पदार्थों का उत्पादन बढ़ा दिया गया है। इंजीनियरी और सम्बद्ध उद्योगों की क्षमता का पूर्णतम रूप से उपयोग किया जाएगा।

आयोजित विकास रक्षा का मूलाधार ही है। योजना को अधिक तेज रफ्तार और कुशलता से पूरी करके आप रक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने और भारत को वास्तविक रूप से अधिक सबल बनाने में सहायक होते हैं।

देश रक्षा के लिए

DA63/F-8

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

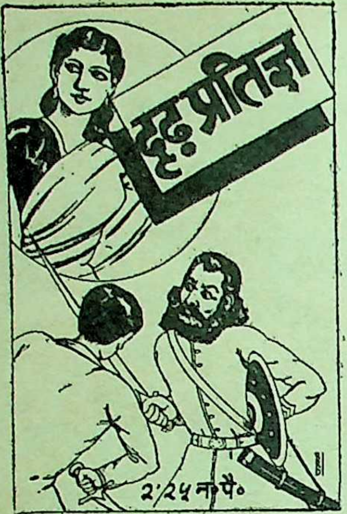
दृढ़ प्रतिज्ञ
२·२५ न० पै०

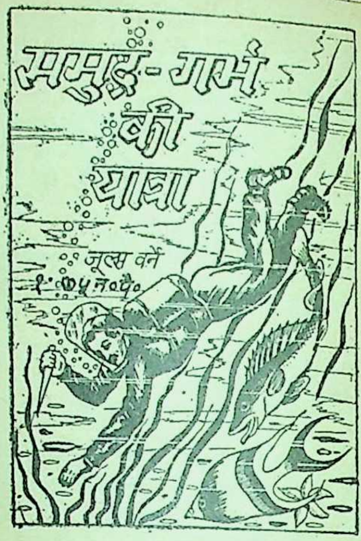
समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्ने
१·७५ न० पै०

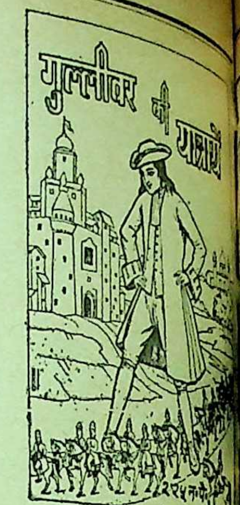
गुलीवर की यात्राएँ
२·२५ न० पै०

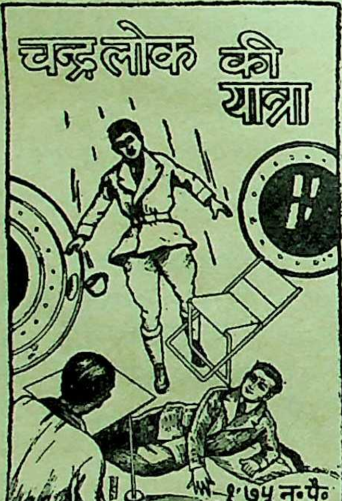
चन्द्रलोक की यात्रा
१·७५ न० पै०

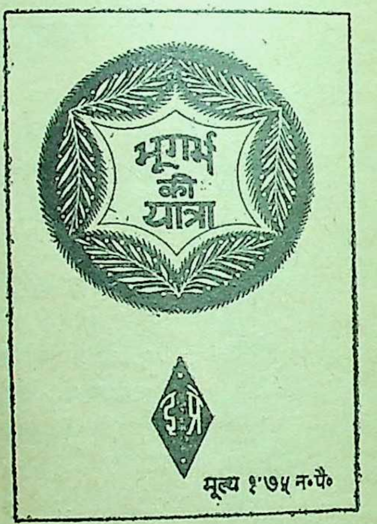
भूगर्भ की यात्रा
इं० प्रे०
मूल्य १·७५ न० पै०

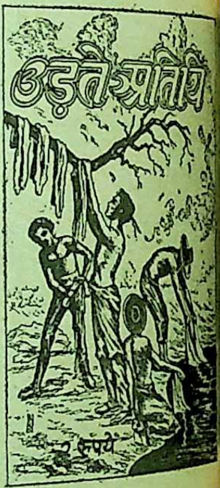
उड़ते प्रति
२ रुपये

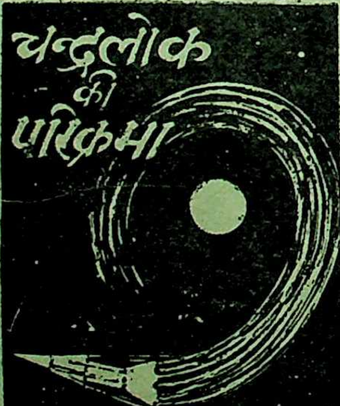
चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद
१·७५ न० पै०

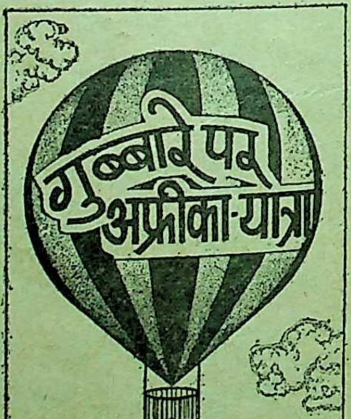
गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

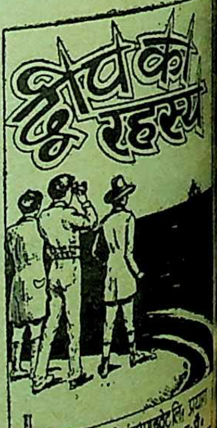
द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० प्रयाग
२·२५ न० पै०

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी

८० दिनों में
पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न.पै.

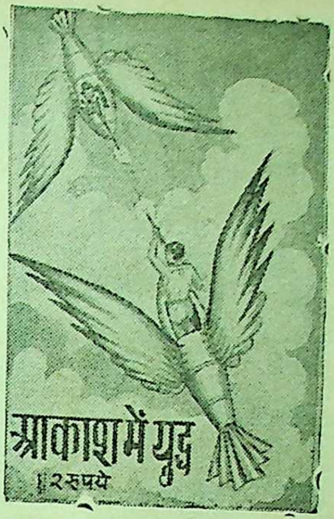
आकाश में युद्ध
१.२रुपये

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

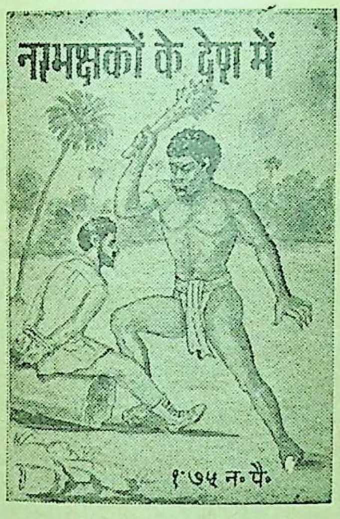
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न.पै.

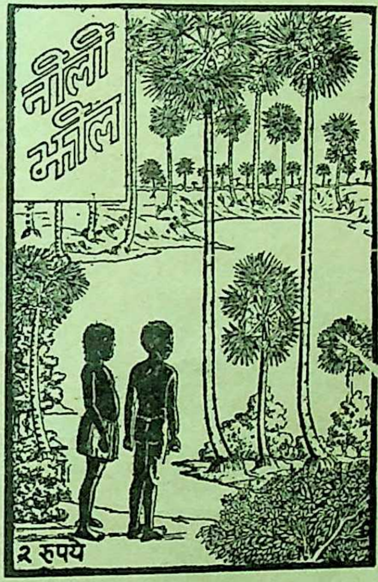

परिवार
रॉबिन्सन
प्राइवेट लि., इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न.पै.

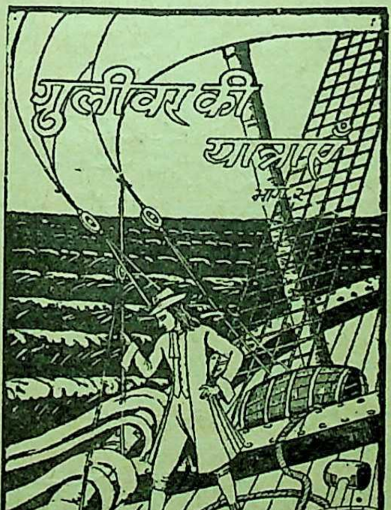
गुलीवर की
यात्राएँ
भाग २
२.२५ न.पै.

मास्टर मैन रेडी
२.७५ न.पै.

अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-

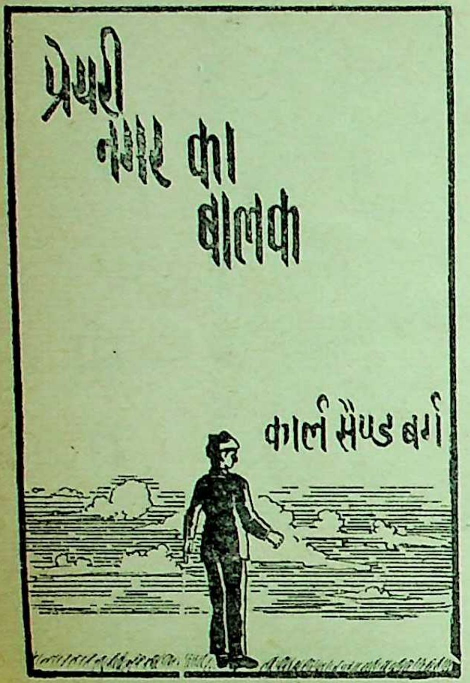
प्रेयरी नगर का बालक
कार्ल सैण्डबर्ग

अन०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे

लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन ।

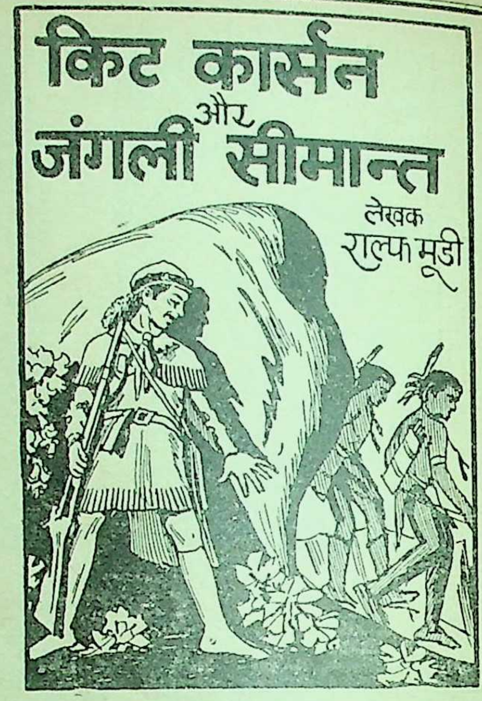
किट कार्सन
और
जंगली सीमान्त
लेखक
राल्फ मूडी

अनु० —तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन ।

बड़े वन में
छोटा घर
लॉरा इंगल्स वाइल्डर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे

लेखिका के बाल्यजीवन की
कहानी में उस समय के
जिक जीवन का दिग्दर्शन

प्रसिद्ध वैज्ञानिक
लेखक
विलियम ओलिवर स्टीवेन्स

अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित ।

अध्यापिका
ऐन सलिवाँ मेसी

अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हेलन केलर की कहानी।

प्रसिद्ध अमरी
लैंग्स्टन ह्यूजेज

अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों
जीवन-कथाएँ।

इस युग में जो विलक्षण औषधि
खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का
वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द
का मूल्य २·५० नये पैसे।

आधुनिक
औषधि-
आविष्कार
लेखक
इर्मनगार्ड गबर्ले

अमेरिका
के
महान् उदारवादी
सम्पादक
रेजिनॉल्ड रिचर्ड मैसन

महान् अमरीकी उदारवादियों
जीवन की नई व्याख्या इसमें
। सजिल्द प्रति का मूल्य
० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन

मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

दृष्टिदात्री
मारिस फ्रैंक
तथा
ब्लेक क्लार्क

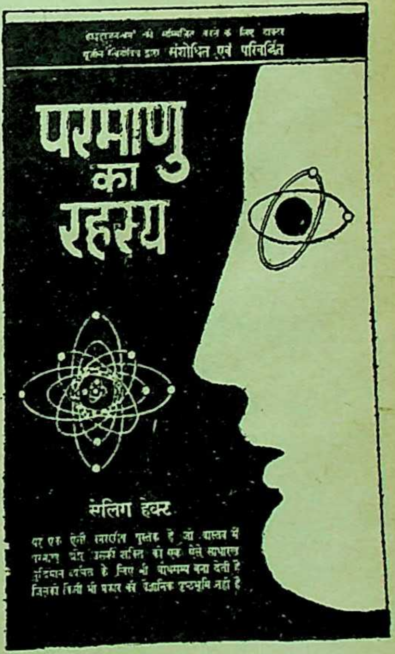
संशोधित एवं परिवर्द्धित
परमाणु
का
रहस्य
सेलिग हेक्ट

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

नेहरू चाचा के जीवन का बोलता हुआ रंगीन चलचित्र

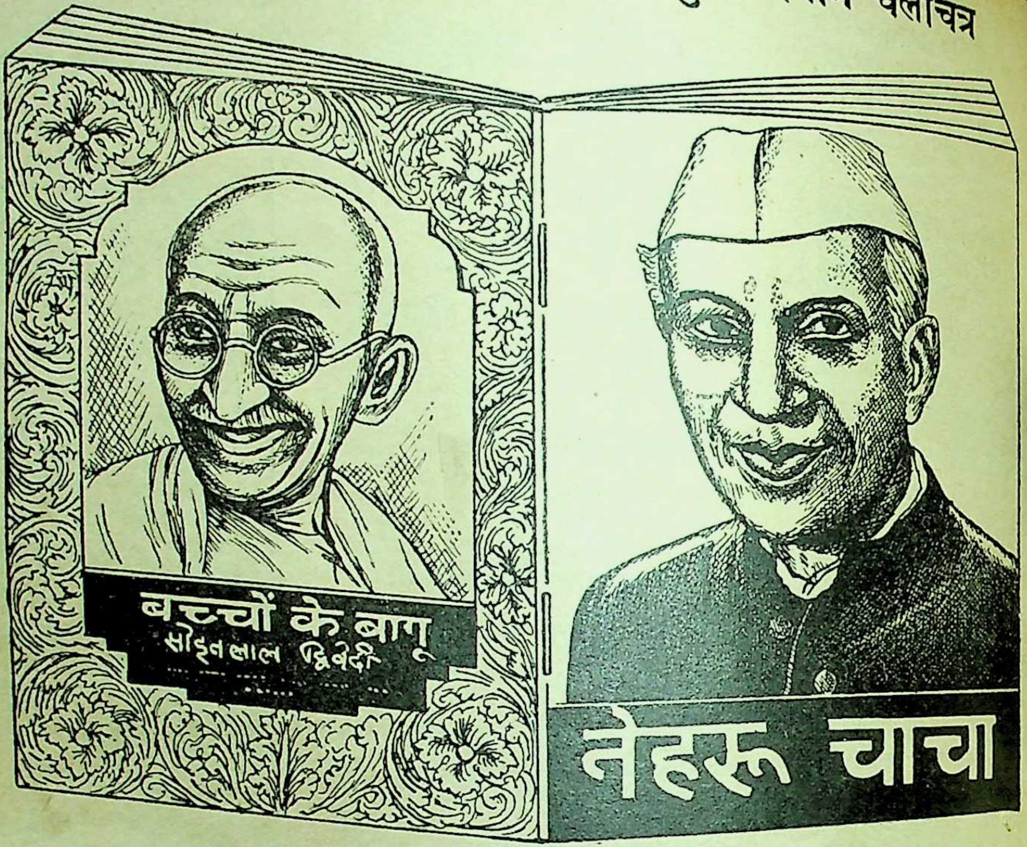

नन्हें मुन्नों के लिए सबसे नई कविता पुस्तक

देश के मूर्धन्य नेताओं एवं मान्य विद्वानों की शुभ कामनाएँ और कुछ सम्मतियाँ

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन (राष्ट्रपति—भारत)—नेहरू चाचा अत्यन्त उत्तमता से मुद्रित की गई है और इसके चित्रण बहुत ही सुन्दर हैं। इसकी सभी प्रकार से सफलता के लिए अनेक शुभ कामनाएँ।

प्रोफेसर हुमायूँ कबीर (मंत्री सांस्कृतिक मंत्रालय)—'नेहरू चाचा' का प्रकाशन अत्यन्त उत्तम है।

डॉ० सम्पूर्णानन्द (राज्यपाल राजस्थान)—बच्चों को नेहरू चाचा के संबंध में जानकारी कराने के लिए नेहरू चाचा उपयोगी पुस्तक है, इसमें जो चित्रों का संग्रह है उससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

माननीय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी (संसद सदस्य)—हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने देश के बालक-बालिकाओं के सामने सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों के जीवनचरित उपस्थित करें जिनसे उन्हें प्रेरणा मिले। यदि वे चित्रों के साथ हों, तब तो कहना ही क्या ? हर्ष की बात है कि प्रयाग का इंडियन प्रेस, यह शुभकार्य बड़ी खूबी के साथ कर रहा है। बच्चों के बापू नामक पुस्तक इसके पूर्व छप चुकी है। बंधुवर श्री सोहनलाल द्विवेदीजी ने बच्चों की जबान में पं० जवाहरलालजी का सुन्दर परिचय दिया है। निस्संदेह छोटे-छोटे बच्चों के लिए नेहरू चाचा बड़ी मनोरंजक और लाभदायक सिद्ध होगी।

मूल्य केवल २·२५ नये पैसे

अपनी प्रति के लिए सीधे प्रकाशक को लिखिए

प्रकाशक—व्यवस्थापक इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकना और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अंगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

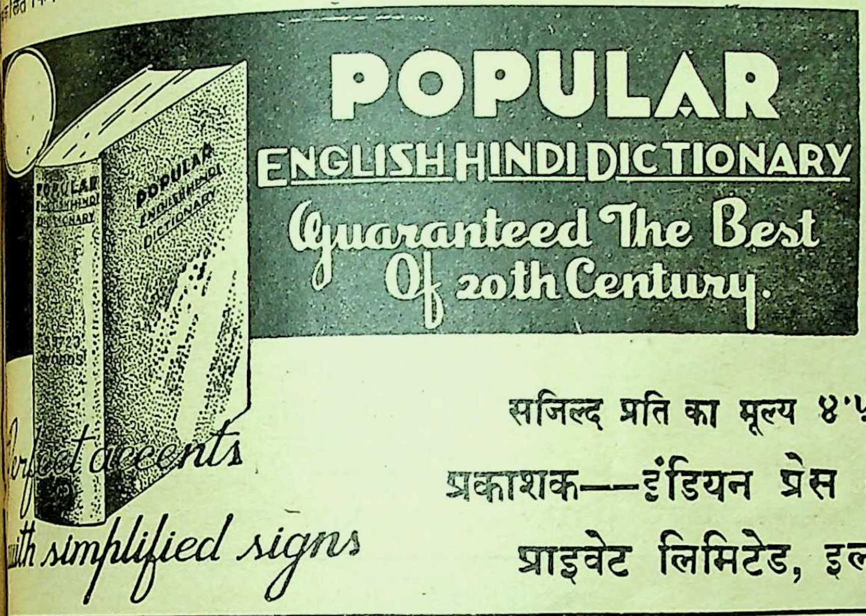
POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.
POPULAR ENGLISH-HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४'५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विज्ञापनदाताओं से निवेदन

सरस्वती मासिक पत्रिका अपनी जन्मतिथि जनवरी १९०० से लगातार हिन्दी-जगत की सेवा कर रही है। इसकी षष्टिपूर्ति जयन्ती के अवसर पर जो साहित्यिक समारोह किया गया वह सर्वविदित है। इस युग में जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुद्रण सामग्री प्राप्त न होने या अन्य कठिनाइयों के कारण या तो बन्द हो गया है या प्रकाशकों ने विज्ञापन-दर में वृद्धि कर दी है वहाँ सरस्वती ने अपनी विज्ञापन-दर सन् १९५८ तक पुरानी ही रखी है।

महँगाई के कारण हमने विवश होकर जनवरी १९५९ तथा जनवरी १९६१ में विज्ञापन-दर में थोड़ी वृद्धि की थी किन्तु इस वृद्धि से भी हम छपाई सम्बन्धी वस्तुओं के बढ़ते हुए दामों का मुकाबला न कर सके। अस्तु, हमें अब विवश होकर जुलाई १९६३ से निम्नलिखित अनुसार विज्ञापन दर में वृद्धि करने की आवश्यकता पड़ रही है। आशा है, कृपालु विज्ञापनदाता इस बढ़ी हुई दर को स्वीकार कर सरस्वती को सदैव की भाँति अपनावेंगे और हमें अपना सहयोग देंगे। इसके लिए विशेष आभारी होंगे।

विज्ञापन-दर

साधारण प्रति पृष्ठ	१००) रु०	साधारण आधा पृष्ठ	५५) रु०
साधारण ¼ पृष्ठ	३०) रु०	साधारण ⅛ पृष्ठ	१५) रु०
कवर चौथा पृष्ठ	२५०) रु०	कवर दूसरा व तीसरा पृष्ठ	१५०) रु०

व्यवस्थापक विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय २०९
२—व्रजभाषा के 'हू' अव्यय का विकास—पंडित किशोरीदास वाजपेयी .. २१७
३—चार मुक्तक (कविता)—श्री प्रेमचन्द्र जैन २१९
४—हिमालय की जातियाँ—मेजर सीताराम जौहरी २२०
५—इंग्लैण्ड का प्रोफ्यूमो काण्ड—पं० वेंकटेश-नारायण तिवारी २२६
६—भारत का वर्तमान कोयला उद्योग—श्री रमेशचन्द्र चौबे, एम० ए०, एल-एल० बी० २२९
७—इतिहास-पुराण में वर्णित भाषण-कला—श्री रामशंकर भट्टाचार्य .. २३३
८—महाराजा रणजीतसिंह का सैनिक संगठन—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार .. २३५
९—पावस से (कविता)—श्री रत्नकुमारी 'काव्यतीर्थ' २४२
१०—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (४)—श्री फेनी मुकर्जी .. २४३
११—पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र—श्री उमाशंकर २५०
१२—हमारा यह अनन्त ब्रह्माण्ड—श्री सन्तराम
१३—राजर्षि टंडन—एक श्रद्धांजलि (कविता)—श्री शैवाल सत्यार्थी
१४—आँगनों के बीच— ..
मन के थपेड़े और आप—श्रीमती शीला शर्मा ..
घर-गृहस्थी—नयी गृहस्थी, पुराने अनुभव ..
१५—देखा-सुना—श्री मनमोहन गुप्त
१६—परिणति—श्री निर्मला मित्र ..
१७—कच्चा चिट्ठा—डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
१८—नवीन प्रकाशन ..
१९—भारती-कण्ठाभरण ..
२०—ब्रज-माधुरी (२) .. ..
२१—मनोरंजक संस्मरण ..
२२—१९०७ की सरस्वती—
विष्णु भगवान् का वामनावतार—राय देवीप्रसाद पूर्ण .. ..
पंजाब में हिन्दी के प्रचार की जरूरत—लाला हरदयाल ..

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचा थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटना चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य— रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—**श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम** २६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

श्रीभगवत्तत्त्व

प्रणेता

श्री स्वामी हरिहरानन्दजी सरस्वती (करपात्री)

इस ग्रन्थ में श्री स्वामी करपात्रीजी ने वेदान्तरससार, निर्गुण या सगुण, श्रीकृष्ण ज और बालक्रीड़ा, व्रजभूमि, श्रीरासलीला रहस्य, भगवान् का मंगलमय-स्वरूप, श्रीरामभद्र का ध्या गणपति माहात्म्य, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत धर्म के गूढ़ तत्त्वों की व्याख्या करके जनता का अमू उपकार किया है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने से धर्म का तत्त्व समझ में आ जाता है। अच्छे पु कागज पर छपी ७०० से अधिक पृष्ठों की इस कल्याणकारी पुस्तक का मूल्य केवल ।।) है जो पुस्तक के आकार को देखते हुए कुछ भी नहीं है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

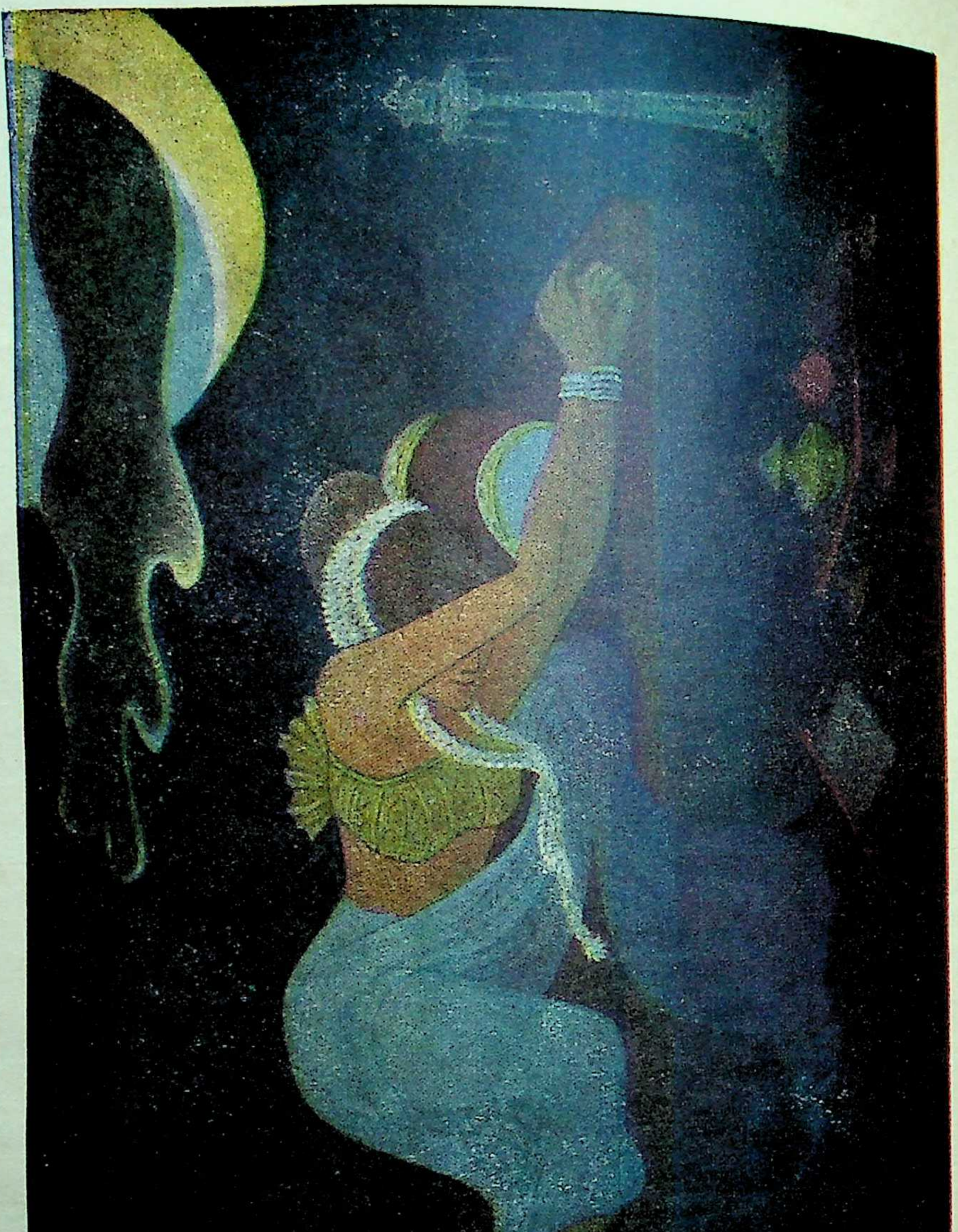

यक्षपत्नी

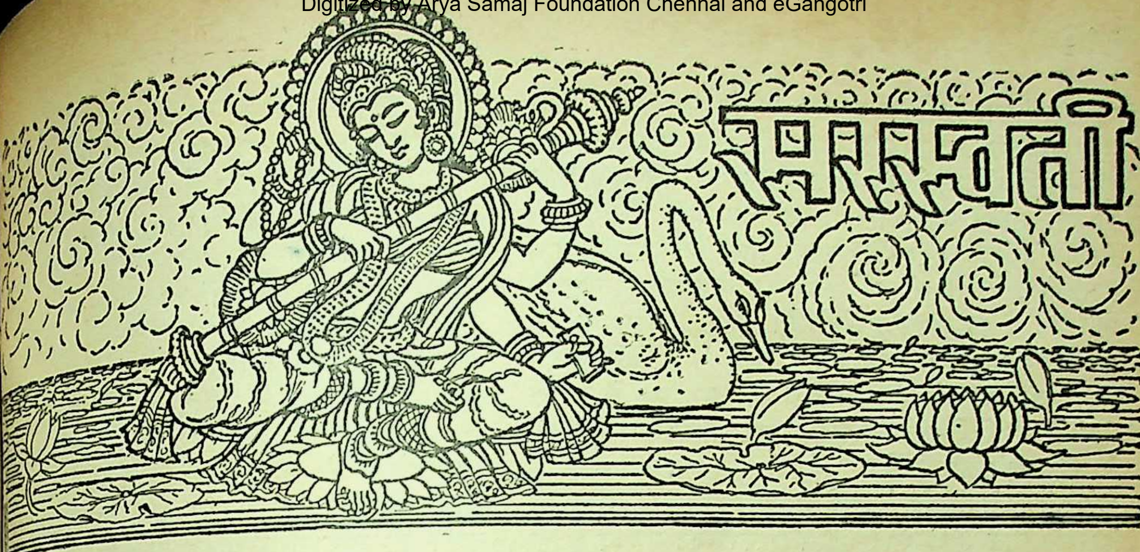

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
संख्या ७६५

इलाहाबाद : सितम्बर १९६३ भाद्रपद २०२० वि०

खण्ड २
संख्या ९

सम्पादकीय

केन्द्रीय मंत्रिमंडल के परिवर्तन और हिन्दी——जिस ीय ढंग से केन्द्रीय मंत्रिमंडल में परिवर्तन हुए हैं, वह इतिहास में अभूतपूर्व है। इधर जनता में कांग्रेस होती जा रही थी और उसका प्रभाव घटता जा था। इस समय देश में कांग्रेस ही एक सुसंगठित दल विरोधी दल छोटे और छिन्न-भिन्न हैं। देश में प्रशास- स्थिरता इस समय केवल कांग्रेस ही रख सकती है। कांग्रेस को सुधारने की आवश्यकता स्पष्ट है। व में कांग्रेस की अप्रियता कांग्रेस सरकार के इधर कुछ ऐसे कामों के कारण हुई है जो जनता की भावना विरुद्ध हैं। ऐसा नहीं है कि कांग्रेस ने अच्छे काम नहीं ये या उसे बहुत-सी बातों में सफलता नहीं मिली। किंतु उसके कई काम ऐसे हुए हैं जो जनता को पसंद नहीं ये। कांग्रेस के आन्तरिक सुधार से उसका तन्त्र कुछ सबल हो जायगा, किंतु जब तक कांग्रेस सरकार काम जनता की भावनाओं के विरुद्ध होते रहेंगे तब तक की लोकप्रियता नहीं बढ़ सकती। इन व्यापक परिवर्तनों केन्द्र में, तथा अनेक राज्यों में भी, राजनीतिक उथल-पुथल मच गयी है और लोगों का ध्यान बहुत सी मौलिक बातों से हटकर प्रशासकीय परिवर्तनों में उलझ गया है। देखना है कि इन परिवर्तनों से कांग्रेस सरकार के प्रशासन में कितनी कार्यकुशलता बढ़ती है और उसके कार्य कितने लोकप्रिय होते हैं, तथा कांग्रेस का गृहकलह कितना कम होता है। इन्हीं बातों से इन व्यापक परिवर्तनों की सफलता को आँका जायगा।

किन्तु हिन्दी की दृष्टि से ये परिवर्तन अवश्य विचारणीय हैं। पहिली बात तो यह है कि इस उथल पुथल में केन्द्रीय मंत्रिमंडल के अधिकांश हिंदीभाषी सदस्य अलग कर दिये गये हैं। श्री जगजीवनराम जी, श्री लालबहादुर शास्त्री और डाक्टर श्रीमाली अलग हो गये हैं। अब उसमें केवल श्री सत्यनारायण सिंह रह गये हैं। हम नहीं जानते कि श्री गुलजारीलाल नन्दा की मातृभाषा गुजराती, पंजाबी या हिंदी है। दूसरी बात जिस पर एकदम ध्यान जाता है वह यह है कि मंत्रिमंडल में हिंदी के जितने समर्थक थे वे प्रायः सब बिदा कर दिये गये हैं; जैसे, श्री मुरारजी देसाई, श्री पाटिल, श्री जगजीवनराम और डा० श्रीमाली। हम कुछ दिनों पहले तक श्री लालबहादुर शास्त्री को भी हिंदी का प्रबल समर्थक समझते थे, किंतु उनके काले विधायक प्रस्तुत करने, तथा राष्ट्रपति के उस आदेश को लागू न करने से जिसमें हिंदी को केन्द्रीय सेवाओं की

परीक्षाओं का वैकल्पिक माध्यम बनाने का आदेश दिया गया था, हम उनकी हिंदी निष्ठा को संदिग्ध समझने लगे हैं। राज्य मंत्रियों में श्री राजबहादुर, श्री रामसुभग सिंह, श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा, श्री श्यामधर मिश्र, श्री प्रकाशचंद्र सेठी और श्री दिनेश सिंह हिंदीभाषी अवश्य हैं; किंतु ये मंत्रिमंडल के सदस्य (केबिनट मिनिस्टर) नहीं हैं। ये सब कनिष्ठ मंत्री हैं। इनकी हिंदी के हित करने की शक्ति सीमित है। केन्द्रीय मंत्रिमंडल में इस समय अधिकतर वे ही लोग हैं जो या तो हिंदी के परोक्ष विरोधी या हिंदी-निरपेक्ष हैं। शायद मंत्रिमंडल में बाहर से भी कुछ मंत्री लिये जायँगे, किंतु वर्तमान स्थिति में किसी हिंदी के समर्थक के लिये जाने की संभावना बहुत कम है। संविधान के अनुसार केंद्रीय सरकार का कर्तव्य है कि वह 'राजभाषा' हिंदी का प्रचार-प्रसार करे। केन्द्र में यह काम मुख्य रूप से शिक्षा मंत्रालय करता है। अतएव केन्द्र में हिंदी का काम कितना और कैसा होता है, यह बहुत कुछ केन्द्र के शिक्षा मंत्री के व्यक्तित्व और हिंदी-निष्ठा पर निर्भर है। डा० श्रीमाली हिन्दीनिष्ठ हैं। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी वे यथासंभव हिंदी का हित कर रहे थे। देखना है कि शिक्षामंत्रित्व किसे सौंपा जाता है। यदि वह किसी ऐसे मंत्री को सौंपा गया जो हिंदी नहीं जानता, या जो हिंदी-समर्थक नहीं है, तो केन्द्र में जो थोड़ा बहुत हिंदी का काम हो रहा था वह भी समाप्तप्राय हो जायगा। संविधान के शब्दों की रक्षा के लिए हिंदी की लकीर पिटती जायगी, किंतु कोई वास्तविक काम शायद ही हो सके। भारत सरकार का हिन्दी के प्रति रुख क्या और कैसा है, यह इस बात से मालूम हो जायगा कि वह इस पद पर (जिसका एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है) स्थायी रूप से किस और कैसे व्यक्ति को नियुक्त करती है।

परमाणु बम के आकाशी-परीक्षण पर प्रतिबंध-- वर्षों से चलनेवाले पूर्व और पश्चिम के शीतयुद्ध के कम होने के लक्षण इस वर्ष पहली बाहर दिखलायी पड़े हैं। वर्षों से इन दोनों दलों में अधिकाधिक भयंकर आणविक अस्त्रों के बनाने और उन्हें विरोधी दल के देशों में फेंकने के लिए अधिकाधिक दूर जानेवाले और भारी से भारी आणविक बमों को ले जाने योग्य प्रक्षेपों (मिसिल) के बनाने की होड़ लगी हुई थी। जब कोई नया आणविक अस्त्र बनाया जाता था तब यह देखने के लिए कि वह ठीक बना है या नहीं, अथवा उसमें क्या कसर है, उसका परीक्षण करना आवश्यक होता था। इसके लिए कुछ आणविक अस्त्रों का विस्फोट भूगर्भ में किया जाता था, किंतु अधिकतर ये विस्फोट आकाश में--पृथ्वी से कई हजार फुट की ऊँचाई पर--किये जाते थे। आणविक बमों के विस्फोट से कुछ रेडियो सक्रिय पदार्थ उत्पन्न होकर वायुमंडल में फैल जाते थे जो हवा के साथ उड़कर सैकड़ों मील दूर के देशों में जा पहुँचते थे। ये रेडियो सक्रिय पदार्थ मनुष्य के शरीर के लिए बहुत हानिकारक हैं। इनसे हड्डियाँ गल सकती हैं। गर्भस्थ बच्चों में तरह की विकृति उत्पन्न हो सकती है और मनुष्य की प्रजनन शक्ति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इन परीक्षणों के कारण प्रतिवर्ष रूस और अमरीका कितने ही आणविक बमों का विस्फोट करते थे जिससे संसार का वायुमंडल विषाक्त होता जा रहा था। संसार के सभी समझदार व्यक्ति इस बात को जानते थे कि ये परीक्षण इसी प्रकार होते रहे तो बिना आणविक हुए ही संसार का वायुमंडल इतना दूषित हो सकता है कि उससे लाखों नर-नारियों का जीवन संकट में जाय। इसलिए इन आणविक बमों के परीक्षणों को करने की माँग संसारव्यापी हो गयी थी।

वास्तव में इस होड़ का परिणाम यह था कि दोनों एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली और भयंकर आणविक बम बनाने में लगे हुए थे। इस होड़ से एक दूसरे के प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा था। और इस बात का वास्तविक भय हो गया था कि आणविक अस्त्रों की होड़ की परिसमाप्ति विश्वयुद्ध में होगी जिसमें शत्रु और मित्र ही नहीं, तटस्थ राष्ट्र भी नष्ट या नष्टप्राय हो जायँगे। भावी युद्ध को बचाने का सर्वोत्तम मार्ग तो यह है कि संसार के सभी देशों का निरस्त्रीकरण हो जाय और आज के सर्वप्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्रीय राज्यों के स्थान पर एक विश्व सरकार बन जाय जो उनके झगड़ों को उसी तरह निपटावे जिस प्रकार संघ राज्य अपने अंतर्गत राज्यों के झगड़े समझौता करा कर, या मामले को न्यायालय के निर्णय करा कर, निपटाते हैं। किंतु खेद की बात है कि मानवता अभी इतनी समझदार नहीं हुई कि इस बात को मान ले।

निरस्त्रीकरण के प्रयत्न अवश्य ही वर्षों से हो रहे हैं, किन्तु अभी राष्ट्रों में इतना अविश्वास है, और संसार में अभी ऐसे दल भी हैं जो जबर्दस्ती अपने सिद्धान्त दूसरों पर लाद कर सारे संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं कि वास्तविक निरस्त्रीकरण अभी व्यावहारिक नहीं है। अभी तो यदि भयंकर अस्त्रों का उपयोग ही वर्जित किया जा सके तो बड़ी भारी बात है। यह असंभव भी नहीं है। कितने ही राष्ट्रों के पास युद्ध में विषैली गैसें और शत्रु के देशों में भयंकर रोगों के कीटाणु फैला देने के साधन हैं। किंतु राष्ट्रों ने उनका उपयोग न करने का समझौता कर लिया है। पिछले महायुद्ध में भी किसी राष्ट्र ने उनका उपयोग नहीं किया। अतएव यदि प्रयत्न किया जाय तो आणविक अस्त्रों का प्रयोग वर्जित हो सकता है। किंतु उसमें समय लगेगा। यदि इस बीच अधिक भयंकर अस्त्रों का आविष्कार और निर्माण ही रोका जा सके तो इस दिशा में पहला सोपान होगा।

रूस, अमरीका और इंग्लैण्ड ही इस समय ऐसे हैं जिनके पास भयंकर आणविक अस्त्र हैं और जो नये और अधिक भयंकर अस्त्रों का निर्माण कर रहे हैं। सिद्धान्त

ही देश इस बात को मानते हैं कि और अधिक भयंकर ों का बनाना रोकना चाहिए, और उसका सबसे उपाय यही है कि आणविक अस्त्रों का परीक्षण बंद दिया जाय। किंतु एक दल को दूसरे दल पर विश्वास है। अमरीका ने यह शर्त लगायी कि आणविक ों की जाँच के लिए एक देश को दूसरे देश में अपने भेज कर निरीक्षण करने का अधिकार होना । रूस पहिले तो इस पर राजी नहीं हुआ, बाद में वर्ष में दो-तीन निरीक्षण स्वीकार किये। किंतु निरीक्षणों की इस सीमित संख्या से संतुष्ट नहीं इस निरीक्षण में भूगर्भ और आकाश–दोनों के ही– सम्मिलित थे।

वैज्ञानिकों ने आणविक विस्फोटों का पता लगाने उपाय निकाल लिये हैं। अतएव यदि कोई देश अणु विस्फोट करता है——विशेषकर आकाश में—— पता तुरन्त विरोधी पक्ष को लग जायगा। विस्फोटों का पता उतने ठीक तरह से नहीं लगता। भयंकर अस्त्रों के विस्फोट आकाश में ही किये जा । वे छिपाये नहीं जा सकते।

और भी बहुत सी बातें हो गयीं जिनसे इन समझौता करना आवश्यक मालूम हुआ। रूस में वैमनस्य हो गया है। जिस प्रकार भारत के बीच सीमा का विवाद है, उसी प्रकार चीन की सीमा भी विवादग्रस्त है, और चीन कभी उसी प्रकार झगड़ा कर सकता है जैसा कि उसने के साथ किया है। इसके अतिरिक्त, चीन चाहता कम्यूनिस्ट संसार का नेतृत्व रूस से छीन ले। मान शासक युद्ध में विश्वास करते हैं और उनकी है कि संसार में कम्यूनिज्म फैलाने के लिए युद्ध है। वह यह नहीं मानता कि कम्यूनिस्ट राज्य कम्यूनिस्ट राज्य दोनों ही संसार में रह सकते लक्ष्य युद्ध द्वारा संसार को कम्यूनिस्ट बनाना युद्ध को अनिवार्य मानता है। इसके विपरीत, मान्यता है कि कम्यूनिज्म पूँजीवादी व्यवस्था से श्रेष्ठ है कि वह अपने गुण के कारण ही सारे संसार जायगी। इसलिए युद्ध अनिवार्य नहीं है। वह स्तित्व में विश्वास करता है। वह युद्ध के विरुद्ध एक तो वह जानता है कि दोनों ही पक्षों के पास भयंकर आणविक अस्त्र हैं कि युद्ध होने पर दोनों ही हो जायेंगे, और दूसरे, उसका कहना यह भी युद्ध में सबसे अधिक क्षति किसानों और मजदूरों पड़ती है। अतएव युद्ध सर्वहारा वर्ग के हित में है। रूस और चीन के इन मतभेदों ने उग्र रूप धारण किया है। कुछ लोगों का विश्वास है कि चीन के विरोध के कारण रूस ने इसी बात में राजनीतिक देखी कि अमरीका और इंग्लैण्ड से आणविक न करने का समझौता कर लिया जाय जिससे उसके जो पश्चिमी दल से इतने बिगड़ गये हैं वे कुछ सुधरें, और उसे एक साथ दो प्रबल विरोधियों का सामना न करना पड़े।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। आणविक अस्त्रों के बनाने में अपार धन लगता है। रूस के व्यय के आँकड़े तो प्रकाशित नहीं होते किंतु अमरीका के आँकड़े जब तब प्रकाशित हो जाते हैं। उनसे पता लगता है कि एक-एक प्रक्ष्येप बनाने में प्रायः बारह-पंद्रह करोड़ डालर लग जाते हैं। कहते हैं कि अमरीका के पहले प्रक्ष्येप की लागत तीस-चालीस करोड़ डालर थी। रूस के आणविक और प्रक्ष्येप अस्त्रों का व्यय भी बहुत कम न होता होगा। अमरीका इस समय संसार का सबसे धनी देश है, किंतु उसे भी यह व्यय अखरने लगा है। तब रूस को वह अवश्य ही अधिक अखरता होगा क्योंकि अभी वहाँ की जनता की सुखसुविधा के लिए सरकार को बहुत व्यय करना है।

जो भी कारण हों, इन अति शक्तिशाली देशों में कुछ सुबुद्धि का उदय हुआ, और उन्होंने यह संधि कर ली है कि वे भविष्य में कोई आकाशी अणु परीक्षण न करेंगे। इस संधि पर गत मास तीनों आणविक देशों के प्रतिनिधियों ने रूस के ऐतिहासिक राजप्रासाद क्रेमलिन में हस्ताक्षर कर दिये। प्रायः अन्य साठ देशों ने भी समर्थन के प्रतीक स्वरूप उस संधि पर हस्ताक्षर करके कोई आकाशी आणविक परीक्षण न करने की प्रतिज्ञा की है।

दो देशों ने इस संधि पर हस्ताक्षर करने से इंकार किया है। वे हैं——चीन और फ़्रांस। ये दोनों ही अणु-बम बनाने में लगे हैं।

स्थायी विश्व-शान्ति की मंजिल अभी बहुत दूर है, किंतु अभी तक ये राष्ट्र युद्ध की ओर उन्मुख थे। इस संधि पर हस्ताक्षर करके उन्होंने अपना रुख शान्ति की ओर करके उस ओर एक चरण बढ़ाया है। यही इस अपूर्ण किंतु आशाजनक संधि का महत्त्व है।

हिंदी साहित्यसम्मेलन का शोचनीय कुप्रबंध——आगरे के स्वर्गीय सत्यनारायण कविरत्न 'व्रज कोकिल' की मृत्यु के उपरान्त पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयत्न से उनके मित्रों ने उनकी स्मृति में सम्मेलन के अहाते में एक अतिथि-गृह का निर्माण किया जो सत्यनारायण कुटीर के नाम से प्रसिद्ध है। उसी समय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके जीवन से संबंधित सामग्री एकत्र की और उसे सम्मेलन में सुरक्षित रखने के लिए जमा कर दिया। उन्होंने उनकी एक जीवनी भी लिखी जो सम्मेलन ही से १९२६ में प्रकाशित हुई। कई कारणों से उस समय उस जीवनी में एकत्र सामग्री का पूरा उपयोग करना ठीक नहीं समझा गया। वह जीवनी बहुत दिनों से अप्राप्य थी और अभी हाल ही में उसका दूसरा संस्करण सम्मेलन ही ने प्रकाशित किया है। यह पुनर्मुद्रण मात्र है। इसके संवर्द्धन या परिवर्तन न करने का कारण बतलाते हुए पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने द्वितीय संस्करण की भूमिका में लिखा है——

"फिर भी इस संस्करण में हमने कोई रद्दोबदल नहीं की। इसका मुख्य कारण यही है कि **सत्यनारायण विषयक समस्त सामग्री, जो सम्मेलन में सुरक्षित थी, खो गयी है।**"

हम इसे पढ़कर स्तब्ध रह गये। अभी हाल ही में सम्मेलन के आदाता ने एक अपील निकाली थी जिसमें लोगों से अपने पुराने ग्रंथ, हस्तलिपि-संग्रह आदि सम्मेलन के संग्रहालय को भेंट करने की प्रार्थना की गयी थी। कितने ही लोगों ने अपने बहुमूल्य संग्रह, दुर्लभ हस्तलिपियाँ आदि सम्मेलन के संग्रहालय को भेंट कर दी हैं, और आदाता की अपील पर कितने ही लोग उसे अपने संग्रह भेंट करने को तैयार हो जायँगे। किंतु यदि सम्मेलन का प्रबंध इतना दोषपूर्ण रहा है कि उसके यहाँसे हिंदी के एक प्रमुख कवि के जीवन से संबंधित अलभ्य सामग्री (जो उसको सुरक्षित रखने के लिए दी गयी थी) गायब हो जाय तो भविष्य में लोग उसे अपना संग्रह देने में बहुत हिचकेंगे। इस दुर्घटना के प्रकाश में आने से उसकी साख बहुत गिर गयी है। हिंदी संसार यह जानने को उत्सुक है कि यह दुर्घटना कैसे हुई। सम्मेलन ने उस सामग्री को खोजने का क्या प्रयत्न किया? इस दुर्घटना के लिए कौन उत्तरदायी है? उस व्यक्ति के विरुद्ध क्या कार्यवाही की गयी? इसकी सूचना सम्मेलन के अधिकारियों को कब मिली? उन्होंने क्या जाँच की? इस घटना की सूचना स्थायी समिति और जनता को दी गयी कि नहीं? ऐसे कितने ही प्रश्न एक साथ उठते हैं जिनका उत्तर देना सम्मेलन का कर्तव्य है क्योंकि वह हिंदी संसार की संस्था है, कोई निजी संस्था नहीं है। हम यह भी जानना चाहेंगे कि भविष्य में ऐसी दुर्घटनाओं के रोकने का सम्मेलन ने क्या उपाय किया है। सम्मेलन में हिंदी संसार की अमूल्य निधियाँ हैं, और यदि उसका प्रबंध इतना दोषपूर्ण है कि वह ब्रजकोकिल की जीवन-सामग्री के समान अलभ्य वस्तुओं की भी रक्षा नहीं कर सकता, तो उसे हिंदी संग्रहालय के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाना चाहिए। हम आशा करते हैं कि केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त समिति इस गंभीर मामले पर अपना वक्तव्य देकर हिंदी संसार की चिन्ता दूर करेगी। यह घटना उसकी नियुक्ति से पहले की है।

प्रोफेसर गज्जर की जन्मशती—गत मास गुजरात और बम्बई में प्रोफेसर त्रिभुवन कल्याणदास गज्जर की जन्मशती मनायी गयी और इस निस्पृह, अग्रगामी और दूरदर्शी वैज्ञानिक की स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। वे एक अति सामान्य मध्यश्रेणी परिवार में उत्पन्न हुए थे और अपनी तीव्र बुद्धि और अध्यवसाय के कारण उन्होंने अनेक कठिनाइयों के बावजूद सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त की। उनकी विशेष रुचि विज्ञान में थी, किंतु वे दूसरे शास्त्रों के भी महत्त्व को समझते थे; इसलिए उन्होंने विज्ञान के अतिरिक्त कला-साहित्य में भी स्नातक (बी० ए०) परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने कानून भी पढ़ा तथा रसायन विज्ञान में एम० ए० किया और उच्च गणित का भी अध्य किया। वे विरक्त-साधु नहीं थे, किंतु धन-लोलुप भी नहीं थे। वे अपने भरण-पोषण योग्य वेतन चाहते थे और वहाँ काम करना पसंद करते थे जहाँ वे जनता, देश और विज्ञान की अधिक से अधिक सेवा कर सकें। उन्हें सि के एक सरकारी कालिज में ऊँचे वेतन पर विज्ञान और गणित के प्रोफेसर का पद मिला था, किंतु उन्होंने बड़ौ के एक कालेज में कम वेतन की प्राध्यापकी स्वीकार क ली क्योंकि वहाँ उन्हें काम करने की अधिक सुविधा थी। यहाँ उन्होंने अपने आदर्श पर एक प्रयोगशाला तैयार की तथा उन्होंने महुआ के फूलों से 'अलकोहल' (स्पिरि बनाने का एक छोटा सा कारखाना भी स्थापित किया। उस समय ऐसा कारखाना बनाने की बात लोग सोचते भी न थे। धीरे-धीरे यह कारखाना पश्चिम भारत में रासायनि पदार्थों और ओषधि-निर्माण का बहुत बड़ा कारखाना बन गया और अब ऐलेम्बिक कैमिकल वर्क्स के नाम से प्रसि है। बंबई में जब प्लेग फैला तो गज्जर महोदय ने रसाय शास्त्री होने के नाते एक दवा (आयोडीन-टर-क्लोराइ तैयार की। उन दिनों आधुनिक दवाइयाँ न थीं। उन दवा से सैकड़ों लोगों के प्राण बचे। वे इतने अद्वितीय रसायनशास्त्री थे कि महारानी विक्टोरिया की संगमरमर की मूर्ति पर किसीने जो अलकतरा पोत दिया था, और जो अंग्रेज रसायनशास्त्रियों के छुटाये भी नहीं छूटा था उसे उन्होंने छुड़ा दिया। पुराने मोती मैले हो जाने पर अपनी आब खो देते हैं। प्रोफेसर गज्जर ने उन्हें सा करने के लिए एक रासायनिक घोल बनाया जिससे वे साफ होकर नये मोतियों के समान चमकने लगते हैं। कि ये सब बातें उनकी प्रतिभा ही की द्योतक हैं। उनके व्यक्तित्व की महत्ता, उनकी देश को उन्नत और समृद्ध करने की उत्कट अभिलाषा और विज्ञान से प्रेम उनके वे गुण थे जिनके कारण वे महान् हुए। उनके इन्हीं गुणों से प्रेरि होकर कितने ही नवयुवक विज्ञान के अध्ययन में अनुरक्त हुए, और उनके शिष्यों ने पश्चिम भारत में विज्ञान और तकनीकी अध्ययन को आगे बढ़ाया, जिसके परिणामस्व गुजरात और बम्बई में ऐसे लोग उपलब्ध होने लगे वहाँकी औद्योगिक उन्नति में सहायक हुए।

हम उनकी एक सेवा के लिए विशेष रूप से आभारी हैं। इस शती के प्रथम दशक में काशी नागरीप्रचारिणी सभा हिंदी में वैज्ञानिक कोश बनाने का निश्चय किया। कोश निश्चय ही हिंदी में पहला वैज्ञानिक कोश था। उ भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, भूगोल आदि विष के अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय तैयार कि गये थे। उसके तैयार करने में पं० सुधाकर द्विवेदी उत्तर भारत के विद्वानों का सहयोग था। उसमें प्रोफे गज्जर ने भी पूरी सहायता दी थी और वे भी उ प्रमुख सम्पादकों में थे। इस प्रकार उन्होंने हिंदी के प्र वैज्ञानिक कोश के सम्पादन में सहयोग देकर हिंदी हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य की जो सेवा की थी,

संसार सदैव आदर और कृतज्ञता से याद रखेगा। अवसर पर हिंदी संसार की ओर से, और अपनी सरस्वती' दूरदर्शी, उदारमना, देशभक्त और के अनन्य उपासक के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि करती है।

वियतनाम में बौद्धों पर अत्याचार——बर्मा के पूर्व में या नामक एक विशाल प्रायद्वीप है जिसमें थाई- (पुराना स्याम), कम्बोज (कम्बोदिया), लाओस वियतनाम नामक राज्य हैं। किसी समय इस प्रदेश से भाग में हिंदू धर्म फैला हुआ था, और आज भी संस्कृति और भाषा पर भारतीय छाप है। धीरे-यह सारा प्रदेश बौद्ध हो गया और हजारों वर्षों से धर्म यही है। अन्य एशियायी देशों के समान इसपर के दांत लगे, और प्रायः सौ वर्ष तक वियतनाम, और कम्बोज फ्रांसीसियों के अधीन रहा। फ्रांसीसी कैथलिक सम्प्रदाय के ईसाई हैं। अतएव उनके रोमन कैथलिक पादरियों को प्रचार की छूट मिल और उन्होंने कितने ही लोगों को ईसाई बना डाला। नाम इस समय दो भागों में विभक्त है। विगत में जापानियों ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया नके हटने पर इस देश में स्वराज्य स्थापित हुआ, स्थानीय कम्यूनिस्टों ने चीनी कम्यूनिस्टों की सहायता री भाग पर अधिकार कर लिया। गृह युद्ध आरंभ या। यदि दक्षिण के लोगों को अमरीकन सहायता न ती तो सारे वियतनाम पर उनका अधिकार हो जाता कम्बोज, थाईलैण्ड और लाओस भी खतरे में पड़ कम्यूनिस्टों से लड़नेवालों में डायम नामक एक ी था। अंत में जिनेवा में एक संधि हुई जिससे नाम का विभाजन हो गया। कहने को तो यह न अस्थायी है और अंत में किसी समय दोनों को कर फिर से एक राज्य बना दिया जायगा, किंतु नी, कोरिया आदि के विभाजन के समान यह भी -अस्थायी विभाजन है। जिनेवा संधि के बावजूद र के कम्यूनिस्ट धीरे धीरे अपने गुरिल्ला सैनिक भेज दक्षिणी वियतनाम पर अधिकार करना चाहते हैं। का सामना करने में अमरीका वियतनाम की पूरी यता कर रहा है क्योंकि अमरीका को यह अभीष्ट नहीं चीन सारे वियतनाम को हड़प कर थाईलेण्ड, कम्बोज, ओस, बर्मा और मलाया पर हावी हो जाय। इससे वह महासागर में पहुँच जायगा और उसकी शक्ति बढ़ जायगी।

राष्ट्रपति डायम का परिवार बहुत दिनों पहले रोमन कैथलिक हो गया था। वियतनाम की जनसंख्या एक करोड़ तीस लाख है, जिसमें दस लाख से कुछ अधिक रोमन कैथलिक ईसाई हैं। रोमन कैथलिक ईसाई बड़े कट्टर ते हैं। उनका इतिहास असहिष्णुता और भिन्नमताव-यों या भिन्न मत रखनेवाले लोगों के प्रति भीषण हिंसा से भरा हुआ है। पुराने युग में जो ईसाई रोमन कैथलिक सम्प्रदाय की बातों से तनिक भी मतभेद दिखलाते उनको कड़ा दण्ड दिया जाता था, यहाँ तक कि वे एक खूँटे से बाँधकर जीवित जला दिये जाते थे। भारत में भी जब पुर्तगाली आये तो उनके साथ के पादरियों ने ऐसे ही अत्याचार भारत में किये थे, किंतु भारत की सहिष्णु जलवायु में उनकी तीव्रता बहुत दिनों नहीं चल पायी। वियतनाम में जो वियतनामी रोमन कैथलिक हो गये उन्होंने अपने मालिकों (फ्रांसीसियों) का धर्म स्वीकार कर लिया और उन्हें बहुत सी सुविधाएँ मिलीं। उनकी असहिष्णुता के कारण उनमें और वहाँके बौद्धों में बहुत सौमनस्य नहीं रहा। किंतु यह बौद्धों की सहिष्णुता और देश पर छाये हुए कम्यूनिस्ट-आतंक का परिणाम था कि उन्होंने एक रोमन कैथलिक को अपने देश का राष्ट्रपति बना लिया।

राष्ट्रपति डायम का परिवार कट्टर रोमन कैथलिक है। वे तीन भाई हैं। सबसे बड़े भाई ह्वे (Hue) नामक नगर के रोमन कैथलिक बिशप (बड़े पादरी) हैं, और दूसरे भाई इस समय गुप्त पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी हैं। राष्ट्रपति डायम और बिशप डायम अविवाहित हैं। किंतु तीसरे भाई (एंगो ढिन न्हू) विवाहित हैं। इनकी पत्नी श्रीमती न्हू अत्यन्त सुंदरी और सुशिक्षिता हैं। किंतु उनमें पुराने युग की रोमन कैथलिक कट्टरता है। वे बड़ी तेज मिजाज हैं और उनका अपने पति पर ही नहीं, अपने जेठ (राष्ट्रपति) पर भी इतना प्रभाव है कि श्रीमती जी की बात टालना उनके लिए कठिन है। लोगों की धारणा है कि उनकी धार्मिक कट्टरता ही दक्षिणी वियतनाम की वर्तमान धार्मिक उथलपुथल का मुख्य कारण है। आश्चर्य की बात तो यह है कि श्रीमती न्हू जन्म से रोमन कैथलिक नहीं हैं। वे बौद्ध परिवार में उत्पन्न हुईं किंतु उन्होंने एंगो ढिन न्हू से विवाह करने पर अपने पति का धर्म ग्रहण कर लिया। इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जिनमें धर्म-परिवर्तित लोग अत्यन्त कट्टर और असहिष्णु प्रमाणित हुए। अपने ही देश के मलिक काफूर और काला पहाड़ के नाम ले लेना इसे प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

वियतनाम में कुछ दिनों से धार्मिक उत्सवों में झंडों आदि का प्रदर्शन वर्जित था। किंतु कुछ महीने हुए ह्वे, नगर में रोमन कैथलिक गिर्जे का एक उत्सव हुआ। यहाँ राष्ट्रपति डायम के भाई बिशप हैं। इस अवसर पर रोमन कैथलिकों ने सरकारी आदेश को भंग करके कैथलिक झंडों का प्रदर्शन किया। इसकी देखादेखी जब कुछ दिनों बाद बौद्धों ने अपने एक उत्सव में झंडों का प्रदर्शन किया तब सरकार ने उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की। ऊपर से यह बात बहुत छोटी मालूम होती है किंतु वास्तव में वियतनाम के बौद्ध ईसाई डायम परिवार के बौद्ध धर्म-विरोधी कार्यों से भीतर ही भीतर बहुत असंतुष्ट थे। उन्हें अनेक अवसरों पर यह बोध हो चुका था कि बौद्ध होने के कारण ईसाई डायम परिवार उनपर अत्याचार कर

रहा है। अतएव जब झंडों के प्रदर्शन पर उनके साथ भेदभाव का बर्ताव किया गया तब उनका असंतोष भड़क उठा और उन्होंने डायम की बौद्धधर्म-विरोधी नीति के विरुद्ध प्रदर्शन आरम्भ किया। जब उन्होंने बौद्ध झंडा निकाला तब सेना ने उनपर धावा बोल दिया। इस धावे में नौ बौद्ध मारे गये। उन्होंने कोई हिंसात्मक कार्रवाई नहीं की। एक बौद्ध भिक्खु ने सरकारी अत्याचार से क्षुब्ध होकर अपने ऊपर पैट्रोल डालकर बीच सड़क पर अपना बलिदान कर दिया। उसके इस बलिदान से देश की सारी बौद्ध जनता में उत्तेजना फैल गयी। डायम की सरकार ने बौद्धों पर नये प्रतिबंध लगाये, किंतु इस भिक्खु के बलिदान से प्रेरणा लेकर पाँच और भिक्खुओं ने इसी प्रकार अपना शरीर त्याग दिया। एक बीस वर्ष की बौद्ध लड़की ने एक बौद्ध मंदिर में भगवान् बुद्ध की मूर्ति के सामने अपनी बायीं बाँह काटकर चढ़ा दी। रक्त के बहने से वह मूर्च्छित हो गयी। इन घटनाओं से उत्तेजना बढ़ने लगी, किंतु जनता ने सिवाय कुछ शान्त प्रदर्शनों के और कोई कार्रवाई नहीं की। आत्मोत्सर्ग की इन घटनाओं के समाचारों से सारे संसार में खलबली मच गयी। राष्ट्रपति डायम ने बौद्धों को आश्वासन दिया कि भविष्य में उनके साथ न्याय किया जायगा, किंतु श्रीमती न्हू बौद्धों के विरुद्ध बराबर वक्तव्य देती रहीं। वे और उनके पति (दोनों ही कट्टर कैथोलिक हैं) राष्ट्रपति पर हावी हैं। जब बौद्ध भिक्खुओं के आत्म-बलिदान की घटनाएँ बढ़ने लगीं, और जगह जगह बौद्ध लोग सरकार की नीति के विरुद्ध अनशन करने लगे तब इस आन्दोलन को दबाने के लिए ह्वे नगर के बौद्ध मंदिरों पर सेना ने धावा बोल दिया। कहा जाता है कि कितनी ही मूर्तियाँ तोड़ दी गयीं और मंदिरों का कितना ही सामान नष्ट कर दिया गया। कई सौ बौद्ध भिक्खु पकड़ लिये गये। नगर पर फौजी शासन हो गया। विश्वविद्यालय के प्रमुख अधिकारी को पदच्युत कर दिया गया। उसका दोष यह बतलाया गया कि उसने विद्यार्थियों को प्रदर्शन में भाग लेने से नहीं रोका। इसपर विश्वविद्यालय के प्रायः चालीस प्राध्यापकों ने त्यागपत्र दे दिये। दूसरे नगरों में भी मंदिरों पर धावे बोले गये। प्रायः एक हजार विद्यार्थी पकड़ लिये गये। इससे सारे देश के बौद्ध भड़क उठे। सरकार ने देश के सब विद्यालय बंद कर दिये। कर्फ्यू लगा दिया गया।

कैथलिक डायम परिवार के अत्याचारों से वियतनाम की जनता त्रस्त है। राष्ट्रपति डायम स्वयम् शायद इतने कट्टर नहीं हैं किंतु उनके भाई न्हू और उनकी पत्नी बहुत कट्टर हैं, और दुर्भाग्य से राष्ट्रपति डायम पर उनका पूरा प्रभाव है। लोगों का कहना यह है कि राष्ट्रपति में उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करने का साहस नहीं है। श्रीमती न्हू विशेषरूप से इस समस्या की जड़ समझी जाती हैं।

यह घटना कई कारणों से आश्चर्यजनक है। पहिले तो बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में इस प्रकार की धार्मिक असहिष्णुता और धार्मिक अत्याचार की लोग कल्पना करते। दूसरे, जहाँ ऐसे धार्मिक अत्याचार होते हैं अत्याचारी बहुमत में होते हैं। किंतु आश्चर्य की बात यह है कि वियतनाम में मुठ्ठी भर अल्पमत के कैथलिक बहुसंख्यक बहुमत के लोगों पर अत्याचार रहे हैं। यह बीसवीं शती का चरम आश्चर्य है!

इसका कारण यह है कि डायम के हाथ में शक्ति है और यह सैनिक शक्ति अमरीका की कृपा से है। अमरीका ने डायम को शक्तिशाली बनाया और वह समर्थन कर रहा है। इसका एकमात्र कारण यह है वह उत्तर के कम्यूनिस्टों को दक्षिणी वियतनाम में बढ़ने देना चाहता, और दुर्भाग्य से इस समय डायम हटने से वियतनाम में अराजकता फैल जाने का भय है। अराजकता में कम्यूनिस्टों को रोकना असंभव हो जायगा। किंतु अमरीकन सरकार ने प्रकारान्तर से इस बात मान लिया है कि वियतनाम में बौद्धों के साथ हो रहा है। वह स्थिति सुधारने का प्रयत्न कर है, किंतु डायम और उसके भाई अमरीका की किंकर्तव्यविमूढ़ता को समझते हैं और उसका पूरा लाभ उठाकर मनमानी कर रहे हैं।

सारा संसार, विशेषकर बौद्ध देश, वियतनाम के बौद्धों की दुर्दशा से विचलित हो उठे हैं। श्रीलंका प्रधान मंत्री श्री भंडारनायके ने इस मामले को राष्ट्र में उठाने का प्रस्ताव किया है तथा दूसरे एशियायी देशों सलाह माँगी है। भारत में भी वियतनाम के बौद्धों के पूरी सहानुभूति है। कैथलिक सम्प्रदाय के अध्यक्ष ने भी वियतनाम की स्थिति से चिंता प्रकट की है और धर्मों के लोगों को मित्र भाव से रहने की सलाह दी है। किंतु कैथलिक फ़्रांस के कैथलिक राष्ट्रपति डि गॉल डायम को आश्वासन का पत्र भेजा है।

वियतनाम की आंतरिक स्थिति बहुत गंभीर है। वहाँ किसी समय कुछ भी हो सकता है। डायम की सरकार वहाँके बहुसंख्यक बौद्धों पर अत्याचार करके तथा अपना विरोधी बनाकर बहुत दिनों जीवित नहीं सकती।

पं० राधेश्याम कथावाचक—गत मास बरेली में प्रसिद्ध कथावाचक पं० राधेश्याम का परिपक्व अवस्था में स्वर्गवास हो गया। इधर कई वर्षों से वे विरक्त से हो थे और वानप्रस्थी जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे अपने समय के बड़े सफल नाटककार और अभिनेता थे। इनके लिखे पौराणिक नाटकों की कई दशकों तक उत्तर भारत में बड़ी धूम रही। नाटककार के रूप में उन्हें पर्याप्त यश मिला, किन्तु उनकी प्रसिद्धि का वास्तविक कारण 'राधेश्याम की रामायण' थी जो मेरठ और रुहेलखंड की खड़ी बोली में एक लोकप्रिय छंद में लिखी गयी थी। उसका संगीत भी लोक-संगीत पर आधारित था। वे स्वयं अच्छे वक्ता और गायक थे। वे स्वयं अपनी रामायण की कथा

१९६३

र्तते' थे। उनकी वाणी में जादू था, इसलिए कुछ नों उनकी 'रामायण' का बड़ा प्रचार हुआ। हिंदी के चार में इस 'रामायण' ने बड़ी सहायता की। उन्होंने नी जीवनी भी लिखी है जिसमें उनका हिंदी नाट्य रंग-संबंधी अनुभव बड़ा रोचक और महत्त्वपूर्ण है। वे मिलनसार सज्जन थे। उनकी मृत्यु से हिन्दी संसार का अनोखा व्यक्तित्व उठ गया। हम उनके परिवार के हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

पैदावार बढ़ाना भी खतरनाक !——यह संसार बड़ा त्र है! "कहीं घी घना, कहीं मुट्ठी भर चना, कहीं भी मना।" हमारी सरकार उपज बढ़ाने के लिए ों और अरबों रुपया लगाकर सिंचाई के साधन के लिए बड़े बड़े बाँध बना रही, नहरें खोल रही, बनवा, रही और रासायनिक खाद के कारखाने रही है। कितने ही जंगल काटकर और कितनी ही भूमि लेकर हमने वहाँ खेत बना लिये हैं। सरकार रा यंत्र खेती की उपज बढ़ाने पर लगा है, किंतु भी अमरीका और कनाडा के गेहूँ और बर्मा के चावल हमारा काम नहीं चल सकता। 'उपज बढ़ाओ या हीं का नारा हमारा राष्ट्रीय नारा हो रहा है। ऐसी था में दक्षिणी फ़्रांस का एक समाचार पढ़कर हम आँखें मलने लगे। समाचार यह है कि इस वर्ष णी फ्रांस के किसानों ने अन्न के अतिरिक्त दूसरी इतनी पैदा की हैं कि उनके लिए ग्राहक नहीं मिलते ! की फसल इतनी अच्छी हुई कि उन्होंने कई लाख मन बना डाली। केवल दक्षिणी फ्रांस में इतनी शराब हो गयी है कि सारे फ्रांस की जनता उसे एक वर्ष में पी सकती——और संसार जानता है कि फ्रांसीसियों मदिरा कितनी प्रिय है और वे कितनी मदिरा पीते सी प्रकार उन्होंने आलू, टमाटर, अंडे, मुर्गियाँ, फल इतने पैदा कर लिये कि उनकी समझ में नहीं आया न चीजों का क्या किया जाय। उन्होंने सरकार से कि इनकी निकासी का कुछ उपाय करे। किंतु सरकारें म पैदावार की समस्या हल कर सकती हैं, और न क पैदावार की। फ्रांसीसी सरकार समस्या पर विचार ने लगी, और उधर आलू, टमाटर, अंडे, फल आदि ने लगे। शराब रखने के लिए पीपों की कमी हो गयी रखने के लिए बहुतों के पास जगह न रही। मुर्गियों संख्या इतनी बढ़ गयी कि किसानों के लिए उनका पोषण करना सिरदर्द हो गया। जब सरकार केवल र ही करती रही, और उसने कुछ न किया तब जुलाई महीने में किसान परेशान होकर लाखों मन आलू और टर उन नगरों में ले आये जहाँ वे उन्हें बेचा करते थे। ने उन लाखों मन आलुओं और टमाटरों को सड़कों डालकर उनपर ट्रेक्टर चला दिये। मंडी की सड़कों आलुओं और टमाटरों की बलि चढ़ा करके वे अपने-गाँव लौट गये। उन्होंने सोचा कि इस अहिंसक प्रदर्शन से सरकार की समाधि भंग होगी, और वह उनकी सहायता का कोई उपाय सोचेगी। किंतु सरकार सोचती ही रही। इस बार किसानों का धीरज छूट गया। वे सरकार से अपने घाटे की पूर्ति के लिए अनुदान की माँग करने लगे। कुछ होता हुआ न देखकर उन्होंने अपनी माँग के समर्थन में जगह जगह उपद्रव आरंभ कर दिये। अब पुलिस को उनका सामना करना पड़ा। एक जगह तो छः हजार क्रुद्ध किसानों ने सड़क के पत्थर उखाड़-उखाड़कर पुलिस पर ही जवाबी हमला कर दिया। अश्रुगैस छोड़ने से वे किसी तरह काबू में आये। किंतु सरकार फिर भी समस्या का हल सोचती रही।

जब दंगों का भी कोई फल नहीं हुआ तो किसानों ने एक नये ढंग का अहिंसक प्रतीकात्मक मोर्चा खोला। उन्होंने सड़कों पर जाती हुई मोटरों को रोकना आरंभ किया। मोटर रोककर वे सवारियों को एक विज्ञापन देते जिसमें उनकी दुर्दशा का वर्णन और उनकी माँगों का विवरण छपा था। उसके साथ ही वे मोटर की बैठकियों पर बहुत से फल, चीज़ (पनीर), अंडे, मुर्गियाँ और शराब की बोतलें गाँज देते। केवल एक सप्ताह में इन किसानों ने इस प्रकार मोटरवाले यात्रियों को प्रायः २७,००० शराब की बोतलें भेंट कर दीं! जितनी मुर्गियाँ, अंडे, और फल आदि भेंट कर दिये उनकी गिनती नहीं है। किंतु प्रचार के अतिरिक्त इस मोर्चे से भी कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। इसी प्रकार वर्ष बीत जायगा। सरकार शायद थोड़ी बहुत क्षति-पूरक तकावी दे देगी, किंतु किसानों को जो वास्तविक क्षति हुई है उसकी पूर्ति संभव नहीं मालूम होती। इस समाचार से यह सार निकलता है कि अति उपज भी उतनी ही दुखदायी है जितनी कम उपज। किंतु इस देश में हम अभी अति उपज की तो बात ही क्या, 'अच्छी' उपज का ही स्वप्न देख रहे हैं। हमारी प्रति एकड़ उपज संसार में प्रायः सबसे कम है। हमारे पशु संसार में सबसे कम दूध देते हैं। अभी तो 'अति' उपज की बात हमें शेखचिल्ली की कहानी ऐसी मालूम पड़ती है।

हमारे पशु——कहते हैं कि भारत में किसी समय घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। यह काव्योचित उक्ति अवश्य है किंतु इसमें कुछ सार भी है। हमारे अल्प जीवन ही में दूध का अभाव हो गया है। हमारे बचपन में शुद्ध दूध रुपये का बीस सेर और घी एक रुपये का ३२ या ३३ छटाँक मिलता था। अब अधिकांश नगरों में दूध दस या बारह आने का एक सेर——और वह भी चौदह केरट का, अर्थात् पानी मिला हुआ। घी तो अब अमीरों की पाकशालाओं की शोभा ही बढ़ा सकता है। और मजा यह है कि हमारे देश में सन् १९६१ की पशुगणना के अनुसार २२ करोड़ २७ लाख गाय, बैल और भैंसें हैं। इतने अधिक पशु संसार के किसी देश में नहीं हैं। संसार में इन पशुओं की संख्या प्रायः ९० करोड़ आँकी जाती है। इस दृष्टि से संसार के एक-चौथाई पशु केवल भारत में हैं। और यह

संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। भारतीय जनसंख्या के समान भारतीय पशुओं की प्रजनन गति काफी तेज है। पिछले दशक में वह १४ प्रतिशत बढ़ी थी। किंतु एक ओर तो हमारी पशुसंख्या सबसे अधिक है, और दूसरी ओर हमारे पशु संसार में सबसे कम दूध देते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है। जंगल कटते जा रहे हैं। मनुष्यों के भोजन के लिए खाद्यान्न उत्पन्न करने के लिए दिनोंदिन गोचर भूमिओं को खेती के काम में लाया जा रहा है। किसान इतने साधनहीन हैं कि अपने पशुओं को खली और भूसी देना तो दूर, साधारण चारा भी नहीं दे सकते। खाद्यान्नों की कमी के कारण, तथा नगदी देनेवाली फस्लों की ओर अधिक ध्यान देने के कारण सरसों, मूँगफली, ईख आदि उत्पन्न करने से भूसा आदि का उत्पादन भी कम हो गया है। कृषि के उत्पादन का जो अंश पशुओं के लिए खाद्यान्नों से मिलता था वह इन नगदी देनवाली फसलों से नहीं मिलता। हमारे बचपन में भैंसों को बिनौले खिलाये जाते थे, पर्याप्त मात्रा में खली दी जाती थी, घर में जो दाल आदि दली जाती थी या आटा पीसा जाता था उसकी भूसी उन्हें मिलती थी। अब सब काम मशीनों में होता है। गाँवों में भी आटा पीसने की कलें लग गयी हैं। उसके आटे को छानने की आवश्यकता नहीं। अतएव भूसी आदि भी पशुओं को नहीं मिलती। वे सूखी घास, भूसे या चारे पर रहते हैं और यह वस्तुएँ भी उन्हें पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलतीं।

इधर जनसंख्या बढ़ जाने के कारण दूध की माँग भी बढ़ गयी है। किंतु दूध पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं होता। इसलिए बहुत से लोग डब्बों का या सूखे दूध का चूर्ण उपयोग में लाने लगे हैं। अमरीका हमें दान की तरह सूखे दूध का चूर्ण भेज कर हमारे स्कूली बच्चों को उसे पीने की आदत डलवा रहा है। उसके अभ्यस्त हो जाने पर बड़े होने पर वे खरीदकर अमरीकन सूखे दूध के चूर्ण का दूध पिया करेंगे, और इस प्रकार अमरीका और आस्ट्रेलिया के सूखे दूध के कारखानों को लाभ होगा। जिस प्रकार चायवालों ने मुफ्त चाय पिला-पिलाकर हमें चाय का अभ्यासी बना दिया, उसी प्रकार हमारी भावी पीढ़ी भी (यदि सरकार की सहायता से अमरीकी सूखे दूध का प्रचार विद्यालयों में पूरी तरह से हो गया) उस दूध की अभ्यस्त हो जायगी। वह देश के ताजे दूध का स्वाद भूल जायगी।

बच्चों, युवकों और बूढ़ों के लिए—विशेषकर शाकाहारियों के लिए—दूध भोजन का परमावश्यक अंश है। जिस प्रकार हम सदा के लिए अमरीकन गेहूँ पर निर्भर नहीं रह सकते, उसी प्रकार अमरीकन और आस्ट्रेलियन सूखे दूध के सहारे भी नहीं रह सकते। हमें अपने देश के पशु-धन की उन्नति की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे बड़ी समस्या चारे की है। हमने खाद्यान्नों की उन्नति और उत्पादन पर तो ध्यान दिया है, किंतु चारे की उन्नति और उत्पादन पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। जनता के स्वास्थ्य और उसके भोजन के पोषक तत्त्व (घी, दूध) की दृष्टि से पशुओं के चारे की उन्नति और उत्पादन की ओर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। राष्ट्रसंघ के खाद्य संगठन की ओर से डा० ह्वाइट ने अभी हाल में इस देश की पशु समस्या का सर्वेक्षण किया था। उन्होंने चारों के उत्पादन के सम्बन्ध में कई सुझाव दिये हैं। उनका कहना है कि अन्य फसलों के साथ साथ, बारी बारी से, चारे की फसलें भी उत्पन्न की जानी चाहिए। इस देश के लिए चारे की कौन-कौन सी किस्में अधिक उपयोगी हैं इस विषय में अभी बहुत कुछ अन्वेषण होना है। ऐसी हों जिन्हें हमारे साधारण किसान अपने सीमित साधनों से उत्पन्न कर सकें। तभी वे सफल हो सकती हैं। हरी खाद बहुत अच्छी और उपयोगी है, किंतु हमारे साधारण किसान उसे उत्पन्न नहीं कर सकते। इसलिए उपयोगी होते हुए भी वह इस देश में प्रचलित नहीं हुई। इस उदाहरण से लाभ उठाकर हमारे विशेषज्ञों को ऐसे चारे का सुझाव देना चाहिए जो थोड़ी भूमि में, कम व्यय से, पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो सके। इसके साथ ही गोचर भूमि की कमी भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। उसमें ऐसी घास उत्पन्न की जानी चाहिए जो अधिक उत्पन्न हो और जो पशुओं के लिए अधिक पौष्टिक हो।

इसके साथ ही पशुओं के वंश सुधारने पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। सरकार इस ओर ध्यान दे रही है किंतु उसके प्रयत्न का कोई प्रभावशाली परिणाम नहीं हुआ। इसका एक बड़ा कारण यह है कि कमज़ोर जाति के पशु अबाधरूप से प्रजनन कर रहे हैं। जिस प्रकार मनुष्यों में परिवार नियोजन के लिए पुरुषों और स्त्रियों को शल्य चिकित्सा द्वारा प्रजनन के लिए अक्षम बना दिया जाता है, उसी प्रकार आवश्यक है कि ऐसे कमजोर और अवांछनीय वंश के पशुओं को भी प्रजनन के लिए अक्षम बना देना चाहिए। जब तक अच्छे वंश (नस्ल) के पशुओं की संख्या नहीं बढ़ती, और जब तक चारे की समस्या व्यावहारिक रूप से हल नहीं की जाती तब तक इस देश में दूध की समस्या भी हल नहीं हो सकती। हम अमरीकन और आस्ट्रेलियन दूध पर निर्भर रहकर जाति और देश की उन्नति नहीं कर सकते।

व्रजभाषा के 'हू' अव्यय का विकास

पंडित किशोरीदास वाजपेयी

अब से लगभग पचीस वर्ष पहले मैंने 'व्रजभाषा का व्याकरण' लिखकर प्रकाशित कराया था। उसमें लिखा कि व्रजभाषा का 'हू' अव्यय किसी प्राकृत-अपभ्रंश गया है और इसके 'ह्' का लोप करके 'ऊ' रह जाता 'हू' और 'ऊ' दोनों रूप साहित्यिक व्रजभाषा में तथा की जनभाषा में चलते हैं। इनके ह्रस्वरूप ('हु' और) भी चलते हैं। कभी 'हु' अनुनासिक भी हो जाता कभी पूर्ववर्ती शब्द से सन्धि करके भी 'ऊ' चलता यह सब तो ठीक है ही; परन्तु विकास-क्रम जो ा था, वह ठीक नहीं। 'हू' से 'ऊ' नहीं; 'ऊ' से है और—

'ऊ' है 'अपि' का विकास

संस्कृत में 'अपि' अव्यय समुच्चायक है। व्रजभाषा 'ऊ' और 'हू' समुच्चायक हैं, जो एक ही चीज के दो हैं। पाञ्चाली और अवधी आदि में भी 'ऊ'-'हू' समुच्चय का बोध होता है; परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी में अव्यय समुच्चयक है, और यह—

'भी' भी 'अपि' का ही विकास है।

'अपि' में और 'ऊ' तथा 'हू' में कोई वर्णसाम्य दिखाई देता और न 'अपि' का कोई तत्त्व 'भी' में ही नजर आता है। परन्तु है यह सब 'अपि' का ही विस्तार-प्रसार; यह अभी स्पष्ट हो जायेगा। पहले प्रयोग देखिए अर्थ पर ध्यान दीजिए—

रामोऽपि यास्यति—संस्कृत

रामहू जाय गो—साहित्यिक व्रजभाषा

रामऊ जाय गो }
रामहू जाय गो } व्रज की जनभाषा

रामौ जैहै (जइहै)—पाञ्चाली

राम भी जाए गा—राष्ट्रभाषा हिन्दी

'रामौ' में भी 'ऊ' है—राम+ऊ='रामौ'। 'रामौ' राम भी। व्रजभाषा में भी सन्धि से रूप चलते हैं— ौ बनौं' 'ऊखौ लई उखारि'। 'बन'—कपास। में कपास को आज भी 'बन' कहते हैं। बन+ऊ= बनौं। ऊख+ऊ='ऊखौ'। 'सोऊ चलै गो' में 'ऊ' ा; 'हूँ' न होगा। राष्ट्रभाषा में 'वह भी चलेगा' और पाञ्चाली में—'**वहौ चलिहै**'। 'वह' राष्ट्रभाषा वाला और 'ऊ' अव्यय व्रजभाषा वाला। सन्धि करके 'वहौ'। परन्तु 'तुम हू' में पाञ्चाली भी 'हू' रखती है। राष्ट्रभाषा में भी समष्टि-बोध 'ऊ' से ही होता है (यद्यपि समुच्चायक 'भी' पृथक् है)—

चारो छात्र जाएँगे

छहो शास्त्र उसने पढ़े थे

चौबीसो पुराण मैंने पढ़ लिए हैं

सर्वत्र समष्टि में 'ऊ' है। चार+ऊ='चारो'। व्रजभाषा में—'चारहू छोर ते उठावैं जो मिलि कै' में 'हू' समष्टि-द्योतन में आता है। व्रज की जनभाषा में 'चारिउ'। कहीं '**चारऊ** चले आवैं' जैसा भी बोलते हैं। संस्कृत में वही 'अपि'—'चत्वारोऽपि छात्राः पलायिताः' —चारों छात्र भाग गए।

यही 'अपि' प्रश्नार्थक सर्वनाम में लगकर अनिश्चयार्थक बन जाता है—

कः फलं नेष्यति ? (प्रश्न)

कोऽपि फलं नेष्यति (अनिश्चय)

× × ×

केन श्लोकः पठितः ? (प्रश्न)

केनाऽपि श्लोकः पठितः (अनिश्चय)

व्रजभाषा में—

को फल लै जाय गो (प्रश्न)

कोऊ फल लै जाय गो (अनिश्चय)

'को' में 'ऊ' स्पष्ट है। राष्ट्रभाषा में 'कोई' चलता है। 'कौन' में नहीं; 'को' में 'ई' अव्यय लगता है। यही 'ई' व्रजभाषा में और पाञ्चाली आदि में 'ऊ' बन जाती है—'कोऊ सुनै न बात'! 'कोऽपि' का रूपान्तर 'कोइ' और दीर्घान्त 'कोई'। इसी का रूपान्तर 'कोऊ'। सविभक्तिक प्रयोग मे 'ह्' का आगम—'काहू को'। यह सब 'अपि' का विकास है। साफ देखिए—

रामोऽपि गमिष्यति (संस्कृत)

रामहू जाय गो (व्रजभाषा)

'रामोऽपि' का रूप प्राकृत में 'रामो वि' हो जाता है। 'वि' का व्यंजन-लोप—'इ' और दीर्घान्त—'ई'

अव्यय। आगे लोकभाषाओं ने अपने प्रातिपदिक 'राम' आदि कर लिए। 'सो' आदि सर्वनामों में ब्रजभाषा 'ओ' रखती है और राष्ट्रभाषा भी 'जो' आदि में।

सोऽपि गमिष्यति

सोऊ जाय गो (ब्रजभाषा)

'अपि' के 'ई' को 'ऊ' कर लिया गया; क्योंकि—

'**सो** जाय गो'

जिससे कि पहले से वर्तमान प्रयोग मे गड़बड़ी न पड़े। 'सोऊ जायगो' में समुच्चायक 'ऊ' है और 'सोई जायगो' में अवधारणार्थक 'ई' अव्यय है। यह 'ई' है सुप्रसिद्ध 'ही' अव्यय। 'ह्' का लोप करके 'ई'—'सोई जायगो'। इसी से बचने के लिए 'अपि' के 'ई' को 'ऊ' कर लिया गया—'सोऊ जाय गो'।

'ही' के 'ह्' का लोप राष्ट्रभाषा में भी कई जगह होता है—

उसी ने कहा था, उसी से कहो, इसी से, यही है सर्वत्र 'ही' के 'ह्' का लोप है। उस+ही='उसी' और इस+ही ='इसी'। यह+ही='यही। अवधी आदि में भी—

'**यहै** तुम्हारि बड़ाई' (यही तुम्हारी बड़ाई)

वहै सब कुछु भा (वही सब कुछ हुआ) 'ही' के 'ह्' का लोप और यह+ई='यहै' तथा वह+ई='वहै'।

सो, प्रयोगों में भ्रम से दूर रहने के लिए ब्रजभाषा ने 'अपि' के 'ई' को 'ऊ' कर लिया—'सोऊ'—वह भी। 'सोई'—वही।

'ऊ' में 'ह्' का आगम होकर 'हू' अव्यय रूप। कहीं 'ही' के 'ह्' का लोप और कहीं 'ऊ' में 'ह' का आगम। 'ह्' का आगम होकर ही संस्कृत का 'आम्' हिन्दी में 'हाँ' हो गया है। 'म्' की जगह स्वर अनुनासिक।

'भी' भी 'हू' का भाई है

राष्ट्रभाषा का 'भी' अव्यय भी 'हू' का भाई ही है। इसका भी विकास 'अपि' से ही है। 'रामोऽपि' का रूप 'रामो वि' हुआ और 'वि' का विकास (> इ > ई > 'ऊ' >) 'हू' एक जगह हुआ। अन्यत्र उसी 'वि' का विकास 'भी' हुआ। दीर्घान्त रूप 'वी' होते ही 'बी'। पंजाब और कुरुजनपद में आज भी 'बी' बोलते हैं—'राम बी जाऊ गा' 'राम बी जाए गा'। यही 'बी' राष्ट्रभाषा में 'भी' अव्यय है। 'व' को 'भ' कर लेने की प्रवृत्ति है ही। संस्कृत का 'बुस' हिन्दी में 'भुस' है और 'बिस' (कमलनाल) यहाँ 'भिस' है। सो, संस्कृत 'अपि' का विकास यहाँ 'भी' अव्यय हुआ। परन्तु 'भी' है समुच्चायक ही। समष्टि-बोधनार्थ भी 'ऊ' चलता है—'चारो'। अनिश्चयार्थ प्रकट करने के लिए भी ('ऊ' का मूल रूप) 'ई'—'कोई कहता है' 'किसी ने कहा है' 'किसी ने कहा है' में भी 'अपि' का 'ई' है। 'केनाऽपि कथितम्'—'किसीने कहा है' 'किस' के अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है। प्रकृति और प्रत्यय के बीच में अव्यय ('ई') आ जमा है। ब्रजभाषा में भी ऐसी जगह 'हू' बीच में ही आता है—

काहू **को**, **काहू सों**, काहू **पै**

प्रयोग होते हैं। विभक्ति से परे 'हू' करके—

'**काको** हू' '**कासों** हू'

जैसे नहीं। परन्तु समुच्चायक 'हू' बीच में तो आ ही है; विभक्ति के बाद भी आ जाता है—

'**राम** हू **को** बल है' '**ताहू में** कसरि है'

और विभक्ति के आगे भी—

'**राम को** हू बलु है' '**तामें** हू कसरि है'

परन्तु अनिश्चयार्थक 'हू' सदा प्रकृति और प्रत्यय के बीच में ही रहेगा। राष्ट्रभाषा में 'ई' अनिश्चयार्थक है और वह भी बीच में रहता है—'किसीने कहा है' 'किसने ई कहा है' कभी भी न होगा। परन्तु 'ही' का प्रयोग राष्ट्रभाषा में उभय प्रकार होता है।—'ई' रूप बीच में और 'ही' (विभक्ति के) बाद आता है—

उसी ने कहा था, **उसी से** कहो।

उस **ने ही** कहा था, **उस से ही** कहो।

'उसीने' 'उसी से' आदि में 'ही' का रूपान्तर है और 'किसी ने' आदि में अनिश्चयार्थक 'अपि' का रूपान्तर 'ई'।

'सभी जाएँगे' में सब+ही='सभी' है। 'न भी जाएँ' में 'भी' अव्यय है। 'जब' के साथ सन्धि होती नहीं। '**जब भी** कहोगे, चल पड़ूँगा' यहाँ 'भी' स्वतंत्र अव्यय है। 'तब' के साथ 'ही' की सन्धि होती है—'तभी वह आ गया'। 'तभी' उसी समय। 'उसी समय'—में भी 'ही' है; 'ई' के रूप में। 'तब भी ऐसा ही रहेगा'—में 'भी' समुच्चायक है। ब्रजभाषा में 'तबहूँ' चलता है। 'हूँ' समुच्चायक है।

परन्तु 'मैं भी कभी जवान था' यहाँ 'ही' नहीं है; निश्चयार्थक 'ई' है। 'कभी'—'किसी समय'। 'किसी' भी वही 'ई' है। 'कभी भी यह काम न होगा' यहाँ दृढ़ता प्रकट करने के लिए पृथक् अव्यय है। भी'—'कस्मिश्चिदपि काले'। कस्मिन् काले, 'कब' कस्मिंश्चित्काले—'कभी।' 'कस्मिंश्चिदपि काले'— भी।' कुछ लोग 'कभी भी' को गलत समझा ते हैं।

कभी काम हो जाए गा।' 'कभी'—किसी समय। ?'—किस समय? प्रश्न है। अनिश्चयार्थक 'ई' लग कब +ई='कभी।' 'व्' का 'भ्' हो गया है और का लोप। व्रजभाषा में 'कबहूँ' चलता है—'कबहूँ माँगत आरं करैं।' 'कबहूँ'—कभी। 'कोऊ' में जो अनिश्चयबोधक 'ऊ' है, वही यहाँ अनुनासिक रूप में 'हू' के साथ है।

बहुत साफ सब है। कहीं भ्रम-सन्देह को जगह नहीं। 'हिन्दी-संघ' की सब भाषाएँ स्वतंत्र हैं; पर आदान-प्रदान चलता ही है—'कामनवेल्थ' जो है। 'हू' का रूपान्तर राष्ट्रभाषा में भी समष्टिबोधनार्थ—चारो, छहो। अवधी आदि में भी 'चारिउ', 'पाँचौ' आदि। 'को' (व्रजभाषा आदि का रूप) अनिश्चयार्थक 'ई' के साथ राष्ट्रभाषा में भी 'कोई।' 'कौन' (राष्ट्रभाषा का रूप) कहीं व्रजभाषा में भी 'यह कौन सी पाटी पढ़े हौ लला!' भोजपुरी आदि में भी 'कौनौ ठगवा गठरिया लूटल हो!' कौन+ऊ='कौनौ'। बढ़िया 'कामनवेल्थ' है!

चार मुक्तक

श्री प्रेमचन्द्र जैन

बादल बरसा सबने देखा, प्यासा चातक देखा किसने?
किस पतझड़ में कितनी कलियाँ लुटीं, लगाया लेखा किसने?
उमड़ा दिल और भींगी पलकें, सबने देखीं सबने जानीं?
जान न पाया मैं भी पर, खींची गहरी रेखा किसने?

जब तलक आग्रह तभी तक वाद है,
भावना जब तक तभी तक याद है।
यूँ भले ही मन को भरमा लो मगर
भूख जब हो बस तभी सब स्वाद है॥

गीत शस्यों को उगाया, भाव-भूमि जोत,
रूप जल में थे तिराये कामना के पोत।
पर हृदय-व्यापार सारा बंद है अब,
सूख जब से गए हैं अनभूतियों के स्रोत॥

जल पाकर भी कुछ बिरवे हो सरस नहीं पाते,
शब्द सर्वदा हो भावों का परस नहीं पाते।
कभी कभी जीवन में आती ऐसी भी मजबूरी,
जल से भरे मेघ धरती पर बरस नहीं पाते॥

हिमालय की जातियाँ

मेजर सीताराम जौहरी

"जौहरी! वास्तव में हम लोग यू० पी० और पंजाब निवासियों से बिलकुल अलग हैं।" आसाम के एक मीजो जाति के लेफ्टिनेण्ट कर्नल ने कहा।

"सर! आप कैसे अलग हैं?"

"भई, हमारी नाक, आँखें, शरीर की बनावट आदि आप लोगों से नहीं मिलती। हमारा रहन-सहन, शारीरिक रचना व डील-डौल मंगोल हैं और आप लोगों के आर्य।"

"तो आप लोग कहाँ से आये?"

"मंगोलिया से आये होंगे क्योंकि हमारी गठन चीनी और जापानियों से मिलती है।"

"तो आप लोग मंगोलिया से आये हैं?"

"यही समझ लो।"

"सर! यदि मैं सप्रमाण यह सिद्ध कर दूँ कि मंगोलिया से क्राइस्ट के पूर्व मंगोल दक्षिणी एशिया में आये

स्पीती का एक युवक (हिमाचल प्रदेश)

श्रीमती शीलो आओ (नागा जाति)

ही नहीं तब तो आप स्वीकार कर लेंगे कि आप लोग मंगोलियन नहीं हैं।"

"तो फिर हम क्या हैं?"

"आप विशुद्ध भारतीय हैं। आप भारत के प्राचीन निवासी हैं।"

फौजी अफसर अधिक बात करने के आदी नहीं होते। वे चुप हो गये और मैंने भी बात बदल दी और दूसरी बातें होने लगीं। यह बातचीत नागा प्रदेश में हुई थी। मुझे श्री शीलो आओ (भविष्य में होने वाले मुख्य मंत्री) से भी बातें करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने भी कुछ इसी प्रकार के विचार मेरे सामने रखे। वह भी मेरी बातें सुनकर चुप हो गये। सबसे अधिक मनोरंजक वार्तालाप तो मनीपुर रियासत में हुआ। मैं बस द्वारा पुखरूल से इम्फाल लौट रहा था। एक ईसाई पादरी भी मेरा सहयात्री था। आजकल टुंगखुल नागाओं और कुकियों में कुछ जाति-विवाद होने के कारण सुरक्षा

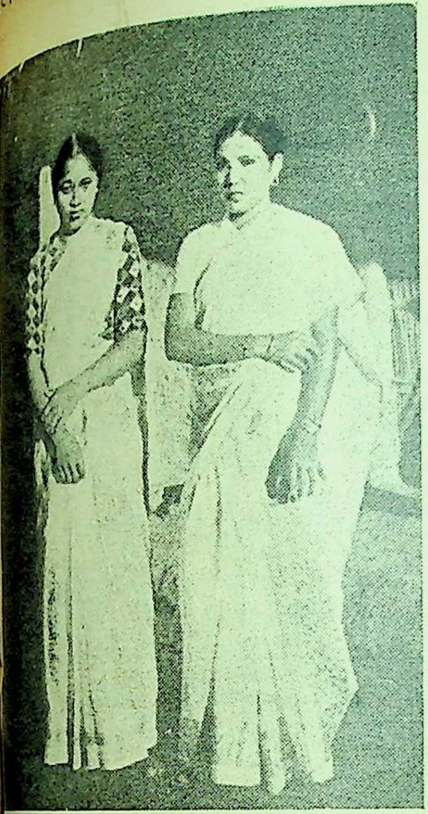

'कछार' की युवतियाँ

से केन्द्रीय सरकार कुकियों को एकत्र करके गांवों में बसा रही है। यह पादरी महाशय थे। १८७ गिरजाघरों के निरीक्षक थे खुल नागाओं में यथेष्ट आदर के पात्र

म चीन से आये हैं। हम भारतीय नहीं हैं।"

तो आप हैं क्या ?"

म भारतीय नहीं हैं, यदि हम कुछ हैं तो मंगोल मारे सारे नाक-नक्शे मंगोली हैं। हम मंगोलिया ये हैं।"

आप इस बात का कोई प्रमाण दे सकते हैं ?"

"यह हमारी परम्पराओं से ज्ञात है। हमारे पुरखे कहते चले आये हैं।"

"यदि मैं आपके कथन के विपरीत प्रमाण दूँ तो आप मेरी बात स्वीकार करेंगे ?"

"अच्छा, बताइये।"

टकिन्सन और कनिंघम का नाम लेते ही वे बोल रे ब्रिटिश हैं। ये सब ब्रिटिश हैं। मैं इनकी बात नहीं मान सकता।" इसका तो मेरे पास कोई उत्तर ही नहीं था। उनकी बड़बड़ाहट जारी थी "हिन्दोस्तान था ही कहाँ ? यह तो अँगरेजों ने सेना के बल पर एक देश बना दिया। हमारा सम्बन्ध न बर्मा से था और न आसाम से और फिर आसाम भी तो भारत से पृथक था।"

मैंने टोंका। "मैं आपसे हुएनसांग के समय की बात कह रहा हूँ। उसने स्वयं लिखा है भारत एक देश है, तिब्बत उसका अंग है। आसाम कन्नौज के राजा का शासन स्वीकार करता है।"

अब उन्होंने दूसरी करवट ली--"तो फिर हम लोग मलाया से आये होंगे।" मैं भी खीज उठा कि यह महाशय सभी कुछ बनने को राजी हैं मगर भारतीय नहीं। मैंने कहा "जैसे आप कुकियों को निर्वासित कर रहे हैं उसी प्रकार यदि भारतीय आप से कहें कि आप मलाया जाइये तो आप क्या करेंगे ?"

"नहीं, हम नहीं जायेंगे। यह धरती, जंगल और पहाड़ हमारे हैं। ईसा के समय से हम यहाँ रह रहे हैं। ईसा मसीह ने कहा था--यह धरती तुम्हारी है।" धर्म का नाम बीच में आने के कारण मैं चुप हो गया। उसके

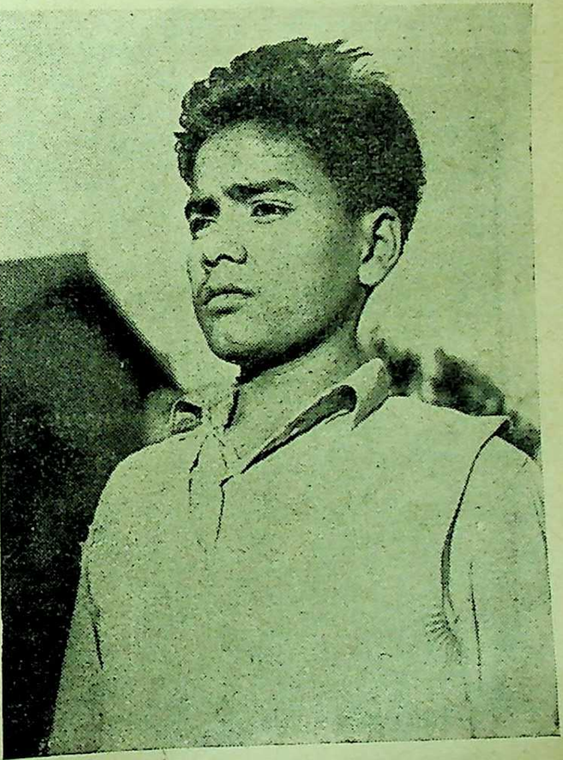

कुमायूनी युवक

मित्र बीच में पड़ गये और दूसरी बातें होने लगीं। इसी प्रकार की कुछ बातें चुड़ाचाँदपुर में एक गैंगेट (कुकी) महाशय से भी हुई थीं जो सम्भवतः धन के लोभ में नेतागिरी अपना चुके थे।

मेरी हिमालय की यात्राओं का श्रीगणेश १९३८ में हुआ था। १९५४ में मैंने कैलाश देखा और १९५६ में बर्मा प्रदेश की शान रियासत। नागा प्रदेश और मणीपुर की १९६२ में यह दूसरी यात्रा थी। मणीपुर होकर खुश्की का रास्ता बर्मा को गया है। इसी राह से मैं बहुत पहिले बर्मा जा चुका था। इस भ्रमण में स्पष्ट रूप से यह दिखाई पड़ा कि सारी कोल (सिंगकियाँग), स्वात और लद्दाख के निवासियों में आर्य रक्त मुक्त रूप से बहता है। स्पिती में तो आर्य रक्त में कुछ मिश्रण हो गया है, परन्तु किन्नौर, गढ़वाल, कुमायूँ और पश्चिमी नैपाल में खासिया ही पाये जाते हैं। पूर्वी नैपाल से लेकर नागालैंड मनीपुर तक कीर्ता और नागा जाति की सन्तानें ही अधिकतर पायी जाती हैं।

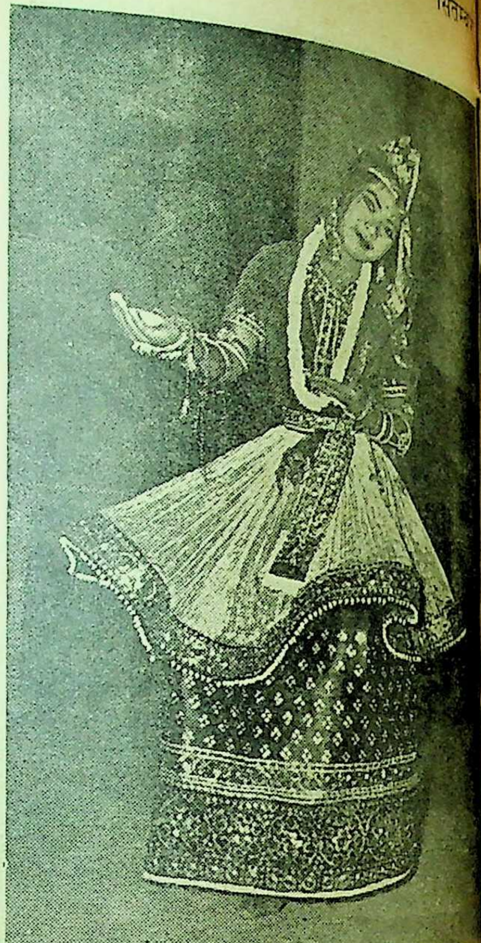

मनीपुरी महिला (नृत्य की मुद्रा में)

ऐटकिन्सन के अनुसार हिमालय में पहिले नागा आये, फिर कीर्ता, और कीर्ता के पश्चात् खास या खसिया। नागा नाग देवता की पूजा किया करते थे। यह काले और छोटे थे, इनके बाल काले भुजंग थे और ये अधिकतर तराई के जंगलों में रहते थे। इनका शासन गुप्त काल तक रहा। इस जाति के वंशज अभी भी नैपा उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम की अरण्य जातियों में जाते हैं। थारू, चेपांग, कुसण्डा और आसाम के वंशी निश्चय ही नागा जाति की सन्तान हैं।

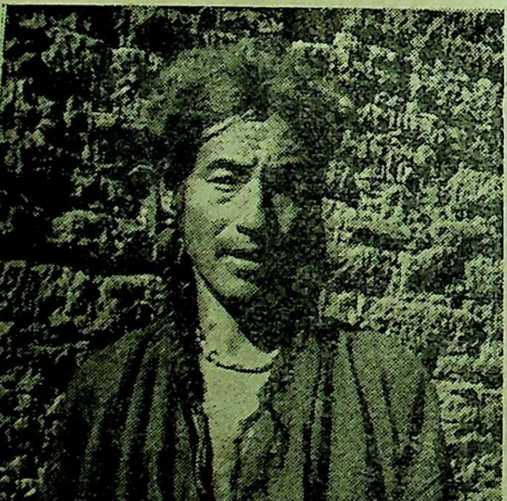

तिब्बत के खम्पा (क्या इनका नाक-नकशा मंगोली है?)

महाभारत में किरातों को हिमालयवासी गया है। भारवि ने तो अपने महाकाव्य का नाम "किरातार्जुनीय" रखा था जिसमें कैलाशवासी शिव अर्जुन से नकली युद्ध तथा प्रसन्न होकर पाशुपत देने का विशद वर्णन है। किरातों (कीर्ताओं) का शरीर नाक-नकशा एवं रंग नैपाल और नेफा के निवासियों मिलता है। इनका आकार-प्रकार (फीचर्स) मंगो आकार-प्रकार कहा जाता है। किन्तु आज तक यह प्रमा णित नहीं हो पाया है कि यह लोग मंगोलिया से हैं। एच० जी० वेल्स इन्हें चीनी जापानी शाखा मानता है, लेकिन इनकी रगों में मंगोल रक्त

भूटानी पुरुष

हता। ये आकार-प्रकार तो उन लोगों के हैं लों से भरे पहाड़ों पर रहते हैं और जिनकी मिला-न्य जातियों से जरा भी नहीं हुई है। अब रहे किन्नौर, गढ़वाल और कूर्मांचल प्रदेश के निवासी श्चिमी नैपाल के निवासी भी खस हैं। मध्य स और किरातों के रक्त का मिश्रण है। वहाँ जातियों में खसों का रक्त है वह अपने को गोरखा ने का अधिकार रखते हैं। मगर और गुरंग गोरखा ते हैं। गोरखा का अर्थ है गुरु गोरख नाथ का । गोरखपुर को स्थापित करनेवाले गुरु गोरख-की रगों में तो आर्य रक्त का होना सुगमता से सिद्ध जा सकता है। पूर्वी नैपाल से कुछ शुद्ध किरातों जमघट आरम्भ होता है। तामंग, राएलिम्बु, लपचा ये सभी किरात ही हैं। गोरखा इनको असली नहीं मानते, परन्तु भारतीय सेना में ये बहुत सैनिक समझे जाते हैं। नेफा के निवासी भी इन्हीं नों की उपजातियों में से हैं।

खस कौन थे? जब आर्य लोग स्वात घाटी से हुए तब कुछ तो सीधे पूर्व की ओर चल पड़े और क्षिण के पर्वतों को पार कर गंगा सिन्धु के उपजाऊ मैदान में जा घुसे। जो हिमालय के उत्तर की ओर थे उनका मार्ग अनउपजाऊ भूमि में से था। राह में उन्हें जो घाटियाँ मिलती गयीं वे उनमें प्रवेश करते गये और बस्तियाँ बसाते गये। परन्तु घाटियाँ कम होने के कारण उन्हें आगे बढ़ना पड़ा। उनका यह बढ़ाव अत्यंत शीघ्र गति से हुआ और थोड़े ही समय में वे नैपाल की पश्चिमी सीमा पर पहुँच गए। जो शाखा दक्षिण को चली थी उसने गंगा सिन्धु के विस्तृत मैदान में असंख्य पशुओं के चरागाह स्थापित किये, आखेट किया, खेती की, युद्ध किये, कविताएँ लिखीं और आर्य धर्म की स्थापना की। जब इनकी आबादी बढ़ी तो पूर्व की ओर बढ़े। शतियाँ बीत गयीं। जब गंगा के तट पर पहुँचे और जब गंगा और उसकी सहायक नदियों की घाटियों से होकर पहाड़ों में प्रवेश किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उन्हींकी जाति के लोग वहाँपर पहिले से बसे हुए हैं तो उन्होंने उन्हें खसिया (पश्चिम से आई हुई जाति) कहा। ऐटकिंसन कहता है कि खस एक शक्तिशाली महान् जाति थी

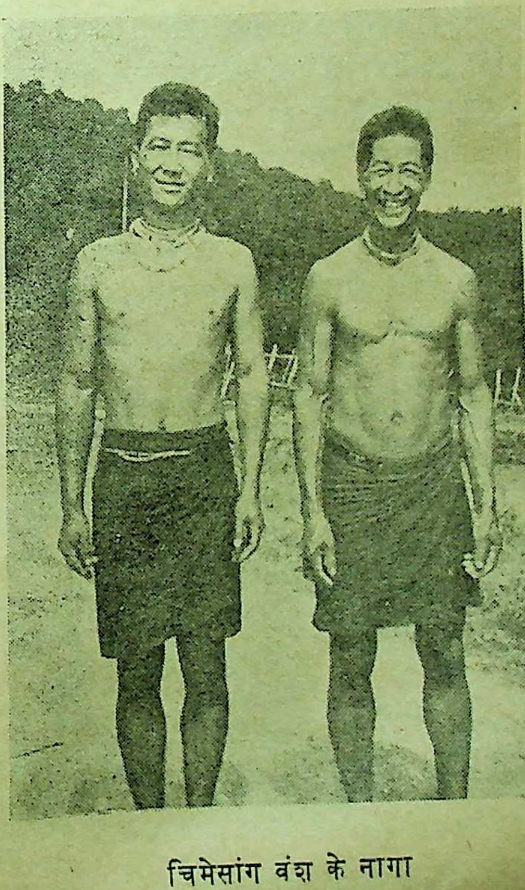

चिमेसांग वंश के नागा

जिसकी बस्तियाँ काशगर, लद्दाख, कश्मीर और पश्चिमी नैपाल तक फैली हुई थीं। उसका कहना है कि कुमायूँ के खासिया वैसे ही हैं जैसे काशगर और कश्मीर के।

जब खासिया पश्चिम की ओर बढ़े तो किरात पूर्व की ओर चले। कुछ ने मैदानों में उतरने का प्रयत्न भी किया परन्तु उन्हें द्रविड़ों और आर्यों ने पुनः पहाड़ों में धकेल दिया। इस प्रकार वह पश्चिमी बर्मा तक पहुँच गये। नेफा की भूमि उपजाऊ न थी। इसलिए वे सांगपो (ऊपरी ब्रह्मपुत्र) की गर्म और उपजाऊ घाटियों में जा घुसे। ऐटकिंसन कहता है कि नेफा की एक मुख्य जाति दफ़ला के लोग तवांग के उत्तर सांगपो के आसपास (ब्रह्मपुत्र का तिब्बत में प्रचलित नाम) पाये जाते हैं। किंगडन वार्ड तो बिलकुल स्पष्ट कहता है कि आसाम के पहाड़ों और जंगलों की खराब जलवायु से बचने के लिए नेफा निवासी सांगपो की घाटी में अभी तक ऊपर उत्तर की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

सिन्धु और गंगा के आर्य्यों की एक शाखा पूरब की ओर बढ़ी। इस शाखा के राजकुमारों ने मणीपुर, मिशमी और अवर की पहाड़ियों में राज्य स्थापित किये। आर्य नदियों और घाटियों को बहुत पसन्द करते थे और इनके सहारे वह और ऊपर तक बढ़ गये। परशुराम के नेतृत्व में तो वे लोहित के कैलाश तक गये और वहाँपर परशुराम कुंड की स्थापना की। हिमालय प्रदेश में कैलाश हिम से आच्छादित सबसे ऊँचे शिखर को कहते हैं, जैसे किन्नौर का कैलाश पालपा के सामने का पहाड़ है, केदार घाटी का कैलाश उसके उत्तर में है। इसी भाँति लोहित निवासियों का कैलाश वह था जहाँसे लोहित नदी निकलती थी। भाग्य का विधान कहिए कि लोहित का कैलाश, लोहित का उद्गम और परम पवित्र परशुराम कुंड अँगरेजों के षड्यन्त्र के कारण आज तिब्बत में है। आजकल यात्री जिस परशुराम कुंड की यात्रा करते हैं वह नकली है जिसकी स्थापना एक साधू ने अठारहवीं शती में की थी।

किन्नौर का एक परिवार (मध्य हिमालय)

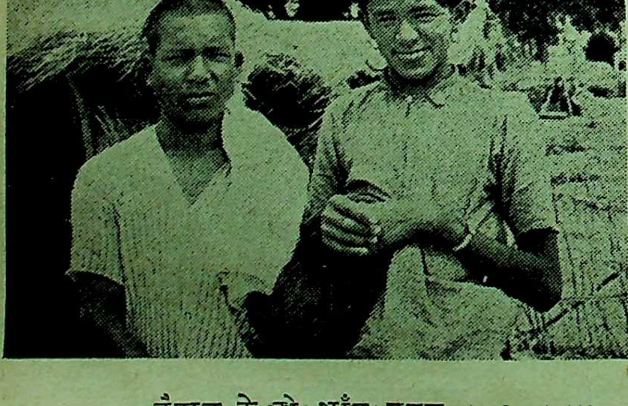

नैपाल के दो भाँटू युवक

आर्यों की दूसरी शाखा तिब्बत पहुँची और वहाँ सूर्यवंशी राजपूतों ने ५०० विक्रमपूर्व से १००० विक्रमी तक लासा में राज्य किया। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणों और राजपूतों की बस्तियाँ स्थापित कीं।

जिस समय चीन का सम्राट् हुआंग टी, तातारियों यूची और हूणों से (जिनको हम आर्य कहते हैं और जिन्हें कुछ इतिहासकारों ने भ्रमवश मंगोल समझ लिया है) बचने के लिए चीनी दीवार विक्रम से २५० वर्ष पहिले बना रहा था, उस समय तक हिमालय के प्रदेशों में आर्य खासिया, किरात लोग छा चुके थे। तिब्बत में इनकी बस्तियाँ बस चुकीं थीं। उस समय चीनियों का कहीं

नोंनिशान भी नहीं था। वे तो तातारियों के भय से र के पीछे दुबक चुके थे। रहा तातारियों के विषय तो इनका आना तो विक्रम से १०० वर्ष पूर्व ही म हुआ। इनकी एक शाखा तिब्बत के अन्दर घुसी तु मिथिला से तिब्बत में पहुँचे हुए कियांग लोगों से कर वह शाखा कोकोनोर में बस गयी। तातारियों दूसरी शाखा (छोटे यूची) अवश्य तिब्बत के नों तक पहुँची। ये लोग चरवाहे थे और इधर से घूमते रहते थे। इनमें से कुछ लद्दाख के रूकशू के के में भी पहुँचे थे। इस प्रकार तिब्बत तथा हिमालय में बहुतायत भारतीयों की है, और वहाँ इन्हींकी न बसी हुई हैं।

स्तव में चीनियों को तो तिब्बत के विषय में कुछ नहीं था। सत्यता तो यह है कि माओ के आने ल्हासा से पीकिंग तक पहुँचने में चार महीने लग ते। चीनियों को तिब्बत के विषय में जानकारी यान, सुंगयुंग, हुएनसांग जैसे धार्मिक यात्रियों धारण करके आनेवाले लोगों द्वारा ही ज्ञात हो थी। जब भारत और तिब्बत के विषय में उन्हें विवरण प्राप्त हुआ तो उनकी लार टपक पड़ी। ने तिब्बत को हड़पने की ठान ली।

से ही हुएनसांग चीन वापिस पहुँचा, चीनियों ने पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उन पर खूब मार और उन्होंने चीनी राजकुमारियों का विवाह तिब्बत जा (जो आर्यों का वंशज था) से करके अपनी छुड़ाई। यह घटना लगभग ६५० ईस्वी की है। चीनियों ने वहाँ षडयन्त्र करना आरम्भ किया। ही उन्होंने भारत के विरुद्ध खूब प्रचार किया। फलस्वरूप से वहाँके लोगों में सूर्यवंशी शासकों के भावना जाग उठी। एक तो चीनी षडयंत्र, फिर द का जनून! इन दोनों ने मिल कर सूर्यवंशी यों के पैर उखाड़ दिये। फलस्वरूप सूर्यवंशी राज्य का अन्तिम राजा लांग उरमा ८४२ ई० में मारा गया। सूर्यवंशी राजपूत लद्दाख भाग गये। इस परिवार के राजकुमारों ने उन्नीसवीं शती तक लद्दाख में राज्य किया। जो लोग दक्षिण की ओर भागे उन्होंने भूटान और सिक्किम में राजवंशों की नींवें डालीं। कुछ पूर्व की ओर बढ़े और पूर्वी तिब्बत में आज भी खम्पा नाम से पुकारे जाते हैं और आज भी दलाई लामा के रक्षक समझे जाते हैं।

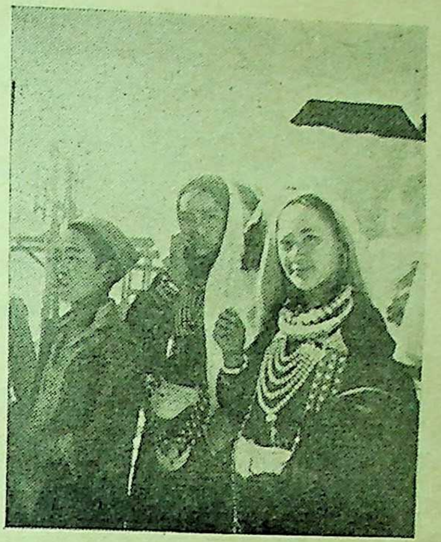

दारमा की दो युवतियाँ और बालक (नेफा)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पहाड़ी जातियाँ आर्यों से पहिले ही हिमालय में आ चुकी थीं और मैक्समूलर आदि भी स्वीकार करते हैं कि ऋग्वेद की रचना ईसा से १६०० वर्ष पूर्व तक समाप्त हो चुकी थी। यदि यह माना जाय कि आर्यों को भारत में आने में ४०० वर्ष लगे होंगे तो यह कहना गलत न होगा कि खासिया, नागा और कीर्ता आज से ४००० वर्ष पूर्व हिमालय मे आये थे। यदि ये जातियाँ भारतीय नहीं हैं तो असली भारतीय और हैं कौन ?

इंग्लैण्ड का प्रोफ्यूमो काण्ड

पं० वेंकटेश नारायण तिवारी

इंग्लैण्ड के युद्ध-मंत्री प्रोफ्यूमो-कांड की इतिश्री अभी नहीं दिखायी देती। यह पाँचवाँ कारण है जिसके सबब से इंग्लैण्ड की टोरी (अनुदार) सरकार की खैरियत नहीं मालूम होती।

उनमें से चार कारण ये हैं जिनकी वजह से इंग्लैण्ड की जनता 'त्राहि-त्राहि' मचा रही है। एक तो वहाँ कड़ी सर्दी पड़ी और इंग्लैण्ड में सर्दी के कारण गरीबों की वह दुर्दशा हुई जिसका हम भारतवासी अनुमान भी नहीं लगा सकते। दूसरा कारण यह था कि आज भी वहाँ प्रायः ५५ लाख से ऊपर बेरोजगार मजदूर हैं। तीसरा कारण यह है कि इंग्लैण्ड के पास सुरक्षा के लिए दूर मार का कोई सुविधाजनक आणविक प्रक्षेप अस्त्र नहीं है। वह 'स्काई बोल्ट' नामक एक ऐसा अस्त्र अपने लिए अमरीका की एक कंपनी में तैयार करवा रहा था। वह अस्त्र वायुयान से चलाया जा सकता था। किंतु अमरीका की सरकार ने उसका निर्माण रोक दिया। इससे इंग्लैण्ड के पास आत्म-रक्षा के लिए अपना कोई भी प्रक्षेपणास्त्र नहीं रह गया। इससे इंग्लण्ड की सुरक्षा स्थिति निर्बल हो गयी और उसे अमरीका के आणविक प्रक्षेपों पर निर्भर रहने को विवश होना पड़ा है। चौथा कारण यह है कि इंग्लैण्ड की अनुदार-सरकार पश्चिमी योरप के छः देशों की साझा-मंडी में शामिल होना चाहती थी, लेकिन जनरल डी गाल के विरोध के कारण उसमें वह शामिल न हो सकी। इन सब राजनीतिक असफलताओं के कारण वहाँकी वर्तमान् सरकार की साख काफी गिर गयी। इधर जो उपचुनाव हुए उनसे स्पष्ट हो गया कि वह लोकप्रिय नहीं रह गयी। इससे इंग्लैण्ड का अनुदार दल इस नतीजे पर पहुँचा है कि अपनी खैरियत के लिए प्रधान मंत्री मिस्टर मैकमिलन से मुक्ति पाना आवश्यक है।

इसी बीच सहसा प्रोफ्यूमो-कांड हो गया। मार्च में संसद में श्री प्रोफ्यूमो ने कहा था कि मिस क्रिस्टीन कीलर के साथ मेरा कोई अनुचित संबंध नहीं रहा। बाद में संसद के सामने उन्होंने स्वीकार किया कि उनका पहला वक्तव्य गलत था और मिस कीलर के साथ उनका अनुचित संबंध रहा है। इस तरह की घटना संसद के सामने इतिहास में पहिली बार आयी। जहाँ तक मालूम है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि इंग्लैण्ड के प्रमुख मंत्रियों में से प्रोफ्यूमो के अतिरिक्त इस तरह का गलत वक्तव्य किसी मंत्री ने कभी नहीं दिया।

प्रोफ्यूमो ने मार्च में जो पहला वक्तव्य दिया था उसमें यह कहा गया था कि जो कोई उनपर यह आरोप लगाएगा कि मिस कीलर के साथ उनका अनुचित संबंध है, उस पर वह मानहानि का मुकदमा चलाएँगे और जो रुपया उन्हें मिलेगा, उसे वह तुरंत स्वीकार कर लेंगे। इस तरह प्रोफ्यूमो के मार्च के वक्तव्य के बाद उन्होंने मानहानि का दावा दो समाचार-पत्रों पर किया और एक ने तो अदालत के फैसले की वजह से मानहानि की क्षतिपूर्ति का रुपया दिया और दूसरे समाचार-पत्र ने अदालत के बाहर समझौता कर के रुपये का भुगतान कर दिया। इसके बाद जून में संसद् के सामने उनका दूसरा वक्तव्य हुआ जिसमें उन्होंने कहा कि मेरा पहला वक्तव्य झूठा था। वास्तव में मिस कीलर के साथ मेरा अनुचित व्यवहार रहा है। इस दूसरे बयान का कारण क्या था ? जहाँ तक मालूम हो सका है, वह कारण था डाक्टर वार्ड की प्रतिहिंसा की भावना। संसद् में दिये गये श्री प्रोफ्यूमो के पहले वक्तव्य से डाक्टर वार्ड तो फँस गये, और श्री प्रोफ्यूमो साफ बच गये। अतः डा० वार्ड ने बदला लेना चाहा और इसलिए उन्होंने विरोधी दल (मजदूर दल) के नेता के नाम एक पत्र लिखा जिससे यह साफ-साफ ध्वनित होता था कि श्री प्रोफ्यूमो का मिस कीलर के साथ अनुचित संबंध था। इसी बीच 'न्यूज़ आफ द वर्ल्ड' नामक प्रसिद्ध और प्रभावशाली पत्र ने मिस कीलर की आत्मकथा ८४००० स्टर्लिंग पौंड में खरीदकर प्रकाशित करना आरंभ कर दिया। उस आत्मकथा में बड़ी रोचक बातें आयी हैं। उदाहरणार्थ, पाकिस्तान के राष्ट्रपति, फील्ड मार्शल अयूब के संबंध में मिस कीलर ने यह लिखा है कि तालाब में नहाते समय फील्ड मार्शल अयूब ने मुझे गोद में उठा लिया। कहा जाता है कि यह अंश मिस कीलर की आत्मकथा में आया तो सही, पर इसका कारण कोई भारतीय राजनयिक है, नहीं तो यह बात स्पष्ट रूप में पाठकों के सामने न आती। पाकिस्तान का कहना है कि इस षड्यंत्र में किसी भारतीय राजनयिक का हाथ है। जो कुछ भी हो, मिस कीलर की आत्मकथा

१९६३

काशित करने के लिए 'न्यूज आफ द वर्ल्ड' ने ८४,००० ड दिये। १ पौंड का साढ़े तेरह रुपए मूल्य होता है। ,००० हजार पौंडों का मूल्य भारत की मुद्रा में ११ ख ३४ हजार रुपये हुआ। इंग्लैण्ड की एक पतिता अपनी आत्मकथा के लिए ११ लाख ३४ हजार रुपए और डा० राजेन्द्रप्रसाद को अपनी आत्मकथा लिखने लिए १ लाख रुपए भी न मिलें! इंग्लैण्ड और भारत में कों की अवस्था में जो विशाल अंतर है, वह इस घटना ष्ट हो जाता है।

युद्ध-मंत्री श्री प्रोफ्यूमो के दूसरे वक्तव्य के बाद हाउस कामन्स (इंग्लैण्ड की लोकसभा) में जो बहस हुई वह बड़ी रोचक कहानी है। विपक्षी दल के नेता श्री विलसन ने अपने भाषण में कहा कि व्यक्तिगत मला वे नहीं उठाना चाहते। लेकिन एक रूसी राज-यिक भी मिस कीलर का प्रेमी था। श्री प्रोफ्यूमो के बाद कीलर के पास वह जाता था। अतएव वे यह जानना ते हैं कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिए क्या कार्यवाही की क्योंकि ऐसी अवस्था में यह संभावना हो सकती है द्वारा युद्धमंत्री से देश की सुरक्षा के कोई गुप्त समाचार कर रूसी राजनयिक को पहुँचा दिये जाते हों। ण्ड के प्रधान मंत्री श्री मैकमिलन ने उत्तर में कहा खेद की बात है कि मुझे श्री प्रोफ्यूमो के इस चक्कर ड़ जाने की कोई सूचना कभी किसी ने नहीं दी; ण्ड के प्रधान मंत्री ने यह भी कहा कि श्री प्रोफ्यूमो-ने मेरे हृदय में जो चोट की है वह स्थायी है।

संयोग से इंग्लैण्ड में इसी बीच एक साथ गुप्तचर रों की भी कई घटनाएँ हुईं जिनसे जनता शंकित हो उठी देश की सुरक्षा की गुप्त बातें सुरक्षित नहीं हैं। कई सूस इंग्लैण्ड में पकड़े गये। इनमें भौतिक शास्त्र के सिद्ध विशेषज्ञ श्री मरेली भी थे। उनके ऊपर यह आरोप गाया गया कि उनके पास जासूसी के सब औजार पाये ये। उन्होंने अपने बचाव में यह कहा कि यह औजार के पास इसलिए थे कि मैं रूसियों की कार्यवाही का ध्ययन करना चाहता था और यह पता लगाने के फेर में था कि रूसी जासूस किस तरह से काम करते हैं। अंत में उनकी बात मानी गयी और जूरी ने उन्हें आरोपों से मुक्त किया।

स्वीडन का भी एक जासूस पकड़ा गया जिसका नाम है श्री विनर स्टार्म। इसपर मुकदमा चल रहा है।

एक जासूस की बावत, जो अंग्रेज है और जिसका नाम फिल्बी है, कहा जाता है कि वह रूस भाग गया। कुछ लोगों का कहना है कि वह रूस में नहीं है। एक प्रश्न के उत्तर में टोरी सरकार के एक प्रमुख मंत्री ने यह कहा कि उसकी बावत कुछ कहना इस समय संभव नहीं है।

जहाँ तक मालूम हुआ है, वहाँ तक हम कह सकते हैं कि प्रधान मंत्री श्री मैकमिलन के प्रति विद्वेष की भावना, उनके भाषण के बाद, ठंडी पड़ गयी। उनके भाषण के बाद सबने एक स्वर से कहा कि उनका कोई दोष नहीं है, लेकिन सबने यह आश्चर्य प्रकट किया कि देश की सुरक्षा के संबंध में प्रधान मंत्री श्री मैकमिलन इतने बेखबर कैसे रहे। श्री मैकमिलन ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उनकी नेतागीरी खतरे में पड़ गयी थी और वे नेता पद छोड़ने की बात सोच रहे थे, किंतु अपनी पत्नी के आग्रह से अभी वे अपने पद पर बने रहेंगे। टोरी पार्टी का नवयुवक दल इस बात को मानने के लिए तो तैयार है कि दो वेश्याओं के कहने से दल का प्रधान मंत्री इस्तीफा न दे, किंतु वे स्पष्टरूप से यह भी समझने लगे हैं कि अगले चुनाव में नेता कोई और हो तो ठीक होगा, क्योंकि वे नहीं चाहते कि अगले चुनाव में वे श्री मैकमिलन के नेतृत्व में लड़ें। समाचार-पत्रों का कहना है कि श्री मैक-मिलन का त्यागपत्र अक्टूबर में हो जाएगा। लेकिन अभी इसके कुछ लक्षण नहीं दिखायी पड़ते।

श्री प्रोफ्यूमो का एक बड़े समृद्ध और धनी घर में जन्म हुआ और उन्हें अधिक से अधिक उत्तम शिक्षा मिली। यदि ऐसा आदमी वेश्या के फेर में पड़कर खराब हो सकता है तो छुटभइयों का क्या हाल होगा? इंग्लैण्ड का जनमत इतना जागरूक है कि टोरी सरकार इस प्रोफ्यूमो-काण्ड से हिल गयी है। उसे इस कांड के राजनीतिक पहलू की जाँच करने के लिए एक सुप्रसिद्ध जज को नियुक्त करना पड़ा। किंतु प्रधान मंत्री श्री मैकमिलन ने कहा है कि इस काण्ड की बहुत सी बातें जाँच-कमीशन के सामने न आयेंगी। इसपर विपक्षी-दल के नेता ने आश्चर्य और असंतोष व्यक्त किया। अतएव जब जाँच कमीशन की रिपोर्ट संसद के सामने आवेगी तब इस काण्ड की गूँज फिर सुनायी देगी।

डा० वार्ड पर मुकदमा चलाया गया। पहली अदालत का काम सिर्फ इतना जानना था कि मामला संगीन है या नहीं और जूरी के सामने उसका मामला जाय या नहीं। पहली अदालत के सामने गवाहियाँ हुईं और अंत में जज ने यह निर्णय किया कि जूरी के सामने यह मामला जाना चाहिए। डा० वार्ड पर आठ दोष आरोपित किये गये थे, लेकिन जूरी के सामने सात ही आरोप लगाये गये। मिस कीलर और मिस राइस डेविस की गवाहियाँ दोनों अदालतों के सामने हुईं, लेकिन जज ने अपने भाषण में कहा कि यह जूरी को तय करना है कि कहाँ तक डाक्टर वार्ड की बात मानी जाय और कहाँ तक गवाहों की। सबूत पक्ष के वकील ने साढ़े पाँच घंटे तक डाक्टर वार्ड से जिरह की। डा० वार्ड ने यह तो स्वीकार किया कि उनका आचरण बेहूदा था लेकिन उनपर जो दोष लगाया गया कि वे वेश्याओं से रुपया लेते थे, उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

जो कुछ भी हो, डा० वार्ड पर यह अभियोग प्रमाणित हो गया कि वे वेश्याओं से रुपया लेते थे जिनमें से दो के नाम प्रमुख हैं—मिस कीलर और मिस राइस डेविस। जूरी में ग्यारह मर्द थे और एक महिला थी। उसने सर्वसम्मति से दो आरोपों को सही बतलाया। जूरी के एकमत फैसले के बाद जज सर आर्थर मार्शल को इस मत को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा न रह गया। अतएव उन्होंने अपने फैसले में डा० वार्ड को दो जुर्मों का दोषी ठहराया। वे कुछ दिनों बाद अपना फैसला देनेवाले थे, किंतु इस बीच डा० वार्ड ने आत्महत्या कर ली। इसलिए मामला अब खटाई में पड़ गया है।

अब तरह तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं कि डा० वार्ड ने क्यों आत्म-हत्या की? उनके मित्रों ने उनका साथ नहीं दिया, क्या इस कारण डा० वार्ड ने आत्म-हत्या कर ली? लार्ड एस्टर और श्री फेयरबैंक जूनियर ने अदालत के सामने डा० वार्ड की सफाई में कोई बयान नहीं दिया, यहाँ तक कि उनसे अपना सारा संबंध तोड़ लिया। डा० वार्ड को इससे बहुत धक्का पहुँचा। मौज मजे में जो लोग डाक्टर वार्ड के साथी रहे, वे विपत्ति आने पर उनका साथ छोड़ गये। डा० वार्ड को आशा थी कि वे उनका साथ देंगे, किंतु ऐसे मामलों में बुद्धिमान लोग अपने को दूर ही रखते हैं। वार्ड का अनुभव कोई अनोखा नहीं था।

प्रोफ्यूमो काण्ड से यह स्पष्ट हो गया है कि इंग्लैंड की जनता कितनी जागरूक है, और वह बड़े से बड़े मंत्री को, यदि वह चरित्रहीन हो, तो सहन नहीं कर सकती। इस काण्ड से यह भी मालूम होता है कि वहाँके संसद की गौरवशाली और स्वस्थ परम्पराएँ अब भी जीवित और सक्रिय हैं। प्रोफ्यूमो बड़े मेधावी और योग्य मंत्री थे, और उनका भविष्य बड़ा उज्ज्वल समझा जाता था। वे बहुत धनी भी हैं। किंतु उनकी चरित्र की कमजोरी उन्हें ले डूबी। इस काण्ड से यह भी स्पष्ट हो गया कि अंतर्राष्ट्रीय गुप्तचरी कितनी सक्रिय है और उसके लिए किस प्रकार के हथकंडों का प्रयोग किया जाता है। वे हथकंडे कितने पुराने हैं! किंतु मनुष्य की आदिम दुर्बलताएँ इतनी प्रबल हैं कि वह इतिहास से कुछ नहीं सीखता, और बार-बार उसी जाल में फँस जाता है।

लुगु भाषा समिति के अध्यक्ष सूचनामंत्री डॉ० बी० गोपाल रेड्डी (बीच में) तेलुगु भाषा में 'विश्व-धर्म एव र्शन' विश्वकोष का ७वाँ खंड हैदराबाद में राष्ट्रपति डॉ० एस्० राधाकृष्णन् को सादर अर्पित कर रहे हैं।

सरदार हुकुमसिंह की अध्यक्षता में अमेरिका गए हुए भारतीय संसदीय सद्भावना मंडल की वाशिंगटन में प्रेसीडेन्ट कैनेडी से भेंट।

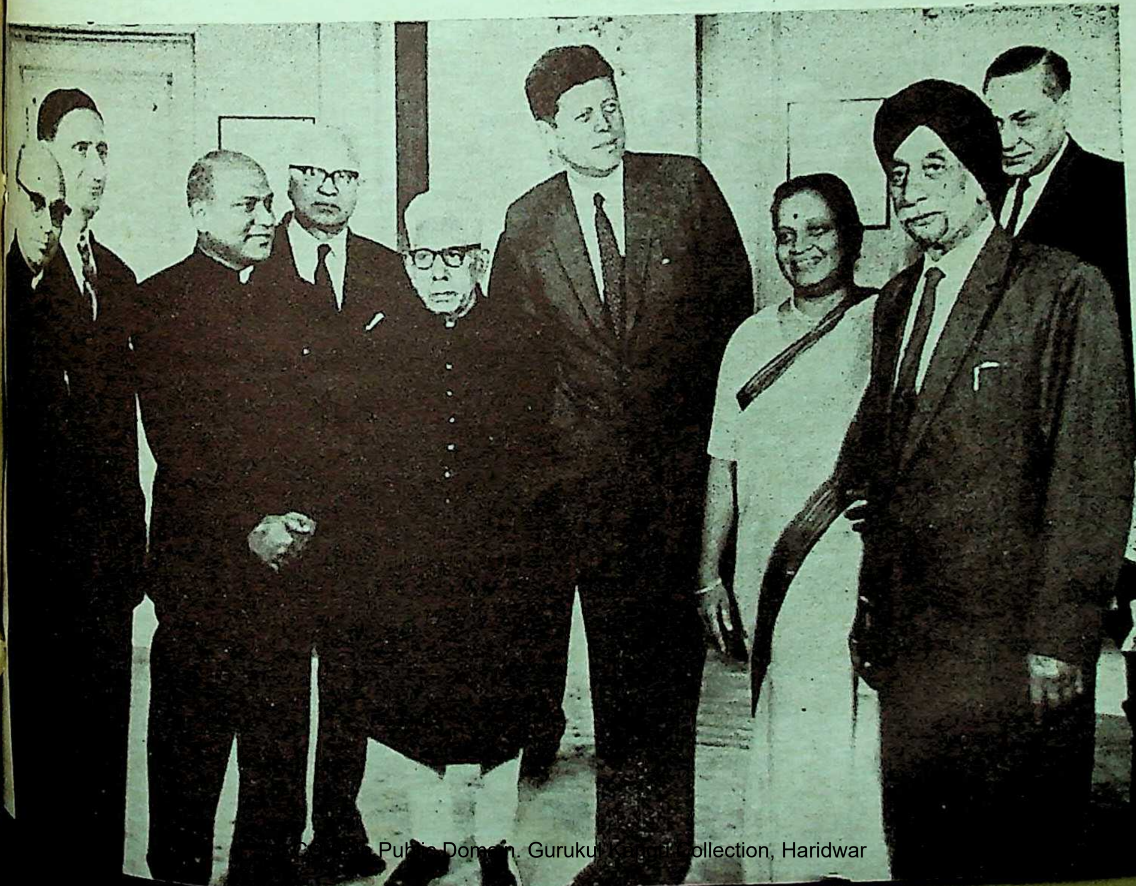

लदाख के एक दुर्गम स्थान में हमारे वीर जवान तोप को मोरचे पर पहुँचा रहे हैं।

लदाख के निर्जन पहाड़ी स्थानों में जहां मोटर नहीं जा सकती, आवश्यक सैनिक सामान कुलियों से भेजा जाता है।

भारत का वर्तमान कोयला उद्योग

श्री रमेशचन्द्र चौबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

के आणविक युग में भी शक्ति के साधनों में कोयले का स्थान महत्त्वपूर्ण है। कोयला उद्योगों की ला है। किसी भी देश के आर्थिक साधनों के में कोयले की पर्याप्तता का महत्व सर्वोपरि नी, इँग्लैंड आदि देशों की औद्योगिक क्रांति उन कोयला पूर्ति के कारण ही संभव हो सकी थी। में लार्ड कीन्स का कथन कि "जर्मन साम्राज्य रक्त और लोहे पर नहीं बल्कि कोयले और पड़ी है", अपना विशेष स्थान रखता है। ऐसे कि भारत अपने औद्योगिक क्रांति की ओर है, कोयला एक निस्संदेह राष्ट्रीय महत्व की वस्तु है। स्वतंत्र भारत की नींव सुव्यवस्थित अर्थ-पर रखने के हेतु योजनाकाल से ही कोयला और द्योगों को प्रधानता दी गयी है। विगत वर्ष भारत संकट के फलस्वरूप जो उत्पादन में ह्रास परि-हुआ, रेल परिवहन की अपर्याप्तता अनुभव की गयी, इस उद्योग पर जनदृष्टि केन्द्रित हुई और इसकी ओं के समाधान के सम्बन्ध में योजना आयोग प्रशासन का ध्यान आकर्षित हुआ।

की कोयला संपत्ति——

वर्गीकरण के आधार पर भारतीय कोयला दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

—गोंडवाना क्षेत्र।
—टर्शियरी क्षेत्र।

डवाना क्षेत्र के अन्तर्गत (अ) दामोदर घाटी क्षेत्र (१) झरिया (२) रानीगंज (३) बोकारो (४) (५) करनपुर।

(ब) महानदी क्षेत्र :
(स) सोनघाटी क्षेत्र
(द) गोदावरी घाटी क्षेत्र
(इ) सतपुड़ा और वर्धा क्षेत्र
(१) चांदा क्षेत्र (२) पंचवेली क्षेत्र

टर्शियरी कोयला क्षेत्र——(अ) भेलकम (ब) पंजाब कश्मीर (द) राजस्थान (इ) कच्छ।

भारत में मुख्यतः तीन प्रकार का कोयला पाया है :—

(१) बिट्यूमिनस——गोंडवाना में (भारत में पाया जाने वाला ९८ प्रतिशत कोयला)।

(२) लिगनाइट——मद्रास, राजस्थान एवं कश्मीर में।

(३) एन्थ्रेसाइट——जम्मू तथा कश्मीर में।

कोयला-स्कंध——

प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय का अनुमान	तृतीय पंचवर्षीय योजना के समय का अनुमान
३७,३० करोड़ टन	५०,०० करोड़ टन

नोट——इनके अतिरिक्त संभवतः ८०,०० करोड़ टन के स्कंधों का और भी अनुमान है।

हमारे देश का संसार के कोयला उत्पन्न करनेवाले देशों में आठवाँ स्थान है।

भारतीय कोयला संपत्ति के गुणदोष :——

लोहे के समान, भारत कोयले के संबंध में बहुत अधिक भाग्यवान नहीं है। यूरोप और अमरीका शीत कटिबंधों में पाये जानेवाले कोयले की तुलना में भारत के उष्ण कटिबंधों में प्राप्त कोयला उतना अच्छा नहीं है। उसमें जल अंश तथा फासफोरस भी अधिक होता है। भारत का अधिकांश कोयला एक ही क्षेत्र में स्थित है। अतः देश के विभिन्न भागों को जहाँ कि उसकी आवश्यकता होती है, भेजने में व्यय बहुत अधिक बढ़ जाता है। देश में पाया जाने वाला कोयला बहुत गहराई पर मिलता है इसलिए उसको निकालने का व्यय भी बहुत होता है। कोयला अधिकतर ऐसे दुर्गम स्थानों में मिलता है जहाँ कि आवास और पेय जल की पूर्ति भी दुष्कर होती है।

कोयला उद्योग का आरंभ और प्रगति :——

भारत में कोयला उद्योग का प्रारंभ ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में आरंभ हुआ। पहिले अनुज्ञा-पत्र १७७४ में वारेन हेस्टिंग्स द्वारा मेसर्स सेमनर एण्ड हीटले कम्पनी को बंगाल की कोयला-खानों से कोयला निकालने की आज्ञा प्रदान की गई थी। यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। सन् १८१४ में रानीगंज के पास कोयला निकालने का कार्य पुनः आरंभ हुआ और १९वीं शताब्दि के मध्य तक रानीगंज में बहुत-सी कोयला खदानें खोदी गईं। इस काम में १८५८ से १८६० तक के भूगर्भ

पर्यवेक्षण से बड़ी सहायता मिली थी। १८६० तक लगभग ५० कोयला खदानों में खुदाई होने लगी थी और रानीगंज में प्रतिवर्ष २,८२,००० टन कोयला निकाला जाने लगा था। २०वीं शती के आरंभ में भारत में कोयले का वार्षिक उत्पादन ६० लाख टन हो गया था। भारत में रेल मार्गों के आरंभ में, औद्योगिक विकास होने से कोयले की माँग बढ़ती गयी और इस उद्योग को स्थायित्व और आर्थिक सुदृढ़ता प्राप्त होती रही। १८७० में स्वेज नहर का मार्ग खुल जाने से यह उद्योग संकट में पड़ गया क्योंकि इस मार्ग से इँगलैंड और भारत के बीच की दूरी और यात्रा का समय कम हो गया। रेलों पर अँगरेजी पूँजी के अधिकार और राजनीतिक कारणों से इँग्लैंड से कोयला आयात किया जाने लगा। इस जलमार्ग से कोयला आयात करना सस्ता भी पड़ता था। प्रथम महायुद्ध के पूर्व की बोकारो पेंच तथा चाँदा घाटी में भी कोयले की खादानें खोदी गयी थीं। १९१४ तक कुल उत्पादन बढ़कर १६५ लाख टन हो गया। बंगाल और बिहार में कुछ खदानों को रेलों ने स्वतः चलाना आरंभ कर दिया था। कोयला उत्पादन की दृष्टि से बिहार अग्रणी है। उसके बाद बंगाल, मध्यप्रदेश और आंध्र प्रदेश का क्रम आता है।

महायुद्धों के बीच के काल की प्रगति

युद्धकाल में औद्योगिक गतिविधियों में एकाएक वृद्धि के कारण कोयले की माँग उसकी पूर्ति से अधिक हो गयी। कोयला उद्योग पूरे काल तक यह प्रयत्न करता रहा कि बढ़ती हुई माँग के साथ उसकी पूर्ति भी बढ़ती रहे। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप कोयले का उत्पादन सन् १९३८ में २ करोड़ टन हो गया था। इस उत्पादन का ८५ प्रतिशत रानीगंज और झरिया क्षेत्र से प्राप्त हुआ। कोक और कोल की माँग एकदम बढ़ गयी थी, अतः बोकारो के कोयला क्षेत्र का अत्यधिक विकास किया गया। इसके अतिरिक्त कोयला क्षेत्रों का विद्युतीकरण भी तेजी के साथ किया गया और केन्द्रीय (दो) विद्युत् गृह बनाये गये। युद्धोपरांत उत्पादन में कमी होना शुरू हो गयी क्योंकि युद्धकाल में यह विकास सीमित था और मशीन एवं उपकरणों के मिलने की कठिनाई के कारण यह क्रम जारी न रह सका। युद्धोपरांत मन्दी के समय कोयले की केवल ४ रुपया टन हो गयी और अनेक कोयला से कोयला निकालना अलाभकर हो गया था। महायुद्ध काल में फिर उद्योगों में समृद्धि का युग कोयले की माँग के साथ साथ कीमतों में भी वृद्धि हुई युद्ध जनित आवश्यकताओं के कारण श्रमिकों की भी अनुभव की गयी। यहाँ तक कि स्त्रियों को भी खण्डों में नीचे कार्य करने की अनुमति दी गयी। काल मे आन्तरिक माँग के अतिरिक्त भारत विदेशों को भी माँग की पूर्ति करनी पड़ती आज भी हम कोयला उत्पादन का ५ प्रतिशत करते हैं।

उद्योग की वर्त्तमान व्यवस्था

१९४८ में निर्धारित औद्योगिक नीति के कोयला उद्योग दो भागों में विभाजित हो गया। कोयला खदानों का संचालन सरकारी क्षेत्र में ही गया। निजी क्षेत्रों में उनकी पुरानी खदानें ही हैं। १९५६ में एक राष्ट्रीय कोयला विकास निगम स्थापना की गयी। इसके अधीन सरकारी से कोयला निकालने, उत्पादन बढ़ाने और सुरक्षित का काम होता है। आरंभ में इसका कार्य ११ खदानों ही प्रारंभ किया गया था परन्तु अब इसके अधीन की संख्या और कार्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। में इस समय लगभग ८५४ कोयला खदानों में कार्य रहा है। देश के औद्योगीकरण के कार्यक्रम में भूत उद्योग होने के कारण संपूर्ण उद्योग का यद्यपि करण नहीं किया गया तथापि यह उद्योग अधिकांश में सरकार द्वारा चलाया जाता है। कोयले की उत्पत्ति लेकर क्रय-विक्रय, मजदूरी, कार्य की दशाएँ, सुरक्षा पर सरकारी नियंत्रण है। वर्तमान में मजदूरी व्यय अन्य व्ययों के अधिक होने के कारण यह उद्योग मूल्य वृद्धि की माँग करता है। परन्तु कोयले का वस्तुओं के उत्पादन व्यय में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है इस कारण कोयले के मूल्य में वृद्धि का परिणाम दूसरी वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि कर जो वर्तमान आर्थिक परिस्थिति में अपेक्षित नहीं है।

भारत में कोयले का उत्पादन

वर्ष			(मिलियन टन)
१९५१	..	..	३४·४३
१९५२	..	..	३६·३०
१९५३	..	..	३५·९८
१९५४	..	..	३६·८८
१९५५	..	..	३८·२३
१९५६-५७	..	..	४०·३०
१९५७-५८	..	..	४४·१०
१९५८-५९	..	..	४५·९४
१९५९-६०	..	..	४७·८२
१९६०-६१	..	..	५४.६२
१९६१-६२	..	..	५५·८०

कोयला एवं रेलें

यले का सबसे अधिक उपयोग देश में ही हो जाता रतीय रेलें ही कोयले की सबसे बड़ी ग्राहक हैं। उत्पादन का १/३ **भाग** से अधिक ले लेती हैं। काल के समय से औद्योगीकरण में द्रुतगति आयी के फलस्वरूप अन्य उद्योगों, जैसे लोहा-इस्पात खानों के स्थापित होने के कारण कोयले की माँग त्याशित वृद्धि हुई है। इसके फलस्वरूप रेल याता- र भी गंभीर प्रभाव पड़ा है। भारतीय रेलों का वहन से भी अधिक भार कोयले का ही होता है।

पंचवर्षीय योजनाओं में कोयला उद्योग

रत में पंचवर्षीय योजना के आरंभ काल में देश ना कोयला उत्पन्न होता था उसका लगभग तिशत भाग उद्योगधंधों में, ३० प्रतिशत रेलों में २५ प्रतिशत अन्य अनेक कार्यों में खर्च होता हम लगभग ५ प्रतिशत कोयला आस-पास के देश —पाकिस्तान, बर्मा, लंका और मलाया आदि देशों निर्यात भी करते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में देश यले का उत्पादन ३·८ करोड़ टन रखा गया था लगभग प्राप्त हो गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में के उत्पादन लक्ष्य को ६ करोड़ टन रखा गया। प्रकार लक्ष्य को पूरा करने के लिए कोयले का उत्पादन करोड़ २० लाख टन और बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त का १ करोड़ टन निजी खानों में तथा शेष १ करोड़ २० लाख टन सरकारी खानों से दिया जावेगा। तृतीय पंचवर्षीय योजना में कोयले का उत्पादन बढ़ाकर ९·७ करोड़ टन रखा गया है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए खानों का यंत्रीकरण, श्रमिकों को प्रशिक्षण और विशेषज्ञों का भारत में लाने का आयोजन किया गया है। बंगाल के दुर्गापुर में एक अँगरेज वैज्ञानिक उपकरण निर्माण करने वाली कम्पनी के आर्थिक सहयोग से कोयले की खदानों में कार्य करनेवाले यंत्रों और अनेक उपकरणों के निर्माण के लिए एक विशाल कारखाना बन चुका है जिससे नई खदानों में शीघ्र कार्य आरंभ करना संभव हो जावेगा।

तृतीय योजना काल में कोयला धोने के कारखानों की संख्या में भी वृद्धि की जा रही है। कोलबोर्ड छोटी खदानों को रेत आदि उपलब्ध कराने में सहायता कर रहा है। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी वृद्धि की जा रही है। राष्ट्रीय कोयला विकास निगम ५ प्रशिक्षण स्कूल खोल चुका है। भारत की दो प्रधान खान और खनिज महाविद्यालय में जो क्रमशः वाराणसी और धनबाद में हैं, उसका विकास किया जा रहा है। खरगपुर की विज्ञान और यांत्रिक संस्था में भी खनिज विज्ञान का शिक्षण आरंभ कर दिया है। तृतीय पंचवर्षीय योजना में लोहे की बढ़ती हुई कोयले की आवश्यकता के लिये दो और कोयला धोने के संयंत्रों का निर्माण किया जा रहा है जिनमें से एक कथारा (तीन मिलियन टन) और दूसरा करणपुर में स्थापित किया जा रहा है। उपर्युक्त कोयला संयंत्रों के अतिरिक्त रेलों की कोयला आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भी सतत प्रयत्न किया जा रहा है जिससे कि रेलों को समुचित मात्रा में अच्छे प्रकार का कोयला प्राप्त हो सके, अन्यथा उनकी कार्यक्षमता गिर जावेगी।

मद्रास की निवेली लिगनाइट योजना

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल से दक्षिण आरकाट जिले के निवेली स्थान में लिगनाइट के भंडार का औद्योगीकरण में प्रयोग करने हेतु एक विशाल योजना कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के मुख्य लक्ष्य इस प्रकार हैं :—

(१) ४·५ मिलियन टन लिगनाइट का उत्पादन।

(२) ४०० एम० व्ही० बिजली उत्पन्न करने के लिए तापगृह का निर्माण।

(३) ७००० टन उर्वरक खाद के कारखाने की स्थापना।

(४) चीनी मिट्टी और अन्य औद्योगिक मिट्टियों का उत्पादन।

इस योजना के पूर्णतः कार्यान्वित होने पर दक्षिण भारत की औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत सीमा तक की जा सकेगी।

कोयले के यातायात की समस्याएँ

कोयले की अधिकांश खदानें बंगाल-बिहार में केन्द्रित होने के कारण देश के अन्य सभी भागों में भी एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो जावेगी। यह अवश्य है कि देश के अन्य भागों में पाये जानेवाले कोयले की उत्पत्ति बढ़ा कर समस्या अंशतः हल हो सकती है।

अभाग्यवश रानीगंज क्षेत्र के बाहर का कोयला औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अनुपयुक्त रहा है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक कोयले के उत्पादन का जो विशाल लक्ष्य रखा गया है उसके फलस्वरूप कोयला ढोने में रेलों पर अवश्य ही एक बड़ा बोझ पड़ेगा।

कोयला संकट का निराकरण

देश में फैले हुए वर्तमान कोयला संकट के निवारण हेतु रेलवे बोर्ड सतत प्रयत्न कर रहा है। अधिक मात्रा में कोयला ढोने के लिए बाक्स, वैगनों का तथा अधिकाधिक रेलवे यार्ड और लाइनों की दोहरी पटरियों का निर्माण किया जा रहा है। मुगलसराय यार्ड की व्यवस्था में और भी सुधार किया गया है। गत वर्ष रेलों द्वारा कोयला लादने की प्रतिदिन वैगन संख्या ५ हजार थी जो संख्या पिछले वर्षों में सबसे अधिक थी। रेलों पर बढ़ते हुए बोझ को कम करने के लिए बंगाल, बिहार और उड़ीसा राज्यों में सड़कों द्वारा कोयला ढोने की योजना बना दी गई है और उस पर कार्य भी हो रहा है। इसके अतिरिक्त देश के अनेक स्थानों में रेलों द्वारा कोयला भंडारों का भी निर्माण किया गया है जिससे आस-पास के क्षेत्रों को कोयला शीघ्रता से उपलब्ध हो सके। इन सब योजनाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अभूतपूर्व वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत कोयला जलमार्ग द्वारा कलकत्ता बन्दरगाह से एक जलयान प्रतिदिन के हिसाब से दक्षिणी और पश्चिमी भारत के स्थानों को भेजा जावेगा। बिहार राज्य की कोयला खदानों से गंगा नदी द्वारा उत्तर प्रदेश के औद्योगिक क्षेत्रों को कोयला भेजने की योजना कार्यान्वित की जा रही है।

लोकसभा में खनिजमंत्री ने भारत-सरकार और बंगाल राज्य के बीच किये गये कोयला उद्योग संबंधी जिस समझौते की रूपरेखा प्रस्तुत की उससे इस उद्योग के संबंध में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ है। माननीय मंत्री ने यह भी आकांक्षा व्यक्त की है कि यदि कोयला उत्पन्न करने वाली अन्य राज्य सरकारें चाहें तो वे भी इसी प्रकार के समझौते भारत-सरकार के साथ कर सकती हैं। इसका एक परिणाम यह होगा कि ऐसी अनेक दूर-दूर स्थित कोयला खदानें जिन्हें राष्ट्रीय कोयला निगम चालू करने में अपने आपको असमर्थ पाता है, अब राज्य सरकारों द्वारा चलाई जावेंगी जिसके फलस्वरूप कोयला उत्पत्ति में वृद्धि होगी। इसका एक परिणाम यह भी होगा कि स्थानीय रूप से कोयले की पूर्ति भी अब शीघ्र हो जाया करेगी।

गत वर्ष लोकसभा में खनिज एवं इंधन मंत्री ने राष्ट्रीय कोयला निगम को यह भी परामर्श दिया कि कोयला उत्पादन बढ़ाने और प्रशासन में क्षमता लाने के उद्देश्य से उसे चाहिए कि वह देश भर के कोयला उत्पादन के क्षेत्रों को छः भागों में बाँट दे। इन क्षेत्रों को उचित और उपयुक्त अधिकार भी सौंपना आवश्यक होगा। इस विकेन्द्रीकरण से स्थानीय खदानों के उत्पादन और प्रबंध में समुचित क्षमता आ जावेगी और उनके अधिकार भी अधिक प्रभावशील हो जावेंगे। प्राप्त शासकीय सूचना के अनुसार राष्ट्रीय कोयला निगम की व्यवस्था में परिवर्तन और अधिनियम में एतदर्थ मूलभूत संशोधनों का एकमेव उद्देश्य यह होगा कि उससे वित्तीय और प्रशासन-अधिकार स्थानीय क्षेत्रो को प्रदान किये जा सकेंगे और निगम की कार्य प्रणाली में सुधार करना संभव होगा।

इन समस्त उपायों और योजनाओं के पूर्णतः सफलीभूत होने पर विश्वास है कि देश के वर्तमान कोयला संकट का निराकरण हो जावेगा। इस संबंध में रेलवे मंत्री, सरदार स्वर्णसिंह ने लोकसभा में घोषणा की थी कि "भारतीय रेलें यथासंभव उद्योगों की कोयला पूर्ति के कार्यक्रम को पूरा करने में अपनी समस्त शक्ति से कार्य करेंगी और योजना के निश्चित लक्ष्यों और अपने दायित्वों को निभाने में भरसक प्रयत्न करेंगी। इस प्रकार देश के योजनाबद्ध औद्योगिक विकास का लक्ष्य भी सफलतापूर्वक पूरा हो जावेगा।" भारतीय रेलें अपनी पूर्व परम्पराओं के अनुरूप राष्ट्र के इस नये संकट को हल करने में और औद्योगिक विकास के निश्चित इष्टों को चरम सीमा तक पहुँचाने में जो योगदान दे रही हैं वह अविस्मरणीय है।

इतिहास-पुराण में वर्णित भाषण-कला

श्री रामशंकर भट्टाचार्य

आज भाषण का युग है। जो भी अपनी जीभ को थोड़ा बहुत चला सकता है, वही अपने को उच्च महोच्च ता समक्ष बैठता है, चाहे नेतृत्व करने की शक्ति उसमें ती भर भी न हो। प्राचीन लोगों ने अपनी प्रज्ञा-हिरण्य निकष में रगड़कर कहा था––"नेता चेत् साधु पश्यति" तो देश का कल्याण हो सकता है, पर आज तो 'जिह्वा भाषते बहु' जिसके लिये कहा जा सके, वही नेता है। णाशक्ति तो आज लुप्तप्राय है। उसका स्थान भाषण- ने ले लिया है। खेद है कि नेताओं का भाषण भी षण न होकर परिभाषण होता जा रहा है (परि- =सनिन्द उपालम्भ) और उत्कृष्ट वक्तृत्व कला नष्टप्राय होती जा रही है।

वक्तृत्वकला की इस हीन दशा में यदि हम अपने हासपुराण पर एक दृष्टि डालें तो इस कला के क्षेत्र में बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। बातचीत करना भाषण देना भी एक अध्यवसाय-साध्य शिक्षणीय कला वह हम आज प्रायः भूल गये हैं और 'गले को फाड़ना' भाषण का नामान्तर समझते हैं। पुराण-रामायण- भारत में भाषण-सम्बन्धी जो सुन्दर विवरण मिलते इन विवरणों में जो विशेषण शब्द व्यवहृत हुए हैं, यदि उनका अध्ययन करें तो इस कला के विषय में अनेक ष्ट बातें हमें ज्ञात होंगी और हम अपने में उन गुणों मावेश कर सकेंगे, ऐसा समझकर भाषण सम्बन्धी णों का एक लघु चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा आशा है पाठकों को यह रुचिकर लगेगा।

इतिहास पुराण में विशिष्ट महापुरुषों के विशेषणों कहीं कहीं इन शब्दों का व्यवहार मिलता है––वाक्यज्ञ, वाक्यवित्, वाक्यविदांवर, वाग्विदांवर, वदतांवर ादि।[1] इन विशेषणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बात- करना निश्चयेन एक विशिष्ट कला है, अन्यथा ष्ट पुरुषों के ये विशेषण कदापि न दिये जाते। विदुर ण्डित लक्षण में भी वाक्य-प्रयोग में कुशलता को स्पृहणीय गुण माना है, अतः उन्होंने 'प्रवृत्तवाक्, चित्रकथः' ये दो लक्षण कहे हैं।[2] आवश्यकता पड़ने पर जिसकी वाणी अवश्य ही प्रवृत्त होती है और जिसकी वाणी नीरस न होकर वैचित्र्ययुक्त होती है, वह पण्डित है। आज भी यह लक्षण सत्य है और जब तक मनुष्य समाज में शब्दव्यवहार प्रचलित रहेगा, तब तक ये लक्षण सत्य माने जायेंगे। रामायण में भी 'कुशलो वक्ता' ये विशेषण कहीं कहीं मिलता है।

महाभारत में भाषणकला का एक महनीय उदाहरण वह है जब कृष्ण ने कौरव सभा में जाकर पाण्डव पक्ष की पुष्टि के लिये भाषण किया था। व्यास के ये शब्द हैं :––

वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः
जीमूत इव धर्मान्ते सर्वां संश्रावयन् सभाम्
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष समभाषत माधवः

(उद्योग ९५।१–२)। वेद व्यास ने यहाँ उत्तम वक्ता का सुन्दर चित्रण किया है। वक्ता के लिये जैसे उत्तम कण्ठ स्वर आवश्यक होता है, उसी प्रकार शारीरिक दोष-हीनता भी (उच्चारणावयवसंबन्धी) आवश्यक होता है; इसी दृष्टि से 'सुद्रंष्ट' (शोमभान = शुभ्र दन्त युक्त) विशेषण दिया गया है। वक्ता किस ओर अपने लक्ष्य को स्थिर रखेगा, यह भी प्रभावकारी भाषण के लिए––विशेष कर जब वह भाषण विशेषज्ञ या विशिष्ट पुरुषों के मध्य में होता है––अत्यन्त आवश्यक है। कृष्ण ने धृतराष्ट्र की ओर मुँह कर भाषण किया, इसका तात्पर्य स्पष्ट है, क्योंकि उस समय भी कुरुराज वृद्ध धृतराष्ट्र शासन के सर्वोच्च अधिकारी थे। यहाँ वक्ता कृष्ण का विशेषण है 'दुन्दुभि-स्वन', दुन्दुभि की तरह दूरगामी गंभीर ध्वनि उनकी थी, यह कहना सफल वक्ता के गुण का ख्यापन ही है। ग्रीष्म-काल के अन्त में और वर्षा के आरम्भ में मेघ का प्राथमिक गर्जन जैसा लोक में आश्चर्यकर होता है, यह उपमा यहाँ कृष्ण कण्ठोत्थ वाणी की दी गयी है। उनकी कण्ठध्वनि पूरी सभा में गूँजती थी, यह भी यहाँ कहा गया है। भाषण

---

[1] —०० रामायण ३।१४।७; १।१।१; १।६९।१५; ३।१०३।९; ७।११।३०; २।१४।२०; ४।६५।२०

[2] —उद्योग पर्व ३३।२८; महाभारत में परस्पर बातचीत और भाषणकला के विषय में बहुशः श्लोक मिलते हैं, यह ज्ञातव्य है।

की सफलता का रहस्य इस वर्णन में स्पष्टतः ही भाषित हुआ है।[1]

वाणी की मधुरता को दिखाने के लिये 'हंसवद्' उपमा प्रायः कही गयी है—'हंसवद् . . . भारती शुश्रुवे' (शान्तिपर्व ३९।२०)। विराट पर्व में भी सैरिन्ध्री का विशेषण 'हंसगद्गदभाषिणी' दिया गया है। नीलकण्ठ **कहते हैं**—"हंसवद् गद्गदं किञ्चित् लुप्ताक्षरं मधुरं वा भाषते" (९।१३)। स्त्रियों के लिये वर्णोच्चारण में कुछ लुप्त हो जाना शोभाकारक होता है (कहीं कहीं)। हंस की उपमा से यही व्यंग्यार्थ ही यहाँ अभिप्रेत है। महाभारत में अनेक स्थलों पर वाणी की उपमा के 'हंस' का उल्लेख किया गया है (शान्ति पर्व ८०।२०)।

मधुर वाणी के प्रसंग में एक विशिष्ट उल्लेख आदिपर्व में है—"श्रोत्रं मधुरया वाचा रमयत्यर्जुनः" (१९९ अ० दाक्षिणात्य पाठ)। यही कारण है कि अर्जुन का 'चारुभाष' विशेषण अनेकत्र मिलता है।

'स्मितपूर्व वाक्य' भी वार्तालाप का एक विशिष्ट गुण है। राजाओं के लिये 'स्मितपूर्वभाषिता' एक गुण माना गया है (राजधर्मपर्व)। परस्पर प्रेम और प्रणय के कारण वाक्य स्मितपूर्व होता है, इसके अनेक उदाहरण महाभारत में प्राप्तव्य हैं। दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला के वाक्य के प्रसंग में 'उवाच हसती वाक्यमिदं सुमधुराक्षरम्' इसका उदाहरण है (आदिपर्व ७१।१४)।

वाणी का गांभीर्य भी एक विशिष्ट गुण है। वामन पुराण में इस विषय में एक अनन्य साधारण दृष्टि है। यहाँ कहा गया है कि राजविशेष के तीन वस्तु गम्भीर होने चाहिए—'त्रिभिर्गभीरः' (संवरण रूप वर्णन)। यहाँ कौन-कौन वस्तु इष्ट हैं, इसका उल्लेख नहीं है, पर विराट पर्व में किसी नारी का 'त्रिगभीरा' विशेषण है, जिसका अर्थ है—'शब्द-बुद्धि-नाभिषु गहना' (नीलकण्ठ टीका)। अतः शब्द में गभीरता होना प्रशस्यता का लक्षण है। (नागरखण्ड १५५।४० भी द्र०)।

अर्थ को लक्ष्यकर भी वाणी के कुछ विशेषण दिए गए हैं। जैसे 'पुष्कलार्थ पदाक्षरा वाणी' (शान्तिपर्व ३९। २०)। उसी प्रकार केवल अक्षर को लक्ष्य कर भी 'मधुराक्षरा' विशेषण कहीं-कहीं मिलता है। वाणी ऐसी होनी चाहिए जिसमें अर्थ बोध में किसी प्रकार की कठिनाई न हो और प्रत्येक्ष अक्षर का यथावत् स्पष्ट उच्चारण हो। यह वाणी का सर्वसंमत गुण है।

मार्कण्डेय पुराण में एक स्थान पर 'दशाष्टदोष रहितो वक्तुं समुपचक्रमे' (१।१८) कहा गया है। वाणी के ये १८ दोष वस्तुतः भाषण के कलंक हैं। उन दोषों का विवेचन स्कन्द पुराण में मिलता है। (कुमारिका खण्ड ४५।६२-७२)।

काशीखण्ड में भाषण कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। यहाँ पुण्यकीर्ति नामक किसी सौगत के भाषण का अविकल चित्रण इस प्रकार किया गया है कि वे भाषणकारी सुस्वर और सुपद व्यक्ति सुस्निग्ध मृदुभाषी थे। उनके भाषण के समय भाषण श्रोता पक्षियों को भी रोमांच होता था और मृग भी स्थिर होकर उनका भाषण सुनते थे (५८।७७-७९)। यह अत्युक्ति हो सकती है, पर इससे भाषण का जो प्रतिमान खड़ा किया गया है, वह सब का आदर्श है।

कुमारिका खण्ड ४५ अध्याय में वक्ता के कुछ विशिष्ट सफलताकारक गुणों का उल्लेख मिलता है, जो आधुनिक वक्ताओं के द्वारा अवश्यमेव द्रष्टव्य है। यहाँ कहा गया है कि जब वक्ता श्रोता और वाक्य अविकल होते हैं तब अभीष्ट अर्थ प्रकट होता है; जब वक्ता के प्रति श्रोता की श्रद्धा नहीं रहती, या श्रोता को वक्ता सर्वथा अज्ञ समझते हैं तब वक्ता का भाषण फलोत्पादक नहीं होता। यदि सत्य पर ध्यान न देकर अपनी दृष्टि से ही कहा जाय या केवल श्रोता का मनोरंजन ही किया जाय तो श्रोता के मन में वक्ता के प्रति संशय हो सकता है। इसलिए अपने दृष्टिकोण को ही सब कुछ न मानकर और श्रोता के ज्ञान के प्रति आदर रखते हुए सत्य पर निर्भर रहकर जो भाषण देता है वही प्रकृत वक्ता है (४५।७३-७७)। आधुनिक काल के राजनीतिक वक्ताओं को यह स्थल देखना चाहिए।

यह सत्य है कि अर्थयुक्त चमत्कारपूर्ण वाणी अधिक नहीं बोली जा सकती—"अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहुभाषितुम्" (उद्योग ३४।७६) पर मधुर शब्दों से कही गयी वाक् कल्याणकारी होती है—"अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता" (उद्योग ३४-७७) यह जानकर भाषण कला का अभ्यास लोकसेवी पुरुषार्थी को करना ही चाहिए।

---

[1]—इस स्थल पर कृष्ण का शारीरिक वैशिष्ट्य कहा गया है, जिसका कारण यह है कि शारीरिक आकृति भी भाषण पर अपना प्रभाव डालती है—'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'। महाभारत में भीष्मद्रोणयुधिष्ठिरादि महापुरुषों के भाषण वर्णन के समय उनके चक्षु-बाहु-वक्ष आदि अवयवों की सुन्दरता भी प्रायः सर्वत्र कही गई है। आज के गलितकेश, स्खलित दन्त, स्तिमित चक्षु, शीर्णवक्ष, लम्बोदर, तेजोहीन ललाट और वाचाल एवं अध्यहीनशून्य नेताओं को देखकर हमें रोना छोड़कर और कुछ आता ही नहीं।

(१) यहाँ यद्यपि 'दशाष्ट दोष रहित' विशेषण मुनि का है, पर तत्वतः यहाँ १८ वाग्दोषों को लक्ष्य कर ही यह विशेषण दिया गया है। ब्रह्म पुराण २४५।१ में 'दशाष्ट दोष रहित वाक्य' का उल्लेख है, अतः यह अर्थ युक्त हो है।

महाराजा रणजीतसिंह का सैनिक संगठन

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

'सिख' का अर्थ शिष्य चेला न रहकर, कब और कैसे सैनिक हो गया, यह एक लम्बी कथा है। किन्तु सत्य है कि गुरु गोविन्दसिंह के समय 'सिख' का अर्थ ही था, सैनिक था। अंग्रेजों की दृष्टि में सिख क्या ग्रिफिन ने लिखा : कठोर, बहादुर, मन्दबुद्धि जो अपनी को बहुत देर बाद अनुभव करता है, मूर्तिमान अनु- न, अफसरों के प्रति निष्ठावान, उस छुआछूत की ना से युक्त, जिसके कारण हिन्दू फौज का नियंत्रण और लड़ाई के समय भोजन खिलाना कठिन हो है, पूर्व में इसके मुकाबले का कोई सैनिक नहीं। बात इबटसन ने १८८१ में कही थी, और दूसरी उसके इक्कीस वर्ष बाद एक दूसरे अंग्रेज ने कही। समझा जा सकता है कि ब्रिटिश शासन काल में य सेना में सिखों की प्रधानता क्यों रही। जाति- के विधि-निषेध बन्धनों से ही ये केवल युक्त न थे, इनकी निष्ठा अपने अफसर के प्रति अपार होती अतः ये कभी विद्रोही हो जायेंगे यह आशंका थी।

पंचम गुरु अर्जुन देव के समय से सिखों में क्षात्रवृत्ति देती है। दसवें गुरु के समय इनकी सेना हो गयी। वैरागी दक्षिण रहा था। वह मराठों की गुरिल्ला-युद्ध से परिचित था। सिखों को उसने गुरिल्ला-युद्ध में बनाया। अब्दाली इनके इन छापों और घावों से ही था। पंजाब में जब मिसलों का राज्य था, तब की बड़ी कद्र थी क्योंकि विभिन्न मिसलों की शक्ति थे। किन्तु इनमें अनुशासन न था। धर्म के प्रति भक्ति थी, पर देशाभिमान न था। जब तक पंजाब मिसलों में विभक्त था, यह सम्भव भी न था। किन्तु राजा रणजीत सिंह ने जब राज्य स्थापित कर लिया, मिसलों की शक्ति तोड़ दी, तब सुसंगठित, सुअनु- और निष्ठावान सेना की आवश्यकता हुई। सिख- का आधार सेना थी। जब यह पराजित हुई तो -राज्य भी समाप्त हो गया।

गुरु गोविन्दसिंह ने 'खालसा' नाम से सिखों का किया था और उसका आत्मविश्वास इतना अधिक कि एक सिख अपने को 'सवा लाख' के बराबर मानता था। यह वह समय था जब मुगल-साम्राज्य का ह्रास हो रहा था, मराठों की शक्ति चढ़ती पर थी, राजस्थान के राजपूतों की तलवारें म्यानों में थीं, अंग्रेजों की सत्ता का प्रभाव अनुभव किया जाने लगा था। इस समय सिख सेना का संगठन हुआ। किसीने ठीक कहा है: धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर गठित वह सैनिक संगठन जो प्रबल केन्द्रीय अधिसत्ता से निर्देशित व संचालित हो उस देश में शक्तिशाली सिद्ध होगा जिसकी सरकार की शक्ति क्षय हो रही हो।

एकमात्र महाराजा रणजीतसिंह को इसका श्रेय प्राप्त था कि उन्होंने सिखों को लुटेरों से एक सुसंगठित और आधुनिक सेना में परिणत कर दिया। कठोर और निर्मम नियमों के आधीन सिखों को प्रशिक्षित किया गया, उस सैनिक प्रणाली का उनको अभ्यस्त बनाया गया जोकि भारत की अन्य देशी रियासतों की तुलना में पूर्ण थी। रणजीतसिंह के जीवन में यह सेना अजेय रही।

'खालसा दल' के लोग अनुशासन से नहीं, 'पंथ' के प्रति भक्ति से परस्पर बँधे हुए थे। आरम्भ में ये प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावना से पूर्ण रहते थे और आत्म-सम्मान को सर्वप्रथम स्थान देते थे। उनके सामने गुरु तेगबहादुर का चाँदनी चौक, दिल्ली की कोतवाली के पास काटा गया सिर और दीवारों में चुने गए दसवें गुरु-बच्चों की भोली सूरतें सदा रहती थीं और ये ही उनको मारकाट के लिए प्रेरणा देती थीं। उनका हौसला बढ़ाती थीं। इस समय इनका वेतन भी निश्चित न था। लूट में जो मिलता था, वह इनका होता था, कुछ नगदी भी मिलता था, और अनेकों को जागीरें मिली हुई थीं।

परन्तु सिख सैनिक की साज-सज्जा पूर्ण थी। तलवार, तीर, धनुष, बर्छी, छुरा, भाला, कटारी, बन्दूक, तोप उसके शस्त्र थे। उनके पास अच्छी नसल के घोड़े भी थे। मुगलों और मराठों की सेना के साथ-साथ और पीछे-पीछे जीता-जागता, चलता-फिरता बैरक चलता था, नौकर-चाकरों की फौज चलती थी, वह सब कुछ यहाँ नहीं था। उसके पास एक कम्बल, अनाज रखने के लिए थैली और रसोई पकाने के कुछ बरतन होते थे। सिख घुड़सवार सैनिक एक-एक दिन में १०० से १२० मील की दूरी तय कर

लेते थे। लड़ाई जमकर लड़ी हो, या गुरिल्ला युद्ध किया हो, उनके आने और जाने का पता किसीको न चलता था। कूच के समय कम्बल को काठी के नीचे रख देते थे जिससे वे और हल्के हो जाएँ। जब और जहाँ चाहें डेरा डाल सकते थे, और जब चाहें डेरा-डंडा उठा आगे बढ़ सकते थे।

सिखों की युद्ध-प्रणाली में शालीनता नहीं थी। १७७५ से यद्यपि उन्होंने गुरिल्ला युद्ध की प्रणाली को कम महत्व देना शुरू कर दिया था, तथापि इसका सर्वथा परित्याग अन्त तक नहीं किया। साधारण सिख घुड़सवार उछलता-कूदता, फुदकता आगे बढ़ता, रुकता, गोली चलाता और फिर पहले स्थान पर लौट जाता। इसीको बार-बार दुहराता। ये अच्छे निशानेबाज थे। निशाना कम ही चूकते थे। भारत में इस समय इनकी तुलना में दूसरा कोई न था। इससे दुश्मन के हौसले पस्त हो जाते। वे लाचार व असहाय हो भाग खड़े होते।

लड़ाई की अन्य प्रणालियाँ भी थीं। एक सैनिक दूसरे सैनिक से भिड़ जाता था। आकस्मिक और आश्चर्यजनक छापों और धावों के लिए भी स्थान था। इसके अतिरिक्त झूठ-मूठ पीछे लौटना भी इनकी प्रणाली में शामिल था। एक और तरीका था। दुश्मन की सेना पर चढ़ जाना, देर तक घमासान लड़ाई मचाकर, वेग से पीछे हटना और फिर उससे दुगने वेग से आगे बढ़ना, इसको कई बार दोहराना। इससे दुश्मन की सेना हक्का-बक्का हो जाती थी।

सिख घुड़सवार अपना ही नहीं, घोड़े का चारा भी साथ रखता था। हार के बाद ५०-१०० मील पीछे लौटने पर अगले दिन की लड़ाई के लिए फिर तैयार मिलता था। आकस्मिक और विस्मयजनक धावों में वे आनन्द मनाते थे। बचपन से उनको कठोर सैनिक जीवन के लिए तैयार किया जाता था और लूट-पाट की लड़ाई के बहुत पहले से वे अभ्यस्त थे। जब कभी किसी भाग पर हमला करना होता था, तो उसकी सीमा पर ये जमा होते। उससे 'राखी' या 'खिराज' माँगते यदि यह मिल गया, तो शान्ति के साथ ये लौट जाते, इन्कार करने पर युद्ध छिड़ जाता। सिख आगे बढ़ते हुए देश उजाड़ते जाते, अधिक से अधिक संख्या में लोगों को बन्दी बनाकर साथ ले जाते, पशुओं को भी बाँध ले जाते। कैदी उस समय तक दास रहते थे जब तक कि वे अपनी मुक्ति के लिए निश्चित धन-राशि न दें। महाराजा रणजीतसिंह ने इस प्रकार की सिख सेना को आधुनिक सेना में बदला। जब उन्होंने पहला सिख राज्य लाहौर में स्थापित किया, तब उन्होंने एक प्रबल अजेय सेना भी संगठित की। यह ठीक है कि महाराजा की मृत्यु के नौ साल बाद नैपोलियन के राज्य के समान उनका राज्य समाप्त हो गया। इसका उदय जैसे अकस्मात् हुआ था, अस्त भी उसका वैसा ही हुआ। जब था, तब उसकी शान अपूर्व थी; जब खत्म हुआ, तो उसका चिह्न तक न रहा।

दूरदर्शी, विवेकी, साहसी और बहादुर व्यक्ति एक वंश में अधिक नहीं होते। अन्यथा कालिदास 'रघुकुल' को ही अपनी कथा का विषय न बनाता। लगातार पाँच पीढ़ी तक एक से बढ़कर दूसरा होता गया। महाराजा रणजीतसिंह को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु उनका राज्य अम्बाला से कश्मीर और मुल्तान से पेशावर तक फैला हुआ था। फिर भी महाराजा ने कभी युद्ध के लिए युद्ध नहीं किया। नागरिक प्रशासन भी उनका दृढ़ था। महाराजा की सूझ-बूझ का यह एक उदाहरण है। रण-विद्या में वे निपुण थे। किन्तु वे इस सिख राज्य को जनता का राज्य नहीं बना सके। १८३९ तक तो राष्ट्रीयता और लोकतंत्र की धाराएँ बहुत दूर तक फैल चुकी थीं किन्तु सिख-राज्य का इन धाराओं से सम्पर्क तक न हुआ। यद्यपि सिखों को समुद्र-पार की यात्रा करने में कोई बाधा नहीं थी। सिख उनको अपना नहीं बना सके जो कर्म से हिन्दू ही थे, राम-कृष्ण की पूजा करते थे, परन्तु इस्लाम की दीक्षा ले चुके थे। यदि उनको अपना बना सकते, और अनुभव करते कि दोनों की नसों में एक खून बह रहा है, तो भारत का इतिहास भिन्न हो होता। आधारहीन राज्य नहीं टिक सकता। एकमात्र सैनिक शक्ति के आधार पर टिका राज्य उसके पराजित होने पर समाप्त भी हो जाता है।

सिख सेना तीन भागों में विभक्त थी: पैदल, घुड़सवार, और तोपखाना। पाँचों नदियों पर राज्य होते हुए भी महाराजा ने नौसेना की आवश्यकता नहीं समझी और संघटित न की।

अश्वारोही सैनिक के मुकाबले पदाति पहले भी हीन समझा जाता था। इसका एक कारण था। हर सैनिक

१६६३

घोड़ा लाना पड़ता था। गरीब सैनिक कहाँसे घोड़ा ला? किन्तु यूरोपियन सेना-शिक्षकों के प्रभाव से महा-जा ने पदाति सेना के महत्व को समझा और उसका ब बढ़ाया। जनरल वेंचुरे ने कठोर अनुशासन कायम । सहिष्णु, अथक परिश्रमी, प्रशिक्षित एवं अनुशासित के कारण पैदल सेना का महत्व बढ़ गया।

पैदल सेना में भरती स्वेच्छा से होती थी। किंतु नौकरी आकर्षक और साहसिक थी। यूरोपियन सेना नान दोनों समय कवायद करायी जाती थी। पहले-तो सैनिकों ने इसको नापसन्द किया, परन्तु बाद में कवायद भी उनके जीवन का एक अंग हो गयी।

९०० सैनिकों की एक पल्टन या बैटेलियन होती थी। सेनानायक की सहायता के लिए 'एडजुटेंट' और होता था। पल्टन आठ कम्पनियों में विभक्त थी। कम्पनी चार खण्डों में बटी थी और हरेक खण्ड सैनिकों का होता था। इनका अफसर हवलदार कह-ता था। नायक उसकी सहायता के लिए होता था। प्रकार १० सैनिकों से शुरू कर ९०० सैनिकों की पूरी पूर्णतः अफसरों के नियंत्रण और अनुशासन में थी। यदि सेना के किसी भाग में असन्तोष हो, कारण से क्षोभ हो, तो फौरन उसका पता चल ता था। वरिष्ठता के क्रम से सूबेदार, जमादार ट (सारजन) फूरिया, बिगुलर और आघोषक के सूची पूरी होती थी।

एक रेजीमेंट में कई पल्टनें या बैटेलियन होती थीं। के साथ हिसाब रखनेवाला भी होता था। सैनिक ों में रहते थे। प्रत्येक रेजीमेंट के साथ गुरू-ग्रन्थ की प्रति भी रहती थी। रेजीमेण्ट के ऊँचे अफसर थे: डेंट, एडजुटेंट, मेजर, राइटर, एकाउण्टेंट और मुंशी। रेजीमेंट के साथ ऊँट हाँकनेवाले, लुहार, बेलदार, रसोइये भी रहते थे। पैदल सैनिक ढोल और तुरही धुन के साथ कूच करते थे। फ़्रेंच सेना-शिक्षक ने सेना के सब कमान फ़्रेंच में चलाये। रोज की मित परेड के अतिरिक्त साल में एक बार दशहरे पर हौर या अमृतसर में सारी सेना की परेड होती थी। राजा रणजीत सिंह इसका निरीक्षण करते थे। सेना झण्डा केसरिया रंग का था। युद्ध का नारा था श्री अकाल'। सेना की सहन-शक्ति अद्भुत थी। दिन में सारी रेजीमेंट लगातार कई दिन तक, तीस मील चलती थी।

इटालियन और अँगरेज भी सेना को प्रशिक्षण देने के लिए महाराज की सेना में नौकर थे। इन लोगों ने सेना को पूर्णतः फ़्रेंच कमान में ढाल दिया। महाराज की पैदल सेना में कितने सैनिक थे, इस बारे में उपलब्ध आँकड़ों में समानता नहीं। १८३९ में ४००८१ थी, किन्तु महाराजा की मृत्यु के बाद इसकी संख्या ७०,७२१ बतायी जाती थी। स्थायी सैनिकों के अलावा अल्पकालिक सेवा के लिए भरती किये गये सैनिक भी बड़ी संख्या में रहते थे। उस समय की आर्थिक स्थिति में बड़ी संख्या में स्थायी सेना रखना सम्भव न था। विभिन्न जागीरदारों के जिम्मे भी एक निश्चित संख्या में सैनिक देने का भार था। सरदार भी कुछ न कुछ सैनिक लाने को बाध्य थे। अकाली दुस्साहसपूर्ण कार्यों के लिए भरती किये जाते थे, और जो काम और कोई करने को तैयार न होता, उसको करने के लिए ये भेजे जाते। वेंचुरे की कमान् की फौज का नाम था "फौज-ए-खास" (कोर-दी-एलाइट)। इसमें इतने लोग थे :

	फौज-ए-खास
१—पैदल	३१७६
२—घुड़सवार	१६६७
३—तोपखाना	३४
४—तोपें	८५५
योग—	५६९८

पैदल में खास, गुरुदित्त सिंह, शाम सोता पलटनें भी थीं।

सिख घुड़सवार शिवाजी के काल के मराठे अश्वारोहियों के समान हल्का-फुल्का, चुस्त, गुरिल्ला-युद्ध करने में प्रवीण, पीछे लौट रही पठानों की सेना पर धावा मारने में कुशल थे। वीरता और शौर्य प्रदर्शन के समय घुड़सवार सेना भेजी जाती थी।

महाराज की घुड़सवार सेना तीन भागों में विभक्त थी :—

स्थायी अश्वारोही सेना

इसके सैनिक छाँटे हुए और घोड़े चुने हुए होते थे। देखने-सुनने में सुन्दर, साज-समान से पूर्ण और अनुशासित। इसको बकायदा शिक्षा दी जाती थी। शिक्षक फ़्रेंच सेनानी

जनरल जी फ़्रांकोई अल्ला था। १८२२ में यह नियुक्त किया गया। १८११ में इसकी संख्या १८०९ थी पर १८३९ में ४००० और १८४५ में ६,२३५ थी।

घोरचार

यह भी अश्वारोही सेना थी। किन्तु यह प्रशिक्षित नहीं थी। इसको किसी विशेष अनुशासन व कोड में भी नहीं शिक्षित किया गया था। सिख मिसलों की 'खालसा' सेना के नमूने पर इसका संगठन किया गया था। यह आक्रमण व बचाव की किसी विशेष पद्धति का अनुसरण करने में विश्वास नहीं करती थी। इसको केवल अपने अदम्य व दुर्दमनीय साहस का भरोसा था। राज्य से सीधे इनको वेतन मिलता था। पहले यह जागीर के रूप में मिलता था, जो ३०० रु० से ४०० रु० तक की होती थी। बाद में इसको नगदी २५० रु० से ३०० रु० वार्षिक मिलने लगा। सैनिक को घोड़ा अपना लाना पड़ता था। घोड़ा यदि राज्य देता था, तो उसका मूल्य वेतन से काटा जाता था।

सम्भवतः, ग्रीफिन ने, इसी कारण लिखा है : महाराजा रणजीतसिंह की पदाति सेना में चुने हुए सुन्दरतम और बलशाली जवान थे, किन्तु अश्वारोही सेना अनियमित थी। वह विभिन्न सरदारों के दस्तों से बनी थी और घोड़े मरियल, छोटे कद और खराब नस्ल के थे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि महाराजा का ध्यान इस त्रुटि की ओर नहीं था। जब हर अश्वारोही का घोड़ा अपना होता था, तो प्रकट है कि वे सब एक नस्ल के न होंगे, और न सबको एक समान खुराक ही मिलती होगी। फिर भी हम देखते हैं कि यदि किसी का घोड़ा मरियल और कमजोर पाया जाता था तो उसको दण्ड दिया जाता था, उस पर जुर्माना किया जाता था, और उसके वेतन से उतना काटा जाता था जितना घोड़ा कमजोर पाया जाता था। इसके लिए जिस निरीक्षण और जाँच की आवश्यकता है, वह कवायदी सेना की सामर्थ्य के बाहर थी। जहाँ अन्य सेना आगे बढ़ने से झिझकती थी, वहाँ ये बेखटके बढ़ जाते थे। ये साहस और शक्ति कहाँ से पाते थे? धर्म, भक्ति या मद व भाँग से? यह विवाद का विषय है। ये भाँग पीते थे, यह तो सर्वविदित है। ये अमृतसर से प्रेरणा लेते थे, जिसके तालाब के ये रक्षक माने जाते थे। इसलिए कहा जा सकता था कि दोनों से वे शक्ति पाते थे। परन्तु यह सत्य है कि वे धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों को हथे पर रखकर लड़ते थे और निर्भय एवं मृत्युंजय वीर थे।

फिर भी 'घोरचर' अपने साहस के लिए प्रसिद्ध थे और कहा जाता था कि इन्होंने अपने लिए यश और रणजीतसिंह के लिए राज्य का उपार्जन किया है। घोरचर सेना दो भागों में विभक्त थी--खास और मिसलदार सवार। खास में तो उच्च कुल के सरदार सामन्त होते थे। मसलदार स्वतंत्र सरदारों की थी, जो अपने पुराने प्रभुओं का राज्य नष्ट हो जाने के कारण नए राज के प्रति निष्ठा रखने लगे थे। एक सवार को प्रतिमास २२ रु० से २६ रु० मिलता था। सवार को यदि राज्य घोड़ा देता था तो उसके वेतन से १०० रु०, घोड़े का दाम, किश्तों--दस या पाँच--में काटा जाता था। इसी प्रकार बन्दूक के वास्ते सवार को १० रु० से २० रु० और तलवार के लिए १० रु० राज्य को देना होता था। घोड़ा यदि निश्चित प्रतिमान का नहीं पाया जाता था तो १० रु० प्रतिमास जुर्माना होता था।

जागीरदारी घुड़सवार सेना

जागीरदार अपने पास जो अश्वारोही सेना रखते थे और जरूरत पड़ने पर महाराजा को देते थे, वह यह सेना थी। यह किस किस्म की है, इसका विस्तृत ब्यौरा राज्य के लेखाध्यक्ष के पास रहता था। यदि इसमें कभी अन्तर पाया जाता तो हरिसिंह नलुआ (नलवा) सदृश सरदार भी दण्डित हुए बगैर नहीं रहते थे। हरिसिंह नलुआ के पास आवश्यक संख्या में सैनिक नहीं पाये गये थे, अतः उस पर दो लाख रुपया जुर्माना किया गया था। अश्वारोहियों के साज-सामान, सुदृढ़ सुघड़ सुन्दर घोड़ों की जिम्मेदारी जागीरदारों पर थी, और दशहरे के अवसर पर इसका निरीक्षण किया जाता था। जागीरदारी घुड़सवार सेना लगभग २०,००० थी। जागीरदारी छिन जाने के भय से जागीरदार अपनी सेना भली भाँति सजाकर रखते थे।

अकाली

अकाली फूलसिंह के सेनानायकत्व के ये सैनिक धार्मिक उत्साह और आवेश से लड़ते थे और अपने लिए नहीं, गुरु के वास्ते लड़ते थे। यह पल्टन खतरनाक मोर्चों पर भेजी जाती थी। इनके दोनों हाथों में नंगी तलवारें होती

कमर में भी दो तलवारें लटकती रहती थीं, पीठ पर होती थी, और पगड़ी के चारों ओर दो जोड़े लोह- बँधे होते थे। अकाली यूरोपियनों, पठानों से घृणा थे और महाराजा भी इनसे डरते थे, और कहा जाता अनेक बार इनके हाथ से मरते-मरते बचे। ग्रिफिन को 'मदमस्त जंगली' बताया है और लिखा है कि राजा भी इनके मामले में हस्तक्षेप करते हुए डरते थे साधारण सिखों का विश्वास था कि ये गुरु के ही हैं। अफगानिस्तान की लड़ाई में इन्होंने अद्भुत और पराक्रम दिखाया था और बड़ा नाम था।

फौज-ए-किलाजात

में आ गयी थीं, किन्तु फिर भी किलों और दुर्गों का इस समय तक कम नहीं हुआ था। मुलतान, पेशावर, और अटक के किलों में लगभग १०,८०० सैनिक थे। किले के पदाति सैनिक को माहवार ४ रु० और दार को १२ रु० मासिक मिलता था। किले का कारी थानेदार कहलाता था। किले के रहनेवालों ने शराब पीना मना था, नाचनेवाली लड़कियों का में प्रवेश निषिद्ध था। प्रत्येक सैनिक अपना आधा अपने घर भेजने को बाध्य था। दूकानदार के साथ नहीं कर सकता था। जिला अधिकारी अर्थात् दार' थानेदार के एक प्रकार से आधीन रहता था। और जमादार का वेतन क्रमशः ७ रु० और १४ क बढ़ सकता था।

तोपखाना

महाराजा रणजीतसिंह का तोपखाना न केवल अनु- न था, बल्कि भारत के अन्य राज्यों की तुलना में बड़ा भी था। महाराजा को वस्तुतः इसका उचित था। धौला की लड़ाई में सिख तोपखाने की तोपों शक्ति अँगरेजों ने भी मानी थी। ये उनकी तोपों से कई अधिक दूर की और जोरदार मार करनेवाली थीं। तोपचियों को कमान भी फ्रेंच में दी जाती थी। पीटे लोहे के थे और एक गोले का मूल्य एक रु० था। प्रायः हर गोले में बारूद व मसाला होता था। (पलीते) सिखों ने स्वतः भी बनाए थे और बहुत थे। जनरल कोर्ट ने यह तोपखाना प्रशिक्षित था।

तोपखाना चार भागों में विभक्त था--फीली (हाथी); तोपखाना शुतरी (ऊँट) या जामबुरक; तोपखाना अस्पी (घोड़ों) और तोपखाना गावी (बैल-गाड़ी)।

तोपखाना सिखों के लिए सर्वथा नई चीज थी। परन्तु जनरल कोर्ट और जनरल गार्डनर से शिक्षा पाने के बाद इसको उन्होंने अपना लिया था।

महाराजा की हरेक तोप का अलग नाम था। जैसे: फतेहजंग, श्री अकाल, सहाय। तोप ढालने के अधिकांश कारखाने लाहौर में थे। इनमें सर्वाधिक महत्व का किले में ही था। महाराजा के पास १७६ तोपें थीं और स्विवेल (तोप) की संख्या ३७० थी। कुछ ने यह संख्या क्रमशः ३७६ और ३०० बतायी है।

लाहौर में तोप के अतिरिक्त पिस्तौल, बन्दूक, भाले, बरछे, तलवार आदि हथियार भी बनाये जाते थे। मुलतान, जम्मू, श्रीनगर और अमृतसर में भी हथियार बनाये जाते थे। किंतु इनकी प्रसिद्धि कवच बनाने में थी जिसमें शिर-स्त्राण, कोट, ढाल, छाती की पट्टी और लोहदस्ताना शामिल थे। कश्मीरी बहुत अच्छे शिल्पी थे। बाद में पंजाबी मिस्त्री भी उनके जैसा काम करने लगे। मियाँ कादिर बक्श ने भी इस काम में नाम कमाया। उसने लुधियाना में रहकर अँगरेजी सेनापति से शिक्षा पाई थी। इसने इस विषय पर एक पुस्तक भी लिखी थी।

तीन भागों में

महाराजा की फौज साधारणतः तीन भागों में विभक्त थी :—

(१) फौज-ए-खास विशिष्ट ब्रिगेड :—

सीमाप्रान्त में यह लड़ी थी। यूरोपियन सैनिक प्रणाली से इसको शिक्षा दी गयी थी। जनरल वंतुरा इसका सेनानी था। इसकी शक्ति थी :

स्थायी पैदल	३,१७६
स्थायी अश्वारोही	१,६६७
३४ तोपें	८५५
योग :	५,६९८

इस ब्रिगेड की पैदल सेना में इस प्रकार की पलटनें थीं :

खास पलटन	८२०
गुरखा पलटन	७०७
देवसिंह पलटन	८३९
शाम सोता पलटन	८१०
	३,०७६

अश्वारोही सेना, ग्रेनेडियर रेजीमेंट ७३०, ड्रैगून रेजिमेंट, ७५०, लाईफ गार्ड १८७ में विभक्त थी। तोपखाने की पलटन इलाही बख्श के नाम पर थी और यूरोपियन लेखकों ने इसको सिख सेना का सर्वोत्तम अफसर बताया है। इसने तोप ढालने में नये-नये आविष्कार किये थे।

(२) फौज-ए-ऐन :—

यह राज्य की सेना थी और राज्य ने इसको प्रशिक्षण दिया था। यह जागीरदारों की और अकाली सेना से भिन्न थी। १९३८ में इसकी संख्या ३८,२४२ थी। इस प्रकार थी यह :—

पैदल	२९,६१७
अश्वारोही	४,०९०
तोपखाना	४,५३५

(३) फौज-ए-बेकवायद :—

इसके अन्तर्गत जागीरदारों की और अकाली सेना थी।

महाराजा की कुल सेना कितनी थी? यह हमेशा घटती-बढ़ती थी। एक समय सेना में २९,१९६ सैनिक और १९२ तोपें थीं। सेना का व्यय ३,८२,०८८ रु० था। सतलुज की लड़ाई के समय (१८४५) में सिख सेना की शक्ति निम्न थी :

१—कवायदी सेना	५३,७५६
२—कवायदी घुड़सवार	६,२३५
३—बेकवायदी घुड़सवार	१६,२९२
४—तोपखाना	१०,९६८
५—डसांनी स्विबेल	५८४
६—विविध	८२७
	८८,६६२
७—क्षेत्र-तोपें	३८०
किले की	१०४
साँडनी स्वीबेल	३४८

१८४९ में ब्रिटिश सेना के आगे सिख सेना ने आ समर्पण कर दिया। उससे पहले यह इसकी सर्वोच्च थी। शामत अली के अनुसार महाराजा खजाने से सेना इस प्रकार खर्च करते थे :—

पैदल	(रुपयों में)
घुड़सवार	२८,०९,२००
तोपखाना	२४,५३,६५६
बेकवायदी सवार	३,२४,८६४
	७२,०८,५६२
योग :	रु० १,२७,९६,४८२

सेना में सिपाही प्रायः बीस साल की अवस्था में भर होते थे और ६५ साल के होने पर सेवा-निवृत्त हो जाते थे। पेंशन का कोई नियम नहीं था। परन्तु सैनिक के मर जाने या जख्मी हो जाने पर वेतन का एक तिहाई उसके परिवार को दिया जाता था। वेतन आकर्षक था। जनरल को ४००–४६० रु०, कर्नल को ३०० से ३५० रु०; सूबेदार को २० से ३० रु०, जमादार को १५ से २२ रु०; कमांडे को ६० से १५० रु०, मेजर को २१ से २५, और सिपाही को ७ से ८॥ रु० तक वेतन व भत्ता मिलता था। रणजीतसिंह से पहले सिख सैनिक का कोई गणवेश (यूनि फार्म) नहीं था। परन्तु रणजीतसिंह के समय सेना का अपना गणवेश था। पतलून नीली लिनन की (लिनन एक का बना कपड़ा होता है)। पगड़ी नीली। पगड़ी का एक छोर गले को ढके रखता था। पेटी चमड़े की होती थी। बन्दूक और बर्छी हथियार होते थे और ये लाहौर में ही बनते थे।

घुड़सवार सिर पर लोहे का शिरस्त्राण पहनता था, गले के चारों ओर शाल या स्कार्फ लपेटे रहता था। यह पगड़ी भी हो सकती थी और गाढ़े लाल रंग के रेशम का होता था। जाकेट भी हल्के लाल रंग की होती थी। पतलून गाढ़े नीले रंग की रेशम की थी जिसपर लाल पट्टी होती थी। कमर में पेटी, जिसके एक ओर एक थैली और दूसरी ओर बरछी बँधी होती थी। अफसर की सारी पोशाक रेशम की होती थी और वह एक मात्र भाला ही अपने पास रखता था। जागीरदारी फौज का गणवेश रंगबिरंगा और अंगरेजी फौज के समान था। 'घोरचारा' सैनिक का कोट मखमल या गैबरडीन का होता था। कमर

१९६३

पेटी पर सोने का काम किया होता था। इनमें से कुछ पिस्तौल भी रखते थे। इनके शिरस्त्राण का अन्दर का भाग सोने का होता था, ऊपर कलंगी लगाते थे। बाँह लोहे की बनी बाँह से ढँकी होती थी। इसके न्दर का भाग सुनहरी होता था। ढाल सैनिक के पीठ बँधी होती थी। तूणीर (तरकस) दाहने कंधे के एक र बँधा होता था। धनुष दूसरी ओर लटकता था। की मूठ साधारणतः सोने की होती थी।

बेकवायदी फौज का कोई गणवेश नहीं था। कुछ तो कमीज और कवच या शिरस्त्राण ही पहने होते। शिरस्त्राण का अन्दरूनी भाग सुनहरी होता था उसपर कलँगी लगाते थे। कुछ विभिन्न रंगों की मख- और रेशम की वर्दियाँ पहनते थे, पीली मलमल की बांधते थे। इनकी पेटी पर भी सोने का काम किया था। कुछ घुड़सवार तीर कमान ही रखते थे, पर कांश के पास तोड़ेदार बन्दूक होती थी।

तोपचियों की पगड़ी लाल थी। पतलून सफेद और बूट होते थे। इनकी तलवारों की म्यानें सुन्दर होती। महाराजा के अंगरक्षकों की पोशाक पीले या अरग-नी रंग की होती थी। पीली साटिन का बहुत व्यवहार था। शाल या स्कार्फ विशेषरूप से रहता था।

महाराजा की सेना में कम-से-कम ४२ यूरोपियन सर थे। इनमें फ़्रेंच, अँगरेज, रूसी, अमेरिकन, ग्रीक, न, एंग्लो-इण्डियन, आदि सभी थे। कुछ ने यूरो- अफसरों की संख्या ३९ बतायी है, और एक ने तो ही लिखी है। वेंचुरा और अलाई लगभग एक ही यूरोपियन अफसरों से करार कराया गया था: ववाह करके इस देश के वासी हो जायेंगे, गोमांस न येंगे, सार्वजनिक रूप से तम्बाकू न पीयेंगे, सिख धर्म निन्दा न करेंगे, दाढ़ी रखेंगे, आवश्यकता होने पर ने देश से भी लड़ेंगे। सिख सैनिकों को यूरोपियन फसर पसन्द नहीं थे। और तो और, युवराज खड़कसिंह इनको पसन्द न करता था। अन्तिम समय में महाराजा इनकी आवश्यकता नहीं अनुभव करते थे। यही कारण कि महाराजा के मरने के बाद कर्नल फाउलकेस की हत्या दी गयी, जनरल कोर्ट और वेंचुरा का घर लूटा और उन्हें अपनी जान बचाकर अपने देश भाग ना पड़ा।

खालसा-जनता की प्रतिनिधि

सरकार और सेना के बीच क्या सम्बन्ध था? कनिंगहम ने स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है: यह निरंकुश और नरम सरकार का स्वेच्छापूर्ण उपकरण नहीं रही थी। यह अपने आपको और अन्यों की नजरों में भी, सिख जनता का प्रतिनिधि या खालसा मानती थी। कवायली ढंग से ये जमा होते थे और राज्य के काम में भाग लेते थे। साधारणतः सैनिक नियुक्त अधिकारी के प्रति आज्ञाकारी थे, साधारण सैनिक कर्त्तव्यों के पालन में उसकी आज्ञा में रहते थे। परन्तु, रेजीमेंट, ब्रिगेड या डिवीजन या सारी सेना की स्थिति भिन्न थी। देश की सरकार के साथ इसके सम्बन्ध का निर्णय 'पंच' या पंचायत करती। पंचों का चुनाव इस तरह होता था: प्रत्येक बटेलियन या प्रत्येक कम्पनी से एक व्यक्ति चुना जाता था। यह चुनाव उनके चरित्र और सिख धर्म के प्रति भक्ति को देखकर किया जाता था।

सेना राजनीतिक साधन व उपकरण थी और पंजाब की गद्दी पर कौन बैठे इसका निर्णय यही करती थी। और यह कार्य इसने उस समय तक किया जब तक वह भंग नहीं कर दी गई। महाराजा रणजीतसिंह ने मराठों, राजपूतों और मुगलों की हार से शिक्षा ली। अँगरेजों से ये क्यों हारे, इसके कारणों पर विचार किया। भारतीय राजाओं में हैदरअली और होल्कर की सेना ने अँगरेजों को पराजय दी थी। इनकी युद्ध की प्रणाली देशी थी। इसमें जमकर लड़ाई भी की जाती थी, और गुरिल्ला भी की जाती थी, और विजय के बाद फौज को जल्दी एकत्र करने की भी सुविधा थी। परन्तु महाराजा ने ब्रिटिश प्रणाली को अपनाया, जिससे उनकी सेना अन्य भारतीय नरेशों से अधिक शक्तिशाली हो। ब्रिटिश सेना अजेय थी, क्योंकि उसके पास बढ़िया तोपें थीं। उनकी सफलता का दूसरा मुख्य कारण था कि बड़ी संख्या में पैदल सेना का वे सानुशासन और सनियंत्रण प्रयोग कर सकते थे। सिख सेना भी ब्रिटिश ढंग पर तैयार की गई, और उसने ब्रिटिश युद्ध प्रणाली सीखकर अपने गुरु को भी पीछे छोड़ दिया। सिख सैनिकों की ब्रिटिश सेनापतियों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। सबरांव की भयंकर लड़ाई का वर्णन करते हुए सर चार्ल्स गफ़ ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर राबर्ट पील को लिखा था: पराजित शत्रु को सार्वजनिक रूप से श्रद्धाञ्जलि

अर्पित करने से या उसके शौर्य और वीरता के कार्यों का उल्लेख करने से मेरा उच्च पद रोकता है। वैयक्तिक रूप से ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सिख सरदारों और सैनिकों ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया और पराक्रम दिखाया। मैं घोषित करता हूँ कि यदि मेरा यह विश्वास न होता कि मेरे देश के मंगल के लिए यह बलि देना आवश्यक है, तो मैं ऐसे एकनिष्ठ सैनिकों के कत्लेआम पर फूट-फूटकर रोता।

सैनिक दृष्टि से महाराजा रणजीतसिंह अत्यधिक दूरदर्शी थे। अपने समय में उन्होंने काँगड़ा, कश्मीर और अफगानिस्तान को विजय किया। सिख सेना की प्रचण्ड शक्ति इससे प्रकट है। यह सेना मोर्चा बाँधने, किलेबन्दी करने में होशियार थी। जंगल में भी लड़ सकती थी, और इसका तोपखाना शक्तिशाली था। यद्यपि ले० कर्नल मजूमदार का मत है कि सिख सेना के विभिन्न अंगों में तोपखाना अपेक्षाकृत कमजोर था।

सैनिकों के हताहत होने से सिख सैनिक भागते नहीं थे, बल्कि तोपों की मार का जवाब तोपों से देते थे। गड़बड़ी में हमला न करते थे, बल्कि अपनी जगह इस्पात की दीवार के समान दृढ़ता से यूरोपियन सैनिकों के समान खड़े रहते थे। जनरल गफ़ ने सिख-युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया है: हम अँगरेजों को जिस शत्रु (सिखों) से मुकाबला करना पड़ा था, वह भाड़े के टट्टू सैनिकों का खिचड़ी दल न था। न वह साहसी, पर अनुशासित पहाड़ियों की सेना थी। किंतु वह अनुशासित सेना थी, यूरोपियन सेना के ढंग पर उसका प्रशिक्षण हुआ था। गुजरात-युद्ध से पहले के हमारे तोपखाने से उसका बढ़िया तोपखाना था। उनके विरोध में उनसे कई गुना अधिक सैनिक थे, और वे धार्मिक विश्वास से उत्साही, अडिग, निर्भय और साहसी सैनिक थे।

सिख सेना के संस्थापक महाराज रणजीतसिंह के कृतित्व, उनकी सैनिक सूझ-बूझ और प्रतिभा का मूल्य इस कथन से सरलता से आँका जा सकता है।

पावस से

श्री रत्नकुमारी 'काव्यतीर्थ'

ताप से जग की थकी सी,
नीरनिधि नीलम भवन में
सीप लोचन अर्धमीलित
लहर लेती तप्त तन में।
निशि दिवस, अविराम चलता
गगन पर, जब, तपन का रथ
पार कर ऋतु-देश पहुँचा,
ग्रीष्म का भी लाँघता पथ।
द्रुत परस तुम को जगाता,
फेन शय्या के किनारे।
तज मधुर तन्द्रा चलीं तुम
प्रखर रवि-कर के सहारे।
झुक छुड़ातीं गिरि शिखर से,
उलझता पट छोर चंचल;
झटक मुक्ता बिन्दु हलका,
खींचतीं द्रुत तार अंचल।
युग करों में, दामिनी के
दमक जाते, वलय स-स्वर।
इन्दु धनु की कोटि द्वय से,
नाप चलतीं, अवनि अम्बर।
श्रवण में बस निर्झरों की
झरन-ध्वनि, सावन सुनाती।
नयन में, भादों-भरन भर,
उमड़ती, रिस बरस जाती।
जगत पर जीवन बरसता,
चेतना जड़ में समाती।
हरित वर्ण, प्रफुल्लता को,
सौंप देता सुरभि थाती।

तिब्बत के खेतों में पत्थरों के टुकड़े फैले रहते हैं और उन्हें याकों (सुरागाय) से जोता जाता है

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (४)

श्री फेनी मुकर्जी

दो सुन्दर पहाड़ों के बीच में शालू गुम्पा लगभग छः सौ फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। इसी प्रकार सारे तिब्बत के छोटे-बड़े सभी मठ पहाड़ों के आड़ में ऊँचे पठारों पर बनाये गये हैं। मठ के द्वार तक पहुँचने के मार्ग ऊवड़-खाबड़ पत्थरों से पटे पड़े रहते हैं। ...व में ये मार्ग किसी पहाड़ी झरने या नदी के पानी बहने से बन जाते हैं, और यह पानी गुम्पा में रहनेवालों के काम आता है। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ मठ को आँधी और भयानक तूफानों से बचाते हैं। इस ऊबड़-खाबड़ पथरीले मार्गवाले, इतनी ऊँचाई पर बसे हुए मठ पर कोई शत्रु आसानी से आक्रमण नहीं कर सकता। इतने बड़े मठ (गुम्पा) के समीप आने पर प्रवेश द्वार तक पहुँचने के लिए एक घुमावदार संकीर्ण गली से गुजरना पड़ता है। हजारों विद्यार्थियों के लिए प्रवेश द्वार एक ही होता है। यह प्रवेश द्वार हमारे प्राचीन काल के दुर्ग के भारी भरकम फाटक की भाँति होता है। यह पथरीली घुमावदार गली मुख्य द्वार से निकलकर दायें-बायें अनेक फाटकों को पार करके एक बड़े चौक में आती है। चौक में चारों ओर ऊँची-ऊँची पत्थर की सीधी दीवारोंवाले सटे हुए भवन हैं जिनके नीचे के खंड में सिवाय दीवाल के कुछ नहीं होता। इससे पता चलता है कि इन गुम्पाओं को किला-बंदी के आधार पर बनाया गया था।

चौक के चारों तरफ के एक दूसरे से सटे हुए ऊँचे-ऊँचे पत्थरों के भवनों में बाहर से कोई द्वार नहीं होता है। केवल एक ओर एक छोटा-सा द्वार होता है और उसके भीतर एक लकड़ी की सीढ़ी रहती है जो कि खतरे के समय ऊपर खींच ली जाती है। सीढ़ी के ऊपर का तख्ता गिराकर ऊपर के खंड का रास्ता बंद कर दिया जाता है। तिब्बत के गुम्पा प्रायः दो-तीन वर्गमील जमीन को घेरकर बनाये जाते थे। गुम्पा के भीतर कई चौक होते हैं। इनमें पहुँचने के लिए प्रथम चौक के द्वार से ऊपर आना पड़ता है। इन चौकों में धार्मिक समारोह किये

जाते हैं, तथा इन्हें विद्यार्थियों को शिक्षा देने तथा अन्य सामूहिक उत्सवों के लिए उपयोग में लाया जाता है। गुम्पा में सब मिलाकर तीन सौ से लेकर पाँच सौ तक छोटे बड़े कमरे होते हैं। कुछ कमरे तो इतने बड़े होते हैं कि उनमें कई सौ व्यक्ति आराम से बैठ सकते हैं। बड़े कमरों में विद्यार्थियों की कक्षाएँ लगती हैं। एक-एक कक्षा में लगभग दो-तीन सौ ढावा (भिक्षु) बैठकर अपने-अपने लामाओं (Professor) के भाषण सुनते, और पाठों का अभ्यास करते थे। यह सब काम अँधेरे में सारे दिन होता रहता था। अधिकतर वे अपना पाठ कंठस्थ कर लेते थे।

प्रत्येक चौक के चारों ओर के भवन दो-तीन खंड के होते हैं। इन भिन्न-भिन्न चौकों के भवनों में भिन्न-भिन्न धार्मिक शिक्षा के विभाग होते हैं जोकि एक-एक विषय के विशेषज्ञ लामा के निर्देशन में काम करते थे। कितने इस प्रकार के चौक हैं, और कहाँसे किस तरफ को रास्ता मिलता है, यह याद करने के लिए महीनों लग जायँगे। सारे कमरों में अँधेरा रहता है और कमरों के भीतर से ही होकर एक ओर से दूसरी ओर आने-जाने का रास्ता रहता है। हजारों विद्यार्थी और सैकड़ों लामा एक एक गुम्पा में रहते थे जिनके भोजन इत्यादि सभी जरूरी चीजों का प्रबंध गुम्पा के भीतर ही उपलब्ध रहता था, अर्थात् गुम्पा एक छोटे-मोटे शहर के समान होता था। यह सब देखकर हमें अपने देश के प्राचीन दुर्गों की बनावट की याद आती थी। बाहर के आक्रमण-कारियों से बचाव के लिए इन लोगों ने भी यह सब यत्न किये थे।

रहने के लिए हमें एक भवन इस मठ के समीप ही एक पहाड़ी के शिखर पर दे दिया गया था। यह शिखर लगभग एक हजार फुट की ऊँचाई पर था। उस ऊँचाई से चारों ओर के ऊँचे-नीचे पठार बड़े ही सुहावने लगते थे। दूर-दूर, जहाँ-तहाँ, सफेद टोपीनुमा बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ प्रहरी सी खड़ी मालूम होती थीं। ये शिखर आने-जानेवाले यात्रियों को "समुद्री दीपस्तंभ" की भाँति दिशा का संकेत करते हैं।

एक दिन दस बजे के लगभग राहुलजी शालू गुम्पा के प्रधान लामाजी से मिलने चले गये। लामाजी के निवास-स्थान पर पहुँचने के लिए दो चौक पार करने के बाद भीतर अनेक कमरों में होते हुए ऊपर चढ़कर तीसरी मंजिल पर जाना पड़ता था। राहुलजी बिना किसीको साथ लिये अकेले ही चल पड़े। हम तीनों अपने-अपने काम में जुटे हुए थे। जब दिन ढलने लगा और तीन बज गये तब हम सबों को चिन्ता हुई कि राहुलजी क्यों इतनी देर लगा रहे हैं। अभयसिंहजी उनको बुलाने चल पड़े। वह भी गये तो वहींके हो लिये। पाँच बज गये और मारे भूख के हमारे पेट में ऐंठन होने लगी। मुझपर घर की देख-रेख का भार छोड़कर हमारे दयालु भाई गेशेलाजी भी चल पड़े राहुलजी की खोज करने। चारों ओर अँधेरा छा गया। सायंकाल की पूजा के बाजे और घड़ियाल बज उठे। मैं छज्जे पर बाट लगाये खड़ा था; देखा सामनेवाले चौक को पार करते हुए तीनों लपके चले आ रहे हैं। उन्हें आते हुए देखकर मैं मारे खुशी के उछल पड़ा, और उन्हें ऊपर लिवा लाने के लिए लपककर नीचे उतरा। भूख से मैं बेहाल हो रहा था। तुरन्त ही गर्म-गर्म चाय के साथ हम चारों झटपट भोजन को बैठ गये।

थोड़ी देर बाद राहुलजी ने बताया कि लगभग बारह बजे वह प्रधान लामाजी से विदा लेकर लौट पड़े थे। अनमने होने के कारण अँधेरी कोठरियों में घूमते हुए अपने मकान का सही दिशाज्ञान खो बैठे और गलती से दूसरी ओर निकल गये। भटकते हुए जब वह घूम रहे थे एक चौक को पार करते हुए दूसरे में और एक कमरे से दूसरे कमरे में, तो वह निकल पड़े एक बड़े भारी कमरे के सामने। वहाँ चल रही थी ढावाओं की एक ऊँची कक्षा। भारतीय लामा को देखकर पकड़ लिया उस कक्षा के लामाओं (Professor) ने और उनको बाध्य किया कि बौद्ध धर्म के विषय में कुछ बतायें। पहले तो टालने की कोशिश की, पर उनको बाद में जोश आ गया और देर तक बौद्ध धर्म पर बोलते रहे। पड़ोस की कक्षाओं के ढावा और लामा भी दौड़ पड़े और उनसे अपना भाषण जारी रखने का आग्रह करने लगे। उनको तब होश आया जब अँधेरे कमरों में भटकते हुए अभयसिंहजी की आवाज 'राहुल जी—राहुल जी' उनके कानों में पहुँची। उन्होंने आदमी भेजकर उनको बुलवा लिया और 'अभी चलते हैं' कहकर पास बिठाकर फिर लगे अंतिम कुछ बातें

। अंत में सबों से बिदा लेकर जब लौटने लगे तो समय पांच बज चुके थे। गेशेलाजी ने लौटते समय में उन्हें खूब झाड़ पिलाई थी, इसलिए राहुलजी हुए बोले 'पेट तो मेरा भर दिया है तिब्बती विद्वानों ती भक्ति से, और प्यास बुझा दी गेशेलाजी ने डांट मुझे पिलाकर।'

लू गुम्पा में रहते हुए कई दिन बीत गये थे। प्रातः उठकर मुँह-हाथ धोने की जरूरत नहीं; बस मुँह सूखे भेड़-बकरी के कच्चे मांस के टुकड़े के गोंडा और मक्खन वाली गर्म-गर्म चाय पीना। वर्ष बिना साफ की हुई चाय की प्यालियों में चाय सराय की स्वामिनी की नौकरानी या स्वयं उसकी लड़की होती थी। वह भी ऊपर से नीचे तक कालिख से काली रंगी हुई चाय लेकर खड़ी हमारे कमरे के एक कोने में दिन भर। हर पाँच मिनट पर आकर प्याली का ढक्कन उठाकर ठी सुरीली आवाज में कहती "बावूला-शोज़ा' बूला शोज़ाशू" अर्थात् बाबूजी चाय हाजिर है, जिए। कहाँ तक पीता वह सड़े मक्खन की बदबू-चाय जिसमें भेड़-बकरी के रोमों के गुच्छे तैरते !

के पुस्तकालय से लाये हुए प्राचीन हस्त-तालपत्र की पुस्तकों के पन्नों को एक लकड़ी पर ड्राइंग पिनों से लगाकर कैमरे के सामने , और उसका चित्र उतार लेता। हजारों वर्ष तालपत्र की वे पुस्तकें अधिकतर संस्कृत भाषा काली स्याही से लिखी हुई थीं। रूप-रंग में इतनी अच्छी हैं कि मानों अभी लिखी गयी हों। पाली भाषा में मोटी सूईदार कलम से लिखे । इनके अक्षर स्पष्ट देखने के लिए राहुलजी ने के चूल्हे की कालिख को तेल में मिलाकर कपड़े से रगड़ दिया। खुदी हुई लकीरों में वह स्याही और अक्षर बिल्कुल स्पष्ट पढ़े जाने लगे। में एक तख्ती पर अट्ठारह या उन्नीस तालपत्र पिन से लगाकर फोटो उतारा जाता था। इसी- दिन भर फोटो उतारने का काम, और रात को बजे तक अकेले उनको 'डेवलप' करन का काम प्रतिदिन लगभग पचीस निगेटिव तैयार कर डालता था। अर्थात् एक दिन में लगभग पाँच या छः सौ ताल-पृष्ठों के चित्र ले लेता था। राहुलजी सारे दिन किताबों को पढ़ने और छाँटने में लगे रहते थे। उनके पन्नों की सूची बनाते, और यह जाँच भी करते कि प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक पन्ने की फोटो ठीक-ठीक उतर गयी या नहीं। मोटे शीशे की सहायता से हमारे बने हुए निगेटिवों के बारीक अक्षरों को पढ़-पढ़कर देखते कि अक्षर स्पष्ट आये हैं कि नहीं। यदि कोई निगेटिव स्पष्ट न होते, तो फिर उस पुस्तक के उन्हीं पन्नों को दुबारा निकालकर उनके फोटो फिर से लिये जाते।

कई दिन तक बराबर एक सा काम करते-करते उस सुनसान मकान में जी ऊब गया। छोटी-छोटी बातों को लेकर आपस में झगड़े होने लगे। राहुलजी ताल-पत्र पर लिखी पोथियों को महत्व दे रहे थे किन्तु मठ के पुस्तकालय में बड़ी खोज करने पर मुश्किल से एक आध तालपत्र की पुस्तक निकलती थी। मठ का पुस्तकालय एक बड़े अँधेरे कमरे में था। असंख्य पुस्तकों के ढेर के ढेर युग-युग से एकत्रित किये पड़े थे। इनपर अपार धूल जम गयी थी। कभी-कभी खोज करते करते ढेरों सुन्दर-सुन्दर धार्मिक चित्रों के बण्डल मिल जाते थे। कभी-कभी मूल्यवान प्राचीन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी निकल आती थीं। वे मूर्तियाँ हाथीदाँत या लकड़ी की, या पीतल-ताँबे की ढलाई की होती थीं। इन चीजों को प्राचीन भारत से कौन और कब लाया था, पता लगाना असम्भव था। उस अंधकूप पुस्तकालय में हम चारों व्यक्ति मशाल की लाल रंग की रोशनी में घंटों इस प्रकार खोज के काम में जुटे रहते थे जैसे अँधेरी कोयले की खान में मजदूर जुटे रहते हैं। मशालों के जलने की तेल की बदबू, किताबों की झाड़-पोंछ से धूल भरी हवा और बंद कमरे की घुटन से हम लोगों का दम घुटने लगता था। जब कभी किसीको कोई मूल्यवान वस्तु मिल जाती तो मारे खुशी के चिल्ला उठता, "मिल गया, मिल गया," मानों खान में काम करनेवाले मजदूर को एक हीरा मिल गया हो। किताबों की गठरी सिरों पर लादे जब पुस्तक-भंडार के बाहर निकलते तब हम एक दूसरे को मिट्टी में नहाये हुए देखकर हँसते और कहते कि हम तिब्बत निवासी असली लामा लग रहे हैं।

तिब्बत बहुत ठंडा देश है और उसकी वायु

अत्यन्त शुष्क है। बकरे या भेड़ को काटकर उन दिनों (गर्मियों में) हम अपने कमरे में टाँग देते थे। तेरह या चौदह दिन में वह सूखकर लकड़ी की तरह कड़ा हो जाता था, अर्थात् खाने के योग्य हो जाता था। यहाँ कोई चीज सड़ती या गलती नहीं। इसलिए मैले-कुचैले लोगों के शरीर से बहुत दुर्गन्ध नहीं आती है। यहाँ कीड़े-मकोड़े भो नहीं होते हैं। सारी चीजें अँधेरे में रक्खी रहती हैं। इसलिए युग-युग की पुरानी चीजें और दीवारों की रंगीन चित्रकारियाँ बिलकुल चमकती हुई नयी बनी रहती हैं। इन प्राचीन पुस्तक भंडारों में हर एक को प्रवेश की आज्ञा नहीं मिलती थी। इनके द्वारों पर सील-मोहर लगी रहती थी। इस मोहर को तोड़ने के लिए ल्हासा के केन्द्रीय केबिनेट (बोर्ड) से आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी। इस आज्ञा पर स्थानीय मठ के लामाओं की सभा में विचार होता था। कभी-कभी तो कई दिनों तक स्थानीय लामा विचार करते रहते थे। अगर इनको हमारे ऊपर कोई सन्देह होता, या किसी पुरानी दुर्घटना के दुबारा घटने की आशंका होती तो वे सील-मोहर तोड़ने से इंकार कर देते थे।

एक दिन सबेरे-सबेरे चाय देनेवाली काली देवी से झगड़ा हो गया। जब उससे कहा कि चाय की प्याली को धोकर साफ कर दो, तो उसने उसमें थूककर उसको अपने कोट से रगड़ दिया। इस प्रकार की गन्दगी को देखकर मैं जलकर आगबबूला हो उठा और उसको लगा खूब डाँटने। फिर उसने दुबारा उसमें खूब ढेरसारा अपना थूक डालकर, अपने कोट के नीचे से अपना जम्फर निकालकर उससे रगड़ दिया और मेरे सामने चौकी पर रख दिया। मैं अपने क्रोध को रोक न सका और मैंने प्याली को उठाकर फेंक दिया। प्याली चूर-चूर हो गयी। उसे देखकर वह बड़े जोर से रो पड़ी और दौड़ी गई घर के स्वामिनी के पास। देखते-ही-देखते सारे घर के अनेक नर-नारी जमा हो गये और ऐसे रोने-पीटने लगे जैसे कोई मर गया हो। राहुलजी और गेशेलाजी भी घबड़ा गये और मुझको बुरा-भला कहने लगे। मैं भी अपना संतुलन खो बैठा। और मैंने भी उनको खरी-खोटी सुनायी और घर छोड़कर तेजी से बाहर निकल गया।

किसी ने मुझको पकड़ा नहीं, किसी ने मुझको टोका नहीं। मैं धड़धड़ाते हुए मकान से निकलकर ऊपर से नीचे उतरा और चौक को पार करके गुम्पा के फाटक के
निकल आया। इतनी तेजी से मैं भागा चला जा
था कि मानों मेरा कोई पीछा कर रहा हो। आगे
ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर से उछलता-कूदता
गया मैं वह छः मील की उतराई, और उस
बस्ती में पहुँच गया जिसमें पहुँचकर हमने पहली
बितायी थी।

बस्ती को पार करते हुए यह सोचते हुए
चला जा रहा था कि अकेला ही इस देश में भटक-
कर घूमता रहूँगा। जिसको राखे राम उसको मारे
कितने ही बटोही इस जगत में भटक-भटककर
रहे हैं, और घूमते-फिरते कितनी ही अमूल्य
छोड गये अपने जीवन गाथा की। मैं भी घूमता
जब तक मौत न आये। लिखकर छोड़ जाऊँगा
देखी बातें।

अचानक आँख उठी तो देखा एक गाँववाला
चला रहा है। बजाय बैलों के लम्बे-लम्बे रोम
सींगोंवाले दो बड़े-बड़े याक हल को खींच
धरती पत्थरों के टुकड़ों से पटी पड़ी थी, और हल
फाल पत्थरों को उछाल-उछालकर बड़ी
धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। मई के महीने में यहाँ
चलने शुरू हो जाते हैं। दो पहाड़ों के बीच की जगह
हवा की रुकावट के कारण कुछ गर्म रहती है,
इन घाटियों में खेती का काम होता है। जौ और
मटर की थोड़ी-सी फसल हो जाती है। इनका
बनाकर तिब्बत-निवासी बड़े चाव से सोडा मिली
से गूँथकर खाते हैं, और इन्हींका भुस और
खच्चरों के पेट भरने के काम आता है। सारे वर्ष में
ही फसल हो पाती है जोकि पक कर सितम्बर तक
हो जाती है। सितम्बर के बाद तेज टंडी हवा
लगती है और सर्दियों में बर्फ के तूफान चलने लगते
इन तूफानों में चूहे की तरह लोग दुबके बैठे रहते
और कुछ लोग गर्म जगहों की ओर भाग जाते हैं।

आगे चलकर देखा कि कुछ स्त्री, पुरुष
काम कर रहे हैं। लगातार गाना गाते जा रहे
तिब्बती नारियों का स्वभाव है कि जब वे कोई
करने को उठती हैं तो गाना गाने लगती हैं।
लगातार बड़ी सुरीली लय में गाना गा-गाकर काम

ती हैं। मुझ परदेशी को देखकर वह सहमकर चुप डरे हुए गाय-बैलों की तरह मुझको निहारने लगीं। यह दशा देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ा और लय में दो-चार तिब्बती भाषा के रटे हुए शब्दों गाकर दोहराने लगा। वे सब हँस पड़ीं और ना शुरू हो गया। उन्हींके साथ मैं भी उनके जुट गया और रोड़े पत्थरों को खेत से चुन-चुन करियों में भरने लगा।

में चढ़कर जब सूर्य हमारे सिर के ऊपर आ काम समाप्त हो गया और हम उनके साथ उनके ओर चल पड़े। एक गाँववाले ने मुझसे सिगरेट तो उसको मैंने अपनी जेब से निकालकर एक दे दी। यह देखकर सभी ने सिगरेट के लिए हाथ या। सबों को सिगरेट बाँटने लगा तो स्त्रियाँ ने लगीं। और फिर देखा कि नर-नारी सभी से सिगरेट पी रहे हैं।

के गाँव पर जब पहुँचे तो हमको एक आदमी र के भीतर लिवा ले गया। उसने बड़े आदर से ने कमरे में ले जाकर बिठाया। दो-चार टूटे-ब्दों में मैंने उनको अपनी कृतज्ञता प्रकट की। र-उधर की बातें होने लगीं। उस घर में दो स्त्रियाँ र एक बालक था। हम सबों ने एक साथ बैठकर ने मांस, सत्तू और चाय का भोजन किया। करते-करते हँसी-मजाक और छेड़-छोड़ होने पूछताँछ करने पर बड़ी देर में समझा कि यह स्त्रियाँ आपस में बहनें हैं। और एक बात बड़े की यह थी कि छोटी बहन विधवा थी। इस पुरुष भाई और हैं जो किसी काम पर बहुत दूर गये है। इन तीनों भाइयों ने अपने देश के रीति अनुसार क ही स्त्री से विवाह किया था। असल में विवाह यम किसी एक भाई से होती है और बाकी सब इस औरत को अपनी पत्नी समझकर बरतने लगते औरत भी बिना किसी संकोच के उनकी द्रौपदी र बड़े सुख से सब ही भाइयों के साथ हिल-मिल-अपना जीवन व्यतीत करती है। बाल-बच्चों की पाल का बोझ एक बाप पर नहीं पड़ता। मकान जमीन का बँटवारा भी नहीं करना पड़ता। का देश बहुत गरीब है; पेट पालना बहुत कठिन है; सारे पुरुष किसी न किसी काम से महीनों और वर्षों घर के बाहर घूमते रहते हैं। सौदागरों के साथ खच्चरों के पीछे-पीछे कुली बनकर घूमते हैं, या धनी लोगों की भेड़-बकरियों के झुंडों को चराते हुए एक घाटी से दूसरी घाटी में घास की खोज करते हुए घूमते रहते हैं। कभी-कभी कोई भाई थोड़े दिनों के लिए लौट आता है, तथा कपड़ा, पैसा, निमक, चाय इत्यादि देकर फिर अपने काम पर महीनों के लिए लौट जाता है। कहावत है कि जैसा देश वैसा भेष। ये सारे रीति-रिवाज, देश की आमदनी, वातावरण और राजनीतिक स्थिति पर आधारित होते हैं। अपने से भिन्न रिवाजों, वस्त्रों आदि को देखकर हँसना या व्यंग्य के कटु शब्द निकालना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है। इनमें मैले-कुचैले रहने की रीति क्यों है?—क्योंकि इस देश में भयंकर सर्दी पड़ती है और पानी का बड़ा अभाव है। इसीलिए यहाँ साफ सुथरी नारी को कुलक्षणी समझा जाता है। मैली-कुचैली औरत कुनबे की लक्ष्मी समझी जाती है। पता लगा कि यह बालक उसकी विधवा बहन का बच्चा है। इस गरीब देश में अधिक स्त्रियाँ अविवाहित रह जाती हैं। विधवाओं का फिर से विवाह करने की बात वह सोचते भी नहीं। किसी तरह अगर किसी विधवा नारी का विवाह हो जाता है तो वह बड़ी भाग्यवान समझी जाती है। विधवा-विवाह को पाप नहीं समझा जाता है। इस विधवा नारी की आयु पूछने पर पता लगा कि लगभग पच्चीस वर्ष है और उसका नाम "पेमा" है।

अचानक पेमा को वनभोजन करने की इच्छा हुई। परन्तु घर में केवल तीन पैसे हैं; खाने-पीने की चीजे कैसे मँगाई जायें? मुझसे पूछा पैसे हैं? मैंने अपनी जेब से तिब्बती ताँबे के बीस पैसे निकालकर उनको दे दिये। बस पेमा दौड़ी-दौड़ी गयी और बकरे की एक सूखी टाँग, सत्तू और चाय खरीदकर हाँफती हुई ले आयी। हम चारों की अब सलाह यह हुई कि दूर किसी झील या नदी के तट पर जाकर किसी हरियाली जगह पर बैठकर चाय पियें और गाना गा-गाकर दिन व्यतीत करें। बस झटपट उठे और खाने-पीने की चीजों को थैलियों में रख कर, चाय तैयार करने के बर्तन, दो बाँस के टुकड़े और दो-तीन कम्बल लेकर चल पड़े।

तिब्बत-निवासी वनभोजन के बड़े प्रेमी होते हैं।

अमीर-गरीब सभी मौका पाते ही, वनभोजन को दौड़ पड़ते हैं। कभी-कभी तो अपने कपड़े तक बेचकर वनभोजन की टोली के साथ हो लेते हैं। धनी लोग आठ-दस दिन तक किसी दूर मनोरम जगह पर मस्त पड़े रहते हैं। वनभोजन की टोली को जाते देखकर सभी की जीभ से लार टपकती है। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर ही वनभोजन के लिए जाते हैं, तथा नौकर-चाकर और कुत्ते भी अपने साथ ले जाते हैं।

हम सब हाथ में हाथ डाले गाना गाते हुए मैदान पार करते चले जा रहे थे। जाते-जाते देखा दूर मैदान में एक दुबला पतला खच्चर खड़ा है। थोड़ी देर में देखा वह अचानक जमीन पर गिर पड़ा। शायद वह बीमार अथवा दुर्बल था। इसके धरती पर गिरते ही पता नहीं कहाँ से, सैकड़ों की संख्या में बड़े बड़े गिद्ध आ झपटे और उस छटपटाते हुए जानवर को देखते ही देखते इन्होंने चीर-फाड़ डाला। जब हम दौड़कर उसके समीप पहुँचे तो देखा कि उसकी हड्डी-पसली बिखरी पड़ी है। कुछ गिद्ध तो हमें देखकर भाग गये पर कुछ भयंकर शक्लें बनाकर हमारी ओर झपटे। साथियों ने मेरा हाथ पकड़कर पीछे खींच लिया और चलने को कहा।

चलते चलते हरे-भरे मटर के खेतों के बीच से जब गुजरने लगे तो कुछ हरी-हरी मटर की फलियाँ उस बालक ने तोड़कर अपनी माता को दीं। पेमा ने उनमें से मटर के दाने निकालकर मुझको दिये। यह देखकर यह दोनों स्त्री-पुरुष बड़े प्रसन्न हुए और एक गाना गा-गाकर पेमा से हँसी-मजाक करने लगे। थोड़ी देर बाद उसने भी बिगड़कर कुछ कहा और उनको चिढ़ाने के लिए मेरे कमर में हाथ डालकर चलने लगी। इसी प्रकार हम अठखेलियाँ करते आबादी से बहुत दूर एक बड़ी ही मनोरम झील के समीप आ पहुँचे। बाँस और खूँटों की सहायता से एक कम्बल को टाँगकर ठंडी हवा को एक ओर से रोक दिया गया। उसकी आड़ में हम सब कम्बल बिछाकर बैठ गये। कूड़ा करकट जमा करके आग जलायी और चाय के लिए पानी का प्रबंध करने लगे।

चमकता हुआ सुनहरा सूर्य पहाड़ों की ओट में आँख-मिचौनी खेलता भागा चला जा रहा था। झील के चारों ओर हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे। दूर-दूर से अपने-अपने घर को लौटते हुए तिब्बती लोग गाना गाते हुए चले जा रहे थे। उनकी सुरीली आवाज ठंडी मतवाली हवा में
हुई हमारी ओर चली आ रही थी। मैंने झील के
जाकर उसका पानी चखा। मालूम हुआ कि उसका
बहुत ही खारा है। समझ गया आज चाय में सोडा
की जरूरत नहीं। छोटी-छोटी मछलियों के झुंड
के किनारे तैरते दिखायी दे रहे थे। उस बालक की
यता से मैंने कपड़ा डालकर कुछ मछलियाँ पकड़ लीं
लाकर सोचा कि उन्हें आग में भूनकर सबों के लिए
दार भोजन बना डालूँ। मुझे उन्हें आग मे भूनते हुए देख
वे लोग बहुत दुखी हुए, और ऐसा लगा कि मैंने कोई
पाप कर डाला हो। उन सबों को निकालकर फिर
में डाल दिया और वह सब बैठ गये पूजा-पाठ करने।
देर बाद मुझको भी हाथ जोड़कर मंत्र पढ़ने को कहा
मैं भी लज्जित होकर गायत्री मंत्र जोर जोर से दो
लगा। बाद में उनकी विवाहिता स्त्री ने हमारे सबों
ऊपर थूककर हमको शुद्ध कर दिया, जिस प्रकार ह
देश में गंगाजल छिड़ककर शुद्ध कर दिया जाता है।

चाय तैयार हो गयी और हम सब खाने-पीने बैठ
एक ही प्याली में हम सब बारी बारी से चाय पी रहे
अब एक नया खेल और आरम्भ हुआ कि पेमा मेरे
ओर आ बैठी और अपनी जूठी प्याली में चाय भर
मुझे देने लगी। यह देखकर पुरुष ने मजाक के नाते
खींचकर अपने बाईं ओर बिठा लिया जिससे चाय
दौर चलने पर उसकी जूठी प्याली में वह खुद चाय पि
इसका कारण बाद में मालूम हुआ कि इनके यहाँ कि
अपनी जूठी प्याली में शराब या चाय पीने को देना
प्रांत अपना हार्दिक प्रेम भाव प्रकट करना समझा जा
है। वह नारी बार-बार मेरे बगल में आ बैठती और
अपना हार्दिक प्रेम जताने की चेष्टा करती। उसकी
इन सब बातों में खूब मजा ले रही थी, और खूब
स्वर में एक गाना बार-बार दोहरा रही थी। बालक
से सूखे मांस के कच्चे टुकड़े निकाल-निकालकर ब्रिटे
बिस्कुटों की भाँति बड़े चाव से चबाये जा रहा था। मुझे
इससे पहले कभी इस प्रकार दूसरी जाति और पर
के साथ हिल-मिलकर खाने-पीने का अवसर नहीं
था। पहिले तो मैं डरा, हाथ-पाँव ठंडे पड़ गये; ह
धड़कने लगा। सोचने लगा कि अब क्या होगा; धर्म
हो जाएगा; बाप-दादा के उज्ज्वल नाम पर का

आयेगी। सोचते-सोचते मैं बहुत परेशान हो गया। मतवाली पेमा ने अपनी जूठी प्याली में आधी पी हुई फिर से मेरे होठों से लगा दी तो मेरा मनोभाव ऐसा या था कि मुझे लगा कि जैसे किसी ने मुझे डंक मार । मेरा सब आह्लाद और उल्लास गायब हो गया, एकाएक मैं बहुत गंभीर हो उठा।

धीरे-धीरे सूर्य दूर पहाड़ों की ओट में छिप गया और शीघ्रता से अँधियारी छाने लगी। इससे मेरे साथी भी व्याकुल नहीं हुए, बड़े मजे से सत्तू और कच्चे का भोजन चाय के साथ करते रहे। दूर से एक गाँव-ों की टोली गाना गाती चली आ रही थी। समीप र वह भी हमारे वनभोजन में सम्मिलित हो गयी। देर बाद वे उठकर अपने रास्ते पर हो लिये और हीं बैठे रह गये। धीरे-धीरे रात हो गयी; ठंडी हवा बहने लगी; चारों तरफ काली रात की गाढ़ी छाया न्नाटा छा गया। जगमगाते हुए तारों भरे गगन के हम सब लोग रात भर कुत्तों की तरह एक दूसरे से टे हुए सिकुड़े पड़े रहे। जब आँख खुली तो देखा एक आकाश में पौ फट रही है। झट उठ बैठा और चित्र-होने के नाते धीरे धीरे आने वाले सप्त रंगों का खेल में मग्न हो गया। नीले निर्मल झील के जल में उन का खेल आज भी मुझे याद है। चाय और पानी के ाली पड़े थे। चाय भी समाप्त हो चुकी थी। बचे कच्चे मांस के टुकड़े उस बालक को खिलाकर हम गांव की ओर लौट चले।

डी हवा मन्दगति से चल रही थी। रंगबिरंगी तितलियाँ मदभरी नाचते हुई फूलों से बिदाई लेकर उड़ी चली जा रही थीं। छोटी-छोटी चंचल भूरी गौरैयाँ अपने बसेरों को त्यागकर खेत की हरियाली के नीचे नाचगान करती फिर रही थीं। बिना पूँछ वाले चूहे और जंगली खरगोश अपने-अपने बिलों से मुँह निकाल-निकालकर प्रातः की सुनहरी शोभा को निहार रहे थे। मटर के फूलों की भीनी भीनी मीठी महक लेते हुए कहीं-कहीं इक्का-दुक्का पथिक पगडंडियों पर चले जा रहे थे। चारों ओर के गम्भीर शांत वातावरण से प्रभावित होकर मैं अनमने मन से यही सोचता हुआ चुपचाप चला जा रहा था कि युग युग के स्वाधीन तिब्बत निवासी कितने निडर, वीर और सरल हृदय हैं। यह खुली हवा में निडर होकर घूमते फिरते हैं। न है डर इनको चोर-डाकू का, न डर है इनको धर्म समाज का और न परवाह करते हैं कि कल क्या होगा। इतिहास बतलाता है कि इस वीर जाति को जितनी बार किसी शत्रु ने पराजित करके दबाया उतनी ही बार मौका पाकर उसने फिर अपने को मुक्त कर लिया। उस स्वतंत्र जाति के जन-साधारण के इतने निकट आने का वही मेरा प्रथम अवसर था। मैं उनकी निश्चिन्तता, मस्ती और आत्मीयता की भावना से अत्यंत प्रभावित होकर उनके कठिन और दरिद्र जीवन पर विचार करता हुआ उनके साथ उनके गाँव की ओर लौटा चला जा रहा था। उस स्वप्न के समान महूर्त में मैं शालू गुम्पा, राहुलजी, अपने साथी, अपना काम और यहाँ तक कि अपनी असहाय अवस्था भी थोड़ी देर के लिए भूल गया।

* * *

पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र

(१८५४-१९४२)

श्री उमाशंकर

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में काव्य की भाषा के संबंध में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था। भारतेन्दु बाबू के उद्योग से खड़ीबोली की मान-प्रतिष्ठा गद्य के क्षेत्र में हो गयी थी, पर पद्य के लिए उन्होंने १८८३ ई० में 'हिन्दी' शीर्षक निबन्ध में यह स्वीकार कर लिया था कि वे खड़ी बोली में कविता करने में असफल रहे। भारतेन्दु बाबू की इस असमर्थता की दुहाई देकर खड़ी बोली का विरोध किया गया। ब्रजभाषा के महान् साहित्यकार स्वनाम-धन्य पं० राधाचरण गोस्वामी ने १८ नवम्बर १८८७ ई० के 'हिन्दोस्थान' में लिखा कि "आजकल हमारे कई भाइयों ने इस बात का आन्दोलन किया है कि खड़ीबोली जैसी हिन्दी में पद्य भी लिखा जाया करे, पर इस प्रकार की भाषा रचना करने में कई आपत्ति हैं। प्रथम तो भाषा की कविता, सवैया आदि छन्दों में ऐसी भाषा का निर्माण नहीं हो सकता, तब भाषा के प्रसिद्ध छन्द छोड़कर उर्दू के बैत, शैर, भजन आदि का अनुसरण करना पड़ता है, पर फारसी शब्दों में होने से उसमें साहित्य नहीं आता।" उन्होंने पुनः १८८८ ई० के 'हिन्दोस्तान' में ही लिखा कि—"खड़ीबोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है, जो ब्रजभाषा में न कविता कर सकते और न काव्य के तत्वों को जानते हैं।"

उपर्युक्त प्रकार की आलोचनाएँ खड़ीबोली के विरोध में चल रही थीं। वैसे, खड़ीबोली का समर्थन श्रीधर पाठक, अयोध्याप्रसाद खत्री, भुवनेश्वर मिश्र, तथा महेश नारायण ने किया था, पर खड़ीबोली का एक ऐसा समर्थक भी था, जो बोलने में नहीं, काम करने में विश्वास रखता था। उसने घनाक्षरी, सवैया, आदि अनेक छन्दों में कविता लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि खड़ीबोली में किसी भी छन्द का प्रयोग बिना किसी कठिनाई के बड़ी सुघराई के साथ किया जा सकता है। उस प्रयोगकर्ता का नाम कवीन्द्र पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस बात का समर्थन करते हुए कहा है—'चम्पारन के प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् और वैद्य पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र, जो भारतेन्दुजी के मित्रों में से थे, संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में भी बड़ी सुन्दर और आशु कविता करते थे। मैं समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल में संस्कृत वृत्तों की खड़ीबोली के कुछ पद्य पहले-पहल मिश्र जी ने ही लिखे।'

पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र का जन्म चम्पारन जिले के अंतर्गत बगहा के निकट रत्नमाला गाँव में द्वितीया पौष कृष्ण पक्ष सन् १८५४ ई० में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज इतिहास के ख्याति-प्राप्त विद्वान् मयूर मिश्र थे। उन्होंने स्वामी शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। बताया जाता है कि उन्होंने विभिन्न जातियों की लड़कियों से तीन विवाह किये थे। ब्राह्मण पत्नी से जो उनका वंश चला, उसकी ९०वीं पीढ़ी के वंशधर श्री धरनीधर मिश्र चम्पारण आये। वे बड़े ही विद्वान् थे, बेतिया राज्य में आश्रित हुए और रत्नमाला में जा बसे। इसी वंश में उच्चकोटि के कवि और सुन्दर गायक पं० कमलाधर मिश्र का जन्म हुआ। कमलाधर मिश्र ही चन्द्रशेखर मिश्र के पिता थे। विरासत के रूप में उन्हें साहित्यिकता मिली थी।

मिश्रजी की शादी महसों गाँव में हुई थी। उन दिनों महसों के राजा भवानीबख्शपाल और शीतलाबख्श सिंह थे। उन लोगों की कृपा उनपर थी। यह कृपा उन्हें ऐसे ही नहीं मिली थी। कहा जाता है, वहाँ उन्होंने अपनी कविता-शक्ति का अपूर्व परिचय दिया था। उन्होंने एक घण्टे में संस्कृत और हिन्दी के १०९ अनुष्टुप छन्दों की रचना की थी। जब वे कम उम्र के थे तभी उनके पिता का देहान्त हो गया, और घर का पूरा भार, उनके पिता की जिन्दगी में ही, उनपर आ गया था। कारण यह था कि उनके पिता का अधिकांश समय पूजा पाठ और साधु साहचर्य में बीतता था। मिश्रजी के तीन पुत्र हुए थे। एक पुत्र का देहान्त तो उनके जीवन में ही हो गया था। मिश्रजी को अपने पुत्र 'बुकानन' से बड़ी आशा थी, उन्होंने उसपर आशीर्वाद स्वरूप निम्नलिखित छन्द लिखा था—

कानन तो अखियाँ है तुम्हारी,
विलोकि मृगी भयी लज्जित कानन,
देश-विदेश में देखो नहीं तब
नासिका-सी कवि पायो बुकानन।
कानन हूँ न सुन्यो सपने तव
रूप की शोभा बढ़ी छवि कानन,
कानन आँगुरि देके कहौं कि
जिये शत लाखन वर्ष शुकानन।

बुकाननजी अपने पिता की आशा के अनुरूप ही अपने ढालने की कोशिश करते रहे।

पं० चन्द्रशेखर मिश्र की शिक्षा संस्कृत के माध्यम से दी गयी। कहा जाता है कि १२ वर्ष की अवस्था में वे लघुकौमुदी, अमरकोश आदि पढ़ चुके थे। बचपन सिद्धान्त कौमुदी और भूषण-मंजूषा ऐसे कई संस्कृत ग्रन्थ उन्हें कंठस्थ हो गये। इसके बाद वे विशेष शिक्षा करने के लिये अयोध्या चले गये। वहाँ उन्हें गुरुशरण के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। वहाँ रहते उन्होंने रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, किरातार्जुनीय, पालवध और साहित्य दर्पण आदि संस्कृत के ग्रन्थ। वे प्रायः सभी ग्रन्थ उन्हें कण्ठस्थ थे। इसका फल यह कि जब प्रौढ़ावस्था में बोलते, भाषण देते या वार्तालाप थे, तब उसमें धारावाहिक रूप से इन पुस्तकों के होते थे।

अयोध्या में ही चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' से का सम्पर्क स्थापित हुआ। वहीं उनके हृदय में साहित्य स्रोत फूटा। वे भाषा-शास्त्र के विद्वान् तो थे ही, वहाँ और पिंगल का भी उन्होंने अध्ययन किया। कहते उस युग के जितने कवि और साहित्यकार थे, उनमें वे से बढ़कर छन्द और पिंगल के ज्ञाता थे।

पं० चन्द्रशेखर मिश्र भारत-विश्रुत वैद्य थे, उनकी ख्याति देश भर में व्याप्त थी। अखिल भारतीय वैद्य महा-सम्मेलन ने उनको 'चिकित्सक चूड़ामणि' की उपाधि दी थी। 'वैद्यरत्न' की उपाधि उन्हें बिहार पंडित सभा की ओर से मिली थी। कलकत्ता की आयुर्वेद सभा ने भी महामान्य मालवीयजी की अध्यक्षता में उन्हें सम्मानित किया था। उनके पास अधिकांश वे रोगी आते थे जो जीवन से निराश हो चुके होते थे। जलोदर, मस्तिष्क विकार, हृदय-रोग, जीर्ण-ज्वर, साँस आदि असाध्य रोगों की दवा वे अपनी प्रणाली के अनुसार किया करते थे। उसमें उन्हें प्रभूत यश प्राप्त हुआ था। कलकत्ता और काशी में वे इन रोगों के सिद्धहस्त वैद्य माने जाते थे। कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले 'इन्डियन मेडिकल रेकर्ड' पत्र के सम्पादक ने यह स्वीकार किया था कि कालाजार के जिस रोगी को कलकत्ते के तीन प्रसिद्ध डाक्टरों ने जवाब दे दिया था और रोगी को बतलाया गया था कि एक सप्ताह के अन्दर ही उस का देहान्त हो जायेगा, वह भी मिश्रजी की दवाओं से शीघ्र ही भला-चंगा हो गया। वे एक पीयूष-पाणि वैद्य थे। पैसों के लिए कभी उन्होंने रोगियों की दवा नहीं की, वे तो परोपकार की भावना से प्रेरित होकर रोगियों की दवा करते थे।

मिश्रजी ने एक नवीन आयुर्वेदिक आविष्कार किया था। उस दवा का नाम 'उदुम्बरसार' है। वह गूलर के पत्तों का सत् है। मिश्रजी ने गूलर की महत्ता पुराण में पढ़ी थी। भगवान् ने नरसिंहावतार में प्रह्लाद के पिता हिरण्य-कश्यप का पेट उसकी दानवी प्रवृत्ति के कारण अपने नाखूनों से फाड़ डाला था, पर इस काण्ड के बाद उनके शरीर में अग्नि के समान जलन पैदा हुई। भगवान् का सारा शरीर काँपने लगा, सामने गूलर का पेड़ था, उन्होंने बेचैनी में गूलर के छालों को अपने नाखूनों से नोच डाला। फिर क्या था, भगवान् की सारी जलन शान्त हो गयी। उसी समय भगवान् ने गूलर को वरदान दिया कि जो भी व्यक्ति गूलर-वृक्ष की छाँह में जायगा, उसका सारा पुण्य गूलर को प्राप्त हो जायगा। न जाने कितने विद्वानों ने इसे पढ़ा होगा, परन्तु इसपर किसी ने ध्यान नहीं दिया। बताया जाता है कि एक बार मिश्रजी टमटम से गिर गये और उनके पैर में चोट पहुँची। चोट साधारण नहीं थी, वे बहुत ही बेचैन थे। भगवान् नरसिंह की कथा उन्हें याद हो आयी। उन्होंने भी अपनी बेचैनी को दूर करने के लिए गूलर के सत् का प्रयोग किया, उससे उन्हें बहुत लाभ हुआ। सफलता से प्रभावित होकर उन्होंने 'उदुम्बर-सार' का आविष्कार किया। कान, आँख, दाँत और जीभ के लिए तो यह रामवाण है। 'कैंसर'—जिसे डाक्टर लोग प्राण-घातक रोग समझते हैं, इसी दवा से मिश्रजी ने अनेक रोगियों को ठीक किया था। कुष्ट, गर्मी, सूजाक, प्रमेह आदि भयंकर रोगों के लिए यह उदुम्बरसार अव्यर्थ महोषधि है। इस ओषधि की प्रशंसा करते हुए महामान्य

मदनमोहन मालवीय ने कहा था कि आयुर्वेद के उत्कृष्ट विद्वान्, उपकार-परायण पं० चन्द्रशेखरधर मिश्रजी ने गूलर के पत्तों के अद्भुत गुणों का विकास कर मानव मात्र का उपकार किया है और इस उपकार के लिए वे मनुष्य जाति की कृतज्ञता के अधिकारी हैं। पंडितजी का 'यज्ञांग-प्रकाश' व 'गूलर गुण-विकास' नामक लेख उनके आयुर्वेद की योग्यता के साथ साथ, उनके संस्कृत और हिन्दी के पांडित्य का भी परिचायक है। कविराज गणनाथ सेन ने उदुम्बरसार की प्रशंसा करते हुए कहा था कि मिश्रजी का आविष्कृत उदुम्बसार सर्जरी चिकित्सा में महान् उपयोगी हो रहा है।

पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र 'खड़ीबोली-आन्दोलन' के सफल संचालकों में थे। उन्होंने इस आन्दोलन का संचालन ही नहीं किया था, खड़ीबोली में रचनाकर उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया था कि खड़ी बोली में अच्छी कविता उसी प्रकार हो सकती है, जिस प्रकार ब्रजभाषा में। उन्होंने तो ऐसा विचार व्यक्त किया था कि खड़ी बोली काव्य में ऐसा सुधार आयेगा कि लोग उसे ही अपनायेंगे। आज मिश्रजी की धारणा के कायल वे सभी लोग हैं, जिन्हें प्रिय-प्रवास, साकेत और कामायनी आदि महाकाव्य देखने का अवसर मिला है।

बहुतों ने यह घोषणा की कि हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा होने के योग्य है, किन्तु मिश्रजी समझते थे कि योग्यता से ही प्रतिष्ठा नहीं मिलती है। राष्ट्रमंदिर में हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने के लिए भगीरथ प्रयास की आवश्यकता है। उन्होंने अपना प्रयास आरम्भ किया। चम्पारण, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, अयोध्या, काशी, प्रयाग एवं बिहार के अनेक नगरों में हिन्दी स्कूल, हिन्दी पुस्तकालय और हिन्दी संस्थाओं की स्थापना उनके प्रयास से हुई। उस दिन आचार्य शिवपूजन सहाय ने मुझे बताया था कि मिश्रजी ने भारतेन्दु के नाम पर २५० साहित्यिक-संस्थाएँ देश में स्थापित करायी थीं। इन संस्थाओं के द्वारा भारतेन्दु-युग में हिन्दी की बड़ी सेवा हुई थी।

आचार्य श्यामसुन्दरदास ने उन्हें एक प्रमुख निर्माता माना था। उन्होंने 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' में, जो १९० ई० में प्रकाशित हुई थी, उनके सम्बन्ध में लिखा था—"संस्कृत में इन्होंने काव्यनीति, भक्ति और वैद्यक संबंधी १०–१२ ग्रन्थ लिखे हैं। हिन्दी पद्य में उन्होंने कोई ३ पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त एक नाटक, चार पाँच उपन्यास, कई जीवन-चरित्र और फुटकर विषय के कई छोटे छोटे ग्रन्थ लिखे हैं, पर दुःख है कि अधिकांश ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए। सम्वत् १९६१ ई० में इनकी पाठशाला और पुस्तकालय में आग लग जाने के कारण इनके बहुत से ग्रन्थ जल गये। मिश्रजी की केवल एक ही पुस्तक 'गूलर-गुण-विकास' प्रकाशित हो सकी। अभी भी उनके बहुत से निबंध पत्र-पत्रिकाओं में पड़े हुए हैं, उन्हें खोजकर प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।"

उन्होंने १८८७ ई० मे 'विद्याधर्म दीपिका' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया था। इसे वे मुफ्त बाँटते थे। १५ वर्ष तक उन्होंने ऐसा ही किया। उनका कहना था कि हिन्दी की ऐसी दयनीय दशा है कि आठ आने पैसे देकर भी कोई प्रतापनारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' का आदर नहीं करता। इस अवस्था में हिन्दी के प्रचार के लिए 'विद्या धर्म दीपिका' का निशुल्क वितरण ही उचित प्रतीत होता है। 'चम्पारण-चंद्रिका' का प्रकाशन भी उन्होंने किया था। इस पत्र के द्वारा उन्होंने खड़ीबोली का आन्दोलन संचालित किया। उन्होंने १९२३ ई० में पटना में होनेवाले बिहार हिन्दीसाहित्य सम्मेलन के पंचम अधिवेशन का सभापतित्व किया था। अपने अन्तिम दिनों में उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी थी, जो अभी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं हो सकी है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने मुझे बताया था कि उनकी आत्मकथा में हिन्दी की अमूल्यनिधि पड़ी हुई है।

मिश्रजी के अन्तिम दिन बहुत ही कष्ट में बीते थे। अन्तिम दिनों में वे काशी में रहते थे। काशी में ही ८८ वर्ष की आयु में १९४२ ई० में उनका देहान्त हुआ। उनके मरने से भारतेन्दु परम्परा की अन्तिम कड़ी टूट गयी।

हमारा यह अनन्त ब्रह्माण्ड

श्री सन्तराम

ारे सामने विश्व ब्रह्माण्ड का जो चित्र है उसके नुसार यह लाखों करोड़ों आकाश-गंगाओं की एक ला है। प्रत्येक आकाश-गंगा लाखों-करोड़ों तारिकाओं ल है। इन छायापथों में से एक के बाहरी किनारे क औसत आकार और परिमित तापमान का एक है। यह पहले ही पीला पड़ कर बूढ़ा होता जा रहा ह है हमारा सूर्य। हमारी धरती उन विविध टुकड़ों एक है, जो किसी समय किसी अज्ञात रीति से, सूर्य र्द घूमने लगे। धरती की पपड़ी केवल कुछ ही मील और गाढ़ी है। इस पपड़ी के नीचे पिघली हुई चट्टानें धातुएँ प्रचण्ड ताप में खदबदा रही हैं। इसके गिर्द और बसाल्ट नामक कड़े स्फटिक पत्थरों का घेरा ह घेरा ही इसे प्रचण्ड अग्नि शिखा के रूप में फूट ने से रोके हुए है।

न दो अग्नियों के बीच, ठंडे होते जा रहे उस के टुकड़े, जिस पर हम रहते हैं, और उस नक्षत्र दीप्ति जिसके साथ कि हम बँधे हुए हैं——मनुष्य उसके जीवन-साथी, पशु-पक्षी, खड़े हैं। वे कितने ल हैं! सूर्य की शक्ति में हलका सा भी प्रतिशत उतार-चढ़ाव हो जाने से यह जीवन का साथी-दल नी के समान बुझ सकता है। और फिर धरती ड के इस अकेले छोटे से सजीव टुकड़े में ही आत्म कट हुआ है। महान् आश्चर्य ये नक्षत्र, और छायापथ वरन् बड़ा आश्चर्य तो मनुष्य का मन है, जिसने हस्यों का ज्ञान उपलब्ध किया है और इन सबमें नियम का सूत्र ढूंढ़ निकाला है।

कविगण नक्षत्रों का आह्वान स्थिरता के पूर्ण आदर्श में करते हैं, और नाविकगण देखते हैं कि हम ज्योति स्थिर विन्दुओं के द्वारा दिशाओं का पता लगा सकते जहाज चला सकते हैं। तो भी खगोलशास्त्री घोषित हैं कि कोई भी तारा स्थिर नहीं है। उदाहरणार्थ, र और पोलक्स नामक तारों को ही ले लीजिए। ता से, जब अभी ग्रीकों ने इनके नाम भी नहीं रक्खे थे, माने जाते रहे हैं। वे आकाश में एक दूसरे के इतने ट हैं, चमक दमक में इतने समान हैं, एक दूसरे के साथ में इतने अपरिवर्तनीय हैं, कि वे जुड़वाँ कहलाते थे।

परन्तु दूरबीन, स्पेक्ट्रोस्कोप और फोटोग्राफ के प्लेट का प्रतिवेदन यह है कि दोनों नक्षत्रों का आपस में किसी प्रकार का भी संबंध नहीं। दोनों के यात्रा-मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। फिर केस्टर पृथ्वी से पोलक्स की अपेक्षा लगभग और भी आधी दूर है। स्पष्ट रूप से वे दो अजनबी हैं जो, अन्तरिक्ष में हमारी वर्तमान स्थिति से देखने पर, संयोग से एक दूसरे के निकट मालूम होते हैं।

काल अनन्त है और उस नित्यता के एक बहुत छोटे से मुहूर्त में ही मानव तारों के संबंध में सतर्क रहा है। इस छोटे से मुहूर्त में तारों ने कोई बोधगम्य परिवर्तन नहीं दिखलाया, उनकी महान् दूरियों की अन्तरिक्ष की गहराइयों की तुलना में आकाश के वार पार उनकी गति अपेक्षाकृत इतनी क्षुद्र है! ऐसी असीमता द्वारा उत्पन्न की हुई पृथकताओं का अनुभव करने में मानवी नेत्र अक्षम हैं।

परन्तु इससे भी कहीं अधिक कुछ छिपा हुआ है। जब हम दूरवीन में से अकेले केस्टर पर अपना ध्यान एकाग्र करते हैं, तो हम पाते हैं कि यह एक नहीं वरन् दो तारे हैं। इन दोनों तारों के बीच का अन्तर हमारी पृथ्वी और सूर्य के बीच के अन्तर से सौ गुना से भी अधिक है।

केवल इतना ही क्यों? और सुनिये। जब वेधशालाओं के अधिक सूक्ष्मदर्शी यंत्रों का प्रयोग किया जाता है तो हमें पता लगता है कि जो चीज हमारी आँख को एक अकेला स्थिर तारा देख पड़ती है वह वास्तव में छः तारों का गुच्छा है जो तीन जोड़ों का समूह है, प्रत्येक तारा एक ग्रहपथ में परिभ्रमण कर रहा है, और प्रत्येक तारे का गतिवेग अपना अपना विशेष है। केस्टर के सत्य स्वरूप को—इसके भीतरी-चक्करों, इसके घूर्णनों, ग्रह-मानचित्र पर इसके प्राचीन अभ्यस्त स्थान से इसकी सिर के बल उड़ानों को——जानते हुए कौन पोत-वाहक पोत चलाने के लिए इसे एक स्थिर चिह्न समझेगा?

आधुनिक नक्षत्र-विज्ञान ने यह रहस्योद्‌घाटन किया है कि यह शान्त आकाश एक विशाल असदृशता है, जिसमें अगणित सूर्य, अकेले अकेले या एकाधिक मिलकर गैस के उत्तेजित अणुओं की तरह प्रायः सभी दिशाओं में तीव्रगति से दौड़ रहे हैं। वेगा नक्षत्र कोई आठ मील प्रति सेकण्ड से भाग रहा है। एलडीबारन ३३ मील प्रति सेकण्ड

की गति से पीछे हट रहा है। आर्कटूरस ८४ मील प्रति सेकण्ड की गति से लाँघ रहा है। बिग डिप्पर के दो किनारे के तारे, सप्तर्षिमण्डल में, एक दिशा में चल रहे हैं। जब कि इस नक्षत्र-पुंज के दूसरे तारे विपरीत दिशा में प्रचण्ड वेग से दौड़ रहे हैं। हमारा नक्षत्र भी अपवाद नहीं। हमारा सूर्य आकाश गंगा के बाहरी किनारे की ओर १२ मील प्रति सेकण्ड की गति से घूम घूम कर चल रहा है। वह हमारी धरती और दूसरे ग्रहों को अपने साथ घसीटे लिये जा रहा है। इसके साथ ही सारा सौर जगत् एक बड़े वृत्तांश में १५० मील प्रति सेकण्ड डोल रहा है, जब कि स्वयं आकाश गंगा एक विशाल नक्षत्रीय पिन पहिये के सदृश घूम रही है।

ब्रह्माण्ड में जो कुछ था हम वह देखते हैं, न कि वह जो कुछ है। हम वह सूर्य देखते हैं जो वह आठ मिनट पहले था, वह सिरियस नक्षत्र देखते हैं जैसा कि वह नौ वर्ष पहले था, वह प्लीडीस (कृत्तिका तारा मण्डल) देखते हैं जैसे कि वे ५०० वर्ष बीते तक थे। किसी निर्मल अँधेरी रात में आँख एण्ड्रोमीडा नामक नक्षत्र-पुंज में चन्द्रमा के बराबर पीले प्रकाश का बादल देख सकती है। यह बादल बाहरी छायापथों में से एक है। यह हमें वैसा प्रतीत होता है जैसा कि वह बीस लाख वर्ष पहले था। तब से इसके अगणित ताराओं के साथ क्या घटना घटी, यह हम नहीं बता सकते।

एण्ड्रोमीडा छाया-पथ, हमारी नंगी आँख जहाँ तक देख सकती हैं, उसकी बाहरी सीमा के निकट है, परन्तु दूरबीन की सहायता से हम ब्रह्माण्ड के अतीत में लाखों वर्ष तक पैठ सकते हैं। जब अतीव प्रबल दूरबीन के साथ संवेदनशील फोटोग्राफिक प्लेट लगा दिया जाता है, तो हम करोड़ों-अर्बुदों वर्षों के बाद जा सकते हैं।

इन दूरवर्ती पिण्डों की किरणें प्रस्तरीभूत प्रकाश कहलाती हैं, और पृथ्वी में जो प्रस्तरीभूत पशु-पक्षी पाय गये हैं उनसे वे बहुतों से पहले की हैं। आश्चर्य होता है कि प्रकाश, जो इतना दुर्बल और विनश्वर है कि इसे गैस का एक पटल या धूल का एक कण भी रोक सकता है, १,८६,००० मील प्रति सैकण्ड के वेग से लाखों करोड़ों वर्ष तक यात्रा कर सकता है। ये किरणें अन्तरिक्ष की सापेक्ष शून्यता को सिद्ध करती हैं और साथ ही यह सुझाती हैं कि इसकी गठन कैसी सुविधाजनक है।

आकाश के प्रतिनिधि विभागों का फोटोग्राफ से, नक्षत्रों की गणना करना संभव हो जाता है। व्यक्ति ने आकाश का एक फोटो लिया है। उसमें १७ इंच के एक ही प्लेट में बंदी किये हुए २००० से बाहर की ओर के छाया-पथों—२००० आकाश का—चित्र है! यह कूता गया है कि जिन छायापथों विश्व बना है उनकी संख्या ५०० दस लाख या पाँच

छायापथ में कितने तारे हैं? आकाश गंगा के हुए टुकड़ों की गिनती की गयी है—एक प्रेक्षक ने बीस से अधिक विशिष्ट तारे गिने हैं। और इन पर्यवेक्षणों और गतिविज्ञान-संबंधी गणनाओं से यह कूता गया कि हमारी आकाश गंगा १००,००० दश लक्ष तारा की सुश्रृंखला है। परन्तु अनेक बहिर्देश छायापथ बड़े नहीं।

विश्व के विशाल प्रसार का कुछ संकेत पाने के हम एक अनुमान कर लेते और कुछ तुलनाएँ और निकालते हैं। कल्पना कर लीजिए कि पृथ्वी सिकुड़ एक बिन्दु के बराबर हो गयी है। सियाही का यह व्यास में एक इंच का लगभग पचासवाँ भाग है। हमारा ७,९१८ मील मध्यमान व्यास वाला ग्रह सिकुड़ एक इंच का पचासवाँ भाग हो जाय—यह उसके अपने २५,००० दस लाखवें भाग से भी कम है— और विश्व के सभी आयतन भी उसी अनुपात से दिये जायँ, तो हम आगे लिखी मनोरञ्जक सूचक तुलनाओं पर पहुँचते हैं:

दूरी, पृथ्वी से चन्द्रमा तक—५८ इंच।
दूरी, पृथ्वी से सूर्य तक—लगभग १९
दूरी, निकटतम नक्षत्र तक—लगभग १,००५
आकाश गंगा का व्यास—लगभग २३,३८०,

दूरी, एण्ड्रोमेडा छायापथ तक—४६७,६००,

विश्व के हमारे अपने क्षेत्र में आयतनों का यही है। भौतिक पदार्थों का यही पैमाना है।

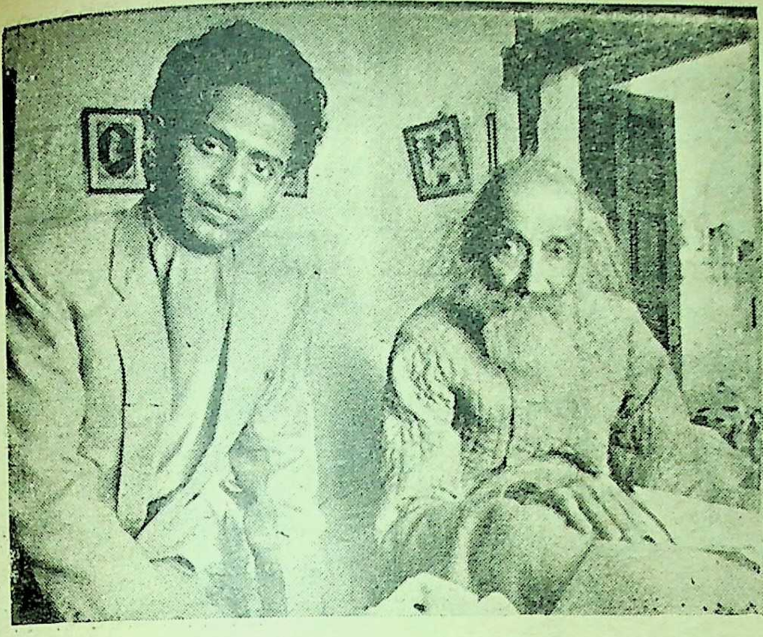

पूज्य टंडनजी के साथ--शैवाल सत्यार्थी

राजर्षि टंडन

एक श्रद्धांजलि

श्री शैवाल सत्यार्थी

हिन्दी पर तुम को गौरव था,
हिन्दी को तुम पर गौरव !
संस्कृति के सुरभित उपवन के,
तुम थे पावनतम सौरभ !

दृढ़ संकल्प हिमाचल-जैसे,
गंगा-जैसा निर्मल मन !
हे राजर्षि ! तुम्हारा करता
संसृति का कण-कण वन्दन !

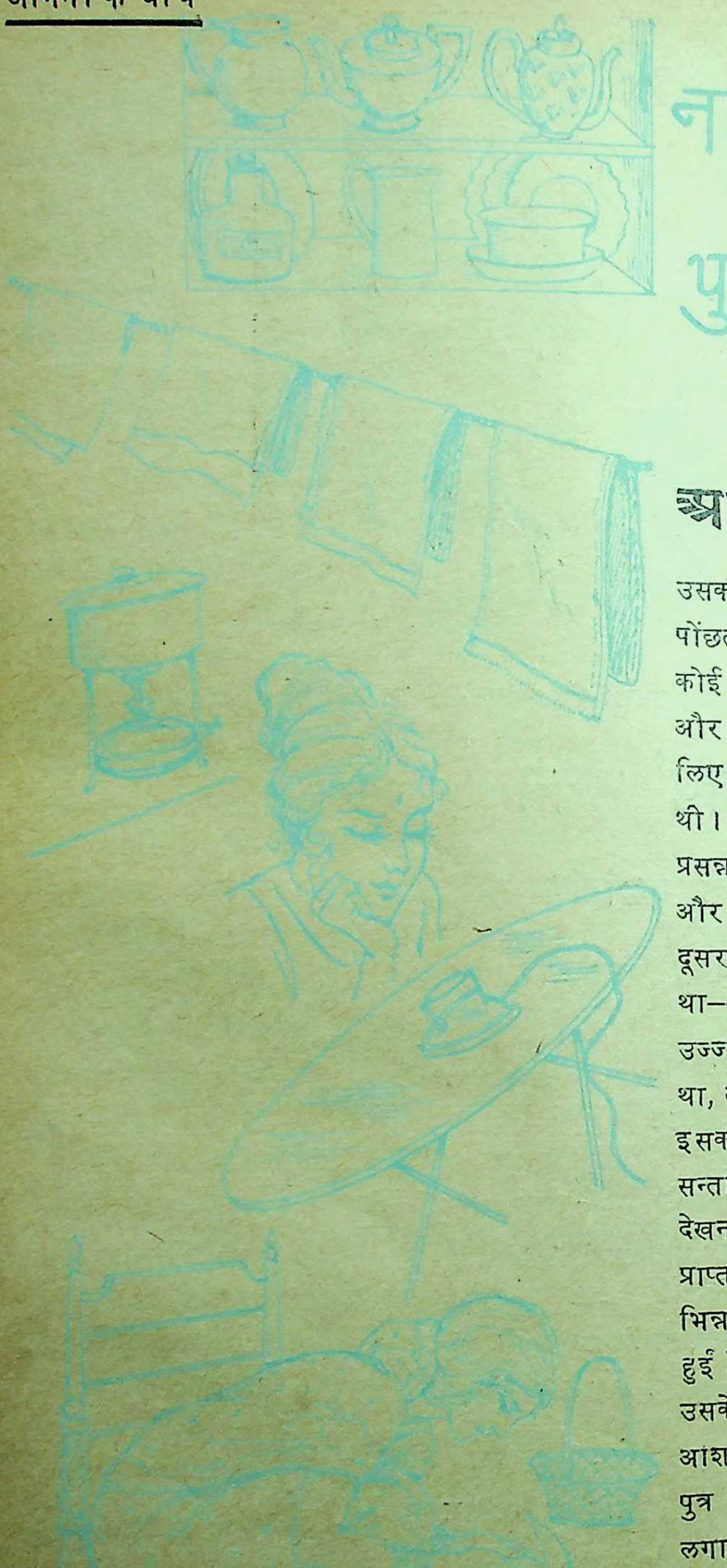

नई गृहस्थी पुराने अनुभव

मन के थपेड़े और आप

अभी कुछ दिन हुए मेरे परिवार के एक बालक विदेश में अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति मिल उसकी माँ दुखी थी। छिप-छिपकर इधर-उधर पोंछती थी। पिता प्रसन्न था क्योंकि छात्रवृत्ति मि कोई इतना सरल नहीं। अस्सी लड़कों में से उसकी और उसके व्यक्तिव से प्रभावित होकर उसे छात्रवृत्ति लिए चुना गया था। यह बड़े गर्व और सौभाग्य की थी। उसका भविष्य उज्ज्वल था। इसीसे उसका प्रसन्न था। पुत्र वह दोनों का था--अपनी माँ का और पिता का भी। परन्तु उन दोनों में से एक सुखी दूसरा दुखी, क्योंकि एक का मन उसके भविष्य को देख था--और दूसरे का मन उसके शरीर से मोह करता उज्ज्वल भविष्य की आशा से एक का मन प्रसन्न हो था, तो पुत्र के शरीर को विदेश में क्या-क्या कष्ट मिल इसकी आशंका से दूसरे का मन दुखी था। दोनों ही सन्तान को प्यार करते थे, दोनों ही उसको आजीवन देखना चाहते थे, दोनों का ही आशीर्वाद उस बालक प्राप्त था परन्तु उसके वियोग पर दोनों ही की प्रतिक्रि भिन्न थीं। क्यों? इन दोनों की प्रतिक्रियाएँ भिन्न हुईं? बालक की आयु-वृद्धि के साथ-साथ पिता का उसके अध्ययन की ओर जाने लगा; उज्ज्वल भविष्य आशा से उसका चित्त प्रसन्न था। माँ का मन सदैव पुत्र के शारीरिक भरण-पोषण व सुख-सुविधा की लगा रहा। उसमें परिवर्तन आ जाने की सम्भावना उसका मन आशंकित और दुखी था। मन की पर ही हमारा सुख और दुख निर्भर है।

इसी बात पर दो मित्रों की एक बात याद आ दोनों को ही भोजन घर पर न करके बाहर कहीं बाजार ही खा लेने की आदत थी। दोनों की पत्नियाँ

१९६३

वय था—एक अपने पति के बाहर भोजन कर आने ड़ जाती थी। सारा घर का वातावरण ही दूषित हो ता था—और उसका अन्त यह होता था कि जब जब के पति बाहर से ही अपनी पेट पूजा कर आते थे, तो आते ही अपना पेट पकड़कर कराहने लग जाते थे उनकी पत्नी अपने हाथों द्वारा बनाये भोजन की की अवमानना की समस्या उठाये बिना, चूरन की ों तथा अजवायन की फंकी का प्रबन्ध करती, इधर भागती दिखायी पड़ती थी। यह तो रही उनके पति तुराई। किंतु अपने पति के बाहर भोजन कर आने त से उनकी पत्नी दुखी तथा कुढ़ी रहती थीं। दूसरे की पत्नी इनके पूर्णतः प्रतिकूल थीं। अपने पति के भोजन करने की बात सुनतीं तो कहतीं 'अच्छा तो के खा लिया! भूखे तो नहीं रहे, वर्ना इस समय ते मगजपच्ची करता चूल्हे के साथ?' इनमें कौन है और कौन बुरा, कौन कर्मठ है और कौन आलसी बात का गंभीर विश्लेषण——हम बाद में करते रहें इससे यह तो स्पष्ट हो ही गया कि सुख या दुख अपनी मानसिक प्रतिक्रिया का फल है जिससे त से एक सुखी होता है और दूसरा दुखी।

सीको दो दिन मुफ्त की रोटी खाना दूभर हो है, किसी का मुहताज होकर तीसरे दिन ग्रास उसके के नीचे नहीं जाता, आँखों में आँसू आ जाते हैं। तो सीमें अपनी बुद्धि की पराकाष्ठा समझते हैं कि काम ना पड़े और मुफ्त की रोटी मिल जाय। वे मुफ्त की खाने में ही सुख मानते हैं। सुख और दुख अपने मन के हुए खिलौने हैं। जिसमें सुख मानो उसमें सुख है, दुख मानो उसमें दुख।

बरसों हुए मेरी बहन के घर के सब गहने चोरी हो 'रजनीचरों' ने पहले तो घर के दूसरे सामान न, कपड़े, साड़ियों आदि) की गठरी बाँधी, परन्तु में लगता है कि उनको ठोस माल मिल गया और वे में पहिले का बाँधा हुआ सारा जंजाली सामान छोड़ स माल लेकर चम्पत हो गये। आज बीस बरस हो हैं इस बात को। अपने जेवरों की याद में, जेवरों की पर, शादी-ब्याह में अभी तक मेरी बहन की आँखों आँसू भर आते हैं। इसके विपरीत एक दूसरी घटना । एक शादी में अपनी एक पुरानी सहेली से मुलाकात हुई। उनका सादा रूप देखकर मैंने कहा 'तुमको तो पहनने-ओढ़ने का बहुत शौक था। यह क्या हुलिया बना रक्खी है? न सही जेवर, कपड़े तो ढंग के पहन कर आतीं?' उसने उत्तर दिया, 'अरे भाई! कई जन्मों के पाप एक साथ धुल गये हैं। न जाने कब से कोई दान पुण्य नहीं किया था, सो भगवान् ने एक रात को जबरदस्ती करवा दिया। पहले वह सामान मेरे काम आ रहा था, चलो अब किसी और के काम आ रहा है। घर के अर्तन-वर्तन सब चले गये हैं। पहले अर्तन बर्तन आदि घर की जरूरी चीजें जुटाऊँ कि साज शृंगार का सामान खरीदने जाऊँ? जाही विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये। जिस अनावश्यक सामान से भगवान् ने मुक्त कर दिया उसको फिर क्यों जोड़ूँ?' ये दो रूप थे मन के——मन के साथ गुँथे हुए सुख और दुख के। मन की आसक्ति को बुद्धि से समझा बुझा कर कम कर दिया जाय तो उस दुख का दूसरा रूप ही हो जाता है। दुख यदि सुख में नहीं बदल जाता तो फिर वह दुख भी नहीं रह जाता। इच्छाओं की पूर्ति में सुख मिलता है, उसकी अपूर्ति में दुख। हम थोड़े से विचार विश्लेषण से मन के इन थपेड़ों को समझ लें तो जानते हैं कैसे व्यक्ति बन जायेंगे? सुनिये, इस कहानी को सुनिये।

एक गाँव में एक आदमी का घोड़ा खो गया। सारा गाँव उससे सहानुभूति करने आया कि 'बड़े दुख की बात है कि आपका घोड़ा खो गया।' उस आदमी ने कहा कि 'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह बड़े दुख की बात है?' कुछ दिनों बाद यह घोड़ा कुछ और घोड़ों को लेकर वापिस आ गया। अब सारा गाँव फिर जुटा घोड़े के मालिक को बधाइयाँ देने के लिये कि 'बड़ी खुशी की बात है कि आपको एक साथ इतना लाभ हुआ।' घोड़े के मालिक ने फिर कहा 'आपको कैसे मालूम हुआ कि यह बड़ी खुशी की बात है?' घर में बहुत से घोड़े होने के कारण इस आदमी के लड़के को घुड़सवारी का ऐसा शौक लगा कि उसने इस घुड़सवारी के चक्कर में अपना पैर तोड़ लिया। गाँव के लोग उसके पास फिर सहानुभूति करने को इकट्ठे हुए, कहने लगे, 'बड़े दुख की बात है कि आपके लड़के का पैर टूट गया।' लड़के के बाप ने कहा कि 'आपको कैसे पता कि यह दुख की बात है?' इसके कुछ ही दिनों बाद युद्ध छिड़ा। सारे

गाँव में पंगु होने के कारण केवल वही एक नवयुवक गाँव में रह गया।

घटनाओं का चक्र तो चलता ही रहेगा। उनके साथ साथ हँसना और रोना ऐसे ही है जैसे किसी बालक
खिलौना दिखा दिया तो वह हँस पड़ा और छिपा लिया
रो पड़ा!

घर-गृहस्थी

नयी गृहस्थी, पुराने अनुभव

१—ताजे सन्तरे के छिलके यदि काले पुराने जूतों पर मले जायँ तो उनकी खोई हुई चमक फिर वापिस आ जाती है। छिलकों को लौट कर उन को अच्छी तरह जूतों पर मलिये, और फिर मुलायम कपड़े से उन्हें रगड़ कर चमकाइए।

२—यदि आपके कालीन या चटाई के कोने बार बार मुड़ जाते हों तो किनारों को लौट कर उन पर नीचे से वार्निश का एक परत लगा दीजिये। वार्निश के सूख जाने पर फिर चटाई के सिरे नहीं मुड़ेंगे।

३—स्याही के उन दागों को जो कि कपड़े से छूट न रहे हों, सिरके के घोल में डुबो दीजिये, और फिर उनको साधारण रीति से धो डालिये। ऐसी वस्तु जो कि धोई न जा सके, उसपर सिरके से भीगे हुए कपड़ा रख कर ऊपर से गर्म इस्तरी फेरिये। स्याही के दाग पिसी हुई सरसों से भी छूट जाते हैं। किंतु सरसों से कुछ ही दाग मिटेंगे, सिरके से सब दाग मिट जायेंगे।

४—कटे आलू से धोने से शीशे के गिलास, जग, काँच के गुलदस्ते अथवा काँच के सभी प्रकार की चीजें साफ की जा सकती हैं।

५—सिगरेट की राख में जैतून का तेल मिलाकर शीशे की वह मेज साफ की जा सकती है जिस पर गर्म प्लेट रखने से दाग पड़ गये हों।

६—जंग लगी और कसी हुई कीलों व पेंचों को ढीला करने और खोलने का सबसे सरल उपाय यह है कि उस पर इस प्रकार सिरका लगा दिया जाय कि वह कील और लकड़ी के बीच कुछ दूर पहुँच सके।

७—बरसात में गर्म कपड़े सुरक्षित रखने के लिये नैपथलीन की गोली के साथ तम्बाकू की पत्ती भी मिलाकर रखिये।

८—जूतों को पालिश करके जमीन पर न रखकर लकड़ी के तख्तों पर रखना चाहिये। चमड़े के
पर मोम की पालिश करके उनको भी लकड़ी के तख्ते
ही रखना चाहिए। बिस्कुट चीनी आदि को ऐसे
में इस प्रकार बन्द करना चाहिये जिससे उनमें हवा
जाय। इससे बिस्कुट नहीं सीलेंगी।

९—बरसात में मोमबत्तियों तथा दियासलाई
ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहाँ अँधेरे में भी वे
और सरलता से खोजी जा सकें। दियासलाई को
से बचाने के लिये उसकी डिबिया को प्लास्टिक में
रखिये।

१०—गुलदस्ते में फूल बहुत ठंडे पानी में न रखि
पानी में चुटकी भर नमक डाल दीजिये जिससे कि
अधिक दिन चलें।

११—पिसी हुई लौंग छिड़क देने से अलमारियों
कीड़े नहीं लगते।

१२—पालतू चिड़ियों को चोंच मारने को लकड़ी
कोयला डाल दीजिये। इससे वे स्वस्थ्य रहती हैं।

१३—गमले में लगे पेड़ जब सूखने लगें तब उनको
भर पानी में एक चम्मच अमोनिया डालकर सींचने
उनमें नव जीवन संचार हो उठता है।

१४—कम्बल को धोकर सुखाने के समय यदि
लकड़ी के डंडे से उसको थोड़ा पीट दिया जाय तो
के रोयें उभर आते हैं और मुलायम पड़ जाते हैं।

१५—अलमारियों में 'इपसम साल्ट' की छोटी
थैलियाँ रखने से भी उसमें रखी चीजों में कीड़े और
नहीं लगते।

१६—सोफे के गिलाफ आदि सीने में जो
लगाई जाती है उसको पहले उबाल लें क्योंकि
बहुधा धुलने के पश्चात् सिकुड़ जाती है और गिलाफ
हो जाता है।

देखा-सुना

(५) मानवी देवी और मानवीय हृदय

(गतांक से आगे)

श्री मनमोहन गुप्त

ौर दिनों से कुछ अधिक समय घर आने का हो गया था। पिताजी अपने स्थान पर पहुँच चुके थे। थान का अर्थ हम लोगों की पढ़ाई के कमरे से है। हाथ-पैर धोकर पिताजी के सामने पहुँचा। मेरी ीधी नजर से पिताजी ने देखा। लालटेन की नी में, भली भाँति चेहरे की परीक्षा करते हुए —देखूं, जरा चेहरे को मेरी ओर करो।

ने ऊपर की ओर करके ही नीचे मुँह कर लिया। ों ने कहा—देखो मेरी ओर। सामने।

ब चारों आँखें एक हुईं तो उन्होंने कहा—देखूँ। ाओ।

स जाते ही कपार पर हाथ रखा। कई बार हाथ माथा दबाया।

हा—यह बुखार कबसे चढ़ा है?

ुखार का नाम सुनकर मुझे स्वयं ही आश्चर्य हुआ। ड़ाते हुए पूछा—बुखार?

रा पास खींचकर शरीर से शरीर मिलाते हुए —हाँ, बुखार ही तो है।

हते ही कहते गोद में बैठा लिया। बोले—शायद अण्ड-बण्ड खाया भी है?

ीच में ही मैंने कहा—कुछ नहीं खाया.....

पनी माता को आवाज देकर बोले—माई हो! को बुखार आ गया है। दादी आवाज सुनते ही, हाथ का काम छोड़कर, तुरंत आ गयीं। मुझे पिता की गोद से उठाकर अपने अंक में लेती हुई बोलीं—रे! बिल्कुल आग-सा लग रहा है।.... बिल्कुल पचास डिगरी बुखार लग रहा है। अब क्या होगा? चल्। चल लेट जा।

दादी का डिग्री के ज्ञान का परिचय पहले से ही पिता को था। इसीसे उधर ध्यान दिये बिना ही पिताजी ने —तुम तो ऐसा करती हो कि बुखार न हो तब भी खार आ जाय। ले जाकर लेटा दो। थोड़ा सा आराम ने दो। सब ठीक हो जायगा।

सोने के कमरे की ओर ले चलती हुई दादी ने कहा—बच्चों की बीमारी की कभी तुझे परवाह रही हो तब तो समझेगा कि क्या हुआ है। जाने दे। मुझे उपदेश न देकर डाक्टर के पास या वैद्यजी के पास जा। किसीसे पूछ आ।

कहते ही कहते ले जाकर मुझे बिस्तर पर लेटा दिया। तब तक भैया की आवाज उनके कान में आई—दादी झूठमठ घबड़ा जाती है। मुझे इतना बुखार होता तो मैं किसी से कहता भी नहीं।

मैंने भी सुना। पिताजी चाहे कुछ कहें परन्तु भैया की बात मैं कैसे सह सकता था? झट कहा—देख ली! देख ली बहादुरी! उस बार सब देख लिया!

बीच-बिचाव करने के लिये दादी ने भैया को डाँट बतायी—एक तो बुखार! ऊपर से उसको तू चिढ़ा रहा है। अपनी पढ़ाई कर। सो जा रे छोटे। उसे बकने दे। ऐसा ही......

मैं तुनक उठा—मैंने थोड़े ही कहा था कि मुझे बुखार आया है। यह तो पिताजी.........

एक प्रकार से जबरदस्ती लेटाती हुई दादी ने कहा—तू सो तो जा! वह तो ऐसी ही फुलझड़ी छोड़ा करता है। मौका पाने पर न तो वह तुझे छोड़ता है और न तू उसे।

पिताजी गम्भीर तथा कड़े अवश्य थे किन्तु भाई-भाई की झड़प में कभी दखल नहीं देते थे। शायद मन ही-मन आनन्द लेते थे। उस समय उनकी आँखों को कई बार मैंने लक्ष्य किया। उनमें अम्मा की तरह स्नेह-स्निग्धता आ जाती थी। इसीसे हम दोनों की झड़प में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी।

दादी के इतना कहने पर भी मैंने जोर से पूछा—बताओ, मैंने शुरू किया या उसने?

बिस्तर पर लेटाने की कोशिश करती हुई दादी ने कहा—अरे बाबा! होगा। तूने भी तो जवाब दे दिया है। अब फिर नये सिरे से छेड़-छाड़ में क्या लाभ?

बुखार बढ़ने के बजाय घटेगा थोड़े ही। और बड़ा भाई ही तो है। कोई शत्रु थोड़े ही है।

इसी समय दादा की आवाज कान में आयी—शायद स्कूल में आज ज्यादा हिसाब करने को मिला होगा। इसीसे बुखार चढ़ आया।

दादी, भैया को डाँटने जा ही रही थी कि पहले ही मैं चिल्ला पड़ा—जरा मुँह सम्हालकर बातें किया कर। जाकर पूछ स्कूल में। मुझे घर के लिये कोई कुछ काम नहीं देता। स्कूल में जो कुछ पढ़ाई होती है उससे कहीं आगे मैं रहता हूँ। सब मास्टर जानते हैं।

बेजार होती हुई दादी ने कहा—ना! इनमें से किसी एक को भी चुप कराना मेरे वश की बात नहीं। न मालूम कितने जनम से इन दोनों की शत्रुता चली आ रही है।

कहते ही कहते अपने बेटे की खबर लेती हुई बोलीं—ऐसे मौकों पर तो कान में रुई डाल लेता है। दोनों आपस में महाभारत ही क्यों न कर डालें पर सुनी-अनसुनी किये रहता है।...

पिता जी चाहे कुछ बोलें चाहें न बोलें किन्तु हम दोनों के लिये यह ब्रेक का काम करता था। इसीसे भैया भी चुप हो गये और मैं भी रुक गया। बिस्तर पर मुझे लेटा कर दादी बोलीं—जाऊँ। बाप बेटे के लिये दो रोटियाँ सेककर रख आऊँ। फिर देखती हूँ कि क्या कर सकती हूँ। तेरा बाप दो तीन दिन से पहले कुछ करेगा नहीं। मर जाने पर भी कुछ नहीं करेगा। न मालूम वह.......।

बड़बड़ाती हुई चली गयीं। मैं करवट बदलकर लेट गया। लेटे-लेटे कब सो गया, कुछ पता न चला। जब थोड़ा सा अनुभव करने लायक ज्ञान हुआ तो अनुभव किया कि मेरे सिर पर पानी की पट्टी दी जा रही है। आहिस्ते-आहिस्ते आँख खोलने लगा। जिनके साथ चारों आँखें एक हुईं वह और कोई न थीं, स्वयं मझली जीजी ही थीं। झुकी हुई, मेरी बन्द आँखों में आँखें गड़ाये, वही बराबर ठंडे पानी की पट्टी मेरे माथे पर रख रही थीं। मैंने आहिस्ते से कहा—मझली जीजी?

—हाँ। मैं ही......

कहते-कहते उसने अपने गालों को मेरी आँखों से लगाकर मेरे सिर को पकड़ लिया। आहिस्ते-आहिस्ते दीर्घ साँस लेने लगी। बगल में लेटे-लेटे दादी मेरे शरी आहिस्ते-आहिस्ते हाथ फेर रही थी। चारों ओर गं की निस्तब्धता छाई हुई थी।

न मालूम, फिर कितनी देर में आँखें खुलीं। इ बार भी देखा कि मझली जीजी पहले की तरह ही अ आँखें मेरी बन्द आँखों पर गड़ाये हुए थीं। मैंने आहि से कहा—गयी नहीं?

चुप रहने का इशारा करती हुई मझली जीजी बालों में अपनी ऊँगलियाँ डालकर उन्हें ठीक करने ल मुझे बहुत आराम लग रहा था। इस समय मेरे मा पर किसी प्रकार की पट्टी नहीं लगायी जा रही कुछ थकावट भी कम थी।

कुछ समय तक चुप रहने के बाद मैंने पूछा— कब आयी हो?

बगल में लेटती हुई मझली जीजी ने कहा—चुप पड़े रहो। सबेरे बातें होंगी।

मैंने पूछा—अभी क्या बजा होगा?

—साढ़े तीन। पड़े रहो चुप चाप। अभी ब रात है।

पूछ कर कुछ समय तक चुप रहा, फिर प्रश्न किया— तुम्हें किसने खबर दी....?

अपनी छाती से मुझे लगाती हुई मझली जीजी ने कहा—कि...सी...ने नहीं। चुप रहो।

इस बार कुछ अधिक समय तक चुप रहा फिर पूछा— तुम्हें बुखार नहीं आया?

और जरा पास खिसक आयी। बोली कुछ नहीं आहिस्ते-आहिस्ते मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगी।

इतने में मझली जीजी की बताई हुई बात याद आयी मैंने पूछा—तुम घर में रोती रोती ही आयी थी कि घर में आकर रोने लगी थी?

—कहती हूँ कि चुपचाप पड़ा रह। तू इधर उध की बातें सोचे जा रहा है।

जिद करते हुए मैंने कहा—बताओ। रास्ते भर रोती रही कि नहीं? किसीने देखा कि नहीं?

मझली जीजी ने मेरे कान के पास मुँह लाकर फुस फुसाकर कहा—जब तक तेरे पास नहीं आयी तब त रोती ही रही। कुछ और नहीं किया।

इस बार बड़ी देर तक अपने उग्र मस्तिष्क को इधर उधर ाता रहा। फिर कहा—देखा न तमाशा। मुझसे लग रहने का मजा! जनम भर रोओगी अगर मुझे बण्ड कहोगी।.....

मेरे ओठों को चुटकियों से दबाती हुई बोली—लगा आधी रात को टर टर करने। कहती हूँ कि सो जा। ब बातें तो सबेरे भी हो सकती हैं।

अपने सिर को जरा ऊपर उठाते हुए मैंने कहा—ी मैं कह रहा था कि "जैसी करनी वैसा फल;" हाथों- देख लिया न करम फल को? मुझसे बदतमीजी ी कि बस रोना ही रोना।

जरा दूर हटती हुई मझली जीजी ने कहा—कहती कि चुप रह; नहीं तो मैं चली जाऊँगी। एक मिनट यहाँ नहीं रहूँगी।

गुस्से में हड़बड़ाकर मैं उठ बैठा। झट कहा—जा । मरने को यहाँ क्यों आयी?

कुछ जोर से ही बात निकल गयी थी। फलतः दादी गयी और उधर से पिताजी ने पूछा—क्या हुआ है?

एकदम चुपके से मैं मझली जीजी से लिपटकर लेट ा। सब बातों का निपटारा करती हुई उसने कहा—ता है कि नींद में चौंक पड़ा।

कहते ही कहते मुझ चिपकाये रही एवं बोली—कोई हीं। सो जा।

दादी भी पीछे से पीठ थपथपाने लगीं एवं मन ही मन ड़ाने लगीं—दोनों ओर दोनों लेटी हुई हैं। डरे मत! चाप सो जा। अब तो पौ फटने का समय आ हा है।

इस बार मस्तिष्क ने और कोई हरकत नहीं की। -पड़े न मालूम कब आँखें लग गयीं और मैं सो ही गया।

दूसरे दिन भी मेरा बुखार बिल्कुल न उतरा। बहुत मजोर हो गया था। सबेरे उठकर एक बार अपने घर से कर जो मझली जीजी आयीं, फिर घर गयी ही नहीं। राबर डटी रहीं। उनके रहने से दादी को बड़ा लाभ आ। मेरी तबियत जितनी खराब नहीं हुई थी उससे भी धिक मेरा शरीर कमजोर हो गया था। शायद इसीसे मैंने इधर-उधर भागने की चेष्टा नहीं की।

दवा का तो प्रश्न ही न था। पिताजी तीसरे दिन के पूर्व न तो दवा लाते ही थे और न लेने देते थे। स्कूल जाते समय एक बार भली भाँति देख गये थे और मझली जीजी से कह गये थे कि किसी भी हालत में मैं इधर-उधर भटकने न पाऊँ। पानी जैसे साबूदाने और दूध के लिये भी कह गये थे।

पिताजी ने तो पानी जैसा साबूदाना और दूध के लिये कहा था किन्तु दादी जानती थीं कि बिना साबूदाने की खीर बनाये यह बन्दा ग्रहण नहीं करेगा। इसीसे सबेरे तो पिताजी के सामने किसी प्रकार से पानी जैसा साबूदाना बनाकर जरा सा पिला दिया था किन्तु पिताजी के स्कूल जाते ही मेरे लिए साबूदाने की खीर बनाकर ले आयीं। खूब प्रेम से खाकर सो गया। शाम को फिर जोरों से ज्वर चढ़ आया।

उस दिन, रात भर, ज्वर का बड़ा प्रकोप रहा। मझली जीजी और दादी भी रात भर जगती ही रहीं। पिताजी भी रात में कई बार कुछ कुछ समय तक मेरे पास बैठ गये। सबेरे दादी ने डाक्टर के लिये जिद पकड़ी। पिताजी ने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा—आज यदि फिर कसकर बुखार आया तो शाम को डाक्टर को दिखाऊँगा।

स्कूल जाने से पहिले कई बार देख गये और वही पानी का साबूदाना देने के लिए कह गये। आज दादी पिताजी की बात अक्षरशः प्रतिपालन करने पर तुल गयीं। पिताजी के चले जाते ही मैंने कहा—खीर लाओ दादी।

नकारात्मक उत्तर देती हुई उन्होंने कहा—न बेटा। कल गलत हुआ था। उसीसे तुम्हें बुखार चढ़ आया था। आज के दिन संयम रखो जिससे ठीक हो जाओ।

भला मैं कब माननेवाला था? जिद पकड़ता गया।

अब तक मझली जीजी मेरे खाने-पीने के सम्बन्ध में कुछ न बोली थीं, किन्तु मुझे जिद पकड़ते हुए देखकर कहा—मान जा भैया। बस आज भर कष्ट कर ले।

कहते ही कहते बगल में दादी की लायी हुई कटोरी को लेकर बैठ गयी एवं देखते-देखते मुझे सारी कटोरी पिला दी। दादी ने यह देखकर कहा—बस्। अब मुन्ना मेरा अच्छा बेटा बन गया तो आज अच्छा भी हो जायगा। फिर...अपनी मझली जीजी के साथ...? साथ, बता तो बेटा, क्या करेगा?

कहकर मेरी ओर देखने लगीं। उत्तर नहीं दे रहा हूँ देखकर मझली जीजी ने कहा—नहाने...

मैं तुनक उठा। मैंने कहा––बिल्कुल नहीं। अब कभी नहीं जाऊँगा...

कहते कहते मुँह फुला लिया देखकर दादी ने कहा––बेचारी ने रात-रात भर जागकर तुझे अच्छा किया और...।

आगे कुछ कहने से पहले ही मझली जीजी ने कहा––उसे बकने दो दादी। देखूँगी कैसे नहीं जाता मेरे साथ। तुम जाओ, अपना काम करो। उसे बकने दो यों ही।

दादी मुस्कुराकर चली गयीं।

इधर मैंने झट कहा––एँह। तुम्हारे कहने से ही मैं मान लूँगा न। उस दिन...

मुँह पर हाथ लगाती हुई मझली जीजी ने बात करना बन्द कर दिया और कहा––इस समय चुप तो रह कुछ दिन। बीमारी ठीक हो जाने दे, फिर सोचना कि क्या करना है और क्या नहीं।

मझली जीजी के हाथ को झटके से मुँह पर से हटाते हुए मैंने कहा—क्यों? भूल गयीं कि उस दिन मुझसे कहा था कि तू मेरा कौन है।

कहते ही कहते मेरा गला भर आया। हाथ जोड़ती हुई अपने कानों को उमेठती हुई मझली जीजी ने कहा––माफी माँगती हूँ। मैं क्या जानती थी कि तू इतना कष्ट पाएगा कि...

आगे और बोल न पायी। अन्दर ही अन्दर जैसे घुटने लगी।

अँगूठा दिखाते हुए मैंने कहा––मुझे तुम्हारी परवाह थोड़े ही है!

अपनी हार मानती हुई मझली जीजी ने कहा––मान लिया बाबा, मान लिया। अभी वे सब बातें रहने देना। मेरी ही हार हुई।

दोनों बड़ी देर तक चुप रहे। शायद यही ढूँढ़ रहे थे कि उस दिन का वह कौन सा कठोर मुहूर्त्त था कि जिस मुहूर्त्त में वह घटना घटित हुई थी।

अन्त में मैं ही, जैसे श्रान्त हो उठा। आत्म-समर्पण की तरह धीरे धीरे मझली जीजी की गोद में माथा रख दिया। वह आहिस्ते आहिस्ते मेरे बालों में उँगली संचालन करने लगीं। तन्द्राभिभूत सा मैं पड़ा रहा। न मालूम उसी प्रकार से कब आँखें लग गयीं।

मुझे आहिस्ते आहिस्ते लेटाकर बगल में मझली जीजी भी सो गयीं। जब नींद खुली तो देखा कि मझली जीजी को अपना तकिया बनाये मैं लेटा हूँ और वे गंभीर निद्रा में निमग्न हैं। पास ही दादी बैठे-बैठे माला जप रही थीं। उधर टिमटिमाती हुई लालटेन जल रही थी।

मझली जीजी को छोड़कर मैंने करवट बदली ही थी कि वे भी हड़बड़ाकर उठ पड़ीं। दादी से आश्चर्यचकित होकर बोलीं––अरे! रात हो गयी क्या?

दादी का छोटा सा उत्तर था––मगर तुम दोनों के लिये तो दिन है। कारण छोटे का भी बुखार उतर गया और तुम्हारी भी दो रात जागने की थकान जाती रही।

× × ×

अब मझली जीजी न तो कभी बाबाजी का नाम मुँह में लाती थीं और न कभी बाबाजी के बनाये चित्रों के विषय में ही मुझसे कुछ कहती थीं। मुझे इस बात का सन्तोष था कि मैंने उस दिन वाली उस घटना से चिरकाल के लिये मझली जीजी के हृदय से बाबाजी रूपी दुष्ट को अलग कर दिया। इतना अलग कर दिया कि यदि किसी समय मैं उस शैतान का नाम भी लेता तो वे बात पलट देती थीं।

मझली जीजी के परिवर्तनों में सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ था कि मेरी पुरानी किताबों को उठा-उठाकर वे हमेशा उन्हींमें लगी रहती थीं। यानी पहले वर्णबोध से वर्णों को सीखकर फिर युक्ताक्षर, शब्द, वाक्य आदि को वे सीखने लगी थीं। कुछ दिनों में वे पढ़ने लग गयीं। एक महीना बाद तो वह खूब पढ़ने तथा लिखने भी लग गयीं। शिक्षक मैं ही था। कभी कहीं गलत उच्चारण अथवा और कोई गलती कर बैठती तो मैं गुरुसुलभ कड़ाई के साथ डाँटकर उसे यथासाध्य सुधार देता।

दो-ढाई महीने के अन्दर वह खूब पढ़ गयीं। इतना पढ़ लिख गयीं कि अब मेरे बताने लायक कुछ न रहा। बाद में तो वे मुझसे इतना आगे बढ़ गयी थीं कि मेरे लिये वहाँ तक पहुँचना सम्भव न था। फलतः अब मेरी ऐसी अवस्था हो गयी थी कि मैं प्रायः उनसे पढ़ाई-लिखाई के मामलों में पिंड छुड़ाने की चेष्टा करता था।

किंतु कुछ दिनों बाद मैंने अनुभव करना आरम्भ कर दिया कि अब धीरे-धीरे मझली जीजी मुझसे दूर हटती जा रही हैं। अब वे मेरे घर न आती थीं। कभी मुझसे उनसे

ही भेंट हो जाती तो वे जल्दी से जल्दी मुझसे पिंड छुड़ाने को व्याकुल सी लगती थीं। उस व्याकुलता का इतना स्पष्ट था कि मुझ जैसे बालक के हृदय ने भी अपमान अनुभव करना आरम्भ कर दिया था। बलकर मैं भी सँभल गया; यानी मैंने उनसे प्रायः सम्बन्ध विच्छेद कर दिया।

इस सम्बन्ध-विच्छेद से मझली जीजी ने भले ही का निश्वास लिया हो किन्तु मुझमें एक अव्यक्त ने घर कर लिया। रह-रहकर मुझे यह अनुभव था कि जैसे कोई मेरा अपमान कर रहा हो। इस ने धीरे-धीरे मुझे इतना बेबस कर दिया कि मैं हिंसा-परायण बनने लगा। इस प्रकार से दूध की मक्खी तरह फेंके जाने को मैं सहन करने को तैयार न था।

फलतः मेरे मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई। यह मझली जीजी क्यों मुझसे विरक्त हो गयी हैं?

जब अपने क्षुद्र मस्तिष्क को इधर उधर भटकाकर कोई छोर न पा सका तब मस्तिष्क के स्थान पर अति-देह ने ही काम करना आरम्भ किया। यानी, अब मैं तब मझली जीजी का लुक-छिपकर अनुसरण करने । कभी स्नान करने जब जाती, कभी और किसी काम घर से निकलती, यहाँ तक कि उनके अपने घर में मौके-बेमौके मैं उनकी समस्त कार्यविधि तथा कार्यक्रमों देखने लगा।

कहीं भी किसी प्रकार का व्यतिक्रम न देख पाने के मेरी प्रतिहिंसाग्नि और अधिक धधक उठी। इसकी इतनी प्रखर थी कि धीरे-धीरे पढ़ाई-लिखाई में भी लता आ गयी। उपरान्त अब मझली जीजी भी गम्भीर बन गयी थीं कि उनसे बात करने में सभी थे। बीच के कुछ महीनों के अतिरिक्त वह जनम से गम्भीर स्वभाव की थीं।

उन दिनों उनके गाम्भीर्य का रूप कुछ ऐसा था कि गृहकर्मों से भी उन्होंने अपने को खींच लिया था। रात बन्द दरवाजे के अन्दर रहा करती थीं। कभी निकलतीं भी तो अपने समस्त कार्यों को संक्षेप में करके ही अन्दर चली जातीं।

इसी उद्देश्य से एक दिन जब वह बाहर निकलीं तो दरवाजे के सामने ही मुझे देखा। बन्द दरवाजे से शायद मैं कुछ देखने की चेष्टा कर रहा था, ऐसा उन्हें सन्देह हुआ। जरा कड़क कर पूछा—क्यों रे छोटे! तू आसपास घूर घूर करके क्या देखता फिरता है?

मेरा चेहरा उतर गया। मैंने समझा कि शायद मेरे कृत्यों का पर्दाफाश हो गया है। कारण, मैं मौका पाते ही उनके बन्द दरवाजे में कान लगाकर सुनने की चेष्टा करता था कि आखिर अन्दर बैठे बैठे यह क्या किया करती हैं। देखने का उपाय तो था नहीं। प्रथमतः दरवाजों के पल्ले एक तख्ते के बने थे, द्वितीयतः अन्दर से पुरानी मोटी धोती को रंग करके उसका पर्दा लगा था।

प्रश्न सुनकर भीगी बिल्ली की तरह मैं सर्र से भाग निकला। इसपर मझली जीजी को कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने मेरे पीछे-पीछे मेरे घर तक धावा बोल दिया। तब तक मैं दादी की रसोई में पहुँच गया था। वह आते ही दादी से बोल पड़ीं—छोटे का स्वभाव बड़ा खराब हो गया है। वह दूसरों के कमरों में झाँका करता है।

आगे कुछ कहने से पूर्व ही दादी ने प्रश्न किया—किसके कमरे में झाँका?

—किसके? ....मेरे कमरे में भी झाँकता फिरता है।

इस बार मैं बोल पड़ा—क्यों झूठ बोलती हो? तुम्हारे कमरे के पल्लों में झीरी थोड़े ही हैं जो मैं कुछ देख पाऊँ कि तुम अन्दर क्या कर रही हो।

फिर दादी बीच में ही बोल पड़ीं—अरे! बच्चों का तो यह स्वभाव ही है। इस स्वभाव को छोड़ ही दें तो फिर बच्चे ही क्यों कहलायें!

कुछ गम्भीर होकर मझली जीजी "नहीं। मगर मुझे यह सब पसन्द नहीं है" .... कहकर और गम्भीर होकर जब वापस चलने लगीं तब दादी ने कहा—बिटिया! इस दुधमुँहे बच्चे के देखने से रामायण महाभारत तो अशुद्ध न हो जायँगे। तुम तो कुमारी सी ही हो। हाँ, दूल्हावाली होतीं तो कोई बात भी थी।

मझली जीजी ने तो कोई उत्तर न दिया किन्तु दादी अपने मन ही मन कहने लगी—कुछ समझ में नहीं आता कि कमरे के अन्दर कौन सा ऐसा गुप्त कार्य करती है कि छोटे के देखने से अनर्थ हो जायगा? न मालूम कौनसी ऐसी गुप्त बात ....गुप्त समस्या .....गुप्त रहस्य :...

× × ×

दादी तो इसी प्रकार से कुछ समय तक बक-झककर चुप हो गयी किन्तु मेरे मन में प्रश्न उठे--वह कौनसी गुप्त समस्या? वह कौनसी गुप्त बात? वह कौनसा गुप्त रहस्य है?

धीरे-धीरे प्रश्न का समाधान भी सूझा। मन ने कहा; फिर मैंने कहा। सोच में पड़ गया कि किसी प्रकार से मझली जीजी के कमरे में देखना ही है, कि वह क्या करती है। शायद कुछ ऐसा कार्य करती होगी जिसे कि मुझे बताना नहीं चाहती है।

हाँ, हाँ, यही बात होगी। अवश्य ही यही बात है। तभी तो दरवाजे के सामने मुझे देखकर मेरे घर तक मेरा पीछा किया।

सोचते-सोचते फिर सोचने लगता कि आखिर कर ही क्या सकती है। अकेले-अकेले कर ही क्या सकती है?

तुरन्त मन से ही उत्तर मिलता 'वह बड़ी भक्तिन है।' 'पहुँची हुई है'। 'निश्चित रूप से भक्ति ही करती होगी'। 'तपस्या करती होगी'।

फिर वहाँसे भी आगे सोचने लगता कि तपस्विनियाँ तपोबल से सब कुछ कर सकती हैं।

यहींसे शंका उत्पन्न होती कि कहीं तपोबल से उस हरामजादे बाबा को तो नहीं बुला लेती?

सारे शरीर में आग लग जाती। आगे की समस्त सम्भावनायें समाप्त हो जातीं। धीरे धीरे यहीं पर आकरके मन रुक जाता। रुक क्या जाता, अन्त तक रुक ही गया। बिल्कुल दृढ़ विश्वास होने लगा। हाथपैरों में बिजली कौंध गयी। उस बाबा को जान से मार देने पर ही मझली जीजी को पहले जैसा पा सकता हूँ; अन्यथा नहीं। पाकर लाभालाभ तक सोचने का मन न हुआ। बस, पाना है; इतना ही मन में था।

मेरा रोम रोम जैसे दृढ़प्रतिज्ञ होने लगा। मैंने आगे की कार्यवाही करने को ठानी।

दूसरे दिन से प्रयोजन से अधिक बार मझली जीजी के घर जाने लगा। पाँच-छः दिनों में ही समझ लिया कि किस समय सबसे अधिक समय तक मझली जीजी दरवाजा बन्द रखती हैं।

बस-बस इसी समय वह तपोबल द्वारा उस बाबाजी को, उस शैतान के बच्चे को, बुला लेती होंगी।

यद्यपि बुलाकर क्या करती होंगी, सोचना या समझना मेरी क्षुद्र बुद्धि के परे की बात थी, तथापि इतना तो सोच ही लिया कि वह उससे खूब घुलघुलकर बातें करती होंगी।

× × ×

एक दिन, यानी छुट्टी के दिन, मैं खा-पीकर, मौका पाकर, जब मझली जीजी खाना खाने के लिये रसोई में गयी थीं, उनके कमरे में सबकी आँखें बचाकर घुस गया। दक्षिण की ओर के कोने में एक चौकोर, छोटा सा तखत रखा था, जिसके ऊपर एक बड़ी सी ऊँची सन्दूक, और सन्दूक के ऊपर कुछ बिस्तर आदि रखे हुए थे।

उसीके पीछे मैं छिप गया। साँस तक आहिस्ते आहिस्ते रुक-रुककर लेने लगा।

खाना खाकर तथा उस समय के अन्यान्य कार्यों से निवृत्त होकर मझली जीजी आयी। दरवाजा बन्दकर दिया। फिर धीरे धीरे जाकर अपने बिस्तर पर लेट गयीं। ऊपर की कड़ी की ओर ताकती हुई चित लेटे लेटे आँखें बन्द कर लीं। कुछ ही क्षणों में नीद आ गयी होगी ऐसे शान्त होकर पड़ी रही।

मैं तो जहाँ के तहाँ वैसे ही खड़ा रहा। काफी समय तक चित सोये सोये जब करवट बदलकर मेरी ही ओर मुँह किये लम्बी-लम्बी साँस लेकर सोती ही रही, उस समय मेरा धैर्य टूटने लगा। मैं मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा। सोचा--अरे राम राम, बेकार के लिये मैंने कष्ट किया! वह तो सोती है! न तप करती है और न तपोबल द्वारा बाबा के बच्चे को ही बुलाती है। बुरा फँसा। न छिपा होता तो अच्छा था। बेवकूफ बना।

किन्तु अब यह सब सोचने से लाभ ही क्या था? चुपचाप वैसे ही खड़ा रहा। निकलने का कोई रास्ता होता तो भाग खड़ा होता किन्तु उसकी वहाँ कोई गुंजाइश ही नहीं थी। जैसे का तैसा खड़े के खड़े ही रह गया।

प्रायः डेढ़ घंटे तक मझली जीजी सोती रही। उसके बाद उठकर बैठ गयी। बैठे-बैठे कुछ समय तक जमुहाई लेती रही। उसके बाद गिलास में पानी लेकर जंगले के पास गयीं। दो-तीन बार मुँह में पानी ले लेकर जंगले का पल्ला जरा सा खोलकर कुल्ला किया। आँखों में पानी का छींटा देकर, आँखें पोंछकर, आकरके अपने बिस्तर पर बैठ गयीं।

कुछ समय तक बैठी रहीं फिर वही मेरी लायी हुई बाबाजी वाली चित्रपंजी को खोला।

मझली जीजी के हाथ में उस चित्रपंजी को देखते ही जैसे मेरी आँखें ढेले की तरह अपने पलकों से बाहर निकल आयीं। आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

इतने में मझली जीजी ने एक चित्र को खोलकर अपनी छाती से लगा लिया। आँखें बन्द करके न मालूम क्या कहने लगीं। उनकी बातों में शब्द नहीं था केवल ओंठ हिलते थे। कुछ क्षणों में दो-तीन बूँद आँसू निकल कर उनके गाल पर बह आये। चित्र को और जोर से छाती के साथ चिपका लिया। सिर के खुले बाल मानों आवेश वश लहराने लगे। वह वैसे ही बड़ी देर तक बैठी ही रही। कहीं पर दुष्यन्त की चिन्ता में ध्यानमग्ना शकुन्तला का चित्र देखा था, मुझे उसीका स्मरण हो आया।

मैं यही सोच रहा था कि इतने में मझली जीजी ने उस तसवीर को चुम्बन करने के लिये ओंठों से लगा लिया।

न मालूम क्यों मेरा क्रोध भड़क उठा।

(क्रमशः)

परिणति

श्री निर्मला मित्र

ेसर अजय सोम के भाग्य से कालेज के सारे अध्यापक मनही मन ईर्ष्या करते थे, क्योंकि एक तो उसकी ई समाप्त होते न होते उसे उसी कालेज में तुरन्त ही री मिल गयी थी, दूसरे यह कि वह ठहरा पैसेवाला। काफी पैतृक सम्पत्ति से आमदनी हो जाया करती और उन पैसों का भोगनेवाला सिर्फ यही एक अजय है। दूसरा कोई नहीं। तीसरे, उसे पत्नी भी मिली वाही--माधवी एम० एस-सी० में फर्स्ट क्लास फर्स्ट। ने प्रायः और प्रतिदिन ही मित्रों की छींटाकशी का र होना पड़ता है।

आज ही प्रोफेसर अखिल हँसते हँसते कह पड़ा, "क्यों तुम्हारी शादी हुए तीन मास निकल गये,--मगर क तुम 'हनीमून' का प्रोग्राम तक न बना पाये ?"

अजय ने चट से उत्तर दिया--"सारा दोष तो यूनि-को देना चाहिए। मैं देखता हूँ कि वह छुट्टी मंजूर करते और छः मास निकाल देगी, नहीं तो अब तो हम लोग न जाने कहाँ-कहाँ घूम आते।"

मुंह की खाकर अखिल केवल "ओह", कहकर रास्ते चला गया।

अजय सोचने लगा आज माधवी से परामर्श करके बना ही डाला जाय। बन्धु लोग भी बहुत ही पीछे हैं, और हमारे दोनों के जीवन में भी कुछ नयापन जायगा।

इधर माधवी भी सोच रही थी कि अब मुझे भी कुछ करने की बात सोचनी चाहिए, लेकिन उनसे अपनी की भावना कहूँ तो कैसे। अजय ने आते ही बात उठा बोला "देखो मधु, 'आज नहीं कल' करते करते विवाह के तीन मास निकल गये, सो सोचता हूँ चन्द्र' के लिये कहीं चला जाय। लेकिन 'हनीमून' के अपने यहाँ 'ब्रिन्दिसी' तो है नहीं ! तो क्यों न तीन के लिये अपने नौका पर जल विहार को चलें। गों कि 'वेनिस' की नहरों में 'गोंडोला' पर बिहार कर है। नौका यात्रा में तुम बंग देश की स्निग्ध श्यामल देखकर मुग्ध हो जाओगी ?"

माधवी कुछ बोली नहीं। केवल चाय के खाली प्लेटों पर चम्मच से धीरे-धीरे जल तरंग की धुन बजाती रही।

"मौनं सम्मति लक्षणम्" समझ कर अजय उत्साह से बोला, "तो लिख दूँ मुनीमजी को कि अगले रविवार तक खुलना जिले के दौलतपुर के घाट में अपनी चार माझियों वाली बड़ी नाव सारे साज-सरंजाम के साथ तैयार तैनात रखे ?"

माधवी बोली "ठहरिये तो, मैं कुछ दूसरी ही बात सोच रही हूँ।"

"तो कहो न, रुक क्यों गयीं ?"

माधवी ने कहा, "तीन मास की नौका-यात्रा में जितना रुपया खर्च होगा, उसके आधे से मेरी एक साध पूरी हो सकती है। तीसरे खण्ड के बड़े कमरे में कुछ छोटे-मोटे प्रयोग के लिए थोड़े से यन्त्र आदि लगवा दो तो बड़ा आभार मानूँ।"

वैज्ञानिक पत्नी की इस उपयोगी बात को सुनकर और उसका औचित्य समझकर भी अजय खुश न हो सका। उसे लगा कि विपरीत हवा के प्रबल झकोरे से मेघ के एक टुकड़े ने सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश को क्षण भर के लिए ढाँक दिया है।

अजय सम्हला, फिर बोला, "अच्छा, तुम यह कहो कि तुम कुछ गवेषणा करना चाहती हो। किन्तु भई, ऊपर ही ऊपर तुम कहीं किसी लोक में अन्तर्धान न हो जाना। आज का विश्व समुदाय तो तुम वैज्ञानिकों से बहुत ही शंकित हो उठा है।"

माधवी बोली "वैसे किसी विषम विषय की तो मैं अभी कल्पना भी नहीं कर सकती। मैं खास कर बच्चों के लिये औषधि विज्ञान पर कुछ शोध करना चाहती हूँ; वैसे तो मैं पी० सी० राय संस्था या वसु विज्ञान मन्दिर में शोध कार्य के लिये जा सकती हूँ, लेकिन वहाँ एकान्त नहीं मिलेगा। एकान्त साधना से सफलता शीघ्र मिल सकती है।"

अजय ने पत्नी की पीठ थपथपायी: बोला, "वाह वाह मधु, तुम अगर दूसरी मादाम क्यूरी बनने की आशा कर सको तो मैं तुम्हारे लिए समस्त साधन जुटा देने के लिये तत्पर हूँ।"

और दूसरे ही दिन हालेण्ड कम्पनी के तांत्रिकों ने आकर तीसरे खंड के बड़े कमरे में आदेशानुसार सब यंत्रादि लाकर यथास्थान लगा दिये। दरवाजों और खिड़कियों में हरे रंग के पर्दों से लेकर तीन महले की खुली छत में तार से नीले काँच की वर्णी तक लटका गये; ताकि 'अल्ट्रा वायलेट' रश्मियों से वर्णी का जल—औषधि जल में परिवर्तित होता रहे।

माधवी खुशी से फूली न समाई। उसने छोकरे नौकर नटवर को ऊपर बुलाया। बोली "देख नाटू, कभी इस कमरे में मत आना। इस कमरे की झाड़ू-बुहारी मैं खुद लगा लिया करूँगी।"

"जी" कहकर नाटू सीढ़ियों से उतरा जा रहा था कि माधवी ने उसे फिर पुकारा, बोली "अरे, सुन सुन, मेहरी देवकली से कह देना कि वह तीन महले के छत पर कपड़ों को सूखने के लिए डालने न आवे। दो-महले के बरंडे पर ही सब कपड़े सहेज कर तरतीब से डाल जाया करे। उसके पैरों के कड़े-छड़े बहुत शोर करते हैं, जिसे मैं बिलकुल ही सह नहीं सकती। समझा?"

नटवर फिर एकबार "जी" कहकर नीचे उतर गया।

लेकिन धीरे-धीरे पत्नी की यह एकान्त साधना अजय को अखरने लगी। उसे लगने लगा कि वैज्ञानिक मादाम क्यूरी से तो 'सेलमा लेगरलाफ' या 'पर्लबक' कहीं अधिक आकर्षक हैं। उनकी चित्तवृत्ति में शुष्कता नहीं, सुकुमारता है। और यह रूखा-सूखा मरुभूमि सा कठोर एकान्त-सेवी जीवन! भला इससे साहचर्य की आशा भी कोई कैसे करे? किंतु अजय निरुपाय था। केवल भाग्य को दोष देकर अपने को प्रबोध देने-लेने लगा।

मगर आज भूल हो ही गयी। आज अजय को क्लास में खूब तैयार होकर जाना है। सो वह सुबह से कालिदास खोलकर बैठा है। अभिज्ञान शाकुन्तल का सबसे दुरूह हिस्सा टीका और टिप्पणियों के द्वारा छात्रों के दिमागों में ठूँसना पड़ेगा। और छात्र भी सब ऐसे हैं कि जरा भी सुनने या समझने में हेर-फेर हुआ कि चट उठकर 'बेग योर....' कह देवेंगे।

अजय ने पुस्तक से आँखें उठायीं तो पर्दे के बाहर नाटू हिलता-डुलता दीखा, तो अजय बोला "नाटू! ऊपर से बहूजी को बुला तो ला!"

माधवी तब अँधेरे कमरे में टेस्ट ट्यूब में कोई
डालकर माइक्रस्कोप में आँखें लगाये उसकी प्रति
की पर्यवेक्षणा कर रही थी। इस समय अजय की बुला
से विरक्ति से भर उठी। फिर भी उठकर नीचे
आयी।

अजय स्निग्ध सौम्य से बोला "प्रिय शिष्या,
ऊपर से मेरे पलंग पर पड़ा मल्लिनाथ उठा लाओ।"

इतना सा काम क्या नाटू नहीं कर सकता था?
भी तो कुछ लिखा-पढ़ा लड़का है। माधवी मन ही
खिच गयी।

पुस्तक टेबुल पर रख पलटकर उसने सीढ़ियों
पैर रखा ही था कि अजय कुछ ऊँचे स्वर से बोल
"सुनो जी, मेरा खाना भी लगे हाथ परोस लाओ।
मुझे जल्दी जाना है।"

दोपहर में माधवी खाना खाते-खाते बोली "क्यों
नाटू! जरा जरा-सी बात में ऊपर क्यों भागता है?
मल्लिनाथ तुझ से पढ़ते नहीं बनता था?"

लेकिन मालकिन से नाटू कैसे कहे कि मालि
किताब लाने की बात मुझसे कही ही नहीं।

माधवी बोली "अब से कभी ऐसे छोटे छोटे
चाकरी की बात लेकर मुझे न तंग किया कर, समझा?

"जी"।

परन्तु दूसरे दिन तो हद ही हो गयी। माधवी
स्टोव पर डेकची चढ़ाकर कुछ कुकुरमुत्तों का
निकालने में तल्लीन थी। उसके एक हाथ में सँड़सी
और दूसरे हाथ की घड़ी पर दृष्टि टिकाये वह मिनट
सेकेण्ड की अपेक्षा में थी। सिर से रूखी लम्बी वेणी
के बगल से लटककर फर्श छू रही थी, और माथे से वि
आँचल जमीन पर लुटरा पड़ा था। अपने उज्वल भवि
की स्वस्थ कल्पना उसके मन में लहरें ले रही थी।
यह दवा मैं ईजाद कर सकी तो—!"

और अचानक ही उसकी लम्बी वेणी पीछे
गयी, साथ साथ माधवी भी पीछे झुक गयी। उसके
की सँड़सी खट से जाकर डेकची पर पड़ी, और
स्टोव पर से उलटकर जमीन में जा गिरी। गरम
फैल कर माधवी के पैरों तक लुढ़कता चला आया
माधवी 'उफ' कहकर उठ खड़ी हुई। अजय ने
छोड़ दी। और अब रुखाई से बोला, "मैं यह तो

चाहता कि मेरा भोजन का थाल उड़िया महाराज गन्दे ले कपड़ों से मेरी टेबुल पर लाकर रखे।" फिर वह जूते रमराता हुआ दर्प से सीढ़ियाँ उतर गया।

सुसंस्कृत शिक्षित स्वामी की यह निर्दय अभिव्यक्ति! धवी के कानों में पति की यह अहमन्यतापूर्ण वाणी वल कटु ही नहीं, निहायत अशोभन और विष-सदृश लगी।

पाण्डित्य से परिपूर्ण और सभ्यता से संस्कृत पुरुष वर्ग आज भी पत्नी को बराबरी का दर्जा न दे सके, केवल चारिका समझकर हुकूमत ही जतलाता रहे तो यों के व्यक्तित्व की गरिमा फिर कहाँ रही?

माधवी इस प्रबल अवमानना से आपे से बाहर हो । सोचने लगी, बरदाश्त की बात अब रही ही नहीं। महाशय ने अपनी प्रभुताई जतलाकर चोटी पकड़ ींचा है, कल जूतियाँ बरसाने लगेंगे। पुरुष की इस दती का मुँहतोड़ जवाब देने का समय अब आ गया है, माधवी अब मुँहतोड़ जवाब देकर ही रहेगी।

माधवी ने व्यस्त हाथों से अपनी खुली चोटी का ढीला जूड़ा लपेट लिया, फिर चप्पलें फटफटाती नीचे आयी। और बड़े रूखे स्वर से उसने पुकारा "गोपी दा।"

पी चरण माधवी के मायके का पुराना नौकर था। वी को उसने गोद में खिलाया है। माधवी के माता-ता अब माधवी के विवाह के बाद काशीवास करने चले तब इसे कुछ दिन के लिये माधवी के पास छोड़ गये ताकि जब माधवी अपने घर-द्वार में रम जाय तब गोपी चला आवे।

परन्तु आजकल गोपी को भी माधवी का यह गृहस्थी दासीन भाव कुछ ठीक नहीं लग रहा था। अभीअभी ाद का परसी थाली छोड़कर चला जाना उसे बहुत अखर गया। सो वह दालान की दीवाल से पीठ टिकाये सोच रहा था कि ऊपर ऐसा क्या काण्ड हो गया कि वे भोजन किये हुए ही चले गये।

अब माधवी की रूखी कठोर पुकार से उसने चमक मुँह उठाया, तो माधवी बोली "गोपू दा, तुम इसी वक्त ने पाईकपाड़ा रोड के मकान में चले जाओ। खाने-पीने इन्तजाम सब वहीं कर लेना, मैं तीसरे पहर तक वहीं जाऊँगी।"

फिर वह जोश में भरी-भरी बाहर निकली और टैक्सी स्टैण्ड में पहुँचकर एक टैक्सी में चढ़ बैठी। बोली—"कोर्ट"।

माधवी के रूखे कड़े निर्देश से विचारे गोपी के तो छक्के ही छूट गये। नटवर काम छोड़कर भागता आया। उड़िया पाचक और मेहरी देवकली भी! बुत बने सब खड़े देखते रहे।

किन्तु गोपीचरण को तो माधवी के हुकुम की तामील करनी ही पड़ेगी। यह जिद्दी लड़की न मालूम क्या कर बैठे।

खैर, विचारा बूढ़ा गोपी घर के पास रिक्शा से उतरा तो उसे पहले ही भोजनों की व्यवस्था करने की याद आयी, उसके पास जो भी रुपये थे, उसीसे सामने के मोदी की दूकान से दाल, चावल, घी, शक्कर, चाय वगैरह अंगोछे में बाँधकर निकला ही था कि मोहल्ले की शिकदार बाबू की बूढ़ी सास सड़क पर ही मिल गयी। "हि-हि", हँसकर बोली "काहे रे गोपू, दामाद के यहाँसे निकाला गया क्या?"

गोपी चरण एक तो जला-भुना था ही, ऊपर से जैसे यह कटे घाव पर नोन का छिड़काव! उसका हृदय आग सा धधक उठा। बोला, "मरने के दिन निकट आ गये फिर भी दूसरे की बुराई सोचने की प्रवृत्ति तुम्हारी छूटी नहीं नानी? अपने घर-द्वार की हिफाजत करने आना तुम्हारे लिए भगाया जाना हुआ।"

"आहा, नाराज क्यों होता है रे गोपू? तू ने दाल-चावल बिसाया तो मैंने सोचा।"

गोपी फट से कह उठा, "हाँ-हाँ, तुम तो यही सब सोच में रहती हो। मकान की देखभाल में दो-चार रोज अगर यहाँ लग ही जायँ तो क्या पेट पूजने को रोज उतनी दूर जाऊँ?"

"सो तो ठीक है।" कहकर नानी अपने में लजाकर चली गयी।

इधर दूसरे रोज ही कोर्ट से बुलावा आया, और अजय भी ताव में आकर माधवी की तलाक की अर्जी पर 'कोई आपत्ति नहीं' लिखकर चला आया।

लो, हो गयी छोड़-छुट्टी! लेकिन अब माधवी को लगने लगा कि जितना उल्लास इस बन्धन-मुक्ति से सोचा था वह नहीं मिला। उसके बदले हृदय में कहीं

गहरे गड़े हुए काँटे की तीक्ष्ण चुभन अनुभव होने लगी है। और उस चुभन के स्थान को कुरेदकर उसे घाव बनाने का काम गोपू का व्यवहार करने लगा।

चार-पाँच रोज कट गये थे। आज सुबह आँगन में ईंटों के चूल्हे पर पानी से भरा एक पुराना मटका चढ़ाकर कुछ कुकुरमुत्ते उसमें डालते हुए गोपू चिल्लाकर बोला, "ले बेबी, अब अपना अर्क सम्हाल। पार्क स्ट्रीट के मकान में कहाँ इतना धुँआ करती। वह है एक सुन्दर महल। इसीसे मैंने तुझे यहाँ बुलवाया है। अब बना ले जी भर के गोरखमुण्डी और कुकुरमुत्ते का अर्क।"

पड़ोसी शिकदार बाबू की सास को सुनाकर गोपीदादा की यह लाज ढाँकने की यह चाल!

ऊपर के कमरे में माधवी सुनकर सन्न रह गयी। लेकिन कितने दिन,—कितने दिन यह मुलम्मा टिकेगा! एक दिन तो सब बातें प्रकाश में आही जावेंगी।

और तब—? ठीक उसी समय गोपू ने उसकी माँ का पत्र लाकर उसे दिया। माँ ने माधवी को लिखा है, "तुम अब चूल्हे में चली जाओ तो भी हमें कुछ चिंता नहीं। पाण्डित्य में तुम चाहे कितनी भी प्रवीण हो, मगर व्यवहार शास्त्र का ज्ञान तुम्हारा अधूरा है। तुम जानती हो कि तुम्हारे पिता की सामान्य पैंशन के रुपयों से हम दोनों का गुजारा ही मुश्किल से होता है। हाँ, पाईकपाड़ा का मकान तुम्हें दिया गया है। उसे चाहे तुम गिरवी रखो या बेंच खाओ। उससे हमारा कोई सरोकार नहीं है। किन्तु एक अनुरोध है—हमें तुम कभी कुछ भी न लिखो। तुमने जब अपने दिमाग से अपना निपटारा कर लिया है तब आगे की अड़चनों को तुम ही झेलो और उनसे जूझो।"

माधवी के हृदय के घाव ने अब जैसे पक कर तपकना शुरू कर दिया।

इस मकान के पिछवाड़े चहारदीवारी से घिरी कुछ परती जमीन पड़ी है। कभी गृह स्वामी का बगीचा रहा होगा। अभी भी ताड़, नारियल और सुपारी के पेड़ सघन श्रेणियों में जमीन को अंधेरा कर ऊपर ही ऊपर लहरा रहे हैं। बीच के खड्ड में बरसात का पानी भरकर एक शैवालाच्छन्न पोखरा बन गया है। माधवी उसी पिछवाड़े के निराले में अपनी असहायता पर विचार करने के लिए ऊपर से उतर आयी। तो गोपू ने अभावों का ब्यौरा पेश किया। बोला "मेरे पास जो कुछ भी थोड़ा-सा रुपया पैसा था, उसीसे मैंने इतने दिन धका दिये। मगर अब आगे के लिये तू समझ।"

ओहो! विज्ञान की सेविका माधवी को क्या मालूम था कि पेट की समस्या भी सोचने की वस्तु होती है!

गोपू बोला "बस, अब हो गये दस-बारह रोज। तू अब सीधे-सीधे घर चली चल।"

अब तो माधवी की आँखों से आँसू ही निकलने को हुए। फिर भी सम्हलकर बोली, "मगर इस छावनी को छोड़कर और तो कहीं घर ही नहीं है गोपी दा।"

"छि:, ऐसी बातें नहीं करना, तू तो राजरानी है बेटी!"

"कभी थी, मगर अब नहीं हूँ।" माधवी बोली।

गोपी चरण झिझककर बोला "कैसी अटपटी बातें करे है तू? मैं तेरी इस पहेली को तो बिलकुल ही समझ नहीं पा रहा हूँ।"

"मैंने तलाक दे दिया है।"

और तब अचानक बन्दूक की गोली लगा सा गोपी लड़खड़ाकर वहीं धप्प से बैठ गया। फिर कपाल पीटकर बोला "हाय राम! तूने यह कैसा गजब कर डाला? दुनिया क्या कहेगी? पुरा-पड़ोस के क्या सोचेंगे? फिर बूढ़े माँ-बाप के छाती पर तो तूने वज्र ही दे मारा री!" कहता हुआ गोपी चरण फूटकर रो पड़ा।

प्रचण्ड व्यथा-वेदना लज्जा और आत्मग्लानि से माधवी विभ्रान्त हो उठी। गोपी की आकुलता, और अपने किये लज्जा से छिपने के लिये ही मानो वह उस जंगल से भरे पिछवाड़े पहुँच पाकुड़ के पेड़ के नीचे बेत की झाड़ियों से सटकर बैठ गयी। उसके पैरों की आहट पाकर कई सरीसृप (रेंगनेवाले जानवर साँप) सूखे पत्तों के नीचे सरसराकर भागे। पोखरे के किनारे बैठे मेढक उचक-उचककर पानी में कूद गये। कगार पर के कई केले के झाड़ों पर, जो पोखरे के हरे शैवाल पर औंधे गिरे थे, कई मोटे मोटे पनियां साँप शायद धूप सेंकने के उद्देश्य से ही आराम से लेटे पड़े थे, अब आहट पाकर सरसराते हुए पानी में उतर गये। प्रबल पश्चाताप से माधवी कह उठी "यह काल, यह भुजंग अभी ही मुझे डँस लेवे तो अच्छा। दुनिया की लज्जा छूटे। मगर वह तकदीर मेरी कहाँ? बर्लिन की लड़ाई में हारा वह सेनानी, वह हिटलर

म्भ को निबाह कर कैसे मृत्यु में समा गया, किसी के कपड़ों का टुकड़ा भी न देखने को मिला।

!"

दा, ओ गोपू दा, यहाँ तो भाभी कहीं भी नहीं

?"

धवी समझ गयी कि तारक आया है। उसने सिर पर का पल्ला सम्हाला। तारक अजय की बुआ का है जो अजय के पास रहकर बी० ए० में है।

धवी के हिलने-डुलने से तारक की दृष्टि पाकुड़ की छाया में गयी तो वह सहर्ष पास आया, और क्षोभ "अरे भाभी, आप यहाँ क्यों बैठी हैं? यह युगों पोखरा, मच्छरों का डेरा और मलेरिया का डिपो", हते उसने अपने पाकेट से पर्स निकालकर माधवी के पास रख दिया।

धवी बोली "यह क्या?"

ये। अजय दादा ने कहा है कि अपने भरण-पोषण आप शीघ्र ही दायर कर दें। वे लौटकर से सब निपटा देंगे।"

कहाँ गये?"

लहाल ताशकन्द, फिर न मालूम कहाँ-कहाँ योंकि छः मास की छुट्टी ले ली है। अभी ही तो दम हवाई अड्डे पर पहुँचा कर सीधा चला आ हूँ।"

धवी कुछ नहीं बोली।

रक बोला, "देखिए, परिस्थिति कह रही है, इस स्थिति में आप सुखी नहीं हैं। और न भविष्य में कभी सुखी हो सकेंगी। आपका चेहरा बता रहा है। आप वह 'टाइप' नहीं हैं और न कभी हो सकेंगी जो 'टाइप' 'आज़ाद' या स्वाधीन जीवन बिता सकती है। आपको गृहस्थ जीवन का स्वाद लग गया है, वह चाहे कभी-कभी कितना ही कड़ुवा लगे लेकिन है सारे जीवन के लिये मधुर पाथेय। आप उस सौभाग्य को कभी नहीं भूल सकतीं। मैं कार लाया हूँ। उठकर घर चलिए।"

"किन्तु भाई, मैंने तो अपने हाथ काट दिये हैं।"

"मारिये गोली, जिस कलम से उल्टी लकीर खींची गयी है, उसी कलम से सीधी लकीर भी फिर खिंच जावेगी।"

"किंतु—"

"किन्तु-परन्तु कुछ नहीं। क्या सिर्फ आपके और दादा के लिख देने से ही सब निपटारा हो जावेगा? पहले तो यह केस कोर्ट में "स्टैण्ड" नहीं हो सकता क्योंकि अपनी हिन्दू विवाह पद्धति इतनी अकाट्य है कि इसे किसी भी प्रकार से छिन्न नहीं किया जा सकता। आप देख लेना कि मजिस्ट्रेट उसे वैसे ही "फाइल" कर देवेगा।" "ओ गोपू दा, सब कमरे बन्द करके चले आना, मैं भाभी को साथ लिये जा रहा हूँ।"

उल्लास से भरे गोपू ने कुकुरमुत्ते की हाँड़ी लाकर सशब्द पोखरे में पटकी। बोला "नास जाय यह अर्क! यही तो सब झगड़े की जड़ है।"

फिर माधवी के पास आकर सस्नेह बोला "उठ बिट्टी, औरतों की ज्यादा अकड़ अच्छी नहीं होती!"

◆

कच्चा चिट्ठा

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

हेमा चाची सरपंच क्या चुनी गयीं कि गाँव में कइयों के दिलों पर साँप लोट गये। झरने पर सुबह-सुबह औरतें पानी भरने को गयीं तो बस वही चर्चा—'दारी रांड को हया-शरम भी तो नहीं, मर्दों के बीच में कैसे दाँत निपोर-निपोर के बात करै है, खसम जिन्दा होता तो तब रांड को आटे-दाल का भाव मालूम पड़ता।' दो-तीन बूढ़ी औरतें गौशाला के एक कोने पर खड़ी इसी प्रसंग को लेकर हाय-तोबा मचा रही थीं—'घोर कलजुग आ गया। पराये मर्दों के सामने घंटों बैठ-बैठकर गप्पें हाँकते हुए रांड को थोड़ी-भी हिचक नहीं। उस दिन व्याख्यान झाड़ने लगी कि औरतों को मर्दों के साथ-साथ कन्धा भिड़ाकर चलना चाहिए, तभी मुल्क की तरक्की होगी। अपना खसम तो कब की खा चुकी, अब पराये मर्दों से कन्धा नहीं भिड़ायेगी तो खुजली मिटेगी कैसे?' उस दिन पटवारी से कैसे-कैसे चप्पर-चप्पर बात कर रही थी। आग लगे ऐसी पढ़ाई-लिखाई को। 'ओंनम सिधंग' दो आखर क्या सीख लिये कि बस, जमीन पर पाँव ही नहीं पड़ते रांड के, मिजाज तो सातवें आसमान में है। अपनी देखो, ब्याह हुए तीस साल हो गये पर मजाल क्या, आज तक जो लल्ला के बाप के सामने मुँह भी खोला हो।'

रोज कहीं-न-कहीं ऐसी बातों की भनक कानों में पड़ती। जहाँ दो औरतें इकट्ठी हुईं नहीं कि चल पड़ा चाची का रामरसरा। चाहे खेत हो, खलियान हो, रास्ता हो या जंगल, आँगन हो या पनघट, सब जगह औरतों की यही बातें, लगता औरतों ने अपनी जाति-बिरादरी से हेमा चाची को हमेशा के लिए निकाल दिया हो, पर चाची ने ऐसी बातों को कभी कोई तूल नहीं दिया। एक कान से सुना, दूसरे से निकाल दिया।

गाँव में चाची अपने ढंग की अकेली औरत। अपने सारे बचे-खुचे गहने सुरक्षा-कोष में, मकान संस्कृत पाठशाला को, सात-आठ खेत हरिजनों को। अपनी गुजर-बसर के लिए कुछ खेत और दिल बहलाने को कुछ डंगर। चाची सुबह-सुबह उठती, गौशाला जाती, गोबर उठाती, दूध दूहती और उधर ही से झरने पर नहा-धोकर आती, थोड़ी पाठपूजा, घर की सफाई फिर खेतों की निराई-गुड़ाई। दिन में एक-आध बार गाँव का चक्कर, शाम को कुछ बच्चों को लेकर उन्हें किस्से-कहानियाँ सुनाना—बस यही दिनचर्या। अकेली जान, न आगे न पीछे। सात साल पहले, भरी जवानी में, जब उन्हे वैधव्य ने डसा तो लोग पचास बातें बनाने लगे। चढ़ती जवानी बरसाती नदी होती है। अच्छों-अच्छों के पैर फिसल जाते, वह तो बीस साल की उड़ती चिड़िया ठहरी, फिर ऊपर से विधाता ने छप्पर फाड़कर रूप में सरोबार किया है। न-जाने क्या-क्या करतब दिखाएगी, क्योंकि गाँव में बीसियों ऐसी घटनाएँ हो चुकी थीं। परन्तु चाची ने इन सात सालों में जो-जो किया, उससे सभीकी आँखें खुल गयी थीं कि यह वैसी औरत नहीं है। उल्टे, कई ढपोर संखों की खुल गयी थी। कइयों की बखियाँ चाची ने दी थीं।

गाँव का चौधरी काका, बपौती शान-शौकत, का एजेंट, खानदानी सरपंच, सबसे पहले चाची ने की आड़े हाथों खबर ली। एक दिन चाची डंगरों के घास लेने अकेली जंगल गयी। घास काट ही रही थी कहीं से उन्हें चौधरी की आवाज सुनायी दी। चारों नजर डाली तो देखा, एक टीले पर चौधरी खड़ा उन्हें निहार रहा है। चाची बेकार की शरम-वरम करती थी। पूछ बैठी, 'चौधरी, आज इधर कैसे?' के चेहरे पर शरारत, फिर भी कुछ बनते हुए कहने कि इधर जंगल देखने चला आया था। चाची कुछ तो समझ गयी, क्योंकि चौधरी की ललचाई आँखों को बार देख चुकी थी, इसलिए ज्यादा तूल न देकर वे अपने काम में फिर से लग गयी। चौधरी चुपचाप रहा। उन्होंने छिपकर फिर देखा, समझ गई कि चौधरी नीयत क्या है। जल्दी-जल्दी घास का बोझा पीठ पर और चल पड़ी। चौधरी काका भी पीछे पीछे।

'सुनो तो' चौधरी काका ने खाँसते हुए-से कहा।

चाची ठहर गयी तो चौधरी एकटक उन्हें देखते रह गये। 'क्यों, क्या बात है?' चाची ने पूछा, जब चौधरी को इस प्रकार खड़े-खड़े देखा।

'बात क्या होनी है?' चौधरी थोड़ा और खिसक गए और शरारतभरी मुस्कान से इधर-उधर देखने लग गया कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है।

चाची ने देखा कि चौधरी के इरादे क्या हैं तो चुपचाप घास का बोझा एक पत्थर पर रखा और आप बैठ गयी। चौधरी की बाँछें खिल गयीं।

'सच पूछो, भाभी, तुम्हें ऐसी हालत में देखकर आता है', चौधरी चाचा ने भूमिका बाँधते हुए-से 'तन की अगन न मिटे तो जीवन अकारथ ही समझो, फिर जवानी तो बहता पानी है, हाथ धो लो तो क्या पड़े'—अपनी फिलोसफी झाड़ते हुए चौधरी ने हाथ बढ़ाया। चाची ने सब कुछ समझते हुए भी अनजान कर पूछा—'मैं समझी नहीं, आप क्या कहना चाहते हैं?'

चौधरी थोड़ा और सरक गये और जैसे ही चाची की पीठ पर हाथ फेरा कि तड़ाक-तड़ाक दस-बारह चाँटे चाची ने चौधरी के गालों पर जड़ दिये। चौधरी आपा खो बैठे और चाची पर पिल बैठे, पर चाची माननेवाली न थी। चौधरी की वह मरम्मत की, वह की कि बेचारा आधी रात को लँगड़ाते-लँगड़ाते घर लौटा। घरवालों ने पूछा तो पचास बातें बना दीं। चाची ने तक किसी से कुछ नहीं कहा था।

अगले दिन चाची ने पंचों के सामने पूरी घटना सुना फिर तो सारे गाँव में बात फैल गयी। चौधरी की हरकत से ही सब को मालूम थी कि घर पर ही कच्ची शराब ते हैं और रात पी-पाकर अनाप-शनाप बकते रहते न्द्रह-बीस ऐसी घटनाएँ हो चुकी थीं, पर पैसे ने सब -चारा कर दिया था। दे-दिवाकर मामला ठंडा ते थे। गाँव में उन्ह देखकर सभी डरते थे, क्योंकि पर उनका थोड़ा-बहुत कर्जा। सभी उनका रोब-मानते। पटवारी आता तो उनके यहाँ दावत होती। डिवलपमेंट अफसर आता तो उनके यहाँ गुलछर्रे । एम० एल० ए० आते तो रातभर गहरी छनती और फिर पी-पीकर सब लोट-पोट हो जाते। क्या किसीकी, जो उनके विरुद्ध एक शब्द भी बोले। गाँव के कुछ नौजवान उनकी हरकतों से मौके की थे कि कोई ऐसी बात हो जाय जिससे चौधरी यों रंगरेलियाँ करते हुए पकड़े जायँ। एक-दो बार की रिपोर्ट भी की गई पर पटवारी से लेकर तहसील-क सब उनके मेहमान रह चुके थे। इसलिए किसी चलती नहीं थी। गाँव में कइयों की इज्जत पर वे कर बैठे थे। उनके मेहमानों की सेवा के लिए भी गरीब लड़कियाँ तैयार रहती थीं। पंचायत में का रोब। कभी-कभी तो वे दून की हाँकते थे कि नेहरू-उनका पत्र-व्यवहार चलता है। वे चाहते तो टिकट कभी के एम० एल० ए० बन जाते पर वे छप्पन के र में फँसना नहीं चाहते। बात भी लोगों को कुछ-ठीक-ठीक सी लगती, क्योंकि गाँव को रेडियो मिला चौधरी के घर की शोभा बढ़ाता रहा, गूल के लिए मिले तो चौधरी ने लड़के की शादी में फूँक दिये, पर की कोई हिम्मत नहीं कि चूँ भी करे। चलती का नाम —बस, चौधरी चाचा की चल पड़ी तो चल पड़ी। चाची ने जब एक-एक बात खोल दी और नये-जिलाधीश को जब चिट्ठी लिखी कि ऐसा अँधेर मच है! आग लगे इस आजादी को, हमारा गाँव में रहना भर हो गया! उन्होंने चौधरी की एक-एक बात लिख थी। किसीके कानों खबर तक नहीं हुई। बाद में कार्यवाही हुई और बयान-सयान हुए तो चौधरी ने अपना पुराना रोब दिखाया, पैसों का लालच, शराब बोतलें, पर इस बार उनकी तकदीर ही खराब रही कि की एक भी न चली। यहाँ तक तहसीलदार का भी ला हुआ, नया तहसीलदार अभी लड़का-ही सा था। लिए चौधरी ने उसको बहुत समझाया-बुझाया पर हेमा चाची की एक-एक बात जब उसे सुनायी कि ऐसे-ऐसे काले कारनामे किये हैं तो गाँव के कुछ गबरू जवान भी चाची की तरफ हो गये; फिर तो गवाहियाँ हुईं, मामला चलता रहा और तब चौधरी साहब, शराब बनाने और दूसरे की बहू-बेटियों की इज्जत लूटने के अपराध में पकड़े गये। दो-तीन पंच, जो उनके लंगोटिया यार थे, वे भी पकड़े गये और फिर तो पूरे गाँव में चाची का दबदबा हो गया। नयी पंचायत बनी, और तब चाची निर्विरोध गाँव की सरपंच चुनी गयी।

सरपंच बनते ही चाची ने गाँव की काया ही पलट दी। महीने में एक बार नाटक होता, स्वयंसेवकों की मंडली बनी। गरीबों की सेवा के लिए लड़के और चाची जी-जान से काम करती, और इस प्रकार जहाँ देखो वहाँ चाची की चर्चा, चाची की बात। बाहर से लोग-बाग आते तो चाची निधड़क होकर उन्हें अपनी बात सुनाती। गाँव में नया पंचायतघर बना, हरिजनों के लिए झरने पर पानी भरने का ऐलान हुआ, बंद जंगल की घोषणा हुई। फल-फूलों के पेड़ लगाये गये और सब नौजवान चाची की जय-जय करने लगे। पर गाँव की स्त्रियाँ उनसे खूब जलती रहीं, कटती रहीं, भुनती रहीं पर चाची सबका कच्चा चिट्ठा सामने खोल देती थी। अब गाँव में कोई स्त्री गाली नहीं देती थी। चाची ने गाली के लिए आठ आने जुर्माना मुकर्रर कर दिये थे। कोई बंद जंगल से लकड़ियाँ नहीं काट सकता था। दो-तीन सड़कें बनायी गयीं, और चाची अगुवा की तरह सब करवाती, फिर अपने काम-धंधे में लग जाती। दो साल बाद चौधरी जब छूट के आये तो उन्होंने अपने हथकंडे दिखाने शुरू किये, पर चाची ने फिर उनकी बखिया उधेड़कर रख दी। चाची को मरवाने के लिए षड्यंत्र किये गये पर चौधरी का साथ किसी ने नहीं दिया और तब झक मारकर एक दिन चौधरी गिड़गिड़ाया, चाची से माफी माँगी तो चाची न कहा—"ठीक है, तुम सरपंच बन जाओ पर ऐसी हरकतें ठीक नहीं।" चौधरी जैसे पश्चात्ताप करते हुए-से बोले—'नहीं भाभी नहीं, अब तुम जो कुछ कहोगी, हम वही करेंगे।' गाँव के लोग बाग भी खुश हुए, चलो, चौधरी को अकल तो आयी। किन्तु पाँच दिन बाद ही जब एकाएक चाची के गायब होने की बात फैली तो किसीको विश्वास न हुआ। पचास बातें हो रही थीं कि वह किसी साधुबाबा के साथ भाग गयी और 'माई' बन गयी। रिपोर्ट हुई पर चाची का कोई पता न लगा। लोगों ने चौधरी पर ही शक किया पर चौधरी भी वैसे ही परेशान जैसे और। रात-दिन एक किया। जंगल गये, नदी के किनारे-किनारे गये कि कहीं लाश मिल जाय। पर चाची का कोई पता न लगा। और चाची आज भी गाँव के लिए रहस्य बनी हुई है कि वह कहाँ चली गयी, क्यों चली गयी? चौधरी फिर बहुमत से सरपंच चुन गये।

नवीन प्रकाशन

बुद्धकालीन भारतीय भूगोल—डा० भरतसिंह उपाध्याय, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद। सजिल्द, नकशा। बड़ा आकार। मूल्य १२ रु०।

यह मूलतः एक शोध निबन्ध है। इसमें पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में आये हुए स्थलों, नदियों, पर्वतों आदि के आधार पर बुद्ध के जीवनकाल के भारत के भूगोल को चित्रित करने और उसका वर्णन करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इस विषय पर अभी तक एक ही पुस्तक थी—वह भी अंग्रेजी में, यद्यपि इस विषय की प्रकारान्तर से चर्चा अनेक विद्वानों ने अपने ग्रंथों में की है, तथा इस समय के स्थलों आदि का वर्णन सिंहली विद्वान डा० मललसेखर ने अपनी 'डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स' में संक्षिप्त रूप से किया है। हिंदी में यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। इसके तैयार करने में लेखक को तिपिटक तथा संबंधित साहित्य का बहुत सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ा होगा। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर लेखक के अध्यवसाय और मनन की छाप है। यह पुस्तक हिंदी के गौरव-ग्रंथों में सम्मिलित होने योग्य है और इससे बुद्धकालीन भारत के संबंध में बहुत सी विवेचित सामग्री मिलती है। इसमें बुद्ध अपने जीवन में जिन स्थानों में गये थे, उनका विशेष वर्णन है। यह स्वाभाविक भी है। इससे पाठक को बुद्धकालीन भौगोलिक स्थिति का ही पता न लगेगा, प्रत्युत और भी कितनी ही तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बातों का ज्ञान होगा। अपने वर्तमान् रूप में यह ग्रंथ विशेषरूप से विद्वानों के या उन लोगों के काम का है जो इस विषय का गहरा अध्ययन करना चाहते हैं। यदि एक अध्याय में, अंत में, सरल शैली में उस समय के भूगोल का सीधा-सादा वर्णन दे दिया जाता तो साधारण पाठकों को तत्कालीन भूगोल का स्पष्ट चित्र मिल जाता। लेखक यदि चाहता तो तत्कालीन राजमार्गों और अन्य महत्वपूर्ण मार्गों के सम्बंध में खोज कर अपने अनुमानित निर्णय दे सकता था जिससे तत्कालीन मार्गों के सम्बंध में पाठकों को कुछ जानकारी हो जाती। परवर्ती यात्रियों के वर्णनों से उनकी पुष्टि हो सकती थी या यह जाना जा सकता था कि बुद्ध के समय से इन राजमार्गों में क्या परिवर्तन हुए। तत्कालीन राजमार्गों का ठीक ज्ञान न होने से बहुत से लुप्त स्थानों की स्थिति का पता लगाना कठिन हो गया है। किंतु शायद यह विषय इतना जटिल है कि लेखक ने प्रस्तुत अध्ययन के साथ उसपर विचार करना उचित नहीं समझा। इस पुस्तक से हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि हुई है।

आधुनिक व्यावसायिक संगठन—श्री जयप्रकाश रस्तोगी। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–६। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य, ७ रुपये ९० नये पैसे।

विश्वविद्यालयों में 'व्यापार' अध्ययन का एक विषय है। विज्ञान की तरह इसका अध्ययन भी एक अलग संकाय (फ़ैकल्टी) में होता है और आधुनिक व्यापार एवम् उद्योग-प्रधान युग में इस विषय का महत्व स्वयंसिद्ध है। आधुनि व्यापार अत्यंत जटिल है, और उसकी बहुत कुछ सफल उसके संगठन पर निर्भर है। इसलिए बी० काम० में इ विषय पर एक प्रश्नपत्र ही अलग होता है। इसके अ यन के लिए अंग्रेजी में तो अनेक पुस्तकें हैं, किंतु हिंदी में उनका अत्यन्त अभाव है। हिंदी के माध्यम से उच्चशि तभी सफल हो सकती है जब उसपर उच्च स्तर की प्रा णिक पुस्तकें सरल भाषा और सुबोध शैली में अधिका विद्वानों द्वारा लिखी जायें। इस कारण हमें यह पुस्त देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। लेखक इस विषय के अनुभ और सफल प्राध्यापक हैं। बीस अध्यायों में संगठन सभी अंगों का बड़ा स्पष्ट विवेचन किया गया है। पुस्त को अद्यतन बनाने का भी प्रयत्न किया गया है और नवी तम बातों को सम्मिलित कर लिया गया है। उदाह के लिए, कम्पनीज ऐक्ट का वर्णन करते समय केवल पुरा ऐक्ट का ही वर्णन नहीं है, बल्कि १९६० में उसमें संशोधन हुए थे, उनकी भी चर्चा कर दी गयी है। पुस्त की भाषा सरल है और साधारण विद्यार्थी उसे आसानी समझ सकता है। पुस्तक इतने अच्छे ढंग से लिखी गयी कि वे साधारण पाठक भी जिन्हें इस विषय में थोड़ी सी रुचि हो, इसे पढ़कर सरलता से समझ सकते हैं। यह इत अच्छे ढंग से लिखी गयी है कि विषय की शुष्कता के बावजू इसे पढ़ने में जी नहीं ऊबता। हमें विश्वास है कि विश्व विद्यालय के व्यापार पढ़नेवाले छात्र इससे पूरा ला उठावेंगे।

मानव-प्रकृति और आचरण—मूल लेखक, जॉ डयूई। अनु० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार। प्रकाशक आत्म राम एण्ड संस, दिल्ली–६। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य, ६ रु०।

जॉन डयूई इस युग के विचारकों में प्रमुख थे। उन क्षेत्र दर्शन और मनोविज्ञान था। बहुत कम विद्वानों आधुनिक युग में विचारकों को इतना प्रभावित किया है जितना डयूई ने। प्रस्तुत पुस्तक उनकी अंग्रेजी पुस्त 'ह्यूमैन नेचर एण्ड काण्डक्ट' का अनुवाद है। आचर नैतिकता का प्रत्यक्ष या मूर्त रूप है। किंतु प्रश्न यह है कि नैतिकता या आचरण का मूलस्रोत या आधार मूल और सहज मानव प्रकृति है अथवा वह सामाजिक परिवेश पर आश्रित है? बहुत दिनों तक लोग मानव प्रकृति को ही इसका एकमात्र आधार मानते रहे, किंतु ज्यों-ज्यों नृतत्व विज्ञान तथा अन्य समाज-शास्त्रों का विकास हुआ त्यों- आचरण पर सामाजिक परिवेश का प्रभाव स्पष्ट हो लगा। आज के विद्वान् इसके (अर्थात् संस्कृति या सामा जिक परिवेश के) व्यापक और निश्चित प्रभाव को स्वीकार करते हैं। किंतु फिर भी मानव प्रकृति और सामाजिक परिवेश के प्रभावों में संतुलन की आवश्यकता है। सामा जिक परिवेश के प्रभाव से विवश होने पर भी मनुष्य

प्रकृति अपने को उसके बंधन से मुक्त करने, या उसे ने मनोनुकूल परिवर्तित करने का सतत प्रयत्न करती ती है। मनुष्य का आचरण और उसकी नैतिकता हीं दो शक्तियों के आघात-प्रतिघातों से प्रभावित होती ती है। दर्शन और मनोविज्ञान की दृष्टि से यह समस्या न्त महत्वपूर्ण है क्योंकि मनुष्य के आचरण (काण्डक्ट) पर मानवता का सुख-दुख, उन्नति-अवनति निर्भर है। र्ड ने इस पुस्तक में अपनी विद्वत्तापूर्ण शैली में इसी विषय विवेचन किया है। यह ग्रंथ अपने विषय का गौरवग्रंथ लासिक) माना जाता है। हिंदी में इसका अनुवाद नंदनीय है। मूल पुस्तक की जटिलता और क्लिष्टता देखते हुए, सब मिलाकर, अनुवाद संतोषजनक है। कहीं कहीं अंग्रेजी के जटिल (कम्प्लैक्स) वाक्यों को तोड़ने से उनका आशय समझने में कभी-कभी थोड़ी कठिनाई होती है। एक बड़ी कमी अनुभव होती है: पारिभाषिक शब्दों की तालिका अंत में देकर उनके पर्याय दे दिये जाने चाहिए थे। इससे पाठकों को हो जाता कि मूल अँगरेजी शब्द के लिए कौन-हिंदी शब्द रखा गया है।

मानव की उत्पत्ति और क्रमिक विकास——मूल माइखेल नैस्तुर्ख। अनुवादक, रमेश सिन्हा। ल्द, बड़ा आकार, अनेक महत्वपूर्ण और दुर्लभ और नक्शे। मूल्य, १५ रुपये।

मानव की उत्पात्त और विकासवाद के सम्बन्ध में पहिले सम्बद्ध वैज्ञानिक खोज डारविन ने की, और जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये वे बहुत कुछ आज भी हैं। उसने इस विषय का जीवशास्त्रीय दृष्टि से न किया था। किंतु साम्यवादी (कम्युनिस्ट) विद्वान अध्ययन को अपूर्ण मानते हैं। उनके मत से जब तक मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रकाश में इस का अध्ययन न किया जाय तब तक यह अध्ययन है। श्री नेस्तुर्ख मास्को के राजकीय विश्वविद्यालय के शास्त्र संस्थान और संग्रहालय के अध्यक्ष हैं। उन्होंने विन के सिद्धान्तों को मूल्यवान मानते हुए भी, उनकी या को अपूर्ण माना है और यह प्रमाणित करने का किया है कि द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद प्रतिपादित मानव-उत्पत्ति शास्त्र के श्रम सिद्धान्त को विना इस विषय की सम्यक् व्याख्या नहीं हो सकती। विषय इतना बारीक और जटिल है, तथा इसको तरह से समझने के लिए इतनी वैज्ञानिक जानकारी वश्यक है कि विशेषज्ञ विद्वान ही इस दावे की परीक्षा सकते हैं। जो पाठक मनुष्य की उत्पत्ति की वैज्ञानिक व्याख्या में विशेष रुचि लेते हों, तथा जिन्होंने इसका अध्ययन किया हो, उन्हें इस पुस्तक में नया दृष्टिकोण और नयी व्याख्या मिलेगी। विज्ञान में किसी बात को 'अंतिम' नहीं कहा जा सकता। इसलिए विद्वानों और इस विषय के विद्यार्थियों को इस पुस्तक में दिये हुए मत को जानना और उसपर विचार करना चाहिए। अनुवाद साधारण रूप से संतोषजनक है। 'वर्क' के लिए 'काम' शब्द वैसे ठीक है किंतु 'कार्य' या 'श्रम' अधिक उपयुक्त होता क्योंकि हिंदी में (विशेषकर शास्त्रीय पुस्तकों में) 'काम' दूसरे ही संदर्भ में प्रयुक्त होता है।

भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम——कार्लमार्क्स और एंगेल्स। अनु० रमेश सिनहा। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि० नई दिल्ली। सजिल्द। मूल्य ३ रु०।

जिन दिनों भारत में १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम हो रहा था, उन दिनों उसके संबंध में साम्यवाद के जनक कार्ल मार्क्स और उनके सहयोगी फ्रेडरिक ऐंगेल्स ने उसके सम्बन्ध में न्यूयार्क से निकलनेवाले न्यूयार्क डेली ट्रिव्यून में एक लेख-माला लिखी थी जिनमें प्राप्त समाचारों के आधार पर घटनाओं का विश्लेषण रहता था। ये दोनों ही विचारक साम्यवाद के संस्थापक थे, साम्राज्यवाद के विरोधी थे, और इस लिए भारत-वासियों के मुक्ति के प्रयत्नों से उनकी सहानुभूति थी। इस पुस्तक में उस लेखमाला का अनुवाद है। साथ ही कार्लमार्क्स के भारत के सम्बन्ध में लिखे गये कुछ अन्य लेखों का अनुवाद भी दे दिया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये लेख बड़े महत्वपूर्ण और रोचक हैं। इनसे मालूम पड़ता है कि हमारे स्वतंत्रता संग्राम को अंग्रेजों की दृष्टि से भिन्न दृष्टि से देखनेवाले लोग भी उस समय योरोप और अमरीका में थे। एक अमरीकन समाचारपत्र ने उन्हें प्रकाशित किया था। यह भी उल्लेखनीय और ध्यान देने योग्य बात है। इतनी दूर बैठकर उन्होंने भारत की इस घटना के और उसकी असफलता के कारणों का जो विश्लेषण किया है वह वास्तव में बड़ी सूझ-बूझ का है। इतिहास में रुचि रखनेवालों को इसे पढ़ना चाहिए। अनुवाद की भाषा संतोषजनक है। दूर होने के कारण लेखों में छोटी-मोटी भूलें हो गयी हैं। जैसे "लगता है कि जोधपुर के लीजन (सैन्यदल) ने अलवर के विद्रोही राजा के यहाँ नौकरी कर ली है। यह जगह ब्यावर के दक्षिण-पश्चिम में ९० मील के फासले पर है।" (पृष्ठ ११२) अनुवादक को चाहिए था कि पाद टिप्पणियों में ऐसी बातों को सुधार देते या स्पष्टीकरण कर देते। इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती।

भारती-कण्ठाभरण

वदन्तु कतिचिद् हठात् खफछठेतिवर्णच्छटां
घटः पट इतीतरे पटु रटन्तु वाक्पाटवात्।
वयं बकुलमञ्जरीगलदमन्दमाध्वीझरी-
धुरीणरसरीतिभिर्भणितिभिः प्रमोदामहे।।

(पण्डितराज जगन्नाथ)।

कुछ लोग (वैयाकरण) खफछठथ आदि ही हठपूर्वक बकते रहें, कुछ दूसरे लोग (नैयायिक) अपनी वाक्पटुता घट पट रटने में ही दिखाते रहें, परन्तु हम तो मौलिश्री की मञ्जरी से झरनेवाली मोहक मदिरा से छलछलाती रस-मयी उक्तियों में ही प्रमोद पाते हैं।

विष्णो त्वदंघ्रिनखधावनतोयलग्नाः
त्वत्पादपद्मकणिकाजलधिं प्रविष्टाः।
ता एव नीरमथनात् सघनीभवन्त्यो
नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्नाः।।

(पण्डितराज जगन्नाथ)।

हे विष्णो, तुम्हारे चरणकमल धोते समय जल के साथ उस कमल की मकरन्दविन्दुएँ समुद्र में चली गयीं। जब समुद्र मथा गया तो वे ही बूँदें नवनीत की तरह पिण्डित होकर चन्द्रमा बन गयीं।

ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयः तूष्णीं बहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः।
वीणां संहर नारद, स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयो स्वस्थो न लंकेश्वरः।।

कथा है कि रावण ने स्वर्ग से बहुत से देवताओं
पकड़कर लंका में बन्दी कर लिया था। बेचारे कर
क्या सकते थे। प्रातःकाल उठकर वे अपने-अपने काम
लग जाते थे। एक दिन रावण के एक भृत्य ने आ
इन देवताओं को बड़ी फटकार सुनाई। कहने लगा—

ओ ब्रह्मा! यह अध्ययन का समय नहीं है।
रहो और बाहर जाकर बैठो। ओ मूर्ख बृहस्पति!
बड़-बड़ मत करो, थोड़ा बोलो। यह इन्द्र की सभा
है। ओ नारद! वीणा बन्द करो। ओ तुम्बुरु! कथा-
एकदम बन्द करो। सीता की बरौनी रूपी भालों से
श्वर का हृदय विद्ध हो गया है। वे अस्वस्थ हैं।

पाटीर! तव पटीयान् कः परिपाटीमिमामुरीकर्तु
यत्पिषितामपि नृणां पिष्टोपि तनोषि परिमलैः पुष्टि

(पण्डितराज जगन्नाथ)

हे चन्दन! तुम्हारी इस सुन्दर परिपाटी को
अंगीकार कर सकता है कि जो व्यक्ति तुम्हें रगड़ता
उसीको तुम अपनी सुगंध से आह्लादित करते हो।

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरुढमूलत्वा
नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुं

——कालिदास। मालविकाग्निमित्र। १-

जिस शत्रु ने दूसरे का राज्य अभी-अभी हड़प लि
और जो प्रजा में अपनी जड़ मजबूत नहीं कर पाया है
नये रोपे हुए पौधे के समान, शिथिल है। उसे बड़ी स
के साथ उखाड़ा जा सकता है।

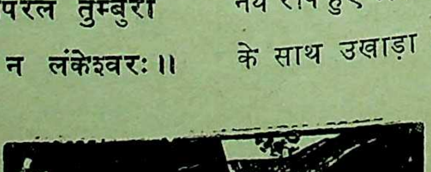

ब्रज-माधुरी (२)

(१)

बाजत नगारे मेघ, ताल देत नदी नारे,
झींगुरन झाँझ, भेरी भृंगन बजाई है।
कोकिला अलापचारी, नीलग्रीव नृत्यकारी,
पौन बीनधारी, चाटी चातक लगाई है।
निमाल जुगनू 'मुबारक' तिमिर धार,
चौमुख चिराग चारु चपला जनाई है।
बालम बिदेस नये दुख कौ जनम भयौ,
पावस हमारें लाये बिरह बधाई है॥

(२)

रद ससी सों अधससी ह्वै बची हौं
'कवि चितामनि' तिमि हिम-सिसिर झमक तें।
रत मरुकैं बची बधिक बसन्त हू तें,
पावक पजार बची ग्रीषम तमक तें।
आयौ पापी पावस, ये प्रान अकुलान लागे,
भागे औसान घोर घन की धमक तें।
तें तचौंगी त्यौं त्यौं अमिय अचौंगी आली !
अब ना बचौंगी चपलान की चमक तें !

(३)

शीतल सुगंध मंद डोलै कै न डोलै पौन,
धुरवा धुरारे चहैं धावैं, चहैं धावैं ना !
यारे मनभावन के आवन की औधि गयी,
विकल सुकल चहैं पावैं, चहैं पावैं ना !
गन की प्यासी सौत पावस प्रचंड भई,
अब तौ कलापी चहैं गावैं, चहैं गावैं ना !
न अनेकन सों अब ना बचौंगी बीर !
अब वे बिदेसी चहैं आवैं, चहैं आवैं ना !

(४)

आयी ऋतु पावस, न आये प्रानप्यारे, यासों
मेघन बरजि आली ! सबद सुनावैं ना !
चातक हटकि, बक बकि कैं न फोरैं कान,
पिक हूँ फटकि मोंहि सबद सुनावैं ना !
बिरहबिथा तें भई व्याकुल 'कवि देवजू'
जुगनू चमकि चित चिनगी उठावैं ना !
कोकिल न गावैं ! मोर सोर न मचावैं !
घन घुमड़ि न आवैं जौ लौं लाल घर आवैं ना !

(५)

जाके लगै सोई जानै बिथा,
परपीर में कोउ उपहास करै ना।
'सागर' ये चित में चुभि जात हैं,
कोटि उपाय करौ बिसरै ना।
नेंकु-सी काँकरी जाके परै,
सो तौ पीर के कारन धीर धरै ना।
एरी सखी ! कल कैसें परै,
जब आँखि में आँखि परै निसरै ना ?

(६)

धाइ के आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सों पूँछि कें ? सो मोंहि भाखौ।
त्यों कुलकानि तजी छिन में,
केहिके कहे एतो कियो अभिलाखौ ?
काज बिगारि सबै अपुनो,
'हरिचन्दजू' धीरज क्यों नहीं राखौ ?
क्यों अब रोइ कैं प्रान तजौ ?
अपुने किये को फल क्यों नहीं चाखौ ?

(७)

इन अँखियान को न सुख सपनेहूँ मिल्यो,
योंही सदा व्याकुल बिकल अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचन्दजू' की बीतो जानि औधि,
जो पै जैहैं प्रान तऊ ये तौ साथ न समायँगी।
देख्यौ एक बारहू न नैन भरि तोहिं, तातें
जहाँ जहाँ जै हैं तहाँ साथ चलि जायँगी।
विना प्रानप्यारे ! भये दरस तिहारे, हाय !
देखि लीजो आँखैं ये खुली ही रहि जायँगी॥

(८)

कंज सँकोच गड़े रहे कीच में,
मीनन बोरि दियो दह नीरन।
'दास' कहै मृगहूँ कों उदास कै,
बास दियो है अरण्य गँभीरन।
आपुस में उपमा-उपमेय ह्वै,
नैन ये निन्दत हैं कवि धीरन।
खंजन हूँ कों उड़ाइ दियो,
हलुके करि डारे अनंग के तीरन !

(९)

ए ब्रजचंद गुबिन्द गुपाल
सुनौ किन केते कलाम किये मैं।
त्यों 'पदमाकर' आनंद के नद हौ,
नँद-नन्दन जानि लिये मैं।
माखन चोरि कैं खोरिन ह्वै,
चले भाजि कछू भय भानि जिये में।
दूरि हूँ दौरि दुरौ जो चहौ,
तौ दुरौ किन मेरे अँधेरे हिये में ?

(१०)

जमुना समीर तीर भरैं गई नीर बीर,
मीन मन मोद मोंहि दपटि लपेटि जात।
फैले हैं सुकेस आसपास तें सुबेस लखि,
बिरही भुजंग जानि आनि आनि भेंटि जात।
भनै 'गुनसिंधु' राजैं भ्रंगन सरोज भरे,
सहसा समेटि मझधार गरगेटि जात।
जहाँ-जहाँ कंज रहैं दिन कौ प्रकास लिये,
मेरो मुख चंद जानि संपुटो समेटि जात॥

मनोरंजक संस्मरण

तरसोखर की यात्रा

मध्य प्रदेश के भिंड जिले में चम्बल के भरकों (खड्डों) में तरसोखर नामक गाँव बसा हुआ है। इटावे से यह प्रायः तीस मील है। अब तो थोड़ी-बहुत मोटर बसें चलने लगी हैं, किंतु बीस-पचीस वर्ष पहिले सारी यात्रा इक्के से करनी होती थी। इटावे से तरसोखर जाते हुए रास्ते में जमुना, चम्बल और क्वाँरी नाम की तीन नदियाँ पार करनी पड़ती हैं। क्वाँरी ने भिंड के पास ऐसा चक्कर लिया है कि उसे दो बार पार करना पड़ता है। इन नदियों के बीच में पाँच-पाँच मीलों का अंतर है। इन नदियों के दोनों किनारों पर दो-तीन मोल तक गहरे भरके (खड्ड या रैवीन ravines) हैं। एक नदी के भरके समाप्त हुए नहीं कि दूसरी नदी के भरके आरंभ हो जाते हैं। इस लिए सारा रास्ता कुछ वर्षों पहिले तक बड़ा ऊँचा-नीचा और ऊबड़खाबड़ था। यह क्षेत्र बहुत सूखा है और यहाँ वनस्पति बहुत कम है। करील, छेंकुर, बबूल आदि के काँटेदार छोटे-बड़े पेड़ या झाड़ियाँ ही यहाँ दिखलायी पड़ती हैं। यह इतना सूखा प्रदेश है कि कुओं की गहराई सौ फुट से सवा सौ फुट तक होती है। गर्मी के दिनों में गर्मी इतनी अधिक पड़ती है कि तापमान १२० अंश फहरेनाइट तक हो जाता है। यह क्षेत्र बड़ा निर्जन और ऊबड़खाबड़ है। नदियों के भरके लम्बाई में सैकड़ों मील फैले हुए हैं और इनमें बीच बीच में कगारें या टीले आ गये हैं जिनके कारण इनमें ऐसी भूलभुलैयाँ बन गयी हैं कि उनमें पड़ जाने पर निकलना कठिन हो जाता है। इनमें सैकड़ों आदमी छिपे रह सकते हैं और उनका पता सौ गज पर खड़े हुए आदमी को भी नहीं लग सकता। इस क्षेत्र की इन विशेषताओं के कारण सैकड़ों वर्षों से यह छोटे बड़े डाकुओं का क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है। डूँगर-बटरी, मानसिंह, लाखनसिंह, पुतली आदि अनेक डाकुओं ने इस क्षेत्र में शरण लेकर ग्वालियर, धौलपुर आदि राज्यों और ब्रिटिश सरकार को वर्षों परेशान रखा। अब भी यह क्षेत्र डाकुओं की क्रीड़ा-भूमि बना हुआ है।

कोई पचीस वर्ष हुए श्री श्रीविनोद शर्मा को तरसोखर जाना पड़ा। उनके भांजे का विवाह था। जून का महीना था। गर्मी अपने पूर्ण यौवन पर थी। इटावे से तरसोखर के लिए एक इक्का किराये पर लिया और सवेरे आठ बजे ही चल दिये। सूर्य का भीषण उत्ताप, दोपहर की सनसन करती हुई लपट (लू) जो उस वनस्पतिहीन क्षेत्र में गति से निर्बाध चला करती है, सँकरे रास्तों में के छेंकुर, बबूल और करील की काँटेदार शाखाओं रगड़, प्रदेश की निर्जनता और वीरानी आदि ने मिल उस यात्रा को शर्माजी के लिए स्मरणीय बना दिया। कुछ कमी रह गयी थी उसको पूरा करने के लिए ऊँची-नीची चढ़ाई पर पहुँचते-पहुँचते इक्का उलट और शर्माजी के एक हाथ में चोट भी लग गयी। राम करते शर्माजी सूर्यास्त के समय तरसोखर पहुँचे दिन भर की गर्मी और लपटों के कारण उनके शरीर तापमान तो बढ़ ही गया था, मस्तिष्क का तापमान कुछ ऊँचा हो गया था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने इस स्मरणीय यात्रा पर एक गीत लिखा जिसका आरंभि अंश नीचे दिया जाता है। यह सारा क्षेत्र ब्रजभाषी इसलिए यहाँके निवासियों के हित में यह 'भजन' ब्रजभा ही में लिखा गया :

जैसो कठिन भजन है हरि को!
तैसोई[1] कठिन जानिओ साँचो, मारग तरसोखर को!
अब जब तरसोखर ह्वै आये, कौन त्रास मोकों जमपुर को?
वा मग परत एक बैतरिनी, यहाँ नाघिबौ तीन नदिन को!
हरि सुमिरन में बिघन तीन हैं, माया मोह काम नर-तन को
या मग हू में बिघन कुँआरी, जमुना और पाट चम्बिल को!
जमदूतन से टौर[2] ठड़े हैं, भरकन[3] मिलत दंड दचकन[4] को
छेंकुर औ बबूर के काँटे, चलनी करि डारत अंगन को
इक पहिया पाताल सिधार्यौ, दूजौ चाहत नभ नापन को
नभ-पाताल नापि एक-संगहिं, इक्का भयौ रूप वामन को!
है ग्रीसम दुखदायी वैसेहिं, तापै ताप-दाप आतप को
सन-सन करत लपट[5] हूँ भूँजैं जैसे अगिन नरक रौरव को!
जेठ मास तरसोखर जैबो[6],—काम निखालिस भकुआपन को
जा ऋतु करि जबरई[7] बुलावैं,—कौन उपाधि देहुँ मैं उनको!

कविता कुछ लम्बी है, यह उसका आरंभिक अंश है। तरसोखर और उसके आसपास इसका कुछ दिनों तक प्रचार रहा और लोग इसे भैरवी से लेकर विहाग तक गाते थे।

---

[1] तैसोई—वैसा हीं। [2] टौर—टीले [3] भरकन—(भर में) खड्डों। [4] दचकन (दचके)—धक्के। [5] लपट—लू (गर्म हवा)। [6] जैबो—जाना [7] जबरई—जबरदस्ती।

विष्णु भगवान् का वामनावतार

(एक बावाँरूपी चम्पू)

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

भूमिका

की सवारी जा रही थी। दुर्वासा ऋषि ने अपने की प्रसूनमाला उनको दी। उन्होंने दुर्वासा के में वह माला अपने हाथी को पहना दी। इस अवज्ञा त्तान्त जानकर ऋषि ने इन्द्र को शाप दिया कि तुम ष्ट होगे।

मुद्रमथन से प्राप्त हुए अमृत से असुरगण जब से रक्खे गये थे तभी से वे लोग देवताओं से बदला को व्याकुल थे। अवसर पाकर उन्होंने इन्द्रलोक पर की ओर विजय पाई। देवता अत्यन्त दुःखित हुए। दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने बलि से (जो ९९ यज्ञ कर था) सवाँ यज्ञ आरम्भ कराया। तब विष्णु ने देवों ष्ट दूर करने और इन्द्र-पद के अनधिकारी बलि को के लिए 'वामन' रूप धारण किया।

दर्शी शुक्र के बहुत रोकने पर भी बलि ने प्रतिज्ञा-र वामनजी को तीन पग पृथ्वी दी। नापने के समय ऐसे ऊँचे हुए कि दो पग पृथ्वी, आकाश नापकर के बदले बलि का शरीर नाप लिया और उसे पाताल-दिया। इसी विषय पर रविवर्मा ने एक चित्र अंकित है। उसी पर मेरा बावाँरूपी (अत्यन्त लघु) यह चम्पू है।

दई दुर्वासा ने निज सुमन-माला सुरप को;
न धारी सो, डारी अमरपति ऐरावत-गले;
अवज्ञा जानी सो, रिस बस दियो शाप मुनि ने—
तुम्हारो जावेगो विभव सब थोरे दिनन में (१)
सुरापी, संतापी, सुधि करि सुधा की, कुपित ह्वै,
सुरद्रोही, मोही असुर मिलि धाये समर को;
चढ़े उत्साही ह्वै, नृपति बलि को अग्रसर कै;
करी आशा पूरी विजय करि रूरी सुरपुरी (२)
दुखारी ह्वै भागे सुरगन अभागे इत उतै;
विथा चिन्ता भारी सहत बहु दीन्हें दिन बितै;
तबै कीन्हीं दाया हरि सबल-मायाधर कह्यो —
हरेंगो मैं सारी सुरगन तुम्हारी विपति को (३)
उतै सौ संख्या में इक मख कमी शुक्र समुझे;
किनारे रेवा के बालें सँग पधारे विपिन में;
तहाँ ठानी ज्ञानी सुमख मनमानी विधि भली,
करै जासों भारी सुपद-अधिकारी बलि बली (४)

अदेवन की उर आनि अनीति,
    निबाहन को सुर-पालन-रीति,
सुधारन को जनको अधिकार,
    धरचो हरि वामन को अवतार। (५)
बड़े जनको नहिं माँगन जोग,
    फबैं छल-साधन में लघु लोग;
असंग रमापति विष्णु अनूप,
    धरचो एहि कारन वामन-रूप (६)
भले सजि साज, चले मख-भूमि;
    पगै पग लेति धरातल चूमि;
प्रसून घने बरखें सुर गोत;
    दिवाकर तेज निछावर होत (७)
जबै पहुँचे बलि-भूपति-द्वार,
    गये सब मोहि रहे मनवार;
कहचो कोउ चन्द, कह्यो कोउ भान,
    कोऊ समझचो तप मूरतिमान (८)
(द्वारपाल-वचन, बलि-प्रति)
मृगचर्म विराजत है तनपै,
    सिर पै सुठ छत्र सुहावन है।
कर दण्ड कमण्डल सोहैं विशाल,
    कुपीन लसै कटि पावन है।
उपवीत पुनीतहु भावत है,
    अति तेज सों ताप-नसावन है।
द्विज आयो तो आपको जांचन को,
    पर नाप में अँगुल बावन है (९)
(बलि-वामन-समागम, भूमिदान की प्रतिज्ञा, शुक्र की विकलता)
शुक्र-वचन बलि-प्रति।
धर्म, जस, अर्थ, काम, जन इन पाँच ही के,
    हेतु दान होत, यह नीति उर आनिये;
नाहीं सो उचित दान जासों जाय सरबस,
    करके बिचार तासों बात मेरी मानिये।
औगुन भरो है यह बटु सो चेताये देहुँ,
    याके तनही सों मन याको पहचानिये.
देहै तोहि टोटो यह रखिहै लँगोटो नाहिं,
    खोटो है बड़ोई याहि छोटो मत जानिये (१०)

याही ने कपट करि मोहिनी सरूपधरि,
देवन को दीन्हों सुधा, कीन्हीं बड़ी हानिये;
याही ने बराह बलि मारो तो कनक-नैंन,
नाहर ह्वै हन्यो तेरे पुरखै सुजानिये।
याको हरि जानौ, सदा देवकाज साधु याने,
कौतुक महान याके कहँ लौ बखानिये;
टोटो यह दैहै तोहिं, रखिहै लँगोटो नाहिँ,
खोटो है बड़ोई याहि छोटो मत जानिये (११)
दीनता के बैन, पर नैन हैं कुटिलता के,
सैन झूठी साधुता के ऐन पहचानिये;
मन्द मन्द हाँसी है सुधा सी कहिबे को, भूप,
बातन की घातन में बिखही प्रमानिये।
करत उतावली है बावली सभा को करि,
भूलि कै भलाई कत भोलो याहि मानिये;
टोटो यह दैहै तोहिँ, राखिहै लँगोटो नाहिँ,
खोटो है बड़ोई याहि छोटो मत जानिये (१२)

(सत्य-प्रतिज्ञ राजा ने शुक्र की एक न मानी, उसके उत्तर की बानगी लीजिये)

सुख के अभाव को न मानि हौं कछूक दुख,
दुख के प्रभाव को न रंचकहू डरिहौं,
धन अनुरागिहौं न, त्यागिहौं न दानी-धर्म,
पन्थ में अनीति के न भूलि पाँव धरिहौं,
राज अरु संपति की चरचा चलाई कहा,
वचन के आगे प्रान ओर ना निहरिहौं,
याचक की याचना पै हाँ करी सो हाँ करी मैं,
तीनो काल माँहिं अब "नाहीं" नाहिँ करिहौं (१३)

(शुक्र की कुछ न चली। पृथ्वी नापने का समय आया तो वामनजी ऐसे बढ़े कि बलि को शुक्र यों ताना देने लगे)

बावन अँगुल को जो हुतो,
सोइ बाढ़ि अकाश लग्यो बटु दम्भा;
मानौ तमाल को वृक्ष विशाल,
कियो सुर लोक प्रवेश अरम्भा।
होत है ऊँचौ छिनै छिन सो,
सुधि आवत होलिका धूम को खम्भा,
बात गुरुन की मानी नहीं,
अब देखु रे भूपति देखु अचम्भा (१४)।

(दानवीर बलि ने तीसरे पग में अपनी देह नपवा दी। भगवान ने उसे पातालवास की आज्ञा दी। इसी पर लोग कहते हैं—)

"मन चेती नहिँ होत है, प्रभु चेती सब काल।
बलि चाह्यो आकाश को, हरि पठयो पाताल॥" (१५)

(बलि की धीरता से संतुष्ट होकर भगवान ने वर माँगने की आज्ञा की। बलि ने यह वर माँग लिया कि आप मुझे नित्यप्रति मेरे द्वार पर दर्शन दिया कीजिये। धन्य बलि!)

बावन ह्वै हरि माँगी धरा,
अरु नापन में तनु भारी कियो है;
द्वै पग में नभ भूमि लई,
तिसरे तेहि नाभि पताल दियो है।
द्वार के दर्शन की ठहराय,
भरयो नृप पूरन मोद हियो है;
नाहीं छल्यो बलि को हरि ने,
हरि को बलिने छलि आज लियो है॥ (१६)

कहो—"भावी इन्द्र की जय।"

पंजाब में हिन्दी के प्रचार की जरूरत

लाला हरदयाल

पंजाब में हिन्दी के प्रचार की बड़ी जरूरत है। भारतवर्ष का यह भाग प्राचीन समय में वेद विद्या का अधिष्ठान था। धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र इसी भूमि में है। मंत्रद्रष्टा ऋषि इसी की नदियों के तट पर समाधि लगाये ध्यान में मग्न रहते थे। यहीं हिन्दू जाति ने पहले-पहल भारत को देखा और उससे सम्बन्ध बाँधा। पंजाब भारतवर्ष की ढाल है जिसने यवनों की अनेक चोटों से इस देश की रक्षा की। पंजाब ही में बली होकर हिन्दुओं ने सारे मुल्क पर अपना अधिकार जमाया। यह वही प्रान्त है जहाँ के शूर वीरों ने पुराने जमाने में और सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में हिन्दू जाति के मलिनमुख को विजयामृत के सेचन से विमल करके उसपर राज्याभिषेक का टीका लगाया।

हाय! इसी पंजाब की दशा इस समय शोचनी हो रही है। विदेशियों के सम्पर्क से बहुत बातों में इस हिन्दुत्व शिथिल हो गया है। बंगाल और महाराष्ट्र की अपे पंजाब का हिन्दुत्व ऐसा ही है जैसे सच्ची लैस के आ झूठी लैस, या खिले हुए कमल के सामने मुरझाई हु पंखड़ियों का ढेर। जिधर देखो हिन्दू जाति की हीन का सबूत मिलता है। सब तरफ घर में, बाजार में, सा में, बोलचाल में, रूपरंग में, आचार विचार में, हम हि जाति की असलियत को मिटा हुआ देखते हैं। हम विदेशी रोगन चढ़ा हुआ है। हम अपने आप को गये हैं। महात्मा मनु के अनुसार जैसे काठ का हाथी चमड़े का मृग केवल नाम ही के होते हैं उसी तरह

हिन्दू हैं। वे भारतवर्ष में रहते हुए भी विदेशी कहलाने हैं। मैं इस अवसर पर और बातों का जिक्र न ता। मैं केवल भाषा के विषय में यह कहना चाहता कि अब समय आ गया है कि हम श्रीगणेश की प्रशंसा के अक्षरों में न करें और अपनी पिछली गिरी हुई के कलंक को सदैव तिलक समझकर अपने माथे सी से न लगायें। जो मलिनता हमारे शरीरों पर काल में आ गई थी उसको हिन्दुस्त्व से पवित्र सरोवर कर धो डालें। जैसे शराबी नशे में तरह-तरह की जनक बातें करता है, पर नशा उतर जाने पर उनसे ता है, उसी तरह कमजोरी और आत्मविस्मृति के में जो अनुचित बातें हमने की थीं उन्हें अब लज्जा चाहिए। क्या जरूरत है कि दास आजाद होकर न में गुलामी का छल्ला पहने रहे या पहलवान, पर चित हो जाने पर, कभी पीठ की मिट्टी साफ न हिन्दू जाति को धिक् है, जो दैवदुर्विपाक से प्राप्त ज्जाजनक बातों को मौका पाकर भी न छोड़े।

जाब अपनी भाषा को बहुत समय से भूल गया है। के ज्ञान का दीपक उसे किसी ने नहीं दिखाया। तियों की आखों के जादू ने इसे अन्धा बना दिया। होने से इस पर आत्मविस्मृति का ऐसा नशा चढ़ा बहक सा गया, अपने आपको कुछ का कुछ बतलाने बहुरूपियों का सा खेल खेलने लगा। जैसे मालिक हुए कपड़े पहनकर नौकर मटकते फिरते हैं, उसी मुसलमान कौम के फटे पुराने साहित्य के चीथड़े चुन हिन्दुओं ने भी अपनी भाषा को अलंकृत (?) करना किया। यह नहीं समझा कि दुनिया हमें क्या । तुलसी और सूर के काव्य न पढ़ कर सौदा और की तुच्छ गजलों पर ऐसे गिरे जैसे बच्चा माँ का पथ्य छोड़कर मिट्टी खाने दौड़ता है। फारसी साहित्य नकल उतारने लगे और अपनी पुरानी करी कराई भूल गये। उर्दू के गद्य-पद्य में फारसी शाइरों से माँगकर विदेशी अलंकार भरने लगे। नाटक का नाम बाकी न रहा। क़सीदों, मसनवियों, गजलों ने दोहों ाइयों की जगह ली। हिन्दुओं की सारी लियाकत, झूठे कों की तरह, उर्दू के रद्दी सिक्के हिन्द की टकसाल निकालने में चली गई और कुछ फल न मिला। झूठा का जो बनाया, साहित्य के परखनेवाले साहूकारों ने पर फेंक दिया। विदेशी चीजें कूट-कूटकर अपने साहित्य भरीं। नतीजा यह हुआ कि अपनी रीति तो याद न , मुफ्त में नकलची और खुशामदी कहाये। न काआनी बन सके न तुलसी। न फारसी ही लिखी न हिन्दी। मिश्रित भाषा, जिसमें दोनों का मेल था, निकाली। र जैसे मनुष्यों में दोगले से सब नफरत करते हैं इसी इस नये भूत से जिसका धड़ हिन्दी का, और कपड़े आवाज फारसी के थे, सब समझदार आदमियों ने न की। नमक और बूरा मिलाने से सिर्फ उलटी ही सकती है। मछली पानी के बाहर मर जाती है। अंगूर सर्दी में नहीं उगता। हर कौम अपने मुआफिक साहित्य की आबोहवा में ही तरक्की कर सकती है। जब साहित्य हमारे मुल्क और कौम के अनुरूप न रहा तब वह हमारा न रहा। वह हमारी जाति का अंश नहीं। वह हमारे आदर का पात्र नहीं। वह हमारी दुर्गति की निशानी है और हमारी जातीय उन्नति के रोकने के लिए बलवान विघ्न है। वह गृह-सर्प है कि दगा करता है। वह वेश्या है जो झूठे आभूषण पहन कर हमें अपनी कुल-स्त्रियों से अलग कराती है। विदेशी रस से भरे हुए साहित्य को जो हिन्दू अपना समझते हैं वे हलाहल को अमृत मानते हैं। इससे बढ़कर हमारी अधोगति का और क्या चिह्न हो सकता है कि आज हिन्दी भाषा, जब हिन्दुओं के आगे आकर अपनी पैत्रिक पदवी माँगती है, तब हिन्दू हिन्दी-शकुन्तला के दुष्यन्त बनकर कहते हैं, हम तुझे नहीं जानते, हमने कभी तुझे नहीं देखा।

पंजाब में रोज की बोलचाल और लिखने-पढ़ने में फारसी मिश्रित उर्दू ही का दौर दौरा है। वहाँ हिन्दू लड़के फारसी पढ़ते हैं। मदरसे में मौलवी साहब की जमाअत ऐसी भरी होती है जैसे थियेटर की रंगभूमि। पर बेचारे संस्कृत के अध्यापक का कमरा खंड़हर की तरह सूना रहता है। यदि कोई भूले भटके वहाँ जाते हैं तो सिर्फ दो चार। शोक है कि जिन लड़कों की कौम में वाल्मीकि और तुलसी हुए वे गुलिस्तां बोस्तां के पढ़ने में इतना परिश्रम करें, और हितोपदेश का नाम भी न सुनें? किस कैदी को अपनी बेड़ियों से प्रेम हो सकता है? किस मनस्वी को अपनी मातृभाषा से घृणा हो सकती है, पर भारतवर्ष में सब बातें उलटी हैं। पंजाब में हिन्दुओं के नाम तक अनोखे होते हैं। "बलंद इकबाल" हिन्दू कुल में उत्पन्न होते हैं। और "तेग बहादुर" तो हमारे माननीय गुरूजी ही का नाम था। पत्र में "जनाब किबलेगाह" से आरम्भ किया जाता है। गोया यमुना के तट पर अरब की गरम आँधी का झोंका आ गया। विवाह के बुलावे कई जातों में फारसी में भेजे जाते हैं—गोया निकाह पढ़वाना है। कई हिन्दू सज्जनों के यहाँ मुसलमान उस्ताद फारसी पढ़ाने के लिए रखे जाते हैं और पण्डितजी महाराज? उनको सिर्फ गुरू-पूजा ही पर कुछ दक्षिणा मिल जाती है। जवान लड़के गजल लिखते हैं और कमल को भूल कर गुल पर मरते हैं। भीम की जगह रुस्तम की प्रशंसा होती है और काबा मसीहा वगैरह विदेशी शब्दों से गद्य पद्य अलंकृत होता है। कहावतें भी कितनी ही ऐसी हैं कि सुनकर हँसी आती है और रोना भी। "ढाई ईंट की अलग मसजिद बनाना," "न खुदा ही मिला न विसाले सनम" वगैरा फिकरे सब की जबान पर हैं। यदि रामचन्द्र आज फिर दिल्ली में आवें तो हिन्दुओं को न पहचान सकें। वे आश्चर्य करें कि मैं भारतवर्ष में हूँ या कहीं और। उर्दू का हर घर में रिवाज है। लड़कियाँ भी हिन्दी पढ़ कर फिर उर्दू सीखना बहुत बड़ा काम समझती हैं। जैसे मीठी चीज खाकर खट्टी को जी चाहता है वैसे ही इनका हाल

है। घर के हिसाब तक में घी, रौगन जर्द लिखा जाता है और चिट्ठियों के ऊपर खत में 'बखिदमत—बिरसद'' आदि शब्द सारी दुनिया में हमारे अज्ञान की डौंडी पीटते हैं। राम राम और नमस्कार की जगह ''बन्दगी'' सुन सुनकर कान बन्द करने को जी चाहता है।

स्त्रियों ने अपना जाति-धर्म हाथ से जाने नहीं दिया है। स्त्रियाँ सदा अपनी जाति के प्राणों की रक्षा करती हैं क्यों न हो प्राण देती भी तो वही है। हिंदू स्त्रियाँ हिन्दी पढ़ना अपना मुख्योद्देश्य समझती हैं। उनके लिए अच्छी अच्छी पुस्तकें हिन्दी में लिखी जानी चाहिए जिसमें उनको उर्दू पढ़ने की जरूरत न रहे। भाइयो इस त्रुटि को पूरा करो। स्त्रियों ही से हिन्दी के प्रेम की वृद्धि करो। कई समाजें पंजाब में ऐसी हैं जो हिन्दी प्रचार का कुछ काम कर रही हैं। आर्य-समाज इनमें मुख्य है। देव-समाज के अनुयायी भी हिन्दी में ही व्याख्यान देते हैं। राधास्वामी वाले भी अपने मत के ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखते हैं। इन समाजों और संप्रदायों से हिन्दी की कुछ कुछ उन्नति हो रही है। आर्य-समाज ने फारसी अक्षरों में बहुत से हिन्दी के शब्दों को स्थान दिया। इससे जो हिन्दू हिन्दी नहीं जानते थे उन तक हिन्दुत्व की कुछ सुगन्ध पहुँच सकती है। इस हिन्दीमिश्रित उर्दू को गालिब और जौक के कलाम के चाहने वाले निरादर की निगाह से देखते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है।

आजकल युवक विद्यार्थी दूर दूर कालिजों में पढ़ने जाते हैं। परन्तु अपनी स्त्री को घर पर छोड़ जाते हैं। उन्हें पत्र लिखना पड़ता है—हमारी स्त्रियाँ प्रायः हिन्दी ही जानती हैं। उन्होंने तो नौकरी के लिए अपना जाति धर्म बेचा नहीं। वे अब तक अपनी जाति भाषा को रत्न की तरह छिपाये अन्तःपुर में बैठी हैं कि कब पुरुषों की बुद्धि ठिकाने आवे और कब उनको वह अनमोल मोती फिर प्राप्त हो। क्यों न हो वैसे भी तो घर की सम्पत्ति उत्तम सोने चाँदी के रूप में स्त्रियों ही के शरीर पर रहती है। इस कारण नवयुवक बाबू साहबों को हिन्दी पढ़नी पड़ती है, जो काम वे गुरु के कहने से न करते वह करवा लेता है। सच है सब तो त्रिलोचन नहीं हैं जो धनुष वाले को भस्म कर दे। अतएव जितने विद्यार्थी देश में जायँगे उतना ही हिन्दी का प्रचार अधिक होगा।

इस प्रकार हिन्दी धीरे-धीरे फैल रही है। पर जनवासे की चाल से विशेष लाभ न होगा। जब कचहरियों और दफ्तरों में उर्दू अधिकार के सिंहासन बैठी है और हिन्दू लोग संस्कृत पढ़ना अपना धर्म समझते, तब तक हिन्दी की यथार्थ उन्नति न होगी। और बात भी विचार योग्य है। बहुत से आदमी तो हिन्दी के प्रेमी बनते हैं, पर कोई किताब या लेख के समय उससे मुँह छिपाते हैं। यह दोष हिन्दी के बड़े भक्तों तक में पाया जाता है। जब हिन्दी के पक्षपाती ऐसा करेंगे तब औरों से क्या आशा की जाय? बातों से कहीं काम चलता है। पंजाब में है उर्दू का प्रचार इससे उर्दू ही की पुस्तकों के गाहक अधिक हैं। जब साहित्य के मैदान में जाते हैं तब देश प्रेम तो हिन्दी ओर घसीटता है और द्रव्य-प्रेम उर्दू की ओर। इस में महामाया लक्ष्मी ही की जीत होती है। फिर यह विचार होता है कि अपने सिद्धांत उर्दू में अधिक लोगों पास पहुंचेंगे। इससे वे अपनी विचार-सुगन्धि को के पात्र में रखते हैं। क्योंकि सोने का पात्र लोगों को नहीं। इससे बेचारी हिन्दी के गले में छुरी फिरती है लाला लाजपतराय जी ने उर्दू में कई महापुरुषों के चरित्र लिखे हैं। और आर्य समाज कालिज के एक ने आनन्द मठ का बंगाली से उर्दू में अनुवाद किया है। इसी तरह हमारे हाथ और कलम उर्दू की सेवा में रहे तो पंजाब में हिन्दी का प्रचार होना दुःसाध्य हमको दूरदर्शी होना चाहिए। और हर प्रयत्न से विघ्न बाधाओं का उल्लंघन करके हिन्दी लिखना सीखना चाहिए। हिन्दी बोलना चाहिए और हिन्दी ही पुस्तक रचना करना चाहिए। ऐसा न करना अपनी को दुर्बल करना है; अपने हाथ से अपनी जड़ें खोदना अपने हिन्दुत्व पर धब्बा लगाना है?

प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

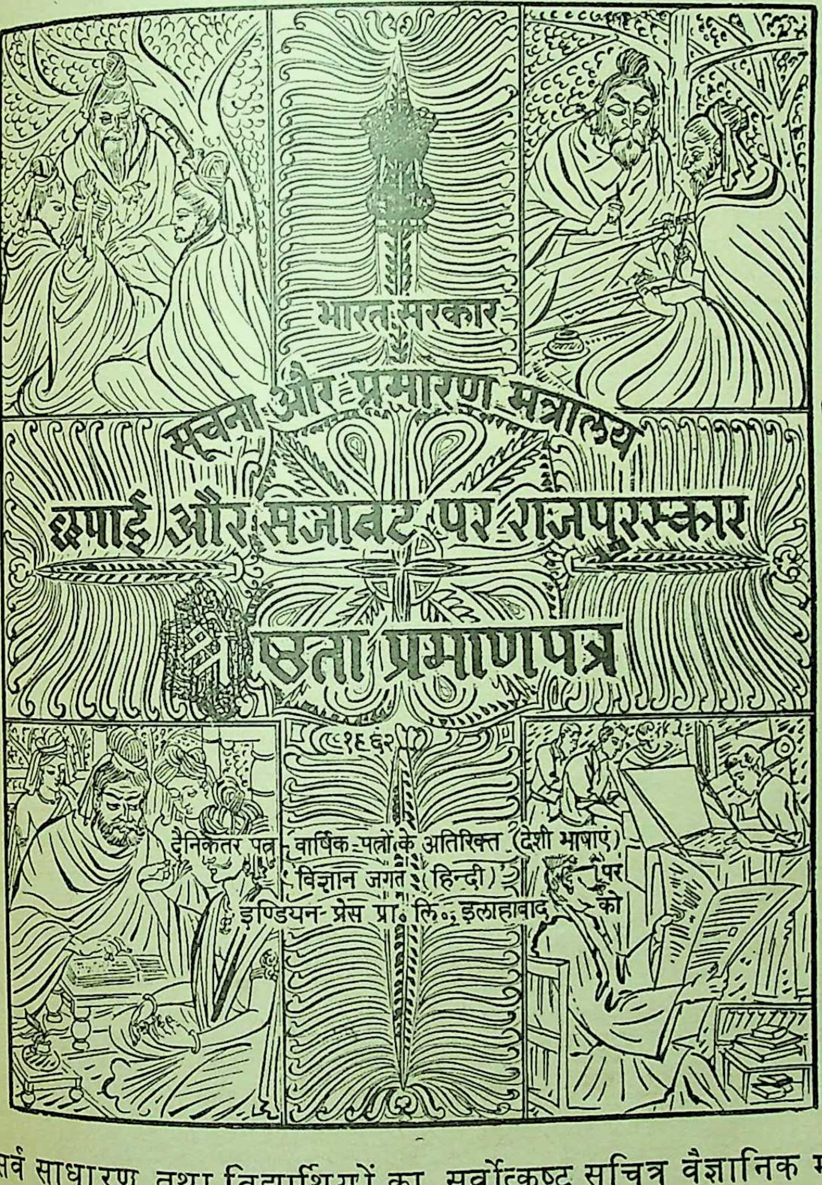

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

ष्ठता प्रमाणपत्र

१९६२

दैनिकेतर पत्र – वार्षिक पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)

विज्ञान जगत (हिन्दी) पर

इण्डियन प्रेस प्रा॰ लि॰, इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचिपूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। **मूल्य दो रुपये** मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

देवेन्द्रदत्त तिवारी

वि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान वृद्धि के युग में भी जब तक का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से लित होता रहेगा, जब तक उसे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल रहेंगे तब तक समाज में कविता दर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

वि ने अपनी इस नवीन काव्य- में मानव की कोमलतम तियों, मधुतम स्पन्दनों तथा र्शी भावों की अभिव्यक्ति मय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ हृदयग्राही भाषा में की है। इन ताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत रता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज में उठती रहती है। कवि ने अन्तस मुद्र का मंथन कर कविताओं के में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों म्मुख प्रस्तुत किया है। कवि दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर न प्रस्तुत करने के लिए बधाई का है। मूल्य २·५० नये पैसे।

रजनीगंधा
देवेन्द्रदत्त तिवारी

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

जासूसी गल्पगुच्छ
निशीथकुमार राय
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं। पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम **में** लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है; नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००।

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालसटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

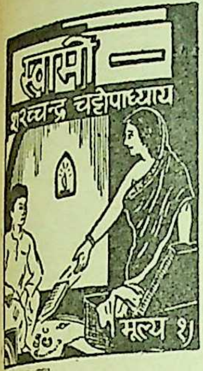
स्वामी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १)

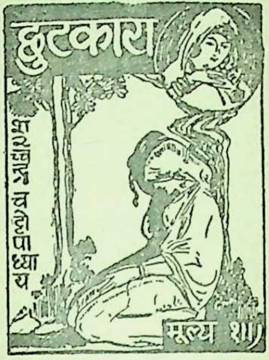
छुटकारा
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १।।)

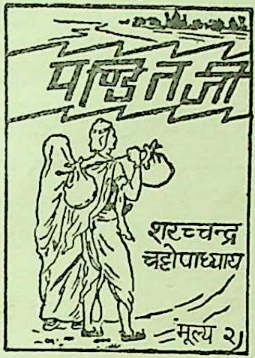
पण्डित जी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

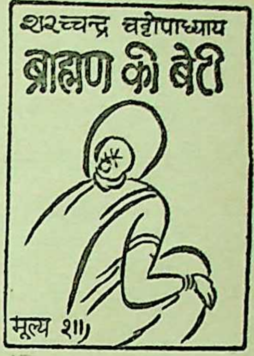
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
ब्राह्मण की बेटी
मूल्य १।।)

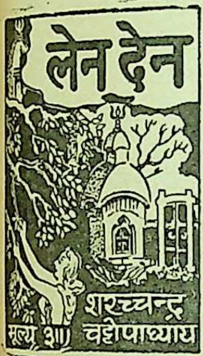
लेन देन
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ३।।)

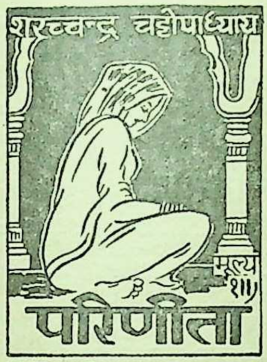
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १।।)
परिणीता

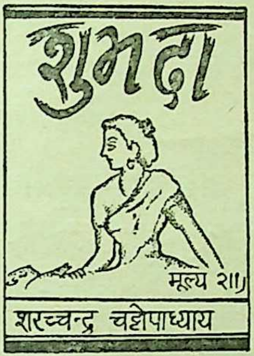
शुभदा
मूल्य २।।)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

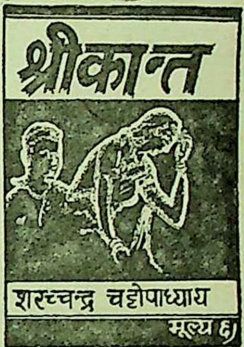
श्रीकान्त
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ६)

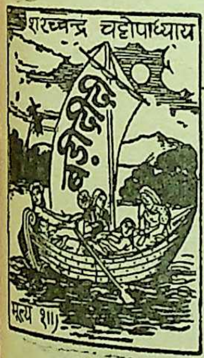
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १।।)

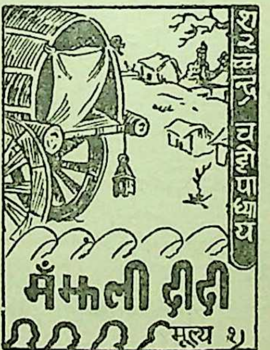
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मँझली दीदी
मूल्य १)

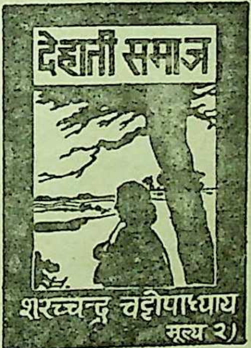
देहाती समाज
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

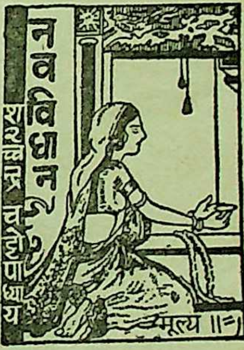
नव विधान
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ।।=)

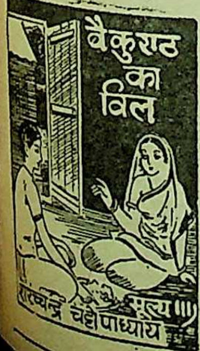
बैकुण्ठ का विल
मूल्य १।।)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

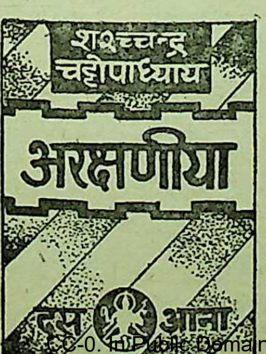
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
अरक्षणीया
दस आना

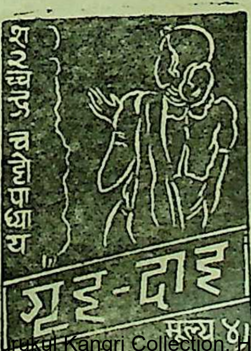
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
गृह-दाह
मूल्य ४)

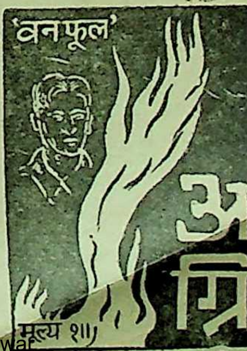
'वनफूल'
अग्नि
मूल्य १।।)

मिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह---प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

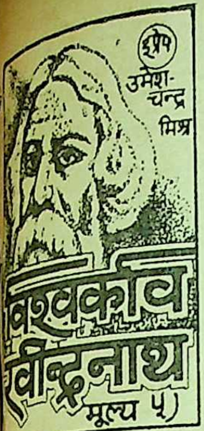
इंप्रेप
उमेश-चन्द्र मिश्र
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ
मूल्य ५)

योगा योग
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य ४)

मेरा बचपन
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य २)

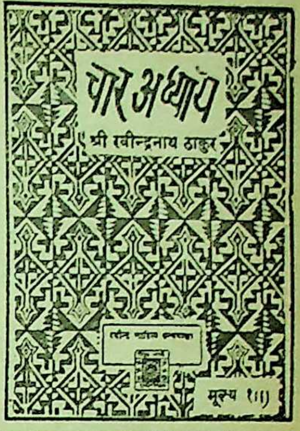
चार अध्याय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १॥)

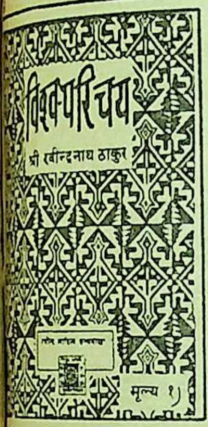
विश्व-परिचय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १)

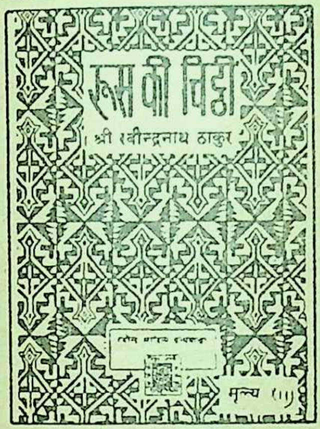
रूस की चिट्ठी
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १॥)

मास्टर साहब
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १॥)

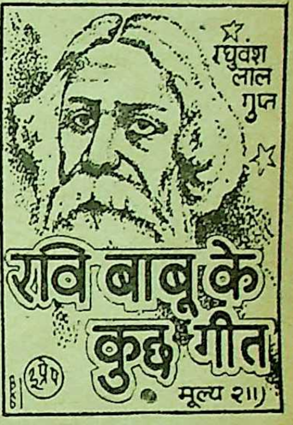
रघुवंश लाल गुप्त
रवि बाबू के कुछ गीत
इंप्रेप
मूल्य २॥)

विषवृक्ष
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

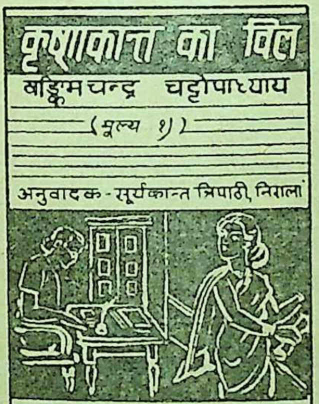
कृष्णकान्त का विल
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

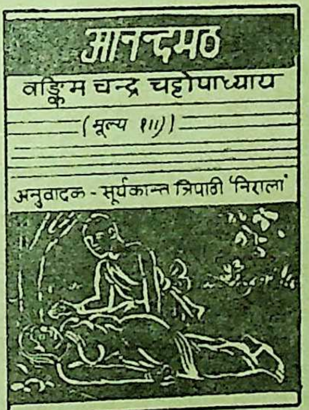
आनन्दमठ
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १॥)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कपाल-कुण्डला
वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
इंप्रेप
मूल्य १॥)

प्रभात मुखोपाध्याय
मूल्य ४॥)

इंप्रेप
महाराष्ट्र-जीवन प्रभात

माधवी-कंकण
रमेशचन्द्र दत्त
इंप्रेप

राजपूत-जीवन-सन्ध्या
रमेशचन्द्र दत्त
इंप्रेप

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आंखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ वेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

Yearly Subscription: Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

SARASWATI–Reg. No.

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश

29 JUL 1983
1·8/9

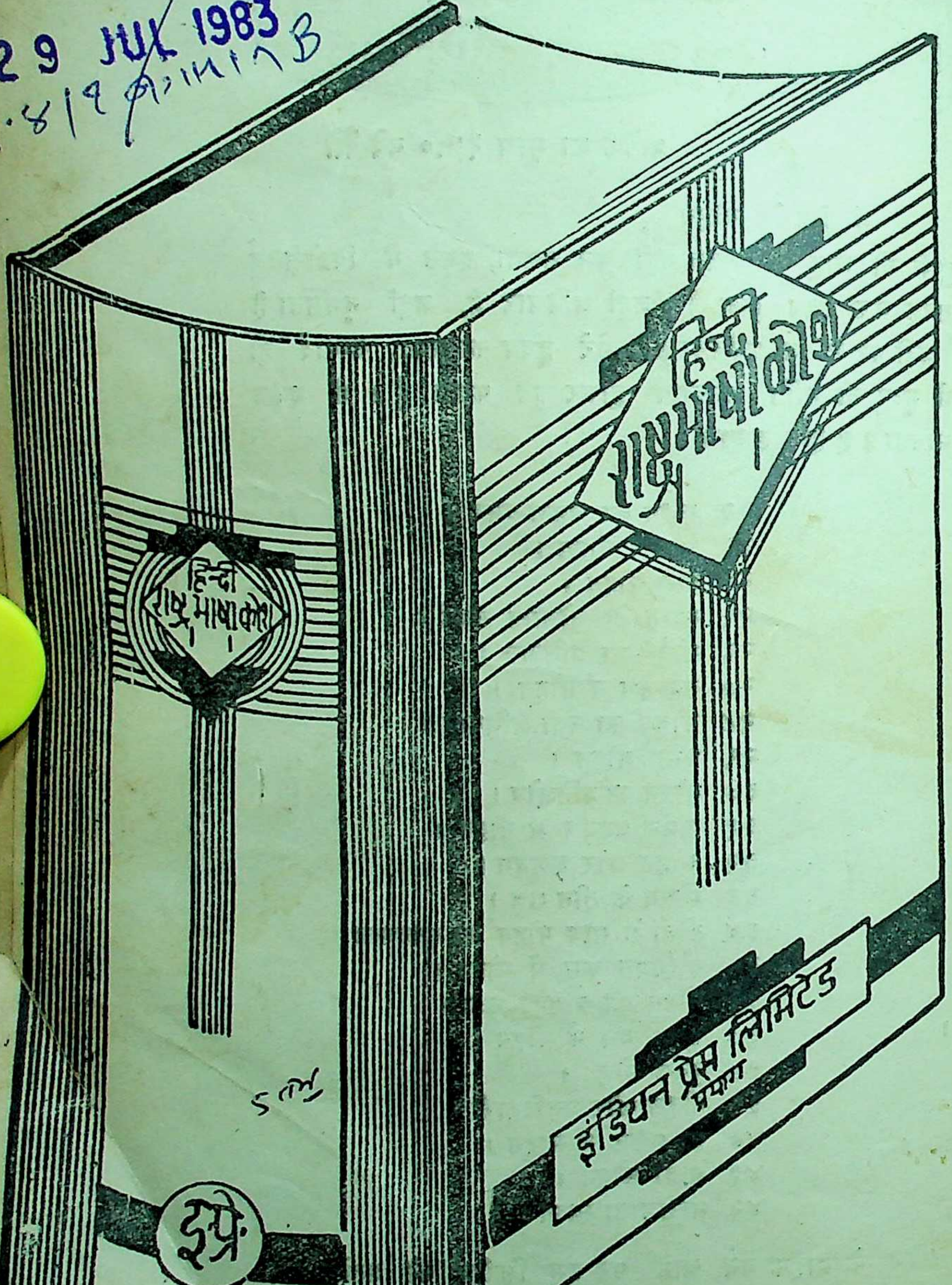
हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश
हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश
हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग
इं.प्रे.

भारी कमी की पू

- प्राचीन साहित्य
- नवीन साहित्य
- गद्य-पद्य
- कहावतें-मुहाविरे
- संविधान-शब्दावली

सभी एक कोश मे

> भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजे
> नई दिल्ली—'हिन्दी राष्ट्रभा
> को तैयार कर आपने राष्ट्र
> जो अमूल्य सेवा की है, इ
> धन्यवाद स्वीकार कीजिए

पृष्ठ १५८४

शब्द-संख्या

लगभग ५०,०००

छात्रों और विद्वानों

विद्यालयों और कार्या

सभी के लिए समान

से उपयोगी !!!

मूल्य चौदह रुपए

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

रस्वती

१९६२

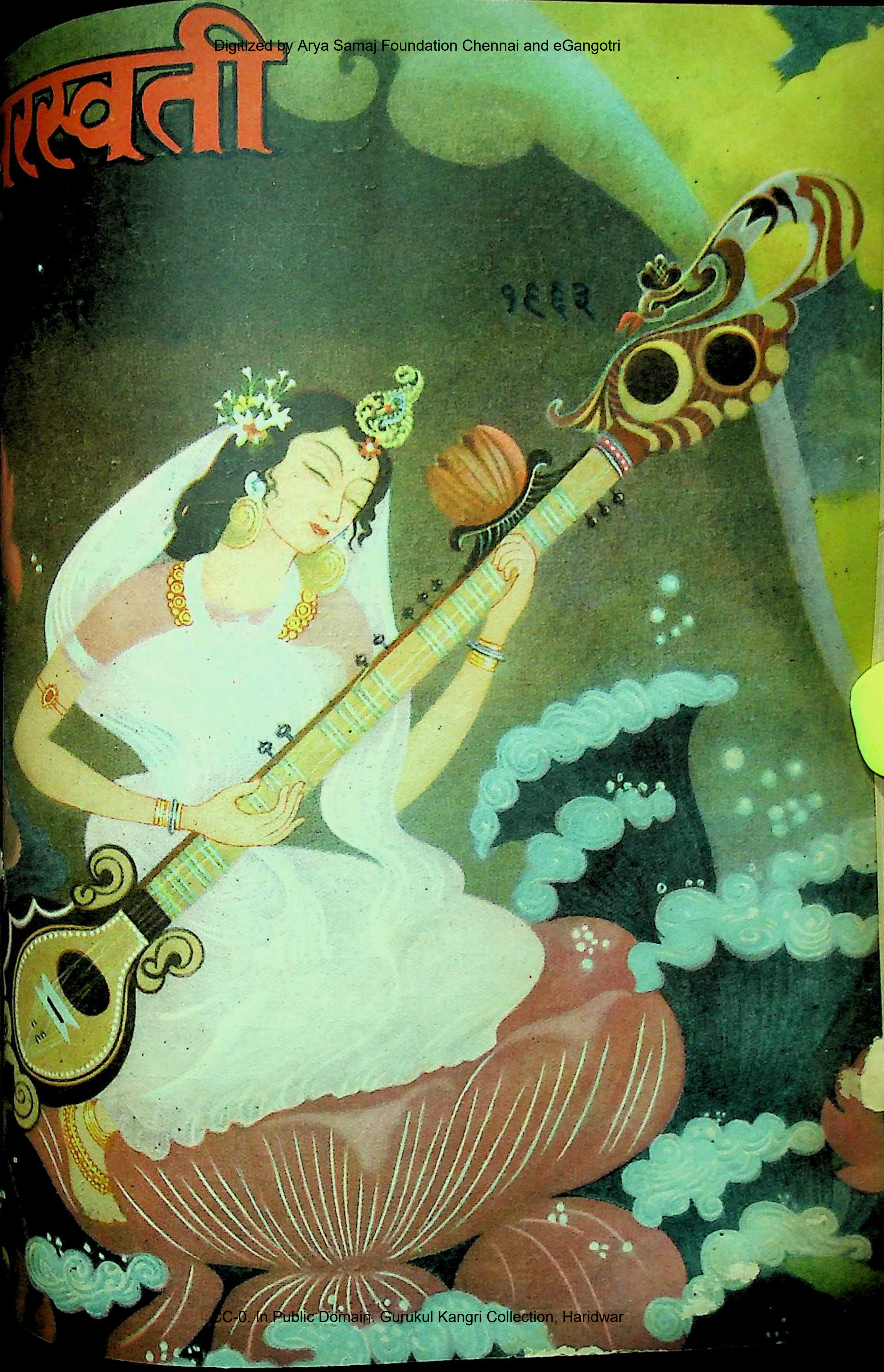

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० २६ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१'४९ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १'१५ नये पैसे अतिरिक्त]

सरस्वती की षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में आयोजित अभूतपूर्व उत्सव का आंखोंदेखा वर्णन सरस्वती की **हीरक जयन्ती के विशेषांक के परिशिष्टांक** में दिया गया है।

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और मान-पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथिली-शरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इंडियन प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबंध में संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय सेठ गोविन्ददास श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य दो रुपये।

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन में बधाई दूं, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आंकना तो नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास की श्रेणी देखने को मिलती है—राजा रविवर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि— ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिए।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

एन्यूलर वाटर बाथ

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास,
नई देहली

अर्द्धशताब्दी से जनता की सेवा में सतत् संलग्न एवं आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित प्रदेश की प्रतिष्ठित मिल होने का गौरव प्राप्त

दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लिमिटेड इन्दौर (म० प्र०)

टेलीफोन : ४१६४, ४१६५, ७००७, ६०६३ टेलीग्राम : 'मालवा मिल्स', 'क्रीसैन्ट'

विशिष्ट उत्पादन

शर्टिंग, धोती, काली जीन, खाकी जीन, कोटिंग पट्टा, चौकड़ी, हरक, लांग क्लाथ, साड़ी मझरी, मलमल, चोल, ब्लांकेट, घुस्सा आदि

मालवा मिल इन्दौर के वस्त्र सुनिश्चित ही सुन्दर, सस्ते, टिकाऊ और विश्वत होते हैं

सिटी शाप—११५, एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर (म० प्र०)
रिटेल शाप—(१) मालवा मील कर्मचारी परस्पर सहकारी संस्था मर्यादित, इन्दौर,
(२) हीरालाल बबलीशाह, बुरहानपुर,
(३) दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लि०, नरनारायण मन्दिर के सामने, कालबादेवी, बम्बई।

सेलिंग एजेन्ट्स

१—मेसर्स मध्यभारत टेक्सटाइल एजेन्ट्स (ग्रे क्लाथ)
२—मेसर्स भारत ट्रेडर्स (प्रोसेस्ड क्लाथ)
३—मेसर्स पूरणमल सत्यनारायण (ब्लेक एन्ड रग्ज)

एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इस रामायण का पाठ पु
की पोथी से शोधा गया है। सत
की भूमिका सहित बड़ी साँची के
से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल
का मूल्य केवल १२) बारह

रामचरितमानस
(मूल)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

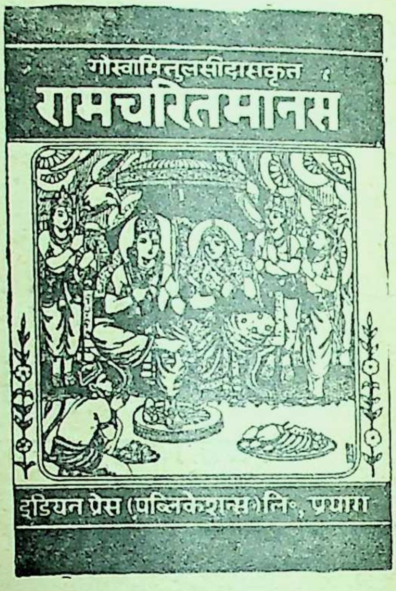
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

सचित्र
रामचरितमान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण

अयोध्या काण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न० पै० प्रति भाग है।

गोस्वामी तुलसीदास कृत
कुंडलिया रामा
सत्यनारायण

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्य
पाण्डय हैं। कुंडलिया छंदों में
गोस्वामी तुलसीदास-कृत
सुन्दर टीका सहित। मूल्य

श्री केदारनाथ गुप्त ने गोस्वामी तुलसीदास के मानस और विनयपत्रिका के अमूल्य रत्नों को ढूंढ़कर किया है। मूल्य १·५०

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

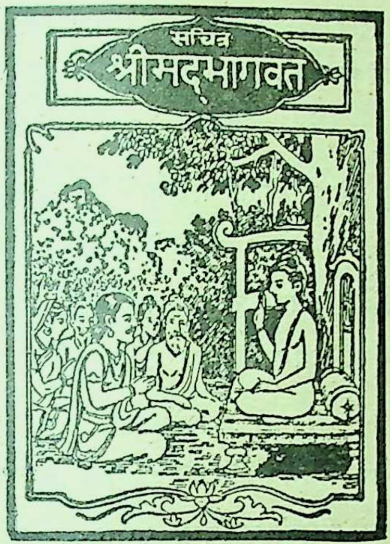

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य

तुलसीदास की इस अमर विनय पदों का मर्म समझाने भट्ट की टीका बड़ी है। बड़े आकार की का मूल्य ४) मात्र।

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)

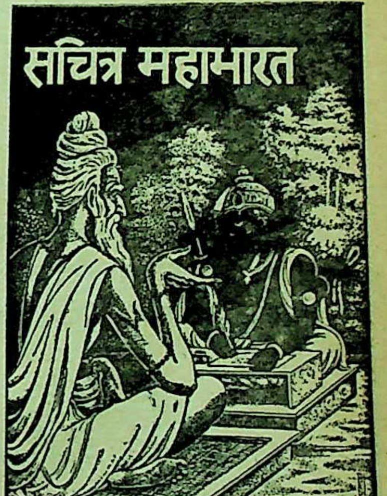

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद, तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए श्री जे० सेन, मेम्बर, इनकमटैक्स अपिलेंट ट्रबुनल क्या कहते हैं :—

मैं ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को गत चार वर्षों से जानता हूँ। निस्सन्देह यह विश्वसनीय ज्योतिषी और हस्तरेखा विशारद हैं। इनकी भविष्यवाणी गत २ वर्षों से अक्षरसः सत्य घटित होती आ रही है। ज्योतिषी जी पूजा करके यंत्र बनाते हैं जिसका प्रभाव मेरे ऊपर आश्चर्यजनक और प्रभावोत्पादक रहा है और मुझे उनके पूजा और यंत्र से आश्चर्यचकित लाभ हुआ है साथ ही आश्चर्यचकित प्रभाव भी कभी-कभी हुआ है।

प्रो० पी० एन० सिंह जी सैद्धांतिक पुरुष हैं साथ ही धनलोलुपता से परे हैं। मैंने यह देखा कि ज्योतिषी जी के मस्तिष्क में अपने ग्राहकों की कुशलता धन अथवा धन प्राप्ति की इच्छा से कहीं विशेष महत्त्व रखती है जिसके परिणाम-स्वरूप वे केवल ज्योतिषी ही नहीं अपितु अपने ग्राहकों के मित्र, सलाहकार एवं सच्चे पथप्रदर्शक के रूप में भी हैं।

इलाहाबाद ७–७–६२ जे० सेन।

एक और कड़ी :: मिर्ज़ापुर का चोपन पुल

यह अपने प्रकार का एशिया का सबसे बड़ा और पहला पुल है।

मिर्जापुर के पिछड़े हुए दक्षिणी क्षेत्र को उत्तर प्रदेश का औद्योगिक भन्डार बनाने का श्रेय इसी पुल को है।

यह पुल ३,३०० फुट लम्बा है। इसके निर्माण में ४७ लाख रु० व्यय हुए हैं। इसके निर्माण हेतु ५०० मजदूरों व इंजीनियरों ने २ वर्ष तक लगातार काम किया है।

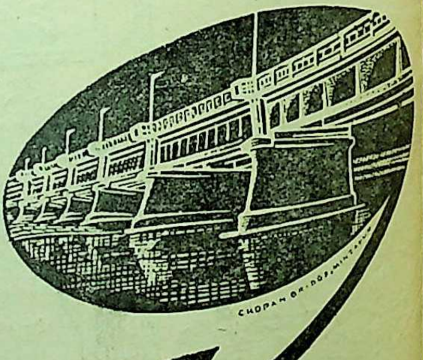

NATIONAL SAVINGS

योजना की सफ़लता के लिए धन और साधन जुटाइए। राष्ट्रीय बचत में अपना धन लगाइए।

छोटी से छोटी रकम का स्वागत है!

उत्पादन बढ़ाइए और बचाइए • बचत का धन निर्माण में लगाइए!

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

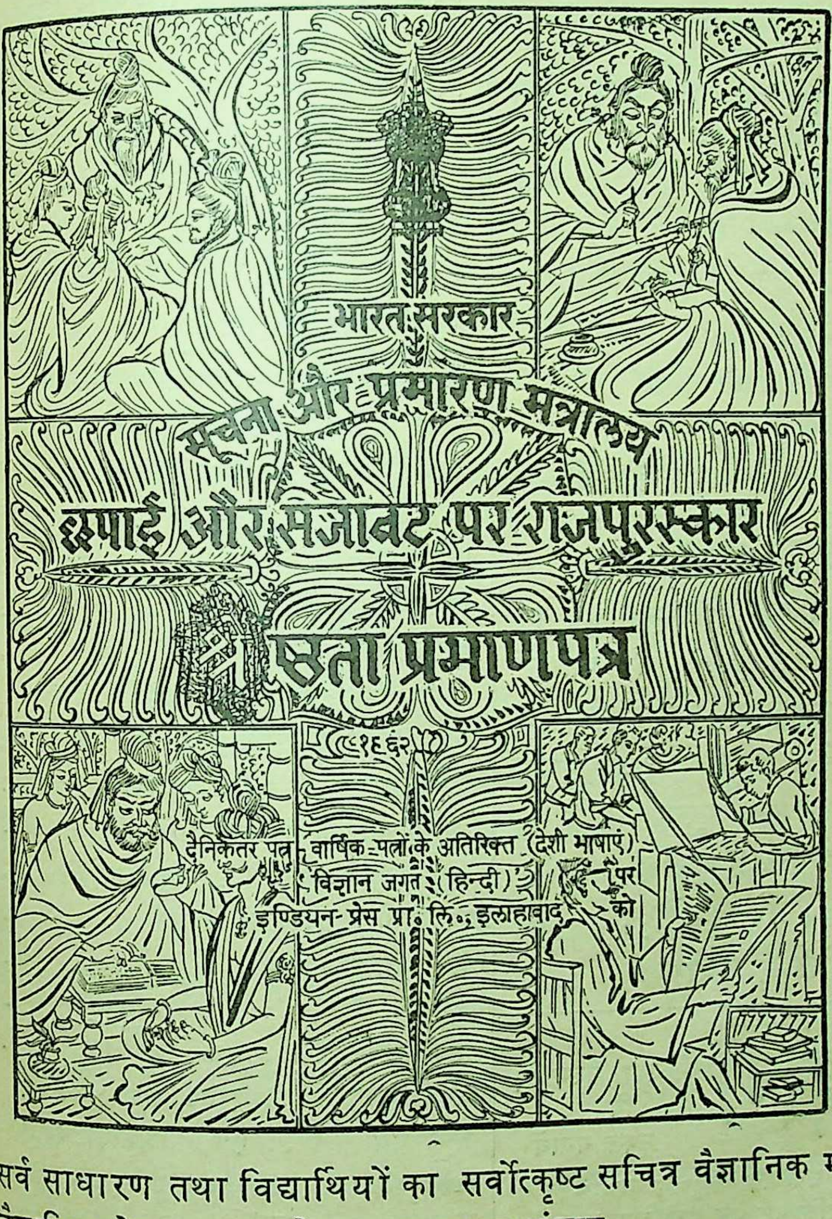

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

श्रेष्ठता प्रमाणपत्र

१९६२

दैनिकेतर पत्र-वार्षिक-पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)

विज्ञान जगत (हिन्दी) पर

इण्डियन-प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ।।) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),

प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

भारत सरकार से रजिस्टर्ड

सफेद दाग की दवा मूल्य ६)
विवरण
मुफ्त मंगावें

एक्झिमा (उकवत, खर्जूआ, विर्चचिका) व्याधि पर यह परीक्षित दवा है। मू० ५) रु० डाक खर्च १।) रु०।

दमा श्वास गुणकारी औषधि कीमत ५) रु० डाक खर्च १।) रु०

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

नवीनतम प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग—स्वामी सारदानन्दकृत

(भगवान श्रीरामकृष्णदेव की उन्हीं के अन्तरंग शिष्य द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत एवं सम्पूर्ण जीवनी का हिन्दी अनुवाद। तीन खण्डों में।)

डबल डिमाई आकार : आकर्षक जैकेट : अनेक चित्रों से सुशोभित : कुल पृष्ठ संख्या लगभग १४००

प्रथम खण्ड ९ रुपये; द्वितीय खण्ड १० रुपये; तृतीय खण्ड ७ रुपये।

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·६०
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५

			१·५०
कर्मयोग ..	१·७५	भक्तियोग ..	३·५०
राजयोग ..	३·००	ज्ञानयोग	०·५०
प्रेमयोग ..	१·३७	सरल राजयोग	०·६५
हिन्दू धर्म ..	१·५०	शिकागो वक्तृता	१·२५
मेरे गुरुदेव ..	०·६२	प्राच्य और पाश्चात्य	०·६०
शिक्षा ..	०·८५	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·६५
कवितावली ..	०·६२	हमारा भारत	०·४०
पवहारी बाबा ..	०·६०	मन की शक्तियाँ	

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए:

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', संयुक्त सम्पादक 'सरस्वती' द्वारा संकलित यह 'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-पाठकों के लिए ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें उन शब्दों का संग्रह हो, जो भारतवर्ष के विभिन्न हिन्दीभाषी प्रान्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। इस कोश को तैयार करते समय इस तथ्य का पूर्णतः ध्यान रक्खा गया है और अर्थ-विचार करते समय जीवित भाषा के अनेक शब्दों के जो नए अर्थ समय-समय पर प्रयुक्त होने लगते हैं, उनका समावेश भी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'मत' शब्द सभी हिन्दी कोशों में मिलेगा; किन्तु उसका समानार्थी 'वोट' इने-गिने कोशों में ही दिया गया है। इस प्रकार के हिन्दी शब्दों के अँगरेजी समानार्थी शब्दों का बाहुल्य इस कोश में है।

प्रस्तुत कोश को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसके संकलन और सम्पादन में यह ध्यान रक्खा गया है कि प्राचीन और अर्वाचीन गद्य-पद्य में प्रयुक्त होनेवाले बहुसंख्यक और नवीनतम शब्दों का संग्रह किया जाय। इस कोश में प्रान्तीय भाषाओं के प्रमुख शब्दों का समावेश यथास्थान किया गया है और प्रचलित मुहाविरे भी दिये गए हैं। कहावतों और मुहाविरों से बने यौगिक पद भी इसमें संकलित किए गए हैं।

हिन्दी अब स्वतंत्र भारत के कई प्रान्तों में राजभाषा हो चुकी है। इस दशा में सरकारी कामकाज हिन्दी में होने लगा है और शासन-विधान तथा राजनीति-सम्बन्धी अनेक प्रकार के अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्यायों की आवश्यकता पड़ने लगी है। अनेक हिन्दी पर्याय चलने भी लगे हैं, परन्तु अब तक ये सर्वमान्य नहीं हो सके हैं। धीरे-धीरे ही इन पर्यायों के प्रचलन में स्थिरता आ सकेगी। इसको ध्यान में रखकर इस कोश के अन्त में भारतीय संविधान-परिषद्-द्वारा स्वीकृत हिन्दी और अँगरेजी शब्दों क पर्याय की दो शब्दावलियाँ भी दे दी गई हैं। इससे इस कोश की उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

किसी भी शब्द का मानक रूप समझ लेने पर, व्याकरण की दृष्टि से, यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि वह कौन-सा शब्दभेद है। इसलिए संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण, क्रिया अथवा अव्यय का निर्देश भी इस कोश में प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान कर दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक शब्द के साथ लिंगभेद देकर, कोश का उपयोग करनेवालों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपए है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

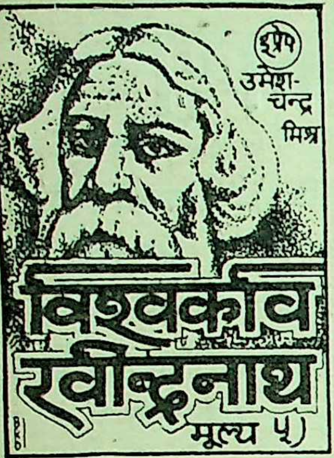
उमेश-चन्द्र मिश्र
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ
मूल्य ५)

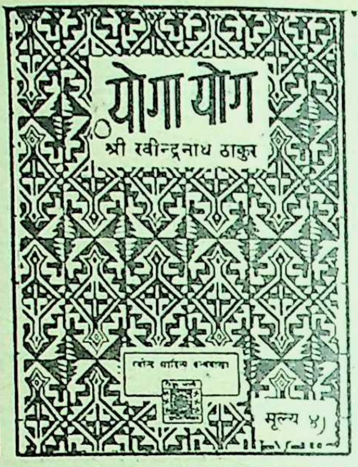
योगायोग
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य ४)

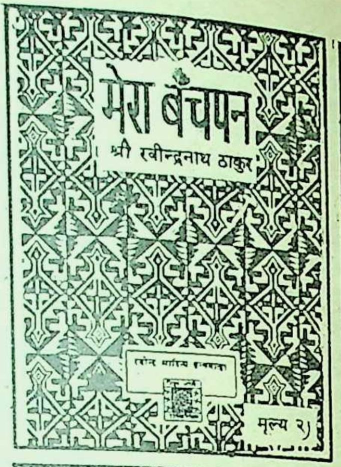
मेरा बचपन
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य २)

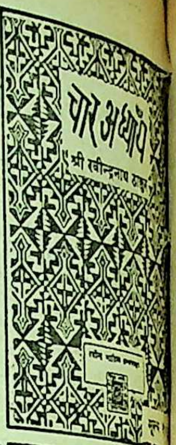
चार अध्याय
श्री रवीन्द्रनाथ ठा

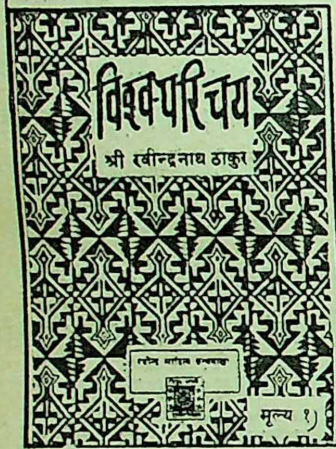
विश्व-परिचय
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १)

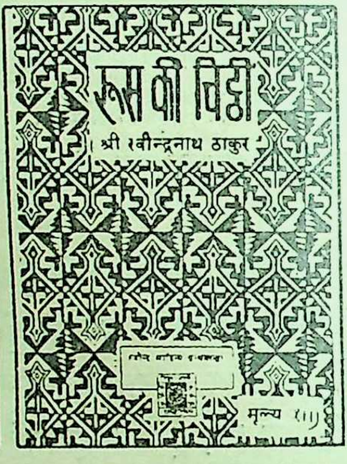
रूस की चिट्ठी
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य १।।)

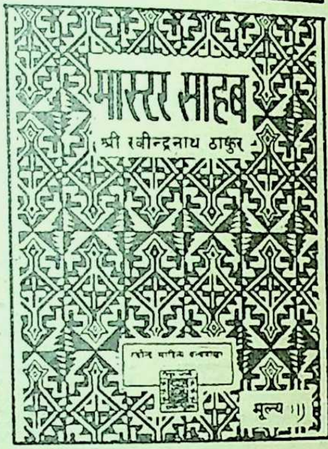
मास्टर साहब
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मूल्य ।।)

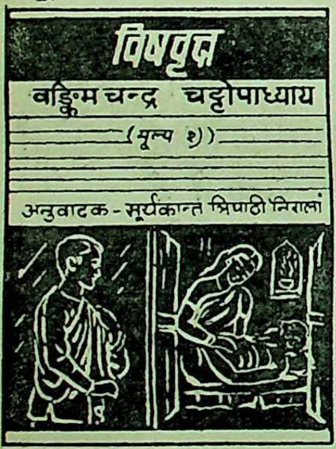
विषवृक्ष
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

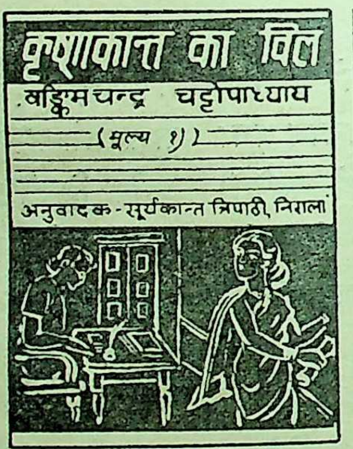
कृष्णकान्त का विल
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला

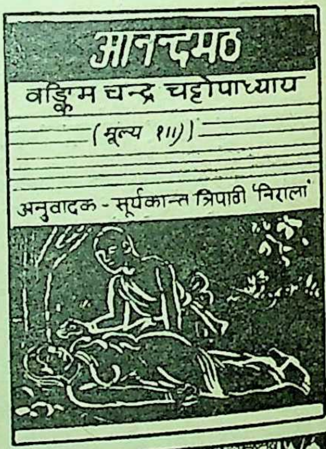
आनन्दमठ
बङ्किम चन्द्र चट्टोपाध्याय
(मूल्य १।।)
अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कपाल-कुण्डला
बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

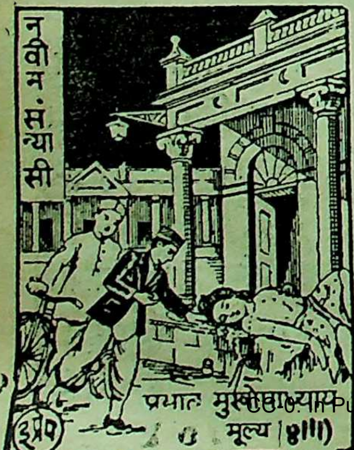
नवीन संन्यासी
प्रभात मुखोपाध्याय
मूल्य ४।।)

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात
मूल्य २)
रमेशचन्द्र दत्त

माधवी-कंकण
१।।)
रमेशचन्द्र दत्त

राजपूत-जीवन-सन्ध्या
रमेशचन्द्र

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

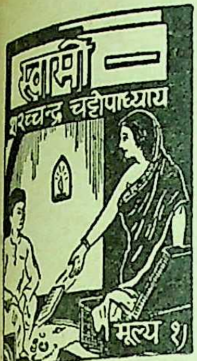
स्वामी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १)

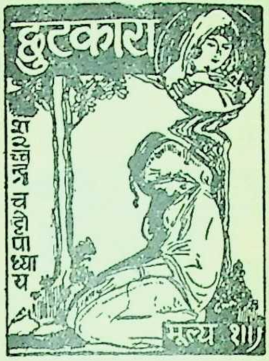
छुटकारा
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)

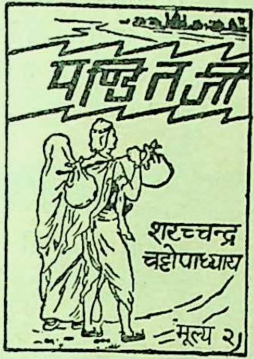
पण्डितजी
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

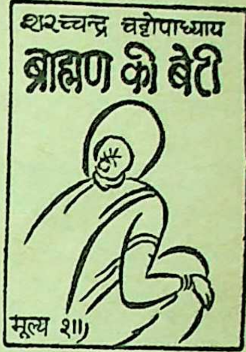
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
ब्राह्मण की बेटी
मूल्य १॥)

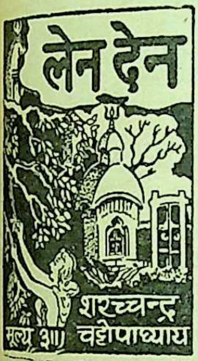
लेन देन
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ३॥)

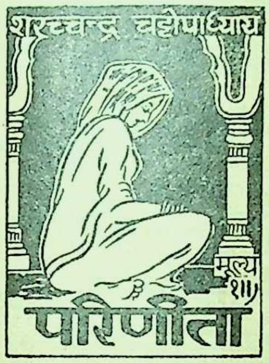
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य १॥)
परिणीता

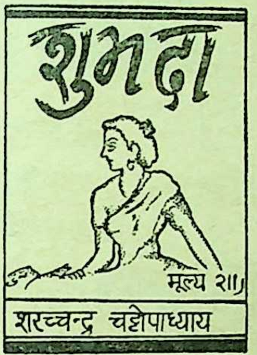
शुभदा
मूल्य २॥)
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

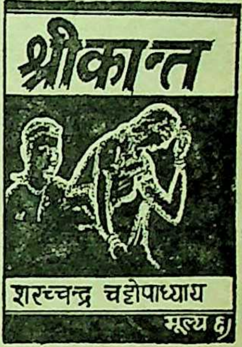
श्रीकान्त
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ६)

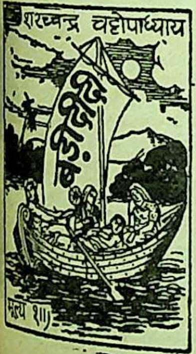
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
बड़ी दीदी
मूल्य १॥)

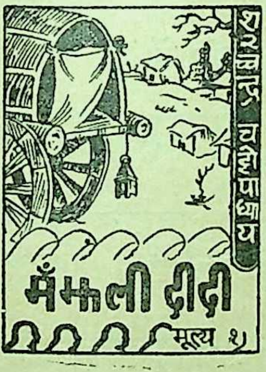
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मँझली दीदी
मूल्य १)

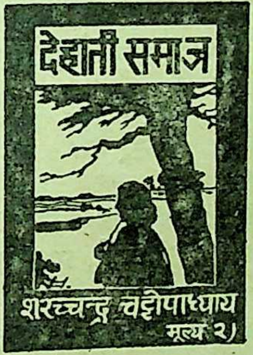
देहाती समाज
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य २)

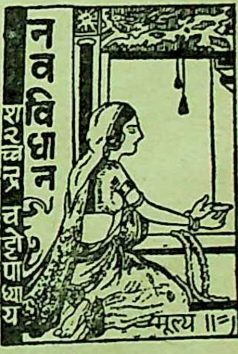
नव विधान
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ॥=)

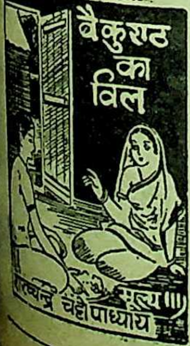
बैकुण्ठ का विल
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
मूल्य ॥)

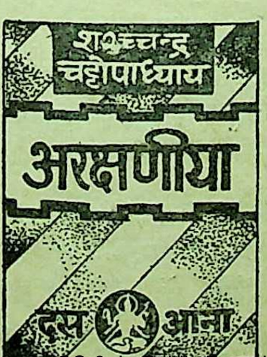
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
अरक्षणीया
दस आना

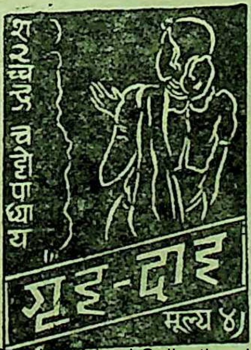
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
गृह-दाह
मूल्य ४)

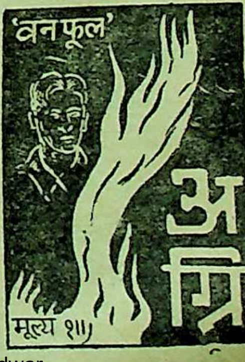
'वनफूल'
अग्नि
मूल्य १॥)

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी वही उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें सकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

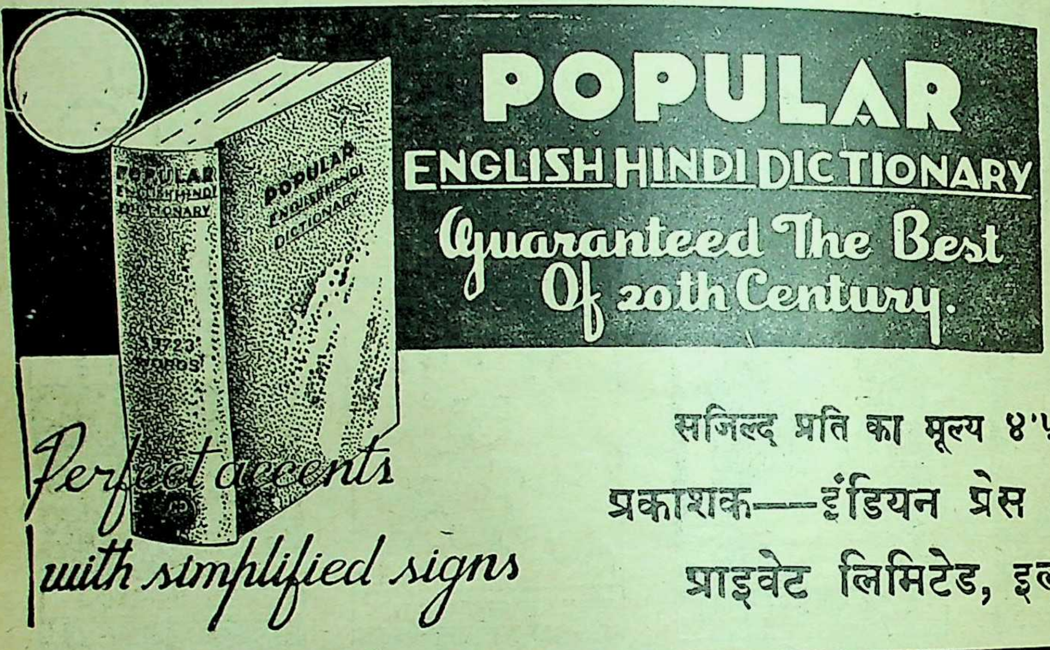
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
41723 WORDS

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best Of 20th Century.

Perfect accents with simplified signs

पापुलर इंगलिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४'५० नये पैसे
प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की गजलें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान बुद्धि के युग में भी जब तक का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से लित होता रहेगा, जब तक उसे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल रहेंगे तब तक समाज में कविता दर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य- में मानव की कोमलतम तियों, मधुतम स्पन्दनों तथा भावों की अभिव्यक्ति शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ हृदयग्राही भाषा मे की है। इन ओं के पाठ से जीवन की शाश्वत रता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज उठती रहती है। कवि ने अन्तस का मंथन कर कविताओं के मणिरत्नों को साहित्यसेवियों म्मुख प्रस्तुत किया है। कवि काव्याद्यान में ऐसा सुन्दर प्रस्तुत करने के लिए बधाई का है। मूल्य २'५० नये पैस ।

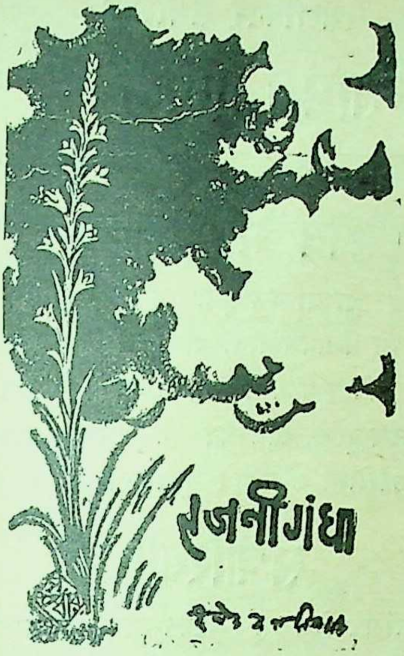

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २'५०।

जासूसी गल्पगुच्छ
निशीथकुमार राय
इंडियन प्रेस(पब्लिकेशंस)प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनको लिखो उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३'५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आंखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहां कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुंवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आर्कषित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विज्ञापनदाताओं से निवेदन

सरस्वती मासिक पत्रिका अपनी जन्मतिथि जनवरी १९०० से लगातार हिन्दी-जगत् की सेवा कर रही है। इसकी षष्टिपूर्ति जयन्ती के अवसर पर जो साहित्यिक समारोह किया गया वह सर्वविदित है। इस युग में जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुद्रण सामग्री प्राप्त न होने या अन्य कठिनाइयों के कारण या तो बन्द हो गया है या प्रकाशकों ने विज्ञापन-दर में वृद्धि कर दी है वहाँ सरस्वती ने अपनी विज्ञापन-दर सन् १९५८ तक पुरानी ही रक्खी है।

महँगाई के कारण हमने विवश होकर जनवरी १९५९ तथा जनवरी १९६१ में विज्ञापन-दर में थोड़ी वृद्धि की थी किन्तु इस वृद्धि से भी हम छपाई सम्बन्धी वस्तुओं के बढ़ते हुए दामों का मुकाबला न कर सके। अस्तु, हमें अब विवश होकर जुलाई १९६३ से निम्नलिखित अनुसार विज्ञापन दर में वृद्धि करने की आवश्यकता पड़ रही है। आशा है, कृपालु विज्ञापनदाता इस बढ़ी हुई दर को स्वीकार कर सरस्वती को सदैव की भाँति अपनावेंगे और हमें अपना सहयोग देंगे। इसके लिए विशेष आभारी होंगे।

विज्ञापन-दर

साधारण प्रति पृष्ठ	१००) रु०	साधारण आधा पृष्ठ	५५) रु०
साधारण १/४ पृष्ठ	३०) रु०	साधारण १/८ पृष्ठ	१५) रु०
कवर चौथा पृष्ठ	२५०) रु०	कवर दूसरा व तीसरा पृष्ठ	१५०) रु०

व्यवस्थापक विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English

by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.) अंगरेजी में

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ३०५

२—कृष्ण की व्रजलीला वस्तुतः सूर्यलीला है—डा० शालिग्राम गुप्त ३१३

३—कुछ समझ पाता नहीं हूँ! (कविता) कुँअर सोमेश्वरसिंह ३१५

४—आर्य भारतीय भाषा-विज्ञान : तब और अब—डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्० .. ३१६

५—मध्यकालीन हिन्दी कोश-साहित्य—डा० अचलानन्द जखमोला एम० ए०, डी० फिल्० ३२१

६—मुगलकालीन सैन्य-व्यवस्था—श्री गोस्वामी बालक, सा० रत्न ३२७

७—स्त्री-धन और उत्तराधिकार—श्री चन्द्रबली त्रिपाठी ३३१

८—कहते-कहते भी (कविता)—श्री रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण' ३३३

९—सुवर्ण निधियाँ और सरकारी विधान—अनुवादक : श्री कस्तूरमल बाँठिया .. ३३४

१०—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (५)—श्री फेनी मुकर्जी .. ३४१

११—तुलसी के पढ़ाऊ—पं० शिवाधार पाण्डेय ३४६

१२—हिन्दी प्रकाशन की शताब्दी और उसका शतवार्षिक विवरण—श्री प्रभुदयाल मीतल ३४८

१३—हैदराबाद का अंग्रेजी संस्थान—डा० उदयनारायण तिवारी ३५०

१४—आँगनों के बीच—(१) नौकरों के कुछ और कारनामे .. ३५३

घर-गृहस्थी—(२) नई गृहस्थी, पुराने अनुभव .. ३५५

१५—देखा-सुना—श्री मनमोहन गुप्त .. ३५६

१६—न्याय की पहेली—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ३६२

१७—मैंने पत्रिका निकाली—श्री लक्ष्मण भारद्वाज ३६४

१८—नवीन प्रकाशन ३६६

१९—भारती-कण्ठाभरण ३६९

२०—ब्रज-माधुरी (३) ३७०

२१—मनोरंजक संस्मरण ३७१

२२—१९०७ की सरस्वती—चीन जापान में संस्कृत ग्रन्थ—श्री काशीप्रसाद जायसवाल ३७२

दुर्गापाठ
सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधा मोहन लाल बी० ए० रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० ७·५०

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या
अपूर्व जीवनचरित श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।
हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था।
एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और
थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्वि
और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटना
चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामा
जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य—
रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्र
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

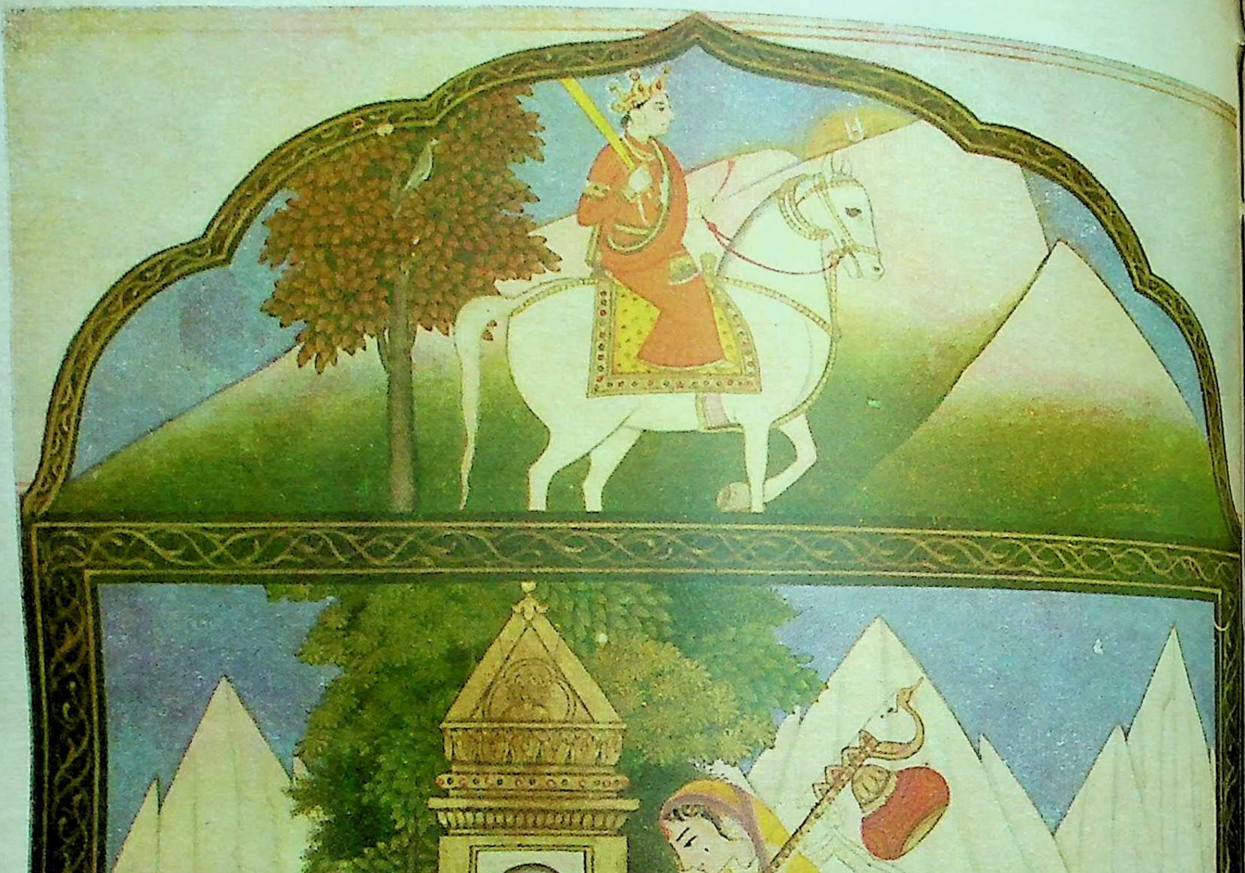

रागिनी भैरवी

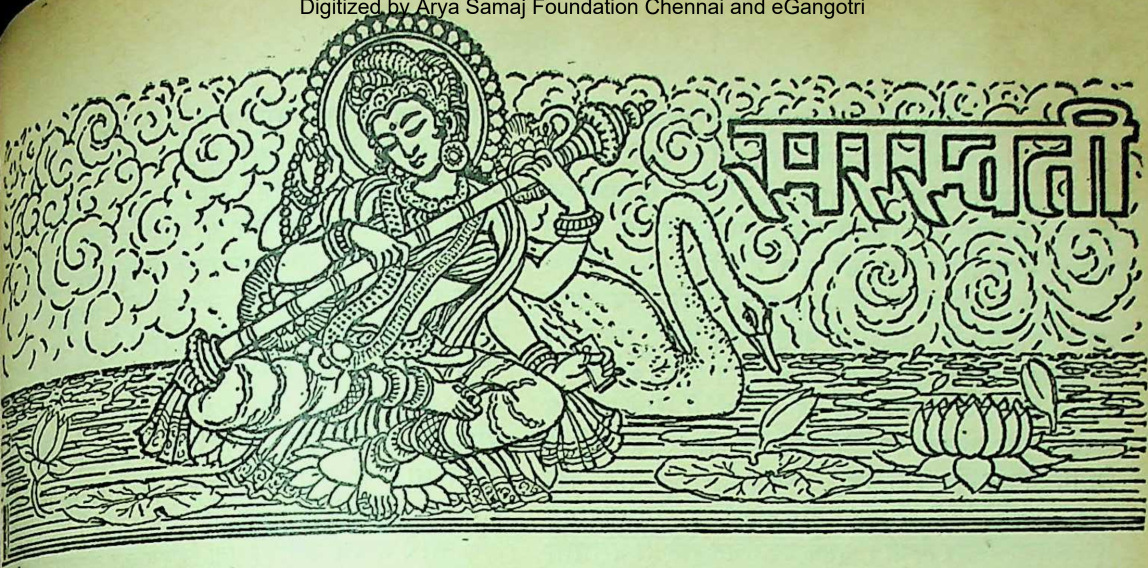

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
पूर्ण संख्या ७६६
इलाहाबाद : अक्टूबर १९६३ आश्विन २०२० वि०
खण्ड २
संख्या १०

सम्पादकीय

म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा की जन्मशती—हिंदी के अनन्य भक्त और सेवक तथा इतिहास के अद्वितीय विद्वान् साहित्यवाचस्पति, महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा का जन्म १५ सितम्बर १८६३ में हुआ था। अतएव गत मास उनके जन्म की शती पूरी हुई। इस अपूर्व इतिहासज्ञ और हिन्दी-उन्नायक की जन्मशती पर हमारे देश में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। बड़े खेद की बात है। 'सरस्वती' इस अवसर पर ओझाजी के प्रति अपनी हार्दिक और विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

ओझाजी का जन्म राजस्थान के सिरोही राज्य में हुआ था। वे चार भाइयों में सबसे छोटे थे। आरंभ में उनके आस्तिक और धर्मभीरु पिता ने उन्हें संस्कृत की शिक्षा दी। आरंभ ही से उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। उनके बड़े भाई बम्बई में थे। सिरोही में शिक्षा की व्यवस्था संतोषजनक न थी। अतएव वे उनके साथ बम्बई चले गये, किंतु बीमारी के कारण वे इंटरमीडिएट की परीक्षा दिये बिना ही कालिज छोड़ बैठे। उन दिनों बम्बई में अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान् भारतमातंड पंडित गट्टूलालजी रहते थे, और एक निजी पाठशाला में अध्यापन करते थे। ओझाजी ने उनसे संस्कृत और प्राकृत का उच्च अध्ययन किया। उन्हें विद्या से इतनी रुचि थी कि वे अपना अधिकांश समय रायल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में बिताते थे। धीरे-धीरे वे इतिहास और पुरातत्त्व की ओर आकृष्ट हुए, और बिना किसीके निर्देशन के स्वयं उसका अध्ययन करने लगे। उस युग में उत्साही विद्वानों, शोधकर्ताओं और कार्यकर्ताओं के द्वारा विभिन्न लिपियों और भाषाओं में कितने ही पुराने शिलालेख खोज निकाले गये थे, किंतु उस समय पुरालेख-विद्या (ऐपिग्राफी) आरंभिक अवस्था में थी। अधिकांश लेख पढ़े ही नहीं गये थे, या ठीक ढंग से नहीं पढ़े गये थे। ओझाजी को पुरालेखों ने विशेष रूप से आकृष्ट किया और वे उनको पढ़ने और उनकी भाषा तथा लिपि का रहस्य जानने में जुट गये। इस कार्य में उन्हें आशातीत सफलता हुई और वे संसार के चोटी के पुरालेखविद् माने जाने लगे।

ओझाजी यह देखकर दुखी थे कि इतिहास की ओर भारतीय विद्वानों ने समुचित ध्यान नहीं दिया। इसलिए उन्होंने भारतीय इतिहास के अध्ययन और लेखन को अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य बना लिया। बम्बई में उनका सम्पर्क गुजरात के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री भगवानलाल

इन्द्रजी से हुआ। उस समय वे प्राचीन गुजरात का इतिहास लिख रहे थे। कुछ दिनों उनके साथ काम करके उन्होंने उनकी सहायता तो की ही, साथ ही इतिहास के अध्ययन, प्रणयन, सामग्री के एकत्रीकरण, उसके शोधन तथा उपयोग सम्बन्धी भी बहुत सी बातें सीखीं।

ओझाजी के जीवन में महत्त्वशाली मोड़ तब आया जब वे उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय और संग्रहालय के अध्यक्ष नियुक्त हुए। यह बात सन् १८९० की है। यहाँ वे कविराज श्यामलदास के सम्पर्क में आये जो उस समय अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'वीरविनोद' तैयार कर रहे थे जिसमें मेवाड़ का इतिहास लिपिबद्ध हो रहा था। यहीं रहकर उन्होंने हिंदी में अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' तैयार किया। इसके प्रकाशित होते ही ओझाजी की ख्याति सारे संसार के इतिहासज्ञों और पुरातत्त्वविदों में फैल गयी क्योंकि अपने विषय में संसार में यह पहला ग्रंथ था। भारतीय पुरालेख शास्त्र का यदि इसे नींव का पत्थर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। आज भी यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। यहींसे उन्होंने सर ज्यार्ज ग्रियर्सन के 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' के लिए मेवाड़ की बोलियों पर एक निबंध लिखा। यहीं उन्होंने 'सोलंकियों का इतिहास' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तैयार किया।

जब अजमेर में भारत-सरकार ने राजस्थान संग्रहालय बनाया तब उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने उन्हें उदयपुर से बुलाकर उसका अध्यक्ष नियुक्त किया। यह बात १९०८ की है। तब से सेवा के अन्त तक——प्रायः तीस वर्ष——वे वहीं रहे। यहाँ उन्होंने कितने ही शोध-निबंध लिखे जिनसे विद्वज्जगत् में उनकी ख्याति और भी बढ़ी। अजमेर के आरंभिक जीवन में उन्होंने सिरोही राज्य का इतिहास लिखा। किंतु उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' के साथ उनकी कीर्ति को अक्षय रखेगा वह है——राजपूताने का बृहत् इतिहास। यह दस खंडों में है। कर्नल टॉड ने राजस्थान का एक विशाल इतिहास लिखा था जिसकी बड़ी ख्याति है। इसलिए उसी विषय पर दूसरा ग्रंथ लिखना सरल न था। किंतु टॉड का ग्रंथ सौ वर्ष पहले लिखा गया था। तब से अनेक नये तथ्यों का उद्घाटन हो चुका था। संस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी के समुचित ज्ञान के अभाव में अध्यवसायी और सहानुभूतिपूर्ण होते हुए भी टॉड बहुत सी बातें न जान सके थे। ओझाजी ने अपने विशाल पाण्डित्य और कठिन अध्यवसाय से राजस्थान का जो इतिहास लिखा है वह गौरवग्रंथ है।

ओझाजी विद्वान् तो थे ही, अनन्य हिंदीप्रेमी भी थे। उन्होंने अपनी सारी पुस्तकें हिंदी ही में लिखीं। 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का ग्रंथ था। उसे उन्होंने अंग्रेजी में न लिखकर हिंदी में लिखा। उन्हें हिंदी का इतना आग्रह था कि उन्होंने उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करने की भी अनुमति नहीं दी। इसलिए, केवल उसी अमूल्य ग्रंथ को पढ़ने के लिए, कितने ही विदेशी विद्वानों को हिंदी सीखनी पड़ी। वे काशी-नागरीप्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य-सम्मेलन के कार्यों में सदैव रुचि लेते थे और उन्होंने सभा की शोध पत्रिका का कई वर्ष सम्पादन किया था। उनकी हिंदी-सेवा और पाण्डित्य के उपलक्ष में सम्मेलन ने अपनी सर्वोच्च उपाधि 'साहित्यवाचस्पति' देकर उन्हें सम्मानित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने उन्हें 'सम्माननीय डाक्टर' की, और अंग्रेज सरकार ने 'महामहोपाध्याय' और 'रायबहादुर' की उपाधियों से विभूषित किया था। वे 'सरस्वती' को बड़ी रुचि से पढ़ते थे तथा कभी-कभी इसमें लेख भी लिखा करते थे।

सारे जीवन उन्होंने एक विषय का अध्ययन कर उसने अमूल्य ग्रंथ लिखकर हिंदी की महत्त्वपूर्ण सेवा की, उसका साहित्य समृद्ध किया तथा उसका मस्तक ऊँचा किया। उनके उदार चरित्र और महत्त्वपूर्ण कृतित्व से देश के युवकों को प्रेरणा मिलती रहे, यही उनकी जन्मशती का संदेश है। इस अवसर पर उनका पुण्य स्मरण करके सारा हिंदी संसार कृतकृत्य है।

हिन्दी को श्री हुमायून कबिर का पहला उपहार—पिछले मास हमने लिखा था कि श्रीमालीजी के जाने के बाद केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय का अध्यक्ष कौन बनाया जाता है, इससे मालूम होगा कि हिन्दी के प्रति केन्द्रीय सरकार का रुख क्या है। श्री हुमायून कविर अस्थायी रूप से शिक्षामंत्री बना दिये गये हैं, और यदि वे स्थायी रूप से वहाँ प्रतिष्ठित कर दिये जायँ तो इसमें हमें कोई आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि भारत-सरकार में हिंदी संसार की भावना की कोई कद्र नहीं है। श्री हुमायून कबिर ने आते ही आते संसद में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के एक ऐसे काम का समर्थन कर डाला जो हिंदी के हित में घातक है और जो संविधान-सम्मत भी नहीं है। कुछ दिनों पहिले तक तो बहुत से मुसलमान नेता हिंदी को कोई भाषा ही नहीं मानते थे, और जब उनकी न चली तब उन्होंने उसके अस्तित्व को तो स्वीकार कर लिया किंतु उसका विरोध करते रहे। ऐंग्लो-इंडियन लोग तो जन्मजात अंग्रेजीपरस्त हैं। वे देशी भाषाएँ या तो पढ़ते ही न थे, और पढ़ते भी थे तो रोमन-हिन्दुस्तानी। किंतु जब संविधान ने देवनागरी लिखित हिंदी को राजभाषा घोषित कर दिया तब उन्हें मजबूर होकर हिंदी का पढ़ना आवश्यक मानना पड़ा। मालूम होता है कि उन्हें यह निर्णय बड़ी अनिच्छा से लेना पड़ा क्योंकि इसमें वे तरह-तरह के 'किन्तु-परन्तु' लगाने लगे। कई वर्ष पहिले केन्द्र की एक उच्च समिति ने निर्णय लिया था कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाय। हिन्दी को देवनागरी लिपि में लिखने का आदेश संविधान में है ही। किंतु इन सब बातों पर हरताल फेरकर बहुत से ऐंग्लो इंडियन हिंदी को देवनागरी लिपि में लिखने

की माँग करने लगे। यहाँ तक कि 'एकता' के नाम पर डा० सम्पूर्णानन्द समिति ने भी इन विरोधी लोगों को प्रसन्न करने के लिए एक सीमा तक इसे स्वीकार कर लिया। हम सामंजस्य, समन्वय और समझौतों को राजनैतिक जीवन में आवश्यक समझते हैं, किंतु कोई समझौता जो सिद्धान्त का बलिदान करके किया जाता है, समझौता नहीं रह जाता। उसका नाम सिद्धान्तच्युति, आत्मसमर्पण या पराजय है। इधर अलीगढ़ की मुस्लिम यूनिवर्सिटी के लिए भी हिंदी का शिक्षण देना आवश्यक हो गया। अलीगढ़ का इतिहास हिंदी की दृष्टि से उत्साहवर्धक नहीं रहा। उसने कुछ विद्यार्थियों को रोमन लिपि में हिंदी लिखने-पढ़ने की छूट दे दी। संसद में इसपर प्रश्न हुआ। संविधान के अनुसार राजभाषा हिंदी वही है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाय। किंतु फिर भी केन्द्र के शिक्षा-मंत्री ने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के इस कार्य का समर्थन किया। हिंदी लिखने के लिए रोमन लिपि का यह समर्थन केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री श्री हुमायून कबिर का हिंदी को पहला उपहार है।

तर्क यह दिया जाता है कि जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है उन्हें रोमन लिपि में हिंदी सीखने में सुविधा होती है क्योंकि लिपि और भाषा भिन्न वस्तुएँ हैं; और वे रोमन लिपि जानते हैं, इससे उसे हिन्दी भाषा सीखने में सुविधा होती है।

हम अपने केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री से बड़ी नम्रतापूर्वक यह निवेदन करते हैं कि केन्द्र के आदेश से हमारे स्कूलों में अंग्रेजी की पढ़ाई तीसरी कक्षा से आरंभ कर दी गयी है। ये बच्चे देवनागरी लिपि जानते हैं। अतएव उपर्युक्त तर्क के ही अनुसार वे हिंदीभाषी क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा देवनागरी लिपि में पढ़ने की अनुमति देने का सरकारी आदेश निकाल दें क्योंकि इस लिपि में अंग्रेजी पढ़ने में उन्हें सुविधा होगी। यदि हिंदी रोमन लिपि में लिखी-पढ़ी जा सकती है तो अंग्रेजी को देवनागरी लिपि में लिखने-पढ़ने में क्या कठिनाई है? इससे उनके किस सिद्धान्त की हत्या होती है? हम समझते हैं कि हिंदीवालों को इसपर विचार करके प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में देवनागरी लिपि में अंग्रेजी पढ़ाने की माँग करनी चाहिए।

बात यह है कि इस देश के कुछ लोग देवनागरी लिपि को समाप्त कर रोमन लिपि का प्रचार करना चाहते हैं। संविधान में निर्दिष्ट 'देवनागरी लिपि' के प्रयोग को उन्होंने हृदय से स्वीकार नहीं किया। वे तरह-तरह के कुतर्क करके संविधान के शब्द और प्रयोजन से निकल भागने के रास्ते खोजा करते हैं। औपचारिक रूप से रोमन लिपि में हिंदी पढ़कर वे हिंदी साहित्य और हिंदी संसार से दूर ही रहना चाहते हैं क्योंकि देवनागरी लिपि न जानने के कारण सारा हिंदी वाङ्मय, हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ, सूचनाएँ आदि उनके लिए अपठनीय ही रहती हैं। वे हिंदी 'पढ़कर' भी हिंदी में 'निरक्षर' बने रहेंगे।

जब फारसी इस देश की राजभाषा थी तब उन दिनों के फारसी-परस्त (आजकल के अंग्रेजी-परस्तों के पूर्वज) फारसी लिपि में हिंदी लिखने और उसमें फारसी तथा अरबी शब्दों की भरमार करने लगे। कालान्तर में फारसी लिपि में लिखित हिंदी अपने को एक स्वतन्त्र भाषा—उर्दू—कहने लगी। उसमें एक विशिष्ट वर्ग की संस्कृति निहित मानी जाने लगी। वह एक वर्ग की भाषा हो गयी। हिंदी के लिए फारसी लिपि के स्वीकार करने से उत्तर भारत में जो विवाद और कलह हुआ, और जो वर्षों चलता रहा, वह इतिहास का तथ्य है। अब उसी घातक प्रयोग की पुनरुक्ति करने का प्रयास हिंदी को रोमन लिपि में लिखकर किया जा रहा है। एक अंग्रेजी शब्द प्रधान नयी "इंग्लिस्तानी" भाषा की सृष्टि करने का उपक्रम हो रहा है। इससे देश तो छिन्न-भिन्न होगा ही, हिन्दी के भी छिन्न-भिन्न होने का खतरा पैदा हो जायगा। रोमन लिपि में हिंदी लिखना, हिंदी संसार कभी स्वीकार न करेगा। हमें खेद है कि केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री ने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के हिंदी के हितों के इस घातक कार्य का समर्थन किया। श्री कबिर कभी भी हिंदी के प्रेमी प्रसिद्ध नहीं रहे। यदि शिक्षा मंत्रालय की बागडोर उन्हींके हाथों में रही, और उन्होंने हिंदी के हितों की पर्वाह न की, तो केन्द्र में राजभाषा हिंदी का भविष्य बड़ा अनिश्चित हो जायगा। यदि हिंदी के लिए रोमन लिपि के उपयोग का समर्थन उनके दृष्टिकोण का परिचायक है तो उर्दू के एक शायर के साथ कहना पड़ता है :

इबतदाए इश्क है, रोता है क्या?
आगे आगे देखिए—होता है क्या!

अंग्रेजी-परस्तों की लीला—अंग्रेजी-परस्तों के अथक परिश्रम, सरकार के जी तोड़ प्रयत्नों और इंग्लैण्ड तथा अमरीका के करोड़ों रुपये गला देने पर भी भारत में अंग्रेजी का स्तर उठ नहीं पा रहा। फिर भी वे अंग्रेजी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने की हठधर्मी छोड़ने को तैयार नहीं हैं। यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो आज प्रायः सर्वत्र ही अंग्रेजी के पठन-पाठन पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। उसका उच्च स्तर बनाये रखने से दूसरे विषयों के स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका विचार नहीं किया जाता। उनके लिए एकमात्र अंग्रेजी ही सब शिक्षा का पर्याय है। इस सम्बन्ध में दो बड़े मनोरंजक प्रकरण हमारे देखने में आये हैं।

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर में है। अब वहाँ एक पूर्व-विश्वविद्यालय (प्रियूनिवर्सिटी) परीक्षा होने लगी है जिसमें उत्तीर्ण होने पर ही विश्वविद्यालय में प्रवेश पाया जा सकता है। इस परीक्षा में सामान्य अंग्रेजी (जनरल इंग्लिश) भी एक अनिवार्य विषय है। विश्वविद्यालय ने हाल ही में यह नियम बनाया है कि इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए परीक्षार्थियों को सामान्य अंग्रेजी के 'अ' भाग में कम से कम ८० (अस्सी) प्रतिशत अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा! जहाँ तक हम जानते हैं, संसार के किसी विश्वविद्यालय में इस दर्जे की विवेकहीन [illegible] नहीं है। जब हमारे विश्वविद्यालय ऐसे

हास्यास्पद नियम बनाकर अंग्रेजी को जबर्दस्ती हमारे बच्चों के गले उतारना चाहते हैं तो हमें आश्चर्य न होगा यदि डा० लोहिया के अंग्रेजी-विरोधी उग्र अभियान को बल मिले। स्वभावतः विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने इस बेसिर-पैर के नियम के विरुद्ध विधान सभा के सामने प्रदर्शन किया। विधान सभा में उपशिक्षामंत्री ने बतलाया कि अंग्रेजी अध्यापकों की एक विचारगोष्ठी (सेमिनार) की गयी थी। उसने यह सिफारिश की थी। विश्वविद्यालय के बोर्ड आफ स्टडीज़ और एकैडमिक काउंसिल ने इसका समर्थन किया था। तब यह नियम बनाया गया। किंतु राजस्थान ही के दूसरे विश्वविद्यालयों या माध्यमिक शिक्षा परिषद् में ऐसा कोई नियम नहीं है। उ० शि० मंत्री ने इस नियम के बनाने का कारण यह बतलाया कि अंग्रेजी की योग्यता कम होने के कारण विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय की शिक्षा से––विशेषकर डाक्टरी और इंजिनियरिंग कालिजों में––पूरा लाभ नहीं होता। आश्चर्य तो यह है कि जिस भाषा को विद्यार्थी जानते हैं उसमें शिक्षा देने का प्रयत्न न किया जायगा, किंतु इस देश के लिए एक अस्वाभाविक भाषा को जबर्दस्ती लादने के लिए तानाशाही और बुद्धिहीन नियम बनाये जायँगे। सरकार ही इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है क्योंकि इस विषय में स्वयं उसकी नीति अस्पष्ट है। न तो वह उसी प्रकार अंग्रेजी को तीसरी कक्षा से शिक्षा का माध्यम बनाने को तैयार है जिस प्रकार वह अंग्रेजों के राज्यकाल में थी, और जिसके कारण अग्रेजी का स्तर ऊँचा रहता था, और यह देखते और जानते हुए भी कि आज विद्यार्थी हिंदी में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते हैं न वह हिंदी को उच्च शिक्षा का माध्यम ही बनाने को तैयार है। उसने अंग्रेजों के समय का उच्च शिक्षा का माध्यम (अंग्रेजी) तो ज्यों का त्यों बनाये रखा, किंतु इसका आधार (प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का माध्यम) बदल दिया। यह 'आधा तीतर, आधा बटेर' एक असंभव पक्षी है। सरकार की इस संशय वृत्ति से हमारे लाखों विद्यार्थियों का जीवन नष्ट हो रहा है।

अग्रेजीपरस्ती का यदि दूसरा रूप नहीं, तो एक परिणाम हिंदी को महत्त्वहीन, अनावश्यक और बेकार समझना है। संसार के किसी भी सभ्य देश में किसी भी परिस्थिति में मातृभाषा के स्तर को गिराना स्वीकार न किया जायगा। प्रथम युद्ध में अंग्रेज सरकार ने शिक्षा में मातृभाषा के स्तर को उठाने की आवश्यकता अनुभव की और उसके उपाय बतलाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण समिति नियुक्त की थी। किंतु हमारे देश में मातृभाषा के प्रति क्या दृष्टिकोण है? गत वर्ष उत्तर प्रदेश के माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने एक आज्ञा प्रसारित की थी। उत्तर प्रदेश की राजभाषा अवश्य ही अंग्रेजी है, तभी तो यह आज्ञा अंग्रेजी में निकाली गयी थी! उस आज्ञा (N0. B-3091/vi-18 दिनांक १० नवंबर १९६२) के प्रसंगानुकूल अंश ये हैं:

The National Emergency has brought into focus the need of more and better trained scientific personnel. A very large percentage of students fail to secure a pass in Scientific subjects and as such much of the labour put in by the teachers and students in studying Scientific subjects goes waste. One measure that can be taken at once to remedy this State of affairs is to make the students, who have opted for Science and are preparing for High School (Science and Agriculture Groups) and Technical Examination or Intermediate (Science) and Intermediate (Technical) Examinations, concentrate on their scientific studies by reducing the burden of their other work. In pursuance of this aim, the Chairman of the Board has, under his special powers, decided in relaxation of the relevant regulations that—

(i) at the High School Examination of 1963 for Scientific and Agriculture Groups only, the minimum pass marks in the optional subject (other than Science and Biology for the Scientific Group and Agriculture for the Agriculture Group), shall be 22 per cent.

(ii) at the High School (Technical Examination (New pattern of 1963) the minimum pass marks in Hindi Compulsory) shall be 22 per cent; and

(iii) at the Intermediate (Science) and Intermediate (Technical) Examination of 1963, the minimum pass marks in Hindi or the subject offered in lieu thereof, shall be 22 per cent.

It is, however expected that the brighter students will, as hitherto attain a mastery over all subjects, Scientific and others which they, are studying,

हम इसका शब्दशः अनुवाद देकर अपने बहुमूल्य स्थान को नष्ट नहीं करना चाहते। इसका आशय यह है कि राष्ट्रीय संकट के कारण अधिक संख्या में और अधिक योग्य विज्ञान के जानकारों की आवश्यकता है। विज्ञान विषयों में बहुत से छात्र असफल हो जाते हैं। इनकी सहायता के लिए इतना तो तुरन्त ही किया जा सकता है कि उनपर विज्ञानेतर विषयों के पढ़ने का जो बोझ है उसे घटा दिया जाय। इसलिए बोर्ड के अध्यक्ष ने अपने विशेष अधिकार से यह आज्ञा दी है कि १९६३ की हाई स्कूल परीक्षा में विज्ञान और कृषि खंड लेनेवाले परीक्षार्थियों के विज्ञानेतर वैकल्पिक विषय के उत्तीर्णांक २२ प्रतिशत होंगे। इसी प्रकार हाई स्कूल (टेक्निकल) में अनिवार्य हिंदी विषय के उत्तीर्णांक २२ प्रतिशत होंगे। इटरमीजिएट विज्ञान और टेक्निकल परीक्षाओं में अनिवार्य हिंदी विषय में उत्तीर्णांक २२ प्रतिशत होंगे।

अन्त में सरकार ही शिक्षा नीति की उत्तरदायी होती है। उत्तर प्रदेश के शिक्षाधिकारियों और सरकार की सम्मति में हिंदी एक ऐसा अनावश्यक विषय है जिसमें २२

उत्तीर्णांक घटाकर २२ प्रतिशत किये जा सकते इस दृष्टिकोण पर टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है। भाषा और राजभाषा की ऐसी अवहेलना हमारे ही में हो सकती है!

और उत्तर प्रदेश के जिन विद्यार्थियों की शिक्षा के राष्ट्रीय संकट के नाम पर इस प्रकार खिलवाड़ किया उन्होंने सेना में कितने स्थान पाये? इस सम्बन्ध में आफ इण्डिया की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है:

> Out of every hundred young volunteers hwalis and Kumaonis) barely five manage pass the medical tests, 95 of them being of one of the 34 diseases which disfy them for service. The fact that the ber of boys accepted by one recruiting in the Panjab is far more than the total ber of recruits selected in the whole of P. reflects the shocking state of public in the country's biggest state.
>
> The recruiting officers have informed the that a good number of the rejected volcan be enrolled if they are medically ed. The Centre in its turn has pointed out to the State Government but the latter parently doing nothing about it.

"सेना की भर्ती के कार्यालयों में (गढ़वाल और के) सौ अभ्यर्थियों में से केवल पाँच डाक्टरी परीक्षा र्ण होते हैं। शेष ९५ उन ३४ रोगों में से किसी के शिकार होते हैं जिनके कारण वे अनुत्तीर्ण कर जाते हैं। पंजाब के केवल एक भर्ती के कार्यालय में लड़के लिये जाते हैं उनकी संख्या सारे उत्तर प्रदेश जानेवाले लड़कों से अधिक है। यह तथ्य इस बात र्शित करता है कि देश के सबसे बड़े राज्य के सार्वस्वास्थ्य की दशा कितनी चिंताजनक है।

भर्ती करनेवाले अधिकारियों ने केन्द्र को सूचित कर है कि यदि उनकी चिकित्सा करा दी जाय तो अनुलड़कों में से बहुत से लिये जा सकते हैं। केन्द्र ने सरकार का ध्यान इस ओर दिला दिया है, किंतु मालूम पड़ता है कि वह इस मामले में कुछ नहीं रहा।"

हमारे अधिकारियों को 'राष्ट्रीय संकट' की ओट में की अवमानना करने से जब फुर्सत मिले तो वे नवके स्वास्थ्य की ओर ध्यान दें! शारीरिक शिक्षा जैसा तूमार उत्तर प्रदेश में है वैसा बहुत कम राज्यों होगा। किंतु अन्त में "ढाक के वे ही तीन पात!" का बलिदान करके विज्ञान पढ़ाओ, शारीरिक शिक्षा पर अपार व्यय करो, और यह सब करने के बाद की भर्ती के समय यह प्रशंसापत्र मिले! हमारे नवयुवकों के भविष्य और जीवन के साथ यह खिलवाड़ तक होता रहेगा?

शराबखोरी और धूम्रपान में बढ़ोतरी––हमारा संविधान, हमारी संस्कृति, हमारी सरकार की नीति—सभी––शराब के उपयोग की विरोधी हैं। शराबखोरी के विरोध में हमारे नेता और सरकारें प्रचार भी करती रहती हैं। किंतु ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस प्रकार जीवन के दूसरे क्षेत्रों में हम पर पश्चिम और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा है, और हमारी अपनी संस्कृति का प्रभाव घटता जा रहा है, उसी प्रकार शराबखोरी भी बढ़ती जा रही है। गत मास इस संबंध का पंचवर्षीय लेखा-जोखा प्रकाशित हुआ है।

सारे देश में सन् १९५७-५८ में १४९८५६०५ गैलन और सन् १९६१-६२ में २०,७७२,४८७ गैलन शराब खपी। अर्थात् मद्य-निषेध अभियान और सरकार की शराब-विरोधी नीति के बावजूद २७·५ प्रतिशत अधिक शराब की प्रत्यक्ष बिक्री हुई। स्पष्ट है कि यदि सरकार शराब की बिक्री पर कड़े अंकुश न लगावे, और विदेशी शराब के आयात को खोल दे तो देश की जो वर्तमान नैतिक अवस्था है उसमें शराब का उपयोग और अधिक बढ़ जाय।

महाराष्ट्र, मैसूर और मनीपुर में शराब की खपत में कमी हुई है। किंतु आश्चर्य की बात है कि फिर भी मसूर और मनीपुर सरकारों की शराब से आय बढ़ी है। शराब से मैसूर की आय १९५७-५८ में २,६६,११,६२२ रुपये थी। पाँच वर्ष बाद खपत प्रायः आधी रह गयी, किंतु शराब की आय बढ़कर २,७४,६६,१७४ रु० हो गयी। इसी प्रकार मनीपुर की शराब की खपत प्रायः एक-चौथाई रह गयी, किंतु शराब की आय १६,७५२ रुपये से बढ़कर २५,२५० रु० हो गयी। इससे संभावना यह मालूम होती है कि वहाँ अत्यधिक कर लगाया गया। संभव है कि इससे अवैध शराब का उपयोग बढ़ गया हो, और शराब के वास्तविक उपयोग में इतनी कमी न हुई हो जितनी दिखलायी गयी है।

शराब से सरकारों को अच्छा लाभ होता है। सन् १९५७-५८ में शराब से ३४ करोड़ १८ लाख रुपये की आय थी। पाँच वर्ष बाद १९६१-६२ में वह बढ़कर ४४ करोड़ ९१ लाख रुपये हो गयी। अर्थात् पाँच वर्षों में शराब की खपत २७·५ प्रतिशत बढ़ी, और उससे सरकारी आमदनी ३१·४ प्रतिशत बढ़ी।

आधुनिक सभ्यता के दूसरे लक्षण धूम्रपान ने भी पाँच वर्ष की इस अवधि में इस देश में पर्याप्त उन्नति की। सन् १९५७-५८ में इस देश में तीन अरब सिगरेट फूँक दी गयी थीं। देश ने १९६१-६२ में प्रायः ३० प्रतिशत सिगरेट अधिक पीं। क्योंकि उस वर्ष देश में ४ अरब १० करोड़ सिगरिटों का उपयोग हुआ। या इसे यों कहें कि जब सन् १९५८ में औसत से प्रत्येक व्यक्ति ने ७१ सिगरेट फूँकी तो १९६२ में वह ९१ सिगरिटें पीने लगा। देश में करोड़ों लोग सिगरेट नहीं पीते। अतएव जो पीते हैं, उनका सिगरेट का खर्च काफी अधिक होता है।

बीड़ियों का भी उपयोग बढ़ा। उनकी संख्या का लेखा नहीं रखा जाता, किंतु बीड़ी के लिए जो तमाखू बनती है, उसके आँकड़े रखे जाते हैं। सन् १९५७-५८ में ६ करोड़ ६८ लाख किलोग्राम तमाखू बीड़ियों के बनाने में लगी थी। पाँच वर्ष बाद (१९६१-६२ में) उसका परिमाण बढ़कर ७ करोड़ २४ लाख किलोग्राम हो गया।

हम पाश्चात्य सभ्यता से आक्रान्त हैं। हम तमाखू का उपयोग पहले भी करते थे। कुछ लोग हुक्का पीते थे। उससे तमाखू का अधिकांश विष (निकोटीन) हुक्के के पानी में घुल जाता था और पीनेवाले के शरीर में प्रवेश नहीं करता था। किंतु अब हम पाश्चात्य ढंग से सिगरेट पीते हैं जिससे उसका विष धुएँ के रूप में सीधे हमारे भीतर पहुँचता है। किंतु पाश्चात्य सभ्यता में पूर्वीय 'हुक्के' को अप्रतिष्ठित समझा जाता है। इसलिए हमने भी उसके अनुकरण में हुक्का प्रायः छोड़ दिया है। उसका उपयोग दिनों दिन कम होता जा रहा है। १९५८ में ४ करोड़ ४६ लाख किलोग्राम कच्ची तमाखू से हुक्के की खमीरेवाली तमाखू बनायी गयी। १९६२ में उसकी खपत घटकर ४ करोड़ २६ लाख किलोग्राम रह गयी। ज्यों ज्यों पुराने हुक्के पीनेवाले समाप्त होते जाते हैं त्यों त्यों उसकी खपत घटती जाती है। नये लोग हुक्का नहीं पीते।

देश में मादक द्रव्यों का उपयोग क्यों बढ़ रहा है? उसका मुख्य कारण पश्चिम का अन्ध अनुकरण और पुरानी भारतीय प्रथाओं तथा मान्यताओं का ह्रास है। एक बड़ा कारण यह भी है कि आज वातावरण में 'जीवन स्तर उठाओ' का नारा गूँज रहा है। और जिस 'जीवन-स्तर' की कल्पना हमारे नेता करते हैं वह पाश्चात्य जीवन-स्तर है। उच्च जीवन-स्तर से समाज में प्रतिष्ठा मिलती है। आदमी सभ्य, सुसंस्कृत और 'सामाजिक' समझा जाता है। धूम्रपान का पश्चिमी जीवन में यही स्थान है। शराब का भी यही स्थान है। अभी समाचार-पत्रों में हमने पढ़ा था कि हरियाने के एक जिले में शराब पीना सामाजिक प्रतिष्ठा का चिह्न समझा जाने लगा है। जब तक हम जीवन के मूल्यों को पाश्चात्य दृष्टि से देखेंगे, और उन्हें ही आदर्श और अनुकरणीय समझते रहेंगे, तब तक शराब और धूम्रपान का बढ़ाव रोकना संभव नहीं है।

जोश मलीहाबादी और भारत सरकार—जोश मलीहाबादी उर्दू के प्रसिद्ध शायर हैं। वे मलीहाबाद (लखनऊ) के एक प्रतिष्ठित जमींदार पठान परिवार में पैदा हुए थे। यह वही मलीहाबाद है जहाँ के दसहरी और सफेदे आम सारे देश में प्रसिद्ध हैं। जमींदारी तो जमींदारी-उन्मूलन में समाप्त हो गयी, किंतु उनके आमों के मूल्यवान बाग अब भी उनके पास हैं जिनसे अच्छी आय होती है। जोश साहब उर्दू के बहुत अच्छे किंतु प्रगतिशील शायर माने जाते हैं। हमारा भी उनसे परिचय है क्योंकि हमारे मित्र स्वर्गीय निरालाजी और फिराक साहब से उनकी खूब छनती थी। इन लोगों की साझी रुचि शेर-ओ-शायरी तो थी ही, साथ में तीनों का सर्ववि मदिराप्रेम भी उनकी गोष्ठियों का कारण हो जाना सामाजिक विद्रोही होने के कारण जोश साहब शराब-प्रेम का प्रदर्शन करने में संकोच नहीं उन्होंने कुछ ऐसी कविताएँ भी लिखीं जो साम मुसलमानों को पसन्द नहीं आयीं। उनकी 'शरा नोशी" और उनके धार्मिक विचारों से बहुत से दी दार मुसलमान उनके विरोधी भी हो गये। कुछ उनसे इतने अप्रसन्न थे कि एक बिगड़े दिल मुसलमा शायर ने उनपर यहाँ तक लिख डाला था:

जोश आली जनाब आ पहुँचे,
ये भी खाना खराब आ पहुँचे,
हाथ में ले शराब आ पहुँचे,
ये खुदा के अजाब आ पहुँचे।

किंतु उनकी धार्मिक और राजनीतिक प्रगतिशील ने उन्हें मुसलमान प्रगतिशीलों तथा अन्य वर्ग के प्र शीलों में काफी लोकप्रिय बना दिया। उस वर्ग में उन ऊँचा स्थान बन गया। उनकी ख्याति इतनी बढ़ी कि के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित उर्दू "आजकल" के सम्पादक नियुक्त हुए। वे आकाशवाणी के उर्दू-सलाह बनाये गये। भारत सरकार के बड़े-बड़े लोगों तक नहीं, प्रधान मंत्री तक उनकी पहुँच थी। भारत सरका ने उन्हें इतना बढ़ावा और संरक्षण दिया कि उन्हें उच्च नियुक्तियों के अतिरिक्त उन्हें "पद्मभूषण" के सम्मा से अलंकृत किया। किंतु वे "पद्मविभीषण" सावि हुए। इस सम्मान के पाने के कुछ ही दिन बाद भार सरकार के उच्च वेतन और संरक्षण पर लात मारकर पाकिस्तान चले गये, और वहाँ जाकर नियमित रू "पाकिस्तानी" नागरिक बन गये। उनके देशप्रेम का दावा खोखला निकला। उनके पाकिस्तान-प्रेम ने उन भारत-प्रेम पर विजय पायी।

किन्तु इधर कुछ दिनों से साहित्यिक क्षेत्रों में इ बात की चर्चा चल रही थी कि जोश के इस रंग बदलने बाद भी भारत सरकार उन पर सदय है और उन्हें तर तरह की सुविधाएँ दे रही है। किंतु वे चर्चाएँ केवल "हवा में थीं। इससे हमने उनपर ध्यान नहीं दिया। पर गत मास कश्मीर के एक संसद सदस्य श्री ए० मुहम्म तारिक ने लोकसभा में इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्न कि उन्होंने इस बात पर कड़ी आपत्ति की कि पाकिस्ता नागरिक होने पर भी जोश साहब को भारत में आ अपनी सम्पत्ति से रुपया कमाने की ऐसी विशेष सुविधा दी जाती हैं जो अन्य गरीब मुसलमानों को नहीं मिलती उन्होंने यह भी जानना चाहा कि क्या उन्हें भारत में बहु दिनों रहने की अनुमति दी गयी है। गृहमंत्री श्री हाजर वीस ने इन प्रश्नों का जो उत्तर दिया उससे स्थिति स्प नहीं हुई। श्री जोश को भारत में आने और ठहरने जो अनुमति दी गयी है, उसका विवरण गृहमंत्री ने न बतलाया। उत्तर देते समय उन्होंने कहा कि जोश सा

गणना उर्दू के महानतम शायरों में है। इस पर श्री क ने जोर से "नहीं, नहीं" कह कर इस कथन का वाद किया।

जोश साहब कवि हैं। अच्छे कवि हैं। उनके कवित्व लिए उनका सम्मान करना एक बात है, किन्तु जिस र से उन्होंने भारत का परित्याग कर पाकिस्तानी रिकता वरण की, उससे यह स्पष्ट है कि उनमें भारत प्रेम नहीं है। वे भारत के प्रति वफादार नहीं हैं। कवि साहित्यकार होने से किसी व्यक्ति को देश के प्रति गद्दारी ने की छूट नहीं मिल जाती। यदि वह देश, जिसकी ता और प्रेम को किसी व्यक्ति ने ठुकराया है, उसके विशेष कोमलता दिखलाता और विशेष सुविधाएँ है, तो इससे उस देश के प्रति निष्ठा को भंग करने को प्रोत्साहन मिलेगा। देश की सुरक्षा और सम्मान दृष्टि से उन लोगों के साथ कोमलता का व्यवहार, उसके प्रति निष्ठावान् नहीं रहे, बड़ा भारी खतरा लेना है। हम आशा करते हैं कि भारत सरकार सम्बन्ध में अपनी स्थिति असंदिग्ध शब्दों में स्पष्ट जिससे लोगों में किसी प्रकार का भ्रम न रहे।

"मोटराइटिस रोग"——भारत में जनतंत्र हो गया है, उसमें शाही और सामन्ती परम्पराएँ किसी न किसी में अभी भी जीवित हैं। यहाँ लोकसेवा के कर्मचारी म" कहलाते हैं। मुगल काल में एकाधिकार-प्राप्त ह का प्रतिनिधि अपने क्षेत्र में अपने को उसीके सर्वशक्तिशाली समझता था, और नकीब, चोब- आदि से घिरा हुआ शाही ठाठ से रहता था। उसकी भी शाही ठाठ से निकलती थी। हमारे आधुनिक कारी भी अपने पद की मर्यादा बतलाने के लिए जिस से रहना चाहते हैं वह उसी परम्परा का स्मारक है, उसका जनतंत्र के सिद्धान्तों या देश की वास्तविकता कोई सम्बन्ध नहीं है। आज तो जितना बड़ा अधि- है, उसकी उतनी ही बड़ी कोठी, उसके उतने ही चपरासी, उसकी उतनी ही बड़ी और शानदार कार होनी चाहिए।

इसमें सबसे अधिक महत्त्व "मोटरकार" को दिया है क्योंकि वह उनकी मदमर्यादा का चलता-फिरता है। बड़े अधिकारी साधारण आकार की मोटर में बैठना अपनी हीनता समझते हैं। अभी हाल में इसके दो महत्त्वपूर्ण उदाहरण सामने आये हैं। अलीगढ़ मुस-लिम यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर ने अभी हाल में एक सरकारी संस्था के माध्यम से एक बड़ी विदेशी मोटर पचपन हजार रुपयों में खरीदी है। जब लोगों ने उसपर आपत्ति की तब यूनिवर्सिटी की ओर से कहा गया कि वाइस चांसलर साहब को बहुधा दिल्ली जाना पड़ता है और छोटी मोटर में यात्रा करने से कष्ट होता है। अलीगढ़ दिल्ली से केवल अस्सी मील है। भारत की बनी "ऐम्बेसेडर" गाड़ी से यह यात्रा दो ढाई घंटे में की जा सकती है। "ऐम्बेसेडर" गाड़ी कुछ छोटी भी नहीं है, किन्तु वह विलायती मोटरों की तरह भड़कीली और शानदार नहीं है।

दूसरा उदाहरण बम्बई का है। वहाँके मुख्य नगर-अधिकारी ने नगर महापालिका की स्थायी समिति में नगर-प्रमुख के लिए 'इस महान् नगर के प्रथम नागरिक की पद-मर्यादा के अनुरूप एक उपयुक्त बनावट और किस्म की मोटर गाड़ी' लेने का प्रस्ताव रखा, और कहा कि 'भारत में बनी मोटर गाड़ियाँ बंबई के नगर-प्रमुख के उपयोग' के लिए उपयुक्त नहीं हैं। गांधीजी ने स्वदेशी मोटे खद्दर को विलायती भड़कदार कपड़ों से श्रेयस्कर बतलाया था। उसी देश में आज बम्बई ऐसे प्रगति-शील, सुशिक्षित और देशप्रेम के लिए विख्यात नगर के नगरप्रमुख स्वदेश की बनी मोटर-गाड़ियों में बैठना अपने सम्मान की हेठी समझते हैं। यह है देशप्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रेम का वह उदाहरण जो हमारे "बड़े" आदमी जनता के सामने रख रहे हैं, और उसके बाद वे आशा करेंगे कि जनता उनके उपदेशों के अनुसार देशभक्त बनकर अच्छी-बुरी देशी वस्तुओं का ही उपयोग करे और यहाँके उद्योगों को उन्नत करने में सहायक हो!

प्रतिवाद का अहिंसक और अनोखा रूप——जूनागढ़ के सरकारी चपरासियों को यह शिकायत है कि अफसरों की "मेम साहिबाएँ" उनसे घर का बहुत काम कराती हैं जिससे वे परेशान रहते हैं। हम कल्पना कर सकते हैं कि यदि ये चपरासी और कहीं के होते तो अपने असंतोष को किस प्रकार व्यक्त करते। किंतु ये चपरासी हैं गांधीजी की जन्मभूमि के। उन्होंने यह तय किया है कि अधिकारियों

और जनता का ध्यान अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने के लिए वे रविवार के दिन (जिससे सरकारी काम को हानि न हो) कलक्टरी के सामने एकत्र होकर "रामधुन" का कीर्तन करेंगे। रामधुन की एक पंक्ति है "सबको सन्मति दे भगवान!" देखना है कि इस रामधुन के सामूहिक गायन से मेम साहिबाओं को 'सन्मति' आती है कि नहीं।

दक्षिण भारत और प्रचारसभा--हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि संसद ने दक्षिण भारत हिंदीप्रचार सभा को राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित करने का विधेयक स्वीकार कर लिया। यह सभा दक्षिण में हिन्दी के प्रचार का जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। उसने अपने कार्य से देशवासियों के हृदय में अपना स्थान बना लिया है। ऐसी उपयोगी, प्रतिष्ठित और राष्ट्रसेवी संस्था को अब भारत सरकार ने इस घोषणा से समादृत करके बहुत उचित काय किया है। हम भारत सरकार और सभा को इस अवसर पर बधायी देते हैं और कामना करते हैं कि सभा की और भी अधिक कार्यवृद्धि और श्रीवृद्धि हो, और वह देश के एकीकरण के अपने प्रयास में पूर्णतया सफल हो।

डाक टिकट और हिंदी--संविधान ने हिंदी को भारत की राजभाषा स्वीकार किया है, किंतु डाक विभाग अपने डाक टिकटों पर सामान्यतः हिंदी को स्थान नहीं देता। उसने अभी छः नये पैसे के नये पोस्टकार्ड प्रसारित किये हैं। इनके टिकटों पर इसमें ऊपर अँगरेजी में और नीचे हिंदी में भारत छापा गया है। इसमें इसका मूल्य अँगरेजी के साथ देवनागरी अंकों में भी ६ न० पै० दिया गया है। हम इस न्यायोचित कार्य के लिए डाक विभाग को धन्यवाद देते हैं। किंतु अँगरेजी इस देश की मुख्य भाषा नहीं है। इसलिए यदि भारत टिकट के शीर्ष पर लिखा जा तो हमारी सम्मति में अधिक उपयुक्त होगा।

स्मारक टिकटों के सम्बन्ध में डाक विभाग की नी स्पष्ट नहीं मालूम होती। अभी हाल ही में उसने कु स्मारक टिकट प्रसारित किये हैं। इनमें दादाभाई न रोजी के स्मारक टिकट पर उनका नाम अँगरेजी और हिं दोनों में छापा गया है, किंतु ऐनी बीसेंट के टिकट पर उन नाम केवल अँगरेजी में छपा है। इसी प्रकार वन-जीव सम्बन्धी जो टिकट प्रकाशित किये गये हैं उनमें जानव के नाम केवल अँगरेजी में हैं। संविधान के सम्मान उसके द्वारा घोषित राजभाषा में टिकटों पर नाम, मू आदि यदि हिंदी ही में नहीं तो हिन्दी में भी छापना उ है। हम आशा करते हैं कि डाक विभाग इस सुझाव गंभीरता से विचार करेगा।

यह भीषण सैनिक बजट--संसार में इस समय सबसे बड़ी सैनिक शक्तियाँ हैं : अमरीका और रूस। यह जानना आवश्यक है कि ये देश अपनी सैनिक बढ़ाने और बनाये रखने के लिए क्या व्यय करते हैं। के अधिकृत आँकड़े तो हमें प्राप्य नहीं हैं, किंतु अगले के लिए अमरीका के संसद (कांग्रेस) ने सेना का जो स्वीकार किया है, वह हमारे सामने है। एक डालर ल पौने पाँच रुपये के बराबर होता है। १९६३-६४ के अमरीकन सेना के व्यय के लिए ४७,३३,९७,०७, डालर स्वीकार किये गये हैं अर्थात् ४७ अरब, ३३ करो ९७ लाख सात हजार डालर। यदि इन्हें रुपयों में जाय तो होंगे रु० २,२४,८६,३६,०८,२५०। संसार महान् शक्ति होने के लिए राष्ट्र को कितना खर्च क पड़ता है। और वह राष्ट्र कितना समृद्धिशाली होगा एक वर्ष में इतना धन केवल सेना पर खर्च कर सके।

मध्यकालीन हिन्दी कोश-साहित्य

डा० अचलानन्द जखमोला एम० ए०, डी० फिल्०

आधुनिक परिभाषा में कोशों को मूलतः संदर्भ-ग्रंथ माना गया है, जिनमें किसी भाषा या उसके विशेष के भिन्न-भिन्न शब्दों का वर्णक्रम, अखरौटी, ारण, अर्थ, प्रयोग, निरुक्ति और व्याकरणिक रूपों यासम्भव निर्देश रहता है। विस्तृत कोशों में शब्दों बद्ध सूचनायें साहित्यिक उद्धरणों द्वारा भी पुष्ट ाती हैं।

ारतीय प्राचीन साहित्य में कोश-रचना का कार्य न व्यापक रूप से हुआ परन्तु इन समस्त कोशों का भूत लक्षण 'शब्दों का संग्रह' है। संस्कृत भाषा में कोश, हेमीकोश, मेदिनी, घनंजय, हलायुध, कल्पद्रुम कोश इसी मूलभूत लक्षण पर निर्मित हैं।

ंस्कृत कोशों के अनुकरण पर मध्यकालीन हिन्दी में अनेकानेक कोश-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ परन्तु र समुचित प्रकाश अभी तक न पड़ पाया।

स्तालीक लिपि में बद्ध हिन्दी-फारसी-अरबी 'खालिक़बारी' को अद्यावधि सभी विद्वान् प्रसिद्ध ुसरो कृत मानते आये हैं परन्तु पिछले कुछ उसके यथार्थ कृतित्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लग है। 'डिंगलनाममाला' (१५६१ ई०) का रचयिता हरराज माना जाता है। यह २७ छन्दों का एक ा डिंगल कोश है। अष्टछाप के प्रसिद्ध वैष्णव न्ददास ने सन् १५६८ ई० में 'नाममाला' और र्थ' नामक दो कोश रचे, जिनकी सर्वाधिक प्रकाशित स्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। गरीबदास कृत प्रबोध' (१६१५ ई०) सन्तसाहित्य की साधना-शब्दावली का छोटा सा कोश है। विनयसागर य ने 'अनेकार्थनाममाला' (सन् १६४६ ई०) कोश के १६९ दोहों में शब्दों के कई अर्थ द्ध किये हैं। 'मानमंजरी' (१६६८ ई०) कोश रयिता बद्रीदास हैं। २६३ दोहों युक्त यह कोश बद्ध शैली में निर्मित है जिसमें नन्ददास की माला' के अनुकरण पर मानकथा का भी संगुम्फन गया है।

तुहफ़तुलहिन्द' (सन् १६७५ ई०) नस्तालीक में बद्ध एक अनुपम ग्रंथ है। मिर्जा खाँ द्वारा विरचित इस विशाल ग्रंथ के खातिमा (परिशिष्ट) अंश 'लुगतये-हिन्दी' में लगभग साढ़े तीन हजार हिन्दी शब्दों के फारसी तदर्थी और व्याख्यायें प्रस्तुत की गयी हैं। एक कोश में आवश्यक समस्त उपादानों की दृष्टि से यह ग्रंथ यथार्थ में हिन्दी का सर्वप्रथम सम्पूर्ण कोश है। गुमनाम लेखक कृत **'अल्लाखुदाई'** खालिक़बारी की ही भाँति हिन्दी शब्दों के अरबी-फारसी रूप छन्दबद्ध करनेवाला छोटा सा कोश है। मियाँ नूर कृत **'प्रकाशनाममाला'** (१६९७ ई०) अमरकोष के ढंग पर निर्मित पद्यबद्ध कोश है। हमीरदान रतनू ने **'हमीरनाममाला'** (सन् १६१७ ई०) के ३११ छन्दों में पर्याप्त डिंगल शब्दों को संकलित किया है। वीरभाण कृत **'एकाक्षरी-नाममाला'** (१७३० ई०) के अन्तर्गत कुछ अक्षरों के अनेक अर्थ छन्द-बद्ध हैं। रीति-शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य भिखारीदास ने **'नामप्रकाश'** नामक कोश अमरकोश के ही आधार पर निर्मित किया। **'सुबोध-चन्द्रिका'** (सन् १७४३ ई०) का रचयिता फकीर-चन्द था। १०२१ छंदोंयुक्त इस एकाक्षरी कोश में देवनागरी अक्षरों के अनेक अर्थ छन्दबद्ध हैं। बालकराम-कृत **'विश्वनाममाला'** (१७५० ई०) एक परम्पराबद्ध समानार्थी कोश है। कनककुशल प्रणीत **'लखपतमंजरी नाममाला'** के अन्तिम अंश में कुछ अव्यय अक्षरों के अनेक अर्थ और व्याकरणिक प्रयोग दिये गये हैं। हरिचरणदास ने अमरकोश के ही अनुकरण पर अपने कोश **'कर्णाभरण'** की सृष्टि सन् १७८१ ई० में की।

डॉ० गिलक्राइस्ट कृत **'ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश'** (१७८६ ई०) अंग्रेजी वर्णक्रम पर नियोजित होने के कारण हिन्दी कोश विज्ञान के क्षेत्र में एक नवीन दिशा का सूत्रपात करता है। चेतनविजय ने **'आतमबोधनाममाला'** (सन् १७९० ई०) में शब्दों के पर्याय गिनाने के अतिरिक्त आध्यात्म ज्ञानविषयक चर्चा भी चलायी है। **'पारसीपारसातनाममाला'** (सन् १८०० ई०) के रचयिता कुँवर कुशल सूरी ने प्रस्तुत कोश में खालिक़-बारी और अल्लाखुदाई द्वारा व्यवहृत पद्धति पर हिन्दी फारसी तदर्थी शब्दों को छन्दबद्ध किया है।

टेलर और हण्टर के युगल प्रयासों से प्रणीत **'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश'** (१८०८ ई०) कई दृष्टियों

से एक युगप्रवर्तनकारी कोश है। शब्दों के भाषा संकेत, व्याकरणिक टिप्पणियाँ, व्युत्पत्ति, और व्यापक अर्थों के लिए यह एक पूर्ण कोश है। चन्दनराम का **'अनेकार्थ'** (१८०९ ई०) एक परम्पराबद्ध कोश है। सागर ने सन् १८२०ई० के लगभग **'धनजीनाममाला'** और **'अनेकारथी'** नामक दो कोशों की रचना द्वारा हिन्दी कोशों को गति प्रदान की। पादरी आदम साहिब का संग्रह किया हुआ, **'हिन्दवी भाषा का कोष'** (१८२९ ई०) वास्तव में हिन्दी का सर्वप्रथम कोश है। कवि उदैराम ने तीन कोशों—**'अवधान माला'**, **'अनेकारथी'**, और **'एकाक्षरीनाममाला'**—के निर्माण द्वारा हिन्दी शब्द भाण्डार की अभिवृद्धि में श्लाघनीय योगदान दिया। इनके साथ-साथ हिन्दी कोशों का एक युग समाप्त हो जाता है।

विवेचन की स्पष्टता के लिये उपर्युक्त सभी कोशों को शब्द संकलन, भाषा और अर्थ, इन तीन मुख्य आधारों पर विभाजित किया जा सकता है।

शब्द संकलन की दृष्टि से इन कोशों के पुनः तीन स्वरूप उपलब्ध होते हैं—समानार्थी, अनेकार्थी और वर्णक। **समानार्थी कोशों** में पर्याय शब्दों को छन्दबद्ध किया गया है। ये पर्याय शुद्ध आंशिक या अस्पष्ट और अशुद्ध सभी प्रकार के हैं। इन्हीं समानार्थी कोशों में चार कोश—प्रकाशनाममाला, नामप्रकाश, कर्णाभरण और उमरावकोश—अमरकोश पर आधारित होते हुए भी पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्र रचनायें मानी जा सकती हैं। तीन नाममालायें नन्ददासकृत नाममाला, बद्रीप्रसाद विरचित मानमंजरी और नाममाला 'ख'—भी समानार्थी कोश ही हैं, परन्तु इनकी एक विशिष्टता यह है कि इनमें प्रच्छन्न रूप से नायिका (राधा) की मान कथा का भी संगुम्फन किया गया है।

नन्ददासकृत अनेकार्थं, विनयसागर विरचित अनेकार्थनाममाला, चन्दनराम द्वारा निर्मित अनेकार्थ और सागर कवि प्रणीत 'अनेकारथी' एवं उदैराम द्वारा लिखा गया 'अनेकारथी' **शब्दों के नानार्थ देनेवाले कोश** हैं। प्रकाशनाममाला, नामप्रकाश और उमरावकोश के तृतीय काण्ड में भी एक-एक अनेकार्थ वर्ग समाविष्ट हैं। इन नानार्थी कोशों में स्पष्ट, शुद्ध या रूढ़ अर्थों के अलावा कुछ अनिश्चित अर्थ भी संकलित किये गये हैं। कनककुशलकृत लखपतमंजरीनाममाला, वीरभाण विरचित एकाक्षरीनाममाला, फकीरचन्द प्रणीत सुबोधचन्द्रिका तथा उदैराम द्वा
निर्मित एकाक्षरीनाममाला, एकाक्षर कोश है जिन
शब्दों के अनेक अर्थ न देकर द्वादश वर्णों में से कुछ
अनेक अर्थ छन्दबद्ध किये गये हैं।

वर्णक एक प्रकार के विशिष्ट कोश हैं जिनके अन्त
कविता में प्रयुक्त होनेवाली शब्दावली, उपमानभ
तथा रूढ़ प्रयोगों की लम्बी तालिका (वर्णना) क्रमि
रूप से प्रस्तुत की गयी है।

वर्गीकरण का दूसरा आधार भाषा का है। चा
अनुवादित कोशों को **'भाखा'** या **'ब्रजभाषा'** का को
कहा गया है। तुहफत में भी मध्यकालीन ब्रजभाषा
ही शब्दावली संगृहीत है। पादरी आदमकृत 'हिन्द
कोश' के अतिरिक्त 'ख़ालिक़बारी' और 'अल्लाखुदाई'
में भी कई बार **'हिन्दवी'** शब्द प्रयुक्त हुआ है। य
में इन कोशकारों ने 'भाखा' या 'हिन्दवी' शब्द को हि
के पर्याय रूप में ही लिया है। गिलक्राइस्ट और टे
के कोशों को **'हिन्दुस्तानी'** नाम दिया गया है। हिन्दुस्ता
से इनका तात्पर्य 'उर्दू' से था। 'डिंगल कोशों'
डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश, हमीरनाममा
अवधानमाला तथा नाममाला 'क' जैसे समानार्थी को
के अतिरिक्त उदैरामकृत 'अनेकारथी' और एकाक्षरीना
माला और वीरभाण विरचित एकाक्षरीनाममाला है
इनके अन्तर्गत समाविष्ट शब्दावली तत्कालीन डिंगल
राजस्थानी साहित्य से सम्बद्ध है।

द्विभाषीय कोशों के दो प्रमुख भेद किये जा सकते हैं
(१) पद्यबद्ध और गद्यबद्ध कोश तथा (२) हिन्दी फ़ा
और हिन्दी अँग्रेजी कोश। ख़ालिक़बारी, अल्लाखुदाई
पारसीपारसातनाममाला पद्यबद्ध द्विभाषीय कोश हैं औ
तुहफ़त, वाकेबुलरी तथा टेलर की डिक्शनरी गद्य
द्विभाषीय कोश। पुनः ख़ालिक़बारी, अल्लाखुदाई, पार
पारसातनाममाला और तुहफ़त हिन्दी-फ़ारसी कोश
तथा गिलक्राइस्ट और टेलर के कोश हिन्दी-अँग्रेजी।
भाषीय कोशों में पादरी आदम का 'हिन्दवी भाषा का
प्रमुख है जिसमें हिन्दी शब्दों के अर्थ हिन्दी में ही
गये हैं।

शब्दों से सम्बद्ध सूचनाओं के आधार पर भी को
को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—समस्त समान
कोश **'शब्द' कोश** है, और कुछ द्विभाषीय और ना

'अर्थ' कोश हैं। मिर्जाख़ाँ तथा टेलर के कोशों में से सम्बद्ध प्रत्येक प्रायोगिक, शाब्दिक, पौराणिक, हासिक या इतर प्रसंगों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत होने कारण इनको 'ज्ञान' कोश कहा गया है। इनके अतिरिक्त ऐसे विशिष्ट कोश भी हैं जिनकी शब्दावली अन्य ों के समान काव्य-साहित्य विषयक न होकर किसी दाय या क्षेत्र से ही अधिकांशतः सम्बन्ध रखती है।

विवेच्य कोशों के **शब्द-संकलन सम्बन्धी आधारों** में त के कोश ग्रंथ ही प्रमुख रहे हैं। इनमें से भी कुछ वल अमरकोश से शब्द लिये और अन्यों ने कई कोशों ार को समाहृत किया। पूर्ववर्ती हिन्दी कोशों ने भी र्ती कोशों को शब्द सम्पति प्रदान की। साहित्यिक और जनजीवन में प्रचलित शब्दावली के अतिरिक्त कोशकारों ने अपने व्यक्तिगत ज्ञान और रुचि के ार पर भी शब्दों का संकलन किया।

ब्दावली के परिमाण सम्बन्धी कोई निश्चित धारणा शकारों ने नहीं अपनाई। सामान्यतः साहित्य या वन में प्रचलित एक ही शब्द के अनेकानेक रूप उपलब्ध होते हैं। पर्यायों की भी अधिक से अधिक वढ़ाने के फेर में ये सभी कोशकार रहे हैं। हरि-सकृत कर्णाभरण, और सागर प्रतीत धनजीनाम में अपेक्षाकृत कुछ मुख्य पर्यायों के संकलित करने त् अन्य पर्याय निर्मित होने के नियम मात्र निर्दिष्ट िये गये हैं।

ब्दावली का विभाजन कई आधारों पर किया जा है। **भाषा के आधार पर** देखने से संस्कृत के प्रचलित-ित शब्दों के अतिरिक्त तद्भव या भाषा के शब्द मात्रा में मिलते हैं। कुछ कोशों में स्थानिक, प्रान्तीय छ विदेशी शब्द भी पर्यायबद्ध किये गये हैं। **व्या-क दृष्टि से** विभाजन करने के उपरान्त ज्ञात होता समस्त समानार्थी या अनेकार्थी कोशों में 'नाम' की प्रचुरता मिलती है उसके पश्चात् विशेषण का स्थान सीमित क्षेत्र होने के कारण इन कोशों में क्रिया, सर्व-क्रिया-विशेषण या अव्यय आदि शब्दों के लिए कोई न था। द्विभाषीय कोशों तथा आदमकृत हिन्दवी में आधुनिक कोशों के ही समान सभी प्रकार के शब्द लन किये गये हैं। कोशों में समाविष्ट प्रचुर नाम-ों की अर्थ की दृष्टि से भी विभाजित किया जा सका है यथा पिता के नाम पर पड़नेवाले नाम शब्द माता, पति, पत्नी, गोत्र या वंश, देश राशि या नक्षत्र, प्राचीन कथानक, कर्म एवं रूप या आकार के नाम पर पड़ने वाले नाम शब्द इत्यादि।

संस्कृत कोशों के अनुकरण पर निर्मित समस्त समानार्थी या अनेकार्थी कोशों की शब्दावली परम्पराश्रुत रूढ़ तथा धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों से ही मूलतः सम्बद्ध है। इन कोशों में मुख्यतया देवता, अवतार, आध्यात्म धर्म और अधिक हुआ तो सामाजिक या तत्कालीन शासन सम्बन्धी वा आश्रम वर्ण-व्यवस्था विषयक शब्दों के ही पर्याय दिये गये हैं। समानार्थी कोशों का संकुचित दृष्टिकोण होने के कारण इनमें अधिकांशतः ऐसे शब्द ही अधिक आये हैं जिनमें अधिक से अधिक पर्याय मिल सकें। द्विभाषीय कोशों में अपेक्षाकृत अनेकानेक प्रकार के शब्द मिलते हैं। यह सब होते हुए भी काव्य साहित्य से इतर-राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य आदि विषयों से सम्बद्ध शब्दावली का संकलन किसी भी कोश में नहीं किया गया है, यह इनकी सबसे बड़ी न्यूनता है।

शब्दों की **रूप सम्बन्धी व्यतिक्रमता** सभी कोशों में मिलती है परन्तु विवेच्य काल में हिन्दी शब्दों का कोई परिनिष्ठित रूप न होने के फलस्वरूप ही ऐसा हुआ है। पुनः इन समस्त कोशों में काव्य साहित्य या जनजीवन में प्रचलित रूपों को ही तद्वत् अंकित करके लोभवश भी व्यतिक्रमता उपस्थित हुई है।

शब्दों की **उच्चारण व्यवस्था** का कोई प्रयास इन कोशों में नहीं है। शब्दों के व्यवहार प्रयुक्त उच्चारण का अंकन अपवादस्वरूप दो-एक स्थलों पर आया है। विदेशी कोशकारों ने हिन्दी शब्दों का उच्चारण विदेशी लिपि के माध्यम से प्रस्तुत किया। गिलक्राइस्ट और टेलर के द्विभाषीय कोशों में रोमन लिपि के माध्यम से और मिर्जा के तुहफतुलहिन्द में फारसी ध्वनियों के द्वारा हिन्दी शब्दों के उच्चारण दिये गये हैं।

तुहफतुलहिन्द की सर्वप्रमुख विशेषता इसमें दी गयी हिन्दी या **ब्रजभाषा ध्वनियों की उच्चारण व्यवस्था तथा अनुलेखन एवं लिप्यन्तरण व्यवस्था** का प्रतिपादन है। हिन्दी शब्दों का उच्चारण ही नहीं प्रत्युत देवनागरी वर्णों की बनावट का भी पूर्ण प्रतिपादन इस अनुपम कोश ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन और

कष्टसाध्य श्रम के उपरान्त मिर्जा ने देवनागरी ध्वनियों के विश्लेषण के क्षेत्र में जो श्लाघनीय प्रयास किया उसका ऐतिहासिक ही नहीं, वरंच वैज्ञानिक महत्त्व भी है।

शब्दों का नियोजन विवेच्य कोशों में चार प्रकार से किया गया है। अधिकांश कोश संस्कृत कोश के अनुकरण पर **पर्याय शैली** में ही निबद्ध हैं, जिनमें से चार कोशों—प्रकाशनाममाला, नामप्रकाश, कर्णाभिरण और उमराव-कोश—में काण्ड और वर्ग के आधार पर शब्द नियोजित हैं। यह काण्ड और वर्ग-व्यवस्था संस्कृत के अमरकोश के ही समान हैं। इनमें से प्रकाशनाममाला को छोड़कर शेष तीन कोशों में छन्द के अन्त में कुल पर्यायों की परिगणना भी कर दी गयी है। डिंगलनाममाला, उनमें प्रबोध, नागराजराजडिंगलकोश, हमीरनाममाला, विश्वनाममाला, आतमबोध-नाममाला, धनजीनाममाला, अवधानमाला नाममाला 'क' और नाममाला 'ग' में कोई काण्ड या वर्ग व्यवस्था नहीं है। इन कोशों में एक अनिश्चित क्रम में शब्दों के पर्याय गिना दिये गये हैं। तीन नाममालाओं—नन्ददास कृत नाममाला, बद्रीदास विरचित मानमंजरी और नाममाला 'ख'—में मानकथा को पुरस्सर करने वाले शब्दों का चयन कर उनके पर्याय दिये हैं। उपर्युक्त तीनों प्रकार की पर्याय शैली पूर्णतः सुस्पष्ट नहीं है और बिना अनुक्रमणिका के किसी भी शब्द की अवस्थिति ढूँढ़ना दुष्कर है।

अनेकार्थी पद्धति पर नियोजित कोशों में से भिखारीदास ने नामप्रकाश में अनेकार्थ वर्ग के मूल शब्दों को संस्कृत अमरकोश के अनुसार अन्त्य वर्णानुसारी पद्धति पर नियोजित किया है। विनयसागरकृत अनेकार्थ नाममाला तथा चन्दनराम द्वारा विरचित अनेकार्थ में पहले सम्पूर्ण दोहे में शब्दों के अर्थ दिये गये हैं, उसके पश्चात् दोहे के प्रथम चरण में, और अंत में दोहे के चतुर्थांश में। नन्ददासकृत अनेकार्थ तथा प्रकाशनाममाला और उमरावकोश के अन्तर्गत संकलित अनेकार्थवर्ग और सागर तथा उदैराम द्वारा विरचित कोशों में शब्दों के अनेकार्थ अस्पष्ट और क्रमविहीन शैली में प्रस्तुत किये गये हैं।

शब्द संकलन की **क्रमहीन और अव्यवस्थित प्रणाली** का एक स्वरूप पद्यबद्ध द्विभाषीय हिन्दी फारसी कोशों में उपलब्ध होता है। इनमें से भी अल्लाखुदाई और पारसी-पारसात-नाममाला में आंशिक क्रम अपनाने की चेष्टा की भी गयी, परन्तु खालिकबारी में यह व्यवस्था अत्यन्त [illegible] नहीं है।

उपर्युक्त सभी कोशों में समाविष्ट शब्दावली छन्दों में बद्ध है, केवल कर्णाभिरण के टीका अंश में १८वीं शती ई० की गद्यशैली का प्रयोग हुआ है। स्मरणीयता के गुण से समन्वित होने के कारण छन्द व्यवस्था रखी गयी है परन्तु इससे गुणों की अपेक्षा दोष ही अधिक प्रसूत हुए क्योंकि पदपूर्ति के आग्रहवश सभी छन्दबद्ध कोशों में भरती के शब्द पर्याप्त संख्या में आ गये हैं। खालिकबारी और अल्लाखुदाई को छोड़कर शेष समस्त कोशों में पर्याय या अनेकार्थ दिये जानेवाले शब्द का नाम शीर्षक छन्द के प्रारम्भ में दिया गया है। छन्दों में बद्ध इन कोशों की एक अन्य प्रमुखता इनमें निहित गौणप्रसंगों की भरमार है। पूर्व उल्लिखित मानकथा के अतिरिक्त नन्ददास कृत अनेकार्थ में ब्रह्म-जीव सम्बन्धी वार्तालाप, कृष्ण की बाल लीला से सम्बद्ध कथाओं का समावेश और प्रार्थना आदि के प्रवचन समाविष्ट किये गये हैं। इस प्रकार की अप्रासंगिक कथायें और उल्लेख उदैरामकृत अवधानमाला और चैतन्य विजय द्वारा विरचित आतमबोधनाममाला, हमीरदान रतनू प्रणीत हमीरनाममाला और फ़कीरचन्द की सुबोध चन्दिका में अत्यधिक रूप से उपलब्ध होते हैं। अनि [illegible] एकाक्षरी कोश में तो इन गौण प्रसंगों की असहनीय अ [illegible] व्यापकता है। ऐसे प्रसंग कोश की दृष्टि से बिल्कुल व्यर्थ ही नहीं, अनावश्यक वृद्धि के कारण नितान्त अनुपयोगी भी हैं।

शब्द नियोजन की अन्तिम पद्धति अक्षरानुक्रम है। विवेच्यकालीन कोशों में इसके तीन मुख्य स्वरूप उपलब्ध होते हैं—आदि वर्णानुसारी पद्धति, अन्त्य वर्णानुसारी शैली और आद्यन्त वर्णों पर नियोजित व्यवस्था। गि [illegible] क्राइस्ट की वाकेबुलेरी अंग्रेजी वर्णक्रम पर, टेलर [illegible] डिक्शनरी उर्दू वर्णक्रम पर और पादरी आदमकृत हिन्दी कोश देवनागरी वर्णक्रम पर नियोजित हैं। एकाक्षरी कोशों में संकलित अक्षर भी क्रमिक रूप से समाविष्ट हैं। [illegible] अन्त्य वर्ण पर केवल भिखारीदासकृत नामप्रकाश का 'अनेकार्थ वर्ग' है। आद्यन्त वर्णों पर मिर्जा खाँ कृत 'तु [illegible] तये हिन्दी' नियोजित हैं। शब्दों के वैकल्पिक रूप, [illegible] कार्थक शब्दों के अर्थ, प्रत्ययान्त, समस्त पद तथा मुहावरे [illegible] पूर्व संकेत आदि के लिए सभी गद्यबद्ध कोशों में विभि [illegible] प्रणालियाँ व्यवहृत हुई हैं।

१९६३

विवेच्य कोशों में केवल शब्द संकलन ही नहीं, अर्थ द्योतन कराने का भी पर्याप्त प्रयास किया गया है। समस्त कोशकारों ने शब्दों के अर्थ समझाने, उनके भावों को व्यक्त करने तथा स्वानुभूत प्रभावों को पाठकों तक प्रेषित करने के कई साधन अपनाये।

व्यापक रूप से विवेच्य कोशों में **अर्थ द्योतन के सत्ताईस** माध्यम उपलब्ध होते हैं। समानार्थी कोशों में एक शब्द के कई पर्याय संकलित कर मूल शब्द जनित अर्थ को समझाया गया है। द्विभाषीय कोशों में विदेशी शब्दों के माध्यम से दूसरे शब्दों में अनुवाद द्वारा, और समानार्थी-अनेकार्थी कोशों में अंग-प्रत्यंग आकार एवं रूप द्वारा मूल शब्दों के अर्थ द्योतन किये गये हैं। अन्य माध्यमों में विवेच्य वस्तु की अन्य सामान्य ज्ञात वस्तु से समानता द्वारा या त, वस्तु के आन्तरिक गुण, परिमाण, व्यवहार एवं स्वभाव, अवस्था और समय आदि बताकर अर्थ द्योतन करना प्रमुख है। विवेच्य वस्तु का प्रयोग, प्रयोगस्थान या प्रयोगकर्ता, प्रयोगार्ह या प्रयोगविधि के उल्लेख द्वारा भी अर्थ स्पष्ट किया गया है। कुछ कोशों में किसी पूर्ण वस्तु का अंश या अंश का पूर्ण बताकर भी वस्तु का अर्थ द्योतन किया गया है। भौगोलिक शब्दावली की दिशा या परिक्रमा आदि तथा कुछ वस्तुओं के आन्तरिक तत्त्व निर्माण-प्रक्रिया एवं उसका ऐन्द्रिक, शारीरिक साहित्यिक रासायनिक आदि प्रभावों या प्रतिक्रियाओं द्वारा भी शब्दों के अर्थ को स्पष्ट कराने की चेष्टा की गयी है। कुछ शब्दों के कारण, उद्गम, स्थिति, दशा या लिंग के निर्देश द्वारा भी अर्थ अधिक स्पष्ट किया गया है। अन्य शब्दों के सापेक्षिक रूपों को प्रस्तुत करने से भी अर्थ देने की चेष्टा इन कोशकारों ने की है। पारिवारिक सम्बन्धों का माध्यम इन समस्त कोशों में सर्वाधिक प्रचलित और व्यापक रहा है, जिसके आधार पर अनेक शब्दों के अर्थ व्यक्त किये गये हैं। इन्हीं पारिवारिक सम्बन्धों से मिलता-जुलता पौराणिक सम्बन्ध भी है। व्यावसायिक कार्य बताकर भी विभिन्न स्थलों पर अर्थ स्पष्ट किये गये हैं। कहीं-कहीं व्यक्तिवाचक शब्दों के सामान्य जातिबोधक शब्दों द्वारा भी अर्थ अभ्युपगत कराया गया है। उदाहरणों का माध्यम सभी कोशकारों के लिए अर्थ देने का एक प्रमुख साधन रहा है। अन्तिम माध्यम नकारात्मक प्रणाली है, जिसके आश्रय से अवतार या देव विषयक शब्दों के पर्याय निर्मित किये गये हैं।

तुहफ़तुलहिन्द और टेलरकृत डिक्शनरी को छोड़कर शेष समस्त द्विभाषीय कोशों में हिन्दी शब्दों के विदेशी तदर्थी देने के अतिरिक्त अर्थ द्योतन की अन्य प्रणालियों का उपयोग बहुत कम मात्रा में हुआ है। एकाक्षरी-कोशों में केवल कुछ वर्णों के भिन्न-भिन्न अर्थ प्रस्तुत हैं जिनका अर्थ की दृष्टि से अधिक महत्त्व नहीं। अनेकार्थी कोशों में भी परम्परागत शब्दों के कई रूढ़ अर्थ छन्दबद्ध हैं अतः इनमें आंशिक अर्थ ही मिलते हैं। समानार्थी कोशों में संकलित पर्यायों का आधार अर्थ संयुक्त अवश्य है। फिर भी इन सभी कोशों में शब्द संकलन प्रधान रूप से और अर्थ द्योतक तत्त्व गौड़ रूप में ही आये हैं। इस क्षेत्र में मिर्जा खाँ कृत तुहफ़तुलहिन्द का लुग़तये हिन्दी और टेलर द्वारा विरचित 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' अत्यन्त उपादेय कोश-ग्रन्थ है। तुहफ़त में तो पिछले सत्ताईस माध्यमों में से कुछ को छोड़कर अन्य सभी का प्रयोग किया गया है। इस दृष्टि से यह हस्त-लिखित कोश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

व्युत्पत्ति के क्षेत्र में कहीं तो भाषा का नामांकन मात्र है, और अन्यत्र मूल क्रिया रूप या संस्कृत रूप दिये गये हैं। अन्य कोशों में भी कहीं समास-विग्रह द्वारा और अन्यत्र बहुव्रीहि समास के माध्यम से या नामों का मूल उद्‌गम बताकर व्युत्पत्ति के आंशिक प्रयास किये गये हैं।

व्याकरणिक टिप्पणियों के लिए टेलर तथा पादरी आदम के कोश में पूर्ण रूप से सभी शब्दों के शब्द-भेद दिये गये हैं। अन्यत्र आंशिक लिंग मात्र का संकेत, वचन का उल्लेख या लब्धार्थक रूप प्रस्तुत हैं। मिर्जा के लुग़त में अकालक्रियाओं के आज्ञार्थक रूप ही अधिकतर मिलते हैं।

इन कोशों में **भारतीय संस्कृति विषयक तत्त्वों** की छानबीन का प्रयास करने के उपरान्त दो प्रकार के तत्त्व उद्भूत होते हैं—शास्त्रीय संस्कृति से सम्बद्ध तत्त्व और लौकिक संस्कृति विषयक संकेत।

सभी कोशों में भारतीय देवी-देवताओं तथा अवतारों से सम्बद्ध शब्दों के पर्याय अधिकांश मात्रा में संकलित हैं। रामायण तथा महाभारतकालीन नायक-नायिकाओं की चरितगाथायें तथा कृत्यों का उल्लेख मिर्जा खाँ और टेलर के कोशों में बहुलता से मिलता है। इसी प्रकार इन विदेशी कोशकारों ने भारतीय पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी

पर्याप्त विस्तार से किया है। मिर्जा ने बार-बार हिन्दुओं की धार्मिक प्रथाओं व एत्तिकाद (धार्मिक बिश्वास) का प्रसंग कई शब्दों के अर्थ देते समय दिया है। इसके अतिरिक्त भारतीय वन, पर्वत व नदियों की महत्ता तथा पशु-पक्षियों के उल्लेख या पर्याय कई कोशों में मिलते हैं। कुछ कोशकारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक एवं आध्यात्मिक तत्वों की व्यंजना भी की है।

लोक संस्कृति में वर्णव्यवस्था, आश्रमों का संकेत, उत्सव और त्यौहारों का विवरण, मनोविनोद सम्बन्धी शब्दावली, भारतीय संगीत और हिन्दुओं के संस्कारों का उल्लेख इन शब्दमालाओं वा उनसे निहित व्याख्याओं से प्रतिध्वनित होता है। भारतीय स्त्री-पुरुषों द्वारा पहने जानेवाले वस्त्रों वा अलंकारों का भी प्रचुरता से वर्णन मिलता है, विशेषतः मिर्जा ने 'ज़नाने हुनूद' (भारतीय महिलाओं) के वस्त्रों तथा प्रासाधन और अलंकरण सामग्री के वर्णन में विशेष रुचि ली है। ऐतिहासिक संकेत और प्रशासनिक शब्दावली अपेक्षाकृत कम उपलब्ध होती है। ज्योतिरीश्वरकृत 'वर्णरत्नाकर' नामक वर्णक कोश में भारतीय राजाओं की दिन-चर्या विषयक बड़ी सजीव व चित्रात्मक शब्दावली मिलती है। यह सब होते हुए भी संस्कृति सम्बन्धी समस्त संकेत प्रायः प्रत्येक कोश में अप्रत्यक्ष रूप से ही आये हैं। कोशकारों का मूल ध्येय शब्द-संग्रह ही था। यह दूसरी बात है कि इन कोशों की शब्दावली ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों से सम्बद्ध न होकर केवल धार्मिक और आंशिक रूप से लौकिक है। मिर्जा और टेलर के कोश एक भिन्न संस्कृति के पोषक अध्येताओं के निमित्त रचे गये थे अतः स्वाभाविक है कि मध्यकालीन भारतीय संस्कृति की प्रचुर सामग्री उक्त दोनों कोशों में उपलब्ध होती है।

नवोदित कवि और कवि बनने के इच्छुक व्यक्ति संस्कृत कोशों की क्लिष्टता और जटिलता के कारण शब्दों के पर्याय या अनेकार्थ नहीं जान पाते थे। उन्हीं के निमित्त इन **कोशों की रचना** की गयी। हिन्दी फारसी कोश फारसी अध्येताओं और हिन्दी-अंग्रेजी कोश भारत में आनेवाले यूरोपीय शासकगण और उच्च सैनिक पदाधिकारियों के निमित्त रचे गये थे। संस्कृत कोशों की व्यावहारिक उपादेयता को दृष्टि में रखते हुए ही समस्त अनेकार्थी और समानार्थी कोश भी छन्दों में ही रचे गये ताकि उनको कंठाग्र किया जा सके। परन्तु इन कोशों को कितने अध्येताओं ने कंठाग्र किया और कितने कवियों ने इनका उपयोग अपनी काव्य-साधना के लिए किया, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इनके उचित उपयोग में न आने का मुख्य कारण यह भी था कि सभी समानार्थी और अनेकार्थी कोश प्रायः किसी न किसी संस्कृत कोश पर आधारित हैं। अतः शब्दों के पर्याय या कई अर्थ जानने के इच्छुक शब्द-प्रेमियों ने मूल संस्कृत कोशों का ही अध्ययन करना श्रेयस्कर समझा, जो निस्सन्देह अधिक शुद्ध और प्रामाणिक थे। पुनः विवेच्य हिन्दी कोशों का विज्ञापन और प्रचार भी नहीं हो पाया, जिससे उनको समुचित रूप से स्वीकृत और गृहीत नहीं किया जा सका।

संस्कृत कोशों की आधारभित्ति पर निर्मित होते हुए भी इन कोशों में कई नितान्त **मौलिक** और नवीन **पक्ष** हैं। समस्त द्विभाषीय कोश तो संस्कृत परम्परा का परित्याग कर एक स्वनिर्मित दृढ़ शिला पर आधारित हैं। मिर्जा ख़ाँ कृत तुहफ़तुलहिन्द का 'लुग़तये हिन्दी' अंश प्रत्येक दृष्टि से एक सर्वथा मौलिक कोश है जिसके निर्माण में मिर्जा ने पूर्ववर्ती समस्त कोशों की उपलब्धि का पूर्ण परित्याग कर एक विशुद्ध नवीन दृष्टि का उपयोग किया।

निष्कर्ष यह कि विवेच्य कोशों का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, अनेकानेक भाषा-सम्बन्धी, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संकेतों से पूर्ण ये समस्त कोश हिन्दी भाषा के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, अनुपेक्षणीय एवं परम उपयोगी ग्रंथ भी हैं।

मुगलकालीन सैन्य-व्यवस्था

श्री गोस्वामी बालक, सा० रत्न

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महत्त्वाकांक्षी मुगल सम्राट् अकबर के समक्ष दो प्रधान समस्याएँ थीं—भारतवर्ष में मुगल सत्ता को स्थायी बनाना और मुगल साम्राज्य का विस्तार करना, और इन दोनों की पूर्ति के लिए एक विशाल संगठित सेना की नितांत आवश्यकता थी। अकबर की प्रतिभा इस महान् आवश्यकता की पूर्ति में संलग्न हुई और एक सुसंगठित व्यवस्था का आयोजन हुआ जो आवश्यकतानुसार थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ मुगलों के अंतिम दिनों तक चलती रही।

इस विराट् सेना का एक बहुत साधारण अंश स्वयं सम्राट् द्वारा नियुक्त होता था। अधिकांश सामंतों और सरदारों द्वारा एकत्रित किया जाता था। जब कोई व्यक्ति सैनिक बनना चाहता था, तो वह एक स्वामी ढूँढ़ता था। अधिकतर लोग अपने क्षेत्र के या अपनी ज़ाति के किसी सामंत या सरदार के यहाँ जाते थे और उसकी सेना में भर्ती हो जाते थे। ईरानी सरदार के अंतर्गत ईरानी, पठान के अंतर्गत पठान, मुगल के यहाँ मुगल, राठौर के यहाँ राठौर और कछवाहा के यहाँ कछवाहा सैनिक एकत्र होते थे। साधारणतया ये सैनिक अपना निजी घोड़ा ले आते थे। कभी-कभी समृद्ध व्यक्ति अपने संबंधियों के लिए भी घोड़ा खरीद देते थे। सैनिक बहुधा अपने सरदार से ही घोड़ा उधार खरीद लेता था और अपने वेतन से मूल्य चुका दिया करता था। इन सरदारों का पद इस बात पर निर्धारित होता था कि वे कितने सैनिक अपनी सेना में रखते हैं या रख सकते हैं। इन सरदारों को 'मनसबदार' कहते थे।

'मनसब' शब्द का प्रयोग केवल सैनिक सेना ही के लिए नहीं होता था। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी जो एक साधारण सैनिक या दूत से ऊँचे पद का होता था, चाहे वह सैनिक हो या दूसरे विभाग का कर्मचारी, मनसबदार ही कहलाता था। मनसबदार कई वर्गों में विभाजित था। यों तो १० (दस) से लेकर १०,००० (दस हजार) तक का मनसब रखा गया था और कुल मिलाकर ६६ (छियासठ) वर्ग बनाये गये थे; परन्तु २० (बीस) से ७००० (सात हजार) तक के कुल २७ (सत्ताईस) वर्गों का ही प्रयोग किया जाता था। ७००० (सात हजार) का मनसब सबसे ऊँचा माना जाता था। इससे ऊपर ५०००० (पचास हजार) तक के मनसब होते थे, जो सिर्फ शहजादों को ही दिये जाते थे।

प्रत्येक मनसबदार का वेतन निश्चित था। साथ ही यह भी निश्चित था कि किस वर्ग का मनसबदार कितने घोड़े, हाथी, बोझा ढोनेवाले पशु तथा गाड़ियाँ रखेगा। उदाहरणस्वरूप एक पाँचहजारी मनसबदार को ३४० (तीन सौ चालीस) घोड़े; जिनमें ३४ (चौंतीस) ईराकी, ३४ (चौंतीस) मुजन्नस, ६८ (अरसठ) ताज़ी, ६८ (अरसठ) याबू, ६८ (अरसठ) तुर्की और ६८ (अरसठ) जंगला हों; १०० (एक सौ) हाथी, जिनमें २० (बीस) शेरगीर, ३० (तीस) सादा, २० (बीस) मझोला, २० (बीस) कढ़ा और १० (दस) फन्दुकिया हों; ४०० (चार सौ) ऊँट, १०० (एक सौ) खच्चर और १६० (एक सौ साठ) गाड़ियाँ रखनी पड़ती थीं और उसे २८००० (अठाइस हजार) रुपया मासिक वेतन मिलता था। इसी वेतन में वह इन सब का खर्च भी चलाता था और शेष उसकी व्यक्तिगत आय होती थी।

मुगलों की सैनिक शक्ति प्रधानतया घुड़सवारों पर ही आधारित थी। धीरे-धीरे जब अधिक घुड़सवारों की आवश्यकता पड़ने लगी, तो मनसबदारों को अतिरिक्त सवार रखने की आज्ञा मिली। इन अतिरिक्त सवारों का वेतन उन्हें अलग से मिलता था। इन सवारों के आधार पर फिर वर्गीकरण होने लगा। मनसबदारों का वास्तविक पद 'जात' कहलाता था और अतिरिक्त सवार 'सवार' कहलाता था। जिस मनसबदार का 'जात' और 'सवार' बराबर होता था, वह प्रथम श्रेणी का, जिसके 'सवार' 'जात' से कम परन्तु आधे तक होते थे, वह द्वितीय श्रेणी का और जिसके 'सवार' 'जात' से आधे से भी कम होते थे, वह तृतीय श्रेणी का मनसबदार कहलाता था। प्रथम श्रेणी का पाँचहज़ारी मनसबदार ३०,००० (तीस हजार) रुपया मासिक वेतन पाता था, द्वितीय श्रेणी का २९,००० (उनतीस हजार) रुपया

और तृतीय श्रेणी का २८,००० (अठाइस हजार) रुपया। धीरे-धीरे इनका वेतन कम होने लगा था। अकबर के समय में मनसबदारों को सवारों के वेतन का केवल ५% (पाँच प्रतिशत) मिलता था; परन्तु शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन-काल में दो-तिहाई और तीन-चौथाई तक हड़प लिया जाता था। फलस्वरूप इन सवारों की वास्तविक संख्या घटने लगी। जहाँगीर के समय में तो मनसब में दिखाये गये सवारों का केवल पाँचवाँ भाग मनसबदार रखते थे। शाहजहाँ नें इस प्रवृति को रोकने का प्रयत्न किया और मनसबदार अपने सवार मनसब के एक तिहाई या एक चौथाई सवार रखने को बाध्य थे। यही नियम अंत तक चलता रहा।

सैनिकों का वेतन उन दिनों 'दाम' में निर्धारित होता था। ४० (चालीस) दाम का एक रुपया होता था। इस प्रकार वेतन सुनने में अधिक जान पड़ता था; पर दिया जाता था रुपयों में ही। जैसे एक सौ रुपये को ४००० (चार हजार) दाम कहकर ही वेतन दिया जाता था। साधारणतः एक सवार का वेतन २०० (दो सौ) रुपया वार्षिक होता था। दो या तीन घोड़े रखनेवाले सैनिक २७५ (दो सौ पचहत्तर) रुपये वार्षिक पाते थे। यह वेतन भी अधिकतर बाकी ही रहा करता था। इतने अधिक सैनिक नियुक्त थे कि उनका वेतन चुकाना कठिन था। इसलिए मनसबदारों का वेतन प्रायः बाकी रहा करता था। इसी कारण मनसबदार भी अपने सिपाहियों को समयानुसार वेतन नहीं दे पाते थे। उधार रखना बुरा नहीं माना जाता था। दूसरे, उन दिनों यह भी भावना थी कि वेतन रुक जाने के कारण सैनिक दूसरे मनसबदार की सेना में नहीं जा सकते थे; परन्तु समयानुकूल वेतन न मिलने के कारण प्रायः सैनिकों में असंतोष और अशांति फैल जाती थी। मुगलशासन के अंतिम दिनों में यह कुप्रबंध पराकाष्ठा को पहुँच चुका था।

मनसबदारों का वेतन उन्हें नकद या जागीर के रूप में दिया जाता था। जागीर में कुछ गाँव या किसी परगने का कर वसूल करने का अधिकार उन्हें मिल जाता था। जागीर पानेवालों की ही संख्या अधिक थी। इसमें दोनों को लाभ था। सुदूर प्रांतों से कर वसूल करने के भार से सरकार छुटकारा पा जाती थी। मनसबदार भी राज्य-कोष का मुँह ताकने की अपेक्षा इन प्रांतों में कर वसूल करना ही अधिक लाभदायक समझता था। जागीर प्राप्त करते समय घूंस देकर बड़ी जागीर प्राप्त कर लेना और उसमें निश्चित से अधिक कर वसूल करना आम बात थी।

वेतन में कई तरह की शाही कटौतियाँ भी होती थीं। नियमों का उल्लंघन करने पर जुर्माना होता था। घोड़े की खराबी, अस्त्र-शस्त्र में कमी, सवारों की संख्या में कमी, इत्यादि अपराधों पर भारी जुर्माना या दंड दिया जाता था। तीन बार से अधिक अनुपस्थिति पर बाकी सारा वेतन जब्त हो जाता था। बीमारी में बीमारी-नामा देना पड़ता था। छुट्टी तीन मास से अधिक किसी को भी नहीं मिलती थी। पेंशन का कोई नियम नहीं था। अवकाश प्राप्त करते समय कुछ दैनिक या मासिक पेंशन बाँध दी जाती थी। साधारणतया मनसबदार जीवन-पर्यन्त अपनी जागीर के स्वामी रहते थे।

मुगल सेना का मुख्य अंग घुड़सवारों का होता था। घोड़ों और घुड़सवारों का भली भाँति निरीक्षण किया जाता था और उन पर निगरानी रखी जाती थी। निरीक्षण के समय दूसरों के अच्छे घोड़े लाकर गिनती करा देने की प्रवृत्ति बहुत प्रचलित थी। अकबर ने इसे रोकने के कई प्रयत्न किये। मनसबदार की, सवार की, और घोड़ों की हुलिया लिखी जाती थी। मनसबदार और सैनिक के नाम, बाप का नाम, जाति, निवास-स्थान, शरीर का रंग, ललाट, भौंह, आँख, कान, नाक, दाढ़ी, कद, तिल या अन्य किसी चिह्न का ब्योरा लिख लिया जाता था। इसी प्रकार घोड़ों की भी हुलिया लिखी जाती थी। घोड़ों की सात प्रधान जातियाँ थीं—(१) अरबी, (२) ईरानी, (३) मुजन्नस, (४) तुर्की, (५) याबू (६) ताज़ी और (७) जंगला।

घोड़ों के गोलमाल से बचने के लिए उन दिनों दाग की प्रथा प्रचलित थी। इसी प्रथा का प्रचार १२वीं शताब्दी में ट्रांसओक्सियाना में भी था। अलाउद्दीन और शेरशाह ने भी इसका प्रयोग किया था। लोहा गर्म करके घोड़े की रान पर एक चिह्न बना दिया जाता था। भिन्न-भिन्न वर्ग के घोड़ों के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न निर्धारित थे। कुछ मनसबदार भी अक्सर अपने घोड़े पहचानने के लिए अपने नाम के पहले या अंतिम अक्षर का दाग घोड़ों पर लगवा लेते थे।

१९६३

मनसबदारों की सेना का निरीक्षण एक निश्चित अवधि के बाद किया जाता था। अमीन, दारोगा, मुशरिफ इत्यादि इस विभाग के कर्मचारी थे। इनका काम था कि उन घोड़ों और सिपाहियों का निरीक्षण करें, उनकी हुलिया का रजिस्टर रखें और उन्हें प्रमाणपत्र दें।

सेना का प्रधान कार्यकर्त्ता मीर बख्शी था; जिसे बख्शीउल मुमालिक भी कहते थे। इसका मुख्य कार्य यह था कि सैनिकों को बादशाह के समक्ष पेश करता था और उचित मनसब की सिफारिश करता था। मनसबदारों की सूची रखना और उन्हें विभिन्न स्थानों पर नियुक्त करना, उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति की सूचना रखना, सैनिकों की भर्ती, महल के रक्षकों की नियुक्ति और उनका विस्तृत विवरण, वेतन के लिए नियम बनाना, दाग और जाँच के समय उपस्थित रहना, मृत्यु और बरखास्तगी का विवरण रखना, नकद पेशगी और उधार का हिसाब रखना और प्रांतीय सूबेदारों के पास लिखित आज्ञा भेजना उसका प्रधान कार्यक्षेत्र था। उसके अंतर्गत तीन और बख्शी थे जो उसकी सहायता करते थे। प्रांतों में भी बख्शी नियुक्त थे।

मनसबदारों और उनके अंतर्गत घुड़सवारों, प्यादों और तुफंगचियों के अतिरिक्त एक वर्ग सैनिक का और था, जिन्हें अहदी कहते थे। ये साधारणतया घुड़सवार थे, बादशाह के साथ रहते थे, और इनका कार्य लगभग अंग-रक्षकों का सा था। ये साधारण सवारों से अधिक दक्ष होते थे; और इन्हें वेतन भी अधिक मिलता था। एक अहदी ४० (चालीस) रुपये से लेकर ५०० (पाँच सौ) रुपये तक मासिक वेतन पाता था। शाहजहाँ के शासनकाल में इन अहदियों की संख्या लगभग ७००० (सात हजार) थी।

मुगल सेना का दूसरा प्रधान अंग पैदल सैनिकों या प्यादों का था। ये प्यादे युद्ध करने में इतने प्रवीण नहीं थे, जितने युद्ध में अन्य सहायक कार्य करने में। इनमें अधिकांश बन्दूकची थे। इनकी संख्या लगभग ४०,००० (चालीस हजार) थी। लगभग १००० (एक हजार) दरबान थे, जो महल की रक्षा करते थे। प्रायः इतने ही खिदमतगार थे, जो बादशाह के घरेलू कार्यों के लिए नियुक्त थे और सदैव दौलतखाने पर उपस्थित रहते थे। इनके अतिरिक्त १००० (एक हजार) मेवड़ा थे, जो मेवाड़ से आये थे और तेज दौड़नेवाले थे। इनसे विशेषतया डाक का काम लिया जाता था। ये बड़े निपुण जासूस होते थे। लगभग १००० (एक हजार) निपुण तलवार चलानेवाले, जिन्हें शमशीरबाज कहते थे, सदैव दरबार में रखे जाते थे। कुछ पहलवान पत्थर फेंकने या शारीरिक बल का काम करने के लिए रखे जाते थे। एक विशेष वर्ग उन सैनिकों का था जो युद्ध में गिरफ्तार कर लिये जाते थे या अनाथ होते थे। इनका भरण-पोषण इनका स्वामी करता था जिसकी सेवा करना ही इनके जीवन का परम लक्ष्य था। ये 'चेला' कहलाते थे और इनपर हर समय निर्भर रहा जा सकता था। इनके अतिरिक्त पालकी, सुखासन, चौडोल और डोली ढोनेवाले कहार भी सैनिक ही समझे जाते थे। सर्वोत्तम कहार बंगाल और दक्षिण से आते थे। बढ़ई, लोहार, भिश्ती, बेलदार और मोचियों की भी एक समुचित संख्या सेना के साथ हरदम तैनात रहती थी। पैदल लड़नेवालों में बन्दूकचियों के अतिरिक्त तीरंदाज भी होते थे जिनकी संख्या काफी थी।

मुगलसेना का तीसरा प्रधान अंग था तोपखाना। अकबर के समय से इस विभाग की ओर ध्यान देना आरम्भ हुआ। पुर्तगाली तोपचियों से मुगलों ने इस कला में दक्षता प्राप्त की थी। औरंगजेब के शासन काल तक इस दिशा में विशेष प्रगति हो चुकी थी। लगभग ७० (सत्तर) भारी तोपों का उल्लेख मिलता है जो मुख्यतया पीतल की होती थीं। इनका दिन में कई बार प्रयोग सम्भव नहीं था। ऐसी तोपें थीं, जिनसे ३५ (पैंतीस) सेर वजन का गोला फेंका जा सकता था। ये तोपें अक्सर दिखावे के लिए होती थीं। इनसे कभी-कभी चलाने वाले को ही चोट लग जाती थी। इनका एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना भी कठिन काम था। इनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती थी। इनके नाम बड़े-बड़े रखे जाते थे। जैसे फतह, लश्कर, गढ़भंजन, बुर्ज शिकन, किशवर-कुशा आदि। हल्की तोपें अधिक उपयोगी थीं, जो प्रायः गाड़ियों पर रक्खी रहती थीं। कुछ ऊँटों पर भी रखी जाती थीं, जिन्हें शुतरनाल कहते थे। ये सब प्रायः बादशाह के साथ चलती थीं। सारी तोपें दिल्ली, आगरा और लाहौर आदि के सुरक्षित किलों

में किलेदारों के संरक्षण में रक्खी जाती थीं। मीर आतिश या दारोग-ए-तोपखाना इस विभाग का अध्यक्ष था। तोपखाने का समुचित प्रबंध और विकास मुगल-सेना में न हो सका। मुगल बादशाह अपना सारा ध्यान घुड़सवारों पर ही केन्द्रित रखते थे। इसीलिए यूरोपीय सेनाओं की तोपों का सामना ये न कर सके।

मुगलसेना में हाथी का प्रयोग लड़ने के लिए और हथिनी का उपयोग सामान ढोने के लिए किया जाता था। हाथी शत्रु को सूँड़ से पकड़कर रौंद डालते थे, चीर देते और उछाल फेंकते थे। किलों के फाटक तोड़ने में भी इनसे सहायता मिलती थी। परन्तु इनका प्रयोग बड़ा खतरनाक था। विजय के वक्त तो इनसे बड़ी सहायता मिलती थी, पर हारते समय ये अपनी सेना को ही रौंद डालते थे। इसीलिए अधिकतर इन्हें पीछे रखा जाता था।

मुगल सैनिक अपनी रक्षा के लिए लोहे का एक टोप पहनते थे। शरीर पर विभिन्न प्रकार के कवच पहनते थे, जिनमें जिरहवख्तर, चहार आईना, जैवाह, जोशन, जिहलय, अँगरखा, चिहिलकद, दगलाह, जायहा-ए-फतही प्रसिद्ध थे। गले में कंठा सोभा, हाथ में दास्ताना, पैर में मौजा-ए-आहनी इत्यादि अन्य वस्तुएँ पहनी जाती थीं। इनके भीतर रुई की गद्दियाँ लगी रहती थीं ताकि शरीर पर चोट न लगे।

अस्त्र-शस्त्र भी कई प्रकार के काम आते थे। तेग, शमशीर, धूप, सिरोही, पटा, गुप्ती इत्यादि, विभिन्न प्रकार की तलवारें, जमघर, खंजर, जमखाक, बांक, बिछवा, पेशकब्ज इत्यादि कटारें, नेजा, बरछा, शंक, बल्लम, प्रभृति भाले अक्सर इस्तेमाल किये जाते थे। कुल्हाड़ी और गदा का भी प्रयोग होता था। ढाल लोहे या चमड़े की होती थी, जिसका व्यास १७ से २४ (सत्रह से चौबीस) इंच तक का होता था। अधिकतर सांभर हिरन, नीलगाय, हाथी और नाक के चमड़े की ढाल बनती थी। मुगल सैनिक धनुष का भी प्रयोग करते थे।

मुगलकालीन धनुष का रौंदा सफेद रेशम के मजबूत धागे का बनता था। तीर के साथ तुक्का का भी प्रयोग होता था, जो बिना नोंक का बाण होता है। तरकश का प्रयोग भी तीरंदाज करते थे। बन्दूक का प्रयोग अकबर के शासनकाल से शुरू हुआ था और १८वीं शताब्दी तक प्रचलित हो गया था।

मुगल सेना का नियंत्रण ढीला था। उनके संगठन का कोई निश्चित नियम नहीं था। मनसबदारों पर ही इसका पूरा भार था। न तो कोई नियमित पोशाक थी और न उनके लिए आवश्यक कसरत थी। आक्रमण और सुरक्षा की न तो कोई शिक्षा दी जाती थी और न कोई अभ्यास ही कराया जाता था। व्यक्तिगत कसरत सैनिकों को सामूहिक आक्रमण में विशेष सहायक न हो पाती थी।

सैनिकों को उत्साहित करने के लिए पुरस्कार और विशेष पदवियाँ भी दी जाती थीं। 'खान' की पदवी आरम्भिक थी। इसके साथ व्यक्ति की योग्यतानुसार उसका नाम भी रखा जाता था; जैसे एखलास खाँ, बहादुर खाँ, मुर्शिदअली खाँ इत्यादि। दूसरे, जो भी दरबार में आता था, उसे योग्यतानुसार खिलअत दी जाती थी। पुरस्कारस्वरूप हीरे-जवाहरात के आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, पालकी, घोड़े, हाथी आदि भी मिलते थे। विशेष सेवा करने पर नौबत बजवाने का अधिकार भी मिलता था; परन्तु यह २००० (दो हजार) सवार से कम के मनसबदार को नहीं दिया जाता था। अलम या झंडा लगाने का अधिकार १००० (एक हजार) सवार से कम के मनसबदार को नहीं मिलता था।

इस विशाल मुगल सेना में सन् १६४८ ई० में लगभग १,८५,००० (एक लाख, पचासी हजार) सवार और ४०,००० (चालीस हजार) पैदल सैनिक थे और इनकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही थी; परन्तु फिर भी मुगल साम्राज्य का विनाश हो ही गया। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण था मुगलों की सैनिक अव्यवस्था। सैनिकों में राष्ट्रीय भावना का अभाव, बादशाह के प्रति स्वामिभक्ति न होना, और मनसबदारों की प्रधानता, इस व्यवस्था के मुख्य दुर्गुण थे। सैनिकों को युद्ध से व्यक्तिगत लाभ बहुत थोड़ा था; घोड़ा उसका अपना था, जिसकी मृत्यु के बाद उसकी जीविका समाप्त हो जाती थी। इसलिए वह युद्ध के लिए तहेदिल से तत्पर नहीं था। सैनिक अपने मनसबदार की मृत्यु के बाद रणक्षेत्र में नहीं रुकता था और सेना के प्रधान की मृत्यु के बाद प्रत्येक सैनिक आगे लड़ना व्यर्थ समझता था। इनका आपसी द्वेष और असहयोग इनकी शक्ति को क्षीण करता गया और १८ वीं शताब्दी में इनकी शक्ति समाप्त हो गयी। केवल ढांचा रह गया था जो एक ही धक्के में धराशायी किया जा सकता था।

स्त्री-धन और उत्तराधिकार

श्री चन्द्रबली त्रिपाठी

सभी प्रकार की संपत्ति के उपार्जन, उसके स्वामित्व एवं उत्तराधिकार का अधिकार पुरुष के समान स्त्री भी प्राप्त हो, यह समाज की आदर्श स्थिति माननी हिए। परिस्थितियाँ अथवा समाज की तात्कालिक स्था के कारण उसमें बहुत कुछ न्यूनाधिक्य आवश्यक नहीं, अनिवार्य भी हो सकता है, परन्तु उस संस्कृति निम्नतम स्तर की समझना चाहिए जिसमें नारी के इस प्रकार के विधान का सर्वथा अभाव हो।

भारतीय संस्कृति के लिए यह कम गौरव की बात नहीं उसके वैदिक काल के आरंभ में पुरुष और स्त्री का संपत्ति के विषय में नहीं था, कम से कम पति और के सम्बन्ध में। यह एक ठोस तथ्य था जिसकी ओर स्तंब धर्मसूत्र के इस निर्देश में स्पष्ट संकेत है कि ह के समय से पति और पत्नी सम्मिलित रूप से कार्य किया करें, सम्मिलित रूप से इन कार्यों का फल करें और पारिवारिक सम्पत्ति पर दोनों का अधि- हो तथा आवश्यकता पड़ जाने पर पति की अनु- ति में पत्नी उसमें से दान भी कर सकती है।[1] उदार तथा व्यापक अधिकार स्त्री को किसी ति में प्राप्त था, इतिहास इसका पता नहीं देता। लित संपत्ति में पति के समान पत्नी का यह धिकार वैदिक नारी के स्वतंत्र वातावरण के सर्वथा ही था।

परन्तु यह ज्ञात नहीं कि पति के मरने पर उस सम्पत्ति उत्तराधिकार उसकी स्त्री को प्राप्त था अथवा नहीं। तः श्री पी० वी० काणे का यह अनुमान संयुक्तिक है त्यंत प्राचीन काल में पति की उत्तराधिकारिणी उसकी नहीं हुआ करती थी, जिसके लिए उन्होंने कालिदास कुंतला नाटक में उल्लिखित पुत्रहीन सेठ के निधन उसकी स्त्री को दाय न देने के निर्णय को आधार माना [2] कालिदास का वर्णन यों है कि सार्थवाह धनमित्र के सामुद्रिक दुर्घटना में निःसंतान मर जाने पर उसकी विशाल संपत्ति के उसकी सेठानी को जाने के स्थान पर दुष्यंत के अमात्य ने उसे राज्यकोश में मिला लेने की राजाज्ञा माँगी थी। दुष्यन्त की इस आज्ञा में कि धनमित्र की विधवाओं में कोई गर्भिणी है इसका पता लगाया जाय[1] पत्नी के उत्तराधिकार के अभाव की सूचना मिलती है। जान पड़ता है कि याज्ञवल्क्य स्मृति की भारतीय व्यवहार शास्त्र में प्रधानता प्रतिष्ठित होन के पूर्व एक सुदीर्घ काल तक स्त्री के उत्तराधिकार की बहुधा यही स्थिति थी, क्योंकि यद्यपि गौतम ने पुत्रहीन की सम्पत्ति पर उसकी विधवा का अधिकार स्वीकार किया है,[2] तथापि आपस्तंब, मनु और नारद ने ऐसा नहीं माना है, और यह उल्लेखयोग्य है कि ई० पू० तीसरी शती के कौटिल्य का भी यही मत है।

दायभाग और मिताक्षरा

भारत के १९४७ में स्वतंत्र होने के पूर्व के तथा पश्चात् के दशक में भारतीय नारी के उत्तराधिकार के विषय में दो-तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिनसे उसका यह अधिकार क्षेत्र विस्तृत हो गया है। किन्तु उसके पूर्व भी प्रायः दो सहस्र वर्षों से भारतीय नारी का सांपत्तिक अधिकार उदार रहा है। जहाँ अधिक प्राचीन काल की अपेक्षा उसके वेदाध्ययन तथा स्वतंत्र रूप से धार्मिक कार्यों के संपादन में अपर काल में संकीर्णता आती गयी, इस द्विसहस्राब्दि में उसके सांपत्तिक अधिकारों में वृद्धि आई। हिन्दू व्यवहार शास्त्र के दो मुख्य संस्थानों--जीमूतवाहन के दायभाग और विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा ने इस व्यवहार-विकास में प्रमुख कार्य किये। याज्ञवल्क्य स्मृति, जो मिताक्षरा का आधार धर्मशास्त्र है, स्त्री की संपत्ति के विषय में उदार धारणाओं की प्रतिष्ठापिका है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि दायभाग की मान्यता बंग देश में तथा मिताक्षरा की शेष भारत में निर्बाध चली आ रही है और उपर्युक्त वैधानिक परिवर्तनों के साथ आज भी समाज तथा न्यायालयों में बर्ती जा रही है।

१—आपस्तंब धर्म सूत्र २–६–१३–१७–१९।
२—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वाल्यूम २, भाग १, ५८२: पी० वी० काणे।

१—शकुंतला नाटक अंक ६
२—गौतम धर्म सूत्र।

सम्मिलित परिवार की सम्मिलित संपत्ति और उसमें उत्तराधिकार की व्यवस्था मिताक्षरा धर्म शास्त्र की अपनी विशेषता है जो दायभाग में विहित नहीं है। मिताक्षरा के अनुसार पुत्र और पौत्र को पैतृक सम्पत्ति में जन्मतः और सदस्यों के समान अधिकार प्राप्त हो जाता है और इस प्रथा में केवल कतिपय पुरुष ही परिगणित होते हैं, जिससे उक्त वैधानिक परिवर्तन के पूर्व की स्थिति में किसी सदस्य के मर जाने पर उसका स्वत्व परिवार के शेष जीवित पुरुष सदस्यों को प्राप्त होता है और उसकी उत्तराधिकारिणी मृत की माता, पुत्री अथवा अन्य कोई स्त्री नहीं होती। परन्तु दायभाग को पिता की सम्पत्ति में पुत्र को जन्मना स्वत्व प्राप्ति स्वीकार नहीं है और न पिता अथवा पितामह के जीवनपर्यन्त पुत्र उस सम्पत्ति का विभाजन करा सकता है। पिता के अधिकार की समाप्ति पर जो उसके निधन, संन्यस्त अथवा पतित हो जाने पर निर्भर है, उसके पुत्र उसका विभाजन कर सकते हैं अथवा स्वेच्छा से पिता स्वयं कर सकता है। दायभाग के अनुसार पति के निधन पर उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसकी पत्नी को प्राप्त हो जाता है, चाहे वह अपने भाइयों के सम्मिलित ही क्यों न मरा हो। मिताक्षरा के अनुसार यद्यपि सम्मिलित सम्पत्ति का दाय पत्नी को प्राप्त नहीं होता, पति की निजी सम्पत्ति उसके पुत्रहीन मरने पर उसकी पत्नी को मिलती है, यहाँ तक कि पुरुष दायादों की अपेक्षा स्त्री दायादों की प्राथमिकता है क्योंकि पत्नी, पुत्री, माता और मातामही इत्यादि दायादों के क्रमशः अभाव में ही मृत के पिता भाई इत्यादि पुरुष दायादों को उसका धन मिल सकता है। दौहित्र अथवा पुत्री का पुत्र मात्र इसका अपवाद है जो पत्नी और पुत्र के ठीक बाद ही आता है, परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि वह पुत्र की श्रेणी में आता है और उसका सम्बन्ध पुत्री अर्थात् नारी के द्वारा ही उत्पन्न होता है। दायभाग में विधवा पुत्री, माता, मातामही, प्रमातामही उत्तराधिकारिणी मानी गयी हैं। इनके सिवाय अन्य किसी स्त्री का उत्तराधिकार उसे मान्य नहीं है।

स्त्री-धन

उपर्युक्त नियमों के अनुसार किसी नारी को दायस्वरूप जो धन उपलब्ध होता है उसमें उसका सर्वाधिकार नहीं होता। यावज्जीवन उसका वह उपभोग कर सकती है, किन्तु उसे न नष्ट कर सकती और न बेच सकती है। अलबत्ता, निर्दिष्ट आवश्यकताओं के लिए उसे बंधक रख सकती अथवा विक्रय और अंशतः दान भी कर सकती है। परन्तु इस प्रकार की सम्पत्ति के अतिरिक्त भारतीय नारी को चाहे वह विभाजित परिवार की हो अथवा अविभाजित, एक प्रकार की सम्पत्ति रखने का अधिकार है जिसकी शास्त्रानुसार पारिभाषिक संज्ञा स्त्री-धन है। इसपर स्त्री का सम्पूर्ण अधिकार है जिसे वह न केवल उपयोग में ला सकती है वरन् यदृच्छया उसे बंधक, विक्रय और प्रदान इत्यादि से पृथक् भी कर सकती है। उसके इस अधिकार में उसका पति अथवा अन्य कोई सम्बन्धी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता।[१] स्त्री-धन का उत्तराधिकार भी पुरुष की सम्पत्ति के उत्तराधिकार से विभिन्न नियमों पर आधारित है, जिसमें पुरुष की अपेक्षा नारी दायाद को प्राथमिकता प्राप्त है। कौन कौन-सा तथा किस उद्गम से संप्राप्त धन "स्त्री-धन" कहलाता है इसके विषय में स्मृतिकारों, टीकाकारों और दायभाग एवं मिताक्षरा व्यवहार शास्त्र की विभिन्न शाखाओं में थोड़ा-बहुत अंतर है। परन्तु प्रस्तुत विषय के अध्ययन के लिए हमें इस विवरण के झमेले में पड़ना अनावश्यक है। हम कह चुके हैं कि स्त्री-धन की उत्तराधिकारिणी प्रथमतः स्त्री ही होती है, जो उसकी एक विशेषता है, उदाहरणार्थ साधारणतः स्त्री-धन का उत्तराधिकार क्रमशः कुमारी कन्या, विवाहिता किन्तु असंपन्ना पुत्री, संपन्ना विवाहिता पुत्री और पुत्री की पुत्री को प्राप्त होता है और ऐसे दायादों के अभाव में ही वह क्रमशः दौहित्र, पुत्र और पौत्र एवम् पति और उसके दायादों को जाता है। स्त्री-धन की याज्ञवल्क्य के मतानुसार यह विशेषता उल्लेखनीय है कि उस पर से उसके स्वत्व का अपहरण विरुद्ध अधिकार (Adverse possession) से नहीं हो सकता।[२]

यह प्रायः निश्चित है कि सम्पत्ति विषयक स्त्री के अधिकारों में पूर्वापेक्षा पंचाद्वर्ती में उदार विकास हुए हैं क्योंकि, यद्यपि जैसा आपस्तब के वचन से ज्ञात होता है सम्पत्ति पर स्त्री का पुरुष के समान अधिकार अत्यन्त प्राचीन काल में पाया जाता है तथापि, वह पुरुष की

१—याज्ञवल्क्य स्मृति २.१४७।

२—याज्ञवल्क्य स्मृति २.२५।

त्तराधिकारिणी कहीं स्पष्ट रूप से नहीं मानी गयी। न्तु ऋग्वेद से हमें पता मिलता है कि पिता के धन दाय पुत्र ही को मिलता था, उसके रहते उसमें पुत्री कोई अंश नहीं मिलता था।[1] कौटिल्य स्त्री-धन का राधिकार पुत्र और पुत्री को समान रूप से देता है।[2] र काल में पुत्रहीन पति की प्रथम उत्तराधिकारिणी की पत्नी ही मानी गयी है। इस मत के प्रतिपादक तः कात्यायन, विष्णु और याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ हैं। नी के पश्चात् क्रमशः पुत्री, माता, मातामही के अभाव में मृत के पिता, भाई इत्यादि दायाद माने गये हैं। कि ऋग्वेद में सर्वस्व दाय पुत्र लेता है और उसकी उसमें भाग नहीं पाती, मनुस्मृति की व्यवस्था कि अपनी बहन के विवाहार्थ सब भाई अपने-अपने का एक चतुर्थ दें और जो भाई ऐसा न करे वह है।[3] यह दायित्व भाइयों की स्वेच्छा पर नहीं दिया गया है वरन् याज्ञवल्क्य २.१४७ की टीका ताक्षरा ने स्पष्ट विधान कर दिया है कि सम्पत्ति विभाजन करते समय भाइयों को एक चतुर्थ भाग के विवाह के निमित्त अलग कर देना चाहिए।

हिन्दू नारी के सांपत्तिक एवं दाय सम्बन्धी अधिकारों त्तरोत्तर जिस प्रकार वृद्धि हुई है उसे देखते हुए सकते हैं कि हमारे व्यवस्थापकों की दृष्टि न केवल र नहीं थी वरन् नारी के प्रति उदार और प्रगति-रही है। इस औदार्य की प्रखरता इँगलैण्ड के तत्संबंधी न के उल्लेख से स्पष्ट झलकती है। जहाँ भारतीय के स्त्री-धन के विषय में उसका पति किसी प्रकार का प नहीं कर सकता, अँगरेजी कानून में विवाहित सम्पत्ति (Married Women's Property Act) नियम १८८२ के पहले विवाह सम्बन्ध मात्र से पति पत्नी के जीवन-पर्यन्त उस सम्पत्ति में निर्मुक्त (Freehold estate) प्राप्त हो जाता था जो पत्नी को उत्तराधिकार में मिलता तथा आजीवन स्वत्व (Life estate) स्त्री के उस धन में मिलता जो पत्नी को विवाह के समय अथवा वैवाहिक सम्बन्ध बने रहने के काल में प्राप्त होता एवं पत्नी की वैयक्तिक चल संपत्ति में पति को सब प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

---

[1] न जामये तान्वो रिक्थमरैक्। ऋग्वेद ३–३१.२
[2] अर्थशास्त्र ३.२।
[3] मनुस्मृति ९.११८।

कहते-कहते भी

श्री रामचंद्र 'चंद्रभूषण'

कहते-कहते भी कुछ छूट-छूट जाता जो,
आखिर वह क्या है ?

सोचा था जब तक
बाँसुरिया में कजरी है,
तब तक अहिबातिन
हर सावन की गगरी है,
फिर भी संयोजन के बौद्धिक आवर्त्तन में--
जुड़ते-जुड़ते भी कुछ टूट-टूट जाता जो,
आखिर वह क्या है ?

सोचा था जब तक
गदराई शेफाली है,
तब तक हर इन्द्रधनुष
बगिया का माली है,
फिर भी संवेदन के लौकिक सम्मोहन में--
मनते-मनते भी कुछ रूठ-रूठ जाता जो,
आखिर वह क्या है ?

सोचा था जब तक
धुकधुकियाँ, अन्देशा है,
तब तक हीरामन का
द्वारे सन्देशा है,
फिर भी संगोपन के भौतिक आकर्षण में--
बनते-बनते भी कुछ फूट-फूट जाता जो,
आखिर वह क्या है ?

सुवर्ण निधियाँ और सरकारी विधान

अनुवादक : श्री कस्तूरमल बाँठिया

समस्या क्या है ?

सोने के व्यापार और स्वामित्व विषयक पिछले कुछ महीनों में केन्द्र सरकार द्वारा लिये गये कानूनी कदमों ने सोने की समस्या को भारतीय जनता के समक्ष एक ज्वलंत प्रश्न का रूप दे दिया है। भारत रक्षा नियमों (डिफेन्स आफ इंडिया रूल्स) के अन्तर्गत बनाए गए एतद्विषयक विभिन्न नियमों की सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त व्यापकता है क्योंकि अनेक सदियों से सोने का रखना हमारे सामाजिक एवम् आर्थिक जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से संश्लिष्ट है। आज के नये सुवर्ण विधानों ने लोगों की बचतों के रूप को एवम् सुवर्ण से संबंधित सामाजिक महत्त्व को ही नहीं अपितु परंपरागत कौशल के पोषण एवम् धंधे के अवसरों तक को भी व्यापक रूप में प्रभावित कर दिया है। इन वर्षों में लिये गये केन्द्र सरकार के किसी भी कदम ने लोगों में ऐसी हलचल नहीं पैदा की थी जैसी कि सुवर्ण विषयक इन नये विधानों ने कर दी है। जिस रीति से ये नये विधान प्रचारित किये गये हैं और उनकी विभिन्न बाजुओं का स्पष्टीकरण समय-समय पर किया गया है उससे स्पष्ट है कि इस विषयक सरकार की नीति अभी भी विकास प्रक्रिया से गुजर रही है। हो सकता है कि निकट भविष्य में और भी पाबंदियाँ लगाई जायें। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि इस नई नीति से उद्‌भूत परिस्थितियाँ इतनी आतुर और इतनी अधिक हैं कि उनकी सब की खोज-खबर रखना भी आसान नहीं रह पाया है। इस लेख का लक्ष्य केन्द्र सरकार की सुवर्ण-नीति के विकास की खोज एवम् उसके पक्ष-विपक्ष के विभिन्न प्रमाणों का संग्रह कर ऐतिहासिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि एवम् आधुनिक राष्ट्रीय एवम् सामाजिक ढाँचे में उनकी व्याख्या करना है। आशा है कि इस प्रकार हमें सरकारी नीति के मूल्यांकन एवम् समालोचन में सहायता मिलेगी।

सुवर्ण निधियों के अनुमान

सुदूर प्राचीन समय से ही सोना सारे संसार में मूल्यवान संग्रहणीय सम्पत्ति माना जाता रहा है और भारतवर्ष की प्रचलित सामाजिक प्रथाओं ने इस सोने को समाज में एक विशिष्ट स्थान ही दे दिया है। पहले ही पहल जब यूरोपीय इस देश में आये तो वे उन मसालों (Spices) और हस्तशिल्पों के मूल्य के एवज में जो कि वे यहाँ से खरीदकर अपने देशों को ले जाना चाहते थे, देने को अपने साथ सोना लाए। भारत के ग्रेट ब्रिटेन द्वारा हथिया लेने और राजा बनने के बाद भी भारतवर्ष के वैदेशिक व्यापार की मोटा-मोटी वह धारा अपरिवर्तित और आयात की प्रधान वस्तु सोना-चाँदी हो रही थी जिसकी सन् १८५ १९०० तक की अवधि में आयात की तादाद एक तिहा से एक चतुर्थांश तक थी। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ त देश में सोना-चाँदी मुक्त रूप से आयात होता रहा था। परंतु भारत सरकार ने सन् १९१७ में सुवर्ण आया अध्यादेश जारी कर आयातित सुवर्ण को अपने अधिका में ले लेने की सर्वसत्ता इख्तियार कर ली। यह अध्यादे प्रथम महायुद्ध समाप्ति के छः महीने बाद तक ला रहा। बाद के युद्धान्तर काल में सुवर्ण का आया निर्यात फिर अप्रतिबंधित हो गया और सन् १९३० प्रारम्भ की संसारव्यापी मंदी के आने तक, भारतव सामान्यतया सोने का आयातक ही रहा। सन् १९३ ३६ की अवधि में, भीषण मंदी की परिस्थितियों के कार देश का सोना बाजार में अवश्य ही बिकने को आया औ उसका निर्यात भी कुछ-कुछ हुआ था।

जब द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ तो ३ सितम्ब १९३९ से देश में सुवर्ण का मुक्त आयात फिर प्रतिबंधि कर रिजर्व बैंक आफ इंडिया की अनुमति से ही सोने का आयात अथवा निर्यात किया जा सकने का विधान लागू कर दिया गया। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर सन् १९४६ के उत्तरार्ध और सन् १९४७ के प्रारम्भि दो महीनों में रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने सुवर्ण आया के लाइसेंस यद्यपि ढिलाई से दिये परन्तु मार्च १९४७ इस नीति को फिर त्याग दिया गया। तब से अब त सुवर्ण आयात और निर्यात सिर्फ रिजर्व बैंक की सामान् अथवा विशेष अनुमति पर ही किया जा सकता है। इस प्रकार सुवर्ण आयात सामान्यतया प्रतिबंधित ही है क्योंकि रिजर्व बैंक ने किसीको इसकी कभी अनुमति नहीं दी।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने भारतवर्ष में सोने का कितना संग्रह है, इसका सामान्य अनुमान सन् १९५ में लगाया था। उस अनुमान के अनुसार १४० लाख औंस सोने का देश में सन् १७९३ से १८३४ तक की अवधि में आयात होना संभव है। फिर सन् १८३५ से १८५० तक की अवधि में ३० लाख औंस और सन् १८ ५० से १९४७ तक की अवधि में ९१० लाख औंस सोना आयात् होने का अनुमान है। रिजर्व बैंक का अनुमान है कि सन् १८८६-१९४७ तक की अवधि में देश में उपजे २२ लाख औंस सोने को मिलाकर कुल १३०० लाख औंस सोना देश-विभाजन के समय तक देश में खप गया होगा। परन्तु बर्मा के पृथक्करण और देश के विभाजन के सन् १९४७ में ३०० लाख औंस सोना चला गया होगा। अतः सन् १९४७ तक अवशेष भारत में १००० लाख औंस सोने का संग्रह होना ही

हिए, ऐसा अनुमान होता है। इसमें से ७० लाख सोना रिजर्व बैंक आफ इंडिया में चलन निधि urrency Reserve) के रूप में सन् १९४७ में था। जनता के पास लगभग ९३० लाख औंस सोना होने अनुमान बैठता है। इस संग्रह में सन् १९५८ तक यारह वर्षों में (जब कि रिजर्व बैंक द्वारा संग्रह अनुमान के अंक प्रकाशित किये गये थे) १२० लाख औंस सोना बढ़ा होना चाहिए। इस प्रकार सन् १९५८ में देश की जनता के पास १०५० लाख औंस सोना होना संभव है जिसका अंतर्राष्ट्रीय मूल्य के हिसाब से १७५० करोड़ रुपया और उस समय के भारतीय बाजार के सोने के भाव से ३०३५ करोड़ रुपया मूल्य होना चाहिए।

न् १८८६-८७ से १९४७-४८ तक भारतवर्ष (जनता व सरकार) में सोने की कुल खरी खपत (००० औंस)

अवधि	आयात	निर्यात	खरा आयात (+) „ निर्यात (−)	उत्पादन*	कुल खपत (३)+(४)
	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
१८८६-८७ से १९१८-१९	७०,७३३	२४,३५८	+४६,३७५	१२,४३५	५८,८१०
१९१९-२० से १९३०-३१	५७,०२४	७,४४८	+४९,५७६	४,७०८	५४,२८४
१९३१-३२ से १९३६-३७	१,११३	३६,६१८	−३५,५०५	१,९८०	−३३,५२५
१९३७-३८ से १९४१-४२	४६५	८,०२४	−७,५५९	१,५४१	−६,०१८
१९४२-४३ से १९४७-४८	९०४	११७	−७३४	१,१७३	९,४०७(अ)
(१ से ५ का) -८७ से १९४७-४८	१३०,२३९	७६,६१८	+५३,६२१	२१,८३७	८२,९५८(अ)

री से सोने के आयात के आर्थिक कारण

न् १९४७-४८ के बाद से सुवर्ण आयात के एक- ही बंद कर दिये जाने से लोगों की सोने की माँग ति का प्रमुख स्रोत कट गया। देश में उत्पादन का मात्र स्रोत मैसूर की सोने की खानें हैं जिनकी उपज सात या आठ वर्ष से बराबर घटती रही है जिसका कच्चे सोने की जास और चट्टानों के विस्फोट ck Bursts) की कमी है। सन् १९६१ में किलोग्राम सोने का ही उत्पादन हुआ जब कि में उत्पादन ७४४० किलोग्राम हुआ था। इस एक ओर तो देश में सोने का घरेलू उत्पादन लगा- घट रहा था और दूसरी ओर सोने की माँग बराबर ही रही थी। फलतः माँग और पूर्ति का अन्तर बढ़ता है। जनता के अनेक वर्गों की समृद्धि बढ़ती रहने, के लगातार बढ़ने और करों की वृद्धि से, लोगों में के रूप में सम्पत्ति संचय की आकांक्षा उत्तरोत्तर रही है। फिर, सामाजिक प्रथाओं के कारण सोने भूषणों की माँग भी प्रजावृद्धि के साथ-साथ ही नहीं तु वैसे भी बढ़ी है और जैसे आय बढ़ रही है, यह बढ़ती जानेवाली है। सिद्धान्ततः तो सोने की माँग य आय की वृद्धि की दर से भी तेज रफ्तार से की अपेक्षा की जानी चाहिए। अतः प्रतिवर्ष की माँग बढ़ती रहे तो न तो आश्चर्य ही है और साधारण। जैसे-जैसे उच्चआय-वर्ग के लोगों की या बढ़ेगी, सोने की माँग भी बढ़ेगी ही। सोने की की इस प्रकार वृद्धि के साथ देश में सोने का भाव तार बढ़ा है, और देश-विदेश के सोने के भाव का अन्तर भी बढ़ता रहा है जिसने सोने के तस्कर आयात परिमाण में उत्तरोत्तर वृद्धि की है। यह तस्कर व्यापार कितना होता है, इसका परिमाण कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं बता सकता है। परन्तु सट्टा बाजार आयोग (Forward markets Commission) की प्रतिवेदना (कि जिन पर सरकार ने अपने सारे अनुमान बाँधे हैं) कहती है कि "भारत में सोने का तस्कर आयात प्रतिवर्ष लगभग ३० से ४० करोड़ रुपयों का अनुमान करना चाहिए।" वित्त मंत्री के इन दिनों के वक्तव्यों में ५० से ६० करोड़ रुपयों का इसका अनुमान कहा गया है। पिछले कुछ वर्षों में तट-कर अधिकारियों ने जितनी भारी तादाद में तस्करी का सोना पकड़ा उससे स्पष्ट है कि सोने का यह तस्कर व्यापार बहुत भारी सीमा तक पहुँचा हुआ है। पकड़ में तो कभी-कभी ही आता है।

तस्करी का यह अत्यन्त प्राचीन व्यापार अंतराष्ट्रीय है। तस्करी का लालच उस लाभ की

सूचना—अखंड भारतवर्ष के ये अंक हैं। १९३७-३८ के बाद के अंक बर्मा रहित हैं।

*ये अंक पंचांग वर्ष (याने जनवरी से दिसम्बर तक के वर्ष) के हैं।

(अ) इसमें १९४३-४४ से १९४५-४६ की अवधि में मित्र राज्यों (Allied Governments) के खाते देश में बेचा गया ७५ लाख औंस सोना भी सम्मिलित है।

आधार—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटीन, अप्रैल १९५८

राशि पर निर्भर करता है जो कमाई जा सके और उस जोखम पर कि जो इससे संबंधित है। ऐसा लगता है कि तस्करी का संयंत्र उन्नत पिछले कुछ वर्षों में बहुत ही हो गया है और इसकी जोखम भी कम हो गयी है। ऐसा कहा जाता है कि मध्यपूर्व और सुदूर पूर्व के अनेक स्थानों से भारत में जो तस्करी सोना आता है वह सब तटकरधिकारियों द्वारा पकड़े जाने का बीमा करा ही के आता है। इस बीमे की पालिसी नहीं दी जाती है अपितु यह मात्र विश्वास (ट्रस्ट) द्वारा होता है। दो वर्ष पहले तक इस बीमे की दर २५ प्रतिशत थी। तस्करी के उपायों में जैसे प्रगति होती गयी वैसे ही इस बीमे की दर भी घटती गयी है। आज यह दर १७½ प्रतिशत कही जाती है। यह भी कहा जाता है कि चोरी से लाया गया सोना छिछले पानी में अथवा अरब समुद्र के द्वीपों में छुपा दिया जाता है जहाँसे अवसर मिलते ही यह भारतवर्ष में पहुँच जाता है। मान लीजिए कि मध्यपूर्व में सोने का भाव ६३) रु० प्रति तोला हो, ११) रु० बीमा और ३०) से ४०) रुपए अन्य खर्च प्रतितोला लगे तो इस चोरी से लाये गये सोने की १००) प्रति तोला के लगभग लागत पड़ सकती है। इस लागत में भी तस्कर व्यापारी सोने पर प्रति तोला भारी लाभ कमा सकता है क्योंकि देश में सोने का भाव वर्षों से इससे कहीं ऊँचा है। यह १००) रु० प्रति तोला सोने का भाव तस्करी सोने का 'आयात बिंदु (Import Point) भाव कहा जा सकता है। हमारे यहाँ का १४०) रु० प्रति तोला का सोने का भाव तस्करी व्यापार को प्रोत्साहन दिए बिना रह ही नहीं सकता और वह होता ही रहा है।

सरकार ने इसकी रोक का सबसे पहला कदम नवम्बर १२ सन् १९६२ को उठाया जब कि उसने सुवर्ण बांड्स (Gold Bonds) निकालने की घोषणा की। इन सुवर्ण बांडों की बिक्री की प्रार्थनाएँ बहुत ही कम की गयीं, हालांकि उनपर ६।। प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज और सम्पत्ति एवम् पूँजी कर की छूट दिया जाना भी घोषित कर दिया गया था। दूसरे कदम में इसके बाद सरकार ने सोने का सट्टाबाजार बंद करा दिया। याने आगामी निश्चित तिथि को सोने के लिए––दिये जाने का व्यापार बंद कर दिया। (मोरारजी देसाई ने अपने वक्तव्य में इस व्यापार को युद्धोपरान्त फिर से चालू किये जाने को एक भूल माना था।) और ९ जनवरी १९६३ को इस संबंधी सर्वव्यापी नियम भी घोषित कर दिये गये। जैसे-जैसे यह प्रतीति होती गयी कि सरकार अधिकाधिक कठोर नियमों द्वारा सुवर्ण संग्राहकोंपर फंदा कड़ा कसने पर उतारू है, वैसे ही वैसे लोगों में अशांति बढ़ती गयी और बहुतों ने सुवर्ण बांडों की प्रार्थना द्वारा शांति लाभ भी की। फिर वित्तमंत्री भी बारबार यह कहते रहे हैं कि वे सोने की तस्करी को सर्वथा रोकने और संग्रह करने के विरुद्ध कठोर से कठोर कदम लेने का विचार कर रहे हैं। इस प्रकार पिछले चार महीने में गये प्रत्येक कदम का तात्कालिक प्रभाव यही होता कि सुवर्ण बांडों की नयी-नयी प्रार्थनाएँ सरकार को होती रही हैं। ऐसा माना जा सकता है कि सरकार इस सुवर्ण नीति का मनोवैज्ञानिक प्रभाव साधारण में अच्छा ही हुआ है।

कठोर प्रशासनिक नियंत्रण

जिस महत्व की बात पर सरकार की इस सुवर्ण की सफलता निर्भर करती है वह है इस नीति के का प्रशासन। सुवर्ण मंडल (Gold Bond) पूरा-पूरा निरीक्षण करना ही पर्याप्त नहीं है, निम्न स्तरीय प्रशासनिक अधिकारियों के वेग, और दक्षता भी इसमें परम महत्त्व की है क्योंकि ही तो सोने-चाँदी के व्यापार-बाजार से सीधा साधने वाले हैं। झूठी बनावटी घोषणाओं (Dec ations) की जाँच करने और अतिरिक्त प्राप्तियों प्राप्ति एवम् खपत का ठीक-ठीक पता लगाते निरंतर जागरूकता चाहिए। उन एक्साइज को अत्यधिक सत्ताएँ तो अवश्य ही प्रदान कर दी जो इस धातु की खरीद और बिक्री की करेंगे। सत्य तो यह है कि ये अधिकार अब तक के किये अधिकारों से बहुत व्यापक हैं। लोगों का यही कहना है कि जो एक्साइज के अधिकारी के नियंत्रण के लिए प्रथमतः नियुक्त एवम् जवाबदार फिर भी इस तस्करी को नहीं बंद कर सके, अब किस प्रकार इतने व्यापक अधिकारों सारे देश में सुवर्ण नियंत्रण नियमों की परिपालना में सफल होंगे? प्रशासनिक त्रुटियों के ही ये नये नियम बनाये गये हैं। परन्तु इनमें उसी सनिक ढाँचे-संयंत्र पर सुवर्ण नियमों से बच देशव्यापी प्रवृत्ति को रोकने का भरोसा रखा गया है जो पहले ही असफल हो चुका है। कहने का तात्पर्य ही है कि तस्करी रोकने का काम केवल इन नये से ही नहीं हो जाने वाला है। नियम कहीं भी और भी दक्ष प्रशासन का स्थान नहीं ले सकते हैं।

प्रशासनिक संयंत्र को और भी सुदृढ़ बनाने के की आवश्यकता होगी। अब तक प्रशासनिक का एक मात्र कार्य देश में तस्करी से आते हुए का रोकना ही था और अब उसका काम यह भी कि वह सोने की बिक्री का भी नियंत्रण करे। काम पहले वाले काम से भी अधिक कठिन है इसका कार्यक्षेत्र उससे कहीं अधिक व्यापक है। तो ऐसों द्वारा ही की जाती है जो धनी और सुदक्ष योजना का जाल बिछाए हैं। ऐसे या संस्थाएँ थोड़ी ही हो सकती हैं। परन्तु बिक्री या वितरण करने के काम में बहुत लोगों की तो आवश्यकता है, परन्तु इतनी की नहीं। सरकार द्वारा स्वीकृत कदम

न्यता पर आधारित है कि तस्करी उस रीति से ती है जिसे सरकार न तो पूर्णतया समझ सकी है और जिसका ठीक-ठीक अनुसरण ही वह कर पायी है। न्तु ज्योंही सोना एक बार प्रवेश पा गया तो उसका रण फिर स्वाभाविक व्यापार द्वारा हो ही जाता है। तक तो ऐसा ही था क्योंकि सोने की बिक्री बेरोक-क हो रही थी। परन्तु यही मान लेना कि बिक्री का ही एक तरीका है, निःसंदेह ही गलत होगा। करी के स्वाभाविक स्रोत को बंद कर देने से वह नहीं हो जायेगी या न की जा सकेगी। फिर भी तो मानना ही होगा कि अब आज जैसा व्यापक भारी सुवर्ण का तस्कर आयात शायद न हो क्योंकि सोने की बिक्री करने याने उपभोक्ता तक चने में दो प्रकार के प्रतिबंधों में से गुजरना होगा। न्य नालियों के अवरुद्ध कर दिये जाने से अंतर्प्रवाह धारा निकट भविष्य में तो कम से कम अवश्य ही ी पड़ जाएगी। पर उसके सर्वथा बंद हो जाने की करना भूल ही होगा।

इन नये नियमों के प्रवर्तन का स्वाभाविक परिणाम उच्च स्वच्छता के सोने की बिक्री के कालेबाजार विकास। सुवर्ण नियंत्रण नियम ने उच्च स्वच्छता के के आभूषणों का रखना या हस्तान्तरित किया ना प्रतिबंधित नहीं किया है। सोने के आभूषण जिसके होंगे, वह उन्हें दूकानदार को यदि नहीं, तो भी किसी उपभोक्ता को तो बेच ही सकता है। चूँकि उच्च च्छता के आभूषणों का बनाना वर्ज्य कर दिया गया ऐसे आभूषणों की माँग वर्तमान पूर्ति स्रोतों से पूरी ी ही रहेगी। चूँकि वर्तमान सुवर्ण संग्रह का ८० शत अंश ऐसे आभूषणों के रूप में ही अनुमान किया है, यह बहुत संभव है कि तस्करी सुवर्ण, यदि वह तो तुरंत ऐसे ही आभूषणों में परिवर्तित हो जाएगा र ऐसे आभूषणों के वर्तमान संग्रह से उसे अलग किसी तरह से रखा या पहचाना नहीं जा सकेगा। चूँकि सन अब तक तस्करी बंद करने में सफल नहीं पाया है, हम कैसे आश्वस्त हो सकते हैं कि यह काला जार बिलकुल बंद हो ही जाएगा चाहे भविष्य में १४ ट से अधिक स्वच्छता के आभूषण निर्माण पर प्रति-कड़े से कड़े क्यों न लगा दिये गये हों ?

लाभ में कमी का इतिहास

नये नियमों का लक्ष्य तस्करों की शक्ति को म करना नहीं परन्तु उसके लाभ को कम करना है। यदि वे इतने ही कुशल हों कि जितने उन्हें ना जाता है तो हमें यह भी मान लेना होगा कि उनकी चातुरी अब तस्करी से लाये सोने की बिक्री उसी प्रकार लग जायेगी। लाभ तो उसमें उनको मिलेगा ही क्योंकि माँग का मूलभूत कारण, समाज में सोने के स्वामित्व को मिला हुआ त्व, तो पहले जैसा ही बना है। सरकार के लिए अब तक के कदमों ने सोने के व्यापार की स्वाभाविक धारा ही में हस्तक्षेप किया है और सुवर्ण व्यापार में लगे साधनों का ही नियमन-नियंत्रण किये हैं। यदि तस्कर सुवर्ण की बिक्री के व्यापार के नये वैकल्पिक साधनों को खोज निकालते हैं तो उनका धंधा उसी तरह चलता रह सकता है। सरकारी नियमों में यहीं सबसे भारी कमी है, खामी है।

सरकारी सुवर्ण नीति के लक्ष्य हैं: (अ) तस्करी सुवर्ण द्वारा विदेशी विनिमय के बहते परनाले को बंद करना; (आ) लोगों को अपना सुवर्ण संग्रह निकालने को प्रोत्साहित करना और संभव हो तो उसे सुवर्ण बांडों में विनियोजित करना। और (इ) सोने के प्रति आसक्ति को कम करना और अपनी बचत को इससे अतिरिक्त साधनों में विनियोजित करना। प्रश्न यह है कि ये लक्ष्य कहाँ तक अब तक के लिए गए सरकारी कदमों से सिद्ध हो रहे हैं। सामान्यतया ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि इन नियमों के प्रवर्तन से तस्करी घट गयी है। अक्टोबर से जनवरी तक की अवधि में सोने के भाव की गिरावट ने इस व्यापार को अवश्य ही कुछ हतोत्साहित कर दिया होगा और यह भावों की गिरावट चलती रही तो इस व्यापार में कमी आती ही रहेगी। पर दीर्घकालीन स्थिति का मूल्यांकन इतना शीघ्र नहीं किया जा सकता। सब कुछ सोने के भावों पर निर्भर करता है कि वे गिरते ही जाते हैं या नहीं।

सुवर्ण नियमों की घोषणा ने, जो कि ९ जनवरी १९६३ की रात को की गयी थी, तस्करों और उस व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाले सभी लोगों को एकाएक चौंका दिया था। इन नियमों के परिणामों के स्पष्ट चित्र के अभाव ने तस्करी व्यापार में कुछ खामोशी भी ला दी हो, परन्तु ज्योंही स्पष्ट चित्र सामने आ जाएगा, बहुत संभव है कि वह व्यापार फिर से शुरू हो जाये। इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता है।

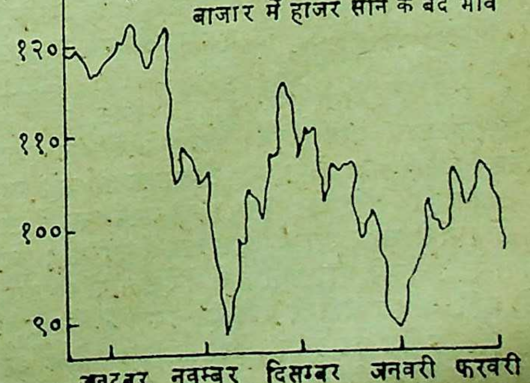

सोने के भाव में फेर-बदल

सुवर्ण बांडों में विनियोजन (इन्वेस्टमेंट)

सुवर्ण नियमों के कारण छिपे हुए सोने को निकालने में प्राप्त सफलता का जब विचार किया जाता है तो कहना होगा कि वह आशाप्रद नहीं है। जनवरी के प्रारम्भ तक सुवर्ण बांडों की बिक्री ७० लाख रु० के मूल्य की ही हुई थी। सुवर्ण नियंत्रण नियमों की घोषणा के पश्चात् यह बिक्री बढ़ी और ऐसी घोषणा है कि फरवरी के मध्य तक सोने के अंतर्राष्ट्रीय भाव से ७ करोड़ रु० के ये बांड बिक गये थे। इन बांडों की माँग शायद उन्हीं लोगों ने की कि जिनके पास नियत उच्च सीमा से अधिक आभूषणों से अतिरिक्त सोना था और उनने भी की कि जो इन बांडों में विनियोजन करने की विशेष रियायतों का लाभ उठाना चाहते थे। दूसरी ओर अनेक उन आभूषणों को धड़ाधड़ खरीद रहे थे जिन्हें बेच देने की ९ फरवरी की शाम तक व्यापारियों को रियायत दी गयी थी। इन आभूषणों के अधिकांश खरीदार कदाचित् वे लोग ही होंगे जिन्हें निकट भविष्य में ऐसे आभूषणों की खास रूप से आवश्यकता रही होगी अथवा वे भी कि जो उच्च स्वच्छता के आभूषण प्राप्त करने की रियायत का लाभ उठाना चाहते होंगे। जिस ऊँचे भाव में लोगों ने ये आभूषण खरीदने की आतुरता दिखायी उससे स्पष्ट है कि सुवर्ण संग्रह की राष्ट्रीय नीति के प्रति लोगों की बहुत ही कम सहानुभूति है। इससे हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि सरकार की इस नीति का लोगों के सुवर्ण प्रेम पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। यह बात भी सच है कि इतने थोड़े समय में लोगों के सुवर्ण प्रेम में कोई आशातीत कमी दिखलायी नहीं दे सकती है। फिर भी सरकारी संग्रह-विरोधी नीति की त्रुटियाँ तो हमारे सामने आ ही जाती हैं। लोगों की इस आदत पर किया गया यह धावा बहुत विज्ञापनबाजी से सफल हो सकता है। परन्तु साथ ही साथ इस विषय में लोगों को शिक्षित करने का भी सतत् प्रयत्न करते रहना होगा।

सुनारों की बेकारी

सुवर्ण नियंत्रण नियमों ने सुनार आदि शिल्पियों और कर्मकरों की बेकारी की एक महती समस्या हमारे सामने उपस्थित कर दी है। इससे प्रभावित होनेवाले प्रमुख केन्द्र हैं: राजस्थान, कानपुर, मेरठ, अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता और हापुड़। कितने लोगों पर इसका हानिकर प्रभाव पड़ा होगा, यह ठीक-ठीक तो नहीं कहा जा सकता है। परन्तु सन् १९५१ की जनगणना में सारे देश के सुनारों की संख्या ४ लाख बतायी गयी थी। सुवर्ण नियमों के प्रवर्तन के बाद समाचारों में ऐसे लोगों की संख्या इससे कहीं अधिक बतायी गयी है। लगता है कि दिल्ली में ही जो कि देश का दूसरी श्रेणी का सुवर्ण केन्द्र कहा जाता है, लगभग डेढ़ लाख सोने का काम करनेवाले सुनार एवम् अन्य कारीगर होंगे। चाँदनी चौक और दरीबा के सुनार जो वहाँ मुगलों के काल से आभूषण बनाने का काम करते आये हैं, बड़ी दुर्दशा में हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के २।। लाख सुनार भी बेकार होने लगते हैं। पंजाब सुनार संघ ने यह दावा किया है कि सुनारों के परिवार सहित लगभग २ करोड़ जनों पर इन नियमों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष बुरा प्रभाव पड़ेगा। गुजरात सुवर्ण व्यापारी असोसिएशन (गुजरात गोल्ड मरचेण्ट्स असोसिएशन) ने एक ज्ञापक (मेमोरेण्डम) में बताया है कि लगभग ४० लाख लोग इन नियमों के कारण बेकार हो जायेंगे। बंबई में सुनारों की एक सभा में कहा गया था कि ३० से ४० हजार शिल्पी (artisans) बेकार हो जायेंगे। फिरोजाबाद से ग्लास पेनल मन्यूफेक्चरर्स असोसिएशन कहती है कि २०००० कर्मकरों को रोजी देनेवाले ८० कारखानों पर इन नियमों का बुरा प्रभाव पड़ेगा। सुनारों के अतिरिक्त आनुषंगिक उद्योगों के कर्मकर भी इन नियमों से बेकार हो जायेंगे। सुनारों और जौहरियों के उपयोग के लिए ठप्पे (Dies) बनानेवाले कारीगरों पर भी इन नियमों का बुरा प्रभाव पड़ेगा। तार खींचनेवाले, तबक या पत्तर बनानेवाले और तक्षण (एनग्रेविंग) काम करनेवाले भी इससे प्रभावित होंगे। यही क्यों, गोबर के छाने थापने और बेचनेवाली हजारों स्त्रियाँ भी बेकार हो जायेंगी क्योंकि उनके छाणों का प्रयोग करनेवाले सुनारों आदि का धंधा जो नहीं रहेगा। जरी-तार के खरीदनेवाले वे लोग भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे कि जो इनसे सोनादि धातु शोधकर निकालने का धंधा कर रहे हैं और गली-गली घूमकर जरीतार वाली बेकार चीजें खरीदते हैं।

सुनारों के दावों में से कुछ अवश्य ही अतिशयोक्तिक दावे कहे जा सकते हैं। इस समस्या को लक्ष्य करके वित्त मंत्री ने लोकसभा में कहा था कि "इन नियमों के प्रवर्तन से होनेवाली बेकारी की चर्चा में बहुत कुछ कहा जा रहा है। मैं प्रारम्भ में ही यह कह देना चाहूँगा कि ऐसे मामले में जब कि हम स्थापित परंपरा में परिवर्तन कर रहे हों और सुवर्ण के प्रति अपने रुख में हम बड़ी क्रांति करना चाह रहे हों, कुछ न कुछ असुविधाएं तो होंगी ही। फिर भी व्यापक बेकारी की आशंका बढ़ा-चढ़ा कर कही जा रही है।" सुवर्ण नियंत्रण मंडल (Gold Control Board) जो सुनारों के धंधे-रहित हो जाने से भयभीत है, उन्हें काम पर लगाने की समस्या पर विचार कर रहा है। राज्य सरकारों को भी उन्हें काम पर लगाने के लिए कहा-लिखा जा रहा है। सुनार सहकार समितियाँ भी बनायी जा रही हैं ताकि सुनार लघु उद्योग खड़े कर सकें। इन सब किये जा रहे प्रयत्नों के बावजूद यह संदेहजनक ही लगता है कि सरकारें इन नियमों से बेकार हो जानेवाले सभी लोगों को काम पर लगाने के लिए वैकल्पिक धंधे प्रस्तुत कर सकेंगी।

१९६३

ली बात तो यही है कि नये उद्योगों को अपना लेना इतना रल नहीं हो सकता। कितने ही लोग तो सुनारी का धंधा धेरी गलियों, झोपड़ियों अथवा छप्परों में बैठकर ही र रहे हैं ऐसे लोगों को कुछ काल के लिए तो धंधे की दुर्व्यवस्थाजनक कठिनाइयों को सहना ही होगा।

यही नहीं, अपितु जो पुराना धंधा करते रहने में सफल होंगे, उन तक की कमाई पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा। सुनारों की आय दो प्रकार के धंधों से होती है: (१) नये सोने के आभूषण बनाने से और (२) पुराने जेवरों को तोड़कर प्राप्त सोने के जेवर बनाने से। चूँकि १४ कैरट सोने के आभूषण कम लोकप्रिय होनेवाले हैं और उनकी बनावट का खर्च भी दुगुना-तिगुना पड़ेगा, अतः १४ कैरट सोने के जेवरों का काम उन्हें बराबर नहीं मिलेगा। फिर सरकार ने उच्च स्वच्छता के सोने से आभूषणों का बनाया जाना सर्वथा रोक दिया है। इन सभी कारणों से सुनारों में बहुत बेकारी हुए बिना रही नहीं सकेगी।

सोने के व्यापारियों पर प्रभाव

सुवर्ण नियंत्रण नियमों से जिस दूसरे वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़नेवाला है, वह है सोने का व्यापारी वर्ग। नियमों ने सोने की वस्तुएँ बनाने और बेचने की छूट केवल उन्हींको दी है जो सुवर्ण-मंडल (Gold board) से इस धंधे का परवाना प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार धंधा करनेवालों को सुवर्ण-मंडल में अपना नाम पंजीकृत कराना होगा। सरकारी घोषणा में कहा गया है कि परवाना दिए जाने की किसी भी ऐसे व्यापारी की प्रार्थना जो बिक्री-कर विषयक किसी भी नियमान्तर्गत पंजीकृत होगा, अस्वीकृत कर दी जायगी। वह प्रार्थना अस्वीकृत कर दी जायेगी यदि सुवर्ण-मंडल को यह संतोष न हो जायेगा कि परवाना दिये जाने की प्रार्थना में कही गयी सभी बातें गलत या झूठी हैं।" इसका तो यही अभिप्राय होता है कि व्यापारियों को परवाने देने में सामान्यतया इनकार नहीं किया जायगा। व्यापारियों को सबसे पहले यह लिख कर देना होगा कि उनके पास कितना और कैसा सोना है। फिर उन्हें सोने के लेन-देन का भी ठीक-ठीक लेखा रखना अनिवार्य होगा। सोने के जेवरों की खरीदारी कुछ समय के लिए तो कम हो जाने ही वाली है, इसलिए सोने के व्यापारियों की कमाई भी एकदम एक बार तो मारी ही जायगी।

कुछ लोगों के अनुमानों के अनुसार सोने के व्यापारियों की संख्या देश भर में १५००० है। इस संख्या में वे जौहरी और सुनार नहीं आये हैं जो बिक्री–कर नियमान्तर्गत पंजीकृत नहीं हैं। बम्बई नगर एवम् उसके उपनगरों में ऐसे अपंजीकृत व्यापारी लगभग ६००० होने का गैर-सरकारी अनुमान है। सुवर्ण नियंत्रण नियमों के प्रशासनिक क्षेत्र में ऐसे व्यापारियों का अस्तित्व एक भारी समस्या रहेगी। इनकी गणना भी कठिन होगी और उन पर नियंत्रण भी कठिन होगा। यही क्यों, ऐसे व्यापारियों की संख्या में भी वृद्धि होती रहेगी, यह भी सहज ही कल्पना की जा सकती है। यह भी संभावना है कि सारे देश में व्याप्त ऐसे छोटे व्यापारियों का अनधिकृत सुवर्ण-व्यापार का गिरोह ही बन जाय। यही सुवर्ण-नियमों के प्रतिपालना की प्रशासनिक कठिनाइयों का भारी डर है।

साख पर प्रभाव

इनके अतिरिक्त एक विशेष वर्ग पर भी इन सुवर्ण-नियमों का बुरा प्रभाव पड़ेगा। सोने के मूल्य की गिरावट से वह उधार का खाता भी गया है कि जो छोटे ऋण लेनेवाले अपने जेवर गिरवी रखकर लिया करते थे। इस कठिनाई के शिकार निम्न मध्यवर्ग के लोग, विशेषतः ग्रामवासी हुए हैं कि जहाँ जेवर गिरवी रखकर उधार लेने की प्रथा का प्रचार है। रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने बैंकों को सोने पर दिये ऋणों का नये भाव से मूल्यांकन करने को आदेश दे दिया है और ये बैंक इसलिए अपने ऋणियों से ऋण चुका देने का अथवा ऋण लेते समय के और आज के सोने के भाव के अन्तर की राशि जमा कराने का तकादा लगाये हुए हैं। कितने ही ऋणी ऐसे अन्तर की राशि जमा नहीं करा सकते और उन्हें कैसी भारी कठिनाई हो रही होगी, यह सहज ही कल्पना की जा सकती है। सराफी सुविधाओं के अभाव में ऐसे ऋणी फिर से उन साहूकारों के चंगुल में फँस जायेंगे जिनसे बचाने को आधुनिक बैंकों की स्थापना की गयी है, यह निश्चित है।

दीर्घकालीन कदम

यद्यपि ये सुवर्ण-नियंत्रण नियम भारत रक्षा विधान के नियमों के अंतर्गत ही घोषित किये गये हैं तथापि जो कदम लेना आवश्यक हुआ है, उनका प्रतिरक्षा के ही साथ सर्वथा संबंध नहीं लगाया जा सकता है। पक्षान्तर में यह स्वीकार करना ही होगा कि जो कुछ कदम लिये जा रहे हैं उनका लक्ष्य है इस विषयक जन साधारण की सामाजिक और आर्थिक आदतों में परिवर्तन करना और कराना। परन्तु सामाजिक प्रथाओं में परिवर्तन करना जनता के सहयोग व सहकार से ही सफल हो सकता है और प्रजातंत्र में इस प्रकार का सहकार व सहयोग जनसाधारण को इस प्रकार की सतत् शिक्षा देते-देते ही प्राप्त हो सकता है। सुवर्ण-नियमों की पूर्ण प्रतिपालना के लिए आवश्यक जन सहकार उससे भी कहीं अधिक चाहिए कि जितने सहकार की नशाबंदी के लिए हम जनता से आशा रख रहे हैं, पर जो हमें मिल नहीं रहा है।

इस पृष्ठभूमि में देखने पर कहा जा सकता है कि सुवर्णनीति की सफलता के लिए हमें निम्न बातों पर अधिक बल देना होगा। पहले तो इस पर कि आभूषणों अथवा बचत के लिए सोना नहीं प्रयोग किया जाना चाहिए। दूसरी सरकार को ऐसी बचत योजनाएँ निकालनी होंगी कि जिनको लोग सोने के एवज प्रसन्नता से स्वीकार कर सकें। ऐसी योजना में ही सुवर्ण के ऐसे

प्रमाणपत्र आते हैं कि जिनका भुगतान सोने में ही हो। यदि सरकार ने ऐसे ही प्रमाण-पत्र सुवर्ण संग्रह को आकर्षित करने के लिए निकाले होते तो लोगों में उसका आज की अपेक्षा अवश्य ही अधिक स्वागत होता। (अमरीका ने सन् १९३४ में ऐसे ही प्रमाणपत्र निकाल कर वैयक्तिक सुवर्ण का संग्रह किया था।) इस दशा में सरकार को अपना वादा पूरा करने के लिए सदा ही प्रस्तुत रहना होता और इस कारण वह इस प्रकार प्राप्त सोने का एकबारगी ही शस्त्र ख़रीदने में उपयोग नहीं कर सकती थी। परन्तु इस कदम से लोगों में सोने के प्रति आसक्ति अवश्य ही कम हो जाती। और सरकार को किस रूप में सोने का संचय हुआ है, उसकी एवम् ऐसी अन्य बातों की विश्वस्त सूचना भी मिलना संभव थी। जितना ही इसको लोगों का समर्थन प्राप्त होता, प्रशासनिक संभावनाओं की वैसी ही बातों को प्राथमिकता दिए जाने के कदम भी सरकार द्वारा उठाए जा सकते थे। कागजी चलन-नोटों के सफल प्रवर्तन के पूर्व जिन कठिनाइयों का सरकारों का सामना करना पड़ा है, उनसे स्पष्ट है कि सोने को उसके सिंहासन से यकायक पदच्युत करने में सरकार को सुदृढ़ सामाजिक प्रतिरोध का सामना करना ही होगा। पिक का चलन शब्दकोश (Pick's Currency Year Book) में कहा है कि "६० शताब्दियों से सरकारें सुवर्ण पर विजय पाने के प्रयत्न करती जा रही हैं पर आज भी वे महसूस करती हैं कि उन पर विजय तो सुवर्ण ही सदा पाता रहा है।" भारतवर्ष की सोने की भूख सुनिश्चित कार्यक्रम के शनैः शनैः प्रवर्तन से अवश्य ही कम हो सकती है बशर्ते कि वह दृढ़ता और खर्चीलेपन से पालन किया जाए। तीसरे यह कि नए-नए एवजों का आविष्कार करने में यह भी ध्यान रखा जाए कि उनमें मूल्य स्तर के परिवर्तन के भी नियम हों। कुछ देशों ने ऐसे सुवर्ण बांडों का प्रवर्तन किए हैं जिनके भुगतान का मूल्य भाव निर्देशांक के साथ संकलित है। ऐसे विनियोजन माध्यम का प्रवर्तन अवश्य सोने के आकर्षण को कम करने में बहुत कुछ सफल हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम उन सब कारणों की खोज करें कि लोग दूसरी चीजों के एवज सोने में अपनी बचत रखना क्यों पसंद करते हैं? इन कारणों को जानकर हम ऐसे वैकल्पिक बचत के साधनों को प्रस्तुत करें जो उन सब बातों को पूर्ण करते हों।

सोने के खानगी संग्रह और खानगी बिक्री

वर्ष	सोने के निजी संग्रह ३५ डा० प्रति औंस के भाव से मूल्य लाख डालरों में)	सर्व अंतरराष्ट्रीय बजारों मे सोने की खानगी बिकी (यू० एस० के डालर नोट में लाख)
१९५५	१,१४,०००	१२,७५०
१९५६	१,१९,५००	१६,१००
१९५७	१,२४,०००	१५,१५०
१९५८	१,३८,०००	१०,१००
१९५९	१,३२,०००	१७,६५०
१९६०	१,३८,०००	२९,२००
१९६१	१,४७,०००	३२,९००

पिक्स करेंसी इयर बुक, १९६२ से साभार

सुवर्ण संग्रह और आर्थिक विकास

देश के आर्थिक विकास के लिए सभी साधनों के जुटाने की परम आवश्यकता है, इससे तो कोई इंकार कर ही नहीं सकता है। सोना हमारे देश में बेकार पड़ा है और उसका हम राष्ट्र के लाभ के लिए उपयोग करें यह एकदम तर्कसंगत भी है। अपनी पुस्तक 'इंडियन करंसी एण्ड फाइनेन्स' में लार्ड कीन्स ने सन् १९१३ में इस समस्या के महत्त्व पर जोर दिया था। उसने कहा था कि "जनता की जेब में पड़ा हुआ सोना न तो आर्थिक संकटों के समय में ही कुछ काम आता है और न उस समय ही कि जब विदेशी खिचाव होता है। ऐसे कामों के लिए देश का सुवर्ण संचय केन्द्र-सुरक्षित होना चाहिए। यदि कभी ऐसा समय आये कि भारतवासी अपनी अनुर्वर आदतों को त्याग दें और अपने सुवर्ण-संचय को उत्पादक उद्योगों में और भूमि को उपजाऊ बनाने में विनियोजित करें तो संसार भर के बाजार उसके मुखापेक्षी हो जाएँगे।" प्रश्न यही है कि यह सब किस तरह आज की राजनयिक और आर्थिक परिस्थितियों में संभव हो सकता है? न्यूनविकसित देशों का आर्थिक विकास कैसे हो, इसके साधनों का विचार करनेवाली संयुक्त राष्ट्र परिषद् की समिति ने छुपे सुवर्ण संग्रहों के उपयोग में लाने के विषय में दीर्घ विचार किया था। ये संग्रह कितने भारी होंगे, यह निश्चयपूर्वक बताना संभव नहीं है। परन्तु उस समिति का कहना है कि दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ देशों में "वैयक्तिक सुवर्ण संग्रह राष्ट्रीय आय (National Income) के १० प्रतिशत के बराबर तो अवश्य ही हैं। इन्हें ५ वर्ष में खर्च किया जाये तो वह पाँच वर्षों में २ प्रतिशत राष्ट्रीय आय बढ़ाने योग्य पूँजी निर्माण कर सकेंगे।" चाहे इन संचयों का धन एक बार ही उपयोग में लाया जा सके, फिर भी ये इतने महान् हैं कि हम सब को इसका विचार करना ही चाहिए और हमारी सरकारों को अगली एक दो दशाब्दी तक इस ओर दृढ़ कदम बढ़ाना ही चाहिए। दूरंदेशी और बुद्धिमानी से काम किया जाये तो इस बात में संदेह नहीं कि इस मृतधन के अधिकांश को हम ऐसे लाभप्रद विनियोजनों में ला सकेंगे कि जिससे हमारे इस प्राचीन देश के करोड़ों भूखों की समस्या ही हल नहीं हो जायेगी अपितु वे समृद्ध भी हो जायेंगे।

(बैंक आफ इंडिया बुलेटिन, मार्च १९६३ से साभार अनूदित)

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (५)

श्री फेनी मुकर्जी

तिब्बत की सारी मरुभूमि फिर से बसन्ती चूनरी ओढ़े खड़ी हो उठी तरुणी बनकर। उसके निर्मल केश में लहराने लगी रंग-बिरंगे फूल-पत्तियों से गुँथी चोटी। उसके पीत रंग के ललाट पर राजस्थानी साड़ी चमकाकर अंगड़ाई लेते हुए मानों पुकार रही थी तिब्बत के निराश तिब्बतियों को—उठो, जागो, देखो यह कौन आया सवेरे-सवेरे!

किसी ने दूर से पुकारा मेरा नाम लेकर; फिर एक दूसरे स्वर ने पुकारा फेनी कहकर। सूर्य चमक रहा है रोशनी से मेरी आँखों को चकाचौंध करता हुआ। अपने हाथ की ओट लेकर देखा कि दूर खड़े हैं पहाड़ी पर हमारे दोनों साथी वीर अभयसिंहजी और दयालु भाई गेशेलाजी। उछलकर दौड़ा तिब्बती मित्रों से विदाई लेकर, उस पहाड़ी की ओर। एक दूसरे से गले मिलकर लगे हिल-मिलकर बातें सुनने और सुनाने, जैसे एक युग के बाद मिलन हुआ हो बिछुड़े हुए भाइयों का।

जब चाय परोसनेवाली कालीदेवी की दुखभरी कहानी और राहुलजी की परेशानी की बात सुनी तो मैं रो पड़ा। हुए मन का क्रोध मेरी आँखों से बह निकला। मठ की ओर चलते-चलते साथियों ने बताया कि हमारी काली देवी का सारा कुटुम्ब बिना आहार-निद्रा के व्याकुल है मेरे दुर्व्यवहार और पागलपन से। जब आधी रात बीत जाने पर भी मैं मठ में वापिस न लौटा तो क्रुद्ध राहुलजी विचलित हो उठे थे। उन्होंने बतलाया कि वे दोनों इन सब चिन्तित प्राणियों को समझा-बुझाकर मुझे सकुशल लौटा लाने की सौगंध लेकर चल दिये थे। तिब्बत की रीति-नीति बतलाते हुए गेशेलाजी ने कहा कि इस देश में बर्तन और कपड़े माँजने और धोने की रीति प्रचलित है। आवश्यकता होने पर थूक से रगड़कर वस्तु को शुद्ध कर लिया जाता है। अपने अंग से लिपटे हुए से नारी केवल अपने पूज्य पति की अमूल्य वस्तु सफाई करती है। यह बलिदान काली देवी ने मेरे बार-बार आग्रह करने पर मेरी चाय की प्याली की सफाई करने में किया था। इतना करने पर भी जब मैंने उनकी की पुरानी बहुमूल्य चीनी मिट्टी की सुन्दर प्याली तोड़ डाली तो उन पर दुख और भय का पहाड़ कुछ उसी प्रकार टूट पड़ा जिस प्रकार हमारे बाप-दादे की पूजी हुई मूर्ति के टूट जाने पर मन में आशंका उठ खड़ी होती है। मठ में पहुँचकर सबसे पहले मैंने जाकर राहुलजी से क्षमा माँगी। उन्होंने जब बताया कि किस प्रकार एक तिब्बती नारी ने अपने भारतीय अतिथि की सेवा में अपना बहुमूल्य सुहाग न्यौछावर कर डाला, और बदले में मिला उसके कुटुम्ब को तिरस्कार और नाश का शाप तो मैं ग्लानि से भर गया, और नीचे मकान मालकिन के पास दौड़ा गया तथा हाथ जोड़कर उनसे अपने अपराध की क्षमा माँगी। गेशेलाजी ने जब उनको मेरे अज्ञान-जनित कार्य को समझाया, और बतलाया कि मुझे उसका हार्दिक खेद है तो प्रसन्न होकर उन लोगों ने मुझे क्षमा कर दिया।

दूसरे दिन छुट्टी मनायी गयी। ढेर सारा याक (चमरी गाय) का दूध मँगाया गया और मुझे मीठी खीर बनाने का भार सौंपा गया। अभयसिंहजी जुटे ताजे भेड़ के मांस की तरकारी तैयार करने में। दिन भर उपलों की आग के धुएँ से हमारे सिर में पीड़ा होने लगी, पर जब हम एक साथ बैठे खाना खा रहे थे तो हमारी काली देवी ने अपनी उँगलियों को चाटते हुए कहा—"दि हचंग याकपो दू" (यह बहुत अच्छी है)। गेशेलाजी ने फुस-फुसाकर मेरे कान में तिब्बती भाषा के कुछ शब्द कहे। मैंने भी उनको दोहराकर काली देवी को कहा—"आँ क्षोरंग ला गावों दुक" (मुझे तुम पसन्द हो)। यह सुनते ही सभी लोग हँस पड़े और काली देवी ने लज्जा से मुस्कराकर सिर झुका लिया। आज की हँसी-मजाक के साथ भोजन का स्वाद हम सबों को खूब अच्छा लगा और हम सब पिछले दिन के अप्रिय कांड को भूल गये।

जब शालूगुम्पा की उन सब पुरानी पुस्तकों की नकल हो चुकी जिनकी प्रतिलिपि करने का राहुलजी ने निश्चय किया था, तब हम लोगों ने जाकर इस मठ के प्रधान लामा और अन्य लामागणों से भेंट की और अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करके विदा माँगी। सब लामाओं और आस-पास खड़े ढावाओं (भिक्षुओं) ने हम सबों को फिर दुबारा आने का अनुरोध किया। सामान-असबाब बाँधकर और दूसरे दिन उसे खच्चरों पर लादकर नीचे उतराई की ओर चल

पड़े। राहुलजी ने मुझे मकान मालकिन का हिसाब-किताब चुका देने का आदेश दिया। मैंने उस दिन तक के बाकी हिसाब के सत्ताईस संग, पाँच शोगा और आठ टंका (तिब्बती सिक्के) मकान मालकिन के हाथ में रख दिये। फिर राहुलजी के आदेशानुसार सबों को तीन-तीन संग (तिब्बती रुपया) इनाम बाँट दिया। ऊबड़-खाबड़ उतराई पर कुछ दूर जाकर, पीछे घूमकर, हमने फिर एक बार, उस जगमगाते सुनहरे छतोंवाले शालू गुम्पा के मनोरम दृश्य की झाँकी ली तो देखा कि हमारे तिब्बती मित्र उस ऊँचाई पर खड़े हुए हमें देख रहे हैं।

गुम्पा से नीचे उतरकर हमने उस प्राचीन नगरी में थोड़ी देर विश्राम किया, और फिर अपने अपने खच्चरों पर सवार होकर "पोए-खंग" गुम्पा की ओर चल पड़े। एक गाँव में पहुँचकर वहाँ माल लादनेवाले खच्चरों को बदलने के लिए हम लोग रुके। जब गाँव के भीतर से खच्चर लेकर मैं गेशेलाजी के साथ लौटा तो देखा कि राहुलजी और अभयसिंहजी के बीच बड़ा झगड़ा हो रहा है। अधिकतर वह तिब्बती भाषा में बोल रहे थे। कुछ समझ में नहीं आया कि किस बात पर विवाद हो रहा है। किंतु जब राहुलजी को ठेठ हिंदी में गालियाँ देते सुना तो मैं भौंचक्का सा रह गया। हमारे दयालु भाई गेशेलाजी उनमें बीच-बिचाव करने लगे। उन दोनों के तिब्बती भाषा में बोलने के कारण मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मामला क्या है। अभयसिंहजी से बार-बार पूछने पर पता चला कि जब पहिले राहुलजी यहाँ आये थे तब भी अभयसिंहजी ने उनको हर तरह की सहायता की थी। यहाँ तक कि अपनी जेब के रुपये भी उनके कार्य को सफल बनाने में लगा दिये थे। उन्हें शिकायत थी कि इनाम के तौर पर कुछ दिलवाना तो राहुलजी भूल ही गये थे, असली रकम लौटालने में भी वे टालटूल कर रहे थे। साथ ही अभयसिंहजी ने मुझको चेतावनी दी कि राहुलजी से पैसे-कौड़ी के लेन-देन के विषय में मैं सावधान रहूँ। मैं उस समय समझा था वे यह सब गुस्से में कह रहे हैं परन्तु बाद में मुझे भी अभयसिंहजी की तरह ही अनुभव हुआ। तिब्बत की इस कठोर यात्रा में मैंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी, अनेक अकथनीय कष्ट सहकर भी उनका साथ नहीं छोड़ा तथा बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पुस्तकों के फोटो लेने में दिन-रात एक कर दिया था। किंतु राहुलजी को सफलता का मुकुट पहिनाकर सही-सलामत लौटा लाया तो इनाम, और शाबाशी दिलाना तो दूर वे मेरा निर्धारित वेतन भी चुकाना भूल गये! इतना ही एक बहुत बड़े आदमी के द्वारा मुझसे कहलाया कि मैं बैठूँ। यदि चुप न रहूँगा तो वे मेरे साथ दूसरी तरह आवेंगे। ऐसी स्थिति में मैं पूज्य भइया साहब के देशानुसार खून का घूँट पीकर चुप हो गया। उसके अनेक बार राहुलजी से मुलाकात हुई। दुख-सुख अनेक बातें हुईं, पर न मैंने उनसे अपने पैसे माँगे और उन्होंने कभी उन्हें चुकाने का संकल्प ही प्रकट किया। जो हुआ सो हुआ——रुपया और यश तो भाग्य से मिलता है।

खच्चरों पर माल-असबाब लादे हम लोग खंग" गुम्पा की ओर अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए जा रहे थे, क्योंकि हवा बंद हो गयी थी और धूप बड़ी हो गयी थी। भारी मोटे कपड़ों में बड़ी गर्मी लग थी। धीरे-धीरे रेंगते-रेंगते अचानक दूर दिखाई पड़ा भारी, ऊँचे-ऊँचे पठारों पर बसा हुआ, एक तिब्बती लपककर गेशेलाजी से पूछा तो पता लगा कि वह तिब्बत की दूसरी राजधानी "शिगष्टपी"। इस चौड़े नगर को समीप से देखने के लिए मन उठा। खच्चर को मार-मारकर तेजी से आगे वहाँसे शहर लगभग दो मील दूर था, परन्तु ऐसा रहा था कि वह कुछ ही गजों की दूरी पर हमारी के सामने जगमगा रहा है। इसका कारण यह था वहाँकी पतली हवा में धूल आदि न होने से वह बहुत पारदर्शक होती है, और उसमें दूर की वस्तु भी बहुत दिखायी पड़ती है। इस प्राचीन महत्त्वपूर्ण नगर के में मैं बहुत कुछ सुन चुका था। कुछ पढ़ा भी था। बड़े सुन्दर गुम्बज धूप में तमतमा रहे थे। उनके ओर बड़े भारी-भरकम महल ऊँचे-नीचे सटे हुए खड़े इन महलों की छतों पर लाल रंग की चौड़ी पट्टी खींची थी। छत्तों के नीचे सफेद और मटमैली दीवारें थीं। कोई भवन सफेद रग की जगह नारंगी रंग से रँगा था। हर एक मकान की छतों के चारों कोनों में फूलदान लगे फूलों की तरह लकड़ी की टहनियों में रंग-बिरंगे की छोटी-छोटी झंडियाँ भूत-प्रेतों को भगाने के लिए हुई थीं। रह-रहकर इस भयानक सुनसान पहाड़ी में बड़ी तेज और सुरीली तुतरी और तुरही की

उठती थीं जिससे दूर-दूर तक, जहाँ तक उनकी आवाजें वहाँसे भूत-प्रेत और चुड़ैल भाग जायँ, और नगर पास न आने पावें। दूर से तिब्बती नर-नारी इतने लग रहे थे मानों कीड़े-मकोड़े रेंग रहे हों। सूर्य आँखों को चकाचौंध करता हुआ चमक रहा था। इतनी तेज और चमकदार थी कि फोटो भी नहीं जा सकता था।

थोड़ी दूर और आगे बढ़े तो नगर के बाहर एक बड़ा हरी घास का मैदान दिखलायी पड़ा, जिसके चारों सुन्दर चार-पाँच फुट ऊँची चहारदीवारी खिंची थी। दूर से यह चौरस मैदान और इसकी सफेद खूब- चहारदीवारी बड़ी अच्छी लग रही थी। इस दीवारी में मंत्रों के भरे ढोल एक विशेष प्रकार की में पास-पास लगाये गये थे। इस चहारदीवारी से गुजरनेवाले हाथ से थपेड़े मार-मार कर, इन मंत्र की कीलों पर टँगे ढोलों को नचाते जाते थे। नियमानुसार इनको बायें से दायें घुमाना चाहिए। ने कागज पर अपना मूल मंत्र "ओम् मा-नी-पद-" लिख-लिखकर और उन्हें लकड़ी या ताँबे के में भरकर सारे तिब्बत में करोड़ों की संख्या में टाँग था। वहाँ मुझे बतलाया गया कि एक ढोल को, मूल-मंत्र से लिखे हुए लाखों कागज भरे रहते थे, एक बायें से दाँयें घुमाने से उतने लाख बार उस मूल मंत्र से कहने का पुण्य प्राप्त हो जाता है।

अक्सर आपने देखा होगा कि तिब्बती लामाओं के हाथ या पीतल की एक सुंदर डुग्डुगीनुमा फिरकी होती वे बराबर घुमाते रहते हैं। इस फिरकी में छोटे- अक्षरों में मूल मंत्र लिखे हुए कागजों के हजारों टुकड़े रहते हैं। और इस फिरकी को एक बार घुमाने से फिरकी वाले को उतने हजार बार मंत्र दोहराने का पुण्य होता रहता है। फिरकी घुमाते समय वे मुँह से भी मूल मंत्र को दोहराते जाते हैं। यह लोग बहुधा हमारी माला भी हाथों में लिये रहते हैं। पानी के झरनों सहायता से, या हवा की चाल की सहायता से, चक्कर घूमनेवाले ढोल के आकार के समान वस्तुएँ दिख- पड़ती थीं। इनमें भी यही मूल मंत्र हजारों की में लिखे हुए रहते थे। उनके रात-दिन घूमते रहने लगानेवालों को यह विश्वास था कि उन्हें करोड़ों बार मुँह से मंत्र दोहराने का फल प्राप्त होता रहता था। इस मंत्र की गति पर उन्हें इतना विश्वास था कि रसोईघर के भीतर चूल्हे के ऊपर भी एक कागज की बनी बच्चों की फिरकी के समान फिरकी एक तीली में बिंधी हुई लगी रहती थी, जो आग जलने से और धौंकनी की हवा से घूमती रहती थी। उसके कागज पर कई सौ बार वह मूल मंत्र लिखा रहता था।

सारे मठों के हजारों विद्यार्थी कागज के टुकड़ों पर बहुत छोटे-छोटे अक्षरों में इस मंत्र को लिखकर तिब्बत निवासियों को बेचा करते थे। इन मंत्र लिखे हुए कागजों की बड़ी माँग रहती थी। बड़े-बड़े लामाओं के घर के भीतर बड़े सुन्दर मन्दिर होते थे जिनमें बुद्ध भगवान् और अन्य देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित रहती थीं; दीवारों पर धार्मिक चित्र अंकित होते थे और बड़े-बड़े कपड़ों पर अंकित सुन्दर धार्मिक चित्र टँगे रहते थे। मोटे-मोटे सुन्दर सुनहरे अक्षरों में उनका मूल मंत्र दीवारों पर लिखा रहता था। इन मंदिरों में लोहबान और धूप की सुगंधि बराबर दी जाती थी। मन्दिर के दरवाजे के पास मंत्र लिखे छोटे कागजों से भरा हुआ खूबसूरत ढोल लगा रहता था। इसके नीचे की कीली से एक चमड़े की पेटी या रस्सी इस प्रकार लपटी रहती थी कि जिसके खींचने से वह ढोल घूमने लगता था। एक चक्कर पूरा घूमने पर एक मीठी ठनाके की आवाज देकर घंटी बताती रहती थी कि इतनी लाख बार मंत्र दोहराने का फल घुमानेवाले को मिला। मंदिर में आने वाला हर एक व्यक्ति आते-जाते इसको थोड़ी देर अवश्य घुमाता था। लामाजी दिन भर इसी मन्दिर में बैठे मठ के प्रबंध का काम और धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करते थे। वही इनका दफ्तर था। इस प्रकार सारे कार्यों के साथ धर्म-सेवा भी सारी उम्र चलती रहती थी। कहीं-कहीं एक बूढ़ा, लंगड़ा या अंधा ढाबा (भिक्षु) दिन भर बैठा द्वार पर मूल मंत्र से भरे ढोल को प्रधान लामा के नाम पर घुमाता रहता था। जिस प्रकार रुपया देने पर हमारे देश में पुजारी लोग बड़े-बड़े धनी व्यक्तियों के घर प्रतिदिन आकर स्थापित मूर्ति की पूजा कर जाते हैं; या किसी बीमार व्यक्ति के नाम पर पुजारी मन्दिरों में पूजा-पाठ करते रहते हैं, उसी प्रकार वह भी लामा से वेतन लेकर लामा की ओर से इस प्रकार मंत्र का 'जप' किया करता था।

कड़ी धूप की गर्मी से पसीने में नहाता हुआ जब मैं अपने खच्चर से उतरकर कैमरा लेकर उस विशाल नगरी का फोटो लेने के लिए उसकी ओर झपटा चला जा रहा था तो राहुलजी हँस पड़े, और बोले "जरा शांत हो, इतने अधीर क्यों हो रहे हो? हम फिर पोए-खंग गुम्पा से लौटकर इसी शिगष्टषी नगर में कुछ दिन ठहरेंगे।" हम लोग शहर के बाहर एक पड़ाव में रात बिताने के लिए ठहरे। मैं अपनी सारी थकान भूल गया। यही जी करता था कि दौड़कर उस सामनेवाली नगरी को देख आऊँ। पर निरुपाय था क्योंकि गंदे मैदान में चारों ओर सैकड़ों बड़े-बड़े खूँख्वार भोटिये कुत्ते घूम रहे थे। सूर्य डूबने तक मकान की छत पर चढ़कर उस नगर के कई फोटो उतारे। और फिर अँधेरा होने तक छत की मुँडेर पर बैठा हुआ उस विराट नगर के टाशी लामा के मठ के चमकते हुए सुनहरे पाँच गुम्बजों को देखता रहा।

मन के भीतर न जाने कितनी प्रकार की भावनाएँ आयीं। तिब्बत और भारत एक दूसरे से कितने हिल-मिलकर रहा करते थे। हम दोनों एक धर्म के माननेवाले दो भाई थे। लेन-देन और शिक्षा का आदान-प्रदान ऐसे होता रहता था जैसे मानों हम दोनों के बीच इतना ऊँचा बर्फ से पटा हुआ हिमालय पर्वत था ही नहीं। अनगिनत दल आते-जाते रहते थे, हमारी सीमा के समीप बड़े-बड़े बाजार, शहर और तरह-तरह की चीजें बनानेवाले कारखाने थे। हम एक दूसरे के दुःख को अपना समझकर मुसीबत के समय सहायता लेकर दौड़ पड़ते थे। किंतु अंग्रेजी साम्राज्य ने हमको गुलाम बना लिया। धार्मिक देश तिब्बत को भी घायल करके इसने लुंज-पुंज कर डाला था। अब हमको एक दूसरे से मिलने के लिए "पास पोर्ट" और "वीसा" की जरूरत पड़ती है। हाय रे दुर्भाग्य! हम दोनों भाई एक दूसरे से अपरिचित हो गये! उनको मैला-कुचैला देखकर हम उन्हें असभ्य कहकर कटु शब्द निकालने लगे। परन्तु मैंने देखा कि हमारे तिब्बती भाई हमारा आज भी बड़ा सम्मान करते हैं। और बुद्ध भगवान् की मातृभूमि की सन्तान कहकर हमको प्यार और श्रद्धा से अपने सीनों से लगाने को आगे बढ़ते हैं। पर हम मूर्ख उनको पीछे ढकेल देते हैं——"दुर्गंध आती है" कहकर।

इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते अपने देश के पुराने इतिहास की भी याद आयी। हमारे कितने पूर्वजन इस देश में शान्ति, प्रेम और धर्म का सं लेकर आये थे। क्या चमक-दमक और शान होगी इस देश के नगरों की उन दिनों में! यहाँ के छोटे-बड़े लोग हमारे जगमगाते मंदिरों के दर्शन क बुद्धगया, सारनाथ, कुशीनगर, कपिलवस्तु जाते हो राजधानी पाटलिपुत्र की चमक से आकर्षित हो दौड़े आते थे तिब्बत, चीन, जापान और सारे एशि जाति के व्यापारी और राजनीतिज्ञ। सारे एशिया विद्यार्थी उत्सुक रहते थे हमारे देश के विशाल वि विद्यालयों——तक्षशिला और नालन्दा में——शिक्षा पाने लिए। उस तिब्बती सराय में सारी रात इन सपनों डूबा पड़ा रहा। पौ फटते ही वहाँसे चल देना प चलते समय दूर से "टाषी लम्पो" (टाषी लामा के गुम्प को प्रणाम किया। हम फिर जब लौटकर आयेंगे इस न में तो आपको विस्तारपूर्वक इस प्राचीन प्रसिद्ध न "शिगष्टषी" की रोचक कहानी सुनायेंगे।

दूसरे दिन खच्चरों से लड़ते-झगड़ते तथा नदी-ना पार करते हम चारों बढ़े चले जा रहे थे उस प्राची गुम्पा की ओर जो शिगष्टषी गुम्पा और पालू गुम्पा समान प्रसिद्ध और विख्यात है। युगों से इस गुम्पा (म में प्राचीन भारतीय तालपत्र की पोथियाँ, तिब्ब धार्मिक ग्रंथ और बड़े लम्बे-चौड़े पौराणिक चि एकत्र किये पड़े थे। सारे तिब्बत के विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण मठ का नाम सुनते ही हाथ जोड़कर आदर सिर झुकाते थे।

चलते-चलते जब एक छोटी सी नदी पार करने ल तो हमको वहाँ थोड़ी देर रुकना पड़ा। पानी की धा बहुत तेज और ठंडी थी। बीच धारा का पानी हमा कमर के ऊपर तक था। माल लदे गधे बहुत छोटे माल से भरे संदूक, उनकी पीठों की दोनों ओर लटके थे, जो कि भूमि से केवल डेढ़-दो फुट ऊँचे थे। यदि पानी में गधे और खच्चर बिदककर भाग पड़े, गिर या बैठ गये तो हमारा बहुमूल्य सामान नष्ट हो जाय इस संभाव्य खतरे से बचने के लिए यह विचार हुआ सारा माल-असबाब पहले उनकी पीठों से उतारा जा जानवरों को उस पार ले जाकर खड़ा कर दिया जा और फिर खच्चरवाले मजदूरों के सिरों पर सामान रख

नदी के उस पार पहुँचाया जाय। हम सब इस पार अपने खच्चरों की लगाम पकड़े खड़े थे, और मजदूरों को सामान और जानवर उस पार ले जाते हुए देख रहे थे। चार खच्चरवाले थे। इनमें दो पुरुष थे और दो स्त्रियाँ। पहले उन लोगों ने अपने ऊनी मोटे कोट उतार डाले फिर ऊनी बड़े बूट उतार डाले। बूटों को अपने कोट में लपेटकर अपने सिरों पर रख लिया और हमारे भारी-भारी संदूकों को उस पार उतारने लगे। उन चारों व्यक्तियों का शरीर बिल्कुल नग्न था। अपने कोटों के नीचे उन लोगों ने कुछ भी नहीं पहन रखा था। वे चारों हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति अपने गोरे रंग के गठे हुए शरीर तथा सिरों पर लम्बे-लम्बे केश की चोटियाँ बाँधे पानी के भीतर से आते-जाते बड़े ही अजीब लग रहे थे। उनको अपनी नग्न देह दिखाने में कोई लज्जा नहीं लग रही थी। राहुलजी ने हँसकर कहा, "देखिये फेनी बाबू! ये रैड इंडियन लग रहे हैं। तैयार हो जाइये इनके साथी बनने के लिए।" पहले तो मैं बहुत सिटपिटाया, पर करता क्या?

हम लोगों ने अपने-अपने वस्त्र उतारकर खच्चरों के पीठ पर लाद दिये और नदी के पानी में पाँव डाला। पानी बर्फ के समान ठंडा लग रहा था। पानी में डूबा हुआ शरीर का अंग मानों कट गया था। जब पानी मेरी जाँघों तक आ गया तो मैं शीत से काँपने लगा। मेरी दाँती बजने लगी और आगे बढ़ना कठिन हो गया। मेरी यह दशा देखकर आती हुई एक नारी ने मेरा हाथ पकड़ लिया और अपनी पीठ पर पिठ्ठू चढ़ाकर मुझे उस ऊबड़-खाबड़ पत्थरों से भरी हिम नदी के पार उतार ले गयी। उस स्वतंत्र तिब्बती नारी की उदारता, शारीरिक शक्ति और मनोबल की याद आज भी जब आती है तो श्रद्धा और प्रशंसा से तिब्बती नारी जीवन का एक आदर्श चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। इस प्रकार तिब्बती नर-नारियों ने मेरी तरह कितने असहाय और अनजान लोगों को अपनी नग्न देह के सहारे बचाया होगा! पहले जिनकी नग्न देह देखकर हम हँसे थे, "रैड इंडियन" कहकर जिसकी हँसी उड़ाई थी उसी गँवार, असभ्य नारी को अब हम श्रद्धा से मस्तिष्क झुकाये साक्षात् देवी मानकर निहार रहे थे। श्री गेशेलाजी ने कहा इस देश में लोग कपड़ा पहनते हैं शरीर को प्रकृति की उग्रता से बचाने के लिए, बाहरी आडम्बर या सजाने के लिए नहीं। शर्म और लज्जा यहाँके लोग मानते हैं अपने को अधर्मी समझकर। हाय! जिस देश की जाति का इतना ऊँचा आदर्श है, वह देश आज इतनी यातना सह रहा है! अपने साथियों के बार-बार आग्रह करने पर भी मैंने उन तिब्बती देवी-देवता समान नर-नारियों की नग्न देहों के फोटो नहीं उतारे। अगर उनके फोटो उतारता तो आज अपना और अधिक तिरस्कार करता।

उस दिन हमने वीरान, उजाड़ और ऊसर तिब्बती मैदान और पठार पर सोलह मील की यात्रा की।

अगले दिन दूर से मेघाच्छादित दो बड़े ऊँचे पहाड़ों के बीच की ऊँची गोदी में बसा हुआ "पोए-खंग" गुम्पा दिखायी पड़ा। चित्त आनन्द से उछल पड़ा। ऐसी सुन्दर स्थिति तिब्बत के किसी और मठ की शायद ही हो। सफेद दीवारों पर लाल पट्टीवाले भवन सटे खड़े थे, और दूर से ऐसा मालूम होता था कि मानों मधुमक्खियों का छत्ता इन दोनों पहाड़ों के बीच के किसी दूर पहाड़ पर लगा हुआ है। अधिकतर सारे भवन बड़ी अच्छी हालत में थे और गुम्पा के ऊँचे स्वर्ण गुम्बज के चारों ओर बड़े कलात्मक ढंग से खड़े किये गये थे। इन दोनों पहाड़ों के बीच, गुम्पा की दिशा से, पानी की एक धारा बड़े-बड़े ऊबड़-खाबड़ पत्थरों में से होकर बही चली आ रही थी। ऊँचे-नीचे बड़े-बड़े पत्थरों पर उछलते-कूदते हुए लगभग पाँच, छः मील की चढ़ाई चढ़कर हम लोगों को गुम्पा के द्वार तक पहुँचना था। किंतु तब तक दिन छिपने में अधिक समय बाकी नहीं था। इसलिए हम लोग सामने के गाँव में रात बिताने के लिए घुस पड़े।

* * *

तुलसी के पढ़ाऊ

पं० शिवाधार पाण्डेय

"अगस्त" की 'सरस्वती' में जो "डाक्टर" हेमचन्द्र जी जोशी का नौ स्तम्भों का अग्रलेख प्रकाशमान हुआ है वह सचमुच ऐसा दुर्लभ है जैसा हेम का चन्द्रमा वा रीवाँ के गोरे सिंह! हिन्दी के सारे आचार्यों को उसे कण्ठस्थ ही नहीं करना चाहिये, हृदयस्थ कर लेना चाहिये। तभी वह उसकी ज्योति से चमक कर हिन्दी की आजकल की अमावास्या में चन्द्रमा की उस सोलहवीं कला की खोज कर सकेंगे जिसे वह सबसे छिपाता है क्योंकि वही उसके जीवित रहने का पक्का प्रमाण है।

तुलसीदास हिन्दी के "मिल्टन" कहलाते हैं इसी गुण से—"मिल्टन! ए नेम टु रिज़ाउण्ड फ़ॉर एजेज़!" बाइरन ने लिखा था। तुलसी का एक एक दल सहस्रों रोगों की दवा है। मेरे पास चार दिन हुए 'भोपाल' से 'तुलसीदल' नाम की एक हेमवर्ण पत्रिका आयी। मुझे आशा है कि वह इस नौखम्भे की अवश्य शरण लेगी। 'सूर सूर तुलसी शशी' में सूर तो सूर ही हैं (राम रावण का युद्ध राम-रावण ही का युद्ध है) उनका क्या कहना? परन्तु तुलसी की सच्ची तुक शशी है क्योंकि वह दाँत के सहारे का उच्चारण तालु के सहारे से पूर्ण करती है और 'शशि' शब्द का विशुद्ध संस्कृत रूप है प्रथमा विभक्ति का एकवचन होने से। तुलसी भी 'रामा' वा 'श्यामा' होती है।

पढ़ाउओं को किसी काव्य का पूरा आनन्द तभी मिल सकता है जब वह सहस्रों ओर दृष्टि दौड़ावें और व्याख्या का व्याख्यान सुनावें। इसीलिए मैंने इस स्वर्ण-मन्दिर के चारों ओर साहित्य-सरोवर में परिक्रमा लगाने की धृष्टता की। आनन्द आ गया!

मुझे आभास हुआ कि त्रिपुरारी को पुरारी कहना ठीक ही नहीं है अत्यन्त उचित है। त्रिपुर का विनाश तभी हो सकता था जब वह एक दुर्लभ क्षण भर तीनों पुरों को एक के ऊपर एक पुर करता था।[१] पुराणों का यह ज्ञान न होने से शंकरजी को सारे पुरों का शत्रु बनाना (और संसार को श्मशान करना—जो उनकी "ड्यूटी" से बाहर नहीं था), पुरन्दर की तुलनात्मक समालोचना में फँसना, ईरानी अहुरमज़्द के देव–शैतानों पर दूरबीन फेंकना, मोनियर विलियम्स के संस्कृत कोष से किसी अकथित ग्रन्थ के आधार पर! 'पुरारि' का अर्थ 'विष्णु' लगाना (पुरारि छापे की भूल तो हो नहीं सकती, एक अँगरेज़ के कोष में) और इस नतीजे को निकालना कि "इससे यह भी पता चलता है तुलसी के समय में विद्वानों को यह पता न रहा होगा कि पुरारि विष्णु के लिये प्रयुक्त किया गया है" बहुत ही दूर की कौड़ी फेंकना है जिससे भ्रम का साँप वश में नहीं होता। हेमचन्द्रजी को यह ज्ञान नहीं था कि जिस शर से त्रिपुर का नाश हुआ था वह नारायण (विष्णु) ही का रूप था।[२] इसलिए उनको पुरारि बताने के लिए मोनियर विलियम्स के जन्म लेने की घड़ी नहीं जोहनी थी। तुलसी ने शिव को पुरारि कहा तो ठीक कहा। प्रत्यक्ष है कि 'पुरारि' शब्द विशिष्ट रूप से शंकर का वर्णन करता है और विष्णु का भी कर सकता है। दोनों विभूतियों के एकात्मक होने से। चौपाई का रूप जो मैंने पढ़ा था वह था "उमा सहित जेहिं जपु त्रिपुरारी"। हेमचन्द्रजी को सहस धन्यवाद हैं कि उन्होंने विशुद्ध पाठान्तर "जपत पुरारी" देकर तुलसी की विशिष्ट विद्वत्ता प्रकट कर दी! मेरी प्रति में छापनेवाले ने अपना नन्हा मुन्ना ज्ञान तुलसीदासजी के माथे मढ़ा था और "प्राकृतिक" उकी मात्रा 'जपु' में लगाकर अपना प्राकृत का पक्षपात भी प्रकट किया था। 'उ' दो बार आने से सुन्दर लगता है। तुलसी कवि थे, जैनी नहीं थे। वह 'जपु पुरारी' नहीं लिख सकते थे। तीन सौ वर्ष में भी शेक्सपियर के पाठान्तर ठीक नहीं हुए। कौन प्रकाशक हेमचन्द्रजी ही की सम्मति से सम्मत था कि "शिवजी को पुरारि कहना किसी प्रकार संगत नहीं जँचता!" बलिहारी!

अग्निपुराण में भगवान् राम की कही राजनीति पाँच अध्यायों में दी है। अध्याय २३८ का तीसरा श्लोक यह है:—

---

[१] —यदैवं त्रिपुरं सर्वम् क्षणमेकं भविष्यति।
स कालः पुष्ययोगस्य पुरस्य च मया कृतः॥
काले तस्मिन्पुरे यस्तु सम्भावयति संहतिम्।
स एवं कारयेत्तूर्णम् बलिनैकेषुणा सुरः।—मत्स्य पुराण

[२] —आननं ह ग्निरभवच्छल्पं सोमस्तमोनुदः।
तेजसः समवायोऽथ चेषोस्तेजो रथांगधृक्।—म०पु०

१६६३

नयस्य विनयो मूलम् विनयः शास्त्रनिश्चयात् ।
विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीम् ।।

आठवाँ श्लोक है :—

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिं च पार्थिवः ।
तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ।।

'विनय' का अर्थ रामचन्द्रजी खूब समझते थे। कोषवालों से अधिक ! तुलसीदासजी ने उनके दरबार में एक पत्रिका भेजी थी। वह उनको अवश्य समझते थे। इसकी आजकल के हाईकोर्टों की 'रिट' से तुलना करिए और तुलसी की गहराई और उँचाई उनकी भक्ति और ज्ञान के योग से समझिए। कालिदास और जैनी प्राकृत-ग्रन्थों का पिण्ड छोड़िए।

हेमचन्द्रजी ने तुलसीदास को पाठ पढ़ाया है। "तुलसी ने राम को हरि क्यों कहा जब हरि केवल कृष्ण को कहा जाता है जिनके वड़े भाई भी एक राम थे !" तीन राम प्रसिद्ध हैं—तीसरे थे परशुराम। हेमचन्द्रजी ने यहाँ आलोचना (समालोचना नहीं) का परशु सा प्रयोग किया है! जैसे "हिन्दी कोषों में हरि का एक अर्थ राम किया गया है किन्तु सत्य कुछ और है।" अशंभु और पुष्पदन्त जैन मत के थे। "पुष्पदन्त जैन ने राम को हरि लिखा था, यह तुलसी ने उनसे सीख लिया ! हरि का अर्थ 'पीला' है। "भगवान् पीला वस्त्र पहनते हैं इससे कृष्ण का नाम हरि है।" "पीत झंगुलिया तन पहिराए" कौशल्याजी का कसूर था क्या हेमजी !

तुलसी ने अध्यात्म रामायण का अत्यन्त अध्ययन किया था, यह सर्वसम्मत है। उसके अरण्यकाण्ड में जटायुकृत रामस्तोत्र है जिसका चौथा श्लोक है :—

भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवसुखदैवतदैवतम् दयालुम् ।
मनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ।।

उसीके वालकाण्ड में अहल्याकृत रामस्तोत्र है जिसका चौथा श्लोक है :—

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम् ।

इन्द्र को भी हरि कहते हैं। उसी रामायण में युद्धकाण्ड में इन्द्रकृत रामस्तोत्र है। श्लोक २ में है यह :—

परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ।।

किम्बहुना ? 'हरि' श्वेतद्वीप की विष्णु विभूति का नाम है। और अनेक 'सिंह' आदि अर्थ रखता है। बलि की हरिनाममाला प्रसिद्ध है :—

हरिं च हरिणाक्षं च हरिनाथं हरिप्रियम् ।
हलायुधसहायं च तं वन्दे हनुमत्पतिम् ।।

हेमचन्द्रजी को लक्ष लक्ष धन्यवाद है कि उन्होंने अनेक 'प्राकृत' रूपों का हवाला देकर तुलसी के प्राकृत ज्ञान को सिद्ध कर दिया। "स्मरण का प्राकृत प्रतिरूप सँभरण है। उस संभरण से तुलसी ने हिन्दी धातु 'संभारना' वनाया है।" संस्कृत पढ़ने में प्राकृत भी पढ़ी जाती है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग होने से तुलसी का संस्कृतज्ञान तो दिन दूना रात चौगुना अब मालूम हो रहा है। उनके प्राकृत-ज्ञान की प्रशंसा अब हेमचन्द्रजी ने सहस्र मुखों से गायी है, यह परम सौभाग्य की बात है। परन्तु सच्चा महाकवि आप नये शब्द गढ़ सकता है और उसकी 'ध्वनि' 'दिग् दिगन्त' तक जाती है, यह कौन नहीं जानता ? हेमचन्द्रजी का अन्तिम उपदेश 'सम्भार' के ग्रहण करना चाहिये कि "मेरी प्रबल इच्छा यही है कि हिन्दी में हमारे विद्वान् और विश्वविद्यालयों के छात्र अपनी प्यारी भाषा की भली भाँति चीर-फाड़ कर (यहाँ धातु शब्द केवल 'कर' होगा) उसके अंग-प्रतिअंग से परिचित हों !" मेरी 'विनय' है कि यहाँ तज़किरा रामायण का है, हिन्दी का नहीं। "तुलसीकृत" अभी कोई मरी मुर्दा लाश नहीं है जिसकी 'पोस्ट मार्टम' जाँच से भाषाशास्त्र की उन्नति होगी वा सुधार किया जायगा। वह जीती जागती मूर्ति है जिसके दर्शन ही से भक्ति का प्रचार होता है और जिसकी नखशिख आरती से भारत का कल्याण हुआ है और होता रहेगा। "उपमा कालिदासस्य" के स्थान में "उपमा हेमचन्द्रस्य" कहना अर्थ से असंगत नहीं होगा, संगत जँचैगा। टीका व्युत्पत्ति और पूर्वप्रयोगों के दायरों में ही बन्द नहीं है। शास्त्रज्ञान भी आवश्यक है। बुद्धि डाक्टर की भी 'माया' में फँस सकती है—मायामरीचिका हो वा मायामृग ! तुलसी को समझने के लिए तुलसी का सा हृदय और मस्तिष्क पाने का प्रयत्न करना चाहिये। तुलसी की सी आयु भी। 'कहाँ से क्या लिया' इससे महाकवि नहीं होता। 'क्या का क्या किया' इससे होता है। चन्द्रमा भी हो तो उसे 'हैम' से हेम करता है। कभी कभी। डाक्टर भी चीरफाड़ ही करता है क्या ? फिर तुलसी की ? डाक्टर क्या आप सर्जन हैं !!!

हिन्दी प्रकाशन की शताब्दी और उसका शतवार्षिक विवरण

श्री प्रभुदयाल मीतल

"सरस्वती"—जून '६३ के अंक में "ब्रजभाषा का एक ज्ञानकोष" शीर्षक से "दंपति वाक्य विलास" नामक ग्रंथ पर मेरा एक परिचयात्मक लेख प्रकाशित हुआ था। उस ग्रंथ की उपयोगिता को देखते हुए मैंने उसे सुसंपादित रूप में प्रकाशित किये जाने की आवश्यकता भी प्रकट की थी। अगस्त '६३ के अंक में श्री अगरचंदजी नाहटा की एक टिप्पणी प्रकाशित हुई, जिसमें बतलाया गया कि उक्त ग्रंथ अबसे क्रमशः ७५ और ६८ वर्ष पूर्व दो बार प्रकाशित हो चुका है।

श्री नाहटाजी की टिप्पणी से उक्त ग्रंथ के संबंध में एक नयी जानकारी अवश्य मिली है, किंतु इससे उक्त ग्रंथ के प्रकाशन की आवश्यकता में कोई कमी नहीं आती है। कारण यह है, अब से प्रायः ७० वर्ष पूर्व प्रकाशित उक्त ग्रंथ की मुद्रित प्रतियाँ भी उतनी ही दुर्लभ हैं, जितनी उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ। फिर वह ग्रंथ शुद्ध, सुसंपादित और पूर्ण रूप में प्रकाशित भी नहीं हुआ था। उसकी दो-चार मुद्रित प्रतियाँ प्राचीन पुस्तकालयों में होंगी, जिनका पता भी नाहटा जैसे विशिष्ट शोधक विद्वानों को ही होगा। हिंदी संसार के लिए तो उक्त ग्रंथ की हस्त प्रतियों के साथ ही साथ उसकी मुद्रित प्रतियों का भी कितना कम ज्ञान है, उसका एक बड़ा प्रमाण "हिंदी पुस्तक साहित्य" नामक संदर्भ ग्रंथ है। उक्त ग्रंथ डा० माताप्रसादजी गुप्त द्वारा संपादित होकर हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ था। उसमें सन् १८६७ से १९४२ ई० तक की अवधि में प्रकाशित हिंदी पुस्तकों का विवरण दिया गया है; किंतु उसमें "दंपति वाक्य विलास" के दोनों संस्करणों में से किसीका भी उल्लेख नहीं है।

मेरा लेख उक्त ग्रंथ की जिस हस्त प्रति पर आधारित है, वह श्री व्यंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति (आंध्र) के हिंदी प्राध्यापक श्री चंद्रभानजी रावत के पास है। उन्हींसे मैंने उक्त ग्रंथ पर अपने नोट्स लिये थे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मेरा विवरण बिलकुल ठीक है। उसके लिखने में मैंने उसके अध्यायादि के संबंध में कोई भूल नहीं की है। नाहटाजी द्वारा उल्लिखित संस्करण उस ग्रंथ की किसी अपूर्ण प्रति पर आधारित जान पड़ता है। रावतजी की प्रति के अतिरिक्त संभवतः कवि के जन्मस्थान वृंदावन में उस ग्रंथ की अन्य हस्त प्रतियाँ भी मिल सकती हैं। उनसे ग्रंथ के वास्तविक स्वरूप का निश्चय हो सकता है।

श्री अगरचंदजी नाहटा की टिप्पणी से एक लाभ यह भी हुआ कि इस ग्रंथ के संपादक को अब किसी एक ही प्रति पर भरोसा करना उचित नहीं होगा। श्री रावतजी अपनी प्रति के आधार पर ही इस ग्रंथ का संपादन करना चाहते हैं। उन्हें अन्य हस्त प्रतियों के साथ ही साथ उल्लिखित मुद्रित संस्करणों को भी देखना होगा, तभी इस ग्रंथ का संपादन ठीक तरह से हो सकेगा।

यह तो हुई अवान्तर बात। मुख्य विषय, जिसे मैं उपस्थित करना चाहता हूँ, यह है कि हिंदी में ऐसे संदर्भ ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है जिनसे इस भाषा के समस्त प्रकाशित ग्रंथों की जानकारी हो सके। ये संदर्भ ग्रंथ प्रकाशन-काल अथवा विषय-क्रम के अनुसार हो सकते हैं। मैंने जिस "हिंदी पुस्तक साहित्य" का ऊपर उल्लेख किया है, वह आरंभिक प्रयत्न होने से त्रुटिपूर्ण अवश्य है और उसमें १९४२ ई० तक की पुस्तकों का उल्लेख होने से वह नितांत अपूर्ण भी है; किंतु फिर भी हिंदी में अपने विषय का कदाचित् वही एकमात्र ग्रंथ है। १९४२ ई० के बाद अब तक के २१ वर्षों में जितने हिंदी ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, उनके दशांश भी विगत ७५ वर्षों में नहीं हुए। इसलिए अब तक के प्रकाशनों का समावेश करते हुए उक्त ग्रंथ के आदर्श पर एक संदर्भ ग्रंथ प्रकाशित होना अत्यंत आवश्यक है।

सन् १८६७ में अँगरेजी सरकार ने इस देश के पुस्तक प्रकाशन को नियंत्रित करने के लिए एक विधान बनाया था, जो "रजिस्ट्रेशन आव बुक्स एण्ड प्रेस एक्ट" कहलाता है। हिंदी प्रकाशन का कार्य भी वस्तुतः १८६७ ई० से ही आरंभ हुआ है; उससे पहिले का प्रकाशन अत्यल्प—नाममात्र का है। "हिंदी पुस्तक साहित्य" की प्रस्तावना में बतलाया गया है कि भारतेन्दु बा० हरिश्चंद्रजी की पहिली मौलिक रचना भी सन् १८६७ में ही प्रकाशित हुई थी, अतः उक्त सन् का साहित्यिक महत्त्व भी है। प्रस्तावना में भारतेन्दुजी की रचना का नामोल्लेख नहीं किया गया है, किंतु अन्यत्र उनके ग्रंथों की सूची में उनकी एक रचना "विरह शतक" का प्रकाशन-काल सन् १८६

र उसके प्रकाशक का नाम ज्वालाप्रसाद भार्गव, आगरा ाया है। काशी के प्रतिष्ठित विद्वान् श्री ब्रजरत्नदासजी ारतेन्दुजी की समस्त रचनाओं का संपादन किया जिन्हें काशी नागरीप्रचारिणीसभा ने “भारतेन्दु ावली” के नाम से कई भागों में प्रकाशित किया है। ब्रजरत्नदासजी ने भारतेन्दुजी का जीवनचरित्र भी ा है, जो प्रयाग की हिंदुस्तानी ऐकेडेमी से प्रकाशित ा है। किंतु न तो उक्त ग्रंथावली में और न जीवन-त्र में ही भारतेन्दुजी कृत “विरह शतक” का नामोल्लेख ता है।

भारतेन्दु बा० हरिश्चंद्र आधुनिक हिंदी साहित्य के और उन्नायक माने जाते हैं। उनकी प्रथम प्रकाशित ा का कितना बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है, यह बतलाने आवश्यकता नहीं है। उसके संबंध में यथार्थ ज्ञान िए नहीं हो सका कि हमारे यहाँ इस प्रकार की कारी देनेवाले संदर्भ ग्रंथ नहीं हैं। मुझे भी “दंपति विलास” के मुद्रित संस्करणों का परिचय इसीलिए मिल सका। मेरे जैसे अनेक लेखकों और शोधकर्त्ताओं इस प्रकार के ग्रंथों के अभाव में कितनी कठिनाइयाँ नी पड़ती हैं, इसे भुक्तभोगी ही जान सकता है।

आगामी १९६७ ई० में हिंदी प्रकाशन के १०० वर्ष हो जावेंगे। इस एक शताब्दी में हिंदी में कितने और प्रकार के ग्रंथ प्रकाशित हुए, इसका विवरण संदर्भ ए तो आवश्यक है ही, इसका ऐतिहासिक और साहि-क महत्त्व भी अत्यधिक है। हिंदी साहित्य के इतिहास र्वांगपूर्ण रचना के लिए तो यह ग्रंथ अपरिहार्य होगा। नाहटाजी की टिप्पणी से मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हुई कि हिंदी संसार को “हिंदी प्रकाशन की शताब्दी” का आयोजन करने और उस अवसर पर “हिंदी ग्रंथों का शतवार्षिक विवरण” प्रस्तुत करने का सुझाव दूँ। मुझे आशा है, यह सुझाव पसंद किया जावेगा।

अभी इसके लिए ३–३।। वर्ष शेष हैं; किंतु जितना काम करना है, उसके लिए यह अवधि अधिक नहीं है। इस काल में उक्त विवरण तैयार हो जाना चाहिए और उसके कुछ आरंभिक खंड छप भी जाने चाहिए। यह कार्य भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय, हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय तथा साहित्य अकादमी की आर्थिक सहायता और अ० भा० हिंदी प्रकाशक संघ के सहयोग से हिंदी साहित्य-सम्मेलन, काशी नागरीप्रचारिणीसभा अथवा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा सम्पन्न कराया जा सकता है।

वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय “राष्ट्रीय ग्रंथ सूची” के रूप में भारतीय भाषाओं में प्रकाशित ग्रंथों की वार्षिक सूचियाँ बनवा रहा है। यह कार्य केन्द्रीय पुस्तकालय कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष श्री वी० एस० केशवन् की देख-रेख में होता है। ये सूचियाँ संविधान में मान्यता प्राप्त समस्त भारतीय भाषाओं के ग्रंथों की हैं तथा अँगरेजी भाषा और रोमन लिपि में प्रकाशित होती हैं। उत्तर प्रदेशीय सरकार के भाषा विभाग ने उक्त सूचियों में दिये हुए हिंदी और उर्दू ग्रंथों की पृथक् सूचियाँ प्रकाशित करने का आयोजन किया है। “हिंदी प्रकाशन समाचार” और अ० भा० हिंदी प्रकाशक संघ भी हिंदी ग्रंथों की कई सूचियाँ प्रकाशित कर चुके और करना चाहते हैं। ये सब प्रयत्न उक्त “शतवार्षिक विवरण” के प्रस्तुतीकरण में सहायक हो सकते हैं।

हैदराबाद का अंग्रेजी संस्थान

डा० उदयनारायण तिवारी

१५ अगस्त सन् १९४७ को हमारा देश स्वतंत्र हुआ और जब उसका संविधान बना तो देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी राज्यभाषा घोषित हुई। प्रारंभ में ऐसा प्रतीत हुआ कि संसार के अन्य राष्ट्रों की भाँति यथासभव शीघ्र ही हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो जायगी और इस प्रकार वह देश की भावात्मक एकता में सर्वाधिक सहायक सिद्ध होगी किन्तु यह आशा दुराशा में परिणत हुई। आरम्भ में अंग्रेजी के हिमायती चुप थे। वे नवीन शासकों का रुख देख रहे थे। उन्हें राष्ट्रपिता बापू की यह बात याद थी, "राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रश्न तो मेरे लिये स्वराज्य का प्रश्न है।" उन्हें इस बात की आशंका थी कि कहीं अंग्रेजी के प्रति आकर्षण के कारण उन्हें लोग अराष्ट्रीय न मानने लगें; किन्तु शीघ्र ही उन्हें इस बात का पता चल गया कि देश का शासन जिस दल के हाथ में है, उसके कई उच्च नेताओं का प्रच्छन्न एवं प्रगट रूप में अंग्रेजी की ओर आकर्षण है। अतएव हिन्दी को वास्तविक अर्थ में राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जो कर्तव्य आवश्यक थे, उनका पालन नहीं किया गया। राष्ट्रीयता की जो बाढ़ विदेशी शासन से मुक्त होने के समय थी उसका वेग धीरे-धीरे कम होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन में देशी भाषाओं एवं राज्यभाषा को जो स्थान मिलना चाहिये था, वह न मिल पाया और अंग्रेजी भाषा ज्यों की त्यों बनी रही। उधर अंग्रेजी भक्तों ने शिक्षा के गिरते हुये स्तर की आड़ लेकर अंग्रेजी भाषा के शिक्षण को बदस्तूर कायम रखने के लिए आन्दोलन प्रारंभ किया और प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के स्तर पर समस्त देश में अंग्रेजी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की माँग की। हैदराबाद का केन्द्रीय अंग्रेजी संस्थान (सेण्ट्रल इंस्टिट्यूट आव इंगलिश) इसीका परिणाम है। इस संस्थान की स्थापना जुलाई सन् १९६२ में हुई। इसका उद्देश्य इस देश में अंग्रेजी भाषा के शुद्ध उच्चारण एवं शुद्ध लेखन को प्रोत्साहन देना है। इसके लिए यह संस्थान प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापकों, अध्यापकों, कला तथा विज्ञान महाविद्यालयों के व्याख्याताओं (लेक्चरर्स) माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों, जिला विद्यालय निरीक्षकों तथा स्थल एवं जलसेना के अध्यापकों अंग्रेजी भाषा के प्रशिक्षण के लिए आमंत्रित करता इस संस्थान में प्रशिक्षण के लिए चार-चार मास के सत्र चलाये जाते हैं। प्रथम सत्र जुलाई में तथा दू नवम्बर में आरंभ होता है। शिक्षार्थियों को निम्नलि विषयों की शिक्षा दी जाती है:—

(१) अंग्रेजी भाषा की गठन,
(२) अंग्रेजी पढ़ाने की पद्धति,
(३) अंग्रेजी ध्वनिशास्त्र,
(४) साहित्यिक गुण विवेचन।

इसके अतिरिक्त शिक्षार्थी अंग्रेजी शिक्षण के सम्ब में महत्त्वपूर्ण अनुसंधानात्मक निबंध भी प्रस्तुत करते कतिपय निबंधों के शीर्षक इस प्रकार हैं:—

(१) विदर्भ माध्यमिक शिक्षा परिषद् नागपुर द्वा निर्धारित नवीं कक्षा की अंग्रेजी पाठचपुस्तक की शब्दाव का विश्लेषण।

(२) आधुनिक तेलगू की शब्दावली पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन।

(३) फोरेस्टर कृत दीपक रीडर में प्रयुक्त उप (prepositions) के प्रयोगों का विश्लेषण।

प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्राध्यापकों को पूर्ण रू प्रशिक्षित करने के लिए अब यह संस्थान नौ महीने का स प्रारंभ करने जा रहा है। इस सत्र में देश के वि राज्यों के प्राध्यापक बुलाये जायँगे। प्रशिक्षित होकर प्राध्यापकगण अपने अपने राज्यों के हाई स्कूलों जूनियर हाई स्कूलों के अध्यापकों को अँग्रेजी भाषा अध्ययन-अध्यापन की पद्धति में प्रशिक्षित करेंगे। प्रकार अंग्रेजी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार प्रसार शनैः-शनैः देश भर में हो जायगा। इस सं को चलाने के लिये पुष्कल मात्रा में धन व्यय किया जा है। संस्थान का नवीन भवन तैयार हो रहा है। शिक्षा के लिये सम्प्रति जिन यंत्रों का प्रयोग हो रह उनमें से कई बहुमूल्य यंत्र यहाँ हैं। अमेरिका एवं इं से इस संस्थान को पर्याप्त सहायता मिलती है। डॉ० ई० दस्तूर इसके अध्यक्ष तथा प्रोफेसर बी० के० इसके मंत्री हैं। श्री गोकक ही वास्तव में इस

न के संचालक हैं। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के श्री एन० कृपाल, श्री भूतलिंगम्, श्री राजाराम सिंह तथा हृदयनाथ कुंजरू आदि एवं विश्वविद्यालय अनुदान के इसके सदस्य हैं। अमेरिका और इंग्लैण्ड के भी दो प्रोफेसर इस संस्थान के अध्यापन कार्य में भाग ले रहे हैं। १० जुलाई सन् १९६२ से १० अप्रैल सन् १९६३ ई० तक इस संस्थान में ५१० व्यक्ति प्रशिक्षित किय जा चुके हैं। इनकी तालिका इस प्रकार है :—

राज्यों की सूची	प्रशिक्षण महाविद्यालयों के व्याख्याता	प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापक	कला तथा विज्ञान महाविद्यालयों के व्याख्याता	माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक	निरीक्षक	स्थल तथा जल सेना विभाग के अध्यापक	योग
—आन्ध्र प्रदेश	१५	३	४५	१६	३	..	८२
—आसाम	२	×	३	८	..	..	१३
—बिहार	६	३	१८	२२	५	..	५४
—बम्बई	९	..	१६	३	..	..	२८
—गुजरात	४	..	४	२	१	..	११
—जम्मू तथा काश्मीर	३	..	१	२	..	..	६
—केरल	११	..	९	१२	१	..	३३
—मध्य प्रदेश	६	..	८	३	..	..	१७
—मद्रास	८	२	१०	..	२	..	२२
—महाराष्ट्र	९	..	११	१०	..	..	३०
—मैसूर	१५	..	२०	१२	२	..	४९
—उड़ीसा	१	..	४	१०	..	..	१५
—पंजाब	२	..	९	५	..	..	१६
—राजस्थान	२	..	४	५	३	..	१४
—उत्तर प्रदेश	१५	..	२२	२	..	..	३९
—पश्चिमी बंगाल	४	..	८	१३	१	..	२६
—देहली	३	..	५	६	..	२	१६
—हिमांचल प्रदेश	१	..	३	१०	..	..	१४
—त्रिपुर	२	..	..	१५	१	..	१८
—मनीपुर	१	..	१	२	..	..	४
—पाण्डेचेरी	..	..	२	१	..	..	३
	११९	८	२०३	१५९	१९	२	५१०

अंग्रेजी शिक्षण पद्धति में जो नवीन अनुसंधान हुए हैं उनसे लाभ उठाकर इस संस्थान के द्वारा भी नवीन खोजें की जा रही हैं। इन्हें शीघ्र प्रकाशित करके वितरित करने के लिये भी यह संस्थान आतुर है। विवरण पत्रक के रूप में समय समय पर यह संस्थान अपनी शोधों एवं गतिविधियों के सम्बन्ध में विवरण भी प्रकाशित करता रहता है। ऐसे ही एक पत्रक की प्राप्ति स्वीकार करते हुए पंडित हृदयनाथ कुँजरू लिखते हैं :—

"मैंने आपके पत्रक को ध्यान एवं रुचिपूर्वक पढ़ा। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि आपके (अंग्रेजी भाषा के शिक्षण संबंधी) ये अनुसंधान प्राथमिक (प्राइमरी) माध्यमिक (सेकंडरी) तथा पूर्व विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम (प्रीयुनिवर्सिटी कोर्स) के छात्रों के लिये अत्यधिक उपयोगी एवं लाभप्रद होंगे।"

इस संस्थान की अल्पकाल की प्रगति को देखकर यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि अंग्रेजी अध्ययन अध्यापन के संबंध में हमारा दृष्टिकोण क्या है? हमें अँग्रेजी ही क्यों अपनी भाषा को समुन्नत करने के लिये तथा नवीनतम ज्ञान की उपलब्धि के लिये संसार की सभी समुन्नत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, किन्तु देश में प्राथमिक (प्राइमरी) स्तर से लेकर विश्वविद्यालयीन स्तर तक शिक्षा का माध्यम वास्तव में हमारी देशी भाषायें ही होनी चाहिये। यदि विदेश से सम्बन्ध स्थापित करने, विदेशी दूतावासों में जाने वाले कर्मचारियों एवं राजदूतों को प्रशिक्षित करने के लिये किसी केन्द्रीय संस्था की स्थापना की जाती तो इसमें किसीको का अवसर न मिलता। किन्तु एक ओर जहाँ एक में सरकार देशी भाषाओंको समुन्नत बनाने एवं अन्त स्तर पर राज्यभाषा को प्रोत्साहित करने की बात है, वहाँ वह दूसरी ही साँस में प्रत्येक राज्य में प्राथमि स्तर से विश्वविद्यालयीन स्तर तक अंग्रेजी के नि प्रचार और प्रसार के लिये जो प्रोत्साहन देती है, वह बिलकुल समझ में नहीं आती। इधर अमरीका देश के रेडियो स्टेशनों से अपने विचारों के प्रचार प्रसार के लिये एक शक्तिशाली ट्रान्समिटर देने को है। उसे लेकर इस देश में एक विवाद प्रारंभ हो है। मैं समझता हूँ कि इस संस्थान का रूप भी बहुत वैसा ही है; किन्तु आश्चर्य है कि इस ओर हमारे दे प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान आकर्षित नहीं हो रहा है। मैं स्वती के इस वर्ष के, अगस्त मास के अंक में, हिन्दी की शिक्षा की समस्या के सम्बन्ध में विचार व्यक्त चुका हूँ। वास्तव में राज्यभाषा तथा देश की वि भाषाओं के शिक्षण के सम्बन्ध में अनेक ऐसी समस्याएँ जिनके लिये कई संस्थानों की आवश्यकता है। कि आज हमें इसकी चिन्ता नहीं है और हम चिन्तित हैं भारत में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के प्रचार तथा प्र के लिये। इसे एक विचित्र विडम्बना और देश दुर्भाग्य न माना जाय तो और क्या माना जाय। ऐसे अवसर पर सहसा यह उक्ति स्मरण हो आती है

"घरसों बैर अपर सों नाता,
ऐसी बुधि जनि देहु विधाता।"

आंगनों के बीच —

नौकरों के कुछ और कारनामे

(श्रीमती श्रीविलास के लेख के पश्चात्, घरों के नौकरों से संबंधित कई और सत्य अनुभव प्राप्त हुए हैं, परन्तु कोई भी गृहस्वामिनी अपना नाम नहीं बताना चाहती ! —सह-सम्पादिका)

एक तत्पर नौकर दम्पति

हमारे घर में उन दिनों एक भी नौकर नहीं था जब वे पति और पत्नी हमारे यहाँ नौकरी करने आये। छोटे-छोटे बच्चों और मेहमानों की बाढ़ थी। मैंने अपने उसूल के खिलाफ (मेरा उसूल था कि दम्पति को नौकर नहीं रखना चाहिये) आवश्यकता के कारण, दोनों ही से बात करने की सोची। पत्नी एक कोने में सिमटकर बैठ गयी थी, पति ही बात कर रहा था : 'हजूर ! खाना बहुत बढ़िया बनाती है। कोई खाना बनवा लीजिये—अँगरेजी, हिन्दुस्तानी। बस, मेम साहेब, शर्माती बहुत है। आप मुझे बतला दीजियेगा क्या पकाना है। मैं उसको बता दिया करूँगा। जीभ तो उसके मुँह में है ही नहीं, कभी आपको उसका बोल नहीं सुनाई पड़ेगा।"

उसकी पत्नी ने जो घूँघट खींचने को अपना हाथ निकाला तो मैं उसके बलिष्ठ हाथों को देखती रह गयी। उसके पति ने मेरी आँखों का भाव समझ लिया। एक साथ अपनी मूंछों में मुस्कुराकर बोला 'हुजूर ! गाँव में डगरों को सानी-पानी करना होता है, कुँओं से पानी भरना पड़ता है। नाजुक हाथ भी कड़े पड़ जाते हैं।'

मुझे काम करने के लिए मजबूत आदमियों की जरूरत थी। उसके पहले वाला आदमी अपनी नजाकत के कारण ही निकाला गया था। प्लेट लेकर चलता था तो लगता था मानों आगे बढ़ने के बदले 'ता-ता-थइया' के बोल पर पैर चला रहा है। दोनों रख लिये गये, और घर का काम बहुत सुचारु रूप से चलने लगा। खाना खिलाने के बैरे के काम में नया नौकर इतना तत्पर था कि कभी जो समय उसको बता दिया गया उससे दो मिनट का भी हेर-फेर नहीं हुआ। और उसकी पत्नी जो भोजन बनाकर भेजती थी उसका सम्बन्ध वर्णन से नहीं केवल स्वाद से था—जो एक बार भोजन कर जाता दूसरी बार भोजन करने हमारे यहाँ अवश्य आता। मैंने अपने भाग्य को सराहा कि भूले-भटके ये दो प्राणी कैसे मेरी शरण में आ गये। जिसके घर से नौकरी छोड़ी उसको कितना कष्ट हुआ होगा ! पर हाँ ! उनके पहले मालिक विलायत चले

गये थे। भला ये विलायत कैसे जाते ? अब मुझे यह चिन्ता थी कि ये मेरे पास टिकें ही रहें। मैंने उनकी तनख्वाह भी बढ़ा दी, इनाम बख़्शीश भी देना आरंभ किया। इस प्रकार छः-सात महीने बीत गये। एक दिन मेरे यहाँ एक बड़ी सी दावत थी। मैंने अपनी शादी का सारा चाँदी का सामान निकाल निकाल कर सजाया। चाँदी के चम्मच, चाँदी के डोंगे, प्लेटें सब निकालीं, और खास चेतावनी दे दी कि कोई भी खोयें नहीं। माँज-धोकर रखना, दावत के बाद सुबह बन्द कर दिये जायँगे। दावत देर तक चलती रही। हम सभी थककर चूर हो गये थे--वैसे ही सो रहे। सुबह जब पलँग पर चाय नहीं पहुँची तो उस नौकर की समय तत्परता का ध्यान करके कुछ आश्चर्य तो हुआ, परन्तु सोचा कि वह भी बुरी तरह थक गया होगा। मैं प्रतीक्षा करने लगी--अब लाता है, अब लाता है। पर जब उसके दर्शन होने के लक्षण भी न दिखायी दिये तो मैं झखमार कर उठी। उसको आवाज लगाई, कहीं भी वह नहीं। रसोई में झाँका (जिसमें कि जाना मैंने उसकी पत्नी के संकोच के कारण बन्द ही कर दिया था) वहाँ उसकी पत्नी भी नहीं दीखी। उन दोनों के साथ साथ सारा चाँदी का सामान भी नदारद था। पुलिस को रिपोर्ट की गयी और पता चला कि वे दोनों नामी चोर थे। कभी एक पत्नी बन जाता था, कभी दूसरा। तब से बिना नौकर के रहने लगी हूँ। और यदि कभी रखती भी हूँ तो पहले पुलिस में हुलिया लिखा देती हूँ। वैसे, इस सबसे कोई अन्तर नहीं पड़नेवाला क्योंकि घर की सफाई तो हो ही चुकी है। पर अभी अपनी जान प्यारी है। यही हमारा सौभाग्य है कि वे हमें जीता छोड़ गये !

एक दूसरे तत्पर नौकर की कहानी

हमारा खाना बनाने का आदमी नया आया था, पर बड़ा सुशील, शिष्ट और मिठबोला था। उसका मितभाषी होना मुझको बहुत पसन्द था। आकार का दुबला-पतला और बड़ा फुर्तीला था। उससे मिलने-जुलने भी बहुत कम लोग आते थे। महीने में कभी कोई एक-आध आदमी आ गया तो आ गया। महीनों बाद वह किसी रात की छुट्टी लेता था और अपनी नपी-तुली आवाज में कहता था 'आपको खाना खिलाकर रात का शो देख आऊँ ?" मैंने उसे कभी मना नहीं किया। एक बार वह रात को शो से लौटा तो उसके सिर में एक भयानक गुमटा पड़ा हुआ था। मैंने पूछा क्या हुआ ? वह बोला "साहब, रिक्शा उलट गया लौटते समय--रास्ते की बत्तियाँ गुम थीं।' कोई और नौकर होता तो चार दिन काम पर न आता। मैं खुद उसको दिन में बीस बार चाय बनाकर पिलाती, और इस बिचारे को देखो कि मुँह उफ तक नहीं निकाली ! इतने पर भी सवेरे की लिये पलँग के पास खड़ा है ! बहुतेरा कहा कि अस्पता ले चलें, डाक्टर को बुला लें, पर वह टस से मस नहीं हुआ। गर्म पानी से अपना गुमटा सेंकता रहा। और कुछ दि में जब उसका गुमटा ठीक होने लगा तो फिर मैंने कहना छोड़ दिया। परन्तु मैं उसकी सहनशीलता से बहु प्रभावित हुई।

एक बार हमारे एक सम्बन्धी का टेलीफोन आ कि वे शहर में आये हुए हैं। मैंने उनसे कह दिया कि मि तो आओगे ही, भोजन यहीं करना। वे दोपहर में ब पुलिस की वर्दी डाँटे हुए आ पहुँचे। खाना मेज पर ल दिया गया था, कुछ रोटियाँ भी मेज पर रखी हुई थी मैं बार-बार अपने अतिथि को रोकती थी कि जरा र जाइये, गर्म रोटी आ जाय तब खाइयेगा। पर गर्म रो आने का नाम नहीं ले रही थी--मैंने कई बार आवा दी--'रामू ! रामू !' किंतु नौकर प्रकट न हुआ। सम्ब के नाते और अधिक आवाज लगाने के बदले मैं स्वयं उ कर देखने गयी कि मामला क्या है ? रामू वहां नदार था। मैंने सोचा कि कहीं अनिवार्य आवश्यकतावश च गया होगा, या कोई अप्रत्याशित काम निकल आया हो जिससे वह बिना कहे इधर-उधर हो गया है। रोटि मैं स्वयं बना-बनाकर परोसने लगी और यह कहकर ला बचायी कि 'तुम्हारे लिए रोटियाँ खुद ही बनाऊंगी।' भोजन करने के बाद उनके आने का कारण पूछा, तो उन्हों जेब से एक तस्वीर निकालकर दिखलायी और कहा कि इसको ढूँढ़ने आया हूँ। पता लगा है कि इसी मुहल्ले में क खाना बनाने की नौकरी कर रहा है। मैं आँखें फा फाड़कर उस चित्र को देख रही थी "कौन है यह ?" मैंने पूछा--"एक खूँखार डाकू !" उन्होंने उत्तर दिया। "व तो यहीं काम कर रहा था--तुमको पुलिस की वर्दी देखकर रोटियाँ बनाते बनाते वैसे ही छोड़कर भाग गया !" वे मेरी बात सुनते ही, उठ कर भागे। दो दिन बाद सम चार पत्रों में उसका चित्र छपा कि वह कई डकैतियों शरीक था और पकड़ा गया है। फिर धीरे-धीरे मेरे म में स्पष्ट होने लगा कि हो न हो, जो आदमी कभी-कदा उससे मिलने आते थे, अवश्य ही वे उसे किसी डाके आमंत्रित करने आते थे और रात के सिनेमा के 'शो' अव ही डकैतियों के 'शो' थे। सिर का गुमटा भी कि लौटने की चोट नहीं, वरन् किसी की लाठी पड़ने निशान था और इसीलिये इतना आग्रह करने पर भी अस्पताल नहीं गया।

नई गृहस्थी, पुराने अनुभव

● चिट्ठियों के ऊपर लिखे हुए पते बरसात के पानी से खराब न हो जायँ, उसके लिये पतों के ऊपर मोमबत्ती फेर दीजिये।

● अगर कालीनों के रंग फीके पड़ जायँ और उनको चमकाने की आवश्यकता हो तो उनपर कस कस कर ब्रश करना चाहिये, और फिर ठंडे पानी और सिरके में भींगे हुए कपड़े से मलना चाहिये। तेल और चिकनाई के दागों को मिटाने के लिए उस स्थान पर सूखा आटा मलिये। कुछ घंटों तक उस स्थान पर उसे लगा रहने दीजिये जिससे कि वह चिकनाई को सोख सके। उसके बाद आटे को झाड़ डालिये। यह काम पेट्रोल से भी हो सकता है। पेन्ट के दाग तारपीन के तेल से निकाले जा सकते हैं, और बाद में साबुन के पानी से धोकर तारपीन का दाग भी हटाया जा सकता है।

● बरसात में तम्बाकू अक्सर सील जाती है। एक कटा हुआ आलू तम्बाकू के डिब्बे में डाल दीजिये। दियासलाई भी बरसात में सील कर खराब हो जाती है। सील से बचाने के लिये उन्हें प्लास्टिक के बेग में रखिये।

● प्लास्टिक के बैग आलू के पापड़ बेलते समय बहुत काम आते हैं। एक छोटा प्लास्टिक का बैग ऊपर, और एक बैग नीचे, और बीच में लोई। इस प्रकार घी भी कम लगता है; पापड़ बिल भी बारीक जाते हैं, और उनको उठाकर कपड़े पर सूखने डालने के समय सुविधा भी रहती है।

● गर्म कपड़े विशेष कर कम्बल रखते समय बक्स की तह में थोड़ी सी तम्बाकू की पत्तियाँ डाल दीजिये। इससे कीड़े नहीं लगते। बाद में हवा दिखाने से उनकी जो कुछ महक होती है वह भी निकल जाती है।

● यदि बुनने की सलाइयाँ बुनते बुनते थोड़ी मुड़ जायँ तो उनको सीधा करने के लिए भाप निकलती हुई गर्म पानी के केटली के सामने उन्हें लगा दिया जाय, और जब वे मुलायम हो जायँ तो उनको सीधा खींच के फौरन ठंडे पानी में भिगो दिया जाय। इसका ध्यान रखिये कि वे आग की लपट के पास न आने पावें क्योंकि वे बहुधा ऐसी वस्तु की बनी होती हैं कि उनमें शीघ्र आग लग जाती है।

● गर्म कपड़ों को धोकर निकालते समय उसके पानी में एक चम्मच जैतून का तेल डाल दीजिये। इससे वे मुलायम बने रहते हैं।

● यदि बिजली के लैम्पों के शेड टूट जायँ तो उनका कागज हटाकर उन पर जाली लगाई जा सकती है। इस प्रकार वे खाने की चीजें ढकने के काम में आ सकते हैं।

मानवी देवी और मानवीय हृदय (६)

(गतांक से आगे)

श्री मनमोहन गुप्त

बुद्धि वश से बाहर हो रही थी। मझली जीजी ने उस चित्र को ओंठों से अलग किया। धीरे-धीरे उस पंजी को ही नीचे उतारकर रख दिया।

उधर से तह किये हुए चित्रों को उठा लिया। उसमें से उसी चित्र को निकाल लिया जिस चित्र को मैंने सर्वप्रथम उन्हें दिखाया था।

वे उन्हें बड़ी देर तक देखती रहीं और फिर उठकर यथास्थान उस चित्र को रख दिया। जाकर दरवाजे को खोला। उधर जाकर सुराही को उठा लिया और फिर गुसलखाने की ओर बढ़ गयीं।

मैं भी मौका पाकर आहिस्ते से बाहर निकला, दरवाजे से झाँककर देखा कि कोई है तो नहीं?

रास्ता बिल्कुल साफ था। झट उस ओर बढ़ गया जहाँ चित्रों का तथा चित्रपंजी का पोटला रखा था। उन्हें उठाकर पल भर में गायब हो गया।

× × ×

दोपहर भर गायब रहने के कारण दादी ने खूब डाँटा। बातें बनाते हुए मैंने कह दिया—तुम तो कुछ समझती हो न बूझती····गया था घोष बाबू के घर·····वह ऐसी अँगरेजी पढ़ाते हैं कि सब कुछ मिनिटों में याद हो जाता है।

जानता था कि दादी की दुर्बलता कहाँ है। अब डाँटने के बदले वह बोल उठीं—तो यह कह न! चल, चल, रसोई में थोड़ा सा दूध पी ले। दोपहर भर मेहनत करके पढ़ा·····बिना दूध पिये शक्ति कहाँसे पायेगा सारी पढ़ाई पचाने की?

राजा बेटा बन कर, दूध पीकर, स्वस्थ दिमाग से सोचने लगा कि उन चित्रोंवाली पोटली को गंगाजी में बहा दूँ या आग में जला दूँ।

अन्त तक अग्निसात् या अग्निहोत्र करना ही समीचीन लगा। दादी की आँखें बचाकर दियासलाई लेकर छत पर गया। पोटली पहुँचायी। दस-पन्द्रह मिनट के बाद केवल राख ही दिखाई पड़ने लगी। पैर से जितना बना राख को छत के फर्श पर रगड़ता जाता था और इस प्रकार उस बाबा के बच्चे का श्राद्ध करता रहा।

आहिस्ते-आहिस्ते नीचे उतरकर अपने नित्य कर्म में लग गया। दोपहर भर पिताजी को दिखाने लायक न कुछ पढ़ा था और न लिखा था। उन्हें निपटाने में लग गया।

शाम को पिताजी के पास पढ़ाई आदि समाप्त करके जब दादी के यहाँ पहुँचा तो देखा कि मझली जीजी की सबसे छोटी बहन बैठे-बैठे रो रही है। छोटी का अर्थ यह नहीं कि उम्र में भी छोटी। वह भी जवान थी एवं उसकी भी शादी किसी अनजान लग्न में किसी अनजाने के साथ, न मालूम किस देश में हो चुकी थी।

फूट-फूट कर रोती जाती थी और दादी से कहती जाती थी—फूटा भाग्य है...नहीं तो कुलीन घराने में शादी ही क्यों होती और सारे जीवन मैके में ही क्यों पड़ी रहती...कहते हैं कि ब्याही लड़कियों का मैका और ब्याहे लड़कों का ससुराल...नरक से भी बुरा होता है...सो अब नरक-दर्शन हो रहा है।...किसी की कोई चीज गुम हो कि बस मुझ पर ही सबको सन्देह होता है...जैसे कि मैं चोट्टिन हूँ...डाइन हूँ।

मैं चुपचाप सुनता रहा। बीच-बीच में सांत्वना देने के लिए दादी कहती—किसीने जो सन्देह किया है बड़ा गलत किया है। तुम्हारी माँ से मैं कह दूंगी कि यह बहुत बुरी बात है...जवान लड़की को जब तब चोरी लगाना बुरी बात है।

बीच में ही मैं पूछ बैठा—किसकी क्या चोरी लगी है फूल जीजी?

उसको मैं फूल जीजी कहता था क्योंकि उसका चेहरा ताजे सफेद गुलाब के फूल की तरह था। मेरे प्रश्न का उत्तर दिया दादी ने—वह...कुछ नहीं...तू नहीं समझेगा...तेरी मझली जीजी अब पढ़ना सीख रही है न? सो कहीं से कुछ किताबें लायी थीं। उनकी गठरी कहीं लापता हो गयी है।

क्रूर हँसी हँसते हुए मैंने कहा—उसीकी चोरी फूल जीजी को लगी है?

इस बार फूल जीजी ही रोती जाती थी और कहती जाती थी—मैं क्या करूँगी किताबों का भैया! न मैं पढ़ना जानती ही हूँ और न मैंने देखी हैं। मुझे उन किताबों से क्या सम्बन्ध? चाहे कोई कसम ले तो मैं सर की कसम खा सकती हूँ जो मैं मझली जीजी के कमरे में पिछले कुछ महीनों से घुसी भी होऊँ तो।

इस बार मैंने बड़ी हिम्मत बाँधते हुए कहा—वह मझली जीजी बड़ी झूठी है। उनके कमरे में किताब का नाम ही नहीं है तो गठरी की कौन कहे...

कहते-कहते थोड़ा सा रुककर मैंने कहा—तुम मेरे साथ....मैं तो पहले प्रायः उन्हींके कमरे में रहा करता था....मैं गवाही दूंगा कि उनके कमरे में कोई किताब की गठरी नहीं थी....हें:! किसी के नाम से चोरी लगा देने से ही मैं मान थोड़े ही लूंगा।

डाँटती हुई दादी बोल पड़ी—तू ठहर! हर बात में टाँग अड़ाना तेरी बहुत बुरी आदत है। तू क्या जाने कि किसके कमरे से क्या खो गया है?

उँगली हिलाकर नाटकीय अभिनय के रूप में मैंने हा—मैं जानता हूँ इसीसे मैं कह रहा हूँ। मन चाहे तो पुछवा भी दे सकता हूँ कि किताबों की गठरी नहीं गी। नहीं गयी...और नहीं गयी...सौ बार नहीं गी.....हजार बार नहीं गई...लाख....

जरा ऊँची आवाज से मुझे रोकने के लिये दादी बमक ड़ी—छोटे! औरों के घर की बातों में पड़कर ऐसी हुदगी मुझे पसन्द नहीं है...मैं कहती हूँ कि चुप रह...

दादी को चाहे डरूँ या न डरूँ किन्तु इस समय समझ या कि वह सचमुच नाराज हो गयी हैं। इसीसे मैंने हा—अच्छी बात है मैं बीच में न पड़ूँगा।

तुरन्त फूल जीजी बोल पड़ी——काहे नहीं पड़ेगा भैया...एक बार मेरे साथ तुझे चलना पड़ेगा। मझली जीजी मेरे पीछे पड़ी हैं कि यदि वह गठरी उन्हें वापस न मिली तो मुझे कच्चा ही खा जायँगी। साथ में सब लोग उन्हींका पक्ष ले रही हैं। इसीसे मैं घर छोड़कर भाग आयी। घर में जाने की हिम्मत नहीं पड़ रही है...

कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोने लगी।

इधर दादी का पारा और चढ़ गया। बोली——तो या छोटे तुम्हें बचा सकता है...? तुम कैसी बातें कर रही हो? तुम्हारा घर का मामला तुम लोग आपस में निपटो। उसमें यह क्या करेगा? यह तो यों ही बातें बनाया करता है।

फलतः मैं और फूल जीजी, दोनों ही चुप हो गये। धीरे-धीरे वहाँ ऐसी चुप्पी छा गयी कि कोई कुछ कहता ही नहीं। मैं आहिस्ते से खिसक गया। सीधे फूल जीजी के घर में पहुँचा। वहाँ उनकी माँ, मझली जीजी तथा अन्य बहनें भी रसोई के पास गुमसुम बैठी थीं।

अचानक मेरे उदय होते ही मझली जीजी की माँ ने कहा—आओ बेटा!

बिना किसी प्रस्तावना के ही मैंने गरजकर पूछा—ये फूल जीजी को तुम सबने मिलकर क्यों रुला दिया? ....कौन कहता है कि मझली जीजी के कमरे से किताबों की गठरी उठ गयी है!...झूठ है! बिलकुल झूठ है! सौ बार झूठ है!.....

कहते-कहते मेरा चेहरा प्रतिहिंसा-परायण हो उठा। मैंने मझली जीजी की आँखों में तमतमाती हुई आँखें गाड़कर और ऊँची आवाज से कहा—यह बहुत झूठी है!

मझली जीजी सिहर उठी। सब लोगों के चेहरे पर जैसे आतंक सा छा गया। आज तक कभी भी किसीने मझली जीजी के मुँह पर ऐसी बात नहीं कही थी।

मेरी ऐसी बात पर भी मझली जीजी कुछ कह नहीं रही है, यह देखकर सब लोगों के आश्चर्य की भी सीमा न रही। इतने में मैंने कहा——खबरदार जो फूल जीजी को चोरी लगाई तो! वह गठरी मैं लाया था और मैं ही ले गया। मेरी खुशी उसका जो चाहे करूँ।

आहिस्ते से मझली जीजी उठकर अपने कमरे में चली गयी। सब लोग आपस में बातें करने लगे। देमैं भी धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढ़ गया। उनके मकान से बाहर पैर रखा ही था कि ऐसा लगा कि मझली जीजी मेरे पीछे हो ली हैं।

मेरा सन्देह गलत न था। उन लोगों के घर की चौखट नाँघकर अभी अपने घर की चौखट में पैर भी न रखा था कि मझली जीजी ने पीछे से आकर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने झटका देकर हाथ छुड़ाने की चेष्टा की तो उसने मेरा सारा शरीर पकड़ लिया।

छाती से लगाकर बोली—मेरे अच्छे छोटे,....मान जा....मेरी बिनती तो सुन ले। तेरे पाँव पड़ती हूँ, मेरा दोष माफ कर दे।

एक प्रकार से रो दी। मैंने अकड़ते हुए कहा——छोड़! छोड़ कलमुँही...छोड़ दे।

इस बार सचमुच मेरे पाँव पकड़ लिये और बोली——तेरी जो खुशी कर ले....मगर मुझे माफ कर दे, मेरी रक्षा कर, नहीं तो मैं मुँह दिखाने लायक न रहूँगी।

और तैश में आकर पाँवों को छुड़ाते हुए मैंने कहा—रहने दे डाइन! मैंने सब देखा है कि तू तस्वीरों को लेकर क्या करती थी। एक-एक से मैं कह दूँगा।.... तेरी अम्मा....तेरे बाबू...सबसे कह दूँगा...

आगे कुछ कहने से पूर्व ही वह उठकर खड़ी हो गयी और मेरे मुँह पर हाथ रखती हुई आहिस्ते से बोली—चुप! चुप! माफ कर दे.....

कहते ही कहते मेरे हाथों को अपनी छाती से लगाती हुई बोली—"देख! देख! मेरा दिल कितना धड़क रहा है....आगे रहने दे...नहीं तो....

बात पूरी भी नहीं कर पायी। ढीली पड़ गयी। धीरे-धीरे मेरे ही सहारे वहीं अँधेरी गली में गिरने लगी। शायद गश आ गया था। लपककर मैंने उन्हें पकड़ लिया। वह धीरे-धीरे लुढ़क ही गयी। मैंने हल्ला मचाया—मर रही है.....मर रही है!...दौड़ो! दौड़ो!....मझली जीजी मर रही है.....!

देखते-देखते कई लालटेनें, मझली जीजी के घर भर के सब; मेरी दादी, पिताजी, बड़े भाई; और भी आसपास की सब औरतें, मर्द, बच्चे-कच्चे सब आ पहुँचे। मझली जीजी की बहनें आदि मिलकर उन्हें अपने घर उठा ले गयीं। मेरी हालत बिल्कुल पस्त थी। काटो तो खून नहीं।

हल्ला तो मचा दिया था मगर पिताजी आदि को जवाब कौन दे? यही सोचकर मैं उसी गड़बड़ी की व्यस्तता के समय चुप्पे से खिसक गया।

घर के पास ही एक इमली का पेड़ था। उसे सब लोग भूत वाली इमली कहते थे, यानी जिससे बच्चे उसमें से इमली न तोड़ें या रात्रि को कोई इमली चुराने न आवे, इसीसे उसके मालिकों ने ऐसा उड़ा रखा होगा। जो भी कारण हो, किन्तु उसका मुझपर कोई असर न था। कारण में और कुछ हो चाहे न हो, इतना तो अवश्य ही

था कि पिताजी की पिटाई से अधिक उनकी बातों का मुझ पर असर पड़ा था। एक बार किसी अपराध में मेरी सब जगह ढूँढ़ाई हुई थी किन्तु वहाँ किसीने नहीं ढूँढ़ा था। इसे तो जानता ही था, साथ ही यह भी जानता था कि किसी भी बच्चे को रात के समय किसी भी हालत में वहाँ कोई ढूँढ़ने नहीं जाता था।

अवश्य इसका अर्थ केवल यह न था कि मुझे भूत-प्रेतों से जरा भी भय न था, किन्तु वास्तविक कारण यह था कि 'राम' नाम पर मेरा ऐसा विश्वास था कि उससे भूत-प्रेत मुझको ही अपना भूतप्रेत समझकर, मुझसे कोसों दूर भाग निकलेंगे। ऐसी धारणा थी। इन दोनों बातों का श्रेय यद्यपि पिताजी को ही था तथापि उन्हें सबसे अधिक परेशान करनेवाली ये ही दोनों बातें थीं।

आज भी वही किया। किसी की पूछताछ से पूर्व ही मैं भूतोंवाली इमली के आश्रय में पहुँच गया। ढूँढ़ने पर भी जब मैं हाथ न आया तो लोग मझली जीजी को होश आने की अपेक्षा करने लगे। मझली जीजी को भी होश आने के साथ ही वह मुझी को ढूँढ़ने लगी। पिताजी ने कहा—घबड़ाओ नहीं बिटिया ··· कहीं छिप गया होगा।

सुनकर वह घबड़ाती हुई बोली—नहीं, नहीं, उसे ला दो तुम लोग... ला दो.....

फिर एक बार मेरी ढुँढ़ाई शुरू हुई। मगर मैं कहाँ मिलता?

जब सब लोग हार मानकर अपने-अपने घर चले गये तब मैं भी चुपके से निकलकर जा करके दादी से लिपट गया। दादी सदर का दरवाजा खोले, दरवाजे से बाहर बैठी माला जप रही थी। जब कभी मैं किसी कारण से मौके बे मौके रात को छिप जाता था तो दादी का यही नियम था। वह ठीक जानती थी कि सब ओर से जब मैं समझ लूँगा कि निरापद है, उस समय चुप्पे से आकर उनसे लिपट जाऊँगा।

मुझे पाकर, माला सर से लगाते हुए, फिसफिसाकर पूछी—कहाँ छिपा था?

बस यही बात मैं नहीं बताता था। मैंने प्रश्न किया—बाबू सो गये?

—हाँ, हाँ, चल तू भी सो जा।

कहकर दादी अपने साथ मुझे लेकर सीधे बिस्तर पर गयी। पिताजी शायद जाग रहे थे। शायद नहीं, ऐसे मौकों पर जागते ही रहते थे। फिर भी कभी मुझे यह न मालूम होने देते थे कि उन्हें मालूम हो गया है कि मैं आ गया।

दादी ने बिस्तर के पास ही रोटी ला दी। डरते-डरते खाते-खाते फिसफिसाकर मैंने पूछा—मझली जीजी मर तो नहीं गयी?

उसी प्रकार से दादी ने कहा—तूने बड़ा बुरा किया.... अवश्य ही उसकी छाती पर सिर से कसकर ठोकर मारी होगी?

मैं हमेशा अपने से अधिक बलवान को काबू करने के लिए बछड़े से भी जोर से सिर से छाती पर ठोकर मारता था। दादी इसे जानती थी इसी कारण यह प्रश्न किया था। मैंने कसम खाते हुए कहा—ऐसी कोई बात नहीं। वह इतना डर गयी थी कि उसी के कारण बेहोश हो गयी थी। मेरे पाँव पड़ी, फिर भी मैंने उसे डरा दिया था।

दादी ने सोचा कि भूत-प्रेत के नामों से मैंने डरा दिया है। इस कारण से बोल उठीं—मगर वह भी कैसी है कि छोटे से लड़के के डराने से डर गयी थी!.... आश्चर्य है।

बात का रुख किधर बदल गया है उस ओर बिना ध्यान दिये ही मैंने कहा—मगर अभी क्या हुआ है? अभी तो और डराना है।

बीच में ही दादी बोल पड़ी—फिर अगर कभी डराया तो मैं तेरे बाबू से कहकर तेरी भी आदत छुड़ा दूँगी। ...देख तो फिर डराकर! मैं फिर तुझसे बोलूँगी भी नहीं। इस बार न समझना कि मैं झूठी कसम खा रही हूँ। तू भी समझेगा कि दादी कैसी कसम खाना जानती है। जनम भर नहीं बोलूँगी और न तेरे लिए खाना ही बनाऊँगी।

अवश्य की यह चिन्ता की बात थी। इसीसे मैं चुप मान गया। खाना खाकर सो गया।

× × ×

दूसरे दिन सबेरे उठने में कुछ देर हो गयी। शायद पिताजी ने उचित नहीं समझा था उसीसे देर तक मुझे सोने दिया था। कारण मैं देर तक रात में जागा था।

उठते ही मैंने अपने बगल में मझली जीजी को पाया। देखकर ही मुँह घुमा लिया। जिसे देखकर मझली जीजी ने कहा—भैया छोटे, उठ गया?

बातों पर ध्यान न देकर मैं उठ खड़ा हुआ। वह दरवाजे की ओर ही बैठी थी। इसीसे सोचने लगा कि कैसे बाहर जाऊँ?

इतने में मझली जीजी ने कहा—इधर आ जा।

अकड़ते हुए मैं दीवार की ओर बढ़ गया। यह देखकर मझली जीजी उठकर मेरे पास आयी। मेरे शरीर में हाथ लगाना था कि मैंने उनके हाथ झटक दिये। और अकड़कर कहा—मरने के लिए फिर मेरे पास आयी?

उसने अत्यन्त विनम्र भाव से कहा—क्या मुझे मारे नहीं करेगा?

सुनकर मैंने कहा—भाग जा चुड़ैल, मैं नहीं बोलता।

मुस्कुराकर मेरी ठोड़ी पकड़ती हुई बोली—मत बोल! मगर.....

तुरन्त मैं हाथ झटकारकर एक दौड़ में बाहर चला गया। सीधे टट्टी में घुस गया। जान-बूझकर बैठा ही रहा।

प्रयोजन से अधिक देर तक बैठा हूँ देखकर दादी ने आवाज लगायी। आहिस्ते से उठ आया। तब तक निगाह

१९६३

ी तो देखा कि मझली जीजी दादी के पास बैठी है। पैर धोकर दादी की ओर, यानी रसोई की ओर न ड़कर सीधे पिताजी के पास पढ़ने के लिए पहुँचा। देखकर दादी ने रसोई से ही कहा——आज जो सीधे ने चला गया....खायगा नहीं ?

पिताजी ने मेरे मुँह की ओर देखा। कलाई उलट-र सर पर दबाकर देखा कि शरीर में किसी प्रकार का ताप तो नहीं है।

शरीर में कोई खराबी हो तब न उत्ताप आदि अनु-व हो; किन्तु वैसी कोई बात न थी। केवल मझली जी से जी छुड़ाने के हेतु ही मैं मुँह धोकर पिताजी के पास चला गया था। पिताजी ने सीधे प्रश्न किया——कुछ खाया क्यों नहीं ?

मेरा छोटा सा उत्तर था——भूख नहीं है।

सुनकर पिताजी ने जरा ऊँची आवाज से दादी को कहा——ठीक है। एकदम खाना खायेगा। नहीं भूख है तो जबरदस्ती खिलाने से कोई लाभ नहीं.....

फिर हम दोनों को उपदेश देते हुए बोले——दुनिया में जितनी बीमारी भूखों रहने के कारण होती है उससे कहीं अधिक बीमारी अधिक खाने से होती है। खूब भूख लगे बिना नहीं खाना चाहिए। यदि सब लोग अपने आप विचार करके खाना खावें तो कभी भी बीमार न हों। होता यह है कि बच्चा खाना नहीं चाहता है किन्तु बड़े लोग जबरदस्ती या मिठाई आदि का लालच दिखाकर बच्चों को खिलाते रहते हैं। फलतः जितने का खाना खिलाते हैं उससे अधिक पैसा उन खानों को हजम करवाने में व्यय होता है।

आगे और भी न जाने क्या कहते किन्तु बीच में ही मैं बोल पड़ा——मगर दादी तो कहती हैं कि न खाने पर पित्त पड़कर बीमार हो जाऊँगा।

पिताजी ने सिर हिलाते हुए कहा——हाँ, वह भी ठीक कहती है। न खाने पर पित्त पड़ने का भय अवश्य होता है। किन्तु भूख पहले लगेगी तभी तो पित्त पड़ेगा। भूख लगने पर ही तो मैं खाना खाने की बात कह रहा हूँ।

कहते-कहते उन्होंने कहा——लो अब पढ़ाई आरम्भ करो। एक बात समझाना था सो समझा दिया। उसे अमल में लाने की चेष्टा करोगे तो जीवन में बहुत कम बीमार पड़ोगे।

आगे कुछ कहे बिना मैंने अपनी पढ़ाई में ध्यान दिया। पढ़ाई भी समाप्त करके जब उठा तो देखा कि मझली जीजी रसोई में ही डटी है। मुँह बिचकाकर वापस हुआ एवं पढ़ाईवाले कमरे में ही किताबों की उलट-पलट करने लगा।

पिताजी तथा बड़े भाई चल दिये थे। यानी स्नान आदि में व्यस्त हो गये थे। मौका देखकर मझली जीजी आ धमकी। दरवाजे के पास से ही कहा——तू नहायेगा-धोयेगा भी नहीं क्या ? आखिर मतलब क्या है ?

झल्लाकर मैंने कहा——तू मेरे पीछे-पीछे क्यों घूम रही है ? जा न अपने घर...मुझे...मुझे...कुछ नहीं करना है।

दो ही कदम में वह एकदम मेरे पास पहुँच गयी। हाथ पकड़कर खींचती हुई बोली——देखूँ जरा चेहरा ! गुस्सा कहाँ है ? देखूँ तो....

आँखें बन्द करके मुँह को उनकी ओर करके बिगाड़ते हुए मैंने कहा——एँ ! एँ ! एँ ! एँ ! एँ !....चली जा !

वह तो मुस्किरा दी किन्तु नीचे से दादी ने कहा——जितना बड़ा मुँह नहीं उतनी बड़ी बात ? बेचारी भले-मानस की तरह फुसला रही है तो तू लगा आफत मचाने ? ....चल जल्दी...

मुँह को और बिगाड़ते हुए दनादन पैर फेंकते हुए मैं नीचे उतर गया। भले आदमी जैसा नहाने-धोने लगा। मझली जीजी पास-पास फिरती रही। नहा-धोकर पिताजी के संग ही खाना खाने बैठा। खाते समय भी मझली जीजी पास पास ही रही।

यों ही पिताजी ने एक बार मझली जीजी से कहा——फिर छोटे के संग कुछ मनमुटाव हो गया लगता है ? आज-कल बहुत कम दिखायी पड़ती हो बिटिया ?

मुस्कुराती हुई मझली जीजी ने कहा——यह बहुत डराता रहता है मुझको।

पिताजी हँस दिये और बोले——हाँ। यह सभी को डराता है। ....कल न मालूम कहाँ छिपकर घर भर को डरा दिया था। माई तो मुझ पर ही बिगड़ रही थी कि मेरे डर से ही यह छिप गया है। बड़ा ढीठ और जिद्दी है। यही तो उसमें खराबी है।...

बीच में ही दादी बोल पड़ी——लड़का है तो जिद्दी क्यों न होगा.......कोई लड़की थोड़े ही है।

मेरे बगल में बैठे बड़े भाई ने टिप्पणी करते हुए कहा——दादी न होती तो पता चलता कि...

बीच में मैं बोल पड़ा——रहने दो होशियारी... मैं सब समझता हूँ।

आगे कुछ कहने से पूर्व ही बड़े भाई ने प्रश्न किया——तू तो बुद्धू है। तू क्या समझेगा ?

अब दोनों भाइयों में शंकराचार्य और मण्डन मिश्र काण्ड आरम्भ हो जायगा, देखकर दादी ने डाँटकर बड़े भाई से कहा——तू चुप रह न। बीच में बोल पड़ा.... झूठमूठ....

तैश में बड़े भाई ने कहा——तुम्हीं ने तो इसे सिर पर चढ़ा रखा है, नहीं तो....

व्यंगात्मक स्वर में मैंने कहा——अहा हा हा हा, अन्यथा ये मुझे चबा जाते न ? बड़े बने हैं बड़े भाई ! हाथी से बड़े ! खाली डील-डौल में बड़े हैं तो क्या ? सब कलाबाजी मिट्टी में मिल जाती जो कहीं अँधेरी रात में भूतोंवाली इमली के पेड़ पर छिपना होता तो ? भूत लोग चबा कर खा जाते ! एड़ी-चोटी का पता भी न लगता !

[illegible] पिताजी [illegible] भी दोनों भाइयों के झगड़े में

नहीं पड़ते थे किन्तु आज प्रश्न कर बैठे——तो आप कल भूतोंवाली इमली पर चढ़कर बैठे रहे रात को?

आवेशवश अपना कच्चा चिट्ठा खोल दिया। बेहद दुखी हो गया। किन्तु अब निकलने का भी रास्ता न था। एकदम चुप्पी मार गया।

मझली जीजी बोली——दुनिया में इसके लिए असाध्य कोई काम नहीं है। जब यह आधी रात तक उस भयावनी जगह में छिप सकता है तो यह किसी भी काम में पीछे नहीं रह सकता है।

बड़े भाई ने कहा——अरे मैंने ऐसे बहुत मर्द देखे हैं! कहीं किसीके घर में घुसकर बैठा रहा होगा! वहाँ पर यह क्या छिपेगा? बढ़-चढ़कर हाँक रहा है। दिन में ही उधर से निकलने में रोएँ खड़े हो जाते हैं तो रात को कौन मर्द का बच्चा है जो वहाँ जायेगा?

और किसी की बात से मुझे तैश आवे चाहे न आवे, बड़े भाई की बातें मुझे अधीर कर देती थीं। मैंने कहा——बदेगा कुछ शर्त? जो मैं उसी पेड़ पर रात बिता दूँ तो क्या देगा?

मेरी आँखों में आँखें गड़ाते हुए बड़े भाई ने कहा——एक लाख रुपये की शर्त रही।

मैंने कहा——जमा कर दादी के पास। आज रात को रही....

बड़े भाई ने कहा——रही आज रात को। जो तू पूरा कर देगा तो कल सबेरे ही मैं तुझे एक लाख से सौ रुपये अधिक दूँगा। पेड़ के ऊपर मेरा वाला अँगौछा बाँधना पड़ेगा। दिन निकलते ही हम सब जाकर देखेंगे और आधी-रात को अँगौछा दूँगा।

इसी प्रकार से बे सिर-पैर का तर्क आपस में बढ़ रहा है देखकर मुस्कुराते हुए पिताजी बोले——दोनों की शर्तें बाद को पूरी होंगी। अब खाने की ओर भी ध्यान दो दोनों।

जरा झल्लाकर मैंने कहा——यही तो शर्त बद रहा है।

और जोर देकर बड़े भाई बोले——तो मैं कोई गलत थोड़े ही बद रहा हूँ।

दुगने जोर से मैंने कहा——मैं ही क्या गलत कह रहा हूँ। जिसको देखना हो कि मैं उस पेड़ में रात भर रह सकता हूँ कि नहीं वह निकालकर लाख रुपये दादी के पास जमा कर देवे।

थाली पर हाथ पटकते हुए बड़े भाई ने कहा——मैं भी जमा करने में पिछड़ता थोड़े ही हूँ!

सुनते ही मैंने कहा——तो निकालकर रख न दे।

इस बार दादी बोल पड़ी——अरे बाबा, खाना तो खा ले। फिर तर्क करते रहना।

उसी समय पिताजी खाना खाकर उठ खड़े हुए। देखकर दादी ने कहा——ले, खाना खाकर तेरे बाबू उठ भी गये और तुम लोग अभी दस दाने भी नहीं खाये।

मैंने बड़े भाई की [illegible] हुए कहा——इसके मारे खाने पाऊँ तब न!

उलट कर मेरे ऊपर आक्षेप करते हुए बड़े भाई कहा——इसकी दून हाँकने के सामने कोई खा भी सक है। यह चुप होवे तब अन्न चले अपने रास्ते।

मझली जीजी मेरा पक्ष लेती हुई बोलीं——दून भैया, यह सच कहता है। दुनिया में कोई ऐसा काम है जिसे कि यह कह दे और पूरा न करके दिखावे। जानती हूँ।

आगे मेरे बदले मझली जीजी ने ही बड़े भाई को दिया। मझली जीजी के प्रति बड़े भाई की इतनी तो थी ही कि उनकी बातों को वह सच मानते थे। भावनावश तथा मेरे मुँह से न निकलकर अन्य मुँह से मेरा वक्तव्य निकल रहा है, देखकर बड़े भाई शान्त पड़ गये। कुछ ही समय में खाना खाकर बड़े उठ पड़े। दादी ने कहा——लो यह भी खा चुका मगर तक तेरी थाली साफ नहीं हुई।

अन्त तक मेरी ही जीत हुई है, देखकर मैं बड़ा था।

इस समय मैं मझली जीजी पर भी बड़ा प्रसन्न क्योंकि मुझे पूर्ण विजय कराने का श्रेय उन्हींको ही प्रसन्न मुद्रा में मैंने कहा——चुप कराने के लिए मैंने तो दिया तुम्हें वहाँ। चुप कराओ तुम उसे।

कहते कहते बिल्कुल नल के पास पहुँच गया। हाथ धोकर सीधे फिर चौका में आया। एक शंका मन उत्पन्न हो गयी थी। दादी से उसका समाधान करा था। वह बात यह थी कि आखिर बड़े भाई को लाख दिये किसने जो वह इतनी शर्त लगा रहे थे? कहीं ने ही तो मुझसे छिपाकर उन्हें नहीं दे दिये? झट प्रश्न किया दादी से——क्यों तुमने बड़े भाई को इतने मुझसे छिपाकर दिये?...दो, मुझे भी दो ढाई करोड़...

दोनों हँस पड़ी। दादी ने कहा——मैंने थोड़े ही जिसने दिये हैं उनसे माँग।

——तो क्या बाबू ने ही दिये हैं?

मेरा प्रश्न सुनकर फिर दोनों हँस पड़ीं। दादी कहा——अरे पागल, इतने रुपये तेरे बाबू के पास भी से होंगे? सौ रुपये तो होंगे नहीं तो लाख की कौन

जिद्द पकड़ते हुए मैंने कहा——तो उसे कहाँ से वह जो शर्त बद रहे थे?

मझली जीजी ने सान्त्वना देते हुए कहा——सब जमा खर्च है। तू भी भाई से कह द न कि तू ढाई देगा जो वह भूतोंवाली इमली तक दिन ही को पहुँच तो। मगर अकेले जाना पड़ेगा। किसीको साथ जायेगा तो माना नहीं जायेगा। जा शर्त लगा आ।

बड़े भाई को महाकायरों की कोटि का समझते मैंने कहा——ढाई छोड़ पाँच सौ करोड़ रुपये देने पर वह नहीं जा सकता है तो ढाई करोड़ का कौन उसको राम नाम पर या हनुमानजी पर इतना हो तब न। जब नाम पर भरोसा नहीं है तो वहाँ रुपये की लालच से पहुँच थोड़े ही पावेगा। मैं तो

नाम और संकटमोचन के नाम पर वहाँ जाता हूँ। भूत ऐसे भागते हैं कि आज तक मुझे दिखायी ही नहीं पड़े।

—बस समझ ले फिर....

दादी से भी उसी बात को दोहराकर झाँककर देखा कि पिताजी काम पर जा रहे हैं। पिताजी का बाहर निकलना था कि मैं भी सदर दरवाजे की ओर बढ़ा। पीछे-पीछे मझली जीजी भी आयी। दरवाजा नाँघा ही था कि वह बोली—क्या मेरे घर में जा रहा है?

मैंने कहा—नहीं। उधर रामवरण के घर में जाऊँगा। उसके घर में कल नाग निकला था। देख आऊँ कि आज भी निकला है या नहीं कि किसीने मार दिया है।

मझली जीजी ने नीची आवाज से कहा—कहीं कोई पूछे तो यह न बताना कि तू मेरे कमरे से काहे की गठरी लाया है? कह देना कि किताबों की गठरी थी।

इस समय मझली जीजी पर मैं बहुत प्रसन्न था कारण उन्होंने बड़े भाई को परास्त करने में मेरी सहायता की थी। पर मैं राजी हो गया और आगे बढ़ गया। मझली जीजी भी अपने घर में घुस गयीं। बहुत प्रसन्न थीं क्योंकि जो वे मुझसे कहलवाना चाहती थीं, वह मैंने मौन होकर मान लिया था।

× × ×

उसी दिन शाम को मैं छत पर पतंग लूटने की लालच में चढ़ा हुआ था। इतने में मझली जीजी भी वहीं पर आ गयी। मुझसे बड़े प्यार से पूछा—कोई पतंग मिली?

मैंने कहा—अभी तो आया ही हूँ। अभी पेंच लड़ेंगी तो मिलेंगी।

जिस स्थान पर मैं पतंग की टोह में खड़ा था वहीं बगल में मझली जीजी भी बैठ गयी।

इतने में सचमुच खूब डोर समेत एक पतंग कटकर आती हुई मझली जीजी की निगाह में पड़ी। उन्होंने क्षिप्रता से लपककर डोर को पकड़ लिया। मैं भी व्यस्त हो गया। यानी वे डोर खींचती जाती थी और मैं चौए में डोर को चौआता जाता था। धीरे-धीरे सारी डोर को लपेटकर कनकौए को हस्तगत किया।

उन्हींके कारण ही ऐसा सम्भव हुआ था; उसे सम्पूर्ण-रूपेण मैंने मान लिया था। फलतः उनके प्रति सारा हृदय कृतज्ञता से गद्गद हो रहा था। आवेशवश मैंने कहा—तुम कितनी अच्छी हो.... कितनी अच्छी हो... कि...

वे बोलीं—सब झूठ! मेरे प्रति तेरा क्रोध अब भी नहीं शान्त हुआ है।

उनकी आँखों की ओर सकरुण नेत्रों से देखता हुआ मैंने कहा—नहीं, नहीं। मैं सब कुछ... सचमुच तुम्हारे लिए कर सकता हूँ।

उसने कहा—रहने दे.... रहने दे अभी कल ही तो तू अपनी गठरी मेरे कमरे से उठा लाया।... झूठ-मूठ नाटक न रच!

अपनी बेबसी ज्ञापन करते हुए मैंने कहा—उसे जलाकर राख कर दिया नहीं तो वापस...

चौंककर वह कई कदम पीछे हट गयी। उत्तेजित होकर बोली—जला दिया?

—हाँ, हाँ, जलाकर भस्म कर दिया।... उधर छत के कोने में देखो... राख का ढेर....

अब भी शायद चेष्टा करने पर उस गठरी को जलने से बचाया जा सकता है इस प्रकार से वह उस राख की ढेर की ओर बढ़ गयी। पागल के समान राख को उलटने-पुलटने लगी। वहाँ क्या धरा था? उत्तेजित सी मेरे पास आयी। कन्धे को पकड़कर झकझोरते हुए पूछा—यह क्या!

मेरे पास कोई उत्तर न था। अपराधी सा मैंने सर नीचा कर लिया। और जोरों से झकोरती हुई बोली—यह तू ने क्या किया छोटे!... तूने तो सब कुछ मिटा दिया!

कहते ही कहते हाँफने लगी। मैं चुप!

उसी प्रकार से खड़ी-खड़ी मेरे चेहरे की ओर कुछ क्षण देखती रही। फिर जोरों से मुझे ढकेल दिया। बोल पड़ी—कुत्ते कहीं के! नीच! बेईमान!

कहते ही कहते लपकी मेरी ओर। मुझे उस समय मझली जीजी का चेहरा ऐसा लगा कि मानों वह मेरी हत्या करने मेरी ओर लपक रही है। पलमात्र अपेक्षा बिना किये मैं खिसक गया। वह और तेज, मेरी ओर लपकी। एक छलाँग में मैं दूसरी छत पर पहुँचा। वह भागती हुई मेरी ओर लपकी। मैं कूदकर अन्य छत पर पहुँचा।

मझली जीजी, उत्तेजित कंठ से, ललकारती हुई बोली—ठहर जा! भाग कहाँ रहा है! मैं तेरा गला घोंट दूँगी। तूने सब कुछ मिटा दिया! मैं तुझे मिटा दूँगी!

जैसे किसीने मुझे मोहावेश से जगाया। कुछ क्षण पूर्व तक का मोह भंग हुआ। मैंने कहा—अभी क्या मिटाया? मैं तेरे बाबाजी को मिटा दूँगा। तब दम लूँगा।

जोड़ के तोड़ का उत्तर मिलते ही मझली जीजी की उत्तेजना में भाँटा दिखायी पड़ा। वह रुक गयी। आवेशवश रो पड़ी। धीरे-धीरे उतरकर नीचे चली गयी। मैं शून्य आकाश की ओर मुँह बाये कुछ समय तक खड़ा रहा। फिर दीवार पर बैठ गया।

सारी दुनिया मेरे सामने एक स्वप्न सी लग रही थी। एक-एक करके कई पतंग, मेरी पहुँच के अन्दर से कटकर चली गयीं, किन्तु मैं निश्चेष्ट सा बैठा ही रहा, जैसे किसी ने सारी शक्ति को हरण करके मुझे वहीं, दीवार के ऊपर, जड़ दिया हो!

[क्रमशः

न्याय की पहेली

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

न्यायाधीश निर्णय सुना रहे थे। उसका प्रारम्भिक भाग वे पढ़ चुके थे। पर वास्तविक कठोर स्थिति तक वे अभी नहीं पहुँच पाये थे कि उनकी आँखें अभियुक्त की ओर दौड़ गयीं। विस्मय तथा क्रोधपूर्ण दृष्टि से उन्होंने देखा—अभियुक्त के चेहरे पर मुस्कराहट खेल रही थी। अपराध भी करे और न्याय के प्रति उपेक्षा की बातें—ऐसे धृष्ट अपराधी के प्रति क्रोध आना स्वाभाविक था। न्यायाधीश साहब ने डाँटकर पूछा—

"तुम मुस्करा क्यों रहे हो?"

अभियुक्त ने गुस्ताखी भरे शब्दों में उत्तर दिया—"आपके न्याय के प्रति सरकार!"

न्यायाधीश साहब ऐसे गुस्ताख़ उत्तर के लिए तैयार न थे। वे स्तम्भित से थे। अभी तो उन्होंने फैसला सुनाया नहीं। फैसले के कठोर भाग तक वे पहुँच भी न पाये थे। उस अपराधी की धृष्टता पर क्रुद्ध होकर वे अपने फैसले में उलट-फेर भी कर सकते थे। अभियुक्त उनके सामने खड़ा था। उनकी दया तथा कृपा पर उनकी नर्मी या सख्ती पर उसका भविष्य निर्भर करता था। तब, ऐसे अवसर पर यह नादान गुस्ताखी क्यों कर रहा है?

न्यायाधीश साहिब के मन में एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ। वे कुछ क्षण तो अपने उलझे मन को ही सम्हालते रहे। पर, उनके भीतर का बैठा हुआ अहंभाव तथा कुर्सी का अहंकार जागृत होते देर न लगी। उन्होंने निश्चय किया कि फैसला देना स्थगित कर पहले अपराधी पर अदालत का अपमान करने का जुर्म लगाकर दंड दिया जाय।

किन्तु, अभियुक्त के चेहरे पर शिकन तक न आई। ज्यों-ज्यों उसके जज का आवेश और क्रोध बढ़ता गया, उसके चेहरे की मुस्कराहट भी विकसित होती गयी। उस मुस्कान की छूत कुछ वकीलों को भी लग गयी। वे भी मुस्करा पड़े। फिर तो समूची अदालत में जैसे मन्द मुस्कान बिखर गयी हो। जज साहिब के आवेश की सीमा न रही।

वे उबल पड़े। "तुम सब मूर्ख हँस क्यों रहे हो?"

न्यायाधीश के प्रश्न का उत्तर देने का साहस किसमें था? किन्तु जिस अपराधी का भाग्य धागों से लटक रहा था, उसमें ऐसी दिलेरी थी, उसने रूखे ढंग से उत्तर दिया :—

"श्रीमान्, मुझे इस बात पर हँसी आ रही है कि आप इतना लम्बा-चौड़ा फैसला लिखने की मूर्खता क्यों कर रहे हैं?"

"तुमसे मतलब?" जज साहिब ने बिगड़कर कहा।

अभियुक्त ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—मुझसे ही मतलब है, श्रीमान्। मेरा, मेरे परिवार का भविष्य आपके निर्णय पर निर्भर करता है।

तब तो यह और भी गम्भीर बात है तो भी तुम मुस्करा रहे हो?—जज साहिब ने उत्तर दिया।

"इसका तो बड़ा सीधा उत्तर है श्रीमान्", अभियुक्त ने उत्तर दिया। "आपने अपने फैसले के शुरू में स्पष्ट कर दिया है कि मैं अपने समाज के अन्य सदस्यों से भिन्न हूँ। और जो कुछ मैंने किया है वह जघन्य, भयंकर तथा अक्षम्य है। मुझे यह सोचकर हँसी आ गयी कि यदि मेरी परिस्थिति में आप होते तो मैंने जो कुछ किया है—वही करते या इससे भिन्न कोई कार्य करते। या तो आपको अपनी पत्नी से प्रेम नहीं, यदि है तो यह मान लेना पड़ेगा कि उसकी सूरत या स्वभाव ऐसा है कि कोई दूसरा उसे प्यार नहीं कर सकता।"

यह तो घोर अपमानजनक बात थी। न्यायाधीश से इतना भद्दा सवाल किया गया—इसके लिए अदालत में कोई तैयार नहीं था। अभियुक्त का प्रश्न सुनकर सब लोग स्तम्भित रह गये। न्यायाधीश को अपने जीवन-काल में इतना गुस्ताख अपराधी नहीं मिला था। उसके स्पष्ट तथा चुभनेवाले प्रश्न ने उनके दिमाग में आँधी पैदा कर दी। उस दिन के लिए अदालत समाप्त हुई।

क्रोध के आवेश में जज साहिब ने अदालत छोड़ी थी और कुछ देर में ही वे घर पहुँचे। वे कभी भी अदालत से इतनी जल्दी नहीं लौटे थे। इसलिए समूचे घर को आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था। वे सीधे अपने कमरे में चले गये। वहाँ उनकी पत्नी कुछ लिख रही थीं। ऐसा लगता था जैसे कोई पत्र लिख रही थी। पत्नी ने जज साहिब को आते नहीं देखा था। जज साहिब दबे पाँव उसके पास पहुँचे। इसके पहले कि वह पत्र छिपा ले उनकी नजरों ने यह पंक्तियाँ पढ़ लीं :—

"प्रेम क्या चीज है, यह पुरुष नहीं जानता। यदि उसमें इतनी बुद्धि आ जाये तो हम स्त्रियों का संसार में रहना असम्भव हो जाय।"

इस वाक्य ने तो जले पर नमक छिड़कने का काम किया। अदालत में भी प्रेम की न्याय-चर्चा हो रही थी और घर में भी वही निगोड़ी विपत्ति है। आखिर उनकी पत्नी के इस वाक्य का क्या अर्थ हो सकता है कि पुरुष को प्यार की असली जानकारी कभी न होगी। यदि हो भी जायेगी तो संसार में विपत्ति उत्पन्न हो जायेगी। अपनी श्रेणी के अधिकांश लोगों के समान वे भी अपनी पत्नी के गुलाम थे। नित्य प्रति उन्हें अपनी किसी न किसी मूर्खता समझी जानेवाली बात पर अपनी बीबी का फैसला सुनना पड़ता था। जज साहिब के फैसले के विरुद्ध तो अपील दायर की जा सकती थी पर उनकी बीबी के फैसले के विरुद्ध कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। उस पत्र के वाक्य को पढ़कर उन्हें ऐसा लगा जैसे वे कुछ भूल कर बैठे हों। मन में एक बेचैनी सी भी पैदा हो गयी थी। अपने चित्त को शान्त

करने के लिए वे घर से अकेले ही घूमने के लिए चल पड़े।

मकान के फाटक पर शाम की डाक लिये डाकिया मिल गया। जिस पत्र की प्रतीक्षा थी वही मिला। उनका एकमात्र पुत्र लंदन में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा था। पिता ने उत्कंठापूर्वक उसके पत्र को पढ़ना शुरू किया। पत्र का पहला ही वाक्य था "पिताजी मुझे क्षमा करें। मुझे..... से प्रेम हो गया है।" पिता ने घृणापूर्वक पत्र को उठाकर फेंक दिया। "इस पत्र में भी वही प्रेम का भूत बैठा हुआ है। इस गन्दे शब्द 'प्रेम' का क्या तात्पर्य होता है? प्यार क्या है? किसको प्यार किया जाता है? किसके द्वारा?"

वे फाटक के बाहर चले गये। उसी रास्ते उनके मित्र नवीन बाबू जा रहे थे। जज साहिब को देखकर नवीन बाबू ने गाड़ी रोक दी। वे गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी में बैठकर कुछ समय तक तो वे दोनों इधर-उधर की व्यर्थ की बातें करते रहे, अनायास ही नवीन बाबू ने पूछा :—

"क्या तुमने सुना है कि कलक्टर साहिब के साहबजादे ने आत्महत्या कर ली है?" "आत्महत्या?" जज साहिब ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, हाँ, आत्महत्या, क्या तुम्हें नहीं मालूम कि वह कमिश्नर साहिब की लड़की से प्यार करता था?"

जज साहिब ने आँखें बन्द कर लीं। वे परेशान हो उठे। जिस चीज को भुलाने के लिए वे घर से बाहर निकले थे वही प्यार का भूत इस बढ़िया गाड़ी में भी उनका पीछा कर रहा था। अब बात बर्दाश्त के बाहर हो गयी थी। वे अपने मित्र से आग्रह करके अपने बँगले के निकटतम स्थान पर उतर गये। जब वे गाड़ी से उतर ही रहे थे कि उनके मित्र ने मजाक किया :—

"अब तो तुम बूढ़े हो चले हो। तुम अब अपनी बीबी को प्यार भी करने काबिल नहीं रहे हो। फिर तुम्हें घर जाने की जल्दी क्या है?"

जहन्नुम में जाय यह प्यार! अदालत से लेकर घर, और घर से सड़क तक उनके कान में यह शब्द क्यों बार-बार भरा जा रहा है? चिन्ता में मग्न जज साहिब अपने बँगले के पिछवाड़े के बाग में टहलने लगे। एकाएक उनकी दृष्टि सुन्दर अशोक वृक्ष के नीचे पड़ी जहाँ एक मजदूर उनके माली की लड़की को चिपकाये था। यह तो पराकाष्ठा थी। जज साहिब के हाथ में छड़ी थी। वे मजदूर के पीछे दौड़ पड़े। आगे-आगे नवयुवक भागा जा रहा था। पीछे-पीछे जज साहिब खदेड़े चले जा रहे थे। युवक बँगले के बाहर निकल गया। उन्होंने सड़क तक उसका पीछा न छोड़ा। मोड़ पर वह हाथ आ ही गया। फिर तो छड़ी से उसकी पिटाई शुरू हुई। पास में चौराहे का पुलिसमैन शोर सुनकर घटनास्थल पर पहुँच गया। वह जज साहिब को पहचानता न था। उसने दोनों को पकड़ लिया और थाने ले गया। दारोगा ने जज साहिब को पहचानते ही उनसे बहुत-बहुत क्षमा माँगी। युवक पर कुछ और घूंसे पड़े। जज साहिब घर वापिस आये। अपनी इस करनी पर उनको सन्तोष हो रहा था। मन का बुखार उतारने में सहायता मिली।

दूसरे दिन जज साहिब अदालत पहुँचे थे कि पिछले दिन के फैसले का मसविदा उनके सामने पेश किया गया। उसे देखते ही कल की सब घटनायें उनकी आँखों के सामने नाच उठीं। सब जगह प्यार की ही चर्चा थी। उनकी पत्नी ने भी अपने पत्र में इस शैतान का जिक्र किया था। और, अशोक वृक्ष के नीचे का वह गन्दा दृश्य! विचारपति को ध्यान आ गया कि वे उस युवक छोकरे पर कितना क्रुद्ध हो उठे थे। उसके पीछे भाग पड़े थे। और यहाँ तक कि स्वयं गिरफ्तार होकर थाने पहुँचाये गये थे।

उनकी आँखें फिर अपने लिखित फैसले पर लौट आयीं। अभियुक्त अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता था। वह उसके प्यार में दिखाता था। हो सकता है कि वह अति ईर्ष्यालु प्रेमी था। वह अपने प्रेम में किसी प्रकार की बाधा को सहन करने के लिए तैयार नहीं था। किन्तु वास्तविकता यह थी कि उसकी पत्नी केवल एक के प्यार से सन्तुष्ट नहीं थी। वासना तथा प्रेम का उसका अपना पृथक् अनुभव था, प्रयोग था। एक दिन की बात है। अभियुक्त दिन भर का थका-माँदा अपने काम पर से लौट रहा था। एकाएक उसने देखा कि उसकी पत्नी एक इमली के वृक्ष के नीचे एक अज्ञात लफंगे की गोद में सिमटी हुई है। अभियुक्त के क्रोध का पारावार न रहा। उसने उस बदमाश को पकड़कर मारना शुरू किया। वह अज्ञात अपराधी वहीं ठंडा हो गया। समाप्त हो गया।

विचारपति ने अभियुक्त को प्राण-दण्ड देने का निश्चय किया था। किन्तु अपने बँगले की, या यों कहिय कि अपने बँगले के पिछवाड़े की घटना उन्हें याद आ गयी। उनका माली की लड़की तथा उसके प्रेमी से कोई सरोकार नहीं था। उनकी प्रेम-लीला से जज साहिब का कुछ बनता-बिगड़ता न था। फिर भी उन्हें इतना क्रोध क्यों आ गया था? क्या आवेश में वे स्वयं भी वही कार्य नहीं करने जा रहे थे जिसके लिए अभियुक्त को प्राणदंड दे रहे हैं? आखिर उनकी सजा क्या होनी चाहिए और उनके कार्य पर निर्णय कौन देगा?

फैसला सुना दिया गया। बहुत ही संक्षिप्त फैसला था। विस्तार के साथ निर्णय दूसरे दिन सुनाया जायगा। अभियुक्त को केवल तीन वर्ष कारावास की सजा मिली। निर्णय सुनाने के लिए जज साहिब ने कागज से आँख उठाकर अभियुक्त की तरफ देखा, उसके चेहरे पर वही कलवाली मुस्कराहट पड़ी थी। जज साहिब को फिर क्रोध आ गया। उन्होंने क्रुद्ध शब्दों में पूछा "तुम फिर क्यों मुस्करा रहे हो?"

अभियुक्त ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—

"हुजूर! मुझे ऐसा लगता है कि आपने प्रेम की महत्ता को पहचान लिया है।"

मैंने पत्रिका निकाली

श्री लक्ष्मण भारद्वाज

मित्र मण्डली में जैसे ही यह खबर पहुँची कि मैं एक नयी पत्रिका निकालनेवाला हूँ तैसे ही हर रोज कोई न कोई मित्र चर्चा करने आने लगा। पत्रिका का नाम "रागिनी" रखा गया था। सबसे पहले मित्रों ने नाम पर धावा बोला—

"रागिनी किसका नाम है? भाभीजी के नाम पर पत्रिका निकाल रहे हो क्या?"

"अरे, नहीं! ये तो इनकी प्रेमिका होंगी।"

"आप संगीत के प्रेमी हैं क्या?"

"नाम ऐसा रखो जिससे उद्देश्य स्पष्ट हो जाये।"

"रागिनी नाम क्यों रखा है, कोई संगीत की पत्रिका है क्या?"

मैंने उत्तर दिया—"अगर "रागिनी" नाम प्रेमिका या पत्नी का है तब "हिन्दुस्तान" और "नवभारत" जरूर किसी प्रेमी या पति के नाम होंगे। "रागिनी" नाम की पत्रिका संगीत की हो यह जरूरी है तो "सरिता" कृषि-सम्बन्धी पत्रिका होनी चाहिये। इस नियम के अनुसार "नवनीत" नाम की पत्रिका हो तो वह गोपालन और गोसम्वर्धन विषयों की होनी चाहिए।"

पत्रिका निकली तो हर परिचित व्यक्ति सुझाव देने आया—"गेट-अप सुन्दर बनाओ। बिना सुन्दर गेटअप के पत्रिका नहीं बिक सकती।" एक दूसरे सज्जन ने कहा—"अजी गेट-अप में क्या रखा है, मैटर होना चाहिए, मैटर।" एक सज्जन का सुझाव था—"कुछ फिल्मी फोटो भी छापा करो, आजकल बहुत माँग है।" एक वृद्ध ने उपदेश दिया—"देखो बेटे, अभिनेत्रियों की तस्वीरें छापकर अपनी पत्रिका का स्तर मत गिराना।" एक दुकानदार ने कहा—"कविताओं का जमाना लद गया, अब तो भैया, कहानिया पढ़ते हैं लोग।" कालेज के एक छात्र ने सलाह दी—"दो-चार रसीली कवितायें हर अंक में जरूर छापियेगा।" एक मित्र का सुझाव था—"नये लेखकों को प्रोत्साहन जरूर देना, प्यारे।" कालेज के एक वयोवृद्ध प्रोफेसर ने समझाया—"रचनायें केवल प्रतिष्ठित लेखकों की छापना, बेटा। नये लेखक लिखना ही नहीं जानते। जो चार अक्षर लिख लेता है, वही आपको लेखक मान लेता है।"

पत्रिका के प्रथम अंक के लिए रचनायें माँगी गयी थीं। एक दिन एक मित्र कार्यालय पर पधारे—"नयी नयी पत्रिका निकाल रहे हो, सोचा—तुम्हें रचनायें तो मिलें नहीं होंगी। लो मैं १५-२० रचनायें लेता आया हूँ। जितनी चाहो, छाप लेना।" एक पण्डितजी थे जिन्होंने एक धार्मिक नाटक लिखा था। मैंने वह नाटक पत्रिका के लिए अस्वीकृत कर दिया। एक दिन शाम को पण्डितजी नौकर के कन्धे पर एक गट्ठर लदवाकर आये और बोले, "सम्पादकजी! आपको मेरी वह रचना पसन्द नहीं आयी। खैर, कोई बात नहीं। ये लीजिये मैं अपनी सारी रचनायें लेता आया हूँ, इनमें से जो पसन्द आये छाप दीजियेगा।" उन्होंने रचनाओं का गट्ठर मेरी मेज पर रखवाया और चल दिये।

एक कवयित्री की कविता मिली। कविता में वर्षा-ऋतु का वर्णन था। लिखा था—"रिमझिम रिमझिम पानी बरस रहा है, सरसों फूली हुई है। मैं सरसों के खेत-में खड़ी प्रियतम का इन्तजार कर रही हूँ।" मैंने उत्तर भिजवा दिया—"कवयित्रीजी, अगर आपकी पुण्य-भूमि में बरसात के दिनों में सरसों फूलती है तो कृपया अविलम्ब कुछ फूल भिजवा दें, मुझे ओषधि के लिए आवश्यकता है। जो भी मूल्य आप माँगें देने को तैयार हूँ।"

एक दिन एक नये लेखक आये और बोले, "आप नये लेखकों को प्रोत्साहन देते हैं। मैं बिल्कुल नया लेखक हूँ। मैंने इसी कहानी से नया-नया लिखना शुरू किया है। उससे पूर्व मेरी कोई रचना कभी किसी भी पत्र में नहीं छपी। आशा है इस नवीनता के आधार पर आप मेरी यह नयी कहानी स्वीकार करेंगे।"

एक बार एक कविता मिली—"मैं मर क्यों न सका?"

१६६३

रे एक मुँहफट सहयोगी ने सुझाव दिया, "सम्पादकजी, को लिख दीजिये कि आप रचना खुद देने नहीं आये डाक से भेज दी थी। अगर आप खुद आते तो मैं शायद की इच्छा पूरी कर देता।"

पत्रिका के नमूने की एक प्रति मुफ्त भेजे जाने का नियम ा। एक बार एक "चतुर" पाठक का पत्र आया—म्पादकजी, पत्रिका का नमूना मुफ्त मिलता है, यह कर खुशी हुई। हम अपनी दुकान का ठिकाना नीचे ख रहे हैं। कृपा करके इस ठिकाने पर हर महीने पत्रिका एक नमूना मुफ्त भेजते रहें।"

एक बार एक सज्जन हाथ में फाइल लिये आये और हा—"हम अभी तक तो अखबार में प्रूफ-रीडर थे। यूनियन बन गयी। यूनियन ने हड़ताल कर दी। ने हमको नोटिस देकर निकाल दिया क्योंकि हम हड़ताल में शामिल थे। अब यूनियन केस लड़ रही हमने सोचा—इतने दिन बैठे बैठे क्या करें? अचा- ध्यान आया कि क्यों न कुछ लिखना शुरू कर दें। हम पिछले चार महीनों से लगातार लिख रहे हैं। अब इसे छाप दें तो हम नौकरी खोजने क्यों जायें, साहित्य- ा ही करते रहें।"

एक बार "शिक्षा" विषय पर पत्रिका का विशेषांक ाला था। शिक्षा-क्षेत्र में अनुभवी-लेखकों से रचनायें गयी थीं। किन्हीं गोवर्धन प्रसाद का पत्र मिला—म्पादकजी, शिक्षा के क्षेत्र में हमारे जितना अनुभव कम लोगों का होगा। हम मेट्रिक में तीन बरस रहे, टर में चार बरस और अब चार बरस से बी० ए० कर रहे हैं। मेट्रिक से बी० ए० तक का हमारा ग्यारह बरस का अनुभव है। हम एक लेख भेज रहे हैं। आशा है कि हमारे अनुभव के आधार पर स्वीकृत होगा।"

२०-२५ पन्नों में लिखी हुई एक कहानी के साथ उसके लेखक का पत्र आया—"आपको एक दुःखपूर्ण कहानी लिखकर भेज रहा हूँ। कहानी का नायक मेरा मित्र था जो विवाह के १० दिन बाद बस से कुचलकर मर गया था। मेरा विचार है कि उससे अधिक दुःखपूर्ण कथानक और क्या हो सकता है। आपके कार्यालय में इतनी दर्दभरी कहानी आज तक कभी नहीं आयी होगी। आशा है—इसे जरूर स्वीकृत करेंगे।"

एक पाठक ने पत्र लिखकर पूछा—"मैं नहीं चाहता कि मेरी कोई रचना अस्वीकृत हो। कृपया बताइये कि आप कैसी रचना स्वीकार करते हैं ताकि मैं वैसी ही रचना तैयार करूँ।" एक दूसरे पाठक का पत्र आया—"मुझे कुछ नये विषयों पर लेख लिखने हैं। कृपया सूचित करें कि अभी तक किन-किन विषयों पर लेख लिखे जा चुके हैं? मैं इन विषयों को छोड़कर बाकी बचे विषयों पर लिखूँगा।"

अन्त में एक ग्राहक का पत्र पढ़िये—"आपने विज्ञापन दिया था कि हमारी पत्रिका किसी ग्राहक को पसन्द न आये तो वह साल भर बाद अंक लौटाकर अपना चन्दा वापस ले सकता है। हमें आपकी पत्रिका पसन्द नहीं आयी, हमारा चन्दा वापस करिये। लेकिन वापस करने का कष्ट क्यों उठाते हैं? उसी चन्दे से हमको फिर एक साल तक पत्रिका भेजते रहिये।"

नवीन प्रकाशन

इधर कई सहयोगी पत्रों ने कई दिवंगत साहित्यकारों के सम्बन्ध में स्मृति अंक निकाले हैं। इनमें निम्नांकित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

१—नयीधारा, पटना का शिवपूजन स्मृति-अंक। ५०३ पृष्ठ। मूल्य ४ रुपये।

२—साहित्य सन्देश, आगरा का बाबू गुलाबराय स्मृति अंक। पृष्ठ ९२। मूल्य १ रुपया।

३—जीवन साहित्य, नयी दिल्ली का राजेन्द्र संस्मरण अंक। पृष्ठ ८२। मूल्य, डेढ़ रुपये।

४—उपमा, कानपुर का राहुल स्मृति विशेषांक। पृष्ठ १८४। मूल्य, डेढ़ रुपये।

५—नर्मदा, ग्वालियर का नवीन अंक। पृष्ठ, १४८। मूल्य, तीन रुपये।

६—सम्मेलन पत्रिका, इलाहाबाद का श्रद्धांजलि अंक। पृष्ठ, ७३२। मूल्य, आठ रुपये।

१—शिवपूजन स्मृति अंक का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है। शिवजी के जीवन और उनके कृतित्व के ऊपर इन लेखों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इसमें ९९ साहित्यकारों और मित्रों के लेख हैं। प्रायः २० लेख ही बिहार के बाहर के लोगों के हैं। यह स्वाभाविक है कि बिहार के मित्र उन्हें बहुत निकट से जानते थे किंतु शिवजी का व्यक्तित्व सारे हिंदी संसार में सुपरिचित था। सम्पादकों ने अवश्य ही बाहर के लोगों से लेखों को मँगाने का प्रयत्न किया होगा, किंतु यह खेद और आश्चर्य की बात है कि बिहार के बाहर के लोगों ने अपनी श्रद्धांजलियाँ भेजने में आलस्य किया। जो भी हो, अंक बहुत सुन्दर और शिवजी की स्मृति के अनुरूप है। इसको पढ़ने से उनका निश्छल, सरल, देवता-सुलभ व्यक्तित्व एवम् उनकी हिंदी सेवा की लगन का रूप मूर्त हो जाता है। कितने ही लेखकों ने उनके अनेक संस्मरण देकर उनके चरित्र के विविध अंगों को प्रकाश में ला दिया है। विस्तृत जीवनी के अभाव में यह अंक शिवजी के जीवन चरित्र का भी काम दे सकता है। अंत में सम्पादकों ने उनके कुछ उन महत्वपूर्ण पत्रों को भी प्रकाशित कर दिया है जो उन्होंने विविध हिंदी साहित्यकारों और हिंदी-प्रेमियों को लिखे थे। ये पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और इनके कारण इस अंक का महत्त्व और भी बढ़ गया है। यह अंक शिवजी के अनुरूप ही हुआ है, और उसे इतनी सादगी और सुंदरता से निकालने के लिए 'नयी धारा' हिंदी संसार की कृतज्ञता की पात्र है। भावी पीढ़ियों को शिवजी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित कराने में यह अंक विशेष रूप से सहायक होगा। यही नहीं, इस अंक में ऐसी सामग्री संग्रहीत जो हिंदी के तत्कालीन इतिहास के लिए भी मूल्यवान है हम आशा करते हैं कि हिंदी की संस्थाएँ, पुस्तकाल और विद्यालय इस अंक का संग्रह अवश्य करेंगे।

२—बाबू गुलाबराय स्मृति अंक—साहित्य सन्दे से बाबू गुलाबराय का प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध ब दिनों रहा। अतएव यह उपयुक्त ही है कि साहित्य सन्दे ने उनकी स्मृति में यह अंक प्रकाशित किया है। वैसे बाबू गुलाबराय ने हिंदी साहित्य के अध्ययन को जो मू वान प्रेरणा दी, तथा उसे आगे बढ़ाया, उसकी कृत की स्वीकारोक्ति में हिंदी के किसी पत्र को ऐसा स अंक निकालना था। साहित्य सन्देश ने इसे निकाल कर आवश्यकता की पूर्ति की है जिसके लिए हम उसके कृ हैं। इस अंक की विशेषता यह है कि यह उनके जीवन बहुत कम सम्बन्धित है। इसमें मुख्य रूप से उनके कृति का दिग्दर्शन कराने तथा उसका मूल्यांकन करने प्रयत्न किया गया है। जो थोड़े-बहुत व्यक्तिगत लेख भी, वे प्रायः उनके शिष्यों के हैं जिनमें उनके जीवन तथ्य कम हैं, तथा उनमें उनका अध्यापक और बुजुर्ग रूप ही प्रकट हुआ है। बाबू गुलाबरायजी गद्य लेख थे—विशेष रूप से निबन्धकार और आलोचक। आलोच के क्षेत्र में उन्होंने जो परिपाटी चलायी वह उच्च स्त के हिंदी के विद्यार्थियों के लिए बड़ी उपादेय प्रमाणि हुई। अपने दार्शनिक और साहित्यिक दृष्टिकोण, विश्ले की अपूर्व क्षमता, भारतीय और पाश्चात्य साहित्य सिद्धा पर अधिकार, एवम् सरल भाषा और स्पष्ट शैली के कार उन्होंने हिंदी आलोचना का अध्ययन अध्येताओं के लि सुगम कर दिया। इस अंक में उनके समालोचक रूप अच्छा मूल्यांकन किया गया है। समालोचक के बाद निबंधकार थे, और इस अंक में उनके निबंधों और उन शैली की विशेषताओं पर भी बहुमूल्य प्रकाश डाला ग है। संस्मरणात्मक लेखों से पता लगता है कि उन सरल और गंभीर व्यक्तित्व ने अपने सम्पर्क में आनेवा को कितना प्रभावित किया था, तथा उनका प्र कितना शिव था। इस स्मृति अंक से हमारी तृप्ति न हुई। शायद इसका सीमित आकार होने के कार उनके सम्बन्ध की बहुत सी बातें इसमें नहीं आ पा तथा इसमें लेख भी प्रायः उन्हीं लोगों के हैं जो उन निकट थे। बाबू गुलाबरायजी ने द्विवेदी युग से अ तक हिंदी की सेवा की, और उनके प्रशंसक सारे हि भाषी क्षेत्र में फैले हुए हैं। यदि उनका सहयोग लिया जा

१९६३

इस स्मृति अंक का आकार बढ़ा दिया जाता तो स्मृति अंक का महत्त्व और भी बढ़ जाता। फिर भी प्रसन्नता है कि बावू गुलाबराय पर यह स्मृति अंक निकाला जा सका। इससे उनके कृतित्व का परिचय करने में पाठकों को बड़ी सहायता मिलेगी।

३—राजेन्द्र-संस्मरण अंक——जीवन साहित्य ने यह राजेन्द्र बाबू की स्मृति में निकाला है। राजेन्द्र बाबू प्रथम राष्ट्रपति ही नहीं थे, वे कुछ और भी थे। कुछ 'और' होने के कारण अपने देशवासियों हृदय में उन्होंने एक विशेष स्थान पा लिया था। न्द्र स्मरणांक' की कल्पना बहुत अच्छी है, किंतु न साहित्य' के साधन देखते हुए, तथा राजेन्द्र बाबू के त्व को देखते हुए हमें इस अंक से बहुत संतोष हुआ। हमारी कल्पना है कि यह अंक ऐसा होना था जिससे पाठकों को राजेन्द्र बाबू के पुण्य श्लोक की एक संतोषजनक झाँकी मिल जाती, तथा जिसमें जीवन और कार्य का एक सुसंबद्ध सिंहावलोकन सकता। 'जीवन साहित्य' इस कार्य के लिए पूरी से समर्थ है। अपने वर्तमान रूप में यह 'संस्मर- न होकर 'श्रद्धांजलि अंक' रह गया है। इसमें राष्ट्र- डा० राधाकृष्णन्, उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन, राजगोपालाचारी आदि कुछ प्रमुख नेताओं की श्रद्धाजलियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें अधिकतर उन्हीं के कुछ श्रद्धांजलिमिश्रित संस्मरण हैं जो उनके बहुत सम्पर्क में आये थे। ये संस्मरण अवश्य ही मनो- हैं। इनका महत्त्व भी है। किंतु उनमें से अधिकांश- से ऐसा मालूम होता है कि अभी उन्हें बहुत कुछ रह गया है। उनकी हिंदी सेवा के सम्बन्ध में हमें कोई लेख नहीं मिला। शायद राजेन्द्र बाबू के स्वर्ग- के तुरन्त बाद की ये प्रतिक्रियाएँ हैं, इसलिए इनका है। निकट के व्यक्तिओं के संस्मरणों से राजेन्द्र के मानवीय गुणों का बड़ा आत्मीय परिचय मिलता और उनके सरल और साधु व्यक्तित्व के अंतर की मिल जाती है। अधिकांश संस्मरण पढ़ने योग्य और उनसे पाठकों को प्रेरणा मिलेगी। 'जीवन साहित्य' इस अंक को निकालकर अपना तात्कालिक कर्त्तव्य कर दिया, किंतु जीवन के जिन मूल्यों के लिए वह जीवित के प्रमुख आदर्श (राजेन्द्र बाबू) पर वह एक ऐसा निकालेगा जो उसके तथा राजेन्द्र बाबू के——दोनों के——स्वरूप के अनुरूप हो, ऐसी हमारी कामना है। पत्रों में जीवन साहित्य ने इस अंक के द्वारा अपनी नहीं, सारे हिंदी संसार की श्रद्धांजलि राजेन्द्र बाबू के अर्पित की है। इसके लिए हम उसके विशेष रूप से आभारी हैं।

४—राहुल स्मृति विशेषांक——राहुलजी के निधन से हिंदी संसार की बड़ी क्षति हुई है और सारा संसार हो गया क्योंकि वे हिंदी के अनन्य भक्त और अथक थे। किंतु अपने धर्म और राजनीति सम्बन्धी विचारों के कारण वे एक विशिष्ट विचारधारा के लोगों के आदर्श नायक बन गये थे। संयोग या विवशता के कारण इस अंक में अधिकांश लेख उन्हीं लोगों के हैं जो राहुलजी के धार्मिक या राजनीतिक विचारों के, या उनके प्रशंसक हैं। हिंदी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति और सर्वमान्य हिन्दी उन्नायक राहुलजी के स्मृति में जो अंक निकाला जाय उसमें हिंदी के प्रथम पंक्ति के साहित्यिकों के लेख न होना, खटकनेवाली बात है। परिणाम यह हुआ है कि यह अंक (कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर) एक विशेष विचारधारा के लोगों की श्रद्धांजलियों का समुच्चय हो गया है। हमारी सम्मति में यह इसकी कमी है। किंतु जो भी लेख संग्रहीत हैं वे अत्यंत रोचक हैं, और राहुलजी के गुणों और कार्यों पर प्रकाश डालते हैं। उनके जीवन के अंतिम भाग पर जो संस्मरण लिखे गये हैं वे विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इस अंक में राहुलजी से सम्बन्धित कई चित्र भी दिये गये हैं। श्रद्धांजलि की दृष्टि से यह अंक सफल है और इससे राहुलजी के प्रशंसकों को संतोष होगा।

५——'नवीन' अंक——नर्मदा का 'नवीन' अंक का बाह्य इतना आकर्षक नहीं है, जितना इसमें संग्रहीत साहित्य। इस अंक का सम्पादन पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की कुशल और अनुभवी प्रतिभा ने किया है। इसलिए यह अंक बहुत मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण बन गया है। नवीनजी की कुछ अत्यंत हृदयग्राही कविताओं से यह आरंभ होता है। उसमें उनकी आत्मकथा के भी मनोरंजक अंश दिये गये हैं। इसमें जो संस्मरण हैं वे प्रायः उन लोगों के द्वारा हैं जो नवीनजी से परिचित ही न थे, वरन् उनसे हार्दिक स्नेह करते थे और उनका वास्तविक सम्मान करते थे। इसीलिए इन संस्मरणों में वह 'किताबीपन' नहीं है जो बहुधा संस्मरणों में पाया जाता है। इनमें एक ऐसी आत्मीयता है जो पाठक को बरबस आकर्षित कर लेती है, और जिससे नवीनजी का निराला व्यक्तित्व उभड़ आता है। सब मिलाकर यह अंक सुंदर और संग्रहणीय है। यदि इसकी छपाई अधिक सुंदर हुई होती और यदि इसमें चित्र भी दे दिये जाते तो इसका महत्त्व और बढ़ जाता।

६——श्रद्धांजलि अंक—साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित इस अंक के मुख पृष्ठ पर "श्रद्धाँजलि विशेषाँक" छपा देखकर दिमाग भड़क गया। इस बृहदाकार ग्रंथ को खोलने की इच्छा ही नहीं हुई। असावधानी और अकुशलता का यह ढिठौना उसके मुखौटे पर ही देखकर **'हिन्दी साहित्य** सम्मेलन' पर तरस आया। और यह केवल आवरण पर ही नहीं, भीतरी आवरण पर भी इसी रूप में छपा है! जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रकाशन में ऐसी अखरौटी लिखी जाय तब साधारण प्रकाशकों के प्रकाशनों की अखरौटी की आलोचना करना व्यर्थ है।

यह अंक पं० मदनमोहन मालवीय, पं० रामनरेश त्रिपाठी और निरालाजी की स्मृति में निकाला गया है। गत वर्ष मालवीयजी की जन्मशती मनायी गयी थी।

वे सम्मेलन के संस्थापक थे। अतएव उनकी जन्मशती के अवसर पर सम्मेलन पत्रिका को एक विशेषांक निकालना आवश्यक था। इसी बीच त्रिपाठीजी और निरालाजी का स्वर्गवास हो गया। उनको भी श्रद्धांजलियाँ देनी आवश्यक थीं। अतएव अलग-अलग विशेषांक न निकाल कर पितृपक्ष की अमावस्या की तरह तीनों को एक साथ 'अंजलियाँ' अर्पित कर दी गयीं। परिणाम यह हुआ है कि इस अंक में विषय की एकरूपता नहीं आ पायी। हमारी सम्मति में प्रत्येक व्यक्ति इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके लिए अलग से विशेषांक निकाला जाना चाहिए था। अपने वक्तव्य में सम्पादकों ने कहा है कि जब यह अंक छप रहा था तब राजर्षि, राजेन्द्र बाबू और सियारामशरणजी गुप्त का निधन हो गया। हम आशा करते हैं कि इस अंक की तरह एक ही अंक रूपी 'खेवे में इन तीनों को पार' करने का प्रयत्न न दुहराया जायगा।

इस अंक में मालवीयजी पर १५५ पृष्ठ, प्रायः इतने ही पृष्ठ त्रिपाठीजी पर और सवा दो सौ पृष्ठों के लगभग निरालाजी पर हैं। इन तीनों महापुरुषों के साधारण रेखाचित्र भी दिये गये हैं। लेखों का चयन सावधानी और सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। इनमें सर्वोत्तम खंड त्रिपाठीजी वाला है। इसमें उनके जीवन से सम्बन्धित बहुत मूल्यवान् सामग्री संग्रहीत है। उनके पत्र आदि देकर इस खंड को बहुत उपयोगी बनाया गया है तथा उनके कृतित्व का मूल्यांकन भी अच्छे ढंग से किया गया है। निरालाजी वाला खंड अधिकतर उनके कृतित्व पर है। इसके लेख अधिकतर शास्त्रीय (ऐकेडमिक) ढंग के हैं, और उनकी कविता को समझने में सहायक होंगे। मालवीयजी वाले खंड में मालवीयजी के धार्मिक रूप पर अधिक बल दिया गया है। यह उचित ही है, किंतु उनके राजनीतिक रूप पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है। हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना तथा उनके शैक्षणिक कार्य की चर्चा तो की गयी है, किंतु हमारी सम्मति में उस पर जितना बल दिया गया है उससे अधिक बल देना चाहिए था। सबसे बड़ा अभाव यह मालूम होता है कि उनकी हिंदी सेवा पर अपेक्षाकृत बहुत कम कहा गया है। सम्मेलन को चाहिए था कि इस अवसर पर, इस अंक में, हिंदी को देश में प्रतिष्ठित करने के उस आन्दोलन का विस्तृत इतिहास दिया जाता जिसके अग्रणी मालवीयजी थे, और जो अभी तक ठीक तरह से नहीं लिखा गया। हमारी समझ में "वाज सूक्तम्" और 'भारतीय संस्कृति के यूरोपीय साधक' नामक लेख इस खंड की योजना को देखते हुए उससे मेल नहीं खाते।

तीन महापुरुषों के स्मृति अंक एक साथ निकालने से इस अंक का कलेवर बहुत बढ़ गया है और फलतः इसका मूल्य भी अधिक हो गया है। इसलिए इसके प्रचार कठिनाई होगी।

फिर भी यह अंक संग्रहणीय है। इसमें त्रिपाठी संबंधी मूल्यवान् सामग्री संग्रहीत है और निरालाजी कृतियों का कई लेखों में अच्छा अध्ययन किया गया है

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—व्यक्तित्व एवं साहित्य, सम्पादक, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, प्रकाश भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़—३, मूल्य सजिल्द, सात रुपये।

यह एक नये प्रकार का अभिनंदन ग्रंथ है। साधार अभिनंदन ग्रंथ किसी विशेष अवसर पर निकाले जाते हैं किंतु इसकी विशेषता यह है कि बिना किसी अवसर के यह प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदीजी के शिष्यों, स कारियों और प्रशंसकों ने उनके व्यक्तित्व एवं निबंधकार रूप, आलोचक रूप, उपन्यासकार रूप, भारती संस्कृति के व्याख्याता रूप आदि विषयों पर प्रायः निबंध लिखकर यह ग्रंथ तैयार किया है। ये निबंध श्र और भक्ति से ओतप्रोत हैं, अतएव उनमें से अधिक गुणानुवाद और स्तोत्र बनकर रह गये हैं। हमने निबंध पढ़े। वे रोचक हैं और उनसे हमें द्विवेदीजी अनेक गुणों का परिचय मिला। इनमें विशेषणों की मनो छटा देखकर पाठक को प्रसन्नता होगी। द्विवेदीजी व्यक्तित्व और कृतित्व के व्यंजनों पर भक्ति के मा की ऐसी गहरी चाशनी चढ़ाई गयी है कि उनमें भू लड्डुओं का मजा आता है। भक्ति के प्रखर आलोक आँखें इतनी चकचौंधियाँ जाती हैं कि आलोचक (क्रिटिकल) दृष्टि काम ही नहीं कर पाती। अधिक के पदों पर रहनेवाले जीवित लोगों पर यदि उनके सहक शिष्य और भक्त ग्रंथ लिखें, तो उनके एकांगी हो का भय सदैव बना रहता है। हम द्विवेदीजी से थोड़े परिचित हैं और उनकी योग्यता के कायल हैं। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व के साथ कोई ऐसा समर्थ वि ही न्याय कर सकता है जो उनका समकक्ष हो। औ शायद यह कार्य करने का अभी समय नहीं आया क्यों द्विवेदीजी का जीवन-सूर्य मध्याह्न-रवि के समान त रहा है। अभी उनका कृतित्व समाप्त नहीं हुआ कि उस अंतिम सम्मति दी जा सके। इसीलिए हम इस पु को अभिनंदन ग्रंथ समझते हैं जो 'चाय' के समान क भी प्रस्तुत किया जा सकता है। हमें इस बात को देख अवश्य संतोष हुआ कि पुराने ढंग की गुरु-भक्ति औ शिष्य परम्परा का एकदम लोप नहीं हो गया, और आधु युग में भी ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने गुरुजनों के प्रति पु ढंग की श्रद्धा रखते हैं—अवश्य ही वे उसे नवयुग के अनु जामा पहनाकर व्यक्त करते हैं। इस रोचक, सुसम्पा सुमुद्रित और मूल्यवान् ग्रंथ से हिंदी के अभिनंदन सा की श्रीवृद्धि हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gur [redacted] var

भारती-कंठाभरण

मुरहर रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम् ॥

मुरारि, जब मैं भोजन राँधती हूँ तो कृपा करके अपनी मुरली न बजाया कर। क्योंकि मुरली की सरस ध्वनि से ही सूखी लकड़ियाँ आर्द्र हो जाती हैं और आग भी हो जाती है। (अनाम)

शृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेतांगणे मया दृष्टम्।
गोधूलिधूसरांगो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः॥

सुनो सखी, एक अजब तमाशा मैंने नन्द के आँगन देखा। वेदान्त के सिद्धान्त वहाँ धूलिधूसरित हो नृत्य कर रहे हैं। (शंकराचार्य)

मायाहस्तेऽर्पयित्वा भरणकृतिकृते मोहमूलोद्भवं मां
मातः कृष्णाभिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गतासि।
कारुण्यैकाधिवासे सकृदपि वदनं नेक्षसे त्वं मदीयं
तत्सर्वज्ञे न कर्त्तुं प्रभवति भवती किं नु मूलस्य शान्तिम् ॥

हे श्रीकृष्ण की आद्या शक्ति जननी! मैं मोह के मूल से पैदा हुआ, इसीसे न तुमने भरणपोषण के लिए मुझे माया के हाथों सौंप दिया! और फिर तुम चिरकाल तक मुझसे उदासीन हो गयीं। कही तो जाती हो करुणा की एकमात्र राशि, और तुम एक बार भी मेरा मुँह तक देखना नहीं चाहती। जाने दो, पर तुम तो सर्वज्ञ हो। क्या तुम मूल की शान्ति करने में असमर्थ हो? (शंकराचार्य)

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीरवामनयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते कृपया गृहाण।

रत्नों का आकर समुद्र तुम्हारा घर, स्वयं लक्ष्मी तुम्हारी गृहिणी और तुम ठहरे जगदीश। अब तुम्हें देने को वस्तु मिले तो कहाँ मिले? हाँ, याद आया। तुम्हारा मन अहीरिनियों ने चुरा लिया है, इसलिए मैं अपना मन तुम्हें देता हूँ। कृपया इसे ग्रहण करो। कब तक अनमने बने रहोगे? (अब्दुर्रहीम खानखाना)

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

रे चित्त, तुम्हारे हित की ही बात करता हूँ। एक है नये उनये मेघ के वर्णवाला, वृन्दावन में गौओं को चराता रहता है, उसे अपना मित्र न बनाना। यह ऊपर से सौन्दर्य का अमृत झरनेवाली पर भीतर से मोहक मन्द मुस्कान से तुम्हें और तुम्हारे प्राणप्रिय विषयों को शीघ्र ही विनाश तक पहुँचा देगा।

(पण्डितराज जगन्नाथ)

यद्यपि गगनं शून्यं तथापि जलदामृतांशुरूपेण।
चातकचकोरनाम्नोर्दृढभावात्पूरयत्याशाम्॥
तद्वद् व्रजतां पुंसां दृग्वाङ्मनसामगोचरोपि हरिः
कृपया फलत्यकस्मादानन्दामृतवर्षेण॥

यद्यपि गगन स्वयं शून्य है, पर चातक और चकोर की दृढ़ भावना से परवश होकर उनकी आशा पूरी करने के लिए जलद और सुधांशु बन जाता है; उसी तरह ईश्वर-भावित पुरुषों के लिए यद्यपि हरि दृष्टि, वचन और मन के भी अगोचर हैं, तथापि उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए आनन्दामृत-वर्षा के निमित्त वे सगुण रूप धारण करते ही हैं। (शंकराचार्य)

ब्रज-माधुरी (३)

समय का फेर

मेधा होत फूहर, बिबिध थल थूहर होत,
परमहंस चूहर होत, होत परिपाटी कौ।
भूपति मँगैया होत, काम चोड़ गैया होत,
चूअत गजेन्द्र मद चेरौ होत चाँटी कौ।
कहत 'गुपाल' पुण्य किएँ हू पाप होत,
बैरी निज बाप होत, साँप होत साँटी कौ।
निधन कुबेर होत, सार समसेर होत,
दिनन के फेर तें सुमेर होत माटी कौ।

ब्रज की गउओं की विरह-दशा

नंद के भौन कों गैयाँ सबै मिलि
भोर निहारत ही रहती हैं।
साँवरे स्याम की याद में नाचत--
मोर निहारत ही रहती हैं।
बाँसुरी के मिस बावरीं बाँस की--
पोर निहारत ही रहती हैं।
भूलि गयीं चरिबौ, जमुना-तट--
ओर निहारत ही रहती हैं।

घर की करैं फेरी घरी घरी त्यों
बसु-जाम रँभाइबौ ठानती हैं।
जमुना तृन-संकुल गोकुल ग्राम--
गली उर एक न आनती हैं।
लरजी लरजी सी रहैं, पै जसोमति की--
बरजी नहीं मानती हैं।
दुखदायी भईं अब तौ अपने--
बछराहू नहीं पहिचानती हैं।

धौरी भई कल धौरी जु प्रात ही
नन्द की पौरी निहारन लागी।
बेर भई तौ रँभाइ रँभाइ कैं
देहरी सौं सिर मारन लागी।
आँगन सों उठि धायीं जसोमति,
नेह भरी पुचकारन लागी।
आँसुन सों भरि आयौ गरौ,
हिचकीन में स्याम पुकारन लागी!

अनोखा झूला

सावनी तीज सुहावनि कौं सखि!
सूहे दुकूल सबै सुख साधा।
त्यौं पदमाकर देखैं बनै, न बनै
कहते अनुराग अगाधा।
प्रेम के हेम-हिंडोरन में,
सरसै बरसै रस-रंग अबाधा।
राधिका के उर झूलत साँवरौ,
साँवरे के हिय झूलत राधा!

अनोखी रूप-गर्विता

'देव' सुरासर-सिद्ध-बधून कों
एतौ न गर्व जितौ यहि ती कौ!
आपने जोबन के गुन के--
अभिमान सबै जग लागत फीकौ।
काम की ओर सिकोरति नाक,
न लागत नाक कौ नायक नीकौ।
गोरी, गुमानिन, ग्वारि, गँवारि
गिनै नहिं रूप रती-सौ रती कौ!

मनोरंजक संस्मरण

० पं० कुन्दनलाल और 'कवि-व-चित्रकार'

हमारे मित्र डा० हरीशंकर शर्मा ने यह संस्मरण ने की कृपा की है:

पिछली एक 'सरस्वती' में 'कवि-व-चित्रकार' के ादक स्व० पं० कुन्दनलालजी की साहित्य-सेवाओं म्बन्ध में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संस्मरण कर मुझे कुछ पुरानी बातें याद आ गयीं। मेरे स्व० पं० नाथूराम शंकर शर्म्मा पं० कुन्दनलाल के घनिष्ठ थे। वे तीन बार मेरी जन्मभूमि हरदुआगंज (अलीगढ़) ताजी से मिलने आये भी थे। यह उस समय की बात ब मेरा जन्म भी न हुआ था—अर्थात् सत्तर वर्ष ! एक बार पिताजी भी फतेहगढ़ गये थे। पण्डित नलाल के साथ ठहरे थे। उस समय एक बहुत बड़ी गोष्ठी' हुई थी। देश के सभी मुख्य-मुख्य कवि बुलाये थे। यह 'कवि-गोष्ठी' सुप्रसिद्ध हिन्दीप्रेमी श्री साहब की अध्यक्षता में हुई थी—उन्हींकी कोठी । ग्राउस साहब फर्रुखाबाद के जिलाधीश थे।

उन दिनों, अर्थात् संवत् १९४६-४७ वि० में समस्या-ओं का प्रचलन था। कवि-गोष्ठियों में कवि और त्यिक विद्वान् ही सम्मिलित होते थे। अब की भाँति ा की भीड़ न लगती थी। घड़ी, पगड़ी, दुशाले आदि र-स्वरूप प्रदान किये जाते थे। ग्राउस साहब की कविगोष्ठी में तैंतीस कवि सम्मिलित हुए थे। याएँ थीं—

१—चुम्बक जुगल बीच मानो लोहो फँसिगो।
२—ह्वै है मुख मेरो-सो कलम कहे कान में।

समुपस्थित सब कवि एक के पीछे एक करके, दो यों में बिठाये गये और सबको लिखने की सामग्री गयी। प्रत्येक समस्या की पूर्ति के लिए आध-आध समय था। सर्वोत्तम पूर्तिकार के लिए सोने की एक घड़ी उपहारस्वरूप घोषित की गयी थी। समस्त -पूर्तियों में शंकरजी की पूर्तियाँ सर्वश्रेष्ठ सिद्ध और उन्हें ही ग्राउस साहब ने बड़े स्नेह-समादर घड़ी प्रदान की। शंकरजी की पूर्तियाँ इस थीं—

राजा तू सदेह सदा स्वर्ग में रहेगो, ऐसो
शंकर असीस जाके मुख ते निकसिगो।
ताही गाधि-नन्दन को योग-बल पाय उड़्यो,
तीर सौ त्रिशंकु नभ-मण्डल में धँसिगो।
वासव ने मार्‌यो त्राहि-त्राहि सो पुकार्‌यो,
मिलो मुनि को सहारो अधबर ही में बसिगो।
आयो न मही पर न पायो लोक देवन को,
"चुम्बक जुगल बीच मानो लोहो फँसिगो"।१।
शंकर बिलोकि लोकबल्लभा सखीन संग,
केलि करै ललित लतान के वितान में।
फैली फुलबाई में फबन फल-फूलन की,
फूली फिरै फूल-से झरत मुसकान में।
एक हू अनौखी अवनी पर न ऐसी और,
कैसे कहूँ आन अबलान के समान में?
चाहत चितेरे कवि कूर लिखें चित्र छबि
"ह्वैहै मुख मेरो-सो कलम कहे कान में"।२।

× × ×

ग्राउस साहब के कमरे में विलायत का बना एक बड़ा भावपूर्ण कल्पित चित्र लगा हुआ था। शंकरजी को चित्रकारिता में भी रुचि थी। उन्होंने साहब के समक्ष चित्र की बड़ी सुन्दर कलापूर्ण व्याख्या की जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वह सुन्दर रंगीन चित्र भी शंकरजी को दे दिया। यह चित्र शंकरजी की बैठक में बरसों लगा रहा था। साहब ने इसका मूल्य १२५) बताया था। मैंने अपने बाल्यकाल में, उक्त सोने की घड़ी और चित्र दोनों देखे थे। मैं अपने साथी बालकों से बड़ी शेखी के साथ कहा करता था कि देखो यह तसवीर सवा सौ रुपये की है!

शंकरजी के पास ग्राउस साहब की कई चिट्ठियाँ थीं, और पं० कुन्दनलाल के तो पचासों पत्र थे। जब पंडित कुन्दनलाल का देहावसान हुआ तो उनके शोक में पण्डितजी के मित्र सेठ श्री हरिप्रसाद ने 'कवि-व-चित्रकार' का विशेषांक निकाला। यही उस पत्र का अन्तिम अंक था। तत्कालीन साहित्यकारों और कवियों की श्रद्धांजलियाँ प्रकाशित हुई थीं। स्वर्गीय पण्डितजी का चित्र भी था। उसके प्रारम्भ में शंकरजी का निम्नलिखित पद्य था—

बारो बलहीन-दीन मैं हूँ कवि-चित्रकार,
प्यारे सेठ हर परसाद ने पठायो हूँ।
शोक-विष छाय रह्यो मेरे अंग-अंगन में,
बैरी काल-व्याल ने रिसाय धर खायो हूँ।
साँची कहूँ शंकर शरीर न रहैगो अब,
अन्त के मिलाप कों तिहारे तीर आयो हूँ।
जाको मेरे उर में बिराजत बिचित्र चित्र,
ताके तन-त्याग को सँदेसो लिख लायो हूँ।

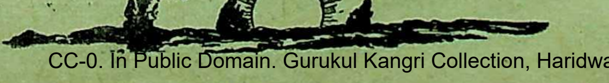

चीन जापान में संस्कृत ग्रन्थ

श्री काशीप्रसाद जायसवाल

ईसाई सन् के आरम्भ के पहले ही चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हो चला था। चीन के इतिहासों से जाना जाता है कि सम्राट् मिंगी ने ५८-७५ ईसवी में भारत से प्रसिद्ध श्रमण मातंग काश्यप और भारण धर्मरक्ष को अपने दरबार में निमंत्रित किया था। काश्यप के पहुँचने का समय ६७ ई० है।

६०० ईसवी के लगभग जापान ने चीन से बौद्ध धर्म में दीक्षा ली। इस धर्मग्रहण के साथ बहुत से बौद्ध धर्म सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थ चीन से जापान पहुँचे। १८७३ ईसवी में अध्यापक मोक्षमूलर को जापान का छपा हुआ एक कोश मिला। इस कोश में संस्कृत शब्द पुरानी बौद्ध लिपि में, ऊपर से नीचे को, छपे हुए थे और चीनी भाषा में उनका अर्थ तथा चीनी-जापानी अक्षरों में उनका उच्चारण दिया हुआ था। इसे देखकर मोक्षमूलर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि जापान में संस्कृत ग्रन्थ भी जरूर होंगे।

जब किसी जाति की उन्नति होने लगती है तब सब तरफ से होती है। १८७९ में "शिंशु" (सुखावती) नामक जापान के एक बौद्ध सम्प्रदाय ने अपने दो पुरोहित आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत सीखने भेजे। एक का नाम बनयीयु नंजिओ और दूसरे का कासावारा था। मिस्टर कासावारा की तो मृत्यु हो गई, पर मिस्टर बनयीयु नंजिओ जापान में वर्तमान हैं। इनके बाद एक महाशय मिस्टर ताकाकूसू भी आक्सफर्ड आये थे, जो कुछ काल हुआ संस्कृत में बी० ए० की "डिगरी" लेकर गये हैं और जापान में संस्कृत शिक्षा के डिरेक्टर हैं।

ईत्-सिंग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष के नालंद (राजगृह) आदि विद्या-पीठों में संस्कृत-व्याकरण की पूर्ण शिक्षा पाकर वापस गया था। उसके भारत-विषयक ग्रन्थ का मिस्टर ताकाकूसू ने अँगरेजी में अनुवाद किया है। अब इस समय आक्सफर्ड विद्यापीठ में कोई जापानी संस्कृत सीखनेवाला नहीं है। जान पड़ता है कि ताकाकूसू और नंजिओ ने जापान में संस्कृतज्ञ बना लिये।

आक्सफर्ड में संस्कृत का एक अध्यापक होता है। उसे "बोडेन-संस्कृत-प्रोफेसर" कहते हैं। बोडेन साहब ईस्ट इंडिया कम्पनी में कर्नल थे। संस्कृत से उन्हें बड़ा प्रेम था। उन्होंने बहुत सा रुपया जमा करके इस अध्यापकता का प्रबन्ध किया था। वह अब तक चला जाता है। पहले अध्यापक मोनियर विलियम्स थे। उनके बाद मोक्षमूलर और मोक्षमूलर के बाद अब मुग्धानल (प्रोफेसर मेकडानल) हैं। अस्तु, अध्यापक मोक्षमूलर ने इन जापानी पुरोहितों से संस्कृत पुस्तकों के लिए जापान को लिखवाया। इस पर संस्कृत की एक पुस्तक आई। वह ऊपर से नीचे को, अंकों की तरह, बौद्ध लिपि में लिखी हुई थी और चीनी भाषा में उसका अनुवाद और जापानी अक्षरों में उच्चारण दिया हुआ था। इसका नाम था "सुखावती व्यूह"।

इसके अनन्तर और भी अनेक ग्रन्थों का पता लगा। इनमें से कितने ही अनमोल रत्नों की तरह रक्षापूर्वक मठों में रक्खे थे। काठ और तालपत्रों पर स्याही से लिखे हुए प्राकृत और संस्कृत के कुछ ग्रन्थों के नमूने आक्सफर्ड आये। कहते हैं संस्कृत में लिखा हुआ इनसे अधिक पुराना अब तक और कोई ग्रन्थ नहीं मिला। कुछ सिहाली अक्षरों में और कुछ वर्मी अक्षरों में पाली के ग्रथों के नमूने भी आये। ये सब पुस्तकें अथवा उनके नमूने आक्सफर्ड के "बोडलियन पुस्तकालय" में रक्खे हैं। इनमें से मुख्य ये हैं—

(१) शब्दकोश जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। पूर्वी तुर्किस्तान के खरचर नामक नगर के रहनेवाले शमन नामक एक भिक्षु ने, जो चीन के क्वानतिंग मठ में रहता था, इसे निर्मित किया था। ७१३-८७४ ई० के मध्य यह चीन में विद्यमान था। हनलिन नामक चीन-साम्राज्य के राज-कालेज से यह सम्बन्ध रखता था। यह पुस्तक जापान में सन् १७३२ में प्रकाशित हुई थी।

(२) चीन के ईत्सिंग नामक प्रसिद्ध भारत-प्रवासी द्वारा रचित शब्दकोश। यह कियाटो नगर में, १७ ईसवी में, छपा था। इसमें १००० संस्कृत शब्द हैं उनका अर्थ चीनी भाषा में है। ६७१ ई० में इसे ईत्सिंग ने बनाया। नवीं सदी में यह जापान में आया और १७२ ईसवी में जकुमियो नामक एक मनुष्य ने इसे प्रकाशित किया। एक मठ में रक्खे हुए कुछ तालपत्रों का उल्लेख

१६६३

देखकर मोक्षमूलर ने उनकी भी खोज कराई। वे महाराज मिकाडो के पास निकले!

(३) सुखावती-व्यूह-महायान-सूत्र। इसे जियोमियो एक जापानी ने, १७७३ में, प्रकाशित किया। यह ८० में रायल एशियाटिक सोसायटी के पत्र में छापा। जापान में इसका एक और सस्करण छपा है, जिसमें भाषा में इसका अनुवाद किया हुआ है। इसका करण समझने के लिए इसकी टीका भी चार भागों छपी है।

(४) वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता। यह हस्तलिखित इसके तीन चीनी भाषान्तर हैं और चीनाक्षरों में च्चारण भी दिया हुआ है।

(५) समन्तभद्रचरी-स्तोत्र। हस्तलिखित

(६) प्रज्ञापारमिता-हृदयसूत्र।

(७) उष्णीषधारिणी।

ये तो आक्सफर्ड में आये हुए ग्रन्थों की बात हुई। जापान में संस्कृत के अनेक ग्रन्थ हैं। जिनका पता है उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र। यह महाराज मिकाडो पास है। जियागो नामक पण्डित का नकल किया हुआ असल ६०९ ईसवी में चीन से आया था। ५२० में एक बोधिधर्मसंन्यासी भारत से चीन गया था। की मूलप्रति से यह जापान की प्रति लिखी गई मालूम है। कहते हैं कि यह ग्रन्थ भारतीय श्रमण काश्यप है। इसके साथ उष्णीषधारिणी नामक पुस्तक है।

(२) तालपत्रों पर लिखे हुए कुछ ग्रन्थ। ये कैरी- (नरा, यमाटो) के एक विहार में रक्खे हैं।

(३) ८५८ ई० में किशिओ दैशी के द्वारा चीन से गये तालपत्र-पुस्तक। य किगेञ्जी (ओसाका) के र में है।

(४) रैकोजी (सकामोता) विहार के तालपत्र। शाक्यमुनि के शिष्य आर्य आनन्द कृत एक "धारिणी" भी है। इस पुस्तक को त्रिपीठक पढ़ानेवाले नालंद ज्ञतर नामक भारतीय संन्यासी ने, जब वह चीन में किशिओ दैशी को दिया था।

(५) तालपत्रों पर पाली भाषा का वेसान्तर सूत्र। यह कांबोज[1] लिपि में है और होनसेंजी (ओसाका) के विहार में विद्यमान है।

(६) गहरे नीले कागज पर चाँदी के अक्षरों में "धारिणी" की पुस्तक। इसे कनशिन नामक एक मनुष्य ने लिखा था। ७५३ ईसवी में कनशिन जापान आया और वहाँ नरा नगर में उसने विहार बनाया। उसी विहार में यह पुस्तक है। कुछ तन्त्र ग्रन्थ भी यहाँ हैं।

(७) महाप्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र।[2] नवीं सदी में चीन से लाई गई एक प्रति की यह नकल है। हसेदेर (हेस) के विहार में है।

(८) प्रज्ञतर भिक्षु के लेख, जो उसके शिष्य किशयो दैशी के द्वारा, ८५८ ईसवी में, जापान आये।

(९) तालपत्र पर लिखे हुए पाली भाषा के ग्रन्थ, जो कियानइन (कियातो) के विहार में रक्खे हैं।

(१०) समन्तभद्रचरीस्तोत्र। यह न्योगववञ्जी में है।

(११) कुछ ग्रन्थ नञ्जिओ और कासावारा के विहारों में भी हैं। इनमें से एक ग्रन्थ में लिखा है कि ६०९ ईसवी में मिकाडो का राजदूत चीन से कुछ अलभ्य पदार्थ लाया था। उनमें से बोधिधर्म का "कश" (कषायवस्त्र), तालपत्र पर लिखा हुआ प्रज्ञासूत्र, बोधिधर्म का भिक्षा-पात्र आदि थे।

नीचे लिखे हुए ग्रन्थ १८८० ईसवी में मोक्षमूलर साहब के पास जापान से आये थे।

(१) अवलोकितेश्वरसूत्र।

(२) अपरिमितव्यूहसूत्र।

(३) बहुत सी धारिणियाँ।

इत्सिग नामक चीनी प्रवासी, ६७३ ईसवी में, कुछ ग्रन्थ अपने साथ ले गया था। उनमें से इतने ग्रन्थ इस समय लंदन के इंडिया आफिस के पुस्तकालय में हैं। नहीं कह सकते, ये ईत्सिंग के ले गये हुए असल ग्रन्थ हैं या उनकी नकल।

(१) विनयसूत्र की ५० जिल्दें।

(२) संयुक्तवस्तु की २ प्रतियाँ

टिप्पणी १—सुमात्रा और जावा की तरह कम्बोज (कम्बोडिया) भी हिन्दुओं की कालोनी (उपवसती) थी।

" २—महाप्रज्ञापारमिता का अनुवाद, भारत-प्रवासी हुएनसांग ने किया था।

(३) संगभेदक वस्तु।
(४) भिक्षुणीविनय।
(५) विनयसंग्रह।
(६) एकशतकर्म।
(७) निदान।
(८) मात्रिका।
(९) विनय-निदान-गाथा।
(१०) विनय गाथा।

चीन को लौटते समय ईत्सिंग ने सुमात्रा के श्रीभोजनगर में कुछ समय तक ठहर कर संस्कृत का कुछ और अध्ययन किया था। इससे जान पड़ता है कि सातवीं सदी में वहाँ भी संस्कृत का अच्छा दौरदौरा था। स्याम देश का एक छात्र यहाँ आक्सफर्ड में है। वह संस्कृत सीख रहा है। वह कहता है कि स्याम में बहुत से संस्कृतग्रन्थ हैं और शिला-लेख भी अनेक हैं।

ईत्सिंग के प्राप्त किये हुए ग्रन्थों में से (१) प्रवज्यावस्तु (२) वर्षाविसवस्तु (३) प्रवारणवस्तु (४) भैषज्यवस्तु और (५) कंठनचीवरवस्तु की कापियाँ आक्सफर्ड के बोडलियन पुस्तकालय में भी हैं।

ईत्सिग ४०० संस्कृत पुस्तकें चीन ले गया था। संस्कृत व्याकरण में इसने बड़ी दक्षता प्राप्त की थी। शायद महाभाष्य तक इसने पढ़ा था। संस्कृत के ५६ ग्रन्थों का इसने चीनी भाषा में अनुवाद किया। ९ भारतीय भिक्षु, ईश्वर, शिक्षानन्द, आदि इसे अनुवाद में मदद देते थे।

वज्रच्छेदिका

जापान से प्राप्त ग्रन्थों में यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। महायान शाखा के बौद्धों का यह मुख्य ग्रन्थ है। चीनी, तिब्बती, मंगोली आदि भाषाओं में इसके अनुवाद पहले ही प्राप्त हो चुके थे। मंगोली भाषान्तर का उल्लेख प्रसिद्ध विद्वान् बर्नफ ने किया है और तिब्बती अनुवाद जर्मनी में छपा है।

वज्रच्छेदिका के ६ चीनी अनुवाद हैं। उनमें से ४ भारतीय बौद्धों के किये हुए हैं। एक वह दिन भी था जब हम चीन में जाकर चीनी भाषा पढ़ते थे और उसमें दक्ष होकर बौद्ध धर्म का प्रचार करते हुए अपने दार्शनिक ग्रन्थों का चीनी जैसी कठिन भाषा में अनुवाद किया करते थे। शेष दो अनुवाद भारत से लौटे हुए दो चीनी बौद्धों के किये हुए हैं।

पहला अनुवाद—४०१ ईसवी के लगभग कुमारजीव ने किया। इस अनुवाद की प्रस्तावना चीन के राजेश्वर छंग-सू ने लिखी है। दो बौद्ध भिक्षुओं ने कुमारजीव के भाषान्तर पर तिलक भी किया है।

दूसरा अनुवाद—बोधिरुचिकृत। ३८६—५३४ ई॰ के बीच में किया गया। बोधिरुचि, शिशु (सुखावती) सम्प्रदाय के तीसरे गुरु दोनरन का विद्यागुरु था।

तीसरा अनुवाद—परमार्थ नामक भिक्षु ने ५६२ ईसवी में किया।

चौथा अनुवाद—६०५ ईसवी में धर्मगुप्त ने शब्द की जगह शब्द रखकर किया। इससे यह कुछ जटिल है।

पाँचवाँ अनुवाद—हुएनसांग ने; और

छठा अनुवाद—ईत्सिग ने सातवीं सदी में किया।

वज्रच्छेदिका ईसाई चौथी सदी में चीन में धार्मिक पुस्तक हो गई। यह मूल पुस्तक, आक्सफर्ड के यूनिवर्सिटी प्रेस में अनेकडोटा आक्सोनियनशिया नामक ग्रन्थमाला के प्रथम भाग की प्रथम संख्या स्वरूप, ८८१ ईसवी में, छापी गई। उसके सम्पादक मोक्षमूलर जी थे। मोक्षमूलर ने तीन प्रतियों से मिलाकर इसे सम्पादित किया है। वे प्रतियाँ ये थीं—

(१) जापान में, कोकिजी के बौद्ध मठ में, एक पुस्तकालय संस्कृत पुस्तकों का है जिसे जापानी लोग "संस्कृताध्ययन के लिए नाव" कहते हैं। वहाँ जो वज्रच्छेदिका है उसमें संस्कृत मूल, चीनी अक्षरान्तर, चीनी शाब्दिक अनुवाद तथा कुमारजीव और धर्मगुप्त के अनुवाद हैं। इसी पुस्तक की नकल जापान से आक्सफर्ड आई थी।

(२) रूस की राजधानी सेंटपिटर्सवर्ग में "इंपीरियल अकाडमी" नामक जो राजकीय विश्वविद्यालय है उसमें इस पुस्तक की एक "ब्लाक प्रिंटेड" कापी है। वह तिब्बत से लाई गई एक प्रति का प्रतिबिम्ब है। इसमें मूल संस्कृत तिब्बती अक्षरान्तर और तिब्बती भाषान्तर है। चीन की छपी हुई जान पड़ती थी। इसे अकाडमी ने आक्सफर्ड को कुछ दिन के लिए दिया था।

(३) चीन की छपी हुई एक प्रति जिसके साथ अवलोकितेश्वरसूत्र, प्रज्ञापारमितासूत्र, अपारिमितायुःसूत्र और बहुत सी धारिणियाँ भी हैं। यह भी ब्लाक प्रिंटिंग प्रणाली से लाल स्याही में छपी है। जो बात

१६६३

ो एक ओर है वही दूसरी ओर भी है[1]। इन तीनों प्रतियों ाय: एक ही पाठ पाया गया। सिर्फ कुमारजीव ने ो कहीं-कहीं पर कुछ संकुचित कर दिया है।

अपने दो जापानी छात्रों की सहायता से, जिनके नाम र आ चुके हैं, मोक्षमूलर साहब ने वज्रच्छेदिका प्रकाशित ी थी। अनुवाद देखकर मोक्षमूलर को कुमारजीव ि की विलक्षण बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य हुआ था।

वज्रच्छेदिका छोटी पुस्तक है।[2] गद्य में है। ३२ ाप्रास में बँटी हुई है। संस्कृत इसकी सीधी-सादी श्रावस्ती में बुद्ध भगवान् से सुभूति स्थविर प्रश्न करता और भगवान् उत्तर देते हैं। कुछ नमूना लीजिए।

नमः सर्वज्ञाय। एवं मया श्रुतं। एकस्मिन्समये भग- श्रावस्त्यां विहरति स्म। जेतवनेऽनाथपिंडदस्यारामे भिक्षुसंघेन सार्धमर्धत्रयोदशभिर्भिक्षुशतैः संबहुलैश्च त्त्वैर्महासत्त्वैः। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्णसमये पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं महानगरीं पिंडाय त्।...

(१)

तेन खलु पुनः समयेनायुष्मान्सुभूतिस्तस्यामेव पर्षदि तितोऽभूत्सं निषण्णः।.....

भगवानाह। तत्किं मन्यसे सुभूते यावत्त्रिसाहस्र- साहस्रे लोकधातौ पृथ्वीरजः कच्चित्तद्बहु भवेत्। तिराह। बहु भगवन् बहु सुगत पृथिवीरजो भवेत्। स्य हेतोः। यत्तद्भगवन् पृथिवीरजस्तथागतेन भाषितमरजस्तद्भगवंस्तथागतेन भाषितां तेन उच्यते पृथिवीरज इति।। योऽप्यसौ लोकधातुस्तथागतेन भाषितोऽधातुः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते लोकधातुरिति।।

१८८३ ई० में, अनेकडोटा आकोनियनशिया में "सुखावती व्यूह" का सम्पादन निंजिओ ने किया। सुखावती भी छोटा ग्रन्थ है। गद्य में है। "एवं मया श्रूयते" से शुरू होता है। भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों का संवाद है।

१८८४ ईसवी में प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र (लघु और महत्) और उष्णीषविजयधारिणी पूर्वोक्त ग्रन्थमालिका में प्रकाशित हुई। प्रज्ञापारमिता गद्य-पद्य में छोटी पुस्तक है। उष्णीष अजब पुस्तक है। गद्य सरल और शुद्ध, पर पद्य में छन्दोभंग और संधिहीनता है।

१८८५ ईसवी में मिस्टर कसवारा ने उसी ग्रन्थमाला में ४४ धर्मसंग्रह जापान से मँगाकर छापे। ये सब बौद्ध धर्म की पुस्तकें हैं और संस्कृत गद्य-पद्य में हैं।

अध्यापक जाइल्स ने चीनी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि ईसाई सन् से २१७ और विक्रम से १६० वर्ष पहले हमारे कई बौद्ध भिक्षु भारत से चीन में गये। उन पर कुछ सन्देह किया गया और वे कारागार में बंद किये गये। इनमें से एक का नाम प्रमुख भिक्षु था। ईसाई सन् की दूसरी सदी में किसी भारतीय भिक्षु ने सद्धर्मसूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद किया और बहुत से मंदिर भी चीन में बनवाये। चीन के चार बौद्ध धर्मादित्यों में से एक का नाम कुमारजीव था। सन् ४०५ से ४१२ के बीच ८०० भिक्षुओं से चीनी भाषा में इसने कितने ही धार्मिक ग्रन्थ लिखवाये। अध्यापक जाइन्स कहते हैं कि कुमारजीव ने सत्य और मिथ्याभास पर चीनी में अलग एक शास्त्र ही लिख डाला। उसके किये हुए वज्रच्छेदिका के चीनी अनुवाद का शिक्षित चीनियों पर इतना असर हुआ, जितना बौद्ध धर्म की और सारी बातों का मिलकर भी नहीं हुआ था। उसे पढ़कर कवियों और दार्शनिकों को कविता लिखने और मनन करने में प्रेरणा मिली। उस ग्रन्थ को अब चीन के जातीय महाग्रन्थों में गिनना चाहिए।*

१—जान पड़ता है, संस्कृत के अनेक ग्रन्थ चीन में ो होंगे। मिस्टर लोचाँग जो यहाँ आक्सफर्ड में हमारे थ पढ़ रहे हैं, अपने पुराने इतिहास से भारतवर्ष का ीनतम वर्णन सुनाते थे। उसमें लिखा है कि सिन्तु चीनी में भारतवर्ष को सिन्तु लिखते थे और ासियों को इंदू) से कपड़े बलख में आते हैं। वहाँ ियों पर सवार होकर लड़ाई लड़ी जाती है। बस्ती र है। खानाबदोश नहीं, जैसे चीन की तरफ बहुतेरी ियाँ थीं। जल-वायु गर्म है। वहाँ हाथी एक बहुत जीव होता है जिसकी नाक दाँतों के बीच नीचे लटका ी है।

मिस्टर लोचाँग कहते हैं कि चीन में प्राचीन काल भारतवर्ष का नकशा है, जिसके सहारे यात्री लोग रत में बौद्धतीर्थ को स्वयं पहुँच जाते रहे हैं।

२—यदि स्वदेश में इसे कोई छापना चाहे तो पुस्तक मँगा सकते हैं। लेखक।

*"(He) translated the Diamond Sutra which has done more to popularise Buddhism with the educated classes then all the material parts of this religion put together. Chinese poets

मिस्टर ताकाकूसू के लेख से मालूम हुआ कि कुमारजीव ने अश्वघोष, नागार्जुन और आर्यदेव के जीवनचरित का अनुवाद भी चीनी भाषा में, सन् ४०५ में, किया। कुमारजीव सन् ३८३ में भारत से रवाना हुए थे।

बोधधर्म, जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, दक्षिण भारत के एक महाराज के बेटे थे। ५२० ईसवी में वे चीन पहुंचे। इनके समय में १७५ संस्कृत ग्रन्थ गांधार देश से चीन में मँगाये गये।

जाइल्स साहब ने अपनी किताब में धर्मनन्दि नामक एक भिक्षु का भी उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि वह भारत से चीन गया और लियंगवंश के सम्राट् को बौद्ध बनाना चाहा। पर सफलता न हुई।

मिस्टर नंजिओ ने जापान में संस्कृत पुस्तकों की एक सूची बनाई है। उसमें सार्द्धशतक बुद्धस्तोत्र का उल्लेख है। इत्सिग ने लिखा है कि इस स्तोत्र का बनानेवाला मातृचेता था। चन्द्रगुप्त के बेटे बिन्दुसार के समय में मातृचेता वर्तमान था। बनारस के मृगाजिन के शाक्यदेव ने शार्द्धशतक स्तोत्र में कुछ बढ़ाया था। जब ६७५-६८५ ईसवी में ईत्सिग नालन्द-विद्यापीठ में था। तब उसने इस स्तोत्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया। इससे जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ भी इनके यहाँ महत्त्व का है। इसमें १५० श्लोक हैं।

ईत्सिग लिखता है कि अश्वघोष ने संस्कृत में सूत्रालंकार-शास्त्र (जिसका चीनी अनुवाद ४०५ ईसवी में कुमारजीव के समय में हुआ) और बुद्ध-चरित काव्य जिसका (चीनी अनुवाद ४१४-२१ ईसवी में हुआ) लिखे हैं। अश्वघोष कनिष्क के समय में हुआ।

जिन ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में हुए हैं उनके मूल चीन में अवश्य गये होंगे।

जातकमाला बौद्धों में बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है। ईत्सिग कहता है कि शीलादित्य ने, जो धर्मपाल के बाद नालंद विद्यापीठ का आचार्य हुआ था, जातकों का संग्रह किया था और जीमूतवाहन नाटक लिखा था। शीलादित्य ६५५ ईसवी में मरा। इसी के समय में संस्कृत पढ़ने के लिए हुएनसांग नालंद आया था। उस समय शीलादित्य बहुत वृद्ध हो गया था। उसने जयसेन को हुएनसांग को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया था। इससे जान पड़ता है कि शीलादित्य जयसेन आदि चीनी भाषा जानते थे। गुणप्रभु का शिष्य मित्रसेन ९० वर्ष का वृद्ध था। हुएनसांग को उसने भी एक आध शास्त्र पढ़ाया था।

ईत्सिग ने हुएनसांग के सहपाठियों से पढ़ा। उनके समय में नालंद में जो विद्वान् थे पीछे से उनकी बड़ी ख्याति हुई। ऐसा जान पड़ता है कि वैद्यक ग्रन्थ चरक पढ़ने की इनमें प्रथा थी। चरकसंहिता ग्रन्थ भी जरूर चीन गया होगा।

वसुबन्धु और असंग के ग्रन्थों के अनुवाद ५०८ और ५३१ ईसवी में हुए।

ईत्सिग ने संस्कृत व्याकरण के अध्यापक का जो वर्णन लिखा है उसका उल्लेख किसी और लेख में किया जायगा।

जान पड़ता है कि चीन और जापान में पहले संस्कृत सीखते थे, क्योंकि अकेले चीनी अनुवादों से संस्कृत ग्रन्थों का आशय चीन और जापानवालों की भी समझ में नहीं आता। मालूम होता है कि संस्कृत के वाक्यों को वे कण्ठाग्र कर लेते थे और उनका पाठ करते थे।

क्या ही अच्छा हो यदि भारतवासी अपने पास से धन की सहायता देकर चीन और जापान से कुछ विद्यार्थी अपने देश में लावें और उन्हें संस्कृत पढ़ाने का प्रबन्ध कर दें। वे लोग अब संस्कृत प्रायः बिलकुल ही भूल से गये हैं। संस्कृत सीखने से उनके हृदय में हमारी पुरानी सभ्यता का जरूर आदर भाव उत्पन्न होगा। आजकल तो विदेशियों से सुन सुनकर वे भी हमें जंगली समझने लगे हैं। संस्कृत यद्यपि मृतप्राय है तथापि जो उसमें डूबता है वह हमारी तरफ झुके बिना नहीं रहता।

तीसरी-चौथी शताब्दी में एक तरफ हमारे दर्शनशास्त्र ग्रीस और रोम में आदरपात्र हो रहे थे, दूसरी तरफ सांख्य सम्भूत बौद्धमत मंगोल जाति को सभ्य और शान्त बना रहा था। धन्य थे कुमारजीव आदि, जिन्होंने घोर कष्ट सहकर एक बहुत बड़े भूभाग पर भारतीय धार्मिक और दार्शनिक भावों के बीज वपन किये। आजकल के पादरियों की तरह धर्मोपदेश के बहाने औरों की राजनैतिक स्वाधीनता पर दाँत लगाना कुमारजीव जैसे सात्विक साधुओं को स्वप्न में भी नहीं ख्याल हुआ था।

काश्यप, धर्मरक्ष, धर्मपाल, बोधिरुचि, बोधिवर्म, कुमारजीव, परमार्थ, प्रज्ञतर आदि इसी भारत के सुपुत्र थे। उन्होंने हिमालय का उल्लंघन करके विदेशियों की भाषाओं में इतनी पारदर्शिता प्राप्त की जितनी आज तक एक भी योरप-निवासी नहीं प्राप्त कर सका, क्योंकि आज तक किसी योरपवासी ने चीनी भाषा में कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं लिखा। भारतीय परिव्राजक अपना धर्म अन्यान्य देशों में फैलाते थे। पर आजकल खुद भारतवासियों को अन्य धर्म में ले जाने की चेष्टा हो रही है! अहो कष्टम्।

---

and philosophers have drawn inspiration and instruction from its pages, and the work might now almost be classed as a national classic" —*Chinese Literature* p. 114.

प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

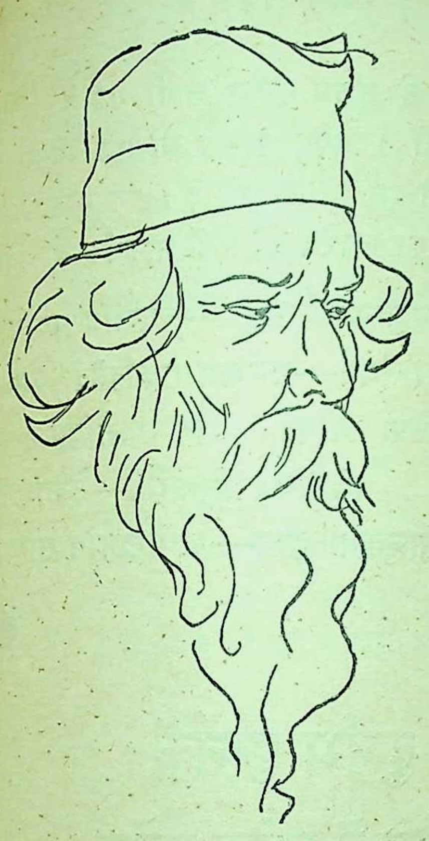

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०
विश्वपरिचय	२·००
मास्टर साहब	०·५०
योगायोग	४·००
विचित्र वधू रहस्य	२·००
रूस की चिट्ठी	१·५०
मेरा बचपन	२·००
आश्चर्य घटना	२·५०
चार अध्याय	१·५०

गीताञ्जली	१·५०
मुकुट	०·५०
विचित्र प्रबन्ध	२·२५
प्राचीन साहित्य	१·५०
गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
व्यंग कौतुक	१·२५
हास्य कौतुक	१·२५
राजर्षि	२·००
डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भा
और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुप
पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आद
जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०
पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

● ● ● ● ● ● ●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,

जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूं, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास

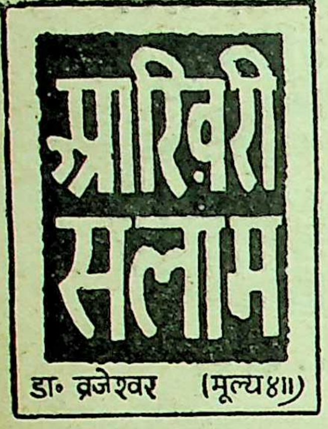
आख़िरी सलाम
डा॰ व्रजेश्वर
(मूल्य ४॥)

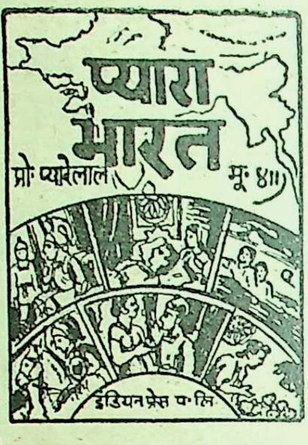
प्यारा भारत
प्रो॰ प्यारेलाल
मू॰ ४॥)
इंडियन प्रेस प॰ लि॰

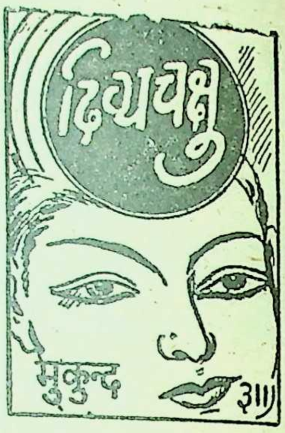
दिव्यचक्षु
मुकुन्द
३॥)

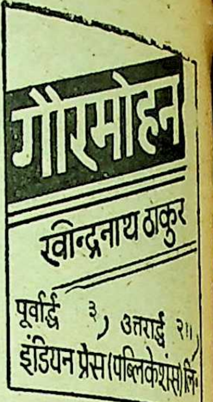
गोरमोहन
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
पूर्वार्द्ध ३) उत्तरार्द्ध २॥)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) लि॰

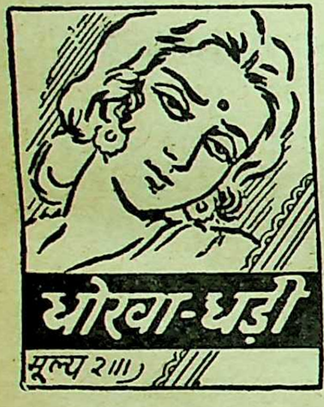

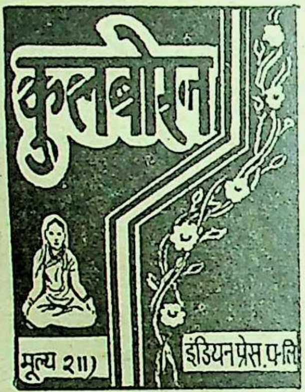
कुलवीरन
मूल्य २॥)
इंडियन प्रेस प॰ लि॰

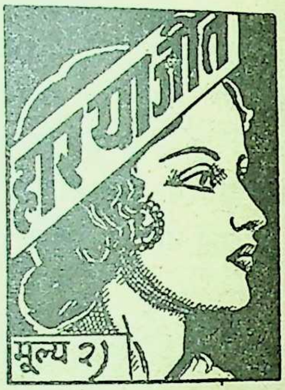

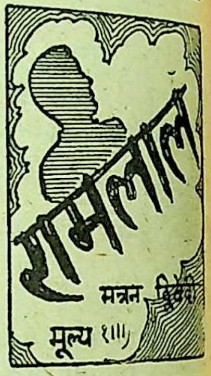
रामलाल
मन्नन द्विवेदी
मूल्य १॥)

नाटक प्रहसन

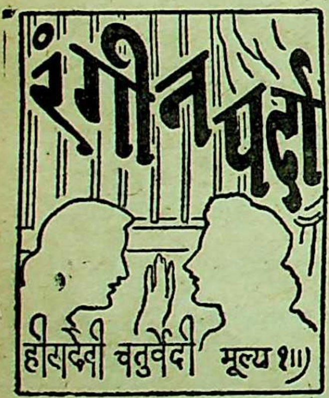
रंगीन पर्दा
हीरादेवी चतुर्वेदी
मूल्य १॥)

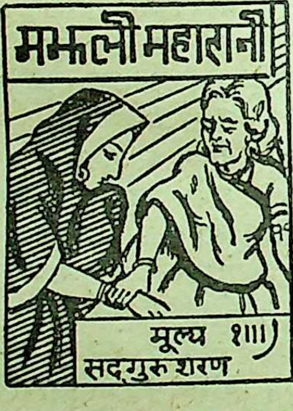
मझली महारानी
मूल्य १॥)
सदगुरु शरण

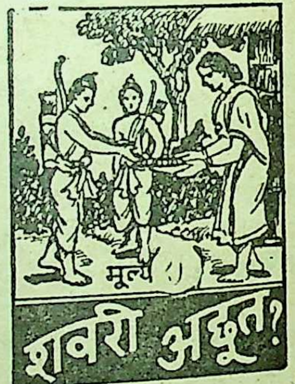

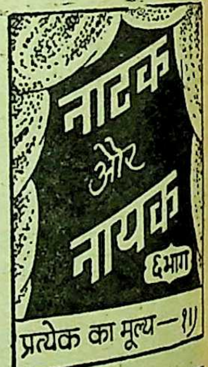
नाटक और नायक
(२ भाग)
प्रत्येक का मूल्य—१)

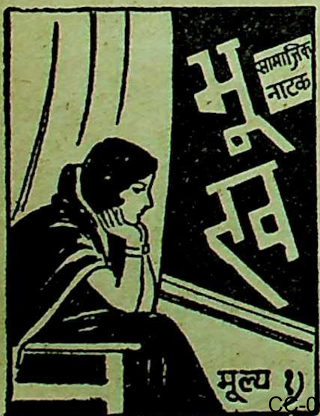
भूल
सामाजिक नाटक
मूल्य १)

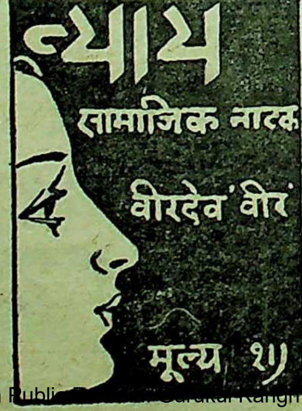
न्याय
सामाजिक नाटक
वीरदेव 'वीर'
मूल्य १)

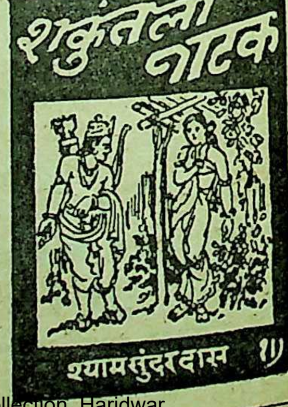
शकुंतला नाटक
श्यामसुंदरदास १)

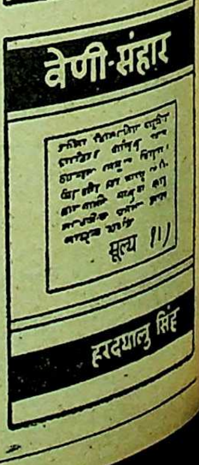
वेणी-संहार
मूल्य १)
हरदयालु सिंह

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

नवीन काव्य-कृतियाँ

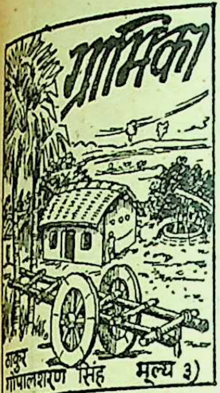
ग्रामिका
ठाकुर गोपालशरण सिंह
मूल्य ३)

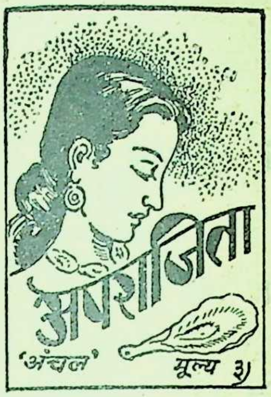
अपराजिता
'अंचल'
मूल्य ३)

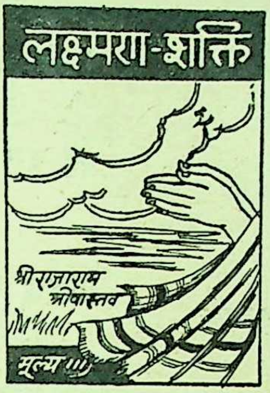
लक्ष्मण-शक्ति
श्री राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य ।।।)

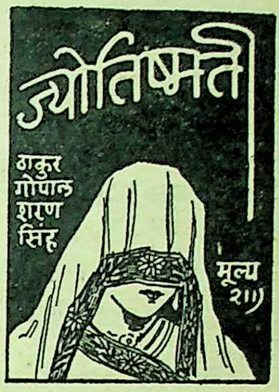
ज्योतिष्मती
ठाकुर गोपाल शरण सिंह
मूल्य २।)

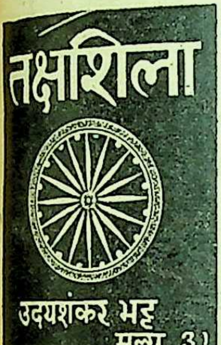
तक्षशिला
उदयशंकर भट्ट
मूल्य ३)

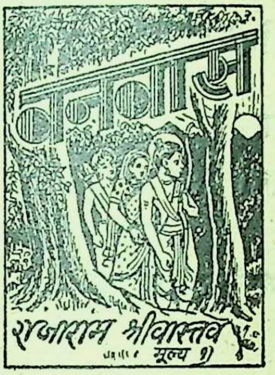
बनवास
राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य १)

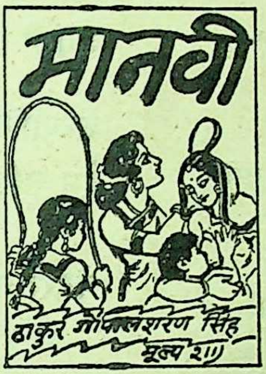
मानवी
ठाकुर गोपालशरण सिंह
मूल्य २।)

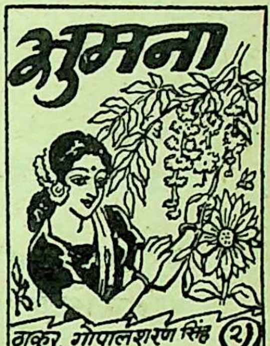
सुमना
ठाकुर गोपालशरण सिंह
(२)

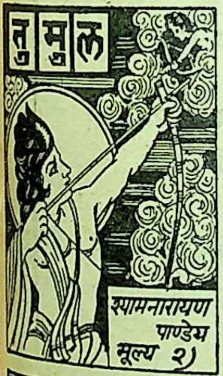
तुमुल
श्यामनारायण पाण्डेय
मूल्य २)

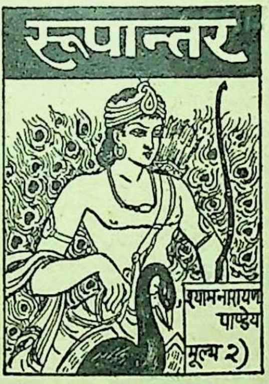
रूपान्तर
श्यामनारायण पाण्डेय
मूल्य २)

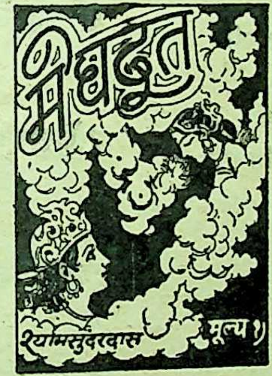
मेघदूत
श्यामसुंदरदास
मूल्य १)

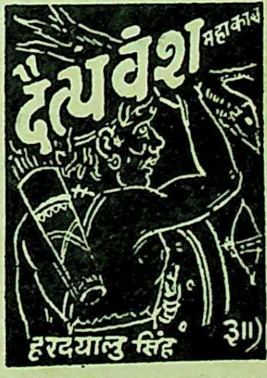
दैत्यवंश
महाकाव्य
हरदयालु सिंह
३।।)

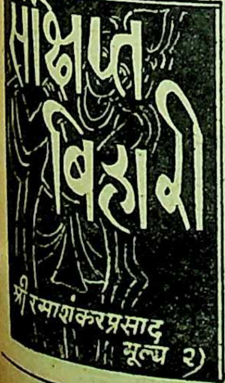
संक्षिप्त बिहारी
श्री रमाशंकरप्रसाद
मूल्य २)

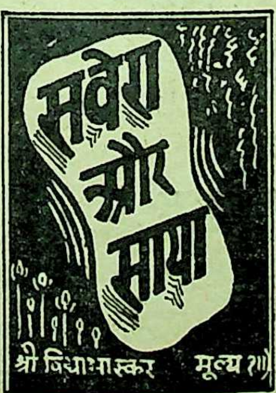
सवेरा और साया
श्री विद्याभास्कर
मूल्य १।।)

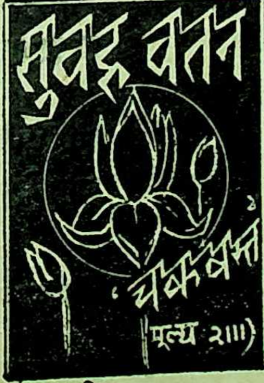
सुबह वतन
चकबस्त
मूल्य २।।।)

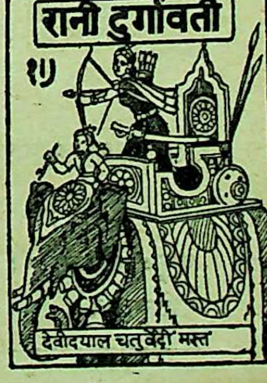
रानी दुर्गावती
१।)
देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

अनुवाद साहित्य में अभिवृद्धि

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	**बड़े वन में छोटा घर**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ अनु० रामऔतार अग्रवाल	**प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	**किट कार्सन और जंगली सीमान्त**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	**अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	**प्रेयरी नगर का बालक**	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	**प्रसिद्ध वैज्ञानिक**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	**दृष्टिदात्री**	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	**परमाणु का रहस्य**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	**अमेरिका का महान् उदारवादी**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ले	**आधुनिक औषधि-आविष्कार**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६
अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन	**लिंकन वाणी**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बाल कवि श्री निरंकारदेव सेवक के अपूर्व प्रकाशन

फूलों के गीत

बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। मूल्य १ रुपया ७५ नये पैसे।

रिमझिम

रिमझिम में निरंकार जी के वे अनमोल बालगीत संगृहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य २) रुपये।

माखन-मिसरी

इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और माखन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। मूल्य २) रुपये।

पंचतन्त्री

पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वे कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मूल्य ३) रुपये।

मुन्ना के गीत

बच्चों के सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गए हैं। मूल्य २) रुपये ५० नये पैसे।

धूपछाया

बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम झूम उठते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

दूध जलेबी

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रकाशित हो गया

अदृश्य शत्रु

प्रकाशित हो गया

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की बसों ने ५ लड़के-लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक ला दिखाई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रे की पटरियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पा सुहागा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपाहि गायब कर दिये गये। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उनक कुछ पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्राम शत्रु अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उन स्मृति भंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्र ने शत्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु कि कारण पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब क मनोरंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं।

पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुपया

श्रीभगवत्तत्त्व

प्रणेता

श्री स्वामी हरिहरानन्दजी सरस्वती (करपात्री)

इस ग्रन्थ में श्री स्वामी करपात्रीजी ने वेदान्तरससार, निर्गुण या सगुण, श्रीकृष्ण जन्म और बालक्रीड़ा, व्रजभूमि, श्रीरासलीला रहस्य, भगवान् का मंगलमय-स्वरूप, श्रीरामभद्र का ध्यान गणपति माहात्म्य, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत धर्म के गूढ़ तत्त्वों की व्याख्या करके जनता का अमूल्य उपकार किया है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने से धर्म का तत्त्व समझ में आ जाता है। अच्छे पुष्ट कागज पर छपी ७०० से अधिक पृष्ठों की इस कल्याणकारी पुस्तक का मूल्य केवल ३) है जो पुस्तक के आकार को देखते हुए कुछ भी नहीं है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

आजादी खतरे में है। अपनी पूरी ताकत लगाकर इसकी रक्षा कीजिए।

जवाहरलाल नेहरू

साधनों को सुरक्षित रखिए

भारत के साधन बहुत मूल्यवान हैं। सभी साधनों को देश की ताकत बढ़ाने के महत्त्वपूर्ण काम में पूरी तरह लगा देना चाहिए। यही एक ऐसा तरीका है जिससे हम आजादी पर आये इस खतरे का मुकाबला कर सकते हैं। फजूल-खर्ची और व्यर्थ की बर्बादी से राष्ट्र को नुकसान पहुंचेगा। आजादी की एक कीमत होती है और हमें वह पूरी तरह चुकानी है।

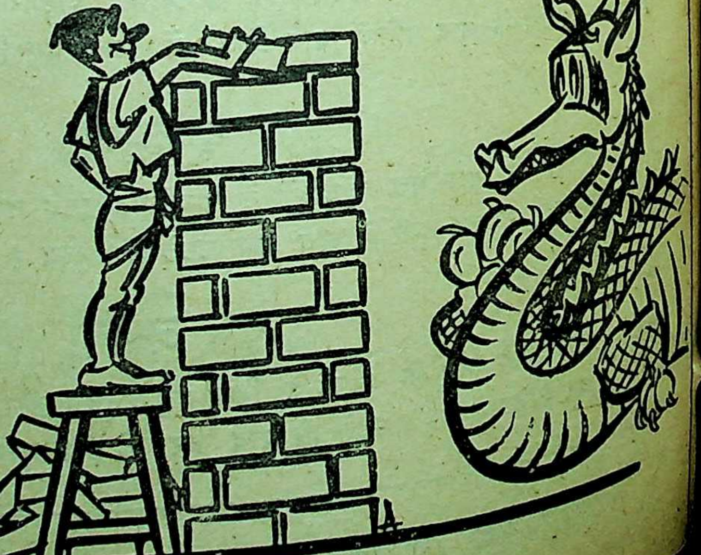

आजादी की रक्षा में पूरी शक्ति लगाइये

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलविहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं, अपनी ज्ञानवृद्धि भी कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा––(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्तीदेवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में––(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि––(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए०। मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप––(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी० मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा––(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा––(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ––(मू० ले० जोन आथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्-एल० बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

नीली झील––(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस्०। मूल्य २)

स्विस परिवार राबिंसन––(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध––(मू० ले० एच्० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन––(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन्० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·75 Naye Paise

हमारा गांधी साहित्य

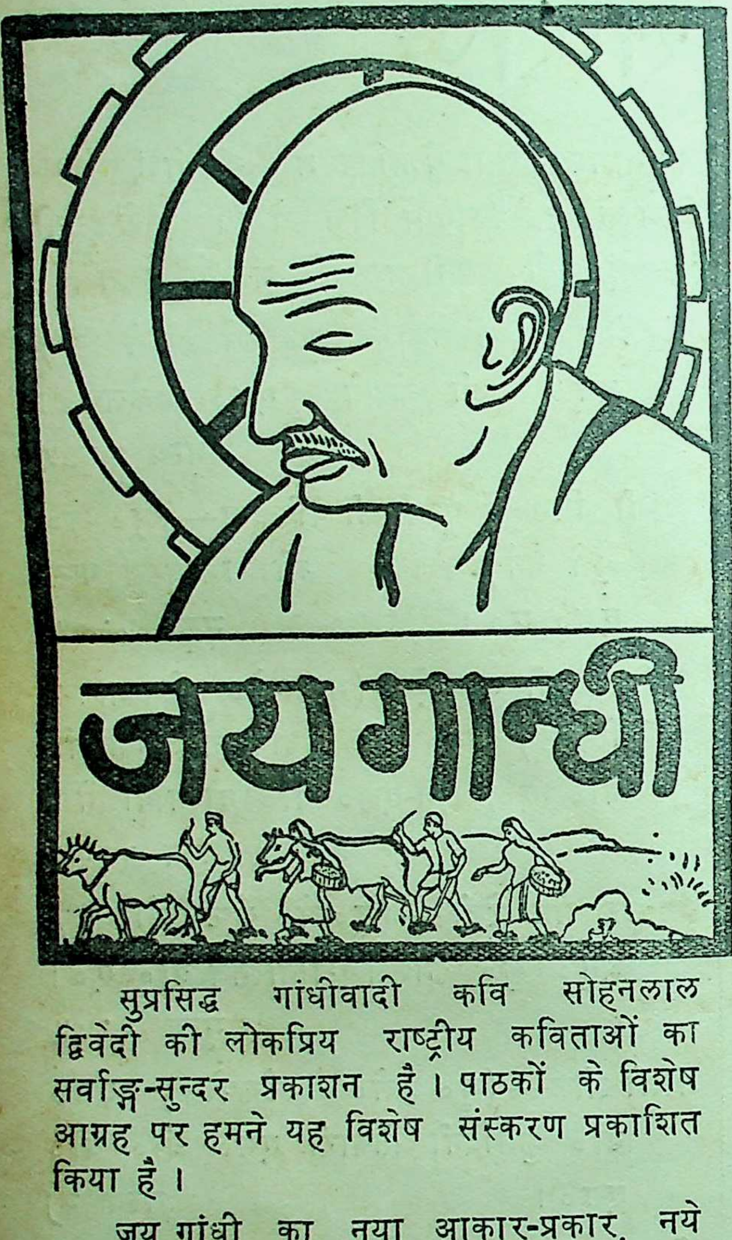

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वाङ्ग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधन अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूय कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल १५) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक : स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५ मू० ४) रुपये।

जगदालोक

लेखक : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपू महाकाव्य, जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणी है। पृ० ३४१; मू० ४) रुपये।

युगाधार

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी हैं सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक मू० ३·५० नये पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं उन कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं, उन अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आका के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० ७ नये पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोल हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती

दीपावली अंक

नवम्बर १९६३

27 NOV 1963
पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

कविवर श्री सोहनलाल द्विवेदी

की

दो और अनमोल पुस्तकें

गांधीजी के जीवन की चलती फिरती बोलती हुई रंगीन झाँकी की झलक के साथ ही देश के दूसरे बड़े नेताओं का, रंगीन बड़े चित्रों सहित, परिचय प्राप्त करने के लिए

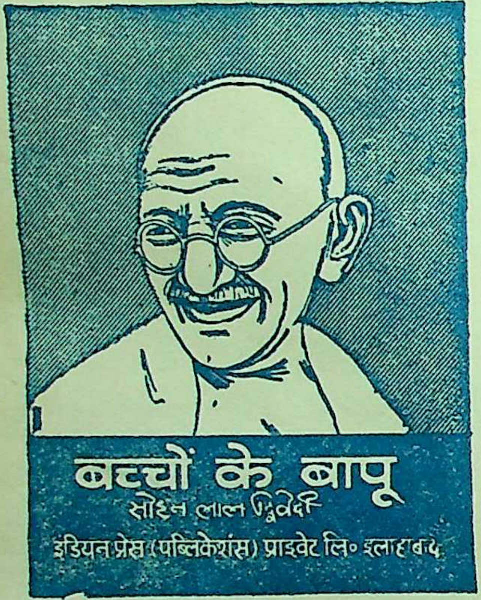
बच्चों के बापू
सोहन लाल द्विवेदी
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

बच्चों के बापू

अपने होनहार नन्हे मुन्नों को अवश्य दीजिये

इतना ही क्यों

मूल्य २) दो रुपये

नेहरू चाचा के बचपन से लेकर आज तक के बड़े-बड़े रंगीन चित्रों से सजाई गई ललित पदों में उनकी जोशीली कहानी जानने के लिए

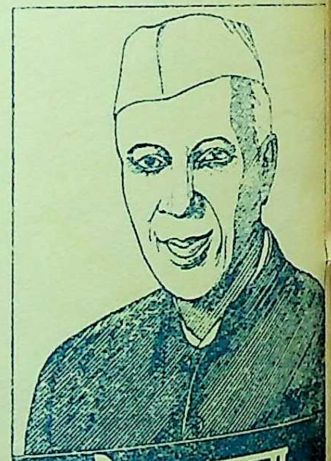

नेहरू चाचा

मूल्य २·२५ नये पैसे

नामक दूसरी बच्चों की पुस्तक भी बड़े आकार प्रकार में प्रकाशित हो गई।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

गुरुकुल कांगड़ी

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', द्वारा संकलित।

प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-पाठकों के लिए एक ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें उन शब्दों का संग्रह हो, जो भारतवर्ष के विभिन्न हिन्दीभाषी प्रान्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को तैयार करते समय इस तथ्य का पूर्णतः ध्यान रक्खा गया है और अर्थ-विचार करते समय जीवित भाषा के अनेक शब्दों के जो नये अर्थ समय-समय पर प्रयुक्त होने लगते हैं, उनका समावेश भी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'मत' शब्द सभी हिन्दी कोशों में मिलेगा; किन्तु उसका समानार्थी 'वोट' इने-गिने कोशों में ही दिया गया है। इस प्रकार के हिन्दी शब्दों के अंगरेजी समानार्थी शब्दों का बाहुल्य हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश में ही पाठकों को मिलेगा।

प्रस्तुत कोश में प्रान्तीय भाषाओं के प्रमुख शब्दों का समावेश यथा-स्थान किया गया है और प्रचलित मुहाविरे भी दिये गए हैं। कहावतों और मुहाविरों से बने यौगिक पद भी इसमें संकलित किए गए हैं। इतना ही क्यों ? इस कोश के अन्त में भारतीय संविधान-परिषद्-द्वारा स्वीकृत हिन्दी और अँगरेजी शब्दों के पर्याय की दो शब्दावलियाँ दे देने से कोश की उपयोगिता कई गुना बढ़ गई है।

किसी भी शब्द का मानक रूप समझ लेने पर, व्याकरण की दृष्टि से, यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि वह कौन-सा शब्दभेद है। इसलिए संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण, क्रिया अथवा अव्यय का निर्देश भी हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश में प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान कर दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक शब्द के साथ लिंगभेद देकर, कोश का उपयोग करनेवालों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है।

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और फिर भी

मूल्य केवल १४) चौदह रुपए

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

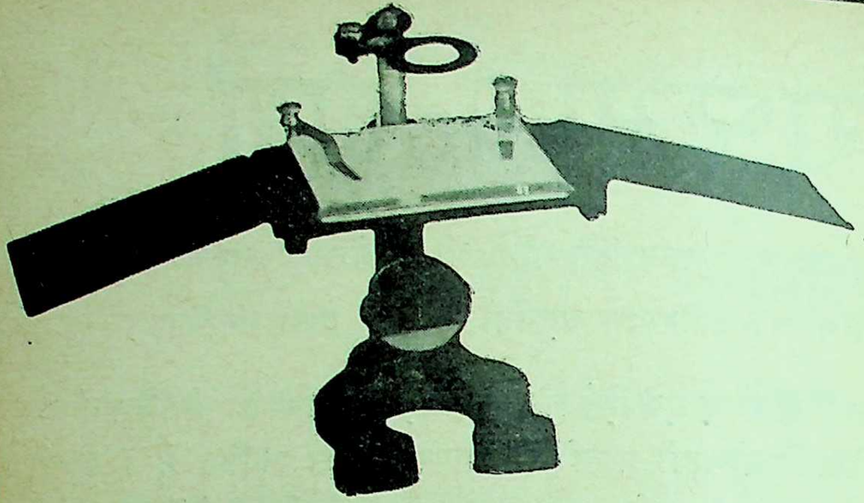

साइको डाईसेक्टिंग माइक्रस्कोप

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएँसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइएिटफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी
लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

अर्द्धशताब्दी से जनता की सेवा में सतत् संलग्न एवं आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित प्रदेश की प्रतिष्ठित मिल होने का गौरव प्राप्त

दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लिमिटेड इन्दौर (म० प्र०)

टेलीफोन : ४१६४, ४१६५, ७००७, ६०६३ टेलीग्राम : 'मालवा मिल्स', 'क्रीसैन्ट'

विशिष्ट उत्पादन

शर्टिंग, धोती, काली जीन, खाकी जीन, कोटिंग पट्टा, चौकड़ी, हरक, लांग क्लाथ, साड़ी मझरी, मलमल, चोल, ब्लांकेट, घुस्सा आदि

मालवा मिल इन्दौर के वस्त्र सुनिश्चित ही सुन्दर, सस्ते, टिकाऊ और विश्वस्त होते हैं

सिटी शाप—११५, एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर (म० प्र०)

रिटेल शाप—(१) मालवा मील कर्मचारी परस्पर सहकारी संस्था मर्यादित, इन्दौर,
(२) हीरालाल बबलीशाह, बुरहानपुर,
(३) दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लि०, नरनारायण मन्दिर के सामने, कालबादेवी, बम्बई।

सेलिंग एजेन्ट्स

१—मेसर्स मध्यभारत टेक्सटाइल एजेन्ट्स (ग्रे क्लाथ)
२—मेसर्स भारत ट्रेडर्स (प्रोसेस्ड क्लाथ)
३—मेसर्स पूरणामल सत्यनारायण (ब्लेक एन्ड रग्ज)

एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

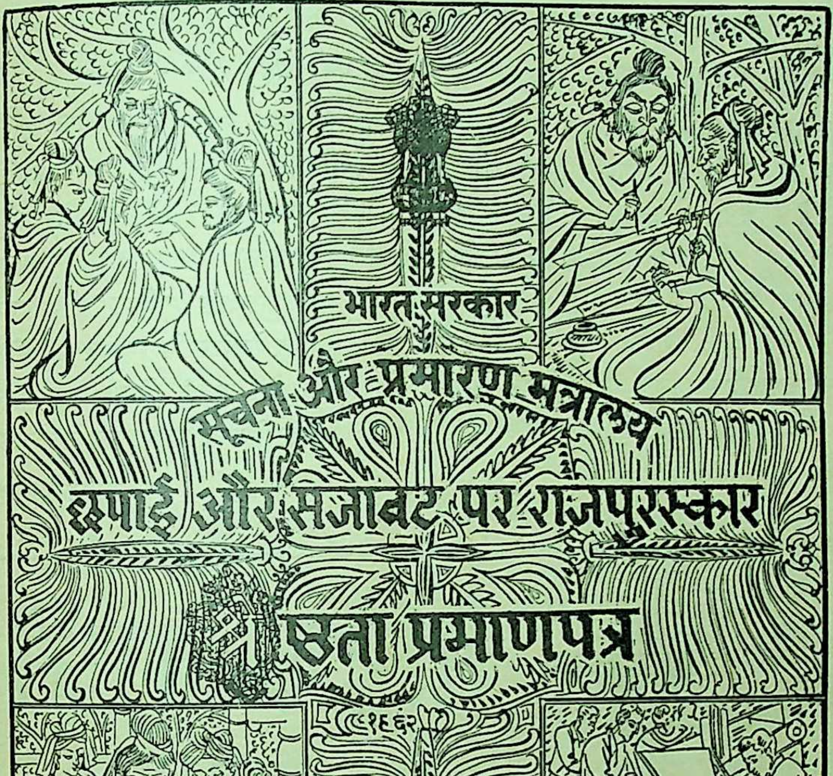

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

श्रेष्ठता प्रमाणपत्र

(१९६२)

दैनिकेतर पत्र, वार्षिक पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं)

विज्ञान जगत (हिन्दी) पर

इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद को

- ● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- ● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- ● वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- ● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- ● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य——प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद, तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए श्री बी० पी० भट्ट, डाइरेक्टर जनरल, आल इण्डिया रेडियो क्या कहते हैं :—

प्रिय सिंह जी, मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि कल संध्या समय मुझे डायरेक्टर जनरल की नियुक्ति की सूचना मिल गयी। इस प्रकार आपकी भविष्यवाणी हमारे लिए पूर्णरूप से सत्य सिद्ध हुई। मुझे विश्वास है कि मेरी प्रसन्नता के साथ-साथ आपको भी इस समाचार से विशेष प्रसन्नता होगी। आपने मुझे बराबर शक्ति दी और आपकी विशेष पूजा और प्रार्थनाओं से यह सफलता प्राप्त हुई। किन्तु आपकी दया, मित्रता और स्नेह विशेष मूल्यवान है। मेरे पास इस समय इतने शब्द नहीं हैं कि मैं अपने हृदय की बात पूर्णरूप से व्यक्त कर सकूं, मैं विशेष कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे इतनी शक्ति और ज्योति प्रदान की। इस पद के लिए विशेष युद्ध था और अन्त में भगवती की कृपा हुई। मैं माँ भगवती की कृपा का बहुत ही आभारी हूँ। हमें आशा न थी किन्तु आप अपने विचारों में इस सफलता के लिए चटटान की तरह दृढ़ थे और अन्त में आपकी यौगिक क्रियाओं द्वारा यह सफलता प्राप्त हुई।

नयी दिल्ली
१८-३-६२

आपका विश्वासपात्र
बी० पी० भट्ट

केवल मेट्रिक नापों का प्रयोग कीजिए

● यहां कुछ खास-खास कपड़ों की मीटरों में लम्बाई दी गयी है :

अब देश भर में नाप-तौल की मेट्रिक प्रणाली ही एकमात्र कानूनी प्रणाली है।

बुश शर्ट कमीज (पूरी बांह की)	१.८५ मीटर प्रत्येक के लिए
कोट पतलून	२.७५ मीटर
ब्लाउज़	०.६० मीटर

उचित और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

मीटर में खरीदिये

डी ए ६३/२४५

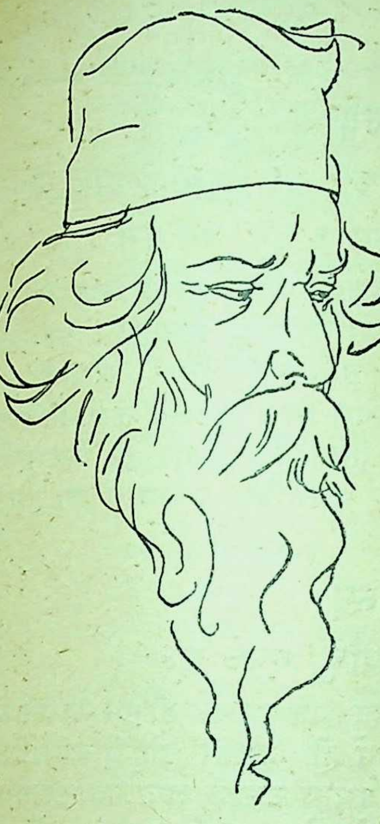

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ: भाग १	१·२
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आर्कषित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वांचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पांच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विशेष महत्व की बातें

प्रत्येक विचारशील भारतीय के लिए यहां दी गई बातें विशेष महत्व की हैं। ये आपके लिए, आपके परिवार के लिए, सबके लिए, बहुत जरूरी हैं क्योंकि राष्ट्र का भविष्य बहुत कुछ इस पर ही निर्भर करता है कि चीनी आक्रमण से देश की रक्षा किस तरह की जाय। हमारा देश एक शांति प्रिय राष्ट्र है और हम शांति प्रिय लोग हैं। पर हम आक्रमण के सम्मुख कभी घुटने नहीं टेक सकते।

चीनी खतरा

सच्चाई यह है कि हमारी सीमाओं पर चीनी आक्रमण अब भी बना हुआ है, हलांकि वास्तविक लड़ाई बन्द है। चीन अब भी लद्दाख में भारतीय प्रदेश का १४,००० वर्ग-मील क्षेत्र दबाये हुए है तथा वह हमारी सीमाओं पर बड़े पैमाने पर सेनायें इकट्ठी कर रहा है। हमें प्रत्येक नये आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार होना है। हमें अपनी यह प्रतिज्ञा फिर से दुहरानी है कि जब तक हम अपनी धरती से एक एक आक्रमणकारी को पूरी तरह न खदेड़ दें, तब तक चैन नही लेंगे।

अनुपम सहयोग

जब हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय रक्षा कोष में मदद देने के लिए जनता से अपील की तो सभी वर्गों के लोगों ने बड़े शानदार ढंग से उस अपील का जबाब दिया।

हमने उदारता से दिया—दिल खोल कर दिया—क्योंकि हम समझते थे कि आज़ादी की रक्षा के लिए कोई भी कुर्बानी ज्यादा नहीं है।

दृढ़ संकल्प

हमें इस बात का दृढ़ संकल्प करना है कि हम इसी प्रकार मदद देते रहेंगे, जब तक कि हमारी आज़ादी को खतरा खत्म नहीं हो जाता। हम सबको सोना देना है। क्योंकि आज के ये स्वर्ण कंगन क्या काम आएंगे, यदि कल हम सब लौह शृङ्खलाओं में जकड़ लिये जाते हैं। हमें रुपया भी देना है। क्योंकि हमारे निरंतर योगदान से ही हमारी प्रतिरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने में सहयोग मिलेगा।

हमें क्यों देना चाहिए ?

१—क्योंकि इससे आप और आपकी संतान के भविष्य की रक्षा होती है।

२—क्योंकि इससे आपकी मातृभूमि की प्रादेशिक अखण्डता सुरक्षित होती है।

३—क्योंकि इससे भारत में और संसार भर में शांति कायम रह सकती है।

इन सवालों पर विचार कीजिए

क्या हम अपने सम्मान को खतरे में देख कर भी अपने कर्तव्य से विमुख होंगे ? क्या हम चाहेंगे कि शूरमा जवान हमारे लिए बलिदान करते रहें और हम उनकी शक्ति नहीं बढ़ायें ? क्या हम आज स्वार्थी बन कर उन सब चीजों को, उन आदर्शों को खतरे में डाल देंगे जिन्हें हम बहुत मूल्यवान समझते हैं, प्यार करते हैं ? क्या हम स्वदेश से पहले स्वार्थ, साहस से पहले लालच और स्वतंत्रता से पहले सम्पत्ति को ज्यादा महत्व देंगे ?

खूब विचार कीजिए

राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटाइए

DA63/F14

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का
"हेमालरिन"
"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"
प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी
(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता
डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

भारत सरकार से रजिस्टर्ड
सफेद दाग की दवा मूल्य ६) विवरण मुफ्त मंगावें
एक्किमा (उकवत, खर्जूआ, विर्चिका) व्याधि पर यह परीक्षित दवा है। मू० ५) रु० डाक खर्च १॥) रु०।
दमा श्वास गुणकारी औषधि कीमत ५) रु० डाक खर्च १॥) रु०
वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

ज्ञानवृद्धि के लिए बच्चों का प्यारा
बालसखा
अपने बच्चों को पढ़ायें
वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० न० पै०

नया प्रकाशन अभी प्रकाशित हुआ
श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का सुविस्तृत जीवनचरित)—तीन खण्डों में; भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य स्वामी सारदानन्दजी द्वारा मूल बंगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत जीवनी का हिन्दी अनुवाद। डबल डिमाई आकार; आर्टपेपर के नयनाभिराम जैकेट सहित।

प्रथम खण्ड :—('पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन' एवं 'साधकभाव')—१४ चित्रों से सुशोभित; पृष्ठसंख्या ४७६; मूल्य रु० ९

द्वितीय खण्ड :—('गुरुभाव—पूर्वार्ध' एवं 'गुरुभाव—उत्तरार्ध')—७ चित्रों से सुशोभित; पृष्ठसंख्या ५१०; मूल्य रु० १०

तृतीय खण्ड :—('श्रीरामकृष्णदेव का दिव्यभाव और 'नरेन्द्रनाथ')—७ चित्रों से सुशोभित; पृष्ठसंख्या २९६; मूल्य रु० ७

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य
श्रीरामकृष्ण वचनामृत प्र० भा० ६·५०; द्वि० भा० ६·५०; तृ० भा० ७·००
माँ सारदा (श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी) ४·५०
श्रीरामकृष्ण और श्री माँ—स्वामी अपूर्वानन्द कृत ३·४०
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ६·००
विवेकानन्दजी की कथाएँ (चुने हुए संस्मरण) १·६०
धर्मप्रसंग में स्वामी शिवानन्द (श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य द्वारा वार्तालाप) प्र० भा० २·७५; द्वि० भा० २·७५
०·८०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ १·३०
स्वामी विवेकानन्दकृत :—
वर्तमान भारत ०·५० भारतीय नारी १·२५
धर्मविज्ञान २·०० धर्मरहस्य १·००
विविध-प्रसंग १·१२ चिन्तनीय बातें ५·००
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)

हमारे हिन्दी प्रकाशनों के सम्पूर्ण सूचीपत्र के लिए लिखिये
श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपूर—१

प्रिन्सिपल श्री केदारनाथ गुप्त
ए० ने गोस्वामी तुलसीदास के
रित मानस और विनयपत्रिका
ग्रंथों से अमूल्य रत्नों को ढूँढ़कर
एकत्र किया है। मूल्य १·५०

सरलभाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

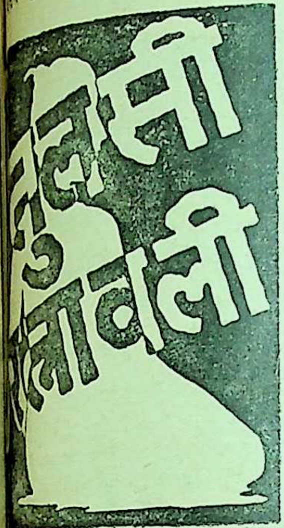

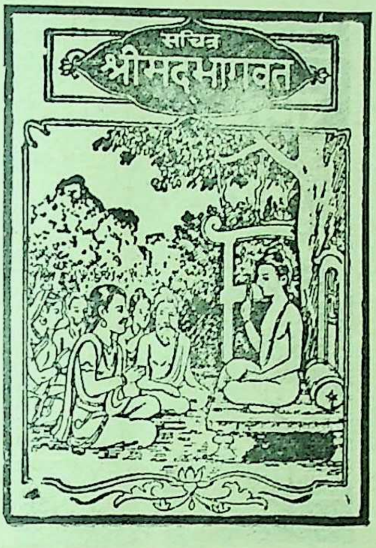

डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य

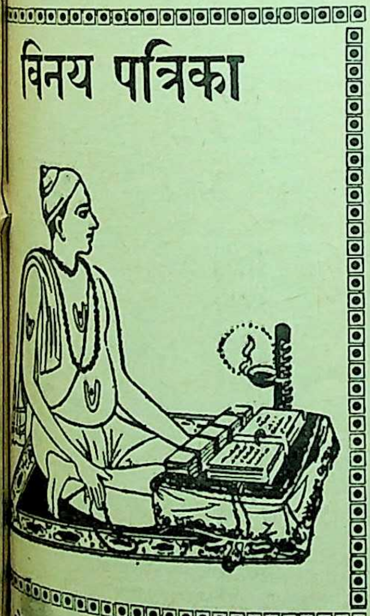

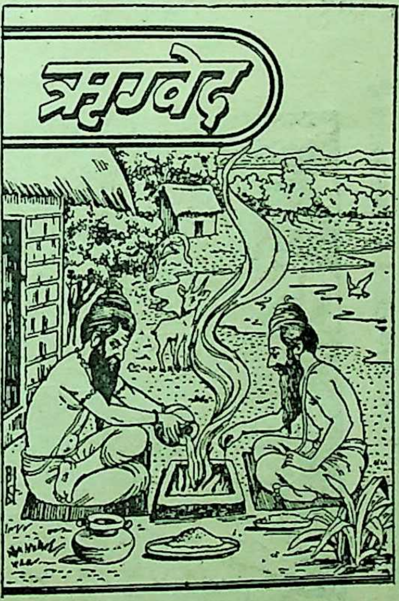

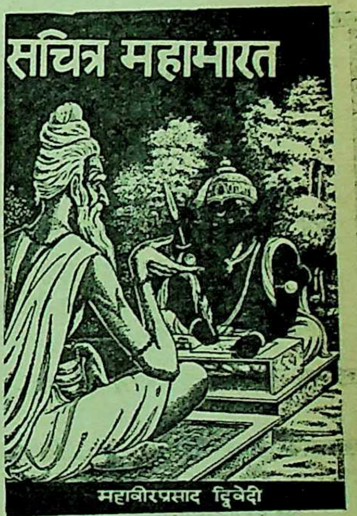

स्वामी तुलसीदास की इस अमर
के विनय पदों का मर्म समझाने
० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी
करती है। बड़े आकार की
प्रति का मूल्य ४) मात्र।

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

रामचरितमानस
(मूल)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

टीकाकार---रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

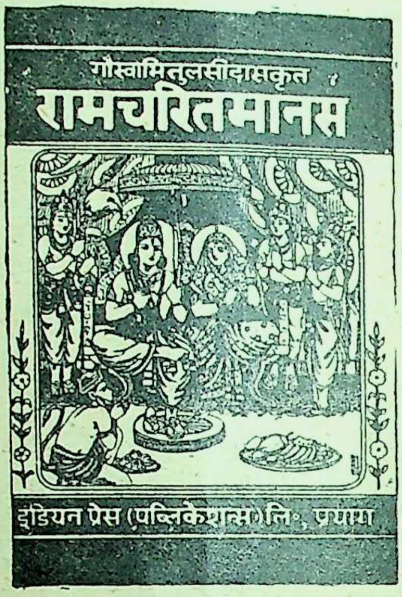
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

सचित्र
रामचरितमानस

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३.५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

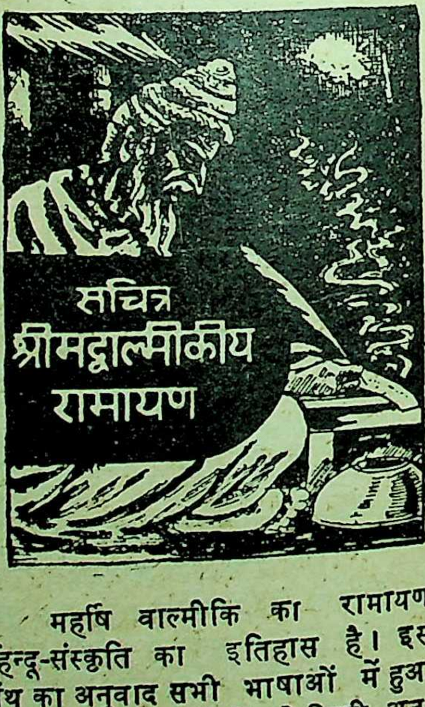
सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वालमीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य [illegible] प्रति भाग है।

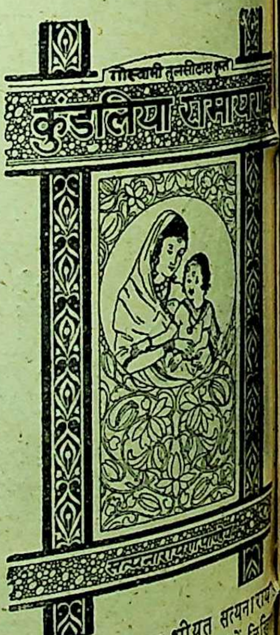
गोस्वामी तुलसीदास कृत
कुंडलिया रामायण
सत्यनारायण पाण्डेय

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनाराय पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखि गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामा सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का पूर्ण वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

आधुनिक औषधि-आविष्कार
लेखक
इर्मनगार्ड राबर्ले

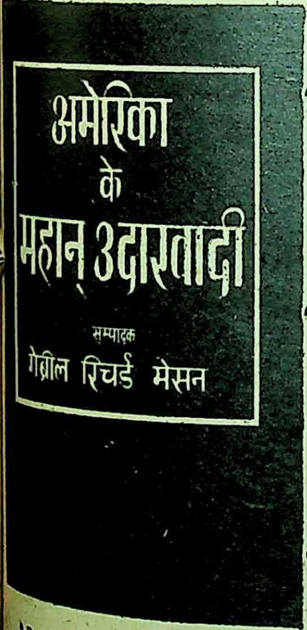
अमेरिका के महान् उदारवादी
सम्पादक
गेब्रील रिचर्ड मेसन

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन

मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

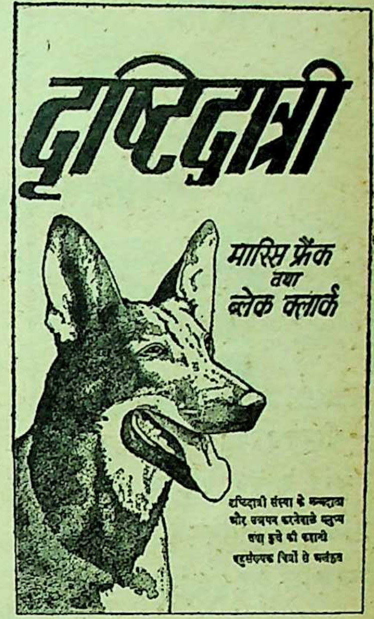
दृष्टिदात्री
मारिस फ्रैंक तथा ब्लेक क्लार्क
दृष्टिदात्री संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की कहानी
बहुसंख्यक चित्रों से अलंकृत

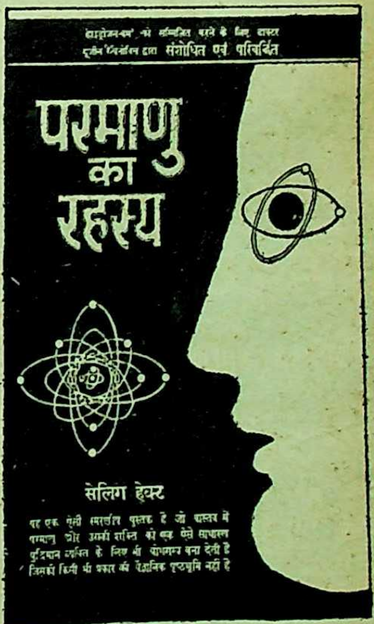
'हाइड्रोजन-बम' को सम्मिलित करने के लिए डाक्टर [illegible] द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित
परमाणु का रहस्य
सेलिग हेक्ट
यह एक ऐसी सरल पुस्तक है जो वास्तव में परमाणु और उसकी शक्ति को एक ऐसे साधारण बुद्धिमान व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य बना देती है जिसकी किसी भी प्रकार की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि नहीं है

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

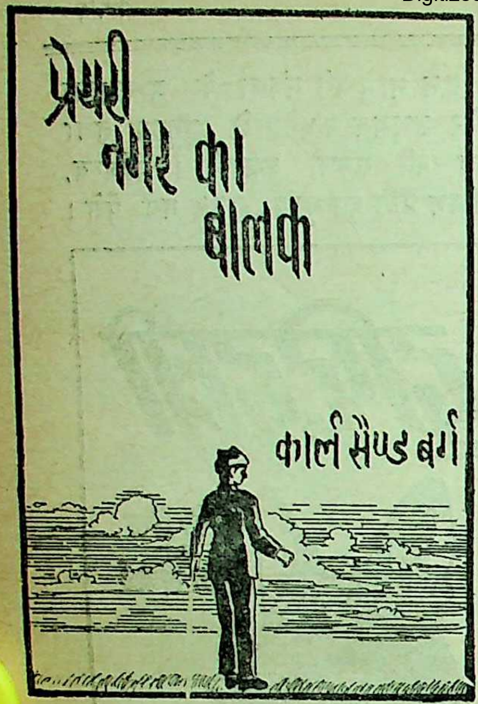
प्रेयरी नगर का बालक
कार्ल सैण्डबर्ग

अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०

मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे

लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन ।

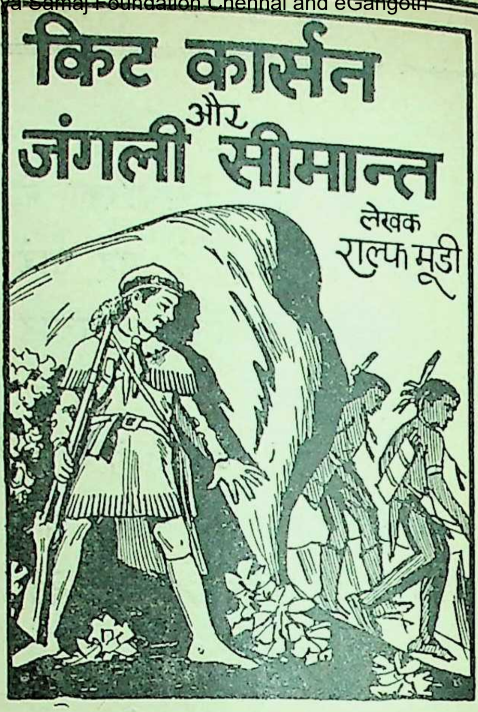
किट कार्सन और जंगली सीमान्त
लेखक
राल्फ मूडी

अनु० --तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०

मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन ।

बड़े वन में छोटा घर
लॉरा इंगल्स विल्डर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम०

मूल्य २ रु० ५० नये पैसे

लेखिका के बाल्यजीवन की सुन्
कहानी में उस समय के सामा-
जिक जीवन का दिग्दर्शन ।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक
लेखक
विलियम ओलिवर स्टीवेन्स

अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०

मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित ।

अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी

अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०

मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी ।

प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो
लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़

अनु०—रामऔतार अग्रवाल

मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन का
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १'५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भांति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। हृ हा। हृ हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०
पृथ्वी का इतिहास——श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद——श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत——लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष——गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण——इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान——शचीन्द्रनाथ सान्याल

●● ●●● ●●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक,

जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होंगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

मिलने
का
स्थान
इंडियन
प्रेस
(पब्लिकेशन्स),
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी शब्दों शब्दार्थ अंगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

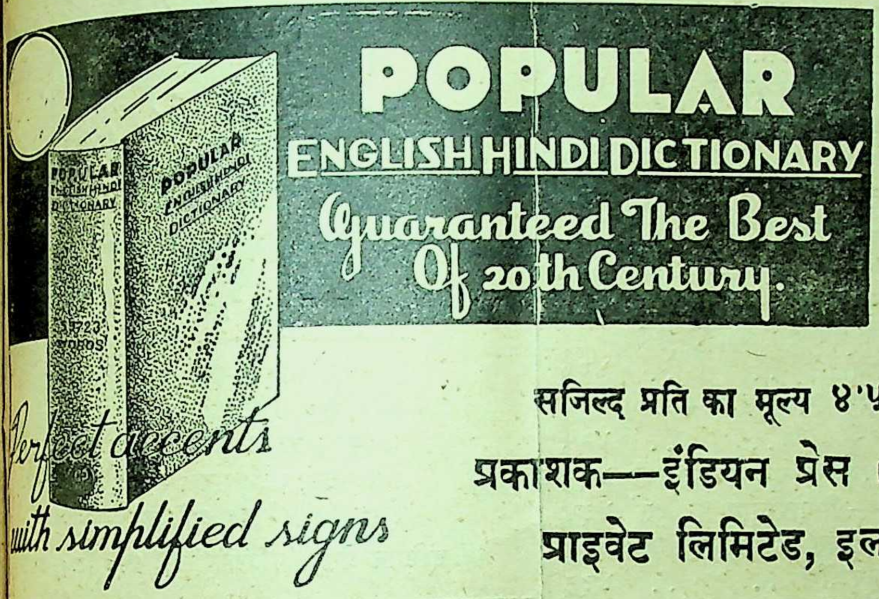
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
POPULAR ENGLISH HINDI DICTIONARY
Perfect accents
with simplified signs

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.

पापुलर
इंग्लिश-
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४.५० नये पैसे
प्रकाशक——इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विज्ञापनदाताओं से निवेदन

सरस्वती मासिक पत्रिका अपनी जन्मतिथि जनवरी १९०० से लगातार हिन्दी-जगत् की सेवा कर रही है। इसकी षष्टिपूर्ति जयन्ती के अवसर पर जो साहित्यिक समारोह किया गया वह सर्वविदित है। इस युग में जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुद्रण सामग्री प्राप्त न होने या अन्य कठिनाइयों के कारण या तो बन्द हो गया है या प्रकाशकों ने विज्ञापन-दर में वृद्धि कर दी है वहाँ सरस्वती ने अपनी विज्ञापन-दर सन् १९५८ तक पुरानी ही रखी है।

महँगाई के कारण हमने विवश होकर जनवरी १९५९ तथा जनवरी १९६१ में विज्ञापन-दर में थोड़ी वृद्धि की थी किन्तु इस वृद्धि से भी हम छपाई सम्बन्धी वस्तुओं के बढ़ते हुए दामों का मुकाबला न कर सके। अस्तु, हमें अब विवश होकर जुलाई १९६३ से निम्नलिखित अनुसार विज्ञापन दर में वृद्धि करने की आवश्यकता पड़ रही है। आशा है, कृपालु विज्ञापनदाता इस बढ़ी हुई दर को स्वीकार कर सरस्वती को सदैव की भाँति अपनावेंगे और हमें अपना सहयोग देंगे। इसके लिए विशेष आभारी होंगे।

विज्ञापन-दर

साधारण प्रति पृष्ठ	१००) रु०	साधारण आधा पृष्ठ	५५) रु०
साधारण १/४ पृष्ठ	३०) रु०	साधारण १/८ पृष्ठ	१५) रु०
कवर चौथा पृष्ठ	२५०) रु०	कवर दूसरा व तीसरा पृष्ठ	१५०) रु०

व्यवस्थापक विज्ञापन-विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ४०१
२—लक्ष्मी-स्तुति (कविता) ४०९
३—उन दीपों को भूल न जाना !—श्री रामदेव आचार्य ४१०
४—विदेशों में दीपोत्सव—श्री उदयनारायण सिंह ४११
५—कविवर 'नवीन' के काव्य में 'दीप-माला' —डा० लक्ष्मीनारायण दुबे ४१३
६—तीन मुक्तक (कविता)—श्री कृष्णनन्दन 'पीयूष' ४१४
७—तुम्हें खोजते उमर बिताई (कविता)—श्री इन्दुकान्त शुक्ल ४१४
८—उत्तर-दक्षिण की एकता में प्राचीन आन्ध्र राजवंश का योग—प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर विश्वविद्यालय ४१५
९—व्यासजी के कुछ संस्मरण—डा० आनन्द कृष्ण ४१७
१०—जल-विभाजक—स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय —मेजर सीताराम जौहरी ४२०
११—ब्रिटेन के लेखक और उनकी आय—श्री महेन्द्र राजा जैन ४२५
१२—सिंधी भाषा का परिचय—श्री गुलाब भोजवाणी ४२९
१३—शक्तिशाली हिजड़े—श्री गोपीनाथ 'व्यथित' ४३४
१४—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (६)—श्री फेनी मुकर्जी ४३६
१५—नया विश्वास (कविता)—श्री राजकिशोर ४४२
१६—डा० सम्पतराम चतुर्वेदी—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ४४३
१७—जागरी तू जाग! (कविता)—श्री वीरबल महतो ४४६
१८—पं० गौरीशंकर शर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व—डा० कस्तूरचन्द जैन .. ४४७
१९—आँगनों के बीच—नौकरों के कुछ और कारनामे—श्रीमती शीला शर्मा ४४९
घर-गृहस्थी—नई गृहस्थी, पुराने अनुभव ४५१
२०—देखा-सुना—श्री मनमोहन गुप्त .. ४५२
२१—निःशब्द चीत्कार—श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक" ४५८
२२—दलदल में धँसते पाँव—डा० हरिदत्त भट्ट "शैलेश" ४६४
२३—चौदह कैरट (कविता)—डा० सुरेशचन्द्र गुप्त ४६६
२४—श्रद्धा-दीप—मू० श्री पीताम्बर पटैल, अ० श्री राजगोपाल माथुर ४६७
२५—निवेदन : एक मनःस्थिति (कविता)— प्रो० गोपालजी 'स्वर्णकिरण' ४७१
२६—नवीन प्रकाशन ४७२
२७—भारती-कंठाभरण ४७४
२८—ब्रज-माधुरी (४) ४७५
२९—मनोरंजक संस्मरण ४७६
३०—१९०७ की सरस्वती—सोऽहम्—बी० ए० ४७७
ढाके की मलमल—रामजी लाल शर्मा .. ४७९

दुर्गापाठ
सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधा मोहन लाल बी० ए० रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित। हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

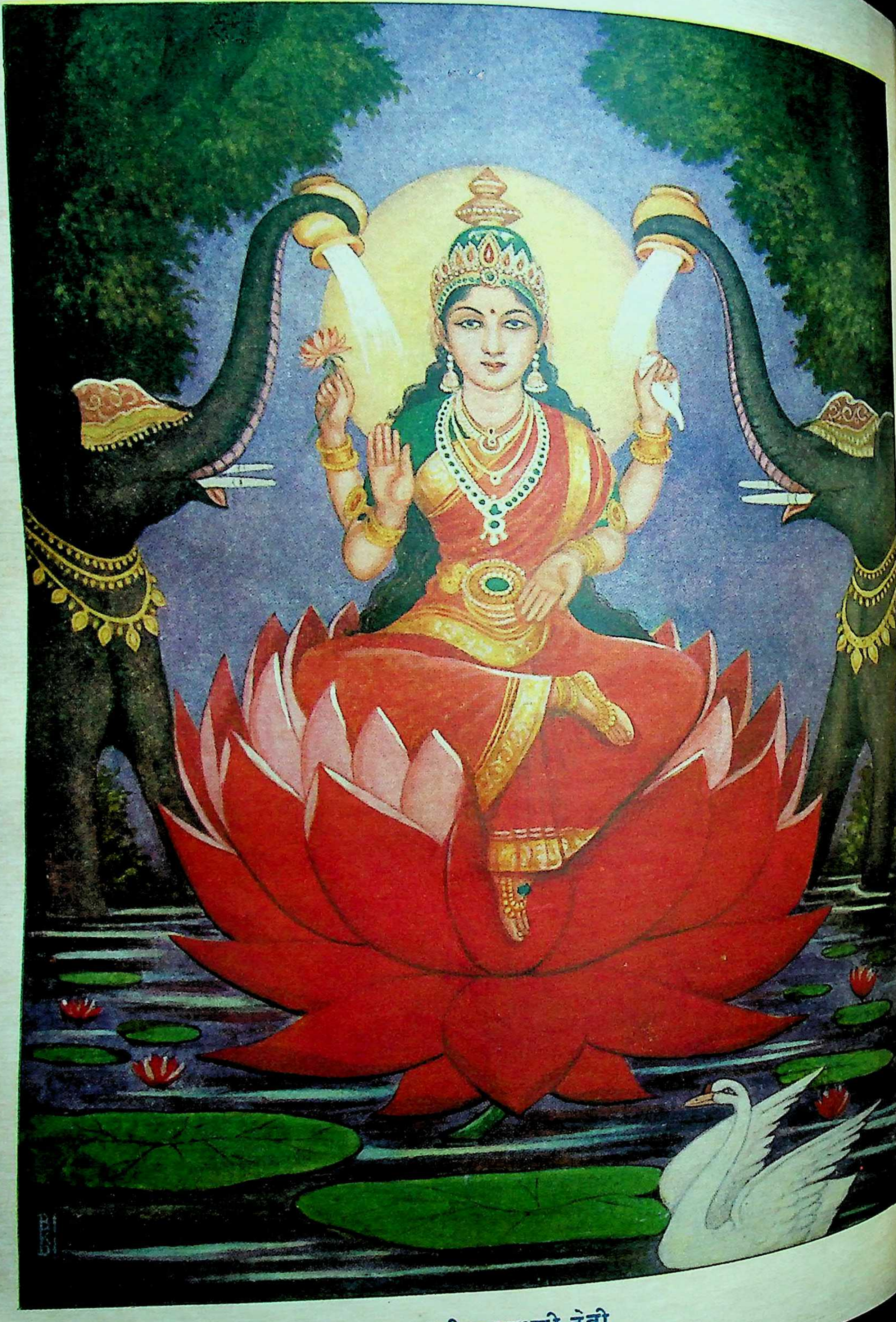

श्रीमहालक्ष्मी देवी

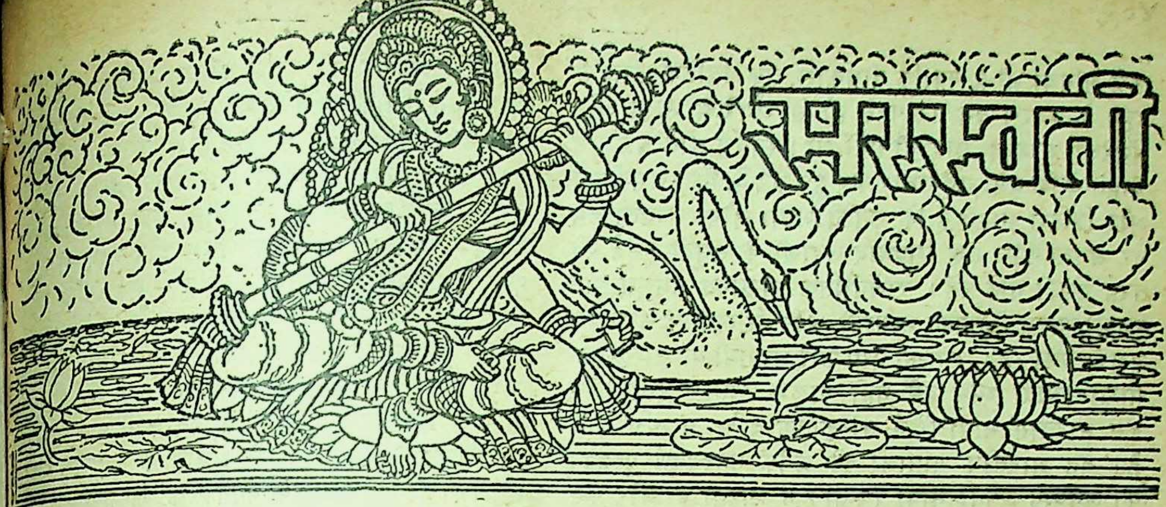

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६४
र्ण संख्या ७६७
इलाहाबाद : नवम्बर १९६३ कार्तिक २०२० वि०
खण्ड २
संख्या ११

सम्पादकीय

हिंदी के प्रति अमरीका और रूस का रुख तथा रूसी ाकार—रूस में भारतीय भाषाओं के अध्ययन का न बड़े उत्साह से हो रहा है। इसके कई कारण हैं। िया और अफ्रीका के सद्यः स्वतन्त्र देश बड़ी लम्बी वधि तक योरोपियन साम्राज्यवादियों के अधीन रहे। ाम्राज्यवादी अपने अधीनस्थ देशों को संसार के दूसरे ट्रों से मुक्त सम्पर्क नहीं रखने देते थे क्योंकि इससे हें अपने साम्राज्य के लिए खतरा मालूम होता था। का परिणाम यह हुआ कि जब ये देश स्वतन्त्र हुए तब नमें संसार के अन्य देशों से सम्पर्क स्थापित करने की बल उत्कंठा हुई। संसार के पुराने स्वतन्त्र देश भी इन ः स्वतन्त्र देशों से सम्पर्क बढ़ाने को उत्सुक हैं। रूस र पाश्चात्य देशों की राजनीतिक स्पर्द्धा ने रूस को इन ः स्वतन्त्र देशों से सम्पर्क स्थापित करने की प्रबल णा दी। इसीलिए रूस केवल भारत ही में नहीं, प्रत्युत िया और अफ्रीका के प्रायः सभी सद्यः स्वतंत्र देशों उन्नति में रुचि लेने लगा। अमरीका भी रूस ही की ह इन सद्यः स्वतन्त्र देशों से सम्पर्क स्थापित करना ता था क्योंकि इन देशों में उसका कोई साम्राज्य न । दोनों ही इन देशों की आर्थिक उन्नति में सहायता करने लगे। दोनों की प्रभाव विस्तार की स्पर्द्धा ने इस सहायता को बहुत कुछ राजनीतिक रूप दे दिया। जो भी हो, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए सद्यः स्वतन्त्र देशों को इनकी आर्थिक सहायता से बहुत लाभ हुआ।

मानवता की भावना से तो यह सहायता प्रेरित है ही, किंतु इसका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक है। आज के भौतिकवादी युग में 'मानवता' का नारा भी राजनीति की दृष्टि से परिचालित होता है। यह कोई वैसी आपत्तिजनक बात भी नहीं है। किंतु जो भी प्रेरणा हो, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस सहायता से पिछड़े हुए देशों को बहुत लाभ हुआ है।

किंतु अमरीका और रूस में अन्तर है। रूस इन सद्यः स्वतन्त्र देशों की संस्कृति, साहित्य, भाषा आदि में रुचि लेता है, उनसे सहानुभूति प्रकट करता है तथा उनकी उन्नति में परोक्ष योगदान भी देता है। वह उन्हें सहानुभूति के साथ समझने का प्रयत्न करता है। इसके विपरीत, अमरीका तथा इंग्लैण्ड हमारी संस्कृति या भाषा से प्रायः उदासीन हैं। वे हमारे यहाँ अपनी पाश्चात्य संस्कृति (अमरीकन या ब्रिटिश "वे आफ लाइफ़") और अपनी भाषा (अँगरेजी) का प्रचार करना चाहते हैं। इसकी

उन्हें सुविधा भी है क्योंकि दीर्घकाल तक ब्रिटिश सत्ता में रहने के कारण हम पर पहले ही से अँगरेजी भाषा और अँगरेजी सभ्यता लाद दी गयी थी। स्वतंत्र होने पर हम चाहते थे कि हम उन्हें उतार कर दूर कर दें, किंतु अमरीकन और ब्रिटिश चाहते हैं कि उनकी भाषा और सभ्यता हम पर अनन्त काल तक सिंदवाद जहाजी के समुद्री बुड्ढे की तरह चड्ढी गाँठे रहें। राजनीतिक साम्राज्य समाप्त होने पर भी भारत में उनका भाषायी और सांस्कृतिक साम्राज्य अक्षुण्ण बना रहे। रूस का ऐसा कोई भाषायी या सांस्कृतिक साम्राज्यवादी ध्येय हमें नहीं मालूम पड़ता। इसी लिए रूस भारतीय भाषाओं में सांस्कृतिक दृष्टि से रुचि लेता है। वह भारतीय भाषाओं की अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद अपनी भाषा (रूसी) में छापता है और रूस में उनका प्रचार करता है जिससे वहाँकी जनता को भारत का ठीक-ठीक परिचय मिले। वहाँ की जनता में भारत के कितने ही लेखकों की कृतियाँ लोकप्रिय हो गयी हैं। भारतवासियों को अपने देश के साहित्य का परिचय देने के लिए वह कितनी ही रूसी भाषा की पुस्तकों का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करता है। वह भारतीय भाषाओं में 'सोवियत भूमि' और 'सोवियत नारी' के समान अत्यन्त सुंदर साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करके भारतीय भाषाओं की सेवा करता है। इसके विपरीत, अमरीका केवल अमरीकी प्रचार के लिए सस्ते कागज पर छपा एक सस्ता पत्र प्रकाशित करता है जिसका नाम 'अमरीकन रिपोर्टर' है। अमरीका को भारतीय भाषाओं की शब्दावली से कितनी विरक्ति है, यह इसी बात से मालूम पड़ सकता है कि उसने अपने हिंदी में छपे प्रोपगंडा पत्र का नाम भी हिन्दी में रखना पसन्द नहीं किया। वह अँगरेजी नाम 'अमरीकन रिपोर्टर' हिंदीवालों के गले उतारना चाहता है। वास्तव में अमरीकन और अँगरेज प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से करोड़ों रुपया खर्च करके इस देश में अँगरेजी की जड़ मजबूत कर रहे हैं। वे देशी भाषाओं के हितचिंतक नहीं हैं। उन्हें जनता में अपना प्रचार करने के लिए लाचार होकर हिंदी का उपयोग करना पड़ता है। किंतु वे उसे भी सस्ते ढंग से करते हैं। किंतु उनका हार्दिक ध्येय इस देश में अँगरेजी का प्रचार करना है। उन्हें धन की कमी नहीं, और वे इस देश में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अपना धन अँगरेजी के प्रचार में उसी तरह बहा रहे हैं जिस प्रकार अमरीकन और ईसाई मिशनरी लोगों को ईसाई बनाने के ध्येय से तरह-तरह के कामों में लाखों रुपये खर्च किया करते रहे हैं। उन्होंने अँगरेजी के प्रचार के लिए सारे देश में जगह-जगह अंग्रेजी के अत्यंत सुव्यवस्थित, सुंदर और बड़े पुस्तकालय खोल रखे हैं जिनमें बहुमूल्य और अद्यतन अँगरेजी प्रकाशन पाठकों को बिना मूल्य पढ़ने को उपलब्ध हैं। वे भारत के स्कूलों और विश्वविद्यालयों में अँगरेजी को एक अनिवार्य भाषा और शिक्षा का माध्यम सदा सर्वदा को बनाये रखने के लिए सस्ती पाठ्यपुस्तकें (तिहाई या चौथाई दाम पर) दे रहे हैं। उन्होंने हमारे स्कूलों में अँगरेजी की पढ़ाई अधिक कुशल बनाने के लि अपार धन लगाकर अँगरेजी के अध्यापकों के लिए प्रशिक्ष महाविद्यालय (ट्रेनिंग कालिज) आदि खोले हैं।

रूसी भारत में अपनी भाषा का प्रचार करने क प्रयत्न नहीं करते। वे भारतीय भाषाओं को प्रोत्साह देते हैं। अमरीकन और अँगरेज भारतीय भाषाओं की उपेक्षा करते हैं। अभी तक हमारी दृष्टि में ऐसा कोई उदाहरण नहीं आया जिसमें अमरीकनों या अँगरेजों ने हिंदी के प्रति कोई सहानुभूति दिखायी हो या उसमें कोई विशेष रुचि ली हो। हमें बतलाया गया है कि भारतस्थित रूसी सरकार के कार्यालयों से जब कभी पत्र हिंदी में भी लिखे जाते हैं; किंतु हमारी सूचना के अनुसार अमरीकन या अँगरेजी दूतावासों के कार्यालयों से हिंदीवालों से भी पत्र-व्यवहार अँगरेजी में ही होता है। भारतस्थित अमरीकन या अँगरेजी संस्थानों में साधारण हिंदी भी जानने-वाले अमरीकन या अँगरेज कर्मचारी का मिलना अपूर्व और कौतूहलपूर्ण चमत्कार होगा। इसके विपरीत रूसी संस्थानों में कितने ही रूसी कर्मचारी मिल सकते हैं जो शुद्ध और धाराप्रवाह हिंदी बोल सकते हैं। यही नहीं, अमरीकन और ब्रिटिश संस्थानों में जो भारतीय रखे जाते हैं अपनी अँगरेजी की योग्यता के कारण। उनके यहाँ भारतीय भाषाओं की कद्र नहीं है। इसी प्रकार भारतीय साहि त्यिकों के प्रति उनके रुख में भी अन्तर है। रूसी प्रतिवर्ष कितने ही भारतीय साहित्यकारों को दस-पंद्रह दि के लिए अपने देश में निमंत्रित करते हैं। वे उन्हें अपने यहाँ ले जाते, और वहाँ भाषा और साहित्य सम्बंधी जो काम हो रहा है, उसे उन्हें दिखाते हैं। अमरीकन और ब्रिटिश भारतीय साहित्यकारों की ओर से उदासीन हैं और यदि वे उन्हें अपने देश में ले भी जायें तो उन्हें व क्या दिखलावें? वहाँ भारतीय भाषा और साहि सम्बंधी ऐसा कोई काम नहीं हो रहा जो ऊँचे दर्जे साहित्यकारों को ले जाकर दिखाया जा सके। हम भारतीय भाषाओं को पढ़नेवाले विद्यार्थियों की सं बहुत अधिक बतायी जाती है। अमरीका के कुछ विश्वविद्यालयों में (शायद दो-तीन प्रतिशत में) कुछ कुछ भारतीय भाषाएँ पढ़ायी जाती हैं। किंतु वहाँ पढ़ वालों की संख्या भी कम है और कहा जाता है कि भी बहुत ऊँचा नहीं है। भारतीय साहित्य के प्रक का, या वहाँकी जनता को उसके परिचय देने का, ऐसा काम नहीं हो रहा जैसा रूस में।

अमरीका और इंग्लैण्ड का निहित स्वार्थ इसीमें कि यहाँ अँगरेजी जमी रहे। इससे उन्हें प्रत्यक्ष और प लाभ है। अभी तक जितना अँगरेजी का प्रचार हु उसीके कारण विदेशी मुद्रा की कमी और कड़े नियं इस युग में भी भारत में प्रतिवर्ष पाँच-छः करोड़ रुप अँगरेजी पुस्तकें इंग्लैण्ड और अमरीका से आती हैं। मुद्रा का नियंत्रण ढीला हो जाय और मनमाने ढं अँगरेजी पुस्तकें मँगाने की छूट दे दी जाय तो हमारे अँगरे

रस्त मित्र प्रतिवर्ष दस-बारह करोड़ की अँगरेजी पुस्तकें न देशों से मँगाया करें। ज्यों-ज्यों अँगरेजी का प्रचार अधिक होगा त्यों-त्यों इस देश में अमरीका और इंग्लैण्ड की पुस्तकों की खपत बढ़ेगी। केवल ज्ञानवर्द्धक अँगरेजी पुस्तकें ही नहीं मँगायी जातीं। अधिकांश अँगरेजी साहित्य जो इस देश में आता है उसमें सस्ती मैगजीन, यौन साहित्य, जासूसी तथा अपराध के उपन्यास होते हैं जिनसे इस देश की सुरुचि और नैतिकता को हानि पहुँचती है। ही नहीं, इन पुस्तकों के कारण भारतीय लेखकों और भाषाओं की पुस्तकों की बिक्री कम हो जाती है क्योंकि पढ़नेवालों की संख्या सीमित है। अँगरेजी पुस्तकों और पत्रिकाओं की खरीद के बाद उनके पास भारतीय भाषा की पुस्तकें खरीदने को पैसा बचता ही नहीं। इससे यहाँके साहित्यकार को कभी उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता। अमरीका और इंग्लैण्ड को एक बड़ा परोक्ष लाभ यह है भारतवासी अपना रुपया देकर उनकी पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ते हैं जिनमें राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रश्नों पर उन्हींके दृष्टिकोण की व्याख्या और समर्थन रहता है। वे बराबर उन्हें पढ़ते रहने के कारण अज्ञात रूप से उनकी विचारधारा से प्रभावित हो जाते हैं। यदि अमरीका और इंग्लैण्ड को अँगरेजी द्वारा प्रचार की यह बहुमूल्य सुविधा न हो तो उसे अपने प्रचार के लिए पूरी तरह से देशी भाषाओं का सहारा लेना पड़े, और उसे अन्य भाषी राष्ट्रों के समान ही प्रचार की सुविधा या असुविधा हो। यहाँ वह हमारे ही रुपये लेकर हमें अपने प्रचार का शिकार बना रहा है। "मियाँ की जूती, मियाँ की चाँद" वाली कहावत हम पर चरितार्थ हो रही है। इस देश में दीर्घकालीन अँगरेजी-प्रचार के कारण यहाँ कितने ही अँगरेजी-परस्त पैदा हो गये हैं जो अधिकार के पदों पर हैं, और उनसे बाहर भी। वे अँगरेजी के प्रचार में इन अमरीकनों और अँगरेजों की प्रत्यक्ष और परोक्ष सहायता करते और उन्हें नाना प्रकार की सुविधाएँ देते हैं।

सारांश यह कि औसत अमरीकन और अँगरेज भारतीय भाषाओं के यदि प्रत्यक्ष विरोधी नहीं तो उससे उदासीन अवश्य हैं। उन्हें हमारी भाषाओं की उन्नति में कोई रुचि नहीं है। वे चाहते हैं कि अँगरेजी भारत की प्रमुख भाषा बनी रहे। उसका प्रचार बढ़े। इसके लिए वे मुक्तहस्त होकर खर्च भी करते हैं। यदि उन्हें सफलता मिली तो आगे चलकर पुस्तकों की बिक्री, व्यापार की सुविधाओं तथा प्रचार के सुभीते से उन्हें प्रचुर लाभ होगा।

रूस का ऐसा कोई ध्येय नहीं है। वह रूसी भाषा को भारत पर नहीं लादना चाहता। उसके राजनीतिक उद्देश्य अवश्य हैं, किंतु हमारी भाषाओं के विकास के प्रति उसकी सहानुभूति है। वह जो भी काम इस देश में करना चाहता है वह मुख्य रूप से भारतीय भाषाओं के द्वारा। यही नहीं, वह अपने यहाँके भी अधिकाधिक लोगों को भारतीय भाषाएँ पढ़ने को प्रोत्साहित करता है। इसके लिए वहाँ कितनी ही योजनाएँ चल रही हैं। उनमें एक योजना भारतीय भाषाओं के कोश तैयार करने की भी है, अर्थात् भारतीय भाषाओं के ऐसे कोश जिनमें शब्दों के पर्याय रूसी भाषा में दिये हों। ऐसे कई कोश (जिनमें हिंदी-रूसी कोश भी है) कई वर्ष पहले प्रकाशित हो चुके थे। अब उनका दूसरा संस्करण होने जा रहा है। छपाने के पहिले वे उनका पूरी तरह से संशोधन करना चाहते हैं। यह काम रूस में बैठकर नहीं हो सकता। इसलिए रूस की सरकार ने कुछ रूसी विद्वानों को (जो यह काम कर रहे हैं) भारत भेजा है कि वे यहाँके विद्वानों और साहित्यिकों से मिलकर कोश संबंधी समस्याओं पर विचार-विनिमय करें। रूसी कोश विशेषज्ञों का यह दल पिछले महीने उत्तर भारत में आया था।

संयोग से पिछले सप्ताह हमारी भेंट इलाहाबाद के एक अहिंदीभाषी वरिष्ठ प्रोफेसर से हो गयी। बातों ही बातों में उन्होंने हमें यह उलाहना दिया कि हिंदी के अधिकांश विद्वान् इन विशेषज्ञों से नहीं मिले, और उन्हें उनसे जैसी चाहिए वैसी सहायता नहीं मिली। हमने समाचार-पत्रों में उनके आने की सूचना पढ़ी अवश्य थी, किंतु हमें उनकी गतिविधि का कोई हाल नहीं मिला। हमने भी उसे जानने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि जो रूसी विद्वान् भारत में आते हैं वे बहुधा यहाँके "प्रगतिशील" साहित्यकारों और विद्वानों से ही मिलकर लौट जाते हैं। हम ऐसे निर्दलीय हिंदी-सेवी से आज तक कोई रूसी विद्वान् नहीं मिला, यद्यपि 'सरस्वती' का स्थान हिंदी संसार में नगण्य नहीं है। इसलिए हमने समझा था कि ये विशेषज्ञ भी 'प्रगतिशील' विद्वानों से मिलकर लौट गये होंगे। हमने अपने कई प्रगतिशील साहित्यकार मित्रों से पूछताछ की। उन्होंने भी यही कहा कि हमें उनके कार्यक्रम की कोई सूचना नहीं मिली। हम नहीं जानते कि इन विशेषज्ञों की यात्रा का कार्यक्रम किसने बनाया था। किन्तु जिस किसीने भी बनाया हो, उसने अधिकांश प्रमुख हिंदी विद्वानों से उन्हें न मिलाकर अभ्यागतों के साथ अन्याय किया। हमें खेद है कि हिंदी के बहुत-से विद्वान् और साहित्यकार उनसे मिलकर लाभ न उठा सके। हम यह भी समझते हैं कि यदि ये विशेषज्ञ बहुत से उन हिंदी के साहित्यिकों से मिलते जिनसे वे नहीं मिल सके, तो उन्हें भी कुछ लाभ ही हुआ होता।

अर्द्ध-सभ्य——सरदार पटेल की जन्म-तिथि पर आयोजित दिल्ली की एक सभा में श्री लालबहादुर शास्त्री ने एक बड़ी मजेदार घटना सुनायी। उन्होंने कहा कि मैं काफी आधुनिक हूँ। अपने कुछ सहयोगियों, जैसे मुरारजी देसाई से, अधिक आधुनिक हूँ। वे चाय नहीं पीते। मैं चाय पीता हूँ। किंतु नेहरूजी मुझे अर्द्ध-सभ्य ही समझते हैं। इसका कारण यह है कि नेहरूजी ने मुझसे कई बार लंबा कोट और चूड़ीदार पायजामा पहिनने का आग्रह किया। मैंने एक बार चूड़ीदार पहिनने का प्रयत्न भी किया किंतु मैंने देखा कि उसका चढ़ाना-उतारना मेरे बूते का

नहीं है। मैंने धोती पर लंबा कोट पहिन लिया। कोट देखकर नेहरूजी प्रसन्न हुए, किंतु मुझे धोती पहिने हुए देखकर उन्हें निराशा हुई उन्होंने कहा, अभी तुम अर्द्ध-सभ्य ही हो।

उत्तर भारत में एक ऐसा वर्ग रहा है जो मुसलमानी सभ्यता में इतना रँग गया था कि वह मुसलमानी रीति-रिवाज, पहनावा, भोजन और भाषा को 'तहज़ीब' (सभ्यता) का प्रतीक समझा करता था। धोती से उसे घृणा थी। वह धोती पहिननेवालों को अवमानना से "धोती परशाद" कहा करता था। किंतु अफसोस की बात तो यह है कि भारत की अधिकांश जनता अब भी धोती पहिनती है; और नेहरूजी की दृष्टि में वह अर्द्ध-सभ्य है। उन्होंने असभ्यता के प्रतीक (धोती) को दरबारी परिधान में जगह न देकर 'तहज़ीब' के प्रतीक चूड़ीदार को स्थान दिया, किंतु फिर भी राजेन्द्र बाबू, वर्तमान राष्ट्रपति, श्री अनन्तशयनम् आयंगर आदि ने धोती नहीं छोड़ी। गाँधीजी ने भी 'तहज़ीब' के प्रतीक पाजामा को धारण नहीं किया। इतनी लम्बी अवधि तक भारत के हृदय और राज्य पर एकछत्र शासन करते रहने के बावजूद, और तो और, वे अपने परमप्रिय और विश्वासपात्र सहयोगी श्री लालबहादुर शास्त्री को भी पूरा 'सभ्य' नहीं बना सके! गाँधीजी के बाद इस देश में वे ही असंदिग्ध रूप से सबसे प्रभावशाली नेता रहे हैं। किंतु 'धोती' ऐसी चीमड़ है, और 'धोती परशाद' ऐसे चिकने घड़े हैं कि उन्होंने उसी प्रकार उनके प्रभाव से 'इम्यूनिटी' पैदा कर ली है जिस प्रकार विशेष जाति के मच्छरों ने डी० डी० टी० से! इतिहास का यह कितना बड़ा व्यंग्य है कि श्री नेहरूजी के समान आधुनिकतम और अति सुसंस्कृत व्यक्ति को शासन करने के लिए भारत की 'अर्द्ध-सभ्य' 'धोती परशादी' जनता मिली है! इसीको हिन्दी के कवि 'केर बेर का संग' कहते हैं।

पूर्वी उ० प्र० हिंदी सम्मेलन—गत मास वाराणसी में पूर्वी उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें मुख्यरूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश के उस क्षेत्र के साहित्यकार एकत्र हुए थे जिनकी बोली 'भोजपुरी' है। इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का सम्मान किया गया, पूर्वी उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों की उपलब्धियों का विवेचन किया गया। सहयोगी 'आज' ने इस संबंध में कई गंभीर और माननीय लेख प्रकाशित किये। एक वृहत् कवि-सम्मेलन भी हुआ, जिसमें भोजपुरी की भी कविताएँ सुनायी गयीं।

हिंदी क्षेत्र में दर्जनों बोलियाँ हैं। ब्रज, नीमाड़ी, कौरवी, बुँदेलखंडी, बघेलखंडी, राजस्थानी, मालवी, अवधी, छत्तीसगढ़ी भोजपुरी, कूर्मांचली, गढ़वाली आदि बोलियाँ लाखों हिंदीभाषियों की 'मातृभाषाएँ' हैं। सभी बोलियाँ अत्यन्त सरस हैं।

किंतु प्रश्न यह है कि खड़ीबोली हिंदी की तुलना में इन्हें क्या स्थान दिया जाय। इस देश ने दुर्भाग्य से भाषावार राज्यों का निर्माण किया है। कितने ही विचारशील व्यक्ति इसे भविष्य के लिए खतरनाक समझते हैं। आज से बीस-पचीस वर्ष पहले पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'बुँदेली' को लेकर विकेन्द्रीकरण का आन्दोलन चलाया था। उसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश के बुँदेली भाषी जिलों और उस समय के ग्वालियर, भोपाल, टीकमगढ़, छतरपुर आदि राज्यों को मिलाकर एक अलग 'बुँदेलखंड' प्रान्त के निर्माण की माँग की जाने लगी। अन्य राजनीतिक कारणों से वह आंदोलन उस समय नहीं चल सका। हमारे कितने ही भोजपुरी-भाषी मित्र निजी बातचीत में पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के कुछ जिलों को मिलाकर एक भोजपुरी राज्य बनाने की बात किया करते हैं जिसकी राजधानी बलिया हो। यदि एक बार यह विचारधारा जोर पकड़ ले तो सारा हिंदी क्षेत्र दर्जनों राज्यों में बँट जाय। क्या देश के व्यापक हित में ये विखंडनकारी प्रवृत्तियाँ वांछनीय हैं? एक ओर तो हम देश की अखंडता की बात करते हैं, और दूसरी ओर बिना परिणाम सोचे हुए हम ऐसी प्रवृत्तियों को उत्तेजित करते हैं जो विघटनकारी हैं।

किसी बोली का एक स्थायी रूप नहीं रह पाता क्योंकि बोली दस कोस पर बदल जाती है। सीतापुर की अवधी बैसवारे की अवधी से अनेक बातों में भिन्न है। यदि बोली को साहित्यिक रूप दिया जाय, तो किसी विशेष स्थान की बोली के रूप को 'मानक' या 'परिनिष्ठित' मानना पड़ेगा।

उसी प्रकार सारे हिंदी क्षेत्र ने क्षेत्रीय व्यवहार के लिए खड़ीबोली के हिंदी रूप को परिनिष्ठित या मानक मान लिया है। इसीके कारण सारे हिंदी क्षेत्र की एकता और एकरूपता बनी हुई है। हम अपने घरों में, अपने गाँवों में और अपने समाज में अपनी-अपनी बोलियाँ बोलते हैं किंतु हमारे सार्वजनिक जीवन की, साहित्य की और राजकाज की भाषा सारे हिंदी क्षेत्र में आधुनिक हिंदी है। अभी उसे इस विशाल क्षेत्र में पूरी तरह से प्रतिष्ठित करना है। यदि इस समय हम अपनी शक्ति बोलियों के विकास में लगाने लगेंगे तो हिंदी क्षेत्र की एकरूपता के कार्य में बाधा पड़ेगी और लोगों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जायगी।

दूसरी बात जो विचार करने की है वह यह कि क्या 'पूर्वी उत्तर प्रदेश', 'पश्चिमी उत्तर प्रदेश', 'उत्तरी उत्तर प्रदेश', 'दक्षिणी उत्तर प्रदेश' या 'मध्य उत्तर प्रदेश' में राज्य को विभक्त कर उसकी अखंड इकाई को भंग करना उचित होगा? सौभाग्य से अभी उत्तर प्रदेश के अन्य भागों को दिशा-बोध नहीं है, किंतु प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। 'पूर्वी' उत्तर प्रदेश की प्रतिक्रिया में 'पश्चिमी' 'उत्तरी' 'दक्षिणी', आदि खंड बन सकते हैं। ऐसा होने पर उत्तर प्रदेश की साहित्यिक इकाई छिन्न-भिन्न हो जायगी। हम मानते हैं कि स्थानीय समस्याओं के लिए छोटी स्थानीय संस्थाएँ उपयोगी होती हैं। इन

लिए नगर-सम्मेलन और जिला-सम्मेलन बनाये जाते हैं। किन्तु वे सब राज्य-सम्मेलन के उसी तरह अंग होते हैं जिस प्रकार नगर और जिले राज्य के प्रशासकीय अंग हैं। विखंडन की प्रवृत्ति राजनीति में जितनी अवांछनीय है उससे अधिक वह साहित्य और भाषा के क्षेत्र में घातक है। हिन्दी का दृष्टिकोण सदैव विशाल रहा है। वह समस्त भारत को सामने रखकर कार्य करती रही है। प्रशासकीय दृष्टि से राज्यों, जिलों और नगरों में (यदि आवश्यक हो तो तहसीलों में भी) स्थानीय संगठन हो सकते हैं, किन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का विभाजन अस्वस्थ है। वह लोगों को गलत ढंग से सोचने को विवश कर देगा। वह विखंडनकारी दृष्टिकोण उत्पन्न करेगा। हिन्दी के जो उत्साही कार्यकर्त्ता (जिनकी नियत, उद्देश्य की शुद्धता और उत्साह में हमें तनिक भी संदेह नहीं है) इन कार्यकलापों में क्रियाशील हैं उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे इस पर ठंडे दिल से विचार करें, और हिन्दी का कार्य करते समय हिन्दी की अखिल भारतीय परम्परा, उसके परम्परागत विशाल दृष्टिकोण और राष्ट्रीय एकता में उसके महान् प्रयोजन और शिव उद्देश्यों का सदैव ध्यान रखें।

इटली की हृदय-विदारक दुर्घटना—हम नहीं जानते कि अष्टग्रही योग का कुप्रभाव है या और कोई कारण है जिससे इस वर्ष संसार में लगातार इतनी भीषण दुर्घटनाएँ हुई हैं जितनी पिछले किसी एक वर्ष में शायद ही हुई हों। इस वर्ष बाली द्वीप में ज्वालामुखी का भंयकर विस्फोट हुआ, कश्मीर में पहाड़ के खिसक जाने से कितने ही होटल और मकान नष्ट हो गये। भारत के उन जिलों म बाढ़ें आयीं जिनमें उनका कभी भय न था, जापान में भूकम्प और समुद्री तूफान से धन-जन की हानि हुई। यूगोस्लाविया का स्कोपली नामक नगर भूकम्प से नष्ट हो गया, पूर्वी पाकिस्तान में तूफान से अपार हानि हुई और अटलांटिक महासागर के हाइटी और क्यूबा नामक द्वीप राज्यों में सौ मील प्रतिघंटा से अधिक वेग से चलनेवाला एक प्रभंजन (तूफान) आया जिसने वहाँकी फसलों को नष्ट कर दिया, नगर और गाँव उजाड़ दिये और हजारों व्यक्ति हताहत हुए। ये सब दुर्घटनाएँ अप्रत्याशित थीं और उनकी भीषणता में मनुष्य का कोई परोक्ष हाथ नहीं था। किंतु इटली की दुर्घटना मनुष्य-निर्मित एक बाँध के कारण हुई।

इटली के उत्तर-पूर्व में आल्प की पर्वत-श्रेणी चली गयी है। यहाँकी श्रेणी को 'कार्निक आल्प' कहते हैं। इस पर्वत से पियार नामक एक छोटी नदी निकलती है। वह बहुत दूर तक दो पहाड़ों के बीच की सँकरी घाटी में होकर बहती है। आजकल ऐसे स्थानों में बाँध बनाकर नदी के पानी को रोकने की प्रथा चल गयी है। इस संचित पानी को ऊँचाई से गिराकर बिजली पैदा की जाती है। इटली के इंजीनियरों ने बिजली बनाने के लिए इस घाटी में एक बाँध बनाया जो पाँच-छः सौ फुट ऊँचा है और ठोस सीमेंट का बना है। इसे वियान्त का बाँध कहते हैं। इस बाँध के कारण घाटी में एक झील बन गयी है जो प्रायः चार मील लम्बी है। उसकी अधिकतम गहराई प्रायः पौने नौ सौ फुट है। इस कृत्रिम झील के दोनों ओर जो पहाड़ हैं वे कच्चे हैं। कभी-कभी इसके कुछ पत्थर ढीले होकर नीचे झील में गिर जाते हैं।

बाँध के नीचे से पियाव नदी फिर से आरंभ होकर बाँध से निकले हुए फालतू पानी को लेकर बहती रहती है। उसकी धारा क्षीण है। घाटी बहुत दूर तक सँकरी है और नदी के किनारे उसके जलतल से कुछ ही ऊपर, बीसों गाँव बसे हैं। नदी की साधारण बाढ़ का जल उन गाँवों तक नहीं पहुँचता।

प्रायः दो वर्ष हुए, कुछ विशेषज्ञों ने इन पहाड़ों को देखकर यह मत प्रकट किया था कि झील के किनारे के कुछ पहाड़ खतरनाक हैं, क्योंकि वे खिसककर झील में गिर सकते हैं। किंतु इस चेतावनी पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया।

यहाँके लोग अधिकतर पशुपालन करते हैं। वे ऊन और मांस के लिए भेड़-बकरियाँ पालते हैं। इनमें बहुत से गड़रिये झील के किनारे के पहाड़ों पर अपनी भेड़-बकरियाँ चराया करते थे। कुछ दिनों पहले उन्होंने यह देखा कि भेड़-बकरियाँ झील के किनारे के पहाड़ों के ढालों पर जाने से भड़कती हैं। वे उनके भड़कने का कारण न समझ सके। वे उन्हें और ऊपर ले गये। मालूम होता है कि ईश्वर ने पशुओं को जो निसर्ग (छठी इंद्रिय) दिया है उससे उन्हें भावी दुर्घटना का आभास हो गया था। बुद्धिवादी मनुष्य में वह निसर्ग समाप्तप्राय हो गया है।

गत मास के आरंभ में इन पहाड़ों में लगातार कई दिन वर्षा हुई। एक रात, कोई पौने ग्यारह बजे, झील के किनारे के एक पहाड़ का एक बड़ा भाग टूटकर एकाएक झील में आ गिरा। अभियंताओं का अनुमान है कि पहाड़ का जो भाग टूटकर झील में जा गिरा, उसका घनफल कोई साढ़े तेरह लाख घनफुट था। वर्षा के कारण झील में पानी लबालब भरा था। ज्योंही यह पर्वत उसमें गिरा, त्योंही झील के पानी का तल कई फुट ऊँचा हो गया और उसके ऊँचे उठ जाने के कारण बाँध के ऊपर से, उसकी पूरी लम्बाई में, बहने लगा। यह पानी पियाव नदी में बड़े वेग से गिरा। यहाँ नदी की तलैटी बहुत सँकरी है, इसलिए उस सँकरी जल-प्रणाली में एक साथ लाखों टन पानी आ जाने से उसका जलतल एकदम ऊँचा उठ गया। लोगों का अनुमान है कि उस सँकरी घाटी में इतना अधिक पानी आया कि नदी का जलतल प्रायः दो सौ गज ऊँचा उठ गया। यह पानी बड़े वेग से बढ़ा चला जा रहा था। उस काल रात्रि में सैकड़ों घन गर्जन के समान विकराल नाद करता हुआ यह जल बरसाती पहाड़ी के भीषण वेग से घाटी में दौड़ा। अर्द्धरात्रि में किनारे के गाँवों में लोग सुख-निद्रा में सो रहे थे। जल के विकराल शब्द से कुछ लोग जग पड़े, किंतु उस अँधेरे में वे यह न जान सके कि पानी की अपार राशि कितनी ऊँची होकर बढ़ी चली आ रही है।

उस रात्रि में, एकाएक जग जाने के कारण वे वैसे ही घबराये हुए थे, किंतु पानी के विकराल रूप ने उन्हें और भी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ कर दिया। बहुत से गाँववाले तो सोते ही रह गये। पियाव का यह भीषण जल-प्रवाह विद्युत् गति से किनारे के गाँवों को अपनी चपेट से उखाड़ता और साथ में उन्हें लेता हुआ निकल गया।

झील में पर्वत के गिरने से जो पानी उससे उबलकर बाँध के बाहर निकल पड़ा था, उसे निकलने में केवल छः मिनिट के लगभग लगे। छः मिनिट में पियाव नदी का पानी बढ़कर दो सौ गज ऊँचा हो गया। जब झील का वह जल, जो पर्वत गिरने से बाँध के तल से ऊपर उठ गया था, निकल गया, और झील के जल का तल बाँध की ऊँचाई के बराबर हो गया तो पियाव नदी ने भी सिमिटकर अपना पूर्व आकार धारण कर लिया। किंतु उन छः मिनिटों में बीसों गाँव और कस्बे नष्ट हो गये। सम्पत्ति की अपार क्षति हुई। अनुमान है कि उन छः मिनिटों में निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोते हुए लगभग तीन हजार नर-नारी, बालक, बालिकाएँ और युवा, वृद्ध काल-कवलित हो गये। छः मिनिट बाद पियाव अपनी पुरानी चाल से अपने प्रकृत रूप में बह रही थी—केवल उसके किनारे के गाँव और कस्बे नहीं रह गये थे।

बाँध सीमेंट का बना है। वह संसार का चौथा सबसे ऊँचा बाँध है। वह इतना मजबूत बना है कि जल के इस भीषण धक्के की झोंक से भी वह ज्यों का त्यों खड़ा रहा।

इस शती में मनुष्य-निर्मित बाँध के कारण ऐसी दुर्घटना कहीं नहीं हुई। इस शती के आरंभ में चमोली के पास गंगाजी में मिलनेवाली एक नदी की एक सँकरी घाटी में किनारे का एक पहाड़ टूटकर ऐसा गिरा कि नदी के दूसरे पार की पहाड़ी तक की घाटी उसके मलवे से भर गयी। इस कारण उस नदी पर एक बाँध सा बन गया जो काफी ऊँचा और चौड़ा था। इससे नदी का बहाव रुक गया और धीरे धीरे वहाँ जल एकत्र होकर एक लम्बी चौड़ी झील बन गयी। उसमें महीनों जल जमा होकर उसका आकार बढ़ाता रहा। एक दिन यह "बाँध" झील के पानी का बढ़ा हुआ बोझ न सँभाल सका। झील के पानी ने अपने दबाव से उस बाँध को तोड़ दिया, और झील का जल एकदम मुक्त होकर बड़े वेग से गंगाजी में हरहरा कर गिरा जिससे गंगाजी का जल असाधारण रूप से बढ़ गया और उसका तल इतना ऊँचा हो गया कि किनारे के गाँव के गाँव नष्ट हो गये। गढ़वाल की पुरानी राजधानी श्रीनगर का पुराना भाग उसी बाढ़ में बह गया था।

मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर रहा है। कहीं कहीं तो उसे बिलकुल पालतू बनाकर उससे सर्कस के जानवरों की तरह काम ले रहा है। किंतु जब कभी यह पालतू प्रकृति बिगड़ उठती है, और जंगली तथा हिंसक होकर नर-संहार करके मानों अपना बदला निकालती है। फिर भी मनुष्य बड़ा आशावादी और [illegible] है। वियान्त बाँध की यह दुर्घटना इतिहास में रह जायगी, कि मनुष्य वियान्त से भी बड़े बाँध बनाता रहेगा।

सिङ्कियाङ्ग की सीमा पर रूस और चीन की मुठभेड़— रूस और चीन दोनों ही साम्यवादी (कम्यूनिस्ट) देश हैं। आरंभ में दोनों दूध-शक्कर की तरह मिले हुए थे। अभी पिछले वर्ष ही जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तब ख्रुश्चेव ने कहा था कि 'भारत हमारा मित्र है, पर चीन से हमारा रक्त का सम्बन्ध है।' जब साँप काटता है तब मनुष्य का रक्त विषाक्त हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। चीन और रूस का सम्बन्ध जिस रक्त पर आधारित था वह राष्ट्रीय स्वार्थों और सैद्धान्तिक मतभेद के विष से जहरीला हो गया है।

रूस सबसे पुराना कम्यूनिस्ट राज्य है। मार्क्स और ऐंगल्स ने साम्यवाद की कल्पना की, किंतु लेनिन ने रूस में कम्यूनिस्ट राज्य स्थापित किया। अतएव वह सबसे ज्येष्ठ साम्यवादी देश ही नहीं है, वरन् उसने साम्यवाद का प्रयोग करके उसके सिद्धान्तों को स्पष्ट और पुष्ट भी किया। वह विशाल और शक्तिशाली देश भी है। इसलिए कम्यूनिस्ट जगत् का वह सर्वमान्य नेता रहा, और सारे संसार के कम्यूनिस्ट दल उसीसे प्रेरणा लेते रहे।

दूसरे महायुद्ध के बाद चीन में साम्यवादी राज्य स्थापित हुआ। उस समय रूस में स्टालिन का प्रताप सू तमतमा रहा था। चीनी कम्यूनिस्ट कमजोर थे। रूस ने उनकी हर प्रकार सहायता की। उन्हें अपरिमित सैनिक सामान दिया। उनके उद्योगों को जमाने के लिए विशेषज्ञों, मशीनों, कच्चे सामान आदि देकर उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया। उसे धन की भी सहायता की। धीरे-धीरे चीन अपने पैरों पर खड़ा हो गया। उसके कम्यूनिस्ट नेता माओत्सुंग अपने को साम्यवाद के सिद्धा का आचार्य मानते हैं।

स्टालिन के बाद रूस में ख्रुश्चेव का शासन आरं हुआ। इस बीच रूस और अमरीका में शीतयुद्ध छि गया, और दोनों ही में आणविक अस्त्रों की होड़ चलने लगी। इस होड़ का परिणाम यह हुआ कि दोनों ही ने इतनी अधिक संख्या में भीषण आणविक अस्त्र बना डाले, और दोनों ही ने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि यह कहना कठिन हो गया कि कौन अधिक शक्तिशाली है। किंतु इतना निश्चित हो गया कि यदि दोनों में आणविक युद्ध हुआ तो दोनों ही नष्ट हो जायँगे, और साथ ही संसार के कितने और देश भी नष्ट हो जायँगे। इस भीषण परिणाम की सबसे अधिक जानकारी इन दोनों देशों के नेताओं को थी। अतएव दोनों ही युद्ध को बचा के उपाय खोजने लगे। ख्रुश्चेव ने शान्ति का अभि आरंभ किया और सारे संसार के कम्यूनिस्टों में शान्ति के प्रचार की लहर दौड़ गयी।

साम्यवाद का अंतिम उद्देश्य सारे संसार में कम्यूनिस्ट राज्य का स्थापित करना है। इसमें चीन और

इस में कोई मतभेद नहीं है। किंतु चीन का मत है कि और कम्यूनिस्ट देशों में साम्यवादी राज्य स्थापित करने के लिए युद्ध आवश्यक है। रूस इससे सहमत नहीं है। ख्रुश्चेव का कहना है कि कम्युनिस्ट प्रणाली इतनी श्रेष्ठ है कि अपनी श्रेष्ठता के कारण ही वह धीरे-धीरे सारे संसार में फैल जायगी, यदि साम्यवादी और पूंजीवादी देश साथ-साथ रहें तो पूँजीवादी देशों की जनता साम्यवादी देशों की जनता की आर्थिक और सामाजिक अवस्था से प्रभावित होकर स्वयं साम्यवादी व्यवस्था को स्वीकार कर लेगी। उनका यह भी कहना है कि साम्यवाद का उद्देश्य किसान और मजदूरों का हित करना है। यदि युद्ध हुआ तो सभी देशों में सबसे अधिक क्षति उन्हींकी होगी। इसलिए युद्ध की विभीषिका का खतरा मोल लेना बुद्धिमानी नहीं है। हाँ, साम्यवादी देशों को सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली रहना चाहिए जिससे पूंजीवादी देश उन पर आक्रमण करने का साहस न करें। इसीलिए रूस सहअस्तित्व और शान्ति के पक्ष में है। उसका मत है कि इस नीति से साम्यवाद को अंत में लाभ होगा। इसके विपरीत चीन का विश्वास सहअस्तित्व में नहीं है। वह सैनिक बल से साम्यवाद फैलाना चाहता है।

यह तो हुआ दोनों का सैद्धान्तिक मतभेद। किंतु बात इतनी ही नहीं है। माओत्सुंग अपने को स्टालिन के बाद सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कम्यूनिस्ट नेता समझते हैं। इतने दिनों रूस ने कम्यूनिस्ट संसार का नेतृत्व किया, अब चीन उसका नेता होना चाहता है। कम्यूनिस्ट जगत के नेतृत्व की समस्या इन दोनों देशों के मतभेद का दूसरा मुख्य कारण है।

साम्यवाद (कम्यूनिज्म) राष्ट्रीयता में विश्वास नहीं करता। प्रकृति से वह अंतर्राष्ट्रीय है। किंतु मनुष्य में राष्ट्रीयता की भावना इतनी गहरी पैठी हुई है कि अब साम्यवाद भी उसको एकदम नष्ट करने में समर्थ नहीं हुआ। इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय होते हुए भी दोनों ही देश अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा में दूसरे गैर कम्यूनिस्ट देशों की तरह ही जागरूक हैं चीन और रूस के स्वार्थ उस समय से आपस में टकराते रहे हैं जब रूस में जारशाही और चीन में मंचू वंश का राज्य था। एक ओर रूस मध्य और उत्तरी एशिया में बढ़ रहा था। दूसरी ओर चीन ने पड़ोस के कितने ही देशों को हड़प रखा था। चीन जब शक्तिशाली था तब उसने मंगोलिया, मंचूरिया, तुर्किस्तान आदि देशों पर उसी तरह जबर्दस्ती अधिकार कर लिया था जिस प्रकार अभी हमारे सामने उसने तिब्बत का अपहरण कर लिया है। रूसियों ने साइबीरिया में प्रवेश कर प्रशान्त सागर पर पहुँच कर ही दम ली। साइबीरिया के दक्षिण में उन्होंने कितने ही क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया जिन्हें चीन अपना बतलाते थे। इसी प्रकार मध्य एशिया में, कैस्पियन समुद्र के पूर्व उन्होंने बढ़ना आरंभ किया और तुर्किस्तान का अधिकांश (पश्चिम) भाग दबा लिया। दोनों में युद्ध भी हुआ। चीन हारा। उसने रूस को उन सब प्रदेशों का स्वामी स्वीकार कर लिया जिनके सम्बन्ध में विवाद था।

साम्यवादियों के आने के पहिले, चीन कमजोर था। जब साम्यवादी शक्तिशाली हुए तो उन्होंने घोषित किया कि चीन की असहायावस्था में चीन से दूसरे देशों ने जो संधियाँ की हैं वे असमान हैं, और जर्बदस्ती की गयी हैं। इसलिए वे उन्हें नहीं मानते। इसी घोषणा के अनुसार चीन ने तिब्बत पर अधिकार किया। उसकी सबसे लंबी सीमा रूस साम्राज्य से मिली है। उस सीमा पर भी काफी विवाद है। लाखों वर्गमीलों के क्षेत्र पर, जो इस समय रूस साम्राज्य का अंग है, वह अपना दावा करता है। यह इन दोनों देशों के वैमनस्य का तीसरा प्रमुख कारण है।

ये सब मतभेद चल रहे हैं किन्तु अभी चीन के सिङ्कियाङ्ग प्रान्त में जो घटनाएँ हुई हैं उनसे दोनों देशों के बीच का तनाव बहुत बढ़ गया है, और इससे स्थानीय उग्र झगड़ा हो सकता है। हममें से तो शायद कितने ही लोगों ने तो सिङ्कियाङ्ग का नाम भी इसके पहले नहीं सुना होगा। अतएव यहाँ उसका सामान्य परिचय देना उपयोगी होगा।

सिङ्कियाङ्ग का वास्तविक नाम तुर्कितान है। कैस्पियन सागर के पूर्वी किनारे से आरंभ होकर यह क्षेत्र चीनी के कांसू प्रान्त और मंगोलिया तक चला गया है। इसका पश्चिमी भाग रूस के अधीन है। इसी भाग में समरकंद, बुखारा, खीवा और अश्काबाद आदि संसार-प्रसिद्ध नगर हैं। तुकिस्तान के पूर्वी भाग पर चीन का अधिकार है। इसके प्रसिद्ध पुराने नगर काशगर, खोतन और यारकंद हैं। राजधानी उरुमची नामक नगर है। चीनी लोग विजित देशों को चीन का अंग बतलाने के लिए उसके नगरों, गाँवों, नदियों, पहाड़ों आदि के पुराने नाम मिटाकर चीनी नाम रख लेते हैं जिससे कालान्तर में लोग पुराने नाम भूल जायें और उन्हें मौलिकरूप से चीनी ही समझने लगें। इसी प्रयोजन से उन्होंने यहाँके नगरों को चीनी दे दिये हैं। जब चीनियों ने पूर्वी तुर्किस्तान पर अधिकार कर लिया तो उसका नया चीनी नाम "सिङ्कियाङ्ग" रख दिया। इस शब्द का अर्थ है "नया प्रदेश"।

सिङ्कियाङ्ग, अधिकृत पूर्वी तुर्किस्तान एक विशाल देश है। उसका क्षेत्रफल १६,४६,८०० वर्ग किलोमीटर है। यह तीन ओर ऊँचे पर्वतों से घिरा है। केवल पूर्व में पर्वत नहीं हैं, किन्तु उधर लम्बी-चौड़ी मरुभूमि है। बीच का मैदान एक पठार है जो दो हजार से लेकर पाँच हजार फुट तक ऊँचा है। यह प्रायः सारे का सारा मैदान मरुभूमि है। यहाँ पानी नाममात्र को बरसता है। देश में एक ही बड़ी नदी है जिसका नाम तारिम नदी है। यह कई सौ मील लम्बी है। वह वर्ष में अधिकतर सूखी रहती है। इस नदी ने अपना मार्ग कई बार बदला है।

जो नगर इसकी पुरानी धारा के किनारे थे, वे तब वीरान हो गये जब नदी उनसे दूर चली गयी। इन पुराने नगरों को मरुभूमि की बालू ने दबा दिया है। मुसलमानों के आक्रमण के पहिले यहाँके लोग बौद्ध थे और उनका भारत से गहरा सम्पर्क था। किंतु जब अरबों ने उनपर आक्रमण किया और यहाँके निवासी हार गये तब उन्हें मुसलमान बना लिया गया। यह घटना तारिम नदी की धारा के अपने पुराने स्थान से हटने के बाद की है। इसलिए मरुभूमि में दबे हुए नगर उस समय के हैं जब यहाँके लोग बौद्ध थे। प्रसिद्ध स्वीडिश यात्री स्वेन हेडिन ने तारिम नदी की घाटी में दबे हुए इन नगरों की खोज की। सर आरियल स्टाइन बालू में दबे हुए पुराने नगरों से बहुत से पुराने बौद्ध चित्र तथा अन्य पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री ले आये थे। वह सब सामग्री दिल्ली के मध्य एशिया संग्रहालय में सुरक्षित है।

तारिम नदी के किनारे-किनारे प्राचीन युग में वह मार्ग जाता था जिसका नाम "रेशम मार्ग" (सिल्क रोड) पड़ गया था, और जिस मार्ग से योरप और पश्चिमी एशिया के लोग चीन जाते थे।

यहाँकी जनसंख्या बहुत कम है। १९५७ में इस विशाल भूभाग की कुल जनसंख्या केवल ५६ लाख थी। पहाड़ों के ढलान पर घास खूब होती है। इस प्रदेश में ऊँट और घोड़े अच्छी जाति के होते हैं। भेड़ें भी खूब और अच्छी हैं। गाय-बैल भी पाले जाते हैं। मरुभूमि में जगह-जगह मरुद्यान (ओसिस) हैं। इन्हीं मरुद्यानों में नगर बसे हुए हैं और उन्हीं के आस-पास खेती होती है। यहाँकी मिट्टी और जलवायु में सरदे, अनार आदि फल बहुतायत से होते हैं। इस देश में अपार खनिज सम्पत्ति है। मिट्टी का तेल भी मिला है। किंतु यहाँ यातायात के साधन बहुत कम हैं। लोग अभी प्रशिक्षित भी नहीं हैं। इसलिए अभी इस खनिज सम्पत्ति का उपयोग नहीं हो रहा। यहींके पहाड़ों में "जेड" नामक पत्थर निकलता है जो अर्द्धरत्न समझा जाता है और चीन में जिसकी मूर्तियाँ और दूसरा सामान बनाया जाता है।

चीनियों की यह नीति है कि वे विजित देशों में चीन निवासियों को भेजकर बसा देते हैं जिससे कालान्तर में वहाँ चीनियों का बहुमत हो जाय। यही वे तिब्बत में कर रहे हैं। सिङ्कियाङ में भी उन्होंने यही किया, किंतु यह मरुभूमि है। इसमें अधिक चीनी नहीं खप सके। फिर भी उनकी संख्या दस प्रतिशत हो गयी है। देश की खेती पर उनका प्रायः एकाधिकार हो गया है।

यहाँके वास्तविक निवासियों को "तुर्क" कहा जाता है। इनमें कितनी ही जातियाँ हैं और ये जातियाँ पश्चिमी और पूर्वी तुर्किस्तान में बसी हुई हैं। पश्चिमी तुर्किस्तान के लोग इन्हींके भाई-बंद हैं। चीनियों से इनकी कोई बात नहीं मिलती। इसीलिए यहाँके तुर्क पश्चिमी तुर्किस्तान (रूसी) तुर्कों से अधिक मेल रखते हैं और उनसे प्रभावित हैं। पश्चिमी तुर्कों ने बड़ी उन्नति की है, किन्तु चीनी शासन में रहनेवाले तुर्कों की दुर्दशा है। इसलिए वहाँके तुर्कों ने चीन के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया। प्रायः पचीस-तीस वर्ष पहिले यहाँ विद्रोह हुआ और तुर्कों ने चीनियों को भगा दिया। उस समय चीन कमज़ोर था। रूसियों ने अपनी सेना भेजकर इस पर अधिकार कर लिया और यहाँका शासन सुधारा। जब चीन पर कम्यूनिस्ट दल का अधिकार हो गया तो रूसियों ने इसे फिर चीनियों को सौंप दिया। चीन के शासन से ये तुर्क संतुष्ट नहीं हैं, और अवसर पाते ही विद्रोह कर देते हैं। चीन से सिङ्कियाङ को शीघ्र सेना भेजने के लिए कोई संतोषजनक मार्ग नहीं है। जब चीन ने तिब्बत पर अधिकार कर लिया तब उसने देखा कि तिब्बत से सिङ्कियाङ को सबसे शीघ्रता से सेना भेजी जा सकती है। किन्तु इसके लिए भारत के अकसई चीन में होकर जाना पड़ता है। उस समय भारत और चीन में मित्रता थी। वह "हिंदी चीनी भाई-भाई" का युग था। चीन से हमें कोई आशंका न थी। इसलिए हमने अकसई चीन की सुरक्षा का प्रबंध नहीं किया। रास्ता साफ देखकर चीनियों ने अकसई चीन में होकर तिब्बत के गर्टो नगर से सिङ्कियाङ तक सड़क बना ली। भारत-चीन सीमा का विवाद यहीं से खुले रूप में आरंभ हुआ।

सिङ्कियाङ, में चीनी अत्याचार से घबड़ाकर बहुत से तुर्क अपने भाईबंदों के पास रूसी तुर्किस्तान में भाग रहे हैं। चीनी उन्हें जाने से रोकते हैं। कुछ दिन पहिले चीनी तुर्किस्तान के कज़्ज़ाकों का एक बड़ा जत्था अपने भाइयों के पास कज्जाकिस्तान चला गया। चीनियों ने उसे रोकने का प्रयत्न भी किया। अब चीनी सरकार रूसियों पर यह आरोप लगा रही है कि वे सिङ्कियाङ के लोगों को चीन के विरुद्ध भड़का रहे हैं और विद्रोह करने में उनकी सहायता कर रहे हैं। इस झगड़े को लेकर दोनों राज्यों की सीमा पर एक दो बार गोलियाँ भी चल चुकी हैं। किन्तु यातायात के साधनों की कमी के कारण चीन के लिए वहाँ सेना और सामान भेजना भी कठिन है। इसके विपरीत रूस का यह क्षेत्र उन्नत है। इसलिए छोटी-मोटी मुठभेड़ भले ही हो जाय, बड़े युद्ध की संभावना कम है।

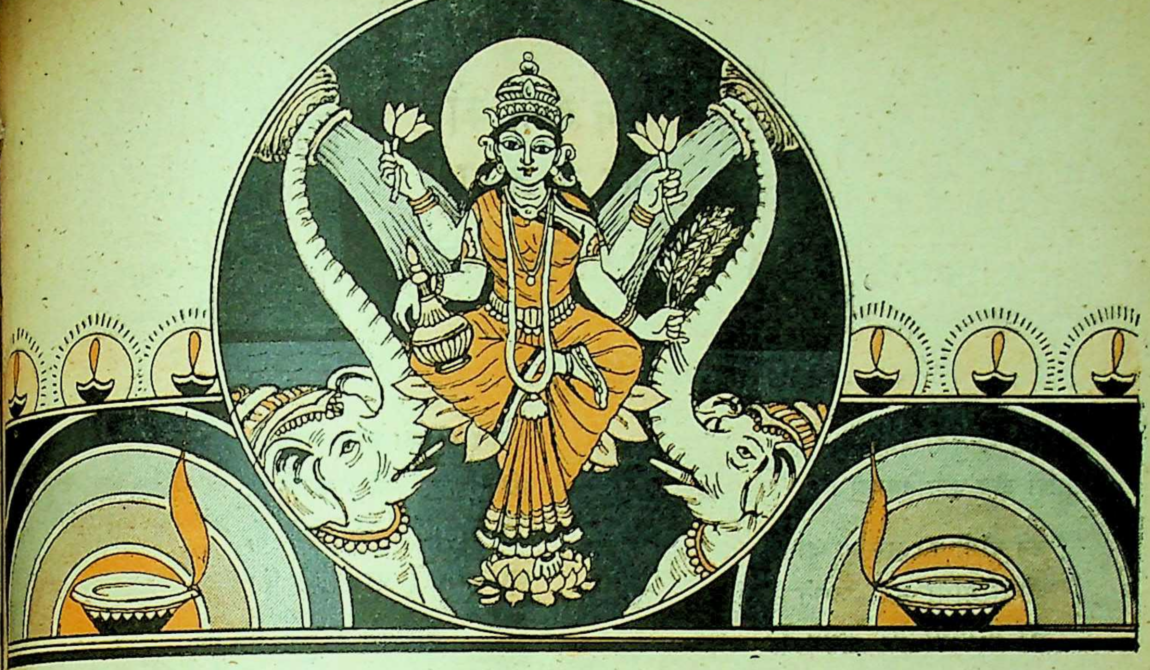

लक्ष्मी-स्तुति

वंदे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजांबूनदाभां
तेजोरूपाम् कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलांगीम् ।
बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मं दधाना-
माद्यां शक्ति सकलजननीं विष्णुवामांकसंस्थाम् ।।

ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसतमुखीं कोटिबालार्कभासाम्
विद्युद्वर्णां वरकरधरां भूषणाढ्याम् सुशोभाम् ।
बीजापूरं सरसिजयुगं बिभ्रतीं स्वर्णपात्रम्
भर्त्रा युक्तां मुहुरभयदां मह्यमप्यच्युतश्रीः ।।

कटाक्ष इह कामधुक् तव मनस्तु चिंतामणिः
करः सुरतरुः सदा नवनिधिस्त्वमेवेंदिरे !
भवेत्तव दया सुधारसरसायनं चान्वहम्
मुखं तव कलानिधिर्विविधवाञ्छितार्थप्रदम् ।।

यथा मणिः स्पर्शनतोऽयसोपि
सुवर्णता स्यात्कमले तथा ते ।
कटाक्षसंदर्शनतो जनाना-
ममंगलंनामपि मंगला त्वम् ।।

देहीति नास्तीति वचःप्रवेशाद्
भीतो रमे त्वां शरणं प्रपद्ये ।
अतः सदाऽस्मिन्नभयप्रदा त्वं
सहैव पत्या मयि सन्निधेहि ।।

आद्यादिविष्णोः स्थिरधर्मपत्नी
त्वमम्ब पत्या मयि सन्निधेहि ।
आद्यादिलक्ष्मीस्त्वदनुग्रहेण
पदे पदे मे निधिदर्शनं स्यात् ।।

यस्याः कलायाः कमलोद्भवाद्या
रुद्राश्च शक्रप्रमुखाश्च देवाः ।
जीवन्ति सर्वे अपि शक्तयस्ते
प्रभुत्वमाप्ताः परमायुशस्ते ।।

लिलेख निटिले विधिर्मम लिपिं विसृज्यान्तरम्
त्वया विलिखितव्यमेदतितफलप्राप्तये ।
तदन्तरफले स्फुटं कमलवासिनीं श्रीरिमां
समर्पय समुद्रिकां सकलभाग्यसंसूचिकाम् ।

भवदावेशभाग्यार्हो भाग्यवानस्मि भार्गवि !
त्वत्प्रसादात्पवित्रोहं लोकमातर्नमोऽस्तु ते ।।

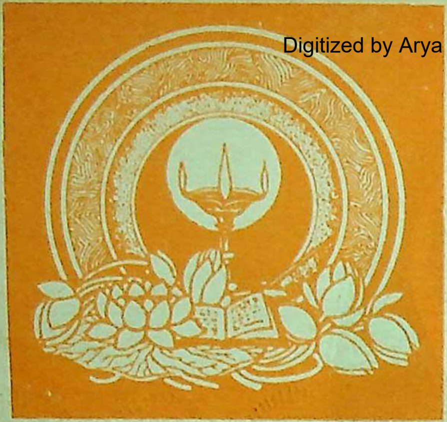

उन दीपों को भूल न जाना !

श्री रामदेव आचार्य

दीवाली के पुण्य पर्व पर
लाखों दीप जलानेवालो !

उन दीपों को भूल न जाना,
जो सीमाओं पर जलते हैं,
जो सीमाओं पर बुझते हैं।

उनका जलना सारे भारत का गौरव है,
उनका जलना कला-सभ्यता का प्रकाश है ;
उनका जलना प्रजातंत्र की है अखण्डता,
उनका जलना संस्कृतियों का चिर विकास है।

उनका बुझना नहीं तिमिर का उद्घोषक है,
उनका बुझना तो फूलों का मुरझाना है ;
उनका बुझना देश-भक्ति की है पावनता,
उनका बुझना स्वयं मृत्यु का मुस्काना है।

उन दीपों का नाम अनश्वर
जो तूफानों में जलते हैं,
जो पीड़ाओं में पलते हैं,
जो अंगारों पर चलते हैं।

दीवाली के पुण्य पर्व पर.... !

उन दीपों में नये राष्ट्र का उद्बोधन है,
उनका जलना लिप्साओं की हीन पराजय ;
उन दीपों से मानवता का संरक्षण है,
उन दीपों के चरणों पर झुक जाय हिमालय !

उनका बुझना नये शहीदों का मेला है,
उनका बुझना देश-खेत को देह-खाद है ;
उनका बुझना बलिदानों की नई नींव है,
उनका बुझना बुनियादों की नई याद है।

उन दीपों को शत प्रणाम हैं—
जो बुझ जाने को जलते हैं,
तोपों के सम्मुख चलते हैं,
बर्फीली ऋतु में गलते हैं,

दीवाली के पुण्य पर्व पर लाखों दीप जलानेवालो !
उन दीपों को भूल न जाना जो सीमाओं पर जलते हैं !

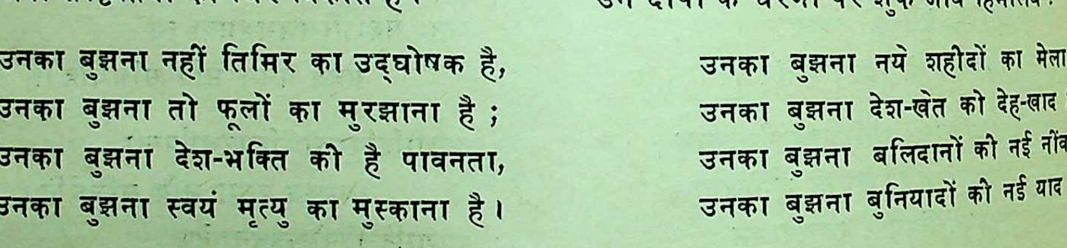

विदेशों में दीपोत्सव

श्री उदयनारायणसिंह

दीपावली का त्योहार अंधकार पर प्रकाश की ओर असत्य पर सत्य की विजय का द्योतक है। यह ोहार अत्यधिक प्राचीन काल से भारत में मनाया ता है। "स्कन्द", "भविष्य" तथा "पद्मपुराण" में ावली के मनाने का उल्लेख किया गया है। वात्स्यायन "कामसूत्र" में यक्षरात्रि का जिक्र है जिसे दीपावली ाया जाता है। सन् १०३० ईसवी में अरबी विद्वान् रूनी ने अपने भारत-यात्रा विवरण में लिखा है 'उस दिन विष्णुपत्नी लक्ष्मी का पूजन होता है। खेलकर लोग भाग्य की परीक्षा करते हैं। बढ़िया-ढ़िया वस्त्र पहनकर एक दूसरे से मिलते तथा पान-ारी भेंट करते हैं।" पन्द्रहवीं शताब्दी में इटली के ी निकोलाई काउन्ट ने विजयनगर की यात्रा (सन् २०) की थी और उसने इस बात का उल्लेख किया कि "दीपावली के अवसर पर मंदिरों में दीपक जलाये ते थे।" १६वीं शताब्दी में सम्राट् अकबर के समय भी भारत में दीपोत्सव मनाने की प्रथा जारी रही। लफजल ने लिखा है कि दीपावली वैष्णवों का त्योहार । इस मौके पर आतिशबाजी का व्यापक आयोजन या जाता है। मुसलमानों के त्योहार शब्बेरात की दीपक जलाये जाते हैं तथा लोग जुआ खेलते हैं। ांगीर के समय में भी दीपावली मनाने की प्रथा जारी । इस प्रकार से प्राचीन काल से आज तक भारत में ावली मनाने का प्रचलन चला आ रहा है।

प्रकाश का प्रतीक यह पर्व संसार के अन्य भागों भी किसी न किसी रूप में अवश्य मनाया जाता है। के मनाने का समय हो सकता है कि विभिन्न देशों में हो लेकिन इस प्रकार के आयोजन संसार के भिन्न देशों में सांस्कृतिक एकता एवं भावात्मक सहयोग कायम रखने के द्योतक हैं। इससे यह प्रकट होता कि विभिन्न देशों में प्रसन्नता एवं खुशी के पावन-पर्वों मनाने में दीपोत्सव को कितना अधिक महत्त्व दिया ता है।

चीन तथा जापान

जब से मोमबत्तियों का प्रकाश के रूप में उपयोग किया जाने लगा तब से चीन की जनता के दैनिक जीवन में लालटेनों का महत्त्व अधिक बढ़ गया। चूंकि वर्तमान समय में विद्युत् का व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है इसलिए मोमबत्तियों का इस्तेमाल धीरे-धीरे कम हो गया है। चीन में दीपोत्सव को "तेंग चिह" अथवा लालटेनों के त्योहार के रूप में संबोधित किया जाता है। यह त्योहार वर्ष में दो बार मनाया जाता है यथा—जनवरी के मध्य में तथा जुलाई के मध्य में। इन दोनों ही त्योहारों में जनवरी के मध्य में मनाया जानेवाला लालटेनों का त्योहार अधिक लोकप्रिय एवं प्राचीन काल से चला आ रहा है। जनवरी के मध्य तक जाड़ा भी कम हो जाता है और जनता को अपने कृषि-कार्यों से कुछ राहत मिलती है। ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि चीन में इस त्योहार को मनाने की प्रथा ताँग-वंश (६१८-९०७) से प्रारम्भ हुई। कई महीनों पूर्व से इसके मनाने की तैयारियाँ की जाती थीं और तीन दिनों तक रात में राजधानी में प्रकाश का व्यापक आयोजन किया जाता था। राजधानी में १०० फुट ऊँचा एक चक्र बनाया जाता था जिसपर हजारों की संख्या में दीपक जलाये जाते थे। यह चक्र जब गोलाई में घुमाया जाता था तब दीपों का प्रकाश अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होता था। इस समय इस चक्र के नीचे बैठकर युवतियाँ गाना गाया करती थीं। तब से लेकर आज तक चीन में इस उत्सव को मनाने की प्रथा जारी है। पेकिंग का पूर्वी भाग जहाँ मिंग-काल (१३६८-१६४४ ईसवी) में लालटेनें अधिक संख्या में तैयार की जातीं तथा बेची जाती थीं आज भी लालटेनों के बाजार के नाम से संबोधित किया जाता है। ये लालटेनें विभिन्न प्रकार से बनायी जाती हैं और उन पर पहेलियाँ (तेंग मी) लिखी रहती हैं। जो इन पहेलियों का अर्थ बता देता है उसे पुरस्कार दिया जाता है। इस त्योहार पर सामान्य

जनता के घरों में विभिन्न आकृतियों की लालटेनों की सजावट तथा प्रकाश किया जाता है मानों हर गाँव एवं बस्ती में एक नई खुशी की लहर दौड़ गयी हो।

जापान में इस त्योहार को "तोरोनागाशी" कहते हैं। यहाँ भी दीपक की जगह लालटेनें जलायी जाती हैं जिस कारण यहाँ भी यह लालटेनों के त्योहार के नाम से संबोधित किया जाता है। यहाँ तरह तरह की लालटेनों को जलाकर पानी में तैरा दिया जाता है जिसकी सुन्दरता अधिक आकर्षक प्रतीत होती है। जापान में यह त्योहार लड़ाई में मारे गये सैनिकों की आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए भी मनाया जाता है। जापानियों का ऐसा विश्वास है कि अगणित आत्माएँ जिनके परिवार में कोई बच नहीं रहा है व्याकुल भटक रही हैं और इस त्योहार पर जल में प्रवाहित लालटेनों पर लिखी गयी प्रार्थनाओं से उनकी आत्मा को शांति मिलेगी।

दक्षिण-पूर्व एशिया में

थाइलैंड में दीपावली का नाम "लोई कुंथल" है। इस दिन यहाँके निवासी अपने गृहों, विशेषरूप से मंदिरों को, दीपकों की कतारों से सजाते हैं। इस अवसर पर वे पत्ते के बने दीपकों को जलाकर नदी अथवा झीलों में प्रवाहित करते हैं। यह त्योहार जनता द्वारा जल की देवी को प्रसन्न करने के लिए मनाया जाता है। इस त्योहार पर बच्चे आतिशबाजी छोड़ते हैं।

इन्डोनेशिया के अनेक द्वीपों के निवासी कृषि की समृद्धि के लिए देवी की उपासना स्वरूप दीप जलाते हैं। इस उपासना में इन्डोनेशिया के बहुसंख्यक मुसलमान भी भाग लेते हैं। कम्बोडिया तथा वियतनाम में भी यह पर्व चीन की ही अनुकृति पर मनाया जाता है।

बर्मा एवं नेपाल में

बर्मा में यह त्योहार नवम्बर मास में करीब-करीब उसी समय मनाया जाता है जब कि भारत में। बर्मा की जनता का, जो बौद्ध धर्म को माननेवाली है, ऐसा विश्वास है कि भगवान् गौतम बुद्ध स्वर्ग में अपने उपदेश को समाप्त करके इसी दिन पृथ्वी पर उतरे थे। भारत की भाँति बर्मा की जनता भी इस त्योहार को धार्मिक भावना से मनाती है और इस अवसर पर प्रकाश का व्यापक आयोजन कर हँसी-खुशी के साथ एक दूसरे से गले मिलती है। बर्मा में इस पर्व को "तडीजूँ" के नाम से पुकारते हैं। सभी घरों के दरवाज़ों पर रंग-बिरंगी बन्दनवारें बाँधी जाती हैं और भाँति-भाँति के कण्डील टाँगे जाते हैं।

नेपाल की जनता भी भारतीय जनता के समान ही इस पर्व को उसी विश्वास एवं प्रसन्नता से मनाती है जैसी भारत की जनता। इस अवसर पर नेपाल की जनता दीपकों को पंक्तिबद्ध रखकर भगवती लक्ष्मी की पूजा करती है। नेपाली लगातार पाँच दिनों तक यह पर्व मनाते हैं, और प्रत्येक दिन कुछ निश्चित जानवरों की देवी-देवताओं की ही भाँति पूजा-अर्चा होती है। प्रथम दिन श्वान की, दूसरे दिन गाय बैलों की त तीसरे दिन जो मुख्य दिन होता है, लक्ष्मी की पू करते हैं। इस अवसर पर नेपाली चित्रकारों द्वा लक्ष्मी के बनाये गये सुन्दर चित्र बिकते हैं जिनकी नेपा पूजा करते हैं।

श्रीलंका में दीपावली वहाँका राष्ट्रीय पर्व है यहाँके निवासी दीपक को ही लक्ष्मी मानकर उस पूजा करते हैं।

पश्चिमी देशों में

पश्चिमी देशों की जनता में भी दीपोत्सव मना की प्रथा किसी न किसी रूप में कायम है। वह अक्स बड़े दिन या नववर्ष दिवस पर प्रकाश का आयोज करती है और मोमबत्तियों के अतिरिक्त रंग-बिरंगे ब जलाये जाते हैं। स्वीडन में इस पर्व को "लूसिया दिव कहते हैं जो १३ दिसम्बर को मनाया जाता है। तिथि को स्वीडन में वर्ष की सबसे बड़ी रात होती है वहाँकी जनता का यह विश्वास है कि इस दिन स्वीड का सूर्य अंधकार पर विजय प्राप्त कर लेता है। प्रकार यहाँ भी यह पर्व अंधकार पर प्रकाश की विज का द्योतक है। इस अवसर पर स्वीडन में मोमबत्ति तथा रंग-बिरंगे बल्बों का व्यापक रूप से आयोज किया जाता है और प्रत्येक मकान मोमबत्तियों ए विद्युत बल्बों के प्रकाश से जगमगाता दिखायी देता है स्वीडन में "लूसिया दिवस" से संबंधित अनेक कथा जनता में प्रचलित हैं। इस मौके पर इटली का एक गी गाया जाता है क्योंकि "लूसिया दिवस" का आर इटली से ही माना जाता है।

ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका आदि देशों में भी हमें है कि नव-वर्ष दिवस तथा बड़े दिन के मौके पर प्रका करने का कितना व्यापक आयोजन किया जाता है इंगलैंड का "फाक्सडे", रूस का "मई दिवस" तथा इस्ला देशों की "शब्बेरात" दीपावली के ही दूसरे रूप कहे हैं। इस दिवस को मनाने की मूल भावना किसी न कि रूप में प्रायः वही है जो हमारे देश में है। इस अव पर प्रत्येक मकान मोमबत्तियों तथा प्रकाश से जग उठता है और आबाल-वृद्ध सभी लोग समान रूप से मौके पर खुशियाँ मनाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दीपोत्सव का एक वि व्यापी स्वरूप है जो प्रायः प्रत्येक देश में वर्ष में किसी किसी निर्धारित समय पर जरूर मनाया जाता है। त्योहार की मूल भावना विभिन्न देशों की जनता निकट लाने में किसी न किसी रूप में अवश्य सहा सिद्ध होगी। प्रकाश का प्रतीक तथा अंधकार पर वि प्राप्त करने का द्योतक यह पुनीत पर्व विभिन्न देशों जनता के विश्वासों तथा भावनाओं में किसी न रूप में मेल कराने में कभी न कभी अवश्य सफल हो

कविवर नवीन के काव्य में दीप-माला

'विश्वनाश का तिमिर हरो चमके वसुधांगन'

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे

कविवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आजीवन रमते योगी और बहते पानी रहे। 'हम अनिकेतन' का गायक चिर-अनिकेतन ही रहा। वे अपनी स्व-रचित काव्य-पंक्तियों--'हम हैं मस्त फकीर' और 'हम अलख निरंजन के वंशज'--की प्रतिमूर्ति थे। न ऊधो का लेना न माधो का देना। झाड़-फूँककर साफ करनेवाली प्रवृत्ति के वे प्रतीक थे। सब कुछ दिया, लुटाया--दोनों हाथों से उलीचा, प्राप्त कुछ नहीं किया। ऐसे क्रान्तिकारी एवं अक्खड़ कवि ने, अपने प्रकाशित-अप्रकाशित काव्य में, दीपक के प्रति अपना अत्यधिक अनुराग अभिव्यक्त किया है। उन्होंने दीपक को अनेक दृष्टिकोणों से देखा-परखा है।

सन् १९४६ में दीपावली के अवसर पर लिखित 'फिर आ गई दिवाली' शीर्षक अपनी एक असंगृहीत कविता में, कवि ने सूझ-बूझ परिपूर्ण मार्मिक अभिव्यंजना की है:--

"तुमने मूँदी आँखें अपनी, बुझे दीप युग मेरे,
उठ आये तम के दल-बादल, दशो दिशाएँ घेरे,
प्राणों का यह कीर, कहो, किस ज्योति-किरण को हेरे?
अब क्या मम दिनमान? और क्या, मेरे साँझ-सबेरे?
छाई जीवन में निशीथिनी अब तो काली-काली?
ओ मेरी अंतर-वासिनि, क्यों आई आज दिवाली?"

'नवीन' जी ने 'दीपक' को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया है। आलोकदाता दीपक महापुरुषों का परिचायक है। ऐसी ज्योति-किरण ही पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर, तिमिर को भगाकर, मार्ग प्रशस्त करती है। विश्व-आलोक-पुंजों का ही अनुसरण करता है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने भूमिदान-यज्ञ के पुरोधा आचार्य विनोबा भावे की साधना-निरत वर्तिका की प्रभा की उपासना की है:--

"ध्यान में वह सिद्ध बैठा यों कि जैसे लौ--
हो अकम्पित, बात के आघात सह सौ-सौ,
पवन-पीड़ित, किन्तु स्थिर, हिमगिरि सदृश हो जो,--
इन्द्रियार्थों के झकोरों से चलित क्यों हो?
हो चुकी पूरी पराजय ध्वान्त तामस की,
जग चुकी है वर्तिका स्थिरकाय तामस की।"

कवि ने अपने आराध्य हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी के महिमामय बलिदान को भी दीप-बाती के माध्यम से निरूपित किया है। कवि स्वयं महान् बलिदानी था इसलिए उसने इस बलिदान-परक आख्यान पर अपना काव्य-वैभव सम्पूर्ण रूप में उड़ेल दिया है। 'नवीन' जी गणेशजी की वन्दना करते हुए लिखते हैं:--

"घोर अन्धकार में जगायी आत्म-दीप-बाती,
दिशाएँ संजोयी, किया आलोकित आसमान,
विस्मृत, विकृत जग-मग जग-मग हुआ,
भ्रमित समाज को मिला ज्वलन्त दीप-दान।"

अमर शहीद गणेशजी की भाँति, कविवर 'नवीन' ने 'स्वराज्य माझा जन्म सिद्ध अधिकार आहे' मन्त्र के उद्‌गाता एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दधीचि महात्मा तिलक को भी अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत की। तिलकजी की मृत्यु के पश्चात् 'प्रभा' पत्रिका में सन् १९२० में लिखित अपनी एक असंगृहीत कविता में, कवि ने 'तिलक' को 'दीपक राज' की पुनीत संज्ञा से विभूषित कर, भारतमाता से यह गीत गवाया है:--

"बुझ गया मेरा दीपक राज।
अंचल से ढाँका था मैंने तो भी हुआ अकाज॥
तिमिराच्छन्न कर्मपथ की वह 'माफलेषु' की ज्योति,
मेरे नैश गगन के नक्षत्रों का वह सिरताज,
बुझ गया मेरा दीपक राज!"

'नवीन' जी का यौवन कारागृहों में गल गया। जीवन राष्ट्रार्पित रहा। हृदय आमरण मधुर गीत गाता रहा। कण्ठ विप्लव-गायन के शोले निस्रत करता रहा। जिह्वा राष्ट्र-भाषा की सेवा में सदा-सर्वदा जुटी रही। आत्मा प्रकृति तथा परमात्मा के चिर-तत्त्वों के अनुशीलन में लगी रही। मन निर्विकार होकर पर-दुःख, संताप एवं अत्याचार से विह्वल और भभक उठता। ऐसे महाप्राण तथा अपराजेय सेनानी के जीवन में होली

तीन मुक्तक

श्री कृष्णनन्दन 'पीयूष'

जनवरी का मास—

रात भर जगता रहा, जगती रही यह प्यास,
और ऊपर मौन चिन्तित सा रहा आकाश,
नींद भागी, नयन भरमाये, न पाया चैन,
करवटें बदलीं, लगा था जनवरी का मास।

मीत—

ऐसे तो बहुत गीत मैं भी लिख लेता हूँ,
सूखी रेती में मैं नाव भी खे लेता हूँ,
अधरों पर आयें जो वही गीत मेरे हैं,
आँखें भर लायें जो वही मीत मेरे हैं।

शमा—

बात बात पर न जला पंख, अरे, परवाने,
लगते जो अपने हैं, वे ही तो बेगाने,
बीत गई रात, हुआ प्रात, व्यर्थ रोता है,
वैसे हर दीपक भी शमा नहीं होता है।

या दीवाली का क्या महत्त्व? तिलक, गणेशशंकर विद्यार्थी, विनोबा भावे, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि ने तो 'तलवार की धार पर धावनो है' को ही अपना जीवन-तत्त्व बना रखा था। कवि सर्वथा सटीक वाणी में कहता है और आपबीती सुनाता है :—

उनकी क्या होली दीवाली? उनके क्या त्यौहार?
जिनने निज मस्तक पर ओढ़ा जन-विप्लव का भार।
कर्मपथ है खांडे की धार।"

कवि पूर्ण आशावादी है। वह कर्म में आस्था रखता है। वह अवनि को स्वर्ग बनाने का इच्छुक है। अन्धकार पर आलोक की विजय हो, सर्वत्र आभा परिव्याप्त रहे और मानव-जीवन सुखी-समृद्ध हो, यही उसकी मूल भावना है। वह सबके लिए, मुक्तकण्ठ से यह गाता है—

"भारत भूमि तो सदा रही है प्यारी क्रीड़ास्थली तुम्हारी,
सदा भेजते रहे यहाँ तुम अपने तेज अंश अवतारी,
वर दो, इस स्वाधीन देश के हम आबाल-वृद्ध नर-नारी,
तव विश्वम्भर रूप निहारें, करें नित्य उसका आराधन;
हे ज्योतिर्मय! विश्व-नाश का तिमिर हरो, चमके वसुधांगन।।"

तुम्हें खोजते उमर बिताई

श्री इन्दुकान्त शुक्ल

यह कैसा संयोग कि दृग से आँसू, नभ से तारा ढलका,
आज प्राण आकुल क्यों मेरे किसने मुझे पुकार लगाई?

सुधियों-साधों-सपनों के सुमनों को वत्सर-व्याल खा गये,
मेरे जीवन को उलझाने जग के सौ जंजाल आ गये।
फिर क्यों आज एक भूला संबंध शूल सा पुनः चुभ उठा,
दृग के मानसरोवर में फिर कोई छविछाया लहराई।

कितनी ही चाही-अनचाही विधियों से हम हुए पराये,
वह दीवार खड़ी थी अपने बीच जिसे हम लाँघ न पाये।
कोमल स्नेह-सूत्र को हमने निर्ममता से तोड़ दिया था,
और भविष्य बचा लेने को वर्तमान में आग लगाई।

मेरा सब जल गया उसी दिन ऐसी थी वह आग भयंकर,
मुझ पर धूल उड़ाता हँसता तिमिर मिला प्रत्येक डगर पर,
मणिप्रदीप, तुम मेरे पथ से हटीं कि मेरी दिशा खो गई,
ढूँढ़ रहा हूँ तबसे लेकिन मैंने अपनी राह न पाई।

तुम कैसी हो आज कहाँ हो, यह मुझको कुछ ज्ञात नहीं है,
दुनिया के लेखे इस दुर्घटना में कोई बात नहीं है।
लेकिन अंधकार में डूबा मैं ध्वंसों का वह स्मारक हूँ
जिसे जगाने और सजाने किसी उषा की किरण न आई।

सम्भव है अब मिलने पर भी तुम मुझको पहचान न पाओ,
और कभी तुम कुछ मेरी थीं खुद से भी यह बात छिपाओ।
लेकिन जब रातों में नभ की ओर तुम्हारी दृष्टि जायगी,
तुम्हें लगेगा किसी इन्दु ने तुम्हें खोजते उमर बिताई।

यह कैसा संयोग कि दृग से आँसू, नभ से तारा टूटा,
किसने बीती बात उठाई, किसने सोई पीर जगाई?

उत्तर-दक्षिण की एकता में प्राचीन आन्ध्र राजवंश का योग

प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर विश्वविद्यालय

हमारे देश में दक्षिण का एक राज्य आन्ध्र प्रदेश कहलाता है। यह नाम एक प्राचीन राजवंश की याद संजोये हुए है। इस राजवंश ने कई शताब्दियों तक न केवल वर्तमान आन्ध्र प्रदेश की भूमि पर शासन किया अपितु उत्तर तथा दक्षिण भारत के कई अन्य भागों पर भी इसका राज्य रहा।

'आन्ध्र' शब्द का शुद्ध प्रारंभिक रूप 'अन्ध्र' है। इसी नाम से अन्ध्रजातीय लोगों का उल्लेख वैदिक साहित्य, महाभारत एवं कतिपय पुराणों में मिलता है। ऐतरेय तथा शतपथ नामक ब्राह्मण-ग्रंथों में अन्ध्रों का नाम पुंड्रों, शबरों, पुलिंदों आदि अनार्यों के नामों के साथ आया है। महाभारत में अन्ध्रों का जन्मस्थान दक्षिणापथ में बताया गया है। इन लोगों में आर्य संस्कृति का जल्दी प्रसार हो गया।

सम्राट् अशोक के तेरहवें शिलालेख में अन्ध्र लोगों का नाम भोजों, पेतनिकों, पुलिंदों आदि के साथ लिया गया है। उस समय ये लोग नाममात्र को अशोक के अधीन थे। यूनानी इतिहासकारों ने अन्ध्रों को 'ऐंडरेइ' लिखा है और उनके बहुसंख्यक तथा सुरक्षित नगरों का उल्लेख किया है। इन इतिहासकारों के लेखों से यह भी पता चलता है कि अन्ध्रों की सेना मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त की सेना के अलावा देश में सबसे बड़ी थी। उस समय वे गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के बीच रहते थे।

अशोक की मृत्यु के बाद अन्ध्र लोग पूर्णतया स्वतंत्र हो गये और वे अपने स्वतंत्र सिक्के जारी करने लगे। उनके सबसे प्रथम स्वतंत्र शासक का नाम 'सातवाहन' था। तेलंगाना प्रदेश से कुछ वर्ष पूर्व ताँबे के ऐसे सिक्के मिले हैं जिन पर अशोककालीन ब्राह्मी-लिपि में 'राजा सातवाहन' का नाम लिखा है। उसकी 'राजा' उपाधि से ज्ञात होता है कि वह अब पूर्ण स्वतंत्र था। सातवाहन नाम के सिक्के महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में नेवासा नामक स्थान की खुदाई से भी हाल में प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ई० पूर्व २०० के बाद सातवाहनों ने अपनी शक्ति का प्रसार उत्तर की ओर करना प्रारम्भ किया। अन्ध्र प्रदेश में स्थापित सातवाहन राजा का वंश 'सातवाहन वंश' कहलाया और इस प्रकार सातवाहन तथा अन्ध्र शब्द समानार्थक हो गये। इस वंश के प्राचीन अभिलेखों में राजवंश का नाम प्रायः सातवाहन ही मिलता है। बाद में इसे ही शालिवाहन नाम दिया गया।

पुराणों से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत के कण्व-वंश की समाप्ति अन्ध्रवंशी सिमुक के द्वारा की गई। इस सिमुक और उसके वंश के संबंध में पुराणों के अतिरिक्त, कुछ विवरण पश्चिम भारत के नानाघाट नामक स्थान से प्राप्त एक शिलालेख में मिला है। नानाघाट के लेख में सिमुक के पुत्र शातकर्णि तथा शातकर्णि की स्त्री नागनिका के नाम दिये हैं। इस लेख में यह भी लिखा है कि पति शातकर्णि के मर जाने पर तथा अपने दो पुत्रों शक्तिश्री एवं वेदिश्री—की अल्पायु के कारण राज्य का भार कुछ समय तक नागनिका को ही वहन करना पड़ा। यह लेख एक यज्ञ के अवसर पर लिखवाया गया था। लेख में प्रजापति, धर्म, इंद्र, संकर्षण, वासुदेव आदि देवताओं की प्रार्थना की गई है। इस लेख से पता चलता है कि सातवाहन या अंध्रवंशी शासक वैदिक धर्मावलंबी थे। उनके द्वारा अनेक वैदिक यज्ञ संपन्न किए गए, जिनके विवरण इन लेखों में सुरक्षित हैं।

विद्वानों का अनुमान है कि सिमुक का लड़का शातकर्णि उड़ीसा के जैन राजा खारवेल का समकालीन था और वह खारवेल के द्वारा पराजित हुआ था। बाद में 'शातकर्णि' नाम इतना प्रसिद्ध हो गया कि अन्ध्र वंश के अनेक राजाओं ने इसे उपाधि के रूप में ग्रहण किया। पुराणों में लगभग तीस अन्ध्रवंशी राजाओं के नाम मिलते हैं। इनमें से अनेक राजाओं ने अपने सिक्के जारी किए तथा लेख लिखवाये। अन्ध्रवंशी कई राजाओं के अभिलेख मालवा तथा पश्चिमी महाराष्ट्र में मिले हैं, जिससे ज्ञात होता है कि एक दीर्घकाल तक उनका शासन इन प्रदेशों पर रहा। आन्ध्र प्रदेश के अतिरिक्त इन राजाओं के सिक्के मालवा, महाकोसल तथा महाराष्ट्र के अनेक भागों से सैकड़ों की संख्या में प्राप्त हुए हैं।

इन लेखों तथा सिक्कों का समय ई० पूर्व प्रथम शती से लेकर ईस्वी दूसरी शती के अंत का है। यह समय

ऐसा था जब कि मालवा में विदेशी शक लोगों ने अपनी धाक जमा ली थी। इन शकों की एक शाखा वह थी जिसे क्षहरात-वंश कहते हैं। इस वंश में नहपान नामक राजा प्रतापी हुआ। अंध्र-वंशी राजा गौतमी-पुत्र शातकर्णि ने नहपान को परास्त कर उसके सिक्कों पर अपनी छाप लगा दी और क्षहरात-सत्ता को पूर्णतया निर्मूल कर दिया। दूसरा शक वंश वह था जिसका प्रारम्भ चस्टन नामक सरदार ने कठियावाड़ और गुजरात में किया था, और जिसने धीरे-धीरे उज्जैन से लेकर विदिशा तक का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था। इस वंश के साथ भी सातवाहनों के संघर्ष चलते रहे। चस्टन वंश के प्रबल शासक रूद्रदामा प्रथम ने सातवाहनों के साथ अपने संबंध अच्छे बनाए रहने के लिए अपनी कन्या का विवाह उस वंश में कर दिया।

अंध्र वंश में गौतमी पुत्र शातकर्णि, वासिष्ठी पुत्र पुलुमावी, यज्ञश्री शातकर्णि आदि अनेक प्रतापी शासक हुए। लगभग दो शताब्दियों तक वे दक्षिणापथ के चक्रवर्ती सम्राट रहे। उत्तर भारत में मालवा तक का प्रदेश उनके अधिकार क्षेत्र में रहा। एक सुसंगठित सैन्य तथा व्यवस्थित शासन-प्रणाली के द्वारा उन्होंने दीर्घकाल तक एक विशाल प्रदेश पर शासन किया।

अंध्र वंश के शासकों ने ताँबा, जस्ता, निकल और चाँदी के सिक्के जारी किये। इन सिक्कों पर प्रायः वे चिह्न मिलते हैं जो उज्जैन, विदिशा, एरण आदि के सिक्कों पर प्राप्त होते हैं—यथा हाथी, स्वस्तिक, नदी, उज्जैन-चिह्न, पर्वत वैदिका सहित वृक्ष आदि। अपने बहुसंख्यक लेखों में इन राजाओं ने उसी ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है जो उत्तर भारत में भी प्रचलित थी। इन लेखों में अन्ध्र-शासकों को वैदिक मत के अनुयायी, गो-ब्राह्मण तथा दीनों के प्रति दयालु, वर्णाश्रम धर्म के पालक तथा विदेशी आक्रमणकारियों के उन्मूलक रूप में चित्रित किया गया है। इनमें अधिकांश शासक प्रबल देशभक्त थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ई० पूर्व ५७ में जिस मालव या विक्रम संवत् की स्थापना हुई उसके मूल में अन्ध्र-शासकों का भी योग था। विद्वानों का अनुमान है कि सातवाहनों की सहायता से ही मालवों ने शकों को परास्त कर इस संवत् की प्रतिष्ठापना ई० पूर्व ५७ में की।

कला के क्षेत्र में अंध्र-शासकों का बड़ा योग है। मध्य प्रदेश में साँची के स्तूपों का पुनरुद्धार तथा उनके चारों ओर अलंकृत तोरण द्वारों सहित वेदिकाओं के निर्माण का श्रेय इन्हीं शासकों को है। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश के अमरावती, नागर्जुनी कुण्ड, जगय्यपेट्ट आदि स्थानों में भी इन शासकों के समय में विशाल स्तूपों, संघारामों एवं बहुसंख्यक कलापूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। वास्तु तथा मूर्तिकला के ये अवशेष अपने संरक्षकों की गौरवगाथा का उद्घोष आज भी कर रहे हैं। इन शासकों का युग इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि उत्तर तथा दक्षिण भारत के बीच धार्मिक एवं व्यापारिक संबंध उनके काल में बहुत उन्नत हुए। वैदिक एवं बौद्ध-धर्म, दोनों का प्रचार-प्रसार इस युग में उत्तर-दक्षिण भारत, में तेजी के साथ हुआ। कई बड़े राजमार्ग उत्तर के कौशाम्बी, उज्जैन, विदिशा आदि नगरों को दक्षिण भारत के प्रतिष्ठान, अमरावती, श्रीकाकुलम् आदि नगरों से जोड़ते थे। व्या अमरावती पर होने वा पारिक यातायात इस काल में बड़े पैमाने पर होने वा पारिक यातायात इस काल में बड़े पैमाने पर होता था। सातवाहन-शासकों ने न-केवल देश के व्यापार को बढ़ाने में योग दिया बल्कि विदेशी व्यापार को बढ़ाने के सफल प्रयास किये। इसका पता यज्ञश्री शातकर्णि की उन मुद्राओं से चलता है जिन पर जहाज का चित्र बना है। अंध्रशासकों का दीर्घ शासनकाल भारतीय इतिहास में निस्संदेह महत्त्वपूर्ण है।

व्यासजी के कुछ संस्मरण

डा० आनन्द कृष्ण

उस दिन मन में बड़ा उछाह था। मैं दस-बारह बरस का बालक था। दो एक दिनों से सुनता आ रहा था कि इलाहाबाद के एक बड़े अफसर और विद्वान् व्यासजी आनेवाले हैं। परन्तु स्कूल जाना था, मन मसोस कर ह गया। शाम को लौटा ही था कि वयस्य शारदाप्रसाद त्रकार ने अपने बाल-सुलभ औत्सुक्य में कहा—"आज ी कोई राजा साहब आये थे बड़ा सा साफा बाँधे . . .।" ने उन्हें हर प्रकार से समझाना चाहा कि वे संभवतः ासजी थे, परन्तु जब शारदाप्रसादजी अपनी बात र डटे रहे तो मुझे भी उसे स्वीकार करना पड़ा। कुछ र्ष पूर्व स्व० महाराज वीरसिंहजू देव ने पूज्य पिताजी के ाँ पधारने की कृपा की थी। मैंने समझा, कुछ वैसी ही ात होगी।

कुछ महीनों के बाद पूज्य व्यासजी का काशी-आगमन ने लगा, उनके कई संबंधी काशी में थे। वहीं वे टिकते, र अधिकांश समय बातचीत में पिताजी के साथ ही बीतता। शः वे हमारे परिवार के अंग बन गये। उनकी शरीर-क्ति, धाराप्रवाह वक्तृता और आदर्श आचरण हम ी को मंत्रमुग्ध किये हुए थे। हम बालकों को तो वे ाणिक युग के पुरुष से जान पड़ते।

उन दिनों व्यासजी म्युनिसिपल म्यूजियम इलाहा-द के निर्माण में जी-जान से लगे हुए थे। वे महाप्राण क्ति थे। अकेले ही जिधर लग जाते, उसकी सारी ाएँ अनायास ही दूर हो जातीं। 'सरस्वती' के पाठकों ो इस महान् कार्य के अनेक अध्याय उन्होंने स्वयं सुनाए ।। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले कुछ वर्षों में ये घटनाएँ ा वारदातें) घटित हो रही थीं। प्रति बार व्यासजी ब काशी आते तो उनके पास एक न एक संस्मरण अवश्य ा। फिर उनके स्वर में जो उतार-चढ़ाव, नाटकीयता , उसकी जोड़ी नहीं। हम सब मंत्र-मुग्ध से सुनते रहते। ारी कथा में हास्य का एक मीठा पुट मिला होता। ीच-बीच में उर्दू के शेर या संस्कृत के श्लोकों का बघार ोता। बातें सुनते हम न अघाते।

तभी व्यासजी बनारस म्युनिसिपैलिटी की किसी समिति में आमंत्रित हो आने लगे। उन दिनों बना- नगरवासियों और म्युनिसिपैलिटी से पानी की सप्लाई के विषय में रस्साकशी चल रही थी। नगरवासियों के असंतोष का कारण यह था कि म्युनिसिपैलिटी ने पानी की सप्लाई पर मीटर लगा दिया था और म्युनिसिपैलिटी की शिकायत यह थी कि लोग नल खुला छोड़ देते हैं, उससे पानी नष्ट होता है। मीटर लगाने से यह दुरुपयोग बन्द होगा। जनता के आन्दोलन के फलस्वरूप मीटर तो अधिकांश में उठ गया परन्तु एक कमेटी गठित हुई, जिसके प्रसंग में व्यासजी प्रायः काशी आते। इस कमेटी में भी व्यासजी ने एक बड़ा काम किया। नलों में जो वाशर लगे रहते हैं वे प्रायः खराब हो जाते हैं और तब पानी व्यर्थ बहा करता है। बनारस म्युनिसिपैलिटी उनके बदलने के हेतु कुछ सूक्ष्म सा (संभवतः एक आना) चार्ज किया करती। व्यासजी ने सुझाव दिया कि वाशर मुफ्त ठीक किया जाय। कई सदस्यों ने विरोध किया तो व्यासजी ने समझाया कि इस प्रकार पैसे लेने से म्युनिसिपैलिटी को कुछ भी विशेष आय न होगी। हाँ, अनेक व्यक्ति एक आना बचाने के फेर में अथवा तज्जनित आलस्य के कारण सूचना न देंगे जिससे साल में लाखों का पानी व्यर्थ नष्ट हो जायेगा। निदान व्यासजी का सुझाव माना गया और उक्त योजना से बनारस शहर का लाभ हुआ। ऐसे ही काम के सुझाव व्यासजी से प्रायः मिलते रहते जिनसे उनके अनुभव, मानव-प्रकृति की सूक्ष्म परख या व्यवहारकुशलता (प्रैक्टिकल विज़्डम) का अनुमान हो सकता है।

इस सम्बन्ध में वे अपना एक अनुभव भी सुनाते—यह बात तब की है जब जवाहरलालजी नेहरू प्रयाग नगरपालिका के अध्यक्ष थे। उन दिनों व्यासजी के अधीनस्थ कर्मचारी पत्र-व्यवहार में अँगरेजी भाषा के शुद्ध प्रयोग पर बहुत ध्यान देते थे। हुआ यह कि हजारों चिट्ठियों के जवाब रुके पड़े रहे। जवाहरलालजी को जब यह पता चला तो उन्होंने व्यासजी को समझाया कि पत्र की भाषा की शुद्धता उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना उस विशेष कार्य पर एक्शन लेना, या कार्रवाई करना जिससे जो व्यक्ति विपत्ति में पड़कर म्युनिसिपैलिटी की शरण में आया है उसका उद्धार हो सके। व्यासजी ने इस सिद्धान्त का जन्म भर पालन किया, अपने सहकारियों

को बराबर काम निपटाने की सलाह देते रहते। उनकी तत्परता का नमूना इसीमें देखा जा सकता है कि रिटायर होने के बाद जब वे काशी विश्वविद्यालय में एक्जेक्युटिव अफसर के पद पर आये तो उन्होंने बीसों बरस के बकाये वसूल किये। भारत कला-भवन की हजारों कलावस्तुओं का कोई ठीक लेखा न था। बड़े परिश्रम से उसे तैयार कराया।

बकाये के वसूल करने के संबंध में एक घटना याद आती है। व्यासजी ने अपने स्वभाव के अनुसार अपने सहायकों को आदेश दिया कि अमुक तारीख तक सारा बकाया वसूल हो जाना चाहिए। इसमें एक कानूनी अड़चन थी। तीन वर्ष के पहले के बकाये, तमादी हो जाते हैं। परन्तु विश्वविद्यालय को ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त थे जिनसे उन जमीनों को बेदखल किया जा सकता था। उसका लाभ उठाकर व्यासजी ने विश्वविद्यालय का सारा बकाया वसूल किया। उनके कुछ आदमियों ने अपनी कारगुजारी दिखलाने में संभवतः ज्यादा कड़ाई कर दी। एक विधवा बूढ़ी सास और उसकी विधवा पुत्रवधू पर बकाये के कोई बीस रुपये थे। जब कड़ाई की गई तो उन्होंने अपने चाँदी और गिलट के गहनों को रेहन रखकर किसी प्रकार रुपये इकट्ठे किये, फिर भी दो रुपये कुछ आने कम पड़े। मामला व्यासजी के सामने आया। व्यासजी ने अपने कर्मचारियों को बहुत धिक्कारा, फिर अपने सीमित अधिकारों को देखते हुए वे इस मामले को प्रो-वाइसचांसलर नार्लिकर साहब के सम्मुख ले गये। वहाँ उन्होंने कहा, मैं अपने अधिकार से इसका कुल बकाया तो माफ नहीं कर सकता, परन्तु आपकी आज्ञा से इसकी कुल रकम मैं अपने पास से जमा कर दूँगा। इसपर तो नार्लिकर साहब और व्यासजी में आपस ही में होड़ लग गई, दोनों ही कहते कि मैं ही कुल रुपया दूँगा। अंत में व्यासजी ने यह कहकर नार्लिकर साहब को निरुत्तर कर दिया—“प्रो० नार्लिकर, मैं अपने पुण्य कार्य में आपको साझीदार नहीं बना सकता।” व्यासजी की दृष्टि में डिसिप्लिन से मनुष्यता बड़ी चीज थी। आज डिसिप्लिन के नाम पर जो-जो अन्याय होते हैं और डिसिप्लिन शब्द से केवल अपना लाभ उठाया जाता है, वह व्यासजी की पीढ़ी में न था।

व्यासजी के इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अनुभव तो एक विलक्षण वस्तु थे। इसके अंतर्गत उन्हें न जाने कितने प्रकार के व्यक्तियों अथवा समस्याओं का सामना करना पड़ा। उनकी वर्णनशक्ति ऐसी थी कि जब वे उन घटनाओं को सुनाने लगते तो हमारी आँखों के सामने चित्र खड़ा हो जाता। 'सरस्वती' में उन्हें वे एक लेखमाला के रूप में प्रकाशित कर रहे थे। खेद है इसी बीच वे चले गये। इसी प्रसंग में उन्हें अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ काम करने का भी अवसर मिला था। प्रयाग ने देश को अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति दिये हैं। उनमें से कई प्रयाग म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हुए हैं। ऊपर श्री जवाहरलाल नेहरू की चर्चा हुई है। व्यासजी और नेहरूजी एक ही पीढ़ी के व्यक्ति होने के कारण बहुत सन्निकट आ गये। बहुत दिन बाद १९४८ में राष्ट्रपति-भवन दिल्ली में एक कला-प्रदर्शनी हो रही थी। उसे देखकर व्यासजी पैदल लौट रहे थे। उस समय राष्ट्रपति-भवन में बाहरी सवारी परमिट बिना नहीं जा सकती थी। सहसा एक बड़ी सी कार उनके बगल में रुकी। उसमें से नेहरूजी ने सिर निकाल कर पूछा, “कहो व्यास! इक्जविशन कैसा लगा?” और फिर चल दिये। यह मित्रता अन्त तक बनी रही। विजयलक्ष्मीजी तो बराबर कहतीं, 'लड़कियों का ब्याह है। भाई बाहर हैं। अब आपके बिना कौन सब इन्तजाम करेगा?'

इन्हीं प्रसंगों में राजर्षि टंडनजी का वे एक संस्मरण सुनाते। उन दिनों इलाहाबाद का अँगरेज कलक्टर बड़ा उद्धत था। राजर्षि भी कहाँ झुकनेवाले थे! एक बार राजर्षि किसी समिति में बोल रहे थे कि सभापति के आसन पर बैठा कलक्टर मुसकराया। टंडनजी भला इस अपमान को कैसे सह सकते थे? भाषण रोककर अँगरेजी में पूछा, 'इसमें कुछ हँसने की बात है?' (इज देअर एनी थिंग टु लाफ़ एट) शामत की मार कलक्टर ने कहा—'मैंने तो यही समझा।' (आई थाट सो)

तड़ाक से टंडनजी ने जवाब दिया, 'तब तो मुझे आपकी समझ पर तरस आता है' (दैन आई पिटी योर इंटेलीजेंस)।

उन्हीं राजर्षि का अटूट विश्वास और स्नेह व्यासजी को प्राप्त था। काशी विश्वविद्यालय से रिटायर होने के बाद व्यासजी ने टण्डनजी के आग्रह पर इलाहाबाद की गौरीकन्या पाठशाला के मंत्रित्व का भार सँभाला। सभापति स्वयं टंडनजी थे। रुग्ण टंडनजी ने अनेक बार

व्यासजी से आग्रह किया कि आप ही इसके सभापति हो आइये, परन्तु व्यासजी ने टंडनजी को ही उस पद पर बने रहने के लिए विवश किया और टंडनजी के बाद ही वे उक्त संस्था के सभापति हुए।

व्यासजी दोस्त-परस्त थे।

एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी जिससे व्यासजी के चरित्र की यह विशेषता हमारे सामने उभर आई। व्यासजी के एक बाल-सखा थे——संभवतः प्रारंभिक कक्षाओं में साथ पढ़े हुए। फिर जीवन-क्रम में व्यासजी तो एक उच्च पदस्थ अधिकारी हो गये और उनके उक्त मित्र कहीं चपरासी के रूप में काम करने लगे। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ आय कर्म-काण्ड से भी हो जाती। एक बार व्यासजी के उक्त मित्र इसी प्रसंग में एक चक्कर में पड़ गये; उनके पुत्र को एक व्यक्ति विवाह कराने के लिए प्रयाग से बुला ले गये। बाद में पता चला कि वह प्रेम-विवाह था। कन्या के पिता की अनिच्छा से हुआ था। पंडितजी को दो-चार रुपये दक्षिणा में तो मिले, पर आफत यह आई कि कन्या के पिता ने पुलिस की सहायता से वर एवं कर्मकाण्डीजी को हवालात में बन्द करा दिया। कन्या के पिता के अनुसार कन्या अभी बालिग न थी। वे लोग बनारस के थे, अतः कर्मकाण्डीजी बनारस लाये गये। उनके पिताजी व्यासजी के बाल-सखा थे। उन्होंने मारे दुःख के खाना-पीना छोड़ दिया और दौड़े-दौड़े व्यासजी के पास आये। उस समय व्यासजी का प्रताप छाया हुआ था। इलाहाबाद में तो कहना ही क्या। प्रायः कहा करते 'एक्जेक्युटिव आफीसर किसी शहर का राजा होता है।' यद्यपि उन्होंने अपने इस प्रभाव का सदुपयोग ही किया।

निदान वे अपने मित्र के साथ बनारस पहुँचे। फिर तो उन जैसे व्यक्ति के लिए पुलिस की झंझटों से उक्त निर्दोष पंडितजी को निकाल लाना कुछ भी न था। किसी बलहीन और तथाकथित साधारण व्यक्ति के लिये इतना प्रयास करनेवाले कितने व्यक्ति होते हैं! उन्होंने तो प्रतिज्ञा कर ली थी कि आज दिन भर में मैं अपने मित्र के पुत्र को बरी कराऊँगा और तभी इनके साथ अन्न-जल ग्रहण करूँगा। इसे उन्होंने कर दिखाया।

इसी प्रसंग में उन्हींसे सुनी हुई एक घटना याद आ गई। व्यासजी के कुछ रुपये बंबई के एक व्यापारी मित्र ने उधार ले रखे थे। उनका काम-काज गड़बड़ा गया। ऐसा जान पड़ा कि वे सब उधार चुका न सकेंगे। अतः उन्होंने सोचा कि कम से कम आपसवालों से तो उऋण हो जायें। व्यासजी को उन्होंने तार दिया——'आकर रुपये ले जाओ।' यहाँ मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि व्यासजी रुपये उठाने-धरने में बहुत सतर्क न रहते थे। जब वे काशी विश्व-विद्यालय से रिटायर होकर इलाहाबाद पहुँचे तो उनकी जेब से कई सौ रुपये इलाहाबाद स्टेशन पर निकल गये थे।

बंबई से लौटते समय स्टेशन पर व्यासजी को पहुँचाने एकाध व्यक्ति आये थे। जब वे इंटर क्लास के डब्बे में भली भाँति सवार हो चुके तो उन्होंने अपना अटैची केस खोला। उसमें से नोटों का एक बड़ा सा बंडल निकाला——हजारों के नोट थे। उनमें से दो एक नोट साथवाले व्यक्तियों को दिये और शेष बंद कर लिये। इसके बाद ऐसा जान पड़ा कि सब ठीक है और व्यासजी निश्चिंत हो गये। जब दो चार घंटों का सफर बीत गया तो व्यासजी को प्यास लगी। गाड़ी रुकी तो वे धोती-गंजी पहने प्लेटफार्म पर उतर कर बम्बे से एक लोटा पानी लेने गये। बम्बा दूर था, इस सबमें गाड़ी ने सीटी दी। व्यासजी जब तक ट्रेन तक पहुँचें, वह छूट चुकी थी। अब उस अनजान स्टेशन पर व्यासजी निस्सहाय खड़े रहे। स्टेशन मास्टर से अपनी स्थिति सुनाई तो उसने आगे तार कर दिया। पता चला कि अगले स्टेशन पर सामान स्टेशनमास्टर के कब्जे में रखा है। अगली गाड़ी में घंटों की देर थी, अतः व्यासजी को प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब अगले स्टेशन पर पहुँचे तो देखा कि छोटा सा स्टेशन है। स्टेशनमास्टर के दरवाजे पर उनके एक बाल-मित्र मोटा सा डंडा लिये बैठे चौकसी कर रहे हैं।

व्यासजी को उन्हें उस स्थान पर देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर पहले तो उन पंडे मित्र ने व्यास जी के अल्हड़पन पर उन्हें बहुत उपालंभ दिया फिर अपनी कथा सुनाई। पंडा महाराज भी उसी ट्रेन से बंबई से लौट रहे थे, बल्कि व्यासजी वाले इंटर क्लास के बगल में थर्ड क्लास में बैठे थे। जब बंबई के स्टेशन पर व्यासजी ने बिना कुछ आगा-पीछा सोचे हजारों के नोट सैकड़ों की निगाह में अटैची से निकाले तब पंडाजी डब्बे की गर्मी से त्रस्त हो सामने ही प्लेटफार्म पर खड़े थे। उन्होंने भी उस दृश्य को देखा था। फिर उन्होंने देखा कि व्यासजी धोती-गंजी पहने लोटा लिये ट्रेन की ओर दौड़ रहे हैं और उन्हें ट्रेन न मिली। अब तो पंडाजी बहुत घबराये। सोचा, ट्रेन रुके तो कुछ करें। जब अगले स्टेशन पर ट्रेन रुकी तो वे डंडा लिये उछल कर व्यासजी के डिब्बे के आगे आकर खड़े हो गये कि देखते हैं, स्टेशनमास्टर वगैरह चले आ रहे हैं। अब तो झगड़ा मचा। पंडाजी कहते——माल मेरे साथी का है। अंततः यह तय हुआ कि सामान स्टेशनमास्टर के कमरे में रखा रहेगा, उसके ठीक बाहर पंडाजी चौकसी करते रहेंगे। दोनों दलों में कोई भी उस सामान को न छुएगा। इस प्रकार पंडाजी भूखे-प्यासे पहरा दे रहे थे——"लो भाई अपनी थाती सँभालो तो मैं भी कुछ दाना पानी करूँ।"

ऐसी मित्रता के लिए विशाल हृदय की अपेक्षा होती है। व्यासजी में यह किस मात्रा में थी, इसे वही जानते हैं जो उनके संपर्क में आये। कभी किसी मित्र की शिकायत उनके मुँह से न निकली होगी। इतना ही नहीं, जिन लोगों ने उन्हें मानसिक कष्ट देने में यहाँ तक कि इज्जत उतारने में भी कोई कसर न रखी, उन तक के विरुद्ध बात करना या सुनना उन्हें न भाता था। सचमुच उन्होंने एक सच्चे ब्राह्मण का सात्विक हृदय पाया था।

जल-विभाजक—स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय

मेजर सीताराम जौहरी

(भूगोल में जल-विभाजक और जलडमरूमध्य दो अलग-अलग चीजें हैं। दो समुद्रों या समुद्र के दो भागों को अलग करनेवाला भूखंड जलडमरूमध्य कहलाता है जैसे पनामा या स्वेज। किंतु जल-विभाजक उस ऊँची भूमि या पर्वतमाला का वह ऊँचा भाग है जिसकी एक ओर से निकलनेवाले नद, नदियाँ और नाले एक दिशा में, और जिसके विपरीत ढाल से निकलनेवाले जल के स्रोत विपरीत दिशा में बहते हैं। एक ढाल की जल-प्रणाली पर्वत या भूमि की ऊँचाई के कारण दूसरे ढाल की जल-प्रणाली से मिल नहीं सकती और विपरीत दिशाओं में बहती है। अमरकंटक एक ऊँचे पठार पर है। इसके पश्चिमी सिरे से नर्मदा निकलती है जो पश्चिम की ओर बह कर अरब समुद्र में गिरती है। किंतु इस पठार के पूर्वी सिरे का ढलान पूर्व की ओर है। यहाँ सोनमूड़ा है जहाँसे सोन निकलती है जो पूर्व की ओर बहकर गंगाजी में मिल जाती और बंगाल की खाड़ी में गिरती है। अमरकण्टक इन दोनों नदी-प्रणालियों का जल-विभाजक है। संसार का प्रसिद्ध जल-विभाजक कनाडा में एण्डीज पर्वत-श्रेणी का वह उच्च पठार है जिसके पूर्व से निकलनेवाले सोते और नदियाँ अटलाण्टिक महासागर में, और पश्चिम से निकलनेवाली नदियाँ प्रशान्त महासागर में गिरती हैं। किंतु सतत हिम से ढके पर्वतों पर नदियाँ नहीं होतीं। इन पर पड़ा हुआ हिम ढलानों पर से धीरे-धीरे फिसलकर उनके मूल के ऊँचे मैदानों में एकत्र हो जाता है और ज्यों-ज्यों वह गलता है त्यों-त्यों पिघला हुआ पानी नदियों का रूप ले लेता है। मैदान में एकत्र यह हिम भी बहुत धीरे-धीरे आगे खिसकता रहता है। इस प्रकार हिम पर्वत के अंचल के मैदान में एकत्र गतिशील हिम-समूह को ग्लेशियर कहते हैं। अतएव, सतत हिमाच्छादित पर्वतों पर जल-विभाजक पर्वतों के वे ऊँचे डांडे या धार हैं जिनके एक ओर के ढलान का हिम एक ओर, और दूसरे ढलान का दूसरी ओर फिसल कर जाता है, और अपने नीचे के किसी मैदान में ग्लेशियर बनाता है। भारत और चीन के सीमा-विवाद में इन बर्फानी जलविभाजकों का बड़ा महत्त्व है। इस लेख में जल-विभाजक के रूप, उसकी प्रकृति, उसके कार्य और महत्त्व का स्पष्टीकरण किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा निर्धारण में बहुधा इन बर्फानी जल-विभाजकों का बड़ा महत्त्व है। सम्पादक--सरस्वती।)

देहरादून से मसूरी के पूर्व की ओर एक पर्वत-श्रेणी बहुत ही सुन्दर दिखाई देती है। मसूरी की पहाड़ियों पर जब भी हिमपात होता है तो पहिले इसी श्रेणी पर धावा बोलता है, बाद में मसूरी पर। इस श्रेणी की सबसे ऊँची चोटी को धनौलटी कहते हैं। यह स्थान बहुत ही रमणीक है, ठंडा है और चारों ओर हरियाली छाई है। यहाँका जंगल चीड़, बाँझ और बुराँस के वृक्षों से भरा है। कहा जाता है कि बाँझ और बुराँस के जंगलों का पानी हल्का और मीठा होता है। यह ठीक ही मालूम होता है क्योंकि इन वृक्षों के पत्ते भूमि पर गिरकर सड़ते रहते हैं और इनसे मिली मिट्टी की तह की तह पहाड़ों पर बिछ जाती है। बरसात का पानी इसी उपजाऊ भूमि से छन कर आगे चलकर नाला या सोता बनाता है। यह वृक्ष देहरादून के इलाके में ६,००० फीट से कम पर होते ही नहीं। अतः एक तो ऊँचाई, फिर मिट्टी के गुण यहाँके जल को स्वच्छ, शीतल और कैलशियम युक्त बना देते हैं। इस मनोरम स्थान पर ही उन दिनों टेहरी नरेश का सेब का बाग था। धनौलटी मसूरी-टेहरी सड़क पर मंसूरी से केवल १३ मील पूर्व में है। परन्तु मैंने धनौलटी पहुँचने के लिए दूसरी ही राह पकड़ी। सहस्रधारा से नाक की सीध एक पगडंडी का सहारा लेकर उत्तर की ओर चल दिया।

धनौलटी देहरादून के निकट ही मालूम होती है। अनुमानतः एक युवक प्रातः ७ बजे सहस्रधारा से चले तो ४ बजे सायंकाल तक धनौलटी पहुँच जायेगा। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। सहस्रधारा की ऊँचाई लगभग २,५०० फीट है और धनौलटी की ८,५६२ फीट। लगभग ६,००० फीट का अन्तर। इस अन्तर को यदि सीधे मानचित्र पर नापा जाये तो १६ मील से कम न होगा, और जब पहाड़ी पगडंडियों पर चलना पड़े तो यही १६ मील का मार्ग लगभग ३५ मील हो जाता है। मैं युवक था और पहाड़ी यात्रा से अनजान। बस एक दिन प्रातः ७ बजे यात्रा के लिए चल दिया। पगडंडी से एकदम चढ़ाई ही चढ़ाई थी। उतार तो कहीं था ही नहीं। ८ बजे फिर ९-१०-११-१२, यहाँ तक कि ५ बजे गये परन्तु किसी बस्ती का चिह्न भी दिखाई नहीं दिया। दो एक यात्री नीचे जाते हुए अवश्य मिले, परन्तु उनसे भी कोई निश्चित सूचना न मिल सकी कि बस्ती कितनी दूर है। हम ऊपर चढ़ते जा रहे थे। कोई चश्मा या नाला आता तो पानी पी लेते। किसी तरह चढ़ाई का अन्त

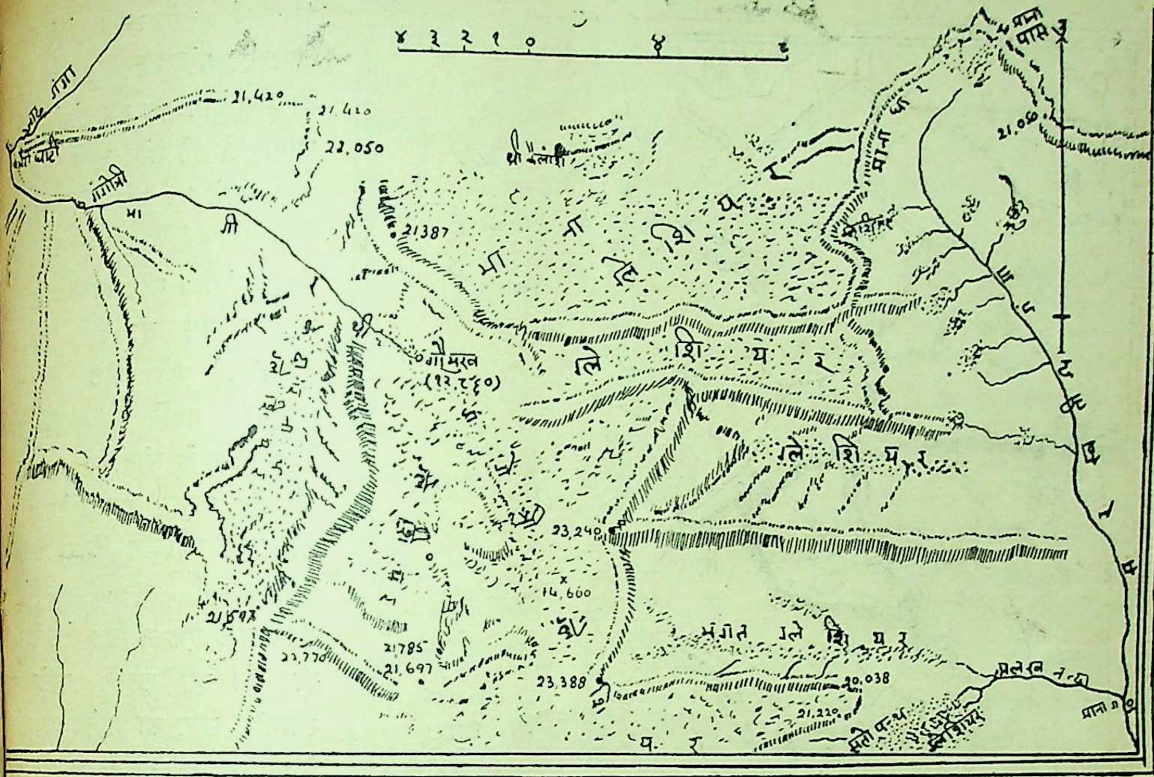

रा। जब सूर्यास्त हो रहा था और अन्धकार अपने आँचल में घाटियों को समेट रहा था, एक ग्राम दिखाई दिया। इसका नाम कैल था जिसकी ऊँचाई ६,००० फीट से कम न होगी। धनौलटी के लिए २,५०० फीट की चढ़ाई अभी शेष थी। रात्रि उसी ग्राम में व्यतीत की और भोर होते ही यात्रा आरम्भ कर दी। फिर चढ़ाई ही चढ़ाई। राह में जितने भी नाले या सोते मिले उन सबके पानी का बहाव दक्षिण-पश्चिम की ओर था। अर्थात् हम पहाड़ 'आ' से होते हुए धनौलटी की ओर बढ़ रहे थे। यदि हम 'आ' पहाड़ को पूर्व की ओर पार करते तो फिर एक दूसरी नदी की घाटी में उतरते।

करीब ११ बजे एक चश्मे के किनारे पहुँचे। इस चश्मे का बहाव दक्षिण की ओर था। यहाँ धरती भी समतल थी। हरी-हरी घास में बैठ कर भोजन करके हिम समान ठंडा जल पिया। अब फिर चलने की जरा भी, इच्छा न थी, परन्तु अन्य कोई उपाय भी तो नहीं था। अतः यात्रा प्रारम्भ की। थके हुए तो थे ही, बुरी तरह हाँफ रहे थे और पसीने से नहा उठे थे। परन्तु उत्साह में कमी न थी। कुली बोला, "साहब!' धनौलटी पहुँच कर राह का कष्ट भूल जाओगे। धनौलटी माई के दर्शन होंगे और मन इतना प्रसन्न हो उठेगा मानों देवलोक में पहुँच गये।" जैसे-जैसे धनौलटी निकट आ रही थी, चढ़ाई कठिन, सीधी और बीहड़ होती जा रही थी। परन्तु यात्रा का अन्त आते देख विश्राम करने की इच्छा भी तीव्रता से बढ़ रही थी। अन्त में ठीक ३ बजे हम लोग धनौलटी धार (Ridge) पर पहुँच गये। यदि हम पूर्व-पश्चिम की ओर आधा मील भी धार-धार चलते तो फिर चढ़ाई पड़ती। सम्भव है कि उतार भी पड़ता और फिर चढ़ाई। यह भी सम्भव है कि चढ़ाई और उतार साधारण ही होते और मार्ग में नदी नाले न पड़ते। जब मैं धार की पीठ पर पहुँचा तो देखा कि उत्तर में जो भी सोते थे उनके पानी का बहाव उत्तर की ओर था और दक्षिण वालों का दक्षिण की ओर। इसका अर्थ यह हुआ कि यह पर्वत श्रेणी यहाँके प्राकृतिक जल के बहाव को दो भागों में विभक्त कर देती है। यहाँ जो भी सोते या नाले निकलते हैं उनके स्थानीय नाम हैं, और उनका महत्त्व भी स्थानीय

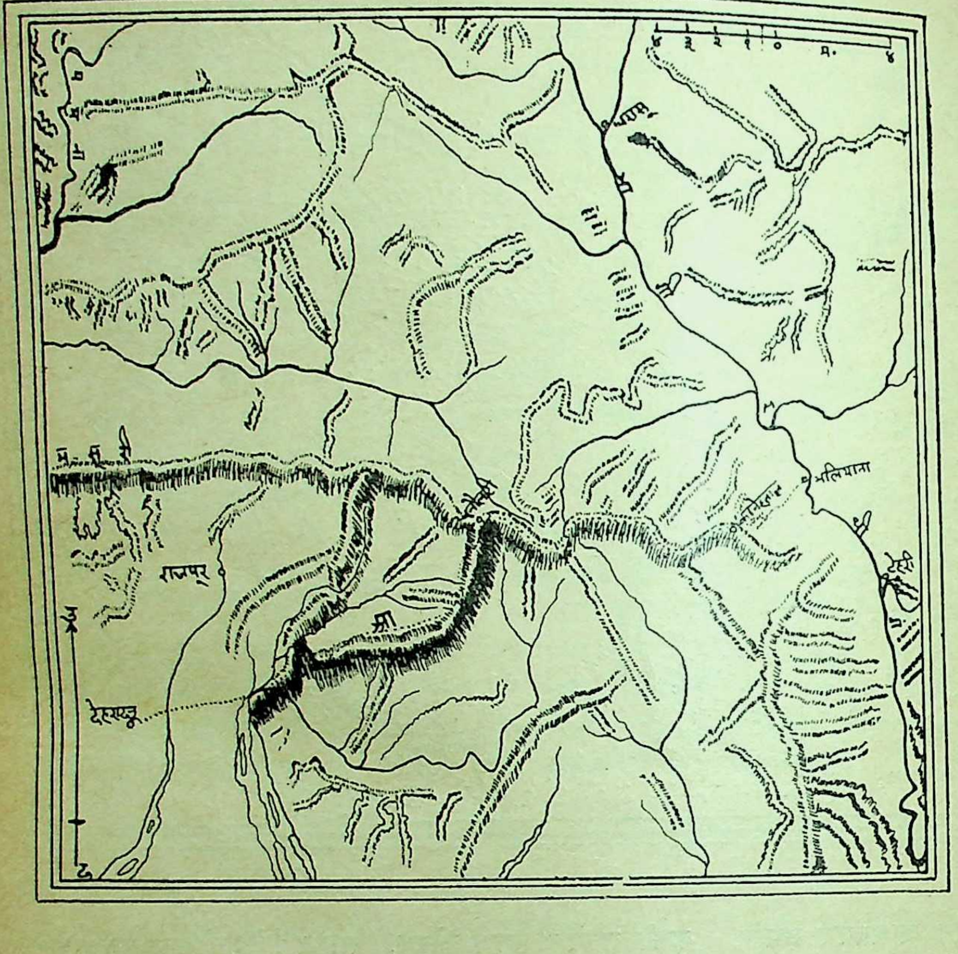

है। इस कारण वह धार जो इस पानी को दो भागों में बाँटती है उसे स्थानीय जलविभाजक (local water-shed) कह सकते हैं। ऐसी धारें या स्थानीय जल-विभाजक भारत के उत्तरी पहाड़ों में असंख्य हैं।

यदि धनौलटी की श्रेणी को उत्तर की ओर पार किया जाये तो उतार आरम्भ हो जायगा। जैसे चढ़ाई थी वैसे ही उतराई होगी, जिससे घुटनों में दर्द हो जायेगा। चढ़ाई में साँस फूलती है और उतराई में शरीर का भार घुटनों और पैरों पर रहने के कारण घुटने और पैर दर्द करने लगते हैं। ढीला या कसा जूता या कहीं छेद वाला मोजा हो तो सारा पैर छालों से भर जायेगा। ऐसी दशा में यात्री को ३ दिन लगेंगे तब कहीं वह पहाड़ की तलहटी में पहुँचेगा। मीलों उतार के बाद वह धरासू पहुँचेगा। धरासू भागीरथी के किनारे एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ एक बड़ा नाला भागीरथी में मिलता है। ऐसे नालों की संख्या जो भागीरथी के केवल दायें किनारे पर मिलते हैं, बहुत है। हर दो नालों के बीच एक पर्वत-श्रेणी होती है जो इन नालों के जल के बहाव को पृथक् रखती है। यदि इन नालों के किनारे किनारे उनके उद्गम तक चढ़ा जाए तो ज्ञात होगा कि सब सोतों का जल भागीरथी की ओर बहता है। और ऊपर जाने पर एक विशाल पर्वत-श्रेणी उत्तर से दक्षिण की ओर जाती दिखाई देगी। यदि यात्री और ऊपर चढ़ता जाए तो वह उस धार (Ridge) की पीठ पर पहुँच जाएगा। यहाँसे इस पहाड़ी धार के पश्चिम के सोतों का जल यमुना की ओर बहता दिखाई देगा। यह धार भी स्थानीय जल विभाजक कही जाएगी। इसका महत्त्व केवल गढ़वाल के एक सीमित क्षेत्र के लिए ही है। इस कारण इसके लिए स्थानीय शब्द का प्रयोग ही उचित है। इस जल-विभाजक के नीचे के भागों को गढ़वाल में 'खाल' कहते हैं, और साधारण बोलचाल में दर्रा। पाठकों ने गढ़वाल में झैरी खाल, [illegible] खाल, द्वाली खाल के नाम अवश्य सुने होंगे। यदि और उत्तर चला जाये तो भीतरी हिमालय में यह नाम बदल जाते हैं और डांडा कहलाते हैं जैसे—[illegible] डांडा या धारा डांडा। इन डांडों की ऊँचाई लगभग १२ हजार से १४००० फीट तक होती है। स्पष्ट है कि यह डाँडे जल के बहाव को पृथक् करते हैं। इसी कारण इनके निकट ही बड़े-बड़े नालों के स्रोत होते हैं। या यह कहना उचित होगा कि किसी बड़ी नदी के किनारे-किनारे उसके उद्गम की ओर चला जाये तो अन्त में यात्री उस नदी के डांडे पर पहुँच जायेगा।

अभी तक मैंने उन नदियों और नालों को पार किया जिनका उद्गम पहाड़ों से है और जिनके डांडों पर केवल शीतकाल में ही हिम जमी हुई पाई जाती है। इनका महत्त्व स्थानीय है। परन्तु गंगोत्री के आगे हमें उन बर्फानी नदियों, नालों और पर्वतों को देखना है जिनका महत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय भी है। हिमालय का अर्थ ही है "हिम-आलय" अर्थात् बर्फ का स्थान। इसलिए हिमालय

को जानने के लिए बरफानी पहाड़ों और नदियों के विषय में जानना अति आवश्यक है।

मैं अपनी यात्रा का वर्णन फिर धनौलटी से आरम्भ करता हूँ। परन्तु इस बार पाठकों को मैं भागीरथी के किनारे-किनारे गंगोत्री ले जाऊँगा।

धनौलटी धार-धार (Ridge) मैं पूर्व की ओर अग्रसर हुआ, और लगभग १२ मील चलने के पश्चात् मैं कानेह ताल पहुँचा। धार-धार चलने के कारण न अधिक चढ़ाई का सामना करना पड़ा और न सीधे उतार का कष्ट। यदि ५ मील पूर्व की ओर और चलता तो चौड़िया पहुँच जाता। वहाँसे भागीरथी के लिए उतार आरम्भ होता। परन्तु मैंने कानेह ताल से अपनी राह बदल दी और उत्तर की दिशा में घूम गया। यहाँसे चलते ही उतार आरम्भ हो गया और प्रातःकाल का चला सायंकाल तक नीचे ही उतरता रहा। ५ बजे शाम को भागीरथी के दर्शन हुए और थोड़े ही उतार के बाद भलियाना पहुँच गया।

भलियाना से गंगोत्री मन्दिर तक ही राह भागीरथी के किनारे-किनारे है। गंगा की तंगी के कारण कहीं-कहीं यात्रा की सुगमता के लिए यह राह बाएँ किनारे भी हो जाती है। किसी स्थान पर तो गंगा के दोनों तटों को छोड़कर ऊपर पहाड़ पर जाना पड़ता है जैसे—जाउ गंगा और भागीरथी के संगम पर। यह मार्ग ऊपर जाकर भैरों घाटी की चट्टी तक पहुँच जाता है और ऊपर ही ऊपर ९-१० मील चलने के पश्चात् गंगोत्री मन्दिर पहुँच जाता है। यहाँ पर गंगाजी भी मिल जाती हैं।

गंगा के किनारे-किनारे भागीरथी सोत की ओर यात्रा की जाये तो दो दिन के पश्चात् यात्री गोमुख पहुँचेगा। यहाँसे हिम आरम्भ हो जाता है। यही वह हिम है जो पिघल कर भागीरथी के जल की धारा में बदल जाता है। इसी हिम के जमाव को ग्लेशियर भी कहते हैं। वास्तव में यह बरफ आस-पास के पर्वतों से फिसल कर नीचे आता है। यदि आस-पास यह पहाड़ न हों तो एक दिन गोमुख का बरफ भी पिघल कर समाप्त हो जाये। परन्तु ऊँचे-ऊँचे पर्वत प्रत्येक ऋतु में नीचे की ओर बरफ भेजते रहते हैं। इसी कारण भागीरथी बरफानी गंगा मानी जाती है। इसका उद्गम किसी पर्वत से नहीं है उसका जल तो पिघला हुआ हिम ही है।

गौमुख के आगे साधारण व्यक्ति न तो जाते हैं और न जाना सम्भव ही है। बरफ में चलने के लिए कुछ विशेष प्रकार के सामान की आवश्यकता होती है। यहाँ केवल सर्वेवाले ही जाते हैं, कभी-कभी कुछ मनचले पर्वतारोही भी पहुँच जाते हैं। गौमुख के ऊपर चढ़ने पर काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वहाँकी बरफानी चट्टानों को पार करने के पश्चात् अन्त में एक हिम से ढकी पर्वत-श्रेणी मिलती है। यह ही पर्वत-श्रेणी वास्तविक बरफानी वाटरशेड है। यदि इस श्रेणी को पार कर पश्चिम की ओर उतरा जाये तो सतोपन्थ ताल मिलेगा जहाँ अलखनन्दा का उद्गम है। इसका अर्थ यह है कि गंगोत्री का जल-विभाजक भागीरथी के पानी को अलखनन्दा के पानी से पृथक् करता है। यदि ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि भागीरथी में कई छोटे-छोटे नाले सम्मिलित हैं। ऐसा ही अलखनन्दा की ओर है। भागीरथी और उसके सहायक नालों के उद्गम एक रेखा बनाते हैं। ऐसी ही रेखा अलखनन्दा की ओर भी बनती है। गंगोत्री जल-विभाजक इन दोनों रेखाओं को आमने-सामने कर देता है। पाठकों को यह भी ज्ञात हो गया होगा कि सतोपन्थ में भी वाटरशेड की चोटियों से बरफ पिघल-पिघल कर आता है अर्थात् अलखनन्दा भी भागीरथी के समान ही बरफानी नदी है। उस स्थान को जहाँ से बरफानी जल-विभाजक पार किया जाता है, छोटी पहाड़ियों पर 'खाल' या डांडा कहते हैं। जब हम इस वाटरशेड पर पहुँचेंगे तो इस श्रेणी को किसी नीचे स्थान से ही पार करेंगे। साधारणतया मनुष्य इस वाटरशेड को पार नहीं करते। इसलिए इस नीची हिमाच्छादित धरती का कोई नाम भी नहीं है। परन्तु हम दूसरे उदाहरण दे सकते हैं। अलखनन्दा की उत्तरी सहायक नदी सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध है। 'माना' नामक ग्राम इसी नदी के बायें तट पर बसा है। यदि इस नदी के किनारे-किनारे उत्तर की ओर चढ़ा जाये तो अन्त में सरस्वती का उद्गम भी एक ग्लेशियर से दिखाई देगा, और आगे बढ़ने पर यात्री वर्तमान भारत-तिब्बत सीमावाली हिमालय की दीवार की पीठ पर पहुँचेगा। जिस स्थान से यह दीवार पार कर तिब्बत में प्रवेश किया जाता है उसे गढ़वाल में घाटी कहते हैं। पाठक 'नीती घाटी' 'भरछुक घाटी' आदि नामों से सम्भवतः परिचित भी होंगे।

गढ़वाली हिन्दू हैं, और इसके सीमान्तवासी भी हिन्दू हैं। इसी कारण घाटी हिन्दोस्तानी शब्द है। इसी प्रकार कुमायूँ में भी घाटियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं जैसे 'ऊँटा धुरा', 'टोपी ढोंगा' और 'लीपू लेख' आदि। परन्तु हिमालय के प्रान्तों के सीमान्तवासियों ने या तो बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था अथवा उसके प्रभाव में आ जाने के कारण उन्होंने साधारण बोलचाल में तिब्बती शब्दों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। तिब्बती भाषा में 'घाटी', धूरे अथवा ढोंगे को 'ला' कहते हैं। अँगरेजी में 'ला' का नाम 'पास' है। लद्दाख, स्पिती, किन्नौर, नैपाल, सिक्किम, भूटान और नीफा में इस कारण 'ला' ही मिलेंगे।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि असली वाटरशेड का तात्पर्य बरफानी वाटरशेड से है। हमारा सम्बन्ध उस वाटरशेड से है जो भारतीय नदियों के पानी को तिब्बती नदियों से पृथक् करता है। आगे चलकर स्थानीय जल-विभाजक भी काम आयेंगे, परन्तु इस समय यही आवश्यक है कि हम बरफानी वाटरशेड पर ध्यान दें। वाटरशेड कोई भी हो, उसका सम्बन्ध विभिन्न स्रोतों से ही होता है। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि भागीरथी के सहायक नालों के सोते स्थानीय वाटरशेड के पूर्व में और यमुना के सहायक सोते पश्चिम में हैं। इन सोतों के बिना वाटरशेड का कोई अर्थ ही नहीं रहता। इसी कारण हमें बरफानी वाटरशेड को समझने के लिए बरफानी स्रोतों का समझना अति आवश्यक है। कप्तान हरवर्ट ने भारतीय बरफानी उद्गमों के विषय में काफी छानबीन की है। उनका कथन है:—

"उन सब उद्गमों में जो कि बरफानी इलाकों के हैं एक विशेषता पाई जाती है। ये सब के सब स्रोत अन्य स्थानों की तुलना में खुली और समतल भूमि पर होते हैं जिसके पास ऊँची-ऊँची चोटियाँ होती हैं। इन चोटियों से हिम फिसल-फिसल कर उनकी जड़ों में आकर जम जाता है, तत्पश्चात् पिघल कर खुली और समतल धरती पर आकर स्रोतों को जन्म देता है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि बरफानी इलाकों में ऊँची-ऊँची चोटियाँ होना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि उद्गम रेखा, उस रेखा से जो ऊँचे-ऊँचे स्थानों से गुजरती है, नीचे होती है। हरबर्ट के कथनानुसार "वाटरशेड और उद्गम रेखा दो विभि चीजें हैं। वाटरशेड उद्गम लाइन के ऊपर हो है और दो उद्गम रेखाओं को विभक्त करके एक दूसरे आमने-सामने कर देता है; और समस्त उद्गमों निकास ऊँची चोटियों से फिसल और पिघल कर आ हुए हिम से (या ग्लेशियरों द्वारा) होता है। पाठक य यह भली भाँति समझ लेंगे तो आगे चलकर ग्लेशिय और उनका प्रभाव समझने में सुगमता रहेगी।

नदियों की भाँति ही वाटरशेड का भी अपना अल ही महत्त्व है। नदियाँ मनुष्य के यातायात में बाधक भी बनती हैं और सुगमता भी प्रदान करती हैं। यह बा विशेषतया बड़ी नदियों में पाई जाती है। प्राचीन का में जहाँ एक ओर एक बड़ी नदी के दोनों तटों की सभ्यता एवं संस्कृति में काफी अन्तर होता था, वहीं एक स्थान की सभ्यता तथा संस्कृति इन नदियों के बहाव के सहारे ही नीचे के क्षेत्रों में पहुँचती थी। परन्तु वाटरशेड मनुष्य के सामाजिक सम्बन्ध में बाधक ही हैं। इसका कारण यह है कि ऊँचे-ऊँचे वाटरशेड को पार करना सुगम नहीं होता है। आज भी एक घाटी की सभ्यता में दूसरी निकट की ही घाटी की सभ्यता से काफी अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ, नीफा में सुवनसिरी और कामेंग डिवीजन। यहाँ विभिन्न वाटरशेड जातियों को उनकी सभ्यता संस्कृति और इतिहास को पृथक् किये हुए हैं। राजनीतिक माम में वाटरशेड का इसी कारण बहुत महत्त्व है। आजकल जो चीनियों ने भारत से झगड़ा उठा रखा है उसको समझना बहुत कुछ वाटरशेड समझने पर निर्भर है। चीनी भारत-तिब्बत वाटरशेड को पार करके भारतीय सीमा कई स्थानों पर पार कर चुके हैं; और भारत इन लुटेरों को बरफानी वाटरशेड से बाहर धकेल कर अपनी स्वतन्त्र को सुरक्षित रखना चाहता है। इस सम्बन्ध में हम अन्तर्राष्ट्रीय वाटरशेड की चर्चा भी बहुधा सुनते हैं। इस सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण तभी स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है जब हम पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए हिमाल के उन हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों की स्थिति को सम लें जो वास्तव में भारत के उत्तर में अन्तर्राष्ट्रीय जल-विभाजक रेखा बनाते हैं।

दोहरे व्यक्तित्ववाले फोटो

श्री ब्रह्मदेव

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

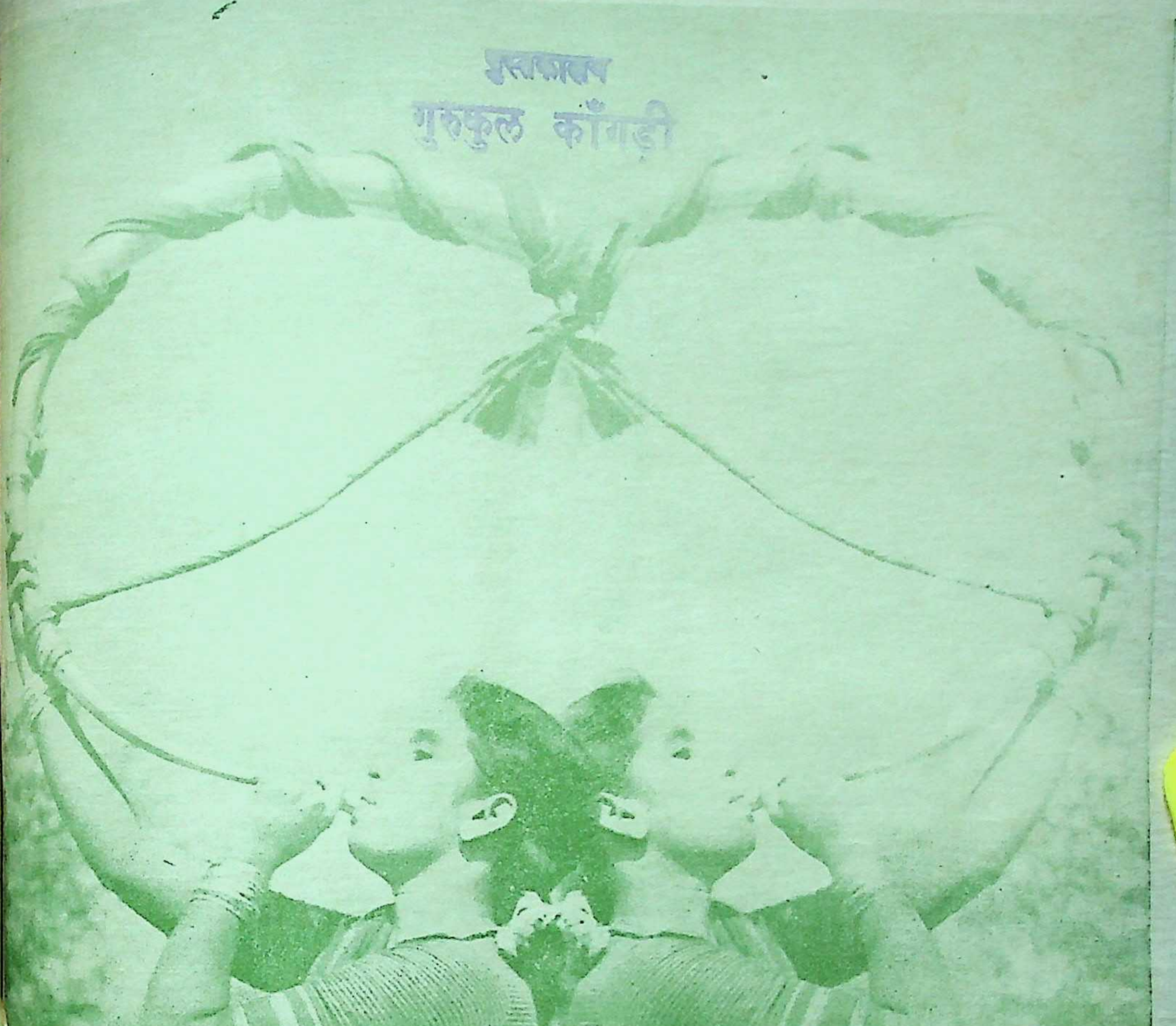

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

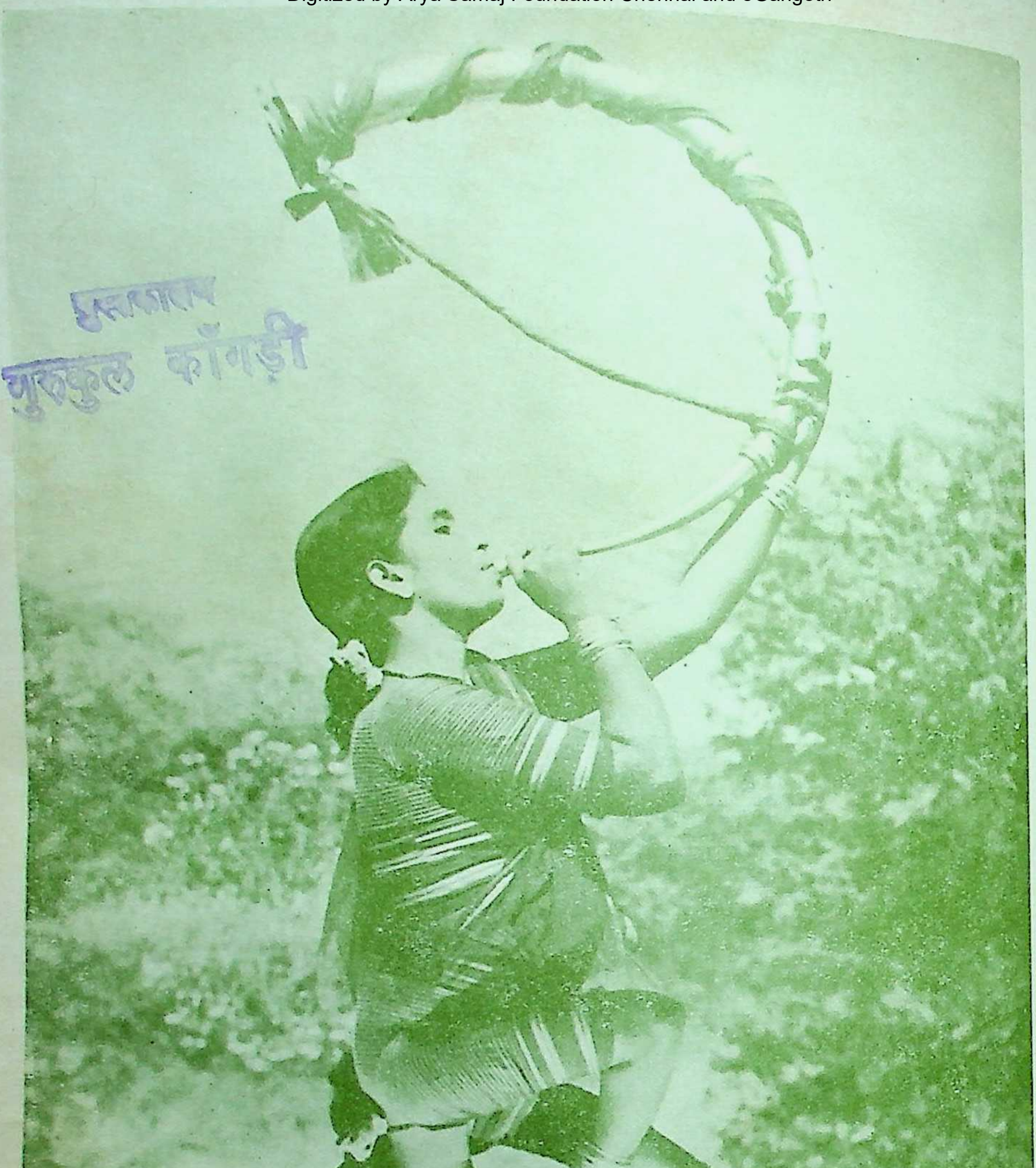

चित्र २

फोटोग्राफी में एक ही चेहरे को दो करने के तरीके कई हैं। परन्तु जो साधारणतया अपनाये जाते हैं उनमें दो प्रमुख हैं। पहला तो यह कि कैमरे के लैंस के आगे एक दर्पण रख दिया जाता है जिससे जब फोटो खिचती है तो निगेटिव पर एक के दो चेहरे हो जाते हैं।

पर इस तरीके में जब तक एक लैंसवाला अच्छा 'रिफ्लैक्स' कैमरा न हो, तब तक निगेटिव के धुलने तक पता ही नहीं लगता कि नतीजा क्या हुआ।

दूसरा और सरल उपाय है उसी दर्पण को अपने 'एनलार्जर' में निगेटिव और लैंस के बीच सीधा रख लेना। इस प्रकार निगेटिव को जरा-सा हिलाने पर अथवा उस दर्पण को जरा सा घुमाने से चित्र में यथेष्ट परिवर्तन हो जाता है। पर जैसे फोटो इस लेख के साथ प्रकाशित किए हैं

उनके लिये दर्पण निगेटिव के बीचों-बीच ही होना चाहिये।

अब पहली फोटो में देखिये कि दुंदुभी बजाती हुई महिला को खबर ही नहीं कि उसकी पीठ के साथ बिलकुल सटी हुई उसी की प्रतिमा भी इसी कार्य में निमग्न है।

चित्र के निगेटिव को घुमा दिया और अब दोनों ऊपर-नीचे हो गये मानों ताश के पत्ते हों।

इसी प्रकार चित्र ३ में मनीपुर के इस तबला-वादक को पता नहीं कि उसी की प्रतिमूर्ति साथ खड़ी है। चौथे में दर्पण को जरा सा घुमाया और वह तबलावादक नीचे को सरक गया।

यकीन रखिये, आपके सब निगेटिव इसी प्रकार 'दोहरे व्यक्तित्व' वाले हैं। उन्हें निकाल कर 'एनलार्जर' में दर्पण रख कर बड़ा बनाइए तो सही!

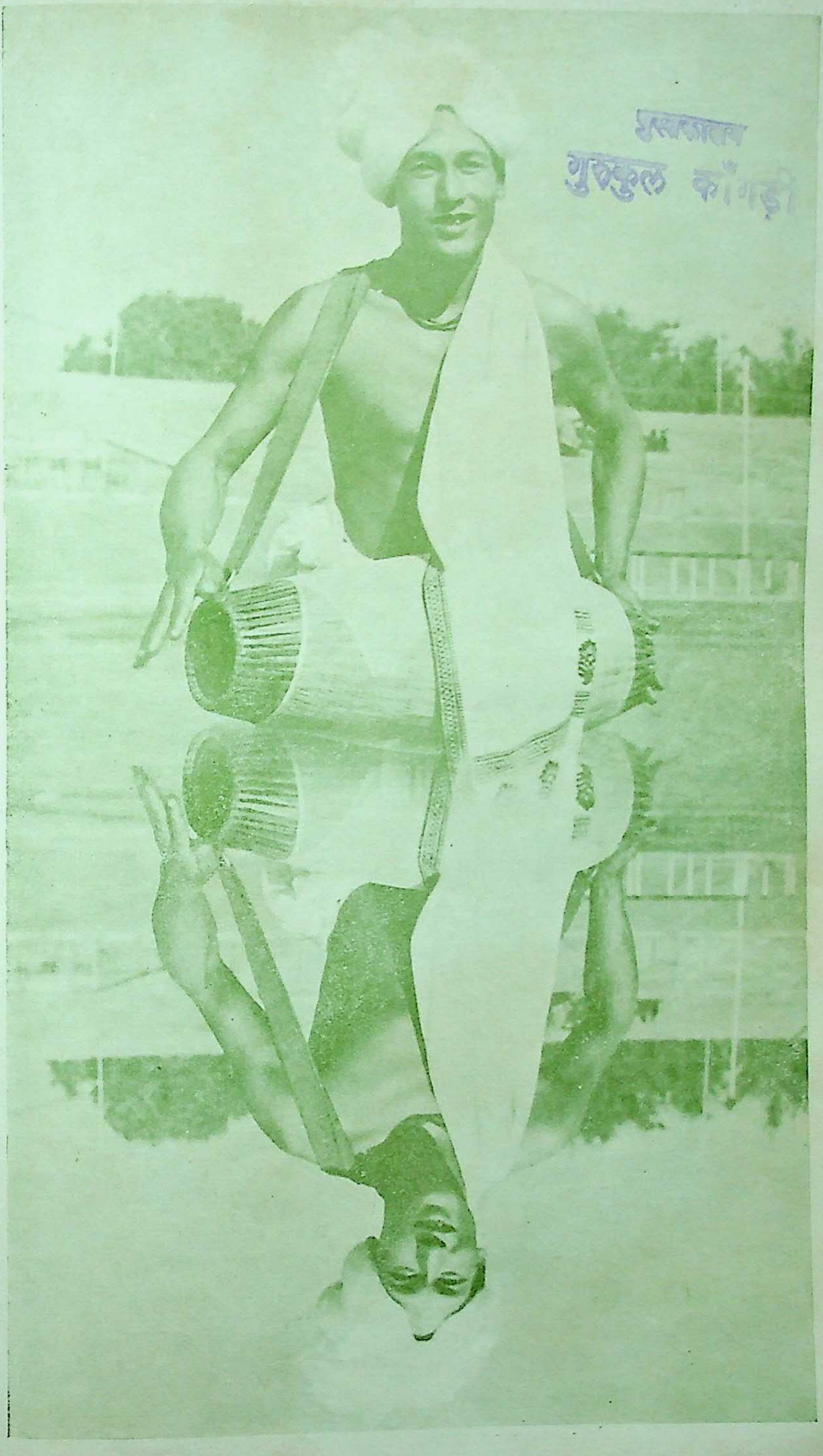

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

चित्र १—एनलार्जर में निगेटिव और लैंस के बीचोंबीच दर्पण रखकर लिये गये दो चित्र

गुरुकुल कांगड़ी
पुस्तकालय

ब्रिटेन के लेखक और उनकी आय

श्री महेन्द्र राजा जैन

सोवियत संघ को यदि छोड़ दिया जाये तो ब्रिटेन में प्रतिवर्ष संसार के अन्य देशों की अपेक्षा सबसे अधिक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं तथा ब्रिटेन के लोग संसार के अन्य देशों के लोगों की अपेक्षा अधिक पुस्तकें खरीदते और पढ़ते हैं। फिर भी यहाँके लेखकों को शिकायत है कि लेखन-मात्र से ही उन्हें इतनी अधिक आय नहीं हो पाती कि उनका जीवन-निर्वाह आसानी से हो सके। उन्हें शिकायत है कि निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों के क्रमशः विकास एवं प्रकाशन क्षेत्र में "पेपरबेक" संस्करण के आगमन के कारण उनकी रोजी मारी गयी है तथा कई लेखकों को जीविकोपार्जन के लिए लेखनकार्य के अतिरिक्त अन्य कार्यों का भी आश्रय लेना पड़ा है।

एक औसत भारतीय को उक्त बात कुछ आश्चर्यजनक सी लगेगी। भारत में आम तौर पर यह धारणा फैली हुई है कि ब्रिटेन के लेखक बहुत संपन्न होते हैं। केवल २-३ पुस्तकें प्रकाशित हो जाने से ही उन्हें जिन्दगी भर के लिए आराम हो जाता है और फिर उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं रह जाती। यह बात कहाँ तक सच है या एक औसत भारतीय की उक्त धारणा कहाँ तक गलत है, इस लेख में इसी प्रश्न पर कुछ विचार किया गया है।

ब्रिटेन में लेखकों के हितों के लिए "सोसायटी आफ आथर्स" नामक एक संस्था है। ब्रिटेन के प्रायः सभी लेखक इस संस्था के सदस्य हैं। एक ओर जहाँ सामरसेट माम, अगाथा क्रिस्टी, नोइल कावर्ड और सर विन्स्टन चर्चिल जैसे दिग्गज इससे संबंधित हैं, तो दूसरी ओर ऐसे लेखक भी इसके सदस्य हैं जिनका नाम ब्रिटेन से बाहर तो बहुत दूर, स्वयं उनके अपने शहर में भी कोई नहीं जानता। इस संस्था का मत है कि ब्रिटेन में प्रत्येक ४ में से ३ लेखकों को केवल लेखनकार्य से औसत साप्ताहिक आय १० पौंड से भी कम होती है जब कि ब्रिटेन के नागरिकों की औसत साप्ताहिक आय बढ़कर १५ पौंड हो गयी है।

सोसायटी ने ब्रिटेन के लेखकों की इस स्थिति के लिए मुख्य रूप से सार्वजनिक पुस्तकालयों और "पेपरबेक संस्करण" को ही दोषी ठहराया है। अपने इस तर्क के पक्ष में सोसायटी का कहना है कि सन १९४९ में ब्रिटेन के सार्वजनिक पुस्तकालयों से पाठकों को २९ करोड़ ४० लाख पुस्तकें दी गयी थीं। पिछले १२ वर्षों में यह संख्या बढ़कर ४५ करोड़ हो गयी है। इसी प्रकार पेपरबेक संस्करण की प्रतिवर्ष लगभग ५ करोड़ प्रतियाँ बिकने के बावजूद भी लेखकों को कोई विशेष लाभ नहीं होता।

सार्वजनिक पुस्तकालयों द्वारा खरीदी गयी प्रत्येक पुस्तक औसतन १०० से अधिक पाठक पढ़ते हैं, लेकिन लेखक को इसकी रायल्टी केवल एक बार अर्थात केवल एक ही प्रति की मिलती है। ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक सदस्य सर एलन हर्बर्ट ने इस संबंध में सर्वेक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि पिछले २० वर्षों में उनकी एक पुस्तक की ३६ प्रतियाँ केवल एक पुस्तकालय से २१६० पाठकों को दी गयीं। इन ३६ प्रतियों की रायल्टी के रूप में उन्हें कुल मिलाकर १ पौंड और १६ शिलिंग याने लगभग २५ रु० मिले।

सार्वजनिक पुस्तकालयों की संख्या बढ़ने के कारण व्यावसायिक पुस्तकालयों की संख्या भी कम हो गयी है। इसका भी कुछ प्रभाव लेखकों की रायल्टी पर पड़ा है।

दूसरी ओर यह कहना भी ठीक है कि सार्वजनिक पुस्तकालयों के इतने अधिक विकास के बावजूद भी ब्रिटेन का औसत नागरिक अब पहले की अपेक्षा अधिक पुस्तकें खरीदता है। पर जनसाधारण द्वारा खरीदी गयी इन पुस्तकों में से अधिकांश संख्या पेपरबेक संस्करण की ही होती हैं जिसके कारण लेखक को मिलनेवाली रायल्टी में कोई खास वृद्धि नहीं हो पाती। यद्यपि ऐसी पुस्तकें केवल १ प्रतिशत ही होती हैं जिनका प्रकाशन पेपरबेक संस्करण में हो पाता है। अतः यह कहना एक प्रकार से ठीक ही है कि पुस्तकों की अधिक बिक्री एवं पाठकों की संख्या में वृद्धि होने के बाद भी लेखकों को आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है क्योंकि लेखक को जो रायल्टी मिलती है वह बिकी हुई प्रतियों के आधार पर ही होती है।

ब्रिटेन की एक अन्य साहित्यिक संस्था नेशनल बुक लीग ने भी सर्वेक्षण कर अनुमान लगाया है कि ब्रिटेन में प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाले लगभग ३००० उपन्यासों

में से केवल छः ही 'बेस्टसेलर' की श्रेणी में आ पाते हैं। बेस्टसेलर का अर्थ उस पुस्तक से होता है जिसकी अपने मूल संस्करण (सजिल्द संस्करण) में २० हजार से अधिक प्रतियाँ बिक सकें। ब्रिटेन में सामान्यतः किसी भी नये उपन्यास की ३००० प्रतियाँ आसानी से बिक जाती हैं जिनमें से आधी से अधिक प्रतियाँ यहाँके सार्वजनिक पुस्तकालयों द्वारा खरीदी जाती हैं।

किसी लेखक की जब ३ या ४ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकती हैं तो उनके पेपरबेक संस्करण में आने की संभावना २५ में से १ ही रहती है। जब वह लेखक और अधिक प्रसिद्ध हो जाता है तो पेपरबेक संस्करण में उसकी पुस्तकें प्रकाशित होने की संभावना और भी अच्छी हो जाती है।

ब्रिटेन में पिछले वर्ष लगभग १८०० उपन्यास पहली बार पेपरबेक संस्करण में पुनर्मुद्रित हुए। इनमें से लगभग १२०० उपन्यास ऐसे थे जो मूल संस्करण अर्थात् सजिल्द संस्करण में कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुके थे। सामान्यतः नियम यह है कि कोई भी नया उपन्यास प्रथम बार पेपरबेक संस्करण में प्रकाशित नहीं किया जाता।

इस समय यहाँ लगभग १० हजार पुस्तकें पेपरबेक संस्करण में प्राप्य हैं। अनुमान लगाया गया है कि इस समय यहाँ पेपरबेक संस्करण प्रकाशित करने वाले १३३ प्रकाशक हैं जिनमें से ५० मूलतः अमेरिकी हैं या अमेरिकी फर्मों से संबंधित हैं। पेपरबेक संस्करण प्रकाशित करनेवाली फर्मों में से ९ ऐसी हैं जो ब्रिटेन में बिकनेवाली कुल पेपरबेक पुस्तकों की ९० प्रतिशत प्रतियाँ प्रकाशित करती हैं।

पेपरबेक संस्करण प्रकाशित करनेवाली फर्में पुस्तक के मूल प्रकाशक को साढ़े सात प्रतिशत के हिसाब से पुस्तक का मूल्य देती हैं। इसमें से आधी रकम मूल प्रकाशक लेखक को पेपरबेक संस्करण की रायल्टी के रूप में देता है। कुछ प्रसिद्ध एवं जमे हुए लेखकों को साढ़े सात प्रतिशत में से लगभग ५ प्रतिशत तक मिल जाता है। पर जब कोई पुस्तक पहली बार पेपरबेक संस्करण में ही प्रकाशित की जाती है तो लेखक को रायल्टी के रूप में पूरा साढ़े सात प्रतिशत मिलता है। पर ऐसे लेखक साढ़े सात प्रतिशत रायल्टी मिलने के बाद भी घाटे में ही रहते हैं क्योंकि पेपरबेक संस्करण में प्रकाशित पुस्तक का मूल्य कम होने के कारण उन्हें प्रत्येक बिकी हो प्रति पर केवल एक या डेढ़ पेंस (लगभग एक आना) ही मिल पाता है, जब कि सजिल्द संस्करण में प्रकाशि पुस्तक की प्रत्येक प्रति पर उन्हें १० आने से लेकर रुपये तक मिलता है।

लेखकों को मिलनेवाली रायल्टी की रकम में कमी का मुख्य कारण पेपरबेक संस्करण हैं या सार्वजनिक पुस्तकालय, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वैसे सोसायटी आफ आथर्स के मत से पुस्तकालय ही अधिक दोषी हैं क्योंकि उनका प्रभाव छोटे-बड़े सभी लेखकों पर समान रूप से पड़ा है। कहा जा रहा है कि विश्वप्रसिद्ध लेखक श्री कांपटन मेकेंजी ने अपनी आर्थिक स्थिति से तंग आकर अभी कुछ ही सप्ताह पूर्व अपनी २१ पुस्तकों का कापी राइट एक प्रकाशक को केवल १० हजार पौंड में बेच दिया है। इसमें से लगभग छः हजार पौंड उन्हें आयकर के रूप में दे देने पड़े।

लेखकों को उनकी पुस्तकों का उचित मूल्य मिल सके, इस उद्देश्य से दो वर्ष पूर्व सर हर्बर्ट ने पार्लियामेंट में एक बिल पेश किया था जिसमें सुझाव दिया गया था कि सार्वजनिक पुस्तकालयों का उपयोग करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक पुस्तक की फीस रूप में कुछ शुल्क लिया जाये। यदि ऐसा करना संभव न हो तो पुस्तकालय के प्रत्येक सदस्य से एक निश्चित वार्षिक शुल्क लिया जाये तथा इस प्रकार जो आय हो वह लेखकों में बराबर बाँट दी जाए।

सर हर्बर्ट का यह बिल पार्लियामेंट में प्रथम वाचन में भी पास नहीं हो सका। जनसाधारण ने तो इसका विरोध किया ही, प्रायः सभी पुस्तकालयों ने भी इसके विरोध में आवाज उठाई। विरोध मुख्यतः इस आधार पर किया गया कि यदि पुस्तकालय पाठकों से शुल्क लेने लगेंगे तो फिर उनकी स्थापना का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा। सभी ओर से व्यापक विरोध होने के बावजूद भी सर हर्बर्ट अपनी असफलता से निराश नहीं हुए हैं और अब दूसरी बार कुछ संशोधित रूप में इस बिल को पुनः उपस्थित करने की तैयारी कर रहे हैं।

इस संबंध में यह भी ज्ञातव्य है कि स्वीडन और फिनलैंड में भी ब्रिटेन के समान सार्वजनिक पुस्तकालय हैं पर वहाँ सरकार लेखकों का संरक्षण इस रूप में करती

है कि सार्वजनिक पुस्तकालयों में उनकी पुस्तकों का उपयोग जितने पाठकों द्वारा किया जाता है, प्रत्येक पाठक के पीछे लगभग एक आना के हिसाब से सरकार लेखकों को पारिश्रमिक देती है। पाठकों को कोई शुल्क हीं देना पड़ता। इसी प्रकार नार्वे और डेनमार्क में यह यम है कि पुस्तकालयों को सरकार की ओर से जो र्षिक अनुदान मिलता है उसका ५ प्रतिशत लेखकों लेखकों की संस्थाओं को दे दिया जाता है।

ब्रिटेन के लेखकों की आर्थिक स्थिति का परिचय ल ही में प्रकाशित एक पेम्फलेट से भी मिलता है। सायटी आफ आथर्स के लिए तैयार किये गये इस फ्लेट के लेखक हैं श्री रिचर्ड फाइंडलेटर और इसका म है—"ह्वाट आर राइटर्स वर्थ ?"

श्री फाइंडलेटर ने अपने सर्वेक्षण के आधार पर अनु-न लगाया है कि इस समय ब्रिटेन में लगभग ७ हजार क हैं जो केवल लेखन-कार्य से ही अपनी आजीविका ते हैं। इसमें रेडियो तथा फिल्मों के स्क्रिप्ट लेखक शामिल हैं। साथ ही साथ इसमें शैक्षणिक एवं प्रावि-क विषयों के लेखक भी शामिल हैं जिनकी संख्या ६२ में लगभग ५००० थी।

यद्यपि पिछले दशक में ब्रिटेन में लेखकों की संख्या है, तथापि सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से उनका स्तर है। पहले लेखकों की गणना प्रथम श्रेणी के पेशेवर ों अर्थात् डाक्टरों, वकीलों आदि के साथ होती थी, अब उन्हें दूसरी श्रेणी अर्थात् अभिनेता, संगीतज्ञों, कारों आदि में गिना जाने लगा है। श्री फाइंड-र के मतानुसार लेखकों की इस गिरी हुई स्थिति का कारण यह है कि पिछले वर्ष ब्रिटेन के अधिकांश कों की औसत साप्ताहिक आय राष्ट्रीय औसत से कम रही। एक ओर जब कि अन्य पेशों के लोगों की स्थिति सुधरी है, सार्वजनिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में उनका सम्मान बढ़ा है, लेखकों के रहन-सहन का स्तर गिरा है तथा राष्ट्रीय दृष्टि से भी उन्हें कोई सम्मानित स्थान नहीं मिला है। फ्रांस, जर्मनी और अमरीका में लेखकों को जो सम्मान प्राप्त है वह सम्मान उन्हें ब्रिटेन में प्राप्त नहीं। इस शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में जार्ज बर्नार्डशा, एच० जी० वेल्स और आर्नोल्ड बेनेट आदि को ब्रिटेन में जो प्रतिष्ठा मिल सकी वह उनकी पुस्तकों के कारण नहीं, वरन् इसलिए कि वे लेखक रूप में प्रसिद्ध होने के पूर्व पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं आलोचक श्री जे० बी० प्रीस्टली को शिकायत है कि ब्रिटेन के विश्वविद्यालय अन्य देशों के विश्वविद्यालयों की अपेक्षा लेखकों को आनरेरी डाक्टरेट की डिग्रियाँ कम देते हैं।

ब्रिटेन के साहित्यिक भविष्य के संबंध में श्री फाइंडलेटर का मत है कि अभी आगामी कुछ वर्षों तक उपन्यासों की संख्या कम होती जायेगी, नई पुस्तकें कम प्रकाशित होंगी तथा प्रकाशकों की संख्या घटेगी। परिणामस्वरूप पुस्तकों के मूल्य में वृद्धि होगी जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव लेखकों की आय पर पड़ेगा। अधिकतर लेखकों की आय में वृद्धि समुद्रपार के देशों में उनकी पुस्तकों के प्रकाशन, अन्य भाषाओं में अनुवाद और बिक्री तथा फिल्मीकरण व रेडियोरूपान्तर आदि के कारण होगी। इसके साथ ही साथ श्री फाइंडलेटर यह लिखना भी नहीं भूले हैं कि लेखकों को अपनी आर्थिक व सामाजिक स्थिति सुधारने में पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों, विद्वत्संस्थाओं, ट्रस्ट आदि से भी काफी सहायता मिलेगी, क्योंकि इन्हींके कारण स्वस्थ साहित्य पनपता है और लेखकों को अपने श्रम का वास्तविक पारितोषक मिलता है।

(पृष्ठ ४२८ की सारणी में संबंधित मनोरंजक आँकड़े देखिए)

पुस्तक का विवरण	स्कूल एवं कालेज की पाठ्य पुस्तकें	प्रथम उपन्यास		प्रसिद्ध या जमे हुए लेखक का प्रथम उपन्यास	
		मूल संस्करण (सजिल्द संस्करण)	बाद में पेपरबेक संस्करण में प्रकाशित होने पर	मूल संस्करण (सजिल्द संस्करण)	बाद में पपरबेक संस्करण में प्रकाशित होने पर
पुस्तक का फुटकर मूल्य	८ शिलिंग ६ पेंस	१८ शिलिंग	३ शिलिंग ६ पेंस	१८ शिलिंग	३ शिलिंग ६ पेंस
रायल्टी (एक प्रति पर)	१० प्रतिशत अर्थात् १० पेंस	१० प्रतिशत अर्थात १ शिलिंग ९½ पेंस	३¾ प्रतिशत अर्थात लगभग १½ पेंस	प्रथम २५०० प्रति पर १० प्रतिशत } २२५ पौंड बाद की २००० प्रति-पर १२½ प्रतिशत } २२५ पौंड	३¾ प्रतिशत कुल बिक्री (२ से ३ वर्ष में)
औसत बिक्री	लगभग १५ वर्ष तक प्रति वर्ष लगभग १० हजार प्रतियाँ	३००० प्रतियाँ (मुख्यत: प्रकाशन के प्रथम ९ माह में)	२० हजार प्रतियाँ	बाद की ३००० प्रति पर १५ प्रतिशत } ४०५ पौंड उसके बाद की प्रतियों पर १७½ प्रतिशत	५० हजार प्रतियाँ
लेखक की कुल आय	लगभग ४२५ पौंड प्रति वर्ष अर्थात् लगभग ४५०) रु० मासिक	२७० पौड अर्थात लगभग ३५५०) रु०	१३० पौंड अर्थात लगभग १७००) रु०	८५५ पौंड अर्थात लगभग ११३५०) रु० मासिक। यदि पुस्तक की बिक्री १० हजार प्रतियों से ज्यादा हो जाये तो कुल आय १२५० पौंड अर्थात् लगभग १६६५०) रु०। यदि पुस्तक 'बेस्ट-सेलर' की श्रेणी में आ जाये अर्थात २० हजार प्रतियाँ बिक जायें तो कुल आय २८२५ पौंड अर्थात् लगभग ३७६१०) रु०	३२८ पौंड अर्थात् लगभग ४३५०) रु० 'यदि यह संस्करण बेस्टसेलर' बन जाए अर्थात एक लाख प्रतियाँ बिक जाएँ तो कुल आय ६५६ पौंड अर्थात लगभग ८७००) रु०

सिंधी भाषा का परिचय

श्री गुलाब भोजवाणी

सिंध और पंजाब सदैव भारत की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के केन्द्र रहे हैं। मोहनजोदड़ो की सभ्यता पाँच हजार वर्ष की पुरानी है जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मुसलमानों द्वारा सिंध की विजय के कारण यद्यपि सिंधी भाषा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, तथापि सिंधी भाषा का प्राकृत और संस्कृत भाषाओं से गहरा सम्बन्ध है। अब प्रश्न उठता है कि सिंधी भाषा का इतिहास क्या है? कुछ लोगों के मतानुसार संस्कृत भाषा सिंधी भाषा की जन्मदात्री है और स्वयं संस्कृत इंडोयोरोपीय परिवार की भाषा है। सिंधी भाषा के साठ प्रतिशत शब्द संस्कृत भाषा से ही बने हैं। इससे इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सिंधी भाषा का प्रारम्भिक रूप वही था जो कि संस्कृत का है। कुछ अन्य लोगों के कथनानुसार सिंधी भाषा 'सामी' भाषाओं के परिवार में से है। सिंधी भाषा की कुछ समन्वयक बातें ऐसी हैं जो कि इस तर्क के लिए प्रभावशील प्रतीत होती हैं। कुछ शब्दों की आधुनिक या वर्तमान बनावट सामी प्रभाव का ही फल है। तीसरी प्रकार के ऐसे भी लोग हैं जो सिंधी भाषा की अलग विशेषताओं को देखकर उसे बिल्कुल ही अलग अस्तित्व देने को तैयार हो गये हैं। जिन भी भाषा-विशारदों ने सिंधी भाषा का गहन अध्ययन किया है, उन्होंने सिंधी भाषा में विचित्र विशेषताएँ पायी हैं। कुछ विशेषताएँ तो ऐसी भी हैं जो न तो संस्कृत में हैं, और न किसी सामी भाषा में ही। परन्तु उन विशेषताओं को देखते हुए भी कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका है। श्री जयरामदास दौलतराम के कथनानुसार आठवीं शताब्दी में एक स्वतंत्र भाषा थी, जो कि सिंधियों में प्रचलित थी। सम्राट् अशोक के राज्यकाल में पाली का सिंधी भाषा पर प्रभाव पड़ा और बाद में अरबी और फारसी भाषा का भी इसपर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा।

श्री जयरामदास दौलतराम और श्री सुनीतिकुमार चैटर्जी का कथन है कि—"सिंधी अत्यंत ही प्राचीन भाषा है, और उस समय की है, जब आर्य लोग सिंधु घाटी में आकर बसे थे।" यह ऋग्वेद की भाषा से कोई विशेष निराली नहीं है। इसपर प्राकृत और अपभ्रंश का प्रभाव पड़ा और विभिन्न रूपों में बदलती हुई वर्तमान स्वरूप में आ गयी। इस प्रकार आधुनिक सिंधी हजारों वर्षों की प्राचीन भाषा है। मोहनजोदड़ो में रहनेवाले आर्यों की भाषा प्राचीन सिंधी प्राकृत थी। वह समय पातंजलि और कालिदास से भी पहिले का था, और उस समय रामायण तथा महाभारत भी लिखे नहीं गये थे। जैन धर्म का ग्यारहवाँ प्रचारक अंशानाथ भी सिंधी का ज्ञाता था, जिसने तत्कालीन सिंधी भाषा में बंगाल तक प्रचार किया जहाँ उनका देहावसान हुआ। मोहनजोदड़ो में से जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, उनसे प्रतीत होता है कि भरत मुनि ऐसे प्रथम संस्कृत लेखक थे, जिन्होंने 'नाट्यशास्त्र' नामक पुस्तक में (द्वितीय शताब्दी) सिंधू सावेश की भाषा का कुछ वर्णन किया है। उसके पश्चात् सातवीं शताब्दी में एक चीनी यात्री लिखता है कि उस समय सिंधी भाषा मध्य-भारत की भाषा से थोड़ी ही निराली थी। आठवीं शताब्दी में सिंधी भाषा भारत की अठारह प्रमुख भाषाओं में से एक थी, और सिंधी कविताएँ मधुर, सरस एवं देशभक्ति से परिपूर्ण थीं। एक प्रमुख सिंधी विद्वान् ने सिंधी भाषा में महाभारत लिखा जो आधुनिक महाभारत से कुछ बातों में ही भिन्न है। यह महाभारत बाद में दसवीं शताब्दी में अरबी में अनुवादित हुआ, जिसका वर्णन अलबरूनी और अबूसालह की रचनाओं में मिलता है।

"चमचनामा" (प्राचीन सिंध का इतिहास—१२१६ ई०) में उन हिन्दू राजाओं के घरानों का वर्णन किया गया है जिन्होंने अरबों से पहले सिंध पर राज्य किया था। सूमरों के राज्यकाल में सिंधी भाषा का प्रभाव बढ़ा और कितनी ही ऐतिहासिक तथा सामाजिक बातों का इसमें समावेश हुआ, जिसमें से 'हमीरमारुई' भी एक है, जिसे मुसलमान गलती से 'उमर-मारुई' कहते हैं। अकबर से भी पहिले इसकी गणना सर्वोत्तम सिंधी कविताओं में की जाती थी।

सिंधी भाषा का संस्कृत से कौन सा सम्बन्ध रहा है? इस विषय पर जिन विद्वानों ने सिंधी भाषा को संस्कृत से निकली हुई बताया है, उनके कुछ तर्क निम्न हैं:—

(१) सिंधी जाति भी प्राचीन आर्य जाति का एक अंग है। इसलिए उसकी भाषा भी इण्डो-योरोपी भाषाओं के परिवार की है।

(२) सिंधी भाषा के साठ प्रतिशत से भी अधिक शब्द संस्कृत धातुओं से बने हैं, और शेष अरबी तथा देशी भाषाओं की उपज हैं।

(३) सिंधी भाषा की शाब्दिक बनावट, संस्कृत भाषा की शाब्दिक बनावट जैसी ही है।

सिंधी जाति प्राचीन आर्य जाति का एक अंग थी, अथवा नहीं, यह इतिहास की एक पहेली है। परन्तु अब तक जो भी खोज ऐतिहासिक दृष्टि से हो चुकी है, उससे यह सिद्ध हो चुका है कि आर्यों से पहिले भी वहाँ कोई जाति रहती थी। उस जाति की अवश्य ही अपनी भाषा रही होगी। सुनीतिकुमार चैटर्जी के मतानुसार—"आरम्भ में भारत में कुल छः प्रमुख जातियाँ, कुल नौ टोलियों में आईं। भाषा की दृष्टि से उन छः जातियों को कम से कम चार विभिन्न भागों में बाँटा जा सकता है।" डा० चैटर्जी ने ये विचार अहमदाबाद में १९५३ ई० में ऑल इण्डिया ओरियंटल कान्फ्रेंस में व्यक्त किये थे। उन्होंने कहा कि—"प्रथम जाति नेगराइड थी, जिनके कुछ प्रमाण कच्छ-मकरान के कुछ निवासियों में मिलते हैं। दूसरी जाति का नाम प्रोटो आस्ट्रेलाईड उर्फ आस्ट्रिक रखा गया है, जिसने सिंध में ही प्रथम प्रवेश किया था। उस जाति के प्रमाण 'कोल' व 'मुण्ड' जातियाँ हैं। तीसरी जाति मंगोलाई थी, जो कि आसाम के रास्ते भारत में प्रविष्ट हुई थी, और सिंध तक बढ़ गयी। मंगोलाई के बाद द्राविड़ जाति आयी जिसका सिंध के रहन-सहन, भाषा आदि पर इतना प्रभाव पड़ा कि सिंधी वाक्यों की बनावट कुछ द्राविड़ी ढंग की भी हो गयी। द्राविड़ों के बाद आयी आर्य जाति।

आइजक टेलर अपने "ऑरीजन ऑफ दी ओरेन्स" में लिखते हैं कि—"आर्य जाति सिंधु नदी के ऊपरी भाग के निकट रहती थी। इसके पश्चात् वह धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ने लगी और स्थानीय लोगों को, जिनका रहन-सहन व भाषा विचित्र व निराली थी, गुलाम बनाने लगी, और उसने उनपर अपनी भाषा व रहन-सहन का प्रभाव डालना आरम्भ किया।"

दक्षिण भारत के इतिहासकार श्री रघुनाथ पंजा का मत है कि—"विश्व की प्रथम सभ्य जाति का, जिसको क्रो-मैगिनन् नाम दिया गया है, सिंध-भूमि पर ही पालन-पोषण हुआ। उस जाति के बाद उत्पन्न ग्रमाल्डी और रेन-डीअर जाति के मनुष्यों की भी सिंध भूमि पर ही पर्वरिश हुई।" श्री पंजा आगे कहते हैं कि "योरोप में जो रेन-डीअर मनुष्य जाकर बसे, वे सिंध से ही जाकर वहाँ बसे थे। क्रो-मैगिनन् जाति जिस युग में पैदा हुई थी, वह युग बीस हजार वर्ष पहिले का था।" इन क्रो-मैगिनन्, ग्रमाल्डी और रेन-डीअर मनुष्यों की भी कोई तो भाषा होगी ही? बीस हजार वर्ष पहिले वह सिंध की भाषा कौन सी थी? अवश्य ही उस भाषा का संबंध बाद में उत्पन्न इण्डो-योरोपी भाषाओं के परिवार से नहीं रहा होगा क्योंकि वह परिवार, भाषा-विज्ञानी ए० एस० डायमन्ड के मतानुसार—"मुश्किल से पाँच हजार वर्ष पहिले ही उत्पन्न हुआ था।" आर्य भाषा उस इण्डो-योरोपी गिरोह की ही एक अंग थी जो पाणिनि के समय (लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व) से संस्कृत के नाम से पुकारी जाती रही है।

प्रतीत होता है कि उन क्रो-मैगिनन् मनुष्यों ने ही बाद में उन सभ्यताओं को जन्म दिया जो कुइट्या, आमड़ी, नल तथा कली सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनके चिह्न बाँधी, पन्डेवर्घ, गाजीशाह, ढँलजीकोट व अन्य स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। उन सभ्यताओं से ही विश्व की वह प्रसिद्ध सभ्यता उत्पन्न हुई प्रतीत होती है जो "मोहनजोदड़ो" नाम से विख्यात है।

अइलिन हटन ब्रोड्रक ने अपनी "दी ट्रे ऑफ ह्यूमैन हिस्ट्री" में उस सिंधु सभ्यता की चार मंजिलें बताई हैं जिनमें अंतिम सभ्यता थी आमड़ी की सभ्यता। लेखक के विचार में "आमड़ी मंजिल आरम्भ में शुद्ध सिंधी मंजिल थी।"

श्री राधा कुमुद मुकर्जी "दी फण्डामेण्टल यूनिटी ऑफ इण्डिया" में लिखते हैं कि—"भारतीयों के लिए सिन्धु का प्रान्त विशेष रूप से पवित्र देश है क्योंकि वह देश ही उनकी सभ्यता एवं धर्म का केन्द्र था। मोहन-जोदड़ो तथा अन्य स्थानों से जो पुरानी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं वे प्रमाणित करती हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता ही विश्व की प्राचीनतम सभ्यता है, और इस सभ्यता का आधार था मनुष्य के मूल्यवान खाद्य-पदार्थ गेहूँ पर, जो

पहिले-पहल इस भूमि पर ही बोया गया था। मोहन-जोदड़ो से जो गेहूँ प्राप्त हुआ है, वह पंजाब व पश्चिमी पाकिस्तान के वर्तमान गेहूँ से कई गुना उच्च कोटि का है। सिंध ने ही हिन्दू धर्म को जन्म दिया, जिसका प्रथम रूप था शिव की पूजा। वह भी सिंध से ही आरम्भ हुई। योग सिद्धान्त का भी सिंध से ही प्रादुर्भाव हुआ।''

श्री तीरथ वसन्त (भारतीय साहित्य अकादमी पुरस्कार-विजेता) ने अपने निबन्ध में (जो कि ''सिंधी भाषा और लिपि'' नामक पुस्तिका में छपा हुआ है) सिंधी भाषा का आधार 'अर्श' भाषा को बताया है, और नबी-बख्श खाँ बलोच के मतानुसार––''सिंध की प्राचीन भाषा ग़ालिबा सामी ज़बानों के गिरोह में से थी। जिस पर बाद में आर्य भाषाओं का प्रभाव पड़ा।'' और सिराज उल्हक के विचार में––''सिंधी संस्कृत से ही निकली हुई नहीं अपितु सामान्यतः उसके रूप का एक बदला हुआ स्वरूप है। और यह बदला हुआ स्वरूप उस समय से धीमा पड़ने लगा जब आर्यों का कुछ भाग पूरब की ओर बसने लगा था।''

आर्य जब भारत में आये तो उनकी संस्कृति व संबंधों का आदान-प्रदान यहाँ पहिले से बसे हुए लोगों से काफी हुआ था। विशेषकर जो मनुष्य समुद्री तट पर बसते थे, उनके आदान-प्रदान तथा संबंध मध्य एशिया तथा विश्व के अन्य देशों से भी थे। ऋग्वेद में कई स्थानों पर ''पणी'' लोगों का वर्णन आया है। लोगों का मत है कि ये पणी लोग वही हैं जिन्हें विश्व फिनीशियनों के नाम से जानता है। ये पणी लोग सिंध और भारत के 'कारोमण्डल' किनारे पर बसे हुए थे। ये पणी आर्य व द्राविड़ों (और सम्भवतः अन्य लोगों) के मिलाप से उत्पन्न जाति थी। इतिहास बताता है कि ये फिनीशियन लोग विश्व के प्रथम व्यापारी थे जो दूर देशान्तरों में व्यापार करते थे। कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि पणी लोगों और सिंधियों के आपस में गहरे सम्बन्ध थे, और यह भी शंका होती है कि कहीं सिंधी लोग भी उन्हीं पणी लोगों में से तो नहीं हैं। सिंधी भाषा, सिंधी सभ्यता और सिंधी जीवन पर विभिन्न देशों और जातियों का गहरा प्रभाव पड़ा है, और यह प्रभाव अवश्य ही पणी तथा अन्य लोगों के निकट सम्पर्क में आने के कारण ही पड़ा होगा।

श्री भेरूमल महरचन्द अपने ''सिंधी भाषा का इतिहास'' में लिखते हैं कि ''कोल, संथाल व द्राविड़ भाषाओं के चिह्न अब भी सिंधी भाषा में पाये जाते हैं, परन्तु उस समय सिंधी भाषा पर उन अन्य देशों की भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा होगा जिनका सिंध से निकट सम्पर्क था।''

सिंधी भाषा पर द्राविड़ों की तमिल भाषा का भी सिक्का जमा हुआ है। जैसे मोती, कुटिया, कटार, कोट, खट, मुखड़ी, पुष्प और नीर शब्द सिंधी भाषा में तमिल भाषा से ही आये हैं।

यूनानियों ने चन्द्रगुप्त का नाम 'सिंदरकोटस' रखा था। आश्चर्य है कि सिंधी भाषा ने ही उस शब्द को उसी उच्चारण में सुरक्षित रखा है।

मुसलमानों के आने के बाद यद्यपि सिंधी भाषा पर अरबी और फारसी का प्रभाव अत्यधिक बढ़ने लगा, तथापि व्याकरण की दृष्टि से आज भी संस्कृत सिंधी भाषा की जननी प्रतीत हो रही है। यही कारण है कि यह कहा जाता है कि सिंधी भाषा संस्कृत से ही निकली है।

उन दिनों छापेखाने नहीं थे कि पुस्तकें अधिक संख्या में छप सकें, परन्तु बहुत से विद्वानों ने हस्तलिखित पुस्तकों की रचना अवश्य की होगी। इसलिए प्रश्न उठता है कि उस समय सिंधी भाषा के लिए कौन सी लिपि प्रचलित थी?

अलबरूनी, अरब का प्रसिद्ध इतिहासकार दसवीं शताब्दी में सिंध में आया था। वह अपने यात्रा-विवरण में यह स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि––''सिंध में सिंधी और अरबी दोनों प्रचलित हैं। परन्तु सिंधी के लिए सिंध के कुछ भागों में देवनागरी लिपि प्रयोग में लाई जाती है।'' ब्राह्मणाबाद के खण्डहरों से जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनमें से कई शास्त्री (मूल देवनागरी) लिपि में लिखे हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में सिंधी की लिपि देवनागरी ही थी, परन्तु बाद में अरबों के शासनकाल में इसकी लिपि बदलकर अरबी हो गयी, और कई सौ वर्षों तक यह लिपि चलती रही। अरबी सिंधी की वर्तमान 'अलफ-बे' वर्णमाला सन् १८५३ ई० में ही बनी। सिंध में विदेशी लोगों के शासन का आरम्भ शाह बेग अरंगू से हुआ और उसके पश्चात् तुरखाँ

आया। इन दोनों घरानों के शासनकाल में यद्यपि फारसी का प्रभाव और भी बढ़ गया, लेकिन फिर भी सिंधी भाषा ने अपना अस्तित्व मिटने नहीं दिया।

सिंधी भाषा और साहित्य का आधुनिक इतिहास सत्रहवीं शताब्दी का है। उस समय के इब्दाल करीम से लेकर शाह अब्दुल लतीफ, सचल, रोहल, सामीं, बेकस, बेदी, दलपत व अन्य कवियों की कविताओं का इसमें समावेश हुआ है।

सिंधी से अपरिचित विद्वानों में से बहुत कम लोगों को यह मालूम है कि सिंधी भाषा संस्कृत से निकली है। यूरोपीय विद्वानों का मत है कि भारतीय भाषाओं में सिंधी भाषा का प्रमुख स्थान है जो कि संस्कृत से निकली है। डा० ट्रम्प (जर्मन) लन्दन और लीपज़िक से १८७२ ई० में प्रकाशित सिंधी व्याकरण में बताते हैं कि सिंधी भाषा का मराठी, हिन्दी, पंजाबी और बंगला भाषाओं की अपेक्षा प्राकृत भाषा से अधिक निकट का सम्बन्ध है। कैप्टेन स्टैक द्वारा रचित 'देवनागरी कोष' में यह बतलाया गया है कि मुसलमानों और अँगरेजों के शासन के कारण उनकी भाषाओं के कितने ही शब्द सिंधी भाषा में मिल गये हैं। फिर भी कुल बीस हजार शब्दों में से बारह हजार शब्द संस्कृत के, साढ़े तीन हजार देशी (ठेठ) शब्द, दो हजार फारसी के और ढाई हजार अरबी शब्द सिंधी भाषा में हैं। डा० मन्सुखाणी के कथनानुसार लगभग डेढ़ लाख उर्दू, हिन्दी, तुर्की, पोर्चगीज़ और अँगरेजी शब्द आधुनिक सिंधी भाषा में उपलब्ध हैं। कई शब्द जो देखने में अरबी अथवा फारसी प्रतीत होते हैं, जैसे कि "सुबह", परन्तु वास्तव में हैं संस्कृत भाषा के ही। घास और बूटों के जितने नाम सिंधी भाषा में हैं, उतने हिन्दी भाषा में भी नहीं हैं। ज्यों-ज्यों समय बदलता रहा है, त्यों-त्यों समय के प्रभावानुसार सिंधी भाषा में नये-नये शब्दों, नये-नये व्यंजनों तथा नये-नये मुहावरों का समावेश होता रहा है। इसका यहाँपर कोई विस्तार नहीं किया जायेगा, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि सिंधी भाषा को, अलग-अलग भाषाओं से जो सहयोग मिला है, उससे सिंधी भाषा एक समृद्ध भाषा बन गयी है; और कुछ विद्वान् जो यह कहते हैं कि सिंधी भाषा एक निर्धन भाषा है, वास्तविकता से अपरिचित हैं।

सिंधी भाषा में एक "ऊँट" शब्द के लिए ही कम कम तेरह शब्द हैं। उदाहरणार्थ—उठु, बेतो, बे भटारो, भौरो, तोदो, चांद्रो, दाची, द्राघो, करहो, गैमर लेड़ व मयू।

'स्त्री' के लिए संस्कृत के अलावा अन्य किसी भाषा में शायद ही इतने शब्द हों जितने कि सिंधी भा में हैं। अकेले शाह साहब ही अपनी शायरी में स्त्री को कहीं ज़ाल, नार, कामण, मन्धु व कहीं औरत कहते हैं। इसके अलावा, भारियां, ललनी, रन, जाड़फा आदि शब्द भी सिंधी में स्त्री के लिए प्रयोग किये जाते हैं। 'पहलवान' शब्द के लिए तो शाह साहब ने एक पूरी सूची तैयार कर दी है। आरड़ो, बहादुर, बांको, पाण्डुप, पांड़ पावंगु, जनुग, जोधो, झुंझार, चोरेरो, छप्रेड़ो, दिले रावतु, सदरु, साऔ, सूरह्य, सूरमों, सूरु, शहबाज, कोंर कोंअर, खंघार, खग्रमारु, गारोड़ी, घोटु, मांझी, म मल्हु, मुहांई, मरदानों, मतारो, वरिहुं, वरियाम, वल और वीरु। इससे यह सिद्ध होता है कि सिंधी भा शब्द सम्पत्ति की दृष्टि से कितनी समृद्ध भाषा है।

"सिंध जी अदबी तवारीख" में इल्हाज खान बहादु मुहमद सदीक़ मेमण लिखते हैं कि—"सिंध के विद्वा द्वारा रचित कुछ अरबी पुस्तकें आज भी मिस्र की जाम अज़हर (अज़हर यूनीवर्सिटी, क़ाहिरा) में पाठ्यपुस्त के रूप में पढ़ायी जाती हैं।"

सिंधी भाषा की विशेषताओं का वर्णन करते हु डा० ट्रम्प लिखते हैं कि—"जो भी प्राकृत से निक हुई उप-भाषाएँ हैं, उनमें से सिंधी भाषा का स्थान प्र समझना चाहिए। इस समय जब भारत की अन्य भा पूर्ण रूप से बिगड़ी अवस्था पर जा पहुँची हैं समय सिंधी भाषा अपना वास्तविक रूप सुरक्षित हुए है।"

मिस्टर जॉन बीम्स अपने—"कम्पैरेटिव ग्रा ऑफ दी माडर्न आर्यन लैंग्वेजैज़ ऑफ इण्डिया" में लि हैं कि—"सिंधी भाषा में कुछ ऐसा प्राकृतिक आक अवश्य है जो उसे पूर्वी विद्वानों से प्रभावित भाषा अलग किये हुए है।"

कैप्टेन जार्ज स्टैक अपनी "सिंधी ग्रामर" में हैं कि—"सिंधी भाषा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो विज्ञानी के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तु बन सकती हैं।"

सुन्दर मुखड़े पर पड़ रही थी। आँखों में गहरा सुरमा लगा हुआ था; गालों पर लाली मली हुई थी, तेल मले हुए उसके केशों की माँग बड़े ही कलात्मक रूप से कढ़ी हुई थी। उस सुन्दरी को इस शुभ अवसर पर इस प्रकार रोते देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। बाकी सब लोग बड़े प्रसन्न थे और इस बेचारी नववधू के रोने-धोने की ओर ध्यान भी नहीं दे रहे थे। समझ में नहीं आया कि आखिर यह क्या मामला है?

नववधू को घोड़ी समेत लाकर दूल्हे के बंद द्वार पर खड़ा कर दिया गया। बाहर खड़े बाराती जोर-जोर से मंगल-गान करने लगे। द्वार-बंद मकान के भीतर से दूल्हा के कुटुम्ब की टोली भी गाना गाकर उनके गाने का जवाब देती जा रही थी। ऐसा लग रहा था मानों दोनों दलों में संगीत प्रतियोगिता हो रही हो। थोड़ी देर बाद मकान का द्वार खुला। सुन्दर बलिष्ठ नौजवान दूल्हा चटकीले लाल रंग के लम्बे कोट की लम्बी आस्तीनों को चढ़ाये हुए हँसता हुआ आ खड़ा हुआ अपने द्वार का प्रहरी बनकर। कमर से लपटी हुई रंगीन पट्टी में बँधी हुई थी एक बड़ी भारी तलवारनुमा छुरी। उसने पैरों में घुटनों तक के ऊँचे ऊनी बूट जूते पहिन रखे थे। तेल पड़े हुए उसके केश की दो सुन्दर चोटियाँ सिर पर हमारे देश की पहाड़ी स्त्रियों के केश-शृंगार की भाँति लपटी हुई थीं।

थोड़ी देर बाद अचानक मकान के भीतर से लामाओं के मंत्र पढ़ने की आवाज आने लगी। देखते ही देखते मकान के भीतर से अनेक नर-नारियों ने आकर उस नववधू और दूल्हा को घेर लिया। बाहर खड़े दो लामा जोर-जोर से डुगडुगी बजा-बजाकर मंत्र दोहराने लगे। नववधू ने सिर हिलाना बंद कर दिया। कुछ नारियाँ गाना गाती हुईं उसके समीप आयीं और नववधू के हाथ में लगभग नौ इंच लम्बा रंगीन सत्तू का बना हुआ एक तीर पकड़ा दिया। उसने उस तीर को पकड़कर अपना हाथ ऊपर उठा लिया; और हँसता हुआ दूल्हा सीना तानकर उसकी ओर बड़े प्रेम से निहारने लगा। लामा के संकेत करने पर नववधू ने एक मीठी हँसी हँसकर उस सत्तू के तीर को फेंक कर दूल्हा की छाती पर दे मारा। मार खाकर दूल्हा मकान के भीतर भाग गया। निशाना ठीक पड़ा देखकर सब लोग बड़े प्रसन्न हो उठे। कहने को यह जोड़ा सदा एक दूसरे से हिल-मिलकर रहेगा।

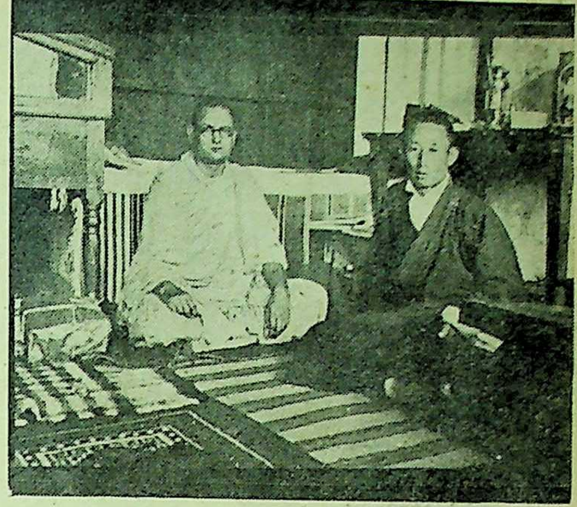
गुम्पा के अतिथि-भवन में राहुलजी और श्री गेशेला

फिर नववधू घोड़ी से उतारी गयी, और गाना गाती हुई स्त्रियाँ उसको भीतर लिवा ले गयीं। सारे तिब्बती नर-नारी मकान के भीतर घुस पड़े। लामा लोग बड़े जोर-जोर से विवाह के मंत्र पढ़ने लगे। भीतर जाकर गेशेलाजी ने एक सुन्दर कालीन का बिछौना दिखाया, जिसपर एक सुन्दर कढ़ी हुई चादर बिछी हुई थी। उन्होंने चादर उठाकर दिखायी तो मैंने देखा कि उसके नीचे रंगीन जौ सजाकर स्वस्तिक का पवित्र चिह्न बनाया गया था। यह सुन्दर सेज इस नव दम्पत्ति के लिए तैयार की गयी थी।

सूर्य डूब चुका था पर नीले गगन पर अपनी लालिमा छोड़ गया था। पूर्व दिशा से निशा गाढ़े नीलाम्बर का आँचल फैलाये चली आ रही थी। हम दोनों अविवाहित साथी कुछ सोचते हुए चुपचाप लौट पड़े। लौटते हुए अचानक उस मकान के पीछे के एक छोटे से पानी से भरे गड्ढे पर निगाह पड़ी जो पेड़-पौधों के झुरमुट में चमचमा रहा था। पोए-खंग की ओर से बहती हुई नदी का पानी नीचे की ओर बहा चला आ रहा था। और इसी नदी से नाली काटकर जमींदार महाशय अपने बाग को सींचने के लिए पानी खींच लाये थे। उस छोटे से गड्ढे में देखा कि सुन्दर मोटी-मोटी मुरगाबियाँ तैर रही हैं। उनके बिल्कुल निकट जाने पर भी जब वे पक्षी विचलित न हुए और उड़कर नहीं भागे तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

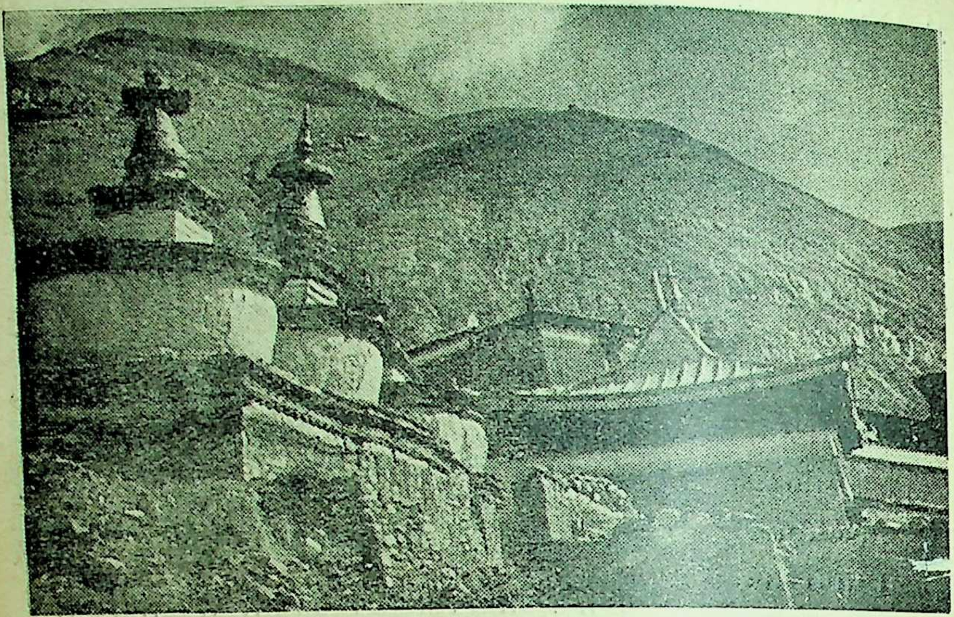

पोए-खंग मठ के शिखर और पृष्ठभूमि के पर्वत

हम अपने देश में अपने बड़े भाई साहिब और मामाजी के साथ इन्हीं मुर्गाबी पक्षियों के शिकार के लिए कड़ी सर्दी के दिनों में मीलों घूमा करते थे। जंगल में रात भर झीलों के किनारे अपनी-अपनी बन्दूकों में गोलियाँ भरकर सबेरे की बाट लगाये छिपे पड़े रहते थे। पौ फटते ही मुर्गाबी चिड़ियाँ हमें देखते ही पर फड़फड़ाकर हजारों की संख्या में भाग पड़ती थीं। पता नहीं कि उन मुर्गाबियों को जंगल की झाड़ियों में छिपे रहने पर भी कैसे हमारा पता लग जाता था और वे जान बचाकर तुरन्त भाग जाती थीं। आज देखा कि वे ही चिड़ियाँ हैं, और मैं उनके इतने समीप मुँह से राल टपकाता हुआ खड़ा हूँ। क्या ही स्वादिष्ट होता है इन चिड़ियों का मांस! मांसाहारी जगत् में ये मुर्गाबी चिड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। पहाड़ों पर बर्फ पड़ने से ये चिड़ियाँ भारत के मैदानों की झीलों में उतर आती हैं और फिर दूर-दूर से आतुर शिकारी दौड़ पड़ते हैं इनका शिकार करने के लिए। गेशेलाजी से पूछा कि क्या इन चिड़ियों के पर काटकर इनको पाला गया है, तो वे तुरन्त मेरा मतलब समझ गये, और हँसकर बोले कि इस देश में कभी किसीने इन चिड़ियों को न मारा है और न सताया है। ये जानती हैं कि इस देश में आदमी इनका शत्रु नहीं है। इसीलिए ये यहाँ निडर होकर रहती हैं।

डेरे पर लौटकर सारी बातें राहुलजी को सुनाईं। वे बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। मेरी बातें सुनकर कहने लगे, जिस प्रकार हमारे देश में भिन्न जातियों और प्रान्तों में विवाह के रीति-रिवाज पृथक् हैं, इसी प्रकार यहाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार के रिवाज प्रचलित हैं। पर यहाँ सारे तिब्बत में विवाह के मंत्र हमारे देश की तरह एक ही हैं। शादी विवाह के लिए शुभ मुहूर्त मठों के लामा ही तय करते हैं। सारे देश के गाँवों की जजमानी पुजारी लामाओं के अधिकार में बँटी हुई है। वे ही लोग अपने यजमानों के यहाँ नामकरण, मुंडन, विवाह और मौत इत्यादि के अवसर पर धार्मिक क्रिया-कर्म कराने और दान सामग्री लेने आते हैं। फिर जब मैंने उन्हें मुर्गाबियों की चटपटी बातें सुनायीं तो भर आया उनके भी मुँह में पानी। बोले, ये लोग बड़े मूर्ख हैं। खाने-पीने की इनको कोई रुचि नहीं है। देखो, यहाँ इतने मुर्गे घूमते-फिरते हैं और मुर्गाबियों तथा बत्तखों की तो यहाँ भरमार है, पर ये जानते ही नहीं कि इनको खाने में क्या मजा आता है।

हम लोगों की वेश-भूषा को देखकर गाँव वाले काना-फूसी करने लगते थे और नौकर से पूछकर पता लगा लेते थे कि हम लोग भारत के लामा लोग हैं। हमारे देश को यह लोग "ग्यागर" के नाम से पुकारते हैं। "ग्यागर" के प्रति इन लोगों की बड़ी श्रद्धा है। यह लोग जानते हैं कि उनका धर्म भारत से आया था और उनके अ धार्मिक मंत्र भारतीय हैं। इसलिए उनका अनुमान है कि भारतीय लामा असली लामा हैं जिनके मंत्रों में तक असली तत्त्व बाकी है।

हम सब भोजन के बाद थके-माँदे सोने की तैयारी कर रहे थे कि अचानक हमारे पड़ाव की स्वामिनी एक अधेड़ उम्रवाली महिला और दो तिब्बती पुरुषों के साथ हमारे कमरे के द्वार पर आकर, और बड़े अदब से खड़ी होकर, गिड़गिड़ाकर कुछ निवेदन करने लगी। गेशेलाजी ने पूछताछ की तो पता चला कि पड़ाव की स्वामिनी की

सहेली का एक छोटा बच्चा इतना बीमार है कि दम तोड़ रहा है। भारतीय लामा होने के नाते महापंडित राहुलजी से निवेदन कर रही है कि उसके मरते हुए इकलौते बच्चे को अपने हाथों से छूकर कुछ मंत्र पढ़ दें ताकि वह मरता हुआ बच्चा बच जाय। हम लोगों ने राहुलजी से मजाक करते हुए कहा कि वे अब अपने लामा बनने की परीक्षा पास करने को तैयार हो जायें। हम कलकत्ते के एक बड़े विख्यात अंग्रेजी दवाखाने से कुछ दवाइयाँ भी साथ लाये थे जिनकी ऊँचे पहाड़ी देश में जरूरत पड़ सकती है। उस प्राथमिक चिकित्सा के बक्से (First Aid Box) में दो बोतल असली ब्रांडी की भी थीं। झटपट एक बड़े सन्दूक के चमड़े के गिलाफ को खोल डाला और सन्दूक खोलकर एक ब्रांडी की बोतल और छाती में होनेवाली निमोनिया बीमारी की दवाई की शीशी निकालकर टार्च अपने हाथों में लेकर उस कड़ाके की ठंडी हवा को चीरते हुए हम लोग गाँववालों के साथ हो लिये। गाँववाले भौंकते हुए खतरनाक कुत्तों को पत्थरों से मार-मारकर हम लोगों को उस मरीज के घर की ओर लिवा ले चले। भीतर जाकर देखा कि लगभग एक साल का दुबला-पतला बच्चा मैले-कुचैले कम्बल में लिपटा हुआ निर्जीव अवस्था में पड़ा है। देखने से लग रहा था कि बच्चा मर चुका है। हाथ लगाकर देखा तो उसकी देह बिल्कुल ठण्डी मालूम हुई और नाड़ी बहुत शिथिल थी। मैंने अपने गाल को उसके नाक पर लगाया तो पता चला कि बहुत ही धीरे-धीरे वह कुछ साँस ले रहा है। मैंने चिल्लाकर चिन्तित राहुलजी से बताया कि बच्चा अभी जीवित है। राहुलजी ने चट से ब्रांडी की बोतल की डाट अपने दाँतों की सहायता से खोल डाली और एक चम्मच से थोड़ी ब्रांडी उस अधमरे बच्चे के होठों के बीच में उँडेल दी। संस्कृत के कुछ श्लोक बड़बड़ाते हुए राहुलजी ने थोड़ी सी ब्रांडी अपने हाथ के चुल्लू में लेकर उस निर्जीव बच्चे के छाती और गले में मलनी आरंभ की। राहुलजी के कहने पर हम सब गायत्री मंत्र को जोर-जोर से दोहराने लगे ताकि उनको हमारे लामा होने का विश्वास हो जाय। तिब्बत-निवासियों को दवाइयों पर विश्वास नहीं है, उनका विश्वास मंत्रों पर अधिक है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन जब उस मल-मूत्र से भरे गंदे बिछौने पर बैठे उस मरते हुए बच्चे को बचाने की चेष्टा कर रहे थे तो प्रदीप के उजाले में ऐसा लग रहा था कि स्वयं बुद्ध भगवान् अपने जान की बाजी लगाकर एक मरते हुए बालक को मौत के मुँह से लौटा लाने की चेष्टा कर रहे हों। मेरे मन के भीतर कोई पुकार-पुकार कर उनसे कह रहा था कि 'धन्य हो तुम! यद्यपि तुम ढोंगी महात्मा हो और भ्रष्ट हो तथापि तुम्हारा मन कितना उदार है! तुम्हारे मन में कितना प्रेम है एक पीड़ित के प्रति! तुम अघोरी बनकर सेवा करते हो निस्वार्थ रूप से मानव जाति की। तुम मानते नहीं हो सांसारिक बाहरी तुच्छ आडम्बर को और बदनाम हो इस दुनिया के स्वार्थी समाज में।'

देखते ही देखते उस निर्जीव बालक ने आँखें खोल दीं। उसकी माता राहुलजी से सटकर बैठ गयी और उसने अपने दुलारे बालक को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। थोड़ी देर बाद फिर निमोनिया की दवाई उस बच्चे के मुँह में डालकर राहुलजी ने उस अस्वस्थ बालक को कम्बल से अच्छी तरह लपेट दिया और हम अपने पड़ाव की ओर विदा लेकर चल पड़े। उसी बीच मौका पाकर हमारे दयालु भाई गेशेलाजी ने बड़ी लम्बी डींग हाँककर उन गाँववालों को इस भारतीय लामा की महानता की लम्बी-चौड़ी कपोलकल्पित कहानियाँ सुनाईं। ऐसी बातें सुनकर तिब्बत-निवासी प्रसन्न होते हैं और अनहोनी बातों पर भी विश्वास करने लगते हैं। पड़ाव पर आकर घड़ी देखी तो मालूम हुआ कि रात के बारह बज चुके हैं। हम सब अपनी थकान को भूल गये थे और उस मरते हुए बालक को बचाकर बड़े प्रसन्न थे। राहुलजी ने सोते-सोते कहा कि प्रातः उस बच्चे को देखकर आगे बढ़ेंगे। अगर जरूरत पड़ी तो एक दिन और ठहरकर फिर आगे यात्रा करेंगे।

दूसरे दिन प्रातः उठकर अपना माल-असबाब खच्चरों पर लदवा कर नौकर के साथ पोए-खंग गुम्पा की ओर रवाना कर दिया। और फिर दिन निकलने पर जाकर उस अस्वस्थ बालक को देखा। वह बड़ी-बड़ी आँखें खोले माता की गोदी में लेटा हुआ था। नाड़ी द्रुत गति से चल रही थी। राहुलजी ने यह सब देखकर कहा कि बालक के बच जाने की सम्भावना प्रबल है। ब्रांडी की बोतल और निमोनिया की दवाई की शीशी हम कल रात वहीं रख आये थे। कुछ मंत्र बिड़बिड़ाते हुए उस बालक की

मालिश राहुलजी ने अपने हाथों से की। हम लोगों ने खड़े होकर जोर-जोर से गायत्री मंत्र का पाठ किया और आखिर में निमोनिया की दवाई पिलाकर बालक की माता को दिन में दो तीन बार इस प्रकार दवाइयों के प्रयोग करने का आदेश देकर उनसे बिदा माँगी।

बालक की माता की आँखों में खुशी और आशंका के अश्रु बह निकले। यह देखकर राहुलजी की आँखों में पानी भर आया और उस गंदे बालक के माथे पर प्यार से चुम्बन देकर उसकी माता को समझाया कि अब कोई डर नहीं है। उसका बच्चा दीर्घजीवी होकर इस जगत् में एक महान् पुरुष होगा। इस प्रकार की सराहना और आशीर्वाद पाकर उसका मन गद्‌गद हो उठा और उसने उस बच्चे को उठाकर राहुलजी के परों पर रख दिया और खुद भी उनके पाँव पर गिरकर रोने लगी। राहुलजी भी द्रवीभूत हो गये। उन्हें सिसक-सिसककर रोते देखकर हम सब भी रो पड़े। सारे उपस्थित तिब्बती नर-नारियों ने राहुलजी को लेटकर प्रणाम किया।

रोगी के कमरे में हमने एक छोटे से सफेद कुत्ते को घूमते हुए देखा। अभी तक हमने देखे थे बड़े-बड़े भयंकर कुत्ते। यह कुत्ता हमारे देश के सफेद ख़रगोश की भाँति छोटा सा था। ऐसा प्यारा सुन्दर कुत्ता—चीनी मिट्टी के खिलौने की तरह। देखकर मुझसे न रहा गया। चट से उठा लिया उसको प्यार से अपनी गोदी में मैंने। पूछने पर पता चला इसका नाम है "अबशोक"। यहाँ सब छोटे कुत्ते इसी नाम से पुकारे जाते हैं। "अबशोक" भी हम अजनबी से नहीं डरा और मेरी गोदी में दुबककर बैठे हुए मेरे हाथों को चाटने लगा। घर के स्वामी ने हाथ जोड़कर पूछा कि "ग्यागर" के लामा की सेवा में क्या भेंट देने से वे सन्तुष्ट होंगे? राहुलजी यह बात सुनकर लपककर उठ खड़े हुए, और द्वार से बाहर जाते-जाते गेशेलाजी से कहने लगे कि इससे कह दो कि मरीज की देखभाल ठीक से करते रहें। फिर लौटते समय वे बालक को हँसता-खेलता देखेंगे और तब उनके यहाँ एक दिन भोजन करेंगे।

कुत्ते के प्रति मेरा प्यार देखकर उस "अबशोक" कुत्ते को घर की स्वामिनी ने मुझे भेंट में दे दिया। मैं उसको पाकर गद्‌गद हो उठा और "ला-थुचिचे" कहकर चल पड़ा। बाहर निकलकर हम सब द्रुत गति से ऊँचे-नीचे पथरीले मार्ग पर पोए-खंग गुम्पा की ओर बढ़ चले। हमारे माल से लदे खच्चर बहुत दूर निकल गये थे। भय हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि लूट ले डाकू हमारा सारा माल-असबाब। थोड़ी दूर चलकर हमारा सामानवाला काफिला दूर पर रेंगता हुआ दिखायी पड़ा। उसको देखकर जान में जान आयी और फिर आराम से चलने लगे।

मेरे गले में फोटो खींचने का केमरा और पिस्तौल लटक रहे थे। गोदी में "अबशोक" को एक हाथ से पकड़े बैठा था। ठोकर खाते हुए खच्चर पर इस प्रकार बैठे-बैठे थक गया। सिगरेट पीने को जी करने लगा तो "अबशोक" को उतार दिया जमीन पर। वह भी बड़ा प्रसन्न हुआ आजादी पाकर और उछल-उछलकर चलने लगा हमारे साथ-साथ। जेब से सिगरेट निकालकर पीने लगा, और राहुलजी के विचित्र चरित्र पर विचार करता हुआ चला जा रहा था। कुछ ही देर बाद अचानक देखा कि एक पहाड़ी की ओर से बड़े-बड़े अनेक भयानक कुत्ते दौड़े चले आ रहे थे। देखते ही देखते वे मेरे छोटे से "अबशोक" पर झपटे। वह बेचारा चीखकर मेरी ओर भागा शरण लेकर। मैं अभी अपने खच्चर पर से उतर भी न पाया था कि दो-तीन कुत्तों ने उसे धर दबाया। किसीने उसकी पकड़ी टाँग तो किसीने उसकी पूँछ और गर्दन। मारे पीड़ा के चीख पड़ा बेचारा "अबशोक"। मैं घबरा गया इस स्थिति से और झट पिस्तौल निकालकर खच्चर की पीठ पर बैठे-बैठे दाग दी गोली। अचानक धमाके के साथ खच्चर उछल पड़ा और मैं जा गिरा ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर। गोली चलने के धमाके से डरकर वे सारे कुत्ते भाग गये, और छोड़ गये "अबशोक" को अपने घाव के खून को चाटते हुए और मुझ बेवकूफ को पत्थरों पर पड़े कराहते हुए।

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद हम पत्थरों से उठे हुए मार्ग पर पोए-खंग गुम्पा की ओर फिर चल पड़े। अभयसिंहजी ने यह कहकर मेरी हँसी उड़ायी कि मैं संयुक्त प्रान्त (उ० प्र०) में रहकर बंगाल के क्रांतिकारियों के गुण खो बैठा हूँ। बम फेंकने और पिस्तौल की निशाने-बाजी के लिए बंगाली विख्यात हैं, और आज यह देखा कि एक बंगाली गोली चलाकर स्वयं घायल होकर चित गिर

गया। अभयसिंहजी से बन्दूक चलाने और डाकुओं से लड़ने की शिक्षा प्राप्त करने का आदेश राहुलजी ने मुझे दिया। दिन चढ़ जाने पर हम एक पहाड़ी की छाया में जलपान और विश्राम करने के लिए बैठ गये। मौका पाकर अभयसिंहजी ने मुझे पिस्तौल चलाने और डाकुओं से मुठभेड़ करने की कुछ आवश्यक बातें बतायीं।

उन्होंने कहा कि बंदूक या पिस्तौल खच्चर पर बैठे-बैठे चलाने से निशाना कभी ठीक नहीं बैठेगा और अचानक धमाका होने के कारण जानवर उछलकर भाग पड़ेगा। दूसरी बात बड़े मार्के की उन्होंने यह बतायी कि सामने खड़े डाकू से लड़ने के लिए चट से खच्चर की पीठ से उतर कर लगाम उसके मुँह के पास से कसकर पकड़े रहना चाहिये; और खच्चर को अपने और डाकू के बीच में कर लेना चाहिए जिससे डाकू की गोली खच्चर को लगे और खुद जानवर की आड़ में बचा रहे। खच्चर अगर घायल होकर धरती पर गिर पड़े तब भी उसको नहीं छोड़ना चाहिए और उसकी ओट लेकर डाकू पर गोली चलाते रहना चाहिए।

अब हम लोग पोए-खंग गुम्पा के बिल्कुल निकट आ पहुँचे थे। यह विशाल प्राचीन मठ हमारे सामने जगमगाने लगा। धीरे-धीरे पथरीला मार्ग पीछे छूटता गया और हम हरे-भरे पठार पर चढ़ने लगे। दाहिनी ओर एक बड़ा सुन्दर गाँव था। उसके चारों ओर हरे-भरे पेड़ थे। ग्रीष्म ऋतु में यह चिकने डालोंवाले वृक्ष केवल तीन-चार महीने के लिए हरे-भरे हो जाते हैं। ये पेड़ देखने में हमारे देश के नाशपाती के पेड़ों की भाँति लगते हैं।

इन पेड़ों की सूखी पत्तियों को पूजा-पाठ के अवसर पर जलाते हैं। इनको जलाने से अच्छी सुगन्ध निकलती है।

सात मील पथरीले दुर्गम पथ पर चलकर हम जब पोए-खंग गुम्पा के मुख्य द्वार पर पहुँचे तो महापंडित राहुलजी और गेशेलाजी हम लोगों को बाहर छोड़कर मठ के भीतर प्रवेश करने की आज्ञा लेने चले गये। थोड़ी देर बाद वे उदास चेहरा लेकर लौटे और उन्होंने बताया कि हम लोगों को मठ के भीतर ठहरने में मठ के अधिकारियों को कोई आपत्ति नहीं है, किंतु हमारा नौकर मठ के भीतर नहीं प्रवेश कर सकता है क्योंकि वह अपने साथ अपनी छोटी लड़की को लाया था। इस लड़की की अवस्था केवल ग्यारह वर्ष की थी।

तिब्बती मठों के नियमों के अनुसार मठ के भीतर शराब और नारी नहीं ले जायी जा सकती। हर मठ के फाटक पर एक काले ऊन की बनी हुई बड़ी मोटी रस्सी और एक चमड़े का बना हुआ बड़ा मोटा कोड़ा टँगा रहता है। ये दोनों आने-जानेवालों को चेतावनी देते रहते हैं कि मठ के मुख्य नियमों को भंग करने वाले व्यक्ति को रस्सी से बाँधकर कोड़ों से पीटा जायेगा। इस देश के अपराधियों के लिए अत्यन्त कठोर दंड निर्धारित हैं।

हम लोगों ने नौकर को अपने तीनों कीमती खच्चरों सहित पासवाले गाँव में अकेले रखना उचित नहीं समझा। अगर नौकर उनको लेकर भाग जाय या खच्चरों को कोई वहाँसे चुरा ले जाय तो हम बिना खच्चर के इस देश में बे-मौत मर जायँगे। अन्त में अभयसिंहजी के परामर्श को हम सबों ने मान लिया और पासवाले गाँव में पहुँचकर वहाँके जमींदार से भेंट की। हमारी धर्म-सेवा की कहानी सुनकर वे 'ग्यागर' के लामाओं से अपनी कोठी में बिना किराये ही रहने का अनुरोध करने लगे।

हम सबों को उनकी आवभगत से बड़ी प्रसन्नता हुई, और हम खुशी से उनकी कोठी में ठहर गये। मुझको और खुशी इस बात से हुई कि मठ के बाहर रहने के कारण निःसंकोच रूप से सिगरेट पी सकूँगा। इस देश में लामा एवं ढावा (भिक्षु) के लिए धूम्रपान का निषेध है। चूँकि हम अपने को 'भारतीय लामा दल' कहते थे इसलिए हमें उनके धार्मिक आचार-व्यवहार मान कर चलना पड़ता था। उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए मैंने बड़े-बड़े केशों के साथ अपनी दाढ़ी भी बढ़ा ली थी। मेरी घनी दाढ़ी को देखकर वे मुझे बड़ा भाग्यशाली लामा कहते थे। तिब्बत-निवासियों के सिर को छोड़कर उनके अंग पर कहीं कोई रोम नहीं होता है। जिस किसी लामा की ठोड़ी पर दो तीन बाल भी निकल आते हैं तो वह अपने को बड़ा भाग्यशाली समझने लगता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही से शंख, तुतेरी और तुरही की आवाज से वह लम्बी-चौड़ी पहाड़ी उपत्यका गूँज

उठी। लगभग १५ हजार फुट की ऊँचाई पर यह मठ बसाया गया है। दायें, बायें और पीछे ऊँचे पहाड़ तेज ठंडी हवा को रोकते अवश्य हैं, फिर भी यहाँ काफी ठंड थी, तथा यहाँकी हवा और पानी का तापमान बहुत नीचे गिरा हुआ था।

दिन चढ़ने के साथ-साथ देखा कि अनेक नर-नारी आस-पास के गाँवों से गुम्पा की ओर चले जा रहे हैं। राहुलजी ने बताया कि पूर्णमासी आनेवाली है और सात दिन तक इस मठ में इस शुभ दिवस के उपलक्ष्य में रात और दिन विशेष पूजा-पाठ का आयोजन होगा। यह सुनकर मारे खुशी के मैं मन ही मन उछलने लगा क्योंकि मैंने सोचा कि अब देखने को मिलेगा तिब्बती धार्मिक उत्सव। उस गुम्पा की प्रसिद्ध जगमगाती बुद्धदेव की विशाल मूर्ति के दर्शन करने को मिलेंगे। हजारों लामा और ढावा एक लय में जब तिब्बती मंत्र पढ़ेंगे तब तो मठ का विशाल मुख्य कमरा गूँज उठेगा। हम लोग झट-पट तैयार होकर मठ पर पहुँच गये। फाटक के समीप कमरे में बैठे हुए मठ के एक अधिकारी से मठ के प्रधान लामा और अन्य उच्च लामाओं से भेंट करने की अनुमति माँगी। हम लोगों का परिचय पाकर उन्होंने हमें आदर से बिठाकर अपने एक सहायक ढावा को एक पत्र देकर भीतर से आज्ञापत्र लाने को भेज दिया। लगभग दो घंटे बाद वह सहायक ढावा (भिक्षु) आज्ञापत्र लेकर वापिस लौटा। इस बीच मैंने मौका पाकर भिन्न-भिन्न, लामाओं, ढावाओं और गाँवों से आये हुए नर-नारियों के कितने ही फोटो उतार डाले। जब वृद्ध नर-नारियों को ऊबड़-खाबड़ पत्थरों के ऊपर लेट-लेटकर मठ की परिक्रमा करते देखा तो अपने धर्म और मठ के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। इस विशाल मठ का क्षेत्रफल लगभग दस वर्गमील से अधिक होगा। १५ हजार फुट की ऊँचाई पर जहाँ आक्सीजन गैस की कमी के कारण हम खड़े-खड़े हाँफ रहे थे, वहाँ अपने मनौती पूर्ण करने के लिए वे तिब्बती तीर्थयात्री अपनी जान जोखिम में डालकर भक्ति की परीक्षा दे रहे थे।

नया विश्वास

श्री राजकिशोर

आँसुओं के देश की बातें न दुहराया करो तुम,
आजकल मैं जिन्दगी से प्यार करने लग गया हूँ।

नर्म फूलों की उँगलियों को बहुत सहला चुका
अब जरा इन मुट्ठियों में आँधियों को कैद करूँ
कागजी आँचल न मेरी वेदना को पढ़ सके
सोचता हूँ मैं कि अब चिनगारियों से उम्र भर

चाँद की सौगन्ध, ज्वाला के समुन्दर की सतह पर
भावनाओं का महल तैयार करने लग गया हूँ।

अब उदासी के क्षणों के ओठ पर वंशी धरे
और सूरज से मिलाएगी नजर यह आँख गीली
छटपटाता मैं रहूँगा उम्रभर जिसकी जलन
वह सुरा मैंने अजाने में स्वयं ही आज पी ली

बावले से खाक गलियों की बहुत जो छानते थे,
मैं उन्हींका अब ज्वलित शृंगार करने लग गया हूँ।

लक्ष्य की व्याकुल प्रतीक्षा-रत कुमारी को बता दो
हाथ में माला लिये कोई चला ही आ रहा है
आस्था की व्यग्र सीता को सँदेशा दो तुरत
कामना के सिन्धु पर यह राम पुल बँधवा रहा है

सुप्त विश्वासो! उठो, दो शक्ति, अब मैं जिन्दगी को
साधना के रूप में स्वीकार करने लग गया हूँ!

डा० सम्पतराम चतुर्वेदी

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

ब्रिटिश सरकार के जमाने में राजनीति को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था। गुलामी के दिनों में यह सर्वथा स्वाभाविक ही था, क्योंकि जनता का सारा ध्यान उस समय दासता की शृंखला को तोड़ने की ओर लगा हुआ था। इस कारण अन्य विषय गौण ही समझे जाते थे। पर अब जमाना बदल चुका है। इसलिए हम लोगों को भी अपनी नीति में परिवर्तन कर लेना चाहिए। आज भी हम अधिकतर उन्हींको महत्त्व देते हैं जो राजनीति के क्षेत्र में काम करते हैं। किंतु सार्वजनिक जीवन में राजनीति ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। समाज के उत्थान के लिए अध्यापकों, उद्योग स्थापित करनेवालों, डाक्टरों, साहित्यकारों, व्यवसायियों, समाजसेवियों आदि अनेक वर्ग के लोगों के सहयोग की आवश्यकता है। इनकी उपेक्षा करने से आज हमारा दृष्टिकोण एकांगी हो गया है। समाज का सारा ध्यान राजनीति पर केंद्रित है जिससे हमारा सार्वजनिक जीवन असंतुलित हो रहा है और उन्नति अवरुद्ध हो गयी है। अतएव राजनीति के सिवाय समाज-सेवा के अन्य क्षेत्रों के सेवकों और कार्यकर्ताओं की ओर हमें ध्यान देना चाहिए।

डा० सम्पतराम चतुर्वेदी, जिनका स्वर्गवास पिछली १५ अगस्त को प्रयाग में हुआ था, अपने क्षेत्र के एक ऐसे ही आदमी थे। उत्तर प्रदेश के बड़े से बड़े अस्पतालों में वे सिविल सर्जन का काम बड़ी सफलता से कर चुके थे और प्रायः तीस बरस की गौरवपूर्ण सेवा के बाद रिटायर हुए थे। उसके बाद उन्होंने रुपया पैदा करने के लिए कहीं दूसरी नौकरी का विचार न करके पन्द्रह बरस तक सर्वथा निस्स्वार्थ भाव से अपने नगर फीरोजाबाद के निवासियों की सेवा की थी।

डा० सम्पतरामजी से मेरा प्रायः ६० बरस से सम्बन्ध था। हम लोग तहसीली स्कूल फीरोजाबाद में कई बरस साथ-साथ पढ़े थे और सन् १९०६ में हम दोनों ने साथ-साथ ही हिन्दी-मिडिल की परीक्षा भी दी थी। पाठक वृन्दावन वैदिक आश्रम (चौबे बोर्डिंग हाउस) आगरा में भी हम लोग चार बरस साथ-साथ रहे थे। तत्पश्चात् जब से वे अवकाश प्राप्त करके अपने नगर में आ गये थे, तब से तो उनके साथ और भी घनिष्ठ सम्पर्क हो गया था।

डा० सम्पतराम का व्यक्तित्व बड़ा ही सजीव था। वे बड़े जिन्दादिल आदमी थे। जहाँ कहीं वे पहुँच जाते, वहाँ अपने हँसी-मजाक से चारों ओर के वातावरण को उल्लासमय बना देते थे। वास्तविक अर्थों में वे 'चौबे' थे—सर्वथा उन्मुक्त, हमेशा हँसने-हँसानेवाले और सबके शुभचिन्तक। उनका किसीसे द्वेष नहीं था और उनकी आलोचना में न तो किसी भी प्रकार की कटुता होती थी और न कोई भीतरी उद्देश्य। भाषा हृदय के भावों को प्रकट करने के लिए बनायी गयी है, यह बात डा० साहब के सम्भाषण से स्पष्टतया प्रकट हो जाती थी। हृदय के भावों को छिपाना उनके लिए असम्भव था। जो भाव जिस समय जिस प्रकार उनके हृदय में आते, उन्हें वे उसी समय ज्यों का त्यों प्रकट कर देते थे। उन्होंने कभी इस बात का ख्याल नहीं किया कि हमारी बात को सुननेवाला हमारे बारे में क्या धारणा बनावेगा। एक बार एक महामहिम महोदय भाषण दे रहे थे। अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोलते हुए उन्होंने कहा—"कुछ गुण्डे लोगों ने हमारे कार्य में बाधा डाली, तब मैंने उन्हें ललकार कर कहा—'तुम गुण्डा हो तो मैं तुमसे भी बड़ा गुण्डा हूँ'।" श्रोतागणों में डा० सम्पतरामजी भी मौजूद थे—तुरन्त ही बोल उठे—"So you are!" (सो यू आर! यानी सो तो आप हैं ही!) इसमें सन्देह नहीं कि कभी-कभी अपरिचित आदमियों के हृदय को उनकी बात से कुछ धक्का-सा लगता था, किंतु शीघ्र ही उन्हें मालूम हो जाता था कि उनकी बातों में रागद्वेष का लेश नहीं रहता, और वे एक क्षण किसीकी खराब बात की कड़ी आलोचना कर सकते हैं तो दूसरे ही क्षण उसकी अच्छी बात की, उतने ही जोरदार शब्दों में, प्रशंसा भी कर सकते हैं। जो लोग उनके निर्विकार स्वभाव से परिचित थे, वे डा० साहब की बातों से कभी बुरा नहीं मानते थे।

डा० सम्पतराम चतुर्वेदी

डाक्टर साहब ओषधि-विज्ञान के तो बड़े अच्छे ज्ञाता थे ही, वे बहुत कुशल सर्जन भी थे। यद्यपि पिछले दिनों में उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं रहता था—रक्तचाप दो सौ तक पहुँच जाता था—तथापि चाहे रात हो, चाहे दिन, वे बिना किसी आलस्य के सर्वथा निःस्वार्थ भाव से मरीज को देखने के लिए चल पड़ते थे। रास्ते भर

बीसियों गालियाँ देते हुए जाते और उनका उद्विग्न होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि लोग डा० साहब के भरोसे बदपरहेजी कर लेते थे जिसका नतीजा डा० साहब को भोगना पड़ता था—रात को तंग होना पड़ता था। पर मरीज के पास पहुँचते ही डा० साहब का गम्भीर किन्तु उल्लासमय रूप प्रकट हो जाता था। रोगी के पास पहुँचते ही उनका व्यक्तित्व बदल जाता। सान्त्वना और सहानुभूति के शब्दों की झड़ी लगा देते। न जाने कितने व्यक्तियों को उन्होंने मृत्यु के मुख से निकाल लिया था और वे प्राणी डा० साहब को सदैव स्मरण किया करते हैं। मैनपुरी के एक सज्जन कहते थे—"हम तो सबेरे उठकर नित्यप्रति ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि डा० सम्पतराम शतायु हों। हमारे लड़के की जान उन्हींने बचाई थी।" डा० साहब को लोभ छू भी नहीं गया था। गरीब मरीजों को वे अपने पास से दवाई तो देते ही थे, कभी-कभी पथ्य का भी प्रबन्ध कर देते थे। अवसर प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने फीस लेना तो प्रायः छोड़ ही दिया था।

डा० सम्पतरामजी का ध्यान विशेषतः नगर की शिक्षा और स्वास्थ्य की ओर विशेष रहता था। फीरोजाबाद की बढ़ती हुई अस्वच्छता से वे कभी-कभी बड़े उद्विग्न हो जाते थे और उस समय गालियाँ उनके मुख से फूलों की तरह झड़ने लगती थीं! 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री अशोक चटर्जी का कहना है कि गाली देने में राष्ट्रभाषा हिन्दी जितनी समर्थ है उतनी भारत की कोई भी भाषा नहीं! माननीय श्री श्रीप्रकाशजी का भी यही मत है। डा० सम्पतरामजी की धाराप्रवाह वाणी को सुनकर, इस कथन की सत्यता में किसीको अविश्वास नहीं हो सकता था। डा० साहब को किसीके प्रति द्वेष नहीं था, इसका प्रमाण यही है कि जिस व्यक्ति की निन्दा वे पन्द्रह मिनट पूर्व करते, उसीकी प्रशंसा थोड़ी देर बाद उनसे सुनी जा सकती थी! उनकी कठोर आलोचना को सुनकर यदि कोई कहता—"डा० साहब आपने जो कुछ कहा है, वह सोलह आने सत्य है और वह धूर्त इसका पूर्ण अधिकारी है भी, लेकिन उसमें एक बड़ा भारी गुण है इत्यादि।" तो डा० साहब उसकी तर्कसंगत बात को सुनकर अपनी आलोचना का रूप बिल्कुल बदल देते थे और उस व्यक्ति की प्रशंसा के पुल बाँध देते थे!

आनन्द की फुलझड़ियाँ छोड़ना मानों उनके जीवन का एक उद्देश्य ही हो गया था। मुझे अपने दीर्घ जीवन में एक भी अवसर याद नहीं आता, जब मैं डा० साहब के पास गया होऊँ और वहाँसे निराश या उदास लौटा होऊँ। हँसाते-हँसाते वे पेट फुला देते थे। शुद्ध ब्रजभाषा, जिसमें कभी-कभी अंग्रेजी के अपशब्दों का भी पुट होता था, उन्हींके मुख से शोभा देती थी। कोई भी व्यक्ति सामने आवे, डा० साहब को उसके द्वारा आनन्द लेने में कोई कठिनाई न होती थी। एक बार मुझे छाजन का कष्ट बहुत बढ़ गया था। डा० साहब ने कहा—"चलो हमारे साथ आगरे चलो। हम तुम्हें वहाँ स्किन स्पेशलिस्ट (चर्मरोग विशेषज्ञ) को दिखावेंगे।" मैं बस में उनके साथ चल दिया। बस की २८ मील की यात्रा काफी कष्टप्रद थी, पर डा० साहब ने मार्ग में इतना हँसाया कि वह डेढ़ घंटा मालूम ही नहीं, कब बीत गया! कभी सिंघाड़ा बेचनेवाले पर, तो कभी किसी चूड़ी के व्यापारी पर, कभी बस ड्राइवर पर, तो कभी पुलिसमैन पर, व्यंग्य की बौछार करते और उनको हँसाते तथा चारों ओर के वातावरण को आनन्दमय बनाते हुए उन्होंने रास्ता काट दिया। अस्पताल के डा० सक्सेना से हमारी परीक्षा उन्होंने कराई। सभी डाक्टर उनके शुभ नाम से परिचित थे और उनकी इज्जत भी करते थे। मैं तो उस यात्रा से थक गया था, फिर भी डा० साहब ने कहा—"चलो तुम्हें सिविल सर्जन से भी मिला दें।" मैंने कहा—" रहने दीजिए।"

मरीजों का विश्वास प्राप्त कर लेना डा० साहब के लिए बड़ा आसान था। हम लोग तो उनकी उपस्थिति को अपने लिए वरदान ही मानते थे। अपने मित्रों और परिचितों की कठिनाइयों को डा० साहब अपनी ही कठिनाई मान लेते थे और उसके दूर करने के लिए भरपूर प्रयत्न भी करते थे। डा० साहब मुझसे उम्र में एक महीने बड़े थे और फीरोजाबाद के जैन इण्टर कालेज वालों ने गत वर्ष हम दोनों की जन्म-तिथि साथ-साथ ही मनायी थी!

पिछली जून में जब मैं नैनीताल गया तो डा० साहब से मिलने का अवसर दो बार प्राप्त हुआ था। एक बार तो सीतापुर के डा० मेहरा के स्थान पर, और दूसरी बार भुवाली के सेनीटोरियम में, जहाँ उनके द्वितीय सुपुत्र सर्वोच्च अधिकारी हैं। डा० मेहरा उनके शिष्य रह चुके थे, इसलिए उनका बड़ा सम्मान करते थे। सम्पतरामजी ने उनके यहाँ जो उन्मुक्त वार्तालाप किया उसे सुनकर सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। डा० साहब के अन्तिम दर्शन मैंने भुवाली में ही किये। भुवाली की सबसे ऊँची कोठी तक पहुँचने में काफी श्रम तो पड़ा फिर भी मैं वहाँ पहुँच ही गया। उस समय भी डा० साहब ने बड़ी सहृदयता से बातचीत की। आँख के आपरेशन के बारे में पूछा और स्वास्थ्य के बारे में परामर्श भी दिया। फिर मेरे भतीजे के बारे में बोले—"हमने भोपाल के अमुक डाक्टर से कह दिया था कि हमारे भतीजे को बार-बार क्यों फेल कर देते हो?" और यह सब उस समय जब वे स्वयं घातक रोग के शिकार हो गये थे। मैंने जीवन में पहली बार ही उनके मुख से निराशा का एक वाक्य सुना था। उन्होंने कहा—"मालूम होता है कि हमें लिवर का कैंसर हो गया है। हम तो हार्ट फेल से जाना पसन्द करते हैं।" डा० साहब ने अस्वस्थता की उस दशा में भी हमारे साथ चाय पीना जरूरी समझा और इधर-उधर की बातें करते रहे। डाक्टर होने के कारण वे जानते थे कि लिवर का कैंसर काल का वारंट

है। किंतु जिस प्रकार वे हमसे बातें करते रहे उससे हमें यह नहीं मालूम पड़ा कि उनकी बीमारी इतनी घातक है।

जब १७-१८ अगस्त को 'सरस्वती' के सम्पादक ने फोन पर मुझे सूचित किया कि डा० सम्पतराम नहीं रहे, तो मेरे हृदय को जबरदस्त धक्का लगा। साठ बरस की पुरानी स्मृतियाँ एक के बाद एक जागृत हो गयीं।

डा० साहब के पिताजी––कक्का ख्यालीराम––तथा मेरे पिताजी––कक्का गणेशीलाल––दोनों में सगे भाइयों जैसा स्नेह सम्बन्ध था। दोनों ही मुदर्रिस थे और यावज्जीवन दोनों एक-दूसरे के काम आते रहे।

डा० सम्पतरामजी ने कम से कम पैंतालीस बरस तक समाज-सेवा की। हमारे देश के लिए यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात है कि राजनीतिज्ञों का सम्मान करने के अतिरिक्त हम अन्य क्षेत्रों के सेवकों को बिल्कुल भुला देते हैं। जैसा कि हम कह आये हैं, अब वह युग आ गया है जब हमें अच्छे डाक्टर, सुयोग्य इंजीनियर, चतुर चित्रकार और प्रसिद्ध पहलवानों का भी सम्मान करना चाहिए। डा० सम्पतराम उत्तर प्रदेश के एक परोपकारी डाक्टर थे, जिन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। वे कई बार आगरा यूनिवर्सिटी की सीनेट के मेम्बर भी रह चुके थे। पर उन्होंने किसी सम्मान की न कभी इच्छा प्रकट की और न किसीकी खुशामद करके अपने लिए कोई विशेष पद या गौरव पाने की कोशिश की। वे एक स्पष्टवादी व्यक्ति थे और अप्रिय सत्य को प्रकट करने में उन्हें कभी संकोच न होता था।

अप्रियस्य च सत्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।

⁂

(डा० सम्पतराम से हमारा भी बहुत पुराना परिचय ही नहीं, स्नेह सम्बन्ध भी था। रोग, कष्ट, यन्त्रणा को बराबर देखते रहने के कारण बहुधा डाक्टर लोग कुछ कठोर-हृदय हो जाते हैं और उनकी सहानुभूति का नैसर्गिक स्रोत भी बहुत कुछ सूख जाता है। ऐसे बहुत कम डाक्टर हैं जो अन्त तक अपने इस मानवीय गुण को बनाये रख सकें। डा० सम्पतराम ऐसे ही अपवाद थे। वे दूसरों के दुख से दुखी हो जाते थे और अंत तक उनकी सहानुभूति का निर्झर मुक्तरूप से बहता रहा। उनका दूसरा गुण था कि वे निर्लोभ थे। हममें से अधिकांश व्यक्ति त्यागी साधु संत नहीं हैं। रुपये से हमें विरक्ति नहीं है। किंतु साथ ही किस व्यक्ति से रुपया लिया जाय, इसका विवेक न होना अच्छी बात नहीं है। जैसा कि श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने लेख में लिखा है, डा० सम्पतराम उन लोगों से फीस तो लेते ही नहीं थे जिनकी आर्थिक अवस्था खराब होती थी, वे गरीबों को ओषधि और कभी-कभी पथ्य तक अपने पास से दे दिया करते थे। नौकरी छोड़ने के बाद तो उन्होंने रुपये के लिए चिकित्सा की ही नहीं। वे सारे नगर के "अवैतनिक चिकित्सक" बन गये थे और उनकी सेवा लोगों को चौबीस घंटे उपलब्ध रहती थी।

डा० सम्पतराम बड़े निर्भीक आलोचक थे। वे दूसरों की मूर्खता को चाहे कभी नजरअंदाज कर भी देते, किंतु धूर्तता को सहन नहीं कर सकते थे। साथ ही यह बात भी थी कि वे किसी व्यक्ति की किसी चूक या अवगुण के कारण उससे रुष्ट नहीं हो जाते थे। उसके अवगुणों की ख़री आलोचना के बावजूद उसके प्रति उनका स्नेह या सौहार्द कम नहीं होता था और उसके गुणों को भी वे नहीं भूलते थे। उनमें व्यक्ति और उसके कार्यों को अलग रखने की अदभुत क्षमता थी। उनका सिद्धान्त था––"अनीति ही से बस शत्रुता रहे, मनुष्य से किंतु न द्वेष हो कभी।"

डा० सम्पतराम जाति के चौबे थे, और स्पष्टवादिता के लिए चौबे प्रसिद्ध या कुप्रसिद्ध हैं। उनकी बातों में ऐसे शब्दों का भी पुट रहता था जिन्हें सभ्य समाज में 'अपशब्द' समझा जाता है, किंतु चौबे लोग उन्हें 'गाली' न कहकर 'मात्रा' कहते हैं। उनका कहना है कि मुड़िया लिपि में मात्राएँ नहीं लगायी जातीं। इससे मुड़िया लेख का अर्थ समझने में गड़बड़ी होती है। यदि उसके अक्षरों पर (जैसे देवनागरी में) मात्राएँ लगा दी जायँ तो अर्थ स्पष्ट हो जाय। वे कहते हैं, जिन शब्दों को लोग 'अपशब्द' कहते हैं वे भाषा की 'मात्राएँ' हैं। उनके लगाने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है और मालूम हो जाता है कि कितना जोर किस बात पर दिया जा रहा है! यह चौबे लोगों की अपशब्दों के प्रयोग की अपनी निराली और मौलिक व्याख्या है। जो भी हो, सम्पतरामजी की भाषा में यह चौबे-सुलभ विशेषता काफी मात्रा में थी। किंतु इसका परिणाम विचित्र हुआ। बजाय बुरा मानने के, कितने ही 'सभ्य' और उच्चपदस्थ सज्जन, जिनमें स्वयं उन शब्दों के प्रयोग करने का साहस नहीं था, उनके मुँह से उन शब्दों को सुनकर संतोष और तृप्ति का अनुभव करते थे। यही कारण है कि उनकी भाषा शैली ने उन्हें 'सभ्य' समाज में काफी लोकप्रिय बना दिया था। लोग उनके मुँह से 'मात्राएँ' सुनने को कभी-कभी उन्हें छेड़ भी दिया करते थे।

उनमें हास्य और व्यंग्य की बड़ी ऊँची प्रतिभा थी। उनके व्यंग्यों, हास्य और हाजिरजवाबी के सैकड़ों संस्मरण लोगों को याद हैं। यहाँ उदाहरण के रूप में एक संस्मरण देते हैं। एक बार वे अवध के किसी जिले में सिविल सर्जन थे। उस समय वहाँके कलक्टर एक देशी सज्जन थे। उन्हें मधुमेह (डायबिटीज) था। कलक्टर जिले के जान-माल का रक्षक, और सिविल सर्जन जिले और विशेषकर सरकारी अधिकारियों के स्वास्थ्य

के लिए उत्तरदायी होता है। अतएव प्रायः नित्य सबेरे कलक्टर साहब अपने चपरासी के द्वारा चीनी की मात्रा जानने के लिए अपने पेशाब का नमूना भेज दिया करते थे। एक "बड़े दिन" (क्रिसमस) की बात है। संध्या के समय क्लब में सब बड़े अधिकारी एकत्र थे। डा० सम्पतराम वहाँ कुछ देर से पहुँचे। उनको देखते ही कलक्टर साहब ने पूछा—"कहिए डाक्टर साहब! 'बड़ा दिन' कैसा गुजरा?" डा० सम्पतराम ने खड़े ही खड़े बड़े नाटकीय ढंग से कहना आरंभ किया। "हुजूर! आज सुबह मैं अस्पताल जाने के लिए कपड़े पहन रहा था। कमरे की खिड़कियाँ सड़क पर खुलती हैं। उधर निगाह गयी तो देखा कि बीस-पचीस आदमी रेशमी रूमालों से ढँके हुए बड़े-बड़े थाल सिर पर रखे हुए चले जा रहे हैं। मुझे अचरज हुआ कि यह शादी का सामान कहाँ जा रहा है। मैंने उनसे पूछा कि क्या बात है। यह सब क्या है और कहाँ लिये जा रहे हो? तो साथ के कारिन्दे ने कहा 'अमुक राजा साहब ने कलक्टर साहब के यहाँ बड़े दिन की डाली भेजी है। वही ले जा रहा हूँ।' थोड़ी देर बाद एक दूसरा जलूस निकला। उससे पूछा कि किसकी डाली है, कहाँ जा रही है, तो जवाब मिला अमुक नवाब ने कप्तान साहब को डाली भेजी है। एक ने बतलाया कि अमुक ताल्लुकदार की डाली जज साहब के यहाँ जा रही है। इसी तरह डालियों के दर्जनों जलूस देखता रहा। अंत में जब कपड़े पहनकर अस्पताल के लिए बाहर निकला, तो दरवाजे पर हुजूर का चपरासी मिला। उसने सलाम करके कहा कि 'जनाब कलक्टर साहब ने सलाम कहा है और अपना कारूरा भेजा है।' सो हुजूर! हमारा बड़ा दिन तो इस तरह बीता!" उनके इस आशु भाषण में जो तीक्ष्ण व्यंग्य निहित था, उसे उपस्थित अफसरों ने अनुभव किया जिनमें कप्तान, जज आदि सभी थे। किंतु सिवाय हँस देने के और कोई चारा नहीं था।

उनका हास्यबोध इतना विकसित था कि वे अपने ऊपर भी हँस सकते थे। वे सामान्यतः हैट लगाते थे। पेंशन लेने के बाद वे एक सभा में गये। घर से नंगे सिर चले, किंतु जेब में एक गाँधी टोपी रख ली। जब सभा-भवन में प्रवेश करने लगे तब जेब से निकालकर उस टोपी को पहिन लिया। अपने इस कार्य के दम्भ को उन्होंने समझा, और टोपी लगाते समय अपने साथी से बोले—"तब मारीच कपट-मृग भएऊ!" कितने लोग अपने ऊपर ऐसा व्यंग्य कर सकते हैं।

डा० सम्पतराम का जीवन इस बात का उदाहरण है कि निस्पृह और उदारहृदय व्यक्ति उच्च सरकारी पद पर रहकर भी किस प्रकार जनता की सेवा कर सकता है। उनकी निर्भीकता का आधार उनकी निस्पृहता तथा जीवन और व्यवहार की शुद्धता एवं जन्मजात मस्ती थी। सम्पादक—'सरस्वती')

जाग री, तू जाग!

श्री वीरबल महतो

जाग री, तू जाग!

सुन किरण-आहट गगन से तम गया है भाग।
जाग री, तू जाग!
लालिमा से रँग गई है पूर्व नभ की कोर।
मुस्कुराता है क्षितिज पर लो, कमल सा भोर।
स्वर्ण होते जा रहे हैं, सर, सरित गिरि-शृंग।
रश्मियों की धार भू पर बह रही सब ओर।
स्वच्छ होता जा रहा नभ, धुल रहे हैं दाग।
जाग री, तू जाग!

ओस से धुल स्वच्छ सुन्दर, झूमते हैं फूल।
महमहाती फैलती है फूल की मृदु धूल।
उड़ रहे आकाश में खग मुक्त पाँखें खोल।
मधुलिहों की पाँति आई पुष्प-रस-सर कूल।
बज रहा भू से गगन तक मत्त-जीवन राग।
जाग री, तू जाग!

स्वप्न होते हैं मधुर पर स्वप्न का क्या मोल!
बोलते अन्तिम अवधि में सत्य के ही बोल।
यामिनी की मोह ममता तारकों की पाँति—
ज्योति सम्मुख टिक न पायी, देख लोचन खोल।
स्वप्न-जग का मोह-बंधन, त्याग री, तू त्याग!
जाग री, तू जाग!

पं० गौरीशंकर शर्मा: व्यक्तित्व और कृतित्व

डा० कस्तूरचन्द जैन

हिन्दी साहित्याकाश के जिन अदृश्य और धूमिल नक्षत्रों की उपेक्षा इतिहास ने की है, आज उन तक हमारी दृष्टि भले ही न पहुँच सके; पर इतिहास के जीवित सत्य को मृत घोषित करनेवाले इतिहासकार की धृष्ट और उच्छृंखल मनोवृत्ति को क्या कहा जाय? द्विवेदी-युग के अवशिष्ट, वयोवृद्ध साहित्यकार पं० गौरीशंकर शर्मा को लक्ष्य कर सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'महाकोशल के साहित्यकार' में कहा गया है—'सागर जिला के अंतर्गत गढ़ाकोटा के पंडित गौरीशंकर शर्मा भार्गव ब्राह्मण थे। आप आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी व बाबू बालमुकुन्द गुप्त के स्नेहपात्रों में थे।...हिन्दी के आप अनन्य भक्त थे।' आश्चर्य की बात तो यह है कि इस पुस्तक के विद्वान् लेखक सागर-निवासी हैं, जहाँ से गढ़ाकोटा केवल बीस मील की दूरी पर अवस्थित है।

पं० गौरीशंकर शर्मा के वार्द्धक्य से झुके हुए जीर्ण शरीर पर युग और परंपरा का तेज अब तक विद्यमान है। द्विवेदीयुगीन समाज और राष्ट्र-चेतना के परिवेश में जिस रीति-नीति, मर्यादा और आचार-निष्ठा की प्रतिष्ठा साहित्य में हुई, महाकोशल में उसे गति और शक्ति प्रदान करनेवाले साहित्यकारों में स्वर्गीय पं० माधवराव सप्रे और पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी के साथ पं० गौरीशंकर शर्मा का कृतित्व अन्यतम है। साहित्य की परिवर्तित धारा में अपनी साधना का योग न बिठा सकने के कारण समय ने उन्हें विस्मृत कर दिया, पर अपने व्यक्तित्व और कृतित्व में एक युग की सूचना देनेवाले इस जीवित इतिहास की उपेक्षा इतिहासकार नहीं कर सकता।

पं० गौरीशंकर शर्मा अपने जीवन के ७८ वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। उनका जन्म सन् १८८५ में गढ़ाकोटा के एक मध्यवित्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा उन्होंने गांव की पाठशाला में प्राप्त की थी। किशोरावस्था में पिता के देहावसान से उत्पन्न हुई पारिवारिक चिंता और उत्तरदायित्व ने यद्यपि उनके शिक्षणक्रम को अव्यवस्थित कर दिया, परन्तु घर पर रहकर संस्कृत,

पं० गौरीशंकर शर्मा

बंगला, मराठी, गुजराती और उर्दू का जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया वह उनकी बहुज्ञता और भाषा-प्रेम का द्योतक है। गुजराती पर तो अपनी मातृभाषा हिन्दी के ही समान उनका पूर्ण अधिकार है। उनके विशाल पुस्तकालय का एक बहुत बड़ा भाग सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग तथा गढ़ाकोटा (सागर) और मऊ-रानीपुर (झाँसी) की नगर-संस्थाओं के पुस्तकालयों को पिछले दिनों भेंट किया जा चुका है। इन पुस्तकों में संस्कृत, हिन्दी और गुजराती की सैकड़ों हस्तलिखित, अनुपलब्ध प्रकाशित पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ सम्मिलित हैं। शर्माजी का यह त्याग स्तुत्य है।

शर्माजी का लेखन-काल सन् १९०३ के आसपास से प्रारंभ होता है। लेखन की मूल प्रेरणा संभवतः उन्हे 'सरस्वती' से प्राप्त हुई थी। पं० माधवराव सप्रे और पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी से प्रोत्साहन और दिशानिर्देश प्राप्त कर उन्होंने थोड़े ही समय में काफी ख्याति अर्जित की और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा पं० बाल-

कृष्ण भट्ट के सम्पर्क में आये। 'हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' के सातवें जबलपुर अधिवेशन के अवसर पर उनकी रचना 'सम्मेलन शतक' सन् १९१६ में सम्मेलन की ओर से प्रकाशित हुई थी जिसमें हिन्दी की उन्नति और उसके मार्ग में आनेवाली बाधाओं पर कवि ने विशद प्रकाश डाला है। भारतेन्दु की तरह निज भाषा को 'सब उन्नति कौ मूल' समझनेवाले इस दूरदर्शी कवि ने कितना सुन्दर समयोचित प्रस्ताव आयोजकों के समक्ष विचारार्थ रखा था—

सम्मेलन इक खोल कंपनी छोटे छोटे हिस्से राख,
करै द्रव्य-संग्रह वह सानंद, जो अनुमान होय इक लाख।
निज का प्रैस खरीद उसी से करै सदा पुस्तक परचार,
स्वारथ रहित सुलेखक लिखकर देवें ग्रन्थ अनेक प्रकार।
हों पुस्तकें रसायन कृषि की, अर्थशास्त्र अरु कृषि-विज्ञान,
जिन्हें पढ़ें उपदेश पाँय सब, खो लेवें निश्चय अज्ञान।
हिन्दी के उद्धार हेतु ये साहब कमर कसे तैयार,
अन्य अन्य भाषाओं से चुनि, भर दें नागरि का भंडार।।

पं० माधवराव सप्रे और रघुवरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा और सहयोग से मध्यप्रदेश में प्रकाशित होनेवाली 'श्री शारदाविनोद', 'कर्मवीर', 'हिन्दी केसरी', 'शुभचिंतक' और 'हितकारिणी' आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में शर्माजी की कविताएँ बराबर प्रकाशित होती रहती थीं। कलकत्ता, नागपुर, आगरा और लाहौर से प्रकाशित क्रमशः 'मतवाला', 'प्रणवीर', 'धर्माभ्युदय' और 'आर्यदर्श भारती' में भी उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं। सामाजिक कुरीतियों पर इन रचनाओं में व्यंग्यपूर्ण प्रहार किया गया है। अन्त्यज वर्ग के प्रति कवि का उदार दृष्टिकोण निम्न कविता में दृष्टव्य है—

अन्त्यजो! सादर तुम्हें प्रणाम।
परहित कृत साधन में तत्पर रहते आठों याम।।
तप करते तपसी की नाँईं, रहते बाहर ग्राम।
सदा तिरस्कृत होनेपर भी तजें न अपना काम।।
शीतल मंजुल मूर्त्ति ललाम।।

राष्ट्रीय भावधारा से ओत-प्रोत कुछ कविताएँ शर्माजी ने 'फक्कड़' उपनाम से की हैं। हिन्दी-सेवा को कवि राष्ट्रसेवा का अभिन्न अंग मानता है—'गृह सुवर्ण को भूल न त्यागें, नहीं काँच पर रीझें आप। केवल निज भाषा उन्नति कर मिटा सकेंगे हिय संताप।।' सन् १९४६-४७ में हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष ने बंगाल और बिहार में जिन हिंसक घटनाओं को जन्म दिया, उनपर आधारित 'बंगाल बिहार-करुण क्रंदन' लोक-शैली पर लिखा गया कवि का एक अप्रकाशित काव्य-ग्रंथ है जिसमें कवि की राष्ट्री भावना ने विकास के नये स्तर ग्रहण किये हैं।

पं० गौरीशंकर शर्मा एक यशस्वी कवि के रूप ही नहीं, अनुवादक, नाटककार और निबंधकार के में भी हमारे सामने उपस्थित हैं। गुजराती के प्रसि उपन्यास 'ब्रह्मचारिणी' का अनुवाद उन्होंने सन् १९ में किया था। इसकी प्रतिलिपि शर्माजी के मित्र औ हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री जहूरबख्श ने तैयार की थी। स्वर्गीय पं० प्यारेलाल मिश्र, बार-एट-ला ने अप शोधपूर्ण भूमिका में इसे मूल गुजराती उपन्यास का स भावानुवाद कहा है। 'मेवाड़ के तीन रत्न' एक अ गुजराती से अनूदित गद्य-रचना है। 'वीर हम्मीर चित्तौड़ का पुनरुद्धार' शर्माजी की स्वतंत्र नाट्यकृ है। 'शारदास्तवन', 'पंचदेव स्तवनमाला', 'कृष्णस्तवन साठिका' और 'सीतारामरहस्य' में शर्माजी भक्त क के रूप में हमारे सामने आते हैं। 'चर्पटपंजरी' औ 'बुढिया बखान बहत्तरी' हास्य-व्यंग्य प्रधान रचनाएं है 'रमणी रत्नमाला', 'महिलागायन' तथा 'राष्ट्रीय श ध्वनि' कवि की अन्य रचनाएँ हैं। यह सभी ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

किसी लेखक या कवि के मूल्यांकन में यदि उन अप्रकाशित कृतित्व बाधक न समझा जाय, तब हमें कह पड़ेगा कि शर्माजी अपनी रचनाओं में द्विवेदी-युग क सम्पूर्ण वैभव और कला-विलास लेकर उपस्थित हुए हैं। लगभग ६० वर्षों में फैला उनका रचना-काल विविध काव्य-शैलियों और शब्द-शक्तियों के प्रयोग का रोचक इतिहास प्रस्तुत करता है। बुन्देलखंड का यह दूसरा मैथिलीशरण परिवर्त्तन और प्रभाव को जल्दी स्वीकार न क चल सकने के कारण अब तक 'गुप्त' ही बना हुआ है।

पं० गौरीशंकर शर्मा अति रुग्णावस्था में आज शय्याशायी हैं। पिछले दिनों एक पत्र उन्होंने 'सरस्वती' के संपादक पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी को लिखा था। श्री चतुर्वेदीजी के अनुरोध पर उनके मित्र, जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० उदयनाराय तिवारी, प्रस्तुत लेखक एवं जबलपुर विश्वविद्यालय के शोध छात्र श्री रामशंकरजी मिश्र को साथ लेकर दिनांक १ सितम्बर '६३ को श्री शर्माजी से मिलने उनके निवास-स्थान गढ़ाकोटा गये थे। वहाँ हम लोगों ने लगभग ३ घंटे तक विविध विषयों पर शर्माजी से चर्चा की। इस रुग्णावस्था में भी शर्माजी आदर-सत्कार से न चूके। उन्होंने नम्रतापूर्वक अपने पुस्तकालय की शेष पुस्तकें जबलपुर विश्वविद्यालय को भेंट करने की इच्छा व्य की है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु दे, यही हमारी कामना है।

* * *

आंगनों के बीच—

नौकरों के कुछ और कारनामे

("सम्पादिकाजी ! कृपया मेरा नाम मत दीजियेगा।" हर चिटठी में यही लिखा आता है। हर एक के घर के ऐसे ही कच्चे चिटठे हैं और हर एक ही अपना नाम जाहिर करने में शर्माता है। आप भी लिखकर भेजें––अगर आप की इच्छा होगी तो आपका भी नाम नहीं दूँगी, केवल अनुभव छापूँगी। सह-सम्पादिका।)

आपने नौकरों की कहानी सरस्वती में अच्छी निकालना शुरू कर दी है। मैं भी आपको अपने एक पुराने नौकर की होशियारी लिखकर भेज रही हूँ। मेरे पास एक बहुत पुराना नौकर था। जहाँ मेरा तबादला होता था वहाँ वह मेरे साथ जाता था। कितनी भी उसको डाँट लगा दो लेकिन वह नौकरी नहीं छोड़ता था। मैं अपने भाग्य को सराहती थी कि बड़े पुण्य किये हैं मैंने जो एक नौकर घुटने टेककर हमारे घर में जम गया है। मेरे पति जो रुपया मुझको देते थे वह मैं इस विचार से अपनी श्रृंगार मेज के एक खाने में रख देती थी कि यदि किसी लोहे के बक्स आदि में रक्खा तो उसको कोई आदमी उठाकर ले जा सकता है। अगर अलमारी में बन्द करती हूँ तो कोई ताले में चाबी लगाकर खोल सकता है। श्रृंगार मेज का न ताला खुल सकता है और न इतनी बड़ी श्रृंगार मेज उठाकर ले जाई जा सकती है। मैं अपने को बहुत चतुर समझती थी और अपना शयन-कक्ष खुला ही छोड़कर बाहर चली जाती थी। सदा की तरह उस दिन भी जब मुझको घर के खर्च के लिए पैसे मिले तो मैंने उनको भी श्रृंगार मेज की एक दराज में रख दिया और चाबी अपने पास रख ली। मैं नहाने-धोने चली गयी और नौकर कमरा झाड़ता रहा। मेरे आते ही एक साथ बाहर चला गया। उसी समय मुझे ध्यान आया कि क्यों न आज ही सारे बिलों का भुगतान कर दूँ। मैंने जो दराज खोली तो उसमें आधे ही रुपये थे। अभी-अभी रखकर गयी थी। चाभी मेरे पास थी। यह रुपये क्या हो गये? कभी पहले कहानियों में सुना था कि बुरे दिन आते हैं तो रानी का नवलखा हार खूँटी ही निगल जाती है। मुझको बिलकुल ऐसा लगा कि यह दराज ही मेरे रुपये खा गयी। घबड़ाहट में सारी दराजें उलट डालीं और जब नोटों के दर्शन कहीं नहीं हुए तो श्रृंगार मेज के आगे-पीछे झाँकने की नौबत आयी। मुझे लगा कि मेज जरा सी खसकी हुई है और मेरा एक 'हेयर पिन' नीचे गिरा हुआ है। दराज के पीछे दो लकड़ियों के जोड़ पर कुछ साँस सी भी मालूम पड़ी। मैं फौरन

अपने पति के पास भागी। उन्होंने सुनकर शांत रहने को कहा और फिर बाहर आकर नौकर से कहा कि 'मुझको अभी बाहर जाना है। खाना जल्दी खाऊँगा। जल्दी से तैयार करो।' नौकर जल्दी-जल्दी काम में लग गया। वे पीछे कमरे में खड़े हो गये और उन्होंने दूसरे नौकर से कहा कि "इसके जेब की तलाशी ले लो।" उसकी पतलून की जेब में सब रुपये सही सलामत रक्खे हुए थे। बाद में उसने स्वीकार किया कि वह बरसों से हमारी श्रृंगार मेज को खसकाकर हमारे ही बालों के काँटों को अन्दर डालकर दराज की पीछे की संधि से नोट खसकाने का प्रयत्न किया करता था। पहले कभी सफल हो जाता था, कभी नहीं। बाद में संधि भी कुछ बड़ी हो गई थी और वह भी दक्ष हो गया था। वैसे यह काम प्रायः मेरे बाहर जाने पर हुआ करता था, पर इधर उसे रुपये की सख्त जरूरत हो गयी थी क्योंकि जुये में हारे रुपयों के तकाजे बहुत बढ़ गये थे।

(२)

हमारे फार्म में जब कभी धान की बिक्री का समय आता है तब बहुत सावधानी बर्तनी पड़ती है क्योंकि कोई बैंक आदि तो पास में हैं नहीं। रुपया भी जब जमा कराने जाते हैं तब कुछ इस ढंग से जाना पड़ता है कि कानों कान किसी को खबर न हो। बहरहाल ऐसा विचार था कि नौकर अब सब विश्वसनीय हो गये हैं, इस कारण मेरे भैया कुछ लापरवाह हो गये थे। एक बार उन्होंने तीन हजार रुपये तकिये के नीचे रख दिये। नौकर झाड़ू देने गया और रुपये गायब हो गये। भैया का पूरा यकीन था कि रुपये इसीने लिये हैं। चोरी की बात प्रकट कर देने से फार्म पर तहलका मच जाता, किंतु बिना बाबैला मचाये रुपये निकलवा लेना कोई खेल न था। मारने-पीटने से रुपये तो भला क्या मिलते, ऊपर से दूसरे आदमी भी डरकर या घबड़ाकर काम छोड़कर बैठ जाते और गाँवों में यही समय काम का था। भैया ने अपनी जुगत भिड़ायी। उन्होंने उसपर आँख रक्खी कि वह कहीं जाने न पाये और शाम को बोले 'रामआसरे! तुम्हारे घर से चिट्ठी आयी है। कोई बीमार है।' रामआसरे को और क्या चाहिए था? अन्धा क्या माँगे दो आँखें? बड़ा प्रसन्न हो गया। कहने लगा "भैयाजी! काम तो पड़ा है। पै आप कहौ तो हम चला जाईं। हम उहाँ का हाल देख कै उल्टे पाँव लौटि आउब। काम का हरज न होंइ पाई।" भैया ने मानों उसकी स्वामिभक्ति से द्रवित होते हुए कहा 'बखत तो तुहरे जाँएँ का नाहीं रहा, पै अब चिट्ठी के आगे का कीन जाय? बस इहै है कि तु जल्दिए लौट आयौ।' रामआसरे का घर जाना तय हो गया। जाने के सारे दस्तूर निभाए गये। रोटियाँ सेंककर रास्ते के लिए रख दी गयीं। भैया ने 'टेसन' जाने को जीप निकाली। जैसा रिवाज था, बन्दूक कंधे पर चढ़ाई, फसल कटने के समय उधर यह आवश्यक था, और 'डरेबर' को पीछे बिठाकर भैया जीप लेकर 'टेशन' को रवाना हो गये। गाड़ी के समय से काफी पहले पहुँच गये। 'टेसन' सूना पड़ा था। वैसे भी गाँव का 'टेसन' था। भैया ने प्लेटफार्म टिकट खरीदकर रामआसरे को दिया कहा "ठीक से गठियाइ लेउ। पूरा दस रुपैया लागा है।" रामआसरे ने उसे गठरी में बाँध लिया और भैया फार्म पर खड़े पान चबाते रहे। फिर एक साथ बोले "रामभरोसे! 'मोटरवा' में हमार बन्दूक धरी है, लै तो आवो। तुहार कपड़ा की पुटरिया हम रखाये हैं।" रामआसरे बाहर गया और भैया ने फुर्ती से उसकी की पोटली टटोली। दो-चार कपड़ों की गठरी रोटियों के नीचे कागजों का बंडल हाथ आ गया। ने रुपये निकालकर जेब में रक्खे और गठरी वैसे ही दी। काम मिनिटों में हो गया; वैसे ड्राइवर को भी दिया था कि रामआसरे बाहर आये तो जरा रोक लेना। उनका विचार था कि अगर पोटली में सामान नहीं तो बाहर ड्राइवर की सहायता से शरीर की तलाशी ली जायगी। पर काम यहीं बन गया। रामआसरे बन्दूक दी तो भैया बोले "गाड़ी आवै माँ अबहीं देर है तौन तनी 'टेशनमास्टर' ते बतियाय लेई। आपन रिया सँभारौ।' इसके बाद की वार्त्ता जब भैया सुनाते तब हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाते हैं। 'टेसनमास्टर' गाड़ी के साथ ही साथ अपने क्वाटर से आते थे। इस भैया 'टेसन' पर पड़ी बैंच पर बैठ गये—और दूसरा पान में दबाया कि रामआसरे सामने आकर खड़ा हो और बोला।

'भैयाजी!' पान चबाते-चबाते बड़ी चकित मुद्रा में उन्होंने पूछा—'का भवा रामआसरे?'

'हमार पुटरिया आप रखाये रहे न?'

'रखाये तो रहे! का भवा? कौनो चीज गिर गइ का?'

'नाँ....हीं....' फिर रुकते हुए बोला, "अब घरे गँवई न जाब।"

'काहे?' भैया बोले।

'का करब!' बड़ा उदास होकर रामआसरे बोला।

"का करब? अरे! चिट्ठी आई है। दस टिक्कस माँ लागा है। तू कहत हौ कि न जाब!"

कुछ रुककर रामआसरे बोले—'भैयाजी!'

'का भवा रामआसरे?'

'कोई आवा रहा ओहर?'

"को आवा रहा! पंछी तक तो फटका नाहीं।"

रामआसरे फिर चुप हो गया। कुछ देर बाद बोला। "भैयाजी! हम नाहीं जाब।"

भैया बोले "नाहीं जाँय का होय तो चलो घरे। जाये से तौ हमार हर्जँ होई। हमरा काम पड़ा है, खातिर तो तुहार घरै लौटब ठीक है। दस रुपइया का गवा तौन गवा। चलौ मोटरवा माँ बैठो।"

दोनों जैसे गये थे वैसे ही वापिस आ गये। केवल इतना था कि तीन हजार रुपये का बंडल रामआसरे के पास था और अब भैया के पास।

नई गृहस्थी, पुराने अनुभव

- बची हुई कौफी अगर कॉर्न फ्लौर और दूध की पुडिंग में डाल दी जाय तो वह बहुत स्वादिष्ट हो जाती हैं।

- कभी-कभी टीन के डब्बों में लेबिल चिपकाना मुश्किल हो जाता है। ऐसी अवस्था में जहाँ लेबिल लगाना हो वहाँपर रेगमाल से थोड़ा-सा रगड़ दीजिए और फिर लेबिल चिपकाइए।

- यदि पंजों के ऊपर के मोजे बहुत ज्यादा फटते हों तो थोड़ा सा मुलायम रेशम लेकर मोजों को उल्टा कर के पंजों के स्थान पर सी दीजिए, और धोते वक्त भी उसे लगा रहने दीजिए।

- फल के दाग ताजे कटे हुए टमाटर से आसानी से छूट जाते हैं।

- झींगुरों से मुक्ति पाने के लिए उन स्थानों पर थोड़ा सा बोरिक पाउडर और चीनी छिड़क दीजिए जहाँ वे अधिक हों।

- पीतल का सामान साफ करने के लिए नीबू काटकर उससे मलकर साफ कीजिये फिर गर्म पानी से धोकर और मुलायम कपड़े से पोंछकर साफ कर लीजिए।

- चिटके हुए अण्डे उबालने के लिए उनको ग्रीस प्रूफ कागज (वह कागज जिस पर चिकनाई नहीं चढ़े) में लपेट लीजिए और ऊपर से कागज को मोड़ लीजिए और तब उबालिए। कागज के कारण इसके उबलने में कुछ सेकेण्ड और लगते हैं।

- यूकिलिपटिस का रस अगर सफेद 'किड' के जूतों पर लगाया जाय तो उससे दाग दूर हो जाते हैं।

- चिकनाई लगे रेशम को साफ करने का एक तरीका यह है कि उसपर फ्रेन्च चॉक मल दिया जाय और मलने के बाद आँच के पास जब तक उसको थामे रहें कि जब तक वह सूख न जाय। उसके बाद चॉक को झाड़ दें।

- चश्मे के काँच और फ्रेम पर लगे दाग यू डी कलोन से साफ हो जाते हैं और उनमें चमक आ जाती है।

- (हाथ धोने की चिलमचियाँ) थोड़े से तारपीन के तेल से साफ हो जाती हैं। इससे चिकनाई और बदबू दोनों ही निकल जाती हैं।

- नमक सील न जाय इसलिए नमक के डिब्बे में ब्लाटिंग पेपर की तह लगा कर उसे बन्द करना चाहिए।

- धातु की बनी चायदानियाँ अगर कुछ दिनों तक प्रयोग में न लाई जायँ तो जंग खा जाती हैं। उनको जंग से बचाने के लिए उनके अन्दर थोड़ी सी चीनी डाल दीजिए। चीनी सारा हवा का पानी सोख लेती है, और जंग नहीं लगने देती।

●

देखा-सुना

मानवी देवी और मानवीय हृदय (७)

(गतांक से आगे)

श्री मनमोहन गुप्त

अब मझली जीजी से तो न मुलाकात ही होती और न मैं उन्हें ढूँढ़ता ही। अब मेरा एक मात्र स्वप्न था बाबाजी की मौत। सोचता तो अनेक तरकीबें, किन्तु एक भी कारगर हो सकती है, ऐसा नहीं लगता था। फलतः रोज-रोज नयी-नयी बातें मन में आतीं भी और चली भी जाती थीं। किसीको रूपायित न कर पाता। अन्दर ही अन्दर घुट-घुट कर रह जाता था। अवसर पाते ही घर से निकल जाता और बाबाजी के स्थान के आस-पास चक्कर काटा करता।

कभी बाबाजी दातून करते दिखायी पड़ते, कभी कमण्डल लिये खाने के लिए जाते हुए दिखायी पड़ते, कभी चहलकदमी करते हुए दिखायी पड़ते थे। कभी-कभी यों ही शून्य की ओर एकटक निगाह किये हुए खड़े दिखाई पड़ते थे।

धीरे-धीरे वर्षा आयी। गंगाजी ने बढ़कर बाबाजी के स्थान को डुबो दिया। बाबाजी ने उधर के खाली मैदान में छप्पर लगाया। फिर गंगाजी घटीं। बाबाजी ने साफ करवाकर पुराने स्थान पर फिर अधिकार किया। जाड़ा आया।

इन्हीं दिनों कई बार बाबाजी से मेरी चार आँखें हुईं। प्रायः बाबाजी बाहर धूप में चुपचाप बैठे रहते थे। मैं भी दूर से उन्हें देखता हुआ घमाया करता था। उन दिनों मेरी बाबाजी के पीछे लगे रहने की जैसे एक आदत सी पड़ गयी थी।

एक दिन मैं दूर बैठा हुआ घमा रहा था। कुछ पाठ भी याद कर रहा था और बाबाजी पर निगाह भी थी। उन दिनों मैं किताब साथ ले जाया करता था क्योंकि पीछा करने में बहुत समय लगने लगा था।

कई दिनों बाद संयोग कुछ ऐसा हुआ कि मैं नीचे मुँह किये पढ़ रहा था। पीछे से न मालूम किस समय बाबाजी आकर खड़े हो गये। जब सिर उठाकर मैंने बाबाजी जहाँ पहले बैठे थे उधर देखा, और वहाँ उन्हें न देखकर, कुछ विचलित सा इधर-उधर देखने लगा तो, पीछे खड़े बाबाजी ने कहा—'मुझे उधर कहाँ ढूँढ़ रहे हो?... मैं तो यहाँ हूँ।'

इतना कहकर वे मुस्कराने लगे। मैं सिहर उठा और मेरा चेहरा फीका पड़ गया। फिर भी अपने को सम्हालते हुए मैंने कहा—नहीं, नहीं। आपको क्यों ढूँढ़ूँगा... मैं.. मैं... तो . तो.. तो .यों ही..

दृढ़ता से बाबाजी ने कहा—तो तो, मैं मैं नहीं। मैंने बराबर लक्ष्य किया कि तुम पास भी नहीं आते हो, और मेरे साथ परिचय भी करना चाहते हो।..है न?

मैंने टालने की गरज से कहा—जी नहीं। घर प ही है। इसीसे सबक याद करने इधर चला आता हूँ और अवसर पाने पर इधर-उधर यों ही ताका करता हूँ।

वे मुस्कराते हुए बोले—कोई बात नहीं। अ ही है। तुम चाहो तो मैं भी तुम्हें पढ़ने में मदद कर सकता हूँ। देखूँ क्या पढ़ते हो।

उन्होंने मुझसे किताब लेकर देखी। पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें हुईं। बातचीत के दौरान मुझे ऐसा लगा कि जितना बदमाश मैं उन्हें समझता था उतने नहीं हैं।

दोनों का आपस में परिचय हुआ, बड़ी देर तक बातें हुईं। धीरे-धीरे बाबाजी ने जान लिया कि मैं कितना बुद्धिमान हूँ और कितना बुद्धिहीन। वहीं बैठ गये। मु कर भी मैंने उन्हें जानने नहीं दिया कि मैं मझली जीजी के घर के आस-पास से भी परिचित हूँ।

बाबाजी ने स्वयं आग्रह किया कि उनके समय काटने के लिए यदि मैं उनसे पढ़ा करूँ तो बड़ा अच्छा है। वचन देकर बड़ी देर में मैं घर आया। चलते समय किताब के अन्दर एक सादा कागज था, उसे लेते हुए बाबाजी ने कहा—कल आना तो देखोगे तुम इस कागज में बैठे हो। आना जरूर। मैं बना रखूँगा।

घर की ओर चलते-चलते मैं बार-बार यही सोचता जाता था कि दूसरे दिन जाऊँ या न जाऊँ। अन्त तक न जाने का ही निश्चय किया।

निश्चयानुसार दूसरे दिन बड़ी देर तक धैर्य बाँधे रहा किन्तु ज्यों-ज्यों दिन ढलने लगा त्यों-त्यों जैसे किसी आकर्षित करना आरम्भ किया। अन्त में मैं विवश होकर बाबाजी के स्थान की ओर चल ही पड़ा। उनके पास पढ़ने का या उनसे गप्पें मारने का विशेष आकर्षण तो न था, किन्तु अपना चित्र देखने के लिए व्याकुलता बढ़ गयी। शाम के साढ़े चार बजे के करीब उनके स्थान पर जाकर उपस्थित हुआ। मुझे देखते ही बाबाजी बोल पड़े—आओ! आओ! मैं कब से रास्ता देख रहा हूँ।

मेरा पहला प्रश्न था—आपने जो कहा था, मेरा चित्र बनाने को?

—हाँ, हाँ। केवल वही नहीं। मैंने तुम्हारे छः चित्र बनाये हैं।

कहते ही कहते उन्होंने एक नक्शे वाली कापी निकाली उसीमें चित्र बने थे। प्रथम जिस दिन मेरी मुलाकात हुई थी उस दिन से लेकर आज तक की छः घटनाएँ उनमें चित्रित हैं, बाबाजी ने कहा।

प्रथम चित्र को देखते ही मैं पसीने से तर हो उठा। वह घटना इस प्रकार की थी कि मैं बाबाजी के स्थान में घुसकर मझली जीजी के चित्रों को बटोर रहा हूँ।

मुस्कराते हुए बाबाजी बोले—तुम्हारा पसीना बता रहा है कि तुमने ही उन चित्रों को चुराया ? बोलो सच है कि नहीं ?

अपने को सम्हालते हुए मैंने कहा—मैं नहीं जानता हूँ।

तुरन्त उसे पलटते हुए, दूसरा चित्र दिखाते हुए बाबाजी ने पूछा—देखो यह भी झूठी बात है कि इसमें सच्चाई है ?

दूसरे चित्र में दिखलाया था कि मैं बाबाजी की कूँची, रंग तथा चित्रों की गठरी लेकर तेज कदम से भाग रहा हूँ।

इस बार मैंने कहा—आप झूठ-मूठ मुझे चोरी लगाते हैं। मैं चला !

कहकर ज्यों ही चलने को तैयार हुआ त्यों ही उन्होंने उस कापी को बन्द कर दिया और कहा—अच्छा जाने दो इन बातों को। देखो, तुम्हारे सामने ही मैं तुम्हारा चित्र बनाये देता हूँ। बीती बातों को भुला देना ही अच्छा है।

उन्होंने उस कापी में से एक पन्ना फाड़ा, और देखते ही देखते उसपर मेरा एक सुन्दर चित्र बना दिया। उस चित्र को मुझे सौंपते हुए कहा—तुम चाहो तो तुम भी आसानी से किसीका भी चित्र बना सकते हो।

मेरे हाथ में पेन्सिल और कागज देते हुए कुछ देर तक नाना प्रकार से समझाया। फिर सामने रक्खी सुराही को बनाने के लिए कहा।

सुराही बनाने की चेष्टा के समय कई बार बाबाजी ने कुछ बातें समझायीं। अन्त में मैंने सुराही का चित्र बना ही लिया।

इस अवसर पर बाबाजी ने जैसे मुझे मोह लिया। मैं उनके गुणों की प्रशंसा मन ही मन करने लगा। जब उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा कि तुम भी चाहो तो बहुत अच्छे कलाकार बन सकते हो तो मुझे ऐसा लगा कि मैं उनके पैरों में माथा धर दूँ। चित्रकला के प्रति मेरे हृदय के अन्दर ही चाह उमड़-उमड़कर बाहर निकलने लगी।

जब वहाँसे चला तो यही निश्चय करके चला कि शाम को इस विद्या के लिए दो घंटे नित्य दिया करूँगा।

× × ×

महीनों से मझली जीजी से भेंट नहीं हुई थी, किन्तु बाबाजी से मेरा गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पक्का हो गया था। अब बाबाजी के निर्देशानुसार मैंने एक प्रकार से तपस्या आरम्भ कर दी थी। घर में भी अवसर पाते ही एकान्त में बैठकर चित्र बनाया करता था। रंगों का मिश्रण करना; रंगों का चयन करना; कहाँपर उचित रंग कौन-सा तथा अनुचित कौन सा है; इन सब बातों को समझने लगा था। स्वर्गीय माता के कई चित्र बना-बनाकर एक चित्रपंजी बना ली थी। दादी का, पिताजी का, भैया का, और भी कितनों के चित्र बना लिये थे। बाबाजी कहते थे कि मेरी उम्र के बच्चे भी इतने अच्छे चित्रकार बन सकते हैं इसकी कभी उन्होंने धारणा भी नहीं की थी।

दूसरे वर्ष का जाड़ा बीता, वसन्त के दिन आये।

उस दिन वासन्ती पूजा का दिन था। घर-घर सरस्वती की पूजा हो रही थी। मैं भी अपनी कूँची आदि लेकर बाबाजी के स्थान पर पहुँचा। दोनों ने एक साथ बैठकर देवी का पूजन करने का निश्चय किया था। स्नानादि के बाद जब मैं पूजन के निमित्त तैयार होकर आया तो अत्यन्त स्नेह से मुझे पास बुलाकर बाबाजी ने अपने बगल के आसन पर बैठाया।

आँखों में आँखें गड़ाते हुए बोले—तुम्हारे पास तुम्हारा शिल्पगुरु बैठा है। उधर सामने, विद्यादायिनी माँ सरस्वती मुद्रितनयना ध्यानमग्नावस्था में बैठी हैं, सामने ही उनके पादपद्म के पास तुम्हारी कूँची, लेखनी आदि रक्खी हुई है। आशा करता हूँ कि तुम इस अवस्था में अपनी बुद्धि को विचलित न करके, सत्य का अभिनय न करके, सत्य ही बोलोगे। बोलो तुमने मेरे स्थान से उन चित्रों को चुराया या नहीं, एक; चुराकर क्या किया, दो; और इस समय वे चित्र कहाँ हैं, तीन ? इन तीनों बातों का सही-सही उत्तर चाहता हूँ।

कहते-कहते उनकी आँखें डबडबा उठीं। मैं मोहाविष्ट सा हो रहा था। मुझसे मिथ्या कहने की शक्ति किसी ने हर ली थी। आँखें नीची कर लीं।

बाबाजी ने कहा—बस। हो गया। आओ, बेटा ! इधर बैठो। मैंने जो कुछ भी साधना से पाया है उसका उत्तराधिकारी तुम्हींको बनाऊँगा। तुम वीर हो, उद्योगी हो और गुणी भी हो। मैंने ये सब बातें तुम्हारी आँखों में पढ़ ली थीं। तुमसे केवल इस कारण से कबूल करवा लिया जिससे कि मैं स्वयं जान लूँ कि मैंने गलत तो नहीं पढ़ा ? फोटोग्राफर में और चित्रकार में इतना ही भेद है कि फोटोग्राफर बाह्य आडम्बर का चित्र लेता है, और चित्रकार भाव तथा भावनाओं के संमिश्रण से चित्र बनाता है। इसे स्मरण रक्खोगे तभी तुम सच्चे कलाकार हो पाओगे यही मेरी इस दिन की शिक्षा है।

कहते-कहते उन्होंने मेरे सिर पर दोनों हाथ रख दिये। बड़ी देर तक हम दोनों निर्वाक होकर बैठे रहे। मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि उनका रोम-रोम मुझे आशीर्वाद दे रहा हो।

इस प्रकार प्रायः बीस मिनट तक हम दोनों उसी मुद्रा में रहे। तदनन्तर उन्होंने आहिस्ते-आहिस्ते हाथ अलग कर लिया। फिर गम्भीर भाव से पूछा—तुम्हें उन चित्रों से क्या करना था ?

इस प्रश्न का उत्तर क्या देता। चुप रहा।

थोड़ा आगे खिसकते हुए उन्होंने कहा—घबड़ाओ नहीं। गुरु ही समस्त विपदाओं में सहायक होते हैं। तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति आयी हो तो मैं उसका निवारण करूँगा। खुले दिल से सब कुछ मुझे सुनाओ।

इतना असमर्थ हो गया था कि इंकार करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं रह गयी थी। धीरे-धीरे बहुत कुछ कह दिया। बहुत कुछ का अर्थ यह नहीं कि मैं बीच में मझली जीजी को ले आया। सीधे सीधे कहा कि किस प्रकार से ताला खोला, तस्वीरें चोरी कीं और उन्हें गंगाजी में डाल दिया।

बहाया तो केवल कूँची और रंगों को ही था किन्तु इस समय साथ में चित्रों को भी जोड़ दिया। सुनते ही बाबाजी सिहर उठे। उनके मुँह से एक यंत्रणा के आतुर जैसी आवाज निकली। कुछ समय तक वे चुप रहे फिर बोले——जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ!

इतना कहकर फिर चुप हो गये। कुछ समय के उपरान्त बोले——चित्र जगत् का एक खजाना नष्ट हो गया। अब उसकी कभी पूर्त्ति न हो सकेगी।

उस दिन के बाद बाबाजी अपने स्थान से प्रायः अनुपस्थित रहा करते थे और मैं भी कभी ही कभी जाया करता था। खूब नत होकर पैर छूकर प्रणाम करता। थोड़ी देर बातें होतीं। क्या बना रहा हूँ बताता, कुछ परामर्श लेता और घर चला आता। वे बार-बार समझाया करते थे कि यह देश ऐसा है कि चित्रकारी को पेशा बनाकर गुजारा करने में अभी यहाँ सौ वर्ष लगेंगे। अतः नौकरी की तैयारी की पढ़ाई करके जो अवसर मिले उसी समय में चित्रकारी का काम करना चाहिए। फलतः मैं भी पढ़ने से जो समय बचता था उसी समय चित्रकला का अभ्यास किया करता था। धीरे-धीरे खूब हाथ मँजते जा रहे थे।

अब कुछ-कुछ गर्मी पड़ने लगी थी, एक दिन शाम को मैं यों ही बाबाजी के स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ देखा कि चारों ओर उल्टी करके उसी में लथपथ पड़े हुए हैं। बहुत घबड़ा गया। बाहर से ही पुकारा——गुरुदेव!

कोई उत्तर न मिला। कई बार पुकारने पर उन्होंने जरा सा सिर हिलाया और हाथ से इशारा किया कि प्यासे हैं। झट भागकर कमण्डल में पानी भर लाया। गटगट करके सारा पानी पी गये। अपने को सम्हालते हुए बोले——और पानी लाओ।

भागते हुए जाकर और एक कमण्डल पानी ले आया। उसमें से भी थोड़ा और पी गये। कुछ और सम्हलकर बोले——मुझे . . . मुझे हैजा हो गया है। मेरी मृत्यु निकट है। तुम्हें दो काम करने हैं। पता लिख लो . . . तार करवा देना जब मैं मर जाऊँ . . और . . . और . . वह चित्रों की गठरी रक्खी है। उसे अपनी मझली जीजी को दे देना। . . कहना कि एक. . . चित्रकार था. . . उसने . . . तुम्हें प्यार किया था. . . प्यार. . . प्यार. . .

कहते-कहते वे हाँफने लगे। फिर जरा रुककर कहा——कहना कि तुम उसकी शकुन्तला थी. . . वह तुम्हारा दुष्यंत था. . . तुम्हें प्यार करता था. . . .

कहते ही कहते वह फिर भड़भड़ाकर उल्टी करने लगे। मैंने आगे बढ़कर उन्हें थाम लिया। घबड़ाकर वे बोले——भाग जाओ. . . भाग जाओ. . .जान बचाओ. . .

आगे कुछ बोल न पाये। बदबूदार टट्टी करने लगे। देखकर मैं बहुत घबड़ा गया। इतने में उन्होंने फिर पानी माँगा। कमण्डल से पानी पिला दिया। लाल आँखें औ रक्तवर्ण हो गयीं। गिड़गिड़ाकर बोले—पता लिख लो।

मैंने झटपट पता लिख लिया। बाद को उन्होंने कहा——शकुन्तले! शकुन्तले!

मेरे मन में बड़ी दया आयी। आक्रोश की सारी भावनायें काफूर हो गयीं। मैंने पूछा—गुरुदेव!... आप कहें तो मझली जीजी को बुला लाऊँ. . . .

जैसे उनकी खोयी हुई शक्ति वापस हुई। मेरे मुँह की ओर देखते हुए बोले——क्या कहा?. . . क्या कहा? . . . . उन्हें ला पायेगा?. . . सच बोल. . . ला पायेगा?

समस्त घटनाओं की समीक्षा करते हुए मेरे मन में दृढ़ विश्वास था कि यदि मझली जीजी से कहूँगा, तो वे अवश्य आयेंगी। दृढ़ता से कहा——हाँ!

विह्वल होकर वे बोले——तो ला! बस एक बार ला! शीघ्र ला। एक बार अन्तिम दर्शन कर लूं!

सिर पर पाँव धरकर मै भागा। सीधे जाकर मझली जीजी के कमरे में रुका। अचानक मुझे वहाँ देखकर वे सकपका गयीं। मैं भी एकाएक उन्हें पहचान न पाया। सूखे से चेहरे में रूखे-रूखे बालों को खुला छोड़े बैठी थीं। आँखें कुछ धँसी-धँसी लग रही थीं। मुझे देखते ही उनकी आँखें जैसे आग उगलने लगीं। उसकी परवाह न करके सीधे मैंने उनके पैर छू लिये। रुआँसा होकर बोला—बाबाजी की जान बचाओ। वे मर जायेंगे. . . . एक बार तुम चलो. . . नहीं तो मर जायेंगे!

हड़बड़ाकर खड़ी हो गयी। उत्तेजित होकर प्रश्न किया——कहाँ हैं वे?

——अपनी जगह में. . . . जल्दी चलो. . . . उन्हें हैजा हो गया है।

सुनते ही वह वैसी ही उठकर पागल सी मेरे साथ-साथ तेजी से हो लीं। जब तक उनके घरवाले कुछ समझें कि क्या हो रहा है, उससे पहले ही हम दोनों तेज कदम कुछ दूर निकल गये। हाँफते-हाँफते दोनों जाकर एकदम बाबाजी के दरवाजे पर रुके।

'हाय! हाय! भगवान् तुमने यह क्या कर दिया!'

कहकर ही मझली जीजी ने जाकर बाबाजी को छाती से लिपटा लिया। आहिस्ते-आहिस्ते आँखें खोलते हुए बाबाजी ने कहा——कौन? . . . आह! तुम आ गयीं? . . .

——हाँ! मैं आ गयी! . . .आ गयी! . . .आ गयी. . !

कहते-कहते वे रो पड़ीं। बाबाजी के मस्तक को अपने हृदय से लगा लिया। धीरे-धीरे बाबाजी ने कहा——मगर . . . . . म.ग.र. . बहुत देर. . . देर से आयीं. . . . . .मैं मर रहा हूँ।

——नहीं. . . . नहीं. . . . मैं मरने नहीं. . . दूंगी. . . . . नहीं दूंगी. . . . कभी मरने न दूंगी. . . .

कहते-कहते वह फूट-फूटकर रोने लगीं। मझली जीजी के भी सारे शरीर में वमन और मल चिपक गया। वे रोती जाती थीं, और बाबाजी को लिपटाये जाती थीं। उधर मैं भी रो रहा था।

कुछ और समय बीतने के बाद मैंने सम्हलते हुए कहा—पानी लाऊँ.....? साफ करोगी?

जैसे उन दोनों को भी होश आया। मझली जीजी ने कहा—बाल्टी में भर-भर कर ला।

उधर कोने में बाल्टी रक्खी थी। मैं बाल्टी और कमण्डल में पानी भर लाया। पहले बाबाजी को अच्छी तरह साफ किया गया। कपड़े बदले गये। उधर साफ जगह की ओर हटा दिया गया। फिर स्थान को साफ करके मझली जीजी सब कुछ लेकर गंगाजी में चली गयीं। कुछ ही समय में सब कपड़े आदि धोकर लाकर सूखने को डाल दिये। फिर मुझसे बोलीं—जा, किसी वैद्य या डाक्टर के यहाँ से दवा ले आ।

असहाय जैसा मैंने कहा—किससे लाऊँ?...

इस मामले में मझली जीजी मुझसे भी अधिक असहाय थीं। दोनों चुप। इतने में मैंने कहा—बाबाजी ने एक पता दिया है....उन्हें खबर करूँ?

—हाँ, हाँ, जल्दी से खबर कर दे.......

मझली जीजी के मुँह से इतना निकलना था कि मैं भगा। कुछ दूर जाते ही स्मरण हो आया कि बाबाजी ने तार करने को कहा था। पता खोलकर देखा। अरे, यह तो बर्दवान का है।

ऐसे मौके पर पिताजी से मदद लेनी ही ठीक है, समझकर घर की ओर भगा। घबड़ाते हुए एकदम पिताजी के सामने जाकर कहा—जल्दी डाक्टर ले चलिये या इस पते पर तार कीजिये.....गुरुदेव को हैजा हो गया है!

तुरन्त पिताजी तैयार हो गये। झटपट मेरे शरीर पर एक दवाई छिड़क दी। जगह जान ली। फिर कहा—तुम फिनैल की इस शीशी को लेकर वहीं चलो, मैं आता हूँ। न रोगी को छूना और न कमरे के अन्दर जाना।

फिनैल की शीशी लेकर जब पहुँचा तो देखा कि मझली जीजी बाबाजी के सिर को अपनी गोद में लिये बैठी है। मुझे देखते ही प्रश्न किया—क्या दवा लाया?

मैंने कहा—पिताजी ला रहे हैं। मैं फिनैल लाया हूँ।

आहिस्ते से बोली—बाबाजी को होश नहीं है। तू फिनैल घोलकर सब जगह छिड़क दे।

मैंने वैसा ही किया। थोड़ी देर में पिताजी डाक्टर को साथ में लिये आये। डाक्टर ने दवा दी। पिताजी ने कहा—अब दवा आदि मैं देता रहूँगा। तुम दोनों घर जाओ।

डाक्टर भी चले गये। दवा आदि पिला दी गयी। किन्तु हम दोनों में से कोई टस से मस नहीं हो रहे हैं, देखकर पिताजी ने फिर आज्ञा के रूप में कहा—जाओ न दोनों! नहा-धोकर अच्छी तरह से वह तेल सारे शरीर में लगा लेना।

तेल वाली दवा तो ले ली किन्तु एक कदम पीछे हटूँ तो दो कदम आगे बढ़ूँ देखकर पिताजी ने फिर कहा—कहता हूँ कि मैं हूँ....तुम लोग जाओ।

भय के मारे मैंने तो हटना आरम्भ किया। किन्तु मझली जीजी टस से मस नहीं हुई।

ऐसा देखकर पिताजी ने कहा—मझली! उठो। मैं तुमसे घर जाने को कह रहा हूँ।

फिर भी वह निश्चेष्ट है, देखकर पिताजी ने मुझसे कहा—छोटे, जा तो। इसकी माँ को बुला ला।.....हाँ, मिल जाय तो इसके बाप को भी ले आना।

मझली जीजी झल्लाकर बोल उठीं—आपने अपना कर्त्तव्य किया। दवा ला दी। अब आप छोटे को लेकर जायँ। मैं सब सम्हाल लूँगी। इन्हें छोड़कर मैं न जाऊँगी।

पिताजी अवाक् रह गये। किन्तु बहस का समय न था। बोले—ठीक है। तुम दोनों रहो। मैं अभी आता हूँ। हर पन्द्रह मिनट में दवा पिलाती रहना।

जब पिताजी चले गये तो हम दोनों आपस में एक दूसरे की ओर देखने लगे।

इतने में ही बाबाजी को कसकर एक कै हुई। सब दवा निकल गयी। मझली जीजी रुआँसी होकर बोल उठीं —हाय भगवान! क्या होगा!....कैसे अच्छे होंगे!

फिर दवा दी गयी। दस-पन्द्रह मिनट रुककर वह वह भी निकल गयी। हम दोनों हतबुद्धि हो रहे थे। इतने में टट्टी होने लगी। खूब यत्न से मझली जीजी ने सम्भाला। इतने में बाबाजी ने गिड़गिड़ाकर टूटे हुए शब्दों में कहा—क्यों....क्यों....इस अन्तिम समय में आकर....मेरी मौत....मौत के साथ लड़ रही हो? क्या...क्या.....मुझे बचा पाओगी..... पाओगी?

मझली जीजी फूट-फूटकर रोने लगीं। बाबाजी के मुँह के पास मुँह ले जाकर सिक्त नयनों से मैंने कहा—अब बच जाइयेगा गुरुदेव।...अवश्य बच जाइयेगा....आपको बचाने के लिए ही मैं.....

आगे कुछ कह न सका। जैसे किसी ने मेरा गला रूँध दिया। टप-टप आँसू गिरने लगे। मझली जीजी बराबर रो रही थीं।

इतने में ही पिताजी आ गये। साथ में और कितने ही लोग थे। सब लोग अन्दर का दृश्य देखकर स्तम्भित से बाहर ही खड़े के खड़े रह गये। इतने में बाबाजी कुछ कहने की चेष्टा में बैठने का प्रयत्न करने लगे किन्तु सम्हल न सके। मझली जीजी ने सहारा देकर उन्हें फिर लेटा दिया। उन्होंने फिर आँखें नहीं खोलीं। हम दोनों एकटक उनके मुँह की ओर देखने लगे।

पिताजी अन्दर आते हुए बोले—मैं आया हूँ बेटे। तुम लोग उनसे अलग हो जाओ। रामकृष्ण सेवाश्रम

अस्पताल में उन्हें ले जाना है।...यहाँ, इस प्रकार से हम लोग इनकी रक्षा न कर पायेंगे।

सुनते ही मझली जीजी अलग हो गयीं। साथ-साथ चार-पाँच ब्रह्मचारी स्वयंसेवक आगे बढ़ आये। बाहर पालकी थी? वे उसमें बाबाजी को लिटाकर आश्रम के अस्पताल की ओर ले चले। हम दोनों भी साथ हो गये। पिताजी रुक गये और बाबाजी के स्थान पर ताला लगाने लगे।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर मझली जीजी रुकती हुई बोलीं——छोटे! सुन!

मैं उनकी ओर बढ़ गया। वह आहिस्ते से बोली——तू तस्वीरोंवाली पोटली ले आ। उसको वैसे वहाँ छोड़ना ठीक नहीं।

मैंने तुच्छता के भाव से कहा——फिर कभी ले जायेंगे। कौन लेगा? इतना कहकर मैं आगे बढ़ने लगा। वे बोलीं——रुक जा।

रुककर मैं मझली जीजी की ओर बढ़ा। फिसफिसा कर वे बोलीं——नंगी नंगी तस्वीरें हैं....कोई देख लेगा तो बहुत बुरा होगा।

बात तो सच थी। बोलीं——तू जहाँ सब चीजें छिपाता है वहीं पर रख आ....कहीं तेरे पिताजी ने इसे देख लिया और खोल लिया तो क्या होगा!

कोई गलत नहीं कह रही थीं। बिल्कुल उसकी सम्भावना थी। मैंने कहा——तुम्हें चौराहे पर खड़ा करके मैं रख आऊँगा।

यथास्थान में गठरी रखकर जब हम लोग सेवाश्रम अस्पताल में पहुँचे तब देखा कि बाबाजी के कपड़े बदले जा चुके हैं। कई डाक्टर नाना प्रकार से बाबाजी की परिचर्या में लगे हैं। पिताजी पास ही बड़े उदास से खड़े थे।

हम लोगों को देखते ही इशारा किया कि हम लोग बाहर ही खड़े रहें। हम दोनों दरवाजे के पास खड़े हो गये। कुछ समय तक डाक्टरों ने कई उपचार किये। फिर बाहर निकलते हुए पिताजी से कहा——बहुत देर हो गयी।....देर से लाये....ईश्वर रक्षा करें।...

कहते-कहते वे बाहर निकल गये। सेवा करनेवाले ब्रह्मचारी से कह गये कि कोई खास बात हो तो खबर करे। प्रत्येक दस-दस मिनट पर दवा दी जाने लगी।

दवा पिलाने के साथ-साथ उल्टी जोर पकड़ती। जैसे-जैसे वे उल्टी करते वैसे-वैसे मैं दीर्घ साँस लेता। मझली जीजी तो बराबर रो रही थीं।

× × ×

रात भर पिताजी वैसे ही खड़े रहे। हम लोग भी जैसे के तैसे रहे। बाबाजी अचेत थे। आश्चर्य यह कि पिताजी स्वयं भी अपने स्थान से जरा भी नहीं हटे और उन्होंने हम दोनों में से किसीसे कुछ कहा भी नहीं। रात भर मेरे मन में शंका बनी रही कि अब पिताजी घर जाने के लिए कहते ही हैं, किन्तु पिताजी मौन ही रहे।

दिन के बारह भी बज गये। बाबाजी को होश न आया। हम सब लोगों ने मुँह तक न धोये, न सोये और न अपने-अपने स्थानों से हटे ही। देखते-देखते शाम के चार भी बज गये।

रातवाले ब्रह्मचारी फिर अपने काम पर आये। पिताजी को जहाँ का तहाँ खड़ा देखकर एक ने पूछा——क्या आपने विश्राम और भोजन नहीं किया?

पिताजी को जैसे कुछ स्मरण हो आया। आहिस्ते-आहिस्ते आँखें डबडबा आयीं। एक लम्बी साँस लेते हुए बोले——एक...तपस्वी...कलाकार को शायद...

कहते ही कहते वे बालक जैसे रो पड़े। हम दोनों भी फूट-फूटकर रोने लगे। इतने में उधर से बड़े भाई साथ में एक वृद्ध तथा एक वृद्धा को साथ लिये आते हुए दिखायी पड़े। हम लोगों को रोते हुए देखकर उनकी भी आँखें नम हो पड़ीं। साथवाले वृद्ध ने बड़ी घबराहट से पूछा——तुम लोग रो क्यों रहे हो? तो क्या मेरा विजय.....?

आगे कुछ कहने से पूर्व ही दोनों, एक साथ रो पड़े। रोना सुनकर एक ब्रह्मचारी बाहर आया।

बाद में पता लगा कि बाबाजी के वे पिता-माता हैं। पिताजी ने रात को, मेरे दिये हुए पते पर जो तार दिया था, उसीके उत्तर में वे आये हैं। उन्हें कमरे में दाखिल किया गया। माता ने पुत्र को लिपटा लिया। कुछ समय तक खूब रोना-धोना चला।

शाम को छः बजे के करीब बाबाजी को थोड़ा सा ज्ञान आया। पास ही बैठी उनकी माता ने झुककर कहा——बेटा! विजय!

थोड़ी सी आँख खोलकर बाबाजी ने कहा—माँ..

——हाँ। बेटा मैं आ गयी....अच्छे होकर घर चलो!

इतने में बाबाजी इधर-उधर आँखें घुमाने लगे। माता ने कहा——वे भी आये हैं।

साथ-साथ उनके पिताजी भी झुक पड़े। बोले——विजय!

कुछ अधिक आँखें खोलकर बाबाजी ने कहा——शकुन्तले!

मझली जीजी एकदम झपाटे से अन्दर घुसकर बाबाजी के पास पहुँच गयीं। बाबाजी ने आहिस्ते से उँगली हिलायी। मझली जीजी ने हाथ को उठा लिया और छाती से लगाती हुई बोलीं——देखो! मैं आ गयी!

एक दीर्घ साँस लेतें हुए बाबाजी ने कुछ अस्फुट कहा। किसीकी समझ में कोई बात न आयी। बाबाजी ने आँखें बन्द कर लीं।

साथ-साथ एक बार बड़े जोरों से—"वा..आ...क!" की आवाज करके उल्टी करने की चेष्टा की, और साथ-साथ उनके प्राण पखेरू भी उड़ गये।

ब्रह्मचारियों ने और पिताजी ने एक साथ कहा——सब शेष!

सुनते ही बाबाजी की माँ लाश से लिपट गयी। मझली जीजी बेहोश होकर वहीं जमीन पर गिर पड़ीं। मैं चरणों के पास खड़ा-खड़ा रोने लगा। पिताजी भी विह्वल होकर रोने लगे। केवल बड़ भाई दूर खड़े रहे। बाबाजी के पिता कहते जाते थे——हे बाबा विश्वनाथ! .....क्या इसीलिये यहाँ बुलवाया था?

× × ×

जब ब्रह्मचारियों ने बाबाजी की लाश को ले जाकर "निर्वाण" वाले कमरे में धर दिया तब अधिकारियों ने पिताजी से पूछा कि लाश को वे ही जलायेंगे अथवा और कोई ले जायगा।

पिताजी ने बाबाजी के पिताजी से पूछा——लाश का क्या होगा? ....यदि आपके कोई आत्मीय हों तो कहिये उन्हें बुलवा लूँ, अन्यथा मैं ही बन्दोबस्त करूँ। ...हाँ मेरे बन्दोबस्त में जाति-पाँति का भेद भाव न रहेगा।

थोड़ी देर बाबाजी के पिता मौन रहे। सोचकर बोले——यहाँ मेरे एक ही आत्मीय हैं। वे ३६ नम्बर पांडेघाट में रहते हैं। नाम उनका पं० गौरीशंकर मिश्र है।

सुनते ही पिताजी बोले——अरे! मिश्रजी तो मेरे पड़ोसी हैं....आपके?

——मेरे ससुर हैं। उनकी मझली लड़की से मेरी शादी हुई थी।

——मझली लड़की से?... आप उन्हें पहिचानते हैं?

——हाँ, हाँ, शायद देखूँ तो पहिचान पाऊँ। आपतो जानते ही हैं कि हम लोग कुलीन हैं। हम लोगों के कुलीन होने के कारण लोग छोटी अवस्था में ही लड़कियों की शादी करा देते हैं। तो अब तक वह लड़की भी पच्चीस से कम क्या हुई होगी?....फिर ...प्रायः बीस वर्ष पहले की बात....बस इतना ही स्मरण है कि लड़की खूब गोरी-गोरी थी।

रोकते हुए पिताजी ने कहा——ठहरिये। ठहरिये! मेरा दिमाग चकरा रहा है। कुछ सोचना पड़ेगा। आपके हाथ में लाश सौंपी जाय या नहीं, इसे सोचे बिना तय नहीं कर पाऊँगा। विजय, यानी बाबाजी आपके पुत्र थे और शायद गलत न समझा हो तो मिश्रजी की लड़की मझली को आप कहते हैं कि वह आपकी पत्नी है!

कहते-कहते पिताजी मौन हो गये। फिर कहा——ठीक है। मैं मिश्रजी को भेज देता हूँ। आप लोग निपट लीजियेगा।

उधर जहाँ मझली जीजी और बाबाजी की माता, एक दूसरे से लिपटी हुई बैठी रो रही थीं, वहाँ पिताजी पहुँचे। बगल में खड़े-खड़े मैं भी रो रहा था। अत्यन्त कठोर होकर वे बोले——छोटे! घर चल! अपनी मझली जीजी को भी बुला ले।

मैं आनाकानी कर रहा हूँ देखकर पिताजी ने कसकर मेरा हाथ पकड़ा। फिर लपककर मझली जीजी का भी हाथ पकड़ा। एक प्रकार से दोनों को घसीटकर सेवाश्रम के फाटक की ओर ले गये।

बाहर, सामने एक इक्का खाली दिखायी पड़ा। उसीमें दोनों को प्रायः बलपूर्वक लाद दिया। स्वयं उचककर बैठते हुए इक्केवान से बोले——भगाओ। भगाओ! जल्दी भगाओ! पुण्यात्मा चले गये...पाप का बोझ, साक्षात् नरराक्षस सामने खड़ा है जिसकी हवा लगते ही हम सब जलभुनकर खाक हो जायेंगे। भगाओ इक्के को!....और तेज भगाओ!

घर पर पहुँचकर मुझे तथा मझली जीजी को दवा आदि से खूब नहलाया।

× × ×

पं० गौरीशंकर मिश्र से पिताजी ने जाकर कहा——अचानक मुझ एक ने बताया कि आपकी मझली लड़की का सौतेला बेटा रामकृष्ण सेवाश्रम में बीमार है तो मैं ही आपकी मझली लड़की को उसकी सेवा के लिये साथ ले गया था। अब उस लड़के का स्वर्गवास हो गया है। बर्दवान के आपके दामाद सपत्नीक आ गये हैं। उनसे वहीं जाकर मिलें और लाश को उठवाने की व्यवस्था करें। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। मझली रात भर मेरे तथा छोटे के साथ वहीं रही। उसे कुछ कहियेगा नहीं।

× × ×

देखते-देखते काशी के समस्त ब्राह्मण कुलीन समाज में यह समाचार फैल गया कि एक परदेशी कुलीन का लड़का हैजे से मर गया है। तमाम लोग अस्पताल में पहुँचे। खूब भीड़भाड़ से अर्थी निकली।

लाश आदि जलाकर स्नानादि सम्पन्न करके बाबाजी के पिता मिश्रजी के साथ उनके घर आये। उनकी धर्मपत्नी पहले ही अस्पताल से मिश्र जी के घर भेज दी गयी थीं। किन्तु मझली जीजी घर में न थी।

लोगों ने खूब ढूंढ़ा। कहीं न मिली। वह तो मेरे साथ बाबाजी के स्थान में विधवा का सा भेष बनाये शोक मना रही थी!

—समाप्त

निःशब्द चीत्कार

श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"

उस रात जाड़े के कारण कानों के परदे ठिठुर गये थे अथवा वह कानों को न सुनायी देनेवाली किसी चीत्कार की प्रतिगूंज थी जिसके प्रभाव से मेरे शरीर में बार-बार सिहरन सी उठ रही थी। हो सकता है वह उन उदास गीतों की ही प्रतिक्रिया हो जिन्हें सुनने के लिए मैं उस रात उन पहाड़ी गाँवों की ओर निकला था। बात जो भी हो, मैं अपने जूते और मोजे खोलने से पहले ठिठुरे हाथों को तपाने के लिए अँगीठी की ओर बढ़ गया।

मेरी दृष्टि उसी समय दरवाजे की ओर पड़ी और उस बूढ़े को चिक के बाहर हाथ जोड़े खड़ा देखकर मैंने कहा——"प्रधानजी, अब आप जाइए। मुझे इस रात यहाँ तक पहुँचाने में आपने जो कष्ट किया उसके लिए धन्यवाद।"

मन ही मन यह भी विचार मुझे आया कि इस पर्वतीय के पास जो ऐसी ठंडी रात में पाले और तुषार से कड़कड़ाते मार्ग पर नंगे ही पाँव इस पथरीले मार्ग पर चला आया, एक कंबल तक नहीं, और मैं तीन-तीन कंबल ओढ़कर भी जाड़े का अनुभव कर रहा हूँ।

तभी चिक के बाहर ही से यह हिचकिचाते स्वर में बोला——"प्रभो, मोकूँ एक बिनती करणी। सुण लीजो।"

ये सीमान्तवासी पर्वतीय जब हिन्दी बोलने लगते हैं तो इनकी भाषा कथावाचकों की सी प्राचीनता में पगी रहती है। इनकी 'विनती' का भी कोई निश्चित समय नहीं होता। मुझ जैसे वन विभाग के अधिकारी से ये बहुधा पतरौल की छेड़खानियों, रेंजर की शिकायतों के अतिरिक्त कभी अपने मकान के लिए स्लेटों या पत्थरों की माँग करते तो कभी इमारती लकड़ी के लिए किसी तुन या देवदार के पेड़ को काट लेने की अनुमति चाहते थे। इस बूढ़े को भी ऐसा ही कुछ कहना होगा यह सोचकर पहले मैंने उससे कहना चाहा कि वह अपनी 'विनती' कल दस बजे रेंज क्वार्टर में आकर करे। फिर इस विचार से कि वह बड़ा संकोचशील है, शायद आधी रात के बाद इतनी दूर मुझे पहुँचाने आने का कारण, उसका इस विनती के लिए अवसर प्राप्त करना था, मैंने नरमी से कहा——"कहो, क्या कहना है?"

वह चुपचाप कमरे के अन्दर आ गया। इस बीच मैंने अधबुझी अँगीठी में उलटी सीधी पड़ी लकड़ी की लुकाइयों को सीधे खड़ा कर दिया। उसका धुआँ कमरे में भरने लगा। उस धुएँ के कारण मेरी आँखें नहीं खुल पा रही थीं। मैंने अँगीठी की रेलिंग की ओर उसके आने की आहट पायी।

उसके कमरे में आने से हवा का हलका सा झोंका आया तो मेरे कान और जोर से बजने लगे। कभी कभी गिरजे की घंटी के बज चुकने के बाद भी देर तक हवा में झायँ-झायँ सी होती रहती है। यह झायँ-झायँ के बाद की प्रतिगूँज थी, कर्णातीत; किन्तु फिर भी कानों के परदों पर हलकी सी सुरसुरी पैदा करनेवाली मूक चीत्कार। मैं उस क्षण पाश्चात्य डाक्टरों द्वारा यदाकदा उपचार में लायी जानेवाली अल्ट्रासॉनिक अथवा अश्रव्य ध्वनि-तरंगों की बात सोचने लगा। एक्स-रे की ही भाँति अदृश्य और अश्रव्य इन तरंगों से वे डाक्टर वात-रोगियों की चिकित्सा करते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के कान जिन ध्वनि तरंगों को सुन सकते हैं उनका कम्पनांक बीस हजार प्रति सेकिण्ड तक ही सीमित होता है, इससे अधिक कंपनांक की ध्वनि-तरंगों को चमगादड़ या उलूक आदि पक्षी ही सुन पाते हैं अथवा रेडार जैसे यन्त्रों से ही उनका अनुभव हो सकता है। इससे भी सूक्ष्म ध्वनि-तरंगें, जिनका कंपनांक आठ से दस लाख प्रति सेकिण्ड होता है वात-रोगियों की चिकित्सा के लिए उपयोग में आती हैं। निश्चय ही उसी प्रकार की निशब्द ध्वनि उस समय मेरे शरीर के स्नायुओं को भी नोच सी रही थी।

मैंने धुएँ से भरे उस कमरे में रेलिंग को टटोल कर धौंकनी को, जो इन बंगलों में ऐसी अँगीठियों के पास अवश्य रखी रहती है, चला दिया। धौंकनी की हवा के एक ही झोंके में अँगीठी भभककर जल उठी। वह बूढ़ा तेज आँच से बचता हुआ सा बिलकुल कोने पर दुबक गया। उस ठिठुरते जाड़े में भी मेरे सामने आग के निकट बैठने में उसको संकोच हो रहा था। अपने से बड़े के प्रति आदर का ऐसा विचित्र भाव इन पर्वतीयों में होता ही है। इस ओर जब कभी मैं गाँव में पगडंडी पर निकला हूँ तो ये लोग मुझे देखते ही झटपट अपने जूते उतार लेते हैं और पगडंडी के बिलकुल किनारे खड़े हो जाते हैं। वहींसे सिर नवाकर कहते हैं——"प्रभो, सेवा मानियो।"

मैंने अपनी कुर्सी के पीछे उसपर दृष्टि डाली। जलती लुकाइयों के तेज प्रकाश में उसकी सफेद मिरजई और पगड़ी रक्तरंजित सी लग रही थी। वह उस समय मेरी ओर न देखकर अपने चुस्त पाजामें की सिलवटों पर से सरसों के पीले फूलों को बीनकर दरी पर गिरा रहा था। ये फूल अभी-अभी मेरे साथ उस डाकबंगले के मार्ग में खेतों को पार करते समय उसके पाँवों से नुचकर उन वस्त्रों पर अटक गये थे। अपनी काली चपटी तर्जनी और वैसे ही काले चपटे अँगूठे के बीच एक पीले फूल के डंठल को पकड़कर कालीन पर गिराने से पहले तनिक नचाते हुए सिर नीचा किये जो कुछ उसने कहा उसका तात्पर्य था——"मैं सुनार नहीं हूँ। सुनार धनीराम तो हाल ही में इसी सोने की हड़कम्प में मर गया। वहीं

कहता था कि मुझको भी अपने सोने को सरकारी बही में चढ़ा देना चाहिए। आप भी उसी सोने का भेद लेने आये हैं। आज उस सभा में यही तो आपने कहा था।"

बात इस परिस्थिति तक कैसे पहुँची इसके लिए मुझे यहाँ कुछ विस्तार से अपने उस दौरे का वर्णन करना होगा। घटना फरवरी महीने के आरंभ की है। आज्ञा हुई थी कि मैं उन पहाड़ी लोगों की सहकार समिति के द्वारा खोले गये तारपीन तेल के कारखाने का उद्घाटन करने जाऊँ। मैं उस सरकारी आज्ञा के अनुसार एक दिन पहले चलकर उन गाँवों के निकट वन विभाग के डाकबंगले में टिक गया था। डाकबंगला एक छोटी नदी-घाटी के सिरे पर एक पहाड़ की चोटी पर बना था। मोटर से उतरकर मुझको रेंजर के घोड़े पर उस बंगले तक के पाँच मील के मार्ग में दो बार उस नदी को पार करना पड़ा था। बड़ा ही एकान्त और दुर्गम प्रदेश था। पहाड़ के ढलवान पर नीली स्लेटों के छाये हुए आठ-आठ, दस-दस घरों के अनेक गाँव मुझको उस मार्ग में मिले थे। वे सभी साफ सुथरे गाँव थे। मकानों के आगे लिपे-पुते आँगन थे। उन आँगनों के किनारे आडू, खुबानी, कुसुमी और पदम (चेरी) के वृक्षों में श्वेत पुष्पों की नयी बहार बड़ी ही सुन्दर लग रही थी।

उस रात आस-पास के गाँवों से आती पहाड़ी संगीत की स्वरलहरी तथा बीच-बीच में नगाड़ों की गूँज मुझे बार-बार सुनायी देती रही। चारपाई में लेट जाने के बाद मैं देर तक जागता रह गया। कुछ उस बंगले को गरम रखने के लिए जलायी गयी अँगीठी की तपन और कुछ उस संगीत की ध्वनि से सुबह तक भी मेरी आँख नहीं लगी थी।

दूसरे दिन दोपहर तक सोकर मैं शाम को कारखाने का उद्घाटन करने पहुँचा। मैंने उन किसानों को बताया कि सरकार उन गाँवों के चीड़ के वनों का भरपूर उपयोग करने का निश्चय कर चुकी है। वह अब तक बेकार रहे उस वन-सम्पत्ति से पहाड़ी लोगों को लाभान्वित करना चाहती है। यह उन लोगों का सौभाग्य है कि वे उस वन-सम्पदा के स्वयं अधिकारी हैं जो अब तक छिपी हुई थी।

समारोह की समाप्ति के बाद जब मैं डाकबंगले को लौटने को हुआ तो अन्य ग्रामीणों की अपेक्षा आधुनिक लगनेवाले एक गाँव सभापति ने मुझे अपने घर तक ले चलने का आग्रह करके कहा—"हमारे गाँव की होली प्रसिद्ध है। आज रात आप मेरे घर पर होली के उत्सव में सम्मिलित होने का कष्ट कीजिए।"

उन लोगों से मुझे पता चला कि उन गाँवों में होली का उत्सव बसंतपंचमी की रात से आरंभ होकर चैत की पंचमी तक चलता रहता है। इस बीच लोग एक-एक रात एक-एक मकान के आगे अलाव जलाकर सामूहिक नृत्य और संगीत के कार्यक्रम में सम्मिलित होते हैं तथा होली के जलने तक ऐसे सामूहिक समारोह का सभी घरों के आगे हो जाना अनिवार्य है। मैंने उस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। उन सीमा प्रान्त के निवासियों से अपना परिचय बढ़ाने तथा वन विभाग की पत्रिका के लिए एक अच्छा लेख लिखने के लिए इससे अच्छा अवसर भला और क्या हो सकता था?

मैं उस गाँव-सभापति के साथ चल पड़ा। दोपहर का भोजन देर से करने के कारण मुझे रात के खाने की आवश्यकता नहीं थी, और रात को उस गाँव से लौटने पर दो-तीन मील की पैदल चढ़ाई चढ़ने के बाद डाकबंगले पहुँचने तक थकान से नींद भी अच्छी आने की आशा थी। एक ओर चीड़ के जंगलों और दूसरी ओर गेहूँ के खेतों के बीच पहाड़ की आधी-आधी ऊँचाई पर बसे वे दुर्गम गाँव अब भी प्राचीन परंपराओं के गढ़ थे। लकड़ी की शहतीरों को खोखला करके बनाये गये पानी के नल खेतों को सींच रहे थे। स्त्री-पुरुष हाथ के बुने मोटे वस्त्र पहने थे। उन वस्त्रों पर बटनों के स्थान पर घुंडियों और कपड़े की पतली तनी से काम लिया जाता था। आधुनिकता का वहाँ प्रवेश नहीं हुआ था। मुझे घाटी के अन्तिम गाँव तक जाना पड़ा।

पत्थर का बना और नीली पटियों का छाया सभापति का वह दुमंजिला मकान साफ सुथरा था। नीचे के खुले दालान में एक ओर गाय-भैंसें बँधी थीं और दूसरी ओर भूसे का गोदाम था। दोनों खंडों के बीच दूसरी मंजिल को जानेवाली सीढ़ीदार खोली (मुख्य दरवाजा) थी। दूसरे खंड में इस दरवाजे के दोनों ओर लकड़ी के छज्जे थे। इन छज्जों की खिड़कियों पर गाँव की स्त्रियाँ उत्सव को देखने एकत्र हो रही थीं। बाहर पक्के आँगन में लकड़ी के बड़े-बड़े कुन्दे जल रहे थे। उस धूनी के चारों ओर ऊनी दरियाँ और जुनार (नरकुल) की चटाइयाँ बिछाई गयी थीं। आँगन के तीन किनारों पर डेढ़ दो हाथ ऊँची दीवार थी जिसके ऊपर खूब चौड़े पत्थर थे। इन पत्थरों पर कहीं जंगली जानवरों की खालें और कहीं कालीन बिछे थे। बीच-बीच में मोटे गोल तकिए लगे थे। मुझे उन्हीं कालीनों पर बैठने को कहा गया। मेरे वहाँ पहुँचते अँधेरा हो चला था और लगभग साठ-सत्तर आदमी अलाव के इर्द-गिर्द बैठ चुके थे। धीरे-धीरे वह भीड़ बढ़ती गयी। पहले हो-हो-हो ध्वनियों के बीच एक भजन हुआ। शीघ्र ही युवकों का एक दल झोड़ा नृत्य के लिए तैयार हो गया। वे सभी नर्तक एक से सफेद चोगे, चूड़ीदार पाजामे और दो-कली सफेद टोपियाँ पहने हुए थे, उनके हाथों में सफ़ेद रूमाल थे। ढोलक की ताल के साथ वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार वृत में अलाव की परिक्रमा सी करने लगे। संगीत की लय के साथ वे दो क्षण बायीं ओर कमर झुकाते फिर एक झटके से साथ सीधे खड़े होकर दूसरी बार दायीं ओर झुक जाते। उनका संगीत मधुर तो था किन्तु उसके शब्द अस्पष्ट थे और मेरी समझ में नहीं आ रहे थे।

उस नृत्य के समाप्त होते-होते वहाँ दो-ढाई सौ लोग एकत्र हो गये थे। झोड़ा नृत्य की समाप्ति पर चंचरी नामक दूसरा नृत्य आरंभ हुआ जिसमें बूढ़े भी सम्मिलित हुए। कोई बूढ़ा नर्तक नाचते-नाचते अपने पाँव उठाकर अपने दोनों ओर नाचते नर्तकों के कन्धों से झूलने लगता था, कभी एकाएक घुटने टेककर बालक की भाँति मचलने लगता था और छज्जों पर बैठी औरतें खिलखिलाकर हँस पड़ती थीं। कुछ और भी नृत्य हुए। नृत्यों के बीच-बीच स्वाँग भी किये गये। आगुन्तकों की, समय समय पर गुड़ की डली के साथ फीकी चाय से आवभगत की जा रही थी। तम्बाकू पीनेवालों के लिए नारियल की गुड़गुड़ियाँ घूमती रहती थीं। अनेक लम्बी चिलमें भी घुमायी जा रही थीं जिनके धुएँ से गाँजे-चरस जैसी नशीली गंध फैल रही थी।

आधी रात के लगभग जब मैंने डाक बँगले लौटने की इच्छा प्रकट की तो बहुत से लोग गाँव सभापति के साथ मुझे पहुँचाने गाँव के बाहर कुछ दूर तक आये। सभापति ने डाक बँगले तक आने में अपनी असमर्थता प्रकट करके क्षमा चाही और पाँच ग्रामीणों को मेरे साथ कर दिया। चाँदनी रात की वह शोभा बड़ी ही सुखद थी। गेहूँ के खूब हरे-भरे खेतों के बीच पानी की काठ-नालियों के किनारे-किनारे जब हम लोग एक नाला पार करके दूसरे गाँव के किनारे पहुँचे तो मुझे पहुँचानेवाले दो व्यक्ति यह कहते हुए उसी गाँव में रह गये कि शेष तीन व्यक्ति जिनको अगले गाँव में जाना है मुझे डाकबँगले तक छोड़ देंगे।

वायु शीतल होती जा रही थी। हमारे पावों तले ओस जमकर सफेद तुषार का रूप धारण कर रही थी। ऊबड़-खाबड़ खेतों की कई सीढ़ियों को पार करने के उपरान्त हम एक और गाँव में पहुँचे। मुझे पहुँचानेवाले लोगों में से एक बूढ़े ने अनुरोध किया कि उसके गाँव की होली भी बहुत अच्छी होती है तथा वहाँ भी घण्टा आध घण्टा बिताकर तब मुझे डाकबँगले जाना चाहिए। यद्यपि मैं जल्दी ही डाकबँगले लौटना चाहता था तथापि उन तीनों के आग्रह को न टाल सका और जाड़े से ठिठुरते उन साथियों का अब कुछ देर आग तापना आवश्यक है, यह सोचकर उस गाँव की होली देखने भी चला गया।

हमारे पहुँचते समय वहाँ स्त्री-पुरुषों का एक संयुक्त-नृत्य हो रहा था। आँगन की मुँडेर पर एक चौड़े पत्थर पर समूर की खाल मेरे बैठने के लिए बिछा दी गयी। पीतल के गिलासों में भरी चाय भी हमारे सामने आ गयी। नृत्य अच्छा था किन्तु मेरी उपस्थिति के संकोच से युवतियाँ खुलकर नहीं गा रही थीं।

लगभग आध घण्टे के बाद जब मैं उस गाँव से डाकबँगले की ओर बढ़ा तो मुझे पहुँचाने के लिए दो व्यक्ति साथ हो लिये। अब तक आग के पास बैठे रहने से उनकी ठिठुरन कुछ कम हो गयी थी। वे दोनों होली के पतले कपड़े पहने थे इसलिए अपने को गर्म रखने के लिए तेज चल रहे थे। उनमें से एक पचास-पचपन वर्ष का बूढ़ा किसान था जिसके सिर पर पगड़ी थी। दूसरा लाल और पीले रंगों से रँगी हुई सफेद टोपी पहने हुए युवक था। वे दोनों आपस में बातें करते हुए मेरे आगे-आगे चल रहे थे। बातचीत में उनकी पहाड़ी बोली का कभी-कभी कोई विरला शब्द मेरी समझ में आ जाता था। नाले के पास पहुँचने पर उनकी बातचीत से मैंने अनुमान लगा लिया कि वे थोड़ी देर के लिए वहाँ रुकना चाहते हैं।

मैंने भी उस रात पाँच गिलास चाय पी ली थी। अब उस पानी का विसर्जन करना आवश्यक हो गया था। जब हम एक नाले के दूसरे किनारे पर आये तो मेरे वे दोनों साथी लघुशंका से निवृत्त होने बैठ गये। मैं भी नाले को पार करके एक ऊँचे पत्थर की ओट में बैठकर उस तात्कालिकता से निवृत्त हो गया। द्वादशी का चाँद आकाश में पश्चिम क्षितिज की चोटी को छूने ही वाला था। अपने साथियों की प्रतीक्षा करता हुआ मैं उत्तर आकाश में एक ओर सप्तर्षि मण्डल के रीछ तथा दूसरी ओर कश्यप मण्डल के डबल्यू की शोभा निहारने लगा। मेरे ठीक सिर के ऊपर मृगशिरा नक्षत्र के पीछे उस चाँदनी में भी श्वान तारा खूब चमक रहा था। मुझे तारों को गिनने का वह मोह उस ठंडी रात अचानक ही क्यों हुआ, यह बात कुछ विचित्र भी है और रहस्यपूर्ण भी, क्योंकि अपनी समझ से मुझे उन नक्षत्रों की ओर ताकते दो ही तीन मिनट हुए होंगे कि चढ़ाई पर तेजी से चढ़कर आते हुए उस पगड़ीवाले साथी की लम्बी साँस मेरी गर्दन से टकराई। पत्थर पर उसकी छाया पड़ी और वह बोला—"प्रभो, कब तक आकाश कूँ चयते रहोगे। अबेर भई।"

मैंने केवल एक ही छाया को देखकर कहा—"क्या वह दूसरा आदमी नहीं आएगा?"

उस व्यक्ति ने बटिया पर मुझसे आगे बढ़ते हुए जो कुछ कहा उसका आशय था—"वह यहीं सामने की खरिक में रहता है। मैंने उससे कह दिया है कि साहिब कूँ मैं अकेले पहुँचा दूँगा तुम लौट जाओ।"

फिर कुछ दबी-दबी सी हँसी के स्वर में वह बोला—"उसने अतर (भंग) पी ली थी। दिशा-जंगल बैठा है तो बैठा ही रह जाएगा घंटों। आप कब तक करेंगे उसकी प्रतीक्षा?"

इतना कहकर वह पहाड़ की उस चढ़ाई की ओर इतनी फुर्ती से कदम रखने लगा कि मेरा उससे कदम मिलाकर चलना कठिन हो गया, ज्यों ही मैं दौड़कर उसके निकट पहुँचता त्यों ही मैं उसे फिर अपने से पंद्रह-बीस कदम आगे ही पाता। कालेज में 'क्रॉस-कंट्री' दौड़ में विजयी होने के ही कारण मैं जंगल विभाग की इस नौकरी में लिया गया हूँ। जो चढ़ाई मेरे लिए वैसी विकट थी उसीपर अपने उस बुढ़ापे के बावजूद वह हवा में तैरता सा बढ़ा चला जा रहा था। रात की उस असह्य ठंड में वह दौड़ मुझे जरा भी नहीं खली। और शरीर में कुछ गर्मी आ गयी।

डाकबँगले पहुँचने पर उसने आगे बढ़कर मेरे आ पहुँचने की सूचना देने के लिए नौकरों को जगा दिया,

रामदे में खड़े होकर चिक को मेरे अन्दर जाने के लिए दिया। मेरे अन्दर आने पर साहस बटोरकर उसने हा—"देवजू मेरी एक विनती सुण लीजो।"

जब उसने रेंजर या पतरौल की शिकायत करने के ाय छिपी सम्पत्ति का जिक्र किया तो मैं समझ ा कि मैंने उन पहाड़ों के तृण, देवदार और चीड़ के मूल्य जंगलों को लक्ष्य करके उस सभा में जो बात कही ी उसका तात्पर्य उसने अपनी मोटी बुद्धि से यही लगा या कि मैं लोगों के घरों में छिपी दौलत अर्थात् उनके ने-चाँदी के आभूषणों की टोह लेने आया हूँ। अब जो ुछ उसने अपनी उस मन्द-मन्द आवाज में सिर झुकाए हा, वह था—"अपने पास रखे सोने की सूचना देने की न्तिम तारीख ज्यों-ज्यों निकट आती जा रही है मेरा ल बैठता जा रहा है। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या लिखाऊँ और कितना लिखाऊँ। सोना मेरे पास है भी ौर नहीं भी है।"

और कोई होता तो जाड़े से ठिठुरे अपने हाथ-पाँव ेंकने मेरे पास अँगीठी के सामने आ बैठता। किन्तु वह ँगीठी के समीप न आकर किसी शर्मीली बूढ़ी औरत सा री कुर्सी के पीछे दुबककर बातें कर रहा था। जब मैंने ससे पूछा कि उसके पास कितना सोना है तो सीधे उत्तर देकर कुछ पहाड़ी, कुछ हिन्दी और कुछ फारसी शब्दों ो जोड़कर जो कुछ वह कह गया उसका अर्थ था—"पुराने कयानवीसों ने पहाड़ी राजाओं के सोने के भण्डार का ा हाल अपने बादशाहों को भी लिखकर भेजा था। नको भी मालूम न था कि कुमाऊँ के राजाओं के पास सोने भरे कितने खजाने हैं। यहाँ तो नया राजा अपने बाप-दों की सोने से भरी लोहे की पिटारियों को अछूता रख र अपने स्वर्ण भंडार अलग जोड़ता था। सोने की वे टारियाँ जिन गुप्त स्थानों में रखी जाती हैं राजा के तिरिक्त उसके भण्डारी कठायत ही उसका पता रखते । वड़े विश्वासी होते थे कठायत और यही अतिविश्वास नकी व्यथा बनकर उन्हें खा गया।"

इतना कहकर उसने लम्बी सी साँस ली। मैंने कुर्सी पीछे की ओर देखा वह थर-थर काँप रहा था। उस कंपी का कारण उसका आवेश था या जाड़े की अधिकता, जान न सका। मैंने कहा—"आओ अँगीठी के सामने थ-पाँव सेंक लो।"

वह हिला-डुला नहीं। बोला—"एक बात तो बताइए आप जो सोना जमा कर रहे हैं उसे रखते कहाँ हैं?"

मैंने कहा—"मुझे नहीं मालूम?"

मैं मन ही मन सोचने लगा—"कैसी विचित्र बात ? यह सनकी बूढ़ा इस रात मेरे साथ लग गया।"

"तो तुमको मालूम है कि यह सोना कहाँ गड़ा है?" ने पूछा।

एक हुंकार भरकर वह बोला—"देव जू, मो सूँ वास झन करो। आपूँ को मालूम भयो है और मुझको कि राजन का सोना कहाँ गड़ा धरो है, [illegible] है। पुराण कागद पढ़ि आये हो। सरकार के वाक्या-नवीस बन के आये हो तो कागद लाओ, लिख लो। जो पहले थो, वही अब हो। जैसो तब रखो, वैसो धरो हो, कठायत धोखा नहीं करतो, न मोकूँ करनो।"

उसी उपहास की भावना से मैंने कहा—"हाँ, बताओ। मैं लिखता हूँ, कितना है वह सोना?"

जेब से नोटबुक निकालकर, पेंसिल हाथ में लेकर मैंने लिखने का सा उपक्रम किया।

वह शीतल संगीतमय स्वर में बोला—"सात पिटार, सात भृंगार, सुनरौ में। एक एक में सौ बीसी हजार, सब का सब दीनार।"

इस ओर पहाड़ी भाषा में रौ या राउ का अर्थ होता है ह्रद या ताल। सुनरौ का अर्थ हुआ स्वर्ण-ह्रद। अतः मैंने उससे पूछा—"सुनरौ? यह जगह कहाँ है?"

वह कुछ चिढ़कर अपनी भाषा में बोला—"वही गधेरा (नाला) तो सुनरौ है, जहाँ आप आकाश के तारे गिन रहे थे। वाकया-नवीसों ने भी तारों को ही देखकर उस जगह का ठीक पता बादशाहों को दिया था। मुझे क्यों बकाते हो? अपने पुराने कागदों में यही सब देखकर तो तुम आधी रात उस खजाने को देखने गये थे। यह कठायत सब जानता है। मामूली पहरेदार नहीं है।"

उसी समय बाहर हलकी सी खाँसी का शब्द सुनकर वह बूढ़ा एकदम चौंक गया। मैंने जब उसकी ओर दृष्टि फेरी तो देखा कि अब भी उसका अंग-अंग थर-थर काँप रहा था।

मैंने कहा—"आओ, आग के सामने आ जाओ। आग सेंक लो। तुम्हारी बातें बड़ी सुन्दर हैं।"

वह हिला-डुला तक नहीं। कुढ़े हुए स्वर में बोला—"मुझे तमाखू का अमल है। हुक्का चिलम मिल जाएगा यहाँ?"

चिक के बाहर मेरा अर्दली मेरे लिए गरम काफी लिये खड़ा था। मैंने उसीको संबोधित करके कहा—"अरे काफी रखकर जरा इस प्रधान के लिए हुक्का-चिलम ला दो। शायद चौकीदार के पास होगी।"

फुसफुसाते क्षीण स्वर में बूढ़े ने कहा—"नहीं, मैं ही चौकीदार के डेरे पर जाकर वहीं पी आऊँगा।" मेरे कुछ कहने से पहले ही वह अद्भुत तेजी से बाथरूम की ओर से निकलकर बाहर निकल गया। शायद गड़े सोने की गोपनीय बात को उसने मेरे नौकर के सामने कहना उचित नहीं समझा। मैं सोचने लगा कि उस सनकी बूढ़े से डाक-बँगले के लोग परिचित होंगे। वह भी वहाँ कई बार आ चुका होगा। अन्यथा वह बिना झिझक के इस प्रकार अन्दर बाहर न आ-जा पाता।

लालटेन की बत्ती को तेज करके अर्दली ने मेज पर काफी लगा दी। उस आधी रात के बाद और कुछ खाने की मेरी इच्छा भी नहीं है यह मैं उससे आते ही बता चुका था।

नौकर ने कहा—"आप चिलम माँग रहे थे? सिगरेट की [illegible] और डिबियाँ सूटकेस में पड़ी हैं।"

मैंने कहा—"अपने लिए नहीं, वही बूढ़ा जो मेरे साथ आया था, तम्बाकू पीना चाहता था।"

"बूढ़ा?" नौकर ने प्रश्नात्मक आश्चर्य से मेरी ओर देखा। उसी समय बाहर नौकरों के क्वार्टरों की ओर से आती कानों को फाड़ देनेवाली कर्कश चीख सुनायी पड़ी। कोई व्यक्ति इतनी जोर से चिल्लाया कि हम दोनों चौंककर उठ खड़े हुए। मैं नंगे ही पाँव बाहर निकला। मेरे आगे-आगे वह अर्दली भी था। बरामदे में रखी लालटेन को तेज करके हम लोग उस ओर बढ़े जहाँ से वह चीख आती ज्ञात हुई।

"राइफल ले लीजिये साहब" अर्दली ने कहा—"कोई जंगली जानवर मालूम होता है।"

मैं कमरे में लौट गया। रायफल निकालकर जल्दी से मैंने स्लीपर पहने और फिर बाहर निकल आया।

मेरा अनुमान था कि शायद कोई नरभक्षी व्याघ्र चौकीदार अथवा बूढ़े में से एक को ले भागा है। हम उन क्वार्टरों की ओर सावधानी से बढ़े। वहाँ सब कुछ सुनसान हो चुका था। उस बूढ़े का कहीं पता न था। बरामदे में जलती हुई बरोसी के पास चौकीदार औंधा पड़ा था। उसको उठाकर दो-तीन बार झकझोरा गया और पानी के छींटे दिये गये। उसके शरीर पर कोई घाव न था। न कहीं कोई चोट लगी थी। पाँच-सात मिनट बाद उसने आँखें पलटीं और कहा—"साहब, वह बूढ़ा तो सुनरौ का कठायत था। हुक्का माँगने लगा। जब मैंने कहा कि अभी अन्दर से लाकर देता हूँ, तो उसने बरामदे के उस कोने से हाथ बढ़ाया। उसका वह हाथ बढ़ता ही गया और वहीं पर खड़े-खड़े अन्दर से उसने हुक्का और चिलम लपक लिये।"

मैं सोचने लगा—भला यह भी कोई विश्वास के योग्य बात है! उसी समय आँगन के दूर कोने पर फाटक के पास घूमती हुई एक छाया को देखकर मैंने कहा—"बूढ़ा तो वह खड़ा है। बुलाओ उसे।"

वह अकेला बूढ़ा नहीं उसके साथ रंगीन टोपी पहने एक और युवक भी था। वे दोनों हमारी ही ओर बढ़ते आये। पास आकर बोले—"साहब, आप तो उस नाले में हमारे लिए जरा भी नहीं रुके। ऐसे भागते हुए चले आये कि हम आपके पीछे-पीछे दौड़ने की कोशिश में अब पहुँच रहे हैं।"

"अरे! मेरे साथ जो एक बूढ़ा आया था।" मैंने पूछा।

"आपके साथ?" उसने भी आश्चर्य से पूछा। "आप तो अकेले आ रहे थे।"

मैंने अपने अर्दली की ओर देखा—भय से उसकी आँखें फटी जा रही थीं। वे चारों मेरे कमरे में अँगीठी के आस-पास बैठ गये। चौकीदार को मैंने एक गिलास गर्म काफी दी।

उन गाँववालों ने मुझे सुनरौ की कथा सुनायी। पन्द्रह सौ वर्ष पहले राजा समुद्रगुप्त ने जब कुमाऊँ के कर्तृपुर राज्य पर आक्रमण किया था तो कत्यूरी राजाओं अपना सारा सोना उस पोखर में गाड़ दिया था। बाद के कुमाऊँनी राजाओं को अपने पूर्वजों के उस सोने का पता था किन्तु उन्होंने उसे कभी नहीं छुआ। क्षेत्र के अंतिम शासक नाम थौलरी को एक हजार बाद खवास खाँ के आक्रमण का सामना करना वह निःसंतान था। उसके पास अपना और अपने का अपार सोना था। उस सोने को सुरक्षित रखने लिए उसने कठायत जाति के अपने भंडारी को मनू नाम का वह भंडारी अपनी ईमानदारी के लिए था। रोहेला सरदारों से घिर जाने के बाद लड़ाई जारी रही। मनू भंडारी ने इस बीच उस सोने को के लिए पहाड़ की चोटी पर बने किले से नदी तक सुरंग खोद डाली। वह प्रत्येक रात एक एक स्वर्ण को उस सुरंग से हनिरौ (हिरण्यहृद) नामक स्थान उतार देता था और फिर उसे अपने ही कन्धों पर हुआ सुनरौ पोखर तक पहुँचाता था। अंतिम को पोखर तक पहुँचाकर अपनी सावधानी का वर्णन जब उसने राजा से उस भंडार को एक बार देख लेने अनुरोध किया तो राजा झटपट तैयार हो गया। उसी सुरंग से उतरकर लुकते-छिपते सुनरौ तक वहाँ राजा ने देखा कि लोहे की सभी पिटारियां की दरारों में बड़ी चतुरता से छिपायी गयी थीं। को चौड़ा और गहरा करके उनमें बड़ी-बड़ी दुहरे फाटक लगाये गये थे।

पहली कन्दरा में रखी सात पिटारियों को खोलते करते ही दो घड़ी समय लग गया। राजा लोलुप उन चमचमाती स्वर्ण मुद्राओं को हाथ में लेकर बड़े अन्दाज से तौलता, फिर ऊपर की मुद्राओं को लियों से दायें बायें हटाता हुआ सबसे नीचे की मुद्राओं हाथ ले जाकर उन सिक्कों को भी देखता जो सबसे होने के कारण सबसे अच्छे और चमकदार थे। के अतिरिक्त हूण देश और नैपाल के राजाओं से सोने के उपहार कलसों से भरे थे। वह काला सोना बेशुमार मरी चीटियों के ढेर सा उन कलसों में था। सभी कलसे भरे हैं या नहीं यह देखने के लिए ने एक कलसे को हिलाना चाहा। मनू भण्डारी ने की उस व्यर्थ चेष्टा पर मुस्कराते हुए कहा—"दस गेहूँ जितना भारी होता है उतना ही भारी है एक कलसा! पिण्डर और सोनला नदियों के बालू में जो मिलता था उसपर कत्यूरी राजाओं का अपना होता था। पिछले डेढ़ हजार वर्ष में उन नदियों जितना सोना निकला वह सारा इन्हीं घड़ों में भरा बस एक बार चन्द राजा बाजबहादुरचन्द को एक सोना बाहर निकालना पड़ा था।"

"एक घड़ा? क्या जरूरत पड़ी थी उसे?" राजा ने कहा। मनू भंडारी उसी शीत स्वर में बोला "लाहौर के दरबार में मुगल बादशाह ने बुलाया

सी दरबार में अपना खिताब पाने से पहले राजा बाज-हादुरचन्द ने एक कस्तूरी मृग, समूर की दस खालें, दो ार सूखे मेवे और एक स्वर्ण भृंगार बादशाह को उप-ार में दिया था !''

राजा अपने उस अपार स्वर्ण भंडार का मूल्य मन ही न कूतने लगा। उसे मन ही मन कुछ खिसियाहट का भी नुभव हुआ कि उस भंडार के बारे में उसका वह दास न भंडारी उससे कहीं अधिक जानता है। इतना अपार न है उसके पास, वह सब केवल उसीका है, यह बात सकी समझ में नहीं आ रही थी।

मनू भंडारी राजा को दूसरी कन्दरा में ले गया, फिर सरी कन्दरा में। इस प्रकार सातों कन्दराओं को घूम ने के बाद उस सोने को देखकर राजा की आँखें विस्मय े फैल गयीं। उस भंडार के विषय में उसके मन में भाँति-ाँति के विचार आने लगे। कहते हैं कि सोने का नशा तूरे के नशे से भी सौ गुना अधिक होता है। राजा भी स सोने को देखकर पागलों की सी बहकी बातें करने गा। वह कभी पानी के बाँध की ओर जाता कभी नदी े बहाव की ओर। कभी चट्टान के मुख्य द्वार को बन्द रता और कभी खोलता। अन्त में मनू भण्डारी के कन्धे र हाथ रखकर वह बोला––तुम धौलरी वंश के राजाओं े सबसे अधिक विश्वासपात्र दास हो। बताओ क्या ह सब सोना भली भाँति सुरक्षित है? या इसकी सुरक्षा ा मुझे कुछ और प्रबन्ध करना बाकी है!''

राजा की उस बात से मनू भण्डारी को हँसी आ गयी। ला यह भी कोई पूछने की बात थी। कठायत वंश के ण्डारी उस सोने की दो हजार वर्ष से रक्षा करते आये । मनू भण्डारी अपने पूर्वजों से किसी भाँति कम साव-ान न था। उसने कहा––''राजन्, इस देश में तो सोने र राजा का ही एक मात्र अधिकार माना जाता रहा है। स किसी व्यापारी, ब्राह्मण या क्षत्री को जहाँ कहीं सोना लता है, वह उसे अपने पास न रखकर सीधे राज दर-ार में भेज देता है। इस पर शास्त्रों में लिखा है कि सोने ी चोरी करनेवाले को कुष्ट रोग हो जाता है। तब भला सके इस सोने पर कौन नजर डाल सकता है?''

राजा ने कहा––''फिर भी इसकी रक्षा का पूरा बन्ध करना ही होगा।''

पौ फटते समय चट्टान पर राजा और मनू भण्डारी, नों बैठे थे। राजा ने उसे पूर्व दिशा की ओर उगते सुबह े तारे की ओर देखते हुए कहा––''भण्डारी, मैं तुम्हारा डा कृतज्ञ हूँ। तुम जैसा मेरा और कोई दूसरा विश्वास-ात्र जन नहीं है। मैं चाहता हूँ कि तुम इस स्वर्ण भंडार की ा सदा रक्षा किया करो।''

मनू भण्डारी ने कहा––''राजन्, यह तो मेरा जन्म-ात कर्त्तव्य है। मेरे पूर्वजों ने भी यही काम किया था।''

राजा ने कहा––''ऐसे नहीं, मुगलों को इस खजाने ी बात ज्ञात है। अलबत्ता इसकी स्थिति से वे अभी अनभिज्ञ हैं। हो सकता है कभी कोई देशद्रोही उनको इस गुप्त स्थान का पता दे दे। इन सब विपदाओं से अकेले तुम ही इसकी रक्षा कर सकते हो। यदि तुम तैयार होओ तो उसका ऐसा प्रबन्ध कर देता हूँ कि आनेवाली पीढ़ियाँ इस ओर नजर उठाकर भी नहीं देख सकेंगी।''

मनू भण्डारी ने कहा––''राजन्, मैं तैयार हूँ।''

उस स्वीकृति के हुंकार की गूँज अभी समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि राजा ने मनू भण्डारी की छाती में अपनी कटार भोंक दी और उसके छटपटाते शरीर पर झुककर कहा––''दो ही क्षण में तुम मर जाओगे। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा प्रेत इस खजाने की हमेशा हमेशा रखवाली करता रहे। अब इस राजाज्ञा का तुम अपने वचन के अनुसार नित्य पालन करना।''

× × ×

उस रात उस कहानी के समाप्त होते होते डाक बँगले के बाहर पेड़ों पर चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। मैं सोचने लगा कि क्या मेरी उनींदी आँखों का वह भ्रम था, या उन बेसुरे पहाड़ी गीतों का, अथवा चरस के उस विषैले धुएँ का कि मुझको आधी रात को वह बूढ़ा दिखलाई दिया। मेरे अर्दली ने भी मुझसे यही कहा कि न उसे मेरे आने से पहले किसी ने जगाया था और न उसने मेरे साथ उस कमरे में किसी अन्य को देखा था। यह बात भी मुझे बाद में ज्ञात हुई कि रात की उस होली में शायद एक गीत सुनरौ के विषय में गाया गया था। तो क्या वह उसी गीत का प्रभाव था?

बात जो भी हो, दूसरे दिन सवेरे मैंने देखा कि फर्श की दरी पर कमरे के उस कोने में सरसों के पीले फूल तब तक भी बिखरे थे, और रानीखेत छावनी से बैजनाथ होती हुई पिण्डरी ग्लेशियर को जानेवाली उस सड़क के बयालिसवें मील पर हनिरौ नामक एक छोटी सी तलैया के ऊपर पहाड़ की श्रेणी तक बनी सुरंग तो आज भी कोई देख सकता है। उसी तलैया से कुछ दूर आगे सुनरौ नामक वह ताल भी है जिसके एक ओर धौलरा गाँव है और दूसरी ओर छानी के उन दुसादों का गाँव, जहाँ वह बूढ़ा उस रात मुझको मिला था।

सबसे विचित्र तो बात उस पहाड़ पर सुनायी देने वाली कर्णातीत चीत्कार है, जो रात के तीसरे पहर उस डाक बँगले की हवा के कण कण में व्याप्त हो जाती है तथा जिसके स्पर्श से उस डाकबँगले में रहनेवाले यात्री का रोम-रोम काँप उठता है।

योरोप में कर्णातीत ध्वनि तरंगों से आजकल मरे हुए जानवरों के मांस को कोमल और सुखाद्य बनाने का काम लिया जाता है तो उस मूक चीत्कार की वे ध्वनि तरंगें भला मानव मस्तिष्क के रक्त कोशों को क्यों न प्रभावित करेंगी? शायद उन्हींका वह प्रभाव था कि उस दुखान्त गीत का सजीव दृश्य मुझको उस रात दिखलाई दिया।

दलदल में धँसते पाँव

डा० हरिदत्त भट्ट "शैलेश"

मिसेज हांडा रात भर सिसकती रहीं, आँसू बहाती रहीं, फिर भी मन की कड़ुवाहट दूर न हुई। पास ही दूसरे पलंग पर लेटा, शराब के नशे में बुत्त, उसका पति जोर-जोर से खुर्राटे भर रहा था। जीरो पावरवाले बल्ब के मंद प्रकाश में उसकी शक्ल डरावनी सी लग रही थी। चेहरे की एक-एक रेखा जैसे निगलने के लिए मुँह बाये खड़ी हो। शराब की तीखी बू से कमरा भरा था। मिसेज़ हांडा को एक अजीब-सी घुटन और मिचलाहट हुई। उनका अंग-अंग दुखने लगा। सिर में असह्य पीड़ा होने लगी। अनिद्रा से सूजी हुई लाल-लाल आँखों में भारी दर्द होने लगा, शरीर टूटा-टूटा सा लगा और वह बिना पानी की मछली की तरह तड़फने लगी। मन दूर कहीं उड़ने के लिए छटपटाने लगा। उसे लगा कि इस दम-घोटू वातावरण में अब मैं एक पल भी जीवित नहीं रह सकती। उसका सिर जोर से चकराने लगा और पूरा कमरा घूमता हुआ मालूम होने लगा। कमरे की एक एक चीज घूमती नजर आयी।

अभी दो साल पहले ही तो मिस्टर हांडा से उनकी शादी हुई थी, किन्तु इन दो सालों में ही उन्होंने अपनी दो बड़ी-बड़ी आँखों से जो-जो देखा था उससे उनके मन में एक भंयकर विद्रोह, एक भयंकर आक्रोश, एक भयंकर घृणा उत्पन्न हो गयी थी। वह सोचती, कहाँ आ गयी मैं इस खोखले, सड़े-गले, बंधनहीन, भावनाहीन, मर्यादा-विहीन, स्नेह-रिक्त, उन्मत्त, उच्छृंखल पतित समाज में, जहाँ केवल बाहरी दिखावट ही दिखावट है, बनावटी कुटिल व्यवहार ही व्यवहार है, कृत्रिम चमक-दमक और तड़क-भड़क तथा स्वेच्छाचार ही स्वेच्छाचार है। लानत ऐसे समाज पर, आग लगे ऐसी सभ्यता को! उसकी ननदें ही न जाने किस-किस के साथ घूमतीं, किस-किस के साथ गुलछर्रे उड़ातीं, स्केटिंग करतीं, पिकनिक पर जातीं। सड़कों पर थिरकते सिग्रेट के धुएँ के छल्ले उड़ातीं घर में, क्लब में शराब के पैग-पर-पैग गट-गट कर जातीं। घर पर ही कई बार कइयों के साथ रंग-रेलियाँ करते हुए उन्हें रँगे हाथों मिसेज हांडा ने पकड़ा था पर वे खून का घूँट पीकर रह गयीं, थू-थू करती रह गयीं। शिकायत करतीं तो करतीं किससे? उसकी सास खुद शराब पीती, सिग्रेट पीती, गर्मियों में पहाड़ी स्था में जी खोलकर गुलछर्रे उड़ाती। यहाँ तक कि खुद लड़कियों को स्वेच्छाचार के लिए बढ़ावा देती। उसका पति भी तो ऐसा ही था। रोज क्लब जा नयी-नयी तितलियों के साथ नाचता, नयी-नयी मु को फाँसता, दौरे पर जाता तो मौज उड़ाता।

पूरे जिले का मालिक जो ठहरा। किसी भी की कमी नहीं। घर पर सेब, अंगूर, अनार सड़ते खाने-पीने के सामान के ढेर लगे रहते। दूध, घी, बास चावल, ताजी-ताजी मिठाइयाँ, अच्छी-अच्छी विला शराबें सब घर पर खुद ही पहुँच जातीं। जो भी को आता कुछ-न-कुछ साथ जरूर लाता। शहर के माने रईस और थोक व्यापारी, छोटे-मोटे अफसर बरसाती नेता—सभी किसी-न-किसी बहाने उनके घर चक्कर काटते ही रहते। आखिर जिले का सबसे अफसर, पचासों काम पड़ते उससे। इसलिए देवता दर्शन करने ही पड़ते—फिर खाली हाथ कैसे? देवता प्रसन्न हो गये तो लाखों का वारा-न्यारा हो

अँगरेज गये तो क्या, मिस्टर हांडा उनसे भी हाथ आगे थे। वही रोब, वही दबदबा, वही शान-शौ वही साहबी भाषा। पूरे घर को हिदायत थी कि जो आये उससे अँगरेजी में बातचीत करें, नौकरों से साह टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी—जैसे 'बैरा हमको खाना मां है'——का व्यवहार करें, क्योंकि इससे रोब गँठता है बढ़ती है। अपनी बोली और हिन्दी तो फूटी आँखों सुहाती। घर पर सब अँगरेजी के अखबार, अँगरे पुस्तकें और अँगरेजी वातावरण में ही साँसें लेते। बार मिसेज हांडा हिन्दी की एक पत्रिका लायीं तो लाल-पीली हो गयीं और उसी समय झल्लाते हुए पत्रि रद्दी में फेंक दी गयी।

मिस्टर हांडा का वेतन वैसे सात ही सौ था पर तीन भाई पब्लिक स्कूलों में पढ़ रहे थे, तीन-तीन चार- सौ मासिक खर्चे पर; बहनें दो-दो सौ माहवार ' मनी' लेतीं, फिर भी पूरी तनख्वाह हर महीने सीधे में जमा होती रहती। "बैंक बैलेंस" अंधाधुन्ध बढ़ता रहा था। दो-दो अपनी निजी कारें, घर पर

मती साड़ियों के ढेर, नये-नये फैशन के कपड़ों के ढेर, के ढेर, उसके ढेर। यों कहिए, भगवान् जब देता है तो र फाड़ कर। रोज-रोज शानदार पार्टियाँ, 'बफेट' रों और दावतों की धूम। आज पन्द्रह अगस्त, कल त्वपूर्ण समारोह, परसों छब्बीस जनवरी––यों कहिए कुछ-न-कुछ लगा ही रहता, परन्तु मिसेज हांडा इन में अपने को घुला-मिला न सकीं। उन्हें दावतों और रों से सख्त नफरत सी हो गयी थी, क्योंकि इनमें भद्रता नाम पर जो मनमानी अभद्रता होती उससे उनका मन कुल ऊब गया था। तथाकथित भद्र महिलाएँ और सभी सट-सटकर बैठकर सिग्रेट का धुआँ उड़ाते। राब के गिलास-के-गिलास गट कर जाते, आँखों-ही-ों में इशारे चलते, सौदे बनते-बिगड़ते। दुनिया भर बे-सिर-पैर की बातों की बेकार की सरगर्मी रहती। मात्र अँगरेजी का ही साम्राज्य, क्योंकि इस समाज में रेजी ही बौद्धिकता, ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति की ौटी मानी जाती। लिपिस्टिक और पाउडर से लिपे-चेहरे, साज-श्रृंगार, चटकीली-भड़कीली पोशाकोंवाली हिलाएँ, वारुणी में आकंठ डूबी तितलियाँ, ललचाई ों से देखनेवाले भूखे भेड़िए––इन सबसे उन्हें भयंकर सी हो गयी थी। वैसे मिसेज हांडा पढ़ी-लिखी आधु-सभ्य महिला थीं, कई साल अपने पिता के साथ विदेश ीं। अँगरेजी की एम० ए०। कई स्कालरशिप लिये, कई पदक प्राप्त किये। विश्व-विद्यालय में सदा सर्वप्रथम, भाषण-प्रतियोगिताओं में सदा बाजी मारती, और इन सबके पीछे थी उनके पिता के वरद हस्त छाया। उनके पिता प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, अन्तर्राष्ट्रीय तिप्राप्त। उन्हींके संस्कार मिसेज हांडा में कूट-कूट भरे थे। इसी कारण मायके और ससुराल के वाता-में उन्हें जमीन-आसमान का फर्क लगा। उनके पिता ने घर पर कभी किसीको अँगरेजी में 'गिट-पिट' करने देते थे। ठेठ अपनी पहाड़ी बोली या फिर हिन्दी का हार होता था। जो रिश्तेदार उन्हें अँगरेजी में पत्र ता, निमंत्रण-पत्र भेजता, उसे वे बिना पढ़े ही फेंक थे, और आगे के लिए चेतावनी देते कि उन्हें अपनी षा में ही लिखा करें। वे खुद कई साल विदेश रहे पर होंने कभी किसी हिन्दुस्तानी को अँगरेजी में पत्र नहीं ा। स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लिया। कांग्रेस से उनका सिर्फ इस बात से गहरा मतभेद था कि वहाँ सब प्रस्ताव, सारी बातें अँगरेजी में ही होती थीं। उनका कहना था जब तक स्वदेशी भाषा का व्यवहार नहीं होगा तब तक देश को वास्तविक स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मानसिक दासता की शिकार रहेगी। इसलिए कांग्रेस का काम देशी भाषाओं में होना चाहिए। वे अँगरेजों के उदाहरण देते कि कई अँगरेज जिन्दगी भर हिन्दुस्तान में रहे, हिन्दी आदि भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् हुए परन्तु उन्होंने कभी अपनी मातृभाषा का परित्याग नहीं किया। बातचीत, लिखा-पढ़ी, व्यवहार में सदा अपनी ही भाषा का प्रयोग करते रहे। वे जहाँ पक्के सुधारवादी थे, वहाँ भारतीय सभ्यता-संस्कृति के भी बड़े हिमायती थे। खान-पान आचार-विचार में वह भारतीयता के ही पोषक थे। उन्होंने कभी शराब नहीं पी, सिग्रेट नहीं छुई, क्लब में नहीं गये और इसीकी छाप छोड़ गये अपने पूरे परिवार पर। इसलिए मिसेज हांडा अपनी ससुराल में, अपने पति के साथ और आज की तथाकथित सोसाइटी के साथ सामंजस्य स्थापित न कर सकीं। मिस्टर हांडा कभी-कभी बौखला उठते और उन्हें 'ईडियट', 'फुलिश' आदि विशेषणों से विभूषित करते, परन्तु मिसेज हांडा सब चुपचाप सह लेतीं। विरोध में एक शब्द भी नहीं कहतीं। वह अपने जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना यह समझतीं कि मिस्टर हांडा जैसे व्यक्ति से उनका ब्याह हुआ। दुर्घटना ही समझिए। उसके स्वर्गीय पिता चाहते थे कि उनकी बेटी सुखपूर्वक रहे, अपनी ही जाति-बिरादरी में रहे लेकिन वह अचानक कहाँ फँस गयी! फँसना ही कहिए, दूर के ढोल सुहावने होते हैं। इसलिए मिस्टर हांडा के बारे में जब उसने ऊँची-ऊँची बातें सुनीं तो झट से स्वीकृति दे बैठीं। पिता ने फिर विरोध नहीं किया।

कभी-कभी मिसेज हांडा मन-ही-मन सोचतीं, काश, मेरे पिता आज जीवित होते, मेरे कोई भाई या बहन होती, कोई अपना कहने को होता तो मैं यहाँसे सदा के लिए भाग जाती, किन्तु भाग्य ने शुरू से ही उनके साथ अन्याय किया। बचपन में ही माँ का साया उठ गया था फिर भी अपनी लाड़ली बेटी के खातिर उनके पिता ने दूसरा ब्याह न किया, जबकि चारों ओर से उनपर जोर-दबाव डाला गया था। उसके ब्याह के दो महीने बाद ही वे भी स्वर्ग सिधार गये। और रह गयी वह अकेली। वैसे, चाचा-ताऊ कई थे, पर सब

पहले ही अलग-अलग हो गये थे। परिवारों में बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी हो गयी थीं, इसलिए पिता की मृत्यु के साथ ही जैसे उसका मायका भी उजड़ गया।

× × ×

और उस दिन तो हद ही हो गयी। उसीके सामने उसका पति इतना बेशरम हो गया।

मिस्टर हांडा का तबादला अभी-अभी एक पहाड़ी जिले में हुआ था। मिसेज हांडा यहाँ आकर कुछ खिल सी गयीं। चारों ओर ऊँची-ऊँची गगनचुम्बी हिमालय की बर्फानी चोटियाँ, दूर-दूर तक फले देवदार और चीड़ के घने-घने जंगल, रंग-बिरंगी चिड़ियों से गूँजती गहरी-गहरी घाटियाँ, रंग-बिरंगे फूलों से लदी सीढ़ी-नुमा क्यारियाँ, बहार-ही-बहार। दो-चार दिन में ही उन्हें अपने में परिवर्तन-सा महसूस हुआ। खुलकर भूख लगने लगी, रूप निखरने लगा, रगों में लहू की सरसराहट होने लगी। मिसेज हांडा को एक राहत-सी मिली। जिले का 'हेडक्वार्टर' बिलकुल 'माडेल टाऊन' था, नैसर्गिक सौन्दर्य और आधुनिकता से सजा-धजा। अद्वितीय, अद्‌भुत।

अभी उसकी ननदें और सास भी नहीं आयी थीं। इसलिए घर में भी शांति-सी थी। परन्तु इधर पति के स्वागतार्थ दावतें होने लगीं और मिस्टर हांडा उसे भी जबर्दस्ती साथ लेकर क्लब गये। नये-नये परिचय हुए और फिर कुछ ही देर में मिस्टर हांडा शराब के नशे में बत्त होकर लड़खड़ाने-से लगे, किसी उड़ती तितली के गले में बाहें डालकर झूलने-से लगे। कई जोड़े पश्चिमी वाद्यों की चीखती चिल्लाती तानों पर थिरक रहे थे और मिस्टर हांडा थोड़ी ही देर में उस तितली के साथ नाचते-नाचते पास ही के एक कमरे में गायब हो गये। मिसेज हांडा दिल मसोसकर रह गयीं। काँच की खिड़कियों से उन्होंने भीतर झाँका तो उबकाई-सी आने लगी। लोग पी रहे थे, लड़खड़ा रहे थे, थिरक रहे थे और मिसेज हांडा का दम घुट रहा था। उससे रहा नहीं गया और चुपके से घर आ गयीं।

चौदह कैरट

डा० सुरेशचन्द्र गुप्त

(१)

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी लेकर दूध को कर लो दूनम-दून!
यही अद्यतन रीति, न इसमें कुछ भी संशय,
ग्वाले कर सहकार, बोलते—"पानी की जय!"
चौदह कैरट दूध से बढ़ता ज्यादा खून!
रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।

(२)

असली घी तो खा रहे पूँजीपति ही आज,
कम इतना वह हो गया, तरसै सकल समाज।
यह सोशल पैटर्न के है बिलकुल विपरीत
'राशन में समता रहे'—यह सिद्धान्त पुनीत।
वैज्ञानिक से कहेंगे श्री मंत्री सरकार—
"चौदह कैरट मान का कर दी घी तैयार!"

रात के दो बजे ड्राइवर उनके पति को उसी तितली के साथ घर पर डाल आया था और मिस्टर हांडा उस तितली से चिपटे-लिपटे धड़ाम से बिस्तरे पर गिर गये। फिर कुछ देर में दोनों की जोर-जोर की खिलखिलाहट सुनाई पड़ी। मिसेज हांडा का दिल टूटकर चूर-चूर हो गया। उन्हें अपने पाँव दलदल में फँसते से लगे और वह बेबस लाचार जैसे उसमें डूबती जा रही हों।

श्रद्धा-दीप

मू० श्री पीताम्बर पटेल--अ० श्री राजगोपाल माथुर

शंकर ने जब अपनी माँ से बाप के पीछे गाँव को एक जून जिमाने की बात कही, तो हेमकौर ने वही एक जवाब दिया, "भाई, मैंने तुझे कितनी बार कहा है कि वह वापस आये बिना नहीं रहेंगे? तू क्यों लोगों के बहकाये बहकता है? मेरे भगवान् हाजरा-हजूर (प्रत्यक्ष) हैं। मेरा मन रोज कहता है कि वे अभी जिन्दा हैं।" और वृद्धा हेमकौर की आँखें अनंत आकाश में कुछ ढूँढ़ने लगीं।

"माँ, तू मुझे बहकाती है, पर गाँव कोई ऐसे बहकेगा? मेरा बाप जीता होता तो दो साल हो गये, क्या कहीं खबर नहीं लगती? किसीके हाथ संदेशा नहीं भेजते? तू ऐसा क्यों मान बैठी है? मरनेवाले के पीछे कारज तो करना ही चाहिए न?"

"तू किसे मरनेवाला कहता है रे?" हेमकौर का स्वर भारी हो गया, "अरे, तू यह क्या कहता है? बाप को मरा हुआ मानता है, नासपीटे! सगे बाप के पीछे ऐसा कहते तुझे लाज भी नहीं आती? मैं तुझसे कहती हूँ न कि वह अभी जीते हैं। एक दिन जो नहीं आयें, तो मुझसे कहना!"

जब-जब शंकर यह बात करता तब-तब हेमकौर उत्तेजित हो जाती। कभी-कभी तो काटने को दौड़ती हो, ऐसा व्यवहार करती। और शंकर माँ से कहता भी क्या? उसकी स्थिति साँप-छछूँदर जैसी हो गयी थी।

गाँव में निकलता तब जैसे उसकी ओर सब अँगुली उठा रहे हों ऐसा लगता। सब उसके पीछे बात बनाते हों ऐसा दिखता। और बात यहीं कहाँ रुकती थी? गाँव के बड़े-बूढ़े तो शुरू से ही कहते थे, "शंकर! अब जीवा आने से रहा। जीता होता तो कोई छुपा रहता? राजी-खुशी गया था, तो कुछ खबर-पता तो भेजता न? इतनी बड़ी दुनिया में क्या कोई पहचान का भी नहीं मिलता? तेरी माँ को वहम हो गया है, पर बूढ़े बाप के पीछे क्रिया-कर्म तो करना ही होगा न! मरनेवाला भी क्या सोचता होगा? सगा बेटा होने पर भी पीछे पिंड नहीं दिया!"

कई तो शंकर के कलेजे में गर्म सलाख-सी भोंक देते, "जीते जी तो जीवा भाई को सुखी नहीं रखा, पर मरे बाद भी बेचारे के सामने नहीं देखा? बूढ़ा तो बेचारा गया, पर पीछे से कोई रोया भी नहीं! और तो कुछ नहीं, पर बूढ़े के पीछे गाँव के छोकरों को एक जून जिमाया होता, तो बेचारे की आत्मा को तो शांति मिलती!"

कुम्हार जिस तरह मिट्टी गूँधता है, उसी तरह गाँववाले उसे गूँध कर रख देते। इसी से तो उसने गाँववालों के बीच उठना-बैठना बंद कर दिया था। दो घड़ी हुक्का पीने के लिए भी वह किसीके आँगन में नहीं बैठता।

वह मन ही मन स्वयं भी बहुत ही खीझता रहता था। उसके मन में भी यह बात बैठ गई थी कि उसका बाप अब नहीं आयेगा। जिन्दा होता तो इतने दिन कहाँ रहता? उड़ती खबर भी नहीं मिलती? जरूर वह देवलोक सिधार गया है।

पर अपनी माँ को किस तरह समझाए? अभी तो वह हाथों में चूड़ियाँ पहने घूमती थी। गाँव की बड़ी-बूढ़ी औरतें हेमकौर से कुछ न कहती हों, यह भी नहीं था। पर वह सब का मुँह सी देती, "सारी दुनिया भले ही कुछ भी कहे, पर मैं किसीकी मानने की नहीं। जिस दिन मेरा आतमाराम कहेगा, उस दिन तुम्हारे कहे बिना मैं चूड़ा फोड़ डालूँगी।" और फिर दिगंत में आँखें उठा कहती, "मैं छोटी थी, तब एक साधु मा'राज ने वरदान दिया था--जा, तू मरेगी, तब तलक सवागण (सुहागन) रहेगी। मा'राज का कहा कोई मिथ्या होगा? मेरी अरथी निकलेगी, तब भी मेरे सिर पर तो चूँदड़ी ही होगी।"

लोग हेमकौर की बातों को हँसी में उड़ा देते। औरतें भी पीछे से उस पर हँसतीं। पर हेमकौर दृढ़ थी। उसका अंतर पुकार-पुकार कर कहता कि वह सौभाग्यवती है, उसका पति जीवित है। लोगों की टीका ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती, त्यों-त्यों उसकी प्रभु-भक्ति भी बढ़ती जाती। वह नित्य भगवान् के सामने दीया जला कर बैठती और माला फेरती हुई कहती, "भगवान्! एक तेरे भरोसे यह चूड़ा पहन रखा है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। बस, वह राजी-खुशी वापस घर आ जाये।" अपनी श्रद्धा के दीये में घी भर रही हो, इस तरह अपनी भक्ति और निष्ठा का स्मरण करती। छोटी थी, तब गौरी व्रत करती थी, विवाह के बाद सावित्री का व्रत किया था और तब उसने एक ही चीज माँगी थी", भगवान् जीऊँ तब तक सवागण रखना। मेरे जीते जी चूड़ा मत फोड़ना।"

यह भक्ति कहीं व्यर्थ जायेगी? भगवान् क्या उसकी इतनी माँग भी पूरी नहीं करेंगे?

नित्य स्नान कर, माला ले, वह भगवत-स्मरण करने बैठती। तब उसे ऐसा ही लगता कि भले ही दुनिया कुछ भी कहे, पर वह सुहागन है। उसका पति मर गया है, यह बात किसी भी तरह उसके गले नहीं उतरती थी। जैसे भीतर से उसे कोई बार-बार कहता रहता था, "हेमकौर! देख जल्दी मत कर बैठना। वह आयेंगे... जरूर आयेंगे। दूसरा कोई नहीं, पर तेरी भक्ति उन्हें तेरे पास खींच लायेगी।"

इस आशा-दीप के प्रकाश में ही वह अंधकार के बीच जी रही थी। पुत्र-वधू तो उलटी-सीधी कहती रहती थी, पर अब खुद उसका बेटा भी कहने लगा था, फिर भी वह डिगी नहीं।

शायद हेमकौर इसी तरह पति के आने की राह देखा करती, पर शंकर हाथ धोकर पीछे पड़ गया था। शंकर भी संभव है चुप रह जाता, पर लोग उसे कुरेदते रहते थे।

गाँव में एक बारात आई थी। बारात थी शंकर के ससुराल के गाँव की। अतः उसे मेहमानों के बीच बैठने जाना पड़ा। उसे डर तो था ही कि लोग उसके बाप की बात निकाल उसे नीचा दिखायेंगे और हुआ भी ऐसा ही। बात ही बात में बात निकली। शंकर जिन शब्दों को सुन-सुन कर परेशान हो उठा था, वही शब्द कानों से टकराये, "मरा हुआ भी कहीं वापस आता है? और दो-दो बरस तक खबर मिले बिना रहती होगी? परदेस गया हो, तो भी क्या है? चिट्ठी-पतरी भी नहीं लिखता?"

और फिर सब शंकर पर टूट-से पड़े, "यही ऐसा है। बाप के पीछे खर्चा नहीं करता। बामन नहीं जिमाता। औरतों के कहे कोई व्योहार चलता है? इसकी माँ भले ही पागलों जैसी बात करे, पर बाप का क्रिया-कर्म तो करना ही होगा न? बूढ़े को जीते जी तो सुख नहीं दिया, पर मरे बाद भी . . ."

शंकर का सिर चकराने लगा। जी चाहा कि तुरन्त उठ जाये। तभी किसी ने पुराणी महाराज से पूछा, "बापजी, तुम ही कहो, जीवा डोसा को पिंड दिये बिना चल सकता है?"

और जैसे सुप्रीम कोर्ट का फैसला सुना रहे हों, इस तरह पुराणी महाराज ने बारातियों के बीच में कहा, "मैं तो इतना जानता हूँ कि जब तक मरे हुए के पीछे पिंड नहीं दिया जाता, तब तक उसकी आत्मा को सद्गति नहीं मिलती और शास्त्रों में तो लिखा है कि पूर्वजों का क्रिया-कर्म न करने जैसा कोई दूसरा पाप नहीं है।"

यह सुन वृद्ध जीवा के हमउम्र बोल उठे, "अरे बूढ़ा भूत बन गला पकड़े, तब तक बैठा रहेगा?"

"शंकर तू हठ करता है, पर जो घर में दलिद्दर न घुस जाए, तो कहना। बूढ़ा किसी दिन साँप बन कर दिखेगा, तब आँखें खुलेंगी।"

शंकर से सुना नहीं गया। आज माँ से साफ-साफ कह देने का निश्चय किया। घर लौटते ही बोला, "तू ना कर या हाँ कर, मैं तो अपने बाप के पीछे गाँव को एक जून जिमाऊँगा ही। मुझसे अब लोगों के ताने नहीं सुने जाते।"

"काहे के ताने? अपने बाप को जीते जी पिंड देना चाहता है? बेचारे जीव को पेट भर खाने भी नहीं दिया। लड़-झगड़ कर तो भर दुपहरी में घर से निकाला और ऊपर से उसे मरा हुआ मानता है.... चांडाल! जा, भाग यहाँसे। अब कभी मेरे सामने मुँह से ऐसी बात मत निकालना, समझा?"

शंकर हेमकौर का रौद्र स्वरूप देख ठंडा पड़ गया। हेमकौर की आँखों से आग बरस रही थी। सारा गाँव चढ़ कर आये, तो वह अकेली ही बहुत थी, इतनी शक्ति उसके सीने में दिखती थी। शंकर की जबान पर ताला पड़ गया। वह कहता भी तो क्या?

एक तरह से वह बिल्कुल लाचार था। उसीके कारण उसका बाप घर छोड़कर चला गया था। वह दृश्य याद आते ही शंकर काँप उठा। उस दिन राई बन गई थी! जीवा बापू ने खेत से लौटते समय चारे की भारी बाँध लाने को कहा था। पर उस दिन शंकर अपने दोस्तों से गप लड़ाने बैठ गया था। वह न तो उस दिन खेत में गया, न जानवरों के लिए चारा ही लाया। इस जरा सी बात का बतंगड़ बन गया।

जीवा बापू का स्वभाव मिर्च जैसा था। भोजन का समय हो गया था। हेमकौर तीन-चार बार भोजन कर लेने को कह गयी थी, तो भी जीवा ने कहा, "जा अभी की अभी चारा लेकर आ। मरदुए, ढोरों को चारा दिये बिना टिक्कड़ निगलते शर्म नहीं आती?"

हेमकौर ने बाहर आकर कहा, "अब रट छोड़ो न खा कर ले आयेगा।"

"नहीं, अभी की अभी। यह मेरा कहा नहीं करेगा अपने मन में क्या समझता है?"

और जीवा बापू नयी-पुरानी बातें याद कर-कर शंकर को डाँटने लगे। पुत्र-वधू घर में ही थी, तो भी उस शंकर को कौड़ी का कर दिया। इससे शंकर भी उ पड़ा। वह भी सामने बोलने लगा। बस, बात बढ़ गयी। जीवा ने अपनी आदत के अनुसार शंकर की कनपटी पर एक तमाचा जड़ दिया। शंकर को काल चढ़ा। वह मान भूल गया। उसने भी बाप पर हाथ उठा दिया।

जीवा काबू में न रहा, "तूने मुझ पर हाथ उठा ...? मेरा इस घर में रहना हराम है, जीना हराम है ...." और उसी समय भरी दुपहरी में जीवा घर से निकल गया। भोजन की थाली वैसी की वैसी र रही। पीछे-पीछे हेमकौर दौड़ी, दूसरे भी निकले, प जीवा देखते-देखते गायब हो गया।

इस बात को लगभग दो वर्ष हो गये, पर जीवा का कोई पता नहीं। कोई समाचार नहीं। जिन्दा है या मर गया है, इसकी भी खबर नहीं।

जीवा के जाने के बाद हेमकौर ने कैसा कल्पांत कि था। शंकर भी चार दिन तक तो घर से बाहर नहीं निक सका था। गाँव के कुएँ देख लिये थे। सगे-संबंधियों के यहाँ ढूँढ़ लिया था। परिचित-अपरिचितों से पूछ लि था। पर किसी ने जीवा को देखा है, ऐसा समाचार मिलता नहीं था।

पहले तो सबने यही समझा कि बूढ़ा गुस्से में गया है, दो-चार दिन में वापस आ जायेगा। जायेगा भी तो कहाँ? पर एक महीना, दो महीने, छः महीने बीत गये फिर भी वह वापस न लौटा, तो गाँव में छुपे-छुपे बातें होने लगीं। उसी समय कहीं से उड़ती खबर आई कि चार-एक महीने पहले एक बूढ़ा रेल के नीचे कुचल क मर गया है। सबने मान लिया कि जरूर वह जीवा होगा और तब से ही सब शंकर से कहने लगे कि अब बा की आस छोड़ दे।

शंकर ने माँ के डर से चुप रहने में और लोगों के ताने सुनने में कुछ बाकी नहीं रखा था। गाँव के सर

तक को हेमकौर के पास जाने का साहस नहीं होता था। अतः शंकर के सामने ही सब बात बनाते। हेमकौर अधिक बात न कर एक ही उत्तर देती, "तुम मर कर टूट जाओ, तो भी मैं किसीकी मानने की नहीं। जिस दिन मेरा हृदय कहेगा कि, वह इस दुनिया में नहीं हैं, उसी दिन मैं अपने हाथ से चूड़ा तोड़ दूँगी।"

सब समझ गये थे कि हेमकौर समझाए नहीं समझेगी। इसीसे कई को जोश चढ़ा था। जीवा का शीरा (हलवा) खाकर ही रहेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठे हों, इस तरह शंकर को चैन नहीं लेने देते थे।

शंकर भी शायद उनकी बातों में न आता, पर एक दिन कुएँ पर उसकी बहू ने तूफान उठाया। वह कुएँ पर पानी भरने गयी थी। किसीके साथ उसका घड़ा छू गया। तू-तू, मैं-मैं हो गयी। उस स्त्री ने वहाँकी वहाँ सुनाया, "ससुर का तो लोक-परलोक बिगाड़ा है और मिजाज तो देखो। नकटे तेरी नाक कटी, नहीं महाराज सवा हाथ बढ़ी!"

शंकर सुनता रहा हो, पर उसकी बहू से कहीं ऐसे बोल बरदाश्त हो सकते थे? उसने घर पहुँचते ही हाथ-पाँव पछाड़े। शंकर को आड़े हाथों लिया, "तुमसे इतना भी नहीं होता हो, तो चुल्लू भर पानी में डूब मरो! तुम्हारा सगा बाप साँप बन डसेगा तब मालूम पड़ेगा।" और फिर जले पर नमक छिड़कती हुई बोली, "कहो तो अपनी बलैया उतार दूँ। माँ का कहा करने पर तो सारे गाँव में नाक कट गई।"

दो कौड़ी की औरत इतनी बात कह जाय और आग न लगे, तो वह मर्द कैसा? शंकर ने मन में निश्चय किया कि, भले ही माँ अब कुछ भी क्यों न कहे, पर वह अब अपने बाप का क्रिया-कर्म करेगा ही और गाँव को एक जून जिमाएगा ही।

उसका यह निश्चय डगमगाता, इससे पहले ही बहू ने उसे माँ के पास भेजा। उस समय हेमकौर भगवान् के आगे आजीजी कर रही थी, "भगवान्, अब कब तक परिच्छा लोगे? मेरी एक माँग भी पूरी नहीं करोगे, भगवान्! मेरी सारी उमर उन्हें दे दो, पर एक बार उनके दर्शन करा दो!"

हेमकौर पूजा में से उठी तो शंकर ने अपना निर्णय सुना दिया, "माँ! तू माने या न माने, पर मैंने तो गाँव को जिमाने की ठान ली है। अब मैं तेरी एक भी नहीं सुनूंगा!"

और माँ उसे समझा कर उसका विचार बदल न दे, इस भय से, वह तुरन्त लौटने लगा। माँ ने उसे रोका, "भाई! मैं जानती हूँ कि तू किसके सिखाये बोल रहा है? तेरे बापू आज नहीं है, तब ही तो मुझसे इतनी बात कह गया है न! जा जो तेरे जी में आए कर, पर मैं तो अपने हाथ का चूड़ा नहीं फोड़ने की!"

शंकर पुनः उलझन में पड़ गया। अब वह क्या करे? वह इस बात का फैसला करना चाहता था। वह मोरार काका के पास गया और उन्हें बुला लाया। मोरार काका उसके संबंधी थे और गाँव के अगुआ थे। उन्होंने हेमकौर को समझाया, "हेमकौर भाभी! तुम ही कहो, जीवा भाई जिन्दा होते, तो क्या वापस नहीं आते? चिट्ठी-पतरी लिखते या नहीं? तुम्हारे यूँ मना करते रहने से कहीं व्योहार चल सकता है? मरनेवाले की आतमा सुखी हो, इसके लिए तो तुम्हें खुद ही अपने हाथ से दान-धरम करना चाहिए! इसके बदले तुम आड़े हाथ करती हो!"

और मोरार काका ने सीख के दो बोल भी कहे। हेमकौर सुन कर विचलित हो गयी। सजल आँखों से बोली, "मोरार भाई! क्या मुझे कुछ नहीं होता होगा? पर मेरा जीव नहीं मानता। कल रात ही वह मुझे सपने में दिखे थे। तुमसे मैं सच कहती हूँ, वह जरूर वापस आयेंगे। मेरा हिया झूठ नहीं बोलेगा। भाई! क्यों मुझ सवागण का सिणगार उतारने को पीछे पड़े हो?"

अंतिम वाक्य कहते-कहते हेमकौर सुबकी भरने लगी। इतने वर्षों से दबाकर रखी हुई वेदना मुँह और आँख में आ कर बैठ गई। वह रोते-रोते बोली, "मोरार भाई! दो बरस तक तुम रुके हो, तो अब ज्यादा नहीं, सिरफ छः महीने और रुके रहो। अगर तब तलक नहीं आयें, तो तुम कहोगे वैसा ही करूँगी। भाई! मेरी इतनी सी बात रख लो......"

माँ को इस तरह बिलखते देख शंकर का हृदय भर आया। उसकी आँखें भी नम हो गयीं। वह बोल उठा, "अच्छा, माँ, हम छः महीने तक और रुके रहेंगे।"

मोरार काका ने भी हेमकौर की बात मान ली। छः महीने राह देखने में क्या जाता है?

और एक के बाद दूसरा महीना गुजरने लगा। हेमकौर अब चिंतित हो उठी थी। उसका शरीर भी गलता जा रहा था। अब वह भगवान् से प्रार्थना करने लगी थी, "परभू! तू मुझे उठा ले! मैं सवागण मरूँ, इसके लिए उमर भर मैंने भक्ति की हो तो मेरी इतनी माँग पूरी कर। भगवान्, मुझे इस चूड़े-चूंदड़ी के साथ उठा ले। निराधार के आधार! तू मेरा इतना कहा नहीं सुनेगा?"

ज्यों-ज्यों छः महीने का समय पूरा होता जा रहा था, त्यों-त्यों हेमकौर की उलझन बढ़ती जाती थी। उसकी श्रद्धा झूठी पड़ेगी? लोगों के सामने वह हास्य-पात्र बनेगी? औरतों के आगे वह मूर्ख ठहरेगी? आज तक जिस श्रद्धा-दीप के सहारे वह भवसागर तर जाना चाहती थी, वह दीप क्या प्रकाश नहीं देगा? उसकी भक्ति फलीभूत नहीं होगी? उसके अंतर की आवाज झूठी सिद्ध होगी? उसकी आत्मा उससे कहती है, वह सच नहीं होगा? जीवा क्या कभी वापस नहीं आयेगा?

रात और दिन उसके अंतर में यही उथल-पुथल होती रहती। मन में कभी तरंग उठती। जीवा घर-आँगन में आ खड़ा हुआ है ऐसा लगता। सारी रात वह

जागती पड़ी रहती। वह पागल-सी हो उठी थी। उसकी आँखों की चमक ही बदल गयी थी। उसकी शक्ल भी बदल गयी थी। शंकर की बहू को लगने लगा कि बुढ़िया पागल हो जायेगी! भगवान् के दीये के आगे उसे अस्पष्ट-सी प्रार्थना करते देखती तो क्षण भर के लिए उसे लगता कि जरूर उसकी सास पागल हो गयी है।

और इसी तरह छः महीने बीत गये। जीवा नहीं आया। हेमकौर हार गयी हो इस तरह हताश हो गयी। उसकी श्रद्धा झूठी पड़ी या वह भ्रम में थी? मन ही मन उसे लगने लगा कि वह जो यह मान बैठी थी कि वह अभी जिन्दा है, वह केवल भ्रम-मात्र ही था। वह कितना बड़ा धोखा खा गयी! कैसी मूर्ख बनी!

"भगवान्! भगवान्! तूने यह क्या किया?" हेमकौर भगवान् के आगे क्रन्दन करने लगी, सिर पछाड़ने लगी, पर इससे क्या होता?

शंकर ने सारे गाँव को सकुटुम्ब न्योता दे दिया। बाप का क्रिया-कर्म करने के लिए ब्राह्मणों को भी बुला लिया। चूड़ा तोड़ने की घड़ी आ पहुँची। हेमकौर विद्रोह न कर बैठे, इस भय से मोरार काका ने दो दिन से अपनी पत्नी को उसके पास भेज दिया था।

एक ओर हलुआ बन रहा था। उसकी सुगंध सारे मुहल्ले में फैल रही थी। गाँव के लड़के मौज में आ गये थे। बड़े-बूढ़े भी तान में आ गये थे। जिन्होंने पूरे साल कभी घी नहीं खाया था, उनके मुँह में पानी भर आया था। औरतें भी खुश हो उठी थीं। जीवा का शीरा (हलुआ) आखिर मिला तो सही!

हलुआ ....हलुआ...सारे गाँव में हलुआ महक उठा था। कड़ाही पर कड़ाही उतरती जा रही थी। चरू भर-भर कर घी कड़ाही में छोड़ा जा रहा था। शंकर हाथ में नहीं आता था, इसी से खीझे हुए गाँववाले जरूरत से ज्यादा घी डलवा रहे थे। गाँव के कमीनों को भी खाने के लिए मिले, इसलिए एक कड़ाही हलुआ ज्यादा बनवाने की वह ठाने हुए थे।

शंकर की बहू के आनंद की तो कोई सीमा नहीं थी। औरतें उसे अब ताने तो नहीं मार सकेंगी। वही घर में करने-धरनेवाली थी। इधर से उधर दौड़-धूप कर रही थी पर आज उसे थकान महसूस नहीं हो रही थी।

और इन सब बातों से निर्लिप्त हो, इस तरह हेमकौर भगवान् के आगे बैठी थी। वह आज भगवान् से प्रार्थना नहीं कर रही थी बल्कि भला-बुरा कह रही थी, "भगवान्! तुझे आखिर में सवागण का सिणगार ही उतारना था तो किस कारण मन में माया रखी? भगवान्! इसके बदले तो मुझे उठा लेने में तेरा क्या जाता था? ओह! परभू! तूने मुझे कहीं का नहीं रखा! अब तुझमें कौन विश्वास रखेगा?"

इस समय हेमकौर की आँखों से सावन-भादों बरस रहा था। उसकी अगल-बगल औरतें बैठी थीं। अब चूड़ा तोड़ने की घड़ी आ पहुँची थी। सिर के बाल उतरवाने के लिए गाँव के नाई को भी बुलवा लिया गया था। यह अंतिम विधि ही पूरी करने को रह गयी थी। आज तक हेमकौर किसीकी सुनती नहीं थी सबका मुँह बं देती थी। इसीसे मन ही मन जलनेवाली बूढ़ी औरतें विशेष रूप से आयी थीं। हेमकौर का चूड़ा तोड़ने के लिए उनके हाथ अधीर हो रहे थे। इसीसे एक औरत ने कहा भी "लो अब क्यों देर करती हो? फिर छोकरों को खिलाने का वक्त होगा!"

सब हेमकौर का श्रृंगार उतारने को अधीर हो रहे थे अतः उस स्त्री की बात से सहमति प्रकट की। एक-दो स्त्रियों ने हेमकौर की बाहें पकड़ उसे उठाया।

हेमकौर सुध-बुध खो बैठी हो, इस तरह औरतों का कहा कर रही थी। जैसे उसके अंतर का चैतन्य लुप्त हो गया था। मुँह पर जिस श्रद्धा का तेज था वह लुप्त हो गया था। आँखें खुली हुई थीं, फिर भी जैसे वह कुछ देख नहीं रही थी।

हेमकौर को आँगन में लाकर बैठाया गया। उसका चूड़ा तोड़ने की विधि शुरू हुई।

मोरार काका की बहू ने हाथ में पत्थर ले चूड़ा तोड़ने को हाथ ऊपर उठाया पर तभी बाहर से आवाज आई "ऐ '...जीवा बापू आ गये....जीवा बापू आ गये!" और पत्थर वाला हाथ अधर रह गया। औरतें खड़ी हो गयीं। सबकी आँखें रास्ते की ओर उठ गयी।

सामने से बूढ़ा जीवा हँसता-हँसता आ रहा था। उसे देख सबके मुँह का रंग उड़ गया। मोरार काका की बहू एक कोने में खिसक गयी। शंकर की बहू ने घूंघट निकाल मुँह छिपा लिया। दूसरी औरतें एक ओर दुबक गईं।

"जीवा बापू आ गये...जीवा बापू आ गए..." कहते-कहते छोटे-छोटे लड़के जीवा से लिपट गये। यह आवाज हेमकौर के कानों में गूँजी और उसमें पुनः चैतन्य प्रकट हुआ। वह खड़ी हुई। पति को आते हुए देखा और उसकी आँखें चमक उठीं। मुँह पर आनन्द कौंध गया। देह में नयी उमंग का संचार हुआ और जीवा ने दहलीज पर पाँव रखा, तब वह उसके पाँवों में झुकी और ललाट को चरण-रज से शोभित किया। उसका जीवन धन्य हो गया हो, इस तरह हर्ष से छलछलाती आँखों से पति की ओर देखती रही और फिर भगवान् के दरबार में दौड़ गयी।

"परभू! आखिर तूने मेरी लाज रख ली। भगवान् मैं अगर दो कड़े बोल बोल गयी होऊँ तो क्षमा करना!"

हेमकौर भगवान् के आगे जब इस तरह प्रार्थना-दया याचना—कर रही थी, तब उसका आँगन लोगों से उमड़ पड़ रहा था।

कोई जीवा से गले मिल रहा था, कोई समाचार पूछ रहा था और कई तो जैसे यह एक बड़ा चमत्कार

हुआ हो इस तरह जीवा की ओर फटी-फटी आँखों से देख रहे थे कि "आज के दिन ही बूढ़ा कहाँ से परकट हो गया ?"

और इन ढाई वर्षों में जीवा बिल्कुल बदल कर आया हो, इस तरह सबके साथ प्रेम से हँस-हँस कर बात कर रहा था। उसके चेहरे पर पहले जो तेजी दिखती थी, उसकी जगह स्नेह की कोमलता दिखती थी।

वातावरण को हलका करने के लिए मोरार काका ने पूछा, "जीवा भाई, पर इतने दिन तुम थे कहाँ ?"

"यात्रा करने गया था ! चारों धाम की यात्रा कर आया !"

"पर कागज-पत्र भी नहीं दिया ?"

"इसमें क्या कागज लिखना था ?" खँखार कर जीवा बोला, "सब राजी-खुशी तो है, न ?"

"हाँ, सब ही अच्छे हैं। सब तुम्हें याद करते थे।"

"पर यह शीरा किसका सिक रहा है ? मैंने सोचा, मेरा जैसा कोई बूढ़ा चल बसा होगा ?"

सबके मुँह पर ताला पड़ गया। मोरार काका भी क्या जवाब देते ? सब एक-दूसरे के सामने देखने लगे। कर आँख तक नहीं उठा पा रहा था।

जब किसीने कोई उत्तर नहीं दिया, तो जीवा को शंका हुई, "क्यों, कोई जवान की मौत हुई है क्या ? क्यों मोरार, बोलता क्यों नहीं ?"

मोरार काका को तो बोलने का साहस नहीं हुआ, पर किसी एक लड़के ने भेद खोला, "यह तो काका, तुम्हारा शीरा सिक रहा है !"

"मेरा शीरा सिक रहा है ?" जीवा को कुछ आश्चर्य हुआ, पर दूसरे ही क्षण वह हँस पड़ा, "यह भी अच्छा जोग रहा। मैंने कब से ही मन में नक्की कर रखा था कि यात्रा करके गाँव जाकर सबको जिमाऊँगा। रभू ने कैसा जोग बैठाया है ?" और किसीको बुरा न लगे, इस तरह वह हँसा—खूब हँसा।

जब गाँववाले पंगत में बैठे, तब जीवा स्वयं आग्रह कर-करके हलुआ परोसता रहा। सारे गाँव को खिला कर वह खाने बैठा। हेमकौर स्वयं परोसने बैठी। इस समय जीवा की आँखों में संतोष की और हेमकौर की आँखों में श्रद्धा की विजय के आँसू चमक रहे थे और भगवान् के आगे श्रद्धा का दीप जल रहा था।

निवेदन : एक मनःस्थिति

प्रो० गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

शंका के घाव हरे,
मरहम से भी न भरे,
पूर्वा में दर्द उभड़ आता है;
आँखों में फूल गड़ जाता है।

अनटूटा तोष मधुर,
करुणा की छाँह प्रचुर,
अनमाँगा दाह जला जाता है;
पश्चिम में सूर्य ढला जाता है।

सतरंगी इन्द्रधनुष,
जंग लगा स्वर-अंकुश,
अनायास बरखा हो जाती है;
बिजली एक पीर बो जाती है।

जड़ता में नव कम्पन,
अंग-अंग संवेदन,
नये नये छन्द फूट आते हैं;
अधसूखे भाव टूट आते हैं।

सूने में पाँव चकित,
आस्था के कर विस्मित,
किस्मत की नागिन डँस जाती है;
अन्तस् में छलना बस जाती है।

नवीन प्रकाशन

कार्यालय कार्य-विधि--रामचन्द्र सिंह 'सागर'। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली--६, सजिल्द, मूल्य, ६ रुपये।

केंद्र ही में नहीं, कई राज्यों में भी हिंदी राजभाषा घोषित हो गयी है। यद्यपि अभी कहीं भी हिंदी में राज-काज नहीं चल रहा, तथापि इस बात की संभावना अवश्य है कि कालान्तर में, कभी न कभी, सरकारी कार्यालयों में उसका उपयोग होने लगेगा। उस दिन की तैयारी के लिए कार्यालयों के कार्य को हिंदी में करने की विधि पर पुस्तकों का होना आवश्यक है, जिससे हमारे नेता और हिंदी विरोधी यह न कह सकें कि अभी हिंदी में ऐसा साहित्य है ही नहीं, और जब तक वह न हो तब तक हिंदी में काम नहीं हो सकता। श्री सागर ने इस पुस्तक को बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इसमें कार्यालय की कार्यविधि समझाते हुए उसे हिंदी में लिखने का ढंग भी बतलाया गया है। जो नमूने दिये गये हैं वे समीचीन हैं। पारिभाषिक शब्दावली हमें अपर्याप्त मालूम हुई, और इस पुस्तक में इसका प्रथम खंड (जिसमें पारिवारिक पत्रों आदि का वर्णन है) अनावश्यक मालूम पड़ा। पुस्तक उन कार्यालयों के लिए उपयोगी है जिनमें हिंदी में काम करने का विचार किया जाय।

जगद्गुरु श्री राघवेन्द्र स्वामीजी--मूल लेखक, डा० एच० के० वेदव्यासाचार्य। अनुवादक, श्री रमण। प्रकाशक, श्री परिमल' संशोधन प्रकाशन मन्दिरम्, नञ्जनगूडु। सचित्र मूल्य, दो रुपये।

कर्नाटक प्रदेश में, गुंतकल के पास, तुंगभद्रा के किनारे, मंतसाला (मंत्रालय) नामक एक गाँव है। इसमें श्री माध्व सम्प्रदाय के एक पूज्य आचार्य श्री राघवेन्द्र स्वामीजी की समाधि है। इस क्षेत्र में इनकी बड़ी मान्यता है। वे अपने समय के बड़े विद्वान् और सिद्ध पुरुष थे। अब भी भक्तों में उनके प्रति बड़ी आस्था है और वे इस स्थान को एक जागृत तीर्थ मानते हैं। इस पुस्तक में उन्हीं श्री राघवेन्द्र स्वामी का चरित्र है। मूल पुस्तक कन्नड़ में है। यह देखते हुए कि अनुवाद एक कन्नड़भाषी सज्जन ने किया है, प्रसन्नता हुई। किंतु यदि इसे छापने से पहिले हिन्दी के किसी अच्छे जानकार से दिखला लिया जाता तो जो सामान्य त्रुटियाँ रह गयी हैं, वे न रहतीं। पुस्तक बहुत रोचक है। बड़े भक्तिभाव से लिखी गयी है। उत्तर भारत के लोगों का ज्ञान दाक्षणात्य सिद्ध पुरुषों और महात्माओं के बारे में अत्यल्प है। श्री राघवेन्द्र स्वामी के समान पुण्य श्लोक महात्मा के चरित्र के हिंदी में प्रकाशित हो जाने से उत्तर भारत के धार्मिक-प्रवृत्ति के लोगों को लाभ होगा। हमें यह पुस्तक बहुत रोचक लगी, और स्वामीजी के त्यागी और तपस्वी जीवन-वृत्तान्त से आत्मिक संतोष हुआ।

गीता प्रवचन गीता व्याख्यान माला--म० म० पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। सजिल्द बड़ा आकार पृष्ठ संख्या ६३० सचित्र। मूल्य १५ रुपये। प्रकाशक प्रकाशन विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शर्मा जी की गणना इस समय भारत के चोटी के संस्कृत विद्वानों में होती है। वे विद्वान् ही नहीं, विचारक भी हैं। प्राचीन ढंग के पाण्डित्य का उनमें आदर्श विकास हुआ है, किन्तु साथ ही उन्होंने आधुनिक विचारधाराओं से भी परिचय रखा है। दर्शन में उनकी विशेष गति है। गीता के प्रथम छः अध्यायों की यह व्याख्या उन्हीं के आजीवन अध्ययन का परिणाम है। महामना मालवीय जी प्रति रविवार को अपने विश्वविद्यालय में धार्मिक प्रवचन किया करते थे। जब शर्मजी काशी जाते तब वे उनसे प्रवचन करने को कहते। बाद में जब महामना का स्वर्गवास हो गया, और शर्मजी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होकर चले गये तब इन साप्ताहिक प्रवचनों का भार उन्हीं पर डाला गया। यह कार्य उन्होंने प्रायः सात वर्ष किया। उन्होंने पहले गीता पर ही अपने प्रवचन आधारित किये। इन प्रवचनों में उन्होंने गीता की केवल व्याख्या ही नहीं की, अपितु गीता की जो विविध व्याख्याएँ और टीकाएँ हुई हैं, उनका भी विवेचन किया। ये प्रवचन विद्वानों को इतने महत्त्वपूर्ण मालूम हुए कि उन्होंने शर्मजी से उन्हें लिपिबद्ध करने की प्रार्थना की। शर्मजी की अवस्था इस समय ८० से अधिक है, फिर भी उन्होंने यह कार्य हाथ में ले लिया, और गीता के प्रथम छः अध्यायों पर दिये गये अपने प्रवचनों को छापने योग्य बना कर लिपिबद्ध कर दिया। इसमें गीता संबंधी प्राचीन और नवीन विचारों का अद्भुत और पाण्डित्यपूर्ण विवेचन है। शांकर भाष्य और लोकमान्य के 'गीता रहस्य' का जैसा सुन्दर, स्पष्ट और बुद्धिग्राही विवेचन इस व्याख्या में किया गया है वैसा पहले देखने में नहीं आया। इसके अतिरिक्त इसमें इस बात का भी बड़ी दक्षता से प्रतिपादन किया गया है कि किस प्रकार गीता के सिद्धान्त वेदों और उपनिषदों पर आधारित हैं। गीता-साहित्य इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ से समृद्ध हुआ है। जो लोग गीता का गंभीर अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए इसका अध्ययन अनिवार्य है। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि

वे शर्माजी को दीर्घजीवी करें जिससे वे गीता के शेष बारह अध्यायों पर अपनी व्याख्या लिखकर इस महत्त्वपूर्ण कार्य को समाप्त कर सकें।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास——डा० वेंकट शर्मा, प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, बड़ा आकार, सजिल्द, पृष्ठसंख्या ५२०, मूल्य, बीस रुपये।

यह एक अधिनिबंध है जिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने लेखक को पी-एच० डी० की उपाधि दी है। भारतेन्दु युग से अब तक हिंदी में आलोचना का जो विकास हुआ है, उसका विस्तृत वर्णन है। अधिनिबंध होने के कारण इसका कलेवर काफी बढ़ गया है। यदि इसे आधे आकार में लिखा जाता तो सब महत्त्वपूर्ण बातें आ जातीं और यह अधिक उपयोगी हो जाता। लेखक ने हिन्दी समालोचना के विकास के चार सोपान बतलाये हैं। आधुनिक आलोचना-प्रणाली पश्चिम की देन है। लेखक के अनुसार "उसे (भारतेन्दु मंडल को) पूर्व और पश्चिम की अभिसंधि के नवीन आलोक ने जो अभिनव दृष्टि प्रदान की, उसका समालोचना साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा।" यह पुस्तक शोध विद्यार्थियों के काम की है। कहीं-कहीं भाषा उलझी हुई है। यथा यह वाक्य——"अन्त में लेखक ने अपने परमादर प्रिय ग्रन्थकर्त्ता को धन्यवादित और अपने मित्र अनुवादक के कृतज्ञ होकर समालोचना की समाप्ति की है।" यदि ग्रन्थकर्त्ता स्वयं इस वाक्य का व्याकरणीय विश्लेषण करें तो उन्हें इसका भौंड़ापन स्पष्ट हो जायगा। और "परमादर ग्रंथकर्त्ता" विचित्र प्रयोग है। शायद विश्वविद्यालयों के अधिनिबंधों में ऐसे 'अधि' प्रयोग उनकी शोभा समझे जाते हैं।

संसार की प्राचीन सभ्यताएँ तथा भारत से उनका सम्बन्ध—लेखक, श्री रामकिशोर शर्मा। प्रकाशक, आदर्श पुस्तकभण्डार, ५८, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता——७, सजिल्द, सचित्र, कई रंगीन और सादे नक्शे। मूल्य, ६ रुपये।

इस सुन्दर और उपयोगी पुस्तक में सुमेर, खाल्दिया, बेबिलोनिया, अल्जीरिया, मिस्र, चीन, यूनान, रोम और भारत की प्राचीन सभ्यताओं का विस्तृत और मनोरंजनक वर्णन है। इनके अतिरिक्त ईरान, पणि (फीनीशिया), मितन्नी, रिक्ती, मय आदि देशों में आर्य सभ्यता के विस्तार पर भी एक महत्त्वपूर्ण अध्याय दिया गया है। आधुनिक पुरातत्त्व और उत्खनन से इन प्राचीन सभ्यताओं के बारे में जो तथ्य मालूम हुए हैं, उनका भी उपयोग किया गया है। पुस्तक पर्याप्त सावधानी और परिश्रम से लिखी गयी है और इससे सामान्य पाठक को इन प्राचीन सभ्यताओं का अच्छा ज्ञान हो जायगा। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसमें से जिन जिन प्राचीन सभ्यताओं के साथ संबंध या सम्पर्क था, उसका भी सूक्ष्म विवरण दे दिया गया है। हिंदी में इस विषय की पुस्तक की आवश्यकता थी। प्राचीन सभ्यताओं का परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

सुनो कान में——श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६, सजिल्द, रेखाचित्र, मझोला आकार, पृष्ठसंख्या, ३०३, मूल्य, आठ रुपये पचास पैसे।

विवाहित जीवन में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, और जिनके कारण कभी-कभी दम्पति का जीवन दुखमय बन जाता है, उनका निराकरण समाज के सुख के लिए आवश्यक है। यह पुस्तक विवाहित जीवन की समस्याओं का वर्णन करती और उसकी समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करने का दावा करती है। विवाहित जीवन में समस्याएँ तो तभी से हैं जब से विवाह की प्रथा चली, किन्तु आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से उनमें वृद्धि हुई है और जटिलता भी आयी है। किन्तु अधिकतर आधुनिक समस्याएँ आधुनिक ढंग के समाज में ही पायी जाती हैं। अँगरेजी में इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं और वे लोकप्रिय भी हैं। हिन्दी में यह पुस्तक एक महिला ने लिखी है। यही इसका महत्त्व है क्योंकि समस्या को स्त्री के दृष्टिकोण से पुरुष नहीं देख सकते। लेखिका में आधुनिकता तो है ही, कहीं-कहीं कुछ प्राचीनता की झलक भी मिलती है। कहीं कहीं हमें लेखन शैली कुछ 'सस्ती' या छिछली मालूम पड़ी। किन्तु सब कुछ देखते हुए पुस्तक समस्याग्रस्त दंपतियों के पढ़ने योग्य है, और नवदम्पतियों के लिए भी उपयोगी है।

विश्व के दार्शनिक——श्री रत्नचंद्र शर्मा और श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ। प्रकाशक, विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टिट्यूट, साधु आश्रम, होशियारपुर (पंजाब) सजिल्द, २०० पृष्ठ। मूल्य, साढ़े चार रुपये।

इसमें १० भारतीय और १६ विदेशी दार्शनिकों के संक्षिप्त जीवनचरित्र देकर उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। पुस्तक बड़ी सरल और स्पष्ट शैली में लिखी गयी है जिससे दार्शनिक सिद्धान्तों को समझने में कठिनाई नहीं होती। संसार के प्रमुख दार्शनिकों और उनके सिद्धान्तों का परिचय एक पठनीय पुस्तक में देकर लेखकों ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। दर्शन के विद्यार्थियों के लिए तो यह हस्तामलक है, साथ ही सामान्य पाठकों के लिए भी उपयोगी है। इससे उनका ज्ञानवर्द्धन होगा। भारतीय दस दार्शनिकों में याज्ञवल्क्य, कपिल, श्रीकृष्ण, महावीर, नागार्जुन, शंकराचार्य आदि के साथ डा० राधाकृष्णन् जोड़ लिये गये हैं। डा० राधाकृष्णन् दर्शन के अच्छे विद्वान् हैं। उन्होंने पश्चिम को भारतीय दर्शन के सिद्धान्त समझाने में स्तुत्य कार्य किया है। हम भी उनका अत्यन्त आदर करते हैं, किंतु क्या उन्हें कपिल और शंकर की कोटि में रखा जा सकता है? क्या यह मूल्यांकन शुद्ध विद्या और ज्ञान की कसौटी पर खरा उतर सकता है? जिन दार्शनिकों को भारत ने अब तक उत्पन्न किया, उनमें, प्रथम दस दार्शनिकों में, क्या इतिहास और विद्वत समाज उन्हें रखेगा? विश्वेश्वरानन्द संस्थान से हम अधिक समीचीन मूल्यांकन की अपेक्षा करते थे।

भारती-कंठाभरण

निद्राति स्नाति भुङ्क्ते चलति कचभरं शोषयन्त्यन्तरास्ते
दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरो भूय आयाहि याहि।
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतैर्वारितान् द्वारि दीना-
नस्मान् पश्याब्धिकन्ये सरसिजरुहैरन्तरंगैः कटाक्षैः ॥

एक अति याचक लक्ष्मी जी से कहता है--"हे समुद्र-तनये ! मैं जब किसी पूँजीपति के यहाँ जाता हूँ तब उसके उद्दण्ड ड्योढ़ीदार मुझे बार-बार रोक कर यह कह कर दुरदुरा देते हैं कि मालिक अभी सो रहे हैं, अभी स्नान कर रहे हैं, अभी भोजन कर रहे हैं, अभी टहलने गये हैं, अभी बाल सुखा रहे हैं, अभी अंतःपुर में हैं, अभी चौसर खेल रहे हैं। इस समय उनसे बात करने का अवसर नहीं है। फिर आना। अभी जाओ। इसलिए हे लक्ष्मी ! तुम अपने कमल-नेत्रों के कटाक्ष से तनिक मेरी ओर देख लो तो मेरे सब दुख दूर हो जायँ।

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो गुणोपेतः।
यदि तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ?

यदि मनचाही गृहणी हो, यदि गाँठ में पैसा हो, यदि विनीत पुत्र हो, और फिर उस पुत्र के भी एक बेटा हो जाय तो इन्द्रपुरी में इससे अधिक क्या रखा है ?

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥

दैव के प्रतिकूल होने पर अनेक प्रकार के साधन भी निष्फल हो जाते हैं। देखो, गिरते हुए सूर्य को उठाने में उसके हजारों हाथ (सहस्र कर-किरणें) भी असफल हो रहे हैं।

बल्लाल देव ने भोजप्रबन्ध में एक कथा लिखी है कि एक बार सूर्यास्त हो रहा था। महाराज भोज की बैठक खुले में जमी थी। अनेक सभासद उपस्थित थे। उनमें बाण, महेश्वर और कालिदास भी थे। सूर्यास्त का नयनाभिराम दृश्य देखकर महाराज भोज के मुख से सहसा एक पंक्ति निकल गयी--

परिपतति पयोनिधौ पतंगः

और यह पंक्ति कहकर उन्होंने उपस्थित कवियों की ओर देखा। बाण ने दूसरी पंक्ति कही--

सरसिरुहामुदरेषु मत्त भृङ्गः।

महेश्वर ने तुरन्त तीसरी पंक्ति कह डाली

उपवनतरुकोटरे विहंगः

अन्त में कालिदास ने चौथा चरण कहकर श्लोक की पूर्ति कर दी--

युवतिजनेषु शनैः शनैरनंगः।

इस प्रकार चारों के सहयोग से पूरा श्लोक इस प्रकार बन गया--

परिपतति पयोनिधौ पतंगः सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृंगः।
उपवनतरुकोटरे विहंगः युवतिजनेषु शनैः शनैरनंगः॥

सूर्य समुद्र में गिर (प्रवेश कर) रहा है, मानों कम के उदर में मत्त भृंग जा रहा है अथवा वनान्त में स्थि पेड़ के कोटर में कोई पक्षी घुसा जा रहा है या युवतियों के शरीर में धीरे धीरे कामदेव प्रवेश कर रहा है।

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नामनिष्ठुराः पुरुषाः।
अयि विद्युत् ! प्रमदानां दुःखं त्वमपि न जानासि ?

वर्षा ऋतु है। बादल गरज रहे हैं। बिजली चम रही है। इसे देखकर एक विरहिणी बिजली को सम्बोध करके बोल उठी--यदि बादल गरज रहे हैं तो उन्हें गरज दे। वे तो पुरुष होने के कारण निष्ठुर हैं ही, किंतु अरी बिजली ! क्या तुझे भी स्त्रियों का (अपने वर्ग का) दु नहीं मालूम जो इस प्रकार तड़प-तड़प कर उनका दु बढ़ा रही है ?

ब्रज-माधुरी (४)

पम सीख——
दूनौ भलौ सुपथ, पै कुपथ न ऊनौ भलौ,
दूनौ भलौ गेह पै न बलि साथ करिए।
अनल की लपट औ झपट भली नाहर की,
कपटी के कपट सों दूर परिहरिए।
यहै 'जगजीवन' परम पुरुषारथ है——
पर-घर जाय फेर हित सों निकरिए।
हारि मानि लीजे, नहिं कीजे रार नीचन सों,
सरबस दै दीजे, पै न परबस जाय परिए॥

दशाह अकबर के युग की प्रशंसा——
दिल्ली तें न तखत ह्वै है, बखत ना मुगल कैसो,
ह्वै है ना नगर बढ़ि आगरा नगर तें।
गंग तें न गुनी, तानसेन तें न तानबाज,
मान तें न राजा, औ न दाता बीरबर तें।
खान खानखाना तें न, नर नरहरि तें न,
ह्वै है ना दिवान कोऊ वेडर टडर तें।
नवौ खंड, सात दीप, सात हू समुद्र पार
ह्वै है ना जलालदीन साह अकबर तें॥*
(होलाराय कवि)

द्रमा के प्रति——
साँझ ही तैं आवत हिलावत कटारी कर,
पायकें कुसंगति कृषानु दुखदाई कौ।
निपट निसंक ह्वै तजी त कुल कानि, खानि-
औगुन कौ नेकऊ तुलै न बाप माई कौ।
एरे मतिमंद चन्द ! आवत न लाज तोहि,
देत दुख बापुरे बियोग समुदायी कौं।
ह्वै कें सुधाधाम, काम विष को बगारै मूढ़ !
ह्वै कें द्विजराज काज करत कसाई कौ।

ाग-पूरित समीर——
खत ही बनें फूले पलास, बिलोकत ही कछु भौंर की भीरन।
वरो सो मति मेरी भयी लखि बावरी कंज खिले घटे नीरन।
जि गयौ कढ़ि ज्ञान हिये तें, न जानि पर्‌यौ कब छोड़ि
कैं धीरन।
न कौन के लोचन होंहि पराग सने सरसात समीरन !

शिव-परिवार——
बार बार बैल कौ निपट ऊँचौ नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरुझानो रस रेला में।
'भूधर' भनत, ताकी बास पाय सोर करि
कुत्ता कुतवाल कौ बगानौ बगमेला में।
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग, तासों——
जंग करिबो कों झुक्यौ मोर हद हेला में।
आपुस में पारषद कहत पुकारि, कछु——
रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में।

असमंजस——
जौ हौं कहौं रहिये, तौ प्रभुता प्रगट होत,
चलन कहौं तौ हितहानि नाहिं सहनै।
भावै सु करहु, तौ उदास भाव, प्राननाथ !
संग लै चलैं पै कैसे लोकलाज बहनै।
केसो 'केसौराइ' की सौं, सुनहु छबीले लाल !
चले ही बनत जो पै नाहीं राज रहनै।
तुमहिं सिखाऔ सीख, सुनहु सुजान पिय !
तुमही चलत, मोहिं जैसी कछू कहनै॥

कामदेव से विरहिणी——
पावक पुंजन खाय अघाय, घने घने घायन अंग सँवारत,
ऐसेई दीन मलीन हुती, मन मेरौ भयौ अब तौ अति आरत।
ए मनमोहन मीत मनोज ! दया दृग तें किन नेकु निहारत ?
जानत पीर जरे की तऊ, अबला जिय जानि कहा अब जारत ?

स्मृति——
जा थल कीन्हें बिहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि चुन्यौ करैं।
ज़ा रसना तें करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र भन्यौ करैं।
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं।
नैननि में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं !

स्वप्न——
सोवत आजु सखी सपने 'द्विजदेवजू' आनि मिले बनमाली।
जौ लौं उठी मिलिबे कहँ धाय, सो हाय ! भुजान भुजान पै घाली।
बोलि उठे ये पपी गन त्यौं लगि, 'पीव कहाँ' कहि कूर कुचाली,
सम्पति सी सपने की भई——मिलिबो ब्रजराज कौ आज कौ आली !

---

*तें के अर्थ 'से बढ़ कर' और 'सदृश या समान' दोनों ही हो सकते हैं। कुछ स्थानों में इसका उच्चारण 'तें' भी किया जाता है।

मनोरंजक संस्मरण

महामना और पं० नाथूराम शंकर शर्मा

सन् १९१६-१७ की बात है। महामना मालवीयजी से मेरा प्रथम परिचय आगरा में हुआ। जब मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ और चरणस्पर्श किये तो वे बोले—'क्या परिचय है आपका ?' मैंने बड़ी विनम्रता से निवेदन किया—"मैं कलम का मजदूर हूँ और आप जानते हों तो पं० नाथूराम शंकर शर्मा का पुत्र हूँ।"

वे पिताजी का नाम सुनते ही कहने लगे—'अरे-अरे शंकरजी तो मेरे पुराने मित्र हैं।—उस समय के जब मैं 'हिन्दोस्थान' का सम्पादक था। शंकरजी भी उसमें अपनी कविताएँ प्रकाशित कराते थे। अच्छा तुम शंकरजी के लड़के हो मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। मैंने भी अपना सिर महामना के चरणों पर रख दिया।

फिर तो मालवीयजी महाराज के जब और जहाँ कहीं मैंने चरणस्पर्श किये उन्होंने अपने मित्र शंकरजी की कुशल अवश्य पूछी और मुझे बड़े स्नेह से आशीर्वाद दिया।

सम्भवतः सन् १९१७ की बात है। अलीगढ़ में उत्तर प्रदेशीय साहित्य-सम्मेलन का महाधिवेशन था। अध्यक्ष थे डाक्टर श्री श्यामसुन्दरदास। प्रदेश के ही नहीं, देश के बड़े-बड़े साहित्यिक विद्वान् इस महासम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। महामना मालवीयजी महाराज भी उद्घाटन के लिए पधारे थे। वे एक वकील साहब के साथ ठहरे थे। मैं चरणस्पर्श करने पहुँचा। वे तुरन्त बोले—'मेरे मित्र शंकरजी सानन्द हैं न?' मैंने कहा—'महाराज, वे कई सप्ताहों से अस्वस्थ हैं। इसीलिए इस सम्मेलन में नहीं आ सके।' मालवीयजी बोले 'हरदुआगंज तो इसी जिले में है। काफी दूर होगा।' मैंने निवेदन किया—'महाराज यहाँसे वह जगह सिर्फ सात मील है—पक्की सड़क है।' फिर क्या था! उन्होंने कहा, 'कल प्रातः मोटर द्वारा हम हरदुआगंज पहुँचेंगे और अपने पुराने मित्र नाथूराम शंकर से मिलेंगे।' इतना सुनकर मैं सीधा हरदुआगंज पहुँचा और मालवीयजी महाराज के पधारने का शुभ संवाद सुनाया। पिताजी बड़े प्रसन्न हुए और बड़ी उत्सुकता से प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगे। सारी बस्ती में मालवीयजी महाराज के पधारने की बात फैल गयी। सवेरा होते ही सैकड़ों आदमी हमारे घर के आस-पास जमा हो गये। महामना की गाड़ी दस बजे के करीब आई। दोनों मित्र गले से गला मिला कर मिले। दोनों मित्रों का वार्त्तालाप प्राचीन संस्मृतियों से परिपूर्ण था। महामना सवा घंटे के लगभग वहाँ रहे। फिर पिताजी के अत्यधिक आग्रह से दो पेड़े खाकर वे अलीगढ़ वापस चले गयं। उसी दिन शाम को बा० श्यामसुन्दरदास, पं० राधाचरण गोस्वामी, स्वा० सत्यदेवजी आदि भी पिताजी से मिलने पधारे। पं० पद्मसिंह शर्मा और पं० ज्वालादत्त शर्मा तो हमारे यहाँ पहले से ही ठहरे हुए थे।

महाकवि रत्नाकर और शंकरजी

श्री रत्नाकरजी फरवरी सन् १९२३ ई० में पिताजी से मिलने हरदुआगंज पधारे और दो दिन हरदुआगंज रहे। आचार्य श्री पद्मसिंह शर्मा और श्री पं० उदित मिश्र भी साथ थे। खूब साहित्य-चर्चा हुई। बड़ी सुन्दर सुरुचिपूर्ण कविताएँ पढ़ी गयीं। श्री रत्नाकरजी और शंकरजी दोनों अपनी-अपनी रुचिर रचनाएँ बड़े सुन्दर स्वर से पढ़ते थे। आचार्य पद्मसिंह शर्मा और श्री मिश्रजी दिल से दाद देते थे। उन दिनों 'देव' और 'बिहारी' विषयक आन्दोलन चल रहा था। पिताजी और रत्नाकरजी देव के विरोधी नहीं प्रत्युत बिहारी के भक्त थे। आचार्य पद्मसिंह शर्मा और उदित मिश्र भी बिहारी के समर्थक थे। उस समय शंकरजी ने नीचे लिखी पंक्तियाँ पढ़ीं—

भजी जाल की जल्पना से भरें,
सखा सत्य के झूठ से क्यों डरें।
बिहारी के आगे परी देव की—
नहीं नाचती, तो कहो क्या करें?

इन पंक्तियाँ को सुनकर रत्नाकरजी बड़े ही प्रसन्न हुए और बार-बार सराहना करने लगे। उस समय 'संगीत' की भी व्यवस्था की गयी थी। गायकों के गाने सुनकर रत्नाकरजी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि इस छोटे से उपनगर में भी ऐसे कलाकार मौजूद हैं। चौधरी जाहिरमल के सितार ने बड़ी सुन्दर एवम् आकर्षक 'बीन' बजाई। पूरणसिंह और रामस्वरूप ने भी बड़ा चमत्कार दिखाया। इस पर शंकरजी ने कहा—

बोले बोल सितार ने महुअर* के अनुरूप
शंकर को 'जाहिर' हुआ 'पूरण' 'रामस्वरूप'।

महाकवि रत्नाकरजी शंकरजी की स्नेहशीलता और सहृदयता से अत्यन्त प्रभावित हुए और बड़े ही उत्साह एवं स्नेह से उस साहित्यिक वातावरण को सुशोभित किया।

× × ×

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान और शंकरजी

देवीजी अपने पति श्री लक्ष्मणसिंहजी के साथ बाईस दिन हरदुआगंज रहीं। शंकरजी ने उनके निवास की व्यवस्था अपने एक मित्र के उद्यान-भवन में कर दी थी। सुभद्राजी कुछ अस्वस्थ थीं। उनकी चिकित्सा भी पिताजी ने कर दी, क्योंकि वे सुकवि होने के साथ-साथ पीयूषपाणि वैद्य भी थे। देवीजी ने अपनी कितनी ही कविताओं में संशोधन कराये और शंकरजी के प्रति आजन्म श्रद्धा प्रकट करती रहीं। शंकरजी का प्रसिद्ध कविता-ग्रंथ 'अनुरागरत्न' उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था। आपने उसे श्रीमती सुभद्राजी को देते हुए, उसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा था—

है यह वैदिक भाव विभूषित मुद्रित मुद्रा,
'शंकर' का 'अनुराग-रत्न' पढ़ सती सुभद्रा।—हरिशंकर शर्मा

---

*बीन

ढाके की मलमल

रामजी लाल शर्मा

"कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारंच।"

काल की भी क्या ही विचित्र लीला है। कल जो मालामाल था, सर्वशिरोमणि था, आज वही अकिंचन और सब का तिरस्कार-भाजन बन रहा है। कल जो पराया मुँह ताकते थे, जंगली कहलाते थे, बदन पर जिनके वस्त्र का नाम न था, आज वही मालामाल हो रहे हैं; आज वही सभ्य-शिरोमणि समझे जाते हैं। काल! धन्य तेरी माया!

पाठक, इस समय हमारे देश की कैसी दुर्दशा हो रही है? क्या आप समझते हैं हमारा देश सदा से ऐसा ही दुर्दशाग्रस्त रहा है? क्या आप समझते हैं आप का भारत सदा इसी प्रकार विदेश का मुँह ताकता रहा है? नहीं, कभी नहीं। सौ सवा सौ वर्ष पहले हमारे देश की यह दशा न थी जो आप अब देख रहे हैं। पहले यह भारत सब देशों में समुन्नत समझा जाता था। पहले यह व्यापार-धन्धे में सबसे बढ़ा-चढ़ा था। पहले यह हर चीज के लिए दूसरे देशों का मुहताज न था, बल्कि पहले यह और और देशों की जरूरतों को रफा करता था।

और बातों को जाने दीजिए। एक कपड़े ही को लीजिए। पहले इस देश में ऐसे ऐसे कपड़े तैयार होते थे, जिनकी बराबरी आज तक कोई देश भी नहीं कर सका। पहले हमारे देश में ऐसे-ऐसे कपड़े तैयार होते थे, जिन्हें विलायत वाले भी देखकर दंग रह जाते थे। यों लिखने को तो बहुत सी बातें हैं; पर आज, हम, ढाके की मलमल के सम्बन्ध में ही कुछ लिखते हैं। सुनिए।

जिन दिनों ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में पदार्पण किया और विदेशी बनियों ने व्यापार करने के लिए ढाके में पहली कोठी बनाई, उन दिनों कपड़े के कारोबार में ढाका बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उन दिनों ढाके में रुई भी बहुत बढ़िया तैयार होती थी, सूत भी बहुत बढ़िया काता जाता था और कपड़े की बुनाई का तो कहना ही क्या था। उन दिनों ढाके का कपड़ा ऐसा सर्वप्रिय था कि सारा भारत ही नहीं फारस, मिस्र और यूरप तक में जाता था। बात यह थी कि उस समय वैसा कपड़ा और कहीं बनता ही न था। बनता ही न था क्या माने कोई बना ही न सकता था और आज तक कोई बना भी नहीं सका। इस बात का ढाकेवालों ही को नहीं, बल्कि सारे भारत को अभिमान है।

बेन्स साहब की लिखी हुई रुई-सम्बन्धी एक किताब है। उसमें उन्होंने ढाके के कपड़ों की बड़ी तारीफ की है। उसमें लिखा है कि "ढाके का बना हुआ कपड़ा—विशेष कर मसलिन नामक कपड़ा—देखने से ऐसा मालूम होता है जैसा देवताओं ने बनाया हो। उसको देखकर यह मालूम ही नहीं होता कि यह मनुष्यों का बनाया हुआ है।"

उस समय ढाका जिले के गाँव गाँव में सूत कातने और कपड़े बुनने के कारखाने जारी थे। पाठक, सूत कौन कातता था, आप जानते हैं? उस समय हमारे देश में सूत कातने की कोई कल न थी। यह काम बड़े बड़े घराने की स्त्रियाँ करती थीं। उन हिन्दू-रमणियों के कर-सरोरुहों की करामात सुनिये।

पहले दिल्ली-दर्बार में ढाके से कुछ सूत भेजा गया था। उस १५० हाथ लंबे सूत का वजन सिर्फ एक रत्ती था! पर ढाका जिले के एक सुनारगाँव नामक गाँव में १७५ हाथ लंबे सूत का वजन एक रत्ती पाया गया था! यह सब हमारे देश की हिन्दू ललनाओं के हाथों की करामात थी!

ढाका के रेजीडेंट साहब ने १८४६ ईसवी में एक किताब लिखी। उसमें लिखा है कि एक बार सिर्फ आध सेर रुई में २५० मील लंबा सूत तैयार किया गया था!

ढाके की मलमल का एक थान प्रायः २० गज लंबा और एक गज चौड़ा होता था। और जो खास मलमल बनती थी, उसका थान कोई १० गज लम्बा और एक हाथ चौड़ा होता था। इस दस गज वाले थान का वजन आप जानते हैं कितना होता था? सिर्फ ८ तोला ४½ माशे! सुनते हैं इसका लिपटा हुआ एक थान अँगूठी के सूराख में से आरपार हो जाता था।

ढाके में मलमल से भी बढ़िया एक और कपड़ा होता था। वह तंजेब से भी बहुत बारीक होता था। वह बहुत ही हलका होता था। उसका नाम था मसलिन। कहते हैं, उसके पाँच सात थान तो यों ही फूँक से उड़ जाते थे।

पूर्वोक्त किताब में लिखा है कि एक स्त्री ऐसा बारीक सूत, दिन भर में, एक तोला कात लेती थी। उस सूत

की बारीकी का वर्णन करते हुए एक साहब लिखते हैं कि वह इतना बारीक होता था कि उसका मोटा या पतलापन खाली आँखों से नहीं देख पड़ता था। उसे खुर्दबीन से देखने पर यह बात मालूम हो सकती थी।

एक दफे औरंगजेब की लड़की ने ढाके के मसलिन का कोई वस्त्र बनवाकर पहना। पर जब उसके बाप ने उसे देखा तब वह उस पर बहुत नाराज हुआ। बात यह थी कि उस वस्त्र से उसके सारे अंग दिखलाई देते थे। बाप को नाराज होते देख लड़की ने कहा—कई तह करके तो मैंने इसे पहना है। इस पर भी यदि इसका बारीकपन न दूर हो तो मेरा क्या कुसूर? नवाब अलीवर्दीखाँ के जमाने में भी बड़े ही बारीक कपड़े पहने जाते थे। सुनते हैं अलीवर्दीखाँ के नौकर ने कुछ कपड़े धोकर हरी-हरी घास पर सूखने के लिए डाल दिये थे। वह कपड़ा उस घास पर पड़ा हुआ मालूम ही नहीं होता है। घास साफ दिखाई देती थी। उस घास के पास ही कोई पशु चर रहा था। वह चरता-चरता उस घास को भी चर गया जिस पर कपड़ा पड़ा था। घास के साथ वह कपड़े को भी खा गया!

ढाके का ऐसा बढ़िया कपड़ा होने पर भी उसका दाम बहुत कम था। वह बहुत सस्ता था। इतना सस्ता होने का कारण यह था कि मजदूर सस्ते थे। उन दिनों, अर्थात् १७६० ईसवी में, ।।) से लेकर १।।) मन तक चावलों का भाव था। एक पैसे में दो आदमियों का पेट भर जाता था। इसीलिए मजदूरी सस्ती थी। पर जब से हमारे पवित्र देश में विदेशी बनियों के चरण पड़े तब से वह बात जाती रही। उनके आने से, या यों कहिए कि हमारे दौर्भाग्य से, दिन-दिन खाने-पीने की चीजें महँगी होती गईं। उसका ब्यौरा सुनिए—

१७६० ईसवी में चावलों का भाव आठ आने मन से डेढ़ रुपया मन तक था, पर वही चावल १८३७ में डेढ़ रुपया मन से दो रुपये मन तक हो गया!

१७६० में जो नमक १।) मन के भाव से बिकता था वही १८०० ईसवी में ५) मन तक हो गया!

सरसों के तेल को लीजिए। १७६० ईसवी में उसका भाव ३।) मन था; १७८० में ५) मन हो गया और १८३७ में वह इतना महँगा हो गया कि ७) मन तक बिकने लगा!

इसके सिवा पहले एक और बात यह थी कि मू कर बहुत कम था।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ढाके में आकर सब कपड़े व्यवसायियों से थोक कपड़ा खरीदना शुरू किया। य तक कि सारा माल उसी की मुट्ठी में आ गया। फि उसने उसे मनमाने दामों पर बेचना शुरू किया। इस उसने उस कपड़े पर बहुत नफा खाया।

उन दिनों भारत का कपड़ा विलायत में बहुत पसन्द किया जाता था। इसीलिए यहाँ के कपड़े की रफ्त ज्यादा होती थी। पर भारत के अभ्युदय को विलाय वाले न देख सके। उन्होंने १७०० ईसवी में एक कानू बना डाला। उस कानून में नियम किया गया कि भा से कपड़ा न मँगाया जाय। मलमल, आबेरवाँ, तंजे जामदानी और डोरिया कपड़ों का तो उन्होंने बिलकु ही 'बायकाट' (बहिष्कार) कर दिया था। ढाके क मसलिन भी विलायत में बहुत जाता था। उसको उन्हों बिलकुल तो बन्द नहीं किया, परन्तु उस पर १५) सैक महसूल लगा दिया!

विलायत में, पहले पहल, सन् १७९३ में, कप बुनने की कल जारी हुई। तब विलायत वाले अपने लि अपने ही देश में कपड़ा तैयार करने लगे। तब से उन्हों भारत से कपड़ा लेना प्रायः बंद कर दिया।

जब ढाके का माल बाहर जाना बन्द हो गया त धीरे-धीरे उसका व्यवसाय कम हो गया। १८०० ई में ढाका में जन-संख्या दो लाख थी, पर ३७ ही वर्ष बा अर्थात् १८३७ में, सिर्फ ६८ हजार ही रह गई! बात यह हुई कि कारबार मंदा पड़ जाने से वहाँ के कु जुलाहे खेती करने लगे। कुछ भाग गये। बेचारे क ही क्या?

अपने देश के गिरे हुए व्यापार-धन्धे को फिर से ज के लिए हमें तन, मन, धन से प्रयत्न करना चाहिए। वाकशूरता में हम पास हो गये। अब क्या पास होने प भी, प्रशंसापत्र मिलने पर भी, फिर उसी क्लास में रहेंगे? नहीं। अब कर्मशूरता की क्लास में भ होना चाहिए।

प्रकाशक श्री० एम० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रकाशित हो गया

अदृश्य शत्रु

प्रकाशित हो गया

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की बसों ने ५० लड़के-लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक लाश दिखाई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रेल की पटरियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पास सुहागा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपाही गायब कर दिये गये। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उनका कुछ पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्रामक शत्रु अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उनकी स्मृति भंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्रों ने शत्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु किसी कारण पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब का मनोरंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं। पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुपया

अधूरा आविष्कार

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

श्रीभगवत्तत्त्व

श्री स्वामी हरिहरानन्दजी सरस्वती (करपात्री)

इस ग्रन्थ में श्री स्वामी करपात्रीजी ने वेदान्तरससार, निर्गुण या सगुण, श्रीकृष्ण जन्म और बालक्रीड़ा, व्रजभूमि, श्रीरासलीला रहस्य, भगवान् का मंगलमय-स्वरूप, श्रीरामभद्र का ध्यान गणपति माहात्म्य, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत धर्म के गूढ़ तत्त्वों की व्याख्या करके जनता का अमूल्य उपकार किया है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने से धर्म का तत्त्व समझ में आ जाता है। अच्छे पुष्ट कागज पर छपी ७०० से अधिक पृष्ठों की इस कल्याणकारी पुस्तक का मूल्य केवल ३) है जो पुस्तक के आकार को देखते हुए कुछ भी नहीं है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा लि. इलाहाबाद

दृढ़ प्रतिज्ञ
२.२५ न०पै०

समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्ने
१.७५ न०पै०

गुलीवर की यात्रायें
२.२५ न०पै०

चन्द्रलोक की यात्रा
१.७५ न०पै०

भूगर्भ की यात्रा
मूल्य १.७५ न०पै०

उड़ते प्रेतात्मे
२ रुपये

चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद
२.७५ न०पै०

गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० प्रयाग
२.२५ न०पै०

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

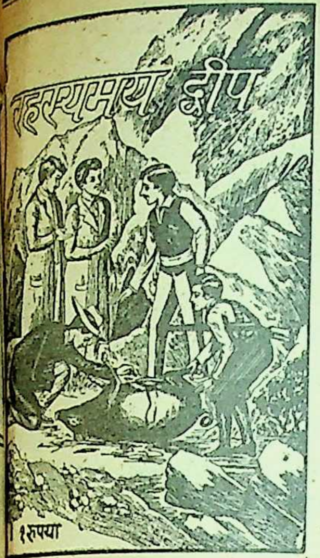
रहस्यमय द्वीप
१ रुपया

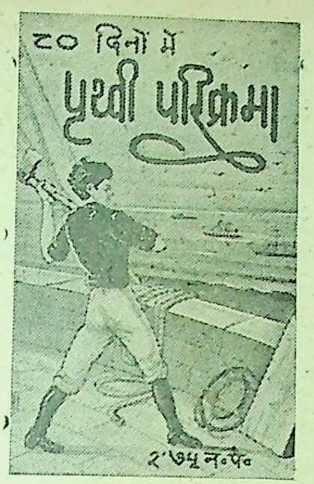
८० दिनों में
पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न.पै.

आकाश में युद्ध
२ रुपये

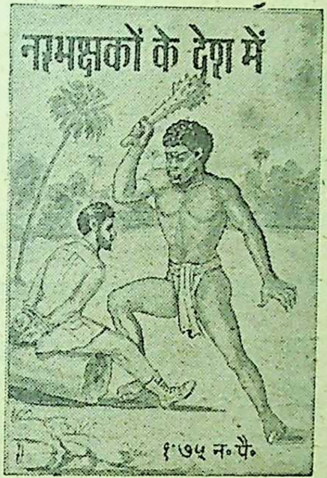
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न.पै.

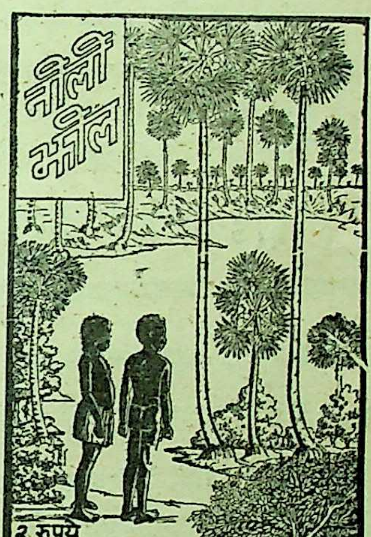

स्विस परिवार
राबिन्सन
प्रेस, (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि., इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न.पै.

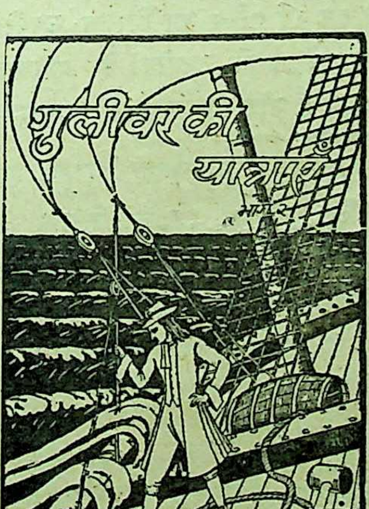
गुलीवर की
यात्राएँ
भाग २
२.२५ न.पै.

मास्टर मैन रेडी
२.७५ न.पै.

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

दृढ़प्रतिज्ञ
२.२५ न.पै.

समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्न
१.७५ न.पै.

गुलीवर की यात्रायें
२.२५ न.पै.

चन्द्रलोक की यात्रा
१.७५ न.पै.

भूगर्भ की यात्रा
इ.प्र.
मूल्य १.७५ न.पै.

उड़ते स्वातिथि
रुपये

चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद
२.७५ न.पै.

गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० प्रयाग
२.२५ न.पै.

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

कि शो र सी री ज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

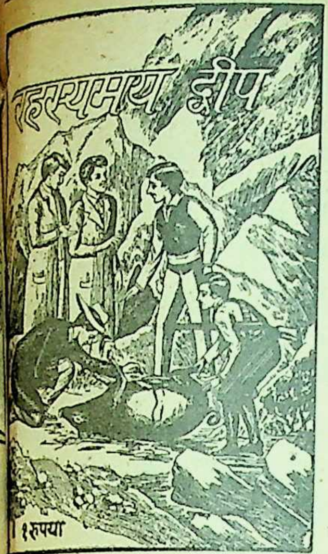
रहस्यमय द्वीप
१ रुपया

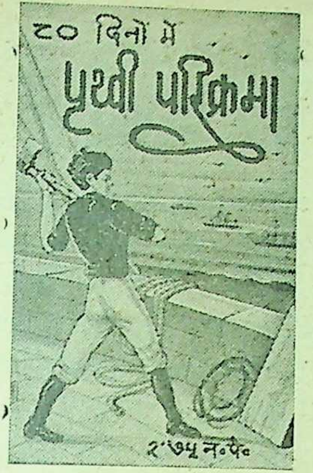
८० दिनों में
पृथ्वी परिक्रमा
२.७५ न.पै.

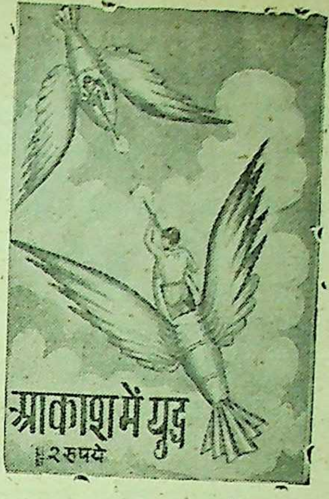
आकाश में युद्ध
२ रुपये

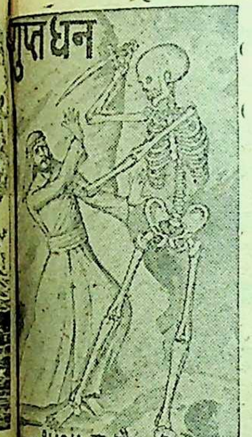
गुप्त धन
१.७५ न.पै.

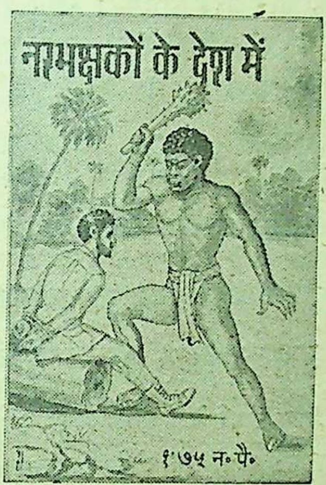
नरभक्षकों के देश में
१.७५ न.पै.

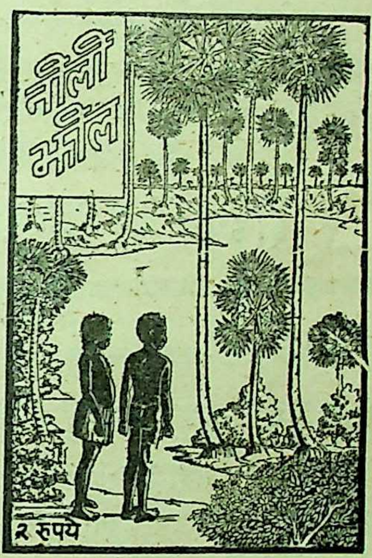

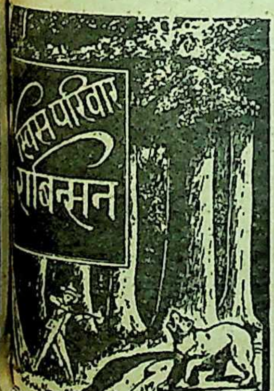
स परिवार
राबिन्सन
प्रेस, (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद
मूल्य २.२५ न.पै.

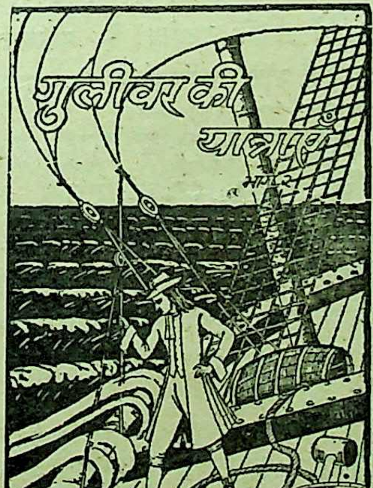
गुलीवर की
यात्राएँ
भाग २
२.२५ न.पै.

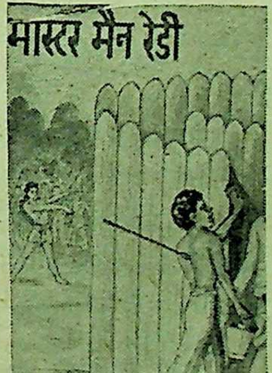
मास्टर मैन रेडी
२.७५ न.पै.

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

अँगरेजी में

In English by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी हो सके है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

स्थायी महत्त्व की पुस्तकें

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की पुस्तकें

प्रतिष्ठान	**परिव्राजक की प्रजा**	**युग और साहित्य**	**संचारिणी**	**कवि और काव्य**
इस पुस्तक से आप ुग, जीवन और ाहित्य का अध्ययन र सकेंगे। मू० ३)।	एक साहित्यिक की आत्मकथा, पृ० २७८ मू० ३ रु० ५० नये पैसे।	तेरह आलोचनात्मक निबंधों में हिन्दी साहित्य का इतिहास दिया है। पृ० २५७, मू० ३·२५।	इसमें भक्तिकाल से आजतक का साहित्यिक मर्मस्पर्श है। पृ० २५७, मू० २·५०।	काव्य के गुण-दोष ही उपयोगी विषयों का इसमें विवेचन है। पृ० २२, मू० २)।

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की पुस्तकें

उड़ते पत्ते	**रानी दुर्गावती**	**हवा का रुख**	**धरती आकाश**	**अपना-पराया**
गुलाबी रोमांस की पृष्ठभूमि पर सामाजिक उपन्यास पृ० २०९, मू० २·५०।	वीररस से ओत-प्रोत एक खण्ड-काव्य पृ० १००; मू० १·२५।	इसमें उपेक्षितों को ऊँचा उठाने वाले मार्मिक चित्र हैं। पृ० १४४ मू० १·५०।	पन्द्रह किशोरोपयोगी निबन्धों का सचित्र संग्रह, पृ० १३४; मू० १·५० नये पैसे।	एक रोचक उपन्यास पृ० २२८; मू० २·५० नये पैसे।

रंगीन डोरे—'मस्त' जी का यह सातवाँ मौलिक कहानी-संग्रह है। मूल्य २·२५ नये पैसे।

श्रीमती हीरादेवी की पुस्तकें

मधु-मास	**रंगीन पर्दा**	**बुन्देलखंडी लोकगीत**	**गल्प-गवाक्ष**
गेयगीतों और सरस कविताओं का संग्रह, पृ० १२०; मू० १·५० नये पैसे।	सामाजिक समस्याओं पर नौ विचार-पूर्ण एकांकी, पृ० १४४; मू० १·५० नये पैसे।	विभिन्न अवसरों पर गाये जानेवाले बुंदेलखंडी लोकगीतों का संकलन। मू० ५० नये पैसे।	बारह कथाकारों की मनोरंजक कहानियों का संग्रह। पृ० १९२; मू० १·५० नये पैसे।

श्री रामलालसिंह एम० ए०, साहित्यरत्न की पुस्तकें

समीक्षा-दर्शन भाग १, २	**कामायनी-अनुशीलन**
ये पुस्तकें गंभीर अध्ययनकर्ताओं के अतिरिक्त सामान्य समीक्षा के पाठकों के लिए भी बहुत उपयोगी हैं। प्रथम भाग पृ० ३८१, मूल्य ४), द्वितीय भाग पृ० २९३ मूल्य ६) छः रुपये।	'प्रसाद' जी की 'कामायनी' के ऐतिहासिक, साहित्यिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक आदि पक्षों की मार्मिक ढंग से इस पुस्तक में प्रामाणिक विवेचना की गई है। पृष्ठ ३१६, मूल्य ४) चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नरपतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

जासूसी गल्पगुच्छ
निशीथकुमार राय
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

निकल गया

प्रस्तुत हो गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यात-नामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

दो काव्य-पुष्प

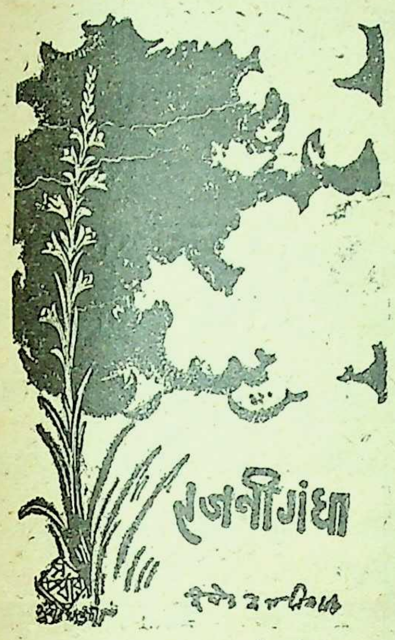

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्दविभोर हो उठेंगे।

मूल्य २·५० नये पैसे

श्री देवेन्द्रजी हिन्दी-साहित्य के लब्ध-ख्याति कवि हैं। अन्तस्तल की कोमलतम अनुभूतियों एवं प्रकृति के मर्मस्पर्शी चित्रों की सफल व्यंजना उनकी अमर कृति 'रजनीगंधा' के माध्यम से हुई है। इसकी कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।

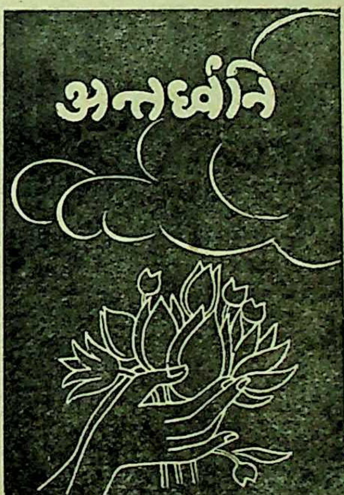

श्री देवेन्द्रजी की दूसरी अमर कृति अन्तर्ध्वनि भी प्रकाशित हो चुकी है। इसमें कवि सफल चित्रकार की भाँति रागात्मक कल्पना की तूलिका से चित्र खींचकर असीम एवं चिरन्तन सौन्दर्य के मधुर स्पन्दनों का अनुभव कराता है।

हिन्दी साहित्य की अनुपम देन के रूप में प्रस्तुत श्री देवेन्द्रजी की 'रजनीगंधा' तथा 'अन्तर्ध्वनि' का रसास्वादन करना हिन्दी प्रेमियों के लिए समीचीन है। मूल्य २·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

श्रीमद्भगवद्गीता

भाषा टीका सहित

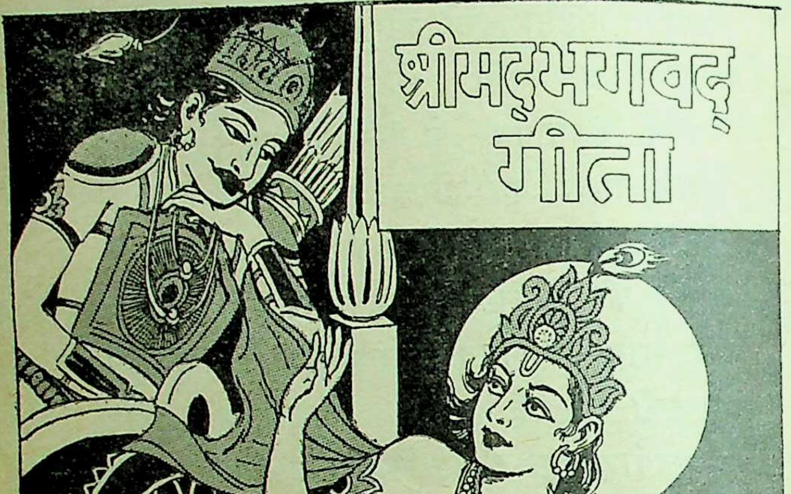
श्रीमद्भगवद् गीता
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) लिमिटेड
मूल्य ८ आना

गीता हिन्दुओं का इतना प्रसिद्ध ग्रन्थ है कि सारा संसार इसका आदर करता है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को रणक्षेत्र में उपदेश दिया था।

अपने बड़े बूढ़ों से युद्ध करना ठीक न समझकर जब अर्जुन ने हथियार डाल दिये तब श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता का ज्ञान देकर उसकी आँखें खोल दीं। ज्ञान पाकर अर्जुन ने युद्ध कर कर्त्तव्य का पालन किया था। उसी ज्ञान को इस पुस्तक में सरल भाषा में पढ़िए। साथ में मूल पाठ भी दिया गया है।

सजिल्द प्रति का मूल्य केवल आठ आने।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

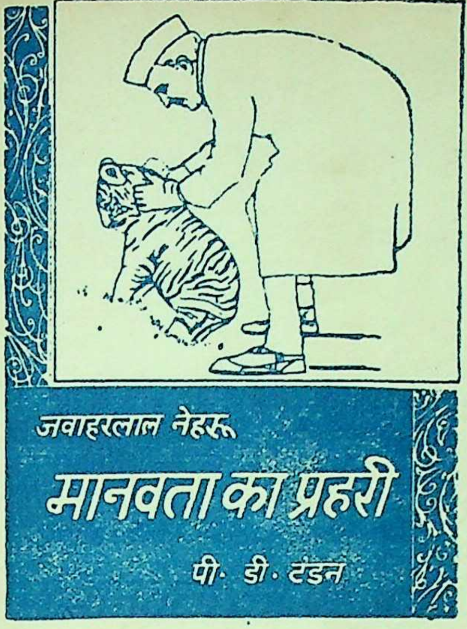

भारत के प्राण
पण्डित जवाहरलाल नेहरू
की
७४ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य
में
हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्राय: अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १।।) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८० पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१·४९ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ—

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्याधु आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-बिन्दुओं का स्पष्टत: दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुत: इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का **हीरक** जयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिलम की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और मान-पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथिली-शरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इंडियन प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबंध में संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय गोविन्ददास श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती

दिसम्बर १९५७

M208

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', द्वारा संकलित ।

प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-पाठकों के लिए ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें उन शब्दों का संग्रह हो, जो भारतवर्ष के विभिन्न हिन्दीभाषी प्रान्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। इस कोश को तैयार करते समय इस तथ्य का पूर्णतः ध्यान रक्खा गया है और अर्थ-विचार करते समय जीवित भाषा के अनेक शब्दों के जो नये अर्थ समय-समय पर प्रयुक्त होने लगते हैं, उनका समावेश भी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'मत' शब्द सभी हिन्दी कोशों में मिलेगा; किन्तु उसका समानार्थी 'वोट' इने-गिने कोशों में ही दिया गया है। इस प्रकार के हिन्दी शब्दों के अँगरेजी समानार्थी शब्दों का बाहुल्य इस कोश में है।

इस कोश में प्रान्तीय भाषाओं के प्रमुख शब्दों का समावेश यथा-स्थान किया गया है और प्रचलित मुहाविरे भी दिये गए हैं। कहावतों और मुहाविरों से बने यौगिक पद भी इसमें संकलित किए गए हैं। इस कोश के अन्त में भारतीय संविधान-परिषद्-द्वारा स्वीकृत हिन्दी और अँगरेजी शब्दों के पर्याय की दो शब्दावलियाँ भी दे दी गई हैं। इससे इस कोश की उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

किसी भी शब्द का मानक रूप समझ लेने पर, व्याकरण की दृष्टि से, यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि वह कौन-सा शब्दभेद है। इसलिए संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण, क्रिया अथवा अव्यय का निर्देश भी इस कोश में प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान कर दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक शब्द के साथ लिंगभेद देकर, कोश का उपयोग करनेवालों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी
शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका
मूल्य १४) चौदह रुपए है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

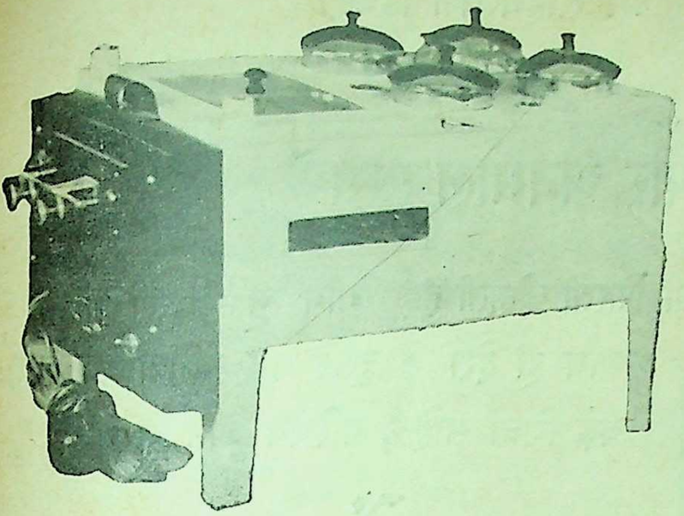

सीको पैराफीन इम्बेडिंग बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाऐंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,
इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

ग्राहकों से निवेदन

बहुधा यह देखा जाता है कि हमारे कृपालु ग्राहक अपना पुनरनवीकरण चन्दा मनीआर्डर से भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर मनीआर्डर कूपन पर लिखना भूल जाते हैं। फलस्वरूप उनका नाम नये ग्राहकों की सूची में दर्ज हो जाता है और उनके पिछले ग्राहक नम्बर पर उनके पास पुनरनवीकरण चन्दे के लिए वी० पी० अलग से चली जाती है। वी० पी० वापस आती है। इस प्रकार हमें वी० पी० पोस्टेज व्यय की हानि उठानी पड़ती है।

इस व्यर्थ की हानि से बचने के लिए हम अपने ग्राहक को एक मास पूर्व चन्दा समाप्त होने की अग्रिम सूचना दिया करेंगे। ग्राहकों से निवेदन है कि सूचना प्राप्त होते ही हमें मनीआर्डर द्वारा अपना पुनरनवीकरण चन्दा भेजने की कृपा करें और ग्राहक संख्या, पत्रिका भेजने की अवधि आदि आवश्यक सूचनायें अवश्य दें।

व्यवस्थापक पत्रिका विभाग—

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

कविवर श्री सोहनलाल द्विवेदी

की

दो और अनमोल पुस्तकें

गांधीजी के जीवन की चलती फिरती बोलती हुई रंगीन झाँकी की झलक के साथ ही देश के दूसरे बड़े नेताओं का, रंगीन बड़े चित्रों सहित, परिचय प्राप्त करने के लिए

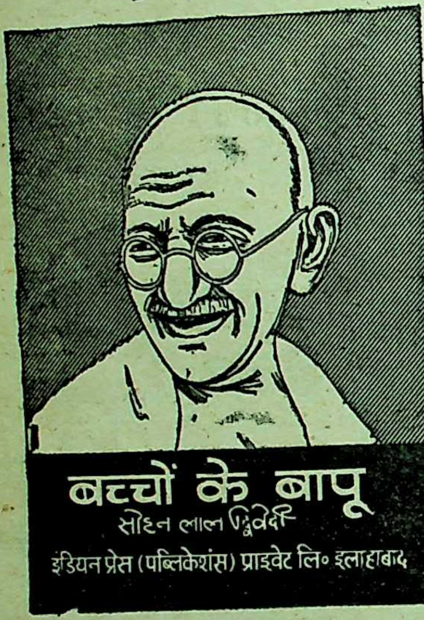
बच्चों के बापू
सोहन लाल द्विवेदी
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

बच्चों के बापू

अपने होनहार नन्हे मुन्नों को अवश्य दीजिये

इतना ही क्यों

मूल्य २) दो रुपये

नेहरू चाचा के बचपन से लेकर आज तक के बड़े-बड़े रंगीन चित्रों से सजाई गई ललित पदों में उनकी जोशीली कहानी जानने के लिए

नेहरू चाचा

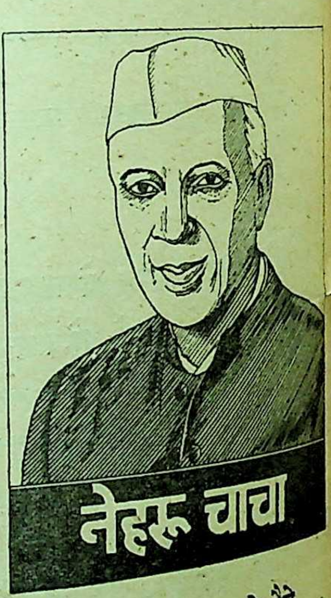

मूल्य २·२५ नये पैसे

नामक दूसरी बच्चों की पुस्तक भी बड़े आकार प्रकार में प्रकाशित हो गई।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

भारत सरकार से रजिस्टर्ड

सफेद दाग की दवा मूल्य ६)
विवरण
मुफ्त मंगावें

एक्झिमा (उकवत, खर्जूआ, विर्चाचिका) व्याधि पर यह परीक्षित दवा है। मू० ५) रु० डाक खर्च १।।) रु०।

दमा श्वास गुणकारी औषधि कीमत ५) रु० डाक खर्च १।।) रु०

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

ज्ञानवृद्धि के लिए बच्चों का प्यारा

बालसखा

अपने बच्चों को पढ़ायें

वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० न० पै०

नया प्रकाशन अभी प्रकाशित हुआ

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का सुविस्तृत जीवनचरित)—तीन खण्डों में; भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य स्वामी सारदानन्दजी द्वारा मूल बंगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत जीवनी का हिन्दी अनुवाद। डबल डिमाई आकार; आर्टपेपर के नयनाभिराम जैकेट सहित।

प्रथम खण्ड :—('पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन' एवं 'साधकभाव')—१४ चित्रों से सुशोभित; पृष्ठसंख्या ४७६; मूल्य रु० ९

द्वितीय खण्ड :—('गुरुभाव—पूर्वार्ध' एवं 'गुरुभाव—उत्तरार्ध')—७ चित्रों से सुशोभित; पृष्ठसंख्या ५१०; मूल्य रु० १०

तृतीय खण्ड :—('श्रीरामकृष्णदेव का दिव्यभाव और नरेन्द्रनाथ')—७ चित्रों से सुशोभित; पृष्ठसंख्या २९६; मूल्य रु० ७

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य

श्रीरामकृष्ण वचनामृत प्र० भा० ६·५०; द्वि० भा० ६·५०; तृ० भा० ७·००
माँ सारदा (श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी) ४·५०
श्रीरामकृष्ण और श्री माँ—स्वामी अपूर्वानन्द कृत ३·४०
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ६·००
विवेकानन्दजी की कथाएँ (चुने हुए संस्मरण) १·६०
धर्मप्रसंग में स्वामी शिवानन्द (श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य द्वारा वार्तालाप) प्र० भा० २·७५; द्वि० भा० २·७५
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ०·८७

स्वामी विवेकानन्दकृत :—

वर्तमान भारत	०·५०	भारतीय नारी	१·३०
धर्मविज्ञान	२·००	धर्मरहस्य	१·२५
विविध-प्रसंग	१·१२	चिन्तनीय बातें	१·००

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ५·००

हमारे हिन्दी प्रकाशनों के सम्पूर्ण सूचीपत्र के लिए लिखिये

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपूर—१

प्रकाशित हो गया **प्रकाशित हो गया**

अदृश्य शत्रु

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की वसों ने ५० लड़के-लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक लाश दिखाई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रेल की पटरियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पास सुहागा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपाही गायब कर दिये गये। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उनका कुछ पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्रामक शत्रु अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उनकी स्मृति भंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्रों ने शत्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु किसी कारण पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब का मनोरंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं। पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुपया

अधूरा आविष्कार

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

ले०—जेराल्ड वेन्ट

परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग

अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

अंगरेजी में

In English **by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)**

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक ! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

जी तोड़ मेहनत करें

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

DA63/F16

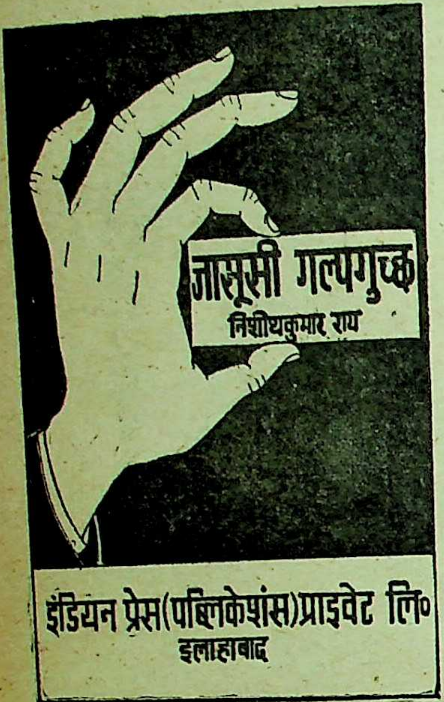
जासूसी गल्पगुच्छ
निशीथकुमार राय
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया

निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यात-नामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

कविवर देवेन्द्रदत्त तिवारी की दो काव्य कृतियाँ

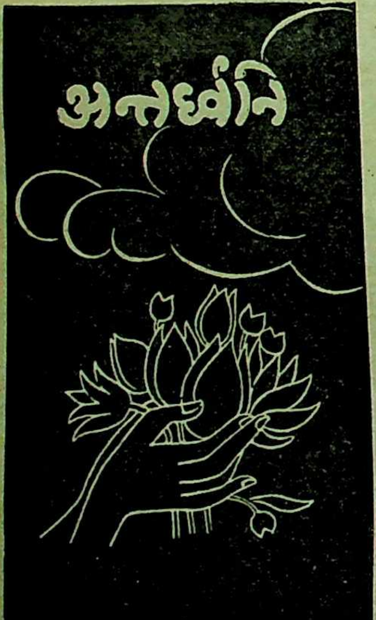

"अन्तर्ध्वनि" की कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।

"रजनीगंधा" भाषा की प्रभविष्णुता भावों की मौलिकता और कल्पना के साथ सत्यं शिवं, सुंदरं के दर्शन कराती है।

मूल्य २·५० नये पैसे

मूल्य २·५० नये पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद, तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए पद्मभूषण, साहित्यवाचस्पति सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा क्या कहती हैं :—

ज्योतिष शास्त्र ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों के स्वरूप संचार आदि से सम्बन्ध रखनेवाला शास्त्र है। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि प्राचीन वाङमय में प्राप्त उक्त शास्त्र विषयक सामग्री प्रमाणित करती है कि भारतीय मनीषा आज से २८००० वर्ष पूर्व खगोल, ज्योतिर्विद्या से परिचित ही नहीं थी, उसने उक्त विद्या के सांगोपांग वर्णन को ज्योतिष शास्त्र के रूप में स्थायित्व भी दिया था।

वर्तमान अति वैज्ञानिक युग में भी, ज्योतिष्कों के जीवन पर प्रभाव के विषय में शोध कम हुई है, परिणामतः अन्य वैज्ञानिक शोधों तथा उनकी उपलब्धियों में विश्वास रखनेवाले भी इस महत्त्वपूर्ण विद्या के प्रति सहज उपेक्षा भाव रखते हैं।

ज्योतिषाचार्य प्रो० प्रद्युम्ननारायण सिंह ने इस शास्त्र के गणित तथा फलित दोनों पक्षों का अध्ययन कर उसमें विलक्षण सफलता प्राप्त की है। इस दिशा में उनकी परम्परागत मान्यताएँ ही नहीं, नूतन उपलब्धियाँ भी हैं। वे शब्द की उस मंत्र शक्ति के आख्याता भी हैं, जो भारतीय आस्था की परम्परा में नवीन कड़ियाँ जोड़ती आयी हैं।

अतीत में घटित तथा भविष्य में घटनेवाले वृत्तों के सम्बन्ध में उनके कथनों की सत्यता ने मुझे इतना प्रभावित किया है कि यदि जीवन में कुछ अधिक अवकाश होता तो मैं स्वयं ज्योतिष्कों की आलोकलिपि पढ़ने का क्रम आरम्भ करती।

प्रो० प्रद्युम्ननारायण सिंह जी की साधना गम्भीर से गम्भीरतम और सिद्धि सर्वमंगलविधायिनी हो, ऐसी कामना है। प्रयाग १४-५-६३ महादेवी

तुलना न कीजिए ....

इससे सदैव निराशा होती है। जब आप मेट्रिक बाट व नापों की पुराने बाट जैसे कि सेर आदि से तुलना करते हैं तब भी यही होता है। ऐसा करने से आपका समय नष्ट होता है और लेन-देन में अक्सर नुकसान रह सकता है।

उचित और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

मेट्रिक बाटों का प्रयोग कीजिए

DA 63/262

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकल्पन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र

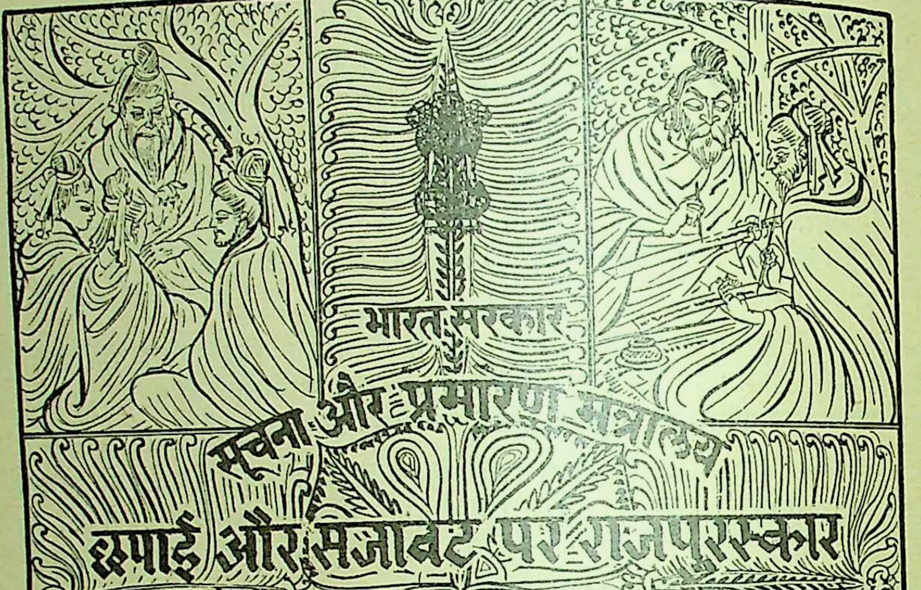

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

छपाई और सजावट पर राजपुरस्कार

श्रेष्ठता प्रमाणपत्र

१९६२

दैनिकेतर पत्र, वार्षिक पत्रों के अतिरिक्त (देशी भाषाएं) पर

विज्ञान जगत (हिन्दी)

इण्डियन प्रेस प्रा॰ लि॰, इलाहाबाद को

- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा॰ लि॰ इलाहाबाद

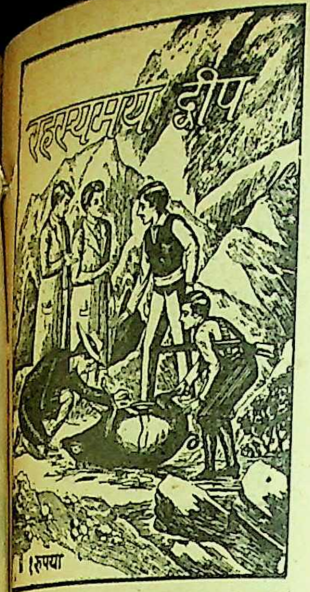
रहस्यमय द्वीप
१ रुपया

पृथ्वी परिक्रमा
२·७५ न॰ पै॰

आकाश में युद्ध
२ रुपये

गुप्त धन
१·७५ न॰ पै॰

नरभक्षकों के देश में
१·७५ न॰ पै॰

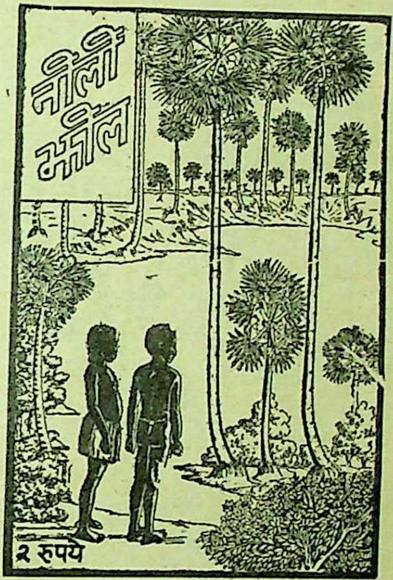

स्विस परिवार रॉबिन्सन
प्रेस, (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद
मूल्य २·२५ न॰ पै॰

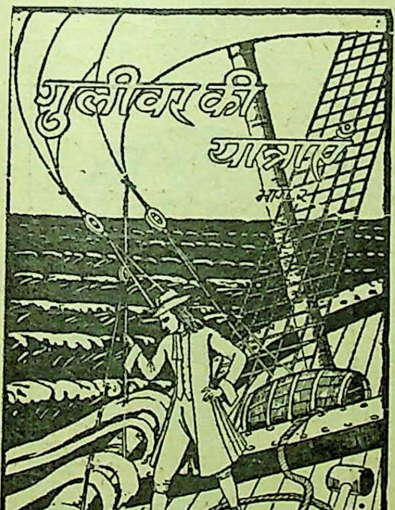
गुलीवर की यात्राएँ
२·२५ न॰ पै॰

मास्टर मैन रेडी
२·७५ न॰ पै॰

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-
के अनुवाद डा॰ नवलबिहारी मिश्र के तत्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा
इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा लि इलाहाबाद

दृढ़प्रतिज्ञ
२.२५ न०पै०

समुद्र-गर्भ की यात्रा
जूल्स वर्ने
१.७५ न०पै०

गुलीवर की यात्रायें
२.२५ न०पै०

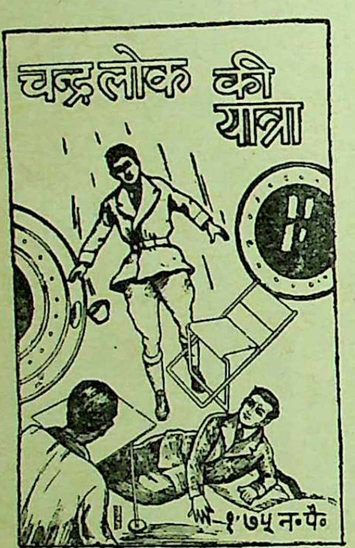
चन्द्रलोक की यात्रा
१.७५ न०पै०

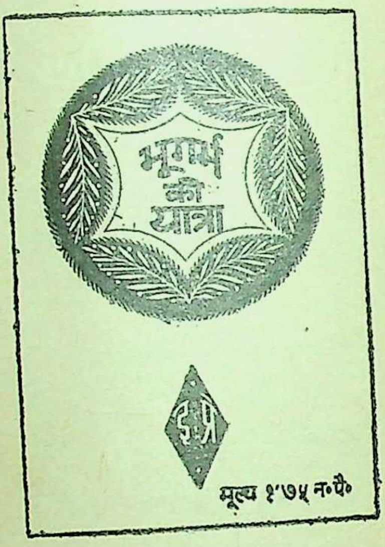
भूगर्भ की यात्रा
इं०प्रे
मूल्य १.७५ न०पै०

चन्द्रलोक की परिक्रमा
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद
२.७५ न०पै०

गुब्बारे पर अफ्रीका-यात्रा
मूल्य २ रुपये
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

द्वीप का रहस्य
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, प्रयाग
२.२५ न०पै०

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

रामचरितमानस
(मूल)
इंडियनप्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

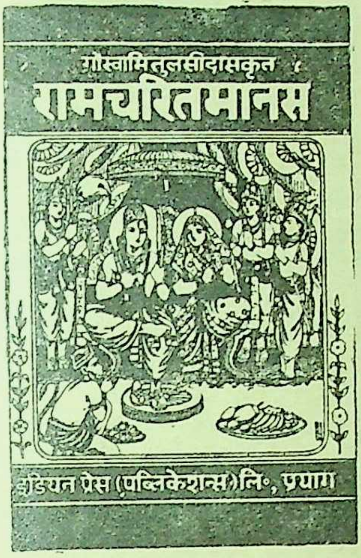
गोस्वामितुलसीदासकृत
रामचरितमानस
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि०, प्रयाग

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

सचित्र
रामचरितमानस

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

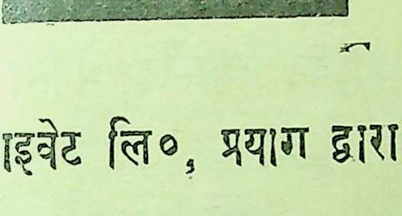
सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न० पै० प्रति भाग है।

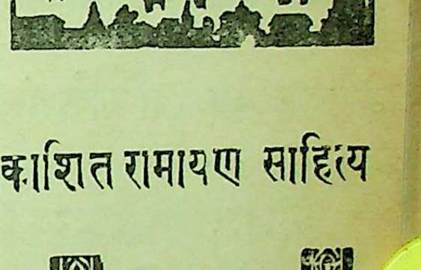
गोस्वामी तुलसीदासकृत
कुंडलिया रामायण
सत्यनारायण पाण्डेय

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

प्रिन्सिपल श्री केदारनाथ गुप्त एम० ए० ने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस और विनयपत्रिका आदि ग्रंथों से अमूल्य रत्नों को ढूँढ़कर इसमें एकत्र किया है। मूल्य १·५०

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

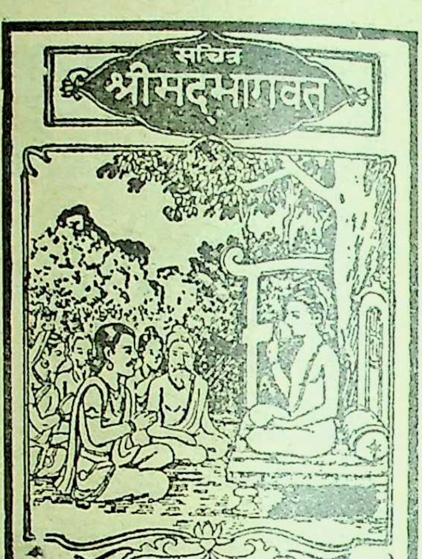

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाष के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित

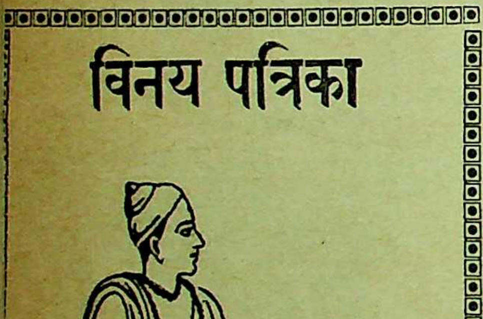

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)

सचित्र महाभारत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

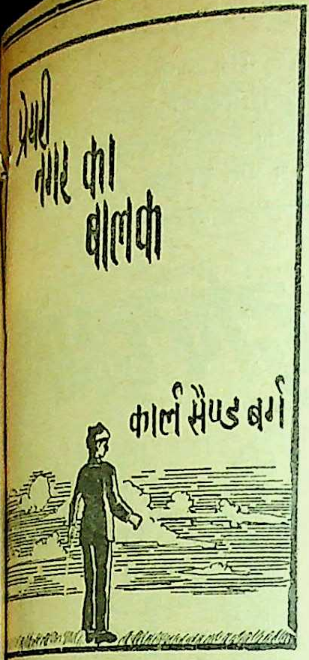
प्रेयरी नगर का बालक
कार्ल सैण्ड बर्ग

—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे
प्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग
त्यकाल का हृदयग्राही वर्णन ।

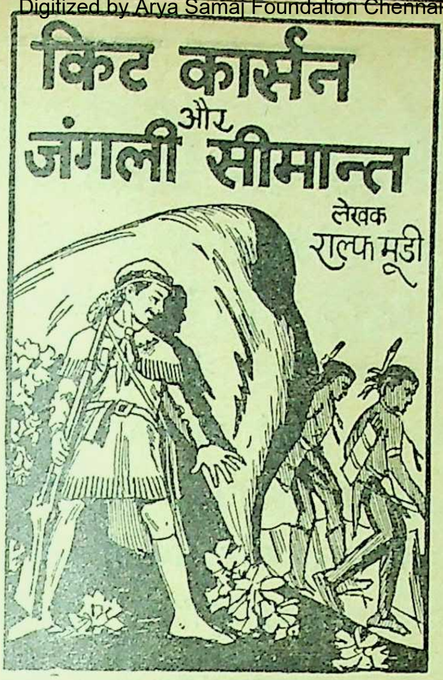
किट कार्सन और जंगली सीमान्त
लेखक राल्फ मूडी

अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क
जीवन का ललित वर्णन।

बड़े वन में छोटा घर
लॉरा इंगल्स विल्डर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लेखिका के बाल्यजीवन की सुन्दर
कहानी में उस समय के सामा-
जिक जीवन का दिग्दर्शन ।

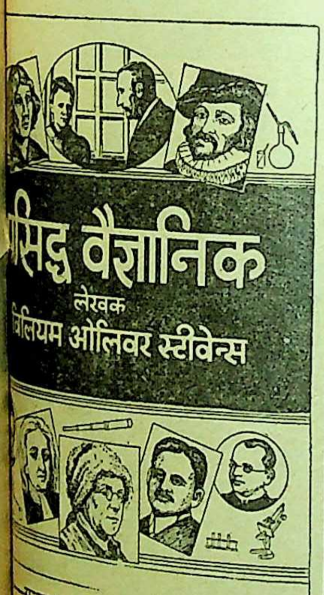
प्रसिद्ध वैज्ञानिक
लेखक
विलियम ओलिवर स्टीवेन्स

सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
त वैज्ञानिकों के अनुसंधानों
जीव चित्रण उनके जीवन-
चरित्रों सहित ।

अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी

अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली
ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या
हैलेन कैलर की कहानी ।

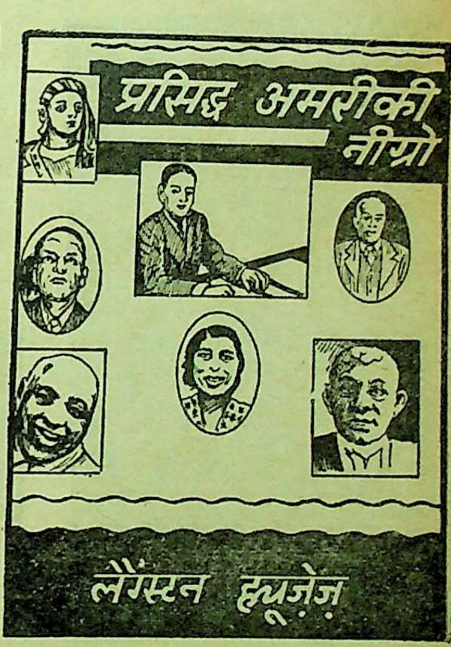
प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो
लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़

अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की
जीवन-कथाएँ ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पसे।

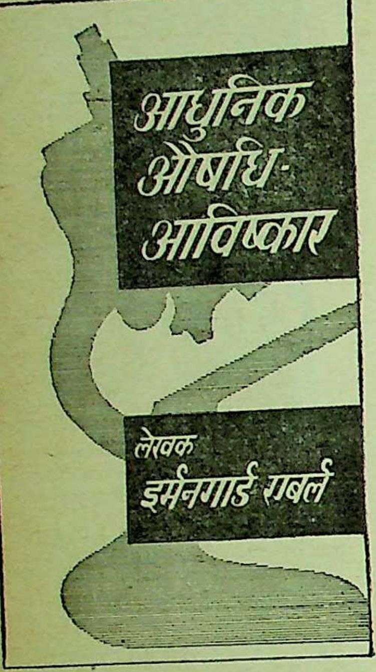
आधुनिक औषधि-आविष्कार
लेखक
इर्मनगार्ड रबर्ले

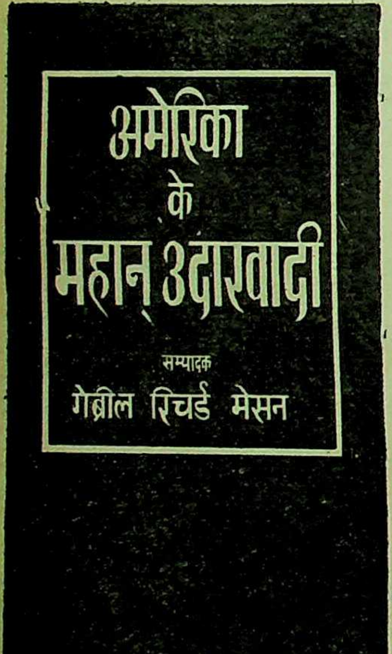
अमेरिका के महान् उदारवादी
सम्पादक
गेब्रील रिचर्ड मेसन

१२ महान अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

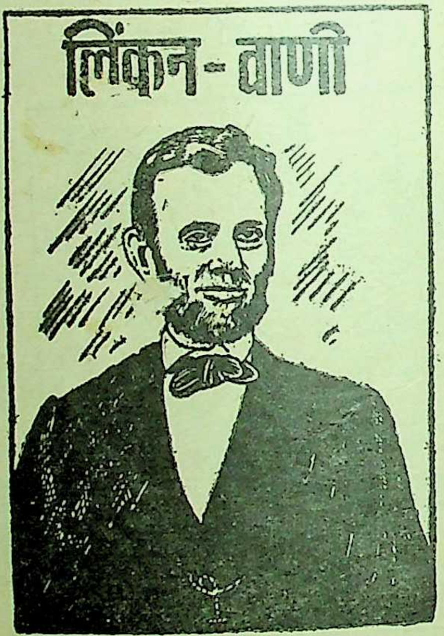

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन
अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

दृष्टिदात्री
मारिस फ्रैंक तथा ब्लेक क्लार्क

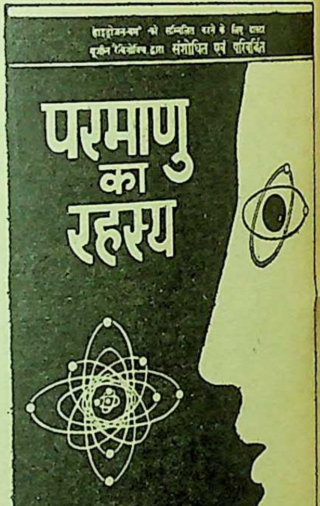
परमाणु का रहस्य
सेलिग हेक्ट

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·४९ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ—

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्यधिक आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-विन्दुओं का स्पष्टत: दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुत: इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें [illegible] भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और मान-पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथिलीशरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इंडियन प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबंध में संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय सेठ गोविन्ददास श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ५०५

२—पंचतंत्र और हितोपदेश की विश्व-विजय—डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्० .. ५१३

३—'जैसलमेर' आदि का 'मेर' शब्द—पंडित किशोरीदास वाजपेयी ५१८

४—गाहा सत्तसई से ग्राम्यजीवन के चित्र—श्री विश्वनाथ पाठक .. ५२०

५—अरे ओ वज्रादपि कठोर!—प्रो० कुबेरनाथराय एम० ए० .. .. ५२३

६—विभिन्न देशों में क्रान्ति—पं० वेंकटेशनारायण तिवारी ५२८

७—प्रेम-संवाद (कविता)—अनु० श्री रसिकबिहारी ५३०

८—लद्दाख (१)—मेजर सीताराम जौहरी ५३१

९—तमिल साहित्य में राष्ट्रीयता एवं प्रादेशिकता की भावना—डा० उदयनारायण तिवारी ५३९

१०—राहुल के साथ तिब्बत के अभियान में (७)—श्री फेनी मुकर्जी ५४२

११—पधारो! (कविता)—अनु० श्री श्रीकान्त झा ५४९

१२—गंगाजल पवित्र क्यों—एक वैज्ञानिक अध्ययन—श्री कौशलेन्द्रमोहन तिवारी ५५०

१३—विद्यालय का विदा-गीत—श्री गौरीशंकर गुप्त ५५१

१४—भ्रमरानन्द का पत्र—'अवर इंग्लिश हैरिटेज'—श्री भ्रमरानन्द परिव्राजक .. ५५२

१५—हिन्दी और दक्षिणवासी—श्री टी० एस० कन्नन एम० ए० .. .. ५५५

१६—सूरदास नाम के अनेक भक्त, कवि और गायक—श्री प्रभुदयाल मीतल .. ५५८

१७—आँगनों के बीच—नौकरों का नाटक ५६१

१८—अपनी बीबी, परायी बीबी—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ५६४

१९—मनीआर्डर—श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी .. ५६६

२०—भा तो-क ठाभरण ५६८

२१—व्रज-माधुरी (५) ५६९

२२—मनोरंजक संस्मरण ५७०

२३—१९०७ की सरस्वती—रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय—बाबू व्रजनन्दनसहाय ५७१

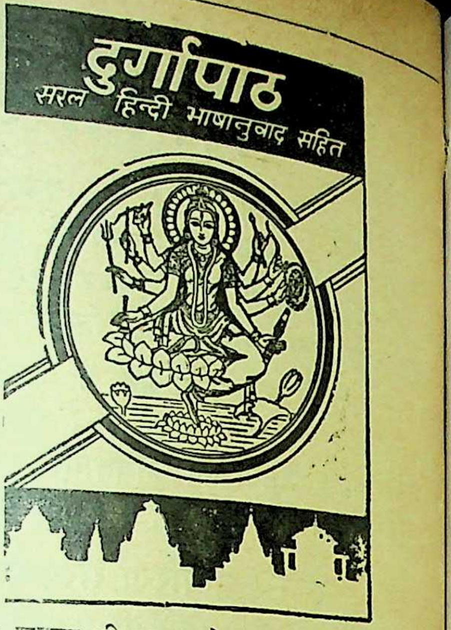

राय साहब श्री राधा मोहन लाल बी० ए० रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या क
अपूर्व जीवनचरित **श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।**
हिन्दी अनवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। व एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है। मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महारानी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस),
प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

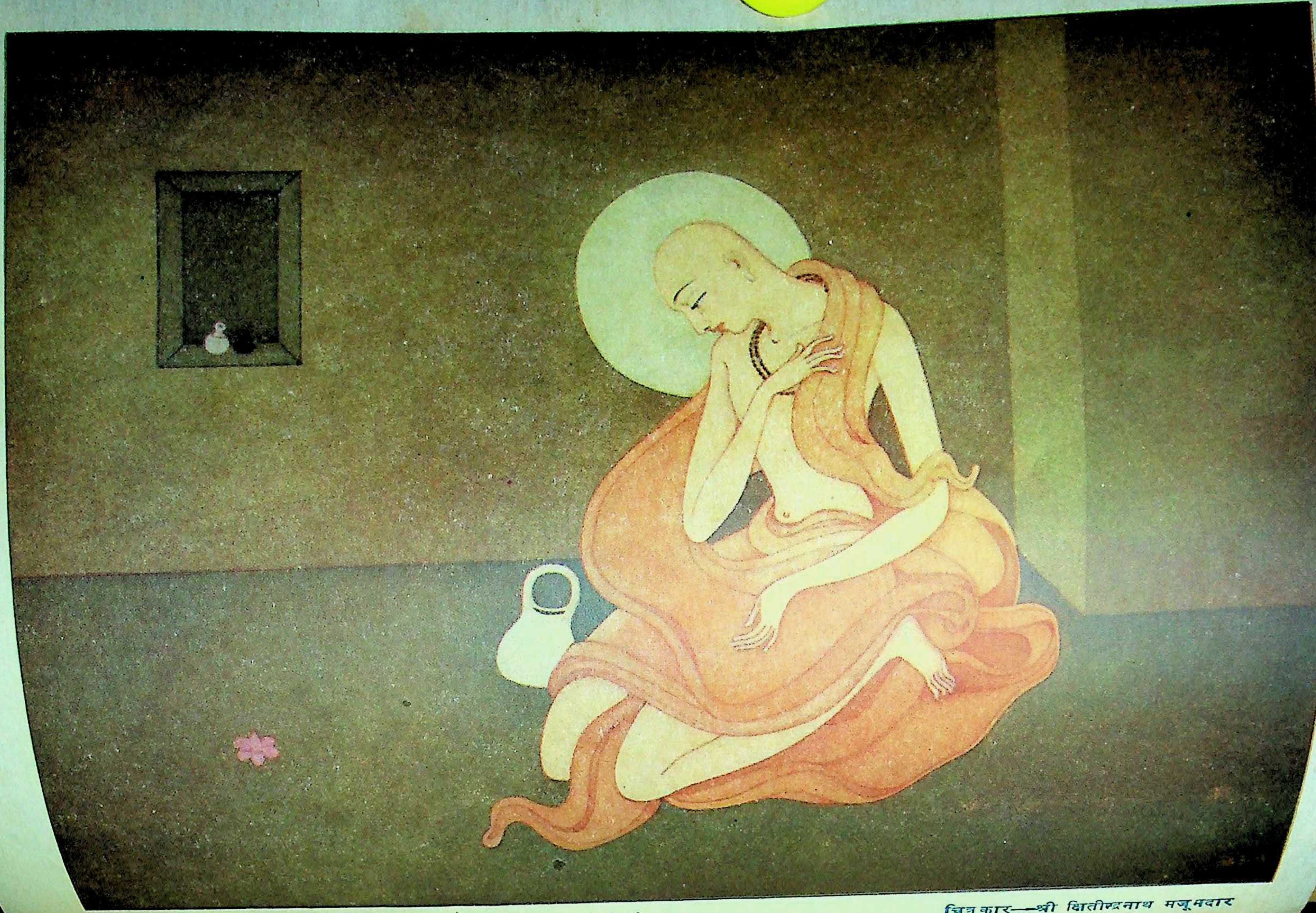

गम्भीरा में श्री चैतन्य महाप्रभु

चित्रकार—श्री क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार

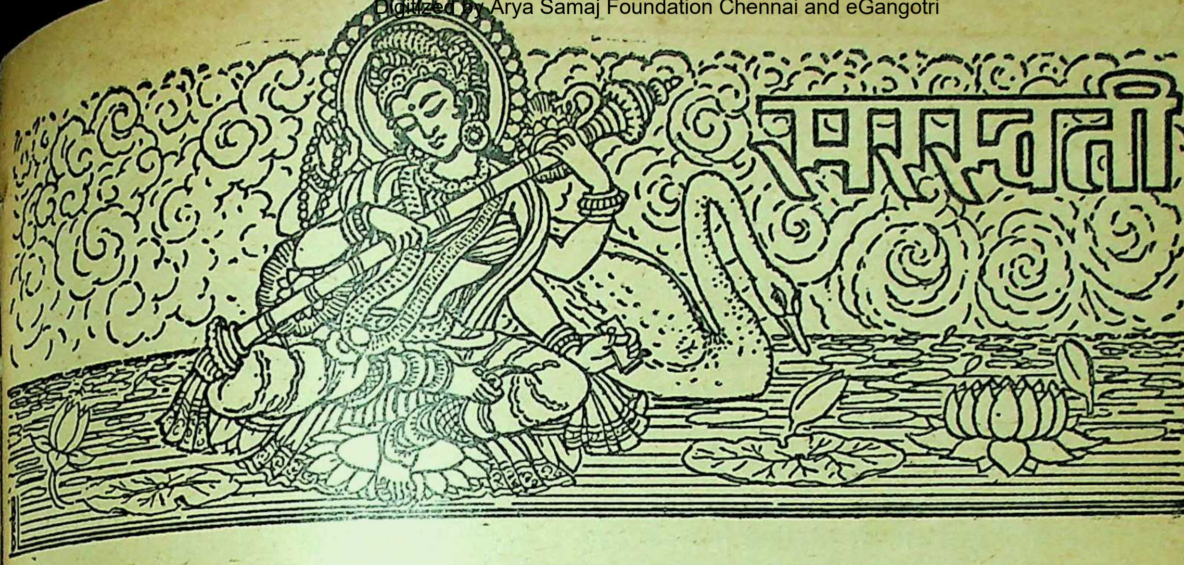

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६४
पूर्ण संख्या ७६८
इलाहाबाद : दिसम्बर १९६३ मार्गशीर्ष २०२० वि०
खण्ड २
संख्या १२

सम्पादकीय

राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या—राष्ट्रपति कैनेडी की त्या इतनी आकस्मिक और अप्रत्याशित थी कि उसके माचार से सारा संसार स्तब्ध रह गया। मृत्यु के समय नकी अवस्था केवल ४६ वर्ष की थी, और उन्हें अमरीका ा राष्ट्रपति-पद ग्रहण किये हुए केवल तीन साल ही हुए ं। किंतु फिर भी उन्होंने इस महान् उत्तरदायित्व के पद र रहकर इतने अल्पकाल ही में संसार पर केवल अपनी ग्यता और दृढ़ता ही का सिक्का नहीं जमा दिया था, युत लोगों को अपनी उदारता, सहृदयता और सदाशयता का भी विश्वास दिला दिया था। एक ओर उन्होंने बा के मामले में ऐसी अभूतपूर्व दृढ़ता दिखलायी कि स को विश्वास हो गया कि यदि वह क्यूबा से आपत्तिजनक प्रक्षेप अस्त्र नहीं हटाता तो अमरीका बल प्रयोग रने में नहीं हिचकेगा। यदि राष्ट्रपति कैनेडी तनी दृढ़ता न दिखाते तो क्यूबा अमरीका के लिए बड़ा री खतरा बन जाता। किंतु दूसरी ओर, इसके बाद ी, दूरदर्शी कैनेडी ने श्री ख्रुश्चेव का इतना विश्वास प्त कर लिया कि वर्षों से चलता आ रहा 'शीतयुद्ध' म गया, और आणविक अस्त्रों के परीक्षण के सम्बन्ध में थमिक समझौता हो गया। पिछले कुछ वर्षों में पूर्व और पश्चिम—रूस और अमरीका—के सम्बन्ध जितने विषाक्त हो गये थे कि उनको देखते हुए यह समझौता एक चमत्कार ही समझा जायगा। इसके लिए श्री ख्रुश्चेव को तो श्रेय है ही, किंतु अधिक श्रेय श्री कैनेडी को है क्योंकि वे ख्रुश्चेव की तरह एक-छत्र शासक नहीं थे। उन्हें अमरीका के स्वतंत्र नागरिकों को साथ लेकर चलना पड़ता था। ये दो घटनाएँ इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वे युद्ध से डरते नहीं थे। किंतु वे रूस से न्यायपूर्ण समझौता करके संसार को विश्वयुद्ध के खतरे से बचाने को भी उत्सुक थे।

श्री कैनेडी ४३ वर्ष की अवस्था में राष्ट्रपति हो गये। वे अमरीका के ३५वें राष्ट्रपति थे। उनसे पहिले केवल ६ व्यक्ति ५० वर्ष से कम की अवस्था में राष्ट्रपति चुने गये थे। उनमें केवल थिओडोर रूजवेल्ट ही ४२ वर्ष की अवस्था में इस पद पर नियुक्त हुए थे। शेष सब राष्ट्रपति बनते समय अवस्था में उनसे अधिक थे। किंतु इतनी कम अवस्था के होने पर भी श्री कैनेडी बड़े ही योग्य राष्ट्रपति निकले। वे घर के सम्पन्न थे। उनके पिता समृद्ध व्यापारी हैं। वे द्वितीय महायुद्ध के समय इंग्लैण्ड में अमरीका के राजदूत थे। श्री कैनेडी ने लंदन

और हार्वर्ड विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की। उनके अध्ययन का मुख्य विषय राजनीति शास्त्र था। द्वितीय महायुद्ध में वे सेना में भर्ती होने को बहुत उत्सुक थे, किंतु उनकी रीढ़ में कुछ दोष था। इसलिए डाक्टरों ने उन्हें सेना के लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया। किंतु उनकी देशसेवा की भावना इतनी प्रबल थी कि उन्होंने अपनी चिकित्सा कराकर रीढ़ का दोष दूर किया और छः महीने बाद फिर भर्ती होने का प्रयत्न किया। इस बार वे सफल हुए और वे जलसेना में रखे गये। वहाँ एक बार सालोमन द्वीप के पास उनकी युद्ध-नौका शत्रु ने नष्ट कर दी तब बड़ी वीरता से उन्होंने अपने कितने घायल सैनिकों को स्वयं तैरकर निकट के एक द्वीप में पहुँचाया। युद्ध में उन्होंने जो पटुता और वीरता दिखायी उसके लिए उन्हें सेना से दो पदक मिले। युद्ध के बाद वे सेना से निकलकर पत्रकार हो गये और उन्होंने कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का विवरण दिया। उन्होंने दो पुस्तकें भी लिखीं। इनमें एक इंग्लैण्ड के ऊपर थी। उसका नाम था Why England Slept। इसमें प्रथम महायुद्ध के बाद इंग्लैण्ड की सैनिक निष्क्रियता पर विचार किया गया था। यह पुस्तक राजनीतिक संसार में बहुत पसन्द की गयी और बहुत बिकी। दूसरी पुस्तक उन्होंने बीमारी की हालत में लिखी जब वे कई महीने अस्पताल में पड़े रहने को बाध्य हुए। इस पुस्तक का नाम Profiles in Courage है। इसमें अमरीका के कुछ उन संसद-सदस्यों की जीवनियाँ हैं जिन्होंने लोकहित में और उच्च सिद्धान्तों की रक्षा के लिए तत्कालीन अमरीकी जनमत के विरुद्ध खड़े होने का साहस दिखाया था। यह पुस्तक बहुत बिकी और साहित्यिक दृष्टि से यह इतनी उच्चकोटि की समझी गयी कि उसके लिए उन्हें अमरीका का पुलिट्जर प्राइज़ नाम का प्रसिद्ध साहित्यिक पुरस्कार मिला। किंतु अन्त में श्री कैनेडी ने राजनीति में जाने का निश्चय किया और सन् १९४७ में वे अमरीका के संसद के सदस्य हो गये। तब से १९६० तक उसके सदस्य बने रहे। १९६० में देश ने उन्हें 'राष्ट्रपति' निर्वाचित किया।

उनके पहले अमरीका के राष्ट्रपति जनरल आइसनहोवर थे। जिस समय वे राष्ट्रपति हुए उस समय उनकी अवस्था ६२ वर्ष की थी। वे प्रायः नौ वर्ष इस पद पर रहे। उनके कार्यकाल में रूस और अमरीका का कलह बहुत बढ़ गया था और शीतयुद्ध चरमसीमा पर पहुँच गया था। आणविक और प्रक्ष्येप अस्त्रों की होड़ बेतहाशा चल रही थी। चीन को मिलाकर रूस का एक दल बन गया था जिसमें उसके नियंत्रित पूर्वी योरोप के राष्ट्र भी सम्मिलित थे। यह दल 'पूर्वी' दल कहलाता है। इसके विरुद्ध अमरीका, इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी आदि पश्चिमी राष्ट्रों का 'पश्चिमी' दल था। योरोप में दोनों दलों के लाखों सैनिक युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। बर्लिन की समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया था। यह नहीं कहा जा सकता था कि कब और किस समय आणविक युद्ध आरंभ हो जाय।

ऐसे समय श्री कैनेडी अमरीका के राष्ट्रपति चुने गये। अमरीका पश्चिमी दल का नेता है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसने आणविक और प्रक्षेप अस्त्रों में अभूतपूर्व उन्नति कर ली है। वह अत्यंत शक्तिशाली और समृद्ध है। रूस से एकमात्र वही लोहा ले सकता है। इसलिए पश्चिमी दल में युद्ध या शान्ति के निर्णय का उत्तरदायित्व बहुत कुछ उसीके ऊपर है। संसारव्यापी आणविक युद्ध कितना भयंकर होगा, इसका ठीक-ठीक अनुमान रूस और अमरीका ही कर सकते हैं। दोनों ही उससे घबराते हैं और उससे बचना चाहते हैं। किंतु वह तभी बच सकता है कि जब दोनों पक्ष यह विश्वास कर लें कि युद्ध की अपेक्षा शान्ति से उन्हें अधिक लाभ है और शान्ति उन्हें अपने उद्देश्यों की सिद्धि में अधिक सहायक होगी। साथ ही प्रत्येक पक्ष को यह भी मालूम हो जाय कि दूसरा पक्ष इतना बलवान् है कि उसे चाहे अंत में हरा ही क्यों न दिया जाय, किंतु साथ ही अंत तक उसका भी सर्वनाश हो जायगा। क्यूबा में दोनों पक्षों को बल-परीक्षा का अवसर मिला। क्यूबा अमरीका से सौ-सवा सौ मील एक द्वीप राज्य है। वहाँके कम्युनिस्टों ने शासन पर अधिकार कर लिया। वे अमरीका के विरोधी हैं। वे रूस से मिल गये और वहाँ रूस ने गुप्त रूप से प्रक्षेप अस्त्रों के चलाने के अड्डे बनाने आरंभ कर दिये और कुछ प्रक्षेप अस्त्र भेज भी दिये। अमरीका के गुप्तचर विभाग को इसका पता लग गया। उस समय श्री कैनेडी ने अभूतपूर्व दृढ़ता दिखलायी। उन्होंने अमरीकी सेना को क्यूबा का घेरा डालने की आज्ञा दे दी और अस्त्र-शस्त्र लानेवाले रूसी जहाजों के क्यूबा जाने पर रोक लगा दी। उन्होंने रूस से माँग की कि क्यूबा से इन प्रक्ष्येप अस्त्रों को तुरंत हटा ले। रूस ने देखा कि इस समय अमरीका युद्ध के लिए तुला हुआ है। यदि उसका कहना न माना गया तो वह युद्ध छेड़ देगा और विनाशकारी युद्ध आरंभ हो जायगा। उसने बुद्धिमानी से काम लिया और अमरीका की बात मान ली। अमरीका ने अपनी ओर से यह वचन दिया कि वह स्वयं क्यूबा पर आक्रमण न करेगा। तुलसीदास ने कहा है कि 'भय बिन होय न प्रीति'। युद्ध के इस आसन्न भय ने दोनों की आँखें खोल दीं। और यहीं श्री कैनेडी ने अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। उन्होंने इस कटु विवाद के बाद रूस की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। श्री ख्रुश्चेव ने भी समान दूरदर्शिता का परिचय दिया। पहिली बात तो यह हुई कि दोनों में सतत सम्पर्क रखने और भावी गलतफहमियों को व्यक्तिगत विचार-विनिमय से तुरन्त दूर करने के लिए टेलिफोन की एक सीधी लाइन दोनों के निवास-स्थानों पर लगायी गयी। इस प्रकार श्री कैनेडी ने अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को राजदूतों, समितियों संदेशवाहकों के समय-साध्य अवरोधों से हटाकर उनका निबटारा व्यक्तिगत स्तर पर करने की एक नयी और अभूतपूर्व प्रथा चलायी। इससे कितनी ही छोटी-छोटी बातों के गंभीर रूप धारण करने तथा रूस और अमरीका के

बीच मनमुटाव पैदा करने की संभावना कम हो गयी। दूसरे, रूस और अमरीका में नये आणविक अस्त्रों के परीक्षण को रोकने के लिए संधि हो गयी। इन दो कामों से पूर्व और पश्चिम के बीच का तनाव बहुत कम हो गया, और शीतयुद्ध का जोर कम हुआ। पूर्व और पश्चिम में समझौता और सौहार्द स्थापित करने का यह आरंभ ही था। श्री कैनेडी दोनों दलों में स्थायी समझौता करके विश्वयुद्ध की विभीषिका के भय को सदा के लिए समाप्त करने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे थे।

श्री कैनेडी की दूसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने अमरीका की राजनीति को नैतिक स्तर पर ले जाने का स्तुत्य प्रयास किया। जिस युग में दासता की प्रथा चल रही थी, उस युग में अमरीका के बड़े-बड़े खेतों में काम करने के लिए आदमियों की कमी थी। समृद्ध अमरीकी भू-स्वामी अफ्रीका के हब्शी गुलामों को खरीद लिया करते थे। ये हब्शी गुलाम अधिकतर अमरीका के दक्षिणी राज्यों के लोग खरीदते थे। उत्तर के राज्यों में इनके खरीदने की बहुत कम आवश्यकता होती थी। इन गुलामों के साथ अमानुषिक बर्ताव किया जाता था जिसे देखकर उत्तर के लोगों ने दास-प्रथा का विरोध किया। किंतु दक्षिणी राज्यों के लोग अपने लाभ के लिए इस प्रथा को बनाये रखना चाहते थे। दोनों में मतभेद इतना बढ़ा कि दक्षिणी राज्यों ने अमरीकी संघ से अलग होने की घोषणा कर दी। देश की अखंडता बनाये रखने के लिए दोनों में भयंकर गृहयुद्ध हुआ। अंत में दक्षिणी राज्य हारे और दास प्रथा का अंत कर दिया गया। सारे हब्शी गुलाम स्वतन्त्र कर दिये गये। वे अमरीका ही में बने रहे और आज उनके वंशज सारे अमरीका में फैले हुए हैं। किंतु अधिकतर हब्शी अब भी दक्षिणी राज्यों में ही हैं। अमरीका में इनकी संख्या सारी जनसंख्या की दस प्रतिशत है। वे स्वतंत्र अवश्य कर दिये गये किन्तु गोरे अमरीकी इन अमरीकी हब्शियों से दूर रहते हैं। कहीं-कहीं उन्हें स्कूलों, कालिजों आदि में भर्ती नहीं किया जाता। कितने ही होटल उन्हें अपने यहाँ ठहरने नहीं देते। इस प्रकार स्वतन्त्र अमरीकी होने पर भी उन्हें वहाँ पूरे सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। दक्षिण के एक राज्य की एक घटना से यह समस्या गंभीर हो गयी। एक कालिज ने एक हब्शी विद्यार्थी को भर्ती करना अस्वीकार कर दिया। अमरीका के संविधान के अनुसार उसे भर्ती होने से नहीं रोका जा सकता। अतएव श्री कैनेडी ने अमरीकी संघ की सेना की सहायता से उसे उस कालिज में भर्ती करा दिया। यही नहीं, हब्शियों के नागरिक अधिकारों को और अधिक सुरक्षित करने के लिए उन्होंने नागरिक अधिकारों से संबंधित एक विधेयक भी संसद में प्रस्तुत किया। दक्षिण के राज्यों में राष्ट्रपति कैनेडी की इस नीति और इस विधेयक का कड़ा विरोध हुआ। इस विरोध का केन्द्र टेक्सास नाम का एक दक्षिणी राज्य था। श्री कैनेडी ने वहाँके लोगों को अपनी नीति और इस विधेयक की आवश्यकता समझाने के लिए टेक्सास का दौरा करने का निश्चय किया। वे टेक्सास के डलास नगर में वायुयान से उतरे और जब नगर में आयोजित एक सभा में व्याख्यान देने जा रहे थे तब रास्ते में एक व्यक्ति ने बहुत दूर से निशाना लगाकर उनकी हत्या कर दी।

श्री कैनेडी की इस आकस्मिक और नृशंस हत्या से सारा संसार सिहर उठा। इस समाचार की संसार के कोने-कोने में जो प्रतिक्रिया हुई, और उनकी अन्त्येष्टि में संसार के सभी देशों के प्रतिनिधियों ने सम्मिलित होकर उन्हें जो श्रद्धांजलि दी, उससे यह मालूम हुआ कि मानवता के लिए श्री कैनेडी ने जो प्रयत्न किये उसके प्रति संसार के सभी देशों और वर्गों में उनके लिए कितनी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। संसार ने अनुभव किया कि उसने विश्व-शान्ति और मानवता का सबसे समर्थ हितैषी खो दिया।

श्री कैनेडी अमरीका के चौथे राष्ट्रपति थे जिनकी हत्या की गयी। ऐब्राहम लिंकन प्रथम राष्ट्रपति थे जिनकी हत्या हुई। हब्शियों को गुलामी से मुक्त करने के लिए जिस समय गृहयुद्ध हो रहा था, उस समय लिंकन ही अमरीका के राष्ट्रपति थे। हब्शियों को मानवता के अधिकार दिलाने ही के कारण उनकी हत्या की गयी थी। श्री कैनेडी की हत्या का भी परोक्ष कारण यही मालूम होता है। जिस प्रकार लिंकन मानवता के लिए शहीद हुए उसी प्रकार राष्ट्रपति कैनेडी का भी बलिदान हुआ। हमें विश्वास है कि जिस प्रकार लिंकन का बलिदान व्यर्थ नहीं हुआ, उसी प्रकार कैनेडी का भी बलिदान व्यर्थ न होगा और मानव की समानता का सिद्धान्त और आगे प्रगति करेगा।

भारत की आर्थिक उन्नति में श्री कैनेडी की बड़ी रुचि थी। अमरीका ने हमारी योजनाओं में जो सहायता की और कर रहा है, उसको जारी रखने और उसे बढ़ाने के लिए वे सदा उत्सुक रहते थे। गत वर्ष जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तब श्री कैनेडी ने जिस त्वरित गति से सैनिक सामान भेजकर भारत की सहायता की तथा सहायता और सहयोग का आश्वासन दिया, उसे कृतज्ञ भारत कभी नहीं भूल सकता। वे भारत ही नहीं, सभी पिछड़े देशों के मित्र और हितैषी थे। ऐसे महान् और सदाशय राष्ट्रपति की मृत्यु से अमरीका ही नहीं, सारी मानवता को बड़ा गहरा धक्का लगा है और उसकी अपूरणीय क्षति हुई है।

भीषण दुर्घटना—गत मास पूंच (जम्मू) के निकट एक हैलिकाप्टर के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से भारतीय सेना के पाँच मूर्धन्य नेताओं की मृत्यु हो गयी। वे थे पश्चिमी कमान के सेनापति लेफ्टिनैण्ट जनरल दौलतसिंहजी, कश्मीर के कोर कमाण्डर लेफ्टिनेण्ट जनरल विक्रमसिंह, मेजर जनरल नानावती, ब्रिगेडियर ओबेराय और वायुसेना के वायस एयर मार्शल पिण्टो। हेलिकाप्टर के चालक थे फ्लाइट लेफ्टिनेण्ट सोंधी। वे भी काम आये। लद्दाख में गत वर्ष

चीनियों से जो युद्ध हुआ था उसमें इन सैनिक नेताओं ने अपनी योग्यता और वीरता का अद्वितीय परिचय दिया था। जनरल दौलतसिहजी और जनरल विक्रमसिहजी बड़े ही कुशल और अनुभवी जनरल थे। गोआ के अभियान में आक्रामक वायुसेना की कमान एयर वायस मार्शल पिण्टो के पास थी। लद्दाख के युद्ध में भी वे उस क्षेत्र की वायुसेना के सर्वोच्च अधिकारी थे। अभी हाल में अमरीकन और ब्रिटिश वायुसेना के साथ राडार के उपयोग संबंधी 'शिक्षा' नाम का जो प्रशिक्षण हुआ था, उसमें भी वे मुख्य भारतीय सेनापतियों में थे। एक साथ इतने सुयोग्य और अनुभवी सैनिक नेताओं की मृत्यु से देश की बड़ी क्षति हुई है। हम भारतीय सेना, भारतीय वायुसेना तथा दिवंगत सेनापतियों के शोकसंतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

सेना में एक आदेश है कि दो जनरल एक साथ एक वायुयान से यात्रा न करें। वायुयानों की संभावित दुर्घटनाओं को ध्यान में रखकर ही यह नियम बनाया गया था। जनता का विश्वास है कि सेना में सामान्यतः नियमों और आदेशों का पालन कड़ाई से किया जाता है। किंतु समझ में नहीं आता कि इस प्रकरण में उस आदेश का पालन क्यों नहीं किया गया। इस दुर्घटना से स्पष्ट है कि सेना में आदेशों की अवहेलना करने के परिणाम कितने भीषण हो सकते हैं। सैनिक अनुशासन का पहला सिद्धान्त नियमों और आज्ञाओं का अक्षरशः पालन है। हमें आश्चर्य है कि सुअनुशासित भारतीय सेना में इस आदेश का पालन क्यों नहीं हुआ। यदि इसका पालन होता तो देश को इतनी बड़ी क्षति न उठानी पड़ती।

ऐतिहासिक घटना—भारतीय हाईकोर्टों के इतिहास में पहली बार पद की शपथ हिंदी में ली गयी है। इलाहाबाद हाईकोर्ट में उसके ऐडवोकेट पंडित हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी को न्यायाधीश नियुक्त किया गया। न्यायमूर्ति त्रिपाठी गोरखपुर के रहनेवाले हैं। संस्कृत के प्रेमी और हिन्दी के पुराने भक्त हैं। उन्होंने पद ग्रहण करते समय पद की शपथ हिंदी में ली। भारत के संविधान के अनुसार शपथ लेनेवाले अपनी इच्छा के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी में, या अँगरेजी में या राज्य की राजभाषा में शपथ ले सकते हैं। अभी तक किसी न्यायाधीश ने अँगरेजी को छोड़कर हिंदी में शपथ लेने का साहस नहीं किया। हम न्यायमूर्ति त्रिपाठी को अँगरेजी में शपथ लेने की परम्परा तोड़ने और हिन्दी में शपथ लेने का साहस दिखाने के लिए हार्दिक साधुवाद देते हैं।

संसार में शायद भारत ही ऐसा विचित्र देश है जिसमें अधिकारीवर्ग को अपनी भाषा का प्रयोग करने में लज्जा मालूम होती है। इस देश की जनता भी इस स्थिति की इतनी अभ्यस्त हो गयी है कि उसे यह लज्जाजनक बात सामान्य मालूम होती है। वह इस बात की आशा या अपेक्षा ही नहीं करती कि हमारे प्रभुगण हमारी भाषा में बोलेंगे। यदि कोई अधिकारी हिंदी में बोले तो उसे आश्चर्य होगा। सन् १९३४ में जब इस देश में अँगरेजों का राज्य था, हम फैजाबाद के 'इन्स्पैक्टर आफ स्कूल्स' नियुक्त किये गये। उस समय फैजाबाद संभाग में फैजाबाद, सुलतानपुर, गोंडा, बहराइच, बस्ती और गोरखपुर जिले थे। जब हम निरीक्षण के लिए पहली बार गोरखपुर गये तो वहाँके सेन्ट एण्ड्रयूज हाईस्कूल के हेडमास्टर ने हमें अपने स्कूल के एक उत्सव में निमंत्रित किया। जब उत्सव समाप्त होने लगा तब हेडमास्टर साहब ने हमसे भी 'दो शब्द' कहने के लिए आग्रह किया। हमने उनके आग्रह से कुछ कहना स्वीकार कर लिया और हिन्दी में बोलने लगे। हमने अपना भाषण आरंभ ही किया था कि अगली पंक्ति में बैठे हुए एक विद्यार्थी ने अपने पड़ोसी से आश्चर्य-चकित होकर इतनी जोर से कुछ कहा कि हमने सुन लिया। उसने कहा—"अरे! देखो, देखो, इन्स्पेक्टर साहब तो हिंदी बोल रहे हैं!" उस समय हमें उस विद्यार्थी की बात सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ था। किंतु इसमें उसका दोष नहीं था। उससे पहले जो भी इन्स्पेक्टर जाते थे वे अँगरेजी ही में बोलते थे। जब शासन-तंत्र का अनुभव बढ़ा तब मालूम हुआ कि हमारे देश के अधिकारीवर्ग को अँगरेजी से कितना मोह और हिंदी से कितनी विरक्ति है। अँगरेज अधिकारी अधिकतर विवशता के कारण इस देश में अँगरेजी बोलते थे। हमने उनका अंधानुकरण किया, और धीरे-धीरे हमारी यह भावना हो गयी कि जिस प्रकार स्तोत्रों या मंत्रों को संस्कृत में पढ़ना आवश्यक है, उसी प्रकार सरकारी काम भी अँगरेजी में करना अनिवार्य है। मानसिक दासता के कारण हममें हीन भावना घर कर गयी। अधिकार के पद पर जाते ही हम अपनी भाषा में बोलने में लज्जा का अनुभव करने लगे और हमें विश्वास हो गया कि हमारी भाषा तुच्छ और अक्षम है तथा वह पिछड़ेपन की निशानी है। हमारी स्वतंत्रता केवल राजनीतिक क्षेत्र में आयी। हम अँगरेजों की राजनीतिक पराधीनता से मुक्त हुए, किंतु हममें जातीय स्वाभिमान तथा अपने भारतीय आदर्शों या भाषा से प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ। हम आज भी मानसिक दृष्टि से पश्चिम के 'गुलाम' हैं। हमारे 'कन्वोकेशन' मध्यकालीन योरोप के विद्यालयों के दीक्षान्त समारोहों की फीकी नकल हैं जिनमें मंत्रों की भाँति अँगरेजी के "सूत्र" पढ़े जाते हैं। हमारे जजों का लिवास, उनकी 'टाई', उनकी 'विग' (जो इंग्लैण्ड की सर्दी में न्यायाधीशों की खल्वाट खोपड़ियों को सर्दी से बचाने के लिए लगायी जाती थी) सब हमारी नकलची प्रवृत्ति की परिचायिका हैं। हम पर सबसे अधिक प्रभाव अपने भूतपूर्व स्वामियों की भाषा का है। अँगरेजी इस देश में बुरी तरह छायी हुई है। दशा इतनी बिगड़ी हुई है कि हमें अँगरेजों को छोड़कर अपनी भाषाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता तक नहीं है क्योंकि हमारे अँगरेजीपरस्त प्रभुगण हमें विज्ञान की शिक्षा अँगरेजी ही में प्राप्त करने को विवश कर रहे हैं। इतना ही नहीं, आज इस देश में उस व्यक्ति को कोई सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती

जो अँगरेजी न जानता हो। अँगरेजों के समय में प्राइमरी स्कूलों और मिडिल स्कूलों में 'वर्नाक्यूलर मिडिल' परीक्षा उत्तीर्ण लोगों को नौकरियाँ मिल जाती थीं। किंतु स्वराज्य में वे भी अब उन्हें ही मिलने लगी हैं जिन्होंने हाईस्कूल उत्तीर्ण कर लिया हो। 'वर्नाक्यूलर मिडिल' में अँगरेजी अनिवार्य विषय नहीं था। हाईस्कूल में वह अनिवार्य है। अब पुलिस कान्स्टेबल, चपरासी और डाकिया भी 'हाईस्कूल पास' भर्ती किये जाते हैं अर्थात् वे जो अँगरेजी जानते हों। संस्कृत विद्यालयों में भी अँगरेजी की शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है। अँगरेजों के समय में अँगरेजी माध्यम के जितने 'ऐंग्लो इंडियन' प्रकार के स्कूल थे, स्वराज्य में उसके कई गुना बढ़ गये हैं। अँगरेजों ने देहातों में अँगरेजी का प्रचार करने की कल्पना भी नहीं की थी, और न उन्होंने देहाती स्कूलों में अँगरेजी पढ़ाने का साहस किया था। किंतु हमारी स्वराज्य-सरकार ने देहाती स्कूलों की कक्षा ३ से अँगरेजी की पढ़ाई आरम्भ करके देहात में भी अँगरेजी के प्रचार का बीड़ा उठा लिया है। कहाँ तक कहें, अँगरेजों ने इस देश में अँगरेजी को न तो इतना महत्त्व दिया और न उसका इतना प्रचार ही किया जितना हमारी स्वराज्य सरकार ने। अँगरेजी की योग्यता न होने के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इस देश में महापंडित राहुल सांकृत्यायन को नौकरी नहीं मिल सकी और उन्हें सुदूर लंका में जाकर नौकरी करनी पड़ी। जिस समय देश में अँगरेजी का इतना प्रचण्ड प्रताप हो, और जिस समय हिन्दी की बात करनेवाले 'फैनेटिक' कहे जायँ, उस समय न्यायमूर्ति हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी ने हाईकोर्ट में अपने पद की शपथ लेकर हिंदी के प्रति अपनी निष्ठा ही प्रकट नहीं की, प्रत्युत एक साहसपूर्ण ऐतिहासिक कार्य भी किया है।

नये शिक्षामंत्री––डा० श्रीमाली के हटने पर केन्द्र के शिक्षामंत्री का पद अस्थायी रूप से श्री हुमायून कबिर को दे दिया गया था। हिंदी के लिए यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि संघ-भाषा के रूप में हिंदी को विकसित करने का उत्तरदायित्व शिक्षा-मंत्रालय का है। हिंदी-प्रेमियों की ऐसी धारणा है कि केन्द्र में हिन्दी के काम में जो ढील हुई है उसका मुख्य कारण शिक्षा-मंत्रालय की उदासीनता है। डा० श्रीमाली के मंत्रित्व काल में हिंदी के काम में कुछ प्रगति आयी थी किन्तु उनके हटने और श्री कबिर के आ जाने से यह भय होने लगा था कि हिन्दी के विकास को धक्का लगेगा। श्री कबिर अस्थायी थे, और अपने अल्प अस्थायी काल में उन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हिन्दी को रोमन लिपि द्वारा पढ़ाये जाने का सैद्धान्तिक समर्थन करके हिन्दी को काफी धक्का पहुँचाया। यह अस्थायी प्रबंध अब समाप्त हो गया है और अब इस पद पर श्री मोहम्मद करीम छागला की स्थायी नियुक्ति हो गयी है। श्री छागला देश की विभूतियों में हैं। उनकी योग्यता असंदिग्ध है। वे बहुत दिनों बंबई हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश रहे हैं और उनमें ऊँचे दर्जे की न्यायबुद्धि है। अब वे राजनीति में आ गये हैं। वे कुछ दिनों अमरीका में भारत के राजदूत और इंग्लैण्ड में उच्च आयुक्त भी रहे। भारत की शिक्षा-समस्या इस समय उलझी हुई है। उस पर यह कहावत लागू हो रही है कि "मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।" स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के क्षेत्र में कितने ही प्रयोग और उलट-फेर हुए, किन्तु आये दिन यही शिकायत सुनने में आती है कि शिक्षा का स्तर दिनोंदिन गिरता जा रहा है। देखना है कि श्री छागला के निर्देशन में देश की शिक्षा का ऊँट किस करवट बैठता है।

किन्तु शिक्षा-मंत्रालय में हमारी तत्कालीन रुचि इस कारण है कि वह देश में हिंदी के विकास के लिए उत्तरदायी है। जहाँ तक हमने सुना है, श्री छागला हिन्दी नहीं जानते। किन्तु केवल हिन्दी न जानने से कोई विशेष हानि नहीं है। जो लोग हिन्दीनिष्ठ हैं, भारत की संविधान-सम्मत राजभाषा के प्रति वफादार हैं और वास्तव में हिन्दी का हित करना चाहते हैं, वे हिन्दी न जानने पर भी हिंदी की भलाई कर सकते हैं। हम कितने ही लोगों को जानते हैं जो हिंदी अच्छी तरह जानते हैं, किन्तु हिंदी के घोर विरोधी हैं। अतएव हम श्री छागला के हिन्दी से अपरिचित होने को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। हमें नहीं मालूम कि हिंदी के सम्बन्ध में श्री छागला के क्या विचार हैं। अतएव हम उत्सुकतापूर्वक उनके हिंदी संबंधी कार्यकलापों को देखेंगे और उनको देखने के बाद ही अपनी कोई सम्मति बनावेंगे।

यह संतोष की बात है कि श्री भक्तदर्शन शिक्षा के उपमंत्री बनाये गये हैं और वे सहायक के रूप में श्री छागला को मिले हैं। श्री भक्तदर्शन सुयोग्य और अनुभवी कार्यकर्ता हैं। हिंदी-संसार में उनकी साख है और उसे उनपर विश्वास है। उन्होंने संयत और संतुलित मस्तिष्क पाया है। वे हिंदी के अच्छे ज्ञाता हैं। लोगों का विचार है कि वे 'हिंदी के पसंगे' के रूप में शिक्षा-मंत्रालय में लगाये गये हैं। किन्तु उपमंत्री की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। वह मंत्री की नीति और आदेशों का पालन मात्र करता है। उनका कार्य श्री छागला की हिंदी संबंधी नीति और दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करेगा। हमें विश्वास है कि यदि श्री भक्तदर्शन की सलाह मानी गयी और उनका दृष्टिकोण अनुमोदित किया गया तो केंद्र का शिक्षा-मंत्रालय हिंदी के विकास का कार्य संतोषजनक रूप से कर सकेगा।

भारत की संस्कृति––हमारे पास कभी-कभी 'सांस्कृतिक' कार्यक्रमों को देखने के लिए निमंत्रण आते रहते हैं। आज 'सांस्कृतिक' कार्यक्रम का रूढ़ अर्थ 'नाचना-गाना' हो गया है। ऐसा मालूम होता है कि जो जितना अच्छा नाच या गा सकता है वह उतना ही अधिक सुसंस्कृत है। कभी-कभी नाटकों, 'कविसम्मेलनों' और 'मुशायरों' को भी इन कार्यक्रमों के अंतर्गत मान लिया जाता है।

इससे यह आशा हो जाती है कि हमारे अभिनेता, 'कवि-सम्मेलनिहाँ' कवि और 'शोअरा' भी सुसंस्कृत हैं। 'संस्कृति' का और कोई प्रत्यक्ष और मूर्तरूप हमारे सामने नहीं आया।

भारत सरकार में 'संस्कृति' का भी एक विभाग है। जब मौलाना आज़ाद शिक्षामंत्री थे तब 'संस्कृति' भी शिक्षा के साथ नत्थी कर दी गयी थी। उनकी असामयिक मृत्यु के बाद जब डा० श्रीमाली शिक्षामंत्री बनाये गये तब 'संस्कृति' उनसे लेकर श्री हुमायून कबिर को दे दी गयी और वह 'वैज्ञानिक अनुसंधान' के साथ नत्थी कर दी गयी। अब श्री मुहम्मद करीम छागला शिक्षामंत्री हो गये हैं, और 'संस्कृति' फिर 'शिक्षा' के साथ नत्थी करके उन्हें सौंप दी गयी है।

हम अपनी आर्थिक, वैज्ञानिक और भौतिक उन्नति करने में इतने लगे हुए हैं कि 'संस्कृति' हमारे लिए एक गौण विषय हो गयी है। भारत में 'संस्कृति' का तात्पर्य 'भारतीय संस्कृति' ही से होना चाहिए। सहजबुद्धि यही कहती है। किंतु क्या उस विशेष वर्ग के लोग ही 'भारतीय संस्कृति' की व्याख्या, प्रसार और उन्नति कर सकते हैं जिस वर्ग के पास स्वतंत्रता के बाद उसका विभाग बराबर रहता आया है? गलतफ़हमी का खतरा होते हुए भी हम इस बात की ओर संकेत करने को विवश हो गये हैं क्योंकि हमें इस विभाग की अब तक की गति-विधि से संतोष नहीं है। इन सोलह वर्षों में इस विभाग ने 'संस्कृति' का कौन-सा रूप देश के सामने रखा? विदेशों में 'भारतीय संस्कृति' के किस रूप का प्रचार किया गया? देश का सांस्कृतिक स्तर उठाने के लिए, तथा संस्कृति को देश के उत्थान में एक जीवन्त शक्ति बनाने के लिए अभी तक इस विभाग ने क्या काम किया? हमारे देश की नैतिक समस्याओं से 'संस्कृति' का कोई संबंध है या नहीं? और यदि है, तो हमने उन समस्याओं को हल करने में अपनी संस्कृति से क्या सहायता ली और उसका क्या उपयोग किया?

ऐसा मालूम पड़ता है कि जान या अनजान में 'संस्कृति' विभाग का उत्तरदायित्व एक वर्ग-विशेष को सौंपने की नीति सी बन गयी है। केन्द्र में प्रभारी सचिव के रूप में श्री अशफाक हुसेन बहुत दिनों इसका काम देखते रहे। उत्तर प्रदेश में भी श्री मुहम्मद जहीर आठ-दस वर्षों से 'संस्कृति' के सचिव हैं जब कि सामान्यतया चार-पाँच वर्षों में सचिवों का स्थानान्तरण कर दिया जाता है।

हम जहाँ तक जानते हैं, देश के जीवन पर 'संस्कृति' विभाग का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसा मालूम पड़ता है कि 'संस्कृति' के सम्बन्ध में अभी तक सरकार ही कोई स्पष्ट नीति नहीं बना पायी। विज्ञान के इस युग में जीवन का संतुलन बनाये रखने में भारतीय संस्कृति बड़ी सहायक हो सकती है। किंतु यदि विभाग के अधिकारियों को स्वयं ही इसका रूप स्पष्ट नहीं है, और उनका सांस्कृतिक उद्देश्यों का चित्र ही धूमिल है तो वे कर ही क्या सकते हैं? इस विभाग के उद्देश्यों के पुनरवलोकन और पुनस्संगठन की बड़ी आवश्यकता है। यदि यह न किया गया तो हमारी संस्कृति की परिधि सिमिट कर 'नाच-गाने' में संकुचित और स्थिर हो जायगी।

मध्य प्रदेश शासन का एक स्तुत्य कार्य—हमें यह जानकर अत्यन्त संतोष हुआ कि मध्य प्रदेश शासन ने हिन्दी के वयोवृद्ध और विख्यात कवि, लेखक और पत्रकार पंडित माखनलाल चतुर्वेदी को पाँच सौ रुपया मासिक की आजीवन वृत्ति दी है। चतुर्वेदीजी ने बहुत दिनों 'भारतीय आत्मा' के नाम से कविताएँ लिखीं। हिन्दी स्कूल के अध्यापक होकर भी उन्होंने अपने व्यक्तित्व, कर्मठता और योग्यता से देश और हिन्दी साहित्य की जो सेवा की और साहित्य तथा राजनीति में अपने लिए जो स्थान बनाया उसकी चर्चा करने का यह अवसर नहीं है। वैसे भी वह सर्व-विदित है। हिन्दी और साहित्य-संसार ने चतुर्वेदीजी की सेवाओं को कितना मूल्यवान् समझा और उनका कितना आदर किया वह इसीसे मालूम हो जाता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने उन्हें 'साहित्य-वाचस्पति' की सर्वोच्च उपाधि दी और अपने हरिद्वार अधिवेशन का सभापति बनाया। साहित्य अकादमी ने उन्हें उनकी कविता के लिए पाँच हजार रुपये का सर्वोच्च साहित्य-पुरस्कार दिया। सागर विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर आव लिटरेचर' की सम्मानित उपाधि दी। सरकार ने भी उन्हें 'पद्मभूषण' के अलंकरण से सम्मानित किया। इस समय उनकी अवस्था प्राय: ७५ वर्ष की है। (अगली ४ अप्रैल को वे ७५ वर्ष के होंगे।) वे कई वर्षों से रोग-ग्रस्त हैं। उनका हृदय बहुत निर्बल हो गया है। अब तो वे प्राय: शय्याशायी ही रहते हैं। उन्होंने सारा जीवन देश और साहित्य की सेवा में लगा दिया। धन-संग्रह की ओर ध्यान ही नहीं दिया। अपनी सरकार होने से एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि हमारे उन लोगों का आदर और सम्मान ही नहीं, उनके योगक्षेम का भी प्रबंध होने लगा है जिन्होंने अपना जीवन देश के लिए उत्सर्ग कर दिया था। हम इस उदारता और सराहनीय कार्य करने के लिए मध्य प्रदेश शासन को हार्दिक साधुवाद देते हैं। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र स्वयं ऊँचे साहित्यकार, पत्रकार और कवि हैं। उन्होंने एक मूर्धन्य साहित्यकार को इतनी बड़ी वृत्ति देकर जो अनुकरणीय कीर्तिमान स्थापित किया है वह उनके अनुरूप ही है। उनसे हमें ऐसे ही कल्पना-शील और उदार कार्य की आशा थी।

हमारी उच्च शिक्षा की असंतोषजनक अवस्था—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० कोठारी ने अभी हाल में कश्मीर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में कुछ बड़े महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट किये जिनसे हमारी उच्च शिक्षा की दुरवस्था का पता लगता है। उन्होंने कहा कि

हमारे विश्वविद्यालयों में बहुत अधिक विद्यार्थी असफल होते हैं। उनके अनुसार गत दो वर्षों में भारत के सब विश्वविद्यालयों में विभिन्न परीक्षाओं में असफलता का सामूहिक अनुपात इस प्रकार था :—

परीक्षा	१९६१ में	१९६० में
बी० ए०	५३·६	५६·५
बी० एस्-सी०	५४·७	५१·०
बी० काम०	५३·४	५३·३
एम० ए०	१७·८	१७·८
एम० एस्-सी०	२२·७	२०·१
एम० काम०	१७·३	१६·२
बी० एस्-सी० (इंजीनियरिंग)	२६·०	२०·२
बी० एड०	१७·५	२४·३
एल्-एल० बी०	४२·२	४१·१
बी० एस्-सी० (कृषि)	२०·०	२१·४
बी० एस्-सी० (पशुपालन)	३५·७	३४·४
बी० एस्-सी० (टेक्निकल)	१६·३	१७·९
एम० बी० बी० एस० (डाक्टरी)	४३·८	४३·३

इंजीनियरिंग, टेक्निकल और डाक्टरी में प्रथम या द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण विद्यार्थी ही लिये जाते हैं और सामान्यतः उनका चुनाव एक विशेष प्रवेशिका परीक्षा के परिणाम के आधार पर किया जाता है। बी० ए० को छोड़कर सभी कक्षाओं में केवल वे ही विद्यार्थी लिये जाते हैं जिन्होंने उच्च श्रेणी में पिछली परीक्षा उत्तीर्ण की हो। डाक्टरी और इंजीनियरिंग में विद्यार्थियों को छात्रावासों ही में रहना पड़ता है जिससे वे अपना सारा समय पढ़ने ही में लगा सकें। फिर भी डाक्टरी में १०० में केवल ५६ या ५७ विद्यार्थी उत्तीर्ण होते हैं। इंजीनियरी में प्रायः २५ प्रतिशत विद्यार्थी अनुत्तीर्ण रह जाते हैं। इन कालेजों में केवल छँटे हुए विद्यार्थी ही लिये जाते हैं। वे या तो समृद्ध घरों के होते हैं या उन्हें अच्छी छात्रवृत्ति मिलती है। उन्हें आर्थिक निश्चिन्तता रहती है। पढ़ने के सिवाय उन्हें और कोई काम नहीं रहता। फिर भी उनमें इतने विद्यार्थी असफल हो जाते हैं। क्या इसका कारण यह नहीं है कि पाठ्य-क्रम या परीक्षा के मानदंड ——या दोनों—— अनावश्यक रूप से बहुत ऊँचे कर दिये गये हैं जिससे निर्दिष्ट समय में विद्यार्थी उनको पूरा नहीं कर पाते? अथवा पढ़ाई ही में कोई ऐसा मौलिक दोष है जिससे वे परीक्षा में ठीक उत्तर नहीं दे सकते? अथवा परीक्षा-प्रणाली ही दोषपूर्ण है? जब इन विशेष विद्यालयों में जिनमें—— प्राध्यापकों को बहुत ऊँचे वेतन मिलते हैं, जिनमें भवनों और सामान पर मुक्तहस्त से व्यय किया जाता है, जिनमें केवल सर्वोत्तम विद्यार्थी ही भर्त्ती किये जाते हैं, यह हाल है तब साधारण बी० ए० और बी० एस्-सी० में परीक्षा-फलों के असन्तोषजनक होने पर क्यों आश्चर्य किया जाय? श्री कोठारी ने इसके जो कारण बतलाये हैं वे अंशतः ठीक होते हुए भी इस अत्यन्त असंतोषजनक स्थिति का संतोषजनक समाधान नहीं कर पाते। इधर शिक्षा पर व्यय काफी बढ़ा है, अध्यापक-विद्यार्थी अनुपात (विशेषकर वैज्ञानिक संस्थाओं) में भी सुधरा है, प्राध्यापकों के वेतन भी बढ़े हैं, सर्वोत्तम विद्यार्थियों के ही लेने पर जोर दिया जाता है, फिर भी, इन सब बातों के होते हुए भी, परीक्षा-फलों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। मालूम होता है कि इस असंतोषजनक अवस्था का ठीक-ठीक निदान नहीं हुआ। और जब तक ठीक-ठीक निदान न हो तब तक इस रोग को दूर करने के जो भी उपचार किये जायेंगे वे असफल होंगे।

हिंदी-विरोधियों की हठधर्मी——संविधान में हिंदी भारत की राजभाषा मान ली गयी किन्तु अँगरेजी-परस्त अब भी मौके-बेमौके अँगरेजी की जड़ मजबूत करने में नहीं हिचकते। संसद में कार्यवाही हिंदी या अँगरेजी में होती है। वहाँ एक सर्वसम्मत रूढ़ि बन गयी है कि जब कोई सदस्य प्रश्न करे या कोई सूचना चाहे तो वह उसी भाषा (हिंदी या अँगरेजी) में दी जाय जिसमें सदस्य ने प्रश्न किया है। गत मास एक सदस्य ने हिंदी में एक प्रश्न उठाया जिसका सम्बन्ध विदेश मंत्रालय से था। प्रधान मंत्री ही विदेश मंत्री भी हैं, किन्तु श्रीमती लक्ष्मी मेनन (केरल निवासिनी ईसाई महिला) इस विभाग की राज्यमंत्री और कालाकांकर के राजा दिनेशसिंह उसके उपमंत्री हैं। प्रश्न का उत्तर राज्यमंत्री श्रीमती लक्ष्मी मेनन ने अँगरेजी में दिया। जब वे उत्तर दे चुकीं तो गोरखपुर के संसद-सदस्य श्री सिंहासनसिंह ने लोकसभा के अध्यक्ष का ध्यान उस सर्वसम्मत परिपाटी की ओर दिलाया जिसके अनुसार प्रश्न का उत्तर उसी भाषा में दिया जाना चाहिए जिसमें प्रश्न किया गया हो। इस पर द्रविड़ कड़गम के सदस्य, एक मुसलमान कम्यूनिस्ट सदस्य श्री मुहम्मद इलियास, मैसूर के श्री हनुमन्तैया और अँगरेजी के अंधपरस्त ऐंग्लो इंडियन सदस्य श्री ऐन्थनी बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने संसद की उपयुक्त सर्वसम्मत परिपाटी की उपेक्षा करके हिंदी प्रश्न का अँगरेजी में उत्तर देने पर जो आपत्ति की गयी थी उसका विरोध किया। कड़गम और कम्यूनिस्ट दलों का हिंदी-विरोध आश्चर्य की बात नहीं। श्री ऐन्थनी तो हिंदी के विख्यात विरोधी और अँगरेजी-परस्ती में राजाजी, मुंशीजी आदि से भी आगे हैं। किन्तु श्री हनुमन्तैया कांग्रेस दल के सदस्य हैं, और उनसे आशा की जाती थी कि वे संसद की भाषा सम्बन्धी परिपाटी का विरोध न करेंगे। उनकी आपत्ति यह थी कि यदि हिंदी प्रश्नों का उत्तर हिंदी में देना अनिवार्य हो जाय तो कितने ही वरिष्ठ मंत्री, जो हिंदी नहीं जानते, संसद में महत्त्वपूर्ण वक्तव्य न दे सकेंगे और जो सदस्य हिंदी नहीं जानते वे हिंदी के वक्तव्यों को न समझ सकेंगे। सारांश यह कि श्री हनुमन्तैया नहीं चाहते कि संसद ने जो परिपाटी बनायी है वह जारी रहे। इसका परिणाम यह होगा कि संसद की सारी कार्यवाही अँगरेजी ही में हुआ करेगी। किन्तु लोकसभा के अध्यक्ष श्री हुकुमसिंह

ने यही व्यवस्था दी कि सरकार को संसद की परिपाटी का पालन करना चाहिए, अर्थात हिंदी प्रश्नों के उत्तर हिंदी में देने चाहिए। सरकार की ओर से प्रधान मंत्री ने भविष्य में इसका ध्यान रखने का वचन दिया।

संसद का अधिकांश काम अँगरेजी ही में होता है। चार-पाँच प्रतिशत कार्य भी हिंदी में नहीं होता। किन्तु हिंदी-विरोधियों को हिंदी में इतना काम भी सह्य नहीं है। वे हिंदी के उन थोड़े-बहुत अधिकारों को भी बेकार और समाप्त कर देना चाहते हैं जो किसी तरह संसद में उसे मिल गये हैं। वे सदैव के लिए एकमात्र अँगरेजी को बनाये रखना चाहते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्होंने भारत की संवैधानिक राजभाषा हिंदी न सीखने का निश्चय सा कर रखा है। जो बातें एक बार तय हो चुकीं उन्हें भी उखाड़ने का अवसर वे ढूँढ़ा करते हैं। यदि उन्हें संविधान के प्रति निष्ठा होती तो वे संविधान द्वारा स्वीकृत देश की राजभाषा के सीमित उपयोग का इस प्रकार विरोध न करते।

लोकसभा के अध्यक्ष ने कहा कि वे संसद में ऐसा यंत्र लगाने का प्रबंध कर रहे हैं जिससे अँगरेजी में दिये जानेवाले भाषण का हिंदी में, और हिंदी में दिये जानेवाले भाषण का अँगरेजी में अनुवाद मूल भाषण के साथ-साथ ही प्रसारित किया जायगा। सदस्य अपनी इच्छा के अनुसार जिस भाषा में चाहेंगे उसमें सदस्यों और मंत्रियों के भाषण सुन सकेंगे। इस यंत्र के लग जाने पर हिंदी न जाननेवाले सदस्यों को हिंदी भाषणों का अनुवाद तत्काल सुनने को मिल जायगा और वे यह शिकायत न कर सकेंगे कि जो कुछ हिंदी में कहा गया उसे वे नहीं समझ सके।

श्री हनुमन्तैया और श्री ऐन्थनी का यह कहना कि हिंदी प्रश्नों का उत्तर हिंदी में देने के नियम का पालन करने से हिंदी न जाननेवाले लोग वरिष्ठ मंत्री न नियुक्त हो सकेंगे, कुचेष्टित है क्योंकि ऐसा कह के वे अहिन्दी-भाषियों में हिंदीवालों के प्रति दुर्भावना उत्पन्न कर रहे हैं जिससे हिंदीभाषियों और अहिन्दी-भाषियों में वैमनस्य उत्पन्न होगा। हमारे अहिंदीभाषी नेता बड़े परिश्रम से एक विदेशी भाषा सीखते हैं। क्या उनमें इतना भी देशप्रेम या संविधान की मर्यादा का इतना भी विचार नहीं है कि वे उस भाषा को सीखने का प्रयत्न करें जिसे संविधान ने देश की राजभाषा मान्य और घोषित किया है? वे संविधान का पालन करने की शपथ लेकर ही मंत्री होते हैं। क्या उन्हें नहीं मालूम कि संविधान के अनुसार हिंदी केन्द्र की मुख्य राजभाषा है? यदि वे यह जानते हैं, तो बिना हिंदी सीखे वे किस प्रकार राजकाज चला सकते हैं? हिंदीवालों की यह धारणा है कि वर्तमान नेतागण केन्द्र का काम हिंदी में न चलने देंगे। जब वे देखते हैं कि इन नेताओं को हिंदी में साधारण प्रश्नों का उत्तर देना भी बुरा मालूम होता है तथा उन्हें हिंदी बोलने में भी कष्ट होता है तब उनकी उपर्युक्त धारणा की पुष्टि हो जाती है, क्योंकि जो लोग दस-पाँच दिनों में दो-चार हिंदी वाक्य भी बोलना पसन्द नहीं करते उनसे यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे हिंदी में काम करेंगे या हिंदी में काम होने देंगे? आश्चर्य की बात तो यह है कि जब संसद ने हिंदी को राजभाषा स्वीकार कर लिया है तब भी अँगरेजी-परस्त हिंदी के सीमित उपयोग को भी सहन नहीं कर सकते। वे अँगरेजी के मोह में इतने अंधे हो गये हैं कि अँगरेजी बनाये रखने के लिए ऐसी बातें भी कह देते हैं जिनसे आपसी वैमनस्य उत्पन्न हो और देश की एकता छिन्न-भिन्न हो जाय। वे व्यवहार में स्वयं संविधान का भाषा-सम्बन्धी निर्णय नहीं मानते, और यदि कोई उसे मनवाने की बात उठावे तो संसद में अशोभन कांड करने को तैयार हो जाते हैं। ढिलाई की नीति से अँगरेजी-परस्तों को सरकार की प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए हमें प्रसन्नता है कि लोक-सभा के अध्यक्ष ने संसद की इस परम्परा को बनाये रखने की घोषणा की कि हिंदी प्रश्नों के उत्तर हिंदी ही में दिये जायँ।

पंचतंत्र और हितोपदेश की विश्व-विजय

डा० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्०

हितोपदेश और पंचतंत्र ये दो ग्रंथ भारतीय कथा-साहित्य की प्रमुख पुस्तकें हैं। हितोपदेश पंचतंत्र का सरल संस्कृत में संक्षिप्त संस्करण है। कहानी सुनने और पढ़ने का सब को शौक होता है। इस कारण शिक्षित संसार में जितना प्रचार उक्त दो ग्रंथों का हुआ उतना अन्य किसी का नहीं। दूसरा कारण यह है कि पंचतंत्र तथा हितोपदेश की सब कहानियाँ पाठक का नैतिक स्तर उठाने और उसे लोकयात्रा के सर्वथा योग्य बनाने को लिखी गईं। इस विषय पर स्वयं हितोपदेश में लिखा गया है:—

श्रुतो हितोपदेशोयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु।
वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च॥

अर्थात् ऐसा सुना जाता है कि हितोपदेश संस्कृत-साहित्य की निपुणता में पाठक को गति करता है, वाणी को नाना रस प्रदान करता है तथा नीति-शास्त्र सिखाता है। इतना ही नहीं, यह इस ग्रंथ के आदि में लिखा गया है:—

कथाछलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।

कहानियों के बहाने हितोपदेश में बच्चों को नीति बतायी जाती है। यह नीति या जीवन के नाना विघ्नों को पार करने की विद्या इसमें कथाओं और उपकथाओं के द्वारा सिखायी गयी है। इस ग्रंथ पंचतंत्र का नाम सुनते ही, प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पहले, ईरान के यशस्वी बादशाह नौशेरवाँ ने अपने दरबार में विद्वानों की सभा बुलवाई और उन सब से निवेदन किया "भारत में संस्कृत भाषा में एक ऐसा ग्रंथ लिखा गया है जिसे पढ़कर तथा जिसके अनुसार काम करके राजाओं के खानदान हजारों बरस तक नाश को प्राप्त नहीं होते। मैं आप विद्वानों से प्रार्थना करता हूँ कि आपमें से जो विद्वान् भारत जाकर इस ग्रंथ को लायेगा, मैं उसे सब प्रकार से संपन्न करूँगा। मुझे यह ग्रंथ अवश्य चाहिए। मैं स्वयं इस पुस्तक को पढ़ना चाहता हूँ और मेरी प्रबल इच्छा है कि मेरी संतान इस ग्रंथ को पढ़े और उसके उपदेशों के अनुसार राज्य करके अपने वंश को चिरकाल तक जीवित रक्खे। इस ग्रंथ को प्राप्त करने के लिए मेरी अपार संपत्ति और शक्ति पंचतंत्र को लानेवाले का साहस करनेवाले की सेवा में है।" विद्वानों के इस दरबार में सब पंडितों ने यह घोषणा सुनी और सभी के हृदय में यह इच्छा पैदा हुई कि काश! मैं इस काम को पूरा कर सकता; किंतु किसीको यह हिम्मत न हुई कि भारत की कठिन यात्रा करके दीर्घ प्रवास के बाद इस ग्रंथ को प्राप्त कर और संस्कृत सीखकर शाहंशाह नौशेरवाँ का यह महान कार्य सिद्ध कर सके। कुछ देर बाद सब पंडितों को अचल और अवाक् देखकर एक नौजवान उनके बीच में उठ खड़ा हुआ।

यह नवयुवक जिसका नाम पजरोया था, हाल में ही अपनी शिक्षा समाप्त करके आचार्य बना था। उसे ज्ञान की लगन थी। उसने नौशेरवाँ से निवेदन किया—"जहाँ-पनाह! मैं ज्ञान का प्यासा हूँ, आपका फरमान सुनकर मैं बेचैन हो उठा हूँ कि इस अनमोल किताब को हिन्दुस्तान जाकर लाऊँ और आपकी तसल्ली करूँ। आपके फर्मान से मुझे भी जबरदस्त ख्वाहिश हुई है कि खुद इसे पढ़ूँ और पहलवी में इसका तर्जुमा करूँ।' यह सुनकर निराश नौशेरवाँ का हृदय सुंदर फूलों की भाँति खिल उठा। वह गद्दी से उठकर इस नये ज्ञानी के पास आया और उसकी पीठ थपथपाकर कहा—'ऐ नवजवान शाबाश! तूने ईरान के ज्ञानियों की लाज रख दी। तुझे जो चाहिए, मेरे खजाने से निकाल ले और तेरा सारा खर्च, तेरे सफर का और हिन्दुस्तान जाकर इल्म हासिल करने का कई सालों का एक साथ दे दिया जायेगा जिससे तुझे कभी तंग-दस्ती न हो।" यह नवयुवक भारत आया और भारत की भाषा सीखकर ब्राह्मण के भेष में एक गुरु की पाठशाला में भर्ती हो गया। वहाँ वर्षों रह कर पजरोया ने संस्कृत का ज्ञान तथा पंचतंत्र पढ़ा। उसकी दो-तीन प्रतियाँ भी अपने पास रख लीं और तब उसने बादशाह को लिखा कि राजनीति का यह ग्रंथ मैं पूरा पढ़ चुका हूँ। बरसों पढ़कर संस्कृत का भी ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ। पंचतंत्र नामक इस ग्रंथ को कंठस्थ भी कर चुका हूँ तथा इसकी कुछ प्रतियाँ अपने साथ भी रख ली हैं। जब आपकी आज्ञा प्राप्त हो वापस आ जाऊँ। नौशेरवाँ सदा पजरोया की बाट जोहा करता था कि कब वह लौटे और पंचतंत्र को अपने साथ लाये। यह पत्र पाते ही वह आनंद में डूब गया और उसने पजरोया को तुरन्त आने को लिखा। पजरोया और पंचतंत्र का स्वागत देखिए कि शाहंशाह नौशेरवाँ का हुक्म हो गया कि जैसे

ही पजरोया उसके राज में पहुँचे तो रास्ते भर में उसके सम्मान में दीवाली मनाई जाय और जब पंचतंत्र के साथ पजरोया राजधानी में पहुँचा तो उस रात को शाम से सुबह तक दीवाली जलती रही। बादशाह ने स्वयं जाकर पजरोया का स्वागत किया। सारे ईरान के उलेमा पजरोया का स्वागत करने आये और पहले दिन पजरोया बादशाह के महल में ही ठहरा। बादशाह ने पजरोया से कहा कि कल सुबह ६ बजे से तुम और तुम्हारे परिवार के सब लोग परसों सुबह ६ बजे तक मेरे खजाने से जितना मणि, माणिक, हीरा, मोती, पन्ना, सोना आदि जो-जो पदार्थ मूल्यवान हों अपने घर पहुँचा दें। तुम्हारे लिए खजाना खुला रहेगा, तुमने इतना बड़ा काम किया है कि मैं उसके पारिश्रमिक का छोटे से छोटा हिस्सा भी तुम्हें नहीं दे सका। इसका अनुवाद मेरा बड़ा वजीर बुजुर्ज मेहर और तुम मिलकर ईरान की भाषा पहलवी में करोगे। पजरोया उठ खड़ा हुआ और सिंहासन पर बैठे हुए बादशाह की ओर मुँह करके उसने अर्ज की––'जहाँपनाह ! मैं आपका क्या शुक्रिया अदा कर सकता हूँ, जो आपने मेरे ऊपर इतनी बड़ी मेहरबानी की; लेकिन मैं अपने ब्राह्मण गुरु से एक सबक सीख के आया हूँ। मेरे गुरु ने हमेशा यही कहा कि ज्ञान की सदा पूजा करो और धन को ज्ञान के रास्ते में बहुत बड़ी रुकावट मानों। मैं अपनी जिन्दगी इल्म के पीछे खपा देना चाहता हूँ और रुपये के पास फटकना नहीं चाहता। इसलिए मेरी बेअदबी माफ हो, मैं खजाने से कुछ न लूंगा। जब मेरे शिर पर आप हैं तो मुझे कौन-सी कमी सता सकती है ? निवेदन यही है कि पंचतंत्र के पहलवी तर्जुमे में प्रथम अध्याय में मेरा यह उल्लेख हो कि मैं इस किताब को हिन्दुस्तान से बड़ी मेहनत से लाया।'' बादशाह और वजीर-ए-आजम बुजुर्ज मेहर पजरोया की यह बात सुनकर दंग रह गये और पजरोया की बात मान ली गयी। मेरे पास पजरोया का पंचतंत्र का पहलवी अनुवाद तो नहीं है; किंतु इस पहलवी अनुवाद का बादशाह अकबर ने जो फारसी अनुवाद फैजी से करवाया था, उसका उर्दू अनुवाद I.C.S. के बहुत बड़े विद्वान् ईस्टवीक साहब ने करवाया था और उन्होंने ही इसे १८५७ ई० में विलायत में छपवाया था, वह मेरे पास है। इसका नाम उन्होंने रक्खा है **खिरद अफ़रोज** अर्थात् 'बुद्धि-प्रकाश।'

इस पंचतंत्र या कलीला-दिमना ने संसार की जो विजय की वह भारत के भाग्य में एक अद्भुत घटना थी, भले ही हमें इसका कुछ पता न हो। संसार में पंचतंत्र की गाथा सभी सभ्य जातियों ने गायी। इस पहलवी अनुवाद का इतना नाम फैला कि बीस-तीस साल के भीतर ही इसका अनुवाद सीरिया की अरबी में हो गया। इसके बाद ही अरब की अरबी में भी इसका अनुवाद हुआ। शीघ्र ही यहूदियों ने इबरानी में इस ग्रंथ का उल्था किया। तब तो ग्रीक, लैटिन, इटालियन, जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, पुर्तगाली, स्पेनिश, रूसी आदि कोई सभ्य भाषा न बची जिसमें नाना नामों से विचित्र कहानियों के ग्रंथ, पंचतंत्र का अनुवाद न हुआ हो। योरुप भर में पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी में इस ग्रंथ के संस्करण पर संस्करण निकले। स्पेन में इस पुस्तक के पन्द्रह संस्करण निकले और प्रायः ५० से ७५ हजार तक प्रतियाँ छपीं। फ्रांस में वहाँके सबसे बड़े उपदेश-प्रद कहानियों के लेखक लाफाँ तेन ने अपनी संसार-प्रसिद्ध लघु-कहानियों की भूमिका में पंचतंत्र के तथाकथित लेखक विदपइ अथवा पिलपइ (विद्यापति ?) के बड़े गुण गाये हैं। लाफाँ तेन का ग्रंथ संसार की सभी भाषाओं में अनूदित हो चुका है। पंचतंत्र का अँगरेजी संस्करण १५७० ई० में छपा। यह प्रति मेरे पास है। फ्रांस में १७०० ई० के प्रारम्भ में तुर्की भाषा में इस ग्रंथ के अनुवाद से एक और अनुवाद तीन खण्डों में छपा। तुर्की भाषान्तर का नाम तूती-नामा है। इसका फ्रेंच अनुवाद भी मेरे पास है। कहाँ तक कहा जाय ? पंचतंत्र ने विश्व-विजय कर ली है। इस विजय की अपूर्व गाथा जर्मन महा-पंडित बेनफे ने विस्तार के साथ लिखी है जिसे पढ़कर मेरी तो छाती फूल गयी और माथा गर्व से एक बार उन्नत हो गया। भारत में पैदा हुआ हूँ। संसार की ज्ञान-विज्ञान की उन्नति देखकर अपने जीवन को धिक्कारता हूँ। फिर भी बेनफे साहब का यह ग्रंथ देखकर अपने पूर्वजों द्वारा रचित पंचतंत्र की विश्व-विजय का चम-चमाता दृश्य देखकर भारत का गौरव मुझे मस्त कर गया। खेद है कि हमको इस विजय की भी नाम-मात्र खबर नहीं, कवि ने सच कहा है—

“हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी,
खुद हमारी खबर नहीं आती।”

यह दशा देखकर सदा सबके सामने झुकता हूँ और सदा अवनत-मस्तक रहता हूँ। जो हो, अब एक कहानी

१९६३

पढ़िए जो स्वयं रूस के निवासी मंगोल जाति के कालमुक (कम्यूनिष्ट राज में कालमुक सभ्य और सुसंस्कृत हो गये हैं) बच्चे और स्त्रियाँ बार-बार दुहराती हैं और जो समय-असमय उन्हें आनन्द देती हैं तथा उनका दुःख भुलाती हैं––

उत्पन्नेष्वपि कार्येषु मतिर्यस्य न हीयते।
स निस्तरति दुर्गाणि गोपी जारद्वयं यथा॥

उक्त श्लोक से सुहृद्भेद की निम्न कहानी का श्रीगणेश होता है :—

द्वारावती में किसी ग्वाले की स्त्री का चरित्र अच्छा न था। वह गाँव के पटवारी और उसके पुत्र के साथ प्रेम करती थी। कहा भी है—'जिस तरह कि आग काठ से, समुद्र नदियों से और महाकाल सर्व प्राणियों के भक्षण से तृप्त नहीं होते उसी तरह स्त्रियाँ काम से तृप्त नहीं होतीं।' और सुनिये––'स्त्रियाँ दान से, न मान से, न खुशामद से, न सेवा से, न शस्त्र और न शास्त्र से ही सुधर सकती हैं। इसलिए वे भयंकर होती हैं।' क्योंकि यह भी कहा जाता है—'गुणी, यशस्वी, सुंदर, कामकलाविज्ञ, धनी और नौजवान पति को छोड़कर नारियाँ झटपट ऐसे पुरुष से संग करती हैं जो शील और गुण से हीन है।' आदि।

एक बार यह ग्वालिन पटवारी के बेटे के साथ प्रेम कर रही थी। इतने में पटवारी भी वहीं आ धमका। उसे आते देखकर इस औरत ने उसके पूत को पास में रक्खे एक कुठिले के पीछे छिपा दिया। इसके बाद वह पटवारी के साथ रमने लगी। इस बीच उसका पति ग्वाला जो अपनी ढोरों को चरागाह में छोड़कर, घर वापस आया। यह देख ग्वालिन ने अपनी बुद्धि नहीं खोयी। उसने पटवारी से कहा—'पटवारी! तुम डंडा घुमाते हुए, गुस्सा दिखाते हुए यहाँसे बाहर निकल जाओ।' वह इस प्रकार चला गया। इसपर ग्वाला कुछ चकित-सा रह गया और क्रोध में अपनी पत्नी से पूछा––'यह पटवारी तेरे पास क्यों आया था' उसने धीरज के साथ उत्तर दिया—'अरे! वह किसी कारण अपने बेटे पर बहुत नाराज था। उसका पुत्र भागता हुआ मेरे पास आया तो मेरा धर्म था कि मैं उसे शरण दूँ। बस, मैंने तुरत उसकी रक्षा के विचार से उसे कुठिले के पीछे छिपा दिया। बाप ने उसे यहाँ भी खोजा जो पता न लगने पाया। इस कारण ही वह बहुत नाराज हुआ और क्रोध में भरा हुआ, डंडा फिराते यहाँसे चला गया।' धर्म का यह उपदेश सुनकर पति देवता फूले न समाये और अपनी सती-साध्वी धर्मपत्नी का जीवन भर गुण गाते रहे। पत्नी ने बड़े लाड़-दुलार से पुत्र को कुठिले के पीछे बाहर निकाला और अपने पति को दिखाया।

कहा भी है "स्त्रियों की बुद्धि पुरुषों से चौगुनी होती है।"

इस कहानी की नकल शुकसप्तति में यों की गयी है :—

"प्रभावती ने तोते से फिर पूछा और उसने उत्तर दिया––ऐ मेरी स्वामिनी! यदि तू रत्नादेवी की भाँति उत्तर दे सकने के योग्य है तो तू भी प्रेमियों से भेंट करने को जा सकती है। इसपर प्रभावती ने कहा––भाई! रत्नादेवी की कहानी सुना। यह सुनकर तोते ने कहना आरंभ किया। इंद्रपुर नगर में विक्रमसिंह नामक एक राजपूत रहता था। रत्नादेवी उसकी स्त्री थी। वह राजपूत इसे नित्य मारता, धमकाता, गालियाँ देता और हर प्रकार हैरान करता था। 'आज घर में तुझसे मिलने कौन आया? कौन मेरे आने से पहले घर से भागा?' 'धत् तेरी दुष्टा की, तेरा सत्यानाश हो। तू दरवाजे पर खड़ी किसका बाट जोह रही थी?' 'तूने अकारण ही सर नंगा क्यों कर रखा था?' आदि आदि। रात-दिन रत्नावती पर ऐसे तानों की बौछार थी और सब अकारण। बहुत समय इसी प्रकार बीता। एक दिन उसके मन में यह बात आयी––'मेरा पति महान् नीच है, अच्छे रहो तो शंका के मारे जलता रहता है, यदि वास्तव में कोई बुराई भी करो तो उससे क्या डरना। यह तो ऐसा मूरख है कि इसकी आँखों में मैं अच्छी नहीं हूँ चाहे बुराई करूँ या न करूँ। इस दशा में दूसरे मनुष्यों से मिलकर अपना दुख तो कम करूँ। बस फिर क्या था? वह अन्य पुरुषों के साथ आने-जाने लगी और अंत में नगर के दंडनायक और उसके बेटे से भी उसका प्रेम हो गया। दोनों को पता न था कि वह दोनों से प्रेम करती है। एक दिन वह कोतवाल के बेटे के साथ रम रही थी कि स्वयं कोतवाल आ गया। उसने दूर से उसे देखा और झट से उसके पुत्र को छिपा दिया और उससे मन बहलाया। इतने में क्रोध में भरा हुआ राजपूत विक्रमसिंह भी आ पहुँचा।

यह सुन प्रभावती की उत्सुकता को गुदगुदी लगी और थोड़ी देर तक सोचने लगी कि रत्नादेवी ने इस विकट स्थिति में कौन-सा रास्ता निकाला होगा? पर वह स्वयं इस समस्या का हल न निकाल सकी। इस पर तोते ने

कहा—प्रभावती सुन! जैसे ही उसने अपने पति को घर आते देखा तो उसने झटपट कोतवाल के हाथ में चाबुक पकड़ाया और बोली—बाहर निकल और गुस्से में यह कहते जाना कि उस पाजी को पकड़ पाऊँ तो बदमाश का सर फोड़ दूँ, तब वह होश में आयगा! जा क्रोध में भरा यह कहता हुआ निकल जा। कोतवाल इस प्रकार निकल गया। विक्रमसिंह ज्यों ही घर में घुसा तो कड़ककर रत्नादेवी से बोला—शैतान का यह बच्चा किसपर और क्यों बिगड़ रहा है? उसने उत्तर दिया—अभी आप थके हैं, आप पहले सुपर्वन् की पूजा कर लीजिए और उसके बाद भोजन से निबट जाइए तो मैं सारी कहानी सुनाऊँगी। राजपूत ने ऐसा ही किया और खाने के बाद पलंग पर चारों खाने चित लेट गया। रत्नादेवी ने उसे पान का बीड़ा दिया और उसने प्रेम से खाया। रत्नादेवी भी भोजन से निवृत्त हुई। तब उसने कहानी आरम्भ की—ऐ राजपूत! आज तो एक तमाशा ही खड़ा हो गया। कोतवाल को न मालूम क्या हुआ कि एकाएक अपने बेटे पर बिगड़ उठा। म्यान से तलवार खींची और बेटे पर टूट पड़ा। वह जान लेकर भागा और खिड़की पर मुझे देख बोला—बचाओ! बचाओ!! मुझे अपनी शरण में लो!!! उस समय मुझे संसार में विख्यात तेरी प्रतिष्ठा का ध्यान आया और तेरी 'शरणार्थियों का हीरकपिंजर' उपाधि की याद आयी। बस तुरत घर में छिपा लिया। कोतवाल यह न देख पाया क्योंकि मैंने बहुत फुरती में यह काम किया और उसकी आँखों में धूल डाल दी। थोड़ी देर में उसके पीछे दौड़ता हुआ उसका बाप आया और हमारे घर में घुसा। क्रोध में पागल न मालूम क्या-क्या गालियाँ दे रहा था। बेटे को ढूँढ़ा पर मैंने भी ऐसा छिपाया कि कहीं पता न चला। उसके आगे सर्वत्र मैं खड़ी हो जाती थी। जब उसने अपने लड़के को न पाया तो आगबबूला होकर गाली देता हुआ वापस चला गया। यह कथा सुनकर विक्रमसिंह बहुत खुश हुआ और उसे पक्का विश्वास हो गया कि मेरी धर्मपत्नी बहुत धार्मिक है। इसमें कोई बुराई नहीं है। कहा—कोतवाल का पुत्र कहाँ छिपाया है, जरा मुझे दिखाओ। रत्नादेवी ने उसे बाहर निकाला और उसे विक्रमसिंह के सामने ला खड़ा किया। विक्रमसिंह इस घटना से फूला न समाया। उसका हृदय पत्नी के इस महान् पुण्यकार्य से गद्गद हो गया और वह रत्नादेवी के पावँ पड़ गया और कहने लगा—'धन्य है तुझे, तू साक्षात् देवी है। आज इस संकट में यदि तू कोतवाल के बेटे को शरण न देती तो हमारे खानदान के विख्यात नाम के ऊपर कलंक का टीका लग जाता। तूने हमारे कुल का उद्धार किया है।' ऐसे अनेक शब्दों से उसने रत्नादेवी की स्तुति की। इस प्रकार दोनों में मेल हो गया। प्रभावती! यदि तुझे काफी बुद्धि हो कि इस प्रकार की चालाकी से काम बनाये तो तू सर्वत्र सबके साथ जा सकती है।"

टेओडोर बेनफे संस्कृत का महापंडित था। उसने पंचतंत्र की एक-एक कथा का इतिहास ढूंढ़ निकाला। उसने उक्त कथा का शुकसप्तति से जो अनुवाद किया है उसका सार यह है—'क्षत्रिय क्षोमरक्ष की स्त्री रत्नावती वल्लभ (ग्वाला) से प्रेम करती थी और उसके बे के साथ भी। बाप का पता बेटे को नहीं और न बेटे को बाप को। एक दिन दोनों साथ ही उसके यहाँ पहुँचे और उसी समय पति भी आया। जब रत्नावती ने अपने पति को आते देखा तो झिड़ककर बाप को निकाल दिया। जैसे ही पति भीतर घुसा तो उससे कहने लगी इस प्यारे बच्चे ने अपने यहाँ शरण ली है। हम क्षत्रिय हैं। शरणागत की अवश्य रक्षा करेंगे। इसलिए मैंने इसके बाप को धता बता दी क्योंकि वह इसे मारने आया था।' जिस हस्तलिपि से बेनफे ने इस कहानी का अनुवाद किया उसका अब पता नहीं है। किंतु बेनफे ने लिखा है कि यह कथा पंचतंत्र से भी पुरानी है क्योंकि इसमें बाप के हाथ में डंडा नहीं थमाया गया। यह विकास बाद का है। आर० स्मित (R. Schmidt) के शुकसप्तति के जर्मन अनुवाद के ऊपर इसका जो अनुवाद मैंने दिया है वह बहुत विकसित है। सीधा सादा मूल रूप नहीं है। अतः वह अवश्य ही बाद का है।

एक समय था जब भारतीय कहानियों ने संसार में अजीब चहल-पहल मचायी थी। ईरान, सीरिया, अरब, इसराएल, यूनान तथा अन्य यूरोपियन देशों को इन्हींसे ज्ञान का प्रकाश मिलता था। उनके पास अपना साहित्य कुछ नहीं था। ऐसी दूसरी कहानी नजबी ने तुर्की में अनुवादित अपने ग्रंथ 'तूतीनामा' में दी है। इसका अनुवाद जर्मन विद्वान् ब्रौकहौस ने यों किया है—'एक स्त्री किसी चित्रकार के साथ प्रेम करती थी। चित्रकार का एक नौकर था जो नौजवान और रूपवान था। एक दिन चित्रकार ने इस

महिला के पास अपने सेवक के हाथ संदेसा भेजा। नौकर संदेसा ले गया पर बहुत देर तक लौटा नहीं। चित्रकार को बहुत बुरा लगा और वह जल-भुन गया। अधिक विलंब न सह सका। मियान से तलवार निकाली और नंगी तलवार हाथ में ले पहुँचा, उस महिला के घर। उसने देखा कि क्रोध में भरा चित्रकार स्वयं उसके घर की ओर आ रहा है तो उसने सेवक को एक कोने में छिपा दिया। चितेरा बोला—मैंने तुम्हें घर आने का संदेसा भेजा था। तुम न तो आयीं, न कोई तैयारी ही कर रही हो और न मेरा संदेशवाहक नौकर ही घर वापस आया। क्या मामला है? महिला ने तुरत जवाब दिया—ऐसे संदेसे नौकरानी द्वारा भेजे जाने चाहिए, मूर्ख नौकरों द्वारा नहीं। तुम्हारा नौकर आया था। वह कुछ देर खड़ा रहा मानों गूंगा हो, फिर एकाएक चला गया। जब ये बातें हो रही थीं कि पतिदेव ने दर्शन दिये। अब चितेरे का यह हाल कि काटो तो बदन में खून नहीं। सब अवाक् रह गये। इसपर झट से स्त्री बोली—'हट्, अंदर कहाँ घुसता है? निकल, बाहर जा। क्रोध किसे दिखाता है। बस चितेरा गाली बकता हुआ और गुस्से में भरा हुआ, बाहर चला गया।' बाकी कहानी हितोपदेश की ही है।

इस प्रकार की कहानी इबरानी में अनुवादित ग्रंथ 'मिश्ले-संदवार' में भी है—'किसी समय एक आदमी विदेश गया और अपनी पत्नी को मैके रख गया। स्त्री नौजवान थी। उसने मा की सहमति से एक नौजवान घर बिठा दिया। कई बरस तक दोनों के दिन आनंद से कटे। एक दिन पति घर वापस आया। इस समय सब एक साथ भोजन कर रहे थे। पत्नी ने दूर से पति को आते देखा तो दरवाजे पर उसकी आव-भगत करने गयी। इधर माँ ने उपपति के हाथ में नंगी तलवार थमा दी और उससे कहा कि इसे उठाकर बाहर चल दो। यदि मेरा दामाद तुमसे कुछ कहे तो उत्तर मत देना, चुप्पी साध लेना। पति भीतर आया तो बिगड़कर बोला—तुम कौन हो जी? मगर नौजवान ने गोया मुँह में ताला लगा लिया हो। वह बाहर निकल गया। माता दामाद के पास आयी और मीठे तथा धीमे स्वर से बोली—बेटा! हलके-से बोलो, पड़ोसी सुन लेंगे। दामाद साहब यह सुनकर और भी हक्के-बक्के रह गये। उसने फिर दामाद के कान में कहा—तीन आदमी इसका पीछा कर रहे थे। हमने इसे यहाँ आने दिया और छिपा रखा। अब वह जान बचाकर जा रहा था तो तुम आ गये। उसने तुम्हें उनका आदमी समझा और उत्तर न देकर अपना त्राण किया।'

मिशले-संदवार पूर्वी यूरप और पश्चिमी एशिया में बहुत प्रचलित सितिपास का अनुवाद है जो ग्रंथ मूल संस्कृत में सिद्धपति नाम से था। यह सिद्धपति ही वह ग्रंथ था जिससे अल्फ-लैला-व-लैला में सिंदबाद जहाजी की कहानी ली गयी। यह कहानी भारत से जाकर यूरप में घर-घर दुहरायी जाने लगी। भारत की अन्य कहानियों के साथ ईसाई मठों में गेस्टा रोमानोरुम नामक जिस ग्रंथ का नित्य पाठ किया जाता था, उसमें भी यह ली गयी। एक बहुत पुरानी फ्रेंच कहानी 'कास्त्वामां द आं पेयर-आ सौं फीस' में यह कथा वर्णित है। एक अन्य फ्रेंच कथा 'द-नेस्पर्विए' में भी यही किस्सा चुराया गया है। जर्मनी में नाना संस्करण इस कहानी की गाथा सुना रहे हैं कि कभी कथा-साहित्य में भारत और पंचतंत्र मनुष्य के मर्म की वाणी संसार भर को सुनाने में समर्थ थी। इटली और स्पेन में इस कहानी पर दो-दो नाटक लिखे गये। संसार की मुख्य-मुख्य भाषाओं के साहित्य में उक्त कहानी ने धाक जमा रक्खी है। इसमें सभी जीव-जंतुओं के प्राण के भीतर का रहस्य खोला गया है। स्त्री-पुरुष दोनों के चरित्र का सच्चा रूप दिखाया गया है कि संसार के सब मनुष्य नर-नारियों के हृदयों में जो स्वाभाविक भाव उठते हैं उन्हें जानें और उनकी अवहेलना न करें।

'जैसलमेर' आदि का 'मेर' शब्द

पंडित किशोरीदास वाजपेयी

जैसलमेर, अजमेर, बाड़मेर, आमेर आदि शब्दों का अन्तिमांश 'मेर' शब्द और इसकी पूर्व परम्परा बड़ी विचित्र चीज है! 'मेर' की ही तरह 'नेर' है, जो 'बीकानेर' आदि में लगा है। 'अछनेरा' में भी 'नेर' ही है—नेर+आ= 'नेरा'। 'मेर' के पहले 'नेर' बना; वर्णम्नाय की पूर्वापर स्थिति के कारण ही 'नेर' को पुरखा नहीं बता रहा हूँ; विकास-क्रम से भी इसकी पुष्टि है।

नगर-वाचक शब्दों के ही अन्तिमांश 'नेर' तथा 'मेर' शब्द हैं। अन्यत्र इनके दर्शन नहीं। जैसे **'मुरादनगर'** वैसे ही **'बीकानेर'।** 'विक्रमनगर' कोई-कोई पुराना नाम कहते हैं; सो सही हो चाहे गलत; परन्तु इतना निश्चय है कि 'नगर' का ही रूपान्तर 'नेर' शब्द है। 'नगर' का 'नयर' होकर 'य' को 'इ'। न+इ=ने। नयर >'नेर'। 'नेर' के साथ-साथ जनभाषा में 'नगर' भी चलता रहा; क्योंकि सुगम शब्द है। उत्तर प्रदेश के पूरबी छोर पर समीपार्थक 'नेरे' शब्द आज भी चलता है; यद्यपि 'कोऊ **निकट** न दूरि' आदि रूप से 'निकट' भी चलता है। 'निकट' के 'ट' को 'ड' होकर फिर 'र' रूप और 'क' को 'य'—निकट>'नियर''। य' को 'इ' होकर 'निइर'। 'इ' के तुरन्त बाद 'इ' का उच्चारण क्लिष्ट है; इसलिए दूसरी 'इ' का लोप और 'नि' को 'ने' रूप—'नेर'। अधिकरणार्थक रूप 'नेरे'। ये 'नेर'—'नेरे' हैं; 'निकट' के रूप, जो यहाँ निदर्शनार्थ रखे गये हैं।

'निकट' और 'नियर' की ही तरह 'नगर' और 'नेर'—'नेरा' शब्द किसी समय चलते थे, जो 'बीकानेर' तथा 'अछनेरा' आदि के घटक हैं। 'नगर' के 'ग' को उसी तरह 'य' रूप मिल गया, जैसे 'किकर' के 'क' को। 'य' तो 'इ' हो ही जाता है। 'नगर'—'नेर' किसी समय राजस्थान आदि में समान रूप से चलते थे। नयर>नइर और न+इ='ने' स्पष्ट विकास है। समीपार्थक 'नेरे' में 'य' के 'इ' का लोप हुआ; क्योंकि सन्धि होकर नि+इ='नी' होकर 'नीर' रूप बन जाता। तब 'नीरे हैं मेरे न पीतम बीर' आदि भ्रामक प्रयोग हो जाते। 'नीरे'—पानी में, या समीप? 'अवधेस के [illegible] गई' की ही तरह अधिकरणार्थक **'नेरे** हैं मेरे न पीतम बीर' आदि सुन्दर प्रयोग हैं। 'नि' को 'ने' होना स्वाभाविक ही है। संस्कृत कर्मकारक (नपुंसक लिंग में) 'नि' विभक्ति के साथ चलता है—'फलानि पश्यामि'। यही 'नि' राजस्थानी में 'ने' होकर कर्म और सम्प्रदान में भी चलती है; जैसे हिन्दी में 'को'। 'राम ने सब समझायो'—राम को सब समझाया। और—'राम ने लाड़ू दियो'—राम को लड्डू दिया। हिन्दी की 'ने' तो संस्कृत 'इन' का रूपान्तर है, वर्णप्रत्यय और सन्धि होकर न+इ= 'ने'। इस 'ने' का कर्ता कारक में ही प्रयोग होता है, अन्यत्र नहीं; जब क्रिया भूतकाल की कर्मवाच्य या भाववाच्य हो। यानी हिन्दी की 'ने' से राजस्थानी की 'ने' भिन्न है। अनेक भाषाविज्ञानियों ने दोनों को एक ही चीज समझ लिया है। संस्कृत की वही 'नि' विभक्ति पंजाबी भाषा में 'नू' हो गयी है; कहीं अनुनासिक उच्चारण 'ऊ' का—'नूँ'। 'राम नूँ देख'— राम को देख और 'राम नूँ हिक किताब दीती'—राम को एक किताब दी।

स्पष्ट है कि 'इ' का 'ए' हो जाता है—'नेरे'। 'निकट' का 'नियर' होकर 'निइर' रूप नहीं रहा—नियर, नियरे; या फिर 'नेरे।' 'निइर' के उच्चारण में क्लिष्टता ही 'इ' के लोप का कारण है। इसीलिए किया, पिया, लिया आदि का स्त्रीवर्गीय रूप बनाने के लिए 'ई' स्त्री-प्रत्यय सामने आते ही 'य' का लोप होकर 'कि ई' रूप और 'सवर्णदीर्घ' सन्धि होकर 'की'। इसी तरह 'पी' 'ली' आदि क्रियाएँ। लियी, कियी, पियी आदि रूप भी नहीं बने या चले; क्योंकि 'य' अपने आपको सवर्ण स्वर 'ई' में खपा देता है—अलग आवाज नहीं रहती और तब 'लियी' के उच्चारण में वही क्लिष्टता, जो 'लिई' आदि में। इसीलिए 'य' का लोप और फिर 'सवर्णदीर्घ' सन्धि। इसी तरह 'निइर' से 'नेरे'। 'इ' का लोप।

'नगर' का रूपान्तर 'नयर' और फिर 'नइर' होने पर 'गुण सन्धि' होकर 'नेर'—'बीकानेर'। छोटा नगर—'नगरा' और कहीं 'नगला'। 'नायक नगला' स्व० पण्डित पद्मसिंह शर्मा का गाँव है। 'नगला' का ही रूपान्तर 'नाँगल' इधर कुरुजनपद में चलता है। छोटा नगर परन्तु अच्छा—'अछनेरा'। 'नेरी' और 'नेड़ी' भी सुने जाते हैं। कनखल से एक मील की दूरी पर पाँच गाँव

१९६३

पास-पास हैं। पाँचों के अलग-अलग नाम हैं और पाँचों का समष्टि नाम है—'पँचनेड़ी'। पाँच नेड़ों (नेरों) का समाहार—'पँचनेड़ी'।

'नेर' की छाया 'मेर'

'जैसलमेर', 'अजमेर' आदि का 'मेर' शब्द उसी 'नेर' की छाया है। 'नेर' के वजन पर गढ़ा हुआ 'मेर' शब्द है। 'मीठा' के वजन पर 'सीठा' शब्द गढ़ लिया गया। 'मिष्ट' का रूपान्तर 'मीठा' और 'मीठा' के वजन पर 'सीठा'। परन्तु 'नेर' और 'मेर' समानार्थक हैं; जब कि 'मीठा'–'सीठा' भिन्नार्थक। वजन पर ही 'नौ' से 'नहला' बन गया। 'दहला' को देखकर 'नहला'। 'दस' में तो 'स' है, जो 'ह' बन गया; पर 'नौ' में वैसी कोई चीज नहीं और 'औ' का 'अ' हो जाना भी विशेष बात है। इसी तरह शब्द-ढला बना करते हैं।

'मेर'—'नेर' की ही तरह और भी बहुत शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति या विकास लोग भूल गये। जैसे ब्रजभाषा-साहित्य में प्रचलित—

'महर'—'महरि' शब्द

'सभा' द्वारा प्रकाशित 'शब्द-सागर' में 'महर' की उत्पत्ति संस्कृत 'महत्' शब्द से बतलाई गयी है; पर 'महत्' शब्द ब्रजभाषा में चलता नहीं और 'त्' को 'र' हो जाना भी अजीब बात है। ब्रज में आजकल 'महर'-'महरि' शब्द नहीं चलते; पर अब से चार सौ वर्ष पहले तक चलते रहे हैं। सूरदास ने जगह-जगह 'नन्द महर' और 'महरि जसोदा' जैसे प्रयोग किये हैं।

बिहार में ब्राह्मणों का एक वर्ग 'भुइंहार' है। यह 'भूमिघर' का रूपान्तर है। भुइंहार ब्राह्मण जमींदार हैं। काशीनरेश भी भुइंहार ब्राह्मण हैं।

नन्दजी कंस के राज्य में अच्छे जमींदार थे—'महीधर'। 'महीधर' का ही रूपान्तर 'महर' है। —महीधर > मईहर > मैहर > 'महर'। 'जमींदार' का 'दार' भी 'धर' का ही रूपान्तर है। भूमि या मही की जगह 'जमीं' (जमीन) है। धर > दर > 'दार'। अन्यत्र भी 'ध' को 'द' होते देखा जाता है। संस्कृत 'आधान' का आद्य स्वर लुप्त करके 'धान' और 'धा' को 'दा'—'दान'। पानदान, इत्रदान, कलमदान आदि में वही है। जिसमें कोई चीज रखी जाये, उसे संस्कृत में 'आधान' कहते हैं और स्त्रीवर्गीय रूप—'आधानी'। इस 'आधानी' का ही रूपान्तर—'दानी' है—'चूनादानी'।

'महत्' शब्द से 'महर' बनाना-बताना हिन्दी-जगत् में कोई अचरज की बात नहीं है। जहाँ के भाषाविज्ञानी भूतकालिक अस्तित्व प्रकट करनेवाले 'था' क्रिया शब्द को संस्कृत 'ष्ठा' धातु से बना बताते हों, वहाँ सब कुछ संभव है!

खैर, हमें यहाँ 'मेर'-'नेर' शब्दों की चर्चा करनी थी। निदर्शनार्थ या प्रसंगवश अन्य शब्दों की भी कुछ चर्चा हो गयी। ऐसा ही एक शब्द है—'पोला', जो विशेषण रूप से चलता है—'पोला बाँस' 'पोली ककड़ी'। इसकी उत्पत्ति संस्कृत 'फुल्ल्' धातु से बतलाई गयी है। 'फुल्ल्' से 'फूल' हिन्दी धातु है—'फूलता है'। इसीसे 'फूल' संज्ञा है। परन्तु 'पोलता है' कोई क्रिया-शब्द नहीं। बाँस 'पोलता' नहीं है; पोला होता है। 'टोस' के विपरीत—'पोला'।

'पोला' की व्युत्पत्ति फिर क्या है? सुनिए—शहरपनाह यानी नगर-प्राचीर के फाटक को 'पौरद्वार' कहते हैं। आगे 'पौर' विशेषण से ही 'पौरद्वार' समझा जाने लगा; जैसे 'संस्कृत' से 'संस्कृत भाषा' और 'हिन्दी' से 'हिन्दी भाषा'। यही 'पौर' शब्द आगे चलकर ('पोर' होकर) 'पोल' हो गया। जयपुर में आज भी 'सूरजपोल', 'चाँदपोल' आदि पौर द्वारों के नाम हैं। 'पोल' के रूप को देखकर 'पोला' विशेषण बन गया।

इसी तरह अन्य बहुत से शब्द हैं। इनके लिए एक बड़े व्युत्पत्ति-कोश की जरूरत है। 'भारतीय भाषाविज्ञान' जैसे ग्रन्थ में सभी शब्दों का सन्निवेश संभव न था; एक दिशा भर एक अध्याय में बताई गई है। उस दिशा में चल कर मंजिल तक पहुँचा जा सकता है। जिसमें शक्ति हो, चले।

गाहा सत्तसई से ग्राम्यजीवन के चित्र

श्री विश्वनाथ पाठक

कविवर हाल की गाहा सत्तसई प्राकृत की अत्यन्त प्राचीन कृति है। अन्य प्राचीन काव्यों की तरह न इसमें कोई कथा है न चरितनायक। न कोई सन्देश है और न किसी आदर्श की सृष्टि। विभिन्न कवियों की रची सात सौ गाथाओं के छोटे से संकलन में केवल ग्रामीण जनता के पलकों के आँसू और अधरों के हास सँजो दिये गये हैं। प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र और आमुष्मिक चिन्ता से मुक्त है। संग्रहकर्ता का नाम 'हाल' है। हाल ने ईसा के प्रथम शतक में इस ग्रन्थ का संग्रह किया था। उन्होंने बीच-बीच में स्वरचित गाथायें भी दे दी हैं।

गाहा सत्तसई यद्यपि अनेक कवियों की मुक्तक रचनाओं का संकलन है, एक कवि की कृति नहीं है, फिर भी उसके द्वारा साहित्य में एक अभिनव धारा का प्रवर्त्तन हुआ। संस्कृत-साहित्य में सहस्रों कवियों ने अपनी प्रतिभा की ज्योति से सरस्वती के मन्दिर को आलोकित किया है, परन्तु नगरों के विलासपूर्ण वैभव से दूर गरीब गाँवों की भूखी और अधनंगी जनता के हृदय की धड़कन किसी ने कब सुनी? प्राचीन काव्यों में बड़ी-बड़ी राजधानियों की समृद्धि का कवित्वपूर्ण वर्णन पढ़कर हमने यह धारणा बना ली कि तब हमारा देश बहुत सम्पन्न था। संस्कृत महाकाव्यों को पढ़ते समय हमारी आँखें वैदूर्य और चामीकर की चकाचौंध से भर जाती हैं, जैसे दुनिया से दुख-दैन्य का डेरा ही उठ गया हो। किन्तु हम भूल जाते हैं कि वह वर्णन उन अभ्रचुम्बी नगरों का है जिन्हें बसाने में हजारों गाँवों की हरी-भरी फुलवाड़ियाँ उजड़ गयी थीं।

यक्ष की अलका तो एक ही थी किन्तु ऐसे गाँवों की टूटी-फूटी झोपड़ियों की संख्या कौन बता सकता है जिनका दुख-दर्द किसी भी कवि की कविता का विषय न बन सका!

गाहा सत्तसई ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसने सर्वप्रथम प्रचलित आदर्शों और मान्यताओं को छोड़कर काव्य जगत् के उन चिर उपेक्षित दीन-हीन गाँवों में प्रवेश किया, जहाँ वर्षा की अँधेरी रजनी में प्रवासी कृषक की प्रिया चूते छप्पर का पानी अपने मस्तक पर रोककर नन्हें बालक की रक्षा करती है, किन्तु वह यह नहीं जान पाती कि उसका मुन्ना उसके आँसुओं से ही भीग गया है—

रक्खेइ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती।
अंसूहिं पहिअ घरिणी ओलिज्जन्तं ण लक्खेइ॥

इन गाँवों में ऊँची अट्टालिकायें नहीं हैं। हरे-भरे खेतों और बाँस के झुरमुट में छोटे-छोटे फूस के छप्पर बने हैं। सन्ध्या होते ही भैंसों के सींगों से आहत मच्छरों की भनभनाहट वीणा की झंकार सी मुखर होने लगती है। उस समय द्वार पर आये थके-माँदे बटोही को चबूतरे पर स्थान मिल जाता है। लेकिन अतिथि का सत्कार करने के लिए इन दरिद्र गामीणों के पास है ही क्या? ठंडा पानी और रूखी-सूखी रोटियाँ—जिन पर नमक भी नहीं, इससे अधिक ये दे ही क्या सकते हैं? एक के घर पर उसका सबसे प्यारा अतिथि आया है। वह उसके आगे रूखी रोटियाँ परोसकर कहती है—

भुजसुजं साहीणं कुत्तो लोणं कुग्गाम रिन्धम्मि।
सुहअ सलोणेण वि किं तेण सिणेहो जहिं णत्थि॥

मेरे पास जो कुछ रूखा-सूखा है, उसे स्वीकार कीजिये। दरिद्र गाँव की रसोई में नमक कहाँ? मेरे अतिथिदेव! जिसमें स्नेह (घी, प्रेम) ही नहीं है वह सलोना (लवणयुक्त, सुन्दर) होकर ही क्या करेगा? यह स्नेह और दैन्य की पराकाष्ठा है।

साहित्य जब लोकजीवन से दूर हट जाता है, तो उसमें चमत्कार भले ही हो, वास्तविकता नहीं रहती। गाहा सत्तसई के कवियों ने इस सार्वभौम तथ्य को पहचान लिया था, तभी हेमन्त की तूफानी रातों में जलती आग के चारों ओर बैठकर पाले और तुषार को चुनौती देते हुए किसानों को वे देख सके हैं—

सूइज्जह हेमन्तम्मि दुग्गआ पुप्फुआ सुअन्धेण।
धूमकविलेण परिविरलतन्तुणा जुण्ण पडएण॥

जाड़ों में विरल सूत्रोंवाला जीर्ण वस्त्र ही किसान की दरिद्रता की सूचना दे देता है क्योंकि धूएँ से पीला होने के कारण उससे करसी की आग की सुगन्ध निकलती रहती है। गाथा में निबद्ध सुगन्ध शब्द से ही पता चल जाता है कि कवि को गरीब जनता से कितनी सहानुभूति थी। कोई दरबारी कवि होता तो शायद उसे करसी के धुयें की दुर्गन्ध असह्य हो उठती।

एक दरिद्र ग्रामीण बहुत दिनों के बाद अपना पुराना

वस्त्र धो रहा है। भीगे वस्त्र के किनारों से पानी की अजस्र बूंदें चू रही हैं। मानों वह वस्त्र यह सोचकर रो रहा है कि निचोड़ने की असह्य यातना मैं कैसे सह पाऊँगा——

दुग्गअकुटुम्बअट्ठी कहंणु भए धोएण सोढव्वा।
देसिओसरन्त सलिलेण उअहरुण्णंव पडएण॥

यह है गाँवों की दशा ! ऊपर से कर का भारी बोझ। जिस समय राज-कर्मचारी कर उगाहने आते हैं, अकिंचन ग्रामीण त्रस्त होकर गाँव से भाग जाते हैं। होनहार नवयुवकों को गरीबी से तंग आकर घर छोड़ने को विवश होना पड़ता है। उन दिनों प्रवास एक बहुत बड़ा संकट समझा जाता था। घर से निकले हुए प्रवासी के लौटने की बहुत कम आशा रहती थी। घर पर अकेली युवतियाँ भूख-प्यास से आकुल होकर अपनी सजल आँखें परदेश की राह पर लगाये रहती थीं। गाहा सत्तसई में ऐसे असहाय प्रवासियों और उनकी वियुक्त पत्नियों की व्यथाओं का बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन मिलता है। एक असहाय प्रवासी का वर्णन देखिये, जिसे किसी गाँव में पुआल के ढेर में छिपकर हेमन्त की रात बितानी पड़ी थी——

खरसिप्पिर-उल्लिहिआहं कुणह पहिओ हिमाअम पहाए।
आअमण जलोल्लिअ हत्थ फंस मसिणाहं व अंगाहं॥

जाड़े की रात में सोने के लिए बिछाये हुए तीखे पुआल से अंकित अंगों को सवेरा होने पर वह पथिक मुँह धोते समय भीगे हाथों के मसृणस्पर्श से चिकना कर रहा है। एक दूसरा यात्री ग्राम्य मन्दिर के द्वार पर टिक जाता है। पुआल की बुझती आग को बार-बार फूँकते-फूँकते उसकी सारी रात बीत जाती है।

गरीबी के गाढ़े दिन काटती हुई विरहिणियों की दशा तो और भी दयनीय हो जाती है।

झंझावा उत्तिण्ण-विवर-पलोट्ठ सलिल धाराहिं।
कुड्डलिहिओहि दिअहं रक्खह अज्जा करअलेहिं॥

झंझावात से जिसकी फूस की छाजन उड़ गयी है, उस झोपड़ी में दीवार पर लिखी हुई परदेशी के आगमन की अवधि को असहाय विरहिणी अपने दोनों हाथों से ढककर छिद्रों से चूती हुई जलधार से बचाती है।

घर की मुंडेर पर बैठा हुआ कौआ अनादि काल से परदेशी के आगमन का सन्देश सुनाया करता है। इसी लिए तो उसे बलि खिलाई जाती है। लेकिन पथिक की अभागिन प्रिया से यह भी न हो सका। उसने बलि प्रदान करने के लिए हाथ झुकाया तो कंकण भी गिर पड़ा। कंकण के बीच पड़े हुए पिंड को कौआ जाल समझकर देने पर भी नहीं खाता——

पासासंकी काओ णेच्छदि दिण्णं वि पहिअधरिणीए।
ओअन्त कर अलो गलि अवलय मज्झट्ठिअं पिंडं॥

प्रिय को प्रयाण के लिए उद्यत देखकर शोकातुर तरुणी के नयनों का नीर बह चला है। छाती पर एक काली सी रेखा बन गई है। मानों विरह की असह्य आरी से चीरने के लिये सूत दिया गया है——

विरह करवत्त दूसह फालिज्जन्तम्मि तीअ हिअअम्मि।
अंसू कज्जल मइलं पमाण सुत्तंव पडिहाइ॥

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कविराज ने इसी गाथा की छाया लेकर यह सवैया लिखा है——

लाल कियो परदेस को गौन,
सो भोजन भौन सबै बिसरचो है।
अंग परी तलबेली महा कवि-
राज तहाँ भरि आयो गरचो है।
नैनन तें जल धाइ बह्यो मिलि
अंजन ते उर आनि परचो है।
चीरिबे कों तेहिको हियरा,
बिरहा बढ़ई जनु सूत धरचो है॥

प्राचीन काव्यों में जहाँ अधिकतर नारी की विवशता और पराश्रयता की प्रशस्तियाँ लिखकर उसे पंगु बनाया गया है वहीं गाहा सत्तसई में प्रणय की मर्मस्पर्शिणी सुकुमार कल्पनाओं से ओत-प्रोत ग्राम्य सुन्दरी का पसीने में डूबा कर्मठ व्यक्तित्व सामने लाया गया है। वह जीवन की कँटीली राह पर आगे बढ़ने में पुरुष को सहारा देती है। डूबते कुटुम्ब का जूआ कन्धे पर पड़ने के पहले ही उसे अपनी सारी विनोदप्रियता और स्वतंत्रता को तिलांजलि दे देनी पड़ती है। पीसकर उठी हुई हलवाहे की पुत्री के सारे शरीर को आटे की शुभ्र धूलि से सना, देखकर प्यासे पथिक, क्षीरसिन्धु से निकली हुई लक्ष्मी के समान उसका मनोहर रूप निहारते ही रह जाते हैं——

पेच्छन्ति अनिमिसच्छा पहिआ हलिअस्स पिट्ठपंडुरिअं।
धूअं दुद्धसमुद्दुत्तरन्त लच्छि विअ सअण्हा॥

गाँव में आग लगी है। घर जल रहा है। लज्जावती वधू शीघ्र दौड़कर कूएँ से पानी भरने लगी। उसका

पति आग बुझाने लगा। सब कुछ जलकर स्वाहा हो गया फिर भी बहू को तो सन्तोष ही मिला क्योंकि उसके हाथ का घड़ा उन्होंने आज ग्रहण कर लिया था—

सव्वस्सम्मि विडड्ढे तहविहु हिअ अस्स णिव्वुदि चेअ।
जंतेण गामडाहे हत्था हत्थि कुडो गहिओ॥

कविवर रहीम ने इस गाथा की भावधारा को हिन्दी में यों पल्लवित किया है—

आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन।
पिय के हाथ घइलवा, भरि भरि दीन॥

समाज में वे लोग सबसे गरीब होते हैं, जिन्हें हलवाहा कहा जाता है। हलवाहों के जीवन की अनेक झाँकियाँ गाहा सत्तसई में उपलब्ध होती हैं। उनकी पत्नियाँ खेतों की रखवाली करती हैं। वे सुन्दरी हैं, लेकिन उनके कानों में पद्मराग और मरकत के कुंडल नहीं हैं। प्रियतम के हाथों से पहनाया बेर का सफल वृन्त ही उनका बहुमूल्य कर्णाभरण है। मदनोत्सव में कुसुम्भी रंग में रँगी एकमात्र कंचुकी से ही उनका शृंगार पूरा हो जाता है। हलवाहे की पुत्री जीवन में कभी न मिलनेवाली एक रंगी धोती पाते ही निहाल हो जाती है। आह्लाद से पूर्ण होकर उसका दुबला-पतला शरीर गाँव की चौड़ी गलियों में नहीं समाता—

अप्पत्त-पत्तअं पाविऊण णवरंगअंहलिअ सोण्हा।
उअह तणुई ण माअइ रुन्दासु वि गाम रच्छासु॥

बरसात में पानी और कीचड़ से भरे खेतों में हल चलाते-चलाते वह इतना थक जाता है कि रात को लेटते ही नींद आ जाती है। उसकी तरुणी प्रिया प्रेम के लिये तरसती रह जाती है। वह बार-बार वर्षा काल को कोसने और शाप देने लगती है—

चिक्खुल्ल खुत्त हलमुह कड्ढण सिढिले पहम्मि पासुत्ते।
अप्पत्त मोहणसुहा घणसमअं पामरी सवह॥

नया हलवाहा खेत में जीतोड़ परिश्रम करता है। उसकी पत्नी खाने के लिए भात वहीं ले जाती है। परिश्रम की थकावट में चूर होने पर भी उस मंजुमुखी प्रिया को देखकर वह इतना आत्म-विभोर हो जाता है कि बैलों की जोत खोलने के स्थान पर जल्दी में नाथ ही खोल देता है—

णवकम्मिएण हअपामरेण दट्ठूण पाउहारीअं।
मोत्तव्वे जोत्त पग्गहम्मि अवहासिणी मुत्ता॥

वह धनहीन अवश्य है, पर हृदयहीन नहीं। बीमारी में कुशल पूछनेवाली के मुख-पंकज के सुरभित पवन से शीतल की हुई दवा को कड़ुई होने पर भी एक साँस में पी जाता है। खेत में पड़े हुए प्रिया के चरणचिह्नों को अपने ही हाथों मिटते देखकर वह अपनी विवशता पर अधीर होकर कहता है—

अलिहिज्जइ पंकअले हलालि चलणेण कलम गोवीए।
केआर सो अरुम्भणतं सट्ठिअ कोमलो चलणो।

धान की कटाई के पहले रखवाली करनेवाली प्रिया का कोमल चरण, जो क्यारी में पानी भरा होने से पंक में तिरछा अंकित हो गया था, हाय! फाल की नोक से मिटा जा रहा है। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर वह खेत में ही अपना मन बहलाया करता है। खेत का काम समाप्त हो जाने पर भी, प्रिया से वियुक्त, सूने घर में लौटकर नहीं आना चाहता। शरद् की सलोनी ऋतु आते ही जब उसका धान पक जाता है तो तुरन्त कूटे हुए चावल के समान शुभ्र चाँदनी रातों में निश्चिन्त होकर गाने लगता है—

णिप्पण्ण-सस्सरिद्धी सच्छन्दं गाह पामरो सरए।
दलिअणव सालि तण्डुल धवलमि अंकासु राहंसु॥

कोल्हू चलते ही गाँव की चहल-पहल बढ़ जाती है। स्त्रियाँ और पुरुष रात भर जागकर परिश्रम करते हैं। तब कहीं जाकर गुड़ बन पाता है। लेकन कोल्हू चलानेवाला इतना भोला है कि इन सब बातों को नहीं समझ पाता। कोल्हू चलानेवाले की इसी अरसिकता को उपालम्भ देती हुई एक ग्राम्या का वाक्चातुर्य देखिये—

जंतिअ गुलं विभग्गसि णअ इच्छाइ वाह से जंतं।
अणरसिअकिंण जाणसि णअ विण रसेण गुले होइ॥

अर्थात् तुम गुड़ तो चाहते हो परन्तु मेरी इच्छा से यंत्र (कोल्हू) नहीं चलाते। अरे नीरस! क्या तुम नहीं जानते कि बिना रस के गुड़ नहीं होता।

गाहा सत्तसई ने हमारे साहित्य में मुक्तक काव्य की एक नयी शैली का सूत्रपात किया। वह भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन काव्यसंग्रह ग्रन्थ है। संस्कृत और हिन्दी के अनेक कवियों ने इससे प्रेरणा ग्रहण की है। सतसई साहित्य का उद्गम यही ग्रन्थ है। खेद है प्राकृत के अध्ययन की परम्परा लुप्त हो जाने से हम अपने इस बहुमूल्य ग्रन्थरत्न को भूल गये हैं।

अरे ओ वज्रादपि कठोर !

प्रो० कुवेरनाथ राय, एम० ए०

"जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा-शिवा क्षमा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते।"

भारतीय संस्कृति जिन संस्कारों की समूहगत संज्ञा है वे तपोवन में उत्पन्न और परिपोषित हुए हैं। जब-जब ये संस्कार पीड़ित और अपमानित होते हैं तब-तब क्षोभ और ग्लानि से पीड़ित धरती पर पुरुषोत्तम शक्तियों का आविर्भाव होता है। पुरुषोत्तम शक्ति सदैव अवतारों में ही नहीं आती। कभी-कभी साधारण मनुष्यों में भी "निमित्तमात्रं भव" कहकर प्रविष्ट हो जाती है। इस शक्ति का सबसे प्रकाशमान प्रस्फुटन महाभारत काल में मिलता है। धर्म की गति कितनी सूक्ष्म और गहन है और कितने कम लोग इसे ठीक से जानते हैं? जो एक के लिए धर्म है वह अन्य के लिए अधर्म कैसे हो गया? मांस-भक्षण यदि गाय का धर्म नहीं तो व्याघ्र का धर्म कैसे हो गया? आदि प्रश्नों के मथन के पश्चात् महाभारतकार ने धर्म एवं निर्भयता का उपदेश 'शान्ति पर्व' एवं 'गीता' में प्रस्तुत किया है। इस गहन चिन्तन के आगे हम्बूराबी का 'कोड' एवं 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' की हिब्रू 'ड्यूट्रोनॉमी' बचकानी कृतियाँ सी हैं। महाभारत-युद्ध की ऐतिहासिकता अब बहुत कुछ मान्य हो चुकी है। महाभारत युद्ध के बाद जिस अनुशासित व्यवस्था का उदय हुआ उसीका एक रूप, "गलितं पलितं मुण्डम्" ही सही, आज तक चल रहा है।

महाभारत काल में वैयक्तिकता अति एकान्त संन्यास या अति नितान्त भोग में शरणागत हो गयी थी। लोक-संग्रह भाव मर सा रहा था तो कामना एवं संन्यास के बीच मध्यम मार्ग की 'निष्काम कर्म' की, व्यवस्था श्रीकृष्ण ने प्रस्तुत की—महापुरुष श्रीकृष्ण ने, जो युग की पुरुषोत्तम शक्तियों में सर्वोच्च एवं सबके उत्प्रेरक थे।* उन्होंने जीवन को सन्तुलित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय धर्म को चार समान चरणों पर स्थित किया। कर्म, भोग, आस्था एवं संन्यास। जागरूक व्यक्तियों में, सचेत राष्ट्रों में, हर अवस्था में, हर आश्रम में, ये चारों भाव सन्तुलित होकर विद्यमान रहते हैं। यह सन्तुलन बड़ा ही निष्ठुर विधान है। कर्म की निर्ममता इन सब में अधिक भयंकर है। व्यक्तिगत राग-द्वेष-मोह-प्रेम-करुणा आदि को इसमें कोई स्थान नहीं। यहाँ सव्यसाची अर्जुन की, युधिष्ठिर की भावुकता तुच्छ है। इस तथ्य को श्रीकृष्ण और भीष्म दोनों जानते हैं। यहाँपर मनुष्यमात्र को एक ही चिरन्तन आदेश है—"मामनुस्मर युद्धस्व च।" मेरा स्मरण करते हुए संघर्ष करो। कर्म और आस्था यही दोनों तुम्हारी समरारूढ़ आत्मा के सम्बल हैं।

वीरता का यह उपदेश ऋग्वेद एवं अथर्वण के मंत्रों में मिलता है जहाँ शत्रु के विनाश के लिए अनेक ऋचाएं आदित्य, रुद्र, इन्द्र एवं अग्नि को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं। वेद अनन्त पौरुष के स्रोत हैं। उनमें सादी, अलंकारहीन किन्तु आत्मा से उत्थित होनेवाली अपौरुषेय भाषा में ज्वलन्त देवताओं की विजय का स्तवन किया गया है। २०वीं शती के प्रथमार्ध तक हमारे प्राणों में बहनेवाले ऋषि-प्रोक्त वेदों एवं महाकाव्यों से निःसृत इस पौरुषरस के लिए हमारे मन में श्रद्धा रही और आज भी वह पूर्णतः मरी नहीं है। वह मर-मरकर फिर जी उठती है। इतिहास साक्षी है। पर आज देश में एक वर्ग ऐसा भी है जो अपनी कापुरुषता, अज्ञान एवं बौद्धिक बेईमानी पर परदा डालने के लिए इस पौरुष-प्रधान दर्शन को अवहेलना की दृष्टि से देखता है। स्वर-बन्धन तथा वाणी-दमन के प्रतीक कण्ठ-बन्धन (नेक-टाई) से सुशोभित ब्यूरोक्रेटों के पुत्र-पौत्र जो गौरांग-प्रभुओं की चरण-सेवा को ही आदर्श मान बैठे थे, आज सबसे आगे बढ़ कहते हैं—"बुद्धं शरणं गच्छामि।" "गीता 'फासिज्म' है।" "उद्गीथ का अर्थ चरवाहों का गीत" है। गोया नचिकेता के प्रश्न चरवाहो की गप्पें हों; एवं "सदाधारं पृथिवीं द्यामुतेमां तस्मै देवाय हविषा विधेम" चरवाहों के प्रेम-गीत हों।

(२)

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के बौद्धिक केन्द्र थे बंगाल और गुजरात-महाराष्ट्र। तिलक और विवेकानन्द ने इस पौरुष-

---

*वैष्णव आगमों के व्यूह-सिद्धान्त के अनुसार श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध (परमात्मा, जीव, मन और अहंकार) का व्यूह ही पूर्ण परमात्मा है। दूसरे विश्वास के अनुसार श्रीकृष्ण 'वासुदेव' परमात्मा हैं और बलराम 'नारायण-पुरुष' (परमात्मा का चौथा रूप)। तीसरा विश्वास है कि अर्जुन-कृष्ण नरनारायण हैं।

प्रधान संस्कार-समूह को फिर से सचेत किया। विवेकानन्द केवल संन्यासी मात्र न थे। दिनकरजी के शब्दों में "ऐसी भाषा संन्यासी नहीं बोलता है।" उनकी शब्दावली से ज्ञात होता है कि वे पुरुषोत्तमशक्ति के आविर्भाव थे। शब्दों की परिमेय शक्ति एवं उनमें निहित शक्ति को पहचानना ऋषियों एवं पैगम्बरों का काम है। अपौरुषेय वाङ्मयों (गीता, वेद, कुरान, बाइबिल आदि) की शब्द-शक्ति का रहस्य यही है कि इन पुरुषों की विकसित आत्मशक्ति उन शब्दों को उनके मन में जगा देती है। इसीसे कहा गया है कि उद्गीथ मरता नहीं। जिस दिन सारी ऋचाएँ लुप्त हो जायँगी, किसी भी व्यक्ति के अन्दर से सुषुप्त आत्मशक्ति उसे उन्मादित करके उसके मुँह से उद्गीथ गान निकलवा देगी। इस विश्वास का ऊपरी अर्थ न लें, तो इसका तात्पर्य यही है कि ऋषिप्रोक्त गीत आत्मा से उत्थित होते हैं। श्री अरविन्द ने अपनी काव्य-शास्त्र-विवेचना (Future Poetry) में इसी सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिक एवं योगशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है। हमारे चेतन, उपचेतन तथा अतिमानस में चेतना की कई परतें रहती हैं। किसी की भाषा में ओज एवं बल उसकी चेतना की परत पर, जिससे उसका चिन्तन उक्त क्षण में नियन्त्रित है, निर्भर करता है। विवेकानन्द के स्वर का अपौरुषेय ओज इसी प्रकार का है।

"मृत्यु का ध्यान करो। प्रलय को अपनी समाधि में देखो तथा महाभैरव को अपनी पूजा से प्रसन्न करो। जो भयानक है उसकी अर्चना से ही भय वश में आयेगा। सम्भव हो तो जीवन को भूलकर मृत्यु की कामना करो, तलवार की धार पर अपना शरीर लगा दो एवं रुद्र शिव से एकाकार हो जाओ।"

× × ×

"मैं भारत में लौह की मांसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी देखना चाहता हूँ, क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शम्पाओं और वज्रों से निर्मित होता है।"

"शक्ति और पौरुष, क्षात्र वीर्य और ब्राह्म तेज से, इनके समन्वय से, भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिए।"

रामकृष्ण परमहंस की महाकाली के कराल रूप की उपासना इसी 'निर्भयता' की साधना है। वेदों से लेकर विवेकानन्द तक ऋषियों का यही उपदेश है—निर्भय बनो, भयानक को कण्ठ लगाकर भय की वेदना से मुक्त हो जाओ।

आश्चर्य का विषय है कि वर्त्तमान चीनी आक्रमण के विषय में भी विवेकानन्द ने पचासों वर्ष पूर्व चेतावनी दे दी थी।

"If and when the British leave India, there is every possibility of China's invading India" (Swami Vivekanand in 1898.)

["जब कभी अंग्रेज भारत छोड़ेंगे तो यह हर तरह से संभावित ज्ञात होता है कि चीनी भारत पर आक्रमण अवश्य करेंगे।"

—स्वामी विवेकानन्द, १८९८ में]*

यह पुरुषोत्तम-शक्ति हमारे बीच में आयी और अपना संदेश सुनाकर चली गयी। विवेकानन्द की एक और बहुत बड़ी देन है। वह है वेदान्त के दर्शन को उसके जड़ीभूत स्थिति-शील (Static) रूप को, जो गत हजार वर्षों की सृष्टि थी, नष्ट करके वेदान्त को गतिमान (Dynamic) दर्शन का रूप देना। वेदान्त की स्थितिशील दृष्टिभंगी को उसमें असारता और वैराग्य ही सबसे महत्त्वपूर्ण ज्ञात हुए। परन्तु विवेकानन्द ने उसे दूसरा रूप दिया। जगत् से वैराग्य का उपदेश तो 'साधन' है, 'साध्य' है मनुष्य को भय से, मृत्यु के डर से मुक्त करना। भय-विमुक्त पुरुष ही वीर हो सकता है। "एक तुम्हीं सत्य हो। तुम्हारे चारों ओर जो आवरण हैं, जो भय के ईहापूर्ण वंचनामय दुर्ग हैं, वे सब मिथ्या हैं। तुम अमर हो। तुम्हें भय क्यों होगा!"

प्रारम्भ में तिलक और बाद में डॉ० राधाकृष्णन् ने वेदान्त की विश्वविजयिनी शक्तियों को समस्त विश्व के सम्मुख रखा। हमारे देश की पुरानी पीढ़ियों ने इस सन्देश को सुना। परन्तु यह सन्देश कुछ लोगों के कर्ण-कुहरों के दुर्भेद्य प्राचीर को चीर न सका। कुछ तो विशेषतः हमारे उत्तर प्रदेश में ऐसे भी निकले जो इन स्वरों को सुनने की क्षमता से हीन थे। वे अपने समूचे परिवार को भारतीयता की हवा भी नहीं लगने देना चाहते थे। उनके

---

*'A.I.C.C. Economic Review' में प्रो० अब्दुल मजीद खाँ के लेख में उद्धृत। देखिए, 'फरवरी' '६३ का अंक।

हृदय एवं आत्मा के कपाटों की अर्गला बँधी ही रही जिससे अन्य वायु-प्रवेश भी न हो सके। उत्तर प्रदेश की सामन्त संस्कृति के सर्वोत्तम रत्न पं० मोतीलाल नेहरू ने (जिनके अन्य गुणों के लिए लेखक के मन में आदर है) अपने घर में कड़ी आज्ञा जारी कर दी थी कि अँगरेजी छोड़कर अन्य भाषा में घर में बातचीत न हो। इस मनोवृत्ति का मानसिक प्रभाव बड़ी दूर तक गया।

('इम्प्रिण्ट' अगस्त १९६३: 'द नेहरूज़' पेज २४)

हिन्दी प्रान्तों के भाग्य में दुःखद बात एक और है। जिस तरह बंगाल में सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन के अंग प्रत्यंग कलकत्ता विश्वविद्यालय से नियन्त्रित होते हैं, उसी तरह का 'रोल' प्रयाग विश्वविद्यालय अभिनीत न कर सका। कुछ ऑफिसर और कुछ विद्वान् पैदा कर देने से ही विश्वविद्यालय के कार्य की इतिश्री नहीं हो जाती। विश्वविद्यालय जीवन के अंग-प्रत्यंग को संस्कार देते हैं। ब्रिटेन की सांस्कृतिक परिणतियों का स्रोत कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड में मिलता है। इस विशाल महाप्रान्त उत्तर प्रदेश का राष्ट्रीय विद्या एवं वाङ्मय के विकास में बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास-केरल-मैसूर के बाद नम्बर आता है। यह एक कठोर सत्य है। 'इनटेलेक्चुअल' और 'इनटेलिजेण्ट' में एक अन्तर होता है। आई० सी० एस० वर्ग 'इनटेलिजेण्ट' की परिधि में आता है। हमारी संख्या, हमारे उत्तराधिकार एवं हमारे महत्त्व को रखते हुए हमारा 'इनटेलेक्चुअल कान्ट्रीब्यूशन' (बौद्धिक योगदान) उक्त प्रान्तों की तुलना में नगण्य इसलिए रहा कि हमारे विश्वविद्यालयों को "शासक" पैदा करने से ही फुरसत नहीं रही। हम रवीन्द्रनाथ इसलिए नहीं पैदा कर सके कि हमारे विश्वविद्यालय हिन्दी को कोल-भीलों की भाषा मानते रहे। क्या डा० रघुवीर या राहुल सांकृत्यायन किसी विश्वविद्यालय के कुलपति होने योग्य नहीं थे?

(३)

आज यह अनवरत प्रचार किया जा रहा है कि हमारा देश शान्तिप्रिय देश है। गौरांग महाप्रभुओं की दी हुई उपाधि 'Mild Hindu' से इतना मोह है कि श्रीकृष्ण, तुलसीदास और विवेकानन्द की बातों को हम भूल चुके हैं। अनवरत प्रचार हो रहा है कि हमारी आजादी की लड़ाई अहिंसा से लड़ी गयी। पर वास्तव में हमारा अहिंसात्मक आन्दोलन तो एक राजनीतिक दाँव-पेंच मात्र था। गांधीजी इस देश की नस-नस पहचानते थे। उन्हें खूब मालूम था कि ब्रिटिश शासन की लाल पगड़ी, कुर्कअमीन का चपरासी भी, दो हजार की आबादीवाले गाँव में भय और त्रास की ऐसी सृष्टि कर देता है जैसे 'बालकाण्ड' में तुलसीदास ने "देवन तके मेरु-गिरि-खोहा" कहकर वर्णित किया है। पाँच मिनट में सारा गाँव खाली। कोई पूर्व के बगीचे में, तो कोई उत्तर तरफ कास-'पतलों' की घासों में और कोई पश्चिम ओर गंगाजी के किनारे-किनारे। आज तो लोग धृष्ट हो गये हैं। पर १९२१ के जमाने में यह धृष्टता और साहस नहीं था। भारतीय किसान क्रान्तिकारी नहीं है। चम्पारण में गांधीजी ने प्राण फूंक दिया पर अकेले कहाँ-कहाँ मिट्टी से मनुष्य बनाते फिरते! परिस्थिति ऐसी थी कि सशस्त्र-क्रान्ति की बात करना अपने 'देशकाल-पात्र' को भूलना होता। इसीसे गांधीजी ने वैधानिक क्रान्ति छेड़ी। यह उनकी सबसे बड़ी 'स्टेटमैनशिप' (राजनीतिज्ञता) थी। आचार्य कृपलानी गांधीजी को बहुत नजदीक से समझते हैं। उन्होंने अपनी एक पुस्तक 'Gandhi, the Statesman' में इस तथ्य का संकेत किया है। आज जब हम गांधी और बुद्ध की दुहाई देते हैं, तो हमारी यह बहुत बड़ी बौद्धिक बेईमानी और पाखण्ड है। बुद्ध की करुणा और आत्म-संयम एवं गांधीजी की सत्यनिष्ठा अपने में पूर्ण पौरुषशील है। परन्तु हमारी निष्ठा का चित्र दिल्ली के 'अशोक होटल' में मिलता है।

वास्तव में ये लोग बुद्ध और अशोक का नाम इसलिए लेते हैं कि इन्हें श्रीकृष्ण और विक्रमादित्य का नाम लेने में 'डर' और 'शर्म' दोनों लगती है। कहीं इन्हें कोई हिन्दू न कह दे। गांधीजी में यह आत्महीनता के भाव कभी नहीं थे। वे निरभिमानी अवश्य थे। जो बात लोकमान्य तिलक ने संसार के सम्मुख मूँछों पर ताव देते हुए कही उसीको गांधीजी ने दृढ़ परन्तु कोमल शब्दों में कहा—"मैं 'सनातनी' हिन्दू हूँ।" और, वे जीवन भर इसे कहते गये। उन्हें न डर लगा और न लाज। (The Outline Of Hinduism: Dr. T.M.P. Mahadevan, अन्तिम अध्याय)।

क्या इसका कारण यह है कि हम 'आत्महीनता' (इनफीरियॉरिटी काम्प्लेक्स) से पीड़ित हैं? इसका

कारण है हमारी बौद्धिक-दासता। अंग्रेजी की कुछ क्षेत्रों में आवश्यकता को मानते हुए भी डॉ० राधाकृष्णन् कमीशन की रिपोर्ट ने स्पष्ट लिखा है कि भारत का बुद्धि-स्वातंत्र्य तब तक मुक्त विकास न पायेगा जब तक हम अंग्रेजी भाषा के जरिए बौद्धिक विकास करते रहेंगे, दो-चार प्रतिभावान् भले ही इसकी सीमा में बुद्धि-स्वातन्त्र्य या मुक्त चिन्तन को प्राप्त कर लें। पर यहाँपर हम समूह या जनसाधारण की बौद्धिक मुक्ति की बात कर रहे हैं। हमारी सोचने की परमुखापेक्षी प्रणाली कितनी गलत है। "हिन्दी-चीनी भाई भाई। चीनी बौद्ध हैं, अतः वे शान्तिप्रिय हैं।" पर इतिहास बताता है कि न तो बौद्ध धर्मविलम्बी ही कभी शान्तिप्रिय रहे हैं और न चीन का कोई भी दशक कई हजार वर्षों में बिना युद्ध के रहा है। चंगेज खाँ बौद्ध (श्रामणिक) था। जापानी बौद्ध हैं। चीन सदैव गृहयुद्ध से आपसी मारकाट से पीड़ित रहा। १७वीं शती के ईसाई मिशनरियों के Jesuit Fathers ने यूरोप में एक भ्रांत धारणा फैला दी कि चीनी शान्तिप्रिय जाति है। इस बात को तिब्बत को चीनी प्रभुओं को समर्पित करानेवाले राजदूत के० माधव पाणिक्कर ने अप्रैल या मार्च के 'Span' में लिखा है। अतीत-चीन में अपार भौतिक उन्नति हुई। चीनी दीवार से लेकर कागज और बारूद तक उन्हींकी देन है। परन्तु स्वतन्त्र दार्शनिक चिन्तन चीन में कम हुआ। 'कॉनफ्यूशस' नीतिवेत्ता है और ला-ओ-त्से रहस्यवादी। आध्यात्मिक दार्शनिक चिन्तन की हिन्दुओं और ग्रीकों जैसी परम्परा वहाँ नहीं बँधी। पर हम इस तथ्य को सोच भी नहीं सके, क्योंकि स्वतंत्र रूप से हम सोच नहीं सकते। हमारे मन में Mild Hindu की तरह Peaceful Chinese की भी वह मूल धारणा बनी रही। यह है 'उधार' विचारधारा का प्रभाव।

(४)

आज का भारतीय जीवन और साहित्य न केवल कर्म एवं निर्भयता को भूल चुका है बल्कि 'आस्था' की भी इसके अन्दर धीरे-धीरे मृत्यु हो रही है। कर्म और आस्था—"मेरा स्मरण करो और युद्ध करो"—यही श्रीकृष्ण का उपदेश है। न केवल हमारी ईश्वर में आस्था का लोप हो रहा है बल्कि इसके फलस्वरूप जीवन में आस्थाहीनता और असुरक्षा-भाव तथा भय की सृष्टि हो रही है। यह अति भयंकर अवस्था है। एक ओर तो पुरानी आस्था के तन्तुओं का हमारे साहित्यिकों ने संहार करना शुरू कर दिया और उनकी जगह पर जब नये मूल्यों की बात चली तो पश्चिमी गुरुओं के घर से "रेडीमेड" दो तीन रंगवाली आस्था लाकर सामने रख दी। आधुनिक युग में पश्चिम हमारा गुरु है, तो इसमें तो कोई बुरी बात नहीं। परन्तु आस्था के जो नमूने रखे गये, वे स्वतः आस्थाहीन हैं। उनको स्वीकार करने से क्या लाभ? प्रोफेसर टॉयनबी एवं टी० एस० एलियट की 'नयी ईसाइयत' स्वतः अपने में अ-स्पष्ट है। इसके आयाम और मूल्य स्पष्ट ही नहीं हैं, तो इन्हें स्वीकार करने से क्या लाभ? ये अस्पष्ट और उलझे मूल्य हमें कैसे जीवन प्रदान करेंगे? नव्य ईसाईवाद की सबसे बहुचर्चित दिशा है 'अस्तित्ववाद'। इसकी चिन्ताधारा गड्डमड्ड और परस्पर-विरोधी जटिलता मात्र है। कीर्कगार्द, कार्ल जेस्पर वही नहीं कहते जो सार्त्र कहता है। सार्त्र नास्तिक है, तो कीर्कगार्द आस्तिक। आस्तिकों में भी मतैक्य नहीं। यह एक ऐसा जटिल चिन्तन पथ है कि एक समन्वित धारणा नहीं बन पाती। इस अव्यवस्थित फिलासफी से हमारे जीवन एवं साहित्य को क्या बल मिलेगा? दूसरी ओर मार्क्सवादी आस्था की बात उठती है। पर इस आस्था के मूल्य निश्चित नहीं हैं। इसके मूल्य राजनीतिक परिस्थितियों के पिछलग्गू रहते हैं।

हमारे साहित्य में 'आस्था' मरी नहीं है। अरविन्द और विनोबा के प्रभाव से स्पर्श पाकर आज भी बहुत बड़ी संख्या में साहित्यकार अनुप्राणित हुए हैं। के० एम० मुंशी, गोकक, दिनकरजी ही नहीं बल्कि नयी पीढ़ी में आस्थावान साहित्यकार हैं। परन्तु साधारण रूप से हमारी ग्रेजुएट पीढ़ी के अन्तर्मन में जिस 'अनास्था' और 'असुरक्षा भाव' का निवास हो गया है यहाँ उसकी बात कही जा रही है। एक छोटा सा उदाहरण देना ठीक होगा।

गत चीनी आक्रमण के अवसर पर लेखक की भेंट एक भारतीय सेना के आफिसर से हुई। वह जाट था। इससे कुछ खुलकर बात हुई। पता चला कि हवलदार और उसके नीचे के सिपाहियों ने, आदर्श की पूर्ण रक्षा की परन्तु कमीशन-प्राप्त ऑफिसरों ने विशेषतः जो नीचे से प्रमोशन न पाकर कमीशन द्वारा नियुक्त हुए हैं, अपनी

नैतिकता का दिवालियापन ही दिखलाया। बहुतों ने ाबुन मिला पानी पीकर कैम्प में ही बीमारी का बहाना र लिया। नदिया-नाव-संयोग से भेंट होने पर उस जाट े जो बात सुनी वही कुछ मास बाद पार्लियामेण्ट में श्री शवन्त राय चव्हाण के मुख से सुनी गयी। ऐसा क्यों? ाट का सीधा उत्तर था—'असुरक्षा-भाव'। कमीशन ाप्त कर बड़े घरानों के लड़के ऊँचा वेतन और सुविधाएँ ाने के ख्याल से आते हैं। परन्तु अभिजात वर्ग में, विशेषतः ब्यूरोक्रेसी" के अभिजात वर्ग में, "संयुक्त परिवार" की था नाम मात्र को रह गयी है। 'मेरे मरने पर मेरे बीवी-बच्चों का क्या होगा?' यह भाव उन्हें कायर बना देता है। पुराने आफिसरों या अनपढ़ सिपाहियों के सामने यह प्रश्न ही नहीं उठता। उनके मस्तिष्क में इसका उत्तर पहले ही से वर्तमान है—"संयुक्त परिवार", और नहीं तो "ईश्वर है, वही देखभाल करेगा।" यहाँपर हम आस्था' और 'अनास्था' के प्रभावों की तुलना करके देख कते हैं।

भारत का आदर्श निरीश्वरवाद कभी नहीं रहा। रीश्वरवाद व्यक्तिगत स्तर पर—दो-चार प्रतिभासम्पन्न र्शनिकों के लिए भारतीय संस्कृति स्वीकार करती है। न्तु जनसाधारण के लिए तो वही 'ॐ नमो पुण्डरीकाक्षाय य:'। यही कारण है कि यहाँ बौद्धों की अधिक दिन तक चली। वेदान्त के तर्क-खड्ग से बचे पूर्वी भारत के बौद्धों ो इस्लाम के लौह खड्ग ने समूल विनष्ट कर दिया। केन सुविधावादी फिर उन बौद्ध-मूल्यों की दुहाई, बौद्ध ष्ठा के बिना ही देने लगे हैं। यदि किसीके अन्दर द्ध-निष्ठा और बौद्ध-धर्म का "मारदहन" वाला करुणा-क्त पौरुष है, तो बौद्ध मूल्यों की महत्ता की रक्षा वह र सकता है। परन्तु निष्ठाहीन पुरुष करुणा और अहिंसा ी बात करके पाखण्ड-मात्र फैलाता है।

भारतीय संस्कृति कर्म एवं आस्था का उद्घोष है। हमने जिस मातृमूर्त्ति की अब तक पूजा की है वह अनन्त विस्तारवाला अनन्तमुखी व्यक्तित्व रखती है। वह कल्याणमयी गौरी, महिमामयी लक्ष्मी, कराल काली, रहस्यमयी सिद्धियों की दात्री दुर्गा, प्रेममयी राधा, आकर्षणमयी रति, सब कुछ है। इन्द्र, राम, कृष्ण, अर्जुन, मेघनाद, बलि, बाणासुर ने उसकी उपासना की परम्परा बाँधी है। राणा प्रताप, शिवाजी, तिलक और रामकृष्ण-विवेकानंद उसी परम्परा का अनुसरण करते हैं। आज हम उस परम्परा की अवहेलना करके, धोखेबाजी को आदर्श का जामा पहनाकर, अपनी आत्महीनता को फिलॉसफी का रूप देकर, मार-मर्दन करनेवाले गौतम बुद्ध और दृढ़व्रती महात्मा गांधी को बदनाम करने जा रहे हैं। हम इतने 'अक्लमन्द' (इनटेलिजेण्ट) हो गये हैं कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए राष्ट्रभाषा, साहित्य, एवं ललित कलाओं से सम्बन्धित प्रश्नों को भी राजनीतिक रूप दे डालते हैं। यदि ऐसा न होता तो हिन्दू धर्म के तमिलभाषी पोप, जगद्गुरु कामकोटि पीठाधीश्वर शंकराचार्य प्रभु "संस्कृत वाया (Via) अंग्रेजी" का समर्थन एवं किसी भारतीय भाषा के राष्ट्रभाषा होने का अप्रत्यक्ष विरोध क्यों करते? जगद्गुरुओं की आँखें बन्द हैं, और खासी-जयन्तिया-गारो की पहाड़ियों, नागा प्रदेश, सन्थाल-प्रदेश, बस्तर के निवासियों के सिर पर की शिखाएँ रात-दिन कट रही हैं, और मिशनरियों का काम तेजी से हो रहा है, और भारत के मठों के ५६ लाख धर्म के योद्धा 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर आँखें मूँदकर पड़े हैं। वेदान्त के जिस स्थितिशील रूप का खण्डन कर विवेकानन्द ने गतिमान रूप दिया वह इन्हें अच्छा नहीं लगता क्योंकि स्थितिशील स्थितिधी की अवस्था में ही मोतीचूर के लड्डू चाभे जा सकते हैं।

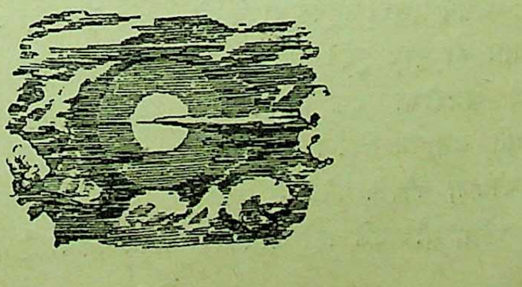

विभिन्न देशों में अशान्ति

पं० वेंकटेशनारायण तिवारी

आजकल संयुक्त राज्य अमरीका में कालों और गोरों का युद्ध छिड़ा हुआ है। इस विषय में हम पहले लेख में संकेत कर चुके हैं। लेकिन विस्तार से लिखने का समय अब आया है।

शुरुआत इसकी यों हुई। गोरों का विरोध था कि उनके विश्वविद्यालय में कोई भी काला विद्यार्थी न पढ़े। वहाँके गवर्नर वालेस की राय थी कि विश्वविद्यालय में कोई काला विद्यार्थी भरती न हो। यह घटना बिरिंघाम में हुई और वहाँके विश्वविद्यालय का नाम है ओल मिसी। कालों के ऊपर अमानुषिक अत्याचार किये गये। इनके ऊपर पानी के होज छोड़े गये, कुत्ते भी छोड़े गये और गोरी पुलिस की लात-घूंसों का तो कोई ठिकाना न रहा। लेकिन कालों के सत्याग्रह ने गोरों की एक भी न चलने दी। अंत में विजय कालों की हुई और प्रेसीडेंट केनेडी ने केंद्रीय पुलिस को भेजकर विद्यार्थी——काले विद्यार्थी——को भरती करा दिया क्योंकि संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने (सुप्रीम कोर्ट ने) यह व्यवस्था दी थी कि काले और गोरे का कोई भेद शिक्षा-संस्थाओं में न माना जाये। जो लोग इस नियम के अनुकूल हैं उन्हें डीसिग्रेगेशनिस्ट कहते हैं और जो इसके प्रतिकूल हैं उन्हें सिग्रेगेशनिस्ट कहते हैं। नीग्रो काले हैं, और गोरों में वे अमरीकन हैं जो योरप के भिन्न देशों से गये हैं। सन् १९६० की जन-गणना के अनुसार १५ फीसदी कालों की संख्या है, बाकी वहाँके गोरे निवासी हैं। सन् १९५० की जन-गणना के अनुसार इस देश की आबादी १५ करोड़ ६ लाख ९७ हजार ३६१ थी। उसमें से कालों की संख्या १,५७,५५,३३३ थी। इस संख्या में नीग्रो और अन्य जातियों का सम्मिश्रण है।

लगभग १०० वर्ष हुए जब राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के जमाने में उत्तरी और दक्षिणी संयुक्त राज्य अमरीका में गृह-युद्ध छिड़ गया था। उसमें उत्तरी संयुक्त राज्य की विजय हुई और दक्षिणी भाग की हार हुई। इसके परिणाम स्वरूप संयुक्त राज्य अमरीका एक बना रहा। गृहयुद्ध के बीच में राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने दक्षिणी संयुक्त राज्य अमरीका में घोषणा की कि कोई भी काला आदमी 'स्लेव' (दास) न रहेगा और उसे वही अधिकार प्राप्त होंगे जो गोरे अमरीकनों को प्राप्त हैं। यह घोषणा उन्होंने की तो, लेकिन कालों के साथ अत्याचार बराबर होते, रहे यद्यपि दक्षिणी भाग में अब कोई काला आदमी 'स्लेव' या दास नहीं रह गया।

वहाँ कालों की दुर्गति है। उन्हें रहने के लिए मकान नहीं मिलते, उनकी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं है। गोरों की शिक्षा अलग होती है और कालों की शिक्षा अलग। उन्हें बसों में निम्नस्थान दिया जाता है। कहा यह जाता है कि कालों में शिक्षितों की संख्या इतनी कम है कि वे ऊँचे पदों पर नहीं रखे जा सकते। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा की कमी के कारण ऊँचे पदों पर नीग्रो या काले नहीं रखे जाते हैं।

यह एक दुर्गति हुई। दूसरी ओर जहाँ दो राज्यों की सीमाएँ मिलती हैं, वहाँपर कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ नीग्रो (काले आदमी) को भोजन या पानी मिल सके। तीसरी दुर्गति यह हुई कि सरकारी मकानों में कोई काला आदमी या नीग्रो नहीं रह सकता। सन १९२२ में मैं न्यूयार्क गया था। वहाँपर काले आदमी के अलावा मुझे ऐसा कोई स्थान न मिला जहाँ मैं रह सकूं क्योंकि हम भारतीय थे और भारतीयों की गणना काले आदमियों या नीग्रो में ही की जाती थी। हमारे एक-सदस्य का रंग काला था, इसी कारण हम नीग्रो के यहाँ ठहराए गये। चौथी बात——यह ठीक है कि शिक्षा की कमी के कारण कोई नीग्रो या काला आदमी ऊँचे पदों पर नहीं रखा जाता लेकिन उनकी शिक्षा की इस कमी को दूर करने का प्रबंध जब तक न हो तब तक कोई नीग्रो या काला आदमी उच्च पदों का अधिकारी भी नहीं हो सकता। अतएव नीग्रो या कालों के लिए——गोरों की सलाह है——शिक्षा की सुविधा दी जाये और तब कहीं कालों को उच्च स्थान दिये जा सकते हैं। यह बात कालों या नीग्रो को मान्य नहीं है। वे चाहते हैं कि जल्द से जल्द कालों और गोरों का कोई भेद न रह जाये। लगभग १०० वर्ष तक नीग्रो या कालों ने इंतजार किया लेकिन उनकी यह कमी दूर नहीं की गयी। यदि गोरों का कहना काले मान लें तो अनंतकाल के लिए न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेंगी। इसलिए कालों का कहना है कि जो कुछ करना है वह अभी किया जाये।

१९६३

राष्ट्रपति केनेडी ने कालों का साथ दिया है। गोरों का कहना है कि यदि राष्ट्रपति केनेडी कालों का साथ न देते तो यह विप्लव न खड़ा होता। इसलिए बहुत से डेमोक्रैट्स या तो उन्हें वोट नहीं देंगे या अपना दूसरा उम्मीदवार खड़ा करेंगे जिसे वे अपने वोट देंगे। लेकिन यह तो एक नैतिक प्रश्न है और हमें आशा है कि अंत तक राष्ट्रपति केनेडी अड़े रहेंगे।

[खेद है कि राष्ट्रपति केनेडी को, एक सिरफिरे गोरे युवक ने, २२–११–६३ को गोलियाँ मार कर मार डाला।]

× × ×

यह तो राष्ट्रपति केनेडी की स्थिति है लेकिन अनुदार दल ने इंग्लैण्ड में अपना वोट लार्ड हच्यूम (होम) को दे कर एक नया बवाल खड़ा कर दिया। बहुतों को आशा थी कि श्री बटलर इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री होंगे किंतु मनुष्य की चेती नहीं होती है। श्री मैकमिलन ने अपना उत्तराधिकारी लार्ड होम को चुना और अब श्री बटलर उनके नीचे पर-राष्ट्रमंत्री का काम करेंगे। इसमें श्री बटलर ने दूरंदेशी से काम लिया और यह तीसरी बार है जब श्री बटलर रह गये प्रधान मंत्री बनने से। बहुत संभव था कि सम्राज्ञी एलिजाबेथ द्वितीय अनुदार दल के अलावा विपक्षी मजदूर दल के नेता को प्रधान मंत्री पद के लिए चुनतीं। इसलिए हम यह कहने को बाध्य हैं कि अनुदार दल में आपस की फूट बचाने के लिए श्री बटलर ने पर-राष्ट्र-मंत्री बनना स्वीकार कर लिया। इसमें उनकी दूरंदेशी की जितनी प्रशंसा की जाये वह थोड़ी है। लेकिन हम हृदय से चाहते हैं कि मजदूर दल के नेता अगले चुनाव में प्रधान मंत्री हों। ऐसी दशा में श्री होम का लार्ड-सभा के अपने पद से निकलने का कोई अधिक लाभ न होगा। साल भर की बात है। तब तक श्री होम प्रधान मंत्री के पद को सुशोभित करते रहें, उसके बाद ईश्वर जाने कि अनुदार दल का नेता फिर चुना जाता है या मजदूर दल का नेता प्रधान मंत्री के पद पर आसीन होता है।

× × ×

श्री डगलस-होम इंग्लैण्ड के (इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड और उत्तरी आयरलैण्ड) प्रधान मंत्री चुन लिये गये हैं। वह कम से कम एक वर्ष के लिए प्रधान मंत्री रहेंगे। अतएव यह जानने की आवश्यकता है कि उनका हिन्दुस्तान आदि से क्या संबंध रहेगा। उनके विषय में जो जानकारी है वह यहाँ दी जाती है।

दूसरे महायुद्ध के समय वह बीमार थे। अतएव लड़ाई में भाग नहीं ले सके। कहते हैं कि रीढ़ का क्षय-रोग (स्पाइन टच्यूबरक्लोसिस) उन्हें हो गया था। इसी अरसे में उन्होंने प्राचीन और आधुनिक साम्यवाद (कम्युनिज्म) की किताबें पढ़ीं। वह किस परिणाम पर पहुँचे? उनके विचार में कम्यूनिज्म हिटलर से भी अधिक खतरनाक है किंतु वह अपने विचारों को दाबे रहे। इंग्लैण्ड की लोकसभा में बाद में अपने विचार उन्होंने प्रकट किये। कुछ उदार टोरियों का कहना था कि उन्हें (यानी लार्ड होम को) कुछ खब्त हो गया है। उस समय पश्चिम और रूस में शीत-युद्ध की नीति विकसित हो रही थी कि इंग्लैण्डवाले शीत-युद्ध में किस नीति का अवलम्बन करें। उनकी इस वक्तृता पर उस समय ध्यान नहीं दिया गया पर कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने जो भाषण दिया उसमें हाथ टोरियों के अधिपति का था। उनका कहना है कि दक्षिणपंथी उन्हें कहना बेकार है, कलंक है। वह तो केन्द्र के वामपक्ष में विश्वास करते हैं। यदि डगलस होम इस बात को मानते हैं तो वह किसी बात पर विश्वास कर सकते हैं। सन् १९५१ में पहले उन्हें जगह दी गयी स्काटिश आफिस में। चार वर्ष वह वहाँ रहे। सन् १९५५ में वह मंत्री बनाये गये स्वतंत्र देशों के कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस में। उस समय उत्तरी रोडेशिया के वेलेन्सकी का उन्होंने पक्ष लिया। यहाँ तक कि वेलेन्सकी उन्हें अपना हरकारा कहता था। सन् १९६० में वह पर-राष्ट्रमंत्री हुए। उस समय इंग्लैण्ड के किसी पत्र ने उनकी नियुक्ति पर उनकी प्रशंसा नहीं की। कहा जाता है कि वे एक विनोदी और हास्य-प्रिय व्यक्ति हैं। अखबारों में अपनी निंदा सुनकर उन्होंने कहा कि देखो, बिना कुछ खर्च किये हुए मुझे सभी अखबारों ने अपने पत्र में स्थान दिया है। जब वह पर-राष्ट्रमंत्री हुए तब से उनकी नीति गोरों के अनुकूल, और जो गोरे नहीं थे उनके प्रतिकूल रही है। कहा जाता है कि कटंगा के शोम्बे के साथ उनकी सहानुभूति थी। इसीलिए शोम्बे के साथ कोई सख्ती का व्यवहार न किया जा सका, यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका से इंग्लैण्ड का बिगाड़ हो गया। लेकिन अमरीका रूठे या प्रसन्न हो, इसकी उन्हें परवाह नहीं थी। उनका तो ध्येय था कि शोम्बे स्वतंत्र राजा हो और इंग्लैण्ड के धनी अधिक मालदार हों। शाति-रक्षा के बहान इंग्लैण्ड हमेशा इसी टोह में रहता है

कि उसके हितों को किसी तरह का नुकसान न पहुँचे। डगलस होम इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

× × ×

इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री मकमिलन ने जनरल डी गाल को समझाते हुए यह कहा था कि हम लोग बुड्ढे हैं। जिन संकटों का हमने सामना किया है उन संकटों का सामना हमारे बाद के आनेवाले नहीं करेंगे। अतएव हमें जो कुछ करना है, उसे तुरंत कर डालें तो अच्छा होगा। कितनी अचूक बात श्री मैकमिलन ने जनरल डी गाल से कही थी। पर उस समय उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। दुर्भाग्य से श्री मैकमिलन के स्थान में डगलस होम इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री हुए हैं और चांसलर ऐडेनावर के स्थान में चांसलर हुए डा० एरहार्ड। प्रधान मंत्री मैकमिलन के अनुसार, इंग्लैण्ड और जर्मनी में क्रांति हो गयी। इंग्लैण्ड में प्रधान मंत्री के पद पर आये डगलस होम और चांसलर ऐडेनावर के स्थान में डा० एरहार्ड चुने गये। फ़्रांस ज्यों का त्यों बना रहा, और यदि ईश्वर ने चाहा तो जनरल डी० गाल ही वहाँके राष्ट्रपति रहेंगे।

× × ×

चान्सलर एरहार्ड की सहानुभूति इंग्लैण्ड के साथ है जब चांसलर ऐडेनावर की सहानुभूति फ़्रांस के पक्ष में थी। वहाँ क्या होता है, यह तो भविष्य के गर्भ में है लेकिन डा० एरहार्ड के चांसलर होने के कारण इंग्लैण्ड का पलड़ा कुछ भारी हो गया।

× × ×

सीमा-विवाद मोराको और अलजीरिया में छिड़ गया है। दोनों तरफ के सैन्य-दल इस सीमा के विवाद में एक दूसरे पर गोली चला रहे हैं। कहा जाता है कि ट्यूनीशिया मोराको के पक्ष में है। इसलिए ट्यूनीशिया के राष्ट्रपति बिलगोआ का मध्यस्थ बनना अलजीरिया स्वीकार नहीं कर सकता। रूस और मिस्र ने अलजीरिया के पक्ष में अपना मत प्रकट किया है। वहाँ क्या होता है, इसका प्रभाव भारत के सीमा-विवाद पर भी पड़ेगा।

× × ×

प्रेम-संवाद

टी० एस० इलियट

अनु०——श्री रसिकबिहारी

मैंने कहा : 'हमारा भावुक मित्र चाँद है यह
या संभवतः असंगत है, मानता हूँ।
यह प्रेस्टर जान[1] का व्योम यान भी हो सकता है
या टँगी हुई है ऊपर टूटी-फूटी लालटेन कोई,
बेचारे पथिकों को अपनी दुर्दशा दिखाने को।'
तब बोलीं वे : 'कितना विषयांतर करते हो!'
और मैं तब : 'पियानो पर कोई बजा रहा है
ऐसा स्वप्निल राग अपूर्व, जिसमें मादकता है
रात्रि और चाँदनी की, संगीत भी माध्यम है
हमारी रिक्तता की अभिव्यक्ति का।'
वे फिर : 'क्या सब यह मेरे ही बारे में है?'
'अरे नहीं, मैं ही कोरा हूँ।
देवी, तुम ही परम रसिक,
चरम शत्रु निरंकुशता की,
चलित चित्त को हमारे देकर हलका सा मोड़
अपनी निरपेक्ष उद्धत मुद्रा के
एक ही इंगित से
स्तंभित करती हो हमारी मूढ़ काव्य-कल्पना को
और——'क्या तब हम इतने गंभीर हैं?'

---

[1] मध्यकालीन आख्यायिकाओं में वर्णित क्रिश्चियन पुरोहित-राजा जिसका विस्तृत साम्राज्य एशिया और बाद में अबीसीनिया तक फैला था।

लेह--यहाँ पर सिन्धु की घाटी ५ मील के लगभग चौड़ी है।

लद्दाख (१)

(देश का वर्णन और उसकी समस्याएँ)

मेजर सीताराम जौहरी

“चुसूल का इलाका शेष लद्दाख से भिन्न है। यह है तो केवल १४,५०० फी० की ऊँचाई पर, परन्तु किसी य तो वहाँपर स्वाँस घुटती सी प्रतीत होती है। कभी-भी गन्धक की महक सी आती है। हिम भी यहाँ क पड़ता है। शरद ऋतु में तो बस नानी ही याद आती। इतनी सरदी, ऊपर से ७०-८० मील प्रतिघंटा वायु वेग वह गर्दा उड़ाता है कि यह समझ में नहीं आता कि में इससे अधिक भयानकता क्या होगी।” थोड़ी ठहरकर दम लेने के पश्चात् एक अफसर ने कहा :—

क वार मैं इसी इलाके में पैटरोल ले जा रहा था। यंकाल चार बजे का समय था, धूप में शीतलता आ चुकी। बस एक घंटे पश्चात् ही अन्धकार अपनी गोद में स्त घाटियों को समेटनेवाला ही था कि मुझे कुछ ऊँचाई एक स्थानीय दर्रा दिखायी दिया जिसकी ऊँचाई लगभग १७,००० फी० होगी। मैंने विचार किया कि अब नीचे कौन जाये। मैं कई हफ्ते १७,००० फी० ऊँचे दर्रों में रह चुका था और मुझे स्वाँस लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। बस मैंने रात्रि को विश्राम करने का इसी दर्रे में निश्चय किया और यह भी कि भोर होते ही इसे पार किया जायेगा। कुछ भूमि समतल थी। इसके किनारे ही एक छोटी पहाड़ी थी जो ठंडी हवा को रोक रही थी। फिर क्या था, मैंने अपने जवानों को हुक्म दिया कि आज की रात्रि यहीं पर बसेरा किया जायेगा। थोड़ी ही देर बाद तंबू खड़े कर दिये गये। स्टोव जलने की आवाज सुनकर जवानों के मुखमंडल प्रसन्नता से चमक उठे। कारण! सभी को गरमागरम चाय पीने को जो मिलेगी। सबों ने अपने ‘मग’ गरमागरम चाय से भर लिये। अक्टूबर के महीने में यहाँ १५,००० फी० की ऊँचाई पर खाने-पीने की सभी

वस्तुएँ गरम ही प्रयोग में लाई जाती हैं। ऐसा न करने पर उबलती हुई चाय ४-५ मिनट में हिम समान शीतल हो जाती है। बस हँसी और बातचीत के बीच जवान चाय पीने लगे। उस दिन यह हमारा पहिला खाना या पीना था। चाय के पेट में जाते ही जवान प्रसन्नता से भर उठे और कुछ ने तो गुनगुनाना भी आरम्भ कर दिया। लांग्री चाय बाँटकर जवानों का खाना (लद्दाख में कोयले के अभाव के कारण अधिकतर स्टोव पर पूरियाँ ही बनायी जाती हैं) गरम करने लगा। जवानों ने भोजन किया, टिन मिल्क के साथ गरम-गरम चाकलेट पिया और अपने तम्बुओं में जा सोये।" मैंने पूछा—

"उस समय क्या बजा होगा?"

"पैटरोल पर बजा-उजा कौन पूछता है! अपना कार्य ठीक समय कर देना चाहिए। उस समय हमारा कार्य केवल दर्रे को पार करना था। विचार था कि जल्दी सोयेंगे तो दूसरे दिन सूर्योदय से पहिले ही दर्रा पार कर लेंगे। फिर हम रोशनी भी तो नहीं कर सकते थे।"

"क्या शत्रु निकट थे?"

"न भी हों, फिर भी अपनी गतिविधि तो छिपानी ही पड़ती है। फिर व्यर्थ में तेल भी क्यों व्यय किया जाय। तेल ले जाने में परिश्रम करना पड़ता है और इतनी ऊँचाई पर कम से कम बोझा ले जाते हैं। फिर तेल बचाने से गरम चाय भी कई बार मिल जाती है। थोड़ी ही देर में हम सब सो गये। अभी थोड़ी देर हीं सोये होंगे कि दम घुटता सा प्रतीत हुआ। अब यदि तम्बू का पर्दा खोलते हैं तो वायु वेग से तम्बू में प्रवेश करके उसे हिम समान शीतल तो कर ही देगी साथ ही यह भी भय था कि कहीं तम्बू को भी धराशायी न कर दे। जवानों के तम्बुओं में भी जाकर देखा उनकी भी वही दशा थीं। साँस लेना कठिन हो रहा था। मैंने तम्बू उखाड़ने की आज्ञा दी और कहा नीचे सोया जायेगा।"

"सम्भवतः जवानों को यह बुरा लगा होगा।"

"नहीं बुरा क्यों लगता। अपना काम अपने ही आराम के लिए कहीं बुरा लगता है। मैंने अपना तम्बू उखाड़ने को मना कर दिया। मिनटों में मेरे तम्बू के अतिरिक्त और सभी तम्बू उखड़ गये और हम लोग नीचे की ओर मार्च कर गये। उस समय लगभग ९ बजे होंगे।"

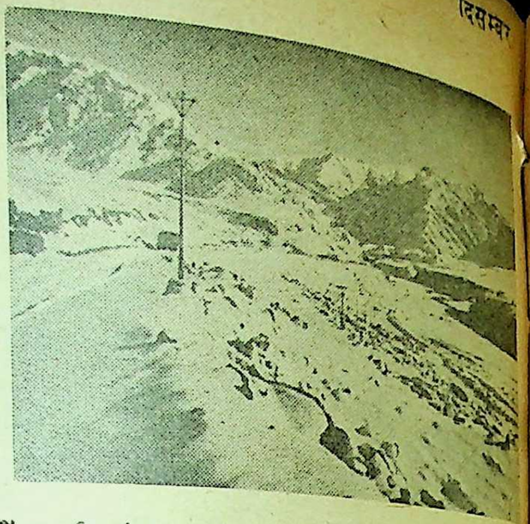

सिंधु की चौड़ी घाटी में होकर लेह से श्रीनगर जानेवाली सड़क। पृष्ठभूमि में मिटटी और बालू के कच्चे पहाड़ हैं। सड़क पर काले-काले पत्थर पड़े हैं।

"तब तो उस रात्रि का काफी भाग जागते ही व्यतीत हुआ होगा?"

"नहीं साहब यह फौज है। यहाँ व्यर्थ समय नष्ट नहीं किया जाता। हम आधे घण्टे में लगभग २,००० फीट नीचे उतर गये। १० बजे तक डेरे लगाकर सो गये। बात यह है कि आराम पाने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। वह सिपाहियों को अपने अफसर से मिलती है। आज समस्त भारत 'जवान-जवान' के नारे लगा रहा है परन्तु जवान अफसर के बिना लाचार है। खैर, खूब सोये और प्रातः ४½ बजे जाग उठे और सूर्योदय से पहिले ही दर्रा पार कर लिया।"

"और आपके तम्बू का क्या हुआ?"

"वहाँ जाकर देखा तो तम्बू की आधी ऊँचाई तक बरफ पहुँच चुका था। हमने उसे उखाड़कर साथ ले लिया।"

यह वार्तालाप लेह से २५ मील पूर्व में एक फौजी अफसर से हुआ था। चुशूल का इलाका शेष लद्दाख से बिलकुल भिन्न है। यहाँ हिम पड़ता है, साँस अधिक फूलती है, गन्धक की महक आती है और हवा चलती है। चुशूल के पठार पर रेत ही रेत है। यदि चुशूल सिन्धु की घाटी से अलग है तो नुवरा की घाटी तो बिलकुल ही अलग है। फिर शायोक की वादी रूपशू चोंगचिनमों का पठार दीं साँग, अकसाई चिन, जन्सकार और खालसी के इलाके भी तो अलग हैं। यदि पाक अधिकृत कश्मीर के जिलों को भी

देखा जाय तो विचित्रता की सीमा नहीं रहती। समस्त लद्दाख ५०,००० वर्गमील के लगभग है। फिर भी इतनी विभिन्नता। इन सब विचित्रता का कारण है अक्षांश का, ऊँचाई का, पहाड़ों की धारों और वायु के बहाव की दिशा का। ऊँचाई के अतिरिक्त और तीनों बातें लद्दाख में हिमालय की अन्य रियासतों से विचित्र हैं।

(२)

हिमालय दीवार लद्दाख को काश्मीर घाटी से उसी भाँति पृथक् करती है जैसे लीपूलेख की धार विपास पटटी को तकलाकोट इलाके से। कश्मीर में जो हिमालय का नीचाव दर्रा है वह केवल ११,५७८ फी० है। यह हिमालय का सबसे नीचा दर्रा है। इसके दोनों ओर हिमालय दीवार अपनी भयंकर ऊँचाई के साथ लौह-स्तम्भ की भाँति खड़ी हुई है। यह स्वाभाविक है कि कश्मीर की दक्षिणी और लद्दाख की उत्तरी हवाएँ इकट्ठी हो जाती हैं। इनका घनत्व (density) भी अधिक होता है। दक्षिणी हवाएँ गरम और नमीदार होती हैं, उत्तरी हवाएँ ठण्डी और शरीर को चीरनेवाली होती हैं। इन दोनों के मिश्रण से गरम हवाओं की नमी ठण्ड के कारण हिम बन जाती है। यहाँकी ऊँचाई कम होने पर भी इतना हिमपात होता है जिसकी सीमा नहीं। इस बरफ को साफ करनेवाले व्यक्तियों का कथन है कि शरद ऋतु में जोजीला ५०, ६० फी० बरफ से ढका रहता है। जब यहाँपर इन्जीनियर नहीं पहुँचे थे और न वुलडोजर आदि ही, उस समय मनुष्य तमाम साल जान पर जोखिम लेकर ही काटता था। परन्तु घोड़ा, खच्चर, बकरे, भेड़ और लदे हुए याकों के लिए जोजीला केवल ४ माह खुला रहता था। स्टाइन, स्वीन हीडन, फोरसाइथ आदि का कथन है कि भारत का सबसे कठिन पास जोजीला है। यह है भी सत्य। जोजीला संसार की सबसे ठंडी पट्टी में पड़ती है। इसके दक्षिणी किनारे पर सोनामर्ग है और उत्तरी किनारे पर ट्रास। ड्रास को यदि हम एकदम वर्बर (beastly) कहें तो अत्युक्ति न होगी। इसका नम्बर ठण्ड में अरकैनजिल के पश्चात् ही आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सोनामर्ग से ड्रास तक बरफानी इलाका है। वास्तविकता भी यही है। इस बरफ के कारण जोजीला से साल के बड़े हिस्से में फौजी गाड़ियाँ नहीं गुजर सकतीं। भारत-सरकार अधिक से अधिक समय तक इस पास को खुला रखने का प्रयत्न कर रही है। अमेरिकन विशेषज्ञ भी आये पर वे भी जोजीला अधिक समय तक खुला रखने के प्रयत्न में सर्वथा विफल ही रहे। हमारे इन्जीनियरों ने इस वर्ष एक तरकीब सोची है। अभी तक हिमपात के पश्चात् जब मशीनों द्वारा उसे काटा गया तो हिम हटने के पश्चात् जब भूमि पर मशीन पहुँची तो वह सड़क से हटकर खडड या पहाड़ पर हटी हुई होती थी। इस वर्ष इन्जीनियरों ने सड़क के दोनों किनारों की कोण पहाड़ों से ले लिये हैं। बरफ हटाते समय वह इन्हीं कोणों को देखते हुए काम करेंगे। इसका फल इन्हीं जाड़ों में ज्ञात होगा। यों यह कार्य है कठिन। ६० फुट हिम थोड़े ही समय में साफ करना कोई सरल कार्य नहीं। जोजीला समस्त शीत ऋतु में खुला नहीं रखा जा सकता।

जोजीला के पर्वत की चढ़ाई वालताल से आरम्भ होती है और वह चढ़ाई १ या १½ मील में समाप्त हो जाती है और भूमि समतल ही जाती है। जोजीला पार करने के बाद इसी प्रकार २ या ३ मील तक ढलाव मामूली है। फिर वालताल से कच्चा पहाड़ आरम्भ हो जाता है और जोजीला को पार करते ही पहाड़ बिलकुल मट्टी का बना हुआ है। न घास है, न कोई वृक्ष। यदि वालताल से मीनामर्ग (जोजीला से लगभग १२ मील उत्तर में) की ओर बड़ी कठिनाइयों के पश्चात् यदि सुरंग निकाली भी जाये तो वह रुक नहीं सकती क्योंकि उसकी छत की मोटाई न तो अधिक होगी और न पक्की। अभी तक जोजीला पर पूर्ण रूप से विजय पाने की तरकीब ज्ञात नहीं है। यह भारतीय फौज का बड़ा भारी सर दर्द है। मैंने जोजीला सूखे में भी पार किया है और बरफ में भी। बरफ न होने की दशा में कुछ विशेषता न दिखायी दी। केवल इतना स्पष्ट था कि जोजीला पार करने के बाद पहाड़ बन्जर या मिट्टी के ढेर हैं। हवाएँ तेज हैं और उनसे उड़नेवाला गर्दा व्यक्ति को घबरा देता है। ड्रास में तो गर्द इतनी उड़ती है कि एक फुट पर कभी-कभी कुछ नहीं दिखायी देता। जोजीला के दक्षिण में हरियाली ११,००० फी० तक समाप्त हो जाती है। जब जोजीला पर बरफ पड़ रही थी तो मुझे लद्दाख से काश्मीर आने का अवसर मिला। गाड़ियों के कन्वाए ने केवल २ मील की दूरी २½ घण्टे में पार की। मैंने एक बात और देखी।

लद्दाख के कच्चे और वनस्पतिहीन विशाल पहाड़ों का दृश्य जिनके बीच में होकर भारतीय वायुसेना का एक हैलीकाप्टर सेना के लिए सामान ले जा रहा है।

घाटी का पूर्वी पर्वत हिमाच्छादित था और उसपर दर्रे तक पेड़ भी थे, परन्तु पश्चिमी पहाड़ नंगे थे और उन पर बरफ जमती भी नहीं थी। इससे पाठकों को ज्ञात हो जायेगा कि प्रातःकाल के सूर्य में तेज गर्मी होती है इसी कारण पश्चिमी पर्वत गरम और बरफहीन थे। सड़क पश्चिमी पहाड़ों की जड़ के किनारे-किनारे ही है। दूसरे, जहाँ बरफ ठहर जाता है और अपने समय पर पिघलता है वहाँ धरती गीली होती है और कुछ उपजाऊ भी।

"साहब! कई साल से लद्दाख में उतनी बरफ नहीं पड़ी जितनी पड़नी चाहिए।" एक नीनू ग्राम के निवासी ने कहा। "यदि ऐसा ही रहा तो हमारे जानवरों का क्या होगा?" बातों-बातों में लद्दाख-निवासी हिम की बजाय उर्दू में बारिश भी कह पड़ते हैं। बारिश लद्दाख में हो भी कहाँ से। हिमालय की दीवार दक्षिणी नमीदार सारी हवाएँ रोक लेता है। जो हवाएँ जोजीला या और निचाओ से बचीं भी तो उनको जन्सकार धार रोक लेती है। बची-खुची नमीदार हवाएँ कहो, या सिन्धु के पानी के भाप के बादल कहो, वह ४ इंच बारिश लेह में तमाम साल में बरसा देते हैं। यहाँ बारिश तो नहीं होती। इस बारिश का ४० इंच हिम बन जाता है। परन्तु लेह जाड़ों में ३ से ४ फुट बरफ का ही अधिकार रखता है। जहाँ-जहाँ नदियों में पानी अधिक है वहाँ स्थानीय हवाएँ बादल बना देती हैं और हिम कुछ अधिक पड़ता है, जैसा कि पांगोंग झील के कारण चुशूल में और नूवरा घाटी में। रूपशू, अक्साई चिन और दीपसांग के पठार बिलकुल सूखे हैं। यहाँ त्वचा तक सूखकर कड़ी हो जाती है।

यही कारण है कि यहाँके निवासी द्रव को चाय की शकल में पीते रहते हैं। लद्दाख में जो भी हिमपात होता है वह सूर्योदय के पश्चात् थोड़ी ही देर में पिघल जाती है। जहाँ धूप नहीं पहुँचती वहाँ जमी रहती है, वरना पहाड़ियों से पिघलकर घाटियों में आ जाती है। जाड़ों में घाटियों में इतनी सरदी होती है कि सिन्धु नदी का पानी जम जाता है। उसपर गाड़ियाँ चलती हैं।

सूखी हवाओं की तीव्रता एवं हल्कापन और सूर्य की प्रखरता ने पहाड़ों पर विचित्र खेल खेल रखा है। इससे पर्वतों की शिलाओं के कण-कण हो चुके हैं और वह मिट्टी के ज्ञात होते हैं और हैं भी ऐसे ही। यदि कहीं लद्दाख में ७ इं० बारिश पड़ जाये तो सारा लद्दाख बराबर होकर १४००० या १५००० फी० ऊँचा मिट्टी का मैदान हो जाये। वह तो यूँ कहो कि यहाँ १/२ इंच वारिश भी नहीं होती।

(३)

जोजीला या लद्दाख का जो उपरोक्त वर्णन किया गया है उसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि लद्दाख प्रान्त इतना बीहड़ है कि यहाँ बस्ती ही नहीं होती होगी। जोजीला से कुछ ही गजों की दूरी पर तंबू लगे हुए हैं। यह तंबू 'वार्डर रोड' के कर्मचारियों के हैं। चाहे जितना हिमपात हो वह उसे हटाने का कार्य समस्त शीत ऋतु जारी रखते हैं। रही लद्दाख के विषय में, वह भी तिब्बत से अधिक आबाद है। लद्दाख के लेह और कारगिल दो शहर गिने जाते हैं। अब यह नोटीफाइड इलाके बना दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त खालसी, नूरला, नीमू, चुशुद, ईगू और उपशी सिन्धु घाटी के बड़े-बड़े ग्राम हैं। इसी प्रकार जन्सकार अच्छी तहसील गिनी जाती है। नूवरा घाटी बहुत ही उपजाऊ है और यहाँके निवासी धनवान गिने जाते हैं, जैसे कि चागचिनमों की घाटी में और रुपशू के पठार पर। जन्सकार के निवासी तो केवल जानवर ही पालते हैं। यह लोग शीतकाल में मक्खन लेह के बाजार में लाते हैं और उसको अनाज और वस्त्र से बदलते हैं। लद्दाखी याक, घोड़े, गाय इत्यादि अधिकतर जन्सकारियों से अनाज और कपड़े के बदले में लेते हैं। वास्तव में ग्राम हर सोते, नाले और दरिया के किनारे बसे हुए हैं। यह ग्राम १४,५०० फी० तक देखे जाते हैं। यह सभी एक फसल उगाते हैं। इसका यह तात्पर्य हुआ कि १४,५०० फी० तक खेती होती है। फोवरांग चुशूल के उत्तर में एक विख्यात ग्राम है। यह सदैव ही चांगचिनमों या अकसाई चिन के यात्रियों के लिए यात्रा आरम्भ करने का स्थान रहा है। यहाँसे यात्री राशन भी मोल लेते थे और कुली या सामान ले जाने के लिए जानवर भी। यहाँ कश्मीर स्टेट का पटवारी या कानूनगो महसूल वसूल करने के लिए सदैव रहता था। अब भी इस ग्राम का महत्त्व घटा नहीं है। यह ग्राम संसार का सबसे ऊँचा बसा हुआ ग्राम माना जाता है। यहाँके निवासी बारहो मास यहाँ रहते हैं और गेहूँ, जौ अथवा मोटे अनाज की खेती करके अपना निर्वाह करते हैं। इससे स्पष्ट है कि जहाँ भी किसी नाले या नदी की घाटी १४,५०० फी० से नीची है, वहाँ ही ग्राम हैं। मिट्टी उपजाऊ है ही केवल उसको नमी चाहिए, बस फिर खेती भी होगी और वृक्ष भी। भौगोलिकों का कथन है कि कशमीर में 'ट्री लाइन' १०,२०० फी० तक है। परन्तु मैंने जोजीला के पूर्वी पहाड़ों पर ११,००० फी० तक पेड़ देखे और लद्दाख में तो १२,५०० फी० तक। यही मेरा अनुभव तकलाकोट के इलाके का है। लद्दाखी दो प्रकार के वृक्ष लगाते हैं। पापलर (सफेद) पेड़ तो मकान की कड़ियों या दरवाजों के लिए और वीपिंग विलो जलाने के लिए। कहने को तो विलो के वृक्ष जलाने के लिए होते हैं परन्तु वास्तव में यह एक लद्दाखी झाड़ी होती है जिसको उम्बू कहते हैं। उसकी जड़ जलाई जाती है। तात्पर्य यह कि लद्दाख ऐसा भयानक नहीं है जैसा कि इसे समझते हैं। पानी लद्दाखियों के लिए बहुत आवश्यक वस्तु है और इसके लिए इन्होंने स्थान-स्थान पर गहरे कुएँ और नहरें बना भी रखी हैं।

लद्दाख की समस्या है 'जन शक्ति' (man power)। यहाँ पर स्त्रियों की प्रजनन-शक्ति बहुत कम है। कुछ लोग कहेंगे कि बहुपति प्रथा (पालियान्ड्री) इसका कारण है। [बहुपति प्रथा (पालियान्ड्री) सरकार द्वारा अवैधानिक घोषित की गयी है परन्तु फिर भी जिस परिवार के सब व्यक्ति आर्थिक दशा के कारण विवाह करने की स्थिति में नहीं हैं उसमें केवल बड़ा भाई ही विवाह करता है। वही वधू सब भाइयों की वधू मानी जाती है] वैसे यह भी कुछ समझ में नहीं आता क्योंकि जो लोग धनवान्

जाड़े में बर्फ गिरने से सड़क बंद हो जाती है। उसे साफ किया जा रहा है।

हैं वह कई विवाह करते हैं। फिर भी उनके सन्तान नाम मात्र को ही होती है। वास्तव में १०,००० या ११,००० की ऊँचाई के ऊपर मनुष्य को 'काम' अधिक नहीं सताता। जैसे पुरुषों के ऊपर ऊँचाई का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार स्त्रियों के ऊपर। तात्पर्य यह कि लद्दाख की स्त्रियों के बच्चे कम ही होते हैं। ऐसे ऊँचे स्थान भोग-विलास के लिए नहीं होते। वहाँ मनुष्य तपस्या करना चाहता है। स्मरणशक्ति तीव्र हो जाती है और मन धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में खूब लगता है। यही कारण है कि बौद्ध-धर्म पर यहाँ काफी ग्रन्थ लिखे गये। अब भी यहाँ पर लामाओं के लिए लेह में 'बौद्ध विद्यालय' खुला है। पहिले बौद्ध धर्म के लामा धार्मिक विद्या के स्नातक बनने ल्हासा जाया करते थे। हैमिस गुम्फा का बालक लामा ल्हासा में विद्या प्राप्त कर रहा था जब कि चीनियों ने तिब्बत पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। उन्होंने बालक लामा को नहीं आने दिया है। वह अभी तक ल्हासा में बन्दी है। हैमिस गुम्फा की लामा वाली गद्दी खाली पड़ी हुई है। अब भारत के लामा लेह में आते हैं। इससे स्पष्ट है कि चाहे लद्दाखियों की संख्या काफी वर्षों बाद बढ़े किंतु ऐसी आशा तो नहीं की जा सकती। फिर लद्दाख इस बात के लिए इतनी लम्बी प्रतीक्षा भी नहीं कर सकता। यदि भारत ने लद्दाख को शीघ्र ही नहीं बसाया तो उसे कहीं कोई और न बसा दे। लद्दाख को कई कारणों से कम जनसंख्या (scarcity of population) वाला भी नहीं रखा जा सकता। यहाँकी जनसंख्या बढ़ना अति आवश्यक है। सरकार को इस समस्या का कुछ हल तो ढूंढ़ना ही पड़ेगा। भारत लद्दाखियों और तिब्बतियों में ऐतिहासिक लगाव नहीं है। अधिकांश लद्दाखी लाल पंथ (Red sect) के हैं। और तिब्बती पीले पंथ (Yellow sect) के। इस धार्मिक मतभेद के कारण लद्दाखी नहीं चाहेंगे कि यहाँपर तिब्बती शरणार्थी बसाये जायें। अब रही लद्दाखियों के विषय में। उनमें पहिले तो धर्म एक साधारण वस्तु थी। ऐतिहासिकों के कथनानुसार "यदि एक बौद्ध महिला मुसलमान से विवाह कर ले और कुछ वर्षों पश्चात् उसे छोड़कर फिर बौद्ध से अपना विवाह करना चाहे तो वह ऐसा कर सकती थी। इसी प्रकार एक कुटुम्ब में एक भाई बौद्ध हो सकता था और दूसरा मुसलमान और वे बिना किसी बाधा के एक ही छत के नीचे रहते थे। परन्तु पाकिस्तान निर्माण के पश्चात् इसमें परिवर्तन हो गया। धार्मिक भेद-भाव बढ़ गया। पाकिस्तान बना तो था भारत में धार्मिक मतभेद हटाने के लिए परन्तु लद्दाख में तो यह मतभेद और भी बढ़ गया। अब तो मुसलमान, मुसलमान हैं और बौद्ध, बौद्ध। दोनों जातियों के ग्राम पृथक् हो गये हैं। चुशोद (लेह से ३ मील दक्षिण-पूर्व में) ग्राम केवल मुसलमानों का ही है। बौद्ध यदि हर समय लेह की बात करेगा तो मुसलमान कारगिल की। (कारगिल से लगभग १२ मील पूर्व मुतवैंग से बौद्धों की आबादी आरम्भ हो जाती है।) यह तो स्पष्ट है कि लद्दाखी जो अधिकांश बौद्ध हैं, मुसलमानों का बसना कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। फिर उनको सदैव यही भय रहेगा कि कहीं नये आये हुए मुसलमान पाकिस्तानियों से न मिल जायें। उनको यह भी भय है कि कहीं एक दिन लद्दाख पाकिस्तान का ही एक भाग न हो जाये। परन्तु पाकिस्तानी लद्दाख की आयात-निर्यात (सप्लाई) लाइन को तो काट ही सकते हैं। (कारगिल के पूर्व में दो पाकिस्तानी पिकेट हैं जो हमारी प्रत्येक गति-विधि को देखा करते हैं) यही कारण है कि लद्दाखी भारत सरकार से चाहते हैं कि वह मोटर की सड़क द्वारा कुलू से लद्दाख को जोड़ दे। यह सड़क रोहतांग से तो कठिन है। वह चम्बा, पांगी, केलांग (लाहुल) होते हुए बारालाचा पहुँचेगी। बारालाचा के बाद रूपशू होते हुए उपशी

पहुँचे या जन्सकार घाटी होते हुए लेह या रूपशू के मैदान से किसी अन्य स्थान से होकर हैमिस अथवा अन्य किसी ग्राम में पहुँचे। इसका निश्चय शीघ्र ही होनेवाला है। इस सड़क के निर्माण से लद्दाखियों को आर्थिक लाभ यथेष्ठ होगा। तात्पर्य यह कि लद्दाखी विदेशी मुसलमान (immigrants) को कठिनाई से ही स्वीकार करेंगे। अब समस्या यही है कि लद्दाख को बसाने आये कौन? लेह के बाजार में अथवा जहाँ भी देश के लोगों की किराने की अथवा अन्य दुकानें हैं वे सबके सब होशियारपुर जिले के निवासी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पंजाबियों को बसाया जाये। जब 'जनशक्ति' (man power) की समस्या हल हो जाये तब लद्दाख की आर्थिक उन्नति के विषय में विचार किया जा सकता है।

(४)

विकास की दिशा में बड़ी बड़ी योजनाएँ बनायी जा रही हैं। ऐसी योजनाएँ रूस में भी चल रही हैं। भारत भी उनसे लाभ उठायगा। परन्तु इन योजनाओं के पूर्ण होने में वर्षों का समय लगेगा और करोड़ों की संख्या में धन भी व्यय होगा। इसका परिणाम भी बहुत अच्छा होगा। परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या भारत इसका परिणाम देखने और उससे लाभ पाने तक हाथ पर हाथ रखे बैठे रहकर प्रतीक्षा ही करता रहे? इस वैज्ञानिक युग में इतना समय किसी भी देश के पास न है और न हो सकता है। फिर भारत, जिसकी उत्तरी छत पर बैठे हुए चीनी डाकू निरन्तर अपनी ललचाई हुई गृद्ध-दृष्टि से घूरे जा रहे हैं, कैसे चुप रह सकता है? ऐसी स्थिति में लद्दाख में वही उन्नति हो सकती है जो थोड़े ही समय में पूर्ण हो सके।

साधारणत: व्यक्तियों को ३ बातें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। पहिली, लद्दाख की दरियाओं की वादियाँ बहुत चौड़ी और हमवार हैं। सिन्धु की घाटी तो लेह के पास ५ मील के लगभग चौड़ी है। दमचौक से मारोल तक सिन्धु घाटी की चौड़ाई औसतन एक मील तो होगी ही। दूसरे, इन वादियों की मिट्टी थोड़ी खाद मिलाने से काफी उपजाऊ हो सकती है। तीसरे, सिन्धु और उसकी सहायक नदियाँ—जन्सकार और ट्रास नदियों की भाँति बहुत है। जाड़े में लगभग लद्दाख के सभी नदी-नाले जम जाते हैं। परिणामस्वरूप पानी की और अधिक कमी हो जाती है। परन्तु गर्मियों में पानी की कठिनाई नहीं होती है। यदि अधिक निकास से पानी की कमी प्रतीत हो तो नदी और नालों के निकास के निकट 'जल संरक्षण गृह' बनाये जा सकते हैं और उनमें से नहरों को निकाला जा सकता है, जैसा सिन्ध में है।

(५)

सिन्धु नदी दमचोक से लगभग ५ मील पूरब में भारत की सीमा १५,००० फुट पर काटकर भारत में प्रवेश करती है। और २०० मील के लगभग भारतीय लद्दाख में बहने के पश्चात् मारोल के पास अधिकृत कश्मीर में ८,००० फी० की ऊँचाई पर पाकिस्तान में घुस जाती है। अर्थात् २०० मील में इसका ढाल ७००० फीट होता है। यदि दमचोक के पास एक बड़ी झील बना दी जाये तो उसमें सिन्धु का पानी एकत्रित किया जा सकता है। इस झील से नहर निकालकर सिन्धु की तमाम घाटीमें पानी देकर जो जमीन बंजर पड़ी हुई है, उपजाऊ बनायी जा सकती है। इस प्रकार सिन्धु घाटी को आबाद किया जा सकता है। १४,५०० फी० तक खेती होती है अतः सिन्धु की सब जमीन काम में आ सकती है। इस पानी से अनाज की खेती ही नहीं वरन् पापलर, वीपिंग विलो के वृक्ष भी लगाये जा सकते हैं। पानी होने के कारण घास और युमबू की झाड़ियाँ तो हो ही जायेंगी। इससे जानवरों को चारा भी मिलेगा और लद्दाखवासियों को जलाने के लिए ईंधन। अब प्रश्न है फलों के बगीचे लगाने का। लेह से २२ मील पूरब में एक ग्राम ईगू है। यहाँ खूबानी के पेड़ लगाये जाते हैं। तो ईगू से मारोल (ट्रास और सिन्धु नदियों के संगम पर) तक खूबानी के वृक्ष लगाए जा सकते हैं। दूसरे मैंने नीमू ग्राम में जो कि लगभग लेह से १८ मील पश्चिम में है, कुछ सेब खाये। सेब बड़े थे। लाल थे। जब मैंने खाये तो वह मीठे ही नहीं वरन् मलाई की भाँति मुलायम भी थे। इसी प्रकार के सेब तमाम ग्रामों में, जो कि नीमू के पश्चिम में है, होते हैं। यदि आज ऐसे सेब कम पेड़ों पर होते हैं तो विकास के पश्चात् इन वृक्षों की संख्या हजारों में बढ़ाई जा सकती है। यदि सिन्धु घाटी में पानी दे दिया जाये तो अनाज, घास, ईंधन और फल इत्यादि की संख्या अधिक बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार द्रास, जन्सकार, हानेल, चुशूल, शायोक इत्यादि नदियों का पानी लद्दाख

को उपजाऊ बनाने में अधिक सहायक हो सकता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान नहरों में यदि कुछ मेहनत कर उनको सुदृढ़ कर दिया जाये तो लद्दाख के ग्रामों को अति लाभ पहुँचेगा।

अभी तक विकास के मामले में नूबरा घाटी का बिल्कुल वर्णन नहीं हुआ है। नूबरा घाटी अधिक ऊँची नहीं है। नूबरा घाटी काफी चौड़ी है तथा उसमें पानी भी काफी है। मिट्टी सिन्धु नदी की भाँति है। यहाँपर खेती की फसल शेष लद्दाख की भाँति एक ही होती है परन्तु होती बहुत अच्छी है। इसी कारण यहाँके निवासी हैं भी उन्नतिशील। यहाँ सेब, नाक, खूबानी, अंगूर और बादाम काफी होती है। यहाँ भी सिंचाई की नहरें बनाई जा सकती हैं और नये-नये ग्राम बसाये जा सकते हैं।

लद्दाख में कुछ इलाके ऐसे हैं जो सूखते चले जा रहे हैं। एक दिन ऐसा आयेगा जो यहाँ नमक, सोहागा और सम्भव है कि गन्धक के मैदान के मैदान बन जायें। इसके लिए हम पांगोग झील का उदाहरण ले सकते हैं।

कई शताब्दियों पहले पांगोग झील से एक नाला निकलता था जो मुगालिब ग्राम से निकलता हुआ चांग-चिन्यो नदी में सम्मिलित हो जाता था। धीरे-धीरे उत्तप्त सूर्य की किरणों ने अपना काम किया। पानी भाप बनकर थोड़ा-थोड़ा कम होता रहा और आज पांगोग झील का पानी अपनी असली सतह से ३३ फी० से अधिक नीचे जा चुका है। वाष्पीकरण में कोई कमी नहीं है। कुछ सदियों के बाद पांगोग झील अक्साई चिन के पठार की भाँति अवश्य हो जायेगी। उस समय पांगोग का मैदान या गड्ढा नमक, गन्धक और दूसरे नमकों की खान होगा। आज जो पांगोग झील के इलाके में हवा में गन्धक की सुगन्ध आती है वह स्पष्ट संकेत करती है कि पांगोग में गन्धक अवश्य है। इस गन्धक की भाप बनती है जो हवा को सुगन्धित कर देती है तथा उससे साँस लेने में कठिनाई होती है।

पांगोग झील की भाँति एक दिन अक्साईचिन पठार का भी यही हाल था। इस पठार का पानी गलवान और चिपचाप नदियों द्वारा शायोक नदी में आ मिलता था। परन्तु वाष्पीकरण द्वारा इस पठार पर पानी सूख गया और वह नमक और सोहागे का ऊसर मैदान रह गया। चीनियों के आगमन से पहले लद्दाखी यहाँसे नमक और सोहागा लाया करते थे।

अक्साईचिन की भाँति रूपशू पठार का भी यही हाल हो रहा है। पूगा तो नमक, सोहागे और सोने की रेत का केन्द्र है ही, पर थोड़े वर्षों बाद यह इलाका काफी नमक का ऊसर मैदान बन जायेगा। सोमोरीरी इस इलाके की बहुत बड़ी झील है। यह सूखती जा रही है। कुछ समय पश्चात् यह भी सूख जायेगी और इसके दलदल नमक की खान बन जायेंगी। इस प्रकार वह इलाके जहाँ पर खेती नहीं हो सकती वह भी मनुष्य अपने लाभ और सभ्यता के लिए काम में ला सकता है। वह लद्दाख जो ऊसर समझा जाता है भारत का आवश्यक अंग बन सकता है। इसके लिए हमें शताब्दियों नहीं रुकना है। इस कार्य को जल्दी से जल्दी करना है। यदि प्रकृति जल्दी नहीं कर सकती तो हम विज्ञान का लाभ उठाकर इस कार्य को शीघ्र समाप्त कर सकते हैं।

(क्रमशः)

तमिल साहित्य में राष्ट्रीयता एवं प्रादेशिकता की भावना

डा० उदयनारायण तिवारी

बीसवीं शताब्दी में यूरप के विभिन्न देशों में, वहाँकी भाषाओं का आश्रय लेकर, राष्ट्रीयता की जो लहर उठी थी उसका भारत पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। बात यह है कि उस समय देश परतंत्र था और सभी लोगों का ध्यान विदेशी शासन से मुक्त होकर स्वराज्य की स्थापना पर था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय देश में राष्ट्रीयता का जो जोर था उसके परिणामस्वरूप, विधान में राज्यभाषा के रूप में हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि को स्थान मिला। यदि इसी समय अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए हिन्दी को तथा प्रादेशिक कार्यकलापों एवं शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं को स्वीकार कर लिया जाता तो आज इस देश में भाषा के नाम पर जो छोटे-मोटे आन्दोलन चल रहे हैं उनका अन्त हो गया होता। किन्तु शासकवर्ग की अदूरदर्शिता के कारण ऐसा न हो सका जिसका परिणाम हमारे नवोत्थित राष्ट्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध नहीं हुआ। राष्ट्रपिता बापू ने इस बात का बहुत पहले से ही अनुभव करके दक्षिण तथा अन्य हिन्दीतर राज्यों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य आरम्भ किया था किन्तु उनके पदचिह्नों पर चलनेवाले लोगों ने इसका महत्त्व नहीं समझा और वे इस सम्बन्ध में सर्वथा उदासीन रहे। अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी यहाँ अंग्रेजी बनी रही और उसने वह कार्य किया जो अंग्रेज स्वयं उपस्थित होकर भी यहाँ नहीं कर पाये थे। इससे अनक विघटनकारी तत्त्वों को प्रोत्साहन मिला और इस देश की भाषा-समस्या और भी उलझ गयी। हमें इसी सन्दर्भ में, तमिल साहित्य में, राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक भावनाओं के सम्बन्ध में इस लेख में विचार करना है।

स्वराज्य-प्राप्ति के पूर्व तमिलनाड में राष्ट्रीयता के उद्बोधक प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्य भारती (सन् १८८२-१९२१) थे। निम्नलिखित कविता में आपने सम्पूर्ण भारत का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है:—

(१)

सिन्दु नदिइनमिसै निलविनिले
चेरनन् नाट्टिळम पेणगकुळुडने
सुन्दरत् तेलुंगिनिल पाट्टिसैत्तुत्
तोणिग लोट्टिविळै याडिरुवोम्;

[हम लोग चन्द्रिका धौत रात्रि में, सिन्धु नदी में, केरल राज्य की सुकुमार सुन्दरियों को साथ लेकर सुमधुर तेलुगु में गीत गाते हुए नौका में विहार करेंगे।]

(२)

गंगै नदिप्पुरत्तुक गोदुमैप्पण्डम्
काविरि वेट्रिलैक्कु मारुकोळ्ळुवोम्
सिंगमराट्टियर्तम कविदै कोण्डु
सेरत्तुत् दन्तगळ परिसळिप्पोम्;

[(उत्तरी भारत में) गंगा नदी के तट पर उत्पन्न होनेवाले गोधूम (गेहूँ) का कावेरी के तट पर उत्पन्न होनेवाले ताम्बूल से विनिमय करेंगे। वीर मराठों की कविताओं के लिए केरल देश के हाथीदाँतों को पुरस्कार में देंगे।]

(३)

कासि नगर पुलवर पेसुम् उरैदान्
कांचिइल केट् पदर्कोर करुवि सेय्वोम्
रासपुत् तानत्तु वीरर तमक्कु
नल्लियर कन्नडत्तुत तंगम अळिप्पोम्।

[काशी के विद्वज्जनों के भाषण सुनने के लिए हमे कांचीपुरम् में आवश्यक यंत्र तैयार करेंगे और राजस्थान के वरिष्ठ वीरों को मैसूर की खान से प्राप्त स्वर्णपदक देकर सम्मानित करेंगे।]

भारती अपनी कविताओं में 'भारत' का माता रूप में दर्शन करते हैं। वह नगाधिराज हिमालय, पवित्र गंगा नदी, भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अटूट सांस्कृतिक एकता, उपनिषदों में वर्णित धार्मिक विचारों, भारतीय कला एवं संगीत तथा प्राचीन युग के धार्मिक महापुरुषों का

लेखक को इस लेख के तैयार करने में 'तमिल कल्चर' के जनवरी-मार्च १९६३ में प्रकाशित 'रिजनल नेशनालिज्म इन तमिल लिटरेचर' शीर्षक लेख से अत्यधिक सहायता मिली है। तमिल अंशों के हिन्दी अनुवाद में लेखक के शोध छात्र श्री एन० सुन्दरम् ने विशेष सहायता की है। लेखक इन दोनों का ऋणी है।

—लेखक

स्मरण करके आत्म-विभोर हो उठते हैं। भारतमाता के सम्बन्ध में उनके निम्नलिखित उद्गार द्रष्टव्य हैं:—

(४)

तोंड्रु निगषन्द तनैत्तुम उणर्न्दिडु
सूषकलै वाणर्गळुम्--इवळ
एण्ड्र पिरन्दवळ एण्ड्रुण राद
इयलबिन ळाम एंगळ ताय।

[अतीतकाल की घटनाओं को जानने की शक्ति रखनेवाले देवगण भी यह कह नहीं सकते कि हमारी भारत-माता का जन्म कब हुआ ?]

(५)

मुप्पदु कोटि मुगमुडैयाळ उइर्
मोयम्बुर वोन्ड्रुडैयाळ-इवळ
सेप्पु मोशिपदिनेट्टुडैयाळ, एनिर्
सिन्दनै ओन्ड्रुडैयाळ

[त्रिश कोटि मुखों के रूप में भारतमाता के दर्शन होने पर भी, शरीर से वह एक ही है। अठारह भाषाओं के बोलते हुए भी उसकी चिन्तन शक्ति एक ही है।]

(६)

इन्दिय नाडिदु एन्नुडै नाडु
एन्ड्रु दिनन्दिनम् नीयदैप्पाडु
कन्नि इमयक् कडलिडै नाडु
कडउळ एमेक्केनक् कट्टिय वीडु

[यह भारत मेरा अपना देश है। ऐसा तुम प्रतिदिन गाओ। कन्याकुमारी, हिमालय एवं समुद्रों के मध्य हमारा देश स्थित है। भगवान् ने इस घर (देश) को हमारे लिए ही बनाया है।]

कविवर भारती, गोखले, तिलक, नौरोजी, गांधी, पटेल एवं नेहरू को महान् नेता मानते हैं। देश की आध्यात्मिक शक्ति को जागृत करनेवाले परमहंस राम-कृष्ण एवं कवीन्द्र रवीन्द्र में भी उनकी पूर्ण आस्था है। उनका विश्वास है कि गांधी-विचारधारा को अपनाने से ही तमिळनाड का कल्याण होगा। वह गांधी को तिरु-वळ्ळुवर का अवतार मानते हैं।

तमिळ पद्य की भाँति ही उसके गद्य में भी हमें उच्च राष्ट्रीय भावना के दर्शन होते हैं। ऐसे गद्य लेखकों में तिरु० वी० कल्याण सुन्दरम् मुदलियार (१८८३-१९५३) का नाम उल्लेखनीय है। भारतीय एकता पर बल देते हुए आपने एक स्थान पर जो उद्गार व्यक्त किया है उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

"मुझे महाकवि रवीन्द्रनाथ का यह कथन स्मरण आ रहा है कि भारत में आर्य एवं द्रविड़ संस्कृति गंगा-यमुना के संगम की भाँति एक हो गयी है। आज हम इस प्रश्न का क्या उत्तर दें कि प्राचीन भारतीय कौन थे? आज हम आर्यों एवं द्रविड़ों के मिश्रित पूर्वजों को ही प्राचीन भारतीय कह सकते हैं। द्रविड़, भारत की प्राचीन भाषाओं में से एक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण भाषा है। आज वह भारत के केवल एक प्रदेश विशेष में ही फूल-फल रही है। इसी प्रकार, सम्पूर्ण भारत में, संस्कृत का प्रचार-प्रसार है। भाषाशास्त्रियों के अनुसार प्राकृत से ही इन दोनों भाषाओं का प्रादुर्भाव हुआ है। यदि यह कथन सत्य है तो प्राकृत यहाँकी प्राचीन भाषा मानी जा सकती है।"

कल्याण सुन्दरम् गांधी विचारधारा के सबसे बड़े पोषक हैं। तमिळ भाषा के माध्यम से राष्ट्रपिता बापू एवं राष्ट्रीयता के सन्देश को साधारण जनता तक पहुँचाने का श्रेय जिन लोगों को दिया जा सकता है उनमें आपका नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार सांस्कृतिक एकता एवं राष्ट्रीय भावनाओं के उद्बोधक श्री देशिक विनायकम् पिल्लै एवं तमिळ भाषा के मधुर गद्य-लेखक रा० पि० सेतु पिल्लै के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनमें से देशिक-विनायकम् पिल्लै को जहाँ हिन्दू एवं बौद्ध-धर्मों के तमिळ देश की देन पर गर्व है वहाँ सेतु पिल्ल को भारत के तीर्थ-स्थानों पर इसलिए अभिमान है कि उनके द्वारा उत्तर एवं दक्षिण की एकता आज भी अक्षुण्ण है। आप "तमिळ इन्बम्" नामक अपनी पुस्तक में इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं:—

"भारत में मथुरापुरी दो हैं—एक उत्तर में, दूसरी दक्षिण में। दो पाटलिपुत्र भी थे, एक उत्तर में दूसरा दक्षिण में। इसी प्रकार एक काशी उत्तर में है तो दूसरी काशी दक्षिण में तेन (=दक्षिण) काशी के नाम से विख्यात है। हिमालय से लेकर सेतु पर्यन्त भारत में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं, फिर भी भारत की संस्कृति एक ही है।"

एक ओर जहाँ तमिळ के कवियों एवं लेखकों में सम्पूर्ण भारत की एकता एवं राष्ट्रीयता के प्रति उत्कट अनुराग है वहाँ अपनी मातृभाषा तमिळ के प्रति भी इनमें अतुल स्नेह है। स्वयं कवि भारती तमिळ भाषा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए अपनी एक कविता में लिखते हैं:—

"जितनी भाषाओं का मुझे ज्ञान है, उनमें तमिळ जैसी सुमधुर भाषा और कोई नहीं है। विश्व कवियों में 'कम्बन', 'वळ्ळुवर' एवं 'इळंगो' अप्रतिम हैं। इसी प्रकार कविवर नामक्कल नामलिंगम् को इस बात पर खेद है कि तमिळभाषिओं जैसे अन्य भाषाओं के स्वागत-सम्मान करनेवाले अन्य लोग नहीं हैं। आप लिखते हैं—"अपनी भाषा एवं कला को नष्ट होते हुए देखना कहाँकी बुद्धिमानी है। हम पूजा के समय "ओं नमः" तो कहते हैं किन्तु जब तक अपनी मातृभाषा में इसका अर्थ न जानें तब तक इसके माधुर्य का हम क्या आनन्द ले सकते हैं? मेरे इस कथन को अन्य भाषाओं के प्रति विद्वेष नहीं मानना चाहिए।"

श्री नामक्कल नामलिंगम् के निम्नलिखित उद्गार द्रष्टव्य हैं :—

इंगुवड इमयम्वरै इन्दियरिन्
नागरिगम् वोन्ड्रे यागुम;
तांगळ वोरु तनियेन्ड्र तडैपोट्टुत्
तरुक्किनवर तमिशर अल्लर

. . . .
. . . .
इन्दिमोशि वन्ड्रेन्ड्रु इगश्न्दुरैप्पोर
तमिशनाट्टिन् पेरुमै एण्णार।

[हिमालय से सेतुबन्ध तक भारतीय सभ्यता एक ही है। तमिळभाषिओं ने कभी भी अपने को पृथक् नहीं माना है। . . . . हिन्दी भाषा के विरुद्ध प्रचार करनेवाले स्वत: तमिळ भाषा एवं तमिळनाड की महिमा नहीं जानते।]

तमिळभाषी एक ओर तो अंग्रेजी भाषा से स्नेह करते हैं और दूसरी ओर वे अपनी मातृभाषा की उपेक्षा करते हैं, यह स्थिति श्री कल्याण सुन्दरम् के लिए अत्यधिक दुखदायी है। आप अपनी पुस्तक "तमिळ सौलै" (प्रथम भाग) में इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं :—

"अंग्रेजी-भक्त तमिळभाषियों के कारण ही तमिळ भाषा की उन्नति नहीं होती। इन भक्तों से होड़ लगाने की क्षमता तमिळ पण्डितों में नहीं है। प्राचीन तमिळ काव्यों के अनुशीलन से हमें सत्य, अहिंसा, एवं न्याय के दर्शन हो सकते हैं। यदि तमिळ भाषियों को अपने प्राचीन गौरवमय स्थान को प्राप्त करना है तो उनमें मातृभाषा की भक्ति का संचार होना चाहिए। मातृभाषा के प्रेम के बिना भारत की सेवा की कल्पना करना मृग-मरीचिका मात्र है। हिन्दी भाषा की समृद्धि पर मैं आक्षेप नहीं करता। मेरा भी यह अभिमत है कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के लिए उपयुक्त है, परन्तु मातृभाषा की हत्या कोई स्वीकार नहीं कर सकता। मद्रास में मयिलापुर नामक स्थान में हिन्दी महाविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में मुझे एक निमंत्रण-पत्र मिला। इस निमंत्रण में एक ओर अंग्रेजी तथा दूसरी ओर हिन्दी का प्रयोग किया गया था। मैं यह जानना चाहता हूँ कि अंग्रेजी के स्थान पर तमिळ का प्रयोग क्यों नहीं किया गया था। तमिळ प्रदेश में कांग्रेस वाले यदि भविष्य में तमिळ-प्रचार का प्रयत्न करेंगे तो जनता से उनका सम्पर्क बढ़ेगा। तमिळ प्रदेश में, जो गांधी एवं तिलक जैसे महात्माओं का जन्म, आधुनिक युग में नहीं हुआ तो इसका मूल कारण यहाँ के निवासियों की अपनी मातृभाषा के प्रति उपेक्षा का भाव था।"

कल्याण सुन्दरम् मुदालियार हिन्दी के राज्यभाषा बनाने के विरोधी नहीं हैं। आपका यह स्पष्ट मत है कि राज्यभाषा एवं मातृभाषा के अलग-अलग स्थान हैं और मातृभाषा के स्थान पर राज्यभाषा को बिठाना उचित नहीं है।

क्षेत्रीय तथा द्रविड़स्थान की भावना

इसके बाद तमिळ भाषा में एक ऐसे युग का आगमन होता है जब क्षेत्रीय एवं द्रविड़ स्थान की भावनायें जोर पकड़ती हैं। इन भावनाओं का प्रादुर्भाव स्वतंत्रता के पश्चात् भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के साथ होता है। इस प्रकार की भावनाओं को उत्तेजित करनेवालों में 'भारती दासन', 'कण्णदासन', 'मुडियारसन' एवं "अण्णादुरै" आदि प्रमुख हैं। इनमें भारतीदासन उत्तरी भारत एवं स्थानीय ब्राह्मणों के विद्वेषी हैं। आपके अनुसार इन्हीं लोगों के कारण तमिल प्रदेश में आर्यपरम्परा एवं संस्कृत का प्रभुत्व आया है। आप अपने हृदय का उद्‌गार प्रगट करते हुए एक स्थान पर कहते हैं :—

"मैं आर्य नहीं हूँ, मैं आर्य नहीं हूँ, ऐसा घोषित करने में मुझे कितना सुख मिलता है।"

तमिल, मलयालम, तेलुगु एवं कन्नड़ लोगों को सम्बोधित करते हुए आप कहते हैं :—

"यद्यपि हम लोग विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं किन्तु जन्म से हम एक ही माता के पुत्र हैं।" द्रविड़स्थान तथा हिन्दी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कवि कण्णदासन कहते हैं :—

"केन्द्रीय सरकार को शासन के लिए हिन्दी चाहिए अतएव मद्रास सरकार उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए हिन्दी सीखने के लिए जोर दे रही है। यह देखकर मेरा दिल जलता है और खून खौलता है। मैं पूछता हूँ कि यदि हमें 'द्रविड़स्तान' मिल जाय तो हिन्दी की क्या आवश्यकता रहेगी?"

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से किस प्रकार की विघटनकारी प्रवृत्तियों का तमिळ साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ है। ऊपर से तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक विशेष दल के लोग केवल हिन्दी का विरोध कर रहे हैं किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि वहाँ आर्य-अनार्य एवं उत्तर-दक्षिण के भेद की बातें करके जबरदस्ती ऐसी समस्याएँ पैदा की जा रही हैं जिन्हें आज से सहस्रों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज हल कर चुके हैं। हमें नितान्त गम्भीरता, धैर्य एवं संयम से इस प्रश्न के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए क्योंकि प्रश्न राष्ट्रीयता एवं समग्र देश की एकता का है।

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (७)

श्री फनी मुकर्जी

तिब्बत के प्रसिद्ध एवं प्राचीन पोए-खंग गुम्पा का जीवन अवश्य मरुभूमि के समान नीरस एवं कठोर था परन्तु अगर कोई इतिहासकार इस गुम्पा की कहानी की खोज लगा सकता तो एक रोमांचित चित्र भारतमाता के प्राचीन स्वर्णयुग का अवश्य खींच देता।

यहाँ आने पर पता चला कि प्राचीन काल में बड़े-बड़े महापंडित इस मठ में भारत से आकर रहे थे। भारत और तिब्बत के मैत्री-सम्पर्क के कारण यहींसे हमारा देश चीन, कोरिया और जापान की ओर बढ़ा था। भारतीय बौद्ध-धर्म की धारा हिमालय के शिखरों के उस पार गंगा बनकर मंगोल राज्य में गोबी मरुभूमि को सींचती हुई बह निकली थी। भारतीय प्राचीन धार्मिकता डंके की चोट उस दिन भी तिब्बत के विख्यात धार्मिक मठों में गूँज रही थी। काल के धुएँ में भारत का वह उज्ज्वल सजीव चित्र अवश्य ही मंद होता जा रहा था, परन्तु हमारी पवित्र मित्रता की मीठी सुगंध वहाँ उस समय भी विराजमान थी।

पोए-खंग गुम्पा केवल बड़ा ही नहीं है बल्कि तिब्बत के मठों में इसका बड़ा महत्त्व है। यह प्रसिद्ध गुम्पा मानों यहाँका काशी धाम है; तिब्बती लामा इस गुम्पा का स्मरण करते समय श्रद्धा से अपना माथा झुका देते हैं। बाहरी संसार तिब्बत की राजधानी ल्हासा के दलाई-लामा के पोटाला एवं टाषी लामा (पंचनलामा) के राज्य-केन्द्र शिगटशी नगर के टाषी लम्पो मठ से भली भाँति परिचित हैं, पर किसी तिब्बती लामा के लिये पोए-खंग गुम्पा, षालू-गुम्पा; और साक्किया-गुम्पा का महत्त्व कहीं अधिक है। इन गुम्पाओं के राज्य-अधिकार अवश्य तुच्छ थे, पर वहाँ धर्म में रुचि न लेनेवाले लोगों की भीड़ बिल्कुल नहीं रहती थी। असल बात तो यह है कि कौन जायेगा इस दुर्गम पथ पर अपनी जान हथेली पर लेकर? बुद्ध भगवान् के असली भक्तों की परीक्षा इन दुर्गम पथों पर ही होती है। प्राचीन काल में हमारे बद्रीनाथ एवं अमरनाथ के यात्री फिर सकुशल लौट आने की आशा छोड़कर ही इन तीर्थों की यात्रा पर जाया करते थे।

यहाँके प्रधान लामा तथा अन्य उच्च अधिकारी लामाओं के समीप बैठने का सौभाग्य हमें महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी की कृपा से प्राप्त हुआ। तिब्बती प्रथा के अनुसार काथा भेंट करने की रसम के पश्चात् गेशेला गेन्दोम छोमफेलजी की सहायता से उनके साथ हमारा वार्तालाप आरम्भ हुआ। भारत से लायी हुई सुन्दर-सुन्दर घड़ियाँ, वस्त्र, सुगंधि की शीशियाँ और रंग बिरंगी अँगरेजी मिठाइयों की बोतलें इत्यादि तीन-तीन चमकते हुए तिब्बती रुपयों के साथ सातों उपस्थित लामाओं को भेंट चढ़ाकर हमने उनको तिब्बत यात्रा की अपनी मनगढ़ंत कहानी सुनाई। हमने कहा कि हम सब बौद्ध भिक्षु हैं और तिब्बत में भारत से चलकर यहाँकी प्राचीन भारतीय तालपत्र की धार्मिक पोथियों का अध्ययन करने आये हैं। लौटकर भारत में फिर से प्राचीन बौद्ध धर्म जागृत करेंगे जो वहाँ लुप्त हो चुका है।

षालू-गुम्पा के लामाओं पर हमारी गढ़ी हुई इस कहानी ने जादू कर दिया था, और हमारी मनमानी मुराद तुरन्त मिल गयी थी, परन्तु पता नहीं क्यों यहाँके लामाओं पर हमारी कहानी का कुछ भी असर नहीं हुआ, और वे मौन साधे बैठे रह गये। गेशेलाजी को सटपटाते देखकर हमारे चतुर अभयसिंहजी तुरन्त इस स्थिति को ताड़ गये और संस्कृत भाषा में राहुलजी को संकेत किया कि सभा से उठ पड़ने की अनुमति माँगें। उनका अनुमान ठीक था। हमारे एकाएक उठ जाने की उत्सुकता को देखकर वे लामा भी घबड़ा गये और उन्होंने हमको फिर दूसरे दिन आने को आमंत्रित किया।

गुम्पा से लौटकर आते-आते राहुलजी ने आदर से अभयसिंहजी की पीठ ठोंककर कहा "दोस्त! खूब बचाया आज तुमने! मान गये उस्ताद! तुम्हारी समझ की फुर्ती को। देखो फिर कल ऐसा दाँव चलो कि मुर्गा फंस ही जाये।" अभयसिंहजी तिलमिलाकर बोले "जी हां, मुर्गा हम फँसाते फिरें और यार लोग दावतें उड़ायें मूछों पर ताव देकर। अब वह दिन नहीं है जब मियाँ फरीद खाँ फाखते मारा करते थे ढेलों से। पिछली उधार रकम के साथ इस यात्रा की तैयारी की कुल रकम पहिले चुकाओ फिर चिकनी-चुपड़ी बातें करना।" यह सुनकर राहुलजी क्रोध में तनकर हाथापाई के लिए खड़े हो गये। गेशेलाजी की मदद से उन दोनों को बड़ी मुश्किल से मठ के बाहर लिवा ले आये। अपने पड़ाव के द्वार पर पहुँचते ही राम-रावण का मल्लयुद्ध छिड़ गया। थोड़ी देर तो हम और गेशेला बिना अखाड़े की कुश्ती देखकर हँसते रहे, पर जब हमने दूर से कुछ तिब्बती नर-नारियों को आते देखा तो उन दोनों को खींचकर अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया।

बिना आहार के रात भर दोनों अपनी-अपनी कोठरियों में कराहते हुए बन्द पड़े रहे। दूसरे दिन उठे तो देखा राहुलजी की एक चुटैली आँख सूजकर बंद हो गयी है और अभयसिंहजी के चेहरे पर बहुत-से नाखून के खरोंचे लग गये हैं और मुँह पर सूजन आ गयी है। दोनों ही लँगड़ाकर चल रहे थे पर भूख और सर्दी के कारण बेहाल हो रहे थे। ज्यादा खुशामद नहीं करनी पड़ी। दोनों ने दोस्ताने का हाथ मिला लिया और भोजन पर बैठ गये। नौकर को भेजकर मठ के प्रधान लामा से भारतीय लामा के एकाएक अस्वस्थ हो जाने की एक कहानी बताकर दो दिन न मिल सकने की क्षमा माँग ली।

दो दिन बाद फिर उसी प्रकार मठ के प्रधान लामा

पोएखंग मठ के बाहर राहुलजी तथा उनके साथियों के स्वागत के लिए उसके लामा तथा ढावा खड़े हैं।

एवं अन्य मुख्य लामाओं को काथा भेंट देकर वहाँके प्राचीन भारतीय पोथियों से भरे पुस्तक भंडार में प्रवेश की आज्ञा पाने के लिए बातचीत चलायी। उनकी बातचीत से पता चला कि सैकड़ों साल से यहाँके पुस्तक-भंडार के द्वार पर भूतपूर्व दलाईलामा की सील मुहर लगी हुई है। इस देश में ताले लगाने की प्रथा नहीं है। कपड़ा बाँधकर लाख बत्ती लगाकर सील मुहर लगायी जाती है। हम लोगों ने भी यहाँ आकर अपनी सील-मोहर बनवा ली थी और अपने सन्दूकों पर सील मुहर लगाते थे। सील तोड़नेवाले को कड़ा दण्ड भोगना पड़ता है। अब मुश्किल इस बात की थी कि दलाईलामा और पंचनलामा दोनों ही तब तक गद्दी पर नहीं बैठे थे और उनकी अनुपस्थिति में किसीको दलाईलामा की सील-मुहर तोड़ने का अधिकार नहीं था। वर्तमान दलाईलामा एक पाँच वर्ष के बालक के रूप में खोज निकाले जा चुके थे, पर उनके ल्हासा पहुँचने और गद्दी पर बैठने में लगभग एक वर्ष का समय बाकी था। पंचनलामा भी कुछ धार्मिक और राजनैतिक मतभेद के कारण चीन में रहते थे और तिब्बत की सीमा के भीतर प्रवेश की अनुमति प्राप्ति की चेष्टा कर रहे थे।

स्थिति की जटिलता को सुलझाने के लिए हम लोगों ने कुछ ले देकर काम बनाने की तरकीब सोची और सुन्दर फाउंटेन पेन, बुद्ध भगवान् के सुन्दर चित्र इत्यादि के साथ छः-छः तिब्बती रुपये सुन्दर रेशमी रुमालों में बाँधकर इन लामाओं को भेंट देकर उनसे निवेदन किया कि पुस्तकालय की सील तोड़कर प्राचीन भारतीय तालपत्र की पोथियों का अध्ययन करने में हमारी सहायता करें। कारण बताया कि विलम्ब होने से अंग्रेज सरकार हमको वापिस खींच ले जायेगी। आज लामाओं पर हमारी बातचीत का काफी प्रभाव पड़ा और बड़े प्रेम से उन्होंने बताया कि वे दो-चार दिन में सोच-विचारकर अपना निर्णय हमारे पड़ाव पर कहला भेजेंगे।

चार दिन की छुट्टी पाकर हम चारों को मस्ती सूझी और गाँव से दो मुर्गे चुराकर पहाड़ों के पीछे ले भागे। अगर पैसे देकर गाँववालों से भोजन के लिए मुर्गे खरीदते तो वे हम लोगों को झूठा और ढोंगी लामा समझकर पकड़ लेते। यहाँ गाँववाले बहुत मुर्गियाँ पालते हैं और केवल उनके अंडे ही खाते हैं। बाजार न होने के कारण मैं तीन-चार आने में एक टोकरी लगभग ५० अंडों की खरीदता था और अधउबले अंडों से पेट भर लेता था। सारे दिन धोंकनी चलाने पर भी भेड़-बकरी और याक के गोबर की आग में इतनी गर्मी न हो पाती थी कि अंडे पूरी तरह उबल जायें। हवा में आक्सीजन गैस की कमी के कारण आग बिना धोंकनी के नहीं जलती थी। इसी लिए यहाँकी रसोई में केवल चाय के गरम पानी के सिवाय और कोई भोजन की वस्तु बनती दिखायी नहीं देती थी। बड़े-बड़े धनी घरों में किसी विशेष अवसर पर सूखे मांस के अतिरिक्त अन्य चीजें खाने को मिलती थीं, पर वह सब अध-उबली हालत में रसेदार होती थीं। इन चीजों का स्वाद चीनी भोजन की भाँति फीका एवं रोगी के पथ्य की भाँति सीठा और बे-स्वाद होता था।

राहुलजी ने अपने झोले से चार बड़ी-बड़ी लाल मिर्चें और सेंधे निमक का एक टुकड़ा निकालकर दिया। गाँववाले एक प्रकार की लम्बी पत्तीवाली घास ले आये जिसको वहाँके लोग 'चोंग' कहते हैं। चोंग की पत्तियों

में प्याज की महक आती है और वहाँके लोग इसका प्रयोग प्याज की जगह करते हैं; और साथ ही वहाँकी मूली भी ले आये जो कि वहाँ की भाषा में 'लाहफू' कहलाती है। यह देखने एवं स्वाद में हमारे देश की सफेद शलजम की भाँति होती है। यह सारी चीजें यहाँ गर्मियों में ही मिलती हैं। एक प्रकार की हरी-भरी झाड़ी देखी जिसकी पत्तियाँ हमारे अनार के पेड़ की भाँति थीं और उनके छोटे-छोटे फल हमारे अनार के फूल की भाँति थे। यहाँके बालक इस फल को 'डेबू' के नाम से पुकारते थे और बड़े चाव से झरबेरी की तरह जंगलों से लाकर खाते थे। इनका स्वाद बिल्कुल फीका था, पर ये बालक इसको मीठा समझकर खूब खुश होते थे। इस मरुभूमि समान तिब्बत के पठार के बालकों को सिवाय यहाँकी मूली, अनार के फूल, हरे मटर के फूल और फलियों के और कोई फल खाने को नहीं मिलता है।

दोनों मरे हुए मुर्गों को कपड़े की पोटली में छिपाकर, दो-चार बर्तन और उपले झोले में लटकाकर हम चारों एक ऊँचे पहाड़ की ओर चल दिये। लगभग तीन-चार मील दूर पहाड़ पर एक मनोरम झरने और झाड़ियों के पास हम लोगों ने डेरा डाला। उन मुर्गों के पर नोंचकर साफ किया, छुरी से उनके टुकड़े बनाये और फिर घास-फूस एवं उपलों की आग में मैंने और अभयसिंहजी ने मिलकर तरकारी बनायी। राहुलजी आज बहुत प्रसन्न लग रहे थे। गेशेलाजी के अनुरोध करने पर अपनी रूसी प्रेमिका की बातें सुनाते जा रहे थे जब कि हम जुटे हुए थे उपलों के धुएँ में फूंक लगाने में। कहने लगे, उस नारी को छोड़कर "रूस" से आने को जी नहीं कर रहा था। उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए बोले वह स्वस्थ महिला एक कारखाने में काम करती थी और उनके रहने की कोठरी की भागीदारिन थी। रूस देश में रहने के मकानों की कमी के कारण एक कोठरी में दो या तीन व्यक्ति मिलकर रहते हैं। रेल की 'बर्थों' की भाँति वहाँकी सरकार एक व्यक्ति को एक पूरा कमरा देने के बजाय सोने के लिए एक 'बर्थ' (शायिका) का प्रबन्ध कर देती है। वे अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए बड़े प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने कहा कि उनको कमरा मिला उस मोटी ताजी औरत के साथ जिसके कोई न था आगे और न पीछे। रूस की कड़ाके की सर्दी और नीरस मजदूरी जीवन के कारण दोनों ही हिल-मिल गये और मियाँ-बीबी की तरह रहने लगे। रूस देश की प्रशंसा करते हुए बताने लगे कि वह ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ न कोई डराता है धर्म के नाम पर और न डर है पंचों के हुक्का-पानी के बंद कर देने का। राहुलजी की रूसी प्रेम-कहानी सुनते-सुनते हम दोनों ने ताजे दो मुर्गों की तरकारी तैयार कर डाली। जब हम चारों गर्म-गर्म तरकारी खाने बैठ गये तो राहुलजी मांस के हर एक टुकड़े को जीभ से चटाखे मार-मारकर खाते जा रहे थे, और अपने हाथ-पाँव को दिखा-दिखाकर कहते जाते थे कि "देखो मेरे शरीर में खून कितनी जल्दी बढ़ता जा रहा है।" दो बड़े-बड़े मुर्गों का मांस हम चारों ने खूब पेट भरकर खाया और झरने का ठंडा पानी पिया। आज अपने देश भारत की मसाले में भुनी हुई चटपटे भोजन की याद आ रही थी। अभयसिंहजी और मैंने कुश्ती लड़कर दिखाया कि हमारे शरीर में मुर्गे का ताजा मांस खाकर कितना बल और स्फूर्ति आ गयी है।

अचानक गेशेलाजी ने दिखाया कि दूर ऊँचे बर्फ की चोटीवाले पहाड़ पर कुछ जानवर रेंग रहे थे। राहुलजी ने अपने झोले से दूरबीन निकालकर उनको देखकर बताया कि वह काले रंग के याक (चमरी गायें) हैं जो कि चिकने ऊँचे पहाड़ पर बड़े आराम से चढ़ जाते हैं। वे ऊँचे ठंडे पहाड़ों पर रहना पसन्द करते हैं। मैं जमीन पर लेटे-लेटे दूरबीन से जब मजा ले रहा था तो एक दूसरे पहाड़ की बर्फ की चोटी पर देखा कि सैकड़ों भूरे रंग के हिरनों की भाँति कुछ जानवर घूम-फिर रहे हैं। उनको गेशेलाजी ने देखकर बताया कि वे वहाँके वे मृग हैं जिनकी नाभि से कस्तूरी निकाली जाती है। यह कस्तूरी-हिरण भी ऊँचे पहाड़ों की ठंड में घूमते-फिरते हैं। सर्दियों में जब ऊपर बर्फ अधिक पड़ती हैं तब कस्तूरी-हिरणों का झुंड नीचे पठारों पर उतर आता है। यहाँ के कसाई लोग इनका शिकार करके इनका मांस खाते हैं, और इनकी सुन्दर स्लेटी रंग की चिकनी मखमल जैसी बालोंवाली खाल बेचते हैं। धनी लोग उन्हें चौकियों पर बिछाने के लिए लेते हैं। बड़े शहरों में जाकर नेपाली सौदागरों के हाथ कस्तूरी बेची जाती है।

रोज भोर होते ही मठ के शिखर से तुरही, तुतेरी और शंख बड़े-बड़े नगाड़ों की चोट के साथ बज उठते थे। हर दो-दो घंटे बाद शुभ देवताओं की आवभगत में यह बाजे बजाये जाते थे और दुष्ट भूत-प्रेतों को बड़े-बड़े भोंपा बजा-बजाकर दूर पहाड़ों के पार भगाया जाता था। दूर-दूर के गाँव से ग्रामीण भक्त मठ की ओर मंत्र गुनगुनाते हुए चल पड़ते थे। दिन भर बड़ी धूम-धाम से मठ के मुख्य कमरे में बुद्ध भगवान् की पूजा होती रहती थी। लगभग १५ फुट ऊँची बुद्ध की स्वर्णमूर्ति विराजमान थी एक ऊँची वेदी पर। देवता की मधुर मुसकान और शरीर की बनावट इतनी कलात्मक थी कि मानों एक सजीव देवता बैठे जगत् को निर्वाण प्राप्ति की कहानी सुना रहे हों। मूल्यवान् हीरे-जवाहरात से जड़ाऊ मुकुट, अलंकार और सिंहासन झिलमिला रहे थे। छोटे-बड़े हजारों घी के प्रदीप के उजाले में वे और भी जगमग-जगमग कर रहे थे। लोहबान, धूप और अगरबत्तियों की महक से सारा हाल सुगंधित हो रहा था। इस विशाल कमरे के फर्श पर रंगीन सत्तू से बड़े कलात्मक रूप से भिक्षुओं ने अल्पना बना रक्खी थीं। ऐसा लग रहा था कि मानों सुन्दर ऊनी कालीन बिछी हुई हो। कमरे की नक्काशीदार ताँबे और पीतल की छत बड़े सुन्दर और भारी भरकम लकड़ी के स्तम्भों पर टिकी हुई थी। प्राचीन काल में भारत से बनाकर लायी गयी थीं यह सब देवताओं की मूर्तियाँ; लकड़ी के सुन्दर खुदे हुए स्तम्भ, पूजा-पाठ की अनेक प्रकार की सामग्रियाँ,

बर्तन और बाजे। युगों से इन बौद्ध भक्तों ने अपने मठों में इन मूल्यवान् धार्मिक वस्तुओं को इतिहास के पन्नों की भाँति सुरक्षित रखा था। पूर्णमासी एवं अन्य धार्मिक पर्वों की तैयारी हजारों ढावा (भिक्षु) और लामा कई दिन पहिले से करते थे। अपने कठोर परिश्रम से सारी गुम्पा को बाहर और भीतर से चमका देते थे। बारीक से बारीक काम को बड़े यत्नपूर्वक करते थे, पर सबसे बड़ी उदारता एवं वैराग्य का परिचय अपनी वेश-भूषा के बनाव शृंगार को त्याग कर देते थे। मुख्य लामा अपने उच्च अधिकारी लामाओं के साथ बुद्ध भगवान् की मूर्ति के सामनेवाली दीवार के किनारे एक स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान थे और अन्य लामा लोग फौजी पंक्ति की भाँति दायें-बायें बैठे एक स्वर में कंठस्थ तिब्बती मंत्रों का पाठ सुरीली लय में करते रहते थे। कभी-कभी हाल के भीतर बड़े-बड़े ढोल एवं सुरीली तुतेरी बज उठती थी और सारे लामा मुख्य लामा के साथ खड़े हो जाते थे। मुख्य लामा जब उच्च स्वर से मंत्र दोहराते हुए उतरकर अपने सिंहासन से अपनी कलात्मक मुद्राओं से उछलने लगते थे, तो हजारों लामा उठकर फौजी कवायद के ढंग से अपने मुख्य लामा की ताल से कदम मिलाकर अपनी-अपनी जगह पर हाथ-पाँव डुला-डुला कर और ताली बजा-बजाकर मंत्र को एक ही स्वर में गाने लगते थे। जब लड़ाकू श्रेणीवाले लामा अपने-अपने सुन्दर भूत-प्रेत की वेश-भूषा से सुसज्जित आगे बढ़कर पंक्तियों में खड़े नाचते थे तो ऐसा लगता था मानों हम अपनी दुनिया को छोड़कर देवताओं के स्वर्ग में आ गये हैं। इस प्रकार की पूजा-पाठ देखते-देखते हमारे मन में एक वैराग्य भावना उत्पन्न हो जाती और भगवान्-भगवान् की पुकार हृदय में गूंजने लगती थी। हर दो घंटे बाद विश्राम की तुतेरी बज उठती थी, और सारे लामा अपनी-अपनी जगह बैठ जाते थे, और उनके सामने मक्खन की गर्म चाय, सत्तू और गुड़ की ड़ी परोसने को हजारों भिक्षु दौड़ पड़ते थे। सारा काम इतनी शान्तिपूर्वक और फुर्ती से होता था कि मानों इस मठ के पाँच हजार लामा और भिक्षु एक ही मशीन के पुर्जे की भाँति एक साथ पूजा कर रहे हों। एक घंटे के विश्राम के बाद फिर तुतेरी, भोंपा और शंख एवं बड़े-बड़े ढोलों की आवाज से सारा मठ एवं बाहर के पहाड़ और कगार गूंज उठते थे। हजारों लामाओं की थालियों का बचा हुआ प्रसाद गर्म चाय के साथ मठ के बाहर आये हुए नर-नारियों में वितरण किया जाता था। सत्यनारायण के प्रसाद की भाँति इस प्रसाद को माथे से लगाकर लोग बड़े आदर से कुछ थोड़ा-सा खाते, और कुछ पोटली में बाँधकर अपने घर को ले जाते थे।

आज पूर्णमासी उत्सव की शेष पूजा हम चारों ने मठ के भीतर मनायी। हम चारों भारतीय 'लामाओं' को जगमगाते हुए बुद्धदेव की स्वर्ण-मूर्ति के समीप बड़े आदर से बैठाया गया। दोपहर का भोजन भी उन्हीं तिब्बती लामाओं के साथ किया। आज मठ में हम यह दिखाने गये थे कि हम भी बुद्ध भगवान् को मानते हैं और बौद्ध मत को माननेवाले हैं। वह सब यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि हम चारों तिब्बती रीति के अनुसार भूमि पर लेटकर देवता की मूर्ति को प्रणाम कर रहे थे। पूजा समाप्त होने पर जब हम लौटकर अपने पड़ाव पर पहुँचे तो राहुलजी से हमने पूछा कि आज उन्होंने बुद्ध भगवान् की मूर्ति को क्यों प्रणाम किया जब कि वह धर्म को मानते ही नहीं हैं। वे हँस पड़े, और उत्तर में कहा "मजबूरी में गधे को भी बाप बनाना ही पड़ता है।" इस उत्तर से मन में बड़ा क्रोध आया, और राहुलजी से अभयसिंहजी ने पूछा कि अपने स्वार्थ के लिए धर्म से धोखेबाजी करना क्या पाप नहीं है? उत्तर में तुरन्त उन्होंने कहा "अगर मेरे पाप करने से दुनियावालों को फायदा होता है तो तुम्हारे भगवान् नर्क में भी मुझको अवश्य सुख से रखेंगे। उन्हींके गुणगान के प्रचार की नियत से आज मैं ढोंगी साधु बना फिरता

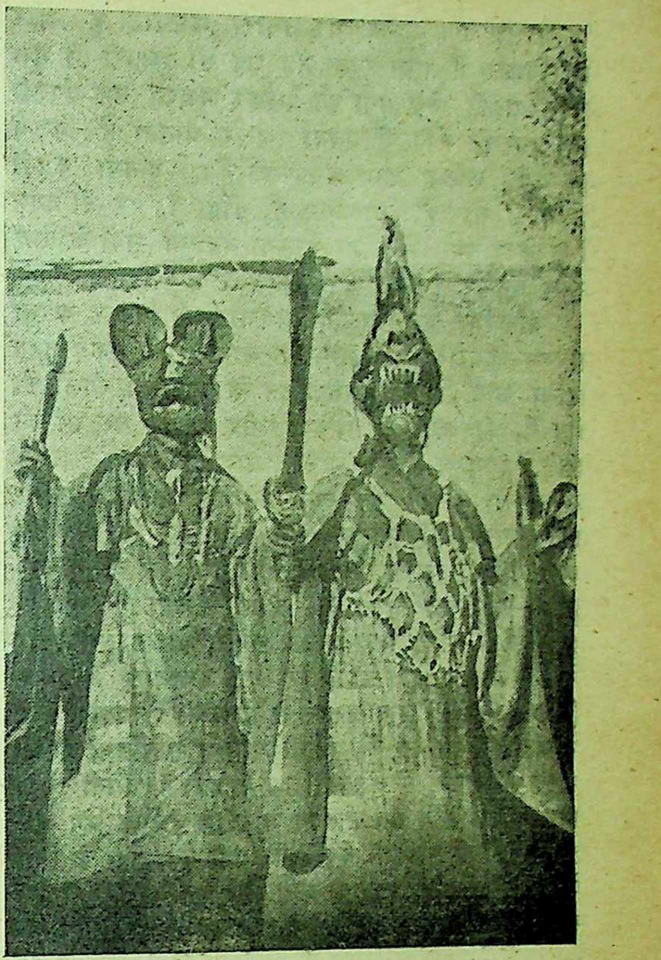

विशेष अवसरों पर तिब्बत के मठों में लामा लोग राक्षसों के चेहरे लगाकर धार्मिक नृत्य किया करते थे। राक्षसों के चेहरे लगाये हुए दो लामा नृत्य के लिए तैयार खड़े हैं।

हूँ। मैं तो एक तुन्छ गेरुआधारी कर्मचारी हूँ और भोग-विलास में मग्न रहता हूँ। यह तो तुम्हारी ही भूल है कि बाहरी वेश-भूषा को देखकर मुझको एक तपस्वी साधु समझते हो। मैं इतना जरूर जानता हूँ कि मैं एक बड़ा कठिन काम कर रहा हूँ। दुनिया कहती है कि मैं चोर हूँ, धोखेबाज हूँ, ढोंगी हूँ, पर जो काम मैं करके दुनिया में छोड़ जाऊँगा वह तुम सबों के लिए अमृत बनकर रहेगा।''

बातचीत चलते-चलते हम चारों ने विचार करना प्रारम्भ किया कि कल गुम्पा के लामाओं को किस तरह पटाया जाय कि वे पुस्तकालय के द्वार की सीलों को तोड़ दें, और बहुमूल्य पोथियों और प्राचीन वस्तुओं को देखने दें। बहुत सोच-विचार के बाद यह निर्णय हुआ कि अधिक से अधिक घूस देकर भी इस अनमोल अवसर को छोड़ना नहीं चाहिए। सुन रखा था कि पोए-खंग गुम्पा में बहुमूल्य प्राचीन भारतीय ग्रंथ और वस्तुएँ युग-युग से सुरक्षित रखी हैं। आज सोचता हूँ कि यदि हम पैसे के मोह में पोए-खंग गुम्पा का पुस्तक-भंडार बिना देखे लौट आते तो हमारा यह महत्त्वपूर्ण अभियान (Expedition) एक प्रकार से विफल हो जाता। आज तिब्बत की युग-युग की पुरानी धार्मिक सामग्रियाँ राज्य-क्रांति की लपटों में जलकर राख हो गयी हैं। चीनी लुटेरों की लूटमार से वे सब प्राचीन भारतीय धार्मिक ग्रंथ और तालपत्रों की पोथियाँ बर्बाद हो गयी हैं। सदा के लिए ये ऐतिहासिक रत्न लुप्त हो जाते और किसी बाहरी व्यक्ति को इनका अनुमान भी न होता। उन प्राचीन तिब्बती गुम्पाओं में हमारे इतिहास के स्वर्ण पन्ने छिपे हुए रखे थे।

दूसरे दिन हम गुम्पा की ओर दृढ़ संकल्प करके चल पड़े। गुम्पा के मुख्य लामा एवं अन्य लामाओं को कोट के लिए सुन्दर गर्म ऊनी कपड़ों के एक-एक टुकड़े के साथ आज बारह चमकते हुए तिब्बती नये रुपयों की भेंट की। यहाँकी रीति के अनुसार जब कोई किसी अधिकारी के पास अपनी प्रार्थना प्रस्तुत करने जाता है तो उपहार की चीजों के साथ तीन तिब्बती रुपये भी भेंट करता है। चीजों के साथ रुपये न रहने पर यह सोचा जाता है कि व्यक्ति केवल मेल-मुलाकात करने आया है। रुपयों को देखकर अधिकारी समझ जाता है कि व्यक्ति कोई प्रार्थना लेकर आया है और फिर अनुमति पाकर ही प्रार्थी अपना प्रार्थना-पत्र भेंट कर सकता है। खाली हाथ किसी भी अधिकारी के पास जाने से उसका अपमान करना समझा जाता है। पहली बार प्रार्थना का निर्णय न होने पर फिर दूसरे दिन काथा के साथ बजाय तीन के छः रुपये भेंट में रक्खे जाते हैं। इसी प्रकार फिर भी काम पूरा न होने पर बारह रुपये काथा के साथ भेंट करने पड़ते हैं, यानी हर रोज पिछली रकम के दुगने रुपये होते जाते हैं।

आज हमारे ९६ तिब्बती रुपयों से प्रभावित होकर हमारी बड़ी आवभगत हुई। बार-बार चाय पीने, पनीर एवं गुड़ की कतली खाने का आग्रह हो रहा था। एक लामा ने राहुलजी को एक तिब्बती धार्मिक पुस्तक भी भेंट दी। पर काम की बात जब चली तो नीलाम की बोली की तरह हमारी ओर से गेशेलाजी राहुलजी की अनुमति से रुपयों की बोली बोलते चले जा रहे थे। आखिर जब बोली समाप्त हुई तो यह तय हुआ कि दो सौ रुपये मठ को दान देने पर मठ के प्राचीन पुस्तक-भंडार के द्वार पर लगी हुई सैकड़ों साल पुरानी सील-मुहर तोड़ दी जायेगी; और भीतर घुसकर देखने का मौका दिया जायेगा कि कौन-कौन सी पुस्तकों का अध्ययन हम करना चाहते हैं, और पुस्तकों के अध्ययन के लिए फिर बाद में भाव-ताव कर लिया जायेगा। यह निर्णय सुनते ही राहुलजी ने तुरंत ही अपने झोले से एक तिब्बती नोटों का बड़ा मोटा बण्डल निकालकर दो सौ रुपये गिन दिये। सारे लामाओं के साथ मुख्य लामा हम लोगों को मठ के भीतर लिवा ले गये, और अनेक कमरों से निकलकर जब हम एक चौक में आये तो एक लकड़ी की सीढ़ी के सहारे ऊपर चढ़ गये। फिर ऊपर जाकर एक और सीढ़ी चढ़े। इसी प्रकार हाँफते हुए तीन सीढ़ियाँ चढ़ गये और मठ के सबसे ऊपरवाली तीसरी मंजिल की छत पर जा पहुँचे। वह कोठरी जिसमें युग-युग के प्राचीन भारतीय ग्रंथ इत्यादि सुरक्षित पड़े थे, यही थी। महमूद गजनवी की तरह चिल्ला पड़े राहुलजी––"तोड़ दो यह सील तुरन्त।'' एक लामा ने जाकर दलाईलामा की सैकड़ों साल पुरानी वह सील तोड़ दी, और दौड़कर हम चारों उस अन्धकूप जैसी कोठरी में घुस गये। बाहर धूप से एकाएक भीतर अँधेरे में आने के कारण कुछ दिखायी न दे रहा था। राहुलजी हमारे अगुआ बने हाथों से दायें-बायें टटोलते हुए लपके बढ़े चले जा रहे थे। किताबों के एक गट्ठर से ठोकर खाकर भड़भड़ाकर औंधे मुँह गिर पड़े। गेशेलाजी उनको पकड़ने झपटे तो वह भी गिरे राहुलजी के ऊपर। बाहर खड़े लामा भीतर घुस पड़े और उन्होंने हमें थोड़ी देर रुक जाने को कहा। उन्होंने बड़ी-बड़ी चार मशालें मँगवायीं और फिर हम सबों ने उस कमरे के भीतर प्रवेश किया।

कमरे के भीतर जाकर देखा कि वह एक बड़ा भारी हालनुमा कमरा था, और बड़े-बड़े मोटे ग्रन्थों के पहाड़ छत को छू रहे थे। दीवार से सटी हुई पत्थर की अलमारियों भर जाने पर इन धार्मिक किताबों का ढेर फर्श पर ही लगा दिया गया था। एक-एक तिब्बती किताब की लम्बाई तीस इंच से भी अधिक थी और चौड़ाई दो फुट थी। और कोई भी किताब एक फुट से कम मोटी न थी। इन किताबों की जिल्द लकड़ी के तख्तों से बनाई गई थी। इन जिल्दों पर देवताओं के सुन्दर रंगीन चित्र अंकित थे। कोई भी किताब दस सेर वजन से कम न थी। यह किताबें तिब्बत के बने हुए कागज (शोगो) पर तिब्बती छापे-खाने में छपी थीं। बहुत सी किताबें सुन्दर कपड़ों में बँधी पड़ी थीं। हम तो इधर इन किताबों को खोलने और

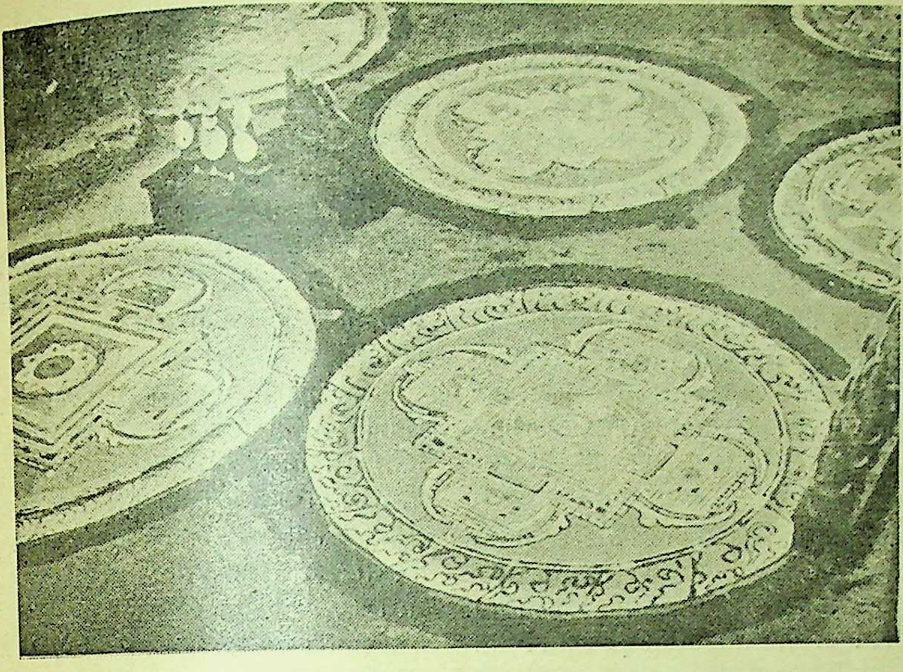

उत्सवों पर तिब्बत के मठों में तरह-तरह के रंगों से सत्तू को रँग कर धरती में जो अल्पना बनायी जाती हैं उनका नमूना।

देखने में लग गये और उधर लामा लोग उन पवित्र धार्मिक पुस्तकों के ऊपर जमी धूल को चाटने और माथे पर मलने में जुट गये। उनकी इस प्रकार की भक्ति को देखकर हँसी जरूर आ रही थी, पर अपनी हँसी को रोककर हम भी वही काम करने लगे ताकि वे देखें कि हम भी बौद्ध धर्म का आदर और सम्मान उन्हीं लोगों की भाँति करते हैं। हम भारतीय तालपत्रों की पोथियों को देखने को उत्सुक थे, किंतु लगभग दो घण्टे लगातार तिब्बती भारी-भरकम ग्रन्थों की उलट-पुलट करने पर भी एक भी भारतीय हस्तलिखित संस्कृत या पाली भाषा की तालपत्र की पोथी न मिली। हमारे हाथ-पाँव थक गये, और उस कड़ाकेदार सर्दी में भी पसीना छूटने लगा। इतनी ऊँचाई में आक्सीजन की कमी के कारण साँस लेने में वैसे ही मुश्किल हो रही थी, और तिस पर इस युग-युग के हवा बंद कमरे में धूल और मशालों के तेल के जलने की गैस से दम घुटने लगा। हम बुरी तरह खाँसने लगे और हमारी नाक और आँखों से पानी बहने लगा। तिब्बती लामा लोग बाहर निकल भागे। हम डर गये कि अगर हम इन किताबों के पहाड़ के भीतर से अनमोल भारतीय पोथियों को न निकाल सके तो हमारे सौदे के अनुसार हम अपने जीवन का एक बहुमूल्य अवसर खो बैठेंगे और वह मोटी रकम जो हम अदा कर चुके हैं व्यर्थ चली जायगी। हाय! क्या होगा अब! क्या तिब्बती लामा अब हमको हाथ पकड़कर बाहर खींच ले जायेंगे यह कहकर कि हमारा अनुमान गलत है? क्या सचमुच भारतीय पोथियाँ यहाँ नहीं हैं? इस देश में पुस्तक भंडार की कोई सूची भी तो नहीं होती है, जिससे पता लगा सकें कि कौन-कौन सी पुस्तकें यहाँ पर मौजूद हैं। हमारे दयालु भाई गेशेलाजी लामाओं को बातों में लगाने के लिए बाहर चले आये। जब उन्होंने धूल से सने लामाओं का बुरा हाल देखा तो उनको सलाह दी कि वह नीचे जाकर चाय पियें और थोड़ी देर विश्राम करें। वह सब "लाथुचि-चे" कहकर नीचे उतर गये। उनके चले जाने पर हम भी कमरे के बाहर आकर खुली छत के फर्श पर मीठी धूप में लेट गये। थोड़ी देर अधमरी दशा में पड़े रहने के पश्चात् थकान से चूर हमारे शरीर में फिर जान आ पड़ी और फिर से उस अंधकूप रूपी पुस्तक-भंडार में घुसने को उठ पड़े पर यह देखकर निराश हो गये कि वह चारों भिक्षु जो मशाल लाये थे, उतरकर नीचे चले गये हैं। बिना उजाले के अब भीतर काम करना और भी कठिन हो गया। हम चारों फिर नीचे उतरे और मुख्य लामा महोदय को समझाकर अपनी बेबसी बताने लगे।

उनकी उदारता, उनकी कोमल वाणी एवं उनके शांत नैनों को देखकर हम चारों का उत्साह बढ़ गया। बड़े आदर से उन्होंने हमें चाय पिलायी और अपनी मीठी वाणी में प्रोत्साहन देते हुए समझाया कि "धर्म का काम जल्दी से नहीं निपटाया जा सकता है। जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे सब किताबें देखो, अध्ययन करो और इस मठ के जीवन का आनन्द लो; अब हमको पता लग गया कि तुम सब धर्म के सेवक हो

और हमारे साथ रहकर देखो कि हम भी तुम्हारी तरह धर्म की सेवा करते हैं।" हमारे निवेदन करने पर वे हमें सहायता के लिए छः भिक्षु देने को राजी हो गये।

अपने प्रति उनकी इस प्रकार की सहानुभूति देखकर हम गद्गद हो गये। हमारे शरीर और मन में फिर से जान आ गयी। लगातार तीन दिन तक कोयले की खान में काम करनेवाले मजदूरों की भाँति हम उन भारतीय अनमोल रत्नों की खोज करते रहे। हमने अनेक बहुमूल्य तालपत्र की पोथियाँ जो इस प्रसिद्ध मठ में युग-युग से छिपी पड़ी थीं, खोज निकालीं। राहुलजी ने उनको पढ़कर बताया कि वे पोथियाँ लगभग ग्यारह-बारह सौ वर्ष पुरानी हैं। पर उनकी सुन्दर हालत देखकर कोई विश्वास नहीं कर सकता था कि वे इतनी पुरानी हैं। तिब्बती भिक्षु इन ग्रंथों को बाहर उठा लाते थे, और बाहर धूप में बैठकर हम दिन भर कपड़े से बँधी ग्रंथों की पोटलियाँ को खोल-खोलकर अपने मतलब की पोथियों की खोज करते रहते थे। लगभग छोटी-बड़ी मिलाकर हमने चौदह तालपत्र की हस्तलिखित पोथियाँ ढूँढ़ निकालीं। फिर उनके अध्ययन की बातचीत आरंभ हुई। भाव-ताव करने पर यह तय हुआ कि हमें प्रति किताब के अध्ययन के लिए इक्कीस तिब्बती रुपये मठ को दान के रूप में देने होंगे। इस शर्त को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था। हमको अनुमति मिल गयी कि एक दो पोथियाँ उनको दिखाकर प्रतिदिन गुम्पा से अपने पड़ाव पर ले जाया करेंगे। और उनका अध्ययन समाप्त होने पर फिर उनको लौटाकर दूसरी पोथियाँ ले जायेंगे।

दो पोथियों को हम अपने पड़ाव पर ले आये। अब मैं अपने फोटोग्राफी की तैयारी करने में जुट गया। नदी का गंदा पानी लाकर बड़े-बड़े बर्तनों में जमा कराया। ये बर्तन भी बड़ी मुश्किल से गुम्पा से हमारे गेशेलाजी ने प्राप्त किये। इस पानी को ठहराकर और कपड़े से छानकर साफ किया। रसायन पदार्थ घोलकर फोटो डेवलपिङ्ग की दवाइयाँ तैयार कीं, और एक अँधेरी कोठरी में तश्तरियाँ लगाकर लाल और सफेद रोशनी का प्रबंध किया। अब पता चला कि इतनी ऊँचाई में आक्सीजन गैस की कमी के कारण मिट्टी के तेल के दीपक नहीं जल सकते। फिर सोचा कि टार्च लाइट के ऊपर लाल कपड़ा बाँधकर लाल बत्ती का काम चला लिया जाय। ऐसा करने से देखा कि इतनी ऊँचाई पर बैटरी की शक्ति आध घंटे से भी कम रह जाती है। इसीलिए अब निरुपाय होकर अँधेरे में अंधों की तरह केवल हाथ से टटोल-टटोलकर ही काम करना होगा। दायें-बायें एक लाल कपड़ेवाली लाल बत्ती और एक सफेद उजालेवाली बत्ती बंद करके रख ली, और केवल आवश्यकता के समय ही उनको बारी-बारी से जलाकर काम किफायत से करने का निश्चय किया। अँधेरे में घड़ी नहीं देखी जा सकती थी। इस कारण काम करते-करते लगातार मन में गिनती गिन कर सेकंडों और मिनटों का हिसाब लगाना होगा। दृढ़ संकल्प से फोटोग्राफी के काम में हर प्राकृतिक अड़चन को पार करता हुआ फुर्ती से अग्रसर होता जा रहा था। अभी हाल ही में मैं शालू गुम्पा में पूर्ण सफलता प्राप्त कर चुका था और अपने मन ही मन कहता जा रहा था कि देखो अब दिखाता हूँ अपनी कला की जादूगरी। उधर राहुलजी और गेशेलाजी ने झटपट तालपत्र पोथियों के पन्नों की सूची बना डाली। और लकड़ी के दोनों तख्तों पर क्रम से तालपत्र के पन्नों को ड्राइंग पिनों की सहायता से लगा दिया।

२३ जून १९३८ को प्रातः आठ बजे केमरे को स्टैंड पर लगाकर तालपत्र से सटे हुए एक बोर्ड को सामने रख दिया। बरामदे में उजाला कम होने के कारण सामने वाली दीवार की धूप में एक सफेद चादर लटका दी। उसपर से धूप की किरणें उलटकर जब लकड़ी के तख्ते पर आ पड़ीं तो तालपत्र के बारीक काले अक्षर केमरे के शीशे पर स्पष्ट होकर चमकने लगे। झटपट फिल्म चढ़ाकर बटन दबाकर दो चित्र उतार डाले। फोटो बनाने की दवाई की बोतलों को ले जाकर फोटो तैयार करने की तश्तरियों में उड़ेल दिया, और तुरन्त प्रारम्भिक नमूना देखने के लिए डेवलप कर डाले दो निगेटिव। अँधेरी कोठरी से अचानक धूप में चौंधियाती हुई दृष्टि से अपनी सफलता देखकर खुशी से चिल्ला पड़ा। ताना देकर साथियों से कहा फुर्ती से तालपत्रों को तख्ते पर लगाने का काम करें। राहुलजी भी अपनी कलम दवात छोड़कर पन्नों को लगाने और खोलने में आ जुटे। बड़ी द्रुत गति से सोलह चित्र दो घंटे में उतार डाले, और फिल्मों को लेकर अँधेरी कोठरी में दवाइयों में धोकर उनके निगेटिव तैयार करने के लिए घुस गया। प्रथम चार निगेटिव तैयार करके जब बाहर लाया तो उनको देखकर मैं भौंचक्का रह गया। निगेटिवों पर केवल एक बड़ी हल्की छाया मात्र दिखलायी दे रही थी। कुछ सोच-विचार के बाद सारी डिशों की दवाइयों को फेंककर फिर दुबारा ताजी दवाइयाँ घोलकर नये सिरे से काम आरम्भ किया, किन्तु फिर वही आश्चर्यजनक घटना देखी कि प्रथम दो निगेटिव तो बन गये पर बाकी चार-पाँच नहीं बने। दिन भर बिना खाये-पिये दवाइयों के उलट-फेर करने में लगा रहा। सूर्य डूबने तक फोटोग्राफी के उधेड़बुन करता रहा, पर आज मेरी सारी चेष्टाएँ विफल रहीं। रात में दो-चार टुकड़े कच्चे सूखे मांस के चबाकर सोडेवाली चाय पीकर कम्बल के नीचे दुबक गया। कल उठकर फोटोग्राफी में सफलता प्राप्त करने के लिए क्या-क्या उपाय करूँगा, यही सोचता रहा, और नींद नहीं आई। मुर्गे की बाँग सुनकर अपने बिछौने से कड़ाके की सर्दी में उठ बैठा और बरामदे में निकल आया। तिब्बत में मुर्गे दो-ढाई बजे बांग लगाने लगते हैं, और ऊँचाई के कारण चार बजे के करीब आकाश में पौ फटने लगती है।

दिन के उजाले के साथ-साथ सामने की दीवार पर एक कौआ आकर काँव-काँव करने लगा। यहाँके कौए हमारे देश के कौओं से दुगने मोटे होते हैं और उनके पर भी बड़े खुरदुरे होते हैं। इनकी बोली भी फटे बाँस की तरह भर्राई हुई होती है। कौए भी इस देश में और पक्षियों की भाँति बहुत कम नजर आते हैं।

कौए की बोली सबेरे-सबेरे सुनकर मन में सोचने लगा कि शायद कोई आएगा। फिर मन ने कहा, 'नहीं, आज फोटोग्राफी के काम में मुझको सफलता प्राप्त करनी होगी। इस शुभ संदेश को लेकर कौआ आया है।' मैंने सोचा कि सब लोग उठते ही मेरे मुँह को ताकेंगे, और आँखें निकाल-निकालकर कहेंगे फुर्ती से फोटोग्राफी के कार्य में सफलता प्राप्त करो। सन्दूक से फोटोग्राफी सम्बन्धित पुस्तकें निकाल लाया जो कि कलकत्ते से मैं लाया था। एक पुस्तक के अध्ययन के बाद कुछ नयी बातें सूझीं, और एक प्याली चाय पीकर फिर से फोटोग्राफी की दवाइयों को घोलने और उनकी परीक्षा करने में जुट गया। एक के बाद दूसरी, तीसरी और चौथी तरकीब लड़ा डाली, पर आज भी असफल ही रहा। एक घायल सैनिक की तरह बेचैन बैठा देखकर राहुलजी ने मौका पाकर मेरा तिरस्कार करते हुए मुझे अनेक कटु शब्द कहे। मैं उनकी बातें चुपचाप सुनता रहा क्योंकि वास्तव में मैं बेकार साबित हो रहा था। चुपके से टटोलकर मैंने संदूक से निकाली अपनी तुलसी की माला जो कि छुटपन में हरिद्वार से लाया था और जब सब सो गये तो कम्बल लेकर बाहर आकर बरामदे में बैठकर सारी रात गायत्री मंत्र जपते हुए बिता दी। मुझे इस गायत्री मंत्र पर बड़ा विश्वास है और इसके सहारे मैं कितने ही संकटों से बच निकला हूँ। इस तरह लगातार ग्यारह दिन बीत गये, पर मेरा हर एक उपाय बेकार साबित हुआ। राहुलजी के मुँह में जो आया सो उन्होंने कहा। दगाबाज, झूठा और बेईमान के साथ-साथ और भी बहुत कुछ कहा। उनके इन कटु शब्दों से अधिक मुझे इस बात की परेशानी थी कि लौटकर मैं अपने आदरणीय भैया साहब के सामने अपना काला मुँह लेकर कैसे खड़ा होऊँगा। हजारों रुपयों की योजना पर पानी फिर जायेगा। राहुलजी का यह चौथा अभियान भी विफल सिद्ध हो जायेगा, और हमेशा के लिए ये अनमोल ऐतिहासिक पन्ने हाथ में आकर भी निकल जायेंगे। दिन और रात बिना आहार और निद्रा से मेरी आँखें लाल अंगारे की भाँति बाहर निकल रही थीं, और मन के भीतर एक ज्वालामुखी की आग भड़क रही थी। एक भरी हुई पिस्तौल मैंने अपने कोट के नीचे छिपा रक्खी थी, मौके पर काम में लाने के लिए।

—क्रमशः

पधारो !

अनु० श्री श्रीकान्त झा

बंगला	हिन्दी
जीवन जीवन झुकाये जाय	जाय जब जीवन हो रसहीन
करुणा-धाराय एसो।	पधारो बन करुणा की धार।
सकल माधुरी लुकाये जाय	माधुरी जब सारी छिप जाय
गीत-सुधा-रसे एसो।	मिलो ले गीत-सुधा-आकार।
कर्म जखन प्रबल-आकार	कर्म जब लिए प्रबल-आकार
गरचि उठिया ढाके चारि धार	गरज उठता ढँक चारों ओर
हृदय-प्रान्ते हे नीरव नाथ,	पधारो हृदय-प्रान्त में शान्त-
शान्त चरणे एसो।	चरण से तब हे नीरव नाथ !
आपनारे जबे करिया कृपण	बना जब खुद को कृपण-कदर्य
कोणे पड़े थाके दीन हीन मन	पड़ा हो कोने में मन दीन,
दुयार खुलिया हे उपार नाथ;	लिए तब राजोत्सव-संभार—
राज समा रोहे एसो	पधारो नाथ ! द्वार को खोल।
वासना जखन विपुल धुलाय	वासना की प्रचण्ड जब धूल
अन्धकरिया अबोधे भुलाय	भुलाये बना अन्ध-अज्ञान
ओहे पवित्र, ओहे अनिद्र,	परम-पावन ! जाग्रत ! तब नाथ !
रुद्र आलोके एसो	पधारो लिए रुद्र आलोक।

गंगाजल पवित्र क्यों—एक वैज्ञानिक अध्ययन

श्री कौशलेन्द्रमोहन तिवारी

साहित्य और समाज दोनों ही में विभिन्न स्थानों एवं समयों पर गंगाजल की उच्चता, पवित्रता एवं उसके मोक्षदायक रूप के दर्शन होते हैं। आदिकवि वाल्मीकि ने साहित्यिक दृष्टि से :]

"गंधर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुंगस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरम् भवतु मे गांगंजलं निर्मलम् ।"

तक कह दिया है। परन्तु यहीं गंगाजल के माहात्म्य का अंत नहीं हो जाता है। गंगाजल स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभप्रद है। वास्तविकता तो यह है कि गंगाजल स्वास्थ्य की ही दृष्टि से लाभप्रद है। यही कारण है कि इसका जल शुद्ध जलों में सर्वांगपूर्ण माना जाता है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही आयुर्वेदज्ञ लोग विभिन्न प्रकार के जटिल रोगों से ग्रस्त रोगियों को स्वास्थ्य-लाभ कराने के लिए गंगातट पर आश्रम बनाकर रहने की सलाह देते आये हैं। उनका कहना है कि गंगाजल प्रायः सभी रोगों की अमूल्य ओषधि है। महामना पंडित मदनमोहनजी मालवीय तो जब विदेश जाते थे तब भी गंगाजल का ही सेवन करते थे। एक अत्यंत रोचक उदाहरण है : एक सज्जन ने एक्स रे कराया। फोटोप्लेट पर उनके दोनों फेफड़े बुरी तरह से आक्रांत पाये गये। बाह्य लक्षणों से भी यही प्रतिभासित होता था कि वे क्षय रोग से पीड़ित हैं। अपने सभी सम्बन्धियों के यहाँ जाकर उन्होंने अंतिम बिदा ली और अंत में गंगा के किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगे। प्रतिदिन गंगास्नान करते, गंगाजलयुक्त भोजन करते तथा शेष दिन पूजापाठ में व्यतीत करते थे। लगभग छः मास तक निरंतर ऐसा करने के बाद उन्होंने पुनः एक्स रे कराया। एक्स रे प्लेट में अब फेफड़ा बिलकुल साफ दिखने लगा था। टी० बी० नाम की कोई चीज नहीं मालूम हो रही थी। डाक्टरों ने कहा, "आपके कभी भी टी० बी० नहीं हुई है। कहीं गलती से किसी दूसरे की प्लेटें मिल गयी होंगी।" अब वे पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गये थे।

केवल क्षय रोग ही नहीं, विभिन्न रोगों के साथ ही साथ संरचनीय (कांस्टीट्यूशनल) रोगों में भी गंगाजल सेवन से लाभ होते देखा गया है। गंगाजल के अतिरिक्त नैमिषारण्य के कुंड का जल और कुकरैल नदी के जल में भी कुछ ऐसे गुणों का अध्ययन किया गया है। ज्ञातव्य हो कि आलर्क रोग से पीड़ित कुत्ते के काटने के बाद लोगों को कुकरैल का जल लाभ करता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि गंगाजल में, नैमिषारण्य कुंड और कुकरैल तथा कुछ अन्य प्राकृतिक जलों में ऐसी विशेषता क्यों है। यही प्रश्न वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में भी गूँजा। गंगाजल एवं कुछ अन्य प्राकृतिक जलों का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन से इसके रहस्य को सुलझाने में अत्यंत ही सरलता हुई। गंगाजल को औषधोपयोगी और इसीलिए पवित्र बनाने में दो अवयव एक साथ मिलकर काम करते हैं।

१—खनिज अवयव

गंगानदी जिस मार्ग से होकर बही है उसमें उसे बहुत से रासायनिक लवण, जड़ी-बूटियाँ तथा पोटेशियम, कैल्सियम, लौह, मैग्नीशियम और अल्यूमिनियम आदि मिलते रहे हैं। ये समस्त वस्तुयें शारीरिक कोशिकाओं को (जिन इकाइयों से मिलकर शरीर की रचना होती है) स्वस्थ करती हैं और बल प्रदान करती हैं। कोशिकाओं के पुष्ट होने का मतलब होता है रोग से मुक्ति।

२—वाइरल अवयव

आधुनिक वाइरोलोजिस्ट्स का कहना कि बहुत से प्राकृतिक जलों और पवित्र गंगा का जल इन्हीं वाइरस या विषाणुओं की उपस्थिति के कारण हमें लाभ पहुँचाता है। शरीर के अन्दर उपस्थित हानिकारक बैक्टीरिया के लिये, विषाणु, जो जल में मौजूद होते हैं, 'विषकन्या' का कार्य करते हैं। बात आश्चर्यजनक तो अवश्य है परन्तु है पूर्णरूपेण सत्य। कैसे ? विभिन्न मानव मात्र को हानि पहुँचानेवाले जीवाणुओं या बैक्टीरिया को विषाणु खा जाते हैं। विचित्र बात तो यह है कि ये विषाणु स्वयं तो बैक्टीरिया से बहुत छोटे होते हैं, पर इन्हें खाते बड़े चाव से हैं। इनके इसी गुण के कारण इन्हें 'बैक्टीरोफेगस' कहा जाता है।

विषाणुओं के सम्बन्ध में उपरोक्त दिलचस्प बातें जानकर यदि आप इनके बारे में अधिक जानना चाहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। खैर, छोड़िए। भले ही हमें इनसे परिचित होने की जिज्ञासा से आश्चर्य न हो परन्तु

१९६३

ध्यान रखिए इनकी प्रकृति जानकर हम बिना आश्चर्य में पड़े न रह सकेंगे।

विषाणुओं की प्रकृति—यह भी एक रहस्य है। कुछ विषाणुविज्ञों का कहना है कि ये जीवित हैं और कुछ के अनुसार मृत। इनके अतिरिक्त वैज्ञानिकों का एक दल ऐसा भी है जो न इन्हें जीवित मानता है और न मृत। वे इन्हें जीवित और मृत की मध्य-सीढ़ी मानते हैं। जो लोग इन्हें जीवित मानते हैं, उनका कहना है कि जीवित होने का प्रमाण उत्पादन और वृद्धि है। इन्हें मृत मानने-वालों का विचार है कि रवे की रचना का कोई जीव नहीं हो सकता है। और जो वर्ग इन्हें जीवित और मृत स्थितियों के बीच की चीज मानते हैं, कहते हैं कि जीवित कोशिक के बाहर ये मरे और अन्दर जीवित हो जाते हैं। इसलि ये न तो जीवित कहे जा सकते हैं और न मृत।

अब आप सोच सकते हैं कि 'यदि यह मान भी लूँ वि ये जीवित हैं या मृत या न जीवित और न मृत' तो भी प्रश्न रह जाता है कि ये कितने लम्बे चौड़े होते हैं। इसके उत्तर में आपको यह जानना चाहिए कि ये मिलीमाइक्र में नापे जाते हैं। यों समझिए : 'एक सेंटीमीटर का दस भाग होता है एक मिलीमीटर। ऐसे एक मिलीमीटर का हजारवाँ भाग होता है एक माइक्रान और एक माइक्रान का भी हजारवाँ भाग कहलाता है मिलीमाइक्रान। इन्हीं मिलीमाइक्रान्स में नापे जाते हैं ये विषाणु या वाइरस।'

अब तो आप समझ ही गये होंगे गंगाजल की निर्मलता, पवित्रता और उसके मोक्षदायक रूप के रहस्य को। कितने सूक्ष्म जीवों एवं अवयवों पर गंगाजल की मह का भार है।

क्यों—अवर इंग्लिश हैरिटेज'

श्री कौशलेन्द्रम

न्द परिव्राजक

विभिन्न स्थानों
, पवित्रता एवं
। आदिकवि

लितं
निर्मलम् ।"
के माहात्म्य
ास्थ्य की दृष्टि
है कि गंगाजल
ी कारण है कि
ा जाता है।
दज्ञ लोग विभिन्न
ों को स्वास्थ्य-
बनाकर रहने
क गंगाजल प्रायः
ना पंडित मदन-
तब भी गंगाज
क उदाहरण है :
प्लेट पर उनके
। बाह्य भौंहे
य रोग से ार से
र उन्होंने अ से
कुटिया बना ।
ी, गंगाजलयुक्त
व्यतीत करते थे।
के बाद उन्होंने
ब फेफड़ा बिल्कुल
की ाबी दौर ने
ादायमान कण्ठ
ने के बहाने इसके
ी हरकत ने इसके
ाभिषेक ने इसके
ा किया है।
री बात मानिए।
जायेगा। आपको

विश्वास न होगा, यह रत्नकरण्डव्यूह का शुद्ध देशी वचन है। अँगरेजी का प्रयोग तान्त्रिक साधना में प्राचीन काल से चला आ रहा है, ऐं ह्रीं क्लीं, ये सभी बीजाक्षर अँगरेजी से ही आये हैं। हाँ, रक्तवीरसंहिता में यह लिखा है कि हिन्दी भाषा में वैष्णवसंस्कार प्रबल होने के कारण, साधक इसको ौ गज दूर रखते हैं। हाँ, डोम्बिनी साधना में बाँगला का प्रयोग चल सकता है, वैसे अँगरेजी तो वहाँ भी विकल्प से प्राप्त है ही। आपको रक्तवीरसंहिता में यदि विश्वास हीं है (विश्वास तो खैर झख मारकर आप करेंगे) तो ीजिए वैष्णव प्रमाण देता हूँ। रामायण पुराण में गरुड़ कागभुशुण्डि से कहा है—

सुनहु निगर हे काग, श्वेतद्वीप में बसत हरि।
गोरिन सौं नित माँगि, अँगरेजी गोरस चखैं॥
चाटत जूठन शेष, लपकि लपकि रसना सहस।
पत्रकार के भेष, पाइ प्रसादी मुदित मुनि॥
छाँड़ि मान की बानि, कमलनि कमला हू तजति।
गोरिनि आगे पानि, जोरि आंग्ल गोरस चहति॥
बानी जो इतरानि, गूँगी ह्वै हेरत रहति।
सो महिमा मैं जानि, अँगरेजो सीखन गयौं।
कैंट रैंट रटतहि भयौ, चाकर सौं मैं स्वामि।
लहहु तुमहुँ श्री हंस पद, अँगरेजी कौ थाम्हि॥
अँगरेजी भाषा लहै, भुक्ति मुक्ति दोउ भ्रात।
करहु कलेवा नित्य तुम अँगरेजी उठि प्रात॥
परकीया साधन परम अँगरेजी कौ योग।
साधि सकल रिधि सिधि लहहु जागहु कागा लोग॥

अब भी आप हिन्दी के लिए यदि आह भरते हैं तो कहूँगा कि आपके दिमाग की कोई कील ढीली हो गयी है। आप राजनीति के पागलखाने में भर्त्ती हो जाइए। धक्कमधुक्की में सिर फुड़ौवल होगी, कील बैठ जायेगी। अगर आप स्वदेशी दवा ही सेवन करना चाहते हैं तो किसी विश्वविद्यालय में छः महीने के ठेके पर हिन्दी-विभाग की अध्यक्षता सँभालिए। उस कुर्सी में ऐसा सहकार-रस है कि आपको बड़ी मीठी नींद आयेगी, आपको अँगरेजी में सपने दिखाई देंगे। जगने पर सारी विश्वसत्ता के साथ आप एकरस हो जायेंगे। फिर कहाँ की हिन्दी, कहाँ की अँगरेजी? आप एक-

सन्त हो जायेंगे। अगर आप इसमें सफल न हो सके (क्योंकि 'अँधेरी-उजेरी' कोई भी डिग्री आपके पास नहीं है। गद्दियों के महन्तों से भी आपकी प्रीति घनेरी नहीं है) तो सस्ता नुस्खा बतला रहा हूँ। आप हिन्दी हटाओ आन्दोलन में शामिल हो जाइए। तमिल शैली में अँगरेजी बोलना मैं सिखा दूँगा। हर शब्द के अन्त में आ स्वर जरूर आना चाहिए। र, ल, ण का उच्चारण गुड़गुड़ायमान होना चाहिए और एक पद के ऊपर दूसरे पद को इस तरह चढ़ा देना चाहिए, जैसे ई की मात्रा के ऊपर रेफ चढ़ाया जाता है। इससे तीन लाभ होंगे, भावनात्मक एकता का निर्माण होगा, आत्मनिषेध की दीक्षा लेकर आप परम वैष्णव बन जायेंगे और आपका मानसिक विकार भी अपने आप दूर हो जायेगा। हाँ, सत्याग्रह आप अपने प्रदेश में न करें, कारण यह है कि इस प्रदेश की अपनी कोई भाषा नहीं है, अर्थात् प्रत्येक भाषा जो समझ में न आये, अपनी है। फ़ारसी ने तो अभी-अभी लोरियाँ सुनायी थीं, उर्दू ने उँगली थाम्हकर चलना सिखाया था, अँगरेजी ने तुतलाना सिखाया, बँगला ने ठुनकना सिखाया और बावर्चियों-खानसामों की प्रोलिटेरियट भाषा ने रवानगी सिखायी, और हाँ, संस्कृत ने मुँहफुलाऊ गंभीरता भी तो सिखायी, यह भूला जा रहा था। हमारे प्रदेश के कई नाम हैं पर, सबसे सुन्दर नाम है 'उस प्रदेश', 'उस' का अर्थ ही पराया, जो सामने नहीं है। हमारे यहाँ इसीलिए छायावाद की रचना हुई। सो 'उस प्रदेश' में सत्याग्रह करना मूर्खता होगी। यहाँ जब लोग हिन्दी की बात करते हैं तो उससे तात्पर्य अहिन्दी का निकलता है, क्योंकि यहाँ लोग सेंसिटेविटी' (माफ कीजिएगा, इस सिलवट के लिए आप ...यता का जो प्रयोग करते हैं, वह मुझे सह्य नहीं है, अँगरेजी को खपाइए)--चाहे किसी भी बात में क्यों न हो, जानते ही नहीं, शायद बनारसी बाग के 'चिड़िया-...रों में (रास्ते का यही नाम लखनऊ नगरपालिका ने लिखवा रखा है--) इस नाम की चिड़िया है या नहीं, ...ना चाहिए। अतः आप भैंस के आगे क्या बीन बजाइएगा? सत्याग्रह आपको दिल्ली में करना चाहिए। वहाँ ...ों को हिन्दी के नाम से जुकाम होता है, कुछ अफसरों को तो जूड़ी आ जाती है और कुछ हैं, जिन्हें केवड़ा चमेली ...शासित हिन्दी के पास आते ही सिर-दर्द होने लगता है। ...हिन्दी बोलने की जो जुर्रत भी करते हैं वो केवल तीज-त्यौहार के दिन या फिर साधु-महात्माओं को भीख जैसे दी जाती है, वैसे दो चुटकी हिन्दी भी लोग दान कर देते हैं। एकाध लाला तो ऐसे हैं जो

इमिलपात की दोनिया तामें तनक पिसान।
साल छमासें कहुँ कहूँ लाला करते दान।।

हिन्दी के एकाध शब्द या हिन्दी के कवि को आशीर्वाद में एकाध मन्त्र बोलकर ही हिन्दी को कृतार्थ कर देते हैं। उस इन्द्रपुरी में हिंदी के खिलाफ सत्याग्रह करने पर सम्पादकजी, आप हाथों हाथ लिये जायेंगे। विलायती महिलायें आपसे हाथ मिलायेंगी और कहेंगी--हाउ डू यू डू ? आपको केक खिलायेंगी। झब्बूदार अफसर आपके बैठने के लिए कालीन बिछायेंगे। राजनैतिक नेता लेमोनेड का गिलास लेकर उपस्थित होंगे। फुलब्राइट स्कालर आपको गुलदस्तों से तृप्त कर देंगे और राजपथ से अशर्फीकदम ठुमुक ठुमुककर ऊँची एड़ियोंवाली जूती बजाती आती हुई विगलद्यौवना, रंजिताधरा, स्कर्टधरा, पिंगाकेशिनी, करेला-लोचनी, मदस्खलिताक्षरा आंग्लभाषा आतुरता से आपके अधरों को चूमकर जब आनन्द-विह्वल कण्ठ से कहेंगी, 'यू आर सो स्वीट' (तुम कितने मधुर हो) तो चौबेजी ! आप भूल जायेंगे कि चौबे हैं, वह भी मथुरिया और उसमें भी कड़ुए, भूल जायेंगे कि सरस्वती का सम्पादन कभी किया है, भूल जायेंगे कि भ्रमरानन्द ने यह मन्त्र दिया था। सच कहता हूँ, आप यही कीजिए, आपका पागलपन अपने आप दूर हो जायेगा।

आप ही सोचिए, हिन्दी के हितू और भी तो लोग हैं। जिनकी रोटी हिन्दी से चलती है, वे तो जब तक अँगरेजी के आईने के सामने अपना मुखड़ा निहार नहीं लेते, तब तक घर से बाहर नहीं निकलते। वे हिंदी के ऊपर यही दया करते हैं कि उन्हें हिंदी आती है। वे इसीलिए इस झगड़े में नहीं पड़ते कि हिंदी चेरी रहे या रानी, बस इतना चाहते हैं कि कुछ जरूर रहे। अगर हिंदी मात्र नागालैंड की भाषा होती तो वे और प्रसन्न होते, क्योंकि तब उनकी कद्र अधिक होती। उन्हें यह भी तत्त्वज्ञान हो गया है कि हिंदी का हित इसीमें है कि वह सिंहपौर के सामने टुकुर-टुकुर भीतर जानेवाले बूटों के चिह्न देखती रहे और उन सौभाग्यशाली चरणों की वन्दना करती रहे--प्रभु ! तुम जुग जुग जियो, तुमने मुझे सेवा का अधिकार दिया है। हिंदी के दूसरे भी तो पत्रकार हैं, वे आपकी तरह संकुचित बुद्धि

नहीं रखते। वे उदारचेता हैं, 'मोसों कौन कुटिल खल कामी' की विनयमुद्रा में उनकी बतीसी बिगसी रहती है। वे तटस्थ द्रष्टा हैं, उन्हें कोई रागद्वेष नहीं है। कोई ममता उन्हें नहीं सताती, वे निरपेक्ष भाव से उपदेश दे सकते हैं——हिंदीवालों को यह करना चाहिए, वह न करना चाहिए, हिंदी जनता को यह जान लेना चाहिए कि भारत और हिंदी दो अलग अर्थ हैं (पर इंडिया और इँगलिश एक दूसरे के पर्याय हैं), भारत की हिंदी हो सकती है, हिंदी का भारत नहीं हो सकता, अतः हिंदी के लिए आग्रह हिंसा है, राष्ट्रीय अपराध है, अन्तर्राष्ट्रीय अपराध है (और सौरमण्डलीय अपराध भी तो है!)।

राजनेताओं से भी आप शिक्षा नहीं ग्रहण करते। हमारे भोले-भाले प्रधान मन्त्री का तौर तरीका देखिए——अभी उस दिन उन्होंने हिंदी दिवस के दिन कहा——मुझे यह जानकर बड़ा अचरज हुआ कि हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिंदी राजकाज की भाषा के रूप में नहीं चलायी जा रही है (कितनी मासूमियत है, कैसा मुग्धभाव है, कब क्या हो गया, मौसम बदल गया, इसका कुछ भान नहीं है)। अपने शिक्षामन्त्री की विचक्षणता की दाद दीजिए——हिंदी को रोमन लिपि का बाना पहिनाकर देखिए, हिंदी जसी गँवार जबान भी सांस्कृतिक शिष्टमण्डल में भेजने लायक बन सकती है। संसद् सदस्यों की रोमांटिक प्रतिभा की प्रशंसा कीजिए कि उन्होंने हिंदी के भविष्य के साथ अनिश्चय को जोड़ कर एक ससपेंस की उत्सुकता पैदा कर दी है।

पर आप रसज्ञ भी तो नहीं, आप तो निरे खूसट हैं। भ्रमरानन्द कितना भी खोपड़ीभंजन करें, आपकी अक्ल-नाकिस में काहे को यह समझ में आयेगा कि हिन्दी का नाम संविधान में आ गया है, उसे अगर कोई बनाये रखना चाहता है तो भी उसे हिन्दी के नाम पर चुप रहना चाहिए।

भ्रमरानन्द को देखिए, अब जब से अँगरेजी के आँचल की छाँह गही है, तब से चौचक है। उस दिन अँगरेजी विभाग से न्यौता आया। वहाँ एक बुजुर्गवार उद्घाटन कर रहे थे। अँगरेजी से अपना सगापन जोड़ने के लिए जवानी के दिनों की कसम खा रहे थे। बुढ़ऊ का मन अँगरेजी फगुनाये दे रही थी। बड़ा आनन्द आया। एक ही चीज खटकी। अँगरेजी कुछ बासी थी, यही कोई पचास-साठ वर्ष की बासी रही होगी। ब्रिटिश कौंसिल और अमरीकी फाउण्डेशन वालों को आप सुझाव दीजिए कि नये छोकरों को क्यों बुलाते हैं (वे तो जल्दी लौटकर आते नहीं)। इन वयःसिद्ध, रससिद्ध और अनुभवसिद्ध अफसरों, अध्यापकों, लेखकों और राजनेताओं को अपने हाईस्कूलों (छोकरियों वाले) में छात्रवृत्ति देकर बुलायें, वहाँ कोमलकण्ठियों के द्वारा इनकी भाषा का पुनरुज्जीवन होगा, इनमें संस्कृति की नयी कोपलें फूटेंगी और जब ये लौटकर आयेंगे (और लौटकर आयेंगे ही इन तपःपूत दधीच अस्थियों का विसर्जन गंगा में होना ही है) तो नयी ज्योति का कलश छलका देंगे, तभी इस दरिद्र भारतवर्ष में स्वर्णबिहान होगा। कुछ लोग सुझाव दे रहे थे कि इंगलैण्ड को तीस साल के पट्टे पर काशी-प्रयाग-लखनऊ का क्षेत्र दे दिया जाय, जिससे एक बार फिर अँगरेज पधारें, यहाँकी नदियों में सद्यः स्नात अँगरेजी के अँगराग का परिमल घुले, परभृता के पञ्चम की तान इस आकाश को मुखरित करें और चरणसंचार से धरती गुलाबिल हो जाय। पर भ्रमरानन्द इसमें बड़ी तवालत देखते हैं। कमखर्च बालानशी वाला तरीका वही है, जो अभी-अभी मैंने बतलाया है।

सम्पादकजी, कहिए अब चित्त चलायमान भया कि नहीं? सरस्वती के दफ्तर में लगाइए ताला और अखबार निकालिए 'दि इंगलिश हेरिटेज' (अँगरेजों की विरासत), देखिए आप क्या से क्या हो जाते हैं। यह चिट्ठी अगर सुहा गयी तो चुपचाप एक किलोग्राम मलाई-रोल रामआसरे के यहाँसे मँगाकर भेज दीजिए। आजकल भाँग कुछ गले में खराश करने लगी है (अँगरेजी बोलने का अभ्यास जो कर रहा हूँ)। अँगरेजी रानी आपका मंगल करें।

आपका अँगरेजीरमण मित्र
भ्रमरानन्द

पुनश्च——अँगरेजी तौर-तरीके में पुनश्च (पी० एस्०) के बिना काम नहीं चलता। एक बात सहसा याद आयी। मैंने तो सिर्फ आफेन्सिव समझाया, पर कहीं उधर से एँड़ीझार काउंटर आफेन्सिव शुरू हुआ तो क्या कीजिएगा? मोरचे पर डटे रहिएगा और जवाब में धूलि झाड़ कर

दासे कृतागसि भवत्युचितः प्रभूणां
पादप्रहार इति सुन्दरि नास्मि दूये।

(जब नौकर गलती करता है तो मालिक उसे लतियाता ही है, इसलिए हे सुन्दरी, मुझे इसका जरा भी मलाल नहीं है।) यह श्लोक भाषाटीका सहित सुनाकर एँड़ी सहलाना शुरू कीजिएगा। तब अँगरेजी रीझ जायेगी। जरा तबियत कुछ तेज पायी है, और कोई बात नहीं। चौबेजी, आप भी कहेंगे कि कोई उस्ताद मिला था। अपने मस्तिष्कपरिवर्त्तन, हृदय-परिवर्त्तन और भाग्य-परिवर्त्तन के सुखद समाचार से कृतकृत्य कीजिए।

योर्स
मेरी गोराउण्ड

[भाई भ्रमरानन्द! तुम्हें वह श्लोक याद है जो भोज ने मुंज के लिए लिखा था 'मांधाता च महीपतिः' आदि? फारसी भी कई सौ वर्ष यहाँ राजभाषा रही। अब उसकी स्थिति क्या है? वैसे ही अँगरेजी भी जायगी। रहा मैं, सो 'सूरदास की कारी कामरि, चढ़ै न दूजौ रंग।' तुम्हारा, सम्पादक, सरस्वती।]

हिन्दी और दक्षिणवासी

श्री टी० एस० कन्नन एम० ए०

शायद विधाता की पंजिका में भारत अपने इतर भाइयों (अमरीका, रूस, इंग्लैण्ड) में सबसे बड़ा है। वहाँ उसकी गणना शायद वृद्धों में की जाती होगी। परन्तु स्वाधीनता के भारत में अभी बचपना है। उसने अभी चलना सीखा है। १५ साल के बालक के समान वह भी अनुभवहीन है। यद्यपि उसके पालक हर सम्भव प्रयत्न से उसके बहुमुखी विस्तार और विकास में लगे हैं तथापि कभी-कभी उनका हठ और नादानी विकास को धक्का भी दे देती है। नवीन भारत को जन्म से ही अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। आज राष्ट्रीय एकता भी एक समस्या हो गयी। अभी हमें एकता ही नहीं ज्ञात है। राष्ट्रीय एकता निश्चय एक स्वप्न तुल्य है। स्पष्ट है आज हमारे अधिकार-कर्तव्य तथा व्यवहार ने हमें स्वतः इस समस्या को दृढ़ करने को मजबूर किया है। जैसे उगता सूर्य ओस के नन्हें कणों को समय से सोखता है परन्तु मध्याह्न में उसका प्रचण्ड ताप विशाल सागर को भी व्याकुल कर देता है। ठीक यही स्थिति राष्ट्रीय एकता की है। यदि हमने इस ओर गम्भीरता से विचार नहीं किया तो निश्चय देश एक विचित्र परिस्थिति में आ जायगा। इसके उत्तरदायी स्वतः हम होंगे! इस राष्ट्रीय एकता में आज भाषा सर्पिणी ने सब पर अपना फन फैला रखा है। किसी भी राष्ट्र के सम्यक्वर्धन के लिए, एकसूत्रता के लिए किसी एक भाषा का होना आवश्यक है। किन्तु सर्वप्रथम भाषावार प्रान्तों का सर्जन कर हमने इस अमर वल्लरी को सींचा है, काटा नहीं। इसलिए इसने अपनी काफी जड़ें जमा ली हैं।

भाषा का सर्वसाधारण अर्थ अपने विचारों के आदान-प्रदान करने का माध्यम ही है। वह चाहे संस्कृत हो, सिन्धी या हिन्दी हो, तमिल या तेलगू हो। जहाँ तक प्रान्तों का प्रश्न है उस स्थानीय भाषा के सर्वतोमुखी विकास का प्रयत्न होना चाहिए इसमें लेशतः सन्देह नहीं है। परन्तु इसीके साथ ही उस प्रान्त के पुरुषों का इतर राज्य के व्यक्तियों से सम्बन्ध रहे, इसके लिए एक राष्ट्रीय भाषा का होना अनिवार्य है। अब प्रश्न है कि राष्ट्रभाषा के उच्चपद पर, उसके माँग में हिन्दी का सिन्दूर भरने के बाद भी उसे पूर्णतः स्वीकार क्यों नहीं कर रहे हैं? उसके निर्धारण में इतना विलम्ब क्यों कर रहे हैं? इसमें एक महत्त्वपूर्ण कारण यह दिया जाता है कि अभी अहिन्दी प्रान्त के निवासी इतने समर्थ और सबल नहीं हो पाये हैं कि वे हिन्दी भाषा में अपना व्यवहार कर सकें। परन्तु सच्चे अर्थ में हम अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि हमने देश के विशाल मनुष्यों के हित को ठुकराया है। इसकी अवहेलना और विलम्ब का एकमात्र अर्थ है कि हमने उन तत्त्वों और सूत्रों को पुनः बल दिया है जो देश के लिए हितकर नहीं कहे जा सकते हैं। राष्ट्रीय एकता के दरवाजे की ओट से स्वार्थपरायण चन्द पुरुषों का स्वार्थ कितना हानिकर हो सकता है इसका प्रत्यक्षीकरण हमारे सम्मुख आ चुका है। ठीक है, परिवार के एक सदस्य के अस्वस्थ होने पर उसके प्रति सबको सहानुभूति होती है और होनी भी चाहिए पारिवारिकता के नाते। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य भी उसके पथ्य खिचड़ी गंजीभात का सेवन करें अपने पराँठे और फुलके को त्यागकर। यदि वह कमजोर है, अशक्त है तो शक्तिवर्धन के लिए हमें नये-नये उपचार करने चाहिए उसकी स्वस्थता के लिए, बलवृद्धि के लिए। परन्तु यह कहाँकी बुद्धिमानी है कि हम इस सरल उपाय का त्याग कर सबको पहले निराहार या अल्पाहार देकर पुनः सभी को समर्थ करें?

हिन्दी के सरलीकरण की बात भी उठी है। उसके निमित्त शायद समिति भी बनी है। जिस हिन्दी को हमने १५ साल तक सुना और समझा उसी हिन्दी में १६वें साल अर्थगाम्भीर्य की कौन सी चर्चा उठ गयी कि हम उसके सरलीकरण व संस्कृत शब्दों के निष्कासन की ओर ध्यान देने लगे हैं? यह तो ठीक वही हुआ कि दो साथ पुराने नये मकान खड़े हैं। उसमें से पुराने मकान को तोड़कर नया मकान बनाने की बजाय अच्छे खासे बने मकान को पुराने की शकल देने की कोशिश में सौन्दर्य का ह्रास कर रहे हैं। परिवार में पिता की बात मानी जाती है, इस-

लिए कि वह अनुभव से परिपक्व होता है। परन्तु यदि वही पिता किसी स्वार्थ में पड़कर पुत्र की पढ़ाई रोक देता है, पुत्री का विवाह मनमाने ढंग से करता है तो समाज के सिद्धान्त के अनुसार वह एक पाप करता है।

हिन्दी भारत के अनेक विस्तृत राज्यों में भली भाँति समझी-बोली, लिखी-पढ़ी जाती है और उन प्रदेशों में विशेषकर जिनकी आबादी घनी है। अतः अब हमारे सामने हिन्दी की बिन्दी का प्रश्न है। उसे ऊपर न उठाकर उसके सरलीकरण का अर्थ है उसके गौरव, उसके सौन्दर्य, उसकी कला, श्री-शोभा, महिमा, आकृति सभीको समाप्त करना, ठीक इसी प्रकार जैसे फलते-फूलते वृक्ष को अनायास काट कर उसको जलाने के काम में लाया जाय।

हिन्दी स्वयं में सरल है, पुनः सरलीकरण का क्या रूप होगा? क्या-क्या नये तत्त्व उसमें मिलाये जायेंगे? क्या उर्दू, अरबी, फारसी या इतर प्रान्तों के चार-छः शब्दों को लाकर उसका अधुनातन शृंगार किया जायगा या उसके कमनीय कण्ठ से सुरभारती के अमूल्य तत्सम तद्भव रूपी शब्द मोतियों को हटाकर प्लास्टिक के बुन्दे पहनने को देंगे? यदि ऐसा करेंगे तो निश्चय उसके स्वरूप का हनन करेंगे जो वस्तुतः निन्दनीय है। हिन्दी ने अपना परिवार बढ़ाया है। वह स्त्री जो घर के सभी सदस्यों की बात सुनने के लिए उनके सभी शब्दों को ग्रहण करती है क्या इतने से उसकी सहृदयता का परिचय नहीं मिलता है? नीचे का यह उदाहरण देखिए।

सरला स्टेशन गयी वहाँ एक गरीब की हालत खराब थी। उसने उसका हाल-चाल पूछा। उसके बदन पर खून के निशान थे क्योंकि मालिक की इज्जत बचाने में उसे एक इंसपैक्टर ने मारा था। तभी उसने कोट, बूट, पतलून या रेशमी सूट में अपने एक दोस्त डाक्टर को देखा, फिर उसके इलाज का बन्दोबस्त किया। तभी गार्ड आया। सिगनल हो गया था, इंजन ने सीटी दी। ट्रेन प्लाटफार्म से चल पड़ी। वह फर्स्ट क्लास का टिकट लिये थी, डाक्टर अपने स्लीपर कोच की सीट पर बैठा बाहर देख रहा था।

इस वाक्य में रेखांकित शब्द ऐसे हैं जो गाँव का वृद्ध किसान भी समझ लेता है और उच्च आई० ए० एस० अधिकारी भी। आज हिन्दी उन १४ भारतीय भाषाओं का सम्यक् स्वागत कर रही है। क्या हिन्दी ने तमिल के "इड़ली" "दोसा" "सांबर" शब्द को नहीं लिया है?

मधुमक्खी के छत्ते में एक रानी होती है जो सबका पालन-पोषण करती है और जिसके निर्देशन में सभी कार्य किये जाते हैं। यद्यपि वहाँ लाखों मक्खियाँ होती हैं तथापि एक रानी के जरा से इशारे से वे क्या-क्या करती हैं यह उनका मधुर मधु चखनेवाला ही जानता है। ठीक इसी प्रकार हमने हिन्दी को रानी बनाया है। उसके निरीक्षण और निर्देशन में सभी भाषाओं को अग्रसर होने देना चाहिए। तभी एक गाढ़ा, मनोहर, आह्लादकारी, स्वादिष्ट मधु हमें चखने को मिलेगा जिसकी सर्वत्र स्तुति की जायेगी।

अब देश की एकसूत्रता की दृष्टि से हिन्दी के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। मेरी समझ में सरकार हिन्दी पनपे इस दृष्टि से उसकी भी एक पंचवर्षीय योजना बनाये जिसमें दक्षिणवासियों की तथाकथित उन कठिनाइयों के दूरीकरण का हल हो। वहाँ नयी-नयी हिन्दी संस्थायें स्थापित की जायँ। हिन्दी की शिक्षा प्रारम्भिक श्रेणियों से ही दी जाय। परन्तु सरकार ने उनके लघु संतोष के लिए सगर्व बढ़ती हुई उस ललना को रोकने का प्रयत्न किया है जो किसी भी दृष्टि में ठीक नहीं है। यदि अब भी वह हिन्दी के विकास और उन्नति में सतर्क रहे और रुचि ले तो निश्चय दक्षिणवासी नाराज तो क्या इस भरपूर यौवन से लदी हिन्दी का भरपूर आलिंगन करते! फिर सरकार के इस निर्णय से कौन प्रसन्न है? क्या उत्तर भारतीय? सर्वथा नहीं। वहाँ भी इस निर्णय के विरोध में अप्रसन्नता की कितनी लहर फैली हुई हैं। दक्षिण भारत में तो इसके विरोध में एक बड़ा आन्दोलन होने जा रहा है जहाँ हिन्दी के विरोध में काफी कुछ करने का विचार है। तब क्या इस निर्णय की यही मान्यता है, यही स्वागत है, या सत्कार है?

दक्षिण में हिन्दी की कठिनाई या अज्ञानता का प्रमुख कारण है कि यहाँ हिन्दी का सम्यक् प्रचार और प्रसार न होना। इस कार्य को कोई व्यक्ति नहीं कर सकता है क्योंकि यदि कोई माँ का सपूत निकले भी तो उसे शक्ति चाहिए, जन-समुदाय चाहिए, जिसका यहाँ सर्वथा अभाव है। इस कार्य को राज्य कर सकता है क्योंकि उसके

पास शक्ति है, धन है। यदि उसका ध्येय दृढ़ है तो भेड़ों की तरह अनायास असंख्य अहिन्दीभाषी (दक्षिणवासी) हिन्दी पर टूटेंगे। राज्य जनता का ध्यान अच्छी तरह आर्कषित कर सकता है ताकि उन्हें तुलसी की ललित पदावली में, सूर के सौरभ, कबीर के काव्य तथा प्रसार के पदों में या पन्त की प्रकृति में रस मिले या ममता पैदा हो।

मद्रास प्रान्त या तमिलनाड इस विषय में बड़ा सुस्त है क्योंकि उसके समीपवर्ती तीनों प्रान्त बढ़-चढ़कर हिन्दी के प्रचार और प्रसार में लगे हैं। केरल प्रान्त ने इस सम्बन्ध में बड़ा श्लाघनीय कार्य किया है। वहाँ हिन्दी की शिक्षा अब पंचम श्रेणी से आवश्यक कर दी गयी है। हिन्दी के अन्तर (घंटे) भी बढ़ा दिये गये हैं। इसका परिणाम हमें कुछ ही वर्षों में ज्ञात हो जायगा। परन्तु मद्रास प्रान्त की हिन्दी के प्रति अवहेलना विचार का प्रश्न हो सकता है। **अहिन्दीभाषी क्षेत्र का मद्रास ही क्यों प्रतिनिधित्व करता है?** यह भी हमें सोचना है। सरकार को चाहिए कि वह इस क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियो से विचार-विमर्श कर जन-साधारण में प्रसार के लिए कुछ योजनाओं को क्रियान्वित करे तथा यहाँके व्यक्तियों की कठिनाइयों को दूर करे। सरकार के निर्णय से हिन्दी की समृद्धि में कोई रुकावट पैदा नहीं होगी। राष्ट्रीय मंच पर अँगरेजी के स्थित रहने से यहाँके वासियों को कुछ समय और मिला कि वे हिन्दी को दुत्कारें और उसका अपमान करें। वास्तविकता यह है कि हिन्दी की अब हमारे लिए कोई समस्या नहीं है और यदि हम ऐसा मानते हैं तो वह हमारी भूल है। हिन्दी का साहित्य भंडार किस प्रकार बढ़ रहा है वह दर्शनीय है। पिछले दस वर्षों में उसका आलोचना साहित्य बाढ़ के पानी की तरह सभी प्रदेशों में फैल गया है।

प्रत्येक भाषा का साहित्य सौन्दर्य से युक्त होता है यदि हम भाषा के अन्दर बैठकर देखें तो उसका कमनीय रूप हमें दृष्टिगत होगा। प्रत्येक भाषा का अपना गौरव है अपना स्थान है और वह अपनी कुछ विशेषता लिये होता है। भाषा तो मधुर होती है उसके पान से कौन अस्वीकार करेगा?

सरकार ने यदि हिन्दी के सर्वप्रचलन की प्रतीक्षा की तो शायद हिन्दी को सुदृढ़ बनाने में हमें पर्याप्त समय लग जायगा क्योंकि तब तक हिन्दी प्रदेश के निर्बल दरवाजे से स्वार्थी पुरुषों की यह शिकायत रहेगी। केवल एक पक्ष के एक अंग की पुष्टि से दूसरों को हानि हो, यह उचित नहीं है।

भाषा बढ़ती है व्यवहार से, प्रयोग से, उसके सम्यक् प्रचलन से। हिन्दी का तन यदि विकृत किया भी गया तो मन का लावण्य सदा हरा-भरा रहेगा, उसपर किसी का वश नहीं चल सकता।

किसीने पूछा हिन्दी आने में इतनी देर क्यों कर रही है? दूसरे ने कहा कि वह तो तैयार खड़ी है; वर-माला हाथ में है किन्तु जब वर की आँखें ही मण्डप में किसी दूसरे पर हों तो भला वह भी क्या करे? ये हवेलियों की हवा में रहनेवाले सुकुमार मंत्रियों के मान धन कोमल काया से युक्त बालक जो अँगरेजी स्कूलों या कान्वेंट में अपनी पढ़ाई कर रहे हैं, उनकी अँगरेजी का क्या होगा? उन भोले निरीह बालकों की क्या दशा होगी? इसी समस्या ने तो ऊपर सबको सता रखा है, परन्तु यदि शासक जनतंत्र या जनता के जीवन की ज्योति को जगाना चाहते हैं तो उन्हें हिन्दी को महत्ता देनी चाहिए और राष्ट्रीय एकता की एक मजबूत दुर्लभ कही जानेवाली समस्या को प्रेम भाव से हल कर देना चाहिए जिससे मनु का मानव मधुरता से गुनगुना उठे!

हिन्दी!

तुम माता की बिन्दो
हँसकर बन बैठी!

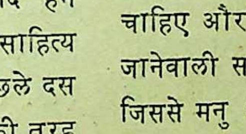

सूरदास नाम के अनेक भक्त, कवि और गायक

श्री प्रभुदयाल मीतल

मध्यकालीन साहित्य में सूरदास नाम के अनेक भक्त, कवि और गायकों का नामोल्लेख मिलता है। उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध अष्टछापी सूरदास हुए हैं। अन्य सूरदासों की जीवन घटनाएँ इसीलिए भ्रमवश अष्टछापी सूरदास के जीवनवृत्त में सम्मिलित होती रही हैं। इसके कारण उक्त सूरदास के जीवन की प्रामाणिक रूप-रेखा निश्चित करने में बड़ी असुविधा हुई है।

इधर बीस-पच्चीस वर्षों में सूरदास के जीवनवृत्त का जो अनुसंधान हुआ है, उससे प्रायः सभी प्रमुख सूरदासों की जीवन घटनाएँ प्रकाश में आ गयी हैं। उसके फल-स्वरूप अब अष्टछापी सूरदास की प्रामाणिक जीवनी लिखे जाने में अधिक कठिनाई नहीं रही है। हम यहाँ पर सभी प्रमुख सूरदासों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं, ताकि उनकी जीवन घटनाएँ अष्टछापी सूरदास के जीवन-वृत्त से पृथक् समझी जा सकें।

(१) **विल्वमंगल सूरदास**--उनके जीवन-वृत्तांत की संक्षिप्त रूप-रेखा कृष्णदास कविराज कृत चैतन्य चरितामृत, नाभाजी कृत भक्तमाल और प्रियादास कृत भक्तमाल टीका से ज्ञात होती है। खोज से मालूम हुआ है कि वे गीत-गोविन्दकार जयदेव के समकालीन अथवा उनके कुछ पूर्ववर्ती थे। इस प्रकार उनका समय १२वीं शताब्दी के लगभग सिद्ध होता है। वे दाक्षिणात्य ब्राह्मण और पंढरपुर के निकट कृष्णवेणा नदी के पच्छिम तटवर्ती किसी ग्राम के निवासी थे। वे बड़े विद्वान् और संस्कृत भाषा के सुकवि थे, किंतु चिंतामणि नाम की एक रूपवती देवदासी पर अत्यन्त मोहित होने से अपने स्वरूप को भूले हुए थे। एक दिन उस देवदासी द्वारा फटकारने से उनके मोह का आवरण हट गया और वे विख्यात भगवद्‌भक्त हो गये।

भक्ति के आवेश में वे अपने जन्मस्थान को छोड़कर श्रीकृष्ण के लीलाधाम मथुरा मंडल की ओर चल दिये। मार्ग में एक रूपवती कुलवधू को देखकर उनके हृदय में वासनापूर्ण संस्कार पुनः जागृत हो गये; किंतु शीघ्र ही वे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने अपने पतन का कारण नेत्रों को समझकर उन्हें सुई की नोक से फोड़ डाला! इस प्रकार नेत्रहीन होने से मार्ग से भटककर वे एक कुएँ में गिर गये। कहते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें कुएँ से निकाला और वृंदावन का मार्ग बतलाया। वे वृंदावन पहुँचकर कृष्ण-भक्ति में लीन हो गये। उन्होंने संस्कृत में "कृष्णकर्णामृत" नामक एक प्रसिद्ध स्तोत्र काव्य की रचना की है।

उनका रूपवती कुलवधू पर आसक्त होना, फिर पश्चात्ताप से अपनी आँखें फोड़ लेना, नेत्रहीन होने से कुएँ में गिर जाना, वहाँसे स्वयं कृष्ण द्वारा उनका निकाला जाना आदि बातें अष्टछापी सूरदास के जीवन-वृत्तांत में भ्रमवश जोड़ दी गयी थीं। किन्तु अब निश्चय हो गया है कि इन घटनाओं का उक्त सूरदास से कोई संबंध नहीं है। विल्वमंगल अष्टछापी सूरदास की तरह अंधे कवि अवश्य थे। कदाचित् इसीसे उन्हें सूरदास कहा जाता है। वैसे उनका नाम विल्वमंगल था और वे लीलाशुक के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

(२) **अष्टछापी सूरदास**--वे ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य के सर्वोपरि कवि और सूरसागर के विख्यात रचयिता थे। उनका जन्म सं० १५३५ की वैशाख शु० ५ को हुआ था। उनके जीवन-वृत्तांत के कतिपय प्रसंग 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'भाव प्रकाश' में लिखे गये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि उनका जन्म-स्थान दिल्ली के निकटवर्ती सीहीं गाँव था। वहाँसे विरक्तावस्था में वे मथुरा आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर निवास करने को चले गये थे। शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्यजी ने सं० १५६७ में उन्हें उसी स्थान पर अपना शिष्य बनाया था। उसके बाद आचार्यजी के आदेशानुसार वे गोवर्धन जाकर श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने लगे थे। वे अपने अंतिम काल तक गोवर्धन के परासोली नामक स्थल में निवास करते रहे और वहीं पर सं० १६४० के लगभग उनका देहावसान हुआ था।

श्री वल्लभाचार्यजी के सुयोग्य पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उन्हें 'अष्टछाप' में सम्मिलित किया था। उनके रचे हुए सहस्रों पद उपलब्ध हैं, जो ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

(३) **मदनमोहन सूरदास**--उनका मूल नाम सूरदास

१६६३

था; किन्तु उनकी रचनाओं में 'सूरदास मदनमोहन' की छाप मिलती है। वृंदावन के गौड़ीय गोस्वामी सनातनजी के आराध्य ठाकुर मदनमोहनजी उनके इष्टदेव थे; जिनका नाम उन्होंने अपने नाम के साथ अपनी रचनाओं में लगाया है। वे अष्टछापी सूरदास की तरह नेत्रहीन नहीं थे। वे जाति के सूरध्वज ब्राह्मण थे और अकबर के शासन-काल में लखनऊ के निकटवर्ती संडीला इलाके के अमीन थे। उनका समय सं० १५७० से सं० १६२० के आसपास का निश्चित हुआ है[1]; अतः वे अष्टछापी सूरदास के समकालीन थे।

बादशाही नौकरी करते हुए भी वे भगवद्भक्ति और साधु-सेवा में अधिक रुचि रखते थे। उन्होंने सरकारी खजाने का लाखों रुपया साधु-सेवा में लगाकर राजकीय कोप को सहन किया था। वे अपने उच्च पद को छोड़कर वृंदावन चले गये और वहाँ अकिंचन के वेश में रहने लगे। उन्होंने भक्तिपूर्ण श्रृंगार रस के गेय पदों की रचना की है। नाभाजी ने उनके गायन, काव्य और उनकी राधाकृष्णोपासना की बड़ी प्रशंसा की है।

उन्होंने श्रृंगार-भक्ति के अनेक सरस और मधुर पदों की रचना द्वारा ब्रजभाषा के भक्ति-साहित्य को समृद्ध किया है।

(४) **गायक सूरदास**——उनका नामोल्लेख अकबर के दरबारी संगीतज्ञों की सूची में मिलता है। अबुलफजल कृत "आईन-ए-अकबरी" में उन्हें ग्वालियर निवासी और अकबर के सुप्रसिद्ध गायक बाबा रामदास का पुत्र बतलाया गया है। अकबर के जगविख्यात ३६ संगीतज्ञों में उनकी गणना होने से यह समझा जाता है कि दरबार में आने के समय उनकी आयु ४० वर्ष से कम नहीं होगी। ऐसी दशा में उनका जन्म सं० १५८० के लगभग अनुमानित होता है। इस प्रकार वे भी अष्टछापी सूरदास के समकालीन सिद्ध होते हैं।

सूर-जीवनी के आरंभिक लेखकों ने उन्हें भ्रमवश अष्टछापी सूरदास समझकर उनके पिता का नाम बाबा रामदास लिख दिया था। अब यह सिद्ध हो गया है कि गायक सूरदास अष्टछापी सूरदास से भिन्न व्यक्ति थे, अतः अष्टछापी सूरदास के पिता का नाम बाबा रामदास नहीं था।

यह सूरदास गायक होने के साथ ही साथ कवि भी थे या नहीं, इसे निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। उस काल में गायक प्रायः स्वरचित रचनाओं का ही गायन किया करते थे। इससे अनुमान होता है कि वे कवि भी होंगे और उन्होंने कुछ गेय काव्य की रचना भी की होगी; किंतु उनकी कोई काव्य-कृति उपलब्ध नहीं हुई है।

(५) **रामानन्दी सूरज**——नाभाजी कृत 'भक्तमाल' में विल्वमंगल, अष्टछापी सूरदास और सूरदास मदनमोहन के अतिरिक्त एक सूरज नामक भक्त जन का भी नामोल्लेख हुआ है। नाभा जी ने उन्हें कृष्णदास पयहारी के २४ शिष्यों में से एक बतलाया है; अतः वे रामानन्दी वैष्णव सिद्ध होते हैं। उनके कवि होने का कोई संकेत न तो भक्तमाल से मिलता है और न उनकी कोई प्रामाणिक रचना ही उपलब्ध हुई है।

(६) **संकेत निवासी सूरज**——ध्रुवदास ने अपनी "भक्त नामावली" में विल्वमंगल, अष्टछापी सूरदास और सूरदास मदनमोहन के अतिरिक्त एक सूरज भक्त का भी नामोल्लेख किया है। उन्होंने बतलाया है कि सूरज और कल्यान अपनी बड़ाई को छोड़कर ब्रज के संकेत स्थान पर निवास करते थे।[2]

नाभाजी कृत भक्तमाल में कृष्णदास पयहारी २४ शिष्यों में सूरज के साथ कल्यान का भी नाम आया है। कृष्णदास पयहारी के गुरु अनन्तानंद के शिष्यों में एक नाम रामदास का भी है। इस प्रकार रामदास कृष्णदास पयहारी के गुरुभाई थे, चूँकि सूरज रामदास के गुरुभाई के शिष्य थे, अतः वैरागियों की पद्धति के अनुसार वे रामदास के लिए पुत्रवत् थे। हमने "आईन-ए-अकबरी" और भक्तमाल के रामदास और सूरदास विषयक उल्लेखों की संगति मिलाते हुए यह अनुमान किया है कि अकबरी दरबार के गायक बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास दोनों ही कदाचित् रामानंदी वैष्णव थे, जो क्रमशः अनंतानन्द और कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे।

ऐसा अनुमान होता है कि जब वयोवृद्ध बाबा रामदास का देहान्त हो गया, तब उनके पुत्र सूरदास के मन में राजकीय नौकरी से विरक्ति हो गयी थी। वे अपने गुरुभाई कल्यान के साथ राजकीय सेवा से मुक्त होकर ब्रज

---

[1] लेखक कृत "सूरदास मदनमोहन", पृ० ८

[2] **सेयौ नीतौ भाँति सों, श्री संकेत स्थान।**
रहे बड़ाई छाँड़िकै, सूरज-द्विज कल्यान ॥

के संकेतस्थान में जाकर निवास करने लगे थे। चूँकि वे दोनों ही राजकीय मान-बड़ाई छोड़कर विरक्त भाव से संकेतस्थान में निवास करते थे, अतः ध्रुवदास कृत "भक्त-नामावली" में उनका इसी प्रकार उल्लेख हुआ है।

(७) **बनारस-निवासी सूरदास**---ये अकबर के शासन-काल में बनारस में रहते थे। इनका उल्लेख मुंशी अबुलफजल के एक पत्र में हुआ है। वह पत्र अकबर की आज्ञानुसार उक्त सूरदास को बनारस भेजा गया था। मुंशियात अबुलफ़जल में वह पत्र संकलित है और उसका हिन्दी अनुवाद मुंशी देवीप्रसाद द्वारा किया हुआ प्राप्त है।

उस पत्र से ज्ञात होता है कि वे सूरदास उच्च वर्ण के कोई विद्वान् भगवद्भक्त और संत जन थे। अबुलफ़जल ने उस पत्र में उन्हें इलाहाबाद पहुँच कर अकबर से मिलने और उनके नये मजहब दीनेइलाही को स्वीकार करने का आग्रह किया है। उस पत्र में कोई तिथि-संवत् का उल्लेख नहीं है, किंतु 'अकबरनामा' के अनुसार सं० १६४२ में अकबर का इलाहाबाद जाना सिद्ध है; अतः वही संवत् उस पत्र का भी हो सकता है। इससे समझा जा सकता है कि वे सूरदास सं० १६४२ में बनारस में रहते थे; अतः वे भी अष्टछापी सूरदास के समकालीन थे।

उस पत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि वे बनारस के स्थायी निवासी नहीं थ, वरन् किसी अन्य स्थान से जाकर बनारस में रहने लगे थे। सूर-साहित्य के कई विद्वानों ने उन्हें सूरदास मदनमोहन बतलाया है; किंतु हमने सिद्ध किया है कि वे सूरदास मदनमोहन कदापि नहीं हो सकते। वे या तो कोई दूसरे सूरदास थे, अथवा अकबरी दरबार के गायक रामदास के पुत्र सूरदास थे। उनके विषय में हमारा अनुमान है कि वे अकबर की नौकरी छोड़कर विरक्त भाव से ब्रज के संकेत-स्थान में निवास करते थे। वे ही बाद में रामानंदी तीर्थों की यात्रा करते हुए अस्थायी रूप से बनारस में जाकर रहे होंगे।

(८) **लखनऊ-निवासी सूरदास**---वे "नलदमन" नामक प्रेमाख्यान के रचयिता थे। इस सूफियाना काव्य ग्रंथ की रचना सं० १७१४ में हुई थी। इस प्रकार वे अष्टछापी सूरदास के परवर्ती थे। उन्होंने इसी ग्रंथ में अपना जीवन-वृत्तांत भी लिखा है। उससे ज्ञात होता है कि उनका नाम सूरदास और उनके पिता का नाम गोबरधनदास था। वे कंबू गोत्र के खत्री थे। उनके पूर्वज पंजाब प्रदेश के कनानूर ग्राम के निवासी थे, किंतु उनके पिता वहाँसे लखनऊ चले गये थे। इन सूरदास का जन्म लखनऊ में ही हुआ था।

उनके गुरु लाहौर-निवासी श्यामदयाल थे, जो भटनागर कायस्थ थे। उनका रचा हुआ "नलदमन" ग्रंथ अवधी भाषा का है, जो चौपाई छंद में रचा गया है। खोज रिपोर्ट में यह ग्रंथ भ्रम से अष्टछापी सूरदास की रचनाओं के साथ लिख दिया है। १८वीं शताब्दी के उक्त अवधी भाषा के सूफी कवि का अष्टछापी सूरदास से कोई संबंध नहीं है।

(९) **संत सूरदास**---उनका रचा हुआ "रामजन्म-कथा" नामक एक ग्रंथ है, जिसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने इस ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय प्रकाशित किया है। इससे मालूम होता है कि रचयिता का नाम सूरजभान था। किन्तु उन्होंने इस रचना में सूरजदास की नाम-छाप भी दी है---

अनेक तीर्थ कासी महा, गंगा बिनु अस्नान।
पाप मेटहि स्वामी, कहा वचन सुजभान॥
"सूरजदास कवि" बरनों, प्राननाथ जिव मोर॥

'रामजन्मकथा' की भाषा ब्रजभाषा मिश्रित अवधी जान पड़ती है और उसकी कविता भी अत्यन्त साधारण कोटि की है। इस ग्रंथ को भी खोज रिपोर्ट में भ्रम से अष्टछापी सूरदास की रचनाओं के साथ लिखा गया है। इसके गंगावतरण प्रसंग में गंगा से मिलनेवाली सोन, गंडक और पुनपुन नदियों तथा हरिहर क्षेत्र के उल्लेख मात्र से डा० धर्मेन्द्रजी ने अनुमान किया है कि उक्त संत सूरदास का संबंध बिहार से और विशेषतः उसके सारन तथा पटना जिलों से था। इस प्रकार के अनुमान का कोई पुष्ट कारण ज्ञात नहीं होता है। ग्रंथ की भाषा से भी यह सिद्ध नहीं होता है कि उनका जन्म बिहार में ही हुआ था। हमने जिन रामानंदी सूरज का पहले उल्लेख किया है, संभव है यह सूरदास वही हों।

उपर्युक्त सूरदासों के अतिरिक्त और भी कई सूरदास हुए हैं; किंतु वे महत्त्वपूर्ण न होने से उल्लेखनीय नहीं समझे गये।

अंगारों के बीच—

नौकरों का नाटक

मेरा विवाह हाल ही में हुआ था। मैं पत्नी को लेकर नौकरी पर गया। नयी जगह में पहुँचकर हम दोनों वहाँके क्लब के मेम्बर हो गये। एक दिन जब हम दोनों क्लब गये हुए थे तो अकस्मात् बाहर से मेरा छोटा भाई घर आ पहुँचा। उसने बाहर ही से देखा कि गोल कमरे की बत्ती जली हुई है, रेडियो चल रहा है और भाभीजी अपनी बिदा वाली सुन्दर सी लाल साड़ी पहने बैठी हैं तथा उनके गले में किसीकी बाँह है। छोटे देवरों को भाभी को झिपाने के लिए ऐसे मौके पकड़ने की बहुत ताक रहती है। वह चुपके-चुपके आकर एक साथ कमरे में प्रकट हो गया। उसका प्रकट होना था कि कमरे में एकदम भगदड़ मच गयी। उसने देखा कि बिदा की लाल साड़ी पहने भाभी नहीं, भाभी की आया है; और उसके गले में बाँहें डाले खानसामा मेरा नीला शादी पर बनवाया गया सूट पहने बैठा है। दोनों गोल कमरे के सोफे पर बैठकर नाट्य कर रहे थे। इसके लिए वेशभूषा भी उचित होना चाहिए, इस कारण उन्होंने हमारे ही वस्त्र पहन लिये थे। और जो कुछ भी हो, उस दिन से मेरी पत्नी अपने कमरे में ताला लगाकर ही बाहर जाती हैं।

● डरेवर साहब

यह मेरे भैया के फार्म की दूसरी नौकर सम्बन्धी रोचक घटना है। बहुत दिनों से भैया को ऐसा लगता था कि उनके ट्रेक्टर का ड्राइवर सामान में कुछ गड़बड़ करता है। समय असमय चेतावनी के पश्चात् भी वह अनाज की कोठरियों में चला जाता था। मेला हाट अवश्य जाता था और खास बात यह थी कि आँख बचाकर निकल जाता था। कुछ दिनों के बाद यह स्पष्ट हो गया कि वह अनाज चुराकर हाट में बेचता है, और महीने दो महीने पर जब छुट्टी लेता है तब रुपया अपने घर ले जाता है। शंका थी, पर रँगे हाथों किसीने भी पकड़ा नहीं था। गाँवों में बदला लेने की रीति इतनी प्रबल है कि रँगे हाथों पकड़ने से सभी घबड़ाते थे कि कहीं सूनसान में—

गाँवों में सूनसान की कमी तो होती नहीं—एक लाठी से कपाल क्रिया न कर दी जाय। जब यह चोरी असह्य हो गयी तो भैया ने उसे पकड़ने का निश्चय किया। एक दिन उसे दूर की एक हाट पर काफी सामान लेकर भेज दिया गया जिससे कि उसकी कोठरी और सामान की तलाशी भली भाँति ली जा सके और जाना जा सके कि आखिर वह रुपया रक्खा कहाँ जाता है। उसके चले जाने के बाद उसके कमरे का निरीक्षण प्रारंभ हुआ। सारी जगहें देख डाली गयीं पर वह खजाना नहीं मिला उल्टा फर्श की खुदाई छिपाने के लिए उसको गोबर से लिपवाना पड़ा कि सफाई के नाम पर अपनी यह कारगुजारी छिपायी जाय। बक्स में देखा गया, कोई नकली पेंदी नहीं थी। अब कपड़ों की बारी आयी। तकिये की सीवन तक खोलकर देख डाली गयी। रजाई को छोड़कर और सब चीजों को भली भाँति देख लिया गया। गर्मी के दिन होते हुए भी रजाई बहुत करीने से रक्खी हुई थी। उसपर जब भैया न दो-चार हाथ इधर-उधर मारे तो एक स्थान पर कुछ कागज से इकट्ठे मालूम पड़े। बारीकी से निरीक्षण करने के पश्चात् पास में एक स्थान पर ताजी सिलाई भी दिखायी पड़ी। कागजों का बंडल होशियारी से निकाला गया। गिनने पर पता चला कि पूरे डेढ़ सौ के नोट हैं। गाँव में सौ रुपयों का मूल्य बहुत होता है। गिन-गिनाकर भइया ने वे नोट वहीं के वहीं रख दिये और उसी तरह रजाई सी दी।

हाट से लौटने पर ट्रैक्टर के डरेवर साहब की पहली निगाह अपनी कोठरी पर गयी। उसे लिपा-पुता पाया तो थोड़े चकराये। सीधे जाकर रजाई टटोलने के विचार से उसपर इधर-उधर झाड़ने का सा उपक्रम करते हुए हाथ मारे, और नोटों का अन्दाज लगाकर कि बाकायदा मौजूद हैं, वे सतुष्ट हो गये और भैया को बाजार-हाट का भाव इत्यादि समझाते रहे।

गाँवों में जहाँ कई बातों का कष्ट है कुछ आराम भी है। चोर को पकड़कर भी इस भाव से छूट गाँव में ही दी जा सकती है कि 'बच्चू माल लेकर जाओगे कहाँ?' भैया ने भी यही छूट दे रक्खी थी और अन्दर अपनी योजना बना रहे थे। एक दिन ट्रैक्टर के ड्राइवर ने घर जाने की छुट्टी माँगी। "भइयाजी! दुइ माह हो गये। हुकुम मिले तो दुइ-चार दिन जाइके घर की खबर लै आई।"

भइया ने कहा 'जब जा ही रहे हो तो जाओ शहर जाकर ट्रैक्टर का तेल पानी भी ठीक कराते लाना। दुइ रोज कहकर जाते हो और लगाते हो पूरे बीस दिन।

ड्राइवर ट्रैक्टर ले जाने की तैयारी करने लगा। भैया ने और नौकरों को भी इधर-उधर कर दिया। कुछ पुरानी पत्रिकाओं से सिनेमा की अभिनेत्रियों के सुन्दर-सुन्दर चित्र काटे। उनका वैसा ही बंडल बनाया जैसा रजाई में था। चित्रों के इस बंडल को नोटों के बंडल की जगह रखकर सी दिया गया और नोट निकाल लिये गये। शाम को डरेवर साहब आये, अपना सामान उठाया और घर की ओर चल दिये।

देखते क्या हैं कि दो ही दिन में डरेवर साहब वापिस चले आ रहे हैं। वैसे तो कहीं पन्द्रहियों में कई चिट्ठियाँ डालने के बाद उनके दर्शन हुआ करते थे।

भैयाजी ने दोनों गालों में पान जमाया, और वार्तालाप का रस लेने के लिए खटिया पर जमकर बैठ गये। अचरज भरी आँखों का नाट्य करते हुए बोले, "अबकी वायदा पूरा किये हो दुइ दिन में आये का। कहो गाँव माँ सब ठीक-ठाक है?"

डरेवर साहब ने खेतों की ओर निगाह करते हुए कहा 'सारी जुताई पड़ी है। हमरा घर में जीउ कैसे लागत?'

भैया जोर से बोले 'सुन लेओ सब कोई—कुछ सीखो। ऐसन फिकिर से काम करैं का चाही।' फिर ड्राइवर की तरफ मुड़कर बोले, "काहे आपन बिस्तर बक्स नाहीं लाये? का भवा?"

डरेवर खटिया के नीचे बैठ गया। थोड़ी देर इधर-उधर की बात करके बोला, "का बताई भैयाजी! हमरी रजाई में ना जाने कौन मेहरारुन का फोटो भर दिहिस। हम घर जायके मुन्ना की अम्मा के पास रजाई खोलें लागे तो का देखी कि उहमाँ मेहरारुन की ऐसेन-एंसेन फोटो रहें कि भैयाजी का बताई!"

भैया का हँसी के मारे बुरा हाल! पर जब उन्हें ज्यादा हँसी आती है तब वे एक पान मुँह में और रख लेते हैं। अपने को सँभालकर बोले, "का कहचौ? फोटो तुहरी रजाई माँ चली गयीं! अरे ऊ फोटो तो हमरे तकिया में सिली रहीं। हम आपन मन बहलावें के खातिर आपन तकिया खोला तो देखी का नोटइ नोट भरे हैं और मेहरारुन के फोटो गाइब हैं। लागत है कि घर भुतियाय गवा है!"

डरेवर साहब चुप बैठे रहे। शाम को दिशा-फराकत को जो गये तो फिर लौटकर नहीं आये।

नई गृहस्थी, पुराने अनुभव

● बोतलों की डाट के ऊपर अगर ग्लिसरीन लगा दी जाय तो शहद ऐसी चिपकती चीजों के बन्द करने से वे चिपकती नहीं और आसानी से खुल जाती हैं।

● चाय के कड़े से कड़े धब्बे छुड़ाने के लिए अंडे की जर्दी और ग्लिसरीन (बराबर हिस्सों में) उस स्थान पर लगाकर सूखने के लिए छोड़ दिया जाय, और बाद में ठंडे पानी से धो दिया जाय।

● पार्सल सीते समय जिस डोरी से पार्सल सिया जाय उस डोरी को यदि पहले भिगो लें तो एक तो डोरी बाँधते समय फिसलती नहीं, और दूसरे, सूख जाने पर डोरी कस जाती है और पार्सल ज्यादा मजबूती से बँध जाता है।

● खाकी रंग की उन कमीजों को जिनका रंग धोने से हल्का पड़ने लगता है, यदि परमंगनेट आफ पोटास के गाढ़े घोल में धोकर निकाल लिया जाय तो उनका रंग हल्का नहीं पड़ता।

● बोतल की डाटों को पैराफीन वैक्स में थोड़ी देर के लिए भिगो दिया जाय तो वो "ऐयर टाइट" और वाटर टाइट हो जाते हैं (अर्थात् उनमें होकर हवा और पानी नहीं जाता) और उनमें छेद करना या काटना भी आसान हो जाता है।

● तेल के रंग (पेंट या वार्निश) के खुले हुए डिब्बों का रंग रखे-रखे सूखकर सख्त हो जाता है। उसके लिए डिब्बे को ठीक से बन्द करके उलटा करके रख दीजिए। ऐसा करने से डिब्बे में हवा नहीं जा पाती और इस तरह रंग महीनों सूखने से बच जाता है।

● स्टिकिंग पलास्टर जब चिपक जाय और आसानी से न निकले तो अगर उसे यूकिलिप्टिस के तेल से भिगो दिया जाय तो वह आसानी से निकल आता है।

● काली लकड़ी के सामान को गर्म पानी से और सोडे से साफ कर दीजिए। उसके बाद तारपीन के तेल में भींगा हुआ कपड़ा लेकर पालिश कर दीजिए। उसके पश्चात् उसके ऊपर जैतून के तेल से भींगा हुआ कपड़ा फेर दीजिए। सामान नये की तरह चमकने लग जायेगा।

● अगर आपके कालीन या दरी के कोने मुड़ने लग जायँ तो उनके कोनों के नीचे थोड़ा सा वार्निश लगा दीजिए। वार्निश सूखकर उनको कड़ा कर देगा और वे मुड़ेंगे नहीं।

● प्लेट धोने के कपड़े को जब धोकर सुखाया जाय तो उनके ऊपर कुछ सिरके की बूंदें छिड़क दीजिए। इससे उसकी बदबू निकल जाती है।

● सेब छीलने से पहिले उन्हें कुछ मिनिटों के लिए गर्म पानी में डाल दीजिए। इससे उनका छिलका बहुत जल्द उतर जाता है।

●

अपनी बीबी, परायी बीबी

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

आजकल के जो विद्यार्थी बहुत तेज, चतुर तथा नामवर मालूम पड़ते हैं, जरा उनके भीतर देखिये तो पता चलेगा कि कितना खोखला है उनका जीवन और कितना खोखला है उनका मस्तिष्क। उनकी जवानी देखने में जितनी बुलन्द मालूम होती है, उतना ही नपुंसक होता है उनका शरीर। सूरत से वे जितने भले और सुन्दर मालूम होते हैं, उतना ही विषैला और गन्दा होता है उनका मन।

जब हम पढ़ते थे तो हम भी लड़ाकू, तेज और चपल थे, पर हम लड़ते थे इस बात पर कि परीक्षा में हमारा नम्बर कम क्यों आया, क्लास में हमारा नाम सबसे ऊँचा क्यों नहीं है? और हम वास्तव में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं अथवा नहीं?

पर, वह ज़माना चला गया। मैंने नये ज़माने में एम० ए० पास किया था। मुझे नौकरी की तलाश हुई। पर नौकरी को मेरी तलाश नहीं थी। भारत में स्वराज्य हो गया पर स्वराज्य को भारत नहीं मिला है। नौकरशाही अब भी है। उसके साथ और बहुत सी शक्तियाँ मिल गयी हैं। मुझे नौकरी मिलने के लिए सिफारिशों की जरूरत थी। पर मैं वह कहाँसे ले आता? मुझमें तड़क-भड़क नहीं थी अतएव मैं आई० ए० एस० न हो सका; मक्कारी नहीं थी, अतएव मैं पुलिस में भर्ती नहीं हो सका; कालेज का मैनेजर भी मेरी जाति का नहीं था, अतएव अध्यापक नहीं बन सका। एम० ए० फर्स्ट डिवीजन में पास़ किया था पर मेरे देखते-देखते थर्ड डिवीज़नवाले काम पा जाते थे, मैं देखता रह जाता था। बेकार आदमी की शादी जल्दी हो जाती है--और मैं भी बंधन में बँध गया। पर बीबी को शौहर के साथ पैसा भी चाहिए। वह जमाना गया जब औरतें "अन्धा, काना, दरिद्र, बहरा" कैसा भी पति हो उसकी सेवा करती थीं। वह जमाना चला गया जब एक पुरुष के साथ विवाह या बिना विवाह की अवस्था में सम्पर्क हो जाने पर स्त्री सदा के लिए अपने को निछावर कर देती थी। अब तो कोरा स्वार्थ पति-पत्नी के सम्बन्ध को जोड़े रहता है। मेरी स्त्री शादी के तीसरे दिन से ही मुझसे झगड़ा करने लगी। पढ़ी-लिखी बी० ए० पास थी न!

हम दोनों एक दूसरे के प्रति उदासीन हो गये। पर और लोग मेरी स्त्री के प्रति उदासीन नहीं थे। वह मेरे साथ जब से क्लब गयी है, क्लब में मेम्बरों की संख्या बढ़ गयी है। सरकारी कर्मचारी उसके साथ ताश खेलने के लिए उतावले रहते थे। मेरी भी पूछ होने लगी। सच मानिये कि यदि बीबी सुन्दर है तो किस्मत भी सुन्दर बन जाती है। मेरी स्त्री किसी बड़े आदमी की 'सचिव' बन गयी। जरा से धक्के में मैंने बदकिस्मती की दीवाल गिरा दी और एक जेल का सुपरिंटेंडेंट बन गया। मुझे नौकरी मिल गयी--पर बीबी हाथ से निकल गयी।

(२)

जिसकी बीबी परायी खाट पर लेटती हो, उसका पति यदि समूची स्त्री जाति से घृणा करने लगे तो क्या आश्चर्य है? जिसे प्रेम करे, वह अगर ठुकराकर दूसरे की गोद भर दे तो फिर इस अभागे प्रेमी का जीवन कितना कठोर, कितना भयंकर होगा? और उसे आत्महत्या करने से रोकना कठिन होता है।

पर मेरा समूचा क्रोध स्त्री-जाति पर अपनी सीमा लाँघ गया था। मेरी जेल में औरतों का वार्ड था। उसकी रक्षिका--मेट्रन अधेड़ पर सुन्दर, चपल व तेज़ थी। जिस दिन मैंने जेल में अपना पद सम्भाला, मुझे उससे घृणा हो गयी। मैं सोचा करता था कि यह औरत जेल में कितनों को प्रसन्न कर चुकी होगी। और इसका अभागा पति मन ही मन क्या सोचता होगा? मैंने तय कर लिया कि अपने इंस्पेक्टर जनरल को लिखूंगा कि इसका तबादला कहीं कर दिया जाय।

मैं अपनी मेज पर बैठा अपने अफसर को लिखने की सोच ही रहा था कि जेलर ने सूचना दी कि दफा ३०२ में हत्या के अपराध में एक औरत भर्ती होने आयी है। हे भगवान्, मैंने सोचा, ये औरतें अब दुनिया सर पर उठा लेंगी। वह औरत मेरे सामने पेश की गयी। मैं उसपर लगाये गये अपराध "चार्ज शीट" देखने लगा। उसने अपने पति की हत्या की थी। मेरे मन में आया कि उसका पति जरूर बेकार रहा होगा।

तब मैंने आँखें ऊपर उठायीं। उस पिशाचिनी औरत की ओर देखने के लिए। पर देखने में तो वह पिशाचिनी या हत्यारी नहीं प्रतीत होती थी। भोला सा, सुन्दर चेहरा था। अभी तीस वर्ष भी नहीं पार किया होगा। मैंने उसके चेहरे को जरा गौर से देखना चाहा। पर भली औरत की पहचान यही है कि घूरनेवाले के सामने आँखें नीची कर ले। उसकी आँखें नीची हो गयीं।

मैं उससे अनायास ही मूर्खता का सवाल कर बैठा। "तुम्हारे पति की और तुम्हारी उम्र में क्या अन्तर है?"

"मैं उनकी पाँचवीं स्त्री हूँ।"

"तुम उनसे घृणा करती थीं?"

"जी नहीं।" बड़ी सादगी थी उसके जवाब में।

"तब तुमने उसे क्यों मार डाला?" मैंने क्रोधपूर्वक पूछा।

"उन्होंने मुझे मार डाला।" उसने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

मैं पूछता ही गया।

"तब तुम यहाँ कैसे खड़ी हो?"

"उनके पापों का प्रायश्चित करने के लिए।"

अब उसने मुझसे एक प्रश्न पूछा--

"आप मुझसे यह सब क्यों पूछ रहे हैं?"

मैं समझ गया कि वह मूर्ख नहीं है। जेल के अफसर का कुछ पूछना या न पूछना अर्थ नहीं रखता। वह जवाब दे या न दे, यह तो उसके मन की बात है। उसकी धृष्टता पर जेलर साहब उसे डाँटने ही वाले थे कि आँखों से मैंने उन्हें मना करते हुए उससे कहा--

"मुझे तुम्हारे साथ हमदर्दी हो रही है।"

"हमदर्दी—हमदर्दी—हमदर्दी--मेरे साथ--"

वह चीख पड़ी और फिर फूट-फूटकर रो पड़ी।

(३)

बड़ी भयानक कथा थी उसकी। उसके पति का काम ही था नयी शादी करना और फिर कुछ समय बाद अपनी स्त्री को मार डालना। जो ग़रीब उस दुष्ट को अपनी कन्या सौंपते थे, उनको इस बात का पता भी नहीं था कि फूल सूँघकर फेंक देने से वह तृप्त नहीं होता था। फूल को मसलकर नष्ट कर देता था। खानदानी रईस था। वह अनेकों धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं का संचालन करता था। अतएव उसके घर लड़की ब्याहने के लिए सभी दरिद्र लड़कीवाले इच्छुक थे। किसीको पता नहीं था कि स्त्रियों के उपयोग और फिर उनकी हत्या में एक पैशाचिक सुख उसे प्राप्त होता था। मनोविज्ञान के पंडित इस प्रकार के "कामुक रोग" को भली प्रकार समझते हैं।

उस स्त्री का नाम था राधा। उसे संसार में जन्म देकर उसकी माँ ने अपना जीवन समाप्त कर दिया था। उसका पिता एक धनी परिवार में सेवक था। दिन-रात मेहनत करता, स्वयं सूखा खाना खाकर राधा का पालन करता। राधा ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयी उसका रूप और लावण्य निखरता गया। और भला एक मजदूर की लड़की की यह निधि छिप कैसे सकती थी? गाँव के बड़े लोग, तहसीलदार, कानूनगो, लेखपाल, सबकी निगाहें उधर खिंचती गयीं। पर जब तक पुलिस के दरोगा की निगाह नहीं पड़ी थी, राधा का कुछ नहीं बिगड़ा था। दरोगाजी की निगाह पड़ते ही उसके बूढ़े पिता की जान संकट में पड़ गयी और फिर तो वह आस-पड़ोस के हर अपराध में पकड़ लिया जाता और जेल की हवा खाता रहता। जीवन के साठ वर्ष उसके सच्चाई और ईमानदारी से कटे थे। और यह किसीने न पूछा कि पचास के पार वह एकाएक इतना नामी चोर कैसे हो गया?

जब तीसरी बार वह जेल से छूटकर आया, गाँव के एक पुराने रईस और भूतपूर्व जमींदार तथा अनेक सामाजिक संस्थाओं के संचालक महाशय की चौथी पत्नी का देहान्त हो गया। राधा की शादी तुरंत हो गयी और शादी के तीन दिन बाद बूढ़ा बाप बेचारा फिर पकड़ा गया और इस बार उसे डकैती के अपराध में बड़ी लम्बी सजा हो गयी। सुन्दर लड़की का पिता बनना भी बड़ा भारी अभिशाप है।

दो वर्ष तक २० वर्ष की राधा और ६५ वर्ष के उसके पति का जीवन ठिकाने से बीता। उसके विलासी पति ने राधा के यौवन की अग्नि में घी डालकर उसे सुखी तथा विलासी बना दिया था। वह राधा से इतना संतुष्ट था कि उसने स्वयं स्वीकार किया था कि मैंने चार स्त्रियाँ मार डाली हैं—पर "तुमको मैं अपनी आँखों की पुतली बनाकर रखूँगा।"

लेकिन रईस को सबसे बड़ा डर पुलिस का रहता है, खास कर ऐसे रईस को जिसने चार हत्याएँ की हों। पुलिस के दरोगा ने राधा के पति से साफ कह दिया कि वे भी राधा का उपयोग करना चाहते हैं। एक दिन राधा के पति ने उससे यह बात तो बतला दी, पर यह भी कहा कि "मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगा।"

दरोगाजी को यह बर्दाश्त नहीं था। जिसे पाने के लिए उन्होंने एक निरपराध व्यक्ति को बराबर जेल भेजा था, उसीको वह बूढ़ा खूसट उनके हवाले न करे? राधा के पति की उनके कमरे में हत्या की गयी—-उनके पेट में छुरा भोंक दिया गया और अपराध में पकड़ी गयी राधा जिसे दुश्चरित्र, दूसरे से "फँसी हुई", आवारा घोषित कर दिया गया।

दो दिन दो रात राधा पुलिस-हवालात में बन्द रही और उसपर जो कुछ बीती, उसे शब्दों में कहना कठिन है। उसे बलात्कार नहीं कहते हैं—वह 'आक्रमण' था।

वह रो-रोकर अपनी कहानी कह गयी। जेलर का कठोर हृदय भी पिघल गया था और मैं उस समय सोच रहा था--अपनी पत्नी की बात--पुलिस अफसर की स्त्री, तहसीलदार की स्त्री, राधा के पति की, अनेक स्त्रियों की--हर एक विवाहित पुरुष की स्त्री की बात। ये औरतें राधा के बारे में क्या सोचती होंगी?

मुकदमा तीन वर्ष तक चलता रहा। राधा भी बूढ़ी हो चली, उसका यौवन भी खिसक रहा था। उसका अपराध साबित हो गया था। सरकार ने भी उसे क्षमा करना अस्वीकार कर दिया था।

कल सुबह उसे फाँसी पर लटका दिया गया। आज मेरी पत्नी का पत्र मिला "मैं घर वापिस आ रही हूँ। सब जगह भटकने के बाद मैं सोचती हूँ कि जिसका हाथ पहली बार पकड़ा, वही नैया पार लगा सकता है।"

मनीआर्डर

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी

उस दिन मैंने उसे अपनी खिड़की के सामने खड़ा देखा। वह हाल ही में गाँव से आया लगता था। बहुत भोला सा लड़का था, जिसकी मसें भी भीगी नहीं थीं। मैला सा धारीदार पाजामा, एक लंबी आधे बाहों की कमीज पहिने खड़ा था। पास की खिड़की से मनीआर्डर बाबू ने उसे मेरे पास भेज दिया था, और वह भोलेपन से पूछ रहा था 'बाबूजी, क्या मेरा मनीआर्डर आया है?' मैंने व्यस्तता से उत्तर दिया "यह मनीआर्डर की खिड़की नहीं है।"

'नहीं बाबूजी, कृपया देख लीजिए। उधरवाले बाबूजी कह रहे हैं कि आज ही मनीआर्डर उन्होंने आपके पास देखा है। मेरा नाम रामपूजन है, देखिए न।' उसने गिड़गिड़ाकर कहा।

मैंने चिढ़कर उत्तर दिया, "कैसे आदमी हो जी तुम। डाकखाने में जिसकी खिड़की पर जो लिखा होता है, वह वही काम करता है। यहाँ पर क्या लिखा है, पढ़ना जानते हो।"

इतने में पास की खिड़की से खिलखिलाहट सुनाई पड़ी। मैं समझ गया कि उसको मेरे पास भेज कर मनीआर्डर बाबू ने उसे उल्लू बनाया है। मैंने उसे हँसकर एक बार देखा, और चुप रह गया। शायद वह भी समझ गया था, इसलिए झेंपकर चल दिया।

दूसरे दिन बाबू हीरासिंह की बड़बड़ाहट फिर सुनाई दी। "अबे! फिर आ गया तू ? नहीं आया तेरा मनीआर्डर। चला आता है; अबे कौन तुझे भेजेगा मनीआर्डर?" और मैंने देखा अपमानित हो सिर झुकाये वह चला जा रहा है।

तीसरे दिन काम कुछ हलका था। आसमान में बादल छाये हुए थे। अभी पानी बरस के रुका था। ठंडी पानी भरी हवा बह रही थी और धरती से सोंधी-सोंधी गंध उठकर नासापुटों में समाई जा रही थी। अतएव काम करना स्थगित कर मैं भी उस ठंडी हवा का आनन्द ले रहा था। इतने में मैंने देखा कि वर्षा से तर रामपूजन डाकखाने के एक कोने में खड़ा काँप रहा है। बार-बार उसकी निगाहें मनीआर्डर बाबू की खिड़की की ओर उठती हैं पर उसकी हिम्मत नहीं होती जो उधर कदम उठावे। मुझे उस दिन वह कुछ कृश सा लगा। शायद उसे पूरा भोजन भी नहीं मिल रहा था। एकाएक उसने कुछ निश्चय किया और कदम बढ़ाकर मनीआर्डर की खिड़की की ओर पहुँचा। उसे देखते ही बूढ़ा खुर्राट चिल्लाया, "अबे, आज भी आ गया सनीचर? बरसात का खयाल तो किया होता। शाहजादे साहब आपका मनीआर्डर नहीं आया, न आयेगा।"

मैंने देखा एक अजीब व्यथा की रेखा उसके चेहरे पर उभर आई है और उसकी आँखों में आँसू छलक उठे हैं। आज पहली बार मैंने उसे रोते देखा था। ऐसा लगा, वह टूट रहा है। मुझे कुछ ऐसी व्यथा हुई कि मैं कुर्सी छोड़कर बाहर आया। तब तक वह डाकखाने के बाहर जा चुका था। मैंने कदम बढ़ाकर जैसे ही उसके कंधे पर हाथ रखा, उसने मुड़कर देखा और वह सुबक पड़ा। न जाने क्यों मेरा अंतर भी भीग उठा। मैं उसे खींचकर पास की चाय की दूकान में ले गया। वह बोला, "बाबूजी, मैं चाय नहीं पीता।"

'नहीं पीते होगे, आज पीकर देखो।' सहानुभूति पाकर वह और भी सुबक पड़ा। धीरे-धीरे चाय पीकर उसका जी शांत हुआ तो उसने बताया कि वह हरसुला गाँव का रहनेवाला है। उसके पिता गाँव में अध्यापक थे। अत्यंत सात्विक ब्राह्मण थे। वह भी बचपन में अत्यंत मेधावी छात्र था। पिताजी को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। एक दिन गाँव में डाका पड़ा। डाकुओं ने सारा गाँव लूटा। उसके घर में भी घुसे। कुछ लूटने लायक न पाकर उसकी बहिन को उठाकर ले गये। उसके पिताजी इस धक्के को न सह सके और दो महीने बाद चल बसे। मृत्युशय्या पर उन्होंने यह ही कहा था कि बेटा पढ़ाई मत छोड़ना। उच्च शिक्षा से ही जीवन में तरक्की के रास्ते खुलते हैं। इसलिए जहाँ तक हो सके अधिक से अधिक पढ़ाई करना। उनकी मृत्यु के बाद उसने किसी तरह से हाईस्कूल पास किया। घर पर एक छोटा भाई व विधवा माँ है। चाचा हैं, और उनका परिवार है। वे गाँव में पंडिताई व मंदिर की पूजा करके जो कूछ पाते हैं उसीसे गुजारा चलता है। हाईस्कूल पास करने के बाद चाचा ने विवाह करके गाँव में मास्टरी करने को कहा। पर उसे पिताजी के शब्द याद हैं। अतएव वह पढ़ना चाहता था। चाचा ने आज्ञा की अवहेलना पाकर उसे घर से निकाल कर कह दिया है कि वह जो चाहे सो करे, मरे या जिये पर बिना कमाई किये घर में पाँव न रखे। उसके मामा दिल्ली में नौकरी करते हैं। उन्हें चिट्ठी लिखी थी, तो उनका जवाब आया कि घर पर चिट्ठी मत लिखा करो। मामी पढ़ लेती हैं। वे मनीआर्डर से कुछ रुपये जरूर भेज देंगे। उसी मनीआर्डर की खोज में वह रोज पोस्टआफिस आता है।

बाहर बरसात फिर प्रारम्भ हो गयी थी। अंदर भी कुछ ऐसा था जो बरस रहा था। धीरे से दार्शनिक की भाँति बोला, "शायद अब मनीआर्डर नहीं आवेगा। अब गाँव लौटूँ भी तो किस मुँह से? कालेज में फीस जमा करने की आखिरी तारीख पास आ रही है, शायद पढ़ाई जीवन में नहीं लिखी।" मैंने उसे विश्वास दिलाया, "नहीं जी, कल तुम्हारा मनीआर्डर जरूर आवेगा। कल तुम जरूर आना। आज तुमने कुछ खाया है या नहीं? वहाँ कहाँ रहते हो?" उसने बताया वह गाँव के लड़कों

के साथ रहता है। माँ ने कुछ आटा बाँध दिया था, वह खत्म हो गया है और वह दो दिन से भूखा है। मैंने उसे नाश्ता मँगाया तो उसने बड़े संकोच से खाया। मैंने उसे कुछ पैसे देने चाहे पर शिष्टतापूर्वक मना करके वह चल दिया।

दूसरे दिन डाकखाने पहुँचा तो देखा कि बूढ़े हीरासिंह की कुर्सी को चारों ओर से घेरकर अन्य बाबू बैठे हैं। कुछ फुसफुसाहट चल रही है। मैंने पूछा "क्या उस लड़के का मनीआर्डर आया है?" बूढ़े खुर्राट ने कटूक्ति करते हुए कहा, "अच्छा तो बीमारी आपको भी लग गयी! आज उसका मनीआर्डर आ जावेगा।" कहते हुए वह हँसा और सब मुस्कुराये। मेरा माथा ठनका, पर मैं चुप रहा।

थोड़ी देर में रामपूजन आया। झिझकते हुए वह मनीआर्डर की खिड़की की ओर बढ़ा। पूछा, 'बाबूजी, मेरा मनीआर्डर आ गया।"

हंसते हुए बूढ़ा हीरासिंह बोला, "आओ शाहजादे, अजी शाहजादों का मनीआर्डर नहीं आवेगा तो किसका आवेगा?"

लड़का खड़ा रहा। थोड़ी देर में धीरे से बोला "तो दीजिए न।"

"हाँ, हाँ लो पर यहाँ तुम्हें कौन जानता है, तुम्हारी तस्दीक कौन करेगा।"

'जी, पासवाले बाबूजी मेरी गवाही कर देंगे।' वह बोला।

'हाँ भाई, वह तो करेंगे ही। ये लो उनसे गवाही करा लाओ।' कहकर बूढ़े ने एक भरा हुआ मनीआर्डर फार्म उसकी ओर बढ़ा दिया।

लड़का वह मनीआर्डर मेरे पास लाया। उसके प्रत्येक रोम से खुशी फूटी पड़ रही थी। उसका मनीआर्डर आ गया था। उसने फार्म मेरी ओर बढ़ाया। उस पर किसी डाकखाने की मुहर नहीं थी। स्पष्ट था, लड़के को बेवकूफ बनाने के लिए नकली मनीआर्डर भर कर थमा दिया गया था। मुझे यह क्रूर मजाक ऐसा लगा जैसे किसीने छाती में मुक्का मार दिया हो। मैंने धीरे से उससे कहा, "भाई तुम्हारा मनीआर्डर नहीं आया है, यह तो नकली मनीआर्डर है, इस पर किसी डाकखाने की मुहर नहीं है।"

इतने में पास की कुर्सियों से जोर का ठहाका उठा और हीरासिंह के शब्द "अजी मनीआर्डर आया है, शाहजादे का मनीआर्डर!"

लड़का पल भर में सब समझ गया। उसका मुख पीला पड़ गया जैसे हरे वृक्ष को बिजली झुलसा दे। वह तेजी से भागा। इसके पूर्व कि मैं उसे रोकूँ वह आँखों से ओझल हो चुका था।

डाकखाने से लौटते समय मैंने सोचा कि उसका पता लगाऊँ पर कुछ ऐसा व्यस्त हुआ कि चाह कर भी कुछ न कर सका। मन अनेक दुश्चिताओं से भरा रहा।

अगले दिन डाकखाने पहुँचा तो देखा बूढ़ा हीरासिंह सकपकाया सा बैठा है। बोला, "सुनो शर्मा, उस तुम्हारे वाले लड़के का मनीआर्डर आया है, हरसुला के रामपूजन का। पोस्टमैन अभी ले गया है।" दुपहर को पोस्टमैन ने आकर बताया कि 'उसके साथियों के कहे अनुसार वह कल दोपहर से गायब है।' मेरी आँख में न जाने क्यों आँसू आ गये। जब दो-तीन दिन तक मनीआर्डर डिलीवर नहीं हो सका तो अन्य सहयोगी फुसफुसा कर हीरासिंह को दोष लगाने लगे और वह चिल्लाकर उन पर प्रत्यारोप लगाता रहा। बाद में सब भूल गये। एक अनखिले फूल के मुरझाने की आशंका से मन बहुत दुखी रहा।

वातावरण बदलने के लिए सोचा कि छुट्टी में गाँव हो आऊँ। वर्षा ऋतु, हरीतिमा से ढँका धरती का दुकूल व झूलों के पेंगों से कुछ शांति मिली। लौटा तो अर्द्ध रात्रि थी। स्टेशन पर भारी वर्षा हो रही थी। कोई रिक्शावाला चलने को तैयार नहीं हुआ। सोच ही रहा था कि क्या करूँ कि इतने में एक रिक्शा आया। रिक्शेवाले ने आते ही कहा "आइए बाबूजी।" मैंने घर का पता बता कर पूछा, "क्या लोगे।" वह बोला, "चलिए भी, जो दें दें।" और मुझे बैठाकर चल पड़ा। घर पहुँच कर पैसे निकालने लगा तो रिक्शावाला बोला, "रहने भी दीजिए।"

मैं चौंक पड़ा। ध्यान से देखा तो वह रामपूजन था। मैं खुशी से खिल पड़ा। सीनों पर रखी शिला उतर गयी। मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा, "अरे रामपूजन, तुम! तुम कहाँ थे भाई, तुम्हारे मामा का मनीआर्डर कई दिन आया पड़ा है, सच कहता हूँ भाई?"

रामपूजन ने गंभीरता से उत्तर दिया, "उसे वापिस कर देना साहिब। मामाजी भी कोई बड़े आदमी तो हैं नहीं, उनके बच्चों को तकलीफ होगी। मैंने यह काम शुरू कर दिया है। रात में रिक्शा चलाता हूँ। दो-चार दिन में कालेज की फीस जमा करके पढ़ने लगूँगा। अच्छा है, किसी पर भार बनकर न जीऊँ।"

मैं उस युवा तपस्वी को देखकर दंग रह गया। श्रद्धा से मेरा मन अभिभूत हो उठा। इतने में वह मुड़ कर चल दिया। मैंने चिल्लाकर कहा, "पैसे तो ले जाओ रामपूजन"।

"पैसे आपसे नहीं लूँगा साहिब, मेरे पिताजी जीवित होते तो क्या उनसे पैसे लेता?" कहता हुआ वह बढ़ गया।

आदृष्टिप्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया
निर्वृत्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति।
दत्त्वैकं सशुचा गृहं प्रतिपदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे
माभूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितः॥

(अमरुक)

जहाँ तक रास्ते पर दृष्टि जा सकती थी, वहाँ तक प्रिय के पगों के पड़ने की प्रतीक्षा करती रही (प्रोषित-पतिका नायिका), पर उचक-उचककर देखते-देखते थक गयी, रास्ता चलना बन्द होने लगा, दिन ढलने लगा, धुंध छाने लगी, तब लाचार होकर नायिका ने बड़ी मुश्किल से एक पग ज्यों ही दरवाजे की ओर मोड़ा कि एकाएक उसके चित्त में आशा की कोर जगी कि कहीं इस बीच प्रिय आ न गये हों और उसने रास्ते की ओर झटके से गर्दन घुमाकर एक बार और निहारा।

दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्ट्यैव नेन्दीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभिः।
दत्तः स्वेदमुचा पयोधरभरेणार्घ्यो न कुम्भाम्भसा
स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतः त व्या कृतं मंगलम्॥

(अमरुक)

जब प्रिय ने घर में प्रवेश किया तो विरह-दुर्बल नायिका ने अपने ही अंगों और उपांगों से स्वागत की मंगलविधि सम्पन्न की। वन्दनवार नीले कमलों से नहीं, अपनी एक-तान विस्फारित दृष्टि से तानी, पुष्पाञ्जलि कुन्द-चमेली के गुच्छों से नहीं अपनी एक मुसकान से दी, अर्घ्य घड़े के जल से नहीं स्वेद भरे पयोधरों से झुककर प्रदान किया। प्रेम का स्वावलम्बन हो तो ऐसा हो।

कोपो यत्र भृकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं
यत्रान्योन्यं स्मितमनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः।
तस्य प्रेम्णः तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे म युमोक्षः खलायाः॥

(अमरुक)

प्रौढ़ा खण्डिता नायिका है। अपराधी प्रियतम पैरों पड़कर मना रहा है और वह मान नहीं रही है, उलहना भी अपने को देती है—कहाँ तो वह प्रेम था जब कि भौंहों में बल पड़ जाना ही कोप की परा सीमा हो जाये, चुप्पी साध लेने से ही सबसे कड़ा दण्डविधान हो जाता था, एक दूसरे की ओर मन्द मुसकरा देने मात्र से रिझाने की पूरी प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती थी और नजर का झुक जाना ही प्रसन्नता का बोध करा देता था; और कहाँ यह उसकी दुर्दशा कि तुम मेरे पैरों पड़े हो और मुझ दुष्टा का मान तना का तना हुआ है।

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते
मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुतां दूरे कुरु प्रेयसि।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना
नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति।

(अमरुक)

एक प्रौढ़ सखी नायिका को समझाती है, जो देखने में मुग्धा है, पर है प्रेम की प्रौढ़ि में पगी हुई—अरी अबोध, इस अबोधता में सारी जिन्दगी गुजार देने का संकल्प किया है क्या, कुछ तो मान करना सीखो, कुछ देर तो धैर्य बाँधे रहो और अब तो यह सिधाई छोड़ो। सखी के इस सिखावन का उत्तर नायिका ने ऐसे सहमे स्वर में दिया कि वह सखी बिचारी परास्त हो गयी—अरी, जरा आहिस्ते बोलो। मेरे हृदय में ही प्राणेश्वर बैठा है, कहीं सुन न ले।

न जाने सम्मुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये।
सर्वाण्यंगानि किं यान्ति नेत्रतामुतकर्णताम्॥

(अमरुक)

नहीं जानती, प्रिय जब आकर मीठी-मीठी बातें करने लगते हैं तो मेरे समस्त अंग नेत्र बन जाते हैं या श्रोत्र।

संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः
संगे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे।

(चैतन्य महाप्रभु)

उसके संयोग और विरह के बीच, मुझे विरह ही बड़ा दिखता है, क्योंकि संयोग में तो केवल वही अकेली सामने रहती है पर विरह में समस्त त्रिभुवन उसके साथ तन्मय दिखने लगता है।

अकिञ्चिदपि कुर्वाणो सुखैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।

(भवभूति)

जो जिसका प्रिय होता है, वह उसके लिए बहुत बड़ी निधि होता है। इस निधि का होना ही ऐसा आश्वासन होता है कि वह कुछ भी न करे, केवल सुखी रहे, इतने से ही समस्त दुःख कट जाते हैं।

पृथ्वी पर नरक—

बाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित,
मित्र मतिहीन, सूम स्वामी उर आनिए।
पर घर भोजन, कुपुर निवास बस,
केशौदास वरषा प्रवास दुख दानिए।
पापिन के संग अंग, अंगना अनंगबस,
अपजसजुत सुत, चित हित हानिए।
मूरखता, बुढ़ाई, व्याधि, दारिद, झुठाई-याद—
ये ही हैं नरक! परलोक न बखानिए।

कसाई द्विजराज—

सिंधु के सपूत-सुत सिंधुतनया के बंधु,
मंदिर अमंद सुभ सुंदर सुधाई के।
कहै 'पदमाकर' गिरीस के बसे हौ सीस,
तारन के ईस, कुल-कारन कन्हाई के
हाल ही के बिरह बिचारी ब्रज-बाल ही पै,
ज्वाल से जगावत जुआल-सी जुन्हाई के।
ए रे मतिमंद चंद! आवति न तोहि लाज
ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के।

रे मन!—

प्रेम-समुद्र परचौ गहिरे, अभिमान के फेन रह्यौ गहिरे मन!
कोप-तरंगनि तैं बहिरे, अकुलाइ पुकारत क्यों बहिरे मन?
'देवजू' लाज-जहाज तें कूदि, भज्यौ मुख-मूँदि अजौं रहि
रे मन!
जोरत-तोरत प्रीति तु ही, अब तेरी अनीति तुही सहि
रे मन!

विवशता—

धारति ही बन्यौ ये ही मतौ,
गुरु लोगन को डर डारत ही बन्यौ।
हारत ही बन्यौ हेरि हियौ,
'पदमाकर' प्रेम पसारत ही बन्यौ॥
बारत ही बन्यौ काज सबै बरु,
यौं मुखचंद्र निहारत ही बन्यौ।
टारत ही बन्यौ घूंघट कौ पट,
नंदकुमार निहारत ही बन्यौ!

वरिआई लखौ इनकी उलटी!—

पहिलें बिन जाने-पिछाने बिना,
मिलीं धाइकैं आगो बिचारे बिना।
अपने सों जुदा ह्वै गयीं तुरतै,
निज लाभ औ हानि बिचारे बिना।
'हरिचंदजू' दोष सबै इनकौ,
जो कियौ सब पूँछि हमारे बिना।
बरिआई लखौ उलटी इनकी,
अब रोवहिं आपु निहारे बिना!

फल चाखौ!—

धाइकैं आँगें मिलीं पहिलें
तुम कौन सौं पूँछिकैं, सो मोहि भाखौ।
त्यौं तुमहीं तजिकैं सब लाज,
केहिके कहैं एतौ कियौ अभिलाखौ।
काज बिगारि सबै अपनौं,
'हरिचंद जू' धीरज क्यों नहिं राखौ?
क्यों अब रोइकैं प्रान तजौ,
अपने किये कौ फल क्यों नहिं चाखौ?

अभिसारिका का रक्षक—

'कौन हूँ हेत कै जाति चली,
वलि बीती निसा अधिरात प्रमानै?'
'हौं 'पदमाकर' भावती हौं,
निज भावते पै अबही चलि जानै।'
'तौ अलबेली! इकेली डरै किन?'
'क्यौं डरौं मेरे सहाइक लानै।
हे सखी! संग मनोभव-सौ भट,
कान लौं बान सरासन तानैं!"*

केशवदास की अभिसारिका का रक्षक—

"लीन्यौं हमें मोल?" "अनबोली आयी जानौं मोहिं?
मोहि घनश्याम! घनमाला ये बुलाई है।"
"भयौ ह्वैहै दुख जहाँ नेकु न दिखायी देत,
देखी कैसें बाट?" "'केशौ' दामिनी दिखायी है।"
"ऊँचे-नीचे बीच कींच कंटकन पीरैं पाँव?"
"सहज गयन्द-गति अति सुखदायी है।"
"भारी भयकारी निसि! निपट अकेली तुम!"
"नाहीं प्राननाथ! साथ प्रेम जो सहाई है!"

---

*यह संस्कृत के एक पुराने श्लोक की छाया मालूम होती है।

क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे,
प्राणाधिपो वसति यत्र जनः प्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले!
नन्वस्ति पुंखितशरो मदनः सहायः॥

मनोरंजक संस्मरण

महापंडित राहुल सांकृत्यायन और आगरा

सन् १९१५-१६ की बात है।' मैं 'आर्य्यमित्र' का सम्पादक नियुक्त हुआ था। तब यह साप्ताहिक आगरा से निकलता था। मुझसे पूर्व श्री पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी उसके सम्पादक थे। उन दिनों आगरा में एक 'आर्य्य मुसाफिर विद्यालय' भी था। इसमें दूर-दूर के आर्य नवयुवक 'इसलाम' के विरुद्ध साहित्य का अध्ययन करते थे। उन दिनों इस विद्यालय में महाशय महेशप्रसाद और पं० केदारनाथ पाण्डेय भी छात्र थे। जब इन छात्र नवयुवकों को यह ज्ञात हुआ कि मैं पं० नाथूराम शंकर शर्मा का पुत्र हूँ तो वे दोनों कृपा कर मेरे पास आने लगे। उन दिनों 'आर्यमित्र' कार्यालय और प्रेस बागमुजफ्फर खाँ मुहल्ले में थे। शाम को कार्यालय में आगरा के प्रायः सभी साहित्यिक एकत्र होते थे। इनमें पं० सत्यनारायण कविरत्न, पं० बदरीनाथ भट्ट, पं० केदारनाथ भट्ट, अध्यापक रामरत्न, पं० ब्रजनाथ गोस्वामी, पं० विश्वेश्वरदयालु चतुर्वेदी आदि मुख्य थे। यह मिलन-व्यवस्था पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी के समय से थी। मेरे ऊपर भी सबकी कृपा रही। अर्थात् उपर्युक्त साहित्यिक सज्जन निरन्तर मेरे पास भी आते रहे। इन्हीं में 'महेश बाबू' और 'केदार पांडे' भी सम्मिलित हो गये। हम सब लोग लगभग समवयस्क नवयुवक थे। दो-तीन वयोवृद्ध भी थे। खूब हँसी-दिल्लगी रहती थी और साहित्य-चर्चा भी। और सब तो हँसते-बोलते थे परन्तु केदार पाण्डेय मौन-मूक गम्भीर बने बैठे रहते थे। मैं हँसी में कहता—केदार पाण्डे, आप तो बुद्ध भगवान् की भाँति शान्त मुद्रा में बैठे रहते हैं? कुछ नहीं कहते। और भी सब लोग इन्हें 'बुद्ध भगवान्' कहने लगे। थोड़े दिनों बाद 'महेश बाबू' और 'केदार पांडे' दोनों आगरा छोड़ गये। महेश बाबू तो अरबी-फारसी के फाजिल 'मौलवी' बनकर हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हुए और 'केदार पांडे' पहले रामोदार कहाकर फिर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के रूप में विख्यात हुए।

मौलवी महेशप्रसाद आगरा आते तो मेरे साथ ही ठहरते थे। पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने अपने मित्र महेशप्रसादजी से पूछा—क्यों भाई, यह राहुल सांकृत्यायन कौन है? इसकी आजकल बड़ी धूम है। महेश बाबू बोले—'अरे तुम नहीं जानते! यह तो वे ही 'केदार पांडे' हैं, जिन्हें तुम 'बुद्ध भगवान्' कहा करते थे।' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और हर्ष भी कि मेरे एक पुराने मित्र 'केदार पांडेय' कितने विख्यात और विद्वान् हो गये हैं।

इसके बीस दिन बाद राहुल बाबा मेरे घर पधारे और बोले—'मुझे पहचानते हो, मैं कौन हूँ? अरे मैं हूँ 'केदार पांडे—अब राहुल!' फिर क्या था हम दोनों परस्पर चिपट गये और बड़े प्रेम से बातचीत करने लगे। राहुल बाबा ने साथ-साथ भोजन किया और बड़ी बेतकल्लुफी से पुरानी चर्चाएँ चलाते रहे। वे बोले—"महेश बाबू ने मुझे लिखा था कि तुम मुझे कोई अपरिचित और अजनबी आदमी समझ रहे हो! मैंने सोचा चलो, ऐसी हालत में हरिजी भाई से मिला जाय। सोई मिलने चल पड़ा।"

राहुलजी को मैंने अपने मित्र स्व० सेठ रतनलाल जैन के यहाँ बड़े आराम से ठहराया। वे उस समय तीन दिन रहे। स्थानीय नागरीप्रचारिणीसभा में कई व्याख्यान भी कराये। व्याख्यानों में उन्होंने आगरा से अपने पुराने सम्बन्ध की विस्तृत चर्चा की और मेरे प्रति भी पुराने प्रेम की बातें बतायीं इसके पश्चात् दो बार और आगरा आये और बन्धुवर श्री हृषीकेश चतुर्वेदी के यहाँ बड़े ठाठ से ठहरे। मुझपर तो उनकी सदैव ही निःसंकोच कृपा रही।

सन् १९५७ के अगस्त में, मेरे सम्बन्ध में एक लेख लिखते समय महापण्डित लिखते हैं—

"......आगरा के वे दिन याद आते हैं, जिन्हें बीते चालीस साल से भी अधिक हो चुके हैं। ...पं० हरिशंकर शर्मा के हाथ में जब 'आर्यमित्र' आया तो उसके लेखों में विचित्र स्फूर्ति दिखलाई पड़ती थी। सम्पादक सभी लेखों को नहीं लिखता, पर उनके चयन करने और सँवारने में भी बड़ी प्रतिभा की आवश्यकता होती है। ...'आर्यमित्र' उतना जनप्रिय कभी नहीं हुआ, जितना कि पं० हरिशंकर शर्मा के सम्पादकत्व में हुआ।...शर्माजी उर्दू कविता के बड़े मर्मज्ञ हैं।......"

एक बात और, जब राहुलजी आगरा में छात्र थे तो मेरे साथ एक बार वे मेरे पिताजी से मिलने हरदुआगंज भी गये थे और दो दिन ठहरे थे।—हरिशंकर शर्मा

रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, बी० ए०, सी० आई० ई०

बाबू व्रजनन्दनसहाय

रायबहादुर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, सी० आई० ई०, का जन्म २७ जून सन् १८३८ ई० को चौबीस परगना के अन्तर्गत "कांटालपाड़ा" नामक ग्राम में हुआ था। यह ग्राम नैहाटी स्टेशन के पास है। यह भागीरथी के किनारे है। इनके पूर्वज हुगली जिला के "देशमुखा" ग्राम में वास करते थे। ये लोग फुलिया श्रेणी के कुलीन ब्राह्मण थे। इनके प्रपितामह रामहरि चट्टोपाध्याय, अपने मातामह की सम्पत्ति के अधिकारी होकर "कांटालपाड़ा" चले आये। तब से इनके वंश के लोग इसी ग्राम में रहने लगे। बंकिम ने अपने इस पैत्रिक निवास को भी छोड़ दिया। आप कलकत्ते चले आये और नं० ५ प्रताप चैटर्जीज़्लेन, पटलडंगा, में रहने लगे।

इनके पिता का नाम यादवचन्द्र चट्टोपाध्याय था। ये एक असाधारण शक्तिसम्पन्न पुरुष थे। ये बहुत दिनों तक डेप्युटी कलेक्टर रहे। अन्त में पेन्शन पाकर सुख से अपने समय को व्यतीत किया। लड़कपन में बंकिम अपने पिता के साथ ही रहते थे। उस समय इनके पिता मेदिनीपुर में काम करते थे।

पाँच वर्ष की उम्र में बंकिम का विद्याध्ययन आरम्भ हुआ। पहले ही दिन बालक बंकिम ने अपनी तीव्रबुद्धि और प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया। पहले ही दिन में इन्होंने समस्त वर्णमाला सीख डाली। इस घटना को देखकर इनके आदिगुरु इनकी तीक्ष्ण बुद्धि और विलक्षण स्मरणशक्ति की प्रशंसा आजन्म करते थे। सात वर्ष की उम्र में बंकिम स्कूल भेजे गये। अभी तक इनके पिता मेदिनीपुर ही में थे। अतएव मेदिनीपुर के अँगरेजी स्कूल में इनका नाम लिखाया गया। यहाँ भी बंकिम अपने असाधारण गुणों से अपने शिक्षकों को विस्मित और मुग्ध करने लगे। यहाँ इनको बराबर "डबल प्रमोशन" होता रहा। ये अपनी क्लास के सर्वोच्च स्थान के सदा अधिकारी बने रहे। पिता की बदली हो जाने के कारण, १२ वर्ष की उम्र में, ये हुगली-कालेज में भरती हुए।

अपने यश के साथ इन्होंने इस कालेज की भी यशोवृद्धि की। क्लास की निर्दिष्ट पुस्तकावली पढ़ने से ही बंकिम की विद्या-तृष्णा नहीं बुझी। अतएव पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन चाहे न हो, ये शिक्षकों से लुका-छिपाकर कालेज के पुस्तकालय के अनेक ग्रन्थों का पाठ करते थे। किन्तु परीक्षा के कुछ दिन पहले पाठ्य पुस्तकों को ऐसा मन लगाकर पढ़ते थे कि परीक्षा में सर्वोच्च स्थान अधिकार कर पुरस्कार अथवा छात्र-वृत्ति भी पाते थे। यथासमय बंकिम ने "सीनियर स्कालर्शिप" परीक्षा पास की। स्वर्गीय जज द्वारकानाथ मित्र को छोड़कर इनके समान प्रतिभाशाली छात्र तब तक हुगली कालेज में नहीं हुआ था। कालेज में पढ़ते समय बंकिम को संस्कृत सीखने की अभिलाषा हुई। कालेज से आकर ये नित्य पाठशाला में संस्कृत पढ़ने जाने लगे और तीन-चार वर्ष तक के परिश्रम से इन्होंने संस्कृत में खूब अभिज्ञता प्राप्त कर ली। हुगली कालेज का अध्ययन समाप्त होने पर ये कानून पढ़ने कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में गये। इसी समय, सन् १८५२ ई० में, कलकत्ता विश्वविद्यालय में पहले पहल बी० ए० परीक्षा का आरम्भ हुआ। कानून पढ़ना छोड़कर बंकिम बी० ए० परीक्षा के लिए परिश्रम करने लगे। तब परीक्षा में केवल दो महीने शेष रह गये थे। इसी दो मास के परिश्रम से प्रतिभावान बंकिम ने प्रशंसा सहित बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। इस समय इनकी उम्र सिर्फ २० वर्ष की थी। भारतवर्ष में सबसे पहले बी० ए० यही हुए।

हालिडे नाम के साहब इस समय बंगाल के छोटे लाट थे। इनके गुणों से मुग्ध होकर लाट साहब ने इनको डेपुटी मेजिस्ट्रेट बनाया। २० वर्ष की उम्र में बंकिम ने जसोर जाकर डेपुटी के पद को सुशोभित किया। यहीं सुप्रसिद्ध नाटककार दीनबन्धु मित्र के साथ इनका परिचय हुआ। यही दीनबन्धु, और पुलिस के एक उच्च कर्मचारी, जगदीश नाथ राय, इनके अन्तरंग मित्र हुए। इन्हीं दीनबन्धु बाबू को बंकिम ने अपना "मृणालिनी" उपन्यास प्रणयोपहार स्वरूप समर्पण किया है, और विषवृक्ष जगदीशनाथ को अर्पित कर अपने स्नेह का परिचय दिया है।

कई कारणों से यौवन के कुछ दोषों में बंकिम लिप्त हो गये थे। अर्थात् पानदोष और उसके अन्यान्य आनुषंगिक दोषों के पाले इस समय ये पड़ गये थे। किन्तु वयोवृद्ध होने पर ये अवश्य सुधर गये थे। क्योंकि आगे इनका आचार शुद्ध और भाव पवित्र हो गया था।

११ वर्ष की उम्र में बंकिम का विवाह हुआ। किन्तु विवाह के ५-६ वर्ष बाद इनको पत्नी-वियोग हुआ। २० वर्ष की उम्र में, जब बंकिम जसोर में थे, इन्होंने दूसरा विवाह किया। इनकी यह साध्वी सहधर्मिणी इनकी चिरसंगिनी रहकर अन्त में पतिशोक से कातर हुई। अपनी स्त्री के विषय में इन्होंने लिखा है—"हमारे जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव हमारी पत्नी का पड़ा है। हमारी जीवनी लिखने के लिए बैठने पर उसकी भी जीवनी लिखनी पड़ेगी। यदि हमारी पत्नी न रहती तो आज हम क्या हो जाते, सो नहीं कहा जा सकता। वह हमारी नीतिगुरु, धर्म-गुरु, सभी कुछ है।" जिसके विषय में विज्ञ बंकिम ने स्वयं ऐसा कहा है, उसके गुणों की प्रशंसा और लोग क्यों न करेंगे? यही कारण है कि बंकिम के उपन्यासों का आधा भाग, नहीं सारमय भाग, उनकी स्त्री ही की कृपा का फल है। अर्थात् उन्हीं के प्रभाव

से उसकी सृष्टि हुई है। इनके उपन्यासों के देखने से विदित होता है कि स्त्रियों पर इनकी आन्तरिक श्रद्धा थी। स्त्रियों के विषय में, एक स्थान पर, बंकिम ने लिखा है कि —"रमणी क्षमामयी, दयामयी और स्नेहमयी होती हैं। वे ईश्वर की कीर्ति का सार भाग हैं, देवताओं की छाया हैं। रहे पुरुष सो वे तो देवताओं की सृष्टि हैं। स्त्रियाँ आलोक हैं, पुरुष छाया।"

हुगली कालेज में पढ़ते समय बंकिम ने "संवाद-प्रभाकर" और "साधु-रंजन" नामक पत्रों में कविता लिखना आरम्भ किया था। कविता में इनके प्रथम गुरु ईश्वरचन्द्र गुप्त बंगला के सुप्रसिद्ध कवि थे।

जसोर में यथोचित विचार-क्षमता दिखाकर बंकिम कांथी गये, और वहाँ से खुलना। वहाँ नील के साहबों का इन्होंने यथेष्ट शासन किया। इनके डर से मरेलगंज वाले "मरेल" और "हिल" साहब खुलना से भागकर आसाम चले गये। किन्तु वहाँ भी बंकिम का वारंट पहुँचा। अन्त में उन लोगों को राजदण्ड भोगना पड़ा। तभी से उस प्रान्त में नीलवाले साहबों का उपद्रव बहुत कम हो गया। जो लोग नील के साहबों को जानते हैं वे कह सकते हैं कि इस काम के करने में बंकिम ने कितना साहस किया था। यही नहीं, यहाँ रहकर इन्होंने उन लुटेरों को भी राजदण्ड दिया जो खुलना से सुन्दरवन के जल-पथ पर लोगों को लूट लिया करते थे।

खुलना से इनकी बदली चौबीस परगना के अन्तर्गत वारुईपुर को हुई। इसी समय हाईकोर्ट के जज प्रिन्सेप साहब को एक कमीशन में जाना पड़ा। अतएव बंकिम बाबू कुछ दिनों के लिए इस पद पर अधिष्ठित हुए। किन्तु केवल दो चार ही मास इस पद को सुशोभित कर डेपुटी होकर बरहमपुर गये।

बीच में कुछ दिनों के लिए बंकिम बाबू लाट साहब के दफ्तर में "असिस्टेन्ट सेक्रेटरी" के पद पर नियुक्त हुए थे। किन्तु मेकाले साहब से इनकी न बनी। अतएव इनको फिर अलीपुर जाकर डेप्युटी की कुरसी सुशोभित करनी पड़ी। नौकरी के कारण इन्हें किन-किन स्थानों को जाना और कौन-कौन सा काम करना पड़ा, इसका विवरण इस छोटे से प्रबन्ध में नहीं हो सकता। यहाँ पर उल्लेख की हुई दो एक घटनाओं से ही लोग समझ सकते हैं कि ये कैसे डेप्युटी थे।

साहब लोगों के बुरे बर्ताव से ये सर्वदा रुष्ट रहा करते थे, और प्रायः कहा करते थे कि खाने-पीने का सुभीता हो जाने पर हम सेवावृत्ति छोड़ देंगे। किन्तु इन्होंने पेंशन पाने के पूरे समय तक काम किया। पेंशन लेने के समय इनको अपार आनन्द हुआ। इन्होंने कहा "इतने दिनों बाद सेवावृत्ति से मैंने छुट्टी पाई।"

सन् १८९१ ई० में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ी। १५, १६ वर्ष से ये प्रमेह रोग से पीड़ित थे। यह रोग धीरे-धीरे बढ़ गया और सन् १८९४ ई० में इन्हें परलोक को ले गया।

सरकार ने बंकिम का यथेष्ट सम्मान किया था। यथाक्रम इनको "राय बहादुर" और "सी० आई० ई०" की उपाधियाँ मिली थीं। दूसरों की दृष्टि में यह आदर चाहे बहुत कुछ हो, किन्तु साहित्यरसिकों की दृष्टि में यह कुछ न था। क्योंकि बंकिम साहित्यसमाज के राजराजेश्वर थे। दुःख की बात है कि जो लेखनी "कपालकुण्डला" और "चन्द्रशेखर" लिखने में समर्थ थी, उसको तुच्छ जीविकार्ज्जन के लिए वादी-प्रतिवादियों का इजहार लिखना पड़ा।

बंकिम बाबू को पुत्र-मुख-दर्शन का सुख तो मिला नहीं पर अपनी कन्या की वैधव्य-यंत्रणा देखने का दुःख उठाना पड़ा। इनके तीन कन्यायें थीं।

बंकिम के तीन भाई थे। श्यामाचरण, संजीवचन्द्र और पूर्णचन्द्र। श्यामाचरण और संजीवचन्द्र बंकिम के पहले ही मर गये थे। श्यामाचरण को छोड़कर इनके शेष दोनों भाई भी साहित्यानुरागी और साहित्य-सेवी थे। श्यामाचरण का अनुराग साहित्य में न था। इससे "दुर्गेशनन्दिनी" को उन्हें अर्पण करके बंकिम ने उनके भी नाम का सम्बन्ध साहित्य से कर दिया।

संजीवचन्द्र अच्छे लेखक और कवि थे। इनके बनाये हुए "जालप्रतापचाँद" "कंठमाला" आदि ग्रन्थ बहुत अच्छे हैं। पूर्णचन्द्र भी बंकिम की तरह डेप्युटी मैजिस्ट्रेट थे। इनके बनाये हुए "शैशवसहचरी" और "मधुवती" उपन्यास प्रसिद्ध हैं। संजीवचन्द्र का जीवनचरित बंकिम ने स्वयं लिखा है। उसका नाम है "संजीवसुधा।" बंकिम ने अपना "कपालकुण्डला" ग्रन्थ संजीव को और "चन्द्रशेखर" पूर्णचन्द्र को समर्पित किया है।

बंकिम बाबू पूर्ण धार्मिक थे। धर्म पर इनका पूर्ण विश्वास था। मन्त्र-यन्त्र में भी इनका विश्वास था। ज्योतिष शास्त्र को भी मानते थे। इस शास्त्र में इनकी थोड़ी-बहुत गति भी थी।

सुनते हैं वंगदेशीय कतिपय सज्जन इनके गाँव में इनकी यादगार के लिए एक मन्दिर बनाने और इनके नाम से मेला लगाने का विचार कर रहे हैं। बहुत अच्छी बात है।

जिस समय प्रतिभा के पूर्ण अधिकारी और प्रकृत साहित्य के गुरु बंकिम का जन्म बंगदेश में हुआ, उस समय वहाँ की भाषा बहुत हीनावस्था में थी। इनके जन्म ग्रहण करने से विशुष्क सहारा-रूपी वंग-भाषा "सजला, सफला, मलयजशीतला" हो गई। इन्हीं की कृपा और परिश्रम से वंग-भाषा आज नाना रत्नों से सुशोभित हो रही है। साहित्य क्षेत्र के कर्मवीर बंकिम ने अपने प्रतिभावल से वंगभाषा-भाषियों को मन्त्रमुग्ध सा कर दिया। वंगवासी नर-नारी के हृदय पर उन्होंने अपना प्रबल आधिपत्य स्थापन किया। बंगाल ही क्यों, आज अन्यान्य देश भी इनके गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में इनकी पुस्तकों के अनुवाद हो रहे हैं। यहाँ तक कि अँगरेजी और फरासीसी आदि भाषाओं में

भी इनकी कई पुस्तकें अनुवादित हो गई हैं। यह अत्युक्ति नहीं, कि जब तक वंग भाषा रहेगी तब तक बंकिम रहेंगे।

बंकिम के पूर्ववर्ती बँगला-लेखकों की अपेक्षा इनकी भाषा विशेष प्राणमयी और मर्म्मस्पर्शिनी होती थी। उसके पढ़ने से कभी-कभी ऐसा ज्ञात होता है मानों गद्य में भी किसी सरस गीत का सुखद अलाप सुन रहे हैं। इन सब बातों से ये नवीन वंगभाषा के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। किसी किसी ने इनको आदर्श लेखक (Idealistic Writer) कहा है सो ठीक भी है, क्योंकि इनके बाद के सभी लेखक इन्हीं की भाषा का अनुकरण करते हैं। इनकी भाषा सरस, मधुर और हास्यपूर्ण है। इनके उपन्यास भी आदर्श हैं। अर्थात् जिस प्रकार का समाज होना चाहिए उसी को इन्होंने अपने उपन्यासों में दिखाया है। वर्तमान समाज का इन्होंने चित्र नहीं खींचा। बंकिम बड़े सौन्दर्य-प्रेमी थे। इनके रचे हुए सभी ग्रन्थ सौन्दर्य की सृष्टि हैं। कपालकुण्डला में यह बात सबसे अधिक पाई जाती है।

हम ऊपर कह आये हैं कि वंग के वर्तमान गद्य-साहित्य के जन्मदाता बंकिम ही हैं। इनकी प्रौढ़ और सरस रचना देखने से मालूम होता है कि इनमें स्वाधीनता तथा जातीय भाव कितना था। श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि —"जिस बंकिम ने वंग साहित्य के गम्भीर रसोद्रेक से पाठकों के नेत्रपटल से अश्रुधारा बरसाई है उसी बंकिम ने आनन्द के उदय-शिखर से नव-जागरित वंग-साहित्य पर हास्य रस का आलोक विकीर्ण कर संसार को मन्त्र-मुग्ध कर दिया है।" उपमा उपमेय और अन्यन्य अलंकारों का सौन्दर्य तो इनके ग्रन्थों में देखते ही बन आता है। यह नहीं जान पड़ता है कि गद्य पढ़ रहे हैं, या महा-रसवती कविता। इस बात का यथार्थ अनुभव केवल उन्हीं लोगों को हो सकता है जिन्हें इनकी कोई पुस्तक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पुत्र का जो स्नेह जन्मभूमि पर होना चाहिए उसका सजीव प्रमाण इनके "आनन्द मठ" में मिलता है। देश-प्रसिद्ध "वन्दे-मातरम्" इसी पुस्तक का एक गीत है। इससे स्पष्ट है कि हृदय में जन्म-भूमि का कैसा अकृत्रिम प्रेम था। इनकी इस गीत पर बड़ी ममता थी। लोग कहते हैं कि जब कभी ये अकेले बिना काम बैठे रहते थे तब बड़े प्रेम से इस गीत को गाया करते थे। पूछने पर कहते थे कि यह गीत जादू से भरा हुआ है। सो बात आज सत्य निकली। इसी "वन्दे मातरम्" को लेकर आज सारे भारत में हलचल मच रही है। कौन प्रान्त ऐसा है जहाँ इस गीत का आदर नहीं? कौन ऐसा अभागा है जिसके हृदय में इस गीत को सुनकर एक अद्भत तरंग न उठने लगती हो?

निम्नलिखित पुस्तकों और निबन्धों को बंकिम बाबू ने लिखा है। पाठक, इस सूची को देखकर, विचार सकते हैं कि सरकारी काम की अधिकता रहने पर भी प्रतिभाशाली बंकिम ने कितना काम किया है। कवि ने इन सब प्रबन्धों को उस समय में लिखा है जिसे और लोग तमाशे या गपशप में व्यर्थ नष्ट कर देते हैं—

उपन्यास

१—दुर्गेशनन्दिनी*। २—मृणालिनी*। ३—रजनी। ४—कृष्णकान्त का विल (दानपत्र)*। ५—युगलांगुरीय*। ६—राधा रानी*। ७—राजसिंह*। ८—इन्दिरा*। ९—विषवृक्ष*। १०—कपाल-कुण्डला*। ११—चन्द्रशेखर*। १२—देवी चौधरानी*। १३—कमलाकान्त। १४—आनन्द मठ*। १५—सीताराम।

अन्य ग्रन्थ

१—कृष्णचरित। २—धर्म-तत्व। ३—चम्पू (गद्य-पद्य)। ४—मानस (काव्य)। ५—ललिता (काव्य)। ६—लोक-रहस्य। ७—विविध प्रबन्ध अर्थात् भिन्न-भिन्न विषयों पर निबन्ध जो "वंगदर्शन" आदि पत्रों में समय-समय पर छपे थे।

जिन उपन्यासों के आगे ऐसा (*) चिन्ह है उनके भाषानुवाद खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर. तथा और एक आध प्रेस से प्रकाशित हो चुके हैं। सुनते हैं शेष के अनुवाद भी तैयार हो रहे हैं। यदि इनकी सब पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी भाषा में छप जाय तो हिन्दी के साहित्य-भंडार का गौरव बढ़ जाय।

दुर्गेशनन्दिनी बंकिम का पहला उपन्यास है। यह सन् १८६४ ई० में पहले पहल प्रकाशित हुआ था। इस ऐतिहासिक उपन्यास को देखते ही सारी वंग-भूमि चकित हो गई। इसमें सन्देह नहीं कि सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) के उपन्यासों को पढ़कर बंकिम ने उपन्यास-रचना आरम्भ की थी और अँगरेजी उपन्यासों

को ही आदर्श मानकर इन्होंने अपनी पुस्तकें लिखी हैं। किन्तु इन पुस्तकों में इनकी प्रतिभा का उच्च विकास देख पड़ता है। "दुर्गेशनन्दिनी" ऐसा उपन्यास उसके पहले पाठकों के दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। उसके प्रकाशित होने से जान पड़ा मानों साहित्य-कानन में सिंह-शिशु का आविर्भाव हुआ। किन्तु संकीर्ण-हृदय समालोचकों और हताश लेखकों से इनका उत्कर्ष नहीं सहा गया। चारों ओर से निन्दा और कटूक्तियों की बौछार होने लगी। प्रतिभा का आलोक सब नहीं सह सकते। धूल फेंक कर सूर्य को कौन मलिन कर सकता है। "दुर्गेशनन्दिनी" का जन्म से ३० वर्ष बाद वंग-समाज में आदर हुआ और सब को स्वीकार करना पड़ा कि इससे बढ़कर वंग-भाषा में कोई उपन्यास इसके पहले प्रकाशित नहीं हुआ था। हिन्दी भाषा में सबसे पहले इसी दुर्गेशनन्दिनी का अनुवाद हुआ। पहले बाबू गदाधर सिंह ने इसका अनुवाद किया, फिर बाबू रामदीनसिंह के अनुरोध से बाबू राधाकृष्णदास ने इसका दूसरा अनुवाद किया।

इसके पहले बंकिम ने "ललिता" और "मानस" नाम की दो पद्यमयी कहानियाँ, १५ वर्ष की अवस्था में, लिखी थीं। लिखने के तीन वर्ष बाद कवि ने इनको मुद्रित और प्रकाशित कराया था पर उस समय इनका आदर नहीं हुआ। हम लोग अब इन्हें देखकर कह सकते हैं कि इन प्रबन्धों में भी भाव और रस की कमी नहीं है।

"दुर्गेशनन्दिनी" के प्रकाशित होने के आठ वर्ष बाद बंगालियों के गौरव का धन "वंगदर्शन" नामक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा। इसका प्रथम अंक १८७२ ई० में निकला। इसके सम्पादन का भार बंकिम बाबू ही ने लिया। देखते-देखते इसका नाम, मान और आदर सर्वत्र फैल गया। सब के हाथ में आकर "वंग-दर्शन" दर्शन देने लगा। उस समय के सभी सुलेखकों ने इस पत्र का आदर किया और दर्शन, विज्ञान, इतिहास, काव्य और साहित्य के विविध प्रबन्ध इसमें छपने लगे। बंकिम की प्रायः सभी पुस्तकें पहले इसी पत्र में प्रकाशित हुई थीं। आज जो बंगाल के शिक्षित समाज में बंग भाषा का हम इतना आदर देखते हैं, इसका विशेष कारण वंग-दर्शन ही है। "दर्शन" के द्वारा बंकिम का यशःसौरभ चारों ओर फैल गया। इस पत्र के देखने से बोध होता है कि बंकिम समालोचना के सच्चे पक्षपाती थे। एक जगह इन्होंने लिखा है कि यदि साहित्य का यथार्थ उपकार करना चाहो तो प्रकृत और सच्ची समालोचना करो और सच्चे समालोचकों की बातों पर ध्यान दो।

बंकिम बाबू के उपन्यासों को विशेष ध्यान देकर पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे तीन श्रेणी के हैं। पहली श्रेणी में "दुर्गेशनन्दिनी", "कपालकुण्डला", "मृणालिनी" और "चन्द्रशेखर" हैं। नायक-नायिकाओं का प्रेम और सौन्दर्य ही इनका मूलाधार है। दूसरी श्रेणी वाले हिन्दू-समाज और सांसारिक व्यवहार के आधार पर बने हैं। "विषवृक्ष", "कृष्णकान्त की विल" (वसीयतनामा) और "देवी चौधरानी" इस श्रेणी के अन्तर्गत है। पीछे से कवि के हृदय में स्वजातीय प्रीति, स्वदेश-भक्ति और स्वधर्म-रक्षा के भाव उदित हुए, जिसके फल, "आनन्द-मठ", "सीताराम" और नूतन संस्करणवाला "राजसिंह" है। पर इन सब श्रेणियों का मुख्य और प्रधान उपादान प्रेम ही है। मानव-हृदय के अति कोमल, अति सूक्ष्म और अति स्वाभाविक भावों का अवलम्बन करके कवि ने अपने ग्रन्थों में अपनी एक नई ही सृष्टि (Own World) की रचना की है परन्तु जिस क्रम से हमने इनकी पुस्तकों को श्रेणीबद्ध किया है उस क्रम से इन्होंने उनकी रचना नहीं की। २७ वर्ष की उम्र से आरम्भ करके ३२ वर्ष तक इन्होंने दुर्गेशनन्दिनी कपालकुण्डला और मृणालिनी की रचना की। ३४ वर्ष की उम्र से लेकर ४३ वर्ष तक आप ने रजनी, चन्द्रशेखर, विषवृक्ष और कृष्णकान्त के दानपत्र को बनाया। ४४ वर्ष से लेकर अन्तकाल तक कवि ने आनन्दमठ, देवी चौधरानी और सीताराम आदि शेष बड़े-बड़े उपन्यासों को लिखा। श्री हरानचन्द्र रक्षित से सहमत होकर हमने इन बातों को लिखा है।

इनके सिवा अनेक ऐतिहासिक और धर्म सम्बन्धी प्रबन्ध तथा इन्दिरा, राधारानी आदि छोटी-छोटी पुस्तकें भी इन्होंने लिखी हैं, जिनकी आलोचना इस अल्प प्रबन्ध में नहीं हो सकती किन्तु इतना कहना आवश्यक है कि बंकिम बाबू की प्रौढ़ावस्था की सरस, सरल और रोचक लेख-प्रणाली का "इन्दिरा" एक सुन्दर नमूना है। इनको विशेष मनोयोग से पढ़ने पर विदित होता है कि कवि की प्रतिभा कब इनकी लेखनी को किस ओर ले जाती थी। प्रेम के सिवा सत्यवादिता, निर्भयता तथा तेजस्विता भी इनके

लेख में खूब पाई जाती है। और इन्हीं गुणों से पाठकों के हृदय पर इतना प्रबल अधिकार हो जाता है।

बंकिम बाबू की दूसरी श्रेणी की उपन्यासावली की मर्म्मस्पर्शिनी लेख-प्रणाली, रसमाधुर्य तथा चरित्र-चित्रण बड़े ही मनोहर हैं। यदि ये सब गुण इनकी तीसरी श्रेणी के उपन्यासों में भी समान भाव से रहते तो यथार्थ ही उत्कृष्ट काव्यदर्शन के देखने का सौभाग्य हम लोगों, को प्राप्त होता। यदि कपालकुण्डला का काव्यादर्श, विषवृक्ष और चन्द्रशेखर का लिपि-चातुर्य तथा चरित्र-चित्रण और आनन्दमठ तथा सीताराम का उत्कृष्ट लक्ष्य एकत्र सन्निविष्ट होते तो बंकिम बाबू के उपन्यास आज सारी दुनिया के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ गिने जाते।

बंकिम बाबू के उपन्यासों में एक और विशेषता यह है कि प्रायः उन सब में एक न एक महापुरुष का चरित्र अंकित है। दुर्गेशनन्दिनी से लेकर सीताराम तक प्रायः सभी उपन्यासों में कोई न कोई महात्मा जरूर ही देख पड़ते हैं।

इनके उपन्यासों को देखने से ज्ञात होता है कि पापी और दुष्टों को दण्ड देना ये खूब जानते थे। दुर्गेशनन्दिनी में क़तलूखाँ की गति; कृष्णकान्त के दानपत्र में गोविन्द लाल तथा रोहिणी की अन्तिम दुर्दशा; कपालकुण्डला में कापालिक का वालुका के शिखर से गिरकर अपाहिज होना; चन्द्रशेखर में शैवलिनी का जीते-जी नरक-यंत्रणा भोग करना; और विषवृक्ष में कुन्दनन्दिनी का विषपान देखकर कौन नहीं कहेगा कि कवि बंकिम यथार्थ ही इन स्थानों में न्यायपरायण डेप्युटी के कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं? किन्तु सीताराम के देखने से आश्चर्य होता है कि सीताराम जैसे महापापी को सहज ही में इन्होंने क्यों छोड़ दिया? हाय। जयन्ती ऐसी निष्कामा योगिनी को सीताराम ने खुले दरबार में कपड़ा खोलकर बेंत मारने की आज्ञा, चाण्डाल को देने में क्या कम निष्ठुरता और पाप का परिचय दिया है? भला कहिए तो, इसके पलटे कवि ने उसको क्या दण्ड दिया? जयन्ती की प्रार्थना सुनकर किस सहृदय का हृदय नहीं पिघल जाता? हाय! किस सरलता से जयन्ती ने सभासदों से कहा है, कि राजाज्ञा से इस मंच के ऊपर मैं अभी विवसना होऊँगी! आप लोगों में जो सतीपुत्र हों वे अपनी माता को स्मरण कर एक क्षण के लिए इस समय अपने नेत्रों को आवृत कर लें ....।" सीताराम ऐसे महापापी को जो दण्ड दिया जाय सब थोड़ा है।

सब बातों पर ध्यान देने से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि बंकिम बाबू पूरे हिन्दू कवि थे। पूर्व जन्म और परलोक में इनका पूरा विश्वास था। आदर्श चरित्र लिखने में, विशेषतः स्त्री-चरित्रचित्रित करने में, ये अद्वितीय थे। कथा-रचना इनकी विचित्र नहीं है, किन्तु पात्रों का परस्पर कथोपकथन अत्यन्त चमत्कारपूर्ण और मनोहर है। पढ़ते समय कभी-कभी पाठकों को ज्ञात होने लगता है कि वे कोई नाटक पढ़ रहे हैं, उपन्यास नहीं। वाक्य-चातुरी और रहस्य इनके पात्रों में कूट-कूट कर भरे हुए हैं। किसी विशेष विषय, घटना अथवा शोभा के वर्णन में कदाचित ही कोई इनकी समता कर सकता हो। हाँ इतना अवश्य कहना पड़ता है कि इनके स्त्री-पात्र प्रायः सब के सब हठी, जिद्दी, और क्रोधी हैं। भला कहिए तो भ्रमरा को हम लोग क्या आदर्श हिन्दू-रमणी कह सकते हैं? क्या अपने हठ के कारण अपने सोने के संसार को उसने धूल में नहीं मिला दिया? क्या कपालकुण्डला की जिद्द से ही नायक नायिका दोनों का प्राण नहीं गया? देवी चौधरानी को देखने से भी यही बात प्रत्यक्ष होती है। इनको देखकर पाठक कह सकते हैं कि कवि के स्त्री-पात्र आदर्श हिन्दू-रमणी कदापि नहीं। किन्तु जो हो, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि आदर्श चरित्र के सृष्टिकर्त्ता बंकिम अवश्य ही हैं। इस गुण में इनकी तुलना किसी अँगरेजी कवि से नहीं हो सकती। भला कहिए तो चन्द्रशेखर, प्रताप, सत्यानन्द, सूर्यमुखी, लवंगलता और प्रफुल्ल आदि का ऐसा आदर्श-चरित विलायत के किस उपन्यास (Novel) में पाया जाता है? इसी विशेष गुण के कारण बंकिम का आदर आज साहित्य-संसार में हो रहा है। इनका कथन था कि "मानव जीवन की विषम समस्या पर विचार करना, तथा उसकी पूर्ति करना ही उपन्यास का उद्देश्य है। और जिसमें इस समस्या की पूर्ति हुई हो वही आदर्श उपन्यास है।" बंकिम ने अपने उपन्यासों में इन समस्याओं पर खूब विचार किया है और उसमें कृतकार्य भी हुए हैं।

बंकिम के उपन्यासों का कथानक विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। पर इससे क्या? दूसरे की कही हुई बातों को अपने ढंग पर बनाकर कहना और उसमें एक नया

सौन्दर्य लाना भी एक गुण ही है। दूसरे को अपना कर उसे अपने ढंग का कैसे बना लेना चाहिए, इसका उदाहरण हम लोग इनके कृष्णचरित में पाते हैं। कृष्णचरित को देखते ही बंगाल में खलबली मच गई। पुरानी शैली की पण्डित-मण्डली इनके विरोध में उठ खड़ी हुई। इस ग्रन्थ में कवि ने श्रीकृष्ण का चरित किसी देवता और अवतार के अनुरूप नहीं लिखा। इन्हें यादव-पति, यदुवंश-शिरोमणि मानकर इनका चरित चित्रित किया है। इन्होंने लिखा है कि वृन्दावन में गोपियों के संग प्रेम और श्रृंगार रस की कहानियाँ जो कवि लोगों ने वर्णन की है उनका आधार संस्कृत-साहित्य में नहीं है, ये नवीन कवियों की कपोल-कल्पनायें हैं।

उम्र ढलने पर बंकिम बाबू का ध्यान धर्म की ओर विशेष था। अन्त में ये वेद पढ़ने और धर्म-पुस्तकों ही के पाठ तथा मनन, में अपना अधिक समय व्यतीत करते थे।

सिर्फ उपन्यास ही लिखने में प्रतिभाशाली बंकिम कवि, दार्शनिक, नीतिवेत्ता, ऐतिहासिक, नाटककार और समालोचक सब का काम करते थे। स्थानाभाव से इस बात को हम, उदाहरण देकर, नहीं बतला सकते किन्तु सुविज्ञ पाठक इनके उपन्यासों का ध्यानपूर्वक पाठ कर आप ही जान सकेंगे कि हमारा कहना कहाँ तक ठीक है। देखिए "आयेसा" दुर्गेशनन्दिनी के अन्त में खड़ी कैसी सुन्दर दीख पड़ती है। प्रताप के संग भागीरथी में तैरती हुई शैवलिनी कैसी मनोहर ज्ञात होती है। वन में समुद्र तट पर खड़ी कपालकुण्डला की तो कोई बात ही नहीं। समालोचकों की धारणा है कि कपालकुण्डला से बढ़ कर सुन्दर चित्र आज तक किसी कवि या चित्रकार ने नहीं खींचा। कपालकुण्डला से बढ़कर कविता बंकिम ने और कहीं नहीं की और यही उनके उपन्यासों में सबसे बढ़कर है। किन्तु हम इनके "चन्द्रशेखर" को अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि इनका विषय गूढ़, भाव गम्भीर, लेख-प्रणाली प्रगल्भ और भाषा ओजस्विनी है।

"कपालकुण्डला" को देखने से मालूम होता है कि बंकिम अदृष्टवादी हिन्दू थे। कपालकुण्डला के प्रकाशित होते ही बंकिम की अखण्डकीर्ति की विमल छटा चारों ओर फैल गई और समालोचकों ने इनको साहित्य-सेवकों के राज-राजेश्वर के आसन पर स्थापित कर दिया।

बंकिम का अन्तिम उपन्यास "सीताराम" है। इसमें स्वदेश-भक्त कवि ने नाटक का अच्छा क्रम विकास दिखाया है। किन्तु इसमें कवि की वह सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा नहीं झलकती जो कपालकुण्डला और चन्द्रशेखर में विद्यमान है। हमारे एक मित्र कहते हैं कि चन्द्रशेखर जैसा सुन्दर ग्रन्थ संस्कृत में भी नहीं है।

व्याकरण और भाषा की ओर बंकिम अधिक ध्यान नहीं देते थे। वे केवल भाव पर ध्यान रखकर अपने वाक्यों की ऐसी रचना करते थे, जिसमें इनके कथन का प्रभाव पाठकों के हृदय पर पड़े कमलाकान्त से हम पाठकों को इनकी लेखनशैली का एक नमूना दिखाते हैं। एक जगह पर आप कहते हैं. . . . .प्राण गया, तब फिर निःश्वास क्यों? सुख गया, तब फिर रोना क्यों? तब भी रोता हूँ। जन्म लेते रोदन किया था, वही आज भी रो रहा हूँ। रोते ही रोते मरना भी पड़ेगा। बस अब केवल रोऊँगा, लिखूंगा नहीं।"

बंकिम बाबू निष्काम तथा निष्कपट भाव से तन मन लगाकर साहित्य-सेवा करते थे। जो कुछ सुन्दर, नूतन, सत्य और सारगर्भित पाते थे उसी का सरल भाव से ये चित्र उतारते थे। बीच बीच में ये पाठकों की रुचि का ध्यान अवश्य रखते थे। किन्तु इस अवस्था में भी प्रायः ये अपने स्वाभाविक उच्च व्रत से विचलित नहीं होते थे।

बंगभाषा का एक इतिहास लिखने की प्रबल आकांक्षा इनको थी। इसलिए कई एक ऐतिहासिक प्रबन्धों को आपने लिखा भी था। किन्तु कई कारणों से इनकी [illegible] इच्छा फलीभूत नहीं हुई।

यद्यपि इतने बड़े कवि की यह छोटी सी जीवनी यथेष्ट नहीं है, तथापि हम इस प्रबन्ध को थोड़े ही में समाप्त करते हैं, और आशा रखते हैं कि पाठकों को इस प्रबन्ध के पढ़ने से बंकिम बाबू की पुस्तकों के पढ़ने की रुचि होगी। बंगाल में बाल, वृद्ध, वनिता, सभी इनकी पुस्तकों को पढ़ते हैं और इनके एक-एक पात्र से परिचित हैं। स्कूल में लड़के, महलों में ललनागण, और अध्ययनागार में बाबू लोग, सब के सब, बंकिम का आदर करते हैं और इनकी एक-एक युक्ति और व्यंग पर अपने प्राणों [illegible] निछावर करते हैं।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६४ जुलाई से दिसम्बर १९६३ खण्ड २

विषय		लेखक		पृष्ठ
१—अपना साहब	..	डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'	..	७७
२—अपनी बीवी, पराई बीवी	..	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा		५६५
३—अफ़्रीका और उसका नवजागरण	..	श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह संसद सदस्य	..	३०
४—अरे! ओ वज्रादपि कठोर!	..	प्रो० कुवेरनाथ राय एम० ए०	..	५२३
५—आँगनों के बीच	..			६९, १६७, २५५, ३५३, ४४९, ५६१
६—आकाश की नर्तकी—बिजली	..	श्री सुरेशचन्द्र गौड़ एम० एस्-सी०	..	१५८
७—आग्रह (कविता)	..	स्व० भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत) शास्त्री		३३
८—आचार्य रघुवीर	..	श्री ऋषि मामचन्द्र कौशिक	..	५९
९—आज बादल डगमगाते (कविता)	..	श्री वीरबल महतो	..	५२
१०—आर्य भारतीय भाषा-विज्ञान : तब और अब	..	डॉ० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०	..	३१६
११—इंग्लैंड का प्रोफ्यूमो कांड	..	पं० वेंकटेशनारायण तिवारी	..	२२६
१२—इतिहास पुराण में वर्णित भाषण कला	..	श्री रामशंकर भट्टाचार्य	..	२३३
१३—उत्तर-दक्षिण की एकता में प्राचीन आन्ध्रवंश का योग	..	प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी सागर विश्वविद्यालय	..	४१५
१४—उन दीपों को भूल न जाना!	..	श्री रामदेव आचार्य	..	४१०
१५—१९०७ की सरस्वती	..			८५, १८२, २७७, ३७२, ४७७, ५७२
१६—एक चाँदनी रात	..	श्री जगदीश चन्द्र पाण्डेय	..	१७०
१७—एशिया अफ़्रीका पर चीनी जाल	..	श्री सीताराम जौहरी	..	३४
१८—कच्चा चिट्ठा	..	डॉ० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'	..	२७०
१९—कवियों का प्रिय—चक्रवाक	..	श्री चक्रधर नलिन	..	१३३
२०—कविवर 'नवीन' के काव्य में दीपमाला	..	डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे	..	४१३
२१—कहते-कहते भी (कविता)	..	श्री रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण'	..	३३३

विषय	लेखक	पृष्ठ
२२—कुछ समझ पाता नहीं हूँ! (कविता) ..	कु० सोमेश्वर सिंह	.. ३१५
२३—कृष्ण की ब्रजलीला वस्तुतः सूर्यलीला है ..	डा० शालिग्राम गुप्त	.. ३१३
२४—गंगाजल पवित्र क्यों—एक वैज्ञानिक अध्ययन ..	श्री कौशलेन्द्रमोहन तिवारी	.. ५५०
२५—गाहा सत्तसई से ग्राम्य जीवन के चित्र ..	श्री विश्वनाथ पाठक	.. ५२०
२६—गोस्वामी तुलसीदास की भाषा और शब्द ..	डॉ० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०	.. १२१
२७—पं० गौरीशंकर शर्मा—व्यक्तित्व और कृतित्व ..	डा० कस्तूरचन्द जैन	.. ४४७
२८—चार मुक्तक (कविता) ..	श्री प्रेमचन्द्र जैन	.. २१९
२९—चौदह कैरट (कविता) ..	डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त	.. ४६६
३०—जल विभाजक—स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय ..	मेजर सीताराम जौहरी	.. ४२०
३१—जाग री तू जाग! (कविता) ..	श्री बीरबल महतो	.. ४४६
३२—जैसलमेर आदि का मेर शब्द ..	पं० किशोरीदास वाजपेयी	.. ५१८
३३—डा० सम्पतराम चतुर्वेदी ..	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	.. ४४३
३४—तमिल साहित्य में राष्ट्रीयता एवं प्रादेशिकता की भावना ..	डॉ० उदयनारायण तिवारी	.. ५३१
३५—तीन मुक्तक (कविता) ..	श्री कृष्णनन्दन 'पीयूष'	.. ४१४
३६—तुञ्चत्तु रामानुजनेषुत्तच्छन—केरल के तुलसीदास	कुमारी राधा अम्मल	.. १३८
३७—तुम्हें खोजते उमर बिताई (कविता) ..	श्री इन्दुकान्त शुक्ल	.. ४१४
३८—तुलसी के पढ़ाऊ ..	पं० शिवाधार पाण्डेय	.. ३४६
३९—'दम्पति वाक्यविलास' के दो प्रकाशित संस्करण	श्री अगरचन्द नाहटा	.. १३१
४०—दरवाजे के शीशे ..	श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी	.. १६४
४१—दलदल में धँसते पाँव ..	डा० हरिदत्त भट्ट "शैलेश"	.. ४६४
४२—देखा-सुना ..	श्री मनमोहन गुप्त	७२, १७३, २५९, ३५६, ४५२
४३—नया विश्वास (कविता) ..	श्री राजकिशोर	.. ४४२
४४—नवीन प्रकाशन ..		८०, १७७, २७२, ३६६, ४७२
४५—निवेदन : एक मनःस्थिति (कविता) ..	प्रो० गोपालजी 'स्वर्णकिरण'	.. ४७१
४६—निःशब्द चीत्कार ..	श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"	.. ४५८
४७—न्याय की पहेली ..	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	.. ३६२
४८—पंचतंत्र और हितोपदेश की विश्व-विजय ..	डॉ० हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट्०	.. ५१३
४९—पं० चन्द्रशेखर मिश्र ..	श्री उमाशंकर	.. २५०
५०—पठानों के अन्तहीन जत्थे ..	श्री हरिमोहन शर्मा	.. १४०
५१—पधारो! (कविता) ..	अनु० श्री श्रीकान्त झा	.. ५४९
५२—परिणति ..	श्री निर्मला मित्र	.. २६५
५३—पावस गीत (कविता) ..	श्री 'अनन्त' चौरसिया	.. १२५
५४—पावस से (कविता) ..	श्री रत्नकुमारी 'काव्यतीर्थ'	.. २४२
५५—पेटेंट औषधियाँ व नशाखोरी ..	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	.. १३२
५६—प्रेम-संवाद ..	अनु० श्री रसिकबिहारी	.. ५३०
५७—बरसो मेरे बादल (कविता) ..	श्री सन्तकुमार टंडन 'रसिक'	.. ६२

विषय		लेखक	पृष्ठ
५८—ब्रज की कविता-वनिता	..	श्री सुरेशचन्द्र	.. २७
५९—ब्रजभाषा के 'हू' अव्यय का विकास	..	पं० किशोरीदास वाजपेयी	.. २१७
६०—ब्रजमाधुरी	..		८३, १८०, २७५, ३७०, ४७५, ५६९
६१—ब्रिटेन के लेखक और उनकी आय	..	श्री महेन्द्रराज जैन	.. ४२५
६२—भारत का वर्तमान कोयला उद्योग	..	श्री रमेशचन्द्र चौबे एम० ए० एल-एल० बी०	.. २२९
६३—भारती-कण्ठाभरण	..		१७९, २७४, ३६९, ४७४, ५६८
६४—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का निबंध साहित्य	..	प्रो० आनन्दनारायण शर्मा एम० ए०	.. १६१
६५—भ्रमरानन्द का पत्र—'अवर इंगलिश हैरीटेज'	..	श्री भ्रमरानन्द परिव्राजक	.. ५५२
६६—मध्यकालीन हिन्दी कोश-साहित्य	..	डा० अचलानन्द जखमोला एम० ए० डी० फिल०	.. ३२१
६७—मनीआर्डर	..	श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी	.. ५६७
६८—मनोरंजक संस्मरण	..		८३, १८०, २७६, ३७१, ४७६, ५७०
६९—महाकवि सूर्यमल्ल और उनकी राष्ट्रीय भावना	..	श्री ब्रजराज शर्मा, एम० ए० बी० एड०	.. १५३
७०—महाराजा रणजीतसिंह का सैनिक संगठन	..	श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	.. २३५
७१—मालवीयजी के अभ्युदय में संग्रलेख	..	श्री वें० ना० तिवारी	.. २८
७२—मुगलकालीन सैन्य व्यवस्था	..	श्री गोस्वामी बालक सा० रत्न	.. ३२७
७३—मुल्ला दाउद	..	डा० सूरजप्रसाद शुक्ल	.. ५३
७४—मैंने पत्रिका निकाली	..	श्री लक्ष्मण भारद्वाज	.. ३६४
७५—यहाँ से दूर जा बरसो ! (कविता)	..	श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव	.. १३४
७६—राजभाषा विधेयक पर कविताएँ	..		.. १५०
७७—राजर्षि टंडन—एक श्रद्धांजलि (कविता)	..	श्री शैवाल सत्यार्थी	.. २५५
७८—राजस्थान में शोध-कार्य करनेवाली प्रमुख संस्थाएँ	..	प्रो० नरेन्द्र मानावत एम० ए०	.. ४९
७९—राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में	..	श्री फेनी मुकर्जी	६३, १४२, २४३, ३४१, ४३६, ५४२
८०—लक्ष्मी-स्तुति (कविता)	..		.. ४०९
८१—लज्जा-लावण्य (कविता)	..	श्री राजेशदयालु "राजेश"	.. ४४
८२—लद्दाख	..	मेजर सीताराम जौहरी	.. ५३१
८३—वर्षागीत (कविता)	..	श्री सुवेश	.. ५८
८४—विदेशों में दीपोत्सव	..	श्री उदयनारायण सिंह	.. ४११
८५—विद्यालय का विदागीत	..	श्री गौरीशंकर गुप्त	.. ५५१
८६—विभिन्न देशों में क्रान्ति	..	पं० व्यंकटेशनारायण तिवारी	.. ५२८
८७—व्यासजी के कुछ संस्मरण	..	डा० आनन्द कृष्ण	.. ४१७
८८—शक्तिशाली हिजड़े	..	श्री गोपीनाथ 'व्यथित'	.. ४३४
८९—शिवकाव्य की परंपरा	..	डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' एम० ए०, पी०-एच० डी०	.. २५
९०—श्रद्धादीप	..	मू० श्री पीताम्बर पटेल अ० श्री राजगोपाल माथुर	४६७
९१—सम्पादक के नाम पत्र	..	कमलारत्नम्	.. ६८
९२—सम्पादकीय	..		१७, ११३, २०९, ३०५, ४०१, ५०५

112878

विषय		लेखक	पृष्ठ
९३—सिन्धी भाषा का परिचय	..	श्री गुलाब भोजवाणी	.. ४२१
९४—सुवर्ण निधियाँ और सरकारी विधान	..	अनु० श्री कस्तूरमल बाँठिया	.. ३३४
९५—सूरदास नाम के अनेक भक्त, कवि और गायक	..	श्री प्रभुदयाल मीतल	.. ५५८
९६—स्त्री-धन और उत्तराधिकार	..	श्री चन्द्रबली त्रिपाठी	.. ३३१
९७—हमारा यह अनन्त ब्रह्माण्ड	..	श्री सन्तराम	.. २५३
९८—हमारी वैज्ञानिक उन्नति में बाधाएँ	..	श्री कस्तूरमल बाँठिया	.. ३७
९९—हर्षकालीन कुण्डधानी विषय (जिला) और सोम कुण्डिक ग्राम	..	श्री फूलचन्द्रत्रिपाठी	.. १५५
१००—हाफिज की गर्वोक्तियाँ	..	श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	.. ४५
१०१—हिन्दी और दक्षिणवासी	..	श्री टी० एस० कन्नन एम० ए०	.. ५५५
१०२—हिन्दी की वर्तमान स्थिति पर डा० सुधांशु के विचार			.. १२१
१०३—हिन्दी प्रकाशन की शताब्दी और उसका शत-वार्षिक विवरण	..	श्री प्रभुदयाल मीतल	.. ३४८
१०४—हिन्दी भाषा की शिक्षा की समस्या	..	डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट्०	१२६
१०५—हिमालय की जातियाँ	..	मेजर सीताराम जौहरी	.. २२०
१०६—हैदराबाद का अँग्रेजी संस्थान	..	डा० उदयनारायण तिवारी	.. ३५०

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह--प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० नये पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है । हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं । संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है । इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता ।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका--सुश्री विनीता वांचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है । यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है । इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है । इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है । खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है । उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है । पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं । सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है । इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं । किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी । सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

23 VIII 1983 B
V. 846 G114 n

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है; नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·०० ।

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित कर ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपय।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालस्टाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Compiled
1999-2000